दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, कालविनाशिनि काली जय जय।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम। गौरी-शंकर, सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम॥

नारद-स्तवन

(रचयिता—श्रीयुगलसिंहजी एम्० ए०, बार-एट-लॉ)

हरि-हर उरमें, वीणा करमें, करते प्रभुका काज। धरा-गगनमें विचरण करते, नारद मुनि-सिरताज॥
प्राणिमात्रके हित-रत रहते, सबसे सम व्यवहार। नित्य असुर-सुर दोनों करते, नारदका सत्कार॥
रस रसना नाना नामोंका, हरिके करती पान। जगको नारद-वाणी देती, भक्ति-सुधाका दान॥
दिव्य गान जब नारद करते, निज वीणा झंकार। भव्य भाव भवमें भर जाता, बहती आनँद-धार॥
सब लोकोंमें फिर फिर करते, प्रभु-इच्छा साकार। नारद मुनि जगमें कहलाते, हरि-मनके अवतार॥
भक्ति-मार्ग सबको दिखलाना, मति-गतिके अनुसार। नारदका व्रत यही सर्वथा, हो प्रभुमय संसार॥
माधव मुग्ध हुए नारदपर, किया गुणोंका गान। अपरंपार भक्तकी लीला, उसके वस भगवान॥
ब्रह्म-तनय भक्ति-रस-सागर, विद्याके आगार। जुगल जोड़ कर करते विनती, ऋषि-मुनि बारंबार॥

वार्षिक मूल्य भारतमें ७॥) विदेशमें १०) (१५ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

इस अङ्कका मूल्य ७॥) विदेशमें १०) (१५ शिलिङ्ग)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, कालविनाशिनि काली जय जय।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम। गौरी-शंकर, सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
...ी राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम॥

नारद-स्तवन

(रचयिता—श्रीयुगलसिंहजी एम्० ए०, बार-एट-लॉ)

...-हर उरमें, वीणा करमें, करते प्रभुका काज। धरा-गगनमें विचरण करते, नारद मुनि-सिरताज॥
...णिमात्रके हित-रत रहते, सबसे सम व्यवहार। नित्य असुर-सुर दोनों करते, नारदका सत्कार॥
... रसना नाना नामोंका, हरिके करती पान। जगको नारद-वाणी देती, भक्ति-सुधाका दान॥
दिव्य गान जब नारद करते, निज वीणा झंकार। भव्य भाव भवमें भर जाता, बहती आनँद-धार॥
सब लोकोंमें फिर फिर करते, प्रभु-इच्छा साकार। नारद मुनि जगमें कहलाते, हरि-मनके अवतार॥
भक्ति-मार्ग सबको दिखलाना, मति-गतिके अनुसार। नारदका व्रत यही सर्वथा, हो प्रभुमय संसार॥
माधव मुग्ध हुए नारदपर, किया गुणोंका गान। अपरंपार भक्तकी लीला, उसके वस भगवान॥
ब्रह्मा-तनय भक्ति-रस-सागर, विद्याके आगार। जुगल जोड़ कर करते विनती, ऋषि-मुनि बारंबार॥

...र्षिक मूल्य
...रतमें ७॥)
...देशमें १०)
...१५ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

इस अङ्कका
मूल्य ७॥)
विदेशमें १०)
(१५ शिलिङ्ग)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

६—'संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे जायगा। हमलोग इस बार जल्दी-से-जल्दी भेजनेकी चेष्टा करेंगे तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग एक-डेढ़ महीना तो लग ही सकता है; इसलिये ग्राहक महोदयोंकी सेवामें 'विशेषाङ्क' नम्बरवार जायगा। यदि कुछ देर हो जाय, तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

७—गीताप्रेस पोस्ट-आफिस अब 'डिलेवरी आफिस' हो गया है। अतः 'कल्याण' व्यवस्था-विभाग तथा सम्पादन-विभाग और गीताप्रेस तथा 'गीता-रामायण-परीक्षा-समिति' और 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ' तथा 'साधक-संघ'के नाम भेजे जानेवाले सभी पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, बीमा आदिपर केवल 'गोरखपुर' न लिखकर पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) इस प्रकार लिखना चाहिये।

८—सजिल्द विशेषाङ्क वी० पी० द्वारा नहीं भेजे जायँगे। सजिल्द अङ्क चाहनेवाले ग्राहक १।) जिल्दखर्चसहित ८।।।) मनीआर्डरद्वारा भेजनेकी कृपा करें। सजिल्द अङ्क देरसे जायँगे। ग्राहक महानुभाव धैर्य रक्खें।

९—आपके विशेषाङ्कके लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीपूर्वक नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये।

१०—डाक-विभागके नियमानुसार रजिस्ट्री तथा मनीआर्डर यथास्थान न पहुँचनेकी शिकायत छः मासके भीतर ही होनी चाहिये, अन्यथा वे लोग शिकायतपर विचार नहीं करते। अतः रुपया भेजनेके बाद यदि एक मासके भीतर आपको पोस्ट-आफिससे कार्यालयकी सहीयुक्त वापसी रसीद न मिले तो अपने पोस्ट-आफिसमें तुरंत शिकायत कर देनी चाहिये। रुपया भेजनेकी रसीद मिलनेके बाद दो मासके भीतर आपको 'कल्याण'की रजिस्ट्री न मिले तो कार्यालयको सूचना देनी चाहिये। जो सज्जन प्रतिमास रजिस्ट्रीसे अङ्क मँगाना चाहते हों उन्हें ।=) प्रति अङ्क रजिस्ट्री-खर्चके लिये अलग भेजना चाहिये। दो मासके भीतर अगला अङ्क न प्राप्त होनेपर पोस्ट-आफिसको कड़ी शिकायत लिखनी चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस
(गोरखपुर) (उत्तर-प्रदेश)

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीगीता और रामचरितमानस—ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये समितिने इन ग्रन्थोंके द्वारा धार्मिक शिक्षा-प्रसार करनेके लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको पुरस्कार भी दिया जाता है। परीक्षाके लिये स्थान-स्थानपर केन्द्र स्थापित किये गये हैं। इस समय गीता-रामायण दोनोंके मिलाकर कुल ४५० केन्द्र हैं। विशेष जानकारीके लिये नीचेके पतेपर कार्ड लिखकर नियमावली मँगानेकी कृपा करें।

मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

६—'संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे जायगा। हमलोग इस बार जल्दी-से-जल्दी भेजनेकी चेष्टा करेंगे तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग एक-डेढ़ महीना तो लग ही सकता है; इसलिये ग्राहक महोदयोंकी सेवामें 'विशेषाङ्क' नम्बरवार जायगा। यदि कुछ देर हो जाय, तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

७—गीताप्रेस पोस्ट-आफिस अब 'डिलेवरी आफिस' हो गया है। अतः 'कल्याण' व्यवस्था-विभाग तथा सम्पादन-विभाग और गीताप्रेस तथा 'गीता-रामायण-परीक्षा-समिति' और 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ' तथा 'साधक-संघ'के नाम भेजे जानेवाले सभी पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, बीमा आदिपर केवल 'गोरखपुर' न लिखकर पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) इस प्रकार लिखना चाहिये।

८—सजिल्द विशेषाङ्क वी० पी० द्वारा नहीं भेजे जायँगे। सजिल्द अङ्क चाहनेवाले ग्राहक १।) जिल्दखर्चसहित ८।।।) मनीआर्डरद्वारा भेजनेकी कृपा करें। सजिल्द अङ्क देरसे जायँगे। ग्राहक महानुभाव धैर्य रक्खें।

९—आपके विशेषाङ्कके लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीपूर्वक नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये।

१०—डाक-विभागके नियमानुसार रजिस्ट्री तथा मनीआर्डर यथास्थान न पहुँचनेकी शिकायत छः मासके भीतर ही होनी चाहिये, अन्यथा वे लोग शिकायतपर विचार नहीं करते। अतः रुपया भेजनेके बाद यदि एक मासके भीतर आपको पोस्ट-आफिससे कार्यालयकी सहीयुक्त वापसी रसीद न मिले तो अपने पोस्ट-आफिसमें तुरंत शिकायत कर देनी चाहिये। रुपया भेजनेकी रसीद मिलनेके बाद दो मासके भीतर आपको 'कल्याण'की रजिस्ट्री न मिले तो कार्यालयको सूचना देनी चाहिये। जो सज्जन प्रतिमास रजिस्ट्रीसे अङ्क मँगाना चाहते हों उन्हें ।≈) प्रति अङ्क रजिस्ट्री-खर्चके लिये अलग भेजना चाहिये। दो मासके भीतर अगला अङ्क न प्राप्त होनेपर पोस्ट-आफिसको कड़ी शिकायत लिखनी चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस
(गोरखपुर) (उत्तर-प्रदेश)

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीगीता और रामचरितमानस—ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये समितिने इन ग्रन्थोंके द्वारा धार्मिक शिक्षा-प्रसार करनेके लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको पुरस्कार भी दिया जाता है। परीक्षाके लिये स्थान-स्थानपर केन्द्र स्थापित किये गये हैं। इस समय गीता-रामायण दोनोंके मिलाकर कुल ४५० केन्द्र हैं। विशेष जानकारीके लिये नीचेके पतेपर कार्ड लिखकर नियमावली मँगानेकी कृपा करें।

मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

१८–श्रीविष्णुमन्दिरमें ध्वजारोपणकी विधि और महिमा ··· ··· ७७
१९–हरिपञ्चक-व्रतकी विधि और माहात्म्य ··· ७९
२०–मासोपवास-व्रतकी विधि और महिमा ··· ८०
२१–एकादशी-व्रतकी विधि और महिमा—भद्रशील-की कथा ··· ··· ८१
२२–चारों वर्णों और द्विजका परिचय तथा विभिन्न वर्णोंके विशेष और सामान्य धर्मका वर्णन ··· ८४
२३–संस्कारोंके नियत काल, ब्रह्मचारीके धर्म, अनध्याय तथा वेदाध्ययनकी आवश्यकताका वर्णन ··· ··· ८६
२४–विवाहके योग्य कन्या, विवाहके आठ भेद तथा गृहस्थोचित शिष्टाचारका वर्णन ··· ८८
२५–गृहस्थ-सम्बन्धी शौचाचार, स्नान, संध्योपासन आदि तथा वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रमके धर्म ··· ··· ८९
२६–श्राद्धकी विधि तथा उसके विषयमें अनेक ज्ञातव्य विषयोंका वर्णन ··· ··· ९५
२७–व्रत, दान और श्राद्ध आदिके लिये तिथियोंका निर्णय ··· ··· ९९
२८–विविध पापोंके प्रायश्चित्तका विधान तथा भगवान् विष्णुके आराधनकी महिमा ··· १०१
२९–यमलोकके मार्गमें पापियोंके कष्ट तथा पुण्यात्माओंके सुखका वर्णन एवं कल्पान्तरमें भी कर्मोंके भोगका प्रतिपादन ··· १०५
३०–पापी जीवोंके स्थावर आदि योनियोंमें जन्म लेने और दुःख भोगनेकी अवस्थाका वर्णन ··· १०७
३१–मोक्षप्राप्तिका उपाय, भगवान् विष्णु ही मोक्षदाता हैं—इसका प्रतिपादन, योग तथा उसके अङ्गोंका निरूपण ··· ··· ११०
३२–भवबन्धनसे मुक्तिके लिये भगवान् विष्णुके भजनका उपदेश ··· ··· ११६
३३–वेदमालिको जानन्ति मुनिका उपदेश तथा वेदमालिकी मुक्ति ··· ··· ११८
३४–भगवान् विष्णुके भजनकी महिमा—सत्सङ्ग तथा भगवान्‌के चरणोदकसे एक व्याधका उद्धार ··· १२०
३५–उत्तङ्कके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति और भगवान्‌की आज्ञासे उनका नारायणाश्रममें जाकर मुक्त होना ··· ··· १२३
३६–भगवान् विष्णुके भजन-पूजनकी महिमा ··· १२६
३७–इन्द्र और सुधर्मका संवाद, विभिन्न मन्वन्तरोंके इन्द्र और देवताओंका वर्णन तथा भगवद्भजनका माहात्म्य ··· १२८
३८–चारों युगोंकी स्थितिका संक्षेपसे तथा कलिधर्म-का विस्तारसे वर्णन एवं भगवन्नामकी अद्भुत महिमाका प्रतिपादन ··· ··· १२९

द्वितीय पाद

३९–सृष्टितत्त्वका वर्णन, जीवकी सत्ताका प्रतिपादन और आश्रमोंके आचारका निरूपण ··· १३४
४०–उत्तम लोक, अध्यात्मतत्त्व तथा ध्यानयोगका वर्णन ··· ··· १३७
४१–पञ्चशिखका राजा जनकको उपदेश ··· १४०
४२–त्रिविध तापोंसे छूटनेका उपाय, भगवान् तथा वासुदेव आदि शब्दोंकी व्याख्या, परा और अपरा विद्याका निरूपण, खाण्डिक्य और केशिध्वजकी कथा, केशिध्वजद्वारा अविद्याके बीजका प्रतिपादन ··· ··· १४४
४३–मुक्तिप्रद योगका वर्णन ··· ··· १४८
४४–राजा भरतका मृगशरीरमें आसक्तिके कारण मृग होना, फिर ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मण होकर जड-वृत्तिसे रहना, जडभरत और सौवीरनरेश-का संवाद ··· ··· १५१
४५–जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद—परमार्थका निरूपण तथा ऋभुका निदाघको अद्वैतज्ञान-का उपदेश ··· ··· १५५
४६–शिक्षा-निरूपण ··· ··· १५८
४७–वेदके द्वितीय अङ्ग कल्पका वर्णन—गणेश-पूजन, ग्रहशान्ति तथा श्राद्धका निरूपण ··· १६८
४८–व्याकरण-शास्त्रका वर्णन ··· ··· १७५
४९–निरुक्त-वर्णन ··· ··· १९९
५०–त्रिस्कन्ध ज्यौतिषके वर्णन-प्रसङ्गमें गणित-विषयका प्रतिपादन ··· ··· २०५
५१–त्रिस्कन्ध ज्यौतिषका जातकस्कन्ध ··· २४१
५२–त्रिस्कन्ध ज्यौतिषका संहिताप्रकरण (विविध उपयोगी विषयोंका वर्णन) ··· २७३
५३–छन्दःशास्त्रका संक्षिप्त परिचय ··· ३१७
५४–शुकदेवजीका मिथिलागमन, राजभवनमें युवतियोंद्वारा उनकी सेवा, राजा जनकके द्वारा शुकदेवजीका सत्कार और शुकदेवजीके साथ उनका मोक्षविषयक संवाद ··· ३२९

१८—श्रीविष्णुमन्दिरमें ध्वजारोपणकी विधि और महिमा ७७
१९—हरिपञ्चक-व्रतकी विधि और माहात्म्य ... ७९
२०—मासोपवास-व्रतकी विधि और महिमा ... ८०
२१—एकादशी-व्रतकी विधि और महिमा—भद्रशील-की कथा ८१
२२—चारों वर्णों और द्विजका परिचय तथा विभिन्न वर्णोंके विशेष और सामान्य धर्मका वर्णन ... ८४
२३—संस्कारोंके नियत काल, ब्रह्मचारीके धर्म, अनध्याय तथा वेदाध्ययनकी आवश्यकताका वर्णन ८६
२४—विवाहके योग्य कन्या, विवाहके आठ भेद तथा गृहस्थोचित शिष्टाचारका वर्णन ... ८८
२५—गृहस्थ-सम्बन्धी शौचाचार, स्नान, संध्योपासन आदि तथा वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रमके धर्म ८९
२६—श्राद्धकी विधि तथा उसके विषयमें अनेक ज्ञातव्य विषयोंका वर्णन ९५
२७—व्रत, दान और श्राद्ध आदिके लिये तिथियोंका निर्णय ९९
२८—विविध पापोंके प्रायश्चित्तका विधान तथा भगवान् विष्णुके आराधनकी महिमा ... १०१
२९—यमलोकके मार्गमें पापियोंके कष्ट तथा पुण्यात्माओंके सुखका वर्णन एवं कल्पान्तरमें भी कर्मोंके भोगका प्रतिपादन ... १०५
३०—पापी जीवोंके स्थावर आदि योनियोंमें जन्म लेने और दुःख भोगनेकी अवस्थाका वर्णन ... १०७
३१—मोक्षप्राप्तिका उपाय, भगवान् विष्णु ही मोक्षदाता हैं—इसका प्रतिपादन, योग तथा उसके अङ्गोंका निरूपण ११०
३२—भवबन्धनसे मुक्तिके लिये भगवान् विष्णुके भजनका उपदेश ११६
३३—वेदमालिको जानन्ति मुनिका उपदेश तथा वेदमालिकी मुक्ति ११८
३४—भगवान् विष्णुके भजनकी महिमा—सत्सङ्ग तथा भगवान्‌के चरणोदकसे एक व्याधका उद्धार ... १२०
३५—उत्तङ्कके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति और भगवान्‌की आज्ञासे उनका नारायणाश्रममें जाकर मुक्त होना १२३
३६—भगवान् विष्णुके भजन-पूजनकी महिमा ... १२६
३७—इन्द्र और सुधर्मका संवाद, विभिन्न मन्वन्तरोंके इन्द्र और देवताओंका वर्णन तथा भगवद्भजनका माहात्म्य ... १२८
३८—चारों युगोंकी स्थितिका संक्षेपसे तथा कलिधर्म-का विस्तारसे वर्णन एवं भगवन्नामकी अद्भुत महिमाका प्रतिपादन १२९

द्वितीय पाद

३९—सृष्टितत्त्वका वर्णन, जीवकी सत्ताका प्रतिपादन और आश्रमोंके आचारका निरूपण ... १३४
४०—उत्तम लोक, अध्यात्मतत्त्व तथा ध्यानयोगका वर्णन १३७
४१—पञ्चशिखका राजा जनकको उपदेश ... १४०
४२—त्रिविध तापोंसे छूटनेका उपाय, भगवान् तथा वासुदेव आदि शब्दोंकी व्याख्या, परा और अपरा विद्याका निरूपण, खाण्डिक्य और केशिध्वजकी कथा, केशिध्वजद्वारा अविद्याके बीजका प्रतिपादन १४४
४३—मुक्तिप्रद योगका वर्णन १४८
४४—राजा भरतका मृगशरीरमें आसक्तिके कारण मृग होना, फिर ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मण होकर जड-वृत्तिसे रहना, जडभरत और सौवीरनरेश-का संवाद १५१
४५—जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद—परमार्थका निरूपण तथा ऋभुका निदाघको अद्वैतज्ञान-का उपदेश १५५
४६—शिक्षा-निरूपण १५८
४७—वेदके द्वितीय अङ्ग कल्पका वर्णन—गणेश-पूजन, ग्रहशान्ति तथा श्राद्धका निरूपण ... १६८
४८—व्याकरण-शास्त्रका वर्णन १७५
४९—निरुक्त-वर्णन १९९
५०—त्रिस्कन्ध ज्यौतिषके वर्णन-प्रसङ्गमें गणित-विषयका प्रतिपादन २०५
५१—त्रिस्कन्ध ज्यौतिषका जातकस्कन्ध ... २४१
५२—त्रिस्कन्ध ज्यौतिषका संहिताप्रकरण (विविध उपयोगी विषयोंका वर्णन) ... २७३
५३—छन्दःशास्त्रका संक्षिप्त परिचय ... ३१७
५४—शुकदेवजीका मिथिलागमन, राजभवनमें युवतियोंद्वारा उनकी सेवा, राजा जनकके द्वारा शुकदेवजीका सत्कार और शुकदेवजीके साथ उनका मोक्षविषयक संवाद ... ३२९

८८—बारह मासोंके द्वितीया-सम्बन्धी व्रतों और आवश्यक कृत्योंका निरूपण ... ४४४
८९—बारह महीनोंके तृतीयासम्बन्धी व्रतोंका परिचय ४४५
९०—बारह महीनोंके चतुर्थी-व्रतोंकी विधि और उनका माहात्म्य ४४६
९१—सभी मासोंकी पञ्चमी तिथियोंमें करनेयोग्य व्रत-पूजन आदिका वर्णन ... ४४९
९२—वर्षभरकी षष्ठी तिथियोंमें पालनीय व्रत एवं देवपूजन आदिकी विधि और महिमा ... ४५१
९३—बारह मासोंके सप्तमीसम्बन्धी व्रत और उनके माहात्म्य ४५३
९४—बारह महीनोंकी अष्टमी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा ४५५
९५—नवमीसम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा ४५८
९६—बारह महीनोंके दशमी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा ४६०
९७—द्वादश मासके एकादशी-व्रतोंकी विधि और महिमा तथा दशमी आदि तीन दिनोंके पालनीय विशेष नियम ४६१
९८—बारह महीनोंके द्वादशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा तथा आठ महाद्वादशियोंका निरूपण ४६४
९९—त्रयोदशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा ... ४६८
१००—वर्षभरके चतुर्दशी-व्रतोंकी विधि और महिमा ४७०
१०१—बारह महीनोंकी पूर्णिमा तथा अमावास्यासे सम्बन्ध रखनेवाले व्रतों तथा सत्कर्मोंकी विधि और महिमा ४७३
१०२—सनकादि और नारदजीका प्रस्थान, नारदपुराणके माहात्म्यका वर्णन और पूर्वभागकी समाप्ति ... ४७७

उत्तरभाग

१०३—महर्षि वशिष्ठका मान्धाताको एकादशी-व्रतकी महिमा सुनाना ४७९
१०४—तिथिके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें तथा विद्धा तिथिका निषेध ४८०
१०५—रुक्माङ्गदके राज्यमें एकादशी-व्रतके प्रभावसे सबका वैकुण्ठगमन, यमराज आदिका चिन्तित होना, नारदजीसे उनका वार्तालाप तथा ब्रह्म-लोक-गमन ४८१
१०६—यमराजके द्वारा ब्रह्माजीसे अपने कष्टका निवेदन और रुक्माङ्गदके प्रभावका वर्णन ... ४८३
१०७—ब्रह्माजीके द्वारा यमराजको भगवान् तथा उनके भक्तोंकी श्रेष्ठता बताना ४८४
१०८—यमराजकी इच्छा-पूर्ति और भक्त रुक्माङ्गदका गौरव बढ़ानेके लिये ब्रह्माजीका अपने मनसे एक सुन्दरी नारीको प्रकट करना, नारीके प्रति वैराग्यकी भावना तथा उस सुन्दरी 'मोहिनी' का मन्दराचलपर जाकर मोहक संगीत गाना ४८५
१०९—रुक्माङ्गद-धर्माङ्गद-संवाद, धर्माङ्गदका प्रजाजनोंको उपदेश और प्रजापालन तथा रुक्माङ्गदका रानी संध्यावलीसे वार्तालाप ... ४८८
११०—रानी संध्यावलीका पतिको मृगोंकी हिंसासे रोकना, राजाका वामदेवके आश्रमपर जाना तथा उनसे अपने पारिवारिक सुख आदिका कारण पूछना ४८९
१११—वामदेवजीका पूर्वजन्ममें किये हुए 'अशून्यशयन-व्रत' को राजाके वर्तमान सुखका कारण बताना, राजाका मन्दराचलपर जाकर मोहिनीके गीत तथा रूप-दर्शनसे मोहित होकर गिरना और मोहिनीद्वारा उन्हें आश्वासन प्राप्त होना ४९२
११२—राजाकी मोहिनीसे प्रणय-याचना, मोहिनीकी शर्त तथा राजाद्वारा उसकी स्वीकृति एवं विवाह तथा दोनोंका राजधानीकी ओर प्रस्थान ... ४९३
११३—घोड़ेकी टापसे कुचली हुई छिपकलीकी राजाद्वारा सेवा, छिपकलीकी आत्मकथा, पतिपर वशीकरणका दुष्परिणाम, राजाके पुण्यदानसे उसका उद्धार ४९५
११४—मोहिनीके साथ राजा रुक्माङ्गदका वैदिश नगरको प्रस्थान, राजकुमार धर्माङ्गदका स्वागतके लिये मार्गमें आगमन तथा पिता-पुत्र-संवाद ... ४९७
११५—धर्माङ्गदद्वारा मोहिनीका सत्कार तथा अपनी माताको मोहिनीकी सेवाके लिये एक पतिव्रता नारीका उपाख्यान सुनाना ... ४९९
११६—संध्यावलीका मोहिनीको भोजन कराना और धर्माङ्गदके मातृभक्तिपूर्ण वचन ... ५०२
११७—धर्माङ्गदका माताओंसे पिता और मोहिनीके प्रति उदार होनेका अनुरोध तथा पुत्रद्वारा माताओंका धन-वस्त्र आदिसे समादर ... ५०३
११८—राजाका अपने पुत्रको राज्य सौंपकर नीतिका उपदेश देना और धर्माङ्गदके सुराज्यकी स्थिति ५०४

८८—बारह मासोंके द्वितीया-सम्बन्धी व्रतों और आवश्यक कृत्योंका निरूपण ··· ४४४
८९—बारह महीनोंके तृतीयासम्बन्धी व्रतोंका परिचय ४४५
९०—बारह महीनोंके चतुर्थी-व्रतोंकी विधि और उनका माहात्म्य ··· ··· ४४६
९१—सभी मासोंकी पञ्चमी तिथियोंमें करनेयोग्य व्रत-पूजन आदिका वर्णन ··· ४४९
९२—वर्षभरकी षष्ठी तिथियोंमें पालनीय व्रत एवं देवपूजन आदिकी विधि और महिमा ··· ४५१
९३—बारह मासोंके सप्तमीसम्बन्धी व्रत और उनके माहात्म्य ··· ··· ४५३
९४—बारह महीनोंकी अष्टमी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा ··· ··· ४५५
९५—नवमीसम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा ४५८
९६—बारह महीनोंके दशमी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा ··· ··· ४६०
९७—द्वादश मासके एकादशी-व्रतोंकी विधि और महिमा तथा दशमी आदि तीन दिनोंके पालनीय विशेष नियम ··· ··· ४६१
९८—बारह महीनोंके द्वादशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा तथा आठ महाद्वादशियोंका निरूपण ··· ··· ४६४
९९—त्रयोदशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा ··· ४६८
१००—वर्षभरके चतुर्दशी-व्रतोंकी विधि और महिमा ४७०
१०१—बारह महीनोंकी पूर्णिमा तथा अमावास्यासे सम्बन्ध रखनेवाले व्रतों तथा सत्कर्मोंकी विधि और महिमा ४७३
१०२—सनकादि और नारदजीका प्रस्थान, नारदपुराणके माहात्म्यका वर्णन और पूर्वभागकी समाप्ति ··· ४७७

उत्तरभाग

१०३—महर्षि वशिष्ठका मान्धाताको एकादशी-व्रतकी महिमा सुनाना ··· ··· ४७९
१०४—तिथिके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें तथा विद्धा तिथिका निषेध ··· ··· ४८०
१०५—रुक्माङ्गदके राज्यमें एकादशी-व्रतके प्रभावसे सबका वैकुण्ठगमन, यमराज आदिका चिन्तित होना, नारदजीसे उनका वार्तालाप तथा ब्रह्म-लोक-गमन ··· ··· ४८१
१०६—यमराजके द्वारा ब्रह्माजीसे अपने कष्टका निवेदन और रुक्माङ्गदके प्रभावका वर्णन ··· ४८३
१०७—ब्रह्माजीके द्वारा यमराजको भगवान् तथा उनके भक्तोंकी श्रेष्ठता बताना ··· ··· ४८४
१०८—यमराजकी इच्छा-पूर्ति और भक्त रुक्माङ्गदका गौरव बढ़ानेके लिये ब्रह्माजीका अपने मनसे एक सुन्दरी नारीको प्रकट करना, नारीके प्रति वैराग्यकी भावना तथा उस सुन्दरी 'मोहिनी' का मन्दराचलपर जाकर मोहक संगीत गाना ४८५
१०९—रुक्माङ्गद-धर्माङ्गद-संवाद, धर्माङ्गदका प्रजाजनोंको उपदेश और प्रजापालन तथा रुक्माङ्गदका रानी संध्यावलीसे वार्तालाप ··· ४८८
११०—रानी संध्यावलीका पतिको मृगोंकी हिंसासे रोकना, राजाका वामदेवके आश्रमपर जाना तथा उनसे अपने पारिवारिक सुख आदिका कारण पूछना ··· ··· ४८९
१११—वामदेवजीका पूर्वजन्ममें किये हुए 'अशून्यशयन-व्रत' को राजाके वर्तमान सुखका कारण बताना, राजाका मन्दराचलपर जाकर मोहिनीके गीत तथा रूप-दर्शनसे मोहित होकर गिरना और मोहिनीद्वारा उन्हें आश्वासन प्राप्त होना ··· ··· ४९२
११२—राजाकी मोहिनीसे प्रणय-याचना, मोहिनीकी शर्त तथा राजाद्वारा उसकी स्वीकृति एवं विवाह तथा दोनोंका राजधानीकी ओर प्रस्थान ··· ४९३
११३—घोड़ेकी टापसे कुचली हुई छिपकलीकी राजाद्वारा सेवा, छिपकलीकी आत्मकथा, पतिपर वशीकरणका दुष्परिणाम, राजाके पुण्यदानसे उसका उद्धार ··· ··· ४९५
११४—मोहिनीके साथ राजा रुक्माङ्गदका वैदिश नगरको प्रस्थान, राजकुमार धर्माङ्गदका स्वागतके लिये मार्गमें आगमन तथा पिता-पुत्र-संवाद ··· ४९७
११५—धर्माङ्गदद्वारा मोहिनीका सत्कार तथा अपनी माताको मोहिनीकी सेवाके लिये एक पतिव्रता नारीका उपाख्यान सुनाना ··· ४९९
११६—संध्यावलीका मोहिनीको भोजन कराना और धर्माङ्गदके मातृभक्तिपूर्ण वचन ··· ५०२
११७—धर्माङ्गदका माताओंसे पिता और मोहिनीके प्रति उदार होनेका अनुरोध तथा पुत्रद्वारा माताओंका धन-वस्त्र आदिसे समादर ··· ५०३
११८—राजाका अपने पुत्रको राज्य सौंपकर नीतिका उपदेश देना और धर्माङ्गदके सुराज्यकी स्थिति ५०४

१४८–पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी यात्राका समय, मार्कण्डेयेश्वर शिव, वट-वृक्ष, श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा सुभद्राके और भगवान् नृसिंहके दर्शन-पूजन आदिका माहात्म्य ··· ··· ५६४
१४९–श्वेत-माधव, मत्स्य-माधव, कल्पवृक्ष और अष्टाक्षर-मन्त्र, स्नान, तर्पण आदिकी महिमा ··· ५६८
१५०–भगवान् नारायणके पूजनकी विधि ··· ५७०
१५१–समुद्र-स्नानकी महिमा और श्रीकृष्ण-बलराम आदिके दर्शन आदिकी महिमा तथा श्रीकृष्णसे जगत्-सृष्टिका कथन एवं श्रीराधा-कृष्णके उत्कृष्ट स्वरूपका प्रतिपादन ··· ··· ५७२
१५२–इन्द्रद्युम्न-सरोवरमें स्नानकी विधि, ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राके अभिषेकका उत्सव ··· ··· ५७४
१५३–अभिषेक-कालमें देवताओंद्वारा जगन्नाथजीकी स्तुति, गुण्डिचा-यात्राका माहात्म्य तथा द्वादश यात्राकी प्रतिष्ठा-विधि ··· ··· ५७६
१५४–प्रयाग-माहात्म्यके प्रसङ्गमें तीर्थयात्राकी सामान्य विधिका वर्णन ··· ··· ५७८
१५५–प्रयागमें माघ-मकरके स्नानकी महिमा तथा वहाँके भिन्न-भिन्न तीर्थोंका माहात्म्य ··· ५८०
१५६–कुरुक्षेत्र-माहात्म्य ··· ··· ५८२
१५७–कुरुक्षेत्रके वन, नदी और भिन्न-भिन्न तीर्थोंका माहात्म्य तथा यात्राविधिका क्रमिक वर्णन ··· ५८३
१५८–गङ्गाद्वार (हरिद्वार) और वहाँके विभिन्न तीर्थोंका माहात्म्य ··· ··· ५८७
१५९–बदरिकाश्रमके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा ··· ५८८
१६०–सिद्धनाथ-चरित्रसहित कामाक्षा-माहात्म्य ··· ५९०
१६१–प्रभासक्षेत्रका माहात्म्य तथा उसके अवान्तर तीर्थोंकी महिमा ··· ··· ५९१
१६२–पुष्कर-माहात्म्य ··· ··· ५९३
१६३–गौतमाश्रम-माहात्म्यमे गोदावरीके प्राकट्यका तथा पञ्चवटीके माहात्म्यका वर्णन ··· ५९४
१६४–पुण्डरीकपुरका माहात्म्य, जैमिनिद्वारा भगवान् शङ्करकी स्तुति ··· ··· ५९५
१६५–परशुरामजीके द्वारा गोकर्णक्षेत्रका उद्धार तथा उसका माहात्म्य ··· ··· ६००
१६६–श्रीराम-लक्ष्मणका संक्षिप्त चरित्र तथा लक्ष्मणा-चलका माहात्म्य ··· ··· ६०२
१६७–सेतु-क्षेत्रके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा ··· ६०५
१६८–नर्मदाके तीर्थोंका दिग्दर्शन तथा उनका माहात्म्य ६०६
१६९–अवन्ती—महाकालवनके तीर्थोंकी महिमा ··· ६०७
१७०–मथुराके भिन्न-भिन्न तीर्थोंका माहात्म्य ··· ६०८
१७१–वृन्दावन-क्षेत्रके विभिन्न तीर्थोंके सेवनका माहात्म्य ६०९
१७२–पुरोहित वसुका भगवत्कृपासे वृन्दावन-वास, देवर्षि नारदके द्वारा शिव-सुरभि-संवादके रूपमें भावी श्रीकृष्णचरितका वर्णन ··· ६१२
१७३–मोहिनीका सब तीर्थोंमें घूमकर यमुनामें प्रवेश-पूर्वक दशमीके अन्तभागमें स्थित होना तथा नारदपुराणके पाठ एवं श्रवणकी महिमा ··· ६१३

संक्षिप्त विष्णुपुराण

८–भगवान्का स्तवन ··· ··· ६१७
९–भक्त प्रह्लादद्वारा स्तुति ··· ··· ६१८

प्रथम अंश

१–ग्रन्थका प्रारम्भ(उपक्रम) ··· ··· ६१९
२–चौबीस तत्त्वोंके विचारके साथ जगत्के उत्पत्ति-क्रमका वर्णन और विष्णुकी महिमा ··· ६२०
३–ब्रह्मादिकी आयु और कालका स्वरूप तथा वाराह भगवान्द्वारा पृथिवीका उद्धार ··· ६२३
४–विविध सर्गोंका वर्णन ··· ··· ६२६
५–चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था, पृथिवी-विभाग और अन्नादि-की उत्पत्तिका वर्णन ··· ··· ६२७
६–मरीचि आदि प्रजापतिगण, स्वायम्भुव मनु और शतरूपा तथा उनकी संतानका वर्णन ··· ६२८
७–रौद्र-सृष्टि और भगवान् तथा लक्ष्मीजीकी सर्वव्यापकताका वर्णन ··· ··· ६३०
८–दुर्वासाजीके शापसे इन्द्रका श्रीहीन होना, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न हुए भगवान्का प्रकट होकर देवताओंको समुद्र-मन्थनके लिये प्रेरित करना तथा देवता और दैत्योंका समुद्र-मन्थन एवं देवताओंका पुनः श्रीसम्पन्न होना ··· ६३१
९–ध्रुवका वनगमन और मरीचि आदि ऋषियों-से भेंट ··· ··· ६३६
१०–ध्रुवकी तपस्यासे प्रसन्न हुए भगवान्का आविर्भाव और उसे ध्रुवपद-दान ··· ··· ६३८
११–राजा वेन और पृथुका चरित्र ··· ६४२
१२–दक्षकी साठ कन्याओंके वंशका वर्णन ··· ६४६
१३–प्रह्लादके प्रभावके विषयमें प्रश्न ··· ६४८

१४८—पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी यात्राका समय, मार्कण्डेयेश्वर शिव, वट-वृक्ष, श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा सुभद्राके और भगवान् नृसिंहके दर्शन-पूजन आदिका माहात्म्य ५६४
१४९—श्वेत-माधव, मत्स्य-माधव, कल्पवृक्ष और अष्टाक्षर-मन्त्र, स्नान, तर्पण आदिकी महिमा ... ५६८
१५०—भगवान् नारायणके पूजनकी विधि ... ५७०
१५१—समुद्र-स्नानकी महिमा और श्रीकृष्ण-बलराम आदिके दर्शन आदिकी महिमा तथा श्रीकृष्णसे जगत्-सृष्टिका कथन एवं श्रीराधा-कृष्णके उत्कृष्ट स्वरूपका प्रतिपादन ५७२
१५२—इन्द्रद्युम्न-सरोवरमें स्नानकी विधि, ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राके अभिषेकका उत्सव ५७४
१५३—अभिषेक-कालमें देवताओंद्वारा जगन्नाथजीकी स्तुति, गुण्डिचा-यात्राका माहात्म्य तथा द्वादश यात्राकी प्रतिष्ठा-विधि ५७६
१५४—प्रयाग-माहात्म्यके प्रसङ्गमें तीर्थयात्राकी सामान्य विधिका वर्णन ५७८
१५५—प्रयागमें माघ-मकरके स्नानकी महिमा तथा वहाँके भिन्न-भिन्न तीर्थोंका माहात्म्य ... ५८०
१५६—कुरुक्षेत्र-माहात्म्य ५८२
१५७—कुरुक्षेत्रके वन, नदी और भिन्न-भिन्न तीर्थोंका माहात्म्य तथा यात्राविधिका क्रमिक वर्णन ... ५८३
१५८—गङ्गाद्वार (हरिद्वार) और वहाँके विभिन्न तीर्थोंका माहात्म्य ५८७
१५९—बदरिकाश्रमके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा ... ५८८
१६०—सिद्धनाथ-चरित्रसहित कामाक्षा-माहात्म्य ... ५९०
१६१—प्रभासक्षेत्रका माहात्म्य तथा उसके अवान्तर तीर्थोंकी महिमा ५९१
१६२—पुष्कर-माहात्म्य ५९३
१६३—गौतमाश्रम-माहात्म्यमे गोदावरीके प्राकट्यका तथा पञ्चवटीके माहात्म्यका वर्णन ... ५९४
१६४—पुण्डरीकपुरका माहात्म्य, जैमिनिद्वारा भगवान् शङ्करकी स्तुति ५९५
१६५—परशुरामजीके द्वारा गोकर्णक्षेत्रका उद्धार तथा उसका माहात्म्य ६००
१६६—श्रीराम-लक्ष्मणका संक्षिप्त चरित्र तथा लक्ष्मणा-चलका माहात्म्य ६०२
१६७—सेतु-क्षेत्रके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा ... ६०५
१६८—नर्मदाके तीर्थोंका दिग्दर्शन तथा उनका माहात्म्य ६०६
१६९—अवन्ती—महाकालवनके तीर्थोंकी महिमा ... ६०७
१७०—मथुराके भिन्न-भिन्न तीर्थोंका माहात्म्य ... ६०८
१७१—वृन्दावन-क्षेत्रके विभिन्न तीर्थोंके सेवनका माहात्म्य ६०९
१७२—पुरोहित वसुका भगवत्कृपासे वृन्दावन-वास, देवर्षि नारदके द्वारा शिव-सुरभि-संवादके रूपमें भावी श्रीकृष्णचरितका वर्णन ... ६१२
१७३—मोहिनीका सब तीर्थोंमें घूमकर यमुनामें प्रवेश-पूर्वक दशमीके अन्तभागमें स्थित होना तथा नारदपुराणके पाठ एवं श्रवणकी महिमा ... ६१३

संक्षिप्त विष्णुपुराण

८—भगवान्का स्तवन ६१७
९—भक्त प्रह्लादद्वारा स्तुति ६१८

प्रथम अंश

१—ग्रन्थका प्रारम्भ(उपक्रम) ६१९
२—चौबीस तत्त्वोंके विचारके साथ जगत्के उत्पत्ति-क्रमका वर्णन और विष्णुकी महिमा ... ६२०
३—ब्रह्मादिकी आयु और कालका स्वरूप तथा वाराह भगवान्द्वारा पृथिवीका उद्धार ... ६२३
४—विविध सर्गोंका वर्णन ६२६
५—चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था, पृथिवी-विभाग और अन्नादि-की उत्पत्तिका वर्णन ६२७
६—मरीचि आदि प्रजापतिगण, स्वायम्भुव मनु और शतरूपा तथा उनकी संतानका वर्णन ... ६२८
७—रौद्र-सृष्टि और भगवान् तथा लक्ष्मीजीकी सर्वव्यापकताका वर्णन ६३०
८—दुर्वासाजीके शापसे इन्द्रका श्रीहीन होना, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न हुए भगवान्का प्रकट होकर देवताओंको समुद्र-मन्थनके लिये प्रेरित करना तथा देवता और दैत्योंका समुद्र-मन्थन एवं देवताओंका पुनः श्रीसम्पन्न होना ... ६३१
९—ध्रुवका वनगमन और मरीचि आदि ऋषियों-से भेंट ६३६
१०—ध्रुवकी तपस्यासे प्रसन्न हुए भगवान्का आविर्भाव और उसे ध्रुवपद-दान ६३८
११—राजा वेन और पृथुका चरित्र ... ६४२
१२—दक्षकी साठ कन्याओंके वंशका वर्णन ... ६४६
१३—प्रह्लादके प्रभावके विषयमें प्रश्न ... ६४८

पञ्चम अंश

६५—वसुदेव-देवकीका विवाह, भारपीडिता पृथिवीका देवताओंके सहित क्षीरसमुद्रपर जाना और भगवान्‌का प्रकट होकर उसे धैर्य बँधाना ··· ७४०
६६—भगवान्‌का आविर्भाव तथा योगमायाद्वारा कंसका तिरस्कार ··· ··· ७४२
६७—कंसका असुरोंको आदेश तथा वसुदेव-देवकीका कारागारसे मोक्ष ··· ··· ७४४
६८—पूतना-वध ··· ··· ७४४
६९—शकटभञ्जन, यमलार्जुन-उद्धार, व्रजवासियोंका गोकुलसे वृन्दावनमें जाना ·· ··· ७४५
७०—कालिय-दमन ··· ··· ७४७
७१—धेनुकासुर-वध और प्रलम्ब-वध ··· ७४९
७२—शरद्-वर्णन तथा गोवर्धनकी पूजा ··· ७५१
७३—इन्द्रका कोप और श्रीकृष्णका गोवर्धन-धारण तथा इन्द्रका आगमन और इन्द्रकृत श्रीकृष्णाभिषेक ··· ··· ७५२
७४—गोपोंद्वारा भगवान्‌का प्रभाव-वर्णन तथा भगवान्‌का गोपियोंके साथ रासक्रीड़ा करना ··· ७५३
७५—वृषभासुर-वध और कंसका श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरको भेजना तथा केशि-वध ··· ७५४
७६—अक्रूरजीकी गोकुलयात्रा ··· ··· ७५६
७७—भगवान्‌का मथुराको प्रस्थान, गोपियोंकी विरह-कथा और अक्रूरजीको जलमें आश्चर्यमय भगवद्दर्शन ··· ··· ७५७
७८—भगवान्‌का मथुरा-प्रवेश तथा मालीपर कृपा ··· ७५९
७९—धनुर्भङ्ग, कुवलयापीड हाथी और चाणूरादि मल्लोंका नाश तथा कंस-वध ··· ७६०
८०—उग्रसेनका राज्याभिषेक तथा भगवान्‌का विद्याध्ययन ··· ··· ७६२
८१—जरासन्धकी पराजय, द्वारका-दुर्गकी रचना, कालयवनका भस्म होना तथा मुचुकुन्दकृत भगवत्स्तुति ··· ७६३
८२—मुचुकुन्दका तपस्याके लिये प्रस्थान तथा बलरामजीकी व्रजयात्रा और रेवतीसे विवाह ··· ७६५
८३—रुक्मिणीका विवाह तथा प्रद्युम्न-हरण और शम्बर-वध ··· ··· ७६६
८४—नरकासुरका वध ··· ७६७
८५—पारिजात-हरण तथा भगवान्‌का सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे विवाह करना ··· ७६८
८६—उषा-चरित्र तथा श्रीकृष्ण और बाणासुरका युद्ध ७७०
८७—पौण्ड्रक तथा काशिराजका वध ··· ७७२
८८—साम्बका विवाह और द्विविद-वध ··· ७७४
८९—ऋषियोंका शाप, यदुवंश-विनाश तथा भगवान्‌का परम धाम सिधारना ··· ७७५
९०—यादवोंका अन्त्येष्टि-संस्कार, परीक्षित्‌का राज्याभिषेक तथा पाण्डवोंका वन-गमन ··· ७७७

षष्ठ अंश

९१—कलिधर्म-निरूपण ··· ७८०
९२—श्रीव्यासजीद्वारा कलियुग, शूद्र और स्त्रियोंका महत्त्व-वर्णन ··· ··· ७८२
९३—निमेषादि काल-मान तथा नैमित्तिक और प्राकृत प्रलयका वर्णन ··· ७८३
९४—आध्यात्मिकादि त्रिविध तापोंका वर्णन, भगवान् तथा वासुदेव शब्दोंकी व्याख्या और भगवान्‌के सगुण-निर्गुण स्वरूपका वर्णन ··· ७८५
९५—केशिध्वज और खाण्डिक्यका संवाद ··· ७८९
९६—अष्टाङ्ग-योगका प्रतिपादन ··· ७९१
९७—शिष्यपरम्परा, माहात्म्य और उपसंहार ··· ७९५
१०—भगवान् विष्णु—एक झाँकी (पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा) ··· ७९७
११—क्षमा-प्रार्थना ··· ··· ७९८
१२—श्रीविष्णु-चालीसा (रचयिता—डा. कृष्णदत्तजी भारद्वाज एम्. ए., पी. एच्. डी., आचार्य, शास्त्री) ··· टाइटल पृष्ठ ३

चित्र-सूची

तिरंगे

१—श्रीबालकृष्ण ··· मुखपृष्ठ
२—श्रीयुगलछवि ··· ··· १
३—भगीरथको भगवान् विष्णुके दर्शन ··· १७
४—गायत्रीका ध्यान ··· ·· ९२
५—भगवान् श्रीरामका ध्यान ··· ··· १७७
६—भगवान् रामका सरयू-तटका ध्यान ··· १७७
७—श्रीसीताजीका ध्यान ··· १७७
८—भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान ··· २८०
९—श्रीलक्ष्मणजी ··· ३७६
१०—श्रीहनुमान्‌जी ··· ३७६
११—श्रीकृष्णका सायंकालीन ध्यान ··· ४५४
१२—भगवान् श्रीरामका ध्यान ··· ५२९
१३—भगवान् शिवजीका ताण्डव नृत्य — ··· ५९६

पञ्चम अंश

६५—वसुदेव-देवकीका विवाह, भारपीडिता पृथिवीका देवताओंके सहित क्षीरसमुद्रपर जाना और भगवान्‌का प्रकट होकर उसे धैर्य बँधाना ··· ७४०

६६—भगवान्‌का आविर्भाव तथा योगमायाद्वारा कंसका तिरस्कार ··· ··· ७४२

६७—कंसका असुरोंको आदेश तथा वसुदेव-देवकीका कारागारसे मोक्ष ··· ··· ७४४

६८—पूतना-वध ··· ··· ७४४

६९—शकटभञ्जन, यमलार्जुन-उद्धार, व्रजवासियोंका गोकुलसे वृन्दावनमें जाना ·· ··· ७४५

७०—कालिय-दमन ··· ··· ७४७

७१—धेनुकासुर-वध और प्रलम्ब-वध ··· ७४९

७२—शरद्-वर्णन तथा गोवर्धनकी पूजा ··· ७५१

७३—इन्द्रका कोप और श्रीकृष्णका गोवर्धन-धारण तथा इन्द्रका आगमन और इन्द्रकृत श्रीकृष्णाभिषेक ··· ··· ७५२

७४—गोपोंद्वारा भगवान्‌का प्रभाव-वर्णन तथा भगवान्‌का गोपियोंके साथ रासक्रीड़ा करना ··· ७५३

७५—वृषभासुर-वध और कंसका श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरको भेजना तथा केशि-वध ··· ७५४

७६—अक्रूरजीकी गोकुलयात्रा ··· ··· ७५६

७७—भगवान्‌का मथुराको प्रस्थान, गोपियोंकी विरह-कथा और अक्रूरजीको जलमें आश्चर्यमय भगवद्दर्शन ··· ··· ७५७

७८—भगवान्‌का मथुरा-प्रवेश तथा मालीपर कृपा ··· ७५९

७९—धनुर्भङ्ग, कुवलयापीड हाथी और चाणूरादि मल्लोंका नाश तथा कंस-वध ··· ७६०

८०—उग्रसेनका राज्याभिषेक तथा भगवान्‌का विद्याध्ययन ··· ··· ७६२

८१—जरासन्धकी पराजय, द्वारका-दुर्गकी रचना, कालयवनका भस्म होना तथा मुचुकुन्दकृत भगवत्स्तुति ··· ७६३

८२—मुचुकुन्दका तपस्याके लिये प्रस्थान तथा बलरामजीकी व्रजयात्रा और रेवतीसे विवाह ··· ७६५

८३—रुक्मिणीका विवाह तथा प्रद्युम्न-हरण और शम्बर-वध ··· ··· ७६६

८४—नरकासुरका वध ··· ७६७

८५—पारिजात-हरण तथा भगवान्‌का सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे विवाह करना ··· ७६८

८६—उषा-चरित्र तथा श्रीकृष्ण और बाणासुरका युद्ध ७७०

८७—पौण्ड्रक तथा काशिराजका वध ··· ७७२

८८—साम्बका विवाह और द्विविद-वध ··· ७७४

८९—ऋषियोंका शाप, यदुवंश-विनाश तथा भगवान्‌का परम धाम सिधारना ··· ७७५

९०—यादवोंका अन्त्येष्टि-संस्कार, परीक्षित्‌का राज्याभिषेक तथा पाण्डवोंका वन-गमन ··· ७७७

षष्ठ अंश

९१—कलिधर्म-निरूपण ··· ७८०

९२—श्रीव्यासजीद्वारा कलियुग, शूद्र और स्त्रियोंका महत्त्व-वर्णन ··· ··· ७८२

९३—निमेषादि काल-मान तथा नैमित्तिक और प्राकृत प्रलयका वर्णन ··· ७८३

९४—आध्यात्मिकादि त्रिविध तापोंका वर्णन, भगवान् तथा वासुदेव शब्दोंकी व्याख्या और भगवान्‌के सगुण-निर्गुण स्वरूपका वर्णन ··· ७८५

९५—केशिध्वज और खाण्डिक्यका संवाद ··· ७८९

९६—अष्टाङ्ग-योगका प्रतिपादन ··· ७९१

९७—शिष्यपरम्परा, माहात्म्य और उपसंहार ··· ७९५

१०—भगवान् विष्णु—एक झाँकी (पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा) ··· ७९७

११—क्षमा-प्रार्थना ··· ··· ७९८

१२—श्रीविष्णु-चालीसा (रचयिता—डा. कृष्णदत्तजी भारद्वाज एम्. ए., पी. एच्. डी., आचार्य, शास्त्री) ··· टाइटल पृष्ठ ३

चित्र-सूची

तिरंगे

१—श्रीबालकृष्ण ··· मुखपृष्ठ

२—श्रीयुगलछवि ··· ··· १

३—भगीरथको भगवान् विष्णुके दर्शन ··· १७

४—गायत्रीका ध्यान ··· ·· ९२

५—भगवान् श्रीरामका ध्यान ··· ··· १७७

६—भगवान् रामका सरयू-तटका ध्यान ··· १७७

७—श्रीसीताजीका ध्यान ··· १७७

८—भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान ··· २८०

९—श्रीलक्ष्मणजी ··· ३७६

१०—श्रीहनुमान्‌जी ··· ३७६

११—श्रीकृष्णका सायंकालीन ध्यान ··· ४५४

१२—भगवान् श्रीरामका ध्यान ··· ५२९

१३—भगवान् शिवजीका ताण्डव नृत्य — ··· ५९६

६८—वीर हनुमान्‌का ध्यान ··· ··· ३७७
६९—कपीश्वर हनुमान्‌का ध्यान ··· ३८२
७०—श्रीकृष्णका प्रातःकालीन ध्यान ··· ३८६
७१—श्रीकृष्णका मध्याह्नकालीन ध्यान ··· ३८७
७२—श्रीकृष्णका सायंकालीन ध्यान ··· ३८७
७३—मुरारि भगवान्‌का ध्यान ··· ३९०
७४—गोपालयन्त्र ··· ··· ३९१
७५—अष्टभुज महाकृष्णका ध्यान ··· ३९६
७६—नन्दनन्दन श्रीकृष्णका ध्यान ··· ३९७
७७—गोपालकृष्णका ध्यान ··· ··· ३९८
७८—श्रीकृष्णाभिषेकका ध्यान ··· ··· ३९९
७९—बाल-गोपालका ध्यान ··· ··· ४००
८०—श्रीकृष्ण-बलरामका ध्यान ··· ४००
८१—व्रजराज-कुमारका ध्यान ··· ४०१
८२—गुरुपुत्र प्रदान करते श्रीकृष्णका ध्यान ··· ४०१
८३—श्रीदेवी, भूदेवीके साथ गरुड़पर बैठे भगवान् विष्णुका ध्यान ··· ··· ४०३
८४—भगवान् व्यासका ध्यान ··· ··· ४०३
८५—ब्रह्माजी और मरीचि ··· ··· ४२०
८६—पुराण-दान ··· ··· ४२२
८७—पुराण-श्रवण ··· ··· ४२४
८८—भागवत-दान ··· ··· ४२५
८९—गायोंके साथ पुराण-दान ··· ··· ४२६
९०—मार्कण्डेयपुराण-दान ··· ··· ४२६
९१—अग्निपुराण-दान ··· ··· ४२७
९२—भविष्यपुराण-दान ··· ··· ४२८
९३—वाराहपुराण-दान ··· ··· ४३०
९४—राजा अम्बरीष और दुर्वासा मुनि ··· ४३१
९५—स्कन्दपुराण-दान ··· ··· ४३६
९६—कूर्मपुराण-दान ··· ··· ४३८
९७—समुद्र-मन्थन ··· ··· ४३९
९८—गरुडपुराण-दान ··· ··· ४४०
९९—देवी-पूजन ··· ··· ४४३
१००—शिव-पूजन ··· ··· ४४५
१०१—गणेश-पूजन ··· ··· ४४७
१०२—मत्स्य भगवान्‌की पूजा ··· ··· ४४९
१०३—कपिला गौका पूजन ··· ··· ४५२
१०४—सूर्य-पूजन ··· ··· ४५४
१०५—श्रीराधाका पूजन और उसका फल ··· ४५७
१०६—श्रीरामका पूजन, ब्राह्मण-भोजन और उसका फल ··· ··· ४५९
१०७—गङ्गादशहरा-स्नान ··· ··· ४६०
१०८—विष्णु-पूजन ··· ··· ४६२
१०९—द्वादश ब्राह्मण-भोजन ··· ४६५
११०—शिव-पार्वती-पूजन ··· ··· ४६८
१११—नृसिंह-पूजन ··· ··· ४७१
११२—वट-प्रदक्षिणा ··· ··· ४७३
११३—दीप-दान ··· ··· ४७५
११४—राजा मान्धाता और महर्षि वसिष्ठ ··· ४७९
११५—ब्रह्माकी सभामें चित्रगुप्त, यम और नारदजी ··· ४८३
११६—ब्रह्माकी सभामें नारीकी उत्पत्ति ··· ४८६
११७—राजा रुक्माङ्गदकी घोषणा ··· ४८९
११८—रुक्माङ्गद और महर्षि वामदेव ··· ४९०
११९—रुक्माङ्गदका पर्वतके पास पहुँचना ··· ४९३
१२०—रुक्माङ्गदका छिपकलीके शरीरपर पानी डालना ४९५
१२१—छिपकलीका दिव्य शरीर-धारण ··· ४९७
१२२—मोहिनीको पीठपर पैर रखकर धर्माङ्गदने घोड़ेपर चढ़ाया ··· ··· ४९९
१२३—पतिव्रताका पतिसहित देवलोक-गमन ··· ५०१
१२४—धर्माङ्गदका माताओंको समझाना ··· ५०३
१२५—धर्माङ्गदका पिताके सामने मणि रखना ··· ५०५
१२६—गाय एक घड़ा दूध देती ··· ··· ५०७
१२७—त्रिरात्र-व्रतमें दान ··· ··· ५०९
१२८—मोहिनीकी ब्राह्मणोंसे बात ··· ··· ५१३
१२९—देवताओंको विष्णु-दर्शन ··· ··· ५१८
१३०—राजाको पुत्र-हत्यासे भगवान्‌का रोकना ··· ५२१
१३१—ब्राह्मणके पास मोहिनीको लेकर देवताओंका जाना ··· ··· ५२५
१३२—गङ्गा-स्नानसे शिवधामकी प्राप्ति ··· ५२९
१३३—गङ्गाजी ··· ··· ५३४
१३४—गङ्गामें प्राण-त्याग करनेवालोंको देवताओंका नमस्कार ··· ··· ५३८
१३५—फल्गु नदीके तटपर श्राद्ध ··· ५४३
१३६—श्रीरामद्वारा दशरथजीको पिण्डदान ··· ५४७
१३७—काशी-मुक्ति ··· ··· ५५२
१३८—कालिका-पूजन ··· ··· ५५६
१३९—इन्द्रद्युम्नको स्वप्नमें भगवद्दर्शन ··· ५६१
१४०—बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्रा ··· ५६६

६८—वीर हनुमान्‌का ध्यान ··· ··· ३७७
६९—कपीश्वर हनुमान्‌का ध्यान ··· ३८२
७०—श्रीकृष्णका प्रातःकालीन ध्यान ··· ३८६
७१—श्रीकृष्णका मध्याह्नकालीन ध्यान ··· ३८७
७२—श्रीकृष्णका सायंकालीन ध्यान ··· ३८७
७३—मुरारि भगवान्‌का ध्यान ··· ३९०
७४-गोपालयन्त्र ··· ··· ३९१
७५—अष्टभुज महाकृष्णका ध्यान ··· ३९६
७६—नन्दनन्दन श्रीकृष्णका ध्यान ··· ३९७
७७—गोपालकृष्णका ध्यान ··· ··· ३९८
७८—श्रीकृष्णाभिषेकका ध्यान ··· ··· ३९९
७९—बाल-गोपालका ध्यान ··· ··· ४००
८०—श्रीकृष्ण-बलरामका ध्यान ··· ४००
८१—व्रजराज-कुमारका ध्यान ··· ४०१
८२—गुरुपुत्र प्रदान करते श्रीकृष्णका ध्यान ··· ४०१
८३—श्रीदेवी, भूदेवीके साथ गरुड़पर बैठे भगवान् विष्णुका ध्यान ··· ··· ४०३
८४—भगवान् व्यासका ध्यान ··· ··· ४०३
८५—ब्रह्माजी और मरीचि ··· ··· ४२०
८६—पुराण-दान ··· ··· ४२२
८७—पुराण-श्रवण ··· ··· ४२४
८८—भागवत-दान ··· ··· ४२५
८९—गायोंके साथ पुराण-दान ··· ··· ४२६
९०—मार्कण्डेयपुराण-दान ··· ··· ४२६
९१—अग्निपुराण-दान ··· ··· ४२७
९२—भविष्यपुराण-दान ··· ··· ४२८
९३—वाराहपुराण-दान ··· ··· ४३०
९४—राजा अम्बरीष और दुर्वासा मुनि ··· ४३१
९५—स्कन्दपुराण-दान ··· ··· ४३६
९६—कूर्मपुराण-दान ··· ··· ४३८
९७—समुद्र-मन्थन ··· ··· ४३९
९८—गरुडपुराण-दान ··· ··· ४४०
९९—देवी-पूजन ··· ··· ४४३
१००—शिव-पूजन ··· ··· ४४५
१०१—गणेश-पूजन ··· ··· ४४७
१०२—मत्स्य भगवान्‌की पूजा ··· ··· ४४९
१०३—कपिला गौका पूजन ··· ··· ४५२
१०४—सूर्य-पूजन ··· ··· ४५४
१०५—श्रीराधाका पूजन और उसका फल ··· ४५७
१०६—श्रीरामका पूजन, ब्राह्मण-भोजन और उसका फल ··· ··· ४५९
१०७—गङ्गादशहरा-स्नान ··· ··· ४६०
१०८—विष्णु-पूजन ··· ··· ४६२
१०९—द्वादश ब्राह्मण-भोजन ··· ४६५
११०—शिव-पार्वती-पूजन ··· ··· ४६८
१११—नृसिंह-पूजन ··· ··· ४७१
११२—वट-प्रदक्षिणा ··· ··· ४७३
११३—दीप-दान ··· ··· ४७५
११४—राजा मान्धाता और महर्षि वसिष्ठ ··· ४७९
११५—ब्रह्माकी सभामें चित्रगुप्त, यम और नारदजी ··· ४८३
११६—ब्रह्माकी सभामें नारीकी उत्पत्ति ··· ४८६
११७—राजा रुक्माङ्गदकी घोषणा ··· ४८९
११८—रुक्माङ्गद और महर्षि वामदेव ··· ४९०
११९—रुक्माङ्गदका पर्वतके पास पहुँचना ··· ४९३
१२०—रुक्माङ्गदका छिपकलीके शरीरपर पानी डालना ४९५
१२१—छिपकलीका दिव्य शरीर-धारण ··· ४९७
१२२—मोहिनीको पीठपर पैर रखकर धर्माङ्गदने घोड़ेपर चढ़ाया ··· ··· ४९९
१२३—पतिव्रताका पतिसहित देवलोक-गमन ··· ५०१
१२४—धर्माङ्गदका माताओंको समझाना ··· ५०३
१२५—धर्माङ्गदका पिताके सामने मणि रखना ··· ५०५
१२६—गाय एक घड़ा दूध देती ··· ··· ५०७
१२७—त्रिरात्र-व्रतमें दान ··· ··· ५०९
१२८—मोहिनीकी ब्राह्मणोंसे बात ··· ··· ५१३
१२९—देवताओंको विष्णु-दर्शन ··· ··· ५१८
१३०—राजाको पुत्र-हत्यासे भगवान्‌का रोकना ··· ५२१
१३१—ब्राह्मणके पास मोहिनीको लेकर देवताओंका जाना ··· ··· ५२५
१३२—गङ्गा-स्नानसे शिवधामकी प्राप्ति ··· ५२९
१३३—गङ्गाजी ··· ··· ५३४
१३४—गङ्गामें प्राण-त्याग करनेवालोंको देवताओंका नमस्कार ··· ··· ५३८
१३५—फल्गु नदीके तटपर श्राद्ध ··· ५४३
१३६—श्रीरामद्वारा दशरथजीको पिण्डदान ··· ५४७
१३७—काशी-मुक्ति ··· ··· ५५२
१३८—कालिका-पूजन ··· ··· ५५६
१३९—इन्द्रद्युम्नको स्वप्नमें भगवद्दर्शन ··· ५६१
१४०—बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्रा ··· ५६६

गीताप्रेसके साहित्यसे प्रेम रखनेवालोंके लिये सुअवसर

गीताप्रेस, गोरखपुरकी सरल, सुन्दर, सचित्र, धार्मिक पुस्तकें कुम्भ-मेला-प्रयागमें, गङ्गापार मेला (झूसी) तथा परेड रोड मेला बजारकी दूकानोंपर मिलेंगी। उन दूकानोंपर ग्राहकोंकी सुविधाके लिये पुस्तकोंके अलग-अलग सेट भी बनाये गये हैं। जो विशेष रियायती दामोंपर मिलेंगे। सेटोंकी रियायतका विवरण संक्षेपमें इस प्रकार है—

(१) सेट नं० १—प्रेसकी प्रायः सभी तरहकी २४२ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १३६||-)। है, वे केवल १२५) में मिलेंगी।

(२) सेट नं० २—संग्रहणीय शास्त्र-ग्रन्थ—१० पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ३२|≈) है, वे केवल २८) में और इनके साथ दो खण्ड सजिल्द सं० महाभारताङ्क १०) के मिलाकर कुल १२ पुस्तकें ३८)में मिलेंगी।

(३) सेट नं० ३—श्रीशंकराचार्यजीकी १४ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ९|-) है, केवल ८||) में मिलेंगी।

(४) सेट नं० ४—श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी २९ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १४||≋)। है। वे केवल १२) में मिलेंगी।

(५) सेट नं० ५—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी ४६ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १६≋)||। है, वह केवल १४) में मिलेगी।

(६) सेट नं० ६—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दकाद्वारा अनुवादित ५ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १०|) है, वह केवल ९) में मिलेगी।

(७) सेट नं० ७—बालकोपयोगी २१ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ५||-) है, वह केवल ५) में मिलेगी।

(८) सेट नं० ८—स्त्रियोंके लिये उपयोगी १६ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ४|-)||। है, वह केवल ४) में मिलेगी।

(९) सेट नं० ९—सर्वोपयोगी २२ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ९-) है, वह केवल ८) में मिलेगी।

(१०) सेट नं० १०—नित्यकर्म तथा पाठोपयोगी १४ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ४|-)। है, वह केवल ४)में मिलेगी।

(११) सेट नं० ११—भक्तोंके जीवनचरित्रकी २३ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ७||-)|| है, वह केवल ७) में मिलेगी।

(१२) सेट नं० १२—तुलसी-ग्रन्थावलीकी ९ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १२||)|| है, वह केवल ११) में मिलेगी।

(१३) सेट नं० १३—तत्त्वचिन्तामणिके सातों भाग—जिनका लागत मूल्य ५|||≋) है, वह केवल ५) में मिलेगी।

(१४) सेट नं० १४—भगवच्चर्चाके ६ भाग—जिनका लागत मूल्य ४-) है, वह ३||) में मिलेगी।

(१५) सेट नं० १५—गीताप्रेसकी चित्रावलियाँ—सातों पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १२||-) है, वे केवल १०) में मिलेंगी

(१६) इनके अतिरिक्त श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकृत श्रीमद्भगवद्गीताकी तत्त्वविवेचनी टीका—जिसका लागत मूल्य ४) है, वह ३) में मिलेगी।

विशेष सूचना—

ये सभी सेटें तथा उनपर मिलनेवाली रियायत केवल कुम्भमेला-प्रयागकी गीताप्रेसकी दूकानोंपर ही उस अवसरके लिये प्रचारार्थ रक्खी गयी है। गीताप्रेस, गोरखपुरसे या और किसी जगहसे यह रियायत नहीं मिल सकेगी। इसके लिये किसी सज्जनको कृपापूर्वक पत्रव्यवहार नहीं करना चाहिये। कुम्भमेलेमें प्रयाग जानेवाले अपने किसी प्रेमीके द्वारा अधिक-से-अधिक संख्यामे मँगवाकर लाभ उठानेकी प्रार्थना है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

नोट—उपर्युक्त सेटोंमें रक्खी हुई पुस्तकोंका विवरण पृथक्-पृथक् रूपमें कुम्भमेलामें आयी हुई गीताप्रेसकी दूकानोंपर मिलेगा।

गीताप्रेसके साहित्यसे प्रेम रखनेवालोंके लिये सुअवसर

गीताप्रेस, गोरखपुरकी सरल, सुन्दर, सचित्र, धार्मिक पुस्तकें कुम्भ-मेला-प्रयागमें, गङ्गापार मेला (झूसी) तथा परेड रोड मेला बजारकी दूकानोंपर मिलेंगी। उन दूकानोंपर ग्राहकोंकी सुविधाके लिये पुस्तकोंके अलग-अलग सेट भी बनाये गये हैं। जो विशेष रियायती दामोंपर मिलेंगे। सेटोंकी रियायतका विवरण संक्षेपमें इस प्रकार है—

(१) सेट नं० १–प्रेसकी प्रायः सभी तरहकी २४२ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १३६॥-)। है, वे केवल १२५) में मिलेंगी।

(२) सेट नं० २–संग्रहणीय शास्त्र-ग्रन्थ—१० पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ३२।≈) है, वे केवल २८) में और इनके साथ दो खण्ड सजिल्द सं० महाभारताङ्क १०) के मिलाकर कुल १२ पुस्तकें ३८)में मिलेंगी।

(३) सेट नं० ३–श्रीशंकराचार्यजीकी १४ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ९।-) है, केवल ८॥) में मिलेंगी।

(४) सेट नं० ४–श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी २९ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १४॥≈)। है। वे केवल १२) में मिलेंगी।

(५) सेट नं० ५–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी ४६ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १६≈)॥। है, वह केवल १४) में मिलेगी।

(६) सेट नं० ६–श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दकाद्वारा अनुवादित ५ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १०।) है, वह केवल ९) में मिलेगी।

(७) सेट नं० ७–बालकोपयोगी २१ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ५॥-) है, वह केवल ५) में मिलेगी।

(८) सेट नं० ८–स्त्रियोंके लिये उपयोगी १६ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ४।-)॥। है, वह केवल ४) में मिलेगी।

(९) सेट नं० ९–सर्वोपयोगी २२ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ९-) है, वह केवल ८) में मिलेगी।

(१०) सेट नं० १०–नित्यकर्म तथा पाठोपयोगी १४ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ४।-)। है, वह केवल ४)में मिलेगी।

(११) सेट नं० ११–भक्तोंके जीवनचरित्रकी २३ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य ७॥-)॥ है, वह केवल ७) में मिलेगी।

(१२) सेट नं० १२–तुलसी-ग्रन्थावलीकी ९ पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १२॥)॥ है, वह केवल ११) में मिलेगी।

(१३) सेट नं० १३–तत्त्वचिन्तामणिके सातों भाग—जिनका लागत मूल्य ५॥≈) है, वह केवल ५) में मिलेगी।

(१४) सेट नं० १४–भगवच्चर्चाके ६ भाग—जिनका लागत मूल्य ४-) है, वह ३॥) में मिलेगी।

(१५) सेट नं० १५–गीताप्रेसकी चित्रावलियाँ—सातों पुस्तकें—जिनका लागत मूल्य १२॥-) है, वे केवल १०) में मिलेंगी

(१६) इनके अतिरिक्त श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकृत श्रीमद्भगवद्गीताकी तत्त्वविवेचनी टीका–जिसका लागत मूल्य ४) है, वह ३) में मिलेगी।

विशेष सूचना—

ये सभी सेटें तथा उनपर मिलनेवाली रियायत केवल कुम्भमेला-प्रयागकी गीताप्रेसकी दूकानोंपर ही उस अवसरके लिये प्रचारार्थ रक्खी गयी है। गीताप्रेस, गोरखपुरसे या और किसी जगहसे यह रियायत नहीं मिल सकेगी। इसके लिये किसी सज्जनको कृपापूर्वक पत्रव्यवहार नहीं करना चाहिये। कुम्भमेलेमें प्रयाग जानेवाले अपने किसी प्रेमीके द्वारा अधिक-से-अधिक संख्यामे मॅंगवाकर लाभ उठानेकी प्रार्थना है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

नोट—उपर्युक्त सेटोंमें रक्खी हुई पुस्तकोंका विवरण पृथक्-पृथक् रूपमें कुम्भमेलामें आयी हुई गीताप्रेसकी दूकानोंपर मिलेगा।

श्रीहरिः

कल्याणके नियम

उद्देश्य–भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख विना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

(२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ७||) और भारतवर्षसे वाहरके लिये १०) (१५ शिलिङ्ग) नियत है। **विना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।**

(३) 'कल्याण'का नया वर्ष सौर माघ या जनवरीसे आरम्भ होकर सौर पौष या दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक वनाये जा सकते हैं, किंतु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तवतकके सव अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण'के वीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति विना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **पत्र लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो, तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रवन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलीकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति विना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

(७) सौर माघ या जनवरीसे वननेवाले ग्राहकोंको रंग-विरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर सौर पौष या दिसम्बरतक महीने-महीने नये अङ्क मिला करेंगे।

(८) सात आना एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है; ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो ।≈) बाद दिया जा सकता है।

आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण' में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण'-की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।

(१०) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

(११) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये।

(१२) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये। वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं।

(१३) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। 'कल्याण' के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १) से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

(१४) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

(१५) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलव, ग्राहक-नम्बर (नये ग्राहक हों तो 'नया' लिखें) पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(१६) प्रवन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **व्यवस्थापक "कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक "कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे भेजने चाहिये।

(१७) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कुछ कम नहीं लिया जाता।

श्रीहरिः

कल्याणके नियम

उद्देश्य–भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

(२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ७।।) और भारतवर्षसे बाहरके लिये १०) (१५ शिलिङ्ग) नियत है। **बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।**

(३) 'कल्याण'का नया वर्ष सौर माघ या जनवरीसे आरम्भ होकर सौर पौष या दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं, किंतु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **पत्र लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो, तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलीकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

(७) सौर माघ या जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर सौर पौष या दिसम्बरतक महीने-महीने नये अङ्क मिला करेंगे।

(८) सात आना एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है; ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो।≈) बाद दिया जा सकता है।

आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण' में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण'-की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।

(१०) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

(११) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये।

(१२) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये। वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं।

(१३) **प्रेस-विभाग और कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये।** 'कल्याण' के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १) से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

(१४) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

(१५) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर (नये ग्राहक हों तो 'नया' लिखें) पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(१६) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **व्यवस्थापक "कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक "कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे भेजने चाहिये।

(१७) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कुछ कम नहीं लिया जाता।

श्रीयुगलछवि

[पृष्ठ ४०५

श्रीयुगलछवि

[पृष्ठ ४०५

श्रेष्ठ भगवद्भक्त कौन है ?

ये हिताः सर्वजन्तूनां गतासूया अमत्सराः ।
वशिनो निस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५० ॥
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते ।
अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५१ ॥
सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः ।
तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५२ ॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वन्ति ये नरोत्तमाः ।
गङ्गाविश्वेश्वरधिया ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५३ ॥
व्रतिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये ।
वियुक्तपरनिन्दाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५५ ॥
सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः ।
ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५६ ॥
आत्मवत् सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः ।
तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५७ ॥
अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ।
हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ६१ ॥
शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि ।
समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ७२ ॥

(नारदपुराण १ । ५)

जो सब जीवोंके हितैषी हैं, जो दूसरोंका दोष नहीं देखते, जो किसीसे डाह नहीं करते, मन-इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, निःस्पृह और शान्त हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो कर्म, मन और वचनसे दूसरोंको पीड़ा नहीं पहुँचाते, जिनका संग्रह करनेका स्वभाव नहीं है, वे भगवद्भक्त हैं। जिनकी सात्त्विकी बुद्धि उत्तम भगवत्कथा सुननेमें लगी रहती है तथा जो भगवान् और उनके भक्तोंके भी भक्त हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य माता-पिताके प्रति गङ्गा और विश्वनाथका भाव रखकर उनकी सेवा करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो व्रतधारियों और यतियोंकी सेवामें लगे रहते हैं और परायी निन्दा कभी नहीं करते, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष सबके लिये हितभरे वचन बोलते हैं और केवल गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, वे इस लोकमें भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष समस्त जीवोंको अपने ही समान देखते हैं तथा शत्रु-मित्रमें भी समान भाव रखते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य दूसरोंका अभ्युदय देखकर प्रसन्न होते और सदा हरिनामपरायण रहते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं और जो परमेश्वर शिव एवं परमात्मा विष्णुके प्रति समबुद्धिसे वर्ताव करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं।

श्रेष्ठ भगवद्भक्त कौन है ?

ये हिताः सर्वजन्तूनां गतासूया अमत्सराः ।
वशिनो निस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५० ॥
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते ।
अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५१ ॥
सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः ।
तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५२ ॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वन्ति ये नरोत्तमाः ।
गङ्गाविश्वेश्वरधिया ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५३ ॥
व्रतिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये ।
वियुक्तपरनिन्दाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५५ ॥
सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः ।
ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५६ ॥
आत्मवत् सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः ।
तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५७ ॥
अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ।
हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ६१ ॥
शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि ।
समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ७२ ॥

(नारदपुराण १ । ५)

जो सब जीवोंके हितैषी हैं, जो दूसरोंका दोष नहीं देखते, जो किसीसे डाह नहीं करते, मन-इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, निःस्पृह और शान्त हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो कर्म, मन और वचनसे दूसरोंको पीड़ा नहीं पहुँचाते, जिनका संग्रह करनेका स्वभाव नहीं है, वे भगवद्भक्त हैं। जिनकी सात्त्विकी बुद्धि उत्तम भगवत्कथा सुननेमें लगी रहती है तथा जो भगवान् और उनके भक्तोंके भी भक्त हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य माता-पिताके प्रति गङ्गा और विश्वनाथका भाव रखकर उनकी सेवा करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो व्रतधारियों और यतियोंकी सेवामें लगे रहते हैं और परायी निन्दा कभी नहीं करते, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष सबके लिये हितभरे वचन बोलते हैं और केवल गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, वे इस लोकमें भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष समस्त जीवोंको अपने ही समान देखते हैं तथा शत्रु-मित्रमें भी समान भाव रखते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य दूसरोंका अभ्युदय देखकर प्रसन्न होते और सदा हरिनामपरायण रहते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं और जो परमेश्वर शिव एवं परमात्मा विष्णुके प्रति समबुद्धिसे वर्ताव करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं।

शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि ।
समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥
शिवाग्निकार्यनिरताः पञ्चाक्षरजपे रताः ।
शिवध्यानरता ये च ते वै भागवताः स्मृताः ॥

इन भागवतोंके लिये सदाचारपालन अत्यावश्यक है, अन्यथा पातित्य बतलाया गया है। भगवान्का नामविक्रय करना पाप है। केवल कमाईकी दृष्टिसे पैसा लेकर संकीर्तन नामविक्रय ही है। भगवान्का नाम बेचनेवाले, संध्याकर्म छोड़ देनेवाले और दुष्प्रतिग्रह लेनेवालेको दान देना निष्फल बतलाया गया है—

नामविक्रयिणो विष्णोः संध्याकर्मोज्झितस्य च ।
दुष्प्रतिग्रहदग्धस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥

उच्छिष्ट भोजन भी निन्दित ही कहा गया है। उच्छिष्ट भोजन करने, मित्रोंके साथ द्रोह करनेवाले, जबतक चन्द्रमा और नक्षत्र हैं, तबतक तीव्र यातना भोगते हैं—

उच्छिष्टभोजिनो ये च मित्रद्रोहपराश्च ये ।
एतेषां यातनास्तीव्रा भवन्त्याचन्द्रतारकम् ॥
(पू० भा० १५)

इसके अतिरिक्त अपने वर्णाश्रमोचित धर्मको छोड़कर भक्तिमात्रोपजीवन अत्यन्त दोषावह बतलाया गया है, अतः जिससे स्वधर्ममें विरोध न आये, ऐसी भक्ति करनी चाहिये—

यः स्वधर्मं परित्यज्य भक्तिमात्रेण जीवति ।
न तस्य तुष्यते विष्णुराचारेणैव तुष्यति ॥
तस्मात् कार्या हरेर्भक्तिः स्वधर्मस्याविरोधिनी ।
स्वधर्महीना भक्तिश्चाप्यकृतैव प्रकीर्तिता ॥

भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये कर्म करने चाहिये। निष्काम पुरुषको भी यथाविधि भगवत्प्रसादके लिये कर्म करते रहना चाहिये। अपने आश्रम और आचारसे शून्य पुरुष पतित ही हैं—

सदाचारपरो विप्रो वर्द्धते ब्रह्मतेजसा ।
विष्णुश्च तुष्टो भवति .... ॥

इन सब कथनोंसे यह कहना कि 'वैष्णवोंका अच्युत गोत्र है, उनके लिये कोई कर्म करना शेष नहीं रह जाता' खण्डित हो जाता है। श्रुतिस्मृतिप्रोक्त धर्मका अतिलङ्घन करनेवालेके लिये वैष्णवत्व असम्भव है। लोकका अतिलङ्घन करनेके बाद ही परम विरक्त ब्राह्मणका विधिपूर्वक तीव्र विविदिषासे सर्वकर्मत्यागलक्षण संन्यासमें अधिकार है—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः ।
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥
विरक्तः प्रव्रजेद्धीमान् सरक्तश्चेद् गृहे वसेत् ।

इत्यादि स्मृतिके अनुसार स्त्री, पुत्र, धन आदिके अर्जनमें लगे हुए, संसारमें आसक्त, वैष्णवी दीक्षायुक्तके लिये भी कर्मका त्याग कर देनेपर पातित्य अवश्यम्भावी प्रतीत होता है। जो लोग यह उपदेश करते हैं कि 'अवैष्णवोंके लिये ही श्रौत-स्मार्त्त कर्मोंका विधान है, वैष्णवोंके लिये नहीं' वे उपेक्ष्य हैं; क्योंकि 'भारत' और 'गीता'में भी 'इष्टोऽसि मे दृढमिति' इत्यादिसे परमान्तरङ्ग भक्त अर्जुनके लिये भी भगवान्ने 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' इत्यादिसे श्रौतस्मार्त्तकर्मानुष्ठानका ही प्रतिपादन किया है। 'नारदपुराण'ने इन वचनोंसे यह बात स्पष्ट कर दी है। त्यागेच्छुको भगवत्प्रसन्नताके लिये अपने आश्रमानुसार वेदशास्त्रोक्त कर्मोंको करते रहना चाहिये, इससे अव्यय पद प्राप्त होता है। निष्काम हो या सकाम, उसे यथाविधि स्वोचित कर्म करना चाहिये। अपने आश्रमोचित आचारसे रहित व्यक्तिको विवेकी पुरुष पतित बतलाते हैं। भक्तियुक्त पुरुष सदाचारपरायण हो तो वह ब्रह्मतेजसे वृद्धिङ्गत होता है और उसपर भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं। भारतवर्षमें जन्म पाकर भी जो अपने-आपको नहीं तार लेता, वह जबतक चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र वर्तमान रहते हैं, तबतक भयंकर नरकमें कष्ट पाता है—

वेदोदितानि कर्माणि कुर्यादीश्वरतुष्टये ।
यथाश्रमं त्यक्तुकामः प्राप्नोति पदमव्ययम् ॥
निष्कामो वा सकामो वा कुर्यात् कर्म यथाविधि ।
स्वाश्रमाचारशून्यश्च पतितः प्रोच्यते बुधैः ॥
सदाचारपरो विप्रो वर्द्धते ब्रह्मतेजसा ।
तस्य विष्णुश्च तुष्टः स्याद् भक्तियुक्तस्य नारद ॥
(अ० ३ श्लो० ७६—७८)

भारते जन्म सम्प्राप्य नात्मानं तारयेत्तु यः ।
पच्यते निरये घोरे स त्वाचन्द्रार्कतारकम् ॥

इस पुराणमें युगधर्मोंका वर्णन भी हुआ है। कलियुगमें कौन त्याज्य और कौन ग्राह्य धर्म है, यह भी बतलाया गया है। औचित्य-विचारपूर्वक वर्णोंको युगधर्मका ग्रहण करना चाहिये और जिनका स्मृति-धर्मोंसे विरोध न हो, उन देशाचारोंको भी ग्रहण करना चाहिये—

युगधर्माः परिग्राह्या वर्णैरेतैर्यथोचितम् ।
देशाचारस्तथा ग्राह्यः स्मृतिधर्माविरोधतः ॥
(अ० २४ श्लो० ११)

शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि।
समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः॥
शिवाग्निकार्यनिरताः पञ्चाक्षरजपे रताः।
शिवध्यानरता ये च ते वै भागवताः स्मृताः॥

इन भागवतोंके लिये सदाचारपालन अत्यावश्यक है, अन्यथा पातित्य बतलाया गया है। भगवान्‌का नामविक्रय करना पाप है। केवल कमाईकी दृष्टिसे पैसा लेकर संकीर्तन नामविक्रय ही है। भगवान्‌का नाम बेचनेवाले, संध्याकर्म छोड़ देनेवाले और दुष्प्रतिग्रह लेनेवालेको दान देना निष्फल बतलाया गया है—

नामविक्रयिणो विष्णोः संध्याकर्मोज्झितस्य च।
दुष्प्रतिग्रहदग्धस्य दत्तं भवति निष्फलम्॥

उच्छिष्ट भोजन भी निन्दित ही कहा गया है। उच्छिष्ट भोजन करने, मित्रोंके साथ द्रोह करनेवाले, जबतक चन्द्रमा और नक्षत्र हैं, तबतक तीव्र यातना भोगते हैं—

उच्छिष्टभोजिनो ये च मित्रद्रोहपराश्च ये।
एतेषां यातनास्तीव्रा भवन्त्याचन्द्रतारकम्॥
(पू० भा० १५)

इसके अतिरिक्त अपने वर्णाश्रमोचित धर्मको छोड़कर भक्तिमात्रोपजीवन अत्यन्त दोषावह बतलाया गया है, अतः जिससे स्वधर्ममें विरोध न आये, ऐसी भक्ति करनी चाहिये—

यः स्वधर्मं परित्यज्य भक्तिमात्रेण जीवति।
न तस्य तुष्यते विष्णुराचारेणैव तुष्यति॥
तस्मात् कार्या हरेर्भक्तिः स्वधर्मस्याविरोधिनी।
स्वधर्महीना भक्तिश्चाप्यकृतैव प्रकीर्तिता॥

भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये कर्म करने चाहिये। निष्काम पुरुषको भी यथाविधि भगवत्प्रसादके लिये कर्म करते रहना चाहिये। अपने आश्रम और आचारसे शून्य पुरुष पतित ही हैं—

सदाचारपरो विप्रो वर्द्धते ब्रह्मतेजसा।
विष्णुश्च तुष्टो भवति .... ॥

इन सब कथनोंसे यह कहना कि 'वैष्णवोंका अच्युत गोत्र है, उनके लिये कोई कर्म करना शेष नहीं रह जाता' खण्डित हो जाता है। श्रुतिस्मृतिप्रोक्त धर्मका अतिलङ्घन करनेवालेके लिये वैष्णवत्व असम्भव है। लोकका अतिलङ्घन करनेके बाद ही परम विरक्त ब्राह्मणका विधिपूर्वक तीव्र विविदिषासे सर्वकर्मत्यागलक्षण संन्यासमें अधिकार है—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः।
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः॥
विरक्तः प्रव्रजेद्धीमान् सरक्तश्चेद् गृहे वसेत्।

इत्यादि स्मृतिके अनुसार स्त्री, पुत्र, धन आदिके अर्जनमें लगे हुए, संसारमें आसक्त, वैष्णवी दीक्षायुक्तके लिये भी कर्मका त्याग कर देनेपर पातित्य अवश्यम्भावी प्रतीत होता है। जो लोग यह उपदेश करते हैं कि 'अवैष्णवोंके लिये ही श्रौत-स्मार्त्त कर्मोंका विधान है, वैष्णवोंके लिये नहीं' वे उपेक्ष्य हैं; क्योंकि 'भारत' और 'गीता'में भी 'इष्टोऽसि मे दृढमिति' इत्यादिसे परमान्तरङ्ग भक्त अर्जुनके लिये भी भगवान्‌ने 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' इत्यादिसे श्रौतस्मार्त्तकर्मानुष्ठानका ही प्रतिपादन किया है। 'नारदपुराण'ने इन वचनोंसे यह बात स्पष्ट कर दी है। त्यागेच्छुको भगवत्प्रसन्नताके लिये अपने आश्रमानुसार वेदशास्त्रोक्त कर्मोंको करते रहना चाहिये, इससे अव्यय पद प्राप्त होता है। निष्काम हो या सकाम, उसे यथाविधि स्वोचित कर्म करना चाहिये। अपने आश्रमोचित आचारसे रहित व्यक्तिको विवेकी पुरुष पतित बतलाते हैं। भक्तियुक्त पुरुष सदाचारपरायण हो तो वह ब्रह्मतेजसे वृद्धिङ्गत होता है और उसपर भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं। भारतवर्षमें जन्म पाकर भी जो अपने-आपको नहीं तार लेता, वह जबतक चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र वर्तमान रहते हैं, तबतक भयंकर नरकमें कष्ट पाता है—

वेदोदितानि कर्माणि कुर्यादीश्वरतुष्टये।
यथाश्रमं त्यक्तुकामः प्राप्नोति पदमव्ययम्॥
निष्कामो वा सकामो वा कुर्यात् कर्म यथाविधि।
स्वाश्रमाचारशून्यश्च पतितः प्रोच्यते बुधैः॥
सदाचारपरो विप्रो वर्द्धते ब्रह्मतेजसा।
तस्य विष्णुश्च तुष्टः स्याद् भक्तियुक्तस्य नारद॥
(अ० ३ श्लो० ७६–७८)

भारते जन्म सम्प्राप्य नात्मानं तारयेत्तु यः।
पच्यते निरये घोरे स त्वाचन्द्रार्कतारकम्॥

इस पुराणमें युगधर्मोंका वर्णन भी हुआ है। कलियुगमें कौन त्याज्य और कौन ग्राह्य धर्म है, यह भी बतलाया गया है। औचित्य-विचारपूर्वक वर्णोंको युगधर्मका ग्रहण करना चाहिये और जिनका स्मृति-धर्मोंसे विरोध न हो, उन देशाचारोंको भी ग्रहण करना चाहिये—

युगधर्माः परिग्राह्या वर्णैरेतैर्यथोचितम्।
देशाचारस्तथा ग्राह्यः स्मृतिधर्माविरोधतः॥
(अ० २४ श्लो० ११)

गुरोरवज्ञां साधूनां निन्दां भेदं हरौ हरे।
वेदनिन्दां हरेर्नामबलात् पापसमीहनम्॥
अर्थवादं हरेर्नाम्नि पाषण्डं नामसंग्रहे।
अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम्॥
नामविस्मरणं चापि नाम्न्यनादरमेव च।
संत्यजेद् दूरतो वत्स दोषानेतान् सुदारुणान्॥

'वाराहपुराण'में भी सौभाग्य-व्रतके प्रसङ्गमें श्रीशिव और श्रीविष्णुमें भेदबुद्धि रखना महान् दोष बतलाते हुए कहा गया है कि जो लक्ष्मी हैं, वह पार्वती ही हैं और जो श्रीहरि हैं, वे साक्षात् त्रिलोचन ही हैं, सब शास्त्रों, पुराणोंमें ऐसा प्रतिपादित है। इसके विपरीत जो कहता है, वह शास्त्रके विरुद्ध कहता है। ऐसी बात कहनेवाला मनुष्य रुद्र अर्थात् रौद्र है, दुःख देनेवाला है और ऐसा शास्त्र शास्त्र नहीं, काव्य है—अनादरणीय है। भगवान् विष्णु श्रीशिव और लक्ष्मी गौरी कही जाती हैं। इनमें परस्पर भेदको समझनेवाला सज्जनोंकी दृष्टिमें अधम कहा गया है। (स्वयं त्रिदेववचन है—) उसे नास्तिक समझो, वह सब धर्मोंसे बहिष्कृत है, जो हम तीनोंमें भेद करता है। (श्रीहर-वचन है—) वह पाप करनेवाला है, दुष्ट है, उसे दुर्गति मिलेगी, जो ब्रह्मा और विष्णुके स्वरूपसे मुझे भिन्न समझकर मेरा भजन करता है—

या श्रीः सा गिरिजा प्रोक्ता यो हरिः स त्रिलोचनः।
एवं सर्वेषु शास्त्रेषु पुराणेषु च गद्यते॥
एतस्मादन्यथा यस्तु ब्रूते शास्त्रं पृथक्तया।
रुद्रो जनानां मर्त्यानां काव्यं शास्त्रं तु तद् भवेत्॥
विष्णुं रुद्रकृतं ब्रूयाच्छ्रीर्गौरीति निगद्यते।
एतयोरन्तरं यच्च सोऽधमः कथ्यते जनैः॥
तं नास्तिकं विजानीयात् सर्वधर्मबहिष्कृतम्।
यो भेदं कुरुतेऽस्माकं त्रयाणां द्विजसत्तम॥
स पापकारी दुष्टात्मा दुर्गतिं समवाप्नुयात्।
मां विष्णोर्व्यतिरिक्तं ये ब्रह्मणश्च द्विजोत्तम॥
भजन्ते पापकर्माणस्ते यान्ति नरके नराः॥

वैष्णवताके विचारमें कुछ लोग तो स्मार्तों (स्मृतिप्रधान कर्मशीलों) को छोड़कर केवल श्रौतों (वेदप्रधान कर्मतत्परों) को ही वैष्णव मानते हैं, परंतु यह ठीक नहीं है। गृह्यसूत्रों और मन्वादि वचनोंको छोड़कर श्रौतोंका कोई श्रौतत्व नहीं है, उन्हें भी गृह्यसूत्रादिप्रोक्त धर्मका अनुष्ठान अवश्य करना ही पड़ता है। वेदोंमें यज्ञोपवीतका स्वरूप, उसके बनानेका प्रकार, उपनयन-विवाह आदिके प्रकार नहीं बतलाये गये हैं और इन सबके बिना कैसा श्रौतत्व, कैसी वैदिकता ? फिर मनु, व्यास, याज्ञवल्क्य प्रभृति वैदिक थे या अवैदिक ? यदि अवैदिक तो जनताके प्रति उन्हें क्या प्रत्याशा होती ? और यदि वैदिक तो ठीक ही है, फिर तो उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म भी वैदिक ही हुए। ऐसी स्थितिमें श्रौतजनोंको उनकी उपेक्षा करना कैसे उचित है ? बल्कि स्मार्त्त कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले भी श्रौताग्निहोत्र, दर्श-पूर्णमास, चातुर्मास्य और ज्योतिष्टोमादि श्रौत-कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए विशेषतः श्रौत कहे जाते हैं। जो श्रौताधानादिसे रहित हैं, वे केवल स्मार्त हैं। वस्तुतः जो सब इच्छाओंसे विनिर्मुक्त हो चुके हैं, सब कर्मोंका संन्यास कर चुके हैं, ऐसे परिव्राजक वैष्णव कहे जाते हैं। इसीलिये इस (नारद) पुराणमें एकादशी-उपोषण-प्रसङ्गमें दशमीका स्मार्तोंको सूर्योदयवेध, श्रौतोंको अरुणोदयवेध और वैष्णवोंको अर्द्धरात्र-वेध निर्दिष्ट हुआ है। गृहस्थलोग किसी भी तरह वैष्णव-कोटिमें नहीं आ सकते, क्योंकि वे या तो श्रौत होंगे या स्मार्त्त, इसीलिये गृहस्थोंके लिये पहली और यतियोंके अर्थात् वैष्णवों-के लिये दूसरी एकादशीका व्रत विहित हुआ है। कहा गया है कि गृहस्थोंको पहली और यतियोंको दूसरी एकादशी करनी चाहिये, क्योंकि गृहस्थ सिद्धि चाहते हैं और यतीश्वर मोक्ष। द्वादशी यदि त्रयोदशीमें आ जाय, तो वह परा—दूसरी—एकादशी मानी जाती है। गृहस्थोंको वैसी स्थितिमें दशमी-विद्धा भी पहली ही एकादशीका व्रत करना चाहिये और यतियोंको तथा पति-पुत्ररहित स्त्रियोंको दूसरी एकादशी करनी चाहिये—

पूर्वा गृहस्थैः सा कार्या ह्युत्तरा यतिभिस्तथा।
गृहस्थाः सिद्धिमिच्छन्ति यतो मोक्षं यतीश्वराः॥
द्वादशी चेत् त्रयोदश्यामस्ति चेत् सा परा मता।
विद्धाप्येकादशी तत्र पूर्वा स्याद् गृहिणां तदा॥
यतिभिश्चोत्तरा ग्राह्या ह्यवीराभिस्तथैव च।

वहाँ यह भी कहा गया है कि दोनों ही पक्षकी एकादशी-का व्रत करना चाहिये—

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।

इससे यह स्पष्ट है कि 'कृष्ण पक्षकी एकादशीका व्रत गृहस्थ न करे' यह बात साधारण है। एकादशीव्रत करना तो अत्यावश्यक ही है।

अपने वर्ण और आश्रमके आचारानुसार श्रीहरिका समाराधन करके ही मनुष्य उन्हें जान सकता है। वह

गुरोरवज्ञां साधूनां निन्दां भेदं हरौ हरे।
वेदनिन्दां हरेर्नामबलात् पापसमीहनम्॥
अर्थवादं हरेर्नाम्नि पाषण्डं नामसंग्रहे।
अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम्॥
नामविस्मरणं चापि नाम्न्यनादरमेव च।
संत्यजेद् दूरतो वत्स दोषानेतान् सुदारुणान्॥

'वाराहपुराण'में भी सौभाग्य-व्रतके प्रसङ्गमें श्रीशिव और श्रीविष्णुमें भेदबुद्धि रखना महान् दोष बतलाते हुए कहा गया है कि जो लक्ष्मी हैं, वह पार्वती ही हैं और जो श्रीहरि हैं, वे साक्षात् त्रिलोचन ही हैं, सब शास्त्रों, पुराणोंमें ऐसा प्रतिपादित है। इसके विपरीत जो कहता है, वह शास्त्रके विरुद्ध कहता है। ऐसी बात कहनेवाला मनुष्य रुद्र अर्थात् रौद्र है, दुःख देनेवाला है और ऐसा शास्त्र शास्त्र नहीं, काव्य है—अनादरणीय है। भगवान् विष्णु श्रीशिव और लक्ष्मी गौरी कही जाती हैं। इनमें परस्पर भेदको समझनेवाला सज्जनोंकी दृष्टिमें अधम कहा गया है। (स्वयं त्रिदेववचन है—) उसे नास्तिक समझो, वह सब धर्मोंसे बहिष्कृत है, जो हम तीनोंमें भेद करता है। (श्रीहर-वचन है—) वह पाप करनेवाला है, दुष्ट है, उसे दुर्गति मिलेगी, जो ब्रह्मा और विष्णुके स्वरूपसे मुझे भिन्न समझकर मेरा भजन करता है—

या श्रीः सा गिरिजा प्रोक्ता यो हरिः स त्रिलोचनः।
एवं सर्वेषु शास्त्रेषु पुराणेषु च गद्यते॥
एतस्मादन्यथा यस्तु ब्रूते शास्त्रं पृथक्तया।
रुद्रो जनानां मर्त्यानां काव्यं शास्त्रं तु तद् भवेत्॥
विष्णुं रुद्रकृतं ब्रूयाच्छ्रीगौरीरिति निगद्यते।
एतयोरन्तरं यच्च सोऽधमः कथ्यते जनैः॥
तं नास्तिकं विजानीयात् सर्वधर्मबहिष्कृतम्।
यो भेदं कुरुतेऽस्माकं त्रयाणां द्विजसत्तम॥
स पापकारी दुष्टात्मा दुर्गतिं समवाप्नुयात्।
मां विष्णोर्व्यतिरिक्तं ये ब्रह्मणश्च द्विजोत्तम॥
भजन्ते पापकर्माणस्ते यान्ति नरके नराः॥

वैष्णवताके विचारमें कुछ लोग तो स्मार्तों (स्मृति-प्रधान कर्मशीलों) को छोड़कर केवल श्रौतों (वेदप्रधान कर्मतत्परों) को ही वैष्णव मानते हैं, परंतु यह ठीक नहीं है। गृह्यसूत्रों और मन्वादि वचनोंको छोड़कर श्रौतोंका कोई श्रौतत्व नहीं है, उन्हें भी गृह्यसूत्रादिप्रोक्त धर्मका अनुष्ठान अवश्य करना ही पडता है। वेदोंमें यज्ञोपवीतका स्वरूप, उसके बनानेका प्रकार, उपनयन-विवाह आदिके प्रकार नहीं बतलाये गये हैं और इन सबके बिना कैसा श्रौतत्व, कैसी वैदिकता? फिर मनु, व्यास, याज्ञवल्क्य प्रभृति वैदिक थे या अवैदिक? यदि अवैदिक तो जनताके प्रति उन्हें क्या प्रत्याशा होती? और यदि वैदिक तो ठीक ही है, फिर तो उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म भी वैदिक ही हुए। ऐसी स्थितिमें श्रौतजनोंको उनकी उपेक्षा करना कैसे उचित है? बल्कि स्मार्त्त कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले भी श्रौताग्निहोत्र, दर्श-पूर्णमास, चातुर्मास्य और ज्योतिष्टोमादि श्रौत-कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए विशेषतः श्रौत कहे जाते हैं। जो श्रौताधानादिसे रहित हैं, वे केवल स्मार्त हैं। वस्तुतः जो सब इच्छाओंसे विनिर्मुक्त हो चुके हैं, सब कर्मोंका संन्यास कर चुके हैं, ऐसे परिव्राजक वैष्णव कहे जाते हैं। इसीलिये इस (नारद) पुराणमें एकादशी-उपोषण-प्रसङ्गमें दशमीका स्मार्त्तोंको सूर्योदयवेध, श्रौतोंको अरुणोदयवेध और वैष्णवोंको अर्द्धरात्र-वेध निर्दिष्ट हुआ है। गृहस्थलोग किसी भी तरह वैष्णव-कोटिमें नहीं आ सकते, क्योंकि वे या तो श्रौत होंगे या स्मार्त्त; इसीलिये गृहस्थोंके लिये पहली और यतियोंके अर्थात् वैष्णवों-के लिये दूसरी एकादशीका व्रत विहित हुआ है। कहा गया है कि गृहस्थोंको पहली और यतियोंको दूसरी एकादशी करनी चाहिये, क्योंकि गृहस्थ सिद्धि चाहते हैं और यतीश्वर मोक्ष। द्वादशी यदि त्रयोदशीमें आ जाय, तो वह परा—दूसरी—एकादशी मानी जाती है। गृहस्थोंको वैसी स्थितिमें दशमी-विद्धा भी पहली ही एकादशीका व्रत करना चाहिये और यतियोंको तथा पति-पुत्ररहित स्त्रियोंको दूसरी एकादशी करनी चाहिये—

पूर्वा गृहस्थैः सा कार्या ह्युत्तरा यतिभिस्तथा।
गृहस्थाः सिद्धिमिच्छन्ति यतो मोक्षं यतीश्वराः॥
द्वादशी चेत् त्रयोदश्यामस्ति चेत् सा परा मता।
विद्धाप्येकादशी तत्र पूर्वा स्याद् गृहिणां तदा॥
यतिभिश्चोत्तरा ग्राह्या ह्यवीराभिस्तथैव च।

वहाँ यह भी कहा गया है कि दोनों ही पक्षकी एकादशी-का व्रत करना चाहिये—

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।

इससे यह स्पष्ट है कि 'कृष्ण पक्षकी एकादशीका व्रत गृहस्थ न करे' यह बात साधारण है। एकादशीव्रत करना तो अत्यावश्यक ही है।

अपने वर्ण और आश्रमके आचारानुसार श्रीहरिका समाराधन करके ही मनुष्य उन्हें जान सकता है। वह

एकमेवाद्वितीयं यत् परं ब्रह्म सनातनम् ।
गीयमानं च वेदान्तैस्तस्मान्नास्ति परं द्विज ॥

उस निर्गुण परात्मामें कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है, उसका रूप, वर्ण, कर्म, कार्य कुछ भी नहीं हैं—

न तस्य कर्म कार्यं वा रूपं वर्णमथापि वा ।
कर्तृत्वं वापि भोक्तृत्वं निर्गुणस्य परात्मनः ॥

शब्दब्रह्ममय जो महावाक्यादि हैं, उनके विचारसे उत्पन्न ज्ञान मोक्षका साधन है। सम्यक् ज्ञानसे रहित जीवोंको यह विविध भेदयुक्त जगत् दिखलायी पड़ता है, पर तत्त्वज्ञानी इसको परब्रह्मात्मक देखता है—

शब्दब्रह्ममयं यत्तन्महावाक्यादिकं द्विज ।
तद्विचारोद्भवं ज्ञानं परं मोक्षस्य साधनम् ॥
सम्यग्ज्ञानविहीनानां दृश्यते विविधं जगत् ।
परमज्ञानिनामेतत् परब्रह्मात्मकं जगत् ॥

परात्पर, निर्गुण, अद्वय, अव्यय, परमानन्दस्वरूप तत्त्व विज्ञानभेदके कारण अनेक रूपोंमें भासित होता है। माया-विशिष्ट प्राणी मायाके कारण परमात्मामें भेदका अवलोकन करते हैं। अतः योगकी सहायतासे मायाका त्याग करना चाहिये। विशुद्ध ज्ञान ही योग है। भेद-बुद्धिकी जनक माया न सत् है, न असत्, न उभयरूप, अतः वह अनिर्वाच्य कही जाती है। माया और अज्ञान एक ही पदार्थ है, अतः माया-को जीतनेवालोंका अज्ञान नष्ट हो जाता है। वस्तु-साक्षात्कार-के लिये मनकी स्थिरता अपेक्षित है। ध्येय वस्तुमें चित्त इस तरह स्थिर करना चाहिये कि ध्यान, ध्येय, ध्यातृभाव बिल्कुल नष्ट हो जाय। तभी ज्ञानामृतका प्राकट्य होता है, जिसके सेवनसे प्राणी अमृतत्वको प्राप्त हो जाता है। मायाके कारण ही परमात्म-तत्त्वमें गुणवत्ताकी प्रतीति होती है, वस्तुतः तो वह निर्गुण ही है—

निर्गुणोऽपि परो देवो ह्यज्ञानाद् गुणवानिव ।
विभात्यज्ञाननाशे तु यथापूर्वं व्यवस्थितम् ॥
(अ० ३३)

एक ही परमात्मतत्त्वमें कार्य-कारणादि प्रपञ्चोपहित होनेसे अन्तर्यामित्वादि व्यवहार होते हैं। कार्य-कारणात्मक जगत् विद्युत्की तरह क्षणिक सत्तावाला, केवल भावनामय अतः अपारमार्थिक है। कार्य-कारणातीत कूटस्थ ब्रह्म ही पारमार्थिक है। परमात्माकी प्रसन्नतासे ही उनकी प्राप्ति हो सकती है और उनकी प्रसन्नताका निदान स्वधर्माचरण है। स्त्रीके लिये पतिशुश्रूषा ही परमात्म-तुष्टिद्वारा मोक्ष-प्राप्तिका साधन है—

या तु नारी पतिप्राणा पतिपूजापरायणा ।
तस्यास्तुष्टो जगन्नाथो ददाति स्वपदं मुने ॥

प्रत्येक प्राणीको स्वयं ही यह विचार करना चाहिये कि मैं कौन हूँ, मेरा कर्तव्य क्या है, मेरा जन्म कैसे हो गया, मेरा वास्तविक स्वरूप कैसा है, जिसे मैं 'मेरा' कहता हूँ, क्या वह भ्रम तो नहीं है, अहंभाव तो मनका धर्म है, आत्माका नहीं। सनातन परब्रह्मतत्त्व एकमात्र ज्ञानसे ही वेद्य है, उस परिपूर्ण, परमानन्दके अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। स्वप्रकाश, नित्य, अनन्त परमात्मामें क्रिया, जन्म आदि किस तरह सम्भव है—

स्वप्रकाशात्मनो विप्र नित्यस्य परमात्मनः ।
अनन्तस्य क्रिया चैव कथं जन्म च कथ्यते ॥

भगवान् विष्णुकी स्तुति

(रचयिता—श्रीसूरजचंदजी सत्यप्रेमी 'श्रीडाँगीजी')

जय जगके प्रतिपालक स्वामी !
शङ्ख-सुदर्शन-गदा-पद्म-धर, विष्णु चतुर्भुज अन्तर्यामी।
जय जगके प्रतिपालक स्वामी ॥ध्रुव॥

परम धामके तुम आधवासी,
योगेश्वर ध्रुव सत्त्वविलासी ।
सदा-सर्व-हितके शुभ कामी ॥ जय जगके प्रति० ॥१॥

श्यामल-रङ्ग-अङ्ग मन भाये,
पीताम्बरपर हार सुहाये ।
शरणागत-प्रिय, शिव-सुख-धामी ॥ जय जगके० ॥२॥

सज्जन-रक्षक, दुर्जन-तक्षक,
अहङ्कारके पूरे भक्षक ।
सुख-कर-वरद गरुड़पर गामी ॥ जय जगके० ॥३॥

कमल-नयन-प्रभु कमलाके पति,
दे दो अब तो हमें सुमति-गति ।
हम नर तुम नारायण नामी ॥ जय जगके० ॥४॥

आत्मरूपमें हमें मिला दो,
चरणाम्बुज-मकरन्द पिला दो ।
'सूर्यचन्द' सेवक निष्कामी ॥ जय जगके० ॥५॥

शङ्ख-सुदर्शन-गदा-पद्म-धर विष्णु-चतुर्भुज अन्तर्यामी।
जय जगके प्रतिपालक स्वामी ॥

एकमेवाद्वितीयं यत् परं ब्रह्म सनातनम्।
गीयमानं च वेदान्तैस्तस्मान्नास्ति परं द्विज॥

उस निर्गुण परात्मामें कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है, उसका रूप, वर्ण, कर्म, कार्य कुछ भी नहीं हैं—

न तस्य कर्म कार्यं वा रूपं वर्णमथापि वा।
कर्तृत्वं वापि भोक्तृत्वं निर्गुणस्य परात्मनः॥

शब्दब्रह्ममय जो महावाक्यादि हैं, उनके विचारसे उत्पन्न ज्ञान मोक्षका साधन है। सम्यक् ज्ञानसे रहित जीवोंको यह विविध भेदयुक्त जगत् दिखलायी पड़ता है, पर तत्त्वज्ञानी इसको परब्रह्मात्मक देखता है—

शब्दब्रह्ममयं यत्तन्महावाक्यादिकं द्विज।
तद्विचारोद्भवं ज्ञानं परं मोक्षस्य साधनम्॥
सम्यग्ज्ञानविहीनानां दृश्यते विविधं जगत्।
परमज्ञानिनामेतत् परब्रह्मात्मकं जगत्॥

परात्पर, निर्गुण, अद्वय, अव्यय, परमानन्दस्वरूप तत्त्व विज्ञानभेदके कारण अनेक रूपोंमें भासित होता है। माया-विशिष्ट प्राणी मायाके कारण परमात्मामें भेदका अवलोकन करते हैं। अतः योगकी सहायतासे मायाका त्याग करना चाहिये। विशुद्ध ज्ञान ही योग है। भेद-बुद्धिकी जनक माया न सत् है, न असत्, न उभयरूप, अतः वह अनिर्वाच्य कही जाती है। माया और अज्ञान एक ही पदार्थ है, अतः माया-को जीतनेवालोंका अज्ञान नष्ट हो जाता है। वस्तु-साक्षात्कार-के लिये मनकी स्थिरता अपेक्षित है। ध्येय वस्तुमें चित्त इस तरह स्थिर करना चाहिये कि ध्यान, ध्येय, ध्यातृभाव बिल्कुल नष्ट हो जाय। तभी ज्ञानामृतका प्राकट्य होता है, जिसके सेवनसे प्राणी अमृतत्वको प्राप्त हो जाता है। मायाके कारण ही परमात्म-तत्त्वमें गुणवत्ताकी प्रतीति होती है, वस्तुतः तो वह निर्गुण ही है—

निर्गुणोऽपि परो देवो ह्यज्ञानाद् गुणवानिव।
विभात्यज्ञाननाशे तु यथापूर्वं व्यवस्थितम्॥
(अ० ३३)

एक ही परमात्मतत्त्वमें कार्य-कारणादि प्रपञ्चोपहित होनेसे अन्तर्यामित्वादि व्यवहार होते हैं। कार्य-कारणात्मक जगत् विद्युत्की तरह क्षणिक सत्तावाला, केवल भावनामय अतः अपारमार्थिक है। कार्य-कारणातीत कूटस्थ ब्रह्म ही पारमार्थिक है। परमात्माकी प्रसन्नतासे ही उनकी प्राप्ति हो सकती है और उनकी प्रसन्नताका निदान स्वधर्माचरण है। स्त्रीके लिये पतिशुश्रूषा ही परमात्म-तुष्टिद्वारा मोक्ष-प्राप्तिका साधन है—

या तु नारी पतिप्राणा पतिपूजापरायणा।
तस्यास्तुष्टो जगन्नाथो ददाति स्वपदं मुने॥

प्रत्येक प्राणीको स्वयं ही यह विचार करना चाहिये कि मैं कौन हूँ, मेरा कर्तव्य क्या है, मेरा जन्म कैसे हो गया, मेरा वास्तविक स्वरूप कैसा है, जिसे मैं 'मेरा' कहता हूँ, क्या वह भ्रम तो नहीं है, अहंभाव तो मनका धर्म है, आत्माका नहीं। सनातन परब्रह्मतत्त्व एकमात्र ज्ञानसे ही वेद्य है, उस परिपूर्ण, परमानन्दके अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। स्वप्रकाश, नित्य, अनन्त परमात्मामें क्रिया, जन्म आदि किस तरह सम्भव है—

स्वप्रकाशात्मनो विप्र नित्यस्य परमात्मनः।
अनन्तस्य क्रिया चैव कथं जन्म च कथ्यते॥

भगवान् विष्णुकी स्तुति

(रचयिता—श्रीसूरजचंदजी सत्यप्रेमी 'श्रीडाँगीजी')

जय जगके प्रतिपालक स्वामी!
शङ्ख-सुदर्शन-गदा-पद्म-धर, विष्णु चतुर्भुज अन्तर्यामी।
जय जगके प्रतिपालक स्वामी॥ध्रुव॥

परम धामके तुम आधवासी,
योगेश्वर ध्रुव सत्त्वविलासी।
सदा-सर्व-हितके शुभ कामी॥ जय जगके प्रति०॥१॥

श्यामल-रङ्ग-अङ्ग मन भाये,
पीताम्बरपर हार सुहाये।
शरणागत-प्रिय, शिव-सुख-धामी॥ जय जगके०॥२॥

सज्जन-रक्षक, दुर्जन-तक्षक,
अहङ्कारके पूरे भक्षक।
सुख-कर-वरद गरुड़पर गामी॥ जय जगके०॥३॥

कमल-नयन-प्रभु कमलाके पति,
दे दो अब तो हमें सुमति-गति।
हम नर तुम नारायण नामी॥ जय जगके०॥४॥

आत्मरूपमें हमें मिला दो,
चरणाम्बुज-मकरन्द पिला दो।
'सूर्यचन्द' सेवक निष्कामी॥ जय जगके०॥५॥

शङ्ख-सुदर्शन-गदा-पद्म-धर विष्णु-चतुर्भुज अन्तर्यामी।
जय जगके प्रतिपालक स्वामी॥

महामहिम श्रीकृष्णद्वैपायनने अन्य श्रुति-वाङ्मय-शास्त्रोंके अनन्तर यदि 'पुराण'की रचना की तो इसका पुराण नाम कैसे संगत होगा ? इसका उत्तर निरुक्त देता है—वह पुरातन होनेके साथ ही नूतन है ।

'पुराणं कस्मात्—पुरानवं भवति'
(निरुक्त ३ । १९ । २४)

'पुराणं पञ्चलक्षणम्'
(अमरकोश १ । ६ । ५)

और निम्न प्रमाणके अनुसार—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं विप्र पुराणं पञ्च लक्षणम् ॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

१. सर्ग (तत्त्वोत्पत्तिज्ञान एवं सूक्ष्म रचना अर्थात् महाभूतोंकी सृष्टिका वर्णन), २. प्रतिसर्ग (सृष्टि-सृजन एवं विविध रचना अर्थात् सकल सृष्टिका वर्णन), ३. वंशका वर्णन, ४. मन्वन्तर (काल एवं समय-खण्ड अर्थात् कल्प-कल्पान्तरों, मन्वन्तरोंका वर्णन), ५. वंशानुचरित वंशोंके प्रधान विशिष्ट महापुरुषोंके चरित्रोंका वर्णन—पुराण इन पाँच लक्षणोंसे युक्त हैं ।

पुराण आदिकालकी कृति है, जिसके सर्वप्रथम प्रकाशक श्रीब्रह्माजी हैं । उनसे मुनियोंने सुना और प्रत्येक कल्पमें देवता, ऋषि, मुनि आदिने पृथक्-पृथक् उनकी संहिताका निर्माण किया । अपने-अपने समयमें व्यासजी उन्हीं ऋषि-मुनि आदिकृत कृतियों एवं वाक्योंको संक्षेपमें सम्पादित कर और देवता-ऋषि-मुनि आदिके मतो-विचारोंको यथावत् रखकर, यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार प्रसङ्ग आदिकी पूर्ति वा स्पष्टीकरणके लिये अपने वचनोंसहित पुराण-रचना करते हैं ।

पुराणरचनामें विभिन्न समयका इतिहास तथा विभिन्न विद्वानोंके मत हैं । विभिन्न कल्पोंके धर्म तथा कथानकवचनोंके कारण पुराणोंकी कथाओंमें समानधर्मा भाषा, शैली, वर्णन एवं प्रसङ्गोंकी सर्वथा समता होनी सम्भव नहीं । कल्पादि भेदसे कथाओंमें अन्तरका आ जाना तो सम्भव है ही ।

वर्तमान अष्टादश पुराण श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीसे पूर्वकी ही मूलतः रचना है। महर्षि व्यासने तो पुराणोंका, पुरातन सामग्रीका—सम्पादन एक बृहत् विशाल महापुराणका योजनाबद्ध संक्षिप्तीकरण कर, अष्टादश महापुराणोंके विभागोंमें विभाजित कर अनुज आगतोंके लिये साहित्यका एक अनूप भण्डार प्रदान कर, हमें सदा-सर्वदाके लिये अपने प्रति कृतज्ञ और अनुगृहीत बना लिया है ।

पुराणोंकी कथाओंमें मतभेदके विषयमें यह बात भी ध्यान देनेयोग्य है कि यदि कहीं एक-से दिखायी देनेवाले नाम, विषय, रूप, रचनाओंमें कुछ विभिन्नता है तो उसका कारण कल्प, मन्वन्तर-भेद ही समझना चाहिये, अर्थात् वे स्थल विभिन्न दो कल्पों-मन्वन्तरोंके हैं, एकके नहीं—इसीलिये उनमें भेद है । इस मतका स्पष्टीकरण निम्न वचनसे हो रहा है—

क्वचित् क्वचित्पुराणेषु विरोधो यदि लभ्यते ।
कल्पभेदादिभिस्तत्र व्यवस्था सद्भिरिष्यते ॥

'जहाँ कहीं कथाका भेद वा अन्तर्विरोध प्रतीत हो, वहाँ कल्पभेदसे व्यवस्था लगायी जाती है ।'

विद्वानोंका भी इसी प्रकारका मत है—

जिस समय पुराण-संहिता निर्गत हुई थी, वह एक ही थी और व्यासजीने उसको संक्षेपमें अठारह भागोंसे समन्वित किया और पीछे सूत और उनके शिष्योंद्वारा उनके विभाग और कई प्रकारसे संस्कार हुए हैं ।

फिर वे आगे लिखते हैं—

'ब्रह्माकी कही हुई और व्यासद्वारा संक्षिप्त की हुई उस आदिसंहितासे पुराणसंहिता संकलित हुई है ।'
(म० म० प० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत 'अष्टादश-पुराण-दर्पण' उपोद्घात)

पुराणोंकी संख्या भारतीय साहित्यमें परम्परागत निश्चित रूपमें चली आ रही है, जो है—अठारह । इन अठारह महापुराणोंकी पहचानके लिये निम्न श्लोक, जिसमें सूत्ररूपमें महापुराणोंकी नामावली दी गयी है, महापुराणोंकी जानकारीके लिये अति उपयोगी है, जो इस प्रकार है—

'मद्वयं' 'भद्वयं चैव' 'ब्रत्रयं' 'वचतुष्टयम्' ।
अ, ना, प, लिं, ग, कू, स्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ॥
(देवीभागवत १ । ३ । २)

मकारादि दो–१ मत्स्य, २ मार्कण्डेय और भकारादि दो—१ भविष्य, २ भागवत ।

ब्रकारादि तीन—१ ब्रह्म, २ ब्रह्मवैवर्त, ३ ब्रह्माण्ड और वकारादि चार—१ वायु (शिव), २ विष्णु, ३ वामन, ४ वाराह ।

आद्य अक्षरोंके अनुसार १ अग्नि, २ नारद, ३ पद्म, ४ लिंग, ५ गरुड, ६ कूर्म, ७ स्कन्द—ये विभिन्न सब पुराण कुल मिलाकर अठारह (महा) पुराण हैं ।

वर्तमान विद्वानोंकी ऐसी मान्यता है कि अष्टादश पुराणोंके सही स्वरूपमें प्राप्त न होनेके कारण लक्षण-समन्वय-विवेचनकी दृष्टिसे इनको निम्न रूपोंमें विभाजित कर लेना उचित है—

१. पूर्ण पुराण ।

२. सम्भाव्य पूर्ण पुराण ।

महामहिम श्रीकृष्णद्वैपायनने अन्य श्रुति-वाङ्मय-शास्त्रोंके अनन्तर यदि 'पुराण'की रचना की तो इसका पुराण नाम कैसे संगत होगा ? इसका उत्तर निरुक्त देता है—वह पुरातन होनेके साथ ही नूतन है।

'पुराणं कस्मात्–पुरानवं भवति'
(निरुक्त ३ । १९ । २४)

'पुराणं पञ्चलक्षणम्'
(अमरकोश १ । ६ । ५)

और निम्न प्रमाणके अनुसार—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं विप्र पुराणं पञ्च लक्षणम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

१. सर्ग (तत्त्वोत्पत्तिज्ञान एवं सूक्ष्म रचना अर्थात् महाभूतोंकी सृष्टिका वर्णन), २. प्रतिसर्ग (सृष्टि-सृजन एवं विविध रचना अर्थात् सकल सृष्टिका वर्णन), ३. वंशका वर्णन, ४. मन्वन्तर (काल एवं समय-खण्ड अर्थात् कल्प-कल्पान्तरों, मन्वन्तरोंका वर्णन), ५. वंशानुचरित वंशोंके प्रधान विशिष्ट महापुरुषोंके चरित्रोंका वर्णन—पुराण इन पाँच लक्षणोंसे युक्त हैं।

पुराण आदिकालकी कृति है, जिसके सर्वप्रथम प्रकाशक श्रीब्रह्माजी हैं। उनसे मुनियोंने सुना और प्रत्येक कल्पमें देवता, ऋषि, मुनि आदिने पृथक्-पृथक् उनकी संहिताका निर्माण किया। अपने-अपने समयमें व्यासजी उन्हीं ऋषि-मुनि आदिकृत कृतियों एवं वाक्योंको संक्षेपमें सम्पादित कर और देवता-ऋषि-मुनि आदिके मतो-विचारोंको यथावत् रखकर, यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार प्रसङ्ग आदिकी पूर्ति वा स्पष्टीकरणके लिये अपने वचनोंसहित पुराण-रचना करते हैं।

पुराणरचनामें विभिन्न समयका इतिहास तथा विभिन्न विद्वानोंके मत हैं। विभिन्न कल्पोंके धर्म तथा कथानकवचनोंके कारण पुराणोंकी कथाओंमें समानधर्मा भाषा, शैली, वर्णन एवं प्रसङ्गोंकी सर्वथा समता होनी सम्भव नहीं। कल्पादि भेदसे कथाओंमें अन्तरका आ जाना तो सम्भव है ही।

वर्तमान अष्टादश पुराण श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीसे पूर्वकी ही मूलतः रचना है। महर्षि व्यासने तो पुराणोंका, पुरातन सामग्रीका—सम्पादन एक बृहत् विशाल महापुराणका योजनाबद्ध संक्षिप्तीकरण कर, अष्टादश महापुराणोंके विभागोंमें विभाजित कर अनुज आगतोंके लिये साहित्यका एक अनूप भण्डार प्रदान कर, हमें सदा-सर्वदाके लिये अपने प्रति कृतज्ञ और अनुगृहीत बना लिया है।

पुराणोंकी कथाओंमें मतभेदके विषयमें यह बात भी ध्यान देनेयोग्य है कि यदि कहीं एक-से दिखायी देनेवाले नाम, विषय, रूप, रचनाओंमें कुछ विभिन्नता है तो उसका कारण कल्प, मन्वन्तर-भेद ही समझना चाहिये, अर्थात् वे स्थल विभिन्न दो कल्पों-मन्वन्तरोंके हैं, एकके नहीं—इसीलिये उनमें भेद है। इस मतका स्पष्टीकरण निम्न वचनसे हो रहा है—

क्वचित् क्वचित्पुराणेषु विरोधो यदि लभ्यते।
कल्पभेदादिभिस्तत्र व्यवस्था सद्भिरिष्यते॥

'जहाँ कहीं कथाका भेद वा अन्तर्विरोध प्रतीत हो, वहाँ कल्पभेदसे व्यवस्था लगायी जाती है।'

विद्वानोंका भी इसी प्रकारका मत है—

जिस समय पुराण-संहिता निर्गत हुई थी, वह एक ही थी और व्यासजीने उसको संक्षेपमें अठारह भागोंसे समन्वित किया और पीछे सूत और उनके शिष्योंद्वारा उनके विभाग और कई प्रकारसे संस्कार हुए हैं।

फिर वे आगे लिखते हैं—

'ब्रह्माकी कही हुई और व्याসद्वारा संक्षिप्त की हुई उस आदिसंहितासे पुराणसंहिता संकलित हुई है।'
(म० म० प० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत 'अष्टादश-पुराण-दर्पण' उपोद्घात)

पुराणोंकी संख्या भारतीय साहित्यमें परम्परागत निश्चित रूपमें चली आ रही है, जो है—अठारह। इन अठारह महापुराणोंकी पहचानके लिये निम्न श्लोक, जिसमें सूत्ररूपमें महापुराणोंकी नामावली दी गयी है, महापुराणोंकी जानकारीके लिये अति उपयोगी है, जो इस प्रकार है—

'मद्वयं' 'भद्वयं चैव' 'ब्रत्रयं' 'वचतुष्टयम्'।
अ, ना, प, लिं, ग, कू, स्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्॥
(देवीभागवत १ । ३ । २)

मकारादि दो–१ मत्स्य, २ मार्कण्डेय और भकारादि दो—१ भविष्य, २ भागवत।

ब्रकारादि तीन—१ ब्रह्म, २ ब्रह्मवैवर्त, ३ ब्रह्माण्ड और वकारादि चार—१ वायु (शिव), २ विष्णु, ३ वामन, ४ वाराह।

आद्य अक्षरोंके अनुसार १ अग्नि, २ नारद, ३ पद्म, ४ लिंग, ५ गरुड़, ६ कूर्म, ७ स्कन्द—ये विभिन्न सब पुराण कुल मिलाकर अठारह (महा) पुराण हैं।

वर्तमान विद्वानोंकी ऐसी मान्यता है कि अष्टादश पुराणोंके सही स्वरूपमें प्राप्त न होनेके कारण लक्षण-समन्वय-विवेचनकी दृष्टिसे इनको निम्न रूपोंमें विभाजित कर लेना उचित है—

१. पूर्ण पुराण।

२. सम्भाव्य पूर्ण पुराण।

रुक्माङ्गदकथा पुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च ।
वसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धरणक्रिया ॥
गङ्गाकथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्तनम् ।
काश्या माहात्म्यमतुलं पुरुषोत्तमवर्णनम् ॥
यात्राविधानं क्षेत्रस्य बह्वाख्यानसमन्वितम् ।
प्रयागस्याथ माहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्य तत्परम् ॥
हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकं तथा ।
बदरीतीर्थमाहात्म्यं कामाख्यायास्तथैव च ॥
प्रभासस्य च माहात्म्यं पुराणाख्यानकं तथा ।
गौतमाख्यानकं पश्चाद् वेदपादस्तु वस्तुतः ॥
गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यं लक्ष्मणाख्यानकं तथा ।
सेतुमाहात्म्यकथनं नर्मदातीर्थवर्णनम् ॥
अवन्त्याश्चैव माहात्म्यं मथुरायास्ततः परम् ।
वृन्दावनस्य महिमा वसोर्ब्रह्मान्तिके गतिः ॥
मोहिनीचरितं पश्चादेवं वै नारदीयकम् ।

नारद-महापुराणमें—विविध ज्ञान-विज्ञानपूर्ण बातें, अनेक इतिहास-गाथाएँ, गोपनीय अनुष्ठान आदिके वर्णन, धर्मनिरूपण तथा भक्ति-महत्त्वपरक विलक्षण कथाएँ, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष, मन्त्र-विज्ञान, समस्त महापुराणोंका विवरण, बारह महीनोंकी तिथियोंके व्रतोंकी कथा, एकादशीव्रत-कथा तथा गङ्गा-माहात्म्य आदिका अलौकिक और महत्त्वपूर्ण व्याख्यान संगृहीत हैं।

विषयको सरल बनानेकी दृष्टिसे भी नारदपुराणको विषयतारतम्यके अनुसार पूर्व और उत्तर—दो भागोंमें रक्खा गया है।

पूर्वभागमें—सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार—इन ब्रह्मपुत्रोंका श्रीनारदजीके प्रति कथन है। ऐसा भी माना जाता है कि श्रीनारदजीका अपने इन ब्रह्मपुत्र चारों भाइयोंके प्रति कथन है।

उत्तरभागमें—वसिष्ठद्वारा मान्धाताके प्रति कहा गया वर्णन है।

पाश्चात्त्य संस्कृतज्ञ पण्डित एवं अनेक ग्रन्थोंके रूपान्तर और टीकाकार श्रीविल्सनके मतानुसार वर्तमानमें नारद-पुराणके ३,००० श्लोक ही प्राप्य हैं। सम्पूर्ण पुराण प्राप्य नहीं है और वे इसे महापुराण स्वीकार नहीं करते*।

नारदपुराण जो इस समय उपलब्ध है, ऐसा प्रतीत होता है कि वह सम्पूर्णरूपमें प्राप्य है। विल्सनको गवेषणाके समय जिस पुराणकी प्रति मिली होगी, या तो वह अपूर्ण होगी, और यह भी सम्भव है जैसा कि उनके पुराणविवरण-को देखनेसे पता चलता है, उन्हें नारदपुराणके पूर्वभागमें १ से ३७ अध्यायोंमें जितना अंश है, वही भाग मिला—जिसके आधारपर उन्होंने अपनी सम्मति निर्धारित की—दिखायी देती है।

डा० एच्० एच्० विल्सनके अनुसार 'नारदीयपुराण पुराणके लक्षणोंसे रहित है। वह आधुनिक भक्ति-ग्रन्थ है। वह १६ या १७ वीं शताब्दीका संगृहीत ग्रन्थ प्रतीत होता है।

वृहन्नारदीयपुराण भी विष्णुकी स्तुति और वैष्णवोंके कर्तव्योंसे परिपूर्ण एक आधुनिक रचना है।'

डा० विल्सनकी संस्कृत-साहित्य-सेवाओंके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए भी विनम्र शब्दोंमें यह कहना ही पड़ता है कि आदरणीय पाश्चात्त्य विद्वान्‌के इन भ्रामक मतोंसे हम सहमत नहीं है।

विष्णुपुराण

विष्णुमहापुराणके प्रति वचन है—

वाराहकल्पवृत्तान्तं व्यासेन कथितं त्विह ।

और—

द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्तमानस्य वै द्विज ।
वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकीर्तितः ॥

(मत्स्यपुराण १ । ३ । २५)

वाराहकल्प-प्रसङ्गके अनन्तर ही प्रकृत प्रस्तावमें (विष्णुपुराण) आरम्भ हुआ है।

एक और श्लोक है—

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वैष्णवं महत् ।
त्रयोविंशतिसाहस्रं सर्वपातकनाशनम् ॥

(नारदपुराण पूर्व०, पाद ४ अ० ९४)

तेईस हजार श्लोकोंसे युक्त 'वैष्णव-महापुराण' का कीर्तन करता हूँ, श्रवण करो।

सब पुराणोंमें वक्ता-श्रोता मिलते हैं; विष्णुपुराणके भी आदिम वक्ता हैं—महर्षि पराशर और लेखक हैं श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यास। निम्नश्लोक माननीय है।

वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः ।

वाराहकल्पके वृत्तान्तको लक्ष्य करके जो वैष्णव धर्मों-को (विष्णुपुराण) महर्षि पराशरने कहा।

ऋग्वेदके नौ सूक्तोंके द्रष्टा यही पराशर हैं*, ऐसी अनेक सनातनधर्मी पण्डितोंकी मान्यता है। पर आर्यसमाज और

* Dr. H. H. Wilson—VISHUNU PURAN By Hal—Vol- I,P.L.I

* पं० श्रीमाधवाचार्य शास्त्रीविरचित 'पुराण-दिग्दर्शन' प्रकाशन संवत् १९९०, पृष्ठ १०१।

रुक्माङ्गदकथा पुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च।
वसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धरणक्रिया॥
गङ्गाकथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्तनम्।
काश्या माहात्म्यमतुलं पुरुषोत्तमवर्णनम्॥
यात्राविधानं क्षेत्रस्य बह्वाख्यानसमन्वितम्।
प्रयागस्याथ माहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्य तत्परम्॥
हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकं तथा।
बदरीतीर्थमाहात्म्यं कामाख्यायास्तथैव च॥
प्रभासस्य च माहात्म्यं पुराणाख्यानकं तथा।
गौतमाख्यानकं पश्चाद् वेदपादस्तु वस्तुतः॥
गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यं लक्ष्मणाख्यानकं तथा।
सेतुमाहात्म्यकथनं नर्मदातीर्थवर्णनम्॥
अवन्त्याश्चैव माहात्म्यं मथुरायास्ततः परम्।
वृन्दावनस्य महिमा वसोर्ब्रह्मान्तिके गतिः॥
मोहिनीचरितं पश्चादेवं वै नारदीयकम्।

नारद-महापुराणमें—विविध ज्ञान-विज्ञानपूर्ण बातें, अनेक इतिहास-गाथाएँ, गोपनीय अनुष्ठान आदिके वर्णन, धर्मनिरूपण तथा भक्ति-महत्त्वपरक विलक्षण कथाएँ, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष, मन्त्र-विज्ञान, समस्त महापुराणोंका विवरण, बारह महीनोंकी तिथियोंके व्रतोंकी कथा, एकादशीव्रत-कथा तथा गङ्गा-माहात्म्य आदिका अलौकिक और महत्त्वपूर्ण व्याख्यान संगृहीत हैं।

विषयको सरल बनानेकी दृष्टिसे भी नारदपुराणको विषयतारतम्यके अनुसार पूर्व और उत्तर—दो भागोंमें रक्खा गया है।

पूर्वभागमें—सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार—इन ब्रह्मपुत्रोंका श्रीनारदजीके प्रति कथन है। ऐसा भी माना जाता है कि श्रीनारदजीका अपने इन ब्रह्मपुत्र चारों भाइयोंके प्रति कथन है।

उत्तरभागमें—वसिष्ठद्वारा मान्धाताके प्रति कहा गया वर्णन है।

पाश्चात्त्य संस्कृतज्ञ पण्डित एवं अनेक ग्रन्थोंके रूपान्तर और टीकाकार श्रीविल्सनके मतानुसार वर्तमानमें नारद-पुराणके ३,००० श्लोक ही प्राप्य हैं। सम्पूर्ण पुराण प्राप्य नहीं है और वे इसे महापुराण स्वीकार नहीं करते*।

नारदपुराण जो इस समय उपलब्ध है, ऐसा प्रतीत होता है कि वह सम्पूर्णरूपमें प्राप्य है। विल्सनको गवेषणाके समय जिस पुराणकी प्रति मिली होगी, या तो वह अपूर्ण होगी, और यह भी सम्भव है जैसा कि उनके पुराणविवरण-को देखनेसे पता चलता है, उन्हें नारदपुराणके पूर्वभागमें १ से ३७ अध्यायोंमें जितना अंश है, वही भाग मिला—जिसके आधारपर उन्होंने अपनी सम्मति निर्धारित की—दिखायी देती है।

डा० एच्० एच्० विल्सनके अनुसार 'नारदीयपुराण पुराणके लक्षणोंसे रहित है। वह आधुनिक भक्ति-ग्रन्थ है। वह १६ या १७ वीं शताब्दीका संगृहीत ग्रन्थ प्रतीत होता है।

वृहन्नारदीयपुराण भी विष्णुकी स्तुति और वैष्णवोंके कर्तव्योंसे परिपूर्ण एक आधुनिक रचना है।'

डा० विल्सनकी संस्कृत-साहित्य-सेवाओंके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए भी विनम्र शब्दोंमें यह कहना ही पड़ता है कि आदरणीय पाश्चात्त्य विद्वान्‌के इन भ्रामक मतोंसे हम सहमत नहीं है।

विष्णुपुराण

विष्णुमहापुराणके प्रति वचन है—

वाराहकल्पवृत्तान्तं व्यासेन कथितं त्विह।

और—

द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्तमानस्य वै द्विज।
वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकीर्तितः॥
(मत्स्यपुराण १। ३। २५)

वाराहकल्प-प्रसङ्गके अनन्तर ही प्रकृत प्रस्तावमें (विष्णुपुराण) आरम्भ हुआ है।

एक और श्लोक है—

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वैष्णवं महत्।
त्रयोविंशतिसाहस्रं सर्वपातकनाशनम्॥
(नारदपुराण पूर्व०, पाद ४ अ० ९४)

तेईस हजार श्लोकोंसे युक्त 'वैष्णव-महापुराण' का कीर्तन करता हूँ, श्रवण करो।

सब पुराणोंमें वक्ता-श्रोता मिलते हैं; विष्णुपुराणके भी आदिम वक्ता हैं—महर्षि पराशर और लेखक हैं श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यास। निम्नश्लोक माननीय है।

वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।

वाराहकल्पके वृत्तान्तको लक्ष्य करके जो वैष्णव धर्मों-को (विष्णुपुराण) महर्षि पराशरने कहा।

ऋग्वेदके नौ सूक्तोंके द्रष्टा यही पराशर हैं*, ऐसी अनेक सनातनधर्मी पण्डितोंकी मान्यता है। पर आर्यसमाज और

* Dr. H. H. Wilson—VISHUNU PURAN By Hal—Vol. I,P.L.I

* पं० श्रीमाधवाचार्य शास्त्रीविरचित 'पुराण-दिग्दर्शन' प्रकाशन संवत् १९९०, पृष्ठ १०१।

प्राप्य है, जब कि इस पुराणकी श्लोक-संख्या अन्य पुराणोंमें २३,००० कही गयी है। यह स्मरण रहे कि डा० विलसन 'विष्णुधर्मोत्तर' को 'विष्णुपुराण' का उत्तरभाग स्वीकार नहीं करते।

पुराणमर्मज्ञ अनेक विद्वानोंकी यह भी धारणा है—

"'विष्णुधर्मोत्तरको विष्णुपुराणका उत्तरभाग कहकर ग्रहण करनेमें कोई भी दोष नहीं आता, परंतु प्रचलित विष्णु-पुराण और विष्णुधर्मोत्तर एकत्र करनेसे भी १६,००० से अधिक श्लोक नहीं पाये जाते, इसमें भी न्यूनाधिक ७,००० कम पड़ते हैं, इतने श्लोक कहाँ गये ? उसका निर्णय करना हमारी क्षुद्र बुद्धिके लिये अगम्य है, तथापि प्रचलित 'धर्मोत्तर' पूरा ग्रन्थ नहीं ज्ञात होता।

आगे विष्णुपुराणकी संक्षिप्त-सी परिचयात्मक विवेचना करते हुए लेखकका कहना है—

'नारदपुराणमें जो लक्षण (विष्णुपुराणके) लिखे हैं, वे सब लक्षण भी प्रचलित विष्णुधर्ममें नहीं पाये जाते, जिस विष्णुधर्मका ज्यौतिषांश लेकर ब्रह्मगुप्तने 'ब्रह्म-सिद्धान्त' की रचना की, नारदपुराणमें उसका परिचय होनेपर भी प्रचलित 'धर्मोत्तर' में उसके अधिकांशका अभाव है।'

विद्वान् लेखकने उपर्युक्त कथनके अनन्तर अपने वक्तव्यकी पाद-टिप्पणीमें कहा है—

काश्मीरसे प्राप्त 'विष्णु-धर्मोत्तर' में इसका अधिक परिचय पाया जाता है[1]।

उपर्युक्त पक्षकी ही पुष्टि निम्न अवतरणसे भी सिद्ध है—

गणनामें डा० विलसन एक गलती खा गये, वह यह है कि 'विष्णुधर्मोत्तर' को 'विष्णुपुराण' की गणनामें नहीं लिया, नारदीय-पुराणके वचनानुसार अथवा मुस्लिम-परिव्राजक अलबरूनीका लेख पढ़नेसे यह ज्ञात हो जाता है कि 'विष्णु-धर्मोत्तर' विष्णुपुराणके अन्तर्गत तेईस सहस्र श्लोक-संख्यामें शामिल है। 'विष्णुधर्मोत्तर' विष्णुपुराणका उत्तरभाग है। प्रचलित 'विष्णुपुराण' और 'विष्णुधर्मोत्तर' इन दोनोंकी श्लोक-संख्या लगभग सोलह हजार है।

इसके आगे वर्तमान 'विष्णुपुराण' के विषयमें अपनी सम्मति प्रकट करते हुए विद्वान् लेखकका कहना है—

प्रचलित 'विष्णुधर्मोत्तर' जो मुद्रित हुआ है, वह पूर्ण नहीं है, अधूरा ही मिला है। 'नारदीय पुराण' में जितने लक्षण लिखे गये हैं, वे समस्त लक्षण 'विष्णुधर्मोत्तर' में नहीं हैं अर्थात् बहुत-से लक्षण उसमें विद्यमान हैं और बहुतोंका अभाव है[2]।

डा० एच्० एच्० विलसनके मतानुसार 'विष्णुपुराण' की रचना १०४५ ई०के आसपास हुई। (यह मत सर्वथा भ्रान्त है।)

कल्किस्वरूप-आख्यान, कृष्ण-जन्माष्टमीव्रत-कथा, देवी-स्तुति, महादेव-स्तोत्र, लक्ष्मी-स्तोत्र, विष्णुपूजन, विष्णुशत-नामस्तोत्र, सिद्धलक्ष्मी-स्तोत्र, सूर्यस्तोत्र आदि अनेक पुस्तिकाएँ यत्र-तत्र स्थानोंसे प्रकाशित हुई हैं, जिनको विष्णु-पुराणके अन्तर्गत कर प्रकारान्तरसे सम्बन्धित कहा जाता है। पर उन सबका उपलब्ध विष्णुपुराणसे कोई खास सम्बन्ध नहीं मिलता। यह भी सम्भव है कि उपर्युक्त फुटकर रूपमें पायी जानेवाली कृतियोंसे समावेशवाला अंश लुप्त हो गया हो, जिससे यह पुराण आज अधूरा रह गया है।

आलोच्य पुराणके विषयमें यह बात पण्डितोंके लिये विचारणीय है कि पुराणसाहित्यके सर्वाधिक एकमात्र प्रकाशक श्रीवेंकटेश्वर-यन्त्रालय, मुम्बई कार्यालयने 'विष्णु-महापुराण' श्रीधरस्वामी-टीका और दो खण्डोंमें 'विष्णुधर्मोत्तर-महापुराण' (मूल) को प्रकाशित किया है, जिनके आरम्भिक वचनोंमें ऐसी कोई बात नहीं कही गयी है जिससे यह बात स्पष्ट होता हो कि 'विष्णु' और 'विष्णुधर्मोत्तर' इन दोनों महाग्रन्थोंका परस्परमें क्या सम्बन्ध है। अभी इस विषयमें अनुसंधानकी बहुत गुंजाइश है।

विष्णु-महापुराणपर चित्सुखमुनि, जगन्नाथ पाठक, नृसिंह भट्ट, रत्नगर्भविष्णुचित्त, श्रीधरस्वामी, सूर्यकर मिश्र आदिकी टीकाएँ पायी जाती हैं और इसी महापुराणपर गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित श्रीमुनिलाल गुप्तका अनुवाद भी उल्लेखनीय और प्रशंसनीय है।

---

१. विद्यावारिधि पं०ज्वालाप्रसाद मिश्रनिर्मित 'अष्टादशपुराण-दर्पण' प्रकाशन संवत् १९९३, पृष्ठ ११९।

२. युक्तिविशारद पं०कालूराम शास्त्रीनिर्मित 'पुराणवर्म' प्रथम संस्करण, पृष्ठ १२७।

प्राप्य हैं, जब कि इस पुराणकी श्लोक-संख्या अन्य पुराणोंमें २३,००० कही गयी है। यह स्मरण रहे कि डा० विलसन 'विष्णुधर्मोत्तर' को 'विष्णुपुराण' का उत्तरभाग स्वीकार नहीं करते।

पुराणमर्मज्ञ अनेक विद्वानोंकी यह भी धारणा है—

•••'विष्णुधर्मोत्तरको विष्णुपुराणका उत्तरभाग कहकर ग्रहण करनेमें कोई भी दोष नहीं आता, परंतु प्रचलित विष्णु-पुराण और विष्णुधर्मोत्तर एकत्र करनेसे भी १६,००० से अधिक श्लोक नहीं पाये जाते, इसमें भी न्यूनाधिक ७,००० कम पड़ते हैं, इतने श्लोक कहाँ गये ? उसका निर्णय करना हमारी क्षुद्र बुद्धिके लिये अगम्य है, तथापि प्रचलित 'धर्मोत्तर' पूरा ग्रन्थ नहीं ज्ञात होता।

आगे विष्णुपुराणकी संक्षिप्त-सी परिचयात्मक विवेचना करते हुए लेखकका कहना है—

'नारदपुराणमें जो लक्षण (विष्णुपुराणके) लिखे हैं, वे सब लक्षण भी प्रचलित विष्णुधर्ममें नहीं पाये जाते, जिस विष्णुधर्मका ज्यौतिषांश लेकर ब्रह्मगुप्तने 'ब्रह्म-सिद्धान्त' की रचना की, नारदपुराणमें उसका परिचय होनेपर भी प्रचलित 'धर्मोत्तर' में उसके अधिकांशका अभाव है।'

विद्वान् लेखकने उपर्युक्त कथनके अनन्तर अपने वक्तव्यकी पाद-टिप्पणीमें कहा है—

काश्मीरसे प्राप्त 'विष्णु-धर्मोत्तर' में इसका अधिक परिचय पाया जाता है[1]।

उपर्युक्त पक्षकी ही पुष्टि निम्न अवतरणसे भी सिद्ध है—

गणनामें डा० विलसन एक गलती खा गये, वह यह है कि 'विष्णुधर्मोत्तर' को 'विष्णुपुराण' की गणनामें नहीं लिया, नारदीय-पुराणके वचनानुसार अथवा मुस्लिम-परिव्राजक अलबरूनीका लेख पढ़नेसे यह ज्ञात हो जाता है कि 'विष्णु-धर्मोत्तर' विष्णुपुराणके अन्तर्गत तेईस सहस्र श्लोक-संख्यामें शामिल है। 'विष्णुधर्मोत्तर' विष्णुपुराणका उत्तरभाग है। प्रचलित 'विष्णुपुराण' और 'विष्णुधर्मोत्तर' इन दोनोंकी श्लोक-संख्या लगभग सोलह हजार है।

इसके आगे वर्तमान 'विष्णुपुराण' के विषयमें अपनी सम्मति प्रकट करते हुए विद्वान् लेखकका कहना है—

प्रचलित 'विष्णुधर्मोत्तर' जो मुद्रित हुआ है, वह पूर्ण नहीं है, अधूरा ही मिला है। 'नारदीय पुराण' में जितने लक्षण लिखे गये हैं, वे समस्त लक्षण 'विष्णुधर्मोत्तर' में नहीं हैं अर्थात् बहुत-से लक्षण उसमें विद्यमान हैं और बहुतोंका अभाव है[2]।

डा० एच्० एच्० विलसनके मतानुसार 'विष्णुपुराण' की रचना १०४५ ई०के आसपास हुई। (यह मत सर्वथा भ्रान्त है।)

कलिस्वरूप-आख्यान, कृष्ण-जन्माष्टमीव्रत-कथा, देवी-स्तुति, महादेव-स्तोत्र, लक्ष्मी-स्तोत्र, विष्णुपूजन, विष्णुशत-नामस्तोत्र, सिद्धलक्ष्मी-स्तोत्र, सूर्यस्तोत्र आदि अनेक पुस्तिकाएँ यत्र-तत्र स्थानोंसे प्रकाशित हुई हैं, जिनको विष्णु-पुराणके अन्तर्गत कर प्रकारान्तरसे सम्बन्धित कहा जाता है। पर उन सबका उपलब्ध विष्णुपुराणसे कोई खास सम्बन्ध नहीं मिलता। यह भी सम्भव है कि उपर्युक्त फुटकर रूपमें पायी जानेवाली कृतियोंसे समावेशवाला अंश लुप्त हो गया हो, जिससे यह पुराण आज अधूरा रह गया है।

आलोच्य पुराणके विषयमें यह बात पण्डितोंके लिये विचारणीय है कि पुराणसाहित्यके सर्वाधिक एकमात्र प्रकाशक श्रीवेंकटेश्वर-यन्त्रालय, मुम्बई कार्यालयने 'विष्णु-महापुराण' श्रीधरस्वामी-टीका और दो खण्डोंमें 'विष्णुधर्मोत्तर-महापुराण' (मूल) को प्रकाशित किया है, जिनके आरम्भिक वचनोंमें ऐसी कोई बात नहीं कही गयी है जिससे यह बात स्पष्ट होता हो कि 'विष्णु' और 'विष्णुधर्मोत्तर' इन दोनों महाग्रन्थोंका परस्परमें क्या सम्बन्ध है। अभी इस विषयमें अनुसंधानकी बहुत गुंजाइश है।

विष्णु-महापुराणपर चित्सुखमुनि, जगन्नाथ पाठक, नृसिंह भट्ट, रत्नगर्भविष्णुचित्त, श्रीधरस्वामी, सूर्यकर मिश्र आदिकी टीकाएँ पायी जाती हैं और इसी महापुराणपर गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित श्रीमुनिलाल गुप्तका अनुवाद भी उल्लेखनीय और प्रशंसनीय है।

---

१. विद्यावारिधि पं०ज्वालाप्रसाद मिश्रनिर्मित 'अष्टादशपुराण-दर्पण' प्रकाशन संवत् १९९३, पृष्ठ ११९।

२. युक्तिविशारद पं०कालूराम शास्त्रीनिर्मित 'पुराणवर्म' प्रथम संस्करण, पृष्ठ १२७।

और इसमें आद्योपान्त सच्चिदानन्दघन, परमानन्दकन्द विशुद्ध सत्त्वमूर्ति श्रीहरिकी लीलाओंका ही गान हुआ है। नारदपुराणका सिद्धान्त बड़ा ही हृदयग्राही तथा स्पष्ट है। परम पुरुषार्थ मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्ति अथवा भगवत्प्रसादाप्तिके लिये भक्ति ही सुगमतम उपाय है[1], किंतु नारदपुराणकी दृष्टिमें भक्तिके साथ वर्णाश्रम-धर्म एवं शास्त्रोक्त कर्तव्योंका पालन भी अत्यावश्यक है। कदाचारपरायण, सदाचारत्यागी भक्तपर भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होते[2]। भक्तिहीन सत्क्रियाएँ भी इसी प्रकार निरर्थक एवं श्रममात्र होती हैं[3]। इसी प्रकार भूतद्रोही, क्रोधी, ईर्ष्यालु भक्तकी आराधना भी सफल नहीं होती[4]। यद्यपि कल्याणकृत् प्राणी, सुदुराचारी भी हो और वह अनन्यभावसे भगवद्भजन करता हो, तो उसका विनाश नहीं होता, उसकी दुर्गति नहीं होती और वह भी पीछे धर्मात्मा बनकर शान्तिलाभ करता ही है[5], फिर भी उसे तत्काल सिद्धि तो नहीं ही मिलती।

इसी तरह भगवन्नाम-जपसे सारी अलौकिक क्रिया, अवाङ्मनसगोचर, अकल्पित, दुर्लभ सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं; किंतु इसे भी काम, क्रोध, ईर्ष्या, गुरु-अवज्ञा, साधुनिन्दा, हरि-हरमें भेद, नामके बलपर पापाचरण, नामके फलमें अर्थवादका भ्रम, नास्तिकोंको नाम-माहात्म्य बतलाना इत्यादि दोषोंसे बचाना चाहिये[6], यद्यपि इन नामजप-सम्बन्धी दस दोषोंका पद्मपुराण, वाराहपुराण, आनन्दरामायण, हरिभक्ति-विलास आदि ग्रन्थोंमें विस्तारपूर्वक निरूपण हुआ है और साधारण जनतामें भी—

'राम राम सब कोइ कहै दशरथ कहै न कोय।
एक बार दशरथ कहै, कोटि यज्ञ फल होय॥'

इस दोहेसे प्रसिद्धि है, फिर भी तथाकथित दोषोंसे ग्रस्त रहनेसे साधकोंको पूर्ण सिद्धि नहीं प्राप्त होती। ऐसे तो भगवन्नाममें प्रवृत्ति, तत्कारणभूत सत्सङ्ग एवं नर-शरीरकी प्राप्ति अथच तत्तद् दोषोंकी निवृत्ति एकमात्र भगवत्कृपापर ही अवलम्बित है, फिर भी शुभसंकल्पोंद्वारा परमेश्वरका वरण करना एवं शुभ कर्मोंमें प्रवृत्तिकी चेष्टा प्राणीके कल्याणके लिये, अत्यन्त अपेक्षित है, यह बात ब्रह्मसूत्रके 'परात्तु तच्छ्रुतेः' 'कृतप्रयत्नापेक्षः' 'वैषम्यनैर्घृण्यादि' सूत्रों, गीताके 'ददामि बुद्धियोगम्' आदि श्लोकोंमें अच्छी तरहसे बतलायी गयी है। नारदपुराणमें इस रहस्यपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

---

१. यथा भूमिं समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। तथा भक्तिं समाश्रित्य सर्वकार्याणि साधयेत्॥
(पूर्वखण्ड ४।५)

२. हरिभक्तिपरो वापि हरिध्यानपरोऽपि वा। भ्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात् पतितः सोऽभिधीयते॥
वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वापि महेश्वरे। आचारात् पतितं मूढं न पुनाति द्विजोत्तम॥
(४।२४-२५)

३. अश्वमेधसहस्रं वा कर्म वेदोदितं कृतम्। तत्सर्वं निष्फलं ब्रह्मन् यदि भक्तिविवर्जितम्॥
(पू० भा० ४।११)

४. असूयोपेतमनसां भक्तिदानादि कर्म यत्। अवेहि निष्फलं ब्रह्मन् तेषां दूरतरो हरिः॥
(पू० भा० ४।१४)

५. न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति। (गी० ६।४०)
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति। कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति। (गी० ९।३०-३१)

६. गुरोरवज्ञा साधूनां निन्दां भेदं हरौ हरे। वेदनिन्दा हरेर्नामबलात् पापसमीहनम्॥
अर्थवादं हरेर्नाम्नि पाषण्डं नामसंग्रहे। अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम्॥
नामविस्मरणं चापि नाम्न्यनादरमेव च। संत्यजेद्दूरतो वत्स दोषानेतान्सुदारुणान्॥
(ना० पू० भाग ८२। २२-२५)

और इसमें आद्योपान्त सच्चिदानन्दघन, परमानन्दकन्द विशुद्ध सत्त्वमूर्ति श्रीहरिकी लीलाओंका ही गान हुआ है। नारद-पुराणका सिद्धान्त बड़ा ही हृदयग्राही तथा स्पष्ट है। परम पुरुषार्थ मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्ति अथवा भगवत्प्रसादादिके लिये भक्ति ही सुगमतम उपाय है[1], किंतु नारदपुराणकी दृष्टिमें भक्तिके साथ वर्णाश्रम-धर्म एवं शास्त्रोक्त कर्तव्योंका पालन भी अत्यावश्यक है। कदाचारपरायण, सदाचारत्यागी भक्तपर भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होते[2]। भक्तिहीन सत्क्रियाएँ भी इसी प्रकार निरर्थक एवं श्रममात्र होती हैं[3]। इसी प्रकार भूतद्रोही, क्रोधी, ईर्ष्यालु भक्तकी आराधना भी सफल नहीं होती[4]। यद्यपि कल्याणकृत् प्राणी, सुदुराचारी भी हो और वह अनन्यभावसे भगवद्भजन करता हो, तो उसका विनाश नहीं होता, उसकी दुर्गति नहीं होती और वह भी पीछे धर्मात्मा बनकर शान्तिलाभ करता ही है[5], फिर भी उसे तत्काल सिद्धि तो नहीं ही मिलती।

इसी तरह भगवन्नाम-जपसे सारी अलौकिक क्रिया, अवाङ्मनसगोचर, अकल्पित, दुर्लभ सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं; किंतु इसे भी काम, क्रोध, ईर्ष्या, गुरु-अवज्ञा, साधुनिन्दा, हरि-हरमें भेद, नामके बलपर पापाचरण, नामके फलमें अर्थ-वादका भ्रम, नास्तिकोंको नाम-माहात्म्य बतलाना इत्यादि दोषोंसे बचाना चाहिये[6], यद्यपि इन नामजप-सम्बन्धी दस दोषोंका पद्मपुराण, वाराहपुराण, आनन्दरामायण, हरिभक्ति-विलास आदि ग्रन्थोंमें विस्तारपूर्वक निरूपण हुआ है और साधारण जनतामें भी—

'राम राम सब कोइ कहै दशरथ कहै न कोय।
एक बार दशरथ कहै, कोटि यज्ञ फल होय॥'

इस दोहेसे प्रसिद्धि है, फिर भी तथाकथित दोषोंसे ग्रस्त रहनेसे साधकोंको पूर्ण सिद्धि नहीं प्राप्त होती। ऐसे तो भगवन्नाममें प्रवृत्ति, तत्कारणभूत सत्सङ्ग एवं नर-शरीरकी प्राप्ति अथच तत्तद् दोषोंकी निवृत्ति एकमात्र भगवत्कृपापर ही अवलम्बित है, फिर भी शुभसंकल्पोंद्वारा परमेश्वरका वरण करना एवं शुभ कर्मोंमें प्रवृत्तिकी चेष्टा प्राणीके कल्याण-के लिये, अत्यन्त अपेक्षित है, यह बात ब्रह्मसूत्रके 'परात्तु तच्छ्रुतेः' 'कृतप्रयत्नापेक्षः' 'वैषम्यनैर्घृण्यादि' सूत्रों, गीताके 'ददामि बुद्धियोगम्' आदि श्लोकोंमें अच्छी तरहसे बतलायी गयी है। नारदपुराणमें इस रहस्यपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

---

१. यथा भूमिं समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तव.। तथा भक्तिं समाश्रित्य सर्वकार्याणि साधयेत्॥
(पूर्वखण्ड ४।५)

२. हरिभक्तिपरो वापि हरिध्यानपरोऽपि वा। भ्रष्टो य. स्वाश्रमाचारात् पतितः सोऽभिधीयते॥
वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वापि महेश्वरे। आचारात् पतितं मूढं न पुनाति द्विजोत्तम॥
(४।२४-२५)

३. अश्वमेधसहस्रं वा कर्म वेदोदित कृतम्। तत्सर्वं निष्फलं ब्रह्मन् यदि भक्तिविवर्जितम्॥
(पू० भा० ४।११)

४. असूयोपेतमनसां भक्तिदानादि कर्म यत्। अवेहि निष्फलं ब्रह्मन् तेषां दूरतरो हरिः॥
(पू० भा० ४।१४)

५. न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति। (गी० ६।४०)
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्य. सम्यग् व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति। कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्त प्रणश्यति। (गी० ९।३०-३१)

६. गुरोरवज्ञा साधूना निन्दां भेद हरौ हरे। वेदनिन्दा हरेर्नामबलात् पापसमीहनम्॥
अर्थवादं हरेर्नाम्नि पाषण्डं नामसंग्रहे। अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम्॥
नामविस्मरणं चापि नाम्न्यनादरमेव च। संत्यजेद्दूरतो वत्स दोषानेतान्सुदारुणान्॥
(ना० पू० भाग ८२। २२—२५)

भगीरथको भगवान् विष्णुके दर्शन

[पृष्ठ ६९

मगीरथको भगवान् विष्णुके दर्शन [पृष्ठ ६१

की संख्या तो बनायी ही नहीं जा सकती। पवित्र अन्तःकरणवाले वे महातेजस्वी महर्षि लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही एकत्र हुए थे। उनमें राग और मात्सर्यका सर्वथा अभाव था। वे शौनकजीसे यह पूछना चाहते थे कि इस पृथ्वीपर कौन-कौन-से पुण्यक्षेत्र एवं पवित्र तीर्थ हैं। त्रिविध तापसे पीड़ित चित्तवाले मनुष्योंको मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। लोगोंको भगवान् विष्णुकी अविचल भक्ति कैसे प्राप्त होगी तथा सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारके कर्मोंका फल किसके द्वारा प्राप्त होता है? उन मुनियोंको अपनेसे इस प्रकार प्रश्न करनेके लिये उद्यत देखकर उत्तम बुद्धिवाले शौनकजी विनयसे झुक गये और हाथ जोड़कर बोले।

शौनकजीने कहा—महर्षियो! पवित्र सिद्धाश्रमतीर्थमें पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजी रहते हैं। वे वहाँ अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा विश्वरूप भगवान् विष्णुका यजन किया करते हैं। महामुनि सूतजी व्यासजीके शिष्य हैं। वे यह सब विषय अच्छी तरह जानते हैं। उनका नाम रोमहर्षण है। वे बड़े शान्त स्वभावके हैं और पुराणसंहिताके वक्ता हैं। भगवान् मधुसूदन प्रत्येक युगमें धर्मोंका ह्रास देखकर वेदव्यास रूपसे प्रकट होते और एक ही वेदके अनेक विभाग करते हैं। विप्रगण! हमने सब शास्त्रोंमें यह सुना है कि वेदव्यास मुनि साक्षात् भगवान् नारायण ही हैं। उन्हीं भगवान् व्यासने सूतजीको पुराणोंका उपदेश दिया है। परम बुद्धिमान् वेदव्यासजीके द्वारा भलीभाँति उपदेश पाकर सूतजी सब धर्मोंके ज्ञाता हो गये हैं। संसारमें उनसे बढ़कर दूसरा कोई पुराणोंका ज्ञाता नहीं है; क्योंकि इस लोकमें सूतजी ही पुराणोंके तात्त्विक अर्थको जाननेवाले, सर्वज्ञ और बुद्धिमान् हैं। उनका स्वभाव शान्त है। वे मोक्षधर्मके ज्ञाता तो हैं ही, कर्म और भक्तिके विविध साधनोंको भी जानते हैं। मुनीश्वरो! वेद, वेदाङ्ग और शास्त्रोंका जो सारभूत तत्त्व है, वह सब मुनिवर व्यासने जगत्के हितके लिये पुराणोंमें बता दिया है और ज्ञानसागर सूतजी उन सबका यथार्थ तत्त्व जाननेमें कुशल हैं, इसलिये हमलोग उन्हींसे सब बातें पूछें।

इस प्रकार शौनकजीने मुनियोंसे जब अपना अभिप्राय निवेदन किया, तब वे सब महर्षि विद्वानोंमें श्रेष्ठ शौनकजीको आलिङ्गन करके बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें साधुवाद देने लगे। तदनन्तर सब मुनि वनके भीतर पवित्र सिद्धाश्रम तीर्थमें गये और वहाँ उन्होंने देखा कि सूतजी अग्निष्टोम यज्ञके द्वारा अनन्त अपराजित भगवान् नारायणका यजन कर रहे हैं। सूतजीने उन विख्यात तेजस्वी महात्माओंका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् उनसे नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंने इस प्रकार पूछा—

ऋषि बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सूतजी! हम आपके यहाँ अतिथिरूपमें आये हैं, अतः आपसे आतिथ्य-सत्कार पानेके अधिकारी हैं। आप ज्ञान-दानरूपी पूजन-सामग्रीके द्वारा हमारा पूजन कीजिये। मुने! देवतालोग चन्द्रमाकी किरणोंसे निकला हुआ अमृत पीकर जीवन धारण करते हैं; परंतु इस पृथ्वीके देवता ब्राह्मण आपके मुखसे निकले हुए ज्ञानरूपी अमृतको पीकर तृप्त होते हैं। तात! हम यह जानना चाहते हैं कि यह सम्पूर्ण जगत् किससे उत्पन्न हुआ? इसका आधार और स्वरूप क्या है? यह किसमें स्थित है और किसमें इसका लय होगा? भगवान् विष्णु किस साधनसे प्रसन्न होते हैं? मनुष्योंद्वारा उनकी पूजा कैसे की जाती है? भिन्न-भिन्न वर्णों और आश्रमोंका आचार क्या है? अतिथिकी पूजा कैसे की जाती है, जिससे सब कर्म सफल हो जाते हैं? वह मोक्षका उपाय मनुष्योंको कैसे सुलभ है, पुरुषोंको भक्तिसे कौन-सा फल प्राप्त होता है और भक्तिका स्वरूप क्या है? मुनिश्रेष्ठ सूतजी! ये सब बातें आप हमें इस प्रकार समझाकर बतावें कि फिर इनके विषयमें कोई संदेह न रह जाय, आपके अमृतके समान वचनोंको सुननेके लिये किसके मनमें श्रद्धा नहीं होगी?

सूतजीने कहा—महर्षियो! आप सब लोग सुनें। आप लोगोंको जो अभीष्ट है, वह मैं बतलाता हूँ। सनकादि

की संख्या तो बतायी ही नहीं जा सकती। पवित्र अन्तःकरणवाले वे महातेजस्वी महर्षि लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही एकत्र हुए थे। उनमें राग और मात्सर्यका सर्वथा अभाव था। वे शौनकजीसे यह पूछना चाहते थे कि इस पृथ्वीपर कौन-कौन-से पुण्यक्षेत्र एवं पवित्र तीर्थ हैं। त्रिविध तापसे पीड़ित चित्तवाले मनुष्योंको मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। लोगोंको भगवान् विष्णुकी अविचल भक्ति कैसे प्राप्त होगी तथा सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारके कर्मोंका फल किसके द्वारा प्राप्त होता है? उन मुनियोंको अपनेसे इस प्रकार प्रश्न करनेके लिये उद्यत देखकर उत्तम बुद्धिवाले शौनकजी विनयसे झुक गये और हाथ जोड़कर बोले।

शौनकजीने कहा—महर्षियो! पवित्र सिद्धाश्रमतीर्थमें पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजी रहते हैं। वे वहाँ अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा विश्वरूप भगवान् विष्णुका यजन किया करते हैं। महामुनि सूतजी व्यासजीके शिष्य हैं। वे यह सब विषय अच्छी तरह जानते हैं। उनका नाम रोमहर्षण है। वे बड़े शान्त स्वभावके हैं और पुराणसंहिताके वक्ता हैं। भगवान् मधुसूदन प्रत्येक युगमें धर्मोंका ह्रास देखकर वेदव्यास रूपसे प्रकट होते और एक ही वेदके अनेक विभाग करते हैं। विप्रगण! हमने सब शास्त्रोंमें यह सुना है कि वेदव्यास मुनि साक्षात् भगवान् नारायण ही हैं। उन्हीं भगवान् व्यासने सूतजीको पुराणोंका उपदेश दिया है। परम बुद्धिमान् वेदव्यासजीके द्वारा भलीभाँति उपदेश पाकर सूतजी सब धर्मोंके ज्ञाता हो गये हैं। संसारमें उनसे बढ़कर दूसरा कोई पुराणोंका ज्ञाता नहीं है; क्योंकि इस लोकमें सूतजी ही पुराणोंके तात्त्विक अर्थको जाननेवाले, सर्वज्ञ और बुद्धिमान् हैं। उनका स्वभाव शान्त है। वे मोक्षधर्मके ज्ञाता तो हैं ही, कर्म और भक्तिके विविध साधनोंको भी जानते हैं। मुनीश्वरो! वेद, वेदाङ्ग और शास्त्रोंका जो सारभूत तत्त्व है, वह सब मुनिवर व्यासने जगत्‌के हितके लिये पुराणोंमें बता दिया है और ज्ञानसागर सूतजी उन सबका यथार्थ तत्त्व जाननेमें कुशल हैं, इसलिये हमलोग उन्हींसे सब बातें पूछें।

इस प्रकार शौनकजीने मुनियोंसे जब अपना अभिप्राय निवेदन किया, तब वे सब महर्षि विद्वानोंमें श्रेष्ठ शौनकजीको आलिङ्गन करके बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें साधुवाद देने लगे। तदनन्तर सब मुनि वनके भीतर पवित्र सिद्धाश्रम तीर्थमें गये और वहाँ उन्होंने देखा कि सूतजी अग्निष्टोम यज्ञके द्वारा अनन्त अपराजित भगवान् नारायणका यजन कर रहे हैं। सूतजीने उन विख्यात तेजस्वी महात्माओंका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् उनसे नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंने इस प्रकार पूछा—

ऋषि बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सूतजी! हम आपके यहाँ अतिथिरूपमें आये हैं, अतः आपसे आतिथ्य-सत्कार पानेके अधिकारी हैं। आप ज्ञान-दानरूपी पूजन-सामग्रीके द्वारा हमारा पूजन कीजिये। मुने! देवतालोग चन्द्रमाकी किरणोंसे निकला हुआ अमृत पीकर जीवन धारण करते हैं; परंतु इस पृथ्वीके देवता ब्राह्मण आपके मुखसे निकले हुए ज्ञानरूपी अमृतको पीकर तृप्त होते हैं। तात! हम यह जानना चाहते हैं कि यह सम्पूर्ण जगत् किससे उत्पन्न हुआ? इसका आधार और स्वरूप क्या है? यह किसमें स्थित है और किसमें इसका लय होगा? भगवान् विष्णु किस साधनसे प्रसन्न होते हैं? मनुष्योंद्वारा उनकी पूजा कैसे की जाती है? भिन्न-भिन्न वर्णों और आश्रमोंका आचार क्या है? अतिथिकी पूजा कैसे की जाती है, जिससे सब कर्म सफल हो जाते हैं? वह मोक्षका उपाय मनुष्योंको कैसे सुलभ है, पुरुषोंको भक्तिसे कौन-सा फल प्राप्त होता है और भक्तिका स्वरूप क्या है? मुनिश्रेष्ठ सूतजी! ये सब बातें आप हमें इस प्रकार समझाकर बतावें कि फिर इनके विषयमें कोई संदेह न रह जाय, आपके अमृतके समान वचनोंको सुननेके लिये किसके मनमें श्रद्धा नहीं होगी?

सूतजीने कहा—महर्षियो! आप सब लोग सुनें। आप लोगोंको जो अभीष्ट है, वह मैं बतलाता हूँ। सनकादि

मनोवाञ्छित पदार्थको देनेवाले हैं। उनका स्मरण करके मनुष्य मोक्षपदको प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मणो! जो ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु आदि भिन्न-भिन्न रूप धारण करके इस जगत्की सृष्टि, संहार और पालन करते हैं, उन आदिदेव परम पुरुष परमेश्वरको अपने हृदयमें स्थापित करके मनुष्य मुक्ति पा लेता है। जो नाम और जाति आदिकी कल्पनाओंसे रहित हैं, सर्वश्रेष्ठ तत्त्वोंसे भी परम उत्कृष्ट हैं, परात्पर पुरुष हैं, उपनिषदोंके द्वारा जिनके तत्त्वका ज्ञान होता है तथा जो अपने प्रेमी भक्तोंके समक्ष ही सगुण-साकार रूपमें प्रकट होते हैं, उन्हीं परमेश्वरकी समस्त पुराणों और वेदोंके द्वारा स्तुति की जाती है। अतः जो सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर, मोक्षस्वरूप, उपासनाके योग्य, अजन्मा, परम रहस्यरूप तथा समस्त पुरुषार्थोंके हेतु हैं, उन भगवान् विष्णुका स्मरण करके मनुष्य भवसागरसे पार हो जाता है। धर्मात्मा, श्रद्धालु, मुमुक्षु, यति तथा वीतराग पुरुष ही यह पुराण सुननेके अधिकारी हैं। उन्हींको इसका उपदेश करना चाहिये। पवित्र देशमें, देवमन्दिरके सभामण्डपमें, पुण्य-क्षेत्रमें, पुण्यतीर्थमें तथा देवताओं और ब्राह्मणोंके समीप पुराणका प्रवचन करना चाहिये। जो मनुष्य पुराण-कथाके बीचमें दूसरेसे बातचीत करता है, वह भयङ्कर नरकमें पड़ता है। जिसका चित्त एकाग्र नहीं है, वह सुनकर भी कुछ नहीं समझता। अतः एकचित्त होकर भगवत्कथामृतका पान करना चाहिये। जिसका मन इधर-उधर भटक रहा हो, उसे कथा-रसका आस्वादन कैसे हो सकता है? संसारमें चञ्चल चित्तवाले मनुष्यको क्या सुख मिलता है? अतः दुःखकी साधनभूत समस्त कामनाओंका त्याग करके एकाग्रचित्त हो भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये। जिस किसी उपायसे भी यदि अविनाशी भगवान् नारायणका स्मरण किया जाय तो वे पातकी मनुष्यपर भी निस्सन्देह प्रसन्न हो जाते हैं। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी तथा सर्वत्र व्यापक अविनाशी भगवान् विष्णुमें जिसकी भक्ति है, उसका जन्म सफल हो गया और मुक्ति उसके हाथमें है। विप्रवरो! भगवान् विष्णुके भजनमें संलग्न रहनेवाले पुरुषोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं।

नारदजीद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सनत्कुमारजीने महात्मा नारदको किस प्रकार सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश किया तथा उन दोनोंका समागम किस तरह हुआ? वे दोनों ब्रह्मवादी महात्मा किस स्थानमें स्थित होकर भगवान्की महिमाका गान करते थे? यह हमें बताइये।

सूतजी बोले—महात्मा सनक आदि ब्रह्माजीके मानस-पुत्र हैं। उनमें न ममता है और न अहङ्कार। वे सभी नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। उनके नाम बतलाता हूँ, सुनिये। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन—इन्हीं नामोंसे उनकी ख्याति है। वे चारों महात्मा भगवान् विष्णुके भक्त हैं तथा निरन्तर परब्रह्म परमात्माके चिन्तनमें तत्पर रहते हैं। उनका प्रभाव सहस्र सूर्योंके समान है। वे सत्यव्रती तथा मुमुक्षु हैं। एक दिनकी बात है, वे मेरुगिरिके शिखर-पर ब्रह्माजीकी सभामें जा रहे थे। मार्गमें उन्हें भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई गङ्गाजीका दर्शन हुआ। यह उन्हें अभीष्ट था। गङ्गाजीका दर्शन करके वे चारों महात्मा उनकी सीता नामवाली धाराके जलमें स्नान करनेको उद्यत हुए। द्विजवरो! इसी समय देवर्षि नारदमुनि भी वहाँ आ पहुँचे और अपने बड़े भाइयोंको वहाँ स्नानके लिये उद्यत देख उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उस समय वे प्रेम-भक्तिके साथ भगवान् मधुसूदनके नामोंका कीर्तन करने लगे—'नारायण! अच्युत! अनन्त! वासुदेव! जनार्दन! यज्ञेश! यज्ञपुरुष! कृष्ण! विष्णो! आपको नमस्कार है। कमल-नयन! कमलाकान्त! गङ्गाजनक! केशव! क्षीरसमुद्रमें शयन करनेवाले देवेश्वर! दामोदर! आपको नमस्कार है। श्रीराम! विष्णो! नृसिंह! वामन! प्रद्युम्न! संकर्षण! वासुदेव! अज! अनिरुद्ध! निर्मल प्रकाशस्वरूप! मुरारे! आप सब प्रकारके भयसे निरन्तर हमारी रक्षा कीजिये।' इस प्रकार उच्च स्वरसे हरिनामका उच्चारण करते हुए उन अग्रज मुनियोंको प्रणाम करके वे उनके पास बैठे और उन्हींके साथ प्रसन्नतापूर्वक वहाँ स्नान भी किया। सम्पूर्ण लोकोंका पाप दूर करनेवाली गङ्गाकी धारा सीताके जलमें स्नान करके उन निष्पाप मुनियोंने देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण किया। फिर जलसे बाहर आकर संध्योपासन

मनोवाञ्छित पदार्थको देनेवाले हैं। उनका स्मरण करके मनुष्य मोक्षपदको प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मणो! जो ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु आदि भिन्न-भिन्न रूप धारण करके इस जगत्की सृष्टि, संहार और पालन करते हैं, उन आदिदेव परम पुरुष परमेश्वरको अपने हृदयमें स्थापित करके मनुष्य मुक्ति पा लेता है। जो नाम और जाति आदिकी कल्पनाओंसे रहित हैं, सर्वश्रेष्ठ तत्त्वोंसे भी परम उत्कृष्ट हैं, परात्पर पुरुष हैं, उपनिषदोंके द्वारा जिनके तत्त्वका ज्ञान होता है तथा जो अपने प्रेमी भक्तोंके समक्ष ही सगुण-साकार रूपमें प्रकट होते हैं, उन्हीं परमेश्वरकी समस्त पुराणों और वेदोंके द्वारा स्तुति की जाती है। अतः जो सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर, मोक्षस्वरूप, उपासनाके योग्य, अजन्मा, परम रहस्यरूप तथा समस्त पुरुषार्थोंके हेतु हैं, उन भगवान् विष्णुका स्मरण करके मनुष्य भवसागरसे पार हो जाता है। धर्मात्मा, श्रद्धालु, मुमुक्षु, यति तथा वीतराग पुरुष ही यह पुराण सुननेके अधिकारी हैं। उन्हींको इसका उपदेश करना चाहिये। पवित्र देशमें, देवमन्दिरके सभामण्डपमें, पुण्यक्षेत्रमें, पुण्यतीर्थमें तथा देवताओं और ब्राह्मणोंके समीप पुराणका प्रवचन करना चाहिये। जो मनुष्य पुराण-कथाके बीचमें दूसरेसे बातचीत करता है, वह भयङ्कर नरकमें पड़ता है। जिसका चित्त एकाग्र नहीं है, वह सुनकर भी कुछ नहीं समझता। अतः एकचित्त होकर भगवत्कथामृतका पान करना चाहिये। जिसका मन इधर-उधर भटक रहा हो, उसे कथा-रसका आस्वादन कैसे हो सकता है? संसारमें चञ्चल चित्तवाले मनुष्यको क्या सुख मिलता है? अतः दुःखकी साधनभूत समस्त कामनाओंका त्याग करके एकाग्रचित्त हो भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये। जिस किसी उपायसे भी यदि अविनाशी भगवान् नारायणका स्मरण किया जाय तो वे पातकी मनुष्यपर भी निस्सन्देह प्रसन्न हो जाते हैं। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी तथा सर्वत्र व्यापक अविनाशी भगवान् विष्णुमें जिसकी भक्ति है, उसका जन्म सफल हो गया और मुक्ति उसके हाथमें है। विप्रवरो! भगवान् विष्णुके भजनमें संलग्न रहनेवाले पुरुषोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं।

नारदजीद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सनत्कुमारजीने महात्मा नारदको किस प्रकार सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश किया तथा उन दोनोंका समागम किस तरह हुआ? वे दोनों ब्रह्मवादी महात्मा किस स्थानमें स्थित होकर भगवान्की महिमाका गान करते थे? यह हमें बताइये।

सूतजी बोले—महात्मा सनक आदि ब्रह्माजीके मानस-पुत्र हैं। उनमें न ममता है और न अहङ्कार। वे सभी नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। उनके नाम बतलाता हूँ, सुनिये। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन—इन्हीं नामोंसे उनकी ख्याति है। वे चारों महात्मा भगवान् विष्णुके भक्त हैं तथा निरन्तर परब्रह्म परमात्माके चिन्तनमें तत्पर रहते हैं। उनका प्रभाव सहस्र सूर्योंके समान है। वे सत्यव्रती तथा मुमुक्षु हैं। एक दिनकी बात है, वे मेरुगिरिके शिखर-पर ब्रह्माजीकी सभामें जा रहे थे। मार्गमें उन्हें भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई गङ्गाजीका दर्शन हुआ। यह उन्हें अभीष्ट था। गङ्गाजीका दर्शन करके वे चारों महात्मा उनकी सीता नामवाली धाराके जलमें स्नान करनेको उद्यत हुए। द्विजवरो! इसी समय देवर्षि नारदमुनि भी वहाँ आ पहुँचे और अपने बड़े भाइयोंको वहाँ स्नानके लिये उद्यत देख उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उस समय वे प्रेम-भक्तिके साथ भगवान् मधुसूदनके नामोंका कीर्तन करने लगे—'नारायण! अच्युत! अनन्त! वासुदेव! जनार्दन! यज्ञेश! यज्ञपुरुष! कृष्ण! विष्णो! आपको नमस्कार है। कमल-नयन! कमलाकान्त! गङ्गाजनक! केशव! क्षीरसमुद्रमें शयन करनेवाले देवेश्वर! दामोदर! आपको नमस्कार है। श्रीराम! विष्णो! नृसिंह! वामन! प्रद्युम्न! संकर्षण! वासुदेव! अज! अनिरुद्ध! निर्मल प्रकाशस्वरूप! मुरारे! आप सब प्रकारके भयसे निरन्तर हमारी रक्षा कीजिये।' इस प्रकार उच्च स्वरसे हरिनामका उच्चारण करते हुए उन अग्रज मुनियोंको प्रणाम करके वे उनके पास बैठे और उन्हींके साथ प्रसन्नतापूर्वक वहाँ स्नान भी किया। सम्पूर्ण लोकोंका पाप दूर करनेवाली गङ्गाकी धारा सीताके जलमें स्नान करके उन निष्पाप मुनियोंने देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण किया। फिर जलसे बाहर आकर संध्योपासन

परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अग्नि, वायु, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, असुर तथा देवता आदि अपने विभिन्न स्वरूपोंके साथ स्थित हैं, जो एक अद्वितीय परमेश्वर हैं, उन आदिपुरुष परमात्माका मैं भजन करता हूँ। यह भेदयुक्त सम्पूर्ण जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है, जिनमें स्थित है और संहारकालमें जिनमें लीन हो जायगा, उन परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। जो विश्वरूपमें स्थित होकर यहाँ आसक्त-से प्रतीत होते हैं, परंतु वास्तवमें जो असङ्ग और परिपूर्ण हैं, उन परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। जो भगवान् सबके हृदयमें स्थित होकर भी मायासे मोहित चित्तवालोंके अनुभवमें नहीं आते तथा जो परम शुद्धस्वरूप हैं, उनकी मैं शरण लेता हूँ। जो लोग सब प्रकारकी आसक्तियोंसे दूर रहकर ध्यानयोगमें अपने मनको लगाये हुए हैं, उन्हें जो सर्वत्र ज्ञानस्वरूप प्रतीत होते हैं, उन परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। क्षीरसागरमें अमृतमन्थनके समय जिन्होंने देवताओंके हितके लिये मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया था, उन कूर्म-रूपधारी भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जिन अनन्त परमात्माने अपनी दाढ़ोंके अग्रभाग-द्वारा एकार्णवके जलमें इस पृथ्वीका उद्धार करके सम्पूर्ण जगत्को स्थापित किया, उन वाराह-रूपधारी भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा करते हुए जिन्होंने पर्वतकी शिलाके समान अत्यन्त कठोर वक्षवाले हिरण्यकशिपु दैत्यको विदीर्ण करके मार डाला था, उन भगवान् नृसिंहको मैं नमस्कार करता हूँ। विरोचन-कुमार बलिसे तीन पग भूमि पाकर जिन्होंने दो ही पगोंसे ब्रह्मलोकपर्यन्त सम्पूर्ण विश्वको माप लिया और उसे पुनः देवताओंको समर्पित कर दिया, उन अपराजित भगवान् वामनको मैं नमस्कार करता हूँ। हैहयराज सहस्रबाहु अर्जुनके अपराधसे जिन्होंने समस्त क्षत्रियकुलका इक्कीस बार संहार किया, उन जमदग्निनन्दन भगवान् परशुरामको नमस्कार है। जिन्होंने राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चार रूपोंमें प्रकट हो वानरोंकी सेनासे घिरकर राक्षस-दलका संहार किया था, उन भगवान् श्रीरामचन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने श्रीबलराम और श्रीकृष्ण इन दो स्वरूपोंको धारण करके पृथ्वीका भार उतारा और अपने यादवकुलका संहार कर दिया, उन भगवान् श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ। भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोकोंमें व्याप्त अपने हृदयमें साक्षात्कार करनेवाले निर्मल बुद्धरूप परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। कलियुगके अन्तमें अशुद्ध चित्तवाले पापियोंको तलवारकी तीखी धारसे मारकर जिन्होंने सत्ययुगके आदिमें धर्मकी स्थापना की है, उन कल्किस्वरूप भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार जिनके अनेक स्वरूपोंकी गणना बड़े-बड़े विद्वान् करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं कर सकते, उन भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ। जिनके नामकी महिमाका पार पानेमें सम्पूर्ण देवता, असुर और मनुष्य भी समर्थ नहीं हैं, उन परमेश्वरकी मैं एक क्षुद्र जीव किस प्रकार स्तुति करूँ। महापातकी मानव जिनके नामका श्रवण करनेमात्रसे ही पवित्र हो जाते हैं, उन भगवान्की स्तुति मुझ-जैसा अल्प-बुद्धिवाला व्यक्ति कैसे कर सकता है। जिनके नामका जिस किसी प्रकार कीर्त्तन अथवा श्रवण कर लेनेपर भी पापी पुरुष अत्यन्त शुद्ध हो जाते हैं और शुद्धात्मा मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं, निष्पाप योगीजन अपने मनको बुद्धिमें स्थापित करके जिनका साक्षात्कार करते हैं, उन ज्ञानस्वरूप परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। सांख्ययोगी सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मारूपसे परिपूर्ण हुए जिन जरारहित आदिदेव श्रीहरिका साक्षात्कार करते हैं, उन ज्ञानस्वरूप भगवान्का मैं भजन करता हूँ। सम्पूर्ण जीव जिनके स्वरूप हैं, जो शान्तस्वरूप हैं, सबके साक्षी, ईश्वर, सहस्रों मस्तकोंसे सुशोभित तथा भावरूप हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ। भूत और भविष्य चराचर जगत्को व्याप्त करके जो उससे दस अङ्गुल ऊपर स्थित हैं, उन जरा-मृत्युरहित परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, महान्से भी अत्यन्त महान् तथा गुह्यसे भी अत्यन्त गुह्य हैं, उन अजन्मा भगवान्को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। जो परमेश्वर ध्यान, चिन्तन, पूजन, श्रवण अथवा नमस्कार मात्र कर लेनेपर भी जीवको अपना परम पद दे देते हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमकी मैं वन्दना करता हूँ। इस प्रकार परम पुरुष परमेश्वरकी नारदजीके स्तुति करनेपर नारदसहित वे सनन्दन आदि मुनीश्वर बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त हुए। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये थे। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर परम पुरुष भगवान् विष्णुके उपर्युक्त स्तोत्रका पाठ करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अग्नि, वायु, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, असुर तथा देवता आदि अपने विभिन्न स्वरूपोंके साथ स्थित हैं, जो एक अद्वितीय परमेश्वर हैं, उन आदिपुरुष परमात्माका मैं भजन करता हूँ। यह भेदयुक्त सम्पूर्ण जगत् जिनमें उत्पन्न हुआ है, जिनमें स्थित है और संहारकालमें जिनमें लीन हो जायगा, उन परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। जो विश्वरूपमें स्थित होकर यहाँ आसक्त-से प्रतीत होते हैं, परंतु वास्तवमें जो असङ्ग और परिपूर्ण हैं, उन परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। जो भगवान् सबके हृदयमें स्थित होकर भी मायासे मोहित चित्तवालोंके अनुभवमें नहीं आते तथा जो परम शुद्धस्वरूप हैं, उनकी मैं शरण लेता हूँ। जो लोग सब प्रकारकी आसक्तियोंसे दूर रहकर ध्यानयोगमें अपने मनको लगाये हुए हैं, उन्हें जो सर्वत्र ज्ञानस्वरूप प्रतीत होते हैं, उन परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। क्षीरसागरमें अमृतमन्थनके समय जिन्होंने देवताओंके हितके लिये मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया था, उन कूर्म-रूपधारी भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जिन अनन्त परमात्माने अपनी दाढ़ोंके अग्रभाग-द्वारा एकार्णवके जलमें इस पृथ्वीका उद्धार करके सम्पूर्ण जगत्को स्थापित किया, उन वाराह-रूपधारी भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा करते हुए जिन्होंने पर्वतकी शिलाके समान अत्यन्त कठोर वक्षवाले हिरण्यकशिपु दैत्यको विदीर्ण करके मार डाला था, उन भगवान् नृसिंहको मैं नमस्कार करता हूँ। विरोचन-कुमार बलिसे तीन पग भूमि पाकर जिन्होंने दो ही पगोंसे ब्रह्मलोकपर्यन्त सम्पूर्ण विश्वको माप लिया और उसे पुनः देवताओंको समर्पित कर दिया, उन अपराजित भगवान् वामनको मैं नमस्कार करता हूँ। हैहयराज सहस्रबाहु अर्जुनके अपराधसे जिन्होंने समस्त क्षत्रियकुलका इक्कीस बार संहार किया, उन जमदग्निनन्दन भगवान् परशुरामको नमस्कार है। जिन्होंने राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चार रूपोंमें प्रकट हो वानरोंकी सेनासे घिरकर राक्षस-दलका संहार किया था, उन भगवान् श्रीरामचन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने श्रीबलराम और श्रीकृष्ण इन दो स्वरूपोंको धारण करके पृथ्वीका भार उतारा और अपने यादवकुलका संहार कर दिया, उन भगवान् श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ। भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोकोंमें व्याप्त अपने हृदयमें साक्षात्कार करनेवाले निर्मल बुद्धरूप परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। कलियुगके अन्तमें अशुद्ध चित्तवाले पापियोंको तलवारकी तीखी धारसे मारकर जिन्होंने सत्ययुगके आदिमें धर्मकी स्थापना की है, उन कल्किस्वरूप भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार जिनके अनेक स्वरूपोंकी गणना बड़े-बड़े विद्वान् करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं कर सकते, उन भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ। जिनके नामकी महिमाका पार पानेमें सम्पूर्ण देवता, असुर और मनुष्य भी समर्थ नहीं हैं, उन परमेश्वरकी मैं एक क्षुद्र जीव किस प्रकार स्तुति करूँ। महापातकी मानव जिनके नामका श्रवण करनेमात्रसे ही पवित्र हो जाते हैं, उन भगवान्‌की स्तुति मुझ-जैसा अल्प-बुद्धिवाला व्यक्ति कैसे कर सकता है। जिनके नामका जिस किसी प्रकार कीर्तन अथवा श्रवण कर लेनेपर भी पापी पुरुष अत्यन्त शुद्ध हो जाते हैं और शुद्धात्मा मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं, निष्पाप योगीजन अपने मनको बुद्धिमें स्थापित करके जिनका साक्षात्कार करते हैं, उन ज्ञानस्वरूप परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। सांख्ययोगी सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मारूपसे परिपूर्ण हुए जिन जरारहित आदिदेव श्रीहरिका साक्षात्कार करते हैं, उन ज्ञानस्वरूप भगवान्‌का मैं भजन करता हूँ। सम्पूर्ण जीव जिनके स्वरूप हैं, जो शान्तस्वरूप हैं, सबके साक्षी, ईश्वर, सहस्रों मस्तकोंसे सुशोभित तथा भावरूप हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ। भूत और भविष्य चराचर जगत्को व्याप्त करके जो उससे दस अङ्गुल ऊपर स्थित हैं, उन जरा-मृत्युरहित परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, महान्‌से भी अत्यन्त महान् तथा गुह्यसे भी अत्यन्त गुह्य हैं, उन अजन्मा भगवान्‌को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। जो परमेश्वर ध्यान, चिन्तन, पूजन, श्रवण अथवा नमस्कार मात्र कर लेनेपर भी जीवको अपना परम पद दे देते हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमकी मैं वन्दना करता हूँ। इस प्रकार परम पुरुष परमेश्वरकी नारदजीके स्तुति करनेपर नारदसहित वे सनन्दन आदि मुनीश्वर बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त हुए। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये थे। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर परम पुरुष भगवान् विष्णुके उपर्युक्त स्तोत्रका पाठ करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

परमात्मा विष्णु इस जगत्का पालन करते हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। वे सम्पूर्ण जगत्के अन्तर्यामी आत्मा हैं। समस्त संसारमें वे ही व्याप्त हो रहे हैं। वे सबके साक्षी तथा निरञ्जन हैं। वे ही भिन्न और अभिन्न रूपमें स्थित परमेश्वर हैं। उन्हींकी शक्ति महामाया है, जो जगत्की सत्ताका विश्वास धारण कराती है। विश्वकी उत्पत्तिका आदिकारण होनेसे विद्वान् पुरुष उसे प्रकृति कहते हैं। आदिसृष्टिके समय लोकरचनाके लिये उद्यत हुए भगवान् महाविष्णुके प्रकृति, पुरुष और काल—ये तीन रूप प्रकट होते हैं। शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्रह्मरूपसे जिसका साक्षात्कार करते हैं, जो विशुद्ध परम धाम कहलाता है, वही विष्णुका परम पद है। इसी प्रकार वे शुद्ध, अक्षर, अनन्त परमेश्वर ही कालरूपमें स्थित हैं। वे ही सत्त्व, रज, तम-रूप तीनों गुणोंमें विराज रहे हैं तथा गुणोंके आधार भी वे ही हैं। वे सर्वव्यापी परमात्मा ही इस जगत्के आदि-स्रष्टा हैं। जगद्गुरु पुरुषोत्तमके समीप स्थित हुई प्रकृति जब क्षोभ (चञ्चलता) को प्राप्त हुई, तो उससे महत्तत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ; जिसे समष्टि-बुद्धि भी कहते हैं। फिर उस महत्तत्त्वसे अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकारसे सूक्ष्म तन्मात्राएँ और एकादश इन्द्रियाँ प्रकट हुईं। तत्पश्चात् तन्मात्राओंसे पञ्च महाभूत प्रकट हुए, जो इस स्थूल जगत्के कारण हैं। नारदजी! उन भूतोंके नाम हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। ये क्रमशः एक-एकके कारण होते हैं।

तदनन्तर संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् ब्रह्माजीने तामस सर्गकी रचना की। तिर्यग् योनिवाले पशु पक्षी तथा मृग आदि जन्तुओंको उत्पन्न किया। उस सर्गको पुरुषार्थका साधक न मानकर ब्रह्माजीने अपने सनातन स्वरूपसे देवताओंको (सात्त्विक सर्गको) उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने मनुष्योंकी (राजस सर्गकी) सृष्टि की। इसके बाद दक्ष आदि पुत्रोंको जन्म दिया, जो सृष्टिके कार्यमें तत्पर हुए। ब्रह्माजीके इन पुत्रोंसे देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् भरा हुआ है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक—ये सात लोक क्रमशः एकके ऊपर एक स्थित हैं। विप्रवर! अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल—ये सात पाताल क्रमशः एकके नीचे एक स्थित हैं। इन सब लोकोंमें रहनेवाले लोकपालोंको भी ब्रह्माजीने उत्पन्न किया। भिन्न-भिन्न देशोंके कुल पर्वतों और नदियोंकी भी सृष्टि की तथा वहाँके निवासियोंके लिये जीविका आदि सब आवश्यक वस्तुओंकी भी यथायोग्य व्यवस्था की। इस पृथ्वीके मध्यभागमें मेरु पर्वत है, जो समस्त देवताओंका निवासस्थान है। जहाँ पृथ्वीकी अन्तिम सीमा है, वहाँ लोकालोक पर्वतकी स्थिति है। मेरु तथा लोकालोक पर्वतके बीचमें सात समुद्र और सात द्वीप हैं। विप्रवर! प्रत्येक द्वीपमें सात-सात मुख्य पर्वत तथा निरन्तर जल प्रवाहित करनेवाली अनेक विख्यात नदियाँ भी हैं। वहाँके निवासी मनुष्य देवताओंके समान तेजस्वी होते हैं। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर—ये सात द्वीपोंके नाम हैं। वे सब-की-सब देवभूमियाँ हैं। ये सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृत, दधि, दुग्ध तथा स्वादु जलसे भरे हुए वे समुद्र उन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इन द्वीपों और समुद्रोंको क्रमशः पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर दूने विस्तारवाले जानना चाहिये। ये सब लोकालोक पर्वततक स्थित हैं। क्षार समुद्रसे उत्तर और हिमालय पर्वतसे दक्षिणके प्रदेशको 'भारतवर्ष' समझना चाहिये। वह समस्त कर्मोंका फल देनेवाला है।

नारदजी! भारतवर्षमें मनुष्य जो सात्त्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकारके कर्म करते हैं, उनका फल भोगभूमियोंमें क्रमशः भोगा जाता है। विप्रवर! भारतवर्षमें किया हुआ जो शुभ अथवा अशुभ कर्म है, उसका क्षणभङ्गुर (बचा हुआ) फल जीवोंद्वारा अन्यत्र भोगा जाता है। आज भी देवता-लोग भारतभूमिमें जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं। वे सोचते हैं 'हमलोग कब संचित किये हुए महान्, अक्षय, निर्मल एवं शुभ पुण्यके फलस्वरूप भारतवर्षकी भूमिपर जन्म लेंगे और कब वहाँ महान् पुण्य करके परम पदको प्राप्त होंगे। अथवा वहाँ नाना प्रकारके दान, भाँति-भाँतिके यज्ञ या तपस्याके द्वारा जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना करके उनके नित्यानन्दमय अनामय पदको कब प्राप्त कर लेंगे।' नारदजी! जो भारतभूमिमें जन्म लेकर भगवान् विष्णुकी आराधनामें लग जाता है, उसके समान पुण्यात्मा तीनों लोकोंमें कोई नहीं है। भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन जिसका स्वभाव बन जाता है, जो भगवद्भक्तोंका प्रिय होता है अथवा जो महापुरुषोंकी सेवा-शुश्रूषा करता है, वह देवताओंके लिये भी वन्दनीय है। जो नित्य भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर है अथवा हरि-भक्तोंके

परमात्मा विष्णु इस जगत्का पालन करते हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। वे सम्पूर्ण जगत्के अन्तर्यामी आत्मा हैं। समस्त संसारमें वे ही व्याप्त हो रहे हैं। वे सबके साक्षी तथा निरञ्जन हैं। वे ही भिन्न और अभिन्न रूपमें स्थित परमेश्वर हैं। उन्हींकी शक्ति महामाया है, जो जगत्की सत्ताका विश्वास धारण कराती है। विश्वकी उत्पत्तिका आदिकारण होनेसे विद्वान् पुरुष उसे प्रकृति कहते हैं। आदिसृष्टिके समय लोकरचनाके लिये उद्यत हुए भगवान् महाविष्णुके प्रकृति, पुरुष और काल—ये तीन रूप प्रकट होते हैं। शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्रह्मरूपसे जिसका साक्षात्कार करते हैं, जो विशुद्ध परम धाम कहलाता है, वही विष्णुका परम पद है। इसी प्रकार वे शुद्ध, अक्षर, अनन्त परमेश्वर ही कालरूपमें स्थित हैं। वे ही सत्त्व, रज, तम-रूप तीनों गुणोंमें विराज रहे हैं तथा गुणोंके आधार भी वे ही हैं। वे सर्वव्यापी परमात्मा ही इस जगत्के आदि-स्रष्टा हैं। जगद्गुरु पुरुषोत्तमके समीप स्थित हुई प्रकृति जब क्षोभ (चञ्चलता) को प्राप्त हुई, तो उससे महत्तत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ; जिसे समष्टि-बुद्धि भी कहते हैं। फिर उस महत्तत्त्वसे अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकारसे सूक्ष्म तन्मात्राएँ और एकादश इन्द्रियाँ प्रकट हुईं। तत्पश्चात् तन्मात्राओंसे पञ्च महाभूत प्रकट हुए, जो इस स्थूल जगत्के कारण हैं। नारदजी! उन भूतोंके नाम हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। ये क्रमशः एक-एकके कारण होते हैं।

तदनन्तर संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् ब्रह्माजीने तामस सर्गकी रचना की। तिर्यग् योनिवाले पशु पक्षी तथा मृग आदि जन्तुओंको उत्पन्न किया। उस सर्गको पुरुषार्थका साधक न मानकर ब्रह्माजीने अपने सनातन स्वरूपसे देवताओंको (सात्त्विक सर्गको) उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने मनुष्योंकी (राजस सर्गकी) सृष्टि की। इसके बाद दक्ष आदि पुत्रोंको जन्म दिया, जो सृष्टिके कार्यमें तत्पर हुए। ब्रह्माजीके इन पुत्रोंसे देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् भरा हुआ है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक—ये सात लोक क्रमशः एकके ऊपर एक स्थित हैं। विप्रवर! अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल—ये सात पाताल क्रमशः एकके नीचे एक स्थित हैं। इन सब लोकोंमें रहनेवाले लोकपालोंको भी ब्रह्माजीने उत्पन्न किया। भिन्न-भिन्न देशोंके कुल पर्वतों और नदियोंकी भी सृष्टि की तथा वहाँके निवासियोंके लिये जीविका आदि सब आवश्यक वस्तुओंकी भी यथायोग्य व्यवस्था की। इस पृथ्वीके मध्यभागमें मेरु पर्वत है, जो समस्त देवताओंका निवासस्थान है। जहाँ पृथ्वीकी अन्तिम सीमा है, वहाँ लोकालोक पर्वतकी स्थिति है। मेरु तथा लोकालोक पर्वतके बीचमें सात समुद्र और सात द्वीप हैं। विप्रवर! प्रत्येक द्वीपमें सात-सात मुख्य पर्वत तथा निरन्तर जल प्रवाहित करनेवाली अनेक विख्यात नदियाँ भी हैं। वहाँके निवासी मनुष्य देवताओंके समान तेजस्वी होते हैं। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर—ये सात द्वीपोंके नाम हैं। वे सब-की-सब देवभूमियाँ हैं। ये सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृत, दधि, दुग्ध तथा स्वादु जलसे भरे हुए वे समुद्र उन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इन द्वीपों और समुद्रोंको क्रमशः पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर दूने विस्तारवाले जानना चाहिये। ये सब लोकालोक पर्वततक स्थित हैं। क्षार समुद्रसे उत्तर और हिमालय पर्वतसे दक्षिणके प्रदेशको 'भारतवर्ष' समझना चाहिये। वह समस्त कर्मोंका फल देनेवाला है।

नारदजी! भारतवर्षमें मनुष्य जो सात्त्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकारके कर्म करते हैं, उनका फल भोगभूमियोंमें क्रमशः भोगा जाता है। विप्रवर! भारतवर्षमें किया हुआ जो शुभ अथवा अशुभ कर्म है, उसका क्षणभङ्गुर (बचा हुआ) फल जीवोंद्वारा अन्यत्र भोगा जाता है। आज भी देवतालोग भारतभूमिमें जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं। वे सोचते हैं 'हमलोग कब संचित किये हुए महान् अक्षय, निर्मल एवं शुभ पुण्यके फलस्वरूप भारतवर्षकी भूमिपर जन्म लेंगे और कब वहाँ महान् पुण्य करके परम पदको प्राप्त होंगे। अथवा वहाँ नाना प्रकारके दान, भाँति-भाँतिके यज्ञ या तपस्याके द्वारा जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना करके उनके नित्यानन्दमय अनामय पदको कब प्राप्त कर लेंगे।' नारदजी! जो भारतभूमिमें जन्म लेकर भगवान् विष्णुकी आराधनामें लग जाता है, उसके समान पुण्यात्मा तीनों लोकोंमें कोई नहीं है। भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन जिसका स्वभाव बन जाता है, जो भगवद्भक्तोंका प्रिय होता है अथवा जो महापुरुषोंकी सेवा-शुश्रूषा करता है, वह देवताओंके लिये भी वन्दनीय है। जो नित्य भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर है अथवा हरि-भक्तोंके

नहीं है। जिनसे पर या अपर कोई वस्तु नहीं है तथा जिनसे अत्यन्त लघु और महान् भी कोई नहीं है· उन्हीं भगवान् विष्णुने इस विचित्र विश्वको व्याप्त कर रक्खा है, स्तुति करने योग्य उन देवाधिदेव श्रीहरिको सदा प्रणाम करना चाहिये *।

श्रद्धा-भक्ति, वर्णाश्रमोचित आचार तथा सत्सङ्गकी महिमा, मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे संतुष्ट होकर भगवान्‌का मुनिको दर्शन तथा वरदान देना

श्रीसनकजी कहते हैं—नारद ! श्रद्धापूर्वक आचरणमें लाये हुए सब धर्म मनोवाञ्छित फल देनेवाले होते हैं। श्रद्धासे सब कुछ सिद्ध होता है और श्रद्धासे ही भगवान् श्रीहरि संतुष्ट होते हैं †। भक्तियोगका साधन भक्तिपूर्वक ही करना चाहिये तथा सत्कर्मोंका अनुष्ठान भी श्रद्धा-भक्तिसे ही करना चाहिये। विप्रवर नारद ! श्रद्धाहीन कर्म कभी सिद्ध नहीं होते। जैसे सूर्यका प्रकाश समस्त जीवोंकी चेष्टामें कारण होता है, उसी प्रकार भक्ति सम्पूर्ण सिद्धियोंका परम कारण है। जैसे जल सम्पूर्ण लोकोंका जीवन माना गया है, उसी प्रकार भक्ति सब प्रकारकी सिद्धियोंका जीवन है। जैसे सब जीव-जन्तु पृथ्वीका आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार भक्तिका सहारा लेकर सब कार्योंका साधन करना चाहिये। श्रद्धालु पुरुषको धर्मका लाभ होता है, श्रद्धालु ही धन पाता है, श्रद्धासे ही कामनाओंकी सिद्धि होती है तथा श्रद्धालु पुरुष ही मोक्ष पाता है ‡। मुनिश्रेष्ठ ! दान, तपस्या अथवा बहुत दक्षिणावाले यज्ञ भी यदि भक्तिसे रहित हैं तो उनके द्वारा भगवान् विष्णु संतुष्ट नहीं होते हैं। मेरु पर्वतके बराबर सुवर्णकी करोड़ों सहस्र राशियोंका दान भी यदि बिना श्रद्धा-भक्तिके किया जाय तो वह निष्फल होता है। बिना भक्ति जो तपस्या की जाती है, वह केवल शरीरको सुखाना मात्र है; बिना भक्ति जो हविष्यका हवन किया जाता है, वह राखमें डाली हुई आहुतिके समान व्यर्थ है। श्रद्धा-भक्तिके साथ मनुष्य जो कुछ थोड़ा-सा भी सत्कर्म करता है, वह उसे अनन्त कालतक अक्षय सुख देनेवाला होता है। ब्रह्मन् ! वेदोक्त अश्वमेध यज्ञका एक सहस्र बार अनुष्ठान क्यों न किया जाय, यदि वह श्रद्धा-भक्तिसे रहित है तो सब-का-सब निष्फल होता है। भगवान्‌की उत्तम भक्ति मनुष्योंके लिये कामधेनुके समान मानी गयी है; उसके रहते हुए भी अज्ञानी मनुष्य संसाररूपी विषका पान करते हैं, यह कितने आश्चर्यकी बात है ! ब्रह्मपुत्र नारदजी ! इस असार संसारमें ये तीन बातें ही सार हैं—'भगवद्भक्तोंका सङ्ग, भगवान् विष्णुकी भक्ति और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहन करनेका स्वभाव § । ब्रह्मन् ! जिनके मनमें दूसरोंके दोष देखनेकी प्रवृत्ति है, उनके किये हुए भजन-दान आदि सभी कर्मोंको निष्फल जानो। भगवान् विष्णु उनसे बहुत दूर हैं। जो दूसरोंकी सम्पत्ति देखकर मन-ही-मन संतप्त होते हैं, जिनका चित्त पाखण्डपूर्ण आचारोंमें ही लगता है, वे व्यर्थ कर्म करनेवाले हैं। भगवान् श्रीहरि उनसे बहुत दूर हैं। जो बड़े-बड़े धर्मोंके विषयमें प्रश्न करते हैं, किंतु उन धर्मोंको झूठा बताते हैं और धर्म-कर्मके विषयमें जिनका मन श्रद्धा-भक्तिसे रहित है, ऐसे लोगोंसे भगवान् विष्णु बहुत दूर हैं। धर्मका प्रतिपादन वेदमें किया गया है और वेद साक्षात् परम पुरुष नारायणका

---

* वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरं तप.। वासुदेवपरं ज्ञान वासुदेवपरा गतिः ॥
वासुदेवात्मक सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त तस्मादन्यन्न विद्यते ॥
स एव धाता त्रिपुरान्तकश्च स एव देवासुरयज्ञरूपः। स एव ब्रह्माण्डमिदं ततोऽन्यन्न किंचिदस्ति व्यतिरिक्तरूपम् ॥
यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मादणीयान्न तथा महीयान्। व्याप्तं हि तेनेदमिदं विचित्रं तं देवदेवं प्रणमेत्समीड्यम् ॥
(३। ८०—८३)

† श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदा। श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरि.॥ (४। १)

‡ श्रद्धावाँल्लभते धर्मं श्रद्धावानर्थमाप्नुयात्। श्रद्धया साध्यते कामः श्रद्धावान् मोक्षमाप्नुयात् ॥ (४। ६)

§ हरिभक्ति. परा नृणां कामधेनूपमा स्मृता। तस्यां सत्यां पिबन्त्यज्ञा. संसारगरलं ह्यहो ॥
असारभूते संसारे सारमेतदजात्मज। भगवद्भक्तसङ्गश्च हरिभक्तिस्तितिक्षुता ॥
(४। १२-१३)

नहीं है। जिनसे पर या अपर कोई वस्तु नहीं है तथा जिनसे अत्यन्त लघु और महान् भी कोई नहीं है· उन्हीं भगवान् विष्णुने इस विचित्र विश्वको व्याप्त कर रक्खा है, स्तुति करने योग्य उन देवाधिदेव श्रीहरिको सदा प्रणाम करना चाहिये *।

श्रद्धा-भक्ति, वर्णाश्रमोचित आचार तथा सत्सङ्गकी महिमा, मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे संतुष्ट होकर भगवान्‌का मुनिको दर्शन तथा वरदान देना

श्रीसनकजी कहते हैं—नारद ! श्रद्धापूर्वक आचरणमें लाये हुए सब धर्म मनोवाञ्छित फल देनेवाले होते हैं। श्रद्धासे सब कुछ सिद्ध होता है और श्रद्धासे ही भगवान् श्रीहरि संतुष्ट होते हैं †। भक्तियोगका साधन भक्तिपूर्वक ही करना चाहिये तथा सत्कर्मोंका अनुष्ठान भी श्रद्धा-भक्तिसे ही करना चाहिये। विप्रवर नारद ! श्रद्धाहीन कर्म कभी सिद्ध नहीं होते। जैसे सूर्यका प्रकाश समस्त जीवोंकी चेष्टामें कारण होता है, उसी प्रकार भक्ति सम्पूर्ण सिद्धियोंका परम कारण है। जैसे जल सम्पूर्ण लोकोंका जीवन माना गया है, उसी प्रकार भक्ति सब प्रकारकी सिद्धियोंका जीवन है। जैसे सब जीव-जन्तु पृथ्वीका आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार भक्तिका सहारा लेकर सब कार्योंका साधन करना चाहिये। श्रद्धालु पुरुषको धर्मका लाभ होता है, श्रद्धालु ही धन पाता है, श्रद्धासे ही कामनाओंकी सिद्धि होती है तथा श्रद्धालु पुरुष ही मोक्ष पाता है ‡। मुनिश्रेष्ठ ! दान, तपस्या अथवा बहुत दक्षिणावाले यज्ञ भी यदि भक्तिसे रहित हैं तो उनके द्वारा भगवान् विष्णु संतुष्ट नहीं होते हैं। मेरु पर्वतके बराबर सुवर्णकी करोड़ों सहस्र राशियोंका दान भी यदि बिना श्रद्धा-भक्तिके किया जाय तो वह निष्फल होता है। बिना भक्ति जो तपस्या की जाती है, वह केवल शरीरको सुखाना मात्र है; बिना भक्ति जो हविष्यका हवन किया जाता है, वह राखमें डाली हुई आहुतिके समान व्यर्थ है। श्रद्धा-भक्तिके साथ मनुष्य जो कुछ थोड़ा-सा भी सत्कर्म करता है, वह उसे अनन्त कालतक अक्षय सुख देनेवाला होता है। ब्रह्मन् ! वेदोक्त अश्वमेध यज्ञका एक सहस्र बार अनुष्ठान क्यों न किया जाय, यदि वह श्रद्धा-भक्तिसे रहित है तो सब-का-सब निष्फल होता है। भगवान्‌की उत्तम भक्ति मनुष्योंके लिये कामधेनुके समान मानी गयी है; उसके रहते हुए भी अज्ञानी मनुष्य संसाररूपी विषका पान करते हैं, यह कितने आश्चर्यकी बात है ! ब्रह्मपुत्र नारदजी ! इस असार संसारमें ये तीन बातें ही सार हैं—'भगवद्भक्तोंका सङ्ग, भगवान् विष्णुकी भक्ति और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहन करनेका स्वभाव § । ब्रह्मन् ! जिनके मनमें दूसरोंके दोष देखनेकी प्रवृत्ति है, उनके किये हुए भजन-दान आदि सभी कर्मोंको निष्फल जानो। भगवान् विष्णु उनसे बहुत दूर हैं। जो दूसरोंकी सम्पत्ति देखकर मन-ही-मन संतप्त होते हैं, जिनका चित्त पाखण्डपूर्ण आचारोंमें ही लगता है, वे व्यर्थ कर्म करनेवाले हैं। भगवान् श्रीहरि उनसे बहुत दूर हैं। जो बड़े-बड़े धर्मोंके विषयमें प्रश्न करते हैं, किंतु उन धर्मोंको झूठा बताते हैं और धर्म-कर्मके विषयमें जिनका मन श्रद्धा-भक्तिसे रहित है, ऐसे लोगोंसे भगवान् विष्णु बहुत दूर हैं। धर्मका प्रतिपादन वेदमें किया गया है और वेद साक्षात् परम पुरुष नारायणका

---

* वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरं तपः। वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरा गतिः॥
वासुदेवात्मकं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तस्मादन्यन्न विद्यते॥
स एव धाता त्रिपुरान्तकश्च स एव देवासुरयज्ञरूपः। स एव ब्रह्माण्डमिदं ततोऽन्यन्न किंचिदस्ति व्यतिरिक्तरूपम्॥
यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मादणीयान्न तथा महीयान्। व्याप्तं हि तेनेदमिदं विचित्रं तं देवदेवं प्रणमेत्समीड्यम्॥
(३। ८०—८३)

† श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदाः। श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरिः॥ (४। १)

‡ श्रद्धावाँल्लभते धर्मं श्रद्धावानर्थमाप्नुयात्। श्रद्धया साध्यते कामः श्रद्धावान् मोक्षमाप्नुयात्॥ (४। ६)

§ हरिभक्तिः परा नृणां कामधेनूपमा स्मृता। तस्यां सत्यां पिबन्त्यज्ञाः संसारगरलं ह्यहो॥
असारभूते संसारे सारमेतदजात्मज। भगवद्भक्तसङ्गश्च हरिभक्तिस्तितिक्षुता॥
(४। १२-१३)

सनातन भगवान् विष्णु हैं, वे ही जगत्-रूपमें प्रकट होते हैं। इस जगत्के स्रष्टा भी वे ही हैं। भगवान् शिव तथा ब्रह्माजी भी उन्हींके स्वरूप हैं। वे प्रलयकालमें भयंकर रुद्ररूपसे प्रकट होते हैं और समस्त ब्रह्माण्डको अपना ग्रास बनाते हैं। स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत् नष्ट होकर जब एकार्णवके जलमें विलीन हो जाता है, उस समय भगवान् विष्णु ही वटवृक्षके पत्रपर शिशुरूपमें शयन करते हैं। उनका एक-एक रोम असंख्य ब्रह्मा आदिसे विभूषित होता है। महाप्रलयके समय जब भगवान् वटपत्रपर सो रहे थे, उस समय उसी स्थानपर भगवान् नारायणके परम भक्त महाभाग मार्कण्डेयजी भगवान्की विविध लीलाओंका दर्शन करते हुए खड़े थे।

ऋषियोंने पूछा—मुने! हमने पहलेसे सुन रक्खा है कि उस महाभयंकर प्रलयकालमें स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी नष्ट हो गये थे और एकमात्र भगवान् श्रीहरि ही विराजमान थे। जब समस्त चराचर जगत् नष्ट होकर एकार्णवमें विलीन हो चुका था, तब सबको अपना ग्रास बनानेवाले श्रीहरिने मार्कण्डेय मुनिको किस लिये बचा रक्खा था? सूतजी! इस विषयको लेकर हमारे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है। अतः इसका निवारण कीजिये। भगवान् विष्णुकी सुयश-सुधाका पान करनेमें किसे आलस्य हो सकता है!

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! पूर्वकालमें मृकण्डु नामसे विख्यात एक महाभाग मुनि हो गये हैं। उन महातपस्वी महर्षिने शालग्राम नामक महान् तीर्थमें बड़ी भारी तपस्या की। ब्रह्मन्! उन्होंने दस हजार युगोंतक सनातन ब्रह्मका गुणगान करते हुए उपवास किया। वे बड़े क्षमाशील, सत्यप्रतिज्ञ तथा जितेन्द्रिय थे। समस्त प्राणियोंको अपने समान देखते थे। उनके मनमें विषय-भोगोंके लिये तनिक भी कामना नहीं थी। वे सम्पूर्ण जीवोंके हितैषी तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले थे। उन्होंने उक्त तीर्थमें बड़ी भारी तपस्या की। उनकी तपस्यासे शङ्कित हो इन्द्र आदि सब देवता उस समय अनामय परमेश्वर भगवान् नारायणकी शरणमें गये। क्षीरसागरके उत्तर तटपर जाकर देवताओंने देवदेवेश्वर जगद्गुरु पद्मनाभका इस प्रकार स्तवन किया।

देवता बोले—हे अविनाशी नारायण! हे अनन्त! हे शरणागतपालक! हम सब देवता मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे भयभीत हो आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये। देवाधिदेवेश्वर! आपकी जय हो। शङ्ख और गदा धारण करनेवाले देवता! आपकी जय हो। यह सम्पूर्ण जगत् आपका स्वरूप है। आपको नमस्कार है। आप ही ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके आदि कारण हैं। आपको नमस्कार है। देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। लोकपाल! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाले! आपको नमस्कार है। लोकसाक्षिन्! आपको नमस्कार है। ध्यानगम्य! आपको नमस्कार है। ध्यानके हेतुभूत! ध्यानस्वरूप तथा ध्यानके साक्षी परमेश्वर! आपको नमस्कार है। पृथिवी आदि पाँच भूत आपके ही स्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप चैतन्यरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप सबसे ज्येष्ठ हैं, आपको नमस्कार है। आप शुद्धस्वरूप हैं, निर्गुण हैं तथा गुणरूप हैं; आपको नमस्कार है। निराकार-साकार तथा अनेक रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। गौओं तथा ब्राह्मणोंके हितैषी! आपको नमस्कार है। जगत्का हित-साधन करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप गोविन्द! आपको बार-बार नमस्कार है।

इस प्रकार देवताओंद्वारा की हुई स्तुतिको सुनकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनके नेत्र खिले हुए कमलदलके समान शोभा पा रहे थे। उनका करोड़ों सूर्योंके समान प्रभाव था। सब प्रकारके दिव्य आभूषणोंसे वे युक्त थे। भगवान्के वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न सुशोभित हो रहा था। वे पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनकी आकृति बड़ी सौम्य थी। बायें कंधेपर सुनहले रंगका यज्ञोपवीत चमक रहा था। बड़े-बड़े महर्षि उनकी स्तुति कर रहे थे तथा श्रेष्ठ पार्षद उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े थे। उनका दर्शन करके वे सम्पूर्ण देवता उनके तेजके समक्ष फीके पड़ गये और बड़ी प्रसन्नताके साथ पृथिवीपर लेटकर अपने आठों अङ्गोंसे उन्हें प्रणाम किया। तब प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु प्रणाम करनेवाले इन्द्रादि देवताओंको आनन्दित करते हुए गम्भीर वाणीमें बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—देवताओ! मैं जानता हूँ, मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे तुम्हारे मनमें बड़ा खेद हो रहा है, परंतु वे महर्षि साधुपुरुषोंमें अग्रगण्य हैं। अतः तुम्हें कष्ट नहीं देंगे। श्रेष्ठ देवताओ! जो साधुपुरुष हैं, वे सम्पत्तिमें हो या विपत्तिमें, किसी प्रकार भी दूसरेको कष्ट नहीं देते। वे स्वप्नमें भी ऐसा नहीं करते। सज्जनो! जो मानव सम्पूर्ण जगत्का हित करनेवाला, दूसरोंके दोष न देखनेवाला तथा ईर्ष्यारहित है, वह इहलोक और परलोकमें

गजानन भगवान् विष्णु हैं, वे ही जगत्-रूपमें प्रकट होते हैं। इस जगत्के स्रष्टा भी वे ही हैं। भगवान् शिव तथा ब्रह्माजी भी उन्हींके स्वरूप हैं। वे प्रलयकालमें भयंकर रुद्ररूपसे प्रकट होते हैं और समस्त ब्रह्माण्डको अपना ग्रास बनाते हैं। स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत् नष्ट होकर जब एकार्णवके जलमें विलीन हो जाता है, उस समय भगवान् विष्णु ही वटवृक्षके पत्रपर शिशुरूपमें शयन करते हैं। उनका एक-एक रोम असंख्य ब्रह्मा आदिसे विभूषित होता है। महाप्रलयके समय जब भगवान् वटपत्रपर सो रहे थे, उस समय उसी स्थानपर भगवान् नारायणके परम भक्त महाभाग मार्कण्डेयजी भगवान्की विविध लीलाओंका दर्शन करते हुए खड़े थे।

ऋषियोंने पूछा—मुने! हमने पहलेसे सुन रक्खा है कि उस महाभयंकर प्रलयकालमें स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी नष्ट हो गये थे और एकमात्र भगवान् श्रीहरि ही विराजमान थे। जब समस्त चराचर जगत् नष्ट होकर एकार्णवमें विलीन हो चुका था, तब सबको अपना ग्रास बनानेवाले श्रीहरिने मार्कण्डेय मुनिको किस लिये बचा रक्खा था? सूतजी! इस विषयको लेकर हमारे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है। अतः इसका निवारण कीजिये। भगवान् विष्णुकी सुयश-सुधाका पान करनेमें किसे आलस्य हो सकता है!

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! पूर्वकालमें मृकण्डु नामसे विख्यात एक महाभाग मुनि हो गये हैं। उन महातपस्वी महर्षिने शालग्राम नामक महान् तीर्थमें बड़ी भारी तपस्या की। ब्रह्मन्! उन्होंने दस हजार युगोंतक सनातन ब्रह्मका गुण-गान करते हुए उपवास किया। वे बड़े क्षमाशील, सत्यप्रतिज्ञ तथा जितेन्द्रिय थे। समस्त प्राणियोंको अपने समान देखते थे। उनके मनमें विषय-भोगोंके लिये तनिक भी कामना नहीं थी। वे सम्पूर्ण जीवोंके हितैषी तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले थे। उन्होंने उक्त तीर्थमें बड़ी भारी तपस्या की। उनकी तपस्यासे शङ्कित हो इन्द्र आदि सब देवता उस समय अनामय परमेश्वर भगवान् नारायणकी शरणमें गये। क्षीरसागरके उत्तर तटपर जाकर देवताओंने देवदेवेश्वर जगद्गुरु पद्मनाभका इस प्रकार स्तवन किया।

देवता बोले—हे अविनाशी नारायण! हे अनन्त! हे शरणागतपालक! हम सब देवता मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे भयभीत हो आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये। देवाधिदेवेश्वर! आपकी जय हो। शङ्ख और गदा धारण करनेवाले देवता! आपकी जय हो। यह सम्पूर्ण जगत् आपका स्वरूप है। आपको नमस्कार है। आप ही ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके आदि कारण हैं। आपको नमस्कार है। देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। लोकपाल! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाले! आपको नमस्कार है। लोकसाक्षिन्! आपको नमस्कार है। ध्यानगम्य! आपको नमस्कार है। ध्यानके हेतुभूत! ध्यानस्वरूप तथा ध्यानके साक्षी परमेश्वर! आपको नमस्कार है। पृथिवी आदि पाँच भूत आपके ही स्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप चैतन्यरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप सबसे ज्येष्ठ हैं, आपको नमस्कार है। आप शुद्धस्वरूप हैं, निर्गुण हैं तथा गुणरूप हैं; आपको नमस्कार है। निराकार-साकार तथा अनेक रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। गौओं तथा ब्राह्मणोंके हितैषी! आपको नमस्कार है। जगत्का हित-साधन करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप गोविन्द! आपको बार-बार नमस्कार है।

इस प्रकार देवताओंद्वारा की हुई स्तुतिको सुनकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनके नेत्र खिले हुए कमलदलके समान शोभा पा रहे थे। उनका करोड़ों सूर्योंके समान प्रभाव था। सब प्रकारके दिव्य आभूषणोंसे वे युक्त थे। भगवान्के वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न सुशोभित हो रहा था। वे पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनकी आकृति बड़ी सौम्य थी। बायें कंधेपर सुनहले रंगका यज्ञोपवीत चमक रहा था। बड़े-बड़े महर्षि उनकी स्तुति कर रहे थे तथा श्रेष्ठ पार्षद उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े थे। उनका दर्शन करके वे सम्पूर्ण देवता उनके तेजके समक्ष फीके पड़ गये और बड़ी प्रसन्नताके साथ पृथिवीपर लेटकर अपने आठों अङ्गोंसे उन्हें प्रणाम किया। तब प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु प्रणाम करनेवाले इन्द्रादि देवताओंको आनन्दित करते हुए गम्भीर वाणीमें बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—देवताओ! मैं जानता हूँ, मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे तुम्हारे मनमें बड़ा खेद हो रहा है, परंतु वे महर्षि साधुपुरुषोंमें अग्रगण्य हैं। अतः तुम्हें कष्ट नहीं देंगे। श्रेष्ठ देवताओ! जो साधुपुरुष हैं, वे सम्पत्तिमें हो या विपत्तिमें, किसी प्रकार भी दूसरेको कष्ट नहीं देते। वे स्वप्नमें भी ऐसा नहीं करते। सज्जनो! जो मानव सम्पूर्ण जगत्का हित करनेवाला, दूसरोंके दोष न देखनेवाला तथा ईर्ष्यारहित है, वह इहलोक और परलोकमें

अच्युत ! भगवानकी मनुष्य भी आपके नामोंका स्मरण करनेमात्रसे आपके परम पदको प्राप्त कर लेते हैं; फिर जो आपका दर्शन कर लेता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है ?

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन् ! तुमने ठीक कहा है। विद्वन् ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, मेरा दर्शन कदापि व्यर्थ नहीं होगा। अतः तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर मैं तुम्हारे यहाँ (अंशरूपसे) समस्त गुणोंसे युक्त, रूपवान् तथा दीर्घजीवी पुत्रके रूपमें उत्पन्न होऊँगा। मुनिश्रेष्ठ ! जिसके कुलमें मेरा जन्म होता है, उसका समस्त कुल मोक्षको प्राप्त कर लेता है। मेरे प्रसन्न होनेपर तीनों लोकोंमें कौन-सा कार्य असाध्य है।

ऐसा कहकर देवदेवेश्वर भगवान् विष्णु मृकण्डु मुनिके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर वे मुनि तपस्यासे निवृत्त हो गये।

मार्कण्डेयजीको पिताका उपदेश, समय-निरूपण, मार्कण्डेयद्वारा भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का मार्कण्डेयजीको भगवद्भक्तोंके लक्षण बताकर वरदान देना

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन् ! पुराणोंमें यह सुना जाता है कि चिरञ्जीवी महामुनि मार्कण्डेयने इस जगत्‌के प्रलय-कालमें भगवान् विष्णुकी मायाका दर्शन किया था, अतः इस विषयमें कहिये।

श्रीसनकजीने कहा—नारदजी ! मैं उस सनातन कथाका वर्णन करूँगा, आप सावधान होकर सुनें। मार्कण्डेय मुनिसे सम्बन्ध रखनेवाली यह कथा भगवान् विष्णुकी भक्तिसे परिपूर्ण है। साधुशिरोमणि मृकण्डुने तपस्यासे निवृत्त होनेके बाद भार्यासे विवाह करके प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थधर्मका पालन आरम्भ किया। वे मन और इन्द्रियोंका संयम करके सदा प्रसन्न रहते और कृतार्थताका अनुभव करते थे। उनकी पत्नी बड़ी पवित्र, कार्यकुशल तथा निरन्तर पतिकी सेवामें तत्पर रहनेवाली थीं। वे मन, वाणी और शरीरसे भी पतिव्रत-धर्मका पालन करती थीं। समय आनेपर उन्होंने भगवान्‌के तेजोमय अंशसे युक्त गर्भ धारण किया और दस महीनेके बाद एक परम तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। महर्षि मृकण्डु उत्तम लक्षणोंसे सुशोभित पुत्रको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विधिपूर्वक मङ्गलमय जातकर्म-संस्कार सम्पन्न कराया। मुनिका वह पुत्र शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिन-दिन बढ़ने लगा। विप्रवर ! तदनन्तर पाँचवें वर्षमें प्रसन्नतापूर्वक पुत्रका उपनयन-संस्कार करके मुनिने उसे वैदिक-धर्म-संहिताकी शिक्षा दी और कहा—'बेटा ! ब्राह्मणोंका दर्शन होनेपर सदा विधिपूर्वक उन्हें नमस्कार करना चाहिये। तीनों समय सूर्यको जलाञ्जलि देकर उनकी पूजा करना और वेदोंके स्वाध्यायपूर्वक वेदोक्त धर्मका पालन करते रहना चाहिये। ब्रह्मचर्य तथा तपस्याके द्वारा सदा श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। दुष्ट पुरुषोंसे वार्तालाप आदि निषिद्ध कर्मको त्याग देना चाहिये। भगवान् विष्णुके भजनमें लगे हुए साधुपुरुषोंके साथ रहना चाहिये। किसीसे भी द्वेष रखना उचित नहीं है। सबके हितका साधन करना चाहिये। वत्स ! यज्ञ, अध्ययन और दान—ये कर्म तुम्हें सदा करने चाहिये।

इस प्रकार पिताका आदेश पाकर मुनीश्वर मार्कण्डेय नित्य-निरन्तर भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए स्वधर्मका पालन करने लगे। महाभाग मार्कण्डेय बड़े धर्मानुरागी और दयालु थे। वे मनको वशमें रखनेवाले और सत्यप्रतिज्ञ थे। वे जितेन्द्रिय, शान्त, महाज्ञानी और सम्पूर्ण तत्त्वोंके मर्मज्ञ थे। उन्होंने भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये बड़ी भारी तपस्या की। बुद्धिमान् मार्कण्डेयके आराधना करनेपर जगदीश्वर भगवान् विष्णुने उन्हें पुराणसंहिता बनानेका वर दिया। चिरञ्जीवी मार्कण्डेयजी सुदर्शनचक्रधारी देवाधिदेव भगवान् विष्णुके महान् भक्त और उनके तेजके अंश (अ० ५ श्लो० ६) थे। ब्रह्मन् ! यह संसार जब एकार्णवके जलमें विलीन हो गया, उस समय भी उन्हें अपना प्रभाव दिखानेके लिये भगवान् विष्णुने उनका संहार नहीं किया। मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय बड़े बुद्धिमान् और विष्णुभक्त थे। भगवान् श्रीहरि स्वयं जबतक सोते रहे, तबतक मार्कण्डेयजी वहाँ खड़े रहे। उस समयका माप मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा बतायी गयी है। नारदजी ! तीस काष्ठाकी एक कला समझनी चाहिये। तीस कलाका एक क्षण होता है और छः क्षणोंकी

अच्युत ! मनाग्रतकी मनुष्य भी आपके नामोंका स्मरण करनेमात्रसे आपके परम पदको प्राप्त कर लेते हैं; फिर जो आपका दर्शन कर लेता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है !

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन् ! तुमने ठीक कहा है। विद्वन् ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, मेरा दर्शन कदापि व्यर्थ नहीं होगा। अतः तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर मैं तुम्हारे यहाँ (अंशरूपसे) समस्त गुणोंसे युक्त, रूपवान् तथा दीर्घजीवी पुत्रके रूपमें उत्पन्न होऊँगा। मुनिश्रेष्ठ ! जिसके कुलमें मेरा जन्म होता है, उसका समस्त कुल मोक्षको प्राप्त कर लेता है। मेरे प्रसन्न होनेपर तीनों लोकोंमें कौन-सा कार्य असाध्य है।

ऐसा कहकर देवदेवेश्वर भगवान् विष्णु मृकण्डु मुनिके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर वे मुनि तपस्यासे निवृत्त हो गये।

मार्कण्डेयजीको पिताका उपदेश, समय-निरूपण, मार्कण्डेयद्वारा भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का मार्कण्डेयजीको भगवद्भक्तोंके लक्षण बताकर वरदान देना

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन् ! पुराणोंमें यह सुना जाता है कि चिरञ्जीवी महामुनि मार्कण्डेयने इस जगत्‌के प्रलय-कालमें भगवान् विष्णुकी मायाका दर्शन किया था, अतः इस विषयमें कहिये।

श्रीसनकजीने कहा—नारदजी ! मैं उस सनातन कथाका वर्णन करूँगा, आप सावधान होकर सुनें। मार्कण्डेय मुनिसे सम्बन्ध रखनेवाली यह कथा भगवान् विष्णुकी भक्तिसे परिपूर्ण है। साधुशिरोमणि मृकण्डुने तपस्यासे निवृत्त होनेके बाद भार्यासे विवाह करके प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थधर्मका पालन आरम्भ किया। वे मन और इन्द्रियोंका संयम करके सदा प्रसन्न रहते और कृतार्थताका अनुभव करते थे। उनकी पत्नी बड़ी पवित्र, कार्यकुशल तथा निरन्तर पतिकी सेवामें तत्पर रहनेवाली थीं। वे मन, वाणी और शरीरसे भी पतिव्रत-धर्मका पालन करती थीं। समय आनेपर उन्होंने भगवान्‌के तेजोमय अंशसे युक्त गर्भ धारण किया और दस महीनेके बाद एक परम तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। महर्षि मृकण्डु उत्तम लक्षणोंसे सुशोभित पुत्रको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विधिपूर्वक मङ्गलमय जातकर्म-संस्कार सम्पन्न कराया। मुनिका वह पुत्र शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिन-दिन बढ़ने लगा। विप्रवर ! तदनन्तर पाँचवें वर्षमें प्रसन्नतापूर्वक पुत्रका उपनयन-संस्कार करके मुनिने उसे वैदिक-धर्म-संहिताकी शिक्षा दी और कहा—'बेटा ! ब्राह्मणोंका दर्शन होनेपर सदा विधिपूर्वक उन्हें नमस्कार करना चाहिये। तीनों समय सूर्यको जलाञ्जलि देकर उनकी पूजा करना और वेदोंके स्वाध्यायपूर्वक वेदोक्त धर्मका पालन करते रहना चाहिये। ब्रह्मचर्य तथा तपस्याके द्वारा सदा श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। दुष्ट पुरुषोंसे वार्तालाप आदि निषिद्ध कर्मको त्याग देना चाहिये। भगवान् विष्णुके भजनमें लगे हुए साधुपुरुषोंके साथ रहना चाहिये। किसीसे भी द्वेष रखना उचित नहीं है। सबके हितका साधन करना चाहिये। वत्स ! यज्ञ, अध्ययन और दान—ये कर्म तुम्हें सदा करने चाहिये।

इस प्रकार पिताका आदेश पाकर मुनीश्वर मार्कण्डेय नित्य-निरन्तर भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए स्वधर्मका पालन करने लगे। महाभाग मार्कण्डेय बड़े धर्मानुरागी और दयालु थे। वे मनको वशमें रखनेवाले और सत्यप्रतिज्ञ थे। वे जितेन्द्रिय, शान्त, महाज्ञानी और सम्पूर्ण तत्त्वोंके मर्मज्ञ थे। उन्होंने भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये बड़ी भारी तपस्या की। बुद्धिमान् मार्कण्डेयके आराधना करनेपर जगदीश्वर भगवान् विष्णुने उन्हें पुराणसंहिता बनानेका वर दिया। चिरञ्जीवी मार्कण्डेयजी सुदर्शनचक्रधारी देवाधिदेव भगवान् विष्णुके महान् भक्त और उनके तेजके अंश (अ० ५ श्लो० ६) थे। ब्रह्मन् ! यह संसार जब एकार्णवके जलमें विलीन हो गया, उस समय भी उन्हें अपना प्रभाव दिखानेके लिये भगवान् विष्णुने उनका संहार नहीं किया। मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय बड़े बुद्धिमान् और विष्णुभक्त थे। भगवान् श्रीहरि स्वयं जबतक सोते रहे, तबतक मार्कण्डेयजी वहाँ खड़े रहे। उस समयका माप मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा बतायी गयी है। नारदजी ! तीस काष्ठाकी एक कला समझनी चाहिये। तीस कलाका एक क्षण होता है और छः क्षणोंकी

भगवान् इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन आदिदेव भगवान् जनार्दनको मैं नमस्कार करता हूँ। परेश ! परमानन्द ! शरणागतवत्सल ! दयासागर ! मेरी रक्षा कीजिये । मन वाणीसे अतीत परमेश्वर ! आपको नमस्कार है ।

विप्रवर नारदजी ! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले जगद्गुरु भगवान् विष्णु इस प्रकार स्तुति करनेवाले मार्कण्डेयजीसे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक बोले ।

श्रीभगवान्‌ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! संसारमें जो भक्त पुरुष मुझ भगवान्‌की भक्तिमें चित्त लगाये रहनेवाले हैं, उनपर संतुष्ट हो मैं सदा उनकी रक्षा करता हूँ, इसमें संदेह नहीं है । भगवद्भक्तरूपसे अपनेको छिपाकर मैं ही सदा सब लोकोंकी रक्षा करता हूँ ।

मार्कण्डेयजीने पूछा—भगवन् ! भगवद्भक्तके क्या लक्षण हैं ? किस कर्मसे मनुष्य भगवद्भक्त होते हैं, यह मैं सुनना चाहता हूँ; क्योंकि इस बातको जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है ।

श्रीभगवान्‌ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! भगवद्भक्तोंके लक्षण बतलाता हूँ, सुनो । उनके प्रभाव अथवा महिमाका वर्णन करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता । जो सम्पूर्ण जीवोंके हितैषी हैं, जिनमें दूसरोंके दोष देखनेकी आदत नहीं है, जो ईर्ष्यारहित, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, निष्काम एवं शान्त हैं, वे ही भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं । जो मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा दूसरोंको कभी पीड़ा नहीं देते तथा जिनमें संग्रह अथवा कुछ ग्रहण करनेका स्वभाव नहीं है, वे भगवद्भक्त माने गये हैं । जिनकी सात्त्विक बुद्धि उत्तम भगवत्सम्बन्धी कथा-वार्ता सुननेमें स्वभावतः लगी रहती है तथा जो भगवान् और उनके भक्तोंके भी भक्त होते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त समझे जाते हैं । जो श्रेष्ठ मानव माता और पिताके प्रति गङ्गा और विश्वनाथका भाव रखकर उनकी सेवा करते हैं, वे भी श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । जो भगवान्‌के पूजनमें रत हैं, जो इसमें सहायक होते हैं तथा जो भगवान्‌की पूजा देखकर उसका अनुमोदन करते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं । जो व्रतियों तथा यतियोंकी सेवामें संलग्न तथा परायी निन्दासे दूर रहते हैं, वे श्रेष्ठ भागवत हैं । जो श्रेष्ठ मनुष्य सबके लिये हितकारक वचन बोलते हैं और सबके गुणोंको ही ग्रहण करनेवाले हैं, वे इस लोकमें भगवद्भक्त माने गये हैं । जो श्रेष्ठ मानव सब जीवोंको अपने ही समान देखते तथा शत्रु और मित्रमें भी समान भाव रखते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं । जो धर्मशास्त्रके वक्ता, सत्यवादी तथा साधुपुरुषोंके सेवक हैं, वे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ कहे गये हैं । जो पुराणोंकी व्याख्या करते, जो पुराण सुनते और पुराण-वक्तामें श्रद्धा-भक्ति रखते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । जो मनुष्य सदा गौओं तथा ब्राह्मणोंकी सेवा करते और तीर्थयात्रामें लगे रहते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य दूसरोंका अभ्युदय देखकर प्रसन्न होते और भगवन्नामका जप करते रहते हैं, वे उत्तम भागवत हैं । जो बगीचे लगाते, तालाब और पोखरोंकी रक्षा करते तथा बावड़ी और कुएँ बनवाते हैं, वे उत्तम भक्त हैं । जो तालाब और देवमन्दिर बनवाते तथा गायत्री-मन्त्रके जपमें संलग्न रहते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त हैं । जो हरिनामका आदर करते, उन्हें सुनकर अत्यन्त हर्षमें भर जाते और पुलकित हो उठते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । जो मनुष्य तुलसीका बगीचा देखकर उसको नमस्कार करते और कानोंमें तुलसी काष्ठ धारण करते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं । जो तुलसीकी गन्ध सूँघकर तथा उसकी जड़के समीपकी मिट्टीको सूँघकर प्रसन्न होते हैं, वे भी श्रेष्ठ भक्त हैं । जो वर्णाश्रम-धर्मके पालनमें तत्पर, अतिथियोंका सत्कार करनेवाले तथा वेदार्थके वक्ता होते हैं, वे श्रेष्ठ भागवत माने गये हैं । जो भगवान् शिवसे प्रेम रखनेवाले, शिवके चिन्तनमें ही आसक्त रहनेवाले तथा शिवके चरणोंकी पूजामें तत्पर एवं त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले हैं, वे भी श्रेष्ठ भक्त हैं । जो भगवान् विष्णु तथा परमात्मा शिवके नाम लेते तथा रुद्राक्षकी मालासे विभूषित होते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । जो बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा महादेवजी अथवा भगवान् विष्णुका उत्तम भक्तिसे यजन करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । जो पढ़े हुए शास्त्रोंका दूसरोंके हितके लिये उपदेश करते और सर्वत्र गुण ही ग्रहण करते हैं, वे उत्तम भक्त माने गये हैं । परमेश्वर शिव तथा परमात्मा विष्णुमें जो समबुद्धिसे प्रवृत्त होते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त माने गये हैं । जो शिवकी प्रसन्नताके लिये अग्निहोत्रमें तत्पर पञ्चाक्षर मन्त्रके जपमें संलग्न तथा शिवके ध्यानमें अनुरक्त रहते हैं, वे उत्तम भागवत हैं । जो जलदानमें तत्पर, अन्नदानमें संलग्न तथा एकादशीव्रतके पालनमें लगे रहनेवाले हैं, वे श्रेष्ठ भक्त हैं । जो गोदान करते, कन्यादानमें तत्पर रहते और मेरी प्रसन्नताके लिये सत्कर्म करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । विप्रवर मार्कण्डेय ! यहाँपर कुछ ही भगवद्भक्तोंका वर्णन किया है । मैं भी सौ करोड़ वर्षोंमें भी

भगवान् इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन आदिदेव भगवान् जनार्दनको मैं नमस्कार करता हूँ। परेश ! परमानन्द ! शरणागतवत्सल ! दयासागर ! मेरी रक्षा कीजिये। मन-वाणीसे अतीत परमेश्वर ! आपको नमस्कार है।

विप्रवर नारदजी ! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले जगद्गुरु भगवान् विष्णु इस प्रकार स्तुति करनेवाले मार्कण्डेयजीसे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक बोले।

श्रीभगवान्‌ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! संसारमें जो भक्त पुरुष मुझ भगवान्‌की भक्तिमें चित्त लगाये रहनेवाले हैं, उनपर संतुष्ट हो मैं सदा उनकी रक्षा करता हूँ, इसमें संदेह नहीं है। भगवद्भक्तरूपसे अपनेको छिपाकर मैं ही सदा सब लोकोंकी रक्षा करता हूँ।

मार्कण्डेयजीने पूछा—भगवन् ! भगवद्भक्तके क्या लक्षण हैं ? किस कर्मसे मनुष्य भगवद्भक्त होते हैं, यह मैं सुनना चाहता हूँ; क्योंकि इस बातको जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।

श्रीभगवान्‌ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! भगवद्भक्तोंके लक्षण बतलाता हूँ, सुनो। उनके प्रभाव अथवा महिमाका वर्णन करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। जो सम्पूर्ण जीवोंके हितैषी हैं, जिनमें दूसरोंके दोष देखनेकी आदत नहीं है, जो ईर्ष्यारहित, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, निष्काम एवं शान्त हैं, वे ही भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। जो मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा दूसरोंको कभी पीड़ा नहीं देते तथा जिनमें संग्रह अथवा कुछ ग्रहण करनेका स्वभाव नहीं है, वे भगवद्भक्त माने गये हैं। जिनकी सात्त्विक बुद्धि उत्तम भगवत्सम्बन्धी कथा-वार्ता सुननेमें स्वभावतः लगी रहती है तथा जो भगवान् और उनके भक्तोंके भी भक्त होते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त समझे जाते हैं। जो श्रेष्ठ मानव माता और पिताके प्रति गङ्गा और विश्वनाथका भाव रखकर उनकी सेवा करते हैं, वे भी श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो भगवान्‌के पूजनमें रत हैं, जो इसमें सहायक होते हैं तथा जो भगवान्‌की पूजा देखकर उसका अनुमोदन करते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो व्रतियों तथा यतियोंकी सेवामें संलग्न तथा परायी निन्दासे दूर रहते हैं, वे श्रेष्ठ भागवत हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य सबके लिये हितकारक वचन बोलते हैं और सबके गुणोंको ही ग्रहण करनेवाले हैं, वे इस लोकमें भगवद्भक्त माने गये हैं। जो श्रेष्ठ मानव सब जीवोंको अपने ही समान देखते तथा शत्रु और मित्रमें भी समान भाव रखते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो धर्मशास्त्रके वक्ता, सत्यवादी तथा साधुपुरुषोंके सेवक हैं, वे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ कहे गये हैं। जो पुराणोंकी व्याख्या करते, जो पुराण सुनते और पुराण-वक्तामें श्रद्धा-भक्ति रखते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य सदा गौओं तथा ब्राह्मणोंकी सेवा करते और तीर्थयात्रामें लगे रहते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य दूसरोंका अभ्युदय देखकर प्रसन्न होते और भगवन्नामका जप करते रहते हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो बगीचे लगाते, तालाब और पोखरोंकी रक्षा करते तथा बावड़ी और कुएँ बनवाते हैं, वे उत्तम भक्त हैं। जो तालाब और देवमन्दिर बनवाते तथा गायत्री-मन्त्रके जपमें संलग्न रहते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त हैं। जो हरिनामका आदर करते, उन्हें सुनकर अत्यन्त हर्षमें भर जाते और पुलकित हो उठते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य तुलसीका बगीचा देखकर उसको नमस्कार करते और कानोंमें तुलसी काष्ठ धारण करते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो तुलसीकी गन्ध सूँघकर तथा उसकी जड़के समीपकी मिट्टीको सूँघकर प्रसन्न होते हैं, वे भी श्रेष्ठ भक्त हैं। जो वर्णाश्रम-धर्मके पालनमें तत्पर, अतिथियोंका सत्कार करनेवाले तथा वेदार्थके वक्ता होते हैं, वे श्रेष्ठ भागवत माने गये हैं। जो भगवान् शिवसे प्रेम रखनेवाले, शिवके चिन्तनमें ही आसक्त रहनेवाले तथा शिवके चरणोंकी पूजामें तत्पर एवं त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले हैं, वे भी श्रेष्ठ भक्त हैं। जो भगवान् विष्णु तथा परमात्मा शिवके नाम लेते तथा रुद्राक्षकी मालासे विभूषित होते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा महादेवजी अथवा भगवान् विष्णुका उत्तम भक्तिसे यजन करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो पढ़े हुए शास्त्रोंका दूसरोंके हितके लिये उपदेश करते और सर्वत्र गुण ही ग्रहण करते हैं, वे उत्तम भक्त माने गये हैं। परमेश्वर शिव तथा परमात्मा विष्णुमें जो समबुद्धिसे प्रवृत्त होते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त माने गये हैं। जो शिवकी प्रसन्नताके लिये अग्निहोत्रमें तत्पर पञ्चाक्षर मन्त्रके जपमें संलग्न तथा शिवके ध्यानमें अनुरक्त रहते हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो जलदानमें तत्पर, अन्नदानमें संलग्न तथा एकादशीव्रतके पालनमें लगे रहनेवाले हैं, वे श्रेष्ठ भक्त हैं। जो गोदान करते, कन्यादानमें तत्पर रहते और मेरी प्रसन्नताके लिये सत्कर्म करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। विप्रवर मार्कण्डेय ! यहाँपर कुछ ही भगवद्भक्तोंका वर्णन किया है। मैं भी सौ करोड़ वर्षोंमें भी

चले जाते हैं। ब्रह्मन्! जो गङ्गाजीका स्मरण करता है, उसने सब तीर्थोंमें स्नान और सभी पुण्य-क्षेत्रोंमें निवास कर लिया—इसमें संशय नहीं है। गङ्गा-स्नान किये हुए मनुष्यको देखकर पापी भी स्वर्गलोकका अधिकारी हो जाता है। उसके अङ्गोंका स्पर्श करनेमात्रसे वह देवताओंका अधिपति हो जाता है। गङ्गा, तुलसी, भगवान्‌के चरणोंमें अविचल भक्ति तथा धर्मोपदेशक सद्गुरुमें श्रद्धा—ये सब मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं*। उत्तम धर्मका उपदेश देनेवाले गुरुके चरणोंकी धूल, गङ्गाजीकी मृत्तिका तथा तुलसीवृक्षके मूलभागकी मिट्टीको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक अपने मस्तकपर धारण करता है, वह वैकुण्ठ धामको जाता है। जो मनुष्य मन-ही-मन यह अभिलाषा करता है कि मैं कब गङ्गाजीके समीप जाऊँगा और कब उनका दर्शन करूँगा, वह भी वैकुण्ठ धामको जाता है। ब्रह्मन्! दूसरी बातें बहुत कहनेसे क्या लाभ, साक्षात् भगवान् विष्णु भी सैकड़ों वर्षोंमें गङ्गाजीकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते। अहो! माया सारे जगत्‌को मोहमें डाले हुए है, यह कितनी अद्भुत बात है? क्योंकि गङ्गा और उसके नामके रहते हुए भी लोग नरकमें जाते हैं। गङ्गाजीका नाम संसार-दुःखका नाश करनेवाला बताया गया है। तुलसीके नाम तथा भगवान्‌की कथा कहनेवाले साधु पुरुषके प्रति की हुई भक्तिका भी यही फल है। जो एक बार भी 'गङ्गा' इस दो अक्षरका उच्चारण कर लेता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है†। परम पुण्यमयी इस गङ्गा नदीका यदि मेष, तुला और मकरकी संक्रान्तियोंमें (अर्थात् वैशाख, कार्तिक और माघके महीनोंमें) भक्तिपूर्वक सेवन किया जाय तो सेवन करनेवाले सम्पूर्ण जगत्‌को यह पवित्र कर देती है। द्विजश्रेष्ठ! गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, नर्मदा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा, कावेरी, यमुना, बाहुदा, वेत्रवती, ताम्रपर्णी तथा सरयू आदि सब तीर्थोंमें गङ्गाजी ही सबसे प्रधान मानी गयी हैं। जैसे सर्वव्यापी भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हैं, उसी प्रकार सब पापोंका नाश करनेवाली गङ्गादेवी सब तीर्थोंमें व्याप्त हैं। अहो! महान् आश्चर्य है! परम पावन जगदम्बा गङ्गा स्नान-पान आदिके द्वारा सम्पूर्ण संसारको पवित्र कर रही हैं, फिर सभी मनुष्य इनका सेवन क्यों नहीं करते!

इसी प्रकार विख्यात काशीपुरी भी तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ और क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र है। समस्त देवता उसका सेवन करते हैं। इस लोकमें कानवाले पुरुषोंके वे ही दोनों कान धन्य हैं और वे ही बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञान धारण करनेवाले हैं, जिनके द्वारा बारम्बार काशीका नाम श्रवण किया गया है। द्विजश्रेष्ठ! जो मनुष्य अविमुक्त क्षेत्र काशीका स्मरण करते हैं, वे सब पापोंका नाश करके भगवान् शिवके लोकमें चले जाते हैं। मनुष्य सौ योजन दूर रहकर भी यदि अविमुक्त क्षेत्रका स्मरण करता है तो वह बहुतेरे पातकोंसे भरा होनेपर भी भगवान् शिवके रोग-शोकरहित नित्य धामको चला जाता है। ब्रह्मन्! जो प्राण निकलते समय अविमुक्त क्षेत्रका स्मरण कर लेता है, वह भी सब पापोंसे छूटकर शिवधामको प्राप्त हो जाता है। काशीके गुणोंके विषयमें यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ; जो काशीका नाम भी लेते हैं, उनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहते। ब्रह्मन्! गङ्गा और यमुनाका सङ्गम (प्रयाग) तो काशीसे भी बढ़कर है; क्योंकि उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। सूर्यके मकर राशिपर रहते समय जहाँ कहीं भी गङ्गामें स्नान किया जाय, वह स्नान-पान आदिके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र करती और अन्तमें इन्द्रलोक पहुँचाती है। लोकका कल्याण करनेवाले लिङ्ग-स्वरूप भगवान शङ्कर भी जिस गङ्गाका सदा सेवन करते हैं, उसकी महिमाका पूरा-पूरा वर्णन कैसे किया जा सकता है? शिवलिङ्ग साक्षात् श्रीहरिरूप है और श्रीहरि साक्षात् शिव-लिङ्गरूप हैं। इन दोनोंमें थोड़ा भी अन्तर नहीं है। जो इनमें भेद करता है, उसकी बुद्धि खोटी है। अज्ञानके समुद्रमें डूबे हुए पापी मनुष्य ही आदि-अन्तरहित भगवान् विष्णु और शिवमें भेदभाव करते हैं। जो सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी

---

* गङ्गा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचञ्चला।
अत्यन्तदुर्लभा नृणां भक्तिर्धर्मप्रवक्तरि ॥
(ना० पूर्व० ६ । २१)

† गङ्गाया महिमा ब्रह्मन् वक्तुं वर्षशतैरपि ।
न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥
अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भुतम् ।
यतो वै नरकं यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि ॥
संसारदुःखविच्छेदि गङ्गानाम प्रकीर्तितम् ।
तथा तुलस्या भक्तिश्च हरिकीर्तिप्रवक्तरि ॥
सकृदप्युच्चरेद् यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
(ना० पूर्व० ६ । २४-२७)

चले जाते हैं । ब्रह्मन् ! जो गङ्गाजीका स्मरण करता है, उसने सब तीर्थोंमें स्नान और सभी पुण्य-क्षेत्रोंमें निवास कर लिया—इसमें संशय नहीं है । गङ्गा-स्नान किये हुए मनुष्यको देखकर पापी भी स्वर्गलोकका अधिकारी हो जाता है । उसके अङ्गोंका स्पर्श करनेमात्रसे वह देवताओंका अधिपति हो जाता है । गङ्गा, तुलसी, भगवान्‌के चरणोंमें अविचल भक्ति तथा धर्मोपदेशक सद्गुरुमें श्रद्धा—ये सब मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं * । उत्तम धर्मका उपदेश देनेवाले गुरुके चरणोंकी धूल, गङ्गाजीकी मृत्तिका तथा तुलसीवृक्षके मूलभागकी मिट्टीको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक अपने मस्तकपर धारण करता है, वह वैकुण्ठ धामको जाता है । जो मनुष्य मन-ही-मन यह अभिलाषा करता है कि मैं कब गङ्गाजीके समीप जाऊँगा और कब उनका दर्शन करूँगा, वह भी वैकुण्ठ धामको जाता है । ब्रह्मन् ! दूसरी बातें बहुत कहनेसे क्या लाभ, साक्षात् भगवान् विष्णु भी सैकड़ों वर्षोंमें गङ्गाजीकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते । अहो ! माया सारे जगत्‌को मोहमें डाले हुए है, यह कितनी अद्भुत बात है ? क्योंकि गङ्गा और उसके नामके रहते हुए भी लोग नरकमें जाते हैं । गङ्गाजीका नाम संसार-दुःखका नाश करनेवाला बताया गया है । तुलसीके नाम तथा भगवान्‌की कथा कहनेवाले साधु पुरुषके प्रति की हुई भक्तिका भी यही फल है । जो एक बार भी 'गङ्गा' इस दो अक्षरका उच्चारण कर लेता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है † । परम पुण्यमयी इस गङ्गा नदीका यदि मेष, तुला और मकरकी संक्रान्तियोंमें (अर्थात् वैशाख, कार्तिक और माघके महीनोंमें) भक्तिपूर्वक सेवन किया जाय तो सेवन करनेवाले सम्पूर्ण जगत्‌को यह पवित्र कर देती है । द्विजश्रेष्ठ ! गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, नर्मदा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा, कावेरी, यमुना, बाहुदा, वेत्रवती, ताम्रपर्णी तथा सरयू आदि सब तीर्थोंमें गङ्गाजी ही सबसे प्रधान मानी गयी हैं । जैसे सर्वव्यापी भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हैं, उसी प्रकार सब पापोंका नाश करनेवाली गङ्गादेवी सब तीर्थोंमें व्याप्त हैं । अहो ! महान् आश्चर्य है ! परम पावन जगदम्बा गङ्गा स्नान-पान आदिके द्वारा सम्पूर्ण संसारको पवित्र कर रही हैं, फिर सभी मनुष्य इनका सेवन क्यों नहीं करते ?

इसी प्रकार विख्यात काशीपुरी भी तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ और क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र है । समस्त देवता उसका सेवन करते हैं । इस लोकमें कानवाले पुरुषोंके वे ही दोनों कान धन्य हैं और वे ही बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञान धारण करनेवाले हैं, जिनके द्वारा बारम्बार काशीका नाम श्रवण किया गया है । द्विजश्रेष्ठ ! जो मनुष्य अविमुक्त क्षेत्र काशीका स्मरण करते हैं, वे सब पापोंका नाश करके भगवान् शिवके लोकमें चले जाते हैं । मनुष्य सौ योजन दूर रहकर भी यदि अविमुक्त क्षेत्रका स्मरण करता है तो वह बहुतेरे पातकोंसे भरा होनेपर भी भगवान् शिवके रोग-शोकरहित नित्य धामको चला जाता है । ब्रह्मन् ! जो प्राण निकलते समय अविमुक्त क्षेत्रका स्मरण कर लेता है, वह भी सब पापोंसे छूटकर शिवधामको प्राप्त हो जाता है । काशीके गुणोंके विषयमें यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ; जो काशीका नाम भी लेते हैं, उनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहते । ब्रह्मन् ! गङ्गा और यमुनाका सङ्गम (प्रयाग) तो काशीसे भी बढ़कर है; क्योंकि उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त कर लेते हैं । सूर्यके मकर राशिपर रहते समय जहाँ कहीं भी गङ्गामें स्नान किया जाय, वह स्नान-पान आदिके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र करती और अन्तमें इन्द्रलोक पहुँचाती है । लोकका कल्याण करनेवाले लिङ्ग-स्वरूप भगवान शङ्कर भी जिस गङ्गाका सदा सेवन करते हैं, उसकी महिमाका पूरा-पूरा वर्णन कैसे किया जा सकता है ? शिवलिङ्ग साक्षात् श्रीहरिरूप है और श्रीहरि साक्षात् शिव-लिङ्गरूप हैं । इन दोनोंमें थोड़ा भी अन्तर नहीं है । जो इनमें भेद करता है, उसकी बुद्धि खोटी है । अज्ञानके समुद्रमें डूबे हुए पापी मनुष्य ही आदि-अन्तरहित भगवान् विष्णु और शिवमें भेदभाव करते हैं । जो सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी

---

* गङ्गा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचञ्चला ।
अत्यन्तदुर्लभा नृणां भक्तिर्धर्मप्रवक्तरि ॥
(ना० पूर्व० ६ । २१)

† गङ्गाया महिमा ब्रह्मन् वक्तुं वर्षशतैरपि ।
न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥
अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भुतम् ।
यतो वै नरकं यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि ॥
संसारदुःखविच्छेदि गङ्गानाम प्रकीर्तितम् ।
तथा तुलस्या भक्तिश्च हरिकीर्तिप्रवक्तरि ॥
सकृदप्युच्चरेद् यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
(ना० पूर्व० ६ । २४-२७)

नाश करनेवाली, दर्शन करनेपर भगवान् विष्णुका लोक देनेवाली तथा जल पीनेपर भगवान्‌का सारूप्य प्रदान करनेवाली है। इनमें स्नान कर लेनेपर मनुष्य भगवान् विष्णुके उत्तम धामको जाते हैं *। जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाले सर्वव्यापी सनातन भगवान् नारायण गङ्गा-स्नान करनेवाले मनुष्योंको मनोवाञ्छित फल देते हैं। जो श्रेष्ठ मानव गङ्गाजलके एक कणसे भी अभिषिक्त होता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परम धामको प्राप्त कर लेता है। गङ्गाके जलबिन्दुका सेवन करनेमात्रसे राजा सगरकी संतति परम पदको प्राप्त हुई।

असूया-दोषके कारण राजा बाहुकी अवनति और पराजय तथा उनकी मृत्युके बाद रानीका और्व मुनिके आश्रममें रहना

नारदजीने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! राजा सगर कौन थे? यह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

सनकजीने कहा—मुनिवर! गङ्गाजीका उत्तम माहात्म्य सुनिये, जिनके जलका स्पर्श होनेमात्रसे राजा सगरका कुल पवित्र हो गया और सम्पूर्ण लोकोंमें सबसे उत्तम वैकुण्ठ धामको चला गया। सूर्यवंशमें बाहु नामवाले एक राजा हो गये हैं। उनके पिताका नाम वृक था। बाहु बड़े धर्मपरायण राजा थे और सारी पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जीवोंको अपने-अपने धर्मकी मर्यादामें स्थापित किया था। महाराज बाहुने सातों द्वीपोंमें सात अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणोंको गाय, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्र आदि देकर भलीभाँति तृप्त किया। नीतिशास्त्रके अनुसार उन्होंने चोर-डाकुओंको यथेष्ट दण्ड देकर शासनमें रक्खा और दूसरोंका संताप दूर करके अपनेको कृतार्थ माना। पृथ्वीपर बिना जोते-बोये अन्न पैदा होता और वह फल-फूलसे भरी रहती थी। मुनीश्वर! देवराज इन्द्र उनके राज्यकी भूमिपर समयानुसार वर्षा करते थे और पापाचारियोंका अन्त हो जानेके कारण वहाँकी प्रजा धर्मसे सुरक्षित रहती थी।

एक समय राजा बाहुके मनमें असूया (गुणोंमें दोष-दृष्टि) के साथ बड़ा भारी अहंकार उत्पन्न हुआ, जो सब सम्पत्तियोंका नाश करनेवाला तथा अपने विनाशका भी हेतु है। वे सोचने लगे—मैं समस्त लोकोंका पालन करनेवाला बलवान् राजा हूँ। मैंने बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। मुझसे पूजनीय दूसरा कौन है? मैं विद्वान् हूँ, श्रीमान् हूँ। मैंने सब शत्रुओंको जीत लिया है। मुझे वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्वका ज्ञान है और नीतिशास्त्रका तो मैं बहुत बड़ा पण्डित हूँ। मुझे कोई जीत नहीं सकता। मेरे ऐश्वर्यको हानि नहीं पहुँचा सकता। इस पृथ्वीपर मुझसे बढ़कर दूसरा कौन है? इस प्रकार अहंकारके वशीभूत होनेपर उनके मनमें दूसरोंके प्रति दोषदृष्टि हो गयी। मुनीश्वर! दोषदृष्टि होनेसे उस राजाके हृदयमें काम प्रबल हो उठा। इन सब दोषोंके स्थित होनेपर मनुष्यका विनाश होना निश्चित है। यौवन, धनसम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक—इनमेंसे एक-एक भी अनर्थका कारण होता है, फिर जहाँ ये चारों मौजूद हों वहाँके लिये क्या कहना †! विप्रवर! उनके भीतर बड़ी भारी असूया पैदा हो गयी, जो लोकका विरोध, अपने देहका नाश तथा सब सम्पत्तियोंका अन्त करनेवाली होती है। सुव्रत! असूयासे भरे हुए चित्तवाले पुरुषोंके पास यदि धन-सम्पत्ति मौजूद हो तो उसे भूसेकी आगमें वायुके संयोगके समान समझो। जिनका चित्त दूसरोंके दोष देखनेमें लगा होता है, जो पाखण्डपूर्ण आचारका पालन करते हैं तथा सदा कटुवचन बोला करते हैं, उन्हें इस लोकमें और परलोकमें भी सुख नहीं मिलता। जिनका मन असूया दोषसे दूषित है तथा जो सदा निष्ठुर भाषण किया करते हैं, उनके प्रियजन, पुत्र तथा भाई-बन्धु भी शत्रु बन जाते हैं। जो परायी स्त्रीको देखकर मन-ही-मन उसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा करता है, वह अपनी सम्पत्तिका नाश करनेके लिये स्वयं ही कुठार बन गया है—इसमें संशय नहीं है। मुने! जो मनुष्य अपने कल्याणका नाश करनेके लिये प्रयत्न

* अहो गङ्गा महाभागा स्मृता पापप्रणाशिनी। हरिलोकप्रदा दृष्टा पीता सारूप्यदायिनी।
यत्र स्नाता नरा यान्ति विष्णोः पदमनुत्तमम्॥ (ना० पूर्व० ६। ६७)

† यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता। एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥ (ना० पूर्व० ७। १५)

नाश करनेवाली, दर्शन करनेपर भगवान् विष्णुका लोक देनेवाली तथा जल पीनेपर भगवान्‌का सारूप्य प्रदान करनेवाली हैं। उनमें स्नान कर लेनेपर मनुष्य भगवान् विष्णुके उत्तम धामको जाते हैं *। जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाले सर्वव्यापी सनातन भगवान् नारायण गङ्गा-स्नान करनेवाले मनुष्योंको मनोवाञ्छित फल देते हैं। जो श्रेष्ठ मानव गङ्गाजलके एक कणसे भी अभिषिक्त होता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परम धामको प्राप्त कर लेता है। गङ्गाके जलबिन्दुका सेवन करनेमात्रसे राजा सगरकी संतति परम पदको प्राप्त हुई।

असूया-दोषके कारण राजा बाहुकी अवनति और पराजय तथा उनकी मृत्युके बाद रानीका और्व मुनिके आश्रममें रहना

नारदजीने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! राजा सगर कौन थे? यह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

सनकजीने कहा—मुनिवर! गङ्गाजीका उत्तम माहात्म्य सुनिये, जिनके जलका स्पर्श होनेमात्रसे राजा सगरका कुल पवित्र हो गया और सम्पूर्ण लोकोंमें सबसे उत्तम वैकुण्ठ धामको चला गया। सूर्यवंशमें बाहु नामवाले एक राजा हो गये हैं। उनके पिताका नाम वृक था। बाहु बड़े धर्मपरायण राजा थे और सारी पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जीवोंको अपने-अपने धर्मकी मर्यादामें स्थापित किया था। महाराज बाहुने सातों द्वीपोंमें सात अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणोंको गाय, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्र आदि देकर भलीभाँति तृप्त किया। नीतिशास्त्रके अनुसार उन्होंने चोर-डाकुओंको यथेष्ट दण्ड देकर शासनमें रक्खा और दूसरोंका संताप दूर करके अपनेको कृतार्थ माना। पृथ्वीपर बिना जोते-बोये अन्न पैदा होता और वह फल-फूलसे भरी रहती थी। मुनीश्वर! देवराज इन्द्र उनके राज्यकी भूमिपर समयानुसार वर्षा करते थे और पापाचारियोंका अन्त हो जानेके कारण वहाँकी प्रजा धर्मसे सुरक्षित रहती थी।

एक समय राजा बाहुके मनमें असूया (गुणोंमें दोष-दृष्टि) के साथ बड़ा भारी अहंकार उत्पन्न हुआ, जो सब सम्पत्तियोंका नाश करनेवाला तथा अपने विनाशका भी हेतु है। वे सोचने लगे—मैं समस्त लोकोंका पालन करनेवाला बलवान् राजा हूँ। मैंने बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। मुझसे पूजनीय दूसरा कौन है? मैं विद्वान् हूँ, श्रीमान् हूँ। मैंने सब शत्रुओंको जीत लिया है। मुझे वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्वका ज्ञान है और नीतिशास्त्रका तो मैं बहुत बड़ा पण्डित हूँ। मुझे कोई जीत नहीं सकता। मेरे ऐश्वर्यको हानि नहीं पहुँचा सकता। इस पृथ्वीपर मुझसे बढ़कर दूसरा कौन है? इस प्रकार अहंकारके वशीभूत होनेपर उनके मनमें दूसरोंके प्रति दोषदृष्टि हो गयी। मुनीश्वर! दोषदृष्टि होनेसे उस राजाके हृदयमें काम प्रबल हो उठा। इन सब दोषोंके स्थित होनेपर मनुष्यका विनाश होना निश्चित है। यौवन, धनसम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक—इनमेंसे एक एक भी अनर्थका कारण होता है, फिर जहाँ ये चारों मौजूद हों वहाँके लिये क्या कहना †? विप्रवर! उनके भीतर बड़ी भारी असूया पैदा हो गयी, जो लोकका विरोध, अपने देहका नाश तथा सब सम्पत्तियोंका अन्त करनेवाली होती है। सुव्रत! असूयासे भरे हुए चित्तवाले पुरुषोंके पास यदि धन-सम्पत्ति मौजूद हो तो उसे सूखेकी आगमें वायुके संयोगके समान समझो। जिनका चित्त दूसरोंके दोष देखनेमें लगा होता है, जो पाखण्डपूर्ण आचारका पालन करते हैं तथा सदा कटुवचन बोला करते हैं, उन्हें इस लोकमें और परलोकमें भी सुख नहीं मिलता। जिनका मन असूया दोषसे दूषित है तथा जो सदा निष्ठुर भाषण किया करते हैं, उनके प्रियजन, पुत्र तथा भाई-बन्धु भी शत्रु बन जाते हैं। जो परायी स्त्रीको देखकर मन-ही-मन उसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा करता है, वह अपनी सम्पत्तिका नाश करनेके लिये स्वयं ही कुठार बन गया है—इसमें संशय नहीं है। मुने! जो मनुष्य अपने कल्याणका नाश करनेके लिये प्रयत्न

* नतो गङ्गा महाभागा स्मृता पापप्रणाशिनी। हरिलोकप्रदा दृष्टा पीता सारूप्यदायिनी।
यत्र स्नाता नरा यान्ति विष्णो पदमनुत्तमम्॥ (ना० पूर्व० ६। ६७)

† यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता। एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥ (ना० पूर्व० ७। १५)

[illegible] ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त बताया है; शराबी और स्वर्णचोरका भी उद्धार होता है; किंतु जो गर्भके बालककी हत्या करता है, उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं है । सुन्दरी ! नास्तिक, कृतघ्न, धर्मत्यागी और विश्वासघातीके उद्धारका भी कोई उपाय नहीं है * । अतः शोभने ! तुझे यह महान् पाप नहीं करना चाहिये ।

मुनिके इस प्रकार कहनेपर पतिव्रता रानीको उनके वचनोंपर विश्वास हो गया और वह अत्यन्त दुःखसे पीड़ित हो अपने मरे हुए पतिके चरणकमलोंको पकड़कर विलाप करने लगी । महात्मा और्व सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे । वे रानीसे पुनः बोले—'राजकुमारी ! तू रो मत, तुझे श्रेष्ठ राजलक्ष्मी प्राप्त होगी । महाभागे ! इस समय सज्जन पुरुषोंके सहयोगसे इस मृतक शरीरका दाह-संस्कार करना उचित है, अतः शोक त्यागकर तू समयोचित कार्य कर । पण्डित हो या मूर्ख, दरिद्र हो या धनवान् तथा दुराचारी हो या सदाचारी—सबपर मृत्युकी समान दृष्टि है । नगरमें हो या वनमें, समुद्रमें हो या पर्वतपर, जिस जीवने जो कर्म किया है, उसे उसका भोग अवश्य करना होगा । जैसे दुःख बिना बुलाये ही प्राणियोंके पास चले आते हैं, उसी प्रकार सुख भी आ सकते हैं—ऐसी मेरी मान्यता है । इस विषयमें दैव ही प्रबल है । पूर्वजन्मके जो जो कर्म हैं, उन्हीं-उन्हींको यहाँ भोगना पड़ता है । कमलानने ! जीव गर्भमें हों या बाल्यावस्थामें, जवानीमें हों या बुढ़ापेमें, उन्हें मृत्युके अधीन अवश्य होना पड़ता है । अतः सुमने ! इस दुःखको त्यागकर तू सुखी हो जा । पतिके अन्त्येष्टि-संस्कार कर और विवेकके द्वारा स्थिर हो जा । यह शरीर कर्मपाशमें बँधा हुआ तथा हजारों दुःख और व्याधियोंसे घिरा हुआ है । इसमें सुखका तो आभास ही मात्र है । क्लेश ही अधिक होता है ।'

परम बुद्धिमान् और्व मुनिने रानीको इस प्रकार समझा-बुझाकर उससे दाह-सम्बन्धी सब कार्य करवाये; फिर उसने शोक त्याग दिया और मुनीश्वरको प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! आप-जैसे संत दूसरोंकी भलाईकी ही अभिलाषा रखते हैं—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं । पृथ्वीपर जितने भी वृक्ष हैं, वे अपने उपभोगके लिये नहीं फलते—उनका फल दूसरोंके ही काम आता है । इसलिये जो दूसरोंके दुःखसे दुखी और दूसरोंकी प्रसन्नतासे प्रसन्न होता है, वही नर-रूपधारी जगदीश्वर नारायण है । संत पुरुष दूसरोंका दुःख दूर करनेके लिये शास्त्र सुनते हैं और अवसर आनेपर सबका दुःख दूर करनेके लिये शास्त्रोंके वचन कहते हैं । जहाँ संत रहते हैं, वहाँ दुःख नहीं सताता; क्योंकि जहाँ सूर्य है, वहाँ अन्धकार कैसे रह सकता है ?'

इस प्रकार कहकर रानीने उस तालाबके किनारे मुनिकी बतायी हुई विधिके अनुसार अपने पतिकी अन्य पारलौकिक क्रियाएँ सम्पन्न कीं । वहाँ और्व मुनिके स्थित होनेसे राजा बाहु तेजसे प्रकाशित होते हुए चितासे निकले और श्रेष्ठ विमानपर बैठकर मुनीश्वर और्वको प्रणाम करके परम धामको चले गये । जिनपर महापुरुषोंकी दृष्टि पड़ती है, वे महापातक या उपपातकसे युक्त होनेपर भी अवश्य परम पदको प्राप्त हो जाते हैं । पुण्यात्मा पुरुष यदि किसीके शरीरको, शरीरके भस्मको अथवा उसके धुएँको भी देख ले तो वह परम पदको प्राप्त होता है † । नारदजी ! पतिका श्राद्धकर्म करके रानी और्व मुनिके आश्रमपर गयी और अपनी सौतके साथ महर्षिकी सेवा करने लगी ।

---

* [illegible] गर्भिघ्नो [illegible]स्तथा । दृश्यन्ते गजमुने नागेदन्ति चिना शुभे ॥
ब्रह्महत्यादिपापानां प्रोक्ता निष्कृतिरुत्तमैः । दम्भिनो निन्दकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृतिः ॥
नास्तिकस्य कृतघ्नस्य धर्मोपेक्षकरस्य च । विश्वासघातकस्यापि निष्कृतिर्नास्ति सुव्रते ॥

(ना० पूर्व० ७ । ५२—५४)

† [illegible] वा भस्म वा चोपलभ्यते । पदं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकिताः ॥
कलेवरं वा तद्भस्म धूमं वापि नभस्तले । यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम् ॥

(ना० पूर्व० ७ । ७४-७५)

पुरुषोंने ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त बताया है; शराबी और गुरुपत्नीगामीका भी उद्धार होता है; किंतु जो गर्भके बच्चेकी हत्या करता है, उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं है। सुन्दरि! नास्तिक, कृतघ्न, धर्मत्यागी और विश्वासघातीके उद्धारका भी कोई उपाय नहीं है *। अतः कल्याणि! तुझे यह महान् पाप नहीं करना चाहिये।

मुनिके इस प्रकार कहनेपर पतिव्रता रानीको उनके वचनोंपर विश्वास हो गया और वह अत्यन्त दुःखसे पीड़ित हो अपने मरे हुए पतिके चरणकमलोंको पकड़कर विलाप करने लगी। महात्मा और्व सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे। वे रानीसे पुनः बोले—'राजकुमारी! तू रो मत, तुझे श्रेष्ठ राजलक्ष्मी प्राप्त होगी। महाभागे! इस समय सज्जन पुरुषोंके सहयोगसे इस मृतक शरीरका दाह-संस्कार करना उचित है, अतः शोक त्यागकर तू समयोचित कार्य कर। पण्डित हो या मूर्ख, दरिद्र हो या धनवान्, तथा दुराचारी हो या सदाचारी—सबपर मृत्युकी समान दृष्टि है। नगरमें हो या वनमें, समुद्रमें हो या पर्वतपर, जिस जीवने जो कर्म किया है, उसे उसका भोग अवश्य करना होगा। जैसे दुःख बिना बुलाये ही प्राणियोंके पास चले आते हैं, उसी प्रकार सुख भी आ सकते हैं—ऐसी मेरी मान्यता है। इस विषयमें दैव ही प्रबल है। पूर्वजन्मके जो जो कर्म हैं, उन्हीं-उन्हींको यहाँ भोगना पड़ता है। कमलानने! जीव गर्भमें हों या बाल्यावस्थामें, जवानीमें हों या बुढ़ापेमें, उन्हें मृत्युके अधीन अवश्य होना पड़ता है। अतः सुमने! इस दुःखको त्यागकर तू सुखी हो जा। पतिके अन्त्येष्टि-संस्कार कर और विवेकके द्वारा स्थिर हो जा। यह शरीर कर्मपाशमें बँधा हुआ तथा हजारों दुःख और व्याधियोंसे घिरा हुआ है। इसमें सुखका आभास ही मात्र है। क्लेश ही अधिक होता है।'

परम बुद्धिमान् और्व मुनिने रानीको इस प्रकार समझ बुझाकर उससे दाह-सम्बन्धी सब कार्य करवाये; फिर उ शोक त्याग दिया और मुनीश्वरको प्रणाम करके कहा 'भगवन्! आप-जैसे संत दूसरोंकी भलाईकी ही अभिल रखते हैं—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पृथ्वीपर जि भी वृक्ष हैं, वे अपने उपभोगके लिये नहीं फलते—उन फल दूसरोंके ही काम आता है। इसलिये जो दूसरोंके दुः दुखी और दूसरोंकी प्रसन्नतासे प्रसन्न होता है, वही न रूपधारी जगदीश्वर नारायण है। संत पुरुष दूसरोंका दु दूर करनेके लिये शास्त्र सुनते हैं और अवसर आनेपर सब दुःख दूर करनेके लिये शास्त्रोंके वचन कहते हैं। जहाँ रहते हैं, वहाँ दुःख नहीं सताता; क्योंकि जहाँ सूर्य है, अन्धकार कैसे रह सकता है?'

इस प्रकार कहकर रानीने उस तालाबके किनारे मुनि बतायी हुई विधिके अनुसार अपने पतिकी अन्त्य पारलौकि क्रियाएँ सम्पन्न कीं। वहाँ और्व मुनिके स्थित होनेसे र बाहु तेजसे प्रकाशित होते हुए चितासे निकले और विमानपर बैठकर मुनीश्वर और्वको प्रणाम करके परम धाम चले गये। जिनपर महापुरुषोंकी दृष्टि पड़ती है, वे महापा या उपपातकसे युक्त होनेपर भी अवश्य परम पदको प्राप्त जाते हैं। पुण्यात्मा पुरुष यदि किसीके शरीरको, शरी भस्मको अथवा उसके धुएँको भी देख ले तो वह परम पद प्राप्त होता है †। नारदजी! पतिका श्राद्धकर्म करके र और्व मुनिके आश्रमपर गयी और अपनी सौतके स महर्षिकी सेवा करने लगी।

---

* [illegible] गर्भिणीघ्नो [illegible]। [illegible] नागेदन्ति [illegible] शुभे ॥
[illegible] प्रोक्ता निष्कृतिस्तथैः । दम्भिनो निन्दकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृतिः ॥
नास्तिकस्य कृतघ्नस्य धर्मोपेक्षकस्य च । विश्वासघातकस्यापि निष्कृतिर्नास्ति सुव्रते ॥
(ना० पूर्व० ७ । ७२—५

† महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः । परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकिताः ॥
कलेवरं वा तद्भस्म धूमं वापि सत्तम । यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम् ॥
(ना० पूर्व० ७ । ७४-

गुरुकी यह बात सुनकर रानी लंबी साँस खींचकर दुःखमें डूब गयी। उसने सगरके पूछनेपर उसे सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। यह सब वृत्तान्त सुनकर सगरको बड़ा क्रोध हुआ। उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की, 'मैं शत्रुओंका नाश कर डालूँगा।' फिर और्व मुनिकी परिक्रमा करके माताको प्रणाम किया और मुनिसे आज्ञा लेकर वहाँसे प्रस्थान किया। और्वके आश्रमसे निकलते ही सत्यवादी एवं पवित्र राजकुमार सगरको उनके कुलपुरोहित महर्षि वसिष्ठ मिल गये। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने कुलगुरु महात्मा वसिष्ठको प्रणाम करके सगरने अपना सब समाचार बताया; यद्यपि वे ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ पहलेसे ही जानते थे। राजा सगरने उन्हीं महर्षिसे ऐन्द्र, वारुण, ब्राह्म और आग्नेय अस्त्र तथा उत्तम खड्ग तथा वज्रके समान सुदृढ धनुष प्राप्त किया। तदनन्तर, शुद्ध हृदयवाले सगरने मुनिकी आज्ञा ले उनके आशीर्वादसे समादृत हो उन्हें प्रणाम करके तत्काल वहाँसे यात्रा की। शूरवीर सगरने एक ही धनुषसे अपने विरोधियोंको पुत्र-पौत्र और सेनासहित स्वर्गलोक पहुँचा दिया। उनके धनुषसे छूटे हुए अग्निसदृश बाणोंसे संतप्त होकर कितने ही शत्रु नष्ट हो गये और कितने ही भयभीत होकर भाग गये। शक, यवन तथा अन्य बहुत-से राजा प्राण बचानेकी इच्छासे तुरंत वसिष्ठ मुनिकी शरणमें गये। इस प्रकार भूमण्डलपर विजय प्राप्त करके बाहुपुत्र सगर शीघ्र ही आचार्य वसिष्ठके समीप आये। उन्हें अपने गुप्तचरोंसे यह बात मालूम हो गयी थी कि हमारे शत्रु गुरुजीकी शरणमें गये हैं। बाहुपुत्र सगरको आया हुआ सुनकर महर्षि वसिष्ठ शरणागत राजाओंकी रक्षा करने तथा अपने शिष्य सगरकी प्रसन्नताके लिये क्षणभर विचार करने लगे। फिर उन्होंने कितने ही राजाओंके सिर मुँडवा दिये और कितने ही राजाओंकी दाढ़ी-मूँछ मुँड़वा दी। यह देखकर सगर हँस पड़े और अपने तपोनिधि गुरुसे इस प्रकार बोले।

सगरने कहा—गुरुदेव! आप इन दुराचारियोंकी क्यों रक्षा करते हैं। इन्होंने मेरे पिताके राज्यका अपहरण कर लिया था, अतः मैं सब प्रकारसे इनका संहार कर डालूँगा। [illegible] दुष्ट मनुष्य तबतक दुष्टता करते हैं, जबतक कि उनकी शक्ति प्रबल होती है। इसलिये शत्रु यदि दास बनकर आवे, देखावें सौहार्द दिखावें और [illegible] प्रकट करें तो कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको उनपर विश्वास नहीं करना चाहिये। क्रूर मनुष्य पहले तो जीभसे बड़ी कठोर बातें बोलते हैं, किंतु जब निर्बल पड़ जाते हैं तो उसी जीभसे बड़ी करुणाजनक बातें कहने लगते हैं। जिसको अपने कल्याणकी इच्छा हो, वह नीतिशास्त्रका ज्ञाता पुरुष दुष्टोंके दम्भपूर्ण साधुभाव और दासभावपर कभी विश्वास न करे। नम्रता दिखाते हुए दुर्जन, कपटी मित्र और दुष्टस्वभाववाली स्त्रीपर विश्वास करनेवाला पुरुष मृत्युतुल्य खतरेमें ही है। अतः गुरुदेव! आप इनकी प्राणरक्षा न करें। ये रूप तो गौका-सा बनाकर आये हैं, परंतु इनका कर्म व्याघ्रोंके समान है। इन सब दुष्टोंका वध करके मैं आपकी कृपासे इस पृथ्वीका पालन करूँगा।

वसिष्ठ बोले—महाभाग! तुम्हें अनेकानेक साधुवाद है। सुव्रत! तुम ठीक कहते हो। फिर भी मेरी बात सुनकर तुम्हें पूर्ण शान्ति मिलेगी। राजन्! सभी जीव कर्मोंकी रस्सीमें बँधे हुए हैं, तथापि जो अपने पापोंसे ही मारे गये हैं, उन्हें फिर किसलिये मारते हो? यह शरीर पापसे उत्पन्न हुआ और पापसे ही बढ़ रहा है। इसे पापमूलक जानकर भी तुम क्यों इसका वध करनेको उद्यत हुए हो? तुम वीर क्षत्रिय हो। इस पापमूलक शरीरको मारकर तुम्हें कौन सी कीर्ति प्राप्त होगी? ऐसा विचारकर इन लोगोंको मत मारो।

गुरु वसिष्ठका यह वचन सुनकर सगरका क्रोध शान्त हो गया। उस समय मुनि भी सगरके शरीरपर अपना हाथ फेरते हुए बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर महर्षि वसिष्ठने उत्तम व्रतका पालन करनेवाले अन्य मुनियोंके साथ महात्मा सगरका राज्याभिषेक किया। सगरकी दो स्त्रियाँ थीं—केशिनी और सुमति। नारदजी! वे दोनों विदर्भराज काश्यपकी कन्याएँ थीं। एक समय राजा सगरकी दोनों पत्नियोंद्वारा प्रार्थना करनेपर भृगुवंशी मन्त्रवेत्ता और्व मुनिने उन्हें पुत्र-प्राप्तिके लिये वर दिया। वे मुनीश्वर तीनों कालकी बातें जानते थे। उन्होंने क्षणभर ध्यानमें स्थित होकर केशिनी और सुमतिका हर्ष बढ़ाते हुए इस प्रकार कहा।

और्व बोले—महाभागे! तुम दोनोंमेंसे एक रानी तो एक ही पुत्र प्राप्त करेगी; किंतु वह वंशको चलानेवाला होगा। परंतु दूसरी केवल संतानविषयक इच्छाकी पूर्तिके लिये साठ हजार पुत्र पैदा करेगी। तुमलोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इनमेंसे एक-एक वर माँग लो।

और्व मुनिका यह वचन सुनकर केशिनीने वंशपरम्पराके हेतुभूत एक ही पुत्रका वरदान माँगा तथा रानी सुमतिके

पुत्रकी यह बात सुनकर रानी लंबी साँस खींचकर दुःखमें डूब गयी। उसने सगरके पूछनेपर उसे सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। यह सब वृत्तान्त सुनकर सगरको बड़ा क्रोध हुआ। उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की, 'मैं शत्रुओंका नाश कर डालूँगा।' फिर और्व मुनिकी परिक्रमा करके माताको प्रणाम किया और मुनिसे आज्ञा लेकर वहाँसे प्रस्थान किया। और्वके आश्रमसे निकलनेपर सत्यवादी एवं पवित्र राजकुमार सगरको उनके कुलपुरोहित महर्षि वसिष्ठ मिल गये। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने कुलगुरु महात्मा वसिष्ठको प्रणाम करके सगरने अपना सब समाचार बताया; यद्यपि वे ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ पहलेसे ही जानते थे। राजा सगरने उन्हीं महर्षिसे ऐन्द्र, वारुण, ब्राह्म और आग्नेय अस्त्र तथा उत्तम खड्ग तथा वज्रके समान सुदृढ धनुष प्राप्त किया। तदनन्तर, शुद्ध हृदयवाले सगरने मुनिकी आज्ञा ले उनके आशीर्वादसे सम्मानित हो उन्हें प्रणाम करके तत्काल वहाँसे यात्रा की। शूरवीर सगरने एक ही धनुषसे अपने विरोधियोंको पुत्र-पौत्र और सेनासहित स्वर्गलोक पहुँचा दिया। उनके धनुषसे छूटे हुए अग्निसदृश बाणोंसे संतप्त होकर कितने ही शत्रु नष्ट हो गये और कितने ही भयभीत होकर भाग गये। शक, यवन तथा अन्य बहुत-से राजा प्राण बचानेकी इच्छासे तुरंत वसिष्ठ मुनिकी शरणमें गये। इस प्रकार भूमण्डलपर विजय प्राप्त करके बाहुपुत्र सगर शीघ्र ही आचार्य वसिष्ठके समीप आये। उन्हें अपने गुप्तचरोंसे यह बात मालूम हो गयी थी कि हमारे शत्रु गुरुजीकी शरणमें गये हैं। बाहुपुत्र सगरको आया हुआ सुनकर महर्षि वसिष्ठ शरणागत राजाओंकी रक्षा करने तथा अपने शिष्य सगरकी प्रसन्नताके लिये क्षणभर विचार करने लगे। फिर उन्होंने कितने ही राजाओंके सिर मुँडवा दिये और कितने ही राजाओंकी दाढ़ी मूँछ मुँड़वा दी। यह देखकर सगर हँस पड़े और अपने तपोनिधि गुरुसे इस प्रकार बोले।

सगरने कहा—गुरुदेव! आप इन दुराचारियोंकी क्यों रक्षा करते हैं। इन्होंने मेरे पिताके राज्यका अपहरण कर लिया था, अतः मैं सब प्रकारसे इनका संहार कर डालूँगा। जबतक दुष्ट मनुष्य तबतक दुष्टता करते हैं, जबतक कि उनकी शक्ति प्रबल होती है। इसलिये शत्रु यदि दास बनकर आवे, सेवाएँ सौहार्द दिखावें और सौम्यता प्रकट करें तो कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको उनपर विश्वास नहीं करना चाहिये। क्रूर मनुष्य पहले तो जीभसे बड़ी कठोर बातें बोलते हैं, किंतु जब निर्बल पड़ जाते हैं तो उसी जीभसे बड़ी करुणाजनक बातें कहने लगते हैं। जिसको अपने कल्याणकी इच्छा हो, वह नीतिशास्त्रका ज्ञाता पुरुष दुष्टोंके दम्भपूर्ण साधुभाव और दासभावपर कभी विश्वास न करे। नम्रता दिखाते हुए दुर्जन, कपटी मित्र और दुष्टस्वभाववाली स्त्रीपर विश्वास करनेवाला पुरुष मृत्युतुल्य खतरेमें ही है। अतः गुरुदेव! आप इनकी प्राणरक्षा न करें। ये रूप तो गौका-सा बनाकर आये हैं, परंतु इनका कर्म व्याघ्रोंके समान है। इन सब दुष्टोंका नाश करके मैं आपकी कृपासे इस पृथ्वीका पालन करूँगा।

वसिष्ठ बोले—महाभाग! तुम्हें अनेकानेक साधुवाद है। सुव्रत! तुम ठीक कहते हो। फिर भी मेरी बात सुनकर तुम्हें पूर्ण शान्ति मिलेगी। राजन्! सभी जीव कर्मोंकी रस्सीमें बँधे हुए हैं, तथापि जो अपने पापोंसे ही मारे गये हैं, उन्हें फिर किसलिये मारते हो? यह शरीर पापसे उत्पन्न हुआ और पापसे ही बढ़ रहा है। इसे पापमूलक जानकर भी तुम क्यों इसका वध करनेको उद्यत हुए हो? तुम वीर क्षत्रिय हो। इस पापमूलक शरीरको मारकर तुम्हें कौन सी कीर्ति प्राप्त होगी? ऐसा विचारकर इन लोगोंको मत मारो।

गुरु वसिष्ठका यह वचन सुनकर सगरका क्रोध शान्त हो गया। उस समय मुनि भी सगरके शरीरपर अपना हाथ फेरते हुए बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर महर्षि वसिष्ठने उत्तम व्रतका पालन करनेवाले अन्य मुनियोंके साथ महात्मा सगरका राज्याभिषेक किया। सगरकी दो स्त्रियाँ थीं—केशिनी और सुमति। नारदजी! वे दोनों विदर्भराज काश्यपकी कन्याएँ थीं। एक समय राजा सगरकी दोनों पत्नियोंद्वारा प्रार्थना करनेपर भृगुवंशी मन्त्रवेत्ता और्व मुनिने उन्हें पुत्र-प्राप्तिके लिये वर दिया। वे मुनीश्वर तीनों कालकी बातें जानते थे। उन्होंने क्षणभर ध्यानमें स्थित होकर केशिनी और सुमतिका हर्ष बढ़ाते हुए इस प्रकार कहा।

और्व बोले—महाभागे! तुम दोनोंमेंसे एक रानी तो एक ही पुत्र प्राप्त करेगी; किंतु वह वंशको चलानेवाला होगा। परंतु दूसरी केवल संतानविषयक इच्छाकी पूर्तिके लिये साठ हजार पुत्र पैदा करेगी। तुमलोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इनमेंसे एक-एक वर माँग लो।

और्व मुनिका यह वचन सुनकर केशिनीने वंशपरम्पराके हेतुभूत एक ही पुत्रका वरदान माँगा तथा रानी सुमतिके

सज्जनोंको सताते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है ! नदीका वेग किनारेपर उगे हुए वृक्षोंको भी गिरा देता है। जहाँ धन है, जवानी है तथा परायी स्त्री भी है वहाँ सदा सब अन्धे और मूर्ख बने रहते हैं। दुष्टके पास लक्ष्मी हो तो वह लोकका विनाश करनेवाली ही होती है। जैसे वायु अग्निकी ज्वालाको बढ़ानेमे सहायक होता है और जैसे दूध साँपके विषको बढानेमे कारण होता है, उसी प्रकार दुष्टकी लक्ष्मी उसकी दुष्टताको बढ़ा देती है। अहो ! धनके मदसे अन्धा हुआ मनुष्य देखते हुए भी नहीं देखता। यदि वह अपने हितको देखता है तभी वह वास्तवमें देखता है।'

ऐसा कहकर कपिलजीने कुपित हो अपने नेत्रोंसे आग प्रकट की। उस आगने समस्त सगरपुत्रोंको क्षणभरमें

जलाकर भस्म कर डाला। उनकी नेत्राग्निको देखकर पाताल-निवासी जीव शोकमें डूब गये और असमयमें प्रलय हुआ जानकर चीत्कार करने लगे। उस अग्निसे संतप्त हो सम्पूर्ण सर्प तथा राक्षस समुद्रमे शीघ्रतापूर्वक समा गये। अवश्य ही साधु-महात्माओंका कोप दुस्सह होता है।

तदनन्तर देवदूतने राजाके यज्ञमें आकर यजमान सगर-को वह सब समाचार बताया। राजा सगर सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे। यह सब वृत्तान्त सुनकर उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कहा—दैवने ही उन दुष्टोंको दण्ड दे दिया। माता, पिता, भाई अथवा पुत्र जो भी पाप करता है, वही शत्रु माना गया है। जो पापमें प्रवृत्त होकर सब लोगोंके साथ विरोध करता है, उसे महान् शत्रु समझना चाहिये—यही शास्त्रोंका निर्णय है। मुनीश्वर नारदजी ! राजा सगरने अपने पुत्रोंका नाश होनेपर भी शोक नहीं किया; क्योंकि दुराचारियोंकी मृत्यु साधु पुरुषोंके लिये संतोषका कारण होती है। 'पुत्रहीन पुरुषोंका यज्ञमें अधिकार नहीं है' धर्मशास्त्रकी ऐसी आज्ञा होनेके कारण महाराज सगरने अपने पौत्र अंशुमान्‌को ही दत्तक पुत्रके रूपमे गोद ले लिया। सारग्राही राजा सगरने बुद्धिमान् और विद्वानोंमे श्रेष्ठ अंशुमान्‌को अश्व ढूँढ़ लानेके कार्यमें नियुक्त किया। अंशुमान्‌ने उस गुफाके द्वारपर जाकर तेजोराशि मुनिवर कपिलको देखा और उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर दोनों हाथोको जोड़कर वह विनयपूर्वक उनके सामने खड़ा हो गया और शान्तचित्त सनातन देवदेव कपिलसे इस प्रकार बोला।

अंशुमान्‌ने कहा—ब्रह्मन् ! मेरे पिताके भाइयोंने यहाँ आकर जो दुष्टता की है, उसे आप क्षमा करें; क्योंकि साधु पुरुष सदा दूसरोंके उपकारमें लगे रहते हैं और क्षमा ही उनका बल है। संत-महात्मा दुष्ट जीवोंपर भी दया करते हैं। चन्द्रमा चाण्डालके घरसे अपनी चाँदनी खींच नहीं लेते हैं। सज्जन पुरुष दूसरोंसे सताये जानेपर भी सबके लिये सुखकारक ही होता है। देवताओंद्वारा अपनी अमृतमयी कलाके भक्षण किये जानेपर भी चन्द्रमा उन्हें परम संतोष ही देता है। चन्दनको काटा जाय या छेदा जाय, वह अपनी सुगन्धसे सबको सुवासित करता रहता है। साधु पुरुषोंका भी ऐसा ही स्वभाव होता है। पुरुषोत्तम ! आपके गुणोंको जाननेवाले मुनीश्वरगण ऐसा मानते हैं कि आप क्षमा, तपस्या तथा धर्माचरणद्वारा समस्त लोकोको शिक्षा देनेके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं। ब्रह्मन् ! आपको नमस्कार है। मुने ! आप ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप स्वभावतः ब्राह्मणोंका हित करनेवाले हैं और सदा ब्रह्म-चिन्तनमें लगे रहते हैं, आपको नमस्कार है।

अंशुमान्‌के इस प्रकार स्तुति करनेपर कपिल मुनिका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उस समय वे बोले—'निष्पाप राजकुमार ! मै तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' मुनिके ऐसा कहनेपर अंशुमान्‌ने प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! हमारे इन पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा दें।' तब कपिल मुनि अंशुमान्‌पर अत्यन्त प्रसन्न हो आदरपूर्वक बोले—

सज्जनोंको सताते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है ? नदीका वेग किनारेपर उगे हुए वृक्षोंको भी गिरा देता है। जहाँ धन है, जवानी है तथा परायी स्त्री भी है वहाँ सदा सब अन्धे और मूर्ख बने रहते हैं। दुष्टके पास लक्ष्मी हो तो वह लोकका विनाश करनेवाली ही होती है। जैसे वायु अग्निकी ज्वालाको बढ़ानेमे सहायक होता है और जैसे दूध साँपके विषको बढानेमे कारण होता है, उसी प्रकार दुष्टकी लक्ष्मी उसकी दुष्टताको बढ़ा देती है। अहो! धनके मदसे अन्धा हुआ मनुष्य देखते हुए भी नहीं देखता। यदि वह अपने हितको देखता है तभी वह वास्तवमें देखता है।'

ऐसा कहकर कपिलजीने कुपित हो अपने नेत्रोंसे आग प्रकट की। उस आगने समस्त सगरपुत्रोंको क्षणभरमें

जलाकर भस्म कर डाला। उनकी नेत्राग्निको देखकर पाताल-निवासी जीव शोकमें डूब गये और असमयमें प्रलय हुआ जानकर चीत्कार करने लगे। उस अग्निसे संतप्त हो सम्पूर्ण सर्प तथा राक्षस समुद्रमे शीघ्रतापूर्वक समा गये। अवश्य ही साधु-महात्माओंका कोप दुस्सह होता है।

तदनन्तर देवदूतने राजाके यज्ञमें आकर यजमान सगर-को वह सब समाचार बताया। राजा सगर सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे। यह सब वृत्तान्त सुनकर उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कहा—दैवने ही उन दुष्टोंको दण्ड दे दिया। माता, पिता, भाई अथवा पुत्र जो भी पाप करता है, वही शत्रु माना गया है। जो पापमें प्रवृत्त होकर सब लोगोंके साथ विरोध करता है, उसे महान् शत्रु समझना चाहिये—यही शास्त्रोंका निर्णय है। मुनीश्वर नारदजी! राजा सगरने अपने पुत्रोंका नाश होनेपर भी शोक नहीं किया; क्योंकि दुराचारियोंकी मृत्यु साधु पुरुषोंके लिये संतोषका कारण होती है। 'पुत्रहीन पुरुषोंका यज्ञमें अधिकार नहीं है' धर्मशास्त्रकी ऐसी आज्ञा होनेके कारण महाराज सगरने अपने पौत्र अंशुमान्को ही दत्तक पुत्रके रूपमे गोद ले लिया। सारग्राही राजा सगरने बुद्धिमान् और विद्वानोंमे श्रेष्ठ अंशुमान्को अश्व ढूँढ़ लानेके कार्यमें नियुक्त किया। अंशुमान्ने उस गुफाके द्वारपर जाकर तेजोराशि मुनिवर कपिलको देखा और उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर दोनों हाथोको जोड़कर वह विनयपूर्वक उनके सामने खड़ा हो गया और शान्तचित्त सनातन देवदेव कपिलसे इस प्रकार बोला।

अंशुमान्ने कहा—ब्रह्मन्! मेरे पिताके भाइयोंने यहाँ आकर जो दुष्टता की है, उसे आप क्षमा करें; क्योंकि साधु पुरुष सदा दूसरोंके उपकारमें लगे रहते हैं और क्षमा ही उनका बल है। संत-महात्मा दुष्ट जीवोंपर भी दया करते हैं। चन्द्रमा चाण्डालके घरसे अपनी चाँदनी खींच नहीं लेते हैं। सज्जन पुरुष दूसरोंसे सताये जानेपर भी सबके लिये सुखकारक ही होता है। देवताओंद्वारा अपनी अमृतमयी कलाके भक्षण किये जानेपर भी चन्द्रमा उन्हें परम संतोष ही देता है। चन्दनको काटा जाय या छेदा जाय, वह अपनी सुगन्धसे सबको सुवासित करता रहता है। साधु पुरुषोंका भी ऐसा ही स्वभाव होता है। पुरुषोत्तम! आपके गुणोंको जाननेवाले मुनीश्वरगण ऐसा मानते हैं कि आप क्षमा, तपस्या तथा धर्माचरणद्वारा समस्त लोकोको शिक्षा देनेके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं। ब्रह्मन्! आपको नमस्कार है। मुने! आप ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप स्वभावतः ब्राह्मणोंका हित करनेवाले हैं और सदा ब्रह्म-चिन्तनमें लगे रहते हैं, आपको नमस्कार है।

अंशुमान्के इस प्रकार स्तुति करनेपर कपिल मुनिका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उस समय वे बोले—'निष्पाप राजकुमार! मै तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' मुनिके ऐसा कहनेपर अंशुमान्ने प्रणाम करके कहा—'भगवन्! हमारे इन पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा दें।' तब कपिल मुनि अंशुमान्पर अत्यन्त प्रसन्न हो आदरपूर्वक बोले—

कठोर तपस्या करने लगीं। कुछ कालतक वे निरन्तर बैठी ही रहीं। उसके बाद दीर्घकालतक दोनों पैरोंसे खड़ी रहीं। तदनन्तर, बहुत समयतक एक पैरसे और फिर उस एक पैरकी अँगुलियोंके ही बलपर खड़ी रहीं। कुछ कालतक तो वे फलाहार करती रहीं, फिर सूखे पत्ते खाकर रहने लगीं। उसके बाद बहुत दिनोंतक जल पीकर रहीं, फिर वायुके आहारपर रहने लगी और अन्तमे उन्होंने सर्वथा आहार त्याग दिया। नारदजी! अदिति अपने अन्तःकरणद्वारा सच्चिदानन्दघन परमात्माका ध्यान करती हुई एक हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्यामे लगी रहीं।

तदनन्तर, दैत्योंने अदितिको ध्यानसे विचलित करनेके लिये अपनी दाढ़ोंके अग्रभागसे अग्नि प्रकट की, जिसने उस वनको क्षणभरमें जला दिया। उसका विस्तार सौ योजन था और वह नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरा हुआ था। जो दैत्य अदितिका अपमान करनेके लिये गये थे, वे सब उसी अग्निसे जलकर भस्म हो गये। केवल देवमाता अदिति ही जीवित बची थीं, क्योंकि दैत्योंका विनाश और स्वजनोंपर

अनुकम्पा करनेवाले भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रने उनकी रक्षा की थी।

अदितिको भगवद्दर्शन और वरप्राप्ति, वामनजीका अवतार, बलि-वामन-संवाद, भगवान्‌का तीन पैरसे समस्त ब्रह्माण्डको लेकर बलिको रसातल भेजना

नारदजीने पूछा—भाईजी! आपने यह बड़ी अद्भुत बात बतायी है। मैं जानना चाहता हूँ कि उस अग्निने अदितिको छोड़कर उन दैत्योंको ही क्षणभरमें कैसे जला दिया। आप अदितिके महान् सत्त्वका वर्णन कीजिये, जो विशेष आश्चर्यका कारण है; क्योंकि मुनीश्वर साधु पुरुष सदा दूसरोंको उपदेश देनेमें तत्पर रहते हैं।

सनकजीने कहा—नारदजी! जिनका मन भगवान्‌के भजनमें लगा हुआ है, ऐसे संतोंकी महिमा सुनिये। भगवान्‌के चिन्तनमे लगे हुए साधु पुरुषोको बाधा देनेमें कौन समर्थ हो सकता है? जहाँ भगवान्‌का भक्त रहता है, वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता, सिद्ध, मुनीश्वर और साधु-संत नित्य निवास करते हैं। महाभाग! शान्तचित्तवाले हरिनामपरायण भक्तोंके भी हृदयमें भगवान् विष्णु सदा विराजते हैं, फिर जो निरन्तर उन्हींके ध्यानमें लगे हुए हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या है? भगवान् शिवकी पूजामें लगा हुआ अथवा भगवान् विष्णुकी आराधनामे तत्पर हुआ भक्त पुरुष जहाँ रहता है, वहीं लक्ष्मी तथा सम्पूर्ण देवता निवास करते हैं। जहाँ भगवान् विष्णुकी उपासनामें सलग्न भक्त पुरुष वास करता है, वहाँ अग्नि बाधा नहीं पहुँचा सकती। राजा, चोर अथवा रोग-व्याधि भी कष्ट नहीं दे सकते हैं। प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ग्रह, बालग्रह, डाकिनी तथा राक्षस—ये भगवान् विष्णुकी आराधना करनेवाले पुरुषको पीड़ा नहीं दे सकते। जितेन्द्रिय, सबका हितकारी तथा धर्म-कर्मका पालन करनेवाला पुरुष जहाँ रहता है, वहीं सम्पूर्ण तीर्थ और देवता वास करते हैं। जहाँ एक या आधे पल भी योगी महात्मा पुरुष ठहरते हैं, वहीं सब श्रेय हैं, वहीं तीर्थ है, वही तपोवन है। जिनके नामकीर्तनसे, स्तोत्रपाठसे अथवा पूजनसे भी सब उपद्रव नष्ट हो जाते हैं, फिर उनके ध्यानसे उपद्रवोंका नाश हो, इसके लिये कहना ही क्या है? ब्रह्मन्! इस प्रकार दैत्योंद्वारा प्रकट की हुई उस अग्निसे दैत्योंसहित सारा वन दग्ध हो गया, किंतु देवमाता अदिति नहीं जलीं; क्योंकि वे भगवान् विष्णुके चक्रसे सुरक्षित थीं।

तदनन्तर, कमलदलके समान विकसित नेत्र और प्रसन्न मुखवाले शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु अदितिके

कठोर तपस्या करने लगीं। कुछ कालतक वे निरन्तर बैठी ही रहीं। उसके बाद दीर्घकालतक दोनों पैरोंसे खडी रहीं। तदनन्तर, बहुत समयतक एक पैरसे और फिर उस एक पैरकी अँगुलियोंके ही बलपर खडी रहीं। कुछ कालतक तो वे फलाहार करती रहीं, फिर सूखे पत्ते खाकर रहने लगीं। उसके बाद बहुत दिनोंतक जल पीकर रहीं, फिर वायुके आहारपर रहने लगी और अन्तमे उन्होंने सर्वथा आहार त्याग दिया। नारदजी! अदिति अपने अन्तःकरणद्वारा सच्चिदानन्दघन परमात्माका ध्यान करती हुई एक हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्यामे लगी रहीं।

तदनन्तर, दैत्योंने अदितिको ध्यानसे विचलित करनेके लिये अपनी दाढ़ोंके अग्रभागसे अग्नि प्रकट की, जिसने उस वनको क्षणभरमें जला दिया। उसका विस्तार सौ योजन था और वह नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरा हुआ था। जो दैत्य अदितिका अपमान करनेके लिये गये थे, वे सब उसी अग्निसे जलकर भस्म हो गये। केवल देवमाता अदिति ही जीवित बची थीं, क्योंकि दैत्योंका विनाश और स्वजनोंपर

अनुकम्पा करनेवाले भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रने उनकी रक्षा की थी।

अदितिको भगवद्दर्शन और वरप्राप्ति, वामनजीका अवतार, बलि-वामन-संवाद, भगवान्का तीन पैरसे समस्त ब्रह्माण्डको लेकर बलिको रसातल भेजना

नारदजीने पूछा—भाईजी! आपने यह बड़ी अद्भुत बात बतायी है। मैं जानना चाहता हूँ कि उस अग्निने अदितिको छोड़कर उन दैत्योंको ही क्षणभरमें कैसे जला दिया। आप अदितिके महान् सत्त्वका वर्णन कीजिये, जो विशेष आश्चर्यका कारण है; क्योंकि मुनीश्वर साधु पुरुष सदा दूसरोंको उपदेश देनेमें तत्पर रहते हैं।

सनकजीने कहा—नारदजी! जिनका मन भगवान्के भजनमें लगा हुआ है, ऐसे संतोंकी महिमा सुनिये। भगवान्के चिन्तनमे लगे हुए साधु पुरुषोको बाधा देनेमें कौन समर्थ हो सकता है? जहाँ भगवान्का भक्त रहता है, वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता, सिद्ध, मुनीश्वर और साधु-संत नित्य निवास करते हैं। महाभाग! शान्तचित्तवाले हरिनामपरायण भक्तोंके भी हृदयमें भगवान् विष्णु सदा विराजते हैं, फिर जो निरन्तर उन्हींके ध्यानमें लगे हुए हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या है? भगवान् शिवकी पूजामें लगा हुआ अथवा भगवान् विष्णुकी आराधनामे तत्पर हुआ भक्त पुरुष जहाँ रहता है, वहीं लक्ष्मी तथा सम्पूर्ण देवता निवास करते हैं। जहाँ भगवान् विष्णुकी उपासनामें सलग्न भक्त पुरुष वास करता है, वहाँ अग्नि बाधा नहीं पहुँचा सकती। राजा, चोर अथवा रोग-व्याधि भी कष्ट नहीं दे सकते हैं। प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ग्रह, बालग्रह, डाकिनी तथा राक्षस—ये भगवान् विष्णुकी आराधना करनेवाले पुरुषको पीड़ा नहीं दे सकते। जितेन्द्रिय, सबका हितकारी तथा धर्म-कर्मका पालन करनेवाला पुरुष जहाँ रहता है, वहीं सम्पूर्ण तीर्थ और देवता वास करते हैं। जहाँ एक या आधे पल भी योगी महात्मा पुरुष ठहरते हैं, वहीं सब श्रेय हैं, वहीं तीर्थ है, वही तपोवन है। जिनके नामकीर्तनसे, स्तोत्रपाठसे अथवा पूजनसे भी सब उपद्रव नष्ट हो जाते हैं, फिर उनके ध्यानसे उपद्रवोंका नाश हो, इसके लिये कहना ही क्या है? ब्रह्मन्! इस प्रकार दैत्योंद्वारा प्रकट की हुई उस अग्निसे दैत्योंसहित सारा वन दग्ध हो गया, किंतु देवमाता अदिति नहीं जलीं; क्योंकि वे भगवान् विष्णुके चक्रसे सुरक्षित थीं।

तदनन्तर, कमलदलके समान विकसित नेत्र और प्रसन्न मुखवाले शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु अदितिके

पूछकर मुझे क्यों मोहमें डाल रहे हैं ? तथा आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मेरे मनमे जो अभिलाषा है, वह आपको बताऊँगी । देवेश्वर ! मैं दैत्योंसे पीड़ित हो रही हूँ । मेरे पुत्र इस समय मेरी रक्षा न कर सकनेके कारण व्यर्थ हो गये हैं । मैं दैत्योंका भी वध करना नहीं चाहती, क्योंकि वे भी मेरे पुत्र ही हैं । सुरेश्वर ! उन दैत्योंको मारे बिना ही मेरे पुत्रोंको सम्पत्ति दे दीजिये ।' नारदजी ! अदितिके ऐसा कहनेपर देवदेवेश्वर भगवान् विष्णु पुनः बहुत प्रसन्न हुए और देवमाताको आनन्दित करते हुए आदरपूर्वक बोले ।

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवि ! मैं प्रसन्न हूँ । तुम्हारा कल्याण हो । मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा; क्योंकि सौतके पुत्रोंपर इतना वात्सल्य तुम्हारे सिवा अन्यत्र दुर्लभ है । तुमने जो स्तुति की है, उसको जो मनुष्य पढ़ेंगे, उन्हें श्रेष्ठ सम्पत्ति प्राप्त होगी और उनके पुत्र कभी हीन दशामें नहीं पड़ेंगे । जो अपने तथा दूसरेके पुत्रपर समानभाव रखता है, उसे कभी पुत्रका शोक नहीं होता—यह सनातन धर्म है* ।

अदिति बोलीं—देव ! आप सबके आदिकारण और परम पुरुष हैं । मैं आपको अपने गर्भमें धारण करनेमें असमर्थ हूँ । आपके एक-एक रोममें असंख्य ब्रह्माण्ड हैं । आप सबके ईश्वर तथा कारण हैं । प्रभो ! सम्पूर्ण देवता और श्रुतियाँ भी जिनके प्रभावको नहीं जानतीं, उन्हीं देवाधिदेव भगवान्‌को मैं गर्भमें कैसे धारण करूँगी ? आप सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, अजन्मा तथा परात्पर परमेश्वर हैं । देव ! आप पुरुषोत्तमको मैं कैसे गर्भमें धारण करूँगी ? महापातकी मनुष्य भी जिनके नाम-स्मरणमात्रसे मुक्त हो जाता है, वे परमात्मा ग्राम्यजनोंके बीच जन्म कैसे धारण कर सकते हैं ? प्रभो ! जैसे आपके मत्स्य और शूकर अवतार हो गये हैं, वैसा ही यह भी होगा । विश्वेश ! आपकी लीलाको कौन जानता है ? देव ! मैं आपके चरणारविन्दोंमें प्रणत होकर आपके ही नाम-स्मरणमें लगी हुई सदा आपका ही चिन्तन करती हूँ । आपकी जैसी रुचि हो, वैसा करें ।

श्रीसनकजीने कहा—अदितिका वचन सुनकर देवताओंके भी देवता भगवान् जनार्दनने देवमाताको अभय-दान दिया और इस प्रकार कहा ।

श्रीभगवान् बोले—महाभागे ! तुमने सत्य कहा है । इसमें संशय नहीं है । शुभे ! तथापि मैं तुम्हें एक गोपनीयसे भी गोपनीय रहस्य बतलाता हूँ, सुनो । जो राग-द्वेषसे शून्य, दूसरोंमें कभी दोष नहीं देखनेवाले और दम्भसे दूर रहनेवाले मेरे शरणागत भक्त हैं, वे सदा मुझे धारण कर सकते हैं । जो दूसरोंको पीड़ा नहीं देते, भगवान् शिवके भजनमें लगे रहते और मेरी कथा सुननेमें अनुराग रखते हैं, वे सदा मुझे अपने हृदयमें धारण करते हैं । देवि ! जिन्होंने पति-भक्तिका आश्रय लिया है, पति ही जिनका प्राण है और जो आपसमें कभी डाह नहीं रखतीं, ऐसी पतिव्रता स्त्रियाँ भी सदा मुझे अपने भीतर धारण कर सकती हैं । जो माता-पिताका सेवक, गुरुभक्त, अतिथियोंका प्रेमी और ब्राह्मणोंका हितकारी है, वह सदा मुझे धारण करता है । जो सदा पुण्यतीर्थोंका सेवन करते, सत्सङ्गमें लगे रहते और स्वभावसे ही सम्पूर्ण जगत्पर कृपा रखते हैं, वे मुझे सदा अपने हृदयमें धारण करते हैं । जो परोपकारमे तत्पर, पराये धनके लोभसे विमुख और परायी स्त्रियोंके प्रति नपुंसक होते हैं, वे भी सदा मुझे अपने भीतर धारण करते हैं * । जो तुलसीकी उपासनामें लगे हैं, सदा भगवन्नामके जपमें तत्पर हैं और गौओंकी रक्षामें सलग्न रहते हैं, वे सदा मुझे हृदयमें धारण करते हैं । जो दान नहीं लेते, पराये अन्नका सेवन नहीं करते और स्वयं दूसरोंको अन्न और जलका दान देते हैं, वे भी सदा मुझे धारण करते हैं । देवि ! तुम तो सम्पूर्ण भूतोंके हितमें तत्पर पतिप्राणा साध्वी स्त्री हो, अतः मैं तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा ।

देवमाता अदितिसे ऐसा कहकर देवदेवेश्वर भगवान्

* स्वात्मजे वान्यपुत्रे वा यः समत्वेन वर्तते ।
न तस्य पुत्रशोकः स्यादेष धर्मः सनातनः ॥
(ना० पूर्व० ११ । ४८)

* परोपकारनिरताः परद्रव्यपराङ्मुखाः ।
नपुंसकाः परस्त्रीषु ते वहन्ति च मां सदा ॥
(ना० पूर्व० ११ । ६२)

पूछकर मुझे क्यों मोहमें डाल रहे हैं ? तथा आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मेरे मनमे जो अभिलाषा है, वह आपको बताऊँगी । देवेश्वर ! मैं दैत्योंसे पीड़ित हो रही हूँ । मेरे पुत्र इस समय मेरी रक्षा न कर सकनेके कारण व्यर्थ हो गये हैं । मैं दैत्योंका भी वध करना नहीं चाहती, क्योंकि वे भी मेरे पुत्र ही हैं । सुरेश्वर ! उन दैत्योंको मारे बिना ही मेरे पुत्रोंको सम्पत्ति दे दीजिये ।' नारदजी ! अदितिके ऐसा कहनेपर देवदेवेश्वर भगवान् विष्णु पुनः बहुत प्रसन्न हुए और देवमाताको आनन्दित करते हुए आदरपूर्वक बोले ।

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवि ! मैं प्रसन्न हूँ । तुम्हारा कल्याण हो । मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा; क्योंकि सौतके पुत्रोंपर इतना वात्सल्य तुम्हारे सिवा अन्यत्र दुर्लभ है । तुमने जो स्तुति की है, उसको जो मनुष्य पढ़ेंगे, उन्हें श्रेष्ठ सम्पत्ति प्राप्त होगी और उनके पुत्र कभी हीन दशामें नहीं पड़ेंगे । जो अपने तथा दूसरेके पुत्रपर समानभाव रखता है, उसे कभी पुत्रका शोक नहीं होता—यह सनातन धर्म है* ।

अदिति बोलीं—देव ! आप सबके आदिकारण और परम पुरुष हैं । मैं आपको अपने गर्भमें धारण करनेमें असमर्थ हूँ । आपके एक-एक रोममें असंख्य ब्रह्माण्ड हैं । आप सबके ईश्वर तथा कारण हैं । प्रभो ! सम्पूर्ण देवता और श्रुतियाँ भी जिनके प्रभावको नहीं जानतीं, उन्हीं देवाधिदेव भगवान्‌को मैं गर्भमें कैसे धारण करूँगी ? आप सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, अजन्मा तथा परात्पर परमेश्वर हैं । देव ! आप पुरुषोत्तमको मैं कैसे गर्भमें धारण करूँगी ? महापातकी मनुष्य भी जिनके नाम-स्मरणमात्रसे मुक्त हो जाता है, वे परमात्मा ग्राम्यजनोंके बीच जन्म कैसे धारण कर सकते हैं ? प्रभो ! जैसे आपके मत्स्य और शूकर अवतार हो गये हैं, वैसा ही यह भी होगा । विश्वेश ! आपकी लीलाको कौन जानता है ? देव ! मैं आपके चरणारविन्दोंमें प्रणत होकर आपके ही नाम-स्मरणमें लगी हुई सदा आपका ही चिन्तन करती हूँ । आपकी जैसी रुचि हो, वैसा करें ।

श्रीसनकजीने कहा—अदितिका वचन सुनकर देवताओंके भी देवता भगवान् जनार्दनने देवमाताको अभय-दान दिया और इस प्रकार कहा ।

श्रीभगवान् बोले—महाभागे ! तुमने सत्य कहा है । इसमें संशय नहीं है । शुभे ! तथापि मैं तुम्हें एक गोपनीयसे भी गोपनीय रहस्य बतलाता हूँ, सुनो । जो राग-द्वेषसे शून्य, दूसरोंमें कभी दोष नहीं देखनेवाले और दम्भसे दूर रहनेवाले मेरे शरणागत भक्त हैं, वे सदा मुझे धारण कर सकते हैं । जो दूसरोंको पीड़ा नहीं देते, भगवान् शिवके भजनमें लगे रहते और मेरी कथा सुननेमें अनुराग रखते हैं, वे सदा मुझे अपने हृदयमें धारण करते हैं । देवि ! जिन्होंने पति-भक्तिका आश्रय लिया है, पति ही जिनका प्राण है और जो आपसमें कभी डाह नहीं रखतीं, ऐसी पतिव्रता स्त्रियाँ भी सदा मुझे अपने भीतर धारण कर सकती हैं । जो माता-पिताका सेवक, गुरुभक्त, अतिथियोंका प्रेमी और ब्राह्मणोंका हितकारी है, वह सदा मुझे धारण करता है । जो सदा पुण्यतीर्थोंका सेवन करते, सत्सङ्गमें लगे रहते और स्वभावसे ही सम्पूर्ण जगत्पर कृपा रखते हैं, वे मुझे सदा अपने हृदयमें धारण करते हैं । जो परोपकारमे तत्पर, पराये धनके लोभसे विमुख और परायी स्त्रियोंके प्रति नपुंसक होते हैं, वे भी सदा मुझे अपने भीतर धारण करते हैं * । जो तुलसीकी उपासनामें लगे हैं, सदा भगवन्नामके जपमें तत्पर हैं और गौओंकी रक्षामें संलग्न रहते हैं, वे सदा मुझे हृदयमें धारण करते हैं । जो दान नहीं लेते, पराये अन्नका सेवन नहीं करते और स्वयं दूसरोंको अन्न और जलका दान देते हैं, वे भी सदा मुझे धारण करते हैं । देवि ! तुम तो सम्पूर्ण भूतोंके हितमें तत्पर पतिप्राणा साध्वी स्त्री हो, अतः मैं तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा ।

देवमाता अदितिसे ऐसा कहकर देवदेवेश्वर भगवान्

* स्वात्मजे वान्यपुत्रे वा यः समत्वेन वर्तते ।
न तस्य पुत्रशोकः स्यादेष धर्मः सनातनः ॥
(ना० पूर्व० ११ । ४८)

* परोपकारनिरताः परद्रव्यपराङ्मुखाः ।
नपुंसकाः परस्त्रीषु ते वहन्ति च मां सदा ॥
(ना० पूर्व० ११ । ६२)

सदा विराजमान रहते हैं। वामनजीको आते देख ज्ञान-दृष्टिवाले महर्षिगण उन्हें साक्षात् भगवान् नारायण जानकर सभासदोंसहित उनकी अगवानीमें गये। यह जानकर दैत्यगुरु शुक्राचार्य एकान्तमें बलिको कुछ सलाह देने लगे।

शुक्राचार्य बोले—दैत्यराज! सौम्य! तुम्हारी राजलक्ष्मीका अपहरण करनेके लिये भगवान् विष्णु वामनरूपसे अदितिके पुत्र हुए हैं। वे तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं। असुरेश्वर! तुम उन्हें कुछ न देना। तुम तो स्वयं विद्वान् हो। इस समय मेरा जो मत है, उसे सुनो। अपनी बुद्धि ही सुख देनेवाली होती है। गुरुकी बुद्धि विशेषरूपसे सुखद होती है। दूसरेकी बुद्धि विनाशका कारण होती है और स्त्रीकी बुद्धि तो प्रलय करनेवाली होती है।

बलिने कहा—गुरुदेव! आपको इस प्रकार धर्ममार्गका विरोधी वचन नहीं कहना चाहिये। यदि साक्षात् भगवान् विष्णु मुझसे दान ग्रहण करते हैं तो इससे बढ़कर और क्या होगा? विद्वान् पुरुष भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करते हैं, यदि साक्षात् विष्णु ही आकर हमारे हविष्यका भोग लगाते हैं तो संसारमें मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन होगा? पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु जीवको उत्तम भक्तिभावसे स्मरण कर लेनेसे ही पवित्र कर देते हैं। जिस किसी भी वस्तुसे उनकी पूजा की जाय, वे परम गति दे देते हैं। दूषित चित्तवाले पुरुषोंके स्मरण करनेपर भी भगवान् विष्णु उनके पापको वैसे ही हर लेते हैं, जैसे अग्निको बिना इच्छा किये भी छू दिया जाय तो भी वह जला ही देती है। जिसकी जिह्वाके अग्र भागपर 'हरि' यह दो अक्षर वास करता है, वह पुनरावृत्तिरहित श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है*। जो राग आदि दोषोंसे दूर रहकर सदा भगवान् गोविन्दका ध्यान करता है, वह वैकुण्ठधाममें जाता है—यह मनीषी पुरुषोंका कथन है। महाभाग गुरुदेव! अग्नि अथवा ब्राह्मणके मुखमें भगवान् विष्णुके प्रति भक्ति-भाव रखते हुए जो हविष्यकी आहुति दी जाती है, उससे वे भगवान् प्रसन्न होते हैं। मैं तो केवल भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये ही उत्तम यज्ञका अनुष्ठान करता हूँ। यदि स्वयं भगवान् यहाँ आ रहे हैं, तब तो मैं कृतार्थ हो गया—इसमें संशय नहीं है।

दैत्यराज बलि जब ऐसी बातें कह रहे थे, उसी समय वामनरूपधारी भगवान् विष्णुने यज्ञशालामें प्रवेश किया। वह स्थान होमयुक्त प्रज्वलित अग्निके कारण बडा मनोरम जान पडता था। करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान तथा सुडौल अङ्गोंके कारण परम सुन्दर वामनजीको देखकर राजा बलि सहर्ष खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उनका

स्वागत किया। बैठनेके लिये आसन देकर उन्होंने वामनरूपधारी भगवान्‌के चरण पखारे और उस चरणोदकको कुटुम्बसहित मस्तकपर धारण करके बड़े आनन्दका अनुभव किया। जगदाधार भगवान् विष्णुको विधिपूर्वक अर्घ्य देते-देते बलिके शरीरमे रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंसे आनन्दके आँसू झरने लगे और वे इस प्रकार बोले।

बलिने कहा—आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मेरा यज्ञ सफल हुआ और मेरा यह जीवन भी सफल हो गया। मैं कृतार्थ हो गया—इसमें संदेह नहीं है। भगवन्! आज मेरे यहाँ अत्यन्त दुर्लभ अमोघ अमृतकी वर्षा हो गयी। आपके शुभागमन मात्रसे अनायास महान् उत्सव छा गया। इसमें संदेह नहीं कि ये सब ऋषि कृतार्थ हो गये। प्रभो! इन्होंने पहले जो तपस्या की थी, वह आज सफल हो गयी।

---

* हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥
जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।
स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥
(ना० पूर्व० ११। १००-१०१)

सदा विराजमान रहते हैं। वामनजीको आते देख ज्ञान-दृष्टिवाले महर्षिगण उन्हें साक्षात् भगवान् नारायण जानकर सभासदोंसहित उनकी अगवानीमें गये। यह जानकर दैत्यगुरु शुक्राचार्य एकान्तमें बलिको कुछ सलाह देने लगे।

शुक्राचार्य बोले—दैत्यराज! सौम्य! तुम्हारी राजलक्ष्मीका अपहरण करनेके लिये भगवान् विष्णु वामनरूपसे अदितिके पुत्र हुए हैं। वे तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं। असुरेश्वर! तुम उन्हें कुछ न देना। तुम तो स्वयं विद्वान् हो। इस समय मेरा जो मत है, उसे सुनो। अपनी बुद्धि ही सुख देनेवाली होती है। गुरुकी बुद्धि विशेषरूपसे सुखद होती है। दूसरेकी बुद्धि विनाशका कारण होती है और स्त्रीकी बुद्धि तो प्रलय करनेवाली होती है।

बलिने कहा—गुरुदेव! आपको इस प्रकार धर्म-मार्गका विरोधी वचन नहीं कहना चाहिये। यदि साक्षात् भगवान् विष्णु मुझसे दान ग्रहण करते हैं तो इससे बढ़कर और क्या होगा? विद्वान् पुरुष भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करते हैं, यदि साक्षात् विष्णु ही आकर हमारे हविष्यका भोग लगाते हैं तो संसारमें मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन होगा? पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु जीवको उत्तम भक्तिभावसे स्मरण कर लेनेसे ही पवित्र कर देते हैं। जिस किसी भी वस्तुसे उनकी पूजा की जाय, वे परम गति दे देते हैं। दूषित चित्तवाले पुरुषोंके स्मरण करनेपर भी भगवान् विष्णु उनके पापको वैसे ही हर लेते हैं, जैसे अग्निको बिना इच्छा किये भी छू दिया जाय तो भी वह जला ही देती है। जिसकी जिह्वाके अग्र भागपर 'हरि' यह दो अक्षर वास करता है, वह पुनरावृत्तिरहित श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है*। जो राग आदि दोषोंसे दूर रहकर सदा भगवान् गोविन्दका ध्यान करता है, वह वैकुण्ठधाममें जाता है—यह मनीषी पुरुषोंका कथन है। महाभाग गुरुदेव! अग्नि अथवा ब्राह्मणके मुखमें भगवान् विष्णुके प्रति भक्ति-भाव रखते हुए जो हविष्यकी आहुति दी जाती है, उससे वे भगवान् प्रसन्न होते हैं। मैं तो केवल भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये ही उत्तम यज्ञका अनुष्ठान करता हूँ। यदि स्वयं भगवान् यहाँ आ रहे हैं, तब तो मैं कृतार्थ हो गया—इसमें संशय नहीं है।

दैत्यराज बलि जब ऐसी बातें कह रहे थे, उसी समय वामनरूपधारी भगवान् विष्णुने यज्ञशालामें प्रवेश किया। वह स्थान होमयुक्त प्रज्वलित अग्निके कारण बड़ा मनोरम जान पड़ता था। करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान तथा सुडौल अङ्गोंके कारण परम सुन्दर वामनजीको देखकर राजा बलि सहर्ष खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उनका

स्वागत किया। बैठनेके लिये आसन देकर उन्होंने वामनरूपधारी भगवान्‌के चरण पखारे और उस चरणोदकको कुटुम्बसहित मस्तकपर धारण करके बड़े आनन्दका अनुभव किया। जगदाधार भगवान् विष्णुको विधिपूर्वक अर्घ्य देते-देते बलिके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंसे आनन्दके आँसू झरने लगे और वे इस प्रकार बोले।

बलिने कहा—आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मेरा यज्ञ सफल हुआ और मेरा यह जीवन भी सफल हो गया। मैं कृतार्थ हो गया—इसमें संदेह नहीं है। भगवन्! आज मेरे यहाँ अत्यन्त दुर्लभ अमोघ अमृतकी वर्षा हो गयी। आपके शुभागमन मात्रसे अनायास महान् उत्सव छा गया। इसमें संदेह नहीं कि ये सब ऋषि कृतार्थ हो गये। प्रभो! इन्होंने पहले जो तपस्या की थी, वह आज सफल हो गयी।

---

* हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥
जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।
स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥
(ना० पूर्व० ११। १००-१०१)

जाता है, वह सब कर्त्ताके लिये भयंकर होता है और वही राजा बलिके भोगका साधन बनता है । अपवित्र मनुष्यके द्वारा जो हविष्यका होम, दान और सत्कर्म किया जाता है, वह सब रसातलमे बलिके उपभोगके योग्य होता है और कर्त्ताको अधःपातरूप फल देनेवाला है । इस प्रकार भगवान् विष्णुने बलिदैत्यको रसातल-लोक और अभयदान देकर सम्पूर्ण देवताओंको स्वर्गका राज्य दे दिया । उस समय देवता उनका पूजन, महर्षिगण स्तवन और गन्धर्वलोग गुण-गान कर रहे थे । वे विराट् महाविष्णु पुनः वामनरूप हो गये । ब्रह्मवादी मुनियोने भगवान्का यह महान् कर्म देखकर परस्पर मुसकराते हुए उन पुरुषोत्तमको प्रणाम किया । सम्पूर्ण भूतस्वरूप भगवान् विष्णु वामनरूप धारण करके सब लोगोको मोहित करते हुए तपस्याके लिये वनमें चले गये । भगवान् विष्णुके चरणोंसे निकली हुई गङ्गादेवीका ऐसा प्रभाव है कि जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है । जो इस गङ्गा-माहात्म्यको देवालय अथवा नदीके तटपर पढता या सुनता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है ।

दानका पात्र, निष्फल दान, उत्तम-मध्यम-अधम दान, धर्मराज-भगीरथ-संवाद, ब्राह्मणको जीविका-दानका माहात्म्य तथा तडाग-निर्माणजनित पुण्यके विषयमें राजा वीरभद्रकी कथा

नारदजी बोले—भाईजी ! मुझे गङ्गा-माहात्म्य सुननेकी इच्छा थी, सो तो सुन ली । वह सब पापोंका नाश करनेवाला है । अब मुझे दान एवं दानके पात्रका लक्षण बताइये ।

श्रीसनकजीने कहा—देवर्षे ! ब्राह्मण सभी वर्णोंका श्रेष्ठ गुरु है । जो दिये हुए दानको अक्षय बनाना चाहता हो, उसे ब्राह्मणको ही दान देना चाहिये । सदाचारी ब्राह्मण निर्भय होकर सबसे दान ले सकता है, किंतु क्षत्रिय और वैश्य कभी किसीसे दान ग्रहण न करें । जो ब्राह्मण क्रोधी, पुत्रहीन, दम्भाचार-परायण तथा अपने कर्मका त्याग करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है । जो परायी स्त्रीमें आसक्त, पराये धनका लोभी तथा नक्षत्रसूचक (ज्यौतिषी) है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । जिसके मनमें दूसरोंके दोष देखनेका दुर्गुण भरा है, जो कृतघ्न, कपटी और यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । जो सदा माँगनेमे ही लगा रहता है, जो हिंसक, दुष्ट और रसका विक्रय करनेवाला है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । ब्रह्मन् ! जो वेद, स्मृति तथा धर्मका विक्रय करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । जो गीत गाकर जीविका चलाता है, जिसकी स्त्री व्यभिचारिणी है तथा जो दूसरोंको कष्ट देनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । जो तलवारसे जीविका चलाता है, जो स्याहीसे जीवन-निर्वाह करता है, जो जीविकाके लिये देवताकी पूजा स्वीकार करता है, जो समूचे गाँवका पुरोहित है तथा जो धावनका काम करता है, ऐसे लोगोको दिया हुआ दान निष्फल होता है । जो दूसरोंके लिये रसोई बनानेका काम करता है, जो कविताद्वारा लोगोंकी झूठी प्रशंसा किया करता है, जो वैद्य एवं अभक्ष्य वस्तुओका भक्षण करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । जो शूद्रोंका अन्न खाता, शूद्रोंके मुर्दे जलाता और व्यभिचारिणी स्त्रीकी संतानका अन्न भोजन करता है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । जो भगवान् विष्णुके नाम-जपको बेचता है, संध्याकर्मको त्यागनेवाला है तथा दूषित दान-ग्रहणसे दग्ध हो चुका है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । जो दिनमें सोता, दिनमे मैथुन करता और संध्याकालमें खाता है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । जो महापातकोंसे युक्त है, जिसे जाति-भाइयोंने समाजसे बाहर कर दिया है तथा जो कुण्ड (पतिके रहते हुए भी व्यभिचारसे उत्पन्न हुआ) और गोलक (पतिके मर जानेपर व्यभिचारसे पैदा हुआ) है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । जो परिवित्ति (छोटे भाईके विवाहित हो जानेपर भी स्वयं अविवाहित), शठ, परिवेत्ता (बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए स्वय विवाह करनेवाला), स्त्रीके वशमे रहनेवाला और अत्यन्त दुष्ट है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है । जो शराबी, मासखोर, स्त्रीलम्पट, अत्यन्त लोभी, चोर और चुगली खानेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी

जाता है, वह सब कर्त्ताके लिये भयंकर होता है और वही राजा बलिके भोगका साधन बनता है। अपवित्र मनुष्यके द्वारा जो हविष्यका होम, दान और सत्कर्म किया जाता है, वह सब रसातलमें बलिके उपभोगके योग्य होता है और कर्त्ताको अधःपातरूप फल देनेवाला है। इस प्रकार भगवान् विष्णुने बलिदैत्यको रसातल-लोक और अभयदान देकर सम्पूर्ण देवताओंको स्वर्गका राज्य दे दिया। उस समय देवता उनका पूजन, महर्षिगण स्तवन और गन्धर्वलोग गुण-गान कर रहे थे। वे विराट् महाविष्णु पुनः वामनरूप हो गये। ब्रह्मवादी मुनियोंने भगवान्‌का यह महान् कर्म देखकर परस्पर मुसकराते हुए उन पुरुषोत्तमको प्रणाम किया। सम्पूर्ण भूतस्वरूप भगवान् विष्णु वामनरूप धारण करके सब लोगोंको मोहित करते हुए तपस्याके लिये वनमें चले गये। भगवान् विष्णुके चरणोंसे निकली हुई गङ्गादेवीका ऐसा प्रभाव है कि जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो इस गङ्गा-माहात्म्यको देवालय अथवा नदीके तटपर पढता या सुनता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है।

दानका पात्र, निष्फल दान, उत्तम-मध्यम-अधम दान, धर्मराज-भगीरथ-संवाद, ब्राह्मणको जीविका-दानका माहात्म्य तथा तडाग-निर्माणजनित पुण्यके विषयमें राजा वीरभद्रकी कथा

नारदजी बोले—भाईजी! मुझे गङ्गा-माहात्म्य सुननेकी इच्छा थी, सो तो सुन ली। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। अब मुझे दान एवं दानके पात्रका लक्षण बताइये।

श्रीसनकजीने कहा—देवर्षे! ब्राह्मण सभी वर्णोंका श्रेष्ठ गुरु है। जो दिये हुए दानको अक्षय बनाना चाहता हो, उसे ब्राह्मणको ही दान देना चाहिये। सदाचारी ब्राह्मण निर्भय होकर सबसे दान ले सकता है, किंतु क्षत्रिय और वैश्य कभी किसीसे दान ग्रहण न करें। जो ब्राह्मण क्रोधी, पुत्रहीन, दम्भाचार-परायण तथा अपने कर्मका त्याग करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है। जो परायी स्त्रीमें आसक्त, पराये धनका लोभी तथा नक्षत्रसूचक (ज्यौतिषी) है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जिसके मनमें दूसरोंके दोष देखनेका दुर्गुण भरा है, जो कृतघ्न, कपटी और यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो सदा माँगनेमें ही लगा रहता है, जो हिंसक, दुष्ट और रसका विक्रय करनेवाला है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। ब्रह्मन्! जो वेद, स्मृति तथा धर्मका विक्रय करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो गीत गाकर जीविका चलाता है, जिसकी स्त्री व्यभिचारिणी है तथा जो दूसरोंको कष्ट देनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो तलवारसे जीविका चलाता है, जो स्याहीसे जीवन-निर्वाह करता है, जो जीविकाके लिये देवताकी पूजा स्वीकार करता है, जो समूचे गाँवका पुरोहित है तथा जो धावनका काम करता है, ऐसे लोगोंको दिया हुआ दान निष्फल होता है। जो दूसरोंके लिये रसोई बनानेका काम करता है, जो कविताद्वारा लोगोंकी झूठी प्रशंसा किया करता है, जो वैद्य एवं अभक्ष्य वस्तुओंका भक्षण करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो शूद्रोंका अन्न खाता, शूद्रोंके मुर्दे जलाता और व्यभिचारिणी स्त्रीकी संतानका अन्न भोजन करता है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो भगवान् विष्णुके नाम-जपको बेचता है, संध्याकर्मको त्यागनेवाला है तथा दूषित दान-ग्रहणसे दग्ध हो चुका है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो दिनमें सोता, दिनमें मैथुन करता और संध्याकालमें खाता है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो महापातकोंसे युक्त है, जिसे जाति-भाइयोंने समाजसे बाहर कर दिया है तथा जो कुण्ड (पतिके रहते हुए भी व्यभिचारसे उत्पन्न हुआ) और गोलक (पतिके मर जानेपर व्यभिचारसे पैदा हुआ) है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो परिवित्ति (छोटे भाईके विवाहित हो जानेपर भी स्वयं अविवाहित), शठ, परिवेत्ता (बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए स्वय विवाह करनेवाला), स्त्रीके वशमें रहनेवाला और अत्यन्त दुष्ट है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो शराबी, मांसखोर, स्त्रीलम्पट, अत्यन्त लोभी, चोर और चुगली खानेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी

भगीरथने कहा—भगवन्! आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं। परेश्वर! आप समदर्शी भी हैं। मैं जो कुछ पूछता हूँ, उसे मुझपर बड़ी भारी कृपा करके बताइये। धर्म कितने प्रकारके कहे गये हैं? धर्मात्मा पुरुषोंके कौन-से लोक हैं? यमलोकमें कितनी यातनाएँ बतायी गयी हैं और वे किन्हें प्राप्त होती हैं? महाभाग! कैसे लोग आपके द्वारा सम्मानित होते हैं और कौन लोग किस प्रकार आपके द्वारा दण्डनीय हैं? यह सब मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।

धर्मराजने कहा—महाबुद्धे! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। तुम्हारी बुद्धि निर्मल तथा ओजस्विनी है। मैं धर्म और अधर्मका यथार्थ वर्णन करता हूँ, तुम भक्तिपूर्वक सुनो। धर्म अनेक प्रकारके बताये गये हैं, जो पुण्यलोक प्रदान करनेवाले हैं। इसी प्रकार अधर्मजनित यातनाएँ भी असंख्य कही गयी हैं, जिनका दर्शन भी भयंकर है। अतः मैं संक्षेपसे ही धर्म और अधर्मका दिग्दर्शन कराऊँगा। ब्राह्मणोंको जीविका देना अत्यन्त पुण्यमय कहा गया है। इसी प्रकार अध्यात्मतत्त्वके ज्ञाता पुरुषको दिया हुआ दान अक्षय होता है। ब्राह्मण सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप बताया गया है, उसको जीविका देनेवाले मनुष्यके पुण्यका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है? जो नित्य (सदाचारी) ब्राह्मणका हित करता है, उसने सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया, वह सब तीर्थोंमें नहा चुका और उसने सब तपस्या पूरी कर ली। जो ब्राह्मणको जीविका देनेके लिये 'दो' कहकर दूसरेको प्रेरित करता है, वह भी उसके दानका फल प्राप्त कर लेता है।

जो स्वयं अथवा दूसरेके द्वारा तालाब बनवाता है उसके पुण्यकी संख्या बताना असम्भव है। राजन्! यदि एक राही भी पोखरेका जल पी ले तो उसके बनानेवाले पुरुषके सब पाप अवश्य नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य एक दिन भी भूमिपर जलका संग्रह एवं संरक्षण कर लेता है, वह सब पापोंसे छूटकर सौ वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो मानव अपनी शक्तिभर तालाब खुदानेमें सहायता करता है, जो उसमें संतुष्ट होकर उसको प्रेरणा देता है, वह भी पोखरे बनानेका पुण्यफल पा लेता है। जो सरसों बराबर मिट्टी भी तालाबसे निकालकर बाहर फेंकता है, वह अनेकों पापोंसे मुक्त हो सौ वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। नृपश्रेष्ठ! जिसपर देवता अथवा गुरुजन संतुष्ट होते हैं, वह पोखरा खुदानेके पुण्यका भागी होता है—यह सनातन श्रुति है।

नृपश्रेष्ठ! इस विषयमें मैं तुम्हें एक इतिहास बतलाता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है—इसमें संशय नहीं है। गौडदेशमें अत्यन्त विख्यात वीरभद्र नामके एक राजा हो गये हैं। वे बड़े प्रतापी, विद्वान् तथा सदैव ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले थे। वेद और शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार कुलोचित सदाचारका वे सदा पालन करते और मित्रोंके अभ्युदयमें योग देते थे। उनकी परम सौभाग्यवती रानीका नाम चम्पकमञ्जरी था। उनके मुख्य मन्त्रीगण कर्तव्य और अकर्तव्यके विचारमें कुशल थे। वे सदा धर्मशास्त्रोंद्वारा धर्मका निर्णय किया करते थे। 'जो प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्यौतिष तथा धर्मका निर्णय बिना शास्त्रके करता है, उसे ब्राह्मणघाती बताया गया है'—मन-ही-मन ऐसा सोचकर राजा सदा अपने आचार्योंसे मनु आदिके बताये हुए धर्मोंका विधिपूर्वक श्रवण किया करते थे। उनके राज्यमें कोई छोटे-से-छोटा मनुष्य भी अन्यायका आचरण नहीं करता था। उस राजाका धर्मपूर्वक पालित होनेवाला देश स्वर्गकी समता धारण करता था। वह शुभकारक उत्तम राज्यका आदर्श था।

एक दिन राजा वीरभद्र मन्त्री आदिके साथ शिकार खेलनेके लिये बहुत बड़े वनमें गये और दोपहरतक इधर-उधर घूमते रहे। वे अत्यन्त थक गये थे। भगीरथ! उस समय वहाँ राजाको एक छोटी-सी पोखरी दिखायी दी। वह भी सूखी हुई थी। उसे देखकर मन्त्रीने सोचा—पृथ्वीके ऊपर इस शिखरपर यह पोखरी किसने बनायी है? यहाँ कैसे जल सुलभ होगा, जिससे ये राजा वीरभद्र प्यास बुझाकर जीवन धारण करेंगे। नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर मन्त्रीके मनमें उस पोखरीको खोदनेका विचार हुआ। उसने एक हाथका गड्ढा खोदकर उसमेंसे जल प्राप्त किया। राजन्! उस जलको पीनेसे राजा और उनके बुद्धिसागर नामक मन्त्रीको भी तृप्ति हुई। तब धर्म-अर्थके ज्ञाता बुद्धिसागरने राजासे कहा—'राजन्! यह पोखरी पहले वर्षाके जलसे भरी थी। अब इसके चारों ओर बाँध बना दें—ऐसी मेरी सम्मति है। देव! निष्पाप राजन्! आप इसका अनुमोदन करें और इसके लिये मुझे आज्ञा दें।' नृपश्रेष्ठ वीरभद्र अपने मन्त्रीकी यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और इस कामको करनेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने अपने मन्त्री बुद्धिसागरको ही इस शुभ कार्यमें नियुक्त किया। तब राजाकी आज्ञासे अतिशय पुण्यात्मा बुद्धिसागर उस

भगीरथने कहा—भगवन् ! आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं। परेश्वर ! आप समदर्शी भी हैं। मैं जो कुछ पूछता हूँ, उसे मुझपर बडी भारी कृपा करके बताइये। धर्म कितने प्रकारके कहे गये हैं ? धर्मात्मा पुरुषोंके कौन-से लोक हैं ? यमलोकमें कितनी यातनाएँ बतायी गयी हैं और वे किन्हें प्राप्त होती हैं ? महाभाग ! कैसे लोग आपके द्वारा सम्मानित होते हैं और कौन लोग किस प्रकार आपके द्वारा दण्डनीय हैं ? यह सब मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।

धर्मराजने कहा—महाबुद्धे ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। तुम्हारी बुद्धि निर्मल तथा ओजस्विनी है। मैं धर्म और अधर्मका यथार्थ वर्णन करता हूँ, तुम भक्तिपूर्वक सुनो। धर्म अनेक प्रकारके बताये गये हैं, जो पुण्यलोक प्रदान करनेवाले हैं। इसी प्रकार अधर्मजनित यातनाएँ भी असंख्य कही गयी हैं, जिनका दर्शन भी भयंकर है। अतः मैं सक्षेपसे ही धर्म और अधर्मका दिग्दर्शन कराऊँगा। ब्राह्मणोंको जीविका देना अत्यन्त पुण्यमय कहा गया है। इसी प्रकार अध्यात्मतत्त्वके ज्ञाता पुरुषको दिया हुआ दान अक्षय होता है। ब्राह्मण सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप बताया गया है, उसको जीविका देनेवाले मनुष्यके पुण्यका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ? जो नित्य (सदाचारी) ब्राह्मणका हित करता है, उसने सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया, वह सब तीर्थोंमें नहा चुका और उसने सब तपस्या पूरी कर ली। जो ब्राह्मणको जीविका देनेके लिये 'दो' कहकर दूसरेको प्रेरित करता है, वह भी उसके दानका फल प्राप्त कर लेता है।

जो स्वयं अथवा दूसरेके द्वारा तालाब बनवाता है उसके पुण्यकी संख्या बताना असम्भव है। राजन् ! यदि एक राही भी पोखरेका जल पी ले तो उसके बनानेवाले पुरुषके सब पाप अवश्य नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य एक दिन भी भूमिपर जलका संग्रह एवं सरक्षण कर लेता है, वह सब पापोंसे छूटकर सौ वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो मानव अपनी शक्तिभर तालाब खुदानेमें सहायता करता है, जो उससे संतुष्ट होकर उसको प्रेरणा देता है, वह भी पोखरे बनानेका पुण्यफल पा लेता है। जो सरसों बराबर मिट्टी भी तालाबसे निकालकर बाहर फेंकता है, वह अनेकों पापोंसे मुक्त हो सौ वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। नृपश्रेष्ठ ! जिसपर देवता अथवा गुरुजन संतुष्ट होते हैं, वह पोखरा खुदानेके पुण्यका भागी होता है—यह सनातन श्रुति है।

नृपश्रेष्ठ ! इस विषयमें मैं तुम्हें एक इतिहास बतलाता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है—इसमें संशय नहीं है। गौडदेशमें अत्यन्त विख्यात वीरभद्र नामके एक राजा हो गये हैं। वे बड़े प्रतापी, विद्वान् तथा सदैव ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले थे। वेद और शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार कुलोचित सदाचारका वे सदा पालन करते और मित्रोंके अभ्युदयमें योग देते थे। उनकी परम सौभाग्यवती रानीका नाम चम्पकमञ्जरी था। उनके मुख्य मन्त्रीगण कर्तव्य और अकर्तव्यके विचारमें कुशल थे। वे सदा धर्मशास्त्रोंद्वारा धर्मका निर्णय किया करते थे। 'जो प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्यौतिष तथा धर्मका निर्णय बिना शास्त्रके करता है, उसे ब्राह्मणघाती बताया गया है'—मन-ही-मन ऐसा सोचकर राजा सदा अपने आचार्योंसे मनु आदिके बताये हुए धर्मोंका विधिपूर्वक श्रवण किया करते थे। उनके राज्यमें कोई छोटे-से-छोटा मनुष्य भी अन्यायका आचरण नहीं करता था। उस राजाका धर्मपूर्वक पालित होनेवाला देश स्वर्गकी समता धारण करता था। वह शुभकारक उत्तम राज्यका आदर्श था।

एक दिन राजा वीरभद्र मन्त्री आदिके साथ शिकार खेलनेके लिये बहुत बड़े वनमें गये और दोपहरतक इधर-उधर घूमते रहे। वे अत्यन्त थक गये थे। भगीरथ ! उस समय वहाँ राजाको एक छोटी-सी पोखरी दिखायी दी। वह भी सूखी हुई थी। उसे देखकर मन्त्रीने सोचा—पृथ्वीके ऊपर इस शिखरपर यह पोखरी किसने बनायी है ? यहाँ कैसे जल सुलभ होगा, जिससे ये राजा वीरभद्र प्यास बुझाकर जीवन धारण करेंगे। नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर मन्त्रीके मनमें उस पोखरीको खोदनेका विचार हुआ। उसने एक हाथका गड्ढा खोदकर उसमेंसे जल प्राप्त किया। राजन् ! उस जलको पीनेसे राजा और उनके बुद्धिसागर नामक मन्त्रीको भी तृप्ति हुई। तब धर्म-अर्थके ज्ञाता बुद्धिसागरने राजासे कहा—'राजन् ! यह पोखरी पहले वर्षाके जलसे भरी थी। अब इसके चारों ओर बाँध बना दें—ऐसी मेरी सम्मति है। देव ! निष्पाप राजन् ! आप इसका अनुमोदन करें और इसके लिये मुझे आज्ञा दें।' नृपश्रेष्ठ वीरभद्र अपने मन्त्रीकी यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और इस कामको करनेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने अपने मन्त्री बुद्धिसागरको ही इस शुभ कार्यमें नियुक्त किया। तब राजाकी आज्ञासे अतिशय पुण्यात्मा बुद्धिसागर उस

है। जो तुलसीके मूलभागकी मिट्टीसे, गोपीचन्दनसे, चित्रकूटकी मिट्टीसे अथवा गङ्गाजीकी मृत्तिकासे ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलका वर्णन सुनो। वह श्रेष्ठ विमानपर बैठकर गन्धर्वों और अप्सराओंके समूहद्वारा अपने चरित्रका गान सुनता हुआ भगवान् विष्णुके धाममें आनन्द भोगता है। जो तुलसीके पौधेपर चुल्लूभर भी पानी डालता है, वह क्षीरसागर-निवासी भगवान् विष्णुके साथ तबतक निवास करता है, जबतक चन्द्रमा और तारे रहते हैं, तदनन्तर विष्णुमें लय हो जाता है। जो ब्राह्मणोंको कोमल तुलसीदल अर्पित करता है, वह तीन पीढ़ियोंके साथ ब्रह्मलोकमें जाता है। जो तुलसीके लिये काँटोंका आवरण या चहारदीवारी बनवाता है, वह भी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ भगवान् विष्णुके धाममें आनन्दका अनुभव करता है। नरेश्वर! जो तुलसीके कोमल दलोंसे भगवान् विष्णुके चरणकमलोंकी पूजा करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है; उसका वहाँसे कभी पुनरागमन नहीं होता। पुष्प तथा चन्दनके जलसे भगवान् गोविन्दको भक्तिपूर्वक नहलाकर मनुष्य विष्णुधाममें जाता है। जो कपड़ेसे छाने हुए जलके द्वारा भगवान् लक्ष्मीपतिको स्नान कराता है, वह सब पापोंसे छूटकर भगवान् विष्णुके साथ सुखी होता है। जो सूर्यकी संक्रान्तिके दिन दूध आदिसे श्रीहरिको नहलाता है, वह इक्कीस पीढियोंके साथ विष्णुलोकमें वास करता है। शुक्लपक्षमें चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, एकादशी, रविवार, द्वादशी, पञ्चमी तिथि, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, मन्वादि तिथि, युगादितिथि, सूर्यके आधे उदयके समय, सूर्यके पुष्य-नक्षत्रपर रहते समय, रोहिणी और बुधके योगमें, शनि और रोहिणी तथा मङ्गल और अश्विनीके योगमें, शनि-अश्विनी, बुध-अश्विनी, शुक्र-रेवती योग, बुध-अनुराधा, श्रवण-सूर्य, सोमवार-श्रवण, हस्त-बृहस्पति, बुध-अष्टमी तथा बुध और आषाढाके योगमें और दूसरे-दूसरे पवित्र दिनोंमें जो पुरुष शान्तचित्त, मौन और पवित्र होकर दूध, दही, घी और शहदसे श्रीविष्णुको स्नान कराता है, उसको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन सुनो। वह सब पापोंसे छूटकर सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता और इक्कीस पीढियोंके साथ वैकुण्ठधाममें निवास करता है। राजन्! फिर वहीं ज्ञान प्राप्त करके वह पुनरावृत्तिरहित और योगियोंके लिये भी दुर्लभ हरिका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। भूपते! जो कृष्णपक्षमें चतुर्दशी तिथि और सोमवारके दिन भगवान् शङ्करको दूधसे नहलाता है, वह शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। अष्टमी अथवा सोमवारको भक्तिपूर्वक नारियलके जलसे भगवान् शिवको स्नान कराकर मनुष्य शिव-सायुज्यका अनुभव करता है। भूपते! शुक्लपक्षकी चतुर्दशी अथवा अष्टमीको घृत और मधुके द्वारा भगवान् शिवको स्नान कराकर मनुष्य उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। तिलके तेलसे भगवान् विष्णु अथवा शिवको स्नान कराकर मनुष्य सात पीढ़ियोंके साथ उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। जो शिवको भक्तिपूर्वक ईखके रससे स्नान कराता है, वह सात पीढ़ियोंके साथ एक कल्पतक भगवान् शिवके लोकमें निवास करता है। (फिर शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।)

नरेश! एकादशीके दिन सुगन्धित फूलोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करके मनुष्य दस हजार जन्मके पापोंसे छूट जाता और उनके परम धामको प्राप्त कर लेता है। महाराज! चम्पाके फूलोंसे भगवान् विष्णुकी और आकके फूलोंसे भगवान् शङ्करकी पूजा करके मनुष्य उन-उनका सालोक्य प्राप्त करता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवान् शङ्कर अथवा विष्णुको धूपमें घृतयुक्त गुग्गुल मिलाकर देता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है। नृपश्रेष्ठ! जो भगवान् विष्णु अथवा शङ्करको तिलके तेलसे युक्त दीपदान करता है, वह समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। जो भगवान् शिव अथवा विष्णुको घीका दीपक देता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो गङ्गा-स्नानका फल पाता है।

जो-जो अभीष्ट वस्तुएँ हैं, वह सब ब्राह्मणको दान कर दे—ऐसा मनुष्य पुनर्जन्मसे रहित भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। अन्न और जलके समान दूसरा कोई दान न हुआ है, न होगा। अन्नदान करनेवाला प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदाता है, वह सब कुछ देनेवाला है। नृपश्रेष्ठ! इसलिये अन्नदान करनेवालेको सम्पूर्ण दानोंका फल मिलता है। जलदान तत्काल संतुष्ट करनेवाला माना गया है। नृपश्रेष्ठ! इसलिये ब्रह्मवादी मनुष्योंने जलदानको अन्नदानसे श्रेष्ठ बताया है। महापातक अथवा उपपातकोंसे युक्त मनुष्य भी यदि जलदान करनेवाला है तो वह उन सब पापोंसे मुक्त हो जाता है, यह ब्रह्माजीका कथन है। शरीरको अन्नसे उत्पन्न कहा गया है। प्राणोंको भी अन्नजनित ही मानते हैं; अतः पृथ्वीपते! जो अन्नदान देनेवाला है, उसे प्राणदाता समझना चाहिये; क्योंकि जो-जो तृप्तिकारक दान है, वह समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है; अतः भूपाल! इस पृथ्वीपर अन्नदानके समान दूसरा कोई दान नहीं है। जो दरिद्र अथवा रोगी मनुष्यकी रक्षा करता है, उसपर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण कर

है । जो तुलसीके मूलभागकी मिट्टीसे, गोपीचन्दनसे, चित्रकूटकी मिट्टीसे अथवा गङ्गाजीकी मृत्तिकासे ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलका वर्णन सुनो । वह श्रेष्ठ विमानपर बैठकर गन्धर्वों और अप्सराओंके समूहद्वारा अपने चरित्रका गान सुनता हुआ भगवान् विष्णुके धाममें आनन्द भोगता है । जो तुलसीके पौधेपर चुल्लूभर भी पानी डालता है, वह क्षीरसागर-निवासी भगवान् विष्णुके साथ तबतक निवास करता है, जबतक चन्द्रमा और तारे रहते हैं, तदनन्तर विष्णुमें लय हो जाता है। जो ब्राह्मणोंको कोमल तुलसीदल अर्पित करता है, वह तीन पीढ़ियोंके साथ ब्रह्मलोकमें जाता है। जो तुलसीके लिये काँटोंका आवरण या चहारदीवारी बनवाता है, वह भी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ भगवान् विष्णुके धाममें आनन्दका अनुभव करता है । नरेश्वर ! जो तुलसीके कोमल दलोंसे भगवान् विष्णुके चरणकमलोंकी पूजा करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है, उसका वहाँसे कभी पुनरागमन नहीं होता । पुष्प तथा चन्दनके जलसे भगवान् गोविन्दको भक्तिपूर्वक नहलाकर मनुष्य विष्णुधाममें जाता है । जो कपड़ेसे छाने हुए जलके द्वारा भगवान् लक्ष्मीपतिको स्नान कराता है, वह सब पापोंसे छूटकर भगवान् विष्णुके साथ सुखी होता है । जो सूर्यकी संक्रान्तिके दिन दूध आदिसे श्रीहरिको नहलाता है, वह इक्कीस पीढ़ियोंके साथ विष्णुलोकमें वास करता है । शुक्लपक्षमें चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, एकादशी, रविवार, द्वादशी, पञ्चमी तिथि, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, मन्वादि तिथि, युगादितिथि, सूर्यके आधे उदयके समय, सूर्यके पुष्य-नक्षत्रपर रहते समय, रोहिणी और बुधके योगमें, शनि और रोहिणी तथा मङ्गल और अश्विनीके योगमें, शनि-अश्विनी, बुध-अश्विनी, शुक्र-रेवती योग, बुध-अनुराधा, श्रवण-सूर्य, सोमवार-श्रवण, हस्त-बृहस्पति, बुध-अष्टमी तथा बुध और आषाढ़ाके योगमें और दूसरे-दूसरे पवित्र दिनोंमें जो पुरुष शान्तचित्त, मौन और पवित्र होकर दूध, दही, घी और शहदसे श्रीविष्णुको स्नान कराता है, उसको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन सुनो । वह सब पापोंसे छूटकर सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता और इक्कीस पीढ़ियोंके साथ वैकुण्ठधाममें निवास करता है । राजन् ! फिर वहीं ज्ञान प्राप्त करके वह पुनरावृत्तिरहित और योगियोंके लिये भी दुर्लभ हरिका सायुज्य प्राप्त कर लेता है । भूपते ! जो कृष्णपक्षमें चतुर्दशी तिथि और सोमवारके दिन भगवान् शङ्करको दूधसे नहलाता है, वह शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। अष्टमी अथवा सोमवारको भक्तिपूर्वक नारियलके जलसे भगवान् शिवको स्नान कराकर मनुष्य शिव-सायुज्यका अनुभव करता है। भूपते ! शुक्लपक्षकी चतुर्दशी अथवा अष्टमीको घृत और मधुके द्वारा भगवान् शिवको स्नान कराकर मनुष्य उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है । तिलके तेलसे भगवान् विष्णु अथवा शिवको स्नान कराकर मनुष्य सात पीढ़ियोंके साथ उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है । जो शिवको भक्तिपूर्वक ईखके रससे स्नान कराता है, वह सात पीढ़ियोंके साथ एक कल्पतक भगवान् शिवके लोकमें निवास करता है। (फिर शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।)

नरेश ! एकादशीके दिन सुगन्धित फूलोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करके मनुष्य दस हजार जन्मके पापोंसे छूट जाता और उनके परम धामको प्राप्त कर लेता है । महाराज ! चम्पाके फूलोंसे भगवान् विष्णुकी और आकके फूलोंसे भगवान् शङ्करकी पूजा करके मनुष्य उन-उनका सालोक्य प्राप्त करता है । जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवान् शङ्कर अथवा विष्णुको धूपमें घृतयुक्त गुग्गुल मिलाकर देता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है । नृपश्रेष्ठ ! जो भगवान् विष्णु अथवा शङ्करको तिलके तेलसे युक्त दीपदान करता है, वह समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । जो भगवान् शिव अथवा विष्णुको घीका दीपक देता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो गङ्गा-स्नानका फल पाता है ।

जो-जो अभीष्ट वस्तुएँ हैं, वह सब ब्राह्मणको दान कर दे—ऐसा मनुष्य पुनर्जन्मसे रहित भगवान् विष्णुके धाममें जाता है । अन्न और जलके समान दूसरा कोई दान न हुआ है, न होगा । अन्नदान करनेवाला प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदाता है, वह सब कुछ देनेवाला है । नृपश्रेष्ठ ! इसलिये अन्नदान करनेवालेको सम्पूर्ण दानोंका फल मिलता है । जलदान तत्काल संतुष्ट करनेवाला माना गया है । नृपश्रेष्ठ ! इसलिये ब्रह्मवादी मनुष्योंने जलदानको अन्नदानसे श्रेष्ठ बताया है । महापातक अथवा उपपातकोंसे युक्त मनुष्य भी यदि जलदान करनेवाला है तो वह उन सब पापोंसे मुक्त हो जाता है, यह ब्रह्माजीका कथन है । शरीरको अन्नसे उत्पन्न कहा गया है । प्राणोंको भी अन्नजनित ही मानते हैं; अतः पृथ्वीपते ! जो अन्नदान देनेवाला है, उसे प्राणदाता समझना चाहिये; क्योंकि जो-जो तृप्तिकारक दान है, वह समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है; अतः भूपाल ! इस पृथ्वीपर अन्नदानके समान दूसरा कोई दान नहीं है । जो दरिद्र अथवा रोगी मनुष्यकी रक्षा करता है, उसपर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण कर

करता है; वह पुनरावृत्तिरहित शिव-सायुज्यको प्राप्त करता

है। सूर्यवंशी भगीरथ ! जो पूजारहित विष्णु-प्रतिमाका जलसे भी पूजन करता है, उसे विष्णुका सालोक्य प्राप्त होता है। राजन् ! जो देवालयमे गोचर्मके बराबर भू-भागको भी जलसे सींचता है, वह स्वर्गलोक पाता है। जो देवमन्दिरकी भूमिको चन्दनमिश्रित जलसे सींचता है, वह जितने कणोको भिगोता है, उतने कल्पतक उस देवताके समीप निवास करता है। जो मनुष्य पत्थरके चूनेसे देवमन्दिरको लीपता है या उसमें स्वस्तिक आदिके चिह्न बनाता है, उसको अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। जो भगवान् विष्णु या शङ्करके समीप अखण्ड दीपकी व्यवस्था करता है, उसको एक-एक क्षणमें अश्वमेध यज्ञका फल सुलभ होता है। भूमिपाल ! जो देवीके मन्दिरकी एक बार, सूर्यके मन्दिरकी सात बार, गणेशके मन्दिरकी तीन बार और विष्णु-मन्दिरकी चार बार परिक्रमा करता है, वह उन-उनके धाममे जाकर लाखों युगोतक सुख भोगता है। जो भक्तिभावसे भगवान् विष्णु, गौ तथा ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो काशीमें भगवान् शिवके लिङ्गका पूजन करके प्रणाम करता है, उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता, उसका फिर संसारमें जन्म नहीं होता। जो विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी दक्षिण और वाम परिक्रमा करता है, वह मनुष्य उनकी कृपासे स्वर्गसे नीचे नहीं आता। जो रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणकी स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करता है, वह मनसे जो-जो चाहता है, उन सब कामनाओं-को प्राप्त कर लेता है। भूपाल ! जो भक्तिभावसे युक्त हो देवमन्दिरमे नृत्य अथवा गान करता है, वह रुद्रलोकमे जाकर मोक्षका भागी होता है। जो मनुष्य देवमन्दिरमे बाजा बजाते हैं, वे हंसयुक्त विमानपर आरूढ़ हो ब्रह्माजीके धाममे जाते हैं। जो लोग देवालयमें करताल बजाते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो दस हजार युगोंतक विमानचारी होते हैं। जो लोग भेरी, मृदङ्ग, पटह, मुरज और डिंडिम आदि बाजोंद्वारा देवेश्वर भगवान् शिवको प्रसन्न करते है, उन्हे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलका वर्णन सुनो। वे सम्पूर्ण कामनाओंसे पूजित हो स्वर्गलोकमे जाकर पॉच कल्पोंतक सुख भोगते हैं। राजन् ! जो मनुष्य देवमन्दिरमें शङ्खध्वनि करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके साथ सुख भोगता है। जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें ताल और झॉझ आदिका शब्द करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो सबके साक्षी, निरञ्जन एवं ज्ञानस्वरूप भगवान् विष्णु हैं, वे संतुष्ट होनेपर सब धर्मोंका यथायोग्य सम्पूर्ण फल देते हैं। भूपते ! जिन देवाधिदेव सुदर्शनचक्रधारी श्रीहरिके स्मरण-मात्रसे सम्पूर्ण कर्म सफल होते हैं, वे जगदीश्वर परमात्मा ही समस्त कर्मोंके फल हैं। पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषोंद्वारा सदा स्मरण किये जानेपर वे भगवान् उनकी सब पीडाओंका नाश करते हैं। भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय मोक्षका कारण होता है। भगवान् विष्णु ही धर्म हैं। धर्मके फल भी भगवान् विष्णु ही हैं। इसी प्रकार कर्म, कर्मोंके फल और उनके भोक्ता भी भगवान् विष्णु ही हैं। कार्य भी विष्णु है, करण भी विष्णु हैं। उनसे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है *।

---

* यो देवः सर्वदृग्विष्णुर्ज्ञानरूपी निरञ्जनः। सर्वधर्मफलं पूर्णं संतुष्टः प्रददाति च ॥
यस्य स्मरणमात्रेण देवदेवस्य चक्रिणः। सफलानि भवन्त्येव सर्वकर्माणि भूपते ॥
परमात्मा जगन्नाथः सर्वकर्मफलप्रदः। सत्कर्मकर्तृभिर्नित्यं स्मृतः सर्वार्तिनाशनः।
तमुद्दिश्य कृतं यच्च तदानन्त्याय कल्पते ॥
धर्माणि विष्णुश्च फलानि विष्णुः कर्माणि विष्णुश्च फलानि भोक्ता। कार्यं च विष्णुः करणानि विष्णुरस्मान्न किंचिद् व्यतिरिक्तमस्ति ॥
(१३। ५०—५३)

करता है; वह पुनरावृत्तिरहित शिव-सायुज्यको प्राप्त करता

है। सूर्यवंशी भगीरथ ! जो पूजारहित विष्णु-प्रतिमाका जलसे भी पूजन करता है, उसे विष्णुका सालोक्य प्राप्त होता है। राजन् ! जो देवालयमे गोचर्मके बराबर भू-भागको भी जलसे सींचता है, वह स्वर्गलोक पाता है। जो देवमन्दिरकी भूमिको चन्दनमिश्रित जलसे सींचता है, वह जितने कणोको भिगोता है, उतने कल्पतक उस देवताके समीप निवास करता है। जो मनुष्य पत्थरके चूनेसे देवमन्दिरको लीपता है या उसमें स्वस्तिक आदिके चिह्न बनाता है, उसको अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। जो भगवान् विष्णु या शङ्करके समीप अखण्ड दीपकी व्यवस्था करता है, उसको एक-एक क्षणमें अश्वमेध यज्ञका फल सुलभ होता है। भूमिपाल ! जो देवीके मन्दिरकी एक बार, सूर्यके मन्दिरकी सात बार, गणेशके मन्दिरकी तीन बार और विष्णु-मन्दिरकी चार बार परिक्रमा करता है, वह उन-उनके धाममे जाकर लाखों युगोतक सुख भोगता है। जो भक्तिभावसे भगवान् विष्णु, गौ तथा ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो काशीमें भगवान् शिवके लिङ्गका पूजन करके प्रणाम करता है, उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता, उसका फिर ससारमें जन्म नहीं होता। जो विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी दक्षिण और वाम परिक्रमा करता है, वह मनुष्य उनकी कृपासे स्वर्गसे नीचे नहीं आता। जो रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणकी स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करता है, वह मनसे जो-जो चाहता है, उन सब कामनाओं-को प्राप्त कर लेता है। भूपाल ! जो भक्तिभावसे युक्त हो देवमन्दिरमे नृत्य अथवा गान करता है, वह रुद्रलोकमे जाकर मोक्षका भागी होता है। जो मनुष्य देवमन्दिरमे बाजा बजाते हैं, वे हंसयुक्त विमानपर आरूढ़ हो ब्रह्माजीके धाममे जाते हैं। जो लोग देवालयमें करताल बजाते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो दस हजार युगोंतक विमानचारी होते हैं। जो लोग भेरी, मृदङ्ग, पटह, मुरज और डिंडिम आदि बाजोद्वारा देवेश्वर भगवान् शिवको प्रसन्न करते है, उन्हे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलका वर्णन सुनो। वे सम्पूर्ण कामनाओंसे पूजित हो स्वर्गलोकमे जाकर पॉच कल्पोंतक सुख भोगते हैं। राजन् ! जो मनुष्य देवमन्दिरमें शङ्खध्वनि करता है, वह सब पापोसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके साथ सुख भोगता है। जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमे ताल और झॉझ आदिका शब्द करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो सबके साक्षी, निरञ्जन एवं ज्ञानस्वरूप भगवान् विष्णु हैं, वे संतुष्ट होनेपर सब धर्मोंका यथायोग्य सम्पूर्ण फल देते हैं। भूपते ! जिन देवाधिदेव सुदर्शनचक्रधारी श्रीहरिके स्मरण-मात्रसे सम्पूर्ण कर्म सफल होते हैं, वे जगदीश्वर परमात्मा ही समस्त कर्मोंके फल हैं। पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषोंद्वारा सदा स्मरण किये जानेपर वे भगवान् उनकी सब पीडाओंका नाश करते हैं। भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय मोक्षका कारण होता है। भगवान् विष्णु ही धर्म हैं। धर्मके फल भी भगवान् विष्णु ही हैं। इसी प्रकार कर्म, कर्मोंके फल और उनके भोक्ता भी भगवान् विष्णु ही हैं। कार्य भी विष्णु हैं, करण भी विष्णु हैं। उनसे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है *।

---

* यो देवः सर्वदृग्विष्णुर्ज्ञानरूपी निरञ्जन.। मर्वधर्मफल पूर्णं सतुष्ट. प्रयच्छति च ॥
यस्य स्मरणमात्रेण देवदेवस्य चक्रिण.। सफलानि भवन्त्येव सर्वकर्माणि भूपते ॥
परमात्मा जगन्नाथ. सर्वकर्मफलप्रद । सत्कर्मकर्तृभिर्नित्य स्मृत सर्वार्तिनाशनः।
तमुद्दिश्य कृतं यच्च तदानन्त्याय कल्पते ॥
धर्माणि विष्णुश्च फलानि विष्णु. कर्माणि विष्णुश्च फलानि भोक्ता। कार्यं च विष्णु' करणानि विष्णुरस्मान्न किंचिद् व्यतिरिक्तमस्ति ॥
(१३। ५०—५३)

मूत्रकी ही भाँति शुद्धि मानी गयी है। अर्थात् हाथ, मुँह आदि धोकर कुल्ला करना चाहिये। मैथुनकर्ममे लगे हुए पति-पत्नी दोनों ही अशुद्ध होते हैं, परंतु शय्यासे उठनेपर स्त्री तो शुद्ध हो जाती है, किंतु पुरुष स्नानके पूर्वतक अशुद्ध ही बना रहता है। जो लोग पतित न होनेपर भी अपने बन्धुजनोंका त्याग करते हैं, (राजाको उचित है कि) उन्हे उत्तम साहस*का दण्ड दे। यदि पिता पतित हो जाय तो उसके साथ इच्छानुसार बर्ताव करे। अर्थात् अपनी रुचिके अनुसार उसका त्याग और ग्रहण दोनो कर सकते है; किंतु माताका त्याग कभी न करे। जो रस्सी आदि साधनोद्वारा फाँसी लगाकर आत्मघात करता है, वह यदि मर जाय तो उसके शरीरमे पवित्र वस्तुका लेप करा दे और यदि जीवित बच जाय तो राजा उससे दो सौ मुद्रा दण्ड ले। उसके पुत्र और मित्रोंपर एक-एक मुद्रा दण्ड लगावे और वे लोग शास्त्रीय विधिके अनुसार प्रायश्चित्त करें। जो मनुष्य मरनेके लिये जलमे प्रवेश करके अथवा फाँसी लगाकर मरनेसे बच जाते है, जो संन्यास ग्रहण करके और उपवास व्रत प्रारम्भ करके उसे त्याग देते है, जो विष पीकर अथवा ऊँचे स्थानसे गिर-कर मरनेकी चेष्टा करनेपर भी जीवित बच जाते हैं तथा जो शस्त्रका अपने ऊपर आघात करके भी मृत्युसे वञ्चित रह जाते हैं, वे सब सम्पूर्ण लोकसे बहिष्कृत हैं। इनके साथ भोजन या निवास नहीं करना चाहिये। ये सब-के-सब एक चान्द्रायण अथवा दो तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होते हैं। कुत्ते, सियार और वानर आदि जन्तुओंके काटनेपर तथा मनुष्यद्वारा दाँतसे काटे जानेपर भी मनुष्य दिन, रात अथवा सध्या कोई भी समय क्यो न हो, तुरत स्नान कर लेनेपर शुद्ध हो जाता है। जो ब्राह्मण अज्ञानसे—अनजानमे किसी प्रकार चाण्डालका अन्न खा लेता है, वह गोमूत्र और यावकका आहार करके पंद्रह दिनमें शुद्ध होता है। गौ अथवा ब्राह्मणका घर जलाकर, फाँसी आदि लगाकर मरे हुए मनुष्यका स्पर्श करके तथा उसके बन्धनोको काटकर ब्राह्मण अपनी शुद्धिके लिये एक कृच्छ्रव्रतका आचरण करे। माता, गुरुपत्नी, पुत्री, बहिन और पुत्रवधूसे समागम करनेवाला तो प्रज्वलित अग्निमे प्रवेश कर जाय। उसके लिये दूसरा कोई शुद्धिका उपाय नहीं है। रानी, संन्यासिनी, धाय, अपनेसे श्रेष्ठ वर्णकी स्त्री तथा समान गोत्रवाली स्त्रीके साथ समागम करनेपर मनुष्य दो कृच्छ्रव्रतका अनुष्ठान करे। पिताके गोत्र अथवा माताके गोत्रमें उत्पन्न होनेवाली अन्यान्य स्त्रियो तथा सभी परस्त्रियोंसे अनुचित सम्बन्ध रखनेवाला पुरुष उस पापसे हटकर अपनी शुद्धिके लिये कृच्छ्रशान्तपन-व्रत करे। द्विजगण खूब तपाये हुए कुशोदक-को केवल एक बार पाँच राततक पीकर वेश्यागमनके पापका निवारण करते हैं। गुरुतल्पगामीके लिये जो व्रत है, वही कुछ लोग गोघातकके लिये भी बताते हैं और कुछ विद्वान् अवकीर्णी (धर्मभ्रष्ट) के लिये भी उसी व्रतका विधान करते है। जो डंडेसे गौके ऊपर प्रहार करके उसे मार गिराता है, उसके लिये गोवधका जो सामान्य प्रायश्चित्त है, उससे दूना व्रत करनेका विधान है। तभी वह व्रत उसके पापको शुद्ध कर सकता है। गौको हाँकनेके लिये अँगूठेके बराबर मोटी, बाँहके बराबर बड़ी पल्लवयुक्त और गीली पतली डालका डंडा उचित बताया गया है। यदि गौओंके मारनेपर उनका गर्भ भी हो और वह मर जाय तो उनके लिये पृथक्-पृथक् एक-एक कृच्छ्रव्रत करे। यदि कोई काठ, ढेला, पत्थर अथवा किसी प्रकारके शस्त्रद्वारा गौओको मार डाले तो भिन्न-भिन्न शस्त्रके लिये शास्त्रमें इस प्रकार प्रायश्चित्त बताया गया है। काष्ठसे मारनेपर शान्तपन-

* मनुष्य बलके अभिमानसे जो क्रूरतापूर्ण कर्म करता है, उसे 'साहस' कहते हैं। उसके तीन भेद हैं—प्रथम, मध्यम और उत्तम। फल, मूल, जल आदि और खेतकी सामग्रीको नष्ट करना 'प्रथम साहस' माना गया है। वस्त्र, पशु, अन्न, पान और घरकी सामग्री आदिकी लूट-खसोट करना 'मध्यम साहस' कहा गया है। जहर देकर या हथियारसे किसीको मारना, परायी स्त्रियोंसे बलात्कार करना तथा अन्यान्य प्राणनाशक कार्य करना 'उत्तम साहस'के अन्तर्गत है। प्रथम साहसका दण्ड है कम-से-कम सौ पण, मध्यम साहसका दण्ड कम-से-कम पाँच सौ पण हैं। उत्तम साहसमें कम-से-कम एक हजार पण दण्ड लगाया जाता है। इसके सिवा, अपराधीका वध या अङ्ग-भङ्ग अथवा सर्वस्व-हरण या नगरसे निर्वासन आदि भी 'उत्तम साहस'के दण्ड बताये गये हैं; जैसा कि नारद-स्मृतिमें कहा गया है—

तस्य दण्ड क्रियापेक्षः प्रथमस्य शतावरः।
मध्यमस्य तु शास्त्रज्ञैर्दृष्टः पञ्चशतावर ॥
उत्तमे साहसे दण्डः सहस्रावर इष्यते।
वध. सर्वस्वहरण पुरान्निर्वासनाङ्कने ॥
तदङ्गच्छेद इत्युक्तो दण्ड उत्तमसाहसे ॥

(विवादपद ७–९)

मूत्रकी ही भाँति शुद्धि मानी गयी है। अर्थात् हाथ, मुँह आदि धोकर कुल्ला करना चाहिये। मैथुनकर्ममें लगे हुए पति-पत्नी दोनों ही अशुद्ध होते हैं, परंतु शय्यासे उठनेपर स्त्री तो शुद्ध हो जाती है, किंतु पुरुष स्नानके पूर्वतक अशुद्ध ही बना रहता है। जो लोग पतित न होनेपर भी अपने बन्धुजनोंका त्याग करते हैं, (राजाको उचित है कि) उन्हें उत्तम साहस*का दण्ड दे। यदि पिता पतित हो जाय तो उसके साथ इच्छानुसार बर्ताव करे। अर्थात् अपनी रुचिके अनुसार उसका त्याग और ग्रहण दोनों कर सकते हैं; किंतु माताका त्याग कभी न करे। जो रस्सी आदि साधनोंद्वारा फाँसी लगाकर आत्मघात करता है, वह यदि मर जाय तो उसके शरीरमें पवित्र वस्तुका लेप करा दे और यदि जीवित बच जाय तो राजा उससे दो सौ मुद्रा दण्ड ले। उसके पुत्र और मित्रोंपर एक-एक मुद्रा दण्ड लगावे और वे लोग शास्त्रीय विधिके अनुसार प्रायश्चित्त करें। जो मनुष्य मरनेके लिये जलमें प्रवेश करके अथवा फाँसी लगाकर मरनेसे बच जाते हैं, जो संन्यास ग्रहण करके और उपवास व्रत प्रारम्भ करके उसे त्याग देते हैं, जो विष पीकर अथवा ऊँचे स्थानसे गिरकर मरनेकी चेष्टा करनेपर भी जीवित बच जाते हैं तथा जो शस्त्रका अपने ऊपर आघात करके भी मृत्युसे वञ्चित रह जाते हैं, वे सब सम्पूर्ण लोकसे बहिष्कृत हैं। इनके साथ भोजन या निवास नहीं करना चाहिये। ये सब-के-सब एक चान्द्रायण अथवा दो तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होते हैं। कुत्ते, सियार और वानर आदि जन्तुओंके काटनेपर तथा मनुष्यद्वारा दाँतसे काटे जानेपर भी मनुष्य दिन, रात अथवा संध्या कोई भी समय क्यों न हो, तुरंत स्नान कर लेनेपर शुद्ध हो जाता है। जो ब्राह्मण अज्ञानसे—अनजानमें किसी प्रकार चाण्डालका अन्न खा लेता है, वह गोमूत्र और यावकका आहार करके पंद्रह दिनमें शुद्ध होता है। गौ अथवा ब्राह्मणका घर जलाकर, फाँसी आदि लगाकर मरे हुए मनुष्यका स्पर्श करके तथा उसके बन्धनोंको काटकर ब्राह्मण अपनी शुद्धिके लिये एक कृच्छ्रव्रतका आचरण करे। माता, गुरुपत्नी, पुत्री, बहिन और पुत्रवधूसे समागम करनेवाला तो प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जाय। उसके लिये दूसरा कोई शुद्धिका उपाय नहीं है। रानी, संन्यासिनी, धाय, अपनेसे श्रेष्ठ वर्णकी स्त्री तथा समान गोत्रवाली स्त्रीके साथ समागम करनेपर मनुष्य दो कृच्छ्रव्रतका अनुष्ठान करे। पिताके गोत्र अथवा माताके गोत्रमें उत्पन्न होनेवाली अन्यान्य स्त्रियों तथा सभी परस्त्रियोंसे अनुचित सम्बन्ध रखनेवाला पुरुष उस पापसे हटकर अपनी शुद्धिके लिये कृच्छ्रशान्तपन-व्रत करे। द्विजगण खूब तपाये हुए कुशोदकको केवल एक बार पाँच राततक पीकर वेश्यागमनके पापका निवारण करते हैं। गुरुतल्पगामीके लिये जो व्रत है, वही कुछ लोग गोघातकके लिये भी बताते हैं और कुछ विद्वान् अवकीर्णी (धर्मभ्रष्ट) के लिये भी उसी व्रतका विधान करते हैं। जो डंडेसे गौके ऊपर प्रहार करके उसे मार गिराता है, उसके लिये गोवधका जो सामान्य प्रायश्चित्त है, उससे दूना व्रत करनेका विधान है। तभी वह व्रत उसके पापको शुद्ध कर सकता है। गौको हाँकनेके लिये अँगूठेके बराबर मोटी, बाँहके बराबर बड़ी पल्लवयुक्त और गीली पतली डालका डंडा उचित बताया गया है। यदि गौओंके मारनेपर उनका गर्भ भी हो और वह मर जाय तो उनके लिये पृथक्-पृथक् एक-एक कृच्छ्रव्रत करे। यदि कोई काठ, ढेला, पत्थर अथवा किसी प्रकारके शस्त्रद्वारा गौओंको मार डाले तो भिन्न-भिन्न शस्त्रके लिये शास्त्रमें इस प्रकार प्रायश्चित्त बताया गया है। काष्ठसे मारनेपर शान्तपन-

---

* मनुष्य बलके अभिमानसे जो क्रूरतापूर्ण कर्म करता है, उसे 'साहस' कहते हैं। उसके तीन भेद हैं—प्रथम, मध्यम और उत्तम। फल, मूल, जल आदि और खेतकी सामग्रीको नष्ट करना 'प्रथम साहस' माना गया है। वस्त्र, पशु, अन्न, पान और घरकी सामग्री आदिकी लूट-खसोट करना 'मध्यम साहस' कहा गया है। जहर देकर या हथियारसे किसीको मारना, परायी स्त्रियोंसे बलात्कार करना तथा अन्यान्य प्राणनाशक कार्य करना 'उत्तम साहस'के अन्तर्गत है। प्रथम साहसका दण्ड है कम-से-कम सौ पण, मध्यम साहसका दण्ड कम-से-कम पाँच सौ पण है। उत्तम साहसमें कम-से-कम एक हजार पण दण्ड लगाया जाता है। इसके सिवा, अपराधीका वध या अङ्ग-भङ्ग अथवा सर्वस्व-हरण या नगरसे निर्वासन आदि भी 'उत्तम साहस'के दण्ड बताये गये हैं; जैसा कि नारद-स्मृतिमें कहा गया है—

तस्य दण्डः क्रियापेक्षः प्रथमस्य शतावरः।
मध्यमस्य तु शास्त्रज्ञैर्दृष्टः पञ्चशतावरः॥
उत्तमे साहसे दण्डः सहस्रावर इष्यते।
वधः सर्वस्वहरणं पुरान्निर्वासनाङ्कने॥
तदङ्गच्छेद इत्युक्तो दण्ड उत्तमसाहसे॥

(विवादपद ७-९)

दानमें पति और पत्नी दोनोंका उद्देश्य होता है; अतः प्रत्येक पिण्डमें दो नामसे संकल्प होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि पिता या पितामह आदिको सपत्नीक विशेषण लगाकर पिण्डदान करना चाहिये। इस प्रकार छः व्यक्तियोंके लिये तीन पिण्ड देने योग्य हैं। ऐसा दाता मोहमें नहीं पड़ता। माता अपने पतिके साथ विश्वेदेवपूर्वक श्राद्धका उपभोग करती है। इसी प्रकार पितामही और प्रपितामही भी अपने-अपने पतिके ही साथ श्राद्ध-भोग करती हैं। प्रत्येक वर्षमें माता-पिताका एकोद्दिष्ट श्राद्धद्वारा सत्कार करे। उस वार्षिक श्राद्धमें विश्वेदेवका पूजन नहीं किया जाता। अतः उनके बिना ही वह श्राद्धभोजन करावे। उसमें एक ही पिण्ड दे। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध तथा पार्वण—विद्वान् पुरुषोंको ये पाँच प्रकारके श्राद्ध जानने चाहिये। ग्रहण, संक्रान्ति, पूर्णिमा या अमावास्या पर्व, उत्सवकाल तथा महालयके अवसरपर मनुष्य तीन पिण्ड दे और मृत्युतिथिको एक ही पिण्ड दे। जिस कन्याका विवाह नहीं हुआ है, वह पिण्ड, गोत्र और सूतकके विषयमें पिताके गोत्रसे पृथक् नहीं है। पाणिग्रहण और मन्त्रोंद्वारा वह अपने पिताके गोत्रसे पृथक् होती है। जिस कन्याका विवाह जिस वर्णके साथ होता है, उसके समान उसे सूतक भी लगता है। उसके लिये पिण्ड और तर्पण भी उसी वर्णके अनुसार होने चाहिये। विवाह हो जानेपर चौथी रातमें वह पिण्ड, गोत्र और सूतकके विषयमें अपने पतिके साथ एक हो जाती है। मृत व्यक्तिके प्रति हितबुद्धि रखनेवाले बन्धुजनोंको शवदाहके प्रथम, द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ दिन अस्थि-संचय करना चाहिये अथवा ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका अस्थि-संचय क्रमशः चौथे, पाँचवें, सातवें और नवें दिन भी कर्तव्य बताया गया है। जिस मृत व्यक्तिके लिये ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग किया जाता है, वह प्रेतलोकसे मुक्त और स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। नाभिके बराबर जलमें खड़ा होकर मन-ही-मन यह चिन्तन करे कि मेरे पितर आवें और यह जलाञ्जलि ग्रहण करें। दोनों हाथोंको संयुक्त करके जलसे पूर्ण करे और गोशृङ्गमात्र जल उठाकर उसे पुनः जलमें डाल दे। जलमें दक्षिणकी ओर मुँह करके खड़ा हो आकाशमें जल गिराना चाहिये; क्योंकि पितरोंका स्थान आकाश और दिशा दक्षिण है। देवता आप (जल) कहे गये हैं और पितरोंका नाम भी आप है; अतः पितरोंके हितकी इच्छा रखनेवाला पुरुष उनके लिये जलमें ही जल दे। जो दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तपता है, रातमें नक्षत्रोंके तेज तथा वायुका स्पर्श पाता है और दोनों संध्याओंके समय भी उक्त दोनों वस्तुओंका सम्पर्क लाभ करता है, वह जल सदा पवित्र माना गया है। जो अपने स्वाभाविक रूपमें हो, जिसमें किसी अपवित्र वस्तुका मेल न हुआ हो, वह जल सदा पवित्र है। ऐसा जल किसी पात्रमें हो या पृथ्वीपर, सदा शुद्ध माना गया है। देवताओं और पितरोंके लिये जलमें ही जलाञ्जलि दे और जो बिना संस्कारके ही मरे हैं, उनके लिये विद्वान् पुरुष भूमिपर जलाञ्जलि दे। श्राद्ध और होमके समय एक हाथसे पिण्ड एवं आहुति दे; किंतु तर्पणमें दोनों हाथोंसे जल देना चाहिये। यह शास्त्रोंद्वारा निश्चित धर्म है।

पापियोंको प्राप्त होनेवाली नरकोंकी यातनाओंका वर्णन, भगवद्भक्तिका निरूपण तथा धर्मराजके उपदेशसे भगीरथका गङ्गाजीको लानेके लिये उद्योग

धर्मराज कहते हैं—राजा भगीरथ! अब मैं पापोंके भेद और स्थूल यातनाओंका वर्णन करूँगा। तुम धैर्य धारण करके सुनो; क्योंकि नरक बड़े भयंकर होते हैं। जो दुरात्मा पापी सदा जिन नरकाग्नियोंमें पकाये जाते हैं, वे नरक पापका भयंकर फल देनेवाले हैं। मैं उन सबका वर्णन करता हूँ। उनके नाम इस प्रकार हैं—तपन, वालुका, रौरव, महारौरव, कुम्भ, कुम्भीपाक, निरुच्छ्वास, कालसूत्र, प्रमर्दन, भयकर असिपत्रवन, लालाभक्ष, हिमोत्कट, मूषावस्था, वसारूप, वैतरणी नदी, श्वभक्ष्य, मूत्रपान, पुरीषह्रद, तप्तशूल, तप्तशिला, शाल्मली वृक्ष, शोणित कूप, भयानक शोणित-भोजन, वह्निज्वालानिवेशन, शिलावृष्टि, शस्त्रवृष्टि, अग्निवृष्टि, क्षारोदक, उष्णतोय, तप्तायःपिण्डभक्षण, अधःशिरःशोषण, मरुप्रतपन, पाषाणवर्षा, कृमिभोजन, क्षारोदपान, भ्रमण, क्रकचदारण, पुरीष-लेपन, पुरीष-भोजन, महाघोर रेतःपान, सर्वसन्धिदाहन, धूमपान, पाशबन्ध, नानाशूलानुलेपन, अङ्गार-शयन, मुसलमर्दन, विविधकाष्ठयन्त्र, कर्षण, छेदन, पतनोत्पतन, गदादण्डादिपीडन, गजदन्तप्रहरण, नानासर्प-दंशन, नासामुखशीताम्बुसेचन, घोरक्षाराम्बुपान, लवण-

दानमें पति और पत्नी दोनोंका उद्देश्य होता है; अतः प्रत्येक पिण्डमें दो नामसे संकल्प होना चाहिये । तात्पर्य यह है कि पिता या पितामह आदिको सपत्नीक विशेषण लगाकर पिण्डदान करना चाहिये । इस प्रकार छः व्यक्तियोंके लिये तीन पिण्ड देने योग्य हैं । ऐसा दाता मोहमें नहीं पडता । माता अपने पतिके साथ विश्वेदेवपूर्वक श्राद्धका उपभोग करती है । इसी प्रकार पितामही और प्रपितामही भी अपने-अपने पतिके ही साथ श्राद्ध-भोग करती हैं । प्रत्येक वर्षमें माता-पिताका एकोद्दिष्ट श्राद्धद्वारा सत्कार करे । उस वार्षिक श्राद्धमें विश्वेदेवका पूजन नहीं किया जाता । अतः उनके बिना ही वह श्राद्धभोजन करावे । उसमें एक ही पिण्ड दे । नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध तथा पार्वण—विद्वान् पुरुषोंको ये पाँच प्रकारके श्राद्ध जानने चाहिये । ग्रहण, संक्रान्ति, पूर्णिमा या अमावास्या पर्व, उत्सवकाल तथा महालयके अवसरपर मनुष्य तीन पिण्ड दे और मृत्युतिथिको एक ही पिण्ड दे । जिस कन्याका विवाह नहीं हुआ है, वह पिण्ड, गोत्र और सूतकके विषयमें पिताके गोत्रसे पृथक् नहीं है । पाणिग्रहण और मन्त्रोंद्वारा वह अपने पिताके गोत्रसे पृथक् होती है । जिस कन्याका विवाह जिस वर्णके साथ होता है, उसके समान उसे सूतक भी लगता है । उसके लिये पिण्ड और तर्पण भी उसी वर्णके अनुसार होने चाहिये । विवाह हो जानेपर चौथी रातमें वह पिण्ड, गोत्र और सूतकके विषयमें अपने पतिके साथ एक हो जाती है । मृत व्यक्तिके प्रति हितबुद्धि रखनेवाले बन्धुजनोंको शवदाहके प्रथम, द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ दिन अस्थि-संचय करना चाहिये अथवा ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका अस्थि-संचय क्रमशः चौथे, पाँचवें, सातवें और नवें दिन भी कर्तव्य बताया गया है । जिस मृत व्यक्तिके लिये ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग किया जाता है, वह प्रेतलोकसे मुक्त और स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है । नाभिके बराबर जलमें खड़ा होकर मन-ही-मन यह चिन्तन करे कि मेरे पितर आवें और यह जलाञ्जलि ग्रहण करें । दोनों हाथोंको संयुक्त करके जलसे पूर्ण करे और गोश्रृङ्गमात्र जल उठाकर उसे पुनः जलमें डाल दे । जलमें दक्षिणकी ओर मुँह करके खड़ा हो आकाशमें जल गिराना चाहिये; क्योंकि पितरोंका स्थान आकाश और दिशा दक्षिण है । देवता आप (जल) कहे गये हैं और पितरोंका नाम भी आप है; अतः पितरोंके हितकी इच्छा रखनेवाला पुरुष उनके लिये जलमें ही जल दे । जो दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तपता है, रातमें नक्षत्रोंके तेज तथा वायुका स्पर्श पाता है और दोनों संध्याओंके समय भी उक्त दोनों वस्तुओंका सम्पर्क लाभ करता है, वह जल सदा पवित्र माना गया है । जो अपने स्वाभाविक रूपमें हो, जिसमें किसी अपवित्र वस्तुका मेल न हुआ हो, वह जल सदा पवित्र है । ऐसा जल किसी पात्रमें हो या पृथ्वीपर, सदा शुद्ध माना गया है । देवताओं और पितरोंके लिये जलमें ही जलाञ्जलि दे और जो बिना संस्कारके ही मरे हैं, उनके लिये विद्वान् पुरुष भूमिपर जलाञ्जलि दे । श्राद्ध और होमके समय एक हाथसे पिण्ड एवं आहुति दे; किंतु तर्पणमें दोनों हाथोंसे जल देना चाहिये । यह शास्त्रोंद्वारा निश्चित धर्म है ।

पापियोंको प्राप्त होनेवाली नरकोंकी यातनाओंका वर्णन, भगवद्भक्तिका निरूपण तथा धर्मराजके उपदेशसे भगीरथका गङ्गाजीको लानेके लिये उद्योग

धर्मराज कहते हैं—राजा भगीरथ ! अब मैं पापोंके भेद और स्थूल यातनाओंका वर्णन करूँगा । तुम धैर्य धारण करके सुनो; क्योंकि नरक बड़े भयंकर होते हैं । जो दुरात्मा पापी सदा जिन नरकाग्नियोंमें पकाये जाते हैं, वे नरक पापका भयंकर फल देनेवाले हैं । मैं उन सबका वर्णन करता हूँ । उनके नाम इस प्रकार हैं—तपन, बालुका, रौरव, महारौरव, कुम्भ, कुम्भीपाक, निरुच्छ्वास, कालसूत्र, प्रमर्दन, भयकर असिपत्रवन, लालाभक्ष, हिमोत्कट, मूषावस्था, वसारूप, वैतरणी नदी, श्वभक्ष्य, मूत्रपान, पुरीषह्रद, तप्तशूल, तप्तशिला, शाल्मली वृक्ष, शोणित कूप, भयानक शोणित-भोजन, वह्निज्वालानिवेशन, शिलावृष्टि, शस्त्रवृष्टि, अग्निवृष्टि, क्षारोदक, उष्णतोय, तप्तायःपिण्डभक्षण, अधःशिरःशोषण, मरुप्रतपन, पाषाणवर्षा, कृमिभोजन, क्षारोदपान, भ्रमण, क्रकचदारण, पुरीष-लेपन, पुरीष-भोजन, महाघोर रेतःपान, सर्वसन्धिदाहन, धूमपान, पाशबन्ध, नानाशूलानुलेपन, अङ्गार-शयन, मुसलमर्दन, विविधकाष्ठयन्त्र, कर्षण, छेदन, पतनोत्पतन, गदादण्डादिपीडन, गजदन्तप्रहरण, नानासर्प-दंशन, नासामुखशीताम्बुसेचन, घोरक्षाराम्बुपान, लवण-

हो सकता है; परंतु जो ब्राह्मणसे द्वेष करता है, उसका कहीं भी निस्तार नहीं होता। नरेश्वर! जो विश्वासघाती, कृतघ्न तथा शूद्रजातीय स्त्रीका सङ्ग करनेवाले हैं, उनका उद्धार कभी नहीं होता। जिनका शरीर निन्दित अन्नसे पुष्ट हुआ है तथा जिनका चित्त वेदोंकी निन्दामें ही रत है और जो भगवत्-कथा-वार्ता आदिकी निन्दा करते हैं, उनका इहलोक तथा परलोकमें कहीं भी उद्धार नहीं होता। प्रायश्चित्तहीन और भी बहुत-से पाप हैं, उनका परिचय मेरे नरक-वर्णनके साथ सुनो। जो महापातकी बताये गये हैं, वे उन प्रत्येक नरकमें एक-एक युग रहते हैं और अन्तमें इस पृथ्वीपर आकर वे सात जन्मोंतक गदहे होते हैं, तदनन्तर वे पापी दस जन्मोंतक घावसे भरे शरीरवाले कुत्ते होते हैं, फिर सौ वर्षोंतक उन्हें विष्ठाका कीडा होना पडता है। तदनन्तर बारह जन्मोंतक वे सर्प होते हैं। राजन्! इसके बाद एक हजार जन्मोंतक वे मृग आदि पशु होते हैं। फिर सौ वर्षोंतक स्थावर (वृक्ष आदि) योनिमें जन्म लेते हैं। तत्पश्चात् उन्हें गोधा (गोह) का शरीर प्राप्त होता है। फिर सात जन्मोंतक वे पापाचारी चाण्डाल होते हैं। इसके बाद सोलह जन्मोंतक उन्हें नीच जातियोंमें जन्म लेना पड़ता है। फिर दो जन्मतक वे दरिद्र, रोगपीडित तथा सदा प्रतिग्रह लेनेवाले होते हैं, इससे उन्हें फिर नरकगामी होना पडता है। जिनका चित्त असूया (गुणोंमें दोषदृष्टि) से व्याप्त है, उनके लिये रौरव नरककी प्राप्ति बतायी गयी है। वहाँ दो कल्पोंतक स्थित रहकर वे सौ जन्मोंतक चाण्डाल होते हैं। जो गाय, अग्नि और ब्राह्मणके लिये 'न दो' ऐसा कहकर बाधा डालते हैं, वे सौ बार कुत्तोंकी योनिमें जन्म लेकर अन्तमें चाण्डालोंके घर उत्पन्न होते हैं। इसके बाद वे विष्ठाके कीड़े होते हैं। फिर तीन जन्मोंतक व्याघ्र होकर अन्तमें इक्कीस युगोंतक नरकमें पडे रहते हैं। जो परायी निन्दामें तत्पर, कटु-भाषी और दानमें विघ्न डालनेवाले होते हैं, उनके पापका यह फल है। चोर मुसल और ओखलीके द्वारा चूर्ण किये जाते हैं। उसके बाद उन्हें तीन वर्षोंतक तपाया हुआ पत्थर उठाना पडता है, तदनन्तर वे सात वर्षोंतक कालसूत्रसे विदीर्ण किये जाते हैं। उस समय पराये धनका अपहरण करनेवाले वे चोर अपने पाप कर्मके लिये शोक करते हुए कर्मके फलसे निरन्तर नरकाग्निमें पकाये जाते हैं। जो दूसरोंके दोष बताते या चुगुली खाते हैं, उन्हें जिस भयंकर नरककी प्राप्ति होती है; वह सुनो। उन्हें एक सहस्र युगतक तपाये हुए लोहेका पिण्ड भक्षण करना पड़ता है। अत्यन्त भयानक सँड़सोंसे उनकी जीभको पीड़ा दी जाती है और वे अत्यन्त घोर निरुच्छ्वास नामक नरकमें आधे कल्पतक निवास करते हैं। अब पर-स्त्री-लम्पट पुरुषोंको प्राप्त होनेवाले नरकका तुमसे वर्णन करता हूँ। तपाये हुए ताँबेकी स्त्रियाँ सुन्दर रूप और आभरणोंसे युक्त होकर उनके साथ हठपूर्वक दीर्घकालतक रमण करती हैं। उनका रूप वैसा ही होता है, जैसी स्त्रियोंके साथ वे इस लोकमें सम्बन्ध रखते रहे हैं। वह पुरुष उनके भयसे भागता है और वे बलपूर्वक उसे पकड लेती हैं तथा उसके पाप कर्मका परिचय देती हुई उन्हें क्रमशः विभिन्न नरकोंमें पहुँचाती हैं। भूपाल! इस लोकमें जो स्त्रियाँ अपने पतिको त्यागकर दूसरे पुरुषकी सेवा स्वीकार करती हैं, उन्हें यमलोकमें तपाये हुए लोहेके बलवान् पुरुष लोहेकी तपी हुई शय्यापर बलपूर्वक गिराकर उनके साथ बहुत समयतक रमण करते हैं। उनसे छूटनेपर वे स्त्रियाँ अग्निके समान प्रज्वलित लोहेके खम्भेका आलिङ्गन करके एक हजार वर्षतक खडी रहती हैं। तत्पश्चात् उन्हें नमक मिलाये जलसे नहलाया जाता है और खारे पानीका ही सेवन कराया जाता है। उसके बाद वे सौ वर्षोंतक सभी नरकोंकी यातनाएँ भोगती हैं। जो मनुष्य ब्राह्मण, गौ और श्रेष्ठ क्षत्रिय राजाका इस लोकमें वध करता है, वह भी पाँच कल्पोंतक सम्पूर्ण यातनाओंको भोगता है। जो महापुरुषोंकी निन्दाको आदरपूर्वक सुनता है, उसका फल सुनो; ऐसे लोगोंके कानोंमें तपाये हुए लोहेकी बहुत-सी कीलें ठोंक दी जाती हैं। तत्पश्चात् कानोंके उन छिद्रोंमें अत्यन्त गरम किया हुआ तेल भर दिया जाता है। फिर वे कुम्भीपाक नरकमें पडते हैं। जो लोग भगवान् शिव और विष्णुसे विमुख एवं नास्तिक हैं, उनको मिलनेवाले फलोंका वर्णन करता हूँ। वे यमलोकमें करोड़ों वर्षोंतक केवल नमक खाते हैं। उसके बाद एक कल्पतक तपी हुई बालूसे पूर्ण रौरव नरकमें डाले जाते हैं। राजन्! इसी प्रकार अन्य नरकोंमें भी वे पापाचारी जीव अपने पापोंका फल भोगते हैं। जो नराधम कोपपूर्ण दृष्टिसे ब्राह्मणोंकी ओर देखते हैं, उनकी आँखमें हजारों तपी हुई सूइयाँ चुभो दी जाती हैं। नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर वे नमकीन पानीकी धारासे भिगोये जाते हैं, इसके बाद उन पापकर्मियोंको भयंकर क्रकचों (आरों) से चीरा जाता है। राजन्! जो लोग विश्वासघाती, मर्यादा तोडनेवाले तथा पराये अन्नके लोभी हैं, उन्हें जिस भयंकर नरककी प्राप्ति होती है, वह सुनो। वे अपना ही मांस खाते हैं और उनके

हो सकता है; परंतु जो ब्राह्मणसे द्वेष करता है, उसका कहीं भी निस्तार नहीं होता। नरेश्वर! जो विश्वासघाती, कृतघ्न तथा शूद्रजातीय स्त्रीका सङ्ग करनेवाले हैं, उनका उद्धार कभी नहीं होता। जिनका शरीर निन्दित अन्नसे पुष्ट हुआ है तथा जिनका चित्त वेदोंकी निन्दामें ही रत है और जो भगवत्-कथा-वार्ता आदिकी निन्दा करते हैं, उनका इहलोक तथा परलोकमें कहीं भी उद्धार नहीं होता। प्रायश्चित्तहीन और भी बहुत-से पाप हैं, उनका परिचय मेरे नरक-वर्णनके साथ सुनो। जो महापातकी बताये गये हैं, वे उन प्रत्येक नरकमें एक-एक युग रहते हैं और अन्तमें इस पृथ्वीपर आकर वे सात जन्मोंतक गदहे होते हैं, तदनन्तर वे पापी दस जन्मोंतक घावसे भरे शरीरवाले कुत्ते होते हैं, फिर सौ वर्षोंतक उन्हें विष्ठाका कीड़ा होना पड़ता है। तदनन्तर बारह जन्मोंतक वे सर्प होते हैं। राजन्! इसके बाद एक हजार जन्मोंतक वे मृग आदि पशु होते हैं। फिर सौ वर्षोंतक स्थावर (वृक्ष आदि) योनिमें जन्म लेते हैं। तत्पश्चात् उन्हें गोधा (गोह) का शरीर प्राप्त होता है। फिर सात जन्मोंतक वे पापाचारी चाण्डाल होते हैं। इसके बाद सोलह जन्मोंतक उन्हें नीच जातियोंमें जन्म लेना पड़ता है। फिर दो जन्मतक वे दरिद्र, रोगपीडित तथा सदा प्रतिग्रह लेनेवाले होते हैं, इससे उन्हें फिर नरकगामी होना पड़ता है। जिनका चित्त असूया (गुणोंमें दोषदृष्टि) से व्याप्त है, उनके लिये रौरव नरककी प्राप्ति बतायी गयी है। वहाँ दो कल्पोंतक स्थित रहकर वे सौ जन्मोंतक चाण्डाल होते हैं। जो गाय, अग्नि और ब्राह्मणके लिये 'न दो' ऐसा कहकर बाधा डालते हैं, वे सौ बार कुत्तोंकी योनिमें जन्म लेकर अन्तमें चाण्डालोंके घर उत्पन्न होते हैं। इसके बाद वे विष्ठाके कीड़े होते हैं। फिर तीन जन्मोंतक व्याघ्र होकर अन्तमें इक्कीस युगोंतक नरकमें पड़े रहते हैं। जो परायी निन्दामें तत्पर, कटु-भाषी और दानमें विघ्न डालनेवाले होते हैं, उनके पापका यह फल है। चोर मुसल और ओखलीके द्वारा चूर्ण किये जाते हैं। उसके बाद उन्हें तीन वर्षोंतक तपाया हुआ पत्थर उठाना पड़ता है, तदनन्तर वे सात वर्षोंतक कालसूत्रसे विदीर्ण किये जाते हैं। उस समय पराये धनका अपहरण करनेवाले वे चोर अपने पाप कर्मके लिये शोक करते हुए कर्मके फलसे निरन्तर नरकाग्निमें पकाये जाते हैं। जो दूसरोंके दोष बताते या चुगली खाते हैं, उन्हें जिस भयंकर नरककी प्राप्ति होती है, वह सुनो। उन्हें एक सहस्र युगतक तपाये हुए लोहेका पिण्ड भक्षण करना पड़ता है। अत्यन्त भयानक सँड़सोंसे उनकी जीभको पीड़ा दी जाती है और वे अत्यन्त घोर निरुच्छ्वास नामक नरकमें आधे कल्पतक निवास करते हैं। अब पर-स्त्री-लम्पट पुरुषोंको प्राप्त होनेवाले नरकका तुमसे वर्णन करता हूँ। तपाये हुए ताँबेकी स्त्रियाँ सुन्दर रूप और आभरणोंसे युक्त होकर उनके साथ हठपूर्वक दीर्घकालतक रमण करती हैं। उनका रूप वैसा ही होता है, जैसी स्त्रियोंके साथ वे इस लोकमें सम्बन्ध रखते रहे हैं। वह पुरुष उनके भयसे भागता है और वे बलपूर्वक उसे पकड़ लेती हैं तथा उसके पाप कर्मका परिचय देती हुई उन्हें क्रमशः विभिन्न नरकोंमें पहुँचाती हैं। भूपाल! इस लोकमें जो स्त्रियाँ अपने पतिको त्यागकर दूसरे पुरुषकी सेवा स्वीकार करती हैं, उन्हें यमलोकमें तपाये हुए लोहेके बलवान् पुरुष लोहेकी तपी हुई शय्यापर बलपूर्वक गिराकर उनके साथ बहुत समयतक रमण करते हैं। उनसे छूटनेपर वे स्त्रियाँ अग्निके समान प्रज्वलित लोहेके खम्भेका आलिङ्गन करके एक हजार वर्षतक खड़ी रहती हैं। तत्पश्चात् उन्हें नमक मिलाये जलसे नहलाया जाता है और खारे पानीका ही सेवन कराया जाता है। उसके बाद वे सौ वर्षोंतक सभी नरकोंकी यातनाएँ भोगती हैं। जो मनुष्य ब्राह्मण, गौ और श्रेष्ठ क्षत्रिय राजाका इस लोकमें वध करता है, वह भी पाँच कल्पोंतक सम्पूर्ण यातनाओंको भोगता है। जो महापुरुषोंकी निन्दाको आदरपूर्वक सुनता है, उसका फल सुनो; ऐसे लोगोंके कानोंमें तपाये हुए लोहेकी बहुत-सी कीलें ठोंक दी जाती हैं। तत्पश्चात् कानोंके उन छिद्रोंमें अत्यन्त गरम किया हुआ तेल भर दिया जाता है। फिर वे कुम्भीपाक नरकमें पड़ते हैं। जो लोग भगवान् शिव और विष्णुसे विमुख एवं नास्तिक हैं, उनको मिलनेवाले फलोंका वर्णन करता हूँ। वे यमलोकमें करोड़ों वर्षोंतक केवल नमक खाते हैं। उसके बाद एक कल्पतक तपी हुई बालूसे पूर्ण रौरव नरकमें डाले जाते हैं। राजन्! इसी प्रकार अन्य नरकोंमें भी वे पापाचारी जीव अपने पापोंका फल भोगते हैं। जो नराधम कोपपूर्ण दृष्टिसे ब्राह्मणोंकी ओर देखते हैं, उनकी आँखमें हजारों तपी हुई सूइयाँ चुभो दी जाती हैं। नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर वे नमकीन पानीकी धारासे भिगोये जाते हैं, इसके बाद उन पापकर्मियोंको भयंकर क्रकचों (आरों) से चीरा जाता है। राजन्! जो लोग विश्वासघाती, मर्यादा तोड़नेवाले तथा पराये अन्नके लोभी हैं, उन्हें जिस भयंकर नरककी प्राप्ति होती है, वह सुनो। वे अपना ही मांस खाते हैं और उनके

किसीको अत्याचार करते देखकर शक्ति होते हुए भी उसका निवारण नहीं करता, वह भी उस अत्याचारके पापका भागी होता है और वे दोनों नरकमे पडते है। जो लोग पापियोंके पापोंकी गिनती करके दूसरोंको बताते हैं, वे पाप सत्य होनेपर भी उनके पापके भागी होते हैं। राजन्! यदि वे पाप झूठे निकले तो कहनेवालेको दूने पापका भागी होना पड़ता है। जो पापहीन पुरुषमें पापका आरोप करके उसकी निन्दा करता है, वह चन्द्रमा और तारोंके स्थिति-कालतक घोर नरकमे रहता है। जो व्रत लेकर उन्हें पूर्ण किये विना ही त्याग देता है, वह असिपत्रवनमें पीड़ा भोगकर पृथ्वीपर किसी अङ्गसे हीन होकर जन्म लेता है। जो मनुष्य दूसरोंद्वारा किये जानेवाले व्रतोमें विघ्न डालता है, वह मनुष्य अत्यन्त दुःखदायक और भयंकर श्लेष्मभोजन नामक नरकमें, जहाँ कफ भोजन करना पड़ता है, जाता है। जो न्याय करने तथा धर्मकी शिक्षा देनेमें पक्षपात करता है, वह दस हजार प्रायश्चित्त कर ले तो भी उस पापसे उसका उद्धार नहीं होता*। जो अपने कटुवचनोंसे ब्राह्मणोंका अपमान करता है, वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है और सम्पूर्ण नरकोंकी यातनाएँ भोगकर दस जन्मोंतक चाण्डाल होता है। जो ब्राह्मणको कोई चीज देते समय विघ्न डालता है, उसे ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो दूसरेका धन चुराकर दूसरोंको दान देता है, वह चुरानेवाला तो नरकमे जाता है और जिसका धन होता है, उसीको उस दानका फल मिलता है। जो कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके नहीं देता है, वह लालाभक्ष नरकमे जाता है। राजन्! जो संन्यासीकी निन्दा करता है, वह शिलायन्त्र नामक नरकमे जाता है। बगीचा काटनेवाले लोग इक्कीस युगोंतक श्वभोजन नामक नरकमें रहते है, जहाँ कुत्ते उनका मास नोचकर खाते हैं। फिर क्रमशः वह सभी नरकोंकी यातनाएँ भोगता है।

भूपते! जो देवमन्दिर तोड़ते, पोखरा नष्ट करते और फुलवारी उजाड़ देते हैं, वे जिस गतिको प्राप्त होते हैं, वह सुनो। वे इन सब यातनाओं (नरको) में पृथक्-पृथक् पकाये जाते हैं। अन्तमें इक्कीस कल्पोंतक वे विष्ठाके कीड़े होते है। राजन्! उसके बाद वे सौ बार चाण्डालकी योनि-में जन्म लेते है। जो जूठा खाते और मित्रोंसे द्रोह करते है, उन्हे चन्द्रमा और सूर्यके स्थितिकालतक भयंकर नरक-यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। जो पितृयज्ञ और देवयज्ञका उच्छेद करते तथा वैदिक मार्गसे बाहर हो जाते हैं, वे पाखण्डीके नामसे प्रसिद्ध हैं। उन्हे सब प्रकारकी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। राजा भगीरथ! इस प्रकार पापियोंके लिये अनेक प्रकारकी यातनाएँ हैं। प्रभो! मैं नरकों और उनकी यातनाओंकी गणना करनेमे असमर्थ हूँ। भूपते! पापों, यातनाओं तथा धर्मोंकी सख्या बतलानेके लिये संसारमें भगवान् विष्णुके सिवा दूसरा कौन समर्थ है? इन सब पापोंका धर्मशास्त्रकी विधिसे प्रायश्चित्त कर लेनेपर पाप-राशि नष्ट हो जाती है। धार्मिक कृत्योंमे जो न्यूनाधिकता रह जाती है, उसकी पूर्तिके लिये लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके समीप पूर्वोक्त पापोंके प्रायश्चित्त करने चाहिये। गङ्गा,

तुलसी, सत्सङ्ग, हरिकीर्तन, किसीके दोष न देखना और हिंसासे दूर रहना—ये सब बाते पापोका नाश करनेवाली होती है। भगवान् विष्णुको अर्पित किये हुए कर्म निश्चय ही सफल होते हैं। जो कर्म उन्हें अर्पित नहीं किये जाते, वे राखमें डाली हुई आहुतिके समान व्यर्थ होते हैं। नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा जो मोक्षके साधनभूत कर्म है, वे सब भगवान् विष्णुके समर्पित होनेपर सात्त्विक और सफल होते हैं।

भगवान् विष्णुकी उत्तम भक्ति सब पापोका नाश करने-वाली है। नृपश्रेष्ठ! सात्त्विक, राजस और तामस आदि

---

* न्याये च धर्मशिक्षाया पक्षपात करोति यः।
न तस्य निष्कृतिर्भूय. प्रायश्चित्तायुतैरपि॥
(१५ । ११९)

किसीको अत्याचार करते देखकर शक्ति होते हुए भी उसका निवारण नहीं करता, वह भी उस अत्याचारके पापका भागी होता है और वे दोनों नरकमे पडते हैं। जो लोग पापियोंके पापोंकी गिनती करके दूसरोंको बताते हैं, वे पाप सत्य होनेपर भी उनके पापके भागी होते हैं। राजन्! यदि वे पाप झूठे निकले तो कहनेवालेको दूने पापका भागी होना पड़ता है। जो पापहीन पुरुषमें पापका आरोप करके उसकी निन्दा करता है, वह चन्द्रमा और तारोंके स्थिति-कालतक घोर नरकमे रहता है। जो व्रत लेकर उन्हें पूर्ण किये बिना ही त्याग देता है, वह असिपत्रवनमें पीड़ा भोगकर पृथ्वीपर किसी अङ्गसे हीन होकर जन्म लेता है। जो मनुष्य दूसरोंद्वारा किये जानेवाले व्रतोमें विघ्न डालता है, वह मनुष्य अत्यन्त दुःखदायक और भयंकर श्लेष्मभोजन नामक नरकमें, जहाँ कफ भोजन करना पड़ता है, जाता है। जो न्याय करने तथा धर्मकी शिक्षा देनेमें पक्षपात करता है, वह दस हजार प्रायश्चित्त कर ले तो भी उस पापसे उसका उद्धार नहीं होता*। जो अपने कटुवचनोंसे ब्राह्मणोंका अपमान करता है, वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है और सम्पूर्ण नरकोंकी यातनाएँ भोगकर दस जन्मोंतक चाण्डाल होता है। जो ब्राह्मणको कोई चीज देते समय विघ्न डालता है, उसे ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो दूसरेका धन चुराकर दूसरोंको दान देता है, वह चुरानेवाला तो नरकमे जाता है और जिसका धन होता है, उसीको उस दानका फल मिलता है। जो कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके नहीं देता है, वह लालाभक्ष नरकमे जाता है। राजन्! जो संन्यासीकी निन्दा करता है, वह शिलायन्त्र नामक नरकमे जाता है। बगीचा काटनेवाले लोग इक्कीस युगोंतक श्वभोजन नामक नरकमें रहते हैं, जहाँ कुत्ते उनका मांस नोचकर खाते हैं। फिर क्रमशः वह सभी नरकोंकी यातनाएँ भोगता है।

भूपते! जो देवमन्दिर तोड़ते, पोखरा नष्ट करते और फुलवारी उजाड़ देते हैं, वे जिस गतिको प्राप्त होते हैं, वह सुनो। वे इन सब यातनाओं (नरको) में पृथक्-पृथक् पकाये जाते हैं। अन्तमें इक्कीस कल्पोंतक वे विष्ठाके कीड़े होते हैं। राजन्! उसके बाद वे सौ बार चाण्डालकी योनि-में जन्म लेते हैं। जो जूठा खाते और मित्रोंसे द्रोह करते हैं, उन्हे चन्द्रमा और सूर्यके स्थितिकालतक भयंकर नरक-यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। जो पितृयज्ञ और देवयज्ञका उच्छेद करते तथा वैदिक मार्गसे बाहर हो जाते हैं, वे पाखण्डीके नामसे प्रसिद्ध हैं। उन्हे सब प्रकारकी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। राजा भगीरथ! इस प्रकार पापियोंके लिये अनेक प्रकारकी यातनाएँ हैं। प्रभो! मैं नरकों और उनकी यातनाओंकी गणना करनेमे असमर्थ हूँ। भूपते! पापों, यातनाओं तथा धर्मोंकी संख्या बतलानेके लिये संसारमें भगवान् विष्णुके सिवा दूसरा कौन समर्थ है? इन सब पापोंका धर्मशास्त्रकी विधिसे प्रायश्चित्त कर लेनेपर पाप-राशि नष्ट हो जाती है। धार्मिक कृत्योंमे जो न्यूनाधिकता रह जाती है, उसकी पूर्तिके लिये लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके समीप पूर्वोक्त पापोंके प्रायश्चित्त करने चाहिये। गङ्गा,

तुलसी, सत्सङ्ग, हरिकीर्तन, किसीके दोष न देखना और हिंसासे दूर रहना—ये सब बातें पापोंका नाश करनेवाली होती हैं। भगवान् विष्णुको अर्पित किये हुए कर्म निश्चय ही सफल होते हैं। जो कर्म उन्हें अर्पित नहीं किये जाते, वे राखमें डाली हुई आहुतिके समान व्यर्थ होते हैं। नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा जो मोक्षके साधनभूत कर्म हैं, वे सब भगवान् विष्णुके समर्पित होनेपर सात्त्विक और सफल होते हैं।

भगवान् विष्णुकी उत्तम भक्ति सब पापोंका नाश करने-वाली है। नृपश्रेष्ठ! सात्त्विक, राजस और तामस आदि

* न्याये च धर्मशिक्षाया पक्षपातं करोति यः।
न तस्य निष्कृतिर्भूय. प्रायश्चित्तायुतैरपि॥
(१५ । ११९)

स्वरूपवाले जनार्दन भगवान् नारायणका पूजन करो। इससे तुम्हें सनातन सुखकी प्राप्ति होगी। भगवान् शिव ही साक्षात् श्रीहरि हैं और श्रीहरि ही स्वयं शिव हैं। इन दोनोंमें भेद देखनेवाला दुष्ट पुरुष करोड़ों नरकोंमें जाता है। इसलिये भगवान् विष्णु और शिवको समान समझकर उनकी आराधना करो। इनमें भेददृष्टि करनेवाला मनुष्य इहलोक और परलोकमें भी दुःख पाता है।

जनेश्वर! मैं जिस कार्यके लिये तुम्हारे पास आया था, वह तुम्हें बतलाता हूँ। सुमते! सावधान होकर सुनो। राजन्! आत्मघातका पाप करनेवाले तुम्हारे पितामहगण महात्मा कपिलके क्रोधसे दग्ध हो गये हैं और इस समय वे नरकमें निवास करते हैं। महाभाग! गङ्गाजीको लानेका पराक्रम करके तुम उनका उद्धार करो। भूपते! गङ्गाजी निश्चय ही सब पापोंका नाश कर देती हैं। नृपश्रेष्ठ! मनुष्यके केश, हड्डी, नख, दाँत तथा शरीरकी भस्म भी यदि गङ्गाजीके शरीरसे छू जायँ तो वे भगवान् विष्णुके धाममें पहुँचा देती हैं। राजन्! जिसकी हड्डी अथवा भस्मको मनुष्य गङ्गाजीमें डाल देते हैं, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् श्रीहरिके धाममें चला जाता है। भूपते! अबतक जितने भी पाप तुम्हें बताये गये हैं, वे सब गङ्गाजीके एक बिन्दुका अभिषेक होनेसे नष्ट हो जाते हैं।

श्रीसनकजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ नारद! धर्मात्मा महाराज भगीरथसे ऐसा कहकर धर्मराज तत्काल अन्तर्धान हो गये। तब सब शास्त्रोंके पारगामी महाबुद्धिमान् राजा भगीरथ सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य मन्त्रियोंको सौंपकर स्वय वनको चले गये। वहाँसे हिमालयपर जाकर नर-नारायणके आश्रमसे पश्चिमकी तरफ बर्फसे ढके हुए एक शिखरपर, जो सोलह योजन विस्तृत है, उन्होंने तपस्या की और त्रिभुवनपावनी गङ्गाको वे इस भूतलपर ले आये।

राजा भगीरथका भृगुजीके आश्रमपर जाकर सत्सङ्ग-लाभ करना तथा हिमालयपर घोर तपस्या करके भगवान् विष्णु और शिवकी कृपासे गङ्गाजीको लाकर पितरोंका उद्धार करना

नारदजीने पूछा—मुने! हिमालय पर्वतपर जाकर राजा भगीरथने क्या किया? वे गङ्गाजीको किस प्रकार ले आये? यह मुझे बतानेकी कृपा करें।

श्रीसनकजीने कहा—मुने! महाराज भगीरथ जटा और चीर धारण करके तपस्याके लिये हिमालयपर जाते हुए गोदावरी नदीके तटपर पहुँचे *। वहाँ उन्होंने महान् वनमें महर्षि भृगुका उत्तम आश्रम देखा, जो कृष्णसार मृगोंसे भरा हुआ था और चमरी गायोंका समुदाय अपनी पूँछ हिलाकर मानो उस आश्रमको चँवर डुला रहा था। मालती, जूही, कुन्द, चम्पा और अश्वत्थ—उस आश्रमको विभूषित कर रहे थे। वहाँ चारों ओर भाँति-भाँतिके फूल खिले हुए थे। ऋषि-मुनियोंका समुदाय वहाँ निवास करता था। वेदों और शास्त्रोंका महान् घोष आकाशमें गूँज रहा था। महर्षि भृगुके ऐसे आश्रममें राजा भगीरथने प्रवेश किया। भृगुजी परब्रह्मके स्वरूपका प्रतिपादन कर रहे थे। शिष्योंकी मण्डली उन्हें घेरकर बैठी थी। तेजमें वे भगवान् सूर्यके समान थे। राजा भगीरथने वहाँ उनका दर्शन किया और उनके चरण-ग्रहण आदि विधिसे उन ब्राह्मणशिरोमणिकी

वन्दना की; साथ ही भृगुजीने भी सम्मानपूर्वक राजाका

* इस प्रसङ्गको देखनेसे यह जान पड़ता है कि उन दिनों राजा भगीरथ दक्षिण भारतमें गोदावरीसे भी कुछ दूर दक्षिणके किसी स्थानमें रहा करते थे। तभी उनके मार्गमें गोदावरी नदी आ सकी। सूर्यवंशियोंकी सुप्रसिद्ध राजधानी अयोध्यासे हिमालय जानेमें तो गोदावरीका मार्गमें आना सम्भव नहीं है

स्वरूपवाले जनार्दन भगवान् नारायणका पूजन करो। इससे तुम्हें सनातन सुखकी प्राप्ति होगी। भगवान् शिव ही साक्षात् श्रीहरि हैं और श्रीहरि ही स्वयं शिव हैं। इन दोनोंमें भेद देखनेवाला दुष्ट पुरुष करोड़ों नरकोंमें जाता है। इसलिये भगवान् विष्णु और शिवको समान समझकर उनकी आराधना करो। इनमें भेददृष्टि करनेवाला मनुष्य इहलोक और परलोकमें भी दुःख पाता है।

जनेश्वर! मैं जिस कार्यके लिये तुम्हारे पास आया था, वह तुम्हें बतलाता हूँ। सुमते! सावधान होकर सुनो। राजन्! आत्मघातका पाप करनेवाले तुम्हारे पितामहगण महात्मा कपिलके क्रोधसे दग्ध हो गये हैं और इस समय वे नरकमें निवास करते हैं। महाभाग! गङ्गाजीको लानेका पराक्रम करके तुम उनका उद्धार करो। भूपते! गङ्गाजी निश्चय ही सब पापोंका नाश कर देती हैं। नृपश्रेष्ठ! मनुष्यके केश, हड्डी, नख, दाँत तथा शरीरकी भस्म भी यदि गङ्गाजीके शरीरसे छू जायँ तो वे भगवान् विष्णुके धाममें पहुँचा देती हैं। राजन्! जिसकी हड्डी अथवा भस्मको मनुष्य गङ्गाजीमें डाल देते हैं, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् श्रीहरिके धाममें चला जाता है। भूपते! अबतक जितने भी पाप तुम्हें बताये गये हैं, वे सब गङ्गाजीके एक बिन्दुका अभिषेक होनेसे नष्ट हो जाते हैं।

श्रीसनकजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ नारद! धर्मात्मा महाराज भगीरथसे ऐसा कहकर धर्मराज तत्काल अन्तर्धान हो गये। तब सब शास्त्रोंके पारगामी महाबुद्धिमान् राजा भगीरथ सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य मन्त्रियोंको सौंपकर स्वय वनको चले गये। वहाँसे हिमालयपर जाकर नर-नारायणके आश्रमसे पश्चिमकी तरफ बर्फसे ढके हुए एक शिखरपर, जो सोलह योजन विस्तृत है, उन्होंने तपस्या की और त्रिभुवनपावनी गङ्गाको वे इस भूतलपर ले आये।

राजा भगीरथका भृगुजीके आश्रमपर जाकर सत्सङ्ग-लाभ करना तथा हिमालयपर घोर तपस्या करके भगवान् विष्णु और शिवकी कृपासे गङ्गाजीको लाकर पितरोंका उद्धार करना

नारदजीने पूछा—मुने! हिमालय पर्वतपर जाकर राजा भगीरथने क्या किया? वे गङ्गाजीको किस प्रकार ले आये? यह मुझे बतानेकी कृपा करें।

श्रीसनकजीने कहा—मुने! महाराज भगीरथ जटा और चीर धारण करके तपस्याके लिये हिमालयपर जाते हुए गोदावरी नदीके तटपर पहुँचे *। वहाँ उन्होंने महान् वनमें महर्षि भृगुका उत्तम आश्रम देखा, जो कृष्णसार मृगोंसे भरा हुआ था और चमरी गायोका समुदाय अपनी पूँछ हिलाकर मानो उस आश्रमको चँवर डुला रहा था। मालती, जूही, कुन्द, चम्पा और अश्वत्थ—उस आश्रमको विभूषित कर रहे थे। वहाँ चारों ओर भाँति-भाँतिके फूल खिले हुए थे। ऋषि-मुनियोंका समुदाय वहाँ निवास करता था। वेदों और शास्त्रोंका महान् घोष आकाशमें गूँज रहा था। महर्षि भृगुके ऐसे आश्रममें राजा भगीरथने प्रवेश किया। भृगुजी परब्रह्मके स्वरूपका प्रतिपादन कर रहे थे। शिष्योंकी मण्डली उन्हें घेरकर बैठी थी। तेजमें वे भगवान् सूर्यके समान थे। राजा भगीरथने वहाँ उनका दर्शन किया और उनके चरण-ग्रहण आदि विधिसे उन ब्राह्मणशिरोमणिकी

वन्दना की; साथ ही भृगुजीने भी सम्मानपूर्वक राजाका

* इस प्रसङ्गको देखनेसे यह जान पड़ता है कि उन दिनों राजा भगीरथ दक्षिण भारतमें गोदावरीसे भी कुछ दूर दक्षिणके किसी स्थानमें रहा करते थे। तभी उनके मार्गमें गोदावरी नदी आ सकी। सूर्यवंशियोंकी सुप्रसिद्ध राजधानी अयोध्यासे हिमालय जानेमें तो गोदावरीका मार्गमें आना सम्भव नहीं है

द्वादशाक्षर मन्त्र कहा गया है। राजन्! इन अष्टाक्षर और द्वादशाक्षर—दोनों मन्त्रोंका समान फल है। इनकी प्रवृत्ति और निवृत्ति—इन दोनों मार्गवालोंके लिये समता बतायी गयी है। इन दोनों मन्त्रोंके जपके लिये भगवान्‌का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये। भगवान् नारायण अपने हाथोंमें शङ्ख और चक्र धारण किये शान्तभावसे विराजमान हैं। रोग और शोक उनका कभी स्पर्श नहीं करते। उनके वामाङ्कमें लक्ष्मीजी विराज रही हैं। वे सर्वशक्तिमान् प्रभु सबको अभयदान कर रहे हैं। उनके मस्तकपर किरीट और कानोंमें कुण्डल शोभा पाते हैं। वे नाना प्रकारके अलंकारोंसे सुशोभित हैं। गलेमें कौस्तुभ-मणि और वनमाला धारण किये हुए हैं। उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे चिह्नित है। वे पीताम्बरधारी भगवान् देवताओं और दानवोंसे भी वन्दित हैं। उनका आदि और अन्त नहीं है। वे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके देनेवाले हैं। इस प्रकार भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। वे अन्तर्यामी, ज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापी तथा सनातन हैं। राजा भगीरथ! तुमने जो कुछ पूछा, वह सब इस रूपमें बताया गया है। तुम्हारा कल्याण हो। अब सुखपूर्वक तपस्यामें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये जाओ।

महर्षि भृगुके ऐसा कहनेपर राजा भगीरथ बहुत प्रसन्न हुए और तपस्याके लिये वनमें गये। हिमालय पर्वतपर पहुँच-कर वहाँके मनोहर पावन प्रदेशमें स्थित नादेश्वर महाक्षेत्रमें उन्होंने अत्यन्त दुष्कर तपस्या की। राजा तीनों काल स्नान करते। कन्द, मूल तथा फल खाकर रहते और उसीसे आये हुए अतिथियोंका सत्कार भी करते थे। वे प्रतिदिन होममें तत्पर रहते। सम्पूर्ण भूतोंके हितैषी होकर शान्तभावसे स्थित थे। उन्होंने भगवान् नारायणकी शरण ले रक्खी थी। पत्र, पुष्प, फल और जलसे वे तीनों काल श्रीहरिकी आराधना करते थे। इस प्रकार अत्यन्त धैर्यपूर्वक भगवान् नारायणका ध्यान करते हुए वे सूखे पत्ते खाकर रहने लगे। तदनन्तर परम धर्मात्मा राजा भगीरथने प्राणायाम करते हुए श्वास बंद करके तपस्या करना प्रारम्भ किया। जिनका कहीं अन्त नहीं है या जो किसीसे पराजित नहीं होते उन्हीं श्रीनारायण-देवका चिन्तन करते हुए वे साठ हजार वर्षोंतक श्वास रोके रहे। उस समय राजाकी नासिकाके छिद्रसे भयंकर अग्नि प्रकट हुई। उसे देखकर सब देवता थर्रा उठे और उस अग्निसे संतप्त होने लगे। फिर वे देवेश्वरगण क्षीरसागरके उत्तर तटपर जहाँ जगदीश्वर श्रीहरि निवास करते हैं, पहुँचकर भगवान् महाविष्णुकी शरणमें गये और शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले देवदेवेश्वर भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे।

देवताओंने कहा—जो जगत्‌के एकमात्र स्वामी तथा स्मरण करनेवाले भक्तजनोंकी समस्त पीड़ा दूर कर देनेवाले हैं, उन परमेश्वर श्रीविष्णुको हम नमस्कार करते हैं। ज्ञानी पुरुष उन्हें स्वभावतः शुद्ध, सर्वत्र परिपूर्ण एवं ज्ञानस्वरूप कहते हैं। श्रेष्ठ योगीजन जिनका सदा ध्यान करते हैं, जो परमात्मा अपनी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करके देवताओं-का कार्य सिद्ध करते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनका स्वरूप है तथा जो जगत्‌के आदिस्वामी हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको हम प्रणाम करते हैं। जिनके नामोंका संकीर्तन करनेमात्रसे दुष्ट पुरुषोंके भी समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं; जो सबके शासक, स्तवन करनेयोग्य एव पुराणपुरुष हैं, उन भगवान् विष्णुको हम पुरुषार्थसिद्धिके लिये नमस्कार करते हैं। सूर्य आदि जिनके तेजसे प्रकाशित होते हैं और कभी भी जिनकी आज्ञा-का उल्लङ्घन नहीं करते, जो सम्पूर्ण देवताओंके अधीश्वर तथा पुरुषार्थरूप हैं, उन कालस्वरूप श्रीहरिको हम नमस्कार करते हैं। जिनकी आज्ञाके अनुसार ब्रह्माजी इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं, रुद्र संहार करते हैं और ब्राह्मणलोग श्रुतियोंके द्वारा सब लोगोंको पवित्र करते हैं, जो गुणोंके भण्डार और सबके उपदेशक गुरु हैं, उन आदिदेव भगवान् विष्णुकी हम शरणमें आये हैं। जो सबसे श्रेष्ठ, वरण करनेयोग्य तथा मधु और कैटभको मारनेवाले हैं, देवता और दैत्य भी जिनकी चरणपादुकाका पूजन करते हैं, जो श्रेष्ठ भक्तोंकी मनोवाञ्छित कामनाओंकी सिद्धिके कारण हैं तथा एकमात्र ज्ञानद्वारा जिनके तत्त्वका बोध होता है, उन दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवान्‌को हम प्रणाम करते हैं। जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अजन्मा, अनादि, अविद्या नामक अन्धकारका नाश करनेवाले, सत्, चित्, परमानन्दघन स्वरूप तथा रूप आदिसे रहित हैं, उन भगवान् परमेश्वरको हम प्रणाम करते हैं। जो जलमें शयन करनेके कारण नारायण, सर्वव्यापी होनेसे विष्णु, अविनाशी होनेसे अनन्त और सबके शासक होनेसे ईश्वर कहलाते हैं, अपने श्रीअङ्गोंपर रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, जो यज्ञके प्रेमी, यज्ञ करनेवाले, विशुद्ध, सर्वोत्तम एवं अव्यय हैं, उन भगवान् विष्णुको हम नमस्कार करते हैं।

इन्द्र आदि देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् महाविष्णुने देवताओंको राजर्षि भगीरथका चरित्र बतलाया। नारदजी! फिर उन सबको आश्वासन तथा अभय देकर निरञ्जन-भगवान् विष्णु उस स्थानपर गये, जहाँ राजर्षि भगीरथ तपस्या-

द्वादशाक्षर मन्त्र कहा गया है । राजन् ! इन अष्टाक्षर और द्वादशाक्षर—दोनों मन्त्रोंका समान फल है । इनकी प्रवृत्ति और निवृत्ति—इन दोनों मार्गवालोंके लिये समता बतायी गयी है । इन दोनों मन्त्रोंके जपके लिये भगवान्का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये । भगवान् नारायण अपने हाथोंमें शङ्ख और चक्र धारण किये शान्तभावसे विराजमान हैं । रोग और शोक उनका कभी स्पर्श नहीं करते । उनके वामाङ्कमें लक्ष्मीजी विराज रही हैं । वे सर्वशक्तिमान् प्रभु सबको अभयदान कर रहे हैं । उनके मस्तकपर किरीट और कानोंमें कुण्डल शोभा पाते हैं । वे नाना प्रकारके अलंकारोंसे सुशोभित हैं । गलेमें कौस्तुभ-मणि और वनमाला धारण किये हुए हैं । उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे चिह्नित है । वे पीताम्बरधारी भगवान् देवताओं और दानवोंसे भी वन्दित हैं । उनका आदि और अन्त नहीं है । वे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके देनेवाले हैं । इस प्रकार भगवान्का ध्यान करना चाहिये । वे अन्तर्यामी, ज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापी तथा सनातन हैं । राजा भगीरथ ! तुमने जो कुछ पूछा, वह सब इस रूपमें बताया गया है । तुम्हारा कल्याण हो । अब सुखपूर्वक तपस्यामें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये जाओ ।

महर्षि भृगुके ऐसा कहनेपर राजा भगीरथ बहुत प्रसन्न हुए और तपस्याके लिये वनमें गये । हिमालय पर्वतपर पहुँच-कर वहाँके मनोहर पावन प्रदेशमें स्थित नादेश्वर महाक्षेत्रमें उन्होंने अत्यन्त दुष्कर तपस्या की । राजा तीनों काल स्नान करते । कन्द, मूल तथा फल खाकर रहते और उसीसे आये हुए अतिथियोंका सत्कार भी करते थे । वे प्रतिदिन होममें तत्पर रहते । सम्पूर्ण भूतोंके हितैषी होकर शान्तभावसे स्थित थे । उन्होंने भगवान् नारायणकी शरण ले रक्खी थी । पत्र, पुष्प, फल और जलसे वे तीनों काल श्रीहरिकी आराधना करते थे । इस प्रकार अत्यन्त धैर्यपूर्वक भगवान् नारायणका ध्यान करते हुए वे सूखे पत्ते खाकर रहने लगे । तदनन्तर परम धर्मात्मा राजा भगीरथने प्राणायाम करते हुए श्वास बंद करके तपस्या करना प्रारम्भ किया । जिनका कहीं अन्त नहीं है या जो किसीसे पराजित नहीं होते उन्हीं श्रीनारायण-देवका चिन्तन करते हुए वे साठ हजार वर्षोंतक श्वास रोके रहे । उस समय राजाकी नासिकाके छिद्रसे भयंकर अग्नि प्रकट हुई । उसे देखकर सब देवता थर्रा उठे और उस अग्निसे संतप्त होने लगे । फिर वे देवेश्वरगण क्षीरसागरके उत्तर तटपर जहाँ जगदीश्वर श्रीहरि निवास करते हैं, पहुँचकर भगवान् महाविष्णुकी शरणमें गये और शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले देवदेवेश्वर भगवान्की इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

देवताओंने कहा—जो जगत्के एकमात्र स्वामी तथा स्मरण करनेवाले भक्तजनोंकी समस्त पीड़ा दूर कर देनेवाले हैं, उन परमेश्वर श्रीविष्णुको हम नमस्कार करते हैं । ज्ञानी पुरुष उन्हें स्वभावतः शुद्ध, सर्वत्र परिपूर्ण एवं ज्ञानस्वरूप कहते हैं । श्रेष्ठ योगीजन जिनका सदा ध्यान करते हैं, जो परमात्मा अपनी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करके देवताओं-का कार्य सिद्ध करते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनका स्वरूप है तथा जो जगत्के आदिस्वामी हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको हम प्रणाम करते हैं । जिनके नामोंका संकीर्तन करनेमात्रसे दुष्ट पुरुषोंके भी समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं; जो सबके शासक, स्तवन करनेयोग्य एव पुराणपुरुष हैं, उन भगवान् विष्णुको हम पुरुषार्थसिद्धिके लिये नमस्कार करते हैं । सूर्य आदि जिनके तेजसे प्रकाशित होते हैं और कभी भी जिनकी आज्ञा-का उल्लङ्घन नहीं करते, जो सम्पूर्ण देवताओंके अधीश्वर तथा पुरुषार्थरूप हैं, उन कालस्वरूप श्रीहरिको हम नमस्कार करते हैं । जिनकी आज्ञाके अनुसार ब्रह्माजी इस जगत्की सृष्टि करते हैं, रुद्र संहार करते हैं और ब्राह्मणलोग श्रुतियोंके द्वारा सब लोगोंको पवित्र करते हैं, जो गुणोंके भण्डार और सबके उपदेशक गुरु हैं, उन आदिदेव भगवान् विष्णुकी हम शरणमें आये हैं । जो सबसे श्रेष्ठ, वरण करनेयोग्य तथा मधु और कैटभको मारनेवाले हैं, देवता और दैत्य भी जिनकी चरणपादुकाका पूजन करते हैं, जो श्रेष्ठ भक्तोंकी मनोवाञ्छित कामनाओंकी सिद्धिके कारण हैं तथा एकमात्र ज्ञानद्वारा जिनके तत्त्वका बोध होता है, उन दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवान्को हम प्रणाम करते हैं । जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अजन्मा, अनादि, अविद्या नामक अन्धकारका नाश करनेवाले, सत्, चित्, परमानन्दघन स्वरूप तथा रूप आदिसे रहित हैं, उन भगवान् परमेश्वरको हम प्रणाम करते हैं । जो जलमें शयन करनेके कारण नारायण, सर्वव्यापी होनेसे विष्णु, अविनाशी होनेसे अनन्त और सबके शासक होनेसे ईश्वर कहलाते हैं, अपने श्रीअङ्गोंपर रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, जो यज्ञके प्रेमी, यज्ञ करनेवाले, विशुद्ध, सर्वोत्तम एवं अव्यय हैं, उन भगवान् विष्णुको हम नमस्कार करते हैं ।

इन्द्र आदि देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् महाविष्णुने देवताओंको राजर्षि भगीरथका चरित्र बतलाया । नारदजी ! फिर उन सबको आश्वासन तथा अभय देकर निरञ्जन-भगवान् विष्णु उस स्थानपर गये, जहाँ राजर्षि भगीरथ तपस्या-

कर रक्खा है। उनके तीन नेत्र हैं। एक-एक अङ्गसे उदारता टपकती है। उन्होंने सर्पका यज्ञोपवीत पहन रक्खा है। उनका वक्षःस्थल विशाल तथा कान्ति हिमालयके समान उज्ज्वल है। गजचर्मका वस्त्र पहने हुए उन भगवान् शिवके चरणारविन्द समस्त देवताओंद्वारा पूजित हो रहे हैं। नारदजी ! भगवान् शिवको इस रूपमें उपस्थित देख राजा भगीरथ उनके चरणोंके आगे दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर सहसा उठकर उन्होंने भगवान्‌के सम्मुख हाथ जोड़े और उनके महादेव तथा शंकर आदि नामोंका कीर्तन करते हुए प्रणाम किया। राजाकी भक्ति जानकर चन्द्रशेखर भगवान् शिव उनसे बोले—'राजन् ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुमने स्तोत्र और तपस्याद्वारा मुझे भलीभाँति संतुष्ट किया है।' भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर राजाका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा और वे हाथ जोडकर जगदीश्वर शिवसे इस प्रकार बोले।

भगीरथने कहा—महेश्वर ! यदि मैं वरदान देकर अनुगृहीत करने योग्य होऊँ तो हमारे पितरोंकी मुक्तिके लिये आप हमें गङ्गा प्रदान करें।

भगवान् शिव बोले—राजन् ! मैंने तुम्हें गङ्गा दे दी। इससे तुम्हारे पितरोंको उत्तम गति प्राप्त होगी और तुम्हें भी परम मोक्ष मिलेगा।

यों कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् जटाजूटधारी भगवान् शिवकी जटासे नीचे आकर जगत्‌को एकमात्र पावन करनेवाली गङ्गा समस्त जगत्‌को पवित्र करती हुई राजा भगीरथके पीछे-पीछे चलीं। मुने ! तबसे परम निर्मल पापहारिणी गङ्गादेवी तीनों लोकोंमे भागीरथीके नामसे विख्यात हुईं। सगरके पुत्र पूर्वकालमें अपने ही पापके कारण जहाँ दग्ध हुए थे, उस स्थानको भी सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाने अपने जलसे प्लावित कर दिया। सगर-पुत्रोंकी भस्म ज्यों ही गङ्गाजलसे प्रवाहित हुई, त्यों ही वे निष्पाप हो गये। पहले जो नरकमें डूबे हुए थे, उनका गङ्गाने उद्धार कर दिया। पूर्वकालमे यमराजने अत्यन्त कुपित होकर जिन्हें बड़ी भारी पीडा दी थी, वे ही गङ्गाजीके जलसे (उनके शरीरकी भस्म) आप्लावित होनेके कारण उन्हीं यमराजके द्वारा पूजित हुए। सगर-पुत्रोंको निष्पाप समझकर यमराजने उन्हें प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके प्रसन्नतापूर्वक कहा—'राजकुमारो ! आपलोग अत्यन्त भयंकर नरकसे उद्धार पा गये। अब इस विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके धाममें जाइये।' यमराजके ऐसा कहनेपर वे पापरहित महात्मा दिव्य देह धारण करके भगवान् विष्णुके लोकमें चले गये। भगवान् विष्णुके चरणोंके अग्रभागसे प्रकट हुई गङ्गाजीका ऐसा प्रभाव है। महापातकोंका नाश करनेवाली गङ्गा सम्पूर्ण लोकोंमे विख्यात हैं। यह पवित्र आख्यान महापातकोंका नाश करनेवाला है। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह गङ्गास्नानका फल पाता है। जो इस पवित्र आख्यानको ब्राह्मणके सम्मुख कहता है, वह भगवान् विष्णुके पुनरावृत्तिरहित धाममें जाता है।

मार्गशीर्ष माससे लेकर कार्तिक मास पर्यन्त उद्यापनसहित शुक्लपक्षके द्वादशी-व्रतका वर्णन

ऋषि बोले—महाभाग सूतजी ! आपको साधुवाद है। आपका हृदय अत्यन्त दयालु है। आपने कृपा करके सब पापोंका नाश करनेवाला उत्तम गङ्गा-माहात्म्य हमें सुनाया है। यह गङ्गा-माहात्म्य सुनकर देवर्षि नारदजीने मुनिश्रेष्ठ सनकजीसे कौन-सा प्रश्न किया ? यह बताइये।

सूतजीने कहा—आप सब ऋषि सुनें। देवर्षि नारदने फिर जिस प्रकार प्रश्न किया था, वह बतलाऊँगा।

नारदजी बोले—मुने ! आप भगवान् विष्णुके उन व्रतोंका वर्णन कीजिये, जिनका अनुष्ठान करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं। जो भगवत्-सम्बन्धी व्रत, पूजन और ध्यानमें

कर रक्खा है। उनके तीन नेत्र हैं। एक-एक अङ्गसे उदारता टपकती है। उन्होंने सर्पका यज्ञोपवीत पहन रक्खा है। उनका वक्षःस्थल विशाल तथा कान्ति हिमालयके समान उज्ज्वल है। गजचर्मका वस्त्र पहने हुए उन भगवान् शिवके चरणारविन्द समस्त देवताओंद्वारा पूजित हो रहे हैं। नारदजी! भगवान् शिवको इस रूपमें उपस्थित देख राजा भगीरथ उनके चरणोंके आगे दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर सहसा उठकर उन्होंने भगवान्‌के सम्मुख हाथ जोड़े और उनके महादेव तथा शंकर आदि नामोंका कीर्तन करते हुए प्रणाम किया। राजाकी भक्ति जानकर चन्द्रशेखर भगवान् शिव उनसे बोले—'राजन्! मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुमने स्तोत्र और तपस्याद्वारा मुझे भलीभाँति संतुष्ट किया है।' भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर राजाका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा और वे हाथ जोडकर जगदीश्वर शिवसे इस प्रकार बोले।

भगीरथने कहा—महेश्वर! यदि मैं वरदान देकर अनुगृहीत करने योग्य होऊँ तो हमारे पितरोंकी मुक्तिके लिये आप हमें गङ्गा प्रदान करें।

भगवान् शिव बोले—राजन्! मैंने तुम्हें गङ्गा दे दी। इससे तुम्हारे पितरोंको उत्तम गति प्राप्त होगी और तुम्हें भी परम मोक्ष मिलेगा।

यों कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् जटाजूटधारी भगवान् शिवकी जटासे नीचे आकर जगत्‌को एकमात्र पावन करनेवाली गङ्गा समस्त जगत्‌को पवित्र करती हुई राजा भगीरथके पीछे-पीछे चलीं। मुने! तबसे परम निर्मल पापहारिणी गङ्गादेवी तीनों लोकोंमे भागीरथीके नामसे विख्यात हुईं। सगरके पुत्र पूर्वकालमें अपने ही पापके कारण जहाँ दग्ध हुए थे, उस स्थानको भी सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाने अपने जलसे प्लावित कर दिया। सगर-पुत्रोंकी भस्म ज्यों ही गङ्गाजलसे प्रवाहित हुई, त्यों ही वे निष्पाप हो गये। पहले जो नरकमें डूबे हुए थे, उनका गङ्गाने उद्धार कर दिया। पूर्वकालमे यमराजने अत्यन्त कुपित होकर जिन्हें बड़ी भारी पीडा दी थी, वे ही गङ्गाजीके जलसे (उनके शरीरकी भस्म) आप्लावित होनेके कारण उन्हीं यमराजके द्वारा पूजित हुए। सगर-पुत्रोंको निष्पाप समझकर यमराजने उन्हें प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके प्रसन्नतापूर्वक कहा—'राजकुमारो! आपलोग अत्यन्त भयंकर नरकसे उद्धार पा गये। अब इस विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके धाममें जाइये।' यमराजके ऐसा कहनेपर वे पापरहित महात्मा दिव्य देह धारण करके भगवान् विष्णुके लोकमें चले गये। भगवान् विष्णुके चरणोंके अग्रभागसे प्रकट हुई गङ्गाजीका ऐसा प्रभाव है। महापातकोंका नाश करनेवाली गङ्गा सम्पूर्ण लोकोंमे विख्यात हैं। यह पवित्र आख्यान महापातकोंका नाश करनेवाला है। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह गङ्गास्नानका फल पाता है। जो इस पवित्र आख्यानको ब्राह्मणके सम्मुख कहता है, वह भगवान् विष्णुके पुनरावृत्तिरहित धाममें जाता है।

मार्गशीर्ष माससे लेकर कार्तिक मास पर्यन्त उद्यापनसहित शुक्लपक्षके द्वादशी-व्रतका वर्णन

ऋषि बोले—महाभाग सूतजी! आपको साधुवाद है। आपका हृदय अत्यन्त दयालु है। आपने कृपा करके सब पापोंका नाश करनेवाला उत्तम गङ्गा-माहात्म्य हमें सुनाया है। यह गङ्गा-माहात्म्य सुनकर देवर्षि नारदजीने मुनिश्रेष्ठ सनकजीसे कौन-सा प्रश्न किया? यह बताइये।

सूतजीने कहा—आप सब ऋषि सुनें। देवर्षि नारदने फिर जिस प्रकार प्रश्न किया था, वह बतलाऊँगा।

नारदजी बोले—मुने! आप भगवान् विष्णुके उन व्रतोंका वर्णन कीजिये, जिनका अनुष्ठान करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं। जो भगवत्-सम्बन्धी व्रत, पूजन और ध्यानमें

'सम्पूर्ण कर्मोंका फल देनेवाले तथा समस्त भूतोंके आत्मा भगवान् लक्ष्मीपति तिलके इस महादानसे प्रसन्न होकर मेरी सब कामनाएँ पूरी करें।'

इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको तिल दान देकर भगवान् माधवका स्मरण करते हुए यथाशक्ति ब्राह्मणोंको

भोजन कराये। मुने! जो इस प्रकार भक्ति-भावसे तिलदानयुक्त व्रत करता है, वह सौ वाजपेय यज्ञके सम्पूर्ण फलको प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें द्वादशीको उपवास करके व्रती पुरुष 'गोविन्दाय नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्रसे भगवान्का पूजन करे और घृतमिश्रित तिलकी एक सौ आठ आहुति देकर पूर्वोक्त मानके अनुसार एक सेर दूधसे पवित्रतापूर्वक भगवान् गोविन्दको स्नान कराये। पूर्ववत् रातमें जागरण और तीनों समय पूजा करे। फिर प्रातःकालका शौच, स्नान आदि कर्म पूरा करके पुनः भगवान् गोविन्दकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् वस्त्र और दक्षिणासहित एक आढक (चार सेर) धान ब्राह्मणको दे और निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करे—

नमो गोविन्द सर्वेश गोपिकाजनवल्लभ ॥
अनेन धान्यदानेन प्रीतो भव जगद्गुरो।
(१७। ४१-४२)

'गोविन्द! सर्वेश्वर! गोपाङ्गनाओंके प्राणवल्लभ! जगद्गुरो! इस धान्यके दानसे आप मुझपर प्रसन्न हों।'

इस प्रकार भलीभाँति व्रतका पालन करके मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और महान् यज्ञका पूरा पुण्य प्राप्त कर लेता है।

चैत्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके पहले बताये अनुसार 'नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यम्' इस मन्त्रसे भगवान्की पूजा करे। पूर्ववत् एक सेर दूधसे भगवान् विष्णुको स्नान करावे। विप्रवर! यदि शक्ति हो तो उसी प्रकार सेरभर घीसे भी आदरपूर्वक भगवान्को नहलावे तथा रातमे भी पहलेकी तरह जागरण और पूजन करे। तदनन्तर सबेरे उठकर प्रातःकालके आवश्यक कर्म पूरा करके मधु, घी और तिलमिश्रित हवनसामग्रीकी एक सौ आठ आहुति दे। उसके बाद ब्राह्मणको दक्षिणासहित एक आढक (चार सेर) चावल दान करे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

प्राणरूपी महाविष्णुः प्राणदः सर्ववल्लभः ॥
तण्डुलाढकदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः।
(१७। ४७-४८)

'भगवान् महाविष्णु प्राणस्वरूप हैं। वे ही सबके प्रियतम और प्राणदाता हैं। इस एक आढक चावलके दानसे वे भगवान् जनार्दन मुझपर प्रसन्न हों।'

इस प्रकार भक्तिभावसे व्रतका पालन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अत्यग्निष्टोम यज्ञके आठगुने फलको पाता है।

वैशाख शुक्ला द्वादशीको उपवास करके भक्तिपूर्वक देवेश्वर मधुसूदनको द्रोण (कलश) परिमित दूधसे स्नान करावे तथा रातमें तीन समय पूजन करते हुए जागरण करे। मधुसूदनकी विधिपूर्वक पूजा करके 'नमस्ते मधुहन्त्रे' इस मन्त्रसे घीकी एक सौ आठ आहुतिका होम करे। घीका उपयोग अपनी शक्तिके अनुसार करे। इससे पापरहित होकर मनुष्य आठ अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है।

ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके एक आढक (चार सेर) दूधसे भगवान् त्रिविक्रमको स्नान करावे और 'नमस्त्रिविक्रमाय' इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक भगवान्का पूजन करे। खीरकी एक सौ आठ आहुति देकर होम करे। फिर रातमें जागरण करके भगवान्की पूजा करे। फिर प्रातःकृत्य करके पूजनके पश्चात् ब्राह्मणको दक्षिणासहित बीस पूआ दान करे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—)

'सम्पूर्ण कर्मोंका फल' देनेवाले तथा समस्त भूतोंके आत्मा भगवान् लक्ष्मीपति तिलके इस महादानसे प्रसन्न होकर मेरी सब कामनाएँ पूरी करें।'

इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको तिल दान देकर भगवान् माधवका स्मरण करते हुए यथाशक्ति ब्राह्मणोंको

भोजन कराये। मुने! जो इस प्रकार भक्ति-भावसे तिलदानयुक्त व्रत करता है, वह सौ वाजपेय यज्ञके सम्पूर्ण फलको प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें द्वादशीको उपवास करके व्रती पुरुष 'गोविन्दाय नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्रसे भगवान्का पूजन करे और घृतमिश्रित तिलकी एक सौ आठ आहुति देकर पूर्वोक्त मानके अनुसार एक सेर दूधसे पवित्रतापूर्वक भगवान् गोविन्दको स्नान कराये। पूर्ववत् रातमें जागरण और तीनों समय पूजा करे। फिर प्रातःकालका शौच, स्नान आदि कर्म पूरा करके पुनः भगवान् गोविन्दकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् वस्त्र और दक्षिणासहित एक आढक (चार सेर) धान ब्राह्मणको दे और निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करे—

नमो गोविन्द सर्वेश गोपिकाजनवल्लभ ॥
अनेन धान्यदानेन प्रीतो भव जगद्गुरो।
(१७ । ४१-४२)

'गोविन्द! सर्वेश्वर! गोपाङ्गनाओंके प्राणवल्लभ! जगद्गुरो! इस धान्यके दानसे आप मुझपर प्रसन्न हों।'

इस प्रकार भलीभाँति व्रतका पालन करके मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और महान् यज्ञका पूरा पुण्य प्राप्त कर लेता है।

चैत्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके पहले बताये अनुसार 'नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यम्' इस मन्त्रसे भगवान्की पूजा करे। पूर्ववत् एक सेर दूधसे भगवान् विष्णुको स्नान करावे। विप्रवर! यदि शक्ति हो तो उसी प्रकार सेरभर घीसे भी आदरपूर्वक भगवान्को नहलावे तथा रातमे भी पहलेकी तरह जागरण और पूजन करे। तदनन्तर सवेरे उठकर प्रातःकालके आवश्यक कर्म पूरा करके मधु, घी और तिलमिश्रित हवनसामग्रीकी एक सौ आठ आहुति दे। उसके बाद ब्राह्मणको दक्षिणासहित एक आढक (चार सेर) चावल दान करे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

प्राणरूपी महाविष्णुः प्राणदः सर्ववल्लभः ॥
तण्डुलाढकदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः।
(१७ । ४७-४८)

'भगवान् महाविष्णु प्राणस्वरूप हैं। वे ही सबके प्रियतम और प्राणदाता हैं। इस एक आढक चावलके दानसे वे भगवान् जनार्दन मुझपर प्रसन्न हों।'

इस प्रकार भक्तिभावसे व्रतका पालन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अत्यग्निष्टोम यज्ञके आठगुने फलको पाता है।

वैशाख शुक्ला द्वादशीको उपवास करके भक्तिपूर्वक देवेश्वर मधुसूदनको द्रोण (कलश) परिमित दूधसे स्नान करावे तथा रातमें तीन समय पूजन करते हुए जागरण करे। मधुसूदनकी विधिपूर्वक पूजा करके 'नमस्ते मधुहन्त्रे' इस मन्त्रसे घीकी एक सौ आठ आहुतिका होम करे। घीका उपयोग अपनी शक्तिके अनुसार करे। इससे पापरहित होकर मनुष्य आठ अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है।

ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके एक आढक (चार सेर) दूधसे भगवान् त्रिविक्रमको स्नान करावे और 'नमस्त्रिविक्रमाय' इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक भगवान्का पूजन करे। खीरकी एक सौ आठ आहुति देकर होम करे। फिर रातमें जागरण करके भगवान्की पूजा करे। फिर प्रातःकृत्य करके पूजनके पश्चात् ब्राह्मणको दक्षिणा-सहित बीस पूआ दान करे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—)

जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष इस प्रकार भक्तिभावसे पद्मनाभ-व्रतका पालन करता है, उसे निश्चय ही एक हजार महान् यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

कार्तिक शुक्ला द्वादशीको उपवास करके जितेन्द्रिय पुरुष एक आढक (चार सेर) दूध, दही अथवा उतने ही घीसे भक्तिपूर्वक भगवान् दामोदरको स्नान करावे। स्नान करानेका मन्त्र है—'ॐ नमो दामोदराय।' उसीसे मधु और घी मिलाये हुए तिलकी एक सौ आठ आहुति दे। फिर संयम-नियमपूर्वक तीनों समय श्रीहरिकी पूजामें तत्पर हो रातमें जागरण करे और प्रातःकाल आवश्यक कृत्योंसे निवृत्त हो मनोरम कमलके फूलोंद्वारा भगवान्‌की पूजा करे। उसके बाद घृतमिश्रित तिलोंके द्वारा पुनः एक सौ आठ आहुति दे और पाँच प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त अन्न ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक दे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

दामोदर जगन्नाथ सर्वकारणकारण।
त्राहि मां कृपया देव शरणागतपालक॥
(१७।८३)

'दामोदर! जगन्नाथ! आप समस्त कारणोंके भी कारण हैं। शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले देव! कृपया मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार कुटुम्बयुक्त श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान और यथाशक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंको भी भोजन करावे। इस प्रकार व्रतका विधिपूर्वक पालन करके अपने बन्धुजनोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। इससे वह दो हजार अश्वमेध-यज्ञोंका फल पाता है।

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार व्रतका पालन करनेवाला जो पुरुष परम उत्तम द्वादशी-व्रतका एक वर्षतक पूर्वोक्त विधिसे अनुष्ठान करता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। जो एक मास या दो मासमें भक्तिपूर्वक उक्त व्रतका पालन करता है, वह उस-उस महीनेके बताये हुए फलको पाता है और हरिके परम पदको प्राप्त हो जाता है। मुनीश्वर! व्रती पुरुषको चाहिये कि वह एक वर्ष पूरा करके मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें द्वादशी तिथिको व्रतका उद्यापन करे। प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त हो दन्तधावन और स्नान करके नित्य कृत्य करे। फिर श्वेतवस्त्र तथा श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे। श्वेत चन्दनका अनुलेपन करे। घरके आँगनमें एक दिव्य चौकोर एवं परम सुन्दर मण्डप बनावे। उसमें घण्टा और चँवर यथास्थान लगा दे। छोटी-छोटी घण्टियोंकी ध्वनिसे उस मण्डपको सुशोभित करे। फूलोंकी मालाओंसे उसको सजावे। ऊपरसे चँदोवा लगा दे और ध्वजा-पताकासे भी उस मण्डपको विभूषित करे। वह मण्डप श्वेतवस्त्रसे आच्छादित तथा दीपमालाओंसे आच्छादित होना चाहिये। उसके मध्यभागमें सर्वतोभद्र-मण्डल बनाकर उसे विविध रंगोंसे भलीभाँति अलंकृत करे। सर्वतोभद्रके ऊपर जलसे भरे हुए बारह घड़े रक्खे। भलीभाँति शुद्ध किये हुए एक ही श्वेत वस्त्रसे उन सभी कलशोंको ढँक दे। वे सब कलश पञ्चरत्नसे युक्त होने चाहिये। ब्रह्मन्! व्रती पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी भगवान् लक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा बनावे और उसे मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए कलशके ऊपर स्थापित करे। द्विजश्रेष्ठ! जो प्रतिमा न बना सके, वह अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण अथवा उसका मूल्य वहाँ चढा दे। बुद्धिमान् पुरुष सभी व्रतोंमें उदार रहे। धनकी कंजूसी न करे। यदि वह कृपणता करता है तो उसकी आयु और धन-सम्पत्तिका क्षय होता है। पहले शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले रोग-शोकसे रहित भगवान् लक्ष्मीनारायणका ध्यान करके उन्हें भक्तिपूर्वक पञ्चामृतसे स्नान करावे। फिर केशव आदि नामोंसे उनके लिये भिन्न-भिन्न उपचार चढावे। रातमें पुराण-कथा-श्रवण आदिके द्वारा जागरण करे। निद्राको जीते और उपवास-पूर्वक जितेन्द्रिय-भावसे रहकर अपने वैभवके अनुसार रातके प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्रहरके अन्तमें तीन बार भगवान्‌की पूजा करे। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर सबेरेके शौच-स्नान आदि आवश्यक कृत्य पूरे करके ब्राह्मणोंद्वारा व्याहृति-मन्त्रसे तिलकी एक हजार आहुतियाँ दिलावे। उसके बाद क्रमशः गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंसे पुनः भगवान्‌की पूजा करे तथा भगवान्‌के समक्ष पुराणकी कथा भी सुने। फिर बारह ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकको दस-दस पूआ, घृत, दधिसहित अन्न तथा खीर दान करे। उसके साथ दक्षिणा भी दे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—)

देवदेव जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह।
गृहाणोपायनं कृष्ण सर्वाभीष्टप्रदो भव॥
(१७।१०३)

'भक्तोंपर कृपा करके अवतार—शरीर धारण करनेवाले देवदेव! जगदीश्वर! श्रीकृष्ण! आप यह भेंट ग्रहण कीजिये और मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ दीजिये।'

जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष इस प्रकार भक्तिभावसे पद्मनाभ-व्रतका पालन करता है, उसे निश्चय ही एक हजार महान् यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

कार्तिक शुक्ला द्वादशीको उपवास करके जितेन्द्रिय पुरुष एक आढक (चार सेर) दूध, दही अथवा उतने ही घीसे भक्तिपूर्वक भगवान् दामोदरको स्नान करावे। स्नान करानेका मन्त्र है—'ॐ नमो दामोदराय।' उसीसे मधु और घी मिलाये हुए तिलकी एक सौ आठ आहुति दे। फिर संयम-नियमपूर्वक तीनो समय श्रीहरिकी पूजामे तत्पर हो रातमें जागरण करे और प्रातःकाल आवश्यक कृत्योंसे निवृत्त हो मनोरम कमलके फूलोंद्वारा भगवान्‌की पूजा करे। उसके बाद घृतमिश्रित तिलोंके द्वारा पुनः एक सौ आठ आहुति दे और पाँच प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त अन्न ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक दे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

दामोदर जगन्नाथ सर्वकारणकारण।
त्राहि मां कृपया देव शरणागतपालक॥
(१७। ८३)

'दामोदर! जगन्नाथ! आप समस्त कारणोके भी कारण हैं। शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले देव! कृपया मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार कुटुम्बयुक्त श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान और यथाशक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणोको भी भोजन करावे। इस प्रकार व्रतका विधिपूर्वक पालन करके अपने बन्धुजनोंके साथ स्वय भी भोजन करे। इससे वह दो हजार अश्वमेध-यज्ञोंका फल पाता है।

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार व्रतका पालन करनेवाला जो पुरुष परम उत्तम द्वादशी-व्रतका एक वर्षतक पूर्वोक्त विधिसे अनुष्ठान करता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। जो एक मास या दो मासमे भक्तिपूर्वक उक्त व्रतका पालन करता है, वह उस-उस महीनेके बताये हुए फलको पाता है और हरिके परम पदको प्राप्त हो जाता है। मुनीश्वर! व्रती पुरुषको चाहिये कि वह एक वर्ष पूरा करके मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें द्वादशी तिथिको व्रतका उद्यापन करे। प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त हो दन्तधावन और स्नान करके नित्य कृत्य करे। फिर श्वेतवस्त्र तथा श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे। श्वेत चन्दनका अनुलेपन करे। घरके आँगनमें एक दिव्य चौकोर एवं परम सुन्दर मण्डप बनावे। उसमें घण्टा और चँवर यथास्थान लगा दे। छोटी-छोटी घण्टियोकी ध्वनिसे उस मण्डपको सुशोभित करे। फूलोंकी मालाओंसे उसको सजावे। ऊपरसे चँदोवा लगा दे और ध्वजा-पताकासे भी उस मण्डपको विभूषित करे। वह मण्डप श्वेतवस्त्रसे आच्छादित तथा दीपमालाओंसे आच्छादित होना चाहिये। उसके मध्यभागमें सर्वतोभद्र-मण्डल बनाकर उसे विविध रंगोसे भलीभाँति अलंकृत करे। सर्वतोभद्रके ऊपर जलसे भरे हुए बारह घड़े रक्खे। भलीभाँति शुद्ध किये हुए एक ही श्वेत वस्त्रसे उन सभी कलशोंको ढँक दे। वे सब कलश पञ्चरत्नसे युक्त होने चाहिये। ब्रह्मन्! व्रती पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी भगवान् लक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा बनावे और उसे मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए कलशके ऊपर स्थापित करे। द्विजश्रेष्ठ! जो प्रतिमा न बना सके, वह अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण अथवा उसका मूल्य वहाँ चढा दे। बुद्धिमान् पुरुष सभी व्रतोंमें उदार रहे। धनकी कंजूसी न करे। यदि वह कृपणता करता है तो उसकी आयु और धन-सम्पत्तिका क्षय होता है। पहले शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले रोग-शोकसे रहित भगवान् लक्ष्मीनारायणका ध्यान करके उन्हें भक्तिपूर्वक पञ्चामृतसे स्नान करावे। फिर केशव आदि नामोंसे उनके लिये भिन्न-भिन्न उपचार चढावे। रातमे पुराण-कथा-श्रवण आदिके द्वारा जागरण करे। निद्राको जीते और उपवास-पूर्वक जितेन्द्रिय-भावसे रहकर अपने वैभवके अनुसार रातके प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्रहरके अन्तमे तीन बार भगवान्‌की पूजा करे। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर सबेरेके शौच-स्नान आदि आवश्यक कृत्य पूरे करके ब्राह्मणोंद्वारा व्याहृति-मन्त्रसे तिलकी एक हजार आहुतियाँ दिलावे। उसके बाद क्रमशः गन्ध, पुष्प आदि उपचारोसे पुनः भगवान्‌की पूजा करे तथा भगवान्‌के समक्ष पुराणकी कथा भी सुने। फिर बारह ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकको दस-दस पूआ, घृत, दधिसहित अन्न तथा खीर दान करे। उसके साथ दक्षिणा भी दे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—)

देवदेव जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह।
गृहाणोपायनं कृष्ण सर्वाभीष्टप्रदो भव॥
(१७। १०३)

'भक्तोंपर कृपा करके अवतार—शरीर धारण करनेवाले देवदेव! जगदीश्वर! श्रीकृष्ण! आप यह भेंट ग्रहण कीजिये और मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ दीजिये।'

नारायणकी पूजा करे। व्रती पुरुष 'नमो नारायणाय' इस मन्त्रसे आवाहन, आसन तथा गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा भक्ति-तत्पर हो भगवान्‌की अर्चना करे और एकाग्रचित्त हो वह गीत, वाद्य, नृत्य, पुराण-पाठ तथा स्तोत्र आदिके द्वारा श्रीहरि-की आराधना करे। भगवान्‌के सामने चौकोर वेदी बनावे, जिसकी लंबाई-चौड़ाई लगभग एक हाथ हो। उसपर गृह्य-सूत्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार अग्निकी स्थापना करे और उसमें आज्यभागान्त[1] होम करके पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे चरु, तिल तथा घृतद्वारा यथाशक्ति एक, दो, तीन बार होम करे। सम्पूर्ण पापोंकी निवृत्तिके लिये प्रयत्नपूर्वक होमकार्य सम्पन्न करना चाहिये। अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार प्रायश्चित्त आदि सब कार्य करे। फिर विधिवत् होमकी समाप्ति करके विद्वान् पुरुष शान्तिसूक्तका जप करे। तत्पश्चात् भगवान्‌के समीप आकर पुनः उनकी पूजा करे और अपना उपवासव्रत भक्तिभावसे भगवान्‌के अर्पण करे।

पौर्णमास्यां निराहारः स्थित्वा देव तवाज्ञया।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽह्नि शरणं भव॥

(१८। १३)

'देव! पुण्डरीकाक्ष! मैं पूर्णिमाको निराहार रहकर दूसरे दिन आपकी आज्ञासे भोजन करूँगा। आप मेरे लिये शरण हों।'

इस प्रकार भगवान्‌को व्रत निवेदन करके संध्याको चन्द्रोदय होनेपर पृथ्वीपर दोनों घुटने टेककर श्वेत पुष्प, अक्षत, चन्दन और जलसहित अर्घ्य हाथमें ले चन्द्रदेवको समर्पित करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिगोत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिणीनायक प्रभो॥

(१८। १५)

'भगवन् रोहिणीपते! आपका जन्म अत्रिकुलमें हुआ है और आप क्षीरसागरसे प्रकट हुए हैं। मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको स्वीकार कीजिये।'

नारदजी! इस प्रकार चन्द्रदेवको अर्घ्य देकर पूर्वाभि-मुख खड़ा हो चन्द्रमाकी ओर देखते हुए हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—

नमः शुक्लांशवे तुभ्यं द्विजराजाय ते नमः।
रोहिणीपतये तुभ्यं लक्ष्मीभ्रात्रे नमोऽस्तु ते॥

(१८। १७)

'भगवन्! आप श्वेत किरणोंसे सुशोभित होते हैं, आपको नमस्कार है। आप द्विजोंके राजा हैं, आपको नमस्कार है। आप रोहिणीके पति हैं, आपको नमस्कार है। आप लक्ष्मीजीके भाई हैं, आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर पुराण-श्रवण आदिके द्वारा जितेन्द्रिय एव शुद्ध भावसे रातभर जागरण करे। पाखण्डियोंकी दृष्टिसे दूर रहे। फिर प्रातःकाल उठकर अपने नित्य-नियमका विधिपूर्वक पालन करे। उसके बाद अपने वैभवके अनुसार पुनः भगवान्‌-की पूजा करे। तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और स्वयं भी शुद्धचित्त हो अपने भाई-बन्धुओं तथा भृत्य आदिके साथ भोजन करे। भोजनके समय मौन रहे। इसी प्रकार पौष आदि महीनोंमें भी पूर्णिमाको उपवास करके भक्ति-युक्त हो रोग-शोकरहित भगवान् नारायणकी पूजा-अर्चा करे। इस तरह एक वर्ष पूरा करके कार्तिककी पूर्णिमाके दिन उद्यापन करे। उद्यापनका विधान तुम्हें बतलाता हूँ। व्रती पुरुष एक परम सुन्दर चौकोर मङ्गलमय मण्डप बनवावे, जो पुष्प-लताओंसे सुशोभित तथा चँदोवा और ध्वजा-पताकासे सुसज्जित हो। वह मण्डप अनेक दीपकोंके प्रकाशसे व्याप्त होना चाहिये। उसकी शोभा बढ़ानेके लिये छोटी-छोटी घण्टिकाओंसे सुशोभित झालर लगा देनी चाहिये। उसमे किनारे-किनारे बड़े-बड़े शीशे और चँवर लगा देने चाहिये। कलशोंसे वह मण्डप घिरा रहे। मण्डपके मध्य भागमें पाँच रंगोंसे सुशोभित सर्वतोभद्र मण्डल बनावे। नारदजी! उस मण्डलपर जलसे भरा हुआ एक कलश स्थापित करे। फिर

---

१. अग्निस्थापनाके पश्चात् दायें हाथमें स्रुव लेकर दाहिना घुटना भूमिपर रखकर ब्रह्मासे अन्वारम्भ करके घृतकी जो चार आहुतियाँ दी जाती हैं, उनमेंसे दो आहुतियोंकी 'आघार' संज्ञा है और शेष दो आहुतियोंको 'आज्यभाग' कहते हैं। 'प्रजापतये स्वाहा' इस मन्त्रसे प्रजा-पतिके लिये जो घृतकी अविच्छिन्न धारा दी जाती है, वह 'पूर्व आघार' है। यह अग्निके उत्तरभागमें प्रज्वलित अग्निमें ही छोड़ी जाती है। इसी प्रकार अग्निके दक्षिणभागमें 'इन्द्राय स्वाहा' इस मन्त्रसे प्रज्वलित अग्निमें इन्द्रके लिये जो अविच्छिन्न घृतकी धारा दी जाती है, उसका नाम 'उत्तर आघार' है। इसके बाद अग्निके उत्तरार्ध-पूर्वार्धमें 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्रसे अग्निके लिये जो घृतकी एक आहुति दी जाती है, उसका नाम 'आग्नेय आज्यभाग' है और अग्निके दक्षिणार्ध-पूर्वार्धमें 'सोमाय स्वाहा' इस मन्त्रसे सोमके लिये दी जानेवाली आहुतिका नाम 'सौम्य आज्यभाग' है।

नारायणकी पूजा करे। व्रती पुरुष 'नमो नारायणाय' इस मन्त्रसे आवाहन, आसन तथा गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा भक्ति-तत्पर हो भगवान्‌की अर्चना करे और एकाग्रचित्त हो वह गीत, वाद्य, नृत्य, पुराण-पाठ तथा स्तोत्र आदिके द्वारा श्रीहरि-की आराधना करे। भगवान्‌के सामने चौकोर वेदी बनावे, जिसकी लंबाई-चौड़ाई लगभग एक हाथ हो। उसपर गृह्य-सूत्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार अग्निकी स्थापना करे और उसमें आज्यभागान्त[1] होम करके पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे चरु, तिल तथा घृतद्वारा यथाशक्ति एक, दो, तीन बार होम करे। सम्पूर्ण पापोंकी निवृत्तिके लिये प्रयत्नपूर्वक होमकार्य सम्पन्न करना चाहिये। अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार प्रायश्चित्त आदि सब कार्य करे। फिर विधिवत् होमकी समाप्ति करके विद्वान् पुरुष शान्तिसूक्तका जप करे। तत्पश्चात् भगवान्‌के समीप आकर पुनः उनकी पूजा करे और अपना उपवासव्रत भक्तिभावसे भगवान्‌के अर्पण करे।

पौर्णमास्यां निराहारः स्थित्वा देव तवाज्ञया।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽह्नि शरणं भव॥

(१८ । १३)

'देव! पुण्डरीकाक्ष! मैं पूर्णिमाको निराहार रहकर दूसरे दिन आपकी आज्ञासे भोजन करूँगा। आप मेरे लिये शरण हों।'

इस प्रकार भगवान्‌को व्रत निवेदन करके संध्याको चन्द्रोदय होनेपर पृथ्वीपर दोनों घुटने टेककर श्वेत पुष्प, अक्षत, चन्दन और जलसहित अर्घ्य हाथमें ले चन्द्रदेवको समर्पित करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिगोत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिणीनायक प्रभो॥

(१८ । १५)

'भगवन् रोहिणीपते! आपका जन्म अत्रिकुलमें हुआ है और आप क्षीरसागरसे प्रकट हुए हैं। मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको स्वीकार कीजिये।'

नारदजी! इस प्रकार चन्द्रदेवको अर्घ्य देकर पूर्वाभि-मुख खड़ा हो चन्द्रमाकी ओर देखते हुए हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—

नमः शुक्लांशवे तुभ्यं द्विजराजाय ते नमः।
रोहिणीपतये तुभ्यं लक्ष्मीभ्रात्रे नमोऽस्तु ते॥

(१८ । १७)

'भगवन्! आप श्वेत किरणोंसे सुशोभित होते हैं, आपको नमस्कार है। आप द्विजोंके राजा हैं, आपको नमस्कार है। आप रोहिणीके पति हैं, आपको नमस्कार है। आप लक्ष्मीजीके भाई हैं, आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर पुराण-श्रवण आदिके द्वारा जितेन्द्रिय एवं शुद्ध भावसे रातभर जागरण करे। पाखण्डियोंकी दृष्टिसे दूर रहे। फिर प्रातःकाल उठकर अपने नित्य-नियमका विधिपूर्वक पालन करे। उसके बाद अपने वैभवके अनुसार पुनः भगवान्‌की पूजा करे। तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और स्वयं भी शुद्धचित्त हो अपने भाई-बन्धुओं तथा भृत्य आदिके साथ भोजन करे। भोजनके समय मौन रहे। इसी प्रकार पौष आदि महीनोंमें भी पूर्णिमाको उपवास करके भक्ति-युक्त हो रोग-शोकरहित भगवान् नारायणकी पूजा-अर्चा करे। इस तरह एक वर्ष पूरा करके कार्तिककी पूर्णिमाके दिन उद्यापन करे। उद्यापनका विधान तुम्हें बतलाता हूँ। व्रती पुरुष एक परम सुन्दर चौकोर मङ्गलमय मण्डप बनवावे, जो पुष्प-लताओंसे सुशोभित तथा चँदोवा और ध्वजा-पताकासे सुसज्जित हो। वह मण्डप अनेक दीपकोंके प्रकाशसे व्याप्त होना चाहिये। उसकी शोभा बढ़ानेके लिये छोटी-छोटी घण्टिकाओंसे सुशोभित झालर लगा देनी चाहिये। उसमें किनारे-किनारे बड़े-बड़े शीशे और चँवर लगा देने चाहिये। कलशोंसे वह मण्डप घिरा रहे। मण्डपके मध्य भागमें पाँच रंगोंसे सुशोभित सर्वतोभद्र मण्डल बनावे। नारदजी! उस मण्डलपर जलसे भरा हुआ एक कलश स्थापित करे। फिर

---

१. अग्निस्थापनाके पश्चात् दायें हाथमें स्रुव लेकर दाहिना घुटना भूमिपर रखकर ब्रह्मासे अन्वारम्भ करके घृतकी जो चार आहुतियाँ दी जाती हैं, उनमेंसे दो आहुतियोंकी 'आघार' संज्ञा है और शेष दो आहुतियोंको 'आज्यभाग' कहते हैं। 'प्रजापतये स्वाहा' इस मन्त्रसे प्रजापतिके लिये जो घृतकी अविच्छिन्न धारा दी जाती है, वह 'पूर्व आघार' है। यह अग्निके उत्तरभागमें प्रज्वलित अग्निमें ही छोड़ी जाती है। इसी प्रकार अग्निके दक्षिणभागमें 'इन्द्राय स्वाहा' इस मन्त्रसे प्रज्वलित अग्निमें इन्द्रके लिये जो अविच्छिन्न घृतकी धारा दी जाती है, उसका नाम 'उत्तर आघार' है। इसके बाद अग्निके उत्तरार्ध-पूर्वार्धमें 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्रसे अग्निके लिये जो घृतकी एक आहुति दी जाती है, उसका नाम 'आग्नेय आज्यभाग' है और अग्निके दक्षिणार्ध-पूर्वार्धमें 'सोमाय स्वाहा' इस मन्त्रसे सोमके लिये दी जानेवाली आहुतिका नाम 'सौम्य आज्यभाग' है।

इसके बाद पुरुषसूक्तके प्रथम मन्त्र[1], विष्णोर्नुकम्[2], इरावती[3], वैनतेयाय स्वाहा, सोमो[4] धेनुम् और उदुत्यं जातवेदसम्[5]— इन मन्त्रोंसे क्रमशः आठ-आठ आहुति अग्निमें डाले। तत्पश्चात् वहाँ यथाशक्ति 'विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मधु' इत्यादि (यजु० ३३।३०) सूर्यदेवतासम्बन्धी मन्त्रों तथा 'शं नो मित्रः शं वरुणः' (यजु० ३६। ९) इत्यादि शान्तिसूक्तके मन्त्रोंका पाठ या जप करे और पवित्रतापूर्वक भगवान् विष्णुके समीप रात्रिमें जागरण करे। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्म समाप्त करके गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा क्रमशः पहलेकी तरह ही भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर उस सुन्दर ध्वजको मङ्गलवाद्य, सूक्तपाठ, स्तोत्रगान और नृत्य आदि उत्सवके साथ भगवान् विष्णुके मन्दिरमें ले जाय। नारदजी! भगवान्‌के द्वारपर अथवा मन्दिरके शिखरपर खम्भेसहित उस ध्वजको प्रसन्नतापूर्वक दृढ़ताके साथ स्थापित करे। फिर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप आदि मनोहर उपचारों तथा भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थयुक्त नैवेद्योंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। इस प्रकार उत्तम एवं सुन्दर ध्वजको देवालयमें स्थापित करके परिक्रमा करे।

इसके बाद भगवान्‌के सामने इस स्तोत्रका पाठ करे। पुण्डरीकाक्ष! कमलनयन! आपको नमस्कार है। विश्वभावन! आपको नमस्कार है। हृषीकेश! महापुरुष! सबके पूर्वज! आपको नमस्कार है। जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें यह सब प्रतिष्ठित है और प्रलयकाल आनेपर जिनमें ही इसका लय होगा, उन भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। ब्रह्मा आदि देवता भी जिनके परम भाव (यथार्थ स्वरूप) को नहीं जानते और योगी भी जिन्हें नहीं देख पाते, उन ज्ञानस्वरूप श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ। अन्तरिक्ष जिनकी नाभि है, द्युलोक जिनका मस्तक है और पृथ्वी जिनका चरण है, उन विश्वरूप भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण दिशाएँ जिनके कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं तथा ऋक्, साम और यजुर्वेद जिनसे प्रकाशित हुए हैं, उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं, जिनकी भुजासे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, जिनके ऊरुसे वैश्य प्रकट हुए हैं और जिनके चरणोंसे शूद्रका जन्म हुआ है, विद्वान् लोग मायाके संयोगमात्रसे जिन्हें पुरुष कहते हैं, जो स्वभावतः निर्मल, शुद्ध, निर्विकार तथा दोषोंसे निर्लिप्त हैं, जिनका कहीं अन्त नहीं है, जो किसीसे पराजित नहीं होते और क्षीरसागरमें शयन करते हैं, श्रेष्ठ भक्तोंपर जिनकी स्नेहधारा सदा प्रवाहित होती रहती है तथा जो भक्तिसे ही सुलभ होते हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। पृथ्वी आदि पाँच भूत, तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ तथा सूक्ष्म और स्थूल सभी पदार्थ जिनसे अस्तित्व लाभ करते हैं, सब ओर मुखवाले उन सर्वव्यापी परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्हें सम्पूर्ण लोकोंमें उत्तम-से-उत्तम, निर्गुण, अत्यन्त सूक्ष्म, परम प्रकाशमय परब्रह्म कहा गया है, उन श्रीहरिको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ। योगीश्वरगण जिन्हें निर्विकार, अजन्मा, शुद्ध, सब ओर बाँहवाले तथा ईश्वर मानते हैं, जो समस्त कारणतत्त्वोंके भी कारण हैं, जो भगवान् सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्यामी आत्मा हैं, यह जगत् जिनका स्वरूप है तथा जो निर्गुण परमात्मा हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जो मायासे मोहित चित्तवाले अज्ञानी पुरुषोंके लिये हृदयमें रहकर भी उनसे दूर बने हुए हैं और ज्ञानियोंके लिये जो सर्वत्र प्राप्त हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। चार[1], चार[2], दो[3], पाँच[4] और दो[5] अक्षरवाले मन्त्रोंसे जिनके लिये आहुति दी जाती है, वे विष्णु भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। जो ज्ञानियों, कर्मयोगियों तथा भक्त पुरुषोंको उत्तम गति प्रदान करनेवाले हैं, वे विश्वपालक भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। जगत्‌का कल्याण

---

१. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥
(यजु० ३१।१)

२. विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि।
यो अस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा॥
(यजु० ५।१८)

३. इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा॥
(यजु० ५।१६)

४. सोमो धेनुꣳ सोमो अर्वन्तमाशुꣳ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति।
सादन्यं विदथ्यꣳ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै॥
(यजु० ३४।२१)

५. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यꣳ स्वाहा।
(यजु० ३३।३१)

१. ओश्रावय। २. अस्तु श्रौषट्। ३. यज। ४. ये यजामहे। ५. वषट्।

इसके बाद पुरुषसूक्तके प्रथम मन्त्र[1], विष्णोर्नुकम्[2], इरावती[3], धेनतेयार स्वाहा, सोमो[4] धेनुम् और उदुत्यं जातवेदसम्[5]—इन मन्त्रोंसे क्रमशः आठ-आठ आहुति अग्निमें डाले। तत्पश्चात् वहाँ यथाशक्ति 'विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मधु' इत्यादि (यजु० ३३।३०) सूर्यदेवतासम्बन्धी मन्त्रों तथा 'शं नो मित्रः शं वरुणः' (यजु० ३६ । ९) इत्यादि शान्तिसूक्तके मन्त्रोंका पाठ या जप करे और पवित्रतापूर्वक भगवान् विष्णुके समीप रात्रिमें जागरण करे। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्म समाप्त करके गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा क्रमशः पहलेकी तरह ही भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर उस सुन्दर ध्वजको मङ्गलवाद्य, सूक्तपाठ, स्तोत्रगान और नृत्य आदि उत्सवके साथ भगवान् विष्णुके मन्दिरमें ले जाय। नारदजी! भगवान्‌के द्वारपर अथवा मन्दिरके शिखरपर खम्भेसहित उस ध्वजको प्रसन्नतापूर्वक दृढताके साथ स्थापित करे। फिर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप आदि मनोहर उपचारों तथा भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थयुक्त नैवेद्योंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। इस प्रकार उत्तम एवं सुन्दर ध्वजको देवालयमें स्थापित करके परिक्रमा करे।

इसके बाद भगवान्‌के सामने इस स्तोत्रका पाठ करे। पुण्डरीकाक्ष! कमलनयन! आपको नमस्कार है। विश्वभावन! आपको नमस्कार है। हृषीकेश! महापुरुष! सबके पूर्वज! आपको नमस्कार है। जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें यह सब प्रतिष्ठित है और प्रलयकाल आनेपर जिनमें ही इसका लय होगा, उन भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। ब्रह्मा आदि देवता भी जिनके परम भाव (यथार्थ स्वरूप) को नहीं जानते और योगी भी जिन्हें नहीं देख पाते, उन ज्ञानस्वरूप श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ। अन्तरिक्ष जिनकी नाभि है, द्युलोक जिनका मस्तक है और पृथ्वी जिनका चरण है, उन विश्वरूप भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण दिशाएँ जिनके कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं तथा ऋक्, साम और यजुर्वेद जिनसे प्रकाशित हुए हैं, उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं, जिनकी भुजासे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, जिनके ऊरुसे वैश्य प्रकट हुए हैं और जिनके चरणोंसे शूद्रका जन्म हुआ है, विद्वान् लोग मायाके संयोगमात्रसे जिन्हें पुरुष कहते हैं, जो स्वभावतः निर्मल, शुद्ध, निर्विकार तथा दोषोंसे निर्लिप्त हैं, जिनका कहीं अन्त नहीं है, जो किसीसे पराजित नहीं होते और क्षीरसागरमें शयन करते हैं, श्रेष्ठ भक्तोंपर जिनकी स्नेहधारा सदा प्रवाहित होती रहती है तथा जो भक्तिसे ही सुलभ होते हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। पृथ्वी आदि पाँच भूत, तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ तथा सूक्ष्म और स्थूल सभी पदार्थ जिनसे अस्तित्व लाभ करते हैं, सब ओर मुखवाले उन सर्वव्यापी परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्हें सम्पूर्ण लोकोंमें उत्तम-से-उत्तम, निर्गुण, अत्यन्त सूक्ष्म, परम प्रकाशमय परब्रह्म कहा गया है, उन श्रीहरिको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ। योगीश्वरगण जिन्हें निर्विकार, अजन्मा, शुद्ध, सब ओर बाँहवाले तथा ईश्वर मानते हैं, जो समस्त कारणतत्त्वोंके भी कारण हैं, जो भगवान् सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्यामी आत्मा हैं, यह जगत् जिनका स्वरूप है तथा जो निर्गुण परमात्मा हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जो मायासे मोहित चित्तवाले अज्ञानी पुरुषोंके लिये हृदयमें रहकर भी उनसे दूर बने हुए हैं और ज्ञानियोंके लिये जो सर्वत्र प्राप्त हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। चार[1], चार[2], दो[3], पाँच[4] और दो[5] अक्षरवाले मन्त्रोंसे जिनके लिये आहुति दी जाती है, वे विष्णु भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। जो ज्ञानियों, कर्मयोगियों तथा भक्त पुरुषोंको उत्तम गति प्रदान करनेवाले हैं, वे विश्वपालक भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। जगत्‌का कल्याण

१. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥
(यजु० ३१ । १)

२. विष्णोर्नुकं वीर्य्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि।
यो अस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा॥
(यजु० ५ । १८)

३. इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवे ते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा॥
(यजु० ५ । १६)

४. सोमो धेनुꣳ सोमो अर्वन्तमाशुꣳ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति।
सादन्यं विदथ्यꣳ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै॥
(यजु० ३४ । २१)

५. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यꣳ स्वाहा।
(यजु० ३३ । ३१)

१. ओश्रावय। २. अस्तु श्रौषट्। ३. यज। ४. ये यजामहे। ५. वषट्।

इस पारणाहार व्रतको एक वर्षतक करे। फिर मार्गशीर्ष मास आनेपर व्रती पुरुष उसका उद्यापन करे। ब्रह्मन्! एकादशीको पञ्चमीकी ही भाँति निराहार रहना चाहिये और द्वादशीको एकाग्रचित्त हो पञ्चगव्य पीना चाहिये। फिर गन्ध, पुष्प आदि सामग्रियोंसे देवदेव जनार्दनकी भलीभाँति पूजा करके जितेन्द्रिय पुरुष ब्राह्मणको भेंट दे। मुनीश्वर! मधु और घृतयुक्त खीर, फल, सुगन्धित जलसे भरा और वस्त्रसे ढका हुआ पञ्चरत्न और दक्षिणासहित कलश अध्यात्मतत्त्वके ज्ञाता ब्राह्मणको दान करे। (उस समय निम्नाङ्कितरूपसे प्रार्थना करे—)

सर्वात्मन् सर्वभूतेश सर्वव्यापिन् सनातन।
परमान्नप्रदानेन सुप्रीतो भव माधव॥
(२१।२३)

'सबके आत्मा, सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी, सर्वव्यापी, सनातन माधव! आप इस उत्तम अन्नके दानसे अत्यन्त प्रसन्न हों।'

इस मन्त्रसे खीर दान करके यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन करावे और स्वयं भी मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस हरिपञ्चक नामक व्रतका पालन करता है, उसका ब्रह्मलोक अर्थात् परमात्माके परम धामसे कभी पुनरागमन नहीं होता। उत्तम मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको यह व्रत अवश्य करना चाहिये। ब्रह्मन्! यह व्रत सम्पूर्ण पापरूपी दुर्गम वनको जलानेके लिये दावानलके समान है। जो मानव भगवान् नारायणके चिन्तनमें तत्पर हो भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गको सुनता है, वह महाघोर पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

मासोपवास-व्रतकी विधि और महिमा

श्रीसनकजी कहते हैं—नारदजी! अब मैं मासोपवास नामक दूसरे श्रेष्ठ व्रतका वर्णन करूँगा; एकाग्रचित्त होकर सुनिये। वह सब पापोंको हर लेनेवाला, पवित्र तथा सब लोकोंका उपकार करनेवाला है। विप्रवर! आषाढ़, श्रावण, भादों अथवा आश्विन मासमें इस व्रतको करना चाहिये। इनमेंसे किसी एक मासके शुक्ल पक्षमें जितेन्द्रिय पुरुष पञ्चगव्य पीये और भगवान् विष्णुके समीप शयन करे। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर नित्यकर्म समाप्त करनेके पश्चात् मन और इन्द्रियोंको वशमें करके क्रोधरहित हो, श्रद्धापूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करे। विद्वानोंके साथ भगवान् विष्णुका यथोचित पूजन करके स्वस्तिवाचनपूर्वक यह संकल्प करे—

मासमेकं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव।
मासान्ते पारणं कुर्वे देवदेव तवाज्ञया॥
तपोरूप नमस्तुभ्यं तपसां फलदायक।
ममाभीष्टफलं देहि सर्वविघ्नान् निवारय॥
(२२।६-७)

'देवदेव! केशव! आजसे एक मासतक मैं निराहार रहकर मासके अन्तमें आपकी आज्ञासे पारण करूँगा। प्रभो! आप तपस्वरूप हैं और तपस्याके फल देनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप मुझे अभीष्ट फल दें और मेरे सम्पूर्ण विघ्नोंका निवारण करें।'

इस प्रकार भगवान् विष्णुको शुभ मासव्रत समर्पण करके उस दिनसे लेकर महीनेके अन्ततक भगवान् विष्णुके मन्दिरमें निवास करे और प्रतिदिन पञ्चामृतकी विधिसे भगवान्‌को स्नान करावे। उस महीनेमें निरन्तर भगवान्‌के

मन्दिरमें दीप जलावे। नित्यप्रति अपामार्ग (ऊँगा—चिरचिरा) की दातुन करे और भगवान् नारायणके चिन्तनमें रत हो

इस पापनाशक व्रतको एक वर्षतक करे। फिर मार्गशीर्ष मास आनेपर व्रती पुरुष उसका उद्यापन करे। ब्रह्मन्! एकादशीको पञ्चमीकी ही भाँति निराहार रहना चाहिये और द्वादशीको एकाग्रचित्त हो पञ्चगव्य पीना चाहिये। फिर गन्ध, पुष्प आदि सामग्रियोंसे देवदेव जनार्दनकी भलीभाँति पूजा करके जितेन्द्रिय पुरुष ब्राह्मणको भेंट दे। मुनीश्वर! मधु और घृतयुक्त खीर, फल, सुगन्धित जलसे भरा और वस्त्रसे ढका हुआ पञ्चरत्न और दक्षिणासहित कलश अध्यात्मतत्त्वके ज्ञाता ब्राह्मणको दान करे। (उस समय निम्नाङ्कितरूपसे प्रार्थना करे—)

सर्वात्मन् सर्वभूतेश सर्वव्यापिन् सनातन।
परमान्नप्रदानेन सुप्रीतो भव माधव॥
(२१ । २३)

'सबके आत्मा, सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी, सर्वव्यापी, सनातन माधव! आप इस उत्तम अन्नके दानसे अत्यन्त प्रसन्न हों।'

इस मन्त्रसे खीर दान करके यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन करावे और स्वयं भी मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस हरिपञ्चक नामक व्रतका पालन करता है, उसका ब्रह्मलोक अर्थात् परमात्माके परम धामसे कभी पुनरागमन नहीं होता। उत्तम मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको यह व्रत अवश्य करना चाहिये। ब्रह्मन्! यह व्रत सम्पूर्ण पापरूपी दुर्गम वनको जलानेके लिये दावानलके समान है। जो मानव भगवान् नारायणके चिन्तनमें तत्पर हो भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गको सुनता है, वह महाघोर पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

मासोपवास-व्रतकी विधि और महिमा

श्रीसनकजी कहते हैं—नारदजी! अब मैं मासोपवास नामक दूसरे श्रेष्ठ व्रतका वर्णन करूँगा; एकाग्रचित्त होकर सुनिये। यह सब पापोंको हर लेनेवाला, पवित्र तथा सब लोकोंका उपकार करनेवाला है। विप्रवर! आषाढ़, श्रावण, भादों अथवा आश्विन मासमें इस व्रतको करना चाहिये। इनमेंसे किसी एक मासके शुक्ल पक्षमें जितेन्द्रिय पुरुष पञ्चगव्य पीये और भगवान् विष्णुके समीप शयन करे। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर नित्यकर्म समाप्त करनेके पश्चात् मन और इन्द्रियोंको वशमें करके क्रोधरहित हो, श्रद्धापूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करे। विद्वानोंके साथ भगवान् विष्णुका यथोचित पूजन करके स्वस्तिवाचनपूर्वक यह संकल्प करे—

मासमेकं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव।
मासान्ते पारणं कुर्वे देवदेव तवाज्ञया॥
तपोरूप नमस्तुभ्यं तपसां फलदायक।
ममाभीष्टफलं देहि सर्वविघ्नान् निवारय॥
(२२ । ६-७)

'देवदेव! केशव! आजसे एक मासतक मैं निराहार रहकर महीनेके अन्तमें आपकी आज्ञासे पारण करूँगा। प्रभो! आप तपःस्वरूप हैं और तपस्याके फल देनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप मुझे अभीष्ट फल दें और मेरे सम्पूर्ण विघ्नोंका निवारण करें।'

इस प्रकार भगवान् विष्णुको शुभ मासव्रत समर्पण करके उस दिनसे लेकर महीनेके अन्ततक भगवान् विष्णुके मन्दिरमें निवास करे और प्रतिदिन पञ्चामृतकी विधिसे भगवान्‌को स्नान करावे। उस महीनेमें निरन्तर भगवान्‌के

मन्दिरमें दीप जलावे। नित्यप्रति अपामार्ग (ऊँगा—चिरचिरा) की दातुन करे और भगवान् नारायणके चिन्तनमें रत हो

'केशव ! मैं अज्ञानरूपी तिमिर रोगसे अन्धा हो रहा हूँ। मेरे इस व्रतसे आप प्रसन्न हों और प्रसन्नमुख होकर मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करें।'

विप्रवर ! इस प्रकार द्वादशीके दिन भगवान् लक्ष्मीपतिसे निवेदन करके एकाग्रचित्त हो यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा दे। तत्पश्चात् अपने भाई-बन्धुओंके साथ भगवान् नारायणका चिन्तन करते हुए पञ्चमहायज्ञ (बलिवैश्वदेव) करके स्वयं भी मौनभावसे भोजन करे। जो इस प्रकार संयमपूर्वक पवित्र एकादशी-व्रतका पालन करता है, वह पुनरावृत्तिरहित वैकुण्ठधाममें जाता है। उपवास-व्रतमें तत्पर तथा धर्मकार्यमें संलग्न मनुष्य चाण्डालों और पतितोंकी ओर कभी न देखे। जो नास्तिक हैं, जिन्होंने मर्यादा भङ्ग की है तथा जो निन्दक और चुगले हैं, ऐसे लोगोंसे उपवास-व्रत करनेवाला पुरुष कभी बातचीत न करे। जो यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाला है, उससे भी व्रती पुरुष कभी न बोले। जो कुण्ड (पतिके जीते-जी परपुरुषसे उत्पन्न किये हुए पुरुष) का अन्न खाता, देवता और ब्राह्मणसे विरोध रखता, पराये अन्नके लिये लालायित रहता और परायी स्त्रियोंमें आसक्त होता है, ऐसे मनुष्यका व्रती पुरुष वाणीमात्रसे भी आदर न करे। जो इस प्रकारके दोषोंसे रहित, शुद्ध, जितेन्द्रिय तथा सबके हितमें तत्पर है, वह उपवासपरायण होकर परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है। माताके समान कोई गुरु नहीं है। भगवान् विष्णुके समान कोई देवता नहीं है और उपवाससे बढ़कर कोई तप नहीं है। क्षमाके समान कोई माता नहीं है। कीर्तिके समान कोई धन नहीं है। ज्ञानके समान कोई लाभ नहीं है। धर्मके समान कोई पिता नहीं है। विवेकके समान कोई बन्धु नहीं है और एकादशीसे बढ़कर कोई व्रत नहीं है *।

इस विषयमें लोग भद्रशील और गालवमुनिके पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। पूर्वकालकी बात है, नर्मदाके तटपर गालव नामसे प्रसिद्ध एक सत्यपरायण मुनि रहते थे। वे शम (मनोनिग्रह) और दम (इन्द्रियसंयम) से सम्पन्न तथा तपस्याकी निधि थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर आदि देवयोनिके लोग भी वहाँ विहार करते थे। वह स्थान कंद, मूल, फलोंसे परिपूर्ण था। वहाँ मुनियोंका बहुत बड़ा समुदाय निवास करता था। विप्रवर गालव वहाँ चिरकालसे निवास करते थे। उनके एक पुत्र हुआ जो भद्रशील नामसे विख्यात हुआ। वह बालक अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता था। उसे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था। वह महान् भाग्यशाली ऋषिकुमार निरन्तर भगवान् नारायणके भजन-चिन्तनमें ही लगा रहता था। महामति भद्रशील बालोचित क्रीड़ाके समय भी मिट्टीसे भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करता और अपने साथियोंको समझाता कि

'मनुष्योंको सदा भगवान् विष्णुकी आराधना करनी चाहिये और विद्वानोंको एकादशी-व्रतका भी पालन करना चाहिये।' मुनीश्वर ! भद्रशीलद्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर उसके साथी शिशु भी मिट्टीसे भगवान्‌की प्रतिमा बनाकर एकत्र या अलग-अलग बैठ जाते और प्रसन्नतापूर्वक उसकी पूजा करते थे। इस तरह वे परम सौभाग्यशाली बालक भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर हो गये। भद्रशील भगवान् विष्णुको नमस्कार करके यही प्रार्थना करता था कि 'सम्पूर्ण जगत्‌का

* नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति विष्णुसमं दैवं तपो नानशनात्परम्॥
नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसमं धनम्।
नास्ति ज्ञानसमो लाभो न च धर्मसमः पिता॥
न विवेकसमो बन्धुर्नैकादश्याः परं व्रतम्।
(ना० पूर्व० २३। ३०—३२)

'केशव ! मैं अज्ञानरूपी तिमिर रोगसे अन्धा हो रहा हूँ। मेरे इस व्रतसे आप प्रसन्न हों और प्रसन्नमुख होकर मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करें।'

विप्रवर ! इस प्रकार द्वादशीके दिन भगवान् लक्ष्मी-पतिसे निवेदन करके एकाग्रचित्त हो यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा दे। तत्पश्चात् अपने भाई-बन्धुओंके साथ भगवान् नारायणका चिन्तन करते हुए पञ्चमहायज्ञ (बलिवैश्वदेव) करके स्वयं भी मौनभावसे भोजन करे। जो इस प्रकार संयमपूर्वक पवित्र एकादशी-व्रतका पालन करता है, वह पुनरावृत्तिरहित वैकुण्ठधाममें जाता है। उपवास-व्रतमें तत्पर तथा धर्मकार्यमें संलग्न मनुष्य चाण्डालों और पतितोंकी ओर कभी न देखे। जो नास्तिक हैं, जिन्होंने मर्यादा भङ्ग की है तथा जो निन्दक और चुगले हैं, ऐसे लोगोंसे उपवास-व्रत करनेवाला पुरुष कभी बातचीत न करे। जो यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाला है, उससे भी व्रती पुरुष कभी न बोले। जो कुण्ड (पतिके जीते-जी परपुरुषसे उत्पन्न किये हुए पुरुष) का अन्न खाता, देवता और ब्राह्मणसे विरोध रखता, पराये अन्नके लिये लालायित रहता और परायी स्त्रियोंमें आसक्त होता है, ऐसे मनुष्यका व्रती पुरुष वाणीमात्रसे भी आदर न करे। जो इस प्रकारके दोषोंसे रहित, शुद्ध, जितेन्द्रिय तथा सबके हितमें तत्पर है, वह उपवासपरायण होकर परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है। माताके समान कोई गुरु नहीं है। भगवान् विष्णुके समान कोई देवता नहीं है और उपवाससे बढ़कर कोई तप नहीं है। क्षमाके समान कोई माता नहीं है। कीर्तिके समान कोई धन नहीं है। ज्ञानके समान कोई लाभ नहीं है। धर्मके समान कोई पिता नहीं है। विवेकके समान कोई बन्धु नहीं है और एकादशीसे बढ़कर कोई व्रत नहीं है *।

इस विषयमें लोग भद्रशील और गालवमुनिके पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। पूर्वकालकी बात है, नर्मदाके तटपर गालव नामसे प्रसिद्ध एक सत्यपरायण मुनि रहते थे। वे शम (मनोनिग्रह) और दम (इन्द्रियसंयम) से सम्पन्न तथा तपस्याकी निधि थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर आदि देवयोनिके लोग भी वहाँ विहार करते थे। वह स्थान कंद, मूल, फलोंसे परिपूर्ण था। वहाँ मुनियोंका बहुत बड़ा समुदाय निवास करता था। विप्रवर गालव वहाँ चिरकालसे निवास करते थे। उनके एक पुत्र हुआ जो भद्रशील नामसे विख्यात हुआ। वह बालक अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता था। उसे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था। वह महान् भाग्य-शाली ऋषिकुमार निरन्तर भगवान् नारायणके भजन-चिन्तनमें ही लगा रहता था। महामति भद्रशील बालोचित क्रीड़ाके समय भी मिट्टीसे भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करता और अपने साथियोंको समझाता कि

'मनुष्योंको सदा भगवान् विष्णुकी आराधना करनी चाहिये और विद्वानोंको एकादशी-व्रतका भी पालन करना चाहिये।' मुनीश्वर ! भद्रशीलद्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर उसके साथी शिशु भी मिट्टीसे भगवान्‌की प्रतिमा बनाकर एकत्र या अलग-अलग बैठ जाते और प्रसन्नतापूर्वक उसकी पूजा करते थे। इस तरह वे परम सौभाग्यशाली बालक भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर हो गये। भद्रशील भगवान् विष्णुको नमस्कार करके यही प्रार्थना करता था कि 'सम्पूर्ण जगत्‌का

* नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति विष्णुसमं दैवं तपो नानशनात्परम्॥
नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसमं धनम्।
नास्ति ज्ञानसमो लाभो न च धर्मसमः पिता॥
न विवेकसमो बन्धुर्नैकादश्याः परं व्रतम्।
(ना० पूर्व० २३। ३०—३२)

हैं और जो नारायण ! अच्युत ! जनार्दन ! कृष्ण ! विष्णो ! कमलाकान्त ! ब्रह्माजीके पिता ! शिव ! शंकर ! इत्यादि नामोंका नित्य कीर्तन किया करते हैं, उन्हें दूरसे ही त्याग दिया करो । उनपर मेरा शासन नहीं चलता । मेरे सेवको ! जो अपना सम्पूर्ण कर्म भगवान् विष्णुको समर्पित कर देते हैं, उन्हींके भजनमें लगे रहते हैं, अपने वर्णाश्रमोचित आचारके मार्गमें स्थित हैं, गुरुजनोंकी सेवा किया करते हैं, सत्पात्रको दान देते, दीनोंकी रक्षा करते और निरन्तर भगवन्नामके जप-कीर्तनमें संलग्न रहते हैं, उनको भी त्याग देना । दूतगण ! जो पाखण्डियोंके सङ्गसे रहित, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति रखनेवाले, सत्सङ्गके लोभी, अतिथि-सत्कारके प्रेमी, भगवान् शिव और विष्णुमें समता रखनेवाले तथा लोगोंके उपकारमें तत्पर हों, उन्हें त्याग देना । मेरे दूतो ! जो लोग भगवान्‌की कथारूप अमृतके सेवनसे वञ्चित हैं, भगवान् विष्णुके चिन्तनमें मन लगाये रखनेवाले साधु-महात्माओंसे जो दूर रहते हैं, उन पापियोंको ही मेरे घरपर लाया करो । मेरे किङ्करो ! जो माता और पिताको डाँटनेवाले, लोगोंसे द्वेष रखनेवाले, हितैषी जनोंका भी अहित करनेवाले, देवताकी सम्पत्तिके लोभी, दूसरे लोगोंका नाश करनेवाले तथा सदैव दूसरोंके अपराधमें ही तत्पर रहनेवाले हैं, उनको यहाँ पकड़कर लाओ । मेरे दूतो ! जो एकादशी-व्रतसे विमुख, क्रूर स्वभाववाले, लोगोंको कलङ्क लगानेवाले, परनिन्दामें तत्पर, ग्रामका विनाश करनेवाले, श्रेष्ठ पुरुषोंसे वैर रखनेवाले तथा ब्राह्मणके धनका लोभ करनेवाले हैं, उनको यहाँ ले आओ । जो भगवान् विष्णुकी भक्तिसे मुँह मोड़ चुके हैं, शरणागतपालक भगवान् नारायणको प्रणाम नहीं करते हैं तथा जो मूर्ख मनुष्य कभी भगवान् विष्णुके मन्दिरमें नहीं जाते हैं, उन अतिशय पापमें रत रहनेवाले दुष्ट लोगोंको ही तुम बलपूर्वक पकड़कर यहाँ ले आओ ।

इस प्रकार जब मैंने यमराजकी कही हुई बातें सुनीं तो पश्चात्तापसे दग्ध होकर अपने किये हुए उस निन्दित कर्मको स्मरण किया । पापकर्मके लिये पश्चात्ताप और श्रेष्ठ धर्मका श्रवण करनेसे मेरे सब पाप वहीं नष्ट हो गये । उसके बाद मैं उस पुण्यकर्मके प्रभावसे इन्द्रलोकमें गया । वहाँपर मैं सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न रहा । सम्पूर्ण देवता मुझे नमस्कार करते थे । बहुत कालतक स्वर्गमें रहकर फिर वहाँसे मैं भूलोकमें आया । यहाँ भी आप-जैसे विष्णु-भक्तोंके कुलमें मेरा जन्म हुआ । मुनीश्वर ! जातिस्मर होनेके कारण मैं यह सब बातें जानता हूँ । इसलिये मैं बालकोंके साथ भगवान् विष्णुके पूजनकी चेष्टा करता हूँ । पूर्वजन्ममें एकादशी-व्रतका ऐसा माहात्म्य है, यह बात मैं नहीं जान सका था । इस समय पूर्वजन्मकी बातोंकी स्मृतिके प्रभावसे मैंने एकादशी-व्रतको जान लिया है । पहले विवश होकर भी जो व्रत किया गया था, उसका यह फल मिला है । प्रभो ! फिर जो भक्तिपूर्वक एकादशी-व्रत करते हैं, उनको क्या नहीं मिल सकता । अतः विप्रेन्द्र ! मैं शुभ एकादशी-व्रतका पालन तथा प्रतिदिन भगवान् विष्णुकी पूजा करूँगा । भगवान्‌के परम धामको पानेकी आकाङ्क्षा ही इसमें हेतु है । जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक एकादशी-व्रत करते हैं, उन्हें निश्चय ही परमानन्ददायक वैकुण्ठधाम प्राप्त होता है ।' अपने पुत्रका ऐसा वचन सुनकर गालव मुनि बहुत प्रसन्न हुए । उन्हें बड़ा संतोष प्राप्त हुआ । उनका हृदय अत्यन्त हर्षसे भर गया । वे बोले—'वत्स ! मेरा जन्म सफल हो गया । मेरा कुल भी पवित्र हो गया; क्योंकि तुम्हारे-जैसा विष्णुभक्त पुरुष मेरे घरमें पैदा हुआ है ।' इस प्रकार पुत्रके उत्तम कर्मसे मन-ही-मन संतुष्ट होकर महर्षि गालवने उसे भगवान्‌की पूजाका विधान ठीक-ठीक समझाया । मुनिश्रेष्ठ नारद ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने ये सब बातें कुछ विस्तारके साथ तुम्हें बता दी हैं । तुम और क्या सुनना चाहते हो ?

चारों वर्णों और द्विजका परिचय तथा विभिन्न वर्णोंके विशेष और सामान्य धर्मका वर्णन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! सनकजीके मुखसे एकादशी-व्रतका यह माहात्म्य जो अप्रमेय, पवित्र, सर्वोत्तम तथा पापराशिको शान्त करनेवाला है, सुनकर ब्रह्मपुत्र नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और फिर इस प्रकार बोले ।

नारदजीने कहा—महर्षे ! आप बड़े तत्त्वज्ञ हैं । आपने भगवान्‌की भक्ति देनेवाले तथा परम पुण्यमय व्रत-सम्बन्धी इस आख्यानका यथार्थरूपसे पूरा-पूरा वर्णन किया है । मुने ! अब मैं चारों वर्णोंके आचारकी विधि और सम्पूर्ण आश्रमोंके आचार तथा प्रायश्चित्तकी विधि सुनना चाहता हूँ । महाभाग ! मुझपर बड़ी भारी कृपा करके यह सब मुझे यथार्थरूपसे बताइये ।

श्रीसनकजी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! सुनिये । भक्तोंका प्रिय करनेवाले अविनाशी श्रीहरि वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाले पुरुषोंद्वारा जिस प्रकार पूजित होते हैं, वह सब बतलाता हूँ । मनु आदि स्मृतिकारोंने वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी धर्मका जैसा वर्णन किया है, वह सब आपको

हैं और जो नारायण ! अच्युत ! जनार्दन ! कृष्ण ! विष्णो ! कमलाकान्त ! ब्रह्माजीके पिता ! शिव ! शंकर ! इत्यादि नामोंका नित्य कीर्तन किया करते हैं, उन्हें दूरसे ही त्याग दिया करो । उनपर मेरा शासन नहीं चलता । मेरे सेवको ! जो अपना सम्पूर्ण कर्म भगवान् विष्णुको समर्पित कर देते हैं, उन्हींके भजनमें लगे रहते हैं, अपने वर्णाश्रमोचित आचारके मार्गमें स्थित हैं, गुरुजनोंकी सेवा किया करते हैं, सत्पात्रको दान देते, दीनोंकी रक्षा करते और निरन्तर भगवन्नामके जप-कीर्तनमें संलग्न रहते हैं, उनको भी त्याग देना । दूतगण ! जो पाखण्डियोंके सङ्गसे रहित, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति रखनेवाले, सत्सङ्गके लोभी, अतिथि-सत्कारके प्रेमी, भगवान् शिव और विष्णुमें समता रखनेवाले तथा लोगोंके उपकारमें तत्पर हों, उन्हें त्याग देना । मेरे दूतो ! जो लोग भगवान्‌की कथारूप अमृतके सेवनसे वञ्चित हैं, भगवान् विष्णुके चिन्तनमें मन लगाये रखनेवाले साधु-महात्माओंसे जो दूर रहते हैं, उन पापियोंको ही मेरे घरपर लाया करो । मेरे किङ्करो ! जो माता और पिताको डाँटनेवाले, लोगोंसे द्वेष रखनेवाले, हितैषी जनोंका भी अहित करनेवाले, देवताकी सम्पत्तिके लोभी, दूसरे लोगोंका नाश करनेवाले तथा सदैव दूसरोंके अपराधमें ही तत्पर रहनेवाले हैं, उनको यहाँ पकड़कर लाओ । मेरे दूतो ! जो एकादशी-व्रतसे विमुख, क्रूर स्वभाववाले, लोगोंको कलङ्क लगानेवाले, परनिन्दामें तत्पर, ग्रामका विनाश करनेवाले, श्रेष्ठ पुरुषोंसे वैर रखनेवाले तथा ब्राह्मणके धनका लोभ करनेवाले हैं, उनको यहाँ ले आओ । जो भगवान् विष्णुकी भक्तिसे मुँह मोड़ चुके हैं, शरणागतपालक भगवान् नारायणको प्रणाम नहीं करते हैं तथा जो मूर्ख मनुष्य कभी भगवान् विष्णुके मन्दिरमें नहीं जाते हैं, उन अतिशय पापमें रत रहनेवाले दुष्ट लोगोंको ही तुम बलपूर्वक पकड़कर यहाँ ले आओ ।

इस प्रकार जब मैंने यमराजकी कही हुई बातें सुनीं तो पश्चात्तापसे दग्ध होकर अपने किये हुए उस निन्दित कर्मको स्मरण किया । पापकर्मके लिये पश्चात्ताप और श्रेष्ठ धर्मका श्रवण करनेसे मेरे सब पाप वहीं नष्ट हो गये । उसके बाद मैं उस पुण्यकर्मके प्रभावसे इन्द्रलोकमें गया । वहाँपर मैं सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न रहा । सम्पूर्ण देवता मुझे नमस्कार करते थे । बहुत कालतक स्वर्गमें रहकर फिर वहाँसे मैं भूलोकमें आया । यहाँ भी आप-जैसे विष्णु-भक्तोंके कुलमें मेरा जन्म हुआ । मुनीश्वर ! जातिस्मर होनेके कारण मैं यह सब बातें जानता हूँ । इसलिये मैं बालकोंके साथ भगवान् विष्णुके पूजनकी चेष्टा करता हूँ । पूर्वजन्ममें एकादशी-व्रतका ऐसा माहात्म्य है, यह बात मैं नहीं जान सका था । इस समय पूर्वजन्मकी बातोंकी स्मृतिके प्रभावसे मैंने एकादशी-व्रतको जान लिया है । पहले विवश होकर भी जो व्रत किया गया था, उसका यह फल मिला है । प्रभो ! फिर जो भक्तिपूर्वक एकादशी-व्रत करते हैं, उनको क्या नहीं मिल सकता । अतः विप्रेन्द्र ! मैं शुभ एकादशी-व्रतका पालन तथा प्रतिदिन भगवान् विष्णुकी पूजा करूँगा । भगवान्‌के परम धामको पानेकी आकाङ्क्षा ही इसमें हेतु है । जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक एकादशी-व्रत करते हैं, उन्हें निश्चय ही परमानन्ददायक वैकुण्ठधाम प्राप्त होता है ।' अपने पुत्रका ऐसा वचन सुनकर गालव मुनि बहुत प्रसन्न हुए । उन्हें बड़ा संतोष प्राप्त हुआ । उनका हृदय अत्यन्त हर्षसे भर गया । वे बोले—'वत्स ! मेरा जन्म सफल हो गया । मेरा कुल भी पवित्र हो गया; क्योंकि तुम्हारे-जैसा विष्णुभक्त पुरुष मेरे घरमें पैदा हुआ है ।' इस प्रकार पुत्रके उत्तम कर्मसे मन-ही-मन संतुष्ट होकर महर्षि गालवने उसे भगवान्‌की पूजाका विधान ठीक-ठीक समझाया । मुनिश्रेष्ठ नारद ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने ये सब बातें कुछ विस्तारके साथ तुम्हें बता दी हैं । तुम और क्या सुनना चाहते हो ?

चारों वर्णों और द्विजका परिचय तथा विभिन्न वर्णोंके विशेष और सामान्य धर्मका वर्णन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! सनकजीके मुखसे एकादशी-व्रतका यह माहात्म्य जो अप्रमेय, पवित्र, सर्वोत्तम तथा पापराशिको शान्त करनेवाला है, सुनकर ब्रह्मपुत्र नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और फिर इस प्रकार बोले ।

नारदजीने कहा—महर्षे ! आप बड़े तत्त्वज्ञ हैं । आपने भगवान्‌की भक्ति देनेवाले तथा परम पुण्यमय व्रत-सम्बन्धी इस आख्यानका यथार्थरूपसे पूरा-पूरा वर्णन किया है । मुने ! अब मैं चारों वर्णोंके आचारकी विधि और सम्पूर्ण आश्रमोंके आचार तथा प्रायश्चित्तकी विधि सुनना चाहता हूँ । महाभाग ! मुझपर बड़ी भारी कृपा करके यह सब मुझे यथार्थरूपसे बताइये ।

श्रीसनकजी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! सुनिये । भक्तोंका प्रिय करनेवाले अविनाशी श्रीहरि वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाले पुरुषोंद्वारा जिस प्रकार पूजित होते हैं, वह सब बतलाता हूँ । मनु आदि स्मृतिकारोंने वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी धर्मका जैसा वर्णन किया है, वह सब आपको

संस्कारोंके नियत काल, ब्रह्मचारीके धर्म, अनध्याय तथा वेदाध्ययनकी आवश्यकताका वर्णन

श्रीसनकजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं विशेषरूपसे वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचार और विधिका वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। जो स्वधर्मका त्याग करके परधर्मका पालन करता है, उसे पाखण्डी समझना चाहिये। द्विजोंके गर्भाधान आदि संस्कार वैदिक मन्त्रोक्त विधिसे करने चाहिये। स्त्रियोंके संस्कार यथासमय बिना मन्त्रोंके ही विधिपूर्वक करने चाहिये। प्रथम बार गर्भाधान होनेपर चौथे माससे सीमन्तकर्म करना उत्तम माना गया है अथवा उसे छठे, सातवें या आठवें महीनेमें कराना चाहिये। पुत्रका जन्म होनेपर पिता वस्त्रसहित स्नान करके स्वस्तिवाचनपूर्वक नान्दीश्राद्ध तथा जातकर्म संस्कार करे। पुत्र-जन्मके अवसरपर किया जानेवाला वृद्धिश्राद्ध सुवर्ण या रजतसे करना चाहिये। सूतक व्यतीत होनेपर पिता मौन होकर आभ्युदयिक श्राद्ध करनेके अनन्तर पुत्रका विधिपूर्वक नामकरण-संस्कार करे। विप्रवर ! जो स्पष्ट न हो, जिसका कोई अर्थ न बनता हो, जिसमें अधिक गुरु अक्षर आते हों अथवा जिसमें अक्षरोंकी संख्या विषम होती हो, ऐसा नाम न रक्खे। तीसरे वर्षमें चूड़ा-संस्कार उत्तम है। यदि उस समय न हो तो पाँचवें, छठे, सातवें अथवा आठवें वर्षमें भी गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार उसे सम्पन्न कर लेना चाहिये। गर्भसे आठवें वर्षमें अथवा जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका उपनयन-संस्कार करना चाहिये। विद्वान् पुरुष सोलहवें वर्षतक उपनयनका गौणकाल बतलाते हैं।

गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियके उपनयनका मुख्यकाल है। उसके लिये बाईसवें वर्षतक गौणकाल निश्चित करते हैं। गर्भसे बारहवें वर्षमें वैश्यका उपनयन-संस्कार उचित कहा गया है। उसके लिये चौबीसवें वर्षतक गौणकाल बतलाते हैं। ब्राह्मणकी मेखला मूँजकी और क्षत्रियकी मेखला धनुषकी प्रत्यञ्चासे बनी हुई (सुतरी) तथा वैश्यकी मेखला भेड़के ऊनकी बनी होती है। ब्राह्मणके लिये पलाशका और क्षत्रियके लिये गूलरका तथा वैश्यके लिये बिल्वदण्ड विहित है। ब्राह्मणका दण्ड केशतक, क्षत्रियका ललाटके बराबर और वैश्यके दण्डकी ऊँचाई नासिकाके अग्रभागतककी बतायी है। ब्राह्मण आदि ब्रह्मचारियोंके लिये क्रमशः गेरुए, लाल और पीले रंगका वस्त्र बताया गया है। विप्रवर ! जिसका उपनयन-संस्कार किया गया हो, वह द्विज गुरुकी सेवामें तत्पर रहे और जबतक वेदाध्ययन समाप्त न हो जाय, तबतक गुरुके ही घरमें निवास करे। मुनीश्वर ! ब्रह्मचारी प्रातःकाल स्नान करे और प्रतिदिन सवेरे ही गुरुके लिये समिधा, कुशा और फल आदि ले आवे। मुनिश्रेष्ठ ! यज्ञोपवीत, मृगचर्म अथवा दण्ड जब नष्ट या अपवित्र हो जाय तो मन्त्रसे नूतन यज्ञोपवीत आदि धारण करके नष्ट-भ्रष्ट हुए पुराने यज्ञोपवीत आदिको जलमें फेंक दे। ब्रह्मचारीके लिये केवल भिक्षाके अन्नसे ही जीवन-निर्वाह करना बताया गया है। वह मन-इन्द्रियोंको संयममें रखकर श्रोत्रिय पुरुषके घरसे भिक्षा ले आवे। भिक्षा माँगते समय ब्राह्मण वाक्यके आदिमें, क्षत्रिय वाक्यके मध्यमें और वैश्य वाक्यके अन्तमें 'भवत्' शब्दका प्रयोग करे। जैसे—ब्राह्मण 'भवति ! भिक्षां मे देहि' (पूजनीय देवि ! मुझे भिक्षा दीजिये), क्षत्रिय 'भिक्षां भवति ! मे देहि' और वैश्य 'भिक्षां मे देहि भवति' कहे। जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल शास्त्रीय विधिके अनुसार अग्निहोत्र (ब्रह्मयज्ञ) तथा तर्पण करे। जो अग्निहोत्रका परित्याग करता है, उसे विद्वान् पुरुष पतित कहते हैं। ब्रह्मयज्ञसे रहित ब्रह्मचारी ब्रह्महत्यारा कहा गया है। वह प्रतिदिन देवताकी पूजा और गुरुकी उत्तम सेवा करे। ब्रह्मचारी नित्यप्रति भिक्षाका ही अन्न भोजन करे। किसी एक घरका अन्न कभी न खाय। वह इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके घरसे भिक्षा लाकर गुरुको समर्पित कर दे और उनकी आज्ञासे मौन होकर भोजन करे। ब्रह्मचारी मधु, मांस, स्त्री, नमक, पान, दन्तधावन, उच्छिष्ट-भोजन, दिनका सोना तथा छाता लगाना आदि न करे। पादुका, चन्दन, माला, अनुलेपन, जलक्रीड़ा, नृत्य, गीत, वाद्य, परनिन्दा, दूसरोंको सताना, बहकी-बहकी बातें करना, अंजन लगाना, पाखण्डी लोगोंका साथ करना और शूद्रोंकी संगतिमें रहना आदि न करे।

वृद्ध पुरुषोंको क्रमशः प्रणाम करे। वृद्ध तीन प्रकारके होते हैं। एक ज्ञानवृद्ध, दूसरे तपोवृद्ध और तीसरे वयोवृद्ध हैं। जो गुरु वेद-शास्त्रोंके उपदेशसे आध्यात्मिक आदि दुःखोंका निवारण करते हैं, उन्हें पहले प्रणाम करे। प्रणाम करते समय द्विज बालक 'मैं अमुक हूँ' इस प्रकार अपना परिचय भी दे। ब्राह्मण किसी प्रकार क्षत्रिय आदिको प्रणाम न

संस्कारोंके नियत काल, ब्रह्मचारीके धर्म, अनध्याय तथा वेदाध्ययनकी आवश्यकताका वर्णन

श्रीसनकजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं विशेषरूपसे वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचार और विधिका वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो । जो स्वधर्मका त्याग करके परधर्मका पालन करता है, उसे पाखण्डी समझना चाहिये । द्विजोंके गर्भाधान आदि संस्कार वैदिक मन्त्रोक्त विधिसे करने चाहिये । स्त्रियोंके संस्कार यथासमय बिना मन्त्रके ही विधिपूर्वक करने चाहिये । प्रथम बार गर्भाधान होनेपर चौथे माससे सीमन्तकर्म करना उत्तम माना गया है अथवा उसे छठे, सातवें या आठवें महीनेमें कराना चाहिये । पुत्रका जन्म होनेपर पिता वस्त्रसहित स्नान करके स्वस्तिवाचनपूर्वक नान्दीश्राद्ध तथा जातकर्म संस्कार करे । पुत्र-जन्मके अवसर-पर किया जानेवाला वृद्धिश्राद्ध सुवर्ण या रजतसे करना चाहिये । सूतक व्यतीत होनेपर पिता मौन होकर आभ्युदयिक श्राद्ध करनेके अनन्तर पुत्रका विधिपूर्वक नामकरण-संस्कार करे । विप्रवर ! जो स्पष्ट न हो, जिसका कोई अर्थ न बनता हो, जिसमें अधिक गुरु अक्षर आते हों अथवा जिसमें अक्षरोंकी संख्या विषम होती हो, ऐसा नाम न रखे । तीसरे वर्षमें चूड़ा-संस्कार उत्तम है । यदि उस समय न हो तो पाँचवें, छठे, सातवें अथवा आठवें वर्षमें भी गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार उसे सम्पन्न कर लेना चाहिये । गर्भसे आठवें वर्षमें अथवा जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका उपनयन-संस्कार करना चाहिये । विद्वान् पुरुष सोलहवें वर्षतक उपनयनका गौणकाल बतलाते हैं ।

गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियके उपनयनका मुख्यकाल है । उनके लिये बाईसवें वर्षतक गौणकाल निश्चित करते हैं । गर्भसे बारहवें वर्षमें वैश्यका उपनयन-संस्कार उचित कहा गया है । उनके लिये चौबीसवें वर्षतक गौणकाल बतलाते हैं । ब्राह्मणकी मेखला मूँजकी और क्षत्रियकी मेखला धनुषकी प्रत्यञ्चासे बनी हुई (सुतरी) तथा वैश्यकी मेखला भेड़के ऊनकी बनी होती है । ब्राह्मणके लिये पलाशका और क्षत्रियके लिये गूलरका तथा वैश्यके लिये बिल्वदण्ड विहित है । ब्राह्मणका दण्ड केशतक, क्षत्रियका ललाटके बराबर और वैश्यके दण्डकी ऊँचाई नासिकाके अग्रभागतककी बतायी है । ब्राह्मण आदि ब्रह्मचारियोंके लिये क्रमशः गेरुए, लाल और पीले रंगका वस्त्र बताया गया है । विप्रवर ! जिसका उपनयन-संस्कार किया गया हो, वह द्विज गुरुकी सेवामें तत्पर रहे और जबतक वेदाध्ययन समाप्त न हो जाय, तबतक गुरुके ही घरमें निवास करे । मुनीश्वर ! ब्रह्मचारी प्रातःकाल स्नान करे और प्रतिदिन सबेरे ही गुरुके लिये समिधा, कुशा और फल आदि ले आवे । मुनिश्रेष्ठ ! यज्ञोपवीत, मृगचर्म अथवा दण्ड जब नष्ट या अपवित्र हो जाय तो मन्त्रसे नूतन यज्ञो-पवीत आदि धारण करके नष्ट-भ्रष्ट हुए पुराने यज्ञोपवीत आदिको जलमें फेंक दे । ब्रह्मचारीके लिये केवल भिक्षाके अन्नसे ही जीवन-निर्वाह करना बताया गया है । वह मन-इन्द्रियोंको संयममें रखकर श्रोत्रिय पुरुषके घरसे भिक्षा ले आवे । भिक्षा माँगते समय ब्राह्मण वाक्यके आदिमें, क्षत्रिय वाक्यके मध्यमें और वैश्य वाक्यके अन्तमें 'भवत्' शब्दका प्रयोग करे । जैसे—ब्राह्मण 'भवति ! भिक्षा मे देहि' (पूजनीय देवि ! मुझे भिक्षा दीजिये), क्षत्रिय 'भिक्षा भवति ! मे देहि' और वैश्य 'भिक्षा मे देहि भवति' कहे । जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल शास्त्रीय विधिके अनुसार अग्निहोत्र (ब्रह्मयज्ञ) तथा तर्पण करे । जो अग्निहोत्रका परित्याग करता है, उसे विद्वान् पुरुष पतित कहते हैं । ब्रह्मयज्ञसे रहित ब्रह्मचारी ब्रह्महत्यारा कहा गया है । वह प्रतिदिन देवताकी पूजा और गुरुकी उत्तम सेवा करे । ब्रह्मचारी नित्यप्रति भिक्षाका ही अन्न भोजन करे । किसी एक घरका अन्न कभी न खाय । वह इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके घरसे भिक्षा लाकर गुरुको समर्पित कर दे और उनकी आज्ञासे मौन होकर भोजन करे । ब्रह्मचारी मधु, मांस, स्त्री, नमक, पान, दन्तधावन, उच्छिष्ट-भोजन, दिनका सोना तथा छाता लगाना आदि न करे । पादुका, चन्दन, माला, अनुलेपन, जलक्रीड़ा, नृत्य, गीत, वाद्य, परनिन्दा, दूसरोंको सताना, बहकी-बहकी बातें करना, अंजन लगाना, पाखण्डी लोगोंका साथ करना और शूद्रोंकी संगतिमें रहना आदि न करे ।

वृद्ध पुरुषोंको क्रमशः प्रणाम करे । वृद्ध तीन प्रकारके होते हैं । एक ज्ञानवृद्ध, दूसरे तपोवृद्ध और तीसरे वयोवृद्ध हैं । जो गुरु वेद-शास्त्रोंके उपदेशसे आध्यात्मिक आदि दुःखोंका निवारण करते हैं, उन्हें पहले प्रणाम करे । प्रणाम करते समय द्विज बालक 'मैं अमुक हूँ' इस प्रकार अपना परिचय भी दे । ब्राह्मण किसी प्रकार क्षत्रिय आदिको प्रणाम न

सूर्यग्रहणके दिन, उत्तरायण और दक्षिणायन प्रारम्भ होनेके दिन, भूकम्प होनेपर, गलग्रहमें और बादलोंके आनेसे अँधेरा हो जानेपर कभी अध्ययन न करे। नारदजी! इन सब अनध्यायोंमें जो अध्ययन करते हैं, उन मूढ पुरुषोंकी संतति, बुद्धि, यश, लक्ष्मी, आयु, बल तथा आरोग्यका साक्षात् यमराज नाश करते हैं। जो अनध्यायकालमें अध्ययन करता है, उसे ब्रह्म-हत्यारा समझना चाहिये। जो ब्राह्मण वेद-शास्त्रोंका अध्ययन न करके अन्य कर्मोंमें परिश्रम करता है, उसे शूद्रके तुल्य जानना चाहिये, वह नरकका प्रिय अतिथि है। वेदाध्ययनरहित ब्राह्मणके नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा दूसरे जो वैदिककर्म हैं, वे सब निष्फल होते हैं। भगवान् विष्णु शब्द-ब्रह्ममय हैं और वेद साक्षात् श्रीहरिका स्वरूप माना गया है। जो ब्राह्मण वेदोंका अध्ययन करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।

विवाहके योग्य कन्या, विवाहके आठ भेद तथा गृहस्थोचित शिष्टाचारका वर्णन

सनकजी कहते हैं—नारदजी! वेदाध्ययनकालतक ब्रह्मचारी निरन्तर गुरुकी सेवामें लगा रहे, उसके बाद उनकी आज्ञा लेकर अग्निपरिग्रह (गार्हपत्य-अग्निकी स्थापना) करे। द्विज वेद, शास्त्र और वेदाङ्गोंका अध्ययन करके गुरुको दक्षिणा देकर अपने घर जाय। वहाँ उत्तम कुलमें उत्पन्न, रूप और लावण्यसे युक्त, सद्गुणवती तथा सुशीला और धर्मपरायणा कन्याके साथ विवाह करे। जो कन्या रोगिणी हो अथवा किसी विशेष रोगसे युक्त कुलमें उत्पन्न हुई हो, जिसके केश बहुत अधिक या कम हों, जो सर्वथा केशरहित हो और बहुत बोलनेवाली हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जो क्रोध करनेवाली, बहुत नाटी, बहुत बड़े शरीरवाली, कुरूपा, किसी अङ्गसे हीन या अधिक अङ्गवाली, उन्मादिनी और चुगली करनेवाली हो तथा जो कुबड़ी हो, उससे भी विवाह न करे। जो सदा दूसरेके घरमें रहती हो, झगड़ालू हो, जिसकी मति भ्रान्त हो तथा जो निष्ठुर स्वभावकी हो, जो बहुत खानेवाली हो, जिसके दाँत और ओठ मोटे हों, जिसकी नाकमें घुर्घुराहटकी आवाज होती हो और जो धूर्त हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जो सदा रोनेवाली हो, जिसके शरीरकी आभा श्वेत रंगकी हो, जो निन्दित, खाँसी और दमे आदिके रोगसे पीड़ित तथा अधिक सोनेवाली हो, जो अनर्थकारी वचन बोलती हो, लोगोंसे द्वेष रखती हो और चोरी करती हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जिसकी नाक बड़ी हो, जो छल-कपट करनेवाली हो, जिसके शरीरमें अधिक रोएँ बढ़ गये हों तथा जो बहुत घमंडी और बगुलावृत्तिवाली (ऊपरसे साधु और भीतरसे दुष्ट हो), उससे भी विद्वान् पुरुष विवाह न करे।

मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्म आदि आठ प्रकारके विवाह होते हैं, यह जानना चाहिये। इनमें पहला-पहला श्रेष्ठ है। पहलेवालेके अभावमें दूसरा श्रेष्ठ एवं ग्राह्य माना गया है। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा आठवाँ पैशाच विवाह है। श्रेष्ठ द्विजको ब्राह्मविवाहकी विधिसे विवाह करना चाहिये। अथवा दैवविवाहकी रीतिसे भी विवाह किया जा सकता है। कोई-कोई आर्ष विवाहको भी श्रेष्ठ बतलाते हैं। ब्रह्मन्! शेष प्राजापत्य आदि पाँच विवाह निन्दित हैं।

(अब गृहस्थ पुरुषका शिष्टाचार बताया जाता है—) दो यज्ञोपवीत तथा एक चादर धारण करे। कानोंमें सोनेके दो कुण्डल पहने। धोती दो रक्खे। सिरके बाल और नख कटाता रहे। पवित्रतापूर्वक रहे। स्वच्छ पगड़ी, छाता तथा चरणपादुका धारण करे। वेष ऐसा रक्खे जो देखनेमें प्रिय लगे। प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करे। शास्त्रोक्त आचारका पालन करे। दूसरोंका अन्न न खाय। दूसरोंकी निन्दा छोड़ दे। पैरसे पैरको न दबाये, जूठी चीजको न लाँघे। दोनों हाथोंसे अपना सिर न खुजलाये। पूज्य पुरुष तथा देवालयको बायें करके न चले। देवपूजा, स्वाध्याय, आचमन, स्नान,

सूर्यग्रहणके दिन, उत्तरायण और दक्षिणायन प्रारम्भ होनेके दिन, भूकम्प होनेपर, गलग्रहमें और बादलोंके आनेसे अँधेरा हो जानेपर कभी अध्ययन न करे। नारदजी! इन सब अनध्यायोंमें जो अध्ययन करते हैं, उन मूढ पुरुषोंकी सन्तति, बुद्धि, यश, लक्ष्मी, आयु, बल तथा आरोग्यका साक्षात् यमराज नाश करते हैं। जो अनध्यायकालमें अध्ययन करता है, उसे ब्रह्म-हत्यारा समझना चाहिये। जो ब्राह्मण वेद-शास्त्रोंका अध्ययन न करके अन्य कर्मोंमें परिश्रम करता है, उसे शूद्रके तुल्य जानना चाहिये, वह नरकका प्रिय अतिथि है। वेदाध्ययनरहित ब्राह्मणके नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा दूसरे जो वैदिककर्म हैं, वे सब निष्फल होते हैं। भगवान् विष्णु शब्द-ब्रह्ममय हैं और वेद साक्षात् श्रीहरिका स्वरूप माना गया है। जो ब्राह्मण वेदोंका अध्ययन करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।

विवाहके योग्य कन्या, विवाहके आठ भेद तथा गृहस्थोचित शिष्टाचारका वर्णन

श्रीसनकजी कहते हैं—नारदजी! वेदाध्ययनकालतक ब्रह्मचारी निरन्तर गुरुकी सेवामें लगा रहे, उसके बाद उनकी आज्ञा लेकर अग्निपरिग्रह (गार्हपत्य-अग्निकी स्थापना) करे। द्विज वेद, शास्त्र और वेदाङ्गोंका अध्ययन करके गुरुको दक्षिणा देकर अपने घर जाय। वहाँ उत्तम कुलमें उत्पन्न, रूप और लावण्यसे युक्त, सद्गुणवती तथा सुशीला और धर्मपरायणा कन्याके साथ विवाह करे। जो कन्या रोगिणी हो अथवा किसी विशेष रोगसे युक्त कुलमें उत्पन्न हुई हो, जिसके केश बहुत अधिक या कम हों, जो सर्वथा केशरहित हो और बहुत बोलनेवाली हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जो क्रोध करनेवाली, बहुत नाटी, बहुत बड़े शरीरवाली, कुरूपा, किसी अङ्गसे हीन या अधिक अङ्गवाली, उन्मादिनी और चुगली करनेवाली हो तथा जो कुबड़ी हो, उससे भी विवाह न करे। जो सदा दूसरेके घरमें रहती हो, झगड़ालू हो, जिसकी मति भ्रान्त हो तथा जो निष्ठुर स्वभावकी हो, जो बहुत खानेवाली हो, जिसके दाँत और ओठ मोटे हों, जिसकी नाकमें घुर्घुराहटकी आवाज होती हो और जो धूर्त हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जो सदा रोनेवाली हो, जिसके शरीरकी आभा श्वेत रंगकी हो, जो निन्दित, खाँसी और दमे आदिके रोगसे पीड़ित तथा अधिक सोनेवाली हो, जो अनर्थकारी वचन बोलती हो, लोगोंसे द्वेष रखती हो और चोरी करती हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जिसकी नाक बड़ी हो, जो छल-कपट करनेवाली हो, जिसके शरीरमें अधिक रोएँ पड़ गये हों तथा जो बहुत घमंडी और बगुलावृत्तिवाली (ऊपरसे साधु और भीतरसे दुष्ट हो), उससे भी विद्वान् पुरुष विवाह न करे।

मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्म आदि आठ प्रकारके विवाह होते हैं, यह जानना चाहिये। इनमें पहला-पहला श्रेष्ठ है। पहलेवालेके अभावमें दूसरा श्रेष्ठ एवं ग्राह्य माना गया है। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा आठवाँ पैशाच विवाह है। श्रेष्ठ द्विजको ब्राह्मविवाहकी विधिसे विवाह करना चाहिये। अथवा दैवविवाहकी रीतिसे भी विवाह किया जा सकता है। कोई-कोई आर्ष विवाहको भी श्रेष्ठ बतलाते हैं। ब्रह्मन्! शेष प्राजापत्य आदि पाँच विवाह निन्दित हैं।

(अब गृहस्थ पुरुषका शिष्टाचार बताया जाता है—) दो यज्ञोपवीत तथा एक चादर धारण करे। कानोंमें सोनेके दो कुण्डल पहने। धोती दो रक्खे। सिरके बाल और नख कटाता रहे। पवित्रतापूर्वक रहे। स्वच्छ पगड़ी, छाता तथा चरणपादुका धारण करे। वेष ऐसा रक्खे जो देखनेमें प्रिय लगे। प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करे। शास्त्रोक्त आचारका पालन करे। दूसरोंका अन्न न खाय। दूसरोंकी निन्दा छोड़ दे। पैरसे पैरको न दबाये, जूठी चीजको न लाँघे। दोनों हाथोंसे अपना सिर न खुजलाये। पूज्य पुरुष तथा देवालयको बायें करके न चले। देवपूजा, स्वाध्याय, आचमन, स्नान,

शुद्धिका सम्पादन करे। लिङ्गमें एक बार या तीन बार मिट्टी लगाकर धोये और अण्डकोषोंमें दो बार मिट्टी लगाकर जलसे धोये। मनीषी पुरुषोंने मूत्रत्यागके पश्चात् इस प्रकार शुद्धिका विधान किया है। लिङ्गमें एक बार, गुदाद्वारमें पाँच बार, बायें हाथमें दस बार, फिर दोनों हाथोंमें सात बार तथा दोनों पैरोंमें तीन बार पृथक् मिट्टी लगानी और धोनी चाहिये। यह मल-त्यागके पश्चात् उसके लेप और दुर्गन्धको दूर करनेके लिये शुद्धिका विधान किया गया है। ब्रह्मचारियोंके लिये इससे दुगुने शौचका विधान है। वानप्रस्थियोंके लिये तिगुना और संन्यासियोंके लिये गृहस्थकी अपेक्षा चौगुना शौच बताया गया है। मुनिश्रेष्ठ! कहीं रास्तेमें हो तो आधा ही पालन करे। रोगीके लिये या बड़ी भारी विपत्ति पड़नेपर भी नियमका बन्धन नहीं रहता। स्त्रियों और उपनयनरहित द्विजकुमारोंके लिये भी लेप और दुर्गन्ध दूर होनेतक ही शौचकी सीमा है। उसके बाद किसी श्रेष्ठ वृक्षकी छिलकेसहित लकड़ी लेकर उससे दाँतुन करे। बेल, असना, अपामार्ग (ऊँगा या चिरचिरा) नीम, आम और अर्क आदि वृक्षोंका दाँतुन होना चाहिये। पहले उसे जलसे धोकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥
(ना० पूर्व० २७ । २५)

'वनस्पते! तुम हमें आयु, यश, बल, तेज, प्रजा, पशु, धन, वेद, बुद्धि तथा धारणाशक्ति प्रदान करो।'

कनिष्ठिकाके अग्रभागके समान मोटा और दस अगुल लंबा दाँतुन ब्राह्मण करे। क्षत्रिय नौ अंगुल, वैश्य आठ अंगुल, शूद्र और स्त्रियोंको चार अंगुलका दाँतुन करना चाहिये। दाँतुन न मिलनेपर बारह कुल्लोंसे मुखशुद्धि कर लेनी चाहिये। उसके बाद नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करे। वहाँ तीर्थोंको प्रणाम करके सूर्यमण्डलमें भगवान् नारायणका आवाहन करे। फिर गन्ध आदिसे मण्डल बनाकर उन्हीं भगवान् जनार्दनका ध्यान करे। नारदजी! तदनन्तर पवित्र मन्त्रों और तीर्थोंका स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिये—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु ॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
आगच्छन्तु महाभागाः स्नानकाले सदा मम ॥
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ।
पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥
(ना० पूर्व० २७ । ३३–३५)

'गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु तथा कावेरी नामवाली नदियाँ इस जलमें निवास करें। पुष्कर आदि तीर्थ और गङ्गा आदि परम सौभाग्यवती नदियाँ सदा मेरे स्नानकालमें यहाँ पधारें। अयोध्या, मथुरा, हरद्वार, काशी, काञ्ची, अवन्ती (उज्जैन) और द्वारकापुरी इन सातोंको मोक्षदायिनी समझना चाहिये।'

तदनन्तर श्वासको रोके हुए पानीमें डुबकी लगावे और अघमर्षण सूक्तका जप करे। फिर स्नानाङ्ग-तर्पण करके आचमनके पश्चात् सूर्यदेवको अर्घ्य दे। नारदजी! उसके बाद सूर्य भगवान्‌का ध्यान करके जलसे बाहर निकलकर बिना फटा हुआ शुद्ध धौतवस्त्र धारण करे। ऊपरसे दूसरा वस्त्र (चादर) भी ओढ़ ले। तत्पश्चात् कुशासनपर बैठकर संध्याकर्म प्रारम्भ करे। ब्रह्मन्! ईशानकोणकी ओर मुख करके गायत्री-मन्त्रसे आचमन करे, फिर 'ऋतञ्च' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके विद्वान् पुरुष दुबारा आचमन करे। तदनन्तर अपने चारों ओर जल छिड़ककर अपने-आपको उस जलसे आवेष्टित करे। अपने शरीरपर भी जल सींचे। फिर प्राणायामका संकल्प लेकर प्रणवका उच्चारण करनेके बाद प्रणवसहित सातों व्याहृतियोंके तथा गायत्री-मन्त्रके ऋषि, छन्द और देवताओंका स्मरण[1] करते हुए (विनियोग करते हुए) भूः आदि सात व्याहृतियोंद्वारा मस्तकपर जलसे अभिषेक करे। तत्पश्चात् मन्त्रज्ञ पुरुष पृथक्-पृथक् करन्यास और अङ्गन्यास करे। पहले हृदयमें प्रणवका न्यास करके मस्तकपर भूःका न्यास करे। फिर शिखामें भुवःका, कवचमें स्वःका, नेत्रोंमें भूर्भुवःका तथा दिशाओंमें भूर्भुवः स्वः इन तीनों

---

१. ॐकारसहित व्याहृतियोंका, गायत्री-मन्त्रका तथा शिरोमन्त्रका विनियोग या उनके ऋषि, छन्द और देवताओंका स्मरण इस प्रकार है—

ॐकारस्य ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दास्यग्निवायुसूर्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता, आपो ज्योतिरिति शिरसः प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवताः प्राणायामे विनियोगः।

शुद्धिका सम्पादन करे। लिङ्गमें एक बार या तीन बार मिट्टी लगाकर धोये और अण्डकोषोंमें दो बार मिट्टी लगाकर जलसे धोये। मनीषी पुरुषोंने मूत्रत्यागके पश्चात् इस प्रकार शुद्धिका विधान किया है। लिङ्गमें एक बार, गुदा-द्वारमें पाँच बार, बायें हाथमें दस बार, फिर दोनों हाथोंमें सात बार तथा दोनों पैरोंमें तीन बार पृथक् मिट्टी लगानी और धोनी चाहिये। यह मल-त्यागके पश्चात् उसके लेप और दुर्गन्धको दूर करनेके लिये शुद्धिका विधान किया गया है। ब्रह्मचारियोंके लिये इससे दुगुने शौचका विधान है। वान-प्रस्थियोंके लिये तिगुना और संन्यासियोंके लिये गृहस्थकी अपेक्षा चौगुना शौच बताया गया है। मुनिश्रेष्ठ! कहीं रास्ते-में हो तो आधा ही पालन करे। रोगीके लिये या बड़ी भारी विपत्ति पड़नेपर भी नियमका बन्धन नहीं रहता। स्त्रियों और उपनयनरहित द्विजकुमारोंके लिये भी लेप और दुर्गन्ध दूर होनेतक ही शौचकी सीमा है। उसके बाद किसी श्रेष्ठ वृक्षकी छिलकेसहित लकड़ी लेकर उससे दाँतुन करे। बेल, असना, अपामार्ग (ऊँगा या चिरचिरा) नीम, आम और अर्क आदि वृक्षोंका दाँतुन होना चाहिये। पहले उसे जलसे धोकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥
(ना० पूर्व० २७। २५)

'वनस्पते! तुम हमें आयु, यश, बल, तेज, प्रजा, पशु, धन, वेद, बुद्धि तथा धारणाशक्ति प्रदान करो।'

कनिष्ठिकाके अग्रभागके समान मोटा और दस अंगुल लंबा दाँतुन ब्राह्मण करे। क्षत्रिय नौ अंगुल, वैश्य आठ अंगुल, शूद्र और स्त्रियोंको चार अंगुलका दाँतुन करना चाहिये। दाँतुन न मिलनेपर बारह कुल्लोंसे मुखशुद्धि कर लेनी चाहिये। उसके बाद नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करे। वहाँ तीर्थोंको प्रणाम करके सूर्यमण्डलमें भगवान् नारायणका आवाहन करे। फिर गन्ध आदिसे मण्डल बनाकर उन्हीं भगवान् जनार्दनका ध्यान करे। नारदजी! तदनन्तर पवित्र मन्त्रों और तीर्थोंका स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिये—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
आगच्छन्तु महाभागाः स्नानकाले सदा मम॥
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥
(ना० पूर्व० २७। ३३–३५)

'गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु तथा कावेरी नामवाली नदियाँ इस जलमें निवास करें। पुष्कर आदि तीर्थ और गङ्गा आदि परम सौभाग्यवती नदियाँ सदा मेरे स्नानकालमें यहाँ पधारें। अयोध्या, मथुरा, हरद्वार, काशी, काञ्ची, अवन्ती (उज्जैन) और द्वारकापुरी इन सातोंको मोक्षदायिनी समझना चाहिये।'

तदनन्तर श्वासको रोके हुए पानीमें डुबकी लगावे और अघमर्षण सूक्तका जप करे। फिर स्नानाङ्ग-तर्पण करके आचमनके पश्चात् सूर्यदेवको अर्घ्य दे। नारदजी! उसके बाद सूर्य भगवान्का ध्यान करके जलसे बाहर निकलकर बिना फटा हुआ शुद्ध धौतवस्त्र धारण करे। ऊपरसे दूसरा वस्त्र (चादर) भी ओढ़ ले। तत्पश्चात् कुशासनपर बैठकर संध्याकर्म प्रारम्भ करे। ब्रह्मन्! ईशानकोणकी ओर मुख करके गायत्री-मन्त्रसे आचमन करे, फिर 'ऋतञ्च' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके विद्वान् पुरुष दुबारा आचमन करे। तदनन्तर अपने चारों ओर जल छिड़ककर अपने-आपको उस जलसे आवेष्टित करे। अपने शरीरपर भी जल सींचे। फिर प्राणायामका संकल्प लेकर प्रणवका उच्चारण करनेके बाद प्रणवसहित सातों व्याहृतियोंके तथा गायत्री-मन्त्रके ऋषि, छन्द और देवताओंका स्मरण करते हुए (विनियोग करते हुए) भूः आदि सात व्याहृतियोंद्वारा मस्तकपर जलसे अभिषेक करे। तत्पश्चात् मन्त्रज्ञ पुरुष पृथक्-पृथक् करन्यास और अङ्गन्यास करे। पहले हृदयमें प्रणवका न्यास करके मस्तकपर भूःका न्यास करे। फिर शिखामें भुवःका, कवचमें स्वःका, नेत्रोंमें भूर्भुवःका तथा दिशाओंमें भूर्भुवः स्वः इन तीनों

---

१. ॐकारसहित व्याहृतियोंका, गायत्री-मन्त्रका तथा शिरोमन्त्रका विनियोग या उनके ऋषि, छन्द और देवताओंका स्मरण इस प्रकार है—

ॐकारस्य ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, सप्त-व्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्य-श्छन्दांस्यग्निवायुसूर्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता, आपो ज्योतिरिति शिरसः प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवताः प्राणायामे विनियोगः।

चाहिये। इसके बाद 'आपो हि ष्ठा मयो भुवः' इत्यादि तीन ऋचाओंद्वारा मार्जन करे। फिर—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि । यं च वयं द्विष्मः ।

—इस मन्त्रको पढ़ते हुए हथेलीमें जल लेकर नासिकासे उसका स्पर्श कराये और भीतरके काम-क्रोधादि शत्रु उस जलमे आ गये, ऐसी भावना करके दूर फेंक दे। इस प्रकार शत्रुवर्गको दूर भगाकर 'द्रुपदादिव मुमुचानः' इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलको अपने सिरपर डाले। उसके बाद 'ऋतञ्च सत्यम्' इत्यादि मन्त्रसे अघमर्षण करके 'अन्तश्चरसि' इत्यादि मन्त्रद्वारा एक ही बार जलका आचमन करे। देवर्षे! तदनन्तर सूर्यदेवको विधिपूर्वक गन्ध, पुष्प और जलकी अञ्जलि दे। प्रातःकाल स्वस्तिकाकार अञ्जलि बाँधकर भगवान् सूर्यका उपस्थान करे। मध्याह्नकालमें दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर और सायंकाल बाँहें नीचे करके उपस्थान करे। इस प्रकार प्रातः आदि तीनों समयके लिये पृथक्-पृथक् विधि है। नारदजी! सूर्योपस्थानके समय 'उदुत्यं जातवेदसम्' 'चित्रं देवानामुदगादनीकम्' 'तच्चक्षुर्देवहितम्' इन तीन ऋचाओंका जप करे। इसके सिवा सूर्यदेवता-सम्बन्धी अन्य मन्त्रोंका, शिवसम्बन्धी मन्त्रोंका तथा विष्णु-देवता-सम्बन्धी मन्त्रोंका भी जप किया जा सकता है। सूर्योपस्थानके बाद 'तेजोऽसि' तथा 'गायत्र्यस्येकपदी' इत्यादि मन्त्रोंको पढ़कर भगवान् सविताके तेजःस्वरूप गायत्रीकी अथवा परमात्म-तेजकी स्तुति—प्रार्थना करे। तदनन्तर पुनः तीन बार अंगन्यास करके ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुकी स्वरूपभूता शक्तियोंका चिन्तन करे। (प्रातःकाल ब्रह्माकी, मध्याह्नमें रुद्रकी और सायकाल विष्णुकी शक्तिरूपसे क्रमशः गायत्री, सावित्री और सरस्वतीका चिन्तन करना चाहिये। उनका क्रमशः ध्यान इस प्रकार है—)

ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलयं कुम्भं करैः स्रुक्स्रुवौ
बिभ्राणा त्वरुणेन्दुकान्तिवदना ऋग्रूपिणी बालिका।
हंसारोहणकेलिखण्खणमणेर्बिम्बार्चिता भूषिता
गायत्री परिभाविता भवतु नः संपत्समृद्ध्यै सदा ॥
(ना० पूर्व० । २७ । ५५)

'प्रातःकालमें गायत्री देवी ऋग्वेदस्वरूपा बालिकाके रूपमे विराज रही हैं। ये ब्रह्माजीकी शक्ति हैं। इनके चार मुख हैं। इन्होंने अपने हाथोंमे अक्षवलय, कलश, स्रुक् और स्रुवा धारण कर रक्खा है। इनके मुखकी कान्ति अरुण चन्द्रमाके समान कमनीय है। ये हंसपर चढनेकी क्रीड़ा कर रही हैं। उस समय इनके मणिमय आभूषण खनखन करने लगते हैं। मणिके बिम्बोंसे ये कूजित और विभूषित हैं। ऐसी गायत्रीदेवी हमारे ध्यानकी विषय होकर दैवी सम्पत्ति बढ़ानेमें सहायक हों।'

रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वैयाघ्रचर्माम्बरा
खट्वाङ्गत्रिशिखाक्षसूत्रवलयाऽभीतिः श्रियै चास्तु नः।
विद्युद्दामजटाकलापविलसद्बालेन्दुमौलिर्मुदा
सावित्री वृषवाहना सिततनुर्ध्येया यजूरूपिणी ॥
(ना० पूर्व० । २७ । ५६)

'मध्याह्नकालमें वही गायत्री 'सावित्री' नाम धारण करती हैं। ये रुद्रकी शक्ति हैं। नूतन यौवनसे सम्पन्न हैं। इनके तीन नेत्र हैं। व्याघ्रका चर्म इन्होंने वस्त्रके रूपमें धारण कर रक्खा है। इनके हाथोंमें खट्वाङ्ग, त्रिशूल, अक्षवलय और अभयकी मुद्रा है। तेजोमयी विद्युत्के समान देदीप्यमान जटामे बालचन्द्रमाका मुकुट शोभा पा रहा है। ये आनन्दमें मग्न हैं। वृषभ इनका वाहन है। शरीरका रंग (कपूरके समान) गौर है और यजुर्वेद इनका स्वरूप है। इस रूपमें ध्यान करने योग्य सावित्री हमारे ऐश्वर्यकी वृद्धि करें।'

ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरालङ्कृता
श्यामा श्यामतनुर्जरापरिलसद्गात्राञ्चिता वैष्णवी।

चाहिये। इसके बाद 'आपो हि ष्ठा मयो भुवः' इत्यादि तीन ऋचाओंद्वारा मार्जन करे। फिर—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि। यं च वयं द्विष्मः।

—इस मन्त्रको पढ़ते हुए हथेलीमें जल लेकर नासिकासे उसका स्पर्श कराये और भीतरके काम-क्रोधादि शत्रु उस जलमें आ गये, ऐसी भावना करके दूर फेंक दे। इस प्रकार शत्रुवर्गको दूर भगाकर 'द्रुपदादिव मुमुचानः' इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलको अपने सिरपर डाले। उसके बाद 'ऋतञ्च सत्यम्' इत्यादि मन्त्रसे अघमर्षण करके 'अन्तश्चरसि' इत्यादि मन्त्रद्वारा एक ही बार जलका आचमन करे। देवर्षे! तदनन्तर सूर्यदेवको विधिपूर्वक गन्ध, पुष्प और जलकी अञ्जलि दे। प्रातःकाल स्वस्तिकाकार अञ्जलि बाँधकर भगवान् सूर्यका उपस्थान करे। मध्याह्नकालमें दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर और सायंकाल बाँहें नीचे करके उपस्थान करे। इस प्रकार प्रातः आदि तीनों समयके लिये पृथक्-पृथक् विधि है। नारदजी! सूर्योपस्थानके समय 'उदुत्यं जातवेदसम्' 'चित्रं देवानामुदगादनीकम्' 'तच्चक्षुर्देवहितम्' इन तीन ऋचाओंका जप करे। इसके सिवा सूर्यदेवता-सम्बन्धी अन्य मन्त्रोंका, शिवसम्बन्धी मन्त्रोंका तथा विष्णु-देवता-सम्बन्धी मन्त्रोंका भी जप किया जा सकता है। सूर्योपस्थानके बाद 'तेजोऽसि' तथा 'गायत्र्यस्येकपदी' इत्यादि मन्त्रोंको पढ़कर भगवान् सविताके तेजःस्वरूप गायत्रीकी अथवा परमात्म-तेजकी स्तुति—प्रार्थना करे। तदनन्तर पुनः तीन बार अंगन्यास करके ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुकी स्वरूपभूता शक्तियोंका चिन्तन करे। (प्रातःकाल ब्रह्माकी, मध्याह्नमें रुद्रकी और सायकाल विष्णुकी शक्तिरूपसे क्रमशः गायत्री, सावित्री और सरस्वतीका चिन्तन करना चाहिये। उनका क्रमशः ध्यान इस प्रकार है—)

ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलयं कुम्भं करैः स्रुक्स्रुवौ
बिभ्राणा त्वरुणेन्दुकान्तिवदना ऋग्रूपिणी बालिका।
हंसारोहणकेलिखण्खणमणेर्विम्बार्चिता भूषिता
गायत्री परिभाविता भवतु नः संपत्समृद्ध्यै सदा॥
(ना० पूर्व० । २७ । ५५)

'प्रातःकालमें गायत्री देवी ऋग्वेदस्वरूपा बालिकाके रूपमे विराज रही हैं। ये ब्रह्माजीकी शक्ति हैं। इनके चार मुख हैं। इन्होंने अपने हाथोंमे अक्षवलय, कलश, स्रुक् और स्रुवा धारण कर रक्खा है। इनके मुखकी कान्ति अरुण चन्द्रमाके समान कमनीय है। ये हंसपर चढनेकी क्रीड़ा कर रही हैं। उस समय इनके मणिमय आभूषण खनखन करने लगते हैं। मणिके बिम्बोंसे ये कूजित और विभूषित हैं। ऐसी गायत्रीदेवी हमारे ध्यानकी विषय होकर दैवी सम्पत्ति बढ़ानेमें सहायक हों।'

रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वैयाघ्रचर्माम्बरा
खट्वाङ्गत्रिशिखाक्षसूत्रवलयाऽभीतिः श्रियै चास्तु नः।
विद्युद्दामजटाकलापविलसद्बालेन्दुमौलिर्मुदा
सावित्री वृषवाहना सिततनुर्ध्येया यजूरूपिणी॥
(ना० पूर्व० । २७ । ५६)

'मध्याह्नकालमें वही गायत्री 'सावित्री' नाम धारण करती हैं। ये रुद्रकी शक्ति हैं। नूतन यौवनसे सम्पन्न हैं। इनके तीन नेत्र हैं। व्याघ्रका चर्म इन्होंने वस्त्रके रूपमें धारण कर रक्खा है। इनके हाथोंमें खट्वाङ्ग, त्रिशूल, अक्षवलय और अभयकी मुद्रा है। तेजोमयी विद्युत्के समान देदीप्यमान जटामे बालचन्द्रमाका मुकुट शोभा पा रहा है। ये आनन्दमें मग्न हैं। वृषभ इनका वाहन है। शरीरका रंग (कपूरके समान) गौर है और यजुर्वेद इनका स्वरूप है। इस रूपमें ध्यान करने योग्य सावित्री हमारे ऐश्वर्यकी वृद्धि करें।'

ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरालङ्कृता
श्यामा श्यामतनुर्जरा परिलसद्गात्राञ्चिता वैष्णवी।

पुरुष अतिथि कहते हैं। उसका श्रीविष्णुकी भाँति पूजन करना चाहिये*। ब्रह्मन्! प्रतिदिन पितरोंकी तृप्तिके उद्देश्यसे अपने ग्रामके निवासी एक श्रोत्रिय एवं वैष्णव ब्राह्मणको अन्न आदिसे तृप्त करना चाहिये। जो पञ्चमहायज्ञोंका त्यागी है, उसे विद्वान् लोग ब्रह्महत्यारा कहते हैं। इसलिये प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये। देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ—इनको पञ्चयज्ञ कहते हैं। भृत्य और मित्रादिवर्गके साथ स्वयं मौन होकर भोजन करना चाहिये। द्विज कभी अभक्ष्य पदार्थको न खाय। सुपात्र व्यक्तिका त्याग न करे, उसे अवश्य भोजन करावे। जो अपने आसनपर पैर रखकर अथवा आधा वस्त्र पहनकर भोजन करता है या मुखसे उगले हुए अन्नको खाता है, विद्वान् पुरुष उसे 'शराबी' कहते हैं। जो आधा खाये हुए मोदक, फल और प्रत्यक्ष नमकको पुनः खाता है, वह गोमासभोजी कहा जाता है। द्विजको चाहिये कि वह पानी पीते, आचमन करते तथा भक्ष्य पदार्थोंका भोजन करते समय मुखसे आवाज न करे। यदि वह उस समय मुँहसे आवाज करता है तो नरकगामी होता है। मौन होकर अन्नकी निन्दा न करते हुए हितकर अन्नका भोजन करना चाहिये। भोजनके पहले एक बार जलका आचमन करे और इस प्रकार कहे 'अमृतोपस्तरणमसि' (हे अमृतरूप जल! तू भोजनका आश्रय अथवा आसन है)। फिर भोजनके अन्तमें एक बार जल पीये और कहे—'अमृतापिधानम् असि' (हे अमृत! तू भोजनका आवरण—उसे ढकनेवाला है)। पहले प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान—इनके निमित्त अन्नकी पाँच आहुतियाँ अपने मुखमें डालकर आचमन कर ले†। उसके बाद भोजन आरम्भ करे। विप्रवर नारदजी! इस प्रकार भोजनके पश्चात् आचमन करके शास्त्रचिन्तनमें तत्पर होना चाहिये। रातमें भी आये हुए अतिथिका यथाशक्ति भोजन, आसन तथा शयनसे अथवा कन्द-मूल-फल आदिसे सत्कार करे। मुने! इस प्रकार गृहस्थ पुरुष सदा सदाचारका पालन करे। जिस समय वह सदाचारको त्याग देता है उस समय प्रायश्चित्तका भागी होता है।

साधुशिरोमणे! अपने शरीरको सफेद बाल आदि दोषोंसे युक्त देखकर अपनी पत्नीको पुत्रोंके संरक्षणमें छोड़ दे। स्वयं घरसे विरक्त होकर वनमें चला जाय अथवा पत्नीको भी साथ ही लेता जाय। वहाँ तीनों समय स्नान करे। नख, दाढ़ी, मूँछ और जटा धारण किये रहे। नीचे भूमिपर सोये। ब्रह्मचर्यका पालन करे और पञ्च महायज्ञोंके अनुष्ठानमें तत्पर रहे। प्रतिदिन फल-मूलका भोजन करे और स्वाध्यायमें लगा रहे। भगवान् विष्णुके भजनमें संलग्न होकर सब प्राणियोंके प्रति दयाभाव रक्खे। गाँवमें पैदा हुए फल-फूलको त्याग दे। प्रतिदिन आठ ग्रास भोजन करे तथा रातमें उपवासपूर्वक रहे। वानप्रस्थ-आश्रममें रहनेवाला द्विज उबटन, तेल, मैथुन, निद्रा और आलस्य त्याग दे। वानप्रस्थी पुरुष शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् नारायणका चिन्तन तथा चान्द्रायण आदि तपोमय व्रत करे। सर्दी-गरमी आदि द्वन्द्वोंको सहन करे। सदा अग्निकी सेवा (अग्निहोत्र) में संलग्न रहे।

जब मनमें सब वस्तुओंकी ओरसे वैराग्य हो जाय तभी संन्यास ग्रहण करे, अन्यथा वह पतित हो जाता है। संन्यासीको वेदान्तके अभ्यासमें तत्पर, शान्त, संयमी और जितेन्द्रिय, द्वन्द्वोंसे रहित तथा ममता और अहंकारसे शून्य रहना चाहिये। वह शम-दम आदि गुणोंसे युक्त तथा काम-क्रोधादि दोषोंसे दूर रहे। संन्यासी द्विज नग्न रहे या पुराना कौपीन पहने। उसे अपना मस्तक मुँड़ाये रहना चाहिये। वह शत्रु-मित्र तथा मान-अपमानमें समान भाव रक्खे। गाँवमें एक रात और नगरमें अधिक-से-अधिक तीन रात रहे। संन्यासी सदा भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करे। किसी एकके घरका अन्न खानेवाला न हो। जब चूल्हेकी आग बुझ जाय, घरके लोगोंका खाना-पीना हो गया हो, कोई बाकी न हो, उस समय किसी उत्तम द्विजके घरमें, जहाँ लड़ाई-झगड़ा न हो, भिक्षाके लिये संन्यासीको जाना चाहिये। संन्यासी तीनों काल स्नान और भगवान् नारायणका ध्यान करे। और मनको जीतकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए प्रतिदिन प्रणवका जप करता रहे। अगर कोई लम्पट संन्यासी कभी एक व्यक्तिका अन्न खाकर रहने लगे तो दस हजार प्रायश्चित्त करनेपर भी उसका उद्धार नहीं दिखायी देता। ब्रह्मन्! यदि संन्यासी लोभवश केवल शरीरके ही पालन-

---

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥
अज्ञातगोत्रनामानं अन्यग्रामादुपागतम्।
विपश्चितोऽतिथिं प्राहुर्विष्णुवत् तं प्रपूजयेत्॥
(ना० पूर्व० २७। ७२-७३)

† प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा—इस प्रकार कहता हुआ पाँच ग्रास ले।

पुरुष अतिथि कहते हैं। उसका श्रीविष्णुकी भाँति पूजन करना चाहिये*। ब्रह्मन्! प्रतिदिन पितरोंकी तृप्तिके उद्देश्यसे अपने ग्रामके निवासी एक श्रोत्रिय एवं वैष्णव ब्राह्मणको अन्न आदिसे तृप्त करना चाहिये। जो पञ्चमहायज्ञोंका त्यागी है, उसे विद्वान् लोग ब्रह्महत्यारा कहते हैं। इसलिये प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये। देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ—इनको पञ्चयज्ञ कहते हैं। भृत्य और मित्रादिवर्गके साथ स्वयं मौन होकर भोजन करना चाहिये। द्विज कभी अभक्ष्य पदार्थको न खाय। सुपात्र व्यक्तिका त्याग न करे, उसे अवश्य भोजन करावे। जो अपने आसनपर पैर रखकर अथवा आधा वस्त्र पहनकर भोजन करता है या मुखसे उगले हुए अन्नको खाता है, विद्वान् पुरुष उसे 'शराबी' कहते हैं। जो आधा खाये हुए मोदक, फल और प्रत्यक्ष नमकको पुनः खाता है, वह गोमासभोजी कहा जाता है। द्विजको चाहिये कि वह पानी पीते, आचमन करते तथा भक्ष्य पदार्थोंका भोजन करते समय मुखसे आवाज न करे। यदि वह उस समय मुँहसे आवाज करता है तो नरकगामी होता है। मौन होकर अन्नकी निन्दा न करते हुए हितकर अन्नका भोजन करना चाहिये। भोजनके पहले एक बार जलका आचमन करे और इस प्रकार कहे 'अमृतोपस्तरणमसि' (हे अमृतरूप जल! तू भोजनका आश्रय अथवा आसन है)। फिर भोजनके अन्तमें एक बार जल पीये और कहे—'अमृतापिधानम् असि' (हे अमृत! तू भोजनका आवरण—उसे ढकनेवाला है)। पहले प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान—इनके निमित्त अन्नकी पाँच आहुतियाँ अपने मुखमें डालकर आचमन कर ले†। उसके बाद भोजन आरम्भ करे। विप्रवर नारदजी! इस प्रकार भोजनके पश्चात् आचमन करके शास्त्रचिन्तनमें तत्पर होना चाहिये। रातमें भी आये हुए अतिथिका यथाशक्ति भोजन, आसन तथा शयनसे अथवा कन्द-मूल-फल आदिसे सत्कार करे। मुने! इस प्रकार गृहस्थ पुरुष सदा सदाचारका पालन करे। जिस समय वह सदाचारको त्याग देता है उस समय प्रायश्चित्तका भागी होता है।

साधुशिरोमणे! अपने शरीरको सफेद बाल आदि दोषोंसे युक्त देखकर अपनी पत्नीको पुत्रोंके संरक्षणमें छोड़ दे। स्वयं घरसे विरक्त होकर वनमें चला जाय अथवा पत्नीको भी साथ ही लेता जाय। वहाँ तीनों समय स्नान करे। नख, दाढ़ी, मूँछ और जटा धारण किये रहे। नीचे भूमिपर सोये। ब्रह्मचर्यका पालन करे और पञ्च महायज्ञोंके अनुष्ठानमें तत्पर रहे। प्रतिदिन फल-मूलका भोजन करे और स्वाध्यायमें लगा रहे। भगवान् विष्णुके भजनमें सलग्न होकर सब प्राणियोंके प्रति दयाभाव रक्खे। गाँवमें पैदा हुए फल-फूलको त्याग दे। प्रतिदिन आठ ग्रास भोजन करे तथा रातमें उपवासपूर्वक रहे। वानप्रस्थ-आश्रममें रहनेवाला द्विज उबटन, तेल, मैथुन, निद्रा और आलस्य त्याग दे। वानप्रस्थी पुरुष शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् नारायणका चिन्तन तथा चान्द्रायण आदि तपोमय व्रत करे। सर्दी-गरमी आदि द्वन्द्वोंको सहन करे। सदा अग्निकी सेवा (अग्निहोत्र) में संलग्न रहे।

जब मनमें सब वस्तुओंकी ओरसे वैराग्य हो जाय तभी संन्यास ग्रहण करे, अन्यथा वह पतित हो जाता है। संन्यासीको वेदान्तके अभ्यासमें तत्पर, शान्त, संयमी और जितेन्द्रिय, द्वन्द्वोंसे रहित तथा ममता और अहंकारसे शून्य रहना चाहिये। वह शम-दम आदि गुणोंसे युक्त तथा काम-क्रोधादि दोषोंसे दूर रहे। संन्यासी द्विज नग्न रहे या पुराना कौपीन पहने। उसे अपना मस्तक मुँड़ाये रहना चाहिये। वह शत्रु-मित्र तथा मान-अपमानमें समान भाव रक्खे। गाँवमें एक रात और नगरमें अधिक-से-अधिक तीन रात रहे। संन्यासी सदा भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करे। किसी एकके घरका अन्न खानेवाला न हो। जब चूल्हेकी आग बुझ जाय, घरके लोगोंका खाना-पीना हो गया हो, कोई बाकी न हो, उस समय किसी उत्तम द्विजके घरमें, जहाँ लड़ाई-झगड़ा न हो, भिक्षाके लिये संन्यासीको जाना चाहिये। संन्यासी तीनों काल स्नान और भगवान् नारायणका ध्यान करे। और मनको जीतकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए प्रतिदिन प्रणवका जप करता रहे। अगर कोई लम्पट संन्यासी कभी एक व्यक्तिका अन्न खाकर रहने लगे तो दस हजार प्रायश्चित्त करनेपर भी उसका उद्धार नहीं दिखायी देता। ब्रह्मन्! यदि संन्यासी लोभवश केवल शरीरके ही पालन-

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥
अज्ञातगोत्रनामानं अन्यग्रामादुपागतम्।
विपश्चितोऽतिथिं प्राहुर्विष्णुवत् त प्रपूजयेत्॥
(ना० पूर्व० २७। ७२-७३)

† प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा—इस प्रकार कहता हुआ पाँच ग्रास ले।

उसको भोजन करनेवाला भी नरकगामी होता है। ब्रह्मन्! यदि निधनतिथिका मान पहले दिन एक दण्ड ही हो और दूसरे दिन वह अपराह्णतक व्याप्त हो तो विद्वान् पुरुषको दूसरे ही दिन श्राद्ध करना चाहिये। किन्तु मृत्युतिथि यदि दोनों दिन अपराह्णकालमें व्याप्त हो तो क्षयपक्षमे पूर्वतिथिको श्राद्धमें ग्रहण करना चाहिये और वृद्धिपक्षमे परतिथिको। यदि पहले दिन क्षयाहतिथि चार घड़ी हो और दूसरे दिन वह सायंकालतक व्याप्त हो तो श्राद्धके लिये दूसरे दिनवाली तिथि ही उत्तम मानी गयी है। द्विजोत्तम! निमन्त्रित ब्राह्मणोंके एकत्र होनेपर प्रायश्चित्तसे शुद्ध हृदयवाला श्राद्धकर्ता पुरुष उनसे श्राद्धके लिये आज्ञा ले। ब्राह्मणोंसे श्राद्धके लिये आज्ञा मिल जानेपर श्राद्धकर्ता पुरुष फिर उनमेंसे दोको विश्वेदेव श्राद्धके लिये और तीनको विधिपूर्वक पितृश्राद्धके लिये पुनः निमन्त्रित करे। अथवा देवश्राद्ध तथा पितृश्राद्धके लिये एक-एक ब्राह्मणको ही निमन्त्रित करे। श्राद्धके लिये आज्ञा लेकर एक-एक मण्डल बनावे। ब्राह्मणके लिये चौकोर, क्षत्रियके लिये त्रिकोण तथा वैश्यके लिये गोल मण्डल बनाना आवश्यक समझना चाहिये, और शूद्रको मण्डल न बनाकर केवल भूमिको सींच देना चाहिये। योग्य ब्राह्मणोंके अभावमे भाईको, पुत्रको अथवा अपने आपको ही श्राद्धमें नियुक्त करे। परतु वेदशास्त्रके ज्ञानसे रहित ब्राह्मणको श्राद्धमे नियुक्त न करे। ब्राह्मणोंके पैर धोकर उन्हें आचमन करावे और नियत आसनपर बैठाकर भगवान् विष्णुका स्मरण करते

हुए उनकी विधिपूर्वक पूजा करे। ब्राह्मणोंके बीचमे तथा श्राद्धमण्डपके द्वारदेशमे श्राद्धकर्ता पुरुष 'अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः।' इस ऋचाका उच्चारण करते हुए तिल बिखेरे। जौ और कुशोंद्वारा विश्वेदेवोंको आसन दे। हाथमें जौ और कुश लेकर कहे—'विश्वेषां देवानाम् इदम् आसनम्' ऐसा कहकर विश्वेदेवोके बैठनेके लिये आसनरूपसे उस कुशाको रख दे और प्रार्थना करे—हे विश्वेदेवो! आपलोग इस देवश्राद्धमे अपना क्षण (समय) दे और प्रतीक्षा करें। अक्षय्योदक और आसन समर्पणके वाक्यमें विश्वेदेवों और पितरोंके लिये षष्ठी विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये। आवाहन-वाक्यमें द्वितीया विभक्ति बतायी गयी है। अन्न समर्पणके वाक्यमें चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग होना चाहिये। शेष कार्य सम्बोधनपूर्वक करना चाहिये। कुशकी पवित्रीसे युक्त दो पात्र लेकर उनमें 'शं नो देवी' इत्यादि ऋचाका उच्चारण करके जल डाले। फिर 'यवोऽसि' इत्यादि मन्त्र बोलकर उसमें जव डाले। उसके बाद चुपचाप बिना मन्त्रके ही गन्ध और पुष्प छोड़ दे। इस प्रकार अर्घ्यपात्र तैयार हो जानेपर 'विश्वेदेवाः स' इत्यादि मन्त्रसे विश्वेदेवोंका आवाहन करे। तदनन्तर 'या दिव्या आपः' इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके एकाग्रचित्त हो पितृ और मातामहसम्बन्धी विश्वेदेवोंको संकल्पपूर्वक क्रमशः अर्घ्य दे। उसके बाद गन्ध, पत्र, पुष्प, यज्ञोपवीत, धूप, दीप आदिके द्वारा उन देवताओंका पूजन करे। तत्पश्चात् विश्वेदेवोंसे आज्ञा लेकर पितृगणोंका पूजन करे। उनके लिये सदा तिलयुक्त कुशोंवाला आसन देना चाहिये। उन्हे अर्घ्य देनेके लिये द्विज पूर्ववत् तीन पात्र रक्खे। 'शं नो देवी०' इत्यादि मन्त्रसे जल डालकर 'तिलोऽसि सोमदैवत्यो' इत्यादि मन्त्रसे तिल डाले। फिर 'उशन्तस्त्वा' इत्यादि मन्त्रद्वारा पितरोंका आवाहन करके ब्राह्मण एकाग्रचित्त हो 'या दिव्या आपः' इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके पूर्ववत् संकल्पपूर्वक पितरोंको समर्पित करे (अर्घ्यपात्रको उलटकर पितरोंके वामभागमें रखना चाहिये।) साधुशिरोमणे! तदनन्तर गन्ध, पत्र, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र और आभूषणसे अपनी शक्तिके अनुसार उन सबकी पूजा करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष घृतसहित अन्नका ग्रास ले 'अग्नौ करिष्ये' (अग्निमें होम करूँगा) ऐसा कहकर उन ब्राह्मणोसे इसके लिये आज्ञा ले। मुने! 'करवै'—अथवा 'करवाणि' (करूँ?) ऐसा कहकर श्राद्धकर्ताके पूछनेपर ब्राह्मण लोग

उसको भोजन करनेवाला भी नरकगामी होता है। ब्रह्मन्! यदि निधनतिथिका मान पहले दिन एक दण्ड ही हो और दूसरे दिन वह अपराह्णतक व्याप्त हो तो विद्वान् पुरुषको दूसरे ही दिन श्राद्ध करना चाहिये। किन्तु मृत्युतिथि यदि दोनों दिन अपराह्णकालमें व्याप्त हो तो क्षयपक्षमे पूर्वतिथिको श्राद्धमें ग्रहण करना चाहिये और वृद्धिपक्षमे परतिथिको। यदि पहले दिन क्षयाहतिथि चार घड़ी हो और दूसरे दिन वह सायंकालतक व्याप्त हो तो श्राद्धके लिये दूसरे दिनवाली तिथि ही उत्तम मानी गयी है। द्विजोत्तम! निमन्त्रित ब्राह्मणोंके एकत्र होनेपर प्रायश्चित्तसे शुद्ध हृदयवाला श्राद्ध-कर्ता पुरुष उनसे श्राद्धके लिये आज्ञा ले। ब्राह्मणोंसे श्राद्धके लिये आज्ञा मिल जानेपर श्राद्धकर्ता पुरुष फिर उनमेंसे दोको विश्वेदेव श्राद्धके लिये और तीनको विधिपूर्वक पितृश्राद्धके लिये पुनः निमन्त्रित करे। अथवा देवश्राद्ध तथा पितृश्राद्धके लिये एक-एक ब्राह्मणको ही निमन्त्रित करे। श्राद्धके लिये आज्ञा लेकर एक-एक मण्डल बनावे। ब्राह्मणके लिये चौकोर, क्षत्रियके लिये त्रिकोण तथा वैश्यके लिये गोल मण्डल बनाना आवश्यक समझना चाहिये, और शूद्रको मण्डल न बनाकर केवल भूमिको सींच देना चाहिये। योग्य ब्राह्मणोंके अभावमे भाईको, पुत्रको अथवा अपने आपको ही श्राद्धमें नियुक्त करे। परतु वेदशास्त्रके ज्ञानसे रहित ब्राह्मणको श्राद्धमे नियुक्त न करे। ब्राह्मणोंके पैर धोकर उन्हें आचमन करावे और नियत आसनपर बैठाकर भगवान् विष्णुका स्मरण करते

हुए उनकी विधिपूर्वक पूजा करे। ब्राह्मणोंके बीचमे तथा श्राद्धमण्डपके द्वारदेशमे श्राद्धकर्ता पुरुष 'अपहता असुरा रक्षाऽसि वेदिषदः।' इस ऋचाका उच्चारण करते हुए तिल बिखेरे। जौ और कुशोंद्वारा विश्वेदेवोंको आसन दे। हाथमें जौ और कुश लेकर कहे—'विश्वेषां देवानाम् इदम् आसनम्' ऐसा कहकर विश्वेदेवोंके बैठनेके लिये आसनरूपसे उक्त कुशाको रख दे और प्रार्थना करे—हे विश्वेदेवो! आपलोग इस देवश्राद्धमे अपना क्षण (समय) दें और प्रतीक्षा करें। अक्षय्योदक और आसन समर्पणके वाक्यमें विश्वेदेवों और पितरोंके लिये षष्ठी विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये। आवाहन-वाक्यमें द्वितीया विभक्ति बतायी गयी है। अन्न समर्पणके वाक्यमें चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग होना चाहिये। शेष कार्य सम्बोधनपूर्वक करना चाहिये। कुशकी पवित्रीसे युक्त दो पात्र लेकर उनमें 'शं नो देवी' इत्यादि ऋचाका उच्चारण करके जल डाले। फिर 'यवोऽसि' इत्यादि मन्त्र बोलकर उसमें जव डाले। उसके बाद चुपचाप बिना मन्त्रके ही गन्ध और पुष्प छोड़ दे। इस प्रकार अर्घ्यपात्र तैयार हो जानेपर 'विश्वेदेवाः स' इत्यादि मन्त्रसे विश्वेदेवोंका आवाहन करे। तदनन्तर 'या दिव्या आपः' इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके एकाग्रचित्त हो पितृ और मातामहसम्बन्धी विश्वेदेवोंको संकल्पपूर्वक क्रमशः अर्घ्य दे। उसके बाद गन्ध, पत्र, पुष्प, यज्ञोपवीत, धूप, दीप आदिके द्वारा उन देवताओंका पूजन करे। तत्पश्चात् विश्वेदेवोंसे आज्ञा लेकर पितृगणोंका पूजन करे। उनके लिये सदा तिलयुक्त कुशोंवाला आसन देना चाहिये। उन्हे अर्घ्य देनेके लिये द्विज पूर्ववत् तीन पात्र रक्खे। 'शं नो देवी०' इत्यादि मन्त्रसे जल डालकर 'तिलोऽसि सोमदैवत्यो' इत्यादि मन्त्रसे तिल डाले। फिर 'उशन्तस्त्वा' इत्यादि मन्त्रद्वारा पितरोंका आवाहन करके ब्राह्मण एकाग्रचित्त हो 'या दिव्या आपः' इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके पूर्ववत् संकल्पपूर्वक पितरोंको समर्पित करे (अर्घ्यपात्रको उलटकर पितरोंके वामभागमें रखना चाहिये।) साधुशिरोमणे! तदनन्तर गन्ध, पत्र, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र और आभूषणसे अपनी शक्तिके अनुसार उन सबकी पूजा करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष घृतसहित अन्नका ग्रास ले 'अग्नौ करिष्ये' (अग्निमें होम करूँगा) ऐसा कहकर उन ब्राह्मणोसे इसके लिये आज्ञा ले। मुने! 'करवै'—अथवा 'करवाणि' (करूँ ?) ऐसा कहकर श्राद्धकर्ताके पूछनेपर ब्राह्मण लोग

त्रिमधु[1], त्रिसुपर्ण[2], पवमानसूक्त तथा यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंका जप करे। अन्यान्य पुण्यदायक प्रसङ्गोंका चिन्तन करे। इतिहास, पुराण तथा धर्मशास्त्रोंका भी पाठ करे। नारदजी! जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करें तबतक इन सबका जप या पाठ करना चाहिये। जब वे भोजन कर लें, उस समय परोसनेवाले पात्रमे बचा हुआ उच्छिष्टके समीप भूमिपर बिखेर दे। यह विकिरान्न[3] कहलाता है।

उस समय 'मधुवाता ऋतायते' इत्यादि सूक्तका जप करे। नारदजी! इसके बाद श्राद्धकर्ता पुरुष स्वयं दोनों पैर धोकर भलीभाँति आचमन कर ले। फिर ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर पिण्डदान करे। स्वस्तिवाचन कराकर अक्षय्योदक दे (तर्पण करें)। उसे देकर एकाग्रचित्त होकर ब्राह्मणोंका अभिवादन करे। उलटे हुए अर्घ्यपात्रोको सीधा करके ब्राह्मणोको दक्षिणा दे और उनसे स्वस्तिवाचनपूर्वक आशीर्वाद ले। जो द्विज अर्घ्यपात्रको हिलाये या सीधा किये विना (दक्षिणा लेते और) स्वस्तिवाचन करते हैं, उनके पितर एक वर्षतक उच्छिष्ट भोजन करते हैं। स्मृति-कथित 'गोत्रं नो वर्धताम्' 'दातारो नोऽभिवर्धन्ताम्' इत्यादि वचन कहकर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद ग्रहण करे। तदनन्तर उन्हे प्रणाम करे और उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा, गन्ध एवं ताम्बूल अर्पित करे। उलटे हुए अर्घ्यपात्रको उत्तान करनेके बाद हाथमें लेकर स्वधाका उच्चारण करे। फिर 'वाजे वाजे' इत्यादि ऋचाको पढ़कर पितरोंका,देवताओका विसर्जन करे।

श्राद्ध-भोजन करनेवाला ब्राह्मण तथा श्राद्धकर्ता यजमान दोनों उस रातमें मैथुनका त्याग करें। उस दिन स्वाध्याय तथा रास्ता चलनेका कार्य यत्नपूर्वक छोड़ दे। जो कहीं जानेके लिये यात्रा कर रहा हो, जिसे कोई रोग हो तथा जो धनहीन हो, वह पुरुष पाक न बनाकर कच्चे अन्नसे श्राद्ध करे और जिसकी पत्नी रजस्वला होनेसे स्पर्श करने योग्य न हो वह दक्षिणारूपसे सुवर्ण देकर श्राद्धकार्य सम्पन्न करे। यदि धनका अभाव हो और ब्राह्मण भी न मिलें तो बुद्धिमान् पुरुष केवल अन्नका पाक बनाकर पितृसूक्तके मन्त्रसे उसका होम करे। ब्रह्मन्! यदि उसके पास अन्नमय हविष्यका अभाव हो तो यथाशक्ति घास लेआकर पितरोंकी तृप्तिके उद्देश्यसे गौओंको अर्पण करे। अथवा स्नान करके विधिपूर्वक तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करे। अथवा विद्वान् पुरुष निर्जन वनमें चला जाय और मै महापापी दरिद्र हूँ—यह कहते हुए उच्चस्वरसे रुदन करे। मुनीश्वर! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करते हैं वे सम्पत्तिशाली होते हैं और उनकी संतान-परम्पराका नाश नहीं होता। जो श्राद्धमें पितरोंका पूजन करते हैं, उनके द्वारा साक्षात् भगवान् विष्णु पूजित होते हैं और जगदीश्वर भगवान् विष्णुके पूजित होनेपर सब देवता संतुष्ट हो जाते हैं। देवता, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सिद्ध और मनुष्यके रूपमें सनातन भगवान् विष्णु ही विराजमान हैं। उन्हींसे यह स्थावर-जगमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है। अतः दाता और भोक्ता सब भगवान् विष्णु ही हैं। भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्के आधार सर्वभूतस्वरूप तथा अविनाशी हैं। उनके स्वभावकी कहीं भी तुलना नहीं है, वे ही हव्य और कव्यके भोक्ता हैं। एकमात्र भगवान् जनार्दन ही परब्रह्म परमात्मा कहलाते हैं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार तुमसे श्राद्धकी उत्तम विधिका वर्णन किया गया। इस विधिसे श्राद्ध करनेवालोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो श्रेष्ठ द्विज श्राद्धकालमें भक्तिपूर्वक इस प्रसंगका पाठ करता है, उसके पितर संतुष्ट होते हैं और संतति बढ़ती है।

---

१. 'मधुवाता' इत्यादि तीन ऋचाएँ।

२. 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाक।

३. विकिरान्न उन पितरोंका भाग है जो आगमें जलकर मर गये हों अथवा जिनका दाह-संस्कार न हुआ हो। पितृसम्बन्धी ब्राह्मणके आगे उनके जूठनके समीप दक्षिणाग्र कुश बिछाकर परोसनेकी थालीमें बचे अन्नको बिखेर देना चाहिये। फिर तिल और जल लेकर निम्नाङ्कित श्लोक पढ़ते हुए वह अन्न समर्पित करना चाहिये।

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तोयेन तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥

(याज्ञ० आचार० २४१वें श्लोककी मिताक्षरा टीका)

त्रिमधु[1], त्रिसुपर्ण[2], पवमानसूक्त तथा यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंका जप करे। अन्यान्य पुण्यदायक प्रसङ्गोंका चिन्तन करे। इतिहास, पुराण तथा धर्मशास्त्रोंका भी पाठ करे। नारदजी! जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करें तबतक इन सबका जप या पाठ करना चाहिये। जब वे भोजन कर लें, उस समय परोसनेवाले पात्रमे बचा हुआ उच्छिष्टके समीप भूमिपर बिखेर दे। यह विकिरान्न[3] कहलाता है।

उस समय 'मधुवाता ऋतायते' इत्यादि सूक्तका जप करे। नारदजी! इसके बाद श्राद्धकर्ता पुरुष स्वयं दोनों पैर धोकर भलीभाँति आचमन कर ले। फिर ब्राह्मणोके आचमन कर लेनेपर पिण्डदान करे। स्वस्तिवाचन कराकर अक्षय्योदक दे (तर्पण करें)। उसे देकर एकाग्रचित्त होकर ब्राह्मणोंका अभिवादन करे। उलटे हुए अर्घ्यपात्रोको सीधा करके ब्राह्मणोको दक्षिणा दे और उनसे स्वस्तिवाचनपूर्वक आशीर्वाद ले। जो द्विज अर्घ्यपात्रको हिलाये या सीधा किये विना (दक्षिणा लेते और) स्वस्तिवाचन करते हैं, उनके पितर एक वर्षतक उच्छिष्ट भोजन करते हैं। स्मृति-कथित 'गोत्रं नो वर्धताम्' 'दातारो नोऽभिवर्धन्ताम्' इत्यादि वचन कहकर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद ग्रहण करे। तदनन्तर उन्हे प्रणाम करे और उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा, गन्ध एवं ताम्बूल अर्पित करे। उलटे हुए अर्घ्यपात्रको उत्तान करनेके बाद हाथमें लेकर स्वधाका उच्चारण करे। फिर 'वाजे वाजे' इत्यादि ऋचाको पढ़कर पितरोंका, देवताओका विसर्जन करे।

श्राद्ध-भोजन करनेवाला ब्राह्मण तथा श्राद्धकर्ता यजमान दोनों उस रातमें मैथुनका त्याग करें। उस दिन स्वाध्याय तथा रास्ता चलनेका कार्य यत्नपूर्वक छोड़ दे। जो कहीं जानेके लिये यात्रा कर रहा हो, जिसे कोई रोग हो तथा जो धनहीन हो, वह पुरुष पाक न बनाकर कच्चे अन्नसे श्राद्ध करे और जिसकी पत्नी रजस्वला होनेसे स्पर्श करने योग्य न हो वह दक्षिणारूपसे सुवर्ण देकर श्राद्धकार्य सम्पन्न करे। यदि धनका अभाव हो और ब्राह्मण भी न मिलें तो बुद्धिमान् पुरुष केवल अन्नका पाक बनाकर पितृसूक्तके मन्त्रसे उसका होम करे। ब्रह्मन्! यदि उसके पास अन्नमय हविष्यका अभाव हो तो यथाशक्ति घास लेआकर पितरोंकी तृप्तिके उद्देश्यसे गौओंको अर्पण करे। अथवा स्नान करके विधिपूर्वक तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करे। अथवा विद्वान् पुरुष निर्जन वनमें चला जाय और मै महापापी दरिद्र हूँ—यह कहते हुए उच्चस्वरसे रुदन करे। मुनीश्वर! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करते हैं वे सम्पत्तिशाली होते हैं और उनकी संतान-परम्पराका नाश नहीं होता। जो श्राद्धमें पितरोंका पूजन करते हैं, उनके द्वारा साक्षात् भगवान् विष्णु पूजित होते हैं और जगदीश्वर भगवान् विष्णुके पूजित होनेपर सब देवता संतुष्ट हो जाते हैं। देवता, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सिद्ध और मनुष्यके रूपमें सनातन भगवान् विष्णु ही विराजमान हैं। उन्हींसे यह स्थावर-जगमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है। अतः दाता और भोक्ता सब भगवान् विष्णु ही हैं। भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्के आधार सर्वभूतस्वरूप तथा अविनाशी हैं। उनके स्वभावकी कहीं भी तुलना नहीं है, वे ही हव्य और कव्यके भोक्ता हैं। एकमात्र भगवान् जनार्दन ही परब्रह्म परमात्मा कहलाते हैं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार तुमसे श्राद्धकी उत्तम विधिका वर्णन किया गया। इस विधिसे श्राद्ध करनेवालोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो श्रेष्ठ द्विज श्राद्धकालमें भक्तिपूर्वक इस प्रसंगका पाठ करता है, उसके पितर संतुष्ट होते हैं और संतति बढ़ती है।

---

१. 'मधुवाता' इत्यादि तीन ऋचाएँ।

२. 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाक।

३. विकिरान्न उन पितरोंका भाग है जो आगमें जलकर मर गये हों अथवा जिनका दाह-संस्कार न हुआ हो। पितृसम्बन्धी ब्राह्मणके आगे उनके जूठनके समीप दक्षिणाग्र कुश बिछाकर परोसनेकी थालीमें बचे अन्नको बिखेर देना चाहिये। फिर तिल और जल लेकर निम्नाङ्कित श्लोक पढ़ते हुए वह अन्न समर्पित करना चाहिये।

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तोयेन तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥

(याज्ञ० आचार० २४१वें श्लोककी मिताक्षरा टीका)

अपराह्णव्यापिनी न हो तब (पूर्व दिनकी) सायंकाल-व्यापिनी सिनीवाली तिथिको ही श्राद्धमें ग्रहण करना चाहिये। यदि तिथिकी अतिशय वृद्धि होनेपर वह दूसरे दिन अपराह्ण-कालतक चली गयी हो तो चतुर्दशी-विद्धा अमावास्याको त्याग दे और कुहूको ही श्राद्धकर्ममें ग्रहण करे। यदि अमावास्या तिथि एक मध्याह्नसे लेकर दूसरे मध्याह्नतक व्याप्त हो तो इच्छानुसार पूर्व या पर-दिनकी तिथिको ग्रहण करे।

मुनिश्रेष्ठ! अब मैं सम्पूर्ण पर्वोंपर होनेवाले अन्वाधान (अग्निस्थापन) का वर्णन करता हूँ। प्रतिपदाके दिन याग करना चाहिये। पर्वके अन्तिम चतुर्थांश और प्रतिपदाके प्रथम तीन अंशको मनीषी पुरुषोंने यागका समय बताया है। यागका आरम्भ प्रातःकाल करना चाहिये। विप्रवर! यदि अमावास्या और पूर्णिमा दोनों मध्याह्नकालमें व्याप्त हों तो दूसरे ही दिन यागका मुख्य काल नियत किया जाता है। यदि अमावास्या और पूर्णिमा दूसरे दिन सङ्गवकाल (प्रातःकालसे छः घड़ी) के बाद हो तो दूसरे ही दिन पुण्यकाल होता है। तिथिक्षयमे भी ऐसी ही व्यवस्था जाननी चाहिये। सभी लोगोंको दशमीरहित एकादशी तिथि व्रतमें ग्रहण करनी चाहिये। दशमीयुक्त एकादशी तीन जन्मोंके कमाये हुए पुण्यका नाश कर देती है। यदि एकादशी द्वादशीमें एक कला भी प्रतीत हो और सम्पूर्ण दिन द्वादशी हो और द्वादशी भी त्रयोदशीमें मिली हुई हो तो दूसरे दिनकी तिथि (द्वादशी) ही उत्तम मानी गयी है। यदि सम्पूर्ण दिन शुद्ध एकादशी हो और द्वादशीमे भी उसका संयोग प्राप्त होता हो तथा रात्रिके अन्तमें त्रयोदशी आ जाय तो उस विषयमें निर्णय बतलाता हूँ। पहले दिनकी एकादशी गृहस्थोको करनी चाहिये और दूसरे दिनकी विरक्तोंको। यदि कलाभर भी द्वादशी न रहनेसे पारणाका अवसर न मिलता हो तो उस दशामे दशमीविद्धा एकादशीको भी उपवास-व्रत करना चाहिये। यदि शुक्ल या कृष्णपक्षमें दो एकादशियाँ हों तो पहली गृहस्थोंके लिये और दूसरी विरक्त यतियोंके लिये ग्राह्य मानी गयी है। यदि दिनभर दशमीयुक्त एकादशी हो और दिनकी समाप्तिके समय द्वादशीमें भी कुछ एकादशी हो तो सबके लिये दूसरे ही दिन (द्वादशी) व्रत बताया गया है। यदि दूसरे दिन द्वादशी न हो तो पहले दिनकी दशमीविद्धा एकादशी भी व्रतमें ग्राह्य है। और यदि दूसरे दिन द्वादशी है तो पहले दिनकी दशमीविद्धा एकादशी भी निषिद्ध ही है (इसलिये ऐसी परिस्थितिमें द्वादशीको व्रत करना चाहिये)। यदि एक ही दिन एकादशी, द्वादशी तथा रातके अन्तिम भागमें त्रयोदशी भी आ जाय तो त्रयोदशीमे पारणा करनेपर बारह द्वादशियोंका पुण्य होता है। यदि द्वादशीके दिन कलामात्र ही एकादशी हो और त्रयोदशीमें द्वादशीका योग हो या न हो तो गृहस्थोंके पहले दिनकी विद्धा एकादशी भी व्रतमें ग्रहण करनी चाहिये। और विरक्त साधुओं तथा विधवाओंको दूसरे दिनकी तिथि (द्वादशी) स्वीकार करनी चाहिये। यदि पूरे दिनभर शुद्ध एकादशी हो, द्वादशीमें उसका तनिक भी योग न हो तथा द्वादशी त्रयोदशीमें संयुक्त हो तो वहाँ कैसे व्रत रहना चाहिये—इसका उत्तर देते हैं—गृहस्थोंको पूर्वकी (एकादशी) तिथिमें व्रती रहना चाहिये और विरक्त साधुओंको दूसरे दिनकी (द्वादशी) तिथिमे। कोई-कोई विद्वान् ऐसा कहते हैं कि सब लोगोंको दूसरे दिनकी तिथिमे ही भक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिये। जब एकादशी दशमीसे विद्ध हो, द्वादशीमे उसकी प्रतीति न हो और द्वादशी त्रयोदशीसे संयुक्त हो तो उस दशामें सबको शुद्ध द्वादशी तिथिमें उपवास करना चाहिये—इसमे संशय नहीं है। कुछ लोग पूर्व तिथिमे व्रत कहते हैं; किंतु उनका मत ठीक नहीं है।

जो रविवारको दिनमे, अमावास्या और पूर्णिमाको रातमें, चतुर्दशी और अष्टमी तिथिको दिनमें तथा एकादशी तिथिको दिन और रात दोनोमें भोजन कर लेता है, उसे प्रायश्चित्तरूपमे चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। सूर्यग्रहण प्राप्त होनेपर तीन पहर पहलेसे ही भोजन न करे। यदि कोई कर लेता है तो वह मदिरा पीनेवालेके समान होता है। मुनिश्रेष्ठ! यदि अग्न्याधान और दर्शपौर्णमास आदि यागके बीच चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण हो जाय तो यज्ञकर्ता पुरुषोको प्रायश्चित्त करना चाहिये। ब्रह्मन्! चन्द्रग्रहणमे 'दशमे सोमः' 'आप्यायस्व' तथा 'सोमपास्ते' इन तीन मन्त्रोंसे हवन करें। और सूर्यग्रहण होनेपर हवन करनेके लिये 'उदुत्यं जातवेदसम्' 'आसत्येन' 'उद्वय तमसः'—ये तीन मन्त्र बताये गये हैं। जो पण्डित इस प्रकार स्मृतिमार्गसे तिथिका निर्णय करके व्रत आदि करता है उसे अक्षय फल प्राप्त होता है। वेदमें जिसका प्रतिपादन किया गया है वह धर्म है। धर्मसे भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं। अतः धर्म-परायण मनुष्य भगवान् विष्णुके परम धाममें जाते हैं। जो धर्माचरण करना चाहते हैं, वे साक्षात् भगवान् कृष्णके स्वरूप हैं। अतः संसाररूपी रोग उन्हे कोई बाधा नहीं पहुँचाता।

अपराह्णव्यापिनी न हो तब (पूर्व दिनकी) सायंकाल-व्यापिनी सिनीवाली तिथिको ही श्राद्धमें ग्रहण करना चाहिये। यदि तिथिकी अतिशय वृद्धि होनेपर वह दूसरे दिन अपराह्ण-कालतक चली गयी हो तो चतुर्दशी-विद्धा अमावास्याको त्याग दे और कुहूको ही श्राद्धकर्ममें ग्रहण करे। यदि अमावास्या तिथि एक मध्याह्नसे लेकर दूसरे मध्याह्नतक व्याप्त हो तो इच्छानुसार पूर्व या पर-दिनकी तिथिको ग्रहण करे।

मुनिश्रेष्ठ! अब मैं सम्पूर्ण पर्वोंपर होनेवाले अन्वाधान (अग्निस्थापन) का वर्णन करता हूँ। प्रतिपदाके दिन याग करना चाहिये। पर्वके अन्तिम चतुर्थांश और प्रतिपदाके प्रथम तीन अंशको मनीषी पुरुषोंने यागका समय बताया है। यागका आरम्भ प्रातःकाल करना चाहिये। विप्रवर! यदि अमावास्या और पूर्णिमा दोनों मध्याह्नकालमें व्याप्त हों तो दूसरे ही दिन यागका मुख्य काल नियत किया जाता है। यदि अमावास्या और पूर्णिमा दूसरे दिन सङ्गवकाल (प्रातःकालसे छः घडी) के बाद हो तो दूसरे ही दिन पुण्यकाल होता है। तिथिक्षयमे भी ऐसी ही व्यवस्था जाननी चाहिये। सभी लोगोंको दशमीरहित एकादशी तिथि व्रतमें ग्रहण करनी चाहिये। दशमीयुक्त एकादशी तीन जन्मोंके कमाये हुए पुण्यका नाश कर देती है। यदि एकादशी द्वादशीमें एक कला भी प्रतीत हो और सम्पूर्ण दिन द्वादशी हो और द्वादशी भी त्रयोदशीमें मिली हुई हो तो दूसरे दिनकी तिथि (द्वादशी) ही उत्तम मानी गयी है। यदि सम्पूर्ण दिन शुद्ध एकादशी हो और द्वादशीमे भी उसका संयोग प्राप्त होता हो तथा रात्रिके अन्तमें त्रयोदशी आ जाय तो उस विषयमें निर्णय बतलाता हूँ। पहले दिनकी एकादशी गृहस्थोको करनी चाहिये और दूसरे दिनकी विरक्तोंको। यदि कलाभर भी द्वादशी न रहनेसे पारणाका अवसर न मिलता हो तो उस दशामे दशमीविद्धा एकादशीको भी उपवास-व्रत करना चाहिये। यदि शुक्ल या कृष्णपक्षमें दो एकादशियाँ हों तो पहली गृहस्थोंके लिये और दूसरी विरक्त यतियोंके लिये ग्राह्य मानी गयी है। यदि दिनभर दशमीयुक्त एकादशी हो और दिनकी समाप्तिके समय द्वादशीमें भी कुछ एकादशी हो तो सबके लिये दूसरे ही दिन (द्वादशी) व्रत बताया गया है। यदि दूसरे दिन द्वादशी न हो तो पहले दिनकी दशमीविद्धा एकादशी भी व्रतमें ग्राह्य है। और यदि दूसरे दिन द्वादशी है तो पहले दिनकी दशमीविद्धा एकादशी भी निषिद्ध ही है (इसलिये ऐसी परिस्थितिमें द्वादशीको व्रत करना चाहिये)। यदि एक ही दिन एकादशी, द्वादशी तथा रातके अन्तिम भागमें त्रयोदशी भी आ जाय तो त्रयोदशीमे पारणा करनेपर बारह द्वादशियोंका पुण्य होता है। यदि द्वादशीके दिन कलामात्र ही एकादशी हो और त्रयोदशीमें द्वादशीका योग हो या न हो तो गृहस्थोंके पहले दिनकी विद्धा एकादशी भी व्रतमें ग्रहण करनी चाहिये। और विरक्त साधुओं तथा विधवाओंको दूसरे दिनकी तिथि (द्वादशी) स्वीकार करनी चाहिये। यदि पूरे दिनभर शुद्ध एकादशी हो, द्वादशीमें उसका तनिक भी योग न हो तथा द्वादशी त्रयोदशीमें संयुक्त हो तो वहाँ कैसे व्रत रहना चाहिये—इसका उत्तर देते हैं—गृहस्थोंको पूर्वकी (एकादशी) तिथिमें व्रती रहना चाहिये और विरक्त साधुओंको दूसरे दिनकी (द्वादशी) तिथिमे। कोई-कोई विद्वान् ऐसा कहते हैं कि सब लोगोंको दूसरे दिनकी तिथिमे ही भक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिये। जब एकादशी दशमीसे विद्ध हो, द्वादशीमे उसकी प्रतीति न हो और द्वादशी त्रयोदशीसे संयुक्त हो तो उस दशामें सबको शुद्ध द्वादशी तिथिमें उपवास करना चाहिये—इसमे संशय नहीं है। कुछ लोग पूर्व तिथिमे व्रत कहते हैं; किंतु उनका मत ठीक नहीं है।

जो रविवारको दिनमे, अमावास्या और पूर्णिमाको रातमें, चतुर्दशी और अष्टमी तिथिको दिनमें तथा एकादशी तिथिको दिन और रात दोनोंमें भोजन कर लेता है, उसे प्रायश्चित्तरूपमे चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। सूर्यग्रहण प्राप्त होनेपर तीन पहर पहलेसे ही भोजन न करे। यदि कोई कर लेता है तो वह मदिरा पीनेवालेके समान होता है। मुनिश्रेष्ठ! यदि अग्न्याधान और दर्शपौर्णमास आदि यागके बीच चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण हो जाय तो यज्ञकर्ता पुरुषोको प्रायश्चित्त करना चाहिये। ब्रह्मन्! चन्द्रग्रहणमे 'दशमे सोमः' 'आप्यायस्व' तथा 'सोमपास्ते' इन तीन मन्त्रोंसे हवन करें। और सूर्यग्रहण होनेपर हवन करनेके लिये 'उदुत्यं जातवेदसम्' 'आसत्येन' 'उद्वय तमसः'—ये तीन मन्त्र बताये गये हैं। जो पण्डित इस प्रकार स्मृतिमार्गसे तिथिका निर्णय करके व्रत आदि करता है उसे अक्षय फल प्राप्त होता है। वेदमें जिसका प्रतिपादन किया गया है वह धर्म है। धर्मसे भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं। अतः धर्म-परायण मनुष्य भगवान् विष्णुके परम धाममें जाते हैं। जो धर्माचरण करना चाहते हैं, वे साक्षात् भगवान् कृष्णके स्वरूप हैं। अतः संसाररूपी रोग उन्हे कोई बाधा नहीं पहुँचाता।

चान्द्रायण व्रत कराने चाहिये। शराबसे छुवाये हुए पात्रमें भोजन करना, जिसमें कभी शराब रक्खी गयी हो उस पात्रका जल पीना तथा शराबसे भीगी हुई वस्तुको खाना, यह सब शराब पीनेके ही समान बताया गया है। ताड़, कटहल, अंगूर, खजूर और महुआसे तैयार की हुई तथा पत्थरसे आटेको पीसकर बनायी हुई अरिष्ट, मैरेय और नारियलसे निकाली हुई, गुड़की बनी हुई तथा माध्वी—ये ग्यारह प्रकारकी मदिराएँ बतायी गयी हैं। (उपर्युक्त तीन प्रकारकी मदिराके ही ये ग्यारह भेद हैं।) इनमेंसे किसी भी मद्यको ब्राह्मण कभी न पीवें। यदि द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अज्ञानवश इनमेंसे किसी एकको पी ले तो फिरसे अपना उपनयन-संस्कार कराकर तप्तकृच्छ्र व्रतका आचरण करे।

जो सामने या परोक्षमें बलपूर्वक या चोरीसे दूसरोंके धनको ले लेता है, उसका यह कर्म विद्वान् पुरुषोंद्वारा स्तेय (चोरी) कहा गया है। मनु आदिने सुवर्णके मापकी परिभाषा इस प्रकार की है। विप्रवर ! वह मान (माप) आगे कहे जानेवाले प्रायश्चित्तकी उक्तिका साधन है। अतः उसका वर्णन करता हूँ; सुनिये ! झरोखेके छिद्रसे घरमें आयी हुई सूर्यकी जो किरणें हैं, उनमेंसे जो उत्पन्न सूक्ष्म धूलिकण उड़ता दिखायी देता है, उसे विद्वान् पुरुष त्रसरेणु कहते हैं। वही त्रसरेणुका माप है। आठ त्रसरेणुओंका एक निष्क होता है और तीन निष्कोंका एक राजसर्षप (राई) बताया गया है। तीन राजसर्षपोंका एक गौरसर्षप (पीली सरसों) होता है। और छः गौरसर्षपोंका एक यव कहा जाता है। तीन यवका एक कृष्णल होता है। पाँच कृष्णलका एक माष (माशा) माना गया है। नारदजी ! १६ माशेके बराबर एक सुवर्ण होता है। यदि कोई मूर्खतासे सुवर्णके बराबर ब्राह्मणके धनका अर्थात् १६ माशा सोनेका अपहरण कर लेता है तो उसे पूर्ववत् १२ वर्षोंतक कपाल और ध्वजके चिह्नोंसे रहित ब्रह्महत्या-व्रत करना चाहिये। गुरुजनों, यज्ञ करनेवाले धर्मनिष्ठ पुरुषों तथा श्रोत्रिय ब्राह्मणोंके सुवर्णको चुरा लेनेपर इस प्रकार प्रायश्चित्त करे। पहले उस पापके कारण बहुत पश्चात्ताप करे, फिर सम्पूर्ण शरीरमें घीका लेप करे और कंडेसे अपने शरीरको ढककर

आग लगाकर जल मरे। तभी वह उस चोरीसे मुक्त होता है। यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मणके धनको चुरा ले और पश्चात्ताप होनेपर फिर उसे वहीं लौटा दे तो उसके लिये प्रायश्चित्त-की विधि मुझसे सुनिये। ब्रह्मर्षे ! वह बारह दिनोंतक उपवासपूर्वक सान्तपन व्रत करके शुद्ध होता है। रत्न, सिंहासन, मनुष्य, स्त्री, दूध देनेवाली गाय तथा भूमि आदि पदार्थ भी स्वर्णके ही समान माने गये हैं। इनकी चोरी करनेपर आधा प्रायश्चित्त कहा है। राजसर्षप (राई) बराबर सोनेकी चोरी करनेपर चार प्राणायाम करने चाहिये। गौरसर्षप बराबर स्वर्णका अपहरण कर लेनेपर विद्वान् पुरुष स्नान करके विधिपूर्वक ८००० गायत्रीका जप करे। जौ बराबर स्वर्णको चुरानेपर द्विज यदि प्रातःकालसे लेकर सायंकालतक वेदमाता गायत्रीका जप करे तो उससे शुद्ध होता है। कृष्णल बराबर स्वर्णकी चोरी करनेपर मनुष्य सान्तपन व्रत करे। यदि एक माशाके बराबर सोना चुरा ले तो वह एक वर्षतक गोमूत्रमे पकाया हुआ जौ खाकर रहे तो शुद्ध होता है। मुनीश्वर ! पूरे १६ माशा सोनेकी चोरी करनेपर मनुष्य एकाग्रचित्त हो १२ वर्षोंतक ब्रह्महत्याका व्रत करे।

अब गुरुपत्नीगामी पुरुषोंके लिये प्रायश्चित्तका वर्णन किया जाता है। यदि मनुष्य अज्ञानवश माता अथवा सौतेली माता-से समागम कर ले तो लोगोंपर अपना पाप प्रकट करते हुए

चान्द्रायण व्रत कराने चाहिये। शराबसे छुवाये हुए पात्रमें भोजन करना, जिसमें कभी शराब रक्खी गयी हो उस पात्रका जल पीना तथा शराबसे भीगी हुई वस्तुको खाना, यह सब शराब पीनेके ही समान बताया गया है। ताड़, कटहल, अंगूर, खजूर और महुआसे तैयार की हुई तथा पत्थरसे आटेको पीसकर बनायी हुई अरिष्ट, मैरेय और नारियलसे निकाली हुई, गुड़की बनी हुई तथा माध्वी—ये ग्यारह प्रकारकी मदिराएँ बतायी गयी हैं। (उपर्युक्त तीन प्रकारकी मदिराके ही ये ग्यारह भेद हैं।) इनमेंसे किसी भी मद्यको ब्राह्मण कभी न पीवें। यदि द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अज्ञानवश इनमेंसे किसी एकको पी ले तो फिरसे अपना उपनयन-संस्कार कराकर तप्तकृच्छ्र व्रतका आचरण करे।

जो सामने या परोक्षमें बलपूर्वक या चोरीसे दूसरोंके धनको ले लेता है, उसका यह कर्म विद्वान् पुरुषोंद्वारा स्तेय (चोरी) कहा गया है। मनु आदिने सुवर्णके मापकी परिभाषा इस प्रकार की है। विप्रवर! वह मान (माप) आगे कहे जानेवाले प्रायश्चित्तकी उक्तिका साधन है। अतः उसका वर्णन करता हूँ; सुनिये! झरोखेके छिद्रसे घरमें आयी हुई सूर्यकी जो किरणें हैं, उनमेंसे जो उत्पन्न सूक्ष्म धूलिकण उड़ता दिखायी देता है, उसे विद्वान् पुरुष त्रसरेणु कहते हैं। वही त्रसरेणुका माप है। आठ त्रसरेणुओंका एक निष्क होता है और तीन निष्कोंका एक राजसर्षप (राई) बताया गया है। तीन राजसर्षपोंका एक गौरसर्षप (पीली सरसों) होता है। और छः गौरसर्षपोंका एक यव कहा जाता है। तीन यवका एक कृष्णल होता है। पाँच कृष्णलका एक माष (माशा) माना गया है। नारदजी! १६ माशेके बराबर एक सुवर्ण होता है। यदि कोई मूर्खतासे सुवर्णके बराबर ब्राह्मणके धनका अर्थात् १६ माशा सोनेका अपहरण कर लेता है तो उसे पूर्ववत् १२ वर्षोंतक कपाल और ध्वजके चिह्नोंसे रहित ब्रह्महत्या-व्रत करना चाहिये। गुरुजनों, यज्ञ करनेवाले धर्मनिष्ठ पुरुषों तथा श्रोत्रिय ब्राह्मणोंके सुवर्णको चुरा लेनेपर इस प्रकार प्रायश्चित्त करे। पहले उस पापके कारण बहुत पश्चात्ताप करे, फिर सम्पूर्ण शरीरमें घीका लेप करे और कंडेसे अपने शरीरको ढककर

आग लगाकर जल मरे। तभी वह उस चोरीसे मुक्त होता है। यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मणके धनको चुरा ले और पश्चात्ताप होनेपर फिर उसे वहीं लौटा दे तो उसके लिये प्रायश्चित्त-की विधि मुझसे सुनिये। ब्रह्मर्षे! वह बारह दिनोंतक उपवासपूर्वक सान्तपन व्रत करके शुद्ध होता है। रत्न, सिंहासन, मनुष्य, स्त्री, दूध देनेवाली गाय तथा भूमि आदि पदार्थ भी स्वर्णके ही समान माने गये हैं। इनकी चोरी करनेपर आधा प्रायश्चित्त कहा है। राजसर्षप (राई) बराबर सोनेकी चोरी करनेपर चार प्राणायाम करने चाहिये। गौरसर्षप बराबर स्वर्णका अपहरण कर लेनेपर विद्वान् पुरुष स्नान करके विधिपूर्वक ८००० गायत्रीका जप करे। जौ बराबर स्वर्णको चुरानेपर द्विज यदि प्रातःकालसे लेकर सायंकालतक वेदमाता गायत्रीका जप करे तो उससे शुद्ध होता है। कृष्णल बराबर स्वर्णकी चोरी करनेपर मनुष्य सान्तपन व्रत करे। यदि एक माशाके बराबर सोना चुरा ले तो वह एक वर्षतक गोमूत्रमे पकाया हुआ जौ खाकर रहे तो शुद्ध होता है। मुनीश्वर! पूरे १६ माशा सोनेकी चोरी करनेपर मनुष्य एकाग्रचित्त हो १२ वर्षोंतक ब्रह्महत्याका व्रत करे।

अब गुरुपत्नीगामी पुरुषोंके लिये प्रायश्चित्तका वर्णन किया जाता है। यदि मनुष्य अज्ञानवश माता अथवा सौतेली माता-से समागम कर ले तो लोगोपर अपना पाप प्रकट करते हुए

भगवान् नारायणका चिन्तन करता है, वह करोड़ों पापोंसे मुक्त हो जाता है। साधु पुरुषोंके हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णुका स्मरण, पूजन, ध्यान अथवा नमस्कार किया जाय तो वे सब पापोंका निश्चय ही नाश कर देते हैं। जो किसीके सम्पर्कसे अथवा मोहवश भी भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो उनके वैकुण्ठधाममें जाता है। नारदजी! भगवान् विष्णुके एक बार स्मरण करनेसे सम्पूर्ण क्लेशोंकी राशि नष्ट हो जाती है। तथा उसी मनुष्यको स्वर्गादि भोगोंकी प्राप्ति होती है—यह स्वय ही अनुमान हो जाता है। मनुष्य-जन्म बडा दुर्लभ है। जो लोग इसे पाते हैं, वे धन्य हैं। मानव-जन्म मिलनेपर भी भगवान्की भक्ति और भी दुर्लभ बतायी गयी है, इसलिये बिजलीकी तरह चञ्चल (क्षणभङ्गुर) एवं दुर्लभ मानव-जन्मको पाकर भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका भजन करना चाहिये। वे भगवान् ही अज्ञानी जीवोंको अज्ञानमय बन्धनसे छुडानेवाले हैं। भगवान्के भजनसे सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं। तथा मनकी शुद्धि होती है। भगवान् जनार्दनके पूजित होनेपर मनुष्य

परम मोक्ष प्राप्त कर लेता है। भगवान्की आराधनामे लगे हुए मनुष्योंके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक सनातन पुरुषार्थ अवश्य सिद्ध होते हैं। इसमे संशय नहीं है *।

अरे! पुत्र, स्त्री, घर, खेत, धन और धान्य नाम धारण करनेवाली मानवी वृत्तिको पाकर तू घमण्ड न कर। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, परापवाद और निन्दाका सर्वथा त्याग करके भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीहरिका भजन कर। सारे व्यापार छोड़कर भगवान् जनार्दनकी आराधनामें लग जा। यमपुरीके वे वृक्ष समीप ही दिखायी देते हैं। जबतक बुढापा नहीं आता, मृत्यु भी जबतक नहीं आ पहुँचती है और इन्द्रियाँ जबतक शिथिल नहीं हो जातीं तभीतक भगवान् विष्णुकी आराधना कर लेनी चाहिये। यह शरीर नाशवान् है। बुद्धिमान् पुरुष इसपर कभी विश्वास न करे। मौत सदा निकट रहती है। धन-वैभव अत्यन्त चञ्चल है और शरीर कुछ ही समयमे मृत्युका ग्रास बन जानेवाला है। अतः अभिमान छोड़ दे। महाभाग! संयोगका अन्त वियोग ही है। यहाँ सब कुछ क्षणभङ्गुर है—यह जानकर भगवान् जनार्दनकी पूजा कर। मनुष्य आशासे कष्ट पाता है। उसके लिये मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है। जो भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका भजन करता है, वह महापातकी होनेपर भी उस परम धामको जाता है, जहाँ जाकर किसीको शोक नहीं होता। साधुशिरोमणे! सम्पूर्ण तीर्थ, समस्त यज्ञ और अङ्गोंसहित सब वेद भी भगवान् नारायणके पूजनकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते *। जो लोग भगवान् विष्णुकी

---

*यस्तु रागादिनिर्मुक्तो ह्यनुतापसमन्वितः ॥
सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुस्मरणतत्पर. ।
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकै. ॥
विमुक्त एव पापेभ्यो ज्ञेयो विष्णुपरो यत. ।
नारायणमनाद्यन्त विश्वाकारमनामयम् ॥
यस्तु सस्मरते मर्त्य. स मुक्त. पापकोटिभिः ।
स्मृतो वा पूजितो वापि ध्यात प्रणमितोऽपि वा ॥
नाशयत्येव पापानि विष्णुर्हृद्गमन सताम् ।
सम्पर्काद्यदि वा मोहाद्यस्तु पूजयते हरिम् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्त स प्रयाति हरे. पदम् ।
सकृत्संस्मरणाद्विष्णोर्नश्यन्ति क्लेशसचया. ॥
स्वर्गादिभोगप्राप्तिस्तु तस्य विप्रानुमीयते ।
मानुषं दुर्लभ जन्म प्राप्यते यैर्मुनीश्वर ॥
तत्रापि हरिभक्तिस्तु दुर्लभा परिकीर्तिता ।
तस्मात्तडिल्लतालोल मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ॥
हरिं सम्पूजयेद्भक्त्या पशुपाशविमोचनम् ।
सर्वेऽन्तराया नश्यन्ति मन शुद्धिश्च जायते ॥
पर मोक्षं लभेच्चैव पूजिते तु जनार्दने ।
धर्मार्थकाममोक्षाख्याः पुरुषार्था. सनातना ॥
हरिपूजापराणा तु सिध्यन्ति नात्र सशय. ।
(ना० पूर्व० ३०। ९२—१०२)

* सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च साङ्गा वेदाश्च सत्तम ॥
नारायणार्चनस्यैते कला नार्हन्ति षोडशीम् ।
(ना० पूर्व० ३०। ११०-१११)

भगवान् नारायणका चिन्तन करता है, वह करोड़ों पापोंसे मुक्त हो जाता है। साधु पुरुषोंके हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णुका स्मरण, पूजन, ध्यान अथवा नमस्कार किया जाय तो वे सब पापोंका निश्चय ही नाश कर देते हैं। जो किसीके सम्पर्कसे अथवा मोहवश भी भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो उनके वैकुण्ठधाममें जाता है। नारदजी! भगवान् विष्णुके एक बार स्मरण करनेसे सम्पूर्ण क्लेशोंकी राशि नष्ट हो जाती है। तथा उसी मनुष्यको स्वर्गादि भोगोंकी प्राप्ति होती है—यह स्वयं ही अनुमान हो जाता है। मनुष्य-जन्म बड़ा दुर्लभ है। जो लोग इसे पाते हैं, वे धन्य हैं। मानव-जन्म मिलनेपर भी भगवान्‌की भक्ति और भी दुर्लभ बतायी गयी है, इसलिये बिजलीकी तरह चञ्चल (क्षणभङ्गुर) एवं दुर्लभ मानव-जन्मको पाकर भक्ति-पूर्वक भगवान् विष्णुका भजन करना चाहिये। वे भगवान् ही अज्ञानी जीवोंको अज्ञानमय बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। भगवान्‌के भजनसे सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं। तथा मनकी शुद्धि होती है। भगवान् जनार्दनके पूजित होनेपर मनुष्य

परम मोक्ष प्राप्त कर लेता है। भगवान्‌की आराधनामें लगे हुए मनुष्योंके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक सनातन पुरुषार्थ अवश्य सिद्ध होते हैं। इसमें संशय नहीं है *।

अरे! पुत्र, स्त्री, घर, खेत, धन और धान्य नाम धारण करनेवाली मानवी वृत्तिको पाकर तू घमण्ड न कर। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, परापवाद और निन्दाका सर्वथा त्याग करके भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीहरिका भजन कर। सारे व्यापार छोड़कर भगवान् जनार्दनकी आराधनामें लग जा। यमपुरीके वे वृक्ष समीप ही दिखायी देते हैं। जबतक बुढ़ापा नहीं आता, मृत्यु भी जबतक नहीं आ पहुँचती है और इन्द्रियाँ जबतक शिथिल नहीं हो जातीं तभीतक भगवान् विष्णुकी आराधना कर लेनी चाहिये। यह शरीर नाशवान् है। बुद्धिमान् पुरुष इसपर कभी विश्वास न करे। मौत सदा निकट रहती है। धन-वैभव अत्यन्त चञ्चल है और शरीर कुछ ही समयमें मृत्युका ग्रास बन जानेवाला है। अतः अभिमान छोड़ दे। महाभाग! संयोगका अन्त वियोग ही है। यहाँ सब कुछ क्षणभङ्गुर है—यह जानकर भगवान् जनार्दनकी पूजा कर। मनुष्य आशासे कष्ट पाता है। उसके लिये मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है। जो भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका भजन करता है, वह महापातकी होनेपर भी उस परम धामको जाता है, जहाँ जाकर किसीको शोक नहीं होता। साधुशिरोमणे! सम्पूर्ण तीर्थ, समस्त यज्ञ और अङ्गोंसहित सब वेद भी भगवान् नारायणके पूजनकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते *। जो लोग भगवान् विष्णुकी

---

*यस्तु रागादिनिर्मुक्तो ह्यनुतापसमन्वितः ॥
सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुस्मरणतत्परः ।
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥
विमुक्त एव पापेभ्यो ज्ञेयो विष्णुपरो यतः ।
नारायणमनाद्यन्तं विश्वाकारमनामयम् ॥
यस्तु संस्मरते मर्त्यः स मुक्तः पापकोटिभिः ।
स्मृतो वा पूजितो वापि ध्यातः प्रणमितोऽपि वा ॥
नाशयत्येव पापानि विष्णुर्हृद्गमनः सताम् ।
सम्पर्काद्यदि वा मोहाद्यस्तु पूजयते हरिम् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः स प्रयाति हरेः पदम् ।
सकृत्संस्मरणाद्विष्णोर्नश्यन्ति क्लेशसंचयाः ॥
स्वर्गादिभोगप्राप्तिस्तु तस्य विप्रानुमीयते ।
मानुषं दुर्लभं जन्म प्राप्यते यैर्मुनीश्वर ॥
तत्रापि हरिभक्तिस्तु दुर्लभा परिकीर्तिता ।
तस्मात्तडिल्लतालोलं मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ॥
हरिं सम्पूजयेद्भक्त्या पशुपाशविमोचनम् ।
सर्वेऽन्तराया नश्यन्ति मनःशुद्धिश्च जायते ॥
परं मोक्षं लभेच्चैव पूजिते तु जनार्दने ।
धर्मार्थकाममोक्षाख्याः पुरुषार्थाः सनातनाः ॥
हरिपूजापराणां तु सिध्यन्ति नात्र संशयः ।
(ना० पूर्व० ३० । ९२—१०२)

* सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च साङ्गा वेदाश्च सत्तम ॥
नारायणार्चनस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
(ना० पूर्व० ३० । ११०-१११)

प्रकाशित करते हुए जाता है। मुनिप्रवर ! वस्त्र-दान करनेवाला पुरुष दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित होकर यात्रा करता है। जिसने आभूषण दान किया है, वह उस मार्गपर देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता हुआ जाता है। गोदानके पुण्यसे मनुष्य सब प्रकारके सुख-भोगसे सम्पन्न होकर जाता है। द्विजश्रेष्ठ ! घोड़े, हाथी तथा रथकी सवारीका दान करनेवाला पुरुष

सम्पूर्ण भोगोंसे युक्त विमानद्वारा धर्मराजके मन्दिरको जाता है। जिस श्रेष्ठ पुरुषने माता-पिताकी सेवा-शुश्रूषा की है, वह देवताओंसे पूजित हो प्रसन्नचित्त होकर धर्मराजके घर जाता है। जो यतियों, व्रतधारियों तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, वह बड़े सुखसे धर्मलोकको जाता है। जो सम्पूर्ण भूतोंके प्रति दयाभाव रखता है, वह द्विज देवताओंसे पूजित हो सर्वभोगसमन्वित विमानद्वारा यात्रा करता है। जो विद्यादान-में तत्पर रहता है, वह ब्रह्माजीसे पूजित होता हुआ जाता है। पुराण-पाठ करनेवाला पुरुष मुनीश्वरोंद्वारा अपनी स्तुति सुनता हुआ यात्रा करता है। इस प्रकार धर्मपरायण पुरुष सुखपूर्वक धर्मराजके निवासस्थानको जाते हैं। उस समय धर्मराज चार भुजाओंसे युक्त हो शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करके बड़े स्नेहसे मित्रकी भाँति उस पुण्यात्मा पुरुषकी पूजा करते हैं और इस प्रकार कहते हैं—'हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ पुण्यात्मा पुरुषो ! जो मानव-जन्म पाकर पुण्य नहीं करता है, वही पापियोंमें बड़ा है और वह आत्मघात करता है। जो अनित्य मानव-जन्म पाकर उसके द्वारा नित्य वस्तु (धर्म) का साधन नहीं करता, वह घोर नरकमें जाता है। उससे बढ़कर जड और कौन होगा ? यह शरीर यातनारूप (दुःखरूप) है और मल आदिके द्वारा अपवित्र है। जो इसपर (इसकी स्थिरतापर) विश्वास करता है, उसे आत्म-घाती समझना चाहिये। सब भूतोंमे प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। उनमें भी जो (पशु-पक्षी आदि) बुद्धिसे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उनसे भी मनुष्य श्रेष्ठ है। मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमे विद्वान् और विद्वानोमे अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुष श्रेष्ठ है। अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुषोंमे कर्तव्यका पालन करनेवाले श्रेष्ठ हैं और कर्तव्य-पालकोंमें भी ब्रह्मवादी (वेदका कथन करनेवाले) पुरुष श्रेष्ठ है। ब्रह्मवादियोंमें भी वह श्रेष्ठ कहा जाता है, जो ममता आदि दोषोंसे रहित हो। इनकी अपेक्षा भी उस पुरुषको श्रेष्ठ समझना चाहिये, जो सदा भगवान्के ध्यानमें तत्पर रहता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके (सदाचार और ईश्वरकी भक्तिरूप) धर्मका संग्रह करना चाहिये। धर्मात्मा जीव सर्वत्र पूजित होता है इसमें संशय नहीं है। तुम लोग सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न पुण्यलोकमें जाओ। यदि कोई पाप है तो पीछे यहीं आकर उसका फल भोगना।'

ऐसा कहकर यमराज उन पुण्यात्माओंकी पूजा करके उन्हें सद्गतिको पहुँचा देते है और पापियोंको बुलाकर उन्हें कालदण्डसे डराते हुए फटकारते है। उस समय उनकी आवाज प्रलयकालके मेघके समान भयकर होती है और उनके शरीरकी कान्ति कज्जलगिरिके समान जान पडती है। उनके अस्त्र-शस्त्र बिजलीकी भाँति चमकते हैं, जिनके कारण वे बड़े भयंकर जान पड़ते हैं। उनके बत्तीस भुजाएँ हो जाती हैं। शरीरका विस्तार तीन योजनका होता है। उनकी लाल-लाल और भयकर आँखें बावड़ीके समान जान पडती हैं। सब दूत यमराजके समान भयंकर होकर गरजने लगते हैं। उन्हे देखकर पापी जीव थर-थर काँपने लगते है और अपने-अपने कर्मोंका विचार करके शोकग्रस्त हो जाते है। उस समय यमकी आज्ञासे चित्रगुप्त उन सब पापियोंसे कहते हैं—'अरे ओ दुराचारी पापात्माओ ! तुम सब लोग अभिमानसे दूषित हो रहे हो। तुम अविवेकियोंने काम, क्रोध आदिसे दूषित अहंकारयुक्त चित्तसे किसलिये पापका आचरण किया है। पहले तो बड़े हर्षमें भरकर तुम लोगोंने पाप किये हैं, अब उसी प्रकार नरककी यातनाएँ भी भोगनी चाहिये। अपने कुटुम्ब, मित्र

प्रकाशित करते हुए जाता है। मुनिप्रवर! वस्त्र-दान करनेवाला पुरुष दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित होकर यात्रा करता है। जिसने आभूषण दान किया है, वह उस मार्गपर देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता हुआ जाता है। गोदानके पुण्यसे मनुष्य सब प्रकारके सुख-भोगसे सम्पन्न होकर जाता है। द्विजश्रेष्ठ! घोड़े, हाथी तथा रथकी सवारीका दान करनेवाला पुरुष

सम्पूर्ण भोगोंसे युक्त विमानद्वारा धर्मराजके मन्दिरको जाता है। जिस श्रेष्ठ पुरुषने माता-पिताकी सेवा-शुश्रूषा की है, वह देवताओंसे पूजित हो प्रसन्नचित्त होकर धर्मराजके घर जाता है। जो यतियों, व्रतधारियों तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, वह बड़े सुखसे धर्मलोकको जाता है। जो सम्पूर्ण भूतोंके प्रति दयाभाव रखता है, वह द्विज देवताओंसे पूजित हो सर्वभोगसमन्वित विमानद्वारा यात्रा करता है। जो विद्यादान-में तत्पर रहता है, वह ब्रह्माजीसे पूजित होता हुआ जाता है। पुराण-पाठ करनेवाला पुरुष मुनीश्वरोंद्वारा अपनी स्तुति सुनता हुआ यात्रा करता है। इस प्रकार धर्मपरायण पुरुष सुखपूर्वक धर्मराजके निवासस्थानको जाते हैं। उस समय धर्मराज चार भुजाओंसे युक्त हो शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करके बड़े स्नेहसे मित्रकी भाँति उस पुण्यात्मा पुरुषकी पूजा करते हैं और इस प्रकार कहते हैं—'हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ पुण्यात्मा पुरुषो! जो मानव-जन्म पाकर पुण्य नहीं करता है, वही पापियोंमें बड़ा है और वह आत्मघात करता है। जो अनित्य मानव-जन्म पाकर उसके द्वारा नित्य वस्तु (धर्म) का साधन नहीं करता, वह घोर नरकमें जाता है। उससे बढ़कर जड और कौन होगा? यह शरीर यातनारूप (दुःखरूप) है और मल आदिके द्वारा अपवित्र है। जो इसपर (इसकी स्थिरतापर) विश्वास करता है, उसे आत्म-घाती समझना चाहिये। सब भूतोंमे प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। उनमें भी जो (पशु-पक्षी आदि) बुद्धिसे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उनसे भी मनुष्य श्रेष्ठ है। मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमे विद्वान् और विद्वानोमे अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुष श्रेष्ठ है। अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुषोंमे कर्तव्यका पालन करनेवाले श्रेष्ठ हैं और कर्तव्य-पालकोंमें भी ब्रह्मवादी (वेदका कथन करनेवाले) पुरुष श्रेष्ठ है। ब्रह्मवादियोंमें भी वह श्रेष्ठ कहा जाता है, जो ममता आदि दोषोंसे रहित हो। इनकी अपेक्षा भी उस पुरुषको श्रेष्ठ समझना चाहिये, जो सदा भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर रहता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके (सदाचार और ईश्वरकी भक्तिरूप) धर्मका संग्रह करना चाहिये। धर्मात्मा जीव सर्वत्र पूजित होता है इसमें संशय नहीं है। तुम लोग सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न पुण्यलोकमें जाओ। यदि कोई पाप है तो पीछे यहीं आकर उसका फल भोगना।'

ऐसा कहकर यमराज उन पुण्यात्माओंकी पूजा करके उन्हें सद्गतिको पहुँचा देते है और पापियोंको बुलाकर उन्हें कालदण्डसे डराते हुए फटकारते है। उस समय उनकी आवाज प्रलयकालके मेघके समान भयकर होती है और उनके शरीरकी कान्ति कज्जलगिरिके समान जान पडती है। उनके अस्त्र-शस्त्र बिजलीकी भाँति चमकते हैं, जिनके कारण वे बड़े भयंकर जान पड़ते हैं। उनके बत्तीस भुजाएँ हो जाती हैं। शरीरका विस्तार तीन योजनका होता है। उनकी लाल-लाल और भयकर आँखें बावड़ीके समान जान पडती हैं। सब दूत यमराजके समान भयंकर होकर गरजने लगते हैं। उन्हे देखकर पापी जीव थर-थर काँपने लगते है और अपने-अपने कर्मोंका विचार करके शोकग्रस्त हो जाते है। उस समय यमकी आज्ञासे चित्रगुप्त उन सब पापियोंसे कहते हैं—'अरे ओ दुराचारी पापात्माओ! तुम सब लोग अभिमानसे दूषित हो रहे हो। तुम अविवेकियोंने काम, क्रोध आदिसे दूषित अहंकारयुक्त चित्तसे किसलिये पापका आचरण किया है। पहले तो बड़े हर्षमें भरकर तुम लोगोंने पाप किये हैं, अब उसी प्रकार नरककी यातनाएँ भी भोगनी चाहिये। अपने कुटुम्ब, मित्र

पानी आदिका महान् कष्ट सहन करना पड़ता है। अण्डज (पक्षी) की योनिमें भी वे कभी वायु पीकर रहते हैं और कभी मास तथा अपवित्र वस्तुएँ खाते हैं। ग्रामीण पशुओंकी योनिमें आनेपर भी उन्हे कभी भार ढोने, रस्सी आदिसे बाँधे जाने, डंडोंसे पीटे जाने तथा हल आदि धारण करनेके समस्त दुःख भोगने पडते हैं। इस प्रकार बहुत-सी योनियोंमें क्रमशः भ्रमण करके वे जीव मनुष्य-जन्म पाते हैं। कोई पुण्यविशेषके कारण बिना क्रमके भी शीघ्र मनुष्य-योनि प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य-जन्म पाकर भी नीची जातियोमें नीच पुरुषोंकी टहल बजानेवाले, दरिद्र, अङ्गहीन तथा अधिक अङ्गवाले इत्यादि होकर वे कष्ट और अपमान उठाते हैं तथा अत्यन्त दुःखसे पूर्ण ज्वर, ताप, शीत, गुल्मरोग, पादरोग, नेत्ररोग, शिरदर्द, गर्भ-वेदना तथा पसलीमें दर्द होने आदिके भारी कष्ट भोगते हैं।

मनुष्यजन्ममें भी जब स्त्री और पुरुष मैथुन करते हैं, उस समय वीर्य निकलकर जब जरायु (गर्भाशय) में प्रवेश करता है, उसी समय जीव अपने कर्मोंके वशीभूत हो उस वीर्यके साथ गर्भाशयमें प्रविष्ट हो रज-वीर्यके कललमें स्थित होता है। वह वीर्य जीवके प्रवेश करनेके पाँच दिन बाद कलल-रूपमें परिणत होता है। फिर पंद्रह दिनके बाद वह पलल (मासपिण्डकी-सी स्थिति) भावको प्राप्त हो एक महीनेमें प्रादेशमात्र बडा हो जाता है। तबसे लेकर पूर्ण चेतनाका अभाव होनेपर भी माताके उदरमें दुस्सह ताप और क्लेश होनेसे वह एक स्थानपर स्थिर न रह सकनेके कारण वायुकी प्रेरणासे इधर-उधर भ्रमण करता है। फिर दूसरा महीना पूर्ण होनेपर वह मनुष्यके-से आकारको पाता है। तीसरे महीनेकी पूर्णता होनेपर उसके हाथ-पैर आदि अवयव प्रकट होते हैं और चार महीने बीत जानेपर उसके सब अवयवोंकी सन्धिका भेद ज्ञात होने लगता है। पाँच महीनेपर अँगुलियों-में नख प्रकट होते हैं। छः मास पूरे हो जानेपर नखोंकी सन्धि स्पष्ट हो जाती है। उसकी नाभिमें जो नाल होती है उसीके द्वारा अन्नका रस पाकर वह पुष्ट होता है। उसके सारे अंग अपवित्र मल-मूत्र आदिसे भींगे रहते हैं। जरायुमे उसका शरीर बँधा होता है और वह माताके रक्त, हड्डी, कीड़े, वसा, मज्जा, स्नायु और केश आदिसे दूषित तथा घृणित शरीरमें निवास करता है। माताके खाये हुए कड़वे, खट्टे, नमकीन तथा अधिक गरम भोजनसे वह अत्यन्त दग्ध होता रहता है। इस दुरवस्थामे अपने-आपको देखकर वह देहधारी जीव पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके प्रभावसे पहलेके अनुभव किये हुए नरकके दुःखोंको भी स्मरण करता और आन्तरिक दुःखसे अधिकाधिक जलने लगता है। 'अहो! मैं बड़ा पापी हूँ! कामसे अन्धा होनेके कारण परायी स्त्रियोको हरकर उनके साथ सम्भोग करके मैंने बडे-बडे पाप किये हैं। उन पापोंसे अकेला मैं ही ऐसे ऐसे नरकोंका कष्ट भोगता रहा। फिर स्थावर आदि योनियोमें महान् दुःख भोगकर अब मानव-योनिमें आया हूँ। आन्तरिक दुःख तथा बाह्य संतापसे दग्ध हो रहा हूँ। अहो! देहधारियोंको कितना दुःख उठाना पड़ता है। शरीर पापसे ही उत्पन्न होता है। इसलिये पाप नहीं करना चाहिये। मैंने कुटुम्ब, मित्र और स्त्रीके लिये दूसरोका धन चुराया है। उसी पापसे आज गर्भकी झिल्लीमे बँधा हुआ जल रहा हूँ। पूर्वजन्ममे दूसरोका धन देखकर ईर्ष्यावश जला करता था; इसीलिये मैं पापी जीव इस समय भी गर्भकी आगसे निरन्तर दग्ध हो रहा हूँ। मन, वाणी और शरीरसे मैंने दूसरोंको बहुत पीड़ा दी थी। उस पापसे आज मैं अकेला ही अत्यन्त दुखी होकर जल रहा हूँ।' इस प्रकार वह गर्भस्थ जीव नाना प्रकारसे विलाप करके स्वयं ही अपने आपको इस प्रकार आश्वासन देता है--'अब मैं जन्म लेनेके बाद सत्सङ्ग तथा भगवान् विष्णुकी कथाका श्रवण करके विशुद्ध-चित्त हो सत्कर्मोंका अनुष्ठान करूँगा और सम्पूर्ण जगत्के अन्तरात्मा तथा अपनी शक्तिके प्रभावसे अखिल विश्वकी सृष्टि करनेवाले सत्य-ज्ञानानन्दस्वरूप लक्ष्मीपति भगवान् नारायणके उन युगल-चरणारविन्दोंका भक्तिपूर्वक पूजन करूँगा। जिनकी समस्त देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग, मुनि तथा किन्नर-समुदाय आराधना करते रहते हैं। भगवान्‌के वे चरण दुस्सह संसार-बन्धनके मूलोच्छेदके हेतु हैं। वेदोंके रहस्यभूत उपनिषदोंद्वारा उनकी महिमाका स्पष्ट ज्ञान होता है। वे ही सम्पूर्ण जगत्के आश्रय हैं। मैं उन्हीं भगवच्चरणा-रविन्दोंको अपने हृदयमें रखकर अत्यन्त दुःखसे भरे हुए संसारको लाँघ जाऊँगा।' इस प्रकार वह मनमें भावना करता है।

नारदजी! जब माताके प्रसवका समय आता है, उस समय वह गर्भस्थ जीव वायुसे अत्यन्त पीड़ित हो माताको भी दुःख देता हुआ कर्मपाशसे बँधकर जबरदस्ती योनिमार्गसे निकलता है। निकलते समय सम्पूर्ण नरक-यातनाओंका

१. अँगूठेकी नोकसे लेकर तर्जनीकी नोकतककी लम्बाईको प्रादेश कहते हैं।

पानी आदिका महान् कष्ट सहन करना पड़ता है। अण्डज (पक्षी) की योनिमें भी वे कभी वायु पीकर रहते हैं और कभी मास तथा अपवित्र वस्तुएँ खाते हैं। ग्रामीण पशुओंकी योनिमें आनेपर भी उन्हे कभी भार ढोने, रस्सी आदिसे बाँधे जाने, डंडोंसे पीटे जाने तथा हल आदि धारण करनेके समस्त दुःख भोगने पड़ते हैं। इस प्रकार बहुत-सी योनियोंमें क्रमशः भ्रमण करके वे जीव मनुष्य-जन्म पाते हैं। कोई पुण्यविशेषके कारण बिना क्रमके भी शीघ्र मनुष्य-योनि प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य-जन्म पाकर भी नीची जातियोमें नीच पुरुषोंकी टहल बजानेवाले, दरिद्र, अङ्गहीन तथा अधिक अङ्गवाले इत्यादि होकर वे कष्ट और अपमान उठाते हैं तथा अत्यन्त दुःखसे पूर्ण ज्वर, ताप, शीत, गुल्मरोग, पादरोग, नेत्ररोग, शिरदर्द, गर्भ-वेदना तथा पसलीमें दर्द होने आदिके भारी कष्ट भोगते हैं।

मनुष्यजन्ममें भी जब स्त्री और पुरुष मैथुन करते हैं, उस समय वीर्य निकलकर जब जरायु (गर्भाशय) में प्रवेश करता है, उसी समय जीव अपने कर्मोंके वशीभूत हो उस वीर्यके साथ गर्भाशयमें प्रविष्ट हो रज-वीर्यके कललमें स्थित होता है। वह वीर्य जीवके प्रवेश करनेके पाँच दिन बाद कलल-रूपमें परिणत होता है। फिर पंद्रह दिनके बाद वह पलल (मासपिण्डकी-सी स्थिति) भावको प्राप्त हो एक महीनेमें प्रादेशमात्र[1] बडा हो जाता है। तबसे लेकर पूर्ण चेतनाका अभाव होनेपर भी माताके उदरमें दुस्सह ताप और क्लेश होनेसे वह एक स्थानपर स्थिर न रह सकनेके कारण वायुकी प्रेरणासे इधर-उधर भ्रमण करता है। फिर दूसरा महीना पूर्ण होनेपर वह मनुष्यके-से आकारको पाता है। तीसरे महीनेकी पूर्णता होनेपर उसके हाथ-पैर आदि अवयव प्रकट होते हैं और चार महीने बीत जानेपर उसके सब अवयवोंकी सन्धिका भेद ज्ञात होने लगता है। पाँच महीनेपर अँगुलियों-में नख प्रकट होते हैं। छः मास पूरे हो जानेपर नखोंकी सन्धि स्पष्ट हो जाती है। उसकी नाभिमें जो नाल होती है उसीके द्वारा अन्नका रस पाकर वह पुष्ट होता है। उसके सारे अंग अपवित्र मल-मूत्र आदिसे भींगे रहते हैं। जरायुमे उसका शरीर बँधा होता है और वह माताके रक्त, हड्डी, कीड़े, वसा, मज्जा, स्नायु और केश आदिसे दूषित तथा घृणित शरीरमें निवास करता है। माताके खाये हुए कड़वे, खट्टे, नमकीन तथा अधिक गरम भोजनसे वह अत्यन्त दग्ध होता रहता है। इस दुरवस्थामे अपने-आपको देखकर वह देहधारी जीव पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके प्रभावसे पहलेके अनुभव किये हुए नरकके दुःखोंको भी स्मरण करता और आन्तरिक दुःखसे अधिकाधिक जलने लगता है। 'अहो! मैं बड़ा पापी हूँ! कामसे अन्धा होनेके कारण परायी स्त्रियोंको हरकर उनके साथ सम्भोग करके मैंने बड़े-बड़े पाप किये हैं। उन पापोंसे अकेला मैं ही ऐसे ऐसे नरकोंका कष्ट भोगता रहा। फिर स्थावर आदि योनियोमें महान् दुःख भोगकर अब मानव-योनिमें आया हूँ। आन्तरिक दुःख तथा बाह्य संतापसे दग्ध हो रहा हूँ। अहो! देहधारियोंको कितना दुःख उठाना पड़ता है। शरीर पापसे ही उत्पन्न होता है। इसलिये पाप नहीं करना चाहिये। मैंने कुटुम्ब, मित्र और स्त्रीके लिये दूसरोका धन चुराया है। उसी पापसे आज गर्भकी झिल्लीमे बँधा हुआ जल रहा हूँ। पूर्वजन्ममे दूसरोका धन देखकर ईर्ष्यावश जला करता था; इसीलिये मैं पापी जीव इस समय भी गर्भकी आगसे निरन्तर दग्ध हो रहा हूँ। मन, वाणी और शरीरसे मैंने दूसरोंको बहुत पीड़ा दी थी। उस पापसे आज मैं अकेला ही अत्यन्त दुखी होकर जल रहा हूँ।' इस प्रकार वह गर्भस्थ जीव नाना प्रकारसे विलाप करके स्वयं ही अपने आपको इस प्रकार आश्वासन देता है--'अब मैं जन्म लेनेके बाद सत्सङ्ग तथा भगवान् विष्णुकी कथाका श्रवण करके विशुद्ध-चित्त हो सत्कर्मोंका अनुष्ठान करूँगा और सम्पूर्ण जगत्के अन्तरात्मा तथा अपनी शक्तिके प्रभावसे अखिल विश्वकी सृष्टि करनेवाले सत्य-ज्ञानानन्दस्वरूप लक्ष्मीपति भगवान् नारायणके उन युगल-चरणारविन्दोंका भक्तिपूर्वक पूजन करूँगा। जिनकी समस्त देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग, मुनि तथा किन्नर-समुदाय आराधना करते रहते हैं। भगवान्के वे चरण दुस्सह संसार-बन्धनके मूलोच्छेदके हेतु हैं। वेदोंके रहस्यभूत उपनिषदोंद्वारा उनकी महिमाका स्पष्ट ज्ञान होता है। वे ही सम्पूर्ण जगत्के आश्रय हैं। मैं उन्हीं भगवच्चरणा-रविन्दोंको अपने हृदयमें रखकर अत्यन्त दुःखसे भरे हुए संसारको लाँघ जाऊँगा।' इस प्रकार वह मनमें भावना करता है।

नारदजी! जब माताके प्रसवका समय आता है, उस समय वह गर्भस्थ जीव वायुसे अत्यन्त पीड़ित हो माताको भी दुःख देता हुआ कर्मपाशसे बँधकर जबरदस्ती योनिमार्गसे निकलता है। निकलते समय सम्पूर्ण नरक-यातनाओंका

१. अँगूठेकी नोकसे लेकर तर्जनीकी नोकतककी लम्बाईको प्रादेश कहते हैं।

मनुष्य परम ज्ञानका अभ्यास करे। ज्ञानसे वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ज्ञानशून्य मनुष्य पशु कहे गये हैं। अतः संसार-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये परम ज्ञानका अभ्यास करे *। सब कर्मोंको सिद्ध करनेवाले मानव-जन्मको पाकर भी जो भगवान् विष्णुकी सेवा नहीं करता, उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है? मुनिश्रेष्ठ! सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके दाता जगदीश्वर भगवान् विष्णुके रहते हुए भी मनुष्य ज्ञानरहित होकर नरकोंमे पकाये जाते हैं—यह कितने आश्चर्यकी बात है। जिससे मल-मूत्रका स्रोत बहता रहता है, ऐसे इस क्षणभङ्गुर शरीरमें अज्ञानी पुरुष महान् मोहसे आच्छन्न होनेके कारण नित्यताकी भावना करते हैं। जो मनुष्य मांस तथा रक्त आदिसे भरे हुए उस घृणित शरीरको पाकर संसार-बन्धनका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुका भजन नहीं करता, वह अत्यन्त पातकी है। ब्रह्मन्! मूर्खता या अज्ञान अत्यन्त कष्टकारक है, महान् दुःख देनेवाला है, परंतु भगवान्के ध्यानमें लगा हुआ चाण्डाल भी ज्ञान प्राप्त करके महान् सुखी हो जाता है। मनुष्यका जन्म दुर्लभ है। देवता भी उसके लिये प्रार्थना करते हैं। अतः उसे पाकर विद्वान् पुरुष परलोक सुधारनेका यत्न करे †। जो अध्यात्म-ज्ञानसे सम्पन्न तथा भगवान्की आराधनामें तत्पर रहनेवाले हैं, वे पुनरावृत्तिरहित परम धामको पा लेते हैं। जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है, जिनसे चेतना पाता है और जिनमें ही इसका लय होता है, वे भगवान् विष्णु ही संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। जो अनन्त परमेश्वर निर्गुण होते हुए भी सगुण-से प्रतीत होते हैं, उन देवेश्वर श्रीहरिकी पूजा-अर्चा करके मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

मोक्षप्राप्तिका उपाय, भगवान् विष्णु ही मोक्षदाता हैं—इसका प्रतिपादन, योग तथा उसके अङ्गोंका निरूपण

नारदजीने पूछा—भगवन्! कर्मसे देह मिलता है। देहधारी जीव कामनासे बँधता है। कामसे वह लोभके वशीभूत होता है और लोभसे क्रोधके अधीन हो जाता है। क्रोधसे धर्मका नाश होता है। धर्मके नाशसे बुद्धि बिगड़ जाती है और जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य पुनः पाप करने लगता है। अतः देह ही पापकी जड़ है तथा उसीकी पापकर्ममें प्रवृत्ति होती है, इसलिये मनुष्य इस देहके भ्रमको त्यागकर जिस प्रकार मोक्षका भागी हो सके, वह उपाय बताइये।

श्रीसनकजीने कहा—महाप्राज्ञ! सुव्रत! जिनकी आज्ञासे ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, विष्णु पालन तथा रुद्र संहार करते हैं, महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी तत्त्व जिनके प्रभावसे उत्पन्न हुए हैं, उन रोग-शोकसे रहित सर्वव्यापी भगवान् नारायणको ही मोक्षदाता जानना चाहिये। सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनसे भिन्न नहीं है तथा जो जरा और मृत्युसे परे हैं, उस तेज प्रभाववाले भगवान् नारायणका ध्यान करके मनुष्य दुःखसे मुक्त हो जाता है। जो विकाररहित, अजन्मा, शुद्ध, स्वयंप्रकाश, निरञ्जन, ज्ञानरूप तथा सच्चिदानन्दमय है, ब्रह्मा आदि देवता जिनके अवतार-स्वरूपोंकी सदा आराधना करते हैं, वे श्रीहरि ही सनातन स्थान (परम धाम या मोक्ष) के दाता हैं। ऐसा जानना चाहिये। जो निर्गुण होकर भी सम्पूर्ण गुणोंके आधार हैं, लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये विविध रूप धारण करते हैं और सबके हृदयाकाशमें विराजमान तथा सर्वत्र परिपूर्ण हैं, जिनकी कहीं भी उपमा नहीं है तथा जो सबके आधार हैं, उन भगवान्की शरणमें जाना चाहिये। जो कल्पके अन्तमें सबको अपने भीतर समेटकर स्वयं जलमें शयन करते हैं, वेदार्थके ज्ञाता तथा कर्मकाण्डके विद्वान् नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा जिनका यजन करते हैं, वे ही भगवान् कर्मफलके दाता हैं और निष्कामभावसे कर्म

---

* तस्मात्संसारदावाग्नितापार्तो द्विजसत्तम। अभ्यसेत्परमं ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात्॥
ज्ञानशून्या नरा ये तु पशवः परिकीर्तिताः। तस्मात्संसारमोक्षाय परं ज्ञानं समभ्यसेत्॥
(ना० पूर्व० ३२। ३९-४०)

† दुर्लभं मानुषं जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशैरपि। तल्लब्ध्वा परलोकार्थं यत्नं कुर्याद् विचक्षणः॥
(ना० पूर्व० ३२। ४७)

मनुष्य परम ज्ञानका अभ्यास करे। ज्ञानसे वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ज्ञानशून्य मनुष्य पशु कहे गये हैं। अतः संसार-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये परम ज्ञानका अभ्यास करे *। सब कर्मोंको सिद्ध करनेवाले मानव-जन्मको पाकर भी जो भगवान् विष्णुकी सेवा नहीं करता, उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है? मुनिश्रेष्ठ! सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके दाता जगदीश्वर भगवान् विष्णुके रहते हुए भी मनुष्य ज्ञानरहित होकर नरकोंमे पकाये जाते हैं—यह कितने आश्चर्यकी बात है। जिससे मल-मूत्रका स्रोत बहता रहता है, ऐसे इस क्षणभङ्गुर शरीरमें अज्ञानी पुरुष महान् मोहसे आच्छन्न होनेके कारण नित्यताकी भावना करते हैं। जो मनुष्य मांस तथा रक्त आदिसे भरे हुए उस घृणित शरीरको पाकर संसार-बन्धनका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुका भजन नहीं करता, वह अत्यन्त पातकी है। ब्रह्मन्! मूर्खता या अज्ञान अत्यन्त कष्टकारक है, महान् दुःख देनेवाला है, परंतु भगवान्‌के ध्यानमें लगा हुआ चाण्डाल भी ज्ञान प्राप्त करके महान् सुखी हो जाता है। मनुष्यका जन्म दुर्लभ है। देवता भी उसके लिये प्रार्थना करते हैं। अतः उसे पाकर विद्वान् पुरुष परलोक सुधारनेका यत्न करे †। जो अध्यात्म-ज्ञानसे सम्पन्न तथा भगवान्‌की आराधनामें तत्पर रहनेवाले हैं, वे पुनरावृत्तिरहित परम धामको पा लेते हैं। जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है, जिनसे चेतना पाता है और जिनमें ही इसका लय होता है, वे भगवान् विष्णु ही संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। जो अनन्त परमेश्वर निर्गुण होते हुए भी सगुण-से प्रतीत होते हैं, उन देवेश्वर श्रीहरिकी पूजा-अर्चा करके मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

मोक्षप्राप्तिका उपाय, भगवान् विष्णु ही मोक्षदाता हैं—इसका प्रतिपादन, योग तथा उसके अङ्गोंका निरूपण

नारदजीने पूछा—भगवन्! कर्मसे देह मिलता है। देहधारी जीव कामनासे बँधता है। कामसे वह लोभके वशीभूत होता है और लोभसे क्रोधके अधीन हो जाता है। क्रोधसे धर्मका नाश होता है। धर्मके नाशसे बुद्धि बिगड़ जाती है और जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य पुनः पाप करने लगता है। अतः देह ही पापकी जड़ है तथा उसीकी पापकर्ममें प्रवृत्ति होती है, इसलिये मनुष्य इस देहके भ्रमको त्यागकर जिस प्रकार मोक्षका भागी हो सके, वह उपाय बताइये।

श्रीसनकजीने कहा—महाप्राज्ञ! सुव्रत! जिनकी आज्ञासे ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि, विष्णु पालन तथा रुद्र संहार करते हैं, महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी तत्त्व जिनके प्रभावसे उत्पन्न हुए हैं, उन रोग-शोकसे रहित सर्वव्यापी भगवान् नारायणको ही मोक्षदाता जानना चाहिये। सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनसे भिन्न नहीं है तथा जो जरा और मृत्युसे परे हैं, उस तेज प्रभाववाले भगवान् नारायणका ध्यान करके मनुष्य दुःखसे मुक्त हो जाता है। जो विकार-रहित, अजन्मा, शुद्ध, स्वयंप्रकाश, निरञ्जन, ज्ञानरूप तथा सच्चिदानन्दमय है, ब्रह्मा आदि देवता जिनके अवतार-स्वरूपोंकी सदा आराधना करते हैं, वे श्रीहरि ही सनातन स्थान (परम धाम या मोक्ष) के दाता हैं। ऐसा जानना चाहिये। जो निर्गुण होकर भी सम्पूर्ण गुणोंके आधार हैं, लोकोपर अनुग्रह करनेके लिये विविध रूप धारण करते हैं और सबके हृदयाकाशमें विराजमान तथा सर्वत्र परिपूर्ण हैं, जिनकी कहीं भी उपमा नहीं है तथा जो सबके आधार हैं, उन भगवान्‌की शरणमें जाना चाहिये। जो कल्पके अन्तमें सबको अपने भीतर समेटकर स्वयं जलमें शयन करते है, वेदार्थके ज्ञाता तथा कर्मकाण्डके विद्वान् नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा जिनका यजन करते हैं, वे ही भगवान् कर्मफलके दाता हैं और निष्कामभावसे कर्म

---

* तस्मात्संसारदावाग्नितापार्तो द्विजसत्तम। अभ्यसेत्परमं ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात्॥
ज्ञानशून्या नरा ये तु पशवः परिकीर्तिताः। तस्मात्संसारमोक्षाय परं ज्ञानं समभ्यसेत्॥
(ना० पूर्व० ३२। ३९-४०)

† दुर्लभं मानुषं जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशैरपि। तल्लब्ध्वा परलोकार्थं यत्नं कुर्याद् विचक्षणः॥
(ना० पूर्व० ३२। ४७)

रहित, शमादि गुणोंसे सम्पन्न तथा प्रतिदिन भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर है, उसीको 'मुमुक्षु' कहते हैं। इन चार (नित्यानित्यावस्तुविचार, वैराग्य, षट् सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व—) साधनोंसे मनुष्य विशुद्धबुद्धि कहा जाता है। ऐसा पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखते हुए सदा सर्वव्यापी भगवान् विष्णुका ध्यान करे। ब्रह्मन्! क्षर-अक्षर (जड-चेतन) स्वरूप सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके भगवान् नारायण विराजमान हैं। ऐसा जो जानता है, उसका ज्ञान योगज माना गया है। अतः मै योगका उपाय बतलाता हूँ। जो संसार-बन्धनको दूर करनेवाला है।

पर और अपर-भेदसे आत्मा दो प्रकारका कहा गया है। अथर्ववेदकी श्रुति भी कहती है कि दो ब्रह्म जाननेयोग्य हैं। पर आत्मा अथवा परब्रह्मको निर्गुण बताया गया है तथा अपर आत्मा या अपरब्रह्म अहंकारयुक्त (जीवात्मा) कहा गया है। इन दोनोंके अभेदका ज्ञान 'ज्ञानयोग' कहलाता है। इस पाञ्चभौतिक शरीरके भीतर हृदयदेशमें जो साक्षीरूपमें स्थित है, उसे साधु पुरुषोंने अपरात्मा कहा है तथा परमात्मा पर (श्रेष्ठ) माने गये हैं। शरीरको क्षेत्र कहते है। जो क्षेत्रमें स्थित आत्मा है, वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। परमात्मा अव्यक्त, शुद्ध एव सर्वत्र परिपूर्ण कहा गया है। मुनिश्रेष्ठ! जब जीवात्मा और परमात्माके अभेदका ज्ञान हो जाता है, तब अपरात्माके बन्धनका नाश होता है। परमात्मा एक, शुद्ध, अविनाशी, नित्य एवं जगन्मय हैं। वे मनुष्योंके बुद्धिभेदसे भेदवान्‌-से दिखायी देते हैं। ब्रह्मन्! उपनिषदोंद्वारा वर्णित जो एक अद्वितीय सनातन परब्रह्म परमात्मा हैं, उनसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है*। उन निर्गुण परमात्माका न कोई रूप है, न रंग है, न कर्तव्य कर्म है और न कर्तृत्व या भोक्तृत्व ही है। वे सब कारणोंके भी आदिकारण हैं, सम्पूर्ण तेजोके प्रकाशक परम तेज हैं। उनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। मुक्तिके लिये उन्हीं परमात्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ब्रह्मन्! शब्दब्रह्ममय जो महावाक्य आदि हैं अर्थात् वेदवर्णित जो 'तत्त्वमसि' 'सोऽहमस्मि' इत्यादि महावाक्य हैं, उनपर विचार करनेसे जीवात्मा और परमात्माका अभेद ज्ञान प्रकाशित होता है, वह मुक्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन है। नारदजी! जो उत्तम ज्ञानसे हीन हैं, उन्हें यह जगत् नाना भेदोंसे युक्त दिखायी देता है, परंतु परम ज्ञानियोंकी दृष्टिमें यह सब परब्रह्मरूप है। परमानन्दस्वरूप, परात्पर, अविनाशी एवं निर्गुण परमात्मा एक ही हैं, किंतु बुद्धिभेदसे वे भिन्न-भिन्न अनेक रूप धारण करनेवाले प्रतीत होते हैं। द्विजश्रेष्ठ! जिनके ऊपर मायाका पर्दा पड़ा है, वे मायाके कारण परमात्मामें भेद देखते हैं, अतः मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष योगके बलसे मायाको निस्सार समझकर त्याग दे। माया न सद्रूप है, न असद्रूप, न सद्-असद् उभयरूप है, अतः उसे अनिर्वाच्य (किसी रूपमे भी न कहने योग्य) समझना चाहिये। वह केवल भेदबुद्धि प्रदान करनेवाली है। मुनिश्रेष्ठ! अज्ञान शब्दसे मायाका ही बोध होता है, अतः जो मायाको जीत लेते हैं, उनके अज्ञानका नाश हो जाता है†। ज्ञान शब्दसे सनातन परब्रह्म-

---

* यदा त्वभेदविज्ञानं जीवात्मपरमात्मनोः।
भवेत्तदा मुनिश्रेष्ठ पाशच्छेदोऽपरात्मन.॥
एक शुद्धोऽक्षरो नित्य. परमात्मा जगन्मय.।
नृणा विज्ञानभेदेन भेदवानिव लक्ष्यते॥
एकमेवाद्वितीय यत्पर ब्रह्म सनातनम्।
गीयमानं च वेदान्तैस्तस्मान्नास्ति परं द्विज॥
(ना० पूर्व० ३३।६०—६२)

† एक एव परानन्दो निर्गुणः परतः पर.।
भाति विज्ञानभेदेन बहुरूपधरोऽव्यय.॥
मायिनो मायया भेद पश्यन्ति परमात्मनि।
तस्मान्माया त्यजेद्योगान्मुमुक्षुर्द्विजसत्तम॥

रहित, शमादि गुणोंसे सम्पन्न तथा प्रतिदिन भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर है, उसीको 'मुमुक्षु' कहते हैं। इन चार (नित्यानित्यावस्तुविचार, वैराग्य, षट् सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व—) साधनोंसे मनुष्य विशुद्धबुद्धि कहा जाता है। ऐसा पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखते हुए सदा सर्वव्यापी भगवान् विष्णुका ध्यान करे। ब्रह्मन्! क्षर-अक्षर (जड-चेतन) स्वरूप सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके भगवान् नारायण विराजमान हैं। ऐसा जो जानता है, उसका ज्ञान योगज माना गया है। अतः मै योगका उपाय बतलाता हूँ। जो संसार-बन्धनको दूर करनेवाला है।

पर और अपर-भेदसे आत्मा दो प्रकारका कहा गया है। अथर्ववेदकी श्रुति भी कहती है कि दो ब्रह्म जाननेयोग्य हैं। पर आत्मा अथवा परब्रह्मको निर्गुण बताया गया है तथा अपर आत्मा या अपरब्रह्म अहंकार-युक्त (जीवात्मा) कहा गया है। इन दोनोंके अभेदका ज्ञान 'ज्ञानयोग' कहलाता है। इस पाञ्चभौतिक शरीरके भीतर हृदयदेशमें जो साक्षीरूपमें स्थित है, उसे साधु पुरुषोंने अपरात्मा कहा है तथा परमात्मा पर (श्रेष्ठ) माने गये हैं। शरीरको क्षेत्र कहते है। जो क्षेत्रमें स्थित आत्मा है, वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। परमात्मा अव्यक्त, शुद्ध एव सर्वत्र परिपूर्ण कहा गया है। मुनिश्रेष्ठ! जब जीवात्मा और परमात्माके अभेदका ज्ञान हो जाता है, तब अपरात्माके बन्धनका नाश होता है। परमात्मा एक, शुद्ध, अविनाशी, नित्य एवं जगन्मय हैं। वे मनुष्योंके बुद्धिभेदसे भेदवान्-से दिखायी देते हैं। ब्रह्मन्! उपनिषदोंद्वारा वर्णित जो एक अद्वितीय सनातन परब्रह्म परमात्मा हैं, उनसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है*। उन निर्गुण परमात्माका न कोई रूप है, न रंग है, न कर्तव्य कर्म है और न कर्तृत्व या भोक्तृत्व ही है। वे सब कारणोंके भी आदिकारण हैं, सम्पूर्ण तेजोंके प्रकाशक परम तेज हैं। उनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। मुक्तिके लिये उन्हीं परमात्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ब्रह्मन्! शब्दब्रह्ममय जो महावाक्य आदि हैं अर्थात् वेदवर्णित जो 'तत्त्वमसि' 'सोऽहमस्मि' इत्यादि महावाक्य हैं, उनपर विचार करनेसे जीवात्मा और परमात्माका अभेद ज्ञान प्रकाशित होता है, वह मुक्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन है। नारदजी! जो उत्तम ज्ञानसे हीन हैं, उन्हें यह जगत् नाना भेदोंसे युक्त दिखायी देता है, परंतु परम ज्ञानियोंकी दृष्टिमें यह सब परब्रह्मरूप है। परमानन्दस्वरूप, परात्पर, अविनाशी एवं निर्गुण परमात्मा एक ही हैं, किंतु बुद्धिभेदसे वे भिन्न-भिन्न अनेक रूप धारण करनेवाले प्रतीत होते हैं। द्विजश्रेष्ठ! जिनके ऊपर मायाका पर्दा पड़ा है, वे मायाके कारण परमात्मामें भेद देखते हैं, अतः मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष योगके बलसे मायाको निस्सार समझकर त्याग दे। माया न सद्रूप है, न असद्रूप, न सद्-असद् उभयरूप है, अतः उसे अनिर्वाच्य (किसी रूपमे भी न कहने योग्य) समझना चाहिये। वह केवल भेदबुद्धि प्रदान करनेवाली है। मुनिश्रेष्ठ! अज्ञान शब्दसे मायाका ही बोध होता है, अतः जो मायाको जीत लेते हैं, उनके अज्ञानका नाश हो जाता है†। ज्ञान शब्दसे सनातन परब्रह्म-

---

* यदा त्वभेदविज्ञानं जीवात्मपरमात्मनोः।
भवेत्तदा मुनिश्रेष्ठ पाशच्छेदोऽपरात्मन.॥
एक शुद्धोऽक्षरो नित्य. परमात्मा जगन्मय.।
नृणा विज्ञानभेदेन भेदवानिव लक्ष्यते॥
एकमेवाद्वितीय यत्पर ब्रह्म सनातनम्।
गीयमानं च वेदान्तैस्तस्मान्नास्ति परं द्विज॥
(ना० पूर्व० ३३।६०—६२)

† एक एव परानन्दो निर्गुणः परतः पर.।
भाति विज्ञानभेदेन बहुरूपधरोऽव्यय.॥
मायिनो मायया भेद पश्यन्ति परमात्मनि।
तस्मान्माया त्यजेद्योगान्मुमुक्षुर्द्विजसत्तम॥

हीन पुरुषोंद्वारा जो नाना प्रकारके यज्ञ किये जाते हैं, वे राखमें डाली हुई आहुतिके समान निष्फल होते हैं। अतः राग आदि सब दोषोंका त्याग करके सुखी होना चाहिये। हजारों भार मिट्टी और करोड़ों घड़े जलसे शरीरकी शुद्धि कर लेनेपर भी जिसका अन्तःकरण दूषित है, वह चाण्डालके ही समान अपवित्र माना गया है। जो आन्तरिक शुद्धिसे रहित होकर केवल बाहरसे शरीरको शुद्ध करता है, वह ऊपरसे सजाये हुए मदिरापात्रकी भाँति अपवित्र ही है, उसे शान्ति नहीं मिलती। जो मानसिक शुद्धिसे हीन होकर तीर्थयात्रा करते हैं, उन्हें वे तीर्थ उसी तरह पवित्र नहीं करते जैसे मदिरासे भरे हुए पात्रको नदियाँ। मुनिश्रेष्ठ! जो वाणीसे धर्मका उपदेश करता और मनसे पापकी इच्छा रखता है, उसे महापातकियोंका सिरमौर समझना चाहिये। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे यदि परम उत्तम धर्ममार्गका आचरण करते हैं तो उसका फल अक्षय एवं सुखदायक जानना चाहिये। मन, वाणी और क्रियाद्वारा स्तुति, कथा-श्रवण तथा पूजा करनेसे भगवान् विष्णुमें जिसकी दृढ़ भक्ति हो गयी है, उसकी वह भक्ति भी भगवान् विष्णुकी 'आराधना' कही गयी है। (तथा संध्योपासना तो प्रसिद्ध ही है)। नारदजी! इस प्रकार मैंने यम और नियमोंको संक्षेपसे समझाया। इनके द्वारा जिनका चित्त शुद्ध हो गया है, उनके मोक्ष हस्तगत ही है—ऐसा माना जाता है। यम और नियमोंद्वारा बुद्धिको स्थिर करके जितेन्द्रिय पुरुष योग-साधनाके अनुकूल उत्तम आसनका विधिपूर्वक अभ्यास करे।

पद्मासन, स्वस्तिकासन, पीठासन, सिंहासन, कुक्कुटासन, कुञ्जरासन, कूर्मासन, वज्रासन, वाराहासन, मृगासन, चैलिकासन, क्रौञ्चासन, नालिकासन, सर्वतोभद्रासन, वृषभासन, नागासन, मत्स्यासन, व्याघ्रासन, अर्धचन्द्रासन, दण्डवातासन, शैलासन, खड्गासन, मुद्गरासन, मकरासन, त्रिपथासन, काष्ठासन, स्थाणुआसन, वैकर्णिकासन, भौमासन और वीरासन—ये सब योगसाधनके हेतु हैं। मुनीश्वरोंने ये तीस आसन बताये हैं। साधक पुरुष शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे पृथक् हो ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर गुरुदेवके चरणोंमें भक्ति रखते हुए उपर्युक्त आसनोंमेंसे किसी एकको सिद्ध करके प्राणोंको जीतनेका अभ्यास करे। जहाँ मनुष्योंकी भीड न हो और किसी प्रकारका कोलाहल न होता हो, ऐसे एकान्त स्थानमें पूर्व, उत्तर अथवा पश्चिमकी ओर मुँह करके अभ्यासपूर्वक प्राणोंको जीते—प्राणायामका अभ्यास करे। शरीरके भीतर स्थित वायुका नाम प्राण है। उसके निग्रह (वशमें करनेकी चेष्टा) को आयाम कहते हैं। यही 'प्राणायाम' कहा गया है। उसके दो भेद बताये गये हैं—एक अगर्भ प्राणायाम और दूसरा सगर्भ प्राणायाम, इनमें दूसरा श्रेष्ठ है। जप और ध्यानके विना जो प्राणायाम किया जाता है, वह अगर्भ है और जप तथा ध्यानके सहित किये जानेवाले प्राणायामको सगर्भ कहते हैं। मनीषी पुरुषोंने इस दो भेदोंवाले प्राणायामको रेचक, पूरक, कुम्भक और शून्यकके भेदसे चार प्रकारका बताया है। जीवोंकी दाहिनी नाड़ीका नाम पिङ्गला है। उसके देवता सूर्य हैं। उसे पितृयोनि भी कहते हैं। इसी प्रकार बायीं नाड़ीका नाम इडा है, जिसे देवयोनि भी कहते हैं। मुनिश्रेष्ठ! चन्द्रमाको उसका अधिदेवता समझो। इन दोनोंके मध्यभागमें सुषुम्ना नाड़ी है। यह अत्यन्त सूक्ष्म और परम गुह्य है। ब्रह्माजीको इसका अधिदेवता जानना चाहिये। नासिकाके बायें छिद्रसे वायुको बाहर निकाले। रेचन करने (निकालने) के कारण इसका नाम 'रेचक' है, फिर नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुको अपने भीतर भरे। वायुको पूर्ण करने (भरने) के कारण इसे 'पूरक' कहा गया है। अपने देहमें भरी हुई वायुको रोके रहे, छोड़े नहीं और भरे हुए कुम्भ (घड़े) की भाँति स्थिरभावसे बैठा रहे। कुम्भकी भाँति स्थित होनेके कारण इस प्राणायामका नाम 'कुम्भक' है। बाहरकी वायुको न तो भीतरकी ओर ग्रहण करे और न भीतरकी वायुको बाहर निकाले। जैसे हो, वैसे ही स्थित रहे। इस तरहके प्राणायामको 'शून्यक' समझो। जैसे मतवाले गजराजको धीरे-धीरे वशमें किया जाता है, उसी प्रकार प्राणको धीरे-धीरे जीतना चाहिये। अन्यथा बड़े-बड़े भयङ्कर रोग हो जाते हैं। जो योगी क्रमशः वायुको जीतनेका अभ्यास करता है, वह निष्पाप हो जाता है और सब पापोंसे मुक्त होनेपर वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

मुनीश्वर! जो विषयोंमें फँसी हुई इन्द्रियोंको विषयोंसे सर्वथा समेटकर अपने भीतर रोके रहता है, उसके इस प्रयत्नका नाम 'प्रत्याहार' है। ब्रह्मन्! जिन्होंने प्रत्याहारद्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, वे महात्मा पुरुष ध्यान न करनेपर भी पुनरावृत्ति-रहित परब्रह्म पदको प्राप्त कर लेते हैं। जो इन्द्रियसमुदायको वशमें किये विना ही ध्यानमें तत्पर होता है, उसे मूर्ख समझो; क्योंकि उसका ध्यान सिद्ध नहीं होता। मनुष्य जिस-जिस वस्तुको देखता है, उसे अपने आत्मामे आत्मस्वरूप समझे। और प्रत्याहारद्वारा वशमें की हुई इन्द्रियोंको अपने आत्मामे ही अन्तर्मुख करके धारण करे। इस प्रकार इन्द्रियोंको जो आत्मामे धारण करना है, उसीको 'धारणा' कहते हैं। योग

हीन पुरुषोंद्वारा जो नाना प्रकारके यज्ञ किये जाते हैं, वे राखमें डाली हुई आहुतिके समान निष्फल होते हैं। अतः राग आदि सब दोषोंका त्याग करके सुखी होना चाहिये। हजारों भार मिट्टी और करोड़ों घड़े जलसे शरीरकी शुद्धि कर लेनेपर भी जिसका अन्तःकरण दूषित है, वह चाण्डालके ही समान अपवित्र माना गया है। जो आन्तरिक शुद्धिसे रहित होकर केवल बाहरसे शरीरको शुद्ध करता है, वह ऊपरसे सजाये हुए मदिरापात्रकी भाँति अपवित्र ही है, उसे शान्ति नहीं मिलती। जो मानसिक शुद्धिसे हीन होकर तीर्थयात्रा करते हैं, उन्हें वे तीर्थ उसी तरह पवित्र नहीं करते जैसे मदिरासे भरे हुए पात्रको नदियाँ। मुनिश्रेष्ठ! जो वाणीसे धर्मका उपदेश करता और मनसे पापकी इच्छा रखता है, उसे महापातकियोंका सिरमौर समझना चाहिये। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे यदि परम उत्तम धर्ममार्गका आचरण करते हैं तो उसका फल अक्षय एवं सुखदायक जानना चाहिये। मन, वाणी और क्रियाद्वारा स्तुति, कथा-श्रवण तथा पूजा करनेसे भगवान् विष्णुमें जिसकी दृढ़ भक्ति हो गयी है, उसकी वह भक्ति भी भगवान् विष्णुकी 'आराधना' कही गयी है। (तथा संध्योपासना तो प्रसिद्ध ही है)। नारदजी! इस प्रकार मैंने यम और नियमोंको संक्षेपसे समझाया। इनके द्वारा जिनका चित्त शुद्ध हो गया है, उनके मोक्ष हस्तगत ही है—ऐसा माना जाता है। यम और नियमोंद्वारा बुद्धिको स्थिर करके जितेन्द्रिय पुरुष योग-साधनाके अनुकूल उत्तम आसनका विधिपूर्वक अभ्यास करे।

पद्मासन, स्वस्तिकासन, पीठासन, सिंहासन, कुक्कुटासन, कुञ्जरासन, कूर्मासन, वज्रासन, वाराहासन, मृगासन, चैलिकासन, क्रौञ्चासन, नालिकासन, सर्वतोभद्रासन, वृषभासन, नागासन, मत्स्यासन, व्याघ्रासन, अर्धचन्द्रासन, दण्डवातासन, शैलासन, खड्गासन, मुद्गरासन, मकरासन, त्रिपथासन, काष्ठासन, स्थाणुआसन, वैकर्णिकासन, भौमासन और वीरासन—ये सब योगसाधनके हेतु हैं। मुनीश्वरोंने ये तीस आसन बताये हैं। साधक पुरुष शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे पृथक् हो ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर गुरुदेवके चरणोंमें भक्ति रखते हुए उपर्युक्त आसनोंमेंसे किसी एकको सिद्ध करके प्राणोंको जीतनेका अभ्यास करे। जहाँ मनुष्योंकी भीड न हो और किसी प्रकारका कोलाहल न होता हो, ऐसे एकान्त स्थानमें पूर्व, उत्तर अथवा पश्चिमकी ओर मुँह करके अभ्यासपूर्वक प्राणोंको जीते—प्राणायामका अभ्यास करे। शरीरके भीतर स्थित वायुका नाम प्राण है। उसके विग्रह (वशमें करनेकी चेष्टा) को आयाम कहते हैं। यही 'प्राणायाम' कहा गया है। उसके दो भेद बताये गये हैं—एक अगर्भ प्राणायाम और दूसरा सगर्भ प्राणायाम, इनमें दूसरा श्रेष्ठ है। जप और ध्यानके बिना जो प्राणायाम किया जाता है, वह अगर्भ है और जप तथा ध्यानके सहित किये जानेवाले प्राणायामको सगर्भ कहते हैं। मनीषी पुरुषोंने इस दो भेदोंवाले प्राणायामको रेचक, पूरक, कुम्भक और शून्यकके भेदसे चार प्रकारका बताया है। जीवोंकी दाहिनी नाड़ीका नाम पिङ्गला है। उसके देवता सूर्य हैं। उसे पितृयोनि भी कहते हैं। इसी प्रकार बायीं नाड़ीका नाम इडा है, जिसे देवयोनि भी कहते हैं। मुनिश्रेष्ठ! चन्द्रमाको उसका अधिदेवता समझो। इन दोनोंके मध्यभागमें सुषुम्ना नाड़ी है। यह अत्यन्त सूक्ष्म और परम गुह्य है। ब्रह्माजीको इसका अधिदेवता जानना चाहिये। नासिकाके बायें छिद्रसे वायुको बाहर निकाले। रेचन करने (निकालने) के कारण इसका नाम 'रेचक' है, फिर नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुको अपने भीतर भरे। वायुको पूर्ण करने (भरने) के कारण इसे 'पूरक' कहा गया है। अपने देहमें भरी हुई वायुको रोके रहे, छोड़े नहीं और भरे हुए कुम्भ (घड़े) की भाँति स्थिरभावसे बैठा रहे। कुम्भकी भाँति स्थित होनेके कारण इस प्राणायामका नाम 'कुम्भक' है। बाहरकी वायुको न तो भीतर की ओर ग्रहण करे और न भीतरकी वायुको बाहर निकाले। जैसे हो, वैसे ही स्थित रहे। इस तरहके प्राणायामको 'शून्यक' समझो। जैसे मतवाले गजराजको धीरे-धीरे वशमें किया जाता है, उसी प्रकार प्राणको धीरे-धीरे जीतना चाहिये। अन्यथा बड़े-बड़े भयङ्कर रोग हो जाते हैं। जो योगी क्रमशः वायुको जीतनेका अभ्यास करता है, वह निष्पाप हो जाता है और सब पापोंसे मुक्त होनेपर वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

मुनीश्वर! जो विषयोंमें फँसी हुई इन्द्रियोंको विषयोंसे सर्वथा समेटकर अपने भीतर रोके रहता है, उसके इस प्रयत्नका नाम 'प्रत्याहार' है। ब्रह्मन्! जिन्होंने प्रत्याहारद्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, वे महात्मा पुरुष ध्यान न करनेपर भी पुनरावृत्ति-रहित परब्रह्म पदको प्राप्त कर लेते हैं। जो इन्द्रियसमुदायको वशमें किये बिना ही ध्यानमें तत्पर होता है, उसे मूर्ख समझो; क्योंकि उसका ध्यान सिद्ध नहीं होता। मनुष्य जिस-जिस वस्तुको देखता है, उसे अपने आत्मामें आत्मस्वरूप समझे। और प्रत्याहारद्वारा वशमें की हुई इन्द्रियोंको अपने आत्मामें ही अन्तर्मुख करके धारण करे। इस प्रकार इन्द्रियोंको जो आत्मामें धारण करना है, उसीको 'धारणा' कहते हैं। योग

ॐकार है, वह परब्रह्म परमात्माका बोध करानेवाला है। परब्रह्म परमात्मा वाच्य हैं और प्रणव उनका वाचक माना गया है। नारदजी! इन दोनोंमें वाच्य-वाचक-सम्बन्ध उपचारसे ही कहा गया है। जो प्रतिदिन प्रणवका जप करते हैं, वे सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं तथा जो निरन्तर उसीके अभ्यासमें लगे रहते हैं, वे परम मोक्ष पाते हैं। जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप प्रणव-मन्त्रका जप करता है, उसे अपने अन्तःकरणमें कोटि-कोटि सूर्योंके समान निर्मल तेजका ध्यान करना चाहिये अथवा प्रणव-जपके समय शालग्रामशिला या किसी भगवत्प्रतिमाके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। अथवा जो-जो पापनाशक तीर्थादिक वस्तु हैं, उसी-उसीका अपने हृदयमें चिन्तन करना चाहिये। मुनीश्वर! यह वैष्णवज्ञान तुम्हे बताया गया है। इसे जानकर योगीश्वर पुरुष उत्तम मोक्ष पा लेता है। जो एकाग्रचित्त होकर इस प्रसङ्गको पढता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुका सालोक्य प्राप्त कर लेता है।

भवबन्धनसे मुक्तिके लिये भगवान् विष्णुके भजनका उपदेश

नारदजीने कहा—हे सर्वज्ञ महामुने! सबके स्वामी देवदेव भगवान् जनार्दन जिस प्रकार संतुष्ट होते हैं, वह उपाय मुझे बताइये।

श्रीसनकजी बोले—नारदजी! यदि मुक्ति चाहते हो तो सच्चिदानन्दस्वरूप परमदेव भगवान् नारायणका सम्पूर्ण चित्तसे भजन करो। भगवान् विष्णुकी शरण लेनेवाले मनुष्यको शत्रु मार नहीं सकते, ग्रह पीड़ा नहीं दे सकते तथा राक्षस उसकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकते। भगवान् जनार्दनमें जिसकी दृढ़ भक्ति है, उसके सम्पूर्ण श्रेय सिद्ध हो जाते हैं। अतः भक्त पुरुष सबसे बढ़कर है। मनुष्योंके उन्हीं पैरोंको सफल जानना चाहिये, जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें दर्शनके लिये जाते हैं। उन्हीं हाथोंको

सफल समझना चाहिये, जो भगवान् विष्णुकी पूजामें तत्पर होते हैं। पुरुषोंके उन्हीं नेत्रोंको पूर्णतः सफल जानना चाहिये, जो भगवान् जनार्दनका दर्शन करते हैं। साधु-पुरुषोंने उसी जिह्वाको सफल बताया है, जो निरन्तर हरिनामके जप और कीर्तनमें लगी रहती है। मैं सत्य कहता हूँ, हितकी बात कहता हूँ और बार-बार सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार बतलाता हूँ—इस असार संसारमें केवल श्रीहरिकी आराधना ही सत्य है। यह संसारबन्धन अत्यन्त दृढ़ है और महान् मोहमें डालनेवाला है। भगवद्भक्तिरूपी कुठारसे इसको काटकर अत्यन्त सुखी हो जाओ। वही मन सार्थक है, जो भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगता है, तथा वे ही दोनों कान समस्त जगत्के लिये वन्दनीय हैं, जो भगवत्-कथाकी सुधाधारासे परिपूर्ण रहते हैं। नारदजी! जो आनन्दस्वरूप, अक्षर एवं जाग्रत् आदि तीनो अवस्थाओंसे रहित तथा हृदयमें विराजमान हैं, उन्हीं भगवान्का तुम निरन्तर भजन करो। मुनिश्रेष्ठ! जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है—ऐसे लोग भगवान्के स्थान या स्वरूपका न तो वर्णन कर सकते हैं और न दर्शन ही। विप्रवर! यह स्थावर-जंगमरूप जगत् केवल भावनामय है और बिजलीके समान चञ्चल है। अतः इसकी ओरसे विरक्त होकर भगवान् जनार्दनका भजन करो।

जिनमे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह विद्यमान हैं, उन्हींपर जगदीश्वर श्रीहरि संतुष्ट होते हैं। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है और ब्राह्मणोंके आदर-सत्कारमें तत्पर रहता है, उसपर जगदीश्वर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। जो भगवान् और उनके भक्तोंकी कथामे प्रेम रखता है, स्वयं भगवान्की कथा कहता है, साधु-महात्माओंका संग करता है और मनमें अहङ्कार नहीं लाता, उसपर भगवान्

ॐकार है, वह परब्रह्म परमात्माका बोध करानेवाला है। परब्रह्म परमात्मा वाच्य हैं और प्रणव उनका वाचक माना गया है। नारदजी! इन दोनोंमें वाच्य-वाचक-सम्बन्ध उपचारसे ही कहा गया है। जो प्रतिदिन प्रणवका जप करते हैं, वे सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं तथा जो निरन्तर उसीके अभ्यासमें लगे रहते हैं, वे परम मोक्ष पाते हैं। जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप प्रणव-मन्त्रका जप करता है, उसे अपने अन्तःकरणमें कोटि-कोटि सूर्योंके समान निर्मल तेजका ध्यान करना चाहिये अथवा प्रणव-जपके समय शालग्रामशिला या किसी भगवत्प्रतिमाके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। अथवा जो-जो पापनाशक तीर्थादिक वस्तु हैं, उसी-उसीका अपने हृदयमें चिन्तन करना चाहिये। मुनीश्वर! यह वैष्णवज्ञान तुम्हे बताया गया है। इसे जानकर योगीश्वर पुरुष उत्तम मोक्ष पा लेता है। जो एकाग्रचित्त होकर इस प्रसङ्गको पढता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुका सालोक्य प्राप्त कर लेता है।

भवबन्धनसे मुक्तिके लिये भगवान् विष्णुके भजनका उपदेश

नारदजीने कहा—हे सर्वज्ञ महामुने! सबके स्वामी देवदेव भगवान् जनार्दन जिस प्रकार संतुष्ट होते हैं, वह उपाय मुझे बताइये।

श्रीसनकजी बोले—नारदजी! यदि मुक्ति चाहते हो तो सच्चिदानन्दस्वरूप परमदेव भगवान् नारायणका सम्पूर्ण चित्तसे भजन करो। भगवान् विष्णुकी शरण लेनेवाले मनुष्यको शत्रु मार नहीं सकते, ग्रह पीड़ा नहीं दे सकते तथा राक्षस उसकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकते। भगवान् जनार्दनमें जिसकी दृढ़ भक्ति है, उसके सम्पूर्ण श्रेय सिद्ध हो जाते हैं। अतः भक्त पुरुष सबसे बढ़कर है। मनुष्योंके उन्हीं पैरोंको सफल जानना चाहिये, जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें दर्शनके लिये जाते हैं। उन्हीं हाथोंको

सफल समझना चाहिये, जो भगवान् विष्णुकी पूजामें तत्पर होते हैं। पुरुषोंके उन्हीं नेत्रोंको पूर्णतः सफल जानना चाहिये, जो भगवान् जनार्दनका दर्शन करते हैं। साधु-पुरुषोंने उसी जिह्वाको सफल बताया है, जो निरन्तर हरिनामके जप और कीर्तनमें लगी रहती है। मैं सत्य कहता हूँ, हितकी बात कहता हूँ और बार-बार सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार बतलाता हूँ—इस असार संसारमें केवल श्रीहरिकी आराधना ही सत्य है। यह संसारबन्धन अत्यन्त दृढ़ है और महान् मोहमें डालनेवाला है। भगवद्भक्तिरूपी कुठारसे इसको काटकर अत्यन्त सुखी हो जाओ। वही मन सार्थक है, जो भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगता है, तथा वे ही दोनों कान समस्त जगत्के लिये वन्दनीय हैं, जो भगवत्-कथाकी सुधाधारासे परिपूर्ण रहते हैं। नारदजी! जो आनन्दस्वरूप, अक्षर एवं जाग्रत् आदि तीनो अवस्थाओंसे रहित तथा हृदयमें विराजमान हैं, उन्हीं भगवान्का तुम निरन्तर भजन करो। मुनिश्रेष्ठ! जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है—ऐसे लोग भगवान्के स्थान या स्वरूपका न तो वर्णन कर सकते हैं और न दर्शन ही। विप्रवर! यह स्थावर-जंगमरूप जगत् केवल भावनामय है और बिजलीके समान चञ्चल है। अतः इसकी ओरसे विरक्त होकर भगवान् जनार्दनका भजन करो।

जिनमे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह विद्यमान हैं, उन्हींपर जगदीश्वर श्रीहरि संतुष्ट होते हैं। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है और ब्राह्मणोंके आदर-सत्कारमें तत्पर रहता है, उसपर जगदीश्वर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। जो भगवान् और उनके भक्तोंकी कथामे प्रेम रखता है, स्वयं भगवान्की कथा कहता है, साधु-महात्माओंका संग करता है और मनमें अहङ्कार नहीं लाता, उसपर भगवान्

साधन है, अतः उसे भी त्याग देना चाहिये *। मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण है। अतः मनको परमात्मामें लगाकर सुखी हो जाना चाहिये। अहो ! मनुष्यों-का धैर्य कितना अद्भुत, कितना विचित्र तथा कितना आश्चर्य-जनक है कि जगदीश्वर भगवान् विष्णुके होते हुए भी वे मद-से उन्मत्त होकर उनका भजन नहीं करते हैं †। सबका धारण-पोषण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् अच्युतकी आराधना किये बिना संसार-सागरमें डूबे हुए मनुष्य कैसे पार जा सकेंगे ? अच्युत, अनन्त और गोविन्द—इन नामोंके उच्चारणरूप औषधसे सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ ‡। जो लोग नारायण ! जगन्नाथ ! वासुदेव ! जनार्दन ! आदि नामोंका नित्य उच्चारण किया करते हैं, वे सर्वत्र वन्दनीय है। देवर्षे ! दुष्ट चित्तवाले मनुष्योंकी कितनी भारी मूर्खता है कि वे अपने हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णुको नहीं जानते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! नारद ! सुनो, मैं बार-बार इस बातको दुहराता हूँ, भगवान् विष्णु श्रद्धालु जनोंपर ही सतुष्ट होते हैं, अधिक धन और भाई-बन्धुवालोंपर नहीं। इहलोक और परलोकमें सुख चाहने-वाला मनुष्य सदा श्रीहरिकी पूजा करे तथा इहलोक और परलोकमें दुःख चाहनेवाला मनुष्य दूसरोंकी निन्दामें तत्पर रहे। जो देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी भक्तिसे रहित हैं, ऐसे मनुष्योंके जन्मको धिक्कार है। जिसे सत्पात्रके लिये दान नहीं दिया जाता, उस धनको बारंबार धिक्कार है। मुनिश्रेष्ठ ! जो शरीर भगवान् विष्णुको नमस्कार नहीं करता, उसे पाप-की खान समझना चाहिये। जिसने सुपात्रको दान न देकर जो कुछ द्रव्य जोड़ रक्खा है, वह लोकमें चोरीसे रखे हुए धनकी भाँति निन्दनीय है। संसारी मनुष्य बिजलीके समान चञ्चल धन-सम्पत्तिसे मतवाले हो रहे हैं। वे जीवोंके अज्ञान-मय पाशको दूर करनेवाले जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना नहीं करते हैं।

दैवी और आसुरी सृष्टिके भेदसे सृष्टि दो प्रकारकी बतायी गयी है। जहाँ भगवान्की भक्ति (और सदाचार) है, वह दैवी सृष्टि है और जो भक्ति (और सदाचार)से हीन है, वह आसुरी सृष्टि है। अतः विप्रवर नारद ! सुनो, भगवान् विष्णु-के भजनमें लगे हुए मनुष्य सर्वत्र श्रेष्ठ कहे गये हैं, क्योंकि भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। जो ईर्ष्या और द्वेषसे रहित, ब्राह्मणों-की रक्षामें तत्पर तथा काम आदि दोषोंसे दूर हैं, उनपर भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं।

वेदमालिको जानन्ति मुनिका उपदेश तथा वेदमालिकी मुक्ति

श्रीसनकजी कहते हैं—नारद ! जिन्होंने योगके द्वारा काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्यरूपी छः शत्रुओंको जीत लिया है तथा जो अहङ्कारशून्य और शान्त हैं, ऐसे ज्ञानी महात्मा ज्ञानस्वरूप अविनाशी श्रीहरिका ज्ञानयोगके द्वारा यजन करते हैं। जो व्रत, दान, तपस्या, यज्ञ तथा तीर्थस्नान करके विशुद्ध हो गये हैं, वे कर्मयोगी महापुरुष कर्मयोगके द्वारा भगवान् अच्युतका पूजन करते हैं। जो लोभी, दुर्व्यसनोंमें आसक्त और अज्ञानी हैं, वे जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना नहीं करते। वे मूढ अपनेको अजर-अमर समझते हैं; किंतु वास्तवमें मनुष्योंमें वे कीड़ेके समान जीवन बिताते हैं। जो बिजलीकी लकीरके समान क्षणभरमें चमककर लुप्त हो जानेवाली है, ऐसी लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त हो व्यर्थ अहंकारसे दूषित चित्तवाले मनुष्य सब प्रकारसे कल्याण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करते हैं। जो भगवद्धर्मके पालनमें तत्पर, शान्त, श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी सेवा करनेवाले तथा सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह रखनेवाले हैं, ऐसे तो कोई बिरले महात्मा ही दैवयोगसे उत्पन्न हो जाते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी आराधना करता है, वह समस्त लोकोंमें परम उत्तम, परम धामको जाता है। इस विषयमें इस प्राचीन इतिहासका

* काममूलमिदं जन्म कामः पापस्य कारणम्। यशःक्षयकरः कामस्तस्मात्तं परिवर्जयेत्॥
समस्तदुःखजालानां मात्सर्यं कारणं स्मृतम्। नरकाणां साधनं च तस्मात्तदपि संत्यजेत्॥
(ना० पूर्व० ३४। ५६-५७)

† अहो धैर्यमहो धैर्यमहो धैर्यमहो नृणाम्। विष्णौ स्थिते जगन्नाथे न भजन्ति मदोद्धताः॥
(ना० पूर्व० ३४। ५९)

‡ अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ (ना० पूर्व० ३४। ६१)

साधन है, अतः उसे भी त्याग देना चाहिये *। मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण है। अतः मनको परमात्मामें लगाकर सुखी हो जाना चाहिये। अहो! मनुष्यों-का धैर्य कितना अद्भुत, कितना विचित्र तथा कितना आश्चर्य-जनक है कि जगदीश्वर भगवान् विष्णुके होते हुए भी वे मद-से उन्मत्त होकर उनका भजन नहीं करते हैं †। सबका धारण-पोषण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् अच्युतकी आराधना किये बिना संसार-सागरमें डूबे हुए मनुष्य कैसे पार जा सकेंगे? अच्युत, अनन्त और गोविन्द—इन नामोंके उच्चारणरूप औषधसे सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ ‡। जो लोग नारायण! जगन्नाथ! वासुदेव! जनार्दन! आदि नामोंका नित्य उच्चारण किया करते हैं, वे सर्वत्र वन्दनीय है। देवर्षे! दुष्ट चित्तवाले मनुष्योंकी कितनी भारी मूर्खता है कि वे अपने हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णुको नहीं जानते हैं। मुनिश्रेष्ठ! नारद! सुनो, मैं बार-बार इस बातको दुहराता हूँ, भगवान् विष्णु श्रद्धालु जनोंपर ही सतुष्ट होते हैं, अधिक धन और भाई-बन्धुवालोंपर नहीं। इहलोक और परलोकमें सुख चाहने-वाला मनुष्य सदा श्रीहरिकी पूजा करे तथा इहलोक और परलोकमें दुःख चाहनेवाला मनुष्य दूसरोंकी निन्दामे तत्पर रहे। जो देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी भक्तिसे रहित हैं, ऐसे मनुष्योंके जन्मको धिक्कार है। जिसे सत्पात्रके लिये दान नहीं दिया जाता, उस धनको बारंबार धिक्कार है। मुनिश्रेष्ठ! जो शरीर भगवान् विष्णुको नमस्कार नहीं करता, उसे पाप-की खान समझना चाहिये। जिसने सुपात्रको दान न देकर जो कुछ द्रव्य जोड़ रक्खा है, वह लोकमें चोरीसे रखे हुए धनकी भाँति निन्दनीय है। संसारी मनुष्य बिजलीके समान चञ्चल धन-सम्पत्तिसे मतवाले हो रहे हैं। वे जीवोंके अज्ञान-मय पाशको दूर करनेवाले जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना नहीं करते हैं।

दैवी और आसुरी सृष्टिके भेदसे सृष्टि दो प्रकारकी बतायी गयी है। जहाँ भगवान्की भक्ति (और सदाचार) है, वह दैवी सृष्टि है और जो भक्ति (और सदाचार) से हीन है, वह आसुरी सृष्टि है। अतः विप्रवर नारद! सुनो, भगवान् विष्णु-के भजनमें लगे हुए मनुष्य सर्वत्र श्रेष्ठ कहे गये हैं, क्योंकि भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। जो ईर्ष्या और द्वेषसे रहित, ब्राह्मणों-की रक्षामे तत्पर तथा काम आदि दोषोंसे दूर हैं, उनपर भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं।

वेदमालिको जानन्ति मुनिका उपदेश तथा वेदमालिकी मुक्ति

श्रीसनकजी कहते हैं—नारद! जिन्होंने योगके द्वारा काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्यरूपी छः शत्रुओंको जीत लिया है तथा जो अहङ्कारशून्य और शान्त हैं, ऐसे ज्ञानी महात्मा ज्ञानस्वरूप अविनाशी श्रीहरिका ज्ञानयोगके द्वारा यजन करते हैं। जो व्रत, दान, तपस्या, यज्ञ तथा तीर्थस्नान करके विशुद्ध हो गये हैं, वे कर्मयोगी महापुरुष कर्मयोगके द्वारा भगवान् अच्युतका पूजन करते हैं। जो लोभी, दुर्व्यसनोंमें आसक्त और अज्ञानी हैं, वे जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना नहीं करते। वे मूढ अपनेको अजर-अमर समझते हैं; किंतु वास्तवमें मनुष्योंमें वे कीड़ेके समान जीवन बिताते हैं। जो बिजलीकी लकीरके समान क्षणभरमें चमककर लुप्त हो जानेवाली है, ऐसी लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त हो व्यर्थ अहंकारसे दूषित चित्तवाले मनुष्य सब प्रकारसे कल्याण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करते हैं। जो भगवद्धर्मके पालनमें तत्पर, शान्त, श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी सेवा करनेवाले तथा सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह रखनेवाले हैं, ऐसे तो कोई बिरले महात्मा ही दैवयोगसे उत्पन्न हो जाते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी आराधना करता है, वह समस्त लोकोमे परम उत्तम, परम धामको जाता है। इस विषयमें इस प्राचीन इतिहासका

* काममूलमिदं जन्म कामः पापस्य कारणम्। यशःक्षयकरः कामस्तस्मात्तं परिवर्जयेत्॥
मत्सरं दु खजालानां मात्सर्यं कारणं स्मृतम्। नरकाणां साधनं च तस्मात्तदपि सत्यजेत्॥
(ना० पूर्व० ३४। ५६-५७)

† अहो धैर्यमहो धैर्यमहो धैर्यमहो नृणाम्। विष्णौ स्थिते जगन्नाथे न भजन्ति मदोद्धता॥
(ना० पूर्व० ३४। ५९)

‡ अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ (ना० पूर्व० ३४। ६१)

आदि सामग्रियोंद्वारा नारायण-बुद्धिसे अतिथि वेदमालिका पूजन किया। आतिथ्यसत्कार हो जानेपर वेदमालिने हाथ जोड़ विनयसे मस्तक झुकाकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षिसे कहा—भगवन्! मैं कृतकृत्य हो गया। आज मेरे सब पाप दूर हो गये। महाभाग! आप विद्वान् हैं। ज्ञान देकर मेरा उद्धार कीजिये। ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ जानन्ति बोले—

ब्रह्मन्! तुम प्रतिदिन सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णुका भजन करो। सर्वशक्तिमान् श्रीनारायणका चिन्तन करते रहो। दूसरोंकी निन्दा और चुगली कभी न करो। महामते! सदा परोपकार-में लगे रहो। भगवान् विष्णुकी पूजामें मन लगाओ और मूर्खोंसे मिलना-जुलना छोड़ दो। काम, क्रोध, लोभ, मोह,

मद और मात्सर्य छोड़कर लोकको अपने आत्माके समान देखो—इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। ईर्ष्या, दोषदृष्टि तथा दूसरेकी निन्दा भूलकर भी न करो। पाखण्डपूर्ण आचार, अहङ्कार और क्रूरताका सर्वथा त्याग करो। सब प्राणियोंपर दया तथा साधु पुरुषोंकी सेवा करते रहो। अपने किये हुए धर्मोंको पूछनेपर भी दूसरोंपर प्रकट न करो। दूसरोंको अत्याचार करते देखो, यदि शक्ति हो तो उन्हें रोको, लापरवाही न करो। अपने कुटुम्बका विरोध न करते हुए सदा अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करो। पत्र, पुष्प, फल अथवा दूर्वा अथवा पल्लवोंद्वारा निष्कामभावसे जगदीश्वर भगवान् नारायणकी पूजा करो। देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करो। विप्रवर! विधिपूर्वक अग्निकी सेवा भी करते रहो। देवमन्दिरमें प्रतिदिन झाड़ू लगाया करो और एकाग्रचित्त होकर उसकी लिपाई-पुताई भी किया करो। देवमन्दिरकी दीवारमें जहाँ-कहीं कुछ टूट-फूट गया हो, उसकी मरम्मत कराते रहो। मन्दिरमें प्रवेशका जो मार्ग हो उसे पताका और पुष्प आदिसे सुशोभित करो और भगवान् विष्णुके गृहमें दीपक जलाया करो। प्रतिदिन यथाशक्ति पुराणकी कथा सुनो। उसका पाठ करो और वेदान्तका स्वाध्याय करते रहो। ऐसा करनेपर तुम्हें परम उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञानसे समस्त पापोका निश्चय ही निवारण एवं मोक्ष हो जाता है।

जानन्ति मुनिके इस प्रकार उपदेश देनेपर परम बुद्धिमान् वेदमालि उसी प्रकार ज्ञानके साधनमें लगे रहे। वे अपने आपमें ही परमात्मा भगवान् अच्युतका दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुए। मैं ही उपाधिरहित स्वयंप्रकाश निर्मल ब्रह्म हूँ—ऐसा निश्चय करनेपर उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई।

भगवान् विष्णुके भजनकी महिमा—सत्सङ्ग तथा भगवान्के चरणोदकसे एक व्याधका उद्धार

श्रीसनकजी कहते हैं—विप्रवर! भगवान् लक्ष्मीपति विष्णुके माहात्म्यका वर्णन फिर सुनो। भगवान्की अमृतमयी कथा सुननेके लिये किसके मनमें प्रेम और उत्साह नहीं होता? जो विषयभोगमें अन्धे हो रहे हैं, जिनका चित्त ममतासे व्याकुल है, उन मनुष्योंके सम्पूर्ण पापोंका नाश भगवान्के एक ही नामका स्मरण कर देता है। जो भगवान्-की पूजासे दूर रहते, वेदोंका विरोध करते और गौ तथा ब्राह्मणोंसे द्वेष रखते हैं वे राक्षस कहे गये हैं*। जो भगवान् विष्णुकी आराधनामे लगे रहकर सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह रखते तथा धर्मकार्यमें सदा तत्पर रहते है, वे साक्षात् भगवान विष्णुके स्वरूप माने गये हैं। जिनका चित्त भगवान् विष्णुकी

* हरिपूजाविहीनाश्च वेदविद्वेषिणस्तथा।
गोद्विजद्वेषनिरता राक्षसाः परिकीर्तिताः॥
(ना० पूर्व० ३७।५)

आदि सामग्रियोंद्वारा नारायण-बुद्धिसे अतिथि वेदमालिका पूजन किया। आतिथ्यसत्कार हो जानेपर वेदमालिने हाथ जोड़ विनयसे मस्तक झुकाकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षिसे कहा— भगवन्! मैं कृतकृत्य हो गया। आज मेरे सब पाप दूर हो गये। महाभाग! आप विद्वान् हैं। ज्ञान देकर मेरा उद्धार कीजिये। ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ जानन्ति बोले—

ब्रह्मन्! तुम प्रतिदिन सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णुका भजन करो। सर्वशक्तिमान् श्रीनारायणका चिन्तन करते रहो। दूसरोंकी निन्दा और चुगली कभी न करो। महामते! सदा परोपकार-में लगे रहो। भगवान् विष्णुकी पूजामें मन लगाओ और मूर्खोंसे मिलना-जुलना छोड़ दो। काम, क्रोध, लोभ, मोह,

मद और मात्सर्य छोड़कर लोकको अपने आत्माके समान देखो—इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। ईर्ष्या, दोषदृष्टि तथा दूसरेकी निन्दा भूलकर भी न करो। पाखण्डपूर्ण आचार, अहङ्कार और क्रूरताका सर्वथा त्याग करो। सब प्राणियोंपर दया तथा साधु पुरुषोंकी सेवा करते रहो। अपने किये हुए धर्मोंको पूछनेपर भी दूसरोंपर प्रकट न करो। दूसरोंको अत्याचार करते देखो, यदि शक्ति हो तो उन्हें रोको, लापरवाही न करो। अपने कुटुम्बका विरोध न करते हुए सदा अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करो। पत्र, पुष्प, फल अथवा दूर्वा अथवा पल्लवोंद्वारा निष्कामभावसे जगदीश्वर भगवान् नारायणकी पूजा करो। देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करो। विप्रवर! विधिपूर्वक अग्निकी सेवा भी करते रहो। देवमन्दिरमें प्रतिदिन झाड़ू लगाया करो और एकाग्रचित्त होकर उसकी लिपाई-पुताई भी किया करो। देवमन्दिरकी दीवारमें जहाँ-कहीं कुछ टूट-फूट गया हो, उसकी मरम्मत कराते रहो। मन्दिरमें प्रवेशका जो मार्ग हो उसे पताका और पुष्प आदिसे सुशोभित करो और भगवान् विष्णुके गृहमें दीपक जलाया करो। प्रतिदिन यथाशक्ति पुराणकी कथा सुनो। उसका पाठ करो और वेदान्तका स्वाध्याय करते रहो। ऐसा करनेपर तुम्हें परम उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञानसे समस्त पापोंका निश्चय ही निवारण एवं मोक्ष हो जाता है।

जानन्ति मुनिके इस प्रकार उपदेश देनेपर परम बुद्धिमान् वेदमालि उसी प्रकार ज्ञानके साधनमें लगे रहे। वे अपने आपमें ही परमात्मा भगवान् अच्युतका दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुए। मैं ही उपाधिरहित स्वयंप्रकाश निर्मल ब्रह्म हूँ—ऐसा निश्चय करनेपर उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई।

भगवान् विष्णुके भजनकी महिमा—सत्सङ्ग तथा भगवान्के चरणोदकसे एक व्याधका उद्धार

श्रीसनकजी कहते हैं—विप्रवर! भगवान् लक्ष्मीपति विष्णुके माहात्म्यका वर्णन फिर सुनो। भगवान्की अमृतमयी कथा सुननेके लिये किसके मनमें प्रेम और उत्साह नहीं होता? जो विषयभोगमें अन्धे हो रहे हैं, जिनका चित्त ममतासे व्याकुल है, उन मनुष्योंके सम्पूर्ण पापोंका नाश भगवान्के एक ही नामका स्मरण कर देता है। जो भगवान्-की पूजासे दूर रहते, वेदोंका विरोध करते और गौ तथा ब्राह्मणोंसे द्वेष रखते हैं वे राक्षस कहे गये हैं*। जो भगवान् विष्णुकी आराधनामें लगे रहकर सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह रखते तथा धर्मकार्यमें सदा तत्पर रहते हैं, वे साक्षात् भगवान् विष्णुके स्वरूप माने गये हैं। जिनका चित्त भगवान् विष्णुकी

* हरिपूजाविहीनाश्च वेदविद्वेषिणस्तथा।
गोद्विजद्वेषनिरता राक्षसाः परिकीर्तिताः॥
(ना० पूर्व० ३७।५)

सम्बन्ध रखते हैं, परंतु इहलोक और परलोकमें केवल धर्म और अधर्म ही सदा उसके साथ रहते हैं, वहाँ दूसरा कोई साथी नहीं है *। धर्म और अधर्मसे कमाये हुए धनके द्वारा जिसने जिन लोगोंका पालन-पोषण किया है, वे ही मरनेपर उसे आगके मुखमे झोंककर स्वय घी मिलाया हुआ अन्न खाते हैं। पापी मनुष्योंकी कामना रोज बढ़ती है और पुण्यात्मा पुरुषोंकी कामना प्रतिदिन क्षीण होती है। लोग सदा धन आदिके उपार्जनमे व्यर्थ ही व्याकुल रहते हैं। 'जो होनेवाला है, वह होकर ही रहता है और जो नहीं होनेवाला है, वह कभी नहीं होता' जिनकी बुद्धिमें ऐसा निश्चय होता है, उन्हें चिन्ता कभी नहीं सताती †। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् दैवके अधीन है; अतः दैव ही जन्म और मृत्युको जानता है, दूसरा नहीं। अहो! ममतासे व्याकुल चित्तवाले मनुष्योंका दुःख महान् है; क्योंकि वे बड़े-बड़े पाप करके भी दूसरोका यत्नपूर्वक पालन करते हैं। मनुष्यके कमाये हुए सम्पूर्ण धनको सदा सब भाई-बन्धु भोगते हैं, किंतु वह मूर्ख अपने पापोंका फल स्वयं अकेला ही भोगता है ‡।

ऐसा कहते हुए महर्षि उत्तङ्कको गुलिकने छोड़ दिया। फिर वह भयसे व्याकुल हो उठा और हाथ जोडकर बार-बार कहने लगा—'मेरा अपराध क्षमा कीजिये।' सत्सङ्गके प्रभावसे तथा भगवद्विग्रहका सामीप्य मिल जानेसे व्याधका सारा पाप नष्ट हो गया। उसे अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वह इस प्रकार बोला—'विप्रवर! मैंने बहुत बड़े-बड़े पाप किये हैं। वे सब आपके दर्शनसे नष्ट हो गये। अहो! मेरी बुद्धि सदा पापमें ही लगी रही और मैं शरीरसे भी सदा महान् पापोंका ही आचरण करता रहा। अब मेरा उद्धार कैसे होगा? भगवन्! मैं किसकी शरणमें जाऊँ? पूर्वजन्ममे किये हुए पापोंके कारण मेरा व्याधके कुलमें जन्म हुआ।

अब इस जीवनमे भी ढेर-के-ढेर पाप करके मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगा? अहो! मेरी आयु शीघ्रतापूर्वक नष्ट हो रही है। मैंने पापोंके निवारणके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं किया, अतः उन पापोका फल मैं कितने जन्मोंतक भोगूँगा?'—

इस प्रकार स्वयं ही अपनी निन्दा करते हुए उस व्याधने आन्तरिक संतापकी अग्निसे झुलसकर तुरंत प्राण त्याग दिये। व्याधको गिरा हुआ देख महर्षि उत्तङ्कको बडी दया आयी और उन महाबुद्धिमान् मुनिने भगवान् विष्णुके चरणोदकसे उसके शरीरको सींच दिया। भगवान्के चरणोदकका स्पर्श पाकर उसके पाप नष्ट हो गये और वह व्याध दिव्य शरीरसे दिव्य विमानपर बैठकर मुनिसे इस प्रकार बोला।

गुलिकने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनिश्रेष्ठ उत्तङ्कजी! आप मेरे गुरु हैं। आपके ही प्रसादसे मुझे इन महापातकोंसे छुटकारा मिला है। मुनीश्वर! आपके उपदेशसे मेरा संताप दूर हो गया और सम्पूर्ण पाप भी तुरंत नष्ट हो गये। मुने! आपने मेरे ऊपर जो भगवान्का चरणोदक छिड़का है, उसके प्रभावसे आज मुझे आपने भगवान् विष्णुके परम पदको पहुँचा दिया। विप्रवर! आपके द्वारा इस पापमय शरीरसे मेरा उद्धार हो गया; इसलिये मैं आपके चरणोंमें मस्तक नवाता हूँ। विद्वन्! मेरे किये हुए अपराधको आप क्षमा करें।

ऐसा कहकर उसने मुनिवर उत्तङ्कपर दिव्य पुष्पोंकी

---

* यावदर्जयति द्रव्य वान्धवास्तावदेव हि।
धर्माधर्मौ सहैवास्तामिहामुत्र न चापरः॥
(ना० पूर्व० ३७। ४२)

† यद्भावि तद्भवत्येव यदभाव्य न तद्भवेत्।
इति निश्चितबुद्धीना न चिन्ता बाधते क्वचित्॥
(ना० पूर्व० ३७। ४७)

‡ अर्जित च धन सर्वं भुञ्जते वान्धवा· सदा।
स्वयमेकतमो मूढस्तत्पापफलमश्नुते॥
(ना० पूर्व० ३७। ५१)

सम्बन्ध रखते हैं, परंतु इहलोक और परलोकमें केवल धर्म और अधर्म ही सदा उसके साथ रहते है, वहाँ दूसरा कोई साथी नहीं है *। धर्म और अधर्मसे कमाये हुए धनके द्वारा जिसने जिन लोगोंका पालन-पोषण किया है, वे ही मरनेपर उसे आगके मुखमे झोंककर स्वय घी मिलाया हुआ अन्न खाते हैं। पापी मनुष्योंकी कामना रोज बढ़ती है और पुण्यात्मा पुरुषोंकी कामना प्रतिदिन क्षीण होती है। लोग सदा धन आदिके उपार्जनमे व्यर्थ ही व्याकुल रहते हैं। 'जो होनेवाला है, वह होकर ही रहता है और जो नहीं होनेवाला है, वह कभी नहीं होता' जिनकी बुद्धिमें ऐसा निश्चय होता है, उन्हें चिन्ता कभी नहीं सताती †। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् दैवके अधीन है; अतः दैव ही जन्म और मृत्युको जानता है, दूसरा नहीं। अहो! ममतासे व्याकुल चित्तवाले मनुष्योंका दुःख महान् है; क्योंकि वे बड़े-बड़े पाप करके भी दूसरोका यत्नपूर्वक पालन करते हैं। मनुष्यके कमाये हुए सम्पूर्ण धनको सदा सब भाई-बन्धु भोगते हैं, किंतु वह मूर्ख अपने पापोंका फल स्वयं अकेला ही भोगता है ‡।

ऐसा कहते हुए महर्षि उत्तङ्कको गुलिकने छोड़ दिया। फिर वह भयसे व्याकुल हो उठा और हाथ जोडकर बार-बार कहने लगा—'मेरा अपराध क्षमा कीजिये।' सत्सङ्गके प्रभावसे तथा भगवद्विग्रहका सामीप्य मिल जानेसे व्याधका सारा पाप नष्ट हो गया। उसे अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वह इस प्रकार बोला—'विप्रवर! मैने बहुत बड़े-बड़े पाप किये हैं। वे सब आपके दर्शनसे नष्ट हो गये। अहो! मेरी बुद्धि सदा पापमें ही लगी रही और मैं शरीरसे भी सदा महान् पापोंका ही आचरण करता रहा। अब मेरा उद्धार कैसे होगा? भगवन्! मैं किसकी शरणमें जाऊँ? पूर्वजन्ममे किये हुए पापोंके कारण मेरा व्याधके कुलमें जन्म हुआ।

* यावदर्जयति द्रव्य बान्धवास्तावदेव हि।
धर्माधर्मौ सहैवास्तामिहामुत्र न चापरः॥
(ना० पूर्व० ३७। ४२)

† यद्भावि तद्भवत्येव यदभाव्य न तद्भवेत्।
इति निश्चितबुद्धीना न चिन्ता बाधते क्वचित्॥
(ना० पूर्व० ३७। ४७)

‡ अर्जित च धन सर्वं भुञ्जते बान्धवाः सदा।
स्वयमेकतमो मूढस्तत्पापफलमश्नुते॥
(ना० पूर्व० ३७। ५१)

अब इस जीवनमे भी ढेर-के-ढेर पाप करके मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगा? अहो! मेरी आयु शीघ्रतापूर्वक नष्ट हो रही है। मैंने पापोंके निवारणके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं किया, अतः उन पापोका फल मैं कितने जन्मोंतक भोगूँगा?'—

इस प्रकार स्वयं ही अपनी निन्दा करते हुए उस व्याधने आन्तरिक संतापकी अग्निसे झुलसकर तुरंत प्राण त्याग दिये। व्याधको गिरा हुआ देख महर्षि उत्तङ्कको बडी दया आयी और उन महाबुद्धिमान् मुनिने भगवान् विष्णुके चरणोदकसे उसके शरीरको सींच दिया। भगवान्के चरणोदकका स्पर्श पाकर उसके पाप नष्ट हो गये और वह व्याध दिव्य शरीरसे दिव्य विमानपर बैठकर मुनिसे इस प्रकार बोला।

गुलिकने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनिश्रेष्ठ उत्तङ्कजी! आप मेरे गुरु हैं। आपके ही प्रसादसे मुझे इन महापातकोंसे छुटकारा मिला है। मुनीश्वर! आपके उपदेशसे मेरा संताप दूर हो गया और सम्पूर्ण पाप भी तुरंत नष्ट हो गये। मुने! आपने मेरे ऊपर जो भगवान्का चरणोदक छिड़का है, उसके प्रभावसे आज मुझे आपने भगवान् विष्णुके परम पदको पहुँचा दिया। विप्रवर! आपके द्वारा इस पापमय शरीरसे मेरा उद्धार हो गया; इसलिये मैं आपके चरणोंमें मस्तक नवाता हूँ। विद्वन्! मेरे किये हुए अपराधको आप क्षमा करें।

ऐसा कहकर उसने मुनिवर उत्तङ्कपर दिव्य पुष्पोंकी

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ—इन सबको भगवान् वासुदेवका स्वरूप कहा गया है। विद्या और अविद्या भी उन्हींके रूप हैं। वे ही परात्पर परमात्मा कहे गये हैं। जिनका आदि और अन्त नहीं है तथा जो सबका धारण-पोषण करनेवाले हैं, उन शान्तस्वरूप भगवान् अच्युतकी जो महात्मा शरण लेते हैं, उन्हें सनातन मोक्ष प्राप्त होता है। जो श्रेष्ठ, वरण करने योग्य, वरदाता, पुराण, पुरुष, सनातन, सर्वगत तथा सर्वस्वरूप हैं, उन भगवान्‌को मैं पुनः प्रणाम करता हूँ, पुनः प्रणाम करता हूँ, पुनः प्रणाम करता हूँ, पुनः प्रणाम करता हूँ। जिनका चरणोदक संसाररूपी रोगको दूर करनेवाला वैद्य है, जिनके चरणोंकी धूल निर्मलता (अन्तःशुद्धि) का साधन है तथा जिनका नाम समस्त पापोंका निवारण करनेवाला है, उन अप्रमेय पुरुष श्रीहरिकी मैं आराधना करता हूँ। जो सद्रूप, असद्रूप, सदसद्रूप और उन सबसे विलक्षण हैं तथा जो श्रेष्ठ एवं श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर हैं, उन अविनाशी भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ। जो निरञ्जन, निराकार, सर्वत्र परिपूर्ण परमव्योममें विराजमान, विद्या और अविद्यासे परे तथा हृदयकमलमें अन्तर्यामीरूपसे निवास करनेवाले हैं, जो स्वयंप्रकाश, अनिर्देश्य (जाति, गुण और क्रिया आदिसे रहित), महान्‌से भी परम महान्, सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, अजन्मा, सब प्रकारकी उपाधियोंसे रहित, नित्य, परमानन्द और सनातन परब्रह्म हैं, उन जगन्निवास भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। क्रियानिष्ठ भक्त जिनका भजन करते हैं, योगीजन समाधिमें जिनका दर्शन करते हैं, तथा जो पूज्यसे भी परम पूज्य एवं शान्त हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी मैं शरण लेता हूँ। विद्वान् पुरुष भी जिन्हें देख नहीं पाते, जो इस सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित और सबसे श्रेष्ठ हैं, उन नित्य अविनाशी विभुको मैं प्रणाम करता हूँ। अन्तःकरणके संयोगसे जिन्हें जीव कहा जाता है और अविद्याके कार्यसे रहित होनेपर जो परमात्मा कहलाते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनका स्वरूप है, जो सबके कारण, समस्त कर्मोंके फलदाता, श्रेष्ठ, वरण करने योग्य तथा अजन्मा हैं, उन परात्पर भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ। जो सर्वज्ञ, सर्वगत, सर्वान्तर्यामी, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानके आश्रय तथा ज्ञानमें स्थित हैं, उन सर्वव्यापी श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ। जो वेदोंके निधि हैं, वेदान्तके विज्ञानद्वारा जिनके परमार्थस्वरूपका भलीभाँति निश्चय होता है, सूर्य और चन्द्रमाके तुल्य जिनके प्रकाशमान नेत्र हैं, जो ऐश्वर्यशाली इन्द्ररूप हैं, आकाशमें विचरनेवाले पक्षी एवं ग्रह-नक्षत्र आदि जिनके स्वरूप हैं तथा जो खगपति (गरुड़) स्वरूप हैं, उन भगवान् मुरारिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सबके ईश्वर, सबमें व्यापक, महान् वेदस्वरूप, वेद-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ, वाणी और मनकी पहुँचसे परे, अनन्त शक्तिसम्पन्न तथा एकमात्र ज्ञानके ही द्वारा जानने योग्य हैं, उन परम पुरुष श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ। जिनकी सत्ता सर्वत्र परिपूर्ण है, जो इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, सूर्य तथा इन्द्र आदिके द्वारा स्वयं ही सब लोकोंकी रक्षा करते हैं, उन अप्रमेय परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके सहस्रों मस्तक, सहस्रों पैर, सहस्रों भुजाएँ और सहस्रों नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोंसे सेवित तथा सबको संतोष प्रदान करनेवाले हैं, उन उग्रशक्तिसम्पन्न आदिपुरुष श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो कालस्वरूप, काल-विभागके हेतु, तीनों गुणोंसे अतीत, गुणज्ञ, गुणप्रिय, कामना पूर्ण करनेवाले, सङ्गरहित, अतीन्द्रिय, विश्वपालक, तृष्णाहीन, निरीह, श्रेष्ठ, मनके द्वारा भी अगम्य, मनोमय और अन्नमय स्वरूप, सबमें व्याप्त, विज्ञानसे सम्पन्न तथा शक्तिशाली हैं, जो वाणीके विषय नहीं हो सकते तथा जो सबके प्राणस्वरूप हैं, उन भगवान्‌का मैं भजन करता हूँ। जिनके रूपको, जिनके बल और प्रभावको, जिनके विविध कर्मोंको तथा जिनके प्रमाणको ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जानते, उन आत्मस्वरूप श्रीहरिकी स्तुति मैं कैसे कर सकता हूँ? मैं संसार-समुद्रमें गिरा हुआ एक दीन मनुष्य हूँ, मोहसे व्याकुल हूँ, सैकड़ों कामनाओंने मुझे बाँध रक्खा है। मैं अकीर्तिभागी, चुगला, कृतघ्न, सदा अपवित्र, पापपरायण तथा अत्यन्त क्रोधी हूँ। दयासागर! मुझ भयभीतकी रक्षा कीजिये। मैं बार-बार आपकी शरण लेता हूँ *।

---

* नतोऽस्मि नारायणमादिदेवं जगन्निवासं जगदेकबन्धुम्।
चक्राब्जशार्ङ्गासिधरं महान्तं स्मृतार्तिनिघ्नं शरणं प्रपद्ये॥
यन्नाभिजाब्जप्रभवो विधाता सृजत्यमुं लोकसमुच्चयं च।
यत्क्रोधजो हन्ति जगच्च रुद्रस्तमादिदेवं प्रणतोऽस्मि विष्णुम्॥
पद्मापतिं पद्मदलायताक्षं विचित्रवीर्यं निखिलैकहेतुम्।
वेदान्तवेद्यं पुरुषं पुराणं तेजोनिधिं विष्णुमहं प्रपन्नः॥
आत्माक्षरः सर्वगतोऽच्युताख्यो ज्ञानात्मको ज्ञानविदां शरण्यः।
ज्ञानैकवेद्यो भगवाननादिः प्रसीदतां व्यष्टिसमष्टिरूपः॥
अनन्तवीर्यो गुणजातिहीनो गुणात्मको ज्ञानविदां वरिष्ठः।
नित्यः प्रपन्नार्तिहरः परात्मा दयाम्बुधिर्मे वरदस्तु भूयात्॥

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ—इन सबको भगवान् वासुदेवका स्वरूप कहा गया है। विद्या और अविद्या भी उन्हींके रूप हैं। वे ही परात्पर परमात्मा कहे गये हैं। जिनका आदि और अन्त नहीं है तथा जो सबका धारण-पोषण करनेवाले हैं, उन शान्तस्वरूप भगवान् अच्युतकी जो महात्मा शरण लेते हैं, उन्हें सनातन मोक्ष प्राप्त होता है। जो श्रेष्ठ, वरण करने योग्य, वरदाता, पुराण, पुरुष, सनातन, सर्वगत तथा सर्वस्वरूप हैं, उन भगवान्‌को मैं पुनः प्रणाम करता हूँ, पुनः प्रणाम करता हूँ, पुनः प्रणाम करता हूँ, पुनः प्रणाम करता हूँ। जिनका चरणोदक संसाररूपी रोगको दूर करनेवाला वैद्य है, जिनके चरणोंकी धूल निर्मलता (अन्तःशुद्धि) का साधन है तथा जिनका नाम समस्त पापोंका निवारण करनेवाला है, उन अप्रमेय पुरुष श्रीहरिकी मै आराधना करता हूँ। जो सद्रूप, असद्रूप, सदसद्रूप और उन सबसे विलक्षण हैं तथा जो श्रेष्ठ एवं श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर हैं, उन अविनाशी भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ। जो निरञ्जन, निराकार, सर्वत्र परिपूर्ण परमव्योममें विराजमान, विद्या और अविद्यासे परे तथा हृदयकमलमें अन्तर्यामीरूपसे निवास करनेवाले हैं, जो स्वयंप्रकाश, अनिर्देश्य (जाति, गुण और क्रिया आदिसे रहित), महान्‌से भी परम महान्, सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, अजन्मा, सब प्रकारकी उपाधियोंसे रहित,नित्य, परमानन्द और सनातन परब्रह्म हैं, उन जगन्निवास भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। क्रियानिष्ठ भक्त जिनका भजन करते हैं, योगीजन समाधिमें जिनका दर्शन करते हैं, तथा जो पूज्यसे भी परम पूज्य एवं शान्त हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी मैं शरण लेता हूँ। विद्वान् पुरुष भी जिन्हें देख नहीं पाते, जो इस सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित और सबसे श्रेष्ठ हैं, उन नित्य अविनाशी विभुको मैं प्रणाम करता हूँ। अन्तःकरणके संयोगसे जिन्हें जीव कहा जाता है और अविद्याके कार्यसे रहित होनेपर जो परमात्मा कहलाते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनका स्वरूप है, जो सबके कारण, समस्त कर्मोंके फलदाता, श्रेष्ठ, वरण करने योग्य तथा अजन्मा हैं, उन परात्पर भगवान्‌को मै प्रणाम करता हूँ। जो सर्वज्ञ, सर्वगत, सर्वान्तर्यामी, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानके आश्रय तथा ज्ञानमें स्थित हैं, उन सर्वव्यापी श्रीहरिका मै भजन करता हूँ। जो वेदोंके निधि हैं, वेदान्तके विज्ञानद्वारा जिनके परमार्थस्वरूपका भलीभाँति निश्चय होता है, सूर्य और चन्द्रमाके तुल्य जिनके प्रकाशमान नेत्र हैं, जो ऐश्वर्यशाली इन्द्ररूप हैं, आकाशमें विचरनेवाले पक्षी एवं ग्रह-नक्षत्र आदि जिनके स्वरूप हैं तथा जो खगपति (गरुड़) स्वरूप हैं, उन भगवान् मुरारिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सबके ईश्वर, सबमें व्यापक, महान् वेदस्वरूप, वेद-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ, वाणी और मनकी पहुँचसे परे, अनन्त शक्तिसम्पन्न तथा एकमात्र ज्ञानके ही द्वारा जानने योग्य हैं, उन परम पुरुष श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ। जिनकी सत्ता सर्वत्र परिपूर्ण है, जो इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, सूर्य तथा इन्द्र आदिके द्वारा स्वयं ही सब लोकोंकी रक्षा करते हैं, उन अप्रमेय परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके सहस्रों मस्तक, सहस्रों पैर, सहस्रों भुजाएँ और सहस्रों नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोंसे सेवित तथा सबको संतोष प्रदान करनेवाले हैं, उन उग्रशक्तिसम्पन्न आदिपुरुष श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो कालस्वरूप, काल-विभागके हेतु, तीनों गुणोंसे अतीत, गुणज्ञ, गुणप्रिय, कामना पूर्ण करनेवाले, सङ्गरहित, अतीन्द्रिय, विश्वपालक, तृष्णाहीन, निरीह, श्रेष्ठ, मनके द्वारा भी अगम्य, मनोमय और अन्नमय स्वरूप, सबमें व्याप्त, विज्ञानसे सम्पन्न तथा शक्तिशाली हैं, जो वाणीके विषय नहीं हो सकते तथा जो सबके प्राणस्वरूप हैं, उन भगवान्‌का मैं भजन करता हूँ। जिनके रूपको, जिनके बल और प्रभावको, जिनके विविध कर्मोंको तथा जिनके प्रमाणको ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जानते, उन आत्मस्वरूप श्रीहरिकी स्तुति मैं कैसे कर सकता हूँ ? मैं संसार-समुद्रमे गिरा हुआ एक दीन मनुष्य हूँ, मोहसे व्याकुल हूँ, सैकड़ों कामनाओंने मुझे बाँध रक्खा है। मैं अकीर्तिभागी, चुगला, कृतघ्न, सदा अपवित्र, पापपरायण तथा अत्यन्त क्रोधी हूँ। दयासागर ! मुझ भयभीतकी रक्षा कीजिये। मैं बार-बार आपकी शरण लेता हूँ *।

---

* नतोऽस्मि नारायणमादिदेवं जगन्निवासं जगदेकबन्धुम्।
चक्राब्जशार्ङ्गासिधरं महान्तं स्मृतार्तिनिघ्नं शरण प्रपद्ये ॥
यन्नाभिजाब्जप्रभवो विधाता सृजत्यमु लोकसमुच्चयं च।
यत्क्रोधजो हन्ति जगच्च रुद्रस्तमादिदेव प्रणतोऽस्मि विष्णुम् ॥
पद्मापतिं पद्मदलायताक्षं विचित्रवीर्यं निखिलैकहेतुम्।
वेदान्तवेद्यं पुरुष पुराणं तेजोनिधिं विष्णुमह प्रपन्न. ॥
आत्माक्षर. सर्वगतोऽच्युताख्यो ज्ञानात्मको ज्ञानविदा शरण्य।
ज्ञानैकवेद्यो भगवाननादिः प्रसीदतां व्यष्टिसमष्टिरूपः ॥
अनन्तवीर्यो गुणजातिहीनो गुणात्मको ज्ञानविदां वरिष्ठ.।
नित्यः प्रपन्नार्तिहरः परात्मा दयाम्बुधिर्मे वरदस्तु भूयात् ॥

किया* और आनन्दके आँसुओंसे श्रीहरिके दोनों चरणोंको

नहला दिया। फिर वे एकाग्रचित्त होकर बोले—'मुरारे ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तब परम दयालु भगवान् महाविष्णुने मुनिश्रेष्ठ उत्तङ्कको उठाकर छातीसे लगा लिया और कहा—'वत्स! कोई वर माँगो। साधुशिरोमणे! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है।' भगवान् चक्रपाणिके इस कथनको सुनकर महर्षि उत्तङ्कने पुनः प्रणाम किया और उन देवाधिदेव जनार्दनसे इस प्रकार कहा—'भगवन्! मुझे मोहमें क्यों डालते हैं? देव! मुझे दूसरे वरोंसे क्या प्रयोजन है? मेरी तो जन्म-जन्मान्तरोंमें भी आपके चरणोंमें ही अविचल भक्ति बनी रहे।' तब जगदीश्वर भगवान् विष्णुने 'एवमस्तु' (ऐसा ही होगा) यह कहकर शङ्खके सिरेसे उत्तङ्कजीके शरीरका स्पर्श कराया और उन्हें वह दिव्य ज्ञान दे दिया, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। तदनन्तर पुनः स्तुति करते हुए विप्रवर उत्तङ्कसे देवदेव जनार्दनने उनके सिरपर हाथ रखकर मुसकराते हुए कहा।

श्रीभगवान् बोले—जो मनुष्य तुम्हारे द्वारा किये हुए स्तोत्रका सदा पाठ करेगा, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करके अन्तमें मोक्षका भागी होगा।

नारदजी! ब्राह्मणसे ऐसा कहकर भगवान् लक्ष्मीपति वहीं अन्तर्धान हो गये। फिर उत्तङ्कजी भी वहाँसे बदरिकाश्रमको चले गये। अतः सदा देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी भक्ति करनी चाहिये। हरिभक्ति श्रेष्ठ कही गयी है। वह सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है। मुने! नरनारायणके आश्रममें जाकर उत्तङ्कजी क्रियायोगमें तत्पर हो प्रतिदिन भक्तिभावसे भगवान् माधवकी आराधना करने लगे। वे ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न थे। उनका द्वैतभ्रम नाश हो चुका था। अतः उन्होंने भगवान् विष्णुके दुर्लभ परम पदको प्राप्त कर लिया। भक्तोंका सम्मान बढ़ानेवाले जगदीश्वर भगवान् नारायण पूजन, नमस्कार अथवा स्मरण कर लेनेपर भी जीवको मोक्ष प्रदान करते हैं†। अतः इहलोक और परलोकमें सुख चाहनेवाला मनुष्य अनन्त, अपराजित श्रीनारायणदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करे। जो इस उपाख्यानको पढता अथवा एकाग्रचित्त होकर सुनता है, वह भी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

भगवान् विष्णुके भजन-पूजनकी महिमा

श्रीसनकजी कहते हैं—विप्रवर नारद! अब पुनः भगवान् विष्णुका माहात्म्य सुनो; वह सर्व पापहारी, पवित्र तथा मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाला है। अहो! संसारमें भगवान् विष्णुकी कथा अद्भुत है। वह श्रोता, वक्ता तथा विशेषतः भक्तजनोंके पापोंका नाश तथा पुण्यका सम्पादन करनेवाली है। जो श्रेष्ठ मानव भगवद्भक्तिका रसास्वादन करके प्रसन्न होते हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। उनका सङ्ग करनेसे साधारण मनुष्य भी मोक्षका भागी होता है। मुनिश्रेष्ठ! जो संसार-सागरके पार जाना चाहता हो, वह भगवद्भक्तोंके भक्तोंकी सेवा करे, क्योंकि वे सब पापोंको हर लेनेवाले हैं। दर्शन, स्मरण, पूजन, ध्यान अथवा प्रणाममात्र कर लेनेपर भगवान् गोविन्द दुस्तर भवसागरसे उद्धार कर

---

* अतसीपुष्पसकाशं फुल्लपङ्कजलोचनम्। किरीटिनं कुण्डलिनं हारकेयूरभूषितम्॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरं हेमयज्ञोपवीतिनम्। नासाविन्यस्तमुक्ताभवर्धमानतनुच्छविम्॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम्। तुलसीकोमलदलैरर्चिताङ्घ्रिं महाद्युतिम्॥
किङ्किणीनूपुराद्यैश्च शोभितं गरुडध्वजम्। दृष्ट्वा ननाम विप्रेन्द्रो दण्डवत्क्षितिमण्डले॥
(ना० पूर्व० ३८। ४०—४३)

† पूजितो नमितो वापि संस्मृतो वापि मोक्षदः। नारायणो जगन्नाथो भक्तानां मानवर्द्धनः॥
(ना० पूर्व० ३८। ५७)

किया* और आनन्दके आँसुओंसे श्रीहरिके दोनों चरणोंको

नहला दिया। फिर वे एकाग्रचित्त होकर बोले—'मुरारे! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तब परम दयालु भगवान् महाविष्णुने मुनिश्रेष्ठ उत्तङ्कको उठाकर छातीसे लगा लिया और कहा—'वत्स! कोई वर माँगो। साधुशिरोमणे! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; अतः तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है।' भगवान् चक्रपाणिके इस कथनको सुनकर महर्षि उत्तङ्कने पुनः प्रणाम किया और उन देवाधिदेव जनार्दनसे इस प्रकार कहा—'भगवन्! मुझे मोहमें क्यों डालते हैं? देव! मुझे दूसरे वरोंसे क्या प्रयोजन है? मेरी तो जन्म-जन्मान्तरोंमें भी आपके चरणोंमें ही अविचल भक्ति बनी रहे।' तब जगदीश्वर भगवान् विष्णुने 'एवमस्तु' (ऐसा ही होगा) यह कहकर शङ्खके सिरेसे उत्तङ्कजीके शरीरका स्पर्श कराया और उन्हें वह दिव्य ज्ञान दे दिया, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। तदनन्तर पुनः स्तुति करते हुए विप्रवर उत्तङ्कसे देवदेव जनार्दनने उनके सिरपर हाथ रखकर मुसकराते हुए कहा।

श्रीभगवान् बोले—जो मनुष्य तुम्हारे द्वारा किये हुए स्तोत्रका सदा पाठ करेगा, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करके अन्तमें मोक्षका भागी होगा।

नारदजी! ब्राह्मणसे ऐसा कहकर भगवान् लक्ष्मीपति वहीं अन्तर्धान हो गये। फिर उत्तङ्कजी भी वहाँसे बदरिकाश्रमको चले गये। अतः सदा देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी भक्ति करनी चाहिये। हरिभक्ति श्रेष्ठ कही गयी है। वह सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है। मुने! नरनारायणके आश्रममें जाकर उत्तङ्कजी क्रियायोगमें तत्पर हो प्रतिदिन भक्तिभावसे भगवान् माधवकी आराधना करने लगे। वे ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न थे। उनका द्वैतभ्रम नाश हो चुका था। अतः उन्होंने भगवान् विष्णुके दुर्लभ परम पदको प्राप्त कर लिया। भक्तोंका सम्मान बढ़ानेवाले जगदीश्वर भगवान् नारायण पूजन, नमस्कार अथवा स्मरण कर लेनेपर भी जीवको मोक्ष प्रदान करते हैं†। अतः इहलोक और परलोकमें सुख चाहनेवाला मनुष्य अनन्त, अपराजित श्रीनारायणदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करे। जो इस उपाख्यानको पढता अथवा एकाग्रचित्त होकर सुनता है, वह भी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

भगवान् विष्णुके भजन-पूजनकी महिमा

श्रीसनकजी कहते हैं—विप्रवर नारद! अब पुनः भगवान् विष्णुका माहात्म्य सुनो; वह सर्व पापहारी, पवित्र तथा मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाला है। अहो! संसारमें भगवान् विष्णुकी कथा अद्भुत है। वह श्रोता, वक्ता तथा विशेषतः भक्तजनोंके पापोंका नाश तथा पुण्यका सम्पादन करनेवाली है। जो श्रेष्ठ मानव भगवद्भक्तिका रसास्वादन करके प्रसन्न होते हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। उनका सङ्ग करनेसे साधारण मनुष्य भी मोक्षका भागी होता है। मुनिश्रेष्ठ! जो संसार-सागरके पार जाना चाहता हो, वह भगवद्भक्तोंके भक्तोंकी सेवा करे, क्योंकि वे सब पापोंको हर लेनेवाले हैं। दर्शन, स्मरण, पूजन, ध्यान अथवा प्रणाममात्र कर लेनेपर भगवान् गोविन्द दुस्तर भवसागरसे उद्धार कर

* अतसीपुष्पसकाशं फुल्लपङ्कजलोचनम्। किरीटिनं कुण्डलिनं हारकेयूरभूषितम्॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरं हेमयज्ञोपवीतिनम्। नासाविन्यस्तमुक्ताभवर्धमानतनुच्छविम्॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम्। तुलसीकोमलदलैरर्चिताङ्घ्रिं महाद्युतिम्॥
किङ्किणीनूपुराद्यैश्च शोभितं गरुडध्वजम्। दृष्ट्वा ननाम विप्रेन्द्रो दण्डवत्क्षितिमण्डले॥
(ना० पूर्व० ३८। ४०—४३)

† पूजितो नमितो वापि संस्मृतो वापि मोक्षदः। नारायणो जगन्नाथो भक्तानां मानवर्द्धनः॥
(ना० पूर्व० ३८। ५७)

इन्द्र और सुधर्मका संवाद, विभिन्न मन्वन्तरोंके इन्द्र और देवताओंका वर्णन, तथा भगवद्-भजनका माहात्म्य

श्रीसनकजी कहते हैं—मुने ! इसके बाद मैं भगवान् विष्णुकी विभूतिस्वरूप मनु और इन्द्र आदिका वर्णन करूँगा। इस वैष्णवी विभूतिका श्रवण अथवा कीर्तन करनेवाले पुरुषोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है।

एक समय वैवस्वत मन्वन्तरके भीतर ही गुरु बृहस्पति और देवताओंसहित इन्द्र सुधर्मके निवास-स्थानपर गये। देवर्षे! बृहस्पतिजीके साथ देवराजको आया देख सुधर्मने

आदरपूर्वक उनकी यथायोग्य पूजा की। सुधर्मसे पूजित हो इन्द्रने विनयपूर्वक कहा।

इन्द्र बोले—विद्वन् ! यदि आप बीते हुए ब्रह्मकल्पका वृत्तान्त जानते हैं तो बताइये। मैं यही पूछनेके लिये गुरुजीके साथ आया हूँ।

देवराज इन्द्रके ऐसा कहनेपर सुधर्म हँस पड़ा और उसने विनयपूर्वक पूर्वकल्पकी सब बातोंका विधिवत् वर्णन किया।

सुधर्मने कहा—इन्द्र ! एक सहस्र चतुर्युगीका ब्रह्माजीका एक दिन होता है और उनके एक दिनमें चौदह मनु, चौदह इन्द्र तथा पृथक्-पृथक् अनेक प्रकारके देवता हुआ करते हैं। वासव ! सभी इन्द्र और ... आदि ...

लक्ष्मी, प्रभाव और बलमें समान ही होते हैं। मैं ... नाम बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। स... स्वायम्भुव मनु हुए। तदनन्तर क्रमशः स्वारोचिष... तामस, रैवत, चाक्षुष, सातवें वैवस्वत मनु, अ... सावर्णि और नवें दक्षसावर्णि हैं। दसवें म... ब्रह्मसावर्णि और ग्यारहवेंका धर्मसावर्णि है। बारहवें रुद्रसावर्णि तथा तेरहवें रोचमान हुए। ... मनुका नाम भौत्य बताया गया है। ये चौदह ...

देवराज ! अब मैं देवताओं और इन्द्रोका वर्णन ... सुनो। स्वयम्भू मन्वन्तरमे देवतालोग यामके नाम... थे। उनके परम बुद्धिमान् इन्द्रकी शचीपति नाम... थी। स्वारोचिष मन्वन्तरमें पारावत और तुषि... देवता थे। उनके स्वामी इन्द्रका नाम विपश्चित ... सब प्रकारकी सम्पदाओंसे समृद्ध थे। तीसरे उत्त... मन्वन्तरमे सुधामा, सत्य, शिव तथा प्रतर्दन नामक... थे। उनके इन्द्र सुशान्ति नामसे प्रसिद्ध थे। चौ... मन्वन्तरमें सुपार, हरि, सत्य और सुधी—ये दे... थे*। शक्र ! उन देवताओंके इन्द्रका नाम उस स... था। पाँचवें (रैवत) मन्वन्तरमें अमिताभ आ... थे और पाँचवे देवराजका नाम विभु कहा गया ... (चाक्षुष) मन्वन्तरमें आर्य आदि देवता बताये ... उन सबके इन्द्रका नाम मनोजव था। इस सात... मन्वन्तरमें आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि देव... सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न आप ही इन्द्र हैं। आपका ... पुरन्दर बताया गया है। आठवें सूर्यसावर्णि ... अप्रमेय तथा सुतप आदि होनेवाले देवता बताये ... भगवान् विष्णुकी आराधनाके प्रभावसे राजा बलि ... होंगे। नवें दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें पार आदि दे...

* विष्णुपुराणमें भी तामस मन्वन्तरके ये ही दे... गये हैं। वहाँका मूल पाठ इस प्रकार है—

तामसस्यान्तरे देवाः सुपारा. हरयस्तथा ...
सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गुणाः ...
शिबिरिन्द्रस्तथा ... चासीत्...
(३ । १ । १...

मार्कण्डेयपुराणमें तामस मन्वन्तरके देवता सत्य, ...

इन्द्र और सुधर्मका संवाद, विभिन्न मन्वन्तरोंके इन्द्र और देवताओंका वर्णन, तथा भगवद्-भजनका माहात्म्य

श्रीसनकजी कहते हैं—मुने ! इसके बाद मैं भगवान् विष्णुकी विभूतिस्वरूप मनु और इन्द्र आदिका वर्णन करूँगा। इस वैष्णवी विभूतिका श्रवण अथवा कीर्तन करनेवाले पुरुषोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है।

एक समय वैवस्वत मन्वन्तरके भीतर ही गुरु बृहस्पति और देवताओंसहित इन्द्र सुधर्मके निवास-स्थानपर गये। देवर्षे ! बृहस्पतिजीके साथ देवराजको आया देख सुधर्मने

आदरपूर्वक उनकी यथायोग्य पूजा की। सुधर्मसे पूजित हो इन्द्रने विनयपूर्वक कहा।

इन्द्र बोले—विद्वन् ! यदि आप बीते हुए ब्रह्मकल्पका वृत्तान्त जानते हैं तो बताइये। मैं यही पूछनेके लिये गुरुजीके साथ आया हूँ।

देवराज इन्द्रके ऐसा कहनेपर सुधर्म हँस पड़ा और उसने विनयपूर्वक पूर्वकल्पकी सब बातोंका विधिवत् वर्णन किया।

सुधर्मने कहा—इन्द्र ! एक सहस्र चतुर्युगीका ब्रह्माजीका एक दिन होता है और उनके एक दिनमें चौदह मनु, चौदह इन्द्र तथा पृथक्-पृथक् अनेक प्रकारके देवता हुआ करते हैं। वासव ! सभी इन्द्र और मनु आदि तेज, लक्ष्मी, प्रभाव और बलमें समान ही होते हैं। मैं नाम बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। स्वायम्भुव मनु हुए। तदनन्तर क्रमशः स्वारोचि तामस, रैवत, चाक्षुष, सातवें वैवस्वत मनु, सावर्णि और नवें दक्षसावर्णि हैं। दसवें ब्रह्मसावर्णि और ग्यारहवेंका धर्मसावर्णि है। बारहवें रुद्रसावर्णि तथा तेरहवें रोचमान हुए मनुका नाम भौत्य बताया गया है। ये चौदह

देवराज ! अब मैं देवताओं और इन्द्रोका वर्ण सुनो। स्वयम्भू मन्वन्तरमे देवतालोग यामके नाम थे। उनके परम बुद्धिमान् इन्द्रकी शचीपति ना थी। स्वारोचिष मन्वन्तरमें पारावत और तु देवता थे। उनके स्वामी इन्द्रका नाम विपश्चित सब प्रकारकी सम्पदाओंसे समृद्ध थे। तीसरे उ मन्वन्तरमे सुधामा, सत्य, शिव तथा प्रतर्दन नाम थे। उनके इन्द्र सुशान्ति नामसे प्रसिद्ध थे। मन्वन्तरमें सुपार, हरि, सत्य और सुधी—ये थे*। शक्र ! उन देवताओंके इन्द्रका नाम उस था। पाँचवें (रैवत) मन्वन्तरमें अमिताभ थे और पाँचवे देवराजका नाम विभु कहा गय (चाक्षुष) मन्वन्तरमें आर्य आदि देवता बताये उन सबके इन्द्रका नाम मनोजव था। इस सा मन्वन्तरमें आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि दे सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न आप ही इन्द्र हैं। आपका पुरन्दर बताया गया है। आठवें सूर्यसावर्णि अप्रमेय तथा सुतप आदि होनेवाले देवता बताये भगवान् विष्णुकी आराधनाके प्रभावसे राजा बलि होंगे। नवें दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें पार आदि

* विष्णुपुराणमें भी तामस मन्वन्तरके ये ही गये हैं। वहाँका मूल पाठ इस प्रकार है—

तामसस्यान्तरे देवाः सुपारा. हरयस्तथ
सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गुणाः
शिबिरिन्द्रस्तथा चासीत्···
(३ । १ ।

मार्कण्डेयपुराणमें तामस मन्वन्तरके देवता सत्य तथा सुरूप बताये गये हैं और इन्द्रका नाम 'शिखी' क

इनकी आयु बारह हजार दिव्य वर्षोंकी समझनी चाहिये। वे चारों युग उतने ही सौ वर्षोंकी संध्या और संध्यांशसे युक्त होते हैं। इनकी काल-संख्या सदा एक-सी ही जाननी चाहिये। पहले युगको सत्ययुग कहते हैं, दूसरेका नाम त्रेता है, तीसरेका नाम द्वापर है और अन्तिम युगको कलियुग कहते हैं। इसी क्रमसे इनका आगमन होता है। विप्रवर! सत्ययुगमें देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा सर्पोंका भेद नहीं था। उस समय सब-के-सब देवताओंके समान स्वभाववाले थे। सब प्रसन्न और धर्मनिष्ठ थे। कृतयुगमें क्रय-विक्रयका व्यापार और वेदोंका विभाग नहीं था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—सभी अपने-अपने कर्तव्यके पालनमे तत्पर रहकर सदा भगवान् नारायणकी उपासना करते थे। सभी अपनी योग्यताके अनुसार तपस्या और ध्यानमें लगे रहते थे। उनमें काम, क्रोध आदि दोष नहीं थे। सब लोग शम-दम आदि सद्गुणोंमें तत्पर थे। सबका मन धर्मसाधनमें लगा रहता था। किसीमें ईर्ष्या तथा दूसरोंके दोष देखनेका स्वभाव नहीं था। सभी लोग दम्भ और पाखण्डसे दूर रहते थे। सत्ययुगके सभी द्विज सत्यवादी, चारों आश्रमोंके धर्मका पालन करनेवाले, वेदाध्ययनसम्पन्न तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण थे। चारों आश्रमोंवाले अपने-अपने कर्मोंके द्वारा कामना और फलासक्तिका त्याग करके परम गतिको प्राप्त होते थे। सत्ययुगमें भगवान् नारायणका श्रीविग्रह अत्यन्त निर्मल एवं शुक्लवर्णका होता है। मुनिश्रेष्ठ! त्रेतामें धर्म एक पादसे हीन हो जाता है। (सत्ययुगकी अपेक्षा एक चौथाई कम लोग धर्मका पालन करते है) भगवान्के शरीरका वर्ण लाल हो जाता है। उस समय जनताको कुछ क्लेश भी होने लगता है। त्रेतामें सभी द्विज क्रियायोगमें तत्पर रहते हैं। यज्ञ-कर्ममें उनकी निष्ठा होती है। वे नियमपूर्वक सत्य बोलते, भगवान्का ध्यान करते, दान देते और न्याययुक्त प्रतिग्रह भी स्वीकार करते हैं। मुनीश्वर! द्वापरमें धर्मके दो ही पैर रह जाते हैं। भगवान् विष्णुका वर्ण पीला हो जाता है और वेदके चार विभाग हो जाते हैं। द्विजोत्तम! उस समय कोई-कोई असत्य भी बोलने लगते हैं। ब्राह्मण आदि वर्णोंमेंसे कुछ लोगोंमें राग-द्वेष आदि दुर्गुण आ जाते हैं। विप्रवर! कुछ लोग स्वर्ग और अपवर्गके लिये यज्ञ करते हैं, कोई धनादिकी कामनाओमे आसक्त हो जाते हैं और कुछ लोगोंका हृदय पापसे मलिन हो जाता है। द्विजश्रेष्ठ! द्वापरमें धर्म और अधर्म दोनोंकी स्थिति समान होती है। अधर्मके प्रभावसे उस समयकी प्रजा क्षीण होने लगती है। मुनीश्वर! कितने ही लोग द्वापर आनेपर अल्पायु भी होंगे। ब्रह्मन्! कुछ लोग दूसरोंको पुण्यमे तत्पर देखकर उनसे डाह करने लगेंगे। कलियुग आनेपर धर्मका एक ही पैर शेष रह जाता है। इस तामस युगके प्राप्त होनेपर भगवान् श्रीहरि श्याम रंगके हो जाते है। उसमें कोई विरला ही धर्मात्मा यज्ञोंका अनुष्ठान करता है और कोई महान् पुण्यात्मा ही क्रियायोगमें तत्पर रहता है। उस समय धर्मपरायण मनुष्यको देखकर सब लोग ईर्ष्या और निन्दा करते हैं। कलियुगमें व्रत और सदाचार नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान और यज्ञ आदिकी भी यही दशा होती है। उस समय अधर्मका प्रचार होनेसे जगत्मे उपद्रव होते रहते है। सब लोग दूसरोंके दोष बतानेवाले और स्वयं पाखण्डपूर्ण आचारमे तत्पर होते हैं।

नारदजीने कहा—मुने! आपने संक्षेपसे ही युगधर्मोंका वर्णन किया है, कृपया कलिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि आप धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। मुनिश्रेष्ठ! कलियुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोका खान-पान और आचार-व्यवहार कैसा होगा?

श्रीसनकजीने कहा—सब लोकोंका उपकार करनेवाले मुनिश्रेष्ठ! सुनो, मै कलि-धर्मोंका यथार्थ एवं विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। कलि बड़ा भयङ्कर युग है। उसमें सब प्रकारके पातकोंका सम्मिश्रण होता है अर्थात् पापोंकी बहुलता होनेके कारण एक पापमें दूसरा पाप शामिल हो जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र धर्मसे मुँह मोड़ लेते हैं। घोर कलियुग प्राप्त होनेपर सभी द्विज वेदोंसे विमुख हो जाते हैं। सभी किसी-न-किसी बहानेसे धर्ममे लगते हैं। सब दूसरोंके दोष बताया करते हैं। सबका अन्तःकरण व्यर्थ अहङ्कारसे दूषित होता है। पण्डित लोग भी सत्यसे दूर रहते हैं। 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ' इस प्रकार सभी परस्पर विवाद करते हैं। सब मनुष्य अधर्ममें आसक्त और वितण्डावादी होते हैं। इन्हीं कारणोंसे कलियुगमें सब लोग स्वल्पायु होंगे। ब्रह्मन्! थोड़ी आयु होनेके कारण मनुष्य शास्त्रोका अध्ययन नहीं कर सकेंगे और विद्याध्ययनशून्य होंगे। उनके द्वारा बार-बार अधर्मपूर्ण बर्ताव होता है। उस समयकी समस्त पापपरायण प्रजा अवस्था-क्रमके विपरीत मरने लगेगी। ब्राह्मण आदि सभी वर्णके लोगोंमें परस्पर संकरता आ जायगी। मूढ़ मनुष्य काम-क्रोधके वशीभूत हो व्यर्थके संतापसे पीड़ित होंगे। कलियुगमें सब वर्णोंके लोग शूद्रके समान हो जायँगे। उत्तम नीच हो जायँगे और नीच उत्तम। शासकगण केवल धन-संग्रहमें लग जायँगे और अन्याय-

इनकी आयु बारह हजार दिव्य वर्षोंकी समझनी चाहिये। वे चारों युग उतने ही सौ वर्षोंकी संध्या और संध्यांशसे युक्त होते हैं। इनकी काल-संख्या सदा एक-सी ही जाननी चाहिये। पहले युगको सत्ययुग कहते हैं, दूसरेका नाम त्रेता है, तीसरेका नाम द्वापर है और अन्तिम युगको कलियुग कहते हैं। इसी क्रमसे इनका आगमन होता है। विप्रवर! सत्ययुगमें देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा सर्पोंका भेद नहीं था। उस समय सब-के-सब देवताओंके समान स्वभाववाले थे। सब प्रसन्न और धर्मनिष्ठ थे। कृतयुगमें क्रय-विक्रयका व्यापार और वेदोंका विभाग नहीं था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—सभी अपने-अपने कर्तव्यके पालनमे तत्पर रहकर सदा भगवान् नारायणकी उपासना करते थे। सभी अपनी योग्यताके अनुसार तपस्या और ध्यानमें लगे रहते थे। उनमें काम, क्रोध आदि दोष नहीं थे। सब लोग शम-दम आदि सद्गुणोंमें तत्पर थे। सबका मन धर्मसाधनमें लगा रहता था। किसीमें ईर्ष्या तथा दूसरोंके दोष देखनेका स्वभाव नहीं था। सभी लोग दम्भ और पाखण्डसे दूर रहते थे। सत्ययुगके सभी द्विज सत्यवादी, चारों आश्रमोंके धर्मका पालन करनेवाले, वेदाध्ययनसम्पन्न तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण थे। चारों आश्रमोंवाले अपने-अपने कर्मोंके द्वारा कामना और फलासक्तिका त्याग करके परम गतिको प्राप्त होते थे। सत्ययुगमें भगवान् नारायणका श्रीविग्रह अत्यन्त निर्मल एवं शुक्लवर्णका होता है। मुनिश्रेष्ठ! त्रेतामें धर्म एक पादसे हीन हो जाता है। (सत्ययुगकी अपेक्षा एक चौथाई कम लोग धर्मका पालन करते है) भगवान्के शरीरका वर्ण लाल हो जाता है। उस समय जनताको कुछ क्लेश भी होने लगता है। त्रेतामें सभी द्विज क्रियायोगमें तत्पर रहते हैं। यज्ञ-कर्ममें उनकी निष्ठा होती है। वे नियमपूर्वक सत्य बोलते, भगवान्का ध्यान करते, दान देते और न्याययुक्त प्रतिग्रह भी स्वीकार करते हैं। मुनीश्वर! द्वापरमें धर्मके दो ही पैर रह जाते हैं। भगवान् विष्णुका वर्ण पीला हो जाता है और वेदके चार विभाग हो जाते हैं। द्विजोत्तम! उस समय कोई-कोई असत्य भी बोलने लगते हैं। ब्राह्मण आदि वर्णोंमेंसे कुछ लोगोंमें राग-द्वेष आदि दुर्गुण आ जाते हैं। विप्रवर! कुछ लोग स्वर्ग और अपवर्गके लिये यज्ञ करते हैं, कोई धनादिकी कामनाओमे आसक्त हो जाते हैं और कुछ लोगोंका हृदय पापसे मलिन हो जाता है। द्विजश्रेष्ठ! द्वापरमें धर्म और अधर्म दोनोंकी स्थिति समान होती है। अधर्मके प्रभावसे उस समयकी प्रजा क्षीण होने लगती है। मुनीश्वर! कितने ही लोग द्वापर आनेपर अल्पायु भी होंगे। ब्रह्मन्! कुछ लोग दूसरोंको पुण्यमे तत्पर देखकर उनसे डाह करने लगेंगे। कलियुग आनेपर धर्मका एक ही पैर शेष रह जाता है। इस तामस युगके प्राप्त होनेपर भगवान् श्रीहरि श्याम रंगके हो जाते हैं। उसमें कोई विरला ही धर्मात्मा यज्ञोंका अनुष्ठान करता है और कोई महान् पुण्यात्मा ही क्रियायोगमें तत्पर रहता है। उस समय धर्मपरायण मनुष्यको देखकर सब लोग ईर्ष्या और निन्दा करते हैं। कलियुगमें व्रत और सदाचार नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान और यज्ञ आदिकी भी यही दशा होती है। उस समय अधर्मका प्रचार होनेसे जगत्मे उपद्रव होते रहते है। सब लोग दूसरोंके दोष बतानेवाले और स्वयं पाखण्डपूर्ण आचारमे तत्पर होते हैं।

नारदजीने कहा—मुने! आपने संक्षेपसे ही युगधर्मोंका वर्णन किया है, कृपया कलिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि आप धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। मुनिश्रेष्ठ! कलियुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंका खान-पान और आचार-व्यवहार कैसा होगा?

श्रीसनकजीने कहा—सब लोकोंका उपकार करनेवाले मुनिश्रेष्ठ! सुनो, मै कलि-धर्मोंका यथार्थ एवं विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। कलि बड़ा भयङ्कर युग है। उसमें सब प्रकारके पातकोंका सम्मिश्रण होता है अर्थात् पापोंकी बहुलता होनेके कारण एक पापमें दूसरा पाप शामिल हो जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र धर्मसे मुँह मोड़ लेते हैं। घोर कलियुग प्राप्त होनेपर सभी द्विज वेदोंसे विमुख हो जाते हैं। सभी किसी-न-किसी बहानेसे धर्ममे लगते हैं। सब दूसरोंके दोष बताया करते हैं। सबका अन्तःकरण व्यर्थ अहङ्कारसे दूषित होता है। पण्डित लोग भी सत्यसे दूर रहते हैं। 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ' इस प्रकार सभी परस्पर विवाद करते हैं। सब मनुष्य अधर्ममें आसक्त और वितण्डावादी होते हैं। इन्हीं कारणोंसे कलियुगमें सब लोग स्वल्पायु होंगे। ब्रह्मन्! थोड़ी आयु होनेके कारण मनुष्य शास्त्रोंका अध्ययन नहीं कर सकेंगे और विद्याध्ययनशून्य होंगे। उनके द्वारा बार-बार अधर्मपूर्ण बर्ताव होता है। उस समयकी समस्त पापपरायण प्रजा अवस्था-क्रमके विपरीत मरने लगेगी। ब्राह्मण आदि सभी वर्णके लोगोंमें परस्पर संकरता आ जायगी। मूढ़ मनुष्य काम-क्रोधके वशीभूत हो व्यर्थके संतापसे पीड़ित होंगे। कलियुगमें सब वर्णोंके लोग शूद्रके समान हो जायँगे। उत्तम नीच हो जायँगे और नीच उत्तम। शासकगण केवल धन-संग्रहमें लग जायँगे और अन्याय-

साथ समागम करेंगे। मुने! नरकके अधिकारी द्विज वेदों और धर्मशास्त्रोंकी निन्दा करते हुए शूद्रवृत्तिसे ही जीवन-निर्वाह करेंगे।

कलियुगमें सभी मनुष्य अनावृष्टिसे भयभीत होकर आकाशकी ओर आँखें लगाये रहेंगे और क्षुधाके भयसे कातर बने रहेंगे। उस अकालके समय मनुष्य कन्द, पत्ते और फल खाकर रहेंगे और अनावृष्टिसे अत्यन्त दुःखित होकर आत्मघात कर लेंगे। कलियुगमें सब लोग कामवेदनासे पीडित, नाटे शरीरवाले, लोभी, अधर्मपरायण, मन्दभाग्य तथा अधिक संतानवाले होंगे। स्त्रियाँ अपने शरीरका ही पोषण करनेवाली तथा वेश्याओंके सौन्दर्य और स्वभावको अपनानेवाली होंगी। वे पतिके वचनोका अनादर करके सदा दूसरोंके घरमें निवास करेंगी। अच्छे कुलोकी स्त्रियाँ भी दुराचारिणी होकर सदा दुराचारियोंसे ही स्नेह करेंगी और अपने पुरुषोंके प्रति असद्व्यवहार करनेवाली होंगी। चोर आदिके भयसे डरे हुए लोग अपनी रक्षाके लिये काष्ठ-यन्त्र अर्थात् काठके मजबूत किवाड़ बनायेंगे। दुर्भिक्ष और करकी पीड़ासे अत्यन्त पीडित हुए मनुष्य दुखी होकर गेहूँ और जौ आदि अन्नसे सम्पन्न देशमें चले जायँगे। लोग हृदयमे निषिद्ध कर्मका सकल्प लेकर ऊपरसे शुभ वचन बोलेंगे। अपने कार्यकी सिद्धि होनेतक ही लोग बन्धुता (सौहार्द) प्रकट करेंगे। संन्यासी भी मित्र आदिके स्नेह-सम्बन्धसे बँधे रहेंगे और अन्न-संग्रहके लिये लोगोंको चेले बनायेंगे। स्त्रियाँ दोनों हाथोंसे सिर खुजलाती हुई बडोकी तथा पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करेंगी। जिस समय द्विज पाखण्डी लोगोंका साथ करके पाखण्डपूर्ण बातें करनेवाले हो जायँगे, उस समय कलियुगका वेग और बढ़ेगा। जब द्विज-जातिकी प्रजा यज्ञ और होम करना छोड देगी, उसी समयसे बुद्धिमान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान कर लेना चाहिये।

नारदजी! कलियुगके बढ़नेसे पापकी वृद्धि होगी और छोटे बालकोंकी भी मृत्यु होने लगेगी। सम्पूर्ण धर्मोंके नष्ट हो जानेपर यह जगत् श्रीहीन हो जायगा। विप्रवर! इस प्रकार मैंने तुम्हें कलिका स्वरूप बतलाया है। जो लोग भगवान् विष्णुकी भक्तिमे तत्पर हैं, उन्हें यह कलियुग कभी बाधा नहीं देता। सत्ययुगमें तपस्याको, त्रेतामें भगवान्के ध्यानको,

द्वापरमें यज्ञको और कलियुगमें एकमात्र दानको ही श्रेष्ठ बताया गया है। सत्ययुगमे जो पुण्यकर्म दस वर्षोंमें सिद्ध होता है, त्रेतामें एक वर्ष और द्वापरमें एक मासमें जो धर्म सफल होता है, वही कलियुगमें एक ही दिन-रातमें सिद्ध हो जाता है। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें भगवान्का पूजन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे ही कलियुगमें केवल भगवान् केशवका कीर्तन करके पा लेता है *। जो मनुष्य दिन-रात भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन अथवा उनकी पूजा करते हैं, उन्हे कलियुग बाधा नहीं देता है। जो मानव निष्काम अथवा सकामभावसे 'नमो नारायणाय'का कीर्तन करते हैं, उनको कलियुग बाधा नहीं देता। घोर कलियुग आनेपर भी सम्पूर्ण जगत्के आधार एवं परमार्थस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान करनेवाला कभी कष्ट नहीं पाता। अहो! सम्पूर्ण धर्मोंसे रहित भयंकर कलियुग प्राप्त होनेपर जिन्होंने एक बार भी भगवान् केशवका पूजन कर लिया है, वे बड़े सौभाग्यशाली हैं। कलियुगमे वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करते समय जो कमी-बेशी रह जाती

---

* यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेताया शरदा च यत्।
द्वापरे यच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेताया द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(ना० पूर्व० ४१। ९१-९२)

साथ समागम करेंगे। मुने! नरकके अधिकारी द्विज वेदों और धर्मशास्त्रोंकी निन्दा करते हुए शूद्रवृत्तिसे ही जीवन-निर्वाह करेंगे।

कलियुगमें सभी मनुष्य अनावृष्टिसे भयभीत होकर आकाशकी ओर आँखें लगाये रहेंगे और क्षुधाके भयसे कातर बने रहेंगे। उस अकालके समय मनुष्य कन्द, पत्ते और फल खाकर रहेंगे और अनावृष्टिसे अत्यन्त दुःखित होकर आत्मघात कर लेंगे। कलियुगमें सब लोग कामवेदनासे पीडित, नाटे शरीरवाले, लोभी, अधर्मपरायण, मन्दभाग्य तथा अधिक संतानवाले होंगे। स्त्रियाँ अपने शरीरका ही पोषण करनेवाली तथा वेश्याओंके सौन्दर्य और स्वभावको अपनानेवाली होंगी। वे पतिके वचनोका अनादर करके सदा दूसरोंके घरमें निवास करेंगी। अच्छे कुलोकी स्त्रियाँ भी दुराचारिणी होकर सदा दुराचारियोंसे ही स्नेह करेंगी और अपने पुरुषोंके प्रति असद्व्यवहार करनेवाली होंगी। चोर आदिके भयसे डरे हुए लोग अपनी रक्षाके लिये काष्ठ-यन्त्र अर्थात् काठके मजबूत किवाड़ बनायेंगे। दुर्भिक्ष और करकी पीड़ासे अत्यन्त पीडित हुए मनुष्य दुखी होकर गेहूँ और जौ आदि अन्नसे सम्पन्न देशमें चले जायँगे। लोग हृदयमे निषिद्ध कर्मका सकल्प लेकर ऊपरसे शुभ वचन बोलेंगे। अपने कार्यकी सिद्धि होनेतक ही लोग बन्धुता (सौहार्द) प्रकट करेंगे। संन्यासी भी मित्र आदिके स्नेह-सम्बन्धसे बँधे रहेंगे और अन्न-संग्रहके लिये लोगोंको चेले बनायेंगे। स्त्रियाँ दोनों हाथोंसे सिर खुजलाती हुई बडोकी तथा पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करेंगी। जिस समय द्विज पाखण्डी लोगोंका साथ करके पाखण्डपूर्ण बातें करनेवाले हो जायँगे, उस समय कलियुगका वेग और बढ़ेगा। जब द्विज-जातिकी प्रजा यज्ञ और होम करना छोड देगी, उसी समयसे बुद्धिमान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान कर लेना चाहिये।

नारदजी! कलियुगके बढ़नेसे पापकी वृद्धि होगी और छोटे बालकोंकी भी मृत्यु होने लगेगी। सम्पूर्ण धर्मोंके नष्ट हो जानेपर यह जगत् श्रीहीन हो जायगा। विप्रवर! इस प्रकार मैंने तुम्हें कलिका स्वरूप बतलाया है। जो लोग भगवान् विष्णुकी भक्तिमे तत्पर हैं, उन्हें यह कलियुग कभी बाधा नहीं देता। सत्ययुगमें तपस्याको, त्रेतामें भगवान्‌के ध्यानको,

द्वापरमें यज्ञको और कलियुगमें एकमात्र दानको ही श्रेष्ठ बताया गया है। सत्ययुगमे जो पुण्यकर्म दस वर्षोंमें सिद्ध होता है, त्रेतामें एक वर्ष और द्वापरमें एक मासमें जो धर्म सफल होता है, वही कलियुगमें एक ही दिन-रातमें सिद्ध हो जाता है। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें भगवान्‌का पूजन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे ही कलियुगमें केवल भगवान् केशवका कीर्तन करके पा लेता है *। जो मनुष्य दिन-रात भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन अथवा उनकी पूजा करते हैं, उन्हे कलियुग बाधा नहीं देता है। जो मानव निष्काम अथवा सकामभावसे 'नमो नारायणाय'का कीर्तन करते हैं, उनको कलियुग बाधा नहीं देता। घोर कलियुग आनेपर भी सम्पूर्ण जगत्‌के आधार एवं परमार्थस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान करनेवाला कभी कष्ट नहीं पाता। अहो! सम्पूर्ण धर्मोंसे रहित भयंकर कलियुग प्राप्त होनेपर जिन्होंने एक बार भी भगवान् केशवका पूजन कर लिया है, वे बड़े सौभाग्यशाली हैं। कलियुगमे वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करते समय जो कमी-बेशी रह जाती

---

* यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेताया शरदा च यत्।
द्वापरे यच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेताया द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(ना० पूर्व० ४१। ९१-९२)

द्वितीय पाद

सृष्टितत्त्वका वर्णन, जीवकी सत्ताका प्रतिपादन और आश्रमोंके आचारका निरूपण

श्रीनारदजीने पूछा—सनन्दनजी ! इस स्थावर-जङ्गमरूप जगत्की उत्पत्ति किससे हुई है और प्रलयके समय यह किसमें लीन होता है ?

श्रीसनन्दनजी बोले—नारदजी ! सुनो, मैं भरद्वाजके पूछनेपर भृगुजीने जो शास्त्र बताया है, वही कहता हूँ।

भृगुजी बोले—भरद्वाज ! महर्षियोंने जिन पूर्वपुरुषको मानस-नामसे जाना और सुना है, वे आदि-अन्तसे रहित देव 'अव्यक्त' नामसे विख्यात हैं। वे अव्यक्त पुरुष शाश्वत, अक्षय एवं अविनाशी हैं; उन्हींसे उत्पन्न होकर सम्पूर्ण भूत-प्राणी जन्म और मृत्युको प्राप्त होते हैं। उन स्वयम्भू भगवान् नारायणने अपनी नाभिसे तेजोमय दिव्य कमल प्रकट किया। उस कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए जो वेदस्वरूप हैं, उनका दूसरा नाम विधि है। उन्होंने ही सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरकी रचना की है। इस प्रकार इस विराट् विश्वके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही विराज रहे हैं, जो अनन्त नामसे विख्यात हैं। वे सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मारूपसे स्थित हैं। जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, ऐसे पुरुषोंके लिये उनका ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है।

भरद्वाजजीने पूछा—जीव क्या है और कैसा है ? यह मैं जानना चाहता हूँ। रक्त और मांसके संघात (समूह) तथा मेद-स्नायु और अस्थियोंके संग्रहरूप इस शरीरके नष्ट होनेपर तो जीव कहीं नहीं दिखायी देता।

भृगुने कहा—मुने ! साधारणतया पाँच भूतोंसे निर्मित किसी भी शरीरको यहाँ एकमात्र अन्तरात्मा धारण करता है। वही गन्ध, रस, शब्द, स्पर्श, रूप तथा अन्य गुणोंका भी अनुभव करता है। अन्तरात्मा सम्पूर्ण अङ्गोंमें व्याप्त रहता है। वही इसमें होनेवाले सुख-दुःखका भी अनुभव करता है। इस शरीरके पाँचों तत्त्व जब अलग-अलग हो जाते हैं, तब वह इस देहको त्यागकर अदृश्य हो जाता है। चेतनता जीवका गुण बतलाया जाता है। वह स्वयं चेष्टा करता है और सबको चेष्टामें लगाता है। मुने ! देहका नाश होनेसे जीवका नाश नहीं होता। जो लोग देहके नाशसे जीवके नाशकी बात कहते हैं, वे अज्ञानी हैं और उनका यह कथन मिथ्या है। जीव तो इस देहसे दूसरी देहमें चला जाता है। तत्त्वदर्शी पुरुष अपनी तीव्र और सूक्ष्म बुद्धिसे ही उसका दर्शन करते हैं। विद्वान् पुरुष शुद्ध एवं सात्त्विक आहार करके सदा रातके पहले और पिछले पहरमें योगयुक्त तथा विशुद्ध चित्त होकर अपने भीतर ही आत्माका दर्शन करता है।

मनुष्यको सब प्रकारके उपायोंसे लोभ और क्रोधको काबूमें करना चाहिये। सब ज्ञानोंमें यही पवित्र ज्ञान है और यही आत्मसंयम है। लोभ और क्रोध सदा मनुष्यके श्रेयका विनाश करनेको उद्यत रहते हैं। अतः सर्वथा उनका त्याग करना चाहिये। क्रोधसे सदा लक्ष्मीको बचावे और मात्सर्यसे तपकी रक्षा करे। मान और अपमानसे विद्याको बचावे तथा प्रमादसे आत्माकी रक्षा करे। ब्रह्मन् ! जिसके सभी कार्य कामनाओंके बन्धनसे रहित होते हैं तथा त्यागके लिये जिसने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी है, वही त्यागी और बुद्धिमान् है। किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे, सबसे मैत्रीभाव निभाता रहे और संग्रहका त्याग करके बुद्धिके द्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीते। ऐसा कार्य करे जिसमें शोकके लिये स्थान न हो तथा जो इहलोक और परलोकमें भी भयदायक न हो। सदा तपस्यामें लगे रहकर इन्द्रियोंका दमन तथा मनका निग्रह करते हुए मुनिवृत्तिसे रहे। आसक्तिके जितने विषय हैं, उन सबमें अनासक्त रहे और जो किसीसे पराजित नहीं हुआ, उस परमेश्वरको जीतने (जानने या प्राप्त करने) की इच्छा रक्खे। इन्द्रियोंसे जिन-जिन वस्तुओंका ग्रहण होता है, वह सब व्यक्त है। यही व्यक्तकी परिभाषा है। जो अनुमानके द्वारा कुछ-कुछ जानी जाय उस इन्द्रियातीत वस्तुको अव्यक्त जानना चाहिये। जबतक (ज्ञानकी कमीके कारण) पूरा विश्वास न हो जाय तबतक ज्ञेयस्वरूप परमात्माका मनन करते रहना चाहिये और पूर्ण विश्वास हो जानेपर मनको उसमें लगाना चाहिये अर्थात् ध्यान करना चाहिये। प्राणायामके द्वारा मनको वशमें करे और संसारकी किसी भी वस्तुका चिन्तन न करे। ब्रह्मन् ! सत्य ही व्रत, तपस्या तथा पवित्रता है, सत्य ही प्रजाकी सृष्टि करता है। सत्यसे ही यह लोक धारण किया जाता है और सत्यसे ही मनुष्य

द्वितीय पाद

सृष्टितत्त्वका वर्णन, जीवकी सत्ताका प्रतिपादन और आश्रमोंके आचारका निरूपण

श्रीनारदजीने पूछा—सनन्दनजी ! इस स्थावर-जङ्गमरूप जगत्‌की उत्पत्ति किससे हुई है और प्रलयके समय यह किसमें लीन होता है ?

श्रीसनन्दनजी बोले—नारदजी ! सुनो, मैं भरद्वाजके पूछनेपर भृगुजीने जो शास्त्र बताया है, वही कहता हूँ ।

भृगुजी बोले—भरद्वाज ! महर्षियोंने जिन पूर्वपुरुषको मानस-नामसे जाना और सुना है, वे आदि-अन्तसे रहित देव 'अव्यक्त' नामसे विख्यात हैं । वे अव्यक्त पुरुष शाश्वत, अक्षय एवं अविनाशी हैं; उन्हींसे उत्पन्न होकर सम्पूर्ण भूत-प्राणी जन्म और मृत्युको प्राप्त होते हैं । उन स्वयम्भू भगवान् नारायणने अपनी नाभिसे तेजोमय दिव्य कमल प्रकट किया । उस कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए जो वेदस्वरूप हैं, उनका दूसरा नाम विधि है । उन्होंने ही सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरकी रचना की है । इस प्रकार इस विराट् विश्वके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही विराज रहे हैं, जो अनन्त नामसे विख्यात हैं । वे सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मारूपसे स्थित हैं । जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, ऐसे पुरुषोंके लिये उनका ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है ।

भरद्वाजजीने पूछा—जीव क्या है और कैसा है ? यह मैं जानना चाहता हूँ । रक्त और मांसके संघात (समूह) तथा मेद-स्नायु और अस्थियोंके संग्रहरूप इस शरीरके नष्ट होनेपर तो जीव कहीं नहीं दिखायी देता ।

भृगुने कहा—मुने ! साधारणतया पाँच भूतोंसे निर्मित किसी भी शरीरको यहाँ एकमात्र अन्तरात्मा धारण करता है । वही गन्ध, रस, शब्द, स्पर्श, रूप तथा अन्य गुणोंका भी अनुभव करता है । अन्तरात्मा सम्पूर्ण अङ्गोंमें व्याप्त रहता है । वही इसमें होनेवाले सुख-दुःखका भी अनुभव करता है । इस शरीरके पाँचों तत्त्व जब अलग-अलग हो जाते हैं, तब वह इस देहको त्यागकर अदृश्य हो जाता है । चेतनता जीवका गुण बतलाया जाता है । वह स्वयं चेष्टा करता है और सबको चेष्टामें लगाता है । मुने ! देहका नाश होनेसे जीवका नाश नहीं होता । जो लोग देहके नाशसे जीवके नाशकी बात कहते हैं, वे अज्ञानी हैं और उनका यह कथन मिथ्या है । जीव तो इस देहसे दूसरी देहमें चला जाता है । तत्त्वदर्शी पुरुष अपनी तीव्र और सूक्ष्म बुद्धिसे ही उसका दर्शन करते हैं । विद्वान् पुरुष शुद्ध एवं सात्त्विक आहार करके सदा रातके पहले और पिछले पहरमें योगयुक्त तथा विशुद्ध चित्त होकर अपने भीतर ही आत्माका दर्शन करता है ।

मनुष्यको सब प्रकारके उपायोंसे लोभ और क्रोधको काबूमें करना चाहिये । सब ज्ञानोंमें यही पवित्र ज्ञान है और यही आत्मसंयम है । लोभ और क्रोध सदा मनुष्यके श्रेयका विनाश करनेको उद्यत रहते हैं । अतः सर्वथा उनका त्याग करना चाहिये । क्रोधसे सदा लक्ष्मीको बचावे और मात्सर्यसे तपकी रक्षा करे । मान और अपमानसे विद्याको बचावे तथा प्रमादसे आत्माकी रक्षा करे । ब्रह्मन् ! जिसके सभी कार्य कामनाओंके बन्धनसे रहित होते हैं तथा त्यागके लिये जिसने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी है, वही त्यागी और बुद्धिमान् है । किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे, सबसे मैत्रीभाव निभाता रहे और संग्रहका त्याग करके बुद्धिके द्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीते । ऐसा कार्य करे जिसमें शोकके लिये स्थान न हो तथा जो इहलोक और परलोकमें भी भयदायक न हो । सदा तपस्यामें लगे रहकर इन्द्रियोंका दमन तथा मनका निग्रह करते हुए मुनिवृत्तिसे रहे । आसक्तिके जितने विषय हैं, उन सबमें अनासक्त रहे और जो किसीसे पराजित नहीं हुआ, उस परमेश्वरको जीतने (जानने या प्राप्त करने) की इच्छा रक्खे । इन्द्रियोंसे जिन-जिन वस्तुओंका ग्रहण होता है, वह सब व्यक्त है । यही व्यक्तकी परिभाषा है । जो अनुमानके द्वारा कुछ-कुछ जानी जाय उस इन्द्रियातीत वस्तुको अव्यक्त जानना चाहिये । जबतक (ज्ञानकी कमीके कारण) पूरा विश्वास न हो जाय तबतक ज्ञेयस्वरूप परमात्माका मनन करते रहना चाहिये और पूर्ण विश्वास हो जानेपर मनको उसमें लगाना चाहिये अर्थात् ध्यान करना चाहिये । प्राणायामके द्वारा मनको वशमें करे और संसारकी किसी भी वस्तुका चिन्तन न करे । ब्रह्मन् ! सत्य ही व्रत, तपस्या तथा पवित्रता है, सत्य ही प्रजाकी सृष्टि करता है । सत्यसे ही यह लोक धारण किया जाता है और सत्यसे ही मनुष्य

मस्तक झुकाये, उनसे ईर्ष्यारहित वचन बोले, उनके लिये आवश्यक वस्तुओंका दान करे, उन्हें सुख और सत्कारपूर्वक

आसन दे तथा उनके लिये सुखसे सोने और खाने-पीनेकी सुव्यवस्था करे। इस विषयमें यह श्लोक है—जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे वह अपना पाप दे उसका पुण्य लेकर चला जाता है*। इसके सिवा, इस आश्रममें यज्ञ-कर्मोंद्वारा देवता तृप्त होते हैं, श्राद्ध एवं तर्पणसे पितरोंकी तृप्ति होती है, विद्याके बार-बार श्रवण और धारणसे ऋषि संतुष्ट होते हैं और संतानोत्पादनसे प्रजापतिको प्रसन्नता होती है। इस विषयमें ये दो श्लोक हैं—इस आश्रममें सम्पूर्ण भूतोंके लिये वात्सल्यका भाव होता है। देवता और अतिथियोंका वाणीद्वारा स्तवन किया जाता है। इसमें दूसरोंको सताना, कष्ट देना या कठोरता करना निन्दित है। इसी तरह दूसरोंकी अवहेलना तथा अपनेमें अहंकार और दम्भका होना भी निन्दित ही माना गया है। अहिंसा, सत्य और अक्रोध—ये सभी आश्रमके लिये तप है। जिसके गृहस्थ-आश्रममे प्रतिदिन धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्गका सम्पादन होता है, वह इस लोकमें सुखका अनुभव करके श्रेष्ठ पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होता है। जो गृहस्थ उञ्छवृत्तिसे रहकर अपने धर्मके पालनमें तत्पर है और काम्यसुखको त्याग चुका है, उसके लिये स्वर्गलोक दुर्लभ नहीं है।

वानप्रस्थी भी धर्मका अनुष्ठान करते हुए पुण्य तीर्थों तथा नदियों और झरनोंके आसपास रहते हैं; वनोंमें रहकर तपस्या करते और घूमते है। ग्रामीण वस्त्र, भोजन और उपभोगका वे त्याग कर देते है। जगली अन्न, फल, मूल और पत्तोंका परिमित एवं नियमित भोजन करते हैं। अपने स्थानपर ही बैठते हैं और पृथ्वी, पत्थर, सिकता, कंकड़ तथा बालूपर सो जाते है। काश, कुश, मृगचर्म तथा वल्कलसे ही अपने शरीरको ढकते है। केश, दाढ़ी, मूँछ, नख तथा लोम धारण किये रहते हैं। नियत समयपर स्नान करते और शुष्क बलिवैश्व एव होमका शास्त्रोक्त समयपर अनुष्ठान करते हैं। समिधा, कुशा, पुष्प-संचय तथा सम्मार्जन आदि कार्योंमें ही ही विश्राम पाते है। सर्दी, गरमी तथा वायुके आघातसे उनके शरीरकी सारी त्वचाएँ फटी होती हैं। अनेक प्रकारके नियम और योगचर्याके अनुष्ठानसे उनके शरीरका मास और रक्त सूख जाता है और वे अस्थि-चर्मावशिष्ट होकर धैर्यपूर्वक सत्त्वगुणके योगसे शरीर धारण करते हैं। जो ब्रह्मर्षियोंद्वारा विहित इस व्रतचर्याका नियमपूर्वक पालन करता है, वह अग्निकी भाँति सम्पूर्ण दोषोंको जला देता है और दुर्जय लोकोंपर अधिकार प्राप्त कर लेता है।

अब सन्यासियोंका आचार बतलाया जाता है। धन, स्त्री तथा राजोचित सामग्रियोंमे जो अपना स्नेह बना हुआ है, उस स्नेह-बन्धनको काटकर तथा अग्निहोत्र आदि कर्मोंका विधिपूर्वक त्याग करके विरक्त एवं जिज्ञासु पुरुष संन्यासी होते है। वे ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझते है। धर्म, अर्थ और काममयी प्रवृत्तियोमे उनकी बुद्धि आसक्त नहीं होती। शत्रु, मित्र और उदासीनोंके प्रति उनकी दृष्टि समान रहती है। वे स्थावर, जरायुज, अण्डज और स्वेदज प्राणियोंके प्रति मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी द्रोह नहीं करते। उनका कोई एक निवासस्थान नहीं होता। वे पर्वत, नदी-तट, वृक्षमूल तथा देवमन्दिर आदि स्थानोमे ठहरते और विचरते हुए कभी किसी समूहके पास जाकर रहते हैं अथवा नगर या गाँवमें विश्राम करते है। क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता, दम्भ, निन्दा तथा अभिमानके कारण उनसे कभी हिंसा नहीं होती। इस विषयमे ये श्लोक हैं—जो मुनि सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान देकर स्वच्छन्द विचरता है, उसको कभी उन सब

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥
(ना० पूर्व० ४३। ११३)

मस्तक झुकाये, उनसे ईर्ष्यारहित वचन बोले, उनके लिये आवश्यक वस्तुओंका दान करे, उन्हें सुख और सत्कारपूर्वक

आसन दे तथा उनके लिये सुखसे सोने और खाने-पीनेकी सुव्यवस्था करे। इस विषयमें यह श्लोक है—जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे वह अपना पाप दे उसका पुण्य लेकर चला जाता है *। इसके सिवा, इस आश्रममें यज्ञ-कर्मोंद्वारा देवता तृप्त होते हैं, श्राद्ध एवं तर्पणसे पितरोंकी तृप्ति होती है, विद्याके बार-बार श्रवण और धारणसे ऋषि संतुष्ट होते हैं और संतानोत्पादनसे प्रजापतिको प्रसन्नता होती है। इस विषयमें ये दो श्लोक हैं—इस आश्रममें सम्पूर्ण भूतोंके लिये वात्सल्यका भाव होता है। देवता और अतिथियोंका वाणीद्वारा स्तवन किया जाता है। इसमें दूसरोंको सताना, कष्ट देना या कठोरता करना निन्दित है। इसी तरह दूसरोंकी अवहेलना तथा अपनेमें अहंकार और दम्भका होना भी निन्दित ही माना गया है। अहिंसा, सत्य और अक्रोध—ये सभी आश्रमके लिये तप है। जिसके गृहस्थ-आश्रममें प्रतिदिन धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्गका सम्पादन होता है, वह इस लोकमें सुखका अनुभव करके श्रेष्ठ पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होता है। जो गृहस्थ उञ्छवृत्तिसे रहकर अपने धर्मके पालनमें तत्पर है और काम्यसुखको त्याग चुका है, उसके लिये स्वर्गलोक दुर्लभ नहीं है।

वानप्रस्थी भी धर्मका अनुष्ठान करते हुए पुण्य तीर्थों तथा नदियों और झरनोंके आसपास रहते हैं; वनोंमें रहकर तपस्या करते और घूमते है। ग्रामीण वस्त्र, भोजन और उपभोगका वे त्याग कर देते है। जंगली अन्न, फल, मूल और पत्तोंका परिमित एवं नियमित भोजन करते हैं। अपने स्थानपर ही बैठते हैं और पृथ्वी, पत्थर, सिकता, कंकड़ तथा बालूपर सो जाते है। काश, कुश, मृगचर्म तथा वल्कलसे ही अपने शरीरको ढकते है। केश, दाढ़ी, मूँछ, नख तथा लोम धारण किये रहते हैं। नियत समयपर स्नान करते और शुष्क बलिवैश्व एव होमका शास्त्रोक्त समयपर अनुष्ठान करते हैं। समिधा, कुशा, पुष्प-संचय तथा सम्मार्जन आदि कार्योंमें ही ही विश्राम पाते हैं। सर्दी, गरमी तथा वायुके आघातसे उनके शरीरकी सारी त्वचाएँ फटी होती हैं। अनेक प्रकारके नियम और योगचर्याके अनुष्ठानसे उनके शरीरका मास और रक्त सूख जाता है और वे अस्थि-चर्मावशिष्ट होकर धैर्यपूर्वक सत्त्वगुणके योगसे शरीर धारण करते हैं। जो ब्रह्मर्षियोंद्वारा विहित इस व्रतचर्याका नियमपूर्वक पालन करता है, वह अग्निकी भाँति सम्पूर्ण दोषोंको जला देता है और दुर्जय लोकोंपर अधिकार प्राप्त कर लेता है।

अब संन्यासियोंका आचार बतलाया जाता है। धन, स्त्री तथा राजोचित सामग्रियोंमे जो अपना स्नेह बना हुआ है, उस स्नेह-बन्धनको काटकर तथा अग्निहोत्र आदि कर्मोंका विधिपूर्वक त्याग करके विरक्त एवं जिज्ञासु पुरुष संन्यासी होते हैं। वे ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझते है। धर्म, अर्थ और काममयी प्रवृत्तियोंमे उनकी बुद्धि आसक्त नहीं होती। शत्रु, मित्र और उदासीनोंके प्रति उनकी दृष्टि समान रहती है। वे स्थावर, जरायुज, अण्डज और स्वेदज प्राणियोंके प्रति मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी द्रोह नहीं करते। उनका कोई एक निवासस्थान नहीं होता। वे पर्वत, नदी-तट, वृक्षमूल तथा देवमन्दिर आदि स्थानोंमे ठहरते और विचरते हुए कभी किसी समूहके पास जाकर रहते हैं अथवा नगर या गाँवमें विश्राम करते है। क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता, दम्भ, निन्दा तथा अभिमानके कारण उनसे कभी हिंसा नहीं होती। इस विषयमे ये श्लोक हैं—जो मुनि सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान देकर स्वच्छन्द विचरता है, उसको कभी उन सब

---

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥
(ना० पूर्व० ४३। ११३)

उत्पत्ति और लयके स्थान हैं। जो भूत जिससे उत्पन्न होते हैं, वे फिर उसीमे लीन हो जाते हैं। जैसे समुद्रसे लहरें उठती हैं और फिर उसीमे लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ये महाभूत क्रमशः अपने-अपने कारणरूप अन्य भूतोंसे उत्पन्न होते और प्रलयकाल आनेपर फिर उन्हींमें लीन हो जाते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको फैलाकर फिर उन्हें समेट लेता है, उसी प्रकार भूतात्मा परमेश्वर अपने रचे हुए भृतोको पुनः अपनेमे लीन करते हैं। महाभूत पॉच ही हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति करनेवाले परमात्माने समस्त प्राणियोमे उन्हीं पॉचों भूतोंको भलीभॉति नियुक्त किया है, किंतु जीव उन परमात्माको नहीं देखता है।

शब्द, कान और शरीरके छिद्र—ये तीनो आकाशसे प्रकट हुए हैं। स्पर्श, चेष्टा और त्वचा—ये तीन वायुके कार्य हैं। रूप, नेत्र और पाक–इन तीन रूपोमे तेजकी उपलब्धि कही जाती है। रस, क्लेद (गीलापन) और जिह्वा—ये तीन जलके गुण बताये गये हैं। गन्ध, नासिका और शरीर–ये तीन भूमिके कार्य हैं। इन्द्रियरूपमे पॉच ही महाभूत हैं और छठा मन है। इस प्रकार श्रोत्रादि पॉच इन्द्रियोंका और मनका ही परिचय दिया गया है। बुद्धिको सातवॉ तत्त्व कहा गया है। क्षेत्रज्ञ आठवॉ है। कान सुननेके लिये और त्वचा स्पर्शका अनुभव करनेके लिये है। रसका आस्वादन करनेके लिये रसना (जिह्वा) और गन्ध ग्रहण करनेके लिये नासिका है। नेत्रका काम देखना है। मन संदेह करता है। बुद्धि निश्चय करनेके लिये है और क्षेत्रज्ञ साक्षीकी भॉति स्थित है। दोनों पैरोंसे ऊपर सिरतक—जो कुछ भी नीचे-ऊपर है, सबको वह क्षेत्रज्ञ ही देखता है। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) व्यापक है। इसने इस सम्पूर्ण शरीरको बाहर-भीतरसे व्याप्त कर रक्खा है। पुरुष ज्ञाता है और सम्पूर्ण इन्द्रियॉ उसके लिये ज्ञेय हैं। तम, रज और सत्त्व—ये सारे भाव पुरुषके आश्रित हैं। जो मनुष्य इस अध्यात्मज्ञानको जान लेता है, वह भूतोंके आवागमनका विचार करके धीरे-धीरे उत्तम शान्ति पा लेता है। पुरुष जिससे देखता है, वह नेत्र है। जिससे सुनता है, उसे श्रोत्र (कान) कहते हैं। जिससे सूँघता है, उसका नाम घ्राण (नासिका) है। वह जिह्वासे रसका अनुभव करता है और त्वचासे स्पर्शको जानता है। बुद्धि सदा ज्ञान या निश्चय कराती है। पुरुष जिससे कुछ इच्छा करता है, वह मन है। बुद्धि इन सबका अधिष्ठान है। अतः पॉच विषय और पॉच इन्द्रियॉ उससे पृथक् कही गयी हैं। इन सबका अधिष्ठाता चेतन क्षेत्रज्ञ इनसे नहीं देखा जाता।

प्रीति या प्रसन्नता सत्त्वगुणका कार्य है। शोक रजोगुण और क्रोध तमोगुण है। इस प्रकार ये तीन भाव है। लोकमे जो-जो भाव हैं, वे सब इन तीनो गुणोंमें आबद्ध हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण सदा प्राणियोके भीतर रहते हैं। इसलिये सब जीवोंमें सात्त्विकी, राजसी और तामसी–यह तीन प्रकारकी अनुभूति देखी जाती है। तुम्हारे शरीर अथवा मनमें जो कुछ प्रसन्नतासे संयुक्त है, वह सब सात्त्विक भाव है। मुनिश्रेष्ठ! जो कुछ भी दुःखसे संयुक्त और मनको अप्रसन्न करनेवाला है, उसे रजोगुणका ही प्रकाश समझो। इससे अतिरिक्त जो कुछ मोहसे संयुक्त हो और उसका आधार व्यक्त न हो तथा जो ज्ञानमें न आता हो, वह तमोगुण है–ऐसा निश्चय करे। हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख एवं चित्तकी शान्ति—इन भावोंको सात्त्विक गुण समझना चाहिये। असंतोष, परिताप, शोक, लोभ तथा असहनशीलता—ये रजोगुणके चिह्न हैं। अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न, तन्द्रा आदि भाव तमोगुणके ही भिन्न-भिन्न कार्य हैं। जो बहुधा दोषकी ओर जाता है, उस मनके दो स्वरूप हैं—याचना करना और संशय। जिसका मन अपने अधीन है, वह इस लोकमें तो सुखी होता ही है, मरनेके बाद परलोकमें भी उसे सुख मिलता है।

सत्त्व (बुद्धि) तथा क्षेत्रज्ञ (पुरुष) ये दोनों सूक्ष्म हैं। जिसे इन दोनोंका अन्तर (पार्थक्य) ज्ञात हो जाता है, वह भी इहलोक और परलोकमें सुखका भागी होता है। इनमें एक तो गुणोंकी सृष्टि करता है और एक नहीं करता। सत्त्व आदि गुण आत्माको नहीं जानते, किंतु आत्मा सब प्रकारसे गुणोंको जानता है। यद्यपि पुरुष गुणोंका द्रष्टा मात्र है, तथापि बुद्धिके संसर्गसे वह अपनेको उनका स्रष्टा मानता है। इस प्रकार सत्त्व और पुरुषका संयोग हुआ है, किंतु इनका पार्थक्य निश्चित है। जब बुद्धि मनके द्वारा इन्द्रियरूपी घोड़ोंकी रास

उत्पत्ति और लयके स्थान हैं। जो भूत जिससे उत्पन्न होते हैं, वे फिर उसीमें लीन हो जाते हैं। जैसे समुद्रसे लहरें उठती हैं और फिर उसीमें लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ये महाभूत क्रमशः अपने-अपने कारणरूप अन्य भूतोंसे उत्पन्न होते और प्रलयकाल आनेपर फिर उन्हींमें लीन हो जाते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको फैलाकर फिर उन्हें समेट लेता है, उसी प्रकार भूतात्मा परमेश्वर अपने रचे हुए भूतोंको पुनः अपनेमें लीन करते हैं। महाभूत पाँच ही हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति करनेवाले परमात्माने समस्त प्राणियोंमें उन्हीं पाँचों भूतोंको भलीभाँति नियुक्त किया है, किंतु जीव उन परमात्माको नहीं देखता है।

शब्द, कान और शरीरके छिद्र—ये तीनों आकाशसे प्रकट हुए हैं। स्पर्श, चेष्टा और त्वचा—ये तीन वायुके कार्य हैं। रूप, नेत्र और पाक-इन तीन रूपोंमें तेजकी उपलब्धि कही जाती है। रस, क्लेद (गीलापन) और जिह्वा—ये तीन जलके गुण बताये गये हैं। गन्ध, नासिका और शरीर-ये तीन भूमिके कार्य हैं। इन्द्रियरूपमें पाँच ही महाभूत हैं और छठा मन है। इस प्रकार श्रोत्रादि पाँच इन्द्रियोंका और मनका ही परिचय दिया गया है। बुद्धिको सातवाँ तत्त्व कहा गया है। क्षेत्रज्ञ आठवाँ है। कान सुननेके लिये और त्वचा स्पर्शका अनुभव करनेके लिये है। रसका आस्वादन करनेके लिये रसना (जिह्वा) और गन्ध ग्रहण करनेके लिये नासिका है। नेत्रका काम देखना है। मन संदेह करता है। बुद्धि निश्चय करनेके लिये है और क्षेत्रज्ञ साक्षीकी भाँति स्थित है। दोनों पैरोंसे ऊपर सिरतक—जो कुछ भी नीचे-ऊपर है, सबको वह क्षेत्रज्ञ ही देखता है। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) व्यापक है। इसने इस सम्पूर्ण शरीरको बाहर-भीतरसे व्याप्त कर रक्खा है। पुरुष ज्ञाता है और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उसके लिये ज्ञेय हैं। तम, रज और सत्त्व—ये सारे भाव पुरुषके आश्रित हैं। जो मनुष्य इस अध्यात्मज्ञानको जान लेता है, वह भूतोंके आवागमनका विचार करके धीरे-धीरे उत्तम शान्ति पा लेता है। पुरुष जिससे देखता है, वह नेत्र है। जिससे सुनता है, उसे श्रोत्र (कान) कहते हैं। जिससे सूँघता है, उसका नाम घ्राण (नासिका) है। वह जिह्वासे रसका अनुभव करता है और त्वचासे स्पर्शको जानता है। बुद्धि सदा ज्ञान या निश्चय कराती है। पुरुष जिससे कुछ इच्छा करता है, वह मन है। बुद्धि इन सबका अधिष्ठान है। अतः पाँच विषय और पाँच इन्द्रियाँ उससे पृथक् कही गयी हैं। इन सबका अधिष्ठाता चेतन क्षेत्रज्ञ इनसे नहीं देखा जाता।

प्रीति या प्रसन्नता सत्त्वगुणका कार्य है। शोक रजोगुण और क्रोध तमोगुण है। इस प्रकार ये तीन भाव है। लोकमें जो-जो भाव हैं, वे सब इन तीनों गुणोंमें आबद्ध हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण सदा प्राणियोंके भीतर रहते हैं। इसलिये सब जीवोंमें सात्त्विकी, राजसी और तामसी-यह तीन प्रकारकी अनुभूति देखी जाती है। तुम्हारे शरीर अथवा मनमें जो कुछ प्रसन्नतासे संयुक्त है, वह सब सात्त्विक भाव है। मुनिश्रेष्ठ! जो कुछ भी दुःखसे संयुक्त और मनको अप्रसन्न करनेवाला है, उसे रजोगुणका ही प्रकाश समझो। इससे अतिरिक्त जो कुछ मोहसे संयुक्त हो और उसका आधार व्यक्त न हो तथा जो ज्ञानमें न आता हो, वह तमोगुण है-ऐसा निश्चय करे। हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख एवं चित्तकी शान्ति—इन भावोंको सात्त्विक गुण समझना चाहिये। असंतोष, परिताप, शोक, लोभ तथा असहनशीलता—ये रजोगुणके चिह्न हैं। अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न, तन्द्रा आदि भाव तमोगुणके ही भिन्न-भिन्न कार्य हैं। जो बहुधा दोषकी ओर जाता है, उस मनके दो स्वरूप हैं—याचना करना और संशय। जिसका मन अपने अधीन है, वह इस लोकमें तो सुखी होता ही है, मरनेके बाद परलोकमें भी उसे सुख मिलता है।

सत्त्व (बुद्धि) तथा क्षेत्रज्ञ (पुरुष) ये दोनों सूक्ष्म हैं। जिसे इन दोनोंका अन्तर (पार्थक्य) ज्ञात हो जाता है, वह भी इहलोक और परलोकमें सुखका भागी होता है। इनमें एक तो गुणोंकी सृष्टि करता है और एक नहीं करता। सत्त्व आदि गुण आत्माको नहीं जानते, किंतु आत्मा सब प्रकारसे गुणोंको जानता है। यद्यपि पुरुष गुणोंका द्रष्टा मात्र है, तथापि बुद्धिके संसर्गसे वह अपनेको उनका स्रष्टा मानता है। इस प्रकार सत्त्व और पुरुषका संयोग हुआ है, किंतु इनका पार्थक्य निश्चित है। जब बुद्धि मनके द्वारा इन्द्रियरूपी घोड़ोंकी रास

मद्भक्त एवं बुद्धिमान् पुरुष पाँच इन्द्रियोंको मनमें लीन करके पाँचों इन्द्रियोंसहित इधर-उधर भटकनेवाले मनको ध्येय वस्तुमें एकाग्र करे । मन चारों ओर विचरण करनेवाला है । उसका कोई दृढ़ आधार नहीं है । पाँचों इन्द्रियोंके द्वार उसके निकलनेके मार्ग हैं । वह अजितेन्द्रिय पुरुषके लिये बलवान् और जितेन्द्रियके लिये निर्बल है । धीर पुरुष पूर्वोक्त ध्यानके साधनमें शीघ्रतापूर्वक मनको एकाग्र करे । जब वह इन्द्रिय और मनको अपने वशमें कर लेता है तो उसका पूर्वोक्त ध्यान सिद्ध हो जाता है । इस प्रकार मैंने यहाँ प्रथम ध्यानमार्गका वर्णन किया है ।

इसके बाद पहलेसे वशमें किया हुआ मनसहित इन्द्रियवर्ग पुनः अवसर पाकर स्फुरित होता है, ठीक इसी तरह जैसे बादलमें बिजली चमकती है । जिस प्रकार पत्तेपर रखी हुई जलकी बूँद सब ओरसे चञ्चल एवं अस्थिर होती है, उसी प्रकार प्रथम ध्यानमार्गमें साधकका चित्त भी चञ्चल होता है । क्षणभरके लिये कभी एकाग्र होकर कुछ देर ध्यानमार्गमें स्थिर होता है, फिर भ्रान्त होकर वायुकी भाँति आकाशमें दौड़ लगाने लगता है । परंतु ध्यानयोगका ज्ञाता पुरुष इससे ऊबे नहीं । वह क्लेश, चिन्ता, ईर्ष्या और आलस्यका त्याग करके पुनः ध्यानके द्वारा चित्तको एकाग्र करे । प्रथम ध्यानमार्गपर चलनेवाले मुनिके हृदयमें विचार, वितर्क एवं विवेककी उत्पत्ति होती है । मन उद्विग्न होनेपर उसका समाधान करे । ध्यानयोगी मुनि कभी उससे खिन्न या उदासीन न हो । ध्यानद्वारा अपना हित-साधन अवश्य करे । इन इन्द्रियोंको धीरे-धीरे शान्त करनेका प्रयत्न करे । क्रमशः इनका उपसंहार करे । ऐसा करनेपर इनकी पूर्णरूपसे शान्ति हो जायगी । मुनीश्वर ! प्रथम ध्यानमार्गमें पाँचों इन्द्रियों और मनको स्थापित करके नित्य अभ्यास करनेसे ये स्वयं शान्त हो जाते हैं । इस प्रकार आत्मसंयम करनेवाले पुरुषको जिस सुखकी प्राप्ति होती है, वह किसी लौकिक पुरुषार्थ और प्रारब्धसे नहीं मिलता । उस सुखके प्राप्त होनेपर मनुष्य ध्यानके साधनमें रम जाता है । इस प्रकार ध्यानका अभ्यास करनेवाले योगीजन निरामय मोक्षको प्राप्त होते हैं ।

सनन्दनजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! महर्षि भृगुके इस प्रकार कहनेपर परम धर्मात्मा एवं प्रतापी भरद्वाज मुनि बड़े विस्मित हुए और उन्होंने भृगुजीकी बड़ी प्रशंसा की ।

पञ्चशिखका राजा जनकको उपदेश

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! सनन्दनजीका मोक्ष-धर्मसम्बन्धी वचन सुनकर तत्त्वज्ञ नारदजीने पुनः अध्यात्म-विषयक उत्तम बात पूछी ।

नारदजी बोले—महाभाग ! मैंने आपके बताये हुए अध्यात्म और ध्यानविषयक मोक्ष-शास्त्रको सुना, यह सब बार-बार सुननेपर भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है (अधिकाधिक सुननेकी इच्छा बढ़ती जा रही है) । सर्वज्ञ मुने ! जीव अविद्याके बन्धनसे जिस प्रकार मुक्त होता है, वह उपाय बताइये । साधु पुरुषोंने जिसका आश्रय ले रखा है, उस मोक्ष-धर्मका पुनः वर्णन कीजिये ।

सनन्दनजीने कहा—नारद ! इस विषयमें विद्वान् पुरुष इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं । जिससे यह ज्ञात होता है कि मिथिलानरेश जनकने किस प्रकार मोक्ष प्राप्त किया था । यह उस समयकी बात है, जब मिथिलामें जनकवंशी राजा जनदेवका राज्य था । जनदेव सदा ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाले धर्मोंका ही चिन्तन किया करते थे । उनके दरबारमें एक सौ आचार्य बराबर रहा करते थे, जो उन्हें भिन्न-भिन्न आश्रमोंके धर्मोंका उपदेश देते रहते थे । 'इस शरीरको त्याग देनेके पश्चात् जीवकी सत्ता रहती है या नहीं ? अथवा देह-त्यागके बाद उसका पुनर्जन्म होता है या नहीं ?' इस विषयमें उन आचार्योंका जो सुनिश्चित सिद्धान्त था, वे लोग आत्मतत्त्वके विषयमें जैसा विचार उपस्थित करते थे, उससे शास्त्रानुयायी राजा जनदेवको विशेष संतोष नहीं होता था । एक बार कपिलाके पुत्र महामुनि पञ्चशिख सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए मिथिलामें आ पहुँचे । वे सम्पूर्ण संन्यास-धर्मोंके ज्ञाता और तत्त्वज्ञानके निर्णयमें एक सुनिश्चित सिद्धान्तके पोषक थे । उनके मनमें किसी प्रकारका संदेह नहीं था । वे निर्द्वन्द्व होकर विचरा करते थे । उन्हें ऋषियोंमें अद्वितीय बताया जाता है । कामना तो उन्हें छू भी नहीं गयी थी । वे मनुष्योंके हृदयमें अपने उपदेशद्वारा अत्यन्त दुर्लभ सनातन सुखकी प्रतिष्ठा करना चाहते थे । सांख्यके विद्वान् तो उन्हें साक्षात् प्रजापति महर्षि कपिलका ही स्वरूप समझते हैं । उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक भगवान् कपिल स्वयं पञ्चशिखके रूपमें आकर लोगोंको आश्चर्यमें डाल रहे हैं । उन्हें आसुरि मुनिका प्रथम शिष्य और चिरञ्जीवी बताया जाता है । एक समय उन्होंने महर्षि कपिलके मतका अनुसरण करनेवाले मुनियोंकी विशाल मण्डलीमें जाकर सबमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित परमार्थस्वरूप अव्यक्त ब्रह्मके विषयमें निवेदन किया था और क्षेत्र तथा

मनःसक्त एवं बुद्धिमान् पुरुष पाँच इन्द्रियोंको मनमें लीन करके पाँचों इन्द्रियोंसहित इधर-उधर भटकनेवाले मनको ध्येय वस्तुमें एकाग्र करे । मन चारों ओर विचरण करनेवाला है । उसका कोई दृढ़ आधार नहीं है । पाँचों इन्द्रियोंके द्वार उसके निकलनेके मार्ग हैं । वह अजितेन्द्रिय पुरुषके लिये बलवान् और जितेन्द्रियके लिये निर्बल है । धीर पुरुष पूर्वोक्त ध्यानके साधनमें शीघ्रतापूर्वक मनको एकाग्र करे । जब वह इन्द्रिय और मनको अपने वशमें कर लेता है तो उसका पूर्वोक्त ध्यान सिद्ध हो जाता है । इस प्रकार मैंने यहाँ प्रथम ध्यानमार्गका वर्णन किया है ।

इसके बाद पहलेसे वशमें किया हुआ मनसहित इन्द्रियवर्ग पुनः अवसर पाकर स्फुरित होता है, ठीक इसी तरह जैसे बादलमें बिजली चमकती है । जिस प्रकार पत्तेपर रखी हुई जलकी बूँद सब ओरसे चञ्चल एवं अस्थिर होती है, उसी प्रकार प्रथम ध्यानमार्गमें साधकका चित्त भी चञ्चल होता है । क्षण-भरके लिये कभी एकाग्र होकर कुछ देर ध्यानमार्गमें स्थिर होता है, फिर भ्रान्त होकर वायुकी भाँति आकाशमें दौड़ लगाने लगता है । परंतु ध्यानयोगका ज्ञाता पुरुष इससे ऊबे नहीं । वह क्लेश, चिन्ता, ईर्ष्या और आलस्यका त्याग करके पुनः ध्यानके द्वारा चित्तको एकाग्र करे । प्रथम ध्यानमार्ग-पर चलनेवाले मुनिके हृदयमें विचार, वितर्क एवं विवेककी उत्पत्ति होती है । मन उद्विग्न होनेपर उसका समाधान करे । ध्यानयोगी मुनि कभी उससे खिन्न या उदासीन न हो । ध्यानद्वारा अपना हित-साधन अवश्य करे । इन इन्द्रियोंको धीरे-धीरे शान्त करनेका प्रयत्न करे । क्रमशः इनका उपसंहार करे । ऐसा करनेपर इनकी पूर्णरूपसे शान्ति हो जायगी । मुनीश्वर ! प्रथम ध्यानमार्गमें पाँचों इन्द्रियों और मनको स्थापित करके नित्य अभ्यास करनेसे ये स्वयं शान्त हो जाते हैं । इस प्रकार आत्मसंयम करनेवाले पुरुषको जिस सुखकी प्राप्ति होती है, वह किसी लौकिक पुरुषार्थ और प्रारब्धसे नहीं मिलता । उस सुखके प्राप्त होनेपर मनुष्य ध्यानके साधनमें रम जाता है । इस प्रकार ध्यानका अभ्यास करनेवाले योगीजन निरामय मोक्षको प्राप्त होते हैं ।

सनन्दनजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! महर्षि भृगुके इस प्रकार कहनेपर परम धर्मात्मा एवं प्रतापी भरद्वाज मुनि बड़े विस्मित हुए और उन्होंने भृगुजीकी बड़ी प्रशंसा की ।

पञ्चशिखका राजा जनकको उपदेश

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! सनन्दनजीका मोक्ष-धर्मसम्बन्धी वचन सुनकर तत्त्वज्ञ नारदजीने पुनः अध्यात्म-विषयक उत्तम बात पूछी ।

नारदजी बोले—महाभाग ! मैंने आपके बताये हुए अध्यात्म और ध्यानविषयक मोक्ष-शास्त्रको सुना, यह सब बार-बार सुननेपर भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है (अधिकाधिक सुननेकी इच्छा बढ़ती जा रही है) । सर्वज्ञ मुने ! जीव अविद्याके बन्धनसे जिस प्रकार मुक्त होता है, वह उपाय बताइये । साधु पुरुषोंने जिसका आश्रय ले रक्खा है, उस मोक्ष-धर्मका पुनः वर्णन कीजिये ।

सनन्दनजीने कहा—नारद ! इस विषयमें विद्वान् पुरुष इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं । जिससे यह ज्ञात होता है कि मिथिलानरेश जनकने किस प्रकार मोक्ष प्राप्त किया था । यह उस समयकी बात है, जब मिथिलामें जनकवंशी राजा जनदेवका राज्य था । जनदेव सदा ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाले धर्मोंका ही चिन्तन किया करते थे । उनके दरबारमे एक सौ आचार्य बराबर रहा करते थे, जो उन्हें भिन्न-भिन्न आश्रमोंके धर्मोंका उपदेश देते रहते थे । 'इस शरीरको त्याग देनेके पश्चात् जीवकी सत्ता रहती है या नहीं ? अथवा देह-त्यागके बाद उसका पुनर्जन्म होता है या नहीं ?' इस विषयमे उन आचार्योंका जो सुनिश्चित सिद्धान्त था, वे लोग आत्मतत्त्वके विषयमे जैसा विचार उपस्थित करते थे, उससे शास्त्रानुयायी राजा जनदेवको विशेष संतोष नहीं होता था । एक बार कपिलाके पुत्र महामुनि पञ्चशिख सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए मिथिलामें आ पहुँचे । वे सम्पूर्ण संन्यास-धर्मोंके ज्ञाता और तत्त्वज्ञानके निर्णयमे एक सुनिश्चित सिद्धान्तके पोषक थे । उनके मनमे किसी प्रकारका संदेह नहीं था । वे निर्द्वन्द्व होकर विचरा करते थे । उन्हे ऋषियोमे अद्वितीय बताया जाता है । कामना तो उन्हें छू भी नहीं गयी थी । वे मनुष्योंके हृदयमें अपने उपदेशद्वारा अत्यन्त दुर्लभ सनातन सुखकी प्रतिष्ठा करना चाहते थे । सांख्यके विद्वान तो उन्हें साक्षात् प्रजापति महर्षि कपिलका ही स्वरूप समझते हैं । उन्हें देखकर ऐसा जान पडता था, मानो सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक भगवान् कपिल स्वयं पञ्चशिखके रूपमें आकर लोगोंको आश्चर्यमें डाल रहे हैं । उन्हें आसुरि मुनिका प्रथम शिष्य और चिरञ्जीवी बताया जाता है । एक समय उन्होंने महर्षि कपिलके मतका अनुसरण करनेवाले मुनियोंकी विशाल मण्डलीमे जाकर सबमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित परमार्थस्वरूप अव्यक्त ब्रह्मके विषयमें निवेदन किया था और क्षेत्र तथा

सकती। जिस किसी भी अनुमानमें ईश्वर, अदृष्ट अथवा नित्य आत्माकी सिद्धिके लिये की हुई भावना भी व्यर्थ है; अतः नास्तिकोंके मतमें शरीरसे भिन्न जीवका अस्तित्व नहीं है, यह बात स्थिर हुई। जैसे वटवृक्षके बीजमें पत्र, पुष्प, फल, मूल तथा त्वचा आदि अन्तर्हित होते हैं, जैसे गायके द्वारा खायी हुई घासमेंसे घी, दूध आदि प्रकट हो जाते हैं तथा जिस प्रकार अनेक औषध-द्रव्योंका पाक एवं अधिवासन करनेसे उसमें नशा पैदा करनेवाली शक्ति आ जाती है, उसी प्रकार वीर्यमें ही शरीर आदिके साथ चेतनता भी प्रकट होती है।'

(इस नास्तिक मतका खण्डन इस प्रकार समझना चाहिये) मरे हुए शरीरमें जो चेतनताका अतिक्रमण देखा जाता है, वही देहातिरिक्त आत्माके अस्तित्वमें प्रमाण है। यदि चेतनता देहका ही धर्म होता तो मृतक शरीरमें भी उसकी उपलब्धि होती। मृत्युके पश्चात् कुछ कालतक शरीर तो रहता है पर उसमें चेतनता नहीं रहती। अतः चेतन आत्मा शरीरसे भिन्न है—यह सिद्ध होता है। नास्तिक भी रोग आदिकी निवृत्तिके लिये मन्त्रजप तथा तान्त्रिक-पद्धतिसे देवता आदिकी आराधना करते हैं। वह देवता क्या है ? यदि पाञ्चभौतिक है तो घट आदिकी भाँति उसका दर्शन होना चाहिये और यदि वह भौतिक पदार्थोंसे भिन्न है तो चेतनकी सत्ता स्वतः सिद्ध हो गयी। अतः देहसे भिन्न आत्मा है—यह प्रत्यक्ष अनुभवसे सिद्ध हो जाता है; और देह ही आत्मा है, यह प्रत्यक्ष अनुभवके विरुद्ध जान पड़ता है। यदि शरीरकी मृत्युके साथ आत्माकी भी मृत्यु मान ली जाय, तब तो उसके किये हुए कर्मोंका भी नाश मानना पड़ेगा; फिर तो उसके शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगनेवाला कोई नहीं रह जायगा और देहकी उत्पत्तिमें अकृताभ्यागम (बिना किये हुए कर्मका ही भोग प्राप्त हुआ ऐसा) माननेका प्रसङ्ग उपस्थित होगा। ये सब प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि देहातिरिक्त चेतन आत्माकी सत्ता अवश्य है। नास्तिकोंकी ओरसे जो हेतुभूत दृष्टान्त दिये गये हैं, वे मूर्त पदार्थ हैं। मूर्त जड-पदार्थसे मूर्त जड-पदार्थकी ही उत्पत्ति होती है—यही उनके द्वारा सिद्ध होता है। जैसे काष्ठसे अग्निकी उत्पत्ति आदि।

पञ्चभूतोंसे आत्माकी उत्पत्तिकी भाँति यदि मूर्तसे अमूर्तकी उत्पत्ति मानी जाय तो पृथ्वी आदि मूर्त भूतोंसे अमूर्त आकाशकी भी उत्पत्ति स्वीकार करनी पड़ेगी, जो असम्भव है। अतः स्थूल भूतोंके संयोगसे अमूर्त चेतन आत्माकी उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है।

आत्माकी सत्ता न माननेपर लोकयात्राका निर्वाह नहीं होगा। दान, धर्मके फलकी प्राप्तिके लिये कोई आस्था नहीं रहेगी; क्योंकि वैदिक शब्द तथा लौकिक व्यवहार सब आत्माको ही सुख देनेके लिये है। इस प्रकार मनमें अनेक प्रकारके तर्क उठते हैं और उन तर्कों तथा युक्तियोंसे आत्माकी सत्ता या असत्ताका निर्धारण कुछ भी होता नहीं दिखायी देता। इस प्रकार विचार करते हुए भिन्न-भिन्न मतोंकी ओर दौड़नेवाले लोगोंकी बुद्धि कहीं एक जगह प्रवेश करती है और वहीं वृक्षकी भाँति जड़ जमाये जीर्ण हो जाती है। इस प्रकार अर्थ और अनर्थसे सभी प्राणी दुखी रहते हैं। केवल शास्त्र ही उन्हें खींचकर राहपर लाते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे महावत हाथीपर अङ्कुश रखकर उन्हें काबूमें किये रहते हैं। बहुतसे शुष्क हृदयवाले लोग ऐसे विषयोंकी लिप्सा रखते हैं, जो अत्यन्त सुखदायक हों; किंतु इस लिप्सामें उन्हें भारी-से-भारी दुःखोंका ही सामना करना पड़ता है और अन्तमें वे भोगोंको छोड़कर मृत्युके ग्रास बन जाते हैं। जो एक दिन नष्ट होनेवाला है, जिसके जीवनका कुछ ठिकाना नहीं, ऐसे अनित्य शरीरको पाकर इन बन्धु-बान्धवों तथा स्त्री-पुत्रादिसे क्या लाभ है ? यह सोचकर जो मनुष्य इन सबको क्षणभरमें वैराग्यपूर्वक त्यागकर चल देता है, उसे मृत्युके बाद फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु—ये सदा शरीरकी रक्षा करते रहते हैं, इस बातको अच्छी तरह समझ लेनेपर इसके प्रति आसक्ति कैसे हो सकती है ? जो एक दिन मृत्युके मुखमें पड़नेवाला है, ऐसे शरीरमें सुख कहाँ ?

पञ्चशिखने फिर कहा—राजन् ! अब मैं उस परम उत्तम सांख्यशास्त्रका वर्णन करता हूँ, जिसका नाम है—सम्यग्वमन (मनको संदेहरहित करनेवाला), उसमें त्यागकी प्रधानता है। तुम ध्यान देकर सुनो। उसका उपदेश तुम्हारे मोक्षमें सहायक होगा। जो लोग मुक्तिके लिये प्रयत्नशील हों, उन सबको चाहिये कि सम्पूर्ण सकाम कर्मोंका और धन आदिका भी त्याग करें। जो त्याग किये बिना व्यर्थ ही विनीत (शम-दमादि साधनोंमें तत्पर) होनेका झूठा दावा करते हैं, उन्हें दुःख देनेवाले अविद्यारूप क्लेश प्राप्त होते रहते हैं। शास्त्रोंमें द्रव्यका त्याग

सकती । जिस किसी भी अनुमानमें ईश्वर, अदृष्ट अथवा नित्य आत्माकी सिद्धिके लिये की हुई भावना भी व्यर्थ है; अतः नास्तिकोंके मतमें शरीरसे भिन्न जीवका अस्तित्व नहीं है, यह बात स्थिर हुई । जैसे वटवृक्षके बीजमें पत्र, पुष्प, फल, मूल तथा त्वचा आदि अन्तर्हित होते हैं, जैसे गायके द्वारा खायी हुई घासमेंसे घी, दूध आदि प्रकट हो जाते हैं तथा जिस प्रकार अनेक औषध-द्रव्योंका पाक एवं अधिवासन करनेसे उसमें नशा पैदा करनेवाली शक्ति आ जाती है, उसी प्रकार वीर्यसे ही शरीर आदिके साथ चेतनता भी प्रकट होती है ।'

(इस नास्तिक मतका खण्डन इस प्रकार समझना चाहिये) मरे हुए शरीरमें जो चेतनताका अतिक्रमण देखा जाता है, वही देहातिरिक्त आत्माके अस्तित्वमें प्रमाण है । यदि चेतनता देहका ही धर्म होता तो मृतक शरीरमें भी उसकी उपलब्धि होती । मृत्युके पश्चात् कुछ कालतक शरीर तो रहता है पर उसमें चेतनता नहीं रहती । अतः चेतन आत्मा शरीरसे भिन्न है—यह सिद्ध होता है । नास्तिक भी रोग आदिकी निवृत्तिके लिये मन्त्रजप तथा तान्त्रिक-पद्धतिसे देवता आदिकी आराधना करते हैं । वह देवता क्या है ? यदि पाञ्चभौतिक है तो घट आदिकी भाँति उसका दर्शन होना चाहिये और यदि वह भौतिक पदार्थोंसे भिन्न है तो चेतनकी सत्ता स्वतः सिद्ध हो गयी । अतः देहसे भिन्न आत्मा है—यह प्रत्यक्ष अनुभवसे सिद्ध हो जाता है; और देह ही आत्मा है, यह प्रत्यक्ष अनुभवके विरुद्ध जान पडता है । यदि शरीरकी मृत्युके साथ आत्माकी भी मृत्यु मान ली जाय, तब तो उसके किये हुए कर्मोंका भी नाश मानना पड़ेगा; फिर तो उसके शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगनेवाला कोई नहीं रह जायगा और देहकी उत्पत्तिमें अकृताभ्यागम (बिना किये हुए कर्मका ही भोग प्राप्त हुआ ऐसा) माननेका प्रसङ्ग उपस्थित होगा । ये सब प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि देहातिरिक्त चेतन आत्माकी सत्ता अवश्य है । नास्तिकोंकी ओरसे जो हेतुभूत दृष्टान्त दिये गये हैं, वे मूर्त पदार्थ हैं । मूर्त जड-पदार्थसे मूर्त जड-पदार्थकी ही उत्पत्ति होती है—यही उनके द्वारा सिद्ध होता है । जैसे काष्ठसे अग्निकी उत्पत्ति आदि ।

पञ्चभूतोंसे आत्माकी उत्पत्तिकी भाँति यदि मूर्तसे अमूर्तकी उत्पत्ति मानी जाय तो पृथ्वी आदि मूर्त भूतोंसे अमूर्त आकाशकी भी उत्पत्ति स्वीकार करनी पड़ेगी, जो असम्भव है । अतः स्थूल भूतोंके संयोगसे अमूर्त चेतन आत्माकी उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है ।

आत्माकी सत्ता न माननेपर लोकयात्राका निर्वाह नहीं होगा । दान, धर्मके फलकी प्राप्तिके लिये कोई आस्था नहीं रहेगी; क्योंकि वैदिक शब्द तथा लौकिक व्यवहार सब आत्माको ही सुख देनेके लिये है । इस प्रकार मनमें अनेक प्रकारके तर्क उठते हैं और उन तर्कों तथा युक्तियोंसे आत्माकी सत्ता या असत्ताका निर्धारण कुछ भी होता नहीं दिखायी देता । इस प्रकार विचार करते हुए भिन्न-भिन्न मतोंकी ओर दौड़नेवाले लोगोंकी बुद्धि कहीं एक जगह प्रवेश करती है और वहीं वृक्षकी भाँति जड़ जमाये जीर्ण हो जाती है । इस प्रकार अर्थ और अनर्थसे सभी प्राणी दुखी रहते हैं । केवल शास्त्र ही उन्हें खींचकर राहपर लाते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे महावत हाथीपर अङ्कुश रखकर उन्हें काबूमें किये रहते हैं । बहुतसे शुष्क हृदयवाले लोग ऐसे विषयोंकी लिप्सा रखते हैं, जो अत्यन्त सुखदायक हों; किंतु इस लिप्सामें उन्हें भारी-से-भारी दुःखोंका ही सामना करना पड़ता है और अन्तमें वे भोगोंको छोड़कर मृत्युके ग्रास बन जाते हैं । जो एक दिन नष्ट होनेवाला है, जिसके जीवनका कुछ ठिकाना नहीं, ऐसे अनित्य शरीरको पाकर इन बन्धु-बान्धवों तथा स्त्री-पुत्रादिसे क्या लाभ है ? यह सोचकर जो मनुष्य इन सबको क्षणभरमें वैराग्यपूर्वक त्यागकर चल देता है, उसे मृत्युके बाद फिर जन्म नहीं लेना पड़ता । पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु—ये सदा शरीरकी रक्षा करते रहते हैं, इस बातको अच्छी तरह समझ लेनेपर इसके प्रति आसक्ति कैसे हो सकती है ? जो एक दिन मृत्युके मुखमें पडनेवाला है, ऐसे शरीरमें सुख कहाँ ?

पञ्चशिखने फिर कहा—राजन् ! अब मैं उस परम उत्तम साङ्ख्यशास्त्रका वर्णन करता हूँ, जिसका नाम है—सम्यङ्मन (मनको संदेहरहित करनेवाला), उसमें त्यागकी प्रधानता है । तुम ध्यान देकर सुनो । उसका उपदेश तुम्हारे मोक्षमें सहायक होगा । जो लोग मुक्तिके लिये प्रयत्नशील हों, उन सबको चाहिये कि सम्पूर्ण सकाम कर्मोंका और धन आदिका भी त्याग करें । जो त्याग किये बिना व्यर्थ ही विनीत (शम-दमादि साधनोंमें तत्पर) होनेका झूठा दावा करते हैं, उन्हें दुःख देनेवाले अविद्यारूप क्लेश प्राप्त होते रहते हैं । शास्त्रोंमें द्रव्यका त्याग

त्रिविध तापोंसे छूटनेका उपाय, भगवान् तथा वासुदेव आदि शब्दोंकी व्याख्या, परा और अपरा विद्याका निरूपण, खाण्डिक्य और केशिध्वजकी कथा, केशिध्वजद्वारा अविद्याके बीजका प्रतिपादन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! उत्तम अध्यात्मज्ञान सुनकर उदारबुद्धि नारदजी बडे प्रसन्न हुए । उन्होंने पुनः प्रश्न किया ।

नारदजी बोले—दयानिधे ! मैं आपकी शरणमें हूँ । मुने ! मनुष्यको आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंका अनुभव न हो, वह उपाय मुझे बतलाइये ।

सनन्दनजीने कहा—विद्वन् ! गर्भमें, जन्मकालमें और बुढ़ापा आदि अवस्थाओंमें प्रकट होनेवाले जो तीन प्रकारके दुःख-समुदाय हैं, उनकी एकमात्र अमोघ एवं अनिवार्य ओषधि भगवान्‌की प्राप्ति ही मानी गयी है । जब भगवत्प्राप्ति होती है, उस समय ऐसे लोकोत्तर आनन्दकी अभिव्यक्ति होती है, जिससे बढ़कर सुख और आह्लाद कहीं है ही नहीं । यही उस भगवत्प्राप्तिकी पहचान है । अतः विद्वान् मनुष्योंको भगवान्‌की प्राप्तिके लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिये । महामुने ! भगवत्प्राप्तिके दो ही उपाय बताये गये हैं—ज्ञान और (निष्काम) कर्म । ज्ञान भी दो प्रकारका कहा जाता है । एक तो शास्त्रके अध्ययन और अनुशीलनसे प्राप्त होता है और दूसरा विवेकसे प्रकट होता है । शब्दब्रह्म अर्थात् वेदका ज्ञान शास्त्रज्ञान है और परब्रह्म परमात्माका बोध विवेकजन्य ज्ञान है । मुनिश्रेष्ठ ! मनुजीने भी वेदार्थका स्मरण करके इस विषयमें जो कुछ कहा है, उसे मैं स्पष्ट बताता हूँ—सुनो । जानने योग्य ब्रह्म दो प्रकारका है—एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म । जो शब्दब्रह्म (शास्त्रज्ञान) में पारङ्गत हो जाता है, वह विवेकजन्य ज्ञानद्वारा परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है* । अथर्ववेदकी श्रुति कहती है कि दो प्रकारकी विद्याएँ जानने योग्य हैं—परा और अपरा । परासे निर्गुण-सगुणरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है । जो अव्यक्त, अजर, चेष्टारहित, अजन्मा, अविनाशी, अनिर्देश्य (नाम आदिसे रहित), रूपहीन, हाथ-पैर आदि अङ्गोंसे शून्य, व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतोंका आदिकारण तथा स्वयं कारणहीन है, जिससे सम्पूर्ण व्याप्य वस्तुएँ व्याप्त हैं, समस्त जगत् जिससे प्रकट हुआ है एवं ज्ञानीजन ज्ञानदृष्टिसे जिसका साक्षात्कार करते हैं, वही परमधाम-स्वरूप ब्रह्म है । मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको उसीका ध्यान करना चाहिये । वही वेदवाक्योंद्वारा प्रतिपादित, अतिसूक्ष्म भगवान् विष्णुका परम पद है । परमात्माका वह स्वरूप ही 'भगवत्' शब्दका वाच्यार्थ है और 'भगवत्' शब्द उस अविनाशी परमात्माका वाचक कहा गया है । इस प्रकार जिसका स्वरूप बतलाया गया है, वही परमात्माका यथार्थ तत्त्व है । जिससे उसका ठीक-ठीक बोध होता है, वही परा विद्या अथवा परम ज्ञान है । इससे भिन्न जो तीनों वेद हैं, उन्हें अपर ज्ञान या अपरा विद्या कहा गया है ।

ब्रह्मन् ! यद्यपि वह ब्रह्म किसी शब्द या वाणीका विषय नहीं है, तथापि उपासनाके लिये 'भगवान्' इस नामसे उसका कथन किया जाता है । देवर्षे ! जो समस्त कारणोंका भी कारण है, उस परम शुद्ध महाभूति नामवाले परब्रह्मके लिये ही भगवत् शब्दका प्रयोग हुआ है । 'भगवत्' शब्दके 'भ' कारके दो अर्थ हैं—सम्भर्ता (भरण-पोषण

'शब्दका आधार श्रोत्रेन्द्रिय है और श्रोत्रेन्द्रियका आधार आकाश है, अतः वह आकाशरूप ही है । इसी प्रकार त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका भी क्रमशः स्पर्श, रूप, रस और गन्धका आश्रय तथा अपने आधारभूत महाभूतोंके स्वरूप हैं । इन सबका अधिष्ठान है मन; इसलिये सब-के-सब मनःस्वरूप हैं । क्योंकि जब सब इन्द्रियोंका कार्य एक समय आरम्भ होता है तब उन सबके विषयोंको एक साथ अनुभव करनेके लिये मन ही सबमें अनुगतरूपसे उपस्थित रहता है; अतः मनको ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा गया है और बुद्धि बारहवीं मानी गयी है । इस प्रकार समस्त प्राणी अनादि अविद्याके कारण स्वभावत. व्यवहारपरायण हो रहे हैं । ऐसी दशामें ज्ञानद्वारा अविद्याकी निवृत्ति हो जाती है । तब केवल सनातन आत्मा ही रह जाता है । जैसे नद और नदियाँ समुद्रमें मिलकर अपने नाम-रूपको त्याग देती हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणी अपने नाम और रूपको त्यागकर महत्स्वरूपमें प्रतिष्ठित होते हैं । यही उनका मोक्ष है ।

* द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

(ना० पूर्व० ४६ । ८)

त्रिविध तापोंसे छूटनेका उपाय, भगवान् तथा वासुदेव आदि शब्दोंकी व्याख्या, परा और अपरा विद्याका निरूपण, खाण्डिक्य और केशिध्वजकी कथा, केशिध्वजद्वारा अविद्याके बीजका प्रतिपादन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! उत्तम अध्यात्मज्ञान सुनकर उदारबुद्धि नारदजी बडे प्रसन्न हुए । उन्होंने पुनः प्रश्न किया ।

नारदजी बोले—दयानिधे ! मैं आपकी शरणमें हूँ । मुने ! मनुष्यको आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंका अनुभव न हो, वह उपाय मुझे बतलाइये ।

सनन्दनजीने कहा—विद्वन् ! गर्भमें, जन्मकालमें और बुढ़ापा आदि अवस्थाओंमें प्रकट होनेवाले जो तीन प्रकारके दुःख-समुदाय हैं, उनकी एकमात्र अमोघ एवं अनिवार्य ओषधि भगवान्‌की प्राप्ति ही मानी गयी है । जब भगवत्प्राप्ति होती है, उस समय ऐसे लोकोत्तर आनन्दकी अभिव्यक्ति होती है, जिससे बढ़कर सुख और आह्लाद कहीं है ही नहीं । यही उस भगवत्प्राप्तिकी पहचान है । अतः विद्वान् मनुष्योंको भगवान्‌की प्राप्तिके लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिये । महामुने ! भगवत्प्राप्तिके दो ही उपाय बताये गये हैं—ज्ञान और (निष्काम) कर्म । ज्ञान भी दो प्रकारका कहा जाता है । एक तो शास्त्रके अध्ययन और अनुशीलनसे प्राप्त होता है और दूसरा विवेकसे प्रकट होता है । शब्दब्रह्म अर्थात् वेदका ज्ञान शास्त्रज्ञान है और परब्रह्म परमात्माका बोध विवेकजन्य ज्ञान है । मुनिश्रेष्ठ ! मनुजीने भी वेदार्थका स्मरण करके इस विषयमें जो कुछ कहा है, उसे मैं स्पष्ट बताता हूँ—सुनो । जानने योग्य ब्रह्म दो प्रकारका है—एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। जो शब्दब्रह्म (शास्त्रज्ञान) में पारङ्गत हो जाता है, वह विवेकजन्य ज्ञानद्वारा परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है* । अथर्ववेदकी श्रुति कहती है कि दो प्रकारकी विद्याएँ जानने योग्य हैं—परा और अपरा । परासे निर्गुण-सगुणरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है । जो अव्यक्त, अजर, चेष्टारहित, अजन्मा, अविनाशी, अनिर्देश्य (नाम आदिसे रहित), रूपहीन, हाथ-पैर आदि अङ्गोंसे शून्य, व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतोंका आदिकारण तथा स्वयं कारणहीन है, जिससे सम्पूर्ण व्याप्य वस्तुएँ व्याप्त हैं, समस्त जगत् जिससे प्रकट हुआ है एवं ज्ञानीजन ज्ञानदृष्टिसे जिसका साक्षात्कार करते हैं, वही परमधाम-स्वरूप ब्रह्म है । मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको उसीका ध्यान करना चाहिये । वही वेदवाक्योंद्वारा प्रतिपादित, अतिसूक्ष्म भगवान् विष्णुका परम पद है । परमात्माका वह स्वरूप ही 'भगवत्' शब्दका वाच्यार्थ है और 'भगवत्' शब्द उस अविनाशी परमात्माका वाचक कहा गया है । इस प्रकार जिसका स्वरूप बतलाया गया है, वही परमात्माका यथार्थ तत्त्व है । जिससे उसका ठीक-ठीक बोध होता है, वही परा विद्या अथवा परम ज्ञान है । इससे भिन्न जो तीनों वेद हैं, उन्हें अपर ज्ञान या अपरा विद्या कहा गया है ।

ब्रह्मन् ! यद्यपि वह ब्रह्म किसी शब्द या वाणीका विषय नहीं है; तथापि उपासनाके लिये 'भगवान्' इस नामसे उसका कथन किया जाता है। देवर्षे ! जो समस्त कारणोंका भी कारण है, उस परम शुद्ध महाभूति नामवाले परब्रह्मके लिये ही भगवत् शब्दका प्रयोग हुआ है। 'भगवत्' शब्दके 'भ' कारके दो अर्थ हैं—सम्भर्ता (भरण-पोषण

'शब्दका आधार श्रोत्रेन्द्रिय है और श्रोत्रेन्द्रियका आधार आकाश है, अतः वह आकाशरूप ही है । इसी प्रकार त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका भी क्रमशः स्पर्श, रूप, रस और गन्धका आश्रय तथा अपने आधारभूत महाभूतोंके स्वरूप हैं । इन सबका अधिष्ठान है मन; इसलिये सब-के-सब मनःस्वरूप हैं । क्योंकि जब सब इन्द्रियोंका कार्य एक समय प्रारम्भ होता है तब उन सबके विषयोंको एक साथ अनुभव करनेके लिये मन ही सबमें अनुगतरूपसे उपस्थित रहता है; अतः मनको ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा गया है और बुद्धि बारहवीं मानी गयी है । इस प्रकार समस्त प्राणी अनादि अविद्याके कारण स्वभावत. व्यवहारपरायण हो रहे हैं । ऐसी दशामें ज्ञानद्वारा अविद्याकी निवृत्ति हो जाती है । तब केवल सनातन आत्मा ही रह जाता है । जैसे नद और नदियां समुद्रमें मिलकर अपने नाम-रूपको त्याग देती हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणी अपने नाम और रूपको त्यागकर महत्स्वरूपमें प्रतिष्ठित होते हैं । यही उनका मोक्ष है ।

* द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

(ना० पूर्व० ४६ । ८)

सनन्दनजीने कहा—नारदजी ! पूर्वकालमें धर्मध्वज जनक नामक एक राजा हो गये हैं। उनके बड़े पुत्रका नाम अमितध्वज था। उसके छोटे भाई कृतध्वजके नामसे विख्यात थे। राजा कृतध्वज सदा अध्यात्मचिन्तनमे ही अनुरक्त रहते थे। कृतध्वजके पुत्र केशिध्वज हुए। ब्रह्मन् ! वे अपने सद्ज्ञानके कारण धन्य हो गये थे। अमितध्वजके पुत्रका नाम खाण्डिक्य जनक था। खाण्डिक्य कर्मकाण्डमें निपुण थे। एक समय केशिध्वजने खाण्डिक्यको परास्त करके उन्हें राज्यसिंहासनसे उतार दिया। राज्यसे भ्रष्ट होनेपर खाण्डिक्य थोड़ी-सी साधन-सामग्री लेकर पुरोहित और मन्त्रियोंके साथ एक दुर्गम वनमें चले गये। इधर केशिध्वजने ज्ञाननिष्ठ होते हुए भी निष्कामभावसे अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया। योग-वेत्ताओंमे श्रेष्ठ नारदजी ! एक समय केशिध्वज जब यज्ञमे लगे हुए थे, उनकी दूध देनेवाली गायको निर्जन वनमें किसी भयङ्कर व्याघ्रने मार डाला। व्याघ्रद्वारा गौको मारी गयी जानकर राजाने ऋत्विजोंसे इसका प्रायश्चित्त पूछा—'इस विषयमे क्या करना चाहिये ?' ऋत्विज बोले—'महाराज ! हम नहीं जानते। आप कशेरुसे पूछिये।' नारदजी ! जब राजाने कशेरुसे यह बात पूछी तो उन्होंने भी वैसा ही उत्तर देते हुए कहा—'राजेन्द्र ! मैं इस विषयमें कुछ नहीं जानता। आप शुनकसे पूछिये, वे जानते होंगे।' तब राजाने शुनकके पास जाकर यही प्रश्न किया। मुने ! प्रश्न सुनकर शुनकने भी वैसा ही उत्तर दिया—'राजन् ! इस विषयमें न तो कशेरु कुछ जानते हैं और न मैं। इस समय पृथ्वीपर दूसरा कोई भी इसका ज्ञाता नहीं है। एक ही व्यक्ति इस बातको जानता है, वह है तुम्हारा शत्रु 'खाण्डिक्य', जिसे तुमने परास्त किया है।' मुने ! शुनककी यह बात सुनकर राजाने कहा—'अच्छा तो अब मैं अपने शत्रुसे ही यह बात पूछनेके लिये जाता हूँ। यदि वह मुझे मार देगा तो भी इस यज्ञका फल तो प्राप्त ही हो जायगा। मुनिश्रेष्ठ ! यदि मेरा वह शत्रु पूछनेपर मुझे प्रायश्चित्त बतला देगा तब तो यह यज्ञ साङ्गोपाङ्ग पूर्ण होगा ही।' ऐसा कहकर राजा केशिध्वज काला मृगचर्म धारण किये रथपर बैठे और जहाँ महाराज खाण्डिक्य रहते थे, उस वनमें गये। खाण्डिक्यने अपने उस शत्रुको आते देख धनुष चढ़ा लिया और क्रोधसे आँखें लाल करके कहा।

खाण्डिक्य बोले—अरे ! क्या तू काले मृगचर्मको कवचके रूपमें धारण करके हमें मारेगा ?

केशिध्वजने कहा—खाण्डिक्यजी ! मै आपसे एक संदेह पूछनेके लिये आया हूँ। आपको मारनेके लिये नहीं आया हूँ।

तदनन्तर परम बुद्धिमान् खाण्डिक्यने अपने समस्त मन्त्रियों और पुरोहितके साथ एकान्तमे सलाह की। मन्त्रियोंने कहा—'यह शत्रु इस समय हमारे वशमें है, अतः इसे मार डालना चाहिये। इसके मारे जानेपर यह सारी पृथ्वी आपके अधीन हो जायगी।' यह सुनकर खाण्डिक्य उन सबसे बोले—'निःसंदेह ऐसी ही बात है। इसके मारे जानेपर यह सारी पृथ्वी अवश्य मेरे अधीन हो जायगी। परंतु इसे पारलौकिक विजय प्राप्त होगी और मुझे सम्पूर्ण पृथ्वी। यदि इसे न मारूँ तो पारलौकिक विजय मेरी होगी और इसे सारी पृथ्वी मिलेगी। पारलौकिक विजय अनन्तकालके लिये होती है तथा पृथ्वीकी जीत थोड़े ही दिन रहती है। इसलिये मैं तो इसे मारूँगा नहीं। यह जो कुछ पूछेगा उसे बतलाऊँगा।' ऐसा निश्चय करके खाण्डिक्य जनक अपने शत्रु-के समीप गये और इस प्रकार बोले—'तुम्हें जो कुछ पूछना हो वह सब पूछ लो, मैं बताऊँगा।' नारदजी ! खाण्डिक्य-के ऐसा कहनेपर केशिध्वजने होमसम्बन्धी गायके मारे जानेका सब वृत्तान्त ठीक-ठीक बता दिया और उसके लिये कोई व्रतरूप प्रायश्चित्त पूछा। मुने ! खाण्डिक्यने भी वह सम्पूर्ण प्रायश्चित्त जिसका कि उसके लिये विधान था, केशिध्वजको विधिपूर्वक बता दिया। सब बातें जान लेनेपर महात्मा

सनन्दनजीने कहा—नारदजी! पूर्वकालमें धर्मध्वज जनक नामक एक राजा हो गये हैं। उनके बड़े पुत्रका नाम अमितध्वज था। उसके छोटे भाई कृतध्वजके नामसे विख्यात थे। राजा कृतध्वज सदा अध्यात्मचिन्तनमे ही अनुरक्त रहते थे। कृतध्वजके पुत्र केशिध्वज हुए। ब्रह्मन्! वे अपने सद्ज्ञानके कारण धन्य हो गये थे। अमितध्वजके पुत्रका नाम खाण्डिक्य जनक था। खाण्डिक्य कर्मकाण्डमें निपुण थे। एक समय केशिध्वजने खाण्डिक्यको परास्त करके उन्हें राज्यसिंहासनसे उतार दिया। राज्यसे भ्रष्ट होनेपर खाण्डिक्य थोड़ी-सी साधन-सामग्री लेकर पुरोहित और मन्त्रियोंके साथ एक दुर्गम वनमें चले गये। इधर केशिध्वजने ज्ञाननिष्ठ होते हुए भी निष्कामभावसे अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया। योग-वेत्ताओंमे श्रेष्ठ नारदजी! एक समय केशिध्वज जब यज्ञमे लगे हुए थे, उनकी दूध देनेवाली गायको निर्जन वनमें किसी भयङ्कर व्याघ्रने मार डाला। व्याघ्रद्वारा गौको मारी गयी जानकर राजाने ऋत्विजोंसे इसका प्रायश्चित्त पूछा—'इस विषयमे क्या करना चाहिये?' ऋत्विज बोले—'महाराज! हम नहीं जानते। आप कशेरुसे पूछिये।' नारदजी! जब राजाने कशेरुसे यह बात पूछी तो उन्होंने भी वैसा ही उत्तर देते हुए कहा—'राजेन्द्र! मैं इस विषयमें कुछ नहीं जानता। आप शुनकसे पूछिये, वे जानते होंगे।' तब राजाने शुनकके पास जाकर यही प्रश्न किया। मुने! प्रश्न सुनकर शुनकने भी वैसा ही उत्तर दिया—'राजन्! इस विषयमें न तो कशेरु कुछ जानते हैं और न मैं। इस समय पृथ्वीपर दूसरा कोई भी इसका ज्ञाता नहीं है। एक ही व्यक्ति इस बातको जानता है, वह है तुम्हारा शत्रु 'खाण्डिक्य', जिसे तुमने परास्त किया है।' मुने! शुनककी यह बात सुनकर राजाने कहा—'अच्छा तो अब मैं अपने शत्रुसे ही यह बात पूछनेके लिये जाता हूँ। यदि वह मुझे मार देगा तो भी इस यज्ञका फल तो प्राप्त ही हो जायगा। मुनिश्रेष्ठ! यदि मेरा वह शत्रु पूछनेपर मुझे प्रायश्चित्त बतला देगा तब तो यह यज्ञ साङ्गोपाङ्ग पूर्ण होगा ही।' ऐसा कहकर राजा केशिध्वज काला मृगचर्म धारण किये रथपर बैठे और जहाँ महाराज खाण्डिक्य रहते थे, उस वनमें गये। खाण्डिक्यने अपने उस शत्रुको आते देख धनुष चढ़ा लिया और क्रोधसे आँखें लाल करके कहा।

खाण्डिक्य बोले—अरे! क्या तू काले मृगचर्मको कवचके रूपमें धारण करके हमें मारेगा?

केशिध्वजने कहा—खाण्डिक्यजी! मै आपसे एक संदेह पूछनेके लिये आया हूँ। आपको मारनेके लिये नहीं आया हूँ।

तदनन्तर परम बुद्धिमान् खाण्डिक्यने अपने समस्त मन्त्रियों और पुरोहितके साथ एकान्तमे सलाह की। मन्त्रियोंने कहा—'यह शत्रु इस समय हमारे वशमें है, अतः इसे मार डालना चाहिये। इसके मारे जानेपर यह सारी पृथ्वी आपके अधीन हो जायगी।' यह सुनकर खाण्डिक्य उन सबसे बोले—'निःसंदेह ऐसी ही बात है। इसके मारे जानेपर यह सारी पृथ्वी अवश्य मेरे अधीन हो जायगी। परंतु इसे पारलौकिक विजय प्राप्त होगी और मुझे सम्पूर्ण पृथ्वी। यदि इसे न मारूँ तो पारलौकिक विजय मेरी होगी और इसे सारी पृथ्वी मिलेगी। पारलौकिक विजय अनन्तकालके लिये होती है तथा पृथ्वीकी जीत थोड़े ही दिन रहती है। इसलिये मैं तो इसे मारूँगा नहीं। यह जो कुछ पूछेगा उसे बतलाऊँगा।' ऐसा निश्चय करके खाण्डिक्य जनक अपने शत्रुके समीप गये और इस प्रकार बोले—'तुम्हें जो कुछ पूछना हो वह सब पूछ लो, मैं बताऊँगा।' नारदजी! खाण्डिक्यके ऐसा कहनेपर केशिध्वजने होमसम्बन्धी गायके मारे जानेका सब वृत्तान्त ठीक-ठीक बता दिया और उसके लिये कोई व्रतरूप प्रायश्चित्त पूछा। मुने! खाण्डिक्यने भी वह सम्पूर्ण प्रायश्चित्त जिसका कि उसके लिये विधान था, केशिध्वजको विधिपूर्वक बता दिया। सब बातें जान लेनेपर महात्मा

तो इसमें पुरुषके लिये कौन-सी गर्व करनेकी बात है। यह जीव अनेक सहस्र जन्मोंसे संसाररूपी मार्गपर चल रहा है और वासनारूपी धूलसे आच्छादित होकर केवल मोहरूपी श्रमको प्राप्त होता है। सौम्य! जिस समय ज्ञानरूपी गरम जलसे इसकी वह वासनारूपी धूल धो दी जाती है, उसी समय इस ससारमार्गके पथिकका मोहरूपी श्रम शान्त हो जाता है। उस मोहरूपी श्रमके शान्त होनेपर पुरुषका अन्तःकरण निर्मल होता है और वह निरतिशय परम निर्वाण-पदको प्राप्त कर लेता है। यह ज्ञानमय विशुद्ध आत्मा निर्वाण-स्वरूप ही है। इस प्रकार मैंने आपको अविद्याका बीज बतलाया है। अविद्याजनित क्लेशोंको नष्ट करनेके लिये योगके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मुक्तिप्रद योगका वर्णन

सनन्दनजी कहते हैं—नारदजी! केशिध्वजके इस अध्यात्मज्ञानसे युक्त अमृतमय वचनको सुनकर खाण्डिक्यने पुनः उन्हे प्रेरित करते हुए कहा।

खाण्डिक्य बोले—योगवेत्ताओंमे श्रेष्ठ महाभाग केशिध्वज! आप निमिवशमें योगशास्त्रके विशेषज्ञ हैं अतः आप उस योगका वर्णन कीजिये।

केशिध्वजने कहा—खाण्डिक्यजी! मै योगका स्वरूप बतलाता हूँ, सुनिये। उस योगमें स्थित होनेपर मुनि ब्रह्ममे लीन होकर फिर अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होता। मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण है। विषयोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका कारण होता है और विषयोसे दूर हटकर वही मोक्षका साधक बन जाता है*। अतः विवेक-ज्ञानसम्पन्न विद्वान् पुरुष मनको विषयोंसे हटाकर परमेश्वरका चिन्तन करे। जैसे चुम्बक अपनी शक्तिसे लोहेको खींचकर अपनेमें संयुक्त कर लेता है, उसी प्रकार ब्रह्मचिन्तन करने-वाले मुनिके चित्तको परमात्मा अपने स्वरूपमें लीन कर लेता है। आत्मज्ञानके उपायभूत जो यम-नियम आदि साधन हैं, उनकी अपेक्षा रखनेवाली जो मनकी विशिष्ट गति है, उसका ब्रह्मके साथ संयोग होना ही 'योग' कहलाता है। जिसका योग इस प्रकारकी विशेषतावाले धर्मसे युक्त होता है, वह योगी 'मुमुक्षु' कहलाता है। पहले-पहल योगका अभ्यास करनेवाला योगी 'युञ्जान' कहलाता है। और जब उसे परब्रह्म परमात्मा-की प्राप्ति हो जाती है, तब वह 'विनिष्पन्नसमाधि' (युक्त) कहलाता है। यदि किसी विघ्नदोषसे उस पूर्वोक्त योगी (युञ्जान) का चित्त दूषित हो जाता है तो दूसरे जन्मोंमें उस योगभ्रष्टकी अभ्यास करते रहनेसे मुक्ति हो जाती है। 'विनिष्पन्नसमाधि' योगी योगकी अग्निसे अपनी सम्पूर्ण कर्मराशिको भस्म कर डालता है। इसलिये उसी जन्ममें शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर लेता है। योगीको चाहिये कि वह अपने चित्तको योगसाधनके योग्य बनाते हुए ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रहका निष्कामभावसे सेवन करे। ये पाँच यम हैं। इनके साथ शौच, सतोष, तप, स्वाध्याय तथा परब्रह्म परमात्मामें मनको लगाना—इन पाँच नियमों-का पालन करे। इस प्रकार ये पाँच यम और पाँच नियम बताये गये हैं। सकामभावसे इनका सेवन किया जाय तो ये विशिष्ट फल देनेवाले होते हैं और निष्कामभावसे किया जाय तो मोक्ष प्रदान करते हैं।

यत्नशील साधकको उचित है कि स्वस्तिक, सिद्ध, पद्म आदि आसनोंमेंसे किसी एकका आश्रय ले यम और नियम नामक गुणोसे सम्पन्न हो नियमपूर्वक योगाभ्यास करे। अभ्याससे साधक जो प्राणवायुको वशमे करता है, उस क्रियाको प्राणायाम समझना चाहिये। उसके दो भेद हैं—सबीज और निर्बीज (जिसमे भगवान्के नाम और रूपका आलम्बन हो, वह सबीज प्राणायाम है, और जिसमें ऐसा कोई आलम्बन नहीं है, वह निर्बीज प्राणायाम कहलाता है)। साधु पुरुषोंके उपदेशसे प्राणायामका साधन करते समय जब योगीके प्राण और अपान एक दूसरेका पराभव करते (दबाते) है, तब क्रमशः रेचक और पूरक नामक दो प्राणायाम होते हैं। और इन दोनोंका एक ही समय सयम (निरोध) करनेसे कुम्भक नामक तीसरा प्राणायाम होता है*। राजन्! जब योगी सबीज प्राणायामका अभ्यास

* मन एव मनुष्याणा कारण बन्धमोक्षयो.।
बन्धस्य विषयासङ्गि मुक्तेर्निर्विषय तथा॥
(ना० पूर्व० ४७। ४)

* प्राणायामके तीन अङ्ग हैं—पूरक, रेचक और कुम्भक। नासिकाके एक छिद्रको बद करके दूसरेसे जो वायुको भीतर भरा जाता है, इस क्रियाको पूरक कहते हैं, इसमें प्राणवायुका दबाव

तो इसमें पुरुषके लिये कौन-सी गर्व करनेकी बात है। यह जीव अनेक सहस्र जन्मोंसे संसाररूपी मार्गपर चल रहा है और वासनारूपी धूलसे आच्छादित होकर केवल मोहरूपी श्रमको प्राप्त होता है। सौम्य ! जिस समय ज्ञानरूपी गरम जलसे इसकी वह वासनारूपी धूल धो दी जाती है, उसी समय इस संसारमार्गके पथिकका मोहरूपी श्रम शान्त हो जाता है। उस मोहरूपी श्रमके शान्त होनेपर पुरुषका अन्तःकरण निर्मल होता है और वह निरतिशय परम निर्वाण-पदको प्राप्त कर लेता है। यह ज्ञानमय विशुद्ध आत्मा निर्वाण-स्वरूप ही है। इस प्रकार मैंने आपको अविद्याका बीज बतलाया है। अविद्याजनित क्लेशोंको नष्ट करनेके लिये योगके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मुक्तिप्रद योगका वर्णन

सनन्दनजी कहते हैं—नारदजी ! केशिध्वजके इस अध्यात्मज्ञानसे युक्त अमृतमय वचनको सुनकर खाण्डिक्यने पुनः उन्हे प्रेरित करते हुए कहा।

खाण्डिक्य बोले—योगवेत्ताओंमे श्रेष्ठ महाभाग केशिध्वज ! आप निमिवशमें योगशास्त्रके विशेषज्ञ हैं अतः आप उस योगका वर्णन कीजिये।

केशिध्वजने कहा—खाण्डिक्यजी ! मै योगका स्वरूप बतलाता हूँ, सुनिये। उस योगमें स्थित होनेपर मुनि ब्रह्ममे लीन होकर फिर अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होता। मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण है। विषयोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका कारण होता है और विषयोसे दूर हटकर वही मोक्षका साधक बन जाता है*। अतः विवेक-ज्ञानसम्पन्न विद्वान् पुरुष मनको विषयोंसे हटाकर परमेश्वरका चिन्तन करे। जैसे चुम्बक अपनी शक्तिसे लोहेको खींचकर अपनेमें संयुक्त कर लेता है, उसी प्रकार ब्रह्मचिन्तन करने-वाले मुनिके चित्तको परमात्मा अपने स्वरूपमें लीन कर लेता है। आत्मज्ञानके उपायभूत जो यम-नियम आदि साधन हैं, उनकी अपेक्षा रखनेवाली जो मनकी विशिष्ट गति है, उसका ब्रह्मके साथ संयोग होना ही 'योग' कहलाता है। जिसका योग इस प्रकारकी विशेषतावाले धर्मसे युक्त होता है, वह योगी 'मुमुक्षु' कहलाता है। पहले-पहल योगका अभ्यास करनेवाला योगी 'युञ्जान' कहलाता है। और जब उसे परब्रह्म परमात्मा-की प्राप्ति हो जाती है, तब वह 'विनिष्पन्नसमाधि' (युक्त) कहलाता है। यदि किसी विघ्नदोषसे उस पूर्वोक्त योगी (युञ्जान) का चित्त दूषित हो जाता है तो दूसरे जन्मोंमें उस योगभ्रष्टकी अभ्यास करते रहनेसे मुक्ति हो जाती है। 'विनिष्पन्नसमाधि' योगी योगकी अग्निसे अपनी सम्पूर्ण कर्मराशिको भस्म कर डालता है। इसलिये उसी जन्ममें शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर लेता है। योगीको चाहिये कि वह अपने चित्तको योगसाधनके योग्य बनाते हुए ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रहका निष्कामभावसे सेवन करे। ये पॉच यम हैं। इनके साथ शौच, सतोष, तप, स्वाध्याय तथा परब्रह्म परमात्मामें मनको लगाना—इन पॉच नियमों-का पालन करे। इस प्रकार ये पॉच यम और पॉच नियम बताये गये हैं। सकामभावसे इनका सेवन किया जाय तो ये विशिष्ट फल देनेवाले होते हैं और निष्कामभावसे किया जाय तो मोक्ष प्रदान करते हैं।

यत्नशील साधकको उचित है कि स्वस्तिक, सिद्ध, पद्म आदि आसनोंमेंसे किसी एकका आश्रय ले यम और नियम नामक गुणोसे सम्पन्न हो नियमपूर्वक योगाभ्यास करे। अभ्याससे साधक जो प्राणवायुको वशमे करता है, उस क्रियाको प्राणायाम समझना चाहिये। उसके दो भेद हैं—सबीज और निर्बीज (जिसमे भगवान्‌के नाम और रूपका आलम्बन हो, वह सबीज प्राणायाम है, और जिसमें ऐसा कोई आलम्बन नहीं है, वह निर्बीज प्राणायाम कहलाता है)। साधु पुरुषोंके उपदेशसे प्राणायामका साधन करते समय जब योगीके प्राण और अपान एक दूसरेका पराभव करते (दबाते) है, तब क्रमशः रेचक और पूरक नामक दो प्राणायाम होते हैं। और इन दोनोंका एक ही समय संयम (निरोध) करनेसे कुम्भक नामक तीसरा प्राणायाम होता है*। राजन् ! जब योगी सबीज प्राणायामका अभ्यास

* मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो.।
बन्धस्य विषयासङ्गि मुक्तेर्निर्विषयं तथा ॥
(ना० पूर्व० ४७। ४)

* प्राणायामके तीन अङ्ग हैं—पूरक, रेचक और कुम्भक। नासिकाके एक छिद्रको बंद करके दूसरेसे जो वायुको भीतर भरा जाता है, इस क्रियाको पूरक कहते है, इसमें प्राणवायुका दबाव

चढे हैं और मृगोंसे अधिक पशु हैं। पशुओंकी अपेक्षा मनुष्य परम पुरुष भगवान्‌की उस क्षेत्रज्ञ-शक्तिसे अधिक प्रभावित हैं। मनुष्योंसे भी बढ़े हुए नाग, गन्धर्व, यक्ष आदि देवता हैं। देवताओंसे भी इन्द्र और इन्द्रसे भी प्रजापति उस शक्तिमें बढे हैं। प्रजापतिकी अपेक्षा भी हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीमें भगवान्‌की उस शक्तिका विशेष प्रकाश हुआ है। राजन्! ये सम्पूर्ण रूप उस परमेश्वरके ही शरीर हैं। क्योंकि ये सब आकाशकी भाँति उनकी शक्तिसे व्याप्त हैं। महामते! विष्णु नामक ब्रह्मका दूसरा अमूर्त्त (निराकार) रूप है, जिसका योगीलोग ध्यान करते हैं और विद्वान् पुरुष जिसे 'सत्' कहते हैं। जनेश्वर! भगवान्‌का वही रूप अपनी लीलासे देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि चेष्टाओंसे युक्त सर्वशक्तिमय रूप धारण करता है। इन रूपोंमें अप्रमेय भगवान्‌की जो व्यापक एवं अव्याहत चेष्टा होती है, वह सम्पूर्ण जगत्‌के उपकारके लिये ही होती है, कर्मजन्य नहीं होती। राजन्! योगके साधकको आत्मशुद्धिके लिये विश्वरूप भगवान्‌के उस सर्वपापनाशक स्वरूपका ही चिन्तन करना चाहिये। जैसे वायुका सहयोग पाकर प्रज्वलित हुई अग्नि ऊँची लपटें उठाकर तृणसमूहको भस्म कर डालती है, उसी प्रकार योगियोंके चित्तमें विराजमान भगवान् विष्णु उनके समस्त पापोंको जला डालते हैं। इसलिये सम्पूर्ण शक्तियोंके आधारभूत भगवान् विष्णुमें चित्तको स्थिर करे—यही शुद्ध धारणा है।

राजन्! तीनों भावनाओंसे अतीत भगवान् विष्णु ही योगियोंकी मुक्तिके लिये इनके सब ओर जानेवाले चञ्चल चित्तके शुभ आश्रय हैं। पुरुषसिंह! भगवान्‌के अतिरिक्त जो मनके दूसरे आश्रय सम्पूर्ण देवता आदि हैं, वे सब अशुद्ध हैं। भगवान्‌का मूर्त्तरूप चित्तको दूसरे सम्पूर्ण आश्रयोंसे निःस्पृह कर देता है—चित्तको जो भगवान्‌में धारण करना—स्थिरतापूर्वक लगाना है, इसे ही 'धारणा' समझना चाहिये। नरेश! बिना किसी आधारके धारणा नहीं हो सकती; अतः भगवान्‌के सगुण-साकार स्वरूपका जिस प्रकार चिन्तन करना चाहिये, वह बतलाता हूँ; सुनो। भगवान्‌का मुख प्रसन्न एवं मनोहर है। उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान विशाल एवं सुन्दर हैं। दोनों कपोल बड़े ही सुहावने और चिकने है। ललाट चौडा और प्रकाशसे उद्भासित है। उनके दोनों कान बराबर हैं और उनमें धारण किये हुए मनोहर कुण्डल कधेके समीपतक लटक रहे हैं। ग्रीवा शङ्खकी-सी शोभा धारण करती है। विशाल वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है। उनके उदरमे तिरङ्गाकार त्रिवली तथा गहरी नाभि है। भगवान् विष्णु बड़ी-बड़ी चार अथवा आठ भुजाएँ धारण करते हैं। उनके दोनों ऊरु तथा जंघे समान भावसे स्थित हैं। और मनोहर चरणारविन्द हमारे सम्मुख स्थिर-भावसे खड़े है। उन्होंने स्वच्छ पीताम्बर धारण कर रक्खा है। इस प्रकार उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये। उनके मस्तकपर किरीट, गलेमें हार, भुजाओंमें केयूर और हाथोंमें कड़े आदि आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, नन्दक खड्ग, सुदर्शन चक्र, अक्षमाला तथा वरद

और अभयकी मुद्रा—ये सब भगवान्‌के करकमलोंकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी अंगुलियोंमें रत्नमयी मुद्रिकाएँ शोभा दे रही हैं। राजन्! इस प्रकार योगी भगवान्‌के मनोहर स्वरूपमे अपना चित्त लगाकर तबतक उसका चिन्तन करता रहे, जबतक उसी स्वरूपमें उसकी धारणा दृढ़ न हो जाय। चलते-फिरते, उठते-बैठते, अथवा अपनी इच्छाके अनुसार दूसरा कोई कार्य करते समय भी जब वह धारणा चित्तसे अलग न हो, तब उसे सिद्ध हुई मानना चाहिये।

इसके दृढ़ होनेपर बुद्धिमान् पुरुष भगवान्‌के ऐसे स्वरूप-का चिन्तन करे, जिसमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा शार्ङ्ग धनुष आदि आयुध न हों। वह स्वरूप परम शान्त तथा अक्षमाला

चढ़े हैं और मृगोंसे अधिक पशु हैं। पशुओंकी अपेक्षा मनुष्य परम पुरुष भगवान्‌की उस क्षेत्रज्ञ-शक्तिसे अधिक प्रभावित हैं। मनुष्योंसे भी बढ़े हुए नाग, गन्धर्व, यक्ष आदि देवता हैं। देवताओंसे भी इन्द्र और इन्द्रसे भी प्रजापति उस शक्तिमें बढे हैं। प्रजापतिकी अपेक्षा भी हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीमें भगवान्‌की उस शक्तिका विशेष प्रकाश हुआ है। राजन्! ये सम्पूर्ण रूप उस परमेश्वरके ही शरीर हैं। क्योंकि ये सब आकाशकी भाँति उनकी शक्तिसे व्याप्त हैं। महामते! विष्णु नामक ब्रह्मका दूसरा अमूर्त्त (निराकार) रूप है, जिसका योगीलोग ध्यान करते हैं और विद्वान् पुरुष जिसे 'सत्' कहते हैं। जनेश्वर! भगवान्‌का वही रूप अपनी लीलासे देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि चेष्टाओंसे युक्त सर्वशक्तिमय रूप धारण करता है। इन रूपोंमें अप्रमेय भगवान्‌की जो व्यापक एवं अव्याहत चेष्टा होती है, वह सम्पूर्ण जगत्‌के उपकारके लिये ही होती है, कर्मजन्य नहीं होती। राजन्! योगके साधकको आत्मशुद्धिके लिये विश्वरूप भगवान्‌के उस सर्वपापनाशक स्वरूपका ही चिन्तन करना चाहिये। जैसे वायुका सहयोग पाकर प्रज्वलित हुई अग्नि ऊँची लपटें उठाकर तृणसमूहको भस्म कर डालती है, उसी प्रकार योगियोंके चित्तमें विराजमान भगवान् विष्णु उनके समस्त पापोंको जला डालते हैं। इसलिये सम्पूर्ण शक्तियोंके आधारभूत भगवान् विष्णुमें चित्तको स्थिर करे—यही शुद्ध धारणा है।

राजन्! तीनों भावनाओंसे अतीत भगवान् विष्णु ही योगियोंकी मुक्तिके लिये इनके सब ओर जानेवाले चञ्चल चित्तके शुभ आश्रय हैं। पुरुषसिंह! भगवान्‌के अतिरिक्त जो मनके दूसरे आश्रय सम्पूर्ण देवता आदि हैं, वे सब अशुद्ध हैं। भगवान्‌का मूर्त्तरूप चित्तको दूसरे सम्पूर्ण आश्रयोंसे निःस्पृह कर देता है—चित्तको जो भगवान्‌में धारण करना—स्थिरतापूर्वक लगाना है, इसे ही 'धारणा' समझना चाहिये। नरेश! बिना किसी आधारके धारणा नहीं हो सकती; अतः भगवान्‌के सगुण-साकार स्वरूपका जिस प्रकार चिन्तन करना चाहिये, वह बतलाता हूँ, सुनो। भगवान्‌का मुख प्रसन्न एवं मनोहर है। उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान विशाल एवं सुन्दर हैं। दोनों कपोल बड़े ही सुहावने और चिकने है। ललाट चौडा और प्रकाशसे उद्भासित है। उनके दोनों कान बराबर हैं और उनमें धारण किये हुए मनोहर कुण्डल कंधेके समीपतक लटक रहे हैं। ग्रीवा शङ्खकी-सी शोभा धारण करती है। विशाल वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है। उनके उदरमें तिरङ्गाकार त्रिवली तथा गहरी नाभि है। भगवान् विष्णु बड़ी-बड़ी चार अथवा आठ भुजाएँ धारण करते हैं। उनके दोनों ऊरु तथा जंघे समान भावसे स्थित हैं। और मनोहर चरणारविन्द हमारे सम्मुख स्थिर-भावसे खड़े है। उन्होंने स्वच्छ पीताम्बर धारण कर रक्खा है। इस प्रकार उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये। उनके मस्तकपर किरीट, गलेमें हार, भुजाओंमें केयूर और हाथोंमें कड़े आदि आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, नन्दक खड्ग, सुदर्शन चक्र, अक्षमाला तथा वरद

और अभयकी मुद्रा—ये सब भगवान्‌के करकमलोंकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी अंगुलियोंमें रत्नमयी मुद्रिकाएँ शोभा दे रही हैं। राजन्! इस प्रकार योगी भगवान्‌के मनोहर स्वरूपमें अपना चित्त लगाकर तबतक उसका चिन्तन करता रहे, जबतक उसी स्वरूपमें उसकी धारणा दृढ़ न हो जाय। चलते-फिरते, उठते-बैठते, अथवा अपनी इच्छाके अनुसार दूसरा कोई कार्य करते समय भी जब वह धारणा चित्तसे अलग न हो, तब उसे सिद्ध हुई मानना चाहिये।

इसके दृढ़ होनेपर बुद्धिमान् पुरुष भगवान्‌के ऐसे स्वरूप-का चिन्तन करे, जिसमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा शार्ङ्ग धनुष आदि आयुध न हों। वह स्वरूप परम शान्त तथा अक्षमाला

नामसे प्रसिद्ध एक राजा हुए थे, जो ऋषभदेवजीके पुत्र थे और जिनके नामपर इस देशको 'भारतवर्ष' कहते हैं। राजा भरतने बाप-दादोंके क्रमसे चले आते हुए राज्यको पाकर उसका धर्मपूर्वक पालन किया। जैसे पिता अपने पुत्रको संतुष्ट करता है, उसी प्रकार वे प्रजाको प्रसन्न रखते थे। उन्होंने नाना प्रकारके यज्ञोका अनुष्ठान करके सर्वदेवस्वरूप भगवान् विष्णुका यजन किया। वे सदा भगवान्‌का ही चिन्तन करते और उन्हींमे मन लगाकर नाना सत्कर्मोंमें लगे रहते थे। तदनन्तर पुत्रोको जन्म देकर विद्वान् राजा भरत विषयोसे विरक्त हो गये और राज्य त्यागकर पुलस्त्य एवं पुलह मुनिके आश्रमको चले गये। उन महर्षियोका आश्रम शालग्राम नामक महाक्षेत्रमे था। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले बहुत-से साधक उस तीर्थका सेवन करते थे। मुने! वहीं राजा भरत तपस्यामे संलग्न हो यथाशक्ति पूजन-सामग्री जुटाकर उसके द्वारा भक्तिभावसे भगवान् महाविष्णुकी आराधना करने लगे। नारदजी! वे प्रतिदिन प्रातःकाल निर्मल जलमे स्नान करते तथा अविनाशी परब्रह्मकी स्तुति एवं प्रणवसहित वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका उपस्थान करते थे। तदनन्तर आश्रमपर लौटते और अपने ही लाये हुए समिधा, कुशा तथा मिट्टी आदि द्रव्योंसे और फल, फूल, तुलसीदल एव स्वच्छ जलसे एकाग्रतापूर्वक जगदीश्वर भगवान् वासुदेवकी पूजा करते थे। भगवान्‌की पूजाके समय वे भक्तिके प्रवाहमे डूब जाते थे।

एक दिनकी बात है, महाभाग राजा भरत प्रातःकाल स्नान करके एकाग्रचित्त हो जप करते हुए तीन मुहूर्त्त (छः घड़ी) तक शालग्रामीके जलमें खड़े रहे। ब्रह्मन्! इसी समय एक प्यासी हरिणी जल पीनेके लिये अकेली ही वनसे नदीके तटपर आयी। उसका प्रसवकाल निकट था। वह प्रायः जल पी चुकी थी, इतनेमे ही सब प्राणियोको भय देनेवाली सिंहकी गर्जना उच्चस्वरसे सुनायी पडी। फिर तो वह उस सिंहनादसे भयभीत हो नदीके तटकी ओर उछल पड़ी। बहुत ऊँचाईकी ओर उछलनेसे उसका गर्भ नदीमे ही गिर पड़ा और तरङ्गमालाओंमें डूबता-उतराता हुआ वेगसे बहने लगा। राजा भरतने गर्भसे गिरे हुए उस मृगके बच्चेको दयावश उठा लिया। मुनीश्वर! उधर वह हरिणी गर्भ गिरनेके अत्यन्त दुःखसे और बहुत ऊँचे चढनेके परिश्रमसे थककर एक स्थानपर गिर पड़ी और वहीं मर गयी। उस हरिणीको मरी हुई देख तपस्वी राजा भरत मृगके बच्चेको

लिये हुए अपने आश्रमपर आये और प्रतिदिन उसका पालन-पोषण करने लगे। मुने! उनसे पोषित होकर वह मृगका बच्चा बढ़ने लगा। उस मृगमें राजाका चित्त जैसा आसक्त हो गया था, वैसा भगवान्मे भी नहीं हुआ। उन्होंने अपने राज्य और पुत्रोंको छोड़ा, समस्त भाई-बन्धुओंको भी त्याग दिया, परंतु इस हरिनके बच्चेमें ममता पैदा कर ली। उनका चित्त मृगकी ममताके वशीभूत हो गया था; इसलिये उनकी समाधि भङ्ग हो गयी। तदनन्तर कुछ समय बीतनेपर राजा भरत मृत्युको प्राप्त हुए। उस समय जैसे पुत्र पिताको देखता है, उसी प्रकार वह मृगका बच्चा आँसू बहाते हुए उनकी ओर देख रहा था। राजा भी प्राणोंका त्याग करते समय उस मृगकी ही ओर देख रहे थे। द्विजश्रेष्ठ! मृगकी भावना करनेके कारण राजा भरत दूसरे जन्ममे मृग हो गये। किंतु पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण होनेसे उनके मनमें संसारकी ओरसे वैराग्य हो गया। वे अपनी माँको त्यागकर पुनः शालग्राम-तीर्थमे आये और सूखे घास तथा सूखे पत्ते खाकर शरीरका पोषण करने लगे। ऐसा करनेसे मृग-शरीरकी प्राप्ति करानेवाले कर्मका प्रायश्चित्त हो गया; अतः वहीं अपने शरीरका त्याग करके वे जातिस्मर (पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण करनेवाले) ब्राह्मणके रूपमें उत्पन्न हुए। सदाचारी योगियोंके श्रेष्ठ एवं शुद्ध कुलमें

नामसे प्रसिद्ध एक राजा हुए थे, जो ऋषभदेवजीके पुत्र थे और जिनके नामपर इस देशको 'भारतवर्ष' कहते हैं। राजा भरतने बाप-दादोंके क्रमसे चले आते हुए राज्यको पाकर उसका धर्मपूर्वक पालन किया। जैसे पिता अपने पुत्रको संतुष्ट करता है, उसी प्रकार वे प्रजाको प्रसन्न रखते थे। उन्होंने नाना प्रकारके यज्ञोका अनुष्ठान करके सर्वदेवस्वरूप भगवान् विष्णुका यजन किया। वे सदा भगवान्का ही चिन्तन करते और उन्हींमे मन लगाकर नाना सत्कर्मोंमें लगे रहते थे। तदनन्तर पुत्रोको जन्म देकर विद्वान् राजा भरत विषयोसे विरक्त हो गये और राज्य त्यागकर पुलस्त्य एवं पुलह मुनिके आश्रमको चले गये। उन महर्षियोका आश्रम शालग्राम नामक महाक्षेत्रमे था। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले बहुत-से साधक उस तीर्थका सेवन करते थे। मुने! वहीं राजा भरत तपस्यामे संलग्न हो यथाशक्ति पूजन-सामग्री जुटाकर उसके द्वारा भक्तिभावसे भगवान् महाविष्णुकी आराधना करने लगे। नारदजी! वे प्रतिदिन प्रातःकाल निर्मल जलमे स्नान करते तथा अविनाशी परब्रह्मकी स्तुति एवं प्रणवसहित वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका उपस्थान करते थे। तदनन्तर आश्रमपर लौटते और अपने ही लाये हुए समिधा, कुशा तथा मिट्टी आदि द्रव्योंसे और फल, फूल, तुलसीदल एव स्वच्छ जलसे एकाग्रतापूर्वक जगदीश्वर भगवान् वासुदेवकी पूजा करते थे। भगवान्की पूजाके समय वे भक्तिके प्रवाहमे डूब जाते थे।

एक दिनकी बात है, महाभाग राजा भरत प्रातःकाल स्नान करके एकाग्रचित्त हो जप करते हुए तीन मुहूर्त (छः घड़ी) तक शालग्रामीके जलमें खड़े रहे। ब्रह्मन्! इसी समय एक प्यासी हरिणी जल पीनेके लिये अकेली ही वनसे नदीके तटपर आयी। उसका प्रसवकाल निकट था। वह प्रायः जल पी चुकी थी, इतनेमे ही सब प्राणियोको भय देनेवाली सिंहकी गर्जना उच्चस्वरसे सुनायी पड़ी। फिर तो वह उस सिंहनादसे भयभीत हो नदीके तटकी ओर उछल पड़ी। बहुत ऊँचाईकी ओर उछलनेसे उसका गर्भ नदीमे ही गिर पड़ा और तरङ्गमालाओंमें डूबता-उतराता हुआ वेगसे बहने लगा। राजा भरतने गर्भसे गिरे हुए उस मृगके बच्चेको दयावश उठा लिया। मुनीश्वर! उधर वह हरिणी गर्भ गिरनेके अत्यन्त दुःखसे और बहुत ऊँचे चढनेके परिश्रमसे थककर एक स्थानपर गिर पड़ी और वहीं मर गयी। उस हरिणीको मरी हुई देख तपस्वी राजा भरत मृगके बच्चेको

लिये हुए अपने आश्रमपर आये और प्रतिदिन उसका पालन-पोषण करने लगे। मुने! उनसे पोषित होकर वह मृगका बच्चा बढ़ने लगा। उस मृगमें राजाका चित्त जैसा आसक्त हो गया था, वैसा भगवान्मे भी नहीं हुआ। उन्होंने अपने राज्य और पुत्रोंको छोड़ा, समस्त भाई-बन्धुओंको भी त्याग दिया, परंतु इस हरिनके बच्चेमें ममता पैदा कर ली। उनका चित्त मृगकी ममताके वशीभूत हो गया था; इसलिये उनकी समाधि भङ्ग हो गयी। तदनन्तर कुछ समय बीतनेपर राजा भरत मृत्युको प्राप्त हुए। उस समय जैसे पुत्र पिताको देखता है, उसी प्रकार वह मृगका बच्चा ऑसू बहाते हुए उनकी ओर देख रहा था। राजा भी प्राणोंका त्याग करते समय उस मृगकी ही ओर देख रहे थे। द्विजश्रेष्ठ! मृगकी भावना करनेके कारण राजा भरत दूसरे जन्ममे मृग हो गये। किंतु पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण होनेसे उनके मनमें संसारकी ओरसे वैराग्य हो गया। वे अपनी मॉको त्यागकर पुनः शालग्राम-तीर्थमे आये और सूखे घास तथा सूखे पत्ते खाकर शरीरका पोषण करने लगे। ऐसा करनेसे मृग-शरीरकी प्राप्ति करानेवाले कर्मका प्रायश्चित्त हो गया; अतः वहीं अपने शरीरका त्याग करके वे जातिस्मर (पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण करनेवाले) ब्राह्मणके रूपमें उत्पन्न हुए। सदाचारी योगियोंके श्रेष्ठ एवं शुद्ध कुलमें

आदि अङ्गोंपर स्थित हुए कंधेके ऊपर रक्खी हुई यह शिविका मेरे लिये भाररूप हो सकती है तो उसी प्रकार तुम्हारे लिये भी तो हो सकती है। राजन्! इस युक्तिसे तो अन्य समस्त जीवोंने भी न केवल पालकी उठा रक्खी है, बल्कि सम्पूर्ण पर्वत, वृक्ष, गृह और पृथ्वी आदिका भार भी अपने ऊपर ले रक्खा है। राजन्! जिस द्रव्यसे यह पालकी बनी हुई है, उसीसे यह तुम्हारा, मेरा अथवा अन्य सबका शरीर भी बना है, जिसमें सबने ममता बढ़ा रक्खी है।

सनन्दनजी कहते हैं—ऐसा कहकर वे ब्राह्मणदेवता कंधेपर पालकी लिये मौन हो गये। तब राजाने भी तुरंत पृथ्वीपर उतरकर उनके दोनों चरण पकड़ लिये।

राजाने कहा—हे विप्रवर! यह पालकी छोड़कर आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये और बताइये, यह छद्मवेश धारण किये हुए आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? अथवा आपके यहाँ आगमनका क्या कारण है? यह सब आप मुझसे कहिये।

ब्राह्मण बोले—भूपाल! सुनो—मैं कौन हूँ, यह बात बतायी नहीं जा सकती और तुमने जो यहाँ आनेका कारण पूछा, उसके उत्तरमें यह निवेदन है कि कहीं भी आने-जानेका कर्म कर्मफलके उपभोगके लिये ही हुआ करता है। धर्माधर्मजनित सुख-दुःखोंका उपभोग करनेके लिये ही जीव देह आदि धारण करता है। भूपाल! सब जीवोंकी सम्पूर्ण अवस्थाओंके कारण केवल उनके धर्म और अधर्म ही हैं।

राजाने कहा—इसमें संदेह नहीं कि सब कर्मोंके धर्म और अधर्म ही कारण हैं और कर्मफलके उपभोगके लिये एक देहसे दूसरी देहमे जाना होता है, किंतु आपने जो यह कहा कि 'मैं कौन हूँ' यह बात बतायी नहीं जा सकती, इसी बातको सुननेकी मुझे इच्छा हो रही है।

ब्राह्मण बोले—राजन्! 'अहं' शब्दका उच्चारण जिह्वा, दन्त, ओठ और तालु ही करते हैं, किन्तु ये सब 'अहं' नहीं हैं; क्योंकि ये सब उस शब्दके उच्चारणमात्रमें हेतु है। तो क्या इन जिह्वा आदि कारणोंके द्वारा यह वाणी ही स्वयं अपनेको 'अहं' कहती है? नहीं; अतः ऐसी स्थितिमें 'तू मोटा है' ऐसा कहना कदापि उचित नहीं। राजन्! सिर और हाथ-पैर आदि लक्षणोंवाला यह शरीर आत्मासे पृथक् ही है; अतः इस 'अहं' शब्दका प्रयोग मैं कहाँ और किसके लिये करूँ? नृपश्रेष्ठ! यदि मुझसे भिन्न कोई और भी सजातीय आत्मा हो तो भी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है'—ऐसा कहना उचित हो सकता था। जब सम्पूर्ण शरीरोंमें एक ही आत्मा विराजमान है, तब 'आप कौन हैं और मैं कौन हूँ' इत्यादि प्रश्नवाक्य व्यर्थ ही हैं। नरेश! 'तुम राजा हो, यह पालकी है और ये सामने पालकी ढोनेवाले खड़े हैं तथा यह जगत् आपके अधिकारमें है'—ऐसा जो कहा जाता है, वह वास्तवमें सत्य नहीं है। वृक्षसे लकडी पैदा हुई और उससे यह पालकी बनी, जिसपर तुम बैठते हो। यदि इसे पालकी ही कहा जाय तो इसका 'वृक्ष' नाम अथवा 'लकड़ी' नाम कहाँ चला गया? यह तुम्हारे सेवकगण ऐसा नहीं कहते कि महाराज पेड़पर चढ़े हुए हैं और न कोई तुम्हें लकडीपर ही चढ़ा हुआ बतलाता है। सब लोग पालकीमें ही बैठा हुआ बतलाते हैं; किंतु पालकी क्या है—लकड़ियोंका समुदाय। वही अपने लिये एक विशेष नामका आश्रय लेकर स्थित है। नृपश्रेष्ठ! इसमेंसे लकड़ियोंके समूहको अलग कर दो और फिर खोजो—तुम्हारी पालकी कहाँ है? इसी प्रकार छातेकी शलाकाओ (तिल्लियों) को पृथक् करके विचार करो, छाता नामकी वस्तु कहाँ चली गयी? यही न्याय तुम्हारे और मेरे ऊपर लागू होता है (अर्थात् मेरे और तुम्हारे शरीर भी पञ्चभूतसे अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं हैं)। पुरुष, स्त्री, गाय, बकरी, घोड़ा, हाथी, पक्षी और वृक्ष आदि लौकिक नाम कर्मजनित विभिन्न शरीरोंके लिये ही रक्खे गये हैं—ऐसा जानना चाहिये। भूपाल! आत्मा न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष ही है। ये सब तो शरीरोकी आकृतियोंके भेद हैं, जो भिन्न-भिन्न कर्मोंके अनुसार उत्पन्न हुए हैं। राजन्! लोकमे जो राजा, राजाके सिपाही तथा और भी जो-जो ऐसी वस्तुएँ हैं, वे सब काल्पनिक हैं, सत्य नहीं हैं। नरेश! जो वस्तु परिणाम आदिके कारण होनेवाली किसी नयी सञ्ज्ञाको कालान्तरमें भी नहीं प्राप्त होती, वही पारमार्थिक वस्तु है। विचार करो, वह क्या है? तुम समस्त प्रजाके लिये राजा हो, अपने पिताके पुत्र हो, शत्रुके लिये शत्रु हो, पत्नीके लिये पति और पुत्रके लिये पिता हो। भूपाल! बताओ, मैं तुम्हें क्या कहूँ? महीपते! तुम क्या हो? यह सिर हो या ग्रीवा अथवा पेट या पैर आदिमेंसे कोई हो तथा ये सिर आदि भी तुम्हारे क्या हैं? पृथ्वीपते! तुम सम्पूर्ण अवयवोंसे पृथक् स्थित होकर भलीभाँति विचार करो कि मैं कौन हूँ। नरेश! आत्म-तत्त्व जब इस प्रकार स्थित है, जब सबसे पृथक् करके ही उसका प्रतिपादन किया जा सकता है, तो मैं उसे 'अहं' इस नामसे कैसे बता सकता हूँ?

आदि अङ्गोंपर स्थित हुए कंधेके ऊपर रक्खी हुई यह शिविका मेरे लिये भाररूप हो सकती है तो उसी प्रकार तुम्हारे लिये भी तो हो सकती है। राजन्! इस युक्तिसे तो अन्य समस्त जीवोंने भी न केवल पालकी उठा रक्खी है, बल्कि सम्पूर्ण पर्वत, वृक्ष, गृह और पृथ्वी आदिका भार भी अपने ऊपर ले रक्खा है। राजन्! जिस द्रव्यसे यह पालकी बनी हुई है, उसीसे यह तुम्हारा, मेरा अथवा अन्य सबका शरीर भी बना है, जिसमें सबने ममता बढ़ा रक्खी है।

सनन्दनजी कहते हैं—ऐसा कहकर वे ब्राह्मणदेवता कंधेपर पालकी लिये मौन हो गये। तब राजाने भी तुरंत पृथ्वीपर उतरकर उनके दोनों चरण पकड़ लिये।

राजाने कहा—हे विप्रवर! यह पालकी छोड़कर आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये और बताइये, यह छद्मवेश धारण किये हुए आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? अथवा आपके यहाँ आगमनका क्या कारण है? यह सब आप मुझसे कहिये।

ब्राह्मण बोले—भूपाल! सुनो—मैं कौन हूँ, यह बात बतायी नहीं जा सकती और तुमने जो यहाँ आनेका कारण पूछा, उसके उत्तरमें यह निवेदन है कि कहीं भी आने-जानेका कर्म कर्मफलके उपभोगके लिये ही हुआ करता है। धर्माधर्मजनित सुख-दुःखोंका उपभोग करनेके लिये ही जीव देह आदि धारण करता है। भूपाल! सब जीवोंकी सम्पूर्ण अवस्थाओंके कारण केवल उनके धर्म और अधर्म ही हैं।

राजाने कहा—इसमें संदेह नहीं कि सब कर्मोंके धर्म और अधर्म ही कारण हैं और कर्मफलके उपभोगके लिये एक देहसे दूसरी देहमे जाना होता है, किंतु आपने जो यह कहा कि 'मैं कौन हूँ' यह बात बतायी नहीं जा सकती, इसी बातको सुननेकी मुझे इच्छा हो रही है।

ब्राह्मण बोले—राजन्! 'अहं' शब्दका उच्चारण जिह्वा, दन्त, ओठ और तालु ही करते हैं, किंतु ये सब 'अहं' नहीं हैं; क्योंकि ये सब उस शब्दके उच्चारणमात्रमें हेतु हैं। तो क्या इन जिह्वा आदि कारणोंके द्वारा यह वाणी ही स्वयं अपनेको 'अहं' कहती है? नहीं; अतः ऐसी स्थितिमें 'तू मोटा है' ऐसा कहना कदापि उचित नहीं। राजन्! सिर और हाथ-पैर आदि लक्षणोंवाला यह शरीर आत्मासे पृथक् ही है; अतः इस 'अहं' शब्दका प्रयोग मैं कहाँ और किसके लिये करूँ? नृपश्रेष्ठ! यदि मुझसे भिन्न कोई और भी सजातीय आत्मा हो तो भी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है'—ऐसा कहना उचित हो सकता था। जब सम्पूर्ण शरीरोंमें एक ही आत्मा विराजमान है, तब 'आप कौन हैं और मैं कौन हूँ' इत्यादि प्रश्नवाक्य व्यर्थ ही हैं। नरेश! 'तुम राजा हो, यह पालकी है और ये सामने पालकी ढोनेवाले खड़े हैं तथा यह जगत् आपके अधिकारमें है'—ऐसा जो कहा जाता है, वह वास्तवमें सत्य नहीं है। वृक्षसे लकडी पैदा हुई और उससे यह पालकी बनी, जिसपर तुम बैठते हो। यदि इसे पालकी ही कहा जाय तो इसका 'वृक्ष' नाम अथवा 'लकड़ी' नाम कहाँ चला गया? यह तुम्हारे सेवकगण ऐसा नहीं कहते कि महाराज पेड़पर चढ़े हुए हैं और न कोई तुम्हें लकडीपर ही चढ़ा हुआ बतलाता है। सब लोग पालकीमें ही बैठा हुआ बतलाते हैं; किंतु पालकी क्या है—लकड़ियोंका समुदाय। वही अपने लिये एक विशेष नामका आश्रय लेकर स्थित है। नृपश्रेष्ठ! इसमेंसे लकड़ियोंके समूहको अलग कर दो और फिर खोजो—तुम्हारी पालकी कहाँ है? इसी प्रकार छातेकी शलाकाओं (तिल्लियों) को पृथक् करके विचार करो, छाता नामकी वस्तु कहाँ चली गयी? यही न्याय तुम्हारे और मेरे ऊपर लागू होता है (अर्थात् मेरे और तुम्हारे शरीर भी पञ्चभूतसे अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं हैं)। पुरुष, स्त्री, गाय, बकरी, घोड़ा, हाथी, पक्षी और वृक्ष आदि लौकिक नाम कर्मजनित विभिन्न शरीरोंके लिये ही रक्खे गये हैं—ऐसा जानना चाहिये। भूपाल! आत्मा न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष ही है। ये सब तो शरीरोंकी आकृतियोंके भेद हैं, जो भिन्न-भिन्न कर्मोंके अनुसार उत्पन्न हुए हैं। राजन्! लोकमें जो राजा, राजाके सिपाही तथा और भी जो-जो ऐसी वस्तुएँ हैं, वे सब काल्पनिक हैं, सत्य नहीं हैं। नरेश! जो वस्तु परिणाम आदिके कारण होनेवाली किसी नयी संज्ञाको कालान्तरमें भी नहीं प्राप्त होती, वही पारमार्थिक वस्तु है। विचार करो, वह क्या है? तुम समस्त प्रजाके लिये राजा हो, अपने पिताके पुत्र हो, शत्रुके लिये शत्रु हो, पत्नीके लिये पति और पुत्रके लिये पिता हो। भूपाल! बताओ, मैं तुम्हें क्या कहूँ? महीपते! तुम क्या हो? यह सिर हो या ग्रीवा अथवा पेट या पैर आदिमेंसे कोई हो तथा ये सिर आदि भी तुम्हारे क्या हैं? पृथ्वीपते! तुम सम्पूर्ण अवयवोंसे पृथक् स्थित होकर भलीभाँति विचार करो कि मैं कौन हूँ। नरेश! आत्म-तत्त्व जब इस प्रकार स्थित है, जब सबसे पृथक् करके ही उसका प्रतिपादन किया जा सकता है, तो मैं उसे 'अहं' इस नामसे कैसे बता सकता हूँ?

राजन् ! यदि आत्माके ध्यानको ही परमार्थ नाम दिया जाय तो वह दूसरोंसे आत्माका भेद करनेवाला है; किंतु परमार्थमें भेद नहीं होता । अतः राजन् ! निस्संदेह ये सब श्रेय ही हैं, परमार्थ नहीं । भूपाल ! अब मैं संक्षेपसे परमार्थका वर्णन करता हूँ, सुनो—

नरेश्वर ! आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है, उसमें जन्म और वृद्धि आदि विकार नहीं हैं । वह सर्वत्र व्यापक तथा परम ज्ञानमय है । असत् नाम और जाति आदिसे उस सर्वव्यापक परमात्माका न कभी सयोग हुआ, न है और न होगा ही । वह अपने और दूसरेके शरीरोंमें विद्यमान रहते हुए भी एक ही है । इस प्रकारका जो विशेष ज्ञान है, वही परमार्थ है । द्वैत-भावना रखनेवाले पुरुष तो अपरमार्थदर्शी ही हैं । जैसे बाँसुरीमें एक ही वायु अभेदभावसे व्याप्त है; किंतु उसके छिद्रोंके भेदसे उसमें षड्ज, ऋषभ आदि स्वरोंका भेद हो जाता है, उसी प्रकार उस एक ही परमात्माके देव, मनुष्य आदि अनेक भेद प्रतीत होते हैं । उस भेदकी स्थिति तो अविद्याके आवरणतक ही सीमित है । राजन् ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुनो—

निदाघ नामक ब्राह्मणको उपदेश देते हुए महामुनि ऋभुने जो कुछ कहा था, उसीका इसमें वर्णन है । परमेष्ठी ब्रह्माजीके एक ऋभु नामक पुत्र हुए । भूपते ! वे स्वभावसे ही परमार्थतत्त्वके ज्ञाता थे । पूर्वकालमें पुलस्त्यमुनिके पुत्र निदाघ उनके शिष्य हुए थे । ऋभुने बड़ी प्रसन्नताके साथ निदाघको सम्पूर्ण तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया था । समस्त ज्ञानप्रधान शास्त्रोंका उपदेश प्राप्त कर लेनेपर भी निदाघकी अद्वैतमें निष्ठा नहीं हुई । नरेश्वर ! ऋभुने निदाघकी इस स्थितिको ताड़ लिया था । देविका नदीके तटपर वीरनागर नामक एक अत्यन्त समृद्धिशाली और परम रमणीय नगर था, उसे महर्षि पुलस्त्यने बसाया था । उसी नगरमें पहले महर्षि ऋभुके शिष्य योगवेत्ता निदाघ निवास करते थे । उनके वहाँ रहते हुए जब एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब महर्षि ऋभु अपने शिष्य निदाघको देखनेके लिये उनके नगरमें गये । निदाघ बलिवैश्वदेवके अन्तमें द्वारपर बैठकर अतिथियोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे । वे ऋभुको पाद्य और अर्घ्य देकर अपने घरमें ले गये और हाथ-पैर धुलाकर उन्हें आसनपर बिठाया । तत्पश्चात् द्विजश्रेष्ठ निदाघने आदरपूर्वक कहा—'विप्रवर ! अब भोजन कीजिये ।'

ऋभु बोले—द्विजश्रेष्ठ ! आपके घरमें भोजन करने योग्य जो-जो अन्न प्रस्तुत हो, उसका नाम बतलाइये ।

निदाघने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! मेरे घरमें सत्तू, जौकी लपसी और बाटी घनी हैं । आपको इनमेंसे जो कुछ रुचे, वही इच्छानुसार भोजन कीजिये ।

ऋभु बोले—ब्रह्मन् ! इन सबमें मेरी रुचि नहीं है । मुझे तो मीठा अन्न दो । हलुआ, खीर और खाँडके बने हुए पदार्थ भोजन कराओ ।

निदाघने अपनी स्त्रीसे कहा—शोभने ! हमारे घरमे जो अच्छी-से-अच्छी भोजन-सामग्री उपलब्ध हो, उसके द्वारा इन अतिथि-देवताके लिये मिष्टान्न बनाओ ।

पतिके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणपत्नीने स्वामीकी आज्ञाका आदर करते हुए ब्राह्मण-देवताके लिये मीठा भोजन तैयार किया । राजन् ! महामुनि ऋभुके इच्छानुसार मिष्टान्न भोजन कर लेनेपर निदाघने विनीतभावसे खड़े होकर पूछा ।

निदाघ बोले—ब्रह्मन् ! कहिये, भोजनसे आपको भलीभाँति तृप्ति हुई ? आप संतुष्ट हो गये न ? अब आपका चित्त पूर्णतः स्वस्थ है न ? विप्रवर ! आप कहाँके रहनेवाले हैं, कहाँ जानेको उद्यत हैं और कहाँसे आपका आगमन हुआ है ? यह सब बताइये ।

ऋभुने कहा—ब्रह्मन् ! जिसे भूख लगती है, उसीको अन्न भोजन करनेपर तृप्ति भी होती है । मुझे तो न कभी भूख लगी और न तृप्ति हुई । फिर मुझसे क्यों पूछते हो ? जठराग्निसे पार्थिव धातु (पहलेके खाये हुए पदार्थ) के पच जानेपर क्षुधाकी प्रतीति होती है । इसी प्रकार पिये हुए जलके क्षीण हो जानेपर मनुष्योंको प्यासका अनुभव होता है । द्विज ! ये भूख और प्यास देहके ही धर्म हैं, मेरे नहीं । अतः मुझे कभी भूख लगनेकी सम्भावना ही नहीं है । इसलिये मुझे तो सर्वदा तृप्ति रहती ही है । ब्रह्मन् ! मनकी स्वस्थता और संतोष—ये दोनों चित्तके धर्म (विकार) हैं । अतः आत्मा इन धर्मोंसे संयुक्त नहीं होता और तुमने जो यह पूछा है कि आपका निवास कहाँ है, आप कहाँ जायँगे और आप कहाँसे आते हैं—इन तीनों प्रश्नोंके विषयमें मेरा मत सुनो । आत्मा सबमें व्याप्त है । यह आकाशकी भाँति सर्वव्यापक है, अतः इसके विषयमें कहाँसे आये, कहाँ रहते हैं और कहाँ जायँगे—यह प्रश्न कैसे सार्थक हो सकता है ? इसलिये मैं न जानेवाला हूँ और न आनेवाला । (तू, मैं

राजन्! यदि आत्माके ध्यानको ही परमार्थ नाम दिया जाय तो वह दूसरोंसे आत्माका भेद करनेवाला है; किंतु परमार्थमें भेद नहीं होता। अतः राजन्! निस्संदेह ये सब श्रेय ही हैं, परमार्थ नहीं। भूपाल! अब मैं संक्षेपसे परमार्थका वर्णन करता हूँ, सुनो—

नरेश्वर! आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है, उसमें जन्म और वृद्धि आदि विकार नहीं हैं। वह सर्वत्र व्यापक तथा परम ज्ञानमय है। असत् नाम और जाति आदिसे उस सर्वव्यापक परमात्माका न कभी सयोग हुआ, न है और न होगा ही। वह अपने और दूसरेके शरीरोंमें विद्यमान रहते हुए भी एक ही है। इस प्रकारका जो विशेष ज्ञान है, वही परमार्थ है। द्वैत-भावना रखनेवाले पुरुष तो अपरमार्थदर्शी ही हैं। जैसे बाँसुरीमें एक ही वायु अभेदभावसे व्याप्त है; किंतु उसके छिद्रोंके भेदसे उसमें षड्ज, ऋषभ आदि स्वरोंका भेद हो जाता है, उसी प्रकार उस एक ही परमात्माके देव, मनुष्य आदि अनेक भेद प्रतीत होते हैं। उस भेदकी स्थिति तो अविद्याके आवरणतक ही सीमित है। राजन्! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुनो—

निदाघ नामक ब्राह्मणको उपदेश देते हुए महामुनि ऋभुने जो कुछ कहा था, उसीका इसमें वर्णन है। परमेष्ठी ब्रह्माजीके एक ऋभु नामक पुत्र हुए। भूपते! वे स्वभावसे ही परमार्थतत्त्वके ज्ञाता थे। पूर्वकालमें पुलस्त्यमुनिके पुत्र निदाघ उनके शिष्य हुए थे। ऋभुने बड़ी प्रसन्नताके साथ निदाघको सम्पूर्ण तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया था। समस्त ज्ञानप्रधान शास्त्रोंका उपदेश प्राप्त कर लेनेपर भी निदाघकी अद्वैतमें निष्ठा नहीं हुई। नरेश्वर! ऋभुने निदाघकी इस स्थितिको ताड़ लिया था। देविका नदीके तटपर वीरनागर नामक एक अत्यन्त समृद्धिशाली और परम रमणीय नगर था, उसे महर्षि पुलस्त्यने बसाया था। उसी नगरमें पहले महर्षि ऋभुके शिष्य योगवेत्ता निदाघ निवास करते थे। उनके वहाँ रहते हुए जब एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब महर्षि ऋभु अपने शिष्य निदाघको देखनेके लिये उनके नगरमें गये। निदाघ बलिवैश्वदेवके अन्तमें द्वारपर बैठकर अतिथियोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे ऋभुको पाद्य और अर्घ्य देकर अपने घरमें ले गये और हाथ-पैर धुलाकर उन्हें आसनपर विठाया। तत्पश्चात् द्विजश्रेष्ठ निदाघने आदरपूर्वक कहा—'विप्रवर! अब भोजन कीजिये।'

ऋभु बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपके घरमें भोजन करने योग्य जो-जो अन्न प्रस्तुत हो, उसका नाम बतलाइये।

निदाघने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मेरे घरमें सत्तू, जौकी लपसी और बाटी बनी हैं। आपको इनमेंसे जो कुछ रुचे, वही इच्छानुसार भोजन कीजिये।

ऋभु बोले—ब्रह्मन्! इन सबमें मेरी रुचि नही है। मुझे तो मीठा अन्न दो। हलुआ, खीर और खाँडके बने हुए पदार्थ भोजन कराओ।

निदाघने अपनी स्त्रीसे कहा—शोभने! हमारे घरमे जो अच्छी-से-अच्छी भोजन-सामग्री उपलब्ध हो, उसके द्वारा इन अतिथि-देवताके लिये मिष्टान्न बनाओ।

पतिके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणपत्नीने स्वामीकी आज्ञाका आदर करते हुए ब्राह्मण-देवताके लिये मीठा भोजन तैयार किया। राजन्! महामुनि ऋभुके इच्छानुसार मिष्टान्न भोजन कर लेनेपर निदाघने विनीतभावसे खड़े होकर पूछा।

निदाघ बोले—ब्रह्मन्! कहिये, भोजनसे आपको भलीभाँति तृप्ति हुई? आप संतुष्ट हो गये न? अब आपका चित्त पूर्णतः स्वस्थ है न? विप्रवर! आप कहाँके रहनेवाले हैं, कहाँ जानेको उद्यत हैं और कहाँसे आपका आगमन हुआ है? यह सब बताइये।

ऋभुने कहा—ब्रह्मन्! जिसे भूख लगती है, उसीको अन्न भोजन करनेपर तृप्ति भी होती है। मुझे तो न कभी भूख लगी और न तृप्ति हुई। फिर मुझसे क्यों पूछते हो? जठराग्निसे पार्थिव धातु (पहलेके खाये हुए पदार्थ) के पच जानेपर क्षुधाकी प्रतीति होती है। इसी प्रकार पिये हुए जलके क्षीण हो जानेपर मनुष्योंको प्यासका अनुभव होता है। द्विज! ये भूख और प्यास देहके ही धर्म हैं, मेरे नहीं। अतः मुझे कभी भूख लगनेकी सम्भावना ही नहीं है। इसलिये मुझे तो सर्वदा तृप्ति रहती ही है। ब्रह्मन्! मनकी स्वस्थता और संतोष—ये दोनों चित्तके धर्म (विकार) हैं। अतः आत्मा इन धर्मोंसे संयुक्त नहीं होता और तुमने जो यह पूछा है कि आपका निवास कहाँ है, आप कहाँ जायँगे और आप कहाँसे आते हैं—इन तीनों प्रश्नोंके विषयमें मेरा मत सुनो। आत्मा सबमें व्याप्त है। यह आकाशकी भाँति सर्वव्यापक है, अतः इसके विषयमें कहाँसे आये, कहाँ रहते हैं और कहाँ जायँगे—यह प्रश्न कैसे सार्थक हो सकता है? इसलिये मैं न जानेवाला हूँ और न आनेवाला। (तू, मैं

ऋभुने पूछा—ब्रह्मन् ! जिस प्रकार मैं अच्छी तरह समझ सकूँ, उस तरह मुझे समझाइये । 'नीचे' इस शब्दका क्या अभिप्राय है और 'ऊपर' किसे कहते हैं ?

ब्राह्मण जडभरत कहते हैं—ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघ सहसा उनके ऊपर चढ़ गये और इस प्रकार बोले—'सुनिये, आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे हैं, वह अब समझाकर कहता हूँ । इस समय मैं राजाकी भाँति ऊपर हूँ और श्रीमान् गजराजकी भाँति नीचे । ब्राह्मणदेव ! आपको भलीभाँति समझानेके लिये ही मैंने यह दृष्टान्त दिखाया है ।

ऋभुने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! यदि आप राजाके समान हैं और मैं हाथीके समान हूँ तो यह बताइये कि आप कौन हैं और मैं कौन हूँ ?

ब्राह्मण कहते हैं—ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघने तुरंत ही उनके दोनों चरणोंमें मस्तक नवाया और कहा—'भगवन्! आप निश्चय ही मेरे आचार्यपाद महर्षि ऋभु हैं; क्योंकि दूसरेका हृदय इस प्रकार अद्वैत-संस्कारसे सम्पन्न नहीं है, जैसा कि मेरे आचार्यका । अतः मेरा विश्वास है, आप मेरे गुरुजी ही यहाँ पधारे हुए हैं ।

ऋभुने कहा—निदाघ ! पहले तुमने मेरी बड़ी सेवा शुश्रूषा की है । इसलिये अत्यन्त स्नेहवश मैं तुम्हें उपदेश देनेके लिये तुम्हारा आचार्य ऋभु ही यहाँ आया हूँ । महामते ! समस्त पदार्थोंमें अद्वैत आत्मबुद्धि होना ही परमार्थका सार है । मैंने तुम्हे संक्षेपसे उसका उपदेश कर दिया ।

ब्राह्मण जडभरत कहते हैं—विद्वान् गुरु महर्षि ऋभु निदाघसे ऐसा कहकर चले गये । निदाघ भी उनके उपदेशसे अद्वैतपरायण हो गये और सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्न देखने लगे । ब्रह्मर्षि निदाघने इस प्रकार ब्रह्मपरायण होकर परम मोक्ष प्राप्त कर लिया । धर्मज्ञ नरेश ! इसी प्रकार तुम भी आत्माको सबमें व्याप्त जानते हुए अपनेमें तथा शत्रु और मित्रमे समान भाव रक्खो ।

सनन्दनजी कहते हैं—ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर राजाओंमें श्रेष्ठ सौवीरनरेशने परमार्थकी ओर दृष्टि रखकर भेदबुद्धि त्याग दी और वे ब्राह्मण भी पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण करके बोधयुक्त हो उसी जन्ममें मुक्त हो गये । मुनीश्वर नारद ! इस प्रकार मैंने तुम्हें परमार्थरूप यह अध्यात्मज्ञान बताया है । इसे सुननेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको भी यह मुक्ति प्रदान करनेवाला है ।

शिक्षा-निरूपण

सूतजी कहते हैं—सनन्दनजीका ऐसा वचन सुनकर नारदजी अतृप्त-से रह गये । वे और भी सुननेके लिये उत्सुक होकर भाई सनन्दनजीसे बोले ।

नारदजीने कहा—भगवन् ! मैंने आपसे जो कुछ पूछा है, वह सब आपने बता दिया । तथापि भगवत्सम्बन्धी चर्चाको बारंबार सुनकर भी मेरा मन तृप्त नहीं होता—अधिकाधिक सुननेके लिये उत्कण्ठित हो रहा है । सुना जाता है, परम धर्मज्ञ व्यास-पुत्र शुकदेवजीने आन्तरिक और बाह्य—सभी भोगोंसे पूर्णतः विरक्त होकर बड़ी भारी सिद्धि प्राप्त कर ली । ब्रह्मन् ! महात्माओंकी सेवा (सत्सङ्ग) किये बिना प्रायः पुरुषको विज्ञान (तत्त्व-ज्ञान) नहीं प्राप्त होता, किंतु व्यासनन्दन शुकदेवने बाल्यावस्थामें ही ज्ञान पा लिया; यह कैसे सम्भव हुआ ? महाभाग ! आप मोक्षशास्त्रके तत्त्वको जाननेवाले हैं । मै सुनना चाहता हूँ, आप मुझसे शुकदेवजी-का रहस्यमय जन्म और कर्म कहिये ।

सनन्दनजी बोले—नारद ! सुनो, मैं शुकदेवजीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त सक्षेपसे कहूँगा । मुने ! इस वृत्तान्तको सुनकर मनुष्य ब्रह्मतत्त्वका ज्ञाता हो सकता है । अधिक आयु हो जानेसे, बाल पक जानेसे, धनसे अथवा बन्धु-बान्धवोंसे कोई बड़ा नहीं होता । ऋषि-मुनियोंने यह धर्मपूर्ण निश्चय किया है कि हमलोगोंमें जो 'अनूचान' हो, वही महान् है ।

नारदजीने पूछा—सबको मान देनेवाले विप्रवर ! पुरुष 'अनूचान' कैसे होता है ? वह उपाय मुझे बताइये; क्योंकि उसे सुननेके लिये मेरे मनमे बड़ा कौतूहल है ।

सनन्दनजी बोले—नारद ! सुनो, मै अनूचानका लक्षण बताता हूँ, जिसे जानकर मनुष्य अङ्गोंसहित वेदोंका ज्ञाता होता है । शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष तथा छन्दःशास्त्र—इन छःको विद्वान् पुरुष वेदाङ्ग कहते हैं । धर्मका प्रतिपादन करनेमे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार वेद ही प्रमाण बताये गये हैं । जो श्रेष्ठ द्विज गुरुसे छहो अङ्गोंसहित वेदोंका अध्ययन भलीभाँति करता है, वह 'अनूचान' होता है; अन्यथा करोड़ों ग्रन्थ बाँच लेनेसे भी कोई 'अनूचान' नहीं कहला सकता ।

नारदजीने कहा—मानद ! आप अङ्गोंसहित इन

ऋभुने पूछा—ब्रह्मन्! जिस प्रकार मैं अच्छी तरह समझ सकूँ, उस तरह मुझे समझाइये। 'नीचे' इस शब्दका क्या अभिप्राय है और 'ऊपर' किसे कहते हैं?

ब्राह्मण जडभरत कहते हैं—ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघ सहसा उनके ऊपर चढ़ गये और इस प्रकार बोले—'सुनिये, आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे हैं, वह अब समझाकर कहता हूँ। इस समय मैं राजाकी भाँति ऊपर हूँ और श्रीमान् गजराजकी भाँति नीचे। ब्राह्मणदेव! आपको भलीभाँति समझानेके लिये ही मैंने यह दृष्टान्त दिखाया है।

ऋभुने कहा—द्विजश्रेष्ठ! यदि आप राजाके समान हैं और मैं हाथीके समान हूँ तो यह बताइये कि आप कौन हैं और मै कौन हूँ?

ब्राह्मण कहते हैं—ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघने तुरंत ही उनके दोनों चरणोंमें मस्तक नवाया और कहा—'भगवन्! आप निश्चय ही मेरे आचार्यपाद महर्षि ऋभु हैं; क्योंकि दूसरेका हृदय इस प्रकार अद्वैत-संस्कारसे सम्पन्न नहीं है, जैसा कि मेरे आचार्यका। अतः मेरा विश्वास है, आप मेरे गुरुजी ही यहाँ पधारे हुए हैं।

ऋभुने कहा—निदाघ! पहले तुमने मेरी बड़ी सेवा शुश्रूषा की है। इसलिये अत्यन्त स्नेहवश मैं तुम्हें उपदेश देनेके लिये तुम्हारा आचार्य ऋभु ही यहाँ आया हूँ। महामते! समस्त पदार्थोंमें अद्वैत आत्मबुद्धि होना ही परमार्थका सार है। मैंने तुम्हे संक्षेपसे उसका उपदेश कर दिया।

ब्राह्मण जडभरत कहते हैं—विद्वान् गुरु महर्षि ऋभु निदाघसे ऐसा कहकर चले गये। निदाघ भी उनके उपदेशसे अद्वैतपरायण हो गये और सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्न देखने लगे। ब्रह्मर्षि निदाघने इस प्रकार ब्रह्मपरायण होकर परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। धर्मज्ञ नरेश! इसी प्रकार तुम भी आत्माको सबमें व्याप्त जानते हुए अपनेमें तथा शत्रु और मित्रमे समान भाव रखो।

सनन्दनजी कहते हैं—ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर राजाओंमें श्रेष्ठ सौवीरनरेशने परमार्थकी ओर दृष्टि रखकर भेदबुद्धि त्याग दी और वे ब्राह्मण भी पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण करके बोधयुक्त हो उसी जन्ममें मुक्त हो गये। मुनीश्वर नारद! इस प्रकार मैने तुम्हें परमार्थरूप यह अध्यात्मज्ञान बताया है। इसे सुननेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको भी यह मुक्ति प्रदान करनेवाला है।

शिक्षा-निरूपण

सूतजी कहते हैं—सनन्दनजीका ऐसा वचन सुनकर नारदजी अतृप्त-से रह गये। वे और भी सुननेके लिये उत्सुक होकर भाई सनन्दनजीसे बोले।

नारदजीने कहा—भगवन्! मैंने आपसे जो कुछ पूछा है, वह सब आपने बता दिया। तथापि भगवत्सम्बन्धी चर्चाको बारंबार सुनकर भी मेरा मन तृप्त नहीं होता—अधिकाधिक सुननेके लिये उत्कण्ठित हो रहा है। सुना जाता है, परम धर्मज्ञ व्यास-पुत्र शुकदेवजीने आन्तरिक और बाह्य—सभी भोगोंसे पूर्णतः विरक्त होकर बड़ी भारी सिद्धि प्राप्त कर ली। ब्रह्मन्! महात्माओंकी सेवा (सत्सङ्ग) किये बिना प्रायः पुरुषको विज्ञान (तत्त्व-ज्ञान) नहीं प्राप्त होता, किंतु व्यासनन्दन शुकदेवने बाल्यावस्थामें ही ज्ञान पा लिया; यह कैसे सम्भव हुआ? महाभाग! आप मोक्षशास्त्रके तत्त्वको जाननेवाले हैं। मै सुनना चाहता हूँ, आप मुझसे शुकदेवजी-का रहस्यमय जन्म और कर्म कहिये।

सनन्दनजी बोले—नारद! सुनो, मैं शुकदेवजीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त संक्षेपसे कहूँगा। मुने! इस वृत्तान्तको सुनकर मनुष्य ब्रह्मतत्त्वका ज्ञाता हो सकता है। अधिक आयु हो जानेसे, बाल पक जानेसे, धनसे अथवा बन्धु-बान्धवोंसे कोई बड़ा नहीं होता। ऋषि-मुनियोंने यह धर्मपूर्ण निश्चय किया है कि हमलोगोंमें जो 'अनूचान' हो, वही महान् है।

नारदजीने पूछा—सबको मान देनेवाले विप्रवर! पुरुष 'अनूचान' कैसे होता है? वह उपाय मुझे बताइये; क्योंकि उसे सुननेके लिये मेरे मनमे बडा कौतूहल है।

सनन्दनजी बोले—नारद! सुनो, मैं अनूचानका लक्षण बताता हूँ, जिसे जानकर मनुष्य अङ्गोंसहित वेदोंका ज्ञाता होता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष तथा छन्दःशास्त्र—इन छःको विद्वान् पुरुष वेदाङ्ग कहते हैं। धर्मका प्रतिपादन करनेमे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार वेद ही प्रमाण बताये गये हैं। जो श्रेष्ठ द्विज गुरुसे छहो अङ्गोंसहित वेदोंका अध्ययन भलीभाँति करता है, वह 'अनूचान' होता है; अन्यथा करोड़ों ग्रन्थ बाँच लेनेसे भी कोई 'अनूचान' नहीं कहला सकता।

नारदजीने कहा—मानद! आप अङ्गोंसहित इन

स्थान हैं। स्वरोंके राग-विशेषसे ग्रामोंके विविध राग कहे गये हैं। साम-गान करनेवाले विद्वान् मध्यम ग्राममे बीस, षड्जग्राममें चौदह तथा गान्धारग्राममें पंद्रह तान स्वीकार करते हैं। नन्दी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा तथा बला—ये देवताओंकी सात मूर्च्छनाएँ जाननी चाहिये। आप्यायिनी, विश्वभृता, चन्द्रा, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री तथा बार्हती—ये पितरोंकी सात मूर्च्छनाएँ हैं। षड्जस्वरमें उत्तर मन्द्रा, ऋषभमें अभिरूढता (या अभिरुद्गता) तथा गान्धारमें अश्वक्रान्ता नामवाली तीसरी मूर्च्छना मानी गयी है। मध्यमस्वरमें सौवीरा, पञ्चममें हृषिका तथा धैवतमें उत्तरायता नामकी मूर्च्छना जाननी चाहिये। निषादस्वरमें रजनी नामक मूर्च्छनाको जाने। ये ऋषियोंकी सात मूर्च्छनाएँ हैं। गन्धर्वगण देवताओंकी सात मूर्च्छनाओंका आश्रय लेते हैं। यक्षलोग पितरोंकी सात मूर्च्छनाएँ अपनाते हैं, इसमें संशय नहीं है। ऋषियोंकी जो सात मूर्च्छनाएँ हैं, उन्हे लौकिक कहा गया है—उनका अनुसरण मनुष्य करते हैं। षड्जस्वर देवताओंको और ऋषभस्वर ऋषि-मुनियोंको तृप्त करता है। गान्धारस्वर पितरोंको, मध्यमस्वर गन्धर्वोंको तथा पञ्चमस्वर देवताओं, पितरों एवं महर्षियोंको भी संतुष्ट करता है। निषादस्वर यक्षोंको तथा धैवत सम्पूर्ण भूत-समुदायको तृप्त करता है। गानकी गुणवृत्ति दस प्रकारकी है अर्थात् लौकिक-वैदिक गान दस गुणोंसे युक्त हैं। रक्त, पूर्ण, अलंकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विक्रुष्ट, श्लक्ष्ण, सम, सुकुमार तथा मधुर—ये ही वे दसों गुण हैं। वेणु, वीणा तथा पुरुषके स्वर जहाँ एकमें मिलकर अभिन्न-से प्रतीत होते हैं और उससे जो रञ्जन होता है, उसका नाम 'रक्त' है। स्वर तथा श्रुतिकी पूर्ति करनेसे तथा छन्द एवं पादाक्षरोंके संयोग (स्पष्ट उच्चारण) से जो गुण प्रकट होता है, उसे 'पूर्ण' कहते हैं। कण्ठ अर्थात् प्रथम स्थानमें जो स्वर स्थित है, उसे नीचे करके हृदयमें स्थापित करना और ऊँचे करके सिरमें ले जाना—यह 'अलंकृत' कहलाता है। जिसमें कण्ठका गद्गदभाव निकल गया है और किसी प्रकारकी शङ्का नहीं रह गयी है, वह 'प्रसन्न' नामक गुण है। जिसमें पद, पदार्थ, प्रकृति, विकार, आगम, लोप, कृदन्त, तद्धित, समास, धातु, निपात, उपसर्ग, स्वर, लिङ्ग, वृत्ति, वार्तिक, विभक्त्यर्थ तथा एकवचन, बहुवचन आदिका भलीभाँति उपपादन हो, उसे 'व्यक्त' कहते हैं। जिसके पद और अक्षर स्पष्ट हों तथा जो उच्चस्वरसे बोला गया हो, उसका नाम 'विक्रुष्ट' है। द्रुत (जल्दबाजी) और बिलम्बित—दोनों दोषोंसे रहित, उच्च, नीच, प्लुत, समाहार, हेल, ताल और उपनय आदि उपपत्तियोंसे युक्त गीतको 'श्लक्ष्ण' कहते हैं। स्वरोंके अवाप-निर्वाप (चढाव-उतार) के जो प्रदेश हैं, उनका व्यवहित स्थानोंमें जो समावेश होता है, उसीका नाम 'सम' है। पद, वर्ण, स्वर तथा कुहरण (अव्यक्त अक्षरोंको कण्ठ दबाकर बोलना)—ये सभी जिसमें मृदु—कोमल हों, उस गीतको 'सुकुमार' कहा गया है। स्वभावसे ही मुखसे निकले हुए ललित पद एवं अक्षरोंके गुणसे सम्पन्न गीत 'मधुर' कहलाता है। इस प्रकार गान इन दस गुणोंसे युक्त होता है।

इसके विपरीत गीतके दोष बताये जाते हैं—इस विषयमें ये श्लोक कहे गये हैं। शङ्कित, भीषण, भीत, उद्घुष्ट, आनुनासिक, काकस्वर, मूर्द्धगत (अत्यन्त उच्चस्वरसे सिरतक चढ़ाया हुआ अपूर्णगान), स्थान-विवर्जित, विस्वर, विरस, विश्लिष्ट, विषमाहत, व्याकुल तथा तालहीन—ये चौदह गीतके दोष हैं। आचार्यलोग समगानकी इच्छा करते हैं। पण्डितलोग पदच्छेद (प्रत्येक पदका विभाग) चाहते हैं। स्त्रियाँ मधुर गीतकी अभिलाषा करती हैं और दूसरे लोग विक्रुष्ट (पद और अक्षरके विभागपूर्वक उच्चस्वरसे उच्चारित) गीत सुनना चाहते हैं। षड्जस्वरका रंग कमलपत्रके समान हरा है। ऋषभस्वर तोतेके समान कुछ पीलापन लिये हरे रंगका है। गान्धार सुवर्णके समान कान्तिवाला है। मध्यमस्वर कुन्दके सदृश श्वेतवर्णका है। पञ्चमस्वरका रंग श्याम है। धैवतको पीले रंगका माना गया है। निषादस्वरमें सभी रंग मिले हुए हैं। इस प्रकार ये स्वरोंके वर्ण कहे गये हैं। पञ्चम, मध्यम और षड्ज—ये तीनों स्वर ब्राह्मण माने गये हैं। ऋषभ और धैवत ये दोनों ही क्षत्रिय हैं। गान्धार तथा निषाद—ये दोनों स्वर आधे वैश्य कहे गये है। और पतित होनेके कारण ये आधे शूद्र हैं। इसमें संशय नहीं है। जहाँ ऋषभके अनन्तर प्रकट हुए षड्जके साथ धैवतसहित पञ्चमस्वर मध्यमरागमें प्राप्त होता है, उस निषादसहित स्वरग्रामको 'षाडव' या 'षाड्जव' जानना चाहिये। यदि मध्यमस्वरमें पञ्चमका विराम हो और अन्तरस्वर गान्धार हो जाय तथा उसके बाद क्रमसे ऋषभ, निषाद एवं पञ्चमका उदय हो तो उस पञ्चमको भी ऐसा ही (षाडव या षाड्जव) समझे। यदि मध्यमस्वरका आरम्भ होनेपर गान्धारका आधिपत्य (वृद्धि) हो जाय, निषादस्वर बारंबार जाता-आता रहे, धैवतका एक ही बार उच्चारण होनेके कारण वह दुर्बलावस्थामें रहे तथा षड्ज और ऋषभकी अन्य पाँचोंके समान ही स्थिति हो तो उसे 'मध्यम-

स्थान हैं। स्वरोंके राग-विशेषसे ग्रामोंके विविध राग कहे गये हैं। साम-गान करनेवाले विद्वान् मध्यम ग्राममें बीस, षड्जग्राममें चौदह तथा गान्धारग्राममें पंद्रह तान स्वीकार करते हैं। नन्दी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा तथा बला—ये देवताओंकी सात मूर्च्छनाएँ जाननी चाहिये। आप्यायिनी, विश्वभृता, चन्द्रा, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री तथा बार्हती—ये पितरोंकी सात मूर्च्छनाएँ हैं। षड्जस्वरमें उत्तर मन्द्रा, ऋषभमें अभिरूढता (या अभिरुद्गता) तथा गान्धारमें अश्वक्रान्ता नामवाली तीसरी मूर्च्छना मानी गयी है। मध्यमस्वरमें सौवीरा, पञ्चममें हृषिका तथा धैवतमें उत्तरायता नामकी मूर्च्छना जाननी चाहिये। निषादस्वरमें रजनी नामक मूर्च्छनाको जाने। ये ऋषियोंकी सात मूर्च्छनाएँ हैं। गन्धर्वगण देवताओंकी सात मूर्च्छनाओंका आश्रय लेते हैं। यक्षलोग पितरोंकी सात मूर्च्छनाएँ अपनाते हैं, इसमें संशय नहीं है। ऋषियोंकी जो सात मूर्च्छनाएँ हैं, उन्हे लौकिक कहा गया है—उनका अनुसरण मनुष्य करते हैं। षड्जस्वर देवताओंको और ऋषभस्वर ऋषि-मुनियोंको तृप्त करता है। गान्धारस्वर पितरोंको, मध्यमस्वर गन्धर्वोंको तथा पञ्चमस्वर देवताओं, पितरों एवं महर्षियोंको भी संतुष्ट करता है। निषादस्वर यक्षोंको तथा धैवत सम्पूर्ण भूत-समुदायको तृप्त करता है। गानकी गुणवृत्ति दस प्रकारकी है अर्थात् लौकिक-वैदिक गान दस गुणोंसे युक्त हैं। रक्त, पूर्ण, अलंकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विकुष्ट, श्लक्ष्ण, सम, सुकुमार तथा मधुर—ये ही वे दसों गुण हैं। वेणु, वीणा तथा पुरुषके स्वर जहाँ एक-में मिलकर अभिन्न-से प्रतीत होते हैं और उससे जो रञ्जन होता है, उसका नाम 'रक्त' है। स्वर तथा श्रुतिकी पूर्ति करनेसे तथा छन्द एवं पादाक्षरोंके संयोग (स्पष्ट उच्चारण) से जो गुण प्रकट होता है, उसे 'पूर्ण' कहते हैं। कण्ठ अर्थात् प्रथम स्थानमें जो स्वर स्थित है, उसे नीचे करके हृदयमें स्थापित करना और ऊँचे करके सिरमें ले जाना—यह 'अलंकृत' कहलाता है। जिसमें कण्ठका गद्गदभाव निकल गया है और किसी प्रकारकी शङ्का नहीं रह गयी है, वह 'प्रसन्न' नामक गुण है। जिसमें पद, पदार्थ, प्रकृति, विकार, आगम, लोप, कृदन्त, तद्धित, समास, धातु, निपात, उपसर्ग, स्वर, लिङ्ग, वृत्ति, वार्तिक, विभक्त्यर्थ तथा एकवचन, बहु-वचन आदिका भलीभाँति उपपादन हो, उसे 'व्यक्त' कहते हैं। जिसके पद और अक्षर स्पष्ट हों तथा जो उच्चस्वरसे बोला गया हो, उसका नाम 'विकुष्ट' है। द्रुत (जल्दबाजी) और बिलम्बित—दोनों दोषोंसे रहित, उच्च, नीच, प्लुत, समाहार, हेल, ताल और उपनय आदि उपपत्तियोंसे युक्त गीतको 'श्लक्ष्ण' कहते हैं। स्वरोंके अवाप-निर्वाप (चढाव-उतार) के जो प्रदेश हैं, उनका व्यवहित स्थानोंमें जो समावेश होता है, उसीका नाम 'सम' है। पद, वर्ण, स्वर तथा कुहरण (अव्यक्त अक्षरोंको कण्ठ दबाकर बोलना)—ये सभी जिसमें मृदु—कोमल हों, उस गीतको 'सुकुमार' कहा गया है। स्वभावसे ही मुखसे निकले हुए ललित पद एवं अक्षरोंके गुणसे सम्पन्न गीत 'मधुर' कहलाता है। इस प्रकार गान इन दस गुणोंसे युक्त होता है।

इसके विपरीत गीतके दोष बताये जाते हैं—इस विषय-में ये श्लोक कहे गये हैं। शङ्कित, भीषण, भीत, उद्घुष्ट, आनुनासिक, काकस्वर, मूर्द्धगत (अत्यन्त उच्चस्वरसे सिरतक चढ़ाया हुआ अपूर्णगान), स्थान-विवर्जित, विस्वर, विरस, विश्लिष्ट, विषमाहत, व्याकुल तथा तालहीन—ये चौदह गीतके दोष हैं। आचार्यलोग समगानकी इच्छा करते हैं। पण्डितलोग पदच्छेद (प्रत्येक पदका विभाग) चाहते हैं। स्त्रियाँ मधुर गीतकी अभिलाषा करती हैं और दूसरे लोग विकुष्ट (पद और अक्षरके विभागपूर्वक उच्चस्वरसे उच्चारित) गीत सुनना चाहते हैं। षड्जस्वरका रंग कमलपत्रके समान हरा है। ऋषभस्वर तोतेके समान कुछ पीलापन लिये हरे रंगका है। गान्धार सुवर्णके समान कान्तिवाला है। मध्यमस्वर कुन्दके सदृश श्वेतवर्णका है। पञ्चमस्वरका रंग श्याम है। धैवत-को पीले रंगका माना गया है। निषादस्वरमें सभी रंग मिले हुए हैं। इस प्रकार ये स्वरोंके वर्ण कहे गये हैं। पञ्चम, मध्यम और षड्ज—ये तीनों स्वर ब्राह्मण माने गये हैं। ऋषभ और धैवत ये दोनों ही क्षत्रिय हैं। गान्धार तथा निषाद—ये दोनों स्वर आधे वैश्य कहे गये है। और पतित होनेके कारण ये आधे शूद्र हैं। इसमें संशय नहीं है। जहाँ ऋषभके अनन्तर प्रकट हुए षड्जके साथ धैवतसहित पञ्चमस्वर मध्यम-रागमें प्राप्त होता है, उस निषादसहित स्वरग्रामको 'षाडव' या 'षाड्जव' जानना चाहिये। यदि मध्यमस्वरमें पञ्चमका विराम हो और अन्तरस्वर गान्धार हो जाय तथा उसके बाद क्रमसे ऋषभ, निषाद एवं पञ्चमका उदय हो तो उस पञ्चम-को भी ऐसा ही (षाडव या षाड्जव) समझे। यदि मध्यमस्वर-का आरम्भ होनेपर गान्धारका आधिपत्य (वृद्धि) हो जाय, निषादस्वर बारंबार जाता-आता रहे, धैवतका एक ही बार उच्चारण होनेके कारण वह दुर्बलावस्थामें रहे तथा षड्ज और ऋषभकी अन्य पाँचोंके समान ही स्थिति हो तो उसे 'मध्यम-

उसमें अपने दोनों हाथोंको संयममें रखकर उन्हें घुटनोंपर रक्खे और गुरुका अनुकरण करे, जिससे भिन्न बुद्धि न हो। पहले प्रणवका उच्चारण करे, फिर व्याहृतियोंका। तदनन्तर गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके सामगान प्रारम्भ करे। सब अंगुलियोको फैलाकर स्वरमण्डलका आरोपण करे। अंगुलियोंसे अङ्गुष्ठका और अङ्गुष्ठसे अंगुलियोंका स्पर्श कदापि न करे। अंगुलियोंको विलगाकर न रक्खे और उनके मूलभागका भी स्पर्श न करे, सदा उन अंगुलियोंके मध्यपर्वमें अँगूठेके अग्रभागसे स्पर्श करना चाहिये। विभागके ज्ञाता पुरुषको चाहिये कि मात्रा-द्विमात्रा-वृद्धिके विभागके लिये बायें हाथकी अंगुलियोंसे द्विमात्रका दर्शन कराता रहे। जहाँ त्रिरेखा देखी जाय, वहाँ संधिका निर्देश करे; वह पर्व है, ऐसा जानना चाहिये। शेष अन्तर-अन्तर है। साममन्त्रमें (प्रथम और द्वितीय स्वरके बीच) जौके बराबर अन्तर करे तथा ऋचाओंमें तिलके बराबर अन्तर करे। मध्यम पर्वोंमें भलीभाँति निविष्ट किये हुए स्वरोंका ही निवेश करे। विद्वान् पुरुष यहाँ शरीरके किसी अवयवको कँपाये नहीं। नीचेके अङ्ग—ऊरु, जङ्घा आदिको सुखपूर्वक रखकर उनपर दोनो हाथोको प्रचलित परिपाटीके अनुसार रक्खे (अर्थात् दाहिने हाथको गायके कानके समान रक्खे और बायेंको उत्तानभावसे रक्खे)। जैसे बादलोंमें बिजली मणिमय सूत्रकी भाँति चमकती दिखायी देती है, यही विवृत्तियों (पदादि विभागो)के छेद—विलगाव—स्पष्ट निर्देशका दृष्टान्त है। जैसे सिरके बालोंपर कैंची चलती है और बालोंको पृथक् कर देती है, उसी प्रकार पद और स्वर आदिका पृथक्-पृथक् विभागपूर्वक बोध कराना चाहिये। जैसे कछुआ अपने सब अङ्गोंको समेट लेता है, उसी प्रकार अन्य सब चेष्टाओको विलीन करके मन और दृष्टि देकर विद्वान् पुरुष स्वस्थ, शान्त तथा निर्भीक होकर वर्णोंका उच्चारण करे। मन्त्रका उच्चारण करते समय नाककी सीधमें पूर्व दिशाकी ओर गोकर्णके समान आकृतिमें हाथको उठाये रक्खे और हाथके अग्रभागपर दृष्टि रखते हुए शास्त्रके अर्थका निरन्तर चिन्तन करता रहे। मन्त्र-वाक्यको हाथ और मुख दोनोंसे साथ-साथ भलीभाँति प्रचारित करे। वर्णोंका जिस प्रकार द्रुतादि वृत्तिसे आरम्भमें उच्चारण करे, उसी प्रकार उन्हें समाप्त भी करे। (एक ही मन्त्रमें दो वृत्तियोंकी योजना न करे।) अभ्याघात, निर्घात, प्रगान तथा कम्पन न करे, समभावसे साममन्त्रोंका गान करे। जैसे आकाशमें श्येन पक्षी सम गतिसे उडता है, जैसे जलमें विचरती हुई मछलियों अथवा आकाशमें उडते हुए पक्षियोंके मार्गका विशेष रूपसे पता नहीं चलता, उसी प्रकार सामगानमें स्वरगत श्रुतिके विशेष स्वरूपका अवधारण नहीं होता। सामान्यतः गीतमात्रकी उपलब्धि होती है। जैसे दहीमे घी अथवा काठके भीतर अग्नि छिपी रहती है और प्रयत्नसे उसकी उपलब्धि भी होती है, उसी प्रकार स्वरगत श्रुति भी गीतमें छिपी रहती है, प्रयत्नसे उसके विशेष स्वरूपकी भी उपलब्धि होती है। प्रथम स्वरसे दूसरे स्वरपर जो स्वर-संक्रमण होता है, उसे प्रथम स्वरसे संधि रखते हुए ही करे, विच्छेद करके न करे और न वेगसे ही करे। जैसे छाया एवं धूप सूक्ष्म गतिसे धीरे-धीरे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाते हैं—न तो पूर्वस्थानसे सहसा सम्बन्ध तोड़ते हैं और न नये स्थानपर ही वेगसे जाते हैं, उसी प्रकार स्वर-संक्रमण भी सम तथा अविच्छिन्न भावसे करे। जब प्रथम स्वरको खींचते हुए द्वितीय स्वर होता है, तब उसे 'कर्षण' कहते हैं। विद्वान् पुरुष निम्नाङ्कित छः दोषोसे युक्त कर्षणका त्याग करे, अनागत तथा अतिक्रान्त अवस्थामें कर्षण न करे। द्वितीय स्वरके आरम्भसे पहले उसकी अनागत अवस्था है, प्रथम स्वरका सर्वथा व्यतीत हो जाना उसकी अतिक्रान्तावस्था है; इन दोनों स्थितियोंमें प्रथम स्वरका कर्षण न करे। प्रथम मात्राका विच्छेद करके भी कर्षण न करे। उसे विषमाहत—कम्पित करके भी द्वितीय स्वरपर न जाय। कर्षणकालमे तीन मात्रासे अधिक स्वरका विस्तार न करे। अस्थितान्तका त्याग करे अर्थात् द्वितीय स्वरमें भी त्रिमात्रायुक्त स्थिति करनी चाहिये, न कि दो मात्रासे ही युक्त। जो स्वर स्थानसे च्युत होकर अपने स्थानका अतिवर्तन (लङ्घन) करता है, उसे सामगान करनेवाले विद्वान् 'विस्वर' कहते हैं और वीणा बजाकर गानेवाले गायक उसे 'विरक्त' नाम देते हैं। स्वयं अभ्यास करनेके लिये द्रुतवृत्तिसे मन्त्रोच्चारण करे। प्रयोगके लिये मध्यम वृत्तिका आश्रय ले और शिष्योंके उपदेशके लिये विलम्बित वृत्तिका अवलम्बन करे। इस प्रकार शिक्षाशास्त्रोक्त विधिसे जिसने ग्रन्थ (सामगान) को ग्रहण किया है, वह विद्वान् द्विज ग्रन्थोच्चारणकी शिक्षा लेनेवाले शिष्योंको हाथसे ही अध्ययन कराये।

क्रुष्ट (सप्तम एवं पञ्चम) स्वरका स्थान मस्तकमें है। प्रथम (षड्ज) स्वरका स्थान ललाटमे है। द्वितीय (ऋषभ) स्वरका स्थान दोनों भौहोके मध्यमें है। तृतीय (गान्धार) स्वरका स्थान दोनों कानोंमें है। चतुर्थ (मध्यम) स्वरका स्थान कण्ठ है। मन्द्र (पञ्चम) का स्थान रसना बतायी

उसमें अपने दोनों हाथोंको संयममें रखकर उन्हें घुटनोंपर रक्खे और गुरुका अनुकरण करे, जिससे भिन्न बुद्धि न हो । पहले प्रणवका उच्चारण करे, फिर व्याहृतियोंका। तदनन्तर गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके सामगान प्रारम्भ करे । सब अंगुलियोको फैलाकर स्वरमण्डलका आरोपण करे। अंगुलियोंसे अङ्गुष्ठका और अङ्गुष्ठसे अंगुलियोंका स्पर्श कदापि न करे । अंगुलियोंको विलगाकर न रक्खे और उनके मूलभागका भी स्पर्श न करे, सदा उन अंगुलियोंके मध्यपर्वमें अँगूठेके अग्रभागसे स्पर्श करना चाहिये। विभागके ज्ञाता पुरुषको चाहिये कि मात्रा-द्विमात्रा-वृद्धिके विभागके लिये बायें हाथकी अंगुलियोंसे द्विमात्रका दर्शन कराता रहे। जहाँ त्रिरेखा देखी जाय, वहाँ संधिका निर्देश करे; वह पर्व है, ऐसा जानना चाहिये । शेष अन्तर-अन्तर है। साममन्त्रमें (प्रथम और द्वितीय स्वरके बीच) जौके बराबर अन्तर करे तथा ऋचाओंमें तिलके बराबर अन्तर करे। मध्यम पर्वोंमें भलीभाँति निविष्ट किये हुए स्वरोंका ही निवेश करे । विद्वान् पुरुष यहाँ शरीरके किसी अवयवको कँपाये नहीं। नीचेके अङ्ग—ऊरु, जङ्घा आदिको सुखपूर्वक रखकर उनपर दोनो हाथोको प्रचलित परिपाटीके अनुसार रक्खे (अर्थात् दाहिने हाथको गायके कानके समान रक्खे और बायेंको उत्तानभावसे रक्खे) । जैसे बादलोंमें बिजली मणिमय सूत्रकी भाँति चमकती दिखायी देती है, यही विवृत्तियों (पदादि विभागो)के छेद—विलगाव—स्पष्ट निर्देश-का दृष्टान्त है। जैसे सिरके बालोंपर कैंची चलती है और बालोंको पृथक् कर देती है, उसी प्रकार पद और स्वर आदिका पृथक्-पृथक् विभागपूर्वक बोध कराना चाहिये। जैसे कछुआ अपने सब अङ्गोंको समेट लेता है, उसी प्रकार अन्य सब चेष्टाओको विलीन करके मन और दृष्टि देकर विद्वान् पुरुष स्वस्थ, शान्त तथा निर्भीक होकर वर्णोंका उच्चारण करे । मन्त्रका उच्चारण करते समय नाककी सीधमें पूर्व दिशाकी ओर गोकर्णके समान आकृतिमें हाथको उठाये रक्खे और हाथके अग्रभागपर दृष्टि रखते हुए शास्त्रके अर्थका निरन्तर चिन्तन करता रहे। मन्त्र-वाक्यको हाथ और मुख दोनोंसे साथ-साथ भली-भाँति प्रचारित करे। वर्णोंका जिस प्रकार द्रुतादि वृत्तिसे आरम्भमें उच्चारण करे, उसी प्रकार उन्हें समाप्त भी करे । (एक ही मन्त्रमें दो वृत्तियोंकी योजना न करे ।) अभ्याघात, निर्घात, प्रगान तथा कम्पन न करे, समभावसे साममन्त्रोंका गान करे। जैसे आकाशमें श्येन पक्षी सम गतिसे उडता है, जैसे जलमें विचरती हुई मछलियों अथवा आकाशमें उडते हुए पक्षियोंके मार्गका विशेष रूपसे पता नहीं चलता, उसी प्रकार सामगानमें स्वरगत श्रुतिके विशेष स्वरूपका अवधारण नहीं होता । सामान्यतः गीतमात्रकी उपलब्धि होती है। जैसे दहीमे घी अथवा काठके भीतर अग्नि छिपी रहती है और प्रयत्नसे उसकी उपलब्धि भी होती है, उसी प्रकार स्वरगत श्रुति भी गीतमें छिपी रहती है, प्रयत्नसे उसके विशेष स्वरूपकी भी उपलब्धि होती है। प्रथम स्वरसे दूसरे स्वरपर जो स्वर-संक्रमण होता है, उसे प्रथम स्वरसे संधि रखते हुए ही करे, विच्छेद करके न करे और न वेगसे ही करे। जैसे छाया एवं धूप सूक्ष्म गतिसे धीरे-धीरे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाते हैं—न तो पूर्वस्थानसे सहसा सम्बन्ध तोड़ते हैं और न नये स्थानपर ही वेगसे जाते हैं, उसी प्रकार स्वर-संक्रमण भी सम तथा अविच्छिन्न भावसे करे। जब प्रथम स्वरको खींचते हुए द्वितीय स्वर होता है, तब उसे 'कर्षण' कहते हैं। विद्वान् पुरुष निम्नाङ्कित छः दोषोसे युक्त कर्षणका त्याग करे, अनागत तथा अतिक्रान्त अवस्थामें कर्षण न करे । द्वितीय स्वरके आरम्भसे पहले उसकी अनागत अवस्था है, प्रथम स्वरका सर्वथा व्यतीत हो जाना उसकी अतिक्रान्तावस्था है; इन दोनों स्थितियोंमें प्रथम स्वरका कर्षण न करे। प्रथम मात्राका विच्छेद करके भी कर्षण न करे। उसे विषमाहत—कम्पित करके भी द्वितीय स्वरपर न जाय। कर्षणकालमे तीन मात्रासे अधिक स्वरका विस्तार न करे। अस्थितान्तका त्याग करे अर्थात् द्वितीय स्वरमें भी त्रिमात्रायुक्त स्थिति करनी चाहिये, न कि दो मात्रासे ही युक्त। जो स्वर स्थानसे च्युत होकर अपने स्थानका अतिवर्तन (लङ्घन) करता है, उसे सामगान करनेवाले विद्वान् 'विस्वर' कहते हैं और वीणा बजाकर गानेवाले गायक उसे 'विरक्त' नाम देते हैं। स्वयं अभ्यास करनेके लिये द्रुतवृत्तिसे मन्त्रोच्चारण करे। प्रयोगके लिये मध्यम वृत्तिका आश्रय ले और शिष्योंके उपदेशके लिये विलम्बित वृत्तिका अवलम्बन करे । इस प्रकार शिक्षाशास्त्रोक्त विधिसे जिसने ग्रन्थ (सामगान) को ग्रहण किया है, वह विद्वान् द्विज ग्रन्थोच्चारणकी शिक्षा लेनेवाले शिष्योंको हाथसे ही अध्ययन कराये ।

क्रुष्ट (सप्तम एवं पञ्चम) स्वरका स्थान मस्तकमें है। प्रथम (षड्ज) स्वरका स्थान ललाटमे है। द्वितीय (ऋषभ) स्वरका स्थान दोनों भौहोंके मध्यमें हैं। तृतीय (गान्धार) स्वरका स्थान दोनों कानोंमें हैं। चतुर्थ (मध्यम) स्वरका स्थान कण्ठ है। मन्द्र (पञ्चम) का स्थान रसना बतायी

उत्तरमें कहते हैं—) उच्च (उदात्त) और नीच (अनुदात्त) के मध्यमें जो 'साधारण' यह श्रुति है, उसीको शिक्षाशास्त्रके विद्वान् स्वार-संज्ञामें 'स्वार' नामसे जानते हैं। उदात्तमें निषाद और गान्धार स्वर हैं, अनुदात्तमें ऋषभ और धैवत स्वर हैं। और ये—षड्ज, मध्यम तथा पञ्चम—स्वरितमें प्रकट होते हैं। जिसके परे 'क' और 'ख' हैं तथा जो जिह्वामूलीयरूप प्रयोजनको सिद्ध करनेवाली है, उस 'ऊष्मा' (ᳵकᳵख) को 'मात्रा' जाने। वह अपने स्वरूपसे ही 'कला' है (किसी दूसरे वर्णका अवयव नहीं है। इसे उपध्मानीयका भी उपलक्षण मानना चाहिये)।

जात्य, क्षैप्र, अभिनिहित, तैरव्यञ्जन, तिरोविराम, प्रश्लिष्ट तथा सातवाँ पादवृत्त—ये सात स्वार हैं। अब मैं इन सब स्वारोंका पृथक्-पृथक् लक्षण बतलाता हूँ। लक्षण कहकर उन सबके यथायोग्य उदाहरण भी बताऊँगा। जो अक्षर 'य' कार और 'व' कारके साथ स्वरित होता है तथा जिसके आगे उदात्त नहीं होता, वह 'जात्य' स्वार कहलाता है। जब उदात्त 'इ' वर्ण और'उ'वर्ण कहीं पदादि अनुदात्त अकार परे रहते सन्धि होनेपर 'य' 'व' के रूपमें परिणत हो स्वरित होते हैं, तो वहाँ सदा 'क्षैप्र' स्वारका लक्षण समझना चाहिये। 'ए' और 'ओ' इन दो उदात्त स्वरोंसे परे जो वकारसहित अकार निहित (अनुदात्तरूपमें निपातित) हो और उसका जहाँ लोप (एकार या उकारमें अनुप्रवेश) होता है, उसे 'अभिनिहित' स्वार माना जाता है। छन्दमें जहाँ कहीं या जो कोई भी ऐसा स्वरित होता है, जिसके पूर्वमें उदात्त हो, तो वह सर्व बहुस्वार—(सर्वत्र बहुलतासे होनेवाला स्वर) 'तैरव्यञ्जन' कहलाता है। यदि उदात्त अवग्रह हो और अवग्रहसे परे अनन्तर स्वरित हो, तो उसे 'तिरोविराम' समझना चाहिये। जहाँ उदात्त इकारको अनुदात्त इकारसे संयुक्त देखो, वहाँ विचार लो कि 'प्रश्लिष्ट' स्वार है। जहाँ स्वर अक्षर अकारादिमें स्वरित हो और पूर्वपदके साथ संहिता विभक्त हो, उसे पादवृत्त स्वारका शास्त्रोक्त लक्षण समझना चाहिये।

'जात्य' स्वारका उदाहरण है—'स जात्येन' इत्यादि। श्रुधी+अग्ने=श्रुध्यग्ने आदि स्थलोंमें 'क्षैप्र' स्वार है। 'ये मन्वत' इत्यादिमें 'अभिनिहित' स्वार जानना चाहिये। उ+ ऊतये=ऊतये, वि+ईतये=वीतये इत्यादिमें 'तैरव्यञ्जन' नामक स्वार है। 'विस्कभिते विस्कभिते' आदि स्थलोंमें 'तिरोविराम' है। 'हि इन्द्र गिर्वणः'='हीन्द्र०' इत्यादिमें 'प्रश्लिष्ट' स्वार है। 'क ईम् कईं वेद' इत्यादिमें 'पादवृत्त' नामक स्वार है। इस प्रकार ये सब सात स्वार हैं।

जात्य स्वरोंको छोड़कर एक पूर्ववर्ती उदात्त अक्षरसे परे जो भी अक्षर हो, उसकी स्वरित संज्ञा होती है। यह स्वरितका सामान्य लक्षण बताया जाता है। पूर्वोक्त चार स्वार उदात्त अथवा एक अनुदात्त परे रहनेपर शास्त्रतः 'कम्प' उत्पन्न करते हैं। (जिसका स्वरूप चल हो, उस स्वारका नाम कम्प है) इसका उदाहरण है 'जुह्वभिः।' 'उप त्वा जुहू' 'उप त्वा जुह्वो मम' इत्यादि। पूर्वपद इकारान्त हो और परे उकारकी स्थिति हो तो मेधावी पुरुष वहाँ 'ह्रस्व कम्प' जाने—इसमें संशय नहीं है। यदि उकारद्वययुक्त पद परे हो तो इकारान्त पदमें दीर्घ कम्प जानना चाहिये। इसका दृष्टान्त है—'शग्ध्यृषू' इत्यादि। तीन दीर्घ कम्प जानने चाहिये, जो संध्यक्षरोंमें होते हैं। उनके क्रमशः उदाहरण ये हैं—मन्या। पथ्या। न इन्द्राभ्याम्। शेष ह्रस्व कहे गये हैं। जब अनेक उदात्तोंके बाद कोई अनुदात्त प्रत्यय हो तो एक उदात्त परे रहते दूसरे-तीसरे उदात्तकी 'शिवकम्प' संज्ञा होती है अर्थात् वह शिवकम्पसंज्ञक आद्युदात्त होता है। किंतु वह उदात्त प्रत्यय होना चाहिये। जहाँ दो, तीन, चार आदि उदात्त अक्षर हों, नीच—अनुदात्त हो और उससे पूर्व उच्च अर्थात् उदात्त हो और वह भी पूर्ववर्ती उदात्त या उदात्तोंसे परे हो तो वहाँ विद्वान् पुरुष 'उदात्त' मानते हैं। रेफ या हकारमें कहीं द्वित्व नहीं होता—दो रेफ या दो हकारका प्रयोग एक साथ नहीं होता। कवर्ग आदि वर्गोंके दूसरे और चौथे अक्षरोंमें भी कभी द्वित्व नहीं होता। वर्गके चौथे अक्षरको तीसरेके द्वारा और दूसरेको प्रथमके द्वारा पीडित न करे। आदि, मध्य और अन्त्य (क, ग, ङ आदि)को अपने ही अक्षरसे पीडित (संयुक्त) करे। यदि संयोगदशामें अनन्त्य (जो अन्तिम वर्ण नहीं है, वह गकार आदि) वर्ण पहले हो और नकारादि अन्त्य वर्ण बादमें हो तो मध्यमें यम (य व र ल ञ म ङ ण न) अक्षर स्थित होता है, वह पूर्ववर्ती अक्षरका सवर्ण हुआ करता है। पूर्ववर्ती श ष स तथा य र ल व—इन अक्षरोंसे संयुक्त वर्गान्त्य वर्णोंको देखकर यम निवृत्त हो जाते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे चोर-डाकुओंको देखकर राही अपने मार्गसे लौट जाते हैं। संहितामें जब वर्गके तीसरे और चौथे अक्षर सयुक्त हो तो पदकालमें चतुर्थ अक्षरसे ही आरम्भ करके उत्तर पद होगा। दूसरे, तीसरे और हकार —इन सबका संयोग हो तो उत्तरपद हकारादि ही होगा।

उत्तरमें कहते हैं—) उच्च (उदात्त) और नीच (अनुदात्त) के मध्यमें जो 'साधारण' यह श्रुति है, उसीको शिक्षाशास्त्रके विद्वान् स्वार-संज्ञामें 'स्वार' नामसे जानते हैं। उदात्तमें निषाद और गान्धार स्वर हैं, अनुदात्तमें ऋषभ और धैवत स्वर हैं। और ये—षड्ज, मध्यम तथा पञ्चम—स्वरितमें प्रकट होते हैं। जिसके परे 'क' और 'ख' हैं तथा जो जिह्वामूलीयरूप प्रयोजनको सिद्ध करनेवाली है, उस 'ऊष्मा' (ᳵक ᳵख) को 'मात्रा' जाने। वह अपने स्वरूपसे ही 'कला' है (किसी दूसरे वर्णका अवयव नहीं है। इसे उपध्मानीयका भी उपलक्षण मानना चाहिये)।

जात्य, क्षैप्र, अभिनिहित, तैरव्यञ्जन, तिरोविराम, प्रश्लिष्ट तथा सातवाँ पादवृत्त—ये सात स्वार हैं। अब मैं इन सब स्वारोंका पृथक्-पृथक् लक्षण बतलाता हूँ। लक्षण कहकर उन सबके यथायोग्य उदाहरण भी बताऊँगा। जो अक्षर 'य' कार और 'व' कारके साथ स्वरित होता है तथा जिसके आगे उदात्त नहीं होता, वह 'जात्य' स्वार कहलाता है। जब उदात्त 'इ' वर्ण और'उ'वर्ण कहीं पदादि अनुदात्त अकार परे रहते सन्धि होनेपर 'य' 'व' के रूपमें परिणत हो स्वरित होते हैं, तो वहाँ सदा 'क्षैप्र' स्वारका लक्षण समझना चाहिये। 'ए' और 'ओ' इन दो उदात्त स्वरोंसे परे जो वकारसहित अकार निहित (अनुदात्तरूपमें निपातित) हो और उसका जहाँ लोप (एकार या ओकारमें अनुप्रवेश) होता है, उसे 'अभिनिहित' स्वार माना जाता है। छन्दमें जहाँ कहीं या जो कोई भी ऐसा स्वरित होता है, जिसके पूर्वमें उदात्त हो, तो वह सर्व बहुस्वार—(सर्वत्र बहुलतासे होनेवाला स्वर) 'तैरव्यञ्जन' कहलाता है। यदि उदात्त अवग्रह हो और अवग्रहसे परे अनन्तर स्वरित हो, तो उसे 'तिरोविराम' समझना चाहिये। जहाँ उदात्त इकारको अनुदात्त इकारसे संयुक्त देखो, वहाँ विचार लो कि 'प्रश्लिष्ट' स्वार है। जहाँ स्वर अक्षर अकारादिमें स्वरित हो और पूर्वपदके साथ संहिता विभक्त हो, उसे पादवृत्त स्वारका शास्त्रोक्त लक्षण समझना चाहिये।

'जात्य' स्वारका उदाहरण है—'स जात्येन' इत्यादि। शुष्मी+अग्ने=शुष्मयग्ने आदि स्थलोंमें 'क्षैप्र' स्वार है। 'वे मन्वत' इत्यादिमें 'अभिनिहित' स्वार जानना चाहिये। उ+ ऊतये=ऊतये, वि+ईतये=वीतये इत्यादिमें 'तैरव्यञ्जन' नामक स्वार है। 'विस्कभिते विस्कभिते' आदि स्थलोंमें 'तिरोविराम' है। 'हि इन्द्र गिर्वणः'='हीन्द्र०' इत्यादिमें 'प्रश्लिष्ट' स्वार है। 'क ईम् कईं वेद' इत्यादिमें 'पादवृत्त' नामक स्वार है। इस प्रकार ये सब सात स्वार हैं।

जात्य स्वरोंको छोड़कर एक पूर्ववर्ती उदात्त अक्षरसे परे जो भी अक्षर हो, उसकी स्वरित संज्ञा होती है। यह स्वरितका सामान्य लक्षण बताया जाता है। पूर्वोक्त चार स्वार उदात्त अथवा एक अनुदात्त परे रहनेपर शाश्वतः 'कम्प' उत्पन्न करते हैं। (जिसका स्वरूप चल हो, उस स्वारका नाम कम्प है) इसका उदाहरण है 'जुह्वग्निः।' 'उप त्वा जुहू' 'उप त्वा जुह्वो मम' इत्यादि। पूर्वपद इकारान्त हो और परे उकारकी स्थिति हो तो मेधावी पुरुष वहाँ 'ह्रस्व कम्प' जाने—इसमें संशय नहीं है। यदि उकारद्वययुक्त पद परे हो तो इकारान्त पदमें दीर्घ कम्प जानना चाहिये। इसका दृष्टान्त है—'शग्ध्यूषू' इत्यादि। तीन दीर्घ कम्प जानने चाहिये, जो संध्यक्षरोंमें होते हैं। उनके क्रमशः उदाहरण ये हैं—मन्या। पथ्या। न इन्द्राभ्याम्। शेष ह्रस्व कहे गये हैं। जब अनेक उदात्तोंके बाद कोई अनुदात्त प्रत्यय हो तो एक उदात्त परे रहते दूसरे-तीसरे उदात्तकी 'शिवकम्प' संज्ञा होती है अर्थात् वह शिवकम्पसंज्ञक आद्युदात्त होता है। किंतु वह उदात्त प्रत्यय होना चाहिये। जहाँ दो, तीन, चार आदि उदात्त अक्षर हों, नीच—अनुदात्त हो और उससे पूर्व उच्च अर्थात् उदात्त हो और वह भी पूर्ववर्ती उदात्त या उदात्तोंसे परे हो तो वहाँ विद्वान् पुरुष 'उदात्त' मानते हैं। रेफ या हकारमें कहीं द्वित्व नहीं होता—दो रेफ या दो हकारका प्रयोग एक साथ नहीं होता। कवर्ग आदि वर्गोंके दूसरे और चौथे अक्षरोंमें भी कभी द्वित्व नहीं होता। वर्गके चौथे अक्षरको तीसरेके द्वारा और दूसरेको प्रथमके द्वारा पीडित न करे। आदि, मध्य और अन्त्य (क, ग, ङ आदि)को अपने ही अक्षरसे पीडित (संयुक्त) करे। यदि संयोगदशामें अनन्त्य (जो अन्तिम वर्ण नहीं है, वह गकार आदि) वर्ण पहले हो और नकारादि अन्त्य वर्ण बादमें हो तो मध्यमें यम (य व र ल ञ म ङ ण न) अक्षर स्थित होता है, वह पूर्ववर्ती अक्षरका सवर्ण हुआ करता है। पूर्ववर्ती श ष स तथा य र ल व—इन अक्षरोंसे संयुक्त वर्गान्त्य वर्णोंको देखकर यम निवृत्त हो जाते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे चोर-डाकुओंको देखकर राही अपने मार्गसे लौट जाते हैं। संहितामें जब वर्गके तीसरे और चौथे अक्षर संयुक्त हों तो पदकालमें चतुर्थ अक्षरसे ही आरम्भ करके उत्तर पद होगा। दूसरे, तीसरे और हकार—इन सबका संयोग हो तो उत्तरपद हकारादि ही होगा।

परे हों तो पूर्वकी आधी मात्रा—अणु मात्रा अनुरञ्जित होती है। पूर्वमें स्वरसे संयुक्त हलन्त नकार यदि पदान्तमें स्थित हो और उसके परे भी पद हो तो वह चार रूपोंसे युक्त होता है। कहीं वह रेफ होता है, कहीं रग (या रक्त) बनता है, कहीं उसका लोप और कहीं अनुस्वार हो जाता है (यथा 'भवाश्चिनोति'में रेफ होता है। 'महाँ ३ असि' में रंग है। 'महाँ इन्द्र' में न का लोप हुआ है। पूर्वका अनुनासिक या अनुस्वार हुआ है)। 'रग' हृदयसे उठता है, कांस्यके वाद्यकी भाँति उसकी ध्वनि होती है। वह मृदु तथा दो मात्राका (दीर्घ) होता है। दधन्वाँ २ यह उदाहरण है। नारद ! जैसे सौराष्ट्र देशकी नारी 'अरा' बोलती है, उसी प्रकार 'रंग' का प्रयोग करना चाहिये—यह मेरा मत है। नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात—इन चार प्रकारके पदोंके अन्तमें स्वरपूर्वक ग ड द व ङ ण न म ष स—ये दस अक्षर 'पदान्त' कहे गये हैं। उदात्त स्वर, अनुदात्त स्वर और स्वरित स्वर जहाँ भी स्थित हों, व्यञ्जन उनका अनुसरण करते हैं। आचार्यलोग तीनों स्वरोंकी ही प्रधानता बताते हैं। व्यञ्जनोंको तो मणियोंके समान समझे और स्वरको सूत्रके समान; जैसे बलवान् राजा दुर्बलके राज्यको हड़प लेता है, उसी प्रकार बलवान् दुर्बल व्यञ्जनको हर लेता है। ओभाव, विवृत्ति, श, ष, स, र, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय—ये ऊष्माकी आठ गतियाँ हैं। ऊष्मा (सकार) इन आठ भावोंमें परिणत होता है। संहितामें जो स्वर-प्रत्यया विवृत्ति होती है, वहाँ विसर्ग समझे अथवा उसका तालव्य होता है। जिसकी उपधा-में संध्यक्षर (ए, ओ, ऐ, औ) हो ऐसी सन्धिमें यदि य और व लोपको प्राप्त हुए हों तो वहाँ व्यञ्जननामक विवृत्ति और स्वर-नामक प्रतिसंहिता होती है। जहाँ ऊष्मान्त विरत हो और सन्धिमें 'व' होता हो, वहाँ जो विवृत्ति होती है, उसे 'स्वर विवृत्ति' नामसे कहना चाहिये। यदि 'ओ' भावका प्रसंधान हो तो उत्तर पद ऋकारादि होता है; वैसे प्रसंधानको स्वरान्त जानना चाहिये। इससे भिन्न ऊष्माका प्रसंधान होता है (यथा 'वायो ऋ' इति। यहाँ ओभावका प्रसंधान है। 'क इह' यहाँ ऊष्माका प्रसंधान है)। जब श ष स आदि परे हों, उस समय यदि प्रथम (वर्गके पहले अक्षर) और उत्तम (वर्गके अन्तिम अक्षर) पदान्तमें स्थित हो तो वे द्वितीय स्थानको प्राप्त होते हैं। ऊष्मसंयुक्त होनेपर अर्थात् सकारादि परे होनेपर प्रथम जो तकार आदि अक्षर हैं, उनको द्वितीय (थकार आदि) की भाँति दिखाये—थकार आदिकी भाँति उच्चारण करे, उन्हें स्पष्टतः थकार आदिके रूपमें ही न समझ ले। उदाहरणके लिये—'मत्स्यः', 'क्षुरः' और 'अप्सराः' आदि उदाहरण हैं। लौकिक श्लोक आदिमें छन्दका ज्ञान करानेके लिये तीन हेतु हैं—छन्दोमान, वृत्त और पादस्थान (पदान्त)। परंतु ऋचाएँ स्वभावतः गायत्री आदि छन्दोंसे आवृत हैं। उनकी पाद-गणना या गुरु, लघु एवं अक्षरोंकी गणना तो छन्दोविभागको समझनेके लिये ही है; उन लक्षणोंके अनुसार ही ऋचाएँ हों, यह नियम नहीं है। लौकिक छन्द ही पाद और अक्षर-गणनाके अनुसार होते हैं। ऋवर्ण और स्वर-भक्तिमें जो रेफ है, उसे अक्षरान्तर मानकर छन्दकी अक्षर-गणना या मात्रागणनामें सम्मिलित करे। किंतु स्वरभक्तियोंमें प्रत्ययके साथ रेफरहित अक्षरकी गणना करे। ऋवर्णमें रेफरूप व्यञ्जनकी प्रतीति पृथक् होती है और स्वररूप अक्षरकी प्रतीति अलग होती है। यदि 'ऋ' से ऊष्माका संयोग न हो तो उस ऋकारको लघु अक्षर जाने। जहाँ ऊष्मा (शकार आदि) से संयुक्त होकर ऋकार पीड़ित होता है, उस ऋवर्णको ही स्वर होनेपर भी गुरु समझना चाहिये; यहाँ 'तृचम्' उदाहरण है। (यहाँ ऋकार लघु है।) ऋषभ, गृहीत, बृहस्पति, पृथिवी तथा निर्ऋति—इन पाँच शब्दोंमें ऋकार स्वर ही है, इसमें संशय नहीं है। श, ष, स, ह, र—ये जिसके आदिमें हों, ऐसे पदमें द्विपद सन्धि होनेपर कहीं 'इ' और 'उ' से रहित एकपदा स्वरभक्ति होती है, वह क्रमवियुक्त होती है। स्वरभक्ति दो प्रकारकी कही गयी है—ऋकार तथा रेफ। उसे अक्षरचिन्तकोंने क्रमशः 'स्वरोदा' और 'व्यञ्जनोदा' नाम दिया है। श, ष, स के विषयमें स्वरोदया एवं विवृता स्वरभक्ति मानी गयी है और हकारके विषयमें विद्वान् लोग व्यञ्जनोदया एवं संवृता स्वरभक्ति निश्चित करते हैं (दोनोंके क्रमशः उदाहरण हैं—'ऊर्षति, अर्हति')। स्वरभक्तिका प्रयोग करनेवाला पुरुष तीन दोषोंको त्याग दे—इकार, उकार तथा ग्रस्तदोष। जिससे परे संयोग हो और जिससे परे छ हो, जो विसर्गसे युक्त हो, द्विमात्रिक (दीर्घ) हो, अवसानमें हो, अनुस्वार-युक्त हो तथा घुडन्त हो—ये सब लघु नहीं माने जाते।

पथ्या (आर्या) छन्दके प्रथम और तृतीय पाद बारह मात्राके होते हैं। द्वितीय पाद अठारह मात्राका होता है और अन्तिम (चतुर्थ) पाद पंद्रह मात्राका होता है। यह पथ्याका लक्षण बताया गया; जो इससे भिन्न है, उसका नाम विपुला है। अक्षरमें जो ह्रस्व है, उससे परे यदि संयोग

परे हों तो पूर्वकी आधी मात्रा—अणु मात्रा अनुरञ्जित होती है। पूर्वमें स्वरसे संयुक्त हलन्त नकार यदि पदान्तमे स्थित हो और उसके परे भी पद हो तो वह चार रूपोंसे युक्त होता है। कहीं वह रेफ होता है, कहीं रग (या रक्त) बनता है, कहीं उसका लोप और कहीं अनुस्वार हो जता है (यथा 'भवाश्चिनोति'में रेफ होता है। 'महाँ ३ असि' में रंग है। 'महाँ इन्द्र' में न का लोप हुआ है। पूर्वका अनुनासिक या अनुस्वार हुआ है)। 'रग' हृदयसे उठता है, कास्यके वाद्यकी भाँति उसकी ध्वनि होती है। वह मृदु तथा दो मात्राका (दीर्घ) होता है। दधन्वाँ २ यह उदाहरण है। नारद ! जैसे सौराष्ट्र देशकी नारी 'अरा' बोलती है, उसी प्रकार 'रंग' का प्रयोग करना चाहिये—यह मेरा मत है। नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात—इन चार प्रकारके पदोंके अन्तमें स्वरपूर्वक ग ड द ब ङ ण न म ष स—ये दस अक्षर 'पदान्त' कहे गये हैं। उदात्त स्वर, अनुदात्त स्वर और स्वरित स्वर जहाँ भी स्थित हों, व्यञ्जन उनका अनुसरण करते हैं। आचार्यलोग तीनों स्वरोंकी ही प्रधानता बताते हैं। व्यञ्जनोंको तो मणियोंके समान समझे और स्वरको सूत्रके समान; जैसे बलवान् राजा दुर्बलके राज्यको हड़प लेता है, उसी प्रकार बलवान् दुर्बल व्यञ्जनको हर लेता है। ओभाव, विवृत्ति, श, ष, स, र, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय—ये ऊष्माकी आठ गतियाँ हैं। ऊष्मा (सकार) इन आठ भावोंमें परिणत होता है। संहितामे जो स्वर-प्रत्यया विवृत्ति होती है, वहाँ विसर्ग समझे अथवा उसका तालव्य होता है। जिसकी उपधा-में संध्यक्षर (ए, ओ, ऐ, औ) हो ऐसी सन्धिमें यदि य और व लोपको प्राप्त हुए हों तो वहाँ व्यञ्जननामक विवृत्ति और स्वर-नामक प्रतिसंहिता होती है। जहाँ ऊष्मान्त विरत हो और सन्धिमें 'व' होता हो, वहाँ जो विवृत्ति होती है, उसे 'स्वर विवृत्ति' नामसे कहना चाहिये। यदि 'ओ' भावका प्रसंधान हो तो उत्तर पद ऋकारादि होता है; वैसे प्रसंधानको स्वरान्त जानना चाहिये। इससे भिन्न ऊष्माका प्रसंधान होता है (यथा 'वायो ऋ' इति। यहाँ ओभावका प्रसंधान है। 'क इह' यहाँ ऊष्माका प्रसंधान है)। जब श ष स आदि परे हों, उस समय यदि प्रथम (वर्गके पहले अक्षर) और उत्तम (वर्गके अन्तिम अक्षर) पदान्तमें स्थित हो तो वे द्वितीय स्थानको प्राप्त होते हैं। ऊष्मसंयुक्त होनेपर अर्थात् सकारादि परे होनेपर प्रथम जो तकार आदि अक्षर हैं, उनको द्वितीय (थकार आदि) की भाँति दिखाये—थकार आदिकी भाँति उच्चारण करे, उन्हें स्पष्टतः थकार आदिके रूपमें ही न समझ ले। उदाहरणके लिये—'मत्स्यः', 'क्षुरः' और 'अप्सराः' आदि उदाहरण हैं। लौकिक श्लोक आदिमें छन्दका ज्ञान करानेके लिये तीन हेतु हैं—छन्दोमान, वृत्त और पादस्थान (पदान्त)। परंतु ऋचाएँ स्वभावतः गायत्री आदि छन्दोंसे आवृत हैं। उनकी पाद-गणना या गुरु, लघु एवं अक्षरोंकी गणना तो छन्दोविभागको समझनेके लिये ही है; उन लक्षणोंके अनुसार ही ऋचाएँ हों, यह नियम नहीं है। लौकिक छन्द ही पाद और अक्षर-गणनाके अनुसार होते हैं। ऋवर्ण और स्वर-भक्तिमें जो रेफ है, उसे अक्षरान्तर मानकर छन्दकी अक्षर-गणना या मात्रागणनामें सम्मिलित करे। किंतु स्वरभक्तियोंमें प्रत्ययके साथ रेफरहित अक्षरकी गणना करे। ऋवर्णमें रेफरूप व्यञ्जनकी प्रतीति पृथक् होती है और स्वररूप अक्षरकी प्रतीति अलग होती है। यदि 'ऋ' से ऊष्माका संयोग न हो तो उस ऋकारको लघु अक्षर जाने। जहाँ ऊष्मा (शकार आदि) से संयुक्त होकर ऋकार पीड़ित होता है, उस ऋवर्णको ही स्वर होनेपर भी गुरु समझना चाहिये; यहाँ 'तृचम्' उदाहरण है। (यहाँ ऋकार लघु है।) ऋषभ, गृहीत, बृहस्पति, पृथिवी तथा निर्ऋति—इन पाँच शब्दोंमें ऋकार स्वर ही है, इसमें संशय नहीं है। श, ष, स, ह, र—ये जिसके आदिमें हों, ऐसे पदमें द्विपद सन्धि होनेपर कहीं 'इ' और 'उ' से रहित एकपदा स्वरभक्ति होती है, वह क्रमवियुक्त होती है। स्वरभक्ति दो प्रकारकी कही गयी है—ऋकार तथा रेफ। उसे अक्षरचिन्तकोंने क्रमशः 'स्वरोदा' और 'व्यञ्जनोदा' नाम दिया है। श, ष, स के विषयमें स्वरोदया एवं विवृता स्वरभक्ति मानी गयी है और हकारके विषयमें विद्वान् लोग व्यञ्जनोदया एवं संवृता स्वरभक्ति निश्चित करते हैं (दोनोंके क्रमशः उदाहरण हैं—'ऊर्षति, अर्हति)। स्वरभक्तिका प्रयोग करनेवाला पुरुष तीन दोषोंको त्याग दे—इकार, उकार तथा ग्रस्तदोष। जिससे परे संयोग हो और जिससे परे छ हो, जो विसर्गसे युक्त हो, द्विमात्रिक (दीर्घ) हो, अवसानमें हो, अनुस्वार-युक्त हो तथा घुडन्त हो—ये सब लघु नहीं माने जाते।

पथ्या (आर्या) छन्दके प्रथम और तृतीय पाद बारह मात्राके होते हैं। द्वितीय पाद अठारह मात्राका होता है और अन्तिम (चतुर्थ) पाद पंद्रह मात्राका होता है। यह पथ्याका लक्षण बताया गया; जो इससे भिन्न है, उसका नाम विपुला है। अक्षरमें जो ह्रस्व है, उससे परे यदि संयोग

जिसके दाँत तथा ओष्ठ सुन्दर हैं, ऐसा व्यक्ति यदि स्नानसे शुद्ध हो गाना छोड दे तो वह मन्त्राक्षरोंका ठीक प्रयोग कर सकता है। जो अत्यन्त क्रोधी, स्तब्ध, आलसी तथा रोगी हैं और जिनका मन इधर-उधर फैला हुआ है, वे पाँच प्रकारके मनुष्य विद्या ग्रहण नहीं कर पाते। विद्या धीरे-धीरे पढी जाती है। धन धीरे-धीरे कमाया जाता है, पर्वतपर धीरे-धीरे चढ़ना चाहिये। मार्गका अनुसरण भी धीरे-धीरे ही करे और एक दिनमें एक योजनसे अधिक न चले। चींटी धीरे-धीरे चलकर सहस्रों योजन चली जाती है। किंतु गरुड भी यदि चलना शुरू न करे तो वह एक पग भी आगे नहीं जा सकता। पापीकी पापदूषित वाणी प्रयोगों (वेदमन्त्रों)का उच्चारण नहीं कर सकती—, ठीक उसी तरह, जैसे बातचीतमें चतुर सुलोचना रमणी बहरेके आगे कुछ नहीं कह सकती*। जो उपांशु (सूक्ष्म) उच्चारण करता है, जो उच्चारणमें जल्दबाजी करता है तथा जो डरता हुआ-सा अध्ययन करता है, वह सहस्र रूपों (शब्दोच्चारण) के विषयमें सदा संदेहमें ही पडा रहता है। जिसने केवल पुस्तकके भरोसे पढा है, गुरुके समीप अध्ययन नहीं किया है, वह सभामें सम्मानित नहीं होता—वैसे ही, जैसे जारपुरुषसे गर्भ धारण करनेवाली स्त्री समाजमें प्रतिष्ठा नहीं पाती। प्रतिदिन व्यय किये जानेपर अञ्जनकी पर्वतराशिका भी क्षय हो जाता है और दीमकोंके द्वारा थोड़ी-थोड़ी मिट्टीके संग्रहसे भी बहुत ऊँचा वल्मीक बन जाता है, इस दृष्टान्तको सामने रखते हुए दान और अध्ययनादि सत्कर्मोंमें लगे रहकर जीवनके प्रत्येक दिनको सफल बनावे—व्यर्थ न बीतने दे। कीड़े चिकने धूलकणोंसे जो बहुत ऊँचा वल्मीक बना लेते हैं, उसमें उनके बलका प्रभाव नहीं है, उद्योग ही कारण है। विद्याको सहस्रों बार अभ्यासमें लाया जाय और सैकड़ों बार शिष्योंको उसे पढाया जाय, तब वह उसी प्रकार जिह्वाके अग्रभागपर आ जायगी, जैसे जल ऊँचे स्थानसे नीचे स्थानमें स्वयं बह आता है। अच्छी जातिके घोड़े आधी रातमें भी आधी ही नींद सोते हैं अथवा वे आधी रातमें सिर्फ एक पहर सोते हैं, उन्हींकी भाँति विद्यार्थियोंके नेत्रोंमें चिरकालतक निद्रा नहीं ठहरती। विद्यार्थी भोजनमें आसक्त होकर अध्ययनमें विलम्ब न करे। नारीके मोहमें न फँसे। विद्याकी अभिलाषा रखनेवाला छात्र आवश्यकता हो तो गरुड़ और हंसकी भाँति बहुत दूरतक भी चला जाय। विद्यार्थी जनसमूहसे उसी तरह डरे, जैसे सर्पसे डरता है। दोस्ती बढ़ानेके व्यसनको नरक समझकर उससे भी दूर रहे। स्त्रियोंसे उसी तरह बचकर रहे, जैसे राक्षसियोंसे। इस तरह करनेवाला पुरुष ही विद्या प्राप्त कर सकता है। शठ प्रकृतिके मनुष्य विद्यारूप अर्थकी सिद्धि नहीं कर पाते। कायर तथा अहंकारी भी विद्या एवं धनका उपार्जन नहीं कर पाते। लोकापवादसे डरनेवाले लोग भी विद्या और धनसे वञ्चित रह जाते हैं तथा 'जो आज नहीं कल' करते हुए सदा आगामी दिनकी प्रतीक्षामें बैठे रहते हैं, वे भी न विद्या पढ पाते हैं न धन ही लाभ करते हैं। जैसे खनतीसे धरती खोदनेवाला पुरुष एक दिन अवश्य पानी प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरुकी निरन्तर सेवा करनेवाला छात्र गुरुमें स्थित विद्याको अवश्य ग्रहण कर लेता है। गुरुसेवासे विद्या प्राप्त होती है अथवा बहुत धन व्यय करनेसे उसकी प्राप्ति होती है। अथवा एक विद्या देनेसे दूसरी विद्या मिलती है; अन्यथा उसकी प्राप्ति नहीं होती। यद्यपि बुद्धिके गुणोंसे सेवा किये बिना भी विद्या प्राप्त हो जाती है; तथापि वन्ध्या युवतीकी भाँति वह सफल नहीं होती। नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे शिक्षाग्रन्थका संक्षेपसे वर्णन किया है। इस आदि-वेदाङ्गको जानकर मनुष्य ब्रह्मभावकी प्राप्तिके योग्य हो जाता है। (पूर्वभाग-द्वितीय पाद अध्याय ५०)

वेदके द्वितीय अङ्ग कल्पका वर्णन—गणेशपूजन, ग्रहशान्ति तथा श्राद्धका निरूपण

सनन्दनजी कहते हैं—मुनीश्वर! अब मैं कल्पग्रन्थका वर्णन करता हूँ; जिसके विज्ञानमात्रसे मनुष्य कर्ममें कुशल हो जाता है। कल्प पाँच प्रकारके माने गये हैं—नक्षत्रकल्प, वेदकल्प, संहिता-कल्प, आङ्गिरसकल्प और शान्तिकल्प। नक्षत्रकल्पमें नक्षत्रोंके स्वामीका विस्तारपूर्वक यथार्थ वर्णन किया गया है; वह यहाँ भी जानने योग्य है। मुनीश्वर!

* शिक्षा-संग्रहमें जो नारदी-शिक्षा संकलित हुई है, उसमें इस श्लोकका पाठ इस प्रकार है—

न हि पापिहता वाणी प्रयोगान् वक्तुमर्हति। बधिरस्येव नरस्या विदग्धा वामलोचना॥

जिसके दाँत तथा ओष्ठ सुन्दर हैं, ऐसा व्यक्ति यदि स्नानसे शुद्ध हो गाना छोड दे तो वह मन्त्राक्षरोंका ठीक प्रयोग कर सकता है। जो अत्यन्त क्रोधी, स्तब्ध, आलसी तथा रोगी हैं और जिनका मन इधर-उधर फैला हुआ है, वे पाँच प्रकारके मनुष्य विद्या ग्रहण नहीं कर पाते। विद्या धीरे-धीरे पढी जाती है। धन धीरे-धीरे कमाया जाता है, पर्वतपर धीरे-धीरे चढ़ना चाहिये। मार्गका अनुसरण भी धीरे-धीरे ही करे और एक दिनमें एक योजनसे अधिक न चले। चींटी धीरे-धीरे चलकर सहस्रों योजन चली जाती है। किंतु गरुड भी यदि चलना शुरू न करे तो वह एक पग भी आगे नहीं जा सकता। पापीकी पापदूषित वाणी प्रयोगों (वेदमन्त्रों)का उच्चारण नहीं कर सकती—, ठीक उसी तरह, जैसे बातचीतमें चतुर सुलोचना रमणी बहरेके आगे कुछ नहीं कह सकती*। जो उपांशु (सूक्ष्म) उच्चारण करता है, जो उच्चारणमें जल्दबाजी करता है तथा जो डरता हुआ-सा अध्ययन करता है, वह सहस्र रूपों (शब्दोच्चारण) के विषयमें सदा संदेहमें ही पडा रहता है। जिसने केवल पुस्तकके भरोसे पढा है, गुरुके समीप अध्ययन नहीं किया है, वह सभामें सम्मानित नहीं होता—वैसे ही, जैसे जारपुरुषसे गर्भ धारण करनेवाली स्त्री समाजमें प्रतिष्ठा नहीं पाती। प्रतिदिन व्यय किये जानेपर अञ्जनकी पर्वतराशिका भी क्षय हो जाता है और दीमकोंके द्वारा थोड़ी-थोड़ी मिट्टीके संग्रहसे भी बहुत ऊँचा वल्मीक बन जाता है, इस दृष्टान्तको सामने रखते हुए दान और अध्ययनादि सत्कर्मोंमें लगे रहकर जीवनके प्रत्येक दिनको सफल बनावे—व्यर्थ न बीतने दे। कीड़े चिकने धूलकणोंसे जो बहुत ऊँचा वल्मीक बना लेते हैं, उसमें उनके बलका प्रभाव नहीं है, उद्योग ही कारण है। विद्याको सहस्रों बार अभ्यासमें लाया जाय और सैकड़ों बार शिष्योंको उसे पढाया जाय, तब वह उसी प्रकार जिह्वाके अग्रभागपर आ जायगी, जैसे जल ऊँचे स्थानसे नीचे स्थानमें स्वयं बह आता है। अच्छी जातिके घोड़े आधी रातमें भी आधी ही नींद सोते हैं अथवा वे आधी रातमें सिर्फ एक पहर सोते हैं, उन्हींकी भाँति विद्यार्थियोंके नेत्रोंमें चिरकालतक निद्रा नहीं ठहरती। विद्यार्थी भोजनमें आसक्त होकर अध्ययनमें विलम्ब न करे। नारीके मोहमें न फँसे। विद्याकी अभिलाषा रखनेवाला छात्र आवश्यकता हो तो गरुड़ और हंसकी भाँति बहुत दूरतक भी चला जाय। विद्यार्थी जनसमूहसे उसी तरह डरे, जैसे सर्पसे डरता है। दोस्ती बढ़ानेके व्यसनको नरक समझकर उससे भी दूर रहे। स्त्रियोंसे उसी तरह बचकर रहे, जैसे राक्षसियोंसे। इस तरह करनेवाला पुरुष ही विद्या प्राप्त कर सकता है। शठ प्रकृतिके मनुष्य विद्यारूप अर्थकी सिद्धि नहीं कर पाते। कायर तथा अहंकारी भी विद्या एवं धनका उपार्जन नहीं कर पाते। लोकापवादसे डरनेवाले लोग भी विद्या और धनसे वञ्चित रह जाते हैं तथा 'जो आज नहीं कल' करते हुए सदा आगामी दिनकी प्रतीक्षामें बैठे रहते हैं, वे भी न विद्या पढ पाते हैं न धन ही लाभ करते हैं। जैसे खनतीसे धरती खोदनेवाला पुरुष एक दिन अवश्य पानी प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरुकी निरन्तर सेवा करनेवाला छात्र गुरुमें स्थित विद्याको अवश्य ग्रहण कर लेता है। गुरुसेवासे विद्या प्राप्त होती है अथवा बहुत धन व्यय करनेसे उनकी प्राप्ति होती है। अथवा एक विद्या देनेसे दूसरी विद्या मिलती है; अन्यथा उसकी प्राप्ति नहीं होती। यद्यपि बुद्धिके गुणोंसे सेवा किये विना भी विद्या प्राप्त हो जाती है; तथापि वन्ध्या युवतीकी भाँति वह सफल नहीं होती। नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे शिक्षाग्रन्थका संक्षेपसे वर्णन किया है। इस आदि-वेदाङ्गको जानकर मनुष्य ब्रह्मभावकी प्राप्तिके योग्य हो जाता है। (पूर्वभाग-द्वितीय पाद अध्याय ५०)

वेदके द्वितीय अङ्ग कल्पका वर्णन—गणेशपूजन, ग्रहशान्ति तथा श्राद्धका निरूपण

सनन्दनजी कहते हैं—मुनीश्वर! अब मैं कल्पग्रन्थका वर्णन करता हूँ; जिसके विज्ञानमात्रसे मनुष्य कर्ममें कुशल हो जाता है। कल्प पाँच प्रकारके माने गये हैं—नक्षत्रकल्प, वेदकल्प, संहिता-कल्प, आङ्गिरसकल्प और शान्तिकल्प। नक्षत्रकल्पमें नक्षत्रोंके स्वामीका विस्तारपूर्वक यथार्थ वर्णन किया गया है; वह यहाँ भी जानने योग्य है। मुनीश्वर!

* शिक्षा-संग्रहमें जो नारदी-शिक्षा संकलित हुई है, उसमें इस श्लोकका पाठ इस प्रकार है—

न हि पाणिहता वाणी प्रयोगान् वक्तुमर्हति। बधिरस्येव नरपम्या विदग्धा वामलोचना॥

वृद्धिदाता हैं और यमराज मृत्युदायक माने गये हैं। (अतः स्रुवको मूलभागकी ओर तीन अंगुल छोड़कर चौथे-पाँचवें अंगुलपर पकड़ना चाहिये)। सम्मार्जन और उपयमन नामक दो कुश बनाने चाहिये। इनमेंसे सम्मार्जन कुश सात शाखा (कुश) का और उपयमन कुश पाँचका होता है। स्रुव तथा स्रुक्‌निर्माण करनेके लिये श्रीपर्णी (गंभारी), शमी, खदिर, विकङ्कत (कँटाई) और पलाश—ये पाँच प्रकारके काष्ठ शुभ जानने चाहिये। हाथभरका स्रुवा उत्तम माना गया है और तीस अंगुलका स्रुक्। यह ब्राह्मणोंके स्रुव और स्रुक्‌के विषयमे बताया गया है; अन्य वर्णवालोंके लिये एक अंगुल छोटा रखनेका विधान है। नारद! शूद्रों, पतितो तथा गर्दभ आदि जीवोंके दृष्टि-दोषका निवारण करनेके लिये सब पात्रोंके प्रोक्षणकी विधि है। विप्रवर! पूर्णपात्र-दान किये बिना यज्ञमें छिद्र उत्पन्न हो जाता है और पूर्णपात्रकी विधि कर देनेपर यज्ञकी पूर्ति हो जाती है। आठ मुट्ठीका 'किञ्चित्' होता है, चार किञ्चित्‌का 'पुष्कल' होता है और चार पुष्कलका एक 'पूर्णपात्र' होता है, ऐसा विद्वानोंका मत है। होमकाल प्राप्त होनेपर अन्यत्र कहीं आसन नहीं देना चाहिये। दिया जाय तो अग्निदेव अतृप्त होते और दारुण शाप देते हैं। 'आघार' नामकी दो आहुतियाँ अग्निदेवकी नासिका कही गयी हैं। 'आज्यभाग' नामवाली दो आहुतियाँ उनके नेत्र हैं। 'प्राजापत्य' आहुतिको मुख कहा गया है और व्याहृति होमको कटिभाग बताया गया है। पञ्चवारुण होमको दो हाथ, दो पैर और मस्तक कहते हैं। विप्रवर! 'स्विष्टकृत्' होम तथा पूर्णाहुति—ये दो आहुतियाँ दोनों कान हैं। अग्निदेवके दो मुख, एक हृदय, चार कान, दो नाक, दो मस्तक, छः नेत्र, पिङ्गल वर्ण और सात जिह्वाएँ हैं। उनके वाम भागमे तीन और दक्षिण भागमे चार हाथ हैं। स्रुक्, स्रुवा, अक्षमाला और शक्ति—ये सब उनके दाहिने हाथोंमे हैं। उनके तीन मेखला और तीन पैर हैं। वे घृतपात्र लिये हुए हैं। दो चँवर धारण करते हैं। भेड़पर चढ़े हुए हैं। उनके चार सींग हैं। बालसूर्यके समान उनकी अरुण कान्ति है। वे यज्ञोपवीत धारण करके जटा और कुण्डलोंसे सुशोभित हैं। इस प्रकार अग्निके स्वरूपका ध्यान करके होमकर्म प्रारम्भ करे। दूध, दही, घी और घृतपक्व या तैलपक्व पदार्थका जो हाथसे हवन करता है, वह ब्राह्मण ब्रह्महत्यारा होता है (इन सबका स्रुवासे होम करना चाहिये)। मनुष्य जो अन्न खाता है, उसके देवता भी वही अन्न खाते हैं। सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये हविष्यमें तिलका भाग अधिक रखना उत्तम माना गया है। होममें तीन प्रकारकी मुद्राएँ बतायी गयी हैं—मृगी, हंसी और सूकरी। अभिचार-कर्ममें सूकरी-मुद्राका उपयोग होता है और शुभ-कर्ममें मृगी तथा हंसी नामवाली मुद्राएँ उपयोगमें लायी जाती हैं। सब अंगुलियोंसे सूकरी-मुद्रा बनती है। हंसी-मुद्रामें कनिष्ठिका अंगुलि मुक्त रहती है और मृगी नामवाली मुद्रा केवल मध्यमा, अनामिका और अङ्गुष्ठद्वारा सम्पन्न होनेवाली कही गयी है। पूर्वोक्त प्रमाणवाली आहुतिको पाँचों अंगुलियोंसे लेकर उसके द्वारा अन्य ऋत्विजोंके साथ हवन करे। हवन-सामग्रीमें दही, मधु और घी मिलाया हुआ तिल होना चाहिये। पुण्यकर्मोंमें संलग्न होनेपर अपनी अनामिका अंगुलिमें कुशोंकी पवित्री अवश्य धारण करनी चाहिये।

भगवान् रुद्र और ब्रह्माजीने गणेशजीको 'गणपति' पदपर बिठाया और कर्मोंमें विघ्न डालनेका कार्य उन्हें सौंप रखा है। वे विघ्नेश विनायक जिसपर सवार होते हैं, उस पुरुषके लक्षण सुनो। वह स्वप्नमें बहुत अगाध जलमें प्रवेश कर जाता है, मूँड मुड़ाये मनुष्योंको तथा गेरुआ वस्त्र धारण करनेवाले पुरुषोंको देखता है। कच्चा मास खानेवाले गृध्रादि पक्षियों तथा व्याघ्र आदि पशुओंपर चढ़ता है। एक स्थानपर चाण्डालों, गदहो और ऊँटोंके साथ उनसे घिरा हुआ बैठता है। चलते समय भी अपने-आपको शत्रुओंसे अनुगत मानता है—उसे ऐसा भान होता है कि शत्रु मेरा पीछा कर रहे हैं। (जाग्रत्-अवस्थामें भी) उसका चित्त विक्षिप्त रहता है। उसके द्वारा किये हुए प्रत्येक कार्यका आरम्भ निष्फल होता है। वह अकारण खिन्न रहता है। विघ्नराजका सताया हुआ मनुष्य राजाका पुत्र होकर भी राज्य नहीं पाता। कुमारी कन्या अनुकूल पति नहीं पाती, विवाहिता स्त्रीको अभीष्ट पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती। श्रोत्रियको आचार्यपद नहीं मिलता। शिष्य स्वाध्याय नहीं कर पाता, वैश्यको व्यापारमें और किसानको खेतीमें लाभ नहीं हो पाता।

ऐसे पुरुषको किसी पवित्र दिन एवं शुभ मुहूर्तमें विधिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। पीली सरसों पीसकर उसे घीसे ढीला करे और उस मनुष्यके शरीरमें उसीका उबटन लगाये। प्रियङ्गु, नागकेसर आदि सब प्रकारकी ओषधियों और चन्दन, अगुरु, कस्तूरी आदि सब प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंको उसके मस्तकमें लगाये। फिर उसे भद्रासनपर बिठाकर उसके लिये ब्राह्मणोंसे शुभ स्वस्तिवाचन (पुण्याहवाचन) कराये। अश्वशाला,

वृद्धिदाता हैं और यमराज मृत्युदायक माने गये हैं। (अतः स्रुवको मूलभागकी ओर तीन अंगुल छोड़कर चौथे-पाँचवें अंगुलपर पकड़ना चाहिये)। सम्मार्जन और उपयमन नामक दो कुश बनाने चाहिये। इनमेंसे सम्मार्जन कुश सात शाखा (कुश) का और उपयमन कुश पाँचका होता है। स्रुव तथा स्रुक्‌निर्माण करनेके लिये श्रीपर्णी (गंभारी), शमी, खदिर, विकङ्कत (कँटाई) और पलाश—ये पाँच प्रकारके काष्ठ शुभ जानने चाहिये। हाथभरका स्रुवा उत्तम माना गया है और तीस अंगुलका स्रुक्। यह ब्राह्मणोंके स्रुव और स्रुक्के विषयमे बताया गया है; अन्य वर्णवालोंके लिये एक अंगुल छोटा रखनेका विधान है। नारद! शूद्रों, पतितो तथा गर्दभ आदि जीवोंके दृष्टि-दोषका निवारण करनेके लिये सब पात्रोंके प्रोक्षणकी विधि है। विप्रवर! पूर्णपात्र-दान किये बिना यज्ञमें छिद्र उत्पन्न हो जाता है और पूर्णपात्रकी विधि कर देनेपर यज्ञकी पूर्ति हो जाती है। आठ मुट्ठीका 'किञ्चित्' होता है, चार किञ्चित्का 'पुष्कल' होता है और चार पुष्कलका एक 'पूर्णपात्र' होता है, ऐसा विद्वानोका मत है। होमकाल प्राप्त होनेपर अन्यत्र कहीं आसन नहीं देना चाहिये। दिया जाय तो अग्निदेव अतृप्त होते और दारुण शाप देते हैं। 'आघार' नामकी दो आहुतियाँ अग्निदेवकी नासिका कही गयी हैं। 'आज्यभाग' नामवाली दो आहुतियाँ उनके नेत्र हैं। 'प्राजापत्य' आहुतिको मुख कहा गया है और व्याहृति होमको कटिभाग बताया गया है। पञ्चवारुण होमको दो हाथ, दो पैर और मस्तक कहते हैं। विप्रवर! 'स्विष्टकृत्' होम तथा पूर्णाहुति—ये दो आहुतियाँ दोनों कान हैं। अग्निदेवके दो मुख, एक हृदय, चार कान, दो नाक, दो मस्तक, छः नेत्र, पिङ्गल वर्ण और सात जिह्वाएँ हैं। उनके वाम भागमे तीन और दक्षिण भागमे चार हाथ हैं। स्रुक्, स्रुवा, अक्षमाला और शक्ति—ये सब उनके दाहिने हाथोंमे हैं। उनके तीन मेखला और तीन पैर हैं। वे घृतपात्र लिये हुए हैं। दो चँवर धारण करते हैं। भेड़पर चढ़े हुए हैं। उनके चार सींग हैं। बालसूर्यके समान उनकी अरुण कान्ति है। वे यज्ञोपवीत धारण करके जटा और कुण्डलोंसे सुशोभित हैं। इस प्रकार अग्निके स्वरूपका ध्यान करके होमकर्म प्रारम्भ करे। दूध, दही, घी और घृतपक्व या तैलपक्व पदार्थका जो हाथसे हवन करता है, वह ब्राह्मण ब्रह्महत्यारा होता है (इन सबका स्रुवासे होम करना चाहिये)। मनुष्य जो अन्न खाता है, उसके देवता भी वही अन्न खाते हैं। सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये हविष्यमें तिलका भाग अधिक रखना उत्तम माना गया है। होममें तीन प्रकारकी मुद्राएँ बतायी गयी हैं—मृगी, हंसी और सूकरी। अभिचार-कर्ममें सूकरी-मुद्राका उपयोग होता है और शुभ-कर्ममें मृगी तथा हंसी नामवाली मुद्राएँ उपयोगमें लायी जाती हैं। सब अंगुलियोंसे सूकरी-मुद्रा बनती है। हंसी-मुद्रामें कनिष्ठिका अंगुलि मुक्त रहती है और मृगी नामवाली मुद्रा केवल मध्यमा, अनामिका और अङ्गुष्ठद्वारा सम्पन्न होनेवाली कही गयी है। पूर्वोक्त प्रमाणवाली आहुतिको पाँचों अंगुलियोंसे लेकर उसके द्वारा अन्य ऋत्विजोंके साथ हवन करे। हवन-सामग्रीमें दही, मधु और घी मिलाया हुआ तिल होना चाहिये। पुण्यकर्मोंमें संलग्न होनेपर अपनी अनामिका अंगुलिमें कुशोंकी पवित्री अवश्य धारण करनी चाहिये।

भगवान् रुद्र और ब्रह्माजीने गणेशजीको 'गणपति' पदपर बिठाया और कर्मोंमें विघ्न डालनेका कार्य उन्हें सौंप रखा है। वे विघ्नेश विनायक जिसपर सवार होते हैं, उस पुरुषके लक्षण सुनो। वह स्वप्नमें बहुत अगाध जलमें प्रवेश कर जाता है, मूँड मुड़ाये मनुष्योंको तथा गेरुआ वस्त्र धारण करनेवाले पुरुषोंको देखता है। कच्चा मांस खानेवाले गृध्रादि पक्षियों तथा व्याघ्र आदि पशुओंपर चढ़ता है। एक स्थानपर चाण्डालों, गदहो और ऊँटोंके साथ उनसे घिरा हुआ बैठता है। चलते समय भी अपने-आपको शत्रुओंसे अनुगत मानता है—उसे ऐसा भान होता है कि शत्रु मेरा पीछा कर रहे हैं। (जाग्रत्-अवस्थामें भी) उसका चित्त विक्षिप्त रहता है। उसके द्वारा किये हुए प्रत्येक कार्यका आरम्भ निष्फल होता है। वह अकारण खिन्न रहता है। विघ्नराजका सताया हुआ मनुष्य राजाका पुत्र होकर भी राज्य नहीं पाता। कुमारी कन्या अनुकूल पति नहीं पाती, विवाहिता स्त्रीको अभीष्ट पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती। श्रोत्रियको आचार्यपद नहीं मिलता। शिष्य स्वाध्याय नहीं कर पाता, वैश्यको व्यापारमें और किसानको खेतीमें लाभ नहीं हो पाता।

ऐसे पुरुषको किसी पवित्र दिन एवं शुभ मुहूर्तमें विधिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। पीली सरसों पीसकर उसे घीसे ढीला करे और उस मनुष्यके शरीरमें उसीका उबटन लगाये। प्रियङ्गु, नागकेसर आदि सब प्रकारकी ओषधियों और चन्दन, अगुरु, कस्तूरी आदि सब प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंको उसके मस्तकमें लगाये। फिर उसे भद्रासनपर बिठाकर उसके लिये ब्राह्मणोंसे शुभ स्वस्तिवाचन (पुण्याहवाचन) कराये। अश्वशाला,

सुवर्णसे, गुरुकी सुवर्णसे, शुक्रकी रजतसे, शनिकी लोहेसे तथा राहु-केतुकी सीसेसे बनाये, इससे शुभकी प्राप्ति होती है। अथवा वस्त्रपर उनके-उनके रंगके अनुसार वर्णकसे उनका चित्र अङ्कित कर लेना चाहिये। अथवा मण्डल बनाकर उनमें गन्ध (चन्दन-कुङ्कुम आदि) से ग्रहोंकी आकृति बना ले। ग्रहोंके रंगके अनुसार ही उन्हें फूल और वस्त्र भी देने चाहिये। सबके लिये गन्ध, बलि, धूप और गुग्गुल देना चाहिये। प्रत्येक ग्रहके लिये (अग्निस्थापन-पूर्वक) समन्त्रक चरुका होम करना चाहिये। 'आ कृष्णेन रजसा०' इत्यादि सूर्य देवताके, 'इमं देवाः' इत्यादि चन्द्रमाके, 'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्०' इत्यादि मङ्गलके, 'उद्बुध्यस्व०' इत्यादि मन्त्र बुधके, 'बृहस्पते अति यदर्यः' इत्यादि मन्त्र बृहस्पतिके, 'अन्नात् परिस्रुतो०' इत्यादि मन्त्र शुक्रके, 'शन्नो देवी०' इत्यादि मन्त्र शनैश्चरके, 'काण्डात् काण्डम्' इत्यादि मन्त्र राहुके और 'केतु कृण्वन्नकेतवे०' इत्यादि मन्त्र केतुके हैं। आक, पलाश, खैर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशा—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंकी समिधा हैं। सूर्यादि ग्रहोंमेंसे प्रत्येकके लिये एक सौ आठ या अट्ठाईस बार मधु, घी, दही अथवा खीरकी आहुति देनी चाहिये। गुड़ मिलाया हुआ भात, खीर, हविष्य (मुनि-अन्न), दूध मिलाया हुआ साठीके चावलका भात, दही-भात, घी-भात, तिलचूर्णमिश्रित भात, माष (उड़द) मिलाया हुआ भात और खिचड़ी—इनको ग्रहके क्रमानुसार विद्वान् पुरुष ब्राह्मणके लिये भोजन दे। अपनी शक्तिके अनुसार यथाप्राप्त वस्तुओंसे ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक सत्कार करके उनके लिये क्रमशः धेनु, शङ्ख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, काली गौ, लोहा और बकरा—ये वस्तुएँ दक्षिणामें दे। ये ग्रहोंकी दक्षिणाएँ बतायी गयी हैं। जिस-जिस पुरुषके लिये जो ग्रह जब अष्टम आदि दुष्ट स्थानोंमें स्थित हो, वह पुरुष उस ग्रहकी उस समय विशेष यत्नपूर्वक पूजा करे। ब्रह्माजीने इन ग्रहोंको वर दिया है कि 'जो तुम्हारी पूजा करें, उनकी तुम भी पूजा (मनोरथपूर्तिपूर्वक सम्मान) करना। राजाओंके धन और जातिका उत्कर्ष तथा जगत्‌की जन्म-मृत्यु भी ग्रहोंके ही अधीन है; अतः ग्रह सभीके लिये पूजनीय हैं। जो सदा सूर्यदेवकी पूजा, एवं स्कन्दस्वामीको तथा महागणपतिको तिलक करता है, वह सिद्धिको प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, उसे प्रत्येक कर्ममें सफलता एवं उत्तम लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जो मातृयाग किये बिना ग्रहपूजन करता है, उसपर मातृकाएँ कुपित होती हैं और उसके प्रत्येक कार्यमें विघ्न डालती हैं। शुभकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको 'वसोः पवित्रम्' इस मन्त्रसे वसुधारा समर्पित करके प्रत्येक माङ्गलिक कर्ममें गौरी आदि मातृकाओं-की पूजा करनी चाहिये। उनके नाम ये हैं—गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृकाएँ, वैधृति, धृति, पुष्टि, हृष्टि और तुष्टि। इनके साथ अपनी कुलदेवी और गणेशजी अधिक हैं। वृद्धिके अवसरोंपर इन सोलह मातृकाओंकी अवश्य पूजा करनी चाहिये। इन सबकी प्रसन्नताके लिये क्रमशः आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, (आचमनीय), स्नान, (वस्त्र), चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, फल, नैवेद्य, आचमनीय, ताम्बूल, पूगीफल, आरती तथा दक्षिणा—ये उपचार समर्पित करने चाहिये।

अब मैं पितृकल्पका वर्णन करूँगा, जो धन और संततिकी वृद्धि करनेवाला है। अमावास्या, अष्टका, वृद्धि (विवाहादिका अवसर), कृष्णपक्ष, दोनों अयनोंके आरम्भका दिन, श्राद्धीय द्रव्यकी उपस्थिति, उत्तम ब्राह्मणकी प्राप्ति, विषुवत् योग, सूर्यकी संक्रान्ति, व्यतीपात योग, गजच्छाया, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा श्राद्धके लिये रुचिका होना—ये सभी श्राद्धके समय अथवा अवसर कहे गये हैं। सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञानमें अग्रगण्य, श्रोत्रिय, ब्रह्मवेत्ता, युवक, मन्त्र और ब्राह्मणरूप वेदका तत्त्वज्ञ, ज्येष्ठ सामका गान करनेवाला, त्रिमधु[1], त्रिसुपर्ण[2], भानजा, ऋत्विक्, जामाता, यजमान, श्वशुर, मामा, त्रिणाचिकेत[3], दौहित्र, शिष्य, सम्बन्धी, बान्धव, कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, पञ्चाग्निसेवी[4], ब्रह्मचारी तथा पिता-माताके भक्त ब्राह्मण श्राद्धकी सम्पत्ति हैं। रोगी, न्यूनाङ्ग, अधिकाङ्ग, काना, पुनर्भूकी संतान, अवकीर्णी (ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहते हुए ब्रह्मचर्य भंग करनेवाला), कुण्ड (पतिके जीते-जी पर-पुरुषसे उत्पन्न की हुई संतान), गोलक (पतिकी मृत्युके बाद जारज संतान), खराब नखवाला, काले दाँतवाला, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, नपुंसक, कन्याको कलङ्कित करने-वाला, स्वयं जिसपर दोषारोपण किया गया हो वह, मित्र-द्रोही, चुगलखोर, सोमरस बेचनेवाला, बड़े भाईके अविवाहित रहते विवाह करनेवाला, माता, पिता और गुरुका त्याग

१. 'मधु वाता' इत्यादि तीन ऋचाओंका जप और तदनुकूल व्रतका आचरण करनेवाला। २. त्रिसौपर्णी ऋचाओंका अध्येता और तत्सम्बन्धी व्रतका पालन करनेवाला। ३. त्रिणाचिकेत-संज्ञक त्रिविध अग्निविद्याको जाननेवाला और तदनुकूल व्रतका पालक। ४. सम्य, आवसथ्य तथा त्रिणाचिकेत—इन पाँच अग्नियोंका उपासक।

सुवर्णसे, गुरुकी सुवर्णसे, शुक्रकी रजतसे, शनिकी लोहेसे तथा राहु-केतुकी सीसेसे बनाये, इससे शुभकी प्राप्ति होती है। अथवा वस्त्रपर उनके-उनके रंगके अनुसार वर्णकसे उनका चित्र अङ्कित कर लेना चाहिये। अथवा मण्डल बनाकर उनमें गन्ध (चन्दन-कुङ्कुम आदि) से ग्रहोंकी आकृति बना ले। ग्रहोंके रंगके अनुसार ही उन्हें फूल और वस्त्र भी देने चाहिये। सबके लिये गन्ध, बलि, धूप और गुग्गुल देना चाहिये। प्रत्येक ग्रहके लिये (अग्निस्थापन-पूर्वक) समन्त्रक चरुका होम करना चाहिये। 'आ कृष्णेन रजसा०' इत्यादि सूर्य देवताके, 'इमं देवा:' इत्यादि चन्द्रमाके, 'अग्निर्मूर्धा दिव: ककुत्०' इत्यादि मङ्गलके, 'उद्बुध्यस्व०' इत्यादि मन्त्र बुधके, 'बृहस्पते अति यदर्य:' इत्यादि मन्त्र बृहस्पतिके, 'अन्नात् परिस्रुतो०' इत्यादि मन्त्र शुक्रके, 'शन्नो देवी०' इत्यादि मन्त्र शनैश्चरके, 'काण्डात् काण्डम्' इत्यादि मन्त्र राहुके और 'केतु कृण्वन्नकेतवे०' इत्यादि मन्त्र केतुके हैं। आक, पलाश, खैर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशा—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंकी समिधा हैं। सूर्यादि ग्रहोंमेंसे प्रत्येकके लिये एक सौ आठ या अट्ठाईस बार मधु, घी, दही अथवा खीरकी आहुति देनी चाहिये। गुड़ मिलाया हुआ भात, खीर, हविष्य (मुनि-अन्न), दूध मिलाया हुआ साठीके चावलका भात, दही-भात, घी-भात, तिलचूर्णमिश्रित भात, माष (उड़द) मिलाया हुआ भात और खिचड़ी—इनको ग्रहके क्रमानुसार विद्वान् पुरुष ब्राह्मणके लिये भोजन दे। अपनी शक्तिके अनुसार यथाप्राप्त वस्तुओंसे ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक सत्कार करके उनके लिये क्रमशः धेनु, शङ्ख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, काली गौ, लोहा और बकरा—ये वस्तुएँ दक्षिणामें दे। ये ग्रहोंकी दक्षिणाएँ बतायी गयी हैं। जिस-जिस पुरुषके लिये जो ग्रह जब अष्टम आदि दुष्ट स्थानोंमें स्थित हो, वह पुरुष उस ग्रहकी उस समय विशेष यत्नपूर्वक पूजा करे। ब्रह्माजीने इन ग्रहोंको वर दिया है कि 'जो तुम्हारी पूजा करें, उनकी तुम भी पूजा (मनोरथपूर्तिपूर्वक सम्मान) करना। राजाओंके धन और जातिका उत्कर्ष तथा जगत्‌की जन्म-मृत्यु भी ग्रहोंके ही अधीन है; अतः ग्रह सभीके लिये पूजनीय हैं। जो सदा सूर्यदेवकी पूजा, एवं स्कन्दस्वामीको तथा महागणपतिको तिलक करता है, वह सिद्धिको प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, उसे प्रत्येक कर्ममें सफलता एवं उत्तम लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जो मातृयाग किये बिना ग्रहपूजन करता है, उसपर मातृकाएँ कुपित होती हैं और उसके प्रत्येक कार्यमें विघ्न डालती हैं। शुभकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको 'वसो: पवित्रम्' इस मन्त्रसे वसुधारा समर्पित करके प्रत्येक माङ्गलिक कर्ममें गौरी आदि मातृकाओं-की पूजा करनी चाहिये। उनके नाम ये हैं—गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृकाएँ, वैधृति, धृति, पुष्टि, हृष्टि और तुष्टि। इनके साथ अपनी कुलदेवी और गणेशजी अधिक हैं। वृद्धिके अवसरोंपर इन सोलह मातृकाओंकी अवश्य पूजा करनी चाहिये। इन सबकी प्रसन्नताके लिये क्रमशः आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, (आचमनीय), स्नान, (वस्त्र), चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, फल, नैवेद्य, आचमनीय, ताम्बूल, पूगीफल, आरती तथा दक्षिणा—ये उपचार समर्पित करने चाहिये।

अब मैं पितृकल्पका वर्णन करूँगा, जो धन और संततिकी वृद्धि करनेवाला है। अमावास्या, अष्टका, वृद्धि (विवाहादिका अवसर), कृष्णपक्ष, दोनों अयनोंके आरम्भका दिन, श्राद्धीय द्रव्यकी उपस्थिति, उत्तम ब्राह्मणकी प्राप्ति, विषुवत् योग, सूर्यकी संक्रान्ति, व्यतीपात योग, गजच्छाया, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा श्राद्धके लिये रुचिका होना—ये सभी श्राद्धके समय अथवा अवसर कहे गये हैं। सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञानमें अग्रगण्य, श्रोत्रिय, ब्रह्मवेत्ता, युवक, मन्त्र और ब्राह्मणरूप वेदका तत्त्वज्ञ, ज्येष्ठ सामका गान करनेवाला, त्रिमधु[1], त्रिसुपर्ण[2], भानजा, ऋत्विक्, जामाता, यजमान, श्वशुर, मामा, त्रिणाचिकेत[3], दौहित्र, शिष्य, सम्बन्धी, बान्धव, कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, पञ्चाग्निसेवी[4], ब्रह्मचारी तथा पिता-माताके भक्त ब्राह्मण श्राद्धकी सम्पत्ति हैं। रोगी, न्यूनाङ्ग, अधिकाङ्ग, काना, पुनर्भूकी संतान, अवकीर्णी (ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहते हुए ब्रह्मचर्य भंग करनेवाला), कुण्ड (पतिके जीते-जी पर-पुरुषसे उत्पन्न की हुई संतान), गोलक (पतिकी मृत्युके बाद जारज संतान), खराब नखवाला, काले दाँतवाला, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, नपुंसक, कन्याको कलङ्कित करने-वाला, स्वयं जिसपर दोषारोपण किया गया हो वह, मित्र-द्रोही, चुगलखोर, सोमरस बेचनेवाला, बड़े भाईके अविवाहित रहते विवाह करनेवाला, माता, पिता और गुरुका त्याग

---

१. 'मधु वाता' इत्यादि तीन ऋचाओंका जप और तदनुकूल व्रतका आचरण करनेवाला। २. त्रिसौपर्णी ऋचाओंका अध्येता और तत्सम्बन्धी व्रतका पालन करनेवाला। ३. त्रिणाचिकेत-संज्ञक त्रिविध अग्निविद्याको जाननेवाला और तदनुकूल व्रतका पालक। ४. सभ्य, आवसथ्य तथा त्रिणाचिकेत—इन पाँच अग्नियोंका उपासक।

स्वीकार करे। फिर हाथमें लिये हुए अन्नको ब्राह्मणोंके आगे उनकी जूठनके पास ही दक्षिणाग्र कुश भूमिपर रखकर उन कुशोंपर तिल-जल छोड़कर वह अन्न रख दे। उस समय 'ये अग्निदग्धाः' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। फिर ब्राह्मणोंके हाथमें कुल्ला करनेके लिये एक-एक बार जल दे। फिर पिण्डके लिये तैयार किया हुआ सारा अन्न लेकर दक्षिणाभिमुख हो पिण्डपितृयज्ञ-कल्पके अनुसार तिलसहित पिण्डदान करे। इसी प्रकार मातामह आदिके लिये पिण्ड दे। फिर ब्राह्मणोंके आचमनार्थ जल दे, तदनन्तर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और उनके हाथमें जल देकर उनसे प्रार्थनापूर्वक कहे—आपलोग 'अक्षय्यमस्तु' कहें। तब ब्राह्मण 'अक्षय्यम् अस्तु' बोलें। इसके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर कहे—'अब मैं स्वधावाचन कराऊँगा।' ब्राह्मण कहें, 'स्वधावाचन कराओ।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर पितरों और मातामहादिके लिये आप यह स्वधावाचन करें, ऐसा कहे। तब ब्राह्मण बोलें—'अस्तु स्वधा।' इसके अनन्तर पृथ्वीपर जल सींचे और 'विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्' यों कहे। ब्राह्मण भी इस वाक्यको दुहरायें—'प्रीयन्तां विश्वेदेवाः।' तदनन्तर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे श्राद्धकर्ता निम्नाङ्कित मन्त्रका जप करे—

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा विगमद् बहु देयं च नोऽस्त्विति॥

'मेरे दाता बढ़ें। वेद और संतति बढ़े। हमारी श्रद्धा कम न हो और हमारे पास दानके लिये बहुत धन हो।'

यह कहकर ब्राह्मणोंसे नम्रतापूर्वक प्रिय वचन बोले और उन्हें प्रणाम करके विसर्जन करे—'वाजे-वाजे' इत्यादि ऋचाओंको पढ़कर प्रसन्नतापूर्वक विसर्जन करे। पहले पितरोंका, फिर विश्वेदेवोंका विसर्जन करना चाहिये। पहले जिस अर्घ्यपात्रमें संस्रवका जल डाला गया था, उस पितृपात्रको उत्तान करके ब्राह्मणोंको विदा करना चाहिये। ग्रामकी सीमातक ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे जाकर उनके कहनेपर उनकी परिक्रमा करके लौटे और पितृसेवित श्राद्धान्नको इष्टजनोंके साथ भोजन करे। उस रात्रिमें यजमान और ब्राह्मण—दोनोंको ब्रह्मचारी रहना चाहिये।

इसी प्रकार पुत्र-जन्म और विवाहादि वृद्धिके अवसरोंपर प्रदक्षिणावृत्तिसे नान्दीमुख पितरोंका यजन करे। दही और बेर मिले हुए अन्नका पिण्ड दे और तिलसे किये जानेवाले सब कार्य जौसे करे। एकोद्दिष्ट श्राद्ध बिना वैश्वदेवके होता है। उसमें एक ही अर्घ्यपात्र तथा एक ही पवित्रक दिया जाता है। इसमें आवाहन और अग्नौकरणकी क्रिया नहीं होती। सब कार्य जनेऊको अपसव्य रखकर किये जाते हैं। 'अक्षय्यमस्तु' के स्थानमें 'उपतिष्ठताम्' का प्रयोग करे। 'वाजे-वाजे' इस मन्त्रसे ब्राह्मणका विसर्जन करते समय 'अभिरम्यताम्' यों कहे और वे ब्राह्मणलोग 'अभिरताः स्मः' ऐसा उत्तर दें। सपिण्डीकरण श्राद्धमें पूर्वोक्त विधिसे अर्घ्यसिद्धिके लिये गन्ध, जल और तिलसे युक्त चार अर्घ्यपात्र तैयार करे। (इनमेंसे तीन तो पितरोंके पात्र हैं और एक प्रेतका पात्र होता है।) इनमें प्रेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रोंमें डाले। उस समय 'ये समाना' इत्यादि दो मन्त्रोंका उच्चारण करे। शेष क्रिया पूर्ववत् करे। यह सपिण्डीकरण और एकोद्दिष्ट श्राद्ध माताके लिये भी करना चाहिये। जिसका सपिण्डीकरणश्राद्ध वर्ष पूर्ण होनेसे पहले हो जाता है, उसके लिये एक वर्षतक ब्राह्मणको सान्नोदक कुम्भदान देते रहना चाहिये। एक वर्षतक प्रतिमास मृत्युतिथिको एकोद्दिष्ट करना चाहिये; फिर प्रत्येक वर्षमें एक बार क्षयाहतिथिको एकोद्दिष्ट करना उचित है। प्रथम एकोद्दिष्ट तो मरनेके बाद ग्यारहवें दिन किया जाता है। सभी श्राद्धोंमें पिण्डोंको गाय, बकरे अथवा लेनेकी इच्छावाले ब्राह्मणोंको दे देना चाहिये। अथवा उन्हें अग्निमें या अगाध जलमें डाल देना चाहिये। जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करके वहाँसे उठ न जायँ, तबतक उच्छिष्ट स्थानपर झाड़ू न लगाये। श्राद्धमें हविष्यान्नके दानसे एक मासतक और खीर देनेसे एक वर्षतक पितरोंकी तृप्ति बनी रहती है। भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशीको विशेषतः मघा नक्षत्रका योग होनेपर जो कुछ पितरोंके निमित्त दिया जाता है, वह अक्षय होता है। एक चतुर्दशीको छोड़कर प्रतिपदासे अमावास्यातककी चौदह तिथियोंमें श्राद्ध-दान करनेवाला पुरुष क्रमशः इन चौदह फलोंको पाता है—रूप-शीलयुक्त कन्या, बुद्धिमान् तथा रूपवान् दामाद, पशु, श्रेष्ठ पुत्र, द्यूत-विजय, खेतीमें लाभ, व्यापारमें लाभ, दो खुर और एक खुरवाले पशु, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न पुत्र, सुवर्ण, रजत, कुप्यक (त्रपु-सीसा आदि), जाति-भाइयोंमें श्रेष्ठता और सम्पूर्ण मनोरथ। जो लोग शस्त्रद्वारा मारे गये हों, उन्हींके लिये उस चतुर्दशी तिथिको श्राद्ध प्रदान किया जाता है। स्वर्ग, संतान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, पुत्र, श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रधानता, शुभ, प्रवृत्तचक्रता (अप्रतिहत शासन), वाणिज्य आदि, नीरोगता, यश, शोकहीनता, परम गति, धन, वेद, चिकित्सामें सफलता, कुप्य (त्रपु-सीसा आदि), गौ, बकरी,

स्वीकार करे। फिर हाथमें लिये हुए अन्नको ब्राह्मणोंके आगे उनकी जूठनके पास ही दक्षिणाग्र कुश भूमिपर रखकर उन कुशोंपर तिल-जल छोड़कर वह अन्न रख दे। उस समय 'ये अग्निदग्धाः' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। फिर ब्राह्मणोंके हाथमें कुल्ला करनेके लिये एक-एक बार जल दे। फिर पिण्डके लिये तैयार किया हुआ सारा अन्न लेकर दक्षिणाभिमुख हो पिण्डपितृयज्ञ-कल्पके अनुसार तिलसहित पिण्डदान करे। इसी प्रकार मातामह आदिके लिये पिण्ड दे। फिर ब्राह्मणोंके आचमनार्थ जल दे, तदनन्तर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और उनके हाथमें जल देकर उनसे प्रार्थनापूर्वक कहे—आपलोग 'अक्षय्यमस्तु' कहें। तब ब्राह्मण 'अक्षय्यम् अस्तु' बोलें। इसके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर कहे—'अब मैं स्वधावाचन कराऊँगा।' ब्राह्मण कहें, 'स्वधावाचन कराओ।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर पितरों और मातामहादिके लिये आप यह स्वधावाचन करें, ऐसा कहे। तब ब्राह्मण बोलें—'अस्तु स्वधा।' इसके अनन्तर पृथ्वीपर जल सींचे और 'विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्' यों कहे। ब्राह्मण भी इस वाक्यको दुहरायें—'प्रीयन्तां विश्वेदेवाः।' तदनन्तर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे श्राद्धकर्ता निम्नाङ्कित मन्त्रका जप करे—

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा विगमद् बहु देयं च नोऽस्त्विति॥

'मेरे दाता बढ़ें। वेद और संतति बढ़े। हमारी श्रद्धा कम न हो और हमारे पास दानके लिये बहुत धन हो।'

यह कहकर ब्राह्मणोंसे नम्रतापूर्वक प्रिय वचन बोले और उन्हें प्रणाम करके विसर्जन करे—'वाजे-वाजे' इत्यादि ऋचाओं-को पढ़कर प्रसन्नतापूर्वक विसर्जन करे। पहले पितरोंका, फिर विश्वेदेवोंका विसर्जन करना चाहिये। पहले जिस अर्घ्यपात्रमें संस्रवका जल डाला गया था, उस पितृपात्रको उत्तान करके ब्राह्मणोंको विदा करना चाहिये। ग्रामकी सीमातक ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे जाकर उनके कहनेपर उनकी परिक्रमा करके लौटे और पितृसेवित श्राद्धान्नको इष्टजनोंके साथ भोजन करे। उस रात्रिमें यजमान और ब्राह्मण—दोनोंको ब्रह्मचारी रहना चाहिये।

इसी प्रकार पुत्र-जन्म और विवाहादि वृद्धिके अवसरों-पर प्रदक्षिणावृत्तिसे नान्दीमुख पितरोंका यजन करे। दही और बेर मिले हुए अन्नका पिण्ड दे और तिलसे किये जाने-वाले सब कार्य जौसे करे। एकोद्दिष्ट श्राद्ध बिना वैश्वदेवके होता है। उसमें एक ही अर्घ्यपात्र तथा एक ही पवित्रक दिया जाता है। इसमें आवाहन और अग्नौकरणकी क्रिया नहीं होती। सब कार्य जनेऊको अपसव्य रखकर किये जाते हैं। 'अक्षय्य-मस्तु' के स्थानमें 'उपतिष्ठताम्' का प्रयोग करे। 'वाजे-वाजे' इस मन्त्रसे ब्राह्मणका विसर्जन करते समय 'अभिरम्यताम्' यों कहे और वे ब्राह्मणलोग 'अभिरताः स्मः' ऐसा उत्तर दें। सपिण्डीकरण श्राद्धमें पूर्वोक्त विधिसे अर्घ्यसिद्धिके लिये गन्ध, जल और तिलसे युक्त चार अर्घ्यपात्र तैयार करे। (इनमेंसे तीन तो पितरोंके पात्र हैं और एक प्रेतका पात्र होता है।) इनमें प्रेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रोंमें डाले। उस समय 'ये समाना' इत्यादि दो मन्त्रोंका उच्चारण करे। शेष क्रिया पूर्ववत् करे। यह सपिण्डीकरण और एकोद्दिष्ट श्राद्ध माताके लिये भी करना चाहिये। जिसका सपिण्डीकरणश्राद्ध वर्ष पूर्ण होनेसे पहले हो जाता है, उसके लिये एक वर्षतक ब्राह्मणको सान्नोदक कुम्भदान देते रहना चाहिये। एक वर्षतक प्रतिमास मृत्यु-तिथिको एकोद्दिष्ट करना चाहिये; फिर प्रत्येक वर्षमें एक बार क्षयाहतिथिको एकोद्दिष्ट करना उचित है। प्रथम एकोद्दिष्ट तो मरनेके बाद ग्यारहवें दिन किया जाता है। सभी श्राद्धोंमें पिण्डोंको गाय, बकरे अथवा लेनेकी इच्छावाले ब्राह्मणोंको दे देना चाहिये। अथवा उन्हें अग्निमें या अगाध जलमें डाल देना चाहिये। जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करके वहाँसे उठ न जायँ, तबतक उच्छिष्ट स्थानपर झाड़ू न लगाये। श्राद्धमें हविष्यान्नके दानसे एक मासतक और खीर देनेसे एक वर्षतक पितरोंकी तृप्ति बनी रहती है। भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशीको विशेषतः मघा नक्षत्रका योग होनेपर जो कुछ पितरोंके निमित्त दिया जाता है, वह अक्षय होता है। एक चतुर्दशीको छोड़कर प्रतिपदासे अमावास्यातककी चौदह तिथियोंमें श्राद्ध-दान करनेवाला पुरुष क्रमशः इन चौदह फलोंको पाता है—रूप-शीलयुक्त कन्या, बुद्धिमान् तथा रूपवान् दामाद, पशु, श्रेष्ठ पुत्र, द्यूत-विजय, खेतीमें लाभ, व्यापारमें लाभ, दो खुर और एक खुरवाले पशु, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न पुत्र, सुवर्ण, रजत, कुप्यक (त्रपु-सीसा आदि), जाति-भाइयोंमें श्रेष्ठता और सम्पूर्ण मनोरथ। जो लोग शस्त्रद्वारा मारे गये हों, उन्हींके लिये उस चतुर्दशी तिथिको श्राद्ध प्रदान किया जाता है। स्वर्ग, संतान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, पुत्र, श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रधानता, शुभ, प्रवृत्तचक्रता (अप्रतिहत शासन), वाणिज्य आदि, नीरोगता, यश, शोकहीनता, परम गति, धन, वेद, चिकित्सामें सफलता, कुप्य (त्रपु-सीसा आदि), गौ, बकरी,

अनुक्त कर्ममें[1] द्वितीया विभक्तिका प्रयोग कहा गया है (कर्तृवाच्य वाक्योंमें कर्म अनुक्त होता है, वहाँ उसकी प्रधानता नहीं रहती, इसीलिये उसे 'अनुक्त' कहा गया है)। 'अन्तरा', 'अन्तरेण'[2] इन शब्दोंका जिसके साथ संयोग या अन्वय हो, उस शब्दमें द्वितीया विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥४॥

टाभ्याम्भिसस्तृतीया स्यात्करणे कर्तरीरिता।
येन क्रियते तत्करणं स कर्ता स्यात्करोति यः ॥ ५ ॥

'टा', 'भ्याम्', 'भिस्'—यह तृतीया विभक्ति है (यहाँ भी पूर्ववत् एकवचन आदिका विभाग समझना चाहिये)। करणमें[3] और अनुक्त[4] कर्तामें तृतीया विभक्ति बतायी गयी है। जिसकी सहायतासे कार्य किया जाता है, उसका नाम करण है और जो कार्य करता है, उसे कर्ता कहते हैं (जिस वाक्यमें कर्मकी प्रधानता होती है, वहाँ कर्ता अनुक्त माना गया है) ॥५॥

ङेभ्याम्भ्यसश्चतुर्थी स्यात्सम्प्रदाने च कारके।
यस्मै दित्सां धारयेद्वै रोचते सम्प्रदानकम् ॥ ६ ॥

'ङे', 'भ्याम्' 'भ्यस्'—यह चतुर्थी विभक्ति है। इसका प्रयोग सम्प्रदान कारकमें होता है। जिस व्यक्तिको कोई वस्तु देनेकी इच्छा मनमें धारण की जाय, उसकी 'सम्प्रदान'[5] संज्ञा होती है तथा जिसको कोई वस्तु रुचिकर प्रतीत होती है, वह भी सम्प्रदान[1] है (सम्प्रदानमें चतुर्थी विभक्ति होती है) ॥६॥

पञ्चमी स्यान्ङसिभ्याम्भ्यो ह्यपादाने च कारके।
यतोऽपैति समादत्ते अपादाने च यं यतः ॥ ७ ॥

'ङसि' 'भ्याम्', 'भ्यस्' यह पञ्चमी विभक्ति है। इसका प्रयोग अपादान कारकमें होता है। जहाँसे कोई जाता है, जिससे कोई किसी वस्तुको लेता है तथा जिस स्थानसे कोई वस्तु अलग की जाती या स्वतः अलग होती है, विभाग या अलगावकी उस सीमाको अपादान[2] कारक कहते हैं ॥७॥

ङसोसामश्च षष्ठी स्यात्स्वामिसम्बन्धमुख्यके।
ङ्योस्सुपः सप्तमी तु स्यात्सा चाधिकरणे भवेत् ॥ ८ ॥

'ङस्', 'ओस्', 'आम्'—यह षष्ठी विभक्ति है। जहाँ स्वामी-सेवक आदि सम्बन्धकी[3] प्रधानता हो, वहाँ (भेदकमें) षष्ठी विभक्तिका प्रयोग होता है। 'ङि', 'ओस्' 'सुप्'—यह सप्तमी विभक्ति है। इसका प्रयोग अधिकरण[4] कारकमें होता है ॥८॥

आधारे चापि विप्रेन्द्र रक्षार्थानां प्रयोगतः।
ईप्सितं चानीप्सिताद् यत्तदपादानकं स्मृतम् ॥ ९ ॥

विप्रवर! आधारमें[5] भी सप्तमी होती है। भयार्थक[6] तथा रक्षार्थक[7] धातुओंका प्रयोग होनेपर भयके कारणकी अपादान संज्ञा होती है। इसी प्रकार वारणार्थक[8] धातुओंका

पदिक संज्ञा होकर न लोप न हो जाय। प्रत्ययरहित कहनेका कारण यह है कि 'हरिषु', 'करोषि' इत्यादिमें भी 'सु' की प्रातिपदिक संज्ञा न हो जाय। यदि प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती तो औत्सर्गिक एकवचन लाकर पदसंज्ञा करनेपर उक्त उदाहरणोंमें दन्त्य 'स'के स्थानमें मूर्धन्य 'ष' नहीं हो पाता; क्योंकि पदादि 'स' कारके स्थानमें 'ष' कार होनेका निषेध है। प्रत्ययके निषेधसे प्रत्ययान्तका भी निषेध समझना चाहिये। इससे 'हरिषु' इत्यादि समुदायकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होगी। सार्थक शब्दकी ही प्रातिपदिक संज्ञा होती है, निरर्थककी नहीं। इसलिये 'धनम्, वनम्' इत्यादिमें प्रत्येक अक्षरकी अलग-अलग 'प्रातिपदिक' संज्ञा नहीं हो सकती।

१. 'हरिं भजति' (श्रीहरिको भजता है) इत्यादि वाक्योंमें 'हरि' इत्यादि पद अनुक्त हैं; इसलिये उनमें द्वितीया विभक्तिका प्रयोग होता है। २. इसका उदाहरण है 'अन्तरा त्वा मा हरिः' (तुम्हारे और मेरे भीतर भी भगवान् हैं)। 'अन्तरेण हरिं न सुखम्' (भगवान्‌के विना सुख नहीं है) इत्यादि। ३-४. 'रामेण बाणेन हतो वाली' (श्रीरामने बाणसे वालीको मारा) इस वाक्यमें राम अनुक्त कर्ता हैं और बाण करण। अतः इन दोनोंमें तृतीया विभक्तिका प्रयोग हुआ है। ५. 'ब्राह्मणाय गां ददाति' (ब्राह्मणको गाय देता है) इस वाक्यमें ब्राह्मण सम्प्रदान है, इसलिये उसमें चतुर्थी हुई है।

१. इसका उदाहरण है—'हरये रोचते भक्तिः' (भगवान्‌को भक्ति पसंद है)। २. इसके उदाहरण इस प्रकार हैं—'ग्रामादपैति' (गाँवसे दूर जाता है), 'देवदत्तः यज्ञदत्तात् पुस्तकं समादत्ते' (देवदत्त यज्ञदत्तसे पुस्तक लेता है), 'पात्रात् ओदनं गृह्णाति' (बर्तनसे भात लेता है), 'अश्वात् पतति' (घोड़ेसे गिरता है), 'पर्वतात् नदी निस्सरति' (पर्वतसे नदी निकलती है) इत्यादि। ३. 'गृहस्य स्वामी' (घरके स्वामी), 'राज्ञः सेवकः' (राजाका सेवक), 'दशरथस्य पुत्रः' (दशरथके पुत्र), 'सीतायाः पतिः' (सीताके पति) इत्यादि। ४. 'गृहे वसति' (घरमें रहता है)। ५. आधार तीन प्रकारके हैं—औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक। इनके क्रमशः उदाहरण इस प्रकार हैं—'कटे आस्ते' (चटाईपर बैठता है), 'मोक्षे इच्छा अस्ति' (मोक्ष-विषयक इच्छा है), 'सर्वस्मिन् आत्मा अस्ति' (सबमें आत्मा है)। ६. 'चौर्याद्बिभेति' (चोरीसे डरता है)। ७. 'पापाद् रक्षति' (पापसे बचाता है)। ८. 'यवेभ्यो गां वारयति' (जौसे गायको हटाता है)।

अनुक्त कर्ममें[1] द्वितीया विभक्तिका प्रयोग कहा गया है (कर्तृवाच्य वाक्योंमें कर्म अनुक्त होता है, वहाँ उसकी प्रधानता नहीं रहती, इसीलिये उसे 'अनुक्त' कहा गया है)। 'अन्तरा', 'अन्तरेण'[2] इन शब्दोका जिसके साथ संयोग या अन्वय हो, उस शब्दमें द्वितीया विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥४॥

टाभ्याम्भिसस्तृतीया स्यात्करणे कर्तरीरिता ।
येन क्रियते तत्करणं स कर्ता स्यात्करोति यः ॥ ५ ॥

'टा', 'भ्याम्', 'भिस्'—यह तृतीया विभक्ति है (यहाँ भी पूर्ववत् एकवचन आदिका विभाग समझना चाहिये)। करणमे[3] और अनुक्त[4] कर्तामें तृतीया विभक्ति बतायी गयी है। जिसकी सहायतासे कार्य किया जाता है, उसका नाम करण है और जो कार्य करता है, उसे कर्ता कहते हैं (जिस वाक्यमें कर्मकी प्रधानता होती है, वहाँ कर्ता अनुक्त माना गया है)॥५॥

ङेभ्याम्भ्यसश्चतुर्थी स्यात्सम्प्रदाने च कारके ।
यस्मै दित्सां धारयेद्वै रोचते सम्प्रदानकम् ॥ ६ ॥

'ङे', 'भ्याम्' 'भ्यस्'—यह चतुर्थी विभक्ति है। इसका प्रयोग सम्प्रदान कारकमें होता है। जिस व्यक्तिको कोई वस्तु देनेकी इच्छा मनमें धारण की जाय, उसकी 'सम्प्रदान' संज्ञा होती है तथा जिसको कोई वस्तु रुचिकर प्रतीत होती है, वह भी सम्प्रदान[1] है (सम्प्रदानमें चतुर्थी विभक्ति होती है) ॥६॥

पञ्चमी स्यान्ङसिभ्याम्भ्यो ह्यपादाने च कारके ।
यतोऽपैति समादत्ते अपादाने च यं यतः ॥ ७ ॥

'ङसि' 'भ्याम्', 'भ्यस्' यह पञ्चमी विभक्ति है। इसका प्रयोग अपादान कारकमें होता है। जहाँसे कोई जाता है, जिससे कोई किसी वस्तुको लेता है तथा जिस स्थानसे कोई वस्तु अलग की जाती या स्वतः अलग होती है, विभाग या अलगावकी उस सीमाको अपादान[2] कारक कहते हैं ॥७॥

ङसोसामश्च षष्ठी स्यात्स्वामिसम्बन्धमुख्यके ।
ङ्योस्सुपः सप्तमी तु स्यात्सा चाधिकरणे भवेत् ॥ ८ ॥

'ङस्', 'ओस्', 'आम्'—यह षष्ठी विभक्ति है। जहाँ स्वामी-सेवक आदि सम्बन्धकी[3] प्रधानता हो, वहाँ (भेदकमें) षष्ठी विभक्तिका प्रयोग होता है। 'ङि', 'ओस्' 'सुप्'—यह सप्तमी विभक्ति है। इसका प्रयोग अधिकरण[4] कारकमें होता है ॥८॥

आधारे चापि विप्रेन्द्र रक्षार्थानां प्रयोगतः ।
ईप्सितं चानीप्सिताद् यत्तदपादानकं स्मृतम् ॥ ९ ॥

विप्रवर ! आधारमें[5] भी सप्तमी होती है। भयार्थक[6] तथा रक्षार्थक[7] धातुओंका प्रयोग होनेपर भयके कारणकी अपादान संज्ञा होती है। इसी प्रकार वारणार्थक[8] धातुओका

पदिक संज्ञा होकर न लोप न हो जाय। प्रत्ययरहित कहनेका कारण यह है कि 'हरिषु', 'करोषि' इत्यादिमें भी 'सु' की प्रातिपदिक संज्ञा न हो जाय। यदि प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती तो औत्सर्गिक एकवचन लाकर पदसंज्ञा करनेपर उक्त उदाहरणोंमें दन्त्य 'स'के स्थानमें मूर्धन्य 'ष' नहीं हो पाता; क्योंकि पदादि 'स' कारके स्थानमें 'ष' कार होनेका निषेध है। प्रत्ययके निषेधसे प्रत्ययान्तका भी निषेध समझना चाहिये। इससे 'हरिषु' इत्यादि समुदायकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होगी। सार्थक शब्दकी ही प्रातिपदिक संज्ञा होती है, निरर्थककी नहीं। इसलिये 'धनम्, वनम्' इत्यादिमें प्रत्येक अक्षरकी अलग-अलग 'प्रातिपदिक' संज्ञा नहीं हो सकती।

१. 'हरिं भजति' (श्रीहरिको भजता है) इत्यादि वाक्योंमें 'हरि' इत्यादि पद अनुक्त हैं; इसलिये उनमें द्वितीया विभक्तिका प्रयोग होता है। २. इसका उदाहरण है 'अन्तरा त्वा मा हरि.' (तुम्हारे और मेरे भीतर भी भगवान् हैं)। 'अन्तरेण हरिं न सुखम्' (भगवान्‌के विना सुख नहीं है) इत्यादि। ३-४. 'रामेण बाणेन हतो वाली' (श्रीरामने बाणसे वालीको मारा) इस वाक्यमें राम अनुक्त कर्ता हैं और बाण करण। अत इन दोनोंमें तृतीया विभक्तिका प्रयोग हुआ है। ५. 'ब्राह्मणाय गां ददाति' (ब्राह्मणको गाय देता है) इस वाक्यमें ब्राह्मण सम्प्रदान है, इसलिये उसमें चतुर्थी हुई है।

१. इसका उदाहरण है—'हरये रोचते भक्ति '(भगवान्‌को भक्ति पसंद है)। २. इसके उदाहरण इस प्रकार हैं—'ग्रामादपैति'(गाँवसे दूर जाता है),'देवदत्तः यज्ञदत्तात् पुस्तकं समादत्ते'(देवदत्त यज्ञदत्तसे पुस्तक लेता है), 'पात्रात् ओदनं गृह्णाति' (बर्तनसे भात लेता है), 'अश्वाद् पतति' (घोड़ेसे गिरता है), 'पर्वतात् नदी निस्सरति' (पर्वतसे नदी निकलती है) इत्यादि। ३. 'गृहस्य स्वामी' (घरके स्वामी), 'राज्ञः सेवकः' (राजाका सेवक), 'दशरथस्य पुत्रः' (दशरथके पुत्र), 'सीतायाः पतिः' (सीताके पति) इत्यादि। ४. 'गृहे वसति' (घरमें रहता है)। ५. आधार तीन प्रकारके हैं—औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक। इनके क्रमशः उदाहरण इस प्रकार हैं—'कटे आस्ते' (चटाईपर बैठता है), 'मोक्षे इच्छा अस्ति' (मोक्षविषयक इच्छा है), 'सर्वस्मिन् आत्मा अस्ति' (सबमें आत्मा है)। ६. 'चौराद्बिभेति' (चोरीसे डरता है)। ७. 'पापाद् रक्षति' (पापसे बचाता है)। ८. 'यवेभ्यो गां वारयति' (जौसे गायको हटाता है)।

भगवान रामका सरयूतटका ध्यान [पृष्ठ ३७२

श्रीसीताजीका ध्यान [पृष्ठ ३७३

भगवान् श्रीरामका ध्यान [पृष्ठ ३६९

भगवान रामका सरयूतटका ध्यान [पृष्ठ ३७२

श्रीसीताजीका ध्यान [पृष्ठ ३७३

है[1]। तादर्थ्यमें अर्थात् जिस वस्तुके लिये कोई कार्य किया जाता है, उस 'वस्तु'के बोधक शब्दमें चतुर्थी विभक्ति होती है[2]। 'तुमुन्' के अर्थमें प्रयुक्त अव्ययभिन्न भावार्थक प्रत्ययान्त शब्दमें भी चतुर्थी विभक्तिका ही प्रयोग होना चाहिये[3]॥१३॥

तृतीया सहयोगे स्यात्कुत्सितेऽङ्गे विशेषणे।
काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगे च षष्ठ्यपि ॥१४॥
स्वामीश्वराधिपतिभिः साक्षिदायादसूतकैः।
निर्धारणे द्वे विभक्ती षष्ठी हेतुप्रयोगके ॥१५॥

'सह' तथा उसके पर्यायवाची शब्दोंसे योग होनेपर तृतीया विभक्ति होती है[4] (इसी प्रकार सदृशार्थक शब्दोंके योगमें भी तृतीया होती है)। यदि कोई विकृत अङ्ग विशेषण-रूपसे प्रयुक्त हुआ हो तो उसमें भी तृतीया विभक्ति होती है[6]। जहाँ एक क्रियाके होते समय दूसरी क्रिया लक्षित होती हो, वहाँ सप्तमी विभक्ति होती है[7]। 'स्वामी', 'ईश्वर', 'अधिपति', 'साक्षी', 'दायाद', 'प्रसूत' (तथा 'प्रतिभू')—इन शब्दोंके योगमें सप्तमी और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं[8]। जिस समुदायमेंसे किसी एककी जाति-सम्बन्धी, गुण-सम्बन्धी, क्रिया-सम्बन्धी अथवा किसी विशेष नामवाले व्यक्तिसम्बन्धी विशेषताका निश्चय करना हो, उस समुदायबोधक शब्दमें सप्तमी और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं[9]। 'हेतु' शब्दका प्रयोग करके यदि हेत्वर्थका प्रकाशन किया जाय तो षष्ठी विभक्ति होती है[1]॥१४-१५॥

स्मृत्यर्थकर्मणि तथा करोतेः प्रतियत्नके।
हिंसार्थानां प्रयोगे च कृति कर्मणि कर्तरि ॥१६॥

स्मरणार्थक क्रियाओंके कर्ममें शेषषष्ठी होती है[2]। 'कृ' धातुके कर्ममें भी शेषषष्ठीका विधान है; यदि प्रतियत्न (गुणाधान या संस्कार) सूचित होता हो[3]। 'हिंसा' अर्थ-वाले धातुओंका प्रयोग होनेपर उनके कर्ममें शेषषष्ठी होती है[4]। कृदन्त शब्दका योग होनेपर कर्ता और कर्ममें षष्ठी होती है[5]॥१६॥

न कर्तृकर्मणोः षष्ठी निष्ठादिप्रतिपादने।
एता वै द्विविधा ज्ञेयाः सुबादिषु विभक्तिषु।
भूवादिषु तिङन्तेषु लकारा दश वै स्मृताः ॥१७॥

यदि निष्ठा आदिका प्रतिपादन करनेवाले प्रत्ययोंसे युक्त शब्दका प्रयोग हो तो कर्ता और कर्ममें षष्ठी नहीं होती[6]। ये विभक्तियाँ दो प्रकारकी जाननी चाहिये—सुप् और तिङ्। ऊपर सुबादि विभक्तियोंके विषयमें वर्णन किया गया है। क्रियावाचक 'भू' 'वा' आदि शब्द ही तिङ् विभक्तियोंके

---

१ क्रमशः उदाहरण इस प्रकार है—'हरये नमः। स्वस्ति प्रजाभ्यः। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलं मल्लो मल्लाय। वषट् इन्द्राय।
२. यथा—'मुक्तये हरिं भजति (मोक्षके लिये भगवान्‌का भजन करता है)। ३. यागाय याति—यष्टुं यातीत्यर्थः (यज्ञके लिये जाता है)।
४. यथा—पुत्रेण सहागतः पिता (पुत्रके साथ पिता आया है)। यहाँ 'सह' के योगमें तृतीया हुई है। इसी प्रकार 'साकम्', 'सार्धम्', 'समम्'—इन शब्दोंके योगमें भी तृतीया जाननी चाहिये।
५. 'सदृश', 'तुल्य', 'सम', 'निभ', 'सदृक्ष', 'नीकाश', 'संकाश', 'उपमित' आदि शब्द सदृशार्थक हैं; इनके योगमें भी तृतीया होती है, यथा—मेघेन सदृशः श्यामो हरिः (भगवान् विष्णु मेघके समान श्याम हैं)। ६. यथा—अक्ष्णा काणः (आँखका काना), कर्णेन बधिरः (कानका बहरा), पादेन खञ्जः (पैरका लँगड़ा) इत्यादि।
७. यथा—गोषु दुह्यमानासु गतः (जब गौएँ दुही जाती थीं, उस समय गया)। ८. गवां गोषु वा स्वामी। मनुष्याणाम् मनुष्येषु वा ईश्वरः—इत्यादि उदाहरण हैं। ९ यथा—नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः। गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः—ये उदाहरण हैं।

१ यथा—अन्नस्य हेतोर्वसति। २. मातुः स्मरति, मातुः स्मरणम् आदि उदाहरण हैं। शेषत्वेन विवक्षित होनेपर ही षष्ठी होती है। विवक्षा न होनेपर 'मातरं स्मरति' इस प्रकार द्वितीया विभक्ति ही होगी। ३. उदाहरण—एधो दकस्योपस्करणम्—एधो दकस्योपस्कुरुते।
४. महर्षि पाणिनिने यहाँ—'जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्' (२। ३। ५६) इस सूत्रद्वारा हिंसा-अर्थमें परिगणित धातुओंको ही ग्रहण किया है। उदाहरणके लिये 'चौरस्योज्जासनम्' 'चौरस्य प्रणिहननम्, निहनन, प्रहणनं वा।' 'चौरस्योन्नाटनम्।' 'चौरस्य क्राथनम्।' 'चौरस्य पेषणं वा।' इत्यादि प्रयोग हैं।
५. यथा—'कृष्णस्य कृतिः' यहाँ 'कृष्ण' कर्ता है, उसमें षष्ठी हुई है। 'जगतः कर्ता कृष्णः' इसमें 'जगत्' कर्म है, यहाँ कर्ममें षष्ठी हुई है। ६. आदि पदसे 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थ-तृनाम्' (पा. सू. २। ३। ६९) इस सूत्रमें निर्दिष्ट स्थलोंको ग्रहण करना चाहिये। निष्ठाका उदाहरण यह है—'विष्णुना हता दैत्याः' (विष्णुसे दैत्य मारे गये)। 'दैत्यान् हतवान् विष्णुः' (दैत्योंको विष्णुने मारा)। इसमें कृदन्त शब्दका योग होनेसे विष्णुशब्दमें षष्ठीकी प्राप्ति थी, जो इस निषेधसे बाधित हो गयी।

है[1]। तादर्थ्यमें अर्थात् जिस वस्तुके लिये कोई कार्य किया जाता है, उस 'वस्तु'के बोधक शब्दमें चतुर्थी विभक्ति होती है[2]। 'तुमुन्' के अर्थमें प्रयुक्त अव्ययभिन्न भावार्थक प्रत्ययान्त शब्दमें भी चतुर्थी विभक्तिका ही प्रयोग होना चाहिये[3]॥१३॥

> तृतीया सहयोगे स्यात्कुत्सितेऽङ्गे विशेषणे।
> काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगे च षष्ठ्यपि ॥१४॥
> स्वामीश्वराधिपतिभिः साक्षिदायादसूतकैः।
> निर्धारणे द्वे विभक्ती षष्ठी हेतुप्रयोगके ॥१५॥

'सह' तथा उसके पर्यायवाची शब्दोंसे योग होनेपर तृतीया विभक्ति होती है[4] (इसी प्रकार सदृशार्थक शब्दोंके योगमें भी तृतीया होती है)। यदि कोई विकृत अङ्ग विशेषण-रूपसे प्रयुक्त हुआ हो तो उसमें भी तृतीया विभक्ति होती है[6]। जहाँ एक क्रियाके होते समय दूसरी क्रिया लक्षित होती हो, वहाँ सप्तमी विभक्ति होती है[7]। 'स्वामी', 'ईश्वर', 'अधिपति', 'साक्षी', 'दायाद', 'प्रसूत' (तथा 'प्रतिभू')—इन शब्दोंके योगमें सप्तमी और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं[8]। जिस समुदायमेंसे किसी एककी जाति-सम्बन्धी, गुण-सम्बन्धी, क्रिया-सम्बन्धी अथवा किसी विशेष नामवाले व्यक्तिसम्बन्धी विशेषताका निश्चय करना हो, उस समुदायबोधक शब्दमें सप्तमी और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं[9]। 'हेतु' शब्दका प्रयोग करके यदि हेत्वर्थका प्रकाशन किया जाय तो षष्ठी विभक्ति होती है[1]॥१४-१५॥

> स्मृत्यर्थकर्मणि तथा करोतेः प्रतियत्नके।
> हिंसार्थानां प्रयोगे च कृति कर्मणि कर्तरि ॥१६॥

स्मरणार्थक क्रियाओंके कर्ममें शेषषष्ठी होती है[2]। 'कृ' धातुके कर्ममें भी शेषषष्ठीका विधान है; यदि प्रतियत्न (गुणाधान या संस्कार) सूचित होता हो[3]। 'हिंसा' अर्थ-वाले धातुओंका प्रयोग होनेपर उनके कर्ममें शेषषष्ठी होती है[4]। कृदन्त शब्दका योग होनेपर कर्ता और कर्ममें षष्ठी होती है[5]॥१६॥

> न कर्तृकर्मणोः षष्ठी निष्ठादिप्रतिपादने।
> एता वै द्विविधा ज्ञेयाः सुबादिषु विभक्तिषु।
> भूवादिषु तिङन्तेषु लकारा दश वै स्मृताः ॥१७॥

यदि निष्ठा आदिका प्रतिपादन करनेवाले प्रत्ययोंसे युक्त शब्दका प्रयोग हो तो कर्ता और कर्ममें षष्ठी नहीं होती[6]। ये विभक्तियाँ दो प्रकारकी जाननी चाहिये—सुप् और तिङ्। ऊपर सुबादि विभक्तियोंके विषयमें वर्णन किया गया है। क्रियावाचक 'भू' 'वा' आदि शब्द ही तिङ् विभक्तियोंके

---

१ क्रमशः उदाहरण इस प्रकार हैं—'हरये नमः। स्वस्ति प्रजाभ्यः। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलं मल्लो मल्लाय। वषट् इन्द्राय। २. यथा—'मुक्तये हरिं भजति (मोक्षके लिये भगवान्का भजन करता है)। ३. यागाय याति—यष्टुं यातीत्यर्थः (यज्ञके लिये जाता है)। ४. यथा—पुत्रेण सहागतः पिता (पुत्रके साथ पिता आया है)। यहाँ 'सह' के योगमें तृतीया हुई है। इसी प्रकार 'साकम्', 'सार्धम्', 'समम्'—इन शब्दोंके योगमें भी तृतीया जाननी चाहिये। ५. 'सदृश', 'तुल्य', 'सम', 'निभ', 'सदृक्ष', 'नीकाश', 'संकाश', 'उपमित' आदि शब्द सदृशार्थक हैं; इनके योगमें भी तृतीया होती है, यथा—मेघेन सदृशः श्यामो हरिः (भगवान् विष्णु मेघके समान श्याम हैं)। ६. यथा—अक्ष्णा काणः (आँखका काना), कर्णेन बधिरः (कानका बहरा), पादेन खञ्जः (पैरका लँगड़ा) इत्यादि। ७. यथा—गोषु दुह्यमानासु गतः (जब गौएँ दुही जाती थीं, उस समय गया)। ८. गवां गोषु वा स्वामी। मनुष्याणाम् मनुष्येषु वा ईश्वरः—इत्यादि उदाहरण हैं। ९ यथा—नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः। गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः—ये उदाहरण हैं।

१ यथा—अन्नस्य हेतोर्वसति। २. मातुः स्मरति, मातुः स्मरणम् आदि उदाहरण हैं। शेषत्वेन विवक्षित होनेपर ही षष्ठी होती है। विवक्षा न होनेपर 'मातरं स्मरति' इस प्रकार द्वितीया विभक्ति ही होगी। ३. उदाहरण—एधो दकस्योपस्करणम्—एधो दकस्योपस्कुरुते। ४. महर्षि पाणिनिने यहाँ—'जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्' (२। ३। ५६) इस सूत्रद्वारा हिंसा-अर्थमें परिगणित धातुओंको ही ग्रहण किया है। उदाहरणके लिये 'चौरस्योज्जासनम्' 'चौरस्य प्रणिहननम्, निहनन, प्रहणनं वा।' 'चौरस्योन्नाटनम्।' 'चौरस्य क्राथनम्।' 'चौरस्य पेषणं वा।' इत्यादि प्रयोग हैं। ५. यथा—'कृष्णस्य कृतिः' यहाँ 'कृष्ण' कर्ता है, उसमें षष्ठी हुई है। 'जगतः कर्ता कृष्णः' इसमें 'जगत्' कर्म है, यहाँ कर्ममें षष्ठी हुई है। ६. आदि पदसे 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थ-तृनाम्' (पा. सू. २। ३। ६९) इस सूत्रमें निर्दिष्ट स्थलोंको ग्रहण करना चाहिये। निष्ठाका उदाहरण यह है—'विष्णुना हता दैत्याः' (विष्णुसे दैत्य मारे गये)। 'दैत्यान् हतवान् विष्णुः' (दैत्योंको विष्णुने मारा)। इसमें कृदन्त शब्दका योग होनेसे विष्णुशब्दमें षष्ठीकी प्राप्ति थी, जो इस निषेधसे बाधित हो गयी।

'मनीषा'के साथ 'लाङ्गलीषा' भी सिद्धसंधि है।* मुनीश्वर! गङ्गा+उदकम्=गङ्गोदकम् (गङ्गाजल); तव+लकारः=तवल्कारः (तुम्हारा लकार); सा+इयम्=सेयम् (वह यह—स्त्री)।† स+ऐन्द्रः=सैन्द्रः (वह इन्द्रका भाग)। स+औकारः=सौकारः (वह औकार)। ऋण+ऋणम्=ऋणार्णम् (ऋणके लिये ऋण)। शीत+ऋतः=शीतार्तः (शीतसे युक्त)। कृष्ण+एकत्वम्=कृष्णैकत्वम् (कृष्णकी एकता)। गङ्गा+ओघः=गङ्गौघः (गङ्गाकी जलराशिका प्रवाह)—ये वृद्धि-संधिके उदाहरण हैं‡ ॥२५-२६॥

> दध्यत्र वध्वासनं पित्रर्थो नायको लवणस्तथा।
> त आद्या विष्णवे ह्यत्र तस्मा अर्घो गुरा अधः ॥२७॥

दधि+अत्र=दध्यत्र (यहाँ दही है); वधू+आसनम्=वध्वासनम् (वहूका आसन); पितृ+अर्थः=पित्रर्थः (पिताका धन); ऌ+आकृतिः=लाकृतिः (देवजातिकी माताका स्वरूप)—ये यण्संधिके उदाहरण हैं।* (हरे+ए=हरये—भगवान्के लिये)। नै+अकः=नायकः (स्वामी)। लो+अणः=लवणः (नमक)। (पौ+अकः=पावकः—अग्नि)—ये अयादि संधि कहलाते हैं।† ते+आद्याः=त आद्याः (वे प्रथम हैं)। विष्णो+एह्यत्र=विष्ण एह्यत्र (भगवन् विष्णो! यहाँ पधारिये)। तस्मै+अर्घः=तस्मा अर्घः (उनके लिये अर्घ्य)। गुरौ+अधः=गुरा अधः (गुरुके समीप नीचे)। इन उदाहरणोंमें यलोप और वलोप हुए हैं‡ ॥२७॥

> हरेऽव विष्णोऽवेत्येपादसो मादप्यमी अघाः।
> शौरी एतौ विष्णू इमौ दुर्गे अमू नो अर्जुनः ॥२८॥
> आ एवं च प्रकृत्यैते तिष्ठन्ति मुनिसत्तम।

हरे+अव=हरेऽव (भगवन्! रक्षा कीजिये)। विष्णो+अव=विष्णोऽव (विष्णो! रक्षा कीजिये)। यह पूर्वरूप सन्धि है§। अदस् शब्दसम्बन्धी मकारसे परे यदि दीर्घ 'ई' और 'ऊ' हों तो वे ज्यो-के-त्यों रह जाते हैं। इस अवस्थाको प्रकृतिभाव कहते हैं। जैसे अमी+अघाः (ये पापी हैं)×, शौरी+एतौ=(ये दोनों श्रीकृष्ण-बलराम हैं), विष्णू+इमौ=(ये दोनों विष्णुरूप हैं), दुर्गे+अमू=(ये दोनों दुर्गारूप हैं)। ये भी प्रकृतिभावके ही उदाहरण हैं÷। नो+अर्जुनः (अर्जुन नहीं

अ, इ, उ, ऋ और ऌ—ये स्वर दीर्घ हों या ह्रस्व, यदि अपने सवर्ण स्वरको समीप एवं परवर्ती पायें तो दोनों मिल जाते हैं और उन दोनोंके स्थानपर एक ही दीर्घस्वर हो जाता है। ऋ और ऌ असमान प्रतीत होनेपर भी परस्पर सवर्ण माने गये हैं। अत ऋ+ऌ के मिलनेपर एक ही 'ॠ' बनता है, जैसा कि 'होतॄकारः'मे दिखाया गया है।

* लाङ्गल+ईषा=लाङ्गलीषा। मनस्+ईषा=मनीषा। ये ही इनके पदच्छेद हैं। पहलेमें 'लाङ्गल' शब्दके अन्तका 'अ' ईषाके ईकारमें मिलकर तद्रूप हो गया है। दूसरेमें 'मनस्' के अन्तका 'अस्' भाग ईषाके ईकारका स्वरूप बन गया है। ऐसी संधिको पररूप कहते हैं। 'मनीषा' का अर्थ बुद्धि और 'लाङ्गलीषा' का अर्थ हरिस—हलका ईषादण्ड है। वार्तिककारने मनीषा आदि शब्दोंको 'शकन्ध्व' आदि गण (समुदाय) में सम्मिलित किया है। ऐसे शब्द जो प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रयुक्त हुए हैं और जिनके साधनकी कोई विशेष पद्धति नहीं है, उन्हें निपातनात् सिद्ध माना गया है।

† ये गुणसंधिके उदाहरण हैं। नियम यह है कि 'अ' या 'आ' से परे 'इ' 'उ' अथवा 'ऋ' हों तो वह क्रमशः 'ए' 'ओ' अथवा 'अर्' रूप धारण करता है। ये आदेश दो अक्षरोंके स्थानपर अकेले होते हैं।

‡ नियम यह है कि 'अ' अथवा 'आ' से परे 'ए', 'ओ' अथवा 'ऋ' हो तो दो अक्षरोंके स्थानपर क्रमशः 'ऐ', 'औ' एवं 'आर्' आदेश होते हैं। 'ए' या 'ओ' की जगह 'ऐ' 'औ' हों तो भी वैसा ही रूप बनता है। 'ऋ' के स्थानमें 'आर्' होनेके स्थल परिगणित हैं।

* नियम यह है कि 'इ' 'उ' 'ऋ' 'ऌ'—ये चार अक्षर दीर्घ हों या ह्रस्व, इनसे परे कोई भी असवर्ण (असमान) स्वर होनेपर इन 'इ' कार आदिके स्थानपर क्रमश. य्, व्, र्, ल् आदेश होते हैं।

† नियम यह है कि 'ए', 'ओ', 'ऐ', 'औ'—इनसे परे कोई भी स्वर हो तो इनके स्थानमें क्रमश 'अय्, अव्, आय् और आव्' आदेश होते हैं।

‡ नियम यह है कि कोई भी स्वर परे रहनेपर अवर्णपूर्वक पदान्त य, व का लोप हो जाता है। यहाँ पूर्वोक्त नियमानुसार पहले अय्, अव् आदि आदेश होते हैं, फिर अभी बताये हुए नियम के अनुसार य, व का लोप हो जाता है। यहाँ 'य'-लोप या 'व'-लोप होनेपर 'त आद्या' 'विष्ण एह्यत्र' आदिमें पुन दीर्घ एवं गुण आदि सन्धि नहीं हो सकती; क्योंकि इन सन्धियोंकी दृष्टिमें य-लोप, व-लोप असिद्ध हैं; इसलिये इनकी प्रवृत्ति ही नहीं होती। सारांश यह कि इन स्थलोंमें पुनः सन्धिका निषेध है।

§ नियम यह है कि पदान्त एकार और ओकारके बाद यदि ह्रस्व अकार हो तो वह पूर्ववर्ती स्वरमें मिल जाता है।

× इस उदाहरणमें यण्सन्धि प्राप्त हुई थी, किंतु अभी बताये हुए नियमके अनुसार प्रकृतिभाव होनेसे सन्धि नहीं हुई।

÷ पूर्वके दो उदाहरणोंमें यण्की और अन्तिम उदाहरणमें पूर्वरूप-

'मनीषा'के साथ 'लाङ्गलीषा' भी सिद्धसंधि है।* मुनीश्वर ! गङ्गा+उदकम्=गङ्गोदकम् (गङ्गाजल), तव+ऌकारः= तवल्कारः (तुम्हारा ऌकार), सा+इयम्=सेयम् (वह यह—स्त्री)।† स+ऐन्द्रः=सैन्द्रः (वह इन्द्रका भाग)। स+औकारः= सौकारः (वह औकार)। ऋण+ऋणम्=ऋणार्णम् (ऋणके लिये ऋण)। शीत+ऋतः=शीतार्तः (शीतसे युक्त)। कृष्ण+एकत्वम्=कृष्णैकत्वम् (कृष्णकी एकता)। गङ्गा+ ओघः=गङ्गौघः (गङ्गाकी जलराशिका प्रवाह)—ये वृद्धि-संधिके उदाहरण हैं‡ ॥२५-२६॥

वध्वासनं पित्रर्थो नायको लवणस्तथा।
त आद्या विष्णवे ह्यत्र तस्मा अर्घो गुरा अधः ॥२७॥

दधि+अत्र=दध्यत्र (यहाँ दही है); वधू+आसनम्= वध्वासनम् (बहूका आसन), पितृ+अर्थः=पित्रर्थः (पिताका धन); ऌ+आकृतिः=लाकृतिः (देवजातिकी माताका स्वरूप)—ये यण्संधिके उदाहरण हैं।* (हरे+ए=हरये—भगवान्‌के लिये)। नै+अकः=नायकः (स्वामी)। लो+अणः=लवणः (नमक)। (पौ+अकः=पावकः—अग्नि)—ये अयादि संधि कहलाते हैं।† ते+आद्याः=त आद्याः (वे प्रथम हैं)। विष्णो+ एह्यत्र=विष्ण एह्यत्र (भगवन् विष्णो ! यहाँ पधारिये)। तस्मै+ अर्घः=तस्मा अर्घः (उनके लिये अर्घ्य)। गुरौ+अधः=गुरा अधः (गुरुके समीप नीचे)। इन उदाहरणोंमें यलोप और वलोप हुए हैं‡ ॥२७॥

हरेऽव विष्णोऽवेत्येपादसो मादप्यमी अघाः।
शौरी एतौ विष्णू इमौ दुर्गे अमू नो अर्जुनः ॥२८॥
आ एवं च प्रकृत्यैते तिष्ठन्ति मुनिसत्तम।

हरे+अव=हरेऽव (भगवन् ! रक्षा कीजिये)। विष्णो+अव= विष्णोऽव (विष्णो ! रक्षा कीजिये)। यह पूर्वरूप सन्धि है §। अदस् शब्दसम्बन्धी मकारसे परे यदि दीर्घ 'ई' और 'ऊ' हों तो वे ज्यो-के-त्यों रह जाते हैं। इस अवस्थाको प्रकृतिभाव कहते हैं। जैसे अमी+अघाः (ये पापी हैं)×, शौरी+एतौ= (ये दोनों श्रीकृष्ण-बलराम हैं), विष्णू+इमौ= (ये दोनों विष्णुरूप हैं), दुर्गे+अमू=(ये दोनों दुर्गारूप हैं)। ये भी प्रकृतिभावके ही उदाहरण हैं÷। नो+अर्जुनः (अर्जुन नहीं

अ, इ, उ, ऋ और ऌ—ये स्वर दीर्घ हों या ह्रस्व, यदि अपने सवर्ण स्वरको समीप एवं परवर्ती पायें तो दोनों मिल जाते हैं और उन दोनोंके स्थानपर एक ही दीर्घस्वर हो जाता है। ऋ और ऌ असमान प्रतीत होनेपर भी परस्पर सवर्ण माने गये हैं। अत ऋ+ऌ के मिलनेपर एक ही 'ॠ' बनता है, जैसा कि 'होतॄकारः'मे दिखाया गया है।

* लाङ्गल+ईषा=लाङ्गलीषा। मनस्+ईषा=मनीषा। ये ही इनके पदच्छेद हैं। पहलेमें 'लाङ्गल' शब्दके अन्तका 'अ' ईषाके ईकारमें मिलकर तद्रूप हो गया है। दूसरेमें 'मनस्' के अन्तका 'अस्' भाग ईषाके ईकारका स्वरूप बन गया है। ऐसी संधिको पररूप कहते हैं। 'मनीषा' का अर्थ बुद्धि और 'लाङ्गलीषा' का अर्थ हरिस—हलका ईषादण्ड है। वार्तिककारने मनीषा आदि शब्दोंको 'शकन्ध्वा' आदि गण (समुदाय) में सम्मिलित किया है। ऐसे शब्द जो प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रयुक्त हुए हैं और जिनके साधनकी कोई विशेष पद्धति नहीं है, उन्हें निपातनात् सिद्ध माना गया है।

† ये गुणसंधिके उदाहरण हैं। नियम यह है कि 'अ' या 'आ' से परे 'इ' 'उ' अथवा 'ऋ' हों तो वह क्रमशः 'ए' 'ओ' अथवा 'अर्' रूप धारण करता है। ये आदेश दो अक्षरोंके स्थानपर अकेले होते हैं।

‡ नियम यह है कि 'अ' अथवा 'आ' से परे 'ए', 'ओ' अथवा 'ऋ' हो तो दो अक्षरोंके स्थानपर क्रमशः 'ऐ', 'औ' एवं 'आर्' आदेश होते हैं। 'ए' या 'ओ' की जगह 'ऐ' 'औ' हों तो भी वैसा ही रूप बनता है। 'ऋ' के स्थानमें 'आर्' होनेके स्थल परिगणित हैं।

* नियम यह है कि 'इ' 'उ' 'ऋ' 'ऌ'—ये चार अक्षर दीर्घ हों या ह्रस्व, इनसे परे कोई भी असवर्ण (असमान) स्वर होनेपर इन 'इ' कार आदिके स्थानपर क्रमशः य्, व्, र्, ल् आदेश होते हैं।

† नियम यह है कि 'ए','ओ','ऐ', 'औ'—इनसे परे कोई भी स्वर हो तो इनके स्थानमें क्रमशः 'अय्, अव्, आय् और आव्' आदेश होते हैं।

‡ नियम यह है कि कोई भी स्वर परे रहनेपर अवर्णपूर्वक पदान्त य, व का लोप हो जाता है। यहाँ पूर्वोक्त नियमानुसार पहले अय्, अव् आदि आदेश होते हैं, फिर अभी बताये हुए नियम के अनुसार य, व का लोप हो जाता है। यहाँ 'य'-लोप या 'व'-लोप होनेपर 'त आद्या' 'विष्ण एह्यत्र' आदिमें पुनः दीर्घ एवं गुण आदि सन्धि नहीं हो सकती; क्योंकि इन सन्धियोंकी दृष्टिमें य-लोप, व-लोप असिद्ध हैं; इसलिये इनकी प्रवृत्ति ही नहीं होती। सारांश यह कि इन स्थलोंमें पुनः सन्धिका निषेध है।

§ नियम यह है कि पदान्त एकार और ओकारके बाद यदि ह्रस्व अकार हो तो वह पूर्ववर्ती स्वरमें मिल जाता है।

× इस उदाहरणमें यण्सन्धि प्राप्त हुई थी, किंतु अभी बताये हुए नियमके अनुसार प्रकृतिभाव होनेसे सन्धि नहीं हुई।

÷ पूर्वके दो उदाहरणोंमें यण्की और अन्तिम उदाहरणमें पूर्वरूप-

मेरा बन्धन काटिये)। भवान्+शौरिः=भवाञ्छौरिः, भवाञ्शौरिः इह (आप श्रीकृष्ण यहाँ हैं), (भवाञ्छौरिः भवाञ्च्-शौरिः) इन पदच्छेदमें ये चार रूप बनते हैं * ॥ ३१ ॥

सम्यङ्ङनन्तोऽङ्गच्छाया कृष्णं वन्दे मुनीश्वर।
तेजांसि मंस्यते गङ्गा हरिश्छेत्तामरश्शिवः ॥३२॥

सम्यङ्+अनन्तः=सम्यङ्ङनन्तः (अच्छे शेषनाग), सुगण्+ईशः=सुगण्णीशः (अच्छे गणकोंके स्वामी)। सन्+अच्युतः=सन्नच्युतः† (नित्य सत्स्वरूप श्रीहरि)। अङ्ग+छाया=अङ्गच्छाया[1] (शरीरकी परछाईं)। कृष्णम्+वन्दे=कृष्णं वन्दे (श्रीकृष्णको प्रणाम करता हूँ)। तेजान्+सि=तेजांसि (तेज), मन्+स्यते=मंस्यते[3] (मानेंगे)। गं+गा=गङ्गा[4] (देवनदी गङ्गा)।

मुनीश्वर नारद ! यहाँतक व्यञ्जन-सन्धिका वर्णन हुआ। अब विसर्ग-सन्धि प्रारम्भ करते हैं। हरिः+छेत्ता=हरिश्छेत्ता (श्रीहरि बन्धन काटनेवाले हैं)। अमरः+शिवः=अमरश्शिवः[5] (भगवान् शिव अमर हैं) ॥ ३२ ॥

राम ᳲ काम्यः कृप ᳲ पूज्यो हरिः पूज्योऽर्च्य एव हि।
रामो दृष्टोऽबला अत्र सुप्ता दृष्टा इमा यतः ॥३३॥

रामः+काम्यः=राम ᳲ[1] काम्यः (श्रीराम कमनीय हैं)। कृपः+पूज्यः=कृप ᳲ पूज्यः (कृपाचार्य पूज्य हैं)। पूज्यस्+अर्च्यः=पूज्योऽर्च्यः[2] (पूजनीय और अर्चनीय)। रामस्+दृष्टः=रामो दृष्टः[3] (राम देखे गये हैं)। अबलास्+अत्र=अबला अत्र (यहाँ अबलाएँ हैं)। सुप्तास्+दृष्टाः=सुप्ता दृष्टाः (सोयी देखी गयीं)। इमास्+अतः=इमायतः[4] (ये स्त्रियाँ हैं, अतः) ॥ ३३ ॥

विष्णुर्नम्यो रविरयं गी ᳲ फलं प्रातरच्युतः।
भक्तैर्वन्द्योऽप्यन्तरात्मा भो भो एष हरिस्तथा।
एष शार्ङ्गी सैष रामः संहितैवं प्रकीर्तिता ॥३४॥

विष्णुः+नम्यः=विष्णुर्नम्यः (श्रीविष्णु प्रणामके योग्य हैं)। रविः+अयम्=रविरयम् (ये सूर्य हैं)। गीः+फलम्=गी ᳲ फलम् (वाणीका फल)। प्रातर्+अच्युतः=प्रातरच्युतः (प्रातःकाल श्रीहरि)। भक्तैस्+वन्द्यः=भक्तैर्वन्द्यः (भक्तजनोंके द्वारा वन्दनीय हैं)। अन्तर्+आत्मा=अन्तरात्मा (जीवात्मा या अन्तर्यामी परमात्मा)। भोस्+भोः=भो भोः (हे हे)—ये सब उदाहरण पूर्वोक्त नियमोंसे ही बन जाते हैं। एषस्+हरिः= एष हरिः (ये श्रीहरि हैं)। एषस्+शार्ङ्गी=एष शार्ङ्गी (ये शार्ङ्गधारी हरि हैं)। सस्+एषस्+रामः=सैष

---

* नियम यह है कि शकार परे रहनेपर नान्त पदके आगे 'त्' बढ़ जाता है। शेष परिवर्तन पूर्वोक्त नियमके अनुसार होते हैं।

† इन उदाहरणोंमें ङ्, ण्, न् एकसे दो हो गये हैं। नियम यह है कि ह्रस्वसे परे यदि 'ङ्' 'ण्' या 'न्' हो और उसके बाद भी कोई स्वर हो तो वे एकसे दो हो जाते हैं।

१. यहाँ छ के पहले आधा च् बढ़ गया है। नियम यह है कि ह्रस्वसे परे छ होनेपर उसके पहले आधा च् बढ़ जाता है। २. यहाँ म् के स्थानमें अनुस्वार हो गया है। कोई भी हल् अक्षर परे हो तो पदान्तमें स्थित म् का अनुस्वार हो जाता है। ३. यहाँ अपदान्त न् का अनुस्वार हुआ है। नियम यह है कि झल् परे रहनेपर अपदान्त न् म् का अनुस्वार होता है। झल्में इतने अक्षर आते हैं—झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह। ४. यहाँ अपदान्त अनुस्वारका परसवर्ण हुआ है। र, श, ष, स, ह—इनको छोड़कर कोई भी हल् अक्षर परे रहनेपर अपदान्त अनुस्वारका नित्य परसवर्ण (परवर्ती अक्षरके वर्गका पञ्चम वर्ण) होता है—यह नियम है। ५. इन दोनों उदाहरणोंमें विसर्गके स्थानमें दन्त्य 'स्' होकर श्चुत्व सन्धिके नियमसे तालव्य 'श्' हो गया। नियम यह है कि विसर्गके स्थानमें स् हो जाता है खर् परे रहनेपर। उपर्युक्त अक्षरोंमें ख से स तकके अक्षरोंको खर कहते हैं।

१. यहाँ विसर्गके स्थानमें ᳲ ऐसा चिह्न हो गया है। विसर्गके बाद क, ख या प, फ होनेपर विसर्गकी यह अवस्था होती है। २. यहाँ 'स्' के स्थानमें 'रु' होकर 'रु' के स्थानमें 'उ' हुआ है। फिर गुणसन्धिके नियमसे ओकार होनेपर 'अर्च्य.' के अकारका पूर्वरूप हो गया है। यहाँ नया नियम यह जानना है कि पदान्त 'स्' के स्थानमें 'रु' होता है और अप्लुत अकारसे परे होनेपर उस 'रु' का 'उ' हो जाता है। ऐसा तभी होता है, जब उस 'रु' के बाद भी कोई अप्लुत अकार या 'हश्' हो। ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द,—इन अक्षरोंके समुदायको 'हश्' कहते हैं। ३ यहाँ अभी बताये गये नियमके अनुसार 'स' को 'रु' करके फिर उसका उत्व हुआ। तत्पश्चात् गुण होकर 'रामो' बना। ४. इन सब उदाहरणोंमें 'स्' के स्थानमें पूर्ववत् 'रु' होता है, फिर 'रु' के स्थानमें 'य्' होकर पूर्व दो उदाहरणोंमें उसका लोप हो जाता है। और अन्तिम उदाहरणमें 'य्' 'अ' से मिल जाता है। यहाँ स्मरण रखने योग्य नियम यह है—भो, भगो, अघो तथा अवर्णपूर्वक 'रु' के स्थानमें 'य्' होता है अश् परे रहनेपर। और हल् परे रहनेपर उस 'य' का लोप हो जाता है। सम्पूर्ण स्वरवर्ण तथा ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द—ये सभी अक्षर 'अश्' के अन्तर्गत हैं। ५ एतत् और तत् शब्दोंसे परे 'सु' विभक्तिके 'स'

मेरा बन्धन काटिये)। भवान्+शौरिः=भवाञ्छौरिः, भवाञ्शौरिः इह (आप श्रीकृष्ण यहाँ हैं), (भवाञ्छौरिः भवाञ्च्शौरिः) इन पदच्छेदमें ये चार रूप बनते हैं * ॥ ३१ ॥

सम्यङ्ङनन्तोऽङ्गच्छाया कृष्णं वन्दे मुनीश्वर।
तेजांसि मंस्यते गङ्गा हरिश्छेत्तामरश्शिवः ॥३२॥

सम्यङ्+अनन्तः=सम्यङ्ङनन्तः (अच्छे शेषनाग), सुगण्+ईशः=सुगण्णीशः (अच्छे गणकोंके स्वामी)। सन्+अच्युतः=सन्नच्युतः† (नित्य सत्स्वरूप श्रीहरि)। अङ्ग+छाया=अङ्गच्छाया[1] (शरीरकी परछाईं)। कृष्णम्+वन्दे=कृष्णं वन्दे[2] (श्रीकृष्णको प्रणाम करता हूँ)। तेजान्+सि=तेजांसि (तेज)[3], मन्+स्यते=मंस्यते (मानेंगे)। गं+गा=गङ्गा[4] (देवनदी गङ्गा)।

मुनीश्वर नारद ! यहाँतक व्यञ्जन-सन्धिका वर्णन हुआ। अब विसर्ग-सन्धि प्रारम्भ करते हैं। हरिः+छेत्ता=हरिश्छेत्ता (श्रीहरि बन्धन काटनेवाले हैं)। अमरः+शिवः=अमरश्शिवः[5] (भगवान् शिव अमर हैं) ॥ ३२ ॥

रामᳲ काम्यः कृपᳲ पूज्यो हरिः पूज्योऽर्च्य एव हि।
रामो दृष्टोऽबला अत्र सुप्ता दृष्टा इमा यतः ॥३३॥

रामः+काम्यः=रामᳲ काम्यः[1] (श्रीराम कमनीय हैं)। कृपः+पूज्यः=कृपᳲ पूज्यः (कृपाचार्य पूज्य हैं)। पूज्यस्+अर्च्यः=पूज्योऽर्च्यः[2] (पूजनीय और अर्चनीय)। रामस्+दृष्टः=रामो दृष्टः[3] (राम देखे गये हैं)। अबलास्+अत्र=अबला अत्र (यहाँ अबलाएँ हैं)। सुप्तास्+दृष्टाः=सुप्ता दृष्टाः (सोयी देखी गयीं)। इमास्+अतः=इमायतः (ये स्त्रियाँ हैं, अतः)॥३३॥

विष्णुर्नम्यो रविरयं गीᳲ फलं प्रातरच्युतः।
भक्तैर्वन्द्योऽप्यन्तरात्मा भो भो एष हरिस्तथा।
एष शार्ङ्गी सैष रामः संहितैवं प्रकीर्तिता ॥३४॥

विष्णुः+नम्यः=विष्णुर्नम्यः (श्रीविष्णु प्रणामके योग्य हैं)। रविः+अयम्=रविरयम् (ये सूर्य हैं)। गीः+फलम्=गीᳲ फलम् (वाणीका फल)। प्रातर्+अच्युतः=प्रातरच्युतः (प्रातःकाल श्रीहरि)। भक्तैस्+वन्द्यः=भक्तैर्वन्द्यः (भक्तजनोंके द्वारा वन्दनीय हैं)। अन्तर्+आत्मा=अन्तरात्मा (जीवात्मा या अन्तर्यामी परमात्मा)। भोस्+भोः=भो भोः (हे हे)—ये सब उदाहरण पूर्वोक्त नियमोंसे ही बन जाते हैं। एषस्+हरिः= एष हरिः (ये श्रीहरि हैं)। एषस्+शार्ङ्गी=एष शार्ङ्गी (ये शार्ङ्गधारी हरि हैं)। सस्+एषस्+रामः=सैष

---

* नियम यह है कि शकार परे रहनेपर नान्त पदके आगे 'त्' बढ़ जाता है। शेष परिवर्तन पूर्वोक्त नियमके अनुसार होते हैं।

† इन उदाहरणोंमें ङ्, ण्, न् एकसे दो हो गये हैं। नियम यह है कि ह्रस्वसे परे यदि 'ङ्' 'ण्' या 'न्' हो और उसके बाद भी कोई स्वर हो तो वे एकसे दो हो जाते हैं।

१. यहाँ छ के पहले आधा च् बढ़ गया है। नियम यह है कि ह्रस्वसे परे छ होनेपर उसके पहले आधा च् बढ़ जाता है। २. यहाँ म् के स्थानमें अनुस्वार हो गया है। कोई भी हल् अक्षर परे हो तो पदान्तमें स्थित म् का अनुस्वार हो जाता है। ३. यहाँ अपदान्त न् का अनुस्वार हुआ है। नियम यह है कि झल् परे रहनेपर अपदान्त न् म् का अनुस्वार होता है। झल्में इतने अक्षर आते हैं—झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह। ४. यहाँ अपदान्त अनुस्वारका परसवर्ण हुआ है। र, श, ष, स, ह—इनको छोड़कर कोई भी हल् अक्षर परे रहनेपर अपदान्त अनुस्वारका नित्य परसवर्ण (परवर्ती अक्षरके वर्गका पञ्चम वर्ण) होता है—यह नियम है। ५. इन दोनों उदाहरणोंमें विसर्गके स्थानमें दन्त्य 'स्' होकर श्चुत्व सन्धिके नियमसे तालव्य 'श्' हो गया। नियम यह है कि विसर्गके स्थानमें स् हो जाता है खर् परे रहनेपर। उपर्युक्त अक्षरोंमें ख से स तकके अक्षरोंको खर कहते हैं।

१. यहाँ विसर्गके स्थानमें ᳲ ऐसा चिह्न हो गया है। विसर्गके बाद क, ख या प, फ होनेपर विसर्गकी यह अवस्था होती है। २. यहाँ 'स्' के स्थानमें 'रु' होकर 'रु' के स्थानमें 'उ' हुआ है। फिर गुणसन्धिके नियमसे ओकार होनेपर 'अर्च्यः' के अकारका पूर्वरूप हो गया है। यहाँ नया नियम यह जानना है कि पदान्त 'स्' के स्थानमें 'रु' होता है और अप्लुत अकारसे परे होनेपर उस 'रु' का 'उ' हो जाता है। ऐसा तभी होता है, जब उस 'रु' के बाद भी कोई अप्लुत अकार या 'हश्' हो। ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द,—इन अक्षरोंके समुदायको 'हश्' कहते हैं। ३ यहाँ अभी बताये गये नियमके अनुसार 'स' को 'रु' करके फिर उसका उत्व हुआ। तत्पश्चात् गुण होकर 'रामो' बना। ४. इन सब उदाहरणोंमें 'स्' के स्थानमें पूर्ववत् 'रु' होता है, फिर 'रु' के स्थानमें 'य्' होकर पूर्व दो उदाहरणोंमें उसका लोप हो जाता है। और अन्तिम उदाहरणमें 'य्' 'अ' में मिल जाता है। यहाँ स्मरण रखने योग्य नियम यह है—भो, भगो, अघो तथा अवर्णपूर्वक 'रु' के स्थानमें 'य्' होता है अश् परे रहनेपर। और हल् परे रहनेपर उस 'य' का लोप हो जाता है। सम्पूर्ण स्वरवर्ण तथा ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द—ये सभी अक्षर 'अश्' के अन्तर्गत हैं। ५ एतत् और तत् शब्दोंसे परे 'सु' विभक्तिके 'स'

है[1]। पुँल्लिङ्गमें 'गो' शब्दका अर्थ बैल होता है और स्त्रीलिङ्गमें गाय[2]। 'नौ' शब्द नौकाका वाचक है[3]। यहाँतक स्वरान्त पुँल्लिङ्ग शब्दोंके रूप दिये गये हैं।

अब हलन्त पुँल्लिङ्ग शब्दोंके रूप दिये जा रहे हैं। गाड़ी खींचनेवाले बैलको अनड्वान् कहते हैं। यह अनडुह्-शब्दका रूप है[4]। गाय दुहनेवालेको गोधुक् कहते हैं। मूल शब्द गोदुह् है[5]। लिह् शब्दका अर्थ है चाटनेवाला[6]। 'द्वि' शब्द संख्या दोका; 'त्रि' शब्द तीनका और 'चतुर्' शब्द चारका वाचक है। इनमेंसे पहला केवल द्विवचनमें और शेष दोनों केवल बहुवचनमें प्रयुक्त होते हैं[7] ॥३७॥

राजा पन्थास्तथा दण्डी ब्रह्महा पञ्च चाष्ट च।
अष्टौ अयं मुने सम्राट् सुराड्विभ्रद्वपुष्मतः ॥३८॥

राजा राजन्-शब्दका रूप है[1]। पन्थाः कहते हैं मार्गको। यह पथिन् शब्दका रूप है[2]। जो दण्ड धारण करे, उसे दण्डी कहते हैं[3]। ब्रह्महन् शब्द ब्राह्मणघातीके अर्थमें प्रयुक्त होता है[4]। पञ्चन्-शब्द पाँचका और अष्टन् शब्द आठका वाचक है। ये दोनों बहुवचनान्त होते हैं[5]। अयम्का अर्थ है यह; यह 'इदम्' शब्दका रूप है[6]। 'सम्राट्' कहते हैं बादशाह या चक्रवर्ती राजाको[7]। सुराज् शब्दके रूप—सुराट् सुराजौ सुराजः इत्यादि हैं। शेष रूप सम्राज् शब्दकी भाँति जानने चाहिये। इसका अर्थ है—अच्छा राजा[8]। बिभ्रत्का अर्थ है धारण-पोषण करनेवाला[9]। वपुष्मत् (वपुष्मान्) का अर्थ है शरीरधारी ॥३८॥

कर्त्रे कर्तृभ्य. २। कर्तुः २। कर्त्रोः २ कर्तॄणाम्। कर्तरि कर्तृषु। हे कर्तः हे कर्तारौ हे कर्तारः।

१. उसके रूप इस प्रकार हैं—राः रायौ २ रायः २। रायम्। राया राभ्याम् ३ राभिः। राये राभ्य. २। रायः २। रायोः २ रायाम्। रायि रासु। सम्बोधने प्रथमावत्। २. दोनों लिङ्गोंमें इसके एक-से ही रूप होते हैं, जो इस प्रकार हैं—गौः गावौ २ गाव.। गाम् गा.। गवा गोभ्याम् ३ गोभिः। गवे गोभ्य. २। गोः २। गवोः २ गवाम्। गवि गोषु। हे गौः हे गावौ हे गावः। ३. इसका प्रयोग स्त्रीलिङ्गमें होता है, तथापि यहाँ पुँल्लिङ्गके प्रकरणमें इसे लिखा गया है, प्रकरणके अनुसार 'मुनौ' शब्द यहाँ ग्रहण करना चाहिये। इसके रूप इस प्रकार हैं—नौः नावौ २ नाव. २। नावम्। नावा नौभ्याम् ३ नौभि.। नावे नौभ्यः २। नावः २। नावोः २ नावाम्। नावि नौषु। ४. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—अनड्वान् अनड्वाहौ २ अनड्वाहः। अनड्वाहम् अनडुह.। अनडुहा अनडुद्भ्याम् ३ अनडुद्भिः। अनडुहे अनडुद्भ्यः २। अनडुहः २। अनडुहोः २ अनडुहाम्। अनडुहि अनडुत्सु। सम्बोधनके एकवचनमें हे अनड्वन्। ५. इसके रूप इस प्रकार होते हैं—गोधुक् गोधुग् गोदुहौ २ गोदुहः २। गोदुहम्। गोदुहा गोधुग्भ्याम् ३ गोधुग्भि.। गोदुहे गोधुग्भ्यः २। गोदुहः २। गोदुहोः २ गोदुहाम्। गोदुहि गोधुक्षु। ६. इसके रूप इस प्रकार हैं—लिट् लिड् लिहौ २ लिहः २। लिहम्। लिहा लिड्भ्याम् ३ लिड्भि.। लिहे लिड्भ्यः २। लिहः २। लिहोः २ लिहाम्। लिहि लिट्सु, लिट्त्सु। ७. रूप क्रमशः इस प्रकार हैं—द्वौ २ द्वाभ्याम् ३ द्वयोः २। त्रयः। त्रीन्। त्रिभिः। त्रिभ्यः २। त्रयाणाम्। त्रिषु। चत्वारः। चतुरः। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः २। चतुर्णाम्। चतुर्षु।

१. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—राजा राजानौ २ राजान.। राजानम् राज्ञः। राज्ञा राजभ्याम् ३ राजभिः। राज्ञे राजभ्यः २। राज्ञः २। राज्ञोः २ राज्ञाम्। राज्ञि राजनि राजसु। हे राजन् हे राजानौ हे राजानः। २. शेष रूप इस प्रकार समझने चाहिये—पन्थानौ २ पन्थानः। पन्थानम् पथः। पथा पथिभ्याम् ३ पथिभि.। पथे पथिभ्यः २। पथ. २। पथोः २ पथाम्। पथि पथिषु। ३. इसका मूल शब्द दण्डिन् है, जिसके रूप इस प्रकार हैं—दण्डी दण्डिनौ २ दण्डिनः २। दण्डिनम्। दण्डिना दण्डिभ्याम् ३ दण्डिभि.। दण्डिने दण्डिभ्यः २। दण्डिनः २। दण्डिनोः २ दण्डिनाम्। दण्डिनि दण्डिषु। हे दण्डिन्। ४. इसके रूप इस प्रकार हैं—ब्रह्महा ब्रह्महणौ २ ब्रह्महण.। ब्रह्महणम् ब्रह्मघ्नः। ब्रह्मघ्ना ब्रह्महभ्याम् ब्रह्महभि.। ब्रह्मघ्ने ब्रह्महभ्य २। ब्रह्मघ्न २। ब्रह्मघ्नोः २ ब्रह्मघ्नाम्। ब्रह्मघ्नि ब्रह्महसु। ५. इनके रूप इस प्रकार हैं—पञ्च २। पञ्चभिः। पञ्चभ्य. २। पञ्चानाम्। पञ्चसु। अष्टौ २ अष्ट २। अष्टाभिः अष्टभिः। अष्टाभ्यः २ अष्टभ्यः २। अष्टानाम्। अष्टासु अष्टसु। ६. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—अयम् इमौ इमे। इमम् इमौ इमान्। अनेन आभ्याम् ३ एभिः। अस्मै एभ्यः। अस्मात्। अस्य अनयोः २ एषाम्। अस्मिन् एषु। ७. सम्राज् शब्दके रूप इस प्रकार हैं—सम्राट् सम्राड् सम्राजौ २ सम्राज.२। सम्राजम्। सम्राजा सम्राड्भ्याम् ३ सम्राड्भि.। सम्राजे सम्राड्भ्यः २। सम्राजः २। सम्राजोः २ सम्राजाम्। सम्राजि सम्राट्सु सम्राट्त्सु। ८. इसके रूप इस प्रकार हैं—बिभ्रत् बिभ्रतौ २ बिभ्रतः २। बिभ्रतम्। बिभ्रता बिभ्रद्भ्याम् ३ बिभ्रद्भिः। बिभ्रते बिभ्रद्भ्यः २। बिभ्रत. २। बिभ्रतोः २ बिभ्रताम्। बिभ्रति बिभ्रत्सु। ९. इस शब्दके रूप इस प्रकार हैं—वपुष्मान् वपुष्मन्तौ २ वपुष्मन्तः। वपुष्मन्तम् वपुष्मतः। वपुष्मता वपुष्मद्भ्याम् ३ वपुष्मद्भिः। वपुष्मते वपुष्मद्भ्यः २। वपुष्मतः २।

है[1]। पुँल्लिङ्गमें 'गो' शब्दका अर्थ बैल होता है और स्त्रीलिङ्गमें गाय। 'नौ' शब्द नौकाका वाचक है[3]। यहाँतक स्वरान्त पुँल्लिङ्ग शब्दोंके रूप दिये गये हैं।

अब हलन्त पुँल्लिङ्ग शब्दोंके रूप दिये जा रहे हैं। गाड़ी खींचनेवाले बैलको अनड्वान् कहते हैं। यह अनडुह्-शब्दका रूप है[4]। गाय दुहनेवालेको गोधुक् कहते हैं। मूल शब्द गोदुह् है[5]। लिह् शब्दका अर्थ है चाटनेवाला। 'द्वि' शब्द संख्या दोका; 'त्रि' शब्द तीनका और 'चतुर्' शब्द चारका वाचक है। इनमेंसे पहला केवल द्विवचनमें और शेष दोनों केवल बहुवचनमें प्रयुक्त होते हैं[7] ॥३७॥

राजा पन्थास्तथा दण्डी ब्रह्महा पञ्च चाष्ट च।
अष्टौ अयं मुने सम्राट् सुराड्विभ्रद्वपुष्मतः ॥३८॥

राजा राजन्-शब्दका रूप है[1]। पन्थाः कहते हैं मार्गको। यह पथिन् शब्दका रूप है[2]। जो दण्ड धारण करे, उसे दण्डी कहते हैं[3]। ब्रह्महन् शब्द ब्राह्मणघातीके अर्थमें प्रयुक्त होता है[4]। पञ्चन्-शब्द पाँचका और अष्टन् शब्द आठका वाचक है। ये दोनों बहुवचनान्त होते हैं[5]। अयम्‌का अर्थ है यह; यह 'इदम्' शब्दका रूप है[6]। 'सम्राट्' कहते हैं बादशाह या चक्रवर्ती राजाको[7]। सुराज् शब्दके रूप—सुराट् सुराजौ सुराजः इत्यादि हैं। शेष रूप सम्राज् शब्दकी भाँति जानने चाहिये। इसका अर्थ है—अच्छा राजा। विभ्रत्‌का अर्थ है धारण-पोषण करनेवाला। वपुष्मत् (वपुष्मान्) का अर्थ है शरीरधारी ॥३८॥

कर्त्रे कर्तृभ्य. २। कर्तुः २। कर्त्रोः २ कर्तॄणाम्। कर्तरि कर्तृषु। हे कर्तः हे कर्तारौ हे कर्तारः।

१. उसके रूप इस प्रकार हैं—राः रायौ २ रायः २। रायम्। राया राभ्याम् ३ राभिः। राये राभ्य. २। रायः २। रायोः २ रायाम्। रायि रासु। सम्बोधने प्रथमावत्। २. दोनों लिङ्गोंमें इसके एक-से ही रूप होते हैं, जो इस प्रकार हैं—गौः गावौ २ गाव.। गाम् गा.। गवा गोभ्याम् ३ गोभिः। गवे गोभ्य. २। गोः २। गवोः २ गवाम्। गवि गोषु। हे गौः हे गावौ हे गावः। ३. इसका प्रयोग स्त्रीलिङ्गमें होता है, तथापि यहाँ पुँल्लिङ्गके प्रकरणमें इसे लिखा गया है, प्रकरणके अनुसार 'मुनौ' शब्द यहाँ ग्रहण करना चाहिये। इसके रूप इस प्रकार हैं—नौः नावौ २ नाव· २। नावम्। नावा नौभ्याम् ३ नौभि·। नावे नौभ्यः २। नावः २। नावोः २ नावाम्। नावि नौषु। ४. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—अनड्वान् अनड्वाहौ २ अनड्वाहः। अनड्वाहम् अनडुह.। अनडुहा अनडुद्भ्याम् ३ अनडुद्भिः। अनडुहे अनडुद्भ्यः २। अनडुहः २। अनडुहोः २ अनडुहाम्। अनडुहि अनडुत्सु। सम्बोधनके एकवचनमें हे अनड्वन्। ५. इसके रूप इस प्रकार होते हैं—गोधुक् गोधुग् गोदुहौ २ गोदुहः २। गोदुहम्। गोदुहा गोधुग्भ्याम् ३ गोधुग्भि.। गोदुहे गोधुग्भ्यः २। गोदुहः २। गोदुहोः २ गोदुहाम्। गोदुहि गोधुक्षु। ६. इसके रूप इस प्रकार हैं—लिट् लिड् लिहौ २ लिहः २। लिहम्। लिहा लिड्भ्याम् ३ लिड्भि। लिहे लिड्भ्यः २। लिहः २। लिहोः २ लिहाम्। लिहि लिट्सु, लिट्त्सु। ७. रूप क्रमशः इस प्रकार हैं—द्वौ २ द्वाभ्याम् ३ द्वयोः २। त्रयः। त्रीन्। त्रिभिः। त्रिभ्यः २। त्रयाणाम्। त्रिषु। चत्वारः। चतुरः। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः २। चतुर्णाम्। चतुर्षु।

१. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—राजा राजानौ २ राजानः। राजानम् राज्ञः। राज्ञा राजभ्याम् ३ राजभिः। राज्ञे राजभ्यः २। राज्ञः २। राज्ञोः २ राज्ञाम्। राज्ञि राजनि राजसु। हे राजन् हे राजानौ हे राजानः। २. शेष रूप इस प्रकार समझने चाहिये—पन्थानौ २ पन्थानः। पन्थानम् पथः। पथा पथिभ्याम् ३ पथिभि.। पथे पथिभ्यः २। पथ. २। पथोः २ पथाम्। पथि पथिषु। ३. इसका मूल शब्द दण्डिन् है, जिसके रूप इस प्रकार हैं—दण्डी दण्डिनौ २ दण्डिनः २। दण्डिनम्। दण्डिना दण्डिभ्याम् ३ दण्डिभि.। दण्डिने दण्डिभ्यः २। दण्डिनः २। दण्डिनोः २ दण्डिनाम्। दण्डिनि दण्डिषु। हे दण्डिन्। ४. इसके रूप इस प्रकार हैं—ब्रह्महा ब्रह्महणौ २ ब्रह्महण.। ब्रह्महणम् ब्रह्मघ्नः। ब्रह्मघ्ना ब्रह्महभ्याम् ब्रह्महभि·। ब्रह्मघ्ने ब्रह्महभ्य २। ब्रह्मघ्न २। ब्रह्मघ्नोः २ ब्रह्मघ्नाम्। ब्रह्मघ्नि ब्रह्महसु। ५. इनके रूप इस प्रकार हैं—पञ्च २। पञ्चभिः। पञ्चभ्य. २। पञ्चानाम्। पञ्चसु। अष्टौ २ अष्ट २। अष्टाभिः अष्टभिः। अष्टाभ्यः २ अष्टभ्यः २। अष्टानाम्। अष्टासु अष्टसु। ६. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—अयम् इमौ इमे। इमम् इमौ इमान्। अनेन आभ्याम् ३ एभिः। अस्मै एभ्यः। अस्मात्। अस्य अनयोः २ एषाम्। अस्मिन् एषु। ७. सम्राज् शब्दके रूप इस प्रकार हैं—सम्राट् सम्राड् सम्राजौ २ सम्राज.२। सम्राजम्। सम्राजा सम्राड्भ्याम् ३ सम्राड्भि.। सम्राजे सम्राड्भ्यः २। सम्राजः २। सम्राजोः २ सम्राजाम्। सम्राजि सम्राट्सु सम्राट्त्सु। ८. इसके रूप इस प्रकार हैं—विभ्रत् विभ्रतौ२ विभ्रतः २। विभ्रतम्। विभ्रता विभ्रद्भ्याम् ३ विभ्रद्भिः। विभ्रते विभ्रद्भ्यः २। विभ्रत· २। विभ्रतोः २ विभ्रताम्। विभ्रति विभ्रत्सु। ९. इस शब्दके रूप इस प्रकार हैं—वपुष्मान् वपुष्मन्तौ २ वपुष्मन्तः। वपुष्मन्तम् वपुष्मतः। वपुष्मता वपुष्मद्भ्याम् ३ वपुष्मद्भिः। वपुष्मते वपुष्मद्भ्यः २। वपुष्मतः २।

गो-शब्दका रूप स्त्रीलिङ्गमें भी पुँल्लिङ्गके समान होता है। नौ-शब्दका रूप पहले दिया जा चुका है। उपानह्[1] शब्द जूतेका वाचक है। द्यौः[2] स्वर्गका वाचक है। ककुभ्[3] शब्द दिशाका वाचक है। संविद्[4]-शब्द बुद्धि एवं ज्ञानका वाचक है ॥ ४० ॥

रुग्विडुद्भाः स्त्रियां तपः कुलं सोमपमक्षि च ।
ग्रामण्यम्बु खलप्वेवं कर्तृ चातिरि वातिनु ॥४१॥

रुक्[5] नाम है रोगका । विट्[6]-शब्द वैश्यका वाचक है। उद्भाः[7] का अर्थ है उत्तम प्रकाश या प्रकाशित होनेवाली। ये शब्द स्त्री-लिङ्गमें प्रयुक्त होते हैं।

अब नपुंसकलिङ्ग शब्दोंका परिचय देते हैं। तपस्[8]-शब्द तपस्याका वाचक है। कुल[9]-शब्द वंश या समुदायका वाचक है। सोमप[10]-शब्दका अर्थ है सोमपान करनेवाला। अक्षिका[11] अर्थ है आँख। गाँवके नेताको ग्रामणी[12] कहते हैं। अम्बु[1]-शब्द जलका वाचक है। खलपू[2] का अर्थ है खलिहान या भूमि साफ करनेवाला। कर्तृ[3]-शब्द कर्ताका वाचक है। जो धनकी सीमाको लाँघ गया हो, उस कुलको अतिरि[4] कहते हैं। जो पानी नावकी शक्तिसे बाहर हो, जिसे नावसे भी पार करना असम्भव हो, उसे 'अतिनु[5]' कहते हैं ॥ ४१ ॥

स्वनडुच्च विमलद्यु वाश्चत्वारीदमेव च ।
एतद्ब्रह्माहश्च दण्डी असृक्किञ्चित्यदादि च ॥४२॥

जिस कुल या गृहमें गाड़ी खींचनेवाले अच्छे बैल हों, उसको 'स्वनडुत्[6]' कहते हैं। जिस दिन आकाश साफ हो, उस दिन को विमलद्यु[7] कहते हैं। वार्[8]-शब्द जलका वाचक है। चतुर्-

१. उसके रूप इस प्रकार हैं—उपानत् उपानद् उपानहौ २ उपानहः २। उपानहम्। उपानहा उपानद्भ्याम् ३ उपानद्भिः। उपानहे उपानद्भ्यः २। उपानहः २। उपानहोः २ उपानहाम्। उपानहि उपानत्सु। २. दिव्-शब्दके रूप गो-शब्दके समान समझने चाहिये। ३. इसके रूप—ककुप् ककुब् ककुभौ २ ककुभः २। ककुभम्। ककुभा ककुब्भ्याम् इत्यादि हैं। सप्तमीके बहुवचनमें ककुप्सु रूप होता है। ४. इसके रूप—संवित् संविद् संविदौ संविदः इत्यादि हैं। ५. इसके रूप हैं—रुक् रुग् रुजौ २ रुजः २। रुजम्। रुजा रुग्भ्याम् इत्यादि। ६. इसके रूप हैं—विट् विड् विशौ विशः इत्यादि। ७. इसके रूप हैं—उद्भाः उद्भासौ उद्भासः इत्यादि। ८. नपुंसकलिङ्गमें प्रथमा और द्वितीया विभक्तिके रूप एकसे ही होते हैं और तृतीयासे लेकर सप्तमीतकके रूप पुँल्लिङ्गके समान होते हैं। तपस्-शब्दके रूप इस प्रकार समझने चाहिये—तपः तपसी तपांसि। ये तीनों रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्तिमें प्रयुक्त होते हैं। शेष रूप उशनस्के समान होंगे। ९. रूप ये हैं—कुलम् कुले कुलानि। शेष रामवत्। १०. प्रथमा-द्वितीया विभक्तियोंमें इसके रूप हैं—सोमपम् सोमपे सोमपानि। शेष रामवत्। ११. इसके रूप प्रथम दो विभक्तियोंमें हैं—अक्षि अक्षिणी अक्षीणि। शेष पाँच विभक्तियोंके एकवचनमें क्रमशः इस प्रकार रूप हैं—अक्ष्णा। अक्ष्णे। अक्ष्णः। अक्ष्णः। अक्ष्णि अक्षणि। शेष रूप हरि-शब्दके समान जानने चाहिये। १२. पुँल्लिङ्गमें इसके रूप ग्रामणीः ग्रामण्यौ ग्रामण्यः इत्यादि होते हैं। यदि कोई कुल (खानदान) गाँवका अगुआ हो तो यह शब्द नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त होता है। उस दशामें इसके रूप इस प्रकार होंगे—ग्रामणि ग्रामणिनी ग्रामणीनि। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें 'ग्रामण्या ग्रामणिना। ग्रामण्ये ग्रामणिने। ग्रामण्यः २ ग्रामणिनः २। ग्रामण्याम् ग्रामणिनि—ये रूप हैं। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् होते हैं।

१. इसके रूप—अम्बु अम्बुनी अम्बूनि इत्यादि हैं। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें क्रमशः अम्बुना। अम्बुने। अम्बुनः २। अम्बुनि—ये रूप होते हैं। शेष रूप भानुवत् हैं। २. पुँल्लिङ्गमें इसके रूप 'खलपूः खलप्वौ खलप्वः' इत्यादि होते हैं। जब यह किसी साधन या औजारका वाचक होता है तो नपुंसकमें प्रयुक्त होता है। उसमें इसके रूप इस प्रकार हैं—खलपु खलपुनी खलपूनि। इसमें भी तृतीयासे सप्तमीतक एकवचनमें 'खलपुना, खलपुने, खलपुनः २, खलपुनि' ये रूप अधिक होते हैं। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् हैं। ३. इसका रूप पुँल्लिङ्गमें बताया गया है। नपुंसकमें 'कर्तृ कर्तृणी कर्तॄणि' ये रूप होते हैं। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें दो-दो रूप होते हैं। यथा—कर्तृणा कर्त्रा। कर्तृणे कर्त्रे। कर्तृणः २ कर्तुः २। कर्तृणि कर्तरि। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् हैं। ४. इसके 'अतिरि अतिरिणी अतिरीणि' ये रूप हैं। तृतीया विभक्तिसे इस प्रकार रूप चलते हैं—अतिरिणा, अतिराभ्याम् ३ अतिराभिः। अतिरिणे अतिराभ्यः २। अतिरिणः २। अतिरिणोः २ अतिरीणाम्। अतिरिणि अतिरासु। ५. इसके रूप इस प्रकार हैं—'अतिनु अतिनुनी अतिनूनि'। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें—'अतिनुना, अतिनुने, अतिनुनः २, अतिनुनि' ये रूप होते हैं। शेष भानुवत्। ६. रूप इस प्रकार हैं—स्वनडुत् स्वनडुही स्वनड्वांहि। शेष पुँल्लिङ्गवत्। ७. रूप इस प्रकार हैं—विमलद्यु विमलदिवी विमलदिवि। तृतीया आदि विभक्तियोंमें 'विमलदिवा विमलद्युभ्याम्' इत्यादि रूप होते हैं। ८. इसके रूप इस प्रकार हैं—

गो-शब्दका रूप स्त्रीलिङ्गमें भी पुँल्लिङ्गके समान होता है। नौ-शब्दका रूप पहले दिया जा चुका है। उपानह्[1] शब्द जूतेका वाचक है। द्यौः[2] स्वर्गका वाचक है। ककुभ्[3] शब्द दिशाका वाचक है। संविद्[4]-शब्द बुद्धि एवं ज्ञानका वाचक है ॥ ४० ॥

रुग्विड्उद्भाः स्त्रियां तपः कुलं सोमपमक्षि च ।
ग्रामण्यम्बु खलप्वेवं कर्तृ चातिरि वातिनु ॥४१॥

रुक्[5] नाम है रोगका । विट्[6]-शब्द वैश्यका वाचक है । उद्भाः[7] का अर्थ है उत्तम प्रकाश या प्रकाशित होनेवाली। ये शब्द स्त्री-लिङ्गमें प्रयुक्त होते हैं ।

अब नपुंसकलिङ्ग शब्दोंका परिचय देते हैं। तपस्[8]-शब्द तपस्याका वाचक है। कुल[9]-शब्द वंश या समुदायका वाचक है। सोमप[10]-शब्दका अर्थ है सोमपान करनेवाला। अक्षिका[11] अर्थ है ऑख। गॉवके नेताको ग्रामणी[12] कहते हैं। अम्बु[1]-शब्द जलका वाचक है। खलपू[2] का अर्थ है खलिहान या भूमि साफ करनेवाला। कर्तृ[3]-शब्द कर्ताका वाचक है। जो धनकी सीमाको लॉघ गया हो, उस कुलको अतिरि[4] कहते हैं। जो पानी नावकी शक्तिसे बाहर हो, जिसे नावसे भी पार करना असम्भव हो, उसे 'अतिनु[5]' कहते हैं ॥ ४१ ॥

स्वनडुच्च विमलद्यु वाश्चत्वारीदमेव च ।
एतद्ब्रह्माहश्च दण्डी असृक्किञ्चित्स्यदादि च ॥४२॥

जिस कुल या गृहमें गाड़ी खींचनेवाले अच्छे बैल हों, उसको 'स्वनडुत्[6]' कहते हैं। जिस दिन आकाश साफ हो, उस दिन को विमलद्यु[7] कहते हैं। वार्[8]-शब्द जलका वाचक है। चतुर्-

---

१. उसके रूप इस प्रकार हैं—उपानत् उपानद् उपानहौ २ उपानहः २। उपानहम्। उपानहा उपानद्भ्याम् ३ उपानद्भिः। उपानहे उपानद्भ्यः २। उपानह. २। उपानहोः २ उपानहाम्। उपानहि उपानत्सु। २. दिव्-शब्दके रूप गो-शब्दके समान समझने चाहिये। ३. इसके रूप—ककुप् ककुब् ककुभौ २ ककुभ. २। ककुभम्। ककुभा ककुब्भ्याम् इत्यादि हैं। सप्तमीके बहुवचनमें ककुप्सु रूप होता है। ४. इसके रूप—संवित् संविद् संविदौ संविदः इत्यादि हैं। ५. इसके रूप हैं—रुक् रुग् रुजौ २ रुज. २। रुजम्। रुजा रुग्भ्याम् इत्यादि। ६. इसके रूप हैं—विट् विड् विशौ विशः इत्यादि। ७. इसके रूप हैं—उद्भाः उद्भासौ उद्भासः इत्यादि। ८. नपुंसकलिङ्गमें प्रथमा और द्वितीया विभक्तिके रूप एकसे ही होते हैं और तृतीयासे लेकर सप्तमीतकके रूप पुँल्लिङ्गके समान होने हैं। तपस्-शब्दके रूप इस प्रकार समझने चाहिये—तपः तपसी तपांसि। ये तीनों रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्तिमें प्रयुक्त होते हैं। शेष रूप उशनस्के समान होंगे। ९. रूप ये हैं—कुलम् कुले कुलानि। शेष रामवत्। १०. प्रथमा-द्वितीया विभक्तियोंमें इसके रूप हैं—सोमपम् सोमपे सोमपानि। शेष रामवत्। ११. इसके रूप प्रथम दो विभक्तियोंमें हैं—अक्षि अक्षिणी अक्षीणि। शेष पाँच विभक्तियोंके एकवचनमें क्रमश इस प्रकार रूप हैं—अक्ष्णा। अक्ष्णे। अक्ष्णः। अक्ष्णः। अक्षि अक्षणि। शेष रूप हरि-शब्दके समान जानने चाहिये। १२. पुँल्लिङ्गमें इसके रूप ग्रामणीः ग्रामण्यौ ग्रामण्यः इत्यादि होते हैं। यदि कोई कुल (खानदान) गाँवका अगुआ हो तो यह शब्द नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त होता है। उस दशामें इसके रूप इस प्रकार होंगे—ग्रामणि ग्रामणिनी ग्रामणीनि। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें 'ग्रामण्या ग्रामणिना। ग्रामण्ये ग्रामणिने। ग्रामण्य. २ ग्रामणिन. २। ग्रामण्याम् ग्रामणिनि—ये रूप हैं। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् होते हैं।

१. इसके रूप—अम्बु अम्बुनी अम्बूनि इत्यादि हैं। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें क्रमश. अम्बुना। अम्बुने। अम्बुन· २। अम्बुनि—ये रूप होते हैं। शेष रूप भानुवत् हैं। २. पुँल्लिङ्गमें इसके रूप 'खलपूः खलप्वौ खलप्वः' इत्यादि होते हैं। जब यह किसी साधन या औजारका वाचक होता है तो नपुंसकमें प्रयुक्त होता है। उसमें इसके रूप इस प्रकार हैं—खलपु खलपुनी खलपूनि। इसमें भी तृतीयासे सप्तमीतक एकवचनमें 'खलपुना, खलपुने, खलपुनः २, खलपुनि' ये रूप अधिक होते हैं। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् हैं। ३. इसका रूप पुँल्लिङ्गमें बताया गया है। नपुंसकमें 'कर्तृ कर्तृणी कर्तॄणि' ये रूप होते हैं। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें दो-दो रूप होते हैं। यथा—कर्तृणा कर्त्रा। कर्तृणे कर्त्रे। कर्तृणः २ कर्तुः २। कर्तृणि कर्तरि। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् हैं। ४. इसके 'अतिरि अतिरिणी अतिरीणि' ये रूप हैं। तृतीया विभक्तिसे इस प्रकार रूप चलते हैं—अतिरिणा, अतिराभ्याम् ३ अतिराभि। अतिरिणे अतिराभ्यः २। अतिरिण २। अतिरिणो २ अतिरीणाम्। अतिरिणि अतिरासु। ५. इसके रूप इस प्रकार हैं—'अतिनु अतिनुनी अतिनूनि। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें—'अतिनुना, अतिनुने, अतिनुनः २, अतिनुनि' ये रूप होते हैं। शेष भानुवत्। ६. रूप इस प्रकार हैं—स्वनडुत् स्वनडुही स्वनड्वाहि। शेष पुँल्लिङ्गवत्। ७. रूप इस प्रकार हैं—विमलद्यु विमलदिवी विमलदिवि। तृतीया आदि विभक्तियोंमें 'विमलदिवा विमलद्युभ्याम्' इत्यादि रूप होते हैं। ८. इसके रूप इस प्रकार हैं—

गोपी-शब्दकी भाँति चलते हैं । नपुंसकमें प्रथम दो विभक्तियों-के रूप इस प्रकार हैं—तुदत् तुदती तुदन्ती तुदन्ति । शेष पुँल्लिङ्गवत् ॥४३॥

दीव्यद्धनुश्च पिपठीः पयोऽदःसुपुमांसि च ।
गुणद्रव्यक्रियायोगास्त्रिलिङ्गांश्च कति ब्रुवे ॥४४॥

दीव्यत्-शब्दके रूप सभी लिङ्गोंमें पचत्के समान हैं । धनुष्-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—धनुः धनुषी धनूंषि । धनुषा धनुर्भ्याम् इत्यादि । पिपठिष्-शब्दके रूप नपुंसकमें इस प्रकार हैं—'पिपठीः पिपठिषी पिपठिषि' शेष पुँल्लिङ्गवत् । पयस्-शब्दके रूप तपस्-शब्दके समान होते हैं । यह दूध और जलका वाचक है । अदस्[1]-शब्दके पुँल्लिङ्ग रूप बताये जा चुके हैं । जिस कुलमें अच्छे पुरुष होते हैं, उसे सुपुम्[2] कहते हैं । अब हम कुछ ऐसे शब्दोंका वर्णन करते हैं, जो गुण, द्रव्य और क्रियाके सम्बन्धसे तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं ॥४४॥

शुक्तः कीलालपाश्चैव शुचिश्च ग्रामणीः सुधीः ।
पटुः स्वयम्भूः कर्ता च माता चैव पिता च ना ॥४५॥
सत्यानायुरपुंसश्च मतभ्रमरदीर्घपात् ।
धनाढ्यसोम्यौ चागर्ह्यस्तादृक् स्वर्णमथो बहु ॥४६॥

शुक्त[3], कीलालपा, शुचि, ग्रामणी, सुधी, पटु, स्वयम्भू तथा कर्ता* । मातृ-शब्द यदि परिच्छेत्तृवाचक हो तो तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होता है । इसके पुँल्लिङ्गरूप—माता, मातारौ, मातारः' इत्यादि; नपुंसकरूप—'मातृ, मातृणी, मातृणि' इत्यादि और स्त्रीलिङ्गरूप—'मात्री, मात्र्यौ, मात्र्यः' हैं । जननीवाची मातृ-शब्द नित्य-स्त्रीलिङ्ग है । इसके रूप इस प्रकार हैं—'माता मातरौ मातरः । मातरम् मातरौ मातृः' इत्यादि । इसके शेष रूप स्वसृ-शब्दके समान हैं । पितृ-शब्द यदि कुलका विशेषण हो तो नपुंसकमें प्रयुक्त हो सकता है । अन्यथा वह नित्यपुँल्लिङ्ग है । इसके रूप 'पिता पितरौ पितरः । पितरम् पितरौ पितॄन्' इत्यादि हैं । शेष कर्तृशब्दके समान समझने चाहिये । नृ-शब्द नित्यपुँल्लिङ्ग है और उसके सभी रूप पितृ-शब्दके समान हैं । केवल षष्ठीके बहुवचनमें इसके दो रूप होते हैं 'नृणाम्, नॄणाम् ।'

सत्य, अनायुष्, अपुंस्, मत, भ्रमर, दीर्घपात्, धनाढ्य, सोम्य, अगर्ह, तादृक्, स्वर्ण, बहु—ये शब्द भी तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं † ॥४६॥

भवत्यौ भवत्य.' इत्यादि गोपी-शब्दके समान रूप होते हैं । नपुंसकमें दो विभक्तियोंमें उसके 'भवत् भवती भवन्ति' रूप होते हैं । शेष पुँल्लिङ्गवत् ।

१. स्त्रीलिङ्गमें इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—असौ अमू अमूः । अमूम् अमू अमू. । अमुया अमूभ्याम् ३ अमूभिः । अमुष्यै अमूभ्यः २ । अमुष्या. २ । अमुयोः २ अमूषाम् । अमुष्याम् अमूषु ॥ नपुंसकलिङ्गमें प्रथम दो विभक्तियोंके रूप 'अद. अमू अमूनि' हैं । शेष पुँल्लिङ्गवत् । २. सुपुम् सुपुंसी सुपुमांसि । शेष विभक्तियोंमें पुंस्-शब्दकी तरह रूप होते हैं । ३. 'शुक्त' (सीप या सुतुही) शब्दके पुँल्लिङ्गरूप—शुक्तः शुक्तौ शुक्ताः । शुक्तं शुक्तौ शुक्तान् । शुक्तेन शुक्ताभ्या शुक्तैः । शुक्ताय शुक्ताभ्याम् शुक्तेभ्यः । शुक्तात् शुक्ताभ्यां शुक्तेभ्यः । शुक्तस्य शुक्तयोः शुक्तानाम् । शुक्ते शुक्तयो. शुक्तेषु । हे शुक्त शुक्तौ शुक्ता. । इस प्रकार हैं । स्त्रीलिङ्गमें 'शुक्ता शुक्ते शुक्ताः' इत्यादि राधाके समान रूप हैं । नपुंसकमें 'शुक्तं शुक्ते शुक्तानि' ये प्रथमा और द्वितीया विभक्तिके रूप हैं । शेष पुँल्लिङ्गवत् रूप हैं ।

* 'कीलालपा' (जल पीनेवाला) के सभी रूप गोपाके समान हैं । और नपुंसकमें कुलके समान रूप होते हैं । 'शुचि' (पवित्र) शब्दके पुँल्लिङ्गरूप हरिके समान हैं । स्त्रीलिङ्गरूप 'गति' के समान और नपुसकरूप 'वारि' के समान हैं । ग्रामणी (ग्रामका नेता) के पुँल्लिङ्गरूप बताये गये हैं । स्त्रीलिङ्गरूप भी प्राय. वे ही हैं । नपुंसकके भी बताये जा चुके हैं । 'सुधी' शब्दका अर्थ है श्रेष्ठ बुद्धिवाला तथा विद्वान् । पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें 'सुधीः सुधियौ, सुधिय.' इत्यादि रूप होते हैं । नपुंसकमें 'सुधि, सुधिनी, सुधीनि' इत्यादि रूप हैं । 'पटु' (समर्थ) के पुँल्लिङ्ग रूप 'भानु' के समान, स्त्रीलिङ्ग 'धेनु' के समान और नपुंसकरूप 'पटु पटुनी पटूनि' हैं; शेष भानुवत् । 'स्वयम्भू' (ब्रह्मा) के पुँल्लिङ्गरूप बताये गये हैं, स्त्रीलिङ्गमें भी वैसे ही होते हैं । नपुंसकमें 'स्वयम्भु स्वयम्भुनी स्वयम्भूनि' रूप होते हैं । शेष पुँल्लिङ्गवत् । 'कर्तृ' शब्दके पुँल्लिङ्ग और नपुसक रूप बताये गये हैं । स्त्रीलिङ्गमें 'गोपी' शब्दके समान 'कर्त्री' शब्दके रूप चलते हैं ।

† 'सत्य' शब्द जब सामान्यतः सत्य भाषणके अर्थमें आता है, तब नपुंसक होता है और विशेषणरूपमें प्रयुक्त होनेपर विशेष्यके अनुसार तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होता है । इसके पुँल्लिङ्गरूप—सत्य सत्यौ सत्या.—इत्यादि रामवत् हैं । स्त्रीलिङ्ग-रूप—राधाके समान

गोपी-शब्दकी भाँति चलते हैं। नपुंसकमे प्रथम दो विभक्तियों-के रूप इस प्रकार हैं—तुदत् तुदती तुदन्ती तुदन्ति। शेष पुँल्लिङ्गवत् ॥४३॥

दीव्यद्धनुश्च पिपठीः पयोऽदःसुपुमांसि च।
गुणद्रव्यक्रियायोगांस्त्रिलिङ्गांश्च कति ब्रुवे ॥४४॥

दीव्यत्-शब्दके रूप सभी लिङ्गोंमें पचत्के समान हैं। धनुष्-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—धनुः धनुषी धनूंषि। धनुषा धनुर्भ्याम् इत्यादि। पिपठिष्-शब्दके रूप नपुंसकमें इस प्रकार हैं—'पिपठीः पिपठिषी पिपठिषि' शेष पुँल्लिङ्गवत्। पयस्-शब्दके रूप तपस्-शब्दके समान होते हैं। यह दूध और जलका वाचक है। अदस्-शब्दके पुँल्लिङ्ग रूप बताये जा चुके हैं। जिस कुलमें अच्छे पुरुष होते हैं, उसे सुपुंम् कहते हैं। अब हम कुछ ऐसे शब्दोंका वर्णन करते हैं, जो गुण, द्रव्य और क्रियाके सम्बन्धसे तीनों लिङ्गोंमे प्रयुक्त होते हैं ॥४४॥

शुक्तः कीलालपाश्चैव शुचिश्च ग्रामणीः सुधीः।
पटुः स्वयम्भूः कर्ता च माता चैव पिता च ना ॥४५॥
सत्यानायुरपुंसश्च मतभ्रमरदीर्घपात्।
धनाढ्यसोम्यौ चागर्हस्तादृक् स्वर्णमथो बहु ॥४६॥

शुक्त, कीलालपा, शुचि, ग्रामणी, सुधी, पटु, स्वयम्भू तथा कर्ता* । मातृ-शब्द यदि परिच्छेत्तृवाचक हो तो तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होता है। इसके पुँल्लिङ्गरूप—माता, मातारौ, मातारः' इत्यादि; नपुंसकरूप—'मातृ, मातृणी, मातृणि' इत्यादि और स्त्रीलिङ्गरूप—'मात्री, मात्र्यौ, मात्र्यः' हैं। जननीवाची मातृ-शब्द नित्य-स्त्रीलिङ्ग है। इसके रूप इस प्रकार हैं—'माता मातरौ मातरः। मातरम् मातरौ मातॄः' इत्यादि। इसके शेष रूप स्वसृ-शब्दके समान हैं। पितृ-शब्द यदि कुलका विशेषण हो तो नपुंसकमें प्रयुक्त हो सकता है। अन्यथा वह नित्यपुँल्लिङ्ग है। इसके रूप 'पिता पितरौ पितरः। पितरम् पितरौ पितॄन्' इत्यादि हैं। शेष कर्तृशब्दके समान समझने चाहिये। नृ-शब्द नित्यपुँल्लिङ्ग है और उसके सभी रूप पितृ-शब्दके समान हैं। केवल षष्ठीके बहुवचनमें इसके दो रूप होते हैं 'नृणाम्, नॄणाम्।'

सत्य, अनायुष्, अपुंस्, मत, भ्रमर, दीर्घपात्, धनाढ्य, सोम्य, अगर्ह, तादृक्, स्वर्ण, बहु—ये शब्द भी तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं† ॥४६॥

भवत्यौ भवत्यः' इत्यादि गोपी-शब्दके समान रूप होते हैं। नपुंसकमें दो विभक्तियोंमें उसके 'भवत् भवती भवन्ति' रूप होते हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्।

१. स्त्रीलिङ्गमें इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—असौ अमू अमूः। अमूम् अमू अमूः। अमुया अमूभ्याम् ३ अमूभिः। अमुष्यै अमूभ्यः २। अमुष्याः २। अमुयोः २ अमूषाम्। अमुष्याम् अमूषु॥ नपुंसकलिङ्गमें प्रथम दो विभक्तियोंके रूप 'अदः अमू अमूनि' हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। २. सुपुम् सुपुंसी सुपुमांसि। शेष विभक्तियोंमें पुंस्-शब्दकी तरह रूप होते हैं। ३. 'शुक्त' (सीप या सुतुही) शब्दके पुँल्लिङ्गरूप—शुक्तः शुक्तौ शुक्ताः। शुक्तं शुक्तौ शुक्तान्। शुक्तेन शुक्ताभ्यां शुक्तैः। शुक्ताय शुक्ताभ्याम् शुक्तेभ्यः। शुक्तात् शुक्ताभ्यां शुक्तेभ्यः। शुक्तस्य शुक्तयोः शुक्तानाम्। शुक्ते शुक्तयोः शुक्तेषु। हे शुक्त शुक्तौ शुक्ताः। इस प्रकार हैं। स्त्रीलिङ्गमें 'शुक्ता शुक्ते शुक्ताः' इत्यादि राधाके समान रूप हैं। नपुंसकमें 'शुक्तं शुक्ते शुक्तानि' ये प्रथमा और द्वितीया विभक्तिके रूप हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत् रूप हैं।

* 'कीलालपा' (जल पीनेवाला) के सभी रूप गोपाके समान हैं। और नपुंसकमें कुलके समान रूप होते हैं। 'शुचि' (पवित्र) शब्दके पुँल्लिङ्गरूप हरिके समान हैं। स्त्री-लिङ्गरूप 'मति' के समान और नपुसकरूप 'वारि' के समान हैं। ग्रामणी (ग्रामका नेता) के पुँल्लिङ्गरूप बताये गये हैं। स्त्री-लिङ्गरूप भी प्रायः वे ही हैं। नपुंसकके भी बताये जा चुके हैं। 'सुधी' शब्दका अर्थ है श्रेष्ठ बुद्धिवाला तथा विद्वान्। पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें 'सुधीः सुधियौ, सुधियः' इत्यादि रूप होते हैं। नपुंसकमें 'सुधि, सुधिनी, सुधीनि' इत्यादि रूप हैं। 'पटु' (समर्थ) के पुँल्लिङ्ग रूप 'भानु' के समान, स्त्रीलिङ्ग 'धेनु' के समान और नपुंसकरूप 'पटु पटुनी पटूनि' हैं; शेष भानुवत्। 'स्वयम्भू' (ब्रह्मा) के पुँल्लिङ्गरूप बताये गये हैं, स्त्रीलिङ्गमें भी वैसे ही होते हैं। नपुंसकमें 'स्वयम्भु स्वयम्भुनी स्वयम्भूनि' रूप होते हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। 'कर्तृ' शब्दके पुँल्लिङ्ग और नपुसक रूप बताये गये हैं। स्त्रीलिङ्गमें 'गोपी' शब्दके समान 'कर्त्री' शब्दके रूप चलते हैं।

† 'सत्य' शब्द जब सामान्यतः सत्य भाषणके अर्थमें आता है, तब नपुंसक होता है और विशेषणरूपमें प्रयुक्त होनेपर विशेष्यके अनुसार तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होता है। इसके पुँल्लिङ्गरूप—सत्य सत्यौ सत्याः—इत्यादि रामवत् हैं। स्त्रीलिङ्ग-रूप—राधाके समान

शब्द कर्म है और वहन-क्रियामें संयुक्त भी है, अतः उससे 'एय' यह तद्धित प्रत्यय हुआ। आदि स्वरकी वृद्धि हुई और 'धौरेय' शब्द सिद्ध हुआ। इसी प्रकार कुङ्कुमेन रक्तं वस्त्रम्—इसमें कुङ्कुम-शब्द 'रँगना' क्रियाका कर्ता है और वह उसमें संयुक्त भी है। अतः उससे तद्धित अण् प्रत्यय होकर आदिपदकी वृद्धि हुई और 'कौङ्कुम' शब्द सिद्ध हुआ ॥५२॥

भवाद्यर्थे तु कानीनः क्षत्रियो वैदिकः स्वकः।
स्वार्थे चौरस्तु तुल्यार्थे चन्द्रवन्मुखमीक्षते ॥५३॥

अब 'भव' आदि अर्थोंमें होनेवाले तद्धित प्रत्ययोंका उदाहरण देते हैं—कन्यायां भवः कानीनः। जो अविवाहिता कन्यासे उत्पन्न हुए हों, उन्हें 'कानीन'[1] कहते हैं। क्षत्रस्यापत्यं जातिः क्षत्रियः। क्षत्रकुलसे उत्पन्न उसी जातिका बालक 'क्षत्रिय'[2] कहलाता है। वेदे भवः वैदिकः। इक्-प्रत्यय और आदि-स्वरकी वृद्धि हुई है। स्व एव स्वकः। यहाँ स्वार्थमें 'क' प्रत्यय है। चोर एव चौरः, स्वार्थमें अण् प्रत्यय हुआ है। तुल्य अर्थमें वत् प्रत्यय होता है। यथा—चन्द्रवन्मुखमीक्षते—चन्द्रमाके समान मुँह देखता है। चन्द्र+वत्=चन्द्रवत् ॥५३॥

ब्राह्मणत्वं ब्राह्मणता भावे ब्राह्मण्यमेव च।
गोमान्धनी च धनवानस्त्यर्थे प्रमितौ कियान् ॥५४॥

भाव-अर्थमें त्व, ता और य प्रत्यय होते हैं यथा—ब्राह्मणस्य भावः ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता, ब्राह्मण्यम्। अस्त्यर्थमें मतुप् और इन् प्रत्यय होते हैं—गौः अस्यास्ति इति गोमान्। धनमस्यास्ति इति धनी (जिसके पास गौ हो, वह 'गोमान्', जिसके पास धन हो, वह 'धनी' है[3])। अकारान्त, मकारान्त तथा मकारोपध शब्दसे एवं झयन्त शब्दसे परे मत्के 'म' का 'व' हो जाता है—यथा धनमस्यास्ति इति धनवान्। परिमाण अर्थमें 'इदम्', 'किम्', 'यत्', 'तत्', 'एतत्'—इन शब्दोंसे वतुप् प्रत्यय होता है, किंतु 'इदम्' और 'किम्' शब्दोंसे परे वतुप्के वकारका 'इय्' आदेश हो जाता है। दृक्, दृश, वतु—ये परे हों तो इदम्के स्थान में 'ई' तथा 'किम्'के स्थानमे 'कि' हो जाते हैं। किं परिमाणं यस्य स कियान्—यहाँ परिमाण-अर्थमें वतुप्-प्रत्यय, इयादेश तथा किभाव करनेसे कियान् बनता है। इसका अर्थ है—'कितना' ॥५४॥

जातार्थे तुंदिलः श्रद्धालुरौन्नत्ये तु दन्तुरः।
स्रग्वी तपस्वी मेधावी मायाव्यस्त्यर्थ एव च ॥५५॥

अब जातार्थमें होनेवाले प्रत्ययोंका उदाहरण देते हैं। तुन्दः संजातः अस्य तुन्दिलः। जिसको तोंद हो जाय, उसे 'तुन्दिल' कहते हैं। तुन्द+इल=तुन्दिल। श्रद्धा संजाता अस्य इति श्रद्धालुः। श्रद्धा+आलु। (इसी प्रकार दयालु, कृपालु आदि बनते हैं।) दाँतोंकी ऊँचाई व्यक्त करनेके लिये दन्त-शब्दसे उर-प्रत्यय होता है। उन्नताः दन्ता अस्य इति दन्तुरः (ऊँचे दाँतवाला)। अस्, माया, मेधा तथा स्रज्—इन शब्दों-से अस्त्यर्थमें विन् प्रत्यय होता है। इनके उदाहरण क्रमसे तपस्वी, मायावी, मेधावी (बुद्धिमान्) और स्रग्वी हैं। स्रग्वीका अर्थ माला धारण करनेवाला है ॥५५॥

वाचालश्चैव वाचाटो बहुकुत्सितभाषिणि।
ईषदपरिसमाप्तौ कल्पब्देशीय एव च ॥५६॥

खराब बातें अधिक बोलनेवालेके अर्थमें वाच् शब्दसे 'आल' और 'आट' प्रत्यय होते हैं। कुत्सितं बहु भाषते इति वाचालः, वाचाटः। ईषत् (अल्प) और असमाप्तिके अर्थमें कल्पप्, देश्य और देशीय प्रत्यय होते हैं ॥५६॥

कविकल्पः कविदेश्यः प्रकारवचने तथा।
पटुजातीयः कुत्सायां वैद्यपाशः प्रशंसने ॥५७॥
वैद्यरूपो भूतपूर्वे मतो दृष्टचरो मुने।
प्राचुर्यादिष्वन्नमयो मृन्मयः स्त्रीमयस्तथा ॥५८॥

जैसे—ईषत् ऊनः कविः कविकल्पः, कविदेश्यः, कविदेशीयः। जहाँ प्रकार बतलाना हो, वहाँ किम् और सर्वनाम आदि शब्दोंसे 'था' प्रत्यय होता है। तेन प्रकारेण तथा। तत्+था=तथा। त्यदादि शब्दोंका अन्तिम हल् निवृत्त होकर वे अकारान्त हो जाते हैं, विभक्ति परे रहनेपर। (था, दा, त्र, तस् आदि प्रत्यय विभक्तिरूप माने गये हैं)। इस नियमके अनुसार तत्के स्थानमें त हो जानेसे 'तथा' बना। जहाँ किसी विशेष प्रकारके व्यक्तिका प्रतिपादन हो, वहाँ जातीय प्रत्यय होता है। यथा—पटुप्रकारः—पटु-जातीयः। पटु-शब्दसे जातीय-प्रत्यय हुआ। किसीकी हीनता प्रकाशित करनेके लिये संज्ञाशब्दसे पाश प्रत्यय होता है। जैसे—कुत्सितो वैद्यः वैद्यपाशः (खराब वैद्य)। प्रशंसा

---

1. महर्षि व्यास और कर्ण कानीन थे। कन्या-शब्दसे अण् होनेपर कन्या-शब्दके स्थानमें कनीन आदेश होता है और आदिपदकी वृद्धि होनेसे कानीन बनता है। 2. क्षत्र+इय=क्षत्रिय। 'त्र' के 'अ' का लोप होकर वह 'इय'के 'इ' में मिला है। 3. मतुप्में उप्का लोप हो जाता है, फिर धीमान्-शब्दकी तरह रूप चलते हैं। धनिन्-शब्दका रूप [illegible]-शब्दके समान समझना चाहिये।

शब्द कर्म है और वहन-क्रियामें संयुक्त भी है, अतः उससे 'एय' यह तद्धित प्रत्यय हुआ। आदि स्वरकी वृद्धि हुई और 'धौरेय' शब्द सिद्ध हुआ। इसी प्रकार कुङ्कुमेन रक्तं वस्त्रम्—इसमें कुङ्कुम-शब्द 'रँगना' क्रियाका कर्ता है और वह उसमें संयुक्त भी है। अतः उससे तद्धित अण् प्रत्यय होकर आदिपदकी वृद्धि हुई और 'कौङ्कुम' शब्द सिद्ध हुआ ॥५२॥

भवाद्यर्थे तु कानीनः क्षत्रियो वैदिकः स्वकः।
स्वार्थे चौरस्तु तुल्यार्थे चन्द्रवन्मुखमीक्षते ॥५३॥

अब 'भव' आदि अर्थोंमें होनेवाले तद्धित प्रत्ययोंका उदाहरण देते हैं—कन्यायां भवः कानीनः। जो अविवाहिता कन्यासे उत्पन्न हुए हों, उन्हें 'कानीन'[1] कहते हैं। क्षत्रस्यापत्यं जातिः क्षत्रियः। क्षत्रकुलसे उत्पन्न उसी जातिका बालक 'क्षत्रिय'[2] कहलाता है। वेदे भवः वैदिकः। इक्-प्रत्यय और आदि-स्वरकी वृद्धि हुई है। स्व एव स्वकः। यहाँ स्वार्थमें 'क' प्रत्यय है। चोर एव चौरः, स्वार्थमें अण् प्रत्यय हुआ है। तुल्य अर्थमें वत् प्रत्यय होता है। यथा—चन्द्रवन्मुखमीक्षते—चन्द्रमाके समान मुँह देखता है। चन्द्र+वत्=चन्द्रवत् ॥५३॥

ब्राह्मणत्वं ब्राह्मणता भावे ब्राह्मण्यमेव च।
गोमान्धनी च धनवानस्त्यर्थे प्रमितौ कियान् ॥५४॥

भाव-अर्थमें त्व, ता और य प्रत्यय होते हैं यथा—ब्राह्मणस्य भावः ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता, ब्राह्मण्यम्। अस्त्यर्थमें मतुप् और इन् प्रत्यय होते हैं—गौः अस्यास्ति इति गोमान्। धनमस्यास्ति इति धनी (जिसके पास गौ हो, वह 'गोमान्', जिसके पास धन हो, वह 'धनी' है[3])। अकारान्त, मकारान्त तथा मकारोपध शब्दसे एवं झयन्त शब्दसे परे मत्के 'म' का 'व' हो जाता है—यथा धनमस्यास्ति इति धनवान्। परिमाण अर्थमें 'इदम्', 'किम्', 'यत्', 'तत्', 'एतत्'—इन शब्दोंसे वतुप् प्रत्यय होता है, किंतु 'इदम्' और 'किम्' शब्दोंसे परे वतुप्के वकारका 'इय्' आदेश हो जाता है। दृक्, दृश्, वतु—ये परे हों तो इदम्के स्थान में 'ई' तथा 'किम्'के स्थानमे 'कि' हो जाते हैं। किं परिमाणं यस्य स कियान्—यहाँ परिमाण-अर्थमें वतुप्-प्रत्यय, इयादेश तथा किभाव करनेसे कियान् बनता है। इसका अर्थ है—'कितना' ॥५४॥

जातार्थे तुंदिलः श्रद्धालुरौन्नत्ये तु दन्तुरः।
स्रग्वी तपस्वी मेधावी मायाव्यस्त्यर्थ एव च ॥५५॥

अब जातार्थमें होनेवाले प्रत्ययोंका उदाहरण देते हैं। तुन्दः संजातः अस्य तुन्दिलः। जिसको तोंद हो जाय, उसे 'तुन्दिल' कहते हैं। तुन्द+इल=तुन्दिल। श्रद्धा संजाता अस्य इति श्रद्धालुः। श्रद्धा+आलु। (इसी प्रकार दयालु, कृपालु आदि बनते हैं।) दाँतोंकी ऊँचाई व्यक्त करनेके लिये दन्त-शब्दसे उर-प्रत्यय होता है। उन्नताः दन्ता अस्य इति दन्तुरः (ऊँचे दाँतवाला)। अस्, माया, मेधा तथा स्रज्—इन शब्दों-से अस्त्यर्थमें विन् प्रत्यय होता है। इनके उदाहरण क्रमसे तपस्वी, मायावी, मेधावी (बुद्धिमान्) और स्रग्वी हैं। स्रग्वीका अर्थ माला धारण करनेवाला है ॥५५॥

वाचालश्चैव वाचाटो बहुकुत्सितभाषिणि।
ईषदपरिसमाप्तौ कल्पब्देशीय एव च ॥५६॥

खराब बातें अधिक बोलनेवालेके अर्थमें वाच् शब्दसे 'आल' और 'आट' प्रत्यय होते हैं। कुत्सितं बहु भाषते इति वाचालः, वाचाटः। ईषत् (अल्प) और असमाप्तिके अर्थमें कल्पप्, देश्य और देशीय प्रत्यय होते हैं ॥५६॥

कविकल्पः कविदेश्यः प्रकारवचने तथा।
पटुजातीयः कुत्सायां वैद्यपाशः प्रशंसने ॥५७॥
वैद्यरूपो भूतपूर्वे मतो दृष्टचरो मुने।
प्राचुर्यादिष्वन्नमयो मृन्मयः स्त्रीमयस्तथा ॥५८॥

जैसे—ईषत् ऊनः कविः कविकल्पः, कविदेश्यः, कविदेशीयः। जहाँ प्रकार बतलाना हो, वहाँ किम् और सर्वनाम आदि शब्दोंसे 'था' प्रत्यय होता है। तेन प्रकारेण तथा। तत्+था=तथा। त्यदादि शब्दोंका अन्तिम हल् निवृत्त होकर वे अकारान्त हो जाते हैं, विभक्ति परे रहनेपर। (था, दा, त्र, तस् आदि प्रत्यय विभक्तिरूप माने गये हैं)। इस नियमके अनुसार तत्के स्थानमें त हो जानेसे 'तथा' बना। जहाँ किसी विशेष प्रकारके व्यक्तिका प्रतिपादन हो, वहाँ जातीय प्रत्यय होता है। यथा—पटुप्रकारः—पटु-जातीयः। पटु-शब्दसे जातीय-प्रत्यय हुआ। किसीकी हीनता प्रकाशित करनेके लिये संज्ञाशब्दसे पाश प्रत्यय होता है। जैसे—कुत्सितो वैद्यः वैद्यपाशः (खराब वैद्य)। प्रशंसा

---

१. महर्षि व्यास और कर्ण कानीन थे। कन्या-शब्दसे अण् होनेपर कन्या-शब्दके स्थानमें कनीन आदेश होता है और आदिपदकी वृद्धि होनेसे कानीन बनता है। २. क्षत्र+इय=क्षत्रिय। 'त्र' के 'अ' का लोप होकर वह 'इय'के 'इ' में मिला है। ३. मतुप्में उप्का लोप हो जाता है, फिर धीमान्-शब्दकी तरह रूप चलते हैं। धनिन्-शब्दका रूप गुणिन्-शब्दके समान समझना चाहिये।

मास, अर्धमास एवं संवत्सर शब्दोंसे) नित्य 'तम' प्रत्यय होता है। यथा—शततमः(एकशततमः;मासतमः;अर्धमासतमः; संवत्सरतमः)। मुनीश्वर! क्रियाके प्रकारका बोध करानेके लिये संख्यावाचक शब्दसे स्वार्थमें धा-प्रत्यय होता है—जैसे (एकधा) द्विधा, त्रिधा इत्यादि ॥ ६३ ॥

त्रिंशावृत्तौ पञ्चकृत्वो द्विस्त्रिर्बहुश इत्यपि।
द्वितयं त्रितयं चापि संख्यायां हि द्वयं त्रयम् ॥६४॥

क्रियाकी आवृत्तिका बोध करानेके लिये कृत्वस् प्रत्यय होता है और 'स' कारका विसर्ग हो जाता है। यथा—पञ्चकृत्वः (पाँच बार), द्विः; त्रिः (दो बार, तीन बार)। बहु-शब्दसे 'धा, शस् एवं कृत्वस्' तीनों ही प्रत्यय होते हैं—यथा बहुधा, बहुशः, बहुकृत्वः। संख्याके अवयवका बोध करानेके लिये तय प्रत्यय होता है। उदाहरणके लिये द्वितय, त्रितय, चतुष्टय और पञ्चतय आदि शब्द हैं। द्वि और त्रि शब्दोंसे आगे जो 'तय' प्रत्यय है, उसके स्थानमें विकल्पसे अय हो जाता है; फिर द्वि और त्रि शब्दके इकारका लोप होनेसे द्वय, त्रय शब्द बनते हैं ॥ ६४ ॥

कुटीरश्च शमीरश्च शुण्डारोऽल्पार्थके मतः।
स्त्रैणः पौंस्नस्तुण्डिभश्च वृन्दारककृषीवलौ ॥६५॥

कुटी, शमी और शुण्डा शब्दसे छोटेपनका बोध करानेके लिये 'र' प्रत्यय होता है। छोटी कुटीको कुटीर कहते हैं। कुटी+र=कुटीरः। इसी प्रकार छोटी शमीको शमीर और छोटी शुण्डाको शुण्डार कहते हैं। शुण्डा-शब्द हाथीकी सूँड और मद्यशाला (शराबखाने) का बोधक है। स्त्री और पुंस् शब्दोंसे नञ् प्रत्यय होता है। आदि-स्वरकी वृद्धि होती है। ञ्कार इत्संज्ञक है। नके स्थानमें ण होता है। इस प्रकार स्त्रैण शब्द बनता है। जिस पुरुषमें स्त्रीका स्वभाव हो तथा जो स्त्रीमें अधिक आसक्त हो, उसे स्त्रैण कहते हैं। पुंस्+न, आदिवृद्धि=पौंस्न (पुरुषसम्बन्धी)। तुण्डि आदि शब्दोसे अस्त्यर्थमें भ-प्रत्यय होता है। तुण्डि+भ=तुण्डिभः (बढ़ी हुई नाभिवाला)। शृङ्ग और वृन्द शब्दोसे अस्त्यर्थमें 'आरक' प्रत्यय होता है। शृङ्ग+आरक=शृङ्गारकः (पर्वत)। वृन्द+आरक=वृन्दारकः (देवता)। रजस् और कृषि आदि शब्दोंसे 'वल' प्रत्यय होता है, रजस्वला स्त्री, कृषीवलः (किसान) ॥ ६५ ॥

मलिनो विकटो गोमी भौरिकिविधमुत्कटम्।
अवटीटोऽवनाटश्च निविडं चेक्षुशाकिनम् ॥६६॥
निबिरीसमैषुकारिभक्तं विद्याचणस्तथा।
विद्याचञ्चुर्बहुतिथं पर्वतः शृङ्गिणस्तथा ॥६७॥
स्वामी विषमं रूप्यं चोपत्यकाधित्यका तथा।
चिल्लश्च चिपिटं चिक्कं वातूलः कुतुपस्तथा ॥६८॥
वल्लश्च हिमेलुश्च कहिकश्चोपडस्ततः।
ऊर्णायुश्च मरुत्तश्चैकाकी चर्मण्वती तथा ॥६९॥
ज्योत्स्ना तमिस्राऽष्ठीवच्च कक्षीवद्रुमण्वती।
आसन्दीवच्च चक्रीवत्तूष्णीकां जल्पतक्यपि ॥७०॥

मल-शब्दसे अस्त्यर्थमें इन प्रत्यय होता है। मलम् अस्यास्ति इति मलिनः (मलयुक्त)। मल+इन अकार-लोप=मलिन। सम्, प्र, उद् और वि—इनसे कट प्रत्यय होता है,—यथा सङ्कटः, प्रकटः, उत्कटः, विकटः। गो-शब्दसे मिन्-प्रत्यय होता है अस्त्यर्थमें—गो+मिन्=गोमी (जिसके पास गौएँ हों, वह पुरुष)। ज्योत्स्ना (चाँदनी), तमिस्रा (अँधेरी रात), शृङ्गिण, (शृङ्गवाला), ऊर्जस्विन् (ओजस्वी), ऊर्जस्वल, गोमिन्, मलिन और मलीमस (मलिन)—ये शब्द मत्वर्थमें निपातन-सिद्ध हैं। 'भौरिकिविधम्' इसकी व्युत्पत्ति यों है—भौरिकीणा विषयो देशः—भौरिकिविधम् (भौरिकि नामवाले वर्ग-विशेषके लोगोंका देश)। ऐषुकारीणाम् विषयो देशः—ऐषुकारिभक्तम् (एषुकारि—बाण बनानेवाले लोगोंका देश)। इन दोनों उदाहरणोंमें क्रमशः 'विध' एवं 'भक्त' प्रत्यय हुए हैं। भौरिक्यादि तथा ऐषुकार्यादि शब्दोंसे 'विध' एवं 'भक्त' प्रत्यय होनेका नियम है। उत्कटम्—इसकी सिद्धिका नियम पहले बताया गया है, नासिकाकी निचाई

प्रयोग न हो तो केवल तम प्रत्ययका विधान है। यथा—सप्ततितम, अशीतितमः, नवतितमः इत्यादि। आदिमें संख्या लग जानेपर तो 'विंशः विंशतितमः' की भाँति दो-दो रूप होते ही हैं—जैसे एकाष्ट. एकषष्टितमः इत्यादि।

१. द्वि और त्रि शब्दोंके इकारका विकल्पसे एकार भी हो जाता है। यथा—द्वेधा, त्रेधा। द्वि और त्रि शब्दोंसे धमु् प्रत्यय और आदिस्वरकी वृद्धि—ये दो कार्य और भी होते हैं। यथा—द्वैधम्, त्रैधम्। २. था, धा, त्र, तस्, कृत्वस् आदि प्रत्यय जिन शब्दोंके अन्तमें लगते हैं, वे तद्धितान्त अव्यय माने जाते हैं। ३. द्वि, त्रि और चतुर् शब्दोंसे कृत्वस् न होकर केवल 'सुच्' प्रत्यय होता है। इसमें केवल 'स' रहता है और 'उ'कार तथा 'च'कारकी 'इत्संज्ञा' हो जाती है। प्रयोगमें स-कारका विसर्ग हो जाता है। चतुर्-शब्दके आगे सका लोप होता है और 'र' का विसर्ग हो जाता है। इस प्रकार क्रमशः द्विः त्रिः चतुः—ये रूप बनते हैं। ये तीनों अव्यय हैं।

मास, अर्धमास एवं संवत्सर शब्दोंसे) नित्य 'तम' प्रत्यय होता है। यथा—शततमः(एकशततमः,मासतमः,अर्धमासतमः, संवत्सरतमः)। मुनीश्वर! क्रियाके प्रकारका बोध करानेके लिये संख्यावाचक शब्दसे स्वार्थमें धा-प्रत्यय होता है—जैसे (एकधा) द्विधा, त्रिधा इत्यादि ॥ ६३ ॥

क्रियावृत्तौ पञ्चकृत्वो द्विस्त्रिर्बहुश इत्यपि।
द्वितयं त्रितयं चापि संख्यायां हि द्वयं त्रयम् ॥६४॥

क्रियाकी आवृत्तिका बोध करानेके लिये कृत्वसुच् प्रत्यय होता है और 'स' कारका विसर्ग हो जाता है। यथा—पञ्चकृत्वः (पाँच बार), द्विः, त्रिः (दो बार, तीन बार)। बहु-शब्दसे 'धा, शस् एवं कृत्वस्' तीनों ही प्रत्यय होते हैं—यथा बहुधा, बहुशः, बहुकृत्वः। संख्याके अवयवका बोध करानेके लिये तय प्रत्यय होता है। उदाहरणके लिये द्वितय, त्रितय, चतुष्टय और पञ्चतय आदि शब्द हैं। द्वि और त्रि शब्दोंसे आगे जो 'तय' प्रत्यय है, उसके स्थानमें विकल्पसे अय हो जाता है; फिर द्वि और त्रि शब्दके इकारका लोप होनेसे द्वय, त्रय शब्द बनते हैं ॥ ६४ ॥

कुटीरश्च शमीरश्च शुण्डारोऽल्पार्थके मतः।
स्त्रैणः पौंस्नस्तुण्डिभश्च वृन्दारककृषीवलौ ॥६५॥

कुटी, शमी और शुण्डा शब्दसे छोटेपनका बोध करानेके लिये 'र' प्रत्यय होता है। छोटी कुटीको कुटीर कहते हैं। कुटी+र=कुटीरः। इसी प्रकार छोटी शमीको शमीर और छोटी शुण्डाको शुण्डार कहते हैं। शुण्डा-शब्द हाथीकी सूँड और मद्यशाला (शराबखाने) का बोधक है। स्त्री और पुंस् शब्दोंसे नञ् प्रत्यय होता है। आदि-स्वरकी वृद्धि होती है। ञकार इत्संज्ञक है। नके स्थानमें ण होता है। इस प्रकार स्त्रैण शब्द बनता है। जिस पुरुषमें स्त्रीका स्वभाव हो तथा जो स्त्रीमें अधिक आसक्त हो, उसे स्त्रैण कहते हैं। पुंस्+न, आदिवृद्धि=पौंस्न (पुरुषसम्बन्धी)। तुण्डि आदि शब्दोंसे अस्त्यर्थमें भ-प्रत्यय होता है। तुण्डि+भ=तुण्डिभः (बढ़ी हुई नाभिवाला)। शृङ्ग और वृन्द शब्दोंसे अस्त्यर्थमें 'आरक' प्रत्यय होता है। शृङ्ग+आरक=शृङ्गारकः (पर्वत)। वृन्द+आरक=वृन्दारकः (देवता)। रजस् और कृषि आदि शब्दोंसे 'वल' प्रत्यय होता है, रजस्वला स्त्री, कृषीवलः (किसान) ॥ ६५ ॥

मलिनो विकटो गोमी भौरिकिविधमुत्कटम्।
अवटीटोऽवनाटश्च निविडं चेक्षुशाकिनम् ॥६६॥
निबिरीसमैषुकारिभक्तं विद्याचणस्तथा।
विद्याचञ्चुर्बहुतिथं पर्वतः शृङ्गिणस्तथा ॥६७॥
स्वामी विषमं रूप्यं चोपत्यकाधित्यका तथा।
चिल्लश्च चिपिटं चिक्कं वातूलः कुतुपस्तथा ॥६८॥
बल्लूलश्च हिमेलुश्च कहिकश्चोपडस्ततः।
ऊर्णायुश्च मरुत्तश्चैकाकी चर्मण्वती तथा ॥६९॥
ज्योत्स्ना तमिस्राऽष्ठीवच्च कक्षीवद्रुमण्वती।
आसन्दीवच्च चक्रीवत्तूष्णीकां जल्पतक्यपि ॥७०॥

मल-शब्दसे अस्त्यर्थमें इन प्रत्यय होता है। मलम् अस्यास्ति इति मलिनः (मलयुक्त)। मल+इन अकार-लोप=मलिन। सम्, प्र, उद् और वि—इनसे कट प्रत्यय होता है,—यथा सकटः, प्रकटः, उत्कटः, विकटः। गो-शब्दसे मिन्-प्रत्यय होता है अस्त्यर्थमें—गो+मिन्=गोमी (जिसके पास गौएँ हों, वह पुरुष)। ज्योत्स्ना (चाँदनी), तमिस्रा (अँधेरी रात), शृङ्गिण, (शृङ्गवाला), ऊर्जस्विन् (ओजस्वी), ऊर्जस्वल, गोमिन्, मलिन और मलीमस (मलिन)—ये शब्द मत्वर्थमें निपातन-सिद्ध हैं। 'भौरिकिविधम्' इसकी व्युत्पत्ति यों है—भौरिकीणा विषयो देशः—भौरिकिविधम् (भौरिकि नामवाले वर्ग-विशेषके लोगोंका देश)। ऐषुकारीणाम् विषयो देशः—ऐषुकारिभक्तम् (ऐषुकारि—बाण बनानेवाले लोगोंका देश)। इन दोनों उदाहरणोंमें क्रमशः 'विध' एवं 'भक्त' प्रत्यय हुए हैं। भौरिक्यादि तथा ऐषुकार्यादि शब्दोंसे 'विध' एवं 'भक्त' प्रत्यय होनेका नियम है। उत्कटम्—इसकी सिद्धिका नियम पहले बताया गया है, नासिकाकी निचाई

प्रयोग न हो तो केवल तम प्रत्ययका विधान है। यथा—सप्ततितम, अशीतितमः, नवतितमः इत्यादि। आदिमें संख्या लग जानेपर तो 'विंशः विंशतितमः' की भाँति दो-दो रूप होते ही हैं—जैसे एकषष्ट, एकषष्टितमः इत्यादि।

१. द्वि और त्रि शब्दोंके इकारका विकल्पसे एकार भी हो जाता है। यथा—द्वेधा, त्रेधा। द्वि और त्रि शब्दोंसे धमुञ् प्रत्यय और आदिस्वरकी वृद्धि—ये दो कार्य और भी होते हैं। यथा—द्वैधम्, त्रैधम्। २. था, धा, त्र, तस्, कृत्वस् आदि प्रत्यय जिन शब्दोंके अन्तमें लगते हैं, वे तद्धितान्त अव्यय माने जाते हैं। ३. द्वि, त्रि और चतुर् शब्दोंसे कृत्वस् न होकर केवल 'सुच्' प्रत्यय होता है। इसमें केवल 'स' रहता है और 'उ'कार तथा 'च'कारकी 'इत्संज्ञा' हो जाती है। प्रयोगमें स-कारका विसर्ग हो जाता है। चतुर्-शब्दके आगे सका लोप होता है और 'र' का विसर्ग हो जाता है। इस प्रकार क्रमशः द्विः त्रिः चतुः—ये रूप बनते हैं। ये तीनों अव्यय हैं।

अहंयुः (अहंकारवान्), शुभम्+युस्=शुभंयुः (शुभयुक्त पुरुष) ॥ ७१ ॥

भवति बभूव भविता भविष्यति भवत्वभवद्भवेच्चापि ॥७२॥
भूयादभूदभविष्यल्लादावेतानि रूपाणि ।
अत्ति जघासात्तात्स्यत्यत्त्वादददद्यादद्धिरघसदात्स्यत् ॥७३॥

(अब तिङन्तप्रकरण प्रारम्भ करके कुछ धातुओंके रूपोंका दिग्दर्शन कराते हैं। वैयाकरणोंने दस प्रकारके धातु-समुदाय माने हैं, उन्हें 'नवगणी या दसगणी'के नामसे जाना जाता है। उनके नाम हैं—भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि तथा चुरादि। भ्वादिगणके सभी धातुओंके रूप प्रायः एक प्रकार एवं एक शैलीके होते हैं, दूसरे-दूसरे गणोंके धातु भी अपने-अपने ढंगमें एक ही तरहके होते हैं। यहाँ सभी गणोंके एक-एक धातुके नौ लकारोंमें एक-एक रूप दिया जाता है। शेष धातु और उनके रूपोंका ज्ञान विद्वान् गुरुसे प्राप्त करना चाहिये।) 'भू' धातुके लट् लकारमें 'भवति भवतः भवन्ति' इत्यादि रूप बनते हैं। लिट् लकारमें 'बभूव बभूवतुः बभूवुः' इत्यादि, लुट्में 'भविता भवितारौ भवितारः' इत्यादि, लृट्में 'भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति' इत्यादि, लोट्में 'भवतु भवतात् भवताद्, भवताम् भवन्तु' इत्यादि, लङ् लकारमे 'अभवत् अभवताम् अभवन्' इत्यादि, विधिलिङ्में 'भवेत् भवेताम् भवेयुः' इत्यादि, आशिष् लिङ्में 'भूयात् भूयास्ताम् भूयासुः' इत्यादि, लुङ्में 'अभूत् अभूताम् अभूवन्' इत्यादि तथा लृङ् लकारमें 'अभविष्यत् अभविष्यताम् अभविष्यन्' इत्यादि—ये सब रूप होते हैं। 'भू' धातुका अर्थ सत्ता है, भवतिका अर्थ 'होता है'—ऐसा किया जाता है। अब अदादि गणके 'अद्' धातुका पूर्ववत् प्रत्येक लकारमें एक-एक रूप दिया जाता है, 'अद्' धातु भक्षण अर्थमें प्रयुक्त होता है। अत्ति। जघास। अत्ता। अत्स्यति। अत्तु। आदत्। अद्यात्। अद्यात्। अघसत्। आत्स्यत् ॥ ७२-७३ ॥

जुहोति जुहाव जुहवाञ्चकार होता होष्यति जुहोतु ।
अजुहोज्जुहुयाद्धूयादहौषीदहोष्यदीव्यति ।
दिदेव देविता देविष्यति दीव्यतु चादीव्यद्दीव्येद्दीव्याद्वै ७४
अदेवीददेविष्यत्सुनोति सुषाव सोता सोष्यति वै ।
सुनोत्वसुनोत्सुनुयात्सूयादसावीदसोष्यत्तुदति च ॥७५॥
तुतोद तोत्ता तोत्स्यति तुदत्वतुदत्तुदेत्तुद्याद्धि ।
अतौत्सीदतोत्स्यदिति च रुणद्धि रुरोध रोद्धा रोत्स्यति वै ७६
रुणद्ध्वरुणद्रुन्ध्याद्रुध्यादरौत्सीदरोत्स्यच्च ।
तनोति ततान तनिता तनिष्यति तनोत्वतनोत्तनुयाद्धि ७७
तन्यादतनीच्चातानीदतनिष्यत्क्रीणाति चिक्राय क्रेता
क्रेष्यति क्रीणात्विति च। अक्रीणात्क्रीणीयात्क्रीयादक्रैषीद-क्रेष्यच्चोरयति चोरयामास चोरयिता चोरयिष्यति
चोरयत्वचोरयच्चोरयेच्चोर्यादचूचुरदचोरयिष्यदित्येवं दश वै गणाः ॥ ७८ ॥

जुहोत्यादि गणमें 'हु' धातु प्रधान है। इसका प्रयोग अग्निमे आहुति डालनेके अर्थमें या देवताको तृप्त करनेके अर्थ-में होता है। इसका प्रत्येक लकारमे रूप इस प्रकार है—जुहोति। जुहाव, जुहवाञ्चकार, जुहवाम्बभूव, जुहवामास। होता। होष्यति। जुहोतु। अजुहोत्। जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत्। अहोष्यत्। दिवादि गणमें 'दिव्' धातु प्रधान है। इसके अनेक अर्थ है—क्रीडा, विजयकी इच्छा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति। इसके रूप पूर्ववत् विभिन्न लकारोंमें इस प्रकार हैं—दीव्यति। दिदेव। देविता। देविष्यति। दीव्यतु। अदीव्यत्। दीव्येत्। दीव्यात्। अदेवीत्। अदेविष्यत्। स्वादिगणमें 'सु' धातु प्रधान है। यह मूलतः षुञ् धातुके नामसे प्रसिद्ध है। इसका अर्थ है अभिषव अर्थात् नहलाना, रस निचोड़ना, नहाना एवं सोमरस निकालना। रूप इस प्रकार हैं—सुनोति। सुषाव। सोता। सोष्यति। सुनोतु। असुनोत्। सुनुयात्। सूयात्। असावीत्। असोष्यत्। ये परस्मैपदके रूप हैं; आत्मनेपदमे सुनुते, 'सुषुवे' इत्यादि रूप होते हैं। तुदादिगणमें 'तुद्' धातु प्रधान है, जिसका अर्थ है पीड़ा देना। रूप इस प्रकार हैं—तुदति। तुतोद। तोत्ता। तोत्स्यति। तुदतु। अतुदत्। तुदेत्। तुद्यात्। अतौत्सीत्। अतोत्स्यत्। रुधादिगणमें 'रुध्' धातु प्रधान है, जिसका अर्थ है—रूँधना, बाड़ लगाना, घेरा डालना या रोकना। रूप इस प्रकार हैं—रुणद्धि। रुरोध। रोद्धा। रोत्स्यति। रुणद्धु। अरुणत्। रुन्ध्यात्। रुद्ध्यात्। अरौत्सीत्। अरोत्स्यत्।[1] तनादिगणमें 'तन्' धातु प्रधान है। इसका अर्थ है विस्तार करना, फैलाना; रूप इस प्रकार हैं—तनोति। ततान। तनिता। तनिष्यति। तनोतु।

१. यह उभयपदी धातु है। मूलमें केवल परस्मैपदीय रूप दिया गया है। इसका आत्मनेपदीय रूप इस प्रकार है—रुन्धे। रुरुधे। रोद्धा। रोत्स्यते। रुन्धाम्। अरुन्ध। रुन्धीत। रोत्सीष्ट। अरुद्ध। अरोत्स्यत।

अहंयुः (अहंकारवान्), शुभम्+युस्=शुभंयुः (शुभयुक्त पुरुष) ॥ ७१ ॥

> भवति बभूव भविता भविष्यति भवत्वभवद्भवेच्चापि ॥७२॥
> भूयादभूदभविष्यल्लादावेतानि रूपाणि ।
> अत्ति जघासात्तात्स्यत्यत्त्वाददद्यादद्द्विरघसदात्स्यत् ॥७३॥

(अब तिङन्तप्रकरण प्रारम्भ करके कुछ धातुओंके रूपोंका दिग्दर्शन कराते हैं । वैयाकरणोंने दस प्रकारके धातु-समुदाय माने हैं, उन्हें 'नवगणी या दसगणी'के नामसे जाना जाता है । उनके नाम हैं—भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि तथा चुरादि । भ्वादिगणके सभी धातुओंके रूप प्रायः एक प्रकार एवं एक शैलीके होते हैं, दूसरे-दूसरे गणोंके धातु भी अपने-अपने ढंगमें एक ही तरहके होते हैं । यहाँ सभी गणोंके एक-एक धातुके नौ लकारोंमें एक-एक रूप दिया जाता है । शेष धातु और उनके रूपोंका ज्ञान विद्वान् गुरुसे प्राप्त करना चाहिये ।) 'भू' धातुके लट् लकारमें 'भवति भवतः भवन्ति' इत्यादि रूप बनते हैं । लिट् लकारमें 'बभूव बभूवतुः बभूवुः' इत्यादि, लुट्में 'भविता भवितारौ भवितारः' इत्यादि, लृट्में 'भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति' इत्यादि, लोट्में 'भवतु भवतात् भवताद्, भवताम् भवन्तु' इत्यादि, लङ् लकारमे 'अभवत् अभवताम् अभवन्' इत्यादि, विधिलिङ्में 'भवेत् भवेताम् भवेयुः' इत्यादि, आशिष् लिङ्में 'भूयात् भूयास्ताम् भूयासुः' इत्यादि, लुङ्में 'अभूत् अभूताम् अभूवन्' इत्यादि तथा लृङ् लकारमें 'अभविष्यत् अभविष्यताम् अभविष्यन्' इत्यादि—ये सब रूप होते हैं । 'भू' धातुका अर्थ सत्ता है, भवतिका अर्थ 'होता है'—ऐसा किया जाता है । अब अदादि गणके 'अद्' धातुका पूर्ववत् प्रत्येक लकारमें एक-एक रूप दिया जाता है, 'अद्' धातु भक्षण अर्थमें प्रयुक्त होता है । अत्ति । जघास । अत्ता । अत्स्यति । अत्तु । आदत् । अद्यात् । अद्यात् । अघसत् । आत्स्यत् ॥ ७२-७३ ॥

> जुहोति जुहाव जुहवाञ्चकार होता होष्यति जुहोतु ।
> अजुहोज्जुहुयाद्धूयादहौषीदहोष्यद्दीव्यति ।
> दिदेव देविता देविष्यति दीव्यतु चादीव्यद्दीव्येद्दीव्याद्वै ७४
> अदेवीददेविष्यत्सुनोति सुषाव सोता सोष्यति वै ।
> सुनोत्वसुनोत्सुनुयात्सूयादसावीदसोष्यत्तुदति च ॥७५॥
> तुतोद तोत्ता तोत्स्यति तुदत्वतुदत्तुदेत्तुद्याद्धि ।
> अतौत्सीदतोत्स्यदिति च रुणद्धि रुरोध रोद्धा रोत्स्यति वै ७६
> रुणद्ध्वरुणद्रुन्ध्याद्रुध्यादरौत्सीदरोत्स्यच्च ।
> तनोति ततान तनिता तनिष्यति तनोत्वतनोत्तनुयाद्धि ७७
> तन्यादतनीत्चातानीदतनिष्यत्क्रीणाति चिक्राय क्रेता
> क्रेष्यति क्रीणात्विति च । अक्रीणात्क्रीणीयात्क्रीयादक्रैषीद-
> क्रेष्यच्चोरयति चोरयामास चोरयिता चोरयिष्यति
> चोरयत्वचोरयच्चोरयेच्चोर्यादचूचुरदचोरयिष्यदित्येवं दश
> वै गणाः ॥ ७८ ॥

जुहोत्यादि गणमें 'हु' धातु प्रधान है । इसका प्रयोग अग्निमें आहुति डालनेके अर्थमें या देवताको तृप्त करनेके अर्थ-में होता है । इसका प्रत्येक लकारमे रूप इस प्रकार है—जुहोति । जुहाव, जुहवाञ्चकार, जुहवाम्बभूव, जुहवामास । होता । होष्यति । जुहोतु । अजुहोत् । जुहुयात् । हूयात् । अहौषीत् । अहोष्यत् । दिवादि गणमें 'दिव्' धातु प्रधान है । इसके अनेक अर्थ है—क्रीडा, विजयकी इच्छा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति । इसके रूप पूर्ववत् विभिन्न लकारोंमें इस प्रकार हैं—दीव्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् । स्वादिगणमें 'सु' धातु प्रधान है । यह मूलतः षुञ् धातुके नामसे प्रसिद्ध है । इसका अर्थ है अभिषव अर्थात् नहलाना, रस निचोड़ना, नहाना एवं सोमरस निकालना । रूप इस प्रकार हैं—सुनोति । सुषाव । सोता । सोष्यति । सुनोतु । असुनोत् । सुनुयात् । सूयात् । असावीत् । असोष्यत् । ये परस्मैपदके रूप हैं; आत्मनेपदमे सुनुते, 'सुषुवे' इत्यादि रूप होते हैं । तुदादिगणमें 'तुद्' धातु प्रधान है, जिसका अर्थ है पीड़ा देना। रूप इस प्रकार हैं—तुदति । तुतोद । तोत्ता । तोत्स्यति । तुदतु । अतुदत् । तुदेत् । तुद्यात् । अतौत्सीत् । अतोत्स्यत् । रुधादिगणमें 'रुध्' धातु प्रधान है, जिसका अर्थ है—रूँधना, बाड़ लगाना, घेरा डालना या रोकना । रूप इस प्रकार हैं—रुणद्धि । रुरोध । रोद्धा । रोत्स्यति । रुणद्धु । अरुणत् । रुन्ध्यात् । रुद्ध्यात् । अरौत्सीत् । अरोत्स्यत् । तनादिगणमें 'तन्' धातु प्रधान है । इसका अर्थ है विस्तार करना, फैलाना; रूप इस प्रकार हैं—तनोति । ततान । तनिता । तनिष्यति । तनोतु ।

---

१. यह उभयपदी धातु है । मूलमें केवल परस्मैपदीय रूप दिया गया है । इसका आत्मनेपदीय रूप इस प्रकार है—रुन्धे । रुरुधे । रोद्धा । रोत्स्यते । रुन्धाम् । अरुन्ध । रुन्धीत । रोत्सीष्ट । अरुद्ध । अरोत्स्यत ।

अनुदात्त स्वर और ङकारकी इत्संज्ञा होती है, उनसे आत्मनेपदके प्रत्यय होते हैं। यथा—एधते, वर्धते इत्यादि। ये अनुदात्तेत् हैं। त्रैङ् पालने—यह ङित् धातु है, इसके केवल आत्मनेपदमें 'त्रायते' इत्यादि रूप होते हैं। जहाँ क्रियाका विनिमय व्यक्त होता हो, वहाँ भी आत्मनेपद होता है। यथा—व्यतिलुनीते (दूसरेके योग्य लवनरूप कार्य दूसरा करता है) ॥ ८० ॥

निर्विशादेस्तथा विप्र विजानीयात्मनेपदम्।
परस्मैपदमाख्यातं शेषात्कर्तरि शाब्दिकैः ॥८१॥

विप्रवर! निपूर्वक 'विश्' एवं वि और परापूर्वक 'जि' इत्यादि धातुओंमें भी आत्मनेपद ही जानो। यथा—निविशते, विजयते, पराजयते इत्यादि। भाव और कर्ममें प्रत्यय होनेपर भी आत्मनेपद ही होता है। आत्मनेपदके जितने निमित्त हैं, उन्हें छोड़कर शेष धातुओंसे कर्तामें परस्मैपद होता है—ऐसा वैयाकरणोंका कथन है ॥ ८१ ॥

ञित्स्वरितेतश्च उभे यक्च स्याद्भावकर्मणोः।

जिन धातुओंमें 'स्वरित' और 'ञ'की इत्संज्ञा हुई हो, उनसे परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं। यथा—'खनति, खनते; श्रयति, श्रयते' इत्यादि।

(अब भाव-कर्म-प्रकरण आरम्भ करते हैं—) भाव और कर्ममें धातुसे यक् प्रत्यय होता है। भावमें प्रत्यय होनेपर क्रियामें केवल औत्सर्गिक एकवचन होता है और सदा प्रथम पुरुषके ही एकवचनका रूप लिया जाता है। उस दशामें कर्ता तृतीयान्त होता है। भू धातुसे भावमें प्रत्यय करनेपर 'भूयते' रूप होता है। वाक्यमें उसका प्रयोग इस प्रकार है—'त्वया मया अन्यैश्च भूयते। सकर्मक धातुसे कर्ममें प्रत्यय होनेपर कर्म उक्त हो जाता है; अतः उसमें प्रथमा विभक्ति होती है और अनुक्त कर्तामें तृतीया विभक्तिका प्रयोग होता है। कर्मके अनुसार ही क्रियामें पुरुष और वचनकी व्यवस्था होती है। यथा—चैत्रः आनन्दमनुभवति इति कर्मणि प्रत्यये चैत्रेणानन्दोऽनुभूयते, (चैत्रसे आनन्दका अनुभव किया जाता या आनन्द भोगा जाता है) चैत्रस्त्वामनुभवति, चैत्रेण त्वमनुभूयसे, (चैत्रसे तुम अनुभव किये जाते हो) चैत्रो मामनुभवति, चैत्रेणाहमनुभूये (चैत्रसे मैं अनुभव किया जाता हूँ) इत्यादि उदाहरण समझने हैं।

सौकर्यातिशयं चैव यदा द्योतयितुं मुने ॥८२॥
विवक्ष्यते न व्यापारो लक्ष्ये कर्तुस्तदापरे।
लभन्ते कर्तृतां पश्य पच्यते ह्योदनः स्वयम् ॥८३॥
साध्वसिश्छिनत्त्येवं स्थाली पचति वै मुने।
धातोः सकर्मकात्कर्तृकर्मणोरपि प्रत्ययाः ॥८४॥

मुने! जब अतिशय सौकर्य प्रकाशित करनेके लिये लक्ष्यमें कर्ताके व्यापारकी विवक्षा नहीं रह जाती, तब कर्म और करण आदि दूसरे कारक ही कर्तृभावको प्राप्त होते हैं। यथा—चैत्रो वह्निना स्थाल्यामोदनं पचति (चैत्र आगसे बटलोईमें भात पकाता है)—इस वाक्यमें जब चैत्रके कर्तृत्वकी विवक्षा न रहे और करण आदिके कर्तृत्वकी विवक्षा हो जाय तो वे ही कर्ता हो जाते हैं और तदनुकूल क्रिया होती है। यथा—'वह्निः पचति' (आग पकाती है)। यहाँ करण ही कर्तारूपमें प्रयुक्त हुआ है। 'स्थाली पचति' (बटलोई पकाती है)—यहाँ अधिकरण ही कर्ताके रूपमें प्रयुक्त हुआ है। 'ओदनः स्वयं पच्यते' (भात स्वयं पकता है)—यहाँ कर्म ही कर्तारूपमें प्रयुक्त हुआ है। जब कर्म ही कर्तारूपमें प्रयुक्त हो तो कर्तामें लकार होता है; परंतु कर्मवद्भाव होनेसे यक् और आत्मनेपद आदि ही होते हैं। अतः 'पचति' न होकर 'पच्यते' रूप होता है। ऐसे प्रयोगको कर्मकर्तृप्रकरणके अन्तर्गत मानते हैं। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है। 'असिना साधु छिनत्ति' (तलवारसे अच्छी तरह काटता है)—इस वाक्यमें उपर्युक्त नियमानुसार करणमें कर्तृत्वकी विवक्षा होनेपर ऐसा वाक्य बनेगा—साधु असिश्छिनत्ति (तलवार अच्छा काटती है)। मुने! सकर्मक धातु भी कर्मकर्तृमें अकर्मक हो जाता है, अतः उससे भाव तथा कर्तामें भी लकार होता है। यथा भावे—पच्यते ओदनेन। कर्तरि—पच्यते ओदनः। सम्प्रदान और अपादान कारकोंमें कर्तृत्वकी विवक्षा कभी नहीं की जाती; क्योंकि यह अनुभवके विरुद्ध है। सामान्य स्थितिमें सकर्मक धातुसे 'कर्ता' और 'कर्म' में प्रत्यय होते हैं ॥ ८२—८४ ॥

तस्माद् वाकर्मकाद्विप्र भावे कर्तरि कीर्तिताः।
फलव्यापारयोरेकनिष्ठतायामकर्मकः ॥८५॥
धातुस्तयोर्धर्मिभेदे सकर्मक उदाहृतः।
गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम् ॥८६॥
बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया।
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः ॥८७॥

विप्रवर! वही धातु यदि अकर्मक हो तो उससे 'भाव' और 'कर्ता' में प्रत्यय कहे गये हैं।

सभी धातुओंके फल और व्यापार—ये दो अर्थ हैं। ये दोनों जहाँ एकमात्र कर्तामें ही मौजूद हों, उन धातुओंको

अनुदात्त स्वर और ङकारकी इत्संज्ञा होती है, उनसे आत्मनेपदके प्रत्यय होते हैं। यथा—एधते, वर्धते इत्यादि। ये अनुदात्तेत् हैं। त्रैङ् पालने—यह ङित् धातु है, इसके केवल आत्मनेपदमें 'त्रायते' इत्यादि रूप होते हैं। जहाँ क्रियाका विनिमय व्यक्त होता हो, वहाँ भी आत्मनेपद होता है। यथा—व्यतिलुनीते (दूसरेके योग्य लवनरूप कार्य दूसरा करता है) ॥ ८० ॥

निविशादेस्तथा विप्र विजानीह्यात्मनेपदम्।
परस्मैपदमाख्यातं शेषात्कर्तरि शाब्दिकैः ॥८१॥

विप्रवर! निपूर्वक 'विश्' एवं वि और परापूर्वक 'जि' इत्यादि धातुओंमें भी आत्मनेपद ही जानो। यथा—निविशते, विजयते, पराजयते इत्यादि। भाव और कर्ममें प्रत्यय होनेपर भी आत्मनेपद ही होता है। आत्मनेपदके जितने निमित्त हैं, उन्हें छोड़कर शेष धातुओंसे कर्तामें परस्मैपद होता है—ऐसा वैयाकरणोंका कथन है ॥ ८१ ॥

ञित्स्वरितेतश्च उभे यक्च स्याद्भावकर्मणोः।

जिन धातुओंमें 'स्वरित' और 'ञ'की इत्संज्ञा हुई हो, उनसे परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं। यथा—'खनति, खनते; श्रयति, श्रयते' इत्यादि।

(अब भाव-कर्म-प्रकरण आरम्भ करते हैं—) भाव और कर्ममें धातुसे यक् प्रत्यय होता है। भावमें प्रत्यय होनेपर क्रियामें केवल औत्सर्गिक एकवचन होता है और सदा प्रथम पुरुषके ही एकवचनका रूप लिया जाता है। उस दशामें कर्ता तृतीयान्त होता है। भू धातुसे भावमें प्रत्यय करनेपर 'भूयते' रूप होता है। वाक्यमें उसका प्रयोग इस प्रकार है—'त्वया मया अन्यैश्च भूयते। सकर्मक धातुसे कर्ममें प्रत्यय होनेपर कर्म उक्त हो जाता है, अतः उसमें प्रथमा विभक्ति होती है और अनुक्त कर्तामें तृतीया विभक्तिका प्रयोग होता है। कर्मके अनुसार ही क्रियामें पुरुष और वचनकी व्यवस्था होती है। यथा—चैत्रः आनन्दमनुभवति इति कर्मणि प्रत्यये चैत्रेणानन्दोऽनुभूयते, (चैत्रसे आनन्दका अनुभव किया जाता या आनन्द भोगा जाता है) चैत्रस्त्वामनुभवति, चैत्रेण त्वमनुभूयसे, (चैत्रसे तुम अनुभव किये जाते हो) चैत्रो मामनुभवति, चैत्रेणाहमनुभूये (चैत्रसे मैं अनुभव किया जाता हूँ) इत्यादि उदाहरण भावकर्मके हैं।

सौकर्यातिशयं चैव यदा द्योतयितुं मुने ॥८२॥
विवक्ष्यते न व्यापारो लक्ष्ये कर्तुस्तदापरे।
लभन्ते कर्तृतां पश्य पच्यते ह्योदनः स्वयम् ॥८३॥
साध्वसिश्छिनत्त्येवं स्थाली पचति वै मुने।
धातोः सकर्मकात्कर्तृकर्मणोरपि प्रत्ययाः ॥८४॥

मुने! जब अतिशय सौकर्य प्रकाशित करनेके लिये लक्ष्यमें कर्ताके व्यापारकी विवक्षा नहीं रह जाती, तब कर्म और करण आदि दूसरे कारक ही कर्तृभावको प्राप्त होते हैं। यथा—चैत्रो वह्निना स्थाल्यामोदनं पचति (चैत्र आगसे बटलोईमें भात पकाता है)—इस वाक्यमें जब चैत्रके कर्तृत्वकी विवक्षा न रहे और करण आदिके कर्तृत्वकी विवक्षा हो जाय तो वे ही कर्ता हो जाते हैं और तदनुकूल क्रिया होती है। यथा—'वह्निः पचति' (आग पकाती है)। यहाँ करण ही कर्तारूपमें प्रयुक्त हुआ है। 'स्थाली पचति' (बटलोई पकाती है)—यहाँ अधिकरण ही कर्ताके रूपमें प्रयुक्त हुआ है। 'ओदनः स्वयं पच्यते' (भात स्वयं पकता है)—यहाँ कर्म ही कर्तारूपमें प्रयुक्त हुआ है। जब कर्म ही कर्ता-रूपमें प्रयुक्त हो तो कर्तामें लकार होता है; परंतु कर्मवद्भाव होनेसे यक् और आत्मनेपद आदि ही होते हैं। अतः 'पचति' न होकर 'पच्यते' रूप होता है। ऐसे प्रयोगको कर्म-कर्तृप्रकरणके अन्तर्गत मानते हैं। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है। 'असिना साधु छिनत्ति' (तलवारसे अच्छी तरह काटता है)—इस वाक्यमें उपर्युक्त नियमानुसार करणमें कर्तृत्व-की विवक्षा होनेपर ऐसा वाक्य बनेगा—साधु असिश्छिनत्ति (तलवार अच्छा काटती है)। मुने! सकर्मक धातु भी कर्मकर्तृमें अकर्मक हो जाता है, अतः उससे भाव तथा कर्तामें भी लकार होता है। यथा भावे—पच्यते ओदनेन। कर्तरि—पच्यते ओदनः। सम्प्रदान और अपादान कारकोंमें कर्तृत्वकी विवक्षा कभी नहीं की जाती; क्योंकि यह अनुभवके विरुद्ध है। सामान्य स्थितिमें सकर्मक धातुसे 'कर्ता' और 'कर्म' में प्रत्यय होते हैं ॥ ८२—८४ ॥

तस्माद् वाकर्मकाद्विप्र भावे कर्तरि कीर्तिताः।
फलव्यापारयोरेकनिष्ठतायामकर्मकः ॥८५॥
धातुस्तयोर्धर्मिभेदे सकर्मक उदाहृतः।
गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम् ॥८६॥
बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया।
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः ॥८७॥

विप्रवर! वही धातु यदि अकर्मक हो तो उससे 'भाव' और 'कर्ता' में प्रत्यय कहे गये हैं।

सभी धातुओंके फल और व्यापार—ये दो अर्थ हैं। ये दोनों जहाँ एकमात्र कर्तामें ही मौजूद हों, उन धातुओंको

और कर्मधारयका एक विशिष्ट भेद 'द्विगु' है। भूतपूर्वः इत्यादि स्थलोंमें जो समास है, उसका कोई नाम नहीं निर्देश किया जा सकता। अतः उसे केवल समासमात्र जानना चाहिये। जिसमें प्रथम पद अव्यय हो, वह समास अव्ययीभाव होता है। अथवा अव्ययीभावके अधिकारमें जो समासविधायक वचन हैं, उनके अनुसार जहाँ समास हुआ है, वह अव्ययीभाव समास है। अव्ययीभाव अव्ययसंज्ञक होता है। अतः सभी विभक्तियोंमें उसका समान रूप है। अकारान्त अव्ययीभावमें विभक्तियोंका 'अम्' आदेश हो जाता है, परंतु पञ्चमी विभक्तिको छोड़कर ऐसा होता है। तृतीया और सप्तमीमें भी अम्भाव वैकल्पिक है। यथा अपदिशम्, अपदिशे इत्यादि। अधिस्त्रि और यथाशक्ति आदि पद अव्ययीभाव समासके अन्तर्गत बताये गये हैं। द्वितीयान्तसे लेकर सप्तम्यन्त तकके पद सुबन्तके साथ समस्त होते हैं और वह समास तत्पुरुष होता है। तत्पुरुषके उदाहरण इस प्रकार हैं—रामम्+आश्रितः=रामाश्रितः। धान्येन+अर्थः=धान्यार्थः। यूपाय+दारु=यूपदारु। व्याघ्रात्+भीः=व्याघ्रभीः। राज्ञः+पुरुषः=राजपुरुषः। अक्षेषु+शौण्डः=अक्षशौण्डः इत्यादि। जिसमें संख्यावाचक शब्द पूर्वमें हो, वह 'द्विगु' कहा गया है। पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम्। दशानां ग्रामाणां समाहारः दशग्रामी (यहाँ स्त्रीलिङ्गसूचक 'ङीप्' प्रत्यय हुआ है)। त्रयाणां फलानां समाहारः त्रिफला। (इसमें स्त्रीत्व-सूचक 'टाप्' प्रत्यय हुआ है।) त्रिफला-शब्द आँवले, हर्रे और बहेड़ेके लिये रूढ (प्रसिद्ध) है ॥ ९१-९२ ॥

नीलोत्पलं महाषष्ठी तुल्यार्थे कर्मधारयः।
अब्राह्मणो नञि प्रोक्तः कुम्भकारादिकः कृतः ॥९३॥

समानाधिकरण तत्पुरुषकी 'कर्मधारय' संज्ञा होती है। उसके दोनों पद प्रायः विशेष्य-विशेषण होते हैं। विशेषणवाचक शब्दका प्रयोग प्रायः पहले होता है। नीलं च तत् उत्पलं च=नीलोत्पलम्, महती चासौ षष्ठी च=महाषष्ठी। 'जहाँ 'न' शब्द किसी सुबन्तके साथ समस्त होता है, वह 'नञ् तत्पुरुष' कहलाता है। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः इत्यादि। कुम्भकार आदि पदोंमें 'उपपद तत्पुरुष' समास है ॥ ९३ ॥

अन्यार्थे तु बहुव्रीहिर्ग्रामः प्राप्तोदको द्विज।
पञ्चगू रूपवद्भार्यो मध्याह्नः ससुतादिकः ॥९४॥

विप्रवर! जहाँ अन्य अर्थकी प्रधानता हो, उस समासकी बहुव्रीहिमें गणना होती है। प्राप्तम् उदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः (जहाँ जल पहुँचा हो, वह ग्राम 'प्राप्तोदक' है)। इसी तरह—पञ्च गावो यस्य स पञ्चगुः। रूपवती भार्या यस्य स रूपवद्भार्यः। मध्याह्नः-पद तत्पुरुष समास है। 'सुतेन सह आगतः ससुतः' आदि पद बहुव्रीहि समासके अन्तर्गत हैं ॥ ९४ ॥

समुच्चये गुरुं चेशं भजस्वान्वाचये त्वट।
भिक्षामानय गां चापि वाक्यमेवानयोर्भवेत् ॥९५॥

चार्थमें द्वन्द्व समास होता है। 'च' के चार अर्थ हैं—समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार। परस्पर निरपेक्ष अनेक पदोंका एकमें अन्वय होना 'समुच्चय' कहलाता है। समुच्चयमें 'ईशं गुरुं च भजस्व' यह वाक्य है। इसमें ईश और गुरु दोनों स्वतन्त्ररूपसे 'भज' इस क्रियापदसे अन्वित होते हैं। ईश-पदका क्रियाके साथ अन्वय हो जानेपर पुनः क्रियापदकी आवृत्ति करके गुरुपदका भी उसमें अन्वय होता है। यही उन दोनोंकी निरपेक्षता है। समास साकाङ्क्ष पदोंमें होता है। अतः समुच्चय-वाक्यमें द्वन्द्व समास नहीं होता है। जहाँ एक प्रधान और दूसरा अप्रधानरूपसे अन्वित हो, वहाँ अन्वाचय होता है—जैसे-'भिक्षामट गाञ्चानय' इस वाक्यमें भिक्षाके लिये गमन प्रधान है और गौका लाना अप्रधान या आनुषङ्गिक कार्य है। अतः एकार्थीभावरूप सामर्थ्य न होनेसे अन्वाचयमें भी द्वन्द्व समास नहीं होता। समुच्चय और अन्वाचयमें वाक्यमात्रका ही प्रयोग होता है ॥ ९५ ॥

इतरेतरयोगे तु रामकृष्णौ समाहृतौ।
रामकृष्णं द्विज द्वौ द्वौ ब्रह्म चैकमुपासते ॥९६॥

उद्भूत अवयव-भेद-समूहरूप परस्पर अपेक्षा रखनेवाले सम्मिलित पदोंका एकधर्मावच्छिन्नमें अन्वय होना इतरेतर-योग कहलाता है। अतः इसमें सामर्थ्य होनेके कारण समास होता है—यथा 'रामकृष्णौ भज' इस वाक्यमें रामश्च-कृष्णश्च= रामकृष्णौ इस प्रकार समास है। इतरेतरयोग द्वन्द्वमें समस्यमान पदार्थगत संख्याका समुदायमें आरोप होता है। इसलिये वहाँ द्विवचनान्त या बहुवचनान्तका प्रयोग देखा जाता है। समूहको समाहार कहते हैं। वहाँ अवयवगत भेद तिरोहित होता है। यथा रामश्च कृष्णश्चेत्यनयोः समाहारः रामकृष्णम्। समाहार द्वन्द्वमें अवयवगत संख्या समुदायमें आरोपित नहीं होती। इसलिये एकत्व-बुद्धिसे एकवचनान्तका प्रयोग किया

और कर्मधारयका एक विशिष्ट भेद 'द्विगु' है। भूतपूर्वः इत्यादि स्थलोंमें जो समास है, उसका कोई नाम नहीं निर्देश किया जा सकता। अतः उसे केवल समासमात्र जानना चाहिये। जिसमें प्रथम पद अव्यय हो, वह समास अव्ययीभाव होता है। अथवा अव्ययीभावके अधिकारमें जो समासविधायक वचन हैं, उनके अनुसार जहाँ समास हुआ है, वह अव्ययीभाव समास है। अव्ययीभाव अव्ययसंज्ञक होता है। अतः सभी विभक्तियोंमें उसका समान रूप है। अकारान्त अव्ययीभावमें विभक्तियोंका 'अम्' आदेश हो जाता है, परंतु पञ्चमी विभक्तिको छोड़कर ऐसा होता है। तृतीया और सप्तमीमें भी अम्भाव वैकल्पिक है। यथा अपदिशम्, अपदिशे इत्यादि। अधिस्त्रि और यथाशक्ति आदि पद अव्ययीभाव समासके अन्तर्गत बताये गये हैं। द्वितीयान्तसे लेकर सप्तम्यन्त तकके पद सुबन्तके साथ समस्त होते हैं और वह समास तत्पुरुष होता है। तत्पुरुषके उदाहरण इस प्रकार हैं—रामम्+आश्रितः=रामाश्रितः। धान्येन+अर्थः=धान्यार्थः। यूपाय+दारु=यूपदारु। व्याघ्रात्+भीः=व्याघ्रभीः। राज्ञः+पुरुषः=राजपुरुषः। अक्षेषु+शौण्डः=अक्षशौण्डः इत्यादि। जिसमें संख्यावाचक शब्द पूर्वमें हो, वह 'द्विगु' कहा गया है। पञ्चाना गवा समाहारः पञ्चगवम्। दशानां ग्रामाणा समाहारः दशग्रामी (यहाँ स्त्रीलिङ्गसूचक 'ङीप्' प्रत्यय हुआ है)। त्रयाणा फलाना समाहारः त्रिफला। (इसमें स्त्रीत्व-सूचक 'टाप्' प्रत्यय हुआ है।) त्रिफला-शब्द आँवले, हर्रे और बहेड़ेके लिये रूढ (प्रसिद्ध) है ॥ ९१-९२ ॥

> नीलोत्पलं महाषष्ठी तुल्यार्थे कर्मधारयः।
> अब्राह्मणो नञि प्रोक्तः कुम्भकारादिकः कृतः ॥९३॥

समानाधिकरण तत्पुरुषकी 'कर्मधारय' संज्ञा होती है। उसके दोनों पद प्रायः विशेष्य-विशेषण होते हैं। विशेषणवाचक शब्दका प्रयोग प्रायः पहले होता है। नीलं च तत् उत्पलं च =नीलोत्पलम्, महती चासौ षष्ठी च=महाषष्ठी। 'जहाँ 'न' शब्द किसी सुबन्तके साथ समस्त होता है, वह 'नञ् तत्पुरुष' कहलाता है। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः इत्यादि। कुम्भकार आदि पदोंमें 'उपपद तत्पुरुष' समास है ॥ ९३ ॥

> अन्यार्थे तु बहुव्रीहिः ग्रामः प्राप्तोदको द्विज।
> पञ्चगू रूपवद्भार्यो मध्याह्नः ससुतादिकः ॥९४॥

विप्रवर ! जहाँ अन्य अर्थकी प्रधानता हो, उस समासकी बहुव्रीहिमें गणना होती है। प्राप्तम् उदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः (जहाँ जल पहुँचा हो, वह ग्राम 'प्राप्तोदक' है)। इसी तरह—पञ्च गावो यस्य स पञ्चगुः। रूपवती भार्या यस्य स रूपवद्भार्यः। मध्याह्नः-पद तत्पुरुष समास है। 'सुतेन सह आगतः ससुतः' आदि पद बहुव्रीहि समासके अन्तर्गत हैं ॥ ९४ ॥

> समुच्चये गुरुं चेशं भजस्वान्वाचये त्वट।
> भिक्षामानय गां चापि वाक्यमेवानयोर्भवेत् ॥९५॥

चार्थमें द्वन्द्व समास होता है। 'च' के चार अर्थ हैं—समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार। परस्पर निरपेक्ष अनेक पदोंका एकमें अन्वय होना 'समुच्चय' कहलाता है। समुच्चयमें 'ईशं गुरुं च भजस्व' यह वाक्य है। इसमें ईश और गुरु दोनों स्वतन्त्ररूपसे 'भज' इस क्रियापदसे अन्वित होते हैं। ईश-पदका क्रियाके साथ अन्वय हो जानेपर पुनः क्रियापदकी आवृत्ति करके गुरुपदका भी उसमें अन्वय होता है। यही उन दोनोंकी निरपेक्षता है। समास साकाङ्क्ष पदोंमें होता है। अतः समुच्चय-वाक्यमें द्वन्द्व समास नहीं होता है। जहाँ एक प्रधान और दूसरा अप्रधानरूपसे अन्वित हो, वहाँ अन्वाचय होता है—जैसे-'भिक्षामट गाञ्चानय' इस वाक्यमें भिक्षाके लिये गमन प्रधान है और गौका लाना अप्रधान या आनुषङ्गिक कार्य है। अतः एकार्थीभावरूप सामर्थ्य न होनेसे अन्वाचयमें भी द्वन्द्व समास नहीं होता। समुच्चय और अन्वाचयमें वाक्यमात्रका ही प्रयोग होता है ॥ ९५ ॥

> इतरेतरयोगे तु रामकृष्णौ समाहृतौ।
> रामकृष्णं द्विज द्वौ द्वौ ब्रह्म चैकमुपास्यते ॥९६॥

उद्भूत अवयव-भेद-समूहरूप परस्पर अपेक्षा रखनेवाले सम्मिलित पदोंका एकधर्मावच्छिन्नमें अन्वय होना इतरेतर-योग कहलाता है। अतः इसमें सामर्थ्य होनेके कारण समास होता है—यथा 'रामकृष्णौ भज' इस वाक्यमें रामश्च-कृष्णश्च=रामकृष्णौ इस प्रकार समास है। इतरेतरयोग द्वन्द्वमें समस्यमान पदार्थगत संख्याका समुदायमें आरोप होता है। इसलिये वहाँ द्विवचनान्त या बहुवचनान्तका प्रयोग देखा जाता है। समूहको समाहार कहते हैं। वहाँ अवयवगत भेद तिरोहित होता है। यथा रामश्च कृष्णश्चेत्यनयोः समाहारः रामकृष्णम्। समाहार द्वन्द्वमें अवयवगत संख्या समुदायमें आरोपित नहीं होती। इसलिये एकत्व-बुद्धिसे एकवचनान्तका प्रयोग किया

'अभिभार' यहाँ 'उन्दमीरः' मे 'मनुर्' के 'म' का 'व' हुआ है। '[illegible]' में अग्नि-शब्दसे मतुप्, 'छन्दस्यपि दृश्यते' से अनङ् आदेश तथा 'अनो नुट्' से 'नुट्' का आगम हुआ है। 'नृमणिस्तरः' में 'नाद्घस्य' से 'नुट्' का आगम विशेष मर्म है। 'रथीतरः' में 'ईद्रथिनः' से 'ई' हुआ है। 'नसत्तम्'में नञ्पूर्वक सद्-धातुसे निष्ठामें नत्वका अभाव निपातित हुआ है। इसी प्रकार सूत्रोक्त 'निपत्त' आदि शब्दोंको जानना चाहिये। 'अम्नरेव'—इसमें 'अम्नस्' शब्द ईषत् अर्थमें है। वेदमें सकारका वैकल्पिक रेफ निपातित हुआ है। 'भुवरथो इति' यहाँ 'भुवश्च महाव्याहृतेः' से भुवस्के 'स्'का 'र्' हुआ है ॥ १६ ॥ 'ब्रूहि' यहाँ 'ब्रूहि प्रेष्य०' इत्यादि सूत्रसे उकार प्लुत हुआ है। यथा— अग्नयेऽनुब्रू ३ हि। 'अग्नामावास्येत्या ३ स्थ' यहाँ 'निग्रह्या-नुयोगे च' इस सूत्रसे वाक्यके टिका प्लुतभाव होता है। 'अग्नीत्प्रेषणे परस्य च' इस सूत्रसे आदि और परका भी प्लुत होता है। उदाहरणके लिये 'ओ ३ श्रा ३ वय' इत्यादि पद है। इन सबमें प्लुत हुआ है। 'दाश्वान्' आदि पद क्वसु-प्रत्ययान्त निपातित होते हैं। 'स्वतवान्' शब्दके नकारका विकल्पसे 'रु' होता है, पायु-शब्द परे रहनेपर—'स्वतवाँः पायुरग्ने।' 'त्रिभिष्ट्वं देव सवितः।' यहाँ 'त्रिभिस्+त्वम्' इस दशामे 'युष्मत्तत्ततक्षुष्वन्तःपादम्' इस सूत्रमे 'स्' के स्थानमें 'ष्' होकर ष्टुत्व होनेसे 'त्रिभिष्ट्वम्' बनता है। 'नृभिष्टुतः' यहाँ 'स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि' इस सूत्रमे 'नृभिस्' के 'स्' का 'ष्' होकर ष्टुत्व हुआ है ॥ १७ ॥ 'अभीषुणः' यहाँ 'सुञः' सूत्रसे 'स्'का 'ष्' हुआ है। 'ऋतीषाहम्' में 'सहेः पृतनर्ताभ्यां च' सूत्रसे 'स्' का मूर्धन्य आदेश हुआ है। 'न्यषीदत्' यहाँ भी 'निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि' इस सूत्रमे 'स' का मूर्धन्य हुआ है। 'नृमणाः' इस पदमें 'छन्दस्यृदवग्रहात्' सूत्रसे 'न' का 'ण' हुआ है। बाहुलक चार प्रकारके होते हैं—कहीं प्रवृत्ति होती है, कहीं अप्रवृत्ति होती है, कहीं वैकल्पिक विधि है और कहीं अन्यथाभाव होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण वैदिक पद-समुदाय सिद्ध है। क्रियावाची 'भू' 'वा' आदि शब्दोंकी 'धातु' संज्ञा जाननी चाहिये। 'भू' आदि धातु परस्मैपदी माने गये हैं ॥ १८-१९ ॥ '[illegible]' आदि [illegible] धातु उदात्त एवं आत्मनेपदी है (इन्हें 'अनुदात्तेत्' माना गया है)। मुने! 'अत' आदि सैंतीस धातु परस्मैपदी हैं ॥ २० ॥ 'ढौकृ' आदि बयालीस धातु [illegible] परिगणित हुए हैं। 'फक्क' आदि पचास धातु उदात्तेत् (परस्मैपदी) कहे गये हैं ॥ २१ ॥ 'वर्च' आदि इक्कीस धातु अनुदात्तेत् (आत्मनेपदी) बताये गये हैं। 'गुपू' आदि बयालीस धातु 'उदात्तेत्' (परस्मैपदी) कहे गये हैं ॥ २२ ॥ 'घिणि' आदि दस धातु शाब्दिकोंद्वारा 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। 'अण्' आदि सत्ताईस धातु 'उदात्तेत्' बताये गये हैं ॥ २३ ॥ 'अय' आदि चौंतीस धातु वैयाकरणोंद्वारा अनुदात्तेत् (आत्मनेपदी) माने गये हैं। 'मव्य' आदि बहत्तर धातु उदात्तानुबन्धी कहे गये हैं ॥ २४ ॥ 'धावु' धातु अकेला ही 'स्वरितेत्' कहा गया है। 'क्षुध्' आदि बावन धातु 'अनुदात्तेत्' कहे गये है ॥ २५ ॥ 'धुषिर्' आदि अठासी धातु 'उदात्तेत्' माने गये हैं। 'द्युत' आदि बाईस धातु 'अनुदात्तेत्' स्वीकार किये गये हैं ॥ २६ ॥ घटादिमे तेरह धातु 'षित्' और 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। तदनन्तर 'ज्वर' आदि बावन धातु उदात्त बताये गये हैं ॥ २७ ॥ 'राजृ' धातु 'स्वरितेत्' है। उसके बाद 'भ्राजृ, भ्राश्टृ और भ्लाश्टृ'—ये तीन धातु 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। तदनन्तर 'स्यमु' धातुसे लेकर आगे सभी आद्युदात्त एवं उदात्तेत् (परस्मैपदी) है ॥ २८ ॥ फिर एकमात्र 'षह' धातु 'अनुदात्तेत्' तथा अकेला 'रम' धातु 'आत्मनेपदी' है। उसके बाद 'सद' आदि तीन धातु 'उदात्तेत्' हैं। फिर 'कुच' आदि चार धातु भी 'उदात्तेत्' (परस्मैपदी) ही है ॥ २९ ॥ इसके बाद 'हिक्क' आदि पैंतीस धातु 'स्वरितेत्' हैं। 'श्रिञ्' धातु स्वरितेत् है। 'भृञ्' आदि चार धातु भी स्वरितेत् ही हैं ॥ ३० ॥ 'धेट्' आदि छियालीस धातु परस्मैपदी कहे गये हैं। 'स्मिङ्' आदि अठारह धातु आत्मनेपदी माने गये हैं ॥ ३१ ॥ फिर 'पूङ्' आदि तीन धातु अनुदात्तेत् कहे गये हैं। 'ह्वृ' धातु परस्मैपदी है। फिर 'गुप'से लेकर तीन धातु आत्मनेपदी है ॥ ३२ ॥ 'रभ' आदि धातु अनुदात्तेत् हैं और 'ञिक्ष्विदा' उदात्तेत् है। स्कम्भु आदि पन्द्रह धातु परस्मैपदी है ॥ ३३ ॥ 'कित' धातु 'उदात्तेत्' है। 'दान' 'शान' ये दो धातु उभयपदी है। 'पच' आदि नौ धातु स्वरितेत् (उभयपदी) हैं। ये परस्मैपदी (और आत्मनेपदी दोनो) माने गये है ॥ ३४ ॥ फिर तीन स्वरितेत् धातु हैं। परिभाषणार्थक 'वद' और 'वच' धातु परस्मैपदी हैं। ये एक हजार छः धातु भ्वादि कहे गये हैं ॥ ३५ ॥

'अद' और 'हन्' धातु परस्मैपदी कहे गये हैं। 'द्विष' आदि चार धातु स्वरितेत् माने गये हैं ॥ ३६ ॥ यहाँ केवल 'चक्षिङ्' धातु आत्मनेपदी कहा गया है। फिर 'ईर'

…भ्रान्' यहाँ 'उन्दभीरः' मे 'मनुर्' के 'म' का 'व' हुआ है। '…न्वः' में अग्नि-शब्दसे मतुप्, 'छन्दस्यपि दृश्यते' से अनङ् आदेश तथा 'अनो नुट्' से 'नुट्' का आगम हुआ है। 'नुवग्नितरः' में 'नाद्घस्य' से 'नुट्' का आगम निपातन माना है। 'रथीतरः' में 'ईद्रथिनः' से 'ई' हुआ है। 'नमत्तम्' मे नञ्पूर्वक सद्-धातुसे निष्ठामें नत्वका अभाव निपातित हुआ है। इसी प्रकार सूत्रोक्त 'निपत्त' आदि शब्दोंको जानना चाहिये। 'अम्नरेव'—इसमें 'अम्नस्' शब्द ईषत् अर्थमें है। वेदमें सकारका वैकल्पिक रेफ निपातित हुआ है। 'भुवरथो इति' यहाँ 'भुवश्च महाव्याहृतेः' से भुवस्के 'स्'का 'र्' हुआ है ॥ १६ ॥ 'ब्रूहि' यहाँ 'ब्रूहि प्रेष्य०' इत्यादि सूत्रसे उकार प्लुत हुआ है। यथा—अग्नयेऽनुब्रू३हि। 'अद्यामावास्येत्या३त्थ' यहाँ 'निगृह्यानुयोगे च' इस सूत्रसे वाक्यके टिका प्लुतभाव होता है। 'अग्नीत्प्रेषणे परस्य च' इस सूत्रसे आदि और परका भी प्लुत होता है। उदाहरणके लिये 'ओ३श्रा३वय' इत्यादि पद है। इन सबमें प्लुत हुआ है। 'दाश्वान्' आदि पद क्वसु-प्रत्ययान्त निपातित होते हैं। 'स्वतवान्' शब्दके नकारका विकल्पसे 'रु' होता है, पायु-शब्द परे रहनेपर—'स्वतवाँः पायुरग्ने।' 'त्रिभिष्ट्वं देव सवितः।' यहाँ 'त्रिभिस्+त्वम्' इस दशामें 'युष्मत्तततक्षुष्वन्तःपादम्' इस सूत्रसे 'स्' के स्थानमें 'ष्' होकर ष्टुत्व होनेसे 'त्रिभिष्ट्वम्' बनता है। 'नृभिष्टुतः' यहाँ 'स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि' इस सूत्रसे 'नृभिस्' के 'स्' का 'ष्' होकर ष्टुत्व हुआ है ॥ १७ ॥ 'अभीषुणः' यहाँ 'सुञः' सूत्रसे 'स्'का 'ष्' हुआ है। 'ऋताषाहम्' में 'सहेः पृतनर्ताभ्यां च' सूत्रसे 'स्' का मूर्धन्य आदेश हुआ है। 'न्यषीदत्' यहाँ भी 'निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि' इस सूत्रसे 'स' का मूर्धन्य हुआ है। 'नृमणाः' इस पदमें 'छन्दस्यृदवग्रहात्' सूत्रसे 'न' का 'ण' हुआ है। बाहुलक चार प्रकारके होते हैं—कहीं प्रवृत्ति होती है, कहीं अप्रवृत्ति होती है, कहीं वैकल्पिक विधि है और कहीं अन्यथाभाव होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण वैदिक पद-समुदाय सिद्ध है। क्रियावाची 'भू' 'वा' आदि शब्दोंकी 'धातु' संज्ञा जाननी चाहिये। 'भू' आदि धातु परस्मैपदी माने गये हैं ॥ १८-१९ ॥ 'एध' आदि छत्तीस धातु उदात्त एवं आत्मनेपदी हैं (इन्हें 'अनुदात्तेत्' माना गया है)। मुने! 'अत' आदि अड़तीस धातु परस्मैपदी हैं ॥ २० ॥ 'शीकृ' आदि बयालीस धातु आत्मनेपदमें परिगणित हुए हैं। 'फक्क' आदि पचास धातु उदात्तेत् (परस्मैपदी) कहे गये हैं ॥ २१ ॥ वर्च आदि इक्कीस धातु अनुदात्तेत् (आत्मनेपदी) बताये गये हैं। 'गुपू' आदि बयालीस धातु 'उदात्तेत्' (परस्मैपदी) कहे गये हैं ॥ २२ ॥ 'घिणि' आदि दस धातु शाब्दिकोंद्वारा 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। 'अण्' आदि सत्ताईस धातु 'उदात्तेत्' बताये गये हैं ॥ २३ ॥ 'अय' आदि चौंतीस धातु वैयाकरणोंद्वारा अनुदात्तेत् (आत्मनेपदी) माने गये हैं। 'मव्य' आदि बहत्तर धातु उदात्तानुबन्धी कहे गये हैं ॥ २४ ॥ 'धावु' धातु अकेला ही 'स्वरितेत्' कहा गया है। 'क्षुध्' आदि बावन धातु 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं ॥ २५ ॥ 'घुषिर्' आदि अठासी धातु 'उदात्तेत्' माने गये हैं। 'द्युत' आदि बाईस धातु 'अनुदात्तेत्' स्वीकार किये गये हैं ॥ २६ ॥ घटादिमे तेरह धातु 'षित्' और 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। तदनन्तर 'ज्वर' आदि बावन धातु उदात्त बताये गये हैं ॥ २७ ॥ 'राजृ' धातु 'स्वरितेत्' है। उसके बाद 'भ्राजृ, भ्राशृ और भ्लाशृ'—ये तीन धातु 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। तदनन्तर 'स्यमु' धातुसे लेकर आगे सभी आद्युदात्त एवं उदात्तेत् (परस्मैपदी) हैं ॥ २८ ॥ फिर एकमात्र 'षह' धातु 'अनुदात्तेत्' तथा अकेला 'रम' धातु 'आत्मनेपदी' है। उसके बाद 'सद' आदि तीन धातु 'उदात्तेत्' हैं। फिर 'कुच' आदि चार धातु भी 'उदात्तेत्' (परस्मैपदी) ही हैं ॥ २९ ॥ इसके बाद 'हिक्क' आदि पैंतीस धातु 'स्वरितेत्' हैं। 'श्रिञ्' धातु स्वरितेत् है। 'भृञ्' आदि चार धातु भी स्वरितेत् ही हैं ॥ ३० ॥ 'धेट्' आदि छियालीस धातु परस्मैपदी कहे गये हैं। 'स्मिङ्' आदि अठारह धातु आत्मनेपदी माने गये हैं ॥ ३१ ॥ फिर 'पूङ्' आदि तीन धातु अनुदात्तेत् कहे गये हैं। 'ह्वृ' धातु परस्मैपदी है। फिर 'गुप'से लेकर तीन धातु आत्मनेपदी हैं ॥ ३२ ॥ 'रभ' आदि धातु अनुदात्तेत् हैं और 'ञिक्ष्विदा' उदात्तेत् है। स्कम्भु आदि पन्द्रह धातु परस्मैपदी हैं ॥ ३३ ॥ 'कित' धातु 'उदात्तेत्' है। 'दान' 'शान' ये दो धातु उभयपदी हैं। 'पच' आदि नौ धातु स्वरितेत् (उभयपदी) हैं। ये परस्मैपदी (और आत्मनेपदी दोनों) माने गये हैं ॥ ३४ ॥ फिर तीन स्वरितेत् धातु हैं। परिभाषणार्थक 'वद' और 'वच' धातु परस्मैपदी हैं। ये एक हजार छः धातु भ्वादि कहे गये हैं ॥ ३५ ॥

'अद' और 'हन्' धातु परस्मैपदी कहे गये हैं। 'द्विष' आदि चार धातु स्वरितेत् माने गये हैं ॥ ३६ ॥ यहाँ केवल 'चक्षिङ्' धातु आत्मनेपदी कहा गया है। फिर 'ईर'

अदन्तादीय अदन्त धातु भी उभयपदी ही हैं। 'पद' आदि दस धातु आत्मनेपदमें परिगणित हुए हैं ॥ ७१ ॥ यहाँ सूत्र आदि आठ धातुओंको भी मनीषी पुरुषोंने उभयपदी कहा है। प्रातिपदिकसे धात्वर्थमें णिच् और प्रायः सब बातें इष्ठ प्रत्ययकी भाँति होती हैं। तात्पर्य यह कि 'इष्ठ' प्रत्यय परे रहते जैसे प्रातिपदिक, पुंवद्भाव, रभाव, टिलोप, विन्मतुल्लोप, यणादिलोप, प्र, स्थ, स्फ आदि आदेश और भसंज्ञा आदि कार्य होते हैं, उसी प्रकार 'णि' परे रहते भी सब कार्य होंगे ॥ ७२ ॥ 'उसे करता है' अथवा उसे कहता है' इस अर्थमें भी प्रातिपदिकसे णिच् प्रत्यय होता है। प्रयोजक व्यापारमें प्रेषण आदि वाच्य हो तो धातुसे णिच् होता है। कर्तृ-व्यापारके लिये जो करण है, उससे धात्वर्थमें णिच् होता है। चित्र आदि आठ धातु उदात्तेत् हैं। किंतु 'संग्राम' धातुको शब्दशास्त्रके विद्वानोंने अनुदात्तेत् माना है। स्तोम आदि सोलह धातु अदन्त धातुओंके निदर्शन हैं ॥ ७३-७४ ॥ 'बहुलमेतन्निदर्शनम्'—इसमें जो बहुल शब्द आया है, उससे अन्य जो सूत्रोक्त लौकिक और वैदिक धातु हैं, उन सबका ग्रहण होता है। सभी धातु सब गणोंमें हैं और सबके अनेक अर्थ हैं ॥ ७५ ॥ इन धातुओंके अतिरिक्त सनादि[1] प्रत्यय जिनके अन्तमें हों, उनकी भी धातु-संज्ञा होती है। नामधातु भी धातु ही हैं। नारद! इस प्रकार अनन्त धातुओंकी उद्भावना हो सकती है। यहाँ संक्षेपसे सब कुछ बताया गया है। इसका विस्तार तत्सम्बन्धी ग्रन्थोंमें है ॥ ७६ ॥

(उपदेशावस्थामें एकाच् अनुदात्त धातुसे परे वलादि आर्धधातुकको इट्का आगम नहीं होता। जिनमें यह निषेध लागू होता है, उन धातुओंको 'अनिट्' कहते हैं। उन्हीं अनिट् या एकाच् अनुदात्त धातुओंका यहाँ संग्रह किया जाता है—) अजन्त धातुओंमें—ऊकारान्त, ॠकारान्त, यु, रु, क्ष्णु, शीङ्, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ्, श्रिञ्, वृङ्, वृञ्—इन सबको छोड़कर शेष सभी अनुदात्त (अर्थात् अनिट्) माने गये हैं ॥ ७७ ॥ शक्ल, पच्, मुच्, रिच्, वच्, विच्, सिच्, प्रच्छ, त्यज्, निजिर्, भज्, भञ्ज्, भुज्, भ्रस्ज्, मस्ज्, यज्, युज्, रुज्, रञ्ज्, विजिर्, स्वञ्ज्, सञ्ज्, सृज् ॥ ७८ ॥ अद्, क्षुद्, खिद्, छिद्, तुद्, नुद्, पद्, भिद्, विद् (सत्ता), विद् (विचारणे), शद्, सद्, स्विद्, स्कन्द्, हद्, क्रुध्, क्षुध्, बुध् ॥ ७९ ॥ बन्ध्, युध्, रुध्, राध्, व्यध्, शुध्, साध्, सिध्, मन् (दिवादि), हन्, आप्, क्षिप्, क्षुप्, तप्, तिप्, स्तृप्, दृप् ॥ ८० ॥ लिप्, लुप्, वप्, शप्, स्वप्, सृप्, यभ्, रभ्, लभ्, गम्, नम्, यम्, रम्, क्रुश्, दश्, दिश्, दृश्, मृश्, रिश्, रुश्, लिश्, विश्, स्पृश, कृष् ॥ ८१ ॥ त्विष्, तुष्, द्विष्, दुष्, पुष्, पिष्, विष्, शिष्, शुष्, श्लिष्, घस्, वस्, दह्, दिह्, दुह्, नह्, मिह्, रुह्, लिह् तथा वह् ॥ ८२ ॥

ये हलन्तोंमें एक सौ दो धातु अनुदात्त माने गये हैं। 'च' आदिकी निपात संज्ञा होती है। 'प्र' आदि उपसर्ग 'गति' कहलाते हैं। भिन्न-भिन्न दिशा, देश और कालमें प्रकट हुए शब्द अनेक अर्थोंके बोधक होते हैं। विप्रवर! वे देश-कालके भेदसे सभी लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं। यहाँ गणपाठ, सूत्रपाठ, धातुपाठ तथा अनुनासिकपाठ—'पारायण' कहा गया है। नारद! वैदिक और लौकिक सभी शब्द नित्यसिद्ध हैं ॥ ८३—८५ ॥ फिर वैयाकरणोंद्वारा जो शब्दोंका संग्रह किया जाता है, उसमें उन शब्दोंका पारायण ही मुख्य हेतु है (पारायण-जनित पुण्यलाभके लिये ही उनका संकलन होता है)। सिद्ध शब्दोंका ही प्रकृति, प्रत्यय, आदेश और आगम आदिके द्वारा लघुमार्गसे सम्यक् निरूपण किया जाता है। इस प्रकार तुमसे निरुक्तका यत्किञ्चित् ही वर्णन किया गया है। नारद! इसका पूर्णरूपसे वर्णन तो कोई भी कर ही नहीं सकता ॥ ८६—८८ ॥ (पूर्वभाग द्वितीयपाद अध्याय ५३)

---

[1] १. सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचारक्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ्, णिङ्—ये बारह प्रत्यय सनादि कहलाते हैं।

अदन्तान्तीन अदन्त धातु भी उभयपदी ही हैं। 'पद' आदि दस धातु आत्मनेपदमें परिगणित हुए हैं ॥ ७१ ॥ यहाँ सूत्र आदि आठ धातुओंको भी मनीषी पुरुषोंने उभयपदी कहा है। प्रातिपदिकसे धात्वर्थमें णिच् और प्रायः सब बातें इष्ठ प्रत्ययकी भाँति होती हैं। तात्पर्य यह कि 'इष्ठ' प्रत्यय परे रहते जैसे प्रातिपदिक, पुंवद्भाव, रभाव, टिलोप, विन्मतुल्लोप, यणादिलोप, प्र, स्थ, स्फ आदि आदेश और भसंज्ञा आदि कार्य होते हैं, उसी प्रकार 'णि' परे रहते भी सब कार्य होंगे ॥ ७२ ॥ 'उसे करता है' अथवा उसे कहता है' इस अर्थमें भी प्रातिपदिकसे णिच् प्रत्यय होता है। प्रयोजक व्यापारमें प्रेषण आदि वाच्य हो तो धातुसे णिच् होता है। कर्तृ-व्यापारके लिये जो करण है, उससे धात्वर्थमें णिच् होता है। चित्र आदि आठ धातु उदात्तेत् हैं। किंतु 'संग्राम' धातुको शब्दशास्त्रके विद्वानोंने अनुदात्तेत् माना है। स्तोम आदि सोलह धातु अदन्त धातुओंके निदर्शन हैं ॥ ७३-७४ ॥ 'बहुलमेतन्निदर्शनम्'—इसमें जो बहुल शब्द आया है, उससे अन्य जो सूत्रोक्त लौकिक और वैदिक धातु हैं, उन सबका ग्रहण होता है। सभी धातु सब गणोंमें हैं और सबके अनेक अर्थ हैं ॥ ७५ ॥ इन धातुओंके अतिरिक्त सनादि[1] प्रत्यय जिनके अन्तमें हों, उनकी भी धातु-संज्ञा होती है। नामधातु भी धातु ही हैं। नारद! इस प्रकार अनन्त धातुओंकी उद्भावना हो सकती है। यहाँ संक्षेपसे सब कुछ बताया गया है। इसका विस्तार तत्सम्बन्धी ग्रन्थोंमें है ॥ ७६ ॥

(उपदेशावस्थामें एकाच् अनुदात्त धातुसे परे वलादि आर्धधातुकको इट्‌का आगम नहीं होता। जिनमें यह निषेध लागू होता है, उन धातुओंको 'अनिट्' कहते हैं। उन्हीं अनिट् या एकाच् अनुदात्त धातुओंका यहाँ संग्रह किया जाता है—) अजन्त धातुओंमें—ऊकारान्त, ॠकारान्त, यु, रु, क्ष्णु, शीङ्, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ्, श्रिञ्, वृङ्, वृञ्—इन सबको छोड़कर शेष सभी अनुदात्त (अर्थात् अनिट्) माने गये हैं ॥ ७७ ॥ शक्लृ, पच्, मुच्, रिच्, वच्, विच्, सिच्, प्रच्छ, त्यज्, निजिर्, भज्, भञ्ज्, भुज्, भ्रस्ज्, मस्ज्, यज्, युज्, रुज्, रञ्ज्, विजिर्, स्वञ्ज्, सञ्ज्, सृज् ॥ ७८ ॥ अद्, क्षुद्, खिद्, छिद्, तुद्, नुद्, पद्, भिद्, विद् (सत्ता), विद् (विचारणे), शद्, सद्, स्विद्, स्कन्द्, हद्, क्रुध्, क्षुध्, बुध् ॥ ७९ ॥ बन्ध्, युध्, रुध्, राध्, व्यध्, शुध्, साध्, सिध्, मन् (दिवादि), हन्, आप्, क्षिप्, क्षुप्, तप्, तिप्, स्तृप्, दृप् ॥ ८० ॥ लिप्, लुप्, वप्, शप्, स्वप्, सृप्, यभ्, रभ्, लभ्, गम्, नम्, यम्, रम्, क्रुश्, दंश्, दिश्, दृश्, मृश्, रिश्, रुश्, लिश्, विश्, स्पृश्, कृष् ॥ ८१ ॥ त्विष्, तुष्, द्विष्, दुष्, पुष्, पिष्, विष्, शिष्, शुष्, श्लिष्, घस्, वस्, दह्, दिह्, दुह्, नह्, मिह्, रुह्, लिह् तथा वह् ॥ ८२ ॥

ये हलन्तोंमें एक सौ दो धातु अनुदात्त माने गये हैं। 'च' आदिकी निपात संज्ञा होती है। 'प्र' आदि उपसर्ग 'गति' कहलाते हैं। भिन्न-भिन्न दिशा, देश और कालमें प्रकट हुए शब्द अनेक अर्थोंके बोधक होते हैं। विप्रवर! वे देश-कालके भेदसे सभी लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं। यहाँ गणपाठ, सूत्रपाठ, धातुपाठ तथा अनुनासिकपाठ—'पारायण' कहा गया है। नारद! वैदिक और लौकिक सभी शब्द नित्यसिद्ध हैं ॥ ८३—८५ ॥ फिर वैयाकरणोंद्वारा जो शब्दोंका संग्रह किया जाता है, उसमें उन शब्दोंका पारायण ही मुख्य हेतु है (पारायण-जनित पुण्यलाभके लिये ही उनका संकलन होता है)। सिद्ध शब्दोंका ही प्रकृति, प्रत्यय, आदेश और आगम आदिके द्वारा लघुमार्गसे सम्यक् निरूपण किया जाता है। इस प्रकार तुमसे निरुक्तका यत्किंचित् ही वर्णन किया गया है। नारद! इसका पूर्णरूपसे वर्णन तो कोई भी कर ही नहीं सकता ॥ ८६—८८ ॥ (पूर्वभाग द्वितीयपाद अध्याय ५३)

---

[1] सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचारक्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ्, णिङ्—ये बारह प्रत्यय सनादि कहलाते हैं।

हन्यादुणेन गुण्यं स्यात्तेनैवोपान्तिमादिकान्।
शुद्ध्येद्धरो यद्गुणश्च भाज्यान्त्यात्तत्फलं मुने ॥१५॥

[अब गणितका प्रकरण प्रारम्भ किया जाता है—] एक (इकाई), दश (दहाई), शत (सैकड़ा), सहस्र (हजार), अयुत (दस हजार), लक्ष (लाख), प्रयुत (दस लाख), कोटि (करोड़), अर्बुद (दस करोड़), अब्ज (अरब), खर्व (दस अरब), निखर्व (खर्व), महापद्म (दस खर्व), शङ्कु (नील), जलधि (दस नील), अन्त्य (पद्म), मध्य (दस पद्म), परार्ध (शङ्ख) इत्यादि संख्याबोधक संज्ञाएँ उत्तरोत्तर दसगुनी मानी गयी हैं। यथास्थानीय अङ्कोंका योग या अन्तर क्रम या व्युत्क्रमसे करना चाहिये* ॥ १२–१४ ॥ गुण्यके अन्तिम अङ्कको गुणकसे गुणना चाहिये। फिर उसके पार्श्ववर्ती अङ्कको भी उसी गुणकसे गुणना चाहिये। इस तरह आदि अङ्कतक गुणन करनेपर गुणनफल प्राप्त हो जाता है†, मुने! इसी प्रकार भागफल जाननेके लिये भी यत्न करे। जितने अङ्कसे भाजकके साथ गुणा करनेपर भाज्यमेंसे घट जाय, वही अङ्क लब्धि अथवा भागफल होता है* ॥ १५ ॥

समाङ्कघातो वर्गः स्यात्तमेवाहुः कृतिं बुधा.।
अन्त्यात्तु विषमात्त्यक्त्वा कृतिं मूलं न्यसेत्पृथक् ॥१६॥
द्विगुणेनामुना भक्ते फलं मूले न्यसेत्क्रमात्।
तत्कृतिं च त्यजेद्विप्र मूलेन विभजेत्पुनः ॥१७॥
एवं मुहुर्वर्गमूलं जायते च मुनीश्वर।

दो समान अङ्कोंके गुणनफलको वर्ग कहा गया है। विद्वान् पुरुष उसीको कृति कहते हैं। (जैसे ४ का वर्ग ४×४=१६ और ९ का वर्ग ९×९=८१ होता है) † [वर्गमूल जाननेके लिये दाहिने अङ्कसे लेकर बायें अङ्कतक अर्थात् आदिसे अन्ततक विषम और समका चिह्न कर देना चाहिये। खड़ी लकीरको विषमका और पड़ीको समका चिह्न माना गया है]। अन्तिम विषममे जितने वर्ग घट सकें उतने घटा देना चाहिये। उस वर्गका मूल लेना और उसे पृथक् रख देना चाहिये ॥ १६ ॥ फिर द्विगुणित मूलसे सम अङ्कमें भाग दे और जो लब्धि आवे उसका वर्ग विषममें घटा दे; फिर उसे दूना करके पङ्क्तिमे रख दे। मुनीश्वर! इस प्रकार बार-बार करनेसे पङ्क्तिका आधा वर्गमूल होता है ॥ १७½ ॥

---

*यथा—२+५+३२+१९३+१८+१०+१००—इन्हें क्रम या व्युत्क्रम (इकाई या सैकडाकी ओर) से जोड़ा जाय, समान स्थानीय अङ्कोंका परस्पर योग किया जाय—अर्थात् इकाईको इकाईके साथ और दहाई आदिको दहाई आदिके साथ जोड़ा जाय तो सर्वथा योगफल ३६० ही होगा। इसी प्रकार १००००—३६० इसमें ३६० को १०००० के नीचे लिखकर पूर्ववत् समान स्थानीय अङ्कमेंसे उसी स्थानवाले अङ्कको क्रम या व्युत्क्रमसे भी घटाया जाय तो शेष सर्वथा ९६४० ही होगा।

† यहाँपर 'अङ्कानां वामतो गति.' इस उक्तिके अनुसार आदि-अन्त समझने चाहिये। जैसे—'१३५×१२' इसमें १३५ गुण्य है और १२ गुणक है। गुण्यका अन्तिम अङ्क हुआ १ उसमें १२ से गुणा पहले होगा, फिर उसके बादवाले ३ के साथ फिर ५ के साथ। यथा—

```
१२
 ३६
  ६०
----
१६२०
```

वास्तवमें यह गुणन-शैली उस समयकी है, जब लोग धूल बिछाकर उसपर अङ्गुलिसे गणित किया करते थे। आधुनिक शैली उससे भिन्न है। रूप-विभाग और स्थान-विभागसे इस गुणनके अनेक प्रकार हो जाते हैं; इसका विस्तार लीलावतीमें देखना चाहिये।

* १६२०–१२=१३५ भागफल हुआ। जैसे—

```
भाजक भाज्य  भागफल
 १२ )१६२०( १३५
     १२
     --
      ४२
      ३६
      --
       ६०
       ६०
       --
        ×
```

† वर्ग या कृति निकालनेके और भी बहुत-से प्रकार लीलावतीमें दिये गये हैं।

१. जैसे १६३८४ का वर्गमूल उपर्युक्त विधिसे निकालनेपर १२८ आता है—

```
|_|_|
१६३८४          १२८
१              ----
--             २५६ पंक्ति
×६
 ४
 --
 २३
  ४
  --
 १९८
 १९२
 ---
   ६४
   ६४
   --
    ×
```

अङ्कोंको स्थापनकर दायेंसे बायें तरफ खड़ी-पड़ी रेखा देकर विषम-सम अङ्क समझना चाहिये।

हन्याद्गुणेन गुण्यं स्यात्तेनैवोपान्तिमादिकान् ।
शुद्ध्येद्हरो यद्गुणश्च भाज्यान्त्यात्तत्फलं मुने ॥१५॥

[अब गणितका प्रकरण प्रारम्भ किया जाता है—] एक (इकाई); दश (दहाई); शत (सैकड़ा); सहस्र (हजार); अयुत (दस हजार); लक्ष (लाख); प्रयुत (दस लाख); कोटि (करोड़); अर्बुद (दस करोड़); अब्ज (अरब); खर्व (दस अरब); निखर्व (खर्व); महापद्म (दस खर्व); शङ्कु (नील); जलधि (दस नील); अन्त्य (पद्म); मध्य (दस पद्म); परार्ध (शङ्ख) इत्यादि संख्याबोधक संज्ञाएँ उत्तरोत्तर दसगुनी मानी गयी हैं । यथास्थानीय अङ्कोंका योग या अन्तर क्रम या व्युत्क्रमसे करना चाहिये* ॥ १२–१४ ॥ गुण्यके अन्तिम अङ्कको गुणकसे गुणना चाहिये । फिर उसके पार्श्ववर्ती अङ्कको भी उसी गुणकसे गुणना चाहिये । इस तरह आदि अङ्कतक गुणन करनेपर गुणनफल प्राप्त हो जाता है†, मुने ! इसी प्रकार भागफल जाननेके लिये भी यत्न करे । जितने अङ्कसे भाजकके साथ गुणा करनेपर भाज्यमेंसे घट जाय, वही अङ्क लब्धि अथवा भागफल होता है* ॥ १५ ॥

समाङ्कघातो वर्गः स्यात्तमेवाहुः कृतिं बुधा ।
अन्त्यात्तु विषमात्त्यक्त्वा कृतिं मूलं न्यसेत्पृथक् ॥१६॥
द्विगुणेनामुना भक्ते फलं मूले न्यसेत्क्रमात् ।
तत्कृतिं च त्यजेद्विप्र मूलेन विभजेत्पुनः ॥१७॥
एवं मुहुर्वर्गमूलं जायते च मुनीश्वर ।

दो समान अङ्कोंके गुणनफलको वर्ग कहा गया है । विद्वान् पुरुष उसीको कृति कहते हैं । (जैसे ४ का वर्ग ४×४=१६ और ९ का वर्ग ९×९=८१ होता है) † [वर्गमूल जाननेके लिये दाहिने अङ्कसे लेकर बायें अङ्कतक अर्थात् आदिसे अन्ततक विषम और समका चिह्न कर देना चाहिये । खड़ी लकीरको विषमका और पड़ीको समका चिह्न माना गया है] । अन्तिम विषममे जितने वर्ग घट सकें उतने घटा देना चाहिये । उस वर्गका मूल लेना और उसे पृथक् रख देना चाहिये ॥ १६ ॥ फिर द्विगुणित मूलसे सम अङ्कमें भाग दे और जो लब्धि आवे उसका वर्ग विषममें घटा दे, फिर उसे दूना करके पङ्क्तिमे रख दे । मुनीश्वर ! इस प्रकार बार-बार करनेसे पङ्क्तिका आधा वर्गमूल[1] होता है ॥ १७½ ॥

---

* यथा—२+५+३२+१९३+१८+१०+१००—इन्हें क्रम या व्युत्क्रम (इकाई या सैकडाकी ओर) से जोड़ा जाय, समान स्थानीय अङ्कोंका परस्पर योग किया जाय—अर्थात् इकाईको इकाईके साथ और दहाई आदिको दहाई आदिके साथ जोड़ा जाय तो सर्वथा योगफल ३६० ही होगा । इसी प्रकार १००००—३६० इसमें ३६० को १०००० के नीचे लिखकर पूर्ववत् समान स्थानीय अङ्कोंमेंसे उसी स्थानवाले अङ्कको क्रम या व्युत्क्रमसे भी घटाया जाय तो शेष सर्वथा ९६४० ही होगा ।

† यहाँपर 'अङ्कानां वामतो गतिः' इस उक्तिके अनुसार आदि-अन्त समझने चाहिये । जैसे—'१३५×१२' इसमें १३५ गुण्य है और १२ गुणक है । गुण्यका अन्तिम अङ्क हुआ १ उसमें १२ से गुणा पहले होगा, फिर उसके बादवाले ३ के साथ फिर ५ के साथ । यथा—

१२
३६
६०
——
१६२०

वास्तवमें यह गुणन-शैली उस समयकी है, जब लोग धूल बिछाकर उसपर अङ्गुलिसे गणित किया करते थे । आधुनिक शैली उससे भिन्न है । रूप-विभाग और स्थान-विभागसे इस गुणनके अनेक प्रकार हो जाते हैं; इसका विस्तार लीलावतीमें देखना चाहिये ।

* १६२०÷१२=१३५ भागफल हुआ । जैसे—

भाजक भाज्य भागफल
१२)१६२०(१३५
१२
——
४२
३६
——
६०
६०
——
×

† वर्ग या कृति निकालनेके और भी बहुत-से प्रकार लीलावतीमें दिये गये हैं ।

[1] जैसे १६३८४ का वर्गमूल उपर्युक्त विधिसे निकालनेपर १२८ आता है—

|—|—|
१६३८४
१
——
×६
४
——
२३
४
——
१९८
१९२
——
६४
६४
——
×

१२८
——
२५६ पंक्ति

अङ्कोंको स्थापनकर दायेंसे बायें तरफ खड़ी-पड़ी रेखा देकर विषम-सम अङ्क समझना चाहिये ।

ऐसा करनेसे भागानुबन्ध और भागापवाहका फल सिद्ध होगा। जिसके नीचे हर न हो उसके नीचे एक हरकी कल्पना करनी चाहिये। भिन्न गुणन-साधनमें अंश-अंशका गुणन करना और हर-हरके गुणनसे भाग देना चाहिये। इससे भिन्न गुणनमें फलकी सिद्धि होगी। (यथा $\frac{२}{७}\times\frac{३}{८}$ यहाँ २ और ३ अंश हैं और ७, ८ हर हैं, इनमें अंश-अंशसे गुणा करनेपर २×३=६ हुआ और हर-हरके गुणनसे ७×८=५६ हुआ। फिर ६÷५६ करनेसे $\frac{६}{५६}$ जिसे दोसे काटनेपर $\frac{३}{२८}$ उत्तर हुआ) ॥ २१–२५ ॥ विद्वन्! भिन्न-संख्याके भागमें भाजकके हर और अंशको परिवर्तित कर (हरको अंश और अंशको हर बनाकर) फिर भाज्यके हर-अंशके साथ गुणन-क्रिया करनी चाहिये, इससे भागफल सिद्ध होता है। (यथा $\frac{३}{८}\div\frac{४}{५}$ में हर और अंशके परिवर्तनसे $\frac{३}{८}\times\frac{५}{४}=\frac{१५}{३२}$ यही भागफल हुआ) ॥ २६ ॥

हरांशयोः कृती वर्गे घनौ घनविधौ मुने।
पदसिद्ध्यै पदे कुर्यादथो खं सर्वतश्च खम् ॥२७॥

भिन्नाङ्कके वर्गादि-साधनमें यदि वर्ग करना हो तो हर और अंश दोनोंका वर्ग करे तथा घन करना हो तो दोनोंका घन करे। इसी प्रकार वर्गमूल निकालना हो तो दोनोंका वर्गमूल और घनमूल निकालना हो तो भी दोनोंका घनमूल निकालना चाहिये। (यथा—$\frac{३}{४}$का वर्ग हुआ $\frac{९}{१६}$ और मूल हुआ $\frac{३}{४}$, इसी प्रकार $\frac{३}{४}$का घन हुआ $\frac{२७}{६४}$ और मूल हुआ $\frac{३}{४}$) ॥ २७ ॥

छेदं गुणं गुणं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम्।
ऋणं स्वं स्वमृणं कुर्याद्दृश्ये राशिप्रसिद्धये ॥२८॥
अथ स्वांशाधिकोने तु लवाढ्योनो हरो हरः।
अंशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत् ॥२९॥

विलोमविधिसे राशि जाननेके लिये दृश्यमें हरको गुणक, गुणकको हर, वर्गको मूल, मूलको वर्ग, ऋणको धन और धनको ऋण बनाकर अन्तमे उलटी क्रिया करनेसे राशि (इष्ट संख्या) सिद्ध होती है। विशेषता यह है कि जहाँ अपना अंश जोडा गया हो वहाँ हरमें अशको जोड़कर और जहाँ अपना अंश घटाया गया हो, वहाँ हरमें अंशको घटाकर हर कल्पना करे और अंश ज्यों-का-त्यों रहे। फिर दृश्य राशिमें विलोम क्रिया उक्त रीतिसे करे तो राशि सिद्ध होती है* ॥२८-२९॥

उद्दिष्टराशिः संक्षुण्णो हृतोंऽशै रहितो युतः।
इष्टघ्नदृष्टमेतेन भक्तं राशिरितीरितम् ॥३०॥

अभीष्ट संख्या जाननेके लिये इष्ट राशिकी कल्पना करनी चाहिये। फिर प्रश्नकर्ताके कथनानुसार उस राशिको गुणा करे या भाग दे। कोई अंश घटानेको कहा गया हो तो घटावे और जोड़नेको कहा गया हो तो जोड़ दे अर्थात् प्रश्नमें जो-जो क्रियाएँ कही गयी हों, वे इष्टराशिमें करके फिर जो राशि निष्पन्न हो, उससे कल्पित इष्ट-गुणित दृष्टमें भाग दे, उससे जो लब्धि हो, वही इष्ट राशि है† ॥३०॥

---

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—$\frac{१}{८}$का $\frac{१}{३}$ उसमेंसे घटाओ और शेषका $\frac{१}{२}$ उसी शेषमें जोड़ो, इसकी न्यास-विधि (लिखनेकी रीति) इस प्रकार होगी—

$$\begin{matrix}\frac{१}{८}\\ -\frac{१}{३}\\ +\frac{१}{२}\end{matrix}\qquad \frac{१\times३\times२}{८\times२\times३}=\frac{१}{८}$$

उत्तर हुआ।

* उदाहरणके लिये यह प्रश्न लीजिये—वह कौन-सी संख्या है, जिसको तीनसे गुणा करके उसमें अपना $\frac{३}{४}$ जोड़ देते हैं, फिर सातका भाग देते हैं, पुनः अपना $\frac{१}{३}$ घटा देते हैं, फिर उसका वर्ग करते हैं, पुनः उसमें ५२ घटाकर उसका मूल लेते हैं, उसमें ८ जोड़कर १०का भाग देते हैं तो २ लब्धि होती है। उस संख्या अथवा राशिको निकालना है। इसमें मूलोक्त नियमके अनुसार इस प्रकार क्रिया की जायगी—

गुणक	३	हर	८४÷३=२८ राशि
धन	$\frac{३}{४}$ अपना $\frac{३}{७}$	ऋण	१४७−६३=८४
हर	७	गुणक	२१×७=१४७
ऋण	$\frac{१}{३}$ अपना $\frac{१}{२}$	धन	१४+७=२१
वर्ग	=	मूल	१९६= १४
ऋण	५२	धन	१४४+५२=१९६
मूल	=	वर्ग	१२=१४४
धन	८	ऋण	२०−८=१२
हर	१०	गुणक	२×१०=२०
		दृश्य	२

अतः विलोम गणितकी विधिसे वह संख्या २८ निश्चित हुई।

† इसको स्पष्टरूपसे जाननेके लिये यह उदाहरणात्मक प्रश्न प्रस्तुत किया जाता है—वह कौन-सी संख्या है, जिसे ५ से गुणा करके उसमें उसीका तृतीयांश घटाकर दससे भाग देनेपर जो लब्धि हो उसमें राशिके $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$ भाग जोडनेसे ६८ होता है। इसमें गुणक ५। ऊन $\frac{१}{३}$। हर १०। युक्त होनेवाले राश्यंश $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$ और दृश्य संख्या ६८ है। कल्पना कीजिये कि इष्ट राशि ३ है। इसमें प्रश्नकर्ताके कथनानुसार ५ से गुणा किया तो १५, इसमें अपना $\frac{१}{३}$ अर्थात् ५ घटा दिया तो १० हुआ। इसमें दससे भाग दिया तो १ लब्धि अङ्क हुआ, उसमें कल्पित राशि ३के $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$ जोड़नेसे $\frac{१}{१}+\frac{३}{३}+\frac{३}{२}+\frac{३}{४}=\frac{१२+१२+१८+९}{१२}=\frac{५१}{१२}=\frac{१७}{४}$ हुआ। फिर दृश्य ६८ में कल्पित इष्ट ३ से गुणा किया और $\frac{१७}{४}$से भाग दिया तो $\frac{६८\times३\times४}{१७}=४८$ यही इष्ट संख्या हुई।

ऐसा करनेसे भागानुबन्ध और भागापवाहका फल सिद्ध होगा। जिसके नीचे हर न हो उसके नीचे एक हरकी कल्पना करनी चाहिये। भिन्न गुणन-साधनमें अंश-अंशका गुणन करना और हर-हरके गुणनसे भाग देना चाहिये। इससे भिन्न गुणनमें फलकी सिद्धि होगी। (यथा $\frac{२}{७}\times\frac{३}{८}$ यहाँ २ और ३ अंश हैं और ७, ८ हर हैं, इनमें अंश-अंशसे गुणा करनेपर २×३=६ हुआ और हर-हरके गुणनसे ७×८=५६ हुआ। फिर ६÷५६ करनेसे $\frac{६}{५६}$ जिसे दोसे काटनेपर $\frac{३}{२८}$ उत्तर हुआ) ॥ २१-२५ ॥ विद्वन्! भिन्न-संख्याके भागमें भाजकके हर और अंशको परिवर्तित कर (हरको अंश और अंशको हर बनाकर) फिर भाज्यके हर-अंशके साथ गुणन-क्रिया करनी चाहिये, इससे भागफल सिद्ध होता है। (यथा $\frac{३}{८}\div\frac{४}{५}$ में हर और अंशके परिवर्तनसे $\frac{३}{८}\times\frac{५}{४}=\frac{१५}{३२}$ यही भागफल हुआ) ॥ २६ ॥

हरांशयोः कृती वर्गे घनौ घनविधौ मुने।
पदसिद्ध्यै पदे कुर्यादथो खं सर्वतश्च खम् ॥२७॥

भिन्नाङ्कके वर्गादि-साधनमें यदि वर्ग करना हो तो हर और अंश दोनोंका वर्ग करे तथा घन करना हो तो दोनोंका घन करे। इसी प्रकार वर्गमूल निकालना हो तो दोनोंका वर्गमूल और घनमूल निकालना हो तो भी दोनोंका घनमूल निकालना चाहिये। (यथा—$\frac{३}{७}$का वर्ग हुआ $\frac{९}{४९}$ और मूल हुआ $\frac{३}{७}$, इसी प्रकार $\frac{३}{७}$का घन हुआ $\frac{२७}{३४३}$ और मूल हुआ $\frac{३}{७}$) ॥ २७ ॥

छेदं गुणं गुणं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम्।
ऋणं स्वं स्वमृणं कुर्याद्दृश्ये राशिप्रसिद्धये ॥२८॥
अथ स्वांशाधिकोने तु लवाढ्योनो हरो हरः।
अंशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत् ॥२९॥

विलोमविधिसे राशि जाननेके लिये दृश्यमें हरको गुणक, गुणकको हर, वर्गको मूल, मूलको वर्ग, ऋणको धन और धनको ऋण बनाकर अन्तमे उलटी क्रिया करनेसे राशि (इष्ट संख्या) सिद्ध होती है। विशेषता यह है कि जहाँ अपना अंश जोडा गया हो वहाँ हरमें अंशको जोड़कर और जहाँ अपना अंश घटाया गया हो, वहाँ हरमें अंशको घटाकर हर कल्पना करे और अंश ज्यों-का-त्यों रहे। फिर दृश्य राशिमें विलोम क्रिया उक्त रीतिसे करे तो राशि सिद्ध होती है* ॥२८-२९॥

उद्दिष्टराशिः संक्षुण्णो हृतोंऽशै रहितो युतः।
इष्टघ्नदृष्टमेतेन भक्तं राशिरितीरितम् ॥३०॥

अभीष्ट संख्या जाननेके लिये इष्ट राशिकी कल्पना करनी चाहिये। फिर प्रश्नकर्ताके कथनानुसार उस राशिको गुणा करे या भाग दे। कोई अंश घटानेको कहा गया हो तो घटावे और जोड़नेको कहा गया हो तो जोड़ दे अर्थात् प्रश्नमें जो-जो क्रियाएँ कही गयी हों, वे इष्टराशिमें करके फिर जो राशि निष्पन्न हो, उससे कल्पित इष्ट-गुणित दृष्टमें भाग दे, उसमे जो लब्धि हो, वही इष्ट राशि है† ॥३०॥

---

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—$\frac{१}{८}$का $\frac{१}{३}$ उसमेंसे घटाओ और शेषका $\frac{१}{२}$ उसी शेषमें जोड़ो, इसकी न्यास-विधि (लिखनेकी रीति) इस प्रकार होगी—

$\frac{१}{८}$ $-\frac{१}{३}$ $+\frac{१}{२}$ $\quad \frac{१\times३\times२}{८\times२\times३}=\frac{१}{८}$ उत्तर हुआ।

* उदाहरणके लिये यह प्रश्न लीजिये—वह कौन-सी संख्या है, जिसको तीनसे गुणा करके उसमें अपना $\frac{३}{४}$ जोड़ देते हैं, फिर सातका भाग देते हैं, पुनः अपना $\frac{१}{३}$ घटा देते हैं, फिर उसका वर्ग करते हैं, पुनः उसमें ५२ घटाकर उसका मूल लेते हैं, उसमें ८ जोड़कर १०का भाग देते हैं तो २ लब्धि होती है। उस संख्या अथवा राशिको निकालना है। इसमें मूलोक्त नियमके अनुसार इस प्रकार क्रिया की जायगी—

गुणक	३	हर	८४÷३=२८ राशि
धन	$\frac{३}{४}$ अपना $\frac{३}{७}$ ऋण		१४७-६३=८४
हर	७	गुणक	२१×७=१४७
ऋण	$\frac{१}{३}$ अपना $\frac{१}{२}$	धन	१४+७=२१
वर्ग	=	मूल	१९६= १४
ऋण	५२	धन	१४४+५२=१९६
मूल	=	वर्ग	१२=१४४
धन	८	ऋण	२०-८=१२
हर	१०	गुणक	२×१०=२०
		दृश्य	२

अतः विलोम गणितकी विधिसे वह संख्या २८ निश्चित हुई।

† इसको स्पष्टरूपसे जाननेके लिये यह उदाहरणात्मक प्रश्न प्रस्तुत किया जाता है—वह कौन-सी संख्या है, जिसे ५ से गुणा करके उसमें उसीका तृतीयांश घटाकर दससे भाग देनेपर जो लब्धि हो उसमें राशिके $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$ भाग जोडनेसे ६८ होता है। इसमें गुणक ५। ऊन $\frac{१}{३}$। हर १०। युक्त होनेवाले राश्यंश $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$ और दृश्य संख्या ६८ है। कल्पना कीजिये कि इष्ट राशि ३ है। इसमें प्रश्नकर्ताके कथनानुसार ५ से गुणा किया तो १५, इसमें अपना $\frac{१}{३}$ अर्थात् ५ घटा दिया तो १० हुआ। इसमें दससे भाग दिया तो १ लब्धि अङ्क हुआ, उसमें कल्पित राशि ३के $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$ जोड़नेसे $\frac{१}{१}+\frac{३}{३}+\frac{३}{२}+\frac{३}{४}=\frac{१२+१२+१८+९}{१२}=\frac{५१}{१२}=\frac{१७}{४}$ हुआ। फिर दृश्य ६८ में कल्पित इष्ट ३ से गुणा किया और $\frac{१७}{४}$से भाग दिया तो $\frac{६८\times३\times४}{१७}=४८$ यही इष्ट संख्या हुई।

फिर उसका वर्ग कर लेनेसे प्रश्नकर्ताकी अभीष्ट राशि (सख्या) सिद्ध होती है ।* यदि राशि मूलोन या मूलयुक्त होकर पुनः अपने किसी भागसे भी ऊन या युत होकर दृश्य होती हो तो उस भागको १ में ऊन या युत कर (यदि भाग ऊन हुआ हो तो घटा करके और यदि युत हुआ हो तो जोड़ करके) उसके द्वारा पृथक्-पृथक् दृश्य और मूल गुणकमें भाग दे, फिर इस नूतन दृश्य और मूलगुणकसे पूर्ववत् राशिका साधन करना चाहिये ॥ ३५-३६ ॥

प्रमाणेच्छे सजातीये आद्यन्ते मध्यगं फलम् ।
इच्छाघ्नमाद्यहृत्स्वेष्टं फलं व्यस्ते विपर्ययात् ॥३७॥

(त्रैराशिकमें) प्रमाण और इच्छा ये समान जातिके होते हैं, इन्हें आदि और अन्तमें रक्खे, फल भिन्न जातिका है, अतः उसे मध्यमे स्थापित करे । फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणके द्वारा भाग देनेसे लब्धि इष्टफल होती है । (यह क्रमत्रैराशिक बताया गया है ।) व्यस्त त्रैराशिकमें इससे विपरीत क्रिया करनी चाहिये । अर्थात् प्रमाण-फलको प्रमाणसे गुणा करके इच्छासे भाग देनेपर लब्धि इष्टफल होती है । (प्रमाण, प्रमाण-फल और इच्छा—इन तीन राशियोंको जानकर इच्छाफल जाननेकी क्रियाको त्रैराशिक कहते हैं ।)* ॥ ३७ ॥

---

* यदि कोई पूछे—किसी हस-समूहके मूलका सप्तगुणित आधा ($\frac{७}{२}$) भाग सरोवरके तटपर चला गया और बचे हुए २ हस जलमें ही क्रीडा करते देखे गये तो उन हंसोंकी कुल सख्या कितनी थी ? यहाँ मूल गुणक $\frac{७}{२}$ है। दृष्ट सख्या २ है। गुणार्ध हुआ $\frac{७}{४}$ उसका वर्ग हुआ $\frac{४९}{१६}$ उससे दृष्ट २ का योग करनेपर $\frac{८१}{१६}$ हुआ। इसका मूल हुआ $\frac{९}{४}$ फिर इसे गुणार्ध $\frac{७}{४}$ से युक्त किया तो $\frac{१६}{४}$=४ हुआ, इसका वर्ग किया तो १६ हुआ, यही हसकुलका मान है । (यह मूलोन दृष्टका उदाहरण है ।)

भागोन दृष्टका उदाहरण इस प्रकार है—किसी व्यक्तिने अपने धनका आधा $\frac{१}{२}$ अपने पुत्रको दिया और धन-सख्याके मूलका १२ गुना भाग अपनी स्त्रीको दे दिया । इसके वाद उसके पास १०८०) वच गये तो वताओ उसके सम्पूर्ण धनकी सख्या क्या है ?

उत्तर—इस प्रश्नमें मूलगुणक १२ है और $\frac{१}{२}$ भागसे ऊन दृष्ट १०८० है । अत. मूल श्लोकमें वर्णित रीतिके अनुसार भागको एकमें घटानेसे $१-\frac{१}{२}=\frac{१}{२}$ हुआ । इससे मूल गुणक १२ और दृश्य १०८० में भाग देनेसे क्रमश नवीन मूलगुणक २४ और नवीन दृश्य २१६० हुआ । पुन. उपर्युक्त रीतिसे इस मूलगुणकके आधे १२ के वर्ग १४४ को दृश्यमें जोड़नेसे २३०४ हुआ । इसके मूल ४८ में गुणक २४ के आधे १२ को जोड़नेसे ६० हुआ और उसका वर्ग ३६०० हुआ; यही उत्तर है ।

भागयुत दृष्टका उदाहरण—एक भगवद्भक्त प्रात·काल जितनी सख्यामें हरिनामका जप करते हैं, उस संख्याके पञ्चमाशमें उसी जपसख्याके मूलका १२ गुना जोडनेसे जो सख्या हो, उतना जप सायंकालमें करते हैं, यदि दोनों समयकी जपसख्या मिलकर १३२०० है तो प्रात.काल और सायंकालकी पृथक् पृथक् जपसख्या बताइये ।

उत्तर—यहाँ मूलगुणक १२ और भाग $\frac{१}{५}$ से युत दृष्ट १३२०० है । अतः उक्त रीतिके अनुसार भागको १ में जोड़ा गया तो $\frac{६}{५}$ हुआ । इससे मूलगुणक १२ और दृश्य १३२०० में भाग देनेपर नवीन मूलगुणक १० और नवीन दृश्य ११००० हुआ । उपर्युक्त रीतिके अनुसार गुणकके आधे ५ के वर्ग २५ को नवीन दृश्यमें जोडनेपर ११०२५ हुआ । इसका मूल १०५ हुआ । इसमें नवीन गुणकके आधे ५ को घटानेसे १०० हुआ । इसका वर्ग १०००० है । यही प्रात कालकी जपसंख्या हुई । शेष ३२०० सायकालकी जपसंख्या हुई ।

* उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—यदि पाँच रुपयेमें १०० आम मिलते हैं तो सात रुपयेमें कितने मिलेंगे ? इस प्रश्नमें ५ प्रमाण है, १०० प्रमाण-फल है और ७ इच्छा है । प्रमाण और इच्छा एक जाति (रुपया) तथा प्रमाण-फल भिन्न जाति (आम) है । आदिमें प्रमाण, मध्यमें फल और अन्तमें इच्छाको स्थापना की गयी—५) में १०० आम तो ७) में कितने ? यहाँ प्रमाण-फल १०० को इच्छासे गुणा करके प्रमाणसे भाग दिया जायगा तो $\frac{१००\times७}{५}$=१४० यह इच्छाफल हुआ (अर्थात् सात रुपयेके १४० आम हुए) ।

जहाँ इच्छाकी वृद्धिमें फलकी वृद्धि और इच्छाके ह्रासमें फलका ह्रास हो, वहाँ क्रम-त्रैराशिक होता है । जहाँ इच्छाकी वृद्धिमे फलका ह्रास और इच्छाके ह्रासमें फलकी वृद्धि हो, वहाँ व्यस्तत्रैराशिक होता है । वैसे स्थलोंमें प्रमाणफलको प्रमाणसे गुणा करके उसमें इच्छाके द्वारा भाग देनेसे इच्छाफल होता है । इस प्रकारके व्यस्त-त्रैराशिकके कुछ परिगणित स्थल हैं—'जीवानां वयसो मौल्ये तौल्ये वर्णस्य हैमने । भागहारे च राशीना व्यस्त त्रैराशिकं भवेत् ॥' अर्थात् जीवोंकी वयस्के मूल्यमें, उत्तमके साथ अधम मोलवाले सोनेके तौलमें तथा किसी सख्यामें भिन्न-भिन्न भाजकसे भाग देनेमें व्यस्त-त्रैराशिक होता है । एक उदाहरण लीजिये—३ आदमी मिलकर १० दिनमें एक काम पूरा करते हैं तो १५ आदमी 'कितने दिनमें करेंगे ? यहाँ १०×३÷१५ करनेसे उत्तर आया २; अत. २ दिनमें काम पूरा करेंगे ।

फिर उसका वर्ग कर लेनेसे प्रश्नकर्ताकी अभीष्ट राशि (सख्या) सिद्ध होती है ।* यदि राशि मूलोन या मूलयुक्त होकर पुनः अपने किसी भागसे भी ऊन या युत होकर दृश्य होती हो तो उस भागको १ में ऊन या युत कर (यदि भाग ऊन हुआ हो तो घटा करके और यदि युत हुआ हो तो जोड़ करके) उसके द्वारा पृथक्-पृथक् दृश्य और मूल गुणकमें भाग दे, फिर इस नूतन दृश्य और मूलगुणकसे पूर्ववत् राशिका साधन करना चाहिये ॥ ३५-३६ ॥

प्रमाणेच्छे सजातीये आद्यन्ते मध्यगं फलम् ।
इच्छाघ्नमाद्यहृत्स्वेष्टं फलं व्यस्ते विपर्ययात् ॥३७॥

(त्रैराशिकमें) प्रमाण और इच्छा ये समान जातिके होते हैं, इन्हें आदि और अन्तमें रक्खे, फल भिन्न जातिका है, अतः उसे मध्यमे स्थापित करे । फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणके द्वारा भाग देनेसे लब्धि इष्टफल होती है । (यह क्रमत्रैराशिक बताया गया है ।) व्यस्त त्रैराशिकमें इससे विपरीत क्रिया करनी चाहिये । अर्थात् प्रमाण-फलको प्रमाणसे गुणा करके इच्छासे भाग देनेपर लब्धि इष्टफल होती है । (प्रमाण, प्रमाण-फल और इच्छा—इन तीन राशियोंको जानकर इच्छाफल जाननेकी क्रियाको त्रैराशिक कहते हैं ।)* ॥ ३७ ॥

---

* यदि कोई पूछे—किसी हस-समूहके मूलका सप्तगुणित आधा ($\frac{७}{२}$) भाग सरोवरके तटपर चला गया और बचे हुए २ हस जलमें ही क्रीडा करते देखे गये तो उन हंसोंकी कुल सख्या कितनी थी ? यहाँ मूल गुणक $\frac{७}{२}$ है। दृष्ट सख्या २ है। गुणार्ध हुआ $\frac{७}{४}$ उसका वर्ग हुआ $\frac{४९}{१६}$ उससे दृष्ट २ का योग करनेपर $\frac{८१}{१६}$ हुआ। इसका मूल हुआ $\frac{९}{४}$ फिर इसे गुणार्ध $\frac{७}{४}$ से युक्त किया तो $\frac{१६}{४}=४$ हुआ, इसका वर्ग किया तो १६ हुआ, यही हसकुलका मान है । (यह मूलोन दृष्टका उदाहरण है ।)

भागोन दृष्टका उदाहरण इस प्रकार है—किसी व्यक्तिने अपने धनका आधा $\frac{१}{२}$ अपने पुत्रको दिया और धन-सख्याके मूलका १२ गुना भाग अपनी स्त्रीको दे दिया । इसके वाद उसके पास १०८०) बच गये तो बताओ उसके सम्पूर्ण धनकी सख्या क्या है ?

उत्तर—इस प्रश्नमें मूलगुणक १२ है और $\frac{१}{२}$ भागसे ऊन दृष्ट १०८० है । अत. मूल श्लोकमें वर्णित रीतिके अनुसार भागको एकमें घटानेसे $१-\frac{१}{२}=\frac{१}{२}$ हुआ। इससे मूल गुणक १२ और दृश्य १०८० में भाग देनेसे क्रमश नवीन मूलगुणक २४ और नवीन दृश्य २१६० हुआ । पुन. उपर्युक्त रीतिसे इस मूलगुणकके आधे १२ के वर्ग १४४ को दृश्यमें जोड़नेसे २३०४ हुआ । इसके मूल ४८ में गुणक २४ के आधे १२ को जोड़नेसे ६० हुआ और उसका वर्ग ३६०० हुआ; यही उत्तर है ।

भागयुत दृष्टका उदाहरण—एक भगवद्भक्त प्रात·काल जितनी सख्यामें हरिनामका जप करते हैं, उस संख्याके पञ्चमाशमें उसी जपसख्याके मूलका १२ गुना जोडनेसे जो सख्या हो, उतना जप सायंकालमें करते हैं, यदि दोनों समयकी जपसख्या मिलकर १३२०० है तो प्रात.काल और सायंकालकी पृथक् पृथक् जपसख्या बताइये ।

उत्तर—यहाँ मूलगुणक १२ और भाग $\frac{१}{५}$ से युत दृष्ट १३२०० है । अतः उक्त रीतिके अनुसार भागको १ में जोड़ा गया तो $\frac{६}{५}$ हुआ । इससे मूलगुणक १२ और दृश्य १३२०० में भाग देनेपर नवीन मूलगुणक १० और नवीन दृश्य ११००० हुआ । उपर्युक्त रीतिके अनुसार गुणकके आधे ५ के वर्ग २५ को नवीन दृश्यमें जोडनेपर ११०२५ हुआ । इसका मूल १०५ हुआ । इसमें नवीन गुणकके आधे ५ को घटानेसे १०० हुआ । इसका वर्ग १०००० है । यही प्रात कालकी जपसंख्या हुई । शेप ३२०० सायकालकी जपसंख्या हुई ।

---

* उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—यदि पाँच रुपयेमें १०० आम मिलते हैं तो सात रुपयेमें कितने मिलेंगे ? इस प्रश्नमें ५ प्रमाण है, १०० प्रमाण-फल है और ७ इच्छा है । प्रमाण और इच्छा एक जाति (रुपया) तथा प्रमाण-फल भिन्न जाति (आम) है । आदिमें प्रमाण, मध्यमें फल और अन्तमें इच्छाकी स्थापना की गयी—५) में १०० आम तो ७) में कितने ? यहाँ प्रमाण-फल १०० को इच्छासे गुणा करके प्रमाणसे भाग दिया जायगा तो $\frac{१००\times७}{५}=१४०$ यह इच्छाफल हुआ (अर्थात् सात रुपयेके १४० आम हुए) ।

जहाँ इच्छाकी वृद्धिमें फलकी वृद्धि और इच्छाके ह्रासमें फलका ह्रास हो, वहाँ क्रम-त्रैराशिक होता है । जहाँ इच्छाकी वृद्धिमे फलका ह्रास और इच्छाके ह्रासमें फलकी वृद्धि हो, वहाँ व्यस्तत्रैराशिक होता है । वैसे स्थलोंमें प्रमाणफलको प्रमाणसे गुणा करके उसमें इच्छाके द्वारा भाग देनेसे इच्छाफल होता है । इस प्रकारके व्यस्त-त्रैराशिकके कुछ परिगणित स्थल हैं—'जीवानां वयसो मौल्ये तौल्ये वर्णस्य हैमने । भागहारे च राशीना व्यस्त त्रैराशिकं भवेत् ॥' अर्थात् जीवोंकी वयस्के मूल्यमें, उत्तमके साथ अधम मोलवाले सोनेके तौलमें तथा किसी सख्यामें भिन्न-भिन्न भाजकसे भाग देनेमें व्यस्त-त्रैराशिक होता है । एक उदाहरण लीजिये—३ आदमी मिलकर १० दिनमें एक काम पूरा करते हैं तो १५ आदमी 'कितने दिनमें करेंगे ? यहाँ $१०\times३\div१५$ करनेसे उत्तर आया २; अत. २ दिनमें काम पूरा करेंगे ।

धनसे अपने-अपने कालको गुणा करना, उसमें अपने-अपने व्यतीत काल और फलके घात (गुणा)से भाग देना, लब्धिको पृथक् रहने देना, उन सबमें उन्हींके योगका पृथक् पृथक् भाग देना तथा सबको मिश्रधनसे गुणा कर देना चाहिये। फिर क्रमसे प्रयुक्त व्यापारमें लगाये हुए धनखण्डके प्रमाण ज्ञात होते हैं* ॥ ३९½ ॥

बहुराशिफलात् स्वल्पराशिमासफलं बहु ॥४०॥
चेद्राशिजफलं मासफलाहतिहृतं चयः।

पञ्चराशिकादिमें फल और हरको अन्योन्य पक्षनयन करनेसे इच्छा-पक्षमें फलके चले जानेसे इच्छापक्ष बहुराशि और प्रमाण-पक्ष स्वल्पराशि माना गया है। इसी गणितके उदाहरणमें जब इच्छाफल जानकर मूलधन जानना होगा तो फलोंको परस्पर पक्षमें परिवर्तन करनेसे प्रमाणपक्ष (स्वल्पराशि) का फल ही बहुराशि (इच्छापक्ष) से अधिक होगा यहाँ राशिजफलको इष्टमास और प्रमाण-फलके गुणनसे भाग देनेपर मूलधन होता है† ॥ ४०½ ॥

इसको मिश्रधन १००० में घटानेसे ३७५) व्याजके हुए। संक्षेपसे इस प्रकार न्यास करना चाहिये—

१	१२	लब्धिक्रमसे मूल ६२५)
१००	१०००	व्याज ३७५)
५	०	

अथवा इष्टकर्मसे कल्पित इष्ट १

पूर्वोक्त रीतिसे कलान्तर (सूद) $\frac{३}{५}$ इससे युक्त $१=\frac{८}{५}$

$$१०००\div\frac{८}{५}=\frac{१०००\times५}{८}=६२५) \text{ मूलधन}$$

$$१०००-६२५=३७५) \text{ व्याज}$$

* उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—किसीने अपने ९४) रुपये मूलधनके तीन भाग करके एक भागको माहवारी पाँच रुपये सैकडे व्याज, दूसरे भागको तीन रुपये और तीसरे भागको चार रुपये सैकडे व्याजपर दिया। क्रमशः तीनों भागोंमें सात, दस और पाँच मासमें बराबर व्याज मिले तो तीनों भागोंकी अलग-अलग संख्या बताओ।

भाग १	भाग २	भाग ३	मिश्रधन(सम्मिलित मूलधन)
प्रमाणकाल १ व्यतीतकाल ७	प्र० का० १ व्य० का० १०	प्र० का० १ व्य० का० ५	
प्रमाण धन १००	प्रमाण धन १००	प्रमाण धन १००	९४
प्रमाण फल ५	प्रमाण फल ३	प्रमाण फल ४	

अपने प्रमाणकाल और प्रमाणधनके गुणनफलमें व्यतीतकाल और प्रमाण फलके गुणनफलसे भाग देनेपर—

$\frac{१००\times१=१००}{७\times५=३५}=\frac{२०}{७}$ | $\frac{१००\times१}{३\times१०}=\frac{१००}{३०}=\frac{१०}{३}$ | $\frac{१००\times१}{४\times५}=\frac{१००}{२०}=\frac{५}{१}$

इनमें इनके योग $\frac{२३५}{२१}$ से भाग देने और मिश्रधन (९४) से गुणा करनेपर पृथक्-पृथक् भाग इस प्रकार होते हैं—

$\frac{२०}{७}-\frac{२३५}{२१}$, $\frac{२०}{७}\times\frac{२१}{२३५}\times९४=२४$ यह प्रथम भाग हुआ।

$\frac{१}{२५}\times९४=२८$ यह द्वितीय भाग हुआ।

$\frac{५}{१}-\frac{२३५}{२१}$, $\frac{५}{१}\times\frac{२१}{२३५}\times९४=४२$ यह तृतीय भाग हुआ।

† उदाहरण—एक मासमें १००) मूलधनका ५) रुपया व्याज होता है तो १२ मासमें १६ रुपयेका कितना होगा?

उत्तरार्थ न्यास—

प्रमाण	इच्छा
१	१२
१००	१६
५	×

अन्योन्य पक्षनयनसे

स्वल्प राशि	बहुराशि
१	१२
१००	१६
	५

श्लोकोक्त रीतिके अनुसार—$\frac{१२\times१६\times५}{१००}=\frac{४८}{५}=$ इच्छाफल।

धनसे अपने-अपने कालको गुणा करना, उसमें अपने-अपने व्यतीत काल और फलके घात (गुणा)से भाग देना, लब्धिको पृथक् रहने देना, उन सबमें उन्हींके योगका पृथक् पृथक् भाग देना तथा सबको मिश्रधनसे गुणा कर देना चाहिये। फिर क्रमसे प्रयुक्त व्यापारमें लगाये हुए धनखण्डके प्रमाण ज्ञात होते हैं* ॥ ३९½ ॥

बहुराशिफलात् स्वल्पराशिमासफलं बहु ॥४०॥
चेद्राशिजफलं मासफलाहतिहृतं चयः।

पञ्चराशिकादिमें फल और हरको अन्योन्य पक्षनयन करनेसे इच्छा-पक्षमें फलके चले जानेसे इच्छापक्ष बहुराशि और प्रमाण-पक्ष स्वल्पराशि माना गया है। इसी गणितके उदाहरणमें जब इच्छाफल जानकर मूलधन जानना होगा तो फलोंको परस्पर पक्षमें परिवर्तन करनेसे प्रमाणपक्ष (स्वल्पराशि) का फल ही बहुराशि (इच्छापक्ष) से अधिक होगा यहाँ राशिजफलको इष्टमास और प्रमाण-फलके गुणनसे भाग देनेपर मूलधन होता है† ॥ ४०½ ॥

इसको मिश्रधन १००० में घटानेसे ३७५) ब्याजके हुए। संक्षेपसे इस प्रकार न्यास करना चाहिये—

१	१२	लब्धिक्रमसे मूल ६२५)
१००	१०००	ब्याज ३७५)
५	०	

अथवा इष्टकर्मसे कल्पित इष्ट १

पूर्वोक्त रीतिसे कलान्तर (सूद) $\frac{३}{५}$ इससे युक्त $१=\frac{८}{५}$

$$१०००\div\frac{८}{५}=\frac{१०००\times५}{८}=६२५) \text{ मूलधन}$$

$$१०००-६२५=३७५) \text{ ब्याज}$$

* उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—किसीने अपने ९४) रुपये मूलधनके तीन भाग करके एक भागको माहवारी पाँच रुपये सैकडे ब्याज, दूसरे भागको तीन रुपये और तीसरे भागको चार रुपये सैकडे ब्याजपर दिया। क्रमशः तीनों भागोंमें सात, दस और पाँच मासमें बराबर ब्याज मिले तो तीनों भागोंकी अलग-अलग संख्या बताओ।

भाग १	भाग २	भाग ३	मिश्रधन(सम्मिलित मूलधन)
प्रमाणकाल १ व्यतीतकाल ७	प्र० का० १ व्य० का० १०	प्र० का० १ व्य० का० ५	९४
प्रमाण धन १००	प्रमाण धन १००	प्रमाण धन १००	
प्रमाण फल ५	प्रमाण फल ३	प्रमाण फल ४	

अपने प्रमाणकाल और प्रमाणधनके गुणनफलमें व्यतीतकाल और प्रमाण फलके गुणनफलसे भाग देनेपर—

$$\frac{१००\times१=१००}{७\times५=३५}=\frac{२०}{७} \quad\Big|\quad \frac{१००\times१}{३\times१०}=\frac{१००}{३०}=\frac{१०}{३} \quad\Big|\quad \frac{१००\times१}{४\times५}=\frac{१००}{२०}=\frac{५}{१}$$

इनमें इनके योग $\frac{२३५}{२१}$ से भाग देने और मिश्रधन (९४) से गुणा करनेपर पृथक्-पृथक् भाग इस प्रकार होते हैं—

$\frac{२०}{७}-\frac{२३५}{२१}$, $\frac{२०}{७}\times\frac{२१}{२३५}\times९४=२४$ यह प्रथम भाग हुआ।

$\frac{१}{२३५}\times९४=२८$ यह द्वितीय भाग हुआ।

$\frac{५}{१}-\frac{२३५}{२१}$, $\frac{५}{१}\times\frac{२१}{२३५}\times९४=४२$ यह तृतीय भाग हुआ।

† उदाहरण—एक मासमें १००) मूलधनका ५) रुपया ब्याज होता है तो १२ मासमें १६ रुपयेका कितना होगा?

उत्तरार्थ न्यास—

प्रमाण	इच्छा
१	१२
१००	१६
५	×

अन्योन्य पक्षनयनसे

स्वल्प राशि	बहुराशि
१	१२
१००	१६
	५

श्लोकोक्त रीतिके अनुसार—$\frac{१२\times१६\times५}{१००}=\frac{४८}{५}=$ इच्छाफल।

शेषमें एकोन गुणकसे भाग देना चाहिये। लब्धिको आदि अङ्कसे गुणा करनेपर सर्वधन होता है* ॥ ४२-४३ ॥

भुजकोटिकृतेर्योगमूलं कर्णश्च दोर्भवेत्।
श्रुतिकोटिकृतेरन्तः पदं दोःकर्णवर्गयोः ॥४४॥
विवराद् यत्पदं कोटिः क्षेत्रे त्रिचतुरस्रके।
राश्योरन्तरवर्गेण द्विघ्ने घाते युते तयोः ॥४५॥
वर्गयोगोऽथ योगान्तर्हतिर्वर्गान्तरं भवेत्।

(क्षेत्रव्यवहार-प्रकरण)—भुज और कोटिके वर्गयोगका मूल कर्ण होता है, भुज और कर्णके वर्गान्तरका मूल कोटि होता है तथा कोटि एवं कर्णके वर्गान्तरका मूल भुज होता है—यह बात त्रिभुज अथवा चतुर्भुज क्षेत्रके लिये कही गयी है †। अथवा राशिके अन्तरवर्गमे उन्हीं दोनों राशियोंका द्विगुणित घात (गुणनफल) जोड़ दें तो वर्गयोग होता है अथवा उन्हीं दोनों राशियोंके योगान्तरका घात वर्गान्तर होता है‡ ॥ ४४-४५½ ॥

---

* कल्पना कीजिये कि किसी दाताने किसी याचकको पहले दिन २ रुपये देकर उसके बाद प्रतिदिन द्विगुणित करके देनेका निश्चय किया तो बताइये कि उसने ३० दिनमें कितने रुपये दान किये।

उत्तर—यहाँ आदि=२, गुणात्मकचय=२, पद=३० है। पद सम अंक है। अतः आधा करके १५ के स्थानमें वर्गचिह्न लगाया, यह विषमाङ्क हुआ, अत उसमें १ घटाकर १४ के स्थानमें गुणकचिह्न लिखा। फिर यह सम हो गया, अत. आधा ७ करके वर्गचिह्न किया, इस प्रकार पद-संख्याकी समाप्तिपर्यन्त न्यास किया। न्यास देखिये—

न्यास.—

१५	वर्ग	१०७३७४१८२४
१४	गुण	३२७६८
७	वर्ग	१६३८४
६	गुण	१२८
३	वर्ग	६४
२	गुण	८
१	वर्ग	४
०	गुण	२

अन्तमें गुणचिह्न हुआ। वहाँ गुणकाङ्क २ को रखकर उल्टा प्रथम चिह्नतक गुणक-वर्गज फल-साधन किया तो १०७३७४१८२४ हुआ।

इसमें एक घटाकर एकोनगुण (१) से भाग देकर आदि (२) से गुणा किया तो २,१४,७४,८३,६४६ रुपये सर्वधन हुआ।

† लीलावती (क्षेत्रव्यवहार श्लोक १,२) में इस विषयको इस प्रकार स्पष्ट किया है—'त्रिभुज या चतुर्भुजमें जब एक भुजपर दूसरा भुज लम्बरूप हो, उन दोनोंमें एक (नीचेकी पड़ी रेखा) को 'भुज' और दूसरी (ऊपरकी खड़ी रेखा) को 'कोटि' कहते हैं। तथा उन दोनोंके वर्गयोग मूलको 'कर्ण' कहते हैं। भुज और कर्णका वर्गान्तर मूल कोटि तथा कोटि और कर्णका वर्गान्तर मूल भुज होता है। यथा—'क, ग, च' यह एक त्रिभुज है। 'क, ग' इस रेखाको कोटि कहते हैं। 'ग, च' इस रेखाका नाम भुज है, 'क, च' का नाम कर्ण है।

उदाहरण—जैसे प्रश्न हुआ कि जिस जात्य त्रिभुजमें कोटि= ४, भुज=३ है वहाँका कर्णमान क्या होगा ? तथा भुज और कर्ण जानकर कोटि बताओ और कोटि, कर्ण जानकर भुज बताओ।

उक्त रीतिसे ४ का वर्ग १६ और ३ का वर्ग ९, दोनोंके योग २५ का मूल ५ यह कर्ण हुआ। एवं कर्ण ५ और भुज ३, इन दोनोंके वर्गान्तर २५−९=१६, इसका मूल ४ कोटि हुई तथा कर्णके वर्ग २५ में कोटिके वर्ग १६ को घटाकर शेष ९ का मूल ३ भुज हुआ।

इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये।

‡ जैसे ३ और ४ ये दो राशियाँ हैं। इन दोनोंके दूने गुणनफलमें ३×४×२=२४ में दोनों राशियोंका अन्तर वर्ग $(४-३)^२$= $(१)^२$=१ मिलानेसे २४+१=२५ यह दोनों राशियोंके वर्गयोग $(३)^२+(४)^२$=९+१६=२५ के बराबर है तथा उन्हीं दोनों राशियोंके योगान्तर घात (३+४)×(४−३)=७×१=७ यह दोनों राशियोंके वर्गान्तर १६−९=७ के बराबर है। (² यह निशान वर्गका है)।

शेषमें एकोन गुणकसे भाग देना चाहिये। लब्धिको आदि अङ्कसे गुणा करनेपर सर्वधन होता है* ॥ ४२-४३ ॥

भुजकोटिकृतेर्योगमूलं कर्णश्च दोर्भवेत्।
श्रुतिकोटिकृतेरन्तः पदं दोःकर्णवर्गयोः ॥४४॥
विवराद् यत्पदं कोटि. क्षेत्रे त्रिचतुरस्रके।
राश्योरन्तरवर्गेण द्विघ्ने घाते युते तयोः ॥४५॥
वर्गयोगोऽथ योगान्तर्हतिर्वर्गान्तरं भवेत्।

(क्षेत्रव्यवहार-प्रकरण)—भुज और कोटिके वर्गयोगका मूल कर्ण होता है, भुज और कर्णके वर्गान्तरका मूल कोटि होता है तथा कोटि एवं कर्णके वर्गान्तरका मूल भुज होता है—यह बात त्रिभुज अथवा चतुर्भुज क्षेत्रके लिये कही गयी है † । अथवा राशिके अन्तरवर्गमे उन्हीं दोनों राशियोंका द्विगुणित घात (गुणनफल) जोड़ दें तो वर्गयोग होता है अथवा उन्हीं दोनों राशियोंके योगान्तरका घात वर्गान्तर होता है‡ ॥ ४४-४५½ ॥

* कल्पना कीजिये कि किसी दाताने किसी याचकको पहले दिन २ रुपये देकर उसके बाद प्रतिदिन द्विगुणित करके देनेका निश्चय किया तो बताइये कि उसने ३० दिनमें कितने रुपये दान किये।

उत्तर—यहाँ आदि=२, गुणात्मकचय=२, पद=३० है। पद सम अंक है। अतः आधा करके १५ के स्थानमें वर्गचिह्न लगाया, यह विषमाङ्क हुआ, अत उसमें १ घटाकर १४ के स्थानमें गुणकचिह्न लिखा। फिर यह सम हो गया, अत. आधा ७ करके वर्गचिह्न किया, इस प्रकार पद-संख्याकी समाप्तिपर्यन्त न्यास किया। न्यास देखिये—

न्यास.—

१५	वर्ग	१०७३७४१८२४
१४	गुण	३२७६८
७	वर्ग	१६३८४
६	गुण	१२८
३	वर्ग	६४
२	गुण	८
१	वर्ग	४
०	गुण	२

अन्तमें गुणचिह्न हुआ। वहाँ गुणकाङ्क २ को रखकर उल्टा प्रथम चिह्नतक गुणक-वर्गज फल-साधन किया तो १०७३७४१८२४ हुआ।

इसमें एक घटाकर एकोनगुण (१) से भाग देकर आदि (२) से गुणा किया तो २,१४,७४,८३,६४६ रुपये सर्वधन हुआ।

† लीलावती (क्षेत्रव्यवहार श्लोक १,२) में इस विषयको इस प्रकार स्पष्ट किया है—'त्रिभुज या चतुर्भुजमें जब एक भुजपर दूसरा भुज लम्बरूप हो, उन दोनोंमें एक (नीचेकी पड़ी रेखा) को 'भुज' और दूसरी (ऊपरकी खड़ी रेखा) को 'कोटि' कहते हैं। तथा उन दोनोंके वर्गयोग मूलको 'कर्ण' कहते हैं। भुज और कर्णका वर्गान्तर मूल कोटि तथा कोटि और कर्णका वर्गान्तर मूल भुज होता है। यथा—'क, ग, च' यह एक त्रिभुज है। 'क, ग' इस रेखाको कोटि कहते हैं। 'ग, च' इस रेखाका नाम भुज है, 'क, च' का नाम कर्ण है।

उदाहरण—जैसे प्रश्न हुआ कि जिस जात्य त्रिभुजमें कोटि= ४, भुज=३ है वहाँका कर्णमान क्या होगा? तथा भुज और कर्ण जानकर कोटि बताओ और कोटि, कर्ण जानकर भुज बताओ।

उक्त रीतिसे ४ का वर्ग १६ और ३ का वर्ग ९, दोनोंके योग २५ का मूल ५ यह कर्ण हुआ। एव कर्ण ५ और भुज ३, इन दोनोंके वर्गान्तर २५−९=१६, इसका मूल ४ कोटि हुई तथा कर्णके वर्ग २५ में कोटिके वर्ग १६ को घटाकर शेष ९ का मूल ३ भुज हुआ।

इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये।

‡ जैसे ३ और ४ ये दो राशियाँ हैं। इन दोनोंके दूने गुणनफलमें ३×४×२=२४ में दोनों राशियोंका अन्तर वर्ग $(४-३)^2$= $(१)^2$=१ मिलानेसे २४+१=२५ यह दोनों राशियोंके वर्गयोग $(३)^2+(४)^2$=९+१६=२५ के बराबर है तथा उन्हीं दोनों राशियोंके योगान्तर घात (३+४)×(४−३)=७×१=७ यह दोनों राशियोंके वर्गान्तर १६−९=७ के बराबर है। (^{2} यह निशान वर्गका है)।

रखना चाहिये । फिर इन दोनोंका घात (गुणा) करना चाहिये । उस गुणनका मूल लेना और उसको व्यासमें घटा देना चाहिये । फिर उसका आधा करे, वही 'शर' होगा । व्यासमे शरको घटाना, अन्तरको शरसे गुण देना, उसका मूल लेना और उसे दूना करना चाहिये तो 'जीवा' हो जायगी । जीवाका आधा करके उसका वर्ग करना, शरसे भाग देना और लब्धिमें शरको जोड़ देना चाहिये, तो व्यास-का मान होगा *॥ ४७-४८ ॥

चापोननिघ्नः परिधिः प्राग्वाख्यः परिधेः कृतेः ।
तुर्यांशेन शरघ्नेनाद्योनेनाद्यं चतुर्गुणम् ॥४९॥
व्यासघ्नं प्रभजेद्विप्र ज्यका संजायते स्फुटा ।
ज्याङ्घ्रीपुघ्नो वृत्तवर्गोऽङ्घिघ्नव्यासाढ्यमौर्विहृत् ॥५०॥
लब्धोनवृत्तवर्गाङ्घ्रेः पदेऽर्धात्पतिते धनुः ।

परिधिसे चापको घटाकर शेषमे चापसे ही गुणा करनेपर गुणनफल 'प्रथम' कहलाता है । परिधिका वर्ग करना, उसका चौथा भाग लेना, उसे पाँचसे गुणा करना और उसमे 'प्रथम'को घटा देना चाहिये, यह भाजक होगा । चतुर्गुणित व्यासको प्रथमसे गुण देना, यह भाज्य हुआ । भाज्यमें भाजकसे भाग देना, यह जीवा हो जायगी †॥ ४९½ ॥ व्यासको चारसे गुणा करके उसमें जीवाको जोड़ देना, यह भाजक हुआ । परिधिके वर्गको जीवाकी चौथाई और पाँचसे गुण देना, यह भाज्य हुआ । भाजकसे भाज्यमें भाग देना, जो लब्धि आवे, उसे परिधिवर्गके चतुर्थांशमे घटा देना और शेषका मूल लेना, उसे वृत्त (परिधि) के आधेमें घटा देनेपर तो धनु (चाप) होगा * ॥ ५०½ ॥

---

* उदाहरणार्थ प्रश्न—जिस 'वृत्त'का 'व्यास' १० है, उसमें यदि 'जीवा'का मान ६ है तो 'शर' का मान क्या होगा ? 'शर' का ज्ञान हो तो जीवा बताओ तथा 'जीवा' और 'शर' जानकर व्यासका मान बताओ ।

उत्तर-क्रिया—मूलोक्त नियमके अनुसार व्यास और जीवाका योग १०+६=१६ हुआ। व्यास और जीवाका अन्तर १०—६=४ हुआ । दोनोंका गुणनफल १६×४=६४ हुआ । इसका मूल ८ हुआ । इसे व्यास १० में घटाया तो २ हुआ । इसका आधा किया तो १ 'शर' (बाण) हुआ । व्यास १० में शर १ घटाया तो ९ हुआ । इसे शर १ से गुणा किया तो ९ हुआ । इसका मूल लिया तो ३ हुआ । इसे द्विगुण किया तो ६ जीवाका प्रमाण हुआ । इसी तरह 'जीवा' और 'शर' का ज्ञान होनेपर जीवा ६ के आधे ३ का वर्ग किया तो ९ हुआ । इसमें शर १ से भाग दिया और लब्धिमें शरको जोड़ दिया तो $\frac{9}{1}+\frac{1}{1}$=१० हुआ । यही व्यासका मान है ।

† उदाहरण—जिस वृत्तका व्यासार्ध १२० (अर्थात् व्यास २४०) है, उस वृत्तके अष्टादशांश क्रमसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ से गुणित यदि चापमान हों तो अलग-अलग सबकी जीवा बताओ ।

उत्तर-क्रिया—व्यासमान २४० । इसपरसे परिधि ७५४ । इसका अठारहवाँ भाग ४२ क्रमसे एकादि गुणित ४२, ८४, १२६, १६८, २१०, २५२, २९४, ३३६ और ३७८—ये ९ प्रकारके चाप-मान हुए । मूल-सूत्रके अनुसार इन चाप और परिधिपरसे जो जीवाओंके मान होंगे, वे ही किसी तुल्याङ्कसे अपवर्तित चाप और अपवर्तित परिधिसे भी होंगे । अत ४२ से अपवर्तन करनेपर परिधि १८ तथा चाप-मान १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ हुए । अब प्रथम जीवामान साधन करना है, तो प्रथम अपवर्तित चाप १ को परिधिसे घटाकर शेषको चाप १ से गुणा करनेपर १७ यह 'प्रथम' या 'आद्य' संज्ञक हुआ । तथा परिधिवर्ग चतुर्थांशको ५ से गुणा कर $\frac{३२४×५}{४}$=४०५ इसमें आद्य १७ को घटाकर शेष ३८८ से चतुर्गुणित व्यासद्वारा गुणित 'प्रथम' में भाग देनेसे $\frac{२४०×४×१७}{३८८}$=४२ लब्धि हुई । यह (स्वल्पान्तरसे) प्रथम जीवा हुई । एवं द्वितीय चाप २ को परिधिमें घटाकर शेषको चापसे गुणा कर देनेपर ३२ यह 'प्रथम' या 'आद्य' हुआ । इसे पञ्चगुणित परिधिवर्गके चतुर्थांश ४०५ में घटाकर शेष ३७३ से चतुर्गुणित व्यासद्वारा गुणित 'प्रथम'में भाग देनेपर $\frac{२४०×४×३२}{३७३}$=८२ लब्धि हुई । स्वल्पान्तरसे यही द्वितीय जीवा हुई । इसी प्रकार अन्य जीवाका भी साधन करना चाहिये ।

* अब जीवा-मान जानकर चापमान जाननेकी विधि बताते हैं— जैसे प्रश्न हुआ कि २४० व्यासवाले वृत्तमें जीवामान ४२ और ८२ हैं तो इनके चापमान क्या होंगे ? (उत्तर-क्रिया—) यथा—जीवा ८२ । वृत्त व्यास २४० । यहाँ लाघवके लिये परिधिमान अपवर्तित ही लिया, अतः इसपरसे भी चापमान अपवर्तित ही आवेंगे । अब श्लोकानुसार परिधिवर्ग ३२४ को जीवाके चतुर्थांश $\frac{८२}{४}$ और ५ से गुणा करनेपर $\frac{३२४×८२×५}{४}$ =८१×८२×५=३३२१० हुआ । इसमें चतुर्गुणित व्याससे युक्त जीवा १०४२ द्वारा भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ३२ हुई ।

रखना चाहिये । फिर इन दोनोंका घात (गुणा) करना चाहिये । उस गुणनका मूल लेना और उसको व्यासमें घटा देना चाहिये । फिर उसका आधा करे, वही 'शर' होगा । व्यासमे शरको घटाना, अन्तरको शरसे गुण देना, उसका मूल लेना और उसे दूना करना चाहिये तो 'जीवा' हो जायगी । जीवाका आधा करके उसका वर्ग करना, शरसे भाग देना और लब्धिमें शरको जोड़ देना चाहिये, तो व्यासका मान होगा *॥ ४७-४८ ॥

चापोननिघ्नः परिधिः प्रागाख्यः परिधेः कृतेः ।
तुर्यांशेन शरघ्नेनाद्योनेनाद्यं चतुर्गणम् ॥४९॥
व्यासघ्नं प्रभजेद्विप्र ज्यका संजायते स्फुटा ।
ज्याङ्घ्रीयुग्नो वृत्तवर्गोऽङ्घ्रिघ्नव्यासाढ्यमौर्विहृत् ॥५०॥
लब्धोनवृत्तवर्गाङ्घ्रेः पदेऽर्धात्पतिते धनुः ।

परिधिसे चापको घटाकर शेषमे चापसे ही गुणा करनेपर गुणनफल 'प्रथम' कहलाता है । परिधिका वर्ग करना, उसका चौथा भाग लेना, उसे पाँचसे गुणा करना और उसमे 'प्रथम'को घटा देना चाहिये, यह भाजक होगा । चतुर्गुणित व्यासको प्रथमसे गुण देना, यह भाज्य हुआ । भाज्यमें भाजकसे भाग देना, वह जीवा हो जायगी †॥ ४९½ ॥

व्यासको चारसे गुणा करके उसमें जीवाको जोड़ देना, यह भाजक हुआ । परिधिके वर्गको जीवाकी चौथाई और पाँचसे गुण देना, यह भाज्य हुआ । भाजकसे भाज्यमें भाग देना, जो लब्धि आवे, उसे परिधिवर्गके चतुर्थांशमे घटा देना और शेषका मूल लेना, उसे वृत्त (परिधि) के आधेमें घटा देनेपर तो धनु (चाप) होगा * ॥ ५०½ ॥

* उदाहरणार्थ प्रश्न—जिस 'वृत्त'का 'व्यास' १० है, उसमें यदि 'जीवा'का मान ६ है तो 'शर' का मान क्या होगा ? 'शर' का ज्ञान हो तो जीवा बताओ तथा 'जीवा' और 'शर' जानकर व्यासका मान बताओ ।

उत्तर-क्रिया—मूलोक्त नियमके अनुसार व्यास और जीवाका योग १०+६=१६ हुआ। व्यास और जीवाका अन्तर १०−६=४ हुआ । दोनोंका गुणनफल १६×४=६४ हुआ । इसका मूल ८ हुआ । इसे व्यास १० में घटाया तो २ हुआ । इसका आधा किया तो १ 'शर' (बाण) हुआ । व्यास १० मे शर १ घटाया तो ९ हुआ । इसे शर १ से गुणा किया तो ९ हुआ । इसका मूल लिया तो ३ हुआ । इसे द्विगुण किया तो ६ जीवाका प्रमाण हुआ । इसी तरह 'जीवा' और 'शर' का ज्ञान होनेपर जीवा ६ के आधे ३ का वर्ग किया तो ९ हुआ । इसमें शर १ से भाग दिया और लब्धिमें शरको जोड़ दिया तो $\frac{9}{1}+\frac{1}{1}$=१० हुआ । यही व्यासका मान है ।

† उदाहरण—जिस वृत्तका व्यासार्ध १२० (अर्थात् व्यास २४०) है, उस वृत्तके अष्टादशांश क्रमसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ से गुणित यदि चापमान हों तो अलग-अलग सबकी जीवा बताओ ।

उत्तर-क्रिया—व्यासमान २४० । इसपरसे परिधि ७५४ । इसका अठारहवाँ भाग ४२ क्रमसे एकादि गुणित ४२, ८४, १२६, १६८, २१०, २५२, २९४, ३३६ और ३७८—ये ९ प्रकारके चाप-मान हुए । मूल-सूत्रके अनुसार इन चाप और परिधिपरसे जो जीवाओंके मान होंगे, वे ही किसी तुल्याङ्कसे अपवर्तित चाप और अपवर्तित परिधिसे भी होंगे । अत ४२ से अपवर्तन करनेपर परिधि १८ तथा चाप-मान १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ हुए । अब प्रथम जीवामान साधन करना है, तो प्रथम अपवर्तित चाप १ को परिधिसे घटाकर शेषको चाप १ से गुणा करनेपर १७ यह 'प्रथम' या 'आद्य' संज्ञक हुआ । तथा परिधिवर्ग चतुर्थांशको ५ से गुणा कर $\frac{३२४×५}{४}$=४०५ इसमें आद्य १७ को घटाकर शेष ३८८ से चतुर्गुणित व्यासद्वारा गुणित 'प्रथम' में भाग देनेसे $\frac{२४०×४×१७}{३८८}$=४२ लब्धि हुई । यह (स्वल्पान्तरसे) प्रथम जीवा हुई । एवं द्वितीय चाप २ को परिधिमें घटाकर शेषको चापसे गुणा कर देनेपर ३२ यह 'प्रथम' या 'आद्य' हुआ । इसे पञ्चगुणित परिधिवर्गके चतुर्थांश ४०५ में घटाकर शेष ३७३ से चतुर्गुणित व्यासद्वारा गुणित 'प्रथम'में भाग देनेपर $\frac{२४०×४×३२}{३७३}$=८२ लब्धि हुई । स्वल्पान्तरसे यही द्वितीय जीवा हुई । इसी प्रकार अन्य जीवाका भी साधन करना चाहिये ।

* अब जीवा-मान जानकर चापमान जाननेकी विधि बताते हैं— जैसे प्रश्न हुआ कि २४० व्यासवाले वृत्तमें जीवामान ४२ और ८२ हैं तो इनके चापमान क्या होंगे ? (उत्तर-क्रिया—) यथा—जीवा ८२ । वृत्त व्यास २४० । यहाँ लाघवके लिये परिधिमान अपवर्तित ही लिया, अत· इसपरसे भी चापमान अपवर्तित ही आवेंगे । अब श्लोकानुसार परिधिवर्ग ३२४ को जीवाके चतुर्थांश $\frac{८२}{४}$ और ५ से गुणा करनेपर $\frac{३२४×८२×५}{४}$ =८१×८२×५=३३२१० हुआ । इसमें चतुर्गुणित व्याससे युक्त जीवा १०४२ द्वारा भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ३२ हुई ।

दीपशङ्कुतलच्छिद्रघ्नः शङ्कुर्भा भवेन्मुने ॥५६॥
नरोनदीपकशिखौच्च्यभक्तो ह्यथ भोद्धृते ।
शङ्कौ नृदीपाधश्छिद्रघ्ने दीपौच्च्यं नरान्विते ॥५७॥
विशङ्कुदीपौच्च्यगुणा छाया शङ्कूद्धृता भवेत् ।
दीपशङ्क्वन्तरं चाथच्छायाग्रविवरघ्नभा ॥५८॥
मानान्तरहृता भूमिः स्यादथो भूनराहतिः ।
प्रभाहृा जायते दीपशिखौच्च्यं स्यात्त्रिराशिकात् ॥५९॥
एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं गणिते परिकर्मकम् ।
ग्रहमध्यादिकं वक्ष्ये गणिते नातिविस्तरात् ॥६०॥

छाया-साधनमे प्रदीप और शङ्कुतलका जो अन्तर हो उससे शङ्कुको गुण देना और दीपककी ऊँचाईमें शङ्कुको घटाकर उससे उस गुणित शङ्कुमें भाग देना तो छायाका मान होगा[1]। शङ्कु और दीपतलके अन्तरसे शङ्कुको गुण देना और छायासे भाग देना; फिर लब्धिमे शङ्कुको जोड़ देना तो दीपककी ऊँचाई हो जायगी[1]। शङ्कुरहित दीपककी ऊँचाईसे छायाको गुण देना और शङ्कुसे भाग देना तो शङ्कु तथा दीपकका अन्तर ज्ञात होगा[2]। छायाग्रके अन्तरसे छायाको गुण देना और छायाके प्रमाणान्तरसे भाग देना तो 'भू' होगी। 'भू' और शङ्कुका घात (गुणा) करना और छायासे भाग देना तो दीपककी ऊँचाई होगी[3]। उपर्युक्त

गुणित किया—$११७\times१००\times५=५८५००$ इस गुणनफलमें ५८५ से भाग दिया—$\frac{५८५००}{५८५}=१००$ लब्धि हुई। अतः १०० द्रोण उस लोहेका परिमाण है।

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—शङ्कु और दीपके बीचकी भूमिका मान ३ हाथ और दीपककी ऊँचाई $\frac{७}{२}$ हाथ है तो बारह अगुल ($\frac{१}{२}$ हाथ) शङ्कुकी छाया क्या होगी ?

इस क्षेत्रमें 'अ' से 'उ' तक दीपककी ऊँचाई है। 'ग' से 'त' तक शङ्कु है। 'अ' 'त'='क' 'ग'=शङ्कु और दीपतलका अन्तर है।

यहाँ शङ्कुको शङ्कु-दीपान्तर-भूमि-मानसे गुणा किया तो $\frac{१}{२}\times३=\frac{३}{२}$ यह गुणनफल हुआ। फिर दीपककी ऊँचाईमें शङ्कुको घटाया तो $\frac{७}{२}-\frac{१}{२}=३$ यह शेष हुआ। पूर्वोक्त गुणनफल $\frac{३}{२}$ में शङ्कु घटायी हुई दीपककी ऊँचाई ३ से भाग दिया तो $\frac{१}{२}$ लब्धि हुई। यही छायाका मान है।

१. यदि शङ्कु $\frac{१}{२}$ हाथ, शङ्कुदीपान्तर भूमि ३ हाथ और छाया १६ अंगुल है तो दीपकी ऊँचाई कितनी होगी ? इस प्रश्नका उत्तर यों है—शङ्कुको शङ्कुदीपान्तरसे गुणा किया तो $\frac{१}{२}\times३=\frac{३}{२}$ हुआ। इसमें छाया १६ अगुल अर्थात् $\frac{२}{३}$ हाथसे भाग दिया तो $\frac{३}{२}\div\frac{२}{३}=\frac{३}{२}\times\frac{३}{२}=\frac{९}{४}$ हुआ। इसमें शङ्कु $\frac{१}{२}$ को जोड दिया तो $\frac{११}{४}=२\frac{३}{४}$ हाथ दीपककी ऊँचाई हुई।

२. उपर्युक्त दीपककी ऊँचाई $\frac{११}{४}$ में से शङ्कु $\frac{१}{२}$ को घटाया तो $\frac{११}{४}-\frac{१}{२}=\frac{९}{४}$ शेष हुआ। इससे छायाको गुणित किया तो $\frac{९}{४}\times\frac{२}{३}=\frac{१}{२}$ हुआ, इसमें शङ्कुसे भाग दिया तो ३ लब्धि हुई। अत. शङ्कु और दीपके बीचकी भूमि ३ हाथकी है।

३. अभ्यासार्थ प्रश्न—१२ अगुलके शङ्कुकी छाया १२ अगुल थी, फिर उसी शङ्कुको छायाग्रकी ओर २ हाथ बढ़ाकर रखनेसे दूसरी छाया १६ अंगुल हुई तो छायाग्र और दीपतलके बीचकी भूमिका मान कितना होगा ? तथा दीपकी ऊँचाई कितनी होगी ?

उत्तर—यहाँ प्रथम शङ्कुसे दूसरे शङ्कुतक भूमिका मान २ हाथ। प्रथम छाया $\frac{१}{२}$ हाथ, द्वितीय छाया $\frac{२}{३}$ हाथ। शङ्कु-अन्तर २ में प्रथम छाया $\frac{१}{२}$ को घटाकर शेष $\frac{३}{२}$ में द्वितीय छाया $\frac{२}{३}$ को जोडनेसे $\frac{१३}{६}$ यह छायाग्रोंका अन्तर हुआ। तथा छायान्तर $\frac{२}{३}-\frac{१}{२}=\frac{१}{६}$ हुआ। अब मूलोक्त नियमके अनुसार प्रथम छाया $\frac{१}{२}$ को छायाग्रान्तरसे गुणा किया तो $\frac{१}{२}\times\frac{१३}{६}=\frac{१३}{१२}$ हुआ। इसमें छायान्तर $\frac{१}{६}$ से भाग दिया तो $\frac{१३}{१२}\times\frac{६}{१}=\frac{१३}{२}$ (या $६\frac{१}{२}$) यह प्रथम भूमिमान हुआ। इसी प्रकार द्वितीय छाया $\frac{२}{३}$ से छायाग्रान्तर $\frac{१३}{६}$ को गुणा करके छायान्तर $\frac{१}{६}$ से भाग देनेपर द्वितीय भूमिमान $\frac{२६}{३}$ हुआ। तथा प्रथम भूमिमान $\frac{१३}{२}$ को शङ्कुसे गुणा कर गुणनफल $\frac{१३}{४}$ में प्रथम छायासे भाग देनेपर लब्धि $\frac{१३}{२}$ यह दीपककी ऊँचाई हुई। इसी प्रकार द्वितीय भूमिसे भी दीपककी ऊँचाई इतनी ही होती है।

दीपशङ्कुतलच्छिद्रघ्नः शङ्कुर्भा भवेन्मुने ॥५६॥
नरोनदीपकशिखौच्यभक्तो ह्यथ भोद्धृते ।
शङ्कौ नृदीपाधश्छिद्रघ्ने दीपौच्च्यं नरान्विते ॥५७॥
विशङ्कुदीपौच्च्यगुणा छाया शङ्कूद्धृता भवेत् ।
दीपशङ्क्वन्तरं चाथच्छायाग्रविवरघ्नभा ॥५८॥
मानान्तरहृता भूमिः स्यादथो भूनराहतिः ।
प्रभाप्ता जायते दीपशिखौच्च्यं स्यात्त्रिराशिकात् ॥५९॥
एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं गणिते परिकर्मकम् ।
ग्रहमध्यादिकं वक्ष्ये गणिते नातिविस्तरात् ॥६०॥

छाया-साधनमे प्रदीप और शङ्कुतलका जो अन्तर हो उससे शङ्कुको गुण देना और दीपककी ऊँचाईमें शङ्कुको घटाकर उससे उस गुणित शङ्कुमें भाग देना तो छायाका मान होगा[1]। शङ्कु और दीपतलके अन्तरसे शङ्कुको गुण देना और छायासे भाग देना; फिर लब्धिमे शङ्कुको जोड़ देना तो दीपककी ऊँचाई हो जायगी[1]। शङ्कुरहित दीपककी ऊँचाईसे छायाको गुण देना और शङ्कुसे भाग देना तो शङ्कु तथा दीपकका अन्तर ज्ञात होगा[2]। छायाग्रके अन्तरसे छायाको गुण देना और छायाके प्रमाणान्तरसे भाग देना तो 'भू' होगी। 'भू' और शङ्कुका घात (गुणा) करना और छायासे भाग देना तो दीपककी ऊँचाई होगी[3]। उपर्युक्त

गुणित किया—$११७\times१००\times५=५८५००$ इस गुणनफलमें ५८५ से भाग दिया—$\frac{५८५००}{५८५}=१००$ लब्धि हुई। अतः १०० द्रोण उस लोहेका परिमाण है।

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—शङ्कु और दीपके बीचकी भूमिका मान ३ हाथ और दीपककी ऊँचाई $\frac{७}{२}$ हाथ है तो बारह अंगुल ($\frac{१}{२}$ हाथ) शङ्कुकी छाया क्या होगी ?

इस क्षेत्रमें 'अ' से 'उ' तक दीपककी ऊँचाई है। 'ग' से 'त' तक शङ्कु है। 'अ' 'त'='क' 'ग'=शङ्कु और दीपतलका अन्तर है।

यहाँ शङ्कुको शङ्कु-दीपान्तर-भूमि-मानसे गुणा किया तो $\frac{१}{२}\times३=\frac{३}{२}$ यह गुणनफल हुआ। फिर दीपककी ऊँचाईमें शङ्कुको घटाया तो $\frac{७}{२}-\frac{१}{२}=३$ यह शेष हुआ। पूर्वोक्त गुणनफल $\frac{३}{२}$ में शङ्कु घटायी हुई दीपककी ऊँचाई ३ से भाग दिया तो $\frac{१}{२}$ लब्धि हुई। यही छायाका मान है।

१. यदि शङ्कु $\frac{१}{२}$ हाथ, शङ्कुदीपान्तर भूमि ३ हाथ और छाया १६ अंगुल है तो दीपकी ऊँचाई कितनी होगी ? इस प्रश्नका उत्तर यों है—शङ्कुको शङ्कुदीपान्तरसे गुणा किया तो $\frac{१}{२}\times३=\frac{३}{२}$ हुआ। इसमें छाया १६ अंगुल अर्थात् $\frac{२}{३}$ हाथसे भाग दिया तो $\frac{३}{२}\div\frac{२}{३}=\frac{३}{२}\times\frac{३}{२}=\frac{९}{४}$ हुआ। इसमें शङ्कु $\frac{१}{२}$ को जोड दिया तो $\frac{११}{४}=२\frac{३}{४}$ हाथ दीपककी ऊँचाई हुई।

२. उपर्युक्त दीपककी ऊँचाई $\frac{११}{४}$ में से शङ्कु $\frac{१}{२}$ को घटाया तो $\frac{११}{४}-\frac{१}{२}=\frac{९}{४}$ शेष हुआ। इससे छायाको गुणित किया तो $\frac{९}{४}\times\frac{२}{३}=\frac{३}{२}$ हुआ, इसमें शङ्कुसे भाग दिया तो ३ लब्धि हुई। अत. शङ्कु और दीपके बीचकी भूमि ३ हाथकी है।

३. अभ्यासार्थ प्रश्न—१२ अंगुलके शङ्कुकी छाया १२ अंगुल थी, फिर उसी शङ्कुको छायाग्रकी ओर २ हाथ बढ़ाकर रखनेसे दूसरी छाया १६ अंगुल हुई तो छायाग्र और दीपतलके बीचकी भूमिका मान कितना होगा ? तथा दीपकी ऊँचाई कितनी होगी ?

उत्तर—यहाँ प्रथम शङ्कुसे दूसरे शङ्कुतक भूमिका मान २ हाथ। प्रथम छाया $\frac{१}{२}$ हाथ, द्वितीय छाया $\frac{२}{३}$ हाथ। शङ्कु-अन्तर २ में प्रथम छाया $\frac{१}{२}$ को घटाकर शेष $\frac{३}{२}$ में द्वितीय छाया $\frac{२}{३}$ को जोडनेसे $\frac{१३}{६}$ यह छायाग्रोंका अन्तर हुआ। तथा छायान्तर $\frac{२}{३}-\frac{१}{२}=\frac{१}{६}$ हुआ। अब मूलोक्त नियमके अनुसार प्रथम छाया $\frac{१}{२}$ को छायाग्रान्तरसे गुणा किया तो $\frac{१}{२}\times\frac{१३}{६}=\frac{१३}{१२}$ हुआ। इसमें छायान्तर $\frac{१}{६}$ से भाग दिया तो $\frac{१३}{१२}\times\frac{६}{१}=\frac{१३}{२}$ (या $६\frac{१}{२}$) यह प्रथम भूमिमान हुआ। इसी प्रकार द्वितीय छाया $\frac{२}{३}$ से छायाग्रान्तर $\frac{१३}{६}$ को गुणा करके छायान्तर $\frac{१}{६}$ से भाग देनेपर द्वितीय भूमिमान $\frac{२६}{३}$ हुआ। तथा प्रथम भूमिमान $\frac{१३}{२}$ को शङ्कुसे गुणा कर गुणनफल $\frac{१३}{४}$ में प्रथम छायासे भाग देनेपर लब्धि $\frac{१३}{२}$ यह दीपककी ऊँचाई हुई। इसी प्रकार द्वितीय भूमिसे भी दीपककी ऊँचाई इतनी ही होती है।

लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्द्धरात्रिकः ।
सावनो द्युगणः सूर्याद् दिनमासाब्दपास्ततः ॥७९॥
सप्तभिः क्षयितः शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः ।
मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम् ॥८०॥
सप्तोद्धृतावशेषौ तौ विज्ञेयौ मासवर्षपौ ।

वर्तमान युग (जिस युगमें, जिस समयके अहर्गण या ग्रहादिका ज्ञान करना हो उस समय) में सृष्टयादि काल या युगादिकालसे अबतक जितने वर्ष बीत चुके हों, वे सूर्यके भगण होते हैं । भगणको बारहसे गुणा करके मास बनाना चाहिये । उसमें 'वर्तमान वर्षके' चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे लेकर वर्तमान मासतक जितने मास बीते हों, उनकी सख्या जोडकर योग-फलको दो स्थानोमें रखना चाहिये । द्वितीय स्थानमें रक्खे हुए मासगणको युगके उपर्युक्त अधिमासोंकी संख्यासे गुणा करके गुणनफलमे युगके सूर्यमासोंकी संख्यासे भाग दे । फिर जो लब्धि हो, उसे अधिमासकी संख्या माने और उसको प्रथम स्थानस्थित मासगणमें जोड़े । (योगफल बीते हुए चान्द्र-मासोंकी सख्याका सूचक होता है) उस सख्याको तीससे गुणा करे (तो गुणनफल तिथि-संख्याका सूचक होता है), उसमें वर्तमान मासकी शुक्ल प्रतिपदासे इष्टतिथितककी संख्या जोड़े, (जोडनेसे चान्द्रदिनकी संख्या ज्ञात होती है) इसको भी दो स्थानोंमे रक्खे । दूसरे स्थानमें स्थित संख्याको युगके लिये कथित तिथिक्षय-सख्यासे गुणा करे । गुणनफलमें युगकी चान्द्रदिन (तिथि) संख्याके द्वारा भाग दे । जो लब्धि हो, वही तिथिक्षय-संख्या है, उसको प्रथम स्थानमें स्थित चान्द्र दिन-संख्यामेंसे घटा दे तो अभीष्ट दिनका लंकार्धरात्रि-कालिक सावन दिनगण (अहर्गण) होता है *। इससे दिन-पति, मासपति और वर्षपतिका ज्ञान करे ॥ ७६—७९ ॥

* इस प्रकार अहर्गण-साधनमें कदाचित् एक दिन अधिक या न्यून भी होता है, उस स्थितिमें १ घटाकर या जोडकर अहर्गण ग्रहण करे ।

कलियुगादिसे अहर्गणका उदाहरण—शाके १८७५ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा शुक्रवारको अहर्गण बनाना है तो कलियुगादिसे गत युधिष्ठिरसवत्की वर्षसख्या ३१७९ में शाके १८७५ जोड़नेसे ५०५४ हुआ, इसको १२ से गुणा करनेसे ६०६४८ हुआ। इसमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे गत मास-सख्या ७ जोड़नेपर ६०६५५ सौर-मासगण हुए। इसको पृथक् युगकी अधिमास-सख्या १५९३३३६ से गुणा करनेपर ९६६४३७९५०८० हुआ। इसमें युगकी सौर माससख्या ५१८४०००० से भाग देनेपर लब्धि अधिमास-सख्या १८६४ को पृथक्स्थित सौर मासगण ६०६५५ में जोडनेसे ६२५१९ यह चान्द्रमास सख्या हुई। इसको ३० से गुणा करके गुणनफलमें तिथि-सख्या १५ जोड़नेसे १८७५५८५ यह चान्द्र दिन-संख्या हुई । इसको युगकी क्षय-तिथिसंख्या २५०८२२५२ से गुणा करके गुणनफल ४७०४३८९५६१७४२० में युगकी चान्द्र दिनसख्या १६०३०००००८० से भाग देनेपर लब्धि तिथिक्षय-सख्या २९३४७ को उपर्युक्त चान्द्रदिन-संख्या १८७५५८५ में घटानेसे १८४६२३८ अहर्गण हुए । इसमें ७ का भाग देनेसे २ शेष बचते हैं; जिससे शुक्र आदि गणनाके अनुसार शनिवार आता है, किंतु होना चाहिये १ शेष (शुक्रवार), इसलिये इसमें १ घटाकर वास्तविक अहर्गण १८४६२३७ हुआ । प्रस्तुत उदाहरणमें पूर्णिमाका क्षय होनेके कारण १ दिनका अन्तर पडा है ।

यथा—दिनगणमें ७ से भाग देनेपर शेष बचे हुए १ आदि संख्याके अनुसार रवि आदि वारपति समझने चाहिये। तथा दिनगणमे ३० से भाग देकर लब्धिको २ से गुणा करके गुणनफलमें १ जोड़ दे । फिर उसमें ७ से भाग देकर १ आदि शेष होनेपर रवि आदि मासपति समझे । इसी प्रकार दिनगणमें ३६० से भाग देकर लब्धिको ३ से गुणा करके गुणनफलमें १ जोडे, फिर उसमें ७ से भाग देनेपर १ आदि शेष संख्याके अनुसार रवि आदि 'वर्तमान' वर्षपति होते हैं* ॥ ८०½ ॥

ग्रहस्य भगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः ॥८१॥
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत् ।
एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ॥८२॥
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद् विशोधिताः ।

(मध्यमग्रहज्ञान)—युगके लिये कथित भगणकी संख्यासे दिनगणको गुणा करे । गुणनफलमें युगकी कुदिन

* कलियुगके आदिमें शुक्रवार था, इसलिये कलियुगादि अहर्गणमें ७ का भाग देनेसे १ आदि शेष होनेपर शुक्र आदि वारपति होते हैं। मासपति जाननेके लिये अहर्गण १८४६२३७ में ३० से भाग देकर लब्धि ६१५४१ को २ से गुणा करनेपर १२३०८२ हुआ। इसमें १ जोडकर ७ का भाग देनेसे शेष २ रहे, अत. शुक्रसे द्वितीय शनि वर्तमान मासपति हुआ ।

एव अहर्गणमें ३६० का भाग देकर लब्धि ५१२८ को ३ से गुणा कर गुणनफल १५३८४ में १ जोड़कर १५३८५ हुआ । इसमें ७ का भाग देनेसे शेष ६ रहे, अत शुक्रादि गणनासे बुध वर्तमान वर्षपति हुआ ।

लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्द्धरात्रिकः ।
सावनो द्युगणः सूर्याद् दिनमासाब्दपास्ततः ॥७९॥
सप्तभिः क्षयितः शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः ।
मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम् ॥८०॥
सप्तोद्धृतावशेषौ तौ विज्ञेयौ मासवर्षपौ ।

वर्तमान युग (जिस युगमें, जिस समयके अहर्गण या ग्रहादिका ज्ञान करना हो उस समय) में सृष्ट्यादि काल या युगादिकालसे अबतक जितने वर्ष बीत चुके हों, वे सूर्यके भगण होते हैं । भगणको बारहसे गुणा करके मास बनाना चाहिये । उसमें 'वर्तमान वर्षके' चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे लेकर वर्तमान मासतक जितने मास बीते हों, उनकी संख्या जोडकर योग-फलको दो स्थानोंमें रखना चाहिये । द्वितीय स्थानमें रक्खे हुए मासगणको युगके उपर्युक्त अधिमासोंकी संख्यासे गुणा करके गुणनफलमे युगके सूर्यमासोंकी संख्यासे भाग दे । फिर जो लब्धि हो, उसे अधिमासकी संख्या माने और उसको प्रथम स्थानस्थित मासगणमें जोड़े । (योगफल बीते हुए चान्द्र-मासोंकी संख्याका सूचक होता है) उस संख्याको तीससे गुणा करे (तो गुणनफल तिथि-संख्याका सूचक होता है), उसमें वर्तमान मासकी शुक्ल प्रतिपदासे इष्टतिथितककी संख्या जोड़े, (जोडनेसे चान्द्रदिनकी संख्या ज्ञात होती है) इसको भी दो स्थानोंमे रक्खे । दूसरे स्थानमें स्थित संख्याको युगके लिये कथित तिथिक्षय-संख्यासे गुणा करे । गुणनफलमें युगकी चान्द्रदिन (तिथि) संख्याके द्वारा भाग दे । जो लब्धि हो, वही तिथिक्षय-संख्या है, उसको प्रथम स्थानमें स्थित चान्द्र दिन-संख्यामेंसे घटा दे तो अभीष्ट दिनका लंकार्धरात्रि-कालिक सावन दिनगण (अहर्गण) होता है *। इससे दिन-पति, मासपति और वर्षपतिका ज्ञान करे ॥ ७६—७९ ॥

यथा—दिनगणमें ७ से भाग देनेपर शेष बचे हुए १ आदि संख्याके अनुसार रवि आदि वारपति समझने चाहिये। तथा दिनगणमे ३० से भाग देकर लब्धिको २ से गुणा करके गुणनफलमें १ जोड़ दे । फिर उसमें ७ से भाग देकर १ आदि शेष होनेपर रवि आदि मासपति समझे । इसी प्रकार दिनगणमें ३६० से भाग देकर लब्धिको ३ से गुणा करके गुणनफलमें १ जोडे, फिर उसमें ७ से भाग देनेपर १ आदि शेष संख्याके अनुसार रवि आदि 'वर्तमान' वर्षपति होते हैं* ॥ ८०½ ॥

ग्रहस्य भगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः ॥८१॥
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत् ।
एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ॥८२॥
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद् विशोधिताः ।

(मध्यमग्रहज्ञान)—युगके लिये कथित भगणकी संख्यासे दिनगणको गुणा करे । गुणनफलमें युगकी कुदिन

---

* इस प्रकार अहर्गण-साधनमें कदाचित् एक दिन अधिक या न्यून भी होता है, उस स्थितिमें १ घटाकर या जोडकर अहर्गण ग्रहण करे ।

कलियुगादिसे अहर्गणका उदाहरण—शाके १८७५ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा शुक्रवारको अहर्गण बनाना है तो कलियुगादिसे गत युधिष्ठिरसंवत्की वर्षसंख्या ३१७९ में शाके १८७५ जोड़नेसे ५०५४ हुआ, इसको १२ से गुणा करनेसे ६०६४८ हुआ । इसमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे गत मास-संख्या ७ जोड़नेपर ६०६५५ सौर-मासगण हुए । इसको पृथक् युगकी अधिमास-संख्या १५९३३३६ से गुणा करनेपर ९६६४३७९५०८० हुआ। इसमें युगकी सौर माससंख्या ५१८४०००० से भाग देनेपर लब्धि अधिमास-संख्या १८६४ को पृथक्स्थित सौर मासगण ६०६५५ में जोडनेसे ६२५१९ यह चान्द्रमास संख्या हुई । इसको ३० से गुणा करके गुणनफलमें तिथि-संख्या १५ जोड़नेसे १८७५५८५ यह चान्द्र दिन-संख्या हुई । इसको युगकी क्षय-तिथिसंख्या २५०८२२५२ से गुणा करके गुणनफल ४७०४३८९५६१७४२० में युगकी चान्द्र दिनसंख्या १६०३००००८० से भाग देनेपर लब्धि तिथिक्षय-संख्या २९३४७ को उपर्युक्त चान्द्रदिन-संख्या १८७५५८५ में घटानेसे १८४६२३८ अहर्गण हुए । इसमें ७ का भाग देनेसे २ शेष बचते हैं; जिससे शुक्र आदि गणनाके अनुसार शनिवार आता है, किंतु होना चाहिये १ शेष (शुक्रवार), इसलिये इसमें १ घटाकर वास्तविक अहर्गण १८४६२३७ हुआ । प्रस्तुत उदाहरणमें पूर्णिमाका क्षय होनेके कारण १ दिनका अन्तर पडा है ।

* कलियुगके आदिमें शुक्रवार था, इसलिये कलियुगादि अहर्गणमें ७ का भाग देनेसे १ आदि शेष होनेपर शुक्र आदि वारपति होते हैं। मासपति जाननेके लिये अहर्गण १८४६२३७ में ३० से भाग देकर लब्धि ६१५४१ को २ से गुणा करनेपर १२३०८२ हुआ। इसमें १ जोडकर ७ का भाग देनेसे शेष २ रहे, अतः शुक्रसे द्वितीय शनि वर्तमान मासपति हुआ ।

एवं अहर्गणमें ३६० का भाग देकर लब्धि ५१२८ को ३ से गुणा कर गुणनफल १५३८४ में १ जोड़कर १५३८५ हुआ । इसमें ७ का भाग देनेसे शेष ६ रहे, अतः शुक्रादि गणनासे बुध वर्तमान वर्षपति हुआ ।

अवन्तिकारोहितकं यथा सन्निहितं सरः ।
वारप्रवृत्तिः प्राग्देशे क्षपार्द्धेऽभ्यधिके भवेत् ॥८७॥
तद्देशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत् ।

(ग्रहोंमें देशान्तर-संस्कार)—ग्रहकी कलादि मध्यमगतिको देशान्तर-योजन (रेखादेशसे जितने योजन पूर्व या पश्चिम अपना स्थान हो उस) से गुणा करके गुणनफलमें 'स्पष्टभूपरिधि-योजन' के द्वारा भाग देनेपर जो लब्धि हो, वह कला आदि है । उस लब्धिको रेखासे पूर्व देशमें पूर्वसाधित ग्रहमें घटानेसे और पश्चिम देशमें जोड़नेसे स्वस्थानीय अर्धरात्रिकालिक ग्रह होता है *॥ ८५½ ॥

(रेखा-देश)—लङ्कासे सुमेरुपर्वतपर्यन्त याम्योत्तर रेखामें जो-जो देश (स्थान) हैं, वे रेखा-देश कहलाते हैं । जैसे उज्जयिनी, रोहितक, कुरुक्षेत्र आदि ॥ ८६½ ॥

(वार-प्रवृत्ति)—भूमध्यरेखासे पूर्वदेशमें रेखा-देशीय मध्यरात्रिसे, देशान्तर घटीतुल्य पीछे और रेखासे पश्चिम देशमें मध्यरात्रिसे देशान्तर घटीतुल्य पूर्व ही वारप्रवृत्ति (रवि-आदि वारोंका आरम्भ) होती है †॥ ८७½ ॥

इष्टनाडीगुणा भुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम् ॥८८॥
गते शोध्यं तथा योज्यं गम्ये तात्कालिको ग्रहः ।
भचक्रलिप्ताशीत्यंशं परमं दक्षिणोत्तरम् ॥८९॥
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यन्तादनुष्णगुः ।
तन्नवांशं द्विगुणितं जीवस्त्रिगुणितं कुजः ॥९०॥
बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणम् ।

(इष्टकालमें मध्यम ग्रह जाननेकी विधि)—मध्यरात्रिसे जितनी घड़ी बाद ग्रह बनाना हो, उस संख्यासे ग्रहकी कलादि गतिको गुणा करके गुणनफलमें ६०से भाग देकर लब्धितुल्य कलादि फलको पूर्वसाधित ग्रहमें जोड़नेसे तथा जितनी घड़ी मध्यरात्रिसे पूर्व ग्रह बनाना हो, उतनी संख्यासे गतिको गुणा करके गुणनफलमें ६०से भाग देकर कलादि फलको पूर्वसाधित ग्रहमें घटानेसे इष्टकालिक ग्रह होता है ‡॥ ८८½ ॥

(चन्द्रादि ग्रहोंके परम विक्षेप)—भचक्रकला (२१६००) के ८० वाँ भाग (२७०) कलापर्यन्त क्रान्तिवृत्त (सूर्यके मार्ग) से परम दक्षिण और उत्तर चन्द्रमा विक्षिप्त होता (हटता) है । एवं गुरु ६० कला, मङ्गल ९० कला, बुध, शुक्र और शनि—ये तीनों १२० कलापर्यन्त क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण और उत्तर हटते रहते हैं§ ॥ ८९-९०½ ॥

राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्द्धमुच्यते ॥९१॥
तत्तद्विभक्तलब्धोनमिश्रितं तद् द्वितीयकम् ।
आद्येनैवं क्रमात्पिण्डान्भक्त्वा लब्धोनसंयुताः ॥९२॥
खण्डकाः स्युश्चतुर्विंशज्यार्द्धपिण्डाः क्रमादमी ।
परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः ॥९३॥
तद्गुणा ज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरुच्यते ।

(अभीष्ट जीवासाधनके लिये उपयोगी २४ जीवा साधन)—१ राशि-कला १८०० का आठवाँ भाग

* पात (राहु) में देशान्तरसंस्कार विपरीत होता है ।

† रेखा-देशके मध्यरात्रि-समयसे ही सृष्टिका आरम्भ माना गया है; इसलिये रेखा-देशके मध्यरात्रि-समयमें ही वारप्रवेश होता है ।

‡ मान लीजिये, शुक्रवार मध्यरात्रिकालिक ग्रह जानकर अग्रिम प्रात छः बजेका मध्यम सूर्य बनाना है तो—इष्टकाल ६ घंटा (१५ घड़ी) हुआ । इसलिये सूर्यकी कलादि गति ५९ । ८ को १५ से गुणा करके ६० का भाग देनेसे लब्धि १४ कला ४७ विकलाको मध्यरात्रिके सूर्य ७ । ६ । ४ । ७ में जोड़नेसे ७ । ६ । १८ । ५४—यह शनिवारके प्रात. छ. बजेका मध्यम सूर्य हुआ ।

§ सूर्य और अन्य ग्रहोंके मार्गोंका योगस्थान (चौराहा) पात कहलाता है । जब ग्रह अपने मार्गपर चलता हुआ पात-स्थानमें आता है, उस समय वह क्रान्तिवृत्तमें होनेके कारण अपने स्थानमें ही होता है, क्योंकि सब ग्रहोंके स्थान क्रान्तिवृत्तमें ही होते हैं । पात-स्थानसे आगे-पीछे होनेपर क्रान्तिवृत्तसे जितनी दूर विक्षिप्त होते (हटते) हैं, उतना उस ग्रहका 'विक्षेप' (शर) कहलाता है । सूर्यके मार्गको 'क्रान्तिमण्डल' और अन्य ग्रहोंके मार्गको उन-उन ग्रहोंका 'विमण्डल' कहते हैं तथा चन्द्रमाके पातस्थानको ही 'राहु' और 'केतु' कहते हैं ।

अवन्तिकारोहितकं यथा सन्निहितं सरः।
वारप्रवृत्तिः प्राग्देशे क्षपार्द्धेऽभ्यधिके भवेत्॥८७॥
तद्देशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत्।

(ग्रहोंमें देशान्तर-संस्कार)—ग्रहकी कलादि मध्यमगतिको देशान्तर-योजन (रेखादेशसे जितने योजन पूर्व या पश्चिम अपना स्थान हो उस) से गुणा करके गुणनफलमे 'स्पष्टभूपरिधि-योजन' के द्वारा भाग देनेपर जो लब्धि हो, वह कला आदि है। उस लब्धिको रेखासे पूर्व देशमें पूर्वसाधित ग्रहमे घटानेसे और पश्चिम देशमे जोड़नेसे स्वस्थानीय अर्धरात्रिकालिक ग्रह होता है *॥ ८५½ ॥

(रेखा-देश)—लङ्कासे सुमेरुपर्वतपर्यन्त याम्योत्तर रेखामें जो-जो देश (स्थान) हैं, वे रेखा-देश कहलाते हैं। जैसे उज्जयिनी, रोहितक, कुरुक्षेत्र आदि॥ ८६½ ॥

(वार-प्रवृत्ति)—भूमध्यरेखासे पूर्वदेशमे रेखा-देशीय मध्यरात्रिसे, देशान्तर घटीतुल्य पीछे और रेखासे पश्चिम देशमें मध्यरात्रिसे देशान्तर घटीतुल्य पूर्व ही वारप्रवृत्ति (रवि-आदि वारोंका आरम्भ) होती है †॥ ८७½ ॥

इष्टनाडीगुणा भुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम्॥८८॥
गते शोद्ध्यं तथा योज्यं गम्ये तात्कालिको ग्रहः।
भचक्रलिप्ताशीत्यंशं परमं दक्षिणोत्तरम्॥८९॥
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यन्तादनुष्णगुः।
तन्नवांशं द्विगुणितं जीवस्त्रिगुणितं कुजः॥९०॥
बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणम्।

(इष्टकालमें मध्यम ग्रह जाननेकी विधि)—मध्यरात्रिसे जितनी घड़ी बाद ग्रह बनाना हो, उस संख्यासे ग्रहकी कलादि गतिको गुणा करके गुणनफलमें ६०से भाग देकर लब्धितुल्य कलादि फलको पूर्वसाधित ग्रहमें जोड़नेसे तथा जितनी घडी मध्यरात्रिसे पूर्व ग्रह बनाना हो, उतनी संख्यासे गतिको गुणा करके गुणनफलमे ६०से भाग देकर कलादि फलको पूर्वसाधित ग्रहमें घटानेसे इष्टकालिक ग्रह होता है ‡॥ ८८½ ॥

(चन्द्रादि ग्रहोंके परम विक्षेप)—भचक्रकला (२१६००) के ८० वॉ भाग (२७०) कलापर्यन्त क्रान्ति-वृत्त (सूर्यके मार्ग) से परम दक्षिण और उत्तर चन्द्रमा विक्षिप्त होता (हटता) है। एवं गुरु ६० कला, मङ्गल ९० कला, बुध, शुक्र और शनि—ये तीनों १२० कलापर्यन्त क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण और उत्तर हटते रहते हैं§ ॥ ८९-९०½ ॥

राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्द्धमुच्यते॥९१॥
तत्तद्विभक्तलब्धोनमिश्रितं तद् द्वितीयकम्।
आद्येनैवं क्रमात्पिण्डान्भक्त्वा लब्धोनसंयुताः॥९२॥
खण्डकाः स्युश्चतुर्विंशज्यार्द्धपिण्डाः क्रमादमी।
परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः॥९३॥
तद्गुणा ज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरुच्यते।

(अभीष्ट जीवासाधनके लिये उपयोगी २४ जीवा साधन)—१ राशि-कला १८०० का आठवॉ भाग

---

* पात (राहु) में देशान्तरसंस्कार विपरीत होता है।

† रेखा-देशके मध्यरात्रि-समयसे ही सृष्टिका आरम्भ माना गया है; इसलिये रेखा-देशके मध्यरात्रि-समयमें ही वारप्रवेश होता है।

‡ मान लीजिये, शुक्रवार मध्यरात्रिकालिक ग्रह जानकर अग्रिम प्रात छ॰ बजेका मध्यम सूर्य बनाना है तो—इष्टकाल ६ घटा (१५ घडी) हुआ। इसलिये सूर्यकी कलादि गति ५९। ८ को १५ से गुणा करके ६० का भाग देनेसे लब्धि १४ कला ४७ विकलाको मध्यरात्रिके सूर्य ७। ६। ४। ७ में जोड़नेसे ७। ६। १८। ५४—यह शनिवारके प्रात. छ. बजेका मध्यम सूर्य हुआ।

§ सूर्य और अन्य ग्रहोंके मार्गोंका योगस्थान (चौराहा) पात कहलाता है। जब ग्रह अपने मार्गपर चलता हुआ पात-स्थानमें आता है, उस समय वह क्रान्तिवृत्तमें होनेके कारण अपने स्थानमें ही होता है, क्योंकि सब ग्रहोंके स्थान क्रान्तिवृत्तमें ही होते हैं। पात-स्थानसे आगे-पीछे होनेपर क्रान्तिवृत्तसे जितनी दूर विक्षिप्त होते (हटते) हैं, उतना उस ग्रहका 'विक्षेप' (शर) कहलाता है। सूर्यके मार्गको 'क्रान्तिमण्डल' और अन्य ग्रहोंके मार्गको उन-उन ग्रहोंका 'विमण्डल' कहते हैं तथा चन्द्रमाके पातस्थानको ही 'राहु' और 'केतु' कहते हैं।

स्यादुत्क्रमज्या विधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृतः ।
ज्यां प्रोह्य शेषं तत्त्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम् ॥९८॥
संख्यातत्त्वाश्विसंवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते ।

('भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानेकी रीति—) ग्रहोंको अपने-अपने मन्दोच्चमें घटानेसे शेष उस ग्रहका 'मन्द केन्द्र' तथा शीघ्रोच्चमें घटानेसे शेष उस ग्रहका 'शीघ्र केन्द्र' कहलाता है । उस राश्यादि केन्द्रकी 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानी चाहिये । विषम (१, ३) पदमें 'गत' चापकी जीवा भुजज्या और 'गम्य' चापकी जीवा कोटिज्या कहलाती है ।* सम (२, ४) पदमे 'गम्य' चापकी जीवा 'भुजज्या' और 'गत' चापकी जीवा 'कोटिज्या' होती है† ॥ ९४-९५½ ॥

(इष्टज्या-साधन-विधि)—जितने राश्यादि चापकी जीवा बनाना हो, उसकी कला बनाकर उसमें २२५से भाग देकर जो लब्धि हो, उतनी संख्या (सिद्ध २४ ज्या-पिण्डमें) गत ज्यापिण्डकी संख्या समझे । शेष कलाको 'गत ज्या' और 'गम्य ज्या' के अन्तरसे गुणा करके २२५ से भाग देकर लब्ध कलादिको 'गत ज्या'-पिण्डमें जोडनेसे 'अभीष्ट ज्या' होती है । 'उत्क्रमज्या' भी इसी विधिसे बनायी जाती है * ॥ ९६—९७½ ॥

(जीवासे चाप बनानेकी विधि)—इष्ट जीवाकी कलामे सिद्ध जीवापिण्डोमेंसे जितनी संख्यावाली जीवा घटे, उसको घटाना चाहिये । शेष कलाको २२५ से गुणा करके गुणनफलमें गत, गम्य जीवाके अन्तरसे भाग देकर जो लब्धि कलादि हो, उसको घटायी हुई सिद्ध-जीवा-संख्यासे गुणित २२५ मे जोड़नेसे इष्टज्याका चाप होता है † ॥ ९८½ ॥

रवेर्मन्दपरिध्यंशा मनवः शीतगो रदाः ॥९९॥
युग्मान्ते विषमान्ते तु नखलिप्तोनितास्तयोः ।
युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्निसुराः सूर्या नवार्णवाः ॥१००॥
ओजे द्व्यगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धयः ।
कुजादीनामतः शैघ्र्या युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः ॥१०१॥
गुणाग्निचन्द्रा खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः ।
ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वताः ॥१०२॥
खर्तुदस्रा वियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः ।
ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धृता ॥१०३॥
युग्मवृत्ते धनर्णं स्यादोजादूनाधिके स्फुटम् ।

(रवि और चन्द्रमाके मन्दपरिध्यंश)—समपदके अन्तमे सूर्यके १४ अंश और चन्द्रमाके ३२ अंश मन्दपरिधि मान होते हैं। और विषमपदके अन्तमे २० कला कम अर्थात् सूर्यके १३ ।४० और चन्द्रमाके ३१ ।४० मन्दपरिध्यंश हैं ॥ ९९½ ॥

(मङ्गलादि ग्रहोंकी मन्द और शीघ्र परिधि)— समपदान्तमे मङ्गलके ७५, बुधके ३०, गुरुके ३३, शुक्रके

---

* ३ राशि (९० अंश) का १ पद होता है । उस पदमें 'गत' चापको घटानेसे शेष 'गम्य' चाप कहलाता है । जैसे सूर्यराश्यादि ८ । १० । १५ । २५ है, उसका मन्दोच्च २ । १७ । ३५ । ४० है, तो मन्दोच्चमें सूर्यको घटानेसे राश्यादि शेष ६ । ७ । १७ । १५ केन्द्र हुआ । यहाँ केन्द्र ६ राशिसे अधिक है,अत तृतीय (विषम) पदमें पड़ा। इसलिये तृतीय पदके गतांशादि ७ । १७ । १५ को ९० अंशमें घटानेसे अंशादि ८२ । ४२ । ४५—ये 'गम्य' अंशादि हुए ।

† जैसे स्वल्पान्तरसे सूर्यका मन्दोच्च २ । १७ । ४८ । ५४ है। इसमें मध्यम सूर्य ७ । ६ । १८ । ५४ को घटानेसे शेष ७ । ११ । ३० । ० यह मन्द केन्द्र हुआ । यह ६ राशिसे अधिक होनेके कारण तुलादिमें पडा तथा तृतीय पदमें होनेके कारण इसमें ६ राशि घटाकर शेष १ । ११ । ३० । ० यह भुज हुआ । इसको ९० अंश (३ राशि) में घटानेसे शेष १ । १८ । ३० । ० यह कोटि हुई ।

भुजज्या बनानेके लिये आगे कही हुई रीतिसे राश्यादि भुज १ । ११ । ३० को कला बनानेसे २४९० कला हुई । इसमें २२५से भाग देनेपर लब्धि गतज्या ११ हुई। शेष २५ को गतज्या, एष्यज्या (११ वीं और १२ वीं ज्या)के अन्तर (२४३१—२२६७)=१६४ से गुणा करनेपर २४६० हुआ । इसमें २२५ का भाग देनेपर लब्धि ११ कलाको गतज्या २२६७ में जोडनेसे सूर्यकी भुजज्या २२७८ हुई । इसी प्रकार कोटिकी कलाद्वारा कोटिज्या २६७५ हुई ।

* जैसे परम क्रान्ति २४ अंशका कला १४४० में २२५ का भाग देनेसे लब्धि ६ 'गतज्या'-संख्या हुई, जिसका प्रमाण १३१५ है । शेष कला ९० को 'गतज्या' 'एष्यज्या'के अन्तर (१५२०—१३१५=२०५)मे गुणा कर उसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धि ८२को गतज्या १३१५ में जोडनेसे १३९७ यह परम क्रान्ति (२४अंश) की ज्या हुई ।

† जैसे परमक्रान्तिज्याका चाप बनाना है, तो परमक्रान्तिज्या १३९७ में कथित छठी जीवा १३१५ को घटाकर शेष ८२ को २२५ से गुणा कर गत, गम्य ज्याके अन्तर २०५ से भाग देनेपर लब्धि ९० को ६×२२५=१३५० में जोड़नेसे १४४० हुआ । इसको अंश बनानेसे २४ परम क्रान्ति-अंश हुए ।

स्यादुत्क्रमज्या विधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृतः ।
ज्यां प्रोह्य शेषं तत्त्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम् ॥९८॥
संख्यातत्त्वाश्विसंवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते ।

('भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानेकी रीति—) ग्रहोंको अपने-अपने मन्दोच्चमें घटानेसे शेष उस ग्रहका 'मन्द केन्द्र' तथा शीघ्रोच्चमें घटानेसे शेष उस ग्रहका 'शीघ्र केन्द्र' कहलाता है । उस राश्यादि केन्द्रकी 'भुजज्या' और 'कोटि-ज्या' बनानी चाहिये । विषम (१, ३) पदमें 'गत' चापकी जीवा भुजज्या और 'गम्य' चापकी जीवा कोटि-ज्या कहलाती है ।* सम (२, ४) पदमें 'गम्य' चापकी जीवा 'भुजज्या' और 'गत' चापकी जीवा 'कोटिज्या' होती है† ॥ ९४-९५½ ॥

(इष्टज्या-साधन-विधि)—जितने राश्यादि चापकी जीवा बनाना हो, उसकी कला बनाकर उसमें २२५से भाग देकर जो लब्धि हो, उतनी संख्या (सिद्ध २४ ज्या-पिण्डमें) गत ज्यापिण्डकी संख्या समझे । शेष कलाको 'गत ज्या' और 'गम्य ज्या' के अन्तरसे गुणा करके २२५ से भाग देकर लब्ध कलादिको 'गत ज्या'-पिण्डमें जोडनेसे 'अभीष्ट ज्या' होती है । 'उत्क्रमज्या' भी इसी विधिसे बनायी जाती है * ॥ ९६—९७½ ॥

(जीवासे चाप बनानेकी विधि)—इष्ट जीवाकी कलामे सिद्ध जीवापिण्डोमेंसे जितनी संख्यावाली जीवा घटे, उसको घटाना चाहिये । शेष कलाको २२५ से गुणा करके गुणनफलमें गत, गम्य जीवाके अन्तरसे भाग देकर जो लब्धि कलादि हो, उसको घटायी हुई सिद्ध-जीवा-संख्यासे गुणित २२५ मे जोड़नेसे इष्टज्याका चाप होता है † ॥ ९८½ ॥

रवेर्मन्दपरिध्यंशा मनवः शीतगो रदाः ॥९९॥
युग्मान्ते विषमान्ते तु नखलिप्तोनितास्तयोः ।
युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्निसुराः सूर्या नवार्णवाः ॥१००॥
ओजे द्व्यगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धयः ।
कुजादीनामतः शैघ्र्या युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः ॥१०१॥
गुणाग्निचन्द्राः खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः ।
ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वताः ॥१०२॥
खर्तुदस्रा वियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः ।
ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धृता ॥१०३॥
युग्मवृत्ते धनर्णं स्यादोजादूनाधिके स्फुटम् ।

(रवि और चन्द्रमाके मन्दपरिध्यंश)—समपदके अन्तमे सूर्यके १४ अंश और चन्द्रमाके ३२ अंश मन्दपरिधि मान होते हैं । और विषमपदके अन्तमे २० कला कम अर्थात् सूर्यके १३ ।४० और चन्द्रमाके ३१ । ४० मन्दपरिध्यंश हैं ॥ ९९½ ॥

(मङ्गलादि ग्रहोंकी मन्द और शीघ्र परिधि)—समपदान्तमे मङ्गलके ७५, बुधके ३०, गुरुके ३३, शुक्रके

---

* ३ राशि (९० अंश) का १ पद होता है । उस पदमें 'गत' चापको घटानेसे शेष 'गम्य' चाप कहलाता है । जैसे सूर्यराश्यादि ८ । १० । १५ । २५ है, उसका मन्दोच्च २ । १७ । ३५ । ४० है, तो मन्दोच्चमें सूर्यको घटानेसे राश्यादि शेष ६ । ७ । १७ । १५ केन्द्र हुआ । यहाँ केन्द्र ६ राशिसे अधिक है, अत तृतीय (विषम) पदमें पड़ा । इसलिये तृतीय पदके गतांशादि ७ । १७ । १५ को ९० अंशमें घटानेसे अंशादि ८२ । ४२ । ४५—ये 'गम्य' अंशादि हुए ।

† जैसे स्वल्पान्तरसे सूर्यका मन्दोच्च २ । १७ । ४८ । ५४ है । इसमें मध्यम सूर्य ७ । ६ । १८ । ५४ को घटानेसे शेष ७ । ११ । ३० । ० यह मन्द केन्द्र हुआ । यह ६ राशिसे अधिक होनेके कारण तुलादिमें पडा तथा तृतीय पदमें होनेके कारण इसमें ६ राशि घटाकर शेष १ । ११ । ३० । ० यह भुज हुआ । इसको ९० अंश (३ राशि) में घटानेसे शेष १ । १८ । ३० । ० यह कोटि हुई ।

भुजज्या बनानेके लिये आगे कही हुई रीतिसे राश्यादि भुज १ । ११ । ३० को कला बनानेसे २४९० कला हुई । इसमें २२५से भाग देनेपर लब्धि गतज्या ११ हुई । शेष २५ को गतज्या, एष्यज्या (११ वीं और १२ वीं ज्या) के अन्तर (२४३१—२२६७)=१६४ से गुणा करनेपर २४६० हुआ । इसमें २२५ का भाग देनेपर लब्धि ११ कलाको गतज्या २२६७ में जोडनेसे सूर्यकी भुजज्या २२७८ हुई । इसी प्रकार कोटिकी कलाद्वारा कोटिज्या २६७५ हुई ।

* जैसे परम क्रान्ति २४ अंशका कला १४४० में २२५ का भाग देनेसे लब्धि ६ 'गतज्या'-संख्या हुई, जिसका प्रमाण १३१५ है । शेष कला ९० को 'गतज्या' 'एष्यज्या'के अन्तर (१५२०—१३१५=२०५)मे गुणा कर उसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धि ८२को गतज्या १३१५ में जोडनेसे १३९७ यह परम क्रान्ति (२४अंश) की ज्या हुई ।

† जैसे परमक्रान्तिज्याका चाप बनाना है, तो परमक्रान्तिज्या १३९७ में कथित छठी जीवा १३१५ को घटाकर शेष ८२ को २२५ से गुणा कर गत, गम्य ज्याके अन्तर २०५ से भाग देनेपर लब्धि ९० को ६×२२५=१३५० में जोड़नेसे १४४० हुआ । इसको अंश बनानेसे २४ परम क्रान्ति-अंश हुए ।

स्वमन्दभुक्तिसंशुद्धेर्मध्यभुक्तेर्निशापतेः ॥१११॥
ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मन्दकर्मणि ।
दोर्ज्यान्तरगुणा भुक्तिस्तत्त्वनेत्रोद्धृता पुनः ॥११२॥
स्वमन्दपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृताः कलाः ।
कर्कादौ तु धनं तत्र मकरादावृणं स्मृतम् ॥११३॥
मन्दस्फुटीकृतां भुक्तिं प्रोज्झ्य शीघ्रोच्चभुक्तितः ।
तच्छेषं विवरेणाथ हन्यात्त्रिज्यान्त्यकर्णयोः ॥११४॥
चलकर्णहृतं भुक्तौ कर्णे त्रिज्याधिके धनम् ।
ऋणमूनेऽधिके प्रोज्झ्य शेषं वक्रगतिर्भवेत् ॥११५॥

(स्पष्टग्रहगतिसाधनार्थ गतिफल—) चन्द्रमध्यगतिमें चन्द्रमन्दोच्चगतिको घटाकर उससे (अर्थात् चन्द्रकेन्द्र-गतिसे) तथा अन्य ग्रहोंकी (स्वल्पान्तरसे) अपनी-अपनी गतिसे ही मन्दस्पष्टगतिसाधनमें फल साधन करे। यथा—उक्त गति (चन्द्रकी केन्द्रगति और अन्य ग्रहोंकी गति) को दोर्ज्यान्तर (गम्यज्या और गतज्याके अन्तर) से गुणा करके उसको २२५ के द्वारा भाग देकर लब्धिको अपनी-अपनी मन्दपरिधिसे गुणा करके भगणांश (३६०) के द्वारा भाग देनेसे जो कलादि फल लब्धि हो, उसको कर्कादि (३ से ऊपर ९ राशिके भीतर) केन्द्र हो तो मध्यगतिमें धन करने (जोडने) तथा मकरादि (९ राशिसे ऊपर ३ राशितक) केन्द्र हो तो घटानेसे मन्दस्पष्ट गति होती है।* पुनः इस मन्दस्पष्ट गतिको अपनी शीघ्रोच्च गतिमें घटाकर शेषको त्रिज्या तथा अन्तिम शीघ्रकर्णके अन्तरसे गुणा करके पूर्वसाधित शीघ्रकर्णके द्वारा भाग देनेसे जो लब्धि (कलादि) हो, उसको यदि कर्ण त्रिज्यासे अधिक हो तो मन्दस्पष्ट गतिमें धन करने (जोडने) और अल्प हो तो घटानेसे स्पष्ट गति होती है। यदि साधित ऋणगतिफल मन्दस्पष्ट गतिसे अधिक हो तो उसी (ऋणगतिफल) में मन्द-स्पष्ट गतिको घटाकर जो बचे, वह वक्रगति होती है। इस स्थितिमें वह ग्रह वक्र-गति रहता है* ॥ १११–११५ ॥

कृतर्तुचन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टिभिः ।
शररुद्रैश्चतुर्थेषु केन्द्रांशैर्भूसुतादयः ॥११६॥
वक्रिणश्चक्रशुद्धैस्तैरंशैरुज्झन्ति वक्रताम् ।
क्रान्तिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता ॥११७॥
त्रिज्यागुणा दिनव्यासभक्ता चापं चरासवः ।
तत्कार्मुकमुदक्क्रान्तौ धनहीने पृथक् स्थिते ॥११८॥
स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते ।
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणे तु दिनक्षपे ॥११९॥

(ग्रहोंकी वक्र केन्द्रांश-संख्या—) मङ्गल अपने चतुर्थ शीघ्रकेन्द्रांश १६४ में, बुध १४४ केन्द्रांशमें, गुरु १३० केन्द्रांशमें, शुक्र १६२ केन्द्रांशमें और शनि ११५ शीघ्र-केन्द्रांशमें वक्रगति होता है। अपने-अपने वक्रकेन्द्रांश-को ३६० में घटानेसे शेषके तुल्य केन्द्रांश होनेपर फिर वह मार्ग-गति होता है† ॥ ११६½ ॥

(कालज्ञान—) रवि-क्रान्तिज्याको पलभा‡ से गुणा करके गुणनफलमें १२ से भाग देनेपर लब्धि 'कुज्या' होती है। उस (कुज्या) को त्रिज्यासे गुणा करके द्युज्या (क्रान्तिकी कोटिज्या) से भाग देकर लब्धि (चरज्या) के चाप बनानेसे चरासु § होते हैं। उस चर-चापको यदि उत्तर

सूर्यकी स्पष्टगति ६० । ४७ से गुणा करनेपर ५३०१ । २० हुआ। इसमें २१६०० का भाग देनेसे लब्धि कलादि ० । १५ अर्थात् १५ विकलाको स्पष्ट सूर्यमें मन्दफल ऋण होनेके कारण घटानेसे स्पष्ट सूर्योदयकालिक स्पष्ट सूर्य ७ । ४ । ५१ । २६ हुआ।

* ग्रहोंकी केन्द्रगतिके द्वारा मन्दस्पष्टगतिफल साधन होता है। वहाँ चन्द्रमाकी अधिक गति होनेके कारण केन्द्रगति ग्रहण की जाती है। अन्य ग्रहकी १ दिनमें मन्दोच्च गति शून्य होनेके कारण ग्रहगतिके तुल्य ही केन्द्रगति होती है। तथा रवि और चन्द्रमाकी मन्दस्पष्ट गति ही स्पष्ट गति होती है। मङ्गलादि ग्रहोंके शीघ्रोच्चवश शीघ्र गतिफलका पुन संस्कार करनेसे स्पष्ट गति होती है।

* जैसे सूर्यकी गति ५९ । ८ को गत-एष्यज्याके अन्तर १६४ से (जो भुजज्यासाधनमें गतैष्यज्यान्तर हुआ था) गुणा करनेपर ९३९७ । ५२ हुआ । इसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धिकला ४३ को मन्दपरिधि १३ । ४७ से गुणा करके गुणनफल ५९०। ४१ मे ३६० से भाग देनेपर लब्धिकलादि गतिफल १ । ३९ हुआ। इसको कर्कादि केन्द्र होनेके कारण सूर्यकी मध्यगति ५९ । ८ में जोडनेसे ६० । ४७ यह मन्दस्पष्ट गति हुई, यही सूर्यकी स्पष्ट गति भी होती है।

† जैसे मङ्गलके वक्रकेन्द्रांश १६४ को ३६० में घटानेसे शेष १९६ मार्ग-केन्द्रांश हुए। इससे सिद्ध हुआ कि जब मङ्गलका शीघ्रकेन्द्रांश १६४ से १९६ तक रहता है, तबतक मङ्गल वक्र रहता है। इसी प्रकार सब ग्रहोंके मार्गकेन्द्रांश समझने चाहिये।

‡ ३० घडीका दिन हो तो उस दिनके दोपहरमें बारह अङ्गुल शङ्कुकी छायाका नाम 'पलभा' है।

§ दीर्घ अक्षरके दस बार उच्चारणमें जितना समय लगता है, उतना काल १ असु (प्राण) कहलाता है। ६ असुका १ पल

स्वमन्दभुक्तिसंशुद्धेर्मध्यभुक्तेर्निशापतेः ॥१११॥
ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मन्दकर्मणि ।
दोर्ज्यान्तरगुणा भुक्तिस्तत्त्वनेत्रोद्धृता पुनः ॥११२॥
स्वमन्दपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृताः कलाः ।
कर्कादौ तु धनं तत्र मकरादावृणं स्मृतम् ॥११३॥
मन्दस्फुटीकृतां भुक्तिं प्रोज्झ्य शीघ्रोच्चभुक्तितः ।
तच्छेषं विवरेणाथ हन्यात्त्रिज्यान्त्यकर्णयोः ॥११४॥
चलकर्णहृतं भुक्तौ कर्णे त्रिज्याधिके धनम् ।
ऋणमूनेऽधिके प्रोज्झ्य शेषं वक्रगतिर्भवेत् ॥११५॥

(स्पष्टग्रहगतिसाधनार्थ गतिफल—) चन्द्रमध्यगतिमें चन्द्रमन्दोच्चगतिको घटाकर उससे (अर्थात् चन्द्रकेन्द्र-गतिसे) तथा अन्य ग्रहोंकी (स्वल्पान्तरसे) अपनी-अपनी गतिसे ही मन्दस्पष्टगतिसाधनमें फल साधन करे। यथा—उक्त गति (चन्द्रकी केन्द्रगति और अन्य ग्रहोंकी गति) को दोर्ज्यान्तर (गम्यज्या और गतज्याके अन्तर) से गुणा करके उसको २२५ के द्वारा भाग देकर लब्धिको अपनी-अपनी मन्दपरिधिसे गुणा करके भगणांश (३६०) के द्वारा भाग देनेसे जो कलादि फल लब्धि हो, उसको कर्कादि (३ से ऊपर ९ राशिके भीतर) केन्द्र हो तो मध्यगतिमें धन करने (जोड़ने) तथा मकरादि (९ राशिसे ऊपर ३ राशितक) केन्द्र हो तो घटानेसे मन्दस्पष्ट गति होती है।* पुनः इस मन्दस्पष्ट गतिको अपनी शीघ्रोच्च गतिमें घटाकर शेषको त्रिज्या तथा अन्तिम शीघ्रकर्णके अन्तरसे गुणा करके पूर्वसाधित शीघ्रकर्णके द्वारा भाग देनेसे जो लब्धि (कलादि) हो, उसको यदि कर्ण त्रिज्यासे अधिक हो तो मन्दस्पष्ट गतिमें धन करने (जोड़ने) और अल्प हो तो घटानेसे स्पष्ट गति होती है। यदि साधित ऋणगतिफल मन्दस्पष्ट गतिसे अधिक हो तो उसी (ऋणगतिफल) में मन्दस्पष्ट गतिको घटाकर जो बचे, वह वक्रगति होती है। इस स्थितिमें वह ग्रह वक्र-गति रहता है* ॥ १११–११५ ॥

कृतर्तुचन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टिभिः ।
शररुद्रैश्चतुर्थेषु केन्द्रांशैर्भूसुतादयः ॥११६॥
वक्रिणश्चक्रशुद्धैस्तैरंशैरुज्झन्ति वक्रताम् ।
क्रान्तिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता ॥११७॥
त्रिज्यागुणा दिनव्यासभक्ता चापं चरासवः ।
तत्कार्मुकमुदक्क्रान्तौ धनहीने पृथक् स्थिते ॥११८॥
स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते ।
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणे तु दिनक्षपे ॥११९॥

(ग्रहोंकी वक्र केन्द्रांश-संख्या—) मङ्गल अपने चतुर्थ शीघ्रकेन्द्रांश १६४ में, बुध १४४ केन्द्रांशमें, गुरु १३० केन्द्रांशमें, शुक्र १६३ केन्द्रांशमें और शनि ११५ शीघ्रकेन्द्रांशमें वक्रगति होता है। अपने-अपने वक्रकेन्द्रांशको ३६० में घटानेसे शेषके तुल्य केन्द्रांश होनेपर फिर वह मार्ग-गति होता है† ॥ ११६½ ॥

(कालज्ञान—) रवि-क्रान्तिज्याको पलभा‡से गुणा करके गुणनफलमें १२ से भाग देनेपर लब्धि 'कुज्या' होती है। उस (कुज्या) को त्रिज्यासे गुणा करके द्युज्या (क्रान्तिकी कोटिज्या) से भाग देकर लब्धि (चरज्या) के चाप बनानेसे चरासु § होते हैं। उस चर-चापको यदि उत्तर

सूर्यकी स्पष्टगति ६० । ४७ से गुणा करनेपर ५३०१ । २० हुआ। इसमें २१६०० का भाग देनेसे लब्धि कलादि ० । १५ अर्थात् १५ विकलाको स्पष्ट सूर्यमें मन्दफल ऋण होनेके कारण घटानेसे स्पष्ट सूर्योदयकालिक स्पष्ट सूर्य ७ । ४ । ५१ । २६ हुआ।

* ग्रहोंकी केन्द्रगतिके द्वारा मन्दस्पष्टगतिफल साधन होता है। वहाँ चन्द्रमाकी अधिक गति होनेके कारण केन्द्रगति ग्रहण की जाती है। अन्य ग्रहकी १ दिनमें मन्दोच्च गति शून्य होनेके कारण ग्रहगतिके तुल्य ही केन्द्रगति होती है। तथा रवि और चन्द्रमाकी मन्दस्पष्ट गति ही स्पष्ट गति होती है। मङ्गलादि ग्रहोंके शीघ्रोच्चवश शीघ्र गतिफलका पुन संस्कार करनेसे स्पष्ट गति होती है।

* जैसे सूर्यकी गति ५९ । ८ को गत-एष्यज्याके अन्तर १६४ से (जो भुजज्यासाधनमें गतैष्यज्यान्तर हुआ था) गुणा करनेपर ९६९७ । ५२ हुआ । इसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धिकला ४३ को मन्दपरिधि १३ । ४७ से गुणा करके गुणनफल ५९२ । ४१ में ३६० से भाग देनेपर लब्धिकलादि गतिफल १ । ३९ हुआ। इसको कर्कादि केन्द्र होनेके कारण सूर्यकी मध्यगति ५९ । ८ में जोड़नेसे ६० । ४७ यह मन्दस्पष्ट गति हुई, यही सूर्यकी स्पष्ट गति भी होती है।

† जैसे मङ्गलके वक्रकेन्द्रांश १६४ को ३६० में घटानेसे शेष १९६ मार्ग-केन्द्रांश हुए। इससे सिद्ध हुआ कि जब मङ्गलका शीघ्रकेन्द्रांश १६४ से १९६ तक रहता है, तबतक मङ्गल वक्र रहता है। इसी प्रकार सब ग्रहोंके मार्गकेन्द्रांश समझने चाहिये।

‡ ३० घड़ीका दिन हो तो उस दिनके दोपहरमें बारह अङ्गुल शङ्कुकी छायाका नाम 'पलभा' है।

§ दीर्घ अक्षरके दस बार उच्चारणमें जितना समय लगता है, उतना काल १ असु (प्राण) कहलाता है। ६ असुका १ पल

स्पष्टचन्द्रमें स्पष्टसूर्यको घटाकर शेष राश्यादिकी कला बनाकर उसमें तिथिभोग (७२०) से भाग देनेपर लब्धि गततिथि-संख्या होती है। शेष वर्तमान तिथिकी गतकला है। उसको ७२० मे घटानेसे गम्यकला होती है। गत और गम्यकलाको पृथक् ६० से गुणाकर चन्द्र और रविके स्पष्ट गत्यन्तरसे भाग देकर लब्धि-क्रमसे भुक्त (गत) और गम्य घटी होती हैं। (पञ्चाङ्गमें वर्तमान तिथिके आगे गम्यघटी लिखी जाती है)* ॥ १२२ ॥

तिथयः शुक्लप्रतिपदो याता द्विघ्ना नगोद्धृताः।
शेषं बवो बालवश्च कौलवस्तैतिलो गरः ॥१२३॥
वणिजश्च भवेद्विष्टिः कृष्णभूतापरार्द्धतः।
शकुनिर्नागश्च चतुष्पदः किंस्तुघ्नमेव च ॥१२४॥

(तिथिमें करण जाननेकी रीति—) शुक्लपक्षकी प्रतिपदादि गत-तिथि-संख्याको दूना करके ७ के द्वारा भाग देनेसे १ आदि शेषमें क्रमसे १ बव, २ बालव, ३ कौलव, ४ तैतिल, ५ गर, ६ वणिज, ७ विष्टि (भद्रा)—ये करण वर्तमान तिथिके पूर्वार्धमे होते हैं*। (ये ७ करण शुक्ल प्रतिपदाके उत्तरार्धसे कृष्ण १४ के पूर्वार्धतक (२८) तिथियोंमें ८ आवृत्ति कर आते हैं। इसलिये ये ७ चर करण कहलाते हैं।) कृष्णपक्ष १४ के उत्तरार्धमे शुक्ल प्रतिपदाके पूर्वार्धतक, क्रम से १ शकुनि, २ नाग, ३ चतुष्पद और ४ किंस्तुघ्न—ये चार स्थिर करण होते हैं† ॥ १२३-१२४ ॥

शिलातलेऽम्बुसंशुद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे।
तत्र शङ्क्वङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत् ॥१२५॥
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं कल्पनाद्द्वादशाङ्गुलम्।
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्द्धयोः ॥१२६॥
तत्र बिन्दुं विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्त्तव्या दक्षिणोत्तरा ॥१२७॥
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा।
दिङ्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ॥१२८॥
चतुरस्रं बहिः कुर्यात्सूत्रैर्मध्याद्विनिःसृतैः।
भुजसूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभा स्मृता ॥१२९॥
प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डले।
उन्मण्डले च विषुवण्मण्डले परिकीर्त्यते ॥१३०॥
रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रगा तथा।
इष्टच्छायाविषुवतोर्मध्यमग्राभिधीयते ॥१३१॥

(दिक्साधन—) जलसे संशोधित (परीक्षित) शिलातल या वज्रलेप (सिमेण्ट) से सम बनाये हुए भूतलमें जिस अङ्गुलमानसे शङ्कु बनाया गया हो, उसी अङ्गुलमानसे अभीष्ट त्रिज्याङ्गुलसे वृत्त बनाकर उसके मध्य (केन्द्र) मे समान द्वादश विभाग (कल्पित अङ्गुल) से बने हुए शङ्कुकी

गुणा कर गुणनफलमें सूर्य और चन्द्रमाकी गतिके योग ८७६। ३६ से भाग देनेपर लब्धि क्रमश भुक्त घड़ी-पल ५४। ३५ और भोग्य घड़ी-पल ०। ९ हुई।

* जैसे आर्द्रा नक्षत्रकी गम्यकला ५८४। ३५ है तो उसको ६० से गुणा करनेसे गुणनफल ३५०७५में चन्द्रगतिकला ८१९ से भाग देनेपर लब्धि घट्यादि ४२। ४९ यह आर्द्राका गम्य (उदयसे आगेका) मान हुआ।

तिथि-साधन—यदि उदयकालमें चन्द्रमा ६। २४। १५। ३, सूर्य १। ५। ४२। ३७, चन्द्रगति ८१९। ०, सूर्य-गति ५७। ३६ है तो चन्द्रमा ६। २४। १५। ३ में सूर्य १। ५। ४२। ३७ को घटानेसे शेष ५। १८। ३२। २६ की कला १०११२। २६ में ७२० से भाग देनेपर लब्धि १४ गत तिथि हुई; शेष ०। ३२। २६ पूर्णिमाकी गत कलादि है। इसको ७२० कलामें घटानेसे शेष ६८७। ३४ पूर्णिमाकी भोग्य कलादि हुई। गत कला ३२। २६ को ६० से गुणा कर गुणनफल १९४६ में चन्द्रमा और सूर्यकी गत्यन्तरकला ७६१। २४ से भाग देनेपर लब्ध घड़ी-पल २। ३३ पूर्णिमा तिथिका भुक्त हुआ। तथा भोग्य कला ६८७। ३४ को ६० से गुणाकर गुणनफल ४१२५४ में गत्यन्तरकला ७६१। २४ से भाग देनेपर लब्ध घट्यादि ५४। १२ पूर्णिमा तिथिका भोग्य (सूर्योदयसे आगेका मान) हुआ।

* जैसे शुक्लपक्षकी द्वादशीमें करणका ज्ञान प्राप्त करना है तो गत तिथि-संख्या ११ को दूना करनेसे २२ हुआ। इसमें ७ से भाग देनेपर शेष १ रहा। अत. द्वादशीके पूर्वार्धमें बव और उत्तरार्धमें बालव नामक करण हुआ। कृष्ण पक्षकी तिथि-सख्यामें १५ जोडकर तिथि-सख्या ग्रहण करनी चाहिये। जैसे कृष्ण पक्षकी द्वादशीमें करण जानना हो तो गत तिथि-सख्या २६ को २ से गुणा करके गुणनफल ५२ में ७ से भाग देनेपर शेष ३ रहा। अतः द्वादशीके पूर्वार्धमें तीसरा कौलव और उत्तरार्धमें चौथा तैतिल नामक करण हुआ।

† तिथिमानका आधा करण कहलाता है। इसलिये एक-एक तिथिमें २, २ करण होते हैं। बवादि ७ चर करण और शकुनि आदि ४ स्थिर करण हैं।

स्पष्टचन्द्रमें स्पष्टसूर्यको घटाकर शेष राश्यादिकी कला बनाकर उसमें तिथिभोग (७२०) से भाग देनेपर लब्धि गततिथि-संख्या होती है। शेष वर्तमान तिथिकी गतकला है। उसको ७२० मे घटानेसे गम्यकला होती है। गत और गम्यकलाको पृथक् ६० से गुणाकर चन्द्र और रविके स्पष्ट गत्यन्तरसे भाग देकर लब्धि-क्रमसे भुक्त (गत) और गम्य घटी होती हैं। (पञ्चाङ्गमें वर्तमान तिथिके आगे गम्यघटी लिखी जाती है)* ॥ १२२ ॥

तिथयः शुक्लप्रतिपदो याता द्विघ्ना नगोद्धृताः।
शेषं बवो बालवश्च कौलवस्तैतिलो गरः ॥१२३॥
वणिजश्च भवेद्विष्टिः कृष्णभूतापरार्द्धतः।
शकुनिर्नागश्च चतुष्पदः किंस्तुघ्नमेव च ॥१२४॥

(तिथिमें करण जाननेकी रीति—) शुक्लपक्षकी प्रतिपदादि गत-तिथि-संख्याको दूना करके ७ के द्वारा भाग देनेसे १ आदि शेषमें क्रमसे १ बव, २ बालव, ३ कौलव, ४ तैतिल, ५ गर, ६ वणिज, ७ विष्टि (भद्रा)—ये करण वर्तमान तिथिके पूर्वार्धमे होते हैं* । (ये ७ करण शुक्ल प्रतिपदाके उत्तरार्धसे कृष्ण १४ के पूर्वार्धतक (२८) तिथियोंमें ८ आवृत्ति कर आते हैं। इसलिये ये ७ चर करण कहलाते हैं।) कृष्णपक्ष १४ के उत्तरार्धमें शुक्ल प्रतिपदाके पूर्वार्धतक, क्रम से १ शकुनि, २ नाग, ३ चतुष्पद और ४ किंस्तुघ्न—ये चार स्थिर करण होते हैं† ॥ १२३-१२४ ॥

शिलातलेऽम्बुसंशुद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे।
तत्र शङ्क्वङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत् ॥१२५॥
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं कल्पनाद्द्वादशाङ्गुलम्।
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्द्धयोः ॥१२६॥
तत्र बिन्दुं विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्त्तव्या दक्षिणोत्तरा ॥१२७॥
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा।
दिङ्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ॥१२८॥
चतुरस्रं बहिः कुर्यात्सूत्रैर्मध्याद्विनिःसृतैः।
भुजसूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभा स्मृता ॥१२९॥
प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डले।
उन्मण्डले च विषुवण्मण्डले परिकीर्त्यते ॥१३०॥
रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रगा तथा।
इष्टच्छायाविषुवतोर्मध्यमग्राभिधीयते ॥१३१॥

(दिक्साधन—) जलसे संशोधित (परीक्षित) शिलातल या वज्रलेप (सिमेण्ट) से सम बनाये हुए भूतलमें जिस अङ्गुलमानसे शङ्कु बनाया गया हो, उसी अङ्गुलमानसे अभीष्ट त्रिज्याङ्गुलसे वृत्त बनाकर उसके मध्य (केन्द्र) मे समान द्वादश विभाग (कल्पित अङ्गुल) से बने हुए शङ्कुकी

गुणा कर गुणनफलमें सूर्य और चन्द्रमाकी गतिके योग ८७६ । ३६ से भाग देनेपर लब्धि क्रमश भुक्त घड़ी-पल ५४ । ३५ और भोग्य घड़ी-पल ० । ९ हुई ।

* जैसे आर्द्रा नक्षत्रकी गम्यकला ५८४ । ३५ है तो उसको ६० से गुणा करनेसे गुणनफल ३५०७५में चन्द्रगतिकला ८१९ से भाग देनेपर लब्धि घट्यादि ४२ । ४९ यह आर्द्राका गम्य (उदयसे आगेका) मान हुआ ।

तिथि-साधन—यदि उदयकालमें चन्द्रमा ६ । २४ । १५ । ३, सूर्य १ । ५ । ४२ । ३७, चन्द्रगति ८१९ । ०, सूर्य-गति ५७ । ३६ है तो चन्द्रमा ६ । २४ । १५ । ३ में सूर्य १ । ५ । ४२ । ३७ को घटानेसे शेष ५ । १८ । ३२ । २६ की कला १०११२ । २६ में ७२० से भाग देनेपर लब्धि १४ गत तिथि हुई; शेष ० । ३२ । २६ पूर्णिमाकी गत कलादि है। इसको ७२० कलामें घटानेसे शेष ६८७ । ३४ पूर्णिमाकी भोग्य कलादि हुई । गत कला ३२ । २६ को ६० से गुणा कर गुणनफल १९४६ में चन्द्रमा और सूर्यकी गत्यन्तरकला ७६१ । २४ से भाग देनेपर लब्ध घड़ी-पल २ । ३३ पूर्णिमा तिथिका भुक्त हुआ। तथा भोग्य कला ६८७ । ३४ को ६० से गुणाकर गुणनफल ४१२५४ में गत्यन्तरकला ७६१ । २४ से भाग देनेपर लब्ध घट्यादि ५४ । १२ पूर्णिमा तिथिका भोग्य (सूर्योदयसे आगेका मान) हुआ ।

* जैसे शुक्लपक्षकी द्वादशीमें करणका ज्ञान प्राप्त करना है तो गत तिथि-संख्या ११ को दूना करनेसे २२ हुआ। इसमें ७ से भाग देनेपर शेष १ रहा। अत. द्वादशीके पूर्वार्धमें बव और उत्तरार्धमें बालव नामक करण हुआ। कृष्ण पक्षकी तिथि-सख्यामें १५ जोडकर तिथि-सख्या ग्रहण करनी चाहिये। जैसे कृष्ण पक्षकी द्वादशीमें करण जानना हो तो गत तिथि-सख्या २६ को २ से गुणा करके गुणनफल ५२ में ७ से भाग देनेपर शेष ३ रहा। अतः द्वादशीके पूर्वार्धमें तीसरा कौलव और उत्तरार्धमें चौथा तैतिल नामक करण हुआ।

† तिथिमानका आधा करण कहलाता है । इसलिये एक-एक तिथिमें २, २ करण होते हैं । बवादि ७ चर करण और शकुनि आदि ४ स्थिर करण हैं ।

स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ।
दिग्भेदेऽपक्रमः शेषस्तस्य ज्या त्रिज्यया हता ॥१३८॥
परमापक्रमज्याप्ता चापं मेषादिगो रविः ।
कर्क्यादौ प्रोज्झ्य चक्रार्द्धात्तुलादौ भार्धसंयुतात् ॥१३९॥
मृगादौ प्रोज्झ्य चक्रात्तु मध्याह्नेऽर्कः स्फुटो भवेत् ।
तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः ॥१४०॥

मध्याह्न-छायासे सूर्यसाधन—अपने 'अक्षांश' और मध्याह्नकालिक सूर्यके 'नतांश' दोनों एक दिशाके हों तो अन्तर करनेसे और यदि भिन्न दिशाके हों तो योग करनेसे जो फल हो, वह सूर्यकी 'क्रान्ति' होती है। 'क्रान्तिज्या' को 'त्रिज्या'से गुणा करके उसमें 'परमक्रान्तिज्या' (१३९७) से भाग देनेपर लब्धि सूर्यकी 'भुजज्या' होती है । उसके चाप बनाकर मेषादि ३ राशिमें सूर्य हों तो वही स्पष्ट सूर्य होता है* । कर्कादि ३ राशिमें हों तो उस चापको ६ राशिमें घटानेसे, तुलादि ३ राशिमे हों तो ६ राशिमें जोडनेसे और मकरादि ३ राशिमें हो तो १२ राशिमें घटानेसे जो योग या अन्तर हो, वह मध्याह्नमें स्पष्ट सूर्य होता है । उस स्पष्ट सूर्यसे विपरीत क्रियाद्वारा मन्दफल-साधन कर बार-बार संस्कार करनेसे मध्यम सूर्यका ज्ञान होता है ॥ १३८–१४० ॥

ग्रहोदयप्राणहता खखाष्टैकोद्धृता गतिः ।
चक्रासवो लब्धयुताः स्वाहोरात्रासवः स्मृताः ॥१४१॥

ग्रहोंके अहोरात्र-मान—जिस राशिमें तत्काल ग्रह हो, उस राशिके उदयमानसे उस ग्रहकी गतिको गुणा करके उसमें १८०० से भाग देकर लब्ध असुको 'अहोरात्रासु' (२१६००) में जोडनेपर उस ग्रहका अहोरात्रमान होता है ।(असुसे पल और घड़ी बना लेनी चाहिये ।)*॥ १४१॥

त्रिभद्युकर्णार्द्धगुणाः स्वाहोरात्रार्द्धभाजिताः ।
क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक्-पृथक् ॥१४२॥
स्वाधोऽधः प्रविशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः ।
खागाष्टयोऽर्थगोऽगैकाः शरत्र्यङ्कहिमांशवः ॥१४३॥
स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ।
व्यस्ता व्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः ॥१४४॥
उत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादयः ।

राशियोंके उदयमान—१ राशि, २ राशि, ३ राशि-की ज्याको पृथक्-पृथक् 'परमाल्पद्युज्या' (परमक्रान्तिकी कोटिज्या) से गुणा करके उसमे अपनी-अपनी द्युज्या (क्रान्तिकोटिज्या) से भाग देकर लब्धियोंके चाप बनावे । उनमें प्रथम चाप मेषका उदय (लङ्कोदय)-मान होता है। प्रथम चापको द्वितीय चापमें घटानेपर शेष वृषका उदयमान

गुणनफल ८२००३९ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेसे लब्धि सूर्यकी क्रान्तिज्या २३८ कलाका चाप भी स्वल्पान्तरसे इतना ही हुआ । अत इसके अश बनानेसे ३ । ५८ यह सूर्यकी अंशादि क्रान्ति सूर्यके उत्तर गोलमें होनेके कारण उत्तरकी हुई । अत अक्षाश २६ । २६ और क्रान्त्यंश ३ । ५८ का अन्तर करनेसे २२ । २८ यह नतांश हुआ । इसको ९० अंशमें घटानेसे नताश की कोटि ६७ । ३२ हुई । नताशकी भुजज्या १३०८ और कोटिज्या ३१७८ हुई । भुजज्या १३०८ को १२ से गुणा कर गुणनफल १५६९६ में कोटिज्यासे भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ५ अङ्गुल मध्याह्नकालिक छायाका प्रमाण हुआ।

* गोरखपुरमें सायन मेष-सक्रान्तिके बाद वैशाख कृष्णपक्षमें यदि मध्याह्नके समय १२अङ्गुल शङ्कुकी छाया ५ अङ्गुल उत्तर दिशा-की है तो उस दिन राश्यादि स्पष्ट सूर्य क्या होगा ?

उत्तर—छाया ५ के वर्ग २५ में शङ्कु१२का वर्ग १४४ जोड़नेसे १६९ हुआ। इसका वर्गमूल १३ छाया-कर्ण हुआ । छाया ५ को त्रिज्यासे गुणा करके गुणनफल ३४३८×५=१७१९० छाया-कर्ण १३ का भाग देनेसे लब्धि १३२२ सूर्यकी नतज्या हुई । इसका चाप १३५८ हुआ। इसको अशात्मक बनानेसे २२ । ३८ सूर्यका नताश हुआ । यह उत्तर छाया होनेके कारण दक्षिण दिशाका हुआ । अत· इसको गोरखपुरके अक्षाश २६ । २६ में घटानेसे ३ । ४८ यह सूर्यकी क्रान्ति हुई, इसको कला २२८ की ज्या भी इतनी ही हुई। इस क्रान्तिज्या २२८ को त्रिज्यासे गुणा करकेगुणन-फलमें परमक्रान्तिज्या १३९७ से भाग देनेपर लब्धि ५६१ सूर्यकी भुजज्या हुई । इसकी चापकला ५६३ को अंशादि बनाने से ० । ९ । २३ राश्यादि सूर्य हुआ, यही मेषादि ३ राशिके भीतर होनेके कारण उस दिन मध्याह्नकालिक सायनसूर्य हुआ ।

* जैसे स्पष्ट सूर्य ० । ९ । ५१ । १५ हो, उसकी गतिकला ५८ हो तो उसको मेषके स्वदेशोदयमान १३१० असुसे गुणा करके गुणनफल ७५९८० में १८०० से भाग देनेपर लब्धि ४२ असु हुई। उसको अहोरात्रासु (२१६००) में जोड़नेसे २१६४२ असु सूर्यके अहोरात्रका प्रमाण हुआ । इसका पल बनानेसे ३६०७ अर्थात् नाक्षत्र अहोरात्रसे सूर्यका अहोरात्र ७ पल अधिक हुआ । इसी प्रकार सब ग्रहोंके अहोरात्रमान समझे ।

स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ।
दिग्भेदेऽपक्रमः शेषस्तस्य ज्या त्रिज्यया हता ॥१३८॥
परमापक्रमज्याप्ता चापं मेषादिगो रविः ।
कर्क्यादौ प्रोज्झ्य चक्रार्द्धात्तुलादौ भार्धसंयुतात् ॥१३९॥
मृगादौ प्रोज्झ्य चक्रात्तु मध्याह्नेऽर्कः स्फुटो भवेत् ।
तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः ॥१४०॥

मध्याह्न-छायासे सूर्यसाधन—अपने 'अक्षांश' और मध्याह्नकालिक सूर्यके 'नतांश' दोनों एक दिशाके हों तो अन्तर करनेसे और यदि भिन्न दिशाके हों तो योग करनेसे जो फल हो, वह सूर्यकी 'क्रान्ति' होती है। 'क्रान्तिज्या' को 'त्रिज्या'से गुणा करके उसमें 'परमक्रान्तिज्या' (१३९७) से भाग देनेपर लब्धि सूर्यकी 'भुजज्या' होती है । उसके चाप बनाकर मेषादि ३ राशिमें सूर्य हों तो वही स्पष्ट सूर्य होता है* । कर्कादि ३ राशिमें हों तो उस चापको ६ राशिमें घटानेसे, तुलादि ३ राशिमे हों तो ६ राशिमें जोडनेसे और मकरादि ३ राशिमें हो तो १२ राशिमें घटानेसे जो योग या अन्तर हो, वह मध्याह्नमें स्पष्ट सूर्य होता है । उस स्पष्ट सूर्यसे विपरीत क्रियाद्वारा मन्दफल-साधन कर बार-बार संस्कार करनेसे मध्यम सूर्यका ज्ञान होता है ॥ १३८–१४० ॥

ग्रहोदयप्राणहता खखाष्टैकोद्धृता गतिः ।
चक्रासवो लब्धयुताः स्वाहोरात्रासवः स्मृताः ॥१४१॥

ग्रहोंके अहोरात्र-मान—जिस राशिमें तत्काल ग्रह हो, उस राशिके उदयमानसे उस ग्रहकी गतिको गुणा करके उसमें १८०० से भाग देकर लब्ध असुको 'अहोरात्रासु' (२१६००) में जोडनेपर उस ग्रहका अहोरात्रमान होता है ।(असुसे पल और घड़ी बना लेनी चाहिये ।)* ॥ १४१ ॥

त्रिभद्युकर्णार्द्धगुणाः स्वाहोरात्रार्द्धभाजिताः ।
क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक्-पृथक् ॥१४२॥
स्वाधोऽधः प्रविशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः ।
खागाष्टयोऽर्थगोऽगैकाः शरत्र्यङ्कहिमांशवः ॥१४३॥
स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ।
व्यस्ता व्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः ॥१४४॥
उत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादयः ।

राशियोंके उदयमान—१ राशि, २ राशि, ३ राशि-की ज्याको पृथक्-पृथक् 'परमाल्पद्युज्या' (परमक्रान्तिकी कोटिज्या) से गुणा करके उसमे अपनी-अपनी द्युज्या (क्रान्तिकोटिज्या) से भाग देकर लब्धियोंके चाप बनावे । उनमें प्रथम चाप मेषका उदय (लङ्कोदय)-मान होता है। प्रथम चापको द्वितीय चापमें घटानेपर शेष वृषका उदयमान

---

* गोरखपुरमें सायन मेष-सङ्क्रान्तिके बाद वैशाख कृष्णपक्षमें यदि मध्याह्नके समय १२अङ्गुल शङ्कुकी छाया ५ अङ्गुल उत्तर दिशा-की है तो उस दिन राश्यादि स्पष्ट सूर्य क्या होगा ?

उत्तर—छाया ५ के वर्ग २५ में शङ्कु१२का वर्ग १४४ जोड़नेसे १६९ हुआ। इसका वर्गमूल १३ छाया-कर्ण हुआ । छाया ५ को त्रिज्यासे गुणा करके गुणनफल ३४३८×५=१७१९० छाया-कर्ण १३ का भाग देनेसे लब्धि १३२२ सूर्यकी नतज्या हुई । इसका चाप १३५८ हुआ। इसको अंशात्मक बनानेसे २२ । ३८ सूर्यका नतांश हुआ । यह उत्तर छाया होनेके कारण दक्षिण दिशाका हुआ । अत· इसको गोरखपुरके अक्षांश २६ । २६ में घटानेसे ३ । ४८ यह सूर्यकी क्रान्ति हुई, इसको कला २२८ की ज्या भी इतनी ही हुई। इस क्रान्तिज्या २२८ को त्रिज्यासे गुणा करकेगुणन-फलमें परमक्रान्तिज्या १३९७से भाग देनेपर लब्धि ५६१ सूर्यकी भुजज्या हुई । इसकी चापकला ५६३ को अंशादि बनाने से ० । ९ । २३ राश्यादि सूर्य हुआ, यही मेषादि ३ राशिके भीतर होनेके कारण उस दिन मध्याह्नकालिक सायनसूर्य हुआ ।

गुणनफल ८२००३९ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेसे लब्धि सूर्यकी क्रान्तिज्या २३८ कलाका चाप भी स्वल्पान्तरसे इतना ही हुआ । अत इसके अंश बनानेसे ३ । ५८ यह सूर्यकी अंशादि क्रान्ति सूर्यके उत्तर गोलमें होनेके कारण उत्तरकी हुई । अत अक्षांश २६ । २६ और क्रान्त्यंश ३ । ५८ का अन्तर करनेसे २२ । २८ यह नतांश हुआ । इसको ९० अंशमें घटानेसे नतांश की कोटि ६७ । ३२ हुई । नतांशकी भुजज्या १३०८ और कोटिज्या ३१७८ हुई। भुजज्या १३०८ को १२ से गुणा कर गुणनफल १५६९६ में कोटिज्यासे भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ५ अङ्गुल मध्याह्नकालिक छायाका प्रमाण हुआ।

* जैसे स्पष्ट सूर्य ० । ९ । ५१ । १५ हो, उसकी गतिकला ५८ हो तो उसको मेषके स्वदेशोदयमान १३१० असुसे गुणा करके गुणनफल ७५९८० में १८०० से भाग देनेपर लब्धि ४२ असु हुई। उसको अहोरात्रासु (२१६००) में जोड़नेसे २१६४२ असु सूर्यके अहोरात्रका प्रमाण हुआ । इसका पल बनानेसे ३६०७ अर्थात् नाक्षत्र अहोरात्रसे सूर्यका अहोरात्र ७ पल अधिक हुआ । इसी प्रकार सब ग्रहोंके अहोरात्रमान समझे ।

प्राक् पश्चान्नतनाडीभिस्तद्वल्लङ्कोदयासुभिः ॥१४८॥
भानौ क्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तदा भवेत्।
भोग्यासूनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च ॥१४९॥
सपिण्ड्यान्तरलग्नासूनेवं स्यात्कालसाधनम्।

(मध्य-दशम लग्न-साधन—) इसी प्रकार पूर्व 'नतकालासु' से लङ्कोदयद्वारा अंशादि साधन करके उसको सूर्यमें घटानेसे तथा पश्चिम 'नतकालासु' और लङ्कोदयद्वारा (त्रैराशिकसे) अंशादि साधन करके सूर्यमें जोडनेसे मध्य (दशम=आकाशमध्य) लग्न होता है* ॥ १४८½ ॥

(लग्न और स्पष्ट-सूर्यको जानकर इष्टकाल-साधन—) लग्न और सूर्य इन दोनोंमें जो ऊन (पीछे) हो, उसके 'भोग्यांश' द्वारा 'भोग्यासु' और जो अधिक (आगे) हो उसके भुक्तांशद्वारा 'भुक्तासु' साधनकर दोनोंको जोडे तथा उसमे उन दोनों (लग्न और सूर्य) के * बीचमें जो राशियाँ हों, उनके उदयासुओंको जोड़े तो 'इष्टकालासु' होते हैं† ॥ १४९½ ॥

विराह्वर्कभुजांशाश्चेदिन्द्राल्पाः स्याद्ग्रहो विधोः ॥१५०॥
तेंऽशाः शिवघ्नाः शैलाप्ता व्यग्वर्कांशः शरोऽङ्गुलैः।
अर्कं विधुर्विधुं भूभा छादयत्यथ छन्नकम् ॥१५१॥
छाद्यच्छादकमानार्धं शरोनं ग्राह्यवर्जितम्।
तत् खच्छन्नं च मानैक्यार्धं शराढ्यं दशाहतम् ॥१५२॥
छन्नघ्नमस्सान्मूलं तु स्वाङ्गोनं ग्लौवपुर्हृतम्।
स्थित्यर्द्धं घटिकादि स्याद् व्यगुवाह्वंशसंमितैः ॥१५३॥
इष्टैः पलैस्तदूनाढ्यं व्यगावूनेऽर्कपड्गृहात्।
तदन्यथाधिके तस्मिन्नेवं स्पष्टे मुखान्त्यगे ॥१५४॥

---

५ । ५७ । २० को वृषराशिके स्वोदयासु संख्या १५०७ से गुणा करनेपर ३७२० । ८५८९९ । ३०१४० को ६० से सवर्णन करनेपर ८९७५ । १।२० हुआ । इसमें ३० का भाग देनेसे लब्धि २९९ । १० । ३ भोग्यासु हुई । इसको इष्टकालासु ३७२० में घटानेसे ३४२० । ४९ । ५७ हुआ । इसमें वृषके परवती मिथुनके स्वोदयासु १८१५ को घटानेसे शेष १६०५ । ४९ । ५७ हुआ। इसमें कर्कका स्वोदयासु-मान २०५५ नहीं घटता है, इसलिये कर्कराशि अशुद्ध और मिथुन शुद्ध संज्ञक हुआ । शेष असु १६०५ । ४९ । ५७ को ३० से गुणा करनेपर ४८१७४ । ५८ । ३० हुआ । इसमें अशुद्ध कर्कके स्वोदयमान २०५५ का भाग देनेसे लब्ध अंशादि २३ । २६ । ३२ में शुद्धराशि (मिथुन) संख्या ३ जोडनेसे ३ । २३ । २६ । ३२ हुआ । इसमें अयनांश १८ । १०को घटानेसे २ । ५ । १६ । ३२ यह लग्न हुआ ।

लग्न बनानेमें विशेषता यह है कि यदि सूर्योदयसे इष्टकालद्वारा लग्न बनाना हो तो सायन सूर्यके भोग्यांशद्वारा तथा इष्टकालको ६० घडीमें घटाकर शेषकालद्वारा बनाना हो तो सूर्यके भुक्तांशद्वारा ही उपर्युक्त विधिसे लग्न बनाना चाहिये ।

* उदाहरण—यदि पूर्व 'नतकालासु' ३७५० और 'सायनसूर्य' ६ । ५ । ४ । १० है तो भुक्त-प्रकारसे और 'लङ्कोदय द्वारा दशम लग्नका साधन इस प्रकार होगा—सूर्यके 'भुक्तांश' ५ । ४ । १० को तुलाराशिके 'लङ्कोदय' १६७० से गुणा करनेपर गुणनफल ८४६५ हुआ । इसमें ३० का भाग देनेसे भागफल २८२ सूर्यके भुक्तासु हुए । इनको 'नतकालासु' ३७५० में घटानेसे शेष ३४६८ रहा । उसमें सूर्यसे पीछेकी कन्याराशिके लङ्कोदयासु १७९५को घटानेपर शेष १६७३ रहा । इसमें सिंहका लङ्कोदयासु १७९५ नहीं घटता है, अत यह सिंह अशुद्ध संज्ञक हुआ । अब शेष असु १६७३ को ३० से गुणा करके गुणनफल ५०१९० में अशुद्ध उदयासु १७९५ का भाग देनेसे लब्ध अंशादि २७ । ५७ । ३९ हुए । इनको अशुद्ध राशिसंख्या ५ में घटानेपर शेष ४ । २ । २ । २१ सायन दशम लग्न हुआ ।

* यहाँ आगे रहनेवाला अधिक और पीछे रहनेवाला ऊन समझा जाता हे । एवं दोनोंके अन्तर ६ राशिसे अल्पवाला ग्रहण करना चाहिये । यदि सूर्य अधिक रहे तो रात्रि शेष इष्टकाल समझना चाहिये ।

† उदाहरणार्थ प्रश्न—यदि सायनसूर्य १ । २४ । ४५ । ० और सायन लग्न ३ । ५ । २० । ३० है तो इष्टकाल क्या होगा ?

उत्तर—यहाँ लग्न अधिक है, इसलिये लग्नके भुक्तांश ५ । २० । ३० को कर्कराशिके 'स्वदेशोदयासु' २०५५ से गुणा करनेपर गुणनफल १०९७७ हुआ । उसमें ३० का भाग देनेपर ३६५ । ५४=३६६ लग्नके 'भुक्तासु' हुए । तथा सूर्यके भोग्यांश ५ । १५ । ० को वृषराशिके 'स्वदेशोदयासु' १५०७ से गुणा कर गुणनफल ७९११ में ३० से भाग देनेपर लब्ध सूर्यके भोग्यासु २६४ हुए । लग्नके 'भुक्तासु' ३६६ और सूर्यके 'भोग्यासु' २६४ के योग ६३० में मध्यकी राशि मिथुनके 'स्वदेशोदयासु' १८१५ जोडनेसे २४४५ 'इष्टकालासु' हुए । इनमें ६ का भाग देनेपर लब्धि पल ४०७ । ३० हुए । इनमे ६० का भाग देनेपर लब्ध घट्यादि ६ । ४७ । ३० सूर्योदयसे इष्टकाल हुआ ।

प्राक् पश्चान्नतनाडीभिस्तद्वल्लङ्कोदयासुभिः ॥१४८॥
भानौ क्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तदा भवेत्।
भोग्यासूनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च ॥१४९॥
सपिण्ड्यान्तरलग्नासूनेवं स्यात्कालसाधनम्।

(मध्य-दशम लग्न-साधन—) इसी प्रकार पूर्व 'नतकालासु' से लङ्कोदयद्वारा अंशादि साधन करके उसको सूर्यमें घटानेसे तथा पश्चिम 'नतकालासु' और लङ्कोदयद्वारा (त्रैराशिकसे) अंशादि साधन करके सूर्यमें जोडनेसे मध्य (दशम=आकाशमध्य) लग्न होता है* ॥ १४८½ ॥

(लग्न और स्पष्ट-सूर्यको जानकर इष्टकाल-साधन—) लग्न और सूर्य इन दोनोंमें जो ऊन (पीछे) हो, उसके 'भोग्यांश' द्वारा 'भोग्यासु' और जो अधिक (आगे) हो उसके भुक्तांशद्वारा 'भुक्तासु' साधनकर दोनोंको जोडे तथा उसमे उन दोनों (लग्न और सूर्य) के * बीचमें जो राशियाँ हों, उनके उदयासुओंको जोड़े तो 'इष्टकालासु' होते हैं† ॥ १४९½ ॥

विराह्वर्कभुजांशाश्चेदिन्द्राल्पाः स्याद्ग्रहो विधोः ॥१५०॥
तेंऽशाः शिवघ्नाः शैलाप्ता व्यग्वर्कांशाः शरोऽङ्गुलैः।
अर्कं विधुर्विधुं भूभा छादयत्यथ छन्नकम् ॥१५१॥
छाद्यच्छादकमानार्धं शरोनं ग्राह्यवर्जितम्।
तत् खच्छन्नं च मानैक्यार्धं शराढ्यं दशाहतम् ॥१५२॥
छन्नघ्नमस्मान्मूलं तु स्वाङ्गोनं ग्लौवपुर्हृतम्।
स्थित्यर्द्धं घटिकादि स्याद् व्यगुवार्ह्वंशसंमितैः ॥१५३॥
इष्टैः पलैस्तदूनाढ्यं व्यगावूनेऽर्कषड्गृहात्।
तदन्यथाधिके तस्मिन्नेवं स्पष्टे मुखान्त्यगे ॥१५४॥

---

५ । ५७ । २० को वृषराशिके स्वोदयासु संख्या १५०७ से गुणा करनेपर ३७२० । ८५८९९ । ३०१४० को ६० से सवर्णन करनेपर ८९७५ । १ । २० हुआ । इसमें ३० का भाग देनेसे लब्धि २९९ । १० । ३ भोग्यासु हुई । इसको इष्टकालासु ३७२० में घटानेसे ३४२० । ४९ । ५७ हुआ । इसमें वृषके परवती मिथुनके स्वोदयासु १८१५ को घटानेसे शेष १६०५ । ४९ । ५७ हुआ। इसमें कर्कका स्वोदयासु-मान २०५५ नहीं घटता है, इसलिये कर्कराशि अशुद्ध और मिथुन शुद्ध संज्ञक हुआ । शेष असु १६०५ । ४९ । ५७ को ३० से गुणा करनेपर ४८१७४ । ५८ । ३० हुआ । इसमें अशुद्ध कर्कके स्वोदयमान २०५५ का भाग देनेसे लब्ध अंशादि २३ । २६ । ३२ में शुद्धराशि (मिथुन) सख्या ३ जोडनेसे ३ । २३ । २६ । ३२ हुआ । इसमें अयनांश १८ । १०को घटानेसे २ । ५ । १६ । ३२ यह लग्न हुआ ।

लग्न बनानेमें विशेषता यह है कि यदि सूर्योदयसे इष्टकालद्वारा लग्न बनाना हो तो सायन सूर्यके भोग्यांशद्वारा तथा इष्टकालको ६० घडीमें घटाकर शेषकालद्वारा बनाना हो तो सूर्यके भुक्तांशद्वारा ही उपर्युक्त विधिसे लग्न बनाना चाहिये ।

* उदाहरण—यदि पूर्व 'नतकालासु' ३७५० और 'सायनसूर्य' ६ । ५ । ४ । १० है तो भुक्त-प्रकारसे और 'लङ्कोदय द्वारा दशम लग्नका साधन इस प्रकार होगा—सूर्यके 'भुक्तांश' ५ । ४ । १० को तुलाराशिके 'लङ्कोदय' १६७० से गुणा करनेपर गुणनफल ८४६५ हुआ । इसमें ३० का भाग देनेसे भागफल २८२ सूर्यके भुक्तासु हुए । इनको 'नतकालासु' ३७५० में घटानेसे शेष ३४६८ रहा । उनमें सूर्यसे पीछेको कन्यादिके लङ्कोदयासु १७९५को घटानेपर शेष १६७३ रहा । इसमें सिंहका लङ्कोदयासु १७९५ नहीं घटता है, अत यह सिंह अशुद्ध संज्ञक हुआ । अब शेष असु १६७३ को ३० से गुणा करके गुणनफल ५०१९० में अशुद्ध उदयासु १७९५ का भाग देनेसे लब्ध अंशादि २७ । ५७ । ३९ हुए । इनको अशुद्ध राशिसंख्या ५ में घटानेपर शेष ४ । २ । २ । २१ सायन दशम लग्न हुआ ।

* यहाँ आगे रहनेवाला अधिक और पीछे रहनेवाला ऊन समझा जाता है । एवं दोनोंके अन्तर ६ राशिसे अल्पवाला ग्रहण करना चाहिये । यदि सूर्य अधिक रहे तो रात्रि शेष इष्टकाल समझना चाहिये ।

† उदाहरणार्थ प्रश्न—यदि सायनसूर्य १ । २४ । ४५ । ० और सायन लग्न ३ । ५ । २० । ३० है तो इष्टकाल क्या होगा ?

उत्तर—यहाँ लग्न अधिक है, इसलिये लग्नके भुक्तांश ५ । २० । ३० को कर्कराशिके 'स्वदेशोदयासु' २०५५ से गुणा करनेपर गुणनफल १०९७७ हुआ । उसमें ३० का भाग देनेपर ३६५ । ५४=३६६ लग्नके 'भुक्तासु' हुए । तथा सूर्यके भोग्यांश ५ । १५ । ० को वृषराशिके 'स्वदेशोदयासु' १५०७ से गुणा कर गुणनफल ७९११ में ३० से भाग देनेपर लब्ध सूर्यके भोग्यासु २६४ हुए । लग्नके 'भुक्तासु' ३६६ और सूर्यके 'भोग्यासु' २६४ के योग ६३० में मध्यकी राशि मिथुनके 'स्वदेशोदयासु' १८१५ जोडनेसे २४४५ 'इष्टकालासु' हुए । इनमें ६ का भाग देनेपर लब्धि पल ४०७ । ३० हुए । इनमे ६० का भाग देनेपर लब्ध घट्यादि ६ । ४७ । ३० सूर्योदयसे इष्टकाल हुआ ।

योग करके उसके आधेमें 'शर' घटानेसे 'छन्न' (ग्रास) मान होता है । यदि ग्रासमान ग्राह्य (छाद्य) से अधिक हो तो उसमें छाद्यको घटाकर जो शेष बचे, उतना खच्छन्न (खग्रास) समझना चाहिये* ।

आवृत होनेपर वह अदृश्य होता है । इस प्रकार चन्द्रविम्बसे जब सूर्यका सम्पूर्ण या न्यूनाधिक भाग अदृश्य होता है तो क्रमशः उसे 'सर्वग्रास' या 'खण्ड सूर्यग्रहण' कहते हैं ।

खण्ड सूर्यग्रहणका दृश्य
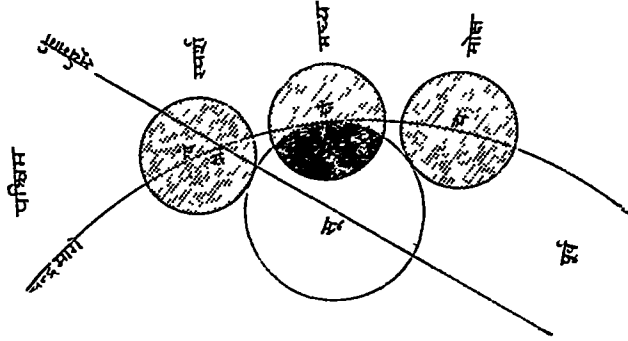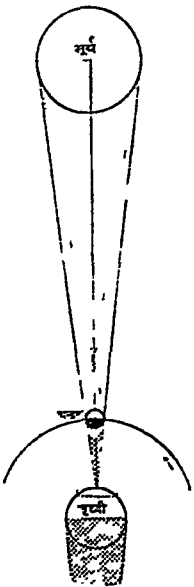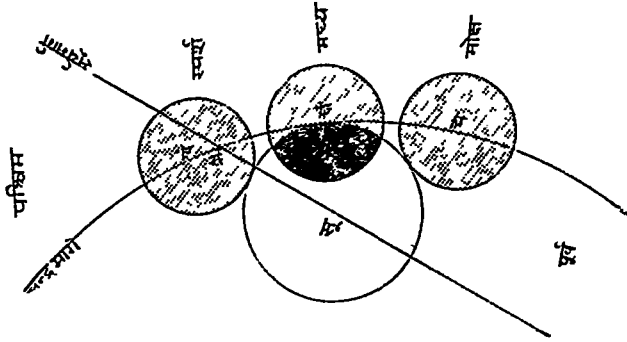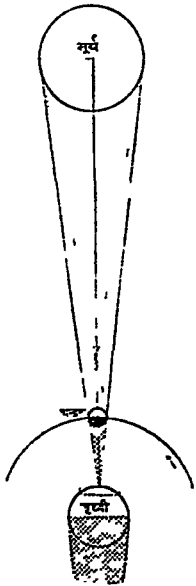
सूर्यग्रहण

अमावास्यामें चन्द्रमाकी छाया पृथ्वीकी ओर होती है, उस छायामें जो भूभाग पड़ता है, उसके लिये सम्पूर्ण सूर्य-विम्ब अदृश्य हो जाता है, अतः वहाँ सर्वग्रास सूर्यग्रहण होता है; अन्यत्र खण्ड-ग्रास । चित्र देखिये ।

पुराणोंमें जो सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणमें राहु कारण बतलाया गया है, वह इस अभिप्रायसे है—अमृत-मन्थनके समय जब राहुका सिर काटकर अलग कर दिया गया, उस समय अमृत पीनेके कारण उसका मरण नहीं हुआ । वह एकसे दो हो गया । ब्रह्माजीने उन दोनोंमेंसे एक (राहु) को चन्द्रमाकी छायामें और दूसरे (केतु)को पृथ्वीकी छायामें रहनेके लिये स्थान दिया । अतः ग्रहण-समयमें राहु और केतु सूर्य और चन्द्रमाके समीप ही रहता है । अतः छायारूप राहु-केतुके द्वारा ही ग्रहणका वर्णन किया गया है ।

* मान लीजिये—पूर्णिमान्तकाल घट्यादि ४० । ४८ और उस समयका स्पष्ट सूर्य राश्यादि ८ । ० । १२ । ६, चन्द्रमा ७ । ० । १२ । १ तथा राहु ७ । २८ । २३ । १८ है तो स्पष्ट सूर्य ८ । ० । १२ । ६ में राहु ७ । २८ । २३ । १८ को घटानेसे ० । १ । ४८ । ४८ व्यगु हुआ, यह ३ राशिसे कम है, अतः इसका भुजांश इतना ही अर्थात् १ । ४८ । ४८ हुआ । यह १४ अंशसे कम है, इसलिये ग्रहणकी सम्भावना निश्चित हुई । व्यगुके भुजांश १ । ४८ । ४८ को ११ से गुणा करके गुणनफल १९ । ५६ । ४८ में ७ का भाग देनेपर भागफल २ । ५० 'शर' हुआ । यह व्यगुके उत्तर गोलमें होनेके कारण उत्तर दिशा-का हुआ ।

यहाँ श्रीसनन्दन मुनिने चन्द्रादिके मध्यम विम्ब प्रसिद्ध होनेसे स्पष्ट विम्बका साधन-प्रकार नहीं कहा है । अतः सरलतापूर्वक समझनेके लिये चन्द्र, रवि और भूभा (पृथ्वीकी छाया)के विम्ब-साधनका प्रकार यहाँ दिखलाया जाता है ।

योग करके उसके आधेमें 'शर' घटानेसे 'छन्न' (ग्रास) मान होता है । यदि ग्रासमान ग्राह्य (छाद्य) से अधिक हो तो उसमें छाद्यको घटाकर जो शेष बचे, उतना खच्छन्न (खग्रास) समझना चाहिये* ।

आवृत होनेपर वह अदृश्य होता है। इस प्रकार चन्द्रबिम्बसे जब सूर्यका सम्पूर्ण या न्यूनाधिक भाग अदृश्य होता है तो क्रमशः उसे 'सर्वग्रास' या 'खण्ड सूर्यग्रहण' कहते हैं।

खण्ड सूर्यग्रहणका दृश्य

सूर्यग्रहण

अमावास्यामें चन्द्रमाकी छाया पृथ्वीकी ओर होती है, उस छायामें जो भूभाग पड़ता है, उसके लिये सम्पूर्ण सूर्य-बिम्ब अदृश्य हो जाता है, अतः वहाँ सर्वग्रास सूर्यग्रहण होता है; अन्यत्र खण्ड-ग्रास। चित्र देखिये।

पुराणोंमें जो सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणमें राहु कारण बतलाया गया है, वह इस अभिप्रायसे है—अमृत-मन्थनके समय जब राहुका सिर काटकर अलग कर दिया गया, उस समय अमृत पीनेके कारण उसका मरण नहीं हुआ। वह एकसे दो हो गया। ब्रह्माजीने उन दोनोंमेंसे एक (राहु) को चन्द्रमाकी छायामें और दूसरे (केतु)को पृथ्वीकी छायामें रहनेके लिये स्थान दिया। अतः ग्रहण-समयमें राहु और केतु सूर्य और चन्द्रमाके समीप ही रहता है। अतः छायारूप राहु-केतुके द्वारा ही ग्रहणका वर्णन किया गया है।

* मान लीजिये—पूर्णिमान्तकाल घट्यादि ४० । ४८ और उस समयका स्पष्ट सूर्य राश्यादि ८ । ० । १२ । ६, चन्द्रमा २ । ० । १२ । १ तथा राहु ७ । २८ । २३ । १८ है तो स्पष्ट सूर्य ८ । ० । १२ । ६ में राहु ७ । २८ । २३ । १८ को घटानेसे ० । १ । ४८ । ४८ व्यगु हुआ, यह ३ राशिसे कम है, अतः इसका भुजांश इतना ही अर्थात् १ । ४८ । ४८ हुआ। यह १४ अंशसे कम है, इसलिये ग्रहणकी सम्भावना निश्चित हुई। व्यगुके भुजांश १ । ४८ । ४८ को ११ से गुणा करके गुणनफल १९ । ५६ । ४८ में ७ का भाग देनेपर भागफल २ । ५० 'शर' हुआ। यह व्यगुके उत्तर गोलमें होनेके कारण उत्तर दिशाका हुआ।

यहाँ श्रीसनन्दन मुनिने चन्द्रादिके मध्यम बिम्ब प्रसिद्ध होनेसे स्पष्ट बिम्बका साधन-प्रकार नहीं कहा है। अतः सरलतापूर्वक समझनेके लिये चन्द्र, रवि और भूभा (पृथ्वीकी छाया)के बिम्ब-साधनका प्रकार यहाँ दिखलाया जाता है।

(सूर्यग्रहणमें विशेष लम्बन-घटी-साधन—)
पर्वान्तकालमें ग्रहणका मध्य होता है। सूर्यग्रहणमें दर्शान्त कालिक लग्न बनाकर उसमें तीन राशि घटानेसे 'वित्रिभ' या 'त्रिभोन' लग्न कहलाता है। उसको पृथक् रखकर उसकी क्रान्ति और अक्षांशके संस्कार (एक दिशामें योग, भिन्न दिशामें अन्तर) करनेसे 'नतांश' होता है। उसका २२ वाँ भाग करके वर्ग करना चाहिये। यदि २ से कम हो तो उसीमें, यदि २ से अधिक हो जाय तो २ घटाकर शेषके आधेको उसी (वर्ग) में जोडकर पुनः १२ में जोड़नेसे 'हार' होता है। 'त्रिभोन' लग्न और सूर्यके अन्तरांशके दशमांशको १४ में घटाकर शेषको उसी दशमांशसे गुणा करे। उसमें पूर्वसाधित हारसे भाग देनेपर लब्धितुल्य घट्यादि लम्बन होता है। यह (लम्बन) यदि वित्रिभ सूर्यसे अधिक हो तो धन, अल्प हो तो ऋण होता है। अर्थात् साधित दर्शान्तकालमें इस लम्बनको जोड़ने-घटानेसे पृष्ठस्थानीय दर्शान्तकाल होता है॥ १५५—१५७॥

घट्यादि लम्बनको १३ से गुणा करनेपर गुणनफल कलादि होता है। उसको व्यग्वर्कमें जोड़ या घटाकर 'शर' बनावे तो (पृष्ठीय दर्शान्तकालिक) शर (स्पष्ट) होता है। तथा घट्यादि लम्बनको ६ से गुणा करके गुणनफलको अंशादि मानकर वित्रिभमें जोड़ या घटाकर नतांश-साधन करे। नतांशके दशमांशको १८ में घटाकर शेषको उसी दशमांशसे गुणा करे; गुणनफलको ६ अंश १८ कलामें घटाकर जो शेष बचे, उससे गुणनफलमें ही भाग देनेसे लब्धि अङ्गुलादि नतांशकी दिशाकी ही नति होती है। इस नति और पूर्व साधित शर दोनोंके संस्कार (भिन्न दिशा हो तो अन्तर, एक दिशा हो तो योग) से स्पष्ट शर होता है। सूर्य-ग्रहणमें उसी शरसे ग्रास और स्थित्यर्ध बनावे। स्थित्यर्धको ६ से गुणा करके अंशादि गुणनफलको वित्रिभमें घटावे और दूसरे स्थानमे जोड़े। इन दोनों परसे पूर्वविधिसे पृथक् लम्बनसाधन करके क्रमशः पूर्वविधिसे साधित स्पर्श और मोक्ष-कालमें संस्कार करनेसे स्पष्ट पृष्ठस्थानीय स्पर्श और मोक्षकाल होते हैं*॥ १५८—१६२॥

लब्ध ग्रहणविंशोपक बल ३०। १३ हुआ। जब विंशोपक २० होता है तो ग्रहणका पुराणोक्त साधारण फल होता है। यदि विंशोपक २० से कम हो तो कथित फल बलके अनुसार अल्प और २० से अधिक हो तो कथित फल अधिक होता है।

* उदाहरण—जहाँ दक्षिण अक्षांश २५। २६। ४२, स्पष्ट दर्शान्तकाल घडी-पल १३। ४, दर्शान्तकालिक स्पष्ट सूर्य ८। ५। २६। २५, स्पष्ट चन्द्रमा ८। ५। २६। २०, राहु २। ११। ४१। १८, स्पष्ट सूर्यगति ६१। १५ और स्पष्ट चन्द्रगति ७२६। ३० है तो उक्त घटी-पलको इष्ट मानकर लग्न बनानेसे ११। २। ४६। १७ लग्न हुआ। इसमें ३ राशि घटानेपर त्रिभोन लग्न (वित्रिभ) ८। २। ४६। १७ हुआ। पूर्वोक्त रीतिके अनुसार साधन करनेपर इसकी क्रान्ति २३। ३८। १० हुई, यह वित्रिभके दक्षिण गोलमें होनेके कारण दक्षिण दिशाकी हुई। अतः इसको दक्षिण दिशाके अक्षांश २५। २६। ४२ में जोडनेपर ४९। ४। ५२ नतांश हुए। उक्त नतांशके २२ वें भाग २। १३। ५१ का वर्ग करनेपर ४। ५८ हुआ, यह २ से अधिक है, इसलिये इसमें २ को घटानेपर शेष २। ५८ हुआ। इसके आधे १। २९ को उसी वर्ग ४। ५८ में जोड़नेसे ६। २७ हुआ। इसे १२ में जोड़नेपर १८। २७ 'हार' हुआ। तथा वित्रिभ लग्न ८। २। ४६। १७ और सूर्य ८। ५। २६। २५ के अन्तरांश २। ४०। ८ का दशमांश ०। १६ हुआ। इसको १४ में घटानेपर शेष १३। ४४ रहा। इसको उसी दशमांश ०। १६ से गुणा करनेपर गुणनफल ३। ३९ हुआ। इसमें हार १८। २७ का भाग देनेपर भागफल ०। ११ हुआ; यह (ग्यारह पल) लम्बन हुआ। सूर्यसे वित्रिभ अल्प होनेके कारण दर्शान्त घटी १३। ४ में इस लम्बन ११ पलको घटानेसे पृष्ठस्थानीय घट्यादि दर्शान्तकाल १२। ५३ हुआ।

अब घट्यादि ०। ११ लम्बनको १३ से गुणा किया तो गुणनफल २। २३ कलादि हुआ। उक्त लम्बनके ऋण होनेके कारण सूर्य ८। ५। २६। २५ में राहु २। ११। ४१। १८ का अन्तर करनेसे व्यग्वर्क ५। २३। ४५। ७ हुआ। इसमें २। २३ कलादिको घटानेपर ५। २३। ४२। ४४ पृष्ठ-स्थानीय व्यग्वर्क हुआ। इसको ६ राशिमें घटानेपर शेष ०। ६। १७। १६ यही भुजांश हुआ। इसको पूर्वोक्त शर-साधन-विधिके अनुसार ११ से गुणा करके ७ का भाग देनेपर लब्ध अङ्गुलादि ९। ५२ शर हुआ। यह व्यगुके उत्तर गोलमें (६ राशिसे कम) होनेके कारण उत्तर दिशाका हुआ।

फिर लम्बन ०। ११ को ६ से गुणा करनेपर गुणनफल अंशादि १। ६ को (ऋणलम्बन होनेके कारण) वित्रिभ लग्न ८। २। ४६। १७ में घटानेपर ८। १। ४०। १७ हुआ। इससे क्रान्ति-साधन-विधिके अनुसार दक्षिण दिशाकी क्रान्ति २३। ३४।

अर्का घना विश्व ईशा नवपञ्चदशांशिकाः।
कालांशास्तैरूनयुक्ते रवौ ह्यस्तोदयौ विधोः॥१६३॥

अर्का घना विश्व ईशा नवपञ्चदशांशकाः।
कालांशास्तैरूनयुक्ते रवौ ह्यस्तोदयौ विधोः॥१६३॥

(सूर्यग्रहणमें विशेष लम्बन-घटी-साधन—)
पर्वान्तकालमें ग्रहणका मध्य होता है। सूर्यग्रहणमें दर्शान्त कालिक लग्न बनाकर उसमें तीन राशि घटानेसे 'वित्रिभ' या 'त्रिभोन' लग्न कहलाता है। उसको पृथक् रखकर उसकी क्रान्ति और अक्षांशके संस्कार (एक दिशामें योग, भिन्न दिशामें अन्तर) करनेसे 'नतांश' होता है। उसका २२ वाँ भाग करके वर्ग करना चाहिये। यदि २ से कम हो तो उसीमें, यदि २ से अधिक हो जाय तो २ घटाकर शेषके आधेको उसी (वर्ग) में जोडकर पुनः १२ में जोड़नेसे 'हार' होता है। 'त्रिभोन' लग्न और सूर्यके अन्तरांशके दशमांशको १४ में घटाकर शेषको उसी दशमांशसे गुणा करे। उसमें पूर्वसाधित हारसे भाग देनेपर लब्धितुल्य घट्यादि लम्बन होता है। यह (लम्बन) यदि वित्रिभ सूर्यसे अधिक हो तो धन, अल्प हो तो ऋण होता है। अर्थात् साधित दर्शान्तकालमें इस लम्बनको जोड़ने-घटानेसे पृष्ठस्थानीय दर्शान्तकाल होता है॥ १५५—१५७॥

घट्यादि लम्बनको १३ से गुणा करनेपर गुणनफल कलादि होता है। उसको व्यग्वर्कमें जोड़ या घटाकर 'शर' बनावे तो (पृष्ठीय दर्शान्तकालिक) शर (स्पष्ट) होता है। तथा घट्यादि लम्बनको ६ से गुणा करके गुणनफलको अंशादि मानकर वित्रिभमें जोड़ या घटाकर नतांश-साधन करे। नतांशके दशमांशको १८ में घटाकर शेषको उसी दशमांशसे गुणा करे; गुणनफलको ६ अंश १८ कलामें घटाकर जो शेष बचे, उससे गुणनफलमें ही भाग देनेसे लब्धि अङ्गुलादि नतांशकी दिशाकी ही नति होती है। इस नति और पूर्व साधित शर दोनोंके संस्कार (भिन्न दिशा हो तो अन्तर, एक दिशा हो तो योग) से स्पष्ट शर होता है। सूर्य-ग्रहणमें उसी शरसे ग्रास और स्थित्यर्ध बनावे। स्थित्यर्धको ६ से गुणा करके अंशादि गुणनफलको वित्रिभमें घटावे और दूसरे स्थानमे जोड़े। इन दोनों परसे पूर्वविधिसे पृथक् लम्बनसाधन करके क्रमशः पूर्वविधिसे साधित स्पर्श और मोक्ष-कालमें संस्कार करनेसे स्पष्ट पृष्ठस्थानीय स्पर्श और मोक्षकाल होते हैं* ॥ १५८—१६२॥

लब्ध ग्रहणविंशोपक बल ३० । १३ हुआ । जब विंशोपक २० होता है तो ग्रहणका पुराणोक्त साधारण फल होता है। यदि विंशोपक २० से कम हो तो कथित फल बलके अनुसार अल्प और २० से अधिक हो तो कथित फल अधिक होता है।

* उदाहरण—जहाँ दक्षिण अक्षांश २५ । २६ । ४२, स्पष्ट दर्शान्तकाल घडी-पल १३ । ४, दर्शान्तकालिक स्पष्ट सूर्य ८ । ५ । २६ । २५, स्पष्ट चन्द्रमा ८ । ५ । २६ । २०, राहु २ । ११ । ४१ । १८, स्पष्ट सूर्यगति ६१ । १५ और स्पष्ट चन्द्रगति ७२६ । ३० है तो उक्त घटी-पलको इष्ट मानकर लग्न बनानेसे ११ । २ । ४६ । १७ लग्न हुआ। इसमें ३ राशि घटानेपर त्रिभोन लग्न (वित्रिभ) ८ । २ । ४६ । १७ हुआ। पूर्वोक्त रीतिके अनुसार साधन करनेपर इसकी क्रान्ति २३ । ३८ । १० हुई, यह वित्रिभके दक्षिण गोलमें होनेके कारण दक्षिण दिशाकी हुई। अतः इसको दक्षिण दिशाके अक्षांश २५ । २६ । ४२ में जोडनेपर ४९ । ४ । ५२ नतांश हुए। उक्त नतांशके २२ वें भाग २ । १३ । ५१ का वर्ग करनेपर ४ । ५८ हुआ, यह २ से अधिक है, इसलिये इसमें २ को घटानेपर शेष २ । ५८ हुआ। इसके आधे १ । २९ को उसी वर्ग ४ । ५८ में जोड़नेसे ६ । २७ हुआ। इसे १२ में जोड़नेपर १८ । २७ 'हार' हुआ। तथा वित्रिभ लग्न ८ । २ । ४६ । १७ और सूर्य ८ । ५ । २६ । २५ के अन्तरांश २ । ४० । ८ का दशमांश ० । १६ हुआ। इसको १४ में घटानेपर शेष १३ । ४४ रहा। इसको उसी दशमांश ० । १६ से गुणा करनेपर गुणनफल ३ । ३९ हुआ। इसमें हार १८ । २७ का भाग देनेपर भागफल ० । ११ हुआ; यह (ग्यारह पल) लम्बन हुआ। सूर्यसे वित्रिभ अल्प होनेके कारण दर्शान्त घटी १३ । ४ में इस लम्बन ११ पलको घटानेसे पृष्ठस्थानीय घट्यादि दर्शान्तकाल १२ । ५३ हुआ।

अब घट्यादि ० । ११ लम्बनको १३ से गुणा किया तो गुणनफल २ । २३ कलादि हुआ। उक्त लम्बनके ऋण होनेके कारण सूर्य ८ । ५ । २६ । २५ में राहु २ । ११ । ४१ । १८ का अन्तर करनेसे व्यग्वर्क ५ । २३ । ४५ । ७ हुआ। इसमें २ । २३ कलादिको घटानेपर ५ । २३ । ४२ । ४४ पृष्ठ-स्थानीय व्यग्वर्क हुआ। इसको ६ राशिमें घटानेपर शेष ० । ६ । १७ । १६ यही भुजांश हुआ। इसको पूर्वोक्त शर-साधन-विधिके अनुसार ११ से गुणा करके ७ का भाग देनेपर लब्ध अङ्गुलादि ९ । ५२ शर हुआ। यह व्यगुके उत्तर गोलमें (६ राशिसे कम) होनेके कारण उत्तर दिशाका हुआ।

फिर लम्बन ० । ११ को ६ से गुणा करनेपर गुणनफल अंशादि १ । ६ को (ऋणलम्बन होनेके कारण) वित्रिभ लग्न ८ । २ । ४६ । १७ में घटानेपर ८ । १ । ४० । १७ हुआ। इससे क्रान्ति-साधन-विधिके अनुसार दक्षिण दिशाकी क्रान्ति २३ । ३४ ।

संस्कारदिक्कं वलनमङ्गुलाद्यं प्रजायते ।
स्वेष्वंशोनाः सितं तिथ्यो वलनाशोन्नतं विधोः ॥१६७॥
शृङ्गमन्यन्नतं वाच्यं वलनाङ्गुललेखनात् ।

(चन्द्रशृङ्गोन्नति-ज्ञान—) सूर्यास्त-समयमें सावयव गत और एष्य तिथिका साधन करे । उस सावयव तिथिको १६ से गुणा करके उसमें तिथिके वर्गको घटाकर शेषको स्वदेशीय पलभासे गुणा करे । गुणनफलमें १५ से भाग देकर लब्धि (फल) की दिशा उत्तर समझे । उसमें सूर्यकी क्रान्तिका यथोक्त संस्कार (एक दिशामे योग, भिन्न दिशामे अन्तर) करे । तथा चन्द्रमाके शर और क्रान्तिका विपरीत संस्कार करके जो फल हो उसमें द्विगुणित तिथिसे भाग देनेपर जितनी लब्धि हो, उतना अङ्गुल सस्कार-दिशाका वलन होता है । चन्द्रमासे जिस दिशामें सूर्य रहता है, वही संस्कारकी दिशा समझी जाती है । तिथिमें अपना पञ्चमाश घटानेसे शुक्ल (चन्द्रके श्वेत भाग) का अङ्गुलादि मान होता है । वलनकी जो दिशा होती है, उस दिशाका चन्द्रशृङ्ग उन्नत और अन्य दिशामें नत होता है । तदनुसार परिलेख करना चाहिये *॥ १६५—१६७½ ॥

पञ्चत्र्यङ्गाङ्गविशिखाः कर्णशेषहताः पृथक् ॥१६८॥
प्रकृत्यार्काङ्गसिद्धाग्निभक्ता लब्धोनसंयुताः ।
त्रिज्याधिकोने श्रवणे वपूंषि त्रिहृताः कुजात् ॥१६९॥
ऋज्वोरनृज्वोर्विवरं गत्यन्तरविभाजितम् ।
वक्रर्ज्वोर्गतियोगाप्तं गम्येऽतीते दिनादिकम् ॥१७०॥
स्वनत्या संस्कृतौ स्वेषू दिक्साम्येऽन्येऽन्तरं युतिः ।
याम्योदक्खेटविवरं मानैक्यार्धाल्पकं यदा ॥१७१॥
तदा भेदो लम्बनाद्यं स्फुटार्थं सूर्यपर्ववत् ।

(ग्रहयुति-ज्ञानार्थ मङ्गलादि पाँच ग्रहोंके विम्ब-साधन—) मङ्गलादिके ५, ६, ७, ९, ५ इन मध्यम-विम्बमानोंको क्रमसे मङ्गलादि ग्रहोंके कर्णशेष (त्रिज्या और अपने-अपने शीघ्र कर्णके अन्तर) से गुणा करके गुणनफलको २ स्थानोमे रक्खे । एक स्थानमें क्रमसे मङ्गलादि ग्रहके २१, १२, ६, २४ और ३ का भाग देकर लब्धिको द्वितीय स्थानमें स्थित गुणनफलमें, यदि कर्ण त्रिज्यासे * अधिक हो तो घटावे, यदि त्रिज्यासे अल्प हो तो जोड़े, फिर उसमें ३ से भाग देनेपर क्रमशः मङ्गलादि ग्रहोंके विम्ब-प्रमाण हाते हैं ।†

(ग्रहोंकी युतिके गत-गम्य दिन-साधन—) जिन दो ग्रहोंके युतिकालका ज्ञान करना हो, वे दोनों मार्गी हों, अथवा दोनों वक्री हों तो दोनों ग्रहोंकी अन्तर-कलामें दोनोंकी गत्यन्तर-कलासे भाग देना चाहिये । यदि एक वक्र और एक मार्गी हो तो दोनोकी गति-योगकलासे भाग देना चाहिये । फिर जो लब्धि आवे, वह ग्रहयुतिके गत या गम्य दिनादि है ।‡

---

* उदाहरण—शुक्लपक्षकी द्वितीयामें सायंकालिक चन्द्रमाकी शृङ्गोन्नति जाननेके लिये मान लीजिये उस समयकी सावयव (घड़ीसहित) तिथि २ । ३०, सूर्यकी उत्तरक्रान्ति १०, चन्द्रमाका उत्तर शर ५ और चन्द्रमाकी उत्तरक्रान्ति ६ हो तो कथित रीतिसे सावयव तिथि २ । ३० को १६ से गुणा कर गुणनफल ४० में सावयव तिथिके वर्ग ६ । १५ को घटानेसे शेष ३३ । ४५ रहा, इसको पलभा ६ से गुणा कर गुणनफल २०२ । ३० में १५ से भाग देनेपर लब्धि १३ । ३० यह उत्तर दिशाका फल हुआ । इसमें सूर्यकी उत्तरक्रान्ति १० (एक दिशा होनेके कारण) जोडनेसे २३ । ३० हुआ । तथा (एक दिशा होनेके कारण) चन्द्रमाके उत्तर शर ५ और उत्तरक्रान्ति ६ इन दोनोंके योग ११ को उत्तर दिशाके फल १३ । ३० में विपरीत सस्कार करने (घटाने) से शेष २ । ३० रहा । इसमें द्विगुणित तिथि २ । ३० ×२=५ से भाग देनेपर लब्ध अङ्गलादि ० । ३० स्पष्ट वलन हुआ; यह चन्द्रमासे सूर्यकी दक्षिण दिशामें होनेके कारण दक्षिण दिशाका हुआ । एव सावयव तिथि २ । ३० में अपना पञ्चमाश ० । ३० घटानेसे २ । ० अङ्गुलादि शुक्लमान हुआ । इस प्रकार उस दिन दक्षिण दिशाका चन्द्रशृङ्ग उन्नत हुआ ।

* यहाँ त्रिज्याका प्रमाण ११ ग्रहण करना चाहिये ।

† जैसे—यदि मङ्गलका शीघ्रकर्ण १३ है तो त्रिज्या ११ और कर्ण १३ के अन्तर २ से मङ्गलके मध्यम विम्बमान ५ को गुणा करनेपर १० हुआ, इसमें २१ का भाग देकर भागफल ० । २९ को (त्रिज्यासे कर्णके अधिक होनेके कारण) गुणनफल १० में घटानेपर शेष ९ । ३१ में ३ का भाग दिया तो फल अङ्गुलादि ३ । १० मङ्गलका स्पष्ट बिम्बमान हुआ । इसी प्रकार अन्य ग्रहोंका भी जान लेना चाहिये ।

‡ जैसे—मङ्गल और शुक्रका युतिसमय जानना है ता कल्पना कीजिये कि उस दिन स्पष्ट मङ्गल ७ । १५ । २० । २५, मङ्गलकी स्पष्ट गति ४० । १२, स्पष्ट शुक्र ७ । १० । ३० । २५ तथा शुक्रकी स्पष्ट गति ७० । १२ है तो यहाँ शीघ्र (अधिक)

संस्कारदिक्कं वलनमङ्गुलाद्यं प्रजायते ।
स्वेष्वंशोनाः सितं तिथ्यो वलनाशोन्नतं विधोः ॥१६७॥
शृङ्गमन्यन्नतं वाच्यं वलनाङ्गुललेखनात् ।

(चन्द्रशृङ्गोन्नति-ज्ञान—) सूर्यास्त-समयमें सावयव गत और एष्य तिथिका साधन करे । उस सावयव तिथिको १६ से गुणा करके उसमें तिथिके वर्गको घटाकर शेषको स्वदेशीय पलभासे गुणा करे । गुणनफलमें १५ से भाग देकर लब्धि (फल) की दिशा उत्तर समझे । उसमें सूर्यकी क्रान्तिका यथोक्त संस्कार (एक दिशामे योग, भिन्न दिशामे अन्तर) करे । तथा चन्द्रमाके शर और क्रान्तिका विपरीत संस्कार करके जो फल हो उसमें द्विगुणित तिथिसे भाग देनेपर जितनी लब्धि हो, उतना अङ्गुल सस्कार-दिशाका वलन होता है । चन्द्रमासे जिस दिशामें सूर्य रहता है, वही संस्कारकी दिशा समझी जाती है । तिथिमें अपना पञ्चमाश घटानेसे शुक्ल (चन्द्रके श्वेत भाग) का अङ्गुलादि मान होता है । वलनकी जो दिशा होती है, उस दिशाका चन्द्रशृङ्ग उन्नत और अन्य दिशामें नत होता है । तदनुसार परिलेख करना चाहिये *॥ १६५—१६७½ ॥

पञ्चत्र्यङ्गाङ्गत्रिशिखाः कर्णशेषहताः पृथक् ॥१६८॥
प्रकृत्यार्काङ्कसिद्धाग्निभक्ता लब्धोनसंयुताः ।
त्रिज्याधिकोने श्रवणे वपूंषि त्रिहृताः कुजात् ॥१६९॥
ऋज्वोरनृज्वोर्विवरं गत्यन्तरविभाजितम् ।
वक्रर्ज्वोर्गतियोगाप्तं गम्येऽतीते दिनादिकम् ॥१७०॥
स्वनत्या संस्कृतौ स्वेषू दिक्साम्येऽन्येऽन्तरं युतिः ।
याम्योदक्खेटविवरं मानैक्यार्धाल्पकं यदा ॥१७१॥
तदा भेदो लम्बनाद्यं स्फुटार्थं सूर्यपर्ववत् ।

(ग्रहयुति-ज्ञानार्थ मङ्गलादि पाँच ग्रहोंके बिम्ब-साधन—) मङ्गलादिके ५, ६, ७, ९, ५ इन मध्यम-बिम्बमानोंको क्रमसे मङ्गलादि ग्रहोंके कर्णशेष (त्रिज्या और अपने-अपने शीघ्र कर्णके अन्तर) से गुणा करके गुणनफलको २ स्थानोमे रक्खे । एक स्थानमें क्रमसे मङ्गलादि ग्रहके २१, १२, ६, २४ और ३ का भाग देकर लब्धिको द्वितीय स्थानमें स्थित गुणनफलमें, यदि कर्ण त्रिज्यासे * अधिक हो तो घटावे, यदि त्रिज्यासे अल्प हो तो जोड़े, फिर उसमें ३ से भाग देनेपर क्रमशः मङ्गलादि ग्रहोंके बिम्ब-प्रमाण हाते हैं ।†

(ग्रहोंकी युतिके गत-गम्य दिन-साधन—) जिन दो ग्रहोंके युतिकालका ज्ञान करना हो, वे दोनों मार्गी हों, अथवा दोनों वक्री हों तो दोनों ग्रहोंकी अन्तर-कलामें दोनोंकी गत्यन्तर-कलासे भाग देना चाहिये । यदि एक वक्र और एक मार्गी हो तो दोनोकी गति-योगकलासे भाग देना चाहिये । फिर जो लब्धि आवे, वह ग्रहयुतिके गत या गम्य दिनादि है ।‡

---

* उदाहरण—शुक्लपक्षकी द्वितीयामें सायंकालिक चन्द्रमाकी शृङ्गोन्नति जाननेके लिये मान लीजिये उस समयकी सावयव (घड़ीसहित) तिथि २ । ३०, सूर्यकी उत्तरक्रान्ति १०, चन्द्रमाका उत्तर शर ५ और चन्द्रमाकी उत्तरक्रान्ति ६ हो तो कथित रीतिसे सावयव तिथि २ । ३० को १६ से गुणा कर गुणनफल ४० में सावयव तिथिके वर्ग ६ । १५ को घटानेसे शेष ३३ । ४५ रहा, इसको पलभा ६ से गुणा कर गुणनफल २०२ । ३० में १५ से भाग देनेपर लब्धि १३ । ३० यह उत्तर दिशाका फल हुआ । इसमें सूर्यकी उत्तरक्रान्ति १० (एक दिशा होनेके कारण) जोडनेसे २३ । ३० हुआ । तथा (एक दिशा होनेके कारण) चन्द्रमाके उत्तर शर ५ और उत्तरक्रान्ति ६ इन दोनोंके योग ११ को उत्तर दिशाके फल १३ । ३० में विपरीत सस्कार करने (घटाने) से शेष २ । ३० रहा । इसमें द्विगुणित तिथि २ । ३० ×२=५ से भाग देनेपर लब्ध अङ्गलादि ० । ३० स्पष्ट वलन हुआ; यह चन्द्रमासे सूर्यकी दक्षिण दिशामें होनेके कारण दक्षिण दिशाका हुआ । एव सावयव तिथि २ । ३० में अपना पञ्चमाश ० । ३० घटानेसे २ । ० अङ्गुलादि शुक्लमान हुआ । इस प्रकार उस दिन दक्षिण दिशाका चन्द्रशृङ्ग उन्नत हुआ ।

* यहाँ त्रिज्याका प्रमाण ११ ग्रहण करना चाहिये ।

† जैसे—यदि मङ्गलका शीघ्रकर्ण १३ है तो त्रिज्या ११ और कर्ण १३ के अन्तर २ से मङ्गलके मध्यम बिम्बमान ५ को गुणा करनेपर १० हुआ, इसमें २१ का भाग देकर भागफल ० । २९ को (त्रिज्यासे कर्णके अधिक होनेके कारण) गुणनफल १० में घटानेपर शेष ९ । ३१ में ३ का भाग दिया तो फल अङ्गुलादि ३ । १० मङ्गलका स्पष्ट बिम्बमान हुआ । इसी प्रकार अन्य ग्रहोंका भी जान लेना चाहिये ।

‡ जैसे—मङ्गल और शुक्रका युतिसमय जानना है ता कल्पना कीजिये कि उस दिन स्पष्ट मङ्गल ७ । १५ । २० । २५, मङ्गलकी स्पष्ट गति ४० । १२, स्पष्ट शुक्र ७ । १० । ३० । २५ तथा शुक्रकी स्पष्ट गति ७० । १२ है तो यहाँ शीघ्र (अधिक)

के द्वारा उपर्युक्त क्रियाको तबतक बार-बार करता रहे जबतक दोनोंकी क्रान्ति सम न हो जाय * ॥१७२-१७९॥

क्रान्त्योः समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ।
हीनेऽर्द्धरात्रिकाद्यातो भावी तात्कालिकेऽधिके ॥१८०॥
स्थिरीकृतार्द्धरात्रेन्द्वोर्द्वयोर्विवरलिप्तिकाः ।
षष्टिघ्न्यश्चन्द्रभुक्त्याप्ताः पातकालस्य नाडिकाः ॥१८१॥

इस प्रकार क्रान्ति-साम्य होनेपर पात समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त क्रियाद्वारा प्राप्त अंशादिसे युक्त या हीन किया हुआ चन्द्रमा अर्धरात्रिकालिक साधित चन्द्रमासे अल्प (पीछे) हो तो पातकालको 'गत' समझे और यदि अधिक (आगे) हो तो पातकालको भावी समझे।

(अर्धरात्रिसे गत, गम्य पातकालका ज्ञान—) उपर्युक्त क्रियाद्वारा स्थिरीकृत (पातकालिक) चन्द्रमा और अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा जो हों इन दोनोंकी अन्तरकलाको ६० से गुणा करके गुणनफलमें चन्द्रकी गति-कलासे भाग देनेपर जो लब्धि हो, उतनी घटी अर्धरात्रिसे पीछे या आगे (गत पातमें पीछे, गम्य पातमें आगे) तक पातकालकी घड़ी समझी जाती है * ॥ १८०-१८१ ॥

---

* यदि सायन सूर्य ५ । २६ । ४० । ० सायन चन्द्र ० । २ । ५ । ०, पात (राहु) ० । ५ । २५ । ०, सूर्यगति ६० । १५, चन्द्रगति ७८३ । १५ और राहु-गति ३ । ११ है तो चन्द्र ० । २ । ५ । ० और पात ० । ५ । २५ । ० के योग ० । ७ । ३० सपातचन्द्रकी भुजकला ४५० की ज्या ४४९ हुई। इसको चन्द्रमाके परम शर २७० से गुणा कर गुणनफल १२१२३०में त्रिज्या ३४३८से भाग देनेपर लब्धि चन्द्रमाकी शरकला ३६ हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। केवल चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० की भुजज्या १२५ कलाको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल १७४६२५में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ५० चन्द्रमाकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। अत. चन्द्रमाके शर ३६ और क्रान्ति ५०का योग करनेसे ८६ चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति हुई।

तथा राश्यादि सूर्य ५ । २६ । ४० । ० को ६ राशिमें घटानेपर भुज ० । ३ । २० । ० की कला २००की ज्या इतनी ही हुई। इसको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल २७९४००में त्रिज्या ३४३८का भाग देनेपर लब्धि ८१ सूर्यकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही होनेके कारण यही सूर्यकी क्रान्ति हुई।

सूर्यकी क्रान्तिसे विषम (प्रथम) पदस्थित चन्द्रमाकी क्रान्ति अधिक है, इसलिये यहाँ गतपात निश्चित हुआ तथा सूर्य और चन्द्रमाके भिन्न अयन (चन्द्रमाके उत्तरायण और सूर्यके दक्षिणायन) में होने एवं दोनोंके राश्यादियोग ६ राशि होनेके कारण इस क्रान्तिसाम्यका नाम व्यतीपात हुआ।

अब, चन्द्र-क्रान्ति-ज्या ८६ को त्रिज्या ३४३८से गुणा कर गुणनफल २९५६६८में परमक्रान्तिज्या १३९७ का भाग देनेपर लब्धि २११ चन्द्रमाकी भुजज्या हुई, इसका चाप भी स्वल्पान्तरसे इतना ही हुआ। एवं सूर्यकी क्रान्तिज्या ८१को त्रिज्या ३४३८से गुणा कर गुणनफल २७८४७८में परमक्रान्तिज्या १३९७ का भाग देनेपर लब्धि सूर्यकी भुजज्या १९२ हुई, इसका चाप भी इतना ही हुआ।

सूर्य और चन्द्रमाके चापोंका अन्तर करनेसे (२११-१९२=) १९ कला हुई। इसके आधे (स्वल्पान्तरसे) १० को मध्यरात्रि-कालिक चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० में घटानेसे पातासन्नकालिक चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० हुआ। तथा उसी अन्तरार्धकला १० को सूर्यकी गति ६० । १५ से गुणा कर गुणनफल ६०२ । ३० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर लब्धिफल १ कलाको मध्य-रात्रिकालिक सूर्य ५ । २६ । ४० में घटानेसे ५ । २६ । ३९ हुआ। एवं उसी अन्तरार्धकला १० को राहुकी गति ३ । ११ से गुणा कर गुणनफल ३१ । ५० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर लब्धि ० हुई। इसका विपरीत संस्कार करनेपर भी मध्यरात्रिकालिक राहुके तुल्य ही तत्कालीन राहु ० । ५ । २५ हुआ।

अब, पातासन्नकालिक चन्द्र ० । १ । ५५ । ०, सूर्य ५ । २६ । ३९ । ० और राहु ० । ५ । २५ । ० रहे। इनके द्वारा पुनः क्रान्ति-साधन किया जाता है। चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० की भुजज्या ११५ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल १६०६५५ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ४६ चन्द्रक्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। तथा चन्द्र ० । १ । ५५ । ० और राहु ० । ५ । २५ । ० का योग करनेसे सपातचन्द्र ० । ७ । २० की भुजज्या ४४० को चन्द्रके परमशर २७० से गुणा कर गुणनफल ११८८०० में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि (स्वल्पान्तरसे) ३५ चन्द्रशरज्या हुई, इसका चाप बनानेसे इतना ही चन्द्रशर हुआ। चन्द्रशर ३५ को चन्द्रक्रान्ति ४६ में जोड़नेसे ८१ कला हुई, इसका अंश बनानेसे १ । २१ चन्द्रमाकी स्पष्टक्रान्ति हुई। एवं तत्कालीन सूर्य ५ । २६ । ३९ की भुजज्या २०१ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल २८०७९७ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ८१ सूर्यकी क्रान्तिज्या हुई, इसका चाप भी इतना ही हुआ। इसको अंशात्मक बनानेसे १ । २१ सूर्यकी क्रान्ति हुई। अतः यहाँ सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तियोंमें समता हुई।

* क्रान्तिसाम्य (पात) काल-साधन—मध्यकालिक चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० और स्थिरीकृत क्रान्तिसाम्य-(पात) कालिक चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० की अन्तरकला १० को ६० से गुणा कर गुणनफल ६०० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर (स्वल्पान्तरसे) लब्धि १ घड़ी हुई। इसको (गतपात होनेके कारण) मध्यरात्रि घड़ी ४५ । १५ में घटानेसे शेष ४४ । १५ पातका मध्यकाल हुआ।

के द्वारा उपर्युक्त क्रियाको तबतक बार-बार करता रहे जबतक दोनोंकी क्रान्ति सम न हो जाय * ॥१७२-१७९॥

क्रान्त्योः समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ।
हीनेऽर्द्धरात्रिकाद्यातो भावी तात्कालिकेऽधिके ॥१८०॥
स्थिरीकृतार्द्धरात्रेन्द्वोर्द्वयोर्विवरलिप्तिकाः ।
षष्टिघ्न्यश्चन्द्रभुक्त्यासाः पातकालस्य नाडिकाः ॥१८१॥

इस प्रकार क्रान्ति-साम्य होनेपर पात समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त क्रियाद्वारा प्राप्त अंशादिसे युक्त या हीन किया हुआ चन्द्रमा अर्धरात्रिकालिक साधित चन्द्रमासे अल्प (पीछे) हो तो पातकालको 'गत' समझे और यदि अधिक (आगे) हो तो पातकालको भावी समझे।

(अर्धरात्रिसे गत, गम्य पातकालका ज्ञान—)

उपर्युक्त क्रियाद्वारा स्थिरीकृत (पातकालिक) चन्द्रमा और अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा जो हों इन दोनोंकी अन्तरकलाको ६० से गुणा करके गुणनफलमें चन्द्रकी गति-कलासे भाग देनेपर जो लब्धि हो, उतनी घटी अर्धरात्रिसे पीछे या आगे (गत पातमें पीछे, गम्य पातमें आगे) तक पातकालकी घड़ी समझी जाती है * ॥ १८०-१८१ ॥

---

* यदि सायन सूर्य ५ । २६ । ४० । ० सायन चन्द्र ० । २ । ५ । ०, पात (राहु) ० । ५ । २५ । ०, सूर्यगति ६० । १५, चन्द्रगति ७८३ । १५ और राहु-गति ३ । ११ है तो चन्द्र ० । २ । ५ । ० और पात ० । ५ । २५ । ० के योग ० । ७ । ३० सपातचन्द्रकी भुजकला ४५० की ज्या ४४९ हुई। इसको चन्द्रमाके परम शर २७० से गुणा कर गुणनफल १२१२३०में त्रिज्या ३४३८से भाग देनेपर लब्धि चन्द्रमाकी शरकला ३६ हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। केवल चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० की भुजज्या १२५ कलाको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल १७४६२५में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ५० चन्द्रमाकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। अत. चन्द्रमाके शर ३६ और क्रान्ति ५०का योग करनेसे ८६ चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति हुई।

तथा राश्यादि सूर्य ५ । २६ । ४० । ० को ६ राशिमें घटानेपर भुज ० । ३ । २० । ० की कला २००की ज्या इतनी ही हुई। इसको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल २७९४००में त्रिज्या ३४३८का भाग देनेपर लब्धि ८१ सूर्यकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही होनेके कारण यही सूर्यकी क्रान्ति हुई।

सूर्यकी क्रान्तिसे विषम (प्रथम) पदस्थित चन्द्रमाकी क्रान्ति अधिक है, इसलिये यहाँ गतपात निश्चित हुआ तथा सूर्य और चन्द्रमाके भिन्न अयन (चन्द्रमाके उत्तरायण और सूर्यके दक्षिणायन) में होने एव दोनोंके राश्यादियोग ६ राशि होनेके कारण इस क्रान्तिसाम्यका नाम व्यतीपात हुआ।

अव, चन्द्र-क्रान्ति-ज्या ८६ को त्रिज्या ३४३८से गुणा कर गुणनफल २९५६६८में परमक्रान्तिज्या १३९७ का भाग देनेपर लब्धि २११ चन्द्रमाकी भुजज्या हुई, इसका चाप भी स्वल्पान्तरसे इतना ही हुआ। एव सूर्यकी क्रान्तिज्या ८१को त्रिज्या ३४३८से गुणा कर गुणनफल २७८४७८में परमक्रान्तिज्या १३९७ का भाग देनेपर लब्धि सूर्यकी भुजज्या १९२ हुई, इसका चाप भी इतना ही हुआ।

सूर्य और चन्द्रमाके चापोंका अन्तर करनेसे (२११-१९२=) १९ कला हुई। इसके आवे (स्वल्पान्तरसे) १० को मध्यरात्रिकालिक चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० में घटानेसे पातासन्नकालिक चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० हुआ। तथा उसी अन्तरार्धकला १० को सूर्यकी गति ६० । १५ से गुणा कर गुणनफल ६०२ । ३० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर लब्धिफल १ कलाको मध्यरात्रिकालिक सूर्य ५ । २६ । ४० में घटानेसे ५ । २६ । ३९ हुआ। एव उसी अन्तरार्धकला १० को राहुकी गति ३ । ११ से गुणा कर गुणनफल ३१ । ५० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर लब्धि ० हुई। इसका विपरीत सस्कार करनेपर भी मध्यरात्रिकालिक राहुके तुल्य ही तत्कालीन राहु ० । ५ । २५ हुआ।

अव, पातासन्नकालिक चन्द्र ० । १ । ५५ । ०, सूर्य ५ । २६ । ३९ । ० और राहु ० । ५ । २५ । ० रहे। इनके द्वारा पुनः क्रान्ति-साधन किया जाता है। चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० की भुजज्या ११५ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल १६०६५५ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ४६ चन्द्रक्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। तथा चन्द्र ० । १ । ५५ । ० और राहु ० । ५ । २५ । ० का योग करनेसे सपातचन्द्र ० । ७ । २० की भुजज्या ४४० को चन्द्रके परमशर २७० से गुणा कर गुणनफल ११८८०० में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि (स्वल्पान्तरसे) ३५ चन्द्रशरज्या हुई, इसका चाप वनानेसे इतना ही चन्द्रशर हुआ। चन्द्रशर ३५ को चन्द्रक्रान्ति ४६ में जोड़नेसे ८१ कला हुई, इसका अंश वनानेसे १ । २१ चन्द्रमाकी स्पष्टक्रान्ति हुई। एव तत्कालीन सूर्य ५ । २६ । ३९ की भुजज्या २०१ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल २८०७९७ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ८१ सूर्यकी क्रान्तिज्या हुई, इसका चाप भी इतना ही हुआ। इसको अंशात्मक वनानेसे १ । २१ सूर्यकी क्रान्ति हुई। अत· यहाँ सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तियोंमें समता हुई।

* क्रान्तिसाम्य (पात) काल-साधन—मध्यकालिक चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० और स्थिरीकृत क्रान्तिसाम्य-(पात)कालिक चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० की अन्तरकला १० को ६० से गुणा कर गुणनफल ६०० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर (स्वल्पान्तरसे) लब्धि १ घड़ी हुई। इसको (गतपात होनेके कारण) मध्यरात्रि घड़ी ४५ । १५ में घटानेसे शेष ४४ । १५ पातका मध्यकाल हुआ।

हैं अर्थात् रातमें बली माने गये हैं—ये पृष्ठभागसे उदय लेनेके कारण पृष्ठोदय कहलाते हैं (किंतु मिथुन पृष्ठोदय नहीं है)। शेष राशियोंकी दिन संज्ञा है (वे दिनमें बली और शीर्षोदय माने गये हैं); मीन राशिको उभयोदय कहा गया है। मेष आदि

(राश्यर्ध) होरा-ज्ञानार्थ-चक्र

होरा-अंश	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
१—१५ तक	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र
१८—३० तक	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि

(राशितृतीयांश) द्रेष्काण-ज्ञानार्थ-चक्र

	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
१—१० तक	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	राशि स्वामी
११—२० तक	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	राशि स्वामी
२१—३० तक	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	राशि स्वामी

राशियोंमें नवमांश-ज्ञानार्थ-चक्र

अंश-कला	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
३।२०	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र
६।४०	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि
१०।०	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध
१३।२०	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र
१६।४०	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल
२०।०	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु
२३।२०	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि
२६।४०	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि
३०।० तक	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु

हैं अर्थात् रातमें बली माने गये हैं—ये पृष्ठभागसे उदय लेने-के कारण पृष्ठोदय कहलाते हैं (किंतु मिथुन पृष्ठोदय नहीं है)। शेष राशियोंकी दिन संज्ञा है (वे दिनमें बली और शीर्षोदय माने गये हैं); मीन राशिको उभयोदय कहा गया है। मेष आदि

(राश्यर्ध) होरा-ज्ञानार्थ-चक्र

होरा-अंश	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
१—१५ तक	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र
१८—३० तक	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि

(राशितृतीयांश) द्रेष्काण-ज्ञानार्थ-चक्र

	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
१—१० तक	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	राशि स्वामी
११—२० तक	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	राशि स्वामी
२१—३० तक	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	राशि स्वामी

राशियोंमें नवमाग-ज्ञानार्थ-चक्र

अंश-कला	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
३।२०	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र
६।४०	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि
१०।०	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध
१३।२०	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र
१६।४०	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल
२०।०	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु
२३।२०	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि
२६।४०	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि
३०।० तक	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु

कन्या, मकर दक्षिणमें; मिथुन, तुला, कुम्भ पश्चिममें और कर्क, वृश्चिक, मीन उत्तरमें स्थित हैं) * । ये सब अपनी-अपनी दिशामें रहती हैं ॥ ७ ॥ सूर्यका उच्च मेष, चन्द्रमाका वृष, मङ्गलका मकर, बुधका कन्या, गुरुका कर्क, शुक्रका मीन तथा शनिका उच्च तुला है । सूर्यका मेषमें १०अंश, चन्द्रमाका वृषमें ३ अंश, मङ्गलका मकरमें २८ अंश, बुधका कन्यामें १५ अंश, गुरुका कर्कमे ५ अंश, शुक्रका मीनमें २७ अंश तथा शनिका तुलामें २० अंश उच्चांश (परमोच्च) है ॥ ८ ॥ सूर्यादि ग्रहोंकी जो उच्च राशियाँ कही गयी हैं, उनसे सातवीं राशि उन ग्रहोंका नीच स्थान है ।

चरमें पूर्व नवमांश वर्गोत्तम है । स्थिरमें मध्य (पाँचवाँ) नवमांश और द्विस्वभावमें अन्तिम (नवाँ) नवमांश वर्गोत्तम है । तनु (लग्न) आदि बारह भाव हैं ॥ ९ ॥ सूर्यका सिंह, चन्द्रमाका वृष, मङ्गलका मेष, बुधका कन्या, गुरुका धन, शुक्रका तुला और शनिका कुम्भ यह मूल त्रिकोण कहा गया है । चतुर्थ और अष्टमभावका नाम चतुरस्र है । नवम और पञ्चमका नाम त्रिकोण है ॥१०॥ द्वादश, अष्टम और षष्ठका नाम त्रिक है; लग्न चतुर्थ, सप्तम और दशमका नाम केन्द्र है । द्विपद, जलचर, कीट और पशु—ये राशियाँ क्रमशः केन्द्रमे बली होती हैं (अर्थात् द्विपद लग्नमें, जलचर चतुर्थमें, कीट सातवेंमें और पशु दसवेंमें बलवान् माने गये हैं) ॥११॥ केन्द्रके बादके स्थान (२, ५, ८, ११ ये) 'पणफर' कहे गये हैं । उसके बादके ३, ६, ९, १२—ये आपोक्लिम कहलाते है । मेषका स्वरूप रक्तवर्ण, वृषका श्वेत, मिथुनका शुकके समान हरित, कर्कका पाटल (गुलाबी), सिंहका धूम्र, कन्याका पाण्डु (गौर), तुलाका चितकबरा, वृश्चिकका कृष्णवर्ण, धनुका पीत, मकरका पिङ्ग, कुम्भका बभ्रु (नेवले) के सदृश और मीनका स्वच्छ वर्ण है । इस प्रकार मेषसे लेकर सब राशियोंकी कान्तिका वर्णन किया गया है । सब राशियाँ स्वामीकी दिशाकी ओर झुकी रहती हैं । सूर्याश्रित राशिसे दूसरेका नाम 'वेशि' है ॥१२-१३॥

* मेषादि राशियोंके रूप-गुण आदिका बोधक चक्र

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
अङ्गमें स्थान	मस्तक	मुख	भुज	हृदय	पेट	कमर	पेडू	लिङ्ग	ऊरु	जानु	जङ्घा	पैर
अधिपति	मङ्गल	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मङ्गल	गुरु	शनि	शनि	गुरु
बलका समय	रात्रि	रात्रि	रात्रि	रात्रि	दिन	दिन	दिन	दिन	रात्रि	रात्रि	दिन	दिन
उदय	पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	उभयोदय
शील	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य
पुं-स्त्रीत्व	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
स्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्व०	चर	स्थिर	द्विस्व०
दिशा	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
द्विपदादि	चतुष्पद	चतुष्पद	द्विपद	जलकीट	चतुष्पद	द्विपद	द्विपद	कीट	१५ द्वि० | १५ च०	१५ च० | १५ जल	द्विपद	जलचर
वर्ण	रक्त	श्वेत	हरित	गुलाबी	धूम्र	गौर	चित्र	कृष्ण	पीत	पिङ्ग	भूरा	स्वच्छ
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण

कन्या, मकर दक्षिणमें; मिथुन, तुला, कुम्भ पश्चिममें और कर्क, वृश्चिक, मीन उत्तरमें स्थित हैं) * । ये सब अपनी-अपनी दिशामें रहती हैं ॥ ७ ॥ सूर्यका उच्च मेष, चन्द्रमाका वृष, मङ्गलका मकर, बुधका कन्या, गुरुका कर्क, शुक्रका मीन तथा शनिका उच्च तुला है । सूर्यका मेषमें १०अंश, चन्द्रमाका वृषमें ३ अंश, मङ्गलका मकरमें २८ अंश, बुधका कन्यामें १५ अंश, गुरुका कर्कमे ५ अंश, शुक्रका मीनमें २७ अंश तथा शनिका तुलामें २० अंश उच्चांश (परमोच्च) है ॥ ८ ॥ सूर्यादि ग्रहोंकी जो उच्च राशियाँ कही गयी हैं, उनसे सातवीं राशि उन ग्रहोंका नीच स्थान है ।

चरमें पूर्व नवमांश वर्गोत्तम है। स्थिरमें मध्य (पाँचवाँ) नवमांश और द्विस्वभावमें अन्तिम (नवाँ) नवमांश वर्गोत्तम है। तनु (लग्न) आदि बारह भाव हैं ॥ ९ ॥ सूर्यका सिंह, चन्द्रमाका वृष, मङ्गलका मेष, बुधका कन्या, गुरुका धन, शुक्रका तुला और शनिका कुम्भ यह मूल त्रिकोण कहा गया है। चतुर्थ और अष्टमभावका नाम चतुरस्र है । नवम और पञ्चमका नाम त्रिकोण है ॥१०॥ द्वादश, अष्टम और षष्ठका नाम त्रिक है; लग्न चतुर्थ, सप्तम और दशमका नाम केन्द्र है । द्विपद, जलचर, कीट और पशु—ये राशियाँ क्रमशः केन्द्रमे बली होती हैं (अर्थात् द्विपद लग्नमें, जलचर चतुर्थमे, कीट सातवेंमें और पशु दसवेंमें बलवान् माने गये हैं) ॥११॥ केन्द्रके बादके स्थान (२, ५, ८, ११ ये) 'पणफर' कहे गये हैं । उसके बादके ३, ६, ९, १२—ये आपोक्लिम कहलाते है । मेषका स्वरूप रक्तवर्ण, वृषका श्वेत, मिथुनका शुकके समान हरित, कर्कका पाटल (गुलाबी), सिंहका धूम्र, कन्याका पाण्डु (गौर), तुलाका चितकबरा, वृश्चिकका कृष्णवर्ण, धनुका पीत, मकरका पिङ्ग, कुम्भका बभ्रु (नेवले) के सदृश और मीनका स्वच्छ वर्ण है। इस प्रकार मेषसे लेकर सब राशियोंकी कान्तिका वर्णन किया गया है। सब राशियाँ स्वामीकी दिशाकी ओर झुकी रहती हैं । सूर्याश्रित राशिसे दूसरेका नाम 'वेशि' है ॥१२-१३॥

* मेषादि राशियोंके रूप-गुण आदिका बोधक चक्र

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
अङ्गमें स्थान	मस्तक	मुख	भुज	हृदय	पेट	कमर	पेडू	लिङ्ग	ऊरु	जानु	जङ्घा	पैर
अधिपति	मङ्गल	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मङ्गल	गुरु	शनि	शनि	गुरु
बलका समय	रात्रि	रात्रि	रात्रि	रात्रि	दिन	दिन	दिन	दिन	रात्रि	रात्रि	दिन	दिन
उदय	पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	उभयोदय
शील	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य
पुं-स्त्रीत्व	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
स्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्व०	चर	स्थिर	द्विस्व०
दिशा	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
द्विपदादि	चतुष्पद	चतुष्पद	द्विपद	जलकीट	चतुष्पद	द्विपद	द्विपद	कीट	१५ द्वि० / १५ च०	१५ च० / १५ जल	द्विपद	जलचर
वर्ण	रक्त	श्वेत	हरित	गुलाबी	धूम्र	गौर	चित्र	कृष्ण	पीत	पिङ्ग	भूरा	स्वच्छ
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण

गुरु तथा ४, ८को मङ्गल पूर्ण दृष्टिसे ही देखते हैं। अन्य ग्रह केवल सप्तम स्थानको ही पूर्ण दृष्टि (चारो चरणो) से देखते हैं ॥२३॥

(ग्रहोंके कालमान-) अयन (६ मास), मुहूर्त (२ घडी), अहोरात्र, ऋतु (२ मास), मास, पक्ष तथा वर्ष—ये क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोके कालमान हैं। तथा कटु (मिर्च आदि), लवण, तिक्त (निम्बादि), मिश्र (सब रसोका मेल), मधुर, आम्ल (खट्टा) और कषाय (कसैला) ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंके रस हैं ॥ २४ ॥

(ग्रहोंकी स्वाभाविक बहुसम्मत मैत्री-) ग्रहोके जो अपने-अपने मूल त्रिकोण स्थान कहे गये हैं, उस (मूल त्रिकोण) स्थानसे २, १२, ५, ९, ८, ४ इन स्थानोंके तथा अपने उच्च स्थानोंके स्वामी ग्रह मित्र होते हैं और इनसे भिन्न (मूल त्रिकोणसे १, ३, ६, ७, १०, ११) स्थानोंके स्वामी शत्रु होते हैं।

(मतान्तरसे ग्रह-मैत्री-) सूर्यका बृहस्पति, चन्द्रके गुरु-बुध, मङ्गलके शुक्र-बुध, बुधके रविको छोड़कर शेष सब ग्रह, गुरुके मङ्गलको छोड़कर सब ग्रह, शुक्रके चन्द्र-रविको छोडकर अन्य सब ग्रह और शनिके मङ्गल-चन्द्र-रविको छोड़कर शेष सभी ग्रह मित्र होते हैं। यह मत अन्य विद्वानों-द्वारा स्वीकृत है।

(ग्रहोंकी तात्कालिक मैत्री-) उस-उस समयमे जो-जो दो ग्रह २, १२। ३, ११। ४, १०—इन स्थानोंमें हों वे भी परस्पर तात्कालिक मित्र होते हैं। (इनसे भिन्न स्थानमे स्थित ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं) इस प्रकार स्वाभाविक मैत्रीमे (मूल त्रिकोणसे जिन स्थानोंके स्वामीको मित्र कहा गया है—उनमें) २ स्थानोंके स्वामीको मित्र, एक स्थानके स्वामीको सम और अनुक्त स्थानके स्वामीको शत्रु समझे। तदनन्तर तात्कालिक मित्र और शत्रुका विचार करके दोनोंके अनुसार अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु और अधिशत्रुका निश्चय करना चाहिये * ॥ २५—२७ ॥

(ग्रहोंके वलका कथन-) अपने-अपने उच्च, मूल-त्रिकोण, ग्रह और नवमांशमें ग्रहोंके स्थानसम्बन्धी वल होते हैं। बुध और गुरुको पूर्व (उदय-लग्न) में, रवि और मङ्गलको दक्षिण (दशम भाव) में, शनिको पश्चिम (सप्तम भाव) में और चन्द्र तथा शुक्रको उत्तर (चतुर्थ भाव) में दिक्सम्बन्धी वल प्राप्त होता है। रवि और चन्द्रमा उत्तरायण (मकरसे ६ राशि) में रहनेपर तथा अन्य ग्रह वक्र और समागममें (चन्द्रमा-के साथ) होनेपर चेष्टाबलसे युक्त समझे जाते है। तथा जिन दो ग्रहोंमें युति होती है, उनमें उत्तर दिशामें रहनेवाला भी चेष्टाबलसे सम्पन्न समझा जाता है॥ २८-२९ ॥ चन्द्रमा, मङ्गल और शनि ये रात्रिमें, बुध दिन और रात्रि दोनोंमें तथा अन्य ग्रह (रवि, गुरु और शुक्र) दिनमें बली होते हैं।

* यथा—दोनों प्रकारोंसे जो ग्रह मित्र हो वह अधिमित्र, जो मित्र और सम हो वह मित्र, जो मित्र और शत्रु हो वह सम, जो शत्रु और सम हो वह शत्रु तथा जो दोनों प्रकारोंसे शत्रु हो, वह अधिशत्रु होता है। इस तरह ग्रहमैत्री पाँच प्रकारकी मानी गयी है।

ग्रहोंकी नैसर्गिक मैत्रीका बोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चं. मं. गु.	बु. सू.	चं. सू. गु.	शु. सू.	सू. मं. च.	बु. श.	शु. बु.
सम	बु.	मं. गु. शु. श.	शु श.	मं. गु. श.	श.	मं. गु.	गु.
शत्रु	शु. श.	×	बु.	चं.	बु. शु.	सू. चं.	सू. चं. मं.

जैसे—इस कुण्डलीमें सूर्यसे द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्थानमें क्रमशः बुध, शुक्र और मङ्गल है। इसलिये ये तीनों सूर्यके

गुरु तथा ४, ८को मङ्गल पूर्ण दृष्टिसे ही देखते हैं। अन्य ग्रह केवल सप्तम स्थानको ही पूर्ण दृष्टि (चारो चरणो) से देखते हैं ॥२३॥

(ग्रहोंके कालमान–) अयन (६ मास), मुहूर्त (२ घडी), अहोरात्र, ऋतु (२ मास), मास, पक्ष तथा वर्ष—ये क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोके कालमान हैं। तथा कटु (मिर्च आदि), लवण, तिक्त (निम्बादि), मिश्र (सब रसोका मेल), मधुर, आम्ल (खट्टा) और कषाय (कसैला) ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंके रस हैं ॥ २४ ॥

(ग्रहोंकी स्वाभाविक बहुसम्मत मैत्री–) ग्रहोके जो अपने-अपने मूल त्रिकोण स्थान कहे गये हैं, उस (मूल त्रिकोण) स्थानसे २, १२, ५, ९, ८, ४ इन स्थानोंके तथा अपने उच्च स्थानोंके स्वामी ग्रह मित्र होते हैं और इनसे भिन्न (मूल त्रिकोणसे १, ३, ६, ७, १०, ११) स्थानोंके स्वामी शत्रु होते हैं।

(मतान्तरसे ग्रह-मैत्री–) सूर्यका बृहस्पति, चन्द्रके गुरु-बुध, मङ्गलके शुक्र-बुध, बुधके रविको छोड़कर शेष सब ग्रह, गुरुके मङ्गलको छोड़कर सब ग्रह, शुक्रके चन्द्र-रविको छोडकर अन्य सब ग्रह और शनिके मङ्गल-चन्द्र-रविको छोड़कर शेष सभी ग्रह मित्र होते हैं। यह मत अन्य विद्वानों-द्वारा स्वीकृत है।

(ग्रहोंकी तात्कालिक मैत्री–) उस-उस समयमे जो-जो दो ग्रह २, १२। ३, ११। ४, १०—इन स्थानोंमें हों वे भी परस्पर तात्कालिक मित्र होते हैं। (इनसे भिन्न स्थानमे स्थित ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं) इस प्रकार स्वाभाविक मैत्रीमे (मूल त्रिकोणसे जिन स्थानोंके स्वामीको मित्र कहा गया है—उनमें) २ स्थानोंके स्वामीको मित्र, एक स्थानके स्वामीको सम और अनुक्त स्थानके स्वामीको शत्रु समझे। तदनन्तर तात्कालिक मित्र और शत्रुका विचार करके दोनोंके अनुसार अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु और अधिशत्रुका निश्चय करना चाहिये * ॥ २५—२७ ॥

(ग्रहोंके बलका कथन–) अपने-अपने उच्च, मूल-त्रिकोण, गृह और नवमांशमें ग्रहोंके स्थानसम्बन्धी बल होते हैं। बुध और गुरुको पूर्व (उदय-लग्न) में, रवि और मङ्गलको दक्षिण (दशम भाव) में, शनिको पश्चिम (सप्तम भाव) में और चन्द्र तथा शुक्रको उत्तर (चतुर्थ भाव) में दिक्सम्बन्धी बल प्राप्त होता है। रवि और चन्द्रमा उत्तरायण (मकरसे ६ राशि) में रहनेपर तथा अन्य ग्रह वक्र और समागममें (चन्द्रमा-के साथ) होनेपर चेष्टाबलसे युक्त समझे जाते है। तथा जिन दो ग्रहोंमें युति होती है, उनमें उत्तर दिशामें रहनेवाला भी चेष्टाबलसे सम्पन्न समझा जाता है॥ २८-२९ ॥ चन्द्रमा, मङ्गल और शनि ये रात्रिमें, बुध दिन और रात्रि दोनोंमें तथा अन्य ग्रह (रवि, गुरु और शुक्र) दिनमें बली होते हैं।

---

* यथा—दोनों प्रकारोंसे जो ग्रह मित्र हो वह अधिमित्र, जो मित्र और सम हो वह मित्र, जो मित्र और शत्रु हो वह सम, जो शत्रु और सम हो वह शत्रु तथा जो दोनों प्रकारोंसे शत्रु हो, वह अधिशत्रु होता है। इस तरह ग्रहमैत्री पाँच प्रकारकी मानी गयी है।

ग्रहोंकी नैसर्गिक मैत्रीका बोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चं. मं. गु.	बु. सू.	चं. सू. गु.	शु. सू.	सू. मं. च.	बु. श.	शु. बु.
सम	बु.	मं. गु. शु. श.	शु. श.	मं. गु. श.	श.	मं. गु.	गु.
शत्रु	शु. श.	×	बु.	चं.	बु. शु.	सू. चं.	सू. चं. मं.

जैसे—इस कुण्डलीमें सूर्यसे द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्थानमें क्रमश. बुध, शुक्र और मङ्गल हैं। इसलिये ये तीनों सूर्यके

जन्म समझना चाहिये। चन्द्रमाके अंशपति होनेसे समस्त चिकने वृक्ष (देवदारु आदि) तथा मङ्गलके अंशपति होनेपर कड़ुए वृक्ष (निम्बादि) का भी जन्म समझना चाहिये। यदि शुभग्रह अशुभ राशिमें हो तो खराब भूमिसे सुन्दर वृक्ष और पापग्रह शुभ राशिमें हो तो सुन्दर भूमिमें खराब वृक्षका जन्म देता है। इससे अर्थतः यह बात निकली कि यदि कोई शुभ ग्रह अंशपति हो और वह शुभराशिमें स्थित हो तो सुन्दर भूमिमें सुन्दर वृक्षका जन्म होता है और यदि पापग्रह अंशपति होकर पापराशिमें स्थित हो तो खराब भूमिमे कुत्सित वृक्षका जन्म होता है। इसके सिवा, वह अंशपति अपने नवमांशसे आगे जितनी संख्यापर अन्य नवमांशमें हो, उतनी ही संख्यामें और उतने ही प्रकारके वृक्षोंका जन्म समझना चाहिये ॥३९-४०½॥

(आधान-ज्ञान-) प्रतिमास मङ्गल और चन्द्रमाके हेतुसे स्त्रीको ऋतुधर्म हुआ करता है। जिस समय चन्द्रमा स्त्रीकी राशिसे नेष्ट (अनुपचय) स्थानमें हो और शुभ पुरुषग्रह (बृहस्पति) से देखा जाता हो तथा पुरुषकी राशिसे अन्यथा (इष्ट= उपचय* स्थानमें) हो और बृहस्पतिसे दृष्ट हो तो उस स्त्रीको पुरुषका संयोग प्राप्त होता है।† आधान-लग्नसे सप्तम भावपर पापग्रहका योग या दृष्टि हो तो रोषपूर्वक और शुभग्रहका योग एवं दृष्टि हो तो प्रसन्नतापूर्वक पति-पत्नीका संयोग होता है ॥ ४१-४२ ॥ आधानकालमें शुक्र, रवि, चन्द्रमा और मङ्गल अपने-अपने नवमांशमें हों, गुरु लग्नसे केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो वीर्यवान् पुरुषको निश्चय ही संतान होती है ॥४३॥ यदि सूर्यसे सप्तम भावमें मङ्गल और शनि हों तो वे पुरुषके लिये तथा चन्द्रमासे सप्तममें हों तो स्त्रीके लिये रोगप्रद होते हैं। सूर्यसे १२, २ में शनि और मङ्गल हों तो पुरुषके लिये और चन्द्रमासे १२, २ में ये दोनों हों तो स्त्रीके लिये घातक होते हैं। अथवा इन (शनि-मङ्गल) में एकसे युत और अन्यसे दृष्ट रवि हो तो वह पुरुषके लिये और चन्द्रमा यदि एकसे युत तथा अन्यसे दृष्ट हो तो वह स्त्रीके लिये घातक होता है ॥ ४४ ॥

दिनमें गर्भाधान हो तो शुक्र मातृग्रह और सूर्य पितृग्रह होते हैं। रात्रिमें गर्भाधान हो तो चन्द्रमा मातृग्रह और शनि पितृग्रह होते हैं। पितृग्रह यदि विषम राशिमें हो तो पिताके लिये और मातृग्रह सम राशिमें हो तो माताके लिये शुभकारक होता है। यदि पापग्रह बारहवें भावमे स्थित होकर पापग्रहसे देखा जाता और शुभग्रहसे न देखा जाता हो, अथवा लग्नमें शनि हो तथा उसपर क्षीण चन्द्रमा और मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भाधान होनेसे स्त्रीका मरण होता है। लग्न और चन्द्रमा दोनों या इनमेंसे एक भी दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो गर्भाधान होनेपर स्त्री गर्भके सहित (साथ ही) या पृथक् मृत्युको प्राप्त होती है। लग्न अथवा चन्द्रमासे चतुर्थ स्थानमें पापग्रह हो, मङ्गल अष्टम भावमें हो अथवा लग्नसे ४, १२ वें स्थानमें मङ्गल और शनि हों तथा चन्द्रमा क्षीण हो तो भी गर्भवती स्त्रीका मरण होता है। यदि लग्नमे मङ्गल और सप्तममें रवि हों तो गर्भवती स्त्रीका शस्त्रद्वारा मरण होता है। गर्भाधानकालमे जिस मासका स्वामी अस्त हो, उस मासमें गर्भका स्राव होता है; इसलिये इस प्रकारके लग्नको गर्भाधानमें त्याग देना चाहिये ॥ ४५-४९ ॥

आधानकालिक लग्न या चन्द्रमाके साथ अथवा इन दोनोंसे ५, ९, ७, ४, १० वें स्थानमें सब शुभग्रह हों और ३, ६, ११ भावमें सब पापग्रह हों तथा लग्न और चन्द्रमापर सूर्यकी दृष्टि हो तो गर्भ सुखी रहता है ॥५०॥ रवि, गुरु, चन्द्रमा और लग्न—ये विषम राशि एव विषम नवमांशमें हों अथवा रवि और गुरु विषम राशिमे स्थित हो तो पुत्रका जन्म समझना चाहिये। उक्त सभी ग्रह यदि सम-राशि और सम-नवमांशमें हों अथवा मङ्गल, चन्द्रमा और शुक्र—ये समराशिमें हों तो विज्ञजनोंको कन्याका जन्म समझना चाहिये। अथवा वे सब द्विस्वभाव राशिमे हों और बुधसे देखे जाते हों तो अपने-अपने पक्षके यमल (जुड़वीं संतान) के जन्मकारक होते हैं। अर्थात् पुरुषग्रह दो पुत्रोंके और स्त्रीग्रह दो कन्याओंके जन्मदायक होते हैं। (यदि दोनो प्रकारके ग्रह हों तो एक पुत्र और एक कन्याका जन्म समझना चाहिये।) लग्नसे विषम (३, ५ आदि) स्थानोमे स्थित शनि भी पुत्रजन्म-कारक होता है ॥ ५१-५३ ॥

क्रमशः विषम एवं सम-राशिमें स्थित रवि और चन्द्रमा

---

* जन्मराशिसे ३ । ६ । १० । ११ ये उपचय तथा अन्य स्थान अनुपचय कहलाते हैं।

† आशय यह है कि चन्द्रमा जलमय और मङ्गल रक्त एवं पित्त प्रकृतिका है। इसलिये ये दोनों रजोधर्मके हेतु होते हैं। जिस समय स्त्रीके अनुपचय-स्थानमें चन्द्रमा हो, उस समय यदि उसपर मङ्गलकी दृष्टि होती है तो वह रज गर्भधारणमें समर्थ होता है। यदि उसपर गुरुकी भी दृष्टि हो जाय तो उस स्त्रीको पुरुषके सयोगसे निश्चय ही सत्पुत्रकी प्राप्ति होती है।

जन्म समझना चाहिये । चन्द्रमाके अंशपति होनेसे समस्त चिकने वृक्ष (देवदारु आदि) तथा मङ्गलके अंशपति होनेपर कड़ुए वृक्ष (निम्बादि) का भी जन्म समझना चाहिये । यदि शुभग्रह अशुभ राशिमें हो तो खराब भूमिसे सुन्दर वृक्ष और पापग्रह शुभ राशिमें हो तो सुन्दर भूमिमें खराब वृक्षका जन्म देता है । इससे अर्थतः यह बात निकली कि यदि कोई शुभ ग्रह अंशपति हो और वह शुभराशिमें स्थित हो तो सुन्दर भूमिमें सुन्दर वृक्षका जन्म होता है और यदि पापग्रह अंशपति होकर पापराशिमें स्थित हो तो खराब भूमिमे कुत्सित वृक्षका जन्म होता है । इसके सिवा, वह अंशपति अपने नवमाशसे आगे जितनी संख्यापर अन्य नवमाशमें हो, उतनी ही संख्यामें और उतने ही प्रकारके वृक्षोंका जन्म समझना चाहिये ॥३९-४०½॥

(आधान-ज्ञान-) प्रतिमास मङ्गल और चन्द्रमाके हेतुसे स्त्रीको ऋतुधर्म हुआ करता है । जिस समय चन्द्रमा स्त्रीकी राशिसे नेष्ट (अनुपचय) स्थानमें हो और शुभ पुरुषग्रह (बृहस्पति) से देखा जाता हो तथा पुरुषकी राशिसे अन्यथा (इष्ट= उपचय* स्थानमें) हो और बृहस्पतिसे दृष्ट हो तो उस स्त्रीको पुरुषका संयोग प्राप्त होता है ।† आधान-लग्नसे सप्तम भावपर पापग्रहका योग या दृष्टि हो तो रोषपूर्वक और शुभग्रहका योग एवं दृष्टि हो तो प्रसन्नतापूर्वक पति-पत्नीका संयोग होता है ॥ ४१-४२ ॥ आधानकालमें शुक्र, रवि, चन्द्रमा और मङ्गल अपने-अपने नवमाशमें हों, गुरु लग्नसे केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो वीर्यवान् पुरुषको निश्चय ही संतान होती है ॥ ४३ ॥ यदि सूर्यसे सप्तम भावमें मङ्गल और शनि हों तो वे पुरुषके लिये तथा चन्द्रमासे सप्तममें हों तो स्त्रीके लिये रोगप्रद होते हैं । सूर्यसे १२, २ में शनि और मङ्गल हों तो पुरुषके लिये और चन्द्रमासे १२, २ में ये दोनों हों तो स्त्रीके लिये घातक होते हैं । अथवा इन (शनि-मङ्गल) में एकसे युत और अन्यसे दृष्ट रवि हो तो वह पुरुषके लिये और चन्द्रमा यदि एकसे युत तथा अन्यसे दृष्ट हो तो वह स्त्रीके लिये घातक होता है ॥ ४४ ॥

दिनमें गर्भाधान हो तो शुक्र मातृग्रह और सूर्य पितृग्रह होते हैं । रात्रिमें गर्भाधान हो तो चन्द्रमा मातृग्रह और शनि पितृग्रह होते हैं । पितृग्रह यदि विषम राशिमें हो तो पिताके लिये और मातृग्रह सम राशिमें हो तो माताके लिये शुभकारक होता है । यदि पापग्रह बारहवें भावमे स्थित होकर पापग्रहसे देखा जाता और शुभग्रहसे न देखा जाता हो, अथवा लग्नमें शनि हो तथा उसपर क्षीण चन्द्रमा और मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भाधान होनेसे स्त्रीका मरण होता है । लग्न और चन्द्रमा दोनों या इनमेंसे एक भी दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो गर्भाधान होनेपर स्त्री गर्भके सहित (साथ ही) या पृथक् मृत्युको प्राप्त होती है । लग्न अथवा चन्द्रमासे चतुर्थ स्थानमें पापग्रह हो, मङ्गल अष्टम भावमें हो अथवा लग्नसे ४, १२ वें स्थानमें मङ्गल और शनि हों तथा चन्द्रमा क्षीण हो तो भी गर्भवती स्त्रीका मरण होता है । यदि लग्नमे मङ्गल और सप्तममें रवि हों तो गर्भवती स्त्रीका शस्त्रद्वारा मरण होता है । गर्भाधानकालमे जिस मासका स्वामी अस्त हो, उस मासमें गर्भका स्राव होता है; इसलिये इस प्रकारके लग्नको गर्भाधानमें त्याग देना चाहिये ॥ ४५–४९ ॥

आधानकालिक लग्न या चन्द्रमाके साथ अथवा इन दोनोंसे ५, ९, ७, ४, १० वें स्थानमें सब शुभग्रह हों और ३, ६, ११ भावमें सब पापग्रह हों तथा लग्न और चन्द्रमापर सूर्यकी दृष्टि हो तो गर्भ सुखी रहता है ॥ ५० ॥ रवि, गुरु, चन्द्रमा और लग्न—ये विषम राशि एव विषम नवमाशमें हों अथवा रवि और गुरु विषम राशिमे स्थित हो तो पुत्रका जन्म समझना चाहिये । उक्त सभी ग्रह यदि सम-राशि और सम-नवमांशमें हों अथवा मङ्गल, चन्द्रमा और शुक्र—ये सम-राशिमें हों तो विज्ञजनोंको कन्याका जन्म समझना चाहिये । अथवा वे सब द्विस्वभाव राशिमे हों और बुधसे देखे जाते हों तो अपने-अपने पक्षके यमल (जुड़वीं संतान) के जन्मकारक होते हैं । अर्थात् पुरुषग्रह दो पुत्रोंके और स्त्रीग्रह दो कन्याओंके जन्मदायक होते हैं । (यदि दोनो प्रकारके ग्रह हो तो एक पुत्र और एक कन्याका जन्म समझना चाहिये ।) लग्नसे विषम (३, ५ आदि) स्थानोमे स्थित शनि भी पुत्रजन्म-कारक होता है ॥ ५१–५३ ॥

क्रमशः विषम एवं सम-राशिमें स्थित रवि और चन्द्रमा

---

* जन्मराशिसे ३ । ६ । १० । ११ ये उपचय तथा अन्य स्थान अनुपचय कहलाते हैं ।

† आशय यह है कि चन्द्रमा जलमय और मङ्गल रक्त एवं पित्त प्रकृतिका है । इसलिये ये दोनों रजोधर्मके हेतु होते हैं । जिस समय स्त्रीके अनुपचय-स्थानमें चन्द्रमा हो, उस समय यदि उसपर मङ्गलकी दृष्टि होती है तो वह रज गर्भधारणमें समर्थ होता है । यदि उसपर गुरुकी भी दृष्टि हो जाय तो उस स्त्रीको पुरुषके सयोगसे निश्चय ही सत्पुत्रकी प्राप्ति होती है ।

(जन्मज्ञान—) (शिशुकी जन्म-कुण्डलीमें) यदि चन्द्रमा जन्मलग्नको नहीं देखता हो तो पिताके परोक्षमें बालकका जन्म समझना चाहिये । इसी योगमें यदि सूर्य चर राशिमे मध्य (दशम) भावसे आगे (११,१२) में अथवा पीछे (९,८) में हो तो पिताके विदेश रहनेपर पुत्रका जन्म समझना चाहिये । (इससे यह सिद्ध होता है कि यदि सूर्य स्थिर राशिमें हो तो स्वदेशमें रहते हुए पिताके परोक्षमें और द्विस्वभाव राशिमें हो तो स्वदेश और परदेशके मध्य स्थानमें पिताके रहनेपर बालकका जन्म होता है ।)

लग्नमें शनि और सप्तम भावमें मङ्गल हो अथवा बुध और शुक्रके बीचमें चन्द्रमा हो तो भी पिताके परोक्षमें शिशुका जन्म समझना चाहिये । पापग्रहकी राशिवाले लग्नमें चन्द्रमा हो अथवा वह वृश्चिकके द्रेष्काणमें हो तथा शुभग्रह २, ११ भावमें स्थित हों तो सर्पका या सर्पसे वेष्टित मनुष्यका जन्म समझना चाहिये ॥ ६८-७० ॥

मुनिश्रेष्ठ ! यदि सूर्य चतुष्पद राशिमें हो और शेष ग्रह बलयुक्त हों तो एक ही कोशमें लिपटे हुए दो शिशुओंका जन्म समझना चाहिये । शनि या मङ्गलसे युक्त सिंह, वृष या मेष लग्न हो तो लग्नके नवमांशकी राशि जिस अङ्गकी हो, उस अङ्गमे नालसे लिपटे हुए शिशुका जन्म समझना चाहिये ।

यदि लग्न और चन्द्रमापर गुरुकी दृष्टि न हो अथवा चन्द्रमा सूर्यसे संयुक्त हो तथा उसे गुरु नहीं देखता हो अथवा चन्द्रमा पापग्रह और सूर्यसे संयुक्त हो तो शिशुको पर-पुरुषके वीर्यसे उत्पन्न समझना चाहिये । यदि दो पापग्रह पापराशिमें स्थित होकर सूर्यसे सप्तम भावमें हो तो सूर्यके चर आदि राशिके अनुसार विदेश, स्वदेश या मार्गमे बालकका जन्म समझना चाहिये । पूर्ण चन्द्रमा अपनी राशिमें हो, बुध लग्नमें हो, शुभग्रह चतुर्थ भावमें हो अथवा जलचर राशि लग्न हो और उससे सप्तम स्थानमें चन्द्रमा हो तो नौकापर शिशुका जन्म समझना चाहिये । नारद ! यदि जलचर राशि लग्नको जलचर राशिस्थ पूर्ण चन्द्रमा देखता हो अथवा वह १०, ४ या लग्नमें हो तो जलमें प्रसव होता है, इसमें संशय नहीं । यदि लग्न और चन्द्रमासे शनि बारहवें भावमें हों, उसपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो बालकका कारागारमें जन्म होता है । तथा कर्क या वृश्चिक लग्नमें शनि हो और उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो गड्ढेमें बालकका जन्म समझना चाहिये । जलचर राशिस्थ शनि लग्नमें हो तथा उसपर बुध, सूर्य या चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो क्रमशः क्रीड़ास्थान, देवालय और ऊसर भूमिमें शिशुका प्रसव समझना चाहिये । यदि मङ्गल बलवान् होकर लग्नगत शनिको देखता हो तो श्मशान-भूमिमें, चन्द्रमा और शुक्र देखते हों तो रम्य स्थानमें, गुरु देखता हो तो अग्निहोत्रशालामें, सूर्य देखता हो तो राजगृह-

वृषमें दैनिक चन्द्रमाके आनेपर दसवें मास फाल्गुनमें बालकका जन्म होगा, ऐसा फल समझना चाहिये । किंतु कृत्तिकाके तीन चरण, रोहिणीके चारों चरण तथा मृगशिराके दो चरण, इस प्रकार नौ चरणोंकी वृष राशि होती है । उस दशामें किस नक्षत्रके किस चरणमें चन्द्रमाके आनेपर जन्म होगा, यह प्रश्न उठ सकता है । अब इसका समाधान किया जाता है—पूर्वोक्त चन्द्रमाकी राश्यादिमें भुक्त द्वादशांशमान (९ । ३० । १०)—(७ । ३०)= (२ । ० । १०)=(१२० । १०)=१२० कला (स्वल्पान्तरसे) मान लिया गया । "अर्धाल्पे त्याज्यमर्धाधिके रूपं ग्राह्यम्" इस नियमसे (१०) को छोड़ दिया । यहाँपर एक द्वादशांश-खण्डपर एक राशि प्रमाण होता है—यह स्पष्ट है । इसी आधारपर (१२० कला) सम्बन्धी चरणमान अनुपातसे ला रहे हैं, जब कि एक द्वादशांश खण्डकला-प्रमाण (२ । ३०)=(१५० कला) में एक राशिका कलामान १८०० पाते हैं तो १२० में कितना होगा—इस तरह $\frac{१८००\times१२०}{१५०}$=१२×१२०=१४४० । एक राशिमें नौ चरण होते हैं और एक चरणका कलामान २०० कला होता है, अतः चरण जाननेके लिये $\frac{१४४०}{२००}$=७+$\frac{४०}{२००}$(७$\frac{१}{५}$) । यहाँ लब्धि और शेषपर दृष्टिपात करनेसे यह ज्ञात होता है कि वृषराशिके आठवें चरणमें अर्थात् मृगशिरा नक्षत्रके प्रथम चरणमें चन्द्रमाका प्रवेश होनेपर बालकका जन्म होगा ।

जन्मका इष्टकाल जाननेकी विधि—गर्भाधानकालिक लग्न ९ । १० । २५ । ० है । इसमें मकरराशिका चौथा नवमांश है, जो उससे चतुर्थ मेषराशिका है । मेषराशि रातमें बली होती है, अतः रातमें जन्म होगा । इसलिये रात्रिगत इष्टकालका ज्ञान करना चाहिये । यहाँपर राशियोंकी दिन-रात्रि-संज्ञाके अनुसार एक नवमांशका प्रमाण दिन या रात्रिका पूरा प्रमाण होता है । अतः त्रैराशिक क्रिया की गयी—एक नवमांश प्रमाण (३ अंश २० कला=२०० कला) में गर्भाधान रात्रिमान यदि २८ । ० दण्ड मिलता है तो लग्नके चतुर्थ नवमांशके भुक्त कलामान २५में कितना होगा ? इस तरह $\frac{२८\times२५}{२००}$=३ । ३०घट्यादि मान हुआ । अर्थात् ३ दण्ड ३० पल रात बीतनेपर जन्म होगा, ऐसा निश्चय हुआ । इसी तरह अन्य उदाहरणोंको भी समझना चाहिये ।

(जन्मस्थान—) (शिशुकी जन्म-कुण्डलीमें) यदि चन्द्रमा जन्मलग्नको नहीं देखता हो तो पिताके परोक्षमें बालकका जन्म समझना चाहिये। इसी योगमें यदि सूर्य चर राशिमे मध्य (दशम) भावसे आगे (११,१२) में अथवा पीछे (९,८) में हो तो पिताके विदेश रहनेपर पुत्रका जन्म समझना चाहिये। (इससे यह सिद्ध होता है कि यदि सूर्य स्थिर राशिमें हो तो स्वदेशमें रहते हुए पिताके परोक्षमें और द्विस्वभाव राशिमें हो तो स्वदेश और परदेशके मध्य स्थानमें पिताके रहनेपर बालकका जन्म होता है।)

लग्नमें शनि और सप्तम भावमें मङ्गल हो अथवा बुध और शुक्रके बीचमें चन्द्रमा हो तो भी पिताके परोक्षमें शिशुका जन्म समझना चाहिये। पापग्रहकी राशिवाले लग्नमें चन्द्रमा हो अथवा वह वृश्चिकके द्रेष्काणमें हो तथा शुभग्रह २, ११ भावमें स्थित हों तो सर्पका या सर्पसे वेष्टित मनुष्यका जन्म समझना चाहिये ॥ ६८-७० ॥

मुनिश्रेष्ठ! यदि सूर्य चतुष्पद राशिमें हो और शेष ग्रह बलयुक्त हों तो एक ही कोशमें लिपटे हुए दो शिशुओंका जन्म समझना चाहिये। शनि या मङ्गलसे युक्त सिंह, वृष या मेष लग्न हो तो लग्नके नवमांशकी राशि जिस अङ्गकी हो, उस अङ्गमे नालसे लिपटे हुए शिशुका जन्म समझना चाहिये।

यदि लग्न और चन्द्रमापर गुरुकी दृष्टि न हो अथवा चन्द्रमा सूर्यसे संयुक्त हो तथा उसे गुरु नहीं देखता हो अथवा चन्द्रमा पापग्रह और सूर्यसे संयुक्त हो तो शिशुको पर-पुरुषके वीर्यसे उत्पन्न समझना चाहिये। यदि दो पापग्रह पापराशिमें स्थित होकर सूर्यसे सप्तम भावमें हों तो सूर्यके चर आदि राशिके अनुसार विदेश, स्वदेश या मार्गमें बालकका जन्म समझना चाहिये। पूर्ण चन्द्रमा अपनी राशिमें हो, बुध लग्नमें हो, शुभग्रह चतुर्थ भावमें हो अथवा जलचर राशि लग्न हो और उससे सप्तम स्थानमें चन्द्रमा हो तो नौकापर शिशुका जन्म समझना चाहिये। नारद! यदि जलचर राशि लग्नको जलचर राशिस्थ पूर्ण चन्द्रमा देखता हो अथवा वह १०, ४ या लग्नमें हो तो जलमें प्रसव होता है, इसमें संशय नहीं। यदि लग्न और चन्द्रमासे शनि बारहवें भावमें हों, उसपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो बालकका कारागारमें जन्म होता है। तथा कर्क या वृश्चिक लग्नमें शनि हो और उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो गड्ढेमें बालकका जन्म समझना चाहिये। जलचर राशिस्थ शनि लग्नमें हो तथा उसपर बुध, सूर्य या चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो क्रमशः क्रीड़ास्थान, देवालय और ऊसर भूमिमें शिशुका प्रसव समझना चाहिये। यदि मङ्गल बलवान् होकर लग्नगत शनिको देखता हो तो श्मशान-भूमिमें, चन्द्रमा और शुक्र देखते हों तो रम्य स्थानमें, गुरु देखता हो तो अग्निहोत्रगृहमें, सूर्य देखता हो तो राजगृह,

---

वृषमें दैनिक चन्द्रमाके आनेपर दसवें मास फाल्गुनमें बालकका जन्म होगा, ऐसा फल समझना चाहिये। किंतु कृत्तिकाके तीन चरण, रोहिणीके चारों चरण तथा मृगशिराके दो चरण, इस प्रकार नौ चरणोंकी वृष राशि होती है। उस दशामें किस नक्षत्रके किस चरणमें चन्द्रमाके आनेपर जन्म होगा, यह प्रश्न उठ सकता है। अब इसका समाधान किया जाता है—पूर्वोक्त चन्द्रमाकी राश्यादिमें भुक्त द्वादशांशमान (९ । ३० । १०)—(७ । ३०)= (२ । ० । १०)=(१२० । १०)=१२० कला (स्वल्पान्तरसे) मान लिया गया। "अर्धाल्पे त्याज्यमर्धाधिके रूपं ग्राह्यम्" इस नियमसे (१०) को छोड़ दिया। यहाँपर एक द्वादशांश-खण्डपर एक राशि प्रमाण होता है—यह स्पष्ट है। इसी आधारपर (१२० कला) सम्बन्धी चरणमान अनुपातसे ला रहे हैं, जब कि एक द्वादशांश खण्डकला-प्रमाण (२ । ३०)=(१५० कला) में एक राशिका कलामान १८०० पाते हैं तो १२० में कितना होगा—इस तरह $\frac{१८००\times१२०}{१५०}=१२\times१२०=१४४०$। एक राशिमें नौ चरण होते हैं और एक चरणका कलामान २०० कला होता है, अतः चरण जाननेके लिये $\frac{१४४०}{२००}=७+\frac{४०}{२००}$($७\frac{१}{५}$)। यहाँ लब्धि और शेषपर दृष्टिपात करनेसे यह ज्ञात होता है कि वृषराशिके आठवें चरणमें अर्थात् मृगशिरा नक्षत्रके प्रथम चरणमें चन्द्रमाका प्रवेश होनेपर बालकका जन्म होगा।

जन्मका इष्टकाल जाननेकी विधि—गर्भाधानकालिक लग्न ९ । १० । २५ । ० है। इसमें मकरराशिका चौथा नवमांश है, जो उससे चतुर्थ मेषराशिका है। मेषराशि रातमें बली होती है, अतः रातमें जन्म होगा। इसलिये रात्रिगत इष्टकालका ज्ञान करना चाहिये। यहाँपर राशियोंकी दिन-रात्रि-संज्ञाके अनुसार एक नवमांशका प्रमाण दिन या रात्रिका पूरा प्रमाण होता है। अतः त्रैराशिक क्रिया की गयी—एक नवमांश प्रमाण (३ अंश २० कला=२०० कला) में गर्भाधान रात्रिमान यदि २८ । ० दण्ड मिलता है तो लग्नके चतुर्थ नवमांशके भुक्त कलामान २५में कितना होगा? इस तरह $\frac{२८\times२५}{२००}=३$ । ३०घट्यादि मान हुआ। अर्थात् ३ दण्ड ३० पल रात बीतनेपर जन्म होगा, ऐसा निश्चय हुआ। इसी तरह अन्य उदाहरणोंको भी समझना चाहिये।

जिस अङ्गकी राशिमें पापग्रह हो, उस अङ्गमें व्रण और यदि उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें चिह्न (तिल मसक आदि) समझना चाहिये । पापग्रह अपनी राशि या नवमांशमें, अथवा स्थिर राशिमें हो तो जन्मके साथ ही व्रण होता है अन्यथा उस ग्रहकी दशा-अन्तर्दशामे आगे चलकर व्रण होता है । शनिके स्थानमें वात या पत्थरके आघातसे, मङ्गलके स्थानमें विष, शस्त्र और अग्निसे, बुधके स्थानमे पृथ्वी (मिट्टी) के आघातसे, सूर्याश्रित अङ्गमे काष्ठ और पशुसे, क्षीण चन्द्राश्रित अङ्गमें सींगवाले पशु और जलचरके आघातसे व्रण होता है । जिस अङ्गकी राशिमे तीन पापग्रह हों, उस अङ्गमें निश्चितरूपसे व्रण होता ही है । षष्ठ भावमें पापग्रह हो तो उस राशिके आश्रित अङ्गमें व्रण होता है । यदि उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें तिल या मसा होता है । यदि शुभग्रहका योग हो तो उस अङ्गमें चिह्न (दाग) मात्र होता है ॥९४–९६½॥

(ग्रहोंके स्वरूप और गुणका वर्णन—) सूर्यकी आकृति चतुरस्र* है, शरीरकी कान्ति और नेत्र पिङ्गल हैं । पित्तप्रधान प्रकृति है और उनके मस्तकपर थोड़े-से केश हैं। चन्द्रमाका आकार गोल है, उनकी प्रकृतिमें वात और कफ-की प्रधानता है, वे पण्डित और मृदुभाषी हैं तथा उनके नेत्र बड़े सुन्दर है । मङ्गलकी दृष्टि क्रूर है, युवावस्था है, पित्त-प्रधान प्रकृति है और वह चञ्चल स्वभावका है । बुधकी प्रकृतिमें कफ, पित्त और वातकी प्रधानता है, वह हास्यप्रिय और अनेकार्थक शब्द बोलनेवाला है । बृहस्पतिकी अङ्ग-कान्ति, केश और नेत्र पिङ्गल हैं, उनका शरीर बड़ा है, प्रकृतिमें कफकी प्रधानता है और वे बड़े बुद्धिमान् हैं । शुक्र-के अङ्ग और नेत्र सुन्दर है, मस्तकपर काले घुँघराले केश हैं और वे सर्वदा सुखी रहनेवाले हैं । शनिका शरीर लंबा और नेत्र कपिश वर्णके हैं, उनकी वातप्रधान प्रकृति है, उनके केश कठोर हैं और वे बडे आलसी हैं ॥९७–१००॥

(ग्रहोंके धातु—) स्नायु (शिरा), हड्डी, शोणित, त्वचा, वीर्य, वसा और मज्जा ये क्रमशः शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, गुरु और मङ्गलके धातु हैं ॥१०१॥

(अरिष्टकथन—) चन्द्रमा, लग्न और पापग्रह—ये राशिके अन्तिमांशमें हों अथवा चन्द्रमा और तीनों पापग्रह ये लग्नादि चारों केन्द्रोंमें हों तथा कर्क लग्न हो तो जातककी मृत्यु होती है । दो पापग्रह लग्न और सप्तम भावमें हो तथा चन्द्रमा एक पापग्रहसे युक्त हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है ॥ १०२-१०३ ॥ क्षीण चन्द्रमा १२ वें भावमे हो, पापग्रह लग्न और अष्टम भावमें हो तथा शुभग्रह केन्द्रमें न हों तो उत्पन्न शिशुकी मृत्यु होती है। अथवा पापयुक्त चन्द्रमा सप्तम, द्वादश या लग्नमें स्थित हो तथा उसपर केन्द्रसे भिन्नस्थानमे स्थित शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो जातककी मृत्यु होती है । यदि चन्द्रमा ६, ८ स्थानमें रहकर पापग्रहसे देखा जाता हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है । शुभग्रहसे दृष्ट हो तो ८ वर्षमे और शुभ तथा पापग्रह दोनोंसे दृष्ट हो तो ४ वर्षमें जातककी मृत्यु हो जाती है । क्षीण चन्द्रमा लग्नमें तथा पापग्रह ८, १, ४, ७, १० में स्थित हों तो उत्पन्न बालकका मरण होता है । अथवा दो पापग्रहोंके बीचमें होकर चन्द्रमा ४, ७, ८ स्थानमें स्थित हो या लग्न ही दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो जातककी मृत्यु होती है । पापग्रह ७, ८ में हों और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो माता-सहित शिशुकी मृत्यु होती है । राशिके अन्तिमांशमें चन्द्रमा पापग्रहसे अदृष्ट हो तथा पापग्रह त्रिकोण (५,९) में हो अथवा लग्नमे चन्द्रमा और सप्तममें पापग्रह हो तो शिशुका मरण होता है । राहुग्रस्त चन्द्रमा पापग्रहसे युक्त हो और मङ्गल अष्टम स्थानमें स्थित हो तो माता और शिशु दोनोकी मृत्यु होती है । इसी प्रकार राहुग्रस्त सूर्य यदि पापग्रहसे युक्त हो तथा बली पापग्रह अष्टम भावमे स्थित हो तो माता और शिशुका शस्त्रसे मरण होता है ॥ १०४—१०९ ॥

(आयुर्दायकथन—) चन्द्रमा और बृहस्पतिसे युक्त कर्क लग्न हो, बुध और शुक्र केन्द्रमे हों और शेष ग्रह (रवि, मङ्गल एवं शनि) ३, ६, ११ स्थानमें हों तो ऐसे योगमें उत्पन्न जातककी आयु बहुत अधिक होती है । मीन लग्नमें मीनका नवमांश हो, बुध वृषमें २५ कलापर हो तथा शेष सब ग्रह अपने-अपने उच्च स्थानमें हों तो जातककी आयु परम (१२० वर्ष ५ दिनकी) होती है । लग्नेश बली होकर केन्द्रमें हो, उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो बालक धनसहित दीर्घायु होता है । चन्द्रमा अपने उच्चमें हो, शुभग्रह अपनी राशिमें हों, बली लग्नेश लग्नमें हो तो जातककी ६० वर्षकी आयु होती है । केन्द्रमें शुभग्रह हों और अष्टम भाव शुद्ध (ग्रहरहित) हो तो ७० वर्षकी आयु होती है । शुभग्रह अपने-अपने मूल त्रिकोणमें हों, गुरु अपने उच्चमें हो तथा लग्नेश बलवान् हों तो ८० वर्षकी आयु होती है । सबल शुभग्रह केन्द्रमें हों और अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तो ३० वर्षकी आयु होती है । अष्टमेश नवम भावमें हों, बृहस्पति अष्टम भावमें रहकर पापग्रहसे दृष्ट हो तो २४ वर्षकी आयु होती है । लग्नेश और अष्टमेश दोनो अष्टम भावमें स्थित हों तो २७ वर्षकी आयु होती है । लग्नमें पापग्रहसहित बृहस्पति हो, उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तथा

* जिसकी लंबाई-चौड़ाई बराबर हो, वह चौकोर वस्तु 'चतुरस्र' कहलाती है ।

जिस अङ्गकी राशिमें पापग्रह हो, उस अङ्गमें व्रण और यदि उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें चिह्न (तिल मशक आदि) समझना चाहिये । पापग्रह अपनी राशि या नवमांशमें, अथवा स्थिर राशिमें हो तो जन्मके साथ ही व्रण होता है अन्यथा उस ग्रहकी दशा-अन्तर्दशामे आगे चलकर व्रण होता है । शनिके स्थानमें वात या पत्थरके आघातसे, मङ्गलके स्थानमें विष, शस्त्र और अग्निसे, बुधके स्थानमे पृथ्वी (मिट्टी) के आघातसे, सूर्याश्रित अङ्गमे काष्ठ और पशुसे, क्षीण चन्द्राश्रित अङ्गमें सींगवाले पशु और जलचरके आघातसे व्रण होता है । जिस अङ्गकी राशिमे तीन पापग्रह हों, उस अङ्गमें निश्चितरूपसे व्रण होता ही है । षष्ठ भावमें पापग्रह हो तो उस राशिके आश्रित अङ्गमें व्रण होता है । यदि उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें तिल या मसा होता है । यदि शुभग्रहका योग हो तो उस अङ्गमें चिह्न (दाग) मात्र होता है ॥९४-९६½॥

(ग्रहोंके स्वरूप और गुणका वर्णन—) सूर्यकी आकृति चतुरस्र* है, शरीरकी कान्ति और नेत्र पिङ्गल हैं । पित्तप्रधान प्रकृति है और उनके मस्तकपर थोड़े-से केश हैं। चन्द्रमाका आकार गोल है, उनकी प्रकृतिमें वात और कफ-की प्रधानता है, वे पण्डित और मृदुभाषी हैं तथा उनके नेत्र बड़े सुन्दर है । मङ्गलकी दृष्टि क्रूर है, युवावस्था है, पित्त-प्रधान प्रकृति है और वह चञ्चल स्वभावका है । बुधकी प्रकृतिमें कफ, पित्त और वातकी प्रधानता है, वह हास्यप्रिय और अनेकार्थक शब्द बोलनेवाला है । बृहस्पतिकी अङ्ग-कान्ति, केश और नेत्र पिङ्गल हैं, उनका शरीर बड़ा है, प्रकृतिमें कफकी प्रधानता है और वे बड़े बुद्धिमान् हैं । शुक्र-के अङ्ग और नेत्र सुन्दर है, मस्तकपर काले घुँघराले केश हैं और वे सर्वदा सुखी रहनेवाले हैं । शनिका शरीर लंबा और नेत्र कपिश वर्णके हैं, उनकी वातप्रधान प्रकृति है, उनके केश कठोर हैं और वे बडे आलसी हैं ॥९७-१००॥

(ग्रहोंके धातु—) स्नायु (शिरा), हड्डी, शोणित, त्वचा, वीर्य, वसा और मज्जा ये क्रमशः शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, गुरु और मङ्गलके धातु हैं ॥१०१॥

(अरिष्टकथन—) चन्द्रमा, लग्न और पापग्रह—ये राशिके अन्तिमांशमें हों अथवा चन्द्रमा और तीनों पापग्रह ये लग्नादि चारों केन्द्रोंमें हों तथा कर्क लग्न हो तो जातककी मृत्यु होती है । दो पापग्रह लग्न और सप्तम भावमें हो तथा चन्द्रमा एक पापग्रहसे युक्त हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है ॥ १०२-१०३ ॥ क्षीण चन्द्रमा १२ वें भावमे हो, पापग्रह लग्न और अष्टम भावमें हो तथा शुभग्रह केन्द्रमें न हों तो उत्पन्न शिशुकी मृत्यु होती है। अथवा पापयुक्त चन्द्रमा सप्तम, द्वादश या लग्नमें स्थित हो तथा उसपर केन्द्रसे भिन्नस्थानमे स्थित शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो जातककी मृत्यु होती है । यदि चन्द्रमा ६, ८ स्थानमें रहकर पापग्रहसे देखा जाता हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है । शुभग्रहसे दृष्ट हो तो ८ वर्षमे और शुभ तथा पापग्रह दोनोंसे दृष्ट हो तो ४ वर्षमें जातककी मृत्यु हो जाती है । क्षीण चन्द्रमा लग्नमें तथा पापग्रह ८, १, ४, ७, १० में स्थित हों तो उत्पन्न बालकका मरण होता है । अथवा दो पापग्रहोंके बीचमें होकर चन्द्रमा ४, ७, ८ स्थानमें स्थित हो या लग्न ही दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो जातककी मृत्यु होती है । पापग्रह ७, ८ में हों और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो माता-सहित शिशुकी मृत्यु होती है । राशिके अन्तिमांशमें चन्द्रमा पापग्रहसे अदृष्ट हो तथा पापग्रह त्रिकोण (५,९) में हो अथवा लग्नमे चन्द्रमा और सप्तममें पापग्रह हो तो शिशुका मरण होता है । राहुग्रस्त चन्द्रमा पापग्रहसे युक्त हो और मङ्गल अष्टम स्थानमें स्थित हो तो माता और शिशु दोनोंकी मृत्यु होती है । इसी प्रकार राहुग्रस्त सूर्य यदि पापग्रहसे युक्त हो तथा बली पापग्रह अष्टम भावमे स्थित हो तो माता और शिशुका शस्त्रसे मरण होता है ॥ १०४—१०९ ॥

(आयुर्दायकथन—)चन्द्रमा और बृहस्पतिसे युक्त कर्क लग्न हो, बुध और शुक्र केन्द्रमे हों और शेष ग्रह (रवि, मङ्गल एवं शनि) ३, ६, ११ स्थानमें हों तो ऐसे योगमें उत्पन्न जातककी आयु बहुत अधिक होती है । मीन लग्नमें मीनका नवमांश हो, बुध वृषमें २५ कलापर हो तथा शेष सब ग्रह अपने-अपने उच्च स्थानमें हों तो जातककी आयु परम (१२० वर्ष ५ दिनकी) होती है । लग्नेश बली होकर केन्द्रमें हो, उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो बालक धनसहित दीर्घायु होता है । चन्द्रमा अपने उच्चमें हो, शुभग्रह अपनी राशिमें हों, बली लग्नेश लग्नमें हो तो जातककी ६० वर्षकी आयु होती है । केन्द्रमें शुभग्रह हों और अष्टम भाव शुद्ध (ग्रहरहित) हो तो ७० वर्षकी आयु होती है । शुभग्रह अपने-अपने मूल त्रिकोणमें हों, गुरु अपने उच्चमें हो तथा लग्नेश बलवान् हों तो ८० वर्षकी आयु होती है । सबल शुभग्रह केन्द्रमें हों और अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तो ३० वर्षकी आयु होती है । अष्टमेश नवम भावमें हों, बृहस्पति अष्टम भावमें रहकर पापग्रहसे दृष्ट हो तो २४ वर्षकी आयु होती है । लग्नेश और अष्टमेश दोनो अष्टम भावमें स्थित हों तो २७ वर्षकी आयु होती है । लग्नमें पापग्रहसहित बृहस्पति हो, उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तथा अष्टममें कोई ग्रह न हो तो २२ वर्षकी आयु समझनी चाहिये ।

* जिसकी लबाई-चौडाई बराबर हो, वह चौकोर वस्तु 'चतुरस्र' कहलाती है ।

(लग्नायु-साधन—)लग्नकी राशियोंको छोड़कर अंशादि-को कला बनाकर २०० से भाग देनेपर लब्धि वर्ष-संख्या होगी। शेषको १२ से गुणाकर २०० से भाग देनेपर लब्धि मास-संख्या होगी। पुनः पूर्ववत् ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देनेपर लब्धि दिनादिकी सूचक होगी* ॥ १२८½ ॥

(अंशायुर्दाय-साधन[1]—)लग्नसहित ग्रहोंके पृथक्-पृथक् अंश बनाकर ४० से भाग देकर जो शेष बचे उसे आयुर्दाय-साधनोपयोगी अंशादि समझे; उसमें जो विशेष संस्कार कर्तव्य है, उसका वर्णन करता हूँ। लग्नमें ग्रहको घटावे। यदि शेष ६ राशिसे अल्प हो तो उसमें निम्नाङ्कित संस्कार विशेष करना चाहिये, अन्यथा नहीं। यदि घटाया हुआ ग्रह ६ राशिसे अल्प और १ राशिसे अधिक हो तो उन अंशोंसे ३० में भाग देकर लब्धिको १ में घटावे और शेषको गुणक समझे। यदि ग्रह घटाया हुआ लग्न १ राशिसे अल्प हो तो उन्हीं अंशोंमें ३० का भाग देकर लब्धिको १ में घटानेसे शेष गुणक होता है। इस प्रकार शुभग्रहके गुणकको आधा करके गुणक समझे और पाप-ग्रहके समस्त गुणकोंको ग्रहण करे। फिर इस प्रकारके गुणकोंसे उपर्युक्त आयुर्दायके अंशको गुणा करे तो संस्कृत अंश होता है। यह संस्कार कहा गया है। इस संस्कृत आयुर्दायके अंशको कलात्मक बनाकर २०० से भाग देकर लब्धिको वर्ष समझे। फिर शेषको १२ से गुणा करके गुणनफलमे २०० का भाग देनेसे लब्धिको मास समझे। तत्पश्चात् शेषमें ३० आदिसे गुणा करके २०० का भाग देनेसे लब्धिको दिन एवं घटी आदि समझे†।

लग्नके आयुर्दाय अंशादिको ३ से गुणा करके गुणनफलमें १० का भाग देनेसे जो लब्धि हो, वह वर्ष है। फिर शेषको १२ आदिसे गुणा करके १० से भाग देनेपर जो लब्धि हो उसे मासादि समझे। (लग्नकी आयुमें इतनी विशेषता है कि) यदि लग्न सबल हो तो लग्नकी जितनी भुक्त राशि-संख्या हो उतने वर्ष और अधिक जोड़े। तथा अंशादिको २ से गुणा करके ५ का भाग देकर लब्धिको मास समझकर उसे भी जोड़े तथा शेषको ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देकर जो लब्धि आवे, उसके तुल्य दिनादि रूप फल

---

१६ हुई, शेष ० रहा। इस प्रकार सूर्यसे आयुमान वर्षादि १६। १। ८। १६। ० हुआ। इसी तरह सब ग्रहोंका आयु-साधन कर लेना चाहिये।

* लग्नायु-साधन—लग्नकी राशिको छोड़कर अंशादि १५। २०। ३० को कलात्मक बनानेसे ९२०। ३० हुआ। इसमें २०० का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ४ हुए। शेष १२०। ३० को १२ से गुणा करनेपर गुणनफल १४४६। ० में २०० का भाग देनेसे लब्ध मास ७ हुए। शेष ४६ को ३० से गुणा करके गुणनफल १३८० में २०० का भाग देनेपर लब्ध दिन ६ हुए। शेष १८० को ६० से गुणा करनेपर गुणनफल १०८०० में २०० का भाग देनेसे लब्धि ५४ घड़ी हुई। इस प्रकार लग्नायुमान वर्षादि ४। ७। ६। ५४। ० हुआ।

१. 'अंशायु' वह है, जो ग्रहोंके अंश (नवमांश) द्वारा अनुपातसे जानी जाती है।

† अंशायु-साधन—स्पष्ट राश्यादि सूर्य १०। १५। १०। २० को अंशात्मक बनानेसे ३१५। १०। २०में ४० का भाग देनेपर शेष ३५। १०। २० हुआ। यह साधनोपयोगी अंशादि हुआ। इसमें संस्कारविशेष करनेके लिये सूर्य १०। १५। १०। २० लग्न ३। १५। २०। ३०में न घट सकनेके कारण नियमानुसार १२ राशिमें जोड़कर घटानेसे शेष ५। ०। १०। १० यह ६ राशिसे कम और १ राशिसे अधिक है, इसलिये इस शेषके अंशादि १५०। १०। १० से ३० में भाग देनेपर लब्ध अंश ० हुआ। शेष ३० को ६० से गुणा कर गुणनफल १८००में उक्त भाजकका भाग देनेपर लब्धि-कला ११ हुई। शेष १४८। ८। १० को ६० से गुणा कर गुणनफल ८८८८। १०में उक्त अंशादि भाजकसे भाग देनेपर तृतीय लब्धि ५९ हुई। इस प्रकार लब्धिमान अंशादि ०। ११। १५ हुआ। इसको १ अंशमें घटानेसे शेष ०। ४८। १ यह गुणक हुआ। सूर्य पापग्रह है, अतः इस गुणकसे आयु-साधनोपयोगी अंशादि ३५। १०। २० को गुणा करनेपर गुणनफल २८। ८। ५१ यह संस्कृत अंशादि हुआ। इसको कलात्मक बनानेसे १६८८। ५१ हुआ। इसमें २००का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ८ हुए। शेष ८८। ५१ को १२ आदिसे गुणा कर गुणनफलमें २००का भाग देकर पूर्ववत् मासादि निकालनेसे आयुमान वर्षादि ८। ५। ९। ५५। ४८ हुआ।

(लग्नायु-साधन—) लग्नकी राशियोंको छोड़कर अंशादिको कला बनाकर २०० से भाग देनेपर लब्धि वर्ष-संख्या होगी। शेषको १२ से गुणाकर २०० से भाग देनेपर लब्धि मास-संख्या होगी। पुनः पूर्ववत् ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देनेपर लब्धि दिनादिकी सूचक होगी* ॥ १२८½ ॥

(अंशायुर्[1]दाय-साधन—) लग्नसहित ग्रहोंके पृथक्-पृथक् अंश बनाकर ४० से भाग देकर जो शेष बचे उसे आयुर्दाय-साधनोपयोगी अंगादि समझे; उसमें जो विशेष संस्कार कर्तव्य है, उसका वर्णन करता हूँ। लग्नमें ग्रहको घटावे। यदि शेष ६ राशिसे अल्प हो तो उसमें निम्नाङ्कित संस्कार विशेष करना चाहिये, अन्यथा नहीं। यदि घटाया हुआ ग्रह ६ राशिसे अल्प और १ राशिसे अधिक हो तो उन अंशोंसे ३० में भाग देकर लब्धिको १ में घटावे और शेषको गुणक समझे। यदि ग्रह घटाया हुआ लग्न १ राशिसे अल्प हो तो उन्हीं अंशोंमें ३० का भाग देकर लब्धिको १ में घटानेसे शेष गुणक होता है। इस प्रकार शुभग्रहके गुणकको आधा करके गुणक समझे और पाप-ग्रहके समस्त गुणकोंको ग्रहण करे। फिर इस प्रकारके गुणकोंसे उपर्युक्त आयुर्दायके अंशको गुणा करे तो संस्कृत अंश होता है। यह संस्कार कहा गया है। इस संस्कृत आयुर्दायके अंशको कलात्मक बनाकर २०० से भाग देकर लब्धिको वर्ष समझे। फिर शेषको १२ से गुणा करके गुणनफलमे २०० का भाग देनेसे लब्धिको मास समझे। तत्पश्चात् शेषमें ३० आदिसे गुणा करके २०० का भाग देनेसे लब्धिको दिन एवं घटी आदि समझे† ।

लग्नके आयुर्दाय अंशादिको ३ से गुणा करके गुणनफलमें १० का भाग देनेसे जो लब्धि हो, वह वर्ष है। फिर शेषको १२ आदिसे गुणा करके १० से भाग देनेपर जो लब्धि हो उसे मासादि समझे। (लग्नकी आयुमें इतनी विशेषता है कि) यदि लग्न सबल हो तो लग्नकी जितनी भुक्त राशि-संख्या हो उतने वर्ष और अधिक जोड़े। तथा अंशादिको २ से गुणा करके ५ का भाग देकर लब्धिको मास समझकर उसे भी जोड़े तथा शेषको ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देकर जो लब्धि आवे, उसके तुल्य दिनादि रूप फल

---

१६ हुई, शेष ० रहा। इस प्रकार सूर्यसे आयुमान वर्षादि १६ । १ । ८ । १६ । ० हुआ। इसी तरह सब ग्रहोंका आयु-साधन कर लेना चाहिये।

* लग्नायु-साधन—लग्नकी राशिको छोड़कर अंशादि १५ । २० । ३० को कलात्मक बनानेसे ९२० । ३० हुआ। इसमें २०० का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ४ हुए। शेष १२० । ३० को १२ से गुणा करनेपर गुणनफल १४४६ । ० में २०० का भाग देनेसे लब्ध मास ७ हुए। शेष ४६ को ३० से गुणा करके गुणनफल १३८० में २०० का भाग देनेपर लब्ध दिन ६ हुए। शेष १८० को ६० से गुणा करनेपर गुणनफल १०८०० में २०० का भाग देनेसे लब्धि ५४ घड़ी हुई। इस प्रकार लग्नायुमान वर्षादि ४ । ७ । ६ । ५४ । ० हुआ।

१. 'अंशायु' वह है, जो ग्रहोंके अंश (नवमांश) द्वारा अनुपातसे जानी जाती है।

† अंशायु-साधन—स्पष्ट राश्यादि सूर्य १० । १५ । १० । २० को अंशात्मक बनानेसे ३१५ । १० । २०में ४० का भाग देनेपर शेष ३५ । १० । २० हुआ। यह साधनोपयोगी अंशादि हुआ। इसमें संस्कारविशेष करनेके लिये सूर्य १० । १५ । १० । २० लग्न ३ । १५ । २० । ३०में न घट सकनेके कारण नियमानुसार १२ राशिमें जोड़कर घटानेसे शेष ५ । ० । १० । १० यह ६ राशिसे कम और १ राशिसे अधिक है, इसलिये इस शेषके अंशादि १५० । १० । १० से ३० में भाग देनेपर लब्ध अंश ० हुआ। शेष ३० को ६० से गुणा कर गुणनफल १८००में उक्त भाजकका भाग देनेपर लब्धि-कला ११ हुई। शेष १४८ । ८ । १० को ६० से गुणा कर गुणनफल ८८८८ । १०में उक्त अंशादि भाजकसे भाग देनेपर तृतीय लब्धि ५९ हुई। इस प्रकार लब्धिमान अंशादि ० । ११ । १५ हुआ। इसको १ अंशमें घटानेसे शेष ० । ४८ । १ यह गुणक हुआ। सूर्य पापग्रह है, अत इस गुणकसे आयु-साधनोपयोगी अंशादि ३५ । १० । २० को गुणा करनेपर गुणनफल २८ । ८ । ५१ यह संस्कृत अंशादि हुआ। इसको कलात्मक बनानेसे १६८८ । ५१ हुआ। इसमें २००का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ८ हुए। शेष ८८ । ५१ को १२ आदिसे गुणा कर गुणनफलमें २००का भाग देकर पूर्ववत् मासादि निकालनेसे आयुमान वर्षादि ८ । ५ । ९ । ५५ । ४८ हुआ।

होता है ॥ १४२-१४३ ॥ पहले जिस ग्रहके जो द्रव्य बताये गये हैं, भाव और राशियोंमे जो उन ग्रहोंकी दृष्टि तथा योगका फल कहा गया है एव आजीविका आदि जो-जो फल बताये गये हैं, उन सबका विचार उस ग्रहकी दशामें करना चाहिये। जो ग्रह पापदशामे प्रवेशके समय अपने शत्रुसे देखा जाता हो, वह विपत्तिकारक (अत्यन्त अशुभ फल देनेवाला) होता है तथा जो शुभग्रह मित्रसे दृष्ट हो और शुभवर्गमें रहकर तत्काल बलवान् हो, वह सब आपत्ति (दुष्ट फल) को नष्ट कर देता है। जिसका (आगे बताया जानेवाला) अष्टक वर्गज फल पूर्ण शुभ हो तथा जो ग्रह लग्न या चन्द्रमासे १, ३, ६, १०, ११ में, स्वोच्च स्थानमें, स्वराशिमें, अपने मूल त्रिकोणमें तथा मित्रकी राशिमें हो, उसका अशुभ फल भी मध्यम हो जाता है, मध्यम फल श्रेष्ठ हो जाता है तथा शुभ फल तो अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। यदि वह ग्रह इससे भिन्न स्थानमें हो, तो उसके पाप-फलकी वृद्धि होती है और उसका शुभ फल भी अल्प हो जाता है। इन फलोंको भी ग्रहके बलाबलको समझकर तदनुसार स्वल्प या अधिक समझना चाहिये ॥ १४४—१४८॥

(लग्न-दशा-फल—) चर लग्नमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय द्रेष्काण हो तो क्रमसे लग्नकी दशा शुभ, मध्यम और अशुभ फल देनेवाली होती है। द्विस्वभाव लग्न हो तो इससे विपरीत फल होता है (अर्थात् प्रथमादि द्रेष्काणमे क्रमसे अशुभ, मध्यम और शुभ फल देनेवाली दशा होती है)। स्थिर लग्न हो तो प्रथमादि द्रेष्काणमें अशुभ, शुभ और मध्यम फल देनेवाली दशा होती है। लग्न यदि अपने स्वामी, गुरु और बुधसे युक्त एवं दृष्ट हो तो उसकी दशा शुभप्रद होती है। यदि वह पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो अथवा पापके मध्यमें हो तो उसकी दशा अशुभ फल देनेवाली होती है ॥१४९-१५०॥

(अष्टक-वर्ग-कथन–) सूर्य जन्म-कालिक स्वाश्रित राशिसे १।२।१०।४।८।११।९।७ इन स्थानोंमें शुभ होता है। मङ्गल और शनिसे भी इन्हीं स्थानोंमे रहनेपर वह शुभ होता है। शुक्रसे ७।१२।६ मे, गुरुसे ९।५।११।६ में, चन्द्रमासे १०।३।११।६ में, बुधसे इन्हीं १०।३।११।६ स्थानोंमे और १२।५।९ में भी वह शुभ होता है। लग्नसे ३।६।१०।११।१२।४ इन स्थानोंमें सूर्य शुभ होता है ॥ १५१-१५२ ॥

चन्द्रमा लग्नसे ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; मङ्गलसे २, ५, ९ सहित इन्हीं ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; अपने स्थानसे ३, ६, १०, ११, ७, १ में; सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ७, ८ में; शनिसे ६, ३, ११, ५ में; बुधसे ५, ३, ८, १, ४, ७, १० में; गुरुसे १, ४, ७, १०, ८, ११, १२ में और शुक्रसे ४, ५, ९, ३, ११, ७, १० इन स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५३-१५४ ॥

मङ्गल सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ५ में; लग्नसे ३, ६, १०, ११, १ में; चन्द्रमासे ३, ६, ११ में; अपने आश्रित स्थानसे १, ४, ७, १०, ८, ११, २ में; शनिसे ९, ८, ११, १, ४, ७, १० में; बुधसे ६, ३, ५, ११ में; शुक्रसे ६, ११, २, ८ में और गुरुसे १०, ११, १२, ६ स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५५-१५६ ॥

बुध शुक्रसे ५, ३ सहित २, १, ८, ९, ४, ११ स्थानोंमें; शनि और मङ्गलसे १०, ७ सहित २, १, ८, ९, ४ और ११ वें स्थानमें; गुरुसे १२, ६, ११, ८ वें स्थानोंमें; सूर्यसे ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे १, ३, १०, ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; चन्द्रमासें ६, १०, ११, ८, ४, १० में और लग्नसे १ तथा पूर्वोक्त ६, १०, ११, ८, ४, १० स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५७-१५८ ॥

गुरु मङ्गलसे १०, २, ८, १, ७, ४, ११ स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे ३ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; सूर्यसे ३, ९ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; शुक्रसे ५, २, ९, १०, ११, ६ में; चन्द्रमासे २, ११, ५, ९, ७ में; शनिसे ५, ३, ६, १२ मे; बुधसे ९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११ में तथा लग्नसे ७ सहित पूर्वोक्त (९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११) स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५९-१६० ॥

शुक्र लग्नसे १, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९ स्थानोंमें; चन्द्रमासे भी इन्हीं स्थानों (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९) में और १२ वें स्थानमें; अपने आश्रित स्थानसे १० सहित उक्त (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९) स्थानोंमें; शनिसे ३, ५, ९, ४, १०, ८, ११ स्थानोंमें; सूर्यसे ८, ११, १२ स्थानोंमें; गुरुसे ९, ८, ५, १०, ११ स्थानोंमें; बुधसे ५, ३, ११, ६, ९ स्थानोंमें और मङ्गलसे ३, ६, ९, ५, ११ तथा बारहवें स्थानोंमे शुभ होता है ॥ १६१-१६२ ॥

शनि अपने आश्रित स्थानसे ३, ५, ११, ६ में; मङ्गलसे १०, १२ सहित पूर्वोक्त (३, ५, ११, ६) स्थानोंमें;

होता है ॥ १४२-१४३ ॥ पहले जिस ग्रहके जो द्रव्य बताये गये हैं, भाव और राशियोमे जो उन ग्रहोंकी दृष्टि तथा योगका फल कहा गया है एव आजीविका आदि जो-जो फल बताये गये हैं, उन सबका विचार उस ग्रहकी दशामें करना चाहिये। जो ग्रह पापदशामे प्रवेशके समय अपने शत्रुसे देखा जाता हो, वह विपत्तिकारक (अत्यन्त अशुभ फल देनेवाला) होता है तथा जो शुभग्रह मित्रसे दृष्ट हो और शुभवर्गमें रहकर तत्काल बलवान् हो, वह सब आपत्ति (दुष्ट फल) को नष्ट कर देता है। जिसका (आगे बताया जानेवाला) अष्टक वर्गज फल पूर्ण शुभ हो तथा जो ग्रह लग्न या चन्द्रमासे १, २, ६, १०, ११ में, स्वोच्च स्थानमें, स्वराशिमें, अपने मूल त्रिकोणमें तथा मित्रकी राशिमें हो, उसका अशुभ फल भी मध्यम हो जाता है, मध्यम फल श्रेष्ठ हो जाता है तथा शुभ फल तो अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। यदि वह ग्रह इससे भिन्न स्थानमें हो, तो उसके पाप-फलकी वृद्धि होती है और उसका शुभ फल भी अल्प हो जाता है। इन फलोंको भी ग्रहके बलाबलको समझकर तदनुसार स्वल्प या अधिक समझना चाहिये ॥ १४४—१४८॥

(लग्न-दशा-फल—) चर लग्नमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय द्रेष्काण हो तो क्रमसे लग्नकी दशा शुभ, मध्यम और अशुभ फल देनेवाली होती है। द्विस्वभाव लग्न हो तो इससे विपरीत फल होता है (अर्थात् प्रथमादि द्रेष्काणमे क्रमसे अशुभ, मध्यम और शुभ फल देनेवाली दशा होती है)। स्थिर लग्न हो तो प्रथमादि द्रेष्काणमें अशुभ, शुभ और मध्यम फल देनेवाली दशा होती है। लग्न यदि अपने स्वामी, गुरु और बुधसे युक्त एवं दृष्ट हो तो उसकी दशा शुभप्रद होती है। यदि वह पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो अथवा पापके मध्यमें हो तो उसकी दशा अशुभ फल देनेवाली होती है ॥१४९-१५०॥

(अष्टक-वर्ग-कथन-) सूर्य जन्म-कालिक स्वाश्रित राशिसे १।२।१०।४।८।११।९।७ इन स्थानोंमें शुभ होता है। मङ्गल और शनिसे भी इन्हीं स्थानोंमे रहनेपर वह शुभ होता है। शुक्रसे ७।१२।६ मे, गुरुसे ९।५।११।६ में, चन्द्रमासे १०।३।११।६ में, बुधसे इन्हीं १०।३।११।६ स्थानोंमे और १२।५।९ में भी वह शुभ होता है। लग्नसे ३।६।१०।११।१२।४ इन स्थानोंमें सूर्य शुभ होता है ॥ १५१-१५२ ॥

चन्द्रमा लग्नसे ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; मङ्गलसे २, ५, ९ सहित इन्हीं ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; अपने स्थानसे ३, ६, १०, ११, ७, १ में; सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ७, ८ में; शनिसे ६, ३, ११, ५ में; बुधसे ५, ३, ८, १, ४, ७, १० में; गुरुसे १, ४, ७, १०, ८, ११, १२ में और शुक्रसे ४, ५, ९, ३, ११, ७, १० इन स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५३-१५४ ॥

मङ्गल सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ५ में; लग्नसे ३, ६, १०, ११, १ में; चन्द्रमासे ३, ६, ११ में; अपने आश्रित स्थानसे १, ४, ७, १०, ८, ११, २ में; शनिसे ९, ८, ११, १, ४, ७, १० में; बुधसे ६, ३, ५, ११ में; शुक्रसे ६, ११, २, ८ में और गुरुसे १०, ११, १२, ६ स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५५-१५६ ॥

बुध शुक्रसे ५, ३ सहित २, १, ८, ९, ४, ११ स्थानोंमें; शनि और मङ्गलसे १०, ७ सहित २, १, ८, ९, ४ और ११ वें स्थानमें; गुरुसे १२, ६, ११, ८ वें स्थानोंमें; सूर्यसे ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे १, ३, १०, ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; चन्द्रमासे ६, १०, ११, ८, ४, १० में और लग्नसे १ तथा पूर्वोक्त ६, १०, ११, ८, ४, १० स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५७-१५८ ॥

गुरु मङ्गलसे १०, २, ८, १, ७, ४, ११ स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे ३ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; सूर्यसे ३, ९ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; शुक्रसे ५, २, ९, १०, ११, ६ में; चन्द्रमासे २, ११, ५, ९, ७ में; शनिसे ५, ३, ६, १२ मे; बुधसे ९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११ में तथा लग्नसे ७ सहित पूर्वोक्त (९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११) स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५९-१६० ॥

शुक्र लग्नसे १, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९ स्थानोंमें; चन्द्रमासे भी इन्हीं स्थानों (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९) में और १२ वें स्थानमें; अपने आश्रित स्थानसे १० सहित उक्त (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९) स्थानोंमें; शनिसे ३, ५, ९, ४, १०, ८, ११ स्थानोंमें; सूर्यसे ८, ११, १२ स्थानोंमें; गुरुसे ९, ८, ५, १०, ११ स्थानोंमें; बुधसे ५, ३, ११, ६, ९ स्थानोंमें और मङ्गलसे ३, ६, ९, ५, ११ तथा बारहवें स्थानोंमे शुभ होता है ॥ १६१-१६२ ॥

शनि अपने आश्रित स्थानसे ३, ५, ११, ६ में; मङ्गलसे १०, १२ सहित पूर्वोक्त (३, ५, ११, ६) स्थानोंमें;

लग्नमे हों तो इन चारों लग्नोंमें जन्म लेनेवाले बालक राजा होते हैं। लग्न अथवा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवमांशमें हो और उसपर ४, ५ या ६ ग्रहकी दृष्टि हो तो इसके २२ भेदमें २२ प्रकारके राजयोग होते है। मङ्गल अपने उच्चमे हो, रवि और चन्द्रमा धन-राशिमे हों और मकरस्थ शनि लग्नमें हो तो जातक राजा होता है। उच्च (मेष) का रवि लग्नमें हो, चन्द्रमासहित शनि सप्तमभावमे हो, बृहस्पति अपनी राशि (धनु या मीन) में हो तो जन्म लेनेवाला राजा होता है ॥ १७०-१७१ ॥ शनि अथवा चन्द्रमा अपने उच्चराशिका होकर लग्नमें हों, षष्ठ भावमें सूर्य और बुध हो, शुक्र तुलामें, मङ्गल मेषमें और गुरु कर्कमे हो तो इन दोनो लग्नोंमें जन्म लेनेसे शिशु राजा होते हैं। उच्चस्थ* मङ्गल यदि चन्द्रमाके साथ लग्नमें हो तो भी जातक राजा होता है। चन्द्रमा वृष लग्नमें हो और सूर्य, गुरु तथा शनि ये क्रमसे ४, ७, १० वें स्थानमें हों तो जातक राजा होता है। मकर लग्नमे शनि हो और लग्नसे ३, ६, ९ एवं १२ वें भावमे क्रमशः चन्द्रमा, मङ्गल, बुध तथा बृहस्पति हों तो जन्म लेनेवाला बालक राजा होता है ॥ १७२-१७३ ॥

गुरुसहित चन्द्रमा धनमें और मङ्गल मकरमें हों तथा बुध या शुक्र अपने उच्चमे स्थित होकर लग्नमें विद्यमान हों तो उन दोनो योगोंमें जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है। बृहस्पतिसहित कर्क लग्न हो, बुध, चन्द्रमा तथा शुक्र तीनो ११ वें भावमें हों और सूर्य मेषमें हो तो जातक राजा होता है। चन्द्रमासहित मीन लग्न हो, सूर्य, शनि, मङ्गल—ये क्रमसे सिंह, कुम्भ और मकरमे हों तो उत्पन्न बालक राजा होता है। मङ्गलसहित मेष लग्न हो, बृहस्पति कर्कमे हो अथवा कर्कस्थ बृहस्पति लग्नमें हो तो जातक नरेश होता है। मङ्गल और शनि पञ्चमभावमे, गुरु, चन्द्रमा तथा शुक्र चतुर्थ भावमें और बुध कन्या लग्नमें हो तो जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है ॥ १७४–१७६ ॥ मकर लग्नमें शनि हो तथा मेष, कर्क, सिंह ये अपने-अपने स्वामीसे युक्त हों, शुक्र तुलामें और बुध मिथुनमें हों तो बालक यशस्वी राजा होता है ॥ १७७ ॥ मुनीश्वर ! इन बताये हुए योगोंमें जन्म लेनेवाला जिस किसीका पुत्र भी राजा होता है। तथा आगे जो योग बताये जायँगे, उनमें जन्म लेनेवाले राजकुमारको ही राजा समझना चाहिये। (यदि अन्य व्यक्ति इस योगमें उत्पन्न हुआ हो तो वह राजाके तुल्य होता है, राजा नहीं।) ॥ १७८ ॥

तीन या अधिक ग्रह बली होकर अपने-अपने उच्च या मूल त्रिकोणमे हों तो बालक राजा होता है। सिंहमें सूर्य, मेष लग्नमे चन्द्रमा, मकरमें मङ्गल, कुम्भमें शनि और धनुमे बृहस्पति हो तो उत्पन्न शिशु भूपाल होता है। मुने ! शुक्र अपनी राशिमे होकर चतुर्थ स्थानमें स्थित हों, चन्द्रमा नवमभावमे रहकर शुभ ग्रहसे दृष्ट या युक्त हों तथा शेष ग्रह ३, १, ११ वें भावमे विद्यमान हों तो जातक इस वसुधाका अधीश्वर होता है। बुध सबल होकर लग्नमे स्थित हों, बलवान् शुभग्रह नवमभावमें स्थित हों तथा शेष ग्रह ९, ५, ३, ६, १० और ११ वें भावमें हो तो उत्पन्न बालक धर्मात्मा नरेश होता है। चन्द्रमा, शनि और बृहस्पति क्रमशः दसवें, ग्यारहवें तथा लग्नमें स्थित हों, बुध और मङ्गल द्वितीय भावमें तथा शुक्र और रवि चतुर्थभावमें स्थित हों तो जातक भूपाल होता है। वृष लग्नमें चन्द्रमा, द्वितीयमें गुरु, ११वेंमें शनि तथा शेष ग्रह भी स्थित हों तो बालक नरेश होता है ॥ १७९—१८३ ॥

चतुर्थ भावमें गुरु, १० वें भावमें रवि और चन्द्रमा, लग्नमें शनि और ११ वें भावमें शेष ग्रह हों तो उत्पन्न शिशु राजा होता है। मङ्गल और शनि लग्नमें हों, चन्द्रमा, गुरु, शुक्र, रवि और बुध—ये क्रमसे ४, ७, ९, १० और ११ वेंमें हों तो ये सब ग्रह ऐसे बालकको जन्म देते हैं, जो भावी नरेश होता है। मुनीश्वर ! ऊपर कहे हुए योगोंमें उत्पन्न मनुष्यके दशम भाव या लग्नमें जो ग्रह हो, उसकी दशा-अन्तर्दशा आनेपर उसे राज्यकी प्राप्ति होती है। इन दोनों स्थानोंमें ग्रह न हो तो जन्म-समयमें जो ग्रह बलवान् हो, उसकी दशामें राज्यलाभ समझना चाहिये तथा जो ग्रह जन्म-समयमें शत्रु-राशि या अपनी नीच राशिमें हो, उसकी राशिमें क्लेश, पीड़ा आदिकी प्राप्ति होती है ॥ १८४-१८५½ ॥

(नाभस[1] योग-कथन—) समीपवर्ती दो केन्द्रस्थानों-में ही (रविसे शनिपर्यन्त) सब ग्रह हों तो 'गदा' नामक

* पहले उच्चस्थ मङ्गलादिके लग्नमें रहनेसे 'राजयोग' कहा गया है। इसलिये यहाँ भी जो चन्द्रमासहित मङ्गलको लग्नमें स्थित कहा गया है, उससे उनके उच्चस्थभावकी ही अनुवृत्ति समझनी चाहिये। अन्य मुनियोंने मकरस्थ मङ्गलके लग्नमें होनेसे 'राजयोग' कहा है।

१. नाभस योग अनेक होते हैं। इन योगोंमें राहु और केतुको छोड़कर केवल सूर्य आदि सात ग्रह ही लिये गये हैं।

लग्नमे हों तो इन चारों लग्नोंमें जन्म लेनेवाले बालक राजा होते हैं। लग्न अथवा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवमांशमें हो और उसपर ४, ५ या ६ ग्रहकी दृष्टि हो तो इसके २२ भेदमें २२ प्रकारके राजयोग होते हैं। मङ्गल अपने उच्चमे हो, रवि और चन्द्रमा धन-राशिमे हों और मकरस्थ शनि लग्नमें हो तो जातक राजा होता है। उच्च (मेष) का रवि लग्नमें हो, चन्द्रमासहित शनि सप्तमभावमे हो, बृहस्पति अपनी राशि (धनु या मीन) में हो तो जन्म लेनेवाला राजा होता है ॥ १७०-१७१ ॥ शनि अथवा चन्द्रमा अपने उच्चराशिका होकर लग्नमें हों, षष्ठ भावमें सूर्य और बुध हो, शुक्र तुलामें, मङ्गल मेषमें और गुरु कर्कमे हो तो इन दोनो लग्नोंमें जन्म लेनेसे शिशु राजा होते हैं। उच्चस्थ* मङ्गल यदि चन्द्रमाके साथ लग्नमें हो तो भी जातक राजा होता है। चन्द्रमा वृष लग्नमें हो और सूर्य, गुरु तथा शनि ये क्रमसे ४, ७, १० वें स्थानमें हों तो जातक राजा होता है। मकर लग्नमे शनि हो और लग्नसे ३, ६, ९ एवं १२ वें भावमे क्रमशः चन्द्रमा, मङ्गल, बुध तथा बृहस्पति हों तो जन्म लेनेवाला बालक राजा होता है ॥ १७२-१७३ ॥

गुरुसहित चन्द्रमा धनमें और मङ्गल मकरमें हों तथा बुध या शुक्र अपने उच्चमे स्थित होकर लग्नमें विद्यमान हों तो उन दोनो योगोंमें जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है। बृहस्पतिसहित कर्क लग्न हो, बुध, चन्द्रमा तथा शुक्र तीनो ११ वें भावमें हों और सूर्य मेषमें हो तो जातक राजा होता है। चन्द्रमासहित मीन लग्न हो, सूर्य, शनि, मङ्गल—ये क्रमसे सिंह, कुम्भ और मकरमे हों तो उत्पन्न बालक राजा होता है। मङ्गलसहित मेष लग्न हो, बृहस्पति कर्कमे हो अथवा कर्कस्थ बृहस्पति लग्नमें हो तो जातक नरेश होता है। मङ्गल और शनि पञ्चमभावमे, गुरु, चन्द्रमा तथा शुक्र चतुर्थ भावमें और बुध कन्या लग्नमें हो तो जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है ॥ १७४–१७६ ॥ मकर लग्नमें शनि हो तथा मेष, कर्क, सिंह ये अपने-अपने स्वामीसे युक्त हों, शुक्र तुलामें और बुध मिथुनमें हों तो बालक यशस्वी राजा होता है ॥ १७७ ॥ मुनीश्वर ! इन बताये हुए योगोंमें जन्म लेनेवाला जिस किसीका पुत्र भी राजा होता है। तथा आगे जो योग बताये जायँगे, उनमें जन्म लेनेवाले राजकुमारको ही राजा समझना चाहिये। (यदि अन्य व्यक्ति इस योगमें उत्पन्न हुआ हो तो वह राजाके तुल्य होता है, राजा नहीं।) ॥ १७८ ॥

तीन या अधिक ग्रह बली होकर अपने-अपने उच्च या मूल त्रिकोणमे हों तो बालक राजा होता है। सिंहमें सूर्य, मेष लग्नमे चन्द्रमा, मकरमें मङ्गल, कुम्भमें शनि और धनुमे बृहस्पति हो तो उत्पन्न शिशु भूपाल होता है। मुने ! शुक्र अपनी राशिमे होकर चतुर्थ स्थानमें स्थित हों, चन्द्रमा नवमभावमे रहकर शुभ ग्रहसे दृष्ट या युक्त हों तथा शेष ग्रह ३, १, ११ वें भावमे विद्यमान हों तो जातक इस वसुधाका अधीश्वर होता है। बुध सबल होकर लग्नमे स्थित हों, बलवान् शुभग्रह नवमभावमें स्थित हों तथा शेष ग्रह ९, ५, ३, ६, १० और ११ वें भावमें हो तो उत्पन्न बालक धर्मात्मा नरेश होता है। चन्द्रमा, शनि और बृहस्पति क्रमशः दसवें, ग्यारहवें तथा लग्नमें स्थित हों, बुध और मङ्गल द्वितीय भावमें तथा शुक्र और रवि चतुर्थभावमें स्थित हों तो जातक भूपाल होता है। वृष लग्नमें चन्द्रमा, द्वितीयमें गुरु, ११वेंमें शनि तथा शेष ग्रह भी स्थित हों तो बालक नरेश होता है ॥ १७९—१८३ ॥

चतुर्थ भावमें गुरु, १० वें भावमें रवि और चन्द्रमा, लग्नमें शनि और ११ वें भावमें शेष ग्रह हों तो उत्पन्न शिशु राजा होता है। मङ्गल और शनि लग्नमें हों, चन्द्रमा, गुरु, शुक्र, रवि और बुध—ये क्रमसे ४, ७, ९, १० और ११ वेंमें हों तो ये सब ग्रह ऐसे बालकको जन्म देते हैं, जो भावी नरेश होता है। मुनीश्वर ! ऊपर कहे हुए योगोंमें उत्पन्न मनुष्यके दशम भाव या लग्नमें जो ग्रह हो, उसकी दशा-अन्तर्दशा आनेपर उसे राज्यकी प्राप्ति होती है। इन दोनों स्थानोंमें ग्रह न हो तो जन्म-समयमें जो ग्रह बलवान् हो, उसकी दशामें राज्यलाभ समझना चाहिये तथा जो ग्रह जन्म-समयमें शत्रु-राशि या अपनी नीच राशिमें हो, उसकी राशिमें क्लेश, पीड़ा आदिकी प्राप्ति होती है ॥ १८४-१८५½ ॥

(नाभस[1] योग-कथन—) समीपवर्ती दो केन्द्रस्थानों-में ही (रविसे शनिपर्यन्त) सब ग्रह हों तो 'गदा' नामक

* पहले उच्चस्थ मङ्गलादिके लग्नमें रहनेसे 'राजयोग' कहा गया है। इसलिये यहाँ भी जो चन्द्रमासहित मङ्गलको लग्नमें स्थित कहा गया है, उससे उनके उच्चस्थभावकी ही अनुवृत्ति समझनी चाहिये। अन्य मुनियोंने मकरस्थ मङ्गलके लग्नमें होनेसे 'राजयोग' कहा है।

१. नाभस योग अनेक होते हैं। इन योगोंमें राहु और केतुको छोड़कर केवल सूर्य आदि सात ग्रह ही लिये गये हैं।

दूसरोंको कष्ट देनेवाला और गोपनीय स्थानोंका स्वामी होता है। शक्तियोगमें उत्पन्न नीच, आलसी और निर्धन होता है तथा दण्डयोगमें उत्पन्न पुरुष अपने प्रियजनोंसे वियोगका कष्ट भोगता है ॥ १९८-१९९ ॥

(चन्द्रयोगका कथन-) यदि चन्द्रमासे द्वितीयमें सूर्यको छोड़कर कोई भी अन्य ग्रह हो तो 'सुनफा' योग होता है। द्वादशमें हो तो 'अनफा' और दोनों (२, १२) स्थानोंमें ग्रह हों तो 'दुरुधरा' योग समझना चाहिये, अन्यथा (अर्थात् २, १२ में कोई ग्रह नहीं हो तो) 'केमद्रुम' योग होता है ॥ २०० ॥

(उक्त योगोंका फल-) सुनफा-योगमें जन्म लेने-वाला पुरुष अपने भुजबलसे उपार्जित धनका भोगी, दाता, धनवान् और सुखी होता है। अनफा-योगमें उत्पन्न मनुष्य रोगहीन, सुशील, विख्यात और सुन्दर रूपवाला होता है। दुरुधरामें जन्म लेनेवाला भोगी, सुखी, धनवान्, दाता और विषयोंसे निःस्पृह होता है तथा 'केमद्रुम' योगमें उत्पन्न मनुष्य अत्यन्त मलिन, दुखी, नीच और निर्धन होता है ॥ २०१-२०२ ॥

(द्विग्रहयोगफल-) मुने! सूर्य यदि चन्द्रमासे युक्त हो तो भाँति-भाँतिके यन्त्र (मशीन) और पत्थरके कार्यमें कुशल बनाता है। मङ्गलसे युक्त हो तो वह बालकको नीच कर्ममें लगाता है, बुधसे युक्त हो तो यशस्वी, कार्यकुशल, विद्वान् एवं धनी बनाता है, गुरुसे युक्त हो तो दूसरोंके कार्य करनेवाला, शुक्रसे युक्त हो तो धातुओं (ताँबा आदि) के कार्यमें निपुण तथा पात्र-निर्माण-कलाका जानकार बनाता है ॥ २०३-२०४ ॥

चन्द्रमा यदि मङ्गलसे युक्त हो तो जातक कूट वस्तु (नकली सामान), स्त्री और आसव-अरिष्टादिका क्रय-विक्रय करनेवाला तथा माताका द्रोही होता है। बुधके साथ चन्द्रमा हो तो उत्पन्न शिशुको धनी, कार्यकुशल तथा विनय और कीर्तिसे युक्त करता है; गुरुसे युक्त हो तो चञ्चलबुद्धि, कुलमें मुख्य, पराक्रमी और अधिक धनवान् बनाता है। मुने! यदि शुक्रसे युक्त चन्द्रमा हो तो बालकको वस्त्रनिर्माण-कलाका ज्ञाता बनाता है और यदि शनिसे युक्त हो तो वह बालकको ऐसी स्त्रीके पेटसे उत्पन्न कराता है, जिसने पतिके मरनेपर या जीते-जी दूसरे पतिसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो ॥ २०५-२०६ ॥

मङ्गल यदि बुधसे युक्त हो तो उत्पन्न हुआ बालक बाहुसे युद्ध करनेवाला (पहलवान) होता है। गुरुसे युक्त हो तो नगर-का मालिक, शुक्रसे युक्त हो तो जूआ खेलनेवाला तथा गायोंको पालनेवाला और शनिसे युक्त हो तो मिथ्यावादी तथा जुआरी होता है ॥ २०७ ॥

नारद! बुध यदि बृहस्पतिसे युक्त हो तो उत्पन्न शिशु नृत्य और सङ्गीतका प्रेमी होता है। शुक्रसे युक्त हो तो मायावी और शनिसे युक्त हो तो उत्पन्न मनुष्य लोभी और क्रूर होता है ॥ २०८ ॥

गुरु यदि शुक्रसे युक्त हो तो मनुष्य विद्वान्, शनिसे युक्त हो तो रसोइया अथवा घडा बनानेवाला (कुम्हार) होता है। शुक्र यदि शनिके साथ हो तो मन्द दृष्टिवाला तथा स्त्रीके आश्रयसे धनोपार्जन करनेवाला होता है ॥ २०९ ॥

(प्रव्रज्यायोग-) यदि जन्म-समयमें चार या चारसे अधिक ग्रह एक स्थानमें बलवान् हों तो मनुष्य गृह-त्यागी संन्यासी होता है। उन ग्रहोंमें मङ्गल, बुध, गुरु, चन्द्रमा, शुक्र, शनि और सूर्य बली हों तो मनुष्य क्रमशः शाक्य (रक्त-वस्त्रधारी बौद्ध), आजीवक (दण्डी), भिक्षु (यती), वृद्ध (वृद्धश्रावक), चरक (चक्रधारी), अह्नी (नग्न) और फलाहारी होता है। प्रव्रज्याकारक ग्रह यदि अन्य ग्रहसे पराजित हो तो मनुष्य उस प्रव्रज्यासे गिर जाता है। यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह सूर्य-सान्निध्यवश अस्त हो तो मनुष्य उसकी दीक्षा ही नहीं लेता और यदि वह ग्रह बलवान् हो तो उसकी 'प्रव्रज्या' में प्रीति रहती है। जन्मराशीशको यदि अन्य ग्रह नहीं देखता हो और जन्मराशीश यदि शनिको देखता हो अथवा निर्बल जन्मराशीशको शनि देखता हो या शनिके द्रेष्काण अथवा मङ्गल या शनिके नवमांशमें चन्द्रमा हो और उसपर शनिकी दृष्टि हो तो इन योगोंमें विरक्त होकर गृहत्याग करने-वाला पुरुष संन्यास-धर्मकी दीक्षा लेता है ॥ २१०-२१३ ॥

(अश्विन्यादि नक्षत्रोंमें जन्मका फल-) अश्विनी नक्षत्रमें जन्म हो तो बालक सुन्दर रूपवाला और भूषणप्रिय होता है। भरणीमें उत्पन्न शिशु सब कार्य करनेमें समर्थ और सत्यवक्ता होता है। कृत्तिकामें जन्म लेनेवाला अमिता-हारी, परस्त्रीमें आसक्त, स्थिरबुद्धि और प्रियवक्ता होता है। रोहिणीमें पैदा हुआ मनुष्य धनवान्; मृगशिरामें भोगी; आर्द्रामें हिंसास्वभाववाला, शठ और अपराधी; पुनर्वसुमें जितेन्द्रिय, रोगी और सुशील तथा पुष्यमें कवि और सुखी होता है ॥ २१४-२१५ ॥ आश्लेषा नक्षत्रमें उत्पन्न मनुष्य धूर्त, शठ, कृतघ्न, नीच

दूसरोंको कष्ट देनेवाला और गोपनीय स्थानोंका स्वामी होता है। शक्तियोगमें उत्पन्न नीच, आलसी और निर्धन होता है तथा दण्डयोगमें उत्पन्न पुरुष अपने प्रियजनोंसे वियोगका कष्ट भोगता है ॥ १९८-१९९ ॥

(चन्द्रयोगका कथन—) यदि चन्द्रमासे द्वितीयमें सूर्यको छोड़कर कोई भी अन्य ग्रह हो तो 'सुनफा' योग होता है। द्वादशमें हो तो 'अनफा' और दोनों (२, १२) स्थानोंमें ग्रह हों तो 'दुरुधरा' योग समझना चाहिये, अन्यथा (अर्थात् २, १२ में कोई ग्रह नहीं हो तो) 'केमद्रुम' योग होता है ॥ २०० ॥

(उक्त योगोंका फल—) सुनफा-योगमें जन्म लेनेवाला पुरुष अपने भुजबलसे उपार्जित धनका भोगी, दाता, धनवान् और सुखी होता है। अनफा-योगमें उत्पन्न मनुष्य रोगहीन, सुशील, विख्यात और सुन्दर रूपवाला होता है। दुरुधरामें जन्म लेनेवाला भोगी, सुखी, धनवान्, दाता और विषयोंसे निःस्पृह होता है तथा 'केमद्रुम' योगमें उत्पन्न मनुष्य अत्यन्त मलिन, दुखी, नीच और निर्धन होता है ॥ २०१-२०२ ॥

(द्विग्रहयोगफल—) मुने! सूर्य यदि चन्द्रमासे युक्त हो तो भाँति-भाँतिके यन्त्र (मशीन) और पत्थरके कार्यमें कुशल बनाता है। मङ्गलसे युक्त हो तो वह बालकको नीच कर्ममें लगाता है, बुधसे युक्त हो तो यशस्वी, कार्यकुशल, विद्वान् एवं धनी बनाता है, गुरुसे युक्त हो तो दूसरोंके कार्य करनेवाला, शुक्रसे युक्त हो तो धातुओं (ताँबा आदि) के कार्यमें निपुण तथा पात्र-निर्माण-कलाका जानकार बनाता है ॥ २०३-२०४ ॥

चन्द्रमा यदि मङ्गलसे युक्त हो तो जातक कूट वस्तु (नकली सामान); स्त्री और आसव-अरिष्टादिका क्रय-विक्रय करनेवाला तथा माताका द्रोही होता है। बुधके साथ चन्द्रमा हो तो उत्पन्न शिशुको धनी, कार्यकुशल तथा विनय और कीर्तिसे युक्त करता है; गुरुसे युक्त हो तो चञ्चलबुद्धि, कुलमें मुख्य, पराक्रमी और अधिक धनवान् बनाता है। मुने! यदि शुक्रसे युक्त चन्द्रमा हो तो बालकको वस्त्रनिर्माण-कलाका ज्ञाता बनाता है और यदि शनिसे युक्त हो तो वह बालकको ऐसी स्त्रीके पेटसे उत्पन्न कराता है, जिसने पतिके मरनेपर या जीतेजी दूसरे पतिसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो ॥ २०५-२०६ ॥

मङ्गल यदि बुधसे युक्त हो तो उत्पन्न हुआ बालक बाहुसे युद्ध करनेवाला (पहलवान) होता है। गुरुसे युक्त हो तो नगरका मालिक, शुक्रसे युक्त हो तो जूआ खेलनेवाला तथा गायोंको पालनेवाला और शनिसे युक्त हो तो मिथ्यावादी तथा जुआरी होता है ॥ २०७ ॥

नारद! बुध यदि बृहस्पतिसे युक्त हो तो उत्पन्न शिशु नृत्य और सङ्गीतका प्रेमी होता है। शुक्रसे युक्त हो तो मायावी और शनिसे युक्त हो तो उत्पन्न मनुष्य लोभी और क्रूर होता है ॥ २०८ ॥

गुरु यदि शुक्रसे युक्त हो तो मनुष्य विद्वान्, शनिसे युक्त हो तो रसोइया अथवा घडा बनानेवाला (कुम्हार) होता है। शुक्र यदि शनिके साथ हो तो मन्द दृष्टिवाला तथा स्त्रीके आश्रयसे धनोपार्जन करनेवाला होता है ॥ २०९ ॥

(प्रव्रज्यायोग—) यदि जन्म-समयमें चार या चारसे अधिक ग्रह एक स्थानमें बलवान् हों तो मनुष्य गृहत्यागी संन्यासी होता है। उन ग्रहोंमें मङ्गल, बुध, गुरु, चन्द्रमा, शुक्र, शनि और सूर्य बली हों तो मनुष्य क्रमशः शाक्य (रक्त-वस्त्रधारी बौद्ध), आजीवक (दण्डी), भिक्षु (यती), वृद्ध (वृद्धश्रावक), चरक (चक्रधारी), अर्हो (नग्न) और फलाहारी होता है। प्रव्रज्याकारक ग्रह यदि अन्य ग्रहसे पराजित हो तो मनुष्य उस प्रव्रज्यासे गिर जाता है। यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह सूर्य-सान्निध्यवश अस्त हो तो मनुष्य उसकी दीक्षा ही नहीं लेता और यदि वह ग्रह बलवान् हो तो उसकी 'प्रव्रज्या' में प्रीति रहती है। जन्मराशीशको यदि अन्य ग्रह नहीं देखता हो और जन्मराशीश यदि शनिको देखता हो अथवा निर्बल जन्मराशीशको शनि देखता हो या शनिके द्रेष्काण अथवा मङ्गल या शनिके नवमांशमें चन्द्रमा हो और उसपर शनिकी दृष्टि हो तो इन योगोंमें विरक्त होकर गृहत्याग करनेवाला पुरुष संन्यास-धर्मकी दीक्षा लेता है ॥ २१०—२१३ ॥

(अश्विन्यादि नक्षत्रोंमें जन्मका फल—) अश्विनी नक्षत्रमें जन्म हो तो बालक सुन्दर रूपवाला और भूषणप्रिय होता है। भरणीमें उत्पन्न शिशु सब कार्य करनेमें समर्थ और सत्यवक्ता होता है। कृत्तिकामें जन्म लेनेवाला अमिताहारी, परस्त्रीमें आसक्त, स्थिरबुद्धि और प्रियवक्ता होता है। रोहिणीमें पैदा हुआ मनुष्य धनवान्; मृगशिरामें भोगी; आर्द्रामें हिंसास्वभाववाला, शठ और अपराधी; पुनर्वसुमें जितेन्द्रिय, रोगी और सुशील तथा पुष्यमें कवि और सुखी होता है ॥ २१४-२१५ ॥ आश्लेषा नक्षत्रमें उत्पन्न मनुष्य धूर्त, शठ, कृतघ्न, नीच

(मेष-वृश्चिक) में हो तो निर्बुद्धि और मित्रहीन, बुधकी राशि (मिथुन-कन्या) में हो तो प्रधान रक्षक, गुरुकी राशि (धन-मीन) में हो तो सुपुत्र, उत्तम स्त्री और धनसे युक्त, शुक्रकी राशि (वृष-तुला) में हो तो राजा और अपनी राशि (मकर-कुम्भ) में हो तो जातक ग्रामका अधिपति होता है ॥२३०½॥

(चन्द्रपर दृष्टिका फल—) मेषस्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमसे राजा, पण्डित, गुणवान्, चोर स्वभाव तथा निर्धन* होता है ॥२३१॥

वृषस्थ चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो क्रमसे निर्धन, चोर-स्वभाव, राजा, पण्डित तथा प्रेष्य (भृत्य) होता है । मिथुन राशिमें स्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः धातुओंसे आजीविका करनेवाला, राजा, पण्डित, निर्भय, वस्त्र बनानेवाला तथा धनहीन होता है। अपनी राशि (कर्क) में स्थित चन्द्रमापर यदि मङ्गलादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जन्म लेनेवाला शिशु क्रमशः योद्धा, कवि, पण्डित, धनी, धातुसे जीविका करनेवाला तथा नेत्ररोगी होता है। सिंहराशिस्थ चन्द्रमापर यदि बुधादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः ज्योतिषी, धनवान्, लोकमें पूज्य, नाई, राजा तथा नरेश होता है। कन्या-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो शुभग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र) की दृष्टि होनेपर जातक क्रमशः राजा, सेनापति एवं निपुण होता है और अशुभ (शनि, मङ्गल, रवि) की दृष्टि होनेपर स्त्रीके आश्रयसे जीविका करनेवाला होता है। तुला-राशिस्थ चन्द्रमापर यदि बुध आदि (बुध, गुरु, शुक्र) की दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमसे भूपति, सोनार और व्यापारी होता है तथा शेषग्रह (शनि, रवि और मङ्गल) की दृष्टि होनेपर वह हिंसाके स्वभाववाला होता है ॥२३२—२३४॥ वृश्चिक-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर क्रमसे जातक दो संतानका पिता, मृदुस्वभाव, वस्त्रादिकी रँगाई करनेवाला, अङ्गहीन, निर्धन और भूमिपति होता है। धन-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि शुभग्रहोंकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः अपने कुल, पृथ्वी तथा जनसमूहका पालक होता है। शेष ग्रहों (शनि, रवि तथा मङ्गल) की दृष्टि हो तो जातक दम्भी और शठ होता है ॥२३५॥ मकर-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदिकी दृष्टि हो तो वह क्रमशः भूमिपति, पण्डित, धनी, लोकमें पूज्य, भूपति तथा परस्त्रीमें आसक्त होता है । कुम्भ-राशिस्थ चन्द्रमापर भी उक्त ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर इसी प्रकार (मकर-राशिस्थके समान) फल समझना चाहिये । मीन-राशिस्थ चन्द्रमापर शुभग्रहों (बुध, गुरु और शुक्र)की दृष्टि हो तो जातक क्रमशः हास्यप्रिय, राजा और पण्डित होता है। (तथा शेष ग्रहों (पापग्रहों) की दृष्टि होनेपर अनिष्ट फल समझना चाहिये ।) ॥ २३६ ॥ होरा (लग्न) के स्वामीकी होरामे स्थित चन्द्रमापर उसी होरामें स्थित ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह शुभप्रद होता है। जिस तृतीयांश (द्रेष्काण) में चन्द्रमा हो उसके स्वामीसे तथा मित्र-राशिस्थ ग्रहोंसे युक्त या दृष्ट चन्द्रमा शुभप्रद होता है । प्रत्येक राशिमें स्थित चन्द्रमापर ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे जो-जो फल कहे गये हैं, उन राशियोंके द्वादशांशमें स्थित चन्द्रमापर भी उन-उन ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे वे ही फल प्राप्त होते हैं ।

अब नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी दृष्टिसे प्राप्त होनेवाले फलोंका वर्णन करता हूँ । मङ्गलके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमशः*ग्राम या नगरका रक्षक, हिंसाके स्वभाववाला, युद्धमें निपुण, भूपति, धनवान् तथा झगड़ालू होता है। शुक्रके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः मूर्ख, परस्त्रीमें आसक्त, सुखी, काव्यकर्ता, सुखी तथा परस्त्रीमें आसक्ति रखनेवाला होता है । बुधके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः नर्तक, चोरस्वभाव, पण्डित, मन्त्री, सङ्गीतज्ञ तथा शिल्पकार होता है। अपने (कर्क) नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह छोटे शरीरवाला, धनवान्, तपस्वी, लोभी, अपनी स्त्रीकी कमाईपर पलनेवाला तथा कर्तव्यपरायण होता है। सूर्यके नवमांश (सिंह) मे स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः क्रोधी, राजमन्त्री, निधिपति या मन्त्री, राजा, हिंसाके स्वभाववाला तथा पुत्रहीन होता है। गुरुके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः हास्यप्रिय, रणमें कुशल, बलवान्, मन्त्री,

* मङ्गलकी दृष्टिसे भूप, बुधकी दृष्टिसे ज्ञ (पण्डित), गुरुकी दृष्टिसे गुणी, शुक्रकी दृष्टिसे चोर-स्वभाव तथा शनिकी दृष्टिसे अस्व (निर्धन) कहा गया है। सूर्यकी दृष्टिका फल अनुक्त होनेके कारण उसे शनिके ही तुल्य समझना चाहिये ।

* सूर्यादि क्रममें सूर्य, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इस प्रकार ६ ग्रह तथा बुधादिमें बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि, मङ्गल इस प्रकार ६ ग्रह समझने चाहिये ।

(मेष-वृश्चिक) में हो तो निर्बुद्धि और मित्रहीन, बुधकी राशि (मिथुन-कन्या) में हो तो प्रधान रक्षक, गुरुकी राशि (धन-मीन) में हो तो सुपुत्र, उत्तम स्त्री और धनसे युक्त, शुक्रकी राशि (वृष-तुला) में हो तो राजा और अपनी राशि (मकर-कुम्भ) में हो तो जातक ग्रामका अधिपति होता है ॥२३०½॥

(चन्द्रपर दृष्टिका फल—) मेषस्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमसे राजा, पण्डित, गुणवान्, चोर स्वभाव तथा निर्धन* होता है ॥२३१॥

वृषस्थ चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो क्रमसे निर्धन, चोर-स्वभाव, राजा, पण्डित तथा प्रेष्य (भृत्य) होता है। मिथुन राशिमें स्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः धातुओंसे आजीविका करनेवाला, राजा, पण्डित, निर्भय, वस्त्र बनानेवाला तथा धनहीन होता है। अपनी राशि (कर्क) में स्थित चन्द्रमापर यदि मङ्गलादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जन्म लेनेवाला शिशु क्रमशः योद्धा, कवि, पण्डित, धनी, धातुसे जीविका करनेवाला तथा नेत्ररोगी होता है। सिंहराशिस्थ चन्द्रमापर यदि बुधादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः ज्यौतिषी, धनवान्, लोकमें पूज्य, नाई, राजा तथा नरेश होता है। कन्या-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो शुभग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र) की दृष्टि होनेपर जातक क्रमशः राजा, सेनापति एवं निपुण होता है और अशुभ (शनि, मङ्गल, रवि) की दृष्टि होनेपर स्त्रीके आश्रयसे जीविका करनेवाला होता है। तुला-राशिस्थ चन्द्रमापर यदि बुध आदि (बुध, गुरु, शुक्र) की दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमसे भूपति, सोनार और व्यापारी होता है तथा शेषग्रह (शनि, रवि और मङ्गल) की दृष्टि होनेपर वह हिंसाके स्वभाववाला होता है ॥२३२—२३४॥ वृश्चिक-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर क्रमसे जातक दो संतानका पिता, मृदुस्वभाव, वस्त्रादिकी रँगाई करनेवाला, अङ्गहीन, निर्धन और भूमिपति होता है। धन-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि शुभग्रहोंकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः अपने कुल, पृथ्वी तथा जनसमूहका पालक होता है। शेष ग्रहों (शनि, रवि तथा मङ्गल) की दृष्टि हो तो जातक दम्भी और शठ होता है ॥२३५॥ मकर-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदिकी दृष्टि हो तो वह क्रमशः भूमिपति, पण्डित, धनी, लोकमें पूज्य, भूपति तथा परस्त्रीमें आसक्त होता है। कुम्भ-राशिस्थ चन्द्रमापर भी उक्त ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर इसी प्रकार (मकर-राशिस्थके समान) फल समझना चाहिये। मीन-राशिस्थ चन्द्रमापर शुभग्रहों (बुध, गुरु और शुक्र)की दृष्टि हो तो जातक क्रमशः हास्यप्रिय, राजा और पण्डित होता है। (तथा शेष ग्रहों (पापग्रहों) की दृष्टि होनेपर अनिष्ट फल समझना चाहिये।) ॥ २३६ ॥ होरा (लग्न) के स्वामीकी होरामे स्थित चन्द्रमापर उसी होरामें स्थित ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह शुभप्रद होता है। जिस तृतीयाश (द्रेष्काण) में चन्द्रमा हो उसके स्वामीसे तथा मित्र-राशिस्थ ग्रहोंसे युक्त या दृष्ट चन्द्रमा शुभप्रद होता है। प्रत्येक राशिमें स्थित चन्द्रमापर ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे जो-जो फल कहे गये हैं, उन राशियोंके द्वादशांशमें स्थित चन्द्रमापर भी उन-उन ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे वे ही फल प्राप्त होते हैं।

अब नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी दृष्टिसे प्राप्त होनेवाले फलोंका वर्णन करता हूँ। मङ्गलके नवमाशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमशः* ग्राम या नगरका रक्षक, हिंसाके स्वभाववाला, युद्धमें निपुण, भूपति, धनवान् तथा झगड़ालू होता है। शुक्रके नवमाशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः मूर्ख, परस्त्रीमें आसक्त, सुखी, काव्यकर्ता, सुखी तथा परस्त्रीमें आसक्ति रखनेवाला होता है। बुधके नवमाशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः नर्तक, चोरस्वभाव, पण्डित, मन्त्री, सङ्गीतज्ञ तथा शिल्पकार होता है। अपने (कर्क) नवमाशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह छोटे शरीरवाला, धनवान्, तपस्वी, लोभी, अपनी स्त्रीकी कमाईपर पलनेवाला तथा कर्तव्यपरायण होता है। सूर्यके नवमांश (सिंह) मे स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः क्रोधी, राजमन्त्री, निधिपति या मन्त्री, राजा, हिंसाके स्वभाववाला तथा पुत्रहीन होता है। गुरुके नवमाशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः हास्यप्रिय, रणमें कुशल, बलवान्, मन्त्री,

* मङ्गलकी दृष्टिसे भूप, बुधकी दृष्टिसे ज्ञ (पण्डित), गुरुकी दृष्टिसे गुणी, शुक्रकी दृष्टिसे चोर-स्वभाव तथा शनिकी दृष्टिसे अस्व (निर्धन) कहा गया है। सूर्यकी दृष्टिका फल अनुक्त होनेके कारण उसे शनिके ही तुल्य समझना चाहिये।

* सूर्यादि क्रममें सूर्य, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इस प्रकार ६ ग्रह तथा बुधादिमें बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि, मङ्गल इस प्रकार ६ ग्रह समझने चाहिये।

और पापग्रह हों तो जातक वंशका नाशक होता है। अर्थात् उसका वंश नष्ट हो जाता है। बुध जिस द्रेष्काणमें हो उसपर यदि केन्द्र-स्थित शनिकी दृष्टि हो तो जातक शिल्पकलामें कुशल होता है। शुक्र यदि शनिके नवमांशमें होकर द्वादश भावमें स्थित हो तो जातक दासीका पुत्र होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों सप्तम भावमे रहकर शनिसे दृष्ट हो तो जातक नीच स्वभाववाला होता है। शुक्र और मङ्गल दोनो सप्तम भावमे स्थित हो और उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो जातक वातरोगी होता है। कर्क या वृश्चिकके नवमांशमें स्थित चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो बालक गुप्त रोगसे ग्रस्त होता है। चन्द्रमा यदि पापग्रहोके बीचमें रहकर लग्नमें स्थित हो तो उत्पन्न शिशु कुष्ठरोगी होता है। चन्द्रमा दशम भावमें, मङ्गल सप्तम भावमें और शनि यदि वेशि (सूर्यसे द्वितीय) स्थानमें हो तो जातक विकल (अङ्गहीन) होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनो परस्पर नवमांशमें हों तो बालक शूलरोगी होता है। यदि दोनों किसी एक ही स्थानमें हों तो कृश (क्षीणशरीर) होता है। यदि सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल और शनि—ये चारों क्रमशः ८, ६, २, १२ भावोंमें स्थित हों-तो इनमें जो बली हो, उस ग्रहके दोष (कफ, पित्त और वात-सम्बन्धी विकार) से जातक नेत्रहीन होता है। यदि ९, ११, ३, ५—इन भावोंमें पापग्रह हों तथा उनपर शुभग्रहकी दृष्टि नहीं हो तो वे उत्पन्न शिशुके लिये कर्णरोग उत्पन्न करनेवाले होते हैं। सप्तम भावमें स्थित पापग्रह यदि शुभग्रहसे दृष्ट न हों तो वे दन्तरोग उत्पन्न करते हैं। लग्नमें गुरु और सप्तम भावमें शनि हो तो जातक वातरोगसे पीडित होता है। ४ या ७ भावमें मङ्गल और लग्नमें बृहस्पति हो अथवा शनि लग्नमें और मङ्गल ९, ५, ७ भावमें हो अथवा बुधसहित चन्द्रमा १२ भावमें हो तो जातक उन्मादरोगसे पीडित होता है ॥ २८५—२९३½ ॥

यदि ५, ९, २ और १२ भावोंमे पापग्रह हो तो उस जातकको बन्धन प्राप्त होता है (उसे जेलका कष्ट भोगना पडता है)। लग्नमें जैसी राशि हो उसके अनुकूल ही बन्धन समझना चाहिये। (जैसे चतुष्पद राशि लग्न हो तो रस्सीसे बँधकर, द्विपदराशि लग्न हो तो बेड़ीसे बँधकर तथा जलचर राशि लग्न हो तो बिना बन्धनके ही वह जेलमें रहता है।) यदि सर्प, शृङ्खला, पाशसंज्ञक द्रेष्काण लग्नमें हों तथा उनपर बली पापग्रहकी दृष्टि हो तो भी पूर्वोक्त प्रकारसे बन्धन प्राप्त होता है। मण्डल (परिवेष) युक्त चन्द्रमा यदि शनिसे युक्त और मङ्गलसे देखा जाता हो तो जातक मृगी रोगसे पीड़ित, अप्रियभाषी और क्षयरोगसे युक्त होता है। मण्डल (परिवेष) युक्त चन्द्रमा यदि दशम भावस्थित सूर्य, शनि और मङ्गलसे दृष्ट हो तो जातक भृत्य (दूसरेका नौकर) होता है; उनमें भी एकसे दृष्ट हो तो श्रेष्ठ, दोसे दृष्ट हो तो मध्यम और तीनोसे दृष्ट हो तो अधम भृत्य होता है ॥ २९४—२९६ ॥

(स्त्रीजातककी विशेषता—) ऊपर कहे हुए पुरुषजातकके जो-जो फल स्त्री-जातकमें सम्भव हो वे वैसे योगमे उत्पन्न स्त्रीमात्रके लिये समझने चाहिये। जो फल स्त्रीमें असम्भव हो, वे सब उसके पतिमें समझने चाहिये। स्त्रीके स्वामीकी मृत्युका विचार अष्टम भावसे, शरीरके शुभाशुभ फलका विचार लग्न और चन्द्रमासे तथा सौभाग्य और पतिके स्वरूप, गुण आदिका विचार सप्तम भावसे करना चाहिये ॥ २९७½ ॥ स्त्रीके जन्मसमयमें लग्न और चन्द्रमा दोनों समराशि और सम नवमांशमें हों तो वह स्त्री अपनी प्रकृति (स्त्रीस्वभाव) से युक्त होती है। यदि उन दोनों (लग्न और चन्द्रमा) पर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो वह सुशीलतारूप आभूषणसे विभूषित होती है। यदि वे दोनों (लग्न तथा चन्द्रमा) विषमराशि और विषम नवमांशमें हों तो वह स्त्री पुरुषसदृश आकार और स्वभाववाली होती है। यदि उन दोनोपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो स्त्री पापस्वभाववाली और गुणहीना होती है ॥ २९८½ ॥

लग्न और चन्द्रमाके आश्रित मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक) में यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो वह स्त्री बाल्यावस्थामें ही दुष्ट-स्वभाववाली होती है। शनिका त्रिंशांश हो तो दासी होती है। गुरुका त्रिंशांश हो तो सच्चरित्रा, बुधका त्रिंशांश हो तो मायावती (धूर्त) और शुक्रका त्रिंशांश हो तो वह उतावली होती है। शुक्रराशि (वृष-तुला) में स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी बुरे स्वभाववाली, शनिका त्रिंशांश हो तो पुनर्भू* (दूसरा पति करनेवाली), गुरुका त्रिंशांश हो तो गुणवती, बुधका त्रिंशांश हो तो कलाओंको जाननेवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो लोकमें विख्यात होती है। बुधराशि (मिथुन-कन्या) मे स्थित लग्न या चन्द्रमामे यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो मायावती, शनिका हो तो हीजड़ी, गुरुका हो तो पतिव्रता, बुधका हो तो गुणवती और शुक्रका हो तो चञ्चला होती है। चन्द्र-राशि (कर्क)

* 'पुनर्भू' कहनेसे यह सिद्ध हुआ कि उसका जन्म शूद्रकुलमें होता है, क्योंकि शूद्रजातिमें स्त्रीके पुनर्विवाहकी प्रथा है।

और पापग्रह हों तो जातक वंशका नाशक होता है। अर्थात् उसका वंश नष्ट हो जाता है। बुध जिस द्रेष्काणमें हो उसपर यदि केन्द्र-स्थित शनिकी दृष्टि हो तो जातक शिल्पकलामें कुशल होता है। शुक्र यदि शनिके नवमांशमें होकर द्वादश भावमें स्थित हो तो जातक दासीका पुत्र होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों सप्तम भावमे रहकर शनिसे दृष्ट हो तो जातक नीच स्वभाववाला होता है। शुक्र और मङ्गल दोनो सप्तम भावमे स्थित हो और उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो जातक वातरोगी होता है। कर्क या वृश्चिकके नवमांशमें स्थित चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो बालक गुप्त रोगसे ग्रस्त होता है। चन्द्रमा यदि पापग्रहोके बीचमें रहकर लग्नमें स्थित हो तो उत्पन्न शिशु कुष्ठरोगी होता है। चन्द्रमा दशम भावमें, मङ्गल सप्तम भावमें और शनि यदि वेशि (सूर्यसे द्वितीय) स्थानमें हो तो जातक विकल (अङ्गहीन) होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनो परस्पर नवमांशमें हों तो बालक शूलरोगी होता है। यदि दोनों किसी एक ही स्थानमें हों तो कृश (क्षीणशरीर) होता है। यदि सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल और शनि—ये चारों क्रमशः ८, ६, २, १२ भावोंमें स्थित हों-तो इनमें जो बली हो, उस ग्रहके दोष (कफ, पित्त और वात-सम्बन्धी विकार) से जातक नेत्रहीन होता है। यदि ९, ११, ३, ५—इन भावोंमें पापग्रह हों तथा उनपर शुभग्रहकी दृष्टि नहीं हो तो वे उत्पन्न शिशुके लिये कर्णरोग उत्पन्न करनेवाले होते हैं। सप्तम भावमें स्थित पापग्रह यदि शुभग्रहसे दृष्ट न हों तो वे दन्तरोग उत्पन्न करते हैं। लग्नमें गुरु और सप्तम भावमें शनि हो तो जातक वातरोगसे पीडित होता है। ४ या ७ भावमें मङ्गल और लग्नमें बृहस्पति हो अथवा शनि लग्नमें और मङ्गल ९, ५, ७ भावमें हो अथवा बुधसहित चन्द्रमा १२ भावमें हो तो जातक उन्मादरोगसे पीडित होता है ॥ २८५–२९३½ ॥

यदि ५, ९, २ और १२ भावोंमें पापग्रह हो तो उस जातकको बन्धन प्राप्त होता है (उसे जेलका कष्ट भोगना पडता है)। लग्नमें जैसी राशि हो उसके अनुकूल ही बन्धन समझना चाहिये। (जैसे चतुष्पद राशि लग्न हो तो रस्सीसे बँधकर, द्विपदराशि लग्न हो तो बेड़ीसे बँधकर तथा जलचर राशि लग्न हो तो विना बन्धनके ही वह जेलमें रहता है।) यदि सर्प, शृङ्खला, पाशसंज्ञक द्रेष्काण लग्नमें हों तथा उनपर बली पापग्रहकी दृष्टि हो तो भी पूर्वोक्त प्रकारसे बन्धन प्राप्त होता है। मण्डल (परिवेष) युक्त चन्द्रमा यदि शनिसे युक्त और मङ्गलसे देखा जाता हो तो जातक मृगी रोगसे पीड़ित, अप्रियभाषी और क्षयरोगसे युक्त होता है। मण्डल (परिवेष) युक्त चन्द्रमा यदि दशम भावस्थित सूर्य, शनि और मङ्गलसे दृष्ट हो तो जातक भृत्य (दूसरेका नौकर) होता है; उनमें भी एकसे दृष्ट हो तो श्रेष्ठ, दोसे दृष्ट हो तो मध्यम और तीनोसे दृष्ट हो तो अधम भृत्य होता है ॥ २९४–२९६ ॥

(स्त्रीजातककी विशेषता–) ऊपर कहे हुए पुरुषजातकके जो-जो फल स्त्री-जातकमें सम्भव हो वे वैसे योगमे उत्पन्न स्त्रीमात्रके लिये समझने चाहिये। जो फल स्त्रीमें असम्भव हो, वे सब उसके पतिमें समझने चाहिये। स्त्रीके स्वामीकी मृत्युका विचार अष्टम भावसे, शरीरके शुभाशुभ फलका विचार लग्न और चन्द्रमासे तथा सौभाग्य और पतिके स्वरूप, गुण आदिका विचार सप्तम भावसे करना चाहिये ॥ २९७½ ॥ स्त्रीके जन्मसमयमें लग्न और चन्द्रमा दोनों समराशि और सम नवमांशमें हों तो वह स्त्री अपनी प्रकृति (स्त्रीस्वभाव) से युक्त होती है। यदि उन दोनों (लग्न और चन्द्रमा) पर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो वह सुशीलतारूप आभूषणसे विभूषित होती है। यदि वे दोनों (लग्न तथा चन्द्रमा) विषमराशि और विषम नवमांशमें हों तो वह स्त्री पुरुषसदृश आकार और स्वभाववाली होती है। यदि उन दोनोपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो स्त्री पापस्वभाववाली और गुणहीना होती है ॥ २९८½ ॥

लग्न और चन्द्रमाके आश्रित मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक) में यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो वह स्त्री बाल्यावस्थामें ही दुष्ट-स्वभाववाली होती है। शनिका त्रिंशांश हो तो दासी होती है। गुरुका त्रिंशांश हो तो सच्चरित्रा, बुधका त्रिंशांश हो तो मायावती (धूर्त) और शुक्रका त्रिंशांश हो तो वह उतावली होती है। शुक्रराशि (वृष-तुला) में स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी बुरे स्वभाववाली; शनिका त्रिंशांश हो तो पुनर्भू* (दूसरा पति करनेवाली), गुरुका त्रिंशांश हो तो गुणवती, बुधका त्रिंशांश हो तो कलाओंको जाननेवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो लोकमें विख्यात होती है। बुधराशि (मिथुन-कन्या) मे स्थित लग्न या चन्द्रमामे यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो मायावती, शनिका हो तो हीजड़ी, गुरुका हो तो पतिव्रता, बुधका हो तो गुणवती और शुक्रका हो तो चञ्चला होती है। चन्द्र-राशि (कर्क)

* 'पुनर्भू' कहनेसे यह सिद्ध हुआ कि उसका जन्म शूद्रकुलमें होता है, क्योंकि-शूद्रजातिमें स्त्रीके पुनर्विवाहकी प्रथा है।

गुरु, मङ्गल, शुक्र, बुध ये चारों बली होकर समराशि लग्नमें स्थित हों तो वह स्त्री अनेक शास्त्रोंको और ब्रह्मको जाननेवाली तथा लोकमें विख्यात होती है ॥ ३१८ ॥

जिस स्त्रीके जन्मलग्नसे सप्तममें पापग्रह हो और नवम भावमें कोई ग्रह हो तो स्त्री पूर्वकथित नवमस्थ ग्रहजनित प्रव्रज्याको प्राप्त होती है। इन (कहे हुए) विषयोंका विवाह, वरण या प्रश्नकालमें भी विचार करना चाहिये ॥ ३१९ ॥

(निर्याण (मृत्यु) विचार-) लग्नसे अष्टम भावको जो-जो ग्रह देखते हैं, उनमें जो बलवान् हो उसके धातु (कफ, पित्त या वात) के प्रकोपसे जातक (स्त्री-पुरुष) का मरण होता है। अष्टम भावमें जो राशि हो, वह काल पुरुषके जिस अङ्ग (मस्तकादि) में पड़ती हो; उस अङ्गमें रोग होनेसे जातककी मृत्यु होती है। बहुत ग्रहोंकी दृष्टि या योग हो तो उन-उन ग्रहोंसे सम्बन्ध रखनेवाले रोगोंसे मरण होता है। यथा अष्टममें सूर्य हों तो अग्निसे, चन्द्रमा हों तो जलसे, मङ्गल हों तो शस्त्रघातसे, बुध हों तो ज्वरसे, गुरु हों तो अज्ञात रोगसे, शुक्र हों तो प्याससे और शनि हों तो भूखसे मरण होता है। तथा अष्टम भावमें चर राशि हो तो परदेशमें, स्थिर राशि हो तो स्वस्थानमें और द्विस्वभाव राशि हो तो मार्गमें मृत्यु होती है। सूर्य और मङ्गल यदि १०, ४ भावमें हों तो पर्वत आदि ऊँचे स्थानसे गिरकर मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३२०-३२२ ॥

४, ७, १० भावोंमें यदि शनि, चन्द्र, मङ्गल हों तो कूपमें गिरकर मरण होता है। कन्या-राशिमें रवि और चन्द्रमा दोनों हों, उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो अपने सम्बन्धीके द्वारा मरण होता है। यदि उभयोदय (मीन) लग्नमें चन्द्रमा और सूर्य दोनों हों तो जलमें मरण होता है। यदि मङ्गलकी राशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो शस्त्र या अग्निसे मृत्यु होती है ॥ ३२३-३२४ ॥

मकरमें चन्द्रमा और कर्कमें शनि हों तो जलोदररोगसे मरण होता है। कन्याराशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हों तो रक्तशोषरोगसे मृत्यु होती है। यदि दो पापग्रहोंके बीचमें स्थित चन्द्रमा, शनिकी राशि (मकर और कुम्भ) में हों तो रज्जु (रस्सी), अग्नि अथवा ऊँचे स्थानसे गिरकर मृत्यु होती है। ५, ९ भावोंमें पापग्रह हो और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो बन्धनसे मृत्यु होती है। अष्टम भावमें पाश, सर्प या निगड द्रेष्काण हो तो भी बन्धनसे ही मृत्यु होती है। पापग्रहके साथ बैठा हुआ चन्द्रमा यदि कन्याराशिमें होकर सप्तम भावमें स्थित हो तथा मेषमें शुक्र और लग्नमें सूर्य हो तो अपने घरमें स्त्रीके निमित्तसे मरण होता है। चतुर्थ भावमें मङ्गल या सूर्य हों, दशम भावमें शनि हो और लग्न, ५, ९ भावोंमें पापग्रहसहित चन्द्रमा हो अथवा चतुर्थ भावमें सूर्य और दशममें मङ्गल रहकर क्षीण चन्द्रमासे दृष्ट हों तो इन योगोंमें काष्ठसे आहत होकर मनुष्यकी मृत्यु होती है। यदि ८, १०, लग्न तथा ४ भावोंमे क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि और सूर्य हों तो लाठीके प्रहारसे मृत्यु होती है। यदि वे ही (क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि तथा सूर्य) १०, ९, लग्न और ५ भावोंमे हों तो मुद्गर आदिके आघातसे मृत्यु होती है। यदि ४, ७, १० भावोंमें क्रमशः मङ्गल, रवि और शनि हों तो शस्त्र, अग्नि तथा राजाके द्वारा मृत्यु होती है। यदि शनि, चन्द्रमा और मङ्गल— ये २, ४, १० भावोंमें हों तो कीड़ोंके क्षतसे शरीरका पतन (मरण) होता है। यदि दशम भावमें सूर्य और चतुर्थ भावमें मङ्गल हों तो सवारीपरसे गिरनेके कारण मृत्यु होती है। यदि क्षीण चन्द्रमाके साथ मङ्गल सप्तम भावमें हो तो यन्त्र (मशीन) के आघातसे मृत्यु होती है। यदि मङ्गल, शनि और चन्द्रमा—ये तुला, मेष तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ) में हों अथवा क्षीण चन्द्रमा, सूर्य और मङ्गल—ये १०, ७, ४ भावोंमें स्थित हो तो विष्ठाके समीप मृत्यु होती है। क्षीण चन्द्रमापर मङ्गलकी दृष्टि हो और शनि सप्तम भावमें हो तो गुह्य (बवासीर आदि) रोग या कीड़ा, शस्त्र, अग्नि अथवा काष्ठके आघातसे मरण होता है। मङ्गलसहित सूर्य सप्तम भावमें, शनि अष्टममें और क्षीण चन्द्रमा चतुर्थ भावमें हों तो पक्षीद्वारा मरण होता है। यदि लग्न, ५, ८, ९ भावोंमें सूर्य, मङ्गल, शनि और चन्द्रमा हों तो पर्वत-शिखरसे गिरनेके कारण अथवा वज्रपातसे या दीवार गिरनेसे मृत्यु होती है ॥ ३२५-३३५ ॥

लग्नसे २२ वाँ द्रेष्काण अर्थात् अष्टम भावका द्रेष्काण जो हो उसका स्वामी अथवा अष्टम भावका स्वामी—ये दोनों या इनमेंसे जो बली हो वह अपने गुणोसे (पूर्वोक्त अग्नि-शस्त्रादिद्वारा) मनुष्यके लिये मरणकारक होता है। लग्नमें जो नवमांश होता है, उसका स्वामी जो ग्रह हो उसके समानस्थान (अर्थात् वह जिस राशिमें हो उस राशिका जैसा स्थान बताया गया है, वैसे स्थान) तथा उसपर जिस ग्रहका योग या दृष्टि हो उसके समान स्थानमे, परदेशमें मनुष्यका मरण होता है तथा लग्नके जितने अंश अनुदित

गुरु, मङ्गल, शुक्र, बुध ये चारों बली होकर समराशि लग्नमें स्थित हों तो वह स्त्री अनेक शास्त्रोंको और ब्रह्मको जाननेवाली तथा लोकमें विख्यात होती है ॥ ३१८ ॥

जिस स्त्रीके जन्मलग्नसे सप्तममें पापग्रह हो और नवम भावमें कोई ग्रह हो तो स्त्री पूर्वकथित नवमस्थ ग्रहजनित प्रव्रज्याको प्राप्त होती है। इन (कहे हुए) विषयोंका विवाह, वरण या प्रश्नकालमें भी विचार करना चाहिये ॥ ३१९ ॥

(निर्याण (मृत्यु) विचार—) लग्नसे अष्टम भावको जो-जो ग्रह देखते हैं, उनमें जो बलवान् हो उसके धातु (कफ, पित्त या वात) के प्रकोपसे जातक (स्त्री-पुरुष) का मरण होता है। अष्टम भावमें जो राशि हो, वह काल पुरुषके जिस अङ्ग (मस्तकादि) में पड़ती हो; उस अङ्गमें रोग होनेसे जातककी मृत्यु होती है। बहुत ग्रहोंकी दृष्टि या योग हो तो उन-उन ग्रहोंसे सम्बन्ध रखनेवाले रोगोंसे मरण होता है। यथा अष्टममे सूर्य हों तो अग्निसे, चन्द्रमा हों तो जलसे, मङ्गल हों तो शस्त्रघातसे, बुध हों तो ज्वरसे, गुरु हों तो अज्ञात रोगसे, शुक्र हों तो प्यासखे और शनि हों तो भूखसे मरण होता है। तथा अष्टम भावमें चर राशि हो तो परदेशमें, स्थिर राशि हो तो स्वस्थानमें और द्विस्वभाव राशि हो तो मार्गमें मृत्यु होती है। सूर्य और मङ्गल यदि १०, ४ भावमें हों तो पर्वत आदि ऊँचे स्थानसे गिरकर मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३२०—३२२ ॥

४, ७, १० भावोंमें यदि शनि, चन्द्र, मङ्गल हों तो कूपमें गिरकर मरण होता है। कन्या-राशिमें रवि और चन्द्रमा दोनों हों, उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो अपने सम्बन्धीके द्वारा मरण होता है। यदि उभयोदय (मीन) लग्नमें चन्द्रमा और सूर्य दोनों हों तो जलमें मरण होता है। यदि मङ्गलकी राशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो शस्त्र या अग्निसे मृत्यु होती है ॥ ३२३-३२४ ॥

मकरमें चन्द्रमा और कर्कमें शनि हों तो जलोदररोगसे मरण होता है। कन्याराशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हों तो रक्तशोषरोगसे मृत्यु होती है। यदि दो पापग्रहोंके बीचमें स्थित चन्द्रमा, शनिकी राशि (मकर और कुम्भ) में हों तो रज्जु (रस्सी), अग्नि अथवा ऊँचे स्थानसे गिरकर मृत्यु होती है। ५, ९ भावोंमें पापग्रह हो और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो बन्धनसे मृत्यु होती है। अष्टम भावमें पाश, सर्प या निगड द्रेष्काण हो तो भी बन्धनसे ही मृत्यु होती है। पापग्रहके साथ बैठा हुआ चन्द्रमा यदि कन्याराशिमें होकर सप्तम भावमें स्थित हो तथा मेषमें शुक्र और लग्नमें सूर्य हो तो अपने घरमें स्त्रीके निमित्तसे मरण होता है। चतुर्थ भावमें मङ्गल या सूर्य हों, दशम भावमें शनि हो और लग्न, ५, ९ भावोंमें पापग्रहसहित चन्द्रमा हो अथवा चतुर्थ भावमें सूर्य और दशममें मङ्गल रहकर क्षीण चन्द्रमासे दृष्ट हों तो इन योगोंमें काष्ठसे आहत होकर मनुष्यकी मृत्यु होती है। यदि ८, १०, लग्न तथा ४ भावोंमे क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि और सूर्य हों तो लाठीके प्रहारसे मृत्यु होती है। यदि वे ही (क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि तथा सूर्य) १०, ९, लग्न और ५ भावोमे हों तो मुद्गर आदिके आघातसे मृत्यु होती है। यदि ४, ७, १० भावोंमे क्रमशः मङ्गल, रवि और शनि हों तो शस्त्र, अग्नि तथा राजाके द्वारा मृत्यु होती है। यदि शनि, चन्द्रमा और मङ्गल—ये २, ४, १० भावोंमें हों तो कीड़ोंके क्षतसे शरीरका पतन (मरण) होता है। यदि दशम भावमें सूर्य और चतुर्थ भावमें मङ्गल हों तो सवारीपरसे गिरनेके कारण मृत्यु होती है। यदि क्षीण चन्द्रमाके साथ मङ्गल सप्तम भावमें हो तो यन्त्र (मशीन) के आघातसे मृत्यु होती है। यदि मङ्गल, शनि और चन्द्रमा—ये तुला, मेष तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ) में हों अथवा क्षीण चन्द्रमा, सूर्य और मङ्गल—ये १०, ७, ४ भावोंमें स्थित हो तो विष्ठाके समीप मृत्यु होती है। क्षीण चन्द्रमापर मङ्गलकी दृष्टि हो और शनि सप्तम भावमें हो तो गुह्य (बवासीर आदि) रोग या कीड़ा, शस्त्र, अग्नि अथवा काष्ठके आघातसे मरण होता है। मङ्गलसहित सूर्य सप्तम भावमें, शनि अष्टममें और क्षीण चन्द्रमा चतुर्थ भावमें हों तो पक्षीद्वारा मरण होता है। यदि लग्न, ५, ८, ९ भावोंमें सूर्य, मङ्गल, शनि और चन्द्रमा हों तो पर्वत-शिखरसे गिरनेके कारण अथवा वज्रपातसे या दीवार गिरनेसे मृत्यु होती है ॥ ३२५—३३५ ॥

लग्नसे २२ वाँ द्रेष्काण अर्थात् अष्टम भावका द्रेष्काण जो हो उसका स्वामी अथवा अष्टम भावका स्वामी—ये दोनों या इनमेंसे जो बली हो वह अपने गुणोसे (पूर्वोक्त अग्नि-शस्त्रादिद्वारा) मनुष्यके लिये मरणकारक होता है। लग्नमें जो नवमांश होता है, उसका स्वामी जो ग्रह हो उसके समानस्थान (अर्थात् वह जिस राशिमें हो उस राशिका जैसा स्थान बताया गया है, वैसे स्थान) तथा उसपर जिस ग्रहका योग या दृष्टि हो उसके समान स्थानमे, परदेशमें मनुष्यका मरण होता है तथा लग्नके जितने अंश अनुदित

भुक्तांशोंसे अनुपात * द्वारा तिथि (सूर्यके गत अंशादि) का ज्ञान करना चाहिये ॥३४२–३४४½॥

* अनुपात इस प्रकार है कि ५ अंशकी कला (३००)में ३० तिथि (अंश) हैं तो भुक्त द्रेष्काणार्धांशकी कलामें क्या होंगी ?

इसकी उत्तर-क्रिया नीचे देखिये—

मान लीजिये, किसी अनाथ-बालकको अपने जन्म-समयका ज्ञान नहीं है। उसकी उम्र अनुमानसे ८ या ९-वर्षकी प्रतीत होती है। उसने अपना जन्म-समय जाननेके लिये सवत् २०१० ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा गुरुवारको प्रश्न किया। उस समयकी लग्न-राश्यादि २।१४।४५। है और बृहस्पति-राश्यादि १।१८।२।५ (वृष राशिमें) है। यहाँ लग्नमें द्वितीय द्रेष्काण है, अत. लग्न (मिथुन) से पाँचवीं तुला राशिमें उसके जन्मसमयमें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। प्रश्न–समयका बृहस्पति वृषमें है, जो तुलासे ८ वीं संख्यामें है, इसलिये गत वर्ष-सख्या ७ हुई, इससे ज्ञात हुआ कि आजसे ७, १९ तथा ३१ इत्यादि वर्ष पूर्व बृहस्पतिकी तुलामें स्थिति हो सकती है, क्योंकि बृहस्पति एक राशिमें एक वर्ष रहता है। परतु इन (७, १९, ३१) संख्याओंमें ७ संख्या ही प्रश्नकर्त्ताकी उम्रके समीप होनेके कारण आजसे ७ वर्ष पूर्व जन्म-समय स्थिर हुआ। इसलिये प्रश्न-संवत् २०१० में ७ घटानेसे शेष २००३ जन्मका संवत् निश्चित हुआ। उस सवत्के पञ्चाङ्गको देखा तो तुलामें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। राशिके पूर्वार्धमें प्रश्नलग्न है, अत जन्मका समय उत्तरायण सिद्ध हुआ। तथा प्रश्नलग्नमें शुक्रका द्रेष्काण है, अत वसन्त ऋतु होनेका निश्चय हुआ। प्रश्नकालमें द्वितीय द्रेष्काणका पूर्वार्ध होनेके कारण वसन्त ऋतुका प्रथम माम (सौर चैत्र) जन्मका मास निश्चित हुआ।

फिर प्रश्नलग्नस्थ द्रेष्काणके गतांशादि ४।४५।० की कला २८५ को ३० से गुणा कर गुणनफल ८५५० में ३०० का भाग देनेसे लब्ध २८।३० यह मीनमें सूर्यके भुक्तांश हुए। अत मेषसे ११ वीं राशि जोड़नेपर जन्मकालका स्पष्ट सूर्य ११।२८।३० हुआ। यह चैत्र शुक्ला ११-शुक्रवारको मिलता है, अत प्रश्नकर्ताका वही जन्म-मास और सवत् निश्चित हुआ।

अब इष्टकाल जाननेके लिये उस दिन उदयकालिक स्पष्ट सूर्य-राश्यादि ११।२८।१५।२० तथा सूर्यकी गति ५८।४५ है तो निश्चित किये हुए जन्मकालिक सूर्य ११।२८।३०।० और उदयकालिक सूर्य ११।२८।१५।२० के अन्तर १४।४० कलाको ६० से गुणा कर गुणनफल ८८० में सूर्यकी गति ५८।४५ का भाग देनेपर लब्धि घट्यादि १४।५९ हुई।

यह जन्मके सूर्यसे अधिक होनेके कारण उदयकालके बादका इष्टकाल हुआ। इसके द्वारा तात्कालिक अन्य ग्रह और लग्नादि द्वादश भावोंका साधन करके जो जन्म-पत्र बनता है, वह नष्ट जन्मपत्र कहलाता है, उससे भी असली जन्म-पत्रके समान ही फल घटित होता है।

(दिन-रात्रि जन्म-ज्ञान—) प्रश्न-लग्नमें दिन-संज्ञक, रात्रि-संज्ञक राशियाँ हों तो विलोमक्रमसे (दिन-संज्ञक राशिमे रात्रि और रात्रिसंज्ञक राशिमें दिन) जन्मका समय समझना चाहिये और लग्नके अंशादिसे अनुपात * द्वारा इष्ट घट्यादिको समझना चाहिये।

(जन्म-लग्नज्ञान—) केवल जन्म-लग्न जाननेके लिये प्रश्नकर्ता प्रश्न करे तो लग्नसे (१, ५, ९में) जो राशि बली हो, वही उसका जन्म-लग्न समझना चाहिये अथवा वह जिस अङ्गका स्पर्श करते हुए प्रश्न करे, उस अङ्गकी राशिको ही जन्म-लग्न कहना चाहिये।

(जन्म-राशि-ज्ञान—) जन्म-राशि जाननेके लिये प्रश्न करे तो प्रश्न-लग्नसे जितने आगे चन्द्रमा हो, चन्द्रमासे उतने ही आगे जो राशि हो वह पूछनेवालेकी जन्मराशि समझनी चाहिये ॥ ३४५-३४६ ॥

(प्रकारान्तरसे अज्ञात जन्मकालादिका ज्ञान —) प्रश्नलग्नमें वृष या सिंह हो तो लग्नराश्यादिको कलात्मक बनाकर १० से गुणा करे। मिथुन या वृश्चिक हो तो ८ से, मेष या तुला हो तो ७ से, मकर या कन्या हो तो ५ से गुणा करे। शेष राशियों (कर्क, धन, कुम्भ, मीन) मेंसे कोई लग्न हो तो उसकी कलाको अपनी संख्यासे (जैसे कर्कको ४ से) गुणा करे। यदि लग्नमें ग्रह हो तो फिर उसी गुणन-फलको ग्रहगुणकोंसे भी गुणा करे। जैसे—बृहस्पति हो तो १० से, मङ्गल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से, बुध हो तो ५ से, अन्य ग्रह (रवि, शनि और चन्द्रमा) हों तो ५ से गुणा करे। इस प्रकार लग्नकी राशिके अनुसार गुणन तो निश्चित ही रहता है। यदि उसमें ग्रह हो तभी ग्रहका गुणन भी करना चाहिये। जितने ग्रह हों, सबके गुणकसे गुणा करना चाहिये इस प्रकार गुणनफलको ध्रुवपिण्ड मानकर उसको ७ से गुणाकर २७ के द्वारा भाग देकर १ आदि शेषके अनुसार अश्विनी आदि जन्म-नक्षत्र समझने चाहिये। इस

* यहाँ अनुपात ऐसा है कि ३० अंशमें दिनमान या रात्रि-मानकी घटी तो लग्न भुक्तांशमे क्या ?

भुक्तांशोंसे अनुपात * द्वारा तिथि (सूर्यके गत अंशादि) का ज्ञान करना चाहिये ॥३४२-३४४½॥

* अनुपात इस प्रकार है कि ५ अंशकी कला (३००)में ३० तिथि (अंश) हैं तो भुक्त द्रेष्काणार्धांशकी कलामें क्या होगी ?

इसकी उत्तर-क्रिया नीचे देखिये—

मान लीजिये, किसी अनाथ-बालकको अपने जन्म-समयका ज्ञान नहीं है। उसकी उम्र अनुमानसे ८ या ९-वर्षकी प्रतीत होती है। उसने अपना जन्म-समय जाननेके लिये संवत् २०१० ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा गुरुवारको प्रश्न किया। उस समयकी लग्न-राश्यादि २।१४।४५। है और बृहस्पति-राश्यादि १।१८।२।५ (वृष राशिमें) है। यहाँ लग्नमें द्वितीय द्रेष्काण है, अत. लग्न (मिथुन) से पाँचवीं तुला राशिमें उसके जन्मसमयमें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। प्रश्न-समयका बृहस्पति वृषमें है, जो तुलासे ८ वीं संख्यामें है, इसलिये गत वर्ष-संख्या ७ हुई, इससे ज्ञात हुआ कि आजसे ७, १९ तथा ३१ इत्यादि वर्ष पूर्व बृहस्पतिकी तुलामें स्थिति हो सकती है, क्योंकि बृहस्पति एक राशिमें एक वर्ष रहता है। परंतु इन (७, १९, ३१) संख्याओंमें ७ संख्या ही प्रश्नकर्ताकी उम्रके समीप होनेके कारण आजसे ७ वर्ष पूर्व जन्म-समय स्थिर हुआ। इसलिये प्रश्न-संवत् २०१० में ७ घटानेसे शेष २००३ जन्मका संवत् निश्चित हुआ। उस संवत्के पञ्चाङ्गको देखा तो तुलामें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। राशिके पूर्वार्धमें प्रश्नलग्न है, अत जन्मका समय उत्तरायण सिद्ध हुआ। तथा प्रश्नलग्नमें शुक्रका द्रेष्काण है, अत वसन्त ऋतु होनेका निश्चय हुआ। प्रश्नकालमें द्वितीय द्रेष्काणका पूर्वार्ध होनेके कारण वसन्त ऋतुका प्रथम मास (सौर चैत्र) जन्मका मास निश्चित हुआ।

फिर प्रश्नलग्नस्थ द्रेष्काणके गतांशादि ४।४५।० की कला २८५ को ३० से गुणा कर गुणनफल ८५५० में ३०० का भाग देनेसे लब्ध २८।३० यह मीनमें सूर्यके भुक्तांश हुए। अत मेषसे ११ वीं राशि जोड़नेपर जन्मकालका स्पष्ट सूर्य ११।२८।३० हुआ। यह चैत्र शुक्ला ११ शुक्रवारको मिलता है, अत प्रश्नकर्ताका वही जन्म-मास और संवत् निश्चित हुआ।

अब इष्टकाल जाननेके लिये उस दिन उदयकालिक स्पष्ट सूर्य-राश्यादि ११।२८।१५।२० तथा सूर्यकी गति ५८।४५ है तो निश्चित किये हुए जन्मकालिक सूर्य ११।२८।३०।० और उदयकालिक सूर्य ११।२८।१५।२० के अन्तर १४।४० कलाको ६० से गुणा कर गुणनफल ८८० में सूर्यकी गति ५८।४५ का भाग देनेपर लब्धि घट्यादि १४।५९ हुई।

यह जन्मके सूर्यसे अधिक होनेके कारण उदयकालके बादका इष्टकाल हुआ। इसके द्वारा तात्कालिक अन्य ग्रह और लग्नादि द्वादश भावोंका साधन करके जो जन्म-पत्र बनता है, वह नष्ट जन्मपत्र कहलाता है, उससे भी असली जन्म-पत्रके समान ही फल घटित होता है।

(दिन-रात्रि जन्म-ज्ञान—) प्रश्न-लग्नमें दिन-सञ्ज्ञक, रात्रि-संज्ञक राशियाँ हों तो विलोमक्रमसे (दिन-संज्ञक राशिमे रात्रि और रात्रिसंज्ञक राशिमें दिन) जन्मका समय समझना चाहिये और लग्नके अंशादिसे अनुपात * द्वारा इष्ट घट्यादिको समझना चाहिये।

(जन्म-लग्नज्ञान—) केवल जन्म-लग्न जाननेके लिये प्रश्नकर्ता प्रश्न करे तो लग्नसे (१, ५, ९में) जो राशि बली हो, वही उसका जन्म-लग्न समझना चाहिये अथवा वह जिस अङ्गका स्पर्श करते हुए प्रश्न करे, उस अङ्गकी राशिको ही जन्म-लग्न कहना चाहिये।

(जन्म-राशि-ज्ञान—) जन्म-राशि जाननेके लिये प्रश्न करे तो प्रश्न-लग्नसे जितने आगे चन्द्रमा हो, चन्द्रमासे उतने ही आगे जो राशि हो वह पूछनेवालेकी जन्मराशि समझनी चाहिये ॥ ३४५-३४६ ॥

(प्रकारान्तरसे अज्ञात जन्मकालादिका ज्ञान —) प्रश्नलग्नमें वृष या सिंह हो तो लग्नराश्यादिको कलात्मक बनाकर १० से गुणा करे। मिथुन या वृश्चिक हो तो ८ से, मेष या तुला हो तो ७ से, मकर या कन्या हो तो ५ से गुणा करे। शेष राशियों (कर्क, धन, कुम्भ, मीन) मेंसे कोई लग्न हो तो उसकी कलाको अपनी संख्यासे (जैसे कर्कको ४ से) गुणा करे। यदि लग्नमें ग्रह हो तो फिर उसी गुणन-फलको ग्रहगुणकोंसे भी गुणा करे। जैसे—बृहस्पति हो तो १० से, मङ्गल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से, बुध हो तो ५ से, अन्य ग्रह (रवि, शनि और चन्द्रमा) हों तो ५ से गुणा करे। इस प्रकार लग्नकी राशिके अनुसार गुणन तो निश्चित ही रहता है। यदि उसमें ग्रह हो तभी ग्रहका गुणन भी करना चाहिये। जितने ग्रह हों, सबके गुणकसे गुणा करना चाहिये इस प्रकार गुणनफलको ध्रुवपिण्ड मानकर उसको ७ से गुणाकर २७ के द्वारा भाग देकर १ आदि शेषके अनुसार अश्विनी आदि जन्म-नक्षत्र समझने चाहिये। इस

* यहाँ अनुपात ऐसा है कि ३० अंशमें दिनमान या रात्रि-मानकी घटी तो लग्न भुक्तांशमें क्या ?

मुखवाला पुरुष मिथुनका दूसरा द्रेष्काण है। नृत्य आदिकी कलामें प्रवीण, वरुणके समान रत्नोंके अनन्त भण्डारसे भरा-पूरा, धनुर्धर वीर पुरुष मिथुनका तीसरा द्रेष्काण है। गणेशजीके समान कण्ठ, शूकरके सदृश मुख, शरभके-से पैर और वनमें रहनेवाला—यह कर्कके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। सिरपर सर्प धारण किये, पलाशकी शाखा पकड़कर रोती हुई कर्कशा स्त्री—यह कर्कके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। चिपटा मुख, सर्पसे वेष्टित, स्त्रीकी खोजमें नौकापर बैठकर जलमे यात्रा करनेवाला पुरुष—यह कर्कके तीसरे द्रेष्काणका रूप है ॥ ३५१-३५६ ॥ सेमलके वृक्षके नीचे गीदड़ और गीधको लेकर रोता हुआ कुत्ते-जैसा मनुष्य—यह सिंहके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। धनुष और कृष्ण मृगचर्म धारण किये, सिंह-सदृश पराक्रमी तथा घोड़ेके समान आकृतिवाला मनुष्य—यह सिंहके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। फल और भोज्यपदार्थ रखनेवाला, लंबी दाढ़ीसे सुशोभित, भालू-जैसा मुख और वानरोंके-से चपल स्वभाववाला मनुष्य—सिंहके तृतीय द्रेष्काणका रूप है। फूलसे भरे कलशवाली, विद्याभिलाषिणी, मलिन वस्त्र-धारिणी कुमारी कन्या—यह कन्या राशिके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। हाथमें धनुष, आय-व्ययका हिसाब रखनेवाला, श्याम-वर्ण शरीर, लेखनकार्यमें चतुर तथा रोएँसे भरा मनुष्य—यह कन्या राशिके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। गोरे अङ्गोंपर धुले हुए स्वच्छ वस्त्र, ऊँचा कद, हाथमें कलश लेकर देव-मन्दिरकी ओर जाती हुई स्त्री—यह कन्या राशिके तीसरे द्रेष्काणका परिचय है ॥ ३५७-३५९ ॥ हाथमें तराजू और बटखरे लिये बाजारमें वस्तुएँ तौलनेवाला तथा बर्तन-भाँड़ोंकी कीमत कूतनेवाला पुरुष तुलाराशिका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें कलश लिये भूख-प्याससे व्याकुल तथा गीधके समान मुखवाला पुरुष, जो स्त्री-पुत्रके साथ विचरता है, तुलाका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष लिये हरिनका पीछा करनेवाला, किन्नरके समान चेष्टावाला, सुवर्णकवचधारी पुरुष तुलाका तृतीय द्रेष्काण है। एक नारी, जिसके पैर नाना प्रकारके सर्प लिपटे होनेसे श्वेत दिखायी देते हैं, समुद्रसे किनारेकी ओर जा रही है; यही वृश्चिकके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। जिसके सब अङ्ग सर्पोंसे ढके हैं और आकृति कछुएके समान है तथा जो स्वामीके लिये सुखकी इच्छा करनेवाली है; ऐसी स्त्री वृश्चिकका दूसरा द्रेष्काण है। मलयगिरिका निवासी सिंह, जिसकी मुखाकृति कछुए-जैसी है, कुत्ते, शूकर और हरिन आदिको डरा रहा है, वही वृश्चिकका तीसरा द्रेष्काण है ॥ ३६०-३६२ ॥ मनुष्यके समान मुख, घोड़े-जैसा शरीर, हाथमे धनुष लेकर तपस्वी और यज्ञोंकी रक्षा करनेवाला पुरुष धनुराशिका प्रथम द्रेष्काण है। चम्पापुष्पके समान कान्तिवाली, आसनपर बैठी हुई, समुद्रके रत्नोंको बढ़ानेवाली, मझोले कदकी स्त्री धनुका दूसरा द्रेष्काण है। दाढ़ी-मूँछ बढ़ाये, आसनपर बैठा हुआ, चम्पा-पुष्पके सदृश कान्तिमान्, दण्ड, पट्ट-वस्त्र और मृगचर्म धारण करनेवाला पुरुष धनुका तीसरा द्रेष्काण है। मगरके समान दाँत, रोएँसे भरा शरीर तथा सूअर-जैसी आकृतिवाला पुरुष मकरका प्रथम द्रेष्काण है। कमलदलके समान नेत्रोंवाली, आभूषण-प्रिया श्यामा स्त्री मकरका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष, कम्बल, कलश और कवच धारण करनेवाला किन्नरके समान पुरुष मकरका तीसरा द्रेष्काण है। ॥ ३६३-३६६ ॥ गीधके समान मुख, तेल, घी और मधु पीनेकी इच्छावाला, कम्बलधारी पुरुष कुम्भका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें लोहा, शरीरमें आभूषण तथा मस्तकपर भाँड़ (बर्तन) लिये मलिन वस्त्र पहनकर जली गाड़ीपर बैठी हुई स्त्री कुम्भका दूसरा द्रेष्काण है। कानमें बड़े-बड़े रोम, शरीरमें श्याम कान्ति, मस्तकपर किरीट तथा हाथमें फल-पत्र धारण करनेवाला बर्तनका व्यापारी कुम्भका तीसरा द्रेष्काण है। भूषण बनानेके लिये नाना प्रकारके रत्नोंको हाथमें लेकर समुद्रमे नौकापर बैठा हुआ पुरुष मीनका प्रथम द्रेष्काण है। जिसके मुखकी कान्ति चम्पाके पुष्पके सदृश मनोहर है, वह अपने परिवारके साथ नौकापर बैठकर समुद्रके बीचसे तटकी ओर आती हुई स्त्री मीनका दूसरा द्रेष्काण है। गड्ढेके समीप तथा चोर और अग्निसे पीड़ित होकर रोता हुआ, सर्पसे वेष्टित, नग्न शरीरवाला पुरुष मीन राशिका तीसरा द्रेष्काण है। इस प्रकार मेषादि बारहों राशियोंमें होनेवाले छत्तीस द्रेष्काणांशके रूप क्रमसे बताये गये हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद ! यह संक्षेपमें जातक नामक स्कन्ध कहा गया है। अब लोक-व्यवहारके लिये उपयोगी संहितास्कन्धका वर्णन सुनो—॥ ३६७-३७० ॥ (पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५५)

मुखवाला पुरुष मिथुनका दूसरा द्रेष्काण है। नृत्य आदिकी कलामें प्रवीण, वरुणके समान रत्नोंके अनन्त भण्डारसे भरा-पूरा, धनुर्धर वीर पुरुष मिथुनका तीसरा द्रेष्काण है। गणेश-जीके समान कण्ठ, शूकरके सदृश मुख, शरभके-से पैर और वनमें रहनेवाला—यह कर्कके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। सिरपर सर्प धारण किये, पलाशकी शाखा पकड़कर रोती हुई कर्कशा स्त्री—यह कर्कके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। चिपटा मुख, सर्पसे वेष्टित, स्त्रीकी खोजमें नौकापर बैठकर जलमे यात्रा करनेवाला पुरुष—यह कर्कके तीसरे द्रेष्काणका रूप है ॥ ३५१-३५६ ॥ सेमलके वृक्षके नीचे गीदड़ और गीधको लेकर रोता हुआ कुत्ते-जैसा मनुष्य—यह सिंहके प्रथम द्रेष्काण-का स्वरूप है। धनुष और कृष्ण मृगचर्म धारण किये, सिंह-सदृश पराक्रमी तथा घोड़ेके समान आकृतिवाला मनुष्य—यह सिंहके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। फल और भोज्यपदार्थ रखने-वाला, लंबी दाढ़ीसे सुशोभित, भालू-जैसा मुख और वानरोंके-से चपल स्वभाववाला मनुष्य—सिंहके तृतीय द्रेष्काणका रूप है। फूलसे भरे कलशवाली, विद्याभिलाषिणी, मलिन वस्त्र-धारिणी कुमारी कन्या—यह कन्या राशिके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। हाथमें धनुष, आय-व्ययका हिसाब रखनेवाला, श्याम-वर्ण शरीर, लेखनकार्यमें चतुर तथा रोएँसे भरा मनुष्य—यह कन्या राशिके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। गोरे अङ्गोंपर धुले हुए स्वच्छ वस्त्र, ऊँचा कद, हाथमें कलश लेकर देव-मन्दिरकी ओर जाती हुई स्त्री—यह कन्या राशिके तीसरे द्रेष्काणका परिचय है ॥ ३५७-३५९ ॥ हाथमें तराजू और बटखरे लिये बाजारमें वस्तुएँ तौलनेवाला तथा बर्तन-भाँड़ों-की कीमत कूतनेवाला पुरुष तुलाराशिका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें कलश लिये भूख-प्याससे व्याकुल तथा गीधके समान मुखवाला पुरुष, जो स्त्री-पुत्रके साथ विचरता है, तुलाका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष लिये हरिनका पीछा करनेवाला, किन्नरके समान चेष्टावाला, सुवर्णकवचधारी पुरुष तुलाका तृतीय द्रेष्काण है। एक नारी, जिसके पैर नाना प्रकारके सर्प लिपटे होनेसे श्वेत दिखायी देते हैं, समुद्रसे किनारेकी ओर जा रही है; यही वृश्चिकके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। जिसके सब अङ्ग सर्पोंसे ढके हैं और आकृति कछुएके समान है तथा जो स्वामीके लिये सुखकी इच्छा करनेवाली है; ऐसी स्त्री वृश्चिकका दूसरा द्रेष्काण है। मलयगिरिका निवासी सिंह, जिसकी मुखाकृति कछुए-जैसी है, कुत्ते, शूकर और हरिन आदिको डरा रहा है, वही वृश्चिक-का तीसरा द्रेष्काण है ॥ ३६०-३६२ ॥ मनुष्यके समान मुख, घोड़े-जैसा शरीर, हाथमे धनुष लेकर तपस्वी और यज्ञो-की रक्षा करनेवाला पुरुष धनुराशिका प्रथम द्रेष्काण है। चम्पापुष्पके समान कान्तिवाली, आसनपर बैठी हुई, समुद्र-के रत्नोंको बढ़ानेवाली, मझोले कदकी स्त्री धनुका दूसरा द्रेष्काण है। दाढ़ी-मूँछ बढ़ाये, आसनपर बैठा हुआ, चम्पा-पुष्पके सदृश कान्तिमान्, दण्ड, पट्ट-वस्त्र और मृगचर्म धारण करनेवाला पुरुष धनुका तीसरा द्रेष्काण है। मगरके समान दाँत, रोएँसे भरा शरीर तथा सूअर-जैसी आकृतिवाला पुरुष मकरका प्रथम द्रेष्काण है। कमलदलके समान नेत्रों-वाली, आभूषण-प्रिया श्यामा स्त्री मकरका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष, कम्बल, कलश और कवच धारण करनेवाला किन्नरके समान पुरुष मकरका तीसरा द्रेष्काण है ॥ ३६३-३६६ ॥ गीधके समान मुख, तेल, घी और मधु पीनेकी इच्छावाला, कम्बलधारी पुरुष कुम्भका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें लोहा, शरीरमें आभूषण तथा मस्तकपर भाँड़ (बर्तन) लिये मलिन वस्त्र पहनकर जली गाड़ीपर बैठी हुई स्त्री कुम्भका दूसरा द्रेष्काण है। कानमें बड़े-बड़े रोम, शरीरमें श्याम कान्ति, मस्तकपर किरीट तथा हाथमें फल-पत्र धारण करनेवाला बर्तनका व्यापारी कुम्भका तीसरा द्रेष्काण है। भूषण बनानेके लिये नाना प्रकारके रत्नोंको हाथमें लेकर समुद्रमे नौकापर बैठा हुआ पुरुष मीनका प्रथम द्रेष्काण है। जिसके मुखकी कान्ति चम्पाके पुष्पके सदृश मनोहर है, वह अपने परिवारके साथ नौकापर बैठकर समुद्रके बीचसे तटकी ओर आती हुई स्त्री मीनका दूसरा द्रेष्काण है। गड्ढेके समीप तथा चोर और अग्निसे पीड़ित होकर रोता हुआ, सर्पसे वेष्टित, नग्न शरीरवाला पुरुष मीन राशिका तीसरा द्रेष्काण है। इस प्रकार मेषादि बारहों राशियोंमें होनेवाले छत्तीस द्रेष्काणांशके रूप क्रमसे बताये गये हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद ! यह संक्षेपमें जातक नामक स्कन्ध कहा गया है। अब लोक-व्यवहारके लिये उपयोगी संहितास्कन्धका वर्णन सुनो—॥ ३६७-३७० ॥ (पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५५)

(द्वितीया-तिथिको उदयकालमें) चन्द्रमाका दक्षिण शृङ्ग उन्नत (ऊपर उठा) हो, तो वह शुभप्रद होता है। मिथुन और मकरमें यदि उत्तर शृङ्ग उन्नत हो, तो उसे श्रेष्ठ समझना चाहिये। कुम्भ और वृषमें यदि दोनों शृङ्ग सम हों तो शुभ है। कर्क और धनुमें यदि शृङ्ग शरसदृश हो, तो शुभ है। वृश्चिक और सिंहमें भी धनुष-सदृश हो तो शुभ है तथा तुला और कन्यामें यदि चन्द्रमाका शृङ्ग शूलके सदृश दीख पड़े तो शुभ फल समझना चाहिये। इससे विपरीत स्थितिमें चन्द्रमाका उदय हो, तो उस मासमें पृथ्वीपर दुर्भिक्ष, राजाओंमें परस्पर विरोध तथा युद्ध आदि अशुभ फल प्रकट होते हैं ॥ १८-१९½ ॥

पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, मूल और ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें चन्द्रमा यदि दक्षिण दिशामें हो* तो जलचर, वनचर और सर्पका नाश तथा अग्निका भय होता है। विशाखा और अनुराधामें यदि दक्षिणभागमें हो तो पापफल देनेवाला होता है। मघा और विशाखामें यदि चन्द्रमा मध्यभागमें होकर चले तो भी सौम्य (शुभ) प्रद होता है। रेवतीसे मृगशिरापर्यन्त ६ नक्षत्र 'अनागत', आर्द्रासे अनुराधापर्यन्त बारह नक्षत्र 'मध्ययोगी' और वासव (ज्येष्ठा) से नौ नक्षत्र 'गतयोगी' हैं। इनमें भी चन्द्रमा उत्तर भागमें रहनेपर शुभप्रद होता है ॥ २०—२२½ ॥

भरणी, ज्येष्ठा, आश्लेषा, आर्द्रा, शतभिषा और स्वाती—ये अर्धभोग (४०० कला), ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी), पुनर्वसु और विशाखा—ये सार्धैकभोग (१२०० कला) तथा अन्य नक्षत्र सम (पूर्ण) भोग (८०० कला) हैं†। साधारणतया चन्द्रमाकी दक्षिण शृङ्गोन्नति अशुभ और उत्तर शृङ्गोन्नति शुभप्रद है। तिथिके अनुसार चन्द्रमामें शुक्ल न होकर यदि शुक्लतामें हानि (कमी) हो, तो प्रजाके कार्योंमें हानि और शुक्लतामें वृद्धि (अधिकता) हो, तो प्रजाजनकी वृद्धि होती है*। समतामें समता समझनी चाहिये। यदि चन्द्रमाका बिम्ब मध्यम मानसे विशाल (बड़ा) देखनेमें आवे तो सुभिक्षकारक (सस्ती लानेवाला) और छोटा दीख पड़े तो दुर्भिक्षकारक (महँगी या अकाल लानेवाला) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अधोमुख हो, तो शस्त्रका भय लाता है। दण्डाकार हो तो कलह (राजा-प्रजामें युद्ध) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अथवा बिम्ब मङ्गलादि ग्रहों (मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि) से आहत (भेदित) दीख पड़े तो क्रमशः क्षेम, अन्नादि, वर्षा, राजा और प्रजाका नाश होता है ॥ २३—२६½ ॥

(भौम-चार-फल—) जिस नक्षत्रमें मङ्गलका उदय हो, उससे सातवें, आठवें या नवें नक्षत्रमें वक्र हो तो वह 'उष्ण' नामक वक्र होता है। उसमें प्रजाको पीड़ा और अग्निका भय प्राप्त होता है। यदि उदयके नक्षत्रसे दसवें, ग्यारहवें तथा बारहवें नक्षत्रमें मङ्गल वक्र हो तो वह 'अश्रुमुख' नामक वक्र होता है। उसमें अन्न और वर्षाका नाश होता है। यदि तेरहवें या चौदहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'व्यालमुख' वक्र कहलाता है। उसमें भी अन्न और वर्षाका नाश होता है। पद्रहवें या सोलहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'रुधिरमुख' वक्र कहलाता है। उसमें मङ्गल दुर्भिक्ष, क्षुधा तथा रोगको बढ़ाता है। १७ वे या १८ वें नक्षत्रमें वक्र हो तो वह 'मुसल' नामक वक्र होता है। उससे धन-धान्यका नाश तथा दुर्भिक्षका भय होता है। यदि मङ्गल पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उदित होकर उत्तराषाढमें वक्र हो तथा रोहिणीमें अस्त हो तो तीनों लोकोंके लिये नाशकारी होता है। यदि मङ्गल श्रवणमें उदित होकर पुष्यमें वक्रगति हो तो धनकी हानि करनेवाला होता है ॥ २७—३३ ॥

मङ्गल जिस दिशामें उदित होता है, उस दिशाके राजाके लिये भयकारक होता है। यदि मघा-नक्षत्रके मध्य होकर चलता हुआ मङ्गल उसीमें वक्र हो जाय तो अवर्षण (वर्षाका अभाव) और शस्त्रका भय लाता है तथा राजाके लिये विनाशकारी होता है। यदि मङ्गल मघा, विशाखा या रोहिणीके योगताराका भेदन

* दिशाका ज्ञान तात्कालिक शरके ज्ञानसे होता है। इसकी विधि पृष्ठ २३६ में देखिये।

† राशि-मण्डलमें सब नक्षत्रोंका भोग ८०० कलाके बराबर है। परंतु प्रत्येक नक्षत्रविभागमें योगताराका स्थान जहाँ पड़ता है, वहाँ उसका भोग-स्थान कहलाता है। वह छ. नक्षत्रोंमें मध्यभागमें पड़ता है और छ. नक्षत्रोंमें आगे बढ़ जाता है। जिसका वास्तविक मान क्रमसे ३९५ कला १७ विकला और ११८५ कला ५२ विकला है, जो स्वल्पान्तरमें ४०० और १२०० मान लिये गये हैं। क्रमशः इन्हें ही अनागत और गतयोगी कहा गया है। शेष नक्षत्रोंके भोगस्थान अन्तिमभागमें ही पड़ते हैं, अतः इनके मान ८०० कला हैं। ये ही मध्ययोगी हैं।

* प्रतिपदाके अन्तमें (शुक्ल-द्वितीयारम्भमें) चन्द्रमा दृश्य हो तो समता, उससे पश्चात् दृश्य हो तो हानि और पूर्व दृश्य हो तो वृद्धि समझी जाती है।

(द्वितीया-तिथिको उदयकालमें) चन्द्रमाका दक्षिण शृङ्ग उन्नत (ऊपर उठा) हो, तो वह शुभप्रद होता है। मिथुन और मकरमें यदि उत्तर शृङ्ग उन्नत हो, तो उसे श्रेष्ठ समझना चाहिये। कुम्भ और वृषमें यदि दोनों शृङ्ग सम हों तो शुभ है। कर्क और धनुमें यदि शृङ्ग शरसदृश हो, तो शुभ है। वृश्चिक और सिंहमें भी धनुष-सदृश हो तो शुभ है तथा तुला और कन्यामें यदि चन्द्रमाका शृङ्ग शूलके सदृश दीख पड़े तो शुभ फल समझना चाहिये। इससे विपरीत स्थितिमें चन्द्रमाका उदय हो, तो उस मासमें पृथ्वीपर दुर्भिक्ष, राजाओंमें परस्पर विरोध तथा युद्ध आदि अशुभ फल प्रकट होते हैं ॥ १८-१९½ ॥

पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ़, मूल और ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें चन्द्रमा यदि दक्षिण दिशामें हो* तो जलचर, वनचर और सर्पका नाश तथा अग्निका भय होता है। विशाखा और अनुराधामें यदि दक्षिणभागमें हो तो पापफल देनेवाला होता है। मघा और विशाखामें यदि चन्द्रमा मध्यभागमें होकर चले तो भी सौम्य (शुभ) प्रद होता है। रेवतीसे मृगशिरापर्यन्त ६ नक्षत्र 'अनागत', आर्द्रासे अनुराधापर्यन्त बारह नक्षत्र 'मध्ययोगी' और वासव (ज्येष्ठा) से नौ नक्षत्र 'गतयोगी' हैं। इनमें भी चन्द्रमा उत्तर भागमें रहनेपर शुभप्रद होता है ॥ २०—२२½ ॥

भरणी, ज्येष्ठा, आश्लेषा, आर्द्रा, शतभिषा और स्वाती—ये अर्धभोग (४०० कला), ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी), पुनर्वसु और विशाखा—ये सार्धैकभोग (१२०० कला) तथा अन्य नक्षत्र सम (पूर्ण) भोग (८०० कला) हैं†। साधारणतया चन्द्रमाकी दक्षिण शृङ्गोन्नति अशुभ और उत्तर शृङ्गोन्नति शुभप्रद है। तिथिके अनुसार चन्द्रमामें शुक्ल न होकर यदि शुक्लतामें हानि (कमी) हो, तो प्रजाके कार्योंमें हानि और शुक्लतामें वृद्धि (अधिकता) हो, तो प्रजाजनकी वृद्धि होती है*। समतामें समता समझनी चाहिये। यदि चन्द्रमाका बिम्ब मध्यम मानसे विशाल (बड़ा) देखनेमें आवे तो सुभिक्षकारक (सस्ती लानेवाला) और छोटा दीख पड़े तो दुर्भिक्षकारक (महँगी या अकाल लानेवाला) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अधोमुख हो, तो शस्त्रका भय लाता है। दण्डाकार हो तो कलह (राजा-प्रजामें युद्ध) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अथवा बिम्ब मङ्गलादि ग्रहों (मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि) से आहत (भेदित) दीख पड़े तो क्रमशः क्षेम, अन्नादि, वर्षा, राजा और प्रजाका नाश होता है ॥ २३—२६½ ॥

(भौम-चार-फल—) जिस नक्षत्रमें मङ्गलका उदय हो, उससे सातवें, आठवें या नवें नक्षत्रमें वक्र हो तो वह 'उष्ण' नामक वक्र होता है। उसमें प्रजाको पीड़ा और अग्निका भय प्राप्त होता है। यदि उदयके नक्षत्रसे दसवें, ग्यारहवें तथा बारहवें नक्षत्रमें मङ्गल वक्र हो तो वह 'अश्वमुख' नामक वक्र होता है। उसमें अन्न और वर्षाका नाश होता है। यदि तेरहवें या चौदहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'व्यालमुख' वक्र कहलाता है। उसमें भी अन्न और वर्षाका नाश होता है। पद्रहवें या सोलहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'रुधिरमुख' वक्र कहलाता है। उसमें मङ्गल दुर्भिक्ष, क्षुधा तथा रोगको बढाता है। १७ वे या १८ वें नक्षत्रमे वक्र हो तो वह 'मुसल' नामक वक्र होता है। उससे धन-धान्यका नाश तथा दुर्भिक्षका भय होता है। यदि मङ्गल पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उदित होकर उत्तराषाढमें वक्र हो तथा रोहिणीमें अस्त हो तो तीनों लोकोंके लिये नाशकारी होता है। यदि मङ्गल श्रवणमें उदित होकर पुष्यमें वक्रगति हो तो धनकी हानि करनेवाला होता है ॥ २७—३३ ॥

मङ्गल जिस दिशामें उदित होता है, उस दिशाके राजाके लिये भयकारक होता है। यदि मघा-नक्षत्रके मध्य होकर चलता हुआ मङ्गल उसीमें वक्र हो जाय तो अवर्षण (वर्षाका अभाव) और शस्त्रका भय लाता है तथा राजाके लिये विनाशकारी होता है। यदि मङ्गल मघा, विशाखा या रोहिणीके योगताराका भेदन

---

* दिशाका ज्ञान तात्कालिक शरके ज्ञानसे होता है। इसकी विधि पृष्ठ २३६ में देखिये।

† राशि-मण्डलमें सब नक्षत्रोंका भोग ८०० कलाके बराबर है। परंतु प्रत्येक नक्षत्रविभागमें योगताराका स्थान जहाँ पड़ता है, वहाँ उसका भोग-स्थान कहलाता है। वह छ. नक्षत्रोंमें मध्यभागमें पड़ता है और छ. नक्षत्रोंमें आगे बढ जाता है। जिसका वास्तविक मान क्रमसे ३९५ कला १७ विकला और ११८५ कला ५२ विकला है, जो स्वल्पान्तरमें ४०० और १२०० मान लिये गये हैं। क्रमशः इन्हें ही अनागत और गतयोगी कहा गया है। शेष नक्षत्रोंके भोगस्थान अन्तिमभागमें ही पड़ते हैं, अतः इनके मान ८०० कला हैं। ये ही मध्ययोगी हैं।

* प्रतिपदाके अन्तमें (शुक्ल-द्वितीयारम्भमें) चन्द्रमा दृश्य हो तो समता, उससे पश्चात् दृश्य हो तो हानि और पूर्व दृश्य हो तो वृद्धि समझी जाती है।

(मासके अनुसार ही) संवत्सरोंके नाम होते हैं। उन संवत्सरोंमे कार्तिक और मार्गशीर्ष नामक संवत्सर प्राणियोंके लिये अशुभ फलदायक होते हैं। पौष और माघ नामक संवत्सर शुभ फल देनेवाले होते हैं। फाल्गुन और चैत्र नामक संवत्सर मध्यम (शुभ-अशुभ दोनों) फल देते हैं। वैशाख शुभप्रद और ज्येष्ठ मध्यम फल देनेवाला होता है। आपाढ़ मध्यम और श्रावण श्रेष्ठ होता है तथा भाद्रपद भी कभी श्रेष्ठ होता है और कभी नहीं होता; परंतु आश्विन संवत्सर तो प्रजाजनोंके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार संवत्सरोंका फल समझना चाहिये ॥ ५३—५५½ ॥

बृहस्पति जब नक्षत्रोंके उत्तर होकर चलता है, तब संसारमें कल्याण, आरोग्य तथा सुभिक्ष करनेवाला होता है। जब नक्षत्रोंके दक्षिण होकर चलता है, तब विपरीत परिणाम (अशुभ, रोगवृद्धि तथा दुर्भिक्ष) उपस्थित करता है तथा जब मध्य होकर चलता है, उस समय मध्यम फल प्रस्तुत करता है। गुरुका बिम्ब यदि पीतवर्ण, अग्निसदृश, श्याम, हरित और लाल दिखायी दे तो प्रजाजनोंमें क्रमशः व्याधि, अग्नि, चोर, शस्त्र और अस्त्र* का भय उपस्थित होता है। यदि गुरुका वर्ण धूएँके समान हो तो वह अनावृष्टिकारक होता है। यदि गुरु दिनमें (प्रातः-सायं छोड़कर) दृश्य हो तो राजाका नाश, रोगभय अथवा राष्ट्रका विनाश होता है। कृत्तिका तथा रोहिणी ये संवत्सरके शरीर हैं। पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ ये दोनों नाभि हैं, आर्द्रा हृदय और मघा संवत्सरका पुष्प है। यदि शरीर पापग्रहसे पीड़ित हो तो दुर्भिक्ष, अग्नि और वायुका भय उपस्थित होता है। नाभि पापग्रहसे युक्त हो तो क्षुधा और तृषासे पीडा होती है। पुष्प पापग्रहसे आक्रान्त हो तो मूल और फलोंका नाश होता है। यदि हृदय-नक्षत्र पापग्रहसे पीडित हो तो अन्नादिका नाश होता है। शरीर आदि शुभग्रहसे संयुक्त हों तो सुभिक्ष और कल्याणादि शुभ फल प्राप्त होते हैं ॥ ५६—६१ ॥ यदि मघा आदि नक्षत्रोंमें बृहस्पति हो तो वह क्रमशः शस्य-वृद्धि, प्रजामें आरोग्य, युद्ध, अनावृष्टि, द्विजातियोंको पीड़ा, गौओंको सुख, राजाओंको सुख, स्त्री-समाजको सुख, वायुका अवरोध, अनावृष्टि, सर्पभय, सुवृष्टि, स्वास्थ्य, उत्सववृद्धि, महार्घ, सम्पत्तिकी वृद्धि, देशका नाश, अतिवृष्टि, निर्वैरता, रोग-वृद्धि, भयकी हानि, रोग-भय, अन्नकी वृद्धि, वर्षा, रोगकी वृद्धि, धान्यकी वृद्धि और अनावृष्टिरूप फल देता है ॥ ६२—६४ ॥

(शुक्र-चार-फल—)शुक्रके तीन मार्ग हैं— सौम्य (उत्तर), मध्य और याम्य (दक्षिण)। इनमेंसे प्रत्येकमें तीन-तीन वीथियाँ हैं और एक-एक वीथीमे बारी-बारीसे तीन-तीन नक्षत्र आते हैं। इन नक्षत्रोंको अश्विनीसे आरम्भ करके जानना चाहिये। इस प्रकार उत्तरसे दक्षिणतक शुक्रके मार्गमें क्रमशः नाग, इभ, ऐरावत, वृष, उष्ट्र, खर, मृग, अज तथा दहन—ये नौ वीथियाँ हैं† ॥ ६५-६६ ॥ उत्तरमार्गकी तीन वीथियोंमें विचरण करनेवाला शुक्र धान्य, धन, वृष्टि और शस्य (अन्नकी फसल)—इन सब वस्तुओंको पुष्ट एवं परिपूर्ण करता है। मध्यमार्गकी जो तीन वीथियाँ हैं, उनमें शुक्रके जानेसे सब अशुभ ही फल प्राप्त होते हैं। मघासे पाँच नक्षत्रोंमें जब शुक्र जाता है तो पूर्व दिशामें उठा हुआ मेघ सुवृष्टि-

* जो हाथमें धारण किये हुए ही चलाया जाता है, वह शस्त्र है; जैसे तलवार आदि; तथा जो हाथसे फेंककर चलाया जाता है, वह अस्त्र कहलाता है, जैसे बाण और बंदूककी गोली आदि।

† शुक्रके ३ मार्ग और ९ वीथियाँ इस प्रकार हैं—

मार्ग	सौम्य १			मध्यम २			याम्य ३		
नक्षत्र	अश्विनी भरणी कृत्तिका	रोहिणी मृगशिरा आर्द्रा	पुनर्वसु पुष्य आश्लेषा	मघा पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी	हस्त चित्रा स्वाती	विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा	मूल पूर्वाषाढ उत्तराषाढ	श्रवण धनिष्ठा शतभिषा	पूर्व भाद्रपद उत्तर भाद्रपद रेवती
वीथी	१ नाग	२ इभ	३ ऐरावत	४ वृष	५ उष्ट्र	६ खर	७ मृग	८ अज	९ दहन

(मासके अनुसार ही) संवत्सरोंके नाम होते हैं। उन संवत्सरोंमें कार्तिक और मार्गशीर्ष नामक संवत्सर प्राणियोंके लिये अशुभ फलदायक होते हैं। पौष और माघ नामक संवत्सर शुभ फल देनेवाले होते हैं। फाल्गुन और चैत्र नामक संवत्सर मध्यम (शुभ-अशुभ दोनों) फल देते हैं। वैशाख शुभप्रद और ज्येष्ठ मध्यम फल देनेवाला होता है। आषाढ़ मध्यम और श्रावण श्रेष्ठ होता है तथा भाद्रपद भी कभी श्रेष्ठ होता है और कभी नहीं होता; परंतु आश्विन संवत्सर तो प्रजाजनोंके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार संवत्सरोंका फल समझना चाहिये ॥ ५३—५५½ ॥

बृहस्पति जब नक्षत्रोंके उत्तर होकर चलता है, तब संसारमें कल्याण, आरोग्य तथा सुभिक्ष करनेवाला होता है। जब नक्षत्रोंके दक्षिण होकर चलता है, तब विपरीत परिणाम (अशुभ, रोगवृद्धि तथा दुर्भिक्ष) उपस्थित करता है तथा जब मध्य होकर चलता है, उस समय मध्यम फल प्रस्तुत करता है। गुरुका बिम्ब यदि पीतवर्ण, अग्निसदृश, श्याम, हरित और लाल दिखायी दे तो प्रजाजनोंमें क्रमशः व्याधि, अग्नि, चोर, शस्त्र और अस्त्र*का भय उपस्थित होता है। यदि गुरुका वर्ण धूएँके समान हो तो वह अनावृष्टिकारक होता है। यदि गुरु दिनमें (प्रातः-सायं छोड़कर) दृश्य हो तो राजाका नाश, रोगभय अथवा राष्ट्रका विनाश होता है। कृत्तिका तथा रोहिणी ये संवत्सरके शरीर हैं। पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ ये दोनों नाभि हैं, आर्द्रा हृदय और मघा संवत्सरका पुष्प है। यदि शरीर पापग्रहसे पीड़ित हो तो दुर्भिक्ष, अग्नि और वायुका भय उपस्थित होता है। नाभि पापग्रहसे युक्त हो तो क्षुधा और तृषासे पीडा होती है। पुष्प पापग्रहसे आक्रान्त हो तो मूल और फलोंका नाश होता है। यदि हृदय-नक्षत्र पापग्रहसे पीडित हो तो अन्नादिका नाश होता है। शरीर आदि शुभग्रहसे संयुक्त हों तो सुभिक्ष और कल्याणादि शुभ फल प्राप्त होते हैं ॥ ५६—६१ ॥ यदि मघा आदि नक्षत्रोंमें बृहस्पति हो तो वह क्रमशः शस्य-वृद्धि, प्रजामें आरोग्य, युद्ध, अनावृष्टि, द्विजातियोंको पीड़ा, गौओंको सुख, राजाओंको सुख, स्त्री-समाजको सुख, वायुका अवरोध, अनावृष्टि, सर्पभय, सुवृष्टि, स्वास्थ्य, उत्सववृद्धि, महार्घ, सम्पत्तिकी वृद्धि, देशका नाश, अतिवृष्टि, निर्वैरता, रोग-वृद्धि, भयकी हानि, रोगभय, अन्नकी वृद्धि, वर्षा, रोगकी वृद्धि, धान्यकी वृद्धि और अनावृष्टिरूप फल देता है ॥ ६२—६४ ॥

(शुक्र-चार-फल—)शुक्रके तीन मार्ग हैं— सौम्य (उत्तर), मध्य और याम्य (दक्षिण)। इनमेंसे प्रत्येकमें तीन-तीन वीथियाँ हैं और एक-एक वीथीमें बारी-बारीसे तीन-तीन नक्षत्र आते हैं। इन नक्षत्रोंको अश्विनीसे आरम्भ करके जानना चाहिये। इस प्रकार उत्तरसे दक्षिणतक शुक्रके मार्गमें क्रमशः नाग, इभ, ऐरावत, वृष, उष्ट्र, खर, मृग, अज तथा दहन—ये नौ वीथियाँ हैं† ॥ ६५-६६ ॥ उत्तरमार्गकी तीन वीथियोंमें विचरण करनेवाला शुक्र धान्य, धन, वृष्टि और शस्य (अन्नकी फस्ल)—इन सब वस्तुओंको पुष्ट एवं परिपूर्ण करता है। मध्यमार्गकी जो तीन वीथियाँ हैं, उनमें शुक्रके जानेसे सब अशुभ ही फल प्राप्त होते हैं। मघासे पाँच नक्षत्रोंमें जब शुक्र जाता है तो पूर्व दिशामें उठा हुआ मेघ सुवृष्टि-

* जो हाथमें धारण किये हुए ही चलाया जाता है, वह शस्त्र है; जैसे तलवार आदि; तथा जो हाथसे फेंककर चलाया जाता है, वह अस्त्र कहलाता है, जैसे बाण और बंदूककी गोली आदि।

† शुक्रके ३ मार्ग और ९ वीथियाँ इस प्रकार हैं—

मार्ग	सौम्य १			मध्यम २			याम्य ३		
नक्षत्र	अश्विनी भरणी कृत्तिका	रोहिणी मृगशिरा आर्द्रा	पुनर्वसु पुष्य आश्लेषा	मघा पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी	हस्त चित्रा स्वाती	विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा	मूल पूर्वाषाढ उत्तराषाढ	श्रवण धनिष्ठा शतभिषा	पूर्व भाद्रपद उत्तर भाद्रपद रेवती
वीथी	१ नाग	२ इभ	३ ऐरावत	४ वृष	५ उष्ट्र	६ खर	७ मृग	८ अज	९ दहन

क्या है ॥ ९० ॥ गणितद्वारा ग्रहोंको लाकर उनके 'चार' (गतिमान, स्पर्श और मोक्ष कालकी स्थिति) पर विचार करना चाहिये । जिससे उन ग्रहोंद्वारा ग्रहणकालके शुभ और अशुभ लक्षण (फल) को हम देख और जान सकें ॥९१॥ अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उस समयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अनुसधान करे। धूम-केतु आदि तारोंका उदय और अस्त मनुष्योंके लिये उत्पातरूप होता है ॥ ९२ ॥ वे उत्पात दिव्य, भौम और आन्तरिक्ष भेदसे तीन प्रकारके हैं । वे शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके फल देनेवाले हैं। आकाशमे यज्ञकी ध्वजा, अस्त्र-शस्त्र, भवन और बड़े हाथीके सदृश तथा खंभा, त्रिशूल और अङ्कुश—इन वस्तुओंके समान जो केतु दिखायी देते हैं, उन्हें 'आन्तरिक्ष' उत्पात कहते हैं । साधारण ताराके समान उदित होकर किसी नक्षत्र-के साथ केतु हो तो 'दिव्य' उत्पात कहा गया है। भूलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले (भूकम्प आदि) उत्पातोंको 'भौम' उत्पात कहते हैं ॥ ९३-९४ ॥ केतुतारा एक होकर भी प्राणियोंको अशुभ फल देनेके लिये भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है । जितने दिनोंतक आकाशमे विविधरूपधारी केतु देखनेमें आता है, उतने ही मास या सौर वर्षोंतक वह अपना शुभाशुभ फल देता है। जो दिव्य केतु हैं, वे सदा प्राणियों-को विविध फल देनेवाले होते हैं ॥ ९५-९६ ॥ ह्रस्व, चिकना और प्रसन्न (स्वच्छ) श्वेत रङ्गका केतु सुवृष्टि देता है । शीघ्र अस्त होनेवाला विशाल केतु अवृष्टि देता है ॥ ९७ ॥ इन्द्रधनुषके समान कान्तिवाला धूमकेतु तारा अनिष्ट फल देता है । दो, तीन या चार रूपोंमें प्रकट त्रिशूलके समान आकारवाला केतु राष्ट्रका विनाशक होता है ॥ ९८ ॥ पूर्व तथा पश्चिम दिशामें सूर्य-सम्बन्धी केतु मणि, हार एवं सुवर्णके समान देदीप्यमान दिखायी दे तो उन दिशाओंके राजाओं-की हानि होती है ॥ ९९॥ पलाश, बिम्बफल, रक्त और तोतेकी चोंच आदिके समान वर्णका केतु अग्निकोणमें उदित हो तो शुभ फल देनेवाला होता है॥ १०० ॥ भूमिसम्बन्धी केतुओंकी कान्ति जल एवं तेलके समान होती है। वे भूखमरीका भय देनेवाले हैं। चन्द्रजनित केतुओंका वर्ण श्वेत होता है। वे सुभिक्ष और कल्याण प्रदान करनेवाले होते हैं ॥१०१॥ ब्रह्मदण्डसे उत्पन्न तथा तीन रंग और तीन अवस्थाओंसे युक्त धूमकेतु नामक पितामहजनित (आन्तरिक्ष) केतु प्रजाओंका विनाश करनेवाला माना गया है ॥ १०२ ॥ यदि ईशानकोणमे श्वेतवर्णके शुक्रजनित केतु उदित हों तो वे अनिष्ट फल देनेवाले होते हैं। शिखारहित एव कनकनामसे प्रसिद्ध शनैश्चरसम्बन्धी केतु भी अनिष्ट फलदायक हैं॥ १०३ ॥ गुरुसम्बन्धी केतुओंकी विकच संज्ञा है । वे दक्षिण दिशामें प्रकट होनेपर भी अभीष्ट-साधक माने गये हैं । उसी दिशामें सूक्ष्म तथा शुक्लवर्ण-वाले बुधसम्बन्धी केतु हो तो वे चोर तथा रोगका भय प्रदान करनेवाले हैं ॥ १०४ ॥ कुङ्कुमनामसे प्रसिद्ध मङ्गल-सम्बन्धी केतु लाल रगके होते हैं। उनकी आकृति सूर्यके समान होती है। वे भी उक्त दिशामें उदित होनेपर अनिष्ट-दायक होते हैं। अग्निके समान कान्तिवाले अग्निसम्बन्धी केतु विश्वरूप नामसे प्रसिद्ध हैं। वे अग्निकोणमें उदित होनेपर सुखद होते हैं ॥ १०५ ॥ श्याम वर्णवाले सूर्यसम्बन्धी केतु अरुण कहलाते हैं । वे पाप अर्थात् दुःख देनेवाले होते हैं । रीछके समान रगवाले शुक्रसम्बन्धी केतु शुभदायक होते हैं ॥ १०६ ॥ कृत्तिका तारामें उदित हुआ धूमकेतु निश्चय ही प्रजाजनोंका नाश करता है। राजमहल, वृक्ष और पर्वतपर प्रकट हुआ केतु राजाओंका नाश करनेवाला होता है ॥ १०७ ॥ कुमुद पुष्पके समान वर्णवाला कौमुद नामक केतु सुभिक्ष लानेवाला होता है । सध्याकाल-में मस्तकसहित उदित हुआ गोलाकार केतु अनिष्ट फल देनेवाला होता है ॥ १०८ ॥

(कालमान—) ब्राह्म, दैव, मानव, पित्र्य, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र तथा बार्हस्पत्य—ये नौ मान होते हैं ॥ १०९ ॥ इस लोकमें इन नौ मानोंमेंसे पाँचके ही द्वारा व्यवहार होता है । किंतु उन नवों मानोंका व्यवहारके अनुसार पृथक्-पृथक् कार्य बताया जायगा । ॥ ११० ॥ सौर मानसे ग्रहोंकी सब प्रकारकी गति (भगणादि) जाननी चाहिये । वर्षाका समय तथा स्त्रीके प्रसवका समय सावन मानसे ही ग्रहण किया जाता है ॥ १११ ॥ वर्षोंके भीतरका घटीमान आदि नाक्षत्र मानसे ही लिया जाता है। यज्ञोपवीत, मुण्डन, तिथि एवं वर्षेशका निर्णय तथा पर्व, उपवास आदिका निश्चय चान्द्र मानसे किया जाता है। बार्हस्पत्य मानसे प्रभवादि संवत्सरका स्वरूप ग्रहण किया जाता है ॥ ११२-११३ ॥ उन-उन मानोंके अनुसार बारह महीनो-का उनका अपना-अपना विभिन्न वर्ष होता है। बृहस्पतिकी अपनी मध्यम गतिसे प्रभव आदि नामवाले साठ संवत्सर होते हैं ॥ ११४ ॥ प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य,

क्या है ॥ ९० ॥ गणितद्वारा ग्रहोंको लाकर उनके 'चार' (गतिमान, स्पर्श और मोक्ष कालकी स्थिति) पर विचार करना चाहिये। जिससे उन ग्रहोंद्वारा ग्रहणकालके शुभ और अशुभ लक्षण (फल) को हम देख और जान सकें ॥९१॥ अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उस समयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अनुसंधान करे। धूम-केतु आदि तारोंका उदय और अस्त मनुष्योंके लिये उत्पातरूप होता है ॥ ९२ ॥ वे उत्पात दिव्य, भौम और आन्तरिक्ष भेदसे तीन प्रकारके हैं । वे शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके फल देनेवाले हैं। आकाशमें यज्ञकी ध्वजा, अस्त्र-शस्त्र, भवन और बड़े हाथीके सदृश तथा खंभा, त्रिशूल और अङ्कुश—इन वस्तुओंके समान जो केतु दिखायी देते हैं, उन्हें 'आन्तरिक्ष' उत्पात कहते हैं। साधारण ताराके समान उदित होकर किसी नक्षत्रके साथ केतु हो तो 'दिव्य' उत्पात कहा गया है। भूलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले (भूकम्प आदि) उत्पातोंको 'भौम' उत्पात कहते हैं ॥ ९३-९४ ॥ केतुतारा एक होकर भी प्राणियोंको अशुभ फल देनेके लिये भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है । जितने दिनोंतक आकाशमें विविधरूपधारी केतु देखनेमें आता है, उतने ही मास या सौर वर्षोंतक वह अपना शुभाशुभ फल देता है। जो दिव्य केतु हैं, वे सदा प्राणियोंको विविध फल देनेवाले होते हैं ॥ ९५-९६ ॥ ह्रस्व, चिकना और प्रसन्न (स्वच्छ) श्वेत रङ्गका केतु सुवृष्टि देता है । शीघ्र अस्त होनेवाला विशाल केतु अवृष्टि देता है ॥ ९७ ॥ इन्द्रधनुषके समान कान्तिवाला धूमकेतु तारा अनिष्ट फल देता है । दो, तीन या चार रूपोंमें प्रकट त्रिशूलके समान आकारवाला केतु राष्ट्रका विनाशक होता है ॥ ९८ ॥ पूर्व तथा पश्चिम दिशामें सूर्य-सम्बन्धी केतु मणि, हार एवं सुवर्णके समान देदीप्यमान दिखायी दे तो उन दिशाओंके राजाओंकी हानि होती है ॥ ९९ ॥ पलाश, बिम्बफल, रक्त और तोतेकी चोंच आदिके समान वर्णका केतु अग्निकोणमें उदित हो तो शुभ फल देनेवाला होता है॥ १०० ॥ भूमिसम्बन्धी केतुओंकी कान्ति जल एवं तेलके समान होती है। वे भूखमरीका भय देनेवाले हैं। चन्द्रजनित केतुओंका वर्ण श्वेत होता है। वे सुभिक्ष और कल्याण प्रदान करनेवाले होते हैं ॥१०१॥ ब्रह्मदण्डसे उत्पन्न तथा तीन रंग और तीन अवस्थाओंसे युक्त धूमकेतु नामक पितामहजनित (आन्तरिक्ष) केतु प्रजाओंका विनाश करनेवाला माना गया है ॥ १०२ ॥ यदि ईशानकोणमें श्वेतवर्णके शुक्रजनित केतु उदित हों तो वे अनिष्ट फल देनेवाले होते हैं। शिखारहित एवं कनकनामसे प्रसिद्ध शनैश्चरसम्बन्धी केतु भी अनिष्ट फलदायक हैं ॥ १०३ ॥ गुरुसम्बन्धी केतुओंकी विकच संज्ञा है । वे दक्षिण दिशामें प्रकट होनेपर भी अभीष्टसाधक माने गये हैं । उसी दिशामें सूक्ष्म तथा शुक्लवर्णवाले बुधसम्बन्धी केतु हो तो वे चोर तथा रोगका भय प्रदान करनेवाले हैं ॥ १०४ ॥ कुङ्कुमनामसे प्रसिद्ध मङ्गलसम्बन्धी केतु लाल रंगके होते हैं। उनकी आकृति सूर्यके समान होती है। वे भी उक्त दिशामें उदित होनेपर अनिष्टदायक होते हैं। अग्निके समान कान्तिवाले अग्निसम्बन्धी केतु विश्वरूप नामसे प्रसिद्ध हैं। वे अग्निकोणमें उदित होनेपर सुखद होते हैं ॥ १०५ ॥ श्याम वर्णवाले सूर्यसम्बन्धी केतु अरुण कहलाते हैं। वे पाप अर्थात् दुःख देनेवाले होते हैं । रीछके समान रंगवाले शुक्रसम्बन्धी केतु शुभदायक होते हैं ॥ १०६ ॥ कृत्तिका तारामें उदित हुआ धूमकेतु निश्चय ही प्रजाजनोंका नाश करता है। राजमहल, वृक्ष और पर्वतपर प्रकट हुआ केतु राजाओंका नाश करनेवाला होता है ॥ १०७ ॥ कुमुद पुष्पके समान वर्णवाला कौमुद नामक केतु सुभिक्ष लानेवाला होता है । संध्याकालमें मस्तकसहित उदित हुआ गोलाकार केतु अनिष्ट फल देनेवाला होता है ॥ १०८ ॥

(कालमान—) ब्राह्म, दैव, मानव, पित्र्य, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र तथा बार्हस्पत्य—ये नौ मान होते हैं ॥ १०९ ॥ इस लोकमें इन नौ मानोंमेंसे पाँचके ही द्वारा व्यवहार होता है । किंतु उन नवों मानोंका व्यवहारके अनुसार पृथक्-पृथक् कार्य बताया जायगा। ॥ ११० ॥ सौर मानसे ग्रहोंकी सब प्रकारकी गति (भगणादि) जाननी चाहिये । वर्षाका समय तथा स्त्रीके प्रसवका समय सावन मानसे ही ग्रहण किया जाता है ॥ १११ ॥ वर्षोंके भीतरका घटीमान आदि नाक्षत्र मानसे ही लिया जाता है। यज्ञोपवीत, मुण्डन, तिथि एवं वर्षेशका निर्णय तथा पर्व, उपवास आदिका निश्चय चान्द्र मानसे किया जाता है। बार्हस्पत्य मानसे प्रभवादि संवत्सरका स्वरूप ग्रहण किया जाता है ॥ ११२-११३ ॥ उन-उन मानोंके अनुसार बारह महीनोंका उनका अपना-अपना विभिन्न वर्ष होता है। बृहस्पतिकी अपनी मध्यम गतिसे प्रभव आदि नामवाले साठ संवत्सर होते हैं ॥ ११४ ॥ प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य,

और वैधृति-योगमें अभ्यञ्जन (उबटन) का निषेध है। जो मनुष्य दशमी तिथिमें आँवलेसे स्नान करता है, उसको पुत्रकी हानि उठानी पड़ती है। त्रयोदशीको आँवलेसे स्नान करनेपर धनका नाश होता है और द्वितीयाको उससे स्नान करनेवालोंके धन और पुत्र दोनोंका नाश होता है। इसमें संशय नहीं है। अमावास्या, नवमी और सप्तमी—इन तीन तिथियोंमें आँवलेसे स्नान करनेवालोंके कुलका विनाश होता है॥ १३३—१४४½ ॥

जो पूर्णिमा दिनमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो (अर्थात् जिसमें रात्रिके समय चन्द्रमा कलाहीन हो) वह पूर्णिमा 'अनुमती' कहलाती है और जो रात्रिमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो वह 'राका' कहलाती है। इसी प्रकार अमावास्या भी दो प्रकारकी होती है। जिसमें चन्द्रमाकी किंचित् कलाका अंश शेष रहता है, वह 'सिनीवाली' कही गयी है तथा जिसमें चन्द्रमाकी सम्पूर्ण कला लुप्त हो जाती है, वह अमावास्या 'कुहू' कहलाती है * ॥ १४५-१४६ ॥

(युगादि तिथियाँ—) कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी सत्ययुगकी आदि तिथि है (इसी दिन सत्ययुगका प्रारम्भ हुआ था), वैशाख शुक्लपक्षकी पुण्यमयी तृतीया त्रेतायुगकी आदि तिथि है। माघकी अमावास्या द्वापरयुगकी आदि तिथि और भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी कलियुगकी आदि तिथि है। (ये सब तिथियाँ अति पुण्य देनेवाली कही गयी हैं) ॥ १४७-१४८ ॥

(मन्वादि तिथियाँ—) कार्तिकशुक्ला द्वादशी, आश्विनशुक्ला नवमी, चैत्रशुक्ला तृतीया, भाद्रपदशुक्ला तृतीया, पौषशुक्ला एकादशी, आषाढ़शुक्ला दशमी, माघशुक्ला सप्तमी, भाद्रपदकृष्णा अष्टमी, श्रावणकी अमावास्या, फाल्गुनकी पूर्णिमा, आषाढ़की पूर्णिमा, कार्तिककी पूर्णिमा, ज्येष्ठकी पौर्णमासी और चैत्रकी पूर्णिमा—ये चौदह मन्वादि तिथियाँ हैं। ये सब तिथियाँ मनुष्योंके लिये पितृकर्म (पार्वण-श्राद्ध) में अत्यन्त पुण्य देनेवाली हैं ॥ १४९—१५१½ ॥

(गजच्छाया-योग—) भादोंके[1] कृष्णपक्षकी (शुक्लादि क्रमसे भाद्रकृष्ण और कृष्णादि क्रमसे आश्विन कृष्ण पक्षकी) त्रयोदशीमें यदि सूर्य हस्त-नक्षत्रमें और चन्द्रमा मघामें हो तो 'गजच्छाया' नामक योग होता है; जो पितरोंके पार्वणादि श्राद्ध कर्ममें अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है ॥ १५२½ ॥

किसी एक दिनमें तीन तिथियोंका स्पर्श हो तो क्षयतिथि तथा एक ही तिथिका तीन दिनमें स्पर्श हो तो अधिक तिथि (अधितिथि) होती है। ये दोनों ही निन्दित हैं। जिस दिन सूर्योदयसे सूर्यास्तपर्यन्त जो तिथि रहती है, उस दिन वह अखण्ड तिथि कहलाती है। यदि सूर्यास्तसे पूर्व ही समाप्त होती है तो वह खण्ड तिथि कही जाती है॥१५३-१५४½॥

(क्षणतिथिकथन—) प्रत्येक तिथिमें तिथिमानका पंद्रहवाँ भाग क्षणतिथि कहलाता है। (अर्थात् प्रत्येक तिथिमें उसी तिथिसे आरम्भ करके पंद्रह तिथियोंके अन्तर्भोग होते हैं।) तथा उन क्षणतिथियोंका भी आधा क्षण तिथ्यर्ध (क्षण करण) होता है* ॥ १५५½ ॥

(वारप्रकरण—) रवि स्थिर, सोम चर, मङ्गल क्रूर, बुध अखिल (सम्पूर्ण), गुरु लघु, शुक्र मृदु और शनि तीक्ष्ण धर्मवाला है।

(वारोंमें तेल लगानेका फल—) जो मनुष्य रविवारको तेल लगाता है, वह रोगी होता है। सोमवारको तेल लगानेसे कान्ति बढ़ती है। मङ्गलको व्याधि होती है। बुधको तैलाभ्यङ्गसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। गुरुवारको सौभाग्यकी हानि होती है, शुक्रवारको भी हानि होती है तथा शनिवारको तेल लगानेसे धन-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है ॥ १५६—१५८ ॥

(रवि आदि वारोंका आरम्भकाल—) जिस समय लङ्कामें (भूमध्यरेखापर) सूर्योदय होता है, उसी समयसे सर्वत्र रवि आदि वारोंका आरम्भ होता है। उस समयसे देशान्तर (लङ्कोदयकालसे अपने उदय कालका अन्तर) और चरार्ध घटीतुल्य आगे या पीछे अन्य देशमें सूर्योदय हुआ करता है†॥१५९॥

---

* अमावास्या प्रायः दो दिन हुआ करती है। उनमें प्रथम दिनकी सिनीवाली और दूसरे दिनकी कुहू होती है। चतुर्दशीयुक्ता अमावास्याका क्षय न हो तो वह सिनीवाली होती है।

[1] 'अमावास्यान्त' मासकी दृष्टिसे यहाँ भादोंका कृष्णपक्ष कहा गया है। जहाँ पूर्णिमान्त मास माना जाता है, वहाँके लिये इस भादोंका अर्थ आश्विन समझना चाहिये।

* जैसे प्रतिपदाका भोगमान (आरम्भसे अन्ततक) ६० घड़ी है तो उस तिथिमें आरम्भसे ४ घड़ी प्रतिपदा है, उसके बादकी ४ घड़ी द्वितीया है और उसके बादकी ४ घड़ी तृतीया है। इसी प्रकार आगे भी चतुर्थी आदि सब तिथि प्राप्त होती हैं। इसी तरह द्वितीयामें भी द्वितीया आदि सब तिथियोंका भोग समझना चाहिये तथा क्षणतिथिमें भी २-२ घड़ी क्षणकरणका मान समझना चाहिये। इसका प्रयोजन यह है कि जिस तिथिमें जो कार्य शुभ या अशुभ कहा गया है, वह क्षणतिथिमें भी शुभ या अशुभ समझना चाहिये। जैसे चतुर्दशीमें क्षौर कराना अशुभ कहा गया है तो तृतीया आदि अन्य तिथियोंमें भी जब चतुर्दशी क्षणतिथिके रूपमें प्राप्त हो तो उसमें क्षौर कराना अशुभ होता है तथा चतुर्दशीमें भी आवश्यक हो तो अन्य तिथिके भोगसमयमें क्षौर करानेमें दोष नहीं समझा जायगा। विशेष आवश्यक शुभ कार्यमें ही तिथि और क्षणतिथिका विचार करना चाहिये।

† इससे सिद्ध होता है कि अपने-अपने सूर्योदयकालसे देशान्तर और चरार्धकाल आगे या पीछे वारप्रवेश हुआ करता है।

और वैधृति-योगमें अभ्यञ्जन (उबटन) का निषेध है। जो मनुष्य दशमी तिथिमें आँवलेसे स्नान करता है, उसको पुत्रकी हानि उठानी पड़ती है। त्रयोदशीको आँवलेसे स्नान करनेपर धनका नाश होता है और द्वितीयाको उससे स्नान करनेवालोंके धन और पुत्र दोनोंका नाश होता है। इसमें संशय नहीं है। अमावास्या, नवमी और सप्तमी—इन तीन तिथियोंमें आँवलेसे स्नान करनेवालोंके कुलका विनाश होता है॥ १३३—१४४½॥

जो पूर्णिमा दिनमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो (अर्थात् जिसमे रात्रिके समय चन्द्रमा कलाहीन हो) वह पूर्णिमा 'अनुमती' कहलाती है और जो रात्रिमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो वह 'राका' कहलाती है। इसी प्रकार अमावास्या भी दो प्रकारकी होती है। जिसमे चन्द्रमाकी किंचित् कलाका अश शेष रहता है, वह 'सिनीवाली' कही गयी है तथा जिसमें चन्द्रमाकी सम्पूर्ण कला लुप्त हो जाती है, वह अमावास्या 'कुहू' कहलाती है * ॥ १४५-१४६ ॥

(युगादि तिथियाँ—) कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी सत्ययुगकी आदि तिथि है (इसी दिन सत्ययुगका प्रारम्भ हुआ था), वैशाख शुक्लपक्षकी पुण्यमयी तृतीया त्रेतायुगकी आदि तिथि है। माघकी अमावास्या द्वापरयुगकी आदि तिथि और भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी कलियुगकी आदि तिथि है। (ये सब तिथियाँ अति पुण्य देनेवाली कही गयी हैं) ॥ १४७-१४८ ॥

(मन्वादि तिथियाँ—) कार्तिकशुक्ला द्वादशी, आश्विनशुक्ला नवमी, चैत्रशुक्ला तृतीया, भाद्रपदशुक्ला तृतीया, पौषशुक्ला एकादशी, आषाढ़शुक्ला दशमी, माघशुक्ला सप्तमी, भाद्रपदकृष्णा अष्टमी, श्रावणकी अमावास्या, फाल्गुनकी पूर्णिमा, आषाढ़की पूर्णिमा, कार्तिककी पूर्णिमा, ज्येष्ठकी पौर्णमासी और चैत्रकी पूर्णिमा—ये चौदह मन्वादि तिथियाँ हैं। ये सब तिथियाँ मनुष्योंके लिये पितृकर्म (पार्वण-श्राद्ध) मे अत्यन्त पुण्य देनेवाली हैं॥ १४९—१५१½ ॥

(गजच्छाया-योग—) भादोंके कृष्णपक्षकी (शुक्लादि क्रमसे भाद्रकृष्ण और कृष्णादि क्रमसे आश्विन कृष्ण पक्षकी) त्रयोदशीमें यदि सूर्य हस्त-नक्षत्रमें और चन्द्रमा मघामें हो तो 'गजच्छाया' नामक योग होता है; जो पितरोंके पार्वणादि श्राद्ध कर्ममें अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है॥ १५२½ ॥

किसी एक दिनमें तीन तिथियोंका स्पर्श हो तो क्षयतिथि तथा एक ही तिथिका तीन दिनमें स्पर्श हो तो अधिक तिथि (अधितिथि) होती है। ये दोनों ही निन्दित हैं। जिस दिन सूर्योदयसे सूर्यास्तपर्यन्त जो तिथि रहती है, उस दिन वह अखण्ड तिथि कहलाती है। यदि सूर्यास्तसे पूर्व ही समाप्त होती है तो वह खण्ड तिथि कही जाती है॥१५३-१५४½॥

(क्षणतिथिकथन—) प्रत्येक तिथिमें तिथिमानका पंद्रहवाँ भाग क्षणतिथि कहलाता है। (अर्थात् प्रत्येक तिथिमें उसी तिथिसे आरम्भ करके पंद्रह तिथियोंके अन्तर्भोग होते हैं।) तथा उन क्षणतिथियोंका भी आधा क्षण तिथ्यर्ध (क्षण करण) होता है* ॥ १५५½ ॥

(वारप्रकरण—) रवि स्थिर, सोम चर, मङ्गल क्रूर, बुध अखिल (सम्पूर्ण), गुरु लघु, शुक्र मृदु और शनि तीक्ष्ण धर्मवाला है।

(वारोंमें तेल लगानेका फल—) जो मनुष्य रविवारको तेल लगाता है, वह रोगी होता है। सोमवारको तेल लगानेसे कान्ति बढ़ती है। मङ्गलको व्याधि होती है। बुधको तैलाभ्यङ्गसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। गुरुवारको सौभाग्यकी हानि होती है, शुक्रवारको भी हानि होती है तथा शनिवारको तेल लगानेसे धन-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है॥ १५६—१५८ ॥

(रवि आदि वारोंका आरम्भकाल—) जिस समय लङ्कामें (भूमध्यरेखापर) सूर्योदय होता है, उसी समयसे सर्वत्र रवि आदि वारोंका आरम्भ होता है। उस समयसे देशान्तर (लङ्कोदयकालसे अपने उदय कालका अन्तर) और चरार्ध घटीतुल्य आगे या पीछे अन्य देशमे सूर्योदय हुआ करता है†॥१५९॥

---

* अमावास्या प्रायः दो दिन हुआ करती है। उनमें प्रथम दिनकी सिनीवाली और दूसरे दिनकी कुहू होती है। चतुर्दशीयुक्ता अमावास्याका क्षय न हो तो वह सिनीवाली होती है।

१ 'अमावास्यान्त' मासकी दृष्टिसे यहाँ भादोंका कृष्णपक्ष कहा गया है। जहाँ पूर्णिमान्त मास माना जाता है, वहाँके लिये इस भादोंका अर्थ आश्विन समझना चाहिये।

* जैसे प्रतिपदाका भोगमान (आरम्भसे अन्ततक) ६० घड़ी है तो उस तिथिमें आरम्भसे ४ घड़ी प्रतिपदा है, उसके बादकी ४ घड़ी द्वितीया है और उसके बादकी ४ घड़ी तृतीया है। इसी प्रकार आगे भी चतुर्थी आदि सब तिथि प्राप्त होती हैं। इसी तरह द्वितीयामें भी द्वितीया आदि सब तिथियोंका भोग समझना चाहिये तथा क्षणतिथिमें भी २-२ घड़ी क्षणकरणका मान समझना चाहिये। इसका प्रयोजन यह है कि जिस तिथिमें जो कार्य शुभ या अशुभ कहा गया है, वह क्षणतिथिमें भी शुभ या अशुभ समझना चाहिये। जैसे चतुर्दशीमें क्षौर कराना अशुभ कहा गया है तो तृतीया आदि अन्य तिथियोंमें भी जब चतुर्दशी क्षणतिथिके रूपमें प्राप्त हो तो उसमें क्षौर कराना अशुभ होता है तथा चतुर्दशीमें भी आवश्यक हो तो अन्य तिथिके भोगसमयमें क्षौर करानेमें दोष नहीं समझा जायगा। विशेष आवश्यक शुभ कार्यमें ही तिथि और क्षणतिथिका विचार करना चाहिये।

† इससे सिद्ध होता है कि अपने-अपने सूर्योदयकालसे देशान्तर और चरार्धकाल आगे या पीछे वारप्रवेश हुआ करता है।

(क्षणवारका प्रयोजन—) जिस वारमें जो कर्म शुभ या अशुभ कहा गया है, वह उसके क्षणवारमें भी उसी प्रकार शुभ या अशुभ समझना चाहिये ॥ १६७½ ॥

(नक्षत्राधिपति-कथन-) १ दस्र (अश्विनीकुमार), २ यम, ३ अग्नि, ४ ब्रह्मा, ५ चन्द्र, ६ शिव, ७ अदिति, ८ गुरु, ९ सर्प, १० पितर, ११ भग, १२-अर्यमा, १३ सूर्य, १४ विश्वकर्मा, १५ वायु, १६ इन्द्र और अग्नि, १७ मित्र, १८ इन्द्र, १९ राक्षस (निर्ऋति), २० जल, २१ विश्वेदेव, २२ ब्रह्मा, २३ विष्णु, २४ वसु, २५ वरुण, २६ अजैकपाद, २७ अहिर्बुध्न्य और २८ पूषा—ये क्रमशः (अभिजित्सहित) अश्विनी आदि २८ नक्षत्रोंके स्वामी कहे गये हैं ॥ १६८–१७० ॥

(नक्षत्रोंके मुख-) पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, मघा, आश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मूल—ये नौ नक्षत्र अधोमुख (नीचे मुखवाले) हैं । इनमें बिलप्रवेश (कुआँ, भूविवर या पाताल आदिमें जाना), गणित, भूत-साधन, लेखन, शिल्प (चित्र आदि) कला, कुआँ खोदना तथा गाड़े हुए धनको निकालना आदि सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १७१–१७२ ॥

अनुराधा, मृगशिरा, चित्रा, हस्त, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, रेवती, अश्विनी और स्वाती—ये नौ नक्षत्र तिर्यक् (सामने) मुखवाले हैं । इनमें हल जोतना, यात्रा करना, गाड़ी बनाना, पत्र लिखकर भेजना, हाथी, ऊँट आदिकी सवारी करना, गदहे, बैल आदिसे चलनेवाले रथ बनाना, नौकापर चलना तथा भैंस, घोड़े आदि-सम्बन्धी कार्य करने चाहिये ॥ १७३–१७४ ॥

रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, शतभिषा, धनिष्ठा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ तथा उत्तर भाद्रपद—ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुख (ऊपर मुखवाले) कहे गये हैं । इनमें राज्याभिषेक, मङ्गल (विवाहादि)-कार्य, गजारोहण, ध्वजारोपण, मन्दिर-निर्माण, तोरण (फाटक) बनाना, बगीचे लगाना और चहारदीवारी बनवाना आदि कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १७५–१७६ ॥

(नक्षत्रोंकी ध्रुवादि संज्ञा-) रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद—ये ध्रुवनामक नक्षत्र हैं । हस्त, अश्विनी और पुष्य—ये क्षिप्रसंज्ञक हैं । विशाखा और कृत्तिका—ये दोनों साधारणसंज्ञक हैं । धनिष्ठा, पुनर्वसु, शतभिषा, स्वाती और श्रवण—ये चरसंज्ञक हैं । मृगशिरा, अनुराधा, चित्रा तथा रेवती—ये मृदुनामक नक्षत्र हैं । पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्व भाद्रपद और भरणी—ये उग्रसंज्ञक नक्षत्र हैं । मूल, आर्द्रा, आश्लेषा और ज्येष्ठा—ये तीक्ष्णनामक नक्षत्र हैं । ये सब अपने नामके अनुसार ही फल देते हैं (इसलिये इन नक्षत्रोंमें इनके नामके अनुरूप ही कार्य करने चाहिये) ॥ १७७–१७८½ ॥

(कर्णवेध-मुहूर्त-) चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, धनिष्ठा, मृगशिरा और पुष्य—इन नक्षत्रोंमें कर्णवेध हितकर होता है ।

(हाथी और घोड़े सम्बन्धी कार्य-) अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा और स्वाती—इनमें तथा स्थिरसंज्ञक नक्षत्रोंमें हाथीसम्बन्धी सब कृत्य करने चाहिये; तथा इन्हीं नक्षत्रोंमें घोड़ेके भी सब कृत्य शुभ होते हैं; किंतु रविवारको इन कृत्योंका त्याग कर देना चाहिये ॥ १७९–१८१ ॥

(अन्य पशुकृत्य-) चित्रा, शतभिषा, रोहिणी तथा तीनों उत्तरा—इन नक्षत्रोंमें पशुओंको कहींसे लाना या ले जाना शुभ है । परंतु अमावास्या, अष्टमी और चतुर्दशीको कदापि पशुओंका कोई कृत्य नहीं करना चाहिये ॥ १८२ ॥

(प्रथम हलप्रवाह—हल जोतना—) मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चरसंज्ञक नक्षत्र, विशाखा, मघा और मूल—इन नक्षत्रोंमें बैलोंद्वारा प्रथम बार हल जोतना शुभ होता है । सूर्य जिस नक्षत्रमें हो, उससे पिछले नक्षत्रसे तीन नक्षत्र हलके आदि (मूल) में रहते हैं । इनमें प्रथम बार हल जोतने-जुतानेसे बैलका नाश होता है । उसके आगे तीन नक्षत्र हलके अग्रभागमें रहते हैं । इनमें हल जोतनेसे वृद्धि होती है । उससे आगेके पाँच नक्षत्र उत्तर पार्श्वमें रहते हैं, इनमें लक्ष्मीप्राप्ति होती है । तीन शूलोंमें नौ नक्षत्र रहते हैं; इनमे हल जोतनेसे कृषककी मृत्यु होती है । उससे आगे पाँच नक्षत्रोंमें सम्पत्तिकी वृद्धि होती है; फिर उससे आगेके तीन नक्षत्रोंमें प्रथम बार हल जोतनेसे श्रेष्ठ फल प्राप्त होते हैं ॥ १८३–१८५ ॥

(बीज-वपन-) मृदु, ध्रुव और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र, मघा, स्वाती, धनिष्ठा और मूल—इनमें धान्यके बीज बोना श्रेष्ठ होता है । इस बीज-वपनमें राहु जिस नक्षत्रमें हो, उससे तीन नक्षत्र लाङ्गल-चक्रके अग्रभागमे रहते हैं । इन तीनोंमें बीज-वपनसे धान्यका नाश होता है । उससे आगेके तीन नक्षत्र

जैसे रविवारमें वारप्रवेश-कालसे पहला घंटा रविका, दूसरा घंटा रविसे छठे शुक्रका, तीसरा घंटा शुक्रसे छठे बुधका इत्यादि क्रमसे ऊपर चक्रमें देखिये ।

(क्षणवारका प्रयोजन—) जिस वारमें जो कर्म शुभ या अशुभ कहा गया है, वह उसके क्षणवारमें भी उसी प्रकार शुभ या अशुभ समझना चाहिये ॥ १६७½ ॥

(नक्षत्राधिपति-कथन-) १ दस्र (अश्विनीकुमार), २ यम, ३ अग्नि, ४ ब्रह्मा, ५ चन्द्र, ६ शिव, ७ अदिति, ८ गुरु, ९ सर्प, १० पितर, ११ भग, १२ अर्यमा, १३ सूर्य, १४ विश्वकर्मा, १५ वायु, १६ इन्द्र और अग्नि, १७ मित्र, १८ इन्द्र, १९ राक्षस (निर्ऋति), २० जल, २१ विश्वेदेव, २२ ब्रह्मा, २३ विष्णु, २४ वसु, २५ वरुण, २६ अजैकपाद, २७ अहिर्बुध्न्य और २८ पूषा—ये क्रमशः (अभिजित्‌सहित) अश्विनी आदि २८ नक्षत्रोंके स्वामी कहे गये हैं ॥ १६८–१७० ॥

(नक्षत्रोंके मुख-) पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वापाढ़, पूर्व भाद्रपद, मघा, आश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मूल—ये नौ नक्षत्र अधोमुख (नीचे मुखवाले) हैं। इनमें विलप्रवेश (कुआँ, भूविवर या पाताल आदिमें जाना), गणित, भूतसाधन, लेखन, शिल्प (चित्र आदि) कला, कुआँ खोदना तथा गाड़े हुए धनको निकालना आदि सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १७१–१७२ ॥

अनुराधा, मृगशिरा, चित्रा, हस्त, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, रेवती, अश्विनी और स्वाती—ये नौ नक्षत्र तिर्यक् (सामने) मुखवाले हैं। इनमें हल जोतना, यात्रा करना, गाड़ी बनाना, पत्र लिखकर भेजना, हाथी, ऊँट आदिकी सवारी करना, गदहे, बैल आदिसे चलनेवाले रथ बनाना, नौकापर चलना तथा भैंस, घोड़े आदि-सम्बन्धी कार्य करने चाहिये ॥ १७३–१७४ ॥

रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, शतभिषा, धनिष्ठा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरापाढ़ तथा उत्तर भाद्रपद—ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुख (ऊपर मुखवाले) कहे गये हैं। इनमें राज्याभिषेक, मङ्गल (विवाहादि)-कार्य, गजारोहण, ध्वजारोपण, मन्दिर-निर्माण, तोरण (फाटक) बनाना, बगीचे लगाना और चहारदीवारी बनवाना आदि कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १७५–१७६ ॥

(नक्षत्रोंकी ध्रुवादि संज्ञा-) रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरापाढ़ और उत्तर भाद्रपद—ये ध्रुवनामक नक्षत्र हैं। हस्त, अश्विनी और पुष्य—ये क्षिप्रसंज्ञक हैं। विशाखा और कृत्तिका—ये दोनों साधारणसंज्ञक हैं। धनिष्ठा, पुनर्वसु, शतभिषा, स्वाती और श्रवण—ये चरसंज्ञक हैं। मृगशिरा, अनुराधा, चित्रा तथा रेवती—ये मृदुनामक नक्षत्र हैं। पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वापाढ, पूर्व भाद्रपद और भरणी—ये उग्रसंज्ञक नक्षत्र हैं। मूल, आर्द्रा, आश्लेषा और ज्येष्ठा—ये तीक्ष्णनामक नक्षत्र हैं। ये सब अपने नामके अनुसार ही फल देते हैं (इसलिये इन नक्षत्रोंमें इनके नामके अनुरूप ही कार्य करने चाहिये) ॥ १७७–१७८½ ॥

(कर्णवेध-मुहूर्त-) चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, धनिष्ठा, मृगशिरा और पुष्य—इन नक्षत्रोंमें कर्णवेध हितकर होता है।

(हाथी और घोड़े सम्बन्धी कार्य-) अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा और स्वाती—इनमें तथा स्थिरसंज्ञक नक्षत्रोंमें हाथीसम्बन्धी सब कृत्य करने चाहिये; तथा इन्हीं नक्षत्रोंमें घोड़ेके भी सब कृत्य शुभ होते हैं; किंतु रविवारको इन कृत्योंका त्याग कर देना चाहिये ॥ १७९–१८१ ॥

(अन्य पशुकृत्य-) चित्रा, शतभिषा, रोहिणी तथा तीनों उत्तरा—इन नक्षत्रोंमें पशुओंको कहींसे लाना या ले जाना शुभ है। परंतु अमावास्या, अष्टमी और चतुर्दशीको कदापि पशुओका कोई कृत्य नहीं करना चाहिये ॥ १८२ ॥

(प्रथम हलप्रवाह—हल जोतना—) मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चरसंज्ञक नक्षत्र, विशाखा, मघा और मूल—इन नक्षत्रोंमें बैलोंद्वारा प्रथम बार हल जोतना शुभ होता है। सूर्य जिस नक्षत्रमें हो, उससे पिछले नक्षत्रसे तीन नक्षत्र हलके आदि (मूल) में रहते हैं। इनमे प्रथम बार हल जोतने-जुतानेसे बैलका नाश होता है। उसके आगे तीन नक्षत्र हलके अग्रभागमें रहते हैं। इनमें हल जोतनेसे वृद्धि होती है। उससे आगेके पाँच नक्षत्र उत्तर पार्श्वमें रहते हैं, इनमें लक्ष्मीप्राप्ति होती है। तीन शूलोंमें नौ नक्षत्र रहते हैं; इनमे हल जोतनेसे कृषककी मृत्यु होती है। उससे आगे पाँच नक्षत्रोंमें सम्पत्तिकी वृद्धि होती है; फिर उससे आगेके तीन नक्षत्रोंमें प्रथम बार हल जोतनेसे श्रेष्ठ फल प्राप्त होते हैं ॥ १८३–१८५ ॥

(बीज-वपन-) मृदु, ध्रुव और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र, मघा, स्वाती, धनिष्ठा और मूल—इनमें धान्यके बीज बोना श्रेष्ठ होता है। इस बीज-वपनमें राहु जिस नक्षत्रमें हो, उससे तीन नक्षत्र लाङ्गल-चक्रके अग्रभागमे रहते हैं। इन तीनोंमें बीज-वपनसे धान्यका नाश होता है। उससे आगेके तीन नक्षत्र

जैसे रविवारमें वारप्रवेश-कालसे पहला घंटा रविका, दूसरा घंटा रविसे छठे शुक्रका, तीसरा घंटा शुक्रसे छठे बुधका इत्यादि क्रमसे ऊपर चक्रमें देखिये।

(चमकीली) ताराएँ दीख पड़ती हैं, वे ही योगताराएँ कहलाती हैं ॥ २०१–२०३ ॥

(नक्षत्रोंसे वृक्षोंकी उत्पत्ति—) जितने भी वृष अर्थात् श्रेष्ठ वृक्ष हैं, उनकी उत्पत्ति अश्विनीसे हुई है। भरणीसे यमक (जुड़े हुए दो) वृक्ष, कृत्तिकासे उदुम्बर (गूलर), रोहिणीसे जामुन, मृगशिरासे खैर, आर्द्रासे काली पाकर, पुनर्वसुसे बाँस, पुष्यसे पीपल, आश्लेषासे नागकेसर, मघासे बरगद, पूर्वा फाल्गुनीसे पलाश, उत्तरा फाल्गुनीसे रुद्राक्षका वृक्ष, हस्तसे अरिष्ट (रीठीका वृक्ष), चित्रासे श्रीवृक्ष (बेल), स्वातीसे अर्जुन वृक्ष, विशाखासे विकङ्कत (जिसकी लकडीसे कलछियाँ बनती हैं), अनुराधासे बकुल (मौलश्री), ज्येष्ठासे विष्टिवृक्ष, मूलसे सर्ज (शालका वृक्ष), पूर्वाषाढसे वञ्जुल (अशोक), उत्तराषाढसे कटहल, श्रवणसे आक, धनिष्ठासे शमीवृक्ष, शतभिषासे कदम्ब, पूर्व भाद्रपदसे आम्रवृक्ष, उत्तर भाद्रपदसे पिचुमन्द (नीमका पेड़) तथा रेवतीसे महुआकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार ये नक्षत्रसम्बन्धी वृक्ष कहे गये हैं ॥ २०४–२१० ॥

जब जिस नक्षत्रमें शनैश्चर विद्यमान हो, उस समय उस नक्षत्रसम्बन्धी वृक्षका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये ॥२११½॥

(योगोंके स्वामी—) यम, विश्वेदेव, चन्द्र, ब्रह्मा, गुरु, चन्द्र, इन्द्र, जल, सर्प, अग्नि, सूर्य, भूमि, रुद्र, ब्रह्मा, वरुण, गणेश, रुद्र, कुबेर, विश्वकर्मा, मित्र, षडानन, सावित्री, कमला, गौरी, अश्विनीकुमार, पितर और अदिति—ये क्रमशः विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंके स्वामी हैं ॥२१२½ ॥

(निन्द्य योग—) वैधृति और व्यतीपात—ये दोनों महापात हैं, इन दोनोंको शुभ कार्योंमें सदा त्याग देना चाहिये। परिघ योगका पूर्वार्ध और वज्रयोगके आरम्भकी तीन घड़ियाँ, गण्ड और अतिगण्डकी छः घड़ी, व्याघात योगकी ९ घड़ी और शूल योगकी ५ घडी सब शुभ कार्योंमें निन्दित हैं।

(खार्जूरचक्र—) इन नौ निन्द्य योगों (वैधृति, व्यतीपात, परिघ, विष्कम्भ, वज्र, गण्ड, अतिगण्ड, व्याघात और शूल) मे क्रमशः पुनर्वसु, मृगशिरा, मघा, आश्लेषा, अश्विनी, मूल, अनुराधा, पुष्य और चित्रा—ये नौ मूर्धा (मस्तक) के नक्षत्र माने गये हैं। एक ऊर्ध्वरेखा लिखे, फिर उसके उपर तेरह तिरछी रेखाएँ अङ्कित करे। यह खार्जूरचक्र कहलाता है। इस चक्रमें ऊपर कहे हुए निन्द्य योगोंमें उनके मूर्धगत नक्षत्रको रेखाके मस्तकके ऊपर लिखकर क्रमशः २८ नक्षत्रोंको लिखे। इसमें यदि सूर्य और चन्द्रमा एक रेखामें विभिन्न भागमें पड़ें तो उन दोनोंका परस्परका दृष्टिपात 'एकार्गल' दोष कहलाता है, जो शुभकार्यमें त्याज्य है, परतु यदि सूर्य और चन्द्रमामें कोई एक अभिजित्में हो तो वेध-दोष नहीं होता है ॥२१३—२१७½॥

(प्रत्येक योगमें अन्तर्भोग—) १२ पलरहित २ घड़ीके मानसे एक-एक योगमें सत्ताईस योग बीतते हैं ॥२१८½॥

(करणके स्वामी और शुभाशुभ-विभाग—) इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, विश्वकर्मा, भूमि, हरितप्रिया (लक्ष्मी), कीनाश (यम), कलि, रुद्र, सर्प तथा मरुत्—ये ग्यारह देवता क्रमशः बव आदि (बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न—इन) ग्यारह करणोंके स्वामी हैं। इनमें बवसे लेकर छः करण शुभ होते हैं। किंतु 'विष्टि' नामक करण क्रमसे आया हो या विपरीतक्रमसे, किसी भी दशामे वह मङ्गलकार्यमें शुभ नहीं है ॥ २१९—२२०½ ॥

(विष्टिके अङ्गोंमें घटी और फल—) विष्टिके मुखमें पाँच घटी, गलेमें एक, हृदयमें ग्यारह, नाभिमे चार, कटिमें छः और पुच्छमे तीन घडियाँ होती हैं। मुखकी घड़ियोंमें कार्य आरम्भ करनेसे कार्यकी हानि होती है। गलेकी घड़ीमें मृत्यु, हृदयकी घड़ीमें निर्धनता, कटिकी घड़ीमे उन्मत्तता, नाभिकी घड़ीमे पतन तथा पुच्छकी घडीमें कार्य करनेसे निश्चय ही विजय (सिद्धि) प्राप्त होती है। भद्राके बाद जो चार स्थिर करण हैं, वे मध्यम हैं, विशेषतः नाग और चतुष्पद ॥ २२१—२२३ ॥

(मुहूर्त-कथन—) दिनमें क्रमशः रुद्र, सर्प, मित्र, पितर, वसु, जल, विश्वेदेव, विधि (अभिजित्), ब्रह्मा, इन्द्र, इन्द्राग्नि, राक्षस, वरुण, अर्यमा और भग—ये पंद्रह मुहूर्त जानने चाहिये। रात्रिमे शिव, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अदिति, बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, विश्वकर्मा और वायु—ये क्रमशः पंद्रह मुहूर्त व्यतीत होते हैं। दिनमानका पंद्रहवाँ भाग दिनके मुहूर्तका मान है और रात्रिमानका पंद्रहवाँ भाग रात्रिके मुहूर्तका मान समझना चाहिये; इनसे दिन तथा रात्रिमे क्षण-नक्षत्रका विचार करे* ॥ २२४—२२६½ ॥

* उदाहरण—जिस समय ब्रह्माका मुहूर्त हो, उस समय उसीका क्षण-नक्षत्र होता है। जैसे—दिनमें नवाँ मुहूर्त ब्रह्माका है और दिनमान ३० घडीका है तो १६ घड़ीके बाद १८ घडीतक ब्रह्माजीके ही नक्षत्र (रोहिणी) को क्षण नक्षत्र समझना चाहिये। इसलिये दिनमें नवम मुहूर्त ब्राह्म या रौहिण कहलाता है, जो श्राद्धमें श्रेष्ठ माना गया है।

(चमकीली) ताराएँ दीख पड़ती हैं, वे ही योगताराएँ कहलाती हैं ॥ २०१–२०३ ॥

(नक्षत्रोंसे वृक्षोंकी उत्पत्ति—) जितने भी वृष अर्थात् श्रेष्ठ वृक्ष हैं, उनकी उत्पत्ति अश्विनीसे हुई है। भरणीसे यमक (जुड़े हुए दो) वृक्ष, कृत्तिकासे उदुम्बर (गूलर), रोहिणीसे जामुन, मृगशिरासे खैर, आर्द्रासे काली पाकर, पुनर्वसुसे बाँस, पुष्यसे पीपल, आश्लेषासे नागकेसर, मघासे बरगद, पूर्वा फाल्गुनीसे पलाश, उत्तरा फाल्गुनीसे रुद्राक्षका वृक्ष, हस्तसे अरिष्ट (रीठीका वृक्ष), चित्रासे श्रीवृक्ष (बेल), स्वातीसे अर्जुन वृक्ष, विशाखासे विकङ्कत (जिसकी लकडीसे कलछियाँ बनती हैं), अनुराधासे बकुल (मौलश्री), ज्येष्ठासे विष्टिवृक्ष, मूलसे सर्ज (शालका वृक्ष), पूर्वाषाढसे वञ्जुल (अशोक), उत्तराषाढसे कटहल, श्रवणसे आक, धनिष्ठासे शमीवृक्ष, शतभिषासे कदम्ब, पूर्व भाद्रपदसे आम्रवृक्ष, उत्तर भाद्रपदसे पिचुमन्द (नीमका पेड़) तथा रेवतीसे महुआकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार ये नक्षत्रसम्बन्धी वृक्ष कहे गये हैं ॥ २०४–२१० ॥

जब जिस नक्षत्रमें शनैश्चर विद्यमान हो, उस समय उस नक्षत्रसम्बन्धी वृक्षका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये ॥२११½॥

(योगोंके स्वामी—) यम, विश्वेदेव, चन्द्र, ब्रह्मा, गुरु, चन्द्र, इन्द्र, जल, सर्प, अग्नि, सूर्य, भूमि, रुद्र, ब्रह्मा, वरुण, गणेश, रुद्र, कुबेर, विश्वकर्मा, मित्र, षडानन, सावित्री, कमला, गौरी, अश्विनीकुमार, पितर और अदिति—ये क्रमशः विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंके स्वामी हैं ॥२१२½ ॥

(निन्द्य योग—) वैधृति और व्यतीपात—ये दोनों महापात हैं, इन दोनोंको शुभ कार्योंमें सदा त्याग देना चाहिये। परिघ योगका पूर्वार्ध और वज्रयोगके आरम्भकी तीन घड़ियाँ, गण्ड और अतिगण्डकी छः घड़ी, व्याघात योगकी ९ घड़ी और शूल योगकी ५ घडी सब शुभ कार्योंमें निन्दित हैं।

(खार्जूरचक्र—) इन नौ निन्द्य योगों (वैधृति, व्यतीपात, परिघ, विष्कम्भ, वज्र, गण्ड, अतिगण्ड, व्याघात और शूल) मे क्रमशः पुनर्वसु, मृगशिरा, मघा, आश्लेषा, अश्विनी, मूल, अनुराधा, पुष्य और चित्रा—ये नौ मूर्धा (मस्तक) के नक्षत्र माने गये हैं। एक ऊर्ध्वरेखा लिखे, फिर उसके उपर तेरह तिरछी रेखाएँ अङ्कित करे। यह खार्जूरचक्र कहलाता है। इस चक्रमें ऊपर कहे हुए निन्द्य योगोंमें उनके मूर्धगत नक्षत्रको रेखाके मस्तकके ऊपर लिखकर क्रमशः २८ नक्षत्रोंको लिखे। इसमें यदि सूर्य और चन्द्रमा एक रेखामें विभिन्न भागमें पड़ें तो उन दोनोंका परस्परका दृष्टिपात 'एकार्गल' दोष कहलाता है, जो शुभकार्यमें त्याज्य है, परतु यदि सूर्य और चन्द्रमामें कोई एक अभिजित्में हो तो वेध-दोष नहीं होता है ॥२१३—२१७½॥

(प्रत्येक योगमें अन्तर्भोग—) १२ पलरहित २ घड़ीके मानसे एक-एक योगमें सत्ताईस योग बीतते हैं ॥२१८½॥

(करणके स्वामी और शुभाशुभ-विभाग—) इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, विश्वकर्मा, भूमि, हरितप्रिया (लक्ष्मी), कीनाश (यम), कलि, रुद्र, सर्प तथा मरुत्—ये ग्यारह देवता, क्रमशः बव आदि (बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न—इन) ग्यारह करणोंके स्वामी हैं। इनमें बवसे लेकर छः करण शुभ होते हैं। किंतु 'विष्टि' नामक करण क्रमसे आया हो या विपरीतक्रमसे, किसी भी दशामे वह मङ्गलकार्यमें शुभ नहीं है ॥ २१९—२२०½ ॥

(विष्टिके अङ्गोंमें घटी और फल—) विष्टिके मुखमें पाँच घटी, गलेमें एक, हृदयमें ग्यारह, नाभिमे चार, कटिमें छः और पुच्छमे तीन घडियाँ होती हैं। मुखकी घड़ियोंमें कार्य आरम्भ करनेसे कार्यकी हानि होती है। गलेकी घड़ीमें मृत्यु, हृदयकी घड़ीमें निर्धनता, कटिकी घड़ीमे उन्मत्तता, नाभिकी घड़ीमे पतन तथा पुच्छकी घडीमें कार्य करनेसे निश्चय ही विजय (सिद्धि) प्राप्त होती है। भद्राके बाद जो चार स्थिर करण हैं, वे मध्यम हैं, विशेषतः नाग और चतुष्पद ॥ २२१—२२३ ॥

(मुहूर्त-कथन—) दिनमें क्रमशः रुद्र, सर्प, मित्र, पितर, वसु, जल, विश्वेदेव, विधि (अभिजित्), ब्रह्मा, इन्द्र, इन्द्राग्नि, राक्षस, वरुण, अर्यमा और भग—ये पंद्रह मुहूर्त जानने चाहिये। रात्रिमे शिव, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अदिति, बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, विश्वकर्मा और वायु—ये क्रमशः पंद्रह मुहूर्त व्यतीत होते हैं। दिनमानका पंद्रहवाँ भाग दिनके मुहूर्तका मान है और रात्रिमानका पंद्रहवाँ भाग रात्रिके मुहूर्तका मान समझना चाहिये; इनसे दिन तथा रात्रिमे क्षणनक्षत्रका विचार करे* ॥ २२४—२२६½ ॥

---

* उदाहरण—जिस समय ब्रह्माका मुहूर्त हो, उस समय उसीका क्षण-नक्षत्र होता है। जैसे—दिनमें नवाँ मुहूर्त ब्रह्माका है और दिनमान ३० घडीका है तो १६ घडीके बाद १८ घडीतक ब्रह्माजीके ही नक्षत्र (रोहिणी) को क्षण नक्षत्र समझना चाहिये। इसलिये दिनमें नवम मुहूर्त ब्राह्म या रौहिण कहलाता है, जो श्राद्धमें श्रेष्ठ माना गया है।

मङ्गलको धनिष्ठासे, बुधको रेवतीसे, गुरुवारको रोहिणीसे, शुक्रको पुष्यमे और शनिको उत्तरा फाल्गुनीसे चार-चार नक्षत्र हों तो क्रमशः उत्पात, मृत्यु, काण तथा सिद्ध नामक योग कहे गये हैं ॥ २४८½ ॥

(परिहार—) ये जो ऊपर तिथि और वारके संयोगसे तथा वार और नक्षत्रके संयोगसे अनिष्टकारक योग बताये गये हैं, वे सब हूणोंके देश—भारतके पश्चिमोत्तर-भागमें, बंगालमें और नैपाल देशमें ही त्याज्य हैं। अन्य देशोंमें ये अत्यन्त शुभप्रद होते हैं ॥ २४९½ ॥

(सूर्यसंक्रान्तिकथन—) रवि आदि वारोंमें सूर्यकी सक्रान्ति होनेपर क्रमशः घोरा, ध्वांक्षी, महोदरी, मन्दा, मन्दाकिनी, मिश्रा तथा राक्षसी—ये संक्रान्तिके नाम होते हैं। उक्त घोरा आदि संक्रान्तियाँ क्रमशः शूद्र, चोर, वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, गौ आदि पशु तथा चारो वर्णोंसे अतिरिक्त मनुष्योंको सुख देनेवाली होती हैं। यदि सूर्यकी सक्रान्ति पूर्वाह्नमें हो तो वह क्षत्रियोंको हानि पहुँचाती है। मध्याह्नमें हो तो ब्राह्मणोंको, अपराह्नमें हो तो वैश्योंको, सूर्यास्त-समयमें हो तो शूद्रोंको, रात्रिके प्रथम प्रहरमें हो तो पिशाचोंको, द्वितीय प्रहरमें हो तो निशाचरोंको, तृतीय प्रहरमें हो तो नाट्यकारोंको, चतुर्थ प्रहरमें हो तो गोपालकोंको और सूर्योदयसमयमें हो तो लिङ्गधारियों (वेशधारी बहुरूपियों, पाखण्डियों अथवा आश्रम या सम्प्रदायके चिह्न धारण करनेवालों) को हानि पहुँचाती है ॥ २५०–२५३½ ॥

यदि सूर्यकी मेष-संक्रान्ति दिनमें हो तो संसारमें अनर्थ और कलह पैदा करनेवाली है। रात्रिमें मेष-सक्रान्ति हो तो अनुपम सुख और सुभिक्ष होता है तथा दोनों संध्याओंके समय हो तो वह वृष्टिका नाश करनेवाली है ॥ २५४½ ॥

(करण-संक्रान्तिवश सूर्यके वाहन-भोजनादि—) बव आदि ग्यारह करणोंमें संक्रान्ति होनेपर क्रमशः १ सिंह, २ बाघ, ३ सूअर, ४ गदहा, ५ हाथी, ६ भैंसा, ७ घोड़ा, ८ कुत्ता, ९ बकरा, १० बैल और ११ मुर्गा—ये सूर्यके वाहन होते हैं तथा १ भुशुण्डी, २ गदा, ३ तलवार, ४ लाठी, ५ धनुष, ६ बरछी, ७ कुन्त (भाला), ८ पाश, ९ अङ्कुश, १० अस्त्र (जो फेंका जाता है) और ११ बाण—इन्हें क्रमशः सूर्यदेव अपने हाथोंमें धारण करते हैं। १ अन्न, २ खीर, ३ भिक्षान्न, ४ पकवान, ५ दूध, ६ दही, ७ मिठाई, ८ गुड़, ९ मधु, १० घृत और ११ चीनी—ये बव आदिकी संक्रान्तिमें क्रमशः भगवान् सूर्यके हविष्य (भोजन) होते हैं ॥ २५५–२५७½ ॥

(सूर्यकी स्थिति—) बव, वणिज, विष्टि, बालव और गर—इन करणोंमें सूर्य बैठे हुए, कौलव, शकुनि और किंस्तुघ्न—इन करणोंमें खड़े हुए तथा चतुष्पद, तैतिल और नाग—इन तीन करणोंमें सोते हुए, संक्रान्ति करते (एक राशिसे दूसरी राशिमे जाते) हों तो इन तीनों अवस्थाओंकी संक्रान्तिमें प्रजाको क्रमशः धर्म, आयु और वर्षाके विषयमें समान, श्रेष्ठ और अनिष्ट फल प्राप्त होते हैं तथा ऊपर कहे हुए अस्त्र, वाहन और भोजन तथा उससे आजीविका या व्यवहार करनेवाले मनुष्यादि प्राणियोंका अनिष्ट होता है एवं जिस प्रकार सोये, बैठे, खड़े हुए संक्रान्ति होती है, उसी प्रकार सोये, बैठे और खड़े हुए प्राणियोंका अनिष्ट होता है ॥ २५८–२६०½ ॥

नक्षत्रोंकी अन्धाक्षादि संज्ञाएँ—रोहिणी नक्षत्रसे आरम्भ करके चार-चार नक्षत्रोको क्रमशः अन्ध, मन्द-नेत्र, मध्यनेत्र और सुलोचन माने और पुनः आगे इसी क्रमसे सूर्यके नक्षत्रतक गिनकर नक्षत्रोंकी अन्ध आदि चार संज्ञाएँ समझे * ।

(संक्रान्तिकी विशेष संज्ञा—) स्थिर राशियो (वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ) में सूर्यकी संक्रान्तिका नाम 'विष्णुपदी', द्विस्वभाव राशियो (मिथुन, कन्या, धनु और मीन) में 'षडशीतिमुखा', तुला और मेषमें 'विषुव' (विषुवत्), मकरमें 'सौम्यायन' और कर्कमें 'याम्यायन' संज्ञा होती है ॥ २६१–२६३½ ॥

* नीचे चक्रमें स्पष्ट देखिये—

अन्धाक्ष	रोहिणी	पुष्य	उत्तरा फाल्गुनी	विशाखा	पूर्वाषाढ	धनिष्ठा	रेवती
मन्दाक्ष	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उत्तराषाढ	शतभिषा	अश्विनी
मध्याक्ष	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित्	पूर्व भाद्रपद	भरणी
सुलोचन	पुनर्वसु	पूर्वा फाल्गुनी	स्वाती	मूल	श्रवण	उत्तर भाद्रपद	कृत्तिका

मङ्गलको धनिष्ठासे, बुधको रेवतीसे, गुरुवारको रोहिणीसे, शुक्रको पुष्यसे और शनिको उत्तरा फाल्गुनीसे चार-चार नक्षत्र हों तो क्रमशः उत्पात, मृत्यु, काण तथा सिद्ध नामक योग कहे गये हैं ॥ २४८½ ॥

(परिहार—) ये जो ऊपर तिथि और वारके संयोगसे तथा वार और नक्षत्रके संयोगसे अनिष्टकारक योग बताये गये हैं, वे सब हूणोंके देश—भारतके पश्चिमोत्तर-भागमें, बंगालमें और नैपाल देशमें ही त्याज्य हैं। अन्य देशोंमें ये अत्यन्त शुभप्रद होते हैं ॥ २४९½ ॥

(सूर्यसंक्रान्तिकथन—) रवि आदि वारोंमें सूर्यकी संक्रान्ति होनेपर क्रमशः घोरा, ध्वांक्षी, महोदरी, मन्दा, मन्दाकिनी, मिश्रा तथा राक्षसी—ये संक्रान्तिके नाम होते हैं। उक्त घोरा आदि संक्रान्तियाँ क्रमशः शूद्र, चोर, वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, गौ आदि पशु तथा चारो वर्णोंसे अतिरिक्त मनुष्योंको सुख देनेवाली होती हैं। यदि सूर्यकी संक्रान्ति पूर्वाह्णमें हो तो वह क्षत्रियोंको हानि पहुँचाती है। मध्याह्नमें हो तो ब्राह्मणोंको, अपराह्णमें हो तो वैश्योंको, सूर्यास्त-समयमें हो तो शूद्रोंको, रात्रिके प्रथम प्रहरमें हो तो पिशाचोंको, द्वितीय प्रहरमें हो तो निशाचरोंको, तृतीय प्रहरमें हो तो नाट्यकारोंको, चतुर्थ प्रहरमें हो तो गोपालकोंको और सूर्योदयसमयमें हो तो लिङ्गधारियों (वेशधारी बहुरूपियों, पाखण्डियों अथवा आश्रम या सम्प्रदायके चिह्न धारण करनेवालों) को हानि पहुँचाती है ॥ २५०–२५३½ ॥

यदि सूर्यकी मेष-संक्रान्ति दिनमें हो तो संसारमें अनर्थ और कलह पैदा करनेवाली है। रात्रिमें मेष-संक्रान्ति हो तो अनुपम सुख और सुभिक्ष होता है तथा दोनों संध्याओंके समय हो तो वह वृष्टिका नाश करनेवाली है ॥ २५४½ ॥

(करण-संक्रान्तिवश सूर्यके वाहन-भोजनादि—) बव आदि ग्यारह करणोंमें संक्रान्ति होनेपर क्रमशः १ सिंह, २ बाघ, ३ सूअर, ४ गदहा, ५ हाथी, ६ भैंसा, ७ घोड़ा, ८ कुत्ता, ९ बकरा, १० बैल और ११ मुर्गा—ये सूर्यके वाहन होते हैं तथा १ भुशुण्डी, २ गदा, ३ तलवार, ४ लाठी, ५ धनुष, ६ बरछी, ७ कुन्त (भाला), ८ पाश, ९ अङ्कुश, १० अस्त्र (जो फेंका जाता है) और ११ बाण—इन्हें क्रमशः सूर्यदेव अपने हाथोंमें धारण करते हैं। १ अन्न, २ खीर, ३ भिक्षान्न, ४ पकवान, ५ दूध, ६ दही, ७ मिठाई, ८ गुड़, ९ मधु, १० घृत और ११ चीनी—ये बव आदिकी संक्रान्तिमें क्रमशः भगवान् सूर्यके हविष्य (भोजन) होते हैं ॥ २५५–२५७½ ॥

(सूर्यकी स्थिति—) बव, वणिज, विष्टि, बालव और गर—इन करणोंमें सूर्य बैठे हुए, कौलव, शकुनि और किंस्तुघ्न—इन करणोंमें खड़े हुए तथा चतुष्पद, तैतिल और नाग—इन तीन करणोंमें सोते हुए, संक्रान्ति करते (एक राशिसे दूसरी राशिमे जाते) हों तो इन तीनों अवस्थाओंकी संक्रान्तिमें प्रजाको क्रमशः धर्म, आयु और वर्षाके विषयमें समान, श्रेष्ठ और अनिष्ट फल प्राप्त होते हैं तथा ऊपर कहे हुए अस्त्र, वाहन और भोजन तथा उससे आजीविका या व्यवहार करनेवाले मनुष्यादि प्राणियोंका अनिष्ट होता है एवं जिस प्रकार सोये, बैठे, खड़े हुए संक्रान्ति होती है, उसी प्रकार सोये, बैठे और खड़े हुए प्राणियोंका अनिष्ट होता है ॥ २५८–२६०½ ॥

नक्षत्रोंकी अन्धाक्षादि संज्ञाएँ— रोहिणी नक्षत्रसे आरम्भ करके चार-चार नक्षत्रोंको क्रमशः अन्ध, मन्द-नेत्र, मध्यनेत्र और सुलोचन माने और पुनः आगे इसी क्रमसे सूर्यके नक्षत्रतक गिनकर नक्षत्रोंकी अन्ध आदि चार संज्ञाएँ समझे * ।

(संक्रान्तिकी विशेष संज्ञा—) स्थिर राशियो (वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ) में सूर्यकी संक्रान्तिका नाम 'विष्णुपदी', द्विस्वभाव राशियो (मिथुन, कन्या, धनु और मीन) में 'षडशीतिमुखा', तुला और मेषमें 'विषुव' (विषुवत्), मकरमें 'सौम्यायन' और कर्कमें 'याम्यायन' संज्ञा होती है ॥ २६१–२६३½ ॥

* नीचे चक्रमें स्पष्ट देखिये—

अन्धाक्ष	रोहिणी	पुष्य	उत्तरा फाल्गुनी	विशाखा	पूर्वाषाढ	धनिष्ठा	रेवती
मन्दाक्ष	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उत्तराषाढ	शतभिषा	अश्विनी
मध्याक्ष	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित्	पूर्व भाद्रपद	भरणी
सुलोचन	पुनर्वसु	पूर्वा फाल्गुनी	स्वाती	मूल	श्रवण	उत्तर भाद्रपद	कृत्तिका

देखे जाते हों अथवा नीच राशिमें या अपने शत्रुकी राशिमें हों तो निष्फल हो जाते हैं। इसी प्रकार जो ग्रह अस्त हो वह भी अपने शुभ या अशुभ फलको नहीं देता है। ग्रह यदि दुष्ट-स्थानमें हो तो यत्नपूर्वक उसकी शान्ति कर लेनी चाहिये। हानि और लाभ ग्रहोंके ही अधीन हैं, इसलिये ग्रहोंकी विशेष यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥२७८-२८०½॥

सूर्य आदि नवग्रहोंकी तुष्टिके लिये क्रमशः मणि (पद्मराग-लाल), मुक्ता (मोती), विद्रुम (मूँगा), मरकत (पन्ना), पुष्पराग (पोखराज), वज्र (हीरा), नीलम, गोमेद-रत्न एवं वैदूर्य (लहसनिया) धारण करना चाहिये ॥ २८१-२८२ ॥

(चन्द्र-शुद्धिमें विशेषता-) शुक्ल पक्षके प्रथम दिन प्रतिपदामें जिस व्यक्तिके चन्द्रमा शुभ होते हैं, उसके लिये शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष दोनों ही शुभद होते हैं। अन्यथा (यदि शुक्ल प्रतिपदामें चन्द्रमा अशुभ हो तो) दोनों पक्ष अशुभ ही होते हैं। (पहले जो जन्मराशिसे २, ९, ५ वें चन्द्रमाको अशुभ कहा गया है, वह केवल कृष्ण-पक्षमें ही होता है।) शुक्ल पक्षमें २, ९ तथा ५ वें स्थानमें स्थित चन्द्रमा भी शुभप्रद ही होता है, यदि वह ६, ८, १२वें स्थानोंमें स्थित अन्य ग्रहोंसे विद्ध न हो ॥ २८३-२८४ ॥

(तारा-विचार-) अपने-अपने जन्मनक्षत्रसे नौ नक्षत्रोंतक गिने तो क्रमशः १ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७ वध, ८ मित्र तथा ९ परम मित्र—इस प्रकार ९ ताराएँ होती हैं। फिर इसी प्रकार आगे गिननेपर १० से १८ तक तथा १९से २७ तक क्रमशः वे ही ९ ताराएँ होंगी। इनमें १, ३, ५ और ७वीं तारा अपने नामके अनुसार अनिष्ट फल देनेवाली होती है। इन चारों ताराओंमें इनके दोषकी शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको क्रमशः शाक, गुड़, लवण और तिलसहित सुवर्णका दान देना चाहिये। कृष्ण-पक्षमें तारा बलवती होती है और शुक्ल पक्षमें चन्द्रमा बलवान् होता है ॥२८५-२८७ ॥

(चन्द्रमाकी अवस्था-) प्रत्येक राशिमें चन्द्रमाकी बारह-बारह अवस्थाएँ होती हैं, जो यात्रा तथा विवाह आदि शुभ कार्योंमें अपने नामके सदृश ही फल देती हैं।

(अवस्थाका ज्ञान-) अभीष्ट दिनमें गत नक्षत्र-संख्याको ६० से गुणा करके उसमें वर्तमान नक्षत्रकी भुक्त (भयात) घड़ीको जोड़ दे, योगफलको चारसे गुणा करके गुणनफलमें ४५ का भाग दे। जो लब्धि आवे, उसमें पुनः १२ से भाग देनेपर १ आदि शेषके अनुसार मेषादि राशियोमें क्रमशः प्रवास, नष्ट, मृत, जय, हास्य, रति, मुदा, सुप्ति, भुक्ति, ज्वर, कम्प और सुस्थिति—ये बारह गत अवस्थाएँ सूचित होती हैं*। ये अपने-अपने नामके समान फल देनेवाली होती हैं ॥ २८८-२८९ ॥

(मेषादि लग्नोंमें कर्तव्य-) पट्ट-बन्धन (राजसिंहासन, राजमुकुट आदि धारण), यात्रा, उग्र कर्म, संधि, विग्रह, आभूषणधारण, धातु, खानसम्बन्धी कार्य और युद्धकर्म—ये सब मेष लग्नमें आरम्भ करनेसे सिद्ध होते हैं ॥२९०॥ वृष लग्नमें विवाह आदि मङ्गलकर्म, गृहारम्भ आदि स्थिर-कर्म, जलाशय, गृहप्रवेश, कृषि, वाणिज्य तथा पशुपालन आदि कार्य सिद्ध होते हैं ॥ २९१ ॥ मिथुन लग्नमें कला, विज्ञान, शिल्प, आभूषण, युद्ध, संश्रव (कीर्ति-साधक कर्म), राज-कार्य, विवाह, राज्याभिषेक आदि कार्य करने चाहिये ॥ २९२ ॥ कर्क लग्नमें वापी, कूप, तड़ाग, जल रोकनेके लिये बाँध, जल निकालनेके लिये नाली बनाना, पौष्टिक कर्म, चित्रकारी तथा लेखन आदि कार्य करने चाहिये ॥ २९३ ॥ सिंह लग्नमें ईख तथा धान्यसम्बन्धी सब कार्य, वाणिज्य (क्रय-विक्रय), हाट, कृषिकर्म तथा सेवा आदि कर्म, स्थिर कार्य, साहस, युद्ध तथा आभूषण बनाना आदि कार्य सम्पन्न होते हैं ॥ २९४ ॥ कन्या लग्नमें विद्यारम्भ, शिल्पकर्म, ओषधिनिर्माण एवं सेवन, आभूषण-निर्माण और उसका धारण, समस्त चर और स्थिर कार्य, पौष्टिक कर्म तथा विवाहादि समस्त शुभ कार्य करने चाहिये ॥२९५ ॥ तुला लग्नमें कृषिकर्म, व्यापार, यात्रा, पशुपालन, विवाह-उपनयनादि संस्कार तथा तौलसम्बन्धी जितने कार्य हैं, वे सब सिद्ध होते हैं ॥ २९६ ॥ वृश्चिक लग्नमें गृहारम्भादि समस्त स्थिर कार्य, राजसेवा, राज्याभिषेक, गोपनीय और स्थिर

* जैसे रोहिणी नक्षत्रकी १२ घटी बीत जानेपर चन्द्रमाकी क्या अवस्था होगी? यह जानना है तो गत नक्षत्र-संख्या ३ को ६० से गुणा करके गुणनफल १८० में रोहिणीकी गत (भुक्त) घटी १२ जोड़नेसे १९२ हुआ। इसे चारसे गुणा करके गुणनफल ७६८ में ४५ का भाग देनेपर लब्धि १७ हुई। इसमें पुनः १२से भाग देनेपर शेष ५ रहा। अतः उस समय पाँच अवस्थाएँ गत होकर छठी अवस्था वर्तमान है। वृष राशिमें नष्ट आदिके क्रमसे गणना होती है; अतः उक्त गणनासे छठी अवस्था 'मुदा' सूचित होती है।

देखे जाते हों अथवा नीच राशिमें या अपने शत्रुकी राशिमे हों तो निष्फल हो जाते हैं। इसी प्रकार जो ग्रह अस्त हो वह भी अपने शुभ या अशुभ फलको नहीं देता है। ग्रह यदि दुष्ट-स्थानमें हो तो यत्नपूर्वक उसकी शान्ति कर लेनी चाहिये। हानि और लाभ ग्रहोंके ही अधीन हैं, इसलिये ग्रहोंकी विशेष यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥२७८-२८०½॥

सूर्य आदि नवग्रहोंकी तुष्टिके लिये क्रमशः मणि (पद्मराग—लाल), मुक्ता (मोती), विद्रुम (मूँगा), मरकत (पन्ना), पुष्पराग (पोखराज), वज्र (हीरा), नीलम, गोमेद-रत्न एवं वैदूर्य (लहसनिया) धारण करना चाहिये ॥ २८१-२८२ ॥

(चन्द्र-शुद्धिमें विशेषता—) शुक्ल पक्षके प्रथम दिन प्रतिपदामें जिस व्यक्तिके चन्द्रमा शुभ होते है, उसके लिये शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष दोनों ही शुभद होते हैं। अन्यथा (यदि शुक्ल प्रतिपदामें चन्द्रमा अशुभ हो तो) दोनों पक्ष अशुभ ही होते हैं। (पहले जो जन्मराशिसे २, ९, ५ वें चन्द्रमाको अशुभ कहा गया है, वह केवल कृष्ण-पक्षमें ही होता है।) शुक्ल पक्षमे २, ९ तथा ५ वें स्थानमें स्थित चन्द्रमा भी शुभप्रद ही होता है, यदि वह ६, ८, १२वें स्थानोंमें स्थित अन्य ग्रहोंसे विद्ध न हो ॥ २८३-२८४ ॥

(तारा-विचार—) अपने-अपने जन्मनक्षत्रसे नौ नक्षत्रोंतक गिने तो क्रमशः १ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७ वध, ८ मित्र तथा ९ परम मित्र—इस प्रकार ९ ताराएँ होती है। फिर इसी प्रकार आगे गिननेपर १० से १८ तक तथा १९से २७ तक क्रमशः वे ही ९ ताराएँ होंगी। इनमें १, ३, ५ और ७वीं तारा अपने नामके अनुसार अनिष्ट फल देनेवाली होती है। इन चारों ताराओंमें इनके दोषकी शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको क्रमशः शाक, गुड़, लवण और तिलसहित सुवर्णका दान देना चाहिये। कृष्ण-पक्षमें तारा बलवती होती है और शुक्ल पक्षमे चन्द्रमा बलवान् होता है ॥२८५-२८७ ॥

(चन्द्रमाकी अवस्था—) प्रत्येक राशिमे चन्द्रमाकी बारह-बारह अवस्थाएँ होती हैं, जो यात्रा तथा विवाह आदि शुभ कार्योंमें अपने नामके सदृश ही फल देती हैं।

(अवस्थाका ज्ञान—) अभीष्ट दिनमे गत नक्षत्र-संख्याको ६० से गुणा करके उसमें वर्तमान नक्षत्रकी भुक्त (भयात) घड़ीको जोड़ दे, योगफलको चारसे गुणा करके गुणनफलमें ४५ का भाग दे। जो लब्धि आवे, उसमे पुनः १२ से भाग देनेपर १ आदि शेषके अनुसार मेषादि राशियोमें क्रमशः प्रवास, नष्ट, मृत, जय, हास्य, रति, मुदा, सुप्ति, भुक्ति, ज्वर, कम्प और सुस्थिति—ये बारह गत अवस्थाएँ सूचित होती हैं*। ये अपने-अपने नामके समान फल देनेवाली होती है ॥ २८८-२८९ ॥

(मेषादि लग्नोंमें कर्तव्य—) पट्ट-बन्धन (राजसिंहासन, राजमुकुट आदि धारण), यात्रा, उग्र कर्म, संधि, विग्रह, आभूषणधारण, धातु, खानसम्बन्धी कार्य और युद्धकर्म—ये सब मेष लग्नमें आरम्भ करनेसे सिद्ध होते हैं ॥२९०॥ वृष लग्नमें विवाह आदि मङ्गलकर्म, गृहारम्भ आदि स्थिर-कर्म, जलाशय, गृहप्रवेश, कृषि, वाणिज्य तथा पशुपालन आदि कार्य सिद्ध होते हैं ॥ २९१ ॥ मिथुन लग्नमें कला, विज्ञान, शिल्प, आभूषण, युद्ध, सश्रव (कीर्ति-साधक कर्म), राज-कार्य, विवाह, राज्याभिषेक आदि कार्य करने चाहिये ॥ २९२ ॥ कर्क लग्नमे वापी, कूप, तड़ाग, जल रोकनेके लिये बाँध, जल निकालनेके लिये नाली बनाना, पौष्टिक कर्म, चित्रकारी तथा लेखन आदि कार्य करने चाहिये ॥ २९३ ॥ सिंह लग्नमें ईख तथा धान्यसम्बन्धी सब कार्य, वाणिज्य (क्रय-विक्रय), हाट, कृषिकर्म तथा सेवा आदि कर्म, स्थिर कार्य, साहस, युद्ध तथा आभूषण बनाना आदि कार्य सम्पन्न होते हैं ॥ २९४ ॥ कन्या लग्नमें विद्यारम्भ, शिल्पकर्म, ओषधिनिर्माण एवं सेवन, आभूषण-निर्माण और उसका धारण, समस्त चर और स्थिर कार्य, पौष्टिक कर्म तथा विवाहादि समस्त शुभ कार्य करने चाहिये ॥२९५ ॥ तुला लग्नमें कृषिकर्म, व्यापार, यात्रा, पशुपालन, विवाह-उपनयनादि संस्कार तथा तौलसम्बन्धी जितने कार्य हैं, वे सब सिद्ध होते है ॥ २९६ ॥ वृश्चिक लग्नमें गृहारम्भादि समस्त स्थिर कार्य, राजसेवा, राज्याभिषेक, गोपनीय और स्थिर

---

* जैसे रोहिणी नक्षत्रकी १२ घटी बीत जानेपर चन्द्रमाकी क्या अवस्था होगी? यह जानना है तो गत नक्षत्र-संख्या ३ को ६० से गुणा करके गुणनफल १८० में रोहिणीकी गत (भुक्त) घटी १२ जोड़नेसे १९२ हुआ। इसे चारसे गुणा करके गुणनफल ७६८ में ४५ का भाग देनेपर लब्धि १७ हुई। इसमें पुनः १२से भाग देनेपर शेष ५ रहा। अतः उस समय पाँच अवस्थाएँ गत होकर छठी अवस्था वर्तमान है। वृष राशिमें नष्ट आदिके क्रमसे गणना होती है; अतः उक्त गणनासे छठी अवस्था 'मुदा' सूचित होती है।

(पुंसवन और सीमन्तोन्नयन–) प्रथम गर्भ स्थिर हो जानेपर तृतीय या द्वितीय मासमें पुंसवन कर्म करे। उसी प्रकार ४, ६ या ८ वें मासमें उस मासके स्वामी जब बली हो तथा स्त्री-पुरुष दोनोंको चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो तो सीमन्त-कर्म करना चाहिये। रिक्ता तिथि और पर्वको छोड़कर अन्य तिथियोंमें ही उसको करनेकी विधि है। मङ्गल, बृहस्पति तथा रविवारमें, तीक्ष्ण और मिश्रसंज्ञक नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें जब चन्द्रमा विषमराशि और विषमराशिके नवमांशमें हो, लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो, स्त्री-पुरुषके जन्म-लग्नसे अष्टम राशिलग्न न हो तथा लग्नमें शुभग्रहका योग और दृष्टि हो, पापग्रहकी दृष्टि न हो एवं शुभग्रह लग्नसे ५, १, ४, ७, ९,१० में और पापग्रह ६, ११ तथा ३ में हों एवं चन्द्रमा १२, ८ तथा लग्नसे अन्य स्थानोंमें हो तो उक्त दोनों कर्म (पुंसवन और सीमन्तोन्नयन) करने चाहिये ॥ ३२०–३२४ ॥ यदि एक भी बलवान् पापग्रह लग्नसे १२, ५ और ८ भावमें हो तो वह सीमन्तिनी स्त्री अथवा उसके गर्भका नाश कर देता है ॥ ३२५ ॥

(जातकर्म और नामकर्म–) जन्मके समयमें ही जातकर्म कर लेना चाहिये। किसी प्रतिबन्धकवश उस समय न कर सके तो सूतक बीतनेपर भी उक्त लग्नमें पितरोंका पूजन (नान्दीमुख कर्म) करके बालकका जातकर्म-संस्कार अवश्य करना चाहिये एवं सूतक बीतनेपर अपने-अपने कुलकी रीतिके अनुसार बालकका नामकरण-संस्कार भी करना चाहिये। भलीभाँति सोच-विचारकर देवता आदिका वाचक, मङ्गलदायक एवं उत्तम नाम रखना चाहिये। यदि देश-कालादि-जन्य किसी प्रतिबन्धसे समयपर कर्म न हो सके तो समयके बाद जब गुरु और शुक्रका उदय हो, तब उत्तरायणमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रोंमें शुभग्रहके वार (सोम, बुध, गुरु और शुक्र) में पिता और बालकके चन्द्रबल और ताराबल प्राप्त होनेपर शुभ लग्न और शुभ नवांशमें, लग्नसे अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तब बालकका जातकर्म और नामकर्म-संस्कार करने चाहिये ॥ ३२६–३२९½ ॥

(अन्न-प्राशन–) बालकोंका जन्मसे ६वें या ८वें मासमें और बालिकाओंका जन्मसे ५वें या ७वें मासमें अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है। परंतु रिक्ता (४, ९, १४), तिथिक्षय, नन्दा (१, ६, ११), १२, ८—इन तिथियोंको छोड़कर (अन्य तिथियोंमें) शुभ दिनमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रमें लग्नसे अष्टम और दशम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) होनेपर शुभ नवांशयुक्त शुभ राशिलग्नमें, लग्नपर शुभ-ग्रहका योग या दृष्टि होनेपर जब पापग्रह लग्नसे ३, ६, ११ भावमें और शुभग्रह १, ४, ७, १०, ५, ९ भावमें हो तथा चन्द्रमा १२, ६, ८ स्थानसे भिन्न स्थानमें हो तो पूर्वाह्न-समयमें बालकोंका अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है ॥ ३३०–३३४ ॥

(चूडाकरण–) बालकोंके जन्मसमयसे तीसरे या पाँचवें वर्षमें अथवा अपने कुलके आचार-व्यवहारके अनुसार अन्य वर्षमासमें भी उत्तरायणमें, जब गुरु और शुक्र उदित हों (अस्त न हों), पर्व तथा रिक्तासे अन्य तिथियोंमें, शुक्र, गुरु, सोमवारमें, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिरा, ज्येष्ठा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें अपने-अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार चूडाकरणकर्म करना चाहिये। राजाओंके पट्टबन्धन, बालकोंके चूडा-करण, अन्नप्राशन और उपनयनमें जन्म-नक्षत्र प्रशस्त (उत्तम) होता है। अन्य कर्मोंमें जन्म-नक्षत्र अशुभ कहा गया है। लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध हो, शुभ राशि लग्न हो, उसमें शुभग्रहका नवमांश हो तथा जन्म-राशि या जन्मलग्नसे अष्टम राशिलग्न न हो, चन्द्रमा लग्नसे ६, ८, १२ स्थानोंसे भिन्न स्थानोंमें हो, शुभग्रह २, ५, ९, १, ४, ७, १० भावमें हों तथा पापग्रह ३, ६, ११ भावमें हों तो चूडाकरण कर्म प्रशस्त होता है ॥ ३३५–३३९½ ॥

(सामान्य क्षौर-कर्म–) तेल लगाकर तथा प्रातः और सायं संध्याके समयमें क्षौर नहीं कराना चाहिये। इसी प्रकार मङ्गलवारको तथा रात्रिमें भी क्षौरका निषेध है। दिनमें भी भोजनके बाद क्षौर नहीं कराना चाहिये। युद्धयात्रामें भी क्षौर कराना वर्जित है। शय्यापर बैठकर या चन्दनादि लगाकर क्षौर नहीं कराना चाहिये। जिस दिन कहींकी यात्रा करनी हो उस दिन भी क्षौर न करावे तथा क्षौर कराने-के बाद उससे नवें दिन भी क्षौर न करावे। राजाओंके लिये क्षौर करानेके बाद उससे ५ वें-५वें दिन क्षौर करानेका विधान है। चूडाकरणमें जो नक्षत्र-वार आदि कहे गये हैं, उन्हीं नक्षत्रों और वार आदिमें अथवा कभी भी क्षौरमें विहित नक्षत्र और वारके उदय (मुहूर्त एवं क्षण) में क्षौर कराना शुभ होता है ॥ ३४०–३४१½ ॥

(क्षौरकर्ममें विशेष–) राजा अथवा ब्राह्मणोंकी आज्ञासे यज्ञमें, माता-पिताके मरणमें, जेलसे छूटनेपर तथा विवाहके

(पुंसवन और सीमन्तोन्नयन–) प्रथम गर्भ स्थिर हो जानेपर तृतीय या द्वितीय मासमें पुंसवन कर्म करे। उसी प्रकार ४, ६ या ८ वें मासमें उस मासके स्वामी जब बली हों तथा स्त्री-पुरुष दोनोंको चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो तो सीमन्त-कर्म करना चाहिये। रिक्ता तिथि और पर्वको छोड़कर अन्य तिथियोंमें ही उसको करनेकी विधि है। मङ्गल, बृहस्पति तथा रविवारमें, तीक्ष्ण और मिश्रसंज्ञक नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें जब चन्द्रमा विषमराशि और विषमराशिके नवमांशमें हो, लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो, स्त्री-पुरुषके जन्म-लग्नसे अष्टम राशिलग्न न हो तथा लग्नमें शुभग्रहका योग और दृष्टि हो, पापग्रहकी दृष्टि न हो एवं शुभग्रह लग्नसे ५, १, ४, ७, ९,१० में और पापग्रह ६, ११ तथा ३ में हों एवं चन्द्रमा १२, ८ तथा लग्नसे अन्य स्थानोंमें हो तो उक्त दोनों कर्म (पुंसवन और सीमन्तोन्नयन) करने चाहिये ॥ ३२०–३२४ ॥ यदि एक भी बलवान् पापग्रह लग्नसे १२, ५ और ८ भावमें हो तो वह सीमन्तिनी स्त्री अथवा उसके गर्भका नाश कर देता है ॥ ३२५ ॥

(जातकर्म और नामकर्म–) जन्मके समयमें ही जातकर्म कर लेना चाहिये। किसी प्रतिबन्धकवश उस समय न कर सके तो सूतक बीतनेपर भी उक्त लग्नमें पितरोंका पूजन (नान्दीमुख कर्म) करके बालकका जातकर्म-संस्कार अवश्य करना चाहिये एवं सूतक बीतनेपर अपने-अपने कुलकी रीतिके अनुसार बालकका नामकरण-संस्कार भी करना चाहिये। भलीभाँति सोच-विचारकर देवता आदिका वाचक, मङ्गलदायक एवं उत्तम नाम रखना चाहिये। यदि देश-कालादि-जन्य किसी प्रतिबन्धसे समयपर कर्म न हो सके तो समयके बाद जब गुरु और शुक्रका उदय हो, तब उत्तरायणमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रोंमें शुभग्रहके वार (सोम, बुध, गुरु और शुक्र) में पिता और बालकके चन्द्रबल और ताराबल प्राप्त होनेपर शुभ लग्न और शुभ नवांशमें, लग्नसे अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तब बालकका जातकर्म और नामकर्म-संस्कार करने चाहिये ॥ ३२६–३२९½ ॥

(अन्न-प्राशन–) बालकोंका जन्मसे ६वें या ८वें मासमें और बालिकाओंका जन्मसे ५वें या ७वें मासमें अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है। परंतु रिक्ता (४, ९, १४), तिथिक्षय, नन्दा (१, ६, ११), १२, ८—इन तिथियोंको छोड़कर (अन्य तिथियोंमें) शुभ दिनमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रमें लग्नसे अष्टम और दशम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) होनेपर शुभ नवांशयुक्त शुभ राशिलग्नमें, लग्नपर शुभ-ग्रहका योग या दृष्टि होनेपर जब पापग्रह लग्नसे ३, ६, ११ भावमें और शुभग्रह १, ४, ७, १०, ५, ९ भावमें हो तथा चन्द्रमा १२, ६, ८ स्थानसे भिन्न स्थानमें हो तो पूर्वाह्न-समयमें बालकोंका अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है ॥ ३३०–३३४ ॥

(चूडाकरण–) बालकोंके जन्मसमयसे तीसरे या पाँचवें वर्षमें अथवा अपने कुलके आचार-व्यवहारके अनुसार अन्य वर्षमासमें भी उत्तरायणमें, जब गुरु और शुक्र उदित हों (अस्त न हों), पर्व तथा रिक्तासे अन्य तिथियोंमें, शुक्र, गुरु, सोमवारमें, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिरा, ज्येष्ठा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें अपने-अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार चूडाकरणकर्म करना चाहिये। राजाओंके पट्टबन्धन, बालकोंके चूडाकरण, अन्नप्राशन और उपनयनमें जन्म-नक्षत्र प्रशस्त (उत्तम) होता है। अन्य कर्मोंमें जन्म-नक्षत्र अशुभ कहा गया है। लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध हो, शुभ राशि लग्न हो, उसमें शुभग्रहका नवमांश हो तथा जन्म-राशि या जन्मलग्नसे अष्टम राशिलग्न न हो, चन्द्रमा लग्नसे ६, ८, १२ स्थानोंसे भिन्न स्थानोंमें हो, शुभग्रह २, ५, ९, १, ४, ७, १० भावमें हों तथा पापग्रह ३, ६, ११ भावमें हों तो चूडाकरण कर्म प्रशस्त होता है ॥ ३३५–३३९½ ॥

(सामान्य क्षौर-कर्म–) तेल लगाकर तथा प्रातः और सायं संध्याके समयमें क्षौर नहीं कराना चाहिये। इसी प्रकार मङ्गलवारको तथा रात्रिमें भी क्षौरका निषेध है। दिनमें भी भोजनके बाद क्षौर नहीं कराना चाहिये। युद्धयात्रामें भी क्षौर कराना वर्जित है। शय्यापर बैठकर या चन्दनादि लगाकर क्षौर नहीं कराना चाहिये। जिस दिन कहींकी यात्रा करनी हो उस दिन भी क्षौर न करावे तथा क्षौर कराने-के बाद उससे नवें दिन भी क्षौर न करावे। राजाओंके लिये क्षौर करानेके बाद उससे ५ वें-५वें दिन क्षौर करानेका विधान है। चूडाकरणमें जो नक्षत्र-वार आदि कहे गये हैं, उन्हीं नक्षत्रों और वार आदिमें अथवा कभी भी क्षौरमें विहित नक्षत्र और वारके उदय (मुहूर्त एवं क्षण) में क्षौर कराना शुभ होता है ॥ ३४०–३४१½ ॥

(क्षौरकर्ममें विशेष–) राजा अथवा ब्राह्मणोंकी आज्ञासे यज्ञमें, माता-पिताके मरणमें, जेलसे छूटनेपर तथा विवाहके

यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी अत्यन्त धनवान् तथा वेद-वेदाङ्गोंका पारङ्गत विद्वान् होता है ॥ ३६१—३६४ ॥ यदि गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति परमोच्च स्थानमें हों और मृत्यु (आठवाँ) स्थान शुद्ध हो तो उस समय ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद-शास्त्रमें 'निष्णात' होता है ॥ ३६५ ॥ गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति यदि अपने अधिमित्रगृहमें या उसके उच्च गृहमें अथवा उसके अंशमें स्थित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी विद्या तथा धनसे सम्पन्न होता है ॥३६६॥ शाखाधिपतिका दिन हो, बालकको शाखाधिपतिका बल प्राप्त हो तथा शाखाधिपतिका ही लग्न हो—ये तीन बातें उपनयनसंस्कार-में दुर्लभ हैं ॥ ३६७ ॥ उससे चतुर्थांशमें चन्द्रमा हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला बालक विद्यामें निपुण होता है; किंतु यदि वह पापग्रहके अंशमें अथवा अपने अंशमें हो तो यज्ञोपवीती द्विज सदा दरिद्र और दुखी रहता है ॥ ३६८ ॥ जब श्रवणादि नक्षत्रमे विद्यमान चन्द्रमा कर्कके अंश-विशेषमें स्थित हो तो ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद, शास्त्र तथा धन-धान्य-समृद्धिसे सम्पन्न होता है ॥ ३६९ ॥ शुभ लग्न हो, शुभग्रहका अंश चल रहा हो, मृत्युस्थान शुद्ध हो तथा लग्न और मृत्यु-स्थान शुभग्रहोंसे संयुक्त हो अथवा उनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि हो, अभीष्ट स्थानमें स्थित बृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा आदि पाँच बलवान् ग्रहोंसे लग्न-स्थान संयुक्त या दृष्ट हो अथवा स्थान आदिके बलसे पूर्ण चार ही शुभग्रहयुक्त ग्रहोंद्वारा लग्नस्थान देखा जाता हो, और वह इक्कीस महादोषोंसे रहित हो तो यज्ञोपवीत लेना शुभ है। शुभ-ग्रहोंसे संयुक्त या दृष्ट सभी राशियाँ शुभ हैं ॥ ३७०—३७२ ॥ वे शुभ राशियाँ शुभ ग्रहके नवांशमें हों तो व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) में ग्राह्य हैं, किंतु कर्कराशिका अंश शुभ ग्रहसे युक्त तथा दृष्ट हो तो भी कभी ग्रहण करने योग्य नहीं है ॥३७३॥ इसलिये वृष और मिथुनके अंश तथा तुला और कन्याके अंश शुभ हैं। इस प्रकार लग्नगत नवांश होनेपर व्रतबन्ध उत्तम बताया गया है ॥ ३७४ ॥ तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें पापग्रह हों, छठा, आठवाँ और बारहवाँ स्थान शुभ-ग्रहसे खाली हो और चन्द्रमा छठे, आठवें, लग्न तथा बारहवें स्थानमें न हों तो उपनयन शुभ होता है ॥ ३७५ ॥ चन्द्रमा अपने उच्च स्थानमें होकर भी यदि व्रती पुरुषके व्रतबन्ध-मुहूर्त-सम्बन्धी लग्नमें स्थित हो तो वह उस बालकको निर्धन और क्षयका रोगी बना देता है ॥ ३७६ ॥ यदि सूर्य केन्द्र-स्थानमें प्रकाशित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाले बालकोंके पिताका नाश हो जाता है। पाँच दोषोंसे रहित लग्न उपनयनमें शुभदायक होता है ॥ ३७७ ॥ वसन्त ऋतुके सिवा और कभी कृष्णपक्षमें, गलग्रहमें, अनध्यायके दिन, भद्रामें तथा षष्ठीको बालकका उपनयन-संस्कार नहीं होना चाहिये ॥ ३७८ ॥ त्रयोदशीसे लेकर चार, सप्तमीसे लेकर तीन दिन और चतुर्थी ये आठ गलग्रह अशुभ कहे गये हैं ॥ ३७९ ॥

(क्षुरिका-बन्धनकर्म—) अब मैं क्षत्रियोंके लिये क्षुरिकाबन्धन कर्मका वर्णन करूँगा जो विवाहके पहले सम्पन्न होता है। विवाहके लिये कहे हुए मासोंमें, शुक्लपक्षमें, जब कि बृहस्पति, शुक्र और मङ्गल अस्त न हों, चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो, उस समय मौञ्जीबन्धनके लिये बतायी हुई तिथियोंमें, मङ्गलवारको छोड़कर शेष सभी दिनोंमें यह कर्म किया जाता है। कर्ताका लग्नगत नवांश यदि अष्टमोदयसे रहित न हो, अष्टम शुद्ध हो; चन्द्रमा छठे, आठवें और बारहवेंमें न होकर लग्नमें स्थित हों; शुभग्रह दूसरे, पाँचवें, नवें, लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थानोंमें हों; पापग्रह तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें हों तो देवताओं और पितरोंकी पूजा करके क्षुरिका-बन्धनकर्म करना चाहिये ॥ ३८०—३८३ ॥ पहले देवताओं-के समीप क्षुरिका (कटार)की भलीभाँति पूजा करे। तत्पश्चात् शुभ लक्षणोंसे युक्त उस क्षुरिकाको उत्तम लग्नमें अपनी कटिमें बाँधे ॥ ३८४ ॥ क्षुरिकाकी लम्बाईके आधे (मध्यभाग) पर जो विस्तारमान हो उससे क्षुरिकाके विभाग करे। वे छेदखण्ड (विभाग) क्रमसे ध्वज आदि आय कहलाते हैं। उनकी आठ संज्ञाएँ हैं—ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वा, वृष, गर्दभ, गज और ध्वाङ्क्ष। ध्वज नामक आयमें शत्रुका नाश होता है ॥ ३८५ ॥ धूम्र आयमें घात, सिंह नामक आयमें जय, श्वा (कुत्ता) नामक आयमें रोग, वृष आयमें धनलाभ, गर्दभ आयमें अत्यन्त दुःखकी प्राप्ति, गज आयमें अत्यन्त प्रसन्नता और ध्वाङ्क्ष नामक आयमें धनका नाश होता है। खड्ग और छुरीके मापको अपने अङ्गुलसे गिने ॥ ३८६-३८७ ॥ मापके अङ्गुलोंमेंसे ग्यारहसे अधिक हो तो ग्यारह घटा दे। फिर शेष अङ्गुलोंके क्रमशः फल इस प्रकार हैं ॥ ३८८ ॥ पुत्र-लाभ, शत्रुवध, स्त्रीलाभ, शुभगमन, अर्थहानि, अर्थवृद्धि, प्रीति, सिद्धि, जय और स्तुति ॥ ३८९ ॥

छुरी या तलवारमे यदि ध्वज अथवा वृष आय-विभागके पूर्वभाग* मे नष्ट (भङ्ग) हो, तथा सिंह और गज-आय-

* छुरी या तलवारकी मुट्ठीकी ओर पूर्व और अग्रकी ओर अन्त समझना चाहिये।

यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी अत्यन्त धनवान् तथा वेद-वेदाङ्गोंका पारङ्गत विद्वान् होता है ॥ ३६१–३६४ ॥ यदि गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति परमोच्च स्थानमें हों और मृत्यु (आठवाँ) स्थान शुद्ध हो तो उस समय ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद-शास्त्रमें 'निष्णात' होता है ॥ ३६५ ॥ गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति यदि अपने अधिमित्रगृहमें या उसके उच्च गृहमें अथवा उसके अंशमें स्थित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी विद्या तथा धनसे सम्पन्न होता है ॥३६६॥ शाखाधिपतिका दिन हो, बालकको शाखाधिपतिका बल प्राप्त हो तथा शाखाधिपतिका ही लग्न हो—ये तीन बातें उपनयनसंस्कार-में दुर्लभ हैं ॥ ३६७ ॥ उससे चतुर्थांशमें चन्द्रमा हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला बालक विद्यामें निपुण होता है; किंतु यदि वह पापग्रहके अंशमें अथवा अपने अंशमें हो तो यज्ञोपवीती द्विज सदा दरिद्र और दुखी रहता है ॥ ३६८ ॥ जब श्रवणादि नक्षत्रमें विद्यमान चन्द्रमा कर्कके अंश-विशेषमें स्थित हो तो ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद,शास्त्र तथा धन-धान्य-समृद्धिसे सम्पन्न होता है ॥ ३६९ ॥ शुभ लग्न हो, शुभग्रहका अंश चल रहा हो, मृत्युस्थान शुद्ध हो तथा लग्न और मृत्यु-स्थान शुभग्रहोंसे संयुक्त हो अथवा उनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि हो, अभीष्ट स्थानमें स्थित बृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा आदि पाँच बलवान् ग्रहोंसे लग्न-स्थान संयुक्त या दृष्ट हो अथवा स्थान आदिके बलसे पूर्ण चार ही शुभग्रहयुक्त ग्रहोंद्वारा लग्नस्थान देखा जाता हो, और वह इक्कीस महादोषोंसे रहित हो तो यज्ञोपवीत लेना शुभ है। शुभ-ग्रहोंसे संयुक्त या दृष्ट सभी राशियाँ शुभ हैं॥ ३७०–३७२ ॥ वे शुभ राशियाँ शुभ ग्रहके नवांशमें हों तो व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) में ग्राह्य हैं, किंतु कर्कराशिका अंश शुभ ग्रहसे युक्त तथा दृष्ट हो तो भी कभी ग्रहण करने योग्य नहीं है ॥३७३॥ इसलिये वृष और मिथुनके अंश तथा तुला और कन्याके अंश शुभ हैं। इस प्रकार लग्नगत नवांश होनेपर व्रतबन्ध उत्तम बताया गया है ॥ ३७४ ॥ तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें पापग्रह हों, छठा, आठवाँ और बारहवाँ स्थान शुभ-ग्रहसे खाली हो और चन्द्रमा छठे, आठवें, लग्न तथा बारहवें स्थानमें न हों तो उपनयन शुभ होता है ॥ ३७५ ॥ चन्द्रमा अपने उच्च स्थानमें होकर भी यदि व्रती पुरुषके व्रतबन्ध-मुहूर्त-सम्बन्धी लग्नमें स्थित हो तो वह उस बालकको निर्धन और क्षयका रोगी बना देता है ॥ ३७६ ॥ यदि सूर्य केन्द्र-स्थानमें प्रकाशित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाले बालकोंके पिताका नाश हो जाता है। पाँच दोषोंसे रहित लग्न उपनयनमें शुभदायक होता है ॥ ३७७ ॥ वसन्त ऋतुके सिवा और कभी कृष्णपक्षमें, गलग्रहमें, अनध्यायके दिन, भद्रामें तथा षष्ठीको बालकका उपनयन-संस्कार नहीं होना चाहिये ॥ ३७८ ॥ त्रयोदशीसे लेकर चार, सप्तमीसे लेकर तीन दिन और चतुर्थी ये आठ गलग्रह अशुभ कहे गये हैं ॥ ३७९ ॥

(**क्षुरिका-बन्धनकर्म-**) अब मैं क्षत्रियोंके लिये क्षुरिकाबन्धन कर्मका वर्णन करूँगा जो विवाहके पहले सम्पन्न होता है। विवाहके लिये कहे हुए मासोंमें, शुक्लपक्षमें, जब कि बृहस्पति, शुक्र और मङ्गल अस्त न हों, चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो, उस समय मौञ्जीबन्धनके लिये बतायी हुई तिथियोंमें, मङ्गलवारको छोड़कर शेष सभी दिनोंमें यह कर्म किया जाता है। कर्ताका लग्नगत नवांश यदि अष्टमोदयसे रहित न हो, अष्टम शुद्ध हो; चन्द्रमा छठे, आठवें और बारहवेंमें न होकर लग्नमें स्थित हों; शुभग्रह दूसरे, पाँचवें, नवें, लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थानोंमें हों; पापग्रह तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें हों तो देवताओं और पितरोंकी पूजा करके क्षुरिका-बन्धनकर्म करना चाहिये ॥ ३८०–३८३ ॥ पहले देवताओं-के समीप क्षुरिका (कटार)की भलीभाँति पूजा करे। तत्पश्चात् शुभ लक्षणोंसे युक्त उस क्षुरिकाको उत्तम लग्नमें अपनी कटिमें बाँधे ॥ ३८४ ॥ क्षुरिकाकी लम्बाईके आधे (मध्यभाग) पर जो विस्तारमान हो उससे क्षुरिकाके विभाग करे। वे छेदखण्ड (विभाग) क्रमसे ध्वज आदि आय कहलाते हैं। उनकी आठ संज्ञाएँ हैं—ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वा, वृष, गर्दभ, गज और ध्वाङ्क्ष। ध्वज नामक आयमें शत्रुका नाश होता है ॥ ३८५ ॥ धूम्र आयमें घात, सिंह नामक आयमें जय, श्वा (कुत्ता) नामक आयमें रोग, वृष आयमें धनलाभ, गर्दभ आयमें अत्यन्त दुःखकी प्राप्ति, गज आयमें अत्यन्त प्रसन्नता और ध्वाङ्क्ष नामक आयमें धनका नाश होता है। खड्ग और छुरीके मापको अपने अङ्गुलसे गिने ॥ ३८६-३८७ ॥ मापके अङ्गुलोंमेंसे ग्यारहसे अधिक हो तो ग्यारह घटा दे। फिर शेष अङ्गुलोंके क्रमशः फल इस प्रकार हैं॥ ३८८ ॥ पुत्र-लाभ, शत्रुवध, स्त्रीलाभ, शुभगमन, अर्थहानि, अर्थवृद्धि, प्रीति, सिद्धि, जय और स्तुति ॥ ३८९ ॥

छुरी या तलवारमें यदि ध्वज अथवा वृष आय-विभागके पूर्वभाग* में नष्ट (भङ्ग) हो, तथा सिंह और गज-आय-

* छुरी या तलवारकी मुट्ठीको ओर पूर्व और अग्रको ओर अन्त समझना चाहिये।

करके उनसे प्रार्थना करे—'हे देवि ! हे इन्द्राणि ! हे देवेन्द्र-प्रियभामिनि ! आपको मेरा नमस्कार है । देवि ! इस विवाहमें आप सौभाग्य, आरोग्य और पुत्र प्रदान करें ।' इस प्रकार प्रार्थना करके पूजाके बाद विधानपूर्वक ऊपर कहे हुए गुणयुक्त वरके लिये अपनी कुमारी कन्याका दान करे ॥ ४१०–४१४ ॥

(कन्या-वरकी वर्षशुद्धि–) कन्याके जन्मसमयसे सम वर्षोंमें और वरके जन्मसमयसे विषम वर्षोंमें होनेवाला विवाह उन दोनोंके प्रेम और प्रसन्नताको बढ़ानेवाला होता है । इससे विपरीत (कन्याके विषम और वरके सम वर्षमें) विवाह वर-कन्या दोनोंके लिये घातक होता है ॥ ४१५ ॥

(विवाहविहित मास–) माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—ये चार मास विवाहमें श्रेष्ठ तथा कार्तिक और मार्गशीर्ष ये दो मास मध्यम हैं । अन्य मास निन्दित हैं ॥ ४१६ ॥

सूर्य जब आर्द्रा नक्षत्रमें प्रवेश करे तबसे दस नक्षत्रतक (अर्थात् आर्द्रासे स्वातीतकके नक्षत्रोंमें जबतक सूर्य रहें तबतक) विवाह, देवताकी प्रतिष्ठा और उपनयन नहीं करने चाहिये । बृहस्पति और शुक्र जब अस्त हों, बाल अथवा वृद्ध हो तथा केवल बृहस्पति सिंहराशि या उसके नवमांशमें हों, उस समय भी ऊपर कहे हुए शुभ कार्य नहीं करने चाहिये ॥ ४१७–४१८ ॥

(गुरु तथा शुक्रके बाल्य और वृद्धत्व–) शुक्र जब पश्चिममें उदय होता है तो दस दिन और पूर्वमें उदय होता है तो तीन दिनतक बालक रहता है तथा जब पश्चिममें अस्त होनेको रहता है तो अस्तसे पाँच दिन पहले और पूर्वमें अस्त होनेसे पंद्रह दिन पहले वृद्ध हो जाता है । गुरु उदयके बाद पंद्रह दिन बालक और अस्तसे पहले पंद्रह दिन वृद्ध रहता है ॥ ४१९ ॥

जबतक भगवान् हृषीकेश शयनावस्थामें हों तबतक[१] तथा भगवान्के उत्सव (उत्थान या जन्मदिन) में भी अन्य मङ्गलकार्य नहीं करने चाहिये ॥ ४२० ॥ पहले गर्भके पुत्र और कन्याके जन्ममास, जन्मनक्षत्र और जन्म तिथि-वारमें भी विवाह नहीं करना चाहिये । आद्य गर्भकी कन्या और आद्य गर्भके वरका परस्पर विवाह नहीं कराना चाहिये तथा वर-कन्यामें कोई एक ही ज्येष्ठ (आद्य गर्भका) हो तो ज्येष्ठ मासमें विवाह श्रेष्ठ है । यदि दोनों ज्येष्ठ हों तो ज्येष्ठ मासमें विवाह अनिष्टकारक कहा गया है ॥ ४२१–४२२ ॥

(विवाहमें वर्ज्य–) भूकम्पादि उत्पात तथा सर्वग्रास सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हो तो उसके बाद सात दिनतकका समय शुभ नहीं है । यदि खण्डग्रहण हो तो उसके बाद तीन दिन अशुभ होते हैं । तीन दिनका स्पर्श करनेवाली (वृद्धि) तिथि, क्षयतिथि तथा ग्रस्तास्त (ग्रहण लगे चन्द्र, सूर्यका अस्त) हो तो पूर्वके तीन दिन अच्छे नहीं माने जाते हैं । यदि ग्रहण लगे हुए सूर्य, चन्द्रका उदय हो तो बादके तीन दिन अशुभ होते हैं । संध्यासमयमें ग्रहण हो तो पहले और बादके भी तीन-तीन दिन अनिष्टकारक हैं तथा मध्य रात्रिमें ग्रहण हो तो सात दिन (तीन पहलेके और तीन बादके और एक ग्रहणवाला दिन) अशुभ होते हैं ॥ ४२३–४२४ ॥ मासके अन्तिम दिन, रिक्ता, अष्टमी, व्यतीपात और वैधृतियोग सम्पूर्ण तथा परिघ योगका पूर्वार्ध—ये विवाहमें वर्जित हैं ॥ ४२५ ॥

(विहित नक्षत्र–) रेवती, रोहिणी, तीनों उत्तरा, अनुराधा, स्वाती, मृगशिरा, हस्त, मघा और मूल—ये ग्यारह नक्षत्र वेधरहित हों तो इन्हींमें स्त्रीका विवाह शुभ कहा गया है ॥ ४२६ ॥ विवाहमें वरको सूर्यका और कन्याको बृहस्पतिका बल अवश्य प्राप्त होना चाहिये । यदि ये दोनों अनिष्टकारक हों तो यत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४२७ ॥ गोचर, वेध और अष्टकवर्ग-सम्बन्धी बल उत्तरोत्तर अधिक है* । इसलिये गोचरबल स्थूल (साधारण) माना जाता है । अर्थात् ग्रहोंका अष्टकवर्ग-बल ग्रहण करना चाहिये । प्रथम तो वर-कन्याके चन्द्रबल और ताराबल देखने चाहिये । उसके बाद पञ्चाङ्ग (तिथि, वार आदि) के बल देखे । तिथिमें एक, वारमें दो, नक्षत्रमें तीन, योगमें चार और करणमें पाँच गुने बल होते हैं । इन सबकी अपेक्षा मुहूर्त बली होता है । मुहूर्तसे भी लग्न, लग्नसे भी होरा (राश्यर्ध), होरासे द्रेष्काण, द्रेष्काणसे नवमांश, नवमांशसे भी द्वादशांश तथा उससे भी त्रिंशांश † बली होता है । इसलिये इन सबके बल देखने चाहिये ॥ ४२८–४३१ ॥

१. आषाढ़ शुक्ला ११ से कार्तिक शुक्ला ११ तक भगवान् हृषीकेशके शयनका काल है ।

* अर्थात् गोचरबल एक, वेधबल दो और अष्टकवर्गबल तीनके बराबर है ।

† जातक-अध्यायमें देखिये । अभिप्राय यह है कि नक्षत्रविहित (गुणयुक्त) न मिले तो उसका मुहूर्त लेना चाहिये । यदि लग्न-राशि निर्बल हो तो उसके नवमांश आदिका बल देखकर निर्बल लग्नको भी प्रशस्त समझना चाहिये ।

करके उनसे प्रार्थना करे—'हे देवि ! हे इन्द्राणि ! हे देवेन्द्र-प्रियभामिनि ! आपको मेरा नमस्कार है । देवि ! इस विवाहमें आप सौभाग्य, आरोग्य और पुत्र प्रदान करें ।' इस प्रकार प्रार्थना करके पूजाके बाद विधानपूर्वक ऊपर कहे हुए गुणयुक्त वरके लिये अपनी कुमारी कन्याका दान करे ॥ ४१०–४१४ ॥

(कन्या-वरकी वर्षशुद्धि–) कन्याके जन्मसमयसे सम वर्षोंमें और वरके जन्मसमयसे विषम वर्षोंमें होनेवाला विवाह उन दोनोंके प्रेम और प्रसन्नताको बढ़ानेवाला होता है । इससे विपरीत (कन्याके विषम और वरके सम वर्षमें) विवाह वर-कन्या दोनोंके लिये घातक होता है ॥ ४१५ ॥

(विवाहविहित मास–) माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—ये चार मास विवाहमें श्रेष्ठ तथा कार्तिक और मार्गशीर्ष ये दो मास मध्यम हैं । अन्य मास निन्दित हैं ॥ ४१६ ॥

सूर्य जब आर्द्रा नक्षत्रमें प्रवेश करे तबसे दस नक्षत्रतक (अर्थात् आर्द्रासे स्वातीतकके नक्षत्रोंमें जबतक सूर्य रहें तबतक) विवाह, देवताकी प्रतिष्ठा और उपनयन नहीं करने चाहिये । बृहस्पति और शुक्र जब अस्त हों, बाल अथवा वृद्ध हो तथा केवल बृहस्पति सिंहराशि या उसके नवमांशमें हों, उस समय भी ऊपर कहे हुए शुभ कार्य नहीं करने चाहिये ॥ ४१७–४१८ ॥

(गुरु तथा शुक्रके बाल्य और वृद्धत्व–) शुक्र जब पश्चिममें उदय होता है तो दस दिन और पूर्वमें उदय होता है तो तीन दिनतक बालक रहता है तथा जब पश्चिममें अस्त होनेको रहता है तो अस्तसे पाँच दिन पहले और पूर्वमें अस्त होनेसे पंद्रह दिन पहले वृद्ध हो जाता है । गुरु उदयके बाद पंद्रह दिन बालक और अस्तसे पहले पंद्रह दिन वृद्ध रहता है ॥ ४१९ ॥

जबतक भगवान् हृषीकेश शयनावस्थामें हों तबतक तथा भगवान्‌के उत्सव (उत्थान या जन्मदिन) में भी अन्य मङ्गलकार्य नहीं करने चाहिये ॥ ४२० ॥ पहले गर्भके पुत्र और कन्याके जन्ममास, जन्मनक्षत्र और जन्म तिथि-वारमें भी विवाह नहीं करना चाहिये । आद्य गर्भकी कन्या और आद्य गर्भके वरका परस्पर विवाह नहीं कराना चाहिये तथा वर-कन्यामें कोई एक ही ज्येष्ठ (आद्य गर्भका) हो तो ज्येष्ठ मासमें विवाह श्रेष्ठ है । यदि दोनों ज्येष्ठ हों तो ज्येष्ठ मासमें विवाह अनिष्टकारक कहा गया है ॥ ४२१–४२२ ॥

(विवाहमें वर्ज्य–) भूकम्पादि उत्पात तथा सर्वग्रास सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हो तो उसके बाद सात दिनतकका समय शुभ नहीं है । यदि खण्डग्रहण हो तो उसके बाद तीन दिन अशुभ होते हैं । तीन दिनका स्पर्श करनेवाली (वृद्धि) तिथि, क्षयतिथि तथा ग्रस्तास्त (ग्रहण लगे चन्द्र, सूर्यका अस्त) हो तो पूर्वके तीन दिन अच्छे नहीं माने जाते हैं । यदि ग्रहण लगे हुए सूर्य, चन्द्रका उदय हो तो बादके तीन दिन अशुभ होते हैं । संध्यासमयमें ग्रहण हो तो पहले और बादके भी तीन-तीन दिन अनिष्टकारक हैं तथा मध्य रात्रिमें ग्रहण हो तो सात दिन (तीन पहलेके और तीन बादके और एक ग्रहणवाला दिन) अशुभ होते हैं ॥ ४२३–४२४ ॥ मासके अन्तिम दिन, रिक्ता, अष्टमी, व्यतीपात और वैधृतियोग सम्पूर्ण तथा परिघ योगका पूर्वार्ध—ये विवाहमें वर्जित हैं ॥ ४२५ ॥

(विहित नक्षत्र–) रेवती, रोहिणी, तीनों उत्तरा, अनुराधा, स्वाती, मृगशिरा, हस्त, मघा और मूल—ये ग्यारह नक्षत्र वेधरहित हों तो इन्हींमें स्त्रीका विवाह शुभ कहा गया है ॥ ४२६ ॥ विवाहमें वरको सूर्यका और कन्याको बृहस्पतिका बल अवश्य प्राप्त होना चाहिये । यदि ये दोनों अनिष्टकारक हों तो यत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४२७ ॥ गोचर, वेध और अष्टकवर्ग-सम्बन्धी बल उत्तरोत्तर अधिक है* । इसलिये गोचरबल स्थूल (साधारण) माना जाता है । अर्थात् ग्रहोंका अष्टकवर्ग-बल ग्रहण करना चाहिये । प्रथम तो वर-कन्याके चन्द्रबल और ताराबल देखने चाहिये । उसके बाद पञ्चाङ्ग (तिथि, वार आदि) के बल देखे । तिथिमें एक, वारमें दो, नक्षत्रमें तीन, योगमें चार और करणमें पाँच गुने बल होते हैं । इन सबकी अपेक्षा मुहूर्त बली होता है । मुहूर्तसे भी लग्न, लग्नसे भी होरा (राश्यर्ध), होरासे द्रेष्काण, द्रेष्काणसे नवमांश, नवमांशसे भी द्वादशांश तथा उससे भी त्रिंशांश † बली होता है । इसलिये इन सबके बल देखने चाहिये ॥ ४२८–४३१ ॥

१. आषाढ़ शुक्ला ११ से कार्तिक शुक्ला ११ तक भगवान् हृषीकेशके शयनका काल है ।

* अर्थात् गोचरबल एक, वेधबल दो और अष्टकवर्गबल तीनके बराबर है ।

† जातक-अध्यायमें देखिये । अभिप्राय यह है कि नक्षत्रविहित (गुणयुक्त) न मिले तो उसका मुहूर्त लेना चाहिये । यदि लग्न-राशि निर्बल हो तो उसके नवमांश आदिका बल देखकर निर्बल लग्नको भी प्रशस्त समझना चाहिये ।

(सग्रहदोष—) चन्द्रमा यदि किसी ग्रहसे युक्त हो तो 'सग्रह' नामक दोष होता है। इस दोषमें भी विवाह नहीं करना चाहिये। चन्द्रमा यदि सूर्यसे युक्त हो तो दरिद्रता, मङ्गलसे युक्त हो तो घात अथवा रोग, बुधसे युक्त हो तो अनपत्यता (संतानहानि), गुरुसे युक्त हो तो दौर्भाग्य, शुक्रसे युक्त हो तो पति-पत्नीमें शत्रुता, शनिसे युक्त हो तो प्रव्रज्या (घरका त्याग), राहुसे युक्त हो तो सर्वस्वहानि और केतुसे युक्त हो तो कष्ट और दरिद्रता होती है ॥४५४-४५७॥

(पापग्रहकी निन्दा और शुभग्रहोंकी प्रशंसा—) मुने ! इस प्रकार सग्रहदोषमें चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोंके लिये घातक होता है। यदि वह शुभग्रहोंसे युक्त हो तो उस स्थितिमें यदि उच्च या मित्रकी राशिमे चन्द्रमा हो तो लग्न दोषयुक्त रहनेपर भी वर-वधूके लिये कल्याणकारी होता है। परंतु चन्द्रमा स्वोच्चमें या स्वराशिमे अथवा मित्रकी राशिमें रहनेपर भी यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोंके लिये घातक होता है ॥४५८-४५९½॥

(अष्टमराशि लग्नदोष—) वर या वधूके जन्म-लग्नसे अथवा उनकी जन्मराशिसे अष्टमराशि विवाह-लग्नमे पड़े तो यह दोष भी वर और वधूके लिये घातक होता है। वह राशि या वह लग्न शुभग्रहसे युक्त हो तो भी उस लग्नको, उस नवमांशसे युक्त लग्नको अथवा उसके स्वामीको यत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये ॥४६०-४६१½॥

(द्वादश राशिदोष—) वर-वधूके जन्म-लग्न या जन्मराशिसे द्वादश राशि यदि विवाहलग्नमें पड़े तो वर-वधूके धनकी हानि होती है। इसलिये उस लग्नको, उसके नवमांश-को और उसके स्वामीको भी त्याग देना चाहिये ॥४६२½॥

(जन्मलग्न और जन्मराशिकी प्रशंसा—) जन्म-राशि और जन्मलग्नका उदय विवाहमें शुभ होता है तथा दोनोंके उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान यदि विवाह लग्नमें हो तो अत्यन्त शुभप्रद होते हैं ॥ ४६३½ ॥

(विषघटी ध्रुवाङ्क—) अश्विनीका ध्रुवाङ्क ५०, भरणीका २४, कृत्तिकाका ३०, रोहिणीका ५४, मृगशिराका १४, आर्द्राका २१, पुनर्वसुका ३०, पुष्यका २०, आश्लेषाका ३२, मघाका ३०, पूर्वा फाल्गुनीका २०, उत्तरा फाल्गुनीका १८, हस्तका २१, चित्राका २०, स्वातीका १४, विशाखाका १४, अनुराधाका १०, ज्येष्ठाका १४, मूलका ५६, पूर्वाषाढका २४, उत्तरा-षाढका २०, श्रवणका १०, धनिष्ठाका १०, शतभिषाका १८, पूर्व भाद्रपदका १६, उत्तर भाद्रपदका २४ और रेवतीका ध्रुवाङ्क ३० है। इन अश्विनी आदि नक्षत्रोंके अपने-अपने ध्रुवाङ्क तुल्य घड़ीके बाद ४ घड़ीतक विषघटी होती है। विवाह आदि शुभ कार्योंमें विषघटिकाओंका त्याग करना चाहिये* ॥ ४६४-४६८ ॥

रवि आदि वारोंमें जो मुहूर्त निन्दित कहा गया है, वह यदि अन्य लाख गुणोंसे युक्त हो तो भी विवाह आदि शुभ कार्योंमें वर्जनीय ही है ॥४६९॥ रवि आदि दिनोंमें जो जो वार-दोष कहे गये हैं, वे अन्य सब गुणोसे युक्त हों तो भी शुभ कार्यमें वर्जनीय हैं ॥ ४७० ॥

नक्षत्रके जिस चरणमें पूर्वोक्त 'एकार्गल दोष' हो, उस चरण (नवांश) से युक्त जो लग्न हो उसमें यदि गुरु, शुक्रका योग हो तो भी विषयुक्त दूधके समान उसको त्याग देना चाहिये ॥ ४७१ ॥

ग्रहण तथा उत्पातसे दूषित नक्षत्रको तीन ऋतु (छः मास) तक शुभ कार्यमें छोड़ देना चाहिये। जब चन्द्रमा उस नक्षत्रको भोगकर छोड़ दे तो वह नक्षत्र जली हुई लकड़ीके समान निष्फल हो जाता है अर्थात् दोष-कारक नहीं रह जाता। शुभ कार्योंमें ग्रहसे विद्ध और पापग्रहसे युक्त सम्पूर्ण नक्षत्रको मदिरामिश्रित पञ्चगव्यके समान त्याग देना चाहिये; परतु यदि नक्षत्र शुभग्रहसे विद्ध हो तो उसका विद्ध चरणमात्र त्याज्य है, सम्पूर्ण नक्षत्र नहीं; किंतु पापग्रहसे विद्ध नक्षत्र शुभकार्यमें सम्पूर्ण रूपसे त्याग देने योग्य है ॥ ४७२-४७४ ॥

(विहित नवमांश-) वृष, तुला, मिथुन, कन्या

---

* विशेष—यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ी हो तब इतने ध्रुवाङ्क और उसके पद्रहवें भाग चार घटीतक 'विषघटी'का अवस्थान मध्यममानके अनुसार कहा गया है। इससे यह स्वयं सिद्ध होता है कि यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ीसे अधिक या अल्प होगा तो विषघटीका मान और ध्रुवाङ्क भी उसी अनुपातसे अधिक या कम हो जायगा तथा स्पष्ट भभोगमानका पद्रहवाँ भाग ही विषघटीका स्पष्ट मान होगा।

मान लीजिये कि पुनर्वसुका भभोगमान ५६ घड़ी है तो त्रैराशिकसे अनुपात निकालिये। यदि ६० घड़ीमें ३० ध्रुवाङ्क तो इष्ट भभोग ५६ घड़ीमें क्या होगा ? इस प्रकार ५६ से ३० को गुणा करके ६० के द्वारा भाग देनेसे लब्धि २८ पुनर्वसुका स्पष्ट ध्रुवाङ्क हुआ तथा भभोग ५६ का पद्रहवाँ भाग ३ घड़ी ४४ पल स्पष्ट 'विषघटी' हुई। इसलिये २८ घड़ीके बाद ३ घड़ी ४ पलतक विषघटी रहेगी।

(सग्रहदोष—) चन्द्रमा यदि किसी ग्रहसे युक्त हो तो 'सग्रह' नामक दोष होता है। इस दोषमें भी विवाह नहीं करना चाहिये। चन्द्रमा यदि सूर्यसे युक्त हो तो दरिद्रता, मङ्गलसे युक्त हो तो घात अथवा रोग, बुधसे युक्त हो तो अनपत्यता (संतानहानि), गुरुसे युक्त हो तो दौर्भाग्य, शुक्रसे युक्त हो तो पति-पत्नीमें शत्रुता, शनिसे युक्त हो तो प्रव्रज्या (घरका त्याग), राहुसे युक्त हो तो सर्वस्वहानि और केतुसे युक्त हो तो कष्ट और दरिद्रता होती है ॥४५४-४५७॥

(पापग्रहकी निन्दा और शुभग्रहोंकी प्रशंसा—) मुने ! इस प्रकार सग्रहदोषमें चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोंके लिये घातक होता है। यदि वह शुभग्रहोंसे युक्त हो तो उस स्थितिमें यदि उच्च या मित्रकी राशिमें चन्द्रमा हो तो लग्न दोषयुक्त रहनेपर भी वर-वधूके लिये कल्याणकारी होता है। परंतु चन्द्रमा स्वोच्चमें या स्वराशिमें अथवा मित्रकी राशिमें रहनेपर भी यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोंके लिये घातक होता है ॥४५८-४५९½॥

(अष्टमराशि लग्नदोष—) वर या वधूके जन्म-लग्नसे अथवा उनकी जन्मराशिसे अष्टमराशि विवाह-लग्नमें पड़े तो यह दोष भी वर और वधूके लिये घातक होता है। वह राशि या वह लग्न शुभग्रहसे युक्त हो तो भी उस लग्नको, उस नवमांशसे युक्त लग्नको अथवा उसके स्वामीको यत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये ॥४६०-४६१½॥

(द्वादश राशिदोष—) वर-वधूके जन्म-लग्न या जन्मराशिसे द्वादश राशि यदि विवाहलग्नमें पड़े तो वर-वधूके धनकी हानि होती है। इसलिये उस लग्नको, उसके नवमांश-को और उसके स्वामीको भी त्याग देना चाहिये ॥४६२½॥

(जन्मलग्न और जन्मराशिकी प्रशंसा—) जन्म-राशि और जन्मलग्नका उदय विवाहमें शुभ होता है तथा दोनोंके उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान यदि विवाह लग्नमें हो तो अत्यन्त शुभप्रद होते हैं ॥ ४६३½ ॥

(विषघटी ध्रुवाङ्क—) अश्विनीका ध्रुवाङ्क ५०, भरणीका २४, कृत्तिकाका ३०, रोहिणीका ५४, मृगशिराका १३, आर्द्राका २१, पुनर्वसुका ३०, पुष्यका २०, आश्लेषाका ३२, मघाका ३०, पूर्वा फाल्गुनीका २०, उत्तरा फाल्गुनीका १८, हस्तका २१, चित्राका २०, स्वातीका १४, विशाखाका १४, अनुराधाका १०, ज्येष्ठाका १४, मूलका ५६, पूर्वाषाढका २४, उत्तरा-षाढका २०, श्रवणका १०, धनिष्ठाका १०, शतभिषाका १८, पूर्व भाद्रपदका १६, उत्तर भाद्रपदका २४ और रेवतीका ध्रुवाङ्क ३० है। इन अश्विनी आदि नक्षत्रोंके अपने-अपने ध्रुवाङ्क तुल्य घड़ीके बाद ४ घड़ीतक विषघटी होती है। विवाह आदि शुभ कार्योंमें विषघटिकाओंका त्याग करना चाहिये* ॥ ४६४-४६८ ॥

रवि आदि वारोंमें जो मुहूर्त निन्दित कहा गया है, वह यदि अन्य लाख गुणोंसे युक्त हो तो भी विवाह आदि शुभ कार्योंमें वर्जनीय ही है ॥४६९॥ रवि आदि दिनोंमें जो जो वार-दोष कहे गये हैं, वे अन्य सब गुणोंसे युक्त हों तो भी शुभ कार्यमें वर्जनीय हैं ॥ ४७० ॥

नक्षत्रके जिस चरणमें पूर्वोक्त 'एकार्गल दोष' हो, उस चरण (नवांश) से युक्त जो लग्न हो उसमें यदि गुरु, शुक्रका योग हो तो भी विषयुक्त दूधके समान उसको त्याग देना चाहिये ॥ ४७१ ॥

ग्रहण तथा उत्पातसे दूषित नक्षत्रको तीन ऋतु (छः मास) तक शुभ कार्यमें छोड़ देना चाहिये। जब चन्द्रमा उस नक्षत्रको भोगकर छोड़ दे तो वह नक्षत्र जली हुई लकड़ीके समान निष्फल हो जाता है अर्थात् दोष-कारक नहीं रह जाता। शुभ कार्योंमें ग्रहसे विद्ध और पापग्रहसे युक्त सम्पूर्ण नक्षत्रको मदिरामिश्रित पञ्चगव्यके समान त्याग देना चाहिये; परतु यदि नक्षत्र शुभग्रहसे विद्ध हो तो उसका विद्ध चरणमात्र त्याज्य है, सम्पूर्ण नक्षत्र नहीं; किंतु पापग्रहसे विद्ध नक्षत्र शुभकार्यमें सम्पूर्ण रूपसे त्याग देने योग्य है ॥ ४७२-४७४ ॥

(विहित नवमांश—) वृष, तुला, मिथुन, कन्या

* विशेष—यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ी हो तब इतने ध्रुवाङ्क और उसके पद्रहवें भाग चार घटीतक 'विषघटी'का अवस्थान मध्यममानके अनुसार कहा गया है। इससे यह स्वयं सिद्ध होता है कि यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ीसे अधिक या अल्प होगा तो विषघटीका मान और ध्रुवाङ्क भी उसी अनुपातसे अधिक या कम हो जायगा तथा स्पष्ट भभोगमानका पद्रहवाँ भाग ही विषघटीका स्पष्ट मान होगा।

मान लीजिये कि पुनर्वसुका भभोगमान ५६ घड़ी है तो त्रैराशिकसे अनुपान निकालिये। यदि ६० घड़ीमें ३० ध्रुवाङ्क तो इष्ट भभोग ५६ घड़ीमें क्या होगा ? इस प्रकार ५६ से ३० को गुणा करके ६० के द्वारा भाग देनेसे लब्धि २८ पुनर्वसुका स्पष्ट ध्रुवाङ्क हुआ तथा भभोग ५६ का पद्रहवाँ भाग ३ घड़ी ४४ पल स्पष्ट 'विषघटी' हुई। इसलिये २८ घड़ीके बाद ३ घड़ी ४ पलतक विषघटी रहेगी।

(परिहार–) सौराष्ट्र (काठियावाड़) और शाल्वदेशमें लत्तादोष वर्जित है। कलिङ्ग (जगन्नाथपुरीसे कृष्णा नदीतकके भूभाग), वङ्ग (वङ्गाल), वाह्लिक (वलख) और कुरु (कुरुक्षेत्र) देशमें पातदोष त्याज्य है; अन्य देशोंमें ये दोष त्याज्य नहीं हैं ॥ ४८६-४८७ ॥ मासदग्ध तिथि तथा दग्ध लग्न—ये मध्यदेश (प्रयागसे पश्चिम, कुरुक्षेत्रसे पूर्व, विन्ध्य और हिमालयके मध्य) में वर्जित हैं। अन्य देशोंमें ये दूषित नहीं हैं ॥४८८॥ पङ्गु, अन्ध, काण लग्न तथा मासोंमें जो शून्य राशियाँ कही गयी हैं, वे गौड़ (वङ्गालसे भुवनेश्वरतक) और मालव (मालवा) देशमें त्याज्य हैं। अन्य देशोंमे निन्दित नहीं हैं ॥ ४८९ ॥

(विशेष–) अधिक दोषोंमे दुष्ट कालको तो ब्रह्माजी भी शुभ नहीं बना सकते हैं; इसलिये जिसमे थोड़ा दोष और अधिक गुण हों, ऐसा काल ग्रहण करना चाहिये ॥४९०॥

(वेदी और मण्डप–) इस प्रकार वर-वधूके लिये शुभप्रद उत्तम समयमें श्रेष्ठ लग्नका निरीक्षण (खोज) करना चाहिये। तदनन्तर एक हाथ ऊँची, चार हाथ लंबी और चार हाथ चौड़ी उत्तर दिशामें नत (कुछ नीची) वेदी बनाकर सुन्दर चिकने चार खम्भोंका एक मण्डप तैयार करे, जिसमें चारों ओर सोपान (सीढ़ियाँ) बनायी गयी हों। मण्डप भी पूर्व-उत्तरमें निम्न हो। वहाँ चारों तरफ कदलीस्तम्भ गड़े हों। वह मण्डप शुक आदि पक्षियोंके चित्रोंसे सुशोभित हो तथा वेदी नाना प्रकारके माङ्गलिक चित्र-युक्त कलशोंसे विचित्र शोभा धारण कर रही हो। भाँति-भाँतिके वन्दनवार तथा अनेक प्रकारके फूलोंके श्रृङ्गारसे वह स्थान सजाया गया हो। ऐसे मण्डपके बीच बनी हुई वेदीपर, जहाँ ब्राह्मणलोग स्वस्तिवाचनपूर्वक आशीर्वाद देते हों, जो पुण्यशीला स्त्रियों तथा दिव्य समारोहोंसे अत्यन्त मनोरम जान पड़ती हो तथा नृत्य, वाद्य और माङ्गलिक गीतोंकी ध्वनिसे जो हृदय-को आनन्द प्रदान कर रही हो, वर और वधूको विवाहके लिये बिठावे ॥ ४९१-४९५ ॥

(वर-वधूकी कुण्डलीका मिलान–) आठ प्रकारके भकूट, नक्षत्र, राशि, राशिस्वामी, योनि तथा वर्ण आदि सब गुण यदि ऋजु (अनुकूल या शुभ) हों तो ये पुत्र-पौत्रादिका सुख प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ ४९६ ॥

वर और कन्या दोनोंकी राशि और नक्षत्र भिन्न हों तो उन दोनोंका विवाह उत्तम होता है। दोनोंकी राशि भिन्न और नक्षत्र एक हो तो उनका विवाह मध्यम होता है और यदि दोनोंका एक ही नक्षत्र, एक ही राशि हो तो उन दोनोंका विवाह प्राणसंकट उपस्थित करनेवाला होता है ॥ ४९७½ ॥

(स्त्रीदूर दोष–) कन्याके नक्षत्रसे प्रथम नवक (नौ नक्षत्रों) के भीतर वरका नक्षत्र हो तो यह 'स्त्रीदूर' नामक दोष कहलाता है; जो अत्यन्त निन्दित है। द्वितीय नवक (१० से १८ तक) के भीतर हो तो मध्यम कहा गया है। यदि तृतीय नवक (१९ से २७ तक) के भीतर हो तो उन दोनोंका विवाह श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ४९८½ ॥

(गणविचार–) पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा–ये नक्षत्र मनुष्यगण हैं। श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, स्वाती, रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य और मृगशिरा—ये देवगण हैं तथा मघा, चित्रा, विशाखा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल और आश्लेषा–ये नक्षत्र राक्षस-गण हैं ॥४९९—५०१॥ यदि वर और कन्याके नक्षत्र किसी एक ही गणमें हों तो दोनोंमें परस्पर सब प्रकारसे प्रेम बढ़ता है। यदि एकका मनुष्यगण और दूसरेका देवगण हो तो दोनोंमें मध्यम प्रेम होता है तथा यदि एकका राक्षस और दूसरेका देव या मनुष्यगण हो तो वर-वधू दोनोंको मृत्युतुल्य क्लेश प्राप्त होता है ॥ ५०२ ॥

(राशिकूट–) वर और कन्याकी राशियोंको परस्पर गिननेसे यदि वे छठी और आठवीं संख्यामें पड़ती हों तो दोनोंके लिये घातक हैं। यदि पाँचवीं और नवीं संख्यामें हों तो संतानकी हानि होती है। यदि दूसरी और बारहवीं संख्या-मे हों तो वर-वधू दोनों निर्धन होते हैं। इनसे भिन्न संख्यामें हों तो दोनोंमे परस्पर प्रेम होता है ॥ ५०३ ॥

(परिहार–) द्विद्वादश (२, १२) और नवपञ्चम (९,५) दोषमें यदि दोनोंकी राशियोका एक ही स्वामी हो अथवा दोनोंके राशिस्वामियोंमें मित्रता हो तो विवाह शुभ कहा गया है। परंतु षडष्टक (६, ८) में दोनोंके स्वामी एक होनेपर भी विवाह शुभदायक नहीं होता है ॥ ५०४ ॥

(योनिकूट—) १ अश्व, २ गज, ३ मेष, ४ सर्प, ५ सर्प, ६ श्वान, ७ मार्जार, ८ मेष, ९ मार्जार, १० मूषक, ११ मूषक, १२ गौ, १३ महिष, १४ व्याघ्र, १५ महिष, १६ व्याघ्र, १७ मृग, १८ मृग, १९ श्वान, २० वानर, २१ नकुल, २२ नकुल, २३ वानर, २४ सिंह, २५ अश्व, २६ सिंह, २७ गौ तथा २८ गज—ये क्रमशः अश्विनीसे लेकर रेवतीतक (अभिजित्‌सहित) अट्ठाईस नक्षत्रोंकी योनियाँ हैं ॥ ५०५–५०६ ॥ इनमें श्वान और मृगमें, नकुल और सर्पमें, मेष और वानरमें, सिंह और गजमें, गौ और व्याघ्रमें, मूषक और मार्जारमे तथा महिष और अश्वमें परस्पर भारी शत्रुता होती है ॥ ५०७ ॥

(वर्णकूट—) मीन, वृश्चिक और कर्कराशि ब्राह्मण वर्ण हैं, इनके बादवाले क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण

(परिहार–) सौराष्ट्र (काठियावाड़) और शाल्वदेशमें लत्तादोष वर्जित है। कलिङ्ग (जगन्नाथपुरीसे कृष्णा नदीतकके भूभाग), वङ्ग (बङ्गाल), बाह्लिक (बलख) और कुरु (कुरुक्षेत्र) देशमें पातदोष त्याज्य है; अन्य देशोंमें ये दोष त्याज्य नहीं हैं ॥ ४८६-४८७ ॥ मासदग्ध तिथि तथा दग्ध लग्न—ये मध्यदेश (प्रयागसे पश्चिम, कुरुक्षेत्रसे पूर्व, विन्ध्य और हिमालयके मध्य) में वर्जित हैं। अन्य देशोंमें ये दूषित नहीं हैं ॥४८८॥ पङ्गु, अन्ध, काण लग्न तथा मासोंमें जो शून्य राशियाँ कही गयी हैं, वे गौड़ (बङ्गालसे भुवनेश्वरतक) और मालव (मालवा) देशमें त्याज्य हैं। अन्य देशोंमे निन्दित नहीं हैं ॥ ४८९ ॥

(विशेष–) अधिक दोषोंमे दुष्ट कालको तो ब्रह्माजी भी शुभ नहीं बना सकते हैं; इसलिये जिसमे थोड़ा दोष और अधिक गुण हों, ऐसा काल ग्रहण करना चाहिये ॥४९०॥

(वेदी और मण्डप–) इस प्रकार वर-वधूके लिये शुभप्रद उत्तम समयमें श्रेष्ठ लग्नका निरीक्षण (खोज) करना चाहिये। तदनन्तर एक हाथ ऊँची, चार हाथ लंबी और चार हाथ चौड़ी उत्तर दिशामें नत (कुछ नीची) वेदी बनाकर सुन्दर चिकने चार खम्भोंका एक मण्डप तैयार करे, जिसमें चारों ओर सोपान (सीढ़ियाँ) बनायी गयी हों। मण्डप भी पूर्व-उत्तरमें निम्न हो। वहाँ चारों तरफ कदलीस्तम्भ गड़े हों। वह मण्डप शुक आदि पक्षियोंके चित्रोंसे सुशोभित हो तथा वेदी नाना प्रकारके माङ्गलिक चित्र-युक्त कलशोंसे विचित्र शोभा धारण कर रही हो। भाँति-भाँतिके वन्दनवार तथा अनेक प्रकारके फूलोंके शृङ्गारसे वह स्थान सजाया गया हो। ऐसे मण्डपके बीच बनी हुई वेदीपर, जहाँ ब्राह्मणलोग स्वस्तिवाचनपूर्वक आशीर्वाद देते हों, जो पुण्यशीला स्त्रियों तथा दिव्य समारोहोंसे अत्यन्त मनोरम जान पड़ती हो तथा नृत्य, वाद्य और माङ्गलिक गीतोंकी ध्वनिसे जो हृदय-को आनन्द प्रदान कर रही हो, वर और वधूको विवाहके लिये बिठावे ॥ ४९१-४९५ ॥

(वर-वधूकी कुण्डलीका मिलान–) आठ प्रकारके भकूट, नक्षत्र, राशि, राशिस्वामी, योनि तथा वर्ण आदि सब गुण यदि ऋजु (अनुकूल या शुभ) हों तो ये पुत्र-पौत्रादिका सुख प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ ४९६ ॥

वर और कन्या दोनोंकी राशि और नक्षत्र भिन्न हों तो उन दोनोंका विवाह उत्तम होता है। दोनोंकी राशि भिन्न और नक्षत्र एक हो तो उनका विवाह मध्यम होता है और यदि दोनोंका एक ही नक्षत्र, एक ही राशि हो तो उन दोनोंका विवाह प्राणसंकट उपस्थित करनेवाला होता है ॥ ४९७½ ॥

(स्त्रीदूर दोष–) कन्याके नक्षत्रसे प्रथम नवक (नौ नक्षत्रों) के भीतर वरका नक्षत्र हो तो यह 'स्त्रीदूर' नामक दोष कहलाता है; जो अत्यन्त निन्दित है। द्वितीय नवक (१० से १८ तक) के भीतर हो तो मध्यम कहा गया है। यदि तृतीय नवक (१९ से २७ तक) के भीतर हो तो उन दोनोंका विवाह श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ४९८½ ॥

(गणविचार–) पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा—ये नक्षत्र मनुष्यगण हैं। श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, स्वाती, रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य और मृगशिरा—ये देवगण हैं तथा मघा, चित्रा, विशाखा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल और आश्लेषा—ये नक्षत्र राक्षस-गण हैं ॥४९९—५०१॥ यदि वर और कन्याके नक्षत्र किसी एक ही गणमें हों तो दोनोंमें परस्पर सब प्रकारसे प्रेम बढ़ता है। यदि एकका मनुष्यगण और दूसरेका देवगण हो तो दोनोंमें मध्यम प्रेम होता है तथा यदि एकका राक्षस और दूसरेका देव या मनुष्यगण हो तो वर-वधू दोनोंको मृत्युतुल्य क्लेश प्राप्त होता है ॥ ५०२ ॥

(राशिकूट–) वर और कन्याकी राशियोंको परस्पर गिननेसे यदि वे छठी और आठवीं संख्यामें पड़ती हों तो दोनोंके लिये घातक हैं। यदि पाँचवीं और नवीं संख्यामें हों तो संतानकी हानि होती है। यदि दूसरी और बारहवीं संख्या-मे हों तो वर-वधू दोनों निर्धन होते हैं। इनसे भिन्न संख्यामें हों तो दोनोंमे परस्पर प्रेम होता है ॥ ५०३ ॥

(परिहार–) द्विद्वादश (२, १२) और नवपञ्चम (९,५) दोषमें यदि दोनोंकी राशियोका एक ही स्वामी हो अथवा दोनोंके राशिस्वामियोंमें मित्रता हो तो विवाह शुभ कहा गया है। परंतु षडष्टक (६, ८) में दोनोंके स्वामी एक होनेपर भी विवाह शुभदायक नहीं होता है ॥ ५०४ ॥

(योनिकूट—) १ अश्व, २ गज, ३ मेष, ४ सर्प, ५ सर्प, ६ श्वान, ७ मार्जार, ८ मेष, ९ मार्जार, १० मूषक, ११ मूषक, १२ गौ, १३ महिष, १४ व्याघ्र, १५ महिष, १६ व्याघ्र, १७ मृग, १८ मृग, १९ श्वान, २० वानर, २१ नकुल, २२ नकुल, २३ वानर, २४ सिंह, २५ अश्व, २६ सिंह, २७ गौ तथा २८ गज—ये क्रमशः अश्विनीसे लेकर रेवतीतक (अभिजित्‌सहित) अट्ठाईस नक्षत्रोंकी योनियाँ हैं ॥ ५०५—५०६ ॥ इनमें श्वान और मृगमें, नकुल और सर्पमें, मेष और वानरमें, सिंह और गजमें, गौ और व्याघ्रमें, मूषक और मार्जारमे तथा महिष और अश्वमें परस्पर भारी शत्रुता होती है ॥ ५०७ ॥

(वर्णकूट—) मीन, वृश्चिक और कर्कराशि ब्राह्मण वर्ण हैं, इनके बादवाले क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण

वर और कन्याकी कुण्डली मिलानेके लिये जो वश्य, योनि, राशिकूट, योनिकूट, वर्णकूट तथा नाडी आदिका वर्णन किया गया है, इन सबके सुगमतापूर्वक जानने तथा उनके गुणोंको समझनेके लिये निम्नाङ्कित चक्रोंपर दृष्टिपात कीजिये—

शतपदचक्र

नक्षत्र	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	आश्ले	म.	पू. फा.	उ.फा.	ह.	चि.
चरण	चू.चे. चो. ला.	ली.लू ले.लो.	अ. इ उ ए.	ओ वा वी.वू.	वे.वो का. की.	कु. घ. ङ.छ.	के का. हा.हो.	हू हे. हो.डा.	डी. डू. डे. डो.	म. मी. मू. मे.	मो. टा. टी. टू.	टे. टो. पा. पी.	पू. ष. ण. ठ.	पे. पो. रा. री.
राशि	मे.	मे.	मे. १ वृ. ३	वृ.	वृ. २ मि. २	मि.	मि.३ क १	क.	क.	सिं.	सिं.	सिं. १ क. ३	क.	क. २ तु. २
वर्ण	क्ष.	क्ष.	क्ष. १ वै. ३	वै.	वै. २ शू. २	शू.	शू. ३ ब्रा.१	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष. १ वै. ३	वै.	वै. २ शू. २
वश्य	च.	च.	च.	च.	च. २ न. २	न.	न.३ ज.१	ज.	ज.	व.	व.	व. १ न ३	न.	न.
योनि	अश्व.	गज.	छाग.	सर्प.	सर्प.	श्वान.	मार्जा- र.	छाग.	मार्जा- र.	मूषक	मूषक.	गौ.	महिष.	व्याघ्र.
राशीश	म.	मं.	मं. १ शु. ३	शु.	शु.२ बु. २	बु.	बु. ३ च.१	च.	च.	सू.	सू.	सू. १ बु. ३	बु.	बु. २ शु. २
गण	दे.	म.	रा.	म.	दे.	म.	दे.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.
नाडी	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.

नक्षत्र	स्वा.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.	पू. षा.	उ.षा.	श्र.	ध.	श.	पू. भा.	उ. भा.	रे.	
चरण	रू. रे. रो. ता	ती. तू. ते.तो.	न. नी. नू. ने.	नो या यि. यू.	ये. यो. भ. भी.	भू ध. फ ढ.	भे. भो. ज. जी.	खी. खू खे. खो.	ग. गी. गू गे.	गो. स. सी. सू.	से. सो द. दी.	दू. थ. झ. ञ.	दे. दो. च. ची.	
राशि	तु.	तु. ३ वृ. १	वृ.	वृ	ध.	ध.	ध. १ म. ३	म.	म. २ कु. २	कुं	कु. ३ मी. १	मी.	मी.	
वर्ण	शू.	शू. ३ ब्रा १	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष. १ वै. ३	वै.	वै. २ शू. २	शू.	शू. ३ ब्रा. १	ब्रा.	ब्रा.	
वश्य	न.	न. ३ की १	की.	की.	न.	।।न. ३।।च.	च.	१।। च. २।। ज.	ज. २ न. २	न.	न. ३ ज. १	ज.	ज.	
योनि	महिष.	व्याघ्र.	मृग.	मृग.	श्वान.	वानर	नकुल.	वानर.	सिंह.	अश्व.	सिंह.	गौ.	गज.	
राशीश	शु.	शु ३ मं. १	मं.	मं.	बृ.	बृ.	बृ. १ श ३	श.	श.	श.	श. ३ बृ. १	बृ.	बृ.	
गण	दे.	रा.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	
नाडी	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	

वर और कन्याकी कुण्डली मिलानेके लिये जो वश्य, योनि, राशिकूट, योनिकूट, वर्णकूट तथा नाडी आदिका वर्णन किया गया है, इन सबको सुगमतापूर्वक जानने तथा उनके गुणोंको समझनेके लिये निम्नाङ्कित चक्रोंपर दृष्टिपात कीजिये—

शतपदचक्र

नक्षत्र	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	आश्ले	म.	पू. फा.	उ. फा.	ह.	चि.
चरण	चू. चे. चो. ला.	ली. लू ले. लो.	अ. इ उ ए.	ओ वा वी. वू.	वे. वो का. की.	कु. घ. ङ. छ.	के का. हा. हो.	हू हे. हो. डा.	डी. डू. डे. डो.	म. मी. मू. मे.	मो. टा. टी. टू.	टे. टो. पा. पी.	पू. ष. ण. ठ.	पे. पो. रा. री.
राशि	मे.	मे.	मे. १ वृ. ३	वृ.	वृ. २ मि. २	मि.	मि. ३ क १	क.	क.	सिं.	सिं.	सिं. १ क. ३	क.	क. २ तु. २
वर्ण	क्ष.	क्ष.	क्ष. १ वै. ३	वै.	वै. २ शू. २	शू.	शू. ३ ब्रा. १	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष. १ वै. ३	वै.	वै. २ शू. २
वश्य	च.	च.	च.	च.	च. २ न. २	न.	न. ३ ज. १	ज.	ज.	व.	व.	व. १ न ३	न.	न.
योनि	अश्व.	गज.	छाग.	सर्प.	सर्प.	श्वान.	मार्जा- र.	छाग.	मार्जा- र.	मूषक	मूषक.	गौ.	महिष.	व्याघ्र.
राशीश	म.	मं.	मं. १ शु. ३	शु.	शु. २ बु. २	बु.	बु. ३ च. १	च.	च.	सू.	सू.	सू. १ बु. ३	बु.	बु. २ शु. २
गण	दे.	म.	रा.	म.	दे.	म.	दे.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.
नाडी	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.

नक्षत्र	स्वा.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.	पू. षा.	उ. षा.	श्र.	ध.	श.	पू. भा.	उ. भा.	रे.
चरण	रू. रे. रो. ता	ती. तू. ते. तो.	न. नी. नू. ने.	नो या यि. यू.	ये. यो. भ. भी.	भू ध. फ ढ.	भे. भो. ज. जी.	खी. खू खे. खो.	ग. गी. गू गे.	गो. स. सी. सू.	से. सो द. दी.	दू. थ. झ. ञ.	दे. दो. च. ची.
राशि	तु.	तु. ३ वृ. १	वृ.	वृ	ध.	ध.	ध. १ म. ३	म.	म. २ कु. २	कुं	कु. ३ मी. १	मी.	मी.
वर्ण	शू.	शू. ३ ब्रा १	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष. १ वै. ३	वै.	वै. २ शू. २	शू.	शू. ३ ब्रा. १	ब्रा.	ब्रा.
वश्य	न.	न. ३ की १	की.	की.	न.	।।न. २।।च.	च.	१।।च. २।।ज.	ज. २ न. २	न.	न. ३ ज. १	ज.	ज.
योनि	महिष.	व्याघ्र.	मृग.	मृग.	श्वान.	वानर	नकुल.	वानर.	सिंह.	अश्व.	सिंह.	गौ.	गज.
राशीश	शु.	शु ३ मं. १	मं.	मं.	बृ.	बृ.	बृ. १ श ३	श.	श.	श.	श. ३ बृ. १	बृ.	बृ.
गण	दे.	रा.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.
नाडी	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.

जन्मकालिक ग्रहोंकी स्थिति तथा जन्म-नक्षत्रसम्बन्धी आठ प्रकारके कूटद्वारा वर-वधूकी कुण्डलीका मिलान किया जाता है। यदि जन्मलग्न या जन्म-राशि (चन्द्रमा) से १, ४, ७, ८ या १२ वें स्थानमें मङ्गल या अन्य पापग्रह वरकी कुण्डलीमें हों तो पत्नीके लिये और कन्याकी कुण्डलीमें हों तो वरके लिये अनिष्टकारी होते हैं। यदि दोनोंकी कुण्डलियोंमें उक्त स्थानोंमें पापग्रहकी संख्या समान हो तो उक्त दोष नहीं माना जाता है। उदाहरणके लिये—

पुनर्वसुके चतुर्थ चरणमें जन्म — पूर्वा फाल्गुनीके प्रथम चरणमें जन्म

यहाँ वरकी कुण्डलीमें ४ थे और ७ वें स्थानमें शनि और मङ्गल दो पापग्रह हैं तथा कन्याकी कुण्डलीमें भी ७ वें स्थानमें शनि, मङ्गल हैं, जिससे दोनोंके परस्पर माङ्गलिक दोष नष्ट होनेके कारण इन दोनोंका वैवाहिक सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है। यहाँ भकूटके गुण इस प्रकार हैं—

	वर	कन्या	गुण
१ वर्ण—	ब्राह्मण	क्षत्रिय	१
२ वश्य—	जलचर	वनचर	०
३ तारा—	५	६	१॥
४ योनि—	मार्जार	मूषक	०
५ ग्रह (राशीश)—	चन्द्र	सूर्य	५
६ गण—	देव	मनुष्य	६
७ भकूट—	२	१२	०
८ नाड़ी—	१	२	८
		गुणोंका योग=	२१॥

इस तरह नक्षत्रमेलकमें भी गुणोंका योग २१॥ है। अठारहसे अधिक होनेके कारण इन दोनोंका विवाह-सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य कुण्डलियोंसे भी ग्रह और नक्षत्रका मेल देखकर विवाहका निर्णय करना चाहिये।

जन्मकालिक ग्रहोंकी स्थिति तथा जन्म-नक्षत्रसम्बन्धी आठ प्रकारके कूटद्वारा वर-वधूकी कुण्डलीका मिलान किया जाता है। यदि जन्मलग्न या जन्म-राशि (चन्द्रमा) से १, ४, ७, ८ या १२ वें स्थानमें मङ्गल या अन्य पापग्रह वरकी कुण्डलीमें हों तो पत्नीके लिये और कन्याकी कुण्डलीमें हों तो वरके लिये अनिष्टकारी होते हैं। यदि दोनोंकी कुण्डलियोंमें उक्त स्थानोंमें पापग्रहकी संख्या समान हो तो उक्त दोष नहीं माना जाता है। उदाहरणके लिये—
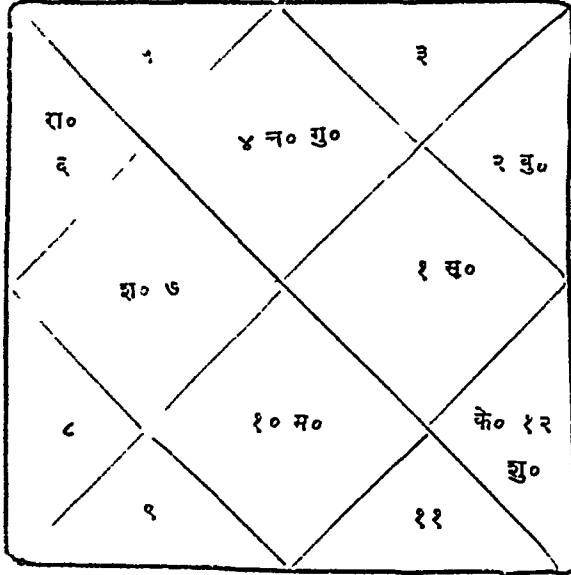
वरकी कुण्डली | कन्याकी कुण्डली

पुनर्वसुके चतुर्थ चरणमें जन्म | पूर्वा फाल्गुनीके प्रथम चरणमें जन्म

यहाँ वरकी कुण्डलीमें ४ थे और ७ वें स्थानमें शनि और मङ्गल दो पापग्रह हैं तथा कन्याकी कुण्डलीमें भी ७ वें स्थानमें शनि, मङ्गल हैं, जिससे दोनोंके परस्पर माङ्गलिक दोष नष्ट होनेके कारण इन दोनोंका वैवाहिक सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है। यहाँ भकूटके गुण इस प्रकार हैं—

	वर	कन्या	गुण
१ वर्ण—	ब्राह्मण	क्षत्रिय	१
२ वश्य—	जलचर	वनचर	०
३ तारा—	५	६	१॥
४ योनि—	मार्जार	मूषक	०
५ ग्रह (राशीश)—	चन्द्र	सूर्य	५
६ गण—	देव	मनुष्य	६
७ भकूट—	२	१२	०
८ नाड़ी—	१	२	८
		गुणोंका योग=	२१॥

इस तरह नक्षत्रमेलापकमें भी गुणोंका योग २१॥ है। अठारहसे अधिक होनेके कारण इन दोनोंका विवाह-सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य कुण्डलियोंसे भी ग्रह और नक्षत्रका मेल देखकर विवाहका निर्णय करना चाहिये।

अनिष्ट फल देनेवाले और शुभ ग्रह धनकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (३) तृतीय भावमें शुभ और पाप सब ग्रह पुत्र-पौत्रादि सुखको बढानेवाले होते हैं। (४) चतुर्थ भावमें शुभ ग्रह शुभ-फल और पापग्रह पाप-फलको देते हैं। (५) पञ्चम भावमें पापग्रह कष्टदायक और शुभ ग्रह पुत्रादि सुख देनेवाले होते हैं। (६) षष्ठ भावमें शुभ ग्रह शत्रुको घटानेवाले और पापग्रह शत्रुके लिये घातक होते हैं। (७) सप्तम भावमें पापग्रह रोगकारक और शुभ ग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (८) अष्टम भावमें शुभ ग्रह और पापग्रह सभी कर्ता (यजमान)के लिये घातक होते हैं। (९) नवम भावमें पापग्रह हो तो वे धर्मको नष्ट करनेवाले हैं और शुभ ग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (१०) दशम भावमें पापग्रह दुःखदायक और शुभ ग्रह सुयशकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (११) एकादश स्थानमें पाप और शुभ सब ग्रह सब प्रकारसे लाभकारक ही होते हैं। (१२) लग्नसे द्वादश स्थानमें पाप या शुभ सभी ग्रह व्यय (खर्च) को बढानेवाले होते हैं ॥ ५३१–५३६ ॥

(प्रतिष्ठामें अन्य विशेष बात–) प्रतिष्ठा करानेवाले पुरोहित (या आचार्य) को अर्थज्ञान न हो तो यजमानका अनिष्ट होता है। मन्त्रोंका अशुद्ध उच्चारण हो तो ऋत्विजों (यज्ञ करानेवाले) का और कर्म विधिहीन हो तो कर्ताकी स्त्रीका अनिष्ट होता है। इसलिये नारद! देव-प्रतिष्ठाके समान दूसरा शत्रु भी नहीं है। यदि लग्नमें अधिक गुण हों और थोड़े-से दोष हों तो उसमें देवताओंकी प्रतिष्ठा कर लेनी चाहिये। इससे कर्ता (यजमान) के अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि होती है। मुने! अब मैं संक्षेपसे ग्राम, मन्दिर तथा गृह आदिके निर्माणकी बात बताता हूँ ॥ ५३७–५३९ ॥

(गृहनिर्माणके विषयमें ज्ञातव्य बातें–) गृह आदि बनाना हो तो पहले गन्ध, वर्ण, रस तथा आकृतिके द्वारा क्षेत्र (भूमि) की परीक्षा कर लेनी चाहिये। यदि उस स्थानकी मिट्टीमें मधु (शहद) के समान गन्ध हो तो ब्राह्मणोंके, पुष्पसदृश गन्ध हो तो क्षत्रियोंके, आम्ल (खटाई) के समान गन्ध हो तो वैश्योंके और मांसकी-सी गन्ध हो तो वह स्थान शूद्रोंके बसनेयोग्य जानना चाहिये। वहाँकी मिट्टीका रंग श्वेत हो तो ब्राह्मणोंके, लाल हो तो क्षत्रियोंके, पीत (पीला) हो तो वैश्योंके और कृष्ण (काला) हो तो वह शूद्रोंके निवासके योग्य है। यदि वहाँकी मिट्टीका स्वाद मधुर हो तो ब्राह्मणोंके, कड़ुआ (मिर्चके समान) हो तो क्षत्रियोंके, तिक्त हो तो वैश्योंके और कषाय (कसैला) स्वाद हो तो उस स्थानको शूद्रोंके निवास करने योग्य समझना चाहिये ॥ ५४०-५४१ ॥ ईशान, पूर्व और उत्तर दिशामें प्लव (नीची) भूमि सबके लिये अत्यन्त वृद्धि देनेवाली होती है। अन्य दिशाओंमें प्लव (नीची) भूमि सबके लिये हानि करनेवाली होती है ॥ ५४२ ॥

(गृहभूमि-परीक्षा–) जिस स्थानमें घर बनाना हो वहाँ अरत्नि (कोहिनीसे कनिष्ठा अगुलितक) के बराबर लम्बाई, चौड़ाई और गहराई करके कुण्ड बनावे। फिर उसे उसी खोदी हुई मिट्टीसे भरे। यदि भरनेसे मिट्टी शेष बच जाय तो उस स्थानमें वास करनेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। यदि मिट्टी कम हो जाय तो वहाँ रहनेसे सम्पत्तिकी हानि होती है। यदि सारी मिट्टीसे वह कुण्ड भर जाय तो मध्यम फल समझना चाहिये ॥ ५४३ ॥ अथवा उसी प्रकार अरत्निके मापका कुण्ड बनाकर सायंकाल उसको जलसे पूरित कर दे और प्रातःकाल देखे; यदि कुण्डमें जल अवशिष्ट हो तो उस स्थानमें वृद्धि होगी। यदि कीचड़ (गीली मिट्टी) ही बची हो तो मध्यम फल है और यदि कुण्डकी भूमिमें दरार पड गयी हो तो उस स्थानमें वास करनेसे हानि होगी ॥ ५४४ ॥

मुने! इस प्रकार निवास करनेयोग्य स्थानकी भलीभाँति परीक्षा करके उक्त लक्षणयुक्त भूमिमें दिक्साधन (दिशाओं-का ज्ञान) करनेके लिये समतल भूमिमें वृत्त (गोल रेखा) बनावे। वृत्तके मध्य भागमें द्वादशाङ्गुल शङ्कु (बारह विभाग या पर्वसे युक्त एक सीधी लकडी) की स्थापना करे और दिक्साधनविधिसे दिशाओंका ज्ञान करे। फिर कर्ताके नामके अनुसार षड्वर्ग शुद्ध क्षेत्रफल (वास्तुभूमिकी लम्बाई-चौड़ाईका गुणनफल) ठीक करके अभीष्ट लम्बाई-चौड़ाईके बराबर (दिशासाधित रेखानुसार) चतुर्भुज बनावे। उस चतुर्भुज रेखामार्गपर सुन्दर प्राकार (चहारदीवारी) बनावे। लम्बाई और चौड़ाईमें पूर्व आदि चारों दिशाओंमें आठ-आठ द्वारके भाग होते हैं। प्रदक्षिणक्रमसे उनके निम्नाङ्कित फल हैं। (जैसे पूर्वभागमें उत्तरसे दक्षिणतक) १. हानि,

अनिष्ट फल देनेवाले और शुभ ग्रह धनकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (३) तृतीय भावमें शुभ और पाप सब ग्रह पुत्र-पौत्रादि सुखको बढानेवाले होते हैं। (४) चतुर्थ भावमें शुभ ग्रह शुभ-फल और पापग्रह पाप-फलको देते हैं। (५) पञ्चम भावमें पापग्रह कष्टदायक और शुभ ग्रह पुत्रादि सुख देनेवाले होते हैं। (६) षष्ठ भावमें शुभ ग्रह शत्रुको बढानेवाले और पापग्रह शत्रुके लिये घातक होते हैं। (७) सप्तम भावमें पापग्रह रोगकारक और शुभ ग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (८) अष्टम भावमें शुभ ग्रह और पापग्रह सभी कर्ता (यजमान)के लिये घातक होते हैं। (९) नवम भावमें पापग्रह हों तो वे धर्मको नष्ट करनेवाले हैं और शुभ ग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (१०) दशम भावमें पापग्रह दुःखदायक और शुभ ग्रह सुयशकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (११) एकादश स्थानमें पाप और शुभ सब ग्रह सब प्रकारसे लाभकारक ही होते हैं। (१२) लग्नसे द्वादश स्थानमें पाप या शुभ सभी ग्रह व्यय (खर्च) को बढानेवाले होते हैं॥ ५३१–५३६ ॥

(प्रतिष्ठामें अन्य विशेष बात–) प्रतिष्ठा करानेवाले पुरोहित (या आचार्य) को अर्थज्ञान न हो तो यजमानका अनिष्ट होता है। मन्त्रोंका अशुद्ध उच्चारण हो तो ऋत्विजों (यज्ञ करानेवाले) का और कर्म विधिहीन हो तो कर्ताकी स्त्रीका अनिष्ट होता है। इसलिये नारद! देव-प्रतिष्ठाके समान दूसरा शत्रु भी नहीं है। यदि लग्नमें अधिक गुण हों और थोड़े-से दोष हों तो उसमें देवताओंकी प्रतिष्ठा कर लेनी चाहिये। इससे कर्ता (यजमान) के अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि होती है। मुने! अब मैं संक्षेपसे ग्राम, मन्दिर तथा गृह आदिके निर्माणकी बात बताता हूँ॥ ५३७–५३९ ॥

(गृहनिर्माणके विषयमें ज्ञातव्य बातें–) गृह आदि बनाना हो तो पहले गन्ध, वर्ण, रस तथा आकृतिके द्वारा क्षेत्र (भूमि) की परीक्षा कर लेनी चाहिये। यदि उस स्थानकी मिट्टीमें मधु (शहद) के समान गन्ध हो तो ब्राह्मणोंके, पुष्पसदृश गन्ध हो तो क्षत्रियोंके, आम्ल (खटाई) के समान गन्ध हो तो वैश्योंके और मासकी-सी गन्ध हो तो वह स्थान शूद्रोंके बसनेयोग्य जानना चाहिये। वहाँकी मिट्टीका रंग श्वेत हो तो ब्राह्मणोंके, लाल हो तो क्षत्रियोंके, पीत (पीला) हो तो वैश्योंके और कृष्ण (काला) हो तो वह शूद्रोंके निवासके योग्य है। यदि वहाँकी मिट्टीका स्वाद मधुर हो तो ब्राह्मणोंके, कड़ुआ (मिर्चके समान) हो तो क्षत्रियोंके, तिक्त हो तो वैश्योंके और कषाय (कसैला) स्वाद हो तो उस स्थानको शूद्रोंके निवास करने योग्य समझना चाहिये॥ ५४०-५४१ ॥ ईशान, पूर्व और उत्तर दिशामें प्लव (नीची) भूमि सबके लिये अत्यन्त वृद्धि देनेवाली होती है। अन्य दिशाओंमें प्लव (नीची) भूमि सबके लिये हानि करनेवाली होती है॥ ५४२ ॥

(गृहभूमि-परीक्षा–) जिस स्थानमें घर बनाना हो वहाँ अरत्नि (कोहिनीसे कनिष्ठा अंगुलितक) के बराबर लम्बाई, चौड़ाई और गहराई करके कुण्ड बनावे। फिर उसे उसी खोदी हुई मिट्टीसे भरे। यदि भरनेसे मिट्टी शेष बच जाय तो उस स्थानमें वास करनेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। यदि मिट्टी कम हो जाय तो वहाँ रहनेसे सम्पत्तिकी हानि होती है। यदि सारी मिट्टीसे वह कुण्ड भर जाय तो मध्यम फल समझना चाहिये॥ ५४३ ॥ अथवा उसी प्रकार अरत्निके मापका कुण्ड बनाकर सायंकाल उसको जलसे पूरित कर दे और प्रातःकाल देखे; यदि कुण्डमें जल अवशिष्ट हो तो उस स्थानमें वृद्धि होगी। यदि कीचड़ (गीली मिट्टी) ही बची हो तो मध्यम फल है और यदि कुण्डकी भूमिमें दरार पड गयी हो तो उस स्थानमें वास करनेसे हानि होगी॥ ५४४ ॥

मुने! इस प्रकार निवास करनेयोग्य स्थानकी भलीभाँति परीक्षा करके उक्त लक्षणयुक्त भूमिमें दिक्साधन (दिशाओं-का ज्ञान) करनेके लिये समतल भूमिमें वृत्त (गोल रेखा) बनावे। वृत्तके मध्य भागमें द्वादशाङ्गुल शङ्कु (बारह विभाग या पर्वसे युक्त एक सीधी लकड़ी) की स्थापना करे और दिक्साधनविधिसे दिशाओंका ज्ञान करे। फिर कर्ताके नामके अनुसार षड्वर्ग शुद्ध क्षेत्रफल (वास्तुभूमिकी लम्बाई-चौड़ाईका गुणनफल) ठीक करके अभीष्ट लम्बाई-चौड़ाईके बराबर (दिशासाधित रेखानुसार) चतुर्भुज बनावे। उस चतुर्भुज रेखामार्गपर सुन्दर प्राकार (चहारदीवारी) बनावे। लम्बाई और चौड़ाईमें पूर्व आदि चारों दिशाओंमें आठ-आठ द्वारके भाग होते हैं। प्रदक्षिणक्रमसे उनके निम्नाङ्कित फल हैं। (जैसे पूर्वभागमें उत्तरसे दक्षिणतक) १. हानि,

और धन-संख्या अधिक हो तो शुभ माने (अर्थात् उस ग्राम या उस दिशामें बनाया हुआ घर रहने योग्य है, ऐसा समझे)* ॥ ५६१-५६१क॥

इसी प्रकार साधकके नक्षत्रसे साध्यके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो उसको चारसे गुणा करके गुणनफलमें सातसे भाग दे तो शेष साधकका धन होता है ॥ ५६२ ॥

(वास्तुभूमि तथा घरके धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार और अंशके ज्ञानका साधन—) वास्तुभूमि या घरकी चौड़ाईको लम्बाईसे गुणा करनेपर गुणनफल 'पद' कहलाता है । उस (पद) को (६ स्थानोंमें रखकर) क्रमशः ८, ३, ९, ८, ९, ६ से गुणा करे और गुणनफलमें क्रमशः १२, ८, ८, २७, ७, ९ से भाग दे । फिर जो शेष बचें, वे क्रमशः धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार तथा अंश होते हैं । धन अधिक हो तो वह घर शुभ होता है । यदि ऋण अधिक हो तो अशुभ होता है तथा विषम (१, ३, ५, ७) आय शुभ और सम (२, ४, ६, ८) आय अशुभ होता है । घरका जो नक्षत्र हो, वहाँसे अपने नामके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो, उसमे ९ से भाग दे । फिर यदि शेष (तारा) ३ बचे तो धनका नाश होता है । ५ बचे तो यशकी हानि होती है और ७ बचे तो गृहकर्ताका ही मरण होता है । घरकी राशि और अपनी राशि गिननेपर परस्पर २, १२ हो तो धनहानि होती है; ९, ५ हो तो पुत्रकी हानि होती है और ६, ८ हो तो अनिष्ट होता है; अन्य संख्या हो तो शुभ समझना चाहिये । सूर्य और मङ्गलके वार तथा अंश हो तो उस घरमें अग्निभय होता है । अन्य वार-अंश हो तो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी सिद्धि होती है ।† ॥ ५६३—५६७ ॥

(वास्तु पुरुषकी स्थिति—) भादों आदि तीन-तीन मासोंमें क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंकी ओर मस्तक करके बायीं करवटसे सोये हुए महासर्पस्वरूप 'चर' नामक वास्तुपुरुष प्रदक्षिणक्रमसे विचरण करते रहते हैं । जिस समय जिस दिशामें वास्तुपुरुषका मस्तक हो, उस समय उसी दिशामे घरका दरवाजा बनाना चाहिये । मुखसे विपरीत दिशामें घरका दरवाजा बनानेसे रोग, शोक और भय होते हैं । किंतु यदि घरमें चारों दिशाओंमे द्वार हो तो यह दोष नहीं होता है ॥ ५६८—५७० ॥

गृहारम्भकालमें नींवके भीतर हाथभरके गड्ढेमे स्थापित करनेके लिये सोना, पवित्र स्थानकी रेणु (धूलि), धान्य और सेवारसहित ईंट घरके भीतर संग्रह करके रक्खे । घरकी जितनी लंबाई हो, उसके मध्यभागमे वास्तुपुरुषकी नाभि रहती है । उसके तीन अङ्गुल नीचे (वास्तु पुरुषके पुच्छभागकी ओर) कुक्षि रहती है । उसमें शङ्कुका न्यास करनेसे पुत्र आदिकी वृद्धि होती है ॥ ५७१-५७२ ॥

(शङ्कुप्रमाण—) खदिर (खैर), अर्जुन, शाल (शाखू), युगपत्र (कचनार), रक्तचन्दन, पलाश, रक्तशाल, विशाल आदि वृक्षोंमेंसे किसीकी लकड़ीसे शङ्कु बनता है । ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये क्रमशः २४, २३, २० और १६ अङ्गुलके शङ्कु होने चाहिये । उस शङ्कुके बराबर-बराबर तीन भाग करके ऊपरवाले भागमें चतुष्कोण, मध्यवाले भागमें अष्टकोण और नीचेवाले (तृतीय) भागमे बिना कोणका (गोलाकार) उसका स्वरूप होना उचित है । इस प्रकार उत्तम लक्षणोंसे युक्त कोमल और छेदरहित शङ्कु शुभ दिनमें बनावे । उसको षड्वर्गद्वारा शुद्ध सूत्रसे सूत्रित * भूमि (गृहक्षेत्र) में मृदु,

---

* उदाहरण—विचार करना है कि 'जयनारायण' नामक व्यक्तिको गोरखपुरमें बसने या व्यापार करनेमें किस प्रकारका लाभ होगा ? तो साध्य (गोरखपुर) की वर्गसंख्या २ के बायें भागमें साधक (जयनारायण) का वर्गसंख्या ३ रखनेसे ३२ हुआ । इसमें ८ से भाग देनेपर शून्य अर्थात् ८ बचा, यह साधक (जयनारायण) का धन हुआ तथा इससे विपरीत वर्गसंख्या २३ को रखकर इसमें ८ का भाग देनेसे शेष ७ बचा । यह साधक (जयनारायण) का ऋण हुआ । इस प्रकार ऋण ७ से धन ८ अधिक है; अतः जयनारायणके लिये गोरखपुर निवास करनेयोग्य है—यह सिद्ध हुआ । तात्पर्य यह कि जयनारायणको गोरखपुरमें ८ लाभ और ७ खर्च होता रहेगा ।

† उदाहरण—मान लीजिये, घरकी लंबाई २५ हाथ और चौड़ाई १५ हाथ है तो इनको परस्पर गुणा करनेसे ३७५ यह पद हुआ । इसको ८ से गुणा करनेपर गुणनफल ३००० हुआ । इसमें १२ का भाग देनेपर शेष ० अर्थात् १२ धन हुआ । फिर पदको ३ से गुणा किया तो ११२५ हुआ । इसमें ८ से भाग देकर शेष ५ ऋण हुआ । पुन. पद ३७५ को ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ । इसमें ८ से भाग देनेपर शेष ७ आय हुआ । इसी तरह पदको ८ से गुणा करनेपर ३००० हुआ । इसमें २७ से भाग दिया तो शेष ३ नक्षत्र हुआ । फिर पदको ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ । इसमें ७ से भाग देनेपर शेष १ वार हुआ । पुन. पद ३७५ को ६ से गुणा किया तो २२५० हुआ । इसमें ९ से भाग देनेपर शेष ० अर्थात् ९ अंश हुआ । यहाँ सब वस्तुएँ शुभ हैं, केवल वार १ रवि हुआ । इसलिये इस प्रकारके घरमें सब कुछ रहते हुए भी अग्निका भय रहेगा; ऐसा समझना चाहिये, इसलिये ऐसा पद देखकर लेना चाहिये, जिसमें सर्वथा शुभ हो ।

* पूर्वोक्त आय और षड्वर्गादिसे शोधित गृहके चारों ओरकी लंबाई-चौड़ाईके प्रमाण-तुल्य सूत्रसे घिरी हुई भूमिको ही यहाँ सूत्रित कहा है ।

और धन-संख्या अधिक हो तो शुभ माने (अर्थात् उस ग्राम या उस दिशामें बनाया हुआ घर रहने योग्य है, ऐसा समझे)* ॥ ५६१-५६१क॥

इसी प्रकार साधकके नक्षत्रसे साध्यके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो उसको चारसे गुणा करके गुणनफलमें सातसे भाग दे तो शेष साधकका धन होता है ॥ ५६२ ॥

(वास्तुभूमि तथा घरके धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार और अंशके ज्ञानका साधन—) वास्तुभूमि या घरकी चौड़ाईको लम्बाईसे गुणा करनेपर गुणनफल 'पद' कहलाता है । उस (पद) को (६ स्थानोंमें रखकर) क्रमशः ८, ३, ९, ८, ९, ६ से गुणा करे और गुणनफलमें क्रमशः १२, ८, ८, २७, ७, ९ से भाग दे । फिर जो शेष बचें, वे क्रमशः धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार तथा अंश होते हैं । धन अधिक हो तो वह घर शुभ होता है । यदि ऋण अधिक हो तो अशुभ होता है तथा विषम (१, ३, ५, ७) आय शुभ और सम (२, ४, ६, ८) आय अशुभ होता है । घरका जो नक्षत्र हो, वहाँसे अपने नामके नक्षत्र-तक गिनकर जो संख्या हो, उसमे ९ से भाग दे । फिर यदि शेष (तारा) ३ बचे तो धनका नाश होता है । ५ बचे तो यशकी हानि होती है और ७ बचे तो गृहकर्ताका ही मरण होता है । घरकी राशि और अपनी राशि गिननेपर परस्पर २, १२ हों तो धनहानि होती है; ९,५ हो तो पुत्रकी हानि होती है और ६, ८ हो तो अनिष्ट होता है; अन्य संख्या हो तो शुभ समझना चाहिये । सूर्य और मङ्गलके वार तथा अंश हों तो उस घरमें अग्निभय होता है । अन्य वार-अंश हो तो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी सिद्धि होती है ।†॥५६३—५६७॥

(वास्तु पुरुषकी स्थिति—) भादों आदि तीन-तीन मासोंमें क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंकी ओर मस्तक करके बायीं करवटसे सोये हुए महासर्पस्वरूप 'चर' नामक वास्तुपुरुष प्रदक्षिणक्रमसे विचरण करते रहते हैं । जिस समय जिस दिशामें वास्तुपुरुषका मस्तक हो, उस समय उसी दिशामे घरका दरवाजा बनाना चाहिये । मुखसे विपरीत दिशामें घरका दरवाजा बनानेसे रोग, शोक और भय होते हैं । किंतु यदि घरमें चारों दिशाओंमे द्वार हो तो यह दोष नहीं होता है ॥ ५६८—५७० ॥

गृहारम्भकालमें नींवके भीतर हाथभरके गड्ढेमे स्थापित करनेके लिये सोना, पवित्र स्थानकी रेणु (धूलि), धान्य और सेवारसहित ईंट घरके भीतर संग्रह करके रक्खे । घरकी जितनी लंबाई हो, उसके मध्यभागमे वास्तुपुरुषकी नाभि रहती है । उसके तीन अङ्गुल नीचे (वास्तु पुरुषके पुच्छ-भागकी ओर) कुक्षि रहती है । उसमें शङ्कुका न्यास करनेसे पुत्र आदिकी वृद्धि होती है ॥ ५७१-५७२ ॥

(शङ्कुप्रमाण—) खदिर (खैर), अर्जुन, शाल (शालू), युगपत्र (कचनार), रक्तचन्दन, पलाश, रक्त-शाल, विशाल आदि वृक्षोंमेंसे किसीकी लकड़ीसे शङ्कु बनता है । ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये क्रमशः २४, २२, २० और १६ अङ्गुलके शङ्कु होने चाहिये । उस शङ्कुके बराबर-बराबर तीन भाग करके ऊपरवाले भागमें चतुष्कोण, मध्यवाले भागमें अष्टकोण और नीचेवाले (तृतीय) भागमे बिना कोणका (गोलाकार) उसका स्वरूप होना उचित है । इस प्रकार उत्तम लक्षणोंसे युक्त कोमल और छेदरहित शङ्कु शुभ दिनमें बनावे । उसको षड्वर्गद्वारा शुद्ध सूत्रसे सूत्रित * भूमि (गृहक्षेत्र) में मृदु,

---

* उदाहरण—विचार करना है कि 'जयनारायण' नामक व्यक्तिको गोरखपुरमें बसने या व्यापार करनेमें किस प्रकारका लाभ होगा? तो साध्य (गोरखपुर) की वर्गसंख्या २ के बायें भागमे साधक (जयनारायण) का वर्गसंख्या ३ रखनेसे ३२ हुआ । इसमें ८ से भाग देनेपर शून्य अर्थात् ८ बचा, यह साधक (जयनारायण) का धन हुआ तथा इससे विपरीत वर्गसंख्या २३ को रखकर इसमे ८ का भाग देनेसे शेष ७ बचा । यह साधक (जयनारायण) का ऋण हुआ । यहाँ ऋण ७ से धन ८ अधिक है; अतः जयनारायणके लिये गोरखपुर निवास करनेयोग्य है—यह सिद्ध हुआ । तात्पर्य यह कि जयनारायणको गोरखपुरमें ८ लाभ और ७ खर्च होना रहेगा ।

† उदाहरण—मान लीजिये, घरकी लंबाई २५ हाथ और चौड़ाई १५ हाथ है तो इनको परस्पर गुणा करनेसे ३७५ यह पद हुआ । इसको ८ से गुणा करनेपर गुणनफल ३००० हुआ । इसमें १२ का भाग देनेपर शेष ० अर्थात् १२ धन हुआ । फिर पदको ३ से गुणा किया तो ११२५ हुआ । इसमें ८से भाग देकर शेष ५ ऋण हुआ । पुन. पद ३७५ को ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ । इसमें ८ से भाग देनेपर शेष ७ आय हुआ । इसी तरह पदको ८ से गुणा करनेपर ३००० हुआ । इसमें २७ से भाग दिया तो शेष ३ नक्षत्र हुआ । फिर पदको ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ । इसमें ७ से भाग देनेपर शेष १ वार हुआ । पुन. पद ३७५ को ६ से गुणा किया तो २२५० हुआ । इसमें ९ से भाग देनेपर शेष ० अर्थात् ९ अंश हुआ । यहाँ सब वस्तुएँ शुभ हैं, केवल वार १ रवि हुआ । इसलिये इस प्रकारके घरमें सब कुछ रहते हुए भी अग्निका भय रहेगा; ऐसा समझना चाहिये, इसलिये ऐसा पद देखकर लेना चाहिये, जिसमें सर्वथा शुभ हो ।

* पूर्वोक्त आय और षड्वर्गादिसे शोधित गृहके चारों ओरकी लंबाई-चौड़ाईके प्रमाण-तुल्य सूत्रसे घिरी हुई भूमिको ही यहाँ सूत्रित कहा है ।

रखनेका घर, उत्तरमें देवताओंका गृह और ईशानकोणमें जलगृह (स्नान) बनाना चाहिये तथा आग्नेयकोणसे आरम्भ करके उक्त दो-दो घरोंके बीच क्रमशः मन्थन (दूध-दहीसे घृत निकालने) का, घृत रखनेका, पैखानेका, विद्याभ्यास-का, स्त्रीसहवासका, औषधका और शृङ्गारकी सामग्री रखनेका घर बनाना शुभ कहा गया है। अतः इन सब घरोंमें उन-उन सब वस्तुओंको रखना चाहिये ॥ ५८५—५८८½ ॥

(आयोंके नाम और दिशा–) पूर्वादि आठ दिशाओं-में क्रमसे ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर (गदहा), गज और ध्वाङ्क्ष (काक)—ये आठ आय होते हैं॥ ५८९½॥

(घरके समीप निन्द्य वृक्ष–)पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा तथा काँटेवाले और दुग्धवाले सब वृक्ष, पीपल, कपित्थ (कैथ), अगस्त्य वृक्ष, सिन्धुवार (निर्गुण्डी) और इमली—ये सब वृक्ष घरके समीप निन्दित कहे गये हैं। विशेषतः घरके दक्षिण और पश्चिम-भागमें ये सब वृक्ष हों तो धन आदिका नाश करनेवाले होते हैं ॥ ५९०-५९१½ ॥

(गृह-प्रमाण–)घरके स्तम्भ (खम्भे) घरके पैर होते हैं। इसलिये वे समसंख्या (४, ६, ८ आदि) में होनेपर ही उत्तम कहे गये हैं; विषम संख्यामें नहीं। घरको न तो अधिक ऊँचा ही करना चाहिये, न अधिक नीचा ही। इसलिये अपनी इच्छा (निर्वाह) के अनुसार भित्ति (दीवार) की ऊँचाई करनी चाहिये। घरके ऊपर जो घर (दूसरा मंजिल) बनाया जाता है, उसमें भी इस प्रकारका विचार करना चाहिये। घरोंकी ऊँचाईके प्रमाण आठ प्रकारके कहे गये हैं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१ पाञ्चाल, २ वैदेह, ३ कौरव, ४ कुजन्यक[1], ५मागध, ६ शूरसेन, ७ गान्धार और ८ आवन्तिक। जहाँ घरकी ऊँचाई उसकी चौड़ाईसे सवागुनी अधिक होती है, वह भूतलसे ऊपरतकका पाञ्चालमान कहलाता है, फिर उसी ऊँचाईको उत्तरोत्तर सवागुनी बढ़ानेसे वैदेह आदि सब मान होते हैं। इनमें पाञ्चालमान तो सर्वसाधारण लोगोंके लिये शुभ है। ब्राह्मणोंके लिये आवन्तिक मान, क्षत्रियोंके लिये गान्धारमान तथा वैश्योंके लिये कौजन्यमान है। इस प्रकार ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये यथोत्तर गृहमान समझना चाहिये तथा दूसरे मंजिल और तीसरे मंजिलके मकानमें भी पानीका बहाव पहले बताये अनुसार ही बनाना चाहिये[1] ॥५९२–५९८॥

(घरमें प्रशस्त आय–)ध्वज अथवा गज आयमें ऊँट और हाथीके रहनेके लिये घर बनवावे तथा अन्य सब पशुओंके घर भी उसी (ध्वज और गज) आयमें बनाने चाहिये। द्वार, शय्या, आसन, छाता और ध्वजा—इन सबोंके निर्माणके लिये सिंह, वृष अथवा ध्वज आय होने चाहिये ॥ ५९९½ ॥

अब मैं नूतनगृहमें प्रवेशके लिये वास्तुपूजाकी विधि बताता हूँ—घरके मध्यभागमें तन्दुल (चावल) पर पूर्वसे पश्चिमकी ओर एक-एक हाथ लम्बी दस रेखाएँ खींचे। फिर उत्तरसे दक्षिणकी ओर भी उतनी ही लम्बी-चौड़ी दस रेखाएँ बनावे। इस प्रकार उसमें बराबर-बराबर ८१ पद (कोठ) होते हैं। उनमें आगे बताये जानेवाले ४५ देवताओंका यथोक्त स्थानमें नामोल्लेख करे। बत्तीस देवता बाहर (प्रान्तके कोष्ठोंमें) और तेरह देवता भीतर पूजनीय होते हैं। उन ४५ देवताओंके स्थान और नामका क्रमशः वर्णन करता हूँ। किनारेके बत्तीस कोष्ठोंमें ईशान कोणसे आरम्भ करके क्रमशः बत्तीस देवता पूज्य हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—कृपीट योनि(अग्नि) १, पर्जन्य २, जयन्त ३, इन्द्र ४, सूर्य ५, सत्य ६, भृश ७, आकाश ८, वायु ९, पूषा १०, अनृत (वितथ) ११, गृहक्षत[2]१२, यम १३, गन्धर्व १४, भृङ्गराज १५, मृग १६, पितर १७, दौवारिक १८, सुग्रीव १९, पुष्प-दन्त[3] २०, वरुण २१, असुर २२, शेष २३, राजयक्ष्मा २४, रोग २५, अहि २६, मुख्य २७, भल्लाटक २८, सोम २९, सर्प ३०, अदिति ३१ और दिति ३२—ये चारों किनारोंके देवता हैं। ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायुकोणके देवोंके समीप क्रमशः आप ३३, सावित्र ३४, जय ३५, तथा रुद्र ३६ के पद हैं। ब्रह्माके चारों ओर पूर्व आदि आठों दिशाओंमें क्रमशः अर्यमा ३७, सविता ३८, विवस्वान् ३९, विबुधाधिप ४०, मित्र ४१, राजयक्ष्मा ४२, पृथ्वीधर ४३, आपवत्स ४४ हैं और मध्यके नव पदोंमें ब्रह्माजी (४५) को स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार सब पदोंमें ये पैंतालीस देवता पूजनीय होते हैं। जैसे ईशान-कोणमें

१. मूलमें 'कुजन्यकम्' पाठ है; परन्तु कुजन्य कोई प्रसिद्ध देश नहीं है; इसलिये प्रतीत होता है कि यहाँ 'कान्यकुब्जकम्' के स्थानमें 'कुब्जकन्यकम्' था। फिर लेखकादिके दोषसे 'कुजन्यकम्' हो गया है।

१. पूर्व या उत्तर प्लवभूमिमें घर बनाना प्रशस्त कहा गया है। यदि नीचेके तल्लेमें पूर्व दिशामें जलस्राव हो तो ऊपरके मंजिलमें भी पूर्व दिशामें ही जलस्राव होना चाहिये। २-३. अन्य संहितामें १२ वाँ गृहक्षत, २४ वाँ पापयक्ष्मा कहा गया है।

रखनेका घर, उत्तरमें देवताओंका गृह और ईशानकोणमें स्नानागृह (स्थान) बनाना चाहिये तथा आग्नेयकोणसे आरम्भ करके उक्त दो-दो वर्गोंके बीच क्रमशः मन्थन (दूध-दहीसे घृत निकालने) का, घृत रखनेका, पैखानेका, विद्याभ्यास-का, स्त्रीसहवासका, औषधका और शृङ्गारकी सामग्री रखनेका घर बनाना शुभ कहा गया है। अतः इन सब घरोंमें उन-उन सब वस्तुओंको रखना चाहिये ॥ ५८५—५८८½ ॥

(आयोंके नाम और दिशा–) पूर्वादि आठ दिशाओं-में क्रमसे ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर (गदहा), गज और ध्वाङ्क्ष (काक)—ये आठ आय होते हैं॥ ५८९½॥

(घरके समीप निन्द्य वृक्ष–)पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा तथा काँटेवाले और दुग्धवाले सब वृक्ष, पीपल, कपित्थ (कैथ), अगस्त्य वृक्ष, सिन्धुवार (निर्गुण्डी) और इमली—ये सब वृक्ष घरके समीप निन्दित कहे गये हैं। विशेषतः घरके दक्षिण और पश्चिम-भागमें ये सब वृक्ष हों तो धन आदिका नाश करनेवाले होते हैं ॥ ५९०-५९१½ ॥

(गृह-प्रमाण–)घरके स्तम्भ (खम्भे) घरके पैर होते हैं। इसलिये वे समसंख्या (४, ६, ८ आदि) में होनेपर ही उत्तम कहे गये हैं; विषम संख्यामें नहीं। घरको न तो अधिक ऊँचा ही करना चाहिये, न अधिक नीचा ही। इसलिये अपनी इच्छा (निर्वाह) के अनुसार भित्ति (दीवार) की ऊँचाई करनी चाहिये। घरके ऊपर जो घर (दूसरा मंजिल) बनाया जाता है, उसमें भी इस प्रकारका विचार करना चाहिये। घरोंकी ऊँचाईके प्रमाण आठ प्रकारके कहे गये हैं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१ पाञ्चाल, २ वैदेह, ३ कौरव, ४ कुजन्यक[1], ५मागध, ६ शूरसेन, ७ गान्धार और ८ आवन्तिक। जहाँ घरकी ऊँचाई उसकी चौड़ाईसे सवागुनी अधिक होती है, वह भूतलसे ऊपरतकका पाञ्चालमान कहलाता है, फिर उसी ऊँचाईको उत्तरोत्तर सवागुनी बढ़ानेसे वैदेह आदि सब मान होते हैं। इनमें पाञ्चालमान तो सर्वसाधारण जनोंके लिये शुभ है। ब्राह्मणोंके लिये आवन्तिक मान, क्षत्रियोंके लिये गान्धारमान तथा वैश्योंके लिये कौजन्यमान है। इस प्रकार ब्राह्मणादि वर्गोंके लिये यथोत्तर गृहमान समझना चाहिये तथा दूसरे मंजिल और तीसरे मंजिलके मकानमें भी पानीका बहाव पहले बताये अनुसार ही बनाना चाहिये ॥५९२–५९८॥

(घरमें प्रशस्त आय–)ध्वज अथवा गज आयमें ऊँट और हाथीके रहनेके लिये घर बनवावे तथा अन्य सब पशुओंके घर भी उसी (ध्वज और गज) आयमें बनाने चाहिये। द्वार, शय्या, आसन, छाता और ध्वजा—इन सबोंके निर्माणके लिये सिंह, वृष अथवा ध्वज आय होने चाहिये ॥ ५९९½ ॥

अब मैं नूतनगृहमें प्रवेशके लिये वास्तुपूजाकी विधि बताता हूँ—घरके मध्यभागमें तन्दुल (चावल) पर पूर्वसे पश्चिमकी ओर एक-एक हाथ लम्बी दस रेखाएँ खींचे। फिर उत्तरसे दक्षिणकी ओर भी उतनी ही लम्बी-चौड़ी दस रेखाएँ बनावे। इस प्रकार उसमें बराबर-बराबर ८१ पद (कोष्ठ) होते हैं। उनमें आगे बताये जानेवाले ४५ देवताओंका यथोक्त स्थानमें नामोल्लेख करे। बत्तीस देवता बाहर (प्रान्तके कोष्ठोंमें) और तेरह देवता भीतर पूजनीय होते हैं। उन ४५ देवताओंके स्थान और नामका क्रमशः वर्णन करता हूँ। किनारेके बत्तीस कोष्ठोंमें ईशान कोणसे आरम्भ करके क्रमशः बत्तीस देवता पूज्य हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—कृपीट योनि(अग्नि) १, पर्जन्य २, जयन्त ३, इन्द्र ४, सूर्य ५, सत्य ६, भृश ७, आकाश ८, वायु ९, पूषा १०, अनृत (वितथ) ११, गृहक्षत[2] १२, यम १३, गन्धर्व १४, भृङ्गराज १५, मृग १६, पितर १७, दौवारिक १८, सुग्रीव १९, पुष्प-दन्त २०, वरुण २१, असुर २२, शेष २३, राजयक्ष्मा[3] २४, रोग २५, अहि २६, मुख्य २७, भल्लाटक २८, सोम २९, सर्प ३०, अदिति ३१ और दिति ३२—ये चारों किनारोंके देवता हैं। ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायुकोणके देवोंके समीप क्रमशः आप ३३, सावित्र ३४, जय ३५, तथा रुद्र ३६ के पद हैं। ब्रह्माके चारों ओर पूर्व आदि आठों दिशाओंमें क्रमशः अर्यमा ३७, सविता ३८, विवस्वान् ३९, विबुधाधिप ४०, मित्र ४१, राजयक्ष्मा ४२, पृथ्वीधर ४३, आपवत्स ४४ हैं और मध्यके नव पदोंमें ब्रह्माजी (४५) को स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार सब पदोंमें ये पैंतालीस देवता पूजनीय होते हैं। जैसे ईशान-कोणमें

१. मूलमें 'कुजन्यकम्' पाठ है; परन्तु कुजन्य कोई प्रसिद्ध देश नहीं है; इसलिये प्रतीत होता है कि यहाँ 'कान्यकुब्जकम्' के स्थानमें 'कुब्जकन्दकम्' था। फिर लेखकादिके दोषसे 'कुजन्यकम्' हो गया है।

१. पूर्व या उत्तर प्लवभूमिमें घर बनाना प्रशस्त कहा गया है। यदि नीचेके तल्लेमें पूर्व दिशामें जलस्राव हो तो ऊपरके मंजिलमें भी पूर्व दिशामें ही जलस्राव होना चाहिये। २-३. अन्य संहितामें १२ वाँ गृहक्षत, २४ वाँ पापयक्ष्मा कहा गया है।

करके नये घरमें प्रवेश करता है, वह नाना प्रकारके रोग, क्लेश और संकट प्राप्त करता है ॥ ६१५—६१८ ॥

जिसमें किंवाड़े न लगी हों, जिसे ऊपरसे छत आदिके द्वारा छाया न गया हो तथा जिसके लिये (पूर्वोक्त रूपसे वास्तुपूजन करके) देवताओंको बलि (नैवेद्य) और ब्राह्मण आदिको भोजन न दिया गया हो, ऐसे नूतन गृहमें कभी प्रवेश न करे; क्योंकि वह विपत्तियोंकी खान (स्थान) होता है ॥ ६१९ ॥

(**यात्रा-प्रकरण**—) अब मैं जिस प्रकारसे यात्रा करनेपर वह राजा तथा अन्य जनोंके लिये अभीष्ट फलकी सिद्धि करानेवाली होती है, उस विधिका वर्णन करता हूँ। जिनके जन्म-समयका ठीक-ठीक ज्ञान है, उन राजाओं तथा अन्य जनोंको उस विधिसे यात्रा करनेपर उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जिन मनुष्योंका जन्मसमय अज्ञात है, उनको तो घुणाक्षर[1] न्यायसे ही कभी फलकी प्राप्ति हो जाती है, तथापि उनको भी प्रश्न-लग्नसे तथा निमित्त और शकुन आदिद्वारा शुभाशुभ देखकर यात्रा करनेसे अभीष्ट फलका लाभ होता है ॥ ६२०-६२१ ॥

(**यात्रामें निषिद्ध तिथियाँ**—) षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा और शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा—इन तिथियोंमें यात्रा करनेसे दरिद्रता तथा अनिष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ६२२ ॥

(**विहित नक्षत्र**—) अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, रेवती, अश्विनी, श्रवण, पुष्य और धनिष्ठा—इन नक्षत्रोंमें यदि अपने जन्म-नक्षत्रसे सातवीं, पाँचवीं और तीसरी तारा न हो तो यात्रा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है ॥ ६२३ ॥

(**दिशाशूल**—) शनि और सोमवारके दिन पूर्व दिशाकी ओर न जाय, गुरुवारको दक्षिण न जाय, शुक्र और रविवारको पश्चिम न जाय तथा बुध और मङ्गलको उत्तर दिशाकी यात्रा न करे ॥ ६२४ ॥ ज्येष्ठा, पूर्व भाद्रपद, रोहिणी और उत्तरा फाल्गुनी—ये नक्षत्र क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें शूल होते हैं।

(**सर्वदिग्गमन नक्षत्र**—) अनुराधा, हस्त, पुष्य और अश्विनी—ये चार नक्षत्र सब दिशाओंकी यात्रामें प्रशस्त हैं ॥ ६२५ ॥

(**दिग्द्वार-नक्षत्र**—) कृत्तिकासे आरम्भ करके सात-सात नक्षत्रसमूह पूर्वादि दिशाओंमें रहते हैं। तथा अग्निकोणसे वायुकोणतक परिघदण्ड रहता है; अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिये, जिससे परिघदण्डका लङ्घन न हो * ॥६२६॥

पूर्वके नक्षत्रोंमें अग्निकोणकी यात्रा करे। इसी प्रकार दक्षिणके नक्षत्रोंमें अग्निकोण तथा पश्चिम और उत्तरके नक्षत्रोंमें वायुकोणकी यात्रा कर सकते हैं।

(**दिशाओंकी राशियाँ**—) पूर्व आदि चार दिशाओंमें मेष आदि १२ राशियाँ पुनः-पुनः (तीन आवृत्तिसे) आती हैं † ॥ ६२७ ॥

---

* पूर्व नक्षत्रमें पश्चिम या दक्षिण जानेसे परिघदण्डका लङ्घन होगा। चक्र देखिये—

(पूर्व)

† दिशाशिबोधकचक्र—

(पूर्व)

	मेष, १	सिंह, ५	धनु, ९,	
मीन १२				२ वृष
वृश्चिक ८				६ कन्या
कर्क ४				१० मकर
	कुम्भ ११	तुला ७	मिथुन ३	

---

1. जैसे घुन (कीटविशेष) काठको खोदता रहता है तो उसमें कभी अक्षरादि अक्षरका स्वरूप अकस्मात् बन जाता है; उसी प्रकार जो अपने जन्मसमयसे अपरिचित हैं वे लग्न आदिको न जानकर भी यात्रा करते-करते कभी संयोगवश शुभ फलके भागी हो जाते हैं।

करके नये घरमें प्रवेश करता है, वह नाना प्रकारके रोग, क्लेश और संकट प्राप्त करता है ॥ ६१५—६१८ ॥

जिसमें किवाड़ न लगे हों, जिसे ऊपरसे छत आदिके द्वारा छाया न गया हो तथा जिसके लिये (पूर्वोक्त रूपसे वास्तुपूजन करके) देवताओंको बलि (नैवेद्य) और ब्राह्मण आदि-को भोजन न दिया गया हो, ऐसे नूतन गृहमें कभी प्रवेश न करे; क्योंकि वह विपत्तियोंकी खान (स्थान) होता है ॥ ६१९ ॥

(यात्रा-प्रकरण—) अब मैं जिस प्रकारसे यात्रा करनेपर वह राजा तथा अन्य जनोंके लिये अभीष्ट फलकी सिद्धि करानेवाली होती है, उस विधिका वर्णन करता हूँ। जिनके जन्म-समयका ठीक-ठीक ज्ञान है, उन राजाओं तथा अन्य जनोंको उस विधिसे यात्रा करनेपर उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जिन मनुष्योंका जन्मसमय अज्ञात है, उनको तो घुणाक्षर[1] न्यायसे ही कभी फलकी प्राप्ति हो जाती है, तथापि उनको भी प्रश्न-लग्नसे तथा निमित्त और शकुन आदिद्वारा शुभा-शुभ देखकर यात्रा करनेसे अभीष्ट फलका लाभ होता है ॥ ६२०-६२१ ॥

(यात्रामें निषिद्ध तिथियाँ—) षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा और शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा—इन तिथियोंमें यात्रा करनेसे दरिद्रता तथा अनिष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ६२२ ॥

(विहित नक्षत्र—) अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, रेवती, अश्विनी, श्रवण, पुष्य और धनिष्ठा—इन नक्षत्रोंमें यदि अपने जन्म-नक्षत्रसे सातवीं, पाँचवीं और तीसरी तारा न हो तो यात्रा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है ॥ ६२३ ॥

(दिशाशूल—) शनि और सोमवारके दिन पूर्व दिशाकी ओर न जाय, गुरुवारको दक्षिण न जाय, शुक्र और रविवारको पश्चिम न जाय तथा बुध और मङ्गलको उत्तर दिशाकी यात्रा न करे ॥ ६२४ ॥ ज्येष्ठा, पूर्व भाद्रपद, रोहिणी और उत्तरा फाल्गुनी—ये नक्षत्र क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें शूल होते हैं।

(सर्वदिग्गमन नक्षत्र—) अनुराधा, हस्त, पुष्य और अश्विनी—ये चार नक्षत्र सब दिशाओंकी यात्रामें प्रशस्त हैं ॥ ६२५ ॥

(दिग्द्वार-नक्षत्र—) कृत्तिकासे आरम्भ करके सात-सात नक्षत्रसमूह पूर्वादि दिशाओंमें रहते हैं। तथा अग्निकोणसे वायुकोणतक परिघदण्ड रहता है; अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिये, जिससे परिघदण्डका लङ्घन न हो * ॥ ६२६ ॥

पूर्वके नक्षत्रोंमें अग्निकोणकी यात्रा करे। इसी प्रकार दक्षिणके नक्षत्रोंमें अग्निकोण तथा पश्चिम और उत्तरके नक्षत्रोंमें वायुकोणकी यात्रा कर सकते हैं।

(दिशाओंकी राशियाँ—) पूर्व आदि चार दिशाओंमें मेष आदि १२ राशियाँ पुनः-पुनः (तीन आवृत्तिसे) आती हैं † ॥ ६२७ ॥

* पूर्व नक्षत्रमें पश्चिम या दक्षिण जानेसे परिघदण्डका लङ्घन होगा। चक्र देखिये—

(पूर्व)

† दिग्राशिबोधकचक्र—

(पूर्व)

	मेष, १	सिंह, ५	धनु, ९,	
मीन १२				२ वृष
वृश्चिक ८				६ कन्या
कर्क ४				१० मकर
	कुम्भ ११	तुला ७	मिथुन ३	

---

१. जैसे घुण (कीटविशेष) काठको खोदता रहता है तो उसमें कभी अक्षरादि अक्षरका स्वरूप अकस्मात् बन जाता है; उसी प्रकार जो अपने जन्मसमयसे अपरिचित हैं वे लग्न आदिको न जानकर भी यात्रा करते-करते कभी संयोगवश शुभ फलके भागी हो जाते हैं।

(सवारी, माता), ५ मन्त्र (विद्या, सन्तान); ६ शत्रु (रोग, मामा); ७ मार्ग (यात्रा, पति-पत्नी); ८ आयु (मृत्यु); ९ मन (अन्तःकरण, भाग्य); १० व्यापार (व्यवसाय, पिता); ११ प्राप्ति (लाभ); १२ अप्राप्ति (व्यय)—ये क्रमसे लग्न आदि १२ स्थानोंकी संज्ञाएँ हैं ॥ ६४७-६४८ ॥

पापग्रह (शनि, रवि, मङ्गल, राहु तथा केतु—ये) तीसरे और ग्यारहवेंको छोड़कर अन्य सब भावोंमें जानेसे भाव-फलको नष्ट कर देते हैं।* तीसरे और ग्यारहवें भावमें जानेसे वे उन दोनों भावोंको पुष्ट करते हैं। सूर्य और मङ्गल ये दोनों दशम भावको भी नष्ट नहीं करते, अपितु दशम भावमें जानेसे उस भाव फल (व्यापार, पिता, राज्य तथा कर्म) को पुष्ट ही करते हैं और शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्र) जिस भावमें जाते हैं, उस भावफलको पुष्ट ही करते हैं; केवल षष्ठ (६) भावमें जानेसे उस भावफल (शत्रु और रोग) को नष्ट करते हैं ॥ ६४९ ॥ शुभ ग्रहोंमें शुक्र सप्तम भावको और चन्द्रमा लग्न एवं अष्टम (१, ८) को पुष्ट नहीं करते हैं। (अपितु नष्ट ही करते हैं।)

(अभिजित्-प्रशंसा—) अभिजित् मुहूर्त (दिनका मध्यकाल=१२ बजेसे १ घड़ी आगे और १ घड़ी पीछे) अभीष्ट फल सिद्ध करनेवाला योग है। यह दक्षिण दिशाकी यात्रा छोड़कर अन्य दिशाओंकी यात्रामें शुभ फल देता है। इस (अभिजित् मुहूर्त) मे पञ्चाङ्ग (तिथि-वारादि) शुभ न हो तो भी यात्रामें वह उत्तम फल देनेवाला होता है ॥ ६५०-६५१ ॥

(यात्रा-योग-) लग्न और ग्रहोंकी स्थितिसे नाना प्रकारके यात्रा-योग होते हैं। अब उन योगोंका वर्णन करता हूँ, क्योंकि राजाओं (क्षत्रियों) को योगबलसे ही अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। ब्राह्मणोंको नक्षत्रबलसे तथा अन्य मनुष्योंको मुहूर्त-बलसे इष्टसिद्धि होती है। तस्करोंको शकुनबलसे अपने अभीष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ६५२½ ॥ शुक्र, बुध और बृहस्पति—इन तीनोंमेंसे कोई भी यदि केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो योग कहलाता है। यदि उनमेंसे दो ग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो 'अधियोग' कहलाता है तथा यदि तीनों लग्नसे केन्द्र (१, ४, ७, १०) या त्रिकोण (९, ५) में हों तो योगाधियोग कहलाता है ॥ ६५३½ ॥ योगमें यात्रा करनेवालोंका कल्याण होता है। अधियोगमें यात्रा करनेसे विजय प्राप्त होती है और योगाधियोगमें यात्रा करनेवालेको कल्याण, विजय तथा सम्पत्तिका भी लाभ होता है ॥ ६५४½ ॥ लग्नसे दसवें स्थानमें चन्द्रमा, षष्ठ स्थानमें शनि और लग्नमें सूर्य हों तो इस समयमें यात्रा करनेवाले राजाको विजय तथा शत्रुकी सम्पत्ति भी प्राप्त होती है ॥ ६५५½ ॥ शुक्र, रवि, बुध, शनि और मङ्गल—ये पाँचों ग्रह क्रमसे लग्न चतुर्थ, सप्तम, तृतीय और षष्ठ भावमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सम्मुख आये हुए शत्रुगण आगमें पड़ी हुई लाहकी भाँति नष्ट हो जाते हैं ॥ ६५६½ ॥ बृहस्पति लग्नमें और अन्य ग्रह यदि दूसरे और ग्यारहवें भावमें हों तो इस योगमें यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुओंकी सेना यमराजके घर पहुँच जाती है ॥ ६५७½ ॥ यदि लग्नमें शुक्र, ग्यारहवेंमें रवि और चतुर्थ भावमें चन्द्रमा हो तो इस योगमें यात्रा करनेवाला राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे हाथियोंके झुंडको सिंह ॥ ६५८½ ॥

अपने उच्च (मीन) में स्थित शुक्र लग्नमें हो अथवा अपने उच्च (वृष) का चन्द्रमा लाभ (११) भावमें स्थित हो तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुकी सेनाको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे भगवान् श्रीकृष्णने पूतनाको नष्ट किया था ॥ ६५९½ ॥ यदि यात्राके समय शुभ ग्रह केन्द्रमें या त्रिकोणमें हों तथा पापग्रह तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुकी लक्ष्मी अभिसारिकाकी भाँति उसके समीप आ जाती है ॥ ६६०½ ॥ गुरु, रवि और चन्द्रमा—ये क्रमशः लग्न, ६ और ८ में हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सामने दुर्जनोंकी मैत्रीके समान शत्रुओंकी सेना नहीं ठहरती है ॥ ६६१½ ॥ यदि लग्नसे ३, ६, ११में पापग्रह हों और शुभ ग्रह बलवान् होकर अपने उच्चादि स्थानमें (स्थित) हों तो शत्रुकी भूमि यात्रा करनेवाले राजाके हाथमें आ जाती है ॥ ६६२½ ॥ अपने उच्च (कर्क) में स्थित बृहस्पति यदि लग्नमें हों और चन्द्रमा ११ भावमें स्थित हों तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे त्रिपुरासुरको श्रीशिवजीने नष्ट किया था ॥ ६६३½ ॥ शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ) राशिमें स्थित शुक्र यदि लग्नमें हों और गुरु ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाला पुरुष तारकासुरको कार्तिकेयकी

---

* जैसे पापग्रह लग्न (तनुभाव) में रहता है तो शरीरमें कष्ट देता है तथा धन-भावमें धनका नाश करता है। किंतु वह तीसरेमें रहता है तो पराक्रमको और ग्यारहवेंमें रहता है तो लाभको पुष्ट करता है।

(सवारी, माता); ५ मन्त्र (विद्या, सतान); ६ शत्रु (रोग, मामा); ७ मार्ग (यात्रा, पति-पत्नी); ८ आयु (मृत्यु); ९ मन (अन्तःकरण, भाग्य); १० व्यापार (व्यवसाय, पिता); ११ प्राप्ति (लाभ); १२ अप्राप्ति (व्यय)—ये क्रमसे लग्न आदि १२ स्थानोंकी सज्ञाएँ हैं ॥ ६४७-६४८ ॥

पापग्रह (शनि, रवि, मङ्गल, राहु तथा केतु—ये) तीसरे और ग्यारहवेंको छोड़कर अन्य सब भावोंमें जानेसे भाव-फलको नष्ट कर देते हैं।* तीसरे और ग्यारहवें भावमें जानेसे वे उन दोनों भावोंको पुष्ट करते हैं। सूर्य और मङ्गल ये दोनों दशम भावको भी नष्ट नहीं करते, अपितु दशम भावमें जानेसे उस भाव फल (व्यापार, पिता, राज्य तथा कर्म) को पुष्ट ही करते हैं और शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्र) जिस भावमें जाते हैं, उस भावफलको पुष्ट ही करते हैं; केवल षष्ठ (६) भावमें जानेसे उस भावफल (शत्रु और रोग) को नष्ट करते हैं ॥ ६४९ ॥ शुभ ग्रहोमें शुक्र सप्तम भावको और चन्द्रमा लग्न एवं अष्टम (१, ८) को पुष्ट नहीं करते हैं। (अपितु नष्ट ही करते हैं।)

(अभिजित्-प्रशंसा—) अभिजित् मुहूर्त (दिनका मध्यकाल=१२ बजेसे १ घड़ी आगे और १ घड़ी पीछे) अभीष्ट फल सिद्ध करनेवाला योग है। यह दक्षिण दिशाकी यात्रा छोड़कर अन्य दिशाओंकी यात्रामें शुभ फल देता है। इस (अभिजित् मुहूर्त) मे पञ्चाङ्ग (तिथि-वारादि) शुभ न हो तो भी यात्रामें वह उत्तम फल देनेवाला होता है ॥ ६५०-६५१ ॥

(यात्रा-योग—) लग्न और ग्रहोंकी स्थितिसे नाना प्रकारके यात्रा-योग होते हैं। अब उन योगोंका वर्णन करता हूँ, क्योंकि राजाओं (क्षत्रियों) को योगबलसे ही अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। ब्राह्मणोंको नक्षत्रबलसे तथा अन्य मनुष्योंको मुहूर्त-बलसे इष्टसिद्धि होती है। तस्करोंको शकुनबलसे अपने अभीष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ६५२½ ॥ शुक्र, बुध और बृहस्पति—इन तीनमेंसे कोई भी यदि केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो योग कहलाता है। यदि उनमेंसे दो ग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो 'अधियोग' कहलाता है तथा यदि तीनों लग्नसे केन्द्र (१,४,७,१०) या त्रिकोण (९,५) में हों तो योगाधियोग कहलाता है ॥ ६५३½ ॥ योगमें यात्रा करनेवालोंका कल्याण होता है। अधियोगमे यात्रा करनेसे विजय प्राप्त होती है और योगाधियोगमें यात्रा करनेवालेको कल्याण, विजय तथा सम्पत्तिका भी लाभ होता है ॥ ६५४½ ॥ लग्नसे दसवें स्थानमें चन्द्रमा, षष्ठ स्थानमे शनि और लग्नमे सूर्य हों तो इस समयमे यात्रा करनेवाले राजाको विजय तथा शत्रुकी सम्पत्ति भी प्राप्त होती है ॥ ६५५½ ॥ शुक्र, रवि, बुध, शनि और मङ्गल—ये पाँचों ग्रह क्रमसे लग्न चतुर्थ, सप्तम, तृतीय और षष्ठ भावमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सम्मुख आये हुए शत्रुगण आगमें पड़ी हुई लाहकी भाँति नष्ट हो जाते हैं ॥ ६५६½ ॥ बृहस्पति लग्नमें और अन्य ग्रह यदि दूसरे और ग्यारहवें भावमें हों तो इस योगमे यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुओंकी सेना यमराजके घर पहुँच जाती है ॥ ६५७½ ॥ यदि लग्नमें शुक्र, ग्यारहवेंमें रवि और चतुर्थ भावमें चन्द्रमा हो तो इस योगमें यात्रा करनेवाला राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे हाथियोंके झुंडको सिंह ॥ ६५८½ ॥

अपने उच्च (मीन) में स्थित शुक्र लग्नमें हो अथवा अपने उच्च (वृष) का चन्द्रमा लाभ (११) भावमें स्थित हो तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुकी सेनाको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे भगवान् श्रीकृष्णने पूतनाको नष्ट किया था ॥ ६५९½ ॥ यदि यात्राके समय शुभ ग्रह केन्द्रमें या त्रिकोणमें हों तथा पापग्रह तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुकी लक्ष्मी अभिसारिकाकी भाँति उसके समीप आ जाती है ॥ ६६०½ ॥ गुरु, रवि और चन्द्रमा—ये क्रमशः लग्न, ६ और ८ में हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सामने दुर्जनोंकी मैत्रीके समान शत्रुओंकी सेना नहीं ठहरती है ॥ ६६१½ ॥ यदि लग्नसे ३, ६, ११मे पापग्रह हों और शुभ ग्रह बलवान् होकर अपने उच्चादि स्थानमें (स्थित) हों तो शत्रुकी भूमि यात्रा करनेवाले राजाके हाथमें आ जाती है ॥ ६६२½ ॥ अपने उच्च (कर्क) मे स्थित बृहस्पति यदि लग्नमें हों और चन्द्रमा ११ भावमें स्थित हों तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे त्रिपुरासुरको श्रीशिवजीने नष्ट किया था ॥ ६६३½ ॥ शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ) राशिमें स्थित शुक्र यदि लग्नमें हों और गुरु ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाला पुरुष तारकासुरको कार्तिकेयकी

* जैसे पापग्रह लग्न (तनुभाव) में रहता है तो शरीरमें कष्ट देता है तथा धन-भावमें धनका नाश करता है। किंतु वह तीसरेमें रहता है तो पराक्रमको और ग्यारहवेंमें रहता है तो लाभको पुष्ट करता है।

पर बैठकर यात्रा करे तो वह शत्रुओंपर विजय पाता है और उसका अभीष्ट सिद्ध होता है ॥ ६७९—६८४ ॥

(यात्राविधि—) प्रज्वलित अग्निमें तिलोंसे हवन करके जिस दिशामें जाना हो, उस दिशाके स्वामीको उन्हींके समान रंगवाले वस्त्र, गन्ध तथा पुष्प आदि उपचार अर्पण करके उन दिशाओंके मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक उनका पूजन करे। फिर अपने इष्टदेव और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेकर राजाको यात्रा करनी चाहिये ॥ ६८५½ ॥

(दिक्पालोंके स्वरूपका ध्यान—) (१ पूर्व दिशाके स्वामी) देवराज इन्द्र शची देवीके साथ ऐरावतपर आरूढ हो बड़ी शोभा पा रहे हैं। उनके हाथमें वज्र है। उनकी कान्ति सुवर्ण-सदृश है तथा वे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। (२ अग्निकोणके अधीश्वर) अग्निदेवके सात हाथ, सात जिह्वाएँ और छः मुख हैं। वे भेड़पर सवार हैं, उनकी कान्ति लाल है, वे स्वाहा देवीके प्रियतम हैं तथा स्रुक्-स्रुवा और नाना प्रकारके आयुध धारण करते हैं। (३ दक्षिण दिशाके स्वामी) यमराजका दण्ड ही अस्त्र है। उनकी आँखें लाल हैं और वे भैंसेपर आरूढ हैं। उनके शरीरका रङ्ग कुछ लाली लिये हुए साँवला है। वे ऊपरकी ओर मुँह किये हुए हैं तथा शुभस्वरूप हैं। (४ नैर्ऋत्यकोणके अधिपति) निर्ऋतिका वर्ण नील है। वे अपने हाथोंमें ढाल और तलवार लिये रहते हैं; मनुष्य ही उनका वाहन है। उनकी आँखें भयंकर तथा केश ऊपरकी ओर उठे हुए हैं। वे सामर्थ्यशाली हैं और उनकी गर्दन बहुत बड़ी है। (५ पश्चिम दिशाके स्वामी) वरुणकी अङ्गकान्ति पीली है। वे नागपाश धारण करते हैं। ग्राह उनका वाहन है। वे कालिकादेवीके प्राणनाथ हैं और रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। (६ वायव्य कोणके अधिपति) वायुदेव काले रङ्गके मृगपर आरूढ हैं। अञ्जनीके पति हैं, वे समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं और वे हाथमें दण्ड धारण करते हैं। इस प्रकार उनका ध्यान और पूजन करे। (७ उत्तर दिशाके स्वामी) कुबेर घोड़ेपर सवार हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं। वे हाथमें खड्ग धारण करते हैं। उनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके सदृश है। वे चित्ररेखा देवीके प्राणवल्लभ तथा यक्षों और गन्धर्वोंके राजा हैं। (८ ईशानकोणके स्वामी) गौरीपति भगवान् शङ्कर हाथमें पिनाक लिये वृषभपर आरूढ हैं। वे सबके श्रेष्ठ देवता हैं। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है। माथेपर चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित होता है और सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करते हैं। (इस प्रकार इन सब दिक्पालोंका ध्यान और पूजन करना चाहिये)॥ ६८६—६९३½ ॥

(प्रस्थानविधि—)यदि किसी आवश्यक कार्यवश निश्चित यात्रा-लग्नमें राजा स्वयं न जा सके तो छत्र, ध्वजा, शस्त्र, अस्त्र या वाहनमेंसे किसी एक वस्तुको यात्राके निर्धारित समयमें घरसे निकालकर जिस दिशामें जाना हो उसी दिशाकी ओर दूर रखा दे। अपने स्थानसे निर्गमस्थान (प्रस्थान रखनेकी जगह) २०० दण्ड (चार हाथकी लग्गी) से दूर होना उचित है। अथवा चालीस या कम-से-कम बारह दण्डकी दूरी होनी आवश्यक है। राजा स्वयं प्रस्तुत होकर जाय तो किसी एक स्थानमें सात दिन न ठहरे। अन्य (राजमन्त्री तथा साधारण) जन भी प्रस्थान करके एक स्थानमें छः या पाँच दिन न ठहरे। यदि इससे अधिक ठहरना पड़े तो उसके बाद दूसरा शुभ मुहूर्त और उत्तम लग्न विचारकर यात्रा करे॥ ६९४—६९६½ ॥

असमयमें (पौषसे चैत्रपर्यन्त) बिजली चमके, मेघकी गर्जना हो या वर्षा होने लगे तथा त्रिविध (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) उत्पात होने लग जाय तो राजाको सात राततक अन्य स्थानोंकी यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ६९७½ ॥

(शकुन—)यात्राकालमें रला नामक पक्षी, चूहा, सियारिन, कौआ तथा कबूतर—इनके शब्द वामभागमें सुनायी दें तो शुभ होता है। छछुंदर, पिंगला (उल्लू), पल्ली और गदहा—ये यात्राके समय वामभागमें हों तो श्रेष्ठ हैं। कोयल, तोता और भरदूल आदि पक्षी यदि दाहिने भागमें आ जायँ तो श्रेष्ठ हैं। काले रंगको छोड़कर अन्य सब रंगोंके चौपाये यदि वाम भागमें दीख पड़ें तो श्रेष्ठ हैं तथा यात्रासमयमें कृकलास (गिरगिट) का दर्शन शुभ नहीं है ॥ ६९८—७०० ॥

यात्राकालमें सूअर, खरगोश, गोधा (गोह) और सर्पोंकी चर्चा शुभ होती है, किंतु किसी भूली हुई वस्तुको खोजनेके लिये जाना हो तो इनकी चर्चा अच्छी नहीं होती है। वानर और भालुओंकी चर्चाका विपरीत फल होता है ॥ ७०१ ॥

यात्रामें मोर, बकरा, नेवला, नीलकण्ठ और कबूतर दीख जायँ तो इनके दर्शनमात्रसे शुभ होता है; परंतु लौटकर अपने नगरमें आने या घरमें प्रवेश करनेके समय ये दर्शन

पर बैठकर यात्रा करे तो वह शत्रुओंपर विजय पाता है और उसका अभीष्ट सिद्ध होता है ॥ ६७९—६८४ ॥

(यात्राविधि—) प्रज्वलित अग्निमें तिलोंसे हवन करके जिस दिशामें जाना हो, उस दिशाके स्वामीको उन्हींके समान रंगवाले वस्त्र, गन्ध तथा पुष्प आदि उपचार अर्पण करके उन दिशाओंके मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक उनका पूजन करे । फिर अपने इष्टदेव और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेकर राजाको यात्रा करनी चाहिये ॥ ६८५½ ॥

(दिक्पालोंके स्वरूपका ध्यान—) (१ पूर्व दिशाके स्वामी) देवराज इन्द्र शची देवीके साथ ऐरावतपर आरूढ हो बड़ी शोभा पा रहे हैं । उनके हाथमें वज्र है । उनकी कान्ति सुवर्ण-सदृश है तथा वे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं । (२ अग्निकोणके अधीश्वर) अग्निदेवके सात हाथ, सात जिह्वाएँ और छः मुख हैं । वे भेड़पर सवार हैं, उनकी कान्ति लाल है, वे स्वाहा देवीके प्रियतम हैं तथा स्रुक्-स्रुवा और नाना प्रकारके आयुध धारण करते हैं । (३ दक्षिण दिशाके स्वामी) यमराजका दण्ड ही अस्त्र है । उनकी आँखें लाल हैं और वे भैंसेपर आरूढ हैं । उनके शरीरका रङ्ग कुछ लाली लिये हुए साँवला है । वे ऊपरकी ओर मुँह किये हुए हैं तथा शुभस्वरूप हैं । (४ नैर्ऋत्यकोणके अधिपति) निर्ऋतिका वर्ण नील है । वे अपने हाथोंमें ढाल और तलवार लिये रहते हैं; मनुष्य ही उनका वाहन है । उनकी आँखें भयंकर तथा केश ऊपरकी ओर उठे हुए हैं । वे सामर्थ्यशाली हैं और उनकी गर्दन बहुत बड़ी है । (५ पश्चिम दिशाके स्वामी) वरुणकी अङ्गकान्ति पीली है । वे नागपाश धारण करते हैं । ग्राह उनका वाहन है । वे कालिकादेवीके प्राणनाथ हैं और रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं । (६ वायव्य कोणके अधिपति) वायुदेव काले रङ्गके मृगपर आरूढ हैं । अञ्जनीके पति हैं, वे समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप हैं । उनकी दो भुजाएँ हैं और वे हाथमें दण्ड धारण करते हैं । इस प्रकार उनका ध्यान और पूजन करे । (७ उत्तर दिशाके स्वामी) कुबेर घोड़ेपर सवार हैं । उनकी दो भुजाएँ हैं । वे हाथमें कलश धारण करते हैं । उनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके सदृश है । वे चित्ररेखा देवीके प्राणवल्लभ तथा यक्षों और गन्धर्वोंके राजा हैं । (८ ईशानकोणके स्वामी) गौरीपति भगवान् शङ्कर हाथमें पिनाक लिये वृषभपर आरूढ हैं । वे सबमें श्रेष्ठ देवता हैं । उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है । माथेपर चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित होता है और सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करते हैं । (इस प्रकार इन सब दिक्पालोंका ध्यान और पूजन करना चाहिये)॥ ६८६—६९३½ ॥

(प्रस्थानविधि—)यदि किसी आवश्यक कार्यवश निश्चित यात्रा-लग्नमें राजा स्वयं न जा सके तो छत्र, ध्वजा, शस्त्र, अस्त्र या वाहनमेंसे किसी एक वस्तुको यात्राके निर्धारित समयमें घरसे निकालकर जिस दिशामें जाना हो उसी दिशाकी ओर दूर रखा दे । अपने स्थानसे निर्गमस्थान (प्रस्थान रखनेकी जगह) २०० दण्ड (चार हाथकी लग्गी) से दूर होना उचित है । अथवा चालीस या कम-से-कम बारह दण्डकी दूरी होनी आवश्यक है । राजा स्वयं प्रस्तुत होकर जाय तो किसी एक स्थानमें सात दिन न ठहरे । अन्य (राजमन्त्री तथा साधारण) जन भी प्रस्थान करके एक स्थानमें छः या पाँच दिन न ठहरे । यदि इससे अधिक ठहरना पड़े तो उसके बाद दूसरा शुभ मुहूर्त और उत्तम लग्न विचारकर यात्रा करे ॥ ६९४–६९६½ ॥

असमयमें (पौषसे चैत्रपर्यन्त) बिजली चमके, मेघकी गर्जना हो या वर्षा होने लगे तथा त्रिविध (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) उत्पात होने लग जाय तो राजाको सात राततक अन्य स्थानोंकी यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ६९७½ ॥

(शकुन—)यात्राकालमें रला नामक पक्षी,चूहा,सियारिन, कौआ तथा कबूतर—इनके शब्द वामभागमें सुनायी दें तो शुभ होता है । छछुंदर, पिंगला (उल्लू), पल्ली और गदहा—ये यात्राके समय वामभागमें हों तो श्रेष्ठ हैं । कोयल, तोता और भरदूल आदि पक्षी यदि दाहिने भागमें आ जायँ तो श्रेष्ठ हैं । काले रंगको छोड़कर अन्य सब रंगोंके चौपाये यदि वाम भागमें दीख पड़ें तो श्रेष्ठ हैं तथा यात्रासमयमें कृकलास (गिरगिट) का दर्शन शुभ नहीं है ॥ ६९८–७०० ॥

यात्राकालमें सूअर, खरगोश, गोधा (गोह) और सर्पोंकी चर्चा शुभ होती है, किंतु किसी भूली हुई वस्तुको खोजनेके लिये जाना हो तो इनकी चर्चा अच्छी नहीं होती है । वानर और भालुओंकी चर्चाका विपरीत फल होता है ॥ ७०१ ॥

यात्रामें मोर, बकरा, नेवला, नीलकण्ठ और कबूतर दीख जायँ तो इनके दर्शनमात्रसे शुभ होता है; परंतु लौटकर अपने नगरमें आने या घरमें प्रवेश करनेके समय ये दर्शन

सूर्यके आर्द्रा-प्रवेशके समय चन्द्रमा और शुक्र दोनोंकी स्थिति देखकर तारतम्यसे फल समझना चाहिये) ॥७२१-७२२॥

वर्षाकालमे आर्द्रासे स्वातीतक सूर्यके रहनेपर चन्द्रमा यदि शुक्रसे सप्तम स्थानमे अथवा शनिसे पञ्चम, नवम तथा सप्तम स्थानमें हो, उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि पड़े तो उस समय अवश्य वर्षा होती है ॥ ७२३ ॥

यदि बुध और शुक्र समीपवर्ती (एक राशिमे स्थित) हों तो तत्काल वर्षा होती है । किंतु उन दोनों (बुध और शुक्र) के बीचमें सूर्य हों तो वृष्टिका अभाव होता है ॥७२४॥

यदि मघा आदि पाँच नक्षत्रोंमें शुक्र पूर्व दिशामें उदित हों और स्वातीसे तीन नक्षत्रों (स्वाती, विशाखा, अनुराधा) में शुक्र पश्चिम दिशामें उदित हों तो निश्चय ही वर्षा होती है। इससे विपरीत हो तो वर्षा नहीं समझनी चाहिये॥ ७२५ ॥

यदि सूर्यके समीप (एक राशिके भीतर होकर) कोई ग्रह आगे या पीछे पडते हों तो वे वर्षा अवश्य करते हैं; किंतु उनकी गति वक्र न हुई हो तभी ऐसा होता है ॥७२६॥

दक्षिण गोल (तुलासे मीनतक) में शुक्र यदि सूर्यसे वाम भागमें पड़े तो वृष्टिकारक होता है । उदय या अस्तके समय यदि आर्द्रामे सूर्यका प्रवेश हो तो भी वर्षा होती है ॥७२७॥

यदि सूर्यका आर्द्रा-प्रवेश सन्ध्याके समय हो तो शस्य (धान)की वृद्धि होती है। यदि रात्रिमें हो तो मनुष्योंको सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है। यदि प्रवेशकालमें चन्द्रमा, गुरु, बुध एवं शुक्रसे आर्द्रा भेदित हो तो क्रमशः अल्पवृष्टि, धान्य-हानि, अनावृष्टि और धान्य-वृद्धि होती है; इसमे संशय नहीं है । यदि ये चारों चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र प्रवेश-लग्नसे केन्द्रमें पड़ते हों तो ईति (खेतीके टिड्डी आदि सब उपद्रव) का नाश होता है ॥ ७२८-७२९ ॥

यदि सूर्य पूर्वाषाढ नक्षत्रमे प्रवेशके समय मेघोंसे आच्छन्न हो तो आर्द्रासे मूलतक प्रतिदिन वर्षा होती है ॥७३० ॥

यदि रेवतीमें सूर्यके प्रवेश करते समय वर्षा हो जाय तो उससे दस नक्षत्र (रेवतीसे आश्लेषा) तक वर्षा नहीं होती है । सिंह-प्रवेशमें लग्न यदि मङ्गलसे भिन्न (भेदित) हो, कर्क-प्रवेशमे अभिन्न हो एव कन्या-प्रवेशमें भिन्न हो तो उत्तम वृष्टि होती है ॥ ७३१½ ॥ उत्तर भाद्रपद पूर्वधान्य, रेवती परधान्य तथा भरणी सर्वधान्य नक्षत्र है । अश्विनीको सर्वधान्योंका नाशक नक्षत्र कहा गया है । वर्षाकाल (चातुर्मास्य) में पश्चिम उदित हुए शुक्र यदि गुरुसे सप्तम राशिमें निर्बल हों तो आर्द्रासे सात नक्षत्रतक प्रतिदिन अतिवृष्टि होती है । चन्द्रमण्डलमें परिवेष (घेरा) हो और उत्तर दिशामे बिजली दीख पड़े या मेढकोंके शब्द सुनायी पड़ें तो निश्चय ही वर्षा होती है । पश्चिम भागमें लटका हुआ मेघ यदि आकाशके बीचमें होकर दक्षिण दिशामें जाय तो शीघ्र वर्षा होती है । बिलाव अपने नाखूनोंसे धरतीको खोदे, लोहे (तथा ताँबे और कासी आदि) में मल जमने लगे अथवा बहुत-से बालक मिलकर सड़कोंपर पुल बाँधें तो ये वर्षाके सूचक चिह्न हैं ।

चींटीकी पङ्क्ति छिन्न-भिन्न हो जाय, आकाशमें बहुतेरे जुगुनू दीख पड़े तथा सर्पोंका वृक्षपर चढना और प्रसन्न होना देखा जाय तो ये सब दुर्वृष्टि-सूचक हैं ।

उदय या अस्त समयमे यदि सूर्य या चन्द्रमाका रंग बदला हुआ जान पड़े या उनकी कान्ति मधुके समान दीख पड़े तथा बड़े जोरकी हवा चलने लगे तो अतिवृष्टि होती है ॥ ७३२—७३८½ ॥

(पृथ्वीके आधार कूर्मके अङ्ग-विभाग-) कूर्म देवता पूर्वकी ओर मुख करके स्थित हैं, उनके नव अङ्गोंमे इस भारत भूमिके नौ विभाग करके प्रत्येक खण्डमें प्रदक्षिण-क्रमसे विभिन्न मण्डलों (देशों) को समझे । अन्तर्वेदी (मध्यभाग) में पाञ्चालदेश स्थित है, वही कूर्म भगवान्‌का नाभिमण्डल है । मगध और लाट देश पूर्व दिशामें विद्यमान हैं, वे ही उनका मुखमण्डल हैं । स्त्री, कलिङ्ग और किरात देश भुजा हैं । अवन्ती, द्रविड और भिल्लदेश उनका दाहिना पार्श्व हैं । गौड, कौंकण, शाल्व, आन्ध्र और पौण्ड्रदेश ये सब देश दोनों अगले पैर हैं । सिन्ध, काशी, महाराष्ट्र तथा सौराष्ट्र देश पुच्छ-भाग हैं । पुलिन्द चीन, यवन और गुर्जर—ये सब देश दोनों पिछले पैर हैं । कुरु, काश्मीर, मद्र तथा मत्स्य-देश वाम पार्श्व हैं । खस (नेपाल) अङ्ग, वङ्ग, बाह्लीक और काम्बोज—ये दोनो हाथ हैं ॥ ७३९—७४४॥

इन नवों अङ्गोंमें क्रमशः कृत्तिका आदि तीन-तीन नक्षत्रोंका न्यास करे । जिस अङ्गके नक्षत्रमे पापग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोंमे तबतक अशुभ फल होता है और जिस अङ्गके नक्षत्रोंमें शुभ ग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोंमें शुभ फल होते हैं ॥ ७४५ ॥

(मूर्ति-प्रतिमा-विकार-) देवताओंकी प्रतिमा यदि नीचे गिर पड़े, जले, बार-बार रोये, गाये, पसीनेसे तर हो जाय, हँसे, अग्नि, धुआँ, तेल, शोणित, दूध या

सूर्यके आर्द्रा-प्रवेशके समय चन्द्रमा और शुक्र दोनोंकी स्थिति देखकर तारतम्यसे फल समझना चाहिये) ॥७२१-७२२॥

वर्षाकालमे आर्द्रासे स्वातीतक सूर्यके रहनेपर चन्द्रमा यदि शुक्रसे सप्तम स्थानमे अथवा शनिसे पञ्चम, नवम तथा सप्तम स्थानमें हो, उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि पड़े तो उस समय अवश्य वर्षा होती है ॥ ७२३ ॥

यदि बुध और शुक्र समीपवर्ती (एक राशिमे स्थित) हों तो तत्काल वर्षा होती है । किंतु उन दोनों (बुध और शुक्र) के बीचमें सूर्य हों तो वृष्टिका अभाव होता है ॥७२४॥

यदि मघा आदि पाँच नक्षत्रोंमें शुक्र पूर्व दिशामें उदित हों और स्वातीसे तीन नक्षत्रों (स्वाती, विशाखा, अनुराधा) में शुक्र पश्चिम दिशामें उदित हों तो निश्चय ही वर्षा होती है। इससे विपरीत हो तो वर्षा नहीं समझनी चाहिये॥ ७२५ ॥

यदि सूर्यके समीप (एक राशिके भीतर होकर) कोई ग्रह आगे या पीछे पडते हों तो वे वर्षा अवश्य करते हैं; किंतु उनकी गति वक्र न हुई हो तभी ऐसा होता है ॥७२६॥

दक्षिण गोल (तुलासे मीनतक) में शुक्र यदि सूर्यसे वाम भागमें पड़े तो वृष्टिकारक होता है । उदय या अस्तके समय यदि आर्द्रामे सूर्यका प्रवेश हो तो भी वर्षा होती है ॥७२७॥

यदि सूर्यका आर्द्रा-प्रवेश सन्ध्याके समय हो तो शस्य (धान)की वृद्धि होती है । यदि रात्रिमें हो तो मनुष्योंको सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है। यदि प्रवेशकालमें चन्द्रमा, गुरु, बुध एवं शुक्रसे आर्द्रा भेदित हो तो क्रमशः अल्पवृष्टि, धान्य-हानि, अनावृष्टि और धान्य-वृद्धि होती है; इसमे संशय नही है । यदि ये चारों चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र प्रवेश-लग्नसे केन्द्रमें पड़ते हो तो ईति (खेतीके टिड्डी आदि सब उपद्रव) का नाश होता है ॥ ७२८-७२९ ॥

यदि सूर्य पूर्वाषाढ नक्षत्रमे प्रवेशके समय मेघोंसे आच्छन्न हो तो आर्द्रासे मूलतक प्रतिदिन वर्षा होती है ॥७३० ॥

यदि रेवतीमें सूर्यके प्रवेश करते समय वर्षा हो जाय तो उससे दस नक्षत्र (रेवतीसे आश्लेषा) तक वर्षा नहीं होती है । सिंह-प्रवेशमें लग्न यदि मङ्गलसे भिन्न (भेदित) हो, कर्क-प्रवेशमे अभिन्न हो एव कन्या-प्रवेशमें भिन्न हो तो उत्तम वृष्टि होती है ॥ ७३१½ ॥ उत्तर भाद्रपद पूर्वधान्य, रेवती परधान्य तथा भरणी सर्वधान्य नक्षत्र है । अश्विनीको सर्वधान्योंका नाशक नक्षत्र कहा गया है । वर्षाकाल (चातुर्मास्य) में पश्चिम उदित हुए शुक्र यदि गुरुसे सप्तम राशिमें निर्बल हों तो आर्द्रासे सात नक्षत्रतक प्रतिदिन अतिवृष्टि होती है । चन्द्रमण्डलमें परिवेष (घेरा) हो और उत्तर दिशामे बिजली दीख पड़े या मेढकोंके शब्द सुनायी पड़ें तो निश्चय ही वर्षा होती है । पश्चिम भागमें लटका हुआ मेघ यदि आकाशके बीचमें होकर दक्षिण दिशामें जाय तो शीघ्र वर्षा होती है । बिलाव अपने नाखूनोंसे धरतीको खोदे, लोहे (तथा ताँबे और कासी आदि) में मल जमने लगे अथवा बहुत-से बालक मिलकर सड़कोंपर पुल बाँधें तो ये वर्षाके सूचक चिह्न हैं ।

चींटीकी पङ्क्ति छिन्न-भिन्न हो जाय, आकाशमें बहुतेरे जुगनू दीख पड़े तथा सर्पोंका वृक्षपर चढना और प्रसन्न होना देखा जाय तो ये सब दुर्वृष्टि-सूचक हैं ।

उदय या अस्त समयमे यदि सूर्य या चन्द्रमाका रंग बदला हुआ जान पड़े या उनकी कान्ति मधुके समान दीख पड़े तथा बड़े जोरकी हवा चलने लगे तो अतिवृष्टि होती है ॥ ७३२—७३८½ ॥

(पृथ्वीके आधार कूर्मके अङ्ग-विभाग—) कूर्म देवता पूर्वकी ओर मुख करके स्थित हैं, उनके नव अङ्गोमे इस भारत भूमिके नौ विभाग करके प्रत्येक खण्डमें प्रदक्षिण-क्रमसे विभिन्न मण्डलों (देशों) को समझे । अन्तर्वेदी (मध्यभाग) में पाञ्चालदेश स्थित है, वही कूर्म भगवान्‌का नाभिमण्डल है । मगध और लाट देश पूर्व दिशामें विद्यमान हैं, वे ही उनका मुखमण्डल हैं । स्त्री, कलिङ्ग और किरात देश भुजा हैं । अवन्ती, द्रविड और भिल्लदेश उनका दाहिना पार्श्व हैं । गौड, कौंकण, शाल्व, आन्ध्र और पौण्ड्रदेश ये सब देश दोनों अगले पैर हैं । सिन्ध, काशी, महाराष्ट्र तथा सौराष्ट्र देश पुच्छ-भाग हैं । पुलिन्द चीन, यवन और गुर्जर—ये सब देश दोनों पिछले पैर हैं । कुरु, काश्मीर, मद्र तथा मत्स्य-देश वाम पार्श्व हैं । खस (नेपाल) अङ्ग, वङ्ग, वाह्लीक और काम्बोज—ये दोनो हाथ हैं ॥ ७३९—७४४ ॥

इन नवों अङ्गोंमें क्रमशः कृत्तिका आदि तीन-तीन नक्षत्रोंका न्यास करे । जिस अङ्गके नक्षत्रमे पापग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोमे तबतक अशुभ फल होता है और जिस अङ्गके नक्षत्रोमें शुभ ग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोंमें शुभ फल होते हैं ॥ ७४५ ॥

(मूर्ति-प्रतिमा-विकार—) देवताओंकी प्रतिमा यदि नीचे गिर पड़े, जले, बार-बार रोये, गावे, पसीनेसे तर हो जाय, हँसे, अग्नि, धुआँ, तेल, शोणित, दूध या

भेदसे वे लौकिक या वैदिक छन्द भी पुनः दो-दो प्रकारके हो जाते हैं (मात्रिक[1] छन्द और वर्णिक[2] छन्द) ॥ १ ॥ छन्दःशास्त्रके विद्वानोंने मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण और नगण तथा गुरु एवं लघु—इन्हींको छन्दोंकी सिद्धिमें कारण बताया है ॥ २ ॥ जिसमें सभी अर्थात् तीनों अक्षर गुरु हों उसे मगण (SSS) कहा गया है । जिसका आदि अक्षर लघु (और शेष दो अक्षर गुरु) हो, वह यगण (ISS) माना गया है । जिसका मध्यवर्ती अक्षर लघु हो, वह रगण (SIS) और जिसका अन्तिम अक्षर गुरु हो, वह सगण (IIS) है ॥ ३ ॥ जिसमें अन्तिम अक्षर लघु हो, वह तगण (SSI) कहा गया है, जहाँ मध्य गुरु हो, वह जगण (ISI) और जिसमें आदि गुरु हो, वह भगण (SII) है । मुने ! जिसमें तीनों अक्षर लघु हों, वह नगण (III) कहा गया है । तीन अक्षरोंके समुदायका नाम गण है* ॥ ४ ॥ आर्या आदि छन्दोंमें चार मात्रावाले पाँच गण कहे गये हैं, जो चार लघुवाले गणसे युक्त हैं † । यदि लघु अक्षरसे परे संयोग, विसर्ग और

१. परिगणित मात्राओंसे पूर्ण होनेवाले छन्दोंको मात्रिक कहते हैं । जैसे—आर्या छन्दके प्रथम और तृतीय पाद बारह मात्राओंसे, द्वितीय पाद अठारह मात्राओंसे और चतुर्थ पाद पंद्रह मात्राओंसे पूर्ण होते हैं आर्याके पूर्वार्ध सदृश उत्तरार्ध भी हो तो 'गीति' और उत्तरार्ध सदृश पूर्वार्ध हो तो 'उपगीति' छन्द होते हैं ।

आर्याका उदाहरण—

वृन्दावने सलील वल्गुद्रुमकाण्डनिहिततनुयष्टिः । स्मेरमुखार्पितवेणुः कृष्णो यदि मनसि कः स्वर्गः ॥

२. परिगणित अक्षरोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दोंको 'वर्णिक' कहते हैं । यथा—

जयन्ति गोविन्दमुखारविन्दे मरन्दसान्द्राधरमन्दहासाः । चित्ते चिदानन्दमय तमोघ्नममन्दमिन्दुद्रवमुद्गिरन्त. ॥

—यह इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्राके मेलसे बना हुआ उपजातिनामक छन्द है ।

* गणोंके सम्बन्धमें कुछ ज्ञातव्य बातें निम्नाङ्कित कोष्ठकसे जाननी चाहिये—

गणनाम	मगण	यगण	रगण	सगण	तगण	जगण	भगण	नगण
स्वरूप	S S S	I S S	S I S	I I S	S S I	I S I	S I I	I I I
देवता	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश	सूर्य	चन्द्रमा	स्वर्ग
फल	लक्ष्मी-वृद्धि	वृद्धि या अभ्युदय	विनाश	भ्रमण	धन-नाश	रोग	सुयश	आयु
मित्र आदि संज्ञाएँ	मित्र	भृत्य	शत्रु	शत्रु	उदासीन	उदासीन	भृत्य	मित्र

यदि काव्यमें ऐसे छन्दको चुना गया, जो जगण आदि अनिष्टकारी गणोंसे संयुक्त हो तो उसकी शान्तिके लिये प्रारम्भमें भगवद्वाचक एवं देवतावाचक शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये; जैसा कि भामहका वचन है—

देवतावाचका. शब्दा ये च भद्रादिवाचका । ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ॥ (पिङ्गलसूत्रकी हलायुध-वृत्तिसे उद्धृत)

'जो देवतावाचक और मङ्गलादिवाचक शब्द हैं, वे सब लिपिदोष या गणदोषसे भी निन्दित नहीं होते ।' (उनके द्वारा उक्त दोषोंका निवारण हो जाता है)

† यथा—

सर्वगुरु	अन्त्यगुरु	मध्यगुरु	आदिगुरु	चतुर्लघु
SS	IIS	ISI	SII	IIII
१	२	३	४	५

इन भेदोंके नाम क्रमश इस प्रकार हैं—कर्ण, करतल, पयोधर, वसुचरण और विप्र ।

भेदसे वे लौकिक या वैदिक छन्द भी पुनः दो-दो प्रकारके हो जाते हैं (मात्रिक[1] छन्द और वर्णिक[2] छन्द) ॥ १ ॥ छन्दःशास्त्रके विद्वानोंने मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण और नगण तथा गुरु एव लघु—इन्हींको छन्दोंकी सिद्धिमें कारण बताया है ॥ २ ॥ जिसमे सभी अर्थात् तीनों अक्षर गुरु हो उसे मगण (SSS) कहा गया है। जिसका आदि अक्षर लघु (और शेष दो अक्षर गुरु) हो, वह यगण (ISS) माना गया है। जिसका मध्यवर्ती अक्षर लघु हो, वह रगण (SIS) और जिसका अन्तिम अक्षर गुरु हो, वह सगण (IIS) है ॥ ३ ॥ जिसमें अन्तिम अक्षर लघु हो, वह तगण (SSI) कहा गया है, जहाँ मध्य गुरु हो, वह जगण (ISI) और जिसमें आदि गुरु हो, वह भगण (SII) है। मुने! जिसमें तीनों अक्षर लघु हों, वह नगण (III) कहा गया है। तीन अक्षरोंके समुदायका नाम गण है* ॥ ४ ॥ आर्या आदि छन्दोंमें चार मात्रावाले पाँच गण कहे गये हैं, जो चार लघुवाले गणसे युक्त हैं †। यदि लघु अक्षरसे परे संयोग, विसर्ग और

१. परिगणित मात्राओंसे पूर्ण होनेवाले छन्दोंको मात्रिक कहते हैं। जैसे—आर्या छन्दके प्रथम और तृतीय पाद बारह मात्राओंसे, द्वितीय पाद अठारह मात्राओंसे और चतुर्थ पाद पंद्रह मात्राओंसे पूर्ण होते हैं आर्याके पूर्वार्ध सदृश उत्तरार्ध भी हो तो 'गीति' और उत्तरार्ध सदृश पूर्वार्ध हो तो 'उपगीति' छन्द होते है।

आर्याका उदाहरण—

वृन्दावने सलील वल्गुद्रुमकाण्डनिहिततनुयष्टिः। स्मेरमुखार्पितवेणुः कृष्णो यदि मनसि कः स्वर्गः ॥

२. परिगणित अक्षरोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दोंको 'वर्णिक' कहते हैं। यथा—

जयन्ति गोविन्दमुखारविन्दे मरन्दसान्द्राधरमन्दहासा। चित्ते चिदानन्दमय तमोघ्नममन्दमिन्दुद्रवमुद्गिरन्त. ॥

—यह इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्राके मेलसे बना हुआ उपजातिनामक छन्द है।

* गणोंके सम्बन्धमें कुछ ज्ञातव्य बातें निम्नाङ्कित कोष्ठकसे जाननी चाहिये—

गणनाम	मगण	यगण	रगण	सगण	तगण	जगण	भगण	नगण
स्वरूप	S S S	I S S	S I S	I I S	S S I	I S I	S I I	I I I
देवता	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश	सूर्य	चन्द्रमा	स्वर्ग
फल	लक्ष्मी-वृद्धि	वृद्धि या अभ्युदय	विनाश	भ्रमण	धन-नाश	रोग	सुयश	आयु
मित्र आदि संज्ञाएँ	मित्र	भृत्य	शत्रु	शत्रु	उदासीन	उदासीन	भृत्य	मित्र

यदि काव्यमें ऐसे छन्दको चुना गया, जो जगण आदि अनिष्टकारी गणोंसे संयुक्त हो तो उसकी शान्तिके लिये प्रारम्भमें भगवद्वाचक एव देवतावाचक शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये; जैसा कि भामहका वचन है—

देवतावाचका. शब्दा ये च भद्रादिवाचका। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ॥ (पिङ्गलसूत्रकी हलायुध-वृत्तिसे उद्धृत)

'जो देवतावाचक और मङ्गलादिवाचक शब्द हैं, वे सब लिपिदोष या गणदोषसे भी निन्दित नहीं होते।' (उनके द्वारा उक्त दोषोंका निवारण हो जाता है)

† यथा—

सर्वगुरु	अन्त्यगुरु	मध्यगुरु	आदिगुरु	चतुर्लघु
SS	IIS	ISI	SII	IIII
१	२	३	४	५

इन भेदोंके नाम क्रमश इस प्रकार हैं—कर्ण, करतल, पयोधर, वसुचरण और विप्र।

होती है । अब क्रमशः एकसे छब्बीस अक्षरतकके पादवाले छन्दोंकी संज्ञा सुनो—॥९-१०॥ उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, विधृति (या अतिधृति), कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अतिकृति या अभिकृति तथा उत्कृति* ॥११—१३॥

* (१) जिसके प्रत्येक चरणमें एक-एक अक्षर हो, उस छन्दका नाम 'उक्ता' है । इसके दो भेद होते हैं । पहला गुरु अक्षरोंसे बनता है, दूसरा लघु अक्षरोंसे । गुरु अक्षरोंसे जो छन्द बनता है, उसका नाम पिङ्गलाचार्यने 'श्री' रक्खा है । उदाहरण—'विष्णुं वन्दे ।' लघु अक्षरोंवाले उक्ता छन्दका उदाहरण 'हरिरिह' समझना चाहिये ।

(२) जिसके प्रत्येक चरणमें दो-दो अक्षरोंकी संयोजना हो, वह 'अत्युक्ता' नामक छन्द है । प्रस्तारसे इसके चार भेद हो सकते हैं । यहाँ विस्तारभयसे केवल एक प्रथम भेद 'स्त्री'का उदाहरण दिया जाता है । दो गुरु अक्षरोंवाले चार पदोंसे जो छन्द बनता है, उसको 'स्त्री' कहते हैं ।

उदाहरण—

SS
'अन्यस्त्रीभिः सङ्गस्त्याज्यः ।'

(३) तीन-तीन अक्षरोंके चार पादोंसे 'मध्या' नामक छन्द बनता है । प्रस्तारसे उसके भेदोंकी संख्या आठ होती है । इसके प्रथम भेदका, जिसमें तीनों अक्षर गुरु होते हैं, आचार्य पिङ्गलने 'नारी' नाम नियत किया है ।

उदाहरण—

SSS
१—'सर्वासां नारीणाम् । भर्ता स्यादाराध्यः ॥'

SIS
२—'प्राणनः प्रेयसी । राधिका श्रीपतेः ॥'

यह दूसरा उदाहरण मध्याका तृतीय भेद है । इसे 'मृगी' छन्द कहते हैं । इसके प्रत्येक चरणमें एक-एक रगण होता है ।

(४) चार-चार अक्षरोंके चार पादवाले छन्द-समूहका नाम 'प्रतिष्ठा' है । प्रस्तारसे इसके सोलह भेद होते हैं । इसके प्रथम भेदका नाम 'कन्या' है । उदाहरण पढ़िये—

SSSS
भास्वत्कन्या सैका धन्या ।
यस्याः कूले कृष्णोऽखेलत् ॥

(५) पाँच-पाँच अक्षरके चार पादवाले छन्दसमुदायका नाम 'सुप्रतिष्ठा' है । प्रस्तारसे इसके बत्तीस भेद होते हैं । इनमें सातवाँ भेद 'पङ्क्ति' है, उसे यहाँ बतलाया जाता है । भगण तथा दो गुरु अक्षरोंसे पङ्क्ति छन्दकी सिद्धि होती है ।

उदाहरण—

SIISS
कृष्णसनाथा तर्णकपङ्क्तिः ।
यामुनकच्छे चारु चचार ॥

(६) जिसके चारों चरणोंमें छः-छः अक्षर हों, उस छन्द-समूहका नाम गायत्री है । प्रस्तारसे इसके चौंसठ भेद होते हैं । इसके प्रथम भेदका नाम विद्युल्लेखा, तेरहवें भेदका नाम तनुमध्या, सोलहवेंका नाम शशिवदना तथा उन्तीसवेंका नाम वसुमती है । यहाँ केवल इन्हीं चारोंका उल्लेख किया जाता है । दो मगण (SS SSSS) होनेसे विद्युल्लेखा, एक तगण (SSI) और एक यगण (ISS) होनेसे तनुमध्या, एक नगण (III) और एक यगण (ISS) होनेसे शशिवदना तथा एक तगण (SSI) और एक सगण (IIS) होनेसे वसुमती नामक छन्द बनता है । उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं—

'विद्युल्लेखा'—

SSSSSS
गोगोपीगोपानां प्रेयांसं प्राणेशम् ।
विद्युल्लेखावस्त्रं वन्देऽहं गोविन्दम् ॥

'तनुमध्या'—

SS IISS
प्रीत्या प्रतिवेलं नानाविधखेलम् ।
सेवे गततन्द्रं वृन्दावनचन्द्रम् ॥

'शशिवदना'—

IIIISS
परमुदारं विपिनविहारम् ।
भज प्रतिपालं मजपालम् ॥

'वसुमती'—

SSIIIS
भक्तार्तिकदनं संसिद्धिसदनम् ।
नौमीन्दुवदनं गोविन्दमधुना ॥

(७) सात-सात अक्षरोंके चार पादवाले छन्दसमुदायको 'उष्णिक्' कहा गया है, प्रस्तारसे इसके एक सौ अट्ठाईस भेद होते हैं । इनमेंसे पचीसवाँ भेद 'मदलेखा' और तीसवाँ भेद 'कुमार-ललिता'के नामसे प्रसिद्ध हैं । मगण, सगण तथा एक गुरु—इन सात

होती है। अब क्रमशः एकसे छब्बीस अक्षरतकके पादवाले छन्दोंकी संज्ञा सुनो—॥९-१०॥ उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, विधृति (या अतिधृति), कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, सङ्कृति, अतिकृति या अभिकृति तथा उत्कृति* ॥११—१३॥

* (१) जिसके प्रत्येक चरणमें एक-एक अक्षर हो, उस छन्दका नाम 'उक्ता' है। इसके दो भेद होते हैं। पहला गुरु अक्षरोंसे बनता है, दूसरा लघु अक्षरोंसे। गुरु अक्षरोंसे जो छन्द बनता है, उसका नाम पिङ्गलाचार्यने 'श्री' रक्खा है। उदाहरण—'विष्णुं वन्दे।' लघु अक्षरोंवाले उक्ता छन्दका उदाहरण 'हरिरिह' समझना चाहिये।

(२) जिसके प्रत्येक चरणमें दो-दो अक्षरोंकी संयोजना हो, वह 'अत्युक्ता' नामक छन्द है। प्रस्तारसे इसके चार भेद हो सकते हैं। यहाँ विस्तारभयसे केवल एक प्रथम भेद 'स्त्री'का उदाहरण दिया जाता है। दो गुरु अक्षरोंवाले चार पदोंसे जो छन्द बनता है, उसको 'स्त्री' कहते हैं।

उदाहरण—

SS
'अन्यस्त्रीभि. सङ्गस्त्याज्यः।'

(३) तीन-तीन अक्षरोंके चार पादोंसे 'मध्या' नामक छन्द बनता है। प्रस्तारसे उसके भेदोंकी संख्या आठ होती है। इसके प्रथम भेदका, जिसमें तीनों अक्षर गुरु होते हैं, आचार्य पिङ्गलने 'नारी' नाम नियत किया है।

उदाहरण—

SSS
१—'सर्वासा नारीणाम्। भर्ता स्यादाराध्यः॥'

SIS
२—'प्राणत. प्रेयसी। राधिका श्रीपतेः॥'

यह दूसरा उदाहरण मध्याका तृतीय भेद है। इसे 'मृगी' छन्द कहते हैं। इसके प्रत्येक चरणमें एक-एक रगण होता है।

(४) चार-चार अक्षरोंके चार पादवाले छन्द-समूहका नाम 'प्रतिष्ठा' है। प्रस्तारसे इसके सोलह भेद होते हैं। इसके प्रथम भेदका नाम 'कन्या' है। उदाहरण पढ़िये—

SSSS
भास्वत्कन्या सैका धन्या।
यस्याः कूले कृष्णोऽखेलत्॥

(५) पाँच-पाँच अक्षरके चार पादवाले छन्दसमुदायका नाम 'सुप्रतिष्ठा' है। प्रस्तारसे इसके बत्तीस भेद होते हैं। इनमें सातवाँ भेद 'पङ्क्ति' है, उसे यहाँ बतलाया जाता है। भगण तथा दो गुरु अक्षरोंसे पङ्क्ति छन्दकी सिद्धि होती है।

उदाहरण—

SIISS
कृष्णसनाथा तर्णकपङ्क्तिः।
यामुनकच्छे चारु चचार॥

(६) जिसके चारों चरणोंमें छः-छः अक्षर हों, उस छन्द-समूहका नाम गायत्री है। प्रस्तारसे इसके चौंसठ भेद होते हैं। इसके प्रथम भेदका नाम विद्युल्लेखा, तेरहवें भेदका नाम तनुमध्या, सोलहवेंका नाम शशिवदना तथा उन्तीसवेंका नाम वसुमती है। यहाँ केवल इन्हीं चारोंका उल्लेख किया जाता है। दो मगण (SSSSSS) होनेसे विद्युल्लेखा, एक तगण (SSI) और एक यगण (ISS) होनेसे तनुमध्या, एक नगण (III) और एक यगण (ISS) होनेसे शशिवदना तथा एक तगण (SSI) और एक सगण (IIS) होनेसे वसुमती नामक छन्द बनता है। उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं—

'विद्युल्लेखा'—

SSSSSS
गोगोपीगोपानां प्रेयांसं प्राणेशम्।
विद्युल्लेखावस्त्रं वन्देऽहं गोविन्दम्॥

'तनुमध्या'—

SS IISS
प्रीत्या प्रतिवेल नानाविधखेलम्।
सेवे गततन्द्रं वृन्दावनचन्द्रम्॥

'शशिवदना'—

IIIISS
परममुदारं विपिनविहारम्।
भज प्रतिपालं व्रजपशुबालम्॥

'वसुमती'—

SSIIIS
भक्तार्तिकदनं संसिद्धिसदनम्।
नौमीन्दुवदनं गोविन्दमधुना॥

(७) सात-सात अक्षरोंके चार पादवाले छन्दसमुदायको 'उष्णिक्' कहा गया है, प्रस्तारसे इसके एक सौ अट्ठाईस भेद होते हैं। इनमेंसे पचीसवाँ भेद 'मदलेखा' और तीसवाँ भेद 'कुमार-ललिता'के नामसे प्रसिद्ध हैं। मगण, सगण तथा एक गुरु—इन सात

'चम्पकमाला'के प्रत्येक पादमें भगण, मगण, सगण और एक गुरु होते हैं तथा पाँच-पाँच अक्षरोंपर विराम होता है। प्रत्येक चरणमें इसके अन्तिम अक्षरको कम कर देनेसे 'मणिबन्ध' छन्द हो जाता है।

उदाहरण—

SI IS SSII SS
सौम्य गुरु स्यादाद्यचतुर्थं पञ्चमषष्ठं चान्त्यमुपान्त्यम्।
इन्द्रियबाणैर्यत्र विरामः सा कथनीया चम्पकमाला ॥

(११) ग्यारह-ग्यारह अक्षरके चार चरणोंसे जिस छन्दसमुदायकी सिद्धि होती है, उसका नाम त्रिष्टुप् है। प्रस्तारसे इसके २०४८ भेद होते हैं। त्रिष्टुप्के ही अनेक अवान्तर भेद इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, दोधक, शालिनी, रथोद्धता और स्वागता आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। ये त्रिष्टुप्के किस संख्यावाले भेद हैं? इसका ज्ञान मूलोक्त रीतिसे कर लेना चाहिये। यहाँ उक्त सात छन्दोंके लक्षण और उदाहरण क्रमशः प्रस्तुत किये जाते हैं; क्योंकि प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थोंमें इनके प्रयोग अधिक मिलते हैं।

(१) 'इन्द्रवज्रा छन्द'—(में २ तगण, १ जगण और २ गुरु होते हैं—)

SSISS IISISS
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

(२) 'उपेन्द्रवज्रा'—(में १ जगण, १ तगण, १ जगण और दो गुरु होते हैं।) इन्द्रवज्राके प्रत्येक चरणका पहला अक्षर ह्रस्व हो जाय तो उपेन्द्रवज्रा-छन्द बन जाता है।

ISI SS I IS ISS
त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

(३) इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा—दोनोंके मेलसे जो छन्द बनता है, उसका नाम उपजाति है। उपजातिमें कोई चरण या पाद इन्द्रवज्राका होता है, तो कोई उपेन्द्रवज्राका। प्रस्तारवश उपजातिके चौदह भेद होते हैं। उन भेदोंके नाम इस प्रकार हैं—कीर्ति, वाणी, माला, शाला, हंसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, भद्रा, प्रेमा, रामा, ऋद्धि तथा बुद्धि। इनका स्वरूप निम्नाङ्कित चक्रमें देखिये—

१	इ.	इ.	इ.	इ.	शुद्धा	इन्द्रवज्रा
२	उ.	इ.	इ.	इ.	१ उपजाति	कीर्ति
३	इ.	उ.	इ.	इ.	२	वाणी
४	उ.	उ.	इ.	इ.	३	माला
५	इ.	इ.	उ.	इ.	४	शाला
६	उ.	इ.	उ.	इ.	५	हंसी
७	इ.	उ.	उ.	इ.	६	माया
८	उ.	उ.	उ.	इ.	७	जाया
९	इ.	इ.	इ.	उ.	८	बाला
१०	उ.	इ.	इ.	उ.	९	आर्द्रा
११	इ.	उ.	इ.	उ.	१०	भद्रा
१२	उ.	उ.	इ.	उ.	११	प्रेमा
१३	इ.	इ.	उ.	उ.	१२	रामा
१४	उ.	इ.	उ.	उ.	१३	ऋद्धिः
१५	इ.	उ.	उ.	उ.	१४	बुद्धिः
१६	उ.	उ.	उ.	उ.	शुद्धा	उपेन्द्रवज्रा

उदाहरण—

SSISS IISI SS
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

पूर्वोक्त चक्रके अनुसार यह 'उपजाति' का बुद्धिनामक भेद है। इसीको विपरीतपूर्वा और आख्यानकी भी कहते हैं। इसमें पहला चरण इन्द्रवज्राका और शेष तीन चरण उपेन्द्रवज्राके हैं।

'चम्पकमाला'के प्रत्येक पादमें भगण, मगण, सगण और एक गुरु होते हैं तथा पाँच-पाँच अक्षरोंपर विराम होता है। प्रत्येक चरणमें इसके अन्तिम अक्षरको कम कर देनेसे 'मणिबन्ध' छन्द हो जाता है।

उदाहरण—

SI IS SSII SS
सौम्य गुरु स्यादाद्यचतुर्थं पञ्चमषष्ठं चान्त्यमुपान्त्यम्।
इन्द्रियबाणैर्यत्र विरामः सा कथनीया चम्पकमाला ॥

(११) ग्यारह-ग्यारह अक्षरके चार चरणोंसे जिस छन्दसमुदायकी सिद्धि होती है, उसका नाम त्रिष्टुप् है। प्रस्तारसे इसके २०४८ भेद होते हैं। त्रिष्टुप्के ही अनेक अवान्तर भेद इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, दोधक, शालिनी, रथोद्धता और स्वागता आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। ये त्रिष्टुप्के किस सख्यावाले भेद हैं? इसका ज्ञान मूलोक्त रीतिसे कर लेना चाहिये। यहाँ उक्त सात छन्दोंके लक्षण और उदाहरण क्रमशः प्रस्तुत किये जाते हैं; क्योंकि प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थोंमें इनके प्रयोग अधिक मिलते हैं।

(१) 'इन्द्रवज्रा छन्द'—(में २ तगण, १ जगण और २ गुरु होते हैं—)

SSISS IISI SS
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

(२) 'उपेन्द्रवज्रा'—(में १ जगण, १ तगण, १ जगण और दो गुरु होते हैं।) इन्द्रवज्राके प्रत्येक चरणका पहला अक्षर ह्रस्व हो जाय तो उपेन्द्रवज्रा-छन्द बन जाता है।

ISI SS I IS ISS
त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

(३) इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा—दोनोंके मेलसे जो छन्द बनता है, उसका नाम उपजाति है। उपजातिमें कोई चरण या पाद इन्द्रवज्राका होता है, तो कोई उपेन्द्रवज्राका। प्रस्तारवश उपजातिके चौदह भेद होते हैं। उन भेदोंके नाम इस प्रकार हैं—कीर्ति, वाणी, माला, शाला, हसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, भद्रा, प्रेमा, रामा, ऋद्धि तथा बुद्धि। इनका स्वरूप निम्नाङ्कित चक्रमें देखिये—

१	इ.	इ.	इ.	इ.	शुद्धा	इन्द्रवज्रा
२	उ.	इ.	इ.	इ.	१ उपजाति	कीर्ति
३	इ.	उ.	इ.	इ.	२	वाणी
४	उ.	उ.	इ.	इ.	३	माला
५	इ.	इ.	उ.	इ.	४	शाला
६	उ.	इ.	उ.	इ.	५	हसी
७	इ.	उ.	उ.	इ.	६	माया
८	उ.	उ.	उ.	इ.	७	जाया
९	इ.	इ.	इ.	उ.	८	बाला
१०	उ.	इ.	इ.	उ.	९	आर्द्रा
११	इ.	उ.	इ.	उ.	१०	भद्रा
१२	उ.	उ.	इ.	उ.	११	प्रेमा
१३	इ.	इ.	उ.	उ.	१२	रामा
१४	उ.	इ.	उ.	उ.	१३	ऋद्धिः
१५	इ.	उ.	उ.	उ.	१४	बुद्धिः
१६	उ.	उ.	उ.	उ.	शुद्धा	उपेन्द्रवज्रा

उदाहरण—

SSISS IISI SS
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

पूर्वोक्त चक्रके अनुसार यह 'उपजाति' का बुद्धिनामक भेद है। इसीको विपरीतपूर्वा और आख्यानकी भी कहते हैं। इसमें पहला चरण इन्द्रवज्राका और शेष तीन चरण उपेन्द्रवज्राके हैं।

'द्रुतविलम्बित' (में नगण, भगण, भगण, रगण—ये चार गण होते हैं। पादान्तमें यति होती है।)

उदाहरण—

ııı SııSııS ıS
विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

'तोटकवृत्त'—(में चार सगण होते हैं और पादान्तमें विराम हुआ करता है—)

उदाहरण—

ııSııSııSııS
अधर मधुर वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुर गमन मधुर मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥

'भुजङ्गप्रयात'—(में चार यगण और पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

ıS SıSSıSSıSS
अय त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां
मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः।
तृषार्तोऽवगाढो न ससार दावं
न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्नः॥

'स्रग्विणी'—(में चार रगण तथा पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

SıS S ıSSı SS ıS
स्वागत ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः
श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः।
त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते
शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः॥

'प्रमिताक्षरा'—(में सगण, जगण, सगण, सगण तथा पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

ııSıSıııSııS
परिशुद्धवाक्यरचनातिशयं
परिषिञ्चती श्रवणयोरमृतम्।
प्रमिताक्षरापि विपुलार्थवती
कविभारती हरति मे हृदयम्॥

'वैश्वदेवी'—(में २ मगण और २ यगण होते हैं तथा पाँचवें, सातवें अक्षरोंपर विराम होता है—)

उदाहरण—

SSSSS S ıSSıSS
अर्चामन्येषा त्वं विहायामराणा-
मद्वैतेनैकं विष्णुमभ्यर्च्य भक्त्या।
तत्राशेषात्मन्यर्चिते भाविनी ते
भ्रात सम्पन्नाऽऽराधना वैश्वदेवी॥

उपर्युक्त छन्दोंके अतिरिक्त बृहतीके अन्य भेद पुट, जलोद्धतगति, नत, कुसुमविचित्रा, चञ्चलाक्षिका, कान्तोत्पीडा, वाहिनी, नवमालिनी, चन्द्रवर्त्म, प्रमुदितवदना, प्रियंवदा, मणिमाला, ललिता, मोहितोज्ज्वला, जलधरमाला, प्रभा, मालती तथा अभिनव तामरस आदिके भी लक्षण और उदाहरण ग्रन्थान्तरोंमें मिलते हैं।

(१३) तेरह-तेरह अक्षरोंके चार पादोंसे सम्पन्न होनेवाले छन्द-समूहका नाम अतिजगती है। प्रस्तारसे इसके ८१९२ भेद होते हैं। अतिजगतीके भेदोंमें ही एक 'प्रहर्षिणी' नामक भेद है। इसके प्रत्येक पादमें मगण, नगण, जगण, रगण तथा एक गुरु होते हैं। तीन तथा दस अक्षरोंपर यति होती है।

उदाहरण—

SSS ııııSıSıSS
जागर्ति प्रसभविपाकसंविधात्री
श्रीविष्णोर्ललितकपोलजा नदी चेत्।
संकीर्णे यदि भवितास्ति को विपादः
संवादः सकलजगत्पितामहेन॥

इसके सिवा क्षमा, अतिरुचिरा मत्तमयूर, गौरी, मञ्जुभाषिणी और चन्द्रिका आदि भेद भी ग्रन्थान्तरोंमें वर्णित हैं। उनके उदाहरण वहीं देखने चाहिये।

(१४) चौदह-चौदह अक्षरोंके चार पादोंवाले छन्दसमुदायको 'शक्वरी' कहते हैं। प्रस्तारसे इसके १६३८४ भेद होते हैं। इसके भेदोंमें वसन्ततिलका नामक छन्द यहाँ बतलाया जाता है। इसमें तगण, भगण, २ जगण और २ गुरु होते हैं। पादान्तमें विराम होता है। वसन्ततिलकाको ही कुछ विद्वान् सिंहोन्नता और उद्धर्षिणी भी कहते हैं।

'द्रुतविलम्बित' (में नगण, भगण, भगण, रगण—ये चार गण होते हैं । पादान्तमें यति होती है ।)

उदाहरण—

। । ।   S । । S । । S   । S
विपदि   धैर्यमथाभ्युदये   क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

'तोटकवृत्त'—(में चार सगण होते हैं और पादान्तमें विराम हुआ करता है—)

उदाहरण—

। । S । । S । । S । । S
अधर मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥

'भुजङ्गप्रयात'—(में चार यगण और पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

। S   S । S S । S S । S S
अय   त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां
मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः ।
तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं
न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्नः ॥

'स्रग्विणी'—(में चार रगण तथा पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

S । S   S   । S S ।   S S   । S
स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः
श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ।
त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते
शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः ॥

'प्रमिताक्षरा'—(में सगण, जगण, सगण, सगण तथा पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

। । S । S । । । S । । S
परिशुद्धवाक्यरचनातिशयं
परिषिञ्चती श्रवणयोरमृतम् ।
प्रमितक्षरापि विपुलार्थवती
कविभारती हरति मे हृदयम् ॥

'वैश्वदेवी'—(में २ मगण और २ यगण होते हैं तथा पाँचवें, सातवें अक्षरोंपर विराम होता है—)

उदाहरण—

S S S S S   S   । S S । S S
अर्चामन्येषां त्वं विहायामराणा-
मद्वैतेनैकं विष्णुमभ्यर्च भक्त्या ।
तत्राशेषात्मन्यर्चिते भाविनी ते
भ्रात सम्पन्नाऽऽराधना वैश्वदेवी ॥

उपर्युक्त छन्दोंके अतिरिक्त बृहतीके अन्य भेद पुट, जलोद्धतगति, नत, कुसुमविचित्रा, चञ्चलाक्षिका, कान्तोत्पीडा, वाहिनी, नवमालिनी, चन्द्रवर्त्म, प्रमुदितवदना, प्रियवदा, मणिमाला, ललिता, मोहितोज्ज्वला, जलधरमाला, प्रभा, मालती तथा अभिनव तामरस आदिके भी लक्षण और उदाहरण ग्रन्थान्तरोंमें मिलते हैं ।

(१३) तेरह-तेरह अक्षरोंके चार पादोंसे सम्पन्न होनेवाले छन्द-समूहका नाम अतिजगती है । प्रस्तारसे इसके ८१९२ भेद होते हैं । अतिजगतीके भेदोंमें ही एक 'प्रहर्षिणी' नामक भेद है । इसके प्रत्येक पादमें मगण, नगण, जगण, रगण तथा एक गुरु होते हैं । तीन तथा दस अक्षरोंपर यति होती है ।

उदाहरण—

S S S   । । । । S । S । S S
जागर्ति   प्रसभविपाकसंविधात्री
श्रीविष्णोर्ललितकपोलजा नदी चेत् ।
संकीर्णे यदि भवितास्ति को विषादः
संवादः सकलजगत्पितामहेन ॥

इसके सिवा क्षमा, अतिरुचिरा मत्तमयूर, गौरी, मञ्जुभाषिणी और चन्द्रिका आदि भेद भी ग्रन्थान्तरोंमें वर्णित हैं । उनके उदाहरण वहीं देखने चाहिये ।

(१४) चौदह-चौदह अक्षरोंके चार पादोंवाले छन्दसमुदायको 'शक्वरी' कहते हैं । प्रस्तारसे इसके १६३८४ भेद होते हैं । इसके भेदोंमें वसन्ततिलका नामक छन्द यहाँ बतलाया जाता है । इसमें तगण, भगण, २ जगण और २ गुरु होते हैं । पादान्तमें विराम होता है । वसन्ततिलकाको ही कुछ विद्वान् सिंहोन्नता और उद्धर्षिणी भी कहते हैं ।

त्वया कृतपरिग्रहे रघुपतेऽद्य सिंहासने

नितान्तनिरवग्रहा फलवती च पृथ्वी कृता ॥

'वशपत्रपतित' (में भगण, रगण, नगण, भगण, नगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं। दस-सात अक्षरोंपर विराम होता है।)

SI ISI SI IIS II IIIIS
अद्य कुरुष्व कर्म सुकृतं यदि परदिवसे

मित्र विधेयमस्ति भवत. किमु चिरयसि तत्।

जीवितमल्पकालकलनाल्लघुतरतरल

नश्यति वशपत्रपतितं हिमसलिलमिव ॥

'मन्दाक्रान्ता' (में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु होते हैं। ४, ६, ७ अक्षरोंपर विराम होता है। (इसके प्रत्येक चरणके अन्तिम सात अक्षर कम कर देनेपर 'हसी' छन्द बन जाता है।)

SSSS IIIIIS SIS SISS
बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयो. कर्णिकारं

बिभ्रद्वास कनककपिश वैजयन्तीं च मालाम्।

रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-

र्वृन्दारण्य स्वपदरमण प्राविशद् गीतकीर्ति ॥

'शिखरिणी' (में यगण, मगण, सगण, नगण, भगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं तथा ६, ११ अक्षरोंपर विराम होता है।)

ISS SS S IIIIIS SIIIS
महिम्न. पार ते परमविदुषो यद्यसदृशी

स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिर.।

अथावाच्यः सर्वं स्वमतिपरिणामावधि गृणन्

ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवाद. परिकरः ॥

(१८) अठारह-अठारह अक्षरोंके चार चरणोंसे बननेवाले छन्द-समूहकी संज्ञा 'धृति' कही गयी है। प्रस्तारसे इसके २६२१४४ भेद होते हैं। उनमेंसे एक ही भेद 'कुसुमितलतावेल्लिता' नामक छन्दका लक्षण और उदाहरण दिया जाता है। इसमें मगण, तगण, नगण और तीन भगण होते हैं। ५, ६, ७ अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

SSSSS IIIIISSISSISS
धन्यानामेता. कुसुमितलतावेल्लितोत्फुल्लवृक्षा·

सोत्कण्ठं कूजत्परभृतकलालापकोलाहलिन्य.।

मध्वादौ माद्यन्मधुकरकलोद्गीतझङ्काररम्या

ग्रामान्त स्रोत·परिसरभुव. प्रीतिमुत्पादयन्ति॥

(१९) उन्नीस-उन्नीस अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्द-समुदायको विधृति या अतिधृति कहते हैं। प्रस्तारसे इसके ५२४२८८ भेद होते हैं। इनमेंसे एक भेद 'शार्दूलविक्रीडित' नामसे प्रसिद्ध है, जिसमें मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और एक गुरु होते हैं तथा बारह और सात अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

S SSIISISIIIS SSI SS IS
यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुत. स्तुन्वन्ति दिव्यै· स्तवै-

र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति य सामगा.।

ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो

यस्यान्त न विदु सुरासुरगणा देवाय तस्मै नम.॥

(२०) बीस-बीस अक्षरोंके चार पादोंसे निष्पन्न होनेवाले छन्दसमूहका नाम कृति है। प्रस्तारसे इसके १०४८५७६ भेद होते हैं। उनमेंसे २ के लक्षण और उदाहरण यहाँ बतलाये जाते हैं। पहलेका सुवदना और दूसरेका नाम वृत्त है। सुवदनामें मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, भगण, १ लघु और १ गुरु होते हैं। ७, ७, ६ अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

S SSSISS II IIIISSSIIIS
या पीनोद्गाढतुङ्गस्तनजघनघनाभोगालसगति-

र्यस्याः कर्णावतंसोत्पलरुचिजयिनी दीर्घे च नयने।

श्यामा सीमन्तिनीना तिलकमिव मुखे या च त्रिभुवने

प्रत्यक्ष पार्वती मे भवतु भगवती स्नेहात्सुवदना ॥

'वृत्त' (में एक गुरु, एक लघुके क्रमसे २० अक्षर होते हैं। पादान्तमें विराम होता है।)

उदाहरण—

SISISISISI SIS ISISISI
जन्तुमात्रदु.खकारि कर्म निर्मितं भवत्यनर्थहेतु

तेन सर्वमात्मतुल्यमीक्षमाण उत्तम सुख लभस्व।

विद्धि बुद्धिपूर्वक ममोपदेशवाक्यमेतदादरेण

वृत्तमेतदुत्तमं महाकुलप्रसूतजन्मना हिताय ॥

(२१) इक्कीस-इक्कीस अक्षरोंके चार पादोंमें पूर्ण होनेवाले छन्दोंकी जातिवाचक सज्ञा 'प्रकृति' है। प्रस्तारसे इसके २०९७१५२ भेद होते हैं। इनमेंसे एक भेद 'स्रग्धरा'के नामसे प्रसिद्ध है। इसमें मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण होते हैं। सात-सात अक्षरोंपर विराम होते हैं।

उदाहरण—

SSS S ISS III II ISSISSISS
ब्रह्माण्ड खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती

स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती।

त्वया कृतपरिग्रहे रघुपतेऽद्य सिंहासने
नितान्तनिरवग्रहा फलवती च पृथ्वी कृता ॥

'वशपत्रपतित' (में भगण, रगण, नगण, भगण, नगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं । दस-सात अक्षरोंपर विराम होता है ।)

SI ISI SI IIS II IIIIS
अद्य कुरुष्व कर्म सुकृतं यदि परदिवसे
मित्र विधेयमस्ति भवत. किमु चिरयसि तत्।
जीवितमल्पकालकलनालघुतरतरल
नश्यति वशपत्रपतितं हिमसलिलमिव ॥

'मन्दाक्रान्ता' (में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु होते हैं। ४, ६, ७ अक्षरोंपर विराम होता है । (इसके प्रत्येक चरणके अन्तिम सात अक्षर कम कर देनेपर 'हसी' छन्द बन जाता है।)

SSSS IIIIIS SIS SISS
बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयो. कर्णिकारं
बिभ्रद्वास कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमण प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥

'शिखरिणी' (में यगण, मगण, सगण, नगण, भगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं तथा ६, ११ अक्षरोंपर विराम होता है ।)

ISS SS S IIIIIS SIIIS
महिम्न. पार ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिर. ।
अथावाच्यः सर्व स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवाद. परिकरः ॥

(१८) अठारह-अठारह अक्षरोंके चार चरणोंसे बननेवाले छन्द-समूहकी संज्ञा 'धृति' कही गयी है। प्रस्तारसे इसके २६२१४४ भेद होते हैं । उनमेंसे एक ही भेद 'कुसुमितलतावेल्लिता' नामक छन्दका लक्षण और उदाहरण दिया जाता है । इसमें मगण, तगण, नगण और तीन भगण होते हैं । ५, ६, ७ अक्षरोंपर विराम होता है ।

उदाहरण—

SSSSS IIIIISSISSISS
धन्यानामेता. कुसुमितलतावेल्लितोत्फुल्लवृक्षा'
सोत्कण्ठं कूजत्परभृतकलालापकोलाहलिन्य. ।
नम्वादौ माद्यन्मधुकरकलोद्गीतझङ्कारम्या
ग्रामान्त स्रोत'परिसरभुव. प्रीतिमुत्पादयन्ति॥

(१९) उन्नीस-उन्नीस अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्द-समुदायको विधृति या अतिधृति कहते हैं। प्रस्तारसे इसके ५२४२८८ भेद होते हैं। इनमेंसे एक भेद 'शार्दूलविक्रीडित' नामसे प्रसिद्ध है, जिसमें मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और एक गुरु होते हैं तथा बारह और सात अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

S SSIISISIIIS SSI SS IS
यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुत. स्तुन्वन्ति दिव्यै' स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति य सामगा. ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्त न विदु सुरासुरगणा देवाय तस्मै नम. ॥

(२०) बीस-बीस अक्षरोंके चार पादोंसे निष्पन्न होनेवाले छन्दसमूहका नाम कृति है। प्रस्तारसे इसके १०४८५७६ भेद होते हैं। उनमेंसे २ के लक्षण और उदाहरण यहाँ बतलाये जाते हैं। पहलेका सुवदना और दूसरेका नाम वृत्त है । सुवदनामें मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, भगण, १ लघु और १ गुरु होते हैं । ७, ७, ६ अक्षरोंपर विराम होता है ।

उदाहरण—

S SSSISSII IIIISSSIIIS
या पीनोद्गाढतुङ्गस्तनजघनघनाभोगालसगति-
र्यस्याः कर्णावतंसोत्पलरुचिजयिनी दीर्घे च नयने।
श्यामा सीमन्तिनीना तिलकमिव मुखे या च त्रिभुवने
प्रत्यक्ष पार्वती मे भवतु भगवती स्नेहात्सुवदना ॥

'वृत्त' (में एक गुरु, एक लघुके क्रमसे २० अक्षर होते हैं । पादान्तमें विराम होता है ।)

उदाहरण—

SISISISISI SIS ISISISI
जन्तुमात्रदु.खकारि कर्म निर्मितं भवत्यनर्थहेतु
तेन सर्वमात्मतुल्यमीक्षमाण उत्तम सुख लभस्व ।
विद्धि बुद्धिपूर्वक ममोपदेशवाक्यमेतदादरेण
वृत्तमेतदुत्तमं महाकुलप्रसूतजन्मना हिताय ॥

(२१) इक्कीस-इक्कीस अक्षरोंके चार पादोंमें पूर्ण होनेवाले छन्दोंकी जातिवाचक सज्ञा 'प्रकृति' है। प्रस्तारसे इसके २०९७१५२ भेद होते हैं । इनमेंसे एक भेद 'स्रग्धरा'के नामसे प्रसिद्ध है । इसमें मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण होते हैं । सात-सात अक्षरोंपर विराम होते हैं ।

उदाहरण—

SSS SISS IIIIII ISSISSISS
ब्रह्माण्ड खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती ।

ये छन्दोंकी संज्ञाएँ हैं, प्रस्तारसे* इनके अनेक भेद होते हैं। सम्पूर्ण गुरु अक्षरवाले पादमें प्रथम गुरुके नीचे लघु लिखना चाहिये, फिर दाहिनी ओरकी पङ्क्तिको ऊपरकी पङ्क्तिके समान भर दे। तात्पर्य यह कि शेष स्थानोमे ऊपरके अनुसार गुरु-लघु आदि भरे। इस क्रियाको बराबर करता जाय। इसे करते हुए ऊनस्थान अर्थात् बायीं ओरके शेष स्थानमें गुरु ही लिखे। यह क्रिया तबतक करता रहे, जबतक कि सभी लघु अक्षरोंकी प्राप्ति न हो जाय। इसे प्रस्तार कहा गया है † ॥ १४-१५ ॥ (प्रस्तार नष्ट हो जानेपर यदि उसके किसी भेदका स्वरूप जानना हो तो उसे जाननेकी विधिको 'नष्ट प्रत्यय' कहते हैं।) यदि नष्ट अङ्क सम है तो उसके लिये एक लघु लिखे और उसका आधा भी यदि सम हो तो उसके लिये पुनः एक लघु लिखे। यदि नष्ट अङ्क विषम हो तो उसके लिये एक गुरु लिखे और उसमें एक जोड़कर आधा करे। वह आधा भी यदि विषम हो तो उसके लिये भी गुरु ही लिखे। यह क्रिया तबतक करता रहे जबतक अभीष्ट अक्षरोंका पाद प्राप्त न हो जाय‡। (प्रस्तारके किसी भेदका स्वरूप तो ज्ञात हो; किंतु संख्या ज्ञात न हो तो उसके जाननेकी विधिको 'उद्दिष्ट' कहते हैं।) उद्दिष्टमें गुरु-लघु-बोधक जो चिह्न हों, उनमें पहले अक्षरपर एक लिखे और क्रमशः दूसरे अक्षरोंपर दूने अङ्क लिखता जाय; फिर लघुके ऊपर जो अङ्क हो, उन्हें जोडकर उसमें एक और मिला दे तथा वही उद्दिष्ट स्वरूपकी संख्या बतावे। ऐसा पुराणवेत्ता विद्वानोंका कथन है*। (अमुक छन्दके प्रस्तारमें एक गुरुवाले या एक लघुवाले, दो लघुवाले या दो गुरुवाले, तीन लघुवाले या तीन गुरुवाले भेद कितने हो सकते हैं; यह पृथक्-पृथक् जाननेकी जो प्रक्रिया है, उसे 'एकद्व्यादिलगक्रिया' कहते हैं।) छन्दके अक्षरोंकी जो संख्या हो, उसमें एक अधिक जोड़कर उतने ही एकाङ्क ऊपर-नीचेके क्रमसे लिखे। उन एकाङ्कोंको ऊपरकी अन्य पङ्क्तिमें जोड़ दे; किंतु अन्त्यके समीपवर्ती अङ्कको न जोड़े और ऊपरके एक-एक अङ्कको त्याग दे। ऊपरके सर्व गुरुवाले पहले भेदसे नीचेतक गिने। इस रीतिसे प्रथम भेद सर्वगुरु, दूसरा भेद एक गुरु और तीसरा भेद द्विगुरु होता है। इसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर ध्यान देनेसे सबसे नीचेका सर्वलघु, उसके ऊपरका एक लघु, तीसरा भेद द्विलघु इत्यादि होता है। इस प्रकार एकद्व्यादिलगक्रिया जाननी चाहिये। † लगक्रियाके अङ्कोको

* छन्द शास्त्रमें छ प्रत्यय होते है—१ प्रस्तार, २ नष्ट, ३ उद्दिष्ट, ४ एकद्व्यादिलगक्रिया, ५ सख्यान और छठा अध्वयोग। प्रस्तारका अर्थ है फैलाव, अमुक संख्यायुक्त अक्षरोंसे बने हुए पादवाले छन्दके कितने और कौन-कौनसे भेद हो सकते हैं? इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये जो क्रिया की जाती है, उसका नाम प्रस्तार है। नष्ट आदिका स्वरूप आगे बतायेंगे।

† उदाहरणके लिये चार अक्षरके पादवाले छन्दका मूलोक्त रीतिसे प्रस्तार अङ्कित किया जाता है—

१—SSSS	९—SSSI
२—ISSS	१०—ISSI
३—SISS	११—SISI
४—IISS	१२—IISI
५—SSIS	१३—SSII
६—ISIS	१४—ISII
७—SIIS	१५—SIII
८—IIIS	१६—IIII

‡ जैसे किसीके द्वारा पूछा जाय कि चार अक्षरके पादवाले छन्दका छठा भेद क्या है? तो इसमें छठा अङ्क सम है; अत. उसके लिये प्रथम एक लघु होगा (।), फिर छ का आधा करनेपर तीन विषम अङ्क हुआ, अतः उसके लिये एक गुरु (S) लिखा। अब तीनमें एक जोडकर आधा किया तो दो सम अङ्क हुआ, अत: उसके लिये फिर एक लघु (।) लिखा। उस दोका आधा किया तो एक विषम अङ्क हुआ, अत उसके लिये एक गुरु (S) लिखा। सब मिलकर (।S।S) ऐसा हुआ। अत. चार अक्षरवाले छन्दके छठे भेदमें प्रत्येक पादमें प्रथम अक्षर लघु, दूसरा गुरु, तीसरा लघु और चौथा गुरु होगा।

* जैसे कोई पूछे कि चार अक्षरके पादवाले छन्दमें जहाँ प्रथम तीन गुरु और अन्तमें एक लघु हो तो उसकी संख्या क्या है अर्थात् वह उस छन्दका कौन-सा भेद है? इसको जाननेके लिये पहले उद्दिष्टके गुरु-लघुको निम्नाङ्कित रीतिसे अङ्कित करके उनके ऊपर क्रमश. द्विगुण अङ्क स्थापित करे—

१	२	४	८
S	S	S	I

तत्पश्चात् केवल लघुके अङ्क ८ में एक और जोड़ दिया गया तो ९ हुआ। यही उद्दिष्टकी संख्या है। अर्थात् वह उस छन्दका नवाँ भेद है।

† निम्नाङ्कित कोष्ठकसे यह बात स्पष्ट हो जाती है—

अर्थात् चार अक्षर-वाले छन्दके प्रस्तारमें ४ लघुवाला १ भेद, एक गुरु तीन लघु-वाला ४ भेद, २ गुरु और दो लघुवाला ६ भेद, तीन गुरु और १ लघुवाला ४ भेद और चार गुरुवाला १ भेद होगा।

ये छन्दोंकी संज्ञाएँ हैं, प्रस्तारसे* इनके अनेक भेद होते हैं। सम्पूर्ण गुरु अक्षरवाले पादमें प्रथम गुरुके नीचे लघु लिखना चाहिये; फिर दाहिनी ओरकी पङ्क्तिको ऊपरकी पङ्क्तिके समान भर दे। तात्पर्य यह कि शेष स्थानोंमें ऊपरके अनुसार गुरु-लघु आदि भरे। इस क्रियाको बराबर करता जाय। इसे करते हुए ऊनस्थान अर्थात् बायीं ओरके शेष स्थानमें गुरु ही लिखे। यह क्रिया तबतक करता रहे, जबतक कि सभी लघु अक्षरोंकी प्राप्ति न हो जाय। इसे प्रस्तार कहा गया है † ॥ १४-१५ ॥ (प्रस्तार नष्ट हो जानेपर यदि उसके किसी भेदका स्वरूप जानना हो तो उसे जाननेकी विधिको 'नष्ट प्रत्यय' कहते हैं।) यदि नष्ट अङ्क सम है तो उसके लिये एक लघु लिखे और उसका आधा भी यदि सम हो तो उसके लिये पुनः एक लघु लिखे। यदि नष्ट अङ्क विषम हो तो उसके लिये एक गुरु लिखे और उसमें एक जोड़कर आधा करे। वह आधा भी यदि विषम हो तो उसके लिये भी गुरु ही लिखे। यह क्रिया तबतक करता रहे जबतक अभीष्ट अक्षरोंका पाद प्राप्त न हो जाय‡। (प्रस्तारके किसी भेदका स्वरूप तो ज्ञात हो; किंतु संख्या ज्ञात न हो तो उसके जाननेकी विधिको 'उद्दिष्ट' कहते हैं।) उद्दिष्टमें गुरु-लघु-बोधक जो चिह्न हों, उनमें पहले अक्षरपर एक लिखे और क्रमशः दूसरे अक्षरोंपर दूने अङ्क लिखता जाय; फिर लघुके ऊपर जो अङ्क हो, उन्हें जोड़कर उसमें एक और मिला दे तथा वही उद्दिष्ट स्वरूपकी संख्या बतावे। ऐसा पुराणवेत्ता विद्वानोंका कथन है*। (अमुक छन्दके प्रस्तारमें एक गुरुवाले या एक लघुवाले, दो लघुवाले या दो गुरुवाले, तीन लघुवाले या तीन गुरुवाले भेद कितने हो सकते हैं; यह पृथक्-पृथक् जाननेकी जो प्रक्रिया है, उसे 'एकद्व्यादिलगक्रिया' कहते हैं।) छन्दके अक्षरोंकी जो संख्या हो, उसमें एक अधिक जोड़कर उतने ही एकाङ्क ऊपर-नीचेके क्रमसे लिखे। उन एकाङ्कोंको ऊपरकी अन्य पङ्क्तिमें जोड़ दे; किंतु अन्त्यके समीपवर्ती अङ्कको न जोड़े और ऊपरके एक-एक अङ्कको त्याग दे। ऊपरके सर्व गुरुवाले पहले भेदसे नीचेतक गिने। इस रीतिसे प्रथम भेद सर्वगुरु, दूसरा भेद एक गुरु और तीसरा भेद द्विगुरु होता है। इसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर ध्यान देनेसे सबसे नीचेका सर्वलघु, उसके ऊपरका एक लघु, तीसरा भेद द्विलघु इत्यादि होता है। इस प्रकार एकद्व्यादिलगक्रिया जाननी चाहिये। ‡ लगक्रियाके अङ्कोंको

* छन्द शास्त्रमें छ प्रत्यय होते हैं—१ प्रस्तार, २ नष्ट, ३ उद्दिष्ट, ४ एकद्व्यादिलगक्रिया, ५ सख्यान और छठा अध्वयोग। प्रस्तारका अर्थ हे फैलाव, अमुक संख्यायुक्त अक्षरोंसे बने हुए पादवाले छन्दके कितने और कौन-कौनसे भेद हो सकते हैं? इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये जो क्रिया की जाती है, उसका नाम प्रस्तार है। नष्ट आदिका स्वरूप आगे बतायेंगे।

† उदाहरणके लिये चार अक्षरके पादवाले छन्दका मूलोक्त रीतिसे प्रस्तार अङ्कित किया जाता है—

१—SSSS	९—SSSI
२—ISSS	१०—ISSI
३—SISS	११—SISI
४—IISS	१२—IISI
५—SSIS	१३—SSII
६—ISIS	१४—ISII
७—SIIS	१५—SIII
८—IIIS	१६—IIII

‡ जैसे किसीके द्वारा पूछा जाय कि चार अक्षरके पादवाले छन्दका छठा भेद क्या है? तो इसमें छठा अङ्क सम है; अत. उसके लिये प्रथम एक लघु होगा (I), फिर छ का आधा करनेपर तीन विषम अङ्क हुआ, अतः उसके लिये एक गुरु (S) लिखा। अब तीनमें एक जोड़कर आधा किया तो दो सम अङ्क हुआ, अतः उसके लिये फिर एक लघु (I) लिखा। उस दोका आधा किया तो एक विषम अङ्क हुआ, अत उसके लिये एक गुरु (S) लिखा। सब मिलकर (ISI S) ऐसा हुआ। अत. चार अक्षरवाले छन्दके छठे भेदमें प्रत्येक पादमें प्रथम अक्षर लघु, दूसरा गुरु, तीसरा लघु और चौथा गुरु होगा।

* जैसे कोई पूछे कि चार अक्षरके पादवाले छन्दमें जहाँ प्रथम तीन गुरु और अन्तमें एक लघु हो तो उसकी संख्या क्या है अर्थात् वह उस छन्दका कौन-सा भेद है? इसको जाननेके लिये पहले उद्दिष्टके गुरु-लघुको निम्नाङ्कित रीतिसे अङ्कित करके उनके ऊपर क्रमश. द्विगुण अङ्क स्थापित करे—

१	२	४	८
S	S	S	I

तत्पश्चात् केवल लघुके अङ्क ८ में एक और जोड़ दिया गया तो ९ हुआ। यही उद्दिष्टकी संख्या है। अर्थात् वह उस छन्दका नवाँ भेद है।

† निम्नाङ्कित कोष्ठकसे यह बात स्पष्ट हो जाती है—

अर्थात् चार अक्षरवाले छन्दके प्रस्तारमें ४ लघुवाला १ भेद, एक गुरु तीन लघुवाला ४ भेद, २ गुरु और दो लघुवाला ६ भेद, तीन गुरु और १ लघुवाला ४ भेद और चार गुरुवाला १ भेद होगा।

सी युवतियोंको नियुक्त किया । उन सबके वेश बड़े मनोहर थे । वे सब-की-सब तरुणी और देखनेमें मनको प्रिय लगनेवाली थीं । उन्होंने लाल रंगके महीन एवं रंगीन वस्त्र धारण कर रक्खे थे । उनके अङ्गोंमें तपाये हुए शुद्ध सुवर्णके आभूषण

चमक रहे थे । वे बातचीतमें बड़ी चतुर तथा समस्त कलाओंमें कुशल थीं । उनकी संख्या पचाससे अधिक थी । उन सबने शुकदेवजीके लिये पाद्य, अर्घ्य आदि प्रस्तुत किये तथा देश और कालके अनुसार प्राप्त हुआ उत्तम अन्न भोजन कराकर उन्हें तृप्त किया । नारदजी ! जब वे भोजन कर चुके तो उनमेंसे एक-एक युवतीने शुकदेवजीको अपने साथ लेकर उन्हें वह अन्तःपुरका वन दिखलाया । फिर मनके भावोंको समझनेवाली वे सब युवतियाँ हँसती, गाती हुई उदारचित्तवाले शुकदेव मुनिकी परिचर्या करने लगीं । शुकदेवमुनिका अन्तःकरण परम शुद्ध था । वे क्रोध और इन्द्रियोंको जीत चुके थे तथा निरन्तर ध्यानमें ही स्थित रहते थे । उनके मनमें न हर्ष होता था, न क्रोध । संध्याका समय होनेपर शुकदेवजीने हाथ-पैर धोकर संध्योपासना की । फिर वे पवित्र आसनपर बैठे और उसी मोक्षधर्मके विषयमें विचार करने लगे । रातके पहले पहरमे वे ध्यान लगाये बैठे रहे । दूसरे और तीसरे पहरमें भगवान् शुकने न्यायपूर्वक निद्राको स्वीकार किया । फिर प्रातःकाल ब्रह्मवेलामें ही उठकर उन्होंने शौच-स्नान किया । तदनन्तर स्त्रियोंसे घिरे होनेपर भी परम बुद्धिमान् शुक पुनः ध्यानमें ही लग गये । नारदजी ! इसी विधिसे उन्होंने वह शेष दिन और सम्पूर्ण रात्रि राजकुलमें व्यतीत की ।

द्विजश्रेष्ठ ! तदनन्तर मन्त्रियोंसहित राजा जनक पुरोहित तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंको आगे करके मस्तकपर अर्घ्यपात्र लिये गुरुपुत्र शुकदेवजीके समीप गये । उन्होंने सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित एक महान् सिंहासन लेकर गुरुपुत्र शुकदेवजीको अर्पित किया । व्यासनन्दन शुक जब उस आसनपर विराजमान हुए, तब राजाने पहले उन्हें पाद्य अर्पण किया, उसके बाद अर्घ्यसहित गाय निवेदन की । महातेजस्वी द्विजोत्तम शुकने मन्त्रोच्चारणपूर्वक की हुई उस पूजाको स्वीकार करके राजाका कुशल-मङ्गल पूछा । राजाका हृदय और परिजन सभी उदार थे । वे भी गुरुपुत्रसे कुशल-समाचार बताकर उनकी आज्ञा ले भूमिपर बैठे । तत्पश्चात् व्यासनन्दन शुकसे कुशल-मङ्गल पूछकर विधिज्ञ राजाने प्रश्न किया—'ब्रह्मन् ! किसलिये आपका यहाँ शुभागमन हुआ है ?'

शुकदेवजी बोले—राजन् ! आपका कल्याण हो ! पिताजीने मुझसे कहा है कि 'मेरे यजमान विदेहराज जनक मोक्षधर्मके तत्त्वको जाननेमें कुशल हैं । तुम उन्हींके पास जाओ । तुम्हारे हृदयमें प्रवृत्ति या निवृत्तिके विषयमें जो भी संदेह होगा, उसका वे शीघ्र ही निवारण कर देंगे । इसमें संशय नहीं है ।' अतः मैं पिताजीकी आज्ञासे आपके समीप

सी युवतियोंको नियुक्त किया। उन सबके वेश बड़े मनोहर थे। वे सब-की-सब तरुणी और देखनेमें मनको प्रिय लगनेवाली थीं। उन्होंने लाल रंगके महीन एवं रंगीन वस्त्र धारण कर रक्खे थे। उनके अङ्गोंमें तपाये हुए शुद्ध सुवर्णके आभूषण

चमक रहे थे। वे बातचीतमें बड़ी चतुर तथा समस्त कलाओंमें कुशल थीं। उनकी संख्या पचाससे अधिक थी। उन सबने शुकदेवजीके लिये पाद्य, अर्घ्य आदि प्रस्तुत किये तथा देश और कालके अनुसार प्राप्त हुआ उत्तम अन्न भोजन कराकर उन्हें तृप्त किया। नारदजी! जब वे भोजन कर चुके तो उनमेंसे एक-एक युवतीने शुकदेवजीको अपने साथ लेकर उन्हें वह अन्तःपुरका वन दिखलाया। फिर मनके भावोंको समझनेवाली वे सब युवतियाँ हँसती, गाती हुई उदारचित्तवाले शुकदेव मुनिकी परिचर्या करने लगीं। शुकदेवमुनिका अन्तःकरण परम शुद्ध था। वे क्रोध और इन्द्रियोंको जीत चुके थे तथा निरन्तर ध्यानमें ही स्थित रहते थे। उनके मनमें न हर्ष होता था, न क्रोध। संध्याका समय होनेपर शुकदेवजीने हाथ-पैर धोकर संध्योपासना की। फिर वे पवित्र आसनपर बैठे और उसी मोक्षधर्मके विषयमें विचार करने लगे। रातके पहले पहरमे वे ध्यान लगाये बैठे रहे। दूसरे और तीसरे पहरमें भगवान् शुकने न्यायपूर्वक निद्राको स्वीकार किया। फिर प्रातःकाल ब्रह्मवेलामें ही उठकर उन्होंने शौच-स्नान किया। तदनन्तर स्त्रियोंसे घिरे होनेपर भी परम बुद्धिमान् शुक पुनः ध्यानमें ही लग गये। नारदजी! इसी विधिसे उन्होंने वह शेष दिन और सम्पूर्ण रात्रि राजकुलमें व्यतीत की।

द्विजश्रेष्ठ! तदनन्तर मन्त्रियोंसहित राजा जनक पुरोहित तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंको आगे करके मस्तकपर अर्घ्यपात्र लिये गुरुपुत्र शुकदेवजीके समीप गये। उन्होंने सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित एक महान् सिंहासन लेकर गुरुपुत्र शुकदेवजीको अर्पित किया। व्यासनन्दन शुक जब उस आसनपर विराजमान हुए, तब राजाने पहले उन्हें पाद्य अर्पण किया, उसके बाद अर्घ्यसहित गाय निवेदन की। महातेजस्वी द्विजोत्तम शुकने मन्त्रोच्चारणपूर्वक की हुई उस पूजाको स्वीकार करके राजाका कुशल-मङ्गल पूछा। राजाका हृदय और परिजन सभी उदार थे। वे भी गुरुपुत्रसे कुशल-समाचार बताकर उनकी आज्ञा ले भूमिपर बैठे। तत्पश्चात् व्यासनन्दन शुकसे कुशल-मङ्गल पूछकर विधिज्ञ राजाने प्रश्न किया—'ब्रह्मन्! किसलिये आपका यहाँ शुभागमन हुआ है?'

शुकदेवजी बोले—राजन्! आपका कल्याण हो! पिताजीने मुझसे कहा है कि 'मेरे यजमान विदेहराज जनक मोक्षधर्मके तत्त्वको जाननेमें कुशल हैं। तुम उन्हींके पास जाओ। तुम्हारे हृदयमें प्रवृत्ति या निवृत्तिके विषयमें जो भी संदेह होगा, उसका वे शीघ्र ही निवारण कर देंगे। इसमें संशय नहीं है।' अतः मैं पिताजीकी आज्ञासे आपके समीप

इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखना चाहिये*। जिस प्रकार अन्धकारसे व्याप्त हुआ घर दीपकके प्रकाशसे स्पष्ट दीख पड़ता है, उसी तरह बुद्धिरूपी दीपककी सहायतासे आत्माका दर्शन हो सकता है। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी! उपर्युक्त सारी बातें मुझे आपमें दिखायी देती हैं। इनके अतिरिक्त जो कुछ भी जानने योग्य विषय है, उसे आप ठीक-ठीक जानते हैं। ब्रह्मर्षे! मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। आप अपने पिताजीकी कृपा और शिक्षाके कारण विषयोंसे परे हो गये हैं। उन्हीं महामुनि गुरुदेवकी कृपासे मुझे भी यह दिव्य विज्ञान प्राप्त हुआ है, जिससे मैं आपकी स्थितिको पहचानता हूँ। आपका विज्ञान, आपकी गति और आपका ऐश्वर्य—ये सब अधिक हैं। किंतु आपको इस बातका पता नहीं है। ब्रह्मन्! आपको ज्ञान हो चुका है और आपकी बुद्धि भी स्थिर है; साथ ही आपमें लोलुपता भी नहीं है; परंतु विशुद्ध निश्चयके बिना किसीको भी परब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती। आप सुख-दुःखमे कोई अन्तर नहीं समझते। आपके मनमें तनिक भी लोभ नहीं है। आपको न नाच देखनेकी उत्कण्ठा होती है, न गीत सुननेकी। आपका कहीं भी राग है ही नहीं। न तो बन्धुओंके प्रति आपकी आसक्ति है न भयदायक पदार्थोंसे भय। महाभाग! मैं देखता हूँ—आपकी दृष्टिमें अपनी निन्दा और स्तुति एक-सी है। मैं तथा दूसरे मनीषी विद्वान् भी आपको अक्षय एवं अनामय पथ (मोक्षमार्ग) पर स्थित मानते हैं। विप्रवर! इस लोकमें ब्राह्मण होनेका जो फल है और मोक्षका जो स्वरूप है, उसीमें आपकी स्थिति है।

सनन्दनजी कहते हैं—नारद! राजा जनककी यह बात सुनकर शुद्ध अन्तःकरणवाले शुकदेवजी एक दृढ निश्चयपर पहुँच गये और बुद्धिके द्वारा आत्माका साक्षात्कार करके उसीमें स्थित होकर कृतार्थ हो गये। उस समय उन्हें परम आनन्द और परम शान्तिका अनुभव हुआ। इसके बाद वे हिमालय पर्वतको लक्ष्य करके चुपचाप उत्तर दिशाकी ओर चल दिये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पिता व्यासजीको देखा, जो पैल आदि शिष्योंको वैदिकसंहिता पढ़ा रहे थे। शुद्ध अन्तःकरणवाले शुकदेव अपनी दिव्य प्रभासे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। उन्होने प्रसन्नचित्त होकर बड़े आदरसे पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर उदार-बुद्धि शुकने राजा जनकके साथ जो मोक्षसाधनविषयक संवाद हुआ था, वह सब अपने पिताको बताया। उसे सुनकर वेदोंका विस्तार करनेवाले व्यासजीने हर्षोल्लासपूर्ण हृदयसे पुत्रको छातीसे लगा लिया और अपने पास बिठाया। तत्पश्चात् पैल आदि ब्राह्मण व्यासजीसे वेदोंका अध्ययन करके उस शैलशिखरसे पृथ्वीपर आये और यज्ञ कराने तथा वेद पढ़ानेके कार्यमें संलग्न हो गये।

व्यासजीका शुकदेवको अनध्यायका कारण बताते हुए 'प्रवह' आदि सात वायुओंका परिचय देना तथा सनत्कुमारका शुकको ज्ञानोपदेश

सनन्दनजी कहते हैं—नारदजी! जब पैल आदि ब्राह्मण पर्वतसे नीचे उतर आये, तब पुत्रसहित परम बुद्धिमान् भगवान् व्यास एकान्तमें मौनभावसे ध्यान लगाकर बैठ गये। उस समय आकाशवाणीने पुत्रसहित व्यासजीको सम्बोधित करके कहा—'वसिष्ठ-कुलमें उत्पन्न महर्षि व्यास! इस समय वेद-ध्वनि क्यों नहीं हो रही है? तुम अकेले कुछ चिन्तन करते हुए-से चुपचाप ध्यान लगाये क्यों बैठे हो? इस समय वेदोच्चारणकी ध्वनिसे रहित होकर यह पर्वत सुशोभित नहीं हो रहा है। अतः भगवन्! अपने वेदज्ञ पुत्रके साथ परम प्रसन्नचित्त हो सदा वेदोंका स्वाध्याय करो।'

---

* न बिभेति परो यस्मान्न बिभेति पराच्च यः। यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते स तु॥
यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्। कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
संयोज्य तपसाऽऽत्मानमीर्ष्यामुत्सृज्य मोहिनीम्। त्यक्त्वा कामं च लोभं च ततो ब्रह्मत्वमश्नुते॥
यदा श्रव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चाव्ययम्। समो भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
यदा स्तुतिं च निन्दां च समत्वेन च पश्यति। काञ्चनं चायसं चैव सुखदुःखे तथैव च॥
शीतमुष्णं तथैवार्थमनर्थं प्रियमप्रियम्। जीवितं मरणं चैव ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः। तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा॥
(ना० पूर्व० ५९। २९—३५)

इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखना चाहिये* । जिस प्रकार अन्धकारसे व्याप्त हुआ घर दीपकके प्रकाशसे स्पष्ट दीख पड़ता है, उसी तरह बुद्धिरूपी दीपककी सहायतासे आत्माका दर्शन हो सकता है। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी ! उपर्युक्त सारी बातें मुझे आपमें दिखायी देती हैं । इनके अतिरिक्त जो कुछ भी जानने योग्य विषय है, उसे आप ठीक-ठीक जानते हैं । ब्रह्मर्षे! मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। आप अपने पिताजीकी कृपा और शिक्षाके कारण विषयोंसे परे हो गये हैं। उन्हीं महामुनि गुरुदेवकी कृपासे मुझे भी यह दिव्य विज्ञान प्राप्त हुआ है, जिससे मैं आपकी स्थितिको पहचानता हूँ। आपका विज्ञान, आपकी गति और आपका ऐश्वर्य—ये सब अधिक हैं। किंतु आपको इस बातका पता नहीं है। ब्रह्मन्! आपको ज्ञान हो चुका है और आपकी बुद्धि भी स्थिर है; साथ ही आपमें लोलुपता भी नहीं है; परंतु विशुद्ध निश्चयके बिना किसीको भी परब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती। आप सुख-दुःखमें कोई अन्तर नहीं समझते । आपके मनमें तनिक भी लोभ नहीं है। आपको न नाच देखनेकी उत्कण्ठा होती है, न गीत सुननेकी । आपका कहीं भी राग है ही नहीं। न तो बन्धुओंके प्रति आपकी आसक्ति है न भयदायक पदार्थोंसे भय । महाभाग ! मैं देखता हूँ—आपकी दृष्टिमें अपनी निन्दा और स्तुति एक-सी है। मैं तथा दूसरे मनीषी विद्वान् भी आपको अक्षय एवं अनामय पथ (मोक्षमार्ग) पर स्थित मानते हैं । विप्रवर ! इस लोकमें ब्राह्मण होनेका जो फल है और मोक्षका जो स्वरूप है, उसीमें आपकी स्थिति है।

सनन्दनजी कहते हैं—नारद ! राजा जनककी यह बात सुनकर शुद्ध अन्तःकरणवाले शुकदेवजी एक दृढ निश्चयपर पहुँच गये और बुद्धिके द्वारा आत्माका साक्षात्कार करके उसीमें स्थित होकर कृतार्थ हो गये । उस समय उन्हें परम आनन्द और परम शान्तिका अनुभव हुआ। इसके बाद वे हिमालय पर्वतको लक्ष्य करके चुपचाप उत्तर दिशाकी ओर चल दिये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पिता व्यासजीको देखा, जो पैल आदि शिष्योंको वैदिकसंहिता पढ़ा रहे थे । शुद्ध अन्तःकरणवाले शुकदेव अपनी दिव्य प्रभासे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर बड़े आदरसे पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर उदार-बुद्धि शुकने राजा जनकके साथ जो मोक्षसाधनविषयक संवाद हुआ था, वह सब अपने पिताको बताया । उसे सुनकर वेदोंका विस्तार करनेवाले व्यासजीने हर्षोल्लासपूर्ण हृदयसे पुत्रको छातीसे लगा लिया और अपने पास बिठाया। तत्पश्चात् पैल आदि ब्राह्मण व्यासजीसे वेदोंका अध्ययन करके उस शैलशिखरसे पृथ्वीपर आये और यज्ञ कराने तथा वेद पढ़ानेके कार्यमें संलग्न हो गये।

व्यासजीका शुकदेवको अनध्यायका कारण बताते हुए 'प्रवह' आदि सात वायुओंका परिचय देना तथा सनत्कुमारका शुकको ज्ञानोपदेश

सनन्दनजी कहते हैं—नारदजी ! जब पैल आदि ब्राह्मण पर्वतसे नीचे उतर आये, तब पुत्रसहित परम बुद्धिमान् भगवान् व्यास एकान्तमें मौनभावसे ध्यान लगाकर बैठ गये । उस समय आकाशवाणीने पुत्रसहित व्यासजीको सम्बोधित करके कहा—'वसिष्ठ-कुलमें उत्पन्न महर्षि व्यास ! इस समय वेद-ध्वनि क्यों नहीं हो रही है ? तुम अकेले कुछ चिन्तन करते हुए-से चुपचाप ध्यान लगाये क्यों बैठे हो ! इस समय वेदोच्चारणकी ध्वनिसे रहित होकर यह पर्वत सुशोभित नहीं हो रहा है । अतः भगवन् ! अपने वेदज्ञ पुत्रके साथ परम प्रसन्नचित्त हो सदा वेदोंका स्वाध्याय करो।'

---

* न बिभेति परो यस्मान्न बिभेति पराच्च यः । यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते स तु ॥
यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम् । कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥
संयोज्य तपसाऽऽत्मानमीर्ष्यामुत्सृज्य मोहिनीम् । त्यक्त्वा कामं च लोभं च ततो ब्रह्मत्वमश्नुते ॥
यदा श्रव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चाव्ययम् । समो भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥
यदा स्तुतिं च निन्दां च समत्वेन च पश्यति । काञ्चनं चायसं चैव सुखदुःखे तथैव च ॥
शीतमुष्णं तथैवार्थमनर्थं प्रियमप्रियम् । जीवितं मरणं चैव ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥
प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः । तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा ॥
(ना० पूर्व० ५९ । २९—३५)

सारा जगत् व्यथित हो उठता है। इसलिये ब्रह्मवेत्ता पुरुष प्रचण्ड वायु (आँधी) चलनेपर वेदका पाठ नहीं करते हैं। वेद भी भगवान्‌का निःश्वास ही है। उस समय वेद-पाठ करनेपर वायुसे वायुको क्षोभ प्राप्त होता है।

अनध्यायके विषयमें यह बात कहकर पराशरनन्दन भगवान् व्यास अपने पुत्र शुकदेवसे बोले—'अब तुम वेद-पाठ करो।' यों कहकर वे आकाशगङ्गाके तटपर गये। जब व्यासजी स्नान करने चले गये तब ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ शुकदेव-जी वेदोंका स्वाध्याय करने लगे। वे वेद और वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् थे। नारदजी! व्यासपुत्र शुकदेवजी जब स्वाध्यायमें लगे हुए थे उसी समय वहाँ भगवान् सनत्कुमार एकान्तमें उनके पास आये*। व्यासनन्दन शुकने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजीका उठकर स्वागत-सत्कार किया। विप्रेन्द्र! तत्पश्चात् ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सनत्कुमारजीने शुकदेवजीसे कहा—'महाभाग! महातेजस्वी व्यासपुत्र! क्या कर रहे हो?'

शुकदेवजी बोले—ब्रह्मकुमार! इस समय मैं वेदोंके स्वाध्यायमें लगा हूँ। मेरे किसी अज्ञात पुण्यके फलसे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। अतः महाभाग! मैं आपसे किसी ऐसे तत्त्वके विषयमें पूछना चाहता हूँ जो मोक्षरूपी पुरुषार्थका साधक हो। अतः आप कृपापूर्वक बतावें, जिससे मुझे भी उसका ज्ञान हो।

सनत्कुमारजीने कहा—ब्रह्मन्! विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है, सत्यके तुल्य कोई तपस्या नहीं है, रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके सदृश कोई सुख नहीं है। पाप-कर्मसे दूर रहना, सदा पुण्यका सञ्चय करते रहना, साधु पुरुषोंके बर्तावको अपनाना और उत्तम सदाचारका पालन करना—यह सर्वोत्तम श्रेयका साधन है। जहाँ सुखका नाम भी नहीं है, ऐसे मानवशरीरको पाकर जो विषयोंमें आसक्त होता है, वह मोहमें डूब जाता है। विषयोंका संयोग दुःखरूप है, वह कभी दुःखसे छुटकारा नहीं दिला सकता। आसक्त मनुष्यकी बुद्धि चञ्चल हो जाती है और मोहजालका विस्तार करनेवाली होती है। जो उस मोहजालसे घिर जाता है, वह इस लोक और परलोकमें भी दुःखका ही भागी होता है। जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे सभी उपायोंसे काम और क्रोधको काबूमें करना चाहिये, क्योंकि वे दोनों दोष मनुष्यके श्रेयका विनाश करनेके लिये उद्यत रहते हैं। मनुष्यको चाहिये कि तपको क्रोधसे, सम्पत्तिको डाहसे, विद्याको मान-अपमानसे और अपनेको प्रमादसे बचावे। क्रूरस्वभावका परित्याग सबसे बड़ा धर्म है। क्षमा सबसे महान् बल है। आत्मज्ञान सर्वोत्तम ज्ञान है और सत्य ही सबसे बढ़कर हितका साधन है*। सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ है, किंतु हितकारक बात कहना सत्य-से भी बढ़कर है। जिससे प्राणियोंका अत्यन्त हित होता हो, उसीको मैं सत्य मानता हूँ। जो नये-नये कर्म आरम्भ करनेका संकल्प छोड़ चुका है, जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जो किसी वस्तुका संग्रह नहीं करता तथा जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही विद्वान् है और वही पण्डित है। जो अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा अनासक्तभावसे विषयोंका अनुभव करता है, जिसके अन्तःकरणमें सदा शान्ति विराजती है, जो निर्विकार एवं एकाग्रचित्त है तथा जो आत्मीय कहलानेवाले शरीर और इन्द्रियोंके साथ रहकर भी उनसे एकाकार न होकर विलग-सा ही रहता है, वह सब बन्धनोंसे छूटकर शीघ्र ही परम कल्याण प्राप्त कर लेता है। मुने! जिसकी किसी भी प्राणीकी ओर दृष्टि नहीं जाती, जो किसीका स्पर्श तथा किसीसे बातचीत नहीं करता, उसे महान् श्रेयकी प्राप्ति होती है। किसी भी जीवकी हिंसा न करे। सब प्राणियोंके साथ मित्रतापूर्ण बर्ताव करे। इस जन्म (अथवा शरीर) को लेकर किसीके साथ वैरभाव न करे। जो आत्मतत्त्वका ज्ञाता तथा मनको वशमें रखनेवाला है, उसे चाहिये कि किसी भी वस्तुका संग्रह न करे। मनमें पूर्ण संतोष रक्खे। कामना तथा चपलताको त्याग दे। इससे परम कल्याणकी सिद्धि होती है। जिन्होंने भोगोंका परित्याग कर दिया है, वे कभी शोकमें नहीं पड़ते, इसलिये प्रत्येक मनुष्य-को भोगासक्तिका त्याग करना चाहिये। जो किसीसे भी पराजित न होनेवाले परमात्माको जीतना चाहता हो, उसे तपस्वी, जितेन्द्रिय, मननशील, संयतचित्त तथा सम्पूर्ण विषयोंमें अनासक्त होना चाहिये। जो ब्राह्मण त्रिगुणात्मक विषयोंमें

---

* यहाँ सनत्कुमारजीने शुकदेवजीसे मिलकर उनको जो उपदेश दिया है वह या तो वनकके उपदेश देनेके पूर्वका प्रसङ्ग समझना चाहिये अथवा ऐसा समझना चाहिये कि यह उपदेश सनत्कुमारजीने संसारके हितके लिये शुकदेवजीको निमित्त बनाकर दिया है।

* नित्यं क्रोधात्तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेच्च मत्सरात्।
विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः॥
आनृशंस्यं परो धर्मः क्षमा च परमं बलम्।
आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सत्यं हि परमं हितम्॥

(ना० पूर्व० ६० । ४८-४९)

सारा जगत् व्यथित हो उठता है। इसलिये ब्रह्मवेत्ता पुरुष प्रचण्ड वायु (आँधी) चलनेपर वेदका पाठ नहीं करते हैं। वेद भी भगवान्‌का निःश्वास ही है। उस समय वेद-पाठ करनेपर वायुसे वायुको क्षोभ प्राप्त होता है।

अनध्यायके विषयमें यह बात कहकर पराशरनन्दन भगवान् व्यास अपने पुत्र शुकदेवसे बोले—'अब तुम वेद-पाठ करो।' यों कहकर वे आकाशगङ्गाके तटपर गये। जब व्यासजी स्नान करने चले गये तब ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ शुकदेव-जी वेदोंका स्वाध्याय करने लगे। वे वेद और वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् थे। नारदजी! व्यासपुत्र शुकदेवजी जब स्वाध्यायमें लगे हुए थे उसी समय वहाँ भगवान् सनत्कुमार एकान्तमें उनके पास आये*। व्यासनन्दन शुकने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजीका उठकर स्वागत-सत्कार किया। विप्रेन्द्र! तत्पश्चात् ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सनत्कुमारजीने शुकदेवजीसे कहा—'महाभाग! महातेजस्वी व्यासपुत्र! क्या कर रहे हो?'

शुकदेवजी बोले—ब्रह्मकुमार! इस समय मैं वेदोंके स्वाध्यायमें लगा हूँ। मेरे किसी अज्ञात पुण्यके फलसे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। अतः महाभाग! मैं आपसे किसी ऐसे तत्त्वके विषयमें पूछना चाहता हूँ जो मोक्षरूपी पुरुषार्थका साधक हो। अतः आप कृपापूर्वक बतावें, जिससे मुझे भी उसका ज्ञान हो।

सनत्कुमारजीने कहा—ब्रह्मन्! विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है, सत्यके तुल्य कोई तपस्या नहीं है, रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके सदृश कोई सुख नहीं है। पाप-कर्मसे दूर रहना, सदा पुण्यका सञ्चय करते रहना, साधु पुरुषोंके बर्तावको अपनाना और उत्तम सदाचारका पालन करना—यह सर्वोत्तम श्रेयका साधन है। जहाँ सुखका नाम भी नहीं है, ऐसे मानवशरीरको पाकर जो विषयोंमें आसक्त होता है, वह मोहमें डूब जाता है। विषयोंका संयोग दुःखरूप है, वह कभी दुःखसे छुटकारा नहीं दिला सकता। आसक्त मनुष्यकी बुद्धि चञ्चल हो जाती है और मोहजालका विस्तार करनेवाली होती है। जो उस मोहजालसे घिर जाता है, वह इस लोक और परलोकमें भी दुःखका ही भागी होता है। जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे सभी उपायोंसे काम और क्रोधको काबूमें करना चाहिये, क्योंकि वे दोनों दोष मनुष्यके श्रेयका विनाश करनेके लिये उद्यत रहते हैं। मनुष्यको चाहिये कि तपको क्रोधसे, सम्पत्तिको डाहसे, विद्याको मान-अपमानसे और अपनेको प्रमादसे बचावे। क्रूरस्वभावका परित्याग सबसे बड़ा धर्म है। क्षमा सबसे महान् बल है। आत्मज्ञान सर्वोत्तम ज्ञान है और सत्य ही सबसे बढ़कर हितका साधन है*। सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ है, किंतु हितकारक बात कहना सत्य-से भी बढ़कर है। जिससे प्राणियोंका अत्यन्त हित होता हो, उसीको मैं सत्य मानता हूँ। जो नये-नये कर्म आरम्भ करनेका संकल्प छोड़ चुका है, जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जो किसी वस्तुका संग्रह नहीं करता तथा जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही विद्वान् है और वही पण्डित है। जो अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा अनासक्तभावसे विषयोंका अनुभव करता है, जिसके अन्तःकरणमें सदा शान्ति विराजती है, जो निर्विकार एवं एकाग्रचित्त है तथा जो आत्मीय कहलानेवाले शरीर और इन्द्रियोंके साथ रहकर भी उनसे एकाकार न होकर विलग-सा ही रहता है, वह सब बन्धनोंसे छूटकर शीघ्र ही परम कल्याण प्राप्त कर लेता है। मुने! जिसकी किसी भी प्राणीकी ओर दृष्टि नहीं जाती, जो किसीका स्पर्श तथा किसीसे बातचीत नहीं करता, उसे महान् श्रेयकी प्राप्ति होती है। किसी भी जीवकी हिंसा न करे। सब प्राणियोंके साथ मित्रतापूर्ण बर्ताव करे। इस जन्म (अथवा शरीर) को लेकर किसीके साथ वैरभाव न करे। जो आत्मतत्त्वका ज्ञाता तथा मनको वशमें रखनेवाला है, उसे चाहिये कि किसी भी वस्तुका संग्रह न करे। मनमें पूर्ण संतोष रक्खे। कामना तथा चपलताको त्याग दे। इससे परम कल्याणकी सिद्धि होती है। जिन्होंने भोगोंका परित्याग कर दिया है, वे कभी शोकमें नहीं पड़ते, इसलिये प्रत्येक मनुष्य-को भोगासक्तिका त्याग करना चाहिये। जो किसीसे भी पराजित न होनेवाले परमात्माको जीतना चाहता हो, उसे तपस्वी, जितेन्द्रिय, मननशील, संयतचित्त तथा सम्पूर्ण विषयोंमें अनासक्त होना चाहिये। जो ब्राह्मण त्रिगुणात्मक विषयोंमें

* यहाँ सनत्कुमारजीने शुकदेवजीसे मिलकर उनको जो उपदेश दिया है वह या तो जनकके उपदेश देनेके पूर्वका प्रसङ्ग समझना चाहिये अथवा ऐसा समझना चाहिये कि यह उपदेश सनत्कुमारजीने संसारके हितके लिये शुकदेवजीको निमित्त बनाकर दिया है।

* नित्य क्रोधात्तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेच्च मत्सरात्।
विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः॥
आनृशंस्यं परो धर्मः क्षमा च परमं बलम्।
आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सत्यं हि परमं हितम्॥
(ना० पूर्व० ६० । ४८-४९)

बार-बार चिन्तन न किया जाय। चिन्तन करनेसे वह घटता नहीं, बल्कि और बढ़ता ही जाता है। इसलिये मानसिक दुःखको बुद्धिके विचारसे और शारीरिक कष्टको औषध-सेवनद्वारा नष्ट करना चाहिये। शास्त्रज्ञानके प्रभावसे ही ऐसा होना सम्भव है। दुःख पड़नेपर बालकोंकी तरह रोना उचित नहीं है। रूप, यौवन, जीवन, धन-संग्रह, आरोग्य तथा प्रियजनोंका सहवास—ये सब अनित्य हैं। विद्वान् पुरुषको इनमें आसक्त नहीं होना चाहिये। आये हुए संकटके लिये शोक करना उचित नहीं है। यदि उस संकटको टालनेका कोई उपाय दिखलायी दे तो शोक छोड़कर उसे ही करना चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि जीवनमें सुखकी अपेक्षा दुःख ही अधिक होता है तथापि जरा और मृत्युके दुःख महान् हैं, अतः उनसे अपने प्रिय आत्माका उद्धार करे। शारीरिक और मानसिक रोग सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले वीर पुरुषके छोड़े हुए तीखी धारवाले बाणोंकी तरह शरीरको पीड़ित करते हैं। तृष्णासे व्यथित, दुखी एवं विवश होकर जीनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यका नाशवान् शरीर क्षण-क्षणमें विनाशको प्राप्त हो रहा है। जैसे नदियोंका प्रवाह आगेकी ओर ही बढ़ता जाता है, पीछेकी ओर नहीं लौटता, उसी प्रकार रात और दिन भी मनुष्योंकी आयुका अपहरण करते हुए एक-एक करके बीतते चले जा रहे हैं। यदि जीवके किये हुए कर्मोंका फल पराधीन न होता तो वह जो चाहता, उसकी वही कामना पूरी हो जाती। बड़े-बड़े संयमी, चतुर और बुद्धिमान् मनुष्य भी अपने कर्मोंके फलसे वञ्चित होते देखे जाते हैं तथा गुणहीन, मूर्ख और नीच पुरुष भी किसीके आशीर्वाद बिना ही समस्त कामनाओंसे सम्पन्न दिखायी देते हैं। कोई-कोई मनुष्य तो सदा प्राणियोंकी हिंसामें ही लगा रहता है और संसारको धोखा दिया करता है, किंतु कहीं-कहीं ऐसा पुरुष भी सुखी देखा जाता है। कितने ही ऐसे हैं, जो कोई काम न करके चुपचाप बैठे रहते हैं, फिर भी उनके पास लक्ष्मी अपने-आप पहुँच जाती है और कुछ लोग बहुत-से कार्य करते हैं, फिर भी मनचाही वस्तु नहीं पाते। इसमें पुरुषका प्रारब्ध ही प्रधान है। देखो, वीर्य अन्यत्र पैदा होता है और अन्यत्र जाकर संतान उत्पन्न करता है। कभी तो वह योनिमें पहुँचकर गर्भ धारण करानेमें समर्थ होता है और कभी नहीं होता। कितने ही लोग पुत्र-पौत्रकी इच्छा रखकर उसकी सिद्धिके लिये यत्न करते रहते हैं, तो भी उनके संतान नहीं होती और कितने ही मनुष्य संतानको क्रोधमें भरा हुआ साँप समझकर सदा उससे डरते रहते हैं तो भी उनके यहाँ दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न हो जाता है, मानो वह स्वयं किसी प्रकार परलोकसे आकर प्रकट हो गया हो। कितने ही गर्भ ऐसे हैं, जो पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाले दीन स्त्री-पुरुषोंद्वारा देवताओंकी पूजा और तपस्या करके प्राप्त किये जाते हैं और दस महीनेतक माताके उदरमें धारण किये जानेके बाद जन्म लेनेपर कुलाङ्गार निकल जाते हैं। उन्हीं माङ्गलिक कृत्योंसे प्राप्त हुए बहुत-से ऐसे पुत्र हैं, जो जन्म लेनेके साथ ही पिताके संचित किये हुए अपार धन-धान्य और विपुल भोगोंके अधिकारी होते हैं। (इन सबमें प्रारब्ध ही प्रधान है।)

जो सुख और दुःख दोनोंकी चिन्ता छोड़ देता है, वह अविनाशी ब्रह्मको प्राप्त होता है और परमानन्दका अनुभव करता है। धनके उपार्जनमें बड़ा कष्ट होता है, उसकी रक्षामें भी सुख नहीं है तथा उसके खर्च करनेमें भी क्लेश ही होता है, अतः धनको प्रत्येक दशामें दुःखदायक समझकर उसके नष्ट होनेपर चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मनुष्य धनका संग्रह करते-करते पहलेकी अपेक्षा ऊँची स्थितिको प्राप्त करके भी कभी तृप्त नहीं होते, वे और अधिक धन कमानेकी आशा लिये हुए ही मर जाते हैं। इसलिये विद्वान् पुरुष सदा संतुष्ट रहते हैं (वे धनकी तृष्णामें नहीं पड़ते)। संग्रहका अन्त है विनाश, सासारिक ऐश्वर्यकी उन्नतिका अन्त है उस ऐश्वर्यकी अवनति। संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मरण। तृष्णाका कभी अन्त नहीं होता। संतोष ही परम सुख है। अतः पण्डितजन इस लोकमें संतोषको ही उत्तम धन कहते हैं। आयु निरन्तर बीती जा रही है। वह पलभर भी विश्राम नहीं लेती। जब अपना शरीर ही अनित्य है, तब इस संसारकी दूसरी किस वस्तुको नित्य समझा जाय। जो मनुष्य सब प्राणियोंके भीतर मनसे परे परमात्माकी स्थिति जानकर उन्हींका चिन्तन करते हैं, वे संसारयात्रा समाप्त होनेपर परमपदका साक्षात्कार करते हुए शोकके पार हो जाते हैं।

जैसे वनमें नयी-नयी घासकी खोजमें विचरते हुए अतृप्त पशुको सहसा व्याघ्र आकर दबोच लेता है, उसी प्रकार भोगोंकी खोजमें लगे हुए अतृप्त मनुष्यको मृत्यु उठा ले जाती है। इसलिये इस दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय अवश्य सोचना चाहिये। जो शोक छोड़कर साधन आरम्भ

बार-बार चिन्तन न किया जाय। चिन्तन करनेसे वह घटता नहीं, बल्कि और बढ़ता ही जाता है। इसलिये मानसिक दुःखको बुद्धिके विचारसे और शारीरिक कष्टको औषध-सेवनद्वारा नष्ट करना चाहिये। शास्त्रज्ञानके प्रभावसे ही ऐसा होना सम्भव है। दुःख पड़नेपर बालकोंकी तरह रोना उचित नहीं है। रूप, यौवन, जीवन, धन-संग्रह, आरोग्य तथा प्रियजनोंका सहवास—ये सब अनित्य हैं। विद्वान् पुरुषको इनमें आसक्त नहीं होना चाहिये। आये हुए संकटके लिये शोक करना उचित नहीं है। यदि उस संकटको टालनेका कोई उपाय दिखलायी दे तो शोक छोड़कर उसे ही करना चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि जीवनमें सुखकी अपेक्षा दुःख ही अधिक होता है तथापि जरा और मृत्युके दुःख महान् हैं, अतः उनसे अपने प्रिय आत्माका उद्धार करे। शारीरिक और मानसिक रोग सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले वीर पुरुषके छोड़े हुए तीखी धारवाले बाणोंकी तरह शरीरको पीड़ित करते हैं। तृष्णासे व्यथित, दुखी एवं विवश होकर जीनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यका नाशवान् शरीर क्षण-क्षणमें विनाशको प्राप्त हो रहा है। जैसे नदियोंका प्रवाह आगेकी ओर ही बढ़ता जाता है, पीछेकी ओर नहीं लौटता, उसी प्रकार रात और दिन भी मनुष्योंकी आयुका अपहरण करते हुए एक-एक करके बीतते चले जा रहे हैं। यदि जीवके किये हुए कर्मोंका फल पराधीन न होता तो वह जो चाहता, उसकी वही कामना पूरी हो जाती। बड़े-बड़े संयमी, चतुर और बुद्धिमान् मनुष्य भी अपने कर्मोंके फलसे वञ्चित होते देखे जाते हैं तथा गुणहीन, मूर्ख और नीच पुरुष भी किसीके आशीर्वाद बिना ही समस्त कामनाओंसे सम्पन्न दिखायी देते हैं। कोई-कोई मनुष्य तो सदा प्राणियोंकी हिंसामें ही लगा रहता है और संसारको धोखा दिया करता है, किंतु कहीं-कहीं ऐसा पुरुष भी सुखी देखा जाता है। कितने ही ऐसे हैं, जो कोई काम न करके चुपचाप बैठे रहते हैं, फिर भी उनके पास लक्ष्मी अपने-आप पहुँच जाती है और कुछ लोग बहुत-से कार्य करते हैं, फिर भी मनचाही वस्तु नहीं पाते। इसमें पुरुषका प्रारब्ध ही प्रधान है। देखो, वीर्य अन्यत्र पैदा होता है और अन्यत्र जाकर संतान उत्पन्न करता है। कभी तो वह योनिमें पहुँचकर गर्भ धारण करानेमें समर्थ होता है और कभी नहीं होता। कितने ही लोग पुत्र-पौत्रकी इच्छा रखकर उसकी सिद्धिके लिये यत्न करते रहते हैं, तो भी उनके संतान नहीं होती और कितने ही मनुष्य संतानको क्रोधमें भरा हुआ साँप समझकर सदा उससे डरते रहते हैं तो भी उनके यहाँ दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न हो जाता है, मानो वह स्वयं किसी प्रकार परलोकसे आकर प्रकट हो गया हो। कितने ही गर्भ ऐसे हैं, जो पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाले दीन स्त्री-पुरुषोंद्वारा देवताओंकी पूजा और तपस्या करके प्राप्त किये जाते हैं और दस महीनेतक माताके उदरमें धारण किये जानेके बाद जन्म लेनेपर कुलाङ्गार निकल जाते हैं। उन्हीं माङ्गलिक कृत्योंसे प्राप्त हुए बहुत-से ऐसे पुत्र हैं, जो जन्म लेनेके साथ ही पिताके संचित किये हुए अपार धन-धान्य और विपुल भोगोंके अधिकारी होते हैं। (इन सबमें प्रारब्ध ही प्रधान है।)

जो सुख और दुःख दोनोंकी चिन्ता छोड़ देता है, वह अविनाशी ब्रह्मको प्राप्त होता है और परमानन्दका अनुभव करता है। धनके उपार्जनमें बड़ा कष्ट होता है, उसकी रक्षामें भी सुख नहीं है तथा उसके खर्च करनेमें भी क्लेश ही होता है, अतः धनको प्रत्येक दशामें दुःखदायक समझकर उसके नष्ट होनेपर चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मनुष्य धनका संग्रह करते-करते पहलेकी अपेक्षा ऊँची स्थितिको प्राप्त करके भी कभी तृप्त नहीं होते, वे और अधिक धन कमानेकी आशा लिये हुए ही मर जाते हैं। इसलिये विद्वान् पुरुष सदा संतुष्ट रहते हैं (वे धनकी तृष्णामें नहीं पड़ते)। संग्रहका अन्त है विनाश, सासारिक ऐश्वर्यकी उन्नतिका अन्त है उस ऐश्वर्यकी अवनति। संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मरण। तृष्णाका कभी अन्त नहीं होता। संतोष ही परम सुख है। अतः पण्डितजन इस लोकमें संतोषको ही उत्तम धन कहते हैं। आयु निरन्तर बीती जा रही है। वह पलभर भी विश्राम नहीं लेती। जब अपना शरीर ही अनित्य है, तब इस संसारकी दूसरी किस वस्तुको नित्य समझा जाय। जो मनुष्य सब प्राणियोंके भीतर मनसे परे परमात्माकी स्थिति जानकर उन्हींका चिन्तन करते हैं, वे संसारयात्रा समाप्त होनेपर परमपदका साक्षात्कार करते हुए शोकके पार हो जाते हैं।

जैसे वनमें नयी-नयी घासकी खोजमें विचरते हुए अतृप्त पशुको सहसा व्याघ्र आकर दबोच लेता है, उसी प्रकार भोगोंकी खोजमें लगे हुए अतृप्त मनुष्यको मृत्यु उठा ले जाती है। इसलिये इस दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय अवश्य सोचना चाहिये। जो शोक छोड़कर साधन आरम्भ

गये। वहाँ उन्होंने सिद्ध-समुदायके द्वारा निरन्तर सेवित देवाधिदेव भगवान् विष्णुका दर्शन किया। उनके चार भुजाएँ थीं। वे शान्त एवं प्रसन्नमुख दिखायी देते थे। उनके श्रीअङ्गोंपर रेशमी पीताम्बर शोभा पा रहा था। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म मूर्तिमान् होकर भगवान्की सेवामे उपस्थित थे। उनके वक्षःस्थलमें भगवती लक्ष्मी विराज रही थीं और कौस्तुभमणिसे वे प्रकाशित हो रहे थे। उनके कटिभागमें करधनी, बायें कंधेपर यज्ञोपवीत, हाथोंमे कड़े तथा भुजाओंमें अङ्गद सुशोभित थे। माथेपर मण्डलाकार किरीट और चरणोंमे नूपुर शोभा दे रहे थे। भगवान् मधुसूदनका दर्शन करके शुकदेवने भक्तिभावसे उनकी स्तुति की।

शुकदेवजी बोले—सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र साक्षी आप भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्के बीज-स्वरूप, सर्वत्र परिपूर्ण एवं निश्चल आत्मरूप आपको नमस्कार है। वासुकि नागकी शय्यापर शयन करनेवाले श्वेतद्वीपनिवासी श्रीहरिको नमस्कार है। आप हंस, मत्स्य, वाराह तथा नरसिंहरूप धारण करनेवाले हैं। ध्रुवके आराध्यदेव भी आप ही हैं। आप सांख्य और योग दोनोंके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। चारों सनकादि आपके ही अवतार हैं। आपने ही कच्छप और पृथुरूप धारण किया है। आत्मानन्द ही आपका स्वरूप है। आप ही नाभिपुत्र ऋषभदेवजीके रूपमें प्रकट हुए हैं। जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले आप ही हैं। आपको नमस्कार है। भृगुनन्दन परशुराम, रघुनन्दन श्रीराम, परात्पर श्रीकृष्ण, वेदव्यास, बुद्ध तथा कल्कि भी आपके ही स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। कृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंके रूपमे आप ही विराज रहे हैं। जानने और चिन्तन करनेयोग्य परमात्मा भी आप ही हैं। नर-नारायण, शिपिविष्ट तथा विष्णु नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। सत्य ही आपका धाम है। आप धामरहित हैं। गरुड आपके ही स्वरूप हैं। आप स्वयंप्रकाश, ऋभु (देवता), उत्तम व्रतका पालन करनेके लिये विख्यात, उत्कृष्ट धामवाले और अजित् हैं। आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व आपका स्वरूप है। आप ही विश्वरूपमें प्रकट हैं। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भी आप ही हैं। यज्ञ और उसके भोक्ता, स्थूल और सूक्ष्म तथा याचना करनेवाले वामनरूप आपको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। साहस, ओज और बल आपसे भिन्न नहीं हैं। आप यज्ञोंद्वारा यजन करने योग्य, साक्षी, अजन्मा तथा अनेक हाथ, पैर और मस्तकवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप लक्ष्मीके स्वामी, उनके निवासस्थान तथा भक्तोंके अधीन रहनेवाले हैं। आप शार्ङ्गनामक धनुष धारण करते हैं। आठ* प्रकृतियोंके अधिपति, ब्रह्मा तथा अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न आप परमेश्वरको नमस्कार है। बृहदारण्यक उपनिषद्के द्वारा आपके तत्त्वका बोध होता है। आप इन्द्रियोंके प्रेरक तथा जगत्स्रष्टा ब्रह्मा हैं। आपके नेत्र विकसित कमलके समान हैं। क्षेत्रज्ञके रूपमें आप ही प्रकाशित हो रहे हैं। आपको नमस्कार है। गोविन्द, जगत्कर्ता, जगन्नाथ, योगी, सत्य, सत्यप्रतिज्ञ, वैकुण्ठ और अच्युतरूप आपको नमस्कार है। अधोक्षज, धर्म, वामन, त्रिधातु, तेजःपुञ्ज धारण करनेवाले, विष्णु, अनन्त एवं कपिलरूप आपको नमस्कार है। आप ही विरिञ्चि नामसे प्रसिद्ध ब्रह्माजी हैं। तीन शिखरोंवाला त्रिकूट पर्वत आपका ही स्वरूप है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद आपके अभिन्न विग्रह हैं। एक सींगवाले शृङ्गी ऋषि भी आपकी ही विभूति हैं। आपका यश परम पवित्र है तथा सम्पूर्ण वेद-शास्त्र आपसे ही प्रकट हुए हैं। आपको नमस्कार है। आप वृषाकपि (धर्मको अविचल रूपसे स्थापित करनेवाले विष्णु, शिव और इन्द्र) हैं। सम्पूर्ण समृद्धियोंसे सम्पन्न तथा प्रभु-सर्वशक्तिमान् हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी ही रचना है। भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक आपके ही स्वरूप हैं। आप दैत्योंका नाश करनेवाले तथा निर्गुण रूप हैं। आपको नमस्कार है। आप निरञ्जन, नित्य, अव्यय और अक्षररूप

* गीताके अनुसार आठ प्रकृतियोंके नाम इस प्रकार हैं—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहङ्कार।

गये। वहाँ उन्होंने सिद्ध-समुदायके द्वारा निरन्तर सेवित देवाधिदेव भगवान् विष्णुका दर्शन किया। उनके चार भुजाएँ थीं। वे शान्त एवं प्रसन्नमुख दिखायी देते थे। उनके श्रीअङ्गोंपर रेशमी पीताम्बर शोभा पा रहा था। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म मूर्तिमान् होकर भगवान्‌की सेवामें उपस्थित थे। उनके वक्षःस्थलमें भगवती लक्ष्मी विराज रही थीं और कौस्तुभमणिसे वे प्रकाशित हो रहे थे। उनके कटिभागमें करधनी, बायें कंधेपर यज्ञोपवीत, हाथोंमें कड़े तथा भुजाओंमें अङ्गद सुशोभित थे। माथेपर मण्डलाकार किरीट और चरणोंमें नूपुर शोभा दे रहे थे। भगवान् मधुसूदनका दर्शन करके शुकदेवने भक्तिभावसे उनकी स्तुति की।

शुकदेवजी बोले—सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र साक्षी आप भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्‌के बीज-स्वरूप, सर्वत्र परिपूर्ण एवं निश्चल आत्मरूप आपको नमस्कार है। वासुकि नागकी शय्यापर शयन करनेवाले श्वेतद्वीपनिवासी श्रीहरिको नमस्कार है। आप हंस, मत्स्य, वाराह तथा नरसिंहरूप धारण करनेवाले हैं। ध्रुवके आराध्यदेव भी आप ही हैं। आप सांख्य और योग दोनोंके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। चारों सनकादि आपके ही अवतार हैं। आपने ही कच्छप और पृथुरूप धारण किया है। आत्मानन्द ही आपका स्वरूप है। आप ही नाभिपुत्र ऋषभदेवजीके रूपमें प्रकट हुए हैं। जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले आप ही हैं। आपको नमस्कार है। भृगुनन्दन परशुराम, रघुनन्दन श्रीराम, परात्पर श्रीकृष्ण, वेदव्यास, बुद्ध तथा कल्कि भी आपके ही स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। कृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंके रूपमें आप ही विराज रहे हैं। जानने और चिन्तन करनेयोग्य परमात्मा भी आप ही हैं। नर-नारायण, शिपिविष्ट तथा विष्णु नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। सत्य ही आपका धाम है। आप धामरहित हैं। गरुड आपके ही स्वरूप हैं। आप स्वयंप्रकाश, ऋभु (देवता), उत्तम व्रतका पालन करनेके लिये विख्यात, उत्कृष्ट धामवाले और अजित् हैं। आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व आपका स्वरूप है। आप ही विश्वरूपमें प्रकट हैं। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भी आप ही हैं। यज्ञ और उसके भोक्ता, स्थूल और सूक्ष्म तथा याचना करनेवाले वामनरूप आपको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। साहस, ओज और बल आपसे भिन्न नहीं हैं। आप यज्ञोंद्वारा यजन करने योग्य, साक्षी, अजन्मा तथा अनेक हाथ, पैर और मस्तकवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप लक्ष्मीके स्वामी, उनके निवासस्थान तथा भक्तोंके अधीन रहनेवाले हैं। आप शार्ङ्गनामक धनुष धारण करते हैं। आठ* प्रकृतियोंके अधिपति, ब्रह्मा तथा अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न आप परमेश्वरको नमस्कार है। बृहदारण्यक उपनिषद्‌के द्वारा आपके तत्त्वका बोध होता है। आप इन्द्रियोंके प्रेरक तथा जगत्स्रष्टा ब्रह्मा हैं। आपके नेत्र विकसित कमलके समान हैं। क्षेत्रज्ञके रूपमें आप ही प्रकाशित हो रहे हैं। आपको नमस्कार है। गोविन्द, जगत्कर्ता, जगन्नाथ, योगी, सत्य, सत्यप्रतिज्ञ, वैकुण्ठ और अच्युतरूप आपको नमस्कार है। अधोक्षज, धर्म, वामन, त्रिधातु, तेजःपुञ्ज धारण करनेवाले, विष्णु, अनन्त एवं कपिलरूप आपको नमस्कार है। आप ही विरिञ्चि नामसे प्रसिद्ध ब्रह्माजी हैं। तीन शिखरोंवाला त्रिकूट पर्वत आपका ही स्वरूप है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद आपके अभिन्न विग्रह हैं। एक सींगवाले श्रृङ्गी ऋषि भी आपकी ही विभूति हैं। आपका यश परम पवित्र है तथा सम्पूर्ण वेद-शास्त्र आपसे ही प्रकट हुए हैं। आपको नमस्कार है। आप वृषाकपि (धर्मको अविचल रूपसे स्थापित करनेवाले विष्णु, शिव और इन्द्र) हैं। सम्पूर्ण समृद्धियोंसे सम्पन्न तथा प्रभु-सर्वशक्तिमान् हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी ही रचना है। भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक आपके ही स्वरूप हैं। आप दैत्योंका नाश करनेवाले तथा निर्गुण रूप हैं। आपको नमस्कार है। आप निरञ्जन, नित्य, अव्यय और अक्षररूप

* गीताके अनुसार आठ प्रकृतियोंके नाम इस प्रकार हैं— भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहङ्कार।

तृतीय पाद

शैवदर्शन* के अनुसार पति, पशु एवं पाश आदिका वर्णन तथा दीक्षाकी महत्ता

शौनकजी बोले—साधु सूतजी ! आप सम्पूर्ण शास्त्रोंके विज्ञ पण्डित हैं । विद्वन् ! आपने हमलोगोंको श्रीकृष्ण-कथारूपी अमृतका पान कराया है । भगवान्‌के प्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीने सनन्दनके मुखसे मोक्षधर्मोंका वर्णन सुनकर पुनः क्या पूछा ? ब्रह्माजीके मानस-पुत्र सनकादि मुनीश्वर उत्तम सिद्धपुरुष हैं । वे लोगोंके उद्धारमें तत्पर होकर सम्पूर्ण जगत्‌में विचरते रहते हैं । महाभाग ! श्रीनारदजी भी सदा श्रीकृष्णके भजनमें संलग्न रहते हैं और उन्हींके शरणागत भक्त हैं । उन सनकादि और नारदका समागम होनेपर सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली कौन-सी कल्याणमयी कथा हुई, यह बतानेकी कृपा करें ?

सूतजीने कहा—भृगुश्रेष्ठ ! सनन्दनजीके द्वारा प्रतिपादित सनातन मोक्षधर्मोंका वर्णन सुनकर नारदजीने पुनः उन मुनियोंसे पूछा ।

नारदजी बोले—मुनीश्वरो ! किन मन्त्रोंसे भगवान् विष्णुकी आराधना की जानी चाहिये । श्रीविष्णुके चरणारविन्दोंकी शरण लेनेवाले भक्तजनोंको किन देवताओंकी पूजा करनी चाहिये । विप्रवरो ! भागवततन्त्रका तथा गुरु और शिष्यके सम्बन्धको स्थापित करके उन्हें अपने-अपने कर्तव्यके पालनकी प्रेरणा देनेवाली दीक्षाका वर्णन कीजिये । तथा साधकोंद्वारा पालन करने योग्य प्रातःकाल आदिके जो-जो कृत्य हों, उन सबको भी हमें बताइये । जिन महीनोंमें जप, होम आदि जिन-जिन कर्मोंके अनुष्ठानसे परमात्मा श्रीहरि प्रसन्न होते हैं, उनका आपलोग मुझसे वर्णन करें ।

सूतजी कहते हैं—महात्मा नारदका यह वचन सुनकर सनत्कुमारजी बोले ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद ! सुनो, मैं तुमसे भागवततन्त्रका वर्णन करूँगा । जिसे जानकर साधक निर्मल भक्तिके द्वारा अविनाशी भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है । (अब पहले शैवतन्त्रका वर्णन करते हैं ।) शैव-महातन्त्रमें तीन पदार्थ और चार पादोंका वर्णन है, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं । भोग, मोक्ष, क्रिया और चर्या—ये शैवमहातन्त्रमें चार पाद (साधन) कहे गये हैं । पदार्थ तीन ही हैं—पशुपति, पशु तथा पाश; इनमें एकमात्र शिवस्वरूप परमात्मा ही 'पशुपति' हैं और जीवोंको 'पशु' कहा गया है । नारद ! देखो, जबतक स्वरूपके अज्ञानको सूचित करनेवाले मोह आदिसे सम्बन्ध बना रहता है, तबतक इन सब जीवोंकी 'पशु' संज्ञा मानी गयी है । उनका पशुत्व द्वैतभावसे युक्त है । इन पशुओंके जो पाश अर्थात् बन्धन हैं, वे पाँच प्रकारके माने गये हैं । उनमेंसे प्रत्येकका लक्षण बताया जायगा । पशुके तीन भेद हैं—'विज्ञानाकल', 'प्रलयाकल' और 'सकल' । इनमें प्रथम अर्थात् 'विज्ञानाकल पशु'

---

* 'शैव-महातन्त्र'के 'शैवागम', 'शैवदर्शन' तथा 'पाशुपत-दर्शन' आदि अनेक नाम हैं । इस अध्यायमें इसीके निगूढ़ तत्त्वोंका विशद विवेचन किया गया है । यहाँ भूमिकारूपसे उक्त दर्शनकी कुछ मोटी-मोटी बातें प्रस्तुत की जाती हैं, जिनसे पाशुपतसिद्धान्त और इस अध्यायमें वर्णित विषयको हृदयङ्गम करनेमें सुविधा होगी । शैवागमके अनुसार तीन पदार्थ (पशु, पाश तथा पशुपति) और चार पाद या साधन (विद्या, क्रिया, योग तथा चर्या) हैं । जैसा कि तन्त्र-तत्त्वज्ञोंका कथन है—'त्रिपदार्थं चतुष्पादं महातन्त्रम् '

गुरुसे नियमपूर्वक मन्त्रोपदेश लेनेको दीक्षा कहते हैं । यह दीक्षा मन्त्र, मन्त्रेश्वर और विद्येश्वर आदि पशुओंके ज्ञानके बिना नहीं हो सकती । इसी ज्ञानसे पशु, पाश तथा पशुपतिका ठीक-ठीक निर्णय होता है; अत. परमपुरुषार्थकी हेतुभूता दीक्षामें उपकारक उक्त ज्ञानका प्रतिपादन करनेवाले प्रथम पादका नाम 'विद्या' है । भिन्न-भिन्न अधिकारियोंके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी दीक्षा होती है । अतः अनेक प्रकारकी साङ्गोपाङ्ग दीक्षाओंके विधि-विधानका परिचय करानेवाले द्वितीय पादको 'क्रिया'पाद कहा गया है । परंतु यम, नियम, आसन आदि अष्टाङ्गयोगके बिना अभीष्टप्राप्ति नहीं हो सकती, अत क्रियापादके पश्चात् 'योग' नामक तीसरे पादकी आवश्यकता समझकर उसका प्रतिपादन किया गया है । योगकी सिद्धि भी तभी होती है, जब शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान और निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग हो, अतः इन सब कर्मोंके प्रतिपादक 'चर्या' नामक चतुर्थ पादका वर्णन है ।

तृतीय पाद

शैवदर्शन* के अनुसार पति, पशु एवं पाश आदिका वर्णन तथा दीक्षाकी महत्ता

शौनकजी बोले—साधु सूतजी ! आप सम्पूर्ण शास्त्रोंके विज्ञ पण्डित हैं । विद्वन् ! आपने हमलोगोंको श्रीकृष्ण-कथारूपी अमृतका पान कराया है । भगवान्‌के प्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीने सनन्दनके मुखसे मोक्षधर्मोंका वर्णन सुनकर पुनः क्या पूछा ? ब्रह्माजीके मानस-पुत्र सनकादि मुनीश्वर उत्तम सिद्धपुरुष हैं । वे लोगोंके उद्धारमें तत्पर होकर सम्पूर्ण जगत्‌में विचरते रहते हैं । महाभाग ! श्रीनारदजी भी सदा श्रीकृष्णके भजनमें संलग्न रहते हैं और उन्हींके शरणागत भक्त हैं । उन सनकादि और नारदका समागम होनेपर सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली कौन-सी कल्याणमयी कथा हुई; यह बतानेकी कृपा करें ?

सूतजीने कहा—भृगुश्रेष्ठ ! सनन्दनजीके द्वारा प्रतिपादित सनातन मोक्षधर्मोंका वर्णन सुनकर नारदजीने पुनः उन मुनियोंसे पूछा ।

नारदजी बोले—मुनीश्वरो ! किन मन्त्रोंसे भगवान् विष्णुकी आराधना की जानी चाहिये । श्रीविष्णुके चरणारविन्दोंकी शरण लेनेवाले भक्तजनोंको किन देवताओंकी पूजा करनी चाहिये । विप्रवरो ! भागवततन्त्रका तथा गुरु और शिष्यके सम्बन्धको स्थापित करके उन्हें अपने-अपने कर्तव्यके पालनकी प्रेरणा देनेवाली दीक्षाका वर्णन कीजिये । तथा साधकोंद्वारा पालन करने योग्य प्रातःकाल आदिके जो-जो कृत्य हों, उन सबको भी हमें बताइये । जिन महीनोंमें जप, होम आदि जिन-जिन कर्मोंके अनुष्ठानसे परमात्मा श्रीहरि प्रसन्न होते हैं, उनका आपलोग मुझसे वर्णन करें ।

सूतजी कहते हैं—महात्मा नारदका यह वचन सुनकर सनत्कुमारजी बोले ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद ! सुनो, मैं तुमसे भागवततन्त्रका वर्णन करूँगा । जिसे जानकर साधक निर्मल भक्तिके द्वारा अविनाशी भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है । (अब पहले शैवतन्त्रका वर्णन करते हैं ।) शैव-महातन्त्रमें तीन पदार्थ और चार पादोंका वर्णन है, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं । भोग, मोक्ष, क्रिया और चर्या—ये शैवमहातन्त्रमें चार पाद (साधन) कहे गये हैं । पदार्थ तीन ही हैं—पशुपति, पशु तथा पाश; इनमें एकमात्र शिवस्वरूप परमात्मा ही 'पशुपति' हैं और जीवोंको 'पशु' कहा गया है । नारद ! देखो, जबतक स्वरूपके अज्ञानको सूचित करनेवाले मोह आदिसे सम्बन्ध बना रहता है, तबतक इन सब जीवोंकी 'पशु' संज्ञा मानी गयी है । उनका पशुत्व द्वैतभावसे युक्त है । इन पशुओंके जो पाश अर्थात् बन्धन हैं, वे पाँच प्रकारके माने गये हैं । उनमेंसे प्रत्येकका लक्षण बताया जायगा । पशुके तीन भेद हैं—'विज्ञानाकल', 'प्रलयाकल' और 'सकल' । इनमें प्रथम अर्थात् 'विज्ञानाकल पशु'

---

* 'शैव-महातन्त्र'के 'शैवागम', 'शैवदर्शन' तथा 'पाशुपत-दर्शन' आदि अनेक नाम हैं । इस अध्यायमें इसीके निगूढ़ तत्त्वोंका विशद विवेचन किया गया है । यहाँ भूमिकारूपसे उक्त दर्शनकी कुछ मोटी-मोटी बातें प्रस्तुत की जाती हैं, जिनसे पाशुपतसिद्धान्त और इस अध्यायमें वर्णित विषयको हृदयङ्गम करनेमें सुविधा होगी । शैवागमके अनुसार तीन पदार्थ (पशु, पाश तथा पशुपति) और चार पाद या साधन (विद्या, क्रिया, योग तथा चर्या) हैं । जैसा कि तन्त्र-तत्त्वज्ञोंका कथन है—'त्रिपदार्थं चतुष्पाद महातन्त्रम् '

गुरुसे नियमपूर्वक मन्त्रोपदेश लेनेको दीक्षा कहते हैं । यह दीक्षा मन्त्र, मन्त्रेश्वर और विद्येश्वर आदि पशुओंके ज्ञानके बिना नहीं हो सकती । इसी ज्ञानसे पशु, पाश तथा पशुपतिका ठीक-ठीक निर्णय होता है; अत. परमपुरुषार्थकी हेतुभूता दीक्षामें उपकारक उक्त ज्ञानका प्रतिपादन करनेवाले प्रथम पादका नाम 'विद्या' है । भिन्न-भिन्न अधिकारियोंके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी दीक्षा होती है । अतः अनेक प्रकारकी साङ्गोपाङ्ग दीक्षाओंके विधि-विधानका परिचय करानेवाले द्वितीय पादको 'क्रिया'पाद कहा गया है । परंतु यम, नियम, आसन आदि अष्टाङ्गयोगके बिना अभीष्टप्राप्ति नहीं हो सकती, अत क्रियापादके पश्चात् 'योग' नामक तीसरे पादकी आवश्यकता समझकर उसका प्रतिपादन किया गया है । योगकी सिद्धि भी तभी होती है, जब शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान और निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग हो, अतः इन सब कर्मोंके प्रतिपादक 'चर्या' नामक चतुर्थ पादका वर्णन है ।

सम्पन्न होता और पशु-समुदायकी कोटिसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है, परमात्माकी उस एकान्तस्वरूपा आद्या शक्तिको चिद्रूपा कहते हैं। उस चिद्रूपा शक्तिसे उत्कर्षको प्राप्त हुआ 'विन्दु' दृक् (ज्ञान) और क्रिया-स्वरूप होकर शिव-नामसे प्रतिपादित होता है, उसीको सम्पूर्ण तत्त्वोंका कारण बताया गया है। वह सर्वत्र व्यापक तथा अविनाशी है। उसीमे संनिहित हुई इच्छा आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ उसके सकाशसे अपना-अपना कार्य करती हैं। मुने! इसलिये यह सबपर अनुग्रह करनेवाला है। जड और चेतनपर अनुग्रह करनेके लिये विश्वकी सृष्टि करते समय इसका प्रथम उन्मेष नादके रूपमें हुआ है, जो शान्ति आदिसे युक्त तथा भुवन-स्वरूप है। विप्रवर! वह शक्ति-तत्त्व सावयव बताया गया है। इससे ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिका तथा उत्कर्ष और अपकर्षका प्रसार एवं अभाव होता है; अतः यह तत्त्व सदा शिवरूप है। जहाँ दृक्-शक्ति तिरोहित होती है और क्रियाशक्ति बढ जाती है, वह ईश्वर नामक तत्त्व कहा गया है; जो समस्त मनोरथोंका साधक है, जहाँ क्रियाशक्तिका तिरोभाव और ज्ञानशक्तिका उद्रेक होता है, वह विद्यातत्त्व कहलाता है। जो ज्ञानस्वरूप एव प्रकाशक है। नाद, विन्दु और सकल—ये सत्-नामक तत्त्वके आश्रित हैं। आठ विद्येश्वरगण ईशतत्त्वके और सात करोड 'मन्त्र' गण विद्यातत्त्वके आश्रित हैं। ये सब तत्त्व शुद्धमार्गके नामसे कहे गये हैं। यहाँ ईश्वर साक्षात् निमित्त कारण हैं। वे ही विन्दु-रूपसे सुशोभित हो यहाँ उपादानकारण बनते हैं। पाँच प्रकारके जो पाश हैं, उनका कोई समय न होनेके कारण उनका कोई निश्चित क्रम नहीं है; उनका व्यापार देखकर ही उनकी कल्पना की जाती है। वास्तवमें विचित्र शक्तियोंसे युक्त एक ही शिव नामक तत्त्व विराजमान है। वह शक्तियुक्त होनेसे 'शाक्त' कहा गया है। अन्तःकरणकी वृत्तियोंके भेदसे ही अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ की गयी हैं, प्रभु शिव जड-चेतन-पर अनुग्रह करनेके लिये विविध रूप धारण करके अनादि मलसे आबद्ध जीवोंपर कृपा करते हैं। सबपर दया करनेवाले शिव सम्पूर्ण जीवोंको, भोग और मोक्ष तथा जडवर्गको अपने व्यापारमें लगनेकी शक्ति-सामर्थ्य देते हैं। भगवान् शिवके समान रूपका हो जाना ही मोक्ष है, यही चेतन जीवों-पर ईश्वरका अनुग्रह है! कर्म अनादि होनेके कारण सदा वर्तमान रहते हैं; अतः उनका भोग किये बिना भी भगवत्कृपासे मोक्ष हो जाता है। इसीलिये भगवान् शङ्करको अनुग्राहक (कृपा करनेवाला) कहा गया है। अविनाशी प्रभु जीवोंके भोगके लिये सूक्ष्म करणोद्वारा अनायास ही जगत्की उत्पत्ति करते हैं। कोई भी कर्ता किसी भी कार्यमें उपादान और करणोंके बिना नहीं देखा जाता।

(अब 'मायापाश' का प्रसङ्ग है—)यहाँ शक्तियाँ ही करण हैं। मायाको उपादान माना गया है। वह नित्य, एक और कल्याणमयी है। उसका न आदि है न अन्त; वह माया अपनी शक्तिद्वारा मनुष्यों और लोकोंकी उत्पत्तिका सामान्य कारण है। माया अपने कर्मोंद्वारा स्वभावतः मोहजनक होती है। उससे भिन्न 'परा माया' है, जो सूक्ष्म एव व्यापक है। इन विकारयुक्त कार्योंसे वह सर्वथा परे मानी गयी है। विद्याके स्वामी भगवान् शिव जीवके कर्मोंको देखकर अपनी शक्तियोंसे मायाको क्षोभमें डालते और जीवोंके भोगके लिये मायाके द्वारा

विज्ञानाकल पशु (जीव) के भी दो भेद हैं—'समाप्त-कलुष' और 'असमाप्त-कलुष'। (१) जीवात्मा जो कर्म करता है, उस प्रत्येक कर्मकी तह मलपर जमती रहती है। इसी कारण उस मलका परिपाक नहीं होने पाता, किंतु जब कर्मोंका त्याग हो जाता है, तब तह न जमनेके कारण मलका परिपाक हो जाता है और जीवात्माके सारे कलुष समाप्त हो जाते हैं, इसीलिये वह 'समाप्त-कलुष' कहलाता है। ऐसे जीवात्माओंको भगवान् आठ प्रकारके 'विद्येश्वर' पदपर पहुँचा देते हैं, उनके नाम ये हैं—

'अनन्तश्चैव सूक्ष्मश्च तथैव च शिवोत्तम । एकनेत्रस्तथैवैकरुद्रश्चापि त्रिमूर्तिक ॥
श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च प्रोक्ता विद्येश्वरा इमे ।'

(१) अनन्त, (२) सूक्ष्म, (३) शिवोत्तम, (४) एकनेत्र, (५) एकरुद्र, (६) त्रिमूर्ति, (७) श्रीकण्ठ और (८) शिखण्डी।

(२) 'असमाप्त-कलुष' वे हैं, जिनकी कलुषराशि अभी समाप्त नहीं हुई है। ऐसे जीवात्माओंको परमेश्वर 'मन्त्र' स्वरूप दे देता है। कर्म तथा शरीरसे रहित किंतु मलरूपी पाशमें बँधे हुए जीवात्मा ही मन्त्र हैं और इनकी संख्या ७ करोड है। ये सब अन्य जीवात्माओंपर अपनी कृपा करते रहते हैं। तत्त्व-प्रकाश नामक ग्रन्थमें उपर्युक्त विषयके संग्राहक श्लोक इस प्रकार हैं—

पशवस्त्रिविधा प्रोक्ता विज्ञानप्रलयाकलौ सकल. । मलयुक्तस्तत्राद्यो मलकर्मयुतो द्वितीय स्यात् ।
मलमायाकर्मयुत सकलस्तेषु द्विधा भवेदाद्य. । आद्य. समाप्तकलुषोऽसमाप्तकलुषो द्वितीय. स्यात् ।
आद्यानुनुगृह्य शिवो विद्येशत्वे नियोजयत्यष्टौ । मन्त्रांश्च करोत्यपरान् ते चोक्ता. कोटय सप्त ॥

सम्पन्न होता और पशु-समुदायकी कोटिसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है, परमात्माकी उस एकान्तस्वरूपा आद्या शक्तिको चिद्रूपा कहते हैं। उस चिद्रूपा शक्तिसे उत्कर्षको प्राप्त हुआ 'विन्दु' दृक् (ज्ञान) और क्रिया-स्वरूप होकर शिव-नामसे प्रतिपादित होता है, उसीको सम्पूर्ण तत्त्वोंका कारण बताया गया है। वह सर्वत्र व्यापक तथा अविनाशी है। उसीमे संनिहित हुई इच्छा आदि सम्पूर्ण शक्तियॉ उसके सकाशसे अपना-अपना कार्य करती हैं। मुने! इसलिये यह सबपर अनुग्रह करनेवाला है। जड और चेतनपर अनुग्रह करनेके लिये विश्वकी सृष्टि करते समय इसका प्रथम उन्मेष नादके रूपमें हुआ है, जो शान्ति आदिसे युक्त तथा भुवन-स्वरूप है। विप्रवर! वह शक्ति-तत्त्व सावयव बताया गया है। इससे ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिका तथा उत्कर्ष और अपकर्षका प्रसार एवं अभाव होता है; अतः यह तत्त्व सदा शिवरूप है। जहॉ दृक्-शक्ति तिरोहित होती है और क्रियाशक्ति बढ जाती है, वह ईश्वर नामक तत्त्व कहा गया है; जो समस्त मनोरथोंका साधक है, जहॉ क्रियाशक्तिका तिरोभाव और ज्ञानशक्तिका उद्रेक होता है, वह विद्यातत्त्व कहलाता है। जो ज्ञानस्वरूप एव प्रकाशक है। नाद, विन्दु और सकल—ये सत्-नामक तत्त्वके आश्रित हैं। आठ विद्येश्वरगण ईशतत्त्वके और सात करोड 'मन्त्र' गण विद्यातत्त्वके आश्रित हैं। ये सब तत्त्व शुद्धमार्गके नामसे कहे गये हैं। यहॉ ईश्वर साक्षात् निमित्त कारण हैं। वे ही विन्दु-रूपसे सुशोभित हो यहॉ उपादानकारण बनते हैं। पॉच प्रकारके जो पाश हैं, उनका कोई समय न होनेके कारण उनका कोई निश्चित क्रम नहीं है; उनका व्यापार देखकर ही उनकी कल्पना की जाती है। वास्तवमें विचित्र शक्तियोंसे युक्त एक ही शिव नामक तत्त्व विराजमान है। वह शक्तियुक्त होनेसे 'शाक्त' कहा गया है। अन्तःकरणकी वृत्तियोंके भेदसे ही अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ की गयी हैं, प्रभु शिव जड-चेतन-पर अनुग्रह करनेके लिये विविध रूप धारण करके अनादि मलसे आबद्ध जीवोंपर कृपा करते हैं। सबपर दया करने-वाले शिव सम्पूर्ण जीवोंको भोग और मोक्ष तथा जडवर्गको अपने व्यापारमें लगनेकी शक्ति-सामर्थ्य देते हैं। भगवान् शिवके समान रूपका हो जाना ही मोक्ष है, यही चेतन जीवों-पर ईश्वरका अनुग्रह है। कर्म अनादि होनेके कारण सदा वर्तमान रहते हैं; अतः उनका भोग किये बिना भी भगवत्कृपासे मोक्ष हो जाता है। इसीलिये भगवान् शङ्करको अनुग्राहक (कृपा करनेवाला) कहा गया है। अविनाशी प्रभु जीवोंके भोगके लिये सूक्ष्म करणोंद्वारा अनायास ही जगत्की उत्पत्ति करते हैं। कोई भी कर्ता किसी भी कार्यमें उपादान और करणोंके बिना नहीं देखा जाता।

(अब 'मायापाश' का प्रसङ्ग है—)यहॉ शक्तियॉ ही करण हैं। मायाको उपादान माना गया है। वह नित्य, एक और कल्याणमयी है। उसका न आदि है न अन्त; वह माया अपनी शक्तिद्वारा मनुष्यों और लोकोंकी उत्पत्तिका सामान्य कारण है। माया अपने कर्मोंद्वारा स्वभावतः मोहजनक होती है। उससे भिन्न 'परा माया' है, जो सूक्ष्म एव व्यापक है। इन विकारयुक्त कार्योंसे वह सर्वथा परे मानी गयी है। विद्या-के स्वामी भगवान् शिव जीवके कर्मोंको देखकर अपनी शक्तियोंसे मायाको क्षोभमें डालते और जीवोंके भोगके लिये मायाके द्वारा

विज्ञानाकल पशु (जीव) के भी दो भेद हैं—'समाप्त-कलुष' और 'असमाप्त-कलुष'। (१) जीवात्मा जो कर्म करता है, उस प्रत्येक कर्मकी तह मलपर जमती रहती है। इसी कारण उस मलका परिपाक नहीं होने पाता, किंतु जब कर्मोंका त्याग हो जाता है, तब तह न जमनेके कारण मलका परिपाक हो जाता है और जीवात्माके सारे कलुष समाप्त हो जाते हैं, इसीलिये वह 'समाप्त-कलुष' कहलाता है। ऐसे जीवात्माओंको भगवान् आठ प्रकारके 'विद्येश्वर' पदपर पहुँचा देते हैं, उनके नाम ये हैं—

'अनन्तश्चैव सूक्ष्मश्च तथैव च शिवोत्तम। एकनेत्रस्तथैवैकरुद्रश्चापि त्रिमूर्तिक ॥
श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च प्रोक्ता विद्येश्वरा इमे।'

(१) अनन्त, (२) सूक्ष्म, (३) शिवोत्तम, (४) एकनेत्र, (५) एकरुद्र, (६) त्रिमूर्ति, (७) श्रीकण्ठ और (८) शिखण्डी।

(२) 'असमाप्त-कलुष' वे हैं, जिनकी कलुषराशि अभी समाप्त नहीं हुई है। ऐसे जीवात्माओंको परमेश्वर 'मन्त्र' स्वरूप दे देता है। कर्म तथा शरीरसे रहित किंतु मलरूपी पाशमें बँधे हुए जीवात्मा ही मन्त्र हैं और इनकी सख्या ७ करोड है। ये सब अन्य जीवात्माओंपर अपनी कृपा करते रहते हैं। तत्त्व-प्रकाश नामक ग्रन्थमें उपर्युक्त विषयके सग्राहक श्लोक इस प्रकार हैं—

पशवस्त्रिविधा प्रोक्ता विज्ञानप्रलयाकलौ सकल.। मलयुक्तस्तत्राद्यो मलकर्मयुतो द्वितीय स्यात्।
मलमायाकर्मयुत सकलस्तेषु द्विधा भवेदाद्य.। आद्य. समाप्तकलुषोऽसमाप्तकलुषो द्वितीय. स्यात्।
आद्याननुगृह्य शिवो विद्येशत्वे नियोजयत्यष्टौ। मन्त्रांश्च करोत्यपरान् ते चोक्ता. कोटय सप्त ॥

गुणोंके भेदसे तीन प्रकारका होता है। उन तीनोंके नाम हैं—तैजस, राजस और तामस अहंकार। उनमें तैजस अहंकारमे मनसहित ज्ञानेन्द्रियाँ प्रकट हुई हैं। जो सत्त्वगुणके प्रकाशसे युक्त होकर विषयोंका बोध कराती हैं। क्रियाके हेतुभूत राजस अहंकारसे कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। तामस अहकारसे पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं, जो पाँचों भूतोंकी उत्पत्तिमे कारण हैं। इनमें मन इच्छा और संकल्पके व्यापारवाला है। अतः वह दो विकारोंसे युक्त है। वह बाह्य इन्द्रियोंका रूप धारण करके, जो उसके लिये सर्वथा उचित है, सदा भोक्ताके लिये भोगका उत्पादक होता है। मन अपने संकल्पसे हृदयके भीतर स्थित रहकर इन्द्रियोंमें विषय-ग्रहणकी शक्ति उत्पन्न करता है; इसलिये उसे अन्तःकरण कहते हैं। मन, बुद्धि और अहंकार—ये अन्तःकरणके तीन भेद हैं। इच्छा, बोध और संरम्भ (गर्व या अहंभाव)—ये क्रमशः इनकी तीन वृत्तियाँ हैं।

कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मुने! शब्द आदि इनके ग्राह्य-विषय जानने चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये शब्दादि विषय माने गये हैं। वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। ये बोलने, ग्रहण करने, चलने, मल-त्याग करने और मैथुनजनित आनन्दकी उपलब्धिरूपी कर्मोंकी सिद्धिके करण हैं; क्योंकि कोई भी क्रिया करणोंके बिना नहीं हो सकती। कार्यमें लगाकर दस प्रकारके करणोंद्वारा चेष्टा की जाती है। व्यापक होनेके कारण कार्यका आश्रय लेकर सब इन्द्रियाँ चेष्टा करती हैं, इसलिये उनका नाम करण है। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच तन्मात्राएँ हैं। इन तन्मात्राओंसे ही आकाश आदि पाँच भूत प्रकट होते हैं, जो एक-एक विशेष गुणके कारण प्रसिद्ध हैं। शब्द आकाशका मुख्य गुण है; किंतु यह पाँचों भूतोंमें सामान्य रूपसे उपलब्ध होता है। स्पर्श वायुका विशेष गुण है; किंतु वह वायु आदि चारों भूतोंमे विद्यमान है। रूप तेजका विशेष गुण है, जो तेज आदि तीनों भूतोंमें उपलब्ध है। रस जलका विशेष गुण है, जो जल और पृथ्वी दोनोमें विद्यमान है तथा गन्ध नामक गुण केवल पृथ्वीमें ही उपलब्ध होता है। इन पाँचो भूतोंके कार्य क्रमशः इस प्रकार हैं—अवकाश, चेष्टा, पाक, संग्रह और धारण। वायुमें न शीत स्पर्श है न उष्ण, जलमे शीतल स्पर्श है, तेजमें उष्ण स्पर्श है, अग्निमे भास्वर शुक्लरूप है और जलमें अभास्वर शुक्ल। पृथ्वीमें शुक्ल आदि अनेक वर्ण हैं। रूप केवल तीन भूतोंमें है। जलमे केवल मधुर-रस है और पृथ्वीमे छः प्रकारका रस है। पृथ्वीमें दो प्रकारकी गन्ध कही गयी है—सुरभि तथा असुरभि। तन्मात्राओंमें उनके भूतोंके ही गुण हैं। करण और पोषण यह भूतसमुदायकी विशेषता है। परमात्मतत्त्व निर्विशेष है। ये पाँचों भूत सब ओर व्याप्त हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् पञ्चभूतमय है। शरीरमे जो इन पाँचों भूतोका संनिवेश है, उसका निरूपण किया जाता है। देहके भीतर जो हड्डी, मास, केश, त्वचा, नख और दाँत आदि हैं, वे पृथ्वीके अंश हैं। मूत्र, रक्त, कफ, स्वेद और शुक्र आदिमे जलकी स्थिति है। हृदयमे, नेत्रोंमें और पित्तमें तेजकी स्थिति है; क्योंकि वहाँ उसके उष्णत्व और प्रकाश आदि धर्मोका दर्शन होता है। शरीरमें प्राण आदि वृत्तियोंके भेदसे वायुकी स्थिति मानी गयी है। सम्पूर्ण नाड़ियों तथा गर्भाशयमें आकाशतत्त्व व्याप्त है। कलासे लेकर पृथ्वीपर्यन्त यह तत्त्वसमुदाय सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका साधन है। प्रत्येक शरीरमे भी यह नियत है। भोग-भेदसे इसका निश्चय किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक पुरुषमें नियति-कला आदि तत्त्व कर्मवश प्राप्त हुए सम्पूर्ण शरीरोंमें

शक्ति या तिरोधानशक्ति एक ही वस्तु है। 'विन्दु' मायास्वरूप है, वह 'शिव-तत्त्व' नामसे भी जानने योग्य है। यद्यपि शिवपदप्राप्ति-रूप परम मोक्षकी अपेक्षासे वह भी पाश ही है, तथापि विद्येश्वरादि पदकी प्राप्तिमें परम हेतु होनेके कारण विन्दु-शक्तिको 'अपरा मुक्ति' कहा गया है, अत:-उसे आधुनिक शैवदर्शनमें 'पाश' नाम नहीं दिया गया है। इसलिये यहाँ शेष चार पाशों (मल, कर्म, रोध और माया) के ही स्वरूपका विचार किया जाता है—(१) जो आत्माकी स्वाभाविक ज्ञान तथा क्रिया-शक्तिको ढक ले, वह 'मल' (अर्थात् अज्ञान) कहलाता है। यह मल आत्मस्वरूपका केवल आच्छादन ही नहीं करता; किंतु जीवात्माको बलपूर्वक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला पाश भी यही है। (२) प्रत्येक वस्तुमें जो सामर्थ्य है, उसे 'शिव-शक्ति' कहते हैं, जैसे अग्निमें दाहक-शक्ति। यह शक्ति जैसे पदार्थमें रहती है, वैसा ही भला, बुरा स्वरूप धारण कर लेती है, अतः पाशमें रहती हुई यह शक्ति जब आत्माके स्वरूपको ढक लेती है, तब यह 'रोध-शक्ति' या 'तिरोधान-पाश' कहलाती है। इस अवस्थामें जीव शरीरको आत्मा मानकर शरीरके पोषणमें लगा रहता है, आत्माके उद्धारका प्रयत्न नहीं करता। (३) फलकी इच्छासे किये हुए 'धर्माधर्म' रूप कर्मोंको ही 'कर्मपाश' कहते हैं। (४) जिस शक्तिमें प्रलयके समय सब कुछ लीन हो जाता है तथा सृष्टिके समय जिसमेंसे सब कुछ उत्पन्न हो जाता है, वह 'मायापाश' है। अत: इन पाशोंमें बँधा हुआ पशु जब तत्त्वज्ञानद्वारा इनका उच्छेद कर डालता है, तभी वह परम शिवतत्त्व अर्थात् पशुपतिपदको प्राप्त होता है।

गुणोंके भेदसे तीन प्रकारका होता है। उन तीनोंके नाम हैं—तैजस, राजस और तामस अहंकार। उनमें तैजस अहंकारसे मनसहित ज्ञानेन्द्रियाँ प्रकट हुई हैं। जो सत्त्वगुणके प्रकाशसे युक्त होकर विषयोंका बोध कराती हैं। क्रियाके हेतुभूत राजस अहंकारसे कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। तामस अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं, जो पाँचों भूतोंकी उत्पत्तिमें कारण हैं। इनमें मन इच्छा और संकल्पके व्यापारवाला है। अतः वह दो विकारोंसे युक्त है। वह बाह्य इन्द्रियोंका रूप धारण करके, जो उसके लिये सर्वथा उचित है, सदा भोक्ताके लिये भोगका उत्पादक होता है। मन अपने संकल्पसे हृदयके भीतर स्थित रहकर इन्द्रियोंमें विषय-ग्रहणकी शक्ति उत्पन्न करता है; इसलिये उसे अन्तःकरण कहते हैं। मन, बुद्धि और अहंकार—ये अन्तःकरणके तीन भेद हैं। इच्छा, बोध और संरम्भ (गर्व या अहंभाव)—ये क्रमशः इनकी तीन वृत्तियाँ हैं।

कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मुने! शब्द आदि इनके ग्राह्य-विषय जानने चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये शब्दादि विषय माने गये हैं। वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। ये बोलने, ग्रहण करने, चलने, मल-त्याग करने और मैथुनजनित आनन्दकी उपलब्धिरूपी कर्मोंकी सिद्धिके करण हैं; क्योंकि कोई भी क्रिया करणोंके विना नहीं हो सकती। कार्यमें लगाकर दस प्रकारके करणोंद्वारा चेष्टा की जाती है। व्यापक होनेके कारण कार्यका आश्रय लेकर सब इन्द्रियाँ चेष्टा करती हैं, इसलिये उनका नाम करण है। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच तन्मात्राएँ हैं। इन तन्मात्राओंसे ही आकाश आदि पाँच भूत प्रकट होते हैं, जो एक-एक विशेष गुणके कारण प्रसिद्ध हैं। शब्द आकाशका मुख्य गुण है; किंतु यह पाँचों भूतोंमें सामान्य रूपसे उपलब्ध होता है। स्पर्श वायुका विशेष गुण है; किंतु वह वायु आदि चारों भूतोंमे विद्यमान है। रूप तेजका विशेष गुण है, जो तेज आदि तीनों भूतोंमें उपलब्ध है। रस जलका विशेष गुण है, जो जल और पृथ्वी दोनोंमें विद्यमान है तथा गन्ध नामक गुण केवल पृथ्वीमें ही उपलब्ध होता है। इन पाँचो भूतोंके कार्य क्रमशः इस प्रकार हैं—अवकाश, चेष्टा, पाक, संग्रह और धारण। वायुमें न शीत स्पर्श है न उष्ण, जलमे शीतल स्पर्श है, तेजमें उष्ण स्पर्श है, अग्निमे भास्वर शुक्लरूप है और जलमें अभास्वर शुक्ल। पृथ्वीमें शुक्ल आदि अनेक वर्ण हैं। रूप केवल तीन भूतोंमें है। जलमे केवल मधुर-रस है और पृथ्वीमे छः प्रकारका रस है। पृथ्वीमें दो प्रकारकी गन्ध कही गयी है—सुरभि तथा असुरभि। तन्मात्राओंमें उनके भूतोंके ही गुण हैं। करण और पोषण यह भूतसमुदायकी विशेषता है। परमात्मतत्त्व निर्विशेष है। ये पाँचों भूत सत्र और व्याप्त हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् पञ्चभूतमय है। शरीरमे जो इन पाँचों भूतोका संनिवेश है, उसका निरूपण किया जाता है। देहके भीतर जो हड्डी, मास, केश, त्वचा, नख और दाँत आदि हैं, वे पृथ्वीके अंश हैं। मूत्र, रक्त, कफ, स्वेद और शुक्र आदिमे जलकी स्थिति है। हृदयमे, नेत्रोंमें और पित्तमें तेजकी स्थिति है; क्योंकि वहाँ उसके उष्णत्व और प्रकाश आदि धर्मोंका दर्शन होता है। शरीरमें प्राण आदि वृत्तियोंके भेदसे वायुकी स्थिति मानी गयी है। सम्पूर्ण नाड़ियों तथा गर्भाशयमें आकाशतत्त्व व्याप्त है। कलासे लेकर पृथ्वीपर्यन्त यह तत्त्वसमुदाय सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका साधन है। प्रत्येक शरीरमे भी यह नियत है। भोग-भेदसे इसका निश्चय किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक पुरुषमें नियति-कला आदि तत्त्व कर्मवश प्राप्त हुए सम्पूर्ण शरीरोंमें

शक्ति या तिरोधानशक्ति एक ही वस्तु है। 'विन्दु' मायास्वरूप है, वह 'शिव-तत्त्व' नामसे भी जानने योग्य है। यद्यपि शिवपदप्राप्ति-रूप परम मोक्षकी अपेक्षासे वह भी पाश ही है, तथापि विद्येश्वरादि पदकी प्राप्तिमें परम हेतु होनेके कारण विन्दु-शक्तिको 'अपरा मुक्ति' कहा गया है, अत:-उसे आधुनिक शैवदर्शनमें 'पाश' नाम नहीं दिया गया है। इसलिये यहाँ शेष चार पाशों (मल, कर्म, रोध और माया) के ही स्वरूपका विचार किया जाता है—(१) जो आत्माकी स्वाभाविक ज्ञान तथा क्रिया-शक्तिको ढक ले, वह 'मल' (अर्थात् अज्ञान) कहलाता है। यह मल आत्मस्वरूपका केवल आच्छादन ही नहीं करता; किंतु जीवात्माको बलपूर्वक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला पाश भी यही है। (२) प्रत्येक वस्तुमें जो सामर्थ्य है, उसे 'शिव-शक्ति' कहते हैं, जैसे अग्निमें दाहक-शक्ति। यह शक्ति जैसे पदार्थमें रहती है, वैसा ही भला, बुरा स्वरूप धारण कर लेती है, अतः पाशमें रहती हुई यह शक्ति जब आत्माके स्वरूपको ढक लेती है, तब यह 'रोध-शक्ति' या 'तिरोधान-पाश' कहलाती है। इस अवस्थामें जीव शरीरको आत्मा मानकर शरीरके पोषणमें लगा रहता है, आत्माके उद्धारका प्रयत्न नहीं करता। (३) फलकी इच्छासे किये हुए 'धर्माधर्म' रूप कर्मोंको ही 'कर्मपाश' कहते हैं। (४) जिस शक्तिमें प्रलयके समय सब कुछ लीन हो जाता है तथा सृष्टिके समय जिसमेंसे सब कुछ उत्पन्न हो जाता है, वह 'मायापाश' है। अत: इन पाशोंमें बँधा हुआ पशु जब तत्त्वज्ञानद्वारा इनका उच्छेद कर डालता है, तभी वह परम शिवतत्त्व अर्थात् पशुपतिपदको प्राप्त होता है।

धर्मोंका निरन्तर पालन करे। इस प्रकार किये हुए कर्म भी बन्धनकारक नहीं होते। मन्त्रानुष्ठानजनित एक ही कर्म फलदायक होता है। दीक्षित पुरुष जिन-जिन लोकोंके भोगोंकी इच्छा करता है, मन्त्राराधनकी सामर्थ्यसे वह उन सबका उपभोग करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य दीक्षा ग्रहण करके नित्य और नैमित्तिक कर्मोंका पालन नहीं करता, उसे कुछ कालतक पिशाचयोनिमें रहना पड़ता है। अतः दीक्षित पुरुष नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म अवश्य करे। नित्य-नैमित्तिक आचारका पालन करनेवाले मनुष्यको उसकी दीक्षामें त्रुटि न आनेके कारण तत्काल मोक्ष प्राप्त होता है। दीक्षाके द्वारा गुरुके स्वरूपमें स्थित होकर भगवान् शिव सबपर अनुग्रह करते हैं। जो लोक-परलोकके स्वार्थमें आसक्त होकर कृत्रिम गुरुभक्तिका प्रदर्शन करता है, वह सब कुछ करनेपर भी विफलताको ही प्राप्त होता है और उसे पग-पगपर प्रायश्चित्तका भागी होना पड़ता है। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा गुरुभक्तिमें तत्पर है, उसे प्रायश्चित्त नहीं प्राप्त होता और पग-पगपर सिद्धि लाभ होता है। यदि शिष्य गुरुभक्तिसे सम्पन्न और सर्वस्व समर्पण करनेवाला हो तो उसके प्रति मिथ्या मन्त्रका प्रयोग करनेवाला गुरु प्रायश्चित्तका भागी होता है*। (पूर्व० ६३ अध्याय)

---

* इस 'तृतीय पाद'में अधिकांश सकाम अनुष्ठानोंका प्रसङ्ग है। इसमें देवताओंके तथा भगवान्‌के विभिन्न स्वरूपोंके ध्यान-पूजनका निरूपण है तथा आराधनकी सुन्दर-सुन्दर विधियाँ बतलायी गयी हैं। उन विधियोंके अनुसार श्रद्धा-विश्वासपूर्वक अनुष्ठान करनेसे उल्लिखित फल अवश्य मिलता है। जैसे विविध तापोंकी निवृत्ति तथा इष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये अन्यान्य आधिभौतिक साधन हैं, वैसे ही ये आधिदैविक साधन भी हैं एवं ये भौतिक साधनोंकी अपेक्षा अधिक निर्दोष तथा सहज हैं और प्रतिबन्धकका नाश करके नवीन प्रारब्धके निर्माणमें हेतु होनेके कारण ये उनकी अपेक्षा अधिक लाभप्रद हैं ही। और स्वयं भगवान्‌का तो सकाम आराधन करनेपर (यदि वे उचित समझें तो कामनाकी पूर्ति करके अथवा पूर्ति न करके भी) अन्तःकरणकी शुद्धि-द्वारा अन्तमें अपनी प्राप्ति करा देते हैं, इस दृष्टिसे इस प्रसङ्गकी निश्चय ही बड़ी उपादेयता है।

तथापि अल्पायु मनुष्यके लिये यह विचारणीय है कि अपने जीवनको क्या सांसारिक भोगपदार्थोंकी प्राप्तिके प्रयत्न और उनके उपभोगमें लगाना ही इष्ट है? मनुष्य-जीवन क्षणभङ्गुर है और वह है केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही। संसारके भोग तो प्रत्येक योनिमें ही प्रारब्धानुसार प्राप्त होते हैं और उनका उपभोग भी जीव करता ही है। मनुष्य-जीवन भी यदि उन्हीं क्षणभंगुर, नाशवान्, दुःखयोनि और जीवको जन्म-मरणके चक्रमें डालनेवाले भोगपदार्थोंके लिये सकाम उपासनामें ही लगा दिया जाय तो यह बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। जो कृपामय भगवान् परम दुर्लभ मोक्षको या स्वयं अपने-आपको देनेके लिये प्रस्तुत हैं, उनसे दुःखपरिणामी और अनित्य भोग माँगना भगवान्‌के तत्त्वको और भक्तिके महत्त्वको न समझना ही है। जो पुरुष किसी वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छासे भगवान्‌को भजता है, उसका ध्येय वह वस्तु है, भगवान् नहीं है। वह वस्तु साध्य है और भगवान् तथा उनकी भक्ति साधन है। यदि किसी मङ्गलकारी कारणवश ही उसके अभीष्टकी प्राप्तिमें देर होगी तो वह भगवान्‌की भक्तिको छोड़ दे सकता है। अतएव सकाम भावसे की हुई उपासना एक प्रकारसे काम्य वस्तुकी ही उपासना है, भगवान्‌की नहीं। इस बातको भलीभाँति समझ लेना चाहिये और अपनी रुचिके अनुसार भगवान्‌की उपासना इस प्रसङ्गमें आयी हुई पद्धतिके अनुकूल अवश्य करनी चाहिये, पर वह करनी चाहिये—निष्काम प्रेमभावसे केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही। इसीमें मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है।

इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि सकाम अनुष्ठानका फल प्रतिबन्धककी प्रबलता और सरलताके अनुसार विलम्बसे या शीघ्र होता है। एक आदमीको किसी अमुक वस्तुकी या स्थितिकी आवश्यकता है। वह उसके लिये सकाम उपासना करता है। यदि उस वस्तु या स्थितिकी प्राप्तिमें बाधक पूर्वजन्मका कर्म बहुत अधिक प्रबल होता है तो एक ही अनुष्ठानसे अभीष्ट फल नहीं मिलता। बार-बार अनुष्ठान करने पड़ते हैं। आजकलके सकामी पुरुषमें इतना धैर्य नहीं हो सकता और फलतः वह देवतामें ही अविश्वास कर बैठता है तथा उसकी अवज्ञा करने लगता है, इससे लाभके बदले उसकी उलटी हानि हो जाती है। फिर सकाम साधना वही सफल होती है जिसमें विधिका पूरा-पूरा साङ्गोपाङ्ग पालन हुआ हो तथा कर्म, देवता और फलमें पूर्ण श्रद्धा हो। विधि और श्रद्धाके अभावमें भी फल नहीं होता और आजके युगके मनुष्योंमें अधिकांश ऐसे हैं जो मनमाना फल तो तुरंत चाहते हैं पर श्रद्धा और विधिकी आवश्यकता नहीं समझते। अतः उनको भी उक्त फल नहीं मिलता। इन सब दृष्टियोंसे भी सकामभावमें देवतामें, देवाराधनमें अश्रद्धातक होनेकी सम्भावना रहती है, फिर यदि कहीं कुछ फल मिलता भी है तो वह अनित्य, क्षणभङ्गुर और दुःख देनेवाला ही होता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको सकाम भावका सर्वथा त्याग ही करना चाहिये।—सम्पादक

धर्मोंका निरन्तर पालन करे। इस प्रकार किये हुए कर्म भी बन्धनकारक नहीं होते। मन्त्रानुष्ठानजनित एक ही कर्म फलदायक होता है। दीक्षित पुरुष जिन-जिन लोकोंके भोगोंकी इच्छा करता है, मन्त्राराधनकी सामर्थ्यसे वह उन सबका उपभोग करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य दीक्षा ग्रहण करके नित्य और नैमित्तिक कर्मोंका पालन नहीं करता, उसे कुछ कालतक पिशाचयोनिमें रहना पड़ता है। अतः दीक्षित पुरुष नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म अवश्य करे। नित्य-नैमित्तिक आचारका पालन करनेवाले मनुष्यको उसकी दीक्षामें त्रुटि न आनेके कारण तत्काल मोक्ष प्राप्त होता है। दीक्षाके द्वारा गुरुके स्वरूपमें स्थित होकर भगवान् शिव सबपर अनुग्रह करते हैं। जो लोक-परलोकके स्वार्थमें आसक्त होकर कृत्रिम गुरुभक्तिका प्रदर्शन करता है, वह सब कुछ करनेपर भी विफलताको ही प्राप्त होता है और उसे पग-पगपर प्रायश्चित्तका भागी होना पडता है। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा गुरुभक्तिमें तत्पर है, उसे प्रायश्चित्त नहीं प्राप्त होता और पग-पगपर सिद्धि लाभ होता है। यदि शिष्य गुरुभक्तिसे सम्पन्न और सर्वस्व समर्पण करनेवाला हो तो उसके प्रति मिथ्या मन्त्रका प्रयोग करनेवाला गुरु प्रायश्चित्तका भागी होता है*। (पूर्व० ६३ अध्याय)

---

* इस 'तृतीय पाद'में अधिकांश सकाम अनुष्ठानोंका प्रसङ्ग है। इसमें देवताओंके तथा भगवान्के विभिन्न स्वरूपोंके ध्यान-पूजनका निरूपण है तथा आराधनकी सुन्दर-सुन्दर विधियाँ बतलायी गयी हैं। उन विधियोंके अनुसार श्रद्धा-विश्वासपूर्वक अनुष्ठान करनेसे उल्लिखित फल अवश्य मिलता है। जैसे विविध तापोंकी निवृत्ति तथा इष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये अन्यान्य आधिभौतिक साधन हैं, वैसे ही ये आधिदैविक साधन भी हैं एवं ये भौतिक साधनोंकी अपेक्षा अधिक निर्दोष तथा सहज हैं और प्रतिबन्धकका नाश करके नवीन प्रारब्धके निर्माणमें हेतु होनेके कारण ये उनकी अपेक्षा अधिक लाभप्रद हैं ही। और स्वयं भगवान्का तो सकाम आराधन करनेपर (यदि वे उचित समझें तो कामनाकी पूर्ति करके अथवा पूर्ति न करके भी) अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा अन्तमें अपनी प्राप्ति करा देते हैं, इस दृष्टिसे इस प्रसङ्गकी निश्चय ही बड़ी उपादेयता है।

तथापि अल्पायु मनुष्यके लिये यह विचारणीय है कि अपने जीवनको क्या सांसारिक भोगपदार्थोंकी प्राप्तिके प्रयत्न और उनके उपभोगमें लगाना ही इष्ट है? मनुष्य-जीवन क्षणभङ्गुर है और वह है केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही। संसारके भोग तो प्रत्येक योनिमें ही प्रारब्धानुसार प्राप्त होते हैं और उनका उपभोग भी जीव करता ही है। मनुष्य-जीवन भी यदि उन्हीं क्षणभगुर, नाशवान्, दुःखयोनि और जीवको जन्म-मरणके चक्रमें डालनेवाले भोगपदार्थोंके लिये सकाम उपासनामें ही लगा दिया जाय तो यह बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। जो कृपामय भगवान् परम दुर्लभ मोक्षको या स्वयं अपने-आपको देनेके लिये प्रस्तुत हैं, उनसे दुःखपरिणामी और अनित्य भोग माँगना भगवान्के तत्त्वको और भक्तिके महत्त्वको न समझना ही है। जो पुरुष किसी वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छासे भगवान्को भजता है, उसका ध्येय वह वस्तु है, भगवान् नहीं है। वह वस्तु साध्य है और भगवान् तथा उनकी भक्ति साधन है। यदि किसी मङ्गलकारी कारणवश ही उसके अभीष्टकी प्राप्तिमें देर होगी तो वह भगवान्की भक्तिको छोड़ दे सकता है। अतएव सकाम भावसे की हुई उपासना एक प्रकारसे काम्य वस्तुकी ही उपासना है, भगवान्की नहीं। इस बातको भलीभाँति समझ लेना चाहिये और अपनी रुचिके अनुसार भगवान्की उपासना इस प्रसङ्गमें आयी हुई पद्धतिके अनुकूल अवश्य करनी चाहिये, पर वह करनी चाहिये—निष्काम प्रेमभावसे केवल भगवान्की प्रसन्नताके लिये ही। इसीमें मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है।

इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि सकाम अनुष्ठानका फल प्रतिबन्धककी प्रबलता और सरलताके अनुसार विलम्बसे या शीघ्र होता है। एक आदमीको किसी अमुक वस्तुकी या स्थितिकी आवश्यकता है। वह उसके लिये सकाम उपासना करता है। यदि उस वस्तु या स्थितिकी प्राप्तिमें बाधक पूर्वजन्मका कर्म बहुत अधिक प्रबल होता है तो एक ही अनुष्ठानसे अभीष्ट फल नहीं मिलता। बार-बार अनुष्ठान करने पडते हैं। आजकलके सकामी पुरुषमें इतना धैर्य नहीं हो सकता और फलत वह देवतामें ही अविश्वास कर बैठता है तथा उसकी अवज्ञा करने लगता है, इससे लाभके बदले उसकी उलटी हानि हो जाती है। फिर सकाम साधना वही सफल होती है जिसमें विधिका पूरा-पूरा साङ्गोपाङ्ग पालन हुआ हो तथा कर्म, देवता और फलमें पूर्ण श्रद्धा हो। विधि और श्रद्धाके अभावमें भी फल नहीं होता और आजके युगके मनुष्योंमें अधिकांश ऐसे हैं जो मनमाना फल तो तुरंत चाहते हैं पर श्रद्धा और विधिकी आवश्यकता नहीं समझते। अत उनको भी उक्त फल नहीं मिलता। इन सब दृष्टियोंसे भी सकामभावमें देवतामें, देवाराधनमें अश्रद्धातक होनेकी सम्भावना रहती है, फिर यदि कहीं कुछ फल मिलता भी है तो वह अनित्य, क्षणभङ्गुर और दुःख देनेवाला ही होता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको सकाम भावका सर्वथा त्याग ही करना चाहिये।—सम्पादक

हो अथवा हंस और चन्द्रविन्दु या सकार, फकार अथवा हुं हो तथा जिसमें मा, प्रा और नमामि पद न हो वह मन्त्र 'कीलित' माना गया है। इसी प्रकार मध्यमें और अन्तमें भी ये दोनों पद न हों तथा जिसमें फट् और लकार न हों, वह मन्त्र 'स्तम्भित' माना गया है, जो सिद्धिमें रुकावट डालनेवाला है। जिस मन्त्रके अन्तमें अग्नि (रं) बीज वायु (य) बीजके साथ हो तथा जो सात अक्षरोंसे युक्त* दिखायी देता हो वह 'दग्ध' संज्ञक मन्त्र है। जिसमें दो, तीन, छः या आठ अक्षरोंके साथ अस्त्र (फट्) दिखायी दे, उस मन्त्रको 'त्रस्त' जानना चाहिये। जिसके मुखभागमें प्रणवरहित हकार अथवा शक्ति हो वही मन्त्र 'भीत' कहा गया है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें चार म हों वह मन्त्र 'मलिन' माना गया है। वह अत्यन्त क्लेशसे सिद्धिदायक होता है। जिस मन्त्रके मध्यभागमें द अक्षर और अन्तमें दो क्रोध (हुं हुं) बीज हों और उनके साथ अस्त्र (फट्) भी हो, तो वह मन्त्र 'तिरस्कृत' कहा गया है। जिसके अन्तमें 'म' और 'य' तथा 'हृदय' हो और मध्यमें वषट् एवं वौषट् हो वह मन्त्र 'भेदित' कहा गया है। उसे त्याग देना चाहिये; क्योंकि वह बड़े क्लेशसे फल देनेवाला होता है। जो तीन अक्षरसे युक्त तथा हंसहीन है, उस मन्त्रको 'सुषुप्त' कहा गया है। जो विद्या अथवा मन्त्र सतरह अक्षरोंसे युक्त हो तथा जिसके आदिमें पाँच बार फट्का प्रयोग हुआ हो उसे 'मदोन्मत्त' माना गया है। जिसके मध्य भागमें फट्का प्रयोग हो उस मन्त्रको 'मूर्छित' कहा गया है। जिसके विरामस्थानमें अस्त्र (फट्) का प्रयोग हो वह 'हतवीर्य' कहा जाता है। मन्त्रके आदि, मध्य और अन्तमें चार अस्त्र (फट्) का प्रयोग हो तो उसे 'भ्रान्त' जानना चाहिये। जो मन्त्र अठारह अथवा बीस अक्षरवाला होकर कामबीज (क्लीं) से युक्त होकर साथ ही उसमें हृदय, लेख और अङ्कुशके भी बीज हों तो उसे 'प्रध्वस्त' कहा गया है। सात अक्षरवाला मन्त्र 'बालक', आठ अक्षरवाला 'कुमार', सोलह अक्षरोंवाला 'युवा', चौबीस अक्षरोंवाला 'प्रौढ' तथा बीस, चौसठ, सौ और चार सौ अक्षरोंका मन्त्र 'वृद्ध' कहा गया है। प्रणवसहित नवार्ण मन्त्रको 'निस्त्रिंश' कहते हैं। जिसके अन्तमें हृदय (नमः) कहा गया हो, मध्यमें शिरोमन्त्र (स्वाहा) का उच्चारण होता हो और अन्तमें शिखा (वषट्), वर्म (हुं), नेत्र (वौषट्) और अस्त्र (फट्) देखे जाते हों तथा जो शिव एवं शक्ति अक्षरोंसे हीन हो, उस मन्त्रको 'निर्बीज' माना गया है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें छः बार फट्का प्रयोग देखा जाता हो, वह मन्त्र 'सिद्धिहीन' होता है। पाँच अक्षरके मन्त्रको 'मन्द' और एकाक्षर मन्त्रको 'कूट' कहते हैं। उसीको 'निरंशक' भी कहा गया है। दो अक्षरका मन्त्र 'सत्त्वहीन', चार अक्षरका मन्त्र 'केकर' और छः या साढ़े सात अक्षरका मन्त्र 'बीजहीन' कहा गया है। साढ़े बारह अक्षरके मन्त्रको 'धूमित' माना गया है। वह निन्दित है। साढ़े तीन बीजसे युक्त बीस, तीस तथा इक्कीस अक्षरका मन्त्र 'आलिङ्गित' कहा गया है। जिसमें दन्तस्थानीय अक्षर हों वह मन्त्र 'मोहित' बताया गया है। चौबीस या सत्ताईस अक्षरके मन्त्रको 'क्षुधार्त' जानना चाहिये। वह मन्त्र सिद्धिसे रहित होता है। ग्यारह, पचीस अथवा तेईस अक्षरका मन्त्र 'दृप्त' कहलाता है। छब्बीस, छत्तीस तथा उनतीस अक्षरके मन्त्रको 'हीनाङ्ग' माना गया है। अट्ठाईस और इकतीस अक्षरका मन्त्र 'अत्यन्त क्रूर' (और 'अति क्रुद्ध') जानना चाहिये, वह सम्पूर्ण कर्मोंमें निन्दित माना गया है। चालीस अक्षरसे लेकर तिरसठ अक्षरोंतकका जो मन्त्र है, उसे 'व्रीडित' (लज्जित) समझना चाहिये। वह सब कार्योंकी सिद्धिमें समर्थ नहीं होता। पैंसठ अक्षरके मन्त्रोंको 'शान्तमानस' जानना चाहिये। मुनीश्वर ! पैंसठ अक्षरोंसे लेकर निन्यानवे अक्षरोंतकके जो मन्त्र हैं, उन्हें 'स्थानभ्रष्ट' जानना चाहिये। तेरह या पंद्रह अक्षरोंके जो मन्त्र हैं, उन्हें सर्वतन्त्र-विशारद विद्वानोंने 'विकल' कहा है। सौ, डेढ़ सौ, दो सौ, दो सौ इक्यानबे अथवा तीन सौ अक्षरोंके जो मन्त्र होते हैं, वे 'निःस्नेह' कहे गये हैं। ब्रह्मन् ! चार सौसे लेकर एक हजार अक्षरतकके मन्त्र प्रयोगमें 'अत्यन्त वृद्ध' माने गये हैं। उन्हें शिथिल कहा गया है। जिनमें एक हजारसे भी अधिक अक्षर हों, उन मन्त्रोंको 'पीडित' बताया गया है। उनसे अधिक अक्षरवाले मन्त्रोंको स्तोत्ररूप माना गया है। इस प्रकारके मन्त्र दोषयुक्त कहे गये हैं।

अब मैं 'छिन्न' आदि दोषोंसे दूषित मन्त्रोंका साधन बताता हूँ। जो योनिमुद्रासनसे बैठकर एकाग्रचित्त हो जिस किसी भी मन्त्रका जप करता है, उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। बायें पैरकी एड़ीको गुदाके सहारे रखकर दाहिने पैरकी एड़ीको ध्वज (लिङ्ग) के ऊपर रक्खे तो इस प्रकार योनिमुद्राबन्ध नामक उत्तम आसन होता है।

* 'ससार्ग' पाठ माननेपर यह अर्थ होगा—'जो 'स' अक्षरसे युक्त हो।'

हो अथवा हंस और चन्द्रबिन्दु या सकार, फकार अथवा हुं हो तथा जिसमें मा, प्रा और नमामि पद न हो वह मन्त्र 'कीलित' माना गया है। इसी प्रकार मध्यमें और अन्तमें भी ये दोनों पद न हों तथा जिसमें फट् और लकार न हों, वह मन्त्र 'स्तम्भित' माना गया है, जो सिद्धिमें रुकावट डालनेवाला है। जिस मन्त्रके अन्तमें अग्नि (रं) बीज वायु (य) बीजके साथ हो तथा जो सात अक्षरोंसे युक्त* दिखायी देता हो वह 'दग्ध' संज्ञक मन्त्र है। जिसमें दो, तीन, छः या आठ अक्षरोंके साथ अस्त्र (फट्) दिखायी दे, उस मन्त्रको 'त्रस्त' जानना चाहिये। जिसके मुखभागमें प्रणवरहित हकार अथवा शक्ति हो वही मन्त्र 'भीत' कहा गया है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें चार म हों वह मन्त्र 'मलिन' माना गया है। वह अत्यन्त क्लेशसे सिद्धिदायक होता है। जिस मन्त्रके मध्यभागमें द अक्षर और अन्तमें दो क्रोध (हुं हुं) बीज हों और उनके साथ अस्त्र (फट्) भी हो, तो वह मन्त्र 'तिरस्कृत' कहा गया है। जिसके अन्तमें 'म' और 'य' तथा 'हृदय' हो और मध्यमें वषट् एवं वौषट् हो वह मन्त्र 'भेदित' कहा गया है। उसे त्याग देना चाहिये; क्योंकि वह बड़े क्लेशसे फल देनेवाला होता है। जो तीन अक्षरसे युक्त तथा हंसहीन है, उस मन्त्रको 'सुषुप्त' कहा गया है। जो विद्या अथवा मन्त्र सतरह अक्षरोंसे युक्त हो तथा जिसके आदिमें पाँच बार फट्का प्रयोग हुआ हो उसे 'मदोन्मत्त' माना गया है। जिसके मध्य भागमें फट्का प्रयोग हो उस मन्त्रको 'मूर्छित' कहा गया है। जिसके विरामस्थानमें अस्त्र (फट्) का प्रयोग हो वह 'हृतवीर्य' कहा जाता है। मन्त्रके आदि, मध्य और अन्तमें चार अस्त्र (फट्) का प्रयोग हो तो उसे 'भ्रान्त' जानना चाहिये। जो मन्त्र अठारह अथवा बीस अक्षरवाला होकर कामबीज (क्लीं) से युक्त होकर साथ ही उसमें हृदय, लेख और अङ्कुशके भी बीज हों तो उसे 'प्रध्वस्त' कहा गया है। सात अक्षरवाला मन्त्र 'बालक', आठ अक्षरवाला 'कुमार', सोलह अक्षरोंवाला 'युवा', चौबीस अक्षरोंवाला 'प्रौढ' तथा बीस, चौंसठ, सौ और चार सौ अक्षरोंका मन्त्र 'वृद्ध' कहा गया है। प्रणवसहित नवार्ण मन्त्रको 'निस्त्रिंश' कहते हैं। जिसके अन्तमें हृदय (नमः) कहा गया हो, मध्यमें शिरोमन्त्र (स्वाहा) का उच्चारण होता हो और अन्तमें शिखा (वषट्), वर्म (हुं), नेत्र (वौषट्) और अस्त्र (फट्) देखे जाते हों तथा जो शिव एवं शक्ति अक्षरोंसे हीन हो, उस मन्त्रको 'निर्बीज' माना गया है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें छः बार फट्का प्रयोग देखा जाता हो, वह मन्त्र 'सिद्धिहीन' होता है। पाँच अक्षरके मन्त्रको 'मन्द' और एकाक्षर मन्त्रको 'कूट' कहते हैं। उसीको 'निरंशक' भी कहा गया है। दो अक्षरका मन्त्र 'सत्त्वहीन', चार अक्षरका मन्त्र 'केकर' और छः या साढ़े सात अक्षरका मन्त्र 'बीजहीन' कहा गया है। साढ़े बारह अक्षरके मन्त्रको 'धूमित' माना गया है। वह निन्दित है। साढ़े तीन बीजसे युक्त बीस, तीस तथा इक्कीस अक्षरका मन्त्र 'आलिङ्गित' कहा गया है। जिसमें दन्तस्थानीय अक्षर हों वह मन्त्र 'मोहित' बताया गया है। चौबीस या सत्ताईस अक्षरके मन्त्रको 'क्षुधार्त' जानना चाहिये। वह मन्त्र सिद्धिसे रहित होता है। ग्यारह, पचीस अथवा तेईस अक्षरका मन्त्र 'दृप्त' कहलाता है। छब्बीस, छत्तीस तथा उनतीस अक्षरके मन्त्रको 'हीनाङ्ग' माना गया है। अट्ठाईस और इकतीस अक्षरका मन्त्र 'अत्यन्त क्रूर' (और 'अति क्रुद्ध') जानना चाहिये, वह सम्पूर्ण कर्मोंमें निन्दित माना गया है। चालीस अक्षरसे लेकर तिरसठ अक्षरोंतकका जो मन्त्र है, उसे 'व्रीडित' (लज्जित) समझना चाहिये। वह सब कार्योंकी सिद्धिमें समर्थ नहीं होता। पैंसठ अक्षरके मन्त्रोंको 'शान्तमानस' जानना चाहिये। मुनीश्वर ! पैंसठ अक्षरोंसे लेकर निन्यानवे अक्षरोंतकके जो मन्त्र हैं, उन्हें 'स्थानभ्रष्ट' जानना चाहिये। तेरह या पंद्रह अक्षरोंके जो मन्त्र हैं, उन्हें सर्वतन्त्र-विशारद विद्वानोंने 'विकल' कहा है। सौ, डेढ़ सौ, दो सौ, दो सौ इक्यानबे अथवा तीन सौ अक्षरोंके जो मन्त्र होते हैं, वे 'निःस्नेह' कहे गये है। ब्रह्मन् ! चार सौसे लेकर एक हजार अक्षरतकके मन्त्र प्रयोगमें 'अत्यन्त वृद्ध' माने गये हैं। उन्हें शिथिल कहा गया है। जिनमें एक हजारसे भी अधिक अक्षर हों, उन मन्त्रोंको 'पीडित' बताया गया है। उनसे अधिक अक्षरवाले मन्त्रोंको स्तोत्ररूप माना गया है। इस प्रकारके मन्त्र दोषयुक्त कहे गये हैं।

अब मैं 'छिन्न' आदि दोषोंसे दूषित मन्त्रोंका साधन बताता हूँ। जो योनिमुद्रासनसे बैठकर एकाग्रचित्त हो जिस किसी भी मन्त्रका जप करता है, उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। बायें पैरकी एड़ीको गुदाके सहारे रखकर दाहिने पैरकी एड़ीको ध्वज (लिङ्ग) के ऊपर रक्खे तो इस प्रकार योनिमुद्राबन्ध नामक उत्तम आसन होता है।

* 'ससार्ग' पाठ माननेपर यह अर्थ होगा—'जो 'म' अक्षरसे युक्त हो।'

अकथह नामक चक्र मन्त्रमें प्रधान है; इसलिये यही तुम्हें बताया गया है* ।

इस प्रकार मन्त्रका भलीभाँति शोधन करके शुद्ध समय और पवित्र स्थानमें गुरु शिष्यको दीक्षा दे । अब दीक्षाका विधान बताया जाता है । प्रातःकाल नित्यकर्म करके पहले गुरुचरणोंकी पादुकाको प्रणाम करे । तत्पश्चात् आदरपूर्वक वस्त्र आदिके द्वारा भक्तिभावसे सद्गुरुकी पूजा करके उनसे अभीष्ट मन्त्रके लिये प्रार्थना करे । तदनन्तर गुरु संतुष्टचित्त हो स्वस्तिवाचनपूर्वक मण्डल आदि विधान करके शिष्यके साथ पवित्र हो यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे । फिर सामान्य अर्घ्य जलसे द्वारका अभिषेक करके अस्त्र-मन्त्रोंसे दिव्य विघ्नोंका निवारण करे; इसके बाद आकाशमें स्थित विघ्नोंका जलसे पूजन करके निराकरण करे । भूमिसम्बन्धी विघ्नोंको तीन बार ताली बजाकर हटावे, तत्पश्चात् कार्य प्रारम्भ करे । भिन्न-भिन्न रंगोंद्वारा शास्त्रोक्तविधिसे सर्वतोभद्रमण्डलकी रचना करके उसमें वह्निमण्डल और उसकी कलाओंका पूजन करे । तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्रका उच्चारण करके धोये हुए यथाशक्तिनिर्मित कलशकी वहाँ विधिपूर्वक स्थापना करके सूर्यकी कलाका यजन करे । विलोममातृकाके मूलका उच्चारण करते हुए शुद्ध जलसे कलशको भरे और उसके भीतर सोमकी कलाओंका विधिपूर्वक पूजन करे । धूम्रा, अर्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला तथा हव्य-कव्यवाहा—ये अग्निकी दस कलाएँ कही गयी हैं । अब सूर्यकी बारह कलाएँ बतायी जाती हैं—तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्णा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी तथा क्षमा । चन्द्रमाकी कलाओंके नाम इस प्रकार जानने चाहिये—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा और पूर्णामृता । ये सोलह चन्द्रमाकी कलाएँ कही गयी हैं ।

कलशको दो वस्त्रोंसे लपेट करके उसके भीतर सर्वौषधि डाले । फिर नौ रत्न छोड़कर पञ्चपल्लव डाले । कटहल, आम, बड़, पीपल और बकुल—इन पाँच वृक्षोंके पल्लवोंको यहाँ पञ्चपल्लव माना गया है । मोती, माणिक्य, वैदूर्य, गोमेद, वज्र, विद्रुम (मूँगा), पद्मराग, मरकत तथा नीलमणि—इन नौ रत्नोंको क्रमशः कलशमें छोड़कर उसमें इष्ट देवताका आवाहन करे और मन्त्रवेत्ता आचार्य विधि-पूर्वक देवपूजाका कार्य सम्पन्न करके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित शिष्यको वेदीपर बिठावे और प्रोक्षणीके जलसे उसका अभिषेक करे । फिर उसके शरीरमें विधिपूर्वक भूतशुद्धि आदि करके न्यासोंके द्वारा शरीरशुद्धि करे और मस्तकमें पल्लव मन्त्रोंका न्यास करके एक सौ आठ मूलमन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे प्रिय शिष्यका अभिषेक करे । उस समय मन-ही-मन मूलमन्त्र-का जप करते रहना चाहिये । अवशिष्ट जलसे आचमन करके शिष्य दूसरा वस्त्र धारण करे और गुरुको विधिपूर्वक प्रणाम करके पवित्र हो उनके सामने बैठे । तदनन्तर गुरु शिष्यके मस्तकपर हाथ देकर जिस मन्त्रकी दीक्षा देनी हो, उसका विधिपूर्वक एक सौ आठ बार जप करे । 'समः अस्तु' (शिष्य मेरे समान हो) इस भावसे शिष्यको अक्षर-दान करे । तब शिष्य गुरुकी पूजा करे । इसके बाद गुरु शिष्यके मस्तकपर चन्दनयुक्त हाथ रखकर एकाग्रचित्त हो, उसके कानमें आठ बार मन्त्र कहे । इस प्रकार मन्त्रका उपदेश पाकर शिष्य भी गुरुके चरणोंमें गिर जाय । उस समय गुरु इस प्रकार कहे, 'बेटा ! उठो ! तुम बन्धनमुक्त हो गये । विधिपूर्वक सदाचारी बनो । तुम्हें सदा कीर्ति, श्री, कान्ति, पुत्र, आयु, बल और आरोग्य प्राप्त हो ।' तब शिष्य उठकर गन्ध आदिके द्वारा गुरुकी पूजा करे और उनके लिये दक्षिणा दे । इस

* मूलमें बतायी हुई रीतिसे कोष्ठक बनाकर उनमें अक्षरोंको लिखनेपर प्रथम कोष्ठकमें 'अ क थ ह' अक्षर आते हैं । इन्हींके नामपर इस चक्रको 'अकथह' चक्र कहते हैं । इसका रेखाचित्र नीचे दिया जाता है—

अकथह-चक्र

१ अ क थ ह	२ उ ङ प	३ आ ख द	४ ऊ च फ
५ ओ ड व	६ ऌ झ म	७ औ ढ श	८ ॡ ञ य
९ ई घ न	१० ऋ ज भ	११ इ ग ध	१२ ॠ छ ब
१३ अः त स	१४ ऐ ठ ल	१५ अं ण ष	१६ ए ट र

अकथह नामक चक्र मन्त्रमें प्रधान है; इसलिये यही तुम्हें बताया गया है* ।

इस प्रकार मन्त्रका भलीभाँति शोधन करके शुद्ध समय और पवित्र स्थानमें गुरु शिष्यको दीक्षा दे । अब दीक्षाका विधान बताया जाता है । प्रातःकाल नित्यकर्म करके पहले गुरुचरणोंकी पादुकाको प्रणाम करे । तत्पश्चात् आदरपूर्वक वस्त्र आदिके द्वारा भक्तिभावसे सद्गुरुकी पूजा करके उनसे अभीष्ट मन्त्रके लिये प्रार्थना करे । तदनन्तर गुरु संतुष्टचित्त हो स्वस्तिवाचनपूर्वक मण्डल आदि विधान करके शिष्यके साथ पवित्र हो यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे । फिर सामान्य अर्घ्य जलसे द्वारका अभिषेक करके अस्त्र-मन्त्रोंसे दिव्य विघ्नोंका निवारण करे; इसके बाद आकाशमें स्थित विघ्नोंका जलसे पूजन करके निराकरण करे । भूमिसम्बन्धी विघ्नोंको तीन बार ताली बजाकर हटावे, तत्पश्चात् कार्य प्रारम्भ करे । भिन्न-भिन्न रंगोंद्वारा शास्त्रोक्तविधिसे सर्वतोभद्रमण्डलकी रचना करके उसमें वह्निमण्डल और उसकी कलाओंका पूजन करे । तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्रका उच्चारण करके धोये हुए यथाशक्तिनिर्मित कलशकी वहाँ विधिपूर्वक स्थापना करके सूर्यकी कलाका यजन करे । विलोममातृकाके मूलका उच्चारण करते हुए शुद्ध

* मूलमें बतायी हुई रीतिसे कोष्ठक बनाकर उनमें अक्षरोंको लिखनेपर प्रथम कोष्ठकमें 'अ क थ ह' अक्षर आते हैं । इन्हींके नामपर इस चक्रको 'अकथह' चक्र कहते हैं । इसका रेखाचित्र नीचे दिया जाता है—

अकथह-चक्र

१ अ क थ ह	२ उ ङ प	३ आ ख द	४ ऊ च फ
५ ओ ड व	६ ऌ झ म	७ औ ढ श	८ ॡ ञ य
९ ई घ न	१० ऋ ज भ	११ इ ग ध	१२ ॠ छ ब
१३ अः त स	१४ ऐ ठ ल	१५ अं ण ष	१६ ए ट र

जलसे कलशको भरे और उसके भीतर सोमकी कलाओंका विधिपूर्वक पूजन करे । धूम्रा, अर्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला तथा हव्य-कव्यवाहा—ये अग्निकी दस कलाएँ कही गयी हैं । अब सूर्यकी बारह कलाएँ बतायी जाती हैं—तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्णा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी तथा क्षमा । चन्द्रमाकी कलाओंके नाम इस प्रकार जानने चाहिये—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा और पूर्णामृता । ये सोलह चन्द्रमाकी कलाएँ कही गयी हैं ।

कलशको दो वस्त्रोंसे लपेट करके उसके भीतर सर्वौषधि डाले । फिर नौ रत्न छोड़कर पञ्चपल्लव डाले । कटहल, आम, बड़, पीपल और बकुल—इन पाँच वृक्षोंके पल्लवोंको यहाँ पञ्चपल्लव माना गया है । मोती, माणिक्य, वैदूर्य, गोमेद, वज्र, विद्रुम (मूँगा), पद्मराग, मरकत तथा नीलमणि—इन नौ रत्नोंको क्रमशः कलशमें छोड़कर उसमें इष्ट देवताका आवाहन करे और मन्त्रवेत्ता आचार्य विधिपूर्वक देवपूजाका कार्य सम्पन्न करके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित शिष्यको वेदीपर बिठावे और प्रोक्षणीके जलसे उसका अभिषेक करे । फिर उसके शरीरमें विधिपूर्वक भूतशुद्धि आदि करके न्यासोंके द्वारा शरीरशुद्धि करे और मस्तकमें पल्लव मन्त्रोंका न्यास करके एक सौ आठ मूलमन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे प्रिय शिष्यका अभिषेक करे । उस समय मन-ही-मन मूलमन्त्रका जप करते रहना चाहिये । अवशिष्ट जलसे आचमन करके शिष्य दूसरा वस्त्र धारण करे और गुरुको विधिपूर्वक प्रणाम करके पवित्र हो उनके सामने बैठे । तदनन्तर गुरु शिष्यके मस्तकपर हाथ देकर जिस मन्त्रकी दीक्षा देनी हो, उसका विधिपूर्वक एक सौ आठ बार जप करे । 'समः अस्तु' (शिष्य मेरे समान हो) इस भावसे शिष्यको अक्षर-दान करे । तब शिष्य गुरुकी पूजा करे । इसके बाद गुरु शिष्यके मस्तकपर चन्दनयुक्त हाथ रखकर एकाग्रचित्त हो, उसके कानमें आठ बार मन्त्र कहे । इस प्रकार मन्त्रका उपदेश पाकर शिष्य भी गुरुके चरणोंमें गिर जाय । उस समय गुरु इस प्रकार कहे, 'बेटा ! उठो । तुम बन्धनमुक्त हो गये । विधिपूर्वक सदाचारी बनो । तुम्हें सदा कीर्ति, श्री, कान्ति, पुत्र, आयु, बल और आरोग्य प्राप्त हो ।' तब शिष्य उठकर गन्ध आदिके द्वारा गुरुकी पूजा करे और उनके लिये दक्षिणा दे । इस

क्रमशः 'ब भ म य र ल' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसमे कमलजन्मा ब्रह्माजी हंसारूढ़ होकर विराजमान हैं। उनके वामाङ्ग-भागमे उनकी ब्राह्मीशक्ति सुशोभित हैं। वे विद्याके अधिपति हैं। स्रुवा और अक्षमाला उनके हाथोंकी शोभा बढ़ाती हैं। ऐसे ब्रह्माजीको छः हजार जप निवेदन करे। मणिपूर चक्रमे दशदल कमल विद्यमान है। उसके प्रत्येक दलपर क्रमशः 'ड ढ ण त थ द ध न प फ' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसकी प्रभा विद्युद्विलसित मेघके समान है। उसमे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले भगवान् विष्णु लक्ष्मीसहित विराजमान हैं। उन्हें छः हजार जप अर्पण करे। अनाहत चक्रमें द्वादशदल कमल विद्यमान है। इसके प्रत्येक दलपर क्रमशः 'क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसका वर्ण शुक्ल है। उसमें शूल, अभय, वर और अमृतकलश धारण करनेवाले वृषभारूढ़ भगवान् रुद्र विराज रहे हैं। उनके वामाङ्ग-भागमे उनकी शक्ति पार्वती देवी विद्यमान हैं। वे विद्याके अधिपति हैं। विद्वान् पुरुष उन रुद्रदेवको छः हजार जप निवेदन करे। विशुद्ध चक्र षोडशदल कमलसे युक्त है। उसके प्रत्येक दलपर क्रमशः स्वरवर्ण (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः) अङ्कित हैं। वह चक्र शुक्ल वर्णका है। उसमे महाज्योतिसे प्रकाशित होनेवाले इन्द्रियाधिपति ईश्वर विराजमान हैं, जो प्राणशक्तिसे युक्त हैं। उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे। आज्ञाचक्रमे दो दलोंवाला कमल है, उसके दलोंमें क्रमशः 'ह' और 'क्ष' अङ्कित हैं; उसमें पराशक्तिसे युक्त जगद्गुरु सदाशिव विराजमान हैं; उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे। सहस्रार-चक्रमे सहस्र दलोंसे युक्त महाकमल विद्यमान है, उसमे नाद-बिन्दुसहित समस्त मातृकावर्ण विराजमान हैं। उसमे स्थित वर और अभययुक्त हाथोंवाले परम आदिगुरुको एक सहस्र जप निवेदन करे। फिर चुल्लूमें जल लेकर इस प्रकार कहे—'स्वभावतः होते रहनेवाले इक्कीस हजार छः सौ अजपा जपका पूर्वोक्तरूपसे विभागपूर्वक संकल्प करनेके कारण मोक्षदाता भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों।' इस अजपा गायत्रीके सकल्पमात्रसे मनुष्य बड़े बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। 'मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी जीव नहीं हूँ। नित्यमुक्त हूँ, शोक मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। मैं सच्चिदानन्द-स्वरूप हूँ।' इस प्रकार अपने आपके विषयमें चिन्तन करे। तदनन्तर दैहिक कृत्य और देवार्चन करे। उसका विधान और सदाचारका लक्षण मैं बताऊँगा। (पूर्व० ६५ अध्याय)

शौचाचार, स्नान, संध्या-तर्पण, पूजागृहमें देवताओंका पूजन, केशव-कीर्त्यादि मातृका-न्यास, श्रीकण्ठमातृका, गणेशमातृका, कलामातृका आदि न्यासोंका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—तदनन्तर बायीं या दाहिनी जिस ओरकी साँस चलती हो, उसी ओरका बायाँ अथवा दाहिना पैर पृथ्वीपर उतारे और इस प्रकार प्रार्थना करे—

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥ ६६।१-२

'पृथ्वी देवि! समुद्र तुम्हारी मेखला (कटिबन्ध) और पर्वत स्तनमण्डल हैं। विष्णुपत्नि! तुम्हें नमस्कार है, मैंने जो तुम्हें चरणोंसे स्पर्श किया है, मेरे इस अपराधको क्षमा करो।'

इस प्रकार भूदेवीसे क्षमा-प्रार्थना करके विधिपूर्वक विचरण करे। तदनन्तर गाँवसे नैर्ऋत्य कोणमें जाकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—

गच्छन्तु ऋषयो देवाः पिशाचा ये च गुह्यकाः।
पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम्॥ ३-४

'यहाँ जो ऋषि, देवता, पिशाच, गुह्यक, पितर तथा भूतगण हों, वे चले जायँ, मैं यहाँ मल-त्याग करूँगा।'

ऐसा कहकर तीन बार ताली बजावे और सिरको वस्त्रसे आच्छादित करके मलत्याग करे। रात हो तो दक्षिणकी ओर मुँह करके बैठे और दिनमें उत्तरकी ओर मुँह करके मलत्याग करे। तत्पश्चात् मिट्टी और जलसे शुद्धि करे। लिङ्गमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार, फिर दोनों हाथोंमें सात बार तथा पैरोंमें तीन बार मिट्टी लगावे। इस प्रकार शौच-सम्पादन करके बारह बार जलसे कुल्ला करे। उसके बाद दाँतुनके लिये निम्नाङ्कित मन्त्रसे वनस्पतिकी प्रार्थना करे—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
श्रियं प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥ ८

'वनस्पते! तुम हमें आयु, बल, यश, तेज, संतान,

क्रमशः 'ब भ म य र ल' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसमे कमलजन्मा ब्रह्माजी हंसारूढ़ होकर विराजमान हैं। उनके वामाङ्ग-भागमे उनकी ब्राह्मीशक्ति सुशोभित हैं। वे विद्याके अधिपति हैं। स्रुवा और अक्षमाला उनके हाथोंकी शोभा बढ़ाती हैं। ऐसे ब्रह्माजीको छः हजार जप निवेदन करे। मणिपूर चक्रमे दशदल कमल विद्यमान है। उसके प्रत्येक दलपर क्रमशः 'ड ढ ण त थ द ध न प फ' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसकी प्रभा विद्युद्विलसित मेघके समान है। उसमे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले भगवान् विष्णु लक्ष्मीसहित विराजमान हैं। उन्हें छः हजार जप अर्पण करे। अनाहत चक्रमें द्वादशदल कमल विद्यमान है। इसके प्रत्येक दलपर क्रमशः 'क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसका वर्ण शुक्ल है। उसमें शूल, अभय, वर और अमृतकलश धारण करनेवाले वृषभारूढ़ भगवान् रुद्र विराज रहे हैं। उनके वामाङ्ग-भागमे उनकी शक्ति पार्वती देवी विद्यमान हैं। वे विद्याके अधिपति हैं। विद्वान् पुरुष उन रुद्रदेवको छः हजार जप निवेदन करे। विशुद्ध चक्र षोडशदल कमलसे युक्त है। उसके प्रत्येक दलपर क्रमशः स्वरवर्ण (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः) अङ्कित हैं। वह चक्र शुक्ल वर्णका है। उसमे महाज्योतिसे प्रकाशित होनेवाले इन्द्रियाधिपति ईश्वर विराजमान हैं, जो प्राणशक्तिसे युक्त हैं। उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे। आज्ञाचक्रमे दो दलोंवाला कमल है, उसके दलोंमें क्रमशः 'ह' और 'क्ष' अङ्कित हैं; उसमें पराशक्तिसे युक्त जगद्गुरु सदाशिव विराजमान हैं; उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे। सहस्रार-चक्रमे सहस्र दलोंसे युक्त महाकमल विद्यमान है, उसमे नाद-विन्दुसहित समस्त मातृकावर्ण विराजमान हैं। उसमे स्थित वर और अभययुक्त हाथोंवाले परम आदिगुरुको एक सहस्र जप निवेदन करे। फिर चुल्लूमें जल लेकर इस प्रकार कहे—'स्वभावतः होते रहनेवाले इक्कीस हजार छः सौ अजपा जपका पूर्वोक्तरूपसे विभागपूर्वक संकल्प करनेके कारण मोक्षदाता भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों।' इस अजपा गायत्रीके संकल्पमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। 'मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी जीव नहीं हूँ। नित्यमुक्त हूँ, शोक मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। मैं सच्चिदानन्द-स्वरूप हूँ।' इस प्रकार अपने आपके विषयमें चिन्तन करे। तदनन्तर दैहिक कृत्य और देवार्चन करे। उसका विधान और सदाचारका लक्षण मैं बताऊँगा। (पूर्व० ६५ अध्याय)

शौचाचार, स्नान, संध्या-तर्पण, पूजागृहमें देवताओंका पूजन, केशव-कीर्त्यादि मातृका-न्यास, श्रीकण्ठमातृका, गणेशमातृका, कलामातृका आदि न्यासोंका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—तदनन्तर बायीं या दाहिनी जिस ओरकी साँस चलती हो, उसी ओरका बायाँ अथवा दाहिना पैर पृथ्वीपर उतारे और इस प्रकार प्रार्थना करे—

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥ ६६।१-२

'पृथ्वी देवि ! समुद्र तुम्हारी मेखला (कटिबन्ध) और पर्वत स्तनमण्डल हैं। विष्णुपत्नि ! तुम्हें नमस्कार है, मैंने जो तुम्हें चरणोंसे स्पर्श किया है, मेरे इस अपराधको क्षमा करो।'

इस प्रकार भूदेवीसे क्षमा-प्रार्थना करके विधिपूर्वक विचरण करे। तदनन्तर गाँवसे नैर्ऋत्य कोणमें जाकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—

गच्छन्तु ऋषयो देवाः पिशाचा ये च गुह्यकाः।
पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम्॥ ३-४

'यहाँ जो ऋषि, देवता, पिशाच, गुह्यक, पितर तथा भूतगण हों, वे चले जायँ, मैं यहाँ मल-त्याग करूँगा।'

ऐसा कहकर तीन बार ताली बजावे और सिरको वस्त्रसे आच्छादित करके मलत्याग करे। रात हो तो दक्षिणकी ओर मुँह करके बैठे और दिनमें उत्तरकी ओर मुँह करके मलत्याग करे। तत्पश्चात् मिट्टी और जलसे शुद्धि करे। लिङ्गमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार, फिर दोनों हाथोंमें सात बार तथा पैरोंमें तीन बार मिट्टी लगावे। इस प्रकार शौच-सम्पादन करके बारह बार जलसे कुल्ला करे। उसके बाद दाँतुनके लिये निम्नाङ्कित मन्त्रसे वनस्पतिकी प्रार्थना करे—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
श्रियं प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥ ८

'वनस्पते ! तुम हमें आयु, बल, यश, तेज, संतान,

नमः' 'ॐ त्रिविक्रमाय नमः' से दोनों ओठोंका मार्जन करे। तत्पश्चात् 'ॐ वामनाय नमः' 'ॐ श्रीधराय नमः' से मुख और दोनों हाथोंका स्पर्श करे। 'ॐ हृषीकेशाय नमः' 'ॐ पद्मनाभाय नमः' से दोनों चरणोंका स्पर्श करे। 'ॐ दामोदराय नमः' से मूर्धा (मस्तक) का, 'ॐ संकर्षणाय नमः' से मुखका, 'ॐ वासुदेवाय नमः' 'ॐ प्रद्युम्नाय नमः' से क्रमशः दायीं-बायीं नासिकाका स्पर्श करे। 'ॐ अनिरुद्धाय नमः' 'ॐ पुरुषोत्तमाय नमः' से पूर्ववत् दोनों नेत्रोंका तथा 'ॐ अधोक्षजाय नमः', 'ॐ नृसिंहाय नमः' से दोनों कानोंका स्पर्श करे। 'ॐ अच्युताय नमः' से नाभिका, 'ॐ जनार्दनाय नमः' से वक्षःस्थलका तथा 'ॐ हरये नमः', 'ॐ विष्णवे नमः' से दोनों कंधोंका स्पर्श करे। यह वैष्णव आचमनकी विधि है। आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थीका एकवचन तथा नमः पद जोड़कर पूर्वोक्त केशव आदि नामोंद्वारा मुख आदिका स्पर्श करना चाहिये। मुख और नासिकाका स्पर्श तर्जनी अंगुलिसे करे। नेत्रों तथा कानोंका स्पर्श अनामिकाद्वारा करे तथा नाभिदेशका स्पर्श कनिष्ठा अंगुलिसे करे। अङ्गुष्ठका स्पर्श सभी अङ्गोंमें करना चाहिये। 'स्वाहा' पद अन्तमें जोड़कर चतुर्थ्यन्त आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका उच्चारण करके जो आचमन किया जाता है, उसे शैव आचमन कहा गया है। आदिमें क्रमशः दीर्घत्रय, अनुस्वार और ह अर्थात्—हां हीं हूं जोड़कर स्वाहान्त आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व शब्दोंके उच्चारणपूर्वक किये हुए आचमनको तो शैव[1] कहते हैं और आदिमें क्रमशः 'ऐं, ह्रीं, श्रीं' इस बीजके साथ स्वाहान्त उक्त नामोंका उच्चारण करके किये हुए आचमनको शाक्त[2] आचमन कहा गया है। ब्रह्मन्! वाग्बीज (ऐं), लज्जाबीज (ह्रीं) और श्रीबीज (श्रीं) का प्रारम्भमें प्रयोग करनेसे वह आचमन अभीष्ट अर्थको देनेवाला होता है।

तदनन्तर ललाटमें सुन्दर गदाकी-सी आकृतिवाला तिलक लगावे। हृदयमें नन्दक नामक खड्गकी और दोनों बाँहोंपर क्रमशः शङ्ख और चक्रकी आकृति बनावे। उत्तम बुद्धिवाला वैष्णव पुरुष क्रमशः मस्तक, कर्णमूल, पार्श्वभाग, पीठ, नाभि तथा ककुद्में भी शार्ङ्ग नामक धनुष तथा बाणका न्यास करे। इस प्रकार वैष्णव पुरुष तीर्थजनित मृत्तिका (गोपीचन्दन) आदिसे तिलक करे। अथवा शैवजन त्र्यम्बकमन्त्रसे अग्निहोत्रका भस्म लेकर 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान—इन नामोंद्वारा क्रमशः ललाट, कंधे, उदर, भुजा और हृदयमें पाँच जगह त्रिपुण्ड्र लगावे। शक्तिके उपासकको त्रिकोणकी आकृतिका अथवा स्त्रियाँ जैसे बेंदी लगाती हैं, उस तरहका तिलक करना चाहिये। वैदिकी सध्या करनेके बाद मन्त्रका साधक विधिवत् आचमन करके तान्त्रिकी संध्या करे। पूर्ववत् जलमें तीर्थोंका आवाहन कर ले। तत्पश्चात् कुशासे तीन बार पृथ्वीपर जल छिड़के। फिर उसी जलसे सात बार अपने मस्तकपर अभिषेक करे। फिर प्राणायाम और षडङ्गन्यास करके बायें हाथमें जल लेकर उसे दाहिने हाथसे ढक ले। और मन्त्रज्ञ पुरुष आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वीके बीजमन्त्रोंद्वारा* उसे अभिमन्त्रित करके तत्त्वमुद्रा-पूर्वक हाथसे चूते हुए जलविन्दुओंद्वारा मूलमन्त्रसे अपने मस्तकको सात बार सींचे, फिर शेष जलको मन्त्रका साधक बीजाक्षरोंसे अभिमन्त्रित करके नासिकाके समीप ले आवे। उस तेजोमय जलको भावनाद्वारा इडा नाडीसे भीतर खींचकर उसके अन्तरके सारे मलोंको धो डाले, फिर कृष्णवर्णमें परिणत हुए उस जलको पिङ्गला नाड़ीसे बाहर निकाले और अपने आगे वज्रमय प्रस्तरकी कल्पना करके अस्त्रमन्त्र (फट्) का उच्चारण करते हुए उस जलको उसीपर दे मारे। यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला अघमर्षण कहा गया है। फिर मन्त्रवेत्ता पुरुष हाथ-पैर धोकर पूर्ववत् आचमन करके खड़ा हो ताँबेके पात्रमें पुष्प-चन्दन आदि डालकर मूलान्त मन्त्रका उच्चारण करते हुए सूर्यमण्डलमें विराजमान इष्टदेवको अर्घ्य दे। इस प्रकार तीन बार अर्घ्य देकर रविमण्डलमें स्थित आराध्यदेवका ध्यान करे। तत्पश्चात् अपने-अपने कल्पमें बतायी हुई गायत्रीका एक सौ आठ या अट्ठाईस बार जप करे। जपके अन्तमे 'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं' इत्यादि मन्त्रसे वह जप समर्पित करे, तदनन्तर गायत्रीका ध्यान करे।

फिर विधिज्ञ पुरुष देवताओं, ऋषियों तथा अपने पितरोंका तर्पण करके कल्पोक्त पद्धतिसे अपने इष्टदेवका भी

१. हां आत्मतत्त्वाय स्वाहा। हीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। हूं शिवतत्त्वाय स्वाहा। ये शैव आचमन-मन्त्र हैं।

२. ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा। ह्रीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। श्रीं शिवतत्त्वाय स्वाहा। ये शाक्त आचमन-मन्त्र हैं।

* हं यं रं वं लं—ये क्रमशः आकाश आदि तत्त्वोंके बीज हैं।

नमः' 'ॐ त्रिविक्रमाय नमः' से दोनों ओष्ठोंका मार्जन करे। तत्पश्चात् 'ॐ वामनाय नमः' 'ॐ श्रीधराय नमः' से मुख और दोनों हाथोंका स्पर्श करे। 'ॐ हृषीकेशाय नमः' 'ॐ पद्मनाभाय नमः' से दोनों चरणोंका स्पर्श करे। 'ॐ दामोदराय नमः' से मूर्धा (मस्तक) का, 'ॐ संकर्षणाय नमः' से मुखका, 'ॐ वासुदेवाय नमः' 'ॐ प्रद्युम्नाय नमः' से क्रमशः दायीं-बायीं नासिकाका स्पर्श करे। 'ॐ अनिरुद्धाय नमः' 'ॐ पुरुषोत्तमाय नमः' से पूर्ववत् दोनों नेत्रोंका तथा 'ॐ अधोक्षजाय नमः', 'ॐ नृसिंहाय नमः' से दोनों कानोंका स्पर्श करे। 'ॐ अच्युताय नमः' से नाभिका, 'ॐ जनार्दनाय नमः' से वक्षःस्थलका तथा 'ॐ हरये नमः', 'ॐ विष्णवे नमः' से दोनों कंधोंका स्पर्श करे। यह वैष्णव आचमनकी विधि है। आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थीका एकवचन तथा नमः पद जोड़कर पूर्वोक्त केशव आदि नामोंद्वारा मुख आदिका स्पर्श करना चाहिये। मुख और नासिकाका स्पर्श तर्जनी अंगुलिसे करे। नेत्रों तथा कानोंका स्पर्श अनामिकाद्वारा करे तथा नाभिदेशका स्पर्श कनिष्ठा अंगुलिसे करे। अङ्गुष्ठका स्पर्श सभी अङ्गोंमें करना चाहिये। 'स्वाहा' पद अन्तमें जोड़कर चतुर्थ्यन्त आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका उच्चारण करके जो आचमन किया जाता है, उसे शैव आचमन कहा गया है। आदिमें क्रमशः दीर्घत्रय, अनुस्वार और ह अर्थात्—हा हीं हू जोड़कर स्वाहान्त आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व शब्दोंके उच्चारणपूर्वक किये हुए आचमनको तो शैव कहते हैं और आदिमें क्रमशः 'ऐं, ह्रीं, श्रीं' इस बीजके साथ स्वाहान्त उक्त नामोंका उच्चारण करके किये हुए आचमनको शाक्त आचमन कहा गया है। ब्रह्मन्! वाग्बीज (ऐं), लज्जाबीज (ह्रीं) और श्रीबीज (श्रीं) का प्रारम्भमें प्रयोग करनेसे वह आचमन अभीष्ट अर्थको देनेवाला होता है।

तदनन्तर ललाटमें सुन्दर गदाकी-सी आकृतिवाला तिलक लगावे। हृदयमें नन्दक नामक खड्गकी और दोनों बाँहोंपर क्रमशः शङ्ख और चक्रकी आकृति बनावे। उत्तम बुद्धिवाला वैष्णव पुरुष क्रमशः मस्तक, कर्णमूल, पार्श्वभाग, पीठ, नाभि तथा ककुद्में भी शार्ङ्ग नामक धनुष तथा बाणका न्यास करे। इस प्रकार वैष्णव पुरुष तीर्थजनित मृत्तिका (गोपीचन्दन) आदिसे तिलक करे। अथवा शैवजन त्र्यम्बकमन्त्रसे अग्निहोत्रका भस्म लेकर 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान—इन नामोंद्वारा क्रमशः ललाट, कंधे, उदर, भुजा और हृदयमें पाँच जगह त्रिपुण्ड्र लगावे। शक्तिके उपासकको त्रिकोणकी आकृतिका अथवा स्त्रियाँ जैसे बेंदी लगाती हैं, उस तरहका तिलक करना चाहिये। वैदिकी सध्या करनेके बाद मन्त्रका साधक विधिवत् आचमन करके तान्त्रिकी संध्या करे। पूर्ववत् जलमें तीर्थोंका आवाहन कर ले। तत्पश्चात् कुशासे तीन बार पृथ्वीपर जल छिड़के। फिर उसी जलसे सात बार अपने मस्तकपर अभिषेक करे। फिर प्राणायाम और षडङ्गन्यास करके बायें हाथमें जल लेकर उसे दाहिने हाथसे ढक ले। और मन्त्रज्ञ पुरुष आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वीके बीजमन्त्रोंद्वारा* उसे अभिमन्त्रित करके तत्त्वमुद्रा-पूर्वक हाथसे चूते हुए जलबिन्दुओंद्वारा मूलमन्त्रसे अपने मस्तकको सात बार सींचे, फिर शेष जलको मन्त्रका साधक बीजाक्षरोंसे अभिमन्त्रित करके नासिकाके समीप ले आवे। उस तेजोमय जलको भावनाद्वारा इडा नाडीसे भीतर खींचकर उसके अन्तरके सारे मलोंको धो डाले, फिर कृष्णवर्णमें परिणत हुए उस जलको पिङ्गला नाड़ीसे बाहर निकाले और अपने आगे वज्रमय प्रस्तरकी कल्पना करके अस्त्रमन्त्र (फट्) का उच्चारण करते हुए उस जलको उसीपर दे मारे। यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला अघमर्षण कहा गया है। फिर मन्त्रवेत्ता पुरुष हाथ-पैर धोकर पूर्ववत् आचमन करके खड़ा हो ताँबेके पात्रमें पुष्प-चन्दन आदि डालकर मूलान्त मन्त्रका उच्चारण करते हुए सूर्यमण्डलमें विराजमान इष्टदेवको अर्घ्य दे। इस प्रकार तीन बार अर्घ्य देकर रविमण्डलमें स्थित आराध्यदेवका ध्यान करे। तत्पश्चात् अपने-अपने कल्पमें बतायी हुई गायत्रीका एक सौ आठ या अट्ठाईस बार जप करे। जपके अन्तमे 'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं' इत्यादि मन्त्रसे वह जप समर्पित करे, तदनन्तर गायत्रीका ध्यान करे।

फिर विधिज्ञ पुरुष देवताओं, ऋषियों तथा अपने पितरोंका तर्पण करके कल्पोक्त पद्धतिसे अपने इष्टदेवका भी

१. हां आत्मतत्त्वाय स्वाहा। हीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। हूं शिवतत्त्वाय स्वाहा। ये शैव आचमन-मन्त्र हैं।

२. ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा। ह्रीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। श्रीं शिवतत्त्वाय स्वाहा। ये शाक्त आचमन-मन्त्र हैं।

* हं यं रं वं लं—ये क्रमशः आकाश आदि तत्त्वोंके बीज हैं।

का जिह्वामूलमें तथा एक अक्षर 'अः' का ग्रीवामें न्यास करे। दाहिनी बाँहमें कवर्गका और बायीं बाँहमें चवर्गका न्यास करे। टवर्ग और तवर्गका दोनों पैरोंमें तथा 'प' और 'फ' का दोनों कुक्षियोंमें न्यास करे। पृष्ठवंशमें 'ब' का, नाभिमें 'भ' का और हृदयमें 'म' का न्यास करे। 'य' आदि सात अक्षरोंका शरीरकी सात धातुओंमें, 'ह' का प्राणमें तथा 'ळ' का आत्मामें न्यास करे। 'क्ष' का क्रोधमें न्यास करना चाहिये। इस प्रकार क्रमसे मातृका वर्णोंका न्यास करके मनुष्य भगवान् विष्णुकी पूजामें समर्थ होता है।

शैव-मातृका-न्यास

[भगवान् शिवके उपासकको केशव-कीर्त्यादि मातृका-न्यासकी भाँति श्रीकण्ठेशादि मातृका-न्यास करना चाहिये।] पूर्णोदरीके साथ श्रीकण्ठेशका, विरजाके साथ अनन्तेशका, शाल्मलीके साथ सूक्ष्मेशका, लोलाक्षीके साथ त्रिमूर्तीशका, वर्तुलाक्षीके साथ मंहेशका और दीर्घघोणाके साथ अर्घीशका न्यास करे*। दीर्घमुखीके साथ भारभूतीशका, गोमुखीके साथ तिथीशका, दीर्घजिह्वाके साथ स्थाण्वीशका, कुण्डोदरीके साथ हरेशका, ऊर्ध्वकेशीके साथ झिण्टीशका, विकृतास्याके साथ भौतिकेशका, ज्वालामुखीके साथ सद्योजातेशका, उल्कामुखीके साथ अनुग्रहेशका, आस्याके साथ अक्रूरका, विद्याके साथ महासेन-का, महाकालीके साथ क्रोधीशका, सरस्वतीके साथ चण्डेशका, सिद्धगौरीके साथ पञ्चान्तकेशका, त्रैलोक्यविद्याके साथ शिवोत्तमेशका, मन्त्र-शक्तिके साथ एकरुद्रेशका, कमठीके साथ कूर्मेशका, भूतमाताके साथ एकनेत्रेशका, लम्बोदरीके साथ चतुर्वक्त्रेशका, द्राविणीके साथ अजेशका, नागरीके साथ सर्वेशका, खेचरीके साथ सोमेशका, मर्यादाके साथ लाङ्गलीशका, दारुकेशके साथ रूपिणीका तथा वीरिणीके साथ अर्धनारीशका न्यास करना चाहिये। काकोदरीके साथ उमाकान्त (उमेश)का और पूतनाके साथ आषाढीश-का न्यास करे। भद्रकालीके साथ दण्डीशका, योगिनीके साथ अत्रीशका, शङ्खिनीके साथ मीनेशका, तर्जनीके साथ मेषेशका, कालरात्रिके साथ लोहितेशका, कुब्जनीके साथ शिखीशका, कपर्दिनीके साथ छलगण्डेशका, वज्राके साथ द्विरण्डेशका, जया-के साथ महाबलेशका, सुमुखेश्वरीके साथ बलीशका, रेवतीके साथ भुजङ्गेशका, माध्वीके साथ पिनाकीशका, वारुणीके सा खड्गीशका, वायवीके साथ बकेशका, विदारणीके सा श्वेतोरस्केशका, सहजाके साथ भृग्वीशका, लक्ष्मीके सा लकुलीशका, व्यापिनीके साथ शिवेशका तथा महामाया साथ संवर्तकेशका न्यास करे। यह श्रीकण्ठमातृका कही गय है। जहाँ 'ईश' पद न कहा गया हो, वहाँ सर्वत्र उसक योजना कर लेनी चाहिये। इस श्रीकण्ठमातृका-न्यासके दक्षिणामूर्ति ऋषि और गायत्री छन्द कहा गया है। अर्धनारीश्व देवता है और सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियो कहा गया है। इसके हल् बीज और स्वर शक्तियाँ हैं। भ (स)में स्थित आकाश (ह) को छः दीर्घोंसे युक्त करे उसके द्वारा अङ्गन्यास करे*। इसके बाद भगवान् शङ्करक इस प्रकार ध्यान करे। उनका श्रीविग्रह बन्धूकपुष्प ए सुवर्णके समान है। वे अपने हाथोंमें वर, अक्षमाला, अङ्कु और पाश धारण करते हैं। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकु सुशोभित है। उनके तीन नेत्र हैं तथा सम्पूर्ण देवता उन चरणोंकी वन्दना करते हैं।

गाणपत्य-मातृका-न्यास

इस प्रकार शिवशक्तिका ध्यान करके अन्तमें चतु विभक्ति और नमः पद जोड़कर तथा आदिमें गणेशजी अपना बीज लगाकर मातृकास्थलमें एक-एक मातृका वर्णके सा शक्तिसहित गणेशजीका न्यास करे। ह्रीके साथ विघ्नेश त श्रीके साथ विघ्नराजका न्यास करे†। पुष्टिके साथ विनाय शान्तिके साथ शिवोत्तम, स्वस्तिसहित विघ्नकृत्, सरस्व सहित विघ्नहर्ता, स्वाहासहित गणनाथ, सुमेधासहित एकदन कान्तिसहित द्विदन्त, कामिनीसहित गजमुख, मोहिनीसहि निरञ्जन, नटीसहित कपर्दी, पार्वतीसहित दीर्घजिह्व, ज्वालिन सहित शङ्कुकर्ण, नन्दासहित वृषध्वज, सुरेशीसहित गणनाय कामरूपिणीके साथ गजेन्द्र, उमाके साथ शूर्पकर्ण, तेजोवत साथ विरोचन, सतीके साथ लम्बोदर, विघ्नेशीके साथ महानन सुरूपिणीसहित चतुर्मूर्ति, कामदासहित सदाशिव, मदजिह्वासहि आमोद, भूतिसहित दुर्मुख, भौतिकीके साथ सुमुख, सित साथ प्रमोद, रमाके साथ एकपाद, महिषीके साथ द्विजि

* उदाहरणके लिये वाक्यप्रयोग इस प्रकार है—ह्सौं अं श्रीकण्ठेशपूर्णोदरीभ्यां नमः (ललाटे)। ह्सौं आं अनन्तेश-विरजाभ्यां नमः (मुखवृत्ते) इत्यादि।

* ह्सां हृदयाय नमः। ह्सीं शिरसे स्वाहा। ह्सूं शिर वषट्। ह्सैं कवचाय हुम्। ह्सौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्सः अस्त्राय फ

† गं अं विघ्नेशह्रीभ्यां नमः (ललाटे), गं आं विघ्नर श्रीभ्यां नमः (मुखवृत्ते) इत्यादि रूपसे वाक्ययोजना लेनी चाहिये।

का जिह्वामूलमें तथा एक अक्षर 'अः' का ग्रीवामें न्यास करे। दाहिनी बाँहमें कवर्गका और बायीं बाँहमें चवर्गका न्यास करे। टवर्ग और तवर्गका दोनों पैरोंमें तथा 'प' और 'फ' का दोनों कुक्षियोंमें न्यास करे। पृष्ठवंशमें 'ब' का, नाभिमें 'भ' का और हृदयमें 'म' का न्यास करे। 'य' आदि सात अक्षरोंका शरीरकी सात धातुओंमें, 'ह' का प्राणमें तथा 'ळ' का आत्मामें न्यास करे। 'क्ष' का क्रोधमें न्यास करना चाहिये। इस प्रकार क्रमसे मातृका वर्णोंका न्यास करके मनुष्य भगवान् विष्णुकी पूजामें समर्थ होता है।

शैव-मातृका-न्यास

[भगवान् शिवके उपासकको केशव-कीर्त्यादि मातृका-न्यासकी भाँति श्रीकण्ठेशादि मातृका-न्यास करना चाहिये।]

पूर्णोदरीके साथ श्रीकण्ठेशका, विरजाके साथ अनन्तेशका, शाल्मलीके साथ सूक्ष्मेशका, लोलाक्षीके साथ त्रिमूर्तीशका, वर्तुलाक्षीके साथ महेशका और दीर्घघोणाके साथ अर्घीशका न्यास करे*। दीर्घमुखीके साथ भारभूतीशका, गोमुखीके साथ तिथीशका, दीर्घजिह्वाके साथ स्थाण्वीशका, कुण्डोदरीके साथ हरेशका, ऊर्ध्वकेशीके साथ झिण्टीशका, विकृतास्याके साथ भौतिकेशका, ज्वालामुखीके साथ सद्योजातेशका, उल्कामुखीके साथ अनुग्रहेशका, आस्याके साथ अक्रूरका, विद्याके साथ महासेनका, महाकालीके साथ क्रोधीशका, सरस्वतीके साथ चण्डेशका, सिद्धगौरीके साथ पञ्चान्तकेशका, त्रैलोक्यविद्याके साथ शिवोत्तमेशका, मन्त्र-शक्तिके साथ एकरुद्रेशका, कमठीके साथ कूर्मेशका, भूतमाताके साथ एकनेत्रेशका, लम्बोदरीके साथ चतुर्वक्त्रेशका, द्राविणीके साथ अजेशका, नागरीके साथ सर्वेशका, खेचरीके साथ सोमेशका, मर्यादाके साथ लाङ्गलीशका, दारुकेशके साथ रूपिणीका तथा वीरिणीके साथ अर्धनारीशका न्यास करना चाहिये। काकोदरीके साथ उमाकान्त (उमेश)का और पूतनाके साथ आषाढीशका न्यास करे। भद्रकालीके साथ दण्डीशका, योगिनीके साथ अत्रीशका, शङ्खिनीके साथ मीनेशका, तर्जनीके साथ मेषेशका, कालरात्रिके साथ लोहितेशका, कुब्जनीके साथ शिखीशका, कपर्दिनीके साथ छलगण्डेशका, वज्राके साथ द्विरण्डेशका, जयाके साथ महाबलेशका, सुमुखेश्वरीके साथ वलीशका, रेवतीके साथ भुजङ्गेशका, माध्वीके साथ पिनाकीशका, वारुणीके साथ खड्गीशका, वायवीके साथ बकेशका, विदारणीके साथ श्वेतोरस्केशका, सहजाके साथ भृग्वीशका, लक्ष्मीके साथ लकुलीशका, व्यापिनीके साथ शिवेशका तथा महामायाके साथ संवर्तकेशका न्यास करे। यह श्रीकण्ठमातृका कही गयी है। जहाँ 'ईश' पद न कहा गया हो, वहाँ सर्वत्र उसकी योजना कर लेनी चाहिये। इस श्रीकण्ठमातृका-न्यासके दक्षिणामूर्ति ऋषि और गायत्री छन्द कहा गया है। अर्धनारीश्वर देवता है और सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग कहा गया है। इसके हल् बीज और स्वर शक्तियाँ हैं। भृगु (स)में स्थित आकाश (ह) को छः दीर्घोंसे युक्त करके उसके द्वारा अङ्गन्यास करे*। इसके बाद भगवान् शङ्करका इस प्रकार ध्यान करे। उनका श्रीविग्रह बन्धूकपुष्प एवं सुवर्णके समान है। वे अपने हाथोंमें वर, अक्षमाला, अङ्कुश और पाश धारण करते हैं। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट सुशोभित है। उनके तीन नेत्र हैं तथा सम्पूर्ण देवता उनके चरणोंकी वन्दना करते हैं।

गाणपत्य-मातृका-न्यास

इस प्रकार शिवशक्तिका ध्यान करके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और नमः पद जोड़कर तथा आदिमें गणेशजीका अपना बीज लगाकर मातृकास्थलमें एक-एक मातृका वर्णके साथ शक्तिसहित गणेशजीका न्यास करे। ह्रीके साथ विघ्नेश तथा श्रीके साथ विघ्नराजका न्यास करे†। पुष्टिके साथ विनायक, शान्तिके साथ शिवोत्तम, स्वस्तिसहित विघ्नकृत्, सरस्वतीसहित विघ्नहर्ता, स्वाहासहित गणनाथ, सुमेधासहित एकदन्त, कान्तिसहित द्विदन्त, कामिनीसहित गजमुख, मोहिनीसहित निरञ्जन, नटीसहित कपर्दी, पार्वतीसहित दीर्घजिह्व, ज्वालिनीसहित शङ्कुकर्ण, नन्दासहित वृषध्वज, सुरेशीसहित गणनायक, कामरूपिणीके साथ गजेन्द्र, उमाके साथ शूर्पकर्ण, तेजोवतीके साथ विरोचन, सतीके साथ लम्बोदर, विघ्नेशीके साथ महानन्द, सुरूपिणीसहित चतुर्मूर्ति, कामदासहित सदाशिव, मदजिह्वासहित आमोद, भूतिसहित दुर्मुख, भौतिकीके साथ सुमुख, सिताके साथ प्रमोद, रमाके साथ एकपाद, महिषीके साथ द्विजिह्व,

---

* उदाहरणके लिये वाक्यप्रयोग इस प्रकार है—ह्सौं अं श्रीकण्ठेशपूर्णोदरीभ्यां नमः (ललाटे)। ह्सौं आं अनन्तेशविरजाभ्यां नमः (मुखवृत्ते) इत्यादि।

* ह्सां हृदयाय नमः। ह्सीं शिरसे स्वाहा। ह्सूं शिखायै वषट्। ह्सैं कवचाय हुम्। ह्सौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्सः अस्त्राय फट्।

† गं अं विघ्नेशह्रीभ्यां नमः (ललाटे), गं आं विघ्नराजश्रीभ्यां नमः (मुखवृत्ते) इत्यादि रूपसे वाक्ययोजना कर लेनी चाहिये।

अर्घ्य जलसे अभिषेक करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक शङ्खमुद्रासे स्तम्भन करे। आग्नेय आदि चार कोणोंमें हृदय, सिर, शिखा और कवच (भुजमूल)—इन चारों अङ्गोंकी पूजा करके मध्यभागमें नेत्रकी तथा दिशाओंमें अस्त्रकी (पुष्पाक्षत आदि-से) पूजा करे। फिर त्रिकोण मण्डलके मध्यमें स्थित आधार-शक्तिका मूलखण्डत्रयसे पूजन करे। इस प्रकार विधिवत् पूजन करके अस्त्र (फट्) के उच्चारणपूर्वक प्रक्षालित की हुई त्रिपादिका (तिरपाई) स्थापित करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे उसकी पूजा करे। 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने ····· देवतार्घ्यपात्रासनाय नमः' आधारपूजनके लिये यह चौबीस अक्षरोंका मन्त्र है। तत्पश्चात् शङ्खको तत्सम्बन्धी मन्त्रद्वारा धोकर उसे स्थापित करनेके अनन्तर उसकी पूजा करे। शङ्खके स्थापनका मन्त्र इस प्रकार है, पहले तार (ॐ) है, फिर काम (क्लीं) है, उसके बाद 'महा' शब्द है, तत्पश्चात् 'जलचराय' है। फिर वर्म (हुम्), 'फट्' 'स्वाहा' 'पाञ्चजन्याय' तथा हृदय (नमः पद) है। पूरा मन्त्र इस प्रकार समझना चाहिये—'ॐ क्लीं महाजलचराय हुं फट् स्वाहा पाञ्चजन्याय नमः।' इसके बाद 'ॐ अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने ····· देवार्घ्यपात्राय नमः' इस तेईस अक्षरवाले मन्त्रसे शङ्खकी पूजा करनी चाहिये। (इष्टदेवका नाम जोड़नेसे अक्षर-संख्या पूरी होती है।) उस मन्त्रसे पूजन करनेके अनन्तर उसमें सूर्यकी बारह कलाओंका क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् विलोमक्रमसे मूलमातृका वर्णोंका उच्चारण करते हुए शुद्ध जलसे शङ्खको भर दे और उसकी निम्नाङ्कित मन्त्रसे पूजा करे—'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने देवार्घ्यामृताय नमः'। अर्घ्यपूजनके लिये यही मन्त्र है। फिर उस जलमें चन्द्रमाकी सोलह कलाओंकी पूजा करे। तदनन्तर पहले बताये अनुसार 'गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्रसे सब तीर्थोंका उसमें आवाहन करके धेनुमुद्राद्वारा[1] उसका अमृतीकरण[1] करे और मत्स्यमुद्राद्वारा[2] उसे आच्छादित करे। फिर कवच (हुं बीज) द्वारा अवगुण्ठन[3] करके पुनः अस्त्र (फट्) द्वारा उसकी रक्षा करे। तदनन्तर इष्टदेवका चिन्तन करके मुद्रा प्रदर्शन करे। शङ्ख[4], मुसल[5], चक्र[6], परमीकरण[7], महामुद्रा[8] तथा योनिमुद्राका[9] विद्वान् पुरुष क्रमशः प्रदर्शन करावे।

---

१. धेनुमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

वामाङ्गुलीनां मध्येषु दक्षिणाङ्गुलिकास्तथा।
संयोज्य तर्जनीं दक्षां मध्यमानामयोस्तथा॥
दक्षमध्यमयोर्वामां तर्जनीं च नियोजयेत्।
वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत्॥
दक्षयानामया वामां कनिष्ठां च नियोजयेत्।
विहिताधोमुखी चैषा धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता॥

'बायें हाथकी अंगुलियोंके बीचमें दाहिने हाथकी अंगुलियोंको संयुक्त करके दाहिनी तर्जनीको मध्यमाके बीचमें लगावे। दाहिने हाथकी मध्यमामें बायें हाथकी तर्जनीको मिलावे। फिर बायें हाथकी अनामिकासे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका और दाहिने हाथकी अनामिकाके साथ बायें हाथकी कनिष्ठिकाको संयुक्त करे। फिर इन सबका मुख नीचेकी ओर करे—यही धेनुमुद्रा कही गयी है।'

१. अमृतीकरणकी विधि यह है 'वं' इस अमृतबीजका उच्चारण करके उक्त धेनुमुद्राको दिखावे। २ मत्स्यमुद्रा इस प्रकार है—बायें हाथके पृष्ठ भागपर दाहिने हाथकी हथेली रक्खे। दोनों अँगूठोंको फैलाये रक्खे। ३. बायीं मुट्ठी इस प्रकार बाँध ले, जिससे तर्जनी अंगुली निकली रहे, इस प्रकारकी मुट्ठीको शङ्खके ऊपर घुमाना अवगुण्ठनी मुद्रा है। ४. शङ्खमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—बायें अँगूठेको दाहिनी मुट्ठीसे पकड़ ले। मुट्ठी उत्तान करके अँगूठेको फैला दे। बायें हाथकी चारों अंगुलियोंको सटी हुई रक्खे और उन्हें फैलाकर दाहिने अँगूठेसे सटा दे। यह शङ्खकी मुद्रा ऐश्वर्य देनेवाली है। ५. मुसलमुद्रा—

मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम्।
कुर्यान्मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी॥

दोनों हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर बायींके ऊपर दाहिनी मुट्ठी रख दे। यह सब विघ्नोंका नाश करनेवाली मुसलमुद्रा कही गयी है। ६. चक्रमुद्रा—

हस्तौ च सम्मुखौ कृत्वा सुभुग्नौ सुप्रसारितौ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिका॥

दोनों हाथोंको आमने-सामने करके उन्हें भलीभाँति फैलाकर मोड़ दे और दोनों कनिष्ठिकाओं तथा अँगूठोंको परस्पर सटा दे। यह चक्रमुद्रा है। ७. दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको परस्पर सटाकर हाथोंको अलग रक्खे—यही परमीकरण मुद्रा है।

८. महामुद्रा—

अन्योऽन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुली।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः॥

अँगूठोंको परस्पर ग्रथित करके दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको फैला दे। विद्वानोंने इसीको परमीकरणमें महामुद्रा कहा है। ९. दोनों हाथोंको उत्तान रखते हुए दायें हाथकी अनामिकासे बायें हाथकी तर्जनीको और बायें हाथकी अनामिकासे

अर्घ्य जलसे अभिषेक करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक शङ्खमुद्रासे स्तम्भन करे। आग्नेय आदि चार कोणोंमें हृदय, सिर, शिखा और कवच (भुजमूल)—इन चारों अङ्गोंकी पूजा करके मध्यभागमें नेत्रकी तथा दिशाओंमें अस्त्रकी (पुष्पाक्षत आदि-से) पूजा करे। फिर त्रिकोण मण्डलके मध्यमें स्थित आधार-शक्तिका मूलखण्डत्रयसे पूजन करे। इस प्रकार विधिवत् पूजन करके अस्त्र (फट्) के उच्चारणपूर्वक प्रक्षालित की हुई त्रिपादिका (तिरपाई) स्थापित करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे उसकी पूजा करे। 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने ..... देवतार्घ्यपात्रासनाय नमः' आधारपूजनके लिये यह चौबीस अक्षरोंका मन्त्र है। तत्पश्चात् शङ्खको तत्सम्बन्धी मन्त्रद्वारा धोकर उसे स्थापित करनेके अनन्तर उसकी पूजा करे। शङ्खके स्थापनका मन्त्र इस प्रकार है, पहले तार (ॐ) है, फिर काम (क्लीं) है, उसके बाद 'महा' शब्द है, तत्पश्चात् 'जलचराय' है। फिर वर्म (हुम्), 'फट्' 'स्वाहा' 'पाञ्चजन्याय' तथा हृदय (नमः पद) है। पूरा मन्त्र इस प्रकार समझना चाहिये—'ॐ क्लीं महाजलचराय हुं फट् स्वाहा पाञ्चजन्याय नमः।' इसके बाद 'ॐ अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने ..... देवार्घ्यपात्राय नमः' इस तेईस अक्षरवाले मन्त्रसे शङ्खकी पूजा करनी चाहिये। (इष्टदेवका नाम जोड़नेसे अक्षर-संख्या पूरी होती है।) उस मन्त्रसे पूजन करनेके अनन्तर उसमें सूर्यकी बारह कलाओंका क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् विलोमक्रमसे मूलमातृका वर्णोंका उच्चारण करते हुए शुद्ध जलसे शङ्खको भर दे और उसकी निम्नाङ्कित मन्त्रसे पूजा करे—'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने देवार्घ्यामृताय नमः'। अर्घ्यपूजनके लिये यही मन्त्र है। फिर उस जलमें चन्द्रमाकी सोलह कलाओंकी पूजा करे। तदनन्तर पहले बताये अनुसार 'गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्रसे सब तीर्थोंका उसमें आवाहन करके धेनुमुद्राद्वारा[1] उसका अमृतीकरण[1] करे और मत्स्यमुद्राद्वारा[2] उसे आच्छादित करे। फिर कवच (हुं बीज) द्वारा अवगुण्ठन[3] करके पुनः अस्त्र (फट्) द्वारा उसकी रक्षा करे। तदनन्तर इष्टदेवका चिन्तन करके मुद्रा प्रदर्शन करे। शङ्ख[4], मुसल[5], चक्र[6], परमीकरण[7], महामुद्रा[8] तथा योनिमुद्राका[9] विद्वान् पुरुष क्रमशः प्रदर्शन करावे।

---

१. धेनुमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

वामाङ्गुलीनां मध्येषु दक्षिणाङ्गुलिकास्तथा।
संयोज्य तर्जनीं दक्षां मध्यमानामयोस्तथा॥
दक्षमध्यमयोर्वामां तर्जनीं च नियोजयेत्।
वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत्॥
दक्षयानामया वामां कनिष्ठां च नियोजयेत्।
विहिताधोमुखी चैषा धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता॥

'बायें हाथकी अंगुलियोंके बीचमें दाहिने हाथकी अंगुलियोंको संयुक्त करके दाहिनी तर्जनीको मध्यमाके बीचमें लगावे। दाहिने हाथकी मध्यमामें बायें हाथकी तर्जनीको मिलावे। फिर बायें हाथकी अनामिकासे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका और दाहिने हाथकी अनामिकाके साथ बायें हाथकी कनिष्ठिकाको संयुक्त करे। फिर इन सबका मुख नीचेकी ओर करे—यही धेनुमुद्रा कही गयी है।'

१. अमृतीकरणकी विधि यह है 'वं' इस अमृतबीजका उच्चारण करके उक्त धेनुमुद्राको दिखावे। २ मत्स्यमुद्रा इस प्रकार है—बायें हाथके पृष्ठ भागपर दाहिने हाथकी हथेली रक्खे। दोनों अँगूठोंको फैलाये रक्खे। ३. बायीं मुट्ठी इस प्रकार बाँध ले, जिससे तर्जनी अंगुली निकली रहे, इस प्रकारकी मुट्ठीको शङ्खके ऊपर घुमाना अवगुण्ठनी मुद्रा है। ४. शङ्खमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—बायें अँगूठेको दाहिनी मुट्ठीसे पकड़ ले। मुट्ठी उत्तान करके अँगूठेको फैला दे। बायें हाथकी चारों अंगुलियोंको सटी हुई रक्खे और उन्हें फैलाकर दाहिने अँगूठेसे सटा दे। यह शङ्खकी मुद्रा ऐश्वर्य देनेवाली है। ५. मुसलमुद्रा—

मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम्।
कुर्यान्मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी॥

दोनों हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर बायींके ऊपर दाहिनी मुट्ठी रख दे। यह सब विघ्नोंका नाश करनेवाली मुसलमुद्रा कही गयी है। ६. चक्रमुद्रा—

हस्तौ च सम्मुखौ कृत्वा सुभुग्नौ सुप्रसारितौ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिका॥

दोनों हाथोंको आमने-सामने करके उन्हें भलीभाँति फैलाकर मोड दे और दोनों कनिष्ठिकाओं तथा अँगूठोंको परस्पर सटा दे। यह चक्रमुद्रा है। ७. दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको परस्पर सटाकर हाथोंको अलग रक्खे—यही परमीकरण मुद्रा है।

८. महामुद्रा—

अन्योऽन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुली।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः॥

अँगूठोंको परस्पर ग्रथित करके दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको फैला दे। विद्वानोंने इसीको परमीकरणमें महामुद्रा कहा है। ९. दोनों हाथोंको उत्तान रखते हुए दायें हाथकी अनामिकासे बायें हाथकी तर्जनीको और बायें हाथकी अनामिकासे

परमेश्वर ! आप अपने आपमें स्थित, अजन्मा एवं शुद्ध-बुद्ध-स्वरूप हैं। जैसे अरणीमें अग्नि छिपी हुई है, उसी प्रकार इस मूर्तिमें आप गूढरूपसे व्याप्त हैं, मैं आपका आवाहन करता हूँ। प्रभो ! यह आपकी महामूर्ति है, मैं इसके भीतर आप सर्वव्यापी परमात्माको, जो कि भक्तके प्रति स्नेहवश स्वयं खिंच आये हैं, दीपकी भाँति स्थापित करता हूँ। देव ! अपने अन्तःकरणमें स्थित आप सर्वान्तर्यामी प्रभुके लिये मैं सर्वबीजमय, शुभ एवं शुद्ध आसन प्रस्तुत करता हूँ। देवेश ! यह आपकी अनन्य मूर्ति-शक्ति है। भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले प्रभो ! आप इसमें निवास कीजिये। अज्ञानसे, प्रमादसे अथवा साधनहीनताके कारण यदि मेरा यह अनुष्ठान अपूर्ण रह जाय तो भी आप अवश्य सम्मुख हों। महेश्वर ! आप अपनी सुधावर्षिणी दृष्टिद्वारा सब त्रुटियोंको पूर्ण करते हुए यज्ञकी पूर्णताके लिये इस यज्ञासनपर अथवा मूर्तिमें स्थित होइये। आपका प्रकाश या तेज अभक्त जनोंके मन, वचन, नेत्र और कानसे कोसों दूर है। भगवन् ! आप सब ओर अपने तेजःपुञ्जसे शीघ्र आवृत हो जाइये। देवतालोग अपने अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये सदा जिनका दर्शन चाहते हैं, उन्हीं आप परमेश्वरके लिये मेरा बारंबार स्वागत है, स्वागत है। देवदेवेश्वर प्रभु आ गये। मैं कृतार्थ हो गया। मुझपर बड़ी कृपा हुई। आज मेरा जीवन सफल हो गया। मैं पुनः इस शुभागमनके लिये प्रभुका स्वागत करता हूँ।

पाद्य

यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः।
तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्प्यते ॥४६॥

जिनकी लेशमात्र भक्तिका सम्पर्क होनेसे परमानन्दका समुद्र उमड़ आता है, आपके उन शुद्ध चरण-कमलोंके लिये पाद्य प्रस्तुत किया जाता है।

अर्घ्य

तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्।
तापत्रयविनिर्मुक्त्यै तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥४८॥

देव ! मैं तीन प्रकारके तापोंसे छुटकारा पानेके लिये आपकी सेवामें त्रितापहारी परमानन्द-स्वरूप दिव्य अर्घ्य अर्पण करता हूँ।

आचमनीय

वेदानामपि वेदाय देवानां देवतात्मने।
आचामं कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धिहेतवे ॥४७॥

भगवन् ! आप वेदोंके भी वेद और देवताओंके भी देवता हैं। शुद्ध पुरुषोंकी भी परम शुद्धिके हेतु हैं। मैं आपके लिये आचमनीय प्रस्तुत करता हूँ।

मधुपर्क

सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुखात्मने।
मधुपर्कमिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे ॥४९॥

देव ! आप सम्पूर्ण कलुषतासे रहित तथा परिपूर्ण सुखस्वरूप हैं, मैं आपके लिये मधुपर्क अर्पण करता हूँ। मुझपर प्रसन्न होइये।

पुनराचमनीय

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥५०॥

जिनके स्मरण करनेमात्रसे जूँठा या अपवित्र मनुष्य भी शुद्धि प्राप्त कर लेता है, उन्हीं आप परमेश्वरके लिये पुनः आचमनार्थ (जल) उपस्थित करता हूँ।

स्नेह (तैल)

स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकनाथ महाशय।
सर्वलोकेषु शुद्धात्मन् ददामि स्नेहमुत्तमम् ॥५१॥

जगदीश्वर ! आपका अन्तःकरण विशाल है। सम्पूर्ण लोकोंमें आप ही शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं, मैं आपको यह उत्तम स्नेह (तैल) अर्पण करता हूँ, आप इस स्नेहको स्नेहपूर्वक ग्रहण कीजिये।

स्नान

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ॥५२॥

ईश ! आपका निज स्वरूप तो निरन्तर परमानन्दमय ज्ञानके अगाध महासागरमें निमग्न रहता है, (आपके लिये बाह्य स्नानकी क्या आवश्यकता है ?) तथापि मैं आपके लिये यह साङ्गोपाङ्ग स्नानकी व्यवस्था करता हूँ।

अभिषेक

सहस्रं वा शतं वापि यथाशक्त्यादरेण च।
गन्धपुष्पादिकैरीश मनुना चाभिषिञ्चये ॥५३॥

ईश ! मैं आदरपूर्वक यथाशक्ति गन्ध-पुष्प आदिसे तथा मन्त्रद्वारा सहस्र अथवा सौ बार आपका अभिषेक करता हूँ।

वस्त्र

मायाचित्रपटच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे।
निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥५४॥

परमेश्वर ! आप अपने आपमें स्थित, अजन्मा एवं शुद्ध-बुद्ध-स्वरूप हैं। जैसे अरणीमें अग्नि छिपी हुई है, उसी प्रकार इस मूर्तिमें आप गूढरूपसे व्याप्त हैं, मैं आपका आवाहन करता हूँ। प्रभो ! यह आपकी महामूर्ति है, मैं इसके भीतर आप सर्वव्यापी परमात्माको, जो कि भक्तके प्रति स्नेहवश स्वयं खिंच आये हैं, दीपकी भाँति स्थापित करता हूँ। देव ! अपने अन्तःकरणमें स्थित आप सर्वान्तर्यामी प्रभुके लिये मैं सर्वबीजमय, शुभ एवं शुद्ध आसन प्रस्तुत करता हूँ। देवेश ! यह आपकी अनन्य मूर्ति-शक्ति है। भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले प्रभो ! आप इसमें निवास कीजिये। अज्ञानसे, प्रमादसे अथवा साधनहीनताके कारण यदि मेरा यह अनुष्ठान अपूर्ण रह जाय तो भी आप अवश्य सम्मुख हों। महेश्वर ! आप अपनी सुधावर्षिणी दृष्टिद्वारा सब त्रुटियोंको पूर्ण करते हुए यज्ञकी पूर्णताके लिये इस यज्ञासनपर अथवा मूर्तिमें स्थित होइये। आपका प्रकाश या तेज अभक्त जनोंके मन, वचन, नेत्र और कानसे कोसों दूर है। भगवन् ! आप सब ओर अपने तेजःपुञ्जसे शीघ्र आवृत हो जाइये। देवतालोग अपने अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये सदा जिनका दर्शन चाहते हैं, उन्हीं आप परमेश्वरके लिये मेरा बारंबार स्वागत है, स्वागत है। देवदेवेश्वर प्रभु आ गये। मैं कृतार्थ हो गया। मुझपर बड़ी कृपा हुई। आज मेरा जीवन सफल हो गया। मैं पुनः इस शुभागमनके लिये प्रभुका स्वागत करता हूँ।

पाद्य

यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः।
तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्प्यते ॥४६॥

जिनकी लेशमात्र भक्तिका सम्पर्क होनेसे परमानन्दका समुद्र उमड़ आता है, आपके उन शुद्ध चरण-कमलोंके लिये पाद्य प्रस्तुत किया जाता है।

अर्घ्य

तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्।
तापत्रयविनिर्मुक्त्यै तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥४८॥

देव ! मैं तीन प्रकारके तापोंसे छुटकारा पानेके लिये आपकी सेवामें त्रितापहारी परमानन्द-स्वरूप दिव्य अर्घ्य अर्पण करता हूँ।

आचमनीय

वेदानामपि वेदाय देवानां देवतात्मने।
आचामं कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धिहेतवे ॥४७॥

भगवन् ! आप वेदोंके भी वेद और देवताओंके भी देवता हैं। शुद्ध पुरुषोंकी भी परम शुद्धिके हेतु हैं। मैं आपके लिये आचमनीय प्रस्तुत करता हूँ।

मधुपर्क

सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुखात्मने।
मधुपर्कमिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे ॥४९॥

देव ! आप सम्पूर्ण कलुषतासे रहित तथा परिपूर्ण सुखस्वरूप हैं, मैं आपके लिये मधुपर्क अर्पण करता हूँ। मुझपर प्रसन्न होइये।

पुनराचमनीय

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥५०॥

जिनके स्मरण करनेमात्रसे जूँठा या अपवित्र मनुष्य भी शुद्धि प्राप्त कर लेता है, उन्हीं आप परमेश्वरके लिये पुनः आचमनार्थ (जल) उपस्थित करता हूँ।

स्नेह (तैल)

स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकनाथ महाशय।
सर्वलोकेषु शुद्धात्मन् ददामि स्नेहमुत्तमम् ॥५१॥

जगदीश्वर ! आपका अन्तःकरण विशाल है। सम्पूर्ण लोकोंमें आप ही शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं, मैं आपको यह उत्तम स्नेह (तैल) अर्पण करता हूँ, आप इस स्नेहको स्नेहपूर्वक ग्रहण कीजिये।

स्नान

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ॥५२॥

ईश ! आपका निज स्वरूप तो निरन्तर परमानन्दमय ज्ञानके अगाध महासागरमें निमग्न रहता है, (आपके लिये बाह्य स्नानकी क्या आवश्यकता है ?) तथापि मैं आपके लिये यह साङ्गोपाङ्ग स्नानकी व्यवस्था करता हूँ।

अभिषेक

सहस्रं वा शतं वापि यथाशक्त्यादरेण च।
गन्धपुष्पादिकैरीश मनुना चाभिषिञ्चये ॥५३॥

ईश ! मैं आदरपूर्वक यथाशक्ति गन्ध-पुष्प आदिसे तथा मन्त्रद्वारा सहस्र अथवा सौ बार आपका अभिषेक करता हूँ।

वस्त्र

मायाचित्रपटच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे।
निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥५४॥

भक्तिपूर्वक नैवेद्यके रूपमें समर्पित है, यह सदा संतोष प्रदान करनेवाला है। आप इसे ग्रहण करें।

ताम्बूल

नागवल्लीदलं श्रेष्ठं पूगखादिरचूर्णयुक्।
कर्पूरादिसुगन्धाढ्यं यद्दत्तं तद् गृहाण मे ॥ ७४ ॥

प्रभो! यह उत्तम पान सुपारी, कत्था और चूनासे संयुक्त है, इसमें कपूर आदि सुगन्धित वस्तु डाली गयी है; यह जो आपकी सेवामें अर्पित है, इसे मुझसे ग्रहण करें।

तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि दे और आवरण पूजा करे। जिस दिशाकी ओर मुँह करके पूजन करे उसीको पूर्व दिशा समझे और उससे भिन्न दसों दिशाओंका निश्चय करे। कमलके केशरोंमे अग्निकोण आदिमे आरम्भ करके हृदय आदि अङ्गों-की पूजा करे। अपने आगे नेत्रकी और सब दिशाओंमें अस्त्रकी अङ्ग-मन्त्रोंद्वारा क्रमशः पूजा करे। क्रमशः शुक्ल, श्वेत, सित, श्याम, कृष्ण तथा रक्त वर्णवाली अङ्गशक्तियोंका अपनी-अपनी दिशाओंमें ध्यान करना चाहिये। उन सबके हाथमें वर और अभयकी मुद्रा सुशोभित है। 'अमुक आवरणके अन्तर्वर्ती देवताओंकी पूजा करता हूँ' ऐसा कहे। तत्पश्चात् अलंकार, अङ्ग, परिचारक, वाहन तथा आयुधोंसहित समस्त देवताओंकी पूजा करके यह कहे 'उपर्युक्त सब देवता पूजित तथा तर्पित होकर वरदायक हों'। मूलमन्त्रके अन्तमें निम्नाङ्कित वाक्यका उच्चारण करके इष्टदेवको पूजा समर्पित करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यममुकावरणार्चनम् ॥८१-८२॥

'शरणागतवत्सल! मुझे अभीष्टसिद्धि प्रदान कीजिये। मैं आपको भक्तिपूर्वक अमुक आवरणकी पूजा समर्पित करता हूँ। (अमुकके स्थानपर 'प्रथम' या 'द्वितीय' आदि पद बोलना चाहिये)।'

ऐसा कहकर इष्टदेवके मस्तकपर पुष्पाञ्जलि बिखेरे। तदनन्तर कल्पोक्त आवरणोंकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये। आयुध और वाहनसहित इन्द्र आदि ही आवरण देवता हैं। उनका अपनी-अपनी दिशाओंमें पूजन करे। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, ब्रह्मा तथा नागराज अनन्त—ये दस देवता अथवा दिक्पाल प्रथम आवरणके देवता हैं। ऐरावत, भेड़, भैंसा, प्रेत, तिमि (मगर), मृग, अश्व, वृषभ, हंस और कच्छप—ये विद्वानोंद्वारा इन्द्रादि देवताओंके वाहन माने गये हैं, जो द्वितीय आवरणमें पूजित होते हैं। वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अङ्कुश, गदा, त्रिशूल, कमल और चक्र—ये क्रमशः इन्द्रादिके आयुध हैं (जो तृतीय आवरणमे पूजित होते हैं)। इस प्रकार आवरणपूजा समाप्त करके भगवान्‌की आरती करे। फिर शङ्खका जल चारों ओर छिड़ककर ऊपर बाँह उठाये हुए भगवान्‌का नाम लेकर नृत्य करे और दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। उसके बाद उठकर अपने इष्टदेवकी प्रार्थना करे। प्रार्थनाके पश्चात् दक्षिण भागमें वेदी बनाकर उसका संस्कार करे। मूलमन्त्रसे ईक्षण, अस्त्र (फट्) द्वारा प्रोक्षण और कुशोंसे ताडन (मार्जन) करके कवच (हुम्) के द्वारा पुनः वेदीका अभिषेक करे। उसके बाद वेदीकी पूजा करके उसपर अग्निकी स्थापना करे। फिर अग्निको प्रज्वलित करके उसमें इष्टदेवका ध्यान करते हुए आहुति दे। समस्त महाव्याहृतियोसे चार बार घीकी आहुति देकर उत्तम साधक भात, तिल अथवा घृतयुक्त खीरद्वारा पचीस आहुति करे। फिर व्याहृतिसे होम करके गन्ध आदिके द्वारा पुनः इष्टदेवकी पूजा करे। भगवान्‌की मूर्तिमें अग्निके लीन होनेकी भावना करे। उसके बाद निम्नाङ्कित प्रार्थना पढकर अग्निका विसर्जन करे—

भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक।
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम् ॥ ९३ ॥

हे अग्निदेव! आपकी शक्ति बहुत बड़ी है आप सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धि करानेवाले हैं। कोई दूसरा कार्य प्राप्त होनेपर भी आप यहाँ सादर पधारें।

इस प्रकार विसर्जन करके अग्निदेवताके लिये आचमनार्थ जल दे। फिर बचे हुए हविष्यसे इष्टदेवको, पूर्वोक्त पार्षदोंको भी गन्ध, पुष्प और अक्षतसहित बलि दे। इसके बाद सब दिशाओमे योगिनी आदिको बलि अर्पण करे।

ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः।
योगिन्यो ह्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥
विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः।
सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् ॥
(९५–९७)

जो भयंकर है, जिनके कर्म भयकर हैं, जो भयंकर स्थानोंमें निवास करते हैं, जो उग्र रूपवाली योगिनियाँ हैं, जो गणोंके स्वामी तथा विघ्नस्वरूप हैं और प्रत्येक दिशा तथा विदिशामें स्थित हैं, वे सब प्रसन्नचित्त होकर यह बलि ग्रहण करें।

भक्तिपूर्वक नैवेद्यके रूपमें समर्पित है, यह सदा संतोष प्रदान करनेवाला है। आप इसे ग्रहण करें।

ताम्बूल

नागवल्लीदलं श्रेष्ठं पूगखादिरचूर्णयुक्।
कर्पूरादिसुगन्धाढ्यं यद्दत्तं तद् गृहाण मे ॥ ७४ ॥

प्रभो! यह उत्तम पान सुपारी, कत्था और चूनासे संयुक्त है, इसमें कपूर आदि सुगन्धित वस्तु डाली गयी है; यह जो आपकी सेवामें अर्पित है, इसे मुझसे ग्रहण करें।

तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि दे और आवरण पूजा करे। जिस दिशाकी ओर मुँह करके पूजन करे उसीको पूर्व दिशा समझे और उससे भिन्न दसों दिशाओंका निश्चय करे। कमलके केशरोंमें अग्निकोण आदिसे आरम्भ करके हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे। अपने आगे नेत्रकी और सब दिशाओंमें अस्त्रकी अङ्ग-मन्त्रोंद्वारा क्रमशः पूजा करे। क्रमशः शुक्ल, श्वेत, सित, श्याम, कृष्ण तथा रक्त वर्णवाली अङ्गशक्तियोंका अपनी-अपनी दिशाओंमें ध्यान करना चाहिये। उन सबके हाथमें वर और अभयकी मुद्रा सुशोभित है। 'अमुक आवरणके अन्तर्वर्ती देवताओंकी पूजा करता हूँ' ऐसा कहे। तत्पश्चात् अलंकार, अङ्ग, परिचारक, वाहन तथा आयुधोंसहित समस्त देवताओंकी पूजा करके यह कहे 'उपर्युक्त सब देवता पूजित तथा तर्पित होकर वरदायक हों'। मूलमन्त्रके अन्तमें निम्नाङ्कित वाक्यका उच्चारण करके इष्टदेवको पूजा समर्पित करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यममुकावरणार्चनम् ॥८१-८२॥

'शरणागतवत्सल! मुझे अभीष्टसिद्धि प्रदान कीजिये। मैं आपको भक्तिपूर्वक अमुक आवरणकी पूजा समर्पित करता हूँ। (अमुकके स्थानपर 'प्रथम' या 'द्वितीय' आदि पद बोलना चाहिये)।'

ऐसा कहकर इष्टदेवके मस्तकपर पुष्पाञ्जलि बिखेरे। तदनन्तर कल्पोक्त आवरणोंकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये। आयुध और वाहनासहित इन्द्र आदि ही आवरण देवता हैं। उनका अपनी-अपनी दिशाओंमें पूजन करे। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, ब्रह्मा तथा नागराज अनन्त—ये दस देवता अथवा दिक्पाल प्रथम आवरणके देवता हैं। ऐरावत, भेड़, भैंसा, प्रेत, तिमि (मगर), मृग, अश्व, वृषभ, हंस और कच्छप—ये विद्वानोंद्वारा इन्द्रादि देवताओंके वाहन माने गये हैं, जो द्वितीय आवरणमें पूजित होते हैं। वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अङ्कुश, गदा, त्रिशूल, कमल और चक्र—ये क्रमशः इन्द्रादिके आयुध हैं (जो तृतीय आवरणमे पूजित होते हैं)। इस प्रकार आवरणपूजा समाप्त करके भगवान्की आरती करे। फिर शङ्खका जल चारों ओर छिड़ककर ऊपर बाँह उठाये हुए भगवान्का नाम लेकर नृत्य करे और दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। उसके बाद उठकर अपने इष्टदेवकी प्रार्थना करे। प्रार्थनाके पश्चात् दक्षिण भागमें वेदी बनाकर उसका संस्कार करे। मूलमन्त्रसे ईक्षण, अस्त्र (फट्) द्वारा प्रोक्षण और कुशोंसे ताड़न (मार्जन) करके कवच (हुम्) के द्वारा पुनः वेदीका अभिषेक करे। उसके बाद वेदीकी पूजा करके उसपर अग्निकी स्थापना करे। फिर अग्निको प्रज्वलित करके उसमें इष्टदेवका ध्यान करते हुए आहुति दे। समस्त महाव्याहृतियोंसे चार बार घीकी आहुति देकर उत्तम साधक भात, तिल अथवा घृतयुक्त खीरद्वारा पचीस आहुति करे। फिर व्याहृतिसे होम करके गन्ध आदिके द्वारा पुनः इष्टदेवकी पूजा करे। भगवान्की मूर्तिमें अग्निके लीन होनेकी भावना करे। उसके बाद निम्नाङ्कित प्रार्थना पढ़कर अग्निका विसर्जन करे—

भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक।
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम् ॥ ९३ ॥

हे अग्निदेव! आपकी शक्ति बहुत बड़ी है आप सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धि करानेवाले हैं। कोई दूसरा कार्य प्राप्त होनेपर भी आप यहाँ सादर पधारें।

इस प्रकार विसर्जन करके अग्निदेवताके लिये आचमनार्थ जल दे। फिर बचे हुए हविष्यसे इष्टदेवको, पूर्वोक्त पार्षदोंको भी गन्ध, पुष्प और अक्षतसहित बलि दे। इसके बाद सब दिशाओंमे योगिनी आदिको बलि अर्पण करे।

ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः।
योगिन्यो ह्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥
विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः।
सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् ॥
(९५—९७)

जो भयंकर हैं, जिनके कर्म भयकर हैं, जो भयंकर स्थानोंमें निवास करते हैं, जो उग्र रूपवाली योगिनियाँ हैं, जो गणोंके स्वामी तथा विघ्नस्वरूप हैं और प्रत्येक दिशा तथा विदिशामें स्थित हैं, वे सब प्रसन्नचित्त होकर यह बलि ग्रहण करें।

इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्रका साधक मूलमन्त्र पढ़कर विसर्जनके लिये नीचे लिखे श्लोकका पाठ करे और पुष्पाञ्जलि दे—

गच्छ गच्छ परं स्थानं जगदीश जगन्मय ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा जानन्ति च सदाशिवः ॥ ११८ ॥

'जगदीश ! जगन्मय ! आप अपने उस परम धामको पधारिये, जिसे ब्रह्मा आदि देवता तथा भगवान् शिव भी नहीं जानते हैं।'

इस प्रकार पुष्पाञ्जलि देकर संहार-मुद्राके द्वारा भगवान्को उनके अङ्गभूत पार्षदोंसहित सुषुम्णा नाडीके मार्गसे अपने हृदयकमलमें स्थापित करके पुष्प सूँघकर विद्वान् पुरुष भगवान्का विसर्जन करे। दो शङ्ख, दो चक्रशिला (गोमती-चक्र), दो शिवलिङ्ग, दो गणेशमूर्ति, दो सूर्यप्रतिमा और दुर्गाजीकी तीन प्रतिमाओंका पूजन एक घरमें नहीं करना चाहिये; अन्यथा दुःखकी प्राप्ति होती है। इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर भगवान्का चरणामृत पान करे—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
सर्वपापक्षयकरं विष्णुपादोदकं शुभम् ॥१२१-१२२॥

'भगवान् विष्णुका शुभ चरणामृत अकालमृत्युका अपहरण, सम्पूर्ण व्याधियोंका नाश तथा समस्त पापोंका संहार करनेवाला है।'

भिन्न-भिन्न देवताओंके भक्तोंको चाहिये कि वे अपने आराध्यदेवको निवेदित किये हुए नैवेद्य-प्रसादको ग्रहण करें। भगवान् शिवको निवेदित निर्माल्य—पत्र, पुष्प, फल और जल ग्रहण करने योग्य नहीं है, किंतु शालग्राम-शिलाका स्पर्श होनेसे वह सब पवित्र (ग्राह्य) हो जाता है।

पूजाके पाँच प्रकार

नारद ! सबने पाँच प्रकारकी पूजा बतायी है—आतुरी, सौतिकी, त्रासी, साधनाभाविनी तथा दौर्बोधी। इनके लक्षणोंका मुझसे क्रमशः वर्णन सुनो—रोग आदिसे युक्त मनुष्य न स्नान करे, न जप करे और न पूजन ही करे। आराध्यदेवकी पूजा, प्रतिमा अथवा सूर्यमण्डलका दर्शन एवं प्रणाम करके मन्त्रस्मरणपूर्वक उनके लिये पुष्पाञ्जलि दे। फिर जब रोग निवृत्त हो जाय, तो स्नान और नमस्कार करके गुरुकी पूजा करे। और उनसे प्रार्थना करे—'जगन्नाथ ! जगत्पूज्य ! दयानिधे ! आपके प्रसादसे मुझे पूजा छोड़नेका दोष न लगे।' तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंका भी पूजन करके उन्हें दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करे और उनसे आशीर्वाद लेकर पूर्ववत् भगवान्की पूजा करे। यह 'आतुरी पूजा' कही गयी है। अब सौतिकी पूजा बतायी जाती है। सूतक दो प्रकारका कहा गया है—जातसूतक और मृतसूतक। दोनों ही सूतकोंमें एकाग्रचित्त हो मानसी संध्या करके मनसे ही भगवान्का पूजन और मनसे ही मन्त्रका जप करे। फिर सूतक बीत जानेपर पूर्ववत् गुरु और ब्राह्मणोंका पूजन करके उनसे आशीर्वाद लेकर सदाकी भाँति पूजाका क्रम प्रारम्भ कर दे*। यह 'सौतिकी पूजा' कही गयी। अब त्रासी पूजा बतायी जाती है। दुष्टोंसे त्रासको प्राप्त हुआ मनुष्य यथाप्राप्त उपचारोंसे अथवा मानसिक उपचारोंसे भगवान्की पूजा करे। यह 'त्रासी पूजा' कही गयी है। पूजा-साधन-सामग्री जुटानेकी शक्ति न होनेपर यथाप्राप्त पत्र, पुष्प और फलका संग्रह करके उन्हींके द्वारा या मानसोपचारसे भगवान्का पूजन करे। यह 'साधनाभाविनी' पूजा कही गयी है। नारद ! अब दौर्बोधी पूजाका परिचय सुनो—स्त्री, वृद्ध, बालक और मूर्ख मनुष्य अपने स्वल्प ज्ञानके अनुसार जिस किसी क्रमसे जो भी पूजा करते हैं, उसे 'दौर्बोधी' पूजा कहते हैं। इस प्रकार साधकको जिस किसी तरह भी सम्भव हो, देवपूजा करनी चाहिये। देवपूजाके बाद बलिवैश्वदेव आदि करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तत्पश्चात् भगवान्को अर्पित किया हुआ प्रसाद स्वयं स्वजनोंके साथ भोजन करे। फिर आचमन एवं मुख-शुद्धि करके कुछ देर विश्राम करे। फिर स्वजनोंके साथ बैठकर पुराण तथा इतिहास सुने। जो सब कल्पों (सम्पूर्ण पूजा-विधियों) के सम्पादनमें समर्थ होकर भी अनुकल्प (पीछे बताये हुए अपूर्ण विधान) का अनुष्ठान करता है, उस उपासकको सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति नहीं होती है। (पूर्व० ६७ अध्याय)

---

* तत्र स्नात्वा मानसीं तु कृत्वा संध्यां समाहितः। मनसैव यजेद् देवं मनसैव जपेन्मनुम् ॥
निवृत्ते सूतके प्राग्वत् सम्पूज्य च गुरुं द्विजान्। तेभ्यश्चाशिषमादाय ततो नित्यक्रमं चरेत् ॥
(ना० पूर्व० ६७। १३१-१३२)

इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्रका साधक मूलमन्त्र पढ़कर विसर्जनके लिये नीचे लिखे श्लोकका पाठ करे और पुष्पाञ्जलि दे—

गच्छ गच्छ परं स्थानं जगदीश जगन्मय ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा जानन्ति च सदाशिवः ॥ ३१८ ॥

'जगदीश ! जगन्मय ! आप अपने उस परम धामको पधारिये, जिसे ब्रह्मा आदि देवता तथा भगवान् शिव भी नहीं जानते हैं ।'

इस प्रकार पुष्पाञ्जलि देकर संहार-मुद्राके द्वारा भगवान्‌को उनके अङ्गभूत पार्षदोंसहित सुषुम्णा नाडीके मार्गसे अपने हृदयकमलमें स्थापित करके पुष्प सूँघकर विद्वान् पुरुष भगवान्‌का विसर्जन करे । दो शङ्ख, दो चक्रशिला (गोमती-चक्र), दो शिवलिङ्ग, दो गणेशमूर्ति, दो सूर्यप्रतिमा और दुर्गाजीकी तीन प्रतिमाओंका पूजन एक घरमें नहीं करना चाहिये; अन्यथा दुःखकी प्राप्ति होती है । इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर भगवान्‌का चरणामृत पान करे—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
सर्वपापक्षयकरं विष्णुपादोदकं शुभम् ॥१२१–१२२॥

'भगवान् विष्णुका शुभ चरणामृत अकालमृत्युका अपहरण, सम्पूर्ण व्याधियोंका नाश तथा समस्त पापोंका संहार करनेवाला है ।'

भिन्न-भिन्न देवताओंके भक्तोंको चाहिये कि वे अपने आराध्यदेवको निवेदित किये हुए नैवेद्य-प्रसादको ग्रहण करें। भगवान् शिवको निवेदित निर्माल्य—पत्र, पुष्प, फल और जल ग्रहण करने योग्य नहीं है, किंतु शालग्राम-शिलाका स्पर्श होनेसे वह सब पवित्र (ग्राह्य) हो जाता है ।

पूजाके पाँच प्रकार

नारद ! सबने पाँच प्रकारकी पूजा बतायी है—आतुरी, सौतिकी, त्रासी, साधनाभाविनी तथा दौर्बोधी । इनके लक्षणोंका मुझसे क्रमशः वर्णन सुनो—रोग आदिसे युक्त मनुष्य न स्नान करे, न जप करे और न पूजन ही करे । आराध्यदेवकी पूजा, प्रतिमा अथवा सूर्यमण्डलका दर्शन एवं प्रणाम करके मन्त्र-स्मरणपूर्वक उनके लिये पुष्पाञ्जलि दे । फिर जब रोग निवृत्त हो जाय, तो स्नान और नमस्कार करके गुरुकी पूजा करे । और उनसे प्रार्थना करे—'जगन्नाथ ! जगत्पूज्य ! दयानिधे ! आपके प्रसादसे मुझे पूजा छोड़नेका दोष न लगे ।' तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंका भी पूजन करके उन्हें दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करे और उनसे आशीर्वाद लेकर पूर्ववत् भगवान्‌की पूजा करे । यह 'आतुरी पूजा' कही गयी है । अब सौतिकी पूजा बतायी जाती है । सूतक दो प्रकारका कहा गया है—जातसूतक और मृतसूतक । दोनों ही सूतकोंमें एकाग्रचित्त हो मानसी संध्या करके मनसे ही भगवान्‌का पूजन और मनसे ही मन्त्रका जप करे । फिर सूतक बीत जानेपर पूर्ववत् गुरु और ब्राह्मणोंका पूजन करके उनसे आशीर्वाद लेकर सदाकी भाँति पूजाका क्रम प्रारम्भ कर दे* । यह 'सौतिकी पूजा' कही गयी । अब त्रासी पूजा बतायी जाती है । दुष्टोंसे त्रासको प्राप्त हुआ मनुष्य यथाप्राप्त उपचारोंसे अथवा मानसिक उपचारोंसे भगवान्‌की पूजा करे । यह 'त्रासी पूजा' कही गयी है । पूजा-साधन-सामग्री जुटानेकी शक्ति न होनेपर यथाप्राप्त पत्र, पुष्प और फलका संग्रह करके उन्हींके द्वारा या मानसोपचारसे भगवान्‌का पूजन करे । यह 'साधनाभाविनी' पूजा कही गयी है । नारद ! अब दौर्बोधी पूजाका परिचय सुनो—स्त्री, वृद्ध, बालक और मूर्ख मनुष्य अपने स्वल्प ज्ञानके अनुसार जिस किसी क्रमसे जो भी पूजा करते हैं, उसे 'दौर्बोधी' पूजा कहते हैं । इस प्रकार साधकको जिस किसी तरह भी सम्भव हो, देवपूजा करनी चाहिये । देवपूजाके बाद बलिवैश्वदेव आदि करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये । तत्पश्चात् भगवान्‌को अर्पित किया हुआ प्रसाद स्वयं स्वजनोंके साथ भोजन करे । फिर आचमन एवं मुख-शुद्धि करके कुछ देर विश्राम करे । फिर स्वजनोंके साथ बैठकर पुराण तथा इतिहास सुने । जो सब कल्पों (सम्पूर्ण पूजा-विधियों) के सम्पादनमें समर्थ होकर भी अनुकल्प (पीछे बताये हुए अपूर्ण विधान) का अनुष्ठान करता है, उस उपासकको सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति नहीं होती है । (पूर्व० ६७ अध्याय)

---

* तत्र स्नात्वा मानसीं तु कृत्वा संध्यां समाहितः । मनसैव यजेद् देवं मनसैव जपेन्मनुम् ॥
निवृत्ते सूतके प्राग्वत् सम्पूज्य च गुरुं द्विजान् । तेभ्यश्चाशिषमादाय ततो नित्यक्रमं चरेत् ॥
(ना० पूर्व० उ० ६७ । १३१-१३२)

तत्पश्चात् द्वादशाक्षर-मन्त्रका सम्पूर्ण सिरमें न्यास करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष किरीट मन्त्रके द्वारा व्यापक-न्यास करे। किरीट मन्त्र प्रणवके अतिरिक्त पैंसठ अक्षरका बताया गया है—'ॐ किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलशङ्खचक्रगदाम्भोजहस्तपीताम्बरधरश्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थलश्रीभूमिसहितस्वात्मज्योतिर्मयदीप्तकराय सहस्रादित्यतेजसे नमः।' इस प्रकार न्यासविधि करके सर्वव्यापी भगवान् नारायणका ध्यान करे।

उद्यत्कोट्यर्कसदृशं शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम्।
दधतं च करैर्भूमिश्रीभ्यां पार्श्वद्वयाञ्चितम्॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्।
हारकेयूरवलयाङ्गदं पीताम्बरं स्मरेत्॥

(पू० तृ० ७० । ३२-३३)

जिनकी दिव्य कान्ति उदय-कालके कोटि-कोटि सूर्योंके सदृश है, जो अपने चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करते हैं, भूदेवी तथा श्रीदेवी जिनके उभय पार्श्वकी शोभा बढ़ा रही हैं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो अपने गलेमें चमकीली कौस्तुभमणि धारण करते हैं और हार, केयूर, वलय तथा अंगद आदि दिव्य आभूषण जिनके श्रीअङ्गोंमें पड़कर धन्य हो रहे हैं, उन पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये।

इन्द्रियोंको वशमें रखकर मन्त्रमें जितने वर्ण हैं, उतने लाख मन्त्रका विधिवत् जप करे। प्रथम लाख मन्त्रके जपसे निश्चय ही आत्मशुद्धि होती है। दो लाख जप पूर्ण होनेपर साधकको मन्त्र-शुद्धि प्राप्त होती है। तीन लाखके जपसे साधक स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है। चार लाखके जपसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप जाता है। पाँच लाखके जपसे निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। छठे लाखके जपसे मन्त्र-साधककी बुद्धि भगवान् विष्णुमें स्थिर हो जाती है। सात लाखके जपसे मन्त्रोपासक श्रीविष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। आठ लाखका जप पूर्ण कर लेनेपर मन्त्र-जप करनेवाला पुरुष निर्वाण (परम शान्ति एवं मोक्ष) को प्राप्त होता है। इस प्रकार जप करके विद्वान् पुरुष मधुराक्त कमलोंद्वारा मन्त्रसंस्कृत अग्निमें दशांश होम करे। मण्डूकसे लेकर परतत्त्वपर्यन्त सबका पीठपर यत्नपूर्वक पूजन करे। विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना तथा नवीं अनुग्रहा—ये नौ पीठशक्तियाँ हैं। (इन सबका पूजन करना चाहिये।) इसके बाद 'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसयोगयोगपद्मपीठाय नमः' यह छत्तीस अक्षरका पीठमन्त्र है, इससे भगवान्को आसन देना चाहिये। मूलमन्त्रसे मूर्ति-निर्माण कराकर उसमें भगवान्का आवाहन करके पूजा करे। पहले कमलके केसरोंमें मन्त्रसम्बन्धी छः अङ्गोंका पूजन करना चाहिये। इसके बाद अष्टदल कमलके पूर्व आदि दलोंमें क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धका और आग्नेय आदि कोणोंमें क्रमशः उनकी शक्तियोंका पूजन करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—शान्ति, श्री, रति तथा सरस्वती। इनकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये। वासुदेवकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान है। संकर्षण पीत वर्णके हैं। प्रद्युम्न तमालके समान श्याम और अनिरुद्ध इन्द्रनील मणिके सदृश हैं। ये सब-के-सब पीताम्बर धारण करते हैं। इनके चार भुजाएँ हैं। ये शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करनेवाले हैं। शान्तिका वर्ण श्वेत, श्रीका वर्ण सुवर्ण-गौर, सरस्वतीका रंग गोदुग्धके समान उज्ज्वल तथा रतिका वर्ण दूर्वादलके समान श्याम है। इस प्रकार ये सब शक्तियाँ हैं। कमलदलोंके अग्रभागमें चक्र, शङ्ख, गदा, कमल, कौस्तुभमणि, मुसल, खड्ग और वनमालाका क्रमशः पूजन करे। चक्रका रंग लाल, शङ्खका रंग चन्द्रमाके समान श्वेत, गदाका पीला, कमलका सुवर्णके समान, कौस्तुभका श्याम, मुसलका काला, तलवारका श्वेत और वनमालाका उज्ज्वल है। इनके बाह्यभागमें

तत्पश्चात् द्वादशाक्षर-मन्त्रका सम्पूर्ण सिरमें न्यास करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष किरीट मन्त्रके द्वारा व्यापक-न्यास करे। किरीट मन्त्र प्रणवके अतिरिक्त पैंसठ अक्षरका बताया गया है—'ॐ किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलशङ्खचक्रगदाम्भोजहस्तपीताम्बरधरश्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थलश्रीभूमिसहितस्वात्मज्योतिर्मयदीप्तकराय सहस्रादित्यतेजसे नमः।' इस प्रकार न्यासविधि करके सर्वव्यापी भगवान् नारायणका ध्यान करे।

उद्यत्कोट्यर्कसदृशं शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम्।
दधतं च करैर्भूमिश्रीभ्यां पार्श्वद्वयाञ्चितम्॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्।
हारकेयूरवलयाङ्गदं पीताम्बरं स्मरेत्॥

(पू० तृ० ७० । ३२-३३)

जिनकी दिव्य कान्ति उदय-कालके कोटि-कोटि सूर्योंके सदृश है, जो अपने चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करते हैं, भूदेवी तथा श्रीदेवी जिनके उभय पार्श्वकी शोभा बढा रही हैं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो अपने गलेमें चमकीली कौस्तुभमणि धारण करते हैं और हार, केयूर, वलय तथा अंगद आदि दिव्य आभूषण जिनके श्रीअङ्गोंमें पडकर धन्य हो रहे हैं, उन पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये।

इन्द्रियोंको वशमें रखकर मन्त्रमें जितने वर्ण हैं, उतने लाख मन्त्रका विधिवत् जप करे। प्रथम लाख मन्त्रके जपसे निश्चय ही आत्मशुद्धि होती है। दो लाख जप पूर्ण होनेपर साधकको मन्त्र-शुद्धि प्राप्त होती है। तीन लाखके जपसे साधक स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है। चार लाखके जपसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप जाता है। पाँच लाखके जपसे निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। छठे लाखके जपसे मन्त्र-साधककी बुद्धि भगवान् विष्णुमें स्थिर हो जाती है। सात लाखके जपसे मन्त्रोपासक श्रीविष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। आठ लाखका जप पूर्ण कर लेनेपर मन्त्र-जप करनेवाला पुरुष निर्वाण (परम शान्ति एवं मोक्ष) को प्राप्त होता है। इस प्रकार जप करके विद्वान् पुरुष मधुराक्त कमलोंद्वारा मन्त्रसंस्कृत अग्निमें दशांश होम करे। मण्डूकसे लेकर परतत्त्वपर्यन्त सबका पीठपर यत्नपूर्वक पूजन करे। विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना तथा नवीं अनुग्रहा—ये नौ पीठशक्तियाँ हैं। (इन सबका पूजन करना चाहिये।) इसके बाद 'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसयोगयोगपद्मपीठाय नमः' यह छत्तीस अक्षरका पीठमन्त्र है, इससे भगवान्‌को आसन देना चाहिये। मूलमन्त्रसे मूर्ति-निर्माण कराकर उसमें भगवान्‌का आवाहन करके पूजा करे। पहले कमलके केसरोंमें मन्त्रसम्बन्धी छः अङ्गोंका पूजन करना चाहिये। इसके बाद अष्टदल कमलके पूर्व आदि दलोंमें क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धका और आग्नेय आदि कोणोंमें क्रमशः उनकी शक्तियोंका पूजन करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—शान्ति, श्री, रति तथा सरस्वती। इनकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये। वासुदेवकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान है। सकर्षण पीत वर्णके हैं। प्रद्युम्न तमालके समान श्याम और अनिरुद्ध इन्द्रनील मणिके सदृश हैं। ये सब-के-सब पीताम्बर धारण करते हैं। इनके चार भुजाएँ हैं। ये शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करनेवाले हैं। शान्तिका वर्ण श्वेत, श्रीका वर्ण सुवर्ण-गौर, सरस्वतीका रंग गोदुग्धके समान उज्ज्वल तथा रतिका वर्ण दूर्वादलके समान श्याम है। इस प्रकार ये सब शक्तियाँ हैं। कमलदलोंके अग्रभागमें चक्र, शङ्ख, गदा, कमल, कौस्तुभमणि, मुसल, खड्ग और वनमालाका क्रमशः पूजन करे। चक्रका रग लाल, शङ्खका रंग चन्द्रमाके समान श्वेत, गदाका पीला, कमलका सुवर्णके समान, कौस्तुभका श्याम, मुसलका काला, तलवारका श्वेत और वनमालाका उज्ज्वल है। इनके बाह्यभागमें

श्रीराम देवता; ग बीज और नमः शक्ति है। सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजमन्त्रद्वारा षडङ्गन्यास करे। फिर पीठन्यास आदि करके हृदयमें रघुनाथजीका इस प्रकार ध्यान करे—

कालाम्भोधरकान्तं च वीरासनसमास्थितम्।
ज्ञानमुद्रां दक्षहस्ते दधतं जानुनीतरम्॥
सरोरुहकरां सीतां विद्युदाभां च पार्श्वगाम्।
पश्यन्तीं रामवक्त्राब्जं विविधाकल्पभूषिताम्॥
(७३ । १०–१२)

'भगवान् श्रीरामकी अङ्गकान्ति मेघकी काली घटाके समान श्याम है। वे वीरासन लगाकर बैठे हैं। दाहिने हाथमें ज्ञानमुद्रा धारण करके उन्होंने अपने बायें हाथको बायें घुटनेपर रख छोड़ा है। उनके वामपार्श्वमें विद्युत्‌के समान कान्तिमती और नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सीतादेवी विराजमान हैं। उनके हाथमें कमल है और वे अपने प्राणवल्लभ श्रीरामचन्द्रजीका मुखारविन्द निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख जप करे और कमलोंद्वारा प्रज्वलित अग्निमें दशांश होम करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन करावे। मूलमन्त्रसे इष्टदेवकी मूर्ति बनाकर उसमें भगवान्‌का आवाहन और प्रतिष्ठा करके साधक विमलादि शक्तियोंसे संयुक्त वैष्णवपीठपर उनकी पूजा करे। भगवान् श्रीरामके वामभागमें बैठी हुई सीतादेवीकी उन्हींके मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये। 'श्रीसीतायै स्वाहा' यह जानकी-मन्त्र है। भगवान् श्रीरामके अग्रभागमें शार्ङ्गधनुषकी पूजा करके दोनों पार्श्वभागोंमें बाणोंकी अर्चना करे। केसरोंमें छः अङ्गोंकी पूजा करके दलोंमें हनुमान् आदिकी अर्चना करे। हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न तथा जाम्बवान्—इनका क्रमशः पूजन करना चाहिये। हनुमान्‌जी भगवान्‌के आगे पुस्तक लेकर बाँच रहे हैं। श्रीरामके दोनों पार्श्वमें भरत और शत्रुघ्न चँवर लेकर खड़े हैं। लक्ष्मणजी पीछे खड़े होकर दोनों हाथोंसे भगवान्‌के ऊपर छत्र लगाये हुए हैं। इस प्रकार ध्यानपूर्वक उन सबकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अष्टदलोंके अग्रभागमें सृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रपाल (अथवा राष्ट्रवर्धन), अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्रकी पूजा करके उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि देवताओंका आयुधोंसहित पूजन करे। इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी आराधना करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। घृताक्त शतपर्वसे आहुति करनेवाला पुरुष दीर्घायु तथा नीरोग होता है। लाल कमलोंके होमसे मनोवाञ्छित धन प्राप्त होता है। पलाशके फूलोंसे हवन करके मनुष्य मेधावी होता है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल पूर्वोक्त षडक्षर-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल पीता है, वह एक वर्षमें कविसम्राट् हो जाता है। श्रीराममन्त्रसे अभिमन्त्रित अन्न भोजन करे। इससे बड़े-बड़े रोग शान्त हो जाते हैं। रोगके लिये बतायी हुई ओषधिका उक्त मन्त्रद्वारा हवन करनेसे मनुष्य क्षणभरमें रोगमुक्त हो जाता है। प्रतिदिन दूध पीकर नदीके तटपर या गोशालामें एक लाख जप करे और घृतयुक्त खीरसे आहुति करे तो वह मनुष्य विद्यानिधि होता है। जिसका आधिपत्य (प्रभुत्व) नष्ट हो गया है, ऐसा मनुष्य यदि शाकाहारी होकर जलके भीतर एक लाख जप करे और बेलके फूलोंकी दशांश आहुति दे तो उसी समय वह अपनी खोयी हुई प्रभुता पुनः प्राप्त कर लेता है। इसमें संशय नहीं है। गङ्गा-तटके समीप उपवासपूर्वक रहकर मनुष्य यदि एक लाख जप करे और त्रिमधुयुक्त कमलों अथवा बेलके फूलोंसे दशांश आहुति करे तो राज्यलक्ष्मी प्राप्त कर लेता है। मार्गशीर्षमासमें कन्द-मूल-फलके आहारपर रहकर जलमें खड़ा हो एक लाख जप करे और प्रज्वलित अग्निमें खीरसे दशांश होम करे तो उस मनुष्यको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान पुत्र एवं पौत्र प्राप्त होता है।

इस मन्त्रराजके और भी बहुत-से प्रयोग हैं। पहले षट्कोण बनावे। उसके बाह्यभागमें अष्टदल कमल अङ्कित करे। उसके भी बाह्यभागमें द्वादशदल कमल लिखे। छः कोणोंमें विद्वान् पुरुष मन्त्रके छः अक्षरोंका उल्लेख करे। अष्टदल कमलमें भी प्रणवसम्पुटित उक्त मन्त्रके आठ अक्षरोंका

श्रीराम देवता; ग बीज और नमः शक्ति है। सम्पूर्ण मनोरथो-की प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजमन्त्रद्वारा षडङ्गन्यास करे। फिर पीठन्यास आदि करके हृदयमें रघुनाथजीका इस प्रकार ध्यान करे—

कालाम्भोधरकान्तं च वीरासनसमास्थितम्।
ज्ञानमुद्रां दक्षहस्ते दधतं जानुनीतरम्॥
सरोरुहकरां सीतां विद्युदाभां च पार्श्वगाम्।
पश्यन्तीं रामवक्त्राब्जं विविधाकल्पभूषिताम्॥
(७३। १०-१२)

'भगवान् श्रीरामकी अङ्गकान्ति मेघकी काली घटाके समान श्याम है। वे वीरासन लगाकर बैठे हैं। दाहिने हाथमें ज्ञानमुद्रा धारण करके उन्होंने अपने बायें हाथको बायें घुटनेपर रख छोड़ा है। उनके वामपार्श्वमें विद्युत्के समान कान्तिमती और नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सीता-देवी विराजमान हैं। उनके हाथमें कमल है और वे अपने प्राणवल्लभ श्रीरामचन्द्रजीका मुखारविन्द निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख जप करे और कमलोंद्वारा प्रज्वलित अग्निमें दशांश होम करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन करावे। मूलमन्त्रसे इष्टदेवकी मूर्ति बनाकर उसमें भगवान्का आवाहन और प्रतिष्ठा करके साधक विमलादि शक्तियोंसे संयुक्त वैष्णवपीठपर उनकी पूजा करे। भगवान् श्रीरामके वामभागमें बैठी हुई सीतादेवी-की उन्हींके मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये। 'श्रीसीतायै स्वाहा' यह जानकी-मन्त्र है। भगवान् श्रीरामके अग्रभागमें शार्ङ्ग-धनुषकी पूजा करके दोनों पार्श्वभागोंमें बाणोंकी अर्चना करे। केसरोंमें छः अङ्गोंकी पूजा करके दलोंमें हनुमान् आदि-की अर्चना करे। हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न तथा जाम्बवान्—इनका क्रमशः पूजन करना चाहिये। हनुमान्जी भगवान्के आगे पुस्तक लेकर बाँच रहे हैं। श्रीरामके दोनों पार्श्वमें भरत और शत्रुघ्न चँवर लेकर खड़े हैं। लक्ष्मणजी पीछे खड़े होकर दोनों हाथोंसे भगवान्के ऊपर छत्र लगाये हुए हैं। इस प्रकार ध्यानपूर्वक उन सब-की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अष्टदलोंके अग्रभागमें सृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रपाल (अथवा राष्ट्रवर्धन), अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्रकी पूजा करके उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि देवताओंका आयुधोंसहित पूजन करे। इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी आराधना करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। घृताक्त शतपर्वासे आहुति करनेवाला पुरुष दीर्घायु तथा नीरोग होता है। लाल कमलोंके होमसे मनोवाञ्छित धन प्राप्त होता है। पलाशके फूलोंसे हवन करके मनुष्य मेधावी होता है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल पूर्वोक्त षडक्षर-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल पीता है, वह एक वर्षमें कविसम्राट् हो जाता है। श्रीराममन्त्रसे अभिमन्त्रित अन्न भोजन करे। इससे बड़े-बड़े रोग शान्त हो जाते हैं। रोगके लिये बतायी हुई ओषधिका उक्त मन्त्रद्वारा हवन करनेसे मनुष्य क्षणभरमें रोगमुक्त हो जाता है। प्रतिदिन दूध पीकर नदीके तटपर या गोशालामें एक लाख जप करे और घृतयुक्त खीरसे आहुति करे तो वह मनुष्य विद्यानिधि होता है। जिसका आधिपत्य (प्रभुत्व) नष्ट हो गया है, ऐसा मनुष्य यदि शाकाहारी होकर जलके भीतर एक लाख जप करे और बेलके फूलोंकी दशांश आहुति दे तो उसी समय वह अपनी खोयी हुई प्रभुता पुनः प्राप्त कर लेता है। इसमें संशय नहीं है। गङ्गा-तटके समीप उपवासपूर्वक रहकर मनुष्य यदि एक लाख जप करे और त्रिमधुयुक्त कमलों अथवा बेलके फूलोंसे दशांश आहुति करे तो राज्यलक्ष्मी प्राप्त कर लेता है। मार्गशीर्षमासमें कन्द-मूल-फलके आहारपर रहकर जलमें खड़ा हो एक लाख जप करे और प्रज्वलित अग्निमें खीरसे दशांश होम करे तो उस मनुष्यको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान पुत्र एवं पौत्र प्राप्त होता है।

इस मन्त्रराजके और भी बहुत-से प्रयोग हैं। पहले षट्कोण बनावे। उसके बाह्यभागमें अष्टदल कमल अङ्कित करे। उसके भी बाह्यभागमें द्वादशदल कमल लिखे। छः कोणोंमें विद्वान् पुरुष मन्त्रके छः अक्षरोंका उल्लेख करे। अष्टदल कमलमें भी प्रणवसम्पुटित उक्त मन्त्रके आठ अक्षरोंका

विमानमें एक दिव्य सिंहासन बिछा हुआ है। उसपर अष्टदल कमलका आसन है, जिसके ऊपर इन्द्रनील मणिके समान श्याम कान्तिवाले भगवान् श्रीरामचन्द्र वीरासनसे बैठे हुए हैं। उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है और बायें हाथको उन्होंने बायीं जाँघपर रख छोड़ा है। भगवती सीता तथा सेवाव्रती लक्ष्मण उनकी सेवामें जुटे हुए हैं। वे सर्वव्यापी भगवान् रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। इस प्रकार ध्यान करके छः अक्षरोंकी संख्याके अनुसार छः लाख मन्त्र जप करे अथवा क्लीं आदिसे युक्त मन्त्रोंके साधनमें जयाभ श्रीहरिका चिन्तन करे।

पूजन तथा लौकिक प्रयोग सब पूर्वोक्त षडक्षर मन्त्रके ही समान करने चाहिये। 'ॐ रामचन्द्राय नमः' 'ॐ रामभद्राय नमः।' ये दो अष्टाक्षर मन्त्र हैं। इनके अन्तमें भी 'ॐ' जोड़ दिया जाय तो ये नवाक्षर हो जाते हैं। इनका सब पूजनादि कर्म मन्त्रोपासक षडक्षर मन्त्रकी ही भाँति करे। 'हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा' यह दस अक्षरोंवाला महामन्त्र है। इसके वसिष्ठ ऋषि, स्वराट् छन्द, सीतापति देवता, हुं बीज तथा स्वाहा शक्ति है (इन सबका यथास्थान न्यास करना चाहिये)। क्लीं बीजसे क्रमशः षडङ्गन्यास करे। मन्त्रके दस अक्षरोंका क्रमशः मस्तक, ललाट, भ्रूमध्य, तालु, कण्ठ, हृदय, नाभि, ऊरु, जानु और चरण—इन दस अङ्गोंमें न्यास करे।

ध्यान

अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे।
मन्दारपुष्पैराबद्धविताने तोरणान्विते॥
सिंहासनसमासीनं पुष्पकोपरि राघवम्।
रक्षोभिर्हरिभिर्देवैः सुविमानगतैः शुभैः॥
संस्तूयमानं मुनिभिः प्रह्वैश्च परिसेवितम्।
सीतालङ्कृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपशोभितम्॥
श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम्।
(६८-७१)

दिव्य अयोध्या-नगरमें रत्नोंसे चित्रित एक सुवर्णमय मण्डप है, जिसमें मन्दारके फूलोंसे चँदोवा बनाया गया है। उसमें तोरण लगे हुए हैं, उसके भीतर पुष्पक विमानपर एक दिव्य सिंहासनके ऊपर राघवेन्द्र श्रीराम बैठे हुए हैं। उस सुन्दर विमानमें एकत्र हो शुभस्वरूप देवता, वानर, राक्षस और विनीत महर्षिगण भगवान्की स्तुति और परिचर्या करते हैं। श्रीराघवेन्द्रके वाम भागमें भगवती सीता विराजमान हो उस वामाङ्गकी शोभा बढ़ाती हैं। भगवान्का दाहिना

विमानमें एक दिव्य सिंहासन बिछा हुआ है। उसपर अष्टदल कमलका आसन है, जिसके ऊपर इन्द्रनील मणिके समान श्याम कान्तिवाले भगवान् श्रीरामचन्द्र वीरासनसे बैठे हुए हैं। उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है और बायें हाथको उन्होंने बायीं जाँघपर रख छोड़ा है। भगवती सीता तथा सेवाव्रती लक्ष्मण उनकी सेवामें जुटे हुए हैं। वे सर्वव्यापी भगवान् रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। इस प्रकार ध्यान करके छः अक्षरोंकी संख्याके अनुसार छः लाख मन्त्र जप करे अथवा क्लीं आदिसे युक्त मन्त्रोंके साधनमें जयाभ श्रीहरिका चिन्तन करे।

पूजन तथा लौकिक प्रयोग सब पूर्वोक्त षडक्षर मन्त्रके ही समान करने चाहिये। 'ॐ रामचन्द्राय नमः' 'ॐ रामभद्राय नमः।' ये दो अष्टाक्षर मन्त्र हैं। इनके अन्तमें भी 'ॐ' जोड़ दिया जाय तो ये नवाक्षर हो जाते हैं। इनका सब पूजनादि कर्म मन्त्रोपासक षडक्षर मन्त्रकी ही भाँति करे। 'हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा' यह दस अक्षरोंवाला महामन्त्र है। इसके वसिष्ठ ऋषि, स्वराट् छन्द, सीतापति देवता, हुं बीज तथा स्वाहा शक्ति है (इन सबका यथास्थान न्यास करना चाहिये)। क्लीं बीजसे क्रमशः षडङ्गन्यास करे। मन्त्रके दस अक्षरोंका क्रमशः मस्तक, ललाट, भ्रूमध्य, तालु, कण्ठ, हृदय, नाभि, ऊरु, जानु और चरण—इन दस अङ्गोंमें न्यास करे।

ध्यान

अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे।
मन्दारपुष्पैराबद्धविताने तोरणान्विते॥
सिंहासनसमासीनं पुष्पकोपरि राघवम्।
रक्षोभिर्हरिभिर्देवैः सुविमानगतैः शुभैः॥
संस्तूयमानं मुनिभिः प्रह्वैश्च परिसेवितम्।
सीतालङ्कृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपशोभितम्॥
श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम्।
(६८–७१)

दिव्य अयोध्या-नगरमें रत्नोंसे चित्रित एक सुवर्णमय मण्डप है, जिसमें मन्दारके फूलोंसे चँदोवा बनाया गया है। उसमें तोरण लगे हुए हैं, उसके भीतर पुष्पक विमानपर एक दिव्य सिंहासनके ऊपर राघवेन्द्र श्रीराम बैठे हुए हैं। उस सुन्दर विमानमें एकत्र हो शुभस्वरूप देवता, वानर, राक्षस और विनीत महर्षिगण भगवान्‌की स्तुति और परिचर्या करते हैं। श्रीराघवेन्द्रके वाम भागमें भगवती सीता विराजमान हो उस वामाङ्गकी शोभा बढ़ाती हैं। भगवान्‌का दाहिना

भगवान् राघवेन्द्र रावणको मारकर त्रिलोकीकी रक्षा करके लौट रहे हैं। वे सीता और लक्ष्मणके साथ पुष्पक-विमानमें सिंहासनपर बैठे हैं। उनका मस्तक जटाओंके मुकुटसे सुशोभित है। उनका वर्ण श्याम है और उन्होंने धनुष-बाण धारण कर रखा है। उनकी विजयके उपलक्ष्यमें निशान, भेरी, पटह, शङ्ख और तुरही आदिकी ध्वनियोंके साथ-साथ नृत्य आरम्भ हो गया है। चारों ओर जय-जयकार तथा मङ्गल-पाठ हो रहा है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कपूर आदिकी मधुर गन्ध छा रही है।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक मन्त्रकी अक्षर-संख्याके अनुसार अठारह लाख जप करे और घृतमिश्रित खीरकी दशांश आहुति करके पूर्ववत् पूजन करे।

ॐ रां श्रीं रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
दशास्यान्तक मां रक्ष देहि मे परमां श्रियम्॥*

यह पैंतीस अक्षरोंका मन्त्र है। बीजाक्षरोंसे विलग होनेपर बत्तीस अक्षरोंका मन्त्र होता है। यह अभीष्ट फल देनेवाला है। इसके विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, रामभद्र देवता, रां बीज और श्रीं शक्ति है। मन्त्रके चार पादोंके आदिमें तीनों बीज लगाकर उन पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रके द्वारा मन्त्रज्ञ पुरुष पञ्चाङ्ग-न्यास करके मन्त्रके एक-एक अक्षरका क्रमशः समस्त अङ्गोंमें न्यास करे। इसके ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् करे। इस मन्त्रका पुरश्चरण तीन लाखका है। इसमें खीरसे हवन करनेका विधान है। पीतवर्णवाले श्रीरामका ध्यान करके एकाग्रचित्त हो एक लाख जप करे, फिर कमलके फूलोंसे दशांश हवन करके मनुष्य धन पाकर अत्यन्त धनवान् हो जाता है।

'ॐ ह्रीं श्रीं श्रीं दाशरथाय नमः' यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ऋषि आदि तथा पूजन आदि पूर्ववत् हैं। 'त्रैलोक्यनाथाय नमः' यह आठ अक्षरोंका मन्त्र है। इसके भी न्यास, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् हैं। 'रामाय नमः' यह पञ्चाक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य षडक्षर मन्त्रकी ही भाँति होते हैं। 'रामचन्द्राय स्वाहा', 'रामभद्राय स्वाहा'— ये दो मन्त्र कहे गये हैं। इसके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं। अग्नि (र्) शेष (आ) से युक्त हो और उसका मस्तक चन्द्रमा (ं) से विभूषित हो तो वह रघुनाथजीका एकाक्षर मन्त्र (रां) है। जो द्वितीय कल्पवृक्षके समान है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और श्रीराम देवता हैं। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त मन्त्रद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

सरयूतीरमन्दारवेदिकापङ्कजासने॥
श्यामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम्।
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम्॥
अवेक्षमाणमात्मानं मन्मथामिततेजसम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं केवलं मोक्षकाङ्क्षया॥
चिन्तयेत् परमात्मानमृतुलक्षं जपेन्मनुम्। (१०५—१०८)

* श्रीरामतापनीयोपनिषद्में यही मन्त्र इस प्रकार है—
रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥

भगवान् राघवेन्द्र रावणको मारकर त्रिलोकीकी रक्षा करके लौट रहे हैं। वे सीता और लक्ष्मणके साथ पुष्पक-विमानमें सिंहासनपर बैठे हैं। उनका मस्तक जटाओंके मुकुटसे सुशोभित है। उनका वर्ण श्याम है और उन्होंने धनुष-बाण धारण कर रक्खा है। उनकी विजयके उपलक्ष्यमें निशान, भेरी, पटह, शङ्ख और तुरही आदिकी ध्वनियोंके साथ-साथ नृत्य आरम्भ हो गया है। चारों ओर जय-जयकार तथा मङ्गल-पाठ हो रहा है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कपूर आदिकी मधुर गन्ध छा रही है।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक मन्त्रकी अक्षर-संख्याके अनुसार अठारह लाख जप करे और घृतमिश्रित खीरकी दशांश आहुति करके पूर्ववत् पूजन करे।

ॐ रां श्रीं रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
दशास्यान्तक मां रक्ष देहि मे परमां श्रियम् ॥*

यह पैंतीस अक्षरोंका मन्त्र है। बीजाक्षरोंसे विलग होनेपर बत्तीस अक्षरोंका मन्त्र होता है। यह अभीष्ट फल देनेवाला है। इसके विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, रामभद्र देवता, रा बीज और श्री शक्ति है। मन्त्रके चार पादोंके आदिमें तीनों बीज लगाकर उन पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रके द्वारा मन्त्रज्ञ पुरुष पञ्चाङ्ग-न्यास करके मन्त्रके एक-एक अक्षरका क्रमशः समस्त अङ्गोंमें न्यास करे। इसके ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् करे। इस मन्त्रका पुरश्चरण तीन लाखका है। इसमें खीरसे हवन करनेका विधान है। पीतवर्णवाले श्रीरामका ध्यान करके एकाग्रचित्त हो एक लाख जप करे, फिर कमलके फूलोंसे दशांश हवन करके मनुष्य धन पाकर अत्यन्त धनवान् हो जाता है।

'ॐ ह्रीं श्रीं श्रीं दाशरथाय नमः' यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ऋषि आदि तथा पूजन आदि पूर्ववत् हैं। 'त्रैलोक्यनाथाय नमः' यह आठ अक्षरोंका मन्त्र है। इसके भी न्यास, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् हैं। 'रामाय नमः' यह पञ्चाक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य षडक्षर मन्त्रकी ही भाँति होते हैं। 'रामचन्द्राय स्वाहा', 'रामभद्राय स्वाहा'— ये दो मन्त्र कहे गये हैं। इसके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं। अग्नि (र्) शेष (आ) से युक्त हो और उसका मस्तक चन्द्रमा (ं) से विभूषित हो तो वह रघुनाथजीका एकाक्षर मन्त्र (रा) है। जो द्वितीय कल्पवृक्षके समान है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और श्रीराम देवता हैं। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त मन्त्रद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

सरयूतीरमन्दारवेदिकापङ्कजासने ॥
श्यामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम्।
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥
अवेक्षमाणमात्मानं मन्मथामिततेजसम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं केवलं मोक्षकाङ्क्षया ॥
चिन्तयेत् परमात्मानमृतुलक्षं जपेन्मनुम्। (१०५—१०८)

* श्रीरामतापनीयोपनिषद्में यही मन्त्र इस प्रकार है—
रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते ॥

लक्ष्मणाय नमः (लं लक्ष्मणाय नमः) सात अक्षरोंका मन्त्र है। इसके अगस्त्य ऋषि, गायत्री छन्द, महावीर लक्ष्मण देवता, 'लं' बीज और 'नमः' शक्ति है। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त बीजद्वारा षडङ्ग न्यास करे।

ध्यान

> द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पद्मनिभेक्षणम्।
> धनुर्बाणकरं रामं सेवासंसक्तमानसम् ॥१४४॥

'जिनके दो भुजाएँ हैं, जिनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान सुन्दर है। नेत्र कमलदलके सदृश हैं। हाथोंमें धनुष-बाण हैं तथा श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें जिनका मन सदा संलग्न रहता है (उन श्रीलक्ष्मणजीकी मैं आराधना करता हूँ)।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक सात लाख जप करे और मधुसे सींची हुई खीरसे आहुति देकर श्रीरामपीठपर श्रीलक्ष्मणजीका पूजन करे। श्रीरामजीकी ही भाँति श्रीलक्ष्मण-जीका भी पूजन किया जाता है। यदि श्रीरामचन्द्रजीके पूजन-का सम्पूर्ण फल प्राप्त करनेकी निश्चित इच्छा हो तो यत्नपूर्वक श्रीलक्ष्मणजीका आदरसहित पूजन करना चाहिये। श्रीरामचन्द्र-जीके बहुत-से भिन्न-भिन्न मन्त्र हैं, जो सिद्धि देनेवाले हैं। अतः उनके साधकोंको सदा श्रीलक्ष्मणजीकी शुभ आराधना करनी चाहिये। मुक्तिकी इच्छावाले मनुष्यको एकाग्रचित्त होकर आलस्यरहित हो लक्ष्मणजीके मन्त्रका एक हजार आठ या एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। जो नित्य एकान्त-में बैठकर लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। यह लक्ष्मण-मन्त्र जयप्रधान है। राज्यकी प्राप्तिका एक-मात्र साधन है। जो नित्यकर्म करके शुद्ध भावसे तीनों समय लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। जो विधिपूर्वक मन्त्रकी दीक्षा लेकर सद्गुणोंसे युक्त और पाप-रहित हो अपने आचारका नियमपूर्वक पालन करता, मनको वशमें रखता और घरमें रहते हुए भी जितेन्द्रिय होता है, इहलोकके भोगोंकी इच्छा न रखकर निष्कामभावसे भगवान् लक्ष्मणका पूजन करता है, वह समस्त पुण्य-पापके समुदायको दग्ध करके शुद्ध चित्त हो पुनरागमनके चक्करमें न पड़कर सनातनपदको प्राप्त होता है। सकाम भाववाला पुरुष मनोवाञ्छित वस्तुओंको पाकर और मनके अनुरूप भोगोंका उपभोग करके दीर्घ कालतक पूर्व-जन्मोंकी स्मृतिसे युक्त रहकर भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है। निद्रा (भ) चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त हो और उसके बाद 'भरताय नमः' ये दो पद हों तो सात अक्षरका मन्त्र होता है। इस 'भं भरताय नमः' मन्त्रके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं। वक (श) इन्दु (अनुस्वार) से युक्त हो उसके बाद ङे विभक्त्यन्त शत्रुघ्न शब्द हो और अन्तमें हृदय (नमः) हो तो 'शं शत्रुघ्नाय नमः' यह सात अक्षरों-का शत्रुघ्न मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। (ना० पूर्व० अध्याय ७३)

विविध मन्त्रोंद्वारा श्रीहनुमान्‌जीकी उपासना, दीपदानविधि और काम-नाशक भूतविद्रावण-मन्त्रोंका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—विप्रवर ! अब हनुमान्‌जी-के मन्त्रोंका वर्णन किया जाता है, जो समस्त अभीष्ट वस्तुओं-को देनेवाले हैं और जिनकी आराधना करके मनुष्य हनुमान्-जीके ही समान आचरणवाले हो जाते हैं। मनुस्वर (औ) तथा इन्दु (अनुस्वार) से युक्त गगन (ह) अर्थात् 'हौं' यह प्रथम बीज है। ह् स् फ् र् और अनुस्वार ये भग (ए) से युक्त हों अर्थात् 'ह्स्फ्रें' यह दूसरा बीज है। ख् फ् र् ये भग (ए) और इन्दु (अनुस्वार) से युक्त हों अर्थात् 'ख्फ्रें' यह तीसरा बीज कहा गया है। वियत् (ह) भृगु (स्) अग्नि (र्) मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार) इन सबका संयुक्त रूप 'ह्स्रौं' यह चौथा बीज है। भग (ए) और चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त वियत् (ह्) भृगु (स्) ख् फ् तथा अग्नि (र्) हों अर्थात् 'ह्स्ख्फ्रें' यह पाँचवाँ बीज है। मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार) से युक्त ह् स् अर्थात् 'ह्सौं' यह छठा बीज है। तदनन्तर ङे विभक्त्यन्त हनुमत् शब्द (हनुमते) और अन्तमें हृदय (नमः) यह (हौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः) बारह अक्षरोंवाला महामन्त्रराज कहा गया है। इस मन्त्रके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि हैं और जगती छन्द कहा गया है। इसके देवता हनुमान्‌जी हैं। 'ह्सौं' बीज है, 'ह्स्फ्रें' शक्ति है। छः

लक्ष्मण-मन्त्र (लं लक्ष्मणाय नमः) सात अक्षरोंका मन्त्र है। इसके अगस्त्य ऋषि, गायत्री छन्द, महावीर लक्ष्मण देवता, 'लं' बीज और 'नमः' शक्ति है। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त बीजद्वारा षडङ्ग न्यास करे।

ध्यान

द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पद्मनिभेक्षणम्।
धनुर्बाणकरं रामं सेवासंसक्तमानसम् ॥१४४॥

'जिनके दो भुजाएँ हैं, जिनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान सुन्दर है। नेत्र कमलदलके सदृश हैं। हाथोंमें धनुष-बाण हैं तथा श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें जिनका मन सदा संलग्न रहता है (उन श्रीलक्ष्मणजीकी मैं आराधना करता हूँ)।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक सात लाख जप करे और मधुसे सींची हुई खीरसे आहुति देकर श्रीरामपीठपर श्रीलक्ष्मणजीका पूजन करे। श्रीरामजीकी ही भाँति श्रीलक्ष्मण-जीका भी पूजन किया जाता है। यदि श्रीरामचन्द्रजीके पूजन-का सम्पूर्ण फल प्राप्त करनेकी निश्चित इच्छा हो तो यत्नपूर्वक श्रीलक्ष्मणजीका आदरसहित पूजन करना चाहिये। श्रीरामचन्द्र-जीके बहुत-से भिन्न-भिन्न मन्त्र हैं, जो सिद्धि देनेवाले हैं। अतः उनके साधकोंको सदा श्रीलक्ष्मणजीकी शुभ आराधना करनी चाहिये। मुक्तिकी इच्छावाले मनुष्यको एकाग्रचित्त होकर आलस्यरहित हो लक्ष्मणजीके मन्त्रका एक हजार आठ या एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। जो नित्य एकान्त-में बैठकर लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। यह लक्ष्मण-मन्त्र जयप्रधान है। राज्यकी प्राप्तिका एक-मात्र साधन है। जो नित्यकर्म करके शुद्ध भावसे तीनों समय लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। जो विधिपूर्वक मन्त्रकी दीक्षा लेकर सद्गुणोंसे युक्त और पाप-रहित हो अपने आचारका नियमपूर्वक पालन करता, मनको वशमें रखता और घरमें रहते हुए भी जितेन्द्रिय होता है, इहलोकके भोगोंकी इच्छा न रखकर निष्कामभावसे भगवान् लक्ष्मणका पूजन करता है, वह समस्त पुण्य-पापके समुदायको दग्ध करके शुद्ध चित्त हो पुनरागमनके चक्करमें न पड़कर सनातनपदको प्राप्त होता है। सकाम भाववाला पुरुष मनोवाञ्छित वस्तुओंको पाकर और मनके अनुरूप भोगोंका उपभोग करके दीर्घ कालतक पूर्व-जन्मोंकी स्मृतिसे युक्त रहकर भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है। निशा (भ) चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त हो और उसके बाद 'भरताय नमः' ये दो पद हों तो सात अक्षरका मन्त्र होता है। इस 'भं भरताय नमः' मन्त्रके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं। वक्र (श) इन्दु (अनुस्वार) से युक्त हो उसके बाद ङे विभक्त्यन्त शत्रुघ्न शब्द हो और अन्तमें हृदय (नमः) हो तो 'शं शत्रुघ्नाय नमः' यह सात अक्षरों-का शत्रुघ्न मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। (ना० पूर्व० अध्याय ७३)

विविध मन्त्रोंद्वारा श्रीहनुमान्‌जीकी उपासना, दीपदानविधि और काम-नाशक भूतविद्रावण-मन्त्रोंका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—विप्रवर ! अब हनुमान्‌जी-के मन्त्रोंका वर्णन किया जाता है, जो समस्त अभीष्ट वस्तुओं-को देनेवाले हैं और जिनकी आराधना करके मनुष्य हनुमान्-जीके ही समान आचरणवाले हो जाते हैं। मनुस्वर (औ) तथा इन्दु (अनुस्वार) से युक्त गगन (ह) अर्थात् 'हौं' यह प्रथम बीज है। ह् स् फ् र् और अनुस्वार ये भग (ए) से युक्त हों अर्थात् 'ह्स्फ्रें' यह दूसरा बीज है। ख् फ् र् ये भग (ए) और इन्दु (अनुस्वार) से युक्त हों अर्थात् 'ख्फ्रें' यह तीसरा बीज कहा गया है। वियत् (ह्) भृगु (स्) अग्नि (र्) मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार) इन सबका संयुक्त रूप 'ह्स्रौं' यह चौथा बीज है। भग (ए) और चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त वियत् (ह्) भृगु (स्) ख् फ् तथा अग्नि (र्) हों अर्थात् 'ह्स्ख्फ्रें' यह पाँचवाँ बीज है। मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार) से युक्त ह् स् अर्थात् 'ह्सौं' यह छठा बीज है। तदनन्तर ङे विभक्त्यन्त हनुमत् शब्द (हनुमते) और अन्तमें हृदय (नमः) यह (हौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः) बारह अक्षरोंवाला महामन्त्रराज कहा गया है। इस मन्त्रके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि हैं और जगती छन्द कहा गया है। इसके देवता हनुमान्‌जी हैं। 'ह्सौं' बीज है, 'ह्स्फ्रें' शक्ति है। छः

ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देकर विदा करे। तत्पश्चात् इष्ट बन्धु-जनोंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। उस दिन पृथ्वीपर शयन और ब्रह्मचर्यका पालन करे। जो मानव इस प्रकार आराधना करता है, वह कपीश्वर हनुमान्‌जीके प्रसादसे शीघ्र ही सम्पूर्ण कामनाओंको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

भूमिपर हनुमान्‌जीका चित्र अङ्कित करे और उनके अग्र-भागमें मन्त्रका उल्लेख करे। साथ ही साध्यवस्तु या व्यक्तिका द्वितीयान्त नाम लिखकर उसके आगे 'विमोचय विमोचय' लिखे। लिखकर उसे बायें हाथसे मिटा दे, उसके बाद फिर लिखे। इस प्रकार एक सौ आठ बार लिख-लिखकर उसे पुनः मिटावे। ऐसा करनेपर महान् कारागारसे वह शीघ्र मुक्त हो जाता है। ज्वरमें दूर्वा, गुरुचि, दही, दूध अथवा घृतसे होम करे। शूल रोग होनेपर करंज या वातारि (एरंड) की समिधाओंको तैलमें डुबोकर उनके द्वारा होम करे अथवा शेफालिका (सिंदुवार) की तैलसिक्त समिधाओंसे प्रयत्न-पूर्वक होम करना चाहिये। सौभाग्यसिद्धिके लिये चन्दन, कपूर, रोचना, इलायची और लवंगकी आहुति दे। वस्त्रकी प्राप्तिके लिये सुगन्धित पुष्पोंसे हवन करे। विभिन्न धान्योंकी प्राप्तिके लिये उन्हीं धान्योंसे होम करना चाहिये। धान्यके होमसे धान्य प्राप्त होता है और अन्नके होमसे अन्नकी वृद्धि होती है। तिल, घी, दूध और मधुकी आहुति देनेसे गाय-भैंसकी वृद्धि होती है। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है? विष और व्याधिके निवारणमें, शान्तिकर्ममें, भूतजनित भय और संकटमें, युद्धमें, दैवी क्षति प्राप्त होनेपर, बन्धनसे छूटनेमें और महान् वनमें पड़ जानेपर आदि सभीमें यह सिद्ध किया हुआ मन्त्र मनुष्योंको निश्चय ही कल्याण प्रदान करता है।

द्वादशाक्षर मन्त्रमें जो अन्तिम छः अक्षर (हनुमते नमः) हैं इनको और आदि बीज (हौं) को छोड़कर शेष बचे हुए पाँच बीजोंका जो पञ्चाक्षर मन्त्र बनता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है। इसके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि, गायत्री छन्द और हनुमान् देवता कहे गये हैं। सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसके पाँच बीजों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे षडङ्ग-न्यास करे। रामदूत, लक्ष्मण-प्राण-दाता, अञ्जनीसुत, सीताशोक-विनाशन तथा लङ्काप्रासाद-भञ्जन—ये पाँच नाम हैं, इनके पहले 'हनुमत्' यह नाम और है। हनुमत् आदि पाँच नामोंके आदिमें पाँच बीज और अन्तमें ङे विभक्ति लगायी जाती है। अन्तिम नामके साथ उक्त पाँचों बीज जुड़ते हैं, ये ही षडङ्ग-न्यासके छः मन्त्र हैं *। इसके ध्यान-पूजन आदि कार्य पूर्वोक्त द्वादशाक्षर मन्त्रके समान ही हैं।

प्रणव (ॐ), वाग्भव (ऐं), पद्मा (श्रीं) तीन दीर्घ स्वरोंसे युक्त मायाबीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं) तथा पाँच कूट (ह्स्फ्रें, ख्फ्रें, ह्स्त्रौं, ह्स्ख्फ्रें, ह्सौं) यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके भी ध्यान-पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् होते हैं। इस मन्त्रकी आराधना की जाय तो यह समस्त अभीष्ट मनोरथोंको देनेवाला है। 'नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा।' यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ईश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, पवनकुमार हनुमान् देवता, हं बीज और स्वाहा शक्ति है, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है। 'आञ्जनेयाय नमः' का हृदयमें, 'रुद्रमूर्तये नमः' का सिरमें, 'वायुपुत्राय नमः' का शिखामें, 'अग्निगर्भाय नमः' का कवचमें, 'रामदूताय नमः' का नेत्रोंमें तथा 'ब्रह्मास्त्राय नमः'के अस्त्रस्थानमें न्यास करे। इस प्रकार न्यास-विधि कही गयी है।

ध्यान

तप्तचामीकरनिभं भीघ्नं संविहिताञ्जलिम्।
चलत्कुण्डलदीप्तास्यं पद्माक्षं मारुतिं स्मरेत्॥

* यथा 'ह्स्फ्रें हनुमते नमः, हृदयाय नमः। ख्फ्रें रामभक्ताय नमः शिरसे स्वाहा। ह्स्त्रौं लक्ष्मणप्राणदात्रे नमः शिखायै वषट्।

ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देकर विदा करे। तत्पश्चात् इष्ट बन्धु-जनोंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। उस दिन पृथ्वीपर शयन और ब्रह्मचर्यका पालन करे। जो मानव इस प्रकार आराधना करता है, वह कपीश्वर हनुमान्जीके प्रसादसे शीघ्र ही सम्पूर्ण कामनाओंको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

भूमिपर हनुमान्जीका चित्र अङ्कित करे और उनके अग्र-भागमें मन्त्रका उल्लेख करे। साथ ही साध्यवस्तु या व्यक्तिका द्वितीयान्त नाम लिखकर उसके आगे 'विमोचय विमोचय' लिखे। लिखकर उसे बायें हाथसे मिटा दे, उसके बाद फिर लिखे। इस प्रकार एक सौ आठ बार लिख-लिखकर उसे पुनः मिटावे। ऐसा करनेपर महान् कारागारसे वह शीघ्र मुक्त हो जाता है। ज्वरमें दूर्वा, गुरुचि, दही, दूध अथवा घृतसे होम करे। शूल रोग होनेपर करंज या वातारि (एरंड) की समिधाओंको तैलमें डुबोकर उनके द्वारा होम करे अथवा शेफालिका (सिंदुवार) की तैलसिक्त समिधाओंसे प्रयत्न-पूर्वक होम करना चाहिये। सौभाग्यसिद्धिके लिये चन्दन, कपूर, रोचना, इलायची और लवंगकी आहुति दे। वस्त्रकी प्राप्तिके लिये सुगन्धित पुष्पोंसे हवन करे। विभिन्न धान्योंकी प्राप्तिके लिये उन्हीं धान्योंसे होम करना चाहिये। धान्यके होमसे धान्य प्राप्त होता है और अन्नके होमसे अन्नकी वृद्धि होती है। तिल, घी, दूध और मधुकी आहुति देनेसे गाय-भैंसकी वृद्धि होती है। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है ? विष और व्याधिके निवारणमें, शान्तिकर्ममें, भूतजनित भय और संकटमें, युद्धमें, दैवी क्षति प्राप्त होनेपर, बन्धनसे छूटनेमें और महान् वनमें पड़ जानेपर आदि सभीमें यह सिद्ध किया हुआ मन्त्र मनुष्योंको निश्चय ही कल्याण प्रदान करता है।

द्वादशाक्षर मन्त्रमें जो अन्तिम छः अक्षर (हनुमते नमः) हैं इनको और आदि बीज (हौं) को छोड़कर शेष बचे हुए पाँच बीजोंका जो पञ्चाक्षर मन्त्र बनता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है। इसके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि, गायत्री छन्द और हनुमान् देवता कहे गये हैं। सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसके पाँच बीजों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे षडङ्ग-न्यास करे। रामदूत, लक्ष्मण-प्राण-दाता, अञ्जनीसुत, सीताशोक-विनाशन तथा लङ्काप्रासाद-भञ्जन—ये पाँच नाम हैं, इनके पहले 'हनुमत्' यह नाम और है। हनुमत् आदि पाँच नामोंके आदिमें पाँच बीज और अन्तमें डे विभक्ति लगायी जाती है। अन्तिम नामके साथ उन पाँचों बीज जुड़ते हैं, ये ही षडङ्ग-न्यासके छः मन्त्र हैं *। इसके ध्यान-पूजन आदि कार्य पूर्वोक्त द्वादशा-क्षर मन्त्रके समान ही हैं।

प्रणव (ॐ), वाग्भव (ऐं), पद्मा (श्रीं) तीन दीर्घ स्वरोंसे युक्त मायाबीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं) तथा पाँच कूट (ह्स्फ्रें, ख्फ्रें, ह्स्रौं, ह्स्ख्फ्रें, ह्सौं) यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके भी ध्यान-पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् होते हैं। इस मन्त्रकी आराधना की जाय तो यह समस्त अभीष्ट मनोरथोंको देनेवाला है। 'नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा।' यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ईश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, पवनकुमार हनुमान् देवता, हं बीज और स्वाहा शक्ति है, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है। 'आञ्जनेयाय नमः' का हृदयमें, 'रुद्रमूर्तये नमः' का सिरमें, 'वायुपुत्राय नमः' का शिखामें, 'अग्निगर्भाय नमः' का कवचमें, 'रामदूताय नमः' का नेत्रोंमें तथा 'ब्रह्मास्त्राय नमः'के अस्त्रस्थानमें न्यास करे। इस प्रकार न्यास-विधि कही गयी है।

ध्यान

तप्तचामीकरनिभं भीघ्नं संविहिताञ्जलिम्।
चलत्कुण्डलदीप्तास्यं पद्माक्षं मारुतिं स्मरेत्॥

* यथा 'ह्स्फ्रें हनुमते नमः, हृदयाय नमः। ख्फ्रें रामभक्ताय नमः शिरसे स्वाहा। ह्स्रौं लक्ष्मणप्राणदात्रे नमः शिखायै वषट्।

दौड़ रहे हैं। वे लाख (महावर) के रंगके समान अरुण-वर्ण हैं। काल, अन्तक तथा यमके समान भयंकर जान पड़ते हैं। उनका तेज प्रज्वलित अग्निके समान है। वे विजयशील तथा करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हैं। अंगद आदि महावीर उन्हें चारों ओरसे घेरकर चलते हैं। वे साक्षात् रुद्र-स्वरूप हैं। भयंकर सिंहनाद करते हुए वे रावणसे कहते हैं—'अरे ओ दुष्ट! युद्धमें खड़ा रह, खड़ा तो रह!' इस प्रकार शिवाननार भगवान् हनुमान्‌जीका ध्यान और पूजन करके एक लाख मन्त्रका जप करे।

तदनन्तर दूध, दही, घी मिलाये चावलसे दशांश होम करे। विमलादि शक्तियोंसे युक्त पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूल मन्त्रसे मूर्ति-कल्पना करके हनुमान्‌जीकी पूजा करनी चाहिये। एकमात्र ध्यान करनेसे भी मनुष्योंको सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें संशय नहीं है। अब मैं लोकहितकी इच्छासे इस मन्त्र-का साधन बतलाता हूँ। हनुमान्‌जीका साधन पुण्यमय है, वह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। यह लोकमें अत्यन्त गुह्यतम रहस्य है और शीघ्र उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला है। इसके प्रसादसे मन्त्र-साधक पुरुष तीनों लोकोंमें विजयी होता है। प्रातःकाल स्नान करके नदीके तटपर कुशासनपर बैठे और मूल-मन्त्रसे प्राणायाम तथा षडङ्ग-न्यास सब कार्य करे। फिर सीतासहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करके उन्हें आठ बार पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। तत्पश्चात् घिसे हुए लाल चन्दनसे उसीकी शलाकाद्वारा ताम्र-पात्रमें अष्टदल कमल लिखे। कमलकी कर्णिकामें मन्त्र लिखे। उसमें कपीश्वर हनुमान्‌जीका आवाहन करे। मूल-मन्त्रसे मूर्ति-निर्माण करके ध्यान तथा आवाहनपूर्वक पाद्य आदि उपचार अर्पण करे। गन्ध, पुष्प आदि सब सामग्री मूल-मन्त्रसे ही निवेदन करके कमल-के केसरोंमें छः अङ्गों (हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र तथा अस्त्र) का पूजन करके आठ दलोंमें सुग्रीव आदिका पूजन करे। सुग्रीव, लक्ष्मण, अंगद, नल, नील, जाम्बवान्, कुमुद और केसरीका एक-एक दलमें पूजन करना चाहिये। तदनन्तर इन्द्र आदि दिक्पालों तथा वज्र आदि आयुधों-का पूजन करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाओंको सिद्ध कर सकता है।

नदीके तटपर, किसी वनमें, पर्वतपर अथवा कहीं भी एकान्त प्रदेशमें श्रेष्ठ साधक भूमि-ग्रहणपूर्वक साधन प्रारम्भ करे। आहार, आसन, वाणी और इन्द्रियोंपर संयम रक्खे। दिग्बन्ध आदि करके न्यास और ध्यान आदिका सम्यक् सम्पादन करनेके पश्चात् पूर्ववत् पूजन करके उक्त मन्त्रराजका एक लाख जप करे। एक लाख जप पूर्ण हो जानेपर दूसरे दिन सबेरे साधक महान् पूजन करे। उस दिन एकाग्रचित्तसे पवननन्दन हनुमान्‌जीका सम्यक् ध्यान करके दिन-रात जपमें लगा रहे। तबतक जप करता रहे, जबतक दर्शन न हो जाय। साधकको सुदृढ जानकर आधी रातके समय पवननन्दन हनुमान्‌जी अत्यन्त प्रसन्न हो उसके सामने जाते हैं। कपीश्वर हनुमान्‌जी उस साधकको इच्छानुसार वर देते हैं; वर पाकर वह श्रेष्ठ साधक अपनी मौजसे इधर-उधर विचरता रहता है। यह पुण्यमय साधन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; क्योंकि गूढ़ रहस्यरूप है। मैंने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे इसे यहाँ प्रकाशित किया है।

इसी प्रकार साधक अपने लिये हितकर अन्यान्य प्रयोगों-का भी अनुष्ठान करे। इन्दु (अनुस्वार) युक्त वियत् (ह) अर्थात् 'हं' के पश्चात् ङे विभक्त्यन्त पवननन्दन शब्द हो और अन्तमें वह्निप्रिया (स्वाहा) हो तो (हं पवननन्दनाय स्वाहा) यह दस अक्षरका मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। इसके ऋषि आदि भी पहले बताये अनुसार हैं। षडङ्ग-न्यास भी पूर्ववत् करने चाहिये।

ध्यान

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्॥
लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले।
गुरुं च क्रोधमुत्पाद्य ग्रहीतुं गुरुपर्वतम्॥
हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम्।
आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्॥
(७४। १४५–१४७)

लङ्काकी रणभूमिमें महावीर लक्ष्मणको गिरा देख हनुमान्‌जी तुरंत उठ खड़े हुए हैं, वे हृदयमें महान् क्रोध भरकर एक विशाल एवं भारी पर्वतको उठाने तथा रावणको मार गिरानेके लिये वेगसे दौड़ पड़े हैं। उनका तेज करोड़ों सूर्योंकी प्रभाको लज्जित कर रहा है। वे ब्रह्माण्डव्यापी भयंकर एवं विराट् शरीर धारण करके दर्पपूर्ण हुंकारसे तीनों लोकोंको कम्पित किये देते हैं। इस प्रकार युद्ध-भूमिमें हनुमान्‌जीका चिन्तन करना चाहिये।

ध्यानके पश्चात् विद्वान् साधक एक लाख जप और पूर्ववत् दशांश हवन करे। इस मन्त्रका भी विधिवत् पूजन पहले-जैसा ही बताया गया है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक अपना हित-साधन कर सकता है। इस श्रेष्ठ

दौड़ रहे हैं। वे लाख (महावर) के रंगके समान अरुण-वर्ण हैं। काल, अन्तक तथा यमके समान भयंकर जान पड़ते हैं। उनका तेज प्रज्वलित अग्निके समान है। वे विजयशील तथा करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हैं। अंगद आदि महावीर उन्हें चारों ओरसे घेरकर चलते हैं। वे साक्षात् रुद्र-स्वरूप हैं। भयंकर सिंहनाद करते हुए वे रावणसे कहते हैं—'अरे ओ दुष्ट! युद्धमें खड़ा रह, खड़ा तो रह!' इस प्रकार शिवावतार भगवान् हनुमान्जीका ध्यान और पूजन करके एक लाख मन्त्रका जप करे।

तदनन्तर दूध, दही, घी मिलाये चावलसे दशांश होम करे। विमलादि शक्तियोंसे युक्त पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूल मन्त्रसे मूर्ति-कल्पना करके हनुमान्जीकी पूजा करनी चाहिये। एकमात्र ध्यान करनेसे भी मनुष्योंको सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें संशय नहीं है। अब मैं लोकहितकी इच्छासे इस मन्त्र-का साधन बतलाता हूँ। हनुमान्जीका साधन पुण्यमय है, वह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। यह लोकमें अत्यन्त गुह्यतम रहस्य है और शीघ्र उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला है। इसके प्रसादसे मन्त्र-साधक पुरुष तीनों लोकोंमें विजयी होता है। प्रातःकाल स्नान करके नदीके तटपर कुशासनपर बैठे और मूल-मन्त्रसे प्राणायाम तथा षडङ्ग-न्यास सब कार्य करे। फिर सीतासहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करके उन्हें आठ बार पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। तत्पश्चात् घिसे हुए लाल चन्दनसे उसीकी शलाकाद्वारा ताम्र-पात्रमें अष्टदल कमल लिखे। कमलकी कर्णिकामें मन्त्र लिखे। उसमें कपीश्वर हनुमान्-जीका आवाहन करे। मूल-मन्त्रसे मूर्ति-निर्माण करके ध्यान तथा आवाहनपूर्वक पाद्य आदि उपचार अर्पण करे। गन्ध, पुष्प आदि सब सामग्री मूल-मन्त्रसे ही निवेदन करके कमल-के केसरोंमें छः अङ्गों (हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र तथा अस्त्र) का पूजन करके आठ दलोंमें सुग्रीव आदिका पूजन करे। सुग्रीव, लक्ष्मण, अंगद, नल, नील, जाम्बवान्, कुमुद और केसरीका एक-एक दलमें पूजन करना चाहिये। तदनन्तर इन्द्र आदि दिक्पालों तथा वज्र आदि आयुधों-का पूजन करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाओंको सिद्ध कर सकता है।

नदीके तटपर, किसी वनमें, पर्वतपर अथवा कहीं भी एकान्त प्रदेशमें श्रेष्ठ साधक भूमि-ग्रहणपूर्वक साधन प्रारम्भ करे। आहार, काम, वाणी और इन्द्रियोंपर संयम रक्खे। दिग्बन्ध आदि करके न्यास और ध्यान आदिका सम्यक् सम्पादन करनेके पश्चात् पूर्ववत् पूजन करके उक्त मन्त्रराजका एक लाख जप करे। एक लाख जप पूर्ण हो जानेपर दूसरे दिन सबेरे साधक महान् पूजन करे। उस दिन एकाग्रचित्तसे पवननन्दन हनुमान्जीका सम्यक् ध्यान करके दिन-रात जपमें लगा रहे। तबतक जप करता रहे, जबतक दर्शन न हो जाय। साधकको सुदृढ जानकर आधी रातके समय पवननन्दन हनुमान्जी अत्यन्त प्रसन्न हो उसके सामने जाते हैं। कपीश्वर हनुमान्जी उस साधकको इच्छानुसार वर देते हैं; वर पाकर वह श्रेष्ठ साधक अपनी मौजसे इधर-उधर विचरता रहता है। यह पुण्यमय साधन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; क्योंकि गूढ़ रहस्यरूप है। मैंने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे इसे यहाँ प्रकाशित किया है।

इसी प्रकार साधक अपने लिये हितकर अन्यान्य प्रयोगों-का भी अनुष्ठान करे। इन्दु (अनुस्वार) युक्त वियत् (ह) अर्थात् 'हं' के पश्चात् ङे विभक्त्यन्त पवननन्दन शब्द हो और अन्तमें वह्निप्रिया (स्वाहा) हो तो (हं पवननन्दनाय स्वाहा) यह दस अक्षरका मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। इसके ऋषि आदि भी पहले बताये अनुसार हैं। षडङ्ग-न्यास भी पूर्ववत् करने चाहिये।

ध्यान

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्॥
लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले।
गुरुं च क्रोधमुत्पाद्य ग्रहीतुं गुरुपर्वतम्॥
हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम्।
आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्॥

(७४ । १४५–१४७)

लङ्काकी रणभूमिमें महावीर लक्ष्मणको गिरा देख हनुमान्जी तुरंत उठ खड़े हुए हैं, वे हृदयमें महान् क्रोध भरकर एक विशाल एवं भारी पर्वतको उठाने तथा रावणको मार गिरानेके लिये वेगसे दौड़ पड़े हैं। उनका तेज करोड़ों सूर्योंकी प्रभाको लज्जित कर रहा है। वे ब्रह्माण्डव्यापी भयंकर एवं विराट् शरीर धारण करके दर्पपूर्ण हुंकारसे तीनों लोकोंको कम्पित किये देते हैं। इस प्रकार युद्ध-भूमिमें हनुमान्जीका चिन्तन करना चाहिये।

ध्यानके पश्चात् विद्वान् साधक एक लाख जप और पूर्ववत् दशांश हवन करे। इस मन्त्रका भी विधिवत् पूजन पहले-जैसा ही बताया गया है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक अपना हित-साधन कर सकता है। इस श्रेष्ठ

हवन आदि कार्य भी पूर्ववत् करे। इसका एक लाख जप और शुभ द्रव्योंसे दशांश हवन करना चाहिये। मन्त्रसाधक पुरुष इस प्रकार कपीश्वर वायुपुत्र हनुमानजीकी आराधना करता है, वह उन सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं। अञ्जनीनन्दन हनुमान्जीकी उपासना की जाय तो वे धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, अतुल सौभाग्य, यश, मेधा, विद्या, प्रभा, राज्य तथा विवादमें विजय प्रदान करते हैं। सिद्धि तथा विजय देते हैं।

सनत्कुमारजी कहते हैं—अब मैं हनुमान्जीके लिये रहस्ययुक्त दीपदान-विधिका वर्णन करता हूँ। जिसको जान लेनेमात्रसे साधक सिद्ध हो जाता है। दीपपात्रका प्रमाण, तेलका मान, द्रव्य-प्रमाण तथा तन्तु (बत्ती) का मान—इन सबका क्रमशः वर्णन किया जायगा। स्थानभेद-मन्त्र, पृथक्-पृथक् दीपदान-मन्त्र आदिका भी वर्णन होगा। पुष्पसे वासित तैलके द्वारा दिया हुआ दीपक सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला माना गया है। किसी पथिकके आनेपर उसकी सेवाके लिये तिलका तैल अर्पण किया जाय तो वह लक्ष्मी-प्राप्तिका कारण होता है। सरसोंका तेल रोग नाश करनेवाला है, ऐसा कर्मकुशल विद्वानोंका कथन है। गेहूँ, तिल, उड़द, मूँग और चावल—ये पञ्चधान्य कहे गये हैं। हनुमान्जीके लिये सदा इनका दीप देना चाहिये। पञ्चधान्यका आटा बहुत सुन्दर होता है। वह दीपदानमें सदा सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है।

सन्धिमें तीन प्रकारके आटेका दीप देना उचित है, लक्ष्मीप्राप्तिके लिये कस्तूरीका दीप विहित है, कन्याप्राप्तिके लिये इलायची, लौंग, कपूर और कस्तूरीका दीपक बताया गया है। सख्य सम्पादन करनेके लिये भी इन्हीं वस्तुओंका दीप देना चाहिये। इन सब वस्तुओंके न मिलनेपर पञ्चधान्य श्रेष्ठ माना गया है। आठ मुट्ठीका एक किञ्चित् होता है, आठ किञ्चित्का एक पुष्कल होता है। चार पुष्कलका एक आढक बताया गया है, चार आढकका द्रोण और चार द्रोणकी खारी होती है। चार खारीको प्रस्थ कहते हैं अथवा यहाँ दूसरे प्रकारसे मान बताया जाता है। दो पलका एक प्रसृत होता है, दो प्रसृतका कुडव माना गया है, चार कुडवका एक प्रस्थ और चार प्रस्थका आढक होता है। चार आढकका द्रोण और चार द्रोणकी खारी होती है। इन सबसे षट्कर्मोपयोगी पात्रमें ये मान समझने चाहिये। पाँच, सात तथा नौ—ये क्रमशः दीपकके प्रमाण हैं, सुगन्धित तेलसे जलनेवाले दीपकका कोई मान नहीं है। उसका मान अपनी रुचिके अनुसार ही माना गया है। तैलोंके नित्य पात्रमें केवल बत्तीका विशेष नियम होता है। सोमवारको धान्य लेकर उसे जलमें डुबोकर रक्खे। फिर प्रमाणके अनुसार कुमारी कन्याके हाथसे उसको पिसाना चाहिये। पीसे हुएको शुद्ध पात्रमें रखकर नदीके जलसे उसकी पिण्डी बनानी चाहिये। उसीसे शुद्ध एवं एकाग्रचित्त होकर दीपपात्र बनावे। जिस समय दीपक जलाया जाता हो, हनुमत्कवचका पाठ करे। मङ्गलवारको शुद्ध भूमिपर रखकर दीपदान करे। कूट बीज ग्यारह बताये गये हैं, अतः उतने ही तन्तु ग्राह्य है। पात्रके लिये कोई नियम नहीं है। मार्गमें जो दीपक जलाये जाते हैं, उनकी बत्तीमें इक्कीस तन्तु होने चाहिये। हनुमान्जीके दीपदानमें लाल सूत ग्राह्य बताया गया है। कूटकी जितनी संख्या हो उतना ही पल तेल दीपकमें डालना चाहिये। गुरुकार्यमें ग्यारह पलसे लाभ होता है। नित्यकर्ममें पाँच पल तेल आवश्यक बताया गया है। अथवा अपने मनकी जैसी रुचि हो उतना ही तेलका मान रक्खे। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके अवसरपर हनुमान्जीकी प्रतिमाके समीप अथवा शिवमन्दिरमें दीपदान कराना चाहिये।

हनुमान्जीके दीपदानमें जो कोई विशेष बात है उसे मैं यहाँ बता रहा हूँ। देव-प्रतिमाके आगे, प्रमोदके अवसरपर, ग्रहोंके निमित्त, भूतोंके निमित्त, गृहोंमें और चौराहोंपर—इन छः स्थलोंमें दीप दिलाना चाहिये। स्फटिकमय शिवलिङ्गके समीप, शालग्राम-शिलाके निकट हनुमान्जीके लिये किया हुआ दीपदान नाना प्रकारके भोग और लक्ष्मीकी प्राप्तिका हेतु कहा गया है। विघ्न तथा महान् संकटोंका नाश करनेके लिये गणेशजीके निकट हनुमान्जीके उद्देश्यसे दीपदान करे। भयंकर विष तथा व्याधिका भय उपस्थित होनेपर हनुमद्विग्रहके समीप दीपदानका विधान है। व्याधिनाशके लिये तथा दुष्ट ग्रहोंकी दृष्टिसे रक्षाके लिये चौराहेपर दीप देना चाहिये। बन्धनसे छूटनेके लिये राजद्वारपर अथवा कारागारके समीप दीप देना उचित है। सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिये पीपल और बड़के मूलभागमें दीप देना चाहिये। भय-निवारण और विवाद-शान्तिके लिये, गृहसंकट और युद्ध-संकटकी निवृत्तिके लिये और विष, व्याधि और ज्वरको उतारनेके लिये, भूतग्रहका निवारण करने, कृत्यासे छुटकारा पाने तथा कटे हुएको जोड़नेके लिये, दुर्गम एवं भारी वनमें, व्याघ्र, हाथी तथा सम्पूर्ण जीवोंके आक्रमणसे बचनेके लिये,

हवन आदि कार्य भी पूर्ववत् करे । इसका एक लाख जप और शुभ द्रव्योंसे दशांश हवन करना चाहिये । मन्त्रसाधक पुरुष इस प्रकार कपीश्वर वायुपुत्र हनुमान्‌जीकी आराधना करता है, वह उन सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं । अञ्जनीनन्दन हनुमान्‌जीकी उपासना की जाय तो वे धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, अतुल सौभाग्य, यश, मेधा, विद्या, प्रभा, राज्य तथा विवादमें विजय प्रदान करते हैं । सिद्धि तथा विजय देते हैं ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—अब मैं हनुमान्‌जीके लिये रहस्यसहित दीपदान-विधिका वर्णन करता हूँ । जिसको जान लेनेमात्रसे साधक सिद्ध हो जाता है । दीपपात्रका प्रमाण, तेलका मान, द्रव्य-प्रमाण तथा तन्तु (बत्ती) का मान—इन सबका क्रमशः वर्णन किया जायगा । स्थानभेद-मन्त्र, पृथक् पृथक् दीपदान-मन्त्र आदिका भी वर्णन होगा । पुष्पसे वासित तेलके द्वारा दिया हुआ दीपक सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला माना गया है । किसी पथिकके आनेपर उसकी सेवाके लिये तिलका तेल अर्पण किया जाय तो वह लक्ष्मी-प्राप्तिका कारण होता है । सरसोंका तेल रोग नाश करनेवाला है, ऐसा कर्मकुशल विद्वानोंका कथन है । गेहूँ, तिल, उड़द, मूँग और चावल—ये पञ्चधान्य कहे गये हैं । हनुमान्‌जीके लिये सदा इनका दीप देना चाहिये । पञ्चधान्यका आटा बहुत सुन्दर होता है । वह दीपदानमें सदा सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है ।

सन्धिमें तीन प्रकारके आटेका दीप देना उचित है, लक्ष्मीप्राप्तिके लिये कस्तूरीका दीप विहित है, कन्याप्राप्तिके लिये इलायची, लौंग, कपूर और कस्तूरीका दीपक बताया गया है । सख्य सम्पादन करनेके लिये भी इन्हीं वस्तुओंका दीप देना चाहिये । इन सब वस्तुओंके न मिलनेपर पञ्चधान्य श्रेष्ठ माना गया है । आठ मुट्ठीका एक किञ्चित् होता है, आठ किञ्चित्‌का एक पुष्कल होता है । चार पुष्कलका एक आढक बताया गया है, चार आढकका द्रोण और चार द्रोणकी खारी होती है । चार खारीको प्रस्थ कहते हैं अथवा यहाँ दूसरे प्रकारसे मान बताया जाता है । दो पलका एक प्रसृत होता है, दो प्रसृतका कुडव माना गया है, चार कुडवका एक प्रस्थ और चार प्रस्थका आढक होता है । चार आढकका द्रोण और चार द्रोणकी खारी होती है । इन क्रमसे षट्कर्मोपयोगी पात्रमें ये मान समझने चाहिये । पाँच, सात तथा नौ—ये क्रमशः दीपकके प्रमाण हैं, सुगन्धित तेलमें जलनेवाले दीपकका कोई मान नहीं है । उसका मान अपनी रुचिके अनुसार ही माना गया है । तैलोंके नित्य पात्रमें केवल बत्तीका विशेष नियम होता है । सोमवारको धान्य लेकर उसे जलमें डुबोकर रक्खे । फिर प्रमाणके अनुसार कुमारी कन्याके हाथसे उसको पिसाना चाहिये । पीसे हुएको शुद्ध पात्रमें रखकर नदीके जलसे उसकी पिण्डी बनानी चाहिये । उसीसे शुद्ध एवं एकाग्रचित्त होकर दीपपात्र बनावे । जिस समय दीपक जलाया जाता हो, हनुमत्कवचका पाठ करे । मङ्गलवारको शुद्ध भूमिपर रखकर दीपदान करे । कूट बीज ग्यारह बताये गये हैं, अतः उतने ही तन्तु ग्राह्य है । पात्रके लिये कोई नियम नहीं है । मार्गमें जो दीपक जलाये जाते हैं, उनकी बत्तीमें इक्कीस तन्तु होने चाहिये । हनुमान्‌जीके दीपदानमें लाल सूत ग्राह्य बताया गया है । कूटकी जितनी संख्या हो उतना ही पल तेल दीपकमें डालना चाहिये । गुरुकार्यमें ग्यारह पलसे लाभ होता है । नित्यकर्ममें पाँच पल तेल आवश्यक बताया गया है । अथवा अपने मनकी जैसी रुचि हो उतना ही तेलका मान रक्खे । नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके अवसरपर हनुमान्‌जीकी प्रतिमाके समीप अथवा शिवमन्दिरमें दीपदान कराना चाहिये ।

हनुमान्‌जीके दीपदानमें जो कोई विशेष बात है उसे मैं यहाँ बता रहा हूँ । देव-प्रतिमाके आगे, प्रमोदके अवसरपर, ग्रहोंके निमित्त, भूतोंके निमित्त, गृहोंमें और चौराहोंपर—इन छः स्थलोंमें दीप दिलाना चाहिये । स्फटिकमय शिवलिङ्गके समीप, शालग्राम-शिलाके निकट हनुमान्‌जीके लिये किया हुआ दीपदान नाना प्रकारके भोग और लक्ष्मीकी प्राप्तिका हेतु कहा गया है । विघ्न तथा महान् संकटोंका नाश करनेके लिये गणेशजीके निकट हनुमान्‌जीके उद्देश्यसे दीपदान करे । भयंकर विष तथा व्याधिका भय उपस्थित होनेपर हनुमद्विग्रहके समीप दीपदानका विधान है । व्याधिनाशके लिये तथा दुष्ट ग्रहोंकी दृष्टिसे रक्षाके लिये चौराहेपर दीप देना चाहिये । बन्धनसे छूटनेके लिये राजद्वारपर अथवा कारागारके समीप दीप देना उचित है । सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिये पीपल और बड़के मूलभागमें दीप देना चाहिये । भय-निवारण और विवाद-शान्तिके लिये, गृहसंकट और युद्ध-संकटकी निवृत्तिके लिये और विष, व्याधि और ज्वरको उतारनेके लिये, भूतग्रहका निवारण करने, कृत्यासे छुटकारा पाने तथा कटे हुएको जोड़नेके लिये, दुर्गम एवं भारी वनमें, व्याघ्र, हाथी तथा सम्पूर्ण जीवोंके आक्रमणसे बचनेके लिये,

आदरपूर्वक करना चाहिये। शत्रुसेनासे भय प्राप्त होनेपर गोबरसे मण्डल बनाकर उसके भीतर थोड़ा घुसा हुआ ताड़का वृक्ष अङ्कित करे। उसपरसे लटकती हुई हनुमान्‌जीकी प्रतिमा गोबरसे बनावे। उनके बायें हाथमें तालका अग्रभाग और दाहिनेमें ज्ञान-मुद्रा हो। ताड़की जड़से एक हाथ दूर अपनी दिशामें एक चौकोर मण्डल बनावे। उसके मध्यभागमें मूर्ति अङ्कित करे। उसका मुख दक्षिणकी ओर हो, वह हनुमन्मूर्ति बहुत सुन्दर बनी हो, हृदयमें अञ्जलि बाँधे बैठी हो। जलसे उसको स्नान कराकर यथासम्भव गन्ध आदि उपचार अर्पण करे। फिर घृतमिश्रित खिचड़ीका नैवेद्य निवेदन करे और उसके आगे 'किलि-किलि' का जप बताया गया है। प्रतिदिन ऐसा ही करे। ऐसा करनेपर पथिकोंका शीघ्र समागम होता है।

जो प्रतिदिन विधिपूर्वक हनुमान्‌जीको दीप देता है, उसके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं है। जिसके हृदयमें दुष्टता भरी हो, जिसकी बुद्धि दुष्टताका ही चिन्तन करती हो, जो शिष्य होकर भी विनयशून्य और चुगला हो, ऐसे मनुष्यको कभी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। कृतघ्नको कदापि इस रहस्यका उपदेश न दे। जिसके शील-स्वभावकी भलीभाँति परीक्षा कर ली गयी हो, उस साधु पुरुषको ही इसका उपदेश देना चाहिये।

अब मैं तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाले दूसरे मन्त्रका वर्णन करूँगा। 'तार (ॐ) नमो हनुमते' इतना कहकर तीन बार जाठर (म) का उच्चारण करे। फिर 'दनक्षोभम्' कह-कहकर दो बार 'संहर' यह क्रियापद बोले। उसके बाद 'आत्म तत्त्वम्' बोलकर दो बार 'प्रकाशय' का उच्चारण करे। उसके बाद वर्म (हुं), अस्त्र (फट्) और वह्निजाया (स्वाहा) का उच्चारण करे। (पूरा मन्त्र यों है—ॐ नमो हनुमते मम मदनक्षोभं संहर संहर आत्मतत्त्वं प्रकाशय प्रकाशय हुं फट् स्वाहा) यह साढ़े छत्तीस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके वसिष्ठ मुनि, अनुष्टुप् छन्द और हनुमान् देवता हैं। सात सात, छः, चार, आठ तथा चार मन्त्राक्षरोंद्वारा षडङ्ग-न्यास करके कपीश्वर हनुमान्‌जीका इस प्रकार ध्यान करे—

जानुस्थवामबाहुं च ज्ञानमुद्रापरं हृदि।
अध्यात्मचिन्तमासीनं कदलीवनमध्यगम्॥
बालार्ककोटिप्रतिमं ध्यायेज्ज्ञानप्रदं हरिम्।

(७५। ९५-९६)

'हनुमान्‌जीका बायाँ हाथ घुटनेपर रक्खा हुआ है। दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रामें स्थित हो हृदयसे लगा है। वे अध्यात्मतत्त्वका चिन्तन करते हुए कदलीवनमें बैठे हुए हैं। उनकी कान्ति उदयकालके कोटि-कोटि सूर्योंके समान है। ऐसे ज्ञानदाता श्रीहनुमान्‌जीका ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और घृत-सहित तिलकी दशांश आहुति दे, फिर पूर्वोक्त पीठपर पूर्ववत् प्रभु श्रीहनुमान्‌जीका पूजन करे। यह मन्त्र-जप किये जानेपर निश्चय ही कामविकारका नाश करता है और साधक कपीश्वर हनुमान्‌जीके प्रसादसे तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेता है।

अब मैं भूत भगानेवाले दूसरे उत्कृष्ट मन्त्रका वर्णन करता हूँ। 'ॐ श्रीं महाञ्जनाय पवनपुत्रावेशयावेशय ॐ श्रीहनुमते फट्।' यह पचीस अक्षरका मन्त्र है। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, हनुमान् देवता, श्रीं बीज और फट् शक्ति कही गयी है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

आञ्जनेयं पाटलास्यं स्वर्णाद्रिसमविग्रहम्।
पारिजातद्रुमूलस्थं चिन्तयेत् साधकोत्तमः॥

(७५। १०२)

'जिसका मुख लाल और शरीर सुवर्णगिरिके सदृश कान्तिमान् है, जो पारिजात (कल्पवृक्ष) के नीचे उसके

आकर्षण करना चाहिये। शत्रुसेनासे भय प्राप्त होनेपर गोबरसे मण्डल बनाकर उसके भीतर थोड़ा झुका हुआ ताड़का वृक्ष अङ्कित करे। उसपरसे लटकती हुई हनुमान्‌जीकी प्रतिमा गोबरसे बनावे। उनके बायें हाथमें तालका अग्रभाग और दाहिनेमें ज्ञान-मुद्रा हो। ताड़की जड़से एक हाथ दूर अपनी दिशामें एक चौकोर मण्डल बनावे। उसके मध्यभागमें मूर्ति अङ्कित करे। उसका मुख दक्षिणकी ओर हो, वह हनुमन्मूर्ति बहुत सुन्दर बनी हो, हृदयमें अञ्जलि बाँधे बैठी हो। जलसे उसको स्नान कराकर यथासम्भव गन्ध आदि उपचार अर्पण करे। फिर घृतमिश्रित खिचड़ीका नैवेद्य निवेदन करे और उसके आगे 'किलि-किलि' का जप बताया गया है। प्रतिदिन ऐसा ही करे। ऐसा करनेपर पथिकोंका शीघ्र समागम होता है।

जो प्रतिदिन विधिपूर्वक हनुमान्‌जीको दीप देता है, उसके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं है। जिसके हृदयमें दुष्टता भरी हो, जिसकी बुद्धि दुष्टताका ही चिन्तन करती हो, जो शिष्य होकर भी विनयशून्य और चुगला हो, ऐसे मनुष्यको कभी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। कृतघ्नको कदापि इस रहस्यका उपदेश न दे। जिसके शील-स्वभावकी भलीभाँति परीक्षा कर ली गयी हो, उस साधु पुरुषको ही इसका उपदेश देना चाहिये।

अब मैं तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाले दूसरे मन्त्रका वर्णन करूँगा। 'तार (ॐ) नमो हनुमते' इतना कहकर तीन बार जाठर (म) का उच्चारण करे। फिर 'दनक्षोभम्' कह-कहकर दो बार 'संहर' यह क्रियापद बोले। उसके बाद 'आत्म तत्त्वम्' बोलकर दो बार 'प्रकाशय' का उच्चारण करे। उसके बाद वर्म (हुं), अस्त्र (फट्) और वह्निजाया (स्वाहा) का उच्चारण करे। (पूरा मन्त्र यों है—ॐ नमो हनुमते मम मदनक्षोभं संहर संहर आत्मतत्त्वं प्रकाशय प्रकाशय हुं फट् स्वाहा) यह साढ़े छत्तीस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके वसिष्ठ मुनि, अनुष्टुप् छन्द और हनुमान् देवता हैं। सात सात, छः, चार, आठ तथा चार मन्त्राक्षरोंद्वारा षडङ्ग-न्यास करके कपीश्वर हनुमान्‌जीका इस प्रकार ध्यान करे—

> जानुस्थवामबाहुं च ज्ञानमुद्रापरं हृदि।
> अध्यात्मचिन्तनासीनं कदलीवनमध्यगम्॥
> बालार्ककोटिप्रतिमं ध्यायेज्ज्ञानप्रदं हरिम्।
>
> (७५ । ९५-९६)

'हनुमान्‌जीका बायाँ हाथ घुटनेपर रक्खा हुआ है। दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रामें स्थित हो हृदयसे लगा है। वे अध्यात्मतत्त्वका चिन्तन करते हुए कदलीवनमें बैठे हुए हैं। उनकी कान्ति उदयकालके कोटि-कोटि सूर्योंके समान है। ऐसे ज्ञानदाता श्रीहनुमान्‌जीका ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और घृत-सहित तिलकी दशांश आहुति दे, फिर पूर्वोक्त पीठपर पूर्ववत् प्रभु श्रीहनुमान्‌जीका पूजन करे। यह मन्त्र-जप किये जानेपर निश्चय ही कामविकारका नाश करता है और साधक कपीश्वर हनुमान्‌जीके प्रसादसे तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेता है।

अब मैं भूत भगानेवाले दूसरे उत्कृष्ट मन्त्रका वर्णन करता हूँ। 'ॐ श्रीं महाञ्जनाय पवनपुत्रावेशयावेशय ॐ श्रीहनुमते फट्।' यह पचीस अक्षरका मन्त्र है। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, हनुमान् देवता, श्रीं बीज और फट् शक्ति कही गयी है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

> आञ्जनेयं पाटलास्यं स्वर्णाद्रिसमविग्रहम्।
> पारिजातद्रुमूलस्थं चिन्तयेत् साधकोत्तमः॥
>
> (७५ । १०२)

'जिसका मुख लाल और शरीर सुवर्णगिरिके सदृश कान्तिमान् है, जो पारिजात (कल्पवृक्ष) के नीचे उसके

कृष्णाय नमः मुखे । गोविन्दाय नमः हृदये । गोपीजनवल्लभाय नमः गुह्ये । स्वाहा नमः पादयोः)। पुनः मूर्ति आदि न्यास तथा पूर्वोक्त पञ्चाङ्ग-न्यास करे ।

अब मैं मन्त्र न्यासोंमें उत्तमोत्तम परमगुह्य न्यासका वर्णन करता हूँ, जिसके विज्ञान मात्रसे मनुष्य जीवन्मुक्त तथा अणिमा आदि आठों सिद्धियोंका अधीश्वर हो जाता है, जिसकी आराधनासे मन्त्रोपासक श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त कर लेता है। प्रणवादि व्याहृतियोंसे सम्पुटित मन्त्रका और मन्त्रसे सम्पुटित प्रणवादिका तथा गायत्रीसे सम्पुटित मन्त्रका और मन्त्रसे सम्पुटित गायत्रीका मातृकास्थलमें न्यास करे । मातृका-सम्पुटित मूलका और मूलसे सम्पुटित मातृका वर्णोंका श्रेष्ठ साधक क्रमशः न्यास करे । विद्वान् पुरुष पहले मातृका वर्णका नियतस्थलमें न्यास कर ले । उसके बाद पूर्वोक्त न्यास करने चाहिये । इस तरह उपर्युक्त छः प्रकारके न्यास करे । यह षोढान्यास कहा गया है । इस श्रेष्ठ न्यासके अनुष्ठानसे साधक साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके समान हो जाता है । न्याससे सम्पुटित पुरुषको देखकर सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर और देवता भी उसे नमस्कार करते हैं । फिर इस भूतलपर मनुष्योंके लिये तो कहना ही क्या है ? तत्पश्चात् 'ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' इस मन्त्रसे दिग्बन्ध करे । इसके बाद अपने हृदयमें सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाले इष्टदेवका इस प्रकार ध्यान करे—

उत्फुल्लकुसुमव्रातनम्रशाखैर्वरद्रुमैः ।
सस्मेरमञ्जरीवृन्दवल्लरीवेष्टितैः शुभैः ॥
गलत्परागधूलीभिः सुरभीकृतदिङ्मुखैः ।
स्मरेच्छिशिरितं वृन्दावनं मन्त्री समाहितः ॥
उन्मीलन्नवकञ्जालि विगलन्मधुसञ्चयैः ।
लुब्धान्तःकरणैर्गुञ्जद्द्विरेफपटलैः शुभम् ॥
मरालपरभृत्कीरकपोतनिकरैर्मुहुः ।
मुखरीकृतमानृत्यन्मायूरकुलमञ्जुलम् ॥
कालिन्द्या लोलकल्लोलविप्रुषैर्मन्दवाहिभिः ।
उन्निद्राम्बुरुहव्रातरजोभिर्धूसरैः शिवैः ॥
प्रदीपितस्मरैर्गोष्ठसुन्दरीमृदुवाससाम् ।
विलोलनपरैः संसेवितं वा तैर्निरन्तरम् ॥
स्मरेत्तदन्ते गीर्वाणभूरुहं सुमनोहरम् ।
तदधः स्वर्णवेद्यां च रत्नपीठमनुत्तमम् ॥
रत्नकुट्टिमपीठेऽस्मिन्नरुणं कमलं स्मरेत् ।
अष्टपत्रं च तन्मध्ये मुकुन्दं संस्मरेत्स्थितम् ॥
फुल्लेन्दीवरकान्तं च केकिबर्हावतंसकम् ।
पीतांशुकं चन्द्रमुखं सरसीरुहनेत्रकम् ॥
कौस्तुभोद्भासिताङ्गं च श्रीवत्साङ्कं सुभूषितम् ।
व्रजस्त्रीनेत्रकमलाभ्यर्चितं गोगणावृतम् ॥
गोपवृन्दयुतं वंशीं वादयन्तं स्मरेत्सुधीः ।
(४०—५०)

'मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त होकर श्रीवृन्दावनका चिन्तन करे, जो शुभ एवं सुन्दर हरे-भरे वृक्षोंसे परिपूर्ण तथा शीतल है । उन वृक्षोंकी शाखाएँ खिले हुए कुसुम समूहोंके भारसे झुकी हुई हैं । उनपर प्रफुल्ल मञ्जरियोंसे युक्त विकसित लतावल्लरियाँ फैली हुई हैं । वे वृक्ष झड़ते हुए पुष्पपरागरूप धूलिकणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको सुवासित करते रहते हैं, वहाँ खिलते हुए नूतन कमल-वनोंसे निकलती मधुधाराओंके संचयसे लुभाये अन्तःकरणवाले भ्रमरोंका समुदाय मनोहर गुञ्जार करता रहता है । हंस, कोकिल, शुक और पारावत आदि पक्षियोंका समूह बारंबार कलरव करते हुए वृन्दावनको कोलाहलपूर्ण किये रहता है । चारों ओर नृत्य करते मोरोंके झुंडसे वह वन अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है । कालिन्दीकी चञ्चल लहरोंसे नीर-बिन्दुओंको लेकर मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होनेवाली शीतल सुखद वायु प्रफुल्ल पङ्कजोंके पराग-पुञ्जसे धूसर हो रही है । व्रजसुन्दरियोंके मृदुल वसनाञ्चलोंको वह चञ्चल किये देती है और इस प्रकार मनमें प्रेमोन्मादका उद्दीपन करती हुई वह मन्द वायु वृन्दावनका निरन्तर सेवन करती रहती है । उस वनके भीतर एक अत्यन्त मनोहर कल्पवृक्षका चिन्तन करे, जिसके नीचे सुवर्णमयी वेदीपर परम उत्तम रत्नमय पीठ शोभा पाता है । वहाँकी प्राङ्गण-भूमि भी रत्नोंसे आबद्ध है । उस रत्नमय पीठपर लाल रंगके अष्टदलकमलकी भावना करे, जिसके मध्यभागमें श्रीमुकुन्द विराजमान हैं । उनके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—उनकी अङ्ग-कान्ति विकसित नील कमलके समान श्याम है । वे मोर-पङ्खका मुकुट पहने हुए हैं, कटिभागमें पीताम्बर शोभा पा रहा है, उनका मुख चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है, नेत्र खिले हुए कमलोंकी शोभा छीने लेते हैं, उनका सम्पूर्ण अङ्ग कौस्तुभमणिकी प्रभासे उद्भासित हो रहा है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है । वे परम सुन्दर दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं, व्रजसुन्दरियाँ मानो अपने नेत्रकमलोंके उपहारसे उनकी पूजा करती हैं, गौएँ उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़ी हैं,

कृष्णाय नमः मूर्ध्नि । गोविन्दाय नमः हृदये । गोपीजनवल्लभाय नमः गुह्ये । स्वाहा नमः पादयोः)। पुनः सृष्टि आदि न्यास करके पूर्वोक्त पञ्चाङ्ग-न्यास करे ।

अब मैं सब न्यासोंमें उत्तमोत्तम परमगुह्य न्यासका वर्णन करता हूँ, जिसके विज्ञान मात्रसे मनुष्य जीवन्मुक्त तथा अणिमा आदि आठों सिद्धियोंका अधीश्वर हो जाता है, जिसकी आराधनासे मन्त्रोपासक श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त कर लेता है । प्रणवादि व्याहृतियोंसे सम्पुटित मन्त्रका और मन्त्रसे सम्पुटित प्रणवादिका तथा गायत्रीसे सम्पुटित मन्त्रका और मन्त्रसे सम्पुटित गायत्रीका मातृकास्थलमें न्यास करे । मातृका-सम्पुटित मूलका और मूलसे सम्पुटित मातृका वर्णोंका श्रेष्ठ साधक क्रमशः न्यास करे । विद्वान् पुरुष पहले मातृका वर्णोंका नियतस्थलमें न्यास कर ले । उसके बाद पूर्वोक्त न्यास करने चाहिये । इस तरह उपर्युक्त छः प्रकारके न्यास करे । यह षोढान्यास कहा गया है । इस श्रेष्ठ न्यासके अनुष्ठानसे साधक साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके समान हो जाता है । न्याससे सम्पुटित पुरुषको देखकर सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर और देवता भी उसे नमस्कार करते हैं । फिर इस भूतलपर मनुष्योंके लिये तो कहना ही क्या है ? तत्पश्चात् 'ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' इस मन्त्रसे दिग्बन्ध करे । इसके बाद अपने हृदयमें सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाले इष्टदेवका इस प्रकार ध्यान करे—

उत्फुल्लकुसुमव्रातनम्रशाखैर्वरद्रुमैः ।
सस्मेरमञ्जरीवृन्दवल्लरीवेष्टितैः शुभैः ॥
गलत्परागधूलीभिः सुरभीकृतदिङ्मुखैः ।
स्मरेच्छिशिरितं वृन्दावनं मन्त्री समाहितः ॥
उन्मीलन्नवकञ्जालि विगलन्मधुसञ्चयैः ।
लुब्धान्तःकरणैर्गुञ्जद्द्विरेफपटलैः शुभम् ॥
मरालपरभृत्कीरकपोतनिकरैर्मुहुः ।
मुखरीकृतमानृत्यन्मायूरकुलमञ्जुलम् ॥
कालिन्द्या लोलकल्लोलविप्रुषैर्मन्दवाहिभिः ।
उन्निद्राम्बुरुहव्रातरजोभिर्धूसरैः शिवैः ॥
प्रदीपितस्मरगोष्ठसुन्दरीमृदुवाससाम् ।
विलोलनपरैः संसेवितं वा तैर्निरन्तरम् ॥
स्मरेत्तदन्ते गीर्वाणभूरुहं सुमनोहरम् ।
तदधः स्वर्णवेद्यां च रत्नपीठमनुत्तमम् ॥
रत्नकुट्टिमपीठेऽस्मिन्नरुणं कमलं स्मरेत् ।
अष्टपत्रं च तन्मध्ये मुकुन्दं संस्मरेत्स्थितम् ॥
फुल्लेन्दीवरकान्तं च केकिबर्हावतंसकम् ।
पीतांशुकं चन्द्रमुखं सरसीरुहनेत्रकम् ॥
कौस्तुभोद्भासिताङ्गं च श्रीवत्साङ्कं सुभूषितम् ।
व्रजस्त्रीनेत्रकमलाभ्यर्चितं गोगणावृतम् ॥
गोपवृन्दयुतं वंशीं वादयन्तं स्मरेत्सुधीः ।
(४०—५०)

मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त होकर श्रीवृन्दावनका चिन्तन करे, जो शुभ एवं सुन्दर हरे-भरे वृक्षोंसे परिपूर्ण तथा शीतल है । उन वृक्षोंकी शाखाएँ खिले हुए कुसुम समूहोंके भारसे झुकी हुई हैं । उनपर प्रफुल्ल मञ्जरियोंसे युक्त विकसित लतावल्लरियाँ फैली हुई हैं । वे वृक्ष झड़ते हुए पुष्पपरागरूप धूलिकणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको सुवासित करते रहते हैं, वहाँ खिलते हुए नूतन कमल-वनोंसे निकलती मधुधाराओंके संचयसे लुभाये अन्तःकरणवाले भ्रमरोंका समुदाय मनोहर गुञ्जार करता रहता है । हंस, कोकिल, शुक और पारावत आदि पक्षियोंका समूह बारंबार कलरव करते हुए वृन्दावनको कोलाहलपूर्ण किये रहता है । चारों ओर नृत्य करते मोरोंके झुंडसे वह वन अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है । कालिन्दीकी चञ्चल लहरोंसे नीर-बिन्दुओंको लेकर मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होनेवाली शीतल सुखद वायु प्रफुल्ल पङ्कजोंके पराग-पुञ्जसे धूसर हो रही है । व्रजसुन्दरियोंके मृदुल वसनाञ्चलोंको वह चञ्चल किये देती है और इस प्रकार मनमें प्रेमोन्मादका उद्दीपन करती हुई वह मन्द वायु वृन्दावनका निरन्तर सेवन करती रहती है । उस वनके भीतर एक अत्यन्त मनोहर कल्पवृक्षका चिन्तन करे, जिसके नीचे सुवर्णमयी वेदीपर परम उत्तम रत्नमय पीठ शोभा पाता है । वहाँकी प्राङ्गण-भूमि भी रत्नोंसे आबद्ध है । उस रत्नमय पीठपर लाल रंगके अष्टदलकमलकी भावना करे, जिसके मध्यभागमें श्रीमुकुन्द विराजमान हैं । उनके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—उनकी अङ्ग-कान्ति विकसित नील कमलके समान श्याम है । वे मोर-पङ्खका मुकुट पहने हुए हैं, कटिभागमें पीताम्बर शोभा पा रहा है, उनका मुख चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है, नेत्र खिले हुए कमलोंकी शोभा छीने लेते हैं, उनका सम्पूर्ण अङ्ग कौस्तुभमणिकी प्रभासे उद्भासित हो रहा है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है । वे परम सुन्दर दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं, व्रजसुन्दरियाँ मानो अपने नेत्रकमलोंके उपहारसे उनकी पूजा करती हैं, गौएँ उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़ी हैं,

मन्दारमूले रत्नमण्डपे धेनुवृन्दा
सुवर्णाङ्गमहापदकालदीप्तम् ।
कटीतटके धारयद्धान्तयुग्मं
विनद्धं क्वणत्किङ्किणीजालदाम्ना ॥
हसन्तं हसद्बन्धुजीवप्रसून-
प्रभापाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या ।
दधानं करे दक्षिणे पायसान्नं
सुहैयंगवीनं तथा वामहस्ते ॥
लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्ये
स्थितं वासवाद्यैः सुरैरर्चिताङ्घ्रिम् ।
महीभारभूतामरारातियूथा-
न्ततः पूतनादीन् निहन्तुं प्रवृत्तम् ॥
(ना० पूर्व० ८० । ७५—८०)

'एक सुन्दर उद्यानसे घिरी हुई सुवर्णमयी भूमिपर रत्नमय मण्डप बना हुआ है। वहाँ शोभायमान कल्पवृक्षके नीचे स्थित रत्ननिर्मित कमलयुक्त पीठपर एक सुन्दर शिशु विराजमान है, जिसकी अङ्गकान्ति इन्द्रनीलमणिके समान श्याम है। उसके काले-काले केश चिकने और घुँघराले हैं। उसके मनोहर कपोल हिलते हुए स्वर्णमय कुण्डलोंसे अत्यन्त सुन्दर लगते हैं, उसकी नासिका बड़ी सुघड़ है। उस सुन्दर बालकके मुखारविन्दपर मन्द मुसकानकी अद्भुत छटा छा रही है। वह सोनेके तारमें गुँथा और सोनेसे ही मँढ़ा हुआ सुन्दर बघनखा धारण करता है, जिसमें परम उज्ज्वल चमकीले रत्न जड़े हुए हैं। गोधूलिसे धूसर वक्षःस्थलपर धारण किये हुए स्वर्णमय आभूषणोंसे उसकी दीप्ति बहुत बढ़ी हुई है। उसका एक-एक अङ्ग अत्यन्त पुष्ट है। उसकी दोनों पिण्डलियोंका अन्तिम भाग अत्यन्त मनोहर है। उसने अपने कटिभागमें घुँघरूदार करधनीकी लड़ बाँध रक्खी है, जिससे मधुर झनकार होती रहती है। खिले हुए बन्धुजीव (दुपहरिया) के फूलकी अरुण प्रभासे युक्त करारविन्द और चरणारविन्दोंकी उदार कान्तिसे सुशोभित वह शिशु मन्द-मन्द हँस रहा है। उसने दाहिने हाथमें खीर और बायें हाथमें तुरंतका निकाला हुआ माखन ले रक्खा है। ग्वालों, गोपसुन्दरियों और गौओंकी मण्डलीमें स्थित होकर वह बड़ी शोभा पा रहा है। इन्द्र आदि देवता उसके चरणोंकी समाराधना करते हैं। वह पृथ्वीके भारभूत दैत्यसमुदाय पूतना आदिका संहार करनेमें लगा है।'

इस प्रकार ध्यान करके पूर्ववत् एकाग्रचित्त हो भगवान्का पूजन करे। दही और गुड़का नैवेद्य लगाकर एक हजार मन्त्र-जप करे। इसी प्रकार मध्याह्नकालमें नारदादि मुनिगणों और देवताओंसे पूजित विशिष्ट रूपधारी भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे।

मध्याह्नकालिक ध्यान

लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्य-
स्थितं सान्द्रमेघप्रभं सुन्दराङ्गम् ।
शिखण्डिच्छदापीडमब्जायताक्षं
लसच्चिल्लिकं पूर्णचन्द्राननं च ॥
चलत्कुण्डलोल्लासिगण्डस्थलश्री-
भरं सुन्दरं मन्दहासं सुनासम् ।
सुकार्तस्वराभाम्बरं दिव्यभूषं
क्वणत्किङ्किणीजालमात्तानुलेपम् ॥
वेणुं धमन्तं स्वकरे दधानं
सव्ये दरं यष्टिमुदारवेषम् ।
दक्षे तथैवेप्सितदानदक्षं
ध्यात्वार्चयेन्नन्दजमिन्दिराप्त्यै ॥
(ना० पूर्व० ८० । ८१—८५)

मनुदन्मसीर स्कन्धे धेनुवृन्दा-
सुगुच्छमसापहाकलदीप्तम् ।
कटीस्थले चारुजङ्घान्तयुग्मं
पिनद्धं क्वणत्किङ्किणीजालदाम्ना ॥
हसन्तं हसद्बन्धुजीवप्रसून-
प्रभापाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या ।
दधानं करे दक्षिणे पायसान्नं
सुहैयंगवीनं तथा वामहस्ते ॥
लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्ये
स्थितं वासवाद्यैः सुरैरर्चिताङ्घ्रिम् ।
महीभारभूतामरारातियूथान्-
ततः पूतनादीन् निहन्तुं प्रवृत्तम् ॥
(ना० पूर्व० ८० । ७५—८०)

'एक सुन्दर उद्यानसे घिरी हुई सुवर्णमयी भूमिपर रत्नमय मण्डप बना हुआ है। वहाँ शोभायमान कल्पवृक्षके नीचे स्थित रत्ननिर्मित कमलयुक्त पीठपर एक सुन्दर शिशु विराजमान है, जिसकी अङ्गकान्ति इन्द्रनीलमणिके समान श्याम है। उसके काले-काले केश चिकने और घुँघराले हैं। उसके मनोहर कपोल हिलते हुए स्वर्णमय कुण्डलोंसे अत्यन्त सुन्दर लगते हैं, उसकी नासिका बड़ी सुघड़ है। उस सुन्दर बालकके मुखारविन्दपर मन्द मुसकानकी अद्भुत छटा छा रही है। वह सोनेके तारमें गुँथा और सोनेसे ही मँढ़ा हुआ सुन्दर बघनखा धारण करता है, जिसमें परम उज्ज्वल चमकीले रत्न जड़े हुए हैं। गोधूलिसे धूसर वक्षःस्थलपर धारण किये हुए स्वर्णमय आभूषणोंसे उसकी दीप्ति बहुत बढ़ी हुई है। उसका एक-एक अङ्ग अत्यन्त पुष्ट है। उसकी दोनों पिण्डलियोंका अन्तिम भाग अत्यन्त मनोहर है। उसने अपने कटिभागमें घुँघरूदार करधनीकी लड़ बाँध रक्खी है, जिससे मधुर झनकार होती रहती है। खिले हुए बन्धुजीव (दुपहरिया) के फूलकी अरुण प्रभासे युक्त करारविन्द और चरणारविन्दोंकी उदार कान्तिसे सुशोभित वह शिशु मन्द-मन्द हँस रहा है। उसने दाहिने हाथमें खीर और बायें हाथमें तुरंतका निकाला हुआ माखन ले रक्खा है। ग्वालों, गोपसुन्दरियों और गौओंकी मण्डलीमें स्थित होकर वह बड़ी शोभा पा रहा है। इन्द्र आदि देवता उसके चरणोंकी समाराधना करते हैं। वह पृथ्वीके भारभूत दैत्यसमुदाय पूतना आदिका संहार करनेमें लगा है।'

इस प्रकार ध्यान करके पूर्ववत् एकाग्रचित्त हो भगवान्‌का पूजन करे। दही और गुड़का नैवेद्य लगाकर एक हजार मन्त्र-जप करे। इसी प्रकार मध्याह्नकालमें नारदादि मुनिगणों और देवताओंसे पूजित विशिष्ट रूपधारी भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे।

मध्याह्नकालिक ध्यान

लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्य-
स्थितं सान्द्रमेघप्रभं सुन्दराङ्गम् ।
शिखण्डिच्छदापीडमब्जायताक्षं
लसच्चिल्लिकं पूर्णचन्द्राननं च ॥
चलत्कुण्डलोल्लासिगण्डस्थलश्री-
भरं सुन्दरं मन्दहासं सुनासम् ।
सुकार्तस्वराभाम्बरं दिव्यभूषं
क्वणत्किङ्किणीजालमात्तानुलेपम् ॥
वेणुं धमन्तं स्वकरे दधानं
सव्ये दरं यष्टिमुदारवेषम् ।
दक्षे तथैवेप्सितदानदक्षं
ध्यात्वार्चयेन्नन्दजमिन्दिराप्त्यै ॥
(ना० पूर्व० ८० । ८१—८५)

[illegible] है। भगवान् श्यामसुन्दर उन मुनियोंको [illegible] उपदेश दे रहे हैं। उनकी [illegible] नीलकमलके समान श्याम है। दोनों [illegible] समान विशाल हैं। सिरपर स्निग्ध [illegible] सुन्दर किरीट सुशोभित है। गलेमें वनमाला शोभा पा रही है। प्रसन्न मुखारविन्द मनको मोहे लेता है। [illegible] मकराकृति कुण्डल झलमला रहे हैं। वक्षःस्थलमें [illegible] चिह्न है। वहीं कौस्तुभमणि अपनी प्रभा बिखेर रही है। उनका स्वरूप अत्यन्त मनोहर है। उनका वक्षःस्थल [illegible] अनुलेपसे सुनहली प्रभा धारण करता है। वे रेशमी पीताम्बर पहने हुए हैं, विभिन्न अङ्गोंमें हार, बाजूबंद, कड़े और करधनी आदि आभूषण उन्हें अलङ्कृत कर रहे हैं। उन्होंने पृथ्वीका भारी भार उतार दिया। उनका हृदय परमानन्दसे परिपूर्ण है तथा उनके चारों हाथ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हैं*।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक भगवान्की पूजा करे। हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र इनके द्वारा प्रथम आवरण बनता है। रुक्मिणी आदि पटरानियोंद्वारा द्वितीय आवरण सम्पन्न होता है। तृतीय आवरणमें नारद, पर्वत, विष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन तथा सात्यकि हैं, इनका आठ दिशाओंमें और विनतानन्दन गरुड़का भगवान्के सम्मुख पूजन करे। चौथे आवरणमें लोकपालोंके साथ और पाँचवें आवरणमें वज्र आदि आयुधोंके साथ उत्तम वैष्णव भगवत्पूजनका कार्य सम्पन्न करे। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके खीरका नैवेद्य अर्पण करे। फिर जलमें खाँड़मिश्रित दूधकी भावना करके उस जलद्वारा तर्पण करे। उसके बाद मन्त्रोपासक पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए मूलमन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। तीनों कालकी पूजाओंमें अथवा केवल मध्याह्नकालमें ही होम करे। आसनसे लेकर विशेषार्घ्यपर्यन्त सम्पूर्ण पूजा पूरी करके विद्वान् पुरुष भगवान्की स्तुति और नमस्कार करे। फिर भगवान्को आत्मसमर्पण करके उनका विसर्जन करनेके पश्चात् अपने हृदयकमलमें उनकी स्थापना करे और तन्मय होकर पुनः आत्मस्वरूप भगवान्की पूजा करे। जो प्रतिदिन इस प्रकार सायंकालमें भगवान् वासुदेवकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाकर अन्तमें परम गतिको प्राप्त होता है।

रात्रिकालिक ध्यान

रात्रौ चेन्मदनाक्रान्तचेतसं नन्दनन्दनम्।
यजेद्रासपरिश्रान्तं गोपीमण्डलमध्यगम्॥
विकसत्कुन्दकह्लारमल्लिकाकुसुमोद्गतैः।
रजोभिर्धूसरैर्मन्दमारुतैः शिशिरीकृते॥
उन्मीलन्नवकैरवालिविगलन्माध्वीकलुब्धान्तर-
भ्राम्यन्मत्तमिलिन्दगीतललिते सन्मल्लिकोज्जृम्भिते
पीयूषांशुकरैर्विशालितहरिद्वान्ते सरोदीपने
कालिन्दीपुलिनाङ्गणे स्मितमुखं वेणुं रणन्तं मुहुः
अन्तस्तोयलसन्नवाम्बुदघटासंघट्टकारत्विषं
चञ्चच्चिल्लिकमम्बुजायतदृशं बिम्बाधरं सुन्दरम
मायूरच्छदबद्धमौलिविलसद्धम्मिल्लमालं घल-
द्रौप्यत्कुण्डलरत्नरश्मिविलसद्गण्डद्वयोद्भासितम्
काञ्चीनूपुरहारकङ्कणलसत्केयूरभूषान्वितं
गोपीनां द्वितयान्तरे सुललितं वन्यप्रसूनस्रजम
अन्योन्यं विनिबद्धगोपदयितादोर्वल्लिवीतं ल
द्रासक्रीडनलोलुपं मनसिजाक्रान्तं मुकुन्दं भजे
विविधश्रुतिभिन्नमनोज्ञतरस्वरसप्तकमूर्छनतानगणैः
भ्रममाणममूभिरुदारमणिस्फुटमण्डनशिञ्जितचारुतनुम्
इतरेतरबद्धकरप्रमदागणकल्पितरासविहारविधौ
मणिशङ्कुगमप्यमुना वपुषा बहुधा विहितस्वकदिव्यतनु
(ना० पूर्व० ८० । १०७—११

*रात्रिमें पूजन करना हो तो भगवान्का ध्यान इस प्र

* [illegible] द्वारवत्यां तु चित्रप्रासादशोभिते।
अष्ट[illegible]मण्डिते॥
[illegible]
[illegible] परीते भवनोत्तमे॥
[illegible] मणिमण्डपे।
[illegible] त्रैलोक्यमोहनम्॥
[illegible] परिवृतमात्मविनिर्णये।
[illegible] परमक्षरम्॥
[illegible]
[illegible]॥
[illegible] कुण्डलम्।
[illegible] मुमनोहरम्॥
[illegible] पीताम्बरधरम्।
[illegible]॥
[illegible] मुदितमानसम्।
[illegible]॥
(ना० पूर्व० ८० । ९२—९९)

[illegible] करता है। भगवान् श्यामसुन्दर उन मुनियों[illegible] उपदेश दे रहे हैं। उनकी [illegible] नीलकमलके समान श्याम है। दोनों [illegible] समान विशाल हैं। सिरपर स्निग्ध [illegible] संयुक्त सुन्दर किरीट सुशोभित है। गलेमें वनमाला शोभा पा रही है। प्रसन्न मुखारविन्द मनको मोहे लेता है। [illegible] कुण्डल झलमला रहे हैं। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है। वहाँ कौस्तुभमणि अपनी प्रभा बिखेर रही है। उनका स्वरूप अत्यन्त मनोहर है। उनका वक्षःस्थल [illegible] अनुलेपसे सुनहली प्रभा धारण करता है। वे रेशमी पीताम्बर पहने हुए हैं, विभिन्न अङ्गोंमें हार, बाजूबंद, कड़े और करधनी आदि आभूषण उन्हें अलङ्कृत कर रहे हैं। उन्होंने पृथ्वीका भारी भार उतार दिया। उनका हृदय परमानन्दसे परिपूर्ण है तथा उनके चारों हाथ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हैं*।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक भगवान्‌की पूजा करे। हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र इनके द्वारा प्रथम आवरण बनता है। रुक्मिणी आदि पटरानियोंद्वारा द्वितीय आवरण सम्पन्न होता है। तृतीय आवरणमें नारद, पर्वत, जिष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन तथा सात्यकि हैं, इनका आठ दिशाओंमें और विनतानन्दन गरुड़का भगवान्‌के सम्मुख पूजन करे। चौथे आवरणमें लोकपालोंके साथ और पाँचवें आवरणमें वज्र आदि आयुधोंके साथ उत्तम वैष्णव भगवत्पूजनका कार्य सम्पन्न करे। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके खीरका नैवेद्य अर्पण करे। फिर जलमें खाँड़मिश्रित दूधकी भावना करके उस जलद्वारा तर्पण करे। उसके बाद मन्त्रोपासक पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए मूलमन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। तीनों कालकी पूजाओंमें अथवा केवल मध्याह्नकालमें ही होम करे। आसनसे लेकर विशेषार्घ्यपर्यन्त सम्पूर्ण पूजा पूरी करके विद्वान् पुरुष भगवान्‌की स्तुति और नमस्कार करे। फिर भगवान्‌को आत्मसमर्पण करके उनका विसर्जन करनेके पश्चात् अपने हृदयकमलमें उनकी स्थापना करे और तन्मय होकर पुनः आत्मस्वरूप भगवान्‌की पूजा करे। जो प्रतिदिन इस प्रकार सायंकालमें भगवान् वासुदेवकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाकर अन्तमें परम गतिको प्राप्त होता है।

रात्रिकालिक ध्यान

रात्रौ चेन्मदनाक्रान्तचेतसं नन्दनन्दनम्।
यजेद्रासपरिश्रान्तं गोपीमण्डलमध्यगम्॥
विकसत्कुन्दकह्लारमल्लिकाकुसुमोद्गतैः।
रजोभिर्धूसरैर्मन्दमारुतैः शिशिरीकृते॥
उन्मीलन्नवकैरवालिविगलन्माध्वीकलुब्धान्तर-
भ्राम्यन्मत्तमिलिन्दगीतललिते सन्मल्लिकोज्जृम्भिते।
पीयूषांशुकरैर्विशालितहरिद्प्रान्ते सरोर्हापने
कालिन्दीपुलिनाङ्गणे स्मितमुखं वेणुं रणन्तं मुहुः॥
अन्तस्तोयलसन्नवाम्बुदघटासंघट्टकारत्विषं
चञ्चच्चिल्लिकमम्बुजायतदृशं बिम्बाधरं सुन्दरम्।
मायूरच्छदबद्धमौलिविलसद्धम्मिल्लमालं घलद्-
दीप्यत्कुण्डलरत्नरश्मिविलसद्गण्डद्वयोल्लासितम्॥
काञ्चीनूपुरहारकङ्कणलसत्केयूरभूषान्वितं
गोपीनां द्वितयान्तरे सुललितं वन्यप्रसूनस्रजम्।
अन्योन्यं विनिबद्धगोपदयितादोर्वल्लिवीतं लस-
द्रासक्रीडनलोलुपं मनसिजाक्रान्तं मुकुन्दं भजेत्॥
विविधश्रुतिभिन्नमनोज्ञतरस्वरसप्तकमूर्छनतानगणैः।
भ्रमणाणमभूमिरदारमणिस्फुटमण्डनशिञ्जितचारुतनुम्॥
इतरेतरबद्धकरप्रमदागणकल्पितरासविहारविधौ।
मणिशङ्कगमप्यमुना वपुषा बहुधा विहितस्वकदिव्यतनुम्॥
(ना० पूर्व० ८० । १०७—११३)

रात्रिमें पूजन करना हो तो भगवान्‌का ध्यान इस प्रकार

---

* [illegible] तु [illegible]शोभिते।
[illegible]मण्डिते॥
[illegible]
[illegible] परीते भवनोत्तमे॥
[illegible] श्रीमणिमण्डपे।
[illegible] श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मणिकुण्डलमण्डितम्।
[illegible]
[illegible] फुल्लमुखाम्बुजम्॥
[illegible]
[illegible]
[illegible] मुकुलितावनम्।
[illegible]
(ना० पूर्व० ८० । ९२—९९)

करके मन्त्रोपासक एक हजार मन्त्र-जप करे। तत्पश्चात् स्तुति, नमस्कार और प्रार्थना करके पूजनका शेष कार्य भी समाप्त करे। इस प्रकार जो उपासक भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करता है, वह समृद्धिका आश्रय होता है तथा अणिमा आदि आठ सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। इहलोकमें वह विविध भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। इस तरह पूजा आदिके द्वारा मन्त्रके सिद्ध होनेपर अभीष्ट मनोरथोंकी सिद्धि करे। अथवा विद्वान् पुरुष अट्ठाईस बार मन्त्र-जपपूर्वक तीनों समय भगवान्‌की पूजा करे। उस-उस कालमें कथित परिवारों (आवरण देवताओं) का भी तर्पण करे। प्रातःकाल गुड़-मिश्रित दहीसे, मध्याह्नकालमे मक्खनयुक्त दूधसे और सायंकालमें मिश्री मिलाये हुए दूधसे श्रेष्ठ वैष्णव तर्पण करे। मन्त्रके अन्तमें तर्पणीय देवताओंके नामोंमे द्वितीया विभक्ति जोड़कर अन्तमें 'तर्पयामि' पदका प्रयोग करे। तत्पश्चात् शेष पूजा पूरी करे। भगवत्प्रसादस्वरूप जलसे अपने आपको सींचकर उस जलको पीये। उससे तृप्त होकर देवताका विसर्जन करके तन्मय हो मन्त्र-जप करे।

अब सकामभावसे किये जानेवाले तर्पणोंमें आवश्यक द्रव्य बताये जाते हैं। शास्त्रोक्त विधानसम्बन्धी उन वस्तुओंका आश्रय लेकर उनमेंसे किसी एकका भी सेवन करे। खीर, दही वड़ा, घी, गुड़ मिला हुआ अन्न, खिचड़ी, दूध, दही, केला, मोचा, चिंचा (इमली), चीनी, पूआ, मोदक, खील (लाजा), चावल, मक्खन—ये सोलह द्रव्य ब्रह्मा आदिके द्वारा तर्पणोपयोगी बताये गये हैं। जो प्रातःकाल अन्तमें लाजा और पहले चावल तथा मिश्री अर्पित करके चौहत्तर बार तर्पण करता है, साथ ही भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका ध्यान करता रहता है, वह मन्त्रोपासक अभीष्ट वस्तुको प्राप्त कर लेता है। धारोष्ण तथा पके हुए दूधसे—मक्खन, दही, दूध और आमके रस, घी, मोटी चीनी, मधु और कीलल (शर्बत) इन नौ द्रव्योंमेंसे प्रत्येकके द्वारा बारह बार तर्पण करे। इस प्रकार जो श्रेष्ठ वैष्णव एक सौ आठ बार तर्पण करता है, वह पूर्वोक्त फलका भागी होता है। बहुत कहनेसे क्या लाभ ! वह तर्पण सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। मिश्री मिलाये हुए धारोष्ण दुग्धकी भावनासे जलद्वारा श्रीकृष्णका तर्पण करके गाँवको जानेवाला साधक वहाँ अपने पारिवारिक लोगोंके साथ धन, वस्त्र एवं भोज्य पदार्थ प्राप्त कर लेता है। मन्त्रोपासक जितनी बार तर्पण करे, उतनी ही संख्यामे जप करे। वह तर्पणसे ही सम्पूर्ण कार्य सिद्ध कर लेता है।

अब मैं साधकोंके हितके लिये सकाम होमका वर्णन करता हूँ। उत्तम श्रीकी अभिलाषा रखनेवाला मन्त्रोपासक बेलके फूलोंसे होम करे। घृत और अन्नकी वृद्धिके लिये घृतयुक्त अन्नकी आहुति दे।

अब मैं एक उत्तम रहस्यका वर्णन करता हूँ, जो मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। साधक अपने हृदय-कमलमे भगवान् देवकीनन्दनका इस प्रकार ध्यान करे—

श्रीमत्कुन्देन्दुगौरं सरसिजनयनं शङ्खचक्रे गदाब्जे
बिभ्राणं हस्तपद्मैर्नवनलिनलसन्मालया दीप्यमानम्।
वन्दे वेद्यं मुनीन्द्रैः कणिकमणिलसद्दिव्यभूषाभिरामं
दिव्याङ्गालेपभासं सकलभयहरं पीतवस्त्रं मुरारिम्॥
(ना० पूर्व० ८०। १५०)

'जो कुन्द और चन्द्रमाके समान सुन्दर गौरवर्णके हैं, जिनके नेत्र कमलकी शोभाको लज्जित कर रहे हैं, जो अपने करारविन्दोंमे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं, नूतन कमलोंकी सुन्दर मालासे सुशोभित हैं, छोटी-छोटी मणियोसे जटित सुन्दर दिव्य आभूषण जिनके अनुपम सौन्दर्य-माधुर्यको और बढा रहे हैं तथा जिनके श्रीअङ्गोंमें दिव्य अङ्गराग शोभा पा रहा है, उन मुनीन्द्रवेद्य, सकल भयहारी, पीताम्बरधारी मुरारिकी मै वन्दना करता हूँ।'

इस प्रकार ध्यान करके आदिपुरुष श्रीकृष्णको अपने

करके मन्त्रोपासक एक हजार मन्त्र-जप करे। तत्पश्चात् स्तुति, नमस्कार और प्रार्थना करके पूजनका शेष कार्य भी समाप्त करे। इस प्रकार जो उपासक भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करता है, वह समृद्धिका आश्रय होता है तथा अणिमा आदि आठ सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। इहलोकमें वह विविध भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। इस तरह पूजा आदिके द्वारा मन्त्रके सिद्ध होनेपर अभीष्ट मनोरथोंकी सिद्धि करे। अथवा विद्वान् पुरुष अट्ठाईस बार मन्त्र-जपपूर्वक तीनों समय भगवान्‌की पूजा करे। उस-उस कालमें कथित परिवारों (आवरण देवताओं) का भी तर्पण करे। प्रातःकाल गुड़-मिश्रित दहीसे, मध्याह्नकालमे मक्खनयुक्त दूधसे और सायंकालमें मिश्री मिलाये हुए दूधसे श्रेष्ठ वैष्णव तर्पण करे। मन्त्रके अन्तमें तर्पणीय देवताओंके नामोंमे द्वितीया विभक्ति जोड़कर अन्तमें 'तर्पयामि' पदका प्रयोग करे। तत्पश्चात् शेष पूजा पूरी करे। भगवत्प्रसादस्वरूप जलसे अपने आपको सींचकर उस जलको पीये। उससे तृप्त होकर देवताका विसर्जन करके तन्मय हो मन्त्र-जप करे।

अब सकामभावसे किये जानेवाले तर्पणोंमें आवश्यक द्रव्य बताये जाते हैं। शास्त्रोक्त विधानसम्बन्धी उन वस्तुओका आश्रय लेकर उनमेंसे किसी एकका भी सेवन करे। खीर, दही बड़ा, घी, गुड़ मिला हुआ अन्न, खिचड़ी, दूध, दही, केला, मोचा, चिंचा (इमली), चीनी, पूआ, मोदक, खील (लाजा), चावल, मक्खन—ये सोलह द्रव्य ब्रह्मा आदिके द्वारा तर्पणोपयोगी बताये गये हैं। जो प्रातःकाल अन्तमें लाजा और पहले चावल तथा मिश्री अर्पित करके चौहत्तर बार तर्पण करता है, साथ ही भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका ध्यान करता रहता है, वह मन्त्रोपासक अभीष्ट वस्तुको प्राप्त कर लेता है। धारोष्ण तथा पके हुए दूधसे—मक्खन, दही, दूध और आमके रस, घी, मोटी चीनी, मधु और कीलल (शर्बत) इन नौ द्रव्योंमेंसे प्रत्येकके द्वारा बारह बार तर्पण करे। इस प्रकार जो श्रेष्ठ वैष्णव एक सौ आठ बार तर्पण करता है, वह पूर्वोक्त फलका भागी होता है। बहुत कहनेसे क्या लाभ? वह तर्पण सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। मिश्री मिलाये हुए धारोष्ण दुग्धकी भावनासे जलद्वारा श्रीकृष्णका तर्पण करके गॉवको जानेवाला साधक वहाँ अपने पारिवारिक लोगोंके साथ धन, वस्त्र एवं भोज्य पदार्थ प्राप्त कर लेता है। मन्त्रोपासक जितनी बार तर्पण करे, उतनी ही संख्यामे जप करे। वह तर्पणसे ही सम्पूर्ण कार्य सिद्ध कर लेता है।

अब मैं साधकोंके हितके लिये सकाम होमका वर्णन करता हूँ। उत्तम श्रीकी अभिलाषा रखनेवाला मन्त्रोपासक बेलके फूलोंसे होम करे। घृत और अन्नकी वृद्धिके लिये घृतयुक्त अन्नकी आहुति दे।

अब मैं एक उत्तम रहस्यका वर्णन करता हूँ, जो मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। साधक अपने हृदय-कमलमे भगवान् देवकीनन्दनका इस प्रकार ध्यान करे—

श्रीमत्कुन्देन्दुगौरं सरसिजनयनं शङ्खचक्रे गदाब्जे
बिभ्राणं हस्तपद्मैर्नवनलिनलसन्मालया दीप्यमानम्।
वन्दे वेद्यं मुनीन्द्रैः कणिकमणिलसद्दिव्यभूषाभिरामं
दिव्याङ्गालेपभासं सकलभयहरं पीतवस्त्रं मुरारिम्॥
(ना० पूर्व० ८० । १५०)

'जो कुन्द और चन्द्रमाके समान सुन्दर गौरवर्णके हैं, जिनके नेत्र कमलकी शोभाको लज्जित कर रहे हैं, जो अपने करारविन्दोंमे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं, नूतन कमलोंकी सुन्दर मालासे सुशोभित हैं, छोटी-छोटी मणियोसे जटित सुन्दर दिव्य आभूषण जिनके अनुपम सौन्दर्य-माधुर्यको और बढा रहे हैं तथा जिनके श्रीअङ्गोंमें दिव्य अङ्गराग शोभा पा रहा है, उन मुनीन्द्रवेद्य, सकल भयहारी, पीताम्बरधारी मुरारिकी मै वन्दना करता हूँ।'

इस प्रकार ध्यान करके आदिपुरुष श्रीकृष्णको अपने

स्मर (क्लीं), त्रिविक्रम (ऋ) युक्त चक्री (क्) अर्थात् कृ, इसके पश्चात् ष्णाय तथा हृत् (नमः)—यह (क्लीं कृष्णाय नमः) षडक्षर-मन्त्र कहा गया है जो सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। वाराह (ह्), अग्नि (र्), शान्ति (ई) और इन्दु (-अनुस्वार)—ये सब मिलकर मायाबीज 'ह्रीं' कहे गये हैं। मृत्यु (श्), वह्नि (र्), गोविन्द (ई) और चन्द्र (-अनुस्वार) से युक्त हो तो श्री-बीज—'श्रीं' कहा गया है। इन दोनों बीजोंसे युक्त होनेपर अष्टादशाक्षर मन्त्र (ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा) बीस अक्षरोंका हो जाता है। शालग्राममें, मणिमें, यन्त्रमें, मण्डलमे तथा प्रतिमाओंमें ही सदा श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये; केवल भूमिपर नहीं। जो इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। बीस अक्षरवाले मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि हैं। छन्दका नाम गायत्री है। श्रीकृष्ण देवता हैं; क्लीं बीज है। और विद्वान् पुरुषोंने स्वाहाको शक्ति कहा है। तीन, तीन, चार, चार, चार तथा दो मन्त्राक्षरोंद्वारा षडङ्ग-न्यास करे। मूलमन्त्रसे व्यापक न्यास करके मन्त्रसे सम्पुटित मातृका वर्णोंका उनके नियत स्थानोंमें एकाग्रतापूर्वक न्यास करे। फिर दस तत्त्वोंका न्यास करके मूलमन्त्रद्वारा व्यापक करे। तदनन्तर देवभावकी सिद्धि (इष्टदेवके साथ तन्मयता) प्राप्त करनेके लिये मन्त्र-न्यास करे। मूर्तिपञ्जर नामक न्यास पूर्ववत् करे। फिर षडङ्ग-न्यास करके हृदयकमलमें भगवान् श्रीकृष्णका इस प्रकार ध्यान करे।

द्वारकापुरीमे सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशमान सुन्दर महलों और बहुतेरे कल्पवृक्षोंसे घिरा हुआ एक मणिमय मण्डप है, जिसके खंभे अग्निके समान जाज्वल्यमान रत्नोंके बने हुए हैं। उसके द्वार, तोरण और दीवारें सभी प्रकाशमान मणियोंद्वारा निर्मित हैं। वहाँ खिले हुए सुन्दर पुष्पोंके चित्रोंसे सुशोभित चँदोवोंमें मोतियोंकी झालरें लटक रही हैं। मण्डपका मध्यभाग अनेक प्रकारके रत्नोंसे निर्मित हुआ है, जो पद्मराग मणिमयी भूमिसे सुशोभित है। वहाँ एक कल्पवृक्ष है, जिससे निरन्तर दिव्य रत्नोंकी धारावाहिक वृष्टि होती रहती है। उस वृक्षके नीचे प्रज्वलित रत्नमय प्रदीपोंकी पङ्क्तियोंसे चारों ओर दिव्य प्रकाश छाया रहता है। वहीं मणिमय सिंहासनपर दिव्य कमलका आसन है, जो उदयकालीन सूर्यके समान अरुण प्रभासे उद्भासित हो रहा है। उस आसनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करे, जो तपाये हुए सुवर्णके समान तेजस्वी हैं। उनका प्रकाश समानरूपसे सदा उदित रहनेवाले कोटि-कोटि चन्द्रमा, सूर्य और विद्युत्के समान है। वे सर्वाङ्गसुन्दर, सौम्य तथा समस्त आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पाता है। उनके चार हाथ क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हैं। वे पल्लवकी छविको छीन लेनेवाले अपने बायें चरणारविन्दके अग्रभागसे कलशका स्पर्श कर रहे हैं; जिससे बिना किसी आघातके रत्नमयी धाराएँ उछलकर गिर रही हैं। उनके दाहिने भागमें रुक्मिणी और वामभागमें सत्यभामा खड़ी होकर अपने हाथोंमें दिव्य कलश ले उनसे निकलती हुई रत्नराशिमयी जलधाराओंसे उन (भगवान् श्रीकृष्ण) के मस्तकपर अभिषेक कर रही हैं। नाग्नजिती (सत्या) और सुनन्दा ये उक्त देवियोंके समीप खड़ी हो उन्हें एकके बाद दूसरा कलश अर्पण कर रही हैं। इन दोनोंको क्रमशः दायें और वामभागमें खड़ी हुई मित्रविन्दा और लक्ष्मणा कलश दे रही हैं और इनके भी दक्षिण वामभागमे खड़ी जाम्बवती और सुशीला रत्नमयी नदीसे रत्नपूर्ण कलश भरकर उनके हाथोंमें दे रही हैं। इनके बाह्यभागमे चारों ओर खड़ी हुई सोलह सहस्र श्रीकृष्णवल्लभाओंका ध्यान करे, जो सुवर्ण एवं रत्नमयी धाराओंसे युक्त कलशोंसे सुशोभित हो रही हैं। उनके बाह्यभागमें आठ निधियाँ हैं, जो धनसे वहाँ वसुधाको भरपूर किये देती हैं। उनके बाह्यभागमें सब वृष्णिवंशी विद्यमान हैं और पहलेकी भाँति स्वर आदि भी हैं।

इस प्रकार ध्यान करके पाँच लाख जप करे और लाल कमलोंद्वारा दशांश होम करके पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर भगवान्का पूजन करे।

पूर्ववत् पीठकी पूजा करनेके पश्चात् मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके उसमें भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णका आवाहन करे और उसमें पूर्णताकी भावना-से पूजा करे। आसनसे लेकर आभूषणतक भगवान्को अर्पण करके फिर न्यासक्रमसे आराधना करे। सृष्टि, स्थिति, षडङ्ग, किरीट, कुण्डलद्वय, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला, श्रीवत्स तथा कौस्तुभ—इन सबका गन्ध-पुष्पसे पूजन करके श्रेष्ठ वैष्णव मूलमन्त्रद्वारा छः कोणोंमें छः अङ्गोंका और पूर्वादि दलोंमें क्रमशः वासुदेव आदि तथा कोणोंमें शान्ति आदिका क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक दलोंके अग्रभागमें आठों पटरानियोंका पूजन करे। तदनन्तर

स्मर (क्लीं), त्रिविक्रम (ऋ) युक्त चक्री (क्) अर्थात् कृ, इसके पश्चात् ष्णाय तथा हृत् (नमः)—यह (क्लीं कृष्णाय नमः) षडक्षर-मन्त्र कहा गया है जो सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। वाराह (ह्), अग्नि (र्), शान्ति (ई) और इन्दु (ं—अनुस्वार)—ये सब मिलकर मायाबीज 'ह्रीं' कहे गये हैं। मृत्यु (श्), वह्नि (र्), गोविन्द (ई) और चन्द्र (ं—अनुस्वार) से युक्त हो तो श्री-बीज—'श्रीं' कहा गया है। इन दोनों बीजोंसे युक्त होनेपर अष्टादशाक्षर मन्त्र (ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा) बीस अक्षरोंका हो जाता है। शालग्राममें, मणिमें, यन्त्रमें, मण्डलमें तथा प्रतिमाओंमें ही सदा श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये; केवल भूमिपर नहीं। जो इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। बीस अक्षरवाले मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि हैं। छन्दका नाम गायत्री है। श्रीकृष्ण देवता हैं; क्लीं बीज है। और विद्वान् पुरुषोंने स्वाहाको शक्ति कहा है। तीन, तीन, चार, चार, चार तथा दो मन्त्राक्षरोंद्वारा षडङ्ग-न्यास करे। मूलमन्त्रसे व्यापक न्यास करके मन्त्रसे सम्पुटित मातृका वर्णोंका उनके नियत स्थानोंमें एकाग्रतापूर्वक न्यास करे। फिर दस तत्त्वोका न्यास करके मूलमन्त्रद्वारा व्यापक करे। तदनन्तर देवभावकी सिद्धि (इष्टदेवके साथ तन्मयता) प्राप्त करनेके लिये मन्त्र-न्यास करे। मूर्तिपञ्जर नामक न्यास पूर्ववत् करे। फिर षडङ्ग-न्यास करके हृदयकमलमें भगवान् श्रीकृष्णका इस प्रकार ध्यान करे।

द्वारकापुरीमें सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशमान सुन्दर महलों और बहुतेरे कल्पवृक्षोंसे घिरा हुआ एक मणिमय मण्डप है, जिसके खंभे अग्निके समान जाज्वल्यमान रत्नोंके बने हुए हैं। उसके द्वार, तोरण और दीवारें सभी प्रकाशमान मणियोंद्वारा निर्मित हैं। वहाँ खिले हुए सुन्दर पुष्पोंके चित्रोंसे सुशोभित चँदोवोंमें मोतियोंकी झालरें लटक रही हैं। मण्डपका मध्यभाग अनेक प्रकारके रत्नोंसे निर्मित हुआ है, जो पद्मराग मणिमयी भूमिसे सुशोभित है। वहाँ एक कल्पवृक्ष है, जिससे निरन्तर दिव्य रत्नोंकी धारावाहिक वृष्टि होती रहती है। उस वृक्षके नीचे प्रज्वलित रत्नमय प्रदीपोंकी पङ्क्तियोंसे चारों ओर दिव्य प्रकाश छाया रहता है। वहीं मणिमय सिंहासनपर दिव्य कमलका आसन है, जो उदयकालीन सूर्यके समान अरुण प्रभासे उद्भासित हो रहा है। उस आसनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करे, जो तपाये हुए सुवर्णके समान तेजस्वी हैं। उनका प्रकाश समानरूपसे सदा उदित रहनेवाले कोटि-कोटि चन्द्रमा, सूर्य और विद्युत्के समान है। वे सर्वाङ्गसुन्दर, सौम्य तथा समस्त आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पाता है। उनके चार हाथ क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हैं। वे पल्लवकी छविको छीन लेनेवाले अपने बायें चरणारविन्दके अग्रभागसे कलशका स्पर्श कर रहे हैं; जिससे बिना किसी आघातके रत्नमयी धाराएँ उछलकर गिर रही हैं। उनके दाहिने भागमें रुक्मिणी और वामभागमें सत्यभामा खड़ी होकर अपने हाथोंमें दिव्य कलश ले उनसे निकलती हुई रत्नराशिमयी जलधाराओंसे उन (भगवान् श्रीकृष्ण) के मस्तकपर अभिषेक कर रही हैं। नाग्नजिती (सत्या) और सुनन्दा ये उक्त देवियोंके समीप खड़ी हो उन्हें एकके बाद दूसरा कलश अर्पण कर रही हैं। इन दोनोंको क्रमशः दायें और वामभागमें खड़ी हुई मित्रविन्दा और लक्ष्मणा कलश दे रही हैं और इनके भी दक्षिण वामभागमें खड़ी जाम्बवती और सुशीला रत्नमयी नदीसे रत्नपूर्ण कलश भरकर उनके हाथोंमें दे रही हैं। इनके बाह्यभागमें चारों ओर खड़ी हुई सोलह सहस्र श्रीकृष्णवल्लभाओंका ध्यान करे, जो सुवर्ण एवं रत्नमयी धाराओंसे युक्त कलशोंसे सुशोभित हो रही हैं। उनके बाह्यभागमें आठ निधियाँ हैं, जो धनसे वहाँ वसुधाको भरपूर किये देती हैं। उनके बाह्यभागमें सब वृष्णिवंशी विद्यमान हैं और पहलेकी भाँति स्वर आदि भी हैं।

इस प्रकार ध्यान करके पाँच लाख जप करे और लाल कमलोंद्वारा दशांश होम करके पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर भगवान्का पूजन करे।

पूर्ववत् पीठकी पूजा करनेके पश्चात् मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके उसमें भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णका आवाहन करे और उसमें पूर्णताकी भावना-से पूजा करे। आसनसे लेकर आभूषणतक भगवान्को अर्पण करके फिर न्यासक्रमसे आराधना करे। सृष्टि, स्थिति, षडङ्ग, किरीट, कुण्डलद्वय, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला, श्रीवत्स तथा कौस्तुभ—इन सबका गन्ध-पुष्पसे पूजन करके श्रेष्ठ वैष्णव मूलमन्त्रद्वारा छः कोणोंमें छः अङ्गोंका और पूर्वादि दलोंमें क्रमशः वासुदेव आदि तथा कोणोंमें शान्ति आदिका क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक दलोंके अग्रभागमें आठों पटरानियोंका पूजन करे। तदनन्तर

अष्टादशाक्षरमन्त्रके लिये बताये हुए अन्य प्रकारके न्यासोंका भी यहाँ संग्रह कर लेना चाहिये। तदनन्तर विद्वान् पुरुष किरीट-मन्त्रसे व्यापकन्यास करे। फिर श्रेष्ठ साधक वेणु और विल्व आदिकी मुद्रा दिखाये। फिर सुदर्शन-मन्त्रसे दिग्बन्ध करे। अङ्गुष्ठको छोड़कर शेष अंगुलियाँ यदि सीधी रहे तो यह हृदयमुद्रा कही गयी है। शिरोमुद्रा भी ऐसी ही होती है। अङ्गुष्ठको नीचे करके जो मुट्ठी बाँधी जाती है, उसका नाम शिखामुद्रा है। हाथकी अंगुलियोंको फैलाना यह वरुणमुद्रा कही गयी है। बाणकी मुट्ठीकी तरह उठी हुई दोनों भुजाओंके अङ्गुष्ठ और तर्जनीसे चुटकी बजाकर उसकी ध्वनिको सब ओर फैलाना, इसे अस्त्रमुद्रा कहा गया है। तर्जनी और मध्यमा—ये दो अंगुलियाँ नेत्रमुद्रा हैं। (जहाँ तीन नेत्रका न्यास करना हो, वहाँ तर्जनी, मध्यमाके साथ अनामिका अंगुलिको भी लेकर नेत्रत्रयका प्रदर्शन कराया जाता है।) बायें हाथका अँगूठा ओष्ठमें लगा हो। उसकी कनिष्ठिका अंगुली दाहिने हाथके अँगूठेसे सटी हो, दाहिने हाथकी कनिष्ठिका फैली हुई हो और उसकी तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियाँ कुछ सिकोड़कर हिलायी जाती हों तो यह वेणुमुद्रा कही गयी है। यह अत्यन्त गुप्त होनेके साथ ही भगवान् श्रीकृष्णको बहुत प्रिय है। वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ नामक मुद्राएँ प्रसिद्ध हैं; अतः उनका वर्णन नहीं किया जाता है*। बायें अँगूठेको ऊर्ध्वमुख खड़ा करके उसे दाहिने हाथके अंगूठेसे बाँध ले और उसके अग्र-भागको दाहिने हाथकी अंगुलियोंसे दबाकर फिर उन अंगुलियोंको बायें हाथकी अंगुलियोंसे खूब कसकर बाँध ले और उसे अपने हृदयकमलमें स्थापित करे। साथ ही काम-बीज (क्लीं) का उच्चारण करता रहे। मुनीश्वरोंने उसे परम गोपनीय विल्वमुद्रा कहा है। यह सम्पूर्ण सुखोंकी प्राप्ति करानेवाली है। मन, वाणी और शरीरसे जो पाप किया गया हो, वह सब इस मुद्राके ज्ञानमात्रसे नष्ट हो जायगा। मन्त्रका ध्यान, जप और पूर्वोक्तरूपसे त्रिकाल पूजन करना चाहिये। दशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर आदि सब मन्त्रोंमें एक ही क्रम बताया गया है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक उससे नाना प्रकारके लौकिक अथवा पारलौकिक प्रयोग कर सकता है।

चेचक, फोड़े या ज्वर आदिसे जब जलन और मूर्च्छा हो रही हो, तो उक्तरूपसे ही श्रीकृष्णका ध्यान करके रोगीके मस्तकके समीप मन्त्र-जप करे। इससे ज्वरग्रस्त मनुष्य निश्चय ही उस ज्वरसे मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त ध्यान करके अग्निमें भगवान्‌की पूजा करे और गुरुचिके चार-चार अंगुलके टुकडोंद्वारा दस हजार आहुति दे तो ज्वरकी शान्ति हो जाती है। ज्वरसे पीड़ित मनुष्यके ज्वरसे शान्तिके लिये बाणोंसे छिदे हुए भीष्मपितामहका तथा संताप दूर करनेवाले श्रीहरिका ध्यान करके रोगीका स्पर्श करते हुए मन्त्रजप करे। सान्दीपनि मुनिको पुत्र देते हुए श्रीकृष्णका ध्यान करके पूर्वोक्त रूपसे गुरुचिके टुकड़ोंसे दस हजार आहुति दे। इससे अपमृत्युका निवारण होता है। जिसके पुत्र मर गये थे, ऐसे ब्राह्मणको उसके पुत्र अर्पण करते हुए अर्जुनसहित श्रीकृष्णका ध्यान करके एक लाख मन्त्र-जप करे। इससे पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धि होती है। घी, चीनी और मधुमें मिलाये हुए पुत्रजीवके फलोंसे उसीकी समिधाद्वारा प्रज्वलित हुई अग्निमें दस हजार आहुति देनेपर मनुष्य दीर्घायु पुत्र पाता है। दुधैले वृक्षके काढ़ेसे भरे हुए कलशकी रातमे पूजा करके प्रातःकाल दस हजार मन्त्र जपे और उसके रसके जलसे स्त्री-का अभिषेक करे। बारह दिनोंतक ऐसा करनेपर वन्ध्या स्त्री भी दीर्घायु पुत्र प्राप्त कर लेती है। पुत्रकी इच्छा रखनेवाली स्त्री प्रातःकाल मौन होकर पीपलके पत्तेके दोनेमे रक्खे हुए जलको एक सौ आठ बार मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित कराकर पीये। एक मासतक ऐसा करके वन्ध्या स्त्री भी समस्त शुभ

---

* वनमाला आदि मुद्राओंका लक्षण इस प्रकार है—

स्पृशेत्कण्ठादिपादान्तं तर्जन्याङ्गुष्ठनिष्ठया।
करद्वयेन तु भवेन्मुद्रेयं वनमालिका॥

दोनों हाथोंकी तर्जनी और अँगूठेको सटाकर उनके द्वारा कण्ठसे लेकर चरणतकका स्पर्श करे। इसे वनमाला नामक मुद्रा कहा गया है।

अन्योन्यस्पृष्टकरयोर्मध्यमानामिकाङ्गुली ।
अङ्गुष्ठेन तु बध्नीयात् कनिष्ठामूलसंश्रिते॥
तर्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीवत्ससंज्ञिका।

आपसमें सटे हुए दोनों हाथोंकी मध्यमा और अनामिका अंगुलियोंको अँगूठेसे बाँधे और तर्जनी अंगुलियोंको कनिष्ठा अंगुलियोंके मूल-भागसे संलग्न करे। इसका नाम श्रीवत्समुद्रा है।

दक्षिणस्यानामिकाङ्गुष्ठसंलग्नां कनिष्ठिकाम्।
कनिष्ठयान्यया बद्ध्वा तर्जन्या दक्षया तथा॥
वामानामां च बध्नीयाद्दक्षाङ्गुष्ठस्य मूलके।
अङ्गुष्ठमध्यमे वामे संयोज्य सरलाः पराः॥
चतस्रोऽप्यग्रसंलग्ना मुद्रा कौस्तुभसंज्ञिका।

दाहिने हाथकी अनामिका और अङ्गुष्ठसे सटी हुई कनिष्ठिका अंगुलिको बायें हाथकी कनिष्ठिकासे बाँध ले। दाहिनी तर्जनीसे बायीं अनामिकाको बाँधे, दाहिने अँगूठेके मूल-भागमें बायें अङ्गुष्ठ और मध्यमाको संयुक्त करे। शेष अंगुलियोंको सीधी रक्खे। चारों अंगुलियोंके अग्रभाग परस्पर मिले हों, यह कौस्तुभमुद्रा है।

अष्टादशाक्षरमन्त्रके लिये बताये हुए अन्य प्रकारके न्यासोंका भी यहाँ संग्रह कर लेना चाहिये। तदनन्तर विद्वान् पुरुष किरीट-मन्त्रसे व्यापकन्यास करे। फिर श्रेष्ठ साधक वेणु और विल्व आदिकी मुद्रा दिखाये। फिर सुदर्शन-मन्त्रसे दिग्बन्ध करे। अङ्गुष्ठको छोड़कर शेष अंगुलियाँ यदि सीधी रहे तो यह हृदयमुद्रा कही गयी है। शिरोमुद्रा भी ऐसी ही होती है। अङ्गुष्ठको नीचे करके जो मुट्ठी बाँधी जाती है, उसका नाम शिखामुद्रा है। हाथकी अंगुलियोंको फैलाना यह वरुणमुद्रा कही गयी है। बाणकी मुट्ठीकी तरह उठी हुई दोनों भुजाओंके अङ्गुष्ठ और तर्जनीसे चुटकी बजाकर उसकी ध्वनिको सब ओर फैलाना, इसे अस्त्रमुद्रा कहा गया है। तर्जनी और मध्यमा—ये दो अगुलियाँ नेत्रमुद्रा हैं। (जहाँ तीन नेत्रका न्यास करना हो, वहाँ तर्जनी, मध्यमाके साथ अनामिका अंगुलिको भी लेकर नेत्रत्रयका प्रदर्शन कराया जाता है।) बायें हाथका अँगूठा ओष्ठमें लगा हो। उसकी कनिष्ठिका अगुली दाहिने हाथके अगूठेसे सटी हो, दाहिने हाथकी कनिष्ठिका फैली हुई हो और उसकी तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियाँ कुछ सिकोड़कर हिलायी जाती हों तो यह वेणुमुद्रा कही गयी है। यह अत्यन्त गुप्त होनेके साथ ही भगवान् श्रीकृष्णको बहुत प्रिय है। वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ नामक मुद्राएँ प्रसिद्ध हैं; अतः उनका वर्णन नहीं किया जाता है*। बायें अगूठेको ऊर्ध्वमुख खडा करके उसे दाहिने हाथके अंगूठेसे बाँध ले और उसके अग्र-भागको दाहिने हाथकी अंगुलियोंसे दबाकर फिर उन अंगुलियोंको बायें हाथकी अगुलियोंसे खूब कसकर बाँध ले और उसे अपने हृदयकमलमें स्थापित करे। साथ ही काम-बीज (क्लीं) का उच्चारण करता रहे। मुनीश्वरोंने उसे परम गोपनीय बिल्वमुद्रा कहा है। यह सम्पूर्ण सुखोंकी प्राप्ति करानेवाली है। मन, वाणी और शरीरसे जो पाप किया गया हो, वह सब इस मुद्राके ज्ञानमात्रसे नष्ट हो जायगा। मन्त्रका ध्यान, जप और पूर्वोक्तरूपसे त्रिकाल पूजन करना चाहिये। दशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर आदि सब मन्त्रोंमें एक ही क्रम बताया गया है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक उससे नाना प्रकारके लौकिक अथवा पारलौकिक प्रयोग कर सकता है।

चेचक, फोड़े या ज्वर आदिसे जब जलन और मूर्च्छा हो रही हो, तो उक्तरूपसे ही श्रीकृष्णका ध्यान करके रोगीके मस्तकके समीप मन्त्र-जप करे। इससे ज्वरग्रस्त मनुष्य निश्चय ही उस ज्वरसे मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त ध्यान करके अग्निमें भगवान्‌की पूजा करे और गुरुचिके चार-चार अगुलके टुकडोंद्वारा दस हजार आहुति दे तो ज्वरकी शान्ति हो जाती है। ज्वरसे पीड़ित मनुष्यके ज्वरसे शान्तिके लिये बाणोंसे छिदे हुए भीष्मपितामहका तथा संताप दूर करनेवाले श्रीहरिका ध्यान करके रोगीका स्पर्श करते हुए मन्त्रजप करे। सान्दीपनि मुनिको पुत्र देते हुए श्रीकृष्णका ध्यान करके पूर्वोक्त रूपसे गुरुचिके टुकड़ोंसे दस हजार आहुति दे। इससे अपमृत्युका निवारण होता है। जिसके पुत्र मर गये थे, ऐसे ब्राह्मणको उसके पुत्र अर्पण करते हुए अर्जुनसहित श्रीकृष्णका ध्यान करके एक लाख मन्त्र-जप करे। इससे पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धि होती है। घी, चीनी और मधुमें मिलाये हुए पुत्रजीवके फलोंसे उसीकी समिधाद्वारा प्रज्वलित हुई अग्निमें दस हजार आहुति देनेपर मनुष्य दीर्घायु पुत्र पाता है। दुधैले वृक्षके काढ़ेसे भरे हुए कलशकी रातमे पूजा करके प्रातःकाल दस हजार मन्त्र जपे और उसके रसके जलसे स्त्री-का अभिषेक करे। बारह दिनोंतक ऐसा करनेपर वन्ध्या स्त्री भी दीर्घायु पुत्र प्राप्त कर लेती है। पुत्रकी इच्छा रखनेवाली स्त्री प्रातःकाल मौन होकर पीपलके पत्तेके दोनेमे रक्खे हुए जलको एक सौ आठ बार मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित कराकर पीये। एक मासतक ऐसा करके वन्ध्या स्त्री भी समस्त शुभ

---

* वनमाला आदि मुद्राओंका लक्षण इस प्रकार है—

स्पृशेत्कण्ठादिपादान्तं तर्जन्याङ्गुष्ठनिष्ठया।
करद्वयेन तु भवेन्मुद्रेयं वनमालिका॥

दोनों हाथोंकी तर्जनी और अगूठेको सटाकर उनके द्वारा कण्ठसे लेकर चरणतकका स्पर्श करे। इसे वनमाला नामक मुद्रा कहा गया है।

अन्योन्यस्पृष्टकरयोर्मध्यमानामिकाङ्गुली।
अङ्गुष्ठेन तु बध्नीयात् कनिष्ठामूलसश्रिते॥
तर्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीवत्ससञ्ज्ञिका।

आपसमें सटे हुए दोनों हाथोंकी मध्यमा और अनामिका अगुलियोंको अगूठेसे बाँधे और तर्जनी अगुलियोंको कनिष्ठा अंगुलियोंके मूल-भागसे संलग्न करे। इसका नाम श्रीवत्समुद्रा है।

दक्षिणस्यानामिकाङ्गुष्ठसलग्ना कनिष्ठिकाम्।
कनिष्ठयान्यया बद्ध्वा तर्जन्या दक्षया तथा॥
वामानामा च बध्नीयाद्दक्षाङ्गुष्ठस्य मूलके।
अङ्गुष्ठमध्यमे वामे सयोज्य सरलाः पराः॥
चतस्रोऽप्यग्रसलग्ना मुद्रा कौस्तुभसंज्ञिका।

दाहिने हाथकी अनामिका और अङ्गुष्ठसे सटी हुई कनिष्ठिका अगुलिको बायें हाथकी कनिष्ठिकासे बाँध ले। दाहिनी तर्जनीसे बायीं अनामिकाको बाँधे, दाहिने अगूठेके मूल-भागमें बायें अङ्गुष्ठ और मध्यमाको सयुक्त करे। शेष अगुलियोंको सीधी रक्खे। चारों अंगुलियोंके अग्रभाग परस्पर मिले हों, यह कौस्तुभमुद्रा है।

हुआ माखन देकर तर्पण करे। पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष यदि इस प्रकार तर्पण करे तो वह वर्षभरमें पुत्र प्राप्त कर लेता है। वह जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे तर्पणसे ही प्राप्त हो जाती है।

वाक् (ऐं), काम (क्लीं) के विभक्त्यन्त कृष्ण शब्द (कृष्णाय) तत्पश्चात् माया (ह्रीं), उसके बाद 'गोविन्दाय' फिर रमा (श्रीं) तदनन्तर दशाक्षर-मन्त्र (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) उद्धृत करे, फिर ह् और स् ये दोनों ओकार और विसर्गसे संयुक्त होकर अन्तमें जुड़ जायँ तो (ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ह्सौः) बाईस अक्षरका मन्त्र होता है, जो वागीशत्व प्रदान करनेवाला है। इसके नारद ऋषि, गायत्री छन्द, विद्यादाता गोपाल देवता, क्लीं बीज और ऐं शक्ति है। विद्याप्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार है—जो वाम भागके ऊपरवाले हाथमें उत्तम विद्या-पुस्तक और दाहिने भागके ऊपरवाले हाथमें स्फटिक मणिकी मातृकामयी अक्षमाला धारण करते हैं। इसी प्रकार नीचेके दोनों हाथोंमें शब्दब्रह्ममयी मुरली लेकर बजाते हैं, जिनके श्रीअङ्गोंमें गायत्री छन्दमय पीताम्बर सुशोभित है, जो श्यामवर्ण कोमल कान्तिमान् मयूरपिच्छमय मुकुट धारण करनेवाले, सर्वज्ञ तथा मुनिवरोंद्वारा सेवित हैं, उन श्रीकृष्णका चिन्तन करे। इस प्रकार लीला करनेवाले भुवनेश्वर श्रीकृष्णका ध्यान करके चार लाख मन्त्र-जप करे और पलासके फूलोंसे दशांश आहुति देकर मन्त्रोपासक बीस अक्षरवाले मन्त्रके लिये कहे हुए विधानके अनुसार पूजन करे। इस प्रकार जो मन्त्रकी उपासना करता है, वह वागीश्वर हो जाता है। उसके बिना देखे हुए शास्त्र भी गङ्गाकी लहरोंके समान स्वतः प्रस्तुत हो जाते हैं

'ॐ कृष्ण कृष्ण महाकृष्ण सर्वज्ञ त्वं प्रसीद मे। रमारमण विद्येश विद्यामाशु प्रयच्छ मे ॥' (हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाकृष्ण! आप सर्वज्ञ हैं। मुझपर प्रसन्न होइये। हे रमारमण! हे विद्येश्वर! मुझे शीघ्र विद्या दीजिये।) यह तैंतीस अक्षरोंवाला महाविद्याप्रद मन्त्र है। इसके नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और श्रीकृष्ण देवता हैं। मन्त्रके चारों चरणों और सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्ग-न्यास करके श्रीहरिका ध्यान करे।

ध्यान

दिव्योद्याने विवस्वत्प्रतिममणिमये मण्डपे योगपीठे
मध्ये यः सर्ववेदान्तमयसुरतरोः संनिविष्टो मुकुन्दः।
वेदैः कल्पद्रुरूपैः शिखरिशतसमालंबिकोशैश्चतुर्भि-
र्न्यायैस्तर्कैः पुराणैः स्मृतिभिरभिवृतस्तादृशैश्चामराद्यैः॥
दद्याद्विभ्रत्कराग्रैरपि दरमुरलीपुष्पबाणेक्षुचापा-
नक्षस्पृक्पूर्णकुम्भौ स्मरललितवपुर्दिव्यभूषाङ्गरागः।
व्याख्यां वामे वितन्वन् स्फुटरुचिरपदो वेणुना विश्वमात्रे
शब्दब्रह्मोद्भवेन श्रियमरुणरुचिर्वल्लवीवल्लभो नः॥
(ना० पूर्व० ८१। ३४-३५)

हुआ माखन देकर तर्पण करे। पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष यदि इस प्रकार तर्पण करे तो वह वर्षभरमें पुत्र प्राप्त कर लेता है। वह जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे तर्पणसे ही प्राप्त हो जाती है।

वाक् (ऐं), काम (क्लीं) ङे विभक्त्यन्त कृष्ण शब्द (कृष्णाय) तत्पश्चात् माया (ह्रीं), उसके बाद 'गोविन्दाय' फिर रमा (श्रीं) तदनन्तर दशाक्षर-मन्त्र (गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा) उद्धृत करे, फिर ह् और स् ये दोनों ओकार और विसर्गसे संयुक्त होकर अन्तमें जुड़ जायँ तो (ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ह्सौं) बाईस अक्षरका मन्त्र होता है, जो वागीशत्व प्रदान करने-वाला है। इसके नारद ऋषि, गायत्री छन्द, विद्यादाता गोपाल देवता, क्लीं बीज और ऐं शक्ति है। विद्याप्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार है—जो वाम भाग-के ऊपरवाले हाथमें उत्तम विद्या-पुस्तक और दाहिने भागके ऊपरवाले हाथमें स्फटिक मणिकी मातृकामयी अक्षमाला धारण करते हैं। इसी प्रकार नीचेके दोनों हाथोंमें शब्दब्रह्ममयी मुरली लेकर बजाते हैं, जिनके श्रीअङ्गोंमें गायत्री छन्द-मय पीताम्बर सुशोभित है, जो श्यामवर्ण कोमल कान्तिमान् मयूरपिच्छमय मुकुट धारण करने-वाले, सर्वज्ञ तथा मुनिवरोंद्वारा सेवित हैं, उन श्रीकृष्णका चिन्तन करे। इस प्रकार लीला करनेवाले भुवनेश्वर श्रीकृष्णका ध्यान करके चार लाख मन्त्र-जप करे और पलासके फूलोंसे दशांश आहुति देकर मन्त्रोपासक बीस अक्षरवाले मन्त्रके लिये कहे हुए विधानके अनुसार पूजन करे। इस प्रकार जो मन्त्रकी उपासना करता है, वह वागीश्वर हो जाता है। उसके बिना देखे हुए शास्त्र भी गङ्गाकी लहरोंके समान स्वतः प्रस्तुत हो जाते हैं

'ॐ कृष्ण कृष्ण महाकृष्ण सर्वज्ञ त्वं प्रसीद मे। रमारमण विद्येश विद्यामाशु प्रयच्छ मे॥' (हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाकृष्ण ! आप सर्वज्ञ हैं। मुझपर प्रसन्न होइये। हे रमारमण ! हे विद्येश्वर ! मुझे शीघ्र विद्या दीजिये।) यह तैंतीस अक्षरोंवाला महाविद्याप्रद मन्त्र है। इसके नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और श्रीकृष्ण देवता हैं। मन्त्रके चारों चरणों और सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्ग-न्यास करके श्रीहरिका ध्यान करे।

ध्यान

दिव्योद्याने विवस्वत्प्रतिममणिमये मण्डपे योगपीठे
मध्ये यः सर्ववेदान्तमयसुरतरोः संनिविष्टो मुकुन्दः।
वेदैः कल्पद्रुरूपैः शिखरिशतसमालंबिकोशैश्चतुर्भि-
र्न्यायैस्तर्कैः पुराणैः स्मृतिभिरभिवृतस्तादृशैश्चामराद्यैः॥
दद्याद्बिभ्रत्कराग्रैरपि दरमुरलीपुष्पबाणेक्षुचापा-
नक्षस्पृक्पूर्णकुम्भौ सरललितवपुर्दिव्यभूषाङ्गरागः।
व्याख्यां वामे वितन्वन् स्फुटरुचिरपदो वेणुना विश्वमात्रे
शब्दब्रह्मोद्भवेन श्रियमरुणरुचिर्वल्लवीवल्लभो नः॥
(ना० पूर्व० ८१। ३४-३५)

हरि'की आराधना करता है, वह सम्पूर्ण लोकोंद्वारा पूजित होता है और उसके घरमें लक्ष्मीका स्थिर निवास होता है। सद्य (ओ) पर स्थित स्मृति (ग्) अर्थात् 'गो', केशव (अ) युक्त तोय (व्) अर्थात् 'व', धरायुग (ल्ल), 'भाय,' अग्निवल्लभा (स्वाहा)—यह (गोवल्लभाय स्वाहा) मन्त्र सात अक्षरोंका है और सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके नारद ऋषि, उष्णिक् छन्द तथा गोवल्लभ श्रीकृष्ण देवता हैं। पूर्ववत् चक्र-मन्त्रोंद्वारा पञ्चाङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

ध्येयो हरिः स कपिलागणमध्यसंस्थ-
स्ता आह्वयन् दधददक्षिणदोःस्थवेणुम्।
पाशं सयष्टिमपरत्र पयोदनीलः
पीताम्बरोऽहिरिपुपिच्छकृतावतंसः ॥
(ना० पूर्व० ८१ । ६०)

'जो कपिला गायोंके बीचमें खड़े हो उनको पुकारते हैं, बायें हाथमें मुरली और दायें हाथमें रस्सी और लाठी लिये हुए हैं, जिनकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम है, जो पीत-वस्त्र और मोर-पंखका मुकुट धारण करते हैं, उन श्यामसुन्दर श्रीहरिका ध्यान करना चाहिये।'

ध्यानके बाद, सात लाख मन्त्र-जप और गोदुग्धसे दशांश हवन करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर पूजन करे। अङ्गों-द्वारा प्रथम आवरण होता है। द्वितीय आवरणमें—सुवर्ण-पिङ्गला, गौर-पिङ्गला, रक्त-पिङ्गला, गुड-पिङ्गला, बभ्रु-वर्णा, उत्तमा कपिला, चतुष्कपिङ्गला तथा शुभ एवं उत्तम पीत-पिङ्गला—इन आठ गायोंके समुदायकी पूजा करके तीसरे और चौथे आवरणोंमें इन्द्रादि लोकेशों तथा वज्र आदि आयुधों-का पूजन करे।

इस प्रकार पूजन करके मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर मन्त्रज्ञ पुरुष उसके द्वारा कामना-पूर्तिके लिये प्रयोग करे। जो प्रति-दिन गोदुग्धसे एक सौ आठ आहुति देता है, वह पंद्रह दिनमें ही गोसमुदायसहित मुक्त हो जाता है। दशाक्षर मन्त्र-में भी यह विधि है। 'ॐ नमो भगवते श्रीगोविन्दाय' यह द्वादशाक्षर मन्त्र कहा गया है। इसके नारद ऋषि माने गये हैं। छन्द गायत्री है और गोविन्द देवता कहे गये हैं। एक, दो, चार और पाँच अक्षरों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

ध्यायेत् कल्पद्रुमूलाश्रितमणिविलसद्दिव्यसिंहासनस्थं
मेघश्यामं पिशङ्गांशुकमतिसुभगं शङ्खवेत्रे कराभ्याम्।
बिभ्राणं गोसहस्रैर्वृतममरपतिं प्रौढहस्तैककुम्भ-
प्रश्च्योतत्सौधधारास्नपितमभिनवाम्भोजपत्राभनेत्रम् ॥

'दिव्य कल्पवृक्षके नीचे मूलभागके समीप नाना प्रकारकी मणियोंसे सुशोभित दिव्य सिंहासनपर भगवान् श्रीकृष्ण विराज रहे हैं। उनकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम है, वे पीताम्बर धारण किये अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं। अपने दोनों हाथोंमें उन्होंने शङ्ख और बेंत ले रक्खे हैं। सहस्रों गायें उन्हें घेरकर खड़ी हैं। वे सम्पूर्ण देवताओंके प्रतिपालक हैं। एक प्रौढ व्यक्तिके हाथोंमें एक कलश है, उससे अमृतकी धारा झर रही है और उसीसे भगवान् स्नान कर

हरि'की आराधना करता है, वह सम्पूर्ण लोकोंद्वारा पूजित होता है और उसके घरमें लक्ष्मीका स्थिर निवास होता है। सद्य (ओ) पर स्थित स्मृति (ग्) अर्थात् 'गो', केशव (अ) युक्त तोय (व्) अर्थात् 'व', धरायुग (ल्ल), 'भाय,' अग्निवल्लभा (स्वाहा)—यह (गोवल्लभाय स्वाहा) मन्त्र सात अक्षरोंका है और सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके नारद ऋषि, उष्णिक् छन्द तथा गोवल्लभ श्रीकृष्ण देवता हैं। पूर्ववत् चक्र-मन्त्रोंद्वारा पञ्चाङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

ध्येयो हरिः स कपिलागणमध्यसंस्थ-
स्ता आह्वयन् दधदद्दक्षिणदोःस्थवेणुम्।
पाशं सयष्टिमपरत्र पयोदनीलः
पीताम्बरोऽहिरिपुपिच्छकृतावतंसः ॥
(ना० पूर्व० ८१। ६०)

'जो कपिला गायोंके बीचमें खड़े हो उनको पुकारते हैं, बायें हाथमें मुरली और दायें हाथमें रस्सी और लाठी लिये हुए हैं, जिनकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम है, जो पीत-वस्त्र और मोर-पंखका मुकुट धारण करते हैं, उन श्यामसुन्दर श्रीहरिका ध्यान करना चाहिये।'

ध्यानके बाद, सात लाख मन्त्र-जप और गोदुग्धसे दशांश हवन करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर पूजन करे। अङ्गों-द्वारा प्रथम आवरण होता है। द्वितीय आवरणमें—सुवर्ण-पिङ्गला, गौर-पिङ्गला, रक्त-पिङ्गला, गुड-पिङ्गला, बभ्रु-वर्णा, उत्तमा कपिला, चतुष्कपिङ्गला तथा शुभ एवं उत्तम पीत-पिङ्गला—इन आठ गायोंके समुदायकी पूजा करके तीसरे और चौथे आवरणोंमें इन्द्रादि लोकेशों तथा वज्र आदि आयुधों-का पूजन करे।

इस प्रकार पूजन करके मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर मन्त्रज्ञ पुरुष उसके द्वारा कामना-पूर्तिके लिये प्रयोग करे। जो प्रति-दिन गोदुग्धसे एक सौ आठ आहुति देता है, वह पंद्रह दिनमें ही गोसमुदायसहित मुक्त हो जाता है। दशाक्षर मन्त्र-में भी यह विधि है। 'ॐ नमो भगवते श्रीगोविन्दाय' यह द्वादशाक्षर मन्त्र कहा गया है। इसके नारद ऋषि माने गये हैं। छन्द गायत्री है और गोविन्द देवता कहे गये हैं। एक, दो, चार और पाँच अक्षरों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

ध्यायेत् कल्पद्रुमूलाश्रितमणिविलसद्दिव्यसिंहासनस्थं
मेघश्यामं पिशङ्गांशुकमतिसुभगं शङ्खवेत्रे कराभ्याम्।
बिभ्राणं गोसहस्रैर्वृतममरपतिं प्रौढहस्तैककुम्भ-
प्रश्च्योतत्सौधधारास्नपितमभिनवाम्भोजपत्राभनेत्रम् ॥

'दिव्य कल्पवृक्षके नीचे मूलभागके समीप नाना प्रकारकी मणियोंसे सुशोभित दिव्य सिंहासनपर भगवान् श्रीकृष्ण विराज रहे हैं। उनकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम है, वे पीताम्बर धारण किये अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं। अपने दोनों हाथोंमें उन्होंने शङ्ख और बेंत ले रक्खे हैं। सहस्रों गायें उन्हें घेरकर खड़ी हैं। वे सम्पूर्ण देवताओंके प्रतिपालक हैं। एक प्रौढ व्यक्तिके हाथोंमें एक कलश है, उससे अमृतकी धारा झर रही है और उसीसे भगवान् स्नान कर

'बाल गोपालकी पाँच वर्षकी अवस्था है, वे अत्यन्त चपल गतिसे आँगनमें दौड़ रहे हैं, उनके नेत्र भी बड़े चञ्चल हैं, किङ्किणी, वलय, हार और नूपुर आदि आभूषण विभिन्न अङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं, ऐसे सुन्दर गोपबालकको नमस्कार करो।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक आठ लाख जप और पलाशकी समिधाओं अथवा खीरसे दशांश हवन करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूलमन्त्रसे मूर्तिका संकल्प करके उसमें मन्त्रसाधक स्थिरचित्त हो भगवान् श्रीकृष्णका आवाहन और पूजन करे। चारों दिशा-विदिशाओंमें जो केसर हैं, उनमें अङ्गोंकी पूजा करे। फिर दिशाओंमे वासुदेव, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्धका तथा कोणोंमें रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा और जाम्बवतीका पूजन करे। इनके बाह्यभागोंमें लोकेशों और आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

तार (ॐ), श्री (श्रीं), भुवना (ह्रीं), काम (क्लीं), ङे विभक्त्यन्त श्रीकृष्ण शब्द अर्थात् 'श्रीकृष्णाय' ऐसा ही गोविन्द पद (गोविन्दाय), फिर 'गोपीजनवल्लभाय' तत्पश्चात् तीन पद्मा (श्रीं श्रीं श्रीं)—यह (ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीकृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं) तेईस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ऋषि आदि भी पूर्वोक्त ही हैं। सिद्ध गोपालका स्मरण करना चाहिये।

ध्यान

माधवीमण्डपासीनौ　　गरुडेनाभिपालितौ।
दिव्यक्रीडासु निरतौ रामकृष्णौ स्मरञ् जपेत्॥ ८७॥

जो माधवीलतामय मण्डपमें बैठकर दिव्य क्रीडाओंमें तत्पर हैं, श्रीगरुडजी जिनकी रक्षा कर रहे हैं, उन श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए मन्त्र-जप करना चाहिये।

श्रेष्ठ वैष्णवोंको पूर्ववत् पूजन करना चाहिये। चक्री (क्) आठवें स्वर (ॠ) से युक्त हो और उसके साथ विसर्ग भी हो तो 'कॄः' यह एकाक्षर मन्त्र होता है। 'कृष्ण' यह दो अक्षरोंका मन्त्र है। इसके आदिमें क्लीं जोड़नेपर 'क्लीं कृष्ण' यह तीन अक्षरोंका मन्त्र बनता है। वही ङे विभक्त्यन्त होनेपर चार अक्षरोंका 'क्लीं कृष्णाय' मन्त्र होता है। 'कृष्णाय नमः' यह पञ्चाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं' सम्पुटित कृष्ण पद भी अपर पञ्चाक्षर मन्त्र है; यथा—क्लीं कृष्णाय क्लीं। 'गोपालाय स्वाहा' यह षडक्षर मन्त्र कहा गया है। 'क्लीं कृष्णाय स्वाहा' यह भी दूसरा षडक्षर मन्त्र है। 'कृष्णाय गोविन्दाय' यह सप्ताक्षर मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। 'श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं' यह दूसरा सप्ताक्षर मन्त्र है। 'कृष्णाय गोविन्दाय नमः' यह दूसरा नवाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं' यह भी इतर नवाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः' यह दशाक्षर सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। 'बालवपुषे कृष्णाय स्वाहा' यह दूसरा दशाक्षर मन्त्र है। 'बालवपुषे क्लीं कृष्णाय स्वाहा' यह एकादशाक्षर मन्त्र है। तदनन्तर गोपीजन-मनोहर श्रीकृष्णका इस प्रकार ध्यान करे—

'बाल गोपालकी पाँच वर्षकी अवस्था है, वे अत्यन्त चपल गतिसे आँगनमें दौड़ रहे हैं, उनके नेत्र भी बड़े चञ्चल हैं, किङ्किणी, वलय, हार और नूपुर आदि आभूषण विभिन्न अङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं, ऐसे सुन्दर गोपबालकको नमस्कार करो।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक आठ लाख जप और पलाशकी समिधाओं अथवा खीरसे दशांश हवन करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूलमन्त्रसे मूर्तिका संकल्प करके उसमें मन्त्रसाधक स्थिरचित्त हो भगवान् श्रीकृष्णका आवाहन और पूजन करे। चारों दिशा-विदिशाओंमें जो केसर हैं, उनमें अङ्गोंकी पूजा करे। फिर दिशाओंमे वासुदेव, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्धका तथा कोणोंमें रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा और जाम्बवतीका पूजन करे। इनके बाह्यभागोंमें लोकेशों और आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

तार (ॐ), श्री (श्रीं), भुवना (ह्रीं), काम (क्लीं), ङे विभक्त्यन्त श्रीकृष्ण शब्द अर्थात् 'श्रीकृष्णाय' ऐसा ही गोविन्द पद (गोविन्दाय), फिर 'गोपीजनवल्लभाय' तत्पश्चात् तीन पद्मा (श्रीं श्रीं श्रीं)—यह (ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीकृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं) तेईस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ऋषि आदि भी पूर्वोक्त ही हैं। सिद्ध गोपालका स्मरण करना चाहिये।

ध्यान

माधवीमण्डपासीनौ गरुडेनाभिपालितौ।
दिव्यक्रीडासु निरतौ रामकृष्णौ स्मरन् जपेत्॥ ८७॥

जो माधवीलतामय मण्डपमें बैठकर दिव्य क्रीडाओंमें तत्पर हैं, श्रीगरुडजी जिनकी रक्षा कर रहे हैं, उन श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए मन्त्र-जप करना चाहिये।

श्रेष्ठ वैष्णवोंको पूर्ववत् पूजन करना चाहिये। चक्री (क्) आठवें स्वर (ॠ) से युक्त हो और उसके साथ विसर्ग भी हो तो 'कॄः' यह एकाक्षर मन्त्र होता है। 'कृष्ण' यह दो अक्षरोंका मन्त्र है। इसके आदिमें क्लीं जोड़नेपर 'क्लीं कृष्ण' यह तीन अक्षरोंका मन्त्र बनता है। वही ङे विभक्त्यन्त होनेपर चार अक्षरोंका 'क्लीं कृष्णाय' मन्त्र होता है। 'कृष्णाय नमः' यह पञ्चाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं' सम्पुटित कृष्ण पद भी अपर पञ्चाक्षर मन्त्र है; यथा—क्लीं कृष्णाय क्लीं। 'गोपालाय स्वाहा' यह षडक्षर मन्त्र कहा गया है। 'क्लीं कृष्णाय स्वाहा' यह भी दूसरा षडक्षर मन्त्र है। 'कृष्णाय गोविन्दाय' यह सप्ताक्षर मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। 'श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं' यह दूसरा सप्ताक्षर मन्त्र है। 'कृष्णाय गोविन्दाय नमः' यह दूसरा नवाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं' यह भी इतर नवाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः' यह दशाक्षर सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। 'बालवपुषे कृष्णाय स्वाहा' यह दूसरा दशाक्षर मन्त्र है। 'बालवपुषे क्लीं कृष्णाय स्वाहा' यह एकादशाक्षर मन्त्र है। तदनन्तर गोपीजन-मनोहर श्रीकृष्णका इस प्रकार ध्यान करे—

'जो अर्जुनके साथ रथपर बैठे हैं और क्षीरसागरसे लाकर ब्राह्मणके मरे पुत्रको उन्हें वापस दे रहे हैं, उन वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णका चिन्तन करना चाहिये।'

इसका एक लाख जप और घी, चीनी तथा मधु-मेवा आदि मधुर पदार्थोंमें सने हुए तिलोंसे दस हजार होम करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर अङ्ग, दिक्पाल तथा आयुधों-सहित श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर वन्ध्या स्त्रीके भी पुत्र उत्पन्न हो सकता है। 'ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' यह दूसरा अष्टाक्षर मन्त्र है। इस पञ्चब्रह्मात्मक मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, परमा गायत्री छन्द तथा परम ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म देवता कहे गये हैं। प्रणव बीज है और स्वाहा शक्ति कही गयी है। 'स्वाहा' हृदयाय नमः। सोऽहं शिरसे स्वाहा। हंसः शिखायै वषट्। हृल्लेखा कवचाय हुम्। ॐ नेत्राभ्यां वौषट्। 'हरिहर' अस्त्राय फट्। इस प्रकार अङ्गन्यास करे।

स ब्रह्मा स शिवो विप्र स हरिः सैव देवराट्।
स सर्वरूपः सर्वाख्यः सोऽक्षरः परमः स्वराट्॥
(ना० पूर्व० ८१। १०७)

'विप्रवर! वे श्रीकृष्ण ही ब्रह्मा हैं, वे ही शिव हैं, वे ही विष्णु और वे ही देवराज इन्द्र हैं। वे ही सब रूपोंमें हैं तथा सब नाम उन्हींके हैं। वे ही स्वयं प्रकाशमान अविनाशी परमात्मा हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके आठ लाख जप और दशांश होम करे। इनकी पूजा प्रणवात्मक पीठपर अङ्ग और आवरणदेवताओंके साथ करनी चाहिये। नारद! इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जानेपर साधक-शिरोमणि पुरुषको 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंका विकल्परहित ज्ञान प्राप्त होता है।

'क्लीं हृषीकेशाय नमः' यह अष्टाक्षर मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और हृषीकेश देवता हैं। सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। क्लीं बीज है तथा 'आय' शक्ति कही गयी है। बीजमन्त्रसे ही षडङ्ग-न्यास करके ध्यान करे। अथवा पुरुषोत्तम मन्त्रके लिये कही हुई सब बातें इसके लिये भी समझनी चाहिये। इसका एक लाख जप तथा घृतसे दस हजार होम करे। संमोहिनी कुसुमोंसे तर्पण करना सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करानेवाला कहा गया है। 'श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः' यह चौदह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीधर देवता, श्रीं बीज और 'आय' शक्ति है। बीजसे ही षडङ्ग-न्यास करे। इसमें भी पुरुषोत्तम मन्त्रकी ही भाँति ध्यान-पूजन आदि कहे गये हैं। एक लाख जप और घीसे ही दशांश होमका विधान है। सुगन्धित श्वेत पुष्पोंसे पूजा और होम आदि करे। विप्रेन्द्र! ऐसा करनेपर वह साक्षात् श्रीधरस्वरूप हो जाता है। 'अच्युतानन्त-गोविन्दाय नमः' यह एक मन्त्र है और 'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः' ये तीन मन्त्र हैं। प्रथमके शौनक ऋषि और विराट् छन्द है। शेष तीन मन्त्रोंके क्रमशः पराशर, व्यास और नारद ऋषि हैं। छन्द इनका भी विराट् ही है। परब्रह्मस्वरूप श्रीहरि इन सब मन्त्रोंके देवता हैं। साधक इनके बीज और शक्ति भी पूर्वोक्त ही समझे।

ध्यान

शङ्खचक्रधरं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम्॥
सर्वैरप्यायुधैर्युक्तं गरुडोपरि संस्थितम्।
सनकादिमुनीन्द्रैस्तु सर्वदेवैरुपासितम्॥
श्रीभूमिसहितं देवमुदयादित्यसन्निभम्।
प्रातरुद्यत्सहस्रांशुमण्डलोपमकुण्डलम्॥
सर्वलोकस्य रक्षार्थमनन्तं नित्यमेव हि।
अभयं वरदं देवं प्रयच्छन्तं मुदान्वितम्॥
(ना० पूर्व० ८१। १२०—१२३)

'भगवान् अच्युत शङ्ख और चक्र धारण करते हैं। वे द्युतिमान् होनेसे 'देव' कहे गये हैं। उनके चार बाहें हैं। वे किरीटसे सुशोभित हैं। उनके हाथोंमें सब प्रकारके आयुध हैं। वे गरुड़की पीठपर बैठे हैं। सनक आदि मुनीश्वर तथा सम्पूर्ण देवता उनकी उपासना करते हैं। उनके उभय पार्श्वमें श्रीदेवी तथा भूदेवी हैं। वे उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी हैं। उनके कानोंके कमनीय कुण्डल प्रातःकाल उगते हुए सूर्यदेवके मण्डलके समान अरुण प्रकाशसे सुशोभित हैं। वे वरदायक देवता हैं, सदा परमानन्दसे परिपूर्ण रहते हैं और सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाके लिये सदा ही सबको अभय प्रदान करते हैं। उनका कहीं किसी कालमें भी अन्त नहीं होता।'

'जो अर्जुनके साथ रथपर बैठे हैं और क्षीरसागरसे लाकर ब्राह्मणके मरे पुत्रको उन्हें वापस दे रहे हैं, उन वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णका चिन्तन करना चाहिये।'

इसका एक लाख जप और घी, चीनी तथा मधु-मेवा आदि मधुर पदार्थोंमें सने हुए तिलोंसे दस हजार होम करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर अङ्ग, दिक्पाल तथा आयुधों-सहित श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर वन्ध्या स्त्रीके भी पुत्र उत्पन्न हो सकता है। 'ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' यह दूसरा अष्टाक्षर मन्त्र है। इस पञ्चब्रह्मात्मक मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, परमा गायत्री छन्द तथा परम ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म देवता कहे गये हैं। प्रणव बीज है और स्वाहा शक्ति कही गयी है। 'स्वाहा' हृदयाय नमः। सोऽहं शिरसे स्वाहा। हंसः शिखायै वषट्। हृल्लेखा कवचाय हुम्। ॐ नेत्राभ्यां वौषट्। 'हरिहर' अस्त्राय फट्। इस प्रकार अङ्गन्यास करे।

स ब्रह्मा स शिवो विप्र स हरिः सैव देवराट्।
स सर्वरूपः सर्वाख्यः सोऽक्षरः परमः स्वराट्॥
(ना० पूर्व० ८१। १०७)

'विप्रवर! वे श्रीकृष्ण ही ब्रह्मा हैं, वे ही शिव हैं, वे ही विष्णु और वे ही देवराज इन्द्र हैं। वे ही सब रूपोंमें हैं तथा सब नाम उन्हींके हैं। वे ही स्वयं प्रकाशमान अविनाशी परमात्मा हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके आठ लाख जप और दशांश होम करे। इनकी पूजा प्रणवात्मक पीठपर अङ्ग और आवरणदेवताओंके साथ करनी चाहिये। नारद! इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जानेपर साधक-शिरोमणि पुरुषको 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंका विकल्परहित ज्ञान प्राप्त होता है।

'क्लीं हृषीकेशाय नमः' यह अष्टाक्षर मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और हृषीकेश देवता हैं। सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। क्लीं बीज है तथा 'आय' शक्ति कही गयी है। बीजमन्त्रसे ही षडङ्ग-न्यास करके ध्यान करे। अथवा पुरुषोत्तम मन्त्रके लिये कही हुई सब बातें इसके लिये भी समझनी चाहिये। इसका एक लाख जप तथा घृतसे दस हजार होम करे। संमोहिनी कुसुमोंसे तर्पण करना सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करानेवाला कहा गया है। 'श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः' यह चौदह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीधर देवता, श्रीं बीज और 'आय' शक्ति है। बीजसे ही षडङ्ग-न्यास करे। इसमें भी पुरुषोत्तम मन्त्रकी ही भाँति ध्यान-पूजन आदि कहे गये हैं। एक लाख जप और घीसे ही दशांश होमका विधान है। सुगन्धित श्वेत पुष्पोंसे पूजा और होम आदि करे। विप्रेन्द्र! ऐसा करनेपर वह साक्षात् श्रीधरस्वरूप हो जाता है। 'अच्युतानन्त-गोविन्दाय नमः' यह एक मन्त्र है और 'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः' ये तीन मन्त्र हैं। प्रथमके शौनक ऋषि और विराट् छन्द है। शेष तीन मन्त्रोंके क्रमशः पराशर, व्यास और नारद ऋषि हैं। छन्द इनका भी विराट् ही है। परब्रह्मस्वरूप श्रीहरि इन सब मन्त्रोंके देवता हैं। साधक इनके बीज और शक्ति भी पूर्वोक्त ही समझे।

ध्यान

शङ्खचक्रधरं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम्॥
सर्वैरप्यायुधैर्युक्तं गरुडोपरि संस्थितम्।
सनकादिमुनीन्द्रैस्तु सर्वदेवैरुपासितम्॥
श्रीभूमिसहितं देवमुदयादित्यसन्निभम्।
प्रातरुद्यत्सहस्रांशुमण्डलोपमकुण्डलम्॥
सर्वलोकस्य रक्षार्थमनन्तं नित्यमेव हि।
अभयं वरदं देवं प्रयच्छन्तं मुदान्वितम्॥
(ना० पूर्व० ८१। १२०—१२३)

'भगवान् अच्युत शङ्ख और चक्र धारण करते हैं। वे द्युतिमान् होनेसे 'देव' कहे गये हैं। उनके चार बाहें हैं। वे किरीटसे सुशोभित हैं। उनके हाथोंमें सब प्रकारके आयुध हैं। वे गरुड़की पीठपर बैठे हैं। सनक आदि मुनीश्वर तथा सम्पूर्ण देवता उनकी उपासना करते हैं। उनके उभय पार्श्वमें श्रीदेवी तथा भूदेवी हैं। वे उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी हैं। उनके कानोंके कमनीय कुण्डल प्रातःकाल उगते हुए सूर्यदेवके मण्डलके समान अरुण प्रकाशसे सुशोभित हैं। वे वरदायक देवता हैं, सदा परमानन्दसे परिपूर्ण रहते हैं और सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाके लिये सदा ही सबको अभय प्रदान करते हैं। उनका कहीं किसी कालमें भी अन्त नहीं होता।'

'जिनका दाहिना हाथ व्याख्याकी मुद्रासे सुशोभित है, जो उत्तम योगपीठासनपर विराजमान हैं, जिन्होंने अपना बायाँ हाथ बायें घुटनेपर रख छोड़ा है, जो उत्तम विद्याके भण्डार, ब्राह्मणसमूहसे घिरे हुए तथा प्रसन्नचित्त हैं, जिनकी अङ्गकान्ति कमलके समान तथा चरित्र अत्यन्त पुण्यमय है, उन पराशरनन्दन वेदव्यासका सिद्धिके लिये चिन्तन करे। आठ हजार मन्त्रजप और खीरसे दशांश होम करे। पूर्वोक्त पीठपर व्यासका पूजन करे। पहले अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये। पूर्व आदि चार दिशाओंमें क्रमशः पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तका तथा ईशान आदि कोणोंमें क्रमशः श्रीशुकदेव, रोमहर्षण, उग्रश्रवा तथा अन्य मुनियोंका पूजन करे। इनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि दिक्पालों और वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर मन्त्रोपासक पुरुष कवित्वशक्ति, सुन्दर संतान, व्याख्यान-शक्ति, कीर्ति तथा सम्पदाओंकी निधि प्राप्त कर लेता है।

श्रीनारदजीको भगवान् शङ्करसे प्राप्त हुए युगलशरणागति-मन्त्र तथा राधाकृष्ण-युगलसहस्रनामस्तोत्रका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद! क्या तुम जानते हो कि पूर्व-जन्ममें तुमने साक्षात् भगवान् शङ्करसे युगल-मन्त्रका उपदेश प्राप्त किया था। श्रीकृष्ण-मन्त्रका रहस्य, जिसे तुम भूल चुके हो, स्मरण तो करो।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! परम बुद्धिमान् सनत्कुमारजीके द्वारा ऐसा कहनेपर देवर्षि नारदने ध्यानमें स्थित हो अपने पूर्व-जन्मके चिरन्तन चरित्रको शीघ्र जान लिया। तब उन्होंने मुखसे आन्तरिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—'भगवन्! पूर्व-कल्पका और वृत्तान्त तो मुझे स्मरण हो आया है; परंतु युगल-मन्त्रका लाभ किस प्रकार हुआ, यह याद नहीं आता।' महात्मा नारदका यह वचन सुनकर भगवान् सनत्कुमारने सब बातें यथावत्-रूपसे बतलाना आरम्भ किया।

सनत्कुमारजी बोले—ब्रह्मन्! सुनो, इस सारस्वत कल्पसे पचीसवें कल्प पूर्वकी बात है, तुम कश्यपजीके पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे। उस समय भी तुम्हारा नाम नारद ही था। एक दिन तुम भगवान् श्रीकृष्णका परम तत्त्व पूछनेके लिये कैलास पर्वतपर भगवान् शिवके समीप गये। वहाँ तुम्हारे प्रश्न करनेपर, महादेवजीने स्वयं जिसका साक्षात्कार किया था, श्रीहरिकी नित्य-लीलासे सम्बन्ध रखनेवाले उस परम रहस्यका तुमसे यथार्थरूपमें वर्णन किया। तब तुमने श्रीहरिकी नित्य-लीलाका दर्शन करनेके लिये भगवान् शङ्करसे पुनः प्रार्थना की। तब भगवान् सदाशिव इस प्रकार बोले—'गोपीजनवल्लभचरणाञ्छरणं प्रपद्ये'[1] यह मन्त्र है। इस मन्त्रके सुरभि ऋषि, गायत्री छन्द और गोपीवल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण देवता कहे गये हैं, 'प्रपन्नोऽस्मि' ऐसा कहकर भगवान्‌की शरणागतिरूप भक्ति प्राप्त करनेके लिये इसका विनियोग बताया गया है। विप्रवर! इसका सिद्धादि-शोधन नहीं होता। इसके लिये न्यासकी कल्पना भी नहीं की गयी है। केवल इस मन्त्रका चिन्तन ही भगवान्‌की नित्य लीलाको तत्काल प्रकाशित कर देता है। गुरुसे मन्त्र ग्रहण करके उनमे भक्तिभाव रखते हुए अपने धर्मपालनमें संलग्न हो गुरुदेवकी अपने ऊपर पूर्ण कृपा समझे और सेवाओंसे गुरुको संतुष्ट करे। साधुपुरुषोंके धर्मोंकी, जो शरणागतोंके भयको दूर करनेवाले हैं, शिक्षा ले। इहलोक और परलोककी चिन्ता छोड़कर उन सिद्धिदायक धर्मोंको अपनावे। 'इहलोक-का सुख, भोग और आयु पूर्वकर्मोंके अधीन हैं, कर्मानुसार उनकी व्यवस्था भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही करेंगे।' ऐसा दृढ़ विचार कर अपने मन और बुद्धिके द्वारा निरन्तर नित्यलीलापरायण श्रीकृष्णका चिन्तन करे। दिव्य अर्चाविग्रहोंके रूपमें भी भगवान्‌का अवतार होता है। अतः उन विग्रहोंकी सेवा-पूजा-द्वारा सदा श्रीकृष्णकी आराधना करे। भगवान्‌की शरण चाहनेवाले प्रपन्न भक्तोंको अनन्यभावसे उनका चिन्तन करना चाहिये और विद्वानोको भगवान्‌का आश्रय रखकर देह-गेह आदिकी ओरसे उदासीन रहना चाहिये। गुरुकी अवहेलना, साधु-महात्माओंकी निन्दा, भगवान् शिव और विष्णुमें भेद करना, वेदनिन्दा, भगवन्नामके बलपर पापाचार करना, भगवन्नामकी महिमाको अर्थवाद समझना, नाम लेनेमे पाखण्ड फैलाना, आलसी और नास्तिकको भगवन्नामका उपदेश देना,

[1] गोपीजनवल्लभ श्रीराधाकृष्णके चरणोंकी शरण लेता हूँ।

'जिनका दाहिना हाथ व्याख्याकी मुद्रासे सुशोभित है, जो उत्तम योगपीठासनपर विराजमान हैं, जिन्होंने अपना बायाँ हाथ बायें घुटनेपर रख छोड़ा है, जो उत्तम विद्याके भण्डार, ब्राह्मणसमूहसे घिरे हुए तथा प्रसन्नचित्त हैं, जिनकी अङ्गकान्ति कमलके समान तथा चरित्र अत्यन्त पुण्यमय है, उन पराशरनन्दन वेदव्यासका सिद्धिके लिये चिन्तन करे। आठ हजार मन्त्रजप और खीरसे दशांश होम करे। पूर्वोक्त पीठपर व्यासका पूजन करे। पहले अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये। पूर्व आदि चार दिशाओंमें क्रमशः पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तका तथा ईशान आदि कोणोंमें क्रमशः श्रीशुकदेव, रोमहर्षण, उग्रश्रवा तथा अन्य मुनियोंका पूजन करे। इनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि दिक्पालों और वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर मन्त्रोपासक पुरुष कवित्वशक्ति, सुन्दर संतान, व्याख्यान-शक्ति, कीर्ति तथा सम्पदाओंकी निधि प्राप्त कर लेता है।

श्रीनारदजीको भगवान् शङ्करसे प्राप्त हुए युगलशरणागति-मन्त्र तथा राधाकृष्ण-युगलसहस्रनामस्तोत्रका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद! क्या तुम जानते हो कि पूर्व-जन्ममें तुमने साक्षात् भगवान् शङ्करसे युगल-मन्त्रका उपदेश प्राप्त किया था। श्रीकृष्ण-मन्त्रका रहस्य, जिसे तुम भूल चुके हो, स्मरण तो करो।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! परम बुद्धिमान् सनत्कुमारजीके द्वारा ऐसा कहनेपर देवर्षि नारदने ध्यानमें स्थित हो अपने पूर्व-जन्मके चिरन्तन चरित्रको शीघ्र जान लिया। तब उन्होंने मुखसे आन्तरिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—'भगवन्! पूर्व-कल्पका और वृत्तान्त तो मुझे स्मरण हो आया है; परंतु युगल-मन्त्रका लाभ किस प्रकार हुआ, यह याद नहीं आता।' महात्मा नारदका यह वचन सुनकर भगवान् सनत्कुमारने सब बातें यथावत्-रूपसे बतलाना आरम्भ किया।

सनत्कुमारजी बोले—ब्रह्मन्! सुनो, इस सारस्वत कल्पसे पचीसवें कल्प पूर्वकी बात है, तुम कश्यपजीके पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे। उस समय भी तुम्हारा नाम नारद ही था। एक दिन तुम भगवान् श्रीकृष्णका परम तत्त्व पूछनेके लिये कैलास पर्वतपर भगवान् शिवके समीप गये। वहाँ तुम्हारे प्रश्न करनेपर, महादेवजीने स्वयं जिसका साक्षात्कार किया था, श्रीहरिकी नित्य-लीलासे सम्बन्ध रखनेवाले उस परम रहस्यका तुमसे यथार्थरूपमें वर्णन किया। तब तुमने श्रीहरिकी नित्य-लीलाका दर्शन करनेके लिये भगवान् शङ्करसे पुनः प्रार्थना की। तब भगवान् सदाशिव इस प्रकार बोले—'गोपीजनवल्लभचरणाञ्छरणं प्रपद्ये'[1] यह मन्त्र है। इस मन्त्रके सुरभि ऋषि, गायत्री छन्द और गोपीवल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण देवता कहे गये हैं, 'प्रपन्नोऽस्मि' ऐसा कहकर भगवान्‌की शरणागतिरूप भक्ति प्राप्त करनेके लिये इसका विनियोग बताया गया है। विप्रवर! इसका सिद्धादि-शोधन नहीं होता। इसके लिये न्यासकी कल्पना भी नहीं की गयी है। केवल इस मन्त्रका चिन्तन ही भगवान्‌की नित्य लीलाको तत्काल प्रकाशित कर देता है। गुरुसे मन्त्र ग्रहण करके उनमें भक्तिभाव रखते हुए अपने धर्मपालनमें संलग्न हो गुरुदेवकी अपने ऊपर पूर्ण कृपा समझे और सेवाओंसे गुरुको संतुष्ट करे। साधुपुरुषोंके धर्मोंकी, जो शरणागतोंके भयको दूर करनेवाले हैं, शिक्षा ले। इहलोक और परलोककी चिन्ता छोड़कर उन सिद्धिदायक धर्मोंको अपनावे। 'इहलोक-का सुख, भोग और आयु पूर्वकर्मोंके अधीन हैं, कर्मानुसार उनकी व्यवस्था भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही करेंगे।' ऐसा दृढ़ विचार कर अपने मन और बुद्धिके द्वारा निरन्तर नित्यलीलापरायण श्रीकृष्णका चिन्तन करे। दिव्य अर्चाविग्रहोंके रूपमें भी भगवान्‌का अवतार होता है। अतः उन विग्रहोंकी सेवा-पूजा-द्वारा सदा श्रीकृष्णकी आराधना करे। भगवान्‌की शरण चाहनेवाले प्रपन्न भक्तोंको अनन्यभावसे उनका चिन्तन करना चाहिये और विद्वानोंको भगवान्‌का आश्रय रखकर देह-गेह आदिकी ओरसे उदासीन रहना चाहिये। गुरुकी अवहेलना, साधु-महात्माओंकी निन्दा, भगवान् शिव और विष्णुमें भेद करना, वेदनिन्दा, भगवन्नामके बलपर पापाचार करना, भगवन्नामकी महिमाको अर्थवाद समझना, नाम लेनेमें पाखण्ड फैलाना, आलसी और नास्तिकको भगवन्नामका उपदेश देना,

[1] गोपीजनवल्लभ श्रीराधाकृष्णके चरणोंकी शरण लेता हूँ।

इन्द्रियोंके नियन्ता और प्रेरक, ३६. **क्रीडामनुजबालकः**= लीलाके लिये मनुष्य-बालकका रूप धारण किये हुए।

३७. **लीलाविध्वस्तशकटः**=अनायास ही चरणोंके स्पर्शसे छकड़ेको उलटकर उसमे स्थित असुरका नाश करनेवाले, ३८. **वेदमन्त्राभिषेचितः**=यशोदा मैयाकी प्रेरणासे बालारिष्टनिवारणके लिये ब्राह्मणोंद्वारा वेदमन्त्रसे अभिषिक्त, ३९. **यशोदानन्दनः**=यशोदा मैयाको आनन्द देनेवाले, ४०. **कान्तः**=कमनीय स्वरूप, ४१. **मुनिकोटिनिषेवितः**=करोड़ों मुनियोंद्वारा सेवित।

४२. **नित्यं मधुवनावासी**=मधुवनमें नित्य निवास करनेवाले, ४३. **वैकुण्ठः**=वैकुण्ठधामके अधिपति विष्णु, ४४. **सम्भवः**=सबकी उत्पत्तिके स्थान, ४५. **क्रतुः**= यज्ञस्वरूप, ४६. **रमापतिः**=लक्ष्मीपति, ४७. **यदुपतिः**= यदुवंशियोंके स्वामी, ४८. **मुरारिः**=मुर दैत्यके नाशक, ४९. **मधुसूदनः**=मधुनामक दैत्यको मारनेवाले।

५०. **माधवः**=यदुवंशान्तर्गत मधुकुलमें प्रकट, ५१. **मानहारी**=अभिमान और अहंकारका नाश करनेवाले, ५२. **श्रीपतिः**=लक्ष्मीके स्वामी, ५३. **भूधरः**=शेषनाग-रूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले, ५४. **प्रभुः**=सर्वसमर्थ, ५५. **बृहद्वनमहालीलः**=महावनमें बड़ी-बड़ी लीलाएँ करनेवाले, ५६. **नन्दसूनुः**=नन्दजीके पुत्र, ५७. **महासनः**= अनन्त शेषरूपी महान् आसनपर विराजनेवाले।

५८. **तृणावर्तप्राणहारी**=तृणावर्त नामक दैत्यको मारनेवाले, ५९. **यशोदाविस्मयप्रदः**=अपनी अद्भुत लीलाओंसे यशोदा मैयाको आश्चर्यमें डाल देनेवाले, ६०. **त्रैलोक्यवक्त्रः**= अपने मुखमे तीनों लोकोंको दिखानेवाले, ६१. **पद्माक्षः**= विकसित कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले, ६२. **पद्महस्तः**= हाथमें कमल धारण करनेवाले, ६३. **प्रियङ्करः**=सबका प्रिय कार्य करनेवाले।

६४. **ब्रह्मण्यः**=ब्राह्मण-हितकारी, ६५. **धर्मगोप्ता**= धर्मकी रक्षा करनेवाले, ६६. **भूपतिः**=पृथ्वीके स्वामी, ६७. **श्रीधरः**=वक्षःस्थलमे लक्ष्मीको धारण करनेवाले, ६८. **स्वराट्**=स्वयप्रकाश, ६९. **अजाध्यक्षः**=ब्रह्माजीके स्वामी, ७०. **शिवाध्यक्षः**=भगवान् शिवके स्वामी, ७१. **धर्माध्यक्षः**=धर्मके अधिपति, ७२. **महेश्वरः**=परमेश्वर।

७३. **वेदान्तवेद्यः**=उपनिषदोंद्वारा जाननेयोग्य परमात्मा, ७४. **ब्रह्मस्थः**=वेदमे स्थित, ७५. **प्रजापतिः**=सम्पूर्ण जीवोंके पालक, ७६. **अमोघदृक्**=जिनकी दृष्टि कभी चूकती नहीं ऐसे सर्वसाक्षी, ७७. **गोपीकरावलम्बी**= गोपियोंके हाथको पकड़कर नाचनेवाले, ७८. **गोपबालकसुप्रियः**=गोपबालकोंके अत्यन्त प्रियतम।

७९. **बलानुयायी**=बलरामजीका अनुकरण करनेवाले, ८०. **बलवान्**=बली, ८१. **श्रीदामप्रियः**=श्रीदामाके प्रिय सखा, ८२. **आत्मवान्**=मनको वशमें करनेवाले, ८३. **गोपीगृहाङ्गणरतिः**=गोपियोके घर और आँगनमें खेलनेवाले, ८४. **भद्रः**=कल्याणस्वरूप, ८५. **सुश्लोकमङ्गलः**=अपने लोकपावन सुयशसे सबका मङ्गल करनेवाले।

८६. **नवनीतहरः**=माखनका हरण करनेवाले, ८७. **बालः**=बाल्यावस्थासे विभूषित, ८८. **नवनीतप्रियाशनः**= मक्खन जिनका प्यारा भोजन है, ८९. **बालवृन्दी**=गोप-बालकोंके समुदायको साथ रखनेवाले, ९०. **मर्कवृन्दी**= वानरोंके झुंडके साथ खेलनेवाले, ९१. **चकिताक्षः**=आश्चर्य-युक्त चञ्चल नेत्रोंसे देखनेवाले, ९२. **पलायितः**=मैयाकी साँटीके भयसे भाग जानेवाले।

९३. **यशोदातर्जितः**=यशोदा मैयाकी डाँट सहनेवाले, ९४. **कम्पी**=मैया मारेगी इस भयसे काँपनेवाले, ९५. **मायारुदितशोभनः**=लीलाकृत रुदनसे सुशोभित, ९६. **दामोदरः**= मैयाद्वारा रस्सीसे कमरमें बाँधे जानेवाले, ९७. **अप्रमेयात्मा**= जिसकी कोई माप नहीं ऐसे स्वरूपसे युक्त, ९८. **दयालुः**= सबपर दया करनेवाले, ९९. **भक्तवत्सलः**=भक्तोंसे प्यार करनेवाले।

१००. **उलूखले सुबद्धः**=ऊखलमें अच्छी तरह बँधे हुए, १०१. **नम्रशिरा**=झुके मस्तकवाले, १०२. **गोपीकदर्थितः**=गोपियोंद्वारा यशोदा मैयाके पास जिनके बाल-चापल्यकी शिकायत की गयी है वे, १०३. **वृक्षभङ्गी**= यमलार्जुन नामक वृक्षोको भङ्ग करनेवाले, १०४. **शोकभङ्गी**= स्वयं सुरक्षित रहकर स्वजनोंका शोक-भङ्ग करनेवाले, १०५. **धनदात्मजमोक्षणः**=कुबेरपुत्रोंका उद्धार करनेवाले।

१०६. **देवर्षिवचनश्लाघी**=देवर्षि नारदके वचनका आदर करनेवाले, १०७. **भक्तवात्सल्यसागरः**=भक्तवत्सलताके समुद्र, १०८. **व्रजकोलाहलकरः**=अपनी बालोचित क्रीड़ाओंसे व्रजमें कोलाहल मचा देनेवाले, १०९. **व्रजानन्दविवर्धनः**=व्रजवासियोंके आनन्दकी वृद्धि करनेवाले।

११०. **गोपात्मा**=गोपस्वरूप, १११. **प्रेरकः**=इन्द्रिय,

इन्द्रियोंके नियन्ता और प्रेरक, ३६. **क्रीडामनुजबालकः**= लीलाके लिये मनुष्य-बालकका रूप धारण किये हुए।

३७. **लीलाविध्वस्तशकटः**=अनायास ही चरणोंके स्पर्शसे छकड़ेको उलटकर उसमे स्थित असुरका नाश करनेवाले, ३८. **वेदमन्त्राभिषेचितः**=यशोदा मैयाकी प्रेरणासे बालारिष्टनिवारणके लिये ब्राह्मणोंद्वारा वेदमन्त्रसे अभिषिक्त, ३९. **यशोदानन्दनः**=यशोदा मैयाको आनन्द देनेवाले, ४०. **कान्तः**=कमनीय स्वरूप, ४१. **मुनिकोटिनिषेवितः**=करोड़ों मुनियोंद्वारा सेवित।

४२. **नित्यं मधुवनावासी**=मधुवनमें नित्य निवास करनेवाले, ४३. **वैकुण्ठः**=वैकुण्ठधामके अधिपति विष्णु, ४४. **सम्भवः**=सबकी उत्पत्तिके स्थान, ४५. **क्रतुः**= यज्ञस्वरूप, ४६. **रमापतिः**=लक्ष्मीपति, ४७. **यदुपतिः**= यदुवंशियोंके स्वामी, ४८. **मुरारिः**=मुर दैत्यके नाशक, ४९. **मधुसूदनः**=मधुनामक दैत्यको मारनेवाले।

५०. **माधवः**=यदुवंशान्तर्गत मधुकुलमें प्रकट, ५१. **मानहारी**=अभिमान और अहंकारका नाश करनेवाले, ५२. **श्रीपतिः**=लक्ष्मीके स्वामी, ५३. **भूधरः**=शेषनाग-रूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले, ५४. **प्रभुः**=सर्वसमर्थ, ५५. **बृहद्वनमहालीलः**=महावनमें बड़ी-बड़ी लीलाएँ करनेवाले, ५६. **नन्दसूनुः**=नन्दजीके पुत्र, ५७. **महासनः**= अनन्त शेषरूपी महान् आसनपर विराजनेवाले।

५८. **तृणावर्तप्राणहारी**=तृणावर्त नामक दैत्यको मारनेवाले, ५९. **यशोदाविस्मयप्रदः**=अपनी अद्भुत लीलाओंसे यशोदा मैयाको आश्चर्यमें डाल देनेवाले, ६०. **त्रैलोक्यवक्त्रः**= अपने मुखमे तीनों लोकोंको दिखानेवाले, ६१. **पद्माक्षः**= विकसित कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले, ६२. **पद्महस्तः**= हाथमें कमल धारण करनेवाले, ६३. **प्रियङ्करः**=सबका प्रिय कार्य करनेवाले।

६४. **ब्रह्मण्यः**=ब्राह्मण-हितकारी, ६५. **धर्मगोप्ता**= धर्मकी रक्षा करनेवाले, ६६. **भूपतिः**=पृथ्वीके स्वामी, ६७. **श्रीधरः**=वक्षःस्थलमें लक्ष्मीको धारण करनेवाले, ६८. **स्वराट्**=स्वयंप्रकाश, ६९. **अजाध्यक्षः**=ब्रह्माजीके स्वामी, ७०. **शिवाध्यक्षः**=भगवान् शिवके स्वामी, ७१. **धर्माध्यक्षः**=धर्मके अधिपति, ७२. **महेश्वरः**=परमेश्वर।

७३. **वेदान्तवेद्यः**=उपनिषदोंद्वारा जाननेयोग्य परमात्मा, ७४. **ब्रह्मस्थः**=वेदमे स्थित, ७५. **प्रजापतिः**=सम्पूर्ण जीवोंके पालक, ७६. **अमोघदृक्**=जिनकी दृष्टि कभी चूकती नहीं ऐसे सर्वसाक्षी, ७७. **गोपीकरावलम्बी**= गोपियोंके हाथको पकड़कर नाचनेवाले, ७८. **गोपबालकसुप्रियः**=गोपबालकोंके अत्यन्त प्रियतम।

७९. **बलानुयायी**=बलरामजीका अनुकरण करनेवाले, ८०. **बलवान्**=बली, ८१. **श्रीदामप्रियः**=श्रीदामाके प्रिय सखा, ८२. **आत्मवान्**=मनको वशमें करनेवाले, ८३. **गोपीगृहाङ्गणरतिः**=गोपियोके घर और आँगनमें खेलनेवाले, ८४. **भद्रः**=कल्याणस्वरूप, ८५. **सुश्लोकमङ्गलः**=अपने लोकपावन सुयशसे सबका मङ्गल करनेवाले।

८६. **नवनीतहरः**=माखनका हरण करनेवाले, ८७. **बालः**=बाल्यावस्थासे विभूषित, ८८. **नवनीतप्रियाशनः**= मक्खन जिनका प्यारा भोजन है, ८९. **बालवृन्दी**=गोप-बालकोंके समुदायको साथ रखनेवाले, ९०. **मर्कवृन्दी**= वानरोंके झुंडके साथ खेलनेवाले, ९१. **चकिताक्षः**=आश्चर्य-युक्त चञ्चल नेत्रोंसे देखनेवाले, ९२. **पलायितः**=मैयाकी साँटीके भयसे भाग जानेवाले।

९३. **यशोदातर्जितः**=यशोदा मैयाकी डाँट सहनेवाले, ९४. **कम्पी**=मैया मारेगी इस भयसे काँपनेवाले, ९५. **मायारुदितशोभनः**=लीलाकृत रुदनसे सुशोभित, ९६. **दामोदरः**= मैयाद्वारा रस्सीसे कमरमें बाँधे जानेवाले, ९७. **अप्रमेयात्मा**= जिसकी कोई माप नहीं ऐसे स्वरूपसे युक्त, ९८. **दयालुः**= सबपर दया करनेवाले, ९९. **भक्तवत्सलः**=भक्तोंसे प्यार करनेवाले।

१००. **उलूखले सुबद्धः**=ऊखलमें अच्छी तरह बँधे हुए, १०१. **नम्रशिराः**=झुके मस्तकवाले, १०२. **गोपीकदर्थितः**=गोपियोंद्वारा यशोदा मैयाके पास जिनके बाल-चापल्यकी शिकायत की गयी है वे, १०३. **वृक्षभङ्गी**= यमलार्जुन नामक वृक्षोको भङ्ग करनेवाले, १०४. **शोकभङ्गी**= स्वयं सुरक्षित रहकर स्वजनोंका शोक-भङ्ग करनेवाले, १०५. **धनदात्मजमोक्षणः**=कुबेरपुत्रोंका उद्धार करनेवाले।

१०६. **देवर्षिवचनश्लाघी**=देवर्षि नारदके वचनका आदर करनेवाले, १०७. **भक्तवात्सल्यसागरः**=भक्तवत्सलताके समुद्र, १०८. **व्रजकोलाहलकरः**=अपनी बालोचित क्रीड़ाओंसे व्रजमें कोलाहल मचा देनेवाले, १०९. **व्रजानन्दविवर्धनः**=व्रजवासियोंके आनन्दकी वृद्धि करनेवाले।

११०. **गोपात्मा**=गोपस्वरूप, १११. **प्रेरकः**=इन्द्रिय,

विदीर्ण करनेवाले, **१८०. गोपगोप्ता**=ग्वालोंके रक्षक, **१८१. दावाग्निपरिशोषकः**=दावानलका शोषण करनेवाले।

१८२. गोपकन्यावस्त्रहारी=गोपकुमारियोंके चीर हरण करनेवाले, **१८३. गोपकन्यावरप्रदः**=गोपकन्याओंको वर देनेवाले, **१८४. यज्ञपत्न्यन्नभोजी**=यज्ञपत्नियोंके अन्न भोजन करनेवाले, **१८५. मुनिमानापहारकः**=अपनेको मुनि माननेवाले ब्राह्मणोके अभिमानको दूर करनेवाले।

१८६. जलेशमानमथनः=जलके स्वामी वरुणका मानमर्दन करनेवाले, **१८७. नन्दगोपालजीवनः**=अजगरसे छुडाकर नन्दगोपको जीवन देनेवाले, **१८८. गन्धर्वशापमोक्ता**=अजगररूपमें आये हुए गन्धर्व(विद्याधर)को शापसे छुडानेवाले, **१८९. शङ्खचूडशिरोहरः**=शङ्खचूड नामक गुह्यकका मस्तक काट लेनेवाले।

१९०. वंशीवटी=वंशीवटके समीप लीला करनेवाले, **१९१. वेणुवादी**=वंशी बजानेवाले, **१९२. गोपीचिन्तापहारकः**=गोपियोकी चिन्ताको दूर करनेवाले, **१९३. सर्वगोप्ता**=सबके रक्षक, **१९४. समाह्वानः**=सबके द्वारा पुकारे जानेवाले, **१९५. सर्वगोपीमनोरथः**=सम्पूर्ण गोपाङ्गनाओंके अभीष्ट।

१९६. व्यङ्ग्यधर्मप्रवक्ता=व्यङ्ग्योक्तिद्वारा धर्मका उपदेश देनेवाले, **१९७. गोपीमण्डलमोहनः**=गोपसुन्दरियोंके समुदायको मोहित करनेवाले, **१९८. रासक्रीडारसास्वादी**=रासक्रीडाके रसका आस्वादन करनेवाले, **१९९. रसिकः**=रसका अनुभव करनेवाले, **२००. राधिकाधवः**=श्रीराधाके प्राणनाथ।

२०१. किशोरीप्राणनाथः=श्रीकिशोरीजीके प्राणवल्लभ, **२०२. वृषभानुसुताप्रियः**=वृषभानुनन्दिनीके प्यारे, **२०३. सर्वगोपीजनानन्दी**=सम्पूर्ण गोपीजनोको आनन्द देनेवाले, **२०४. गोपीजनविमोहनः**=गोपाङ्गनाओंके मनको मोह लेनेवाले।

२०५. गोपिकागीतचरितः=गोपाङ्गनाओंद्वारा गाये हुए पावन चरित्रवाले, **२०६. गोपीनर्तनलालसः**=गोपियोंके रासनृत्यकी अभिलाषा रखनेवाले, **२०७. गोपीस्कन्धाश्रितकरः**=गोपीके कंधेपर हाथ रखकर चलनेवाले, **२०८. गोपिकाचुम्बनप्रियः**=यशोदा आदि मातृस्थानीया वात्सल्यवती गोपियोंके द्वारा किया जानेवाला मुखचुम्बन जिन्हे प्रिय है वे श्यामसुन्दर।

२०९. गोपिकामार्जितमुखः=गोपाङ्गनाएँ अपने अञ्चलसे जिनका मुख पोंछती है वे, **२१०. गोपीव्यजनवीजितः**=गोपियाँ जिन्हें पंखा डुलाकर आराम पहुँचाती हैं वे, **२११. गोपिकाकेशसंस्कारी**=गोपिकाके केशोंको सँवारनेवाले, **२१२. गोपिकापुष्पसंस्तरः**=गोपिकाका फूलोंसे शृङ्गार करनेवाले।

२१३. गोपिकाहृदयालम्बी=गोपीके हृदयका आश्रय लेनेवाले, **२१४. गोपीवहनतत्परः**=गोपी (श्रीराधा) को कंधेपर बिठाकर ढोनेके लिये प्रस्तुत, **२१५. गोपिकामदहारी**=गोपाङ्गनाओंके अभिमानको चूर्ण करनेवाले, **२१६. गोपिकापरमार्जितः**=गोपाङ्गनाओंको परम फलके रूपमें प्राप्त।

२१७. गोपकाकृतसल्लीलः=रासलीलामें अन्तर्धान हो जानेपर गोपिकाओंने जिनकी पवित्र लीलाओंका अनुकरण किया था वे श्रीकृष्ण, **२१८. गोपिकासंस्मृतप्रियः**=गोपिकाओंद्वारा निरन्तर चिन्तन किये जानेवाले प्रियतम, **२१९. गोपिकावन्दितपदः**=गोपाङ्गनाओंद्वारा वन्दित चरणोंवाले, **२२०. गोपिकावशवर्तनः**=गोपसुन्दरियोंके वशमें रहनेवाले।

२२१. राधापराजितः=श्रीराधारानीसे हार मान लेनेवाले, **२२२. श्रीमान्**=शोभाशाली, **२२३. निकुञ्जे सुविहारवान्**=वृन्दावनके कुञ्जमें सुन्दर लीला करनेवाले, **२२४. कुञ्जप्रियः**=निकुञ्जके प्रेमी, **२२५. कुञ्जवासी**=कुञ्जमे निवास करनेवाले, **२२६. वृन्दावनविकाशनः**=वृन्दावनको प्रकाशित करनेवाले।

२२७. यमुनाजलसिक्ताङ्गः=यमुनाजीके जलसे अभिषिक्त अङ्गोंवाले, **२२८. यमुनासौख्यदायकः**=यमुनाजीको सुख देनेवाले, **२२९. शशिसंस्तम्भनः**=रासलीलाकी रात्रिमें चन्द्रमाकी गतिको रोक देनेवाले, **२३०. शूरः**=अखण्ड शौर्यसम्पन्न, **२३१. कामी**=प्रेमी भक्तोंसे मिलनेकी कामनावाले, **२३२. कामविमोहनः**=अपनी दिव्य लीलाओंसे कामदेवको विमोहित कर देनेवाले।

२३३. कामाद्यः=कामदेवके आदिकारण, **२३४. कामनाथः**=कामके स्वामी, **२३५. काममानसभेदनः**=कामदेवके भी हृदयका भेदन करनेवाले, **२३६. कामदः**=इच्छानुरूप भोग देनेवाले, **२३७. कामरूपः**=भक्तजनोंकी कामनाके अनुरूप रूप धारण करनेवाले, **२३८. कामिनीकामसंचयः**=गोपकामिनियोंके प्रेमका सग्रह करनेवाले।

२३९. नित्यक्रीडः=नित्य खेल करनेवाले, **२४०. महालीलः**=महती लीला करनेवाले, **२४१. सर्वः**=सर्वस्वरूप, **२४२. सर्वगतः**=सर्वत्र व्यापक, **२४३. परमात्मा**=परब्रह्मस्वरूप, **२४४. पराधीशः**=परमेश्वर, **२४५. सर्वकारणकारणः**=समस्त कारणोंके भी कारण।

विदीर्ण करनेवाले, १८०. **गोपगोप्ता**=ग्वालोंके रक्षक, १८१. **दावाग्निपरिशोषकः**=दावानलका शोषण करनेवाले।

१८२. **गोपकन्यावस्त्रहारी**=गोपकुमारियोंके चीर हरण करनेवाले, १८३. **गोपकन्यावरप्रदः**=गोपकन्याओंको वर देनेवाले, १८४. **यज्ञपत्न्यन्नभोजी**=यज्ञपत्नियोंके अन्न भोजन करनेवाले, १८५. **मुनिमानापहारकः**=अपनेको मुनि माननेवाले ब्राह्मणोंके अभिमानको दूर करनेवाले।

१८६. **जलेशमानमथनः**=जलके स्वामी वरुणका मानमर्दन करनेवाले, १८७. **नन्दगोपालजीवनः**=अजगरसे छुडाकर नन्दगोपको जीवन देनेवाले, १८८. **गन्धर्वशापमोक्ता**=अजगररूपमें आये हुए गन्धर्व(विद्याधर)को शापसे छुडानेवाले, १८९. **शङ्खचूडशिरोहरः**=शङ्खचूड नामक गुह्यकका मस्तक काट लेनेवाले।

१९०. **वंशीवटी**=वंशीवटके समीप लीला करनेवाले, १९१. **वेणुवादी**=वंशी बजानेवाले, १९२. **गोपीचिन्तापहारकः**=गोपियोंकी चिन्ताको दूर करनेवाले, १९३. **सर्वगोप्ता**=सबके रक्षक, १९४. **समाह्वानः**=सबके द्वारा पुकारे जानेवाले, १९५. **सर्वगोपीमनोरथः**=सम्पूर्ण गोपाङ्गनाओंके अभीष्ट।

१९६. **व्यङ्ग्यधर्मप्रवक्ता**=व्यङ्ग्योक्तिद्वारा धर्मका उपदेश देनेवाले, १९७. **गोपीमण्डलमोहनः**=गोपसुन्दरियोंके समुदायको मोहित करनेवाले, १९८. **रासक्रीडारसास्वादी**=रासक्रीडाके रसका आस्वादन करनेवाले, १९९. **रसिकः**=रसका अनुभव करनेवाले, २००. **राधिकाधवः**=श्रीराधाके प्राणनाथ।

२०१. **किशोरीप्राणनाथः**=श्रीकिशोरीजीके प्राणवल्लभ, २०२. **वृषभानुसुताप्रियः**=वृषभानुनन्दिनीके प्यारे, २०३. **सर्वगोपीजनानन्दी**=सम्पूर्ण गोपीजनोंको आनन्द देनेवाले, २०४. **गोपीजनविमोहनः**=गोपाङ्गनाओंके मनको मोह लेनेवाले।

२०५. **गोपिकागीतचरितः**=गोपाङ्गनाओंद्वारा गाये हुए पावन चरित्रवाले, २०६. **गोपीनर्तनलालसः**=गोपियोंके रासनृत्यकी अभिलाषा रखनेवाले, २०७. **गोपीस्कन्धाश्रितकरः**=गोपीके कंधेपर हाथ रखकर चलनेवाले, २०८. **गोपिकाचुम्बनप्रियः**=यशोदा आदि मातृस्थानीया वात्सल्यवती गोपियोंके द्वारा किया जानेवाला मुखचुम्बन जिन्हे प्रिय है वे श्यामसुन्दर।

२०९. **गोपिकामार्जितमुखः**=गोपाङ्गनाएँ अपने अञ्चलसे जिनका मुख पोंछती है वे, २१०. **गोपीव्यजनवीजितः**=गोपियाँ जिन्हें पंखा डुलाकर आराम पहुँचाती हैं वे, २११. **गोपिकाकेशसंस्कारी**=गोपिकाके केशोंको सँवारनेवाले, २१२. **गोपिकापुष्पसंस्तरः**=गोपिकाका फूलोंसे श्रृङ्गार करनेवाले।

२१३. **गोपिकाहृदयालम्बी**=गोपीके हृदयका आश्रय लेनेवाले, २१४. **गोपीवहनतत्परः**=गोपी (श्रीराधा) को कंधेपर बिठाकर ढोनेके लिये प्रस्तुत, २१५. **गोपिकामदहारी**=गोपाङ्गनाओंके अभिमानको चूर्ण करनेवाले, २१६. **गोपिकापरमार्जितः**=गोपाङ्गनाओंको परम फलके रूपमें प्राप्त।

२१७. **गोपिकाकृतसल्लीलः**=रासलीलामें अन्तर्धान हो जानेपर गोपिकाओंने जिनकी पवित्र लीलाओंका अनुकरण किया था वे श्रीकृष्ण, २१८. **गोपिकासंस्मृतप्रियः**=गोपिकाओंद्वारा निरन्तर चिन्तन किये जानेवाले प्रियतम, २१९. **गोपिकावन्दितपदः**=गोपाङ्गनाओंद्वारा वन्दित चरणोंवाले, २२०. **गोपिकावशवर्तनः**=गोपसुन्दरियोंके वशमें रहनेवाले।

२२१. **राधापराजितः**=श्रीराधारानीसे हार मान लेनेवाले, २२२. **श्रीमान्**=शोभाशाली, २२३. **निकुञ्जेसुविहारवान्**=वृन्दावनके कुञ्जमें सुन्दर लीला करनेवाले, २२४. **कुञ्जप्रियः**=निकुञ्जके प्रेमी, २२५. **कुञ्जवासी**=कुञ्जमे निवास करनेवाले, २२६. **वृन्दावनविकाशनः**=वृन्दावनको प्रकाशित करनेवाले।

२२७. **यमुनाजलसिक्ताङ्गः**=यमुनाजीके जलसे अभिषिक्त अङ्गोंवाले, २२८. **यमुनासौख्यदायकः**=यमुनाजीको सुख देनेवाले, २२९. **शशिसंस्तम्भनः**=रासलीलाकी रात्रिमें चन्द्रमाकी गतिको रोक देनेवाले, २३०. **शूरः**=अखण्ड शौर्यसम्पन्न, २३१. **कामी**=प्रेमी भक्तोंसे मिलनेकी कामनावाले, २३२. **कामविमोहनः**=अपनी दिव्य लीलाओंसे कामदेवको विमोहित कर देनेवाले।

२३३. **कामाद्यः**=कामदेवके आदिकारण, २३४. **कामनाथः**=कामके स्वामी, २३५. **काममानसभेदनः**=कामदेवके भी हृदयका भेदन करनेवाले, २३६. **कामदः**=इच्छानुरूप भोग देनेवाले, २३७. **कामरूपः**=भक्तजनोंकी कामनाके अनुरूप रूप धारण करनेवाले, २३८. **कामिनीकामसंचयः**=गोपकामिनियोंके प्रेमका सग्रह करनेवाले।

२३९. **नित्यक्रीडः**=नित्य खेल करनेवाले, २४०. **महालीलः**=महती लीला करनेवाले, २४१. **सर्वः**=सर्वस्वरूप, २४२. **सर्वगतः**=सर्वत्र व्यापक, २४३. **परमात्मा**=परब्रह्मस्वरूप, २४४. **पराधीशः**=परमेश्वर, २४५. **सर्वकारणकारणः**=समस्त कारणोंके भी कारण।

३१९. **संकर्षणसहाध्यायी**=बलरामजीके सहपाठी, ३२०. **सुदामसुहृत्**=सुदामा ब्राह्मणके सखा, ३२१. **विद्यानिधिः**=विद्याके भण्डार, ३२२. **कलाकोषः**=सम्पूर्ण कलाओंके कोषागार, ३२३. **मृतपुत्रप्रदः**=मरे हुए गुरुपुत्रोंको यमलोकसे जीवित लाकर गुरुकी सेवामें अर्पित करनेवाले।

३२४. **चक्री**=सुदर्शन चक्रधारी, ३२५. **पाञ्चजनी**=पाञ्चजन्य शङ्ख धारण करनेवाले, ३२६. **सर्वनारकिमोचनः**=सम्पूर्ण नरकवासियोंका उद्धार करनेवाले, ३२७. **यमार्चितः**=यमराजद्वारा पूजित, ३२८. **परः**=सर्वोत्कृष्ट, ३२९. **देवः**=द्युतिमान्, ३३०. **नामोच्चारवशः**=अपने नामके उच्चारण-मात्रसे वशमें हो जानेवाले, ३३१. **अच्युतः**=अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले।

३३२. **कुब्जाविलासी**=कुब्जाके कुबड़ेपनको मिटानेकी लीला करनेवाले, ३३३. **सुभगः**=पूर्ण सौभाग्यशाली, ३३४. **दीनबन्धुः**=दीन-दुखियों और असहायोंके बन्धु, ३३५. **अनूपमः**=जिनके समान दूसरा कोई नहीं, ३३६. **अक्रूरगृहगोप्ता**=अक्रूरके गृहकी रक्षा करनेवाले, ३३७. **प्रतिज्ञापालकः**=प्रतिज्ञाका पालन करनेवाले, ३३८. **शुभः**=शुभस्वरूप।

३३९. **जरासन्धजयी**=सत्रह बार जरासन्धको जीतनेवाले, ३४०. **विद्वान्**=सर्वज्ञ, ३४१. **यवनान्तः**=कालयवनका अन्त करनेवाले, ३४२. **द्विजाश्रयः**=द्विजोंके आश्रय, ३४३. **मुचुकुन्दप्रियकरः**=मुचुकुन्दका प्रिय करनेवाले, ३४४. **जरासन्धपलायितः**=अठारहवीं बारके युद्धमें जरासन्धके सामनेसे युद्ध छोड़कर भाग जानेवाले।

३४५. **द्वारकाजनकः**=द्वारकापुरीको प्रकट करनेवाले, ३४६. **गूढः**=मानवरूपमे छिपे हुए परमात्मा, ३४७. **ब्रह्मण्यः**=ब्राह्मणभक्त, ३४८. **सत्यसंगरः**=सत्यप्रतिज्ञ, ३४९. **लीलाधरः**=लीलाधारी, ३५०. **प्रियकरः**=सबका प्रिय करनेवाले, ३५१. **विश्वकर्मा**=बहुत प्रकारके कर्म करनेवाले, ३५२. **यशप्रदः**=दूसरोंको यश देनेवाले।

३५३. **रुक्मिणीप्रियसंदेशः**=रुक्मिणीको प्रिय संदेश देनेवाले, ३५४. **रुक्मिशोकविवर्धनः**=रुक्मीका शोक बढ़ानेवाले, ३५५. **चैद्यशोकालयः**=शिशुपालके लिये शोकके भण्डार, ३५६. **श्रेष्ठः**=उत्तम गुणसम्पन्न, ३५७. **दुष्टराजन्यनाशनः**=दुष्ट राजाओंका नाश करनेवाले।

३५८. **रुक्मिवैरूप्यकरणः**=रुक्मीके आधे बाल मुड़ाकर उसे कुरूप बना देनेवाले, ३५९. **रुक्मिणीवचने रतः**=रुक्मिणीके वचनका पालन करनेमें तत्पर, ३६०. **बलभद्रवचोग्राही**=बलभद्रजीकी आज्ञा माननेवाले, ३६१. **मुक्तरुक्मी**=रुक्मीको जीवित छोड़ देनेवाले, ३६२. **जनार्दनः**=भक्तोंद्वारा याचित।

३६३. **रुक्मिणीप्राणनाथः**=रुक्मिणीके प्राणवल्लभ, ३६४. **सत्यभामापतिः**=सत्यभामाके स्वामी, ३६५. **स्वयं भक्तपक्षी**=स्वयं ही भक्तोंका पक्ष लेनेवाले, ३६६. **भक्तिवश्यः**=भक्तिसे वशमें हो जानेवाले, ३६७. **अक्रूरमणिदायकः**=अक्रूरजीको स्यमन्तकमणि देनेवाले।

३६८. **शतधन्वप्राणहारी**=शतधन्वाके प्राण लेनेवाले, ३६९. **ऋक्षराजसुताप्रियः**=रीछोंके राजा जाम्बवान्की पुत्रीके प्रियतम पति, ३७०. **सत्राजित्तनयाकान्तः**=सत्राजित्की सुपुत्री सत्यभामाके प्राणवल्लभ, ३७१. **मित्रविन्दापहारकः**=मित्रविन्दाका अपहरण करनेवाले।

३७२. **सत्यापतिः**=नग्नजित्की पुत्री सत्याके स्वामी, ३७३. **लक्ष्मणाजित्**=स्वयंवरमें लक्ष्मणाको जीतनेवाले, ३७४. **पूज्यः**=पूजाके योग्य, ३७५. **भद्राप्रियङ्करः**=भद्राका प्रिय करनेवाले, ३७६. **नरकासुरघाती**=नरकासुरका वध करनेवाले, ३७७. **लीलाकन्याहरः**=लीलापूर्वक षोडश सहस्र कन्याओंको नरकासुरकी कैदसे छुड़ाकर अपने साथ ले जानेवाले, ३७८. **जयी**=विजयशील।

३७९. **मुरारिः**=मुर दैत्यका नाश करनेवाले, ३८०. **मदनेशः**=कामदेवपर भी शासन करनेवाले, ३८१. **धरित्रीदुःखनाशनः**=धरतीका दुःख दूर करनेवाले, ३८२. **वैनतेयी**=गरुड़के स्वामी, ३८३. **स्वर्गगामी**=पारिजातके लिये स्वर्गलोककी यात्रा करनेवाले, ३८४. **अदित्याः कुण्डलप्रदः**=अदितिको कुण्डल देनेवाले।

३८५. **इन्द्रार्चितः**=इन्द्रके द्वारा पूजित, ३८६. **रमाकान्तः**=लक्ष्मीके प्रियतम, ३८७. **वज्रिभार्याप्रपूजितः**=इन्द्रपत्नी शचीके द्वारा पूजित, ३८८. **पारिजातापहारी**=पारिजात वृक्षका अपहरण करनेवाले, ३८९. **शक्रमानापहारकः**=इन्द्रका अभिमान चूर्ण करनेवाले।

३९०. **प्रद्युम्नजनकः**=प्रद्युम्नके पिता, ३९१. **साम्बतातः**=साम्बके पिता, ३९२. **बहुसुतः**=अधिक पुत्रोंवाले, ३९३. **विधुः**=विष्णुस्वरूप, ३९४. **गर्गाचार्यः**=गर्गमुनिको आचार्य बनानेवाले, ३९५. **सत्यगतिः**=सत्यसे ही प्राप्त होनेवाले, ३९६. **धर्माधारः**=धर्मके आश्रय, ३९७. **धराधरः**=पृथ्वीको धारण करनेवाले।

३१९. **संकर्षणसहाध्यायी**=बलरामजीके सहपाठी, ३२०. **सुदामसुहृत्**=सुदामा ब्राह्मणके सखा, ३२१. **विद्यानिधिः**=विद्याके भण्डार, ३२२. **कलाकोषः**=सम्पूर्ण कलाओंके कोषागार, ३२३. **मृतपुत्रप्रदः**=मरे हुए गुरुपुत्रोंको यमलोकसे जीवित लाकर गुरुकी सेवामें अर्पित करनेवाले।

३२४. **चक्री**=सुदर्शन चक्रधारी, ३२५. **पाञ्चजनी**=पाञ्चजन्य शङ्ख धारण करनेवाले, ३२६. **सर्वनारकिमोचनः**=सम्पूर्ण नरकवासियोंका उद्धार करनेवाले, ३२७. **यमार्चितः**=यमराजद्वारा पूजित, ३२८. **परः**=सर्वोत्कृष्ट, ३२९. **देवः**=द्युतिमान्, ३३०. **नामोच्चारवशः**=अपने नामके उच्चारण-मात्रसे वशमें हो जानेवाले, ३३१. **अच्युतः**=अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले।

३३२. **कुब्जाविलासी**=कुब्जाके कुबड़ेपनको मिटाने-की लीला करनेवाले, ३३३. **सुभगः**=पूर्ण सौभाग्यशाली, ३३४. **दीनबन्धुः**=दीन-दुखियों और असहायोंके बन्धु, ३३५. **अनूपमः**=जिनके समान दूसरा कोई नहीं, ३३६. **अक्रूरगृहगोप्ता**=अक्रूरके गृहकी रक्षा करनेवाले, ३३७. **प्रतिज्ञापालकः**=प्रतिज्ञाका पालन करनेवाले, ३३८. **शुभः**=शुभस्वरूप।

३३९. **जरासन्धजयी**=सत्रह बार जरासन्धको जीतने-वाले, ३४०. **विद्वान्**=सर्वज्ञ, ३४१. **यवनान्तः**=कालयवन-का अन्त करनेवाले, ३४२. **द्विजाश्रयः**=द्विजोंके आश्रय, ३४३. **मुचुकुन्दप्रियकरः**=मुचुकुन्दका प्रिय करनेवाले, ३४४. **जरासन्धपलायितः**=अठारहवीं बारके युद्धमें जरासन्धके सामनेसे युद्ध छोड़कर भाग जानेवाले।

३४५. **द्वारकाजनकः**=द्वारकापुरीको प्रकट करनेवाले, ३४६. **गूढः**=मानवरूपमे छिपे हुए परमात्मा, ३४७. **ब्रह्मण्यः**=ब्राह्मणभक्त, ३४८. **सत्यसंगरः**=सत्यप्रतिज्ञ, ३४९. **लीलाधरः**=लीलाधारी, ३५०. **प्रियकरः**=सबका प्रिय करनेवाले, ३५१. **विश्वकर्मा**=बहुत प्रकारके कर्म करनेवाले, ३५२. **यशप्रदः**=दूसरोंको यश देनेवाले।

३५३. **रुक्मिणीप्रियसंदेशः**=रुक्मिणीको प्रिय संदेश देनेवाले, ३५४. **रुक्मिशोकविवर्धनः**=रुक्मीका शोक बढ़ानेवाले, ३५५. **चैद्यशोकालयः**=शिशुपालके लिये शोकके भण्डार, ३५६. **श्रेष्ठः**=उत्तम गुणसम्पन्न, ३५७. **दुष्ट-राजन्यनाशनः**=दुष्ट राजाओंका नाश करनेवाले।

३५८. **रुक्मिवैरूप्यकरणः**=रुक्मीके आधे बाल मुड़ाकर उसे कुरूप बना देनेवाले, ३५९. **रुक्मिणीवचने रतः**=रुक्मिणीके वचनका पालन करनेमें तत्पर, ३६०. **बलभद्रवचोग्राही**=बलभद्रजीकी आज्ञा माननेवाले, ३६१. **मुक्तरुक्मी**=रुक्मीको जीवित छोड़ देनेवाले, ३६२. **जनार्दनः**=भक्तोंद्वारा याचित।

३६३. **रुक्मिणीप्राणनाथः**=रुक्मिणीके प्राणवल्लभ, ३६४. **सत्यभामापतिः**=सत्यभामाके स्वामी, ३६५. **स्वयं भक्तपक्षी**=स्वयं ही भक्तोंका पक्ष लेनेवाले, ३६६. **भक्तिवश्यः**=भक्तिसे वशमें हो जानेवाले, ३६७. **अक्रूरमणिदायकः**=अक्रूरजीको स्यमन्तकमणि देनेवाले।

३६८. **शतधन्वप्राणहारी**=शतधन्वाके प्राण लेनेवाले, ३६९. **ऋक्षराजसुताप्रियः**=रीछोंके राजा जाम्बवान्‌की पुत्रीके प्रियतम पति, ३७०. **सत्राजित्तनयाकान्तः**=सत्राजित्‌की सुपुत्री सत्यभामाके प्राणवल्लभ, ३७१. **मित्र-विन्दापहारकः**=मित्रविन्दाका अपहरण करनेवाले।

३७२. **सत्यापतिः**=नग्नजित्‌की पुत्री सत्याके स्वामी, ३७३. **लक्ष्मणाजित्**=स्वयंवरमें लक्ष्मणाको जीतनेवाले, ३७४. **पूज्यः**=पूजाके योग्य, ३७५. **भद्राप्रियङ्करः**=भद्राका प्रिय करनेवाले, ३७६. **नरकासुरघाती**=नरकासुर-का वध करनेवाले, ३७७. **लीलाकन्याहरः**=लीलापूर्वक षोडश सहस्र कन्याओंको नरकासुरकी कैदसे छुड़ाकर अपने साथ ले जानेवाले, ३७८. **जयी**=विजयशील।

३७९. **मुरारिः**=मुर दैत्यका नाश करनेवाले, ३८०. **मदनेशः**=कामदेवपर भी शासन करनेवाले, ३८१. **धरित्री-दुःखनाशनः**=धरतीका दुःख दूर करनेवाले, ३८२. **वैनतेयी**=गरुड़के स्वामी, ३८३. **स्वर्गगामी**=पारिजातके लिये स्वर्गलोककी यात्रा करनेवाले, ३८४. **अदित्याः कुण्डलप्रदः**=अदितिको कुण्डल देनेवाले।

३८५. **इन्द्रार्चितः**=इन्द्रके द्वारा पूजित, ३८६. **रमाकान्तः**=लक्ष्मीके प्रियतम, ३८७. **वज्रिभार्या-प्रपूजितः**=इन्द्रपत्नी शचीके द्वारा पूजित, ३८८. **पारिजातापहारी**=पारिजात वृक्षका अपहरण करनेवाले, ३८९. **शक्रमानापहारकः**=इन्द्रका अभिमान चूर्ण करनेवाले।

३९०. **प्रद्युम्नजनकः**=प्रद्युम्नके पिता, ३९१. **साम्बतातः**=साम्बके पिता, ३९२. **बहुसुतः**=अधिक पुत्रों-वाले, ३९३. **विधुः**=विष्णुस्वरूप, ३९४. **गर्गाचार्यः**=गर्गमुनिको आचार्य बनानेवाले, ३९५. **सत्यगतिः**=सत्यसे ही प्राप्त होनेवाले, ३९६. **धर्माधारः**=धर्मके आश्रय, ३९७. **धराधरः**=पृथ्वीको धारण करनेवाले।

४६६. **भाण्डीरवटसंवासी**=भाण्डीर वटके नीचे निवास करनेवाले, ४६७. **नित्यं वंशीवटस्थितः**=वंशीवटपर सदा स्थित रहनेवाले, ४६८. **नन्दग्रामकृतावासः**=नन्दगाँवमें निवास करनेवाले, ४६९. **वृषभानुगृहप्रियः**=वृषभानुजीके गृहको प्रिय माननेवाले ।

४७०. **गृहीतकामिनीरूपः**=मोहिनीका रूप धारण करनेवाले, ४७१. **नित्यं रासविलासकृत्**=नित्य रासलीला करनेवाले, ४७२. **वल्लवीजनसंगोप्ता**=गोपाङ्गनाओंके रक्षक, ४७३. **वल्लवीजनवल्लभः**=गोपीजनोंके प्रियतम ।

४७४. **देवशर्मकृपाकर्ता**=देवशर्मापर कृपा करनेवाले, ४७५. **कल्पपादपसंस्थितः**=कल्पवृक्षके नीचे रहनेवाले, ४७६. **शिलानुगन्धनिलयः**=शिलामय सुगन्धित भवनमें निवास करनेवाले, ४७७. **पादचारी**=पैदल चलनेवाले, ४७८. **घनच्छविः**=मेघके समान श्यामकान्तिवाले ।

४७९. **अतसीकुसुमप्रख्यः**=तीसीके फूलके-से वर्णवाले, ४८०. **सदा लक्ष्मीकृपाकरः**=लक्ष्मीजीपर सदा कृपा करनेवाले, ४८१. **त्रिपुरारिप्रियकरः**=महादेवजीका प्रिय करनेवाले, ४८२. **उग्रधन्वा**=भयङ्कर धनुषवाले, ४८३. **अपराजितः**=किसीसे भी परास्त न होनेवाले ।

४८४. **षड्धुरध्वंसकर्ता**=षड्धुरका नाश करनेवाले, ४८५. **निकुम्भप्राणहारकः**=निकुम्भके प्राणोंको हरनेवाले, ४८६. **वज्रनाभपुरध्वंसी**=वज्रनाभपुरका ध्वंस करनेवाले, ४८७. **पौण्ड्रकप्राणहारकः**=पौण्ड्रकके प्राणोंका अन्त करनेवाले ।

४८८. **बहुलाश्वप्रीतिकर्ता**=मिथिलाके राजा बहुलाश्वपर प्रेम करनेवाले, ४८९. **द्विजवर्यप्रियङ्करः**=श्रेष्ठ ब्राह्मण भक्तशिरोमणि श्रुतदेवका प्रिय करनेवाले, ४९०. **शिवसंकटहारी**=भगवान् शिवका संकट टालनेवाले, ४९१. **वृकासुरविनाशनः**=वृकासुरका नाश करनेवाले ।

४९२. **भृगुसत्कारकारी**=भृगुजीका सत्कार करनेवाले, ४९३. **शिवसात्त्विकताप्रदः**=भगवान् शिवको सात्त्विकता देनेवाले, ४९४. **गोकर्णपूजकः**=गोकर्णकी पूजा करनेवाले, ४९५. **साम्बकुष्ठविध्वंसकारणः**=साम्बकी कोढ़का नाश करनेवाले ।

४९६. **वेदस्तुतः**=वेदोंके द्वारा स्तुत, ४९७. **वेदवेत्ता**=वेदज्ञ, ४९८. **यदुवंशविवर्धनः**=यदुकुलको बढ़ानेवाले, ४९९. **यदुवंशविनाशी**=यदुकुलका संहार करनेवाले, ५००. **उद्धवोद्धारकारकः**=उद्धवका उद्धार करनेवाले ।

५०१. **राधा**=श्रीकृष्णकी आराध्या देवी, उन्हींकी आह्लादिनी शक्ति, ५०२. **राधिका**=श्रीकृष्णकी आराधना करनेवाली वृषभानुपुत्री, ५०३. **आनन्दा**=आनन्दस्वरूपा, ५०४. **वृषभानुजा**=वृषभानुगोपकी कन्या, ५०५. **वृन्दावनेश्वरी**=वृन्दावनकी स्वामिनी, ५०६. **पुण्या**=पुण्यमयी, ५०७. **कृष्णमानसहारिणी**=श्रीकृष्णका चित्त चुरानेवाली ।

५०८. **प्रगल्भा**=प्रतिभा, साहस, निर्भयता और उदार बुद्धिसे सम्पन्न, ५०९. **चतुरा**=चतुराईसे युक्त, ५१०. **कामा**=प्रेमस्वरूपा, ५११. **कामिनी**=एकमात्र श्रीकृष्णको चाहनेवाली, ५१२. **हरिमोहिनी**=श्रीकृष्णको मोहित करनेवाली, ५१३. **ललिता**=मनोहर सौन्दर्यसे सुशोभित, ५१४. **मधुरा**=माधुर्य भावसे युक्त, ५१५. **माध्वी**=मधुमयी, ५१६. **किशोरी**=नित्यकिशोरावस्थासे युक्त, ५१७. **कनकप्रभा**=सुवर्णके समान कान्तिवाली ।

५१८. **जितचन्द्रा**=मुखके सौन्दर्यसे चन्द्रमाको भी परास्त करनेवाली, ५१९. **जितमृगा**=चञ्चल चकित नेत्रोंकी शोभासे मृगको भी मात करनेवाली, ५२०. **जितसिंहा**=सूक्ष्म कटि-भागकी कमनीयतासे मृगराज सिंहके भी मदको चूर्ण करनेवाली, ५२१. **जितद्विपा**=मन्द-मन्द गतिसे गजेन्द्रका भी गर्व खर्व करनेवाली, ५२२. **जितरम्भा**=ऊरुओंकी स्निग्धतासे कदलीको भी तिरस्कृत करनेवाली, ५२३. **जितपिका**=अपने मधुर कण्ठस्वरसे कोयलको भी तिरस्कृत करनेवाली, ५२४. **गोविन्दहृदयोद्भवा**=श्रीकृष्णके हृदयसे प्रकट हुई ।

५२५. **जितबिम्बा**=अपने अधरकी अरुणिमासे बिम्बफलको भी तिरस्कृत करनेवाली, ५२६. **जितशुका**=नुकीली नासिकाकी शोभासे तोतेको भी लजा देनेवाली, ५२७. **जितपद्मा**=अपने अनिर्वचनीय रूप-लावण्यसे लक्ष्मीको भी लज्जित करनेवाली, ५२८. **कुमारिका**=नित्य कुमारी, ५२९. **श्रीकृष्णाकर्षणा**=श्रीकृष्णको अपनी ओर खींचनेवाली, ५३०. **देवी**=दिव्यस्वरूपा, ५३१. **नित्ययुग्मस्वरूपिणी**=नित्य युगलरूपा ।

५३२. **नित्यं विहारिणी**=श्यामसुन्दरके साथ नित्य लीला करनेवाली, ५३३. **कान्ता**=नन्दनन्दनकी प्रियतमा, ५३४. **रसिका**=प्रेमरसका आस्वादन करनेवाली, ५३५. **कृष्णवल्लभा**=श्रीकृष्णप्रिया, ५३६. **आमोदिनी**=श्रीकृष्णको आमोद प्रदान करनेवाली, ५३७. **मोदवती**=मोदमयी, ५३८. **नन्दनन्दनभूषिता**=नन्दनन्दन श्रीकृष्णके द्वारा जिनका शृङ्गार किया गया है ।

४६६. **भाण्डीरवटसंवासी**=भाण्डीर वटके नीचे निवास करनेवाले, ४६७. **नित्यं वंशीवटस्थितः**=वंशीवटपर सदा स्थित रहनेवाले, ४६८. **नन्दग्रामकृतावासः**=नन्दगाँव-में निवास करनेवाले, ४६९. **वृषभानुगृहप्रियः**=वृषभानुजी-के गृहको प्रिय माननेवाले।

४७०. **गृहीतकामिनीरूपः**=मोहिनीका रूप धारण करनेवाले, ४७१. **नित्यं रासविलासकृत्**=नित्य रासलीला करनेवाले, ४७२. **वल्लवीजनसंगोप्ता**=गोपाङ्गनाओंके रक्षक, ४७३. **वल्लवीजनवल्लभः**=गोपीजनोंके प्रियतम।

४७४. **देवशर्मकृपाकर्ता**=देवशर्मापर कृपा करनेवाले, ४७५. **कल्पपादपसंस्थितः**=कल्पवृक्षके नीचे रहनेवाले, ४७६. **शिलानुगन्धनिलयः**=शिलामय सुगन्धित भवनमें निवास करनेवाले, ४७७. **पादचारी**=पैदल चलनेवाले, ४७८. **घनच्छविः**=मेघके समान श्यामकान्तिवाले।

४७९. **अतसीकुसुमप्रख्यः**=तीसीके फूलके-से वर्ण-वाले, ४८०. **सदा लक्ष्मीकृपाकरः**=लक्ष्मीजीपर सदा कृपा करनेवाले, ४८१. **त्रिपुरारिप्रियकरः**=महादेवजीका प्रिय करनेवाले, ४८२. **उग्रधन्वा**=भयङ्कर धनुषवाले, ४८३. **अपराजितः**=किसीसे भी परास्त न होनेवाले।

४८४. **षड्धुरध्वंसकर्ता**=षड्धुरका नाश करनेवाले, ४८५. **निकुम्भप्राणहारकः**=निकुम्भके प्राणोंको हरनेवाले, ४८६. **वज्रनाभपुरध्वंसी**=वज्रनाभपुरका ध्वंस करनेवाले, ४८७. **पौण्ड्रकप्राणहारकः**=पौण्ड्रकके प्राणोंका अन्त करनेवाले।

४८८. **बहुलाश्वप्रीतिकर्ता**=मिथिलाके राजा बहुलाश्व-पर प्रेम करनेवाले, ४८९. **द्विजवर्यप्रियङ्करः**=श्रेष्ठ ब्राह्मण भक्तशिरोमणि श्रुतदेवका प्रिय करनेवाले, ४९०. **शिवसंकट-हारी**=भगवान् शिवका संकट टालनेवाले, ४९१. **वृकासुर-विनाशनः**=वृकासुरका नाश करनेवाले।

४९२. **भृगुसत्कारकारी**=भृगुजीका सत्कार करनेवाले, ४९३. **शिवसात्त्विकताप्रदः**=भगवान् शिवको सात्त्विकता देनेवाले, ४९४. **गोकर्णपूजकः**=गोकर्णकी पूजा करनेवाले, ४९५. **साम्बकुष्ठविध्वंसकारणः**=साम्बकी कोढ़का नाश करनेवाले।

४९६. **वेदस्तुतः**=वेदोंके द्वारा स्तुत, ४९७. **वेदवेत्ता**=वेदज्ञ, ४९८. **यदुवंशविवर्धनः**=यदुकुलको बढ़ानेवाले, ४९९. **यदुवंशविनाशी**=यदुकुलका संहार करनेवाले, ५००. **उद्धवो-द्धारकारकः**=उद्धवका उद्धार करनेवाले।

५०१. **राधा**=श्रीकृष्णकी आराध्या देवी, उन्हींकी आह्लादिनी शक्ति, ५०२. **राधिका**=श्रीकृष्णकी आराधना करनेवाली वृषभानुपुत्री, ५०३. **आनन्दा**=आनन्दस्वरूपा, ५०४. **वृषभानुजा**=वृषभानुगोपकी कन्या, ५०५. **वृन्दा-वनेश्वरी**=वृन्दावनकी स्वामिनी, ५०६. **पुण्या**=पुण्यमयी, ५०७. **कृष्णमानसहारिणी**=श्रीकृष्णका चित्त चुरानेवाली।

५०८. **प्रगल्भा**=प्रतिभा, साहस, निर्भयता और उदार बुद्धिसे सम्पन्न, ५०९. **चतुरा**=चतुराईसे युक्त, ५१०. **कामा**=प्रेमस्वरूपा, ५११. **कामिनी**=एकमात्र श्रीकृष्णको चाहनेवाली, ५१२. **हरिमोहिनी**=श्रीकृष्णको मोहित करनेवाली, ५१३. **ललिता**=मनोहर सौन्दर्यसे सुशोभित, ५१४. **मधुरा**=माधुर्य भावसे युक्त, ५१५. **माध्वी**=मधुमयी, ५१६. **किशोरी**=नित्यकिशोरावस्थासे युक्त, ५१७. **कनकप्रभा**=सुवर्णके समान कान्तिवाली।

५१८. **जितचन्द्रा**=मुखके सौन्दर्यसे चन्द्रमाको भी परास्त करनेवाली, ५१९. **जितमृगा**=चञ्चल चकित नेत्रोंकी शोभासे मृगको भी मात करनेवाली, ५२०. **जितसिंहा**=सूक्ष्म कटि-भागकी कमनीयतासे मृगराज सिंहके भी मदको चूर्ण करनेवाली, ५२१. **जितद्विपा**=मन्द-मन्द गतिसे गजेन्द्रका भी गर्व खर्व करनेवाली, ५२२. **जितरम्भा**=ऊरुओंकी स्निग्धतासे कदलीको भी तिरस्कृत करनेवाली, ५२३. **जितपिका**=अपने मधुर कण्ठस्वरसे कोयलको भी तिरस्कृत करनेवाली, ५२४. **गोविन्दहृदयोद्भवा**=श्रीकृष्णके हृदयसे प्रकट हुई।

५२५. **जितबिम्बा**=अपने अधरकी अरुणिमासे बिम्ब-फलको भी तिरस्कृत करनेवाली, ५२६. **जितशुका**=नुकीली नासिकाकी शोभासे तोतेको भी लजा देनेवाली, ५२७. **जितपद्मा**=अपने अनिर्वचनीय रूप-लावण्यसे लक्ष्मीको भी लज्जित करनेवाली, ५२८. **कुमारिका**=नित्य कुमारी, ५२९. **श्रीकृष्णाकर्षणा**=श्रीकृष्णको अपनी ओर खींचनेवाली, ५३०. **देवी**=दिव्यस्वरूपा, ५३१. **नित्ययुग्मस्वरूपिणी**=नित्य युगलरूपा।

५३२. **नित्यं विहारिणी**=श्यामसुन्दरके साथ नित्य लीला करनेवाली, ५३३. **कान्ता**=नन्दनन्दनकी प्रियतमा, ५३४. **रसिका**=प्रेमरसका आस्वादन करनेवाली, ५३५. **कृष्ण-वल्लभा**=श्रीकृष्णप्रिया, ५३६. **आमोदिनी**=श्रीकृष्णको आमोद प्रदान करनेवाली, ५३७. **मोदवती**=मोदमयी, ५३८. **नन्द-नन्दनभूषिता**=नन्दनन्दन श्रीकृष्णके द्वारा जिनका शृङ्गार किया गया है।

हुई; ६१३. **कृष्णा**=कृष्णस्वरूपा, ६१४. **विश्वा**=विश्वस्वरूपा, ६१५. **हरिप्रिया**=श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ६१६. **अजागम्या**=ब्रह्माजीके लिये अगम्य, ६१७. **भवागम्या**=महादेवजीके लिये अगम्य, ६१८. **गोवर्धनकृतालया**=गोवर्धन पर्वतपर निवास करनेवाली।

६१९. **यमुनातीरनिलया**=यमुनातटपर रहनेवाली, ६२०. **शश्वद्गोविन्दजल्पिनी**=सदा श्रीकृष्ण गोविन्दकी रट लगानेवाली, ६२१. **शश्वन्मानवती**=नित्य मानिनी, ६२२. **स्निग्धा**=स्नेहमयी, ६२३. **श्रीकृष्णपरिवन्दिता**=श्रीकृष्णके द्वारा नित्य वन्दित।

६२४. **कृष्णस्तुता**=श्रीकृष्णके द्वारा जिनका गुणगान किया गया है, ६२५. **कृष्णव्रता**=श्रीकृष्णपरायणा, ६२६. **श्रीकृष्णहृदयालया**=श्रीकृष्णके हृदयमें निवास करनेवाली, ६२७. **देवद्रुमफला**=कल्पवृक्षके समान मनोवाञ्छित फल देनेवाली, ६२८. **सेव्या**=सेवन करनेयोग्य, ६२९. **वृन्दावनरसालया**=वृन्दावनके रसमें निमग्न रहनेवाली।

६३०. **कोटितीर्थमयी**=कोटितीर्थ-स्वरूपा, ६३१. **सत्या**=सत्यस्वरूपा, ६३२. **कोटितीर्थफलप्रदा**=करोड़ों तीर्थोंका फल देनेवाली, ६३३. **कोटियोगसुदुष्प्राप्या**=करोडों योगसाधनोंसे भी दुर्लभ, ६३४. **कोटियज्ञदुराश्रया**=कोटि यज्ञोंसे भी जिनकी शरणागति प्राप्त होनी कठिन है।

६३५. **मनसा**=मनसा नामसे प्रसिद्ध, ६३६. **शशिलेखा**=श्रीकृष्णरूपी चन्द्रमाकी कला, ६३७. **श्रीकोटिसुभगा**=कोटि लक्ष्मीके समान सौभाग्यवती, ६३८. **अनघा**=पापशून्य, ६३९. **कोटिमुक्तसुखा**=करोड़ों मुक्तात्माओंके समान सुखी, ६४०. **सौम्या**=सौम्यस्वरूपा, ६४१. **लक्ष्मीकोटिविलासिनी**=करोड़ों लक्ष्मियोंके समान विलासवती।

६४२. **तिलोत्तमा**=ठोढ़ीमें तिलके आकारकी बेंदी या चिह्न होनेके कारण अतिशय उत्तम सौन्दर्ययुक्त, ६४३. **त्रिकालस्था**=भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालोंमें विद्यमान, ६४४. **त्रिकालज्ञा**=तीनों कालोंकी घटनाओंको जाननेवाली, ६४५. **अधीश्वरी**=स्वामिनी, ६४६. **त्रिवेदज्ञा**=तीनों वेदोंको जाननेवाली, ६४७. **त्रिलोकज्ञा**=तीनों लोकोंको जाननेवाली, ६४८. **तुरीयान्तनिवासिनी**=जाग्रत्से लेकर तुरीयापर्यन्त सब अवस्थाओंमें निवास करनेवाली।

६४९. **दुर्गाराध्या**=उमाके द्वारा आराध्य, ६५०. **रमाराध्या**=लक्ष्मीकी आराध्य देवी, ६५१. **विश्वाराध्या**=सम्पूर्ण जगत्‌के लिये आराधनीया, ६५२. **चिदात्मिका**=चेतनस्वरूपा, ६५३. **देवाराध्या**=देवताओंकी आराध्य देवी, ६५४. **पराराध्या**=परम आराध्य देवी, ६५५. **ब्रह्माराध्या**=ब्रह्माजीके द्वारा उपास्य, ६५६. **परात्मिका**=परमात्मस्वरूपा।

६५७. **शिवाराध्या**=भगवान् शिवके लिये आराध्य, ६५८. **प्रेमसाध्या**=प्रेमसे प्राप्त होनेयोग्य, ६५९. **भक्ताराध्या**=भक्तोंकी उपास्य देवी, ६६०. **रसात्मिका**=रसस्वरूपा, ६६१. **कृष्णप्राणार्पिणी**=श्रीकृष्णको जीवन देनेवाली, ६६२. **भामा**=मानिनी, ६६३. **शुद्धप्रेमविलासिनी**=विशुद्ध प्रेमसे सुशोभित होनेवाली।

६६४. **कृष्णाराध्या**=श्रीकृष्णकी आराध्यदेवी, ६६५. **भक्तिसाध्या**=अनन्य भक्तिसे प्राप्त होनेवाली, ६६६. **भक्तवृन्दनिषेविता**=भक्त-समुदायसे सेविता, ६६७. **विश्वाधारा**=सम्पूर्ण जगत्‌को आश्रय देनेवाली, ६६८. **कृपाधारा**=कृपाकी आधारभूमि, ६६९. **जीवाधारा**=सम्पूर्ण जीवोंको आश्रय देनेवाली, ६७०. **अतिनायिका**=सम्पूर्ण नायिकाओंसे उत्कृष्ट।

६७१. **शुद्धप्रेममयी**=विशुद्ध अनुराग-स्वरूपा, ६७२. **लज्जा**=मूर्तिमती लज्जा, ६७३. **नित्यसिद्धा**=सदा, बिना किसी साधनके, स्वतःसिद्ध, ६७४. **शिरोमणिः**=गोपाङ्गनाओंकी शिरोमणि, ६७५. **दिव्यरूपा**=दिव्य रूपवाली, ६७६. **दिव्यभोगा**=दिव्यभोगोंसे सम्पन्न, ६७७. **दिव्यवेषा**=अलौकिक वेषभूषाओंसे सुशोभित, ६७८. **मुदान्विता**=सदा आनन्द-मग्न रहनेवाली।

६७९. **दिव्याङ्गनावृन्दसारा**=दिव्य युवतियोंके समुदायकी सार-सर्वस्वरूपा, ६८०. **नित्यनूतनयौवना**=नित्य नवीन यौवनसे युक्त, ६८१. **परब्रह्मावृता**=परब्रह्म परमात्मासे आवृत, ६८२. **ध्येया**=ध्यान करनेयोग्य, ६८३. **महारूपा**=परम सुन्दर रूपवाली, ६८४. **महोज्ज्वला**=परमोज्ज्वल प्रकाशमयी।

६८५. **कोटिसूर्यप्रभा**=करोडो सूर्योंकी प्रभासे उद्भासित, ६८६. **कोटिचन्द्रबिम्बाधिकच्छविः**=कोटि चन्द्रमण्डलसे अधिक छविवाली, ६८७. **कोमलामृतवाक्**=कोमल एवं अमृतके समान मधुर वचनवाली, ६८८. **आद्या**=आदिदेवी, ६८९. **वेदाद्या**=वेदोंकी आदिकारणस्वरूपा, ६९०. **वेददुर्लभा**=वेदोंकी भी पहुँचसे परे।

६९१. **कृष्णासक्ता**=श्रीकृष्णमें अनुरक्त, ६९२.

हुई, ६१३. **कृष्णा**=कृष्णस्वरूपा, ६१४. **विश्वा**=विश्वस्वरूपा, ६१५. **हरिप्रिया**=श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ६१६. **अजागम्या**=ब्रह्माजीके लिये अगम्य, ६१७. **भवागम्या**=महादेवजीके लिये अगम्य, ६१८. **गोवर्धनकृतालया**=गोवर्धन पर्वतपर निवास करनेवाली।

६१९. **यमुनातीरनिलया**=यमुनातटपर रहनेवाली, ६२०. **शश्वद्गोविन्दजल्पिनी**=सदा श्रीकृष्ण गोविन्दकी रट लगानेवाली, ६२१. **शश्वन्मानवती**=नित्य मानिनी, ६२२. **स्निग्धा**=स्नेहमयी, ६२३. **श्रीकृष्णपरिवन्दिता**=श्रीकृष्णके द्वारा नित्य वन्दित।

६२४. **कृष्णस्तुता**=श्रीकृष्णके द्वारा जिनका गुणगान किया गया है, ६२५. **कृष्णव्रता**=श्रीकृष्णपरायणा, ६२६. **श्रीकृष्णहृदयालया**=श्रीकृष्णके हृदयमें निवास करनेवाली, ६२७. **देवद्रुमफला**=कल्पवृक्षके समान मनोवाञ्छित फल देनेवाली, ६२८. **सेव्या**=सेवन करनेयोग्य, ६२९. **वृन्दावनरसालया**=वृन्दावनके रसमें निमग्न रहनेवाली।

६३०. **कोटितीर्थमयी**=कोटितीर्थ-स्वरूपा, ६३१. **सत्या**=सत्यस्वरूपा, ६३२. **कोटितीर्थफलप्रदा**=करोड़ों तीर्थोंका फल देनेवाली, ६३३. **कोटियोगसुदुष्प्राप्या**=करोड़ों योगसाधनोंसे भी दुर्लभ, ६३४. **कोटियज्ञदुराश्रया**=कोटि यज्ञोंसे भी जिनकी शरणागति प्राप्त होनी कठिन है।

६३५. **मनसा**=मनसा नामसे प्रसिद्ध, ६३६. **शशिलेखा**=श्रीकृष्णरूपी चन्द्रमाकी कला, ६३७. **श्रीकोटिसुभगा**=कोटि लक्ष्मीके समान सौभाग्यवती, ६३८. **अनघा**=पापशून्य, ६३९. **कोटिमुक्तसुखा**=करोड़ों मुक्तात्माओंके समान सुखी, ६४०. **सौम्या**=सौम्यस्वरूपा, ६४१. **लक्ष्मीकोटिविलासिनी**=करोड़ों लक्ष्मियोंके समान विलासवती।

६४२. **तिलोत्तमा**=ठोढ़ीमें तिलके आकारकी बेंदी या चिह्न होनेके कारण अतिशय उत्तम सौन्दर्ययुक्त, ६४३. **त्रिकालस्था**=भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालोंमें विद्यमान, ६४४. **त्रिकालज्ञा**=तीनों कालोंकी घटनाओंको जाननेवाली, ६४५. **अधीश्वरी**=स्वामिनी, ६४६. **त्रिवेदज्ञा**=तीनों वेदोंको जाननेवाली, ६४७. **त्रिलोकज्ञा**=तीनों लोकोंको जाननेवाली, ६४८. **तुरीयान्तनिवासिनी**=जाग्रत्से लेकर तुरीयापर्यन्त सब अवस्थाओंमें निवास करनेवाली।

६४९. **दुर्गाराध्या**=उमाके द्वारा आराध्य, ६५०. **रमाराध्या**=लक्ष्मीकी आराध्य देवी, ६५[illegible] **विश्वाराध्या**=सम्पूर्ण जगत्के लिये आराधनी[illegible] ६५२. **चिदात्मिका**=चेतनस्वरूपा, ६५३. **देवाराध्[illegible]** देवताओंकी आराध्य देवी, ६५४. **पराराध्या**=[illegible] आराध्य देवी, ६५५. **ब्रह्माराध्या**=ब्रह्माजीके द्वारा उपा[illegible] ६५६. **परात्मिका**=परमात्मस्वरूपा।

६५७. **शिवाराध्या**=भगवान् शिवके लिये आरा[illegible] ६५८. **प्रेमसाध्या**=प्रेमसे प्राप्त होनेयोग्य, ६५[illegible] **भक्ताराध्या**=भक्तोंकी उपास्य देवी, ६६०. **रसात्मि[illegible]** रसस्वरूपा, ६६१. **कृष्णप्राणार्पिणी**=श्रीकृष्णको जी[illegible] देनेवाली, ६६२. **भामा**=मानिनी, ६६३. **शुद्धप्रे[illegible]विलासिनी**=विशुद्ध प्रेमसे सुशोभित होनेवाली।

६६४. **कृष्णाराध्या**=श्रीकृष्णकी आराध्यदेवी, ६६५. **भ[illegible]साध्या**=अनन्य भक्तिसे प्राप्त होनेवाली, ६६६. **भक्तवृ[illegible]निषेविता**=भक्त-समुदायसे सेविता, ६६७. **विश्वाधार[illegible]** सम्पूर्ण जगत्को आश्रय देनेवाली, ६६८. **कृपाधारा**=कृप[illegible] आधारभूमि, ६६९. **जीवाधारा**=सम्पूर्ण जीवोंको आ[illegible] देनेवाली, ६७०. **अतिनायिका**=सम्पूर्ण नायिकाओंसे उत्कृ[illegible]

६७१. **शुद्धप्रेममयी**=विशुद्ध अनुराग-स्वरू[illegible] ६७२. **लज्जा**=मूर्तिमती लज्जा, ६७३. **नित्यसिद्[illegible]** सदा, विना किसी साधनके, स्वतःसिद्ध, ६७४. **शिरोमणि[illegible]** गोपाङ्गनाओंकी शिरोमणि, ६७५. **दिव्यरूपा**=दिव्य रूपवा[illegible] ६७६. **दिव्यभोगा**=दिव्यभोगोंसे सम्पन्न, ६७७. **दिव्यवे[illegible]** अलौकिक वेषभूषाओंसे सुशोभित, ६७८. **मुदान्वित[illegible]** सदा आनन्द-मग्न रहनेवाली।

६७९. **दिव्याङ्गनावृन्दसारा**=दिव्य युवति[illegible] समुदायकी सार-सर्वस्वरूपा, ६८०. **नित्यनूतनयौव[illegible]** नित्य नवीन यौवनसे युक्त, ६८१. **परब्रह्मावृता**=पर[illegible] परमात्मासे आवृत, ६८२. **ध्येया**=ध्यान करनेयोग्य, ६[illegible] **महारूपा**=परम सुन्दर रूपवाली, ६८४. **महोज्ज्वल[illegible]** परमोज्ज्वल प्रकाशमयी।

६८५. **कोटिसूर्यप्रभा**=करोडो सूर्योंकी प्रभासे उद्भासि[illegible] ६८६. **कोटिचन्द्रबिम्बाधिकच्छविः**=कोटि चन्द्रमण्ड[illegible] अधिक छविवाली, ६८७. **कोमलामृतवाक्**=कोमल [illegible] अमृतके समान मधुर वचनवाली, ६८८. **आद्या**=आदिदे[illegible] ६८९. **वेदाद्या**=वेदोंकी आदिकारणस्वरूपा, ६९०. **वे[illegible]दुर्लभा**=वेदोंकी भी पहुँचसे परे।

६९१. **कृष्णासक्ता**=श्रीकृष्णमें अनुरक्त, ६९[illegible]

७६२. विमलादिनिषेव्या=विमला, उत्कर्षिणी आदि सखियोंद्वारा सेव्य, **७६३. ललिताद्यर्चिता**=ललिता आदि सखियोंसे पूजित, **७६४. सती**=उत्तम शील और सदाचारसे सम्पन्न, **७६५. पद्मवृन्दस्थिता**=कमलवनमें निवास करनेवाली, **७६६. हृष्टा**=हर्षसे युक्त, **७६७.त्रिपुरापरिसेविता**=त्रिपुरसुन्दरीके द्वारा सेवित।

७६८. वृन्दावत्यर्चिता=वृन्दावती देवीके द्वारा पूजित, **७६९. श्रद्धा**=श्रद्धास्वरूपा, **७७०. दुर्ज्ञेया**=बुद्धिकी पहुँचसे परे, **७७१. भक्तवल्लभा**=भक्तप्रिया, **७७२. दुर्लभा**=दुष्प्राप्य, **७७३. सान्द्रसौख्यात्मा**=घनीभूत सुखस्वरूपा, **७७४. श्रेयोहेतुः**=कल्याणकी प्राप्तिमे हेतु, **७७५. सुभोगदा**=मुक्तिप्रद भोग देनेवाली।

७७६. सारङ्गा=श्रीकृष्णप्रेमकी प्यासी चातकी, **७७७. शारदा**=सरस्वतीस्वरूपा, **७७८. बोधा**=ज्ञानमयी, **७७९. सद्वृन्दावनचारिणी**=सुन्दर वृन्दावनमें विचरनेवाली, **७८०. ब्रह्मानन्दा**=ब्रह्मानन्दस्वरूपा, **७८१. चिदानन्दा**=चिदानन्दमयी, **७८२. ध्यानानन्दा**=श्रीकृष्ण-ध्यानजनित आनन्दमें मग्न, **७८३. अर्धमात्रिका**=अर्धमात्रास्वरूपा।

७८४. गन्धर्वा=गानविद्यामें प्रवीण, **७८५.सुरतज्ञा**=सुरतकलाको जाननेवाली, **७८६. गोविन्दप्राणसङ्गमा**=गोविन्दके साथ एक प्राण होकर रहनेवाली, **७८७. कृष्णाङ्गभूषणा**=श्रीकृष्णके अङ्गोंको विभूषित करनेवाली, **७८८. रत्नभूषणा**=रत्नमय आभूषण धारण करनेवाली, **७८९. स्वर्णभूषिता**=सोनेके आभूषणोंसे विभूषित।

७९०. श्रीकृष्णहृदयावासा=श्रीकृष्णके हृदयमन्दिरमें निवास करनेवाली, **७९१. मुक्ताकनकनासिका**=नासिकामें मुक्तायुक्त सुवर्णके आभूषण धारण करनेवाली, **७९२. सद्रत्नकङ्कणयुता**=हाथोंमे सुन्दर रत्नजटित कंगन पहननेवाली, **७९३. श्रीमन्नीलगिरिस्थिता**=शोभाशाली नीलाचलपर विराजमान।

७९४. स्वर्णनूपुरसम्पन्ना=सोनेके नूपुरोंसे सुशोभित, **७९५. स्वर्णकिङ्किणिमण्डिता**=सुवर्णकी किङ्किणी (करधनी) से अलंकृत, **७९६. अशेषरासकुतुका**=महारासके लिये उत्कण्ठित रहनेवाली, **७९७. रम्भोरुः**=केलेके समान जंघावाली, **७९८. तनुमध्यमा**=क्षीण कटिवाली।

७९९.पराकृतिः=सर्वोत्कृष्ट आकृतिवाली, **८००. परानन्दा**=परमानन्दस्वरूपा, **८०१. परस्वर्गविहारिणी**=स्वर्गसे भी परे गोलोक धाममें विहार करनेवाली, **८०२. प्रसूनकवरी**=वेणीमें फूलोंके हार गूँथनेवाली, **८०३. चित्रा**=विचित्र शोभामयी, **८०४. महासिन्दूरसुन्दरी**=उत्तम सिन्दूरसे अति सुन्दर प्रतीत होनेवाली।

८०५. कैशोरवयसा=किशोरावस्थासे युक्त, **८०६. बाला**=मुग्धा, **८०७. प्रमदाकुलशेखरा**=रमणीकुल-शिरोमणि, **८०८. कृष्णाधरसुधास्वादा**=श्रीकृष्णनामरूपी सुधाका अधरोंके द्वारा नित्य आस्वादन करनेवाली, **८०९. श्यामप्रेमविनोदिनी**=श्रीकृष्णप्रेमसे ही मनोरञ्जन करनेवाली।

८१०. शिखिपिच्छलसच्चूडा=मयूर-पंखसे सुशोभित केशोंवाली, **८११. स्वर्णचम्पकभूषिता**=स्वर्णचम्पाके आभूषणोंसे विभूषित, **८१२. कुङ्कुमालक्तकस्तूरीमण्डिता**=रोली, महावर और कस्तूरीके श्रृङ्गारसे सुशोभित, **८१३. अपराजिता**=कभी परास्त न होनेवाली।

८१४. हेमहारान्विता=सुवर्णके हारसे अलकृत, **८१५. पुष्पहाराढ्या**=पुष्पमालासे मण्डित, **८१६. रसवती**=प्रेमरसमयी, **८१७. माधुर्यमधुरा**=माधुर्य भावके कारण मधुर, **८१८. पद्मा**=पद्मानामसे प्रसिद्ध, **८१९. पद्महस्ता**=हाथमें कमल धारण करनेवाली, **८२०. सुविश्रुता**=अति विख्यात।

८२१. भ्रूभङ्गाभङ्गकोदण्डकटाक्षसरसन्धिनी=श्रीकृष्णके प्रति तिरछी भौंहरूपी सुदृढ़ धनुषपर कटाक्षरूपी बाणोंका संधान करनेवाली, **८२२. शेषदेवशिरःस्था**=शेषजीके मस्तकपर पृथ्वीके रूपमें स्थित, **८२३. नित्यस्थलविहारिणी**=नित्य लीलास्थलियोंमें विचरनेवाली।

८२४. कारुण्यजलमध्यस्था=करुणारूपी जलराशिके मध्य विराजमान, **८२५. नित्यमत्ता**=सदा प्रेममें मतवाली, **८२६. अधिरोहिणी**=उन्नतिकी साधनरूपा, **८२७. अष्टभाषावती**=आठ भाषाओंको जाननेवाली, **८२८. अष्टनायिका**=ललिता आदि आठ सखियोंकी स्वामिनी, **८२९. लक्षणान्विता**=उत्तम लक्षणोंसे युक्त।

८३०. सुनीतिज्ञा=अच्छी नीतिको जाननेवाली **८३१. श्रुतिज्ञा**=श्रुतिको जाननेवाली, **८३२. सर्वज्ञा**=सब कुछ जाननेवाली, **८३३. दुःखहारिणी**=दुःखोंको हरण करनेवाली, **८३४. रजोगुणेश्वरी**=रजोगुणकी स्वामिनी, **८३५. शरच्चन्द्रनिभानना**=शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति मनोहर मुखवाली।

८३६. केतकीकुसुमाभासा=केतकीके पुष्पकी-सी आभावाली, **८३७. सदासिन्धुवनस्थिता**=सदा सिन्धु-वन-

७६२. **विमलादिनिषेव्या**=विमला, उत्कर्षिणी आदि सखियोंद्वारा सेव्य, ७६३. **ललिताद्यर्चिता**=ललिता आदि सखियोंसे पूजित, ७६४. **सती**=उत्तम शील और सदाचारसे सम्पन्न, ७६५. **पद्मवृन्दस्थिता**=कमलवनमें निवास करनेवाली, ७६६. **हृष्टा**=हर्षसे युक्त, ७६७.**त्रिपुरापरिसेविता**=त्रिपुरसुन्दरीके द्वारा सेवित ।

७६८. **वृन्दावत्यर्चिता**=वृन्दावती देवीके द्वारा पूजित, ७६९. **श्रद्धा**=श्रद्धास्वरूपा, ७७०. **दुर्ज्ञेया**=बुद्धिकी पहुँचसे परे, ७७१. **भक्तवल्लभा**=भक्तप्रिया, ७७२. **दुर्लभा**=दुष्प्राप्य, ७७३. **सान्द्रसौख्यात्मा**=घनीभूत सुखस्वरूपा, ७७४. **श्रेयोहेतुः**=कल्याणकी प्राप्तिमे हेतु, ७७५. **सुभोगदा**=मुक्तिप्रद भोग देनेवाली ।

७७६. **सारङ्गा**=श्रीकृष्णप्रेमकी प्यासी चातकी, ७७७. **शारदा**=सरस्वतीस्वरूपा, ७७८. **बोधा**=ज्ञानमयी, ७७९. **सद्वृन्दावनचारिणी**=सुन्दर वृन्दावनमें विचरनेवाली, ७८०. **ब्रह्मानन्दा**=ब्रह्मानन्दस्वरूपा, ७८१. **चिदानन्दा**=चिदानन्दमयी, ७८२. **ध्यानानन्दा**=श्रीकृष्ण-ध्यानजनित आनन्दमें मग्न, ७८३. **अर्धमात्रिका**=अर्धमात्रास्वरूपा ।

७८४. **गन्धर्वा**=गानविद्यामें प्रवीण, ७८५.**सुरतज्ञा**=सुरतकलाको जाननेवाली, ७८६. **गोविन्दप्राणसङ्गमा**=गोविन्दके साथ एक प्राण होकर रहनेवाली, ७८७. **कृष्णाङ्गभूषणा**=श्रीकृष्णके अङ्गोंको विभूषित करनेवाली, ७८८. **रत्नभूषणा**=रत्नमय आभूषण धारण करनेवाली, ७८९. **स्वर्णभूषिता**=सोनेके आभूषणोंसे विभूषित ।

७९०. **श्रीकृष्णहृदयावासा**=श्रीकृष्णके हृदयमन्दिरमें निवास करनेवाली, ७९१. **मुक्ताकनकनासिका**=नासिकामें मुक्तायुक्त सुवर्णके आभूषण धारण करनेवाली, ७९२. **सद्रत्नकङ्कणयुता**=हाथोंमे सुन्दर रत्नजटित कंगन पहननेवाली, ७९३. **श्रीमन्नीलगिरिस्थिता**=शोभाशाली नीलाचलपर विराजमान ।

७९४. **स्वर्णनूपुरसम्पन्ना**=सोनेके नूपुरोंसे सुशोभित, ७९५. **स्वर्णकिङ्किणिमण्डिता**=सुवर्णकी किङ्किणी (करधनी) से अलंकृत, ७९६. **अशेषरासकुतुका**=महारासके लिये उत्कण्ठित रहनेवाली, ७९७. **रम्भोरुः**=केलेके समान जंघावाली, ७९८. **तनुमध्यमा**=क्षीण कटिवाली ।

७९९.**पराकृतिः**=सर्वोत्कृष्ट आकृतिवाली, ८००. **परानन्दा**=परमानन्दस्वरूपा, ८०१. **परस्वर्गविहारिणी**=स्वर्गसे भी परे गोलोक धाममें विहार करनेवाली, ८०२. **प्रसूनकबरी**=वेणीमें फूलोंके हार गूँथनेवाली, ८०३. **चित्रा**=विचित्र शोभामयी, ८०४. **महासिन्दूरसुन्दरी**=उत्तम सिन्दूरसे अति सुन्दर प्रतीत होनेवाली ।

८०५. **कैशोरवयसा**=किशोरावस्थासे युक्त, ८०६. **बाला**=मुग्धा, ८०७. **प्रमदाकुलशेखरा**=रमणीकुल-शिरोमणि, ८०८. **कृष्णाधरसुधास्वादा**=श्रीकृष्णनामरूपी सुधाका अधरोंके द्वारा नित्य आस्वादन करनेवाली, ८०९. **श्यामप्रेमविनोदिनी**=श्रीकृष्णप्रेमसे ही मनोरञ्जन करनेवाली ।

८१०. **शिखिपिच्छलसच्चूडा**=मयूर-पंखसे सुशोभित केशोंवाली, ८११. **स्वर्णचम्पकभूषिता**=स्वर्णचम्पाके आभूषणोंसे विभूषित, ८१२. **कुङ्कुमालक्तकस्तूरीमण्डिता**=रोली, महावर और कस्तूरीके शृङ्गारसे सुशोभित, ८१३. **अपराजिता**=कभी परास्त न होनेवाली ।

८१४. **हेमहारान्विता**=सुवर्णके हारसे अलङ्कृत, ८१५. **पुष्पहाराढ्या**=पुष्पमालासे मण्डित, ८१६. **रसवती**=प्रेमरसमयी, ८१७. **माधुर्यमधुरा**=माधुर्य भावके कारण मधुर, ८१८. **पद्मा**=पद्मानामसे प्रसिद्ध, ८१९. **पद्महस्ता**=हाथमें कमल धारण करनेवाली, ८२०. **सुविश्रुता**=अति विख्यात ।

८२१. **भ्रूभङ्गाभङ्गकोदण्डकटाक्षशरसन्धिनी**=श्रीकृष्णके प्रति तिरछी भौंहरूपी सुदृढ़ धनुषपर कटाक्षरूपी बाणोंका संधान करनेवाली, ८२२. **शेषदेवशिरःस्था**=शेषजीके मस्तकपर पृथ्वीके रूपमें स्थित, ८२३. **नित्यस्थलविहारिणी**=नित्य लीलास्थलियोंमें विचरनेवाली ।

८२४. **कारुण्यजलमध्यस्था**=करुणारूपी जलराशिके मध्य विराजमान, ८२५. **नित्यमत्ता**=सदा प्रेममें मतवाली, ८२६. **अधिरोहिणी**=उन्नतिकी साधनरूपा, ८२७. **अष्टभाषावती**=आठ भाषाओंको जाननेवाली, ८२८. **अष्टनायिका**=ललिता आदि आठ सखियोंकी स्वामिनी, ८२९. **लक्षणान्विता**=उत्तम लक्षणोंसे युक्त ।

८३०. **सुनीतिज्ञा**=अच्छी नीतिको जाननेवाली ८३१. **श्रुतिज्ञा**=श्रुतिको जाननेवाली, ८३२. **सर्वज्ञा**=सब कुछ जाननेवाली, ८३३. **दुःखहारिणी**=दुःखोंको हरण करनेवाली, ८३४. **रजोगुणेश्वरी**=रजोगुणकी स्वामिनी, ८३५. **शरच्चन्द्रनिभानना**=शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति मनोहर मुखवाली ।

८३६. **केतकीकुसुमाभासा**=केतकीके पुष्पकी-सी आभावाली, ८३७. **सदासिन्धुवनस्थिता**=सदा सिन्धु-वन-

ाली प्रधान नायिका, ९१७. **सुधासिन्धुसमुल्लासा**=मसुधाके समुद्रको समुल्लसित करनेवाली, ९१८. **ामृतस्यन्दविधायिनी**=अमृतरसका स्रोत बहानेवाली।

९१९. **कृष्णचित्ता**=अपना चित्त श्रीकृष्णको समर्पित र देनेवाली, ९२०. **रासचित्ता**=श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके ल्ये रासमे मन लगानेवाली, ९२१. **प्रेमचित्ता**=श्रीकृष्ण-ममें मनको निमग्न रखनेवाली, ९२२. **हरिप्रिया**=ीकृष्णकी प्रेयसी, ९२३. **अचिन्तनगुणग्रामा**=अचिन्त्य ग-समुदायवाली, ९२४. **कृष्णलीला**=श्रीकृष्णलीलास्वरूपा, २५. **मलापहा**=मनकी मलिनता एवं पाप-तापको धो ानेवाली।

९२६. **रासिन्धुशशाङ्का**=रासरूपी समुद्रको लसित करनेके लिये पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित, २७. **रासमण्डलमण्डिनी**=अपनी उपस्थितिसे समण्डलकी अत्यन्त शोभा बढ़ानेवाली, ९२८. **नतव्रता**=नम्र स्वभाववाली, ९२९. **श्रीहरीच्छासुमूर्तिः**=श्रीकृष्ण-च्छाकी सुन्दर मूर्ति, ९३०. **सुरवन्दिता**=देवताओंद्वारा न्दित।

९३१. **गोपीचूडामणिः**=गोपाङ्गनाशिरोमणि, ९३२. **ोपीगणेड्या**=गोपियोंके समुदायद्वारा स्तुत, ९३३. **रजाधिका**=गोलोकमें विरजासे अधिक सम्मानित पदपर यत, ९३४. **गोपप्रेष्ठा**=गोपाल श्यामसुन्दरकी प्रियतमा, ३५. **गोपकन्या**=वृषभानुगोपकी पुत्री, ९३६. **ोपनारी**=गोपकी वधू, ९३७. **सुगोपिका**=श्रेष्ठ गोपी।

९३८. **गोपधामा**=गोलोक धाममें विराजमान, ९३९. **ुदामाम्बा**=सुदामागोपके प्रति मातृ-स्नेह रखनेवाली, ४०. **गोपाली**=गोपी, ९४१. **गोपमोहिनी**=गोपाल ीकृष्णको मोहनेवाली, ९४२. **गोपभूषा**=गोपाल श्यामसुन्दर जिनके आभूषण हैं, ९४३. **कृष्णभूषा**=श्रीकृष्णको भूषित करनेवाली, ९४४. **श्रीवृन्दावनचन्द्रिका**=ीवृन्दावनकी चाँदनी।

९४५. **वीणादिघोषनिरता**=वीणा आदिको बजानेमें लग्न, ९४६. **रासोत्सवविकासिनी**=रासोत्सवका विकास रनेवाली, ९४७. **कृष्णचेष्टा**=श्रीकृष्णके अनुरूप चेष्टा रनेवाली, ९४८. **अपरिज्ञाता**=पहचानमें न आनेवाली, ४९. **कोटिकन्दर्पमोहिनी**=करोड़ों कामदेवोंको मोहित रनेवाली।

९५०. **श्रीकृष्णगुणगानाढ्या**=श्रीकृष्णके गुणोंका गान करनेमें तत्पर, ९५१. **देवसुन्दरिमोहिनी**=देव-सुन्दरियोंको मोहनेवाली, ९५२. **कृष्णचन्द्रमनोज्ञा**=श्रीकृष्णचन्द्रके मनोभावको जाननेवाली, ९५३. **कृष्णदेव-सहोदरी**=योगमाया रूपसे श्रीयशोदाके गर्भसे उत्पन्न होनेवाली।

९५४. **कृष्णाभिलाषिणी**=श्रीकृष्ण-मिलनकी इच्छा रखनेवाली, ९५५. **कृष्णप्रेमानुग्रहवाञ्छिनी**=श्रीकृष्णके प्रेम और अनुग्रहको चाहनेवाली, ९५६. **क्षेमा**=क्षेमस्वरूपा, ९५७. **मधुरालापा**=मीठे वचन बोलनेवाली, ९५८. **भ्रुवोमाया**=भौंहोंसे मायाको प्रकट करनेवाली, ९५९. **सुभद्रिका**=परम कल्याणमयी।

९६०. **प्रकृतिः**=श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति, ९६१. **परमानन्दा**=परमानन्दस्वरूपा, ९६२. **नीपद्रुम-तलस्थिता**=कदम्बवृक्षके नीचे खड़ी होनेवाली, ९६३. **कृपाकटाक्षा**=कृपापूर्ण कटाक्षवाली, ९६४. **बिम्बोष्ठी**=बिम्बफलके समान लाल ओठवाली, ९६५. **रम्भा**=सर्वाधिक सुन्दरी होनेके कारण रम्भा नामसे प्रसिद्ध, ९६६. **चारु-नितम्बिनी**=मनोहर नितम्बवाली।

९६७. **स्मरकेलिनिधाना**=प्रेमलीलाकी निधि, ९६८. **गण्डताटङ्कमण्डिता**=कपोलोंपर कर्णभूषणोंसे अलंकृत, ९६९. **हेमाद्रिकान्तिरुचिरा**=सुवर्णगिरि मेरुकी कान्तिके समान सुनहरी कान्तिसे सुशोभित परम सुन्दरी, ९७०. **प्रेमाढ्या**=प्रेमसे परिपूर्ण, ९७१. **मदमन्थरा**=प्रेममदसे मन्द-गतिवाली।

९७२. **कृष्णचिन्ता**=श्रीकृष्णका चिन्तन करनेवाली, ९७३. **प्रेमचिन्ता**=श्रीकृष्ण-प्रेमका चिन्तन करनेवाली, ९७४. **रतिचिन्ता**=श्रीकृष्णरतिका चिन्तन करनेवाली, ९७५. **कृष्णदा**=श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाली, ९७६. **रासचिन्ता**=श्रीकृष्णके साथ रासका चिन्तन करनेवाली, ९७७. **भावचिन्ता**=प्रेम-भावका चिन्तन करनेवाली, ९७८. **शुद्धचिन्ता**=विशुद्ध चिन्तनवाली, ९७९. **महा-रसा**=अतिशय प्रेमस्वरूपा।

९८०. **कृष्णादृष्टित्रुटियुगा**=श्रीकृष्णको देखे बिना क्षणभरके विलम्बको भी एक युगके समान माननेवाली, ९८१. **दृष्टिपक्ष्मविनिन्दिनी**=श्रीकृष्णका दर्शन करते समय बाधा देनेवाली आँखकी पलकोंकी निन्दा करनेवाली, ९८२. **कन्दर्पजननी**=कामदेवको जन्म देनेवाली, ९८३. **मुख्या**=

वाली प्रधान नायिका, ९१७. **सुधासिन्धुसमुल्लासा**=प्रेमसुधाके समुद्रको समुल्लसित करनेवाली, ९१८. **अमृतस्यन्दविधायिनी**=अमृतरसका स्रोत बहानेवाली।

९१९. **कृष्णचित्ता**=अपना चित्त श्रीकृष्णको समर्पित कर देनेवाली, ९२०. **रासचित्ता**=श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये रासमें मन लगानेवाली, ९२१. **प्रेमचित्ता**=श्रीकृष्ण-प्रेममें मनको निमग्न रखनेवाली, ९२२. **हरिप्रिया**=श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ९२३. **अचिन्तनगुणग्रामा**=अचिन्त्य गुण-समुदायवाली, ९२४. **कृष्णलीला**=श्रीकृष्णलीलास्वरूपा, ९२५. **मलापहा**=मनकी मलिनता एवं पाप-तापको धो बहानेवाली।

९२६. **राससिन्धुशशाङ्का**=रासरूपी समुद्रको उल्लसित करनेके लिये पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित, ९२७. **रासमण्डलमण्डिनी**=अपनी उपस्थितिसे रासमण्डलकी अत्यन्त शोभा बढ़ानेवाली, ९२८. **नतव्रता**=विनम्र स्वभाववाली, ९२९. **श्रीहरीच्छासुमूर्तिः**=श्रीकृष्ण-इच्छाकी सुन्दर मूर्ति, ९३०. **सुरवन्दिता**=देवताओंद्वारा वन्दित।

९३१. **गोपीचूडामणिः**=गोपाङ्गनाशिरोमणि, ९३२. **गोपीगणेड्या**=गोपियोंके समुदायद्वारा स्तुत, ९३३. **विरजाधिका**=गोलोकमें विरजासे अधिक सम्मानित पदपर स्थित, ९३४. **गोपप्रेष्ठा**=गोपाल श्यामसुन्दरकी प्रियतमा, ९३५. **गोपकन्या**=वृषभानुगोपकी पुत्री, ९३६. **गोपनारी**=गोपकी वधू, ९३७. **सुगोपिका**=श्रेष्ठ गोपी।

९३८. **गोपधामा**=गोलोक धाममें विराजमान, ९३९. **सुदामाम्बा**=सुदामागोपके प्रति मातृ-स्नेह रखनेवाली, ९४०. **गोपाली**=गोपी, ९४१. **गोपमोहिनी**=गोपाल श्रीकृष्णको मोहनेवाली, ९४२. **गोपभूपा**=गोपाल श्यामसुन्दर ही जिनके आभूषण हैं, ९४३. **कृष्णभूषा**=श्रीकृष्णको विभूषित करनेवाली, ९४४. **श्रीवृन्दावनचन्द्रिका**=श्रीवृन्दावनकी चाँदनी।

९४५. **वीणादिघोषनिरता**=वीणा आदिको बजानेमें संलग्न, ९४६. **रासोत्सवविकासिनी**=रासोत्सवका विकास करनेवाली, ९४७. **कृष्णचेष्टा**=श्रीकृष्णके अनुरूप चेष्टा करनेवाली, ९४८. **अपरिज्ञाता**=पहचानमें न आनेवाली, ९४९. **कोठिकन्दर्पमोहिनी**=करोड़ों कामदेवोंको मोहित करनेवाली।

९५०. **श्रीकृष्णगुणगानाढ्या**=श्रीकृष्णके गुणोंका गान करनेमें तत्पर, ९५१. **देवसुन्दरिमोहिनी**=देव-सुन्दरियोंको मोहनेवाली, ९५२. **कृष्णचन्द्रमनोज्ञा**=श्रीकृष्णचन्द्रके मनोभावको जाननेवाली, ९५३. **कृष्णदेव-सहोदरी**=योगमाया रूपसे श्रीयशोदाके गर्भसे उत्पन्न होनेवाली।

९५४. **कृष्णाभिलाषिणी**=श्रीकृष्ण-मिलनकी इच्छा रखनेवाली, ९५५. **कृष्णप्रेमानुग्रहवाञ्छिनी**=श्रीकृष्णके प्रेम और अनुग्रहको चाहनेवाली, ९५६. **क्षेमा**=क्षेमस्वरूपा, ९५७. **मधुरालापा**=मीठे वचन बोलनेवाली, ९५८. **भ्रुवोमाया**=भौंहोंसे मायाको प्रकट करनेवाली, ९५९. **सुभद्रिका**=परम कल्याणमयी।

९६०. **प्रकृतिः**=श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति, ९६१. **परमानन्दा**=परमानन्दस्वरूपा, ९६२. **नीपद्रुम-तलस्थिता**=कदम्बवृक्षके नीचे खड़ी होनेवाली, ९६३. **कृपाकटाक्षा**=कृपापूर्ण कटाक्षवाली, ९६४. **बिम्बोष्ठी**=बिम्बफलके समान लाल ओठवाली, ९६५. **रम्भा**=सर्वाधिक सुन्दरी होनेके कारण रम्भा नामसे प्रसिद्ध, ९६६. **चारु-नितम्बिनी**=मनोहर नितम्बवाली।

९६७. **स्मरकेलिनिधाना**=प्रेमलीलाकी निधि, ९६८. **गण्डताटङ्कमण्डिता**=कपोलोंपर कर्णभूषणोंसे अलंकृत, ९६९. **हेमाद्रिकान्तिरुचिरा**=सुवर्णगिरि मेरुकी कान्तिके समान सुनहरी कान्तिसे सुशोभित परम सुन्दरी, ९७०. **प्रेमाढ्या**=प्रेमसे परिपूर्ण, ९७१. **मदमन्थरा**=प्रेममदसे मन्द-गतिवाली।

९७२. **कृष्णचिन्ता**=श्रीकृष्णका चिन्तन करनेवाली, ९७३. **प्रेमचिन्ता**=श्रीकृष्ण-प्रेमका चिन्तन करनेवाली, ९७४. **रतिचिन्ता**=श्रीकृष्णरतिका चिन्तन करनेवाली, ९७५. **कृष्णदा**=श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाली, ९७६. **रासचिन्ता**=श्रीकृष्णके साथ रासका चिन्तन करनेवाली, ९७७. **भावचिन्ता**=प्रेम-भावका चिन्तन करनेवाली, ९७८. **शुद्धचिन्ता**=विशुद्ध चिन्तनवाली, ९७९. **महा-रसा**=अतिशय प्रेमस्वरूपा।

९८०. **कृष्णादृष्टित्रुटियुगा**=श्रीकृष्णको देखे बिना क्षणभरके विलम्बको भी एक युगके समान माननेवाली, ९८१. **दृष्टिपक्ष्मविनिन्दिनी**=श्रीकृष्णका दर्शन करते समय बाधा देनेवाली आँखकी पलकोंकी निन्दा करनेवाली, ९८२. **कन्दर्पजननी**=कामदेवको जन्म देनेवाली, ९८३. **मुख्या**=

चतुर्थ पाद

नारद-सनातन-संवाद, ब्रह्माजीका मरीचिको ब्रह्मपुराणकी अनुक्रमणिका तथा उसके पाठश्रवण एवं दानका फल बताना

देवर्षि नारद विनीतभावसे सनातनजीको प्रणाम
के बोले—ब्रह्मन्! आप पुराणवेत्ताओंमें श्रेष्ठ और ज्ञान-
ानमें तत्पर हैं, अतः मुझे पुराणोंके विभागका पूर्णरूप-
ारिचय कराइये, जिसके श्रवण करनेपर सब कुछ सुन लिया
ा है, जिसका ज्ञान होनेपर सब कुछ ज्ञात हो जाता है और
कर लेनेपर सब कुछ किया हुआ हो जाता है। पुराणोंके
्यायसे वर्णों और आश्रमोंके आचार-धर्मका साक्षात्कार
जाता है। प्रभो! पुराण कितने हैं? उनकी संख्या कितनी
और उनके श्लोकोंका मान क्या है? उन पुराणोंमें कौन-
-से आख्यान वर्णित हैं? यह सब मुझे बताइये। चारों
से सम्बन्ध रखनेवाली नाना प्रकारके व्रत आदिकी कथाएँ
कहिये। सृष्टिक्रमसे विभिन्न वंशोंमें उत्पन्न हुए सत्पुरुषों-
जीवनकथाको भी भलीभाँति प्रकाशित कीजिये; क्योंकि
न्! आपसे अधिक दूसरा कोई पौराणिक उपाख्यानोंका
कार नहीं है। इसलिये सब संदेहोंका निराकरण करने-
पुराणोंका आप मुझसे वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! तदनन्तर नारदजीका वचन
कर वक्ताओंमें श्रेष्ठ सनातनजी एक क्षण भगवान् नारायण-
ध्यान करके बोले।

सनातनजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ! तुम्हें बार-बार साधुवाद
पुराणोंका उपाख्यान जाननेके लिये जो तुम्हें निष्ठायुक्त
प्राप्त हुई है, वह सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाली है।
कालमें ब्रह्माजीने पुत्रस्नेहसे परिपूर्ण चित्त होकर मरीचि
दि ऋषियोंसे इस विषयमें जो कुछ कहा था, उसीका तुम-
वर्णन करता हूँ। एक समय ब्रह्माजीके पुत्र मरीचिने,
स्वाध्याय और शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न तथा वेद-वेदाङ्गोंके
ङ्गत विद्वान् हैं, अपने पिता लोकस्रष्टा ब्रह्माजीके पास जा-
उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। दूसरोंको मान देनेवाले
श्वर! प्रणामके पश्चात् उन्होंने भी निर्मल पौराणिक
ख्यानके विषयमें, जैसा कि तुम पूछते हो, यही प्रश्न किया था।

मरीचिने कहा—भगवन्! देवदेवेश्वर! आप सम्पूर्ण
ोंकी उत्पत्ति और लयके कारण हैं। सर्वज्ञ, सबका कल्याण
ेवाले तथा सबके साक्षी हैं। आपको नमस्कार है। पिता-
जी! मुझे पुराणोंके बीज, लक्षण, प्रमाण, वक्ता और श्रोता बताइये। मैं वह सब सुननेको उत्सुक हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—वत्स! सुनो, मैं पुराणोंका संग्रह बतला रहा हूँ, जिसके जान लेनेपर चर और अचरसहित सम्पूर्ण वाङ्मयका ज्ञान हो जाता है। मानद! सब कल्पोंमें एक ही पुराण था, जिसका विस्तार सौ करोड़ श्लोकोंमें था। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका बीज माना गया है। सब शास्त्रोंकी प्रवृत्ति पुराणसे ही हुई है, अतः समयानुसार लोकमें पुराणोंका ग्रहण न होता देख परम बुद्धि-मान् भगवान् विष्णु प्रत्येक युगमें व्यासरूपसे प्रकट होते हैं। वे प्रत्येक द्वापरमें चार लाख श्लोकोंके पुराणका संग्रह करके उसके अठारह विभाग कर देते हैं और भूलोकमें उन्हींका प्रचार करते हैं। आज भी देवलोकमें सौ करोड़ श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है। उसीके सारभागका चार लाख श्लोकोंद्वारा वर्णन किया जाता है। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णु-पुराण, वायुपुराण, भागवतपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिङ्गपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्य-

चतुर्थ पाद

नारद-सनातन-संवाद, ब्रह्माजीका मरीचिको ब्रह्मपुराणकी अनुक्रमणिका तथा उसके पाठश्रवण एवं दानका फल बताना

देवर्षि नारद विनीतभावसे सनातनजीको प्रणाम करके बोले—ब्रह्मन्! आप पुराणवेत्ताओंमें श्रेष्ठ और ज्ञान-विज्ञानमें तत्पर हैं, अतः मुझे पुराणोंके विभागका पूर्णरूपसे परिचय कराइये, जिसके श्रवण करनेपर सब कुछ सुन लिया जाता है, जिसका ज्ञान होनेपर सब कुछ ज्ञात हो जाता है और जिसे कर लेनेपर सब कुछ किया हुआ हो जाता है। पुराणोंके स्वाध्यायसे वर्णों और आश्रमोंके आचार-धर्मका साक्षात्कार हो जाता है। प्रभो! पुराण कितने हैं? उनकी संख्या कितनी है? और उनके श्लोकोंका मान क्या है? उन पुराणोंमें कौन-कौन-से आख्यान वर्णित हैं? यह सब मुझे बताइये। चारों वर्णोंसे सम्बन्ध रखनेवाली नाना प्रकारके व्रत आदिकी कथाएँ भी कहिये। सृष्टिक्रमसे विभिन्न वंशोंमें उत्पन्न हुए सत्पुरुषोंकी जीवनकथाको भी भलीभाँति प्रकाशित कीजिये; क्योंकि भगवन्! आपसे अधिक दूसरा कोई पौराणिक उपाख्यानोंका जानकार नहीं है। इसलिये सब संदेहोंका निराकरण करनेवाले पुराणोंका आप मुझसे वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! तदनन्तर नारदजीका वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ सनातनजी एक क्षण भगवान् नारायणका ध्यान करके बोले।

सनातनजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ! तुम्हें बार-बार साधुवाद है। पुराणोंका उपाख्यान जाननेके लिये जो तुम्हें निष्ठायुक्त बुद्धि प्राप्त हुई है, वह सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाली है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने पुत्रस्नेहसे परिपूर्ण चित्त होकर मरीचि आदि ऋषियोंसे इस विषयमें जो कुछ कहा था, उसीका तुमसे वर्णन करता हूँ। एक समय ब्रह्माजीके पुत्र मरीचिने, जो स्वाध्याय और शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् हैं, अपने पिता लोकस्रष्टा ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। दूसरोंको मान देनेवाले मुनीश्वर! प्रणामके पश्चात् उन्होंने भी निर्मल पौराणिक उपाख्यानके विषयमें, जैसा कि तुम पूछते हो, यही प्रश्न किया था।

मरीचिने कहा—भगवन्! देवदेवेश्वर! आप सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्ति और लयके कारण हैं। सर्वज्ञ, सबका कल्याण करनेवाले तथा सबके साक्षी हैं। आपको नमस्कार है। पिताजी! मुझे पुराणोंके बीज, लक्षण, प्रमाण, वक्ता और श्रोता बताइये। मैं वह सब सुननेको उत्सुक हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—वत्स! सुनो, मैं पुराणोंका संग्रह बतला रहा हूँ, जिसके जान लेनेपर चर और अचरसहित सम्पूर्ण वाङ्मयका ज्ञान हो जाता है। मानद! सब कल्पोंमें एक ही पुराण था, जिसका विस्तार सौ करोड़ श्लोकोंमें था। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारो पुरुषार्थोंका बीज माना गया है। सब शास्त्रोंकी प्रवृत्ति पुराणसे ही हुई है, अतः समयानुसार लोकमें पुराणोंका ग्रहण न होता देख परम बुद्धिमान् भगवान् विष्णु प्रत्येक युगमें व्यासरूपसे प्रकट होते हैं। वे प्रत्येक द्वापरमें चार लाख श्लोकोंके पुराणका संग्रह करके उसके अठारह विभाग कर देते हैं और भूलोकमें उन्हींका प्रचार करते हैं। आज भी देवलोकमें सौ करोड़ श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है। उसीके सारभागका चार लाख श्लोकोंद्वारा वर्णन किया जाता है। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, भागवतपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिङ्गपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्य-

विषय जिसमें कहे गये हों, वह सूत-शौनक-सवादरूप ग्रन्थ 'भूमिखण्ड' कहा गया है।

जहाँ सौति तथा महर्षियोंके संवादरूपसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति बतायी गयी है, पृथ्वीसहित सम्पूर्ण लोकोंकी स्थिति और तीर्थोंका वर्णन किया गया है। तदनन्तर जहाँ नर्मदा-जीकी उत्पत्ति-कथा और उनके तीर्थोंका पृथक्-पृथक् वर्णन है, जिसमें कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंकी पुण्यमयी कथा कही गयी है, कालिन्दीकी पुण्यकथा, काशीमाहात्म्यवर्णन तथा गया और प्रयागके पुण्यमय माहात्म्यका निरूपण है, वर्ण और आश्रमके अनुकूल कर्मयोगका निरूपण, पुण्यकर्मकी कथाको लेकर व्यास-जैमिनि-संवाद, समुद्र-मन्थनकी कथा, व्रतसम्बन्धी उपाख्यान, तदनन्तर कार्तिकके अन्तिम पाँच दिन (भीष्मपञ्चक) का माहात्म्य तथा सर्वापराधनिवारक स्तोत्र—ये सब विषय जहाँ आये हैं, वह 'स्वर्गखण्ड' कहा गया है। ब्रह्मन्! यह सब पातकोंका नाश करनेवाला है।

रामाश्वमेधके प्रसङ्गमें प्रथम रामका राज्याभिषेक, अगस्त्य आदि महर्षियोंका आगमन, पुलस्त्यवंशका वर्णन, अश्वमेधका उपदेश, अश्वमेधीय अश्वका पृथ्वीपर विचरण, अनेक राजाओंकी पुण्यमयी कथा, जगन्नाथजीकी महिमाका निरूपण, वृन्दावनका सर्वपापनाशक माहात्म्य, कृष्णावतार-धारी श्रीहरिकी नित्य लीलाओंका कथन, वैशाखस्नानकी महिमा, स्नान-दान और पूजनका फल, भूमि-वाराह-संवाद, यम और ब्राह्मणकी कथा, राजदूतोंका संवाद, श्रीकृष्णस्तोत्रका निरूपण, शिवशम्भु-समागम, दधीचिकी कथा, भस्मका अनुपम माहात्म्य, उत्तम शिव-माहात्म्य, देवरातसुतोपाख्यान, पुराणवेत्ताकी प्रशंसा, गौतमका उपाख्यान और शिवगीता तथा कल्पान्तरमें भरद्वाज-आश्रममें श्रीरामकथा आदि विषय 'पातालखण्ड'के अन्तर्गत हैं। जो सदा इसका श्रवण और पाठ करते हैं, उनके सब पापोंका नाश करके यह उन्हें सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति कराता है।

पाँचवें खण्डमें पहले भगवान् शिवके द्वारा गौरीदेवीके प्रति कहा हुआ पर्वतोपाख्यान है। तत्पश्चात् जालन्धरकी कथा, श्रीशैल आदिका माहात्म्यकीर्तन और राजा सगरकी पुण्यमयी कथा है। उसके बाद गङ्गा, प्रयाग, काशी और गयाका अधिक पुण्यदायक माहात्म्य कहा गया है। फिर अन्नादि दानका माहात्म्य और महाद्वादशीव्रतका उल्लेख है। तत्पश्चात् चौबीस एकादशियोंका पृथक्-पृथक् माहात्म्य कहा गया है। फिर विष्णुधर्मका निरूपण और विष्णुसहस्र-नामका वर्णन है। उसके बाद कार्तिकव्रतका माहात्म्य, माघ-स्नानका फल तथा जम्बूद्वीपके तीर्थोंकी पापनाशक महिमाका वर्णन है। फिर साभ्रमती (साबरमती) का माहात्म्य, नृसिंहोत्पत्तिकथा, देवशर्मा आदिका उपाख्यान और गीतामाहात्म्यका वर्णन है। तदनन्तर भक्तिका आख्यान, श्रीमद्भागवतका माहात्म्य और अनेक तीर्थोंकी कथासे युक्त इन्द्रप्रस्थकी महिमा है। इसके बाद मन्त्ररत्नका कथन, त्रिपादविभूतिका वर्णन तथा मत्स्य आदि अवतारोंकी पुण्यमयी अवतार-कथा है। तत्पश्चात् अष्टोत्तरशत दिव्य राम-नाम और उसके माहात्म्यका वर्णन है। वाडव! फिर महर्षि भृगुद्वारा भगवान् विष्णुके वैभवकी परीक्षाका उल्लेख है। इस प्रकार यह पाँचवाँ 'उत्तरखण्ड' कहा गया है, जो सब प्रकारके पुण्य देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मानव पाँच खण्डोंसे युक्त पद्मपुराणका श्रवण करता है, वह इस लोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको भोगकर वैष्णव धामको प्राप्त कर लेता है। यह पद्मपुराण पचपन हजार श्लोकोंसे युक्त है। मानद! जो इस पुराणको लिखवाकर पुराणज्ञ ब्राह्मणका

भलीभाँति सत्कार करके ज्येष्ठकी पूर्णिमाको स्वर्णमय कमलके साथ इस लिखित पुराणका उक्त पुराणवेत्ता ब्राह्मणको दान करता है, वह सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित होकर वैष्णव धामको चला जाता है। जो पद्मपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका पाठ तथा श्रवण करता है, वह भी सम्पूर्ण पद्मपुराणके श्रवणजनित फलको प्राप्त कर लेता है।

विषय जिसमें कहे गये हों, वह सूत-शौनक-संवादरूप ग्रन्थ 'भूमिखण्ड' कहा गया है।

जहाँ सौति तथा महर्षियोंके संवादरूपसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति बतायी गयी है, पृथ्वीसहित सम्पूर्ण लोकोंकी स्थिति और तीर्थोंका वर्णन किया गया है। तदनन्तर जहाँ नर्मदा-जीकी उत्पत्ति-कथा और उनके तीर्थोंका पृथक्-पृथक् वर्णन है, जिसमें कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंकी पुण्यमयी कथा कही गयी है, कालिन्दीकी पुण्यकथा, काशीमाहात्म्यवर्णन तथा गया और प्रयागके पुण्यमय माहात्म्यका निरूपण है, वर्ण और आश्रमके अनुकूल कर्मयोगका निरूपण, पुण्यकर्मकी कथाको लेकर व्यास-जैमिनि-संवाद, समुद्र-मन्थनकी कथा, व्रतसम्बन्धी उपाख्यान, तदनन्तर कार्तिकके अन्तिम पाँच दिन (भीष्मपञ्चक) का माहात्म्य तथा सर्वापराधनिवारक स्तोत्र—ये सब विषय जहाँ आये हैं, वह 'स्वर्गखण्ड' कहा गया है। ब्रह्मन्! यह सब पातकोंका नाश करनेवाला है।

रामाश्वमेधके प्रसङ्गमें प्रथम रामका राज्याभिषेक, अगस्त्य आदि महर्षियोंका आगमन, पुलस्त्यवंशका वर्णन, अश्वमेधका उपदेश, अश्वमेधीय अश्वका पृथ्वीपर विचरण, अनेक राजाओंकी पुण्यमयी कथा, जगन्नाथजीकी महिमाका निरूपण, वृन्दावनका सर्वपापनाशक माहात्म्य, कृष्णावतार-धारी श्रीहरिकी नित्य लीलाओंका कथन, वैशाखस्नानकी महिमा, स्नान-दान और पूजनका फल, भूमि-वाराह-संवाद, यम और ब्राह्मणकी कथा, राजदूतोंका संवाद, श्रीकृष्णस्तोत्रका निरूपण, शिवशम्भु-समागम, दधीचिकी कथा, भस्मका अनुपम माहात्म्य, उत्तम शिव-माहात्म्य, देवरातसुतोपाख्यान, पुराणवेत्ताकी प्रशंसा, गौतमका उपाख्यान और शिवगीता तथा कल्पान्तरमें भरद्वाज-आश्रममें श्रीरामकथा आदि विषय 'पातालखण्ड'के अन्तर्गत हैं। जो सदा इसका श्रवण और पाठ करते हैं, उनके सब पापोंका नाश करके यह उन्हें सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति कराता है।

पाँचवें खण्डमें पहले भगवान् शिवके द्वारा गौरीदेवीके प्रति कहा हुआ पर्वतोपाख्यान है। तत्पश्चात् जालन्धरकी कथा, श्रीशैल आदिका माहात्म्यकीर्तन और राजा सगरकी पुण्यमयी कथा है। उसके बाद गङ्गा, प्रयाग, काशी और गयाका अधिक पुण्यदायक माहात्म्य कहा गया है। फिर अन्नादि दानका माहात्म्य और महाद्वादशीव्रतका उल्लेख है। तत्पश्चात् चौबीस एकादशियोंका पृथक्-पृथक् माहात्म्य कहा गया है। फिर विष्णुधर्मका निरूपण और विष्णुसहस्र-नामका वर्णन है। उसके बाद कार्तिकव्रतका माहात्म्य, माघ-स्नानका फल तथा जम्बूद्वीपके तीर्थोंकी पापनाशक महिमाका वर्णन है। फिर साभ्रमती (साबरमती) का माहात्म्य, नृसिंहोत्पत्तिकथा, देवशर्मा आदिका उपाख्यान और गीतामाहात्म्यका वर्णन है। तदनन्तर भक्तिका आख्यान, श्रीमद्भागवतका माहात्म्य और अनेक तीर्थोंकी कथासे युक्त इन्द्रप्रस्थकी महिमा है। इसके बाद मन्त्ररत्नका कथन, त्रिपादविभूतिका वर्णन तथा मत्स्य आदि अवतारोंकी पुण्यमयी अवतार-कथा है। तत्पश्चात् अष्टोत्तरशत दिव्य राम-नाम और उसके माहात्म्यका वर्णन है। वाडव! फिर महर्षि भृगुद्वारा भगवान् विष्णुके वैभवकी परीक्षाका उल्लेख है। इस प्रकार यह पाँचवाँ 'उत्तरखण्ड' कहा गया है, जो सब प्रकारके पुण्य देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मानव पाँच खण्डोंसे युक्त पद्मपुराणका श्रवण करता है, वह इस लोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको भोगकर वैष्णव धामको प्राप्त कर लेता है। यह पद्मपुराण पचपन हजार श्लोकोंसे युक्त है। मानद! जो इस पुराणको लिखवाकर पुराणज्ञ ब्राह्मणका

भलीभाँति सत्कार करके ज्येष्ठकी पूर्णिमाको स्वर्णमय कमलके साथ इस लिखित पुराणका उक्त पुराणवेत्ता ब्राह्मणको दान करता है, वह सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित होकर वैष्णव धामको चला जाता है। जो पद्मपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका पाठ तथा श्रवण करता है, वह भी सम्पूर्ण पद्मपुराणके श्रवणजनित फलको प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्मा है, यही विष्णु है और यही सर्वोत्कृष्ट साक्षात् शिव है। यह नर्मदाजल ही निराकार ब्रह्म तथा कैवल्य मोक्ष है।

निश्चय ही भगवान् शिवने समस्त लोकोंका हित करनेके लिये अपने शरीरसे इस नर्मदा नदीके रूपमें किसी दिव्य शक्तिको ही धरतीपर उतारा है। जो नर्मदाके उत्तर तटपर निवास करते हैं, वे भगवान् रुद्रके अनुचर होते हैं और जिनका दक्षिण तटपर निवास है, वे भगवान् विष्णुके लोकमे जाते हैं। ॐकारेश्वरसे लेकर पश्चिम समुद्रतक नर्मदा नदीमें दूसरी नदियोंके पैंतीस पापनाशक संगम हैं, उनमेंसे ग्यारह तो उत्तर तटपर हैं और तेईस दक्षिण तटपर। पैंतीसवाँ तो स्वय नर्मदा और समुद्रका संगम कहा गया है। नर्मदाके दोनों तटोंपर इन संगमोंके साथ चार सौ प्रसिद्ध तीर्थ हैं। मुनीश्वर! इनके सिवा अन्य साधारण तीर्थ तो रेवाके दोनों तटोंपर पग-पगपर विद्यमान हैं, जिनकी संख्या साठ करोड़ साठ हजार है। यह परमात्मा शिवकी संहिता परम पुण्यमयी है, जिसमें वायुदेवताने नर्मदाके चरित्रका वर्णन किया है। जो इस पुराणको लिखकर गुड़मयी धेनुके साथ श्रावणकी पूर्णिमाको भक्तिपूर्वक कुटुम्बी ब्राह्मणके हाथमें दान देता है, वह चौदह इन्द्रोंके राज्यकालतक रुद्रलोकमें निवास करता है। जो मनुष्य नियमपूर्वक हविष्य भोजन करते हुए इस वायुपुराणको सुनाता अथवा सुनता है, वह साक्षात् रुद्र है, इसमें संशय नहीं है। जो इस अनुक्रमणिकाको सुनता और सुनाता है, वह भी समस्त पुराणके श्रवणका फल पा लेता है।

श्रीमद्भागवतका परिचय, माहात्म्य तथा दानजनित फल

ब्रह्माजी कहते हैं—मरीचे! सुनो, वेदव्यासजीने जो वेदतुल्य श्रीमद्भागवत नामक महापुराणका सम्पादन किया है, वह अठारह हजार श्लोकोंका बतलाया गया है। यह पुराण सब पापोंका नाश करनेवाला है। यह बारह शाखाओंसे युक्त कल्पवृक्षस्वरूप है। विप्रवर! इसमें विश्वरूप भगवान्‌का ही प्रतिपादन किया गया है। इसके पहले स्कन्धमे सूत और शौनकादि ऋषियोंके समागमका प्रसंग उठाकर व्यासजी तथा पाण्डवोंके पवित्र चरित्रका वर्णन किया गया है। इसके बाद परीक्षित्‌के जन्मसे लेकर प्रायोपवेशनतककी कथा कही गयी है। यहींतक प्रथमस्कन्धका विषय है। फिर परीक्षित्-शुकसंवादमें स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारकी धारणाओंका निरूपण है। तदनन्तर ब्रह्म-नारद-संवादमें भगवान्‌के अवतारसम्बन्धी अमृतोपम चरित्रोंका वर्णन है। फिर पुराणका लक्षण कहा गया है। बुद्धिमान् व्यासजीने यह द्वितीय स्कन्धका विषय बताया है, जो सृष्टिके कारणतत्त्वोंकी उत्पत्तिका प्रतिपादक है। तत्पश्चात् विदुरका चरित्र, मैत्रेयजीके साथ विदुरका समागम, परमात्मा ब्रह्मसे सृष्टिक्रमका निरूपण और महर्षि कपिलद्वारा कहा हुआ सांख्य—यह सब विषय तृतीय स्कन्धके अन्तर्गत बताया गया है। तदनन्तर पहले सतीचरित्र, फिर ध्रुवका चरित्र, तत्पश्चात् राजा पृथुका पवित्र उपाख्यान, फिर राजा प्राचीनबर्हिषकी कथा—यह सब विसर्गविषयक परम उत्तम चौथा स्कन्ध कहा गया है। राजा प्रियव्रत और उनके पुत्रोंका पुण्यदायक चरित्र, ब्रह्माण्डके अन्तर्गत विभिन्न लोकोंका वर्णन तथा नरकोंकी स्थिति—यह संस्थानविषयक पाँचवाँ स्कन्ध है। अजामिलका चरित्र, दक्ष प्रजापतिद्वारा की हुई सृष्टिका निरूपण, वृत्रासुरकी कथा और मरुद्गणोंका पुण्यदायक जन्म—यह सब व्यासजीके द्वारा छठा स्कन्ध कहा गया है। वत्स! प्रह्लादका पुण्यचरित्र और वर्णाश्रम-धर्मका निरूपण यह सातवाँ स्कन्ध बताया गया है। यह 'ऊति' अथवा कर्मवासनाविषयक स्कन्ध है। इसमें उसीका प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् मन्वन्तरनिरूपणके प्रसंगमें गजेन्द्रमोक्षकी कथा; समुद्रमन्थन, बलिके ऐश्वर्यकी वृद्धि और उनका बन्धन तथा मत्स्यावतार-चरित्र—यह आठवाँ स्कन्ध कहा गया है। महामते! सूर्यवंश-

ब्रह्मा है, यही विष्णु है और यही सर्वोत्कृष्ट साक्षात् शिव है। यह नर्मदाजल ही निराकार ब्रह्म तथा कैवल्य मोक्ष है।

निश्चय ही भगवान् शिवने समस्त लोकोंका हित करनेके लिये अपने शरीरसे इस नर्मदा नदीके रूपमें किसी दिव्य शक्तिको ही धरतीपर उतारा है। जो नर्मदाके उत्तर तटपर निवास करते हैं, वे भगवान् रुद्रके अनुचर होते हैं और जिनका दक्षिण तटपर निवास है, वे भगवान् विष्णुके लोकमे जाते हैं। ॐकारेश्वरसे लेकर पश्चिम समुद्रतक नर्मदा नदीमें दूसरी नदियोंके पैंतीस पापनाशक संगम हैं, उनमेंसे ग्यारह तो उत्तर तटपर हैं और तेईस दक्षिण तटपर। पैंतीसवॉ तो स्वय नर्मदा और समुद्रका संगम कहा गया है। नर्मदाके दोनों तटोंपर इन संगमोंके साथ चार सौ प्रसिद्ध तीर्थ हैं। मुनीश्वर! इनके सिवा अन्य साधारण तीर्थ तो रेवाके दोनों तटोंपर पग-पगपर विद्यमान हैं, जिनकी संख्या साठ करोड़ साठ हजार है। यह परमात्मा शिवकी संहिता परम पुण्यमयी है, जिसमें वायुदेवताने नर्मदाके चरित्रका वर्णन किया है। जो इस पुराणको लिखकर गुड़मयी धेनुके साथ श्रावणकी पूर्णिमाको भक्तिपूर्वक कुटुम्बी ब्राह्मणके हाथमें दान देता है, वह चौदह इन्द्रोंके राज्यकालतक रुद्रलोकमें निवास करता है। जो मनुष्य नियमपूर्वक हविष्य भोजन करते हुए इस वायुपुराणको सुनाता अथवा सुनता है, वह साक्षात् रुद्र है, इसमें संशय नहीं है। जो इस अनुक्रमणिकाको सुनता और सुनाता है, वह भी समस्त पुराणके श्रवणका फल पा लेता है।

श्रीमद्भागवतका परिचय, माहात्म्य तथा दानजनित फल

ब्रह्माजी कहते हैं—मरीचे! सुनो, वेदव्यासजीने जो वेदतुल्य श्रीमद्भागवत नामक महापुराणका सम्पादन किया है, वह अठारह हजार श्लोकोंका बतलाया गया है। यह पुराण सब पापोंका नाश करनेवाला है। यह बारह शाखाओंसे युक्त कल्पवृक्षस्वरूप है। विप्रवर! इसमें विश्वरूप भगवान्‌का ही प्रतिपादन किया गया है। इसके पहले स्कन्धमे सूत और शौनकादि ऋषियोंके समागमका प्रसंग उठाकर व्यासजी तथा पाण्डवोंके पवित्र चरित्रका वर्णन किया गया है। इसके बाद परीक्षित्‌के जन्मसे लेकर प्रायोपवेशनतककी कथा कही गयी है। यहींतक प्रथमस्कन्धका विषय है। फिर परीक्षित्-शुकसंवादमें स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारकी धारणाओंका निरूपण है। तदनन्तर ब्रह्म-नारद-संवादमें भगवान्‌के अवतारसम्बन्धी अमृतोपम चरित्रोंका वर्णन है। फिर पुराणका लक्षण कहा गया है। बुद्धिमान् व्यासजीने यह द्वितीय स्कन्धका विषय बताया है, जो सृष्टिके कारणतत्त्वोंकी उत्पत्तिका प्रतिपादक है। तत्पश्चात् विदुरका चरित्र, मैत्रेयजीके साथ विदुरका समागम, परमात्मा ब्रह्मसे सृष्टिक्रमका निरूपण और महर्षि कपिलद्वारा कहा हुआ सांख्य—यह सब विषय तृतीय स्कन्धके अन्तर्गत बताया गया है। तदनन्तर पहले सतीचरित्र, फिर ध्रुवका चरित्र, तत्पश्चात् राजा पृथुका पवित्र उपाख्यान, फिर राजा प्राचीनबर्हिषकी कथा—यह सब विसर्गविषयक परम उत्तम चौथा स्कन्ध कहा गया है। राजा प्रियव्रत और उनके पुत्रोंका पुण्यदायक चरित्र, ब्रह्माण्डके अन्तर्गत विभिन्न लोकोंका वर्णन तथा नरकोंकी स्थिति—यह संस्थानविषयक पाँचवाँ स्कन्ध है। अजामिलका चरित्र, दक्ष प्रजापतिद्वारा की हुई सृष्टिका निरूपण, वृत्रासुरकी कथा और मरुद्गणोंका पुण्यदायक जन्म—यह सब व्यासजीके द्वारा छठा स्कन्ध कहा गया है। वत्स! प्रह्लादका पुण्यचरित्र और वर्णाश्रम-धर्मका निरूपण यह सातवाँ स्कन्ध बताया गया है। यह 'ऊति' अथवा कर्मवासनाविषयक स्कन्ध है। इसमें उसीका प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् मन्वन्तरनिरूपणके प्रसंगमें गजेन्द्रमोक्षकी कथा; समुद्रमन्थन, बलिके ऐश्वर्यकी वृद्धि और उनका बन्धन तथा मत्स्यावतार-चरित्र—यह आठवाँ स्कन्ध कहा गया है। महामते! सूर्यवंश-

प्रभासक्षेत्रकी महिमा, पुष्करक्षेत्रका माहात्म्य, गौतममुनिका आख्यान, वेदपादस्तोत्र, गोकर्णक्षेत्रका माहात्म्य, लक्ष्मणजीकी कथा, सेतुमाहात्म्यकथन, नर्मदाके तीर्थोंका वर्णन, अवन्तीपुरीकी महिमा, तदनन्तर मथुरा-माहात्म्य, वृन्दावनकी महिमा, वसुका ब्रह्माके निकट जाना, तत्पश्चात् मोहिनीका तीर्थोंमें भ्रमण आदि विषय हैं। इस प्रकार यह सब नारदमहापुराण है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त हो इस पुराणको सुनता अथवा सुनाता है, वह ब्रह्मलोकमे जाता है। जो आश्विनकी पूर्णिमाके दिन सात धेनुओंके साथ इस पुराणका श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान करता है, वह निश्चय ही मोक्ष पाता है। जो एकचित्त होकर नारदपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका वर्णन अथवा श्रवण करता है, वह भी स्वर्गलोकमें जाता है।

मार्कण्डेयपुराणका परिचय तथा उसके श्रवण एवं दानका माहात्म्य

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—मुने! अब मैं तुम्हें मार्कण्डेयपुराणका परिचय देता हूँ। यह महापुराण पढ़ने और सुननेवाले पुरुषोंके लिये सदा पुण्यदायक है। जिसमे पक्षियोंको प्रवचनका अधिकारी बनाकर उनके द्वारा सब धर्मोंका निरूपण किया गया है, वह मार्कण्डेयपुराण नौ हजार श्लोकोंका है, ऐसा कहा जाता है। इसमें पहले मार्कण्डेयमुनिके समीप जैमिनिके प्रश्नका वर्णन है। फिर धर्मसंज्ञक पक्षियोंके जन्मकी कथा कही गयी है। फिर उनके पूर्वजन्मकी कथा और देवराज इन्द्रके कारण उन्हें शापरूप विकारकी प्राप्तिका कथन है। तदनन्तर बलभद्रजीकी तीर्थयात्रा, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी कथा, हरिश्चन्द्रकी पुण्यमयी कथा, आडी और बक पक्षियोंका युद्ध, पिता और पुत्रका उपाख्यान, दत्तात्रेयजीकी कथा, महान् आख्यानसहित हैहयचरित्र, अलर्कचरित्रके साथ मदालसाकी कथा, नौ प्रकारकी सृष्टिका पुण्यमय वर्णन, कल्पान्तकालका निर्देश, यक्ष-सृष्टि-निरूपण, रुद्र आदिकी सृष्टि, द्वीपचर्याका वर्णन, मनुओंकी अनेक पापनाशक कथाओंका कीर्तन और उन्हींमें दुर्गाजीकी अत्यन्त पुण्यदायिनी कथा है, जो आठवें मन्वन्तरके प्रसङ्गमें कही गयी है। तत्पश्चात् तीन वेदोंके तेजसे प्रणवकी उत्पत्ति, सूर्यदेवके जन्मकी कथा, उनका माहात्म्य, वैवस्वत मनुके वंशका वर्णन, वत्सप्रीका चरित्र, तदनन्तर महात्मा खनित्रकी

प्रभासक्षेत्रकी महिमा, पुष्करक्षेत्रका माहात्म्य, गौतममुनिका आख्यान, वेदपादस्तोत्र, गोकर्णक्षेत्रका माहात्म्य, लक्ष्मणजीकी कथा, सेतुमाहात्म्यकथन, नर्मदाके तीर्थोंका वर्णन, अवन्तीपुरीकी महिमा, तदनन्तर मथुरा-माहात्म्य, वृन्दावनकी महिमा, वसुका ब्रह्माके निकट जाना, तत्पश्चात् मोहिनीका तीर्थोंमें भ्रमण आदि विषय हैं। इस प्रकार यह सब नारदमहापुराण है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त हो इस पुराणको सुनता अथवा सुनाता है, वह ब्रह्मलोकमे जाता है। जो आश्विनकी पूर्णिमाके दिन सात धेनुओंके साथ इस पुराणका श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान करता है, वह निश्चय ही मोक्ष पाता है। जो एकचित्त होकर नारदपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका वर्णन अथवा श्रवण करता है, वह भी स्वर्गलोकमें जाता है।

मार्कण्डेयपुराणका परिचय तथा उसके श्रवण एवं दानका माहात्म्य

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—मुने! अब मैं तुम्हें मार्कण्डेयपुराणका परिचय देता हूँ। यह महापुराण पढ़ने और सुननेवाले पुरुषोंके लिये सदा पुण्यदायक है। जिसमे पक्षियोंको प्रवचनका अधिकारी बनाकर उनके द्वारा सब धर्मोंका निरूपण किया गया है, वह मार्कण्डेयपुराण नौ हजार श्लोकोंका है, ऐसा कहा जाता है। इसमें पहले मार्कण्डेयमुनिके समीप जैमिनिके प्रश्नका वर्णन है। फिर धर्मसंज्ञक पक्षियोंके जन्मकी कथा कही गयी है। फिर उनके पूर्वजन्मकी कथा और देवराज इन्द्रके कारण उन्हें शापरूप विकारकी प्राप्तिका कथन है। तदनन्तर बलभद्रजीकी तीर्थयात्रा, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी कथा, हरिश्चन्द्रकी पुण्यमयी कथा, आडी और बक पक्षियोंका युद्ध, पिता और पुत्रका उपाख्यान, दत्तात्रेयजीकी कथा, महान् आख्यानसहित हैहयचरित्र, अलर्कचरित्रके साथ मदालसाकी कथा, नौ प्रकारकी सृष्टिका पुण्यमय वर्णन, कल्पान्तकालका निर्देश, यक्ष-सृष्टि-निरूपण, रुद्र आदिकी सृष्टि, द्वीपचर्याका वर्णन, मनुओंकी अनेक पापनाशक कथाओंका कीर्तन और उन्हींमें दुर्गाजीकी अत्यन्त पुण्यदायिनी कथा है, जो आठवें मन्वन्तरके प्रसङ्गमें कही गयी है। तत्पश्चात् तीन वेदोंके तेजसे प्रणवकी उत्पत्ति, सूर्यदेवके जन्मकी कथा, उनका माहात्म्य, वैवस्वत मनुके वंशका वर्णन, वत्सप्रीका चरित्र, तदनन्तर महात्मा खनित्रकी

भविष्यपुराणका परिचय तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—अब मैं तुम्हें सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले भविष्यपुराणका वर्णन करता हूँ, जो सब लोगोंके अभीष्ट मनोरथको सिद्ध करनेवाला है; जिसमे मैं ब्रह्मा सम्पूर्ण देवताओंका आदि स्रष्टा बताया गया हूँ। पूर्वकालमें सृष्टिके लिये स्वयम्भू मनु उत्पन्न हुए। उन्होंने मुझे प्रणाम करके सर्वार्थसाधक धर्मके विषयमे प्रश्न किया। तब मैंने प्रसन्न होकर उन्हें धर्मसंहिताका उपदेश किया। परम बुद्धिमान् व्यास जब पुराणोंका विस्तार करने लगे तो उन्होंने उस धर्मसंहिताके पाँच विभाग किये। उनमें नाना प्रकारकी आश्चर्यजनक कथाओंसे युक्त अघोरकल्पका वृत्तान्त है। उस पुराणमे पहला पर्व 'ब्रह्मपर्व'के नामसे प्रसिद्ध है। इसीमें ग्रन्थका उपक्रम है। सूत-शौनक-संवादमें पुराणविषयक प्रश्न है। इसमे अधिकतर सूर्यदेवका ही चरित्र है। अन्य सब उपाख्यान भी इसमें आये हैं। इसमें सृष्टि आदिके लक्षण बताये गये हैं। शास्त्रोंका तो यह सर्वस्वरूप है। इसमे पुस्तक, लेखक और लेख्यका भी लक्षण दिया गया है। सब प्रकारके संस्कारोंका भी लक्षण बताया गया है। पक्षकी आदि सात तिथियोंके सात कल्प कहे गये हैं। अष्टमी आदि तिथियोंके शेष आठ कल्प 'वैष्णवपर्व'में बताये गये हैं। 'शैवपर्व'मे ब्रह्मपर्वसे भिन्न कथाएँ हैं। 'सौरपर्व'मे अन्तिम कथाओंका सम्बन्ध देखा जाता है। तत्पश्चात् 'प्रतिसर्ग पर्व' है, जिसमे पुराणके उपसंहारका वर्णन है। यह नाना प्रकारके उपाख्यानोंसे युक्त पाँचवाँ पर्व है। इन पाँच पर्वोंमेंसे पहलेमें मुझ ब्रह्माकी महिमा अधिक है। दूसरे और तीसरे पर्वोंमें धर्म, काम और मोक्ष विषयको लेकर क्रमशः भगवान् विष्णु तथा शिवकी महिमाका वर्णन है। चौथे पर्वमें सूर्यदेवकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। अन्तिम या पाँचवाँ पर्व प्रतिसर्ग नामसे प्रसिद्ध है। इसमे सब प्रकारकी कथाएँ हैं। बुद्धिमान् व्यासजीने इस पर्वका भविष्यकी कथाओंके साथ उल्लेख किया है। भविष्यपुराणकी श्लोक-संख्या चौदह हजार बतायी गयी है। इसमे ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवताओंकी समताका प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म सर्वत्र सम है। गुणोंके तारतम्यसे उसमें विषमता प्रतीत होती है। ऐसा श्रुतिका कथन है। जो विद्वान् ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर सुवर्ण, वस्त्र, माला, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और भक्ष्य-भोज्य आदि नैवेद्योंसे विधिपूर्वक वाचक और पुस्तककी पूजा करता है और भविष्यपुराणकी पुस्तकको लिखकर गुड़धेनुके साथ पौषकी पूर्णिमाको उसका दान

करता है, तथा जो जितेन्द्रिय, निराहार अथवा एक समय हविष्यभोजी एव एकाग्रचित्त होकर इस पुराणका पाठ और श्रवण करता है, वह भयंकर पातकोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें चला जाता है। जो भविष्यपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भी भोग एवं मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणका परिचय तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दान आदिकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—वत्स! सुनो, अब मैं तुम्हें दसवें पुराण ब्रह्मवैवर्तका परिचय देता हूँ, जो वेदमार्गका साक्षात्कार करानेवाला है। जहाँ देवर्षि नारदको उनके प्रार्थना करनेपर भगवान् सावर्णिने सम्पूर्ण पुराणोक्त विषयका उपदेश किया था। यह पुराण अलौकिक एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका सारभूत है। इसके पाठ और श्रवणसे भगवान् विष्णु और शिवमें प्रीति होती है। उन दोनोंमें अभेद-सिद्धिके लिये इस उत्तम ब्रह्मवैवर्तपुराणका उपदेश किया गया है। मैंने रथन्तर कल्पका जो वृत्तान्त बताया था, उसीको वेदवेत्ता व्यासने संक्षिप्त करके शतकोटिपुराणमें

भविष्यपुराणका परिचय तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—अब मैं तुम्हें सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले भविष्यपुराणका वर्णन करता हूँ, जो सब लोगोंके अभीष्ट मनोरथको सिद्ध करनेवाला है; जिसमे मैं ब्रह्मा सम्पूर्ण देवताओंका आदि स्रष्टा बताया गया हूँ। पूर्वकालमें सृष्टिके लिये स्वयम्भू मनु उत्पन्न हुए। उन्होंने मुझे प्रणाम करके सर्वार्थसाधक धर्मके विषयमे प्रश्न किया। तब मैंने प्रसन्न होकर उन्हें धर्मसंहिताका उपदेश किया। परम बुद्धिमान् व्यास जब पुराणोंका विस्तार करने लगे तो उन्होंने उस धर्मसंहिताके पाँच विभाग किये। उनमें नाना प्रकारकी आश्चर्यजनक कथाओंसे युक्त अघोरकल्पका वृत्तान्त है। उस पुराणमे पहला पर्व 'ब्रह्मपर्व'के नामसे प्रसिद्ध है। इसीमें ग्रन्थका उपक्रम है। सूत-शौनक-संवादमें पुराणविषयक प्रश्न है। इसमे अधिकतर सूर्यदेवका ही चरित्र है। अन्य सब उपाख्यान भी इसमें आये हैं। इसमें सृष्टि आदिके लक्षण बताये गये हैं। शास्त्रोंका तो यह सर्वस्वरूप है। इसमे पुस्तक, लेखक और लेख्यका भी लक्षण दिया गया है। सब प्रकारके सस्कारोंका भी लक्षण बताया गया है। पक्षकी आदि सात तिथियोंके सात कल्प कहे गये हैं। अष्टमी आदि तिथियोंके शेष आठ कल्प 'वैष्णवपर्व'में बताये गये हैं। 'शैवपर्व'मे ब्रह्मपर्वसे भिन्न कथाएँ हैं। 'सौरपर्व'मे अन्तिम कथाओंका सम्बन्ध देखा जाता है। तत्पश्चात् 'प्रतिसर्ग पर्व' है, जिसमे पुराणके उपसंहारका वर्णन है। यह नाना प्रकारके उपाख्यानोंसे युक्त पाँचवाँ पर्व है। इन पाँच पर्वोंमेंसे पहलेमें मुझ ब्रह्माकी महिमा अधिक है। दूसरे और तीसरे पर्वोंमें धर्म, काम और मोक्ष विषयको लेकर क्रमशः भगवान् विष्णु तथा शिवकी महिमाका वर्णन है। चौथे पर्वमें सूर्यदेवकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। अन्तिम या पाँचवाँ पर्व प्रतिसर्ग नामसे प्रसिद्ध है। इसमे सब प्रकारकी कथाएँ हैं। बुद्धिमान् व्यासजीने इस पर्वका भविष्यकी कथाओंके साथ उल्लेख किया है। भविष्यपुराणकी श्लोक-सख्या चौदह हजार बतायी गयी है। इसमे ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवताओंकी समताका प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म सर्वत्र सम है। गुणोंके तारतम्यसे उसमें विषमता प्रतीत होती है। ऐसा श्रुतिका कथन है। जो विद्वान् ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर सुवर्ण, वस्त्र, माला, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और भक्ष्य-भोज्य आदि नैवेद्योंसे विधिपूर्वक वाचक और पुस्तककी पूजा करता है और भविष्यपुराणकी पुस्तकको लिखकर गुड़धेनुके साथ पौषकी पूर्णिमाको उसका दान

करता है, तथा जो जितेन्द्रिय, निराहार अथवा एक समय हविष्यभोजी एव एकाग्रचित्त होकर इस पुराणका पाठ और श्रवण करता है, वह भयंकर पातकोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें चला जाता है। जो भविष्यपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भी भोग एवं मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणका परिचय तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दान आदिकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—वत्स! सुनो, अब मैं तुम्हें दसवें पुराण ब्रह्मवैवर्तका परिचय देता हूँ, जो वेदमार्गका साक्षात्कार करानेवाला है। जहाँ देवर्षि नारदको उनके प्रार्थना करनेपर भगवान् सावर्णिने सम्पूर्ण पुराणोक्त विषयका उपदेश किया था। यह पुराण अलौकिक एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका सारभूत है। इसके पाठ और श्रवणसे भगवान् विष्णु और शिवमें प्रीति होती है। उन दोनोंमें अभेद-सिद्धिके लिये इस उत्तम ब्रह्मवैवर्तपुराणका उपदेश किया गया है। मैंने रथन्तर कल्पका जो वृत्तान्त बताया था, उसीको वेदवेत्ता व्यासने संक्षिप्त करके शतकोटिपुराणमें

शिव-माहात्म्यके साथ स्नान, याग आदिका वर्णन, सूर्यपूजाकी विधि तथा मुक्तिदायिनी शिवपूजाका वर्णन है। तदनन्तर अनेक प्रकारके दान कहे गये हैं। फिर श्राद्ध-प्रकरण और प्रतिष्ठातन्त्रका वर्णन है। तत्पश्चात् अघोरकीर्तन, व्रजेश्वरी महाविद्या, गायत्री-महिमा, त्र्यम्बक-माहात्म्य और पुराणश्रवणके फलका वर्णन है। इस प्रकार मैंने तुम्हें व्यासरचित लिङ्गपुराण-के उत्तरभागका परिचय दिया है। यह भगवान् रुद्रके माहात्म्यका सूचक है। जो इस पुराणको लिखकर फाल्गुनकी पूर्णिमाको तिलधेनुके साथ ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक इसका दान करता है, वह जरा-मृत्युरहित शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य पापनाशक लिङ्गपुराणका पाठ या श्रवण करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर अन्तमें शिवलोकको चला जाता है। वे दोनों भगवान् शिवके भक्त हैं और गिरिजावल्लभ शिवके प्रसादसे इहलोक और परलोकका यथावत् उपभोग करते हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

वाराह-पुराणका लक्षण तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका माहात्म्य

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—वत्स! सुनो, अब मैं वाराह-पुराणका वर्णन करता हूँ। यह दो भागोंसे युक्त है और सनातन भगवान् विष्णुके माहात्म्यका सूचक है। पूर्वकालमें मेरे द्वारा निर्मित जो मानव-कल्पका प्रसङ्ग है, उसीको विद्वानों-में श्रेष्ठ साक्षात् नारायणस्वरूप वेदव्यासने भूतलपर इस पुराणमें लिपिबद्ध किया है। वाराहपुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार है। इसमें सबसे पहले पृथ्वी और वाराह भगवान्का शुभ संवाद है। तदनन्तर आदि सत्ययुगके वृत्तान्तमें रैभ्यका चरित्र है। फिर दुर्जयके चरित्र और श्राद्धकल्पका वर्णन है। तत्पश्चात् महातपाका आख्यान, गौरीकी उत्पत्ति, विनायक, नागगण, सेनानी (कार्तिकेय), आदित्यगण, देवी, धनद तथा वृषका आख्यान है। उसके बाद सत्यतपाके व्रतकी कथा दी गयी है। तदनन्तर अगस्त्य-गीता तथा रुद्रगीता कही गयी है। महिषासुरके विध्वंसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—तीनोंकी शक्तियोंका माहात्म्य प्रकट किया गया है। तत्पश्चात् पर्वाध्याय, श्वेतोपाख्यान, गोप्रदानिक इत्यादि सत्ययुगका वृत्तान्त मैंने प्रथम भागमें दिखाया है। फिर भगवद्धर्ममें व्रत और तीर्थोंकी कथाएँ हैं। बत्तीस अपराधोंका शारीरिक प्रायश्चित्त बताया गया है। प्रायः सभी तीर्थोंके पृथक्-पृथक् माहात्म्यका वर्णन है। मथुराकी महिमा विशेषरूपसे दी गयी है। उसके बाद श्राद्ध आदिकी विधि है। तदनन्तर ऋषिपुत्रके प्रसङ्गसे यमलोकका वर्णन, कर्मविपाक एवं विष्णुव्रतका निरूपण है। गोकर्णके पापनाशक माहात्म्यका भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार वाराहपुराण-का यह पूर्वभाग कहा गया है। उत्तर भागमें पुलस्त्य और पुरुराजके संवादमें विस्तारके साथ सब तीर्थोंके माहात्म्यका पृथक्-पृथक् वर्णन है। फिर सम्पूर्ण धर्मोंकी व्याख्या और पुष्कर नामक पुण्य-पर्वका भी वर्णन है। इस प्रकार मैंने तुम्हें पापनाशक वाराहपुराणका परिचय दिया है। यह पढने और सुननेवालोंके मनमें भगवद्भक्ति बढानेवाला है। जो मनुष्य इस पुराणको लिखकर और सोनेकी गरुड़-प्रतिमा

बनवाकर तिलधेनुके साथ चैत्रकी पूर्णिमाके दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दान देता है, वह देवताओं तथा महर्षियोंसे वन्दित होकर भगवान् विष्णुका धाम प्राप्त कर लेता है। जो वाराह-पुराणकी इस अनुक्रमणिकाका श्रवण या पाठ करता है, वह भी भगवान् विष्णुके चरणोंमें संसार-बन्धनका नाश करनेवाली भक्ति प्राप्त कर लेता है।

शिव-माहात्म्यके साथ स्नान, याग आदिका वर्णन, सूर्यपूजाकी विधि तथा मुक्तिदायिनी शिवपूजाका वर्णन है। तदनन्तर अनेक प्रकारके दान कहे गये हैं। फिर श्राद्ध-प्रकरण और प्रतिष्ठातन्त्रका वर्णन है। तत्पश्चात् अघोरकीर्तन, व्रजेश्वरी महाविद्या, गायत्री-महिमा, त्र्यम्बक-माहात्म्य और पुराणश्रवणके फलका वर्णन है। इस प्रकार मैंने तुम्हें व्यासरचित लिङ्गपुराण-के उत्तरभागका परिचय दिया है। यह भगवान् रुद्रके माहात्म्यका सूचक है। जो इस पुराणको लिखकर फाल्गुनकी पूर्णिमाको तिलधेनुके साथ ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक इसका दान करता है, वह जरा-मृत्युरहित शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य पापनाशक लिङ्गपुराणका पाठ या श्रवण करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर अन्तमें शिवलोकको चला जाता है। वे दोनों भगवान् शिवके भक्त हैं और गिरिजावल्लभ शिवके प्रसादसे इहलोक और परलोकका यथावत् उपभोग करते हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

वाराह-पुराणका लक्षण तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका माहात्म्य

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—वत्स! सुनो, अब मैं वाराह-पुराणका वर्णन करता हूँ। यह दो भागोंसे युक्त है और सनातन भगवान् विष्णुके माहात्म्यका सूचक है। पूर्वकालमें मेरे द्वारा निर्मित जो मानव-कल्पका प्रसङ्ग है, उसीको विद्वानोंमें श्रेष्ठ साक्षात् नारायणस्वरूप वेदव्यासने भूतलपर इस पुराणमें लिपिबद्ध किया है। वाराहपुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार है। इसमें सबसे पहले पृथ्वी और वाराह भगवान्का शुभ संवाद है। तदनन्तर आदि सत्ययुगके वृत्तान्तमें रैभ्यका चरित्र है। फिर दुर्जयके चरित्र और श्राद्धकल्पका वर्णन है। तत्पश्चात् महातपाका आख्यान, गौरीकी उत्पत्ति, विनायक, नागगण, सेनानी (कार्तिकेय), आदित्यगण, देवी, धनद तथा वृषका आख्यान है। उसके बाद सत्यतपाके व्रतकी कथा दी गयी है। तदनन्तर अगस्त्य-गीता तथा रुद्रगीता कही गयी है। महिषासुरके विध्वंसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—तीनोंकी शक्तियोंका माहात्म्य प्रकट किया गया है। तत्पश्चात् पर्वाध्याय, श्वेतोपाख्यान, गोप्रदानिक इत्यादि सत्ययुगका वृत्तान्त मैंने प्रथम भागमें दिखाया है। फिर भगवद्धर्ममें व्रत और तीर्थोंकी कथाएँ हैं। बत्तीस अपराधोंका शारीरिक प्रायश्चित्त बताया गया है। प्रायः सभी तीर्थोंके पृथक्-पृथक् माहात्म्यका वर्णन है। मथुराकी महिमा विशेषरूपसे दी गयी है। उसके बाद श्राद्ध आदिकी विधि है। तदनन्तर ऋषिपुत्रके प्रसङ्गसे यमलोकका वर्णन, कर्मविपाक एवं विष्णुव्रतका निरूपण है। गोकर्णके पापनाशक माहात्म्यका भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार वाराहपुराण-का यह पूर्वभाग कहा गया है। उत्तर भागमें पुलस्त्य और पुरुराजके संवादमें विस्तारके साथ सब तीर्थोंके माहात्म्यका पृथक्-पृथक् वर्णन है। फिर सम्पूर्ण धर्मोंकी व्याख्या और पुष्कर नामक पुण्य-पर्वका भी वर्णन है। इस प्रकार मैंने तुम्हें पापनाशक वाराहपुराणका परिचय दिया है। यह पढने और सुननेवालोंके मनमें भगवद्भक्ति बढानेवाला है। जो मनुष्य इस पुराणको लिखकर और सोनेकी गरुड़-प्रतिमा

बनवाकर तिलधेनुके साथ चैत्रकी पूर्णिमाके दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दान देता है, वह देवताओं तथा महर्षियोंसे वन्दित होकर भगवान् विष्णुका धाम प्राप्त कर लेता है। जो वाराह-पुराणकी इस अनुक्रमणिकाका श्रवण या पाठ करता है, वह भी भगवान् विष्णुके चरणोंमें संसार-बन्धनका नाश करनेवाली भक्ति प्राप्त कर लेता है।

और राजाका ब्रह्मलोकमें गमन कहा गया है। तत्पश्चात् रथयात्रा-विधि और जप तथा स्नानकी विधि कही गयी है। फिर दक्षिणामूर्तिका उपाख्यान और गुण्डिचाकी कथा है। रथ-रक्षाकी विधि और भगवान्‌के शयनोत्सवका वर्णन है। इसके बाद राजा श्वेतका उपाख्यान कहा गया है। फिर पृथु-उत्सवका निरूपण है। भगवान्‌के दोलोत्सव तथा सावत्सरिक-व्रतका वर्णन है। तदनन्तर उद्दालकके नियोगसे भगवान् विष्णुकी निष्काम पूजाका प्रतिपादन किया गया है। फिर मोक्ष-साधन बताकर नाना प्रकारके योगोंका निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् दशावतारकी कथा और स्नान आदिका वर्णन है। इसके बाद बदरिकाश्रम-तीर्थका पाप-नाशक माहात्म्य बताया गया है। उस प्रसङ्गमें अग्नि आदि तीर्थों और गरुड़-शिलाकी महिमा है। वहाँ भगवान्‌के निवासका कारण बताया गया है। फिर कपालमोचन-तीर्थ, पञ्चधारा-तीर्थ और मेरुसंस्थानकी कथा है। तदनन्तर कार्तिकमासका माहात्म्य प्रारम्भ होता है। उसमें मदनालसके माहात्म्यका वर्णन है। धूम्रकेशका उपाख्यान और कार्तिक मासमे प्रत्येक दिनके कृत्यका वर्णन है। अन्तमें भीष्मपञ्चक-व्रतका प्रतिपादन किया गया है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है।

तत्पश्चात् मार्गशीर्षके माहात्म्यमें स्नानकी विधि बतायी गयी है। फिर पुण्ड्रादि-कीर्तन और माला-धारणका पुण्य कहा गया है। भगवान्‌को पञ्चामृतसे स्नान करानेका तथा घण्टा बजाने आदिका पुण्य फल बताया गया है। नाना प्रकारके फूलोंसे भगवत्पूजनका फल और तुलसीदलका माहात्म्य कहा गया है। भगवान्‌को नैवेद्य लगानेकी महिमा, एकादशीके दिन कीर्तन, अखण्ड एकादशी-व्रत रहनेका पुण्य और एकादशीकी रातमें जागरण करनेका फल बताया गया है। इसके बाद मत्स्योत्सवका विधान और नाममाहात्म्यका कीर्तन है। भगवान्‌के ध्यान आदिका पुण्य तथा मथुराका माहात्म्य बताया गया है। मथुरातीर्थका उत्तम माहात्म्य अलग कहा गया है और वहाँके बारह वनोंकी महिमाका वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् इस पुराणमे श्रीमद्भागवतके उत्तम माहात्म्यका प्रतिपादन किया गया है। इस प्रसङ्गमें वज्रनाभ और शाण्डिल्यके संवादका उल्लेख किया गया है, जो व्रजकी आन्तरिक लीलाओंका प्रकाशक है। तदनन्तर माघ मासमें स्नान, दान और जप करनेका माहात्म्य बताया गया है, जो नाना प्रकारके आख्यानोंसे युक्त है। माघ-माहात्म्यका दस अध्यायोंमें प्रतिपादन किया गया है।

तत्पश्चात् वैशाख-माहात्म्यमे शय्यादान आदिका फल कहा गया है। फिर जलदानकी विधि, कामोपाख्यान, शुकदेव-चरित, व्याधकी अद्भुत कथा और अक्षयतृतीया आदिके पुण्य-का विशेषरूपसे वर्णन है। इसके बाद अयोध्या-माहात्म्य प्रारम्भ करके उसमें चक्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, पापमोचन-तीर्थ, सहस्रधारातीर्थ, स्वर्गद्वारतीर्थ, चन्द्रहरितीर्थ, धर्महरि-तीर्थ, स्वर्णवृष्टितीर्थकी कथा और तिलोदा-सरयू-सगमका वर्णन है। तदनन्तर सीताकुण्ड, गुप्तहरितीर्थ, सरयू-घाघरा-संगम, गोप्रचारतीर्थ, क्षीरोदकतीर्थ और बृहस्पतिकुण्ड आदि पाँच तीर्थोंकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् घोषार्क आदि तेरह तीर्थोंका वर्णन है। फिर गया-कूपके सर्वपापनाशक माहात्म्यका कथन है। तदनन्तर माण्डव्याश्रम आदि, अजित आदि तथा मानस आदि तीर्थोंका वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह दूसरा वैष्णव-खण्ड कहा गया है।

मरीचे! इसके बाद परम पुण्यदायक 'ब्रह्म-खण्ड'का वर्णन सुनो, जिसमे पहले सेतुमाहात्म्य प्रारम्भ करके वहाँके स्नान और दर्शनका फल बताया गया है। फिर गालवकी तपस्या तथा राक्षसकी कथा है। तत्पश्चात् देवीपत्तनमें चक्र-तीर्थ आदिकी महिमा, वेतालतीर्थका माहात्म्य और पापनाश आदिका वर्णन है। मङ्गल आदि तीर्थोंका माहात्म्य, ब्रह्मकुण्ड आदिका वर्णन, हनुमत्कुण्डकी महिमा तथा अगस्त्यतीर्थके फलका कथन है। रामतीर्थ आदिका वर्णन, लक्ष्मीतीर्थका निरूपण, शङ्ख आदि तीर्थोंकी महिमा तथा साध्यामृत आदि तीर्थोंके प्रभावका वर्णन है। इसके बाद धनुष्कोटि आदिका माहात्म्य, क्षीरकुण्ड आदिकी महिमा तथा गायत्री आदि तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन है। फिर रामेश्वरकी महिमा, तत्त्वज्ञानका उपदेश तथा सेतु-यात्रा-विधिका वर्णन है, जो मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है। तत्पश्चात् धर्मारण्यका उत्तम माहात्म्य बताया गया है, जिसमें भगवान् शिवने स्कन्दको तत्त्वका उपदेश किया है। फिर धर्मारण्यका प्रादुर्भाव, उसके पुण्यका वर्णन, कर्मसिद्धिका उपाख्यान तथा ऋषिवंशका निरूपण है। तदनन्तर वहाँ अप्सरा-सम्बन्धी मुख्य तीर्थोंका माहात्म्य कहा गया है। इसके बाद वर्णाश्रम-धर्मके तत्त्वका निरूपण किया गया है। तदनन्तर देवस्थान-विभाग और बकुलादित्यकी शुभ कथाका वर्णन है। वहाँ छत्रानन्दा, शान्ता, श्रीमाता, मतङ्गिनी और पुण्यदा—ये पाँच देवियाँ सदा स्थित बतायी गयी हैं। इसके बाद वहाँ इन्द्रेश्वर आदिकी

और राजाका ब्रह्मलोकमें गमन कहा गया है। तत्पश्चात् रथयात्रा-विधि और जप तथा स्नानकी विधि कही गयी है। फिर दक्षिणामूर्तिका उपाख्यान और गुण्डिचाकी कथा है। रथ-रक्षाकी विधि और भगवान्‌के शयनोत्सवका वर्णन है। इसके बाद राजा श्वेतका उपाख्यान कहा गया है। फिर पृथु-उत्सवका निरूपण है। भगवान्‌के दोलोत्सव तथा सांवत्सरिक-व्रतका वर्णन है। तदनन्तर उद्दालकके नियोगसे भगवान् विष्णुकी निष्काम पूजाका प्रतिपादन किया गया है। फिर मोक्ष-साधन बताकर नाना प्रकारके योगोंका निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् दशावतारकी कथा और स्नान आदिका वर्णन है। इसके बाद बदरिकाश्रम-तीर्थका पापनाशक माहात्म्य बताया गया है। उस प्रसङ्गमें अग्नि आदि तीर्थों और गरुड़-शिलाकी महिमा है। वहाँ भगवान्‌के निवासका कारण बताया गया है। फिर कपालमोचन-तीर्थ, पञ्चधारा-तीर्थ और मेरुसंस्थानकी कथा है। तदनन्तर कार्तिकमासका माहात्म्य प्रारम्भ होता है। उसमें मदनालसके माहात्म्यका वर्णन है। धूम्रकेशका उपाख्यान और कार्तिक मासमें प्रत्येक दिनके कृत्यका वर्णन है। अन्तमें भीष्मपञ्चक-व्रतका प्रतिपादन किया गया है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है।

तत्पश्चात् मार्गशीर्षके माहात्म्यमें स्नानकी विधि बतायी गयी है। फिर पुण्ड्रादि-कीर्तन और माला-धारणका पुण्य कहा गया है। भगवान्‌को पञ्चामृतसे स्नान करानेका तथा घण्टा बजाने आदिका पुण्य फल बताया गया है। नाना प्रकारके फूलोंसे भगवत्पूजनका फल और तुलसीदलका माहात्म्य कहा गया है। भगवान्‌को नैवेद्य लगानेकी महिमा, एकादशीके दिन कीर्तन, अखण्ड एकादशी-व्रत रहनेका पुण्य और एकादशीकी रातमें जागरण करनेका फल बताया गया है। इसके बाद मत्स्योत्सवका विधान और नाममाहात्म्यका कीर्तन है। भगवान्‌के ध्यान आदिका पुण्य तथा मथुराका माहात्म्य बताया गया है। मथुरातीर्थका उत्तम माहात्म्य अलग कहा गया है और वहाँके बारह वनोंकी महिमाका वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् इस पुराणमें श्रीमद्भागवतके उत्तम माहात्म्यका प्रतिपादन किया गया है। इस प्रसङ्गमें वज्रनाभ और शाण्डिल्यके संवादका उल्लेख किया गया है, जो व्रजकी आन्तरिक लीलाओंका प्रकाशक है। तदनन्तर माघ मासमें स्नान, दान और जप करनेका माहात्म्य बताया गया है, जो नाना प्रकारके आख्यानोंसे युक्त है। माघ-माहात्म्यका दस अध्यायोंमें प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् वैशाख-माहात्म्यमें शय्यादान आदिका फल कहा गया है। फिर जलदानकी विधि, कामोपाख्यान, शुकदेव-चरित, व्याधकी अद्भुत कथा और अक्षयतृतीया आदिके पुण्यका विशेषरूपसे वर्णन है। इसके बाद अयोध्या-माहात्म्य प्रारम्भ करके उसमें चक्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, पापमोचन-तीर्थ, सहस्रधारातीर्थ, स्वर्गद्वारतीर्थ, चन्द्रहरितीर्थ, धर्महरि-तीर्थ, स्वर्णवृष्टितीर्थकी कथा और तिलोदा-सरयू-सगमका वर्णन है। तदनन्तर सीताकुण्ड, गुप्तहरितीर्थ, सरयू-घाघरा-संगम, गोप्रचारतीर्थ, क्षीरोदकतीर्थ और बृहस्पतिकुण्ड आदि पाँच तीर्थोंकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् घोषार्क आदि तेरह तीर्थोंका वर्णन है। फिर गया-कूपके सर्वपापनाशक माहात्म्यका कथन है। तदनन्तर माण्डव्याश्रम आदि, अजित आदि तथा मानस आदि तीर्थोंका वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह दूसरा वैष्णव-खण्ड कहा गया है।

मरीचे! इसके बाद परम पुण्यदायक 'ब्रह्म-खण्ड'का वर्णन सुनो, जिसमें पहले सेतुमाहात्म्य प्रारम्भ करके वहाँके स्नान और दर्शनका फल बताया गया है। फिर गालवकी तपस्या तथा राक्षसकी कथा है। तत्पश्चात् देवीपत्तनमें चक्र-तीर्थ आदिकी महिमा, वेतालतीर्थका माहात्म्य और पापनाश आदिका वर्णन है। मङ्गल आदि तीर्थोंका माहात्म्य, ब्रह्मकुण्ड आदिका वर्णन, हनुमत्कुण्डकी महिमा तथा अगस्त्यतीर्थके फलका कथन है। रामतीर्थ आदिका वर्णन, लक्ष्मीतीर्थका निरूपण, शङ्ख आदि तीर्थोंकी महिमा तथा साध्यामृत आदि तीर्थोंके प्रभावका वर्णन है। इसके बाद धनुष्कोटि आदिका माहात्म्य, क्षीरकुण्ड आदिकी महिमा तथा गायत्री आदि तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन है। फिर रामेश्वरकी महिमा, तत्त्वज्ञानका उपदेश तथा सेतु-यात्रा-विधिका वर्णन है, जो मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है। तत्पश्चात् धर्मारण्यका उत्तम माहात्म्य बताया गया है, जिसमें भगवान् शिवने स्कन्दको तत्त्वका उपदेश किया है। फिर धर्मारण्यका प्रादुर्भाव, उसके पुण्यका वर्णन, कर्मसिद्धिका उपाख्यान तथा ऋषिवंशका निरूपण है। तदनन्तर वहाँ अप्सरा-सम्बन्धी मुख्य तीर्थोंका माहात्म्य कहा गया है। इसके बाद वर्णाश्रम-धर्मके तत्त्वका निरूपण किया गया है। तदनन्तर देवस्थान-विभाग और बकुलादित्यकी शुभ कथाका वर्णन है। वहाँ छत्रानन्दा, शान्ता, श्रीमाता, मतङ्गिनी और पुण्यदा—ये पाँच देवियाँ सदा स्थित बतायी गयी हैं। इसके बाद वहाँ इन्द्रेश्वर आदिकी

नरादित्यतीर्थ, केशवादित्य, शक्तिभेदतीर्थ, स्वर्णसारमुखतीर्थ, ॐकारेश्वर आदि तीर्थ, अन्धकासुरके द्वारा स्तुति-कीर्तन, कालवनमें शिवलिङ्गोंकी संख्या तथा स्वर्णशृङ्गेश्वर-तीर्थका वर्णन है। फिर कुशस्थली, अवन्ती एवं उज्जयिनीपुरीके पद्मावती, कुमुद्वती, अमरावती, विशाला तथा प्रतिकल्पा— इन नामोंका उल्लेख है। इनका उच्चारण ज्वरकी शान्ति करनेवाला है। तत्पश्चात् शिप्रामें स्नान आदिका फल, नागोंद्वारा की हुई भगवान् शिवकी स्तुति, हिरण्याक्षवधकी कथा, सुन्दरकुण्डकतीर्थ, नीलगङ्गा, पुष्करतीर्थ, विन्ध्यवासन-तीर्थ, पुरुषोत्तमतीर्थ, अघनाशनतीर्थ, गोमतीतीर्थ, वामनकुण्ड, विष्णुसहस्रनाम, वीरेश्वर सरोवर, कालभैरवतीर्थ, नागपञ्चमीकी महिमा, नृसिंहजयन्ती, कुटुम्बेश्वरयात्रा, देवसाधककीर्तन, कर्कराज नामक तीर्थ, विघ्नेशादितीर्थ और सुरोहनतीर्थका वर्णन किया गया है। रुद्रकुण्ड आदिमें अनेक तीर्थोंका निरूपण किया गया है। तदनन्तर आठ तीर्थोंकी पुण्यमयी यात्राका वर्णन है। इसके बाद नर्मदानदीका माहात्म्य बतलाया गया है जिसमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरके वैराग्य तथा मार्कण्डेयजीके साथ उनके समागमका वर्णन है।

तदनन्तर पहलेके प्रलयकालीन अनुभवका वर्णन, अमृत-कीर्तन, कल्प-कल्पमें नर्मदाके पृथक्-पृथक् नामोंका वर्णन, नर्मदाजीका आर्षस्तोत्र, कालरात्रिकी कथा, महादेवजीकी स्तुति, पृथक् कल्पकी अद्भुत कथा, विशल्याकी कथा, जालेश्वरकी कथा, गौरीव्रतका वर्णन, त्रिपुरदाहकी कथा, देहपातविधि, कावेरी-सङ्गम, दारुतीर्थ, ब्रह्मावर्त, ईश्वरकथा, अग्नितीर्थ, सूर्यतीर्थ, मेघनादादितीर्थ, दारुकतीर्थ, देवतीर्थ, नर्मदेशतीर्थ, कपिलातीर्थ, करञ्जकतीर्थ, कुण्डलेशतीर्थ, पिप्पलादतीर्थ, विमलेश्वरतीर्थ, शूलभेदनतीर्थ, शचीहरणकी कथा, अन्धकका वध, शूलभेदोद्भवतीर्थ, पृथक्-पृथक् दानधर्म, दीर्घतपाकी कथा, ऋष्यशृङ्गका उपाख्यान, चित्रसेनकी पुण्यमयी कथा, काशिराजका मोक्ष, देवशिलाकी कथा, शबरीतीर्थ, पवित्र व्याधोपाख्यान, पुष्करिणीतीर्थ, अर्कतीर्थ, आदित्येश्वरतीर्थ, शक्रतीर्थ, करोटिकतीर्थ, कुमारेश्वरतीर्थ, अगस्त्येश्वरतीर्थ, आनन्देश्वरतीर्थ, मातृतीर्थ, लोकेश्वर, धनदेश्वर, मङ्गलेश्वर तथा कामजतीर्थ, नागेश्वरतीर्थ, गोपारतीर्थ, गौतमतीर्थ, शङ्खचूडतीर्थ, नारदेश्वरतीर्थ, नन्दिकेश्वरतीर्थ, वरणेश्वर-तीर्थ, दधिस्कन्दादितीर्थ, हनुमदीश्वरतीर्थ, रामेश्वर आदि तीर्थ, सोमेश्वर, पिङ्गलेश्वर, ऋणमोक्षेश्वर, कपिलेश्वर, पूतिकेश्वर, जलेशय, चण्डार्क, यमतीर्थ, काल्होडीश्वर, नन्दिकेश्वर, नारायणेश्वर, कोटीश्वर, व्यासतीर्थ, प्रभासतीर्थ, नागेश्वरतीर्थ, संकर्षणतीर्थ, प्रश्रयेश्वरतीर्थ, पुण्यमय एरण्डी-सङ्गमतीर्थ, सुवर्णशिलतीर्थ, करञ्जतीर्थ, कामरतीर्थ, भाण्डीरतीर्थ, रोहिणीभवतीर्थ, चक्रतीर्थ, धौतपापतीर्थ, आङ्गिरसतीर्थ, कोटितीर्थ, अन्योन्यतीर्थ, अङ्गारतीर्थ, त्रिलोचनतीर्थ, इन्द्रेशतीर्थ, कम्बुकेशतीर्थ, सोमेशतीर्थ, कोहलेशतीर्थ, नर्मदातीर्थ, अर्कतीर्थ, आग्नेयतीर्थ, उत्तम भार्गवेश्वरतीर्थ, ब्राह्मतीर्थ, दैवतीर्थ, मार्गेशतीर्थ, आदिवाराहेश्वर, रामेश्वरतीर्थ, सिद्धेश्वरतीर्थ, अहल्यातीर्थ, कंकटेश्वरतीर्थ, शक्रतीर्थ, सोमतीर्थ, नादेशतीर्थ, कोयेश तीर्थ, रुक्मिणीसम्भवतीर्थ, योजनेशतीर्थ, वराहेशतीर्थ, द्वादशीतीर्थ, शिवतीर्थ, सिद्धेश्वरतीर्थ, मङ्गलेश्वरतीर्थ, लिङ्गवाराहतीर्थ, कुण्डेशतीर्थ, श्वेतवाराहतीर्थ, भार्गवेश तीर्थ, रवीश्वरतीर्थ, शुक्र आदि तीर्थ, हुङ्कारस्वामितीर्थ, सङ्गमेश्वरतीर्थ, नहुषेश्वरतीर्थ, मोक्षणतीर्थ, पञ्चगोपदतीर्थ, नागशावकतीर्थ, सिद्धेशतीर्थ, मार्कण्डेयतीर्थ, अक्रूरतीर्थ, कामोदतीर्थ, शूलारोपतीर्थ, माण्डव्यतीर्थ, गोपकेश्वरतीर्थ, कपिलेश्वरतीर्थ, पिङ्गलेश्वरतीर्थ, भूतेश्वरतीर्थ, गङ्गातीर्थ, गौतमतीर्थ, अश्वमेधतीर्थ, भृगुकच्छतीर्थ, पापनाशक केदारेशतीर्थ, कलकलेश (या कनखलेश) तीर्थ, जालेशतीर्थ, शालग्रामतीर्थ, वराहतीर्थ, चन्द्रप्रभासतीर्थ, आदित्यतीर्थ, श्रीपदतीर्थ, हंसतीर्थ, मूलस्थानतीर्थ, शूलेश्वरतीर्थ, उग्रतीर्थ, चित्रदैवकतीर्थ, शिखीश्वरतीर्थ, कोटितीर्थ, दशकन्यतीर्थ, सुवर्णतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, भारभूतितीर्थ, पुङ्खमुण्डित तीर्थ, आमलेशतीर्थ, कपालेशतीर्थ, शृङ्गैरण्डीतीर्थ, कोटितीर्थ और लोटलेशतीर्थ आदिका वर्णन है। इसके बाद फलस्तुति कही गयी है। तदनन्तर कृमिजङ्गलमाहात्म्यके प्रसङ्गमें रोहिताश्वकी कथा, धुन्धुमारका उपाख्यान, उसके वधका उपाय, धुन्धु-वध, चित्रवहका उद्भव, उसकी महिमा, चण्डीशका प्रभाव, रतीश्वर, केदारेश्वर, लक्षतीर्थ, विष्णुपदी तीर्थ, मुखारतीर्थ, च्यवनान्धतीर्थ, ब्रह्मसरोवर, चक्रतीर्थ, ललितोपाख्यान, बहुगोमुखतीर्थ, रुद्रावर्ततीर्थ, मार्कण्डेय-तीर्थ, पापनाशकतीर्थ, श्रवणेशतीर्थ, शुद्धपटतीर्थ, देवान्धुप्रेततीर्थ, जिह्वोदतीर्थका प्राकट्य, शिवोद्भेदतीर्थ और फल-श्रुति—इन विषयोंका वर्णन है। यह सब अवन्ती-खण्डका वर्णन किया गया है, जो श्रोताओंके पापका नाश करनेवाला है।

इसके अनन्तर 'नागर-खण्डका' परिचय दिया जाता है।

नरादित्यतीर्थ, केशवादित्य, शक्तिभेदतीर्थ, स्वर्णसारमुख-तीर्थ, ॐकारेश्वर आदि तीर्थ, अन्धकासुरके द्वारा स्तुति-कीर्तन, कालवनमें शिवलिङ्गोंकी संख्या तथा स्वर्णशृङ्गेश्वर-तीर्थका वर्णन है। फिर कुशस्थली, अवन्ती एवं उज्जयिनीपुरीके पद्मावती, कुमुद्वती, अमरावती, विशाला तथा प्रतिकल्पा— इन नामोंका उल्लेख है। इनका उच्चारण ज्वरकी शान्ति करनेवाला है। तत्पश्चात् शिप्रामें स्नान आदिका फल, नागोंद्वारा की हुई भगवान् शिवकी स्तुति, हिरण्याक्षवधकी कथा, सुन्दरकुण्डकतीर्थ, नीलगङ्गा, पुष्करतीर्थ, विन्ध्यवासन-तीर्थ, पुरुषोत्तमतीर्थ, अघनाशनतीर्थ, गोमतीतीर्थ, वामनकुण्ड, विष्णुसहस्रनाम, वीरेश्वर सरोवर, कालभैरवतीर्थ, नागपञ्चमीकी महिमा, नृसिंहजयन्ती, कुटुम्बेश्वरयात्रा, देवसाधककीर्तन, कर्कराज नामक तीर्थ, विघ्नेशादितीर्थ और सुरोहनतीर्थका वर्णन किया गया है। रुद्रकुण्ड आदिमें अनेक तीर्थोंका निरूपण किया गया है। तदनन्तर आठ तीर्थोंकी पुण्यमयी यात्राका वर्णन है। इसके बाद नर्मदानदीका माहात्म्य बतलाया गया है जिसमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरके वैराग्य तथा मार्कण्डेयजीके साथ उनके समागमका वर्णन है।

तदनन्तर पहलेके प्रलयकालीन अनुभवका वर्णन, अमृत-कीर्तन, कल्प-कल्पमें नर्मदाके पृथक्-पृथक् नामोंका वर्णन, नर्मदाजीका आर्षस्तोत्र, कालरात्रिकी कथा, महादेवजीकी स्तुति, पृथक्कल्पकी अद्भुत कथा, विशल्याकी कथा, जालेश्वरकी कथा, गौरीव्रतका वर्णन, त्रिपुरदाहकी कथा, देहपातविधि, कावेरी-सङ्गम, दारुतीर्थ, ब्रह्मावर्त, ईश्वरकथा, अग्नितीर्थ, सूर्यतीर्थ, मेघनादादितीर्थ, दारुकतीर्थ, देवतीर्थ, नर्मदेशतीर्थ, कपिलातीर्थ, करञ्जकतीर्थ, कुण्डलेशतीर्थ, पिप्पलादतीर्थ, विमलेश्वरतीर्थ, शूलभेदनतीर्थ, शचीहरणकी कथा, अन्धकका वध, शूलभेदोद्भवतीर्थ, पृथक्-पृथक् दानधर्म, दीर्घतपाकी कथा, ऋष्यशृङ्गका उपाख्यान, चित्रसेनकी पुण्यमयी कथा, काशिराजका मोक्ष, देवशिलाकी कथा, शबरीतीर्थ, पवित्र व्याधोपाख्यान, पुष्करिणीतीर्थ, अर्कतीर्थ, आदित्येश्वरतीर्थ, शक्रतीर्थ, करोटिकतीर्थ, कुमारेश्वरतीर्थ, अगस्त्येश्वरतीर्थ, आनन्देश्वरतीर्थ, मातृतीर्थ, लोकेश्वर, धनदेश्वर, मङ्गलेश्वर तथा कामजतीर्थ, नागेश्वरतीर्थ, गोपारतीर्थ, गौतमतीर्थ, शङ्खचूडतीर्थ, नारदेश्वरतीर्थ, नन्दिकेश्वरतीर्थ, वरणेश्वर-तीर्थ, दधिस्कन्दादितीर्थ, हनुमदीश्वरतीर्थ, रामेश्वर आदि तीर्थ, सोमेश्वर, पिङ्गलेश्वर, ऋणमोक्षेश्वर, कपिलेश्वर, पूतिकेश्वर, जलेशय, चण्डार्क, यमतीर्थ, काल्होडीश्वर, नन्दिकेश्वर, नारायणेश्वर, कोटीश्वर, व्यासतीर्थ, प्रभासतीर्थ, नागेश्वरतीर्थ, संकर्षणतीर्थ, प्रश्रयेश्वरतीर्थ, पुण्यमय एरण्डी-सङ्गमतीर्थ, सुवर्णशिलतीर्थ, करञ्जतीर्थ, कामरतीर्थ, भाण्डीरतीर्थ, रोहिणीभवतीर्थ, चक्रतीर्थ, धौतपापतीर्थ, आङ्गिरसतीर्थ, कोटितीर्थ, अन्योन्यतीर्थ, अङ्गारतीर्थ, त्रिलोचनतीर्थ, इन्द्रेशतीर्थ, कम्बुकेशतीर्थ, सोमेशतीर्थ, कोहलेशतीर्थ, नर्मदातीर्थ, अर्कतीर्थ, आग्नेयतीर्थ, उत्तम भार्गवेश्वरतीर्थ, ब्राह्मतीर्थ, दैवतीर्थ, मार्गेशतीर्थ, आदिवाराहेश्वर, रामेश्वरतीर्थ, सिद्धेश्वरतीर्थ, अहल्यातीर्थ, कंकटेश्वरतीर्थ, शक्रतीर्थ, सोमतीर्थ, नादेशतीर्थ, कोयेश तीर्थ, रुक्मिणीसम्भवतीर्थ, योजनेशतीर्थ, वराहेशतीर्थ, द्वादशीतीर्थ, शिवतीर्थ, सिद्धेश्वरतीर्थ, मङ्गलेश्वरतीर्थ, लिङ्गवाराहतीर्थ, कुण्डेशतीर्थ, श्वेतवाराहतीर्थ, भार्गवेश तीर्थ, रवीश्वरतीर्थ, शुक्ल आदि तीर्थ, हुङ्कारस्वामितीर्थ, सङ्गमेश्वरतीर्थ, नहुषेश्वरतीर्थ, मोक्षणतीर्थ, पञ्चगोपदतीर्थ, नागशावकतीर्थ, सिद्धेशतीर्थ, मार्कण्डेयतीर्थ, अक्रूरतीर्थ, कामोदतीर्थ, शूलारोपतीर्थ, माण्डव्यतीर्थ, गोपकेश्वरतीर्थ, कपिलेश्वरतीर्थ, पिङ्गलेश्वरतीर्थ, भूतेश्वरतीर्थ, गङ्गातीर्थ, गौतमतीर्थ, अश्वमेधतीर्थ, भृगुकच्छतीर्थ, पापनाशक केदारेशतीर्थ, कलकलेश (या कनखलेश) तीर्थ, जालेशतीर्थ, शालग्रामतीर्थ, वराहतीर्थ, चन्द्रप्रभासतीर्थ, आदित्यतीर्थ, श्रीपदतीर्थ, हंसतीर्थ, मूलस्थानतीर्थ, शूलेश्वरतीर्थ, उग्रतीर्थ, चित्रदैवकतीर्थ, शिखीश्वरतीर्थ, कोटितीर्थ, दशकन्यतीर्थ, सुवर्णतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, भारभूतितीर्थ, पुङ्खमुण्डित तीर्थ, आमलेशतीर्थ, कपालेशतीर्थ, शृङ्गैरण्डीतीर्थ, कोटितीर्थ और लोटलेशतीर्थ आदिका वर्णन है। इसके बाद फलस्तुति कही गयी है। तदनन्तर कृमिजङ्गलमाहात्म्यके प्रसङ्गमें रोहिताश्वकी कथा, धुन्धुमारका उपाख्यान, उसके वधका उपाय, धुन्धु-वध, चित्रवहका उद्भव, उसकी महिमा, चण्डीशका प्रभाव, रतीश्वर, केदारेश्वर, लक्षतीर्थ, विष्णुपदी तीर्थ, मुखारतीर्थ, च्यवनान्धतीर्थ, ब्रह्मसरोवर, चक्रतीर्थ, ललितोपाख्यान, बहुगोमुखतीर्थ, रुद्रावर्ततीर्थ, मार्कण्डेय-तीर्थ, पापनाशकतीर्थ, श्रवणेशतीर्थ, शुद्धपटतीर्थ, देवान्धुप्रेततीर्थ, जिह्वोदतीर्थका प्राकट्य, शिवोद्भेदतीर्थ और फल-श्रुति—इन विषयोंका वर्णन है। यह सब अवन्ती-खण्ड-का वर्णन किया गया है, जो श्रोताओंके पापका नाश करनेवाला है।

इसके अनन्तर 'नागर-खण्डका' परिचय दिया जाता है।

नारायणके स्वरूपका निरूपण, तप्तकुण्डकी महिमा तथा मूलचण्डीश्वरका वर्णन है। चतुर्मुख गणेश और कलम्बेश्वर-की कथा, गोपालस्वामी, बकुलस्वामी और मरुद्गणकी भी कथा है। तत्पश्चात् क्षेमादित्य, उन्नतविघ्नेश, तलस्वामी, कालमेघ, रुक्मिणी, दुर्वासेश्वर, भद्रेश्वर, शङ्खावर्त, मोक्षतीर्थ, गोष्पदतीर्थ, अच्युतगृह, जालेश्वर, ॐकारेश्वर, चण्डीश्वर, आशापुरनिवासी विघ्नेश और कलाकुण्डकी अद्भुत कथा है। कपिलेश्वर और जरद्गव शिवकी भी विचित्र कथाका उल्लेख है। नलेश्वर, कर्कोटकेश्वर, हाटकेश्वर, नारदेश्वर, यन्त्रभूषा, दुर्गकूट और गणेशकी कथाका भी उल्लेख है। सुपर्णभैरवी और एलाभैरवी तथा भल्लतीर्थकी भी महिमा है। तत्पश्चात् कर्दमालतीर्थ और गुप्त सोमनाथका वर्णन है। इसके बाद बहुस्वर्णेश्वर, शृङ्गेश्वर, कोटीश्वर, मार्कण्डेश्वर, कोटीश तथा दामोदरगृहकी माहात्म्य-कथा है। तदनन्तर स्वर्णरेखा, ब्रह्मकुण्ड, कुन्तीश्वर, भीमेश्वर, मृगीकुण्ड तथा सर्वस्व—ये वस्त्रापथक्षेत्रमें कहे गये हैं। तत्पश्चात् दुर्गाभल्लेश, गङ्गेश, रैवतेश, अर्बुदेश्वर, अचलेश्वर, नागतीर्थ, वसिष्ठाश्रम, भद्रकर्ण, त्रिनेत्र, केदार, तीर्थागमन, कोटीश्वर, रूपतीर्थ और हृषीकेश—ये अद्भुत माहात्म्यकथाएँ हैं। इसके बाद सिद्धेश्वर, शुक्रेश्वर, मणिकर्णीश्वर, पङ्गुतीर्थ, यमतीर्थ और वाराहीतीर्थ आदिके माहात्म्यका वर्णन है। फिर चन्द्रप्रभास, पिण्डोदक, श्रीमाता, शुक्लतीर्थ, कात्यायनीदेवी, पिण्डारकतीर्थ, कनखल-तीर्थ, चक्रतीर्थ, मानुषतीर्थ, कपिलाग्नितीर्थ तथा रक्तानुबन्ध आदि माहात्म्यकथाका उल्लेख है। तदनन्तर गणेशतीर्थ, पार्थेश्वरतीर्थ और उज्ज्वलतीर्थकी यात्रामें चण्डीस्थान, नागोद्भव, शिवकुण्ड, महेशतीर्थ तथा कामेश्वरका माहात्म्य-वर्णन और मार्कण्डेयजीकी उत्पत्तिकथा है। फिर उद्दालकेश और सिद्धेशके समीपवर्ती तीर्थोंकी पृथक्-पृथक् कथाएँ हैं। इसके बाद श्रीदेवमाताकी उत्पत्ति, व्यास और गौतमतीर्थकी कथा, कुलसन्तारतीर्थका माहात्म्य तथा रामतीर्थ एवं कोटि-तीर्थकी महिमा है। चन्द्रोद्भेदतीर्थ, ईशानतीर्थ और ब्रह्मस्थानकी उत्पत्तिका अद्भुत माहात्म्य तथा त्रिपुष्कर, रुद्रह्रद और गुहेश्वरकी शुभ कथा है। तत्पश्चात् अविमुक्त-की महिमा, उमामहेश्वरका माहात्म्य, महौजाका प्रभाव और जम्बूतीर्थका महत्त्व कहा गया है। गङ्गाधर और मिश्रककी कथा एवं फलस्तुतिका भी वर्णन है। तदनन्तर द्वारका-माहात्म्यके प्रसङ्गमें चन्द्रशर्माकी कथा है। जागरण और पूजन आदिका आख्यान, एकादशीव्रतकी महिमा, महाद्वादशी-का आख्यान, प्रह्लाद और ऋषियोंका समागम, दुर्वासाका उपाख्यान, यात्राकी प्रारम्भिक विधि, गोमतीकी उत्पत्तिकथा, उसमें स्नान आदिका फल, चक्रतीर्थका माहात्म्य, गोमती-सागर-सङ्गम, सनकादि कुण्डका आख्यान, नृगतीर्थकी कथा, गोप्रचारकी पुण्यमयी कथा, गोपियोंका द्वारकामें आगमन, गोपीसरोवरका आख्यान, ब्रह्मतीर्थ आदिका कीर्तन, पाँच नदियोंके आगमनकी कथा, अनेक प्रकारके उपाख्यान, शिवलिङ्ग, गदातीर्थ और श्रीकृष्णपूजन आदिका वर्णन है। त्रिविक्रम-मूर्तिका वर्णन, दुर्वासा और श्रीकृष्ण-संवाद, कुश दैत्यके वधकी कथा, विशेष पूजनका फल, गोमती और द्वारकामें तीर्थोंके आगमनका वर्णन, श्रीकृष्णमन्दिरका दर्शन, द्वारवतीमें अभिषेक, वहाँ तीर्थोंके निवासकी कथा और द्वारकाके पुण्य-का वर्णन है। ब्राह्मणो! इस प्रकार सर्वोत्तम कथाओंसे युक्त शिवमाहात्म्य-प्रतिपादक स्कन्दपुराणमें यह सातवाँ प्रभासखण्ड बताया गया है। जो इसे लिखकर सुवर्णमय त्रिशूलके साथ

माघकी पूर्णिमाके दिन सत्कारपूर्वक ब्राह्मणको दान देता है, वह सदा भगवान् शिवके लोकमें आनन्दका भागी होता है।

नारायणके स्वरूपका निरूपण, तप्तकुण्डकी महिमा तथा मूलचण्डीश्वरका वर्णन है। चतुर्मुख गणेश और कलम्बेश्वर-की कथा, गोपालस्वामी, वकुलस्वामी और मरुद्गणकी भी कथा है। तत्पश्चात् क्षेमादित्य, उन्नतविघ्नेश, तलस्वामी, कालमेघ, रुक्मिणी, दुर्वासेश्वर, भद्रेश्वर, शङ्खावर्त, मोक्षतीर्थ, गोष्पदतीर्थ, अच्युतगृह, जालेश्वर, ॐकारेश्वर, चण्डीश्वर, आशापुरनिवासी विघ्नेश और कलाकुण्डकी अद्भुत कथा है। कपिलेश्वर और जरद्गव शिवकी भी विचित्र कथाका उल्लेख है। नलेश्वर, कर्कोटकेश्वर, हाटकेश्वर, नारदेश्वर, यन्त्रभूषा, दुर्गकूट और गणेशकी कथाका भी उल्लेख है। सुपर्णभैरवी और एलाभैरवी तथा भल्लतीर्थकी भी महिमा है। तत्पश्चात् कर्दमालतीर्थ और गुप्त सोमनाथका वर्णन है। इसके बाद बहुस्वर्णेश्वर, शृङ्गेश्वर, कोटीश्वर, मार्कण्डेश्वर, कोटीश तथा दामोदरगृहकी माहात्म्य-कथा है। तदनन्तर स्वर्णरेखा, ब्रह्मकुण्ड, कुन्तीश्वर, भीमेश्वर, मृगीकुण्ड तथा सर्वस्व—ये वस्त्रापथक्षेत्रमें कहे गये हैं। तत्पश्चात् दुर्गाभल्लेश, गङ्गेश, रैवतेग, अर्बुदेश्वर, अचलेश्वर, नागतीर्थ, वसिष्ठाश्रम, भद्रकर्ण, त्रिनेत्र, केदार, तीर्थागमन, कोटीश्वर, रूपतीर्थ और हृषीकेश—ये अद्भुत माहात्म्यकथाएँ हैं। इसके बाद सिद्धेश्वर, शुक्रेश्वर, मणिकर्णीश्वर, पङ्गुतीर्थ, यमतीर्थ और वाराहीतीर्थ आदिके माहात्म्यका वर्णन है। फिर चन्द्रप्रभास, पिण्डोदक, श्रीमाता, शुक्लतीर्थ, कात्यायनीदेवी, पिण्डारकतीर्थ, कनखल-तीर्थ, चक्रतीर्थ, मानुषतीर्थ, कपिलाग्नितीर्थ तथा रक्तानुबन्ध आदि माहात्म्यकथाका उल्लेख है। तदनन्तर गणेशतीर्थ, पार्थेश्वरतीर्थ और उज्ज्वलतीर्थकी यात्रामें चण्डीस्थान, नागोद्भव, शिवकुण्ड, महेशतीर्थ तथा कामेश्वरका माहात्म्य-वर्णन और मार्कण्डेयजीकी उत्पत्तिकथा है। फिर उद्दालकेश और सिद्धेशके समीपवर्ती तीर्थोंकी पृथक्-पृथक् कथाएँ हैं। इसके बाद श्रीदेवमाताकी उत्पत्ति, व्यास और गौतमतीर्थकी कथा, कुलसन्तारतीर्थका माहात्म्य तथा रामतीर्थ एवं कोटि-तीर्थकी महिमा है। चन्द्रोद्भेदतीर्थ, ईशानतीर्थ और ब्रह्मस्थानकी उत्पत्तिका अद्भुत माहात्म्य तथा त्रिपुष्कर, रुद्रहृद और गुहेश्वरकी शुभ कथा है। तत्पश्चात् अविमुक्त-की महिमा, उमामहेश्वरका माहात्म्य, महौजाका प्रभाव और जम्बूतीर्थका महत्त्व कहा गया है। गङ्गाधर और मिश्रककी कथा एवं फलस्तुतिका भी वर्णन है। तदनन्तर द्वारका-माहात्म्यके प्रसङ्गमें चन्द्रशर्माकी कथा है। जागरण और पूजन आदिका आख्यान, एकादशीव्रतकी महिमा, महाद्वादशी-का आख्यान, प्रह्लाद और ऋषियोंका समागम, दुर्वासाका उपाख्यान, यात्राकी प्रारम्भिक विधि, गोमतीकी उत्पत्तिकथा, उसमें स्नान आदिका फल, चक्रतीर्थका माहात्म्य, गोमती-सागर-सङ्गम, सनकादि कुण्डका आख्यान, नृगतीर्थकी कथा, गोप्रचारकी पुण्यमयी कथा, गोपियोंका द्वारकामें आगमन, गोपीसरोवरका आख्यान, ब्रह्मतीर्थ आदिका कीर्तन, पाँच नदियोंके आगमनकी कथा, अनेक प्रकारके उपाख्यान, शिवलिङ्ग, गदातीर्थ और श्रीकृष्णपूजन आदिका वर्णन है। त्रिविक्रम-मूर्तिका वर्णन, दुर्वासा और श्रीकृष्ण-संवाद, कुश दैत्यके वधकी कथा, विशेष पूजनका फल, गोमती और द्वारकामें तीर्थोंके आगमनका वर्णन, श्रीकृष्णमन्दिरका दर्शन, द्वारवतीमें अभिषेक, वहाँ तीर्थोंके निवासकी कथा और द्वारकाके पुण्य-का वर्णन है। ब्राह्मणो! इस प्रकार सर्वोत्तम कथाओंसे युक्त शिवमाहात्म्य-प्रतिपादक स्कन्दपुराणमें यह सातवाँ प्रभासखण्ड बताया गया है। जो इसे लिखकर सुवर्णमय त्रिशूलके साथ

माघकी पूर्णिमाके दिन सत्कारपूर्वक ब्राह्मणको दान देता है, वह सदा भगवान् शिवके लोकमें आनन्दका भागी होता है।

तदनन्तर प्रतिसर्गका वर्णन है। यह 'ब्राह्मीसंहिता' कही गयी है। इसके बाद 'भागवती-संहिता'के विषयोंका निरूपण है, जिसमें वर्णोंकी पृथक्-पृथक् वृत्ति बतायी गयी है। इसके प्रथम पादमें ब्राह्मणोंकी सदाचाररूप स्थिति बतायी गयी है, जो भोग और सुख बढ़ानेवाली है। द्वितीय पादमें क्षत्रियोंकी वृत्तिका भलीभाँति निरूपण किया गया है, जिसका आश्रय लेकर मनुष्य अपने पापोंका यहीं नाश करके स्वर्गलोकमें चला जाता है। तृतीय पादमें वैश्योंकी चार प्रकारकी वृत्ति कही गयी है, जिसके सम्यक् आचरणसे उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार इसके चतुर्थ पादमें शूद्रोंकी वृत्ति कही गयी है, जिससे मनुष्योंके कल्याणकी वृद्धि करनेवाले भगवान् लक्ष्मी-पति संतुष्ट होते हैं। तदनन्तर भागवती संहिताके पाँचवें पादमें संकरजातियोंकी वृत्ति कही गयी है, जिसके आचरणसे वह भविष्यमें उत्तम गतिको पा लेता है। मुने! इस प्रकार द्वितीय संहिता पाँच पादोंसे युक्त कही गयी है। इस उत्तरभागमें तीसरी संहिता 'सौरी-संहिता' कहलाती है, जो मनुष्योंका कार्य सिद्ध करनेवाली है। वह सकाम भाववाले मनुष्योंको छः प्रकार-से षट्कर्मसिद्धिका बोध कराती है। चौथी 'वैष्णवी-संहिता' है, जो मोक्ष देनेवाली कही गयी है। यह चार पदोंवाली संहिता द्विजातियोंके लिये ब्रह्मस्वरूप है। वे क्रमशः छः, चार, दो और पाँच हजार श्लोकोंकी बतायी गयी हैं। यह कूर्म-पुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फल देनेवाला है, जो पढ़ने और सुननेवाले मनुष्योंको सर्वोत्तम गति प्रदान करता है। जो मनुष्य इस पुराणको लिखकर अयनारम्भके दिन

सोनेकी कच्छपमूर्तिके साथ ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक इसका दान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।

मत्स्यपुराणकी विषय-सूची तथा इस पुराणके पाठ, श्रवण और दानका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ! अब मैं तुम्हें मत्स्य-पुराणका परिचय देता हूँ, जिसमें वेदवेत्ता व्यासजीने इस भूतलपर सात कल्पोंके वृत्तान्तको संक्षिप्त करके कहा है। नृसिंहवर्णन आरम्भ करके चौदह हजार श्लोकोंका मत्स्यपुराण कहा गया है। मनु और मत्स्यका संवाद, ब्रह्माण्डका वर्णन, ब्रह्मा, देवता और असुरोंकी उत्पत्ति, मरुद्गणका प्रादुर्भाव, मदनद्वादशी, लोकपालपूजा, मन्वन्तर-वर्णन, राजा पृथुके राज्यका वर्णन, सूर्य और वैवस्वत मनुकी उत्पत्ति, बुध-संगमन, पितृवंशका वर्णन, श्राद्धकाल, पितृतीर्थ-प्रचार, सोमकी उत्पत्ति, सोमवंशका कथन, राजा ययातिका चरित्र, कार्तवीर्य अर्जुनका चरित्र, सृष्टिवंश-वर्णन, भृगुशाप, भगवान् विष्णुका पृथ्वीपर दस बार जन्म (अवतार), पूरुवंशका कीर्तन, हुताशन-वंशका वर्णन, पहले क्रियायोग, फिर पुराणकीर्तन, नक्षत्रव्रत, पुरुषव्रत, मार्तण्डशयनव्रत, श्रीकृष्णाष्टमीव्रत, रोहिणीचन्द्र-

तदनन्तर प्रतिसर्गका वर्णन है। यह 'ब्राह्मीसंहिता' कही गयी है। इसके बाद 'भागवती-संहिता'के विषयोंका निरूपण है, जिसमें वर्णोंकी पृथक्-पृथक् वृत्ति बतायी गयी है। इसके प्रथम पादमें ब्राह्मणोंकी सदाचाररूप स्थिति बतायी गयी है, जो भोग और सुख बढ़ानेवाली है। द्वितीय पादमें क्षत्रियोंकी वृत्तिका भलीभाँति निरूपण किया गया है, जिसका आश्रय लेकर मनुष्य अपने पापोंका यहीं नाश करके स्वर्गलोकमें चला जाता है। तृतीय पादमें वैश्योंकी चार प्रकारकी वृत्ति कही गयी है, जिसके सम्यक् आचरणसे उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार इसके चतुर्थ पादमें शूद्रोंकी वृत्ति कही गयी है, जिससे मनुष्योंके कल्याणकी वृद्धि करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपति संतुष्ट होते हैं। तदनन्तर भागवती संहिताके पाँचवें पादमें संकरजातियोंकी वृत्ति कही गयी है, जिसके आचरणसे वह भविष्यमें उत्तम गतिको पा लेता है। मुने! इस प्रकार द्वितीय संहिता पाँच पादोंसे युक्त कही गयी है। इस उत्तरभागमें तीसरी संहिता 'सौरी-संहिता' कहलाती है, जो मनुष्योंका कार्य सिद्ध करनेवाली है। वह सकाम भाववाले मनुष्योंको छः प्रकारसे षट्कर्मसिद्धिका बोध कराती है। चौथी 'वैष्णवी-संहिता' है, जो मोक्ष देनेवाली कही गयी है। यह चार पदोंवाली संहिता द्विजातियोंके लिये ब्रह्मस्वरूप है। वे क्रमशः छः, चार, दो और पाँच हजार श्लोकोंकी बतायी गयी हैं। यह कूर्मपुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फल देनेवाला है, जो पढ़ने और सुननेवाले मनुष्योंको सर्वोत्तम गति प्रदान करता है। जो मनुष्य इस पुराणको लिखकर अयनारम्भके दिन

सोनेकी कच्छपमूर्तिके साथ ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक इसका दान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।

मत्स्यपुराणकी विषय-सूची तथा इस पुराणके पाठ, श्रवण और दानका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ! अब मैं तुम्हें मत्स्यपुराणका परिचय देता हूँ, जिसमें वेदवेत्ता व्यासजीने इस भूतलपर सात कल्पोंके वृत्तान्तको संक्षिप्त करके कहा है। नृसिंहवर्णन आरम्भ करके चौदह हजार श्लोकोंका मत्स्यपुराण कहा गया है। मनु और मत्स्यका संवाद, ब्रह्माण्डका वर्णन, ब्रह्मा, देवता और असुरोंकी उत्पत्ति, मरुद्गणका प्रादुर्भाव, मदनद्वादशी, लोकपालपूजा, मन्वन्तर-वर्णन, राजा पृथुके राज्यका वर्णन, सूर्य और वैवस्वत मनुकी उत्पत्ति, बुध-संगमन, पितृवंशका वर्णन, श्राद्धकाल, पितृतीर्थ-प्रचार, सोमकी उत्पत्ति, सोमवंशका कथन, राजा ययातिका चरित्र, कार्तवीर्य अर्जुनका चरित्र, सृष्टिवंश-वर्णन, भृगुशाप, भगवान् विष्णुका पृथ्वीपर दस बार जन्म (अवतार), पूरुवंशका कीर्तन, हुताशनवंशका वर्णन, पहले क्रियायोग, फिर पुराणकीर्तन, नक्षत्रव्रत, पुरुषव्रत, मार्तण्डशयनव्रत, श्रीकृष्णाष्टमीव्रत, रोहिणीचन्द्र-

चूडामणि, अश्वायुर्वेदकीर्तन, ओषधियोंके नामका कीर्तन, व्याकरणका ऊहापोह, छन्दःशास्त्र, सदाचार, स्नानविधि, तर्पण, बलिवैश्वदेव, संध्या, पार्वणकर्म, नित्यश्राद्ध, सपिण्डन, धर्मसार, पापोंका प्रायश्चित्त, प्रतिसंक्रम, युगधर्म, कर्मफल, योगशास्त्र, विष्णुभक्ति, श्रीहरिको नमस्कार करनेका फल, विष्णुमहिमा, नृसिंहस्तोत्र, ज्ञानामृत, गुह्याष्टकस्तोत्र, विष्णवर्चन-स्तोत्र, वेदान्त और सांख्यका सिद्धान्त, ब्रह्मज्ञान, आत्मानन्द, गीतासार तथा फलवर्णन—ये विषय कहे गये हैं। यह गरुडपुराणका पूर्वखण्ड बताया गया है।

इसीके उत्तरखण्डमें सबसे पहले प्रेतकल्पका वर्णन है। मरीचे! उसमें गरुडके पूछनेपर भगवान् विष्णुने पहले धर्मके महत्त्वको प्रकट किया है, जो योगियोंकी उत्तम गतिका कारण है। फिर दान आदिका फल तथा और्ध्वदैहिक कर्म बताया गया है। तत्पश्चात् यमलोकके मार्गका वर्णन किया गया है। इसी प्रसंगमें षोडश श्राद्धके फलको सूचित करनेवाले वृत्तान्तका वर्णन है। यमलोकके मार्गसे छूटनेका उपाय और धर्मराजके वैभवका कथन है। इसके बाद प्रेतकी पीड़ाओंका वर्णन, प्रेतचिह्न-निरूपण, प्रेतचरितवर्णन तथा प्रेतत्वप्राप्तिके कारणका उल्लेख किया गया है। तदनन्तर प्रेतकृत्यका विचार, सपिण्डीकरणका कथन, प्रेतत्वसे मुक्त होनेका कथन, मोक्षसाधक दान, आवश्यक एवं उत्तम दान, प्रेतको सुख देनेवाले कार्योंका ऊहापोह, शारीरक निर्देश, यमलोक-वर्णन, प्रेतत्वसे उद्धारका कथन, कर्म करनेके अधिकारीका निर्णय, मृत्युसे पहलेके कर्तव्यका वर्णन, मृत्युसे पीछेके कर्मका निरूपण, मध्यषोडश श्राद्ध, स्वर्गप्राप्ति करानेवाले कर्त्तव्यका ऊहापोह, सूतककी दिन-संख्या, नारायणबलि कर्म, वृषोत्सर्गका माहात्म्य, निषिद्ध कर्मका त्याग, दुर्मृत्युके अवसरपर किये जानेवाले कर्मका वर्णन, मनुष्योंके कर्मका फल, विष्णुध्यान और मोक्षके लिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार, स्वर्गकी प्राप्तिके लिये विहित कर्मका वर्णन, स्वर्गीय सुखका निरूपण, भूलोकवर्णन, नीचेके सात लोकोंका वर्णन, ऊपरके पाँच लोकोंका वर्णन, ब्रह्माण्डकी स्थितिका निरूपण, ब्रह्माण्डके अनेक चरित्र, ब्रह्म और जीवका निरूपण, आत्यन्तिक प्रलयका वर्णन तथा फलस्तुतिका निरूपण है। यही गरुड नामक पुराण है, जो कीर्तन और श्रवण करनेपर वक्ता और श्रोता मनुष्योंके पापका शमन करके उन्हें भोग और मोक्ष देनेवाला है। जो इस पुराणको लिखकर दो सुवर्णमयी

हंसप्रतिमाके साथ विषुव योगमें ब्राह्मणको दान देता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है।

ब्रह्माण्डपुराणका परिचय, संक्षिप्त विषय-सूची, पुराण-परम्परा, उसके पाठ, श्रवण एवं दानका फल

ब्रह्माजी कहते हैं—वत्स! सुनो, अब मैं ब्रह्माण्ड-पुराणका वर्णन करता हूँ, जो भविष्यकल्पोंकी कथासे युक्त और बारह हजार श्लोकोंसे परिपूर्ण है। इसके चार पाद हैं। पहला 'प्रक्रियापाद', दूसरा 'अनुषङ्गपाद', तीसरा 'उपोद्घात-पाद' और चौथा 'उपसंहारपाद' है। पहलेके दो पादोंको पूर्वभाग कहा गया है। तृतीय पाद ही मध्यम भाग है और चतुर्थ पाद उत्तरभाग माना गया है। पूर्वभागके प्रक्रिया-पादमें पहले कर्तव्यका उपदेश, नैमिषका आख्यान, हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति और लोकरचना इत्यादि विषय वर्णित हैं। मानद! यह पूर्वभागका प्रथम पाद (प्रक्रियापाद) है।

अब द्वितीय (अनुषङ्ग) पादका वर्णन सुनो, इसमें कल्प तथा मन्वन्तरका वर्णन है। तत्पश्चात् लोकज्ञान, मानुषी-सृष्टिकथन, रुद्रसृष्टिवर्णन, महादेवविभूति, ऋषि-सर्ग, अग्निविजय, कालसद्भाव-वर्णन, प्रियंव्रतवंशका परिचय,

चूडामणि, अश्वायुर्वेदकीर्तन, ओषधियोंके नामका कीर्तन, व्याकरणका ऊहापोह, छन्दःशास्त्र, सदाचार, स्नानविधि, तर्पण, बलिवैश्वदेव, संध्या, पार्वणकर्म, नित्यश्राद्ध, सपिण्डन, धर्मसार, पापोंका प्रायश्चित्त, प्रतिसंक्रम, युगधर्म, कर्मफल, योगशास्त्र, विष्णुभक्ति, श्रीहरिको नमस्कार करनेका फल, विष्णुमहिमा, नृसिंहस्तोत्र, ज्ञानामृत, गुह्याष्टकस्तोत्र, विष्ण्वर्चनस्तोत्र, वेदान्त और सांख्यका सिद्धान्त, ब्रह्मज्ञान, आत्मानन्द, गीतासार तथा फलवर्णन—ये विषय कहे गये हैं। यह गरुडपुराणका पूर्वखण्ड बताया गया है।

इसीके उत्तरखण्डमें सबसे पहले प्रेतकल्पका वर्णन है। मरीचे! उसमें गरुडके पूछनेपर भगवान् विष्णुने पहले धर्मके महत्त्वको प्रकट किया है, जो योगियोंकी उत्तम गतिका कारण है। फिर दान आदिका फल तथा और्ध्वदेहिक कर्म बताया गया है। तत्पश्चात् यमलोकके मार्गका वर्णन किया गया है। इसी प्रसंगमें षोडश श्राद्धके फलको सूचित करनेवाले वृत्तान्तका वर्णन है। यमलोकके मार्गसे छूटनेका उपाय और धर्मराजके वैभवका कथन है। इसके बाद प्रेतकी पीड़ाओंका वर्णन, प्रेतचिह्न-निरूपण, प्रेतचरितवर्णन तथा प्रेतत्वप्राप्तिके कारणका उल्लेख किया गया है। तदनन्तर प्रेतकृत्यका विचार, सपिण्डीकरणका कथन, प्रेतत्वसे मुक्त होनेका कथन, मोक्षसाधक दान, आवश्यक एवं उत्तम दान, प्रेतको सुख देनेवाले कार्योंका ऊहापोह, शारीरक निर्देश, यमलोक-वर्णन, प्रेतत्वसे उद्धारका कथन, कर्म करनेके अधिकारीका निर्णय, मृत्युसे पहलेके कर्तव्यका वर्णन, मृत्युसे पीछेके कर्मका निरूपण, मध्यषोडश श्राद्ध, स्वर्गप्राप्ति करानेवाले कर्त्तव्यका ऊहापोह, सूतककी दिन-संख्या, नारायणबलि कर्म, वृषोत्सर्गका माहात्म्य, निषिद्ध कर्मका त्याग, दुर्मृत्युके अवसरपर किये जानेवाले कर्मका वर्णन, मनुष्योंके कर्मका फल, विष्णुध्यान और मोक्षके लिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार, स्वर्गकी प्राप्तिके लिये विहित कर्मका वर्णन, स्वर्गीय सुखका निरूपण, भूलोकवर्णन, नीचेके सात लोकोंका वर्णन, ऊपरके पाँच लोकोंका वर्णन, ब्रह्माण्डकी स्थितिका निरूपण, ब्रह्माण्डके अनेक चरित्र, ब्रह्म और जीवका निरूपण, आत्यन्तिक प्रलयका वर्णन तथा फलस्तुतिका निरूपण है। यही गरुड नामक पुराण है, जो कीर्तन और श्रवण करनेपर वक्ता और श्रोता मनुष्योंके पापका शमन करके उन्हें भोग और मोक्ष देनेवाला है। जो इस पुराणको लिखकर दो सुवर्णमयी

हंसप्रतिमाके साथ विषुव योगमें ब्राह्मणको दान देता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है।

ब्रह्माण्डपुराणका परिचय, संक्षिप्त विषय-सूची, पुराण-परम्परा, उसके पाठ, श्रवण एवं दानका फल

ब्रह्माजी कहते हैं—वत्स! सुनो, अब मैं ब्रह्माण्डपुराणका वर्णन करता हूँ, जो भविष्यकल्पोंकी कथासे युक्त और बारह हजार श्लोकोंसे परिपूर्ण है। इसके चार पाद हैं। पहला 'प्रक्रियापाद', दूसरा 'अनुषङ्गपाद', तीसरा 'उपोद्घातपाद' और चौथा 'उपसंहारपाद' है। पहलेके दो पादोंको पूर्वभाग कहा गया है। तृतीय पाद ही मध्यम भाग है और चतुर्थ पाद उत्तरभाग माना गया है। पूर्वभागके प्रक्रियापादमें पहले कर्तव्यका उपदेश, नैमिषका आख्यान, हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति और लोकरचना इत्यादि विषय वर्णित हैं। मानद! यह पूर्वभागका प्रथम पाद (प्रक्रियापाद) है।

अब द्वितीय (अनुषङ्ग) पादका वर्णन सुनो, इसमें कल्प तथा मन्वन्तरका वर्णन है। तत्पश्चात् लोकज्ञान, मानुषी-सृष्टिकथन, रुद्रसृष्टिवर्णन, महादेवविभूति, ऋषिसर्ग, अग्निविजय, कालसद्भाव-वर्णन, प्रियव्रतवंशका परिचय,

बारह मासोंकी प्रतिपदाके व्रत एवं आवश्यक कृत्योंका वर्णन

श्रीनारदजी बोले—प्रभो ! मैंने आपके मुखसे समस्त पुराणोंका सूत्र, जैसा कि परमेष्ठी ब्रह्माजीने महर्षि मरीचिसे कहा था, सुन लिया । महाभाग ! अब मुझसे क्रमशः तिथियोंके विषयमें निरूपण कीजिये, जिससे व्रतका ठीक-ठीक निश्चय हो जाय । जिस मासमें, जिस पुण्य तिथिको जिसने उपासना की है और उसकी पूजा आदिका जो विधान है, वह सब इस समय बताइये ।

श्रीसनातनजीने कहा—नारद ! सुनो, अब मैं तुमसे तिथियोंके पृथक्-पृथक् व्रतका वर्णन करता हूँ । तिथियोंके जो स्वामी हैं, उन्हींके क्रमसे पृथक्-पृथक् व्रत बताया जाता है, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है । चैत्रमासके शुक्ल पक्षमें प्रथम दिन सूर्योदयकालमें ब्रह्माजीने सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की थी, इसलिये वर्ष और वसंत ऋतुके आदिमें बलिराज्य-सम्बन्धी तिथि—अमावास्याको जो प्रतिपदा तिथि प्राप्त होती है, उसीमें सदा विद्वानोंको व्रत करना चाहिये । प्रतिपदा तिथि पूर्वविद्धा होनेपर ही व्रत आदिमें ग्रहण करने योग्य है । उस दिन महाशान्ति करनी चाहिये । वह समस्त पापोंका नाश, सब प्रकारके उत्पातोंकी शान्ति तथा कलियुग-के दुष्कर्मोंका निवारण करनेवाली होती है । साथ ही वह आयु देनेवाली, पुष्टिकारक तथा धन और सौभाग्यको बढ़ानेवाली है । वह परम मङ्गलमयी, शान्ति, पवित्र होनेके साथ ही इहलोक और परलोकमें भी सुख देनेवाली है । उस तिथिको पहले अग्निरूपधारी भगवान् ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये, फिर क्रमशः सब देवताओंकी पृथक्-पृथक् पूजा करे । इस तरह पूजा और ॐकारपूर्वक[1] नमस्कार करके कुश, जल, तिल और अक्षतके साथ सुवर्ण और वस्त्रसहित दक्षिणा लेकर वेदवेत्ता ब्राह्मणको व्रतकी पूर्तिके लिये दान करना चाहिये । इस प्रकार पूजा-विशेषसे 'सौरि' नामक व्रत सम्पन्न होता है । ब्रह्मन् ! यह मनुष्योंको आरोग्य[2] प्रदान करनेवाला है । मुने ! उसी दिन 'विद्याव्रत'[3] भी बताया गया है तथा इसी तिथिको श्रीकृष्णने अजातशत्रु युधिष्ठिरको तिलक[1]-व्रत करनेका उपदेश दिया है ।

तदनन्तर ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको सूर्योदयकालमें देवमन्दिरसम्बन्धी वाटिकामें उगे हुए मनोहर कनेरवृक्षका पूजन करे । कनेरके वृक्षमें लाल डोरा लपेटकर उसपर गन्ध, चन्दन, धूप आदि चढ़ावे, उगे हुए सप्तधान्यके अङ्कुर, नारंगी और बिजौरा नींबू आदिसे उसकी पूजा करे । फिर अक्षत और जलसे उस वृक्षको सींचकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे क्षमा-प्रार्थना करे ।

करवीरवृषावास नमस्ते भानुवल्लभ ।
मौलिमण्डन दुर्गादिदेवानां सततं प्रिय ॥
(ना० पूर्व० ११० । १७)

'करवीर ! आप धर्मके निवास-स्थान और भगवान् सूर्यके पुत्र हैं । दुर्गादि देवताओंके मस्तकको विभूषित करनेवाले तथा उनके सदैव प्रिय हैं । आपको नमस्कार है ।'

तत्पश्चात् 'आ कृष्णेन०'[2] इत्यादि वेदोक्त मन्त्रका उच्चारण करके इसी प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे । इस प्रकार भक्तिपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और वृक्षकी परिक्रमा करके अपने घर जाय* । श्रावण शुक्ला प्रतिपदाको परम उत्तम 'रोटक[3]व्रत' होता है, जो लक्ष्मी और बुद्धिको देनेवाला है तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका कारण है । ब्रह्मन् ! सोमवारयुक्त श्रावण शुक्ल प्रतिपदा या श्रावणके प्रथम सोमवारसे लेकर साढ़े तीन मासतक यह व्रत किया जाता है । इसमें प्रतिदिन सोमेश्वर भगवान् शिवकी बिल्वपत्रसे पूजा की जाती है । कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीतक इस नियमसे पूजा करके उस दिन उपवासपूर्वक रहे और व्रतपरायण पुरुष पूर्णिमाके दिन पुनः भगवान् शङ्करकी पूजा करे । फिर बाँसके पात्रमें सुवर्णसहित पवित्र एवं अधिक वायन, जो

१. नामके आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'नमः' जोड़कर बोलना ही ॐकारपूर्वक नमस्कार है; यथा—'ॐ ब्रह्मणे नमः' इत्यादि । अथवा 'ॐ नमः' को एक साथ भी बोल सकते हैं; यथा—'ॐ नमो ब्रह्मणे' इत्यादि ।

२. इसी तिथिको विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें 'आरोग्यव्रत'का विधान किया गया है और ब्रह्मपुराणमें 'संवत्सरारम्भ-विधि' दी गयी है ।

३. 'विद्याव्रत'की विधि विष्णुधर्मोत्तरमें तथा गरुडपुराणमें भी उपलब्ध होती है ।

१. 'तिलकव्रत'के विषयमें विशेष जानकारी भविष्योत्तरपुराणसे हो सकती है ।

२. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

* निर्णयग्रन्थोंके अनुसार भविष्योत्तरपुराणमें इसकी विशेष विधि दी गयी है । वहाँ 'करवीर-व्रत' के नामसे इसका उल्लेख किया गया है ।

३. व्रतराजमें इस व्रतका विस्तारपूर्वक वर्णन है ।

बारह मासोंकी प्रतिपदाके व्रत एवं आवश्यक कृत्योंका वर्णन

श्रीनारदजी बोले—प्रभो! मैंने आपके मुखसे समस्त पुराणोंका सूत्र, जैसा कि परमेष्ठी ब्रह्माजीने महर्षि मरीचिसे कहा था, सुन लिया। महाभाग! अब मुझसे क्रमशः तिथियोंके विषयमें निरूपण कीजिये, जिससे व्रतका ठीक-ठीक निश्चय हो जाय। जिस मासमें, जिस पुण्य तिथिको जिसने उपासना की है और उसकी पूजा आदिका जो विधान है, वह सब इस समय बताइये।

श्रीसनातनजीने कहा—नारद! सुनो, अब मैं तुमसे तिथियोंके पृथक्-पृथक् व्रतका वर्णन करता हूँ। तिथियोंके जो स्वामी हैं, उन्हींके क्रमसे पृथक्-पृथक् व्रत बताया जाता है, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है। चैत्रमासके शुक्ल पक्षमें प्रथम दिन सूर्योदयकालमें ब्रह्माजीने सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की थी, इसलिये वर्ष और वसंत ऋतुके आदिमें बलिराज्य-सम्बन्धी तिथि—अमावास्याको जो प्रतिपदा तिथि प्राप्त होती है, उसीमें सदा विद्वानोंको व्रत करना चाहिये। प्रतिपदा तिथि पूर्वविद्धा होनेपर ही व्रत आदिमें ग्रहण करने योग्य है। उस दिन महाशान्ति करनी चाहिये। वह समस्त पापोंका नाश, सब प्रकारके उत्पातोंकी शान्ति तथा कलियुगके दुष्कर्मोंका निवारण करनेवाली होती है। साथ ही वह आयु देनेवाली, पुष्टिकारक तथा धन और सौभाग्यको बढ़ानेवाली है। वह परम मङ्गलमयी, शान्ति, पवित्र होनेके साथ ही इहलोक और परलोकमें भी सुख देनेवाली है। उस तिथिको पहले अग्निरूपधारी भगवान् ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये, फिर क्रमशः सब देवताओंकी पृथक्-पृथक् पूजा करे। इस तरह पूजा और ॐकारपूर्वक नमस्कार[1] करके कुश, जल, तिल और अक्षतके साथ सुवर्ण और वस्त्रसहित दक्षिणा लेकर वेदवेत्ता ब्राह्मणको व्रतकी पूर्तिके लिये दान करना चाहिये। इस प्रकार पूजा-विशेषसे 'सौरि' नामक व्रत सम्पन्न होता है। ब्रह्मन्! यह मनुष्योंको आरोग्य[2] प्रदान करनेवाला है। मुने! उसी दिन 'विद्याव्रत'[3] भी बताया गया है तथा इसी तिथिको श्रीकृष्णने अजातशत्रु युधिष्ठिरको तिलक[1]-व्रत करनेका उपदेश दिया है।

तदनन्तर ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको सूर्योदयकालमें देवमन्दिरसम्बन्धी वाटिकामें उगे हुए मनोहर कनेरवृक्षका पूजन करे। कनेरके वृक्षमें लाल डोरा लपेटकर उसपर गन्ध, चन्दन, धूप आदि चढ़ावे, उगे हुए सप्तधान्यके अङ्कुर, नारंगी और बिजौरा नींबू आदिसे उसकी पूजा करे। फिर अक्षत और जलसे उस वृक्षको सींचकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे क्षमा-प्रार्थना करे।

> करवीरवृषावास नमस्ते भानुवल्लभ।
> मौलिमण्डन दुर्गादिदेवानां सततं प्रिय॥
> (ना० पूर्व० ११०। १७)

'करवीर! आप धर्मके निवास-स्थान और भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। दुर्गादि देवताओंके मस्तकको विभूषित करनेवाले तथा उनके सदैव प्रिय हैं। आपको नमस्कार है।'

तत्पश्चात् 'आ कृष्णेन[2]०' इत्यादि वेदोक्त मन्त्रका उच्चारण करके इसी प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और वृक्षकी परिक्रमा करके अपने घर जाय*। श्रावण शुक्ला प्रतिपदाको परम उत्तम 'रोटक[3]व्रत' होता है, जो लक्ष्मी और बुद्धिको देनेवाला है तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका कारण है। ब्रह्मन्! सोमवारयुक्त श्रावण शुक्ल प्रतिपदा या श्रावणके प्रथम सोमवारसे लेकर साढ़े तीन मासतक यह व्रत किया जाता है। इसमें प्रतिदिन सोमेश्वर भगवान् शिवकी बिल्वपत्रसे पूजा की जाती है। कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीतक इस नियमसे पूजा करके उस दिन उपवासपूर्वक रहे और व्रतपरायण पुरुष पूर्णिमाके दिन पुनः भगवान् शङ्करकी पूजा करे। फिर बाँसके पात्रमें सुवर्णसहित पवित्र एवं अधिक वायन, जो

---

१. नामके आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'नमः' जोड़कर बोलना ही ॐकारपूर्वक नमस्कार है; यथा—'ॐ ब्रह्मणे नमः' इत्यादि। अथवा 'ॐ नमः' को एक साथ भी बोल सकते हैं; यथा—'ॐ नमो ब्रह्मणे' इत्यादि।

२. इसी तिथिको विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें 'आरोग्यव्रत'का विधान किया गया है और ब्रह्मपुराणमें 'संवत्सरारम्भ-विधि' दी गयी है।

३. 'विद्याव्रत'की विधि विष्णुधर्मोत्तरमें तथा गरुडपुराणमें भी उपलब्ध होती है।

---

१. 'तिलकव्रत'के विषयमें विशेष जानकारी भविष्योत्तरपुराणसे हो सकती है।

२. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

* निर्णयग्रन्थोंके अनुसार भविष्योत्तरपुराणमें इसकी विशेष विधि दी गयी है। वहाँ 'करवीर-व्रत' के नामसे इसका उल्लेख किया गया है।

३. व्रतराजमें इस व्रतका विस्तारपूर्वक वर्णन है।

विश्वव्यापक भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा करके व्रती पुरुष ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इसी प्रकार आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदाको जगद्गुरु ब्रह्मा एवं विष्णुका पूजन करके ब्राह्मण-भोजन करावे। ऐसा करनेसे विष्णुसहित सर्वलोकेश्वरेश्वर ब्रह्माजी अपना सायुज्य प्रदान करते हैं और वह सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। द्विजश्रेष्ठ! बारह महीनोंकी प्रतिपदा तिथियोंमें होनेवाले जो व्रत तुम्हें बताये गये हैं, वे भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। इन सब व्रतोंमें ब्रह्मचर्य-पालनका विधान है। भोजनके लिये सामान्यतः हविष्यान्न बताया गया है।

बारह मासोंके द्वितीयासम्बन्धी व्रतों और आवश्यक कृत्योंका निरूपण

सनातनजी कहते हैं—ब्रह्मन्! सुनो, अब मैं तुम्हें द्वितीयाके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करके मनुष्य ब्रह्मलोकमे प्रतिष्ठित होता है। चैत्र शुक्ला द्वितीयाको ब्राह्मी शक्तिके साथ ब्रह्माजीका हविष्यान्न तथा गन्ध आदिसे पूजन करके व्रती पुरुष सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता है और समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको पाकर अन्तमें ब्रह्मपद प्राप्त करता है। विप्रवर! इसी दिन सायंकाल उगे हुए बालचन्द्रमाका[1] पूजन करनेसे भोग और मोक्षरूप फलकी प्राप्ति होती है। अथवा उस दिन भक्तिपूर्वक अश्विनीकुमारोंकी यत्नपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणको सोने और चाँदीके नेत्रोंका दान करे[2]। इस व्रतमें दही अथवा घीसे प्राणयात्राका निर्वाह किया जाता है। द्विजेन्द्र! बारह वर्षोंतक 'नेत्रव्रत'का अनुष्ठान करके मनुष्य पृथ्वीका अधिपति होता है। वैशाख शुक्ला द्वितीयाको सप्तधान्ययुक्त कलशके ऊपर विष्णुरूपी ब्रह्माका विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य मनोवाञ्छित भोग भोगनेके पश्चात् विष्णुलोक प्राप्त कर लेता है। ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीयाको सम्पूर्ण भुवनोंके अधिपति ब्रह्मस्वरूप भगवान् भास्करका विधिपूर्वक पूजन करके जो भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह सूर्यलोकमें जाता है। आषाढ़मासके शुक्ल पक्षमें जो पुष्यनक्षत्रसे युक्त द्वितीया तिथि आती है, उसमें सुभद्रादेवीके साथ श्रीबलराम और श्रीकृष्णको रथपर बिठाकर व्रती पुरुष ब्राह्मण आदिके साथ नगर आदिमें भ्रमण करावे और किसी जलाशयके निकट जाकर बड़ा भारी उत्सव मनावे। तदनन्तर देवविग्रहोंको विधिपूर्वक पुनः मन्दिरमें विराजमान करके उक्त व्रतकी पूर्तिके लिये ब्राह्मणोंको भोजन करावे। श्रावण कृष्णा द्वितीयाको प्रजापति विश्वकर्मा शयन करते हैं। अतः वह पुण्यमयी तिथि 'अशून्यशयन' नामसे प्रसिद्ध है। उस दिन अपनी शक्तिके साथ शय्यापर शयन किये हुए नारायणस्वरूप चतुर्मुख ब्रह्माजीकी पूजा करके उन जगदीश्वरको प्रणाम करे।

तदनन्तर सायंकालमें चन्द्रमाके लिये अर्घ्यदान भी आवश्यक बताया गया है, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है। भाद्रपद शुक्ला द्वितीयाको इन्द्ररूपधारी जगद्विधाता ब्रह्माकी विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता है। आश्विन मासके शुक्लपक्षमे जो पुण्यमयी द्वितीया तिथि आती है, उसमें दिया हुआ दान अनन्त फल देनेवाला कहा जाता है। कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको पूर्वकालमें यमुनाजीने यमराजको अपने घर भोजन कराया था, इसलिये यह यम-द्वितीया कहलाती है। इसमें बहिनके घर भोजन करना पुष्टिवर्धक बताया गया है। अतः बहिनको उस दिन वस्त्र और आभूषण देने चाहिये। उस तिथिको जो बहिनके हाथसे इस लोकमें भोजन करता है, वह सर्वोत्तम रत्न, धन और धान्य पाता है। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीयाको श्राद्धके द्वारा पितरोंका पूजन करनेवाला पुरुष पुत्र-पौत्रोंसहित आरोग्य

१. विष्णुधर्मोत्तरपुराणके अनुसार यह 'बालेन्दुव्रत' कहा गया है।

२. विष्णुधर्ममें भी इस 'नेत्रव्रत'का वर्णन किया गया है।

विश्वव्यापक भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा करके व्रती पुरुष ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इसी प्रकार आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदाको जगद्गुरु ब्रह्मा एवं विष्णुका पूजन करके ब्राह्मण-भोजन करावे। ऐसा करनेसे विष्णुसहित सर्वलोकेश्वरेश्वर ब्रह्माजी अपना सायुज्य प्रदान करते हैं और वह सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। द्विजश्रेष्ठ! बारह महीनोंकी प्रतिपदा तिथियोंमें होनेवाले जो व्रत तुम्हें बताये गये हैं, वे भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। इन सब व्रतोंमें ब्रह्मचर्य-पालनका विधान है। भोजनके लिये सामान्यतः हविष्यान्न बताया गया है।

बारह मासोंके द्वितीयासम्बन्धी व्रतों और आवश्यक कृत्योंका निरूपण

सनातनजी कहते हैं—ब्रह्मन्! सुनो, अब मैं तुम्हें द्वितीयाके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करके मनुष्य ब्रह्मलोकमे प्रतिष्ठित होता है। चैत्र शुक्ला द्वितीयाको ब्राह्मी शक्तिके साथ ब्रह्माजीका हविष्यान्न तथा गन्ध आदिसे पूजन करके व्रती पुरुष सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता है और समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको पाकर अन्तमें ब्रह्मपद प्राप्त करता है। विप्रवर! इसी दिन सायंकाल उगे हुए बालचन्द्रमाका[1] पूजन करनेसे भोग और मोक्षरूप फलकी प्राप्ति होती है। अथवा उस दिन भक्तिपूर्वक अश्विनीकुमारोंकी यत्नपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणको सोने और चाँदीके नेत्रोंका दान करे[2]। इस व्रतमें दही अथवा घीसे प्राणयात्राका निर्वाह किया जाता है। द्विजेन्द्र! बारह वर्षोंतक 'नेत्रव्रत'का अनुष्ठान करके मनुष्य पृथ्वीका अधिपति होता है। वैशाख शुक्ला द्वितीयाको सप्तधान्ययुक्त कलशके ऊपर विष्णुरूपी ब्रह्माका विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य मनोवाञ्छित भोग भोगनेके पश्चात् विष्णुलोक प्राप्त कर लेता है। ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीयाको सम्पूर्ण भुवनोंके अधिपति ब्रह्मस्वरूप भगवान् भास्करका विधिपूर्वक पूजन करके जो भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह सूर्यलोकमें जाता है। आषाढ़मासके शुक्ल पक्षमें जो पुष्यनक्षत्रसे युक्त द्वितीया तिथि आती है, उसमें सुभद्रादेवीके साथ श्रीबलराम और श्रीकृष्णको रथपर बिठाकर व्रती पुरुष ब्राह्मण आदिके साथ नगर आदिमें भ्रमण करावे और किसी जलाशयके निकट जाकर बड़ा भारी उत्सव मनावे। तदनन्तर देवविग्रहोंको विधिपूर्वक पुनः मन्दिरमें विराजमान करके उक्त व्रतकी पूर्तिके लिये ब्राह्मणोंको भोजन करावे। श्रावण कृष्णा द्वितीयाको प्रजापति विश्वकर्मा शयन करते हैं। अतः वह पुण्यमयी तिथि 'अशून्यशयन' नामसे प्रसिद्ध है। उस दिन अपनी शक्तिके साथ शय्यापर शयन किये हुए नारायणस्वरूप चतुर्मुख ब्रह्माजीकी पूजा करके उन जगदीश्वरको प्रणाम करे।

तदनन्तर सायंकालमें चन्द्रमाके लिये अर्घ्यदान भी आवश्यक बताया गया है, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है। भाद्रपद शुक्ला द्वितीयाको इन्द्ररूपधारी जगद्विधाता ब्रह्माकी विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता है। आश्विन मासके शुक्लपक्षमे जो पुण्यमयी द्वितीया तिथि आती है, उसमें दिया हुआ दान अनन्त फल देनेवाला कहा जाता है। कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको पूर्वकालमें यमुनाजीने यमराजको अपने घर भोजन कराया था, इसलिये यह यम-द्वितीया कहलाती है। इसमें बहिनके घर भोजन करना पुष्टिवर्धक बताया गया है। अतः बहिनको उस दिन वस्त्र और आभूषण देने चाहिये। उस तिथिको जो बहिनके हाथसे इस लोकमें भोजन करता है, वह सर्वोत्तम रत्न, धन और धान्य पाता है। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीयाको श्राद्धके द्वारा पितरोंका पूजन करनेवाला पुरुष पुत्र-पौत्रोंसहित आरोग्य

---

१. विष्णुधर्मोत्तरपुराणके अनुसार यह 'बालेन्दुव्रत' कहा गया है।

२. विष्णुधर्ममें भी इस 'नेत्रव्रत'का वर्णन किया गया है।

यह व्रत धन, पुत्र और धर्मविषयक शुभकारक बुद्धि प्रदान करता है। आषाढ़ शुक्ला तृतीयाको सपत्नीक ब्राह्मणमें लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी भावना करके वस्त्र, आभूषण, भोजन और धेनुदानके द्वारा उनकी पूजा करे; फिर प्रिय वचनोंसे उन्हें अधिक संतुष्ट करे । इस प्रकार सौभाग्यकी इच्छासे प्रेमपूर्वक इस व्रतका पालन करके नारी धन-धान्यसे सम्पन्न हो देवदेव श्रीहरिके प्रसादसे विष्णुलोक प्राप्त कर लेती है । श्रावण शुक्ला तृतीयाको 'स्वर्णगौरीव्रत'का आचरण करना चाहिये । उस दिन स्त्रीको चाहिये कि वह षोडश उपचारोंसे भवानीकी पूजा करे ।

भाद्रपद शुक्ला तृतीयाको सौभाग्यवती स्त्री विधिपूर्वक पाद्य-अर्घ्य आदिके द्वारा भक्ति-भावसे पूजा करती हुई 'हरितालिकाव्रतका' पालन करे । सोने, चाँदी, ताँबे, बाँस अथवा मिट्टीके पात्रमें दक्षिणासहित पकवान रखकर फल और वस्त्रके साथ ब्राह्मणको दान करे । इस प्रकार व्रतका पालन करनेवाली नारी मनोरम भोगोंका उपभोग करके इस व्रतके प्रभावसे गौरीदेवीकी सहचरी होती है । आश्विन शुक्ला तृतीयाको 'बृहद् गौरीव्रत'का आचरण करे । नारद ! इससे सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि होती है ।

कार्तिक शुक्ला तृतीयाको 'विष्णु-गौरीव्रत'का आचरण करे । उसमें भाँति-भाँतिके उपचारोंसे जगद्वन्द्या लक्ष्मीकी पूजा करके सुवासिनी स्त्रीका मङ्गल-द्रव्योंसे पूजन करनेके पश्चात् उसे भोजन करावे और प्रणाम करके विदा करे । मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीयाको मङ्गलमय 'हरगौरीव्रत' करके पूर्वोक्तविधिसे जगदम्बाका पूजन करे । इस व्रतके प्रभावसे स्त्री मनोरम भोगोंका उपभोग करके देवीलोकमें जाती और गौरीके साथ आनन्दका अनुभव करती है । पौष शुक्ला तृतीयाको 'ब्रह्मगौरीव्रत'का आचरण करे । द्विजश्रेष्ठ ! इसमें भी पूर्वोक्त विधिसे पूजन करके नारी ब्रह्मगौरीके प्रसादसे उनके लोकमें जाकर आनन्द भोगती है । माघ शुक्ला तृतीयाको व्रत रखकर पूर्वोक्त विधिसे सौभाग्यसुन्दरीकी पूजा करनी चाहिये और उनके लिये नारियलके साथ अर्घ्य देना चाहिये । इससे प्रसन्न होकर व्रतसे संतुष्ट हुई देवी अपना लोक प्रदान करती है। फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें कुलसौख्यदा-तृतीयाका व्रत होता है, उसमें गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा पूजित होनेपर देवी सबके लिये मङ्गलदायिनी होती हैं । मुने ! सम्पूर्ण तृतीयाव्रतोंमें देवीपूजा, ब्राह्मणपूजा, दान, होम और विसर्जन—यह साधारण विधि है । इस प्रकार तुम्हें तृतीयाके व्रत बताये गये हैं, जो भक्तिपूर्वक पालित होनेपर मनकी अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं ।

बारह महीनोंके चतुर्थी-व्रतोंकी विधि और उनका माहात्म्य

सनातनजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! सुनो, अब मैं तुम्हें चतुर्थीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका पालन करके स्त्री और पुरुष मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं । चैत्रमासकी चतुर्थीको वासुदेवस्वरूप गणेशजीकी भलीभाँति पूजा करके ब्राह्मणको सुवर्ण दक्षिणा देनेसे मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंका वन्दनीय हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है । वैशाखकी चतुर्थीको संकर्षण गणेशकी पूजा करके विधिज्ञ पुरुष गृहस्थ ब्राह्मणोंको शङ्ख दान करे तो वह संकर्षणलोकमें जाकर अनेक कल्पोंतक आनन्दका अनुभव करता है । ज्येष्ठ मासकी चतुर्थीको प्रद्युम्नरूपी गणेशका पूजन करके ब्राह्मणसमूहको फल-मूलका दान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है । आषाढ़की चतुर्थीको अनिरुद्धस्वरूप गणेशकी पूजा करके संन्यासियोंको तूँबीका पात्र दान करनेसे मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाता है । ज्येष्ठकी चतुर्थीको एक दूसरा परम उत्तम व्रत होता है, जिसे 'सतीव्रत' कहते हैं । इस व्रतका पालन करके स्त्री गणेशमाता पार्वतीके लोकमें जाकर उन्हींके समान आनन्दकी भागिनी होती है । इसी प्रकार आषाढ़की चतुर्थीको एक दूसरा कल्याणकारी व्रत होता है, क्योंकि वह तिथि रथन्तर कल्पका प्रथम दिन है । उस दिन मनुष्य श्रद्धापूत हृदयसे विधिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करके देवताओंके लिये दुर्लभ फल भी प्राप्त कर लेता है । मुने ! श्रावणकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ विद्वान् गणेशजीको अर्घ्य प्रदान करे । उस समय गणेशजीके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये । ध्यानके पश्चात् आवाहन आदि सम्पूर्ण उपचारोंसे उनका पूजन करे । फिर लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे, जो गणेशजीके लिये

यह व्रत धन, पुत्र और धर्मविषयक शुभकारक बुद्धि प्रदान करता है। आषाढ़ शुक्ला तृतीयाको सपत्नीक ब्राह्मणमें लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी भावना करके वस्त्र, आभूषण, भोजन और धेनुदानके द्वारा उनकी पूजा करे; फिर प्रिय वचनोंसे उन्हें अधिक संतुष्ट करे । इस प्रकार सौभाग्यकी इच्छासे प्रेमपूर्वक इस व्रतका पालन करके नारी धन-धान्यसे सम्पन्न हो देवदेव श्रीहरिके प्रसादसे विष्णुलोक प्राप्त कर लेती है । श्रावण शुक्ला तृतीयाको 'स्वर्णगौरीव्रत'का आचरण करना चाहिये । उस दिन स्त्रीको चाहिये कि वह षोडश उपचारोंसे भवानीकी पूजा करे ।

भाद्रपद शुक्ला तृतीयाको सौभाग्यवती स्त्री विधिपूर्वक पाद्य-अर्घ्य आदिके द्वारा भक्ति-भावसे पूजा करती हुई 'हरितालिकाव्रतका' पालन करे । सोने, चाँदी, ताँबे, बाँस अथवा मिट्टीके पात्रमें दक्षिणासहित पकवान रखकर फल और वस्त्रके साथ ब्राह्मणको दान करे । इस प्रकार व्रतका पालन करनेवाली नारी मनोरम भोगोंका उपभोग करके इस व्रतके प्रभावसे गौरीदेवीकी सहचरी होती है । आश्विन शुक्ला तृतीयाको 'बृहद् गौरीव्रत'का आचरण करे । नारद ! इससे सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि होती है ।

कार्तिक शुक्ला तृतीयाको 'विष्णु-गौरीव्रत'का आचरण करे । उसमें भाँति-भाँतिके उपचारोंसे जगद्वन्द्या लक्ष्मीकी पूजा करके सुवासिनी स्त्रीका मङ्गल-द्रव्योंसे पूजन करनेके पश्चात् उसे भोजन करावे और प्रणाम करके विदा करे । मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीयाको मङ्गलमय 'हरगौरीव्रत' करके पूर्वोक्तविधिसे जगदम्बाका पूजन करे । इस व्रतके प्रभावसे स्त्री मनोरम भोगोंका उपभोग करके देवीलोकमें जाती और गौरीके साथ आनन्दका अनुभव करती है । पौष शुक्ला तृतीयाको 'ब्रह्मगौरीव्रत'का आचरण करे । द्विजश्रेष्ठ ! इसमें भी पूर्वोक्त विधिसे पूजन करके नारी ब्रह्मगौरीके प्रसादसे उनके लोकमें जाकर आनन्द भोगती है । माघ शुक्ला तृतीयाको व्रत रखकर पूर्वोक्त विधिसे सौभाग्यसुन्दरीकी पूजा करनी चाहिये और उनके लिये नारियलके साथ अर्घ्य देना चाहिये । इससे प्रसन्न होकर व्रतसे संतुष्ट हुई देवी अपना लोक प्रदान करती है। फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें कुलसौख्यदा-तृतीयाका व्रत होता है, उसमें गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा पूजित होनेपर देवी सबके लिये मङ्गलदायिनी होती हैं । मुने ! सम्पूर्ण तृतीयाव्रतोंमें देवीपूजा, ब्राह्मणपूजा, दान, होम और विसर्जन—यह साधारण विधि है। इस प्रकार तुम्हें तृतीयाके व्रत बताये गये हैं, जो भक्तिपूर्वक पालित होनेपर मनकी अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं ।

बारह महीनोंके चतुर्थी-व्रतोंकी विधि और उनका माहात्म्य

सनातनजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! सुनो, अब मैं तुम्हें चतुर्थीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका पालन करके स्त्री और पुरुष मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं । चैत्रमासकी चतुर्थीको वासुदेवस्वरूप गणेशजीकी भलीभाँति पूजा करके ब्राह्मणको सुवर्ण दक्षिणा देनेसे मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंका वन्दनीय हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है । वैशाखकी चतुर्थीको संकर्षण गणेशकी पूजा करके विधिज्ञ पुरुष गृहस्थ ब्राह्मणोंको शङ्ख दान करे तो वह संकर्षणलोकमें जाकर अनेक कल्पोंतक आनन्दका अनुभव करता है । ज्येष्ठ मासकी चतुर्थीको प्रद्युम्नरूपी गणेशका पूजन करके ब्राह्मणसमूहको फल-मूलका दान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है । आषाढ़की चतुर्थीको अनिरुद्धस्वरूप गणेशकी पूजा करके संन्यासियोंको तूँबीका पात्र दान करनेसे मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाता है । ज्येष्ठकी चतुर्थीको एक दूसरा परम उत्तम व्रत होता है, जिसे 'सतीव्रत' कहते हैं । इस व्रतका पालन करके स्त्री गणेशमाता पार्वतीके लोकमें जाकर उन्हींके समान आनन्दकी भागिनी होती है । इसी प्रकार आषाढ़की चतुर्थीको एक दूसरा कल्याणकारी व्रत होता है, क्योंकि वह तिथि रथन्तर कल्पका प्रथम दिन है । उस दिन मनुष्य श्रद्धापूत हृदयसे विधिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करके देवताओंके लिये दुर्लभ फल भी प्राप्त कर लेता है । मुने ! श्रावणकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ विद्वान् गणेशजीको अर्घ्य प्रदान करे । उस समय गणेशजीके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये । ध्यानके पश्चात् आवाहन आदि सम्पूर्ण उपचारोंसे उनका पूजन करे । फिर लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे, जो गणेशजीके लिये

गिराया। सुकुमार बालक! तू रो मत। यह स्यमन्तक अब तेरा ही है।'

आश्विन शुक्ला चतुर्थीको पुरुषसूक्तद्वारा षोडशोपचारसे कपर्दीश विनायककी पूजा करे। कार्तिक कृष्ण चतुर्थीको 'कर्काचतुर्थी' (करवा चौथ) का व्रत बताया गया है। इस व्रतमें केवल स्त्रियोंका ही अधिकार है। इसलिये उसका विधान बताया है—स्त्री स्नान करके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो गणेशजीकी पूजा करे। उनके आगे पकवानसे भरे हुए दस करवे रक्खे और भक्तिसे पवित्रचित्त होकर उन्हें देवदेव गणेशजीको समर्पित करे। समर्पणके समय यह कहना चाहिये कि 'भगवान् कपर्दि गणेश मुझपर प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् सुवासिनी स्त्रियों और ब्राह्मणोंको इच्छानुसार आदरपूर्वक उन करवोंको बाँट दे। इसके बाद रातमें चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको विधिपूर्वक अर्घ्य दे। व्रतकी पूर्तिके लिये स्वयं भी मिष्टान्न भोजन करे। इस व्रतको सोलह या बारह वर्षोंतक करके नारी इसका उद्यापन करे। उसके बाद इसे छोड़ दे अथवा स्त्रीको चाहिये कि सौभाग्यकी इच्छासे वह जीवनभर इस व्रतको करती रहे; क्योंकि स्त्रियोंके लिये इस व्रतके समान सौभाग्यदायक व्रत तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है।

मुनीश्वर! मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्थीसे लेकर एक वर्षतकका समय प्रत्येक चतुर्थीको एकभुक्त (एक समय भोजन) करके बितावे और द्वितीय वर्ष उक्त तिथिको केवल रातमें एक बार भोजन करके व्यतीत करे। तृतीय वर्षमें प्रत्येक चतुर्थीको अयाचित (बिना माँगे मिले हुए) अन्न एक बार खाकर रहे और चौथा वर्ष उक्त तिथिको उपवासपूर्वक रहकर बितावे। इस प्रकार विधिपूर्वक व्रतका पालन करते हुए क्रमशः चार वर्ष पूरे करके अन्तमें व्रत-स्नान करे। उस समय महाव्रती मानव सोनेकी गणेशमूर्ति बनवावे। यदि असमर्थ हो तो वर्णक (हल्दी-चूर्ण) द्वारा ही गणेश-प्रतिमा बना ले। तदनन्तर विविध रंगोंसे धरतीपर सुन्दर दलोंसहित कमल अङ्कित करके उसके ऊपर कलश स्थापित करे। कलशके ऊपर ताँबेका पात्र रक्खे। उस पात्रको सफेद चावलसे भर दे। चावलके ऊपर युगल वस्त्रसे आच्छादित गणेशजीको विराजमान करे। तदनन्तर गन्ध आदि सामग्रियोंद्वारा उनकी पूजा करे। फिर गणेशजी प्रसन्न हों, इस उद्देश्यसे लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे। रातमें गीत, वाद्य और पुराण-कथा आदिके द्वारा जागरण करे। फिर निर्मल प्रभात होनेपर स्नान करके तिल, चावल, जौ, पीली सरसों, घी और खाँड़ मिली हवनसामग्रीसे विधिपूर्वक होम करे। गण, गणाधिप, कूष्माण्ड, त्रिपुरान्तक, लम्बोदर, एकदन्त, रुक्मदंष्ट्र, विघ्नप, ब्रह्मा, यम, वरुण, सोम, सूर्य, हुताशन, गन्धमादी तथा परमेष्ठी—इन सोलह नामोंद्वारा प्रत्येकके आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और 'नमः' पद लगाकर अग्निमें एक-एक आहुति दे। इसके बाद 'वक्रतुण्डाय हुम्' इस मन्त्रके द्वारा एक-सौ आठ आहुति दे। तत्पश्चात् व्याहृतियोंद्वारा यथाशक्ति होम करके पूर्णाहुति दे। दिक्पालोंका पूजन करके चौबीस ब्राह्मणोंको लड्डू और खीर भोजन करावे। इसके बाद आचार्यको दक्षिणासहित सवत्सा गौ दान करे एवं दूसरे ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भूयसी दक्षिणा दे। फिर प्रणाम और परिक्रमा करके उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी प्रसन्नचित्त होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। मनुष्य इस व्रतका पालन करके गणेशजीके प्रसादसे इहलोकमें उत्तम भोग भोगता और परलोकमें भगवान् विष्णुका सायुज्य-लाभ करता है। नारद! कुछ लोग इसका नाम 'वरव्रत' कहते हैं। इसका विधान भी यही है और फल भी उसके समान ही है। पौष मासकी चतुर्थीको भक्तिपूर्वक विघ्नेश्वर गणेशकी प्रार्थना करके एक ब्राह्मणको लड्डू भोजन करावे और दक्षिणा दे। मुने! ऐसा करनेसे व्रती पुरुष धन-सम्पत्तिका भागी होता है।

माघ कृष्णा चतुर्थीको 'संकष्टव्रत' बतलाया जाता है। उसमें उपवासका संकल्प लेकर व्रती पुरुष सबेरेसे चन्द्रोदयकालतक नियमपूर्वक रहे। मनको काबूमें रक्खे। चन्द्रोदय होनेपर मिट्टीकी गणेशमूर्ति बनाकर उसे पीढ़ेपर स्थापित करे। गणेशजीके साथ उनके आयुध और वाहन भी होने चाहिये। मूर्तिमें गणेशजीकी स्थापना करके षोडशोपचारसे विधिपूर्वक उनका पूजन करे। फिर मोदक तथा गुड़में बने हुए तिलके लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे। तत्पश्चात् ताँबेके पात्रमें लाल चन्दन, कुश, दूर्वा, फूल, अक्षत, शमीपत्र, दधि और जल एकत्र करके चन्द्रमाको अर्घ्य दे। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रतिरूपक॥
(ना० पूर्व० ११३। ७७)

'गगनरूपी समुद्रके माणिक्य चन्द्रमा! दक्षकन्या रोहिणीके प्रियतम! गणेशके प्रतिबिम्ब! आप मेरा दिया हुआ यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'

गिराया । सुकुमार बालक ! तू रो मत । यह स्यमन्तक अब तेरा ही है ।'

आश्विन शुक्ला चतुर्थीको पुरुषसूक्तद्वारा षोडशोपचारसे कपर्दीश विनायककी पूजा करे । कार्तिक कृष्ण चतुर्थीको 'कर्काचतुर्थी' (करवा चौथ) का व्रत बताया गया है । इस व्रतमें केवल स्त्रियोंका ही अधिकार है । इसलिये उसका विधान बताया है—स्त्री स्नान करके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो गणेशजीकी पूजा करे । उनके आगे पकवानसे भरे हुए दस करवे रक्खे और भक्तिसे पवित्रचित्त होकर उन्हें देवदेव गणेशजीको समर्पित करे । समर्पणके समय यह कहना चाहिये कि 'भगवान् कपर्दि गणेश मुझपर प्रसन्न हों ।' तत्पश्चात् सुवासिनी स्त्रियों और ब्राह्मणोंको इच्छानुसार आदरपूर्वक उन करवोंको बाँट दे । इसके बाद रातमें चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको विधिपूर्वक अर्घ्य दे । व्रतकी पूर्तिके लिये स्वयं भी मिष्टान्न भोजन करे । इस व्रतको सोलह या बारह वर्षोंतक करके नारी इसका उद्यापन करे । उसके बाद इसे छोड़ दे अथवा स्त्रीको चाहिये कि सौभाग्यकी इच्छासे वह जीवनभर इस व्रतको करती रहे; क्योंकि स्त्रियोंके लिये इस व्रतके समान सौभाग्यदायक व्रत तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है ।

मुनीश्वर ! मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्थीसे लेकर एक वर्षतकका समय प्रत्येक चतुर्थीको एकभुक्त (एक समय भोजन) करके बितावे और द्वितीय वर्ष उक्त तिथिको केवल रातमें एक बार भोजन करके व्यतीत करे । तृतीय वर्षमें प्रत्येक चतुर्थीको अयाचित (बिना माँगे मिले हुए) अन्न एक बार खाकर रहे और चौथा वर्ष उक्त तिथिको उपवासपूर्वक रहकर बितावे । इस प्रकार विधिपूर्वक व्रतका पालन करते हुए क्रमशः चार वर्ष पूरे करके अन्तमें व्रत-स्नान करे । उस समय महाव्रती मानव सोनेकी गणेशमूर्ति बनवावे । यदि असमर्थ हो तो वर्णक (हल्दी-चूर्ण) द्वारा ही गणेश-प्रतिमा बना ले । तदनन्तर विविध रंगोंसे धरतीपर सुन्दर दलोंसहित कमल अङ्कित करके उसके ऊपर कलश स्थापित करे । कलशके ऊपर ताँबेका पात्र रक्खे । उस पात्रको सफेद चावलसे भर दे । चावलके ऊपर युगल वस्त्रसे आच्छादित गणेशजीको विराजमान करे । तदनन्तर गन्ध आदि सामग्रियोंद्वारा उनकी पूजा करे । फिर गणेशजी प्रसन्न हों, इस उद्देश्यसे लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे । रातमें गीत, वाद्य और पुराण-कथा आदिके द्वारा जागरण करे । फिर निर्मल प्रभात होनेपर स्नान करके तिल, चावल, जौ, पीली सरसों, घी और खाँड़ मिली हवनसामग्रीसे विधिपूर्वक होम करे । गण, गणाधिप, कूष्माण्ड, त्रिपुरान्तक, लम्बोदर, एकदन्त, रुक्मदंष्ट्र, विघ्नप, ब्रह्मा, यम, वरुण, सोम, सूर्य, हुताशन, गन्धमादी तथा परमेष्ठी—इन सोलह नामोंद्वारा प्रत्येकके आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और 'नमः' पद लगाकर अग्निमें एक-एक आहुति दे । इसके बाद 'वक्रतुण्डाय हुम्' इस मन्त्रके द्वारा एक-सौ आठ आहुति दे । तत्पश्चात् व्याहृतियोंद्वारा यथाशक्ति होम करके पूर्णाहुति दे । दिक्पालोंका पूजन करके चौबीस ब्राह्मणोंको लड्डू और खीर भोजन करावे । इसके बाद आचार्यको दक्षिणासहित सवत्सा गौ दान करे एवं दूसरे ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भूयसी दक्षिणा दे । फिर प्रणाम और परिक्रमा करके उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी प्रसन्नचित्त होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे । मनुष्य इस व्रतका पालन करके गणेशजीके प्रसादसे इहलोकमें उत्तम भोग भोगता और परलोकमें भगवान् विष्णुका सायुज्य-लाभ करता है । नारद ! कुछ लोग इसका नाम 'वरव्रत' कहते हैं । इसका विधान भी यही है और फल भी उसके समान ही है । पौष मासकी चतुर्थीको भक्तिपूर्वक विघ्नेश्वर गणेशकी प्रार्थना करके एक ब्राह्मणको लड्डू भोजन करावे और दक्षिणा दे । मुने ! ऐसा करनेसे व्रती पुरुष धन-सम्पत्तिका भागी होता है ।

माघ कृष्णा चतुर्थीको 'संकष्टव्रत' बतलाया जाता है । उसमें उपवासका संकल्प लेकर व्रती पुरुष सबेरेसे चन्द्रोदयकालतक नियमपूर्वक रहे । मनको काबूमें रक्खे । चन्द्रोदय होनेपर मिट्टीकी गणेशमूर्ति बनाकर उसे पीढ़ेपर स्थापित करे । गणेशजीके साथ उनके आयुध और वाहन भी होने चाहिये । मूर्तिमें गणेशजीकी स्थापना करके षोडशोपचारसे विधिपूर्वक उनका पूजन करे । फिर मोदक तथा गुड़में बने हुए तिलके लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे । तत्पश्चात् ताँबेके पात्रमें लाल चन्दन, कुश, दूर्वा, फूल, अक्षत, शमीपत्र, दधि और जल एकत्र करके चन्द्रमाको अर्घ्य दे । उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रतिरूपक ॥
(ना० पूर्व० ११३ । ७७)

'गगनरूपी समुद्रके माणिक्य चन्द्रमा ! दक्षकन्या रोहिणीके प्रियतम ! गणेशके प्रतिबिम्ब ! आप मेरा दिया हुआ यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये ।'

निराहार रहकर सायंकाल अपने घर आवे और थोड़ा भोजन करके एकाग्रचित्त हो लोकपालोंको नमस्कार करके पवित्र भूमिपर सो जाय। उस दिन रातके चौथे प्रहरमें जो स्वप्न होता है, वह निश्चय ही सत्य होता है—यह भगवान् शिवका कथन है। यदि अशुभ स्वप्न हो तो भगवान् शिवकी-पूजामें तत्पर हो उपवासपूर्वक आठ पहर बितावे। फिर आठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य शुभ फलका भागी होता है। यह 'शुभाशुभ-निदर्शन-व्रत' कहा गया है, जो मनुष्योंके इहलोक और परलोकमें भी सौभाग्यजनक होता है।

श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्थीको जब थोड़ा दिन शेष रहे तो कच्चा अन्न (जितना दान देना हो) पृथक्-पृथक् पात्रोंमें रखकर विद्वान् पुरुष उन पात्रोंमें जल भर दे। तदनन्तर वह सब जल निकाल दे। फिर दूसरे दिन सबेरे सूर्योदय होनेपर विधिवत् स्नान करके देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका भलीभाँति पूजन करे। उनके आगे नैवेद्य स्थापित करे और वह पहले दिनका धोया हुआ कच्चा अन्न प्रसन्नतापूर्वक याचकोंको देवे। तत्पश्चात् प्रदोषकालमें शिवमन्दिरमें जाकर लिङ्गस्वरूप भगवान् शिवका गन्ध, पुष्प आदि सामग्रियोंके द्वारा सम्यक् पूजन करे। फिर सहस्र या सौ बार पञ्चाक्षरी विद्या ('नमः शिवाय' मन्त्र) का जप करे। तदनन्तर उनका स्तवन करे। फिर सदा अन्नकी सिद्धिके लिये भगवान् शिवसे प्रार्थना करे। इसके बाद अपने घर आकर ब्राह्मण आदिको पकवान देकर स्वयं भी मौनभाव-से भोजन करे। विप्रवर! यह 'अन्न-व्रत' है, मनुष्योंद्वारा विधि-पूर्वक इसका पालन होनेपर यह सम्पूर्ण अन्नसम्पत्तियोंका उत्पादक और परलोकमें सद्गति देनेवाला होता है।

श्रावण मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमीके दिन आस्तिक मनुष्यों-को चाहिये कि वे अपने दरवाजेके दोनों ओर गोबरसे सर्पोंकी आकृति बनावें और गन्ध, पुष्प आदिसे उनकी पूजा करें। तत्पश्चात् इन्द्राणी देवीकी पूजा करें। सोने, चाँदी, दही, अक्षत, कुश, जल, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे उन सबकी पूजा करके परिक्रमा करे और उस द्रव्यको प्रणाम करके भक्तिभावसे प्रार्थनापूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको समर्पित करे। नारद! इस प्रकार भक्ति-भावसे द्रव्य दान करनेवाले पुरुषपर स्वर्ण आदि समृद्धियोंके दाता धनाध्यक्ष कुबेर प्रसन्न होते हैं। फिर भक्ति-भावसे ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भी स्त्री-पुत्र और सगे-सम्बन्धियोंके साथ भोजन करे।

भाद्रपद-मासके कृष्ण-पक्षकी पञ्चमीको दूधसे नागोंको तृप्त करे। जो ऐसा करता है उसकी सात पीढियोंतकके लोग साँपसे निर्भय हो जाते हैं। भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको श्रेष्ठ ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिके तट-पर जाकर सदा आलस्यरहित हो स्नान करे। फिर घर आकर यत्नपूर्वक मिट्टीकी वेदी बनावे। उसे गोबरसे लीपकर पुष्पोंसे सुशोभित करे। इसके बाद कुशा बिछाकर उसके ऊपर गन्ध, नाना प्रकारके पुष्प, धूप और सुन्दर दीप आदिके द्वारा सात ऋषियोंका पूजन करे। कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वशिष्ठ—ये सात ऋषि माने गये हैं। इनके लिये विधिवत् अर्घ्य तैयार करके अर्घ्यदान दे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उनके लिये बिना जोते-बोये उत्पन्न हुए श्यामाक (साँवाके चावल) आदिसे नैवेद्य तैयार करे। वह नैवेद्य उन्हें अर्पण करके उन ऋषियोंका विसर्जन करनेके पश्चात् स्वयं भी वही प्रसादस्वरूप अन्न भोजन करे। इस व्रतका पालन करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल भोगता और सप्तर्षियोंके प्रसादसे श्रेष्ठ विमानपर बैठकर दिव्यलोकमें जाता है।

आश्विन शुक्ला पञ्चमीको 'उपाङ्गललिता-व्रत' होता है। नारद! यथाशक्ति ललिताजीकी स्वर्णमयी मूर्ति बनाकर षोडशोपचारसे उनकी विधिवत् पूजा करे। व्रतकी पूर्तिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको पकवान, फल, घी और दक्षिणा दान करे। तत्पश्चात् निम्नाङ्कितरूपसे प्रार्थना एवं विसर्जन करे।

सवाहना शक्तियुता वरदा पूजिता मया।
मातर्मामनुगृह्याथ गम्यतां निजमन्दिरम्॥
(ना० पूर्व० ११४। ५२)

'मैंने वाहन और शक्तियोंसे युक्त वरदायिनी ललिता देवी-का पूजन किया है। माँ! तुम मुझपर अनुग्रह करके अपने मन्दिरको पधारो।'

द्विजश्रेष्ठ! कार्तिक शुक्ला पञ्चमीको सब पापोंका नाश करने-के लिये श्रद्धापूर्वक परम उत्तम 'जया-व्रत' करना चाहिये। ब्रह्मन्! एकाग्रचित्त हो विधिपूर्वक षोडशोपचारसे जयादेवीकी पूजा करके पवित्र तथा वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो एक ब्राह्मणको भोजन करावे और दक्षिणा देकर उसे विदा करे। तत्पश्चात् स्वयं मौन होकर भोजन करे। जो भक्तिपूर्वक जयाके दिन स्नान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। विप्रवर! अश्वमेध यज्ञके अन्तमें स्नान करनेसे जो फल बताया गया है, वही जयाके दिन भी स्नान करनेसे प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमीको विधिपूर्वक नागोंकी पूजा करके मनुष्य

निराहार रहकर सायंकाल अपने घर आवे और थोड़ा भोजन करके एकाग्रचित्त हो लोकपालोंको नमस्कार करके पवित्र भूमिपर सो जाय। उस दिन रातके चौथे प्रहरमें जो स्वप्न होता है, वह निश्चय ही सत्य होता है—यह भगवान् शिवका कथन है। यदि अशुभ स्वप्न हो तो भगवान् शिवकी-पूजामें तत्पर हो उपवासपूर्वक आठ पहर वितावे। फिर आठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य शुभ फलका भागी होता है। यह 'शुभाशुभ-निदर्शन-व्रत' कहा गया है, जो मनुष्योंके इहलोक और परलोकमें भी सौभाग्यजनक होता है।

श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्थीको जब थोड़ा दिन शेप रहे तो कच्चा अन्न (जितना दान देना हो) पृथक्-पृथक् पात्रोंमें रखकर विद्वान् पुरुष उन पात्रोंमें जल भर दे। तदनन्तर वह सब जल निकाल दे। फिर दूसरे दिन सवेरे सूर्योदय होनेपर विधिवत् स्नान करके देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका भलीभाँति पूजन करे। उनके आगे नैवेद्य स्थापित करे और वह पहले दिनका धोया हुआ कच्चा अन्न प्रसन्नतापूर्वक याचकोंको देवे। तत्पश्चात् प्रदोषकालमें शिवमन्दिरमें जाकर लिङ्गस्वरूप भगवान् शिवका गन्ध, पुष्प आदि सामग्रियोंके द्वारा सम्यक् पूजन करे। फिर सहस्र या सौ बार पञ्चाक्षरी विद्या ('नमः शिवाय' मन्त्र) का जप करे। तदनन्तर उनका स्तवन करे। फिर सदा अन्नकी सिद्धिके लिये भगवान् शिवसे प्रार्थना करे। इसके बाद अपने घर आकर ब्राह्मण आदिको पकवान देकर स्वयं भी मौनभाव-से भोजन करे। विप्रवर! यह 'अन्न-व्रत' है, मनुष्योंद्वारा विधि-पूर्वक इसका पालन होनेपर यह सम्पूर्ण अन्नसम्पत्तियोंका उत्पादक और परलोकमें सद्गति देनेवाला होता है।

श्रावण मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमीके दिन आस्तिक मनुष्यों-को चाहिये कि वे अपने दरवाजेके दोनों ओर गोबरसे सर्पोंकी आकृति बनावें और गन्ध, पुष्प आदिसे उनकी पूजा करें। तत्पश्चात् इन्द्राणी देवीकी पूजा करें। सोने, चाँदी, दही, अक्षत, कुश, जल, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे उन सबकी पूजा करके परिक्रमा करे और उस द्रव्यको प्रणाम करके भक्तिभावसे प्रार्थनापूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको समर्पित करे। नारद! इस प्रकार भक्ति-भावसे द्रव्य दान करनेवाले पुरुषपर स्वर्ण आदि समृद्धियोंके दाता धनाध्यक्ष कुबेर प्रसन्न होते हैं। फिर भक्ति-भावसे ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भी स्त्री-पुत्र और सगे-सम्बन्धियोंके साथ भोजन करे।

भाद्रपद-मासके कृष्ण-पक्षकी पञ्चमीको दूधसे नागोंको तृप्त करे। जो ऐसा करता है उसकी सात पीढ़ियोंतकके लोग साँपसे निर्भय हो जाते हैं। भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको श्रेष्ठ ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिके तट-पर जाकर सदा आलस्यरहित हो स्नान करे। फिर घर आकर यत्नपूर्वक मिट्टीकी वेदी बनावे। उसे गोबरसे लीपकर पुष्पोंसे सुशोभित करे। इसके बाद कुशा बिछाकर उसके ऊपर गन्ध, नाना प्रकारके पुष्प, धूप और सुन्दर दीप आदिके द्वारा सात ऋषियोंका पूजन करे। कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वशिष्ठ—ये सात ऋषि माने गये हैं। इनके लिये विधिवत् अर्घ्य तैयार करके अर्घ्यदान दे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उनके लिये बिना जोते-बोये उत्पन्न हुए श्यामाक (साँवाके चावल) आदिसे नैवेद्य तैयार करे। वह नैवेद्य उन्हें अर्पण करके उन ऋषियोंका विसर्जन करनेके पश्चात् स्वयं भी वही प्रसादस्वरूप अन्न भोजन करे। इस व्रतका पालन करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल भोगता और सप्तर्षियोंके प्रसादसे श्रेष्ठ विमानपर बैठकर दिव्यलोकमें जाता है।

आश्विन शुक्ला पञ्चमीको 'उपाङ्गललिता-व्रत' होता है। नारद! यथाशक्ति ललिताजीकी स्वर्णमयी मूर्ति बनाकर षोडशोपचारसे उनकी विधिवत् पूजा करे। व्रतकी पूर्तिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको पकवान, फल, घी और दक्षिणा दान करे। तत्पश्चात् निम्नाङ्कितरूपसे प्रार्थना एवं विसर्जन करे।

सवाहना शक्तियुता वरदा पूजिता मया।
मातर्मामनुगृह्याथ गम्यतां निजमन्दिरम्॥
(ना० पूर्व० ११४। ५२)

'मैंने वाहन और शक्तियोंसे युक्त वरदायिनी ललिता देवी-का पूजन किया है। माँ! तुम मुझपर अनुग्रह करके अपने मन्दिरको पधारो।'

द्विजश्रेष्ठ! कार्तिक शुक्ला पञ्चमीको सब पापोंका नाश करने-के लिये श्रद्धापूर्वक परम उत्तम 'जया-व्रत' करना चाहिये। ब्रह्मन्! एकाग्रचित्त हो विधिपूर्वक षोडशोपचारसे जयादेवीकी पूजा करके पवित्र तथा वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो एक ब्राह्मणको भोजन करावे और दक्षिणा देकर उसे विदा करे। तत्पश्चात् स्वयं मौन होकर भोजन करे। जो भक्तिपूर्वक जयाके दिन स्नान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। विप्रवर! अश्वमेध यज्ञके अन्तमें स्नान करनेसे जो फल बताया गया है, वही जयाके दिन भी स्नान करनेसे प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमीको विधिपूर्वक नागोंकी पूजा करके मनुष्य

व्यतीपात योग और मङ्गलवारसे संयुक्त हो तो उसका नाम 'कपिलाषष्ठी' होता है। कपिलाषष्ठीके दिन व्रत एवं नियममे तत्पर होकर सूर्यदेवकी पूजा करके मनुष्य भगवान् भास्करके प्रसादसे मनोवाञ्छित कामनाओंको पा लेता है। देवर्षिप्रवर! उस दिन किया हुआ अन्नदान, होम, जप तथा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण आदि सब कुछ अक्षय जानना चाहिये। कपिलाषष्ठीको भगवान् सूर्यकी प्रसन्नताके लिये वस्त्र, माला और चन्दन आदिसे दूध

देनेवाली कपिला गायकी पूजा करके उसे वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। ब्रह्मन्! आश्विन शुक्ला षष्ठीको गन्ध आदि माङ्गलिक द्रव्यों और नाना प्रकारके नैवेद्योंसे कात्यायनी देवीकी पूजा करनी चाहिये। पूजाके पश्चात् देवेश्वरी कात्यायनी देवीसे क्षमा-प्रार्थना और उन्हें प्रणाम करके उनका विसर्जन करे। यहाँ बालूकी मूर्तिमें कात्यायनीकी प्रतिष्ठा करके उनकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करके कात्यायनी देवीकी कृपासे कन्या मनके अनुरूप वर पाती है और विवाहिता नारी मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त करती है। कार्तिक शुक्ला षष्ठीको महात्मा षडाननने सम्पूर्ण देवताओंद्वारा दी हुई महाभागा देवसेनाको प्राप्त किया था। अतः इस तिथिको सम्पूर्ण मनोहर उपचारोंद्वारा सुरश्रेष्ठा देवसेना और षडानन कार्तिकेयकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य अपने मनके अनुकूल अनुपम सिद्धि प्राप्त करता है। द्विजोत्तम! उसी तिथिको अग्निपूजा बतायी गयी है। पहले अग्निदेवकी पूजा करके नाना प्रकारके द्रव्योंसे होम करना चाहिये।

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठीको गन्ध, पुष्प, अक्षत, फल, वस्त्र, आभूषण तथा भाँति-भाँतिके नैवेद्योंद्वारा स्कन्दका पूजन करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! यदि वह षष्ठी रविवार तथा शतभिषा नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे 'चम्पाषष्ठी' कहते हैं। उस दिन सुख चाहनेवाले पुरुषको पापनाशक भगवान् विश्वेश्वरका दर्शन, पूजन, ध्यान और स्मरण करना चाहिये। उस दिन किया हुआ स्नान-दान आदि सब शुभ कर्म अक्षय होता है। विप्रवर! पौषमासके शुक्लपक्षकी षष्ठीको सनातन विष्णुरूपी जगत्पालक भगवान् दिनेश प्रकट हुए थे। अतः सब प्रकारका सुख चाहनेवाले पुरुषोंको उस दिन गन्ध आदि द्रव्यों, नैवेद्यों तथा वस्त्राभूषण आदिके द्वारा उनका पूजन करना चाहिये। माघमासमें जो शुक्ल पक्षकी षष्ठी आती है उसे 'वरुणषष्ठी' कहते हैं। उसमें रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यद्वारा विष्णु-स्वरूप सनातन वरुणदेवताकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य जो-जो चाहता है, वही-वही फल वरुणदेवकी कृपासे प्राप्त करके प्रसन्न होता है। नारद! फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी षष्ठीको विधिपूर्वक भगवान् पशुपतिकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। शतरुद्रीके मन्त्रोंसे पृथक्-पृथक् पञ्चामृत एवं जलद्वारा नहलाकर श्वेत चन्दन लगावे; फिर अक्षत, सफेद फूल, बिल्वपत्र, धतूरके फूल, अनेक प्रकारके फल और भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे भलीभाँति पूजा करके विधिवत् आरती उतारे। तदनन्तर क्षमा-प्रार्थना करके प्रणामपूर्वक उन्हें कैलासके लिये विसर्जन करे। मुने! जो स्त्री अथवा पुरुष इस प्रकार भगवान् शिवकी पूजा करते हैं, वे इहलोकमें श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् शिवके स्वरूपको प्राप्त होते हैं।

व्यतीपात योग और मङ्गलवारसे संयुक्त हो तो उसका नाम 'कपिलाषष्ठी' होता है। कपिलाषष्ठीके दिन व्रत एवं नियमसे तत्पर होकर सूर्यदेवकी पूजा करके मनुष्य भगवान् भास्करके प्रसादसे मनोवाञ्छित कामनाओंको पा लेता है। देवर्षि-प्रवर! उस दिन किया हुआ अन्नदान, होम, जप तथा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण आदि सब कुछ अक्षय जानना चाहिये। कपिलाषष्ठीको भगवान् सूर्यकी प्रसन्नताके लिये वस्त्र, माला और चन्दन आदिसे दूध

देनेवाली कपिला गायकी पूजा करके उसे वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। ब्रह्मन्! आश्विन शुक्ला षष्ठीको गन्ध आदि माङ्गलिक द्रव्यों और नाना प्रकारके नैवेद्योंसे कात्यायनी देवीकी पूजा करनी चाहिये। पूजाके पश्चात् देवेश्वरी कात्यायनी देवीसे क्षमा-प्रार्थना और उन्हें प्रणाम करके उनका विसर्जन करे। यहाँ बालूकी मूर्तिमें कात्यायनीकी प्रतिष्ठा करके उनकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करके कात्यायनी देवीकी कृपासे कन्या मनके अनुरूप वर पाती है और विवाहिता नारी मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त करती है। कार्तिक शुक्ला षष्ठीको महात्मा षडाननने सम्पूर्ण देवताओंद्वारा दी हुई महाभागा देवसेनाको प्राप्त किया था। अतः इस तिथिको सम्पूर्ण मनोहर उपचारोंद्वारा सुरश्रेष्ठा देवसेना और षडानन कार्तिकेयकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य अपने मनके अनुकूल अनुपम सिद्धि प्राप्त करता है। द्विजोत्तम! उसी तिथिको अग्निपूजा बतायी गयी है। पहले अग्निदेवकी पूजा करके नाना प्रकारके द्रव्योंसे होम करना चाहिये।

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठीको गन्ध, पुष्प, अक्षत, फल, वस्त्र, आभूषण तथा भाँति-भाँतिके नैवेद्योंद्वारा स्कन्दका पूजन करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! यदि वह षष्ठी रविवार तथा शतभिषा नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे 'चम्पाषष्ठी' कहते हैं। उस दिन सुख चाहनेवाले पुरुषको पापनाशक भगवान् विश्वेश्वरका दर्शन, पूजन, ध्यान और स्मरण करना चाहिये। उस दिन किया हुआ स्नान-दान आदि सब शुभ कर्म अक्षय होता है। विप्रवर! पौषमासके शुक्लपक्षकी षष्ठीको सनातन विष्णुरूपी जगत्पालक भगवान् दिनेश प्रकट हुए थे। अतः सब प्रकारका सुख चाहनेवाले पुरुषोंको उस दिन गन्ध आदि द्रव्यों, नैवेद्यों तथा वस्त्राभूषण आदिके द्वारा उनका पूजन करना चाहिये। माघमासमें जो शुक्ल पक्षकी षष्ठी आती है उसे 'वरुणषष्ठी' कहते हैं। उसमें रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यद्वारा विष्णु-स्वरूप सनातन वरुणदेवताकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य जो-जो चाहता है, वही-वही फल वरुण-देवकी कृपासे प्राप्त करके प्रसन्न होता है। नारद! फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी षष्ठीको विधिपूर्वक भगवान् पशुपतिकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। शतरुद्रीके मन्त्रोंसे पृथक्-पृथक् पञ्चामृत एवं जलद्वारा नहलाकर श्वेत चन्दन लगावे; फिर अक्षत, सफेद फूल, बिल्वपत्र, धतूरके फूल, अनेक प्रकारके फल और भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे भलीभाँति पूजा करके विधिवत् आरती उतारे। तदनन्तर क्षमा-प्रार्थना करके प्रणामपूर्वक उन्हें कैलासके लिये विसर्जन करे। मुने! जो स्त्री अथवा पुरुष इस प्रकार भगवान् शिवकी पूजा करते हैं, वे इहलोकमें श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् शिवके स्वरूप-को प्राप्त होते हैं।

उनकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य भगवान् सूर्यका सायुज्य प्राप्त कर लेता है ।

श्रावण शुक्ला सप्तमीको 'अव्यङ्ग'नामक शुभ व्रत करना चाहिये । इसमें सूर्यदेवकी पूजाके अन्तमें उनकी प्रसन्नताके लिये कपासके सूतका बना हुआ साढ़े चार हाथका वस्त्र दान करना चाहिये । यह व्रत विशेष कल्याणकारी है । यदि यह सप्तमी हस्त नक्षत्रसे युक्त हो तो पापनाशिनी कही गयी है । इसमें किया हुआ दान, जप और होम सब अक्षय होता है । भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको 'आमुक्ताभरण-व्रत' बतलाया गया है। इसमें उमासहित भगवान् महेश्वरकी पूजाका विधान है। गङ्गाजल आदि षोडशोपचारसे भगवान्‌का पूजन, प्रार्थना और नमस्कार करके सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये उनका विसर्जन करना चाहिये । इसीको 'फलसप्तमी' भी कहते हैं। नारियल, बैंगन, नारंगी, बिजौरा नीबू, कुम्हड़ा, बनभंटा और सुपारी—इन सात फलोंको महादेवजीके आगे रखकर सात तन्तुओं और सात गाँठोंसे युक्त एक डोरा भी चढ़ावे । फिर पराभक्तिसे उनका पूजन करके उस डोरेको स्त्री बायें हाथमें बाँध ले और पुरुष दाहिने हाथमें । जबतक वर्ष पूरा न हो जाय तबतक उसे धारण किये रहे । सात ब्राह्मणोंको खीर भोजन कराकर उन्हें विदा करे । उसके बाद बुद्धिमान् पुरुष व्रतकी पूर्णताके लिये स्वयं भी भोजन करे । पहले बताये हुए सातों फल सात ब्राह्मणोंको देने चाहिये । विप्रवर ! इस प्रकार सात वर्षोंतक व्रतका पालन करके विधिवत् उपासना करनेपर व्रतधारी मनुष्य महादेवजीका सायुज्य प्राप्त कर लेता है । आश्विनके शुक्लपक्षमें जो सप्तमी आती है, उसे 'शुभ सप्तमी' जानना चाहिये । उसमें स्नान और पूजा करके तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी आज्ञा ले व्रतका आरम्भ करके कपिला गायका पूजन एवं प्रार्थना करे—

त्वामहं दद्मि कल्याणि प्रीयतामर्यमा स्वयम् ।
पालय त्वं जगत्कृत्स्नं यतोऽसि धर्मसम्भवा ॥
(ना० पूर्व० ११६ । ४१-४२)

'कल्याणी ! मैं तुम्हारा दान करता हूँ, इससे साक्षात् भगवान् सूर्य प्रसन्न हों । तुम सम्पूर्ण जगत्‌का पालन करो; क्योंकि धर्मसे उत्पन्न हुई हो ।'

ऐसा कहकर वेदवेत्ता ब्राह्मणको नमस्कार करके उसे गाय और दक्षिणा दे । ब्रह्मन् ! फिर स्वयं पञ्चगव्य पान करके रहे । इस प्रकार व्रत करके दूसरे दिन उत्तम ब्राह्मणों-को भोजन करावे और उनसे शेष बचे हुए प्रसादस्वरूप अन्न-को स्वयं भोजन करे । जिसने श्रद्धापूर्वक इस शुभ सप्तमी-नामक व्रतको किया है, वह देवदेव महादेवजीके प्रसादसे भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

कार्तिकके शुक्लपक्षमे 'शाकसप्तमी नामक' व्रत करना चाहिये । उस दिन स्वर्णकमलसहित सात प्रकारके शाक सात ब्राह्मणोंको दान करे और स्वयं शाक भोजन करके ही रहे । दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें भोजन-दक्षिणा दे और स्वयं भी मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे । मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमीको 'मित्र-व्रत' बताया गया है। भगवान् विष्णुका जो दाहिना नेत्र है, वही साकार होकर कश्यपके तेज और अदितिके गर्भसे 'मित्र'नामधारी दिवाकरके रूपमे प्रकट हुआ है । अतः ब्रह्मन् ! इस तिथिमें शास्त्रोक्त विधिसे उन्हींका पूजन करना चाहिये । पूजन करके मधुर आदि सामग्रियोंसे सात ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें सुवर्ण-दक्षिणा देकर विदा करे । तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन करे । विधिपूर्वक इस व्रतका पालन करके मनुष्य निश्चय ही सूर्यके लोकमें जाता है । पौष शुक्ला सप्तमीको 'अभय-व्रत' होता है। उस दिन उपवास करके पृथ्वीपर खड़ा हो तीनों समय सूर्यदेवकी पूजा करे । तत्पश्चात् दूधमिश्रित अन्नसे बँधा हुआ एक सेर मोदक ब्राह्मणको दान करके सात ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें सुवर्णकी दक्षिणा दे विदा करके स्वयं भी भोजन करे । यह सबको अभय देनेवाला माना गया है । दूसरे ब्राह्मण उसी

उनकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य भगवान् सूर्यका सायुज्य प्राप्त कर लेता है ।

श्रावण शुक्ला सप्तमीको 'अव्यङ्ग'नामक शुभ व्रत करना चाहिये । इसमें सूर्यदेवकी पूजाके अन्तमें उनकी प्रसन्नताके लिये कपासके सूतका बना हुआ साढ़े चार हाथका वस्त्र दान करना चाहिये । यह व्रत विशेष कल्याणकारी है । यदि यह सप्तमी हस्त नक्षत्रसे युक्त हो तो पापनाशिनी कही गयी है । इसमें किया हुआ दान, जप और होम सब अक्षय होता है । भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको 'आमुक्ताभरण-व्रत' बतलाया गया है। इसमें उमासहित भगवान् महेश्वरकी पूजाका विधान है । गङ्गाजल आदि षोडशोपचारसे भगवान्का पूजन, प्रार्थना और नमस्कार करके सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये उनका विसर्जन करना चाहिये । इसीको 'फलसप्तमी' भी कहते हैं । नारियल, बैंगन, नारंगी, बिजौरा नीबू, कुम्हड़ा, बनभंटा और सुपारी—इन सात फलोंको महादेवजीके आगे रखकर सात तन्तुओं और सात गाँठोंसे युक्त एक डोरा भी चढ़ावे । फिर पराभक्तिसे उनका पूजन करके उस डोरेको स्त्री बायें हाथमें बाँध ले और पुरुष दाहिने हाथमें । जबतक वर्ष पूरा न हो जाय तबतक उसे धारण किये रहे । सात ब्राह्मणोंको खीर भोजन कराकर उन्हें विदा करे । उसके बाद बुद्धिमान् पुरुष व्रतकी पूर्णताके लिये स्वयं भी भोजन करे । पहले बताये हुए सातों फल सात ब्राह्मणोंको देने चाहिये । विप्रवर ! इस प्रकार सात वर्षोंतक व्रतका पालन करके विधिवत् उपासना करनेपर व्रतधारी मनुष्य महादेवजीका सायुज्य प्राप्त कर लेता है । आश्विनके शुक्लपक्षमें जो सप्तमी आती है, उसे 'शुभ सप्तमी' जानना चाहिये । उसमें स्नान और पूजा करके तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी आज्ञा ले व्रतका आरम्भ करके कपिला गायका पूजन एवं प्रार्थना करे—

त्वामहं दद्मि कल्याणि प्रीयतामर्यमा स्वयम् ।
पालय त्वं जगत्कृत्स्नं यतोऽसि धर्मसम्भवा ॥
(ना० पूर्व० ११६ । ४१-४२)

'कल्याणी ! मैं तुम्हारा दान करता हूँ, इससे साक्षात् भगवान् सूर्य प्रसन्न हों । तुम सम्पूर्ण जगत्का पालन करो; क्योंकि धर्मसे उत्पन्न हुई हो ।'

ऐसा कहकर वेदवेत्ता ब्राह्मणको नमस्कार करके उसे गाय और दक्षिणा दे । ब्रह्मन् ! फिर स्वयं पञ्चगव्य पान करके रहे । इस प्रकार व्रत करके दूसरे दिन उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उनसे शेष बचे हुए प्रसादस्वरूप अन्नको स्वयं भोजन करे । जिसने श्रद्धापूर्वक इस शुभ सप्तमी-नामक व्रतको किया है, वह देवदेव महादेवजीके प्रसादसे भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

कार्तिकके शुक्लपक्षमे 'शाकसप्तमी नामक' व्रत करना चाहिये । उस दिन स्वर्णकमलसहित सात प्रकारके शाक सात ब्राह्मणोंको दान करे और स्वयं शाक भोजन करके ही रहे । दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें भोजन-दक्षिणा दे और स्वयं भी मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे । मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमीको 'मित्र-व्रत' बताया गया है। भगवान् विष्णुका जो दाहिना नेत्र है, वही साकार होकर कश्यपके तेज और अदितिके गर्भसे 'मित्र'नामधारी दिवाकरके रूपमे प्रकट हुआ है । अतः ब्रह्मन् ! इस तिथिमें शास्त्रोक्त विधिसे उन्हींका पूजन करना चाहिये । पूजन करके मधुर आदि सामग्रियोंसे सात ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें सुवर्ण-दक्षिणा देकर विदा करे । तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन करे । विधिपूर्वक इस व्रतका पालन करके मनुष्य निश्चय ही सूर्यके लोकमें जाता है । पौष शुक्ला सप्तमीको 'अभय-व्रत' होता है। उस दिन उपवास करके पृथ्वीपर खड़ा हो तीनों समय सूर्यदेवकी पूजा करे । तत्पश्चात् दूधमिश्रित अन्नसे बँधा हुआ एक सेर मोदक ब्राह्मणको दान करके सात ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें सुवर्णकी दक्षिणा दे विदा करके स्वयं भी भोजन करे । यह सबको अभय देनेवाला माना गया है । दूसरे ब्राह्मण उसी

इस व्रतका पालन करके मनुष्य देवीलोकमें जाता है। श्रावण शुक्ला अष्टमीको विधिपूर्वक देवीका यजन करके दूधसे उन्हें नहलावे और मिष्टान्न निवेदन करे, तत्पश्चात् दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करके व्रत समाप्त करे। यह संतान बढ़ानेवाला व्रत है। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको 'दशाफल' नामका व्रत होता है*। उस दिन उपवास-व्रतका संकल्प लेकर स्नान और नित्यकर्म करके काली तुलसीके दस पत्तोंसे 'कृष्णाय नमः', 'विष्णवे नमः', 'अनन्ताय नमः', 'गोविन्दाय नमः', 'गरुडध्वजाय नमः', 'दामोदराय नमः', 'हृषीकेशाय नमः', 'पद्मनाभाय नमः', 'हरये नमः', 'प्रभवे नमः'—इन दस नामोंका उच्चारण करके प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे। तदनन्तर परिक्रमापूर्वक नमस्कार करे। इस प्रकार इस उत्तम व्रतको दस दिनतक करता रहे। इसके आदि, मध्य और अन्तमें श्रीकृष्ण-मन्त्रद्वारा चरुसे एक सौ आठ बार विधिपूर्वक होम करे। होमके अन्तमें विद्वान् पुरुष विधिके अनुसार भलीभाँति आचार्यकी पूजा करे। सोने, ताँबे, मिट्टी अथवा बाँसके पात्र-मे सोनेका सुन्दर तुलसीदल बनवाकर रक्खे। साथ ही भगवान् श्रीकृष्णकी सुवर्णमयी प्रतिमा भी स्थापित करके उसकी विधि-पूर्वक पूजा करे और वस्त्र तथा आभूषणोंसे विभूषित बछड़े-सहित गौका दान भी करे। दस दिनोंतक प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्णको दस-दस पूरी अर्पण करे। उन पूरियोंको व्रती पुरुष विधिज्ञ ब्राह्मणको दे डाले अथवा स्वयं भोजन करे। द्विजोत्तम! दसवें दिन यथाशक्ति शय्या दान करे। तत्पश्चात् द्रव्यसहित सुवर्णमयी मूर्ति आचार्यको समर्पित करे। व्रतके अन्तमें दस ब्राह्मणोंको प्रत्येकके लिये दस-दस पूरियाँ देवे। इस प्रकार दस वर्षोंतक उत्तम व्रतका पालन करके विधिपूर्वक उपवासका निर्वाह कर लेनेपर मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न होता है और अन्तमे भगवान् श्रीकृष्णका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

यही 'कृष्ण-जन्माष्टमी' तिथि है, जो मनुष्योंके सब पापों-को हर लेनेवाली कही गयी है। श्रीकृष्णके जन्मके दिन केवल उपवास करनेमात्रसे मनुष्य सात जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है। विद्वान् पुरुष उपवास करके नदी आदिके निर्मल जलमें तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। फिर उत्तम स्थानमें बने हुए मण्डपके भीतर मण्डल बनावे। मण्डलके मध्यभागमे ताँबे या मिट्टीका कलश स्थापित करे। उसके ऊपर ताँबेका पात्र रक्खे। उस पात्रके ऊपर दो वस्त्रोंसे ढकी हुई श्रीकृष्णकी सुवर्णमयी सुन्दर प्रतिमा स्थापित करे। फिर वाद्य आदि उपचारों-द्वारा स्नेहपूर्ण हृदयसे उसकी पूजा करे। कलशके सब ओर पूर्व आदि क्रमसे देवकी, वसुदेव, यशोदा, नन्द, व्रज, गोपगण, गोपीवृन्द तथा गोसमुदायकी पूजा करे। तत्पश्चात् आरती करके अपराध क्षमा कराते हुए भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। उसके बाद आधी राततक वहीं रहे। आधी रातमे पुनः श्रीहरिको पञ्चामृत तथा शुद्ध जलसे स्नान कराये और गन्ध-पुष्प आदिसे पुनः उनकी पूजा करे। नारद! धनिया, अजवाइन, सोंठ, खाँड और घीके मेलसे नैवेद्य तैयार करके उसे चाँदीके पात्रमें रखकर भगवान्‌को अर्पण करे। फिर दशावतारधारी श्रीहरिका चिन्तन करते हुए पुनः आरती करके चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको अर्घ्य दे। उसके बाद देवेश्वर श्रीकृष्णसे क्षमा-प्रार्थना करके व्रती पुरुष पौराणिक स्तोत्र-पाठ और गीत-वाद्य आदि अनेक कार्यक्रमोंद्वारा रात्रि-का शेष भाग व्यतीत करे। तदनन्तर प्रातःकाल श्रेष्ठ ब्राह्मणों-को मिष्टान्न भोजन करावे और उन्हें प्रसन्नतापूर्वक दक्षिणा देकर विदा करे। तत्पश्चात् भगवान्‌की सुवर्णमयी प्रतिमाको स्वर्ण, धेनु और भूमिसहित आचार्यको दान करे। फिर और भी दक्षिणा देकर उन्हें विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी स्त्री, पुत्र, सुहृद् तथा भृत्यवर्गके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रत करके मनुष्य श्रेष्ठ विमान-पर बैठकर साक्षात् गोलोकमें जाता है। इस जन्माष्टमीके समान दूसरा कोई व्रत तीनों लोकोंमें नहीं है, जिसके करनेसे करोड़ों एकादशियोंका फल प्राप्त हो जाता है। भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको मनुष्य 'राधा-व्रत' करे। इसमें भी पूर्ववत् कलशके ऊपर स्थापित श्रीराधाकी स्वर्णमयी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। मध्याह्नकालमें श्रीराधाजीका पूजन करके एकभुक्त व्रत करे। यदि शक्ति हो तो भक्त पुरुष पूरा उपवास करे। फिर दूसरे दिन भक्तिपूर्वक सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराकर आचार्यको प्रतिमा दान करे। तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन

* अमावास्यान्त मास माननेवालोंकी दृष्टिसे यह श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमी कही गयी है। जो पूर्णिमान्त ही मास मानते हैं उनकी दृष्टिसे यह अष्टमी भाद्रपद कृष्णपक्षमें पड़ती है।

इस व्रतका पालन करके मनुष्य देवीलोकमें जाता है। श्रावण शुक्ला अष्टमीको विधिपूर्वक देवीका यजन करके दूधसे उन्हें नहलावे और मिष्टान्न निवेदन करे, तत्पश्चात् दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करके व्रत समाप्त करे। यह संतान बढ़ानेवाला व्रत है। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको 'दशाफल' नामका व्रत होता है*। उस दिन उपवास-व्रतका संकल्प लेकर स्नान और नित्यकर्म करके काली तुलसीके दस पत्तोंसे 'कृष्णाय नमः', 'विष्णवे नमः', 'अनन्ताय नमः', 'गोविन्दाय नमः', 'गरुडध्वजाय नमः', 'दामोदराय नमः', 'हृषीकेशाय नमः', 'पद्मनाभाय नमः', 'हरये नमः', 'प्रभवे नमः'—इन दस नामोंका उच्चारण करके प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे। तदनन्तर परिक्रमापूर्वक नमस्कार करे। इस प्रकार इस उत्तम व्रतको दस दिनतक करता रहे। इसके आदि, मध्य और अन्तमें श्रीकृष्ण-मन्त्रद्वारा चरुसे एक सौ आठ बार विधिपूर्वक होम करे। होमके अन्तमें विद्वान् पुरुष विधिके अनुसार भलीभाँति आचार्यकी पूजा करे। सोने, ताँबे, मिट्टी अथवा बाँसके पात्रमे सोनेका सुन्दर तुलसीदल बनवाकर रक्खे। साथ ही भगवान् श्रीकृष्णकी सुवर्णमयी प्रतिमा भी स्थापित करके उसकी विधिपूर्वक पूजा करे और वस्त्र तथा आभूषणोंसे विभूषित बछड़ेसहित गौका दान भी करे। दस दिनोंतक प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्णको दस-दस पूरी अर्पण करे। उन पूरियोंको व्रती पुरुष विधिज्ञ ब्राह्मणको दे डाले अथवा स्वयं भोजन करे। द्विजोत्तम! दसवें दिन यथाशक्ति शय्या दान करे। तत्पश्चात् द्रव्यसहित सुवर्णमयी मूर्ति आचार्यको समर्पित करे। व्रतके अन्तमें दस ब्राह्मणोंको प्रत्येकके लिये दस-दस पूरियाँ देवे। इस प्रकार दस वर्षोंतक उत्तम व्रतका पालन करके विधिपूर्वक उपवासका निर्वाह कर लेनेपर मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न होता है और अन्तमे भगवान् श्रीकृष्णका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

यही 'कृष्ण-जन्माष्टमी' तिथि है, जो मनुष्योंके सब पापोंको हर लेनेवाली कही गयी है। श्रीकृष्णके जन्मके दिन केवल उपवास करनेमात्रसे मनुष्य सात जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है। विद्वान् पुरुष उपवास करके नदी आदिके निर्मल जलमें तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। फिर उत्तम स्थानमें बने हुए मण्डपके भीतर मण्डल बनावे। मण्डलके मध्यभागमे ताँबे या मिट्टीका कलश स्थापित करे। उसके ऊपर ताँबेका पात्र रक्खे। उस पात्रके ऊपर दो वस्त्रोंसे ढकी हुई श्रीकृष्णकी सुवर्णमयी सुन्दर प्रतिमा स्थापित करे। फिर वाद्य आदि उपचारोंद्वारा स्नेहपूर्ण हृदयसे उसकी पूजा करे। कलशके सब ओर पूर्व आदि क्रमसे देवकी, वसुदेव, यशोदा, नन्द, व्रज, गोपगण, गोपीवृन्द तथा गोसमुदायकी पूजा करे। तत्पश्चात् आरती करके अपराध क्षमा कराते हुए भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। उसके बाद आधी राततक वहीं रहे। आधी रातमे पुनः श्रीहरिको पञ्चामृत तथा शुद्ध जलसे स्नान कराये और गन्ध-पुष्प आदिसे पुनः उनकी पूजा करे। नारद! धनिया, अजवाइन, सोंठ, खाँड और घीके मेलसे नैवेद्य तैयार करके उसे चाँदीके पात्रमें रखकर भगवान्को अर्पण करे। फिर दशावतारधारी श्रीहरिका चिन्तन करते हुए पुनः आरती करके चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको अर्घ्य दे। उसके बाद देवेश्वर श्रीकृष्णसे क्षमा-प्रार्थना करके व्रती पुरुष पौराणिक स्तोत्र-पाठ और गीत-वाद्य आदि अनेक कार्यक्रमोंद्वारा रात्रिका शेष भाग व्यतीत करे। तदनन्तर प्रातःकाल श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और उन्हें प्रसन्नतापूर्वक दक्षिणा देकर विदा करे। तत्पश्चात् भगवान्की सुवर्णमयी प्रतिमाको स्वर्ण, धेनु और भूमिसहित आचार्यको दान करे। फिर और भी दक्षिणा देकर उन्हें विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी स्त्री, पुत्र, सुहृद् तथा भृत्यवर्गके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रत करके मनुष्य श्रेष्ठ विमानपर बैठकर साक्षात् गोलोकमें जाता है। इस जन्माष्टमीके समान दूसरा कोई व्रत तीनों लोकोंमें नहीं है, जिसके करनेसे करोड़ों एकादशियोंका फल प्राप्त हो जाता है। भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको मनुष्य 'राधा-व्रत' करे। इसमें भी पूर्ववत् कलशके ऊपर स्थापित श्रीराधाकी स्वर्णमयी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। मध्याह्नकालमें श्रीराधाजीका पूजन करके एकभुक्त व्रत करे। यदि शक्ति हो तो भक्त पुरुष पूरा उपवास करे। फिर दूसरे दिन भक्तिपूर्वक सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराकर आचार्यको प्रतिमा दान करे। तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन

* अमावास्यान्त मास माननेवालोंकी दृष्टिसे यह श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमी कही गयी है। जो पूर्णिमातक ही मास मानते हैं उनकी दृष्टिसे यह अष्टमी भाद्रपद कृष्णपक्षमें पड़ती है।

खीरसे अग्निमें आहुति दे। ब्रह्मन्! उक्त वस्तुओंके अभावमें केवल घीकी आहुति दे। ग्रहोंके लिये समिधा और तिलका हवन करे। सब रोगोंकी शान्तिके उद्देश्यसे भगवान् मृत्युञ्जयके लिये भी आहुति देनी चाहिये। चन्दन, तालपत्र, पुष्पमाला, अक्षत, दूर्वा, लाल सूत, सुपारी, नारियल तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ—सबको नये सूपेमें रक्खे। प्रत्येक वस्तु सोलहकी संख्यामें हो। उन सब वस्तुओंको दूसरे सूपसे ढक दे। तदनन्तर व्रती पुरुष निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए उपर्युक्त सब वस्तुएँ महालक्ष्मीको समर्पित करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूता लक्ष्मीश्चन्द्रसहोदरा।
व्रतेनानेन संतुष्टा भवताद्विष्णुवल्लभा॥
(ना० पूर्व० ११७। ७०-७१)

'क्षीरसागरसे प्रकट हुई चन्द्रमाकी सहोदर भगिनी श्रीविष्णुवल्लभा महालक्ष्मी इस व्रतसे संतुष्ट हों।'

पूर्वोक्त चार प्रतिमाएँ श्रोत्रिय ब्राह्मणको अर्पित करे। इसके बाद चार ब्राह्मणों और सोलह सुवासिनी स्त्रियोंको मिष्टान्न भोजन कराकर दक्षिणा दे उन्हें विदा करे। फिर नियम समाप्त करके इष्ट भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। विप्रवर! यह महालक्ष्मीका व्रत है। इसका विधिपूर्वक पालन करके मनुष्य इहलोकके इष्ट भोगोंका उपभोग करनेके बाद चिरकालतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है।

विप्रवर! आश्विन मासके शुक्लपक्षमें जो अष्टमी आती है, उसे 'महाष्टमी' कहा गया है। उसमें सभी उपचारोंसे दुर्गाजीके पूजनका विधान है। जो महाष्टमीको उपवास अथवा एकभुक्त व्रत करता है, वह सब ओरसे वैभव पाकर देवताकी भाँति चिरकालतक आनन्दमग्न रहता है। कार्तिक कृष्णपक्षमें अष्टमीको 'कर्काष्टमी' नामक व्रत कहा गया है। उसमें यत्नपूर्वक उमासहित भगवान् शङ्करकी पूजा करनी चाहिये। जो सर्वगुणसम्पन्न पुत्र और नाना प्रकारके सुखकी अभिलाषा रखते हैं, उन व्रती पुरुषोंको चन्द्रोदय होनेपर सदा चन्द्रमाके लिये अर्घ्यदान करना चाहिये। कार्तिकके शुक्लपक्षमें गोपाष्टमीका व्रत बताया गया है। उसमें गौओंकी पूजा करना, गोग्रास देना, गौओंकी परिक्रमा करना, गौओंके पीछे-पीछे चलना और गोदान करना आदि कर्तव्य है। जो समस्त सम्पत्तियोंकी इच्छा रखता हो, उसे उपर्युक्त कार्य अवश्य करने चाहिये। मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको 'अनघाष्टमी व्रत' कहा गया है। उसमें अनेक पुत्रोंसे युक्त अनघ और अनघा—इन दोनों पति-पत्नीकी कुशमयी प्रतिमा बनायी जाती है। उस युगल जोड़ीको गोबरसे लीपे हुए शुभ स्थानमें स्थापित करके गन्ध-पुष्प आदि विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करे। फिर ब्राह्मण पति-पत्नीको भोजन कराकर दक्षिणा दे विदा करे। स्त्री हो या पुरुष विधिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करके उत्तम लक्षणोंसे युक्त पुत्र पाता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमीको कालभैरवके समीप उपवासपूर्वक जागरण करके मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। पौष शुक्ला अष्टमीको अष्टकासञ्ज्ञक श्राद्ध पितरोंको एक वर्षतक तृप्ति देनेवाला और कुल-संततिको बढ़ानेवाला है। उस दिन भक्तिपूर्वक शिवकी पूजा करके केवल भक्तिका आचरण करते हुए मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है। माघ मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली भद्रकाली देवीकी भक्तिभावसे पूजा करे। जो अविच्छिन्न संतति और विजय चाहता हो, वह माघमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको भीष्मजीका तर्पण करे। ब्रह्मन्! फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको व्रतपरायण पुरुष समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये भीमादेवीकी आराधना करे। फाल्गुन शुक्ला अष्टमीको गन्ध आदि उपचारोंसे शिव और शिवाकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंका अधीश्वर हो जाता है। सभी मासोंके दोनों पक्षोंमें अष्टमीके दिन विधिपूर्वक शिव और पार्वतीकी पूजा करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लेता है।

नवमीसम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—विप्रेन्द्र! अब मैं तुमसे नवमीके व्रतोंका वर्णन करता हूँ, लोकमें जिनका पालन करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाते हैं। चैत्रके शुक्लपक्षमें नवमीको 'श्रीरामनवमी' का व्रत होता है। उसमें भक्तियुक्त पुरुष यदि शक्ति हो तो विधिपूर्वक उपवास करे। जो अशक्त हो, वह मध्याह्नकालीन जन्मोत्सवके बाद एक समय भोजन करके रहे। ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर भगवान् श्रीरामको प्रसन्न करे। गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, वस्त्र और आभूषण

खीरसे अग्निमें आहुति दे। ब्रह्मन्! उक्त वस्तुओंके अभावमें केवल घीकी आहुति दे। ग्रहोंके लिये समिधा और तिलका हवन करे। सब रोगोंकी शान्तिके उद्देश्यसे भगवान् मृत्युञ्जयके लिये भी आहुति देनी चाहिये। चन्दन, तालपत्र, पुष्पमाला, अक्षत, दूर्वा, लाल सूत, सुपारी, नारियल तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ—सबको नये सूपेमें रक्खे। प्रत्येक वस्तु सोलहकी संख्यामें हो। उन सब वस्तुओंको दूसरे सूपसे ढक दे। तदनन्तर व्रती पुरुष निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए उपर्युक्त सब वस्तुएँ महालक्ष्मीको समर्पित करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूता लक्ष्मीश्चन्द्रसहोदरा।
व्रतेनानेन संतुष्टा भवताद्विष्णुवल्लभा॥
(ना० पूर्व० ११७। ७०-७१)

'क्षीरसागरसे प्रकट हुई चन्द्रमाकी सहोदर भगिनी श्रीविष्णुवल्लभा महालक्ष्मी इस व्रतसे संतुष्ट हों।'

पूर्वोक्त चार प्रतिमाएँ श्रोत्रिय ब्राह्मणको अर्पित करे। इसके बाद चार ब्राह्मणों और सोलह सुवासिनी स्त्रियोंको मिष्टान्न भोजन कराकर दक्षिणा दे उन्हें विदा करे। फिर नियम समाप्त करके इष्ट भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। विप्रवर! यह महालक्ष्मीका व्रत है। इसका विधिपूर्वक पालन करके मनुष्य इहलोकके इष्ट भोगोंका उपभोग करनेके बाद चिरकालतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है।

विप्रवर! आश्विन मासके शुक्लपक्षमें जो अष्टमी आती है, उसे 'महाष्टमी' कहा गया है। उसमें सभी उपचारोंसे दुर्गाजीके पूजनका विधान है। जो महाष्टमीको उपवास अथवा एकभुक्त व्रत करता है, वह सब ओरसे वैभव पाकर देवताकी भाँति चिरकालतक आनन्दमग्न रहता है। कार्तिक कृष्णपक्षमें अष्टमीको 'कर्काष्टमी' नामक व्रत कहा गया है। उसमें यत्नपूर्वक उमासहित भगवान् शङ्करकी पूजा करनी चाहिये। जो सर्वगुणसम्पन्न पुत्र और नाना प्रकारके सुखकी अभिलाषा रखते हैं, उन व्रती पुरुषोंको चन्द्रोदय होनेपर सदा चन्द्रमाके लिये अर्घ्यदान करना चाहिये। कार्तिकके शुक्लपक्षमें गोपाष्टमीका व्रत बताया गया है। उसमें गौओंकी पूजा करना, गोग्रास देना, गौओंकी परिक्रमा करना, गौओंके पीछे-पीछे चलना और गोदान करना आदि कर्तव्य है। जो समस्त सम्पत्तियोंकी इच्छा रखता हो, उसे उपर्युक्त कार्य अवश्य करने चाहिये। मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको 'अनघाष्टमी व्रत' कहा गया है। उसमें अनेक पुत्रोंसे युक्त अनघ और अनघा—इन दोनों पति-पत्नीकी कुशमयी प्रतिमा बनायी जाती है। उस युगल जोड़ीको गोबरसे लीपे हुए शुभ स्थानमें स्थापित करके गन्ध-पुष्प आदि विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करे। फिर ब्राह्मण पति-पत्नीको भोजन कराकर दक्षिणा दे विदा करे। स्त्री हो या पुरुष विधिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करके उत्तम लक्षणोंसे युक्त पुत्र पाता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमीको कालभैरवके समीप उपवासपूर्वक जागरण करके मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। पौष शुक्ला अष्टमीको अष्टकासंज्ञक श्राद्ध पितरोंको एक वर्षतक तृप्ति देनेवाला और कुल-संततिको बढ़ानेवाला है। उस दिन भक्तिपूर्वक शिवकी पूजा करके केवल भक्तिका आचरण करते हुए मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है। माघ मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली भद्रकाली देवीकी भक्तिभावसे पूजा करे। जो अविच्छिन्न संतति और विजय चाहता हो, वह माघमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको भीष्मजीका तर्पण करे। ब्रह्मन्! फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको व्रतपरायण पुरुष समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये भीमादेवीकी आराधना करे। फाल्गुन शुक्ला अष्टमीको गन्ध आदि उपचारोंसे शिव और शिवाकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंका अधीश्वर हो जाता है। सभी मासोंके दोनों पक्षोंमें अष्टमीके दिन विधिपूर्वक शिव और पार्वतीकी पूजा करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लेता है।

नवमीसम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—विप्रेन्द्र! अब मैं तुमसे नवमीके व्रतोंका वर्णन करता हूँ, लोकमें जिनका पालन करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाते हैं। चैत्रके शुक्लपक्षमें नवमीको 'श्रीरामनवमी'का व्रत होता है। उसमें भक्तियुक्त पुरुष यदि शक्ति हो तो विधिपूर्वक उपवास करे। जो अशक्त हो, वह मध्याह्नकालीन जन्मोत्सवके बाद एक समय भोजन करके रहे। ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर भगवान् श्रीरामको प्रसन्न करे। गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, वस्त्र और आभूषण

बारह महीनोंके दशमीसम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—नारद ! अब मैं तुम्हें दशमीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करके मनुष्य धर्मराजका प्रिय होता है । चैत्र शुक्ला दशमीको सामयिक फल, फूल और गन्ध आदिसे धर्मराजका पूजन करना चाहिये । उस दिन पूरा उपवास या एक समय भोजन करके रहे । व्रतके अन्तमें चौदह ब्राह्मणोंको भोजन करावे और अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे । विप्रवर ! जो इस प्रकार धर्मराजकी पूजा करता है, वह धर्मकी आज्ञासे देवताओंकी समता प्राप्त कर लेता है और फिर उससे च्युत नहीं होता । जो मानव वैशाख शुक्ला दशमीको गन्ध आदि उपचारों तथा श्वेत और सुगन्धित पुष्पोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करके उनकी सौ परिक्रमा करता और यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें स्थान पाता है । सरिताओंमें श्रेष्ठ जह्नुपुत्री गङ्गा ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको स्वर्गसे इस पृथ्वीपर उतरी थीं, इसलिये वह तिथि पुण्यदायिनी मानी गयी है । ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, हस्त नक्षत्र, बुध दिन, दशमी तिथि, गर करण, आनन्द योग, व्यतीपात, कन्याराशिके चन्द्रमा और वृषराशिके सूर्य—इन दसोंका योग महान् पुण्यमय बताया गया है । इन दस योगोंसे युक्त दशमी तिथि दस पाप हर लेती है । इसलिये उसे 'दशहरा' कहते हैं । जो इस दशहरामें गङ्गाजीके पास पहुँचकर प्रसन्नचित्त हो विधिपूर्वक गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, वह

भगवान् विष्णुके धाममें जाता है । मनु आदि स्मृतिकारोंने आषाढ़ शुक्ला दशमीको पुण्य-तिथि कहा है, अतः उसमें किये जानेवाले स्नान, जप, दान और होम स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले हैं । श्रावण शुक्ला दशमी सम्पूर्ण आशाओंकी पूर्ति करनेवाली है । इसमें गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् शङ्करकी पूजा उत्तम मानी गयी है । उस दिन किया हुआ उपवास या नक्तव्रत, ब्राह्मणभोजन, जप, सुवर्णदान तथा धेनु आदिका दान सब पापोंका नाशक बताया गया है ।

द्विजश्रेष्ठ ! भाद्रपद शुक्ला दशमीको 'दशावतार-व्रत' किया जाता है । उस दिन जलाशयमें स्नान करके संध्यावन्दन तथा देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करनेके पश्चात् एकाग्रचित्त हो दशावतार विग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये । मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, त्रिविक्रम (वामन), परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि—इन दसोंकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाकर विधिपूर्वक पूजा करे और दस ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें उन मूर्तियोंका दान कर दे । नारद ! उस दिन उपवास या एक समय भोजनका व्रत करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें विदा करके एकाग्रचित्त हो स्वयं इष्टजनोंके साथ भोजन करे । जो भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर अन्तमें विमानद्वारा सनातन विष्णुलोकको जाता है । आश्विन शुक्ला दशमीको 'विजयादशमी' कहते हैं । उस दिन प्रातःकाल घरके आँगनमें गोबरके चार पिण्ड मण्डलाकार रक्खे । उनके भीतर श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न इन चारोंकी पूजा करे । गोबरके ही बने हुए चार ढकनदार पात्रोंमें भीगा हुआ धान और चाँदी रखकर उसे धुले हुए वस्त्रसे ढक देना चाहिये । फिर पिता, माता, भाई, पुत्र, स्त्री और भृत्यसहित गन्ध, पुष्प और नैवेद्य आदिसे उस धान्यकी विधिपूर्वक पूजा करके नमस्कार करे । फिर पूजित ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करे । इस प्रकारकी विधिका पालन करके मनुष्य निश्चय ही एक वर्षतक सुखी और धन-धान्यसे सम्पन्न होता है । नारद ! कार्तिक शुक्ला दशमीको 'सार्वभौम-व्रत'का पालन करे । उस दिन उपवास या एक समय भोजनका व्रत करके आधी रातके समय घर अथवा गाँवसे बाहर पूए आदिके द्वारा दसों दिशाओंमें बलि दे । गोबरसे लिपी हुई भूमिपर मण्डल बनाकर उसमें अष्टदल कमल अङ्कित करे और उसमें गणेश आदि देवताओंकी पूजा करे ।

बारह महीनोंके दशमीसम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—नारद ! अब मैं तुम्हें दशमीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करके मनुष्य धर्मराजका प्रिय होता है। चैत्र शुक्ला दशमीको सामयिक फल, फूल और गन्ध आदिसे धर्मराजका पूजन करना चाहिये। उस दिन पूरा उपवास या एक समय भोजन करके रहे। व्रतके अन्तमें चौदह ब्राह्मणोंको भोजन करावे और अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। विप्रवर ! जो इस प्रकार धर्मराजकी पूजा करता है, वह धर्मकी आज्ञासे देवताओं-की समता प्राप्त कर लेता है और फिर उससे च्युत नहीं होता। जो मानव वैशाख शुक्ला दशमीको गन्ध आदि उपचारों तथा श्वेत और सुगन्धित पुष्पोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करके उनकी सौ परिक्रमा करता और यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें स्थान पाता है। सरिताओंमें श्रेष्ठ जह्नुपुत्री गङ्गा ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको स्वर्गसे इस पृथ्वीपर उतरी थीं, इसलिये वह तिथि पुण्य-दायिनी मानी गयी है। ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, हस्त नक्षत्र, बुध दिन, दशमी तिथि, गर करण, आनन्द योग, व्यतीपात, कन्याराशिके चन्द्रमा और वृषराशिके सूर्य—इन दसोंका योग महान् पुण्यमय बताया गया है। इन दस योगोंसे युक्त दशमी तिथि दस पाप हर लेती है। इसलिये उसे 'दशहरा' कहते हैं। जो इस दशहरामें गङ्गाजीके पास पहुँचकर प्रसन्न-चित्त हो विधिपूर्वक गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, वह

भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। मनु आदि स्मृतिकारोंने आषाढ़ शुक्ला दशमीको पुण्य-तिथि कहा है, अतः उसमें किये जानेवाले स्नान, जप, दान और होम स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले हैं। श्रावण शुक्ला दशमी सम्पूर्ण आशाओंकी पूर्ति करनेवाली है। इसमें गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् शङ्कर-की पूजा उत्तम मानी गयी है। उस दिन किया हुआ उपवास या नक्तव्रत, ब्राह्मणभोजन, जप, सुवर्णदान तथा धेनु आदि-का दान सब पापोंका नाशक बताया गया है।

द्विजश्रेष्ठ ! भाद्रपद शुक्ला दशमीको 'दशावतार-व्रत' किया जाता है। उस दिन जलाशयमें स्नान करके संध्यावन्दन तथा देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करनेके पश्चात् एकाग्रचित्त हो दशावतार विग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, त्रिविक्रम (वामन), परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि—इन दसोंकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाकर विधिपूर्वक पूजा करे और दस ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें उन मूर्तियोंका दान कर दे। नारद ! उस दिन उपवास या एक समय भोजनका व्रत करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें विदा करके एकाग्रचित्त हो स्वयं इष्टजनोंके साथ भोजन करे। जो भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर अन्तमें विमानद्वारा सनातन विष्णुलोकको जाता है। आश्विन शुक्ला दशमीको 'विजयादशमी' कहते हैं। उस दिन प्रातःकाल घरके आँगनमें गोबरके चार पिण्ड मण्डलाकार रक्खे। उनके भीतर श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न इन चारोंकी पूजा करे। गोबरके ही बने हुए चार ढक्कनदार पात्रों-में भीगा हुआ धान और चाँदी रखकर उसे धुले हुए वस्त्रसे ढक देना चाहिये। फिर पिता, माता, भाई, पुत्र, स्त्री और भृत्यसहित गन्ध, पुष्प और नैवेद्य आदिसे उस धान्यकी विधिपूर्वक पूजा करके नमस्कार करे। फिर पूजित ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकारकी विधिका पालन करके मनुष्य निश्चय ही एक वर्षतक सुखी और धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। नारद ! कार्तिक शुक्ला दशमीको 'सार्वभौम-व्रत'का पालन करे। उस दिन उपवास या एक समय भोजनका व्रत करके आधी रातके समय घर अथवा गाँव-से बाहर पूए आदिके द्वारा दसों दिशाओंमें बलि दे। गोबर-से लिपी हुई भूमिपर मण्डल बनाकर उसमें अष्टदल कमल अङ्कित करे और उसमें गणेश आदि देवताओंकी पूजा करे।

श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। ऐसा करनेवाला मानव सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। ज्येष्ठ शुक्ला एकादशीको 'निर्जला' एकादशी कहते हैं। द्विजोत्तम! सूर्योदयसे लेकर सूर्योदयतक निर्जल उपवास करके दूसरे दिन द्वादशीके प्रातःकाल नित्यकर्म करनेके अनन्तर विविध उपचारोंसे भगवान् हृषीकेशका पूजन करे। तदनन्तर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य चौबीस एकादशियोंका फल प्राप्त कर लेता है। आषाढ़ कृष्णा एकादशीको 'योगिनी' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको नित्यकर्मके पश्चात् भगवान् नारायणकी पूजा करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हे दक्षिणा दे। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण दानोंका फल पाकर भगवान् विष्णुके धाममें आनन्दका अनुभव करता है। मुने! आषाढ़ शुक्ला एकादशीको उपवास करके सुन्दर मण्डप बनाकर उसमें विधिपूर्वक भगवान् विष्णुकी प्रतिमा स्थापित करे। वह प्रतिमा सोने या चाँदीकी बनी हुई अत्यन्त सुन्दर हो। उसकी चारों भुजाएँ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हों। उसे पीताम्बर

धारण कराया गया हो और वह अच्छी तरह बिछे हुए सुन्दर पलंगपर विराज रही हो। तदनन्तर मन्त्रपाठपूर्वक पञ्चामृत एवं शुद्ध जलसे स्नान कराकर पुरुषसूक्तके सोलह मन्त्रोंसे षोडशोपचार पूजन करे। पाद्यसमर्पणसे लेकर आरती उतारनेतक सोलह उपचार होते हैं। तत्पश्चात् श्रीहरिकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुद्धं च जगत्सर्वं चराचरम्॥
(ना० पूर्व० १२० । २३)

'जगन्नाथ! आपके सो जानेपर यह सम्पूर्ण जगत् सो जाता है और आपके जाग्रत् होनेपर यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भी जाग्रत् रहता है।'

इस प्रकार प्रार्थना करके भक्त पुरुष चातुर्मास्यके लिये शास्त्रविहित नियमोंको यथाशक्ति ग्रहण करे। तदनन्तर द्वादशीको प्रातःकाल षोडशोपचारद्वारा भगवान् शेषशायीकी पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणासे संतुष्ट करे। फिर स्वयं भी मौनभावसे भोजन करे। इस विधिसे भगवान्‌की 'शयनी' एकादशीका व्रत करके मनुष्य भगवान् विष्णुकी कृपासे भोग एवं मोक्षका भागी होता है। द्विजश्रेष्ठ! श्रावणके कृष्णपक्षमें एकादशीको 'कामिका' व्रत होता है। उस दिन श्रेष्ठ मनुष्य नियमपूर्वक उपवास करके द्वादशीको नित्यकर्मका सम्पादन करनेके अनन्तर षोडशोपचारसे भगवान् श्रीधरका पूजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा देकर विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस प्रकार उत्तम कामिका-व्रत करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्तकर भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है। श्रावण शुक्ला एकादशीको 'पुत्रदा' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको नियमपूर्वक रहकर षोडशोपचारसे भगवान् जनार्दनकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार करनेवाला इहलोकमें उनसे सद्गुण-सम्पन्न पुत्र पाकर सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो साक्षात् भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

भाद्रपद कृष्णा एकादशीको 'अजा' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीके दिन विभिन्न उपचारोंसे भगवान् उपेन्द्रकी पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर दक्षिणा दे विदा करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक एकाग्रभावसे 'अजा' एकादशीका व्रत करके मनुष्य इहलोकमें सम्पूर्ण उत्तम भोगोंको भोगता और अन्तमें वैष्णवधामको जाता है। भाद्रपद शुक्ला एकादशीका नाम 'पद्मा' है। उस दिन उपवास करके नित्य पूजन करनेके अनन्तर ब्राह्मणको जलसे भरा घट दान करे। द्विजोत्तम! पहलेसे स्थापित प्रतिमाका उत्सव करके उसे जलाशयके निकट ले जाय और जलसे स्पर्श कराकर उसकी विधिपूर्वक पूजा करे। फिर उसे घरमें लाकर बायीं करवटसे

श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। ऐसा करनेवाला मानव सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। ज्येष्ठ शुक्ला एकादशीको 'निर्जला' एकादशी कहते हैं। द्विजोत्तम! सूर्योदयसे लेकर सूर्योदयतक निर्जल उपवास करके दूसरे दिन द्वादशीके प्रातःकाल नित्यकर्म करनेके अनन्तर विविध उपचारोंसे भगवान् हृषीकेशका पूजन करे। तदनन्तर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य चौबीस एकादशियोंका फल प्राप्त कर लेता है। आषाढ़ कृष्णा एकादशीको 'योगिनी' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको नित्यकर्मके पश्चात् भगवान् नारायणकी पूजा करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हे दक्षिणा दे। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण दानोंका फल पाकर भगवान् विष्णुके धाममें आनन्दका अनुभव करता है। मुने! आषाढ़ शुक्ला एकादशीको उपवास करके सुन्दर मण्डप बनाकर उसमें विधिपूर्वक भगवान् विष्णुकी प्रतिमा स्थापित करे। वह प्रतिमा सोने या चाँदीकी बनी हुई अत्यन्त सुन्दर हो। उसकी चारों भुजाएँ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हों। उसे पीताम्बर

धारण कराया गया हो और वह अच्छी तरह बिछे हुए सुन्दर पलंगपर विराज रही हो। तदनन्तर मन्त्रपाठपूर्वक पञ्चामृत एवं शुद्ध जलसे स्नान कराकर पुरुषसूक्तके सोलह मन्त्रोंसे षोडशोपचार पूजन करे। पाद्यसमर्पणसे लेकर आरती उतारनेतक सोलह उपचार होते हैं। तत्पश्चात् श्रीहरिकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुद्धं च जगत्सर्वं चराचरम्॥
(ना० पूर्व० १२०। २३)

'जगन्नाथ! आपके सो जानेपर यह सम्पूर्ण जगत् सो जाता है और आपके जाग्रत् होनेपर यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भी जाग्रत् रहता है।'

इस प्रकार प्रार्थना करके भक्त पुरुष चातुर्मास्यके लिये शास्त्रविहित नियमोंको यथाशक्ति ग्रहण करे। तदनन्तर द्वादशीको प्रातःकाल षोडशोपचारद्वारा भगवान् शेषशायीकी पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणासे संतुष्ट करे। फिर स्वयं भी मौनभावसे भोजन करे। इस विधिसे भगवान्‌की 'शयनी' एकादशीका व्रत करके मनुष्य भगवान् विष्णुकी कृपासे भोग एवं मोक्षका भागी होता है। द्विजश्रेष्ठ! श्रावणके कृष्णपक्षमें एकादशीको 'कामिका' व्रत होता है। उस दिन श्रेष्ठ मनुष्य नियमपूर्वक उपवास करके द्वादशीको नित्यकर्मका सम्पादन करनेके अनन्तर षोडशोपचारसे भगवान् श्रीधरका पूजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा देकर विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस प्रकार उत्तम कामिका-व्रत करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्तकर भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है। श्रावण शुक्ला एकादशीको 'पुत्रदा' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको नियमपूर्वक रहकर षोडशोपचारसे भगवान् जनार्दनकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार करनेवाला इहलोकमें उनसे सद्गुण-सम्पन्न पुत्र पाकर सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो साक्षात् भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

भाद्रपद कृष्णा एकादशीको 'अजा' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीके दिन विभिन्न उपचारोंसे भगवान् उपेन्द्रकी पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर दक्षिणा दे विदा करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक एकाग्रभावसे 'अजा' एकादशीका व्रत करके मनुष्य इहलोकमें सम्पूर्ण उत्तम भोगोंको भोगता और अन्तमें वैष्णवधामको जाता है। भाद्रपद शुक्ला एकादशीका नाम 'पद्मा' है। उस दिन उपवास करके नित्य पूजन करनेके अनन्तर ब्राह्मणको जलसे भरा घट दान करे। द्विजोत्तम! पहलेसे स्थापित प्रतिमाका उत्सव करके उसे जलाशयके निकट ले जाय और जलसे स्पर्श कराकर उसकी विधिपूर्वक पूजा करे। फिर उसे घरमें लाकर बायीं करवटसे

कर लेता है। माघ शुक्ला एकादशीका नाम 'जया' है। उस दिन उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल परम पुरुष भगवान् श्रीपतिकी अर्चना करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणा दे विदा करके शेष अन्न अपने भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं एकाग्रचित्त होकर भोजन करे। विप्रवर! जो इस प्रकार भगवान् केशवको संतुष्ट करनेवाला व्रत करता है, वह इहलोकमे श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। फाल्गुन कृष्णा एकादशीका नाम 'विजया' है। उस दिन उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् योगीश्वरकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणासे संतुष्ट करके उन्हें विदा करनेके पश्चात् स्वय मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रत करनेवाला मानव इहलोकमें अभीष्ट भोगोंको भोगकर देहान्त होनेके बाद देवताओंसे सम्मानित हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। द्विजोत्तम! फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें 'आमलकी' एकादशीको उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल सम्पूर्ण उपचारोंसे भगवान् पुण्डरीकाक्षका भक्तिपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको उत्तम अन्न भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें आमलकी नामवाली एकादशीको विधिपूर्वक पूजन आदि करके मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। ब्रह्मन्! चैत्रके कृष्णपक्षमें 'पापमोचनी' नामवाली एकादशीको उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल षोडशोपचारसे भगवान् गोविन्दकी पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणा दे उन्हें विदा करके स्वय भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस प्रकार इस पापमोचनीका व्रत करता है, वह तेजस्वी विमानद्वारा भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

ब्रह्मन्! इस प्रकार कृष्ण तथा शुक्ल पक्षमें एकादशीका व्रत मोक्षदायक कहा गया है। एकादशी व्रत तीन दिनमे साध्य होनेवाला बताया गया है। वह सब व्रतोंमे उत्तम और पापोंका नाशक है, अतः उसका महान् फल जानना चाहिये। नारद! इन तीन दिनके भीतर चार समयका भोजन त्याग देना चाहिये। प्रथम और अन्तिम दिनमें एक-एक बारका और बिचले दिनमे दोनों समयका भोजन त्याज्य है। अब मैं तुम्हें इस तीन दिनके व्रतमें पालन करने योग्य नियम बतलाता हूँ। काँसका बर्तन, मास, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, पराया अन्न, पुनर्भोजन (दो बार भोजन) और मैथुन—दशमीके दिन इन दस वस्तुओंसे वैष्णव पुरुष दूर रहे। जुआ खेलना, नींद लेना, पान खाना, दाँतुन करना, दूसरेकी निन्दा करना, चुगली खाना, चोरी करना, हिंसा करना, मैथुन करना, क्रोध करना और झूठ बोलना—एकादशीको ये ग्यारह बातें न करे। काँस, मास, मदिरा, मधु, तेल, झूठ बोलना, व्यायाम करना, परदेशमें जाना, दुबारा भोजन, मैथुन, जो स्पर्श करने योग्य नहीं हैं उनका स्पर्श करना और मसूर खाना—द्वादशीको इन बारह वस्तुओंको न करे *। विप्रवर! इस प्रकार नियम करनेवाला पुरुष यदि शक्ति हो तो उपवास करे। यदि शक्ति न हो तो बुद्धिमान् पुरुष एक समय भोजन करके रहे, किंतु रातमें भोजन न करे। अथवा अयाचित वस्तु (बिना माँगे मिली हुई चीज) का उपयोग करे, किंतु ऐसे महत्त्वपूर्ण व्रतका त्याग न करे।

बारह महीनोंके द्वादशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा तथा आठ महाद्वादशियोंका निरूपण

सनातनजी कहते हैं—अनघ! अब मैं तुमसे द्वादशीक व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जिनका पालन करके मनुष्य भगवान् विष्णुका अत्यन्त प्रिय होता है। चैत्र शुक्ला द्वादशीको 'मदनव्रत'का आचरण करे। सफेद चावलसे भरे हुए एक नूतन कलशकी स्थापना करे, जिसमे कोई छेद न हो। वह अनेक प्रकारके फलोंसे युक्त इक्षुदण्डसंयुक्त दो श्वेत वस्त्रोंसे

* अथ ते नियमान् वच्मि व्रते ह्यस्मिन् दिनत्रये। कांस्यं मासं मसूरान्नं चणकान् कोद्रवास्तथा ॥
शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने। दशम्या दश वस्तूनि वर्जयेद्वैष्णव. सदा ॥
द्यूतक्रीडा च निद्रा च ताम्बूलं दन्तधावनम्। परापवादं पैशुन्यं स्तेयं हिंसा तथा रतिम् ॥
कोपं ह्यनृतवाक्यं च एकादश्या विवर्जयेत्। कास्यं मांसं सुरा क्षौद्रं तैलं वितथभाषणम् ॥
व्यायाम च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुने। अस्पृश्यस्पर्शमासूरे द्वादश्या द्वादश त्यजेत् ॥
(ना० पूर्व० १२० । ८६–९०)

कर लेता है। माघ शुक्ला एकादशीका नाम 'जया' है। उस दिन उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल परम पुरुष भगवान् श्रीपतिकी अर्चना करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणा दे विदा करके शेष अन्न अपने भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं एकाग्रचित्त होकर भोजन करे। विप्रवर! जो इस प्रकार भगवान् केशवको संतुष्ट करनेवाला व्रत करता है, वह इहलोकमे श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। फाल्गुन कृष्णा एकादशीका नाम 'विजया' है। उस दिन उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् योगीश्वरकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणासे संतुष्ट करके उन्हें विदा करनेके पश्चात् स्वय मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रत करनेवाला मानव इहलोकमें अभीष्ट भोगोंको भोगकर देहान्त होनेके बाद देवताओंसे सम्मानित हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। द्विजोत्तम! फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें 'आमलकी' एकादशीको उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल सम्पूर्ण उपचारोंसे भगवान् पुण्डरीकाक्षका भक्तिपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको उत्तम अन्न भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें आमलकी नामवाली एकादशीको विधिपूर्वक पूजन आदि करके मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। ब्रह्मन्! चैत्रके कृष्णपक्षमें 'पापमोचनी' नामवाली एकादशीको उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल षोडशोपचारसे भगवान् गोविन्दकी पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणा दे उन्हें विदा करके स्वय भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस प्रकार इस पापमोचनीका व्रत करता है, वह तेजस्वी विमानद्वारा भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

ब्रह्मन्! इस प्रकार कृष्ण तथा शुक्ल पक्षमें एकादशीका व्रत मोक्षदायक कहा गया है। एकादशी व्रत तीन दिनमे साध्य होनेवाला बताया गया है। वह सब व्रतोंमे उत्तम और पापोंका नाशक है, अतः उसका महान् फल जानना चाहिये। नारद! इन तीन दिनके भीतर चार समयका भोजन त्याग देना चाहिये। प्रथम और अन्तिम दिनमें एक-एक बारका और बिचले दिनमे दोनों समयका भोजन त्याज्य है। अब मैं तुम्हें इस तीन दिनके व्रतमें पालन करने योग्य नियम बतलाता हूँ। काँसका बर्तन, मास, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, पराया अन्न, पुनर्भोजन (दो बार भोजन) और मैथुन—दशमीके दिन इन दस वस्तुओंसे वैष्णव पुरुष दूर रहे। जुआ खेलना, नींद लेना, पान खाना, दाँतुन करना, दूसरेकी निन्दा करना, चुगली खाना, चोरी करना, हिंसा करना, मैथुन करना, क्रोध करना और झूठ बोलना—एकादशीको ये ग्यारह बातें न करे। काँस, मास, मदिरा, मधु, तेल, झूठ बोलना, व्यायाम करना, परदेशमें जाना, दुबारा भोजन, मैथुन, जो स्पर्श करने योग्य नहीं हैं उनका स्पर्श करना और मसूर खाना—द्वादशीको इन बारह वस्तुओंको न करे *। विप्रवर! इस प्रकार नियम करनेवाला पुरुष यदि शक्ति हो तो उपवास करे। यदि शक्ति न हो तो बुद्धिमान् पुरुष एक समय भोजन करके रहे, किंतु रातमें भोजन न करे। अथवा अयाचित वस्तु (बिना माँगे मिली हुई चीज) का उपयोग करे, किंतु ऐसे महत्त्वपूर्ण व्रतका त्याग न करे।

बारह महीनोंके द्वादशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा तथा आठ महाद्वादशियोंका निरूपण

सनातनजी कहते हैं—अनघ! अब मैं तुमसे द्वादशीके व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जिनका पालन करके मनुष्य भगवान् विष्णुका अत्यन्त प्रिय होता है। चैत्र शुक्ला द्वादशीको 'मदनव्रत'का आचरण करे। सफेद चावलसे भरे हुए एक नूतन कलशकी स्थापना करे, जिसमे कोई छेद न हो। वह अनेक प्रकारके फलोंसे युक्त इक्षुदण्डसंयुक्त दो श्वेत वस्त्रोंसे

* अथ ते नियमान् वच्मि व्रते ह्यस्मिन् दिनत्रये। कांस्यं मासं मसूरान्नं चणकान् कोद्रवास्तथा ॥
शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने। दशम्या दश वस्तूनि वर्जयेद्वैष्णवः सदा ॥
द्यूतक्रीडा च निद्रा च ताम्बूलं दन्तधावनम्। परापवादं पैशुन्यं स्तेयं हिंसा तथा रतिम् ॥
कोपं ह्यनृतवाक्यं च एकादश्या विवर्जयेत्। कांस्यं मांसं सुरा क्षौद्रं तैलं वितथभाषणम् ॥
व्यायाम च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुने। अस्पृश्यस्पर्शमासूरे द्वादश्या द्वादश त्यजेत् ॥
(ना० पूर्व० १२० । ८६–९०)

क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते ।
सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ॥
मातर्मातर्गवां मातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥
(ना० पूर्व० १२१ । ३०-३१)

'क्षीरसागरसे प्रकट हुई, सर्वदेवभूषिता, देवदानववन्दिता, सम्पूर्ण देवस्वरूपा देवि! तुम्हें नमस्कार है। मातः! गोमातः! यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये।'

तदनन्तर उड़द आदिसे बने हुए बड़े निवेदन करे। इस प्रकार अपने वैभवके अनुसार दस, पाँच या एक बड़ा अर्पण करना चाहिये। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

सुरभे त्वं जगन्माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ।
सर्वदेवमयि ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस ॥
सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ।
मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि ॥
(ना० पूर्व० १२१ । ३२-३४)

'सुरभी! तुम सम्पूर्ण जगत्की माता हो और सदा भगवान् विष्णुके धाममें निवास करती हो। सर्वदेवमयी देवि! मेरे दिये हुए इस ग्रासको ग्रहण करो। देवि! तुम सर्वदेवस्वरूपा हो। सम्पूर्ण देवता तुम्हें विभूषित करते हैं। माता नन्दिनी! मेरी अभिलाषा सफल करो।'

द्विजोत्तम! उस दिन तेलका पका हुआ और बटलोईका पका हुआ अन्न न खाय। गायका दूध, दही, घी और तक्र भी त्याग दे। ब्रह्मन्! कार्तिक शुक्ला द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंसे एकाग्रचित्त हो भगवान् दामोदरकी पूजा करे और उनके आगे बारह ब्राह्मणोंको पकवान भोजन करावे। तदनन्तर जलसे भरे हुए घड़ोंको वस्त्रसे आच्छादित और पूजित करके सुपारी, लड्डू और सुवर्णके साथ उन सबको प्रसन्नतापूर्वक अर्पण करे। ऐसा करनेपर मनुष्य भगवान् विष्णुका प्रिय भक्त और सम्पूर्ण भोगोंका भोक्ता होता है और शरीरका अन्त होनेपर वह भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशीको परम उत्तम 'साध्य-व्रत'का अनुष्ठान करना चाहिये। मनोभव, प्राण, नर, अपान, वीर्यवान्, चिति, हय, नय, हंस, नारायण, विभु और प्रभु—ये बारह साध्यगण कहे गये हैं*। चावलोंपर इनका आवाहन करके गन्ध-पुष्प आदिके द्वारा पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भगवान् नारायण प्रसन्न हों, इस भावनासे बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें उत्तम दक्षिणा दे विदा करे। उसी दिन 'द्वादशादित्य' नामक व्रत भी विख्यात है। उस दिन बुद्धिमान् पुरुष बारह आदित्योंकी पूजा करे। धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, अंश, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता और विष्णु—ये बारह आदित्य बताये गये हैं*। प्रत्येक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको यत्नपूर्वक बारह आदित्योंकी पूजा करते हुए एक वर्ष व्यतीत करे। व्रतके अन्तमें सोनेकी बारह प्रतिमाएँ बनवाये और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सत्कारपूर्वक मिष्टान्न भोजन करावे। तत्पश्चात् व्रती पुरुष प्रत्येक ब्राह्मणको एक-एक प्रतिमा दे। इस प्रकार द्वादशादित्य नामक व्रत करके मनुष्य सूर्यलोकमें जा वहाँके भोगोंका चिरकालतक उपभोग करनेके पश्चात् पृथ्वीपर धर्मात्मा मनुष्य होता है। मनुष्ययोनिमें उसे रोग नहीं होते। उस व्रतके पुण्यसे वह पुनः उसी व्रतको पाता है और पुनः उसके पुण्यसे सूर्यमण्डलको भेदकर निरञ्जन, निराकार एवं निर्द्वन्द्व ब्रह्मको प्राप्त होता है। द्विजोत्तम! उक्त तिथिको ही 'अखण्ड' नामक व्रत कहा गया है। उसमें भगवान् जनार्दनकी सुवर्णमयी मूर्ति बनाकर गन्ध, पुष्प आदिसे उसकी पूजा करके भगवान्के आगे बारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे। प्रत्येक मासकी द्वादशीको ऐसा करके स्वयं रातमें भोजन करे और जितेन्द्रिय भावसे रहे। तत्पश्चात् वर्ष पूरा होनेपर उस स्वर्ण-मूर्तिका विधिपूर्वक पूजन करके दूध देनेवाली गायके साथ उसका आचार्यको दान करे। तदनन्तर बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको खाँड और खीर भोजन कराकर उन्हें बारह सुवर्णखण्डकी दक्षिणा दे नमस्कार करे। इस प्रकार व्रत पूरा करके जो भगवान् जनार्दनको प्रसन्न करता है, वह सुवर्णमय विमानसे श्रीविष्णुके परम धाममें जाता है।

पौष मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीको 'रूप-व्रत' बताया गया है। ब्रह्मन्! व्रती पुरुषको चाहिये कि वह दशमीको विधिपूर्वक स्नान करके सफेद या किसी एक रंगवाली गायके गोबरको धरतीपर गिरनेसे पहले आकाशमेंसे ही ले ले। उस गोबरसे एक सौ आठ पिण्ड बनाकर उन्हें ताँबे या मिट्टीके

---

* मनोभवस्तथा प्राणो नरोऽपानश्च वीर्यवान् ।
चितिर्हयो नयश्चैव हंसो नारायणस्तथा ॥
विभुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः ।
(ना० पूर्व० १२१ । ५१-५२)

* धाता मित्रोऽर्यमा पूषा शक्रोंऽशो वरुणो भगः ।
त्वष्टा विवस्वान् सविता विष्णुर्द्वादश ईरिताः ॥
(ना० पूर्व० १२१ । ५५-५६)

क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते ।
सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ॥
मातर्मातर्गवां मातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥
(ना० पूर्व० १२१ । ३०-३१)

'क्षीरसागरसे प्रकट हुई, सर्वदेवभूषिता, देवदानववन्दिता, सम्पूर्ण देवस्वरूपा देवि! तुम्हें नमस्कार है। मातः! गोमातः! यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये।'

तदनन्तर उड़द आदिसे बने हुए बड़े निवेदन करे। इस प्रकार अपने वैभवके अनुसार दस, पाँच या एक बड़ा अर्पण करना चाहिये। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

सुरभे त्वं जगन्माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ।
सर्वदेवमयि ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस ॥
सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ।
मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि ॥
(ना० पूर्व० १२१ । ३२-३४)

'सुरभी! तुम सम्पूर्ण जगत्की माता हो और सदा भगवान् विष्णुके धाममें निवास करती हो। सर्वदेवमयी देवि! मेरे दिये हुए इस ग्रासको ग्रहण करो। देवि! तुम सर्वदेवस्वरूपा हो। सम्पूर्ण देवता तुम्हें विभूषित करते हैं। माता नन्दिनी! मेरी अभिलाषा सफल करो।'

द्विजोत्तम! उस दिन तेलका पका हुआ और बटलोईका पका हुआ अन्न न खाय। गायका दूध, दही, घी और तक्र भी त्याग दे। ब्रह्मन्! कार्तिक शुक्ला द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंसे एकाग्रचित्त हो भगवान् दामोदरकी पूजा करे और उनके आगे बारह ब्राह्मणोंको पकवान भोजन करावे। तदनन्तर जलसे भरे हुए घड़ोंको वस्त्रसे आच्छादित और पूजित करके सुपारी, लड्डू और सुवर्णके साथ उन सबको प्रसन्नतापूर्वक अर्पण करे। ऐसा करनेपर मनुष्य भगवान् विष्णुका प्रिय भक्त और सम्पूर्ण भोगोंका भोक्ता होता है और शरीरका अन्त होनेपर वह भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशीको परम उत्तम 'साध्य-व्रत'का अनुष्ठान करना चाहिये। मनोभव, प्राण, नर, अपान, वीर्यवान्, चिति, हय, नय, हंस, नारायण, विभु और प्रभु—ये बारह साध्यगण कहे गये हैं*। चावलोंपर इनका आवाहन करके गन्ध-पुष्प आदिके द्वारा पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भगवान् नारायण प्रसन्न हों, इस भावनासे बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें उत्तम दक्षिणा दे विदा करे। उसी दिन 'द्वादशादित्य' नामक व्रत भी विख्यात है। उस दिन बुद्धिमान् पुरुष बारह आदित्योंकी पूजा करे। धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, अंश, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता और विष्णु—ये बारह आदित्य बताये गये हैं*। प्रत्येक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको यत्नपूर्वक बारह आदित्योंकी पूजा करते हुए एक वर्ष व्यतीत करे। व्रतके अन्तमें सोनेकी बारह प्रतिमाएँ बनवाये और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सत्कारपूर्वक मिष्टान्न भोजन करावे। तत्पश्चात् व्रती पुरुष प्रत्येक ब्राह्मणको एक-एक प्रतिमा दे। इस प्रकार द्वादशादित्य नामक व्रत करके मनुष्य सूर्यलोकमें जा वहाँके भोगोंका चिरकालतक उपभोग करनेके पश्चात् पृथ्वीपर धर्मात्मा मनुष्य होता है। मनुष्ययोनिमें उसे रोग नहीं होते। उस व्रतके पुण्यसे वह पुनः उसी व्रतको पाता है और पुनः उसके पुण्यसे सूर्यमण्डलको भेदकर निरञ्जन, निराकार एवं निर्द्वन्द्व ब्रह्मको प्राप्त होता है। द्विजोत्तम! उक्त तिथिको ही 'अखण्ड' नामक व्रत कहा गया है। उसमें भगवान् जनार्दनकी सुवर्णमयी मूर्ति बनाकर गन्ध, पुष्प आदिसे उसकी पूजा करके भगवान्के आगे बारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे। प्रत्येक मासकी द्वादशीको ऐसा करके स्वयं रातमें भोजन करे और जितेन्द्रिय भावसे रहे। तत्पश्चात् वर्ष पूरा होनेपर उस स्वर्ण-मूर्तिका विधिपूर्वक पूजन करके दूध देनेवाली गायके साथ उसका आचार्यको दान करे। तदनन्तर बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको खाँड और खीर भोजन कराकर उन्हें बारह सुवर्णखण्डकी दक्षिणा दे नमस्कार करे। इस प्रकार व्रत पूरा करके जो भगवान् जनार्दनको प्रसन्न करता है, वह सुवर्णमय विमानसे श्रीविष्णुके परम धाममें जाता है।

पौष मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीको 'रूप-व्रत' बताया गया है। ब्रह्मन्! व्रती पुरुषको चाहिये कि वह दशमीको विधिपूर्वक स्नान करके सफेद या किसी एक रंगवाली गायके गोबरको धरतीपर गिरनेसे पहले आकाशमेंसे ही ले ले। उस गोबरसे एक सौ आठ पिण्ड बनाकर उन्हें ताँबे या मिट्टीके

* मनोभवस्तथा प्राणो नरोऽपानश्च वीर्यवान् ।
चितिर्हयो नयश्चैव हंसो नारायणस्तथा ॥
विभुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः ।
(ना० पूर्व० १२१ । ५१-५२)

* धाता मित्रोऽर्यमा पूषा शक्रोऽंशो वरुणो भग. ।
त्वष्टा विवस्वान् सविता विष्णुर्द्वादश ईरिता. ॥
(ना० पूर्व० १२१ । ५५-५६)

सौख्य प्रदान करनेवाले भगवान् गदाधरकी पूजा करनी चाहिये। विप्रवर! विजयामें उपवास करके मनुष्य सम्पूर्ण तीर्थोंका फल पाता है। जब शुक्ल पक्षमें द्वादशी रोहिणी नक्षत्रसे युक्त होती है, तब वह महापुण्यमयी जयन्ती नामसे प्रसिद्ध होती है। उसमें मनुष्योंको सिद्धि देनेवाले भगवान् वामनकी अर्चना करनी चाहिये। यह तिथि उपवास करनेपर सम्पूर्ण व्रतोंका फल देती है, समस्त दानोंका फल प्रस्तुत करती है और भोग तथा मोक्ष देनेवाली होती है। जब शुक्ल पक्षमें द्वादशी तिथि पुष्य नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे अपराजिता कहा गया है। वह सम्पूर्ण ज्ञान देनेवाली है। उसमें संसारबन्धनका नाश करनेवाले, ज्ञानके समुद्र तथा रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणकी आराधना करनी चाहिये। उस तिथिको उपवास करके ब्राह्मणभोजन करानेवाला मनुष्य उस व्रतके पुण्यसे ही संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

जब आषाढ़ शुक्ला द्वादशीको अनुराधा नक्षत्र हो, तब दो व्रत करने चाहिये। यहाँ एक ही देवता है, इसलिये दो व्रत करनेमें दोष नहीं है। जब भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको श्रवण नक्षत्रका योग हो और कार्तिक शुक्ला द्वादशीको रेवती नक्षत्रका संयोग हो तो एकादशी और द्वादशी दोनों दिन व्रत रहने चाहिये। विप्रवर! इनके सिवा अन्यत्र द्वादशीको एक समय भोजन करके व्रत रहना चाहिये। यह व्रत स्वभावसे ही सब पातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। द्वादशीसहित एकादशीका व्रत नित्य माना गया है, अतः यहाँ उसका उद्यापन नहीं कहा गया। इसे जीवनपर्यन्त करते रहना चाहिये।

त्रयोदशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—नारद! अब मैं तुम्हें त्रयोदशीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करके मनुष्य इस पृथ्वीपर सौभाग्यशाली होता है। चैत्र कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी शनिवारसे युक्त हो तो 'महावारुणी' मानी गयी है। यदि उसमें गङ्गा-स्नानका अवसर मिले तो वह कोटि सूर्यग्रहणोंसे अधिक फल देनेवाली है। चैत्रके कृष्ण पक्षमें त्रयोदशीको शुभ योग, शतभिषा नक्षत्र और शनिवारका योग हो तो वह 'महामहावारुणी'के नामसे विख्यात होती है। ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशीको 'दौर्भाग्यशमन-व्रत' होता है। उस दिन नदीके जलमें स्नान करके पवित्र स्थानमें उत्पन्न हुए सफेद मदार, आक और लाल कनेरकी पूजा करे। उस समय आकाशमें सूर्यकी ओर देखकर निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रार्थना करे—

मन्दारकरवीरार्का भवन्तो भास्करांशजाः।
पूजिता मम दौर्भाग्यं नाशयन्तु नमोऽस्तु वः॥
(ना० पूर्व० १२२। २०-२१)

'मदार! कनेर! और आक! आपलोग भगवान् भास्करके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। अतः पूजित होकर मेरे दुर्भाग्यका नाश करें, आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक एक-एक वर्षतक इन तीनों वृक्षोंकी पूजा करता है, उसका दुर्भाग्य नष्ट हो जाता है। आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशीको एक समय भोजनका व्रत करे। भगवती पार्वती और भगवान् शङ्कर—इन दोनों जगदीश्वरोंकी यथाशक्ति सोने, चाँदी अथवा मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उनकी पूजा करे। भगवती उमा सिंहपर बैठी हों और

भगवान् शङ्कर वृषभपर। नारद! इन दोनों प्रतिमाओंको

सौख्य प्रदान करनेवाले भगवान् गदाधरकी पूजा करनी चाहिये। विप्रवर! विजयामें उपवास करके मनुष्य सम्पूर्ण तीर्थोंका फल पाता है। जब शुक्ल पक्षमें द्वादशी रोहिणी नक्षत्रसे युक्त होती है, तब वह महापुण्यमयी जयन्ती नामसे प्रसिद्ध होती है। उसमें मनुष्योंको सिद्धि देनेवाले भगवान् वामनकी अर्चना करनी चाहिये। यह तिथि उपवास करनेपर सम्पूर्ण व्रतोंका फल देती है, समस्त दानोंका फल प्रस्तुत करती है और भोग तथा मोक्ष देनेवाली होती है। जब शुक्ल पक्षमें द्वादशी तिथि पुष्य नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे अपराजिता कहा गया है। वह सम्पूर्ण ज्ञान देनेवाली है। उसमें संसारबन्धनका नाश करनेवाले, ज्ञानके समुद्र तथा रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणकी आराधना करनी चाहिये। उस तिथिको उपवास करके ब्राह्मणभोजन करानेवाला मनुष्य उस व्रतके पुण्यसे ही संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

जब आषाढ़ शुक्ला द्वादशीको अनुराधा नक्षत्र हो, तब दो व्रत करने चाहिये। यहाँ एक ही देवता है, इसलिये दो व्रत करनेमें दोष नहीं है। जब भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको श्रवण नक्षत्रका योग हो और कार्तिक शुक्ला द्वादशीको रेवती नक्षत्रका संयोग हो तो एकादशी और द्वादशी दोनों दिन व्रत रहने चाहिये। विप्रवर! इनके सिवा अन्यत्र द्वादशीको एक समय भोजन करके व्रत रहना चाहिये। यह व्रत स्वभावसे ही सब पातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। द्वादशीसहित एकादशीका व्रत नित्य माना गया है, अतः यहाँ उसका उद्यापन नहीं कहा गया। इसे जीवनपर्यन्त करते रहना चाहिये।

त्रयोदशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—नारद! अब मैं तुम्हें त्रयोदशीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करके मनुष्य इस पृथ्वीपर सौभाग्यशाली होता है। चैत्र कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी शनिवारसे युक्त हो तो 'महावारुणी' मानी गयी है। यदि उसमें गङ्गा-स्नानका अवसर मिले तो वह कोटि सूर्यग्रहणोंसे अधिक फल देनेवाली है। चैत्रके कृष्ण पक्षमें त्रयोदशीको शुभ योग, शतभिषा नक्षत्र और शनिवारका योग हो तो वह 'महामहावारुणी'के नामसे विख्यात होती है। ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशीको 'दौर्भाग्यशमन-व्रत' होता है। उस दिन नदीके जलमें स्नान करके पवित्र स्थानमें उत्पन्न हुए सफेद मदार, आक और लाल कनेरकी पूजा करे। उस समय आकाशमें सूर्यकी ओर देखकर निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रार्थना करे—

मन्दारकरवीरार्का भवन्तो भास्करांशजाः।
पूजिता मम दौर्भाग्यं नाशयन्तु नमोऽस्तु वः॥
(ना० पूर्व० १२२। २०-२१)

'मदार! कनेर! और आक! आपलोग भगवान् भास्करके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। अतः पूजित होकर मेरे दुर्भाग्यका नाश करें, आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक एक-एक वर्षतक इन तीनों वृक्षोंकी पूजा करता है, उसका दुर्भाग्य नष्ट हो जाता है। आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशीको एक समय भोजनका व्रत करे। भगवती पार्वती और भगवान् शङ्कर—इन दोनों जगदीश्वरोंकी यथाशक्ति सोने, चाँदी अथवा मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उनकी पूजा करे। भगवती उमा सिंहपर बैठी हों और

भगवान् शङ्कर वृषभपर। नारद! इन दोनों प्रतिमाओंको

स्वरूप) और व्यालपति शिवको नमस्कार है। महीधर (पर्वतरूप), व्योम (आकाशस्वरूप) और पशुपतिको नमस्कार है । त्रिपुरहन्ता, सिंह, शार्दूल तथा वृषभको नमस्कार है। मित, मितनाथ, सिद्ध, परमेष्ठी, वेदगीत, गुप्त और वेदगुह्य शिवको नमस्कार है । दीर्घ, दीर्घरूप, दीर्घार्थ, महीयान्, जगदाधार और व्योमस्वरूप शिवको नमस्कार है । कल्याणस्वरूप, विशिष्ट-पुरुष, शिष्ट (साधु-महात्मा), परमात्मा, गजकृत्तिधर (वस्त्ररूपसे हाथीका चमड़ा धारण करनेवाले), अन्धकासुरहन्ता भगवान् शिवको नमस्कार है । नील, लोहित एवं शुक्ल वर्णवाले, चण्डमुण्डप्रिय, भक्तिप्रिय, देवस्वरूप, दक्षयज्ञनाशक तथा अविनाशी शिवको नमस्कार है । महेश ! आपको नमस्कार है । महादेव ! सबका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है । आपके तीन नेत्र हैं । आप तीनों वेदोंके आश्रय हैं । वेदाङ्गस्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है । आप अर्थ हैं, अर्थस्वरूप हैं और परमार्थ हैं, आपको नमस्कार है । विश्वरूप, विश्वमय तथा विश्वनाथ भगवान् शिवको नमस्कार है । जो सबका कल्याण करनेवाले शङ्कर हैं, कालस्वरूप हैं तथा कालके कला-काष्ठा आदि छोटे-छोटे अवयवरूप हैं; जिनका कोई रूप नहीं है, जिनके विविध रूप हैं तथा जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है । प्रभो ! आप श्मशानमें निवास करनेवाले हैं, आप चर्ममय वस्त्र धारण करते हैं; आपको नमस्कार है । आपके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित है, आप भयंकर भूमिमें निवास करते हैं, आपको नमस्कार है । आप दुर्ग (कठिनतासे प्राप्त होनेयोग्य), दुर्गपार (कठिनाइयोंसे पार लगानेवाले), दुर्गावयवसाक्षी (पार्वतीजीके अङ्ग प्रत्यङ्गका दर्शन करनेवाले), लिङ्गरूप, लिङ्गमय और लिङ्गोंके अधिपति हैं, आपको नमस्कार है । आप प्रभावरूप हैं । प्रभावरूप प्रयोजनके साधक हैं, आपको बारंबार नमस्कार है । आप कारणोंके भी कारण, मृत्युञ्जय तथा स्वयम्भूस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आपके तीन नेत्र हैं। शितिकण्ठ ! आप तेजकी निधि हैं । गौरीजीके साथ नित्य संयुक्त रहनेवाले और मङ्गलके हेतुभूत हैं, आपको नमस्कार है ।

विप्रवर ! पिनाकधारी महादेवजीके गुणोंका प्रतिपादन करनेवाले इन नामोंका पाठ करके महादेवजीकी परिक्रमा करनेसे मनुष्य भगवान्‌के निज धाममें जाता है । ब्रह्मन् ! इस प्रकार व्रत करके मनुष्य महादेवजीके प्रसादसे इहलोकके सम्पूर्ण भोग भोगकर अन्तमें शिवधाम प्राप्त कर लेता है । पौष शुक्ला त्रयोदशीको अच्युत श्रीहरिका पूजन करके सब मनोरथोंकी सिद्धिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको घीसे भरा हुआ पात्र दान करे । ब्रह्मन् ! माघ शुक्ला त्रयोदशीसे लेकर तीन दिनतक 'माघ-स्नान' का व्रत होता है, जो नाना प्रकारके मनोवाञ्छित फलको देनेवाला है । माघ मासमें प्रयागमें तीन दिन स्नान करनेवाले पुरुषको जो फल प्राप्त होता है, वह एक हजार अश्वमेध यज्ञ करनेसे भी इस पृथ्वीपर सुलभ नहीं होता । वहाँ किया हुआ स्नान, जप, होम और दान अनन्तगुना अथवा अक्षय हो जाता है । फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको उपवास करके भगवान् जगन्नाथको प्रणाम करे । तत्पश्चात् धनद-व्रत प्रारम्भ करे । नाना प्रकारके रंगोंसे एक पट्टपर यक्षपति महाराज कुबेरकी आकृति अङ्कित कर ले और भक्ति-भावसे गन्ध आदि उपचारोंद्वारा उसकी पूजा करे ।

द्विजोत्तम ! इस प्रकार प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको मनुष्य कुबेरकी पूजा करे । उस दिन वह उपवास करके रहे या एक समय भोजन करे । तदनन्तर एक वर्षमें व्रतकी समाप्ति होनेपर पुनः सुवर्णमयी निधियोंके साथ धनाध्यक्ष कुबेरकी भी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर पञ्चामृत आदि स्नानों, षोडश उपचारों और भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे भक्ति एवं एकाग्रताके साथ पूजन करे । तत्पश्चात् वस्त्र, माला, गन्ध और आभूषणोंसे बछड़ेसहित शुभ गौको अलंकृत करके वेदवेत्ता ब्राह्मणके लिये विधिपूर्वक दान करे । फिर बारह या तेरह ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर वस्त्र आदिसे आचार्यकी पूजा करके पूर्वोक्त प्रतिमा उन्हें अर्पण करे । फिर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे, उन्हें नमस्कार करके विदा करे । इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष इष्ट-बन्धुओंके साथ एकाग्रचित्त हो स्वयं भोजन करे । विप्रवर ! इस प्रकार व्रत पूर्ण करनेपर निर्धन मनुष्य धन पाकर इस पृथ्वीपर दूसरे कुबेरकी भाँति विख्यात हो आनन्दका अनुभव करता है ।

वर्षभरके चतुर्दशी-व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—नारद ! सुनो; अब मैं तुम्हें चतुर्दशीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका पालन करके मनुष्य इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको कुङ्कुम, अगुरु, चन्दन, गन्ध आदि उपचार, वस्त्र तथा मणियोंद्वारा भगवान् शिवकी बड़ी भारी पूजा करनी चाहिये । चँदोवा, ध्वज एवं छत्र आदि देकर

स्वरूप) और व्यालपति शिवको नमस्कार है। महीधर (पर्वतरूप), व्योम (आकाशस्वरूप) और पशुपतिको नमस्कार है। त्रिपुरहन्ता, सिंह, शार्दूल तथा वृषभको नमस्कार है। मित, मितनाथ, सिद्ध, परमेष्ठी, वेदगीत, गुप्त और वेदगुह्य शिवको नमस्कार है। दीर्घ, दीर्घरूप, दीर्घार्थ, महीयान्, जगदाधार और व्योमस्वरूप शिवको नमस्कार है। कल्याणस्वरूप, विशिष्ट-पुरुष, शिष्ट (साधु-महात्मा), परमात्मा, गजकृत्तिधर (वस्त्ररूपसे हाथीका चमड़ा धारण करनेवाले), अन्धकासुरहन्ता भगवान् शिवको नमस्कार है। नील, लोहित एवं शुक्ल वर्णवाले, चण्डमुण्डप्रिय, भक्तिप्रिय, देवस्वरूप, दक्षयज्ञनाशक तथा अविनाशी शिवको नमस्कार है। महेश! आपको नमस्कार है। महादेव! सबका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके तीन नेत्र हैं। आप तीनों वेदोंके आश्रय हैं। वेदाङ्गस्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है। आप अर्थ हैं, अर्थस्वरूप हैं और परमार्थ हैं, आपको नमस्कार है। विश्वरूप, विश्वमय तथा विश्वनाथ भगवान् शिवको नमस्कार है। जो सबका कल्याण करनेवाले शङ्कर हैं, कालस्वरूप हैं तथा कालके कला-काष्ठा आदि छोटे-छोटे अवयवरूप हैं; जिनका कोई रूप नहीं है, जिनके विविध रूप हैं तथा जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। प्रभो! आप श्मशानमें निवास करनेवाले हैं, आप चर्ममय वस्त्र धारण करते हैं; आपको नमस्कार है। आपके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित है, आप भयंकर भूमिमें निवास करते हैं, आपको नमस्कार है। आप दुर्ग (कठिनतासे प्राप्त होनेयोग्य), दुर्गपार (कठिनाइयोंसे पार लगानेवाले), दुर्गावयवसाक्षी (पार्वतीजीके अङ्ग प्रत्यङ्गका दर्शन करनेवाले), लिङ्गरूप, लिङ्गमय और लिङ्गोंके अधिपति हैं, आपको नमस्कार है। आप प्रभावरूप हैं। प्रभावरूप प्रयोजनके साधक हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप कारणोंके भी कारण, मृत्युञ्जय तथा स्वयम्भूस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आपके तीन नेत्र हैं। शितिकण्ठ! आप तेजकी निधि हैं। गौरीजीके साथ नित्य संयुक्त रहनेवाले और मङ्गलके हेतुभूत हैं, आपको नमस्कार है।

विप्रवर! पिनाकधारी महादेवजीके गुणोंका प्रतिपादन करनेवाले इन नामोंका पाठ करके महादेवजीकी परिक्रमा करनेसे मनुष्य भगवान्के निज धाममें जाता है। ब्रह्मन्! इस प्रकार व्रत करके मनुष्य महादेवजीके प्रसादसे इहलोकके सम्पूर्ण भोग भोगकर अन्तमें शिवधाम प्राप्त कर लेता है। पौष शुक्ला त्रयोदशीको अच्युत श्रीहरिका पूजन करके सब मनोरथोंकी सिद्धिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको घीसे भरा हुआ पात्र दान करे। ब्रह्मन्! माघ शुक्ला त्रयोदशीसे लेकर तीन दिनतक 'माघ-स्नान' का व्रत होता है, जो नाना प्रकारके मनोवाञ्छित फलको देनेवाला है। माघ मासमें प्रयागमें तीन दिन स्नान करनेवाले पुरुषको जो फल प्राप्त होता है, वह एक हजार अश्वमेध यज्ञ करनेसे भी इस पृथ्वीपर सुलभ नहीं होता। वहाँ किया हुआ स्नान, जप, होम और दान अनन्तगुना अथवा अक्षय हो जाता है। फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको उपवास करके भगवान् जगन्नाथको प्रणाम करे। तत्पश्चात् धनद-व्रत प्रारम्भ करे। नाना प्रकारके रंगोंसे एक पट्टपर यक्षपति महाराज कुबेरकी आकृति अङ्कित कर ले और भक्ति-भावसे गन्ध आदि उपचारोंद्वारा उसकी पूजा करे।

द्विजोत्तम! इस प्रकार प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको मनुष्य कुबेरकी पूजा करे। उस दिन वह उपवास करके रहे या एक समय भोजन करे। तदनन्तर एक वर्षमें व्रतकी समाप्ति होनेपर पुनः सुवर्णमयी निधियोंके साथ धनाध्यक्ष कुबेरकी भी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर पञ्चामृत आदि स्नानों, षोडश उपचारों और भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे भक्ति एवं एकाग्रताके साथ पूजन करे। तत्पश्चात् वस्त्र, माला, गन्ध और आभूषणोंसे बछड़ेसहित शुभ गौको अलंकृत करके वेदवेत्ता ब्राह्मणके लिये विधिपूर्वक दान करे। फिर बारह या तेरह ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर वस्त्र आदिसे आचार्यकी पूजा करके पूर्वोक्त प्रतिमा उन्हें अर्पण करे। फिर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे, उन्हें नमस्कार करके विदा करे। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष इष्ट-बन्धुओंके साथ एकाग्रचित्त हो स्वयं भोजन करे। विप्रवर! इस प्रकार व्रत पूर्ण करनेपर निर्धन मनुष्य धन पाकर इस पृथ्वीपर दूसरे कुबेरकी भाँति विख्यात हो आनन्दका अनुभव करता है।

वर्षभरके चतुर्दशी-व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—नारद! सुनो, अब मैं तुम्हें चतुर्दशीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका पालन करके मनुष्य इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको कुङ्कुम, अगुरु, चन्दन, गन्ध आदि उपचार, वस्त्र तथा मणियोंद्वारा भगवान् शिवकी बड़ी भारी पूजा करनी चाहिये। चँदोवा, ध्वज एवं छत्र आदि देकर

पूआ या पिट्ठी पकाकर दक्षिणासहित उसका दान करे । फिर स्वयं भी परिमित मात्रामें उसे भोजन करे । इस प्रकार इस उत्तम व्रतका चौदह वर्षोंतक पालन करना चाहिये । इसके बाद विद्वान् पुरुष उसका उद्यापन करे । मुने ! रँगे हुए चावलोंसे सुन्दर सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर उसमें ताँबेका कलश स्थापित करे । उस कलशके ऊपर रेशमी पीताम्बरसे आच्छादित भगवान् अनन्तकी सुन्दर सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करे और उसका विधिपूर्वक यजन करे । इसके सिवा गणेश, मातृका, नवग्रह तथा लोकपालोंका भी पृथक्-पृथक् पूजन करे । फिर हविष्यसे होम करके पूर्णाहुति दे । द्विजोत्तम ! तत्पश्चात् आवश्यक सामग्रियोंसहित शय्या, दूध देनेवाली गाय तथा अनन्तजीकी प्रतिमा आचार्यको भक्तिपूर्वक अर्पण करे और दूसरे चौदह ब्राह्मणोंको मीठे पकवान भोजन कराकर उन्हें दक्षिणाद्वारा संतुष्ट करे । इस प्रकार किये गये अनन्त-व्रतका जो आदरपूर्वक प्रत्यक्ष दर्शन करता है, वह भी भगवान् अनन्तके प्रसादसे भोग और मोक्षका भागी होता है ।

आश्विन कृष्णा चतुर्दशीको विष, शस्त्र, जल, अग्नि, सर्प, हिंसक जीव तथा वज्रपात आदिके द्वारा मरे हुए मनुष्यों तथा ब्रह्महत्यारे पुरुषोंके लिये एकोद्दिष्टकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये और ब्राह्मणवर्गको मिष्टान्न भोजन कराना चाहिये । उस दिन तर्पण, गोग्रास, कुक्कुरबलि और काकबलि आदि देकर आचमन करनेके पश्चात् स्वयं भी भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे । जो इस प्रकार दक्षिणा देकर श्राद्ध करता है, वह पितरोंका उद्धार करके सनातन देवलोकमें जाता है । द्विजश्रेष्ठ ! आश्विन शुक्ला चतुर्दशीको धर्मराजकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर गन्ध आदिसे उनकी विधिवत् पूजा करे और ब्राह्मणको भोजन कराकर उसे वह प्रतिमा दान कर दे । नारद ! इस पृथ्वीपर धर्मराज उस दाता पुरुषकी रक्षा करते हैं । जो इस प्रकार धर्मराजकी प्रतिमाका उत्तम दान करता है, वह इस लोकमें श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर धर्मराजकी आज्ञासे स्वर्गलोकमें जाता है । कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको सबेरे चन्द्रोदय होनेपर शरीरमें तेल और उबटन लगाकर स्नान करे । स्नानके पश्चात् वह धर्मराजकी पूजा करे । ऐसा करनेसे उस मनुष्यको नरकसे अभय प्राप्त होता है । प्रदोषकालमें तेलके दीपक जलाकर यमराजकी प्रसन्नताके लिये चौराहेपर या घरसे बाहरके प्रदेशमें एकाग्रचित्त हो दीपदान करे । हेमलम्ब नामक संवत्सरमें श्रीसम्पन्न कार्तिक मास आनेपर शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको अरुणोदयकालमें भगवान् विश्वनाथजीने अन्य देवताओंके साथ मणिकर्णिका-तीर्थमें स्नान करके भस्मसे त्रिपुण्ड्र तिलक लगाया और स्वयं अपने-आपकी पूजा करके पाशुपत-व्रतका पालन किया था; अतः वहाँ गन्ध आदिके द्वारा शिवलिङ्गकी महापूजा करनी चाहिये । द्रोणपुष्प, बिल्वपत्र, अर्कपुष्प, केतकीपुष्प, भाँति-भाँतिके फल, मीठे पकवान एवं नाना प्रकारके नैवेद्योंद्वारा उस शिवलिङ्गकी पूजा करनी चाहिये । नारद ! ऐसा करके भगवान् विश्वनाथके संतोषके लिये जो एक समय भोजनका व्रत करता है, वह इहलोक और परलोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त करता है । समृद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उस दिन 'ब्रह्मकूर्च-व्रत' भी करना चाहिये । दिनमें उपवास करके रातमें पञ्चगव्य पान करे और जितेन्द्रिय रहे । कपिला गायका मूत्र, काली गौका गोबर, सफेद गौका दूध, लाल गायका दही और कबरी गायका घी लेकर एकमें मिला दे । अन्तमें कुशोदक मिलावे (यही पञ्चगव्य एवं ब्रह्मकूर्च है, जिसको व्रतके दिन उपवास करके रातमें पीया जाता है) । तदनन्तर प्रातःकाल कुशयुक्त जलसे स्नान करके देवताओंका तर्पण करे और ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे संतुष्ट करके स्वयं मौन होकर भोजन करे । यह ब्रह्मकूर्च-व्रत सब पातकोंका नाश करनेवाला है । बाल्यावस्था, कुमारावस्था और वृद्धावस्थामें भी जो पाप किया गया है, वह ब्रह्मकूर्च-व्रतसे तत्काल नष्ट हो जाता है । नारद ! उसी दिन 'पाषाण-व्रत' भी बताया गया है । उसका परिचय सुनो, दिनमें उपवास करके रातमें भोजन करे । गन्ध आदिसे गौरी देवीकी पूजा करे और उन्हें घीमें पकायी हुई पाषाणके आकारकी पिट्ठी अर्पण करे । (उसी प्रसादको स्वयं भी ग्रहण करे ।) द्विजश्रेष्ठ ! शास्त्रोक्त विधिसे इस व्रतका आचरण करके मनुष्य ऐश्वर्य, सुख, सौभाग्य तथा रूप प्राप्त करता है ।

मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशीको शिवजीका व्रत किया जाता है । इसमें पहले दिन एक समय भोजन करना चाहिये और व्रतके दिन निराहार रहकर सुवर्णमय वृषकी पूजा करके उसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये । तदनन्तर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर स्नानके पश्चात् कमलके फूल, गन्ध, माला और अनुलेपन आदिके द्वारा उमासहित भगवान् महेश्वरकी पूजा करे । उसके बाद ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करे । विप्रवर ! यह शिवव्रत जो करते हैं, जो इसका उपदेश देते हैं, जो इसमें सहायक होते या अनुमोदन करते हैं, उन सबको यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है । पौष शुक्ला चतुर्दशीको

पूआ या पिट्ठी पकाकर दक्षिणासहित उसका दान करे। फिर स्वयं भी परिमित मात्रामें उसे भोजन करे। इस प्रकार इस उत्तम व्रतका चौदह वर्षोंतक पालन करना चाहिये। इसके बाद विद्वान् पुरुष उसका उद्यापन करे। मुने! रँगे हुए चावलोंसे सुन्दर सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर उसमें ताँबेका कलश स्थापित करे। उस कलशके ऊपर रेशमी पीताम्बरसे आच्छादित भगवान् अनन्तकी सुन्दर सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करे और उसका विधिपूर्वक यजन करे। इसके सिवा गणेश, मातृका, नवग्रह तथा लोकपालोंका भी पृथक्-पृथक् पूजन करे। फिर हविष्यसे होम करके पूर्णाहुति दे। द्विजोत्तम! तत्पश्चात् आवश्यक सामग्रियोंसहित शय्या, दूध देनेवाली गाय तथा अनन्तजीकी प्रतिमा आचार्यको भक्तिपूर्वक अर्पण करे और दूसरे चौदह ब्राह्मणोंको मीठे पकवान भोजन कराकर उन्हें दक्षिणाद्वारा संतुष्ट करे। इस प्रकार किये गये अनन्त-व्रतका जो आदरपूर्वक प्रत्यक्ष दर्शन करता है, वह भी भगवान् अनन्तके प्रसादसे भोग और मोक्षका भागी होता है।

आश्विन कृष्णा चतुर्दशीको विष, शस्त्र, जल, अग्नि, सर्प, हिंसक जीव तथा वज्रपात आदिके द्वारा मरे हुए मनुष्यों तथा ब्रह्महत्यारे पुरुषोंके लिये एकोद्दिष्टकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये और ब्राह्मणवर्गको मिष्टान्न भोजन कराना चाहिये। उस दिन तर्पण, गोग्रास, कुक्कुरबलि और काकबलि आदि देकर आचमन करनेके पश्चात् स्वयं भी भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस प्रकार दक्षिणा देकर श्राद्ध करता है, वह पितरोंका उद्धार करके सनातन देवलोकमें जाता है। द्विजश्रेष्ठ! आश्विन शुक्ला चतुर्दशीको धर्मराजकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर गन्ध आदिसे उनकी विधिवत् पूजा करे और ब्राह्मणको भोजन कराकर उसे वह प्रतिमा दान कर दे। नारद! इस पृथ्वीपर धर्मराज उस दाता पुरुषकी रक्षा करते हैं। जो इस प्रकार धर्मराजकी प्रतिमाका उत्तम दान करता है, वह इस लोकमें श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर धर्मराजकी आज्ञासे स्वर्गलोकमें जाता है। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको सबेरे चन्द्रोदय होनेपर शरीरमें तेल और उबटन लगाकर स्नान करे। स्नानके पश्चात् वह धर्मराजकी पूजा करे। ऐसा करनेसे उस मनुष्यको नरकसे अभय प्राप्त होता है। प्रदोषकालमें तेलके दीपक जलाकर यमराजकी प्रसन्नताके लिये चौराहेपर या घरसे बाहरके प्रदेशमें एकाग्रचित्त हो दीपदान करे। हेमलम्ब नामक संवत्सरमें श्रीसम्पन्न कार्तिक मास आनेपर शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको अरुणोदयकालमें भगवान् विश्वनाथजीने अन्य देवताओंके साथ मणिकर्णिका-तीर्थमें स्नान करके भस्मसे त्रिपुण्ड्र तिलक लगाया और स्वयं अपने-आपकी पूजा करके पाशुपत-व्रतका पालन किया था; अतः वहाँ गन्ध आदिके द्वारा शिवलिङ्गकी महापूजा करनी चाहिये। द्रोणपुष्प, बिल्वपत्र, अर्कपुष्प, केतकीपुष्प, भाँति-भाँतिके फल, मीठे पकवान एवं नाना प्रकारके नैवेद्योंद्वारा उस शिवलिङ्गकी पूजा करनी चाहिये। नारद! ऐसा करके भगवान् विश्वनाथके संतोषके लिये जो एक समय भोजनका व्रत करता है, वह इहलोक और परलोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त करता है। समृद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उस दिन 'ब्रह्मकूर्च-व्रत' भी करना चाहिये। दिनमें उपवास करके रातमें पञ्चगव्य पान करे और जितेन्द्रिय रहे। कपिला गायका मूत्र, काली गौका गोबर, सफेद गौका दूध, लाल गायका दही और कबरी गायका घी लेकर एकमें मिला दे। अन्तमें कुशोदक मिलावे (यही पञ्चगव्य एवं ब्रह्मकूर्च है, जिसको व्रतके दिन उपवास करके रातमें पीया जाता है)। तदनन्तर प्रातःकाल कुशयुक्त जलसे स्नान करके देवताओंका तर्पण करे और ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे संतुष्ट करके स्वयं मौन होकर भोजन करे। यह ब्रह्मकूर्च-व्रत सब पातकोंका नाश करनेवाला है। बाल्यावस्था, कुमारावस्था और वृद्धावस्थामें भी जो पाप किया गया है, वह ब्रह्मकूर्च-व्रतसे तत्काल नष्ट हो जाता है। नारद! उसी दिन 'पाषाण-व्रत' भी बताया गया है। उसका परिचय सुनो, दिनमें उपवास करके रातमें भोजन करे। गन्ध आदिसे गौरी देवीकी पूजा करे और उन्हें घीमें पकायी हुई पाषाणके आकारकी पिट्ठी अर्पण करे। (उसी प्रसादको स्वयं भी ग्रहण करे।) द्विजश्रेष्ठ! शास्त्रोक्त विधिसे इस व्रतका आचरण करके मनुष्य ऐश्वर्य, सुख, सौभाग्य तथा रूप प्राप्त करता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशीको शिवजीका व्रत किया जाता है। इसमें पहले दिन एक समय भोजन करना चाहिये और व्रतके दिन निराहार रहकर सुवर्णमय वृषकी पूजा करके उसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये। तदनन्तर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर स्नानके पश्चात् कमलके फूल, गन्ध, माला और अनुलेपन आदिके द्वारा उमासहित भगवान् महेश्वरकी पूजा करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करे। विप्रवर! यह शिवव्रत जो करते हैं, जो इसका उपदेश देते हैं, जो इसमें सहायक होते या अनुमोदन करते हैं, उन सबको यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। पौष शुक्ला चतुर्दशीको

पतिव्रता सावित्री देवीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

जगत्पूज्ये जगन्मातः सावित्रि पतिदैवते।
पत्या सहावियोगं मे वटस्थे कुरु ते नमः ॥
(ना० पूर्व० १२४ । ११)

'जगन्माता सावित्री! तुम सम्पूर्ण जगत्‌के लिये पूजनीया तथा पतिको ही इष्टदेव माननेवाली पतिव्रता हो। वटवृक्षपर निवास करनेवाली देवि! तुम ऐसी कृपा करो, जिससे मेरा अपने पतिके साथ नित्यसयोग बना रहे। कभी वियोग न हो। तुम्हें मेरा सादर नमस्कार है।'

जो नारी इस प्रकार प्रार्थना करके दूसरे दिन सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भोजन करती है, वह सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। आषाढ़की पूर्णिमाको 'गोपद्म-व्रत'का विधान है। उस दिन स्नान करके भगवान् श्रीहरिके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—भगवान्‌के चार भुजाएँ हैं। उनका शरीर विशाल है। उनकी अङ्गकान्ति जाम्बूनद सुवर्णके समान स्याम है। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी तथा गरुड़ उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं तथा देवता, मुनि, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर उनकी सेवामे लगे हैं। इस प्रकार श्रीहरिका चिन्तन करके गन्ध आदि उपचारोंद्वारा पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा आचार्यको संतुष्ट करे और स्नेहयुक्त हृदयसे आचार्य तथा अन्यान्य ब्राह्मणोंको यथाशक्ति मीठे पकवान भोजन करावे। विप्रवर! इस प्रकार व्रत करके मनुष्य कमलापतिके प्रसादसे इहलोक और परलोकके भोगोंको प्राप्त कर लेता है।

श्रावण मासकी पूर्णिमाको 'वेदोंका उपाकर्म' बताया गया है। उस दिन यजुर्वेदी द्विजोंको देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करना चाहिये। अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार ऋषियोंका पूजन भी करना चाहिये। ऋग्वेदियोंको चतुर्दशीके दिन तथा सामवेदियोंको भाद्रपद मासके हस्त नक्षत्रमें विधिपूर्वक 'रक्षा-विधान' करना चाहिये। लाल कपड़ेके एक भागमें सरसों तथा अक्षत रखकर उसे लाल रंगके डोरेसे बाँध दे, इस प्रकार बनी हुई पोटली ही रक्षा है, उसे जलसे सींचकर काँसके पात्रमें रक्खे। उसीमें गन्ध आदि उपचारोंद्वारा श्रीविष्णु आदि देवताओंकी पूजा करके उनकी प्रार्थना करे। फिर ब्राह्मणको नमस्कार करके उसीके हाथसे प्रसन्नतापूर्वक अपनी कलाईमें उस रक्षा-पोटलिकाको बँधा ले। तदनन्तर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे वेदोंका स्वाध्याय करे तथा सप्तर्षियोका विसर्जन करके अपने हाथसे बनाकर कुंकुम आदिसे रँगे हुए नूतन यज्ञोपवीतको धारण करे। यथाशक्ति श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं एक समय भोजन करे। विप्रवर! इस व्रतके कर लेनेपर वर्षभरका वैदिक कर्म यदि भूल गया हो, विधिसे हीन हुआ हो या नहीं किया गया हो तो वह सब भलीभाँति सम्पादित हो जाता है। भाद्रपद मासकी पूर्णिमाको उमामाहेश्वर-व्रत किया जाता है। उसके लिये एक दिन पहले एक समय भोजन करके रहे और शिव-पार्वतीका यत्नपूर्वक पूजन करके हाथ जोड़ प्रार्थना करे—'प्रभो! मैं कल व्रत करूँगा।' इस प्रकार भगवान्‌से निवेदन करके उस उत्तम व्रतको ग्रहण करे। रातमें देवताके समीप शयन करके रातके पिछले पहरमें उठे। फिर संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म करके भस्म तथा रुद्राक्षकी माला धारण करे। तत्पश्चात् उत्तम गन्ध, विल्वपत्र, धूप, दीप और नैवेद्य आदि विभिन्न उपचारोंद्वारा विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करे। उसके बाद सबेरेसे लेकर प्रदोष-कालतक विद्वान् पुरुष उपवास करे। चन्द्रोदय होनेपर पुनः पूजा करके वहीं देवताके समीप रातमें जागरण करे।

इस प्रकार प्रतिवर्ष आलस्य छोड़कर पंद्रह वर्षोंतक इस व्रतका निर्वाह करे। उसके बाद विधिपूर्वक व्रतका उद्यापन करना चाहिये। उस समय भगवती उमा और भगवान् शङ्करकी सुवर्णमयी दो प्रतिमाएँ बनवावे। यथाशक्ति सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीके पंद्रह उत्तम कलश स्थापित करे। वहाँ एक कलशके ऊपर वस्त्रसहित दोनों प्रतिमाओंकी स्थापना करनी चाहिये। उन प्रतिमाओंको पञ्चामृतसे स्नान कराकर फिर शुद्ध जलसे नहलाना चाहिये। तदनन्तर षोडशोपचारसे उनकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद पंद्रह ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा तथा एक-एक कलश दे। भगवान् शङ्करकी मूर्तिसे युक्त कलश आचार्यको अर्पण करे। इस प्रकार उमामाहेश्वर-व्रतका पालन करके मनुष्य इस पृथ्वीपर विख्यात होता है। वह समस्त सम्पत्तियोंकी निधि बन जाता है। उसी दिन शक्र-व्रतका भी विधान किया गया है। उसमें प्रातःकाल स्नान करके विधिपूर्वक गन्ध आदि

पतिव्रता सावित्री देवीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

जगत्पूज्ये जगन्मातः सावित्रि पतिदैवते।
पत्या सहावियोगं मे वटस्थे कुरु ते नमः॥
(ना० पूर्व० १२४। ११)

'जगन्माता सावित्री! तुम सम्पूर्ण जगत्‌के लिये पूजनीया तथा पतिको ही इष्टदेव माननेवाली पतिव्रता हो। वटवृक्षपर निवास करनेवाली देवि! तुम ऐसी कृपा करो, जिससे मेरा अपने पतिके साथ नित्यसयोग बना रहे। कभी वियोग न हो। तुम्हें मेरा सादर नमस्कार है।'

जो नारी इस प्रकार प्रार्थना करके दूसरे दिन सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भोजन करती है, वह सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। आषाढ़की पूर्णिमाको 'गोपद्म-व्रत'का विधान है। उस दिन स्नान करके भगवान् श्रीहरिके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—भगवान्‌के चार भुजाएँ हैं। उनका शरीर विशाल है। उनकी अङ्गकान्ति जाम्बूनद सुवर्णके समान श्याम है। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी तथा गरुड़ उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं तथा देवता, मुनि, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर उनकी सेवामें लगे हैं। इस प्रकार श्रीहरिका चिन्तन करके गन्ध आदि उपचारोंद्वारा पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा आचार्यको संतुष्ट करे और स्नेहयुक्त हृदयसे आचार्य तथा अन्यान्य ब्राह्मणोंको यथाशक्ति मीठे पकवान भोजन करावे। विप्रवर! इस प्रकार व्रत करके मनुष्य कमलापतिके प्रसादसे इहलोक और परलोकके भोगोंको प्राप्त कर लेता है।

श्रावण मासकी पूर्णिमाको 'वेदोंका उपाकर्म' बताया गया है। उस दिन यजुर्वेदी द्विजोंको देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करना चाहिये। अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार ऋषियोंका पूजन भी करना चाहिये। ऋग्वेदियोंको चतुर्दशीके दिन तथा सामवेदियोंको भाद्रपद मासके हस्त नक्षत्रमें विधिपूर्वक 'रक्षा-विधान' करना चाहिये। लाल कपड़ेके एक भागमें सरसों तथा अक्षत रखकर उसे लाल रंगके डोरेसे बाँध दे, इस प्रकार बनी हुई पोटली ही रक्षा है, उसे जलसे सींचकर काँसके पात्रमें रक्खे। उसीमें गन्ध आदि उपचारोंद्वारा श्रीविष्णु आदि देवताओंकी पूजा करके उनकी प्रार्थना करे। फिर ब्राह्मणको नमस्कार करके उसीके हाथसे प्रसन्नतापूर्वक अपनी कलाईमें उस रक्षा-पोटलिकाको बँधा ले। तदनन्तर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे वेदोंका स्वाध्याय करे तथा सप्तर्षियोंका विसर्जन करके अपने हाथसे बनाकर कुंकुम आदिसे रँगे हुए नूतन यज्ञोपवीतको धारण करे। यथाशक्ति श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं एक समय भोजन करे। विप्रवर! इस व्रतके कर लेनेपर वर्षभरका वैदिक कर्म यदि भूल गया हो, विधिसे हीन हुआ हो या नहीं किया गया हो तो वह सब भलीभाँति सम्पादित हो जाता है। भाद्रपद मासकी पूर्णिमाको उमामाहेश्वर-व्रत किया जाता है। उसके लिये एक दिन पहले एक समय भोजन करके रहे और शिव-पार्वतीका यत्नपूर्वक पूजन करके हाथ जोड़ प्रार्थना करे—'प्रभो! मैं कल व्रत करूँगा।' इस प्रकार भगवान्‌से निवेदन करके उस उत्तम व्रतको ग्रहण करे। रातमें देवताके समीप शयन करके रातके पिछले पहरमें उठे। फिर संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म करके भस्म तथा रुद्राक्षकी माला धारण करे। तत्पश्चात् उत्तम गन्ध, बिल्वपत्र, धूप, दीप और नैवेद्य आदि विभिन्न उपचारोंद्वारा विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करे। उसके बाद सबेरेसे लेकर प्रदोषकालतक विद्वान् पुरुष उपवास करे। चन्द्रोदय होनेपर पुनः पूजा करके वहीं देवताके समीप रातमें जागरण करे।

इस प्रकार प्रतिवर्ष आलस्य छोड़कर पंद्रह वर्षोंतक इस व्रतका निर्वाह करे। उसके बाद विधिपूर्वक व्रतका उद्यापन करना चाहिये। उस समय भगवती उमा और भगवान् शङ्करकी सुवर्णमयी दो प्रतिमाएँ बनवावे। यथाशक्ति सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीके पंद्रह उत्तम कलश स्थापित करे। वहाँ एक कलशके ऊपर वस्त्रसहित दोनों प्रतिमाओंकी स्थापना करनी चाहिये। उन प्रतिमाओंको पञ्चामृतसे स्नान कराकर फिर शुद्ध जलसे नहलाना चाहिये। तदनन्तर षोडशोपचारसे उनकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद पंद्रह ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा तथा एक-एक कलश दे। भगवान् शङ्करकी मूर्तिसे युक्त कलश आचार्यको अर्पण करे। इस प्रकार उमामाहेश्वर-व्रतका पालन करके मनुष्य इस पृथ्वीपर विख्यात होता है। वह समस्त सम्पत्तियोंकी निधि बन जाता है। उसी दिन शक्र-व्रतका भी विधान किया गया है। उसमें प्रातःकाल स्नान करके विधिपूर्वक गन्ध आदि

सुन्दर चौकोर गड्ढा खोदे। उसकी लंबाई-चौड़ाई और गहराई चौदह अंगुलकी रक्खे। फिर उसे चन्दन और जलसे सींचे। तदनन्तर उस गड्ढेको गायके दूधसे भरकर उसमें सर्वाङ्गसुन्दर सुवर्णमय मत्स्य डाले। उस मत्स्यके नेत्र मोतीके बने होने चाहिये। फिर 'महामत्स्याय नमः' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए गन्ध आदिसे उसकी पूजा करके ब्राह्मणको उसका दान कर दे। द्विजश्रेष्ठ! यह मैंने तुमसे क्षीरसागर-दानकी विधि बतायी है। इस दानके प्रभावसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप आनन्द भोगता है। नारद! इस पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग-व्रत तथा नक्त-व्रत करके मनुष्य रुद्रलोक प्राप्त कर लेता है।

मार्गशीर्ष मासकी पूर्णिमाके दिन शान्त स्वभाववाले ब्राह्मणको सुवर्णसहित एक आढक[1] नमक दान करे। इससे सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि होती है। मनुष्य पूर्णिमाको पुष्यका योग होनेपर सम्पूर्ण सौभाग्यकी वृद्धिके लिये पीली सरसोंके उबटनसे अपने शरीरको मलकर सर्वौषधियुक्त जलसे स्नान करे। स्नानके पश्चात् दो नूतन वस्त्र धारण करे। फिर माङ्गलिक द्रव्यका दर्शन और स्पर्श कर विष्णु, इन्द्र, चन्द्रमा, पुष्य और बृहस्पतिको नमस्कार करके गन्ध आदि उपचारोंद्वारा उनकी पूजा करे। तदनन्तर होम करके ब्राह्मणोंको खीरके भोजनसे तृप्त करे। विप्रवर! लक्ष्मीजीकी प्रीति बढ़ानेवाले और दरिद्रताका नाश करनेवाले इस व्रतको करके मनुष्य इहलोक और परलोकमें आनन्द भोगता है। माघकी पूर्णिमाके दिन तिल, सूती कपड़े, कम्बल, रत्न, कंचुक, पगड़ी, जूते आदिका अपने वैभवके अनुसार दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें सुखी होता है। जो उस दिन भगवान् शङ्करकी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाकर भगवान् विष्णुके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। फाल्गुनकी पूर्णिमाको सब प्रकारके काष्ठों और उपलों (कंडों)का संग्रह करना चाहिये। वहाँ रक्षोघ्न-मन्त्रोंद्वारा अग्निमें विधिपूर्वक होम करके होलिकापर काठ आदि फेंककर उसमें आग लगा दे। इस प्रकार दाह करके होलिकाकी परिक्रमा करते हुए उत्सव मनावे। यह होलिका प्रह्लादको भय देनेवाली राक्षसी है। इसीलिये गीत-मङ्गलपूर्वक काठ आदिके द्वारा लोग उसका दाह करते हैं। विप्रेन्द्र! मतान्तरमें यह 'कामदेवका दाह' है।

पक्षान्त-तिथियाँ दो होती हैं—पूर्णिमा तथा अमावास्या। दोनोंके देवता पृथक्-पृथक् हैं। अतः अमावास्याका व्रत पृथक् बतलाया जाता है। नारद! इसे सुनो। यह पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। चैत्र और वैशाखकी अमावास्याको पितरोंकी पूजा, पार्वणविधिसे धन-वैभवके अनुसार श्राद्ध, ब्राह्मणभोजन, विशेषतः गौ आदिका दान—ये सब कार्य सभी महीनोंकी अमावास्याको अत्यन्त पुण्यदायक बताये गये हैं। नारद! ज्येष्ठकी अमावास्याको ब्रह्म-सावित्रीका व्रत बताया गया है। इसमें भी ज्येष्ठकी पूर्णिमाके समान ही सब विधि कही गयी है। आषाढ़, श्रावण और भादों मासमें पितृश्राद्ध, दान, होम और देवपूजा आदि कार्य अक्षय होते हैं। भाद्रपदकी अमावास्याको अपराह्नमें तिलके खेतमें पैदा हुए कुशोंको ब्रह्माजीके मन्त्रसे आमन्त्रित करके 'हुं फट्'[2] का उच्चारण करते हुए उखाड़ ले और उन्हें सदा सब कार्योंमें नियुक्त करे और दूसरे कुशोंको एक ही समय काममें लाना चाहिये। आश्विनकी अमावास्याको विशेषरूपसे गङ्गाजीके जलमें या गयाजीमें पितरोंका श्राद्ध-तर्पण करना चाहिये; वह मोक्ष देनेवाला है। कार्तिककी अमावास्याको देवमन्दिर, घर, नदी, बगीचा, पोखरा, चैत्य वृक्ष, गोशाला तथा बाजारमें दीपदान और श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करना चाहिये। उस दिन गौओंके सींग आदि अङ्गोंमें रंग लगाकर उन्हें घास और अन्न देकर तथा नमस्कार और प्रदक्षिणा करके उनकी पूजा की जाती है। मार्गशीर्षकी अमावास्याको भी श्राद्ध और ब्राह्मणभोजनके द्वारा तथा ब्रह्मचर्य आदि नियमों और जप, होम तथा पूजनादिके द्वारा पितरोंकी पूजा की जाती है। विप्रवर! पौष और माघमें भी पितृश्राद्धका फल अधिक कहा गया है। फाल्गुनकी अमावास्यामें श्रवण, व्यतीपात और सूर्यका योग होनेपर केवल श्राद्ध और ब्राह्मणभोजन गयासे अधिक फल देनेवाला होता है। सोमवती अमावास्याको किया हुआ दान आदि सम्पूर्ण फलोंको देनेवाला है। उसमें किये हुए श्राद्धका अधिक फल है। मुने! इस प्रकार मैंने तुम्हें संक्षेपसे तिथिकृत्य बताया है। सभी तिथियोंमें कुछ विशेष विधि है, जो अन्य पुराणोंमें वर्णित है।

---

1. चार सेरके बराबरका एक तौल।

2. कुशोत्पाटनसम्बन्धी ब्रह्माजीका मन्त्र इस प्रकार है—

विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज। नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव॥

'दर्भ! तुम ब्रह्माजीके साथ उत्पन्न हुए हो, साक्षात् परमेष्ठी ब्रह्माके स्वरूप हो और तुम स्वभावतः प्रकट हुए हो। हमारे सब पाप दूर करो और हमारे लिये कल्याणकारी बनो।'

सुन्दर चौकोर गड्ढा खोदे । उसकी लंबाई-चौड़ाई और गहराई चौदह अंगुलकी रक्खे । फिर उसे चन्दन और जलसे सींचे । तदनन्तर उस गड्ढेको गायके दूधसे भरकर उसमें सर्वाङ्गसुन्दर सुवर्णमय मत्स्य डाले । उस मत्स्यके नेत्र मोतीके बने होने चाहिये । फिर 'महामत्स्याय नमः' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए गन्ध आदिसे उसकी पूजा करके ब्राह्मणको उसका दान कर दे । द्विजश्रेष्ठ ! यह मैंने तुमसे क्षीरसागर-दानकी विधि बतायी है । इस दानके प्रभावसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप आनन्द भोगता है । नारद ! इस पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग-व्रत तथा नक्त-व्रत करके मनुष्य रुद्रलोक प्राप्त कर लेता है ।

मार्गशीर्ष मासकी पूर्णिमाके दिन शान्त स्वभाववाले ब्राह्मणको सुवर्णसहित एक आढक[1] नमक दान करे । इससे सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि होती है । मनुष्य पूर्णिमाको पुष्यका योग होनेपर सम्पूर्ण सौभाग्यकी वृद्धिके लिये पीली सरसोंके उबटनसे अपने शरीरको मलकर सर्वौषधियुक्त जलसे स्नान करे । स्नानके पश्चात् दो नूतन वस्त्र धारण करे । फिर माङ्गलिक द्रव्यका दर्शन और स्पर्श कर विष्णु, इन्द्र, चन्द्रमा, पुष्य और बृहस्पतिको नमस्कार करके गन्ध आदि उपचारोंद्वारा उनकी पूजा करे । तदनन्तर होम करके ब्राह्मणोंको खीरके भोजनसे तृप्त करे । विप्रवर ! लक्ष्मीजीकी प्रीति बढ़ानेवाले और दरिद्रताका नाश करनेवाले इस व्रतको करके मनुष्य इहलोक और परलोकमें आनन्द भोगता है । माघकी पूर्णिमाके दिन तिल, सूती कपड़े, कम्बल, रत्न, कंचुक, पगड़ी, जूते आदिका अपने वैभवके अनुसार दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें सुखी होता है । जो उस दिन भगवान् शङ्करकी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाकर भगवान् विष्णुके लोकमें प्रतिष्ठित होता है । फाल्गुनकी पूर्णिमाको सब प्रकारके काष्ठों और उपलों (कंडों)का संग्रह करना चाहिये । वहाँ रक्षोघ्न-मन्त्रोंद्वारा अग्निमें विधिपूर्वक होम करके होलिकापर काठ आदि फेंककर उसमें आग लगा दे । इस प्रकार दाह करके होलिकाकी परिक्रमा करते हुए उत्सव मनावे । यह होलिका प्रह्लादको भय देनेवाली राक्षसी है । इसीलिये गीत-मङ्गलपूर्वक काष्ठ आदिके द्वारा लोग उसका दाह करते हैं । विप्रेन्द्र ! मतान्तरमें यह 'कामदेवका दाह' है ।

पक्षान्त-तिथियाँ दो होती हैं—पूर्णिमा तथा अमावास्या । दोनोंके देवता पृथक्-पृथक् हैं । अतः अमावास्याका व्रत पृथक् बतलाया जाता है । नारद ! इसे सुनो । यह पितरोंको अत्यन्त प्रिय है । चैत्र और वैशाखकी अमावास्याको पितरोंकी पूजा, पार्वणविधिसे धन-वैभवके अनुसार श्राद्ध, ब्राह्मणभोजन, विशेषतः गौ आदिका दान—ये सब कार्य सभी महीनोंकी अमावास्याको अत्यन्त पुण्यदायक बताये गये हैं । नारद ! ज्येष्ठकी अमावास्याको ब्रह्म-सावित्रीका व्रत बताया गया है । इसमें भी ज्येष्ठकी पूर्णिमाके समान ही सब विधि कही गयी है । आषाढ, श्रावण और भादों मासमें पितृश्राद्ध, दान, होम और देवपूजा आदि कार्य अक्षय होते हैं । भाद्रपदकी अमावास्याको अपराह्णमें तिलके खेतमें पैदा हुए कुशोंको ब्रह्माजीके मन्त्रसे[2] आमन्त्रित करके 'हुं फट्' का उच्चारण करते हुए उखाड़ ले और उन्हें सदा सब कार्योंमें नियुक्त करे और दूसरे कुशोंको एक ही समय काममें लाना चाहिये । आश्विनकी अमावास्याको विशेषरूपसे गङ्गाजीके जलमें या गयाजीमें पितरोंका श्राद्ध-तर्पण करना चाहिये; वह मोक्ष देनेवाला है । कार्तिककी अमावास्याको देवमन्दिर, घर, नदी, बगीचा, पोखरा, चैत्य वृक्ष, गोशाला तथा बाजारमें दीपदान और श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करना चाहिये । उस दिन गौओंके सींग आदि अङ्गोंमें रंग लगाकर उन्हें घास और अन्न देकर तथा नमस्कार और प्रदक्षिणा करके उनकी पूजा की जाती है । मार्गशीर्षकी अमावास्याको भी श्राद्ध और ब्राह्मणभोजनके द्वारा तथा ब्रह्मचर्य आदि नियमों और जप, होम तथा पूजनादिके द्वारा पितरोंकी पूजा की जाती है । विप्रवर ! पौष और माघमें भी पितृश्राद्धका फल अधिक कहा गया है । फाल्गुनकी अमावास्यामें श्रवण, व्यतीपात और सूर्यका योग होनेपर केवल श्राद्ध और ब्राह्मणभोजन गयासे अधिक फल देनेवाला होता है । सोमवती अमावास्याको किया हुआ दान आदि सम्पूर्ण फलोंको देनेवाला है । उसमें किये हुए श्राद्धका अधिक फल है । मुने ! इस प्रकार मैंने तुम्हें संक्षेपसे तिथिकृत्य बताया है । सभी तिथियोंमें कुछ विशेष विधि है, जो अन्य पुराणोंमें वर्णित है ।

---

१. चार सेरके बराबरका एक तौल ।

२. निम्नाङ्कितसम्बन्धी ब्रह्माजीका मन्त्र इस प्रकार है—

विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज । नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव ॥

'दर्भ ! तुम ब्रह्माजीके साथ उत्पन्न हुए हो, साक्षात् परमेष्ठी ब्रह्माके स्वरूप हो और तुम स्वभावतः प्रकट हुए हो । हमारे सब पाप दूर करो और हमारे लिये कल्याणकारी बनो ।'

शास्त्र और वेद—सबका इसमें सक्षेपसे संग्रह किया गया है। इस वेदसम्मित नारदीय महापुराणका श्रवण करके धन, रत्न और वस्त्र आदिके द्वारा भक्तिभावसे पुराणवाचक आचार्यकी पूजा करनी चाहिये। भूमिदान, गोदान, रत्नदान तथा हाथी, घोड़े और रथके दानसे आचार्यको सदैव संतुष्ट करना चाहिये। ब्राह्मणो! यह पुराण धर्मका संग्रह करनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। जो इसकी व्याख्या करता है, उसके समान मनुष्योंका गुरु दूसरा कौन हो सकता है। शरीर, मन, वाणी और धन आदिके द्वारा सदा धर्मोपदेशक गुरुका प्रिय करना चाहिये। इस पुराणको विधिपूर्वक सुनकर देवपूजन और हवन करके सौ ब्राह्मणोंको मिठाई और खीरका भोजन कराना चाहिये तथा भक्तिभावसे उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये; क्योंकि भगवान् माधव भक्तिसे ही संतुष्ट होते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा, सरोवरोंमें पुष्कर, पुरियोंमें काशीपुरी, पर्वतोंमें मेरु, तीनों देवताओंमें सबका पाप हरनेवाले भगवान् नारायण, युगोंमें सत्ययुग, वेदोंमें सामवेद, पशुओंमें धेनु, वर्णोंमें ब्राह्मण, देने योग्य तथा पोषक वस्तुओंमें अन्न और जल, मासोंमें मार्गशीर्ष, मृगोंमें सिंह, देहधारियोंमें पुरुष, वृक्षोंमें पीपल, दैत्योंमें प्रह्लाद, अङ्गोंमें मुख, अश्वोंमें उच्चैःश्रवा, ऋतुओंमें वसन्त, यज्ञोंमें जपयज्ञ, नागोंमें शेष, पितरोंमें अर्यमा, अस्त्रोंमें धनुष, वसुओंमें पावक, आदित्योंमें विष्णु, देवताओंमें इन्द्र, सिद्धोंमें कपिल, पुरोहितोंमें बृहस्पति, कवियोंमें शुक्राचार्य, पाण्डवोंमें अर्जुन, दास्य-भक्तोंमें हनुमान्, तृणोंमें कुश, इन्द्रियोंमें मन (चित्त), गन्धर्वोंमें चित्ररथ, पुष्पोंमें कमल, अप्सराओंमें उर्वशी तथा धातुओंमें सुवर्ण श्रेष्ठ है। जिस प्रकार ये सब वस्तुएँ अपने सजातीय पदार्थोंमें श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पुराणोंमें श्रीनारदमहापुराण श्रेष्ठ कहा गया है। द्विजवरो! आप सब लोगोंको शान्ति प्राप्त हो, आपका कल्याण हो। अब मैं अमित तेजस्वी व्यासजीके समीप जाऊँगा।

ऐसा कहकर सूतजी शौनक आदि महात्माओंसे पूजित हो उन सबकी आज्ञा लेकर चले गये। वे शौनक आदि द्विज श्रेष्ठ महात्मा भी, जो यज्ञानुष्ठानमें लगे हुए थे, एकाग्रचित्त हो सुने हुए समस्त धर्मोंके अनुष्ठानमें तत्पर हो, वहीं रहने लगे। जो कलिके पाप-विषका नाश करनेवाले श्रीहरिके जप और पूजन-विधिरूप औषधका सेवन करता है, वह निर्मल चित्तसे भगवान्‌के ध्यानमें लगकर सदा मनोवाञ्छित लोक प्राप्त करता है।

॥ पूर्वभाग समाप्त ॥

शास्त्र और वेद—सबका इसमें संक्षेपसे संग्रह किया गया है। इस वेदसम्मित नारदीय महापुराणका श्रवण करके धन, रत्न और वस्त्र आदिके द्वारा भक्तिभावसे पुराणवाचक आचार्यकी पूजा करनी चाहिये। भूमिदान, गोदान, रत्नदान तथा हाथी, घोड़े और रथके दानसे आचार्यको सदैव संतुष्ट करना चाहिये। ब्राह्मणो! यह पुराण धर्मका संग्रह करनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। जो इसकी व्याख्या करता है, उसके समान मनुष्योंका गुरु दूसरा कौन हो सकता है। शरीर, मन, वाणी और धन आदिके द्वारा सदा धर्मोपदेशक गुरुका प्रिय करना चाहिये। इस पुराणको विधिपूर्वक सुनकर देवपूजन और हवन करके सौ ब्राह्मणोंको मिठाई और खीरका भोजन कराना चाहिये तथा भक्तिभावसे उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये; क्योंकि भगवान् माधव भक्तिसे ही संतुष्ट होते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा, सरोवरोंमें पुष्कर, पुरियोंमें काशीपुरी, पर्वतोंमें मेरु, तीनों देवताओंमें सबका पाप हरनेवाले भगवान् नारायण, युगोंमें सत्ययुग, वेदोंमें सामवेद, पशुओंमें धेनु, वर्णोंमें ब्राह्मण, देने योग्य तथा पोषक वस्तुओंमें अन्न और जल, मासोंमें मार्गशीर्ष, मृगोंमें सिंह, देहधारियोंमें पुरुष, वृक्षोंमें पीपल, दैत्योंमें प्रह्लाद, अङ्गोंमें मुख, अश्वोंमें उच्चैःश्रवा, ऋतुओंमें वसन्त, यज्ञोंमें जपयज्ञ, नागोंमें शेष, पितरोंमें अर्यमा, अस्त्रोंमें धनुष, वसुओंमें पावक, आदित्योंमें विष्णु, देवताओंमें इन्द्र, सिद्धोंमें कपिल, पुरोहितोंमें बृहस्पति, कवियोंमें शुक्राचार्य, पाण्डवोंमें अर्जुन, दास्य-भक्तोंमें हनुमान्, तृणोंमें कुश, इन्द्रियोंमें मन (चित्त), गन्धर्वोंमें चित्ररथ, पुष्पोंमें कमल, अप्सराओंमें उर्वशी तथा धातुओंमें सुवर्ण श्रेष्ठ है। जिस प्रकार ये सब वस्तुएँ अपने सजातीय पदार्थोंमें श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पुराणोंमें श्रीनारदमहापुराण श्रेष्ठ कहा गया है। द्विजवरो! आप सब लोगोंको शान्ति प्राप्त हो, आपका कल्याण हो। अब मैं अमित तेजस्वी व्यासजीके समीप जाऊँगा।

ऐसा कहकर सूतजी शौनक आदि महात्माओंसे पूजित हो उन सबकी आज्ञा लेकर चले गये। वे शौनक आदि द्विज श्रेष्ठ महात्मा भी, जो यज्ञानुष्ठानमें लगे हुए थे, एकाग्रचित्त हो सुने हुए समस्त धर्मोंके अनुष्ठानमें तत्पर हो, वहीं रहने लगे। जो कलिके पाप-विषका नाश करनेवाले श्रीहरिके जप और पूजन-विधिरूप औषधका सेवन करता है, वह निर्मल चित्तसे भगवान्‌के ध्यानमें लगकर सदा मनोवाञ्छित लोक प्राप्त करता है।

॥ पूर्वभाग समाप्त ॥

अग्निमें, पातकरूपी ईंधन सौ वर्षोंमें संचित हो तो भी, शीघ्र ही भस्म हो जाता है। नरेश्वर! मनुष्य जबतक भगवान् पद्मनाभके शुभदिवस—एकादशी तिथिको उपवासपूर्वक व्रत नहीं करता, तभीतक इस शरीरमें पाप ठहर पाते हैं। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञ एकादशीव्रतकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। प्रभो! एकादश इन्द्रियों-द्वारा जो पाप किया जाता है, वह सब-का-सब एकादशीके उपवाससे नष्ट हो जाता है। राजन्! यदि किसी दूसरे बहानेसे भी एकादशीको उपवास कर लिया जाय तो वह यमराजका दर्शन नहीं होने देती। यह एकादशी स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली है। राज्य और पुत्र प्रदान करनेवाली है। उत्तम स्त्रीकी प्राप्ति करानेवाली तथा शरीरको नीरोग बनानेवाली है। राजन्! एकादशीसे अधिक पवित्र न गङ्गा है, न गया; न काशी है, न पुष्कर। कुरुक्षेत्र, नर्मदा, देविका, यमुना तथा चन्द्रभागा भी एकादशीसे बढ़कर पुण्यमय नहीं हैं। राजन्! एकादशी-का व्रत करनेसे भगवान् विष्णुका धाम अनायास ही प्राप्त हो जाता है। एकादशीको उपवासपूर्वक रातमें जागरण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। राजेन्द्र! एकादशी-व्रत करनेवाला पुरुष मातृकुल, पितृकुल तथा पत्नीकुलकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। महाराज! वह अपनेको भी वैकुण्ठमें ले जाता है। एकादशी चिन्तामणि अथवा निधिके समान है। संकल्पसाधक कल्पवृक्ष एवं वेदवाक्योंके समान है। नरश्रेष्ठ! जो मनुष्य द्वादशी (एकादशीयुक्त) की शरण लेते हैं, वे चार भुजाओंसे युक्त हो गरुड़की पीठपर बैठकर वनमाला और पीताम्बरसे सुशोभित हो भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं। महीपते! यह मैंने द्वादशी (एकादशीयुक्त) का प्रभाव बताया है। यह घोर पापरूपी ईंधनके लिये अग्निके समान है। पुत्र-पौत्र आदि विपुल योगों (अप्राप्त वस्तुओं) अथवा भोगोंकी इच्छा रखनेवाले धर्मपरायण मनुष्योंको सदा एकादशीके दिन उपवास करना चाहिये। नरश्रेष्ठ! जो मनुष्य आदरपूर्वक एकादशी-व्रत करता है, वह माताके उदरमें प्रवेश नहीं करता (उसकी मुक्ति हो जाती है)। अनेक पापोंसे युक्त मनुष्य भी निष्काम या सकामभावसे यदि एकादशीका व्रत करता है तो वह लोकनाथ भगवान् विष्णुके अनन्त पद (वैकुण्ठ धाम) को प्राप्त कर लेता है।

तिथिके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें तथा विद्धा तिथिका निषेध

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! एकादशी तथा भगवान् विष्णुकी महिमासे सम्बन्ध रखनेवाले सूतपुत्रके उस वचनको, जो समस्त पापराशियोंका निवारण करनेवाला था, सुनकर सम्पूर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने पुनः निर्मल हृदयवाले पौराणिक सूतपुत्रसे पूछा—मानद! आप व्यासजीकी कृपासे अठारह पुराण और महाभारतको भी जानते हैं। पुराणों और स्मृतियों-में ऐसी कोई बात नहीं है, जिसे आप न जानते हों। हम-लोगोंके हृदयमें एक संशय उत्पन्न हो गया है। आप ही विस्तारसे समझाकर यथार्थरूपसे उसका निवारण कर सकते हैं। तिथिके मूल भाग (प्रारम्भ) में उपवास करना चाहिये या अन्तमें? देवकर्म हो या पितृकर्म उसमें तिथिके किस भागमें उपवास करना उचित है? यह बतानेकी कृपा करें।

सौतिने कहा—महर्षियो! देवताओंकी प्रसन्नताके लिये तो तिथिके अन्तभागमें ही उपवास करना उचित है। वही उनकी प्रीति बढ़ानेवाला है। पितरोंको तिथिका मूलभाग ही प्रिय है—ऐसा कालज्ञ पुरुषोंका कथन है। अतः दसगुने फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको तिथिके अन्तभागमें ही उपवास करना चाहिये। धर्मकामी पुरुषोंको पितरोंकी तृप्तिके लिये तिथिके मूलभागको ही उत्तम मानना चाहिये। विप्रगण! धर्म, अर्थ तथा कामकी इच्छावाले मनुष्योंको चाहिये कि द्वितीया, अष्टमी, षष्ठी और एकादशी तिथियाँ यदि पूर्वविद्धा हों अर्थात् पहलेवाली तिथिसे संयुक्त हों तो उस दिन व्रत न करें। द्विजवरो! सप्तमी, अमावास्या, पूर्णिमा तथा पिताका वार्षिक श्राद्धदिन—इन दिनोंमें पूर्व-विद्धा तिथि ही ग्रहण करनी चाहिये। सूर्योदयके समय यदि थोड़ी भी पूर्व तिथि हो तो उससे वर्तमान तिथिको पूर्वविद्धा माने, यदि उदयके पूर्वसे ही वर्तमान तिथि आ गयी हो तो उसे 'प्रभूता' समझे। पारण तथा मनुष्यके मरणमें तत्कालवर्तिनी तिथि ग्रहण करने योग्य मानी गयी है। पितृकार्यमें वही तिथि ग्राह्य है जो सूर्यास्तकालमें मौजूद रहे। विप्रवरो! तिथिका प्रमाण सूर्य और चन्द्रमाकी गतिपर निर्भर है। चन्द्रमा और सूर्यकी गतिका ज्ञान होनेसे कालवेत्ता विद्वान् तिथिके कालका मान समझते हैं।

इसके बाद, अब मैं स्नान, पूजा आदिकी विधिका क्रम

अग्निमें, पातकरूपी ईंधन सौ वर्षोंमें संचित हो तो भी, शीघ्र ही भस्म हो जाता है। नरेश्वर! मनुष्य जबतक भगवान् पद्मनाभके शुभदिवस—एकादशी तिथिको उपवासपूर्वक व्रत नहीं करता, तभीतक इस शरीरमें पाप ठहर पाते हैं। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञ एकादशीव्रतकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। प्रभो! एकादश इन्द्रियोंद्वारा जो पाप किया जाता है, वह सब-का-सब एकादशीके उपवाससे नष्ट हो जाता है। राजन्! यदि किसी दूसरे बहानेसे भी एकादशीको उपवास कर लिया जाय तो वह यमराजका दर्शन नहीं होने देती। यह एकादशी स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली है। राज्य और पुत्र प्रदान करनेवाली है। उत्तम स्त्रीकी प्राप्ति करानेवाली तथा शरीरको नीरोग बनानेवाली है। राजन्! एकादशीसे अधिक पवित्र न गङ्गा है, न गया; न काशी है, न पुष्कर। कुरुक्षेत्र, नर्मदा, देविका, यमुना तथा चन्द्रभागा भी एकादशीसे बढ़कर पुण्यमय नहीं है। राजन्! एकादशीका व्रत करनेसे भगवान् विष्णुका धाम अनायास ही प्राप्त हो जाता है। एकादशीको उपवासपूर्वक रातमें जागरण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। राजेन्द्र! एकादशी-व्रत करनेवाला पुरुष मातृकुल, पितृकुल तथा पत्नीकुलकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। महाराज! वह अपनेको भी वैकुण्ठमें ले जाता है। एकादशी चिन्तामणि अथवा निधिके समान है। संकल्पसाधक कल्पवृक्ष एवं वेदवाक्योंके समान है। नरश्रेष्ठ! जो मनुष्य द्वादशी (एकादशीयुक्त) की शरण लेते हैं, वे चार भुजाओंसे युक्त हो गरुड़की पीठपर बैठकर वनमाला और पीताम्बरसे सुशोभित हो भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं। महीपते! यह मैंने द्वादशी (एकादशीयुक्त) का प्रभाव बताया है। यह घोर पापरूपी ईंधनके लिये अग्निके समान है। पुत्र-पौत्र आदि विपुल योगों (अप्राप्त वस्तुओं) अथवा भोगोंकी इच्छा रखनेवाले धर्मपरायण मनुष्योंको सदा एकादशीके दिन उपवास करना चाहिये। नरश्रेष्ठ! जो मनुष्य आदरपूर्वक एकादशीव्रत करता है, वह माताके उदरमें प्रवेश नहीं करता (उसकी मुक्ति हो जाती है)। अनेक पापोंसे युक्त मनुष्य भी निष्काम या सकामभावसे यदि एकादशीका व्रत करता है तो वह लोकनाथ भगवान् विष्णुके अनन्त पद (वैकुण्ठ धाम) को प्राप्त कर लेता है।

तिथिके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें तथा विद्धा तिथिका निषेध

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! एकादशी तथा भगवान् विष्णुकी महिमासे सम्बन्ध रखनेवाले सूतपुत्रके उस वचनको, जो समस्त पापराशियोंका निवारण करनेवाला था, सुनकर सम्पूर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने पुनः निर्मल हृदयवाले पौराणिक सूतपुत्रसे पूछा—मानद! आप व्यासजीकी कृपासे अठारह पुराण और महाभारतको भी जानते हैं। पुराणों और स्मृतियोंमें ऐसी कोई बात नहीं है, जिसे आप न जानते हों। हमलोगोंके हृदयमें एक संशय उत्पन्न हो गया है। आप ही विस्तारसे समझाकर यथार्थरूपसे उसका निवारण कर सकते हैं। तिथिके मूल भाग (प्रारम्भ) में उपवास करना चाहिये या अन्तमें? देवकर्म हो या पितृकर्म उसमें तिथिके किस भागमें उपवास करना उचित है? यह बतानेकी कृपा करें।

सौतिने कहा—महर्षियो! देवताओंकी प्रसन्नताके लिये तो तिथिके अन्तभागमें ही उपवास करना उचित है। वही उनकी प्रीति बढ़ानेवाला है। पितरोंको तिथिका मूलभाग ही प्रिय है—ऐसा कालज्ञ पुरुषोंका कथन है। अतः दसगुने फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको तिथिके अन्तभागमें ही उपवास करना चाहिये। धर्मकामी पुरुषोंको पितरोंकी तृप्तिके लिये तिथिके मूलभागको ही उत्तम मानना चाहिये। विप्रगण! धर्म, अर्थ तथा कामकी इच्छावाले मनुष्योंको चाहिये कि द्वितीया, अष्टमी, षष्ठी और एकादशी तिथियाँ यदि पूर्वविद्धा हों अर्थात् पहलेवाली तिथिसे संयुक्त हों तो उस दिन व्रत न करें। द्विजवरो! सप्तमी, अमावास्या, पूर्णिमा तथा पिताका वार्षिक श्राद्धदिन—इन दिनोंमें पूर्वविद्धा तिथि ही ग्रहण करनी चाहिये। सूर्योदयके समय यदि थोड़ी भी पूर्व तिथि हो तो उससे वर्तमान तिथिको पूर्वविद्धा माने, यदि उदयके पूर्वसे ही वर्तमान तिथि आ गयी हो तो उसे 'प्रभूता' समझे। पारण तथा मनुष्यके मरणमें तत्कालवर्तिनी तिथि ग्रहण करने योग्य मानी गयी है। पितृकार्यमें वही तिथि ग्राह्य है जो सूर्यास्तकालमें मौजूद रहे। विप्रवरो! तिथिका प्रमाण सूर्य और चन्द्रमाकी गतिपर निर्भर है। चन्द्रमा और सूर्यकी गतिका ज्ञान होनेसे कालवेत्ता विद्वान् तिथिके कालका मान समझते हैं।

इसके बाद, अब मैं स्नान, पूजा आदिकी विधिका क्रम

सार्वभौम राजा हो गये हैं। वे सब प्राणियोंके प्रति क्षमाभाव रखते थे। क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णु उनके प्रिय आराध्यदेव थे। वे भगवद्भक्त तो थे ही, सदा एकादशी-व्रतके पालनमें तत्पर रहते थे। राजा रुक्माङ्गद इस जगत्‌में देवेश्वर भगवान् पद्मनाभके सिवा और किसीको नहीं देखते थे। उनकी सर्वत्र भगवद्दृष्टि थी। वे एकादशीके दिन हाथी-पर नगाड़ा रखकर बजवाते और सब ओर यह घोषणा कराते थे कि 'आज एकादशी तिथि है। आजके दिन आठ वर्षसे अधिक और पचासी वर्षसे कम आयुवाला जो मन्दबुद्धि मनुष्य भोजन करेगा, वह मेरेद्वारा दण्डनीय होगा, उसे नगरसे निर्वासित कर दिया जायगा। औरोंकी तो बात ही क्या, पिता, भ्राता, पुत्र, पत्नी और मेरा मित्र ही क्यों न हो, यदि वह एकादशीके दिन भोजन करेगा तो उसे कठोर दण्ड दिया जायगा। आज गङ्गाजीके जलमें गोते लगाओ, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दो।' द्विजवरो! राजाके इस प्रकार घोषणा करानेपर सब लोग एकादशी-व्रत करके भगवान् विष्णुके लोकमें जाने लगे। ब्राह्मणो! इस प्रकार वैकुण्ठधामका मार्ग लोगोंसे भर गया। उस राजाके राज्यमें जो लोग भी मृत्युको प्राप्त होते थे, वे भगवान् विष्णुके धाममें चले जाते थे।

ब्राह्मणो! सूर्यनन्दन प्रेतराज यम दयनीय स्थितिमें पहुँच गये थे। चित्रगुप्तको उस समय लिखने-पढ़नेके कामसे छुट्टी मिल गयी थी। लोगोंके पूर्व कर्मोंके सारे लेख मिटा दिये गये। मनुष्य अपने धर्मके प्रभावसे क्षणभरमें वैकुण्ठ-धामको चले जाते थे। सम्पूर्ण नरक सूने हो गये। कहीं कोई पापी जीव नहीं रह गया था। बारह सूर्योंके तेजसे तप्त होने-वाला यमलोकका मार्ग नष्ट हो गया। सब लोग गरुड़की पीठपर बैठकर भगवान् विष्णुके धामको चले जाते थे। मर्त्यलोकके मानव एकमात्र एकादशीको छोड़कर और कोई व्रत आदि नहीं जानते थे। नरकमें भी सन्नाटा छा गया। तब एक दिन नारदजीने धर्मराजके पास जाकर कहा।

नारदजी बोले—राजन्! नरकोंके आँगनमें भी किसी प्रकारकी चीख-पुकार नहीं सुनायी देती। आजकल लोगोंके पापकर्मोंका लेखन भी नहीं किया जा रहा है। क्यों चित्र-गुप्तजी मुनिकी भाँति मौन साधकर बैठे हैं? क्या कारण है कि आजकल आपके यहाँ माया और दम्भके वशीभूत हो दुष्कर्मोंमें तत्पर रहनेवाले पापियोंका आगमन नहीं हो रहा है?

महात्मा नारदके ऐसा पूछनेपर सूर्यपुत्र धर्मराजने कुछ दयनीय भावसे कहा।

यम बोले—नारदजी! इस समय पृथ्वीपर जो राजा राज्य कर रहा है, वह पुराणपुरुषोत्तम भगवान् हृषीकेशका भक्त है। राजेश्वर रुक्माङ्गद अपने राज्यके लोगोंको नगाड़ा पीटकर सचेत करता है—'एकादशी तिथि प्राप्त होनेपर भोजन न करो, न करो। जो मनुष्य उस दिन भोजन करेंगे वे मेरे दण्डके पात्र होंगे।' अतः सब लोग (एकादशीसंयुक्त) द्वादशी-व्रत करते हैं। मुनिश्रेष्ठ! जो लोग किसी बहानेसे भी (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीको उपवास कर लेते हैं, वे दाह और प्रलयसे रहित वैष्णवधामको जाते हैं। साराश यह है कि (एकादशीसंयुक्त) द्वादशी-व्रतके सेवनसे सब लोग वैकुण्ठधामको चले जा रहे हैं। द्विजश्रेष्ठ! उस राजाने इस समय मेरे लोकके मार्गोंका लोप कर दिया है। अतः मेरे लेखकोंने लिखनेका काम ढीला कर दिया है। महामुने! इस समय मैं काठके मृगकी भाँति निश्चेष्ट हो रहा हूँ इस तरहके लोकपाल-पदको मैं त्याग देना चाहता हूँ। अपना यह दुःख ब्रह्माजीको बतानेके लिये मैं ब्रह्मलोकमें जाऊँगा। किसी कार्यके लिये नियुक्त हुआ सेवक काम न होने-पर भी यदि उस पदपर बना रहता है और बेकार रहकर स्वामीके धनका उपभोग करता है, वह निश्चय ही नरकमें जाता है।

सौति कहते हैं—ब्राह्मणो! ऐसा कहकर यमराज देवर्षि नारद तथा चित्रगुप्तके साथ ब्रह्माजीके धाममें गये। वहाँ उन्होंने देखा कि ब्रह्माजी मूर्त और अमूर्त जीवोंसे घिरे बैठे हैं। वे सम्पूर्ण वेदोंके आश्रय जगत्‌की उत्पत्तिके बीज तथा सबके प्रपितामह हैं। उनका स्वतः प्रादुर्भाव हुआ है। वे सम्पूर्ण भूतोंके निवासस्थान और पापसे रहित हैं। ॐकार उन्हींका नाम है। वे पवित्र, पवित्र वस्तुओंके आधार, हंस (विशुद्ध आत्मा) और दर्भ (कुशा), कमण्डलु आदि चिह्नोंसे युक्त हैं। अनेकानेक लोकपाल और दिक्पाल भगवान् ब्रह्माजीकी उपासना कर रहे हैं। इतिहास, पुराण और वेद साकाररूपमें उपस्थित हो उनकी सेवा करते हैं। उन सबके बीचमें यमराजने लजाती हुई नववधूकी भाँति प्रवेश किया।

सार्वभौम राजा हो गये हैं। वे सब प्राणियोंके प्रति क्षमाभाव रखते थे। क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णु उनके प्रिय आराध्यदेव थे। वे भगवद्भक्त तो थे ही, सदा एकादशी-व्रतके पालनमें तत्पर रहते थे। राजा रुक्माङ्गद इस जगत्में देवेश्वर भगवान् पद्मनाभके सिवा और किसीको नहीं देखते थे। उनकी सर्वत्र भगवद्दृष्टि थी। वे एकादशीके दिन हाथीपर नगाड़ा रखकर बजवाते और सब ओर यह घोषणा कराते थे कि 'आज एकादशी तिथि है। आजके दिन आठ वर्षसे अधिक और पचासी वर्षसे कम आयुवाला जो मन्दबुद्धि मनुष्य भोजन करेगा, वह मेरेद्वारा दण्डनीय होगा, उसे नगरसे निर्वासित कर दिया जायगा। औरोंकी तो बात ही क्या, पिता, भ्राता, पुत्र, पत्नी और मेरा मित्र ही क्यों न हो, यदि वह एकादशीके दिन भोजन करेगा तो उसे कठोर दण्ड दिया जायगा। आज गङ्गाजीके जलमें गोते लगाओ, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दो।' द्विजवरो! राजाके इस प्रकार घोषणा करानेपर सब लोग एकादशी-व्रत करके भगवान् विष्णुके लोकमें जाने लगे। ब्राह्मणो! इस प्रकार वैकुण्ठधामका मार्ग लोगोंसे भर गया। उस राजाके राज्यमें जो लोग भी मृत्युको प्राप्त होते थे, वे भगवान् विष्णुके धाममें चले जाते थे।

ब्राह्मणो! सूर्यनन्दन प्रेतराज यम दयनीय स्थितिमें पहुँच गये थे। चित्रगुप्तको उस समय लिखने-पढ़नेके कामसे छुट्टी मिल गयी थी। लोगोंके पूर्व कर्मोंके सारे लेख मिटा दिये गये। मनुष्य अपने धर्मके प्रभावसे क्षणभरमें वैकुण्ठ-धामको चले जाते थे। सम्पूर्ण नरक सूने हो गये। कहीं कोई पापी जीव नहीं रह गया था। बारह सूर्योंके तेजसे तप्त होनेवाला यमलोकका मार्ग नष्ट हो गया। सब लोग गरुड़की पीठपर बैठकर भगवान् विष्णुके धामको चले जाते थे। मर्त्यलोकके मानव एकमात्र एकादशीको छोड़कर और कोई व्रत आदि नहीं जानते थे। नरकमें भी सन्नाटा छा गया। तब एक दिन नारदजीने धर्मराजके पास जाकर कहा।

नारदजी बोले—राजन्! नरकोंके आँगनमें भी किसी प्रकारकी चीख-पुकार नहीं सुनायी देती। आजकल लोगोंके पापकर्मोंका लेखन भी नहीं किया जा रहा है। क्यों चित्रगुप्तजी मुनिकी भाँति मौन साधकर बैठे हैं? क्या कारण है कि आजकल आपके यहाँ माया और दम्भके वशीभूत हो दुष्कर्मोंमें तत्पर रहनेवाले पापियोंका आगमन नहीं हो रहा है?

महात्मा नारदके ऐसा पूछनेपर सूर्यपुत्र धर्मराजने कुछ दयनीय भावसे कहा।

यम बोले—नारदजी! इस समय पृथ्वीपर जो राजा राज्य कर रहा है, वह पुराणपुरुषोत्तम भगवान् हृषीकेशका भक्त है। राजेश्वर रुक्माङ्गद अपने राज्यके लोगोंको नगाड़ा पीटकर सचेत करता है—'एकादशी तिथि प्राप्त होनेपर भोजन न करो, न करो। जो मनुष्य उस दिन भोजन करेंगे वे मेरे दण्डके पात्र होंगे।' अतः सब लोग (एकादशीसंयुक्त) द्वादशी-व्रत करते हैं। मुनिश्रेष्ठ! जो लोग किसी बहानेसे भी (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीको उपवास कर लेते हैं, वे दाह और प्रलयसे रहित वैष्णवधामको जाते हैं। साराश यह है कि (एकादशीसंयुक्त) द्वादशी-व्रतके सेवनसे सब लोग वैकुण्ठधामको चले जा रहे हैं। द्विजश्रेष्ठ! उस राजाने इस समय मेरे लोकके मार्गोंका लोप कर दिया है। अतः मेरे लेखकोंने लिखनेका काम ढीला कर दिया है। महामुने! इस समय मैं काठके मृगकी भाँति निश्चेष्ट हो रहा हूँ इस तरहके लोकपाल-पदको मैं त्याग देना चाहता हूँ। अपना यह दुःख ब्रह्माजीको बतानेके लिये मैं ब्रह्मलोकमें जाऊँगा। किसी कार्यके लिये नियुक्त हुआ सेवक काम न होनेपर भी यदि उस पदपर बना रहता है और बेकार रहकर स्वामीके धनका उपभोग करता है, वह निश्चय ही नरकमें जाता है।

सौति कहते हैं—ब्राह्मणो! ऐसा कहकर यमराज देवर्षि नारद तथा चित्रगुप्तके साथ ब्रह्माजीके धाममें गये। वहाँ उन्होंने देखा कि ब्रह्माजी मूर्त और अमूर्त जीवोंसे घिरे बैठे हैं। वे सम्पूर्ण वेदोंके आश्रय जगत्की उत्पत्तिके बीज तथा सबके प्रपितामह हैं। उनका स्वतः प्रादुर्भाव हुआ है। वे सम्पूर्ण भूतोंके निवासस्थान और पापसे रहित हैं। ॐकार उन्हींका नाम है। वे पवित्र, पवित्र वस्तुओंके आधार, हंस (विशुद्ध आत्मा) और दर्भ (कुशा), कमण्डलु आदि चिह्नोंसे युक्त हैं। अनेकानेक लोकपाल और दिक्पाल भगवान् ब्रह्माजीकी उपासना कर रहे हैं। इतिहास, पुराण और वेद साकाररूपमें उपस्थित हो उनकी सेवा करते हैं। उन सबके बीचमें यमराजने लजाती हुई नववधूकी भाँति प्रवेश किया।

उनके पूर्वज भी वैकुण्ठवासी हो जाते हैं। यही नहीं, उनकी पत्नियोंके पितर भी मेरी लिपिको मिटाकर विष्णुधामको चले जाते हैं। पिता आदिके साथ वीर्यका सम्बन्ध है और माताने तो गर्भमें ही धारण किया है। अतः उनकी सद्गति हो तो कोई अनुचित बात नहीं है। नियम यह है कि एक पुरुष जो कर्म करता है, उसका उपभोग भी वह अकेले ही करता है। ब्रह्मन्! कर्तासे भिन्न जो उसके पिता हैं, उनके वीर्यसे उसका जन्म हुआ है और माताके पेटसे वह पैदा हुआ है। इसलिये वह जिसको पिण्ड देनेका अधिकारी है और जिससे उसका शरीर प्रकट हुआ है, ऐसे पिता और माता इन दोनों पक्षोंको वह तार सकता है। किंतु वह पत्नीका वीर्य तो है नहीं और न पत्नीने उसे गर्भमें धारण किया है। अतः जगन्नाथ! पति या दामादके पुण्यकी महिमासे उसकी पत्नी तथा श्वशुर पक्षके लोग कैसे परम पदको प्राप्त होते हैं! इसीसे मेरे सिरमें चक्कर आ रहा है। पद्मयोने! वह अपने साथ पिता, माता और पत्नी—इन तीन कुलोंका उद्धार करके मेरे लोकका मार्ग त्यागकर विष्णुधाममें पहुँच जाता है। वैष्णव-व्रत एकादशीका पालन करनेवाला पुरुष जैसी गतिको पाता है, वैसी गति और किसीको नहीं मिलती। एकादशीके दिन अपने शरीरमें आँवलेके फलका लेपन करके भोजन छोड़कर मनुष्य दुष्कर्मोंसे युक्त होनेपर भी भगवान् धरणीधरके लोकमें चला जाता है। देव! अब मैं निराश हो गया हूँ। इसलिये आपके युगल चरणारविन्दोंकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। आपकी सेवामें अपने दुःखका निवेदनमात्र कर देनेसे आप सबको अभयदान देते हैं। इस समय जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके लिये जो समयोचित कार्य प्रतीत हो, उसे आप करें। अब पृथ्वीपर वैसे पापी मनुष्य नहीं हैं, जो मेरे भूतगणोंद्वारा सांकल और पाशमें बाँधकर मेरे समीप लाये जायँ और मेरे अधीन हों। सूर्यके तापसे युक्त जो यमलोकका मार्ग था, उसे अत्यन्त तीन हाथवाले विष्णुभक्तोंने नष्ट कर दिया; अतः समस्त जन-समुदाय कुम्भीपाककी यातनाको त्यागकर परात्पर श्रीहरिके धाममें चला जा रहा है।

त्रिभुवनपूजित देव! निरन्तर जाते हुए मनुष्योंसे ठसाठस भरे रहनेके कारण भगवान् विष्णुके लोकका मार्ग घिस गया है। जगत्पते! मैं समझता हूँ कि भगवान् विष्णुके लोकका कोई माप नहीं है, वह अनन्त है। तभी तो सम्पूर्ण जीव-समुदायके जानेपर भी भरता नहीं है। राजा रुक्माङ्गदने एक हजार वर्षसे इस भूमण्डलका शासन प्रारम्भ किया है और इसी बीचमें असंख्य मानवोंको चतुर्भुज रूप दे पीत वस्त्र, वनमाला और मनोहर अङ्गरागसे सुशोभित करके उन्हें गरुड़की पीठपर बिठाकर वैकुण्ठधाममें पहुँचा दिया। देवेश! लक्ष्मीपतिका प्रिय भक्त रुक्माङ्गद यदि पृथ्वीपर रह जायगा तो वह सम्पूर्ण लोकको भगवान् विष्णुके अनामय धाम वैकुण्ठमें पहुँचा देगा। लीजिये यह रहा आपका दिया हुआ दण्ड और यह है पट; यह सब मैंने आपके चरणोंमें अर्पित कर दिया। देवेश्वर! राजा रुक्माङ्गदने मेरे अनुपम लोकपाल-पदको मिट्टीमें मिला दिया। धन्य है उसकी माता, जिसने उसे गर्भमें धारण किया था। मातासे उत्पन्न हुआ अधिक गुणवान् पुत्र सम्पूर्ण दुःखोंका विनाश करनेवाला होता है। माताको क्लेश देनेवाले पुत्रके जन्म लेनेसे क्या लाभ? देव! कुपुत्रको जन्म देनेवाली माताने व्यर्थ ही प्रसवका कष्ट भोगा है! विरञ्चे! निःसंदेह इस संसारमें एक ही नारी वीर पुत्रको जन्म देनेवाली है, जिसने मेरी लिपिको मिटा देनेके लिये रुक्माङ्गदको उत्पन्न किया है। देव! पृथ्वीपर अबतक किसी भी राजाने ऐसा कार्य नहीं किया था। अतः भगवन्! जो भयंकर नगाड़ा बजाकर मेरे लोकके मार्गका लोप कर रहा है और निरन्तर भगवान् विष्णुकी सेवामें लगा हुआ है, उस रुक्माङ्गदके पृथ्वीके राज्यपर स्थित रहते मेरा जीवन सम्भव नहीं।

ब्रह्माजीके द्वारा यमराजको भगवान् तथा उनके भक्तोंकी श्रेष्ठता बताना

ब्रह्माजी बोले—धर्मराज! तुमने क्या आश्चर्यकी बात देखी है? क्यों इतने खिन्न हो रहे हो? किसीके उत्तम गुणोंको देखकर जो मनमें संताप होता है, वह मृत्युके तुल्य माना गया है। सूर्यनन्दन! जिनके नामका उच्चारण करनेमात्रसे परम पद प्राप्त हो जाता है, उन्हींकी प्रीतिके लिये उपवास करके मनुष्य वैकुण्ठधामको क्यों न जाय? भगवान् श्रीकृष्णके लिये किया हुआ एक बारका प्रणाम दस अश्वमेध यज्ञोंके अवभृथ-स्नानके समान है। फिर भी इतना अन्तर है कि दस अश्वमेध यज्ञ करनेवाला मनुष्य पुण्यभोगके पश्चात् पुनः इस संसारमें जन्म लेता है; परंतु श्रीकृष्णको प्रणाम

उनके पूर्वज भी वैकुण्ठवासी हो जाते हैं। यही नहीं, उनकी पत्नियोंके पिता भी मेरी लिपिको मिटाकर विष्णुधामको चले जाते हैं। पिता आदिके साथ वीर्यका सम्बन्ध है और माताने तो गर्भमें ही धारण किया है। अतः उनकी सद्गति हो तो कोई अनुचित बात नहीं है। नियम यह है कि एक पुरुष जो कर्म करता है, उसका उपभोग भी वह अकेले ही करता है। ब्रह्मन्! कर्तासे भिन्न जो उसके पिता हैं, उनके वीर्यसे उसका जन्म हुआ है और माताके पेटसे वह पैदा हुआ है। इसलिये वह जिसको पिण्ड देनेका अधिकारी है और जिससे उसका शरीर प्रकट हुआ है, ऐसे पिता और माता इन दोनों पक्षोंको वह तार सकता है। किंतु वह पत्नीका वीर्य तो है नहीं और न पत्नीने उसे गर्भमें धारण किया है। अतः जगन्नाथ! पति या दामादके पुण्यकी महिमासे उसकी पत्नी तथा श्वशुर पक्षके लोग कैसे परम पदको प्राप्त होते हैं! इसीसे मेरे सिरमें चक्कर आ रहा है। पद्मयोने! वह अपने साथ पिता, माता और पत्नी—इन तीन कुलोंका उद्धार करके मेरे लोकका मार्ग त्यागकर विष्णुधाममें पहुँच जाता है। वैष्णव-व्रत एकादशीका पालन करनेवाला पुरुष जैसी गतिको पाता है, वैसी गति और किसीको नहीं मिलती। एकादशीके दिन अपने शरीरमें आँवलेके फलका लेपन करके भोजन छोड़कर मनुष्य दुष्कर्मोंसे युक्त होनेपर भी भगवान् धरणीधरके लोकमें चला जाता है। देव! अब मैं निराश हो गया हूँ। इसलिये आपके युगल चरणारविन्दोंकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। आपकी सेवामें अपने दुःखका निवेदनमात्र कर देनेसे आप सबको अभयदान देते हैं। इस समय जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके लिये जो समयोचित कार्य प्रतीत हो, उसे आप करें। अब पृथ्वीपर वैसे पापी मनुष्य नहीं हैं, जो मेरे भूतगणोंद्वारा सांकल और पाशमें बाँधकर मेरे समीप लाये जायँ और मेरे अधीन हों। सूर्यके तापसे युक्त जो यमलोकका मार्ग था, उसे अत्यन्त तीन हाथवाले विष्णुभक्तोंने नष्ट कर दिया; अतः समस्त जन-समुदाय कुम्भीपाककी यातनाको त्यागकर परात्पर श्रीहरिके धाममें चला जा रहा है।

त्रिभुवनपूजित देव! निरन्तर जाते हुए मनुष्योंसे ठसाठस भरे रहनेके कारण भगवान् विष्णुके लोकका मार्ग घिस गया है। जगत्पते! मैं समझता हूँ कि भगवान् विष्णुके लोकका कोई माप नहीं है, वह अनन्त है। तभी तो सम्पूर्ण जीव-समुदायके जानेपर भी भरता नहीं है। राजा रुक्माङ्गदने एक हजार वर्षसे इस भूमण्डलका शासन प्रारम्भ किया है और इसी बीचमें असंख्य मानवोंको चतुर्भुज रूप दे पीत वस्त्र, वनमाला और मनोहर अङ्गरागसे सुशोभित करके उन्हें गरुड़की पीठपर बिठाकर वैकुण्ठधाममें पहुँचा दिया। देवेश! लक्ष्मीपतिका प्रिय भक्त रुक्माङ्गद यदि पृथ्वीपर रह जायगा तो वह सम्पूर्ण लोकको भगवान् विष्णुके अनामय धाम वैकुण्ठमें पहुँचा देगा। लीजिये यह रहा आपका दिया हुआ दण्ड और यह है पट; यह सब मैंने आपके चरणोंमें अर्पित कर दिया। देवेश्वर! राजा रुक्माङ्गदने मेरे अनुपम लोकपाल-पदको मिट्टीमें मिला दिया। धन्य है उसकी माता, जिसने उसे गर्भमें धारण किया था। मातासे उत्पन्न हुआ अधिक गुणवान् पुत्र सम्पूर्ण दुःखोंका विनाश करनेवाला होता है। माताको क्लेश देनेवाले पुत्रके जन्म लेनेसे क्या लाभ? देव! कुपुत्रको जन्म देनेवाली माताने व्यर्थ ही प्रसवका कष्ट भोगा है! विरञ्चे! निःसंदेह इस संसारमें एक ही नारी वीर पुत्रको जन्म देनेवाली है, जिसने मेरी लिपिको मिटा देनेके लिये रुक्माङ्गदको उत्पन्न किया है। देव! पृथ्वीपर अबतक किसी भी राजाने ऐसा कार्य नहीं किया था। अतः भगवन्! जो भयंकर नगाड़ा बजाकर मेरे लोकके मार्गका लोप कर रहा है और निरन्तर भगवान् विष्णुकी सेवामें लगा हुआ है, उस रुक्माङ्गदके पृथ्वीके राज्यपर स्थित रहते मेरा जीवन सम्भव नहीं!

ब्रह्माजीके द्वारा यमराजको भगवान् तथा उनके भक्तोंकी श्रेष्ठता बताना

ब्रह्माजी बोले—धर्मराज! तुमने क्या आश्चर्यकी बात देखी है? क्यों इतने खिन्न हो रहे हो? किसीके उत्तम गुणोंको देखकर जो मनमें संताप होता है, वह मृत्युके तुल्य माना गया है। सूर्यनन्दन! जिनके नामका उच्चारण करनेमात्रसे परम पद प्राप्त हो जाता है, उन्हींकी प्रीतिके लिये उपवास करके मनुष्य वैकुण्ठधामको क्यों न जाय? भगवान् श्रीकृष्णके लिये किया हुआ एक बारका प्रणाम दस अश्वमेध यज्ञोंके अवभृथ-स्नानके समान है। फिर भी इतना अन्तर है कि दस अश्वमेध यज्ञ करनेवाला मनुष्य पुण्यभोगके पश्चात् पुनः इस संसारमें जन्म लेता है; परंतु श्रीकृष्णको प्रणाम

भी लक्ष्य किया कि मेरे स्वजन काममोहित होकर इस सुन्दरी-की ओर देख रहे हैं। तब उन्होंने उन सबको समझाते हुए कहा—'जो यहाँ माता, पुत्री, पुत्रवधू, भौजाई, गुरुपत्नी तथा राजाकी रानीकी ओर रागयुक्त मन और आसक्तिपूर्ण दृष्टिसे देखता या उनका चिन्तन करता है, वह घोर नरकमें पड़ता है। जो मनुष्य इन प्रमदाओंको देखकर क्षोभको प्राप्त होता है, उसका जन्मभरका किया हुआ पुण्य व्यर्थ हो जाता है। यदि उन रमणियोंका सङ्ग करे तो दस हजार जन्मोंका पुण्य नष्ट होता है और पुण्यका नाश होनेसे पापी मनुष्य अवश्य ही पहाड़ी चूहा होता है; अतः विद्वान् पुरुष इन युवतियोंको न तो रागयुक्त दृष्टिसे देखे और न रागयुक्त हृदयसे इनका चिन्तन ही करे।

धर्मराज! जो पुत्रवधू अपने श्वशुरको अपने खुले अङ्ग दिखाती है, उसके हाथ और पैर गल जाते हैं तथा वह 'कृमिभक्ष' नामक नरकमें पड़ती है। जो पापी मनुष्य पुत्रवधूके हाथसे पैर धुलवाता, स्नान करता अथवा शरीरमें तेल आदि मलवाता है, उसकी भी ऐसी ही गति होती है। वह एक बलवान् काले रंगके मुखवाले सूचीमुख नामक कीड़ोंका भक्ष बना रहता है। अतः मनुष्य कामनायुक्त मनसे किसी भी नारीकी ओर विशेषतः पुत्री अथवा पुत्रवधूकी ओर न देखे। जो देखता है, वह उसी क्षण पतित हो जाता है। इस प्रकार विचार करके ब्रह्माजीने अपनी दृष्टि और सूक्ष्म कर ली और कहा—'यह जो गोल गोल और कुछ ऊँचाई लिये हुए सुन्दर मुँह दिखायी देता है, वह हड्डियोंका ढाँचामात्र ही तो है, जो चर्म और माससे ढका हुआ है। स्त्रियोंके शरीरमें जो दो सुन्दर नेत्र स्थित हैं, वे वसा और मेदके सिवा और क्या हैं? छातीपर दोनों स्तनोंमें यह अत्यन्त ऊँचा मास ही तो स्थित है। जघनदेशमें भी अधिक मास ही भरा हुआ है। जिस योनिपर तीनों लोकोंके प्राणी मुग्ध रहते हैं, वह छिपा हुआ मूत्रका ही तो द्वार है। वीर्य और हड्डियोंसे भरा हुआ शरीर केवल मासते ढका होनेके कारण कैसे सुन्दर कहा जा सकता है? मांस, मेद और चर्बी ही जिसका सार-सर्वस्व है, देहधारियोंके उस शरीरमें सार-तत्त्व क्या है? बताओ। विष्ठा, मूत्र और मलसे पुष्ट हुए शरीरमें कौन मनुष्य अनुरक्त होगा?' इस प्रकार ब्रह्माजीने ज्ञानदृष्टिसे बहुत विचार करके उस नारीसे कहा—'सुन्दरी! जिस प्रकार मैंने मनसे तुम श्रेष्ठ वर्णवाली नारीकी सृष्टि की है, उसके अनुरूप ही तुम मनको उन्मत्त बना देनेवाली उत्पन्न हुई हो।'

तब उस नारीने चतुर्मुख ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा—'नाथ! देखिये, योगियोंसहित समस्त चराचर जगत् मेरे रूपसे मोहित हो गया है; तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है, जो मुझे देखकर क्षुब्ध न हो जाय। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले किसी पुरुषको अपनी स्तुति नहीं करनी चाहिये; तथापि कार्यके उद्देश्यसे मुझे अपनी प्रशंसा करनी पड़ी है। ब्रह्मन्! आपने किसीके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करने-के लिये ही मेरी सृष्टि की है; अतः जगन्नाथ! उसका नाम बताइये, मैं निस्संदेह उसको क्षुब्ध कर डालूँगी। देव! पृथ्वीपर मुझे देखकर पहाड़ भी मोहित हो जायगा; फिर मॉस लेनेवाले जङ्गम प्राणीके लिये तो कहना ही क्या? इसीलिये पुराणोंमें नारीकी ओर देखना, उसके रूपकी चर्चा करना मनुष्योंके लिये उन्मादकारी बतलाया गया है। वह कठिन-से-कठिन व्रतका भी नाश करनेवाला है। मनुष्य तभीतक सन्मार्गपर चलता रहता है, तभीतक इन्द्रियोंको काबूमें रखता है, तभीतक दूसरोंसे लज्जा करता है और तभीतक विनयका आश्रय लेता है, जबतक कि धैर्यको छीन लेनेवाले युवतियोंके नीली पाँखवाले नेत्ररूपी बाण हृदयमें गहरी चोट नहीं पहुँचाते। नाथ! मदिराको तो जब मनुष्य पी लेता है, तब वह चतुर पुरुषके मनमें मोह उत्पन्न करती है; परंतु

भी लक्ष्य किया कि मेरे स्वजन काममोहित होकर इस सुन्दरीकी ओर देख रहे हैं। तब उन्होंने उन सबको समझाते हुए कहा—'जो यहाँ माता, पुत्री, पुत्रवधू, भौजाई, गुरुपत्नी तथा राजाकी रानीकी ओर रागयुक्त मन और आसक्तिपूर्ण दृष्टिसे देखता या उनका चिन्तन करता है, वह घोर नरकमें पड़ता है। जो मनुष्य इन प्रमदाओंको देखकर क्षोभको प्राप्त होता है, उसका जन्मभरका किया हुआ पुण्य व्यर्थ हो जाता है। यदि उन रमणियोंका सङ्ग करे तो दस हजार जन्मोंका पुण्य नष्ट होता है और पुण्यका नाश होनेसे पापी मनुष्य अवश्य ही पहाड़ी चूहा होता है; अतः विद्वान् पुरुष इन युवतियोंको न तो रागयुक्त दृष्टिसे देखे और न रागयुक्त हृदयसे इनका चिन्तन ही करे।

धर्मराज ! जो पुत्रवधू अपने श्वशुरको अपने खुले अङ्ग दिखाती है, उसके हाथ और पैर गल जाते हैं तथा वह 'कृमिभक्ष' नामक नरकमें पड़ती है। जो पापी मनुष्य पुत्रवधूके हाथसे पैर धुलवाता, स्नान करता अथवा शरीरमें तेल आदि मालिश कराता है, उसकी भी ऐसी ही गति होती है। वह एक हजार वर्षतक काले रंगके मुखवाले सूचीमुख नामक कीड़ोंका भक्ष्य बना रहता है। अतः मनुष्य कामनायुक्त मनसे किसी भी नारीकी ओर विशेषतः पुत्री अथवा पुत्रवधूकी ओर न देखे। जो देखता है, वह उसी क्षण पतित हो जाता है। इस प्रकार विचार करके ब्रह्माजीने अपनी दृष्टि और सूक्ष्म कर ली और कहा—'यह जो गोल गोल और कुछ ऊँचाई लिये हुए सुन्दर मुँह दिखायी देता है, वह हड्डियोंका ढाँचामात्र ही तो है, जो चर्म और माससे ढका हुआ है। स्त्रियोंके शरीरमें जो दो सुन्दर नेत्र स्थित हैं; वे वसा और मेदके सिवा और क्या हैं ? छातीपर दोनों स्तनोंमें यह अत्यन्त ऊँचा मास ही तो स्थित है। जघनदेशमें भी अधिक मास ही भरा हुआ है। जिस योनिपर तीनों लोकोंके प्राणी मुग्ध रहते हैं, वह छिपा हुआ मूत्रका ही तो द्वार है। वीर्य और हड्डियोंसे भरा हुआ शरीर केवल माससे ढका होनेके कारण कैसे सुन्दर कहा जा सकता है ? मांस, मेद और चर्बी ही जिसका सार-सर्वस्व है, देहधारियोंके उस शरीरमें सार-तत्त्व क्या है ? बताओ। विष्ठा, मूत्र और मलसे पुष्ट हुए शरीरसे कौन मनुष्य अनुरक्त होगा ?' इस प्रकार ब्रह्माजीने ज्ञानदृष्टिसे बहुत विचार करके उस नारीसे कहा—'सुन्दरी ! जिस प्रकार मैंने मनसे तुम श्रेष्ठ वर्णवाली नारीकी सृष्टि की है, उसके अनुरूप ही तुम मनको उन्मत्त बना देनेवाली उत्पन्न हुई हो।'

तब उस नारीने चतुर्मुख ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा—'नाथ ! देखिये, योगियोंसहित समस्त चराचर जगत् मेरे रूपसे मोहित हो गया है; तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है, जो मुझे देखकर क्षुब्ध न हो जाय। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले किसी पुरुषको अपनी स्तुति नहीं करनी चाहिये; तथापि कार्यके उद्देश्यसे मुझे अपनी प्रशंसा करनी पड़ी है। ब्रह्मन् ! आपने किसीके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करनेके लिये ही मेरी सृष्टि की है; अतः जगन्नाथ ! उसका नाम बताइये, मैं निस्संदेह उसको क्षुब्ध कर डालूँगी। देव ! पृथ्वीपर मुझे देखकर पहाड़ भी मोहित हो जायगा; फिर माँस लेनेवाले जङ्गम प्राणीके लिये तो कहना ही क्या ? इसीलिये पुराणोंमें नारीकी ओर देखना, उसके रूपकी चर्चा करना मनुष्योंके लिये उन्मादकारी बतलाया गया है। वह कठिन-से-कठिन व्रतका भी नाश करनेवाला है। मनुष्य तभीतक सन्मार्गपर चलता रहता है, तभीतक इन्द्रियोंको काबूमें रखता है, तभीतक दूसरोंसे लज्जा करता है और तभीतक विनयका आश्रय लेता है, जबतक कि धैर्यको छीन लेनेवाले युवतियोंके नीली पाँखवाले नेत्ररूपी बाण हृदयमें गहरी चोट नहीं पहुँचाते। नाथ ! मदिराको तो जब मनुष्य पी लेता है, तब वह चतुर पुरुषके मनमें मोह उत्पन्न करती है; परंतु

रुक्माङ्गद-धर्माङ्गद-संवाद, धर्माङ्गदका प्रजाजनोंको उपदेश और प्रजापालन तथा रुक्माङ्गदका रानी सन्ध्यावलीसे वार्तालाप

सौति कहते हैं—महाराज रुक्माङ्गदने मनुष्यलोकके उत्तम भोग भोगते हुए नाना प्रकारसे पीताम्बरधारी भगवान् श्रीहरिकी आराधना की। विप्रगण! युद्धमें पराक्रमसे सुशोभित होनेवाले शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली और वैवस्वत यमको जीतकर यमलोकका मार्ग सूना कर दिया। वैकुण्ठका मार्ग मनुष्योंसे भर दिया और उचित समय जानकर अपने पुत्र धर्माङ्गदको बुलाकर कहा—'बेटा! तुम अपने धर्मपर दृढ़तापूर्वक डटे रहकर अपने पराक्रमसे इस धनधान्यसम्पन्न पृथ्वीका सब ओरसे पालन करो। पुत्रके समर्थ हो जानेपर जो उसे राज्य नहीं सौंप देता, उस राजाके धर्म तथा कीर्तिका निश्चय ही नाश हो जाता है। अपने शक्तिशाली पुत्रके द्वारा यदि पिता सुखी न हो तो उस पुत्रको तीनों लोकोंमें अवश्य पातकी जानना चाहिये। पिताका भार हल्का करनेमें समर्थ होकर भी जो पुत्र उस भारको नहीं सँभालता, वह माताके मल-मूत्रकी भाँति पैदा हुआ है। पुत्र वही है, जो इस पृथ्वीपर पितासे भी अधिक ख्याति लाभ करे। यदि पुत्रके अन्यायजनित दुःखसे पिताको रातभर जागना पड़े तो वह पुत्र एक कल्पतक नरकमें पड़ा रहता है। जो पुत्र घरमें रहकर पिताकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करता है, वह देवताओंद्वारा प्रशंसित हो भगवान्‌का सायुज्य प्राप्त करता है। पुत्र! मैं प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये इस पृथ्वीपर सदा नाना प्रकारके कर्मोंमें आसक्त रहा। प्रजा-पालनमें संलग्न होकर मैंने कभी भोजन और शयनकी परवा नहीं की। कुछ लोग शिवकी उपासनामें तत्पर रहते हैं, कुछ लोग भगवान् सूर्यके भजन-ध्यानमें संलग्न हैं, कोई ब्रह्माजीके पथपर चलते हैं और दूसरे लोग पार्वतीजीकी आराधनामें स्थित हैं। कुछ लोग सायंकाल और सबेरे अग्निहोत्र कर्ममें लगे होते हैं। 'बालक हो या युवक, वृद्ध हो या गर्भिणी स्त्री, कुमारी कन्या, रोगी पुरुष अथवा किसी कष्टसे व्याकुल मनुष्य—ये सब उपवास नहीं कर सकते।' इस तरहकी बातें जिन्होंने कहीं, उन सबकी बातोंका मैंने सब तरहसे खण्डन किया और बहुत दिनोंतक पुराणोंमें कहे हुए वचनोंद्वारा प्रजाके सुखके लिये उन्हें बार-बार समझाया। विद्वानोंको शास्त्रदृष्टिसे समझाकर और मूर्खोंको दण्डपूर्वक कानून करके मैं एकादशीके दिन सबको निराहार रखता आया हूँ।

'वत्स! अपने हों या पराये, कभी किसीको दुःख नहीं देना चाहिये। जो राजा प्रजाकी रक्षा करता है, उसे पुराणोंमें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है। अतः सौम्य! मैं प्रजाके लिये सदा कर्तव्य पालनमें लगा रहा। अपने शरीरको विश्राम देनेका मुझे कभी अवसर नहीं मिला। बेटा! मुझे कभी मदिरा पीने और जूआ खेलने आदिके सुखकी इच्छा नहीं होती। वत्स! इन दुर्व्यसनोंमें फँसा हुआ राजा शीघ्र नष्ट हो जाता है। पुत्र! तुम्हारे ऊपर राज्यका भार रखकर मैं (प्रजाजनोंके रक्षार्थ) शिकार खेलने जाना चाहता हूँ और इसी बहाने अनेकानेक पर्वत, वन, नदी और भाँति-भाँतिके सरोवर देखना चाहता हूँ।'

धर्माङ्गदने कहा—पिताजी! मैं आपके राज्यसम्बन्धी भारी भारको आजसे अपने ऊपर उठाता हूँ। आपकी आज्ञा पालन करनेके सिवा मेरे लिये दूसरा कोई धर्म नहीं है। जो पिताकी बात नहीं मानता, वह धर्मानुष्ठान करते हुए भी नरकमें पड़ता है। इसलिये मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

ऐसा कहकर धर्माङ्गद हाथ जोड़े खड़े रहे। उनके इस वचनको सुनकर राजा रुक्माङ्गद बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने (प्रजाके रक्षार्थ) मृगयाके लिये वनमें जानेका निश्चय किया और पुत्रकी अनुमति प्राप्त कर ली। इस बातको जानकर धर्माङ्गदने प्रसन्नचित्त हो प्रजावर्गको बुलाया और इस प्रकार कहा—'प्रजागण! पिताने मुझे आपलोगोंके पालन और हित-साधनके लिये नियुक्त किया है। सर्वथा धर्म-पालनकी इच्छा रखनेवाले मुझ-जैसे पुत्रको पिताकी आज्ञाका सदैव पालन करना चाहिये। पुत्रके लिये पिताके आदेशका पालन करनेके सिवा दूसरा कोई धर्म नहीं है। अब मैं दण्ड धारण करके राजाके पदपर स्थित हुआ हूँ। मेरे जीते-जी यहाँ कहीं यमराजका शासन नहीं चल सकता। ऐसा समझकर आप सब लोगोंको भगवान् गरुडध्वजका स्मरण तथा भगवदर्पणबुद्धिसे कर्म करते हुए उसके द्वारा भगवान् जनार्दनका यजन करते रहना चाहिये। संसारके भोगोंसे ममता हटाकर अपनी-अपनी जातिके लिये विहित कर्मद्वारा भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। इससे आपको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होगी। प्रजाजनो! यह मैंने पिताजीके मार्गसे एक अधिक मार्ग आपको दिखाया है। ब्रह्मार्पणभावसे कर्ममें संलग्न होकर आप सब लोग ज्ञानमें निपुण

रुक्माङ्गद-धर्माङ्गद-संवाद, धर्माङ्गदका प्रजाजनोंको उपदेश और प्रजापालन तथा रुक्माङ्गदका रानी सन्ध्यावलीसे वार्तालाप

सौति कहते हैं—महाराज रुक्माङ्गदने मनुष्यलोकके उत्तम भोग भोगते हुए नाना प्रकारसे पीताम्बरधारी भगवान् श्रीहरिकी आराधना की। विप्रगण! युद्धमें पराक्रमसे सुशोभित होनेवाले शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली और वैवस्वत यमको जीतकर यमलोकका मार्ग सूना कर दिया। वैकुण्ठका मार्ग मनुष्योंसे भर दिया और उचित समय जानकर अपने पुत्र धर्माङ्गदको बुलाकर कहा—'बेटा! तुम अपने धर्मपर दृढतापूर्वक डटे रहकर अपने पराक्रमसे इस धनधान्यसम्पन्न पृथ्वीका सब ओरसे पालन करो। पुत्रके समर्थ हो जानेपर जो उसे राज्य नहीं सौंप देता, उस राजाके धर्म तथा कीर्तिका निश्चय ही नाश हो जाता है। अपने शक्तिशाली पुत्रके द्वारा यदि पिता सुखी न हो तो उस पुत्रको तीनों लोकोंमें अवश्य पातकी जानना चाहिये। पिताका भार हल्का करनेमें समर्थ होकर भी जो पुत्र उस भारको नहीं सँभालता, वह माताके मल-मूत्रकी भाँति पैदा हुआ है। पुत्र वही है, जो इस पृथ्वीपर पितासे भी अधिक ख्याति लाभ करे। यदि पुत्रके अन्यायजनित दुःखसे पिताको रातभर जागना पड़े तो वह पुत्र एक कल्पतक नरकमें पड़ा रहता है। जो पुत्र घरमें रहकर पिताकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करता है, वह देवताओं-द्वारा प्रशंसित हो भगवान्‌का सायुज्य प्राप्त करता है। पुत्र! मैं प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये इस पृथ्वीपर सदा नाना प्रकारके कर्मोंमें आसक्त रहा। प्रजा-पालनमें संलग्न होकर मैंने कभी भोजन और शयनकी परवा नहीं की। कुछ लोग शिवकी उपासनामें तत्पर रहते हैं, कुछ लोग भगवान् सूर्यके भजन-ध्यानमें संलग्न हैं, कोई ब्रह्माजीके पथपर चलते हैं और दूसरे लोग पार्वतीजीकी आराधनामें स्थित हैं। कुछ लोग सायंकाल और सबेरे अग्निहोत्र कर्ममें लगे होते हैं। 'बालक हो या युवक, बूढ़ा हो या गर्भिणी स्त्री, कुमारी कन्या, रोगी पुरुष अथवा किसी कष्टसे व्याकुल मनुष्य—ये सब उपवास नहीं कर सकते।' इस तरहकी बातें जिन्होंने कहीं, उन सबकी बातोंका मैंने सब तरहसे खण्डन किया और बहुत दिनोंतक पुराणोंमें कहे हुए वचनोंद्वारा प्रजाके सुखके लिये उन्हें बार-बार समझाया। विद्वानोंको शास्त्रदृष्टिसे समझाकर और मूर्खोंको दण्डपूर्वक काबूमें करके मैं एकादशीके दिन सबको निराहार रखता आया हूँ।

'वत्स! अपने हों या पराये, कभी किसीको दुःख नहीं देना चाहिये। जो राजा प्रजाकी रक्षा करता है, उसे पुराणोंमें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है। अतः सौम्य! मैं प्रजाके लिये सदा कर्तव्य पालनमें लगा रहा। अपने शरीरको विश्राम देनेका मुझे कभी अवसर नहीं मिला। बेटा! मुझे कभी मदिरा पीने और जूआ खेलने आदिके सुखकी इच्छा नहीं होती। वत्स! इन दुर्व्यसनोंमें फँसा हुआ राजा शीघ्र नष्ट हो जाता है। पुत्र! तुम्हारे ऊपर राज्यका भार रखकर मैं (प्रजाजनोंके रक्षार्थ) शिकार खेलने जाना चाहता हूँ और इसी बहाने अनेकानेक पर्वत, वन, नदी और भाँति-भाँतिके सरोवर देखना चाहता हूँ।'

धर्माङ्गदने कहा—पिताजी! मैं आपके राज्यसम्बन्धी भारी भारको आजसे अपने ऊपर उठाता हूँ। आपकी आज्ञा पालन करनेके सिवा मेरे लिये दूसरा कोई धर्म नहीं है। जो पिताकी बात नहीं मानता, वह धर्मानुष्ठान करते हुए भी नरकमें पड़ता है। इसलिये मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

ऐसा कहकर धर्माङ्गद हाथ जोड़े खड़े रहे। उनके इस वचनको सुनकर राजा रुक्माङ्गद बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने (प्रजाके रक्षार्थ) मृगयाके लिये वनमें जानेका निश्चय किया और पुत्रकी अनुमति प्राप्त कर ली। इस बातको जानकर धर्माङ्गदने प्रसन्नचित्त हो प्रजावर्गको बुलाया और इस प्रकार कहा—'प्रजागण! पिताने मुझे आपलोगोंके पालन और हित-साधनके लिये नियुक्त किया है। सर्वथा धर्म-पालनकी इच्छा रखनेवाले मुझ-जैसे पुत्रको पिताकी आज्ञाका सदैव पालन करना चाहिये। पुत्रके लिये पिताके आदेशका पालन करनेके सिवा दूसरा कोई धर्म नहीं है। अब मैं दण्ड धारण करके राजाके पदपर स्थित हुआ हूँ। मेरे जीते-जी यहाँ कहीं यमराजका शासन नहीं चल सकता। ऐसा समझकर आप सब लोगोंको भगवान् गरुडध्वजका स्मरण तथा भगवदर्पणबुद्धिसे कर्म करते हुए उसके द्वारा भगवान् जनार्दनका यजन करते रहना चाहिये। संसारके भोगोंसे ममता हटाकर अपनी-अपनी जातिके लिये विहित कर्मद्वारा भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। इससे आपको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होगी। प्रजाजनो! यह मैंने पिताजीके मार्गसे एक अधिक मार्ग आपको दिखाया है। ब्रह्मार्पणभावसे कर्ममें संलग्न होकर आप सब लोग ज्ञानमें निपुण

हुए जो दूसरा मार्ग जानेवाला व्याध हिंसक है; उस मार्गको पकड़कर शिकार करनेवाला पाँचवाँ हिंसक है तथा राजन्! जो वध उसका अनुमोदन करता है, वह छठा हिंसक है। विद्वान् पुरुषोंने हिंसायुक्त धर्मको अधर्म ही माना है। धर्मात्मा राजाओंमें भी मृगोंके प्रति दया-भावना होना ही श्रेष्ठ माना गया है। मैंने आपके हितकी भावनासे ही बार-बार आपको मृगयासे रोकनेका प्रयत्न किया है।'

ऐसी बातें करती हुई अपनी धर्मपत्नीसे राजा रुक्माङ्गदने कहा—'देवि! मैं मृगोंकी हत्या नहीं करूँगा। मृगयाके बहाने हाथमें धनुष लेकर वनमें विचरण करूँगा। वहाँ जो प्रजाके लिये कण्टकरूप हिंसक जन्तु हैं, उन्हींका वध करूँगा। जनपदमें मेरा पुत्र रहे और वनमें मैं। वरानने! राजाको हिंसक जन्तुओं और लुटेरोंसे प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये। शुभे! अपने शरीरसे अथवा पुत्रके द्वारा प्रजाकी रक्षा करना अपना धर्म है। जो राजा प्रजाकी रक्षा नहीं करता, वह धर्मात्मा होनेपर भी नरकमें जाता है; अतः प्रिये! मैं हिंसाभावका परित्याग करके जन-रक्षाके उद्देश्यसे वनमें जाऊँगा।'

रानी सन्ध्यावलीसे ऐसा कहकर राजा रुक्माङ्गद अपने उत्तम अश्वपर आरूढ़ हुए। वह घोड़ा पृथ्वीका आभूषण, चन्द्रमाके समान धवल वर्ण और अश्वसम्बन्धी दोषोंसे रहित था। रूपमें उच्चैःश्रवाके समान और वेगमें वायुके समान था। राजा रुक्माङ्गद पृथ्वीको कम्पित करते हुए-से चले। वे नृपश्रेष्ठ अनेक देशोंको पार करते हुए वनमें जा पहुँचे। उनके घोड़ेके वेगसे तिरस्कृत हो कितने ही हाथी, रथ और घोड़े पीछे छूट जाते थे। वे राजा रुक्माङ्गद एक सौ आठ योजन भूमि लाँघकर सहसा मुनियोंके उत्तम आश्रमपर पहुँच गये। घोड़ेसे उतरकर उन्होंने आश्रमकी रमणीय भूमिमें प्रवेश किया, जहाँ घने-घने बगीचे आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। अशोक, बकुल (मौलसिरी), पुन्नाग (नागकेसर) तथा सरल (अर्जुन) आदि वृक्षोंसे वह स्थान घिरा हुआ था। राजाने उस आश्रमके भीतर जाकर द्विजश्रेष्ठ महर्षि वामदेवका दर्शन किया, जो अग्निके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। उन्हें बहुतसे शिष्योंने घेर रक्खा था। राजाने मुनिको देखकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। उन महर्षिने भी अर्घ्य, पाद्य आदिके द्वारा राजाका सत्कार किया। वे कुशके आसनपर बैठकर हर्षभरी वाणीमें बोले—'मुने! आज मेरा पातक नष्ट

हो गया। भलीभाँति ध्यानमें तत्पर रहनेवाले आप-जैसे महात्माके युगल चरणारविन्दोंका दर्शन करके मैंने समस्त पुण्य-कर्मोंका फल प्राप्त कर लिया।' राजा रुक्माङ्गदकी यह बात सुनकर वामदेवजी बड़े प्रसन्न हुए और कुशल-मङ्गल पूछकर बोले—'राजन्! तुम अत्यन्त पुण्यात्मा तथा भगवान् विष्णुके भक्त हो। महाभाग! तुम्हारी दृष्टि पड़नेसे मेरा यह आश्रम इस पृथ्वीपर अधिक पुण्यमय हो गया। भूमण्डलमें कौन ऐसा राजा होगा, जो तुम्हारी समानता कर सके। तुमने यमराजको जीतकर उनके लोकमें जानेका मार्ग ही नष्ट कर दिया। राजन्! सब लोगोंसे पापनाशिनी (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीका व्रत कराकर सबको तुमने अविनाशी वैकुण्ठधाममें पहुँचा दिया। साम, दान, दण्ड और भेद—इन चार प्रकारके सुन्दर उपायोंसे भूमण्डलकी प्रजाको संयममें रखकर अपने कर्म या विपरीत कर्ममें लगी हुई सब प्रजाको तुमने भगवान् विष्णुके धाममें भेज दिया। नरेश्वर! हम भी तुम्हारे दर्शनकी इच्छा रखते थे सो तुमने स्वयं दर्शन दे दिया। महीपाल! चाण्डाल भी यदि भगवान् विष्णुका भक्त है तो वह द्विजसे भी बढ़कर है और द्विज भी यदि विष्णुभक्तिसे रहित है तो वह चाण्डालसे भी अधिक नीच है। भूपाल!

हुए जो दूसरा मार्ग बतानेवाला नास्तिक हिंसक है; उस मार्गको पकड़कर शिकार करनेवाला पाँचवाँ हिंसक है तथा राजन्! जो राजा उसका अनुमोदन करता है, वह छठा हिंसक है। विद्वान् पुरुषोंने हिंसायुक्त धर्मको अधर्म ही माना है। धर्मात्मा राजाओंमें भी मृगोंके प्रति दया-भावना होना ही श्रेष्ठ माना गया है। मैंने आपके हितकी भावनासे ही बार-बार आपको मृगयासे रोकनेका प्रयत्न किया है।'

ऐसी बातें करती हुई अपनी धर्मपत्नीसे राजा रुक्माङ्गदने कहा—'देवि! मैं मृगोंकी हत्या नहीं करूँगा। मृगयाके बहाने हाथमें धनुष लेकर वनमें विचरण करूँगा। वहाँ जो प्रजाके लिये कण्टकरूप हिंसक जन्तु हैं, उन्हींका वध करूँगा। जनपदमें मेरा पुत्र रहे और वनमें मैं। वरानने! राजाको हिंसक जन्तुओं और लुटेरोंसे प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये। शुभे! अपने शरीरसे अथवा पुत्रके द्वारा प्रजाकी रक्षा करना अपना धर्म है। जो राजा प्रजाकी रक्षा नहीं करता, वह धर्मात्मा होनेपर भी नरकमें जाता है; अतः प्रिये! मैं हिंसाभावका परित्याग करके जन-रक्षाके उद्देश्यसे वनमें जाऊँगा।'

रानी सन्ध्यावलीसे ऐसा कहकर राजा रुक्माङ्गद अपने उत्तम अश्वपर आरूढ हुए। वह घोड़ा पृथ्वीका आभूषण, चन्द्रमाके समान धवल वर्ण और अश्वसम्बन्धी दोषोंसे रहित था। रूपमें उच्चैःश्रवाके समान और वेगमें वायुके समान था। राजा रुक्माङ्गद पृथ्वीको कम्पित करते हुए-से चले। वे नृपश्रेष्ठ अनेक देशोंको पार करते हुए वनमें जा पहुँचे। उनके घोड़ेके वेगसे तिरस्कृत हो कितने ही हाथी, रथ और घोड़े पीछे छूट जाते थे। वे राजा रुक्माङ्गद एक सौ आठ योजन भूमि लाँघकर सहसा मुनियोंके उत्तम आश्रमपर पहुँच गये। घोड़ेसे उतरकर उन्होंने आश्रमकी रमणीय भूमिमें प्रवेश किया, जहाँ पेड़ोंके बगीचे आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। अशोक, चन्दन (मलयगिरी), पुन्नाग (नागकेसर) तथा सरल (अर्जुन) आदि वृक्षोंसे वह स्थान घिरा हुआ था। राजाने उस आश्रमके भीतर जाकर द्विजश्रेष्ठ महर्षि वामदेवका दर्शन किया, जो अग्निके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। उन्हें बहुत-से शिष्योंने घेर रखा था। राजाने मुनिको देखकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। उन महर्षिने भी अर्घ्य, पाद्य आदिके द्वारा राजाका सत्कार किया। वे कुशके आसनपर बैठकर हर्षभरी वाणीमें बोले—'मुने! आज मेरा पातक नष्ट

हो गया। भलीभाँति ध्यानमें तत्पर रहनेवाले आप-जैसे महात्माके युगल चरणारविन्दोंका दर्शन करके मैंने समस्त पुण्य-कर्मोंका फल प्राप्त कर लिया।' राजा रुक्माङ्गदकी यह बात सुनकर वामदेवजी बड़े प्रसन्न हुए और कुशल-मङ्गल पूछकर बोले—'राजन्! तुम अत्यन्त पुण्यात्मा तथा भगवान् विष्णुके भक्त हो। महाभाग! तुम्हारी दृष्टि पड़नेसे मेरा यह आश्रम इस पृथ्वीपर अधिक पुण्यमय हो गया। भूमण्डलमें कौन ऐसा राजा होगा, जो तुम्हारी समानता कर सके। तुमने यमराजको जीतकर उनके लोकमें जानेका मार्ग ही नष्ट कर दिया। राजन्! सब लोगोंसे पापनाशिनी (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीका व्रत कराकर सबको तुमने अविनाशी वैकुण्ठधाममें पहुँचा दिया। साम, दान, दण्ड और भेद—इन चार प्रकारके सुन्दर उपायोंसे भूमण्डलकी प्रजाको संयममें रखकर अपने कर्म या विपरीत कर्ममें लगी हुई सब प्रजाको तुमने भगवान् विष्णुके धाममें भेज दिया। नरेश्वर! हम भी तुम्हारे दर्शनकी इच्छा रखते थे सो तुमने स्वयं दर्शन दे दिया। महीपाल! चाण्डाल भी यदि भगवान् विष्णुका भक्त है तो वह द्विजसे भी बढ़कर है और द्विज भी यदि विष्णुभक्तिसे रहित है तो वह चाण्डालसे भी अधिक नीच है। भूपाल!

वामदेवजीका पूर्वजन्ममें किये हुए 'अशून्यशयन-व्रत'को राजाके वर्तमान सुखका कारण बताना, राजाका मन्दराचलपर जाकर मोहिनीके गीत तथा रूप-दर्शनसे मोहित होकर गिरना और मोहिनीद्वारा उन्हें आश्वासन प्राप्त होना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजाका यह वचन सुनकर महाज्ञानी मुनीश्वर वामदेवजीने एक क्षणतक कुछ चिन्तन किया। फिर राजाके सुख-सौभाग्यका कारण जानकर वे इस प्रकार बोले।

वामदेवजीने कहा—महीपाल! तुम पूर्वजन्ममें शूद्र-जातिमें उत्पन्न हुए थे। उस समय दरिद्रता तथा दुष्ट भार्याने तुम्हारा बड़ा तिरस्कार किया था। तुम्हारी स्त्री पर-पुरुषका सेवन करती थी। राजन्! तुम ऐसी स्त्रीके साथ बहुत वर्षोंतक निवास करते हुए दुःखसे संतप्त होते रहे। एक समय किसी ब्राह्मणके संसर्गसे तुम तीर्थयात्राके लिये गये; फिर सब तीर्थोंमें घूमकर ब्राह्मणकी सेवामें तत्पर हो, तुम पुण्यमयी मथुरापुरीमें जा पहुँचे। महीपते! वहाँ ब्राह्मणदेवताके सङ्गसे तुमने यमुनाजीके सब तीर्थोंमें उत्तम—विश्रामघाट नामक तीर्थमें स्नान करके भगवान् वाराहके मन्दिरमें होती हुई पुराणकी कथा सुनी, जो 'अशून्यशयन-व्रत'के विषयमें थी; चार पारणसे जिसकी सिद्धि होती है, जिसका अनुष्ठान कर लेनेपर मेघके समान श्यामवर्ण देवेश्वर लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथ, जो अशेष पापराशिका नाश करनेवाले हैं, प्रसन्न होते हैं। राजन्! तुमने अपने घर लौटकर वह पवित्र अशून्यशयन-व्रत किया, जो घरमें परम अभ्युदय प्रदान करनेवाला है। महीपते! श्रावण मासकी द्वितीयाको यह पुण्यमय-व्रत ग्रहण करना चाहिये। इससे जन्म, मृत्यु और जरावस्थाका नाश होता है। पृथ्वीपते! इस व्रतमें फल, फूल, धूप, लाल चन्दन, शय्यादान, वस्त्रदान और ब्राह्मण-भोजन आदिके द्वारा लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। राजन्! तुमने यह सब सुन्दर कर्म भी पूरा किया। महीपते! तुमने जो पहले तुम्हारे सम्पूर्ण सुख विस्तारपूर्वक बताये हैं, वे इसी व्रतसे प्राप्त हुए हैं। सुनो—जिसके ऊपर भगवान् जगन्नाथ प्रसन्न न हों, उसके यहाँ ये सुख निश्चय ही नहीं हो सकते। राजेन्द्र! इस जन्ममें भी तुम (एकादशीसंयुक्त) द्वादशी-व्रतके द्वारा श्रीहरिकी पूजा करते हो। राजन्! इससे तुम्हें निश्चितरूपसे भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त होगा।

राजा बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपकी आज्ञा हो तो मैं मन्दराचलपर जानेको उत्सुक हूँ। राज्य-शासनका गुरुतर भार अपने पुत्रके ऊपर छोड़कर मैं हलका हो गया हूँ। अब मेरे कर्तव्यका पालन मेरा पुत्र करेगा।

राजाकी बात सुनकर वामदेवजी इस प्रकार बोले—'नृपश्रेष्ठ! पुत्रका यह सबसे महान् कर्तव्य है कि वह सदा प्रेमपूर्वक पिताको क्लेशसे मुक्त करता रहे। जो मन, वाणी और शरीरकी शक्तिसे सदा पिताकी आज्ञाका पालन करता है, उसे प्रतिदिन गङ्गास्नानका फल मिलता है। जो पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके गङ्गास्नान करनेके लिये जाता है, उस पुत्रकी शुद्धि नहीं होती—यह वैदिक श्रुतिका कथन है *। भूपाल! तुम इच्छानुसार यात्रा करो। तुमने अपना सब कर्तव्य पूरा कर लिया।'

मुनिके ऐसा कहनेपर श्रीमान् राजा रुक्माङ्गद घोड़ेपर चढ़कर शीघ्र गतिसे चले, मानो साक्षात् वायुदेव जा रहे हों। मार्गमें अनेकानेक पर्वत, वन, नदी, सरोवर तथा उपवन आदि सम्पूर्ण आश्चर्यमय दृश्योंको देखते हुए वे राजाधिराज रुक्माङ्गद थोड़े ही समयमें श्वेतगिरि, गन्धमादन और महामेरुको लाँघकर उत्तर-कुरुवर्षको देखते हुए मन्दराचल-पर्वतपर जा पहुँचे, जो सब ओरसे सुवर्णसे आच्छादित था। वहाँ बहुत-से निर्झर झर रहे थे। अनेकानेक कन्दराएँ उस पर्वतकी शोभा बढ़ा रही थीं। सहस्रों नदियोंसे पूर्ण मन्दराचल गङ्गाजीके शुभ जलसे भी प्रक्षालित हो रहा था। यह सब देखते हुए राजा रुक्माङ्गद उस महापर्वतके समीप जा पहुँचे। तत्पश्चात् उन्होंने समस्त मृग आदि पशुओं और

---

* एतद्धि परमं कृत्यं पुत्रस्य नृपपुङ्गव।
यत्क्लेशात् पितरं प्रेम्णा विमोचयति सर्वदा॥
पितुर्वचनकारी च मनोवाक्कायशक्तितः।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते॥
निरस्य पितृवाक्यं तु यो गच्छेत्स्नातुं सुरापगाम्।
नो शुद्धिस्तस्य पुत्रस्य इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥
(ना० उत्तर० ११ । [illegible])

वामदेवजीका पूर्वजन्ममें किये हुए 'अशून्यशयन-व्रत'को राजाके वर्तमान सुखका कारण बताना, राजाका मन्दराचलपर जाकर मोहिनीके गीत तथा रूप-दर्शनसे मोहित होकर गिरना और मोहिनीद्वारा उन्हें आश्वासन प्राप्त होना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजाका यह वचन सुनकर महाज्ञानी मुनीश्वर वामदेवजीने एक क्षणतक कुछ चिन्तन किया। फिर राजाके सुख-सौभाग्यका कारण जानकर वे इस प्रकार बोले।

वामदेवजीने कहा—महीपाल ! तुम पूर्वजन्ममें शूद्र-जातिमें उत्पन्न हुए थे। उस समय दरिद्रता तथा दुष्ट भार्याने तुम्हारा बड़ा तिरस्कार किया था। तुम्हारी स्त्री पर-पुरुषका सेवन करती थी। राजन् ! तुम ऐसी स्त्रीके साथ बहुत वर्षोंतक निवास करते हुए दुःखसे संतप्त होते रहे। एक समय किसी ब्राह्मणके संसर्गसे तुम तीर्थयात्राके लिये गये; फिर सब तीर्थोंमें घूमकर ब्राह्मणकी सेवामें तत्पर हो, तुम पुण्यमयी मथुरापुरीमें जा पहुँचे। महीपते ! वहाँ ब्राह्मणदेवताके सङ्गसे तुमने यमुनाजीके सब तीर्थोंमें उत्तम—विश्रामघाट नामक तीर्थमें स्नान करके भगवान् वाराहके मन्दिरमें होती हुई पुराणकी कथा सुनी, जो 'अशून्यशयन-व्रत'के विषयमें थी; चार पारणसे जिसकी सिद्धि होती है, जिसका अनुष्ठान कर लेनेपर मेघके समान श्यामवर्ण देवेश्वर लक्ष्मीभर्त्ता जगन्नाथ, जो अशेष पापराशिका नाश करनेवाले हैं, प्रसन्न होते हैं। राजन् ! तुमने अपने घर लौटकर वह पवित्र अशून्यशयन-व्रत किया, जो घरमें परम अभ्युदय प्रदान करनेवाला है। महीपते ! श्रावण मासकी द्वितीयाको यह पुण्यमय व्रत ग्रहण करना चाहिये। इससे जन्म, मृत्यु और जरावस्थाका नाश होता है। पृथ्वीपते ! इस व्रतमें फल, फूल, धूप, लाल चन्दन, शय्यादान, वस्त्रदान और ब्राह्मण-भोजन आदिके द्वारा लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। राजन् ! तुमने यह व्रत सुन्दर ढंगसे भी पूरा किया। महीपते ! तुमने जो पहले तुम्हारे समस्त सुख विस्तारपूर्वक बताये हैं, वे इसी व्रतसे प्राप्त हुए हैं। सुनो—जिसके ऊपर भगवान् जगन्नाथ प्रसन्न न हों, उसके यहाँ ये सुख निश्चय ही नहीं हो सकते। राजेन्द्र ! इस जन्ममें भी तुम (एकादशीसंयुक्त) द्वादशी-व्रतके द्वारा श्रीहरिकी पूजा करते हो। राजन् ! इससे तुम्हें निश्चितरूपसे भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त होगा।

राजा बोले—द्विजश्रेष्ठ ! आपकी आज्ञा हो तो मैं मन्दराचलपर जानेको उत्सुक हूँ। राज्य-शासनका गुरुतर भार अपने पुत्रके ऊपर छोड़कर मैं हलका हो गया हूँ। अब मेरे कर्तव्यका पालन मेरा पुत्र करेगा।

राजाकी बात सुनकर वामदेवजी इस प्रकार बोले—'नृपश्रेष्ठ ! पुत्रका यह सबसे महान् कर्तव्य है कि वह सदा प्रेमपूर्वक पिताको क्लेशसे मुक्त करता रहे। जो मन, वाणी और शरीरकी शक्तिसे सदा पिताकी आज्ञाका पालन करता है, उसे प्रतिदिन गङ्गास्नानका फल मिलता है। जो पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके गङ्गास्नान करनेके लिये जाता है, उस पुत्रकी शुद्धि नहीं होती—यह वैदिक श्रुतिका कथन है *। भूपाल ! तुम इच्छानुसार यात्रा करो। तुमने अपना सब कर्तव्य पूरा कर लिया।'

मुनिके ऐसा कहनेपर श्रीमान् राजा रुक्माङ्गद घोड़ेपर चढ़कर शीघ्र गतिसे चले, मानो साक्षात् वायुदेव जा रहे हों। मार्गमें अनेकानेक पर्वत, वन, नदी, सरोवर तथा उपवन आदि सम्पूर्ण आश्चर्यमय दृश्योंको देखते हुए वे राजाधिराज रुक्माङ्गद थोड़े ही समयमें श्वेतगिरि, गन्धमादन और महामेरुको लाँघकर उत्तर-कुरुवर्षको देखते हुए मन्दराचल-पर्वतपर जा पहुँचे, जो सब ओरसे सुवर्णसे आच्छादित था। वहाँ बहुत-से निर्झर झर रहे थे। अनेकानेक कन्दराएँ उस पर्वतकी शोभा बढ़ा रही थीं। सहस्रों नदियोंसे पूर्ण मन्दराचल गङ्गाजीके शुभ जलसे भी प्रक्षालित हो रहा था। यह सब देखते हुए राजा रुक्माङ्गद उस महापर्वतके समीप जा पहुँचे। तत्पश्चात् उन्होंने समस्त मृग आदि पशुओं और

---

* एतद्धि परमं कृत्यं पुत्रस्य नृपपुङ्गव ।
यत्क्लेशात् पितरं प्रेम्णा विमोचयति सर्वदा ॥
पितुर्वचनकारी च मनोवाक्कायशक्तितः ।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते ॥
निरस्य पितृवाक्यं तु यो गच्छेत्स्नातुं सुरापगाम् ।
नो शुद्धिस्तस्य पुत्रस्य इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥
(ना० उत्तर० ११ । ८-

न कर सका और पृथ्वीपर गिर पड़ा । मुझपर कृपा करो ! तुम्हारे मनमें जो भी अभिलाषा होगी; वह सब मैं तुम्हें दूँगा । मैं सम्पूर्ण पृथ्वीको तुम्हारी सेवामें दे दूँगा । इसके साथ ही कोष, खजाना, हाथी, घोड़े, मन्त्री और नगर आदि भी तुम्हारे अधीन हो जायँगे । तुम्हारे लिये मैं अपने-आपको भी तुम्हें अर्पण कर दूँगा; फिर धन, रत्न आदिकी तो बात ही क्या है ? अतः मोहिनी ! मुझपर प्रसन्न हो जाओ ।'

राजाका मधुर वचन सुनकर मोहिनीने मुसकराते हुए उस समय उन्हें उठाया और इस प्रकार कहा—'वसुधापते ! मैं आपसे पर्वतोंसहित पृथ्वी नहीं माँगती । मेरी इतनी ही इच्छा है कि मैं समयपर जो कुछ कहूँ, उसका निःशङ्क होकर आप पालन करते रहें । यदि यह शर्त आप स्वीकार कर लें तो मैं निःसंदेह आपकी सेवा करूँगी ।'

राजा बोले—देवि ! तुम जिससे संतुष्ट रहो, वही शर्त मैं स्वीकार करता हूँ ।

मोहिनीने कहा—आप अपना दाहिना हाथ मुझे दीजिये; क्योंकि वह बहुत धर्म करनेवाला हाथ है । राजन् ! उसके मिलनेसे मुझे आपकी बातपर विश्वास हो जायगा । आप धर्मशील राजा हैं । आप समय आनेपर कभी असत्य नहीं बोलेंगे ।

राजन् ! मोहिनीके ऐसा कहनेपर महाराज रुक्माङ्गदका मन प्रसन्न हो गया और वे इस प्रकार बोले—'सुन्दरि ! जन्मसे लेकर अबतक मैंने कभी क्रीडाविहारमें भी असत्य भाषण नहीं किया है । लो, मैंने पुण्य-चिह्नसे युक्त यह दाहिना हाथ तुम्हें दे दिया । मैंने जन्मसे लेकर अबतक जो भी पुण्य किया है, वह सब, यदि तुम्हारी बात न मानूँ तो, तुम्हारा ही हो जाय । मैंने धर्मको ही साक्षीका स्थान दिया है । कल्याणी ! अब तुम मेरी पत्नी बन जाओ ! मैं इक्ष्वाकु-कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ । मेरा नाम रुक्माङ्गद है । मैं महाराज ऋतध्वजका पुत्र हूँ और मेरे पुत्रका नाम धर्माङ्गद है । तुम मेरी प्रार्थनाका उत्तर देकर मेरे ऊपर कृपादृष्टि करो ।'

राजाके ऐसा कहनेपर मोहिनीने उत्तर देते हुए कहा—'राजन् ! मैं ब्रह्माजीकी पुत्री हूँ । आपकी कीर्ति सुनकर आपके लिये ही इस स्वर्णमय मन्दराचलपर आयी हूँ । केवल आपमें मन लगाये यहाँ तपस्यामें तत्पर थी और देवेश्वर भगवान् शङ्करका संगीतदानके द्वारा पूजन कर रही थी । मुझे विश्वास है कि संगीतका दान देवताओंको अधिक प्रिय है । संगीतसे संतुष्ट हो भगवान् पशुपति तत्काल फल देते हैं । तभी तो अपने प्रियतम आप महाराजको मैंने शीघ्र पा लिया है । राजन् ! आपका मुझपर प्रेम है और मैं भी आपसे प्रेम करती हूँ ।' राजासे ऐसा कहकर मोहिनीने उनका हाथ पकड़ लिया ।

तदनन्तर राजाको उठाकर मोहिनी बोली—महाराज ! मेरे प्रति कोई शङ्का न कीजिये ! मुझे कुमारी एवं पापरहित जानिये । महीपाल ! गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार मेरे साथ विवाह कीजिये । राजन् ! यदि अविवाहिता कन्या गर्भ धारण कर ले तो वह सब वर्णोंमें निन्दित चाण्डाल पुत्रको जन्म देती है । पुराणमें विद्वान् पुरुषोंने तीन प्रकारकी चाण्डाल-योनि मानी है—एक तो वह जो कुमारी कन्यासे उत्पन्न हुआ है, दूसरा वह जो विवाहिता होनेपर भी सगोत्र कन्याके पेटसे पैदा हुआ है । नृपश्रेष्ठ ! शूद्रके वीर्यद्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र तीसरे प्रकारका चाण्डाल है* । महाराज ! इस कारण मुझ कुमारी-के साथ आप विवाह कर लें ।

तब राजा रुक्माङ्गदने मन्दराचलपर उस चपलनयना मोहिनीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया और उसके साथ हँसते हुए-से रहने लगे ।

राजाने कहा—वरानने ! स्वर्गकी प्राप्ति भी मुझे वैसा सुख नहीं दे सकती, जैसा सुख इस मन्दराचल पर्वतपर तुम्हारे मिलनेसे प्राप्त हो रहा है । बाले ! तुम यहीं मेरे साथ रहोगी या मेरे राजमहलमें ?

राजा रुक्माङ्गदकी बात सुनकर मोहिनीने अनुरागपूर्वक मधुर वाणीमें कहा—'राजन् ! जहाँ आपको सुख मिले, वहीं मैं भी रहूँगी । स्वामीका निवासस्थान धन-वैभवसे रहित हो

* चाण्डालयोनयस्तिस्रः पुराणे कवयो विदुः ॥
कुमारीसम्भवा त्वेका सगोत्रापि द्वितीयका ।
ब्राह्मण्यां शूद्रजनिता तृतीया नृपपुङ्गव ॥
(ना० उत्तर० १३ । ३-४)

न कर सका और पृथ्वीपर गिर पड़ा। मुझपर कृपा करो! तुम्हारे मनमें जो भी अभिलाषा होगी, वह सब मैं तुम्हें दूँगा। मैं सम्पूर्ण पृथ्वीको तुम्हारी सेवामें दे दूँगा। इसके साथ ही कोष, खजाना, हाथी, घोड़े, मन्त्री और नगर आदि भी तुम्हारे अधीन हो जायँगे। तुम्हारे लिये मैं अपने-आपको भी तुम्हें अर्पण कर दूँगा; फिर धन, रत्न आदिकी तो बात ही क्या है? अतः मोहिनी! तुमपर प्रसन्न हो जाओ।'

राजाका मधुर वचन सुनकर मोहिनीने मुसकराते हुए उस समय उन्हें उठाया और इस प्रकार कहा—'वसुधापते! मैं आपसे पर्वतोंसहित पृथ्वी नहीं माँगती। मेरी इतनी ही इच्छा है कि मैं समयपर जो कुछ कहूँ, उसका निःशङ्क होकर आप पालन करते रहें। यदि यह शर्त आप स्वीकार कर लें तो मैं निःसंदेह आपकी सेवा करूँगी।'

राजा बोले—देवि! तुम जिससे संतुष्ट रहो, वही शर्त मैं स्वीकार करता हूँ।

मोहिनीने कहा—आप अपना दाहिना हाथ मुझे दीजिये; क्योंकि वह बहुत धर्म करनेवाला हाथ है। राजन्! उसके मिलनेसे मुझे आपकी बातपर विश्वास हो जायगा। आप धर्मशील राजा हैं। आप समय आनेपर कभी असत्य नहीं बोलेंगे।

राजन्! मोहिनीके ऐसा कहनेपर महाराज रुक्माङ्गदका मन प्रसन्न हो गया और वे इस प्रकार बोले—'सुन्दरि! जन्मसे लेकर अबतक मैंने कभी क्रीडाविहारमें भी असत्य भाषण नहीं किया है। लो, मैंने पुण्य-चिह्नसे युक्त यह दाहिना हाथ तुम्हें दे दिया। मैंने जन्मसे लेकर अबतक जो भी पुण्य किया है, वह सब, यदि तुम्हारी बात न मानूँ तो, तुम्हारा ही हो जाय। मैंने धर्मको ही साक्षीका स्थान दिया है। कल्याणी! अब तुम मेरी पत्नी बन जाओ! मैं इक्ष्वाकु-कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा नाम रुक्माङ्गद है। मैं महाराज ऋतध्वजका पुत्र हूँ और मेरे पुत्रका नाम धर्माङ्गद है। तुम मेरी प्रार्थनाका उत्तर देकर मेरे ऊपर कृपादृष्टि करो।'

राजाके ऐसा कहनेपर मोहिनीने उत्तर देते हुए कहा—'राजन्! मैं ब्रह्माजीकी पुत्री हूँ। आपकी कीर्ति सुनकर आपके लिये ही इस स्वर्णमय मन्दराचलपर आयी हूँ। केवल आपमें मन लगाये यहाँ तपस्यामें तत्पर थी और देवेश्वर भगवान् शङ्करका संगीतदानके द्वारा पूजन कर रही थी। मुझे विश्वास है कि संगीतका दान देवताओंको अधिक प्रिय है। संगीतसे संतुष्ट हो भगवान् पशुपति तत्काल फल देते हैं। तभी तो अपने प्रियतम आप महाराजको मैंने शीघ्र पा लिया है। राजन्! आपका मुझपर प्रेम है और मैं भी आपसे प्रेम करती हूँ।' राजासे ऐसा कहकर मोहिनीने उनका हाथ पकड़ लिया।

तदनन्तर राजाको उठाकर मोहिनी बोली—महाराज! मेरे प्रति कोई शङ्का न कीजिये! मुझे कुमारी एवं पापरहित जानिये। महीपाल! गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार मेरे साथ विवाह कीजिये। राजन्! यदि अविवाहिता कन्या गर्भ धारण कर ले तो वह सब वर्णोंमें निन्दित चाण्डाल पुत्रको जन्म देती है। पुराणमें विद्वान् पुरुषोंने तीन प्रकारकी चाण्डाल-योनि मानी है—एक तो वह जो कुमारी कन्यासे उत्पन्न हुआ है, दूसरा वह जो विवाहिता होनेपर भी सगोत्र कन्याके पेटसे पैदा हुआ है। नृपश्रेष्ठ! शूद्रके वीर्यद्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र तीसरे प्रकारका चाण्डाल है*। महाराज! इस कारण मुझ कुमारी-के साथ आप विवाह कर लें।

तब राजा रुक्माङ्गदने मन्दराचलपर उस चपलनयना मोहिनीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया और उसके साथ हँसते हुए-से रहने लगे।

राजाने कहा—वरानने! स्वर्गकी प्राप्ति भी मुझे वैसा सुख नहीं दे सकती, जैसा सुख इस मन्दराचल पर्वतपर तुम्हारे मिलनेसे प्राप्त हो रहा है। बाले! तुम यहीं मेरे साथ रहोगी या मेरे राजमहलमें?

राजा रुक्माङ्गदकी बात सुनकर मोहिनीने अनुरागपूर्वक मधुर वाणीमें कहा—'राजन्! जहाँ आपको सुख मिले, वहीं मैं भी रहूँगी। स्वामीका निवासस्थान धन-वैभवसे रहित हो

---

* चाण्डालयोनयस्तिस्रः पुराणे कवयो विदुः ॥
कुमारीसम्भवा त्वेका सगोत्रापि द्वितीयका।
ब्राह्मण्यां शूद्रजनिता तृतीया नृपपुङ्गव ॥
(ना० उत्तर० १३ । ३-४)

है अथवा भीगे हुए वस्त्रसे सहसा उसपर पट्टी बाँधना हितकर माना गया है। राजन्! जब छिपकली सचेत हुई तो राजाको सामने खड़े देख वेदनासे पीड़ित हो धीरे-धीरे इस प्रकार (मनुष्यकी बोलीमें) बोली—'महाबाहु रुक्माङ्गद! मेरा पूर्वजन्मका चरित्र सुनिये। रमणीय शाकल नगरमें मैं एक ब्राह्मणकी पत्नी थी। प्रभो! मुझमें रूप था, जवानी थी तो भी मैं अपने स्वामीकी अत्यन्त प्यारी न हो सकी। वे सदा मुझसे द्वेष रखते और मेरे प्रति कठोरतापूर्ण बातें कहते थे। महाराज! तब मैंने क्रोधयुक्त हो वशीकरण औषध प्राप्त करनेके लिये ऐसी स्त्रियोंसे सलाह ली, जिन्हें उनके पतियोंने कभी त्याग दिया था (और फिर वे उनके वशमें हो गये थे)। भूपाल! मेरे पूछनेपर उन स्त्रियोंने कहा—'तुम्हारे पति अवश्य वशमें हो जायँगे। उसका एक उपाय है। यहाँ एक संन्यासिनी रहती हैं, उन्हींकी दी हुई दवाओंसे हमारे पति वशमें हुए थे। वरारोहे! तुम भी उन्हीं संन्यासिनीजीसे पूछो। वे तुम्हें कोई अच्छी दवा दे देंगी। तुम उनपर संदेह न करना।' राजन्! तब उन स्त्रियोंके कहनेसे मैं तुरंत वहाँ उनके पास पहुँची और उनसे चूर्ण और रक्षासूत्र लेकर अपने पतिके पास लौट आयी और प्रदोषकालमें दूधके साथ वह चूर्ण स्वामीको पिला दिया। साथ ही रक्षासूत्र, उनके गलेमें बाँध दिया। नृपश्रेष्ठ! जिस दिन स्वामीने वह चूर्ण पीया उसी दिनसे उन्हें क्षयका रोग हो गया और वे प्रतिदिन दुबले होने लगे। उनके गुप्त अङ्गमें घाव हो जानेसे उसमें दूषित व्रणजनित कीड़े पड़ गये। कुछ ही दिन बीतनेपर मेरे स्वामी तेजोहीन हो गये। उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। वे दिन-रात क्रन्दन करते हुए मुझसे बार-बार कहने लगे—'सुन्दरी! मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारी शरणमें आया हूँ, अब कभी परायी स्त्रीके पास नहीं जाऊँगा। मेरी रक्षा करो।' महीपते! उनका वह रोदन सुनकर मैं उन तापसीके पास गयी और पूछा—'मेरे पति किस प्रकार सुखी होंगे?' अब उन्होंने उनके दाहकी शान्तिके लिये दूसरी दवा दी। उस दवाको पिला देनेपर मेरे पति तत्काल स्वस्थ हो गये। तबसे मेरे स्वामी मेरे अधीन हो गये और मेरे कथनानुसार चलने लगे। तदनन्तर कुछ कालके बाद मेरी मृत्यु हो गयी और मैं नरक-यातनामें पड़ी। मुझे ताँबेके भाड़में रखकर पंद्रह युगोंतक जलाया गया। जब थोड़ा-सा पातक शेष रह गया तो मैं इस पृथ्वीपर उतारी गयी और यमराजने मेरा छिपकलीका रूप बना दिया। राजन्! उस रूपमें यहाँ रहते हुए मुझे दस हजार वर्ष बीत गये।

'भूपाल! यदि कोई दूसरी युवती भी पतिके लिये वशीकरणका प्रयोग करती है तो उसके सारे धर्म व्यर्थ हो जाते हैं और वह दुराचारिणी स्त्री ताँबेके भाड़में जलायी जाती है। पति ही नारीका रक्षक है, पति ही गति है तथा पति ही देवता और गुरु है। जो उसके ऊपर वशीकरणका प्रयोग करेगी, वह कैसे सुख पा सकती है? वह तो सैकड़ों बार पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेती और अन्तमें गलित कोढ़के रोगसे युक्त स्त्री होती है। अतः महाराज! स्त्रियोंको सदा अपने स्वामीके आदेशका पालन करना चाहिये *। राजन्! आज मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। यदि आप विजया द्वादशीजनित पुण्य देकर मेरा उद्धार नहीं करेंगे तो मैं फिर पातकयुक्त कुत्सित योनिमें ही पड़ जाऊँगी। आपने जो सरयू और गङ्गाके पापनाशक एवं पुण्यमय संगम-तीर्थमें श्रवण नक्षत्रयुक्त द्वादशीका व्रत किया है, वह पुण्यमयी तिथि प्रेतयोनिसे छुड़ानेवाली तथा मनोवाञ्छित फल देनेवाली है। भूपाल! उस तिथिको जो मनुष्य घरमें रहकर भी भगवान् श्रीहरिका स्मरण करते हैं, उन्हें भगवान् सब तीर्थोंके फलकी प्राप्ति करा देते हैं। भूपते! विजयाके दिन जो दान, जप, होम और देवाराधन आदि किया जाता है, वह सब अक्षय होता है, जिसका ऐसा उत्कृष्ट फल है, उसीका पुण्य मुझे दीजिये। द्वादशीको उपवास करके त्रयोदशीको पारण करनेपर मनुष्य उस एक उपवासके बदले बारह वर्षोंके उपवासका फल पाता है। महीपाल! आप इस पृथ्वीपर धर्मके साक्षात् स्वरूप तथा यमराजके मार्गका विध्वंस करनेवाले हैं; दया करके मुझ दुखियाका उद्धार कीजिये।'

छिपकलीकी बात सुनकर मोहिनी बोली—'प्रभो! मनुष्य अपने ही कियेका सुख और दुःखरूप फल भोगता है; अतः स्वामीके प्रति दुष्ट भाव रखनेवाली इस पापिनीसे अपना क्या प्रयोजन है, जिसने रक्षासूत्र और चूर्ण आदिके द्वारा पतिको वशमें कर रक्खा था। इस पापिनीको छोड़िये, अब हम दोनों नगरकी ओर चलें। जो दूसरे लोगोंके व्यापारमें फँसते हैं, उनका अपना सुख नष्ट होता है।'

---

* यान्यापि युवतिर्भूप भर्तुर्वश्यं समाचरेत्।
वृथाधर्मा दुराचारा दह्यते ताम्रभ्राष्ट्रके॥
भर्ता नाथो गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च।
तस्य वश्य चरेद्या तु सा कथं सुखमाप्नुयात्॥
तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकुष्ठसमन्विता।
तस्माद्भूपाल कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्तृवचः सदा॥
(ना० उत्तर० १४। ३९—४१)

है अथवा भीगे हुए वस्त्रसे सहसा उसपर पट्टी बाँधना हितकर माना गया है। राजन्! जब छिपकली सचेत हुई तो राजाको सामने खड़े देख वेदनासे पीड़ित हो धीरे-धीरे इस प्रकार (मनुष्यकी बोलीमें) बोली—'महाबाहु रुक्माङ्गद! मेरा पूर्वजन्मका चरित्र सुनिये। रमणीय शाकल नगरमें मैं एक ब्राह्मणकी पत्नी थी। प्रभो! मुझमें रूप था, जवानी थी तो भी मैं अपने स्वामीकी अत्यन्त प्यारी न हो सकी। वे सदा मुझसे द्वेष रखते और मेरे प्रति कठोरतापूर्ण बातें कहते थे। महाराज! तब मैंने क्रोधयुक्त हो वशीकरण औषध प्राप्त करनेके लिये ऐसी स्त्रियोंसे सलाह ली, जिन्हें उनके पतियोंने कभी त्याग दिया था (और फिर वे उनके वशमें हो गये थे)। भूपाल! मेरे पूछनेपर उन स्त्रियोंने कहा—'तुम्हारे पति अवश्य वशमें हो जायँगे। उसका एक उपाय है। यहाँ एक संन्यासिनी रहती हैं, उन्हींकी दी हुई दवाओंसे हमारे पति वशमें हुए थे। वरारोहे! तुम भी उन्हीं संन्यासिनीजीसे पूछो। वे तुम्हें कोई अच्छी दवा दे देंगी। तुम उनपर संदेह न करना।' राजन्! तब उन स्त्रियोंके कहनेसे मैं तुरंत वहाँ उनके पास पहुँची और उनसे चूर्ण और रक्षासूत्र लेकर अपने पतिके पास लौट आयी और प्रदोषकालमें दूधके साथ वह चूर्ण स्वामीको पिला दिया। साथ ही रक्षासूत्र, उनके गलेमें बाँध दिया। नृपश्रेष्ठ! जिस दिन स्वामीने वह चूर्ण पीया उसी दिनसे उन्हें क्षयका रोग हो गया और वे प्रतिदिन दुबले होने लगे। उनके गुप्त अङ्गमें घाव हो जानेसे उसमें दूषित व्रणजनित कीड़े पड़ गये। कुछ ही दिन बीतनेपर मेरे स्वामी तेजोहीन हो गये। उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। वे दिन-रात क्रन्दन करते हुए मुझसे बार-बार कहने लगे—'सुन्दरी! मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारी शरणमें आया हूँ, अब कभी परायी स्त्रीके पास नहीं जाऊँगा। मेरी रक्षा करो।' महीपते! उनका वह रोदन सुनकर मैं उन तापसीके पास गयी और पूछा—'मेरे पति किस प्रकार सुखी होंगे?' अब उन्होंने उनके दाहकी शान्तिके लिये दूसरी दवा दी। उस दवाको पिला देनेपर मेरे पति तत्काल स्वस्थ हो गये। तबसे मेरे स्वामी मेरे अधीन हो गये और मेरे कथनानुसार चलने लगे। तदनन्तर कुछ कालके बाद मेरी मृत्यु हो गयी और मैं नरक-यातनामें पड़ी। मुझे ताँबेके भाड़में रखकर पंद्रह युगोंतक जलाया गया। जब थोड़ा-सा पातक शेष रह गया तो मैं इस पृथ्वीपर उतारी गयी और यमराजने मेरा छिपकलीका रूप बना दिया। राजन्! उस रूपमें यहाँ रहते हुए मुझे दस हजार वर्ष बीत गये।

'भूपाल! यदि कोई दूसरी युवती भी पतिके लिये वशीकरणका प्रयोग करती है तो उसके सारे धर्म व्यर्थ हो जाते हैं और वह दुराचारिणी स्त्री ताँबेके भाड़में जलायी जाती है। पति ही नारीका रक्षक है, पति ही गति है तथा पति ही देवता और गुरु है। जो उसके ऊपर वशीकरणका प्रयोग करेगी, वह कैसे सुख पा सकती है? वह तो सैकड़ों बार पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेती और अन्तमें गलित कोढ़के रोगसे युक्त स्त्री होती है। अतः महाराज! स्त्रियोंको सदा अपने स्वामीके आदेशका पालन करना चाहिये *। राजन्! आज मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। यदि आप विजया द्वादशी-जनित पुण्य देकर मेरा उद्धार नहीं करेंगे तो मैं फिर पातकयुक्त कुत्सित योनिमें ही पड़ जाऊँगी। आपने जो सरयू और गङ्गाके पापनाशक एवं पुण्यमय संगम-तीर्थमें श्रवण नक्षत्रयुक्त द्वादशीका व्रत किया है, वह पुण्यमयी तिथि प्रेतयोनिसे छुड़ानेवाली तथा मनोवाञ्छित फल देनेवाली है। भूपाल! उस तिथिको जो मनुष्य घरमें रहकर भी भगवान् श्रीहरिका स्मरण करते हैं, उन्हें भगवान् सब तीर्थोंके फलकी प्राप्ति करा देते हैं। भूपते! विजयाके दिन जो दान, जप, होम और देवाराधन आदि किया जाता है, वह सब अक्षय होता है, जिसका ऐसा उत्कृष्ट फल है, उसीका पुण्य मुझे दीजिये। द्वादशीको उपवास करके त्रयोदशीको पारण करनेपर मनुष्य उस एक उपवासके बदले बारह वर्षोंके उपवासका फल पाता है। महीपाल! आप इस पृथ्वीपर धर्मके साक्षात् स्वरूप तथा यमराजके मार्गका विध्वंस करनेवाले हैं; दया करके मुझ दुखियाका उद्धार कीजिये।'

छिपकलीकी बात सुनकर मोहिनी बोली—'प्रभो! मनुष्य अपने ही कियेका सुख और दुःखरूप फल भोगता है; अतः स्वामीके प्रति दुष्ट भाव रखनेवाली इस पापिनीसे अपना क्या प्रयोजन है, जिसने रक्षासूत्र और चूर्ण आदिके द्वारा पतिको वशमें कर रक्खा था। इस पापिनीको छोड़िये, अब हम दोनों नगरकी ओर चलें। जो दूसरे लोगोंके व्यापारमें फँसते हैं, उनका अपना सुख नष्ट होता है।'

---

* यान्यापि युवतिर्भूप भर्तुर्वश्यं समाचरेत्।
वृथाधर्मा दुराचारा दह्यते ताम्रभ्राष्ट्रके ॥
भर्ता नाथो गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च।
तस्य वश्यं चरेद्या तु सा कथं सुखमाप्नुयात् ॥
तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकुष्ठसमन्विता।
तस्माद्भूपाल कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्तृवचः सदा ॥
(ना० उत्तर० १४। ३९—४१)

मृग, ग्राम, दुर्ग, देश, शुभ नगर, विचित्र सरोवर तथा परम मनोहर भूभागका दर्शन करते हुए वैदिश नगरमें आये, जो उनके अपने अधीन था। गुप्तचरोंके द्वारा महाराजके आगमनका समाचार सुनकर राजकुमार धर्माङ्गद हर्षमें भर गये और अपने वशवर्ती राजाओंसे पिताके सम्बन्धमें इस प्रकार बोले—'नृपवरो! मेरे पिताका अश्व इधर आ पहुँचा है। इसलिये हम सब लोग महाराजके सम्मुख चलें। जो पुत्र पिताके आनेपर उनकी अगवानीके लिये सामने नहीं जाता, वह चौदह इन्द्रोंके राज्यकालतक घोर नरकमें पड़ा रहता है। पिताके स्वागतके लिये सामने जानेवाले पुत्रको पग-पगपर यज्ञका फल प्राप्त होता है—ऐसा पौराणिक द्विज कहते हैं*। अतः उठिये, मैं आपलोगोंके साथ पिताजीको प्रेमपूर्वक प्रणाम करनेके लिये चल रहा हूँ, क्योंकि ये मेरे लिये देवताओंके भी देवता हैं।'

तदनन्तर उन सब राजाओंने 'तथास्तु' कहकर धर्माङ्गदकी आज्ञा स्वीकार की। फिर राजकुमार धर्माङ्गद उन सबके साथ एक कोसतक पैदल चलकर पिताके सम्मुख गये। मार्गमें दूरतक बढ़ जानेके बाद उन्हे राजा रुक्माङ्गद मिले। पिताको पाकर धर्माङ्गदने राजाओंके साथ धरतीपर मस्तक रखकर भक्ति-भावसे उन्हें प्रणाम किया। राजन्! महाराज रुक्माङ्गदने देखा कि मेरा पुत्र प्रेमवश अन्य सब नरेशोंके साथ स्वागतके लिये आया है और प्रणाम कर रहा है, तब वे घोडेसे उतर पड़े और अपनी विशाल भुजाओंसे पुत्रको उठाकर उन्होंने हृदयसे लगा लिया। उसका मस्तक सूँघा और उस समय धर्माङ्गदसे इस प्रकार कहा—'पुत्र! तुम समस्त प्रजाका पालन करते हो न? शत्रुओंको दण्ड तो देते हो न? खजानेको न्यायोपार्जित धनसे भरते रहते हो न? ब्राह्मणोंको अधिक संख्यामें स्थिर वृत्ति तुमने दी है न? तुम्हारा शील-स्वभाव सबको रुचिकर प्रतीत होता है न? तुम किसीसे कठोर बातें तो नहीं कहते? अपने राज्यके भीतर प्रत्येक पुत्र पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाला है न? बहुएँ सासका कहना मानती हैं न? अपने स्वामीके अनुकूल चलती हैं न? तिनके और घाससे भरी हुई गोचरभूमिमें जानेसे गौओंको रोका तो नहीं जाता? अन्न आदिके तोल और माप आदिका तुम सदा निरीक्षण तो करते हो न? वत्स! किसी बड़े कुटुम्बवाले गृहस्थको उसपर अधिक कर लगाकर कष्ट तो नहीं देते? तुम्हारे राज्यमें कहीं भी मदिरापान और जूआ आदिका खेल तो नहीं होता? अपनी सब माताओंको समानभावसे देखते हो न? वत्स! लोग एकादशीके दिन भोजन तो नहीं करते? अमावास्याके दिन लोग श्राद्ध करते हैं न? प्रतिदिन रातके पिछले पहरमें तुम्हारी नींद खुल जाती है न? क्योंकि (अधिक) निद्रा अधर्मका मूल है। निद्रा पाप बढ़ानेवाली है। निद्रा दरिद्रताकी जननी तथा कल्याणका नाश करनेवाली है। निद्राके वशमें रहनेवाला राजा अधिक दिनोंतक पृथ्वीका शासन नहीं कर सकता। निद्रा व्यभिचारिणी स्त्रीकी भाँति अपने स्वामीके लोक-परलोक दोनोंका नाश करनेवाली है।'

पिताके इस प्रकार पूछनेपर राजकुमार धर्माङ्गदने महाराजको बार-बार प्रणाम करके कहा—'तात! इन सब बातोंका पालन किया गया है और आगे भी आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले पुत्र तीनों लोकोंमें धन्य माने जाते हैं। राजन्! जो पिताकी बात नहीं मानता, उसके लिये उससे बढकर और पातक क्या हो सकता है? जो पिताके वचनोंकी अवहेलना करके गङ्गा-स्नान करनेके लिये जाता है और पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता, उसे उस तीर्थ-सेवनका फल नहीं मिलता*। मेरा यह शरीर आपके अधीन है। यह जीवन भी आपके ही अधीन है। मेरे धर्मपर भी आपका ही अधिकार है और आप ही मेरे सबसे बड़े देवता हैं।' अनेकों राजाओंसे घिरे हुए अपने पुत्र धर्माङ्गदकी यह बात सुनकर महाराज रुक्माङ्गदने पुनः उसे छातीसे लगा लिया और इस प्रकार कहा—'बेटा! तुमने ठीक कहा है; क्योंकि तुम धर्मके ज्ञाता हो। पुत्रके लिये पितासे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। बेटा! तुमने अनेक राजाओंसे सुरक्षित सात द्वीपवाली पृथ्वीको जीतकर जो उसकी भलीभाँति रक्षा की है, इससे तुमने मुझे अपने मस्तकपर बिठा लिया। लोकमें

---

* सम्मुखं व्रजमानस्य पुत्रस्य पितरं प्रति।
पदे पदे यज्ञफलं प्रोचुः पौराणिका द्विजाः॥
(ना० उत्तर० १५।१४)

* पितुर्वचनकर्तारः पुत्रा धन्या जगत्त्रये।
किं ततः पातकं राजन् यो न कुर्यात्पितुर्वचः॥
पितृवाक्यमनादृत्य व्रजेत्स्नातुं त्रिमार्गगाम्।
न तत्तीर्थफलं भुङ्क्ते यो न कुर्यात् पितुर्वचः॥
(ना० उत्तर० १५।३४-३५)

मृग, ग्राम, दुर्ग, देश, शुभ नगर, विचित्र सरोवर तथा परम मनोहर भूभागका दर्शन करते हुए वैदिश नगरमें आये, जो उनके अपने अधीन था। गुप्तचरोंके द्वारा महाराजके आगमनका समाचार सुनकर राजकुमार धर्माङ्गद हर्षमें भर गये और अपने वशवर्ती राजाओंसे पिताके सम्बन्धमें इस प्रकार बोले—'नृपवरो! मेरे पिताका अश्व इधर आ पहुँचा है। इसलिये हम सब लोग महाराजके सम्मुख चलें। जो पुत्र पिताके आनेपर उनकी अगवानीके लिये सामने नहीं जाता, वह चौदह इन्द्रोंके राज्यकालतक घोर नरकमें पड़ा रहता है। पिताके स्वागतके लिये सामने जानेवाले पुत्रको पग-पगपर यज्ञका फल प्राप्त होता है—ऐसा पौराणिक द्विज कहते हैं*। अतः उठिये, मैं आपलोगोंके साथ पिताजीको प्रेम-पूर्वक प्रणाम करनेके लिये चल रहा हूँ, क्योंकि ये मेरे लिये देवताओंके भी देवता हैं।'

तदनन्तर उन सब राजाओंने 'तथास्तु' कहकर धर्माङ्गद-की आज्ञा स्वीकार की। फिर राजकुमार धर्माङ्गद उन सबके साथ एक कोसतक पैदल चलकर पिताके सम्मुख गये। मार्ग-में दूरतक बढ़ जानेके बाद उन्हे राजा रुक्माङ्गद मिले। पिता-को पाकर धर्माङ्गदने राजाओंके साथ धरतीपर मस्तक रखकर भक्ति-भावसे उन्हें प्रणाम किया। राजन्! महाराज रुक्माङ्गदने देखा कि मेरा पुत्र प्रेमवश अन्य सब नरेशोंके साथ स्वागतके लिये आया है और प्रणाम कर रहा है, तब वे घोडेसे उतर पड़े और अपनी विशाल भुजाओंसे पुत्रको उठाकर उन्होंने हृदयसे लगा लिया। उसका मस्तक सूँघा और उस समय धर्माङ्गदसे इस प्रकार कहा—'पुत्र! तुम समस्त प्रजाका पालन करते हो न? शत्रुओंको दण्ड तो देते हो न? खजाने-को न्यायोपार्जित धनसे भरते रहते हो न? ब्राह्मणोंको अधिक संख्यामें स्थिर वृत्ति तुमने दी है न? तुम्हारा शील-स्वभाव सब-को रुचिकर प्रतीत होता है न? तुम किसीसे कठोर बातें तो नहीं कहते? अपने राज्यके भीतर प्रत्येक पुत्र पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाला है न? बहुएँ सासका कहना मानती हैं न? अपने स्वामीके अनुकूल चलती हैं न? तिनके और घाससे भरी हुई गोचरभूमिमें जानेसे गौओंको रोका तो नहीं जाता? अन्न आदिके तोल और माप आदिका तुम सदा निरीक्षण तो करते हो न? वत्स! किसी बड़े कुटुम्बवाले गृहस्थको उसपर अधिक कर लगाकर कष्ट तो नहीं देते? तुम्हारे राज्यमें कहीं भी मदिरापान और जूआ आदिका खेल तो नहीं होता? अपनी सब माताओंको समानभावसे देखते हो न? वत्स! लोग एकादशीके दिन भोजन तो नहीं करते? अमावास्याके दिन लोग श्राद्ध करते हैं न? प्रतिदिन रातके पिछले पहरमें तुम्हारी नींद खुल जाती है न? क्योंकि (अधिक) निद्रा अधर्मका मूल है। निद्रा पाप बढ़ानेवाली है। निद्रा दरिद्रताकी जननी तथा कल्याणका नाश करनेवाली है। निद्राके वशमें रहनेवाला राजा अधिक दिनोंतक पृथ्वी-का शासन नहीं कर सकता। निद्रा व्यभिचारिणी स्त्रीकी भाँति अपने स्वामीके लोक-परलोक दोनोंका नाश करने-वाली है।'

पिताके इस प्रकार पूछनेपर राजकुमार धर्माङ्गदने महाराजको बार-बार प्रणाम करके कहा—'तात! इन सब बातोंका पालन किया गया है और आगे भी आपकी आज्ञा-का पालन करूँगा। पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले पुत्र तीनों लोकोंमें धन्य माने जाते हैं। राजन्! जो पिताकी बात नहीं मानता, उसके लिये उससे बढ़कर और पातक क्या हो सकता है? जो पिताके वचनोंकी अवहेलना करके गङ्गा-स्नान करनेके लिये जाता है और पिताकी आज्ञा-का पालन नहीं करता, उसे उस तीर्थ-सेवनका फल नहीं मिलता*। मेरा यह शरीर आपके अधीन है। यह जीवन भी आपके ही अधीन है। मेरे धर्मपर भी आपका ही अधिकार है और आप ही मेरे सबसे बड़े देवता हैं।' अनेकों राजाओंसे घिरे हुए अपने पुत्र धर्माङ्गदकी यह बात सुनकर महाराज रुक्माङ्गदने पुनः उसे छातीसे लगा लिया और इस प्रकार कहा—'बेटा! तुमने ठीक कहा है; क्योंकि तुम धर्म-के ज्ञाता हो। पुत्रके लिये पितासे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। बेटा! तुमने अनेक राजाओंसे सुरक्षित सात द्वीपवाली पृथ्वीको जीतकर जो उसकी भलीभाँति रक्षा की है, इससे तुमने मुझे अपने मस्तकपर बिठा लिया। लोकमें

---

* सम्मुखं व्रजमानस्य पुत्रस्य पितरं प्रति।
पदे पदे यज्ञफलं प्रोचुः पौराणिका द्विजाः॥
(ना० उत्तर० १५। १४)

* पितुर्वचनकर्तारः पुत्रा धन्या जगत्त्रये।
किं ततः पातकं राजन् यो न कुर्यात्पितुर्वचः॥
पितृवाक्यमनादृत्य व्रजेत्स्नातुं त्रिमार्गगाम्।
न तत्तीर्थफलं भुङ्क्ते यो न कुर्यात् पितुर्वचः॥
(ना० उत्तर० १५। ३४-३५)

हुए वे इस प्रकार बोले—'एक माताको प्रणाम करनेपर पुत्रको समूची पृथ्वीकी परिक्रमाका फल प्राप्त होता है; इसी प्रकार बहुत-सी माताओंको प्रणाम करनेपर मुझे महान् पुण्यकी प्राप्ति होगी।' राजाओंसे घिरकर इस प्रकारकी बातें करते हुए धर्माङ्गदने परम समृद्धिशाली, रमणीय वैदिश नगरमें प्रवेश किया। मोहिनीके साथ घोड़ेपर चढ़े हुए राजा रुक्माङ्गद भी तत्काल वहाँ जा पहुँचे। तदनन्तर राजमहलके समीप पहुँचकर परिचारकोंसे पूजित हो राजा घोड़ेसे उतर गये और मोहिनीसे इस प्रकार बोले—'सुन्दरि! तुम अपने पुत्र धर्माङ्गदके घरमें जाओ। ये गुणोंके अनुरूप तुम्हारी गुरुजनोचित सेवा करेंगे।'

पतिके ऐसा कहनेपर मोहिनी पुत्रके महलकी ओर चली। धर्माङ्गदने देखा, पतिकी आज्ञासे माता मोहिनी मेरे महलकी ओर जा रही हैं। तब उन्होंने राजाओंको वहीं छोड़ दिया और कहा, 'आपलोग ठहरें। मैं पिताकी आज्ञासे माताजीकी सेवा करूँगा।' ऐसा कहकर वे गये और माताको घरमें ले गये। पन्द्रह पग चलनेके बाद एक पलंगके पास पहुँचकर उन्होंने माताको उसपर बिठाया। वह पलंग सोनेका बना और रेशमी सूतसे बुना हुआ था। अतः मजबूत होनेके साथ ही कोमल भी था। उस पलंगमें जहाँ-तहाँ मणि और रत्न जड़े हुए थे। मोहिनीको पलंगपर बैठाकर धर्माङ्गदने उसके चरण धोये। संध्यावलीके प्रति राजकुमारके मनमें जो गौरव था, उसी भावसे वे मोहिनीको भी देखते थे। यद्यपि वे सुकुमार एवं तरुण थे और मोहिनी भी तन्वङ्गी तरुणी थी तथापि मोहिनीके प्रति उनके मनमें तनिक भी दोष या विकार नहीं उत्पन्न हुआ। उसके चरण धोकर उन्होंने उस चरणोदकको मस्तकपर चढ़ाया और विनम्र होकर कहा—'माँ! आज मैं बड़ा पुण्यात्मा हूँ।' ऐसा कहकर धर्माङ्गदने स्वयं तथा दूसरे नर-नारियोंके संयोगसे मोहिनी माताके श्रमका निवारण किया और प्रसन्नतापूर्वक उनके लिये सब प्रकारके उत्तम भोग अर्पण किये। क्षीरसागरका मन्थन होते समय जो दो अमृतवर्षी कुण्डल प्राप्त हुए थे, उन्हें धर्माङ्गदने पातालमें जाकर दानवोंको पराजित करके प्राप्त किया था। उन दोनों कुण्डलोंको उन्होंने स्वयं मोहिनीके कानोंमें पहना दिया। आँवलेके फल बराबर सुन्दर मोतीके एक हजार आठ दानोंका बना हुआ सुन्दर हार मोहिनी देवीके वक्षःस्थलपर धारण कराया। सौ भर सुवर्णका एक निष्क (पदक) तथा सहस्रों हीरोंसे विभूषित एक सुन्दर लघूत्तर हार भी उस समय राजकुमारने माताको भेंट किया। दोनों हाथोंमें सोलह-सोलह रत्नमयी चूड़ियाँ, जिनमें हीरे जड़े हुए थे, पहनाये। उनमेंसे एक-एकका मूल्य उसकी कीमतको समझनेवाले लोगोंने एक-एक करोड़ स्वर्ण-मुद्रा निश्चित किया था। केयूर और नूपुर भी जो सूर्यके समान चमकनेवाले थे, राजकुमारने उसे अर्पित कर दिये। उस समय धर्माङ्गदका अङ्ग-अङ्ग आनन्दसे पुलकित हो उठा था। पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुकी जो त्रिलोकसुन्दरी पत्नी थी, उसके पास विद्युत्के समान प्रकाशमान एक जोड़ा सीमन्त (शीशफूल) था। वह पतिव्रता नारी जब पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करने लगी तो अपने सीमन्तको अत्यन्त दुःखके कारण समुद्रमें फेंक दिया। कालान्तरमें धर्माङ्गदके पराक्रमसे संतुष्ट हो समुद्रने उन्हें वे दोनों रत्न भेंट कर दिये। धर्माङ्गदने प्रसन्नतापूर्वक वे दोनों सीमन्त भी मोहिनी माताको दे दिये। अत्यन्त मनोहर दो सुन्दर साड़ियाँ और दो चोलियाँ, जिनकी कीमत कोटि सहस्र स्वर्णमुद्रा थी, धर्माङ्गदने मोहिनीको भेंट कीं। दिव्य माल्य, उत्तम गन्धसे युक्त दिव्य अनुलेपन जो सम्पूर्ण देवताओंके गुरु बृहस्पतिजीके सिद्ध हाथसे तैयार किया हुआ तथा परम दुर्लभ था और जिसे वीर धर्माङ्गदने सम्पूर्ण द्वीपोंकी विजयके समय प्राप्त किया था, मोहिनी देवीको दे दिया। राजन्! इस प्रकार मोहिनीको विभूषित करके राजकुमारने बड़ी भक्तिके साथ षड्रस भोजन मँगाया और अपनी माताके हाथसे मोहिनीको भोजन कराया।

बहुत समझा-बुझाकर माता संध्यावलीको इस सपत्नीसेवाके लिये तैयार कर लिया था। उन्होंने कहा था—'देवि! मेरा और तुम्हारा कर्तव्य है कि राजाकी आज्ञाका पालन करें। स्वामीको स्नेहकी दृष्टिसे जो अधिक प्रिय है, उसके साथ स्वामीका स्नेह छुड़ानेके लिये जो सौतिया-डाह करती है, वह यमलोकमें जाकर ताँबेके भाड़में भूँजी जाती है। अतः पतिव्रता पत्नीका कर्तव्य है कि जिस प्रकार स्वामीको सुख मिले, वैसा ही करे। श्रेष्ठ वर्णवाली माँ! स्वामीकी ही भाँति उनकी प्रियतमा पत्नीको भी आदरकी दृष्टिसे देखना चाहिये। जो सपत्नी अपनी सौतको पतिकी प्यारी देख उसकी सदा सेवा-शुश्रूषा करती है, उसे अक्षय लोक प्राप्त होता है।

'प्राचीन कालकी बात है, एक दुष्ट प्रकृतिका शूद्र था, जिसने अपने सदाचारका परित्याग कर दिया था। उसने अपने घरमें एक वेश्या लाकर रख ली। शूद्रकी विवाहिता पत्नी भी थी, किंतु वह वेश्या ही उसको अधिक प्रिय थी। उसकी स्त्री पतिको प्रसन्न रखनेवाली सती थी। वह वेश्याके

हुए वे इस प्रकार बोले—'एक माताको प्रणाम करनेपर पुत्रको समूची पृथ्वीकी परिक्रमाका फल प्राप्त होता है; इसी प्रकार बहुत-सी माताओंको प्रणाम करनेपर मुझे महान् पुण्यकी प्राप्ति होगी।' राजाओंसे घिरकर इस प्रकारकी बातें करते हुए धर्माङ्गदने परम समृद्धिशाली, रमणीय वैदिश नगरमें प्रवेश किया। मोहिनीके साथ घोड़ेपर चढ़े हुए राजा रुक्माङ्गद भी तत्काल वहाँ जा पहुँचे। तदनन्तर राजमहलके समीप पहुँचकर परिचारकोंसे पूजित हो राजा घोड़ेसे उतर गये और मोहिनीसे इस प्रकार बोले—'सुन्दरि! तुम अपने पुत्र धर्माङ्गदके घरमें जाओ। ये गुणोंके अनुरूप तुम्हारी गुरुजनोचित सेवा करेंगे।'

पतिके ऐसा कहनेपर मोहिनी पुत्रके महलकी ओर चली। धर्माङ्गदने देखा, पतिकी आज्ञासे माता मोहिनी मेरे महलकी ओर जा रही हैं। तब उन्होंने राजाओंको वहीं छोड़ दिया और कहा, 'आपलोग ठहरें। मैं पिताकी आज्ञासे माताजीकी सेवा करूँगा।' ऐसा कहकर वे गये और माताको घरमें ले गये। पद्रह पग चलनेके बाद एक पलंगके पास पहुँचकर उन्होंने माताको उसपर बिठाया। वह पलंग सोनेका बना और रेशमी सूतसे बुना हुआ था। अतः मजबूत होनेके साथ ही कोमल भी था। उस पलंगमें जहाँ-तहाँ मणि और रत्न जड़े हुए थे। मोहिनीको पलंगपर बैठाकर धर्माङ्गदने उसके चरण धोये। संध्यावलीके प्रति राजकुमारके मनमें जो गौरव था, उसी भावसे वे मोहिनीको भी देखते थे। यद्यपि वे सुकुमार एवं तरुण थे और मोहिनी भी तन्वङ्गी तरुणी थी तथापि मोहिनीके प्रति उनके मनमें तनिक भी दोष या विकार नहीं उत्पन्न हुआ। उसके चरण धोकर उन्होंने उस चरणोदकको मस्तकपर चढ़ाया और विनम्र होकर कहा—'माँ! आज मैं बड़ा पुण्यात्मा हूँ।' ऐसा कहकर धर्माङ्गदने स्वयं तथा दूसरे नर-नारियोंके संयोगसे मोहिनी माताके श्रमका निवारण किया और प्रसन्नतापूर्वक उनके लिये सब प्रकारके उत्तम भोग अर्पण किये। क्षीरसागरका मन्थन होते समय जो दो अमृतवर्षी कुण्डल प्राप्त हुए थे, उन्हें धर्माङ्गदने पातालमें जाकर दानवोंको पराजित करके प्राप्त किया था। उन दोनों कुण्डलोंको उन्होंने स्वयं मोहिनीके कानोंमें पहना दिया। आँवलेके फल बराबर सुन्दर मोतीके एक हजार आठ दानोंका बना हुआ सुन्दर हार मोहिनी देवीके वक्षःस्थलपर धारण कराया। सौ भर सुवर्णका एक निष्क (पदक) तथा सहस्रों हीरोंसे विभूषित एक सुन्दर लघूत्तर हार भी उस समय राजकुमारने माताको भेंट किया। दोनों हाथोंमें सोलह-सोलह रत्नमयी चूड़ियाँ, जिनमें हीरे जड़े हुए थे, पहनाये। उनमेंसे एक-एकका मूल्य उसकी कीमतको समझनेवाले लोगोंने एक-एक करोड़ स्वर्ण-मुद्रा निश्चित किया था। केयूर और नूपुर भी जो सूर्यके समान चमकनेवाले थे, राजकुमारने उसे अर्पित कर दिये। उस समय धर्माङ्गदका अङ्ग-अङ्ग आनन्दसे पुलकित हो उठा था। पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुकी जो त्रिलोकसुन्दरी पत्नी थी, उसके पास विद्युत्के समान प्रकाशमान एक जोड़ा सीमन्त (शीशफूल) था। वह पतिव्रता नारी जब पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करने लगी तो अपने सीमन्तको अत्यन्त दुःखके कारण समुद्रमें फेंक दिया। कालान्तरमें धर्माङ्गदके पराक्रमसे संतुष्ट हो समुद्रने उन्हें वे दोनों रत्न भेंट कर दिये। धर्माङ्गदने प्रसन्नतापूर्वक वे दोनों सीमन्त भी मोहिनी माताको दे दिये। अत्यन्त मनोहर दो सुन्दर साड़ियाँ और दो चोलियाँ, जिनकी कीमत कोटि सहस्र स्वर्णमुद्रा थी, धर्माङ्गदने मोहिनीको भेंट कीं। दिव्य माल्य, उत्तम गन्धसे युक्त दिव्य अनुलेपन जो सम्पूर्ण देवताओंके गुरु बृहस्पतिजीके सिद्ध हाथसे तैयार किया हुआ तथा परम दुर्लभ था और जिसे वीर धर्माङ्गदने सम्पूर्ण द्वीपोंकी विजयके समय प्राप्त किया था, मोहिनी देवीको दे दिया। राजन्! इस प्रकार मोहिनीको विभूषित करके राजकुमारने बड़ी भक्तिके साथ षड्रस भोजन मँगाया और अपनी माताके हाथसे मोहिनीको भोजन कराया।

बहुत समझा-बुझाकर माता संध्यावलीको इस सपत्नीसेवाके लिये तैयार कर लिया था। उन्होंने कहा था—'देवि! मेरा और तुम्हारा कर्तव्य है कि राजाकी आज्ञाका पालन करें। स्वामीको स्नेहकी दृष्टिसे जो अधिक प्रिय है, उसके साथ स्वामीका स्नेह छुड़ानेके लिये जो सौतिया-डाह करती है, वह यमलोकमें जाकर ताँबेके भाड़में भूँजी जाती है। अतः पतिव्रता पत्नीका कर्तव्य है कि जिस प्रकार स्वामीको सुख मिले, वैसा ही करे। श्रेष्ठ वर्णवाली माँ! स्वामीकी ही भाँति उनकी प्रियतमा पत्नीको भी आदरकी दृष्टिसे देखना चाहिये। जो सपत्नी अपनी सौतको पतिकी प्यारी देख उसकी सदा सेवा-शुश्रूषा करती है, उसे अक्षय लोक प्राप्त होता है।

'प्राचीन कालकी बात है, एक दुष्ट प्रकृतिका शूद्र था, जिसने अपने सदाचारका परित्याग कर दिया था। उसने अपने घरमें एक वेश्या लाकर रख ली। शूद्रकी विवाहिता पत्नी भी थी, किंतु वह वेश्या ही उसको अधिक प्रिय थी। उसकी स्त्री पतिको प्रसन्न रखनेवाली सती थी। वह वेश्याके

संध्यावलीका मोहिनीको भोजन कराना और धर्माङ्गदके मातृभक्तिपूर्ण वचन

धर्माङ्गद कहते हैं—माँ ! इस बातपर विचार करके मोहिनीको भोजन कराओ। ऐसा धर्म तीनों लोकोंमें कहीं नहीं मिलेगा। श्रेष्ठ वर्णवाली माताजी ! पिताको सुख पहुँचाना ही हम दोनोंका कर्तव्य है। इससे इस लोकमें हमारे पापोंका भलीभाँति नाश होगा और परलोकमें अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होगी।

पुत्रकी यह बात सुनकर देवी संध्यावलीने उसके साथ कुछ विचार-विमर्श किया। फिर पुत्रको बार-बार हृदयसे लगाकर उसका मस्तक सूँघा और इस प्रकार कहा—'बेटा! तुम्हारी बात धर्मसे युक्त है। अतः मैं उसका पालन करूँगी। ईर्ष्या और अभिमान छोड़कर मोहिनीको अपने हाथसे भोजन कराऊँगी। बेटा ! व्रतराज एकादशीके अनुष्ठानसे तुझ-जैसा पुत्र मुझे प्राप्त हुआ है। लोकमें ऐसा फलदायक व्रत दूसरा नहीं देखा जाता। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला तथा तत्काल फल देकर अपने प्रति विश्वास बढ़ानेवाला है। शोक और संताप देनेवाले अनेक पुत्रोंके जन्मसे क्या लाभ ? समूचे कुलको सहारा देनेवाला एक ही पुत्र श्रेष्ठ है, जिसके भरोसे समस्त कुल सुख-शान्तिका अनुभव करता है*। तुम्हें अपने गर्भमें पाकर मैं तीनों लोकोंसे ऊपर उठ गयी। पुत्र ! तुम शूरवीर, सातो द्वीपोंके अधिपति तथा पिताके आज्ञापालक हो एवं पिता और माता दोनोंको आह्लाद प्रदान करते हो। ऐसे पुत्रको ही विद्वानोंने पुत्र कहा है। दूसरे सभी नाममात्रके पुत्र हैं।'

ऐसा वचन कहकर उस समय देवी संध्यावलीने षड्रस भोजन रखनेके लिये पात्रोंकी ओर दृष्टिपात किया। राजन् ! उसकी दृष्टि पड़नेमात्रसे वे सभी पात्र उत्तम भोजनसे भर गये। महीपते ! मोहिनीको भोजन करानेके लिये कुछ-कुछ गरम और षड्रसयुक्त भोजनकी तथा अमृतके समान स्वादिष्ट जलकी व्यवस्था हो गयी। तदनन्तर रत्नजटित सुवर्णमयी चम्मच लेकर मनोहर हास्यवाली रानी संध्यावलीने शान्तभावसे मोहिनीको भोजन परोसा। सोनेके चिकने पात्रमें, जिसमे उचितमात्रामें सब प्रकारका भोज्य पदार्थ रक्खा हुआ था, मोहिनी देवी सोनेके सुन्दर आसनपर बैठकर अपनी रुचिके अनुकूल सुसंस्कृत अन्न धीरे-धीरे भोजन करने लगी। उस समय धर्माङ्गदके द्वारा व्यजन डुलाया जा रहा था।

मोहिनीके भोजन कर लेनेके अनन्तर राजकुमारने उसे प्रणाम करके कहा—'देवि ! इन सध्यावली देवीने मुझे तीन वर्षतक अपने गर्भमें धारण किया है तथा आपके पतिदेवके प्रसादसे पलकर मैं इतना बडा हुआ हूँ। मनोहर अङ्गोंवाली देवि ! तीनों लोकोंमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे देकर पुत्र अपनी मातासे उऋण हो सके।'

पुत्र धर्माङ्गदके ऐसा कहनेपर मोहिनीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी—'जिसमें पिताकी सेवाका भाव है, उसके समान इस पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं है। जो इस प्रकार गुणोंमें बढ़ा-चढ़ा है, उस धर्मात्मा पुत्रके प्रति मैं माता होकर कैसे कुत्सित बर्ताव कर सकती हूँ।' मोहिनी इस तरह नाना प्रकारके विचार करके पुत्रसे बोली—'तुम मेरे पतिको शीघ्र बुला लाओ, मैं उनके बिना दो घड़ी भी नहीं रह सकती।' तब उसने तुरत ही पिताके पास जा उन्हें प्रणाम करके कहा—'तात ! मेरी छोटी माँ आपका शीघ्र दर्शन करना चाहती है।' पुत्रकी यह बात सुनकर राजा रुक्माङ्गद तत्काल वहाँ जानेको उद्यत हुए। उनके मुखपर प्रसन्नता छा गयी। उन्होंने महलमें प्रवेश करके देखा, मोहिनी पलगपर सो रही है। उसके शरीरसे तपाये हुए सुवर्णकी-सी प्रभा फैल रही है और उस बालाकी महारानी संध्यावली धीरे-धीरे सेवा कर रही हैं। प्रचुर दक्षिणा देनेवाले राजा रुक्माङ्गदको शय्याके समीप आया देख सुन्दरी मोहिनीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और उसने राजासे कहा—'प्राणनाथ ! कोमल बिछौनोंसे युक्त इस पलंगपर बैठिये। जो मानव दूसरे-दूसरे कार्योंमें आसक्त होकर अपनी युवती भार्याका सेवन नहीं करता, उसकी वह भार्या कैसे रह सकती है ? जिसका दान नहीं किया जाता, वह धन भी चला जाता है, जिसकी रक्षा नहीं की जाती, वह राज्य अधिक कालतक नहीं टिक पाता और जिसका अभ्यास नहीं किया जाता, वह शास्त्रज्ञान भी टिकाऊ नहीं होता। आलसी लोगोंको विद्या नहीं मिलती। सदा व्रतमें ही लगे रहनेवालोंको पत्नीकी प्राप्ति नहीं होती। पुरुषार्थके बिना लक्ष्मी नहीं मिलती।

---

* किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसंतापकारकैः।
वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्रमते कुलम्॥
(ना० उत्तर० १७। १०)

संध्यावलीका मोहिनीको भोजन कराना और धर्माङ्गदके मातृभक्तिपूर्ण वचन

धर्माङ्गद कहते हैं—माँ ! इस बातपर विचार करके मोहिनीको भोजन कराओ। ऐसा धर्म तीनों लोकोंमें कहीं नहीं मिलेगा। श्रेष्ठ वर्णवाली माताजी ! पिताको सुख पहुँचाना ही हम दोनोंका कर्तव्य है। इससे इस लोकमें हमारे पापोंका भलीभाँति नाश होगा और परलोकमें अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होगी।

पुत्रकी यह बात सुनकर देवी संध्यावलीने उसके साथ कुछ विचार-विमर्श किया। फिर पुत्रको बार-बार हृदयसे लगाकर उसका मस्तक सूँघा और इस प्रकार कहा—'बेटा! तुम्हारी बात धर्मसे युक्त है। अतः मैं उसका पालन करूँगी। ईर्ष्या और अभिमान छोड़कर मोहिनीको अपने हाथसे भोजन कराऊँगी। बेटा ! व्रतराज एकादशीके अनुष्ठानसे तुझ-जैसा पुत्र मुझे प्राप्त हुआ है। लोकमें ऐसा फलदायक व्रत दूसरा नहीं देखा जाता। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला तथा तत्काल फल देकर अपने प्रति विश्वास बढाने-वाला है। शोक और संताप देनेवाले अनेक पुत्रोंके जन्मसे क्या लाभ ? समूचे कुलको सहारा देनेवाला एक ही पुत्र श्रेष्ठ है, जिसके भरोसे समस्त कुल सुख-शान्तिका अनुभव करता है*। तुम्हें अपने गर्भमें पाकर मैं तीनों लोकोंसे ऊपर उठ गयी। पुत्र ! तुम शूरवीर, सातो द्वीपोंके अधिपति तथा पिताके आज्ञापालक हो एवं पिता और माता दोनोंको आह्लाद प्रदान करते हो। ऐसे पुत्रको ही विद्वानोंने पुत्र कहा है। दूसरे सभी नाममात्रके पुत्र हैं।'

ऐसा वचन कहकर उस समय देवी संध्यावलीने षड्रस भोजन रखनेके लिये पात्रोंकी ओर दृष्टिपात किया। राजन् ! उसकी दृष्टि पड़नेमात्रसे वे सभी पात्र उत्तम भोजनसे भर गये। महीपते ! मोहिनीको भोजन करानेके लिये कुछ-कुछ गरम और षड्रसयुक्त भोजनकी तथा अमृतके समान स्वादिष्ट जलकी व्यवस्था हो गयी। तदनन्तर रत्नजटित सुवर्णमयी चम्मच लेकर मनोहर हास्यवाली रानी संध्यावली-ने शान्तभावसे मोहिनीको भोजन परोसा। सोनेके चिकने पात्रमें, जिसमे उचितमात्रामें सब प्रकारका भोज्य पदार्थ रक्खा हुआ था, मोहिनी देवी सोनेके सुन्दर आसनपर बैठकर अपनी रुचिके अनुकूल सुसंस्कृत अन्न धीरे-धीरे भोजन करने लगी। उस समय धर्माङ्गदके द्वारा व्यजन डुलाया जा रहा था।

मोहिनीके भोजन कर लेनेके अनन्तर राजकुमारने उसे प्रणाम करके कहा—'देवि ! इन सध्यावली देवीने मुझे तीन वर्षतक अपने गर्भमें धारण किया है तथा आपके पतिदेवके प्रसादसे पलकर मैं इतना बडा हुआ हूँ। मनोहर अङ्गोंवाली देवि ! तीनों लोकोंमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे देकर पुत्र अपनी मातासे उऋण हो सके।'

पुत्र धर्माङ्गदके ऐसा कहनेपर मोहिनीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी—'जिसमें पिताकी सेवाका भाव है, उसके समान इस पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं है। जो इस प्रकार गुणोंमें बढ़ा-चढ़ा है, उस धर्मात्मा पुत्रके प्रति मैं माता होकर कैसे कुत्सित बर्ताव कर सकती हूँ।' मोहिनी इस तरह नाना प्रकारके विचार करके पुत्रसे बोली—'तुम मेरे पतिको शीघ्र बुला लाओ, मैं उनके बिना दो घड़ी भी नहीं रह सकती।' तब उसने तुरत ही पिताके पास जा उन्हें प्रणाम करके कहा—'तात ! मेरी छोटी माँ आपका शीघ्र दर्शन करना चाहती है।' पुत्रकी यह बात सुनकर राजा रुक्माङ्गद तत्काल वहाँ जानेको उद्यत हुए। उनके मुखपर प्रसन्नता छा गयी। उन्होंने महलमें प्रवेश करके देखा, मोहिनी पलग-पर सो रही है। उसके शरीरसे तपाये हुए सुवर्णकी-सी प्रभा फैल रही है और उस बालाकी महारानी संध्यावली धीरे-धीरे सेवा कर रही हैं। प्रचुर दक्षिणा देनेवाले राजा रुक्माङ्गदको शय्याके समीप आया देख सुन्दरी मोहिनीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और उसने राजासे कहा—'प्राण-नाथ ! कोमल बिछौनोंसे युक्त इस पलंगपर बैठिये। जो मानव दूसरे-दूसरे कार्योंमें आसक्त होकर अपनी युवती भार्या-का सेवन नहीं करता, उसकी वह भार्या कैसे रह सकती है ? जिसका दान नहीं किया जाता, वह धन भी चला जाता है, जिसकी रक्षा नहीं की जाती, वह राज्य अधिक कालतक नहीं टिक पाता और जिसका अभ्यास नहीं किया जाता, वह शास्त्रज्ञान भी टिकाऊ नहीं होता। आलसी लोगोंको विद्या नहीं मिलती। सदा व्रतमें ही लगे रहनेवालोंको पत्नीकी प्राप्ति नहीं होती। पुरुषार्थके बिना लक्ष्मी नहीं मिलती।

---

* किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसंतापकारकैः।
वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्रमते कुलम्॥
(ना० उत्तर० १७। १०)

शुद्ध एवं अक्षय सुवर्णकी ढाली हुई एक-एक लाख मुद्राएँ उन्होंने प्रत्येक माताको अर्पित कीं। साथ ही एक-एकके लिये सौसे अधिक दास-दासियाँ भी दीं। घडेके समान थनवाली दस-दस हजार दुधारू गायें और एक-एक हजार बैल भी दिये। तदनन्तर भक्तिभावसे राजकुमारने सभी माताओंको एक-एक हजार सोनेके आभूषण दिये, जिनमें हीरे जड़े हुए थे। आँवले बराबर मोतीके बने हुए प्रकाशमान हारोंकी कई ढेरियाँ लगाकर उन माताओंको दे दीं। सभीको पाँच-पाँच या सात-सात वलय (कड़े) भी दिये। महीपते! महारानी संध्यावलीके पास चन्द्रमाके समान चमकीले ढाई सौ मोतीके हार थे। धर्माङ्गदने एक-एक माताको दो-दो मनोहर हार दिये। प्रत्येकको चौबीस सौ सोनेकी थालियाँ और इतने ही घड़े प्रदान किये। राजन्! हर एक माताके लिये सौ-सौ सुन्दर पालकियाँ और उनके ढोनेवाले मोटे-ताजे शीघ्रगामी कहार दिये। इस प्रकार कुबेरके समान शोभा पानेवाले उस धन्य राजकुमारने बहुत-सी माताओंको बहुत-सा धन देकर उन सबकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर यह वचन कहा—'माताओ! मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करता हूँ। आप सब लोग मेरे अनुरोधसे पतिके सुखकी इच्छा रखकर मेरे पितासे आज ही चलकर कहें कि—'नरेश्वर! ब्रह्मकुमारी मोहिनी बड़ी सुशीला हैं। आप इनके साथ सैकडों वर्षोंतक सुखसे एकान्तमें निवास करें।'

पुत्रका यह वचन सुनकर सबके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च हो आया। उन सबने महाराजसे जाकर कहा—'आर्यपुत्र! आप ब्रह्मकुमारी मोहिनीके साथ दीर्घकालतक निवास करें। आपके पुत्रके तेजसे हमारी हार्दिक भावना दुःखरहित हो गयी है, इसलिये हमने आपसे यह बात कही है। आप इसपर विश्वास कीजिये।'

राजाका अपने पुत्रको राज्य सौंपकर नीतिका उपदेश देना और धर्माङ्गदके सुराज्यकी स्थिति

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! अपनी पत्नियोंके इस प्रकार अनुमति देनेपर महाराज रुक्माङ्गदके हर्षकी सीमा न रही। वे अपने पुत्र धर्माङ्गदसे इस प्रकार बोले—'बेटा! इस सात द्वीपोंवाली पृथ्वीका पालन करो। सदा उद्यमशील और सावधान रहना। किस अवसरपर क्या करना उचित है, इसका सदा ध्यान रखना। सदाचारका पालन हो रहा है या नहीं, इसकी ओर दृष्टि रखना। सदा सचेत रहना और वाणिज्य-व्यवसायको सदा प्रिय कार्य समझकर उसे बढाना। राज्यमें सदा भ्रमण करते रहना, निरन्तर दानमें अनुरक्त रहना, कुटिलतासे सदा दूर ही रहना और नित्य-निरन्तर सदाचारके पालनमें संलग्न रहना। बेटा! राजाओंके लिये सर्वत्र अविश्वास रखना ही उत्तम बताया जाता है। खजानेकी जानकारी रखना आवश्यक है।'

पिताकी यह बात सुनकर उत्तम बुद्धिवाले धर्माङ्गदने भक्तिभावसे मातासहित उन्हें प्रणाम किया। फिर उस राजकुमारने उन नृपश्रेष्ठ रुक्माङ्गदको असंख्य धन दिया। उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये बहुत-से सेवकों और कण्ठमें सुवर्णका हार धारण करनेवाली बहुत-सी दासियोंको नियुक्त किया। इस प्रकार पिताको सुख पहुँचानेके लिये पुत्रने सारी व्यवस्था की। फिर उसने पृथ्वीकी रक्षाका कार्य सँभाला। तदनन्तर अनेक राजाओंसे घिरे हुए राजा धर्माङ्गद सातों द्वीपोंसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे। उनके भ्रमण करनेसे परिणाम यह होता था कि जनताके मनमें पापबुद्धि नहीं आती थी। उनके राज्यमें कोई भी वृक्ष फल और फूलसे हीन नहीं था। कोई भी खेत ऐसा नहीं था जिसमें जौ या धान आदिकी खेती लहलहाती न हो। उस राज्यकी सभी गौएँ घड़ाभर दूध देती थीं। उस दूधमें घीका अंश अधिक होता था और उसमें शक्करके समान मिठास रहती थी। वह दूध उत्तम पेय, सब रोगोंका नाशक, पापनिवारक तथा पुष्टिवर्धक होता था। कोई भी मनुष्य अपने धनको छिपाकर नहीं रखता था। पत्नी अपने पतिसे कटुवचन नहीं बोलती थी। पुत्र विनयशील तथा पिताकी आज्ञाके पालनमें तत्पर होता था। पुत्रवधू सासके हाथमें रहती थी। साधारण लोग ब्राह्मणोंके उपदेशके अनुसार चलते थे। श्रेष्ठ द्विज वेदोक्त धर्मोंका पालन करते थे। मनुष्य एकादशीके दिन भोजन नहीं करते थे। पृथ्वीपर नदियाँ कभी सूखती नहीं थीं। धर्माङ्गदके राज्यपालनमें प्रवृत्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् पुण्यात्मा हो गया था। भगवान्‌के दिन एकादशी-व्रतका सेवन करनेसे सब लोग इस जगत्‌में सुख भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें जाते थे। भूपाल! चोर और लुटेरोंका भय नहीं था। अतः अँधेरी रातमें भी कोई अपने घरके दरवाजे नहीं बंद करते थे। इच्छानुसार विचरनेवाले अतिथि घरपर आकर ठहरते थे। (किसीके लिये कहीं रोक-टोक नहीं थी।) हल चलाये बिना ही सब ओर अन्नकी अच्छी उपज होती थी। केवल माताके दूधसे बच्चे खूब हृष्ट-पुष्ट रहते थे और पतिके संयोगसे

शुद्ध एवं अक्षय सुवर्णकी ढाली हुई एक-एक लाख मुद्राएँ उन्होंने प्रत्येक माताको अर्पित कीं। साथ ही एक-एकके लिये सौसे अधिक दास-दासियाँ भी दीं। घडेके समान थनवाली दस-दस हजार दुधारू गायें और एक-एक हजार बैल भी दिये। तदनन्तर भक्तिभावसे राजकुमारने सभी माताओंको एक-एक हजार सोनेके आभूषण दिये, जिनमें हीरे जड़े हुए थे। आँवले बराबर मोतीके बने हुए प्रकाशमान हारोंकी कई ढेरियाँ लगाकर उन माताओंको दे दीं। सभीको पाँच-पाँच या सात-सात वलय (कड़े) भी दिये। महीपते! महारानी संध्यावलीके पास चन्द्रमाके समान चमकीले ढाई सौ मोतीके हार थे। धर्माङ्गदने एक-एक माताको दो-दो मनोहर हार दिये। प्रत्येकको चौबीस सौ सोनेकी थालियाँ और इतने ही घड़े प्रदान किये। राजन्! हर एक माताके लिये सौ-सौ सुन्दर पालकियाँ और उनके ढोनेवाले मोटे-ताजे शीघ्रगामी कहार दिये। इस प्रकार कुबेरके समान शोभा पानेवाले उस धन्य राजकुमारने बहुत-सी माताओंको बहुत-सा धन देकर उन सबकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर यह वचन कहा—'माताओ! मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करता हूँ। आप सब लोग मेरे अनुरोधसे पतिके सुखकी इच्छा रखकर मेरे पितासे आज ही चलकर कहें कि—"नरेश्वर! ब्रह्मकुमारी मोहिनी बड़ी सुशीला हैं। आप इनके साथ सैकडों वर्षोंतक सुखसे एकान्तमें निवास करें।'

पुत्रका यह वचन सुनकर सबके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च हो आया। उन सबने महाराजसे जाकर कहा—'आर्यपुत्र! आप ब्रह्मकुमारी मोहिनीके साथ दीर्घकालतक निवास करें। आपके पुत्रके तेजसे हमारी हार्दिक भावना दुःखरहित हो गयी है, इसलिये हमने आपसे यह बात कही है। आप इसपर विश्वास कीजिये।'

राजाका अपने पुत्रको राज्य सौंपकर नीतिका उपदेश देना और धर्माङ्गदके सुराज्यकी स्थिति

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! अपनी पत्नियोंके इस प्रकार अनुमति देनेपर महाराज रुक्माङ्गदके हर्षकी सीमा न रही। वे अपने पुत्र धर्माङ्गदसे इस प्रकार बोले—'बेटा! इस सात द्वीपोंवाली पृथ्वीका पालन करो। सदा उद्यमशील और सावधान रहना। किस अवसरपर क्या करना उचित है, इसका सदा ध्यान रखना। सदाचारका पालन हो रहा है या नहीं, इसकी ओर दृष्टि रखना। सदा सचेत रहना और वाणिज्य-व्यवसायको सदा प्रिय कार्य समझकर उसे बढाना। राज्यमें सदा भ्रमण करते रहना, निरन्तर दानमें अनुरक्त रहना, कुटिलतासे सदा दूर ही रहना और नित्य-निरन्तर सदाचारके पालनमें संलग्न रहना। बेटा! राजाओंके लिये सर्वत्र अविश्वास रखना ही उत्तम बताया जाता है। खजानेकी जानकारी रखना आवश्यक है।'

पिताकी यह बात सुनकर उत्तम बुद्धिवाले धर्माङ्गदने भक्तिभावसे मातासहित उन्हें प्रणाम किया। फिर उस राजकुमारने उन नृपश्रेष्ठ रुक्माङ्गदको असंख्य धन दिया। उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये बहुत-से सेवकों और कण्ठमें सुवर्णका हार धारण करनेवाली बहुत-सी दासियोंको नियुक्त किया। इस प्रकार पिताको सुख पहुँचानेके लिये पुत्रने सारी व्यवस्था की। फिर उसने पृथ्वीकी रक्षाका कार्य सँभाला। तदनन्तर अनेक राजाओंसे घिरे हुए राजा धर्माङ्गद सातों द्वीपोंसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे। उनके भ्रमण करनेसे परिणाम यह होता था कि जनताके मनमें पापबुद्धि नहीं आती थी। उनके राज्यमें कोई भी वृक्ष फल और फूलसे हीन नहीं था। कोई भी खेत ऐसा नहीं था जिसमें जौ या धान आदिकी खेती लहलहाती न हो। उस राज्यकी सभी गौएँ घड़ाभर दूध देती थीं। उस दूधमें घीका अंश अधिक होता था और उसमें शक्करके समान मिठास रहती थी। वह दूध उत्तम पेय, सब रोगोंका नाशक, पापनिवारक तथा पुष्टिवर्धक होता था। कोई भी मनुष्य अपने धनको छिपाकर नहीं रखता था। पत्नी अपने पतिसे कटुवचन नहीं बोलती थी। पुत्र विनयशील तथा पिताकी आज्ञाके पालनमें तत्पर होता था। पुत्रवधू सासके हाथमें रहती थी। साधारण लोग ब्राह्मणोंके उपदेशके अनुसार चलते थे। श्रेष्ठ द्विज वेदोक्त धर्मोंका पालन करते थे। मनुष्य एकादशीके दिन भोजन नहीं करते थे। पृथ्वीपर नदियाँ कभी सूखती नहीं थीं। धर्माङ्गदके राज्यपालनमें प्रवृत्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् पुण्यात्मा हो गया था। भगवान्के दिन एकादशी-व्रतका सेवन करनेसे सब लोग इस जगत्में सुख भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें जाते थे। भूपाल! चोर और लुटेरोंका भय नहीं था। अतः अँधेरी रातमें भी कोई अपने घरके दरवाजे नहीं बंद करते थे। इच्छानुसार विचरनेवाले अतिथि घरपर आकर ठहरते थे। (किसीके लिये कहीं रोक-टोक नहीं थी।) हल चलाये बिना ही सब ओर अन्नकी अच्छी उपज होती थी। केवल माताके दूधसे बच्चे खूब हृष्ट-पुष्ट रहते थे और पतिके सयोगसे

चाहिये। अतः पुत्रोंको स्त्री तथा जीवननिर्वाहके योग्य धनसे सम्पन्न अवश्य कर देना चाहिये।'

राजाका यह वचन सुनकर पुरोहितजी बड़े प्रसन्न हुए और धर्माङ्गदका विवाह करानेके उद्योगमें लग गये। धर्माङ्गद युवा होनेपर भी लज्जावश स्त्री-सुखकी इच्छा नहीं रखते थे तथापि पिताके आदेशसे उन्होंने उस समय स्त्री-सग्रंह स्वीकार कर लिया। तदनन्तर महाबाहु धर्माङ्गदने वरुणकन्याके साथ, मनोहर नागकन्याओंके साथ भी विवाह किया, जो पृथ्वीपर अनुपम रूपवती थीं। शास्त्रीय विधिके अनुसार उन सबका विवाह करके धर्माङ्गदने ब्राह्मणोंको धन, रत्न तथा गौओंका प्रसन्नतापूर्वक दान किया। विवाहके पश्चात् उन्होंने माता और पिताके चरणोंमें हर्षके साथ प्रणाम किया। तदनन्तर राजकुमार धर्माङ्गदने अपनी माता संध्यावलीसे कहा—'देवि! पिताजीकी आज्ञासे मेरा वैवाहिक कार्य सम्पन्न हुआ है। मुझे दिव्य भोगों तथा स्वर्गसे भी कोई प्रयोजन नहीं है। पिताजीकी तथा तुम्हारी दिन-रात सेवा करना ही मेरा कर्तव्य है।'

संध्यावली बोली—बेटा! तुम दीर्घकालतक सुखपूर्वक जीते रहो। पिताके प्रसादसे मनके अनुरूप भोगोंका उपभोग करो। वत्स! तुम-जैसे गुणवान् पुत्रके द्वारा मैं इस पृथ्वीपर श्रेष्ठ पुत्रवाली हो गयी हूँ और सपत्नियोंके हृदयमें मेरे लिये उच्चतम स्थान बन गया है।

ऐसा कहकर माताने पुत्रको हृदयसे लगाकर बार-बार उसका मस्तक सूँघा। तत्पश्चात् उसे राजकाज देखनेके लिये विदा किया। माता संध्यावलीसे विदा लेकर राजकुमारने अन्य माताओंको भी प्रणाम किया और पिताकी आज्ञाके अधीन रहकर वे राज्यशासनका समस्त कार्य देखने लगे। वे दुष्टोंको दण्ड देते, साधु-पुरुषोंका पालन करते और सब देशोंमें घूम-घूमकर प्रत्येक कार्यकी देखभाल किया करते थे। सर्वत्र पहुँचकर प्रत्येक मासमें वहाँके कार्योंका निरीक्षण करते थे। उन्होंने हाथी और घोड़ोंके पालन-पोषणकी अच्छी व्यवस्था की थी। गुप्तचर-मण्डलपर भी उनकी दृष्टि रहती थी। इधर-उधरसे प्राप्त समाचारोंको वे देखते और उनपर विचार करते थे। प्रतिदिन माप और तौलकी भी जाँच करते रहते थे। राजा धर्माङ्गद प्रत्येक घरमें जाकर वहाँके लोगोंकी रक्षाका प्रबन्ध करते थे। उनके राज्यमें कहीं दूध पीनेवाला बालक माताके स्तन न मिलनेसे रोता हो, ऐसा नहीं देखा गया। सास अपनी पुत्रवधूसे अपमानित होकर कहीं भी रोती नहीं सुनी गयी। कहीं भी समर्थ पुत्र पितासे याचना नहीं करता था। उनके राज्यभरमें किसीके यहाँ वर्णसंकर संतानकी उत्पत्ति नहीं हुई। लोग अपना धन-वैभव छिपाकर नहीं रखते थे। कोई भी धर्मपर दोषारोपण नहीं करता था। सधवा नारी कभी भी बिना चोलीके नहीं रहती थी। उन्होंने यह घोषणा करायी थी कि 'मेरे राज्यमें स्त्रियाँ घरोंमें सुरक्षित रहें। विधवा केश न रखावे और सौभाग्यवती कभी केश न कटावे। जो दूसरोंको साधारणवृत्ति (जीवननिर्वाहके लिये अन्न आदि) नहीं देता, वह निर्दयी मेरे राज्यमें निवास न करे। दूसरोंको सद्गुणोंका उपदेश देनेवाला पुरुष स्वयं सद्गुण-शून्य हो और ऋत्विग् यदि शास्त्रज्ञानसे वञ्चित हो तो वह मेरे राज्यमें निवास न करे। जो नीलका उत्पादन करता है अथवा जो नीलके रंगसे अधिकतर वस्त्र रँगा करता है, उन दोनोंको मेरे राज्यसे निकाल देना चाहिये। जो मदिरा बनाता है, वह भी यहाँसे निर्वासित होने योग्य ही है। जो मास भक्षण करता है तथा जो अपनी स्त्रीका अकारण परित्याग करता है, उसका मेरे राज्यमें निवास न हो। जो गर्भवती अथवा सद्यःप्रसूता युवतीसे समागम करता है, वह मनुष्य मुझ-जैसे शासकोंके द्वारा दण्डनीय है।'

राजा रुक्माङ्गदका मोहिनीसे कार्तिकमासकी महिमा तथा चातुर्मास्यके नियम, व्रत एवं उद्यापन बताना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजेन्द्र! इस प्रकार पिताकी आज्ञासे एकादशी-व्रतका पालन करते हुए धर्माङ्गद इस पृथ्वीका राज्य करने लगे। उस समय उनके राज्यमें कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो धर्म-पालनमें तत्पर न हो। महीपते! कोई भी व्यक्ति दुखी, संतानहीन अथवा कोढ़ी नहीं था। नरेश्वर! उस राज्यमें सब लोग हृष्ट-पुष्ट थे। पृथ्वी निधि देनेवाली थी, गौएँ बछड़ोंको दूध पिलाकर तृप्त रखतीं और एक-एक घड़ा दूध देती थीं। वृक्षोंके पत्ते-पत्तेमें मधु भरा था।

चाहिये। अतः पुत्रोंको स्त्री तथा जीवननिर्वाहके योग्य धनसे सम्पन्न अवश्य कर देना चाहिये।'

राजाका यह वचन सुनकर पुरोहितजी बड़े प्रसन्न हुए और धर्माङ्गदका विवाह करानेके उद्योगमें लग गये। धर्माङ्गद युवा होनेपर भी लज्जावश स्त्री-सुखकी इच्छा नहीं रखते थे तथापि पिताके आदेशसे उन्होंने उस समय स्त्री-संग्रह स्वीकार कर लिया। तदनन्तर महाबाहु धर्माङ्गदने वरुणकन्याके साथ, मनोहर नागकन्याओंके साथ भी विवाह किया, जो पृथ्वीपर अनुपम रूपवती थीं। शास्त्रीय विधिके अनुसार उन सबका विवाह करके धर्माङ्गदने ब्राह्मणोंको धन, रत्न तथा गौओंका प्रसन्नतापूर्वक दान किया। विवाहके पश्चात् उन्होंने माता और पिताके चरणोंमें हर्षके साथ प्रणाम किया। तदनन्तर राजकुमार धर्माङ्गदने अपनी माता संध्यावलीसे कहा—'देवि! पिताजीकी आज्ञासे मेरा वैवाहिक कार्य सम्पन्न हुआ है। मुझे दिव्य भोगों तथा स्वर्गसे भी कोई प्रयोजन नहीं है। पिताजीकी तथा तुम्हारी दिन-रात सेवा करना ही मेरा कर्तव्य है।'

संध्यावली बोली—बेटा! तुम दीर्घकालतक सुख-पूर्वक जीते रहो। पिताके प्रसादसे मनके अनुरूप भोगोंका उपभोग करो। वत्स! तुम-जैसे गुणवान् पुत्रके द्वारा मैं इस पृथ्वीपर श्रेष्ठ पुत्रवाली हो गयी हूँ और सुपत्नियोंके हृदयमें मेरे लिये उच्चतम स्थान बन गया है।

ऐसा कहकर माताने पुत्रको हृदयसे लगाकर बार-बार उसका मस्तक सूँघा। तत्पश्चात् उसे राजकाज देखनेके लिये विदा किया। माता संध्यावलीसे विदा लेकर राजकुमारने अन्य माताओंको भी प्रणाम किया और पिताकी आज्ञाके अधीन रहकर वे राज्यशासनका समस्त कार्य देखने लगे। वे दुष्टोंको दण्ड देते, साधु-पुरुषोंका पालन करते और सब देशोंमें घूम-घूमकर प्रत्येक कार्यकी देखभाल किया करते थे। सर्वत्र पहुँचकर प्रत्येक मासमें वहाँके कार्योंका निरीक्षण करते थे। उन्होंने हाथी और घोड़ोंके पालन-पोषणकी अच्छी व्यवस्था की थी। गुप्तचर-मण्डलपर भी उनकी दृष्टि रहती थी। इधर-उधरसे प्राप्त समाचारोंको वे देखते और उनपर विचार करते थे। प्रतिदिन माप और तौलकी भी जाँच करते रहते थे। राजा धर्माङ्गद प्रत्येक घरमें जाकर वहाँके लोगोंकी रक्षाका प्रबन्ध करते थे। उनके राज्यमें कहीं दूध पीनेवाला बालक माताके स्तन न मिलनेसे रोता हो, ऐसा नहीं देखा गया। सास अपनी पुत्रवधूसे अपमानित होकर कहीं भी रोती नहीं सुनी गयी। कहीं भी समर्थ पुत्र पितासे याचना नहीं करता था। उनके राज्यभरमें किसीके यहाँ वर्णसंकर संतानकी उत्पत्ति नहीं हुई। लोग अपना धन-वैभव छिपाकर नहीं रखते थे। कोई भी धर्मपर दोषारोपण नहीं करता था। सधवा नारी कभी भी बिना चोलीके नहीं रहती थी। उन्होंने यह घोषणा करायी थी कि 'मेरे राज्यमें स्त्रियाँ घरोंमें सुरक्षित रहें। विधवा केश न रखावे और सौभाग्यवती कभी केश न कटावे। जो दूसरोंको साधारणवृत्ति (जीवननिर्वाहके लिये अन्न आदि) नहीं देता, वह निर्दयी मेरे राज्यमें निवास न करे। दूसरोंको सद्गुणोंका उपदेश देनेवाला पुरुष स्वयं सद्गुण-शून्य हो और ऋत्विग् यदि शास्त्रज्ञानसे वञ्चित हो तो वह मेरे राज्यमें निवास न करे। जो नीलका उत्पादन करता है अथवा जो नीलके रंगसे अधिकतर वस्त्र रँगा करता है, उन दोनोंको मेरे राज्यसे निकाल देना चाहिये। जो मदिरा बनाता है, वह भी यहाँसे निर्वासित होने योग्य ही है। जो मास भक्षण करता है तथा जो अपनी स्त्रीका अकारण परित्याग करता है, उसका मेरे राज्यमें निवास न हो। जो गर्भवती अथवा सद्यःप्रसूता युवतीसे समागम करता है, वह मनुष्य मुझ-जैसे शासकोंके द्वारा दण्डनीय है।'

राजा रुक्माङ्गदका मोहिनीसे कार्तिकमासकी महिमा तथा चातुर्मास्यके नियम, व्रत एवं उद्यापन बताना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजेन्द्र! इस प्रकार पिताकी आज्ञासे एकादशी-व्रतका पालन करते हुए धर्माङ्गद इस पृथ्वीका राज्य करने लगे। उस समय उनके राज्यमें कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो धर्म-पालनमें तत्पर न हो। महीपते! कोई भी व्यक्ति दुखी, संतानहीन अथवा कोढ़ी नहीं था। नरेश्वर! उस राज्यमें सब लोग हृष्ट-पुष्ट थे। पृथ्वी निधि देनेवाली थी, गौएँ बछड़ोको दूध पिलाकर तृप्त रखतीं और एक-एक घड़ा दूध देती थीं। वृक्षोंके पत्ते-पत्तेमें मधु भरा था।

प्राप्त होता है। अतः मोहिनी ! तुम मेरे ऊपर मोह छोड़कर आज्ञा दो, जिससे इस समय मैं कार्तिकका व्रत आरम्भ करूँ।'

मोहिनी बोली—नृपशिरोमणे ! कार्तिक मासका माहात्म्य विस्तारपूर्वक बताइये। मैं कार्तिक-माहात्म्य सुनकर जैसी मेरी इच्छा होगी, वैसा करूँगी।

रुक्माङ्गदने कहा—वरानने ! मैं इस कार्तिक मासकी महिमा बताता हूँ। सुन्दरी ! कार्तिक मासमें जो कृच्छ्र अथवा प्राजापत्य व्रत करता है अथवा एक दिनका अन्तर देकर उपवास करता है अथवा तीन रातका उपवास स्वीकार करता है अथवा दस दिन, पंद्रह दिन या एक मासतक निराहार रहता है, वह मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य कार्तिकमें एकभुक्त (केवल दिनमें एक समय भोजन) या नक्त-व्रत (केवल रातमें एक बार भोजन) अथवा अयाचित-व्रत (बिना माँगे स्वतः प्राप्त हुए अन्नका दिन या रातमें केवल एक बार भोजन) करते हुए भगवान्‌की आराधना करते हैं, उन्हें सातों द्वीपोंसहित यह पृथ्वी प्राप्त होती है। विशेषतः पुष्करतीर्थ, द्वारकापुरी तथा सूकरक्षेत्रमें यह कार्तिक मास व्रत, दान और भगवत्पूजन आदि करनेसे भक्ति देनेवाला बताया गया है। कार्तिकमें एकादशीका दिन तथा भीष्मपञ्चक अधिक पुण्यमय माना गया है। मनुष्य कितने ही पापोंसे भरा हुआ क्यों न हो, यदि वह रात्रिजागरणपूर्वक प्रबोधिनी एकादशीका व्रत करे तो फिर कभी माताके गर्भमें नहीं आता। वरारोहे ! उस दिन जो वाराहमण्डलका दर्शन करता है, वह बिना सांख्ययोगके परमपदको प्राप्त होता है। शुभे ! कार्तिकमें शूकरमण्डल या कोकवाराहका दर्शन करके मनुष्य फिर किसीका पुत्र नहीं होता। उसके दर्शनसे मनुष्योंका आध्यात्मिक आदि तीनों प्रकारके पापोंसे छुटकारा हो जाता है। ब्रह्मकुमारी ! उक्त मण्डल, श्रीधर तथा कुब्जकका दर्शन करके भी मनुष्य पापमुक्त होते हैं। कार्तिकमें तैल छोड़ दे। कार्तिकमें मधु त्याग दे। कार्तिकमें स्त्रीसेवनका भी त्याग कर दे। देवि ! इन सबके त्यागद्वारा तत्काल ही वर्षभरके पापसे छुटकारा मिल जाता है। जो थोड़ा भी व्रत करनेवाला है, उसके लिये कार्तिक मास सब पापोंका नाशक होता है। कार्तिकमें ली हुई दीक्षा मनुष्योंके जन्मरूपी बन्धनका नाश करनेवाली है। अतः पूरा प्रयत्न करके कार्तिकमें दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जो तीर्थमें कार्तिक-पूर्णिमाका व्रत करता है या कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको व्रत करके मनुष्य यदि सुन्दर कलशोंका दान करता है तो वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। सालभर-तक चलनेवाले व्रतोंकी समाप्ति कार्तिकमें होती है। अतः मोहिनी ! मैं कार्तिक मासमें समस्त पापोंके नाश तथा तुम्हारी प्रीतिकी वृद्धिके लिये व्रत-सेवन करूँगा।

मोहिनीने कहा—पृथ्वीपते ! अब चातुर्मास्यकी विधि और उद्यापनका वर्णन कीजिये, जिससे सब व्रतोंकी पूर्णता होती है। उद्यापनसे व्रतकी न्यूनता दूर होती है और वह पुण्यफलका साधक होता है।

राजा बोले—प्रिये ! चातुर्मास्यमें नक्त-व्रत करनेवाला पुरुष ब्राह्मणको षड्रस भोजन करावे। अयाचित-व्रतमें सुवर्णसहित वृषभ दान करे। जो प्रतिदिन आँवलेके फलसे स्नान करता है, वह मनुष्य दही और खीर दान करे। सुभ्रु ! यदि फल न खानेका नियम ले तो उस अवस्थामें फलदान करे। तेलका त्याग करनेपर घीदान करे और घीका त्याग करनेपर दूधका दान करे। यदि धान्यके त्याग-का नियम लिया हो तो उस अवस्थामें अगहनीके चावल या दूसरे किसी धान्यका दान करे। भूमिशयनका नियम लेनेपर गद्दा, रजाई और तकियासहित शय्यादान करे। पत्तेमें भोजनका नियम लेनेवाला मनुष्य घृतसहित पात्रदान करे। मौनव्रती पुरुष घण्टा, तिल और सुवर्णका दान करे। व्रतकी पूर्तिके लिये ब्राह्मण पति-पत्नीको भोजन करावे। दोनोंके लिये उपभोगसामग्री तथा दक्षिणासहित शय्यादान करे। प्रातःस्नानका नियम लेनेपर अश्वदान करे और स्नेह-रहित (बिना तेलके) भोजनका नियम लेनेपर घी और सत्तू दान करे। नख और केश न कटाने—धारण करनेका नियम लेनेपर दर्पण दान करे। पादत्राण (जूता, खड़ाऊँ आदि) के त्यागका नियम लेनेपर जूता दान करे। नमक-का त्याग करनेपर गोदान करे। प्रिये ! जो इस अभीष्ट व्रतमें प्रतिदिन देवमन्दिरमें दीप-दान करता है, वह सुवर्ण अथवा ताँबेका घृतयुक्त दीपक दान करे तथा व्रतकी पूर्तिके लिये वैष्णवको वस्त्र एवं छत्र दान करे। जो एक दिनका अन्तर देकर उपवास करता है, वह रेशमी वस्त्र दान करे। त्रिरात्र-व्रतमें सुवर्ण तथा वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत शय्यादान करे। षड्रात्र आदि उपवासोंमें छत्रसहित शिबिका (पालकी) दान करे। साथ ही हाँकनेवाले पुरुषके साथ मोटा-ताजा

प्राप्त होता है। अतः मोहिनी! तुम मेरे ऊपर मोह छोड़कर आज्ञा दो, जिससे इस समय मैं कार्तिकका व्रत आरम्भ करूँ।'

मोहिनी बोली—नृपशिरोमणे! कार्तिक मासका माहात्म्य विस्तारपूर्वक बताइये। मैं कार्तिक-माहात्म्य सुनकर जैसी मेरी इच्छा होगी, वैसा करूँगी।

रुक्माङ्गदने कहा—वरानने! मैं इस कार्तिक मासकी महिमा बताता हूँ। सुन्दरी! कार्तिक मासमें जो कृच्छ्र अथवा प्राजापत्य व्रत करता है अथवा एक दिनका अन्तर देकर उपवास करता है अथवा तीन रातका उपवास स्वीकार करता है अथवा दस दिन, पंद्रह दिन या एक मासतक निराहार रहता है, वह मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य कार्तिकमें एकभुक्त (केवल दिनमें एक समय भोजन) या नक्त-व्रत (केवल रातमें एक बार भोजन) अथवा अयाचित-व्रत (बिना माँगे स्वतः प्राप्त हुए अन्नका दिन या रातमें केवल एक बार भोजन) करते हुए भगवान्‌की आराधना करते हैं, उन्हें सातों द्वीपोंसहित यह पृथ्वी प्राप्त होती है। विशेषतः पुष्करतीर्थ, द्वारकापुरी तथा सूकरक्षेत्रमें यह कार्तिक मास व्रत, दान और भगवत्पूजन आदि करनेसे भक्ति देनेवाला बताया गया है। कार्तिकमें एकादशीका दिन तथा भीष्मपञ्चक अधिक पुण्यमय माना गया है। मनुष्य कितने ही पापोंसे भरा हुआ क्यों न हो, यदि वह रात्रिजागरणपूर्वक प्रबोधिनी एकादशीका व्रत करे तो फिर कभी माताके गर्भमें नहीं आता। वरारोहे! उस दिन जो वाराहमण्डलका दर्शन करता है, वह बिना साङ्ख्ययोगके परमपदको प्राप्त होता है। शुभे! कार्तिकमें शूकरमण्डल या कोकवाराहका दर्शन करके मनुष्य फिर किसीका पुत्र नहीं होता। उसके दर्शनसे मनुष्योंका आध्यात्मिक आदि तीनों प्रकारके पापोंसे छुटकारा हो जाता है। ब्रह्मकुमारी! उक्त मण्डल, श्रीधर तथा कुब्जकका दर्शन करके भी मनुष्य पापमुक्त होते हैं। कार्तिकमें तैल छोड़ दे। कार्तिकमें मधु त्याग दे। कार्तिकमें स्त्रीसेवनका भी त्याग कर दे। देवि! इन सबके त्यागद्वारा तत्काल ही वर्षभरके पापसे छुटकारा मिल जाता है। जो थोड़ा भी व्रत करनेवाला है, उसके लिये कार्तिक मास सब पापोंका नाशक होता है। कार्तिकमें ली हुई दीक्षा मनुष्योंके जन्मरूपी बन्धनका नाश करनेवाली है। अतः पूरा प्रयत्न करके कार्तिकमें दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जो तीर्थमें कार्तिक-पूर्णिमाका व्रत करता है या कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको व्रत करके मनुष्य यदि सुन्दर कलशोंका दान करता है तो वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। सालभरतक चलनेवाले व्रतोंकी समाप्ति कार्तिकमें होती है। अतः मोहिनी! मैं कार्तिक मासमे समस्त पापोंके नाश तथा तुम्हारी प्रीतिकी वृद्धिके लिये व्रत-सेवन करूँगा।

मोहिनीने कहा—पृथ्वीपते! अब चातुर्मास्यकी विधि और उद्यापनका वर्णन कीजिये, जिससे सब व्रतोंकी पूर्णता होती है। उद्यापनसे व्रतकी न्यूनता दूर होती है और वह पुण्यफलका साधक होता है।

राजा बोले—प्रिये! चातुर्मास्यमें नक्त-व्रत करनेवाला पुरुष ब्राह्मणको षड्रस भोजन करावे। अयाचित-व्रतमें सुवर्णसहित वृषभ दान करे। जो प्रतिदिन आँवलेके फलसे स्नान करता है, वह मनुष्य दही और खीर दान करे। सुभ्रु! यदि फल न खानेका नियम ले तो उस अवस्थामें फलदान करे। तेलका त्याग करनेपर घीदान करे और घीका त्याग करनेपर दूधका दान करे। यदि धान्यके त्यागका नियम लिया हो तो उस अवस्थामें अगहनीके चावल या दूसरे किसी धान्यका दान करे। भूमिशयनका नियम लेनेपर गद्दा, रजाई और तकियासहित शय्यादान करे। पत्तेमें भोजनका नियम लेनेवाला मनुष्य घृतसहित पात्रदान करे। मौनव्रती पुरुष घण्टा, तिल और सुवर्णका दान करे। व्रतकी पूर्तिके लिये ब्राह्मण पति-पत्नीको भोजन करावे। दोनोंके लिये उपभोगसामग्री तथा दक्षिणासहित शय्यादान करे। प्रातःस्नानका नियम लेनेपर अश्वदान करे और स्नेहरहित (बिना तेलके) भोजनका नियम लेनेपर घी और सत्तू दान करे। नख और केश न कटाने—धारण करनेका नियम लेनेपर दर्पण दान करे। पादत्राण (जूता, खड़ाऊँ आदि) के त्यागका नियम लेनेपर जूता दान करे। नमकका त्याग करनेपर गोदान करे। प्रिये! जो इस अभीष्ट व्रतमें प्रतिदिन देवमन्दिरमें दीप-दान करता है, वह सुवर्ण अथवा ताँबेका घृतयुक्त दीपक दान करे तथा व्रतकी पूर्तिके लिये वैष्णवको वस्त्र एवं छत्र दान करे। जो एक दिनका अन्तर देकर उपवास करता है, वह रेशमी वस्त्र दान करे। त्रिरात्र-व्रतमें सुवर्ण तथा वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत शय्यादान करे। षड्रात्र आदि उपवासोंमें छत्रसहित शिबिका (पालकी) दान करे। साथ ही हाँकनेवाले पुरुषके साथ मोटा-ताजा

पालन करूँगी।' यमराजके शत्रु राजा रुक्माङ्गदसे ऐसा कहकर मनोहर एवं विशाल नेत्रोंवाली रानी संध्यावलीने उन्हें प्रणाम किया और समस्त पापराशिका विनाश करनेके लिये उस उत्तम व्रतका पालन आरम्भ किया। अपनी प्रियाद्वारा उत्तम कृच्छ्रव्रत प्रारम्भ किये जानेपर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने ब्रह्माजीकी पुत्री मोहिनीसे यह बात कही—'सुभ्रु! मैंने तुम्हारी आज्ञाका पालन किया। देवि! मेरे प्रति तुम्हारे मनमें जो-जो कामनाएँ निहित हैं, उन सबको सफल कर लो। मैं तुम्हारे संतोषके लिये राज्यशासनके समस्त कार्योंसे अलग हो गया हूँ। तुम्हारे सिवा दूसरी कोई नारी मुझे सुख देनेवाली नहीं है।'

अपने प्राणवल्लभके मुखसे ऐसी बात सुनकर मोहिनीके हर्षकी सीमा न रही। उसने राजासे कहा—'देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, नाग तथा राक्षस सब मेरी दृष्टिमें आये, किंतु मैं सबको त्यागकर केवल आपके प्रति स्नेहयुक्त हो मन्दराचलपर आयी थी। लोकमें कामकी सफलता इसीमें है कि प्रिया और प्रियतम दोनों एकचित्त हों—परस्पर एक-दूसरेको चाहते हों।' उस समय महाराज रुक्माङ्गदके कानोंमें डंकेकी चोट सुनायी दी, जो मतवाले गजराजके मस्तकपर रखकर धर्माङ्गदके आदेशसे बजाया जा रहा था। उस पटह-ध्वनिके साथ यह घोषणा हो रही थी—'लोगो! कल प्रातःकालसे भगवान् विष्णुका दिन (एकादशी) है, अतः आज केवल एक समय भोजन करके रहो। क्षार नमक छोड़ दो। सब-के-सब हविष्यान्नका सेवन करो। भूमिपर शयन करो। स्त्री-संगमसे दूर रहो और पुराणपुरुषोत्तम देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुका स्मरण करो। आज एक समय भोजन करके कल दिन-रात उपवास करना होगा। ऐसा करनेसे तुम्हारे लिये श्राद्ध चाहे न किया गया हो, तुम्हें पिण्ड न मिला हो और तुम्हारे पुत्र गयामें जाकर श्राद्ध न कर सके हों, तो भी तुम्हें भगवान् श्रीहरिके वैकुण्ठधामकी प्राप्ति होगी। यह कार्तिक शुक्ला एकादशी भगवान् श्रीहरिकी निद्रा दूर करनेवाली है। प्रातःकाल एकादशी प्राप्त होनेपर तुम कदापि भोजन न करो। इस प्रबोधिनी एकादशीको उपवास करनेसे इच्छानुसार किये हुए ब्रह्महत्या आदि सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायँगे। यह तिथि धर्मपरायण तथा न्याययुक्त सदाचारका पालन करनेवाले पुरुषोंको प्रबोध (ज्ञान) देती है और इसमें भगवान् विष्णुका प्रबोध (जागरण) होता है, इसलिये इसका नाम प्रबोधिनी है। इस एकादशीको जो एक बार भी उपवास कर लेता है, वह मनुष्य फिर संसारमें जन्म नहीं लेता। मनुष्यो! तुम अपने वैभवके अनुसार इस एकादशीको चक्रसुदर्शनधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करो। वस्त्र, उत्तम चन्दन, रोली, पुष्प, धूप, दीप तथा हृदयको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले सुन्दर फल एवं उत्तम गन्धके द्वारा भगवान् श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी अर्चना करो। जो भगवान् विष्णुका लोक प्रदान करनेवाले मेरे इस धर्मसम्मत वचनका पालन नहीं करेगा, निश्चय ही उसे कठोर दण्ड दिया जायगा।'

इस प्रकार मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले नगाड़ेको बजाकर जब उक्त घोषणा की जा रही थी, उस समय वे भूपाल मोहिनीकी शय्या छोड़कर उठ गये। फिर मोहिनीको मधुर वचनोंसे सान्त्वना देते हुए बोले—'देवि! कल प्रातःकाल पापनाशक एकादशी तिथि होगी। अतः आज मैं संयमपूर्वक रहूँगा। तुम्हारी आज्ञासे मैंने कृच्छ्र-व्रत तो संध्यावली देवीके द्वारा कराया है, किंतु यह प्रबोधिनी एकादशी मुझे स्वयं भी करनी है। यह सम्पूर्ण पापबन्धनोंका उच्छेद करनेवाली तथा उत्तम गति देनेवाली है। अतः मोहिनी देवी! आज मैं हविष्य भोजन करूँगा और संयम-नियमसे रहूँगा। विशाललोचने! तुम भी मेरे साथ उपवासपूर्वक समस्त इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् अधोक्षजकी आराधना करो, जिससे निर्वाणपदको प्राप्त करोगी।'

मोहिनी बोली—राजन्! चक्रधारी भगवान् विष्णुका पूजन जन्म-मृत्यु तथा जरावस्थाका नाश करनेवाला है—यह बात आपने ठीक कही है, किंतु पहले मन्दराचलके शिखरपर आपने मुझे अपना दाहिना हाथ देकर प्रतिज्ञा की है, उसके पालनका समय आ गया है। अतः मुझे आप वर दीजिये, यदि नहीं देते हैं तो जन्मसे लेकर अबतक आपने बड़े यत्नसे जो पुण्यसंचय किया है, वह सब शीघ्र नष्ट हो जायगा।

रुक्माङ्गदने कहा—प्रिये! आओ, तुम्हारे मनमें जो इच्छा होगी, उसे मैं पूर्ण करूँगा। मेरे पास कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो तुम्हारे लिये देने योग्य न हो, मेरा यह जीवनतक तुम्हें अर्पित है, फिर ग्राम, धन और पृथ्वीके राज्य आदिकी तो बात ही क्या है।

मोहिनी बोली—राजन्! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ तो आप एकादशीके दिन उपवास न करके भोजन करें। यही वर मुझे देना चाहिये। जिसके लिये मैंने पहले ही

पालन करूँगी।' यमराजके शत्रु राजा रुक्माङ्गदसे ऐसा कहकर मनोहर एवं विशाल नेत्रोंवाली रानी संध्यावलीने उन्हें प्रणाम किया और समस्त पापराशिका विनाश करनेके लिये उस उत्तम व्रतका पालन आरम्भ किया। अपनी प्रियाद्वारा उत्तम कृच्छ्रव्रत प्रारम्भ किये जानेपर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने ब्रह्माजीकी पुत्री मोहिनीसे यह बात कही—'सुभ्रु! मैंने तुम्हारी आज्ञाका पालन किया। देवि! मेरे प्रति तुम्हारे मनमें जो-जो कामनाएँ निहित हैं, उन सबको सफल कर लो। मैं तुम्हारे संतोषके लिये राज्यशासनके समस्त कार्योंसे अलग हो गया हूँ। तुम्हारे सिवा दूसरी कोई नारी मुझे सुख देनेवाली नहीं है।'

अपने प्राणवल्लभके मुखसे ऐसी बात सुनकर मोहिनीके हर्षकी सीमा न रही। उसने राजासे कहा—'देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, नाग तथा राक्षस सब मेरी दृष्टिमें आये, किंतु मैं सबको त्यागकर केवल आपके प्रति स्नेहयुक्त हो मन्दराचलपर आयी थी। लोकमें कामकी सफलता इसीमें है कि प्रिया और प्रियतम दोनों एकचित्त हों—परस्पर एक-दूसरेको चाहते हों।' उस समय महाराज रुक्माङ्गदके कानोंमें डंकेकी चोट सुनायी दी, जो मतवाले गजराजके मस्तकपर रखकर धर्माङ्गदके आदेशसे बजाया जा रहा था। उस पटह-ध्वनिके साथ यह घोषणा हो रही थी—'लोगो! कल प्रातःकालसे भगवान् विष्णुका दिन (एकादशी) है, अतः आज केवल एक समय भोजन करके रहो। क्षार नमक छोड़ दो। सब-के-सब हविष्यान्नका सेवन करो। भूमिपर शयन करो। स्त्री-संगमसे दूर रहो और पुराणपुरुषोत्तम देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुका स्मरण करो। आज एक समय भोजन करके कल दिन-रात उपवास करना होगा। ऐसा करनेसे तुम्हारे लिये श्राद्ध चाहे न किया गया हो, तुम्हें पिण्ड न मिला हो और तुम्हारे पुत्र गयामें जाकर श्राद्ध न कर सके हों, तो भी तुम्हें भगवान् श्रीहरिके वैकुण्ठधामकी प्राप्ति होगी। यह कार्तिक शुक्ला एकादशी भगवान् श्रीहरिकी निद्रा दूर करनेवाली है। प्रातःकाल एकादशी प्राप्त होनेपर तुम कदापि भोजन न करो। इस प्रबोधिनी एकादशीको उपवास करनेसे इच्छानुसार किये हुए ब्रह्महत्या आदि सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायँगे। यह तिथि धर्मपरायण तथा न्याययुक्त सदाचारका पालन करनेवाले पुरुषोंको प्रबोध (ज्ञान) देती है और इसमें भगवान् विष्णुका प्रबोध (जागरण) होता है, इसलिये इसका नाम प्रबोधिनी है। इस एकादशीको जो एक बार भी उपवास कर लेता है, वह मनुष्य फिर संसारमें जन्म नहीं लेता। मनुष्यो! तुम अपने वैभवके अनुसार इस एकादशीको चक्रसुदर्शनधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करो। वस्त्र, उत्तम चन्दन, रोली, पुष्प, धूप, दीप तथा हृदयको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले सुन्दर फल एवं उत्तम गन्धके द्वारा भगवान् श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी अर्चना करो। जो भगवान् विष्णुका लोक प्रदान करनेवाले मेरे इस धर्मसम्मत वचनका पालन नहीं करेगा, निश्चय ही उसे कठोर दण्ड दिया जायगा।'

इस प्रकार मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले नगाड़ेको बजाकर जब उक्त घोषणा की जा रही थी, उस समय वे भूपाल मोहिनीकी शय्या छोड़कर उठ गये। फिर मोहिनीको मधुर वचनोंसे सान्त्वना देते हुए बोले—'देवि! कल प्रातःकाल पापनाशक एकादशी तिथि होगी। अतः आज मैं संयमपूर्वक रहूँगा। तुम्हारी आज्ञासे मैंने कृच्छ्र-व्रत तो संध्यावली देवीके द्वारा कराया है, किंतु यह प्रबोधिनी एकादशी मुझे स्वयं भी करनी है। यह सम्पूर्ण पापबन्धनोंका उच्छेद करनेवाली तथा उत्तम गति देनेवाली है। अतः मोहिनी देवी! आज मैं हविष्य भोजन करूँगा और संयम-नियमसे रहूँगा। विशाललोचने! तुम भी मेरे साथ उपवासपूर्वक समस्त इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् अधोक्षजकी आराधना करो, जिससे निर्वाणपदको प्राप्त करोगी।'

मोहिनी बोली—राजन्! चक्रधारी भगवान् विष्णुका पूजन जन्म-मृत्यु तथा जरावस्थाका नाश करनेवाला है—यह बात आपने ठीक कही है, किंतु पहले मन्दराचलके शिखरपर आपने मुझे अपना दाहिना हाथ देकर प्रतिज्ञा की है, उसके पालनका समय आ गया है। अतः मुझे आप वर दीजिये, यदि नहीं देते हैं तो जन्मसे लेकर अबतक आपने बड़े यत्नसे जो पुण्यसंचय किया है, वह सब शीघ्र नष्ट हो जायगा।

रुक्माङ्गदने कहा—प्रिये! आओ, तुम्हारे मनमें जो इच्छा होगी, उसे मैं पूर्ण करूँगा। मेरे पास कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो तुम्हारे लिये देने योग्य न हो, मेरा यह जीवनतक तुम्हें अर्पित है, फिर ग्राम, धन और पृथ्वीके राज्य आदिकी तो बात ही क्या है।

मोहिनी बोली—राजन्! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ तो आप एकादशीके दिन उपवास न करके भोजन करें। यही वर मुझे देना चाहिये। जिसके लिये मैंने पहले ही

राजा रुक्माङ्गदद्वारा मोहिनीके आक्षेपोंका खण्डन, एकादशी-व्रतकी वैदिकता, मोहिनीद्वारा गौतम आदि ब्राह्मणोंके समक्ष अपने पक्षकी स्थापना

राजा बोले—वरानने ! गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलपर एकादशीको भोजन करनेके विषयमें तुमने जो महर्षि गौतमकी कही हुई बात बतायी है, वह कथन पुराणसम्मत नहीं है। पुराणमें तो विद्वानोंका किया हुआ यह निर्णय स्पष्टरूपसे बताया गया है कि एकादशी तिथिको भोजन न करे। फिर मैं एकादशीको भोजन कैसे करूँगा ? एकादशीके दिन क्षीणकाय पुरुषोंके लिये मुनीश्वरोंने फल, मूल, दूध और जलको अनुकूल एवं भोज्य बताया है। एकादशीको किसीके लिये अन्नका भोजन किन्हीं महापुरुषोंने नहीं कहा है। जो लोग ज्वर आदि रोगोंके शिकार हैं, उनके लिये तो उपवास और उत्तम बताया गया है। धार्मिक पुरुषोंके लिये एकादशीके दिन उपवास शुभ एवं सद्गति देनेवाला कहा गया है। अतः तुम भोजन करनेके लिये आग्रह न करो, इससे मेरा व्रत भङ्ग हो जायगा। इसके सिवा, तुम्हें जो भी रुचिकर प्रतीत हो, वह कार्य मैं अवश्य करूँगा।

मोहिनीने कहा—राजन् ! आप एकादशीको भोजन करें, इसके सिवा दूसरी कोई बात मुझे अच्छी नहीं लगती। एकादशीके दिन यह उपवासका विधान वेदोंमें नहीं देखा जाता है।

भूपते ! मोहिनीकी यह बात सुनकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ राजा रुक्माङ्गद मनमें तो कुपित हुए; परंतु बाहरसे हँसते हुए-से बोले—'मोहिनी ! मेरी बात सुनो! वेद अनेक रूपोंमें स्थित है। यज्ञ आदि कर्मकाण्ड वेद है, स्मृति वेद है और ये दोनों प्रकारके वेद पुराणोंमें प्रतिष्ठित हैं। अतः वरानने ! मैं वेदार्थसे अधिक पुराणार्थको मान्यता देता हूँ। जो शास्त्रको बहुत कम जानता है, उससे वेद डरता है कि 'यह कहीं मुझपर ही प्रहार न कर बैठे।' सब विषयोंका निर्णय इतिहास और पुराणोंने पहलेसे ही कर रक्खा है। वेदोंमें जो नहीं देखा गया, वह सब स्मृतिमें दृष्टिगोचर होता है। वेदों और स्मृतियोंमें भी जो बात नहीं देखी गयी है, उसका वर्णन पुराणोंने किया है। प्रिये ! हत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त तथा रोगीके औषधका वर्णन भी पुराणोंमें मिलता है। उन प्रायश्चित्तोंके बिना पापकी शुद्धि नहीं हो सकती। सुभ्रु ! वेदों, वेदके उपाङ्गों, पुराणों तथा स्मृतियोंद्वारा जो कुछ कहा जाता है, वह सब वेदमें ही बताया गया है—ऐसा मानना चाहिये। वरानने ! पुराण बार-बार यह दुहराते हैं कि 'एकादशी प्राप्त होनेपर भोजन नहीं करना चाहिये, नहीं करना चाहिये।' पिताको कौन नहीं प्रणाम करेगा, कौन माताकी पूजा नहीं करेगा, कौन सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाके समीप नहीं जायगा और कौन है जो एकादशीको भोजन करेगा ? कौन वेदकी निन्दा करेगा, कौन ब्राह्मणको नीचे गिरायेगा, कौन पर-स्त्री-गमन करेगा और कौन एकादशीको अन्न खायेगा ?

मोहिनीने कहा—घूर्णिके ! तुम शीघ्र जाकर वेद-विद्याके पारङ्गत ब्राह्मणोंको यहाँ बुला लाओ, जिनके वाक्यसे प्रेरित होकर ये राजा एकादशीको भोजन करें।

उसकी बात सुनकर घूर्णिका गयी और वेद-विद्यासे सुशोभित गौतम आदि ब्राह्मणोंको बुलाकर मोहिनीके पास ले आयी। उन वेद-वेदाङ्गके पारङ्गत ब्राह्मणोंको आया देख राजासहित मोहिनीने प्रणाम किया। वह अपना काम बनानेके प्रयत्नमें लग गयी थी। महीपाल ! प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी वे सब ब्राह्मण सोनेके सिंहासनोंपर बैठे। तदनन्तर उनमेंसे वयोवृद्ध ब्राह्मण गौतमने कहा—'देवि ! सब प्रकारके संदेहका निवारण करनेवाले तथा अनेक शास्त्रोंमें कुशल हम सब ब्राह्मण यहाँ आ गये हैं। जिसके लिये हमें बुलाया गया है, वह कारण बताइये।' उनकी बात सुनकर मोहिनी बोली।

मोहिनीने कहा—ब्राह्मणो ! हमारा यह संदेह तो जडतापूर्ण है; साथ ही छोटा भी है। इसपर अपनी बुद्धिके अनुसार आपलोग प्रकाश डालें। ये राजा कहते हैं, मैं एकादशीके दिन भोजन नहीं करूँगा, किंतु यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अन्नके ही आधारपर टिका है। मरे हुए पितर भी अन्नद्वारा श्राद्ध करनेपर स्वर्गलोकमें तृप्ति एवं प्रसन्नताका अनुभव करते हैं। द्विजवरो ! स्वर्गके देवता बेरके बराबर पुरोडाशकी भी आहुति पानेकी इच्छा रखते हैं, अतः अन्न सर्वोत्तम अमृत है। भूखी हुई चींटी भी मुखसे चावल लेकर बड़े कष्टसे अपने बिलके भीतर जाती है। भला, अन्न किसको अच्छा नहीं लगता ! ये महाराज एकादशी प्राप्त होनेपर खाना-पीना बिल्कुल छोड़

राजा रुक्माङ्गदद्वारा मोहिनीके आक्षेपोंका खण्डन, एकादशी-व्रतकी वैदिकता, मोहिनीद्वारा गौतम आदि ब्राह्मणोंके समक्ष अपने पक्षकी स्थापना

राजा बोले—वरानने ! गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलपर एकादशीको भोजन करनेके विषयमें तुमने जो महर्षि गौतमकी कही हुई बात बतायी है, वह कथन पुराणसम्मत नहीं है। पुराणमें तो विद्वानोंका किया हुआ यह निर्णय स्पष्टरूपसे बताया गया है कि एकादशी तिथिको भोजन न करे। फिर मैं एकादशीको भोजन कैसे करूँगा ? एकादशीके दिन क्षीणकाय पुरुषोंके लिये मुनीश्वरोंने फल, मूल, दूध और जलको अनुकूल एवं भोज्य बताया है। एकादशीको किसीके लिये अन्नका भोजन किन्हीं महापुरुषोंने नहीं कहा है। जो लोग ज्वर आदि रोगोंके शिकार हैं, उनके लिये तो उपवास और उत्तम बताया गया है। धार्मिक पुरुषोंके लिये एकादशीके दिन उपवास शुभ एवं सद्गति देनेवाला कहा गया है। अतः तुम भोजन करनेके लिये आग्रह न करो, इससे मेरा व्रत भङ्ग हो जायगा। इसके सिवा, तुम्हें जो भी रुचिकर प्रतीत हो, वह कार्य मैं अवश्य करूँगा।

मोहिनीने कहा—राजन् ! आप एकादशीको भोजन करें, इसके सिवा दूसरी कोई बात मुझे अच्छी नहीं लगती। एकादशीके दिन यह उपवासका विधान वेदोंमें नहीं देखा जाता है।

भूपते ! मोहिनीकी यह बात सुनकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ राजा रुक्माङ्गद मनमें तो कुपित हुए; परंतु बाहरसे हँसते हुए-से बोले—'मोहिनी ! मेरी बात सुनो ! वेद अनेक रूपोंमें स्थित है। यज्ञ आदि कर्मकाण्ड वेद है, स्मृति वेद है और ये दोनों प्रकारके वेद पुराणोंमें प्रतिष्ठित हैं। अतः वरानने ! मैं वेदार्थसे अधिक पुराणार्थको मान्यता देता हूँ। जो शास्त्रको बहुत कम जानता है, उससे वेद डरता है कि 'यह कहीं मुझपर ही प्रहार न कर बैठे।' सब विषयोंका निर्णय इतिहास और पुराणोंने पहलेसे ही कर रक्खा है। वेदोंमें जो नहीं देखा गया, वह सब स्मृतिमें दृष्टिगोचर होता है। वेदों और स्मृतियोंमें भी जो बात नहीं देखी गयी है, उसका वर्णन पुराणोंने किया है। प्रिये ! हत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त तथा रोगीके औषधका वर्णन भी पुराणोंमें मिलता है। उन प्रायश्चित्तोंके बिना पापकी शुद्धि नहीं हो सकती। सुभ्रु ! वेदों, वेदके उपाङ्गों, पुराणों तथा स्मृतियोंद्वारा जो कुछ कहा जाता है, वह सब वेदमें ही बताया गया है—ऐसा मानना चाहिये। वरानने ! पुराण बार-बार यह दुहराते हैं कि 'एकादशी प्राप्त होनेपर भोजन नहीं करना चाहिये, नहीं करना चाहिये।' पिताको कौन नहीं प्रणाम करेगा, कौन माताकी पूजा नहीं करेगा, कौन सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाके समीप नहीं जायगा और कौन है जो एकादशीको भोजन करेगा ? कौन वेदकी निन्दा करेगा, कौन ब्राह्मणको नीचे गिरायेगा, कौन पर-स्त्री-गमन करेगा और कौन एकादशीको अन्न खायेगा ?'

मोहिनीने कहा—घूर्णिके ! तुम शीघ्र जाकर वेद-विद्याके पारङ्गत ब्राह्मणोंको यहाँ बुला लाओ, जिनके वाक्यसे प्रेरित होकर ये राजा एकादशीको भोजन करें।

उसकी बात सुनकर घूर्णिका गयी और वेद-विद्यासे सुशोभित गौतम आदि ब्राह्मणोंको बुलाकर मोहिनीके पास ले आयी। उन वेद-वेदाङ्गके पारङ्गत ब्राह्मणोंको आया देख राजासहित मोहिनीने प्रणाम किया। वह अपना काम बनानेके प्रयत्नमें लग गयी थी। महीपाल ! प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी वे सब ब्राह्मण सोनेके सिंहासनोंपर बैठे। तदनन्तर उनमेंसे वयोवृद्ध ब्राह्मण गौतमने कहा—'देवि ! सब प्रकारके संदेहका निवारण करनेवाले तथा अनेक शास्त्रोंमें कुशल हम सब ब्राह्मण यहाँ आ गये हैं। जिसके लिये हमें बुलाया गया है, वह कारण बताइये।' उनकी बात सुनकर मोहिनी बोली।

मोहिनीने कहा—ब्राह्मणो ! हमारा यह संदेह तो जडतापूर्ण है; साथ ही छोटा भी है। इसपर अपनी बुद्धिके अनुसार आपलोग प्रकाश डालें। ये राजा कहते हैं, मैं एकादशीके दिन भोजन नहीं करूँगा, किंतु यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अन्नके ही आधारपर टिका है। मरे हुए पितर भी अन्नद्वारा श्राद्ध करनेपर स्वर्गलोकमें तृप्ति एवं प्रसन्नताका अनुभव करते हैं। द्विजवरो ! स्वर्गके देवता बेरके बराबर पुरोडाशकी भी आहुति पानेकी इच्छा रखते हैं, अतः अन्न सर्वोत्तम अमृत है। भूखी हुई चींटी भी मुखसे चावल लेकर बड़े कष्टसे अपने बिलके भीतर जाती है। भला, अन्न किसको अच्छा नहीं लगता ! ये महाराज एकादशी प्राप्त होनेपर खाना-पीना बिल्कुल छोड़

उत्तर दिशामें रहनेवाले विष्णुधर्मपरायण ब्राह्मणोंको तो उचित है कि वे एकादशीके दिन पशुओंको भी अन्न न दें। द्विजोत्तमो! मेरा शरीर क्षीण नहीं है और मैं रोगी भी नहीं हूँ, अतः ब्राह्मणके कहनेमात्रसे मैं एकादशीके व्रतका त्याग कैसे करूँगा? मेरा पुत्र धर्माङ्गद इस भूतलकी रक्षा कर रहा है। अतः मैं लोक या प्रजाकी रक्षारूप धर्मसे भी शून्य नहीं हूँ। मेरा कोई भी शत्रु नहीं है। द्विजवरो! ऐसा जानकर आपलोगोंको वैष्णव-व्रतका पालन करनेवाले मेरे प्रतिकूल कोई व्रतनाशक वचन नहीं कहना चाहिये। देवता, दानव, गन्धर्व, राक्षस, सिद्ध, ब्राह्मण, हमारे पिता, भगवान् विष्णु, भगवान् शिव अथवा मोहिनीके पिता श्रीब्रह्माजी, सूर्य अथवा और कोई लोकपाल स्वयं आकर कहें तो भी मैं एकादशीको भोजन नहीं करूँगा। द्विजो! इस पृथ्वीपर विख्यात यह राजा रुक्माङ्गद अपनी सच्ची प्रतिज्ञाको कभी निष्फल नहीं कर सकता। ब्राह्मणो! इन्द्रका तेज क्षीण हो जाय, हिमालय बदल जाय, समुद्र सूख जाय तथा अग्नि अपनी स्वाभाविक उष्णताको त्याग दे तथापि मैं एकादशीके दिन उपवासरूप व्रतका त्याग नहीं करूँगा। विप्रगण! तीनों लोकोंमें यह बात प्रसिद्ध हो चुकी है और डंकेकी चोटसे दुहरायी जाती है कि जो लोग रुक्माङ्गदके गाँव, देश तथा अन्य स्थानोंमें एकादशीको भोजन करेंगे, वे पुत्रसहित दण्डनीय एवं वध्य होंगे और उनके लिये इस राज्यमें ठहरनेका स्थान नहीं होगा। एकादशीका दिन सब यज्ञोंसे प्रधान, पापनाशक, धर्मवर्धक, मोक्षदायक तथा जन्मरूपी बन्धनको काटनेवाला है। यह तेजकी निधि है और सब लोगोंमें इसकी प्रसिद्धि भी है। इस तरहके शब्दकी घोषणा होनेपर भी यदि मैं एकादशीको भोजन करता हूँ तो पापका प्रवर्तक होऊँगा। मेरा व्रत भङ्ग हो जानेपर मुझे जन्म देनेवाली माता अपनेको व्यर्थ मानेगी तथा ब्राह्मण, देवता तथा पितर निराश होंगे। जो वेद, पुराण और शास्त्रोंको नहीं मानता, वह अन्तमें सूर्यपुत्र यमराजकी पुरीमें जाता है। जो वमन करके फिर उसे खाता है, उसीके समान वह भी है, जो अपनी प्रतिज्ञा तथा व्रतको भङ्ग कर देता है। वेद, शास्त्र, पुराण, संत-महात्मा तथा धर्मशास्त्र कोई भी ऐसे नहीं हैं, जो भगवान् विष्णुके प्रिय कार्यके योग्य एकादशीके दिन भोजनका विधान करते हों। एकादशीके दिनका व्रत भगवान् विष्णुके पदको देनेवाला है। उस दिन क्षयाह तिथि होनेपर भी अन्न-भोजनकी बात मूढ़ पुरुष ही कह सकते हैं।'

राजाकी यह बात सुनकर मोहिनी भीतर-ही-भीतर जल उठी और क्रोधसे आँखें लाल करके पतिसे बोली—'राजन्! तुम मेरी बात नहीं स्वीकार करते हो तो धर्मभ्रष्ट हो जाओगे। पृथ्वीपते! तुमने वर देनेके लिये अपना हाथ सौंपा था। अपनी उस प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन करके यदि दिये हुए वचनका पालन न करोगे तो मै चली जाऊँगी। नरेश! अब मै न तो तुम्हारी प्यारी पत्नी हूँ और न तुम मेरे पति। तुम अपने वचनको मिटाकर धर्मका नाश करनेवाले हो। तुम्हें धिक्कार है।'

ऐसा कहकर मोहिनी बड़ी उतावलीके साथ उठी और जिस प्रकार सती देवी महादेवजीको छोड़कर गयी थीं, उसी प्रकार वह राजाको छोड़कर ब्राह्मणोंको साथ ले उसी समय वहाँसे चल दी। उस समय ब्रह्माजीकी मानसपुत्री मोहिनी 'हा तात! हा जगन्नाथ! जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले परमेश्वर! मेरी सुध लो'—इन शब्दोंका जोर-जोरसे उच्चारण करती हुई विलाप कर रही थी।

इसी समय धर्माङ्गद सारी पृथ्वीका परिभ्रमण करके घोड़ेपर चढ़े हुए आये। उनके मनमें कोई ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। उन्होंने मोहिनीकी वह पुकार अपने कानों सुन ली थी। धर्माङ्गद बड़े पितृभक्त थे। धर्ममूर्ति रुक्माङ्गदकुमार तुरंत घोड़ेसे उतर पड़े और पिताके चरणोंके समीप गये। उन्हें प्रणाम करके धर्माङ्गदने फिर उठकर हाथ जोड़, उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। राजन्! तदनन्तर रोषयुक्त हृदय-वाली मोहिनीको शीघ्र-गतिसे बाहर जाती देख धर्माङ्गद बड़े वेगसे सामने गये और हाथ जोड़कर बोले—'माँ! किसने तुम्हारा अपमान किया है? देवि! तुम तो पिताजीको अधिक प्रिय हो, आज रुष्ट कैसे हो गयी? इन ब्राह्मणोंके साथ इस समय तुम कहाँ जा रही हो?' धर्माङ्गदकी बात सुनकर मोहिनी बोली—'बेटा! तुम्हारे पिता झूठे हैं, जिन्होंने अपना हाथ मुझे देकर भी उसे व्यर्थ कर दिया। अतः तुम्हारे पिता रुक्माङ्गदके साथ रहनेका अब मेरे मनमें कोई उत्साह नहीं है।'

धर्माङ्गदने कहा—देवि! तुम जो कहोगी, उसे मैं तुरंत करूँगा। माँ! तुम क्रोध न करो। तुम पिताजीको अधिक प्रिय हो; अतः उनके पास लौट चलो।

मोहिनी बोली—वत्स! मुँहमाँगा वरदान देनेकी शर्त रखकर तुम्हारे पिताने मन्दराचलपर मुझे अपनी पत्नी बनाया था। देवेश्वर भगवान् शिव इसके साक्षी हैं, किंतु तुम्हारे पिता रुक्माङ्गद अब उस प्रतिज्ञासे गिर गये हैं। राजकुमार!

उत्तर दिशामें रहनेवाले विष्णुधर्मपरायण ब्राह्मणोंको तो उचित है कि वे एकादशीके दिन पशुओंको भी अन्न न दें। द्विजोत्तमो ! मेरा शरीर क्षीण नहीं है और मैं रोगी भी नहीं हूँ, अतः ब्राह्मणके कहनेमात्रसे मैं एकादशीके व्रतका त्याग कैसे करूँगा ? मेरा पुत्र धर्माङ्गद इस भूतलकी रक्षा कर रहा है। अतः मैं लोक या प्रजाकी रक्षारूप धर्मसे भी शून्य नहीं हूँ। मेरा कोई भी शत्रु नहीं है। द्विजवरो ! ऐसा जानकर आपलोगोंको वैष्णव-व्रतका पालन करनेवाले मेरे प्रतिकूल कोई व्रतनाशक वचन नहीं कहना चाहिये। देवता, दानव, गन्धर्व, राक्षस, सिद्ध, ब्राह्मण, हमारे पिता, भगवान् विष्णु, भगवान् शिव अथवा मोहिनीके पिता श्रीब्रह्माजी, सूर्य अथवा और कोई लोकपाल स्वयं आकर कहें तो भी मैं एकादशीको भोजन नहीं करूँगा। द्विजो ! इस पृथ्वीपर विख्यात यह राजा रुक्माङ्गद अपनी सच्ची प्रतिज्ञाको कभी निष्फल नहीं कर सकता। ब्राह्मणो ! इन्द्रका तेज क्षीण हो जाय, हिमालय बदल जाय, समुद्र सूख जाय तथा अग्नि अपनी स्वाभाविक उष्णताको त्याग दे तथापि मैं एकादशीके दिन उपवासरूप व्रतका त्याग नहीं करूँगा। विप्रगण ! तीनों लोकोंमें यह बात प्रसिद्ध हो चुकी है और डंकेकी चोटसे दुहरायी जाती है कि जो लोग रुक्माङ्गदके गाँव, देश तथा अन्य स्थानोंमें एकादशीको भोजन करेंगे, वे पुत्रसहित दण्डनीय एवं वध्य होंगे और उनके लिये इस राज्यमें ठहरनेका स्थान नहीं होगा। एकादशीका दिन सब यज्ञोंसे प्रधान, पापनाशक, धर्मवर्धक, मोक्षदायक तथा जन्मरूपी बन्धनको काटनेवाला है। यह तेजकी निधि है और सब लोगोंमें इसकी प्रसिद्धि भी है। इस तरहके शब्दकी घोषणा होनेपर भी यदि मैं एकादशीको भोजन करता हूँ तो पापका प्रवर्तक होऊँगा। मेरा व्रत भङ्ग हो जानेपर मुझे जन्म देनेवाली माता अपनेको व्यर्थ मानेगी तथा ब्राह्मण, देवता तथा पितर निराश होंगे। जो वेद, पुराण और शास्त्रोंको नहीं मानता, वह अन्तमें सूर्यपुत्र यमराजकी पुरीमें जाता है। जो वमन करके फिर उसे खाता है, उसीके समान वह भी है, जो अपनी प्रतिज्ञा तथा व्रतको भङ्ग कर देता है। वेद, शास्त्र, पुराण, संत-महात्मा तथा धर्मशास्त्र कोई भी ऐसे नहीं हैं, जो भगवान् विष्णुके प्रिय कार्यके योग्य एकादशीके दिन भोजनका विधान करते हों। एकादशीके दिनका व्रत भगवान् विष्णुके पदको देनेवाला है। उस दिन क्षयाह तिथि होनेपर भी अन्न-भोजनकी बात मूढ़ पुरुष ही कह सकते हैं।'

राजाकी यह बात सुनकर मोहिनी भीतर-ही-भीतर जल उठी और क्रोधसे आँखें लाल करके पतिसे बोली—'राजन् ! तुम मेरी बात नहीं स्वीकार करते हो तो धर्मभ्रष्ट हो जाओगे। पृथ्वीपते ! तुमने वर देनेके लिये अपना हाथ सौंपा था। अपनी उस प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन करके यदि दिये हुए वचनका पालन न करोगे तो मै चली जाऊँगी। नरेश ! अब मै न तो तुम्हारी प्यारी पत्नी हूँ और न तुम मेरे पति। तुम अपने वचनको मिटाकर धर्मका नाश करनेवाले हो। तुम्हें धिक्कार है।'

ऐसा कहकर मोहिनी बड़ी उतावलीके साथ उठी और जिस प्रकार सती देवी महादेवजीको छोड़कर गयी थीं, उसी प्रकार वह राजाको छोड़कर ब्राह्मणोंको साथ ले उसी समय वहाँसे चल दी। उस समय ब्रह्माजीकी मानसपुत्री मोहिनी 'हा तात ! हा जगन्नाथ ! जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले परमेश्वर ! मेरी सुध लो'—इन शब्दोंका जोर-जोरसे उच्चारण करती हुई विलाप कर रही थी।

इसी समय धर्माङ्गद सारी पृथ्वीका परिभ्रमण करके घोड़ेपर चढ़े हुए आये। उनके मनमें कोई ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। उन्होंने मोहिनीकी वह पुकार अपने कानों सुन ली थी। धर्माङ्गद बड़े पितृभक्त थे। धर्ममूर्ति रुक्माङ्गदकुमार तुरंत घोड़ेसे उतर पड़े और पिताके चरणोंके समीप गये। उन्हें प्रणाम करके धर्माङ्गदने फिर उठकर हाथ जोड़, उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। राजन् ! तदनन्तर रोषयुक्त हृदय-वाली मोहिनीको शीघ्र-गतिसे बाहर जाती देख धर्माङ्गद बड़े वेगसे सामने गये और हाथ जोड़कर बोले—'माँ ! किसने तुम्हारा अपमान किया है ? देवि ! तुम तो पिताजीको अधिक प्रिय हो, आज रुष्ट कैसे हो गयी ? इन ब्राह्मणोंके साथ इस समय तुम कहाँ जा रही हो ?' धर्माङ्गदकी बात सुनकर मोहिनी बोली—'बेटा ! तुम्हारे पिता झूठे हैं, जिन्होंने अपना हाथ मुझे देकर भी उसे व्यर्थ कर दिया। अतः तुम्हारे पिता रुक्माङ्गदके साथ रहनेका अब मेरे मनमें कोई उत्साह नहीं है।'

धर्माङ्गदने कहा—देवि ! तुम जो कहोगी, उसे मैं तुरंत करूँगा। माँ ! तुम क्रोध न करो। तुम पिताजीको अधिक प्रिय हो; अतः उनके पास लौट चलो।

मोहिनी बोली—वत्स ! मुँहमाँगा वरदान देनेकी शर्त रखकर तुम्हारे पिताने मन्दराचलपर मुझे अपनी पत्नी बनाया था। देवेश्वर भगवान् शिव इसके साक्षी हैं, किंतु तुम्हारे पिता रुक्माङ्गद अब उस प्रतिज्ञासे गिर गये हैं। राजकुमार !

संध्यावली-मोहिनी-संवाद, रानी संध्यावलीका मोहिनीको पतिकी इच्छाके विपरीत चलनेमें दोष बताना

वसिष्ठजी कहते हैं—पिताकी बात सुनकर पुत्र धर्माङ्गदने अपनी कल्याणमयी माता संध्यावलीको शीघ्र ही बुलाया। पुत्रके कहनेसे वे उसी क्षण महाराजके समीप आयीं। धर्माङ्गदने उनसे मोहिनी तथा पिताकी भी बातें कह सुनायीं और निवेदन किया—'माँ! दोनोंकी बातोंपर विचार करके मोहिनीको सान्त्वना दो। यह एकादशीके दिन राजाको भोजन करानेपर तुली हुई है। मेरे पिता जिस प्रकार सत्यसे विचलित न हों और एकादशीको भोजन भी न करें—ऐसा कोई उपाय निकालो, ऐसा होनेपर ही दोनोंका मङ्गल होगा।' राजन्! पुत्रकी बात सुनकर संध्यावली देवी ब्रह्मपुत्री मोहिनीसे उस समय मधुर वाणीमें बोलीं—'वामोरु! आग्रह न करो। एकादशी प्राप्त होनेपर अन्नमात्रमें पापका सम्पर्क हो जाता है, अतः महाराज किसी प्रकार भी उसका आस्वादन नहीं कर सकते। तुम राजाका अनुसरण करो। ये हमलोगोंके सनातन गुरु हैं। जो नारी सदा अपने पतिकी आज्ञाका पालन करती है, उसे सावित्रीके समान अक्षय तथा निर्मल लोक प्राप्त होते हैं। देवि! यदि इन्होंने पहले मन्दराचलपर कामसे पीड़ित होकर तुम्हें अपना हाथ दिया है तो उस समय इन्होंने योग्यायोग्यका विचार नहीं किया। जो देनेलायक वस्तु है, उसे तो वे दे ही रहे हैं और जो नहीं देनेयोग्य वस्तु है, उसको तुम माँगो भी मत। जो सन्मार्गमें स्थित है उसे यदि विपत्ति भी प्राप्त हो तो वह कल्याणमयी ही होती है। सुभगे! जिन्होंने बचपनमें भी एकादशीके दिन भोजन नहीं किया है, वे इस समय वृद्धावस्थामें भगवान् विष्णुके पुण्यमय दिवसको अन्न कैसे ग्रहण करेंगे? तुम इच्छानुसार कोई दूसरा अत्यन्त दुर्लभ वर माँग लो। उसे महाराज अवश्य दे देंगे। उन्हें भोजन करानेके हठसे निवृत्त हो जाओ। देवि! मैं धर्माङ्गदकी जननी हूँ। यदि तुम मुझे विश्वसनीय मानती हो तो सातों द्वीप, नदी, वन और पर्वतसहित इस सम्पूर्ण राज्यको और मेरे जीवनको भी माँग लो। विशाललोचने! यद्यपि मैं ज्येष्ठ हूँ तथापि पतिके लिये छोटी सपत्नीकी भी चरण-वन्दना करूँगी। तुम प्रसन्न हो जाओ। जो वचनसे और शपथ-दोषसे पतिको विवश करके उनसे न करनेयोग्य कार्य करा लेती है, वह पापपरायणा नारी नरकमें निवास करती है। वह भयकर नरकसे निकलनेके बाद बारह जन्मोंतक शूकरीकी योनिमें जन्म लेती है। तत्पश्चात् चाण्डाली होती है। सुन्दरि! इस प्रकार पापका परिणाम जानकर मैंने तुम्हें सखी-भावसे मना किया है। कमलानने! धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह शत्रुको भी अच्छी बुद्धि (नेक सलाह) दे; फिर तुम तो मेरी सखीके रूपमें स्थित हो। अतः तुम्हें क्यों न अच्छी सलाह दी जाय?'

संध्यावलीकी बात सुनकर मोहकारिणी मोहिनी सुवर्णके समान सुन्दर कान्तिवाली पतिकी ज्येष्ठ प्रियासे उस समय इस प्रकार बोली—'सुभ्रु! तुम मेरी माननीया हो, मैं तुम्हारी बात मानूँगी। नारदादि विद्वान् महर्षियोंने ऐसा ही कहा है। देवि! यदि राजा एकादशीके दिन भोजन न करें तो उसके बदले एक दूसरा कार्य करें, जो तुम्हारे लिये मृत्युसे अधिक कष्टदायक है। शुभे! वह कार्य मेरे लिये भी दुःखदायक है तथापि दैववश मैं वह बात कहूँगी, जो तुम्हारे प्राण लेनेवाली है। तुम्हारे ही नहीं, पतिदेवके, प्रजावर्गके तथा पुत्रवधुओंके भी प्राण हर लेनेवाली वह बात है। उससे मेरे धर्मका नाश तो होगा ही, मुझे भारी कलंककी भी प्राप्ति होगी। उस बातको कर दिखाना तो दूर है, मनमें उसे करनेका विचार लाना भी सम्भव नहीं है। यदि तुम मेरे उस वचनका पालन करोगी तो इस संसारमें तुम्हारी बड़ी भारी कीर्ति फैलेगी, पतिदेवको भी यश मिलेगा, तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी, तुम्हारे पुत्रकी सब लोग प्रशंसा करेंगे और मुझे चारों ओरसे धिक्कार मिलेगा।'

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! मोहिनीकी बात सुनकर देवी सध्यावलीने किसी तरह धैर्य धारण किया और उस मोहिनीसे कहा—'कहो, कहो क्या बात है? तुम कैसा वचन बोलोगी, जिससे मुझे दुःख होगा। मुझे अपने पतिके सत्यकी रक्षामें कभी कोई दुःख नहीं हो सकता। स्वामीके हितका साधन करते समय मेरे इस शरीरका अन्त हो जाय, मेरे पुत्रकी मृत्यु हो जाय अथवा सम्पूर्ण राज्यका नाश हो जाय; तथापि मुझे कोई व्यथा नहीं होगी। सुन्दरी! जिस पत्नीके पति उसके व्यवहारसे दुखी होते हैं, वह समृद्धिशालिनी हो तो भी उस पापिनीकी अधोगति ही कही गयी है। वह सत्तर युगोंतक पूय नामक नरकमें पड़ी रहती है। तत्पश्चात् भारतवर्षमें सात जन्मोंतक छछूँदर होती है। उसके बाद

संध्यावली-मोहिनी-संवाद, रानी संध्यावलीका मोहिनीको पतिकी इच्छाके विपरीत चलनेमें दोष बताना

वसिष्ठजी कहते हैं—पिताकी बात सुनकर पुत्र धर्माङ्गदने अपनी कल्याणमयी माता संध्यावलीको शीघ्र ही बुलाया। पुत्रके कहनेसे वे उसी क्षण महाराजके समीप आयीं। धर्माङ्गदने उनसे मोहिनी तथा पिताकी भी बातें कह सुनायीं और निवेदन किया—'माँ! दोनोंकी बातोंपर विचार करके मोहिनीको सान्त्वना दो। यह एकादशीके दिन राजाको भोजन करानेपर तुली हुई है। मेरे पिता जिस प्रकार सत्यसे विचलित न हों और एकादशीको भोजन भी न करें—ऐसा कोई उपाय निकालो, ऐसा होनेपर ही दोनोंका मङ्गल होगा।' राजन्! पुत्रकी बात सुनकर संध्यावली देवी ब्रह्मपुत्री मोहिनीसे उस समय मधुर वाणीमें बोलीं—'वामोरु! आग्रह न करो। एकादशी प्राप्त होनेपर अन्नमात्रमें पापका सम्पर्क हो जाता है, अतः महाराज किसी प्रकार भी उसका आस्वादन नहीं कर सकते। तुम राजाका अनुसरण करो। ये हमलोगोंके सनातन गुरु हैं। जो नारी सदा अपने पतिकी आज्ञाका पालन करती है, उसे सावित्रीके समान अक्षय तथा निर्मल लोक प्राप्त होते हैं। देवि! यदि इन्होंने पहले मन्दराचलपर कामसे पीड़ित होकर तुम्हें अपना हाथ दिया है तो उस समय इन्होंने योग्यायोग्यका विचार नहीं किया। जो देनेलायक वस्तु है, उसे तो वे दे ही रहे हैं और जो नहीं देनेयोग्य वस्तु है, उसको तुम माँगो भी मत। जो सन्मार्गमें स्थित है उसे यदि विपत्ति भी प्राप्त हो तो वह कल्याणमयी ही होती है। सुभगे! जिन्होंने बचपनमें भी एकादशीके दिन भोजन नहीं किया है, वे इस समय वृद्धावस्थामें भगवान् विष्णुके पुण्यमय दिवसको अन्न कैसे ग्रहण करेंगे? तुम इच्छानुसार कोई दूसरा अत्यन्त दुर्लभ वर माँग लो। उसे महाराज अवश्य दे देंगे। उन्हें भोजन करानेके हठसे निवृत्त हो जाओ। देवि! मैं धर्माङ्गदकी जननी हूँ। यदि तुम मुझे विश्वसनीय मानती हो तो सातों द्वीप, नदी, वन और पर्वतसहित इस सम्पूर्ण राज्यको और मेरे जीवनको भी माँग लो। विशाललोचने! यद्यपि मैं ज्येष्ठ हूँ तथापि पतिके लिये छोटी सपत्नीकी भी चरण-वन्दना करूँगी। तुम प्रसन्न हो जाओ। जो वचनसे और शपथ-दोषसे पतिको विवश करके उनसे न करनेयोग्य कार्य करा लेती है, वह पापपरायणा नारी नरकमें निवास करती है। वह भयंकर नरकसे निकलनेके बाद बारह जन्मोंतक शूकरीकी योनिमें जन्म लेती है। तत्पश्चात् चाण्डाली होती है। सुन्दरि! इस प्रकार पापका परिणाम जानकर मैंने तुम्हें सखी-भावसे मना किया है। कमलानने! धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह शत्रुको भी अच्छी बुद्धि (नेक सलाह) दे; फिर तुम तो मेरी सखीके रूपमें स्थित हो। अतः तुम्हें क्यों न अच्छी सलाह दी जाय?'

संध्यावलीकी बात सुनकर मोहकारिणी मोहिनी सुवर्णके समान सुन्दर कान्तिवाली पतिकी ज्येष्ठ प्रियासे उस समय इस प्रकार बोली—'सुभ्रु! तुम मेरी माननीया हो, मैं तुम्हारी बात मानूँगी। नारदादि विद्वान् महर्षियोंने ऐसा ही कहा है। देवि! यदि राजा एकादशीके दिन भोजन न करें तो उसके बदले एक दूसरा कार्य करें, जो तुम्हारे लिये मृत्युसे अधिक कष्टदायक है। शुभे! वह कार्य मेरे लिये भी दुःखदायक है तथापि दैववश मैं वह बात कहूँगी, जो तुम्हारे प्राण लेनेवाली है। तुम्हारे ही नहीं, पतिदेवके, प्रजावर्गके तथा पुत्रवधुओंके भी प्राण हर लेनेवाली वह बात है। उससे मेरे धर्मका नाश तो होगा ही, मुझे भारी कलंककी भी प्राप्ति होगी। उस बातको कर दिखाना तो दूर है, मनमें उसे करनेका विचार लाना भी सम्भव नहीं है। यदि तुम मेरे उस वचनका पालन करोगी तो इस संसारमें तुम्हारी बड़ी भारी कीर्ति फैलेगी, पतिदेवको भी यश मिलेगा, तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी, तुम्हारे पुत्रकी सब लोग प्रशंसा करेंगे और मुझे चारों ओरसे धिक्कार मिलेगा।'

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! मोहिनीकी बात सुनकर देवी सन्ध्यावलीने किसी तरह धैर्य धारण किया और उस मोहिनीसे कहा—'कहो, कहो क्या बात है? तुम कैसा वचन बोलोगी, जिससे मुझे दुःख होगा। मुझे अपने पतिके सत्यकी रक्षामें कभी कोई दुःख नहीं हो सकता। स्वामीके हितका साधन करते समय मेरे इस शरीरका अन्त हो जाय, मेरे पुत्रकी मृत्यु हो जाय अथवा सम्पूर्ण राज्यका नाश हो जाय; तथापि मुझे कोई व्यथा नहीं होगी। सुन्दरी! जिस पत्नीके पति उसके व्यवहारसे दुखी होते हैं, वह समृद्धिशालिनी हो तो भी उस पापिनीकी अधोगति ही कही गयी है। वह सत्तर युगोंतक पूय नामक नरकमें पड़ी रहती है। तत्पश्चात् भारतवर्षमें सात जन्मोंतक छछूँदर होती है। उसके बाद

नमस्कार है एवं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध जिनके व्यूहमय शरीर हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। ब्रह्मा, शङ्कर, स्वामिकार्तिकेय, गणेश, नन्दी और भृङ्गी-रूपमें भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो बदरिकाश्रममें नर-नारायणरूपसे गन्धमादन पर्वतपर निवास करते हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। जो जगदीश्वरपुरीमें जगन्नाथ नाम धारण करते हैं, सेतुबन्धमें रामेश्वर नामसे विख्यात होते हैं तथा द्वारका और वृन्दावनमें श्रीकृष्णरूपसे रहते हैं, उन परमेश्वरको नमस्कार है। जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। प्रभो! आपके चरण, हाथ और नेत्र सभी कमलके समान हैं। आपको नमस्कार है। आप कमला देवीके प्रतिपालक भगवान् केशवको बारंबार नमस्कार है। सूर्यरूपमें आपको नमस्कार है। चन्द्रमारूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। इन्द्रादि लोकपाल आपके स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। प्रजापतिस्वरूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण प्राणियोंका समुदाय आपका स्वरूप है, आप जीवस्वरूप, तेजोमय, जय, विजयी, नेता, नियम और क्रियारूप हैं; आपको नमस्कार है। निर्गुण, निरीह, नीतिज्ञ तथा निष्क्रियरूप आपको नमस्कार है। बुद्ध और कल्कि—ये दोनों आपके सुप्रसिद्ध अवतार-विग्रह हैं, आप ही क्षेत्रज्ञ जीव तथा अक्षर परमात्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप गोविन्द, विश्वम्भर, अनन्त, आदिपुरुष, शार्ङ्गधनुषधारी, शङ्खधारी, गदाधर, चक्रसुदर्शन-धारी, खड्गहस्त, शूलपाणि, समस्त शस्त्रास्त्रघाती, शरणदाता, वरणीय तथा सबसे परे परमात्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप इन्द्रियोंके स्वामी और विश्वमय हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपका स्वरूप है, आपको नमस्कार है। काल आपकी नाभि है, आप कालस्वरूप हैं, चन्द्रमा और सूर्य आपके नेत्र हैं, आपको नमस्कार है। आप सर्वत्र परिपूर्ण, सबके सेव्य तथा परात्पर पुरुष हैं, आपको नमस्कार है। आप इस जगत्के कर्ता, भर्ता तथा धर्ता हैं। यमराज भी आपके ही रूप हैं। आप ही सबको मोह और क्षोभमें डालनेवाले हैं। अजन्मा होते हुए भी इच्छानुसार अनेक रूप धारण करते हैं। आप सर्वश्रेष्ठ विद्वान् हैं; आपको नमस्कार है। भगवन्! हम सब देवता दैत्योंसे सताये हुए हैं और इस समय आपकी शरणमें आये हैं। जगदाधार! आप ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हम स्त्री, पुत्र और मित्र आदिके साथ सुखी होकर रह सकें।

दैत्योंसे सताये हुए देवताओंका यह स्तवन सुनकर भगवान् विष्णु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। स्नेहपूर्ण हृदयवाले देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुका दर्शन करके उन देवताओंने विरोचनका शीघ्र वध करनेके लिये उनसे सादर प्रार्थना की। कार्यसिद्धिका उपाय जाननेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीहरिने इन्द्रादि देवताओंकी आवश्यकता सुनकर उन्हें आश्वासन दिया और उन्हें प्रसन्न करके प्रेम-पूर्वक विदा किया। देववर्गके चले जानेपर भगवान् विष्णु देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर विरोचनके घर गये और ब्राह्मण-पूजनके समय वहाँ पहुँचे। जो पहले कभी नहीं आये थे, ऐसे ब्राह्मणको आया देख विशालाक्षी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। उसने भक्ति-भावसे उनका सत्कार करके उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया। शुभे! ब्राह्मणने उसके दिये हुए आसनको स्वीकार न करके कहा—'देवि! मैं तुम्हारे दिये हुए इस उत्तम आसनको ग्रहण नहीं करूँगा। मानिनि! जो मेरे मनोगत कार्यको समझकर उसे पूर्ण करनेकी स्वीकृति दे, उसीकी पूजा मैं ग्रहण करूँगा।' बूढ़े ब्राह्मणकी यह बात सुनकर बातचीत करनेमें निपुण विशालाक्षी बड़ी प्रसन्न हुई। भगवान् विष्णुकी मायाने उसे मोहित कर लिया था। अपने स्त्री-स्वभावके कारण भी वह इस विषयमें अधिक विचार न कर सकी और बोली।

नमस्कार है एवं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध जिनके व्यूहमय शरीर हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। ब्रह्मा, शङ्कर, स्वामिकार्तिकेय, गणेश, नन्दी और भृङ्गी-रूपमें भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो बदरिकाश्रममें नर-नारायणरूपसे गन्धमादन पर्वतपर निवास करते हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है। जो जगदीश्वरपुरीमें जगन्नाथ नाम धारण करते हैं, सेतुबन्धमें रामेश्वर नामसे विख्यात होते हैं तथा द्वारका और वृन्दावनमें श्रीकृष्णरूपसे रहते हैं, उन परमेश्वरको नमस्कार है। जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। प्रभो! आपके चरण, हाथ और नेत्र सभी कमलके समान हैं। आपको नमस्कार है। आप कमला देवीके प्रतिपालक भगवान् केशवको बारंबार नमस्कार है। सूर्यरूपमें आपको नमस्कार है। चन्द्रमारूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। इन्द्रादि लोकपाल आपके स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। प्रजापतिस्वरूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण प्राणियोंका समुदाय आपका स्वरूप है, आप जीवस्वरूप, तेजोमय, जय, विजयी, नेता, नियम और क्रियारूप हैं; आपको नमस्कार है। निर्गुण, निरीह, नीतिज्ञ तथा निष्क्रियरूप आपको नमस्कार है। बुद्ध और कल्कि—ये दोनों आपके सुप्रसिद्ध अवतार-विग्रह हैं, आप ही क्षेत्रज्ञ जीव तथा अक्षर परमात्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप गोविन्द, विश्वम्भर, अनन्त, आदिपुरुष, शार्ङ्गधनुषधारी, शङ्खधारी, गदाधर, चक्रसुदर्शन-धारी, खड्गहस्त, शूलपाणि, समस्त शस्त्रास्त्रघाती, शरणदाता, वरणीय तथा सबसे परे परमात्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप इन्द्रियोंके स्वामी और विश्वमय हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपका स्वरूप है, आपको नमस्कार है। काल आपकी नाभि है, आप कालस्वरूप हैं, चन्द्रमा और सूर्य आपके नेत्र हैं, आपको नमस्कार है। आप सर्वत्र परिपूर्ण, सबके सेव्य तथा परात्पर पुरुष हैं, आपको नमस्कार है। आप इस जगत्‌के कर्ता, भर्ता तथा धर्ता हैं। यमराज भी आपके ही रूप हैं। आप ही सबको मोह और क्षोभमें डालनेवाले हैं। अजन्मा होते हुए भी इच्छानुसार अनेक रूप धारण करते हैं। आप सर्वश्रेष्ठ विद्वान् हैं; आपको नमस्कार है। भगवन्! हम सब देवता दैत्योंसे सताये हुए हैं और इस समय आपकी शरणमें आये हैं। जगदाधार! आप ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हम स्त्री, पुत्र और मित्र आदिके साथ सुखी होकर रह सकें।

दैत्योंसे सताये हुए देवताओंका यह स्तवन सुनकर भगवान् विष्णु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। स्नेहपूर्ण हृदयवाले देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुका दर्शन करके उन देवताओंने विरोचनका शीघ्र वध करनेके लिये उनसे सादर प्रार्थना की। कार्यसिद्धिका उपाय जाननेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीहरिने इन्द्रादि देवताओंकी आवश्यकता सुनकर उन्हें आश्वासन दिया और उन्हें प्रसन्न करके प्रेम-पूर्वक विदा किया। देववर्गके चले जानेपर भगवान् विष्णु देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर विरोचनके घर गये और ब्राह्मण-पूजनके समय वहाँ पहुँचे। जो पहले कभी नहीं आये थे, ऐसे ब्राह्मणको आया देख विशालाक्षी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। उसने भक्ति-भावसे उनका सत्कार करके उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया। शुभे! ब्राह्मणने उसके दिये हुए आसनको स्वीकार न करके कहा—'देवि! मैं तुम्हारे दिये हुए इस उत्तम आसनको ग्रहण नहीं करूँगा। मानिनि! जो मेरे मनोगत कार्यको समझकर उसे पूर्ण करनेकी स्वीकृति दे, उसीकी पूजा मैं ग्रहण करूँगा।' बूढ़े ब्राह्मणकी यह बात सुनकर बातचीत करनेमें निपुण विशालाक्षी बड़ी प्रसन्न हुई। भगवान् विष्णुकी मायाने उसे मोहित कर लिया था। अपने स्त्री-स्वभावके कारण भी वह इस विषयमें अधिक विचार न कर सकी और बोली।

गया और न जाने कहाँसे यह मोहिनी मुझे वहाँ मिली। देवि! यह स्त्री नहीं, धर्माङ्गदका नाश करनेके लिये साक्षात् कालप्रिया काली है। धर्माङ्गद धर्मज्ञ, विनयशील तथा प्रजाको प्रसन्न रखनेवाला है, अभीतक उसे कोई संतान भी नहीं हुई है। ऐसे पुत्रको मारकर मेरी क्या गति होगी? देवि! कुपुत्रको भी मारनेसे पिताके मनमें दुःख होता है, फिर जो धर्मशील तथा गुरुजनोंका सेवक है, उसके मरनेसे कितना दुःख होगा। वरवर्णिनि! इस समय तुम्हारे पुत्रके प्रतापसे ही मैंने सातो द्वीपोंके राज्यका उपभोग किया है। अपना यह पुत्र धर्माङ्गद इस पृथ्वीपर सबसे श्रेष्ठ है। मनोहराङ्गी! वह मेरे समूचे कुलका सम्मान बढ़ानेवाला है। सुन्दरि! मोहिनी मोहमें डूबकर केवल मुझे दुःख दे रही है, तुम पुनः शुभ वचनोंद्वारा उसे समझाओ।'

अपनी प्रिय पत्नी संध्यावलीसे ऐसा कहकर राजा उस समय मोहिनीसे इस प्रकार बोले—'शुभे! मैं एकादशीको भोजन नहीं करूँगा और पुत्रकी हत्या भी नहीं कर सकूँगा। अपनेको और संध्यावली देवीको आरेसे चीर सकता हूँ अथवा तुम्हारे कहनेसे कोई और भी भयंकर कर्म कर सकता हूँ। सुभ्रु! पुत्रके सम्बन्धमें यह दुष्टतापूर्ण आग्रह छोड़ दो। बताओ, पुत्र धर्माङ्गदको मार देनेसे तुम्हें क्या फल मिलेगा? मुझे एकादशीको भोजन करा देनेसे तुम्हारा क्या लाभ होगा? वरानने! मै तुम्हारा दास हूँ, सेवक हूँ और सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ। सौभाग्यशालिनि! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ। सुन्दरि! कोई दूसरा वर माँग लो। देवि! मुझपर कृपा करो। पुत्रकी भिक्षा दे दो। गुणवान् पुत्र दुर्लभ है और एकादशीका व्रत भी दुर्लभ है। इस पृथ्वीपर गङ्गाजीका जल दुर्लभ है, भगवान् विष्णुका पूजन दुर्लभ है तथा स्मृतियोंका संग्रह भी दुर्लभ है एवं भगवान् विष्णुका स्मरण एवं चिन्तन भी अत्यन्त दुर्लभ है। साधु पुरुषोंका सङ्ग दुर्लभ है तथा भगवान्‌की भक्ति भी दुर्लभ ही बतायी गयी है। वरवर्णिनि! मृत्युकालमें भगवान् विष्णुका स्मरण भी दुर्लभ ही है, ऐसा समझकर मेरा धर्मरक्षाविषयक वचन स्वीकार करो। मैंने सब विषय भोग लिये, निष्कण्टक राज्य भी कर लिया; किंतु मेरे पुत्रने तो अभी संसारके विषयोंका सुख देखा ही नहीं, अतः उसकी हत्या कदापि नहीं करूँगा। मोहिनी! अपने ही हाथसे अपने पुत्रका वध! ओह! इससे बढ़कर पाप और क्या होगा?'

मोहिनीने कहा—राजन्! मैंने तो पहले ही कह दिया है, एकादशीको भोजन करो और इच्छानुसार बहुत वर्षोंतक पृथ्वीका शासन करते रहो। मैं पुत्रका वध नहीं कराऊँगी। एकादशीको तुम्हारे भोजन कर लेनेमात्रसे ही मेरा प्रयोजन सिद्ध हो जायगा। पृथ्वीपते! तुम्हारे पुत्रकी मृत्युसे मेरा कोई मतलब नहीं है। राजन्! यदि पुत्र प्रिय है तो एकादशीके दिन भोजन करो। महीपाल! इस धर्मविरोधी विलापसे क्या लाभ? मेरी बात मानो और यत्नपूर्वक सत्यकी रक्षा करो।'

राजन्! मोहिनी जब ऐसी बात कह रही थी, उसी समय धर्माङ्गद वहाँ आ गये और मोहिनीकी ओर देखकर उसे प्रणाम करके सामने खड़े हो विनीतभावसे बोले—'भामिनि! तुम यही लो (मेरे वधरूपी वरको ही ग्रहण करो); इसके विषयमें तनिक भी शङ्का न करो।' ऐसा कहकर उन्होंने राजाके आगे एक चमकती हुई तलवार रख दी और अपने-आपको भी समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् सत्य-धर्ममें स्थित हो पितासे कहा—'पिताजी! अब आपको मुझे मारनेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। महाराज! आपने मेरी माता मोहिनीके समक्ष जो प्रतिज्ञा की है, उसे सत्य कर दिखाइये। आपके हितके लिये मेरा मरना मुझे अक्षय गति देनेवाला है और अपने वचनके पालनसे आपको भी तेजस्वी लोक प्राप्त होंगे। अतः पुत्रके मारे जानेका जो महान् दुःख है, उसको त्यागकर अपने धर्मका पालन कीजिये। इस मर्त्यशरीरका त्याग करनेपर मेरे भावी जीवनका आरम्भ अमर देहमें होगा। वह मेरा दिव्य शरीर सब प्रकारके रोगोंसे रहित होगा। प्रभो! जो पुत्र पिता अथवा माताके हितके लिये मारे जाते हैं तथा राजन्! जो गाय, ब्राह्मण, स्त्री, भूमि, राजा, देवता, बालक तथा आर्तजनोंके लिये प्राण त्याग करते हैं, वे अत्यन्त प्रकाशमय लोकोंमें जाते हैं। अतः शोक-संतापसे कोई लाभ नहीं, आप श्रेष्ठ तलवारसे मेरा वध कीजिये। राजेन्द्र! सत्यका पालन कीजिये और एकादशीको भोजन न कीजिये। मैंने अपने शरीरके वधके लिये जो बात कही है, उसे सत्य कीजिये। महाराज! आपने मोहिनीको दाहिना हाथ देकर जो वचन दिया है, उसका पालन न करनेसे असत्यका दोष लगेगा। उस भयंकर असत्य-भाषणके पापसे अपनेको बचाइये।

गया और न जाने कहाँसे यह मोहिनी मुझे वहाँ मिली। देवि! यह स्त्री नहीं, धर्माङ्गदका नाश करनेके लिये साक्षात् कालप्रिया काली है। धर्माङ्गद धर्मज्ञ, विनयशील तथा प्रजाको प्रसन्न रखनेवाला है, अभीतक उसे कोई संतान भी नहीं हुई है। ऐसे पुत्रको मारकर मेरी क्या गति होगी? देवि! कुपुत्रको भी मारनेसे पिताके मनमें दुःख होता है, फिर जो धर्मशील तथा गुरुजनोंका सेवक है, उसके मरनेसे कितना दुःख होगा। वरवर्णिनि! इस समय तुम्हारे पुत्रके प्रतापसे ही मैंने सातों द्वीपोंके राज्यका उपभोग किया है। अपना यह पुत्र धर्माङ्गद इस पृथ्वीपर सबसे श्रेष्ठ है। मनोहराङ्गी! वह मेरे समूचे कुलका सम्मान बढ़ानेवाला है। सुन्दरि! मोहिनी मोहमें डूबकर केवल मुझे दुःख दे रही है, तुम पुनः शुभ वचनोंद्वारा उसे समझाओ।'

अपनी प्रिय पत्नी संध्यावलीसे ऐसा कहकर राजा उस समय मोहिनीसे इस प्रकार बोले—'शुभे! मैं एकादशीको भोजन नहीं करूँगा और पुत्रकी हत्या भी नहीं कर सकूँगा। अपनेको और संध्यावली देवीको आरेसे चीर सकता हूँ अथवा तुम्हारे कहनेसे कोई और भी भयंकर कर्म कर सकता हूँ। सुभ्रु! पुत्रके सम्बन्धमें यह दुष्टतापूर्ण आग्रह छोड़ दो। बताओ, पुत्र धर्माङ्गदको मार देनेसे तुम्हें क्या फल मिलेगा? मुझे एकादशीको भोजन करा देनेसे तुम्हारा क्या लाभ होगा? वरानने! मैं तुम्हारा दास हूँ, सेवक हूँ और सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ। सौभाग्यशालिनि! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ। सुन्दरि! कोई दूसरा वर माँग लो। देवि! मुझपर कृपा करो। पुत्रकी भिक्षा दे दो। गुणवान् पुत्र दुर्लभ है और एकादशीका व्रत भी दुर्लभ है। इस पृथ्वीपर गङ्गाजीका जल दुर्लभ है, भगवान् विष्णुका पूजन दुर्लभ है तथा स्मृतियोंका संग्रह भी दुर्लभ है एवं भगवान् विष्णुका स्मरण एवं चिन्तन भी अत्यन्त दुर्लभ है। साधु पुरुषोंका सङ्ग दुर्लभ है तथा भगवान्‌की भक्ति भी दुर्लभ ही बतायी गयी है। वरवर्णिनि! मृत्युकालमें भगवान् विष्णुका स्मरण भी दुर्लभ ही है, ऐसा समझकर मेरा धर्मरक्षाविषयक वचन स्वीकार करो। मैंने सब विषय भोग लिये, निष्कण्टक राज्य भी कर लिया; किंतु मेरे पुत्रने तो अभी संसारके विषयोंका सुख देखा ही नहीं, अतः उसकी हत्या कदापि नहीं करूँगा। मोहिनी! अपने ही हाथसे अपने पुत्रका वध! ओह! इससे बढ़कर पाप और क्या होगा?'

मोहिनीने कहा—राजन्! मैंने तो पहले ही कह दिया है, एकादशीको भोजन करो और इच्छानुसार बहुत वर्षोंतक पृथ्वीका शासन करते रहो। मैं पुत्रका वध नहीं कराऊँगी। एकादशीको तुम्हारे भोजन कर लेनेमात्रसे ही मेरा प्रयोजन सिद्ध हो जायगा। पृथ्वीपते! तुम्हारे पुत्रकी मृत्युसे मेरा कोई मतलब नहीं है। राजन्! यदि पुत्र प्रिय है तो एकादशीके दिन भोजन करो। महीपाल! इस धर्मविरोधी विलापसे क्या लाभ? मेरी बात मानो और यत्नपूर्वक सत्यकी रक्षा करो।

राजन्! मोहिनी जब ऐसी बात कह रही थी, उसी समय धर्माङ्गद वहाँ आ गये और मोहिनीकी ओर देखकर उसे प्रणाम करके सामने खड़े हो विनीतभावसे बोले—'भामिनि! तुम यही लो (मेरे वधरूपी वरको ही ग्रहण करो); इसके विषयमें तनिक भी शङ्का न करो।' ऐसा कहकर उन्होंने राजाके आगे एक चमकती हुई तलवार रख दी और अपने-आपको भी समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् सत्य-धर्ममें स्थित हो पितासे कहा—'पिताजी! अब आपको मुझे मारनेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। महाराज! आपने मेरी माता मोहिनीके समक्ष जो प्रतिज्ञा की है, उसे सत्य कर दिखाइये। आपके हितके लिये मेरा मरना मुझे अक्षय गति देनेवाला है और अपने वचनके पालनसे आपको भी तेजस्वी लोक प्राप्त होंगे। अतः पुत्रके मारे जानेका जो महान् दुःख है, उसको त्यागकर अपने धर्मका पालन कीजिये। इस मर्त्यशरीरका त्याग करनेपर मेरे भावी जीवनका आरम्भ अमर देहमें होगा। वह मेरा दिव्य शरीर सब प्रकारके रोगोंसे रहित होगा। प्रभो! जो पुत्र पिता अथवा माताके हितके लिये मारे जाते हैं तथा राजन्! जो गाय, ब्राह्मण, स्त्री, भूमि, राजा, देवता, बालक तथा आर्तजनोंके लिये प्राण त्याग करते हैं, वे अत्यन्त प्रकाशमय लोकोंमें जाते हैं। अतः शोक-संतापसे कोई लाभ नहीं, आप श्रेष्ठ तलवारसे मेरा वध कीजिये। राजेन्द्र! सत्यका पालन कीजिये और एकादशीको भोजन न कीजिये। मैंने अपने शरीरके वधके लिये जो बात कही है, उसे सत्य कीजिये। महाराज! आपने मोहिनीको दाहिना हाथ देकर जो वचन दिया है, उसका पालन न करनेसे असत्यका दोष लगेगा। उस भयंकर असत्य-भाषणके पापसे अपनेको बचाइये।

उनकी लिपिको मिटाकर अपनी स्त्री और पुत्रके साथ भगवान्‌के शरीरमें समा गये थे और सर्वसाधारण लोग भी राजाके सिखाये हुए मार्गपर स्थित होकर एकादशीका व्रत एवं भगवान्‌का कीर्तन आदि करते हुए वैकुण्ठके ही मार्गपर जाते थे। यह सब देखकर भयभीत हुए यमराज चतुर्मुख ब्रह्माजीके समीप पुनः जाकर बोले—'सुरलोकनाथ! अब मैं यमराजके पदपर नियुक्त नहीं होना चाहता, क्योंकि मेरी आज्ञा जगत्से उठ गयी। तात! मेरे लिये कोई दूसरा कार्य करनेकी आज्ञा प्रदान की जाय। दण्ड देनेका कार्य अब मेरे जिम्मे न रहे।'

यमराजका ब्रह्माजीसे कष्ट-निवेदन, वर देनेके लिये उद्यत देवताओंको रुक्माङ्गदके पुरोहितकी फटकार तथा मोहिनीका ब्राह्मणके शापसे भस्म होना

यमराज बोले—देवेश्वर! जगन्नाथ! चराचरगुरो! प्रभो! राजा रुक्माङ्गदकी चलायी हुई पद्धतिसे सब लोग वैकुण्ठमें ही जा रहे हैं। मेरे पास कोई नहीं आता। पितामह! कुमारावस्थासे ही सब मनुष्य एकादशीको उपवास करके पाप-शून्य हो भगवान् विष्णुके परम धाममें चले जाते हैं। आपकी पुत्री मोहिनी देवी लज्जावश मूर्च्छित होकर पड़ी है, अतः आप-के पास नहीं आती। सब लोग उसे धिक्कारते हैं, इसलिये वह भोजनतक नहीं कर रही है। मेरा तो सारा व्यापार ही बंद हो गया है। आज्ञा कीजिये, मैं क्या करूँ?

सूर्यपुत्र यमकी बात सुनकर कमलासन ब्रह्माजीने कहा—'हम सब लोग साथ ही मोहिनीको होशमें लानेके लिये चलें।' तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवता ब्रह्माजीके साथ दिव्य विमानों-पर बैठकर पृथ्वीपर आये। उन्होंने विमानोंद्वारा मोहिनीको सब ओरसे घेर लिया। वह मन्त्रहीन विधि, धर्म और दयासे रहित युद्ध, भूपालरहित पृथ्वी और मन्त्रणारहित राजाकी भाँति शोचनीय अवस्थामे पड़ी थी। ममत्वयुक्त ज्ञान और दम्भयुक्त धर्मकी जैसी अवस्था होती है, वैसी ही उसकी भी थी। देवताओंने उसे सर्वथा तेजोहीन देखा। प्रभो! वह उत्साहशून्य होकर किसी गम्भीर चिन्तनमें निमग्न थी, सब लोग उसे देखते हुए निन्दायुक्त कटुवचन सुना रहे थे। वह धर्मसे गिर गयी थी। पतिके वचनको उलटकर अपनी बात मनवानेका दुराग्रह रखनेवाली और अत्यन्त क्रोधी थी। उस अवस्थामें उससे देवताओंने कहा—'वामोरु! तुम शोक न करो। तुमने पुरुषार्थ किया है, किंतु जो भगवान् विष्णुके भक्त हैं, उनके मानका कभी खण्डन नहीं हो सकता। इसका एक कारण है, वैशाख मासके शुक्लपक्षमें जो परम पुण्यमयी मोहिनी नामवाली एकादशी आती है, वह सम्पूर्ण विघ्नोका विध्वंस करनेवाली है। राजा रुक्माङ्गदने पहले उस एकादशी-का व्रत किया था। विशाललोचने! उन्होंने एक वर्षतक पादकृच्छ्र-व्रत करते हुए उसका पूजन किया था। उसीका यह अनुपम अध्यवसाय (सामर्थ्य) है कि वे सत्यसे विचलित न हो सके। लोकमें नारीको समस्त विघ्नोंकी रानी कहा जाता है। तुम्हारे विघ्न डालनेपर भी राजा रुक्माङ्गदने मन, वाणी और क्रियाद्वारा एकादशीको अन्न न खानेका निश्चय करके पुत्रको मारनेका विचार कर लिया और स्नेहको दूरसे ही त्याग-कर तलवार उठा ली। इस कसौटीपर कसकर भगवान् मधुसूदनने देख लिया कि "ये प्रिय पुत्रका वध कर डालेंगे, किंतु एकादशीको भोजन नहीं करेंगे।" पुत्र, पत्नी तथा राजा तीनोंका विलक्षण भाव देखकर भगवान् बहुत संतुष्ट हुए। तदनन्तर वे सब भगवान्‌में मिल गये। देवि! सुभगे! यदि सब प्रकार-से प्रयत्नपूर्वक कर्म करनेपर भी फलकी सिद्धि नहीं हो सकी तो अब इसमें तुम्हारा क्या दोष है? इसलिये शुभे! सब देवता तुम्हें वर देनेके लिये यहाँ आये हैं। सद्भावपूर्वक प्रयत्न करने-वाले पुरुषका कार्य यदि नहीं सिद्ध होता तो भी उसको वेतन-मात्र तो दे ही देना चाहिये। नहीं तो, उसे संतोष नहीं होगा।'

देवताओंके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण विश्वको मोहनेवाली मोहिनी आनन्दशून्य, पतिहीन एवं अत्यन्त दुःखित होकर बोली—'देवेश्वरो! मेरे इस जीवनको धिक्कार है, जो मैंने यमलोकके मार्गको मनुष्योंसे भर नहीं दिया, एकादशीके महत्त्वका लोप नहीं किया और राजाको एकादशीके दिन भोजन नहीं करा दिया। वह वीर भूपाल रुक्माङ्गद प्रसन्नता-पूर्वक भगवान् श्रीहरिमें मिल गये। जिनके कल्याणमय गुणों-का कोई माप नहीं है, जो स्वभावतः निर्मल तथा शुद्ध अन्तः-करणवाले संतोंके आश्रय हैं। सर्वव्यापी, हंसस्वरूप, पवित्र पद, परम व्योमरूप, ओङ्कारमय, सबके कारण, अविनाशी, निराकार, निराभास, प्रपञ्चसे परे तथा निरञ्जन (निर्दोष)

उनकी लिपिको मिटाकर अपनी स्त्री और पुत्रके साथ भगवान्‌के शरीरमें समा गये थे और सर्वसाधारण लोग भी राजाके सिखाये हुए मार्गपर स्थित होकर एकादशीका व्रत एवं भगवान्‌का कीर्तन आदि करते हुए वैकुण्ठके ही मार्गपर जाते थे। यह सब देखकर भयभीत हुए यमराज चतुर्मुख ब्रह्माजीके समीप पुनः जाकर बोले—'सुरलोकनाथ! अब मैं यमराजके पदपर नियुक्त नहीं होना चाहता, क्योंकि मेरी आज्ञा जगत्‌से उठ गयी। तात! मेरे लिये कोई दूसरा कार्य करनेकी आज्ञा प्रदान की जाय। दण्ड देनेका कार्य अब मेरे जिम्मे न रहे।'

यमराजका ब्रह्माजीसे कष्ट-निवेदन, वर देनेके लिये उद्यत देवताओंको रुक्माङ्गदके पुरोहितकी फटकार तथा मोहिनीका ब्राह्मणके शापसे भस्म होना

यमराज बोले—देवेश्वर! जगन्नाथ! चराचरगुरो! प्रभो! राजा रुक्माङ्गदकी चलायी हुई पद्धतिसे सब लोग वैकुण्ठमें ही जा रहे हैं। मेरे पास कोई नहीं आता। पितामह! कुमारावस्थासे ही सब मनुष्य एकादशीको उपवास करके पाप-शून्य हो भगवान् विष्णुके परम धाममें चले जाते हैं। आपकी पुत्री मोहिनी देवी लज्जावश मूर्च्छित होकर पड़ी है, अतः आपके पास नहीं आती। सब लोग उसे धिक्कारते हैं, इसलिये वह भोजनतक नहीं कर रही है। मेरा तो सारा व्यापार ही बंद हो गया है। आज्ञा कीजिये, मैं क्या करूँ?

सूर्यपुत्र यमकी बात सुनकर कमलासन ब्रह्माजीने कहा—'हम सब लोग साथ ही मोहिनीको होशमें लानेके लिये चलें।' तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवता ब्रह्माजीके साथ दिव्य विमानोंपर बैठकर पृथ्वीपर आये। उन्होंने विमानोंद्वारा मोहिनीको सब ओरसे घेर लिया। वह मन्त्रहीन विधि, धर्म और दयासे रहित युद्ध, भूपालरहित पृथ्वी और मन्त्रणारहित राजाकी भाँति शोचनीय अवस्थामे पड़ी थी। ममत्वयुक्त ज्ञान और दम्भयुक्त धर्मकी जैसी अवस्था होती है, वैसी ही उसकी भी थी। देवताओंने उसे सर्वथा तेजोहीन देखा। प्रभो! वह उत्साहशून्य होकर किसी गम्भीर चिन्तनमें निमग्न थी, सब लोग उसे देखते हुए निन्दायुक्त कटुवचन सुना रहे थे। वह धर्मसे गिर गयी थी। पतिके वचनको उलटकर अपनी बात मनवानेका दुराग्रह रखनेवाली और अत्यन्त क्रोधी थी। उस अवस्थामें उससे देवताओंने कहा—'वामोरु! तुम शोक न करो। तुमने पुरुषार्थ किया है, किंतु जो भगवान् विष्णुके भक्त हैं, उनके मानका कभी खण्डन नहीं हो सकता। इसका एक कारण है, वैशाख मासके शुक्लपक्षमें जो परम पुण्यमयी मोहिनी नामवाली एकादशी आती है, वह सम्पूर्ण विघ्नोंका विध्वंस करनेवाली है। राजा रुक्माङ्गदने पहले उस एकादशीका व्रत किया था। विशाललोचने! उन्होंने एक वर्षतक पादकृच्छ्र-व्रत करते हुए उसका पूजन किया था। उसीका यह अनुपम अध्यवसाय (सामर्थ्य) है कि वे सत्यसे विचलित न हो सके। लोकमें नारीको समस्त विघ्नोंकी रानी कहा जाता है। तुम्हारे विघ्न डालनेपर भी राजा रुक्माङ्गदने मन, वाणी और क्रियाद्वारा एकादशीको अन्न न खानेका निश्चय करके पुत्रको मारनेका विचार कर लिया और स्नेहको दूरसे ही त्यागकर तलवार उठा ली। इस कसौटीपर कसकर भगवान् मधुसूदनने देख लिया कि 'ये प्रिय पुत्रका वध कर डालेंगे, किंतु एकादशीको भोजन नहीं करेंगे।' पुत्र, पत्नी तथा राजा तीनोंका विलक्षण भाव देखकर भगवान् बहुत संतुष्ट हुए। तदनन्तर वे सब भगवान्‌में मिल गये। देवि! सुभगे! यदि सब प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक कर्म करनेपर भी फलकी सिद्धि नहीं हो सकी तो अब इसमें तुम्हारा क्या दोष है? इसलिये शुभे! सब देवता तुम्हें वर देनेके लिये यहाँ आये हैं। सद्भावपूर्वक प्रयत्न करनेवाले पुरुषका कार्य यदि नहीं सिद्ध होता तो भी उसको वेतनमात्र तो दे ही देना चाहिये। नहीं तो, उसे संतोष नहीं होगा।'

देवताओंके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण विश्वको मोहनेवाली मोहिनी आनन्दशून्य, पतिहीन एवं अत्यन्त दुःखित होकर बोली—'देवेश्वरो! मेरे इस जीवनको धिक्कार है, जो मैंने यमलोकके मार्गको मनुष्योंसे भर नहीं दिया, एकादशीके महत्त्वका लोप नहीं किया और राजाको एकादशीके दिन भोजन नहीं करा दिया। वह वीर भूपाल रुक्माङ्गद प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीहरिमें मिल गये। जिनके कल्याणमय गुणोंका कोई माप नहीं है, जो स्वभावतः निर्मल तथा शुद्ध अन्तःकरणवाले संतोंके आश्रय हैं। सर्वव्यापी, हंसस्वरूप, पवित्र पद, परम व्योमरूप, ओङ्कारमय, सबके कारण, अविनाशी, निराकार, निराभास, प्रपञ्चसे परे तथा निरञ्जन (निर्दोष)

मोहिनीकी दुर्दशा, ब्रह्माजीका राजपुरोहितके समीप जाकर उनको प्रसन्न करना, मोहिनीकी याचना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! मोहिनी मोहमय शरीर त्यागकर देवताओंके लोकमें गयी। वहाँ देवदूत (वायुदेव) ने उसे डाँटा—'पापिनी! तेरा स्वभाव पापमय है। तेरी बुद्धि अत्यन्त खोटी है। तू सदा एकादशी-व्रतके लोपमें संलग्न रही है, अतः स्वर्गमें तेरा रहना असम्भव है।' इस प्रकार कठोर वचन कहकर वायुदेवने उसे डंडेसे पीटा और यातनामय नरकमें भेज दिया। राजन्! देवदूत (वायुदेव)से इस प्रकार ताडित होनेपर मोहिनी नरकमें गयी। वहाँ धर्मराजकी आज्ञासे दूतोंने उसे खूब पीटा और दीर्घकालतक क्रमशः सभी नरकोंमें उसे गिराया; साथ ही उससे यह बात भी कही—'ओ पापिनी! तूने पतिके हाथों अपने पुत्र धर्माङ्गदकी हत्या करनेको कहा, अतः अपने किये हुए उस पापकर्मका फल यहाँ अच्छी तरह भोग ले।' नृपश्रेष्ठ! यमदूतोंके इस प्रकार धिक्कारनेपर यमकी आज्ञाके अनुसार वह क्रमशः सब नरकोंकी यातनाएँ भोगती रही। मोहिनी ब्राह्मणके शापसे मरी थी, अतः उसके शरीरके स्पर्शसे उन नरक-यातनाओंकी अभिमानिनी चेतनशक्तियोंका सारा अङ्ग जलने लगा। वे अधिष्ठात्री देवियाँ उसको धारण करनेमें असमर्थ हो गयीं। राजन्! तब वे सभी नरक (नरकके अभिमानी देवता) धर्मराजके समीप आये और हाथ जोड़कर भयभीत हो बोले—'देवदेव! जगन्नाथ! धर्मराज! हमपर दया कीजिये और इस मोहिनीको हमारी यातनाओंसे शीघ्र अलग कीजिये, जिससे हमें सुख मिले। नाथ! इसके शरीरके स्पर्शसे हमलोग क्षणभरमें भस्म हो जायँगे; अतः इसे यहाँसे निकाल बाहर कीजिये।' उनकी बात सुनकर धर्मराज बड़े विस्मित हुए और अपने दूतोंसे बोले—'इसे मेरे लोकसे निकाल बाहर करो। जो ब्रह्मशापसे दग्ध हुआ है, वह स्त्री हो, पुरुष हो या चोर ही क्यों न हो, उस पापीका स्पर्श हमारी नरक-यातनाएँ भी नहीं करना चाहती हैं। अतः इस पापिनीको, जो पतिके वचनका लोप करनेवाली, पुत्रघातिनी, धर्मनाशिनी तथा ब्रह्मदण्डसे मारी गयी है, यहाँसे जल्दी निकालो।'

भूपते! धर्मराजके ऐसा कहनेपर वे दूत अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए मोहिनीको यमलोकसे बाहर कर आये। राजन्! तब मोहयुक्त मोहिनी अत्यन्त दुःखित होकर पाताल-लोकमें गयी, किंतु पातालवासियोंने भी उसे रोक दिया। तब मोहिनीने अत्यन्त लज्जित हो अपने पिताके समीप जाकर सारा दुःख निवेदन किया—'तात! चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीमें मेरे रहनेके लिये कोई स्थान नहीं है। जहाँ-जहाँ जाती हूँ, वहाँ-वहाँ सब लोग मेरी निन्दा और तिरस्कार करते हैं। नाना प्रकारके आयुधोंसे मुझे खूब मारकर लोगोंने अपने स्थानसे बाहर निकाल दिया है। पिताजी! मैं तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके ही रुक्माङ्गदके समीप गयी थी और वहाँ ऐसी-ऐसी चेष्टाएँ कीं, जो सम्पूर्ण लोकोंमें निन्दित हैं। पतिको कष्टमें डाला, पुत्रको तीखी तलवारसे कटवा देना चाहा और संध्यावलीको भी क्षोभमें डाल दिया, इसीसे मेरी यह दशा हुई है। देव! मुझ पापिनीके लिये अब कहीं कोई सहारा नहीं है। विशेषतः ब्राह्मणके शापसे मुझे अधिक दुःख भोगना पड़ रहा है। पिताजी! जो ब्राह्मणके शापसे मरे हैं, आगसे जले हैं, चाण्डालके हाथों मारे गये हैं, व्याघ्र-सिंह आदि वन जन्तुओंद्वारा भक्षण किये गये हैं तथा बिजली गिरनेसे नष्ट हुए हैं, उन सबको मोक्ष देनेवाली केवल गङ्गा नदी है। यदि आप जाकर मुझे शाप देनेवाले उस ब्राह्मणको प्रसन्न कर लें तो मेरी सद्गति हो सकती है।'

राजन्! तब लोकपितामह ब्रह्माजी शिव, इन्द्र, धर्म, सूर्य तथा अग्नि आदि देवेश्वरों और मुनियोंको साथ ले उपर्युक्त बातें कहनेवाली मोहिनीको आगे करके ब्राह्मणके समीप गये। वहाँ जाकर देवता आदिसे घिरे हुए स्वय ब्रह्माजीने बड़े गौरवसे उन्हें नमस्कार किया। यद्यपि ब्रह्माजी रुद्र आदि देवताओंके लिये भी पूजनीय और माननीय हैं, तथापि मोहिनीके स्नेहके कारण उन्होंने स्वयं ही नमस्कार किया। राजन्! जब तीनों लोकोंमें असाध्य एवं महान् कार्य प्राप्त हो जाय, तब बड़ेके द्वारा छोटेका अभिवादन दूषित नहीं माना जाता। वे ब्राह्मण देवता वेद-वेदाङ्गोंके पारदर्शी विद्वान् और तपस्वी थे। लोककर्ता ब्रह्माजीको

मोहिनीकी दुर्दशा, ब्रह्माजीका राजपुरोहितके समीप जाकर उनको प्रसन्न करना, मोहिनीकी याचना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! मोहिनी मोहमय शरीर त्यागकर देवताओंके लोकमें गयी। वहाँ देवदूत (वायुदेव) ने उसे डाँटा—'पापिनी! तेरा स्वभाव पापमय है। तेरी बुद्धि अत्यन्त खोटी है। तू सदा एकादशी-व्रतके लोपमें संलग्न रही है, अतः स्वर्गमें तेरा रहना असम्भव है।' इस प्रकार कठोर वचन कहकर वायुदेवने उसे डंडेसे पीटा और यातनामय नरकमें भेज दिया। राजन्! देवदूत (वायुदेव)से इस प्रकार ताडित होनेपर मोहिनी नरकमें गयी। वहाँ धर्मराजकी आज्ञासे दूतोंने उसे खूब पीटा और दीर्घकालतक क्रमशः सभी नरकोंमें उसे गिराया; साथ ही उससे यह बात भी कही—'ओ पापिनी! तूने पतिके हाथों अपने पुत्र धर्माङ्गदकी हत्या करनेको कहा, अतः अपने किये हुए उस पापकर्मका फल यहाँ अच्छी तरह भोग ले।' नृपश्रेष्ठ! यमदूतोंके इस प्रकार धिक्कारनेपर यमकी आज्ञाके अनुसार वह क्रमशः सब नरकोंकी यातनाएँ भोगती रही। मोहिनी ब्राह्मणके शापसे मरी थी, अतः उसके शरीरके स्पर्शसे उन नरक-यातनाओंकी अभिमानिनी चेतनशक्तियोंका सारा अङ्ग जलने लगा। वे अधिष्ठात्री देवियाँ उसको धारण करनेमें असमर्थ हो गयीं। राजन्! तब वे सभी नरक (नरकके अभिमानी देवता) धर्मराजके समीप आये और हाथ जोड़कर भयभीत हो बोले—'देवदेव! जगन्नाथ! धर्मराज! हमपर दया कीजिये और इस मोहिनीको हमारी यातनाओंसे शीघ्र अलग कीजिये, जिससे हमें सुख मिले। नाथ! इसके शरीरके स्पर्शसे हमलोग क्षणभरमें भस्म हो जायँगे; अतः इसे यहाँसे निकाल बाहर कीजिये।' उनकी बात सुनकर धर्मराज बड़े विस्मित हुए और अपने दूतोंसे बोले—'इसे मेरे लोकसे निकाल बाहर करो। जो ब्रह्मशापसे दग्ध हुआ है, वह स्त्री हो, पुरुष हो या चोर ही क्यों न हो, उस पापीका स्पर्श हमारी नरक-यातनाएँ भी नहीं करना चाहती हैं। अतः इस पापिनीको, जो पतिके वचनका लोप करनेवाली, पुत्रघातिनी, धर्मनाशिनी तथा ब्रह्मदण्डसे मारी गयी है, यहाँसे जल्दी निकालो।'

भूपते! धर्मराजके ऐसा कहनेपर वे दूत अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए मोहिनीको यमलोकसे बाहर कर आये। राजन्! तब मोहयुक्त मोहिनी अत्यन्त दुःखित होकर पाताल-लोकमें गयी, किंतु पातालवासियोंने भी उसे रोक दिया। तब मोहिनीने अत्यन्त लज्जित हो अपने पिताके समीप जाकर सारा दुःख निवेदन किया—'तात! चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीमें मेरे रहनेके लिये कोई स्थान नहीं है। जहाँ-जहाँ जाती हूँ, वहाँ-वहाँ सब लोग मेरी निन्दा और तिरस्कार करते हैं। नाना प्रकारके आयुधोंसे मुझे खूब मारकर लोगोंने अपने स्थानसे बाहर निकाल दिया है। पिताजी! मैं तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके ही रुक्माङ्गदके समीप गयी थी और वहाँ ऐसी-ऐसी चेष्टाएँ कीं, जो सम्पूर्ण लोकोंमें निन्दित हैं। पतिको कष्टमें डाला, पुत्रको तीखी तलवारसे कटवा देना चाहा और संध्यावलीको भी क्षोभमें डाल दिया, इसीसे मेरी यह दशा हुई है। देव! मुझ पापिनीके लिये अब कहीं कोई सहारा नहीं है। विशेषतः ब्राह्मणके शापसे मुझे अधिक दुःख भोगना पड़ रहा है। पिताजी! जो ब्राह्मणके शापसे मरे हैं, आगसे जले हैं, चाण्डालके हाथों मारे गये हैं, व्याघ्र-सिंह आदि वन जन्तुओंद्वारा भक्षण किये गये हैं तथा बिजली गिरनेसे नष्ट हुए हैं, उन सबको मोक्ष देनेवाली केवल गङ्गा नदी है। यदि आप जाकर मुझे शाप देनेवाले उस ब्राह्मणको प्रसन्न कर लें तो मेरी सद्गति हो सकती है।'

राजन्! तब लोकपितामह ब्रह्माजी शिव, इन्द्र, धर्म, सूर्य तथा अग्नि आदि देवेश्वरों और मुनियोंको साथ ले उपर्युक्त बातें कहनेवाली मोहिनीको आगे करके ब्राह्मणके समीप गये। वहाँ जाकर देवता आदिसे घिरे हुए स्वयं ब्रह्माजीने बड़े गौरवसे उन्हें नमस्कार किया। यद्यपि ब्रह्माजी रुद्र आदि देवताओंके लिये भी पूजनीय और माननीय हैं, तथापि मोहिनीके स्नेहके कारण उन्होंने स्वयं ही नमस्कार किया। राजन्! जब तीनों लोकोंमें असाध्य एवं महान् कार्य प्राप्त हो जाय, तब बड़ेके द्वारा छोटेका अभिवादन दूषित नहीं माना जाता। वे ब्राह्मण देवता वेद-वेदाङ्गोंके पारदर्शी विद्वान् और तपस्वी थे। लोककर्ता ब्रह्माजीको

महाद्वादशियाँ बतायी गयी हैं, वे एकादशीसे भिन्न हैं। वैष्णवलोग उनमें उपवास करते हैं। वैष्णव महात्माओंका एकादशी-व्रत भिन्न है। दोनों पक्षोंमें वह नित्य बताया गया है। विधिपूर्वक किये जानेपर वह तीन दिनमें पूरा होता है। एकादशीके पहले दिन सायंकालका भोजन छोड़ दे और दूसरे दिन प्रातःकालका भोजन त्याग दे। यदि एकादशी दो दिन हो या प्रथम दिन विद्ध होनेके कारण त्याज्य हो तो दूसरे दिन उपवास करना चाहिये। द्वादशीमें निर्जल उपवास करना उचित है। जो सर्वथा उपवास करनेमें असमर्थ हों, उनके लिये जल, शाक, फल, दूध अथवा भगवान्‌के नैवेद्यको ग्रहण करनेका विधान है; किंतु वह अपने स्वाभाविक आहारकी मात्राके चौथाई भागके बराबर होना चाहिये। साध्वी! स्मार्त (स्मृतियोंके अनुसार चलनेवाले गृहस्थ) लोग सूर्योदयकालमें दशमीविद्धा एकादशीका त्याग करते हैं, परंतु निष्काम एवं विरक्त वैष्णवजन आधी रातके समय भी दशमीसे विद्ध होनेपर उस एकादशीको त्याग देते हैं। सम्पूर्ण लोकोंमें यह बात विदित है कि दशमी यमराजकी तिथि है। अनघे! उस दशमीके अन्तिम भागमें तुम्हें निवास करना चाहिये। तुम दशमी तिथिके अन्तिम भागमें स्थित होकर सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंके साथ सचरण करोगी। अब तुम अपने पापका नाश करनेके लिये पृथ्वीपर सब तीर्थोंमें भ्रमण करो। अरुणोदयसे लेकर सूर्योदयतकका जो समय है, उसके भीतर तुम व्रतमें स्थित होकर एकादशीका फल प्राप्त करो। जो कोई मनुष्य तुमसे विद्ध एकादशीका व्रत करता है, वह उस व्रतद्वारा तुम्हें लाभ पहुँचानेवाला होगा। यहाँ अरुणोदयका समय दो मुहूर्ततक जानना चाहिये। रात और दिनके पृथक्-पृथक् पद्रह मुहूर्त्त माने गये हैं। दिन और रात्रिकी छोटाई-बड़ाईके अनुसार त्रैराशिककी विधिसे रात या दिनके मुहूर्त्तोंको समझना चाहिये। रात्रिके तेरहवें मुहूर्त्तके बाद तुम दशमीके अन्त भागमें स्थित होकर उस दिन उपवास करनेवाले लोगोंके पुण्यको प्राप्त कर लोगी। शुचिस्मिते! यह वर पाकर तुम निश्चिन्त हो जाओ। मोहिनी! जो व्रत करनेवाले लोग तुमसे विद्ध हुई एकादशीका व्रत यहाँ प्रयत्नपूर्वक करते हैं, उनके उस व्रतसे जो पुण्य होता है, उसका फल तुम भोगो!

ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा इस प्रकार आदेश प्राप्त होनेपर मोहिनी बहुत प्रसन्न हुई। अपने पाप दूर करनेके लिये तीर्थ-सेवनकी आज्ञा मिल जानेपर उसने जीवनको कृतार्थ माना। राजन्! ऐसा सोचकर हर्षमें भरी हुई मोहिनी देवताओं तथा पुरोहितको प्रणाम करके सूर्योदयसे पूर्ववर्ती दशमीके अन्त भागमें स्थित हो गयी। मोहिनीको अपनी तिथिके अन्तमें स्थित देख सूर्यपुत्र यमका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे बोले—'चारुलोचने! तुमने इस लोकमें फिर मेरी अच्छी प्रतिष्ठा कर दी। राजा रुक्माङ्गदके मतवाले हाथीपर रखकर जो नगाड़ा बजाया जाता था, वह तो तुमने वद करा ही दिया। यह दशमी तिथि यदि सूर्योदयकालका स्पर्श करे तो सदा निन्दित मानी गयी है। यदि दशमीसे उदयकालका स्पर्श न हो तो भी अरुणोदयकालमें रहनेपर वह मनुष्योंको मोहमें डालनेवाली होगी। उस दशमीको त्याग करके व्रत करनेपर मनुष्यको प्रिय वस्तुओंका संयोग एवं भोग प्राप्त होता है।' ऐसा कहकर सूर्यपुत्र यम प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मकुमारी मोहिनीको प्रणाम करके देवताओंके साथ अपने चित्रगुप्तका हाथ पकड़े हुए स्वर्गलोकको चले गये। देवताओंके चले जानेपर मोहिनी ब्रह्माजीसे बोली—'पिताजी! मेरे इन पुरोहितने क्रोधपूर्वक मेरे शरीरको जला दिया है। मैं पुनः उसे प्राप्त कर लूँ—ऐसा प्रयत्न कीजिये।'

मोहिनीका यह वचन सुनकर लोकस्रष्टा ब्रह्माजी पुत्रीके हितके लिये ब्राह्मणदेवताको पुनः शान्त करते हुए बोले—'तात! वसो! मेरी बात सुनो। महाभाग! मैं तुम्हारे, इस मोहिनीके तथा सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये हितकारक वचन

१. आठ महाद्वादशियोंके नाम इस प्रकार हैं—उन्मीलनी, वञ्जुली, त्रिस्पृशा, पक्षवर्धिनी, जया, विजया, जयन्ती और पापनाशिनी। इनमेंसे प्रारम्भकी चार द्वादशियाँ तिथियोगसे विशेष सज्ञा धारण करती हैं और अन्तकी चार द्वादशियोंके नामकरणमें भिन्न-भिन्न नक्षत्रोंका योग कारण है। दशमी-वेधरहित एकादशी जब एक दिनसे बढ़कर दूसरे दिन भी कुछ समयतक दिखायी दे और द्वादशी न बढ़े तो वह 'उन्मीलनी' महाद्वादशी कहलाती है। जब एकादशी एक ही दिन हो और द्वादशी बढ़कर दूसरे दिनतक चली गयी हो तो वह 'वञ्जुली' द्वादशी कहलाती है। इसमें द्वादशीमें उपवास और द्वादशीमें ही पारण होता है। जब अरुणोदयकालमें एकादशी, दिनभर द्वादशी और दूसरे दिन प्रात काल त्रयोदशी हो तो 'त्रिस्पृशा' नामक महाद्वादशी होती है। जिस पक्षमें अमावास्या या पूर्णिमा एक दिन साठ दण्ड रहकर दूसरे दिनमें भी कुछ समयतक चली गयी हो, उस पक्षकी द्वादशीको 'पक्षवर्धिनी' कहते हैं। द्वादशीके साथ पुनर्वसु-नक्षत्रका योग हो तो वह 'जया', श्रवण-नक्षत्रका योग हो तो 'विजया', पुष्यका योग हो तो 'पापनाशिनी' तथा रोहिणीका योग हो तो 'जयन्ती' कहलाती है।

महाद्वादशियाँ[1] बतायी गयी हैं, वे एकादशीसे भिन्न हैं। वैष्णवलोग उनमें उपवास करते हैं। वैष्णव महात्माओंका एकादशी-व्रत भिन्न है। दोनों पक्षोंमें वह नित्य बताया गया है। विधिपूर्वक किये जानेपर वह तीन दिनमें पूरा होता है। एकादशीके पहले दिन सायंकालका भोजन छोड़ दे और दूसरे दिन प्रातःकालका भोजन त्याग दे। यदि एकादशी दो दिन हो या प्रथम दिन विद्ध होनेके कारण त्याज्य हो तो दूसरे दिन उपवास करना चाहिये। द्वादशीमें निर्जल उपवास करना उचित है। जो सर्वथा उपवास करनेमें असमर्थ हों, उनके लिये जल, शाक, फल, दूध अथवा भगवान्‌के नैवेद्यको ग्रहण करनेका विधान है; किंतु वह अपने स्वाभाविक आहारकी मात्राके चौथाई भागके बराबर होना चाहिये। साध्वी! स्मार्त (स्मृतियोंके अनुसार चलनेवाले गृहस्थ) लोग सूर्योदयकालमें दशमीविद्धा एकादशीका त्याग करते हैं, परंतु निष्काम एवं विरक्त वैष्णवजन आधी रातके समय भी दशमीसे विद्ध होनेपर उस एकादशीको त्याग देते हैं। सम्पूर्ण लोकोंमें यह बात विदित है कि दशमी यमराजकी तिथि है। अनघे! उस दशमीके अन्तिम भागमें तुम्हें निवास करना चाहिये। तुम दशमी तिथिके अन्तिम भागमें स्थित होकर सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंके साथ सञ्चरण करोगी। अब तुम अपने पापका नाश करनेके लिये पृथ्वीपर सब तीर्थोंमें भ्रमण करो। अरुणोदयसे लेकर सूर्योदयतकका जो समय है, उसके भीतर तुम व्रतमें स्थित होकर एकादशीका फल प्राप्त करो। जो कोई मनुष्य तुमसे विद्ध एकादशीका व्रत करता है, वह उस व्रतद्वारा तुम्हें लाभ पहुँचानेवाला होगा। यहाँ अरुणोदयका समय दो मुहूर्त्ततक जानना चाहिये। रात और दिनके पृथक्-पृथक् पद्रह मुहूर्त्त माने गये हैं। दिन और रात्रिकी छोटाई-बड़ाईके अनुसार त्रैराशिककी विधिसे रात या दिनके मुहूर्त्तोंको समझना चाहिये। रात्रिके तेरहवें मुहूर्त्तके बाद तुम दशमीके अन्त भागमें स्थित होकर उस दिन उपवास करनेवाले लोगोंके पुण्यको प्राप्त कर लोगी। शुचिस्मिते! यह वर पाकर तुम निश्चिन्त हो जाओ। मोहिनी! जो व्रत करनेवाले लोग तुमसे विद्ध हुई एकादशीका व्रत यहाँ प्रयत्नपूर्वक करते हैं, उनके उस व्रतसे जो पुण्य होता है, उसका फल तुम भोगो!

ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा इस प्रकार आदेश प्राप्त होनेपर मोहिनी बहुत प्रसन्न हुई। अपने पाप दूर करनेके लिये तीर्थ-सेवनकी आज्ञा मिल जानेपर उसने जीवनको कृतार्थ माना। राजन्! ऐसा सोचकर हर्षमें भरी हुई मोहिनी देवताओं तथा पुरोहितको प्रणाम करके सूर्योदयसे पूर्ववर्ती दशमीके अन्त भागमें स्थित हो गयी। मोहिनीको अपनी तिथिके अन्तमें स्थित देख सूर्यपुत्र यमका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे बोले—'चारुलोचने! तुमने इस लोकमें फिर मेरी अच्छी प्रतिष्ठा कर दी। राजा रुक्माङ्गदके मतवाले हाथीपर रखकर जो नगाड़ा बजाया जाता था, वह तो तुमने बद करा ही दिया। यह दशमी तिथि यदि सूर्योदयकालका स्पर्श करे तो सदा निन्दित मानी गयी है। यदि दशमीसे उदयकालका स्पर्श न हो तो भी अरुणोदयकालमें रहनेपर वह मनुष्योंको मोहमें डालनेवाली होगी। उस दशमीको त्याग करके व्रत करनेपर मनुष्यको प्रिय वस्तुओंका संयोग एवं भोग प्राप्त होता है।' ऐसा कहकर सूर्यपुत्र यम प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मकुमारी मोहिनीको प्रणाम करके देवताओंके साथ अपने चित्रगुप्तका हाथ पकड़े हुए स्वर्गलोकको चले गये। देवताओंके चले जानेपर मोहिनी ब्रह्माजीसे बोली—'पिताजी! मेरे इन पुरोहितने क्रोधपूर्वक मेरे शरीरको जला दिया है। मैं पुनः उसे प्राप्त कर लूँ—ऐसा प्रयत्न कीजिये।'

मोहिनीका यह वचन सुनकर लोकस्रष्टा ब्रह्माजी पुत्रीके हितके लिये ब्राह्मणदेवताको पुनः शान्त करते हुए बोले—'तात! वसो! मेरी बात सुनो। महाभाग! मैं तुम्हारे, इस मोहिनीके तथा सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये हितकारक वचन

---

१. आठ महाद्वादशियोंके नाम इस प्रकार हैं—उन्मीलनी, वञ्जुली, त्रिस्पृशा, पक्षवर्धिनी, जया, विजया, जयन्ती और पापनाशिनी। इनमेंसे प्रारम्भकी चार द्वादशियाँ तिथियोगसे विशेष सज्ञा धारण करती हैं और अन्तकी चार द्वादशियोंके नामकरणमें भिन्न-भिन्न नक्षत्रोंका योग कारण है। दशमी-वेधरहित एकादशी जब एक दिनसे बढ़कर दूसरे दिन भी कुछ समयतक दिखायी दे और द्वादशी न बढ़े तो वह 'उन्मीलनी' महाद्वादशी कहलाती है। जब एकादशी एक ही दिन हो और द्वादशी बढ़कर दूसरे दिनतक चली गयी हो तो वह 'वञ्जुली' द्वादशी कहलाती है। इसमें द्वादशीमें उपवास और द्वादशीमें ही पारण होता है। जब अरुणोदयकालमें एकादशी, दिनभर द्वादशी और दूसरे दिन प्रातःकाल त्रयोदशी हो तो 'त्रिस्पृशा' नामक महाद्वादशी होती है। जिस पक्षमें अमावास्या या पूर्णिमा एक दिन साठ दण्ड रहकर दूसरे दिनमें भी कुछ समयतक चली गयी हो, उस पक्षकी द्वादशीको 'पक्षवर्धिनी' कहते हैं। द्वादशीके साथ पुनर्वसु-नक्षत्रका योग हो तो वह 'जया', श्रवण-नक्षत्रका योग हो तो 'विजया', पुष्यका योग हो तो 'पापनाशिनी' तथा रोहिणीका योग हो तो 'जयन्ती' कहलाती है।

त्रेतामें पुष्कर तीर्थ सर्वोत्तम है, द्वापरमें कुरुक्षेत्रकी विशेष महिमा है और कलियुगमें गङ्गा ही सबसे बढ़कर है। कलियुगमें सब तीर्थ स्वभावतः अपनी-अपनी शक्तिको गङ्गाजीमें छोड़ते हैं, परंतु गङ्गादेवी अपनी शक्तिको कहीं नहीं छोड़तीं। गङ्गाजीके जलकणोंसे परिपुष्ट हुई वायुके स्पर्शसे भी पापाचारी मनुष्य भी परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो सर्वत्र व्यापक हैं, जिनका स्वरूप चिन्मय है, वे जनार्दन भगवान् विष्णु ही द्रवरूपसे गङ्गाजीके जल हैं, इसमें संशय नहीं है। महापातकी भी गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेसे पवित्र हो जाते हैं, -इस विषयमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। गङ्गाजीका जल अपने क्षेत्रमें हो या निकालकर लाया गया हो, ठंडा हो या गरम हो, वह सेवन करनेपर आमरण किये हुए पापोंको हर लेता है। बासी जल और बासी दल त्याग देने योग्य माना गया है, परंतु गङ्गाजल और तुलसीदल बासी होनेपर भी त्याज्य नहीं है। मेरुके सुवर्णकी, सब प्रकारके रत्नोंकी, वहाँके प्रस्तर और जलके एक-एक कणकी गणना हो सकती है, परंतु गङ्गाजलके गुणोंका परिमाण बतानेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है*। जो मनुष्य तीर्थयात्राकी पूरी विधि न कर सके वह भी केवल गङ्गाजलके माहात्म्यसे यहाँ उत्तम फलका भागी होता है। गङ्गाजीके जलसे एक बार भक्तिपूर्वक कुल्ला कर लेनेपर मनुष्य स्वर्गमें जाता और वहाँ कामधेनुके थनोंसे प्रकट हुए दिव्य रसोंका आस्वादन करता है। जो शालग्राम शिलापर गङ्गाजल डालता है, वह पापरूपी तीव्र अन्धकारको मिटाकर उदयकालीन सूर्यकी भाँति पुण्यसे प्रकाशित होता है। जो पुरुष मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए अनेक प्रकारके पापोंसे ग्रस्त हो, वह भी गङ्गाजीका दर्शन करके पवित्र हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। जो सदा गङ्गाजीके जलसे सींचकर पवित्र की हुई भिक्षा भोजन करता है, वह केंचुलका त्याग करनेवाले सर्पकी भाँति पापसे शून्य हो जाता है। हिमालय और विन्ध्यके समान पापराशियाँ भी गङ्गाजीके जलसे उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार भगवान् विष्णुकी भक्तिसे सब प्रकारकी आपत्तियाँ। गङ्गाजीमें भक्तिपूर्वक स्नानके लिये प्रवेश करनेपर मनुष्योंके ब्रह्महत्या आदि पाप 'हाय-हाय' करके भाग जाते हैं। जो प्रतिदिन गङ्गाजीके तटपर रहता और सदा गङ्गाजीका जल पीता है, वह पुरुष पूर्वसंचित पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो गङ्गाजीका आश्रय लेकर नित्य निर्भय रहता है, वही देवताओं, ऋषियों और मनुष्योंके लिये पूजनीय है*। प्रभासतीर्थमें सूर्यग्रहणके समय सहस्र गोदान करनेसे मनुष्य जो फल पाता है, वह गङ्गाजीके तटपर एक दिन रहनेसे ही मिल जाता है। जो अन्य सारे उपायोंको छोड़कर मोक्षकी कामना लिये दृढ़-निश्चयके साथ गङ्गाजीके तटपर सुखपूर्वक रहता है, वह अवश्य ही मोक्षका भागी होता है। विशेषतः काशीपुरीमें गङ्गाजी तत्काल मोक्ष देनेवाली हैं। यदि जीवनभर प्रतिमासकी चतुर्दशी और अष्टमी तिथिको सदा गङ्गाजीके तटपर

* कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते॥
कलौ तु सर्वतीर्थानि स्वं स्वं वीर्यं स्वभावतः।
गङ्गायां प्रतिमुञ्चन्ति सा तु देवी न कुत्रचित्॥
गङ्गाम्भःकणदिग्धस्य वायोः संस्पर्शनादपि।
पापशीला अपि नराः परां गतिमवाप्नुयुः॥
योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी जनार्दनः।
स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः॥
ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्तेयी च गुरुतल्पगः।
गङ्गाम्भसा च पूयन्ते नात्र कार्या विचारणा॥
क्षेत्रस्थमुद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापि वा।
गाङ्गेयं तु हरेत्तोयं पापमामरणान्तिकम्॥
वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम्।
न वर्ज्यं जाह्नवीतोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम्॥
मेरोः सुवर्णस्य च सर्वरत्नैः संख्योपलानामुदकस्य वापि।
गङ्गाजलानां न तु शक्तिरस्ति वक्तुं गुणास्यापरिमाणमत्र॥
(ना० उत्तर० ३८। २०—२७)

* मनोवाक्कायजैर्ग्रस्तः पापैर्बहुविधैरपि।
वीक्ष्य गङ्गां भवेत् पूतः पुरुषो नात्र संशयः॥
गङ्गातोयाभिषिक्ता तु भिक्षामश्नाति यः सदा।
सर्पवत्कञ्चुकं मुक्त्वा पापहीनो भवेत् स वै॥
हिमवद्विन्ध्यसदृशा राशयः पापकर्मणाम्।
गङ्गाम्भसा विनश्यन्ति विष्णुभक्त्या यथापदः॥
प्रवेशमात्रे गङ्गायां स्नानार्थं भक्तितो नृणाम्।
ब्रह्महत्यादिपापानि हाहेत्युक्त्वा प्रयान्त्यलम्॥
गङ्गातीरे वसेन्नित्यं गङ्गातोयं पिबेत् सदा।
यः पुमान् स विमुच्येत पातकैः पूर्वसंचितैः॥
यो वै गङ्गां समाश्रित्य नित्यं तिष्ठति निर्भयः।
स एव देवैर्मर्त्यैश्च पूजनीयो महर्षिभिः॥
(ना० उत्तर० ३८। ३२—३७)

त्रेतामें पुष्कर तीर्थ सर्वोत्तम है, द्वापरमें कुरुक्षेत्रकी विशेष महिमा है और कलियुगमें गङ्गा ही सबसे बढ़कर है। कलियुगमें सब तीर्थ स्वभावतः अपनी-अपनी शक्तिको गङ्गाजीमें छोड़ते हैं, परंतु गङ्गादेवी अपनी शक्तिको कहीं नहीं छोड़तीं। गङ्गाजीके जलकणोंसे परिपुष्ट हुई वायुके स्पर्शसे भी पापाचारी मनुष्य भी परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो सर्वत्र व्यापक हैं, जिनका स्वरूप चिन्मय है, वे जनार्दन भगवान् विष्णु ही द्रवरूपसे गङ्गाजीके जल हैं, इसमें संशय नहीं है। महापातकी भी गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेसे पवित्र हो जाते हैं,-इस विषयमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। गङ्गाजीका जल अपने क्षेत्रमें हो या निकालकर लाया गया हो, ठंडा हो या गरम हो, वह सेवन करनेपर आमरण किये हुए पापोंको हर लेता है। बासी जल और बासी दल त्याग देने योग्य माना गया है, परंतु गङ्गाजल और तुलसीदल बासी होनेपर भी त्याज्य नहीं है। मेरुके सुवर्णकी, सब प्रकारके रत्नोंकी, वहाँके प्रस्तर और जलके एक-एक कणकी गणना हो सकती है, परंतु गङ्गाजलके गुणोंका परिमाण बतानेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है*। जो मनुष्य तीर्थयात्राकी पूरी विधि न कर सके वह भी केवल गङ्गाजलके माहात्म्यसे यहाँ उत्तम फलका भागी होता है। गङ्गाजीके जलसे एक बार भक्तिपूर्वक कुल्ला कर लेनेपर मनुष्य स्वर्गमें जाता और वहाँ कामधेनुके थनोंसे प्रकट हुए दिव्य रसोंका आस्वादन करता है। जो शालग्राम शिलापर गङ्गाजल डालता है, वह पापरूपी तीव्र अन्धकारको मिटाकर उदयकालीन सूर्यकी भाँति पुण्यसे प्रकाशित होता है। जो पुरुष मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए अनेक प्रकारके पापोंसे ग्रस्त हो, वह भी गङ्गाजीका दर्शन करके पवित्र हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। जो सदा गङ्गाजीके जलसे सींचकर पवित्र की हुई भिक्षा भोजन करता है, वह केंचुलका त्याग करनेवाले सर्पकी भाँति पापसे शून्य हो जाता है। हिमालय और विन्ध्यके समान पापराशियाँ भी गङ्गाजीके जलसे उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार भगवान् विष्णुकी भक्तिसे सब प्रकारकी आपत्तियाँ। गङ्गाजीमें भक्तिपूर्वक स्नानके लिये प्रवेश करनेपर मनुष्योंके ब्रह्महत्या आदि पाप 'हाय-हाय' करके भाग जाते हैं। जो प्रतिदिन गङ्गाजीके तटपर रहता और सदा गङ्गाजीका जल पीता है, वह पुरुष पूर्वसंचित पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो गङ्गाजीका आश्रय लेकर नित्य निर्भय रहता है, वही देवताओं, ऋषियों और मनुष्योंके लिये पूजनीय है*। प्रभासतीर्थमें सूर्यग्रहणके समय सहस्र गोदान करनेसे मनुष्य जो फल पाता है, वह गङ्गाजीके तटपर एक दिन रहनेसे ही मिल जाता है। जो अन्य सारे उपायोंको छोड़कर मोक्षकी कामना लिये दृढ़-निश्चयके साथ गङ्गाजीके तटपर सुखपूर्वक रहता है, वह अवश्य ही मोक्षका भागी होता है। विशेषतः काशीपुरीमें गङ्गाजी तत्काल मोक्ष देनेवाली हैं। यदि जीवनभर प्रतिमासकी चतुर्दशी और अष्टमी तिथिको सदा गङ्गाजीके तटपर

---

* कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते ॥
कलौ तु सर्वतीर्थानि स्वं स्वं वीर्यं स्वभावतः।
गङ्गायां प्रतिमुञ्चन्ति सा तु देवी न कुत्रचित् ॥
गङ्गाम्भ कणदिग्धस्य वायोः संस्पर्शनादपि।
पापशीला अपि नराः परा गतिमवाप्नुयुः ॥
योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी जनार्दनः।
स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः ॥
ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्तेयी च गुरुतल्पगः।
गङ्गाम्भसा च पूयन्ते नात्र कार्या विचारणा ॥
क्षेत्रस्थमुद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापि वा।
गाङ्गेयं तु हरेत्तोयं पापमामरणान्तिकम् ॥
वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम्।
न वर्ज्यं जाह्नवीतोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम् ॥
मेरोः सुवर्णस्य च सर्वरत्नैः संख्योपलानामुदकस्य वापि।
गङ्गाजलाना न तु शक्तिरस्ति वक्तुं गुणास्यापरिमाणमत्र ॥
(ना० उत्तर० ३८। २०—२७)

* मनोवाक्कायजैर्ग्रस्तः पापैर्बहुविधैरपि।
वीक्ष्य गङ्गां भवेत् पूतः पुरुषो नात्र संशयः ॥
गङ्गातोयाभिषिक्ता तु भिक्षामश्नाति यः सदा।
सर्पवत्कञ्चुकं मुक्त्वा पापहीनो भवेत् स वै ॥
हिमवद्विन्ध्यसदृशा राशयः पापकर्मणाम्।
गङ्गाम्भसा विनश्यन्ति विष्णुभक्त्या यथापदः ॥
प्रवेशमात्रे गङ्गायां स्नानार्थं भक्तितो नृणाम्।
ब्रह्महत्यादिपापानि हाहेत्युक्त्वा प्रयान्त्यलम् ॥
गङ्गातीरे वसेन्नित्यं गङ्गातोयं पिबेत् सदा।
यः पुमान् स विमुच्येत पातकैः पूर्वसंचितैः ॥
यो वै गङ्गां समाश्रित्य नित्यं तिष्ठति निर्भयः।
स एव देवैर्मर्त्यैश्च पूजनीयो महर्षिभिः ॥
(ना० उत्तर० ३८। ३२—३७)

भगवान् श्रीरामका ध्यान

भगवान् श्रीरामका ध्यान

उत्तम फलकी प्राप्ति होती है*। जो शरीरकी शुद्धि करनेवाले चान्द्रायण-व्रतका एक सहस्र बार अनुष्ठान कर चुका है और जो केवल इच्छाभर गङ्गा-जल पीता है, वही पहलेवालेसे बढ़कर है। जो गङ्गाजीका दर्शन और स्तुति करता है, जो भक्तिपूर्वक गङ्गामें नहाता और गङ्गाका ही जल पीता है, वह स्वर्ग, निर्मल ज्ञान, योग तथा मोक्ष सब कुछ पा लेता है†।

गङ्गाजीके दर्शन, स्मरण तथा उनके जलमें स्नान करनेका महत्त्व

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! सुनो, अब मैं गङ्गाजीके दर्शनका फल बतलाता हूँ, जिसका वर्णन तत्त्वदर्शी मुनियोंने पुराणोंमें किया है। ज्ञान, अनुपम ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, आयु, यश तथा शुभ आश्रमोंकी प्राप्ति गङ्गाजीके दर्शनका फल है। गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी चञ्चलता, दुर्व्यसन, पातक तथा निर्दयता आदि दोष नष्ट हो जाते हैं। दूसरोंकी हिंसा, कुटिलता, परदोष आदिका दर्शन तथा मनुष्योंके दम्भ आदि दोष गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे दूर हो जाते हैं। मनुष्य यदि अविनाशी सनातन पदकी प्राप्ति करना चाहता है तो वह भक्तिपूर्वक बार-बार गङ्गाजीकी ओर देखे और बार-बार उनके जलका स्पर्श करे। अन्यत्र बावड़ी, कुआँ और तालाब आदि बनवाने, पौंसले चलाने तथा अन्न-सत्र आदिकी व्यवस्था करनेसे जो पुण्य होता है, वह गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे मिल जाता है। परमात्माके दर्शनसे मानवोंको जो फल प्राप्त होता है, वह भक्तिभावसे गङ्गाजीका दर्शनमात्र करनेसे सुलभ हो जाता है। नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, नर्मदा तथा पुष्करतीर्थमें स्नान, स्पर्श और सेवन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, वह कलियुगमें गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे प्राप्त हो जाता है—ऐसा महर्षियोंका कथन है।

राजपत्नी! जो अशुभ कर्मोंसे युक्त हो संसारसमुद्रमें डूब रहे हों और नरकमें गिरनेवाले हों, उनके द्वारा यदि गङ्गाजीका स्मरण कर लिया जाय तो वह दूरसे ही उनका उद्धार कर देती है। चलते, खड़े होते, सोते, ध्यान करते, जागते, खाते और हँसते-रोते समय जो निरन्तर गङ्गाजीका स्मरण करता है, वह बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो सहस्रों योजन दूरसे भी भक्तिपूर्वक गङ्गाका स्मरण करते हैं तथा 'गङ्गा-गङ्गा' की रट लगाते हैं, वे भी पातकसे मुक्त हो जाते हैं। विचित्र भवन, विचित्र आभूषणोंसे विभूषित स्त्रियाँ, आरोग्य और धन-सम्पत्ति—ये गङ्गाजीके स्मरणजनित पुण्यके फल हैं। मनुष्य गङ्गाजीके नामकीर्तनसे पापमुक्त होता है और दर्शनसे कल्याणका भागी होता है। गङ्गामें स्नान और जलपान करके वह अपनी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है। जो अश्रद्धासे भी पुण्यवाहिनी गङ्गाका नामकीर्तन करता है, वह भी स्वर्गलोकका भागी होता है।

देवि! अब मैं गङ्गाजीके जलमें स्नानका फल बतलाता हूँ। जो गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, उसका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है और मोहिनी! उसे उसी क्षण अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है। गङ्गाजीके पवित्र जलसे स्नान करके शुद्धचित्त हुए पुरुषोंको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी सुलभ नहीं है। जैसे सूर्य उदयकालमें घने अन्धकारका नाश करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजलसे अभिषिक्त हुआ पुरुष पापराशिका नाश करके प्रकाशमान होता है। गङ्गामें स्नान करनेमात्रसे मनुष्यके अनेक जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है और वह तत्काल पुण्यका भागी होता है। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे और समस्त इष्टदेव-मन्दिरोंमें पूजा करनेसे जो पुण्य होता है,

* कन्यादानैश्च विधिवद्भूमिदानैश्च भक्तितः। अन्नदानैश्च गोदानैः स्वर्णदानादिभिस्तथा॥
रथाश्वगजदानैश्च यत्पुण्यं परिकीर्तितम्। ततः शतगुणं पुण्यं गङ्गाम्भश्चुलुकाशनात्॥
चान्द्रायणसहस्राणां यत्फलं परिकीर्तितम्। ततोऽधिकफलं गङ्गातोयपानादवाप्यते॥
गण्डूषमात्रपाने तु अश्वमेधफलं लभेत्। स्वच्छन्दं यः पिबेदम्भस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्तभिस्त्वथ यामुनम्। नार्मदं दशभिर्मासैर्गाङ्गं वर्षेण जीर्यति॥
शाणेनाहृततोयानां मृतानां क्वापि देहिनाम्। तदुत्तरफलावाप्तिर्गङ्गायामस्थियोगतः॥
(ना० उत्तर० ३८। ५५—६०)

† गङ्गां पश्यति यः स्तौति स्नाति भक्त्या पिबेज्जलम्। स स्वर्गं ज्ञानममलं योगं मोक्षं च विन्दति॥
(ना० उत्तर० ३८। ६२)

उत्तम फलकी प्राप्ति होती है*। जो शरीरकी शुद्धि करनेवाले चान्द्रायण-व्रतका एक सहस्र बार अनुष्ठान कर चुका है और जो केवल इच्छाभर गङ्गा-जल पीता है, वही पहलेवालेसे बढ़कर है। जो गङ्गाजीका दर्शन और स्तुति करता है, जो भक्तिपूर्वक गङ्गामें नहाता और गङ्गाका ही जल पीता है, वह स्वर्ग, निर्मल ज्ञान, योग तथा मोक्ष सब कुछ पा लेता है†।

गङ्गाजीके दर्शन, स्मरण तथा उनके जलमें स्नान करनेका महत्त्व

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! सुनो, अब मैं गङ्गाजीके दर्शनका फल बतलाता हूँ, जिसका वर्णन तत्त्वदर्शी मुनियोंने पुराणोंमें किया है। ज्ञान, अनुपम ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, आयु, यश तथा शुभ आश्रमोकी प्राप्ति गङ्गाजीके दर्शनका फल है। गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी चञ्चलता, दुर्व्यसन, पातक तथा निर्दयता आदि दोष नष्ट हो जाते हैं। दूसरोंकी हिंसा, कुटिलता, परदोष आदिका दर्शन तथा मनुष्योंके दम्भ आदि दोष गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे दूर हो जाते हैं। मनुष्य यदि अविनाशी सनातन पदकी प्राप्ति करना चाहता है तो वह भक्तिपूर्वक बार-बार गङ्गाजीकी ओर देखे और बार-बार उनके जलका स्पर्श करे। अन्यत्र बावड़ी, कुआँ और तालाब आदि बनवाने, पौंसले चलाने तथा अन्न-सत्र आदिकी व्यवस्था करनेसे जो पुण्य होता है, वह गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे मिल जाता है। परमात्माके दर्शनसे मानवोंको जो फल प्राप्त होता है, वह भक्तिभावसे गङ्गाजीका दर्शनमात्र करनेसे सुलभ हो जाता है। नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, नर्मदा तथा पुष्करतीर्थमें स्नान, स्पर्श और सेवन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, वह कलियुगमें गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे प्राप्त हो जाता है—ऐसा महर्षियोंका कथन है।

राजपत्नी! जो अशुभ कर्मोंसे युक्त हो संसारसमुद्रमें डूब रहे हो और नरकमें गिरनेवाले हों, उनके द्वारा यदि गङ्गाजीका स्मरण कर लिया जाय तो वह दूरसे ही उनका उद्धार कर देती है। चलते, खड़े होते, सोते, ध्यान करते, जागते, खाते और हँसते-रोते समय जो निरन्तर गङ्गाजीका स्मरण करता है, वह बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो सहस्रों योजन दूरसे भी भक्तिपूर्वक गङ्गाका स्मरण करते हैं तथा 'गङ्गा-गङ्गा' की रट लगाते हैं, वे भी पातकसे मुक्त हो जाते हैं। विचित्र भवन, विचित्र आभूषणोंसे विभूषित स्त्रियाँ, आरोग्य और धन-सम्पत्ति—ये गङ्गाजीके स्मरणजनित पुण्यके फल हैं। मनुष्य गङ्गाजीके नामकीर्तनसे पापमुक्त होता है और दर्शनसे कल्याणका भागी होता है। गङ्गामें स्नान और जलपान करके वह अपनी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है। जो अश्रद्धासे भी पुण्यवाहिनी गङ्गाका नामकीर्तन करता है, वह भी स्वर्गलोकका भागी होता है।

देवि! अब मैं गङ्गाजीके जलमें स्नानका फल बतलाता हूँ। जो गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, उसका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है और मोहिनी! उसे उसी क्षण अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है। गङ्गाजीके पवित्र जलसे स्नान करके शुद्धचित्त हुए पुरुषोंको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी सुलभ नहीं है। जैसे सूर्य उदयकालमें घने अन्धकारका नाश करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजलसे अभिषिक्त हुआ पुरुष पापराशिका नाश करके प्रकाशमान होता है। गङ्गामें स्नान करनेमात्रसे मनुष्यके अनेक जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है और वह तत्काल पुण्यका भागी होता है। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे और समस्त इष्टदेव-मन्दिरोंमें पूजा करनेसे जो पुण्य होता है,

* कन्यादानैश्च विधिवद्भूमिदानैश्च भक्तितः। अन्नदानैश्च गोदानैः स्वर्णदानादिभिस्तथा ॥
रथाश्वगजदानैश्च यत्पुण्यं परिकीर्तितम्। ततः शतगुणं पुण्यं गङ्गाम्भश्चुलुकाशनात् ॥
चान्द्रायणसहस्राणां यत्फलं परिकीर्तितम्। ततोऽधिकफलं गङ्गातोयपानादवाप्यते ॥
गण्डूषमात्रपाने तु अश्वमेधफलं लभेत्। स्वच्छन्दं यः पिबेदम्भस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ॥
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्तभिस्त्वथ यामुनम्। नार्मदं दशभिर्मासैर्गाङ्गं वर्षेण जीर्यति ॥
शास्त्रेणाहृततोयानां मृतानां क्वापि देहिनाम्। तदुत्तरफलावाप्तिर्गङ्गायामस्थियोगतः ॥

(ना० उत्तर० ३८। ५५—६०)

† गङ्गां पश्यति यः स्तौति स्नाति भक्त्या पिबेज्जलम्। स स्वर्गं ज्ञानममलं योगं मोक्षं च विन्दति ॥

(ना० उत्तर० ३८। ६२)

करती हैं। 'हे जाह्नवी! मेरे जो महापातक-समुदायरूप पाप हैं, उन सबको तुम गोविन्द-द्वादशीके दिन स्नान करनेसे नष्ट कर दो।' यदि माघकी पूर्णिमाको मघा नक्षत्र या बृहस्पतिका योग हो तो उक्त तिथिका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। यदि यह योग गङ्गाजीमें सुलभ हो तब तो सौ सूर्यग्रहणके समान पुण्य होता है।

अब देशविशेषके योगसे गङ्गा-स्नानका फल बतलाया जाता है। गङ्गाजीमें जहाँ-कहीं भी स्नान किया जाय, वह कुरुक्षेत्रसे दसगुना पुण्य देनेवाली है; किंतु जहाँ वे विन्ध्याचल पर्वतसे संयुक्त होती हैं, वहाँ कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा सौगुना पुण्य होता है। काशीपुरीमें गङ्गाजीका माहात्म्य विन्ध्याचलकी अपेक्षा सौगुना बताया गया है। यों तो गङ्गाजी सर्वत्र ही दुर्लभ हैं; किंतु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर-संगम—इन तीन स्थानोंमें उनका माहात्म्य बहुत अधिक है। गङ्गाद्वारमें कुशावर्ततीर्थके भीतर स्नान करनेसे सात राजसूय और दो अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है। उस तीर्थमें पंद्रह दिन निवास करनेसे छः विश्वजित् यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। साथ ही विद्वानोंने वहाँ रहनेसे एक लाख गोदानका पुण्य बताया है। कुशावर्तमें भगवान् गोविन्दका और कनखलमें भगवान् रुद्रका दर्शन-पूजन करनेसे अथवा इन स्थानोंमें गङ्गास्नान करनेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जहाँ पूर्वकालमें वाराहरूपधारी भगवान् विष्णु प्रकट हुए थे, वहाँ स्नान करके मनुष्य सौ अग्निहोत्रका, दो ज्योतिष्टोम यज्ञका और एक हजार अग्निष्टोम यज्ञोंका पुण्य-फल पाता है। वहीं ब्रह्मतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष दस हजार ज्योतिष्टोम यज्ञोंका और तीन अश्वमेध यज्ञोंका पुण्य प्राप्त करता है। मोहिनी! कुब्ज नामसे प्रसिद्ध जो पापनाशक तीर्थ है, वहाँ स्नान करनेसे सम्पूर्ण रोग और सब जन्मोंके पातक नष्ट हो जाते हैं। हरिद्वारक्षेत्रमें ही एक दूसरा तीर्थ है, जो कापिलतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। शुभे! उसमें स्नान करनेवाला मानव अस्सी हजार कपिला गौओंके दानके समान पुण्य-फल पाता है। गङ्गाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत तथा कनखल-तीर्थमें स्नान करके मनुष्य पापरहित हो स्वर्गलोकमें जाता है। तदनन्तर पवित्र नामक तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें परम उत्तम है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य दो विश्वजित् यज्ञोंका पुण्य पाता है। तदनन्तर वेणीराज्य नामक तीर्थ है, जहाँ महापुण्यमयी सरयू उत्तम पुण्यस्वरूपा गङ्गामें इस प्रकार मिली हैं, जैसे एक बहिन अपनी दूसरी बहिनसे मिलती है। भगवान् विष्णुके दाहिने चरणारविन्दके पखारनेसे देवनदी गङ्गा प्रकट हुई हैं और बायें चरणसे मानस-नन्दिनी सरयूका प्रादुर्भाव हुआ है। उस तीर्थमें भगवान् शिव और विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष विष्णुस्वरूप हो जाता है। वहाँका स्नान पाँच अश्वमेध यज्ञोंका फल देनेवाला बताया गया है। तत्पश्चात् गाण्डवतीर्थ है, जहाँ गङ्गासे गण्डकी नदी मिली है। वहाँका स्नान और एक हजार गौओंका दान दोनों बराबर हैं। तदनन्तर रामतीर्थ है, जिसके समीप पुण्यमय वैकुण्ठ है। तत्पश्चात् परम पवित्र सोमतीर्थ है, जहाँ नकुल मुनि भगवान् शिवकी पूजा करके उनका ध्यान करते हुए गणस्वरूप हो गये। उसके बाद चम्पक नामक पुण्य तीर्थ है, जहाँ गङ्गाकी धारा उत्तर दिशाकी ओर बहती है। उसे मणिकर्णिकाके समान महापातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। तदनन्तर कलश-तीर्थ है, जहाँ कलशसे मुनिवर अगस्त्य प्रकट हुए थे। वहीं भगवान् रुद्रकी आराधना करके वे श्रेष्ठ मुनीश्वर हो गये। इसके बाद परम पुण्यमय सोमद्वीप-तीर्थ है, जिसका महत्त्व काशीपुरीके समान है। वहाँ भगवान् शङ्करकी आराधना करनेवाले चन्द्रमाको भगवान् रुद्रने सिरपर धारण किया था। यहीं विश्वामित्रकी भगिनी गङ्गामें मिली हैं। उसमें गोता लगानेवाला मनुष्य इन्द्रका प्रिय अतिथि होता है। मोहिनी! जह्नुकुण्ड नामक महातीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य निश्चय ही अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धारक होता है। सुभगे! तदनन्तर अदिति-तीर्थ है, जहाँ अदितिने कश्यपसे भगवान् विष्णुको वामनरूपमें प्राप्त किया था। वहाँ किये जानेवाले स्नानका फल महान् अभ्युदय बताया गया है। तत्पश्चात् शिलोच्चय नामक महातीर्थ है, जहाँ तपस्या करके समस्त प्रजा तृण आदिके साथ स्वर्गको चली जाती है; क्योंकि वह स्थान अनेक तीर्थोंका आश्रय है। तदनन्तर इन्द्राणी नामक तीर्थ है, जहाँ इन्द्राणीने तपस्या करके इन्द्रको पतिरूपमें प्राप्त किया था। यह स्थान प्रयागके तुल्य सेवन करनेयोग्य है। उसके बाद पुण्यदायक स्नातक तीर्थ है, जहाँ क्षत्रिय विश्वामित्रने तपस्या करके तीर्थसेवनके प्रभावसे ब्रह्मर्षि-पदको प्राप्त किया था। तत्पश्चात् प्रद्युम्न-तीर्थ है, जो तपस्याके लिये प्रसिद्ध है। वहाँ कामदेव तपस्या करके भगवान् श्रीकृष्णके प्रद्युम्न नामक पुत्र हुए। उस तीर्थमें स्नान करनेसे महान् अभ्युदयकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर दक्षप्रयाग है, जहाँ गङ्गासे यमुना मिली हैं। वहाँ स्नान करनेसे प्रयागकी ही भाँति अक्षय पुण्य प्राप्त होता है।

करती हैं। 'हे जाह्नवी! मेरे जो महापातक-समुदायरूप पाप हैं, उन सबको तुम गोविन्द-द्वादशीके दिन स्नान करनेसे नष्ट कर दो।' यदि माघकी पूर्णिमाको मघा नक्षत्र या बृहस्पतिका योग हो तो उक्त तिथिका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। यदि यह योग गङ्गाजीमें सुलभ हो तब तो सौ सूर्यग्रहणके समान पुण्य होता है।

अब देशविशेषके योगसे गङ्गा-स्नानका फल बतलाया जाता है। गङ्गाजीमें जहाँ-कहीं भी स्नान किया जाय, वह कुरुक्षेत्रसे दसगुना पुण्य देनेवाली है; किंतु जहाँ वे विन्ध्याचल पर्वतमे संयुक्त होती हैं, वहाँ कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा सौगुना पुण्य होता है। काशीपुरीमें गङ्गाजीका माहात्म्य विन्ध्याचलकी अपेक्षा सौगुना बताया गया है। यों तो गङ्गाजी सर्वत्र ही दुर्लभ हैं, किंतु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर-संगम—इन तीन स्थानोंमें उनका माहात्म्य बहुत अधिक है। गङ्गाद्वारमें कुशावर्ततीर्थके भीतर स्नान करनेसे सात राजसूय और दो अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है। उस तीर्थमें पंद्रह दिन निवास करनेसे छः विश्वजित् यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। साथ ही विद्वानोंने वहाँ रहनेसे एक लाख गोदानका पुण्य बताया है। कुशावर्तमें भगवान् गोविन्दका और कनखलमें भगवान् रुद्रका दर्शन-पूजन करनेसे अथवा इन स्थानोंमें गङ्गास्नान करनेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जहाँ पूर्वकालमे वाराहरूपधारी भगवान् विष्णु प्रकट हुए थे, वहाँ स्नान करके मनुष्य सौ अग्निहोत्रका, दो ज्योतिष्टोम यज्ञका और एक हजार अग्निष्टोम यज्ञोंका पुण्य-फल पाता है। वहीं ब्रह्मतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष दस हजार ज्योतिष्टोम यज्ञोंका और तीन अश्वमेध यज्ञोंका पुण्य प्राप्त करता है। मोहिनी! कुब्ज नामसे प्रसिद्ध जो पापनाशक तीर्थ है, वहाँ स्नान करनेसे सम्पूर्ण रोग और सब जन्मोंके पातक नष्ट हो जाते हैं। हरिद्वारक्षेत्रमें ही एक दूसरा तीर्थ है, जो कापिलतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। शुभे! उसमें स्नान करनेवाला मानव अस्सी हजार कपिला गौओंके दानके समान पुण्य-फल पाता है। गङ्गाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत तथा कनखल-तीर्थमें स्नान करके मनुष्य पापरहित हो स्वर्गलोकमें जाता है। तदनन्तर पवित्र नामक तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें परम उत्तम है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य दो विश्वजित् यज्ञोंका पुण्य पाता है। तदनन्तर येगीराज्य नामक तीर्थ है, जहाँ महापुण्यमयी सरयू उत्तम पुण्यस्वरूपा गङ्गामें इस प्रकार मिली हैं, जैसे एक बहिन अपनी दूसरी बहिनसे मिलती है। भगवान् विष्णुके दाहिने चरणारविन्दके पखारनेसे देवनदी गङ्गा प्रकट हुई हैं और बायें चरणसे मानस-नन्दिनी सरयूका प्रादुर्भाव हुआ है। उस तीर्थमें भगवान् शिव और विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष विष्णुस्वरूप हो जाता है। वहाँका स्नान पाँच अश्वमेध यज्ञोंका फल देनेवाला बताया गया है। तत्पश्चात् गाण्डवतीर्थ है, जहाँ गङ्गासे गण्डकी नदी मिली है। वहाँका स्नान और एक हजार गौओंका दान दोनों बराबर हैं। तदनन्तर रामतीर्थ है, जिसके समीप पुण्यमय वैकुण्ठ है। तत्पश्चात् परम पवित्र सोमतीर्थ है, जहाँ नकुल मुनि भगवान् शिवकी पूजा करके उनका ध्यान करते हुए गणस्वरूप हो गये। उसके बाद चम्पक नामक पुण्य तीर्थ है, जहाँ गङ्गाकी धारा उत्तर दिशाकी ओर बहती है। उसे मणिकर्णिकाके समान महापातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। तदनन्तर कलश-तीर्थ है, जहाँ कलशसे मुनिवर अगस्त्य प्रकट हुए थे। वहीं भगवान् रुद्रकी आराधना करके वे श्रेष्ठ मुनीश्वर हो गये। इसके बाद परम पुण्यमय सोमद्वीप-तीर्थ है, जिसका महत्त्व काशीपुरीके समान है। वहाँ भगवान् शङ्करकी आराधना करनेवाले चन्द्रमाको भगवान् रुद्रने सिरपर धारण किया था। यहीं विश्वामित्रकी भगिनी गङ्गामें मिली हैं। उसमें गोता लगानेवाला मनुष्य इन्द्रका प्रिय अतिथि होता है। मोहिनी! जह्नुकुण्ड नामक महातीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य निश्चय ही अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धारक होता है। सुभगे! तदनन्तर अदिति-तीर्थ है, जहाँ अदितिने कश्यपसे भगवान् विष्णुको वामनरूपमे प्राप्त किया था। वहाँ किये जानेवाले स्नानका फल महान् अभ्युदय बताया गया है। तत्पश्चात् शिलोच्चय नामक महातीर्थ है, जहाँ तपस्या करके समस्त प्रजा तृण आदिके साथ स्वर्गको चली जाती है; क्योंकि वह स्थान अनेक तीर्थोंका आश्रय है। तदनन्तर इन्द्राणी नामक तीर्थ है, जहाँ इन्द्राणीने तपस्या करके इन्द्रको पतिरूपमें प्राप्त किया था। यह स्थान प्रयागके तुल्य सेवन करनेयोग्य है। उसके बाद पुण्यदायक स्नातक तीर्थ है, जहाँ क्षत्रिय विश्वामित्रने तपस्या करके तीर्थसेवनके प्रभावसे ब्रह्मर्षि-पदको प्राप्त किया था। तत्पश्चात् प्रद्युम्न-तीर्थ है, जो तपस्याके लिये प्रसिद्ध है। वहाँ कामदेव तपस्या करके भगवान् श्रीकृष्णके प्रद्युम्न नामक पुत्र हुए। उस तीर्थमें स्नान करनेसे महान् अभ्युदयकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर दक्षप्रयाग है, जहाँ गङ्गासे यमुना मिली हैं। वहाँ स्नान करनेसे प्रयागकी ही भाँति अक्षय पुण्य प्राप्त होता है।

श्वेत कमल, तीसरेमें वर और चौथेमें अभय है। वे शुभ-स्वरूपा हैं। उनके श्रीअङ्गोंपर श्वेत वस्त्र सुशोभित होता है। मोती और मणियोंके हार उनके आभूषण हैं। उनका मुख परम सुन्दर है। वे सदा प्रसन्न रहती है। उनका हृदय-कमल करुणारससे सदा आर्द्र बना रहता है। उन्होंने वसुधा-पर सुधाधारा बहा रक्खी है। तीनों लोक सदा उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। इस प्रकार जलमयी गङ्गाका ध्यान करके उनकी पूजा करनेवाला पुरुष पुण्यका भागी होता है। जो इस प्रकार पंद्रह दिन भी निरन्तर पूजा करता है, वही देवताओंके समान हो जाता है और दीर्घकालतक पूजा करनेसे फलमें भी अधिकता होती है। पूर्वकालमें राजा जह्नुने वैशाख शुक्ला सप्तमीको क्रोधपूर्वक गङ्गाजीको पी लिया था और फिर अपने कानके दाहिने छिद्रसे उन्हें निकाल दिया। शुभानने! उस स्थानपर आकाशकी मेखलारूप गङ्गाजीका पूजन करना चाहिये। वैशाख मासकी अक्षयतृतीयाको तथा कार्तिकमें भी रातको जागरण करते हुए जौ और तिलसे भक्तिभावपूर्वक विष्णु, गङ्गा और शिवकी पूजा करनी चाहिये। उक्त सामग्रियोंके सिवा उत्तम गन्ध, पुष्प, कुंकुम, अगरु, चन्दन, तुलसीदल, बिल्वपत्र, बिजौरा नीबू आदि, धूप, दीप और नैवेद्यसे वैभव-विस्तारके अनुसार पूजा करनी उचित है। गङ्गाजीके तटपर किया हुआ यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देवपूजा आदि सब कर्म कोटि-कोटिगुना फल देनेवाला होता है। जो अक्षयतृतीयाको गङ्गाजीके तटपर विधिपूर्वक घृतमयी धेनुका दान करता है, वह पुरुष सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी और सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न हो हंस-भूषित सुवर्ण-रत्नमय विचित्र विमानपर बैठकर अपने पितरोंके साथ कोटि-सहस्र एवं कोटिशत कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। इसी प्रकार जो (कभी) गङ्गातटपर शास्त्रीय विधिसे गोदान करता है, वह उस गायके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। यदि गङ्गातटपर वेदवेत्ता ब्राह्मणको विधिपूर्वक कपिला गौका दान दिया जाय तो वह गौ नरकमें पड़े हुए सम्पूर्ण पितरोंको तत्काल स्वर्ग पहुँचा देती है। जो गङ्गातटपर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा तथा सूर्य भगवान्की प्रीतिके लिये ब्राह्मणोंको ग्रामदान करता है, उसे सम्पूर्ण दानोंका जो पुण्य है, समस्त यज्ञोंका जो फल है तथा सब प्रकारके तप, व्रत और पुण्य-कर्मोंका जो फल बताया गया है, वह सहस्रगुना होकर मिलता है। उस दानके प्रभावसे दाता पुरुष करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी विमानपर बैठकर अपनी रुचिके अनुसार श्रीविष्णुधाम-में अथवा श्रीशिवधाममें प्रसन्नतापूर्वक क्रीडा-विहार करता है। देवता उसकी स्तुति करते रहते हैं। देवि! जो अक्षय-तृतीयाके दिन गङ्गातटपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको सोलह माशा सुवर्ण दान करता है, वह भी दिव्यलोकोंमें पूजित होता है। अन्नदान करनेसे विष्णुलोककी और तिलदानसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। रत्नदानसे ब्रह्मलोक, गोदान और सुवर्णदानसे इन्द्रलोक, तथा सुवर्णसहित वस्त्रदानसे गन्धर्वलोककी प्राप्ति होती है। विद्यादानसे मुक्तिदायक ज्ञान पाकर मनुष्य निरञ्जन ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।

एक वर्षतक गङ्गार्चन-व्रतका विधान और माहात्म्य, गङ्गातटपर नक्त-व्रत करके भगवान् शिवका पूजन, प्रत्येक मासकी पूर्णिमा और अमावास्याको शिवाराधन तथा गङ्गा-दशहराके पुण्य-कृत्य एवं उनका माहात्म्य

पुरोहित वसु बोले—मोहिनी! एकाग्रचित्त हो विधि-पूर्वक गङ्गाजीकी पूजा करनी चाहिये। दिव्यस्वरूपा गङ्गादेवी-का ध्यान करके एक सेर अगहनीके चावलको दो सेर दूधमें पकाकर खीर तैयार करावे, उसमें मधु और घी मिला दे, वे दोनों पृथक्-पृथक् एक-एक तोला होने चाहिये। तदनन्तर भक्तिभावसे परिपूर्ण हो खीर, पूआ, लड्डू, मण्डल, आवा

श्वेत कमल, तीसरेमें वर और चौथेमें अभय है। वे शुभ-स्वरूपा हैं। उनके श्रीअङ्गोंपर श्वेत वस्त्र सुशोभित होता है। मोती और मणियोंके हार उनके आभूषण हैं। उनका मुख परम सुन्दर है। वे सदा प्रसन्न रहती हैं। उनका हृदय-कमल करुणारससे सदा आर्द्र बना रहता है। उन्होंने वसुधा-पर सुधाधारा बहा रक्खी है। तीनों लोक सदा उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। इस प्रकार जलमयी गङ्गाका ध्यान करके उनकी पूजा करनेवाला पुरुष पुण्यका भागी होता है। जो इस प्रकार पंद्रह दिन भी निरन्तर पूजा करता है, वही देवताओंके समान हो जाता है और दीर्घकालतक पूजा करनेसे फलमें भी अधिकता होती है। पूर्वकालमें राजा जह्नुने वैशाख शुक्ला सप्तमीको क्रोधपूर्वक गङ्गाजीको पी लिया था और फिर अपने कानके दाहिने छिद्रसे उन्हें निकाल दिया। शुभानने! उस स्थानपर आकाशकी मेखलारूप गङ्गाजीका पूजन करना चाहिये। वैशाख मासकी अक्षयतृतीयाको तथा कार्तिकमें भी रातको जागरण करते हुए जौ और तिलसे भक्तिभावपूर्वक विष्णु, गङ्गा और शिवकी पूजा करनी चाहिये। उक्त सामग्रियोंके सिवा उत्तम गन्ध, पुष्प, कुंकुम, अगरु, चन्दन, तुलसीदल, बिल्वपत्र, बिजौरा नीबू आदि, धूप, दीप और नैवेद्यसे वैभव-विस्तारके अनुसार पूजा करनी उचित है। गङ्गाजीके तटपर किया हुआ यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देवपूजा आदि सब कर्म कोटि-कोटिगुना फल देनेवाला होता है। जो अक्षयतृतीयाको गङ्गाजीके तटपर विधिपूर्वक घृतमयी धेनुका दान करता है, वह पुरुष सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी और सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न हो हंस-भूषित सुवर्ण-रत्नमय विचित्र विमानपर बैठकर अपने पितरोंके साथ कोटि-सहस्र एवं कोटिगत कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। इसी प्रकार जो (कभी) गङ्गातटपर शास्त्रीय विधिसे गोदान करता है, वह उस गायके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। यदि गङ्गातटपर वेदवेत्ता ब्राह्मणको विधिपूर्वक कपिला गौका दान दिया जाय तो वह गौ नरकमें पड़े हुए सम्पूर्ण पितरोंको तत्काल स्वर्ग पहुँचा देती है। जो गङ्गातटपर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा तथा सूर्य भगवान्‌की प्रीतिके लिये ब्राह्मणोंको ग्रामदान करता है, उसे सम्पूर्ण दानोंका जो पुण्य है, समस्त यज्ञोंका जो फल है तथा सब प्रकारके तप, व्रत और पुण्य-कर्मोंका जो फल बताया गया है, वह सहस्रगुना होकर मिलता है। उस दानके प्रभावसे दाता पुरुष करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी विमानपर बैठकर अपनी रुचिके अनुसार श्रीविष्णुधाम-में अथवा श्रीशिवधाममें प्रसन्नतापूर्वक क्रीडा-विहार करता है। देवता उसकी स्तुति करते रहते हैं। देवि! जो अक्षय-तृतीयाके दिन गङ्गातटपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको सोलह माशा सुवर्ण दान करता है, वह भी दिव्यलोकोंमें पूजित होता है। अन्नदान करनेसे विष्णुलोककी और तिलदानसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। रत्नदानसे ब्रह्मलोक, गोदान और सुवर्णदानसे इन्द्रलोक, तथा सुवर्णसहित वस्त्रदानसे गन्धर्वलोककी प्राप्ति होती है। विद्यादानसे मुक्तिदायक ज्ञान पाकर मनुष्य निरञ्जन ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।

एक वर्षतक गङ्गार्चन-व्रतका विधान और माहात्म्य, गङ्गातटपर नक्त-व्रत करके भगवान् शिवका पूजन, प्रत्येक मासकी पूर्णिमा और अमावास्याको शिवाराधन तथा गङ्गा-दशहराके पुण्य-कृत्य एवं उनका माहात्म्य

पुरोहित वसु बोले—मोहिनी! एकाग्रचित्त हो विधि-पूर्वक गङ्गाजीकी पूजा करनी चाहिये। दिव्यस्वरूपा गङ्गादेवी-का ध्यान करके एक सेर अगहनीके चावलको दो सेर दूधमें पकाकर खीर तैयार करावे, उसमें मधु और घी मिला दे, वे दोनों पृथक्-पृथक् एक-एक तोला होने चाहिये। तदनन्तर भक्तिभावसे परिपूर्ण हो खीर, पूआ, लड्डू, मण्डल, आधा

के साथ एक बार भी उक्त नियमका पालन करता है, वह अन्तमें मुक्त हो जाता है ।

ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षमें दशमी तिथिको हस्त नक्षत्रका योग होनेपर स्त्री हो या पुरुष, भक्तिभावसे गङ्गाजीके तटपर जाकर रात्रिमें जागरण करना चाहिये और दस प्रकारके फूलोंसे, दस प्रकारकी गन्धसे, दस तरहके नैवेद्योंसे तथा दस-दस ताम्बूल एवं दीप आदिसे श्रद्धापूर्वक गङ्गाजीकी पूजा करनी चाहिये । पूजनके पहले भक्तिपूर्वक शास्त्रोक्त विधिके अनुसार गङ्गाजीमें दस बार स्नान करके जलमें दस पसर काले तिल और घी छोड़ना चाहिये । इसी प्रकार सत्तू तथा गुड़के दस-दस पिण्ड भी गङ्गाजीके जलमें डालने चाहिये । तदनन्तर गङ्गाके रमणीय तटपर अपनी शक्तिके अनुसार सोने या चाँदीसे गङ्गाजीकी प्रतिमा निर्माण कराकर उसकी स्थापना करे । पहले भूमिपर कमल या स्वस्तिकका चिह्न बनाकर उसके ऊपर कलश स्थापित करे । कलशपर भी पद्म एवं स्वस्तिकका चिह्न होना चाहिये । उसके कण्ठमें वस्त्र और पुष्पहार लपेट देना चाहिये । कलशको गङ्गाजलसे भरकर उसमें अन्य आवश्यक पदार्थ छोड़े । उसके ऊपर पूर्णपात्र रखकर उसमें गङ्गाजीकी पूर्वोक्त प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये । सुवर्ण आदिकी प्रतिमा न मिले तो मिट्टी आदिकी बनवानी चाहिये । इसकी भी शक्ति न हो तो आटासे पृथ्वीपर ही गङ्गाजीका स्वरूप अङ्कित करना चाहिये । उनका स्वरूप इस प्रकार है— गङ्गादेवीके चार भुजाएँ और सुन्दर नेत्र हैं । उनके श्रीअङ्गोंसे दस हजार चन्द्रमाओंके समान उज्ज्वल चाँदनी-सी छिटकती रहती है । दासियाँ उन्हें चवँर डुलाती हैं । मस्तकपर तना हुआ श्वेत छत्र उनकी शोभा बढाता है । वे अत्यन्त प्रसन्न और वरदायिनी हैं । करुणासे उनका अन्तःकरण सदा द्रवीभूत रहता है । वे वसुधातलपर सुधाधारा बहाती हैं । देवता आदि सदा उनकी स्तुति करते रहते हैं । वे दिव्य रत्नोंके आभूषण, दिव्य हार और दिव्य अनुलेपनसे विभूषित हैं । जलमें उनके उपर्युक्त स्वरूपका ध्यान करके प्रतिमामें उनकी विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये । प्रतिमाको पञ्चामृतसे स्नान कराना उत्तम है । प्रतिमाके आगे एक वेदी बनाकर उसको गोबरसे लीपे । उसपर भगवान् नारायण, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, राजा भगीरथ तथा गिरिराज हिमालयकी स्थापना करके गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंसे यथाशक्ति उनकी पूजा करे; फिर दस ब्राह्मणोंको दस सेर तिल दे । इसी प्रकार दस सेर जौ दे और उनके साथ अलग-अलग दस पात्रोंमें गव्य (दही-घी आदि) भी दे । तत्पश्चात् पहलेसे तैयार करायी हुई मछली, कछुआ, मेढक, मगर आदि जलचर जीवोंकी यथाशक्ति सुवर्णमयी अथवा रजतमयी प्रतिमा स्थापित करके उनकी पूजा करे, वैसी प्रतिमा न मिलनेपर आटेकी प्रतिमा बनावे और मन्त्रज्ञ पुरुष पुष्प आदिसे पूर्वनिर्दिष्ट मन्त्रद्वारा ही उनकी पूजा करके उन्हें गङ्गाजीमें छोड़ दे । यदि अपने पास वैभव हो तो उस दिन गङ्गाजीकी रथयात्रा भी करावे । रथपर गङ्गाजीकी प्रतिमा या चित्र हो, उसका मुख उत्तर दिशाकी ओर रहे । रथपर भ्रमण करती हुई गङ्गाजीका दर्शन इस लोकमें पापी मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है । इस प्रकार विधिपूर्वक रथयात्रा सम्पन्न करके मनुष्य आगे बताये जानेवाले दस प्रकारके पापोंसे तत्काल ही मुक्त हो जाता है । बिना दिये हुए किसीकी वस्तु ले लेना, हिंसा करना और परायी स्त्रीके साथ सम्बन्ध रखना— ये तीन प्रकारके शारीरिक पाप माने गये हैं । कठोरतापूर्ण वचन, असत्य, चुगली तथा अनाप-शनाप बातें बकना—ये चार प्रकारके वाचिक पाप कहे गये हैं । दूसरेका धन हड़पनेकी बात सोचना, मनसे किसीका अनिष्ट-चिन्तन करना और झूठा अभिनिवेश (मरण-भय)—ये तीन प्रकारके मानसिक पाप हैं । ये दस प्रकारके पाप करोड़ों जन्मोंद्वारा संचित हों तो भी पूर्वोक्त विधिसे रथयात्रा करनेवाला पुरुष उनसे मुक्त हो जाता है ।

पूजाका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमो दशहरायै नारायण्यै गङ्गायै नमः ।' जो मनुष्य उस दिन रातमें और दिनमें भी उक्त मन्त्रका पाँच पाँच हजार जप करता है, वह मनुके बताये हुए दस धर्मों* का फल प्राप्त करता है । आगे बताये जानेवाले स्तोत्रको विधिपूर्वक ग्रहण करके उस दिन गङ्गाजीके आगे उसका पाठ करे । फिर भगवान् विष्णुकी पूजा करे । वह स्तोत्र इस प्रकार है—

ॐ शिवस्वरूपा गङ्गाको नमस्कार है । कल्याण प्रदान करनेवाली गङ्गाको नमस्कार है । विष्णुरूपिणी देवीको

* श्रीमनुके बतलाये हुए दस धर्म ये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥
(६ । ९२)

'धैर्य, क्षमा, मनका निग्रह, चोरी न करना, बाहर-भीतरकी पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, सात्त्विक बुद्धि, अध्यात्मविद्या, सत्य, अक्रोध— ये दस धर्मके लक्षण हैं ।'

के साथ एक बार भी उक्त नियमका पालन करता है, वह अन्तमें मुक्त हो जाता है।

ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षमें दशमी तिथिको हस्त नक्षत्रका योग होनेपर स्त्री हो या पुरुष, भक्तिभावसे गङ्गाजीके तटपर जाकर रात्रिमें जागरण करना चाहिये और दस प्रकारके फूलोंसे, दस प्रकारकी गन्धसे, दस तरहके नैवेद्योंसे तथा दस-दस ताम्बूल एवं दीप आदिसे श्रद्धापूर्वक गङ्गाजीकी पूजा करनी चाहिये। पूजनके पहले भक्तिपूर्वक शास्त्रोक्त विधिके अनुसार गङ्गाजीमें दस बार स्नान करके जलमें दस पसर काले तिल और घी छोडना चाहिये। इसी प्रकार सत्तू तथा गुड़के दस-दस पिण्ड भी गङ्गाजीके जलमें डालने चाहिये। तदनन्तर गङ्गाके रमणीय तटपर अपनी शक्तिके अनुसार सोने या चाँदीसे गङ्गाजीकी प्रतिमा निर्माण कराकर उसकी स्थापना करे। पहले भूमिपर कमल या स्वस्तिकका चिह्न बनाकर उसके ऊपर कलश स्थापित करे। कलशपर भी पद्म एवं स्वस्तिकका चिह्न होना चाहिये। उसके कण्ठमें वस्त्र और पुष्पहार लपेट देना चाहिये। कलशको गङ्गाजलसे भरकर उसमें अन्य आवश्यक पदार्थ छोड़े। उसके ऊपर पूर्णपात्र रखकर उसमें गङ्गाजीकी पूर्वोक्त प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। सुवर्ण आदिकी प्रतिमा न मिले तो मिट्टी आदिकी बनवानी चाहिये। इसकी भी शक्ति न हो तो आटासे पृथ्वीपर ही गङ्गाजीका स्वरूप अङ्कित करना चाहिये। उनका स्वरूप इस प्रकार है—गङ्गादेवीके चार भुजाएँ और सुन्दर नेत्र हैं। उनके श्रीअङ्गोंसे दस हजार चन्द्रमाओंके समान उज्ज्वल चाँदनी-सी छिटकती रहती है। दासियाँ उन्हें चवँर डुलाती हैं। मस्तकपर तना हुआ श्वेत छत्र उनकी शोभा बढाता है। वे अत्यन्त प्रसन्न और वरदायिनी हैं। करुणासे उनका अन्तःकरण सदा द्रवीभूत रहता है। वे वसुधातलपर सुधाधारा बहाती हैं। देवता आदि सदा उनकी स्तुति करते रहते हैं। वे दिव्य रत्नोंके आभूषण, दिव्य हार और दिव्य अनुलेपनसे विभूषित हैं। जलमें उनके उपर्युक्त स्वरूपका ध्यान करके प्रतिमामें उनकी विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये। प्रतिमाको पञ्चामृतसे स्नान कराना उत्तम है। प्रतिमाके आगे एक वेदी बनाकर उसको गोबरसे लीपे। उसपर भगवान् नारायण, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, राजा भगीरथ तथा गिरिराज हिमालयकी स्थापना करके गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंसे यथाशक्ति उनकी पूजा करे; फिर दस ब्राह्मणोंको दस सेर तिल दे। इसी प्रकार दस सेर जौ दे और उनके साथ अलग-अलग दस पात्रोंमें गव्य (दही-घी आदि) भी दे। तत्पश्चात् पहलेसे तैयार करायी हुई मछली, कछुआ, मेढक, मगर आदि जलचर जीवोंकी यथाशक्ति सुवर्णमयी अथवा रजतमयी प्रतिमा स्थापित करके उनकी पूजा करे, वैसी प्रतिमा न मिलनेपर आटेकी प्रतिमा बनावे और मन्त्रज्ञ पुरुष पुष्प आदिसे पूर्वनिर्दिष्ट मन्त्रद्वारा ही उनकी पूजा करके उन्हें गङ्गाजीमें छोड़ दे। यदि अपने पास वैभव हो तो उस दिन गङ्गाजीकी रथयात्रा भी करावे। रथपर गङ्गाजीकी प्रतिमा या चित्र हो, उसका मुख उत्तर दिशाकी ओर रहे। रथपर भ्रमण करती हुई गङ्गाजीका दर्शन इस लोकमें पापी मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। इस प्रकार विधिपूर्वक रथयात्रा सम्पन्न करके मनुष्य आगे बताये जानेवाले दस प्रकारके पापोंसे तत्काल ही मुक्त हो जाता है। बिना दिये हुए किसीकी वस्तु ले लेना, हिंसा करना और परायी स्त्रीके साथ सम्बन्ध रखना—ये तीन प्रकारके शारीरिक पाप माने गये हैं। कठोरतापूर्ण वचन, असत्य, चुगली तथा अनाप-शनाप बातें बकना—ये चार प्रकारके वाचिक पाप कहे गये हैं। दूसरेका धन हड़पनेकी बात सोचना, मनसे किसीका अनिष्ट-चिन्तन करना और झूठा अभिनिवेश (मरण-भय)—ये तीन प्रकारके मानसिक पाप हैं। ये दस प्रकारके पाप करोड़ों जन्मोंद्वारा संचित हों तो भी पूर्वोक्त विधिसे रथयात्रा करनेवाला पुरुष उनसे मुक्त हो जाता है।

पूजाका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमो दशहरायै नारायण्यै गङ्गायै नमः।' जो मनुष्य उस दिन रातमें और दिनमें भी उक्त मन्त्रका पाँच पाँच हजार जप करता है, वह मनुके बताये हुए दस धर्मों* का फल प्राप्त करता है। आगे बताये जानेवाले स्तोत्रको विधिपूर्वक ग्रहण करके उस दिन गङ्गाजीके आगे उसका पाठ करे। फिर भगवान् विष्णुकी पूजा करे। वह स्तोत्र इस प्रकार है—

ॐ शिवस्वरूपा गङ्गाको नमस्कार है। कल्याण प्रदान करनेवाली गङ्गाको नमस्कार है। विष्णुरूपिणी देवीको

* श्रीमनुके बतलाये हुए दस धर्म ये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥
(६ । ९२)

'धैर्य, क्षमा, मनका निग्रह, चोरी न करना, बाहर-भीतरकी पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, सात्त्विक बुद्धि, अध्यात्मविद्या, सत्य, अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं।'

जो प्रतिदिन भक्तिमावसे इस स्तोत्रका पाठ करता है अथवा जो श्रद्धापूर्वक इसे सुनता है, वह मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले पूर्वोक्त दस पापों तथा सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो जाता है। रोगी रोगसे और विपत्तिका मारा पुरुष विपत्तिसे छुटकारा पा जाता है। शत्रुओंसे, बन्धनसे तथा सब प्रकारके भयसे भी वह मुक्त हो जाता है। इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करता है और मृत्युके पश्चात् परब्रह्म परमात्मामें लीन हो जाता है। जिसके घरमें इस स्तोत्रको लिखकर इसकी पूजा की जाती है, वहाँ आग और चोरका भय नहीं है। वहाँ पापसे भी भय नहीं होता। ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको गङ्गाजीके जलमें खड़ा होकर जो इस स्तोत्रका दस बार जप या पाठ करता है, वह दरिद्र अथवा असमर्थ होनेपर भी वही फल पाता है, जो पूर्वोक्त विधिसे भक्तिपूर्वक गङ्गाजीकी पूजा करनेसे प्राप्त होने योग्य बताया गया है। जैसी गौरी देवीकी महिमा है, वैसी ही गङ्गा देवीकी भी है, अतः गौरीके पूजनमें जो विधि कही गयी है, वही गङ्गाजीके पूजनके लिये भी उत्तम विधि है। जैसे भगवान् शिव हैं, वैसे ही भगवान् विष्णु हैं, जैसे भगवान् विष्णु हैं, वैसी ही भगवती उमा हैं और जैसी भगवती उमा हैं, वैसी ही गङ्गाजी हैं—इनमें कोई भेद नहीं है। जो भगवान् विष्णु और शिवमें, गङ्गा और गौरीमें तथा लक्ष्मी और पार्वतीमें भेद मानता है, वह मूढबुद्धि है। उत्तरायणमें किसी उत्तम मासका शुक्ल पक्ष हो, दिनका समय हो और गङ्गाजीके तटकी भूमि हो, साथ ही हृदयमें भगवान् जनार्दनका चिन्तन हो रहा हो—ऐसी अवस्थामें जो शरीरका त्याग करते हैं, वे धन्य हैं *। विधिनन्दिनी! जो मनुष्य गङ्गामें

प्राणत्याग करते हैं, वे देवताओंद्वारा अपनी स्तुति सुनते

स्थाणुजङ्गमसम्भूतविषहन्त्रि नमोऽस्तु ते।
संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमो नमः॥
तापत्रितयहन्त्र्यै च प्राणेश्वर्यै नमो नमः।
शान्त्यै संतापहारिण्यै नमस्ते सर्वमूर्तये॥
सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापविमुक्तये।
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भोगवत्यै नमो नमः॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यमूर्त्तायै त्रिदशायै नमो नमः॥
नमस्ते शुक्लसंस्थायै क्षेमवत्यै नमो नमः।
त्रिदशासनसंस्थायै तेजोवत्यै नमोऽस्तु ते॥
मन्दायै लिङ्गधारिण्यै नारायण्यै नमो नमः।
नमस्ते विश्वमित्रायै रेवत्यै ते नमो नमः॥
बृहत्यै ते नमो नित्यं लोकधात्र्यै नमो नमः।
नमस्ते विश्वमुख्यायै नन्दिन्यै ते नमो नमः॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च विरजायै नमो नमः।
परावरगताद्यायै तारायै ते नमो नमः॥
नमस्ते स्वर्गसंस्थायै अभिन्नायै नमो नमः।
शान्तायै ते प्रतिष्ठायै वरदायै नमो नमः॥
उग्रायै सुखजल्पायै संजीविन्यै नमो नमः।
ब्रह्मगायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः॥
प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमो नमः।
विप्लुपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः॥
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः।
परापरे परे तुभ्यं नमो मोक्षप्रदे सदा।
गङ्गा ममाग्रतो भूयाद् गङ्गा मे पार्श्वयोस्तथा॥
गङ्गा मे सर्वतो भूयात्त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः।
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वा त्वं गाङ्गते शिवे॥
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः प्रभुः।
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमो नमः॥
(ना० उत्तर० ४३। ६९—८४)

* शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गङ्गायामुत्तरायणे।
धन्या देहं विमुञ्चन्ति हृदयस्थे जनार्दने॥
(ना० उत्तर० ४३। ९४)

जो प्रतिदिन भक्तिभावसे इस स्तोत्रका पाठ करता है अथवा जो श्रद्धापूर्वक इसे सुनता है, वह मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले पूर्वोक्त दस पापों तथा सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो जाता है। रोगी रोगसे और विपत्तिका मारा पुरुष विपत्तिसे छुटकारा पा जाता है। शत्रुओंसे, बन्धनसे तथा सब प्रकारके भयसे भी वह मुक्त हो जाता है। इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करता है और मृत्युके पश्चात् परब्रह्म परमात्मामें लीन हो जाता है। जिसके घरमें इस स्तोत्रको लिखकर इसकी। पूजा की जाती है, वहाँ आग और चोरका भय नहीं है। वहाँ पापसे भी भय नहीं होता। ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको गङ्गाजीके जलमें खड़ा होकर जो इस स्तोत्रका दस बार जप या पाठ करता है, वह दरिद्र अथवा असमर्थ होनेपर भी वही फल पाता है, जो पूर्वोक्त विधिसे भक्तिपूर्वक गङ्गाजीकी पूजा करनेसे प्राप्त होने योग्य बताया गया है। जैसी गौरी देवीकी महिमा है, वैसी ही गङ्गा देवीकी भी है, अतः गौरीके पूजनमें जो विधि कही गयी है, वही गङ्गाजीके पूजनके लिये भी उत्तम विधि है। जैसे भगवान् शिव हैं, वैसे ही भगवान् विष्णु हैं, जैसे भगवान् विष्णु हैं, वैसी ही भगवती उमा हैं और जैसी भगवती उमा हैं, वैसी ही गङ्गाजी हैं—इनमें कोई भेद नहीं है। जो भगवान् विष्णु और शिवमें, गङ्गा और गौरीमें तथा लक्ष्मी और पार्वतीमें भेद मानता है, वह मूढबुद्धि है। उत्तरायणमें किसी उत्तम मासका शुक्ल पक्ष हो, दिनका समय हो और गङ्गाजीके तटकी भूमि हो, साथ ही हृदयमें भगवान् जनार्दनका चिन्तन हो रहा हो—ऐसी अवस्थामें जो शरीरका त्याग करते हैं, वे धन्य हैं *। विधिनन्दिनी! जो मनुष्य गङ्गामें प्राणत्याग करते हैं, वे देवताओंद्वारा अपनी स्तुति सुनते

स्थाणुजङ्गमसम्भूतविषहन्त्रि नमोऽस्तु ते।
संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमो नमः॥
तापत्रितयहन्त्र्यै च प्राणेश्वर्यै नमो नमः।
शान्त्यै संतापहारिण्यै नमस्ते सर्वमूर्तये॥
सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापविमुक्तये।
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भोगवत्यै नमो नमः॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यमूर्तायै त्रिदशायै नमो नमः॥
नमस्ते शुक्लसंस्थायै क्षेमवत्यै नमो नमः।
त्रिदशासनसंस्थायै तेजोवत्यै नमोऽस्तु ते॥
मन्दायै लिङ्गधारिण्यै नारायण्यै नमो नमः।
नमस्ते विश्वमित्रायै रेवत्यै ते नमो नमः॥
बृहत्यै ते नमो नित्यं लोकधात्र्यै नमो नमः।
नमस्ते विश्वमुख्यायै नन्दिन्यै ते नमो नमः॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च विरजायै नमो नमः।
परावरगताद्यायै तारायै ते नमो नमः॥
नमस्ते स्वर्गसंस्थायै अभिन्नायै नमो नमः।
शान्तायै ते प्रतिष्ठायै वरदायै नमो नमः॥
उग्रायै सुखजल्पायै संजीविन्यै नमो नमः।
ब्रह्मगायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः॥
प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमो नमः।
विप्लुपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः॥
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः।
परापरे परे तुभ्यं नमो मोक्षप्रदे सदा।
गङ्गा ममाग्रतो भूयाद् गङ्गा मे पार्श्वयोस्तथा॥
गङ्गा मे सर्वतो भूयात्त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः।
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वा त्वं गाङ्गते शिवे॥
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः प्रभुः।
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमो नमः॥
(ना० उत्तर० ४३। ६९—८४)

* शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गङ्गायामुत्तरायणे।
धन्या देहं विमुञ्चन्ति हृदयस्थे जनार्दने॥
(ना० उत्तर० ४३। ९४)

गयातीर्थकी महिमा

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर पापनाशिनी गङ्गाका यह उत्तम माहात्म्य सुनकर मोहिनीने पुनः अपने पुरोहितसे पूछा।

मोहिनी बोली—भगवन्! आपने मुझे गङ्गाका पुण्यमय आख्यान (माहात्म्य) सुनाया है। अब मैं यह सुनना चाहती हूँ कि संसारमें गयातीर्थ कैसे विख्यात हुआ?

पुरोहित वसुने कहा—गया पितृतीर्थ है। उसे सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ माना गया है, जहाँ देवदेवेश्वर पितामह ब्रह्माजी स्वयं निवास करते हैं। जहाँ याग (श्राद्ध) की अभिलाषा रखनेवाले पितरोंने यह गाथा गायी है—'बहुत-से पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये, क्योंकि उनमेंसे एक भी तो गया जायगा अथवा अश्वमेध यज्ञ करेगा या नीलवृषभका उत्सर्ग करेगा।' देवि! गयाका उत्तम माहात्म्य सारसे भी सारतर वस्तु है। मैं उसका संक्षेपसे वर्णन करूँगा। वह भोग और मोक्ष देनेवाला है। सुनो, पूर्वकालकी बात है। गयासुर नामसे प्रसिद्ध एक असुर हुआ था, जो बड़ा पराक्रमी था। उसने बड़ा भयंकर तप किया जो सम्पूर्ण भूतोंको पीड़ित करनेवाला था। उसकी तपस्यासे संतप्त हुए देवतालोग उसके वधके लिये भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब भगवान्ने उसको गदासे मार दिया। अतः गदाधर भगवान् विष्णु ही गया-तीर्थमें मुक्तिदाता माने गये हैं। भगवान् विष्णुने इस तीर्थकी मर्यादा स्थापित की। जो मनुष्य यहाँ यज्ञ, श्राद्ध, पिण्डदान एवं स्नानादि कर्म करता है, वह स्वर्ग अथवा ब्रह्मलोकमें जाता है। गयातीर्थको उत्तम जानकर ब्रह्माजीने वहाँ यज्ञ किया तथा उन्होंने वहाँ सरस्वती नदीकी भी सृष्टि की और समस्त दिशाओंमें व्याप्त होकर उस तीर्थमें निवास किया। तदनन्तर ब्राह्मणोंके प्रार्थना करनेपर ब्रह्माजीने वहाँ अनेक तीर्थ निर्माण किये और कहा—ब्राह्मणो! गयामें श्राद्ध करनेसे पवित्र हुए लोग ब्रह्मलोकगामी होंगे और जो लोग तुम्हारा पूजन और सत्कार करेंगे, उनके द्वारा सदा मैं पूजित होऊँगा। ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोशालमें प्राप्त होनेवाली मृत्यु तथा कुरुक्षेत्रमें निवास—यह मनुष्योंके लिये चार प्रकारकी मुक्ति (के साधन) हैं। ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी और गुरुपत्नीगमन तथा इन सबके संसर्गसे होनेवाला पाप—ये सब-के-सब गयाश्राद्धसे नष्ट हो जाते हैं। मरनेपर जिनका दाह-संस्कार नहीं हुआ है, जो पशुओंद्वारा मारे गये हैं अथवा जिन्हें सर्पने डँस लिया है, वे सब लोग गयाश्राद्धसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाते हैं।

देवि! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुना जाता है। त्रेतायुगमें विशाल नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जो विशालापुरीमें रहते थे। वे अपने सद्गुणोंके कारण धन्य समझे जाते थे। उनमें धैर्यका विलक्षण गुण था। उन्होंने श्रेष्ठ तीर्थ गयाशिरमें आकर पितृयाग प्रारम्भ किया। उन्होंने विधिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान दिया। इतनेमें ही उन्होंने आकाशमें उत्तम आकृतिसे युक्त तीन पुरुषोंको देखा, जो क्रमशः श्वेत, लाल और काले रंगके थे। उन्हें देखकर राजाने पूछा—'आपलोग कौन हैं?'

सित (श्वेत) ने कहा—राजन्! मैं तुम्हारा पिता सित हूँ। मेरा नाम तो सित है ही, मेरे शरीरका वर्ण भी सित (श्वेत) है। साथ ही मेरे कर्म भी सित (उज्ज्वल) हैं और ये जो लाल रंगके पुरुष दिखायी देते हैं, ये मेरे पिता हैं। इन्होंने बड़े निष्ठुर कर्म किये हैं। ये ब्रह्महत्यारे और पापाचारी रहे हैं और इनके बाद ये जो तीसरे सज्जन हैं, ये तुम्हारे प्रपितामह हैं। ये नामसे तो कृष्ण हैं ही, कर्म और वर्णसे भी कृष्ण हैं। इन्होंने पूर्वजन्ममें अनेक प्राचीन ऋषियोंका वध किया है। ये दोनों पिता और पुत्र अवीचि-नामक नरकमें पड़े हुए हैं, अतः ये मेरे पिता और ये दूसरे इनके पिता, जो दीर्घकालतक काले मुखसे युक्त हो नरकमें रहे हैं और मैं, जिसने अपने शुद्ध कर्मके प्रभावसे इन्द्रका परम दुर्लभ सिंहासन प्राप्त किया था, तुझ मन्त्रज्ञ पुत्रके द्वारा गयामें पिण्डदान करनेसे हम तीनों ही बलात् मुक्त हो गये।

एक बार गया जाना और एक बार वहाँ पितरोंको पिण्ड देना भी दुर्लभ है; फिर नित्य वहीं रहनेका अवसर मिले, इसके लिये तो कहना ही क्या है! देश-कालके प्रमाणानुसार कहीं-कहीं मृत्युकालसे एक वर्ष बीतनेके बाद अपने भाई-बन्धु पतित पुरुषोंके लिये गयाकूपमें पिण्डदान करते हैं। एक समय किसी प्रेतराजने एक वैश्यसे अपनी मुक्तिके लिये अनुरोध करते हुए कहा—तुम गयातीर्थका दर्शन करके स्नान कर लेना और पवित्र होकर मेरा नाम ले मेरे लिये पिण्डदान करना। वहाँ पिण्ड देनेसे मैं अनायास ही प्रेतभावसे मुक्त हो सम्पूर्ण दाताओंको प्राप्त होनेवाले शुभ लोकोंमें चला

गयातीर्थकी महिमा

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर पापनाशिनी गङ्गाका यह उत्तम माहात्म्य सुनकर मोहिनीने पुनः अपने पुरोहितसे पूछा।

मोहिनी बोली—भगवन्! आपने मुझे गङ्गाका पुण्यमय आख्यान (माहात्म्य) सुनाया है। अब मैं यह सुनना चाहती हूँ कि संसारमें गयातीर्थ कैसे विख्यात हुआ?

पुरोहित वसुने कहा—गया पितृतीर्थ है। उसे सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ माना गया है, जहाँ देवदेवेश्वर पितामह ब्रह्माजी स्वयं निवास करते हैं। जहाँ याग (श्राद्ध) की अभिलाषा रखनेवाले पितरोंने यह गाथा गायी है—'बहुत-से पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये, क्योंकि उनमेंसे एक भी तो गया जायगा अथवा अश्वमेध यज्ञ करेगा या नीलवृषभका उत्सर्ग करेगा।' देवि! गयाका उत्तम माहात्म्य सारसे भी सारतर वस्तु है। मैं उसका संक्षेपसे वर्णन करूँगा। वह भोग और मोक्ष देनेवाला है। सुनो, पूर्वकालकी बात है। गयासुर नामसे प्रसिद्ध एक असुर हुआ था, जो बड़ा पराक्रमी था। उसने बड़ा भयंकर तप किया जो सम्पूर्ण भूतोंको पीड़ित करनेवाला था। उसकी तपस्यासे संतप्त हुए देवतालोग उसके वधके लिये भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब भगवान्ने उसको गदासे मार दिया। अतः गदाधर भगवान् विष्णु ही गया-तीर्थमें मुक्तिदाता माने गये हैं। भगवान् विष्णुने इस तीर्थकी मर्यादा स्थापित की। जो मनुष्य यहाँ यज्ञ, श्राद्ध, पिण्डदान एवं स्नानादि कर्म करता है, वह स्वर्ग अथवा ब्रह्मलोकमें जाता है। गयातीर्थको उत्तम जानकर ब्रह्माजीने वहाँ यज्ञ किया तथा उन्होंने वहाँ सरस्वती नदीकी भी सृष्टि की और समस्त दिशाओंमें व्याप्त होकर उस तीर्थमें निवास किया। तदनन्तर ब्राह्मणोंके प्रार्थना करनेपर ब्रह्माजीने वहाँ अनेक तीर्थ निर्माण किये और कहा—ब्राह्मणो! गयामें श्राद्ध करनेसे पवित्र हुए लोग ब्रह्मलोकगामी होंगे और जो लोग तुम्हारा पूजन और सत्कार करेंगे, उनके द्वारा सदा मैं पूजित होऊँगा। ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोशालामें प्राप्त होनेवाली मृत्यु तथा कुरुक्षेत्रमें निवास—यह मनुष्योंके लिये चार प्रकारकी मुक्ति (के साधन) हैं। ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी और गुरुपत्नीगमन तथा इन सबके संसर्गसे होनेवाला पाप—ये सब-के-सब गयाश्राद्धसे नष्ट हो जाते हैं। मरनेपर जिनका दाह-संस्कार नहीं हुआ है, जो पशुओंद्वारा मारे गये हैं अथवा जिन्हें सर्पने डँस लिया है, वे सब लोग गयाश्राद्धसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाते हैं।

देवि! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुना जाता है। त्रेतायुगमें विशाल नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जो विशालापुरीमें रहते थे। वे अपने सद्गुणोके कारण धन्य समझे जाते थे। उनमें धैर्यका विलक्षण गुण था। उन्होंने श्रेष्ठ तीर्थ गयाशिरमें आकर पितृयाग प्रारम्भ किया। उन्होंने विधिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान दिया। इतनेमें ही उन्होंने आकाशमें उत्तम आकृतिसे युक्त तीन पुरुषोंको देखा, जो क्रमशः श्वेत, लाल और काले रंगके थे। उन्हें देखकर राजाने पूछा—'आपलोग कौन हैं?'

सित (श्वेत) ने कहा—राजन्! मैं तुम्हारा पिता सित हूँ। मेरा नाम तो सित है ही, मेरे शरीरका वर्ण भी सित (श्वेत) है। साथ ही मेरे कर्म भी सित (उज्ज्वल) हैं और ये जो लाल रंगके पुरुष दिखायी देते हैं, ये मेरे पिता हैं। इन्होंने बड़े निष्ठुर कर्म किये हैं। ये ब्रह्महत्यारे और पापाचारी रहे हैं और इनके बाद ये जो तीसरे सज्जन हैं, ये तुम्हारे प्रपितामह हैं। ये नामसे तो कृष्ण हैं ही, कर्म और वर्णसे भी कृष्ण हैं। इन्होंने पूर्वजन्ममें अनेक प्राचीन ऋषियोंका वध किया है। ये दोनों पिता और पुत्र अवीचि-नामक नरकमें पड़े हुए हैं, अतः ये मेरे पिता और ये दूसरे इनके पिता, जो दीर्घकालतक काले मुखसे युक्त हो नरकमें रहे हैं और मैं, जिसने अपने शुद्ध कर्मके प्रभावसे इन्द्रका परम दुर्लभ सिंहासन प्राप्त किया था, तुझ मन्त्रज्ञ पुत्रके द्वारा गयामें पिण्डदान करनेसे हम तीनों ही बलात् मुक्त हो गये।

एक बार गया जाना और एक बार वहाँ पितरोंको पिण्ड देना भी दुर्लभ है; फिर नित्य वहाँ रहनेका अवसर मिले, इसके लिये तो कहना ही क्या है! देश-कालके प्रमाणानुसार कहीं-कहीं मृत्युकालसे एक वर्ष बीतनेके बाद अपने भाई-बन्धु पतित पुरुषोंके लिये गयाकूपमें पिण्डदान करते हैं। एक समय किसी प्रेतराजने एक वैश्यसे अपनी मुक्तिके लिये अनुरोध करते हुए कहा—तुम गयातीर्थका दर्शन करके स्नान कर लेना और पवित्र होकर मेरा नाम ले मेरे लिये पिण्डदान करना। वहाँ पिण्ड देनेसे मैं अनायास ही प्रेतभावसे मुक्त हो सम्पूर्ण दाताओंको प्राप्त होनेवाले शुभ लोकोंमें चला

पुण्यसलिला महानदी विद्यमान हैं। ऋषियोंसे सेवित परम पुण्यमय ब्रह्मसरोवर नामक तीर्थ भी वहीं है, जहाँ भगवान् अगस्त्य वैवस्वत यमसे मिले थे और जहाँ सनातन धर्मराज निरन्तर निवास करते हैं। वहाँ सब सरिताओंका उद्गम दिखायी देता है और पिनाकपाणि महादेव वहाँ नित्य निवास करते हैं। लोकविख्यात अक्षयवट भी वहीं है। पूर्वकालमें यजमान राजा गयने वहाँ यज्ञ किया था। वहाँ प्रकट हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा गयके यज्ञोंमें सुरक्षित थीं। मुण्डपृष्ठ, गया, रैवत, देवगिरि, तृतीय, क्रौञ्चपाद—इन सबका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। शिवनदीमें शिवकरका, गयामें गदाधरका और सर्वत्र परमात्माका दर्शन करके मनुष्य पापराशिसे मुक्त हो जाता है। काशीमें विशालाक्षी, प्रयागमें ललिता देवी, गयामें मङ्गलादेवी तथा कृतशौचतीर्थमें सैंहिका देवीका दर्शन करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति होती है। गयामें रहकर मनुष्य जो कुछ दान करता है, वह सब अक्षय होता है। उसके उत्तम कर्मसे पितर प्रसन्न होते हैं। पुत्र गयामें स्थित होकर जो अन्नदान करता है, उसीसे पितर अपनेको पुत्रवान् मानते हैं।

गयामें प्रथम और द्वितीय दिनके कृत्यका वर्णन, प्रेतशिला आदि तीर्थोंमें पिण्डदान आदिकी विधि और उन तीर्थोंकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! सुनो, अब मैं प्रेतशिलाका पवित्र माहात्म्य बतलाता हूँ, जहाँ पिण्डदान करके मनुष्य अपने पितरोंका उद्धार करता है। प्रभास-अग्निने शिलाके चरणप्रान्तको आच्छादित कर रक्खा है। मुनियोंसे संतुष्ट हुए प्रभास शिलाके अङ्गुष्ठभागसे प्रकट हुए। अङ्गुष्ठभागमें ही भगवान् शंकर स्थित हैं। इसलिये वे प्रभासेश कहे गये हैं। शिलाके अङ्गुष्ठका जो एक देश है, उसीमें प्रभासेशकी स्थिति है और वहीं प्रेतशिलाकी स्थिति है। वहाँ पिण्डदान करनेसे मनुष्य प्रेतयोनिसे मुक्त हो जाता है, इसीलिये उसका नाम प्रेतशिला है। महानदी तथा प्रभासाग्निके सङ्गममें स्नान करनेवाला पुरुष साक्षात् वामदेव (शिव) स्वरूप हो जाता है। इसीलिये उक्त सङ्गमको वामतीर्थ कहा गया है। देवताओंके प्रार्थना करने-पर भगवान् श्रीरामने जब महानदीमें स्नान किया, तभीसे वहाँ सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाला 'रामतीर्थ' प्रकट हुआ। मनुष्य अपने सहस्रों जन्मोंमें जो पापराशि संग्रह करते हैं, वह सब रामतीर्थमें स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाती है। जो मनुष्य—

> राम राम महाबाहो देवानामभयंकर ॥
> त्वां नमस्ये तु देवेश मम नश्यतु पातकम्।
> (ना० उत्तर० ४५। ८-९)

'महाबाहु राम! देवताओंको अभय देनेवाले श्रीराम! आपको नमस्कार करता हूँ। देवेश! मेरा पातक नष्ट हो जाय।'

—इस मन्त्रद्वारा रामतीर्थमें स्नान करके श्राद्ध एवं पिण्डदान करता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। प्रभासेश्वरको नमस्कार करके भासमान शिवके समीप जाना चाहिये और उन भगवान् शिवको नमस्कार करके यमराजको बलि दे और इस प्रकार कहे—'देवेश! आप ही जल हैं तथा आप ही ज्योतियोंके अधिपति हैं। आप मेरे मन, वचन, शरीर और क्रियाद्वारा उत्पन्न हुए समस्त पापोंका शीघ्र नाश कीजिये।' शिलाके जघन प्रदेशको यमराजने दबा रक्खा है। धर्मराजने पर्वतसे कहा—'न गच्छ' (गमन न करो—हिलो-डुलो मत), इसलिये पर्वत-को 'नग' कहते हैं। यमराजको बलि देनेके पश्चात् उनके दो कुत्तोंको भी अन्नकी बलि या पिण्ड देना चाहिये। उस समय इस प्रकार कहे—'वैवस्वतकुलमें उत्पन्न जो दो श्याम और सबल नामवाले कुत्ते हैं, उनके लिये मैं पिण्ड दूँगा। ये दोनों हिंसा न करें।' तत्पश्चात् प्रेतशिला आदि तीर्थमें घृतयुक्त चरुके द्वारा पिण्ड बनावे और पितरोंका आवाहन करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उनके लिये पिण्ड दे। प्रेतशिलापर पवित्रचित्त हो जनेऊको अपसव्य करके दक्षिण दिशाकी ओर मुँह किये हुए पितरोंका ध्यान एवं स्मरण करे—'कव्यवाहक, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद् और सोमपा—ये सब पितृ-देवता हैं। हे महाभाग पितृदेवताओ! आप यहाँ पधारें और आपके द्वारा सुरक्षित मेरे पितर एवं मेरे कुलमें उत्पन्न हुए जो भाई-बन्धु हों, वे भी यहाँ आवें। मैं उन सबको पिण्ड देनेके लिये इस

पुण्यसलिला महानदी विद्यमान हैं। ऋषियोंसे सेवित परम पुण्यमय ब्रह्मसरोवर नामक तीर्थ भी वहीं है, जहाँ भगवान् अगस्त्य वैवस्वत यमसे मिले थे और जहाँ सनातन धर्मराज निरन्तर निवास करते हैं। वहाँ सब सरिताओंका उद्गम दिखायी देता है और पिनाकपाणि महादेव वहाँ नित्य निवास करते हैं। लोकविख्यात अक्षयवट भी वहीं है। पूर्वकालमें यजमान राजा गयने वहाँ यज्ञ किया था। वहाँ प्रकट हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा गयके यज्ञोंमें सुरक्षित थीं। मुण्डपृष्ठ, गया, रैवत, देवगिरि, तृतीय, क्रौञ्चपाद—इन सबका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। शिवनदीमें शिवकरका, गयामें गदाधरका और सर्वत्र परमात्माका दर्शन करके मनुष्य पापराशिसे मुक्त हो जाता है। काशीमें विशालाक्षी, प्रयागमें ललिता देवी, गयामें मङ्गलादेवी तथा कृतशौचतीर्थमें सैंहिका देवीका दर्शन करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति होती है। गयामें रहकर मनुष्य जो कुछ दान करता है, वह सब अक्षय होता है। उसके उत्तम कर्मसे पितर प्रसन्न होते हैं। पुत्र गयामें स्थित होकर जो अन्नदान करता है, उसीसे पितर अपनेको पुत्रवान् मानते हैं।

गयामें प्रथम और द्वितीय दिनके कृत्यका वर्णन, प्रेतशिला आदि तीर्थोंमें पिण्डदान आदिकी विधि और उन तीर्थोंकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी ! सुनो, अब मैं प्रेतशिलाका पवित्र माहात्म्य बतलाता हूँ, जहाँ पिण्डदान करके मनुष्य अपने पितरोंका उद्धार करता है। प्रभास-अद्रिने शिलाके चरणप्रान्तको आच्छादित कर रक्खा है। मुनियोंसे संतुष्ट हुए प्रभास शिलाके अङ्गुष्ठभागसे प्रकट हुए। अङ्गुष्ठभागमें ही भगवान् शंकर स्थित हैं। इसलिये वे प्रभासेश कहे गये हैं। शिलाके अङ्गुष्ठका जो एक देश है, उसीमें प्रभासेशकी स्थिति है और वहीं प्रेतशिलाकी स्थिति है। वहाँ पिण्डदान करनेसे मनुष्य प्रेतयोनिसे मुक्त हो जाता है, इसीलिये उसका नाम प्रेतशिला है। महानदी तथा प्रभासाद्रिके सङ्गममें स्नान करनेवाला पुरुष साक्षात् वामदेव (शिव) स्वरूप हो जाता है। इसीलिये उक्त सङ्गमको वामतीर्थ कहा गया है। देवताओंके प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीरामने जब महानदीमें स्नान किया, तभीसे वहाँ सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाला 'रामतीर्थ' प्रकट हुआ। मनुष्य अपने सहस्रों जन्मोंमें जो पापराशि संग्रह करते हैं, वह सब रामतीर्थमें स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाती है। जो मनुष्य—

> राम राम महाबाहो देवानामभयंकर ॥
> त्वां नमस्ये तु देवेश मम नश्यतु पातकम् ।
> (ना० उत्तर० ४५ । ८-९)

'महाबाहु राम ! देवताओंको अभय देनेवाले श्रीराम ! आपको नमस्कार करता हूँ। देवेश ! मेरा पातक नष्ट हो जाय।'

—इस मन्त्रद्वारा रामतीर्थमें स्नान करके श्राद्ध एवं पिण्डदान करता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। प्रभासेश्वरको नमस्कार करके भासमान शिवके समीप जाना चाहिये और उन भगवान् शिवको नमस्कार करके यमराजको बलि दे और इस प्रकार कहे—'देवेश ! आप ही जल हैं तथा आप ही ज्योतियोंके अधिपति हैं। आप मेरे मन, वचन, शरीर और क्रियाद्वारा उत्पन्न हुए समस्त पापोंका शीघ्र नाश कीजिये।' शिलाके जघन प्रदेशको यमराजने दबा रक्खा है। धर्मराजने पर्वतसे कहा—'न गच्छ' (गमन न करो—हिलो-डुलो मत), इसलिये पर्वतको 'नग' कहते हैं। यमराजको बलि देनेके पश्चात् उनके दो कुत्तोंको भी अन्नकी बलि या पिण्ड देना चाहिये। उस समय इस प्रकार कहे—'वैवस्वतकुलमें उत्पन्न जो दो श्याम और सबल नामवाले कुत्ते हैं, उनके लिये मैं पिण्ड दूँगा। ये दोनों हिंसा न करें।' तत्पश्चात् प्रेतशिला आदि तीर्थमें घृतयुक्त चरुके द्वारा पिण्ड बनावे और पितरोंका आवाहन करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उनके लिये पिण्ड दे। प्रेतशिलापर पवित्रचित्त हो जनेऊको अपसव्य करके दक्षिण दिशाकी ओर मुँह किये हुए पितरोंका ध्यान एवं स्मरण करे—'कव्यवाहक, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद् और सोमपा—ये सब पितृ-देवता हैं। हे महाभाग पितृदेवताओ ! आप यहाँ पधारें और आपके द्वारा सुरक्षित मेरे पितर एवं मेरे कुलमें उत्पन्न हुए जो भाई-बन्धु हों, वे भी यहाँ आवें। मैं उन सबको पिण्ड देनेके लिये इस

अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर स्थित जो पितर और भाई-बन्धु आदि हैं तथा संस्कारहीन अवस्थामें जिनकी मृत्यु हुई है, उनके लिये मैं पिण्ड देता हूँ। जो मेरे भाई-बन्धु हों अथवा न हों या दूसरे जन्ममें मेरे भाई-बन्धु रहे हों, उन सबके लिये मेरा दिया हुआ पिण्ड अक्षय होकर मिले। जो मेरे पिताके कुलमें मरे हैं, जो माताके कुलमें मरे हैं, जो गुरु, श्वशुर तथा बन्धु-बान्धवोंके कुलमें मरे हैं एवं इनके सिवा जो दूसरे भाई-बन्धु मृत्युको प्राप्त हुए हैं, मेरे कुलमें जिनका पिण्डदान-कर्म नहीं हुआ है, जो स्त्री-पुत्रसे रहित हैं, जिनके श्राद्धकर्मका लोप हो गया है, जो जन्मसे अन्धे और पङ्गु रहे हैं, जो विकृत रूपवाले या कच्चे गर्भकी दशामें मरे हैं, मेरे कुलमें मरे हुए जो लोग मेरे परिचित या अपरिचित हों, उन सबके लिये मेरा दिया हुआ पिण्ड अक्षयभावसे प्राप्त हो। ब्रह्मा और शिव आदि सब देवता साक्षी रहें। मैंने गयामें आकर पितरोंका उद्धार किया है। देव गदाधर! मैं पितृकार्य (श्राद्ध) के लिये गयामें आया हूँ। भगवन्! आप ही इस बातके साक्षी हैं। मैं तीनों ऋणोंसे मुक्त हो गया*।

दूसरे दिन पवित्र होकर प्रेतपर्वतपर जाय और वहाँ ब्रह्मकुण्डमें स्नान करके विद्वान् पुरुष देवता आदिका तर्पण करे। फिर पवित्र होकर प्रेतपर्वतपर पितरोंका आवाहन करे और पूर्ववत् संकल्प करके पिण्ड दे। परम उत्तम पितृ-देवताओंकी उनके नाम-मन्त्रोंद्वारा भलीभाँति पूजा करके उनके लिये पिण्ड-दान करे। मनुष्य पितृ-कर्ममें जितने तिल ग्रहण करता है, उतने ही असुर भयभीत होकर इस प्रकार भागते हैं, जैसे गरुड़को देखकर सर्प भाग जाते हैं। मोहिनी! उस प्रेतपर्वतपर पूर्ववत् सब कार्य करे। तत्पश्चात् वहाँ तिलमिश्रित सत्तू दे और इस प्रकार प्रार्थना करे—

ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम॥
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु सक्तुभिस्तिलमिश्रितैः।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित् सचराचरम्॥
मया दत्तेन पिण्डेन तृप्तिमायान्तु सर्वशः।
(ना० उत्तर० ४५। ६४—६६)

'जो कोई मेरे पितर प्रेतरूपमें विद्यमान हैं, वे सब इन तिलमिश्रित सत्तुओंके दानसे तृप्तिलाभ करें। ब्रह्माजीसे लेकर कीटपर्यन्त जो कुछ भी चराचर जगत् है, वह मेरे दिये हुए पिण्डसे पूर्णतः तृप्त हो जाय।'

सबसे पहले पाँच तीर्थोंमें तथा उत्तरमानसमें श्राद्ध करनेकी विधि है। हाथमें कुश लेकर आचमन करके कुशयुक्त जलसे अपना मस्तक सींचे और उत्तरमानसमें जाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

उत्तरे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये।
सूर्यलोकादिसम्प्राप्तिसिद्धये पितृमुक्तये॥६८॥

'मैं उत्तरमानसमें आत्मशुद्धि, सूर्यादि लोकोंकी प्राप्ति तथा पितरोंकी मुक्तिके लिये स्नान करता हूँ।'

इस प्रकार स्नान करके विधिपूर्वक देवता आदिका तर्पण करे और अन्तमें इस प्रकार कहे—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥६९-७०॥

'ब्रह्माजीसे लेकर कीटपर्यन्त समस्त जगत्, देवता, ऋषि, दिव्य पितर, मनुष्य, पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह और प्रमातामह आदि सब लोग तृप्त हो जायँ।'

अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार पिण्डदानसहित श्राद्ध करना चाहिये। अष्टकाश्राद्ध, आभ्युदयिकश्राद्ध, गया-श्राद्ध तथा क्षयाह तिथिको किये जानेवाले एकोद्दिष्ट श्राद्धमें माताके लिये पृथक् श्राद्ध करना चाहिये और अन्यत्र पतिके साथ ही सयुक्तरूपसे उसके लिये श्राद्ध करना उचित है। तदनन्तर—

ॐ नमोऽस्तु भानवे भर्त्रे सोमभौमज्ञरूपिणे।
जीवभार्गवशनैश्चरराहुकेतुस्वरूपिणे॥७२॥

'सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु तथा केतु—ये सब जिनके स्वरूप हैं, सबका भरण-पोषण करनेवाले उन भगवान् सूर्यको नमस्कार है।'

—इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यको नमस्कार करके उनकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला पुरुष अपने पितरोंको सूर्यलोकमें पहुँचा देता है। मानसरोवर पूर्वोक्त प्रेतपर्वत आदिसे यहाँ उत्तरमें स्थित है, इसलिये इसे उत्तरमानस कहते हैं। उत्तर-

---

* साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा।
मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता॥
आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्ये गदाधर।
त्वमेव साक्षी भगवन्ननृणोऽहमृणत्रयात्॥
(ना० उत्तर० ४५। ५८-५९)

अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर स्थित जो पितर और भाई-बन्धु आदि हैं तथा संस्कारहीन अवस्थामें जिनकी मृत्यु हुई है, उनके लिये मैं पिण्ड देता हूँ। जो मेरे भाई-बन्धु हों अथवा न हों या दूसरे जन्ममें मेरे भाई-बन्धु रहे हों, उन सबके लिये मेरा दिया हुआ पिण्ड अक्षय होकर मिले। जो मेरे पिताके कुलमें मरे हैं, जो माताके कुलमें मरे हैं, जो गुरु, श्वशुर तथा बन्धु-बान्धवोंके कुलमें मरे हैं एवं इनके सिवा जो दूसरे भाई-बन्धु मृत्युको प्राप्त हुए हैं, मेरे कुलमें जिनका पिण्डदान-कर्म नहीं हुआ है, जो स्त्री-पुत्रसे रहित हैं, जिनके श्राद्धकर्मका लोप हो गया है, जो जन्मसे अन्धे और पङ्गु रहे हैं, जो विकृत रूपवाले या कच्चे गर्भकी दशामें मरे हैं, मेरे कुलमें मरे हुए जो लोग मेरे परिचित या अपरिचित हों, उन सबके लिये मेरा दिया हुआ पिण्ड अक्षयभावसे प्राप्त हो। ब्रह्मा और शिव आदि सब देवता साक्षी रहें। मैंने गयामें आकर पितरोंका उद्धार किया है। देव गदाधर! मैं पितृकार्य (श्राद्ध) के लिये गयामें आया हूँ। भगवन्! आप ही इस बातके साक्षी हैं। मैं तीनों ऋणोंसे मुक्त हो गया*।

दूसरे दिन पवित्र होकर प्रेतपर्वतपर जाय और वहाँ ब्रह्मकुण्डमें स्नान करके विद्वान् पुरुष देवता आदिका तर्पण करे। फिर पवित्र होकर प्रेतपर्वतपर पितरोंका आवाहन करे और पूर्ववत् संकल्प करके पिण्ड दे। परम उत्तम पितृ-देवताओंकी उनके नाम-मन्त्रोंद्वारा भलीभाँति पूजा करके उनके लिये पिण्ड-दान करे। मनुष्य पितृ-कर्ममें जितने तिल ग्रहण करता है, उतने ही असुर भयभीत होकर इस प्रकार भागते हैं, जैसे गरुड़को देखकर सर्प भाग जाते हैं। मोहिनी! उस प्रेतपर्वतपर पूर्ववत् सब कार्य करे। तत्पश्चात् वहाँ तिलमिश्रित सत्तू दे और इस प्रकार प्रार्थना करे—

ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम॥
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु सक्तुभिस्तिलमिश्रितैः।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित् सचराचरम्॥
मया दत्तेन पिण्डेन तृप्तिमायान्तु सर्वशः।
(ना० उत्तर० ४५। ६४—६६)

'जो कोई मेरे पितर प्रेतरूपमें विद्यमान हैं, वे सब इन तिलमिश्रित सत्तुओंके दानसे तृप्तिलाभ करें। ब्रह्माजीसे लेकर कीटपर्यन्त जो कुछ भी चराचर जगत् है, वह मेरे दिये हुए पिण्डसे पूर्णतः तृप्त हो जाय।'

सबसे पहले पाँच तीर्थोंमें तथा उत्तरमानसमें श्राद्ध करनेकी विधि है। हाथमें कुश लेकर आचमन करके कुशयुक्त जलसे अपना मस्तक सींचे और उत्तरमानसमें जाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

उत्तरे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये।
सूर्यलोकादिसम्प्राप्तिसिद्धये पितृमुक्तये॥६८॥

'मैं उत्तरमानसमें आत्मशुद्धि, सूर्यादि लोकोंकी प्राप्ति तथा पितरोंकी मुक्तिके लिये स्नान करता हूँ।'

इस प्रकार स्नान करके विधिपूर्वक देवता आदिका तर्पण करे और अन्तमें इस प्रकार कहे—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥६९-७०॥

'ब्रह्माजीसे लेकर कीटपर्यन्त समस्त जगत्, देवता, ऋषि, दिव्य पितर, मनुष्य, पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह और प्रमातामह आदि सब लोग तृप्त हो जायँ।'

अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार पिण्डदानसहित श्राद्ध करना चाहिये। अष्टकाश्राद्ध, आभ्युदयिकश्राद्ध, गया-श्राद्ध तथा क्षयाह तिथिको किये जानेवाले एकोद्दिष्ट श्राद्धमें माताके लिये पृथक् श्राद्ध करना चाहिये और अन्यत्र पतिके साथ ही संयुक्तरूपसे उसके लिये श्राद्ध करना उचित है। तदनन्तर—

ॐ नमोऽस्तु भानवे भर्त्रे सोमभौमज्ञरूपिणे।
जीवभार्गवशनैश्चरराहुकेतुस्वरूपिणे॥७२॥

'सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु तथा केतु—ये सब जिनके स्वरूप हैं, सबका भरण-पोषण करनेवाले उन भगवान् सूर्यको नमस्कार है।'

—इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यको नमस्कार करके उनकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला पुरुष अपने पितरोंको सूर्यलोकमें पहुँचा देता है। मानसरोवर पूर्वोक्त प्रेतपर्वत आदिसे यहाँ उत्तरमें स्थित है, इसलिये इसे उत्तरमानस कहते हैं। उत्तर-

---

* साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा।
मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता॥
आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्ये गदाधर।
त्वमेव साक्षी भगवन्ननृणोऽहमृणत्रयात्॥
(ना० उत्तर० ४५। ५८-५९)

नहीं करता, उसका किया हुआ श्राद्ध व्यर्थ होता है। नागकूट, गृध्रकूट, भगवान् विष्णु तथा उत्तरमानस—इन चारोंके मध्यका भाग 'गयाशिर' कहलाता है। इसीको फल्गुतीर्थ कहते हैं। मुण्डपृष्ठ पर्वतके नीचे परम उत्तम फल्गुतीर्थ है। उसमें श्राद्ध आदि करनेसे सब पितर मोक्षको प्राप्त होते हैं। यदि मनुष्य गयाशिर-तीर्थमें शमीपत्रके बराबर भी पिण्डदान करता है तो वह जिसके नामसे पिण्ड देता है, उसे सनातन ब्रह्मपदको पहुँचा देता है। जो भगवान् विष्णु अव्यक्त रूप होते हुए भी मुण्डपृष्ठ पर्वत तथा फल्गु आदि तीर्थोंके रूपमें सबके सामने अभिव्यक्त हैं, उन भगवान् गदाधरको मैं नमस्कार करता हूँ। शिला पर्वत तथा फल्गु आदि रूपमें अव्यक्तभावसे स्थित हुए भगवान् श्रीहरि आदिगदाधररूपसे सबके समक्ष प्रकट हुए हैं।

तदनन्तर धर्मारण्यतीर्थको जाय, जहाँ साक्षात् धर्म विराजमान हैं। वहाँ मतङ्गवापीमें स्नान करके तर्पण और श्राद्ध करे। फिर मतङ्गेश्वरके समीप जाकर उन्हें नमस्कार करते हुए निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

प्रमाणं देवताः शम्भुर्लोकपालाश्च साक्षिणः।
मयागत्य मतङ्गेऽस्मिन् पितॄणां निष्कृतिः कृता ॥१०१-१०२॥

'सब देवता और भगवान् शङ्कर प्रमाणभूत हैं तथा समस्त लोकपाल भी साक्षी हैं। मैंने इस मतङ्गतीर्थमें आकर पितरोंका उद्धार किया है—उनका ऋण चुकाया है।'

पहले ब्रह्मतीर्थमें, फिर ब्रह्मकूपमें श्राद्ध आदि करे। कूप और यूपके मध्यभागमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष पितरोंका उद्धार कर देता है। धर्मेश्वर धर्मको नमस्कार करके महाबोधि वृक्षको प्रणाम करे। मोहिनी! यह दूसरे दिनका कृत्य मैंने तुम्हें बताया है। स्नान, तर्पण, पिण्डदान, पूजन और नमस्कार आदिके साथ किया हुआ श्राद्धकर्म पितरोंको सुख देनेवाला होता है।

गयामें तीसरे और चौथे दिनका कृत्य, ब्रह्मतीर्थ तथा विष्णुपद आदिकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! अब मैं तुम्हें गयाजीमें तीसरे दिनका कृत्य बतलाता हूँ, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। उसका श्रवण गया-सेवनका फल देनेवाला है। 'ब्रह्मसर' में स्नान करके पिण्डसहित श्राद्ध करना चाहिये। (स्नानके समय इस प्रकार कहे—)

स्नानं करोमि तीर्थेऽस्मिन्नृणत्रयविमुक्तये॥
श्राद्धाय पिण्डदानाय तर्पणायार्थसिद्धये।
(ना० उत्तर० ४६। १-२)

'मैं तीनों ऋणोंसे मुक्ति पाने, श्राद्ध, तर्पण एवं पिण्डदान करने तथा अभीष्ट मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस तीर्थमें स्नान करता हूँ।'

ब्रह्मकूप और ब्रह्मयूपके मध्यभागमें स्नान, तर्पण एवं श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। स्नान करके 'ब्रह्मयूप' नामसे प्रसिद्ध जो ऊँचा यूप है, वहाँ श्राद्ध करे। ब्रह्मसरमें श्राद्ध करके मनुष्य अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। गोप्रचारतीर्थके समीप ब्रह्माजीके द्वारा उत्पन्न किये हुए आम्रवृक्ष हैं, उनको सींचनेमात्रसे पितृगण मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। [आम्रवृक्षको सींचते समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—]

आम्रं ब्रह्मसरोद्भूतं सर्वदेवमयं विभुम्।
विष्णुरूपं प्रसिञ्चामि पितॄणां चैव मुक्तये ॥ ६ ॥

'ब्रह्मसरमें प्रकट हुआ आम्रवृक्ष सर्वदेवमय है, वह सर्वव्यापी भगवान् विष्णुका स्वरूप है। मैं पितरोंकी तृप्तिके लिये उसका अभिषेक करता हूँ।'

एक मुनि हाथमें जलसे भरा हुआ घड़ा और कुशका अग्रभाग लेकर आमकी जड़में पानी दे रहे थे। उन्होंने आमको भी सींचा और पितरोंको भी तृप्त किया। उनकी एक ही क्रिया दो प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली हुई। ब्रह्मयूपकी परिक्रमा करके मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता है और ब्रह्माजीको नमस्कार करके अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें ले जाता है। (निम्नाङ्कित मन्त्रसे ब्रह्माजीको नमस्कार करना चाहिये—)

ॐ नमो ब्रह्मणेऽजाय जगज्जन्मादिकारिणे।
भक्तानां च पितॄणां च तारकाय नमो नमः ॥ ९ ॥

'जगत्‌की सृष्टि, पालन आदि करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप अजन्मा ब्रह्माजीको नमस्कार है। भक्तों और पितरोंके उद्धारक पितामहको बारंबार नमस्कार है।'

नहीं करता, उसका किया हुआ श्राद्ध व्यर्थ होता है। नागकूट, गृध्रकूट, भगवान् विष्णु तथा उत्तरमानस—इन चारोंके मध्यका भाग 'गयाशिर' कहलाता है। इसीको फल्गुतीर्थ कहते हैं। मुण्डपृष्ठ पर्वतके नीचे परम उत्तम फल्गुतीर्थ है। उसमें श्राद्ध आदि करनेसे सब पितर मोक्षको प्राप्त होते हैं। यदि मनुष्य गयाशिर-तीर्थमें शमीपत्रके बराबर भी पिण्डदान करता है तो वह जिसके नामसे पिण्ड देता है, उसे सनातन ब्रह्मपदको पहुँचा देता है। जो भगवान् विष्णु अव्यक्त रूप होते हुए भी मुण्डपृष्ठ पर्वत तथा फल्गु आदि तीर्थोंके रूपमें सबके सामने अभिव्यक्त हैं, उन भगवान् गदाधरको मैं नमस्कार करता हूँ। शिला पर्वत तथा फल्गु आदि रूपमें अव्यक्तभावसे स्थित हुए भगवान् श्रीहरि आदिगदाधररूपसे सबके समक्ष प्रकट हुए हैं।

तदनन्तर धर्मारण्यतीर्थको जाय, जहाँ साक्षात् धर्म विराजमान हैं। वहाँ मतङ्गवापीमें स्नान करके तर्पण और श्राद्ध करे। फिर मतङ्गेश्वरके समीप जाकर उन्हें नमस्कार करते हुए निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

प्रमाणं देवताः शम्भुर्लोकपालाश्च साक्षिणः।
मयागत्य मतङ्गेऽस्मिन् पितॄणां निष्कृतिः कृता ॥१०१-१०२॥

'सब देवता और भगवान् शङ्कर प्रमाणभूत हैं तथा समस्त लोकपाल भी साक्षी हैं। मैंने इस मतङ्गतीर्थमें आकर पितरोंका उद्धार किया है—उनका ऋण चुकाया है।'

पहले ब्रह्मतीर्थमें, फिर ब्रह्मकूपमें श्राद्ध आदि करे। कूप और यूपके मध्यभागमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष पितरोंका उद्धार कर देता है। धर्मेश्वर धर्मको नमस्कार करके महाबोधि वृक्षको प्रणाम करे। मोहिनी! यह दूसरे दिनका कृत्य मैंने तुम्हें बताया है। स्नान, तर्पण, पिण्डदान, पूजन और नमस्कार आदिके साथ किया हुआ श्राद्धकर्म पितरोंको सुख देनेवाला होता है।

गयामें तीसरे और चौथे दिनका कृत्य, ब्रह्मतीर्थ तथा विष्णुपद आदिकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! अब मैं तुम्हें गयाजीमें तीसरे दिनका कृत्य बतलाता हूँ, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। उसका श्रवण गया-सेवनका फल देनेवाला है। 'ब्रह्मसर' में स्नान करके पिण्डसहित श्राद्ध करना चाहिये। (स्नानके समय इस प्रकार कहे—)

स्नानं करोमि तीर्थेऽस्मिन्नृणत्रयविमुक्तये ॥
श्राद्धाय पिण्डदानाय तर्पणायार्थसिद्धये।

(ना० उत्तर० ४६। १-३)

'मैं तीनों ऋणोंसे मुक्ति पाने, श्राद्ध, तर्पण एवं पिण्डदान करने तथा अभीष्ट मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस तीर्थमें स्नान करता हूँ।'

ब्रह्मकूप और ब्रह्मयूपके मध्यभागमें स्नान, तर्पण एवं श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। स्नान करके 'ब्रह्मयूप' नामसे प्रसिद्ध जो ऊँचा यूप है, वहाँ श्राद्ध करे। ब्रह्मसरमें श्राद्ध करके मनुष्य अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। गोप्रचारतीर्थके समीप ब्रह्माजीके द्वारा उत्पन्न किये हुए आम्रवृक्ष हैं, उनको सींचनेमात्रसे पितृगण मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। [आम्रवृक्षको सींचते समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—]

आम्रं ब्रह्मसरोद्भूतं सर्वदेवमयं विभुम्।
विष्णुरूपं प्रसिञ्चामि पितॄणां चैव मुक्तये ॥ ६ ॥

'ब्रह्मसरमें प्रकट हुआ आम्रवृक्ष सर्वदेवमय है, वह सर्वव्यापी भगवान् विष्णुका स्वरूप है। मैं पितरोंकी तृप्तिके लिये उसका अभिषेक करता हूँ।'

एक मुनि हाथमें जलसे भरा हुआ घड़ा और कुशका अग्रभाग लेकर आमकी जड़में पानी दे रहे थे। उन्होंने आमको भी सींचा और पितरोंको भी तृप्त किया। उनकी एक ही क्रिया दो प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली हुई। ब्रह्मयूपकी परिक्रमा करके मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता है और ब्रह्माजीको नमस्कार करके अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें ले जाता है। (निम्नाङ्कित मन्त्रसे ब्रह्माजीको नमस्कार करना चाहिये—)

ॐ नमो ब्रह्मणेऽजाय जगज्जन्मादिकारिणे।
भक्तानां च पितॄणां च तारकाय नमो नमः ॥ ९ ॥

'जगत्की सृष्टि, पालन आदि करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप अजन्मा ब्रह्माजीको नमस्कार है। भक्तों और पितरोंके उद्धारक पितामहको बारंबार नमस्कार है।'

देनेसे मुझे रुद्रलोककी प्राप्ति हुई है। तुम चिरकालतक राज्यका शासन, अपनी प्रजाका पालन तथा दक्षिणासहित यज्ञोंका अनुष्ठान करके अपने विष्णुलोकको जाओगे। तुम्हारे साथ अयोध्याके सब लोग, कीड़े-मकोड़ेतक वैकुण्ठधाममें जायँगे।' श्रीरामसे ऐसा कहकर राजा दशरथ परम उत्तम रुद्रलोकको चले गये।

कनकेश, केदार, नारसिंह और वामन—इनकी रथमार्गमें पूजा करके मनुष्य अपने समस्त पितरोंका उद्धार कर देता है। जो गयाशिरमें जिनके नामसे पिण्ड देते हैं, उनके वे पितर यदि नरकमें हों तो स्वर्गमें जाते हैं और स्वर्गमें हों तो मोक्ष-लाभ करते हैं। जो गयाशिरमें कन्द, मूल, फल आदिके द्वारा शमीपत्रके बराबर भी पिण्ड देता है, वह अपने पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है। जहाँ विष्णु आदिके पद दिखायी देते हैं, वहाँ उनके आगे जिनके पदपर श्राद्ध किया जाता है, उन्हींके लोकोंमें मनुष्य अपने पितरोंको भेजता है। इन पदों-के द्वारा सर्वत्र मुण्डपृष्ठ पर्वत ही लक्षित होता है। वहाँ पूजित होनेवाले पितर ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। एक मुनि मुण्डपृष्ठ-में क्रौञ्चरूपसे तपस्या करते थे। उनके चरणोंका चिह्न जहाँ लक्षित होता है, वह क्रौञ्चपद माना गया है। भगवान् विष्णु आदिके पद यहाँ लिङ्गरूपमें स्थित हैं। देवता आदिका तर्पण करके रुद्रपदसे प्रारम्भ करके श्राद्ध करना चाहिये। मोहिनी! यह चौथे दिनका कृत्य बताया गया है। इसे करके मनुष्य पवित्र एवं श्राद्ध-कर्मका अधिकारी होता है और श्राद्ध करने-पर वह ब्रह्मलोकका भागी होता है। शिलापर स्थित तीर्थोंमें स्नान और तर्पण करके जिनके लिये पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध किया जाता है, वे ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं और वहाँ कल्पपर्यन्त सानन्द निवास करते हैं।

गयामें पाँचवें दिनका कृत्य, गयाके विभिन्न तीर्थोंकी पृथक्-पृथक् महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! पाँचवें दिन मनुष्य गदालोल-तीर्थमें पूर्ववत् स्नान आदि करके अक्षयवटके समीप पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करे। वहाँ श्राद्ध आदि करके वह अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। वहाँ ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उनकी पूजा करे। अक्षयवटके निकट श्राद्ध करके एकाग्रचित्त हो वटेश्वरका दर्शन, नमस्कार तथा पूजन करे। ऐसा करनेसे श्राद्धकर्ता पुरुष अपने पितरोंको अक्षय तथा सनातन ब्रह्मलोकमें भेज देता है। (गदालोल-तीर्थमें स्नान करते समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—)

गदालोले महातीर्थे गदाप्रक्षालने वरे ॥
स्नानं करोमि शुद्ध्यर्थमक्षय्याय स्वरालये।
एकान्तरे वटस्याग्रे यः शेते योगनिद्रया ॥
बालरूपधरस्तस्मै नमस्ते योगशायिने।
संसारवृक्षशस्त्रायाशेषपापक्षयाय च ॥
अक्षय्यब्रह्मदात्रे च नमोऽक्षय्यवटाय वै।

(ना० उत्तर० ४७। ४—७)

'जहाँ भगवान्‌की गदा धोयी गयी है, उस गदालोल नामक श्रेष्ठ महातीर्थमें मैं आत्मशुद्धि तथा अक्षय स्वर्गकी प्राप्तिके लिये स्नान करता हूँ। जो बालरूप धारण करके वटकी शाखाके अग्रभागपर एकान्त स्थलमें योगनिद्राके द्वारा शयन करते हैं, उन योगशायी श्रीहरिको नमस्कार है। जो संसाररूपी वृक्षका उच्छेद करनेके लिये शस्त्ररूप हैं, जो समस्त पापोंका नाश तथा अक्षय ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाले हैं, उन अक्षयवटस्वरूप श्रीहरिको नमस्कार है।'

(इसके बाद लिङ्गस्वरूप प्रपितामहको नमस्कार करे—)

कलौ माहेश्वरा लोका येन तस्माद् गदाधरः।
लिङ्गरूपोऽभवत्तं च वन्दे त्वां प्रपितामहम् ॥ ७-८ ॥

'कलियुगमें लोग प्रायः शिवभक्त होते हैं, इसलिये भगवान् गदाधर वहाँ शिवलिङ्गरूपमें प्रकट हुए हैं। प्रभो! आप पितामह ब्रह्माके भी पिता होनेसे प्रपितामहरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।'

इस मन्त्रसे उन प्रपितामहदेवको नमस्कार करके मनुष्य अपने पितरोंको रुद्रलोकमें पहुँचा देता है। हेति नामसे प्रसिद्ध एक असुर था; भगवान्‌ने अपनी गदासे उस असुरके मस्तकके दो टुकड़े कर दिये। तत्पश्चात् जहाँ वह गदा धोयी गयी, वह गदालोल नामसे विख्यात श्रेष्ठ तीर्थ हो गया। हेति राक्षस ब्रह्माजीका पुत्र था। उसने बड़ी अद्भुत तपस्या की। तपस्यासे वरदायक ब्रह्मा आदि देवताओंको संतुष्ट करके यह वर माँगा—'मैं दैत्य आदिसे, शस्त्र आदिसे, नाना प्रकारके मनुष्योंसे तथा विष्णु और शिव आदिके चक्र एवं त्रिशूल आदि आयुधोंद्वारा अवध्य और महान् बलवान् होऊँ।' 'तथास्तु' कहकर देवता अन्तर्धान

देनेसे मुझे रुद्रलोककी प्राप्ति हुई है। तुम चिरकालतक राज्यका शासन, अपनी प्रजाका पालन तथा दक्षिणासहित यज्ञोंका अनुष्ठान करके अपने विष्णुलोकको जाओगे। तुम्हारे साथ अयोध्याके सब लोग, कीड़े-मकोड़ेतक वैकुण्ठधाममें जायँगे।' श्रीरामसे ऐसा कहकर राजा दशरथ परम उत्तम रुद्रलोकको चले गये।

कनकेश, केदार, नारसिंह और वामन—इनकी रथमार्गमें पूजा करके मनुष्य अपने समस्त पितरोंका उद्धार कर देता है। जो गयाशिरमें जिनके नामसे पिण्ड देते हैं, उनके वे पितर यदि नरकमें हों तो स्वर्गमें जाते हैं और स्वर्गमें हों तो मोक्ष-लाभ करते हैं। जो गयाशिरमें कन्द, मूल, फल आदिके द्वारा शमीपत्रके बराबर भी पिण्ड देता है, वह अपने पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है। जहाँ विष्णु आदिके पद दिखायी देते हैं, वहाँ उनके आगे जिनके पदपर श्राद्ध किया जाता है, उन्हींके लोकोंमें मनुष्य अपने पितरोंको भेजता है। इन पदों-के द्वारा सर्वत्र मुण्डपृष्ठ पर्वत ही लक्षित होता है। वहाँ पूजित होनेवाले पितर ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। एक मुनि मुण्डपृष्ठ-में क्रौञ्चरूपसे तपस्या करते थे। उनके चरणोंका चिह्न जहाँ लक्षित होता है, वह क्रौञ्चपद माना गया है। भगवान् विष्णु आदिके पद यहाँ लिङ्गरूपमें स्थित हैं। देवता आदिका तर्पण करके रुद्रपदसे प्रारम्भ करके श्राद्ध करना चाहिये। मोहिनी! यह चौथे दिनका कृत्य बताया गया है। इसे करके मनुष्य पवित्र एवं श्राद्ध-कर्मका अधिकारी होता है और श्राद्ध करने-पर वह ब्रह्मलोकका भागी होता है। शिलापर स्थित तीर्थोंमें स्नान और तर्पण करके जिनके लिये पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध किया जाता है, वे ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं और वहाँ कल्पपर्यन्त सानन्द निवास करते हैं।

गयामें पाँचवें दिनका कृत्य, गयाके विभिन्न तीर्थोंकी पृथक्-पृथक् महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! पाँचवें दिन मनुष्य गदालोल-तीर्थमें पूर्ववत् स्नान आदि करके अक्षयवटके समीप पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करे। वहाँ श्राद्ध आदि करके वह अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। वहाँ ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उनकी पूजा करे। अक्षयवटके निकट श्राद्ध करके एकाग्रचित्त हो वटेश्वरका दर्शन, नमस्कार तथा पूजन करे। ऐसा करनेसे श्राद्धकर्ता पुरुष अपने पितरोंको अक्षय तथा सनातन ब्रह्मलोकमें भेज देता है। (गदालोल-तीर्थमें स्नान करते समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—)

गदालोले महातीर्थे गदाप्रक्षालने वरे॥
स्नानं करोमि शुद्ध्यर्थमक्षय्याय स्वरालये।
एकान्तरे वटस्याग्रे यः शेते योगनिद्रया॥
बालरूपधरस्तस्मै नमस्ते योगशायिने।
संसारवृक्षशस्त्रायाशेषपापक्षयाय च॥
अक्षय्यब्रह्मदात्रे च नमोऽक्षय्यवटाय वै।
(ना० उत्तर० ४७। ४—७)

'जहाँ भगवान्‌की गदा धोयी गयी है, उस गदालोल नामक श्रेष्ठ महातीर्थमें मैं आत्मशुद्धि तथा अक्षय स्वर्गकी प्राप्तिके लिये स्नान करता हूँ। जो बालरूप धारण करके बड़की शाखाके अग्रभागपर एकान्त स्थलमें योगनिद्राके द्वारा शयन करते हैं, उन योगशायी श्रीहरिको नमस्कार है। जो संसाररूपी वृक्षका उच्छेद करनेके लिये शस्त्ररूप हैं, जो समस्त पापोंका नाश तथा अक्षय ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाले हैं, उन अक्षयवटस्वरूप श्रीहरिको नमस्कार है।'

(इसके बाद लिङ्गस्वरूप प्रपितामहको नमस्कार करे—)

कलौ माहेश्वरा लोका येन तस्माद् गदाधरः।
लिङ्गरूपोऽभवत्तं च वन्दे त्वां प्रपितामहम्॥ ७-८॥

'कलियुगमें लोग प्रायः शिवभक्त होते हैं, इसलिये भगवान् गदाधर वहाँ शिवलिङ्गरूपमें प्रकट हुए हैं। प्रभो! आप पितामह ब्रह्माके भी पिता होनेसे प्रपितामहरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।'

इस मन्त्रसे उन प्रपितामहदेवको नमस्कार करके मनुष्य अपने पितरोंको रुद्रलोकमें पहुँचा देता है। हेति नामसे प्रसिद्ध एक असुर था; भगवान्‌ने अपनी गदासे उस असुरके मस्तकके दो टुकड़े कर दिये। तत्पश्चात् जहाँ वह गदा धोयी गयी, वह गदालोल नामसे विख्यात श्रेष्ठ तीर्थ हो गया। हेति राक्षस ब्रह्माजीका पुत्र था। उसने बड़ी अद्भुत तपस्या की। तपस्यासे वरदायक ब्रह्मा आदि देवताओंको संतुष्ट करके यह वर माँगा—'मैं दैत्य आदिसे, शस्त्र आदिसे, नाना प्रकारके मनुष्योंसे तथा विष्णु और शिव आदिके चक्र एवं त्रिशूल आदि आयुधोंद्वारा अवध्य और महान् बलवान् होऊँ।' 'तथास्तु' कहकर देवता अन्तर्धान

पुष्कर मतङ्गपदमें पिण्ड देनेवाला पुरुष अपने पितरोंको स्वर्गमें पहुँचा देता है। शिलाके बायें हाथमें उद्यन्तक गिरिकी स्थापना हुई। वहाँ महात्मा अगस्त्यजीने उदयाचलको ले आकर स्थापित किया था। वहाँ पिण्ड देनेवाला पुरुष अपने पितरोंको ब्रह्मलोक भेज देता है। अगस्त्यजीने अपनी तपस्याके लिये वहाँ उद्यन्तक नामक कुण्डका निर्माण किया था। वहाँ ब्रह्माजी अपनी देवी सावित्री और सनकादि कुमारोंके साथ विराजमान हैं। हाहा, हूहू आदि गन्धर्वोंने वहाँ सङ्गीत और वाद्यका आयोजन किया था। अगस्त्यतीर्थमें स्नान करके मध्याह्नकालमें सावित्रीकी उपासना करनेपर पुरुष कोटि जन्मोंतक धनाढ्य तथा वेदवेत्ता ब्राह्मण होता है। अगस्त्यपदमें स्नान करके पिण्ड देनेवाला पुरुष पितरोंको स्वर्गकी प्राप्ति कराता है। जो मनुष्य ब्रह्मयोनिमें प्रवेश करके निकलता है, वह योनिसंकटसे मुक्त हो परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है। गयाकुमारको प्रणाम करके मनुष्य ब्राह्मणत्व पाता है। सोमकुण्डमें स्नान आदि करनेसे वह पितरोंको चन्द्रलोककी प्राप्ति कराता है। काकशिलामें कौओंके लिये दी हुई बलि क्षणभरमें मोक्ष देनेवाली है। स्वर्गद्वारेश्वरको नमस्कार करके मनुष्य अपने पितरोंको स्वर्गसे ब्रह्मलोकको भेज देता है। आकाश-गङ्गामें पिण्ड देनेवाला पुरुष स्वयं निर्मल होकर पितरोंको स्वर्गलोकमें भेज देता है। शिलाके दाहिने हाथमें धर्मराजने भस्मकूट धारण किया था। अतः वहाँ महादेवजीने अपना वही नाम रक्खा है। मोहिनी! जहाँ भस्मकूट पर्वत है, वहाँ भस्म नामधारी भगवान् शिव हैं। जहाँ वट है वहाँ वटेश्वर ब्रह्माजी स्थित हैं। उनके सामने रुक्मिणी-कुण्ड है और पश्चिममें कपिला नदी है। नदीके तटपर कपिलेश्वर महादेव हैं, वहीं उमा और सोमकी भेंट हुई थी। मनुष्य कपिलामें स्नान करके कपिलेश्वरको प्रणाम एवं उनका पूजन करे। वहाँ श्राद्धका दान करनेवाला पुरुष स्वर्गलोकका भागी होता है। मरीचीकुण्डपर मङ्गलागौरीका निवास है, जो पूजित होनेपर पूर्ण सौभाग्यको देनेवाली है। भस्मकूटमें भगवान् जनार्दन हैं। उनके हाथमें अपने या दूसरेके लिये बिना तिलके और मन्त्रभावमें भी पिण्ड देनेवाला पुरुष जिनके लिये दधिमिश्रित पिण्ड देता है, वे सब विष्णुलोकगामी होते हैं। (वहाँ पिण्ड देकर भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—)

एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन।
गयाश्राद्धे त्वया देयो मह्यं पिण्डो मृते मयि॥
तुभ्यं पिण्डो मया दत्तो यमुद्दिश्य जनार्दन।
देहि देव गयाशीर्षे तस्मै तस्मै मृते ततः॥
जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृरूपिणे।
पितृपात्र नमस्तुभ्यं नमस्ते मुक्तिहेतवे॥
गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः।
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात्॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋणत्रयविमोचन।
लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृमोक्षद॥६३–६७॥

'जनार्दन! मैंने आपके हाथमें यह पिण्ड दिया है। मेरे मरनेपर आप गयाश्राद्धमें मुझे पिण्ड दीजियेगा। जनार्दन! जिसके उद्देश्यसे मैंने आपको पिण्ड दिया है, देव! उसके मरनेपर आप गयाशीर्षमें उसके लिये अवश्य पिण्ड दें। जनार्दन! आप पितृस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, बारंबार नमस्कार है। पितरोंके पात्ररूप नारायण! आपको नमस्कार है। आप सबकी मुक्तिके हेतुभूत हैं, आपको नमस्कार है। गयामें साक्षात् जनार्दन ही पितृरूपसे विद्यमान हैं। उन कमलनेत्र श्रीहरिका दर्शन करके मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है। तीनों ऋणोंसे मुक्त करनेवाले लक्ष्मीकान्त! आपको नमस्कार है। पितरोंको मोक्ष देनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार कमलनयन भगवान् जनार्दनका पूजन करके मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है। पृथ्वीपर बायाँ घुटना गिराकर भगवान् जनार्दनको नमस्कार करे। तत्पश्चात् पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करनेवाला पुरुष भाइयोंसहित विष्णुलोकमें जाता है। शिलाके वाम भागमें प्रेतकूटगिरि स्थित है। प्रेतकूटगिरिको धर्मराजने धारण किया है। वहाँ प्रेतकुण्ड है जहाँ पर्वोंके साथ देवता विद्यमान हैं। उसमें स्नान करके श्राद्ध-तर्पण आदि करनेवाला पुरुष पितरोंको प्रेतभावसे मुक्त कर देता है। कीकट प्रदेशमें गया, राजगृह वन, महर्षि च्यवनका आश्रम, पुनपुना नदी, वैकुण्ठ, लोहदण्ड तथा शोणग गिरिकूट—ये सब पवित्र हैं। उनमें श्राद्ध-पिण्डदान आदि करनेवाला पुरुष पितरोंको ब्रह्मधाममें पहुँचा देता है। शिलाके दक्षिण पादमें गृध्रकूटगिरि रक्खा गया है। धर्मराजने शिलाको स्थिर रखनेके लिये वहाँ उस पर्वतको स्थापित किया है। वह शीघ्र पवित्र करनेवाला है। वहाँ 'गृध्रेश्वर' नामक भगवान शिव विराजमान हैं। गृध्रेश्वरका दर्शन और उनके समीप स्नान

पुष्कर मतङ्गपदमें पिण्ड देनेवाला पुरुष अपने पितरोंको स्वर्गमें पहुँचा देता है। शिलाके बायें हाथमें उद्यन्तक गिरिकी स्थापना हुई। वहाँ महात्मा अगस्त्यजीने उदयाचलको ले आकर स्थापित किया था। वहाँ पिण्ड देनेवाला पुरुष अपने पितरोंको ब्रह्मलोक भेज देता है। अगस्त्यजीने अपनी तपस्याके लिये वहाँ उद्यन्तक नामक कुण्डका निर्माण किया था। वहाँ ब्रह्माजी अपनी देवी सावित्री और सनकादि कुमारोंके साथ विराजमान हैं। हाहा, हूहू आदि गन्धर्वोंने वहाँ सङ्गीत और वाद्यका आयोजन किया था। अगस्त्यतीर्थमें स्नान करके मध्याह्नकालमें सावित्रीकी उपासना करनेपर पुरुष कोटिजन्मोंतक धनाढ्य तथा वेदवेत्ता ब्राह्मण होता है। अगस्त्यपदमें स्नान करके पिण्ड देनेवाला पुरुष पितरोंको स्वर्गकी प्राप्ति कराता है। जो मनुष्य ब्रह्मयोनिमें प्रवेश करके निकलता है, वह योनिसंकटसे मुक्त हो परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है। गयाकुमारको प्रणाम करके मनुष्य ब्राह्मणत्व पाता है। सोमकुण्डमें स्नान आदि करनेसे वह पितरोंको चन्द्रलोककी प्राप्ति कराता है। काकशिलामें कौओंके लिये दी हुई बलि क्षणभरमें मोक्ष देनेवाली है। स्वर्गद्वारेश्वरको नमस्कार करके मनुष्य अपने पितरोंको स्वर्गसे ब्रह्मलोकको भेज देता है। आकाश-गङ्गामें पिण्ड देनेवाला पुरुष स्वयं निर्मल होकर पितरोंको स्वर्गलोकमें भेज देता है। शिलाके दाहिने हाथमें धर्मराजने भस्मकूट धारण किया था। अतः वहाँ महादेवजीने अपना वही नाम रक्खा है। मोहिनी! जहाँ भस्मकूट पर्वत है, वहीं भस्म नामधारी भगवान् शिव हैं। जहाँ वट है वहाँ वटेश्वर ब्रह्माजी स्थित हैं। उनके सामने रुक्मिणी-कुण्ड है और पश्चिममें कपिला नदी है। नदीके तटपर कपिलेश्वर महादेव हैं, वहीं उमा और सोमकी भेंट हुई थी। मनुष्य कपिलामें स्नान करके कपिलेश्वरको प्रणाम एवं उनका पूजन करे। वहाँ श्राद्धका दान करनेवाला पुरुष स्वर्गलोकका भागी होता है। मणिकुण्डपर मङ्गलागौरीका निवास है, जो पूजित होनेपर पूर्ण सौभाग्यको देनेवाली है। भस्मकूटमें भगवान् जनार्दन हैं। उनके हाथमें अपने या दूसरेके लिये बिना तिलके और मन्त्रभावसे भी पिण्ड देनेवाला पुरुष जिनके लिये दधिमिश्रित पिण्ड देता है, वे सब विष्णुलोकगामी होते हैं। (वहाँ पिण्ड देकर भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—)

एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन।
गयाश्राद्धे त्वया देयो मह्यं पिण्डो मृते मयि॥
तुभ्यं पिण्डो मया दत्तो यमुद्दिश्य जनार्दन।
देहि देव गयाशीर्षे तस्मै तस्मै मृते ततः॥
जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृरूपिणे।
पितृपात्र नमस्तुभ्यं नमस्ते मुक्तिहेतवे॥
गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः।
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात्॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋणत्रयविमोचन।
लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृमोक्षद॥६३—६७॥

'जनार्दन! मैंने आपके हाथमें यह पिण्ड दिया है। मेरे मरनेपर आप गयाश्राद्धमें मुझे पिण्ड दीजियेगा। जनार्दन! जिसके उद्देश्यसे मैंने आपको पिण्ड दिया है, देव! उसके मरनेपर आप गयाशीर्षमें उसके लिये अवश्य पिण्ड दें। जनार्दन! आप पितृस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, बारंबार नमस्कार है। पितरोंके पात्ररूप नारायण! आपको नमस्कार है। आप सबकी मुक्तिके हेतुभूत हैं, आपको नमस्कार है। गयामें साक्षात् जनार्दन ही पितृरूपसे विद्यमान हैं। उन कमलनेत्र श्रीहरिका दर्शन करके मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है। तीनों ऋणोंसे मुक्त करनेवाले लक्ष्मीकान्त! आपको नमस्कार है। पितरोंको मोक्ष देनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार कमलनयन भगवान् जनार्दनका पूजन करके मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है। पृथ्वीपर बायाँ घुटना गिराकर भगवान् जनार्दनको नमस्कार करे। तत्पश्चात् पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करनेवाला पुरुष भाइयोंसहित विष्णुलोकमें जाता है। शिलाके वाम भागमें प्रेतकूटगिरि स्थित है। प्रेतकूटगिरिको धर्मराजने धारण किया है। वहाँ प्रेतकुण्ड है जहाँ पर्दोंके साथ देवता विद्यमान हैं। उसमें स्नान करके श्राद्ध-तर्पण आदि करनेवाला पुरुष पितरोंको प्रेतभावसे मुक्त कर देता है। कीकट प्रदेशमें गया, राजगृह वन, महर्षि च्यवनका आश्रम, पुनपुना नदी, वैकुण्ठ, लोहदण्ड तथा शोणग गिरिकूट—ये सब पवित्र हैं। उनमें श्राद्ध-पिण्डदान आदि करनेवाला पुरुष पितरोंको ब्रह्मधाममें पहुँचा देता है। शिलाके दक्षिण पादमें गृध्रकूटगिरि रक्खा गया है। धर्मराजने शिलाको स्थिर रखनेके लिये वहाँ उस पर्वतको स्थापित किया है। वह शीघ्र पवित्र करनेवाला है। वहाँ 'गृध्रेश्वर' नामक भगवान शिव विराजमान हैं। गृध्रेश्वरका दर्शन और उनके समीप स्नान

उसीको पिङ्गला नाड़ी समझना चाहिये। उसीके आस-पास लोलार्कतीर्थ विद्यमान है। इडा नामकी नाड़ी सौम्या कही गयी है। उसीको वरणाके नामसे जानना चाहिये; जहाँ भगवान् केशवका स्थान है। इन दोनोंके बीचमें सुषुम्णा नाड़ीकी स्थिति कही गयी है। मत्स्योदरीको ही सुषुम्णा जानना चाहिये। इस महाक्षेत्रको भगवान् शिव और भगवान् विष्णुने कभी विमुक्त (परित्यक्त) नहीं किया है और न भविष्यमें भी करेंगे। इसीलिये इसका नाम 'अविमुक्त' है। शुभे! प्रयाग आदि दुस्तर (दुर्लभ) तीर्थसे भी काशीका माहात्म्य अधिक है, क्योंकि वहाँ सबको अनायास ही मोक्षकी प्राप्ति होती है।

जीतकर परम गतिको प्राप्त होता है। वह पुण्यमयी निःश्रेयसगति तथा योगगतिको पा लेता है। सैकड़ों जन्मोंमें भी योगगति नहीं प्राप्त की जा सकती; परंतु काशीक्षेत्रके माहात्म्य तथा भगवान् शङ्करके प्रभावसे उसकी प्राप्ति हो जाती है। शुभानने! जो प्रतिदिन एक समय भोजन करके एक मासतक काशीमें निवास करता है, वह जीवनभरके पापको एक ही महीनेमें नष्ट कर देता है। जो मानव मृत्यु पर्यन्त अविमुक्त क्षेत्रको नहीं छोड़ता और ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक वहाँ निवास करता है, वह साक्षात् शङ्कर होता है। जो विघ्नोंसे आहत होकर भी काशी नहीं छोड़ता, वह जरा-मृत्यु तथा इस नश्वर जन्मसे छूट जाता है। जो इस देहका अन्त होनेतक निरन्तर काशीपुरीका सेवन करते हैं, वे मृत्युके पश्चात्

निषिद्ध कर्म करनेवाले जो नाना वर्णके लोग हैं तथा महान् पातकों और पापोंसे परिपूर्ण शरीरवाले जो घृणित चाण्डाल आदि हैं, उन सबके लिये विद्वानोंने अविमुक्त क्षेत्रको उत्तम औषध माना है। वहाँ दुष्ट, अंधे, दीन, कृपण, पापी और दुराचारी सबको भगवान् शिव अपनी कृपाशक्तिके द्वारा शीघ्र ही परम गतिकी प्राप्ति करा देते हैं। उत्तरवाहिनी गङ्गा और पूर्ववाहिनी सरस्वती अत्यन्त पवित्र मानी गयी हैं। वहीं कपालमोचन है। उस तीर्थमें जाकर जो श्राद्धमें पिण्डदानके द्वारा पितरोंको तृप्त करेंगे, उन्हें परम प्रकाशमान लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो ब्रह्महत्यारा है, वह भी यदि कभी अविमुक्तक्षेत्र काशीकी यात्रा करे तो उस क्षेत्रके माहात्म्यसे उसकी ब्रह्महत्या निवृत्त हो जाती है। जो परम पुण्यात्मा मानव काशीपुरीमें गये हैं, वे अक्षय, अजर एवं शरीररहित परमात्मस्वरूप हो जाते हैं। कुरुक्षेत्र, हरिद्वार और पुष्करमें भी वह सद्गति सुलभ नहीं है, जो काशीवासी मनुष्योंको प्राप्त होती है। वहाँ रहनेवाले प्राणियोंको सब प्रकारसे तप और सत्रका फल मिलता है, इसमें संशय नहीं है। काशीपुरीमें रहनेवाले दुष्कर्मी और वायुद्वारा उड़ायी हुई वहाँकी धूलिका स्पर्श पाकर परम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। जो एक मासतक वहाँ जितेन्द्रियभावसे नियमित भोजन करते हुए निवास करता है, उसके द्वारा भलीभाँति महापाशुपत व्रतका अनुष्ठान सम्पन्न हो जाता है। वह जन्म और मृत्युके भयको

उसीको पिङ्गला नाड़ी समझना चाहिये। उसीके आस-पास लोलार्कतीर्थ विद्यमान है। इडा नामकी नाड़ी सौम्या कही गयी है। उसीको वरणाके नामसे जानना चाहिये, जहाँ भगवान् केशवका स्थान है। इन दोनोंके बीचमें सुषुम्णा नाड़ीकी स्थिति कही गयी है। मत्स्योदरीको ही सुषुम्णा जानना चाहिये। इस महाक्षेत्रको भगवान् शिव और भगवान् विष्णुने कभी विमुक्त (परित्यक्त) नहीं किया है और न भविष्यमें भी करेंगे। इसीलिये इसका नाम 'अविमुक्त' है। शुभे! प्रयाग आदि दुस्तर (दुर्लभ) तीर्थोंसे भी काशीका माहात्म्य अधिक है, क्योंकि वहाँ सबको अनायास ही मोक्षकी प्राप्ति होती है।

जीतकर परम गतिको प्राप्त होता है। वह पुण्यमयी निःश्रेयसगति तथा योगगतिको पा लेता है। सैकड़ों जन्मोंमें भी योगगति नहीं प्राप्त की जा सकती; परंतु काशीक्षेत्रके माहात्म्य तथा भगवान् शङ्करके प्रभावसे उसकी प्राप्ति हो जाती है। शुभानने! जो प्रतिदिन एक समय भोजन करके एक मासतक काशीमें निवास करता है, वह जीवनभरके पापको एक ही महीनेमें नष्ट कर देता है। जो मानव मृत्युपर्यन्त अविमुक्त क्षेत्रको नहीं छोड़ता और ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक वहाँ निवास करता है, वह साक्षात् शङ्कर होता है। जो विघ्नोंसे आहत होकर भी काशी नहीं छोड़ता, वह जरा-मृत्यु तथा इस नश्वर जन्मसे छूट जाता है। जो इस देहका अन्त होनेतक निरन्तर काशीपुरीका सेवन करते हैं, वे मृत्युके पश्चात्

निषिद्ध कर्म करनेवाले जो नाना वर्णके लोग हैं तथा महान् पातकी और पापोंसे परिपूर्ण शरीरवाले जो घृणित चाण्डाल आदि हैं, उन सबके लिये विद्वानोंने अविमुक्त क्षेत्रको उत्तम औषध माना है। वहाँ दुष्ट, अंधे, दीन, कृपण, पापी और दुराचारी सबको भगवान् शिव अपनी कृपाशक्तिके द्वारा शीघ्र ही परम गतिकी प्राप्ति करा देते हैं। उत्तरवाहिनी गङ्गा और पूर्ववाहिनी सरस्वती अत्यन्त पवित्र मानी गयी हैं। वहीं कपालमोचन है। उस तीर्थमें जाकर जो श्राद्धमें पिण्डदानके द्वारा पितरोंको तृप्त करेंगे, उन्हें परम प्रकाशमान लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो ब्रह्महत्यारा है, वह भी यदि कभी अविमुक्तक्षेत्र काशीकी यात्रा करे तो उस क्षेत्रके माहात्म्यसे उसकी ब्रह्महत्या निवृत्त हो जाती है। जो परम पुण्यात्मा मानव काशीपुरीमें गये हैं, वे अक्षय, अजर एवं शरीररहित परमात्मस्वरूप हो जाते हैं। कुरुक्षेत्र, हरिद्वार और पुष्करमें भी वह सद्गति सुलभ नहीं है, जो काशीवासी मनुष्योंको प्राप्त होती है। वहाँ रहनेवाले प्राणियोंको सब प्रकारसे तप और सत्यका फल मिलता है, इसमें संशय नहीं है। काशीपुरीमें रहनेवाले दुष्कर्मी और वायुद्वारा उड़ायी हुई वहाँकी धूलिका स्पर्श पाकर परम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। जो एक मासतक वहाँ जितेन्द्रियभावसे नियमित भोजन करते हुए निवास करता है, उसके द्वारा भलीभाँति महापाशुपत व्रतका अनुष्ठान सम्पन्न हो जाता है। वह जन्म और मृत्युके भयको

काशीके तीर्थ एवं शिवलिङ्गोंके दर्शन-पूजन आदिकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—सुन्दरि ! संगमेश्वर पीठके वायव्य भागमें राजा सगरके द्वारा स्थापित किया हुआ चतुर्मुख शिवलिङ्ग है। उससे वायव्य कोणमें भद्रदेह नामक तालाब है, जो गौओंके दूधसे भरा गया है। वह सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाला है। मोहिनी ! सहस्रों कपिला गौओंके विधिपूर्वक दान करनेका जो फल है, उसे मनुष्य वहाँ स्नान करनेमात्रसे पा लेता है। जब पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा हो, उस समय वहाँके लिये अतिशय पुण्यकाल माना गया है, जो अश्वमेध यज्ञका फल देनेवाला है। वहीं श्मशानभूमिमें विख्यात देवी भीष्मचण्डिकाका दर्शन होता है। उनकी पूजा करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। अन्तकेश्वरसे पूर्व, सर्वेश्वरके दक्षिणभागमें और मातलीश्वरसे उत्तर दिशामें कृत्तिवासेश्वर नामक शिवलिङ्ग है। देवि ! कृत्तिवासेश्वरका दर्शन और पूजन करके मनुष्य एक ही जन्ममें शिवके समीप परम गति प्राप्त कर लेता है। सत्ययुगमें पहले उसका नाम त्र्यम्बकेश्वर था, त्रेतामें वही कृत्तिवासेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। द्वापरमें उन्हीं भगवान् शिवका नाम महेश्वर कहा जाता है तथा कलियुगमें सिद्ध पुरुष उन्हें हस्तिपालेश्वर कहते हैं। यदि सनातन मोक्षप्रद तारकज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो बारंबार भगवान् कृत्तिवासेश्वरका दर्शन करना चाहिये। उन देवाधिदेवका दर्शन करनेसे ब्रह्महत्यारा भी पापमुक्त हो जाता है। उनका स्पर्श और पूजन करनेपर सम्पूर्ण यज्ञोंका फल मिलता है। जो उन सनातन महादेवजीका बड़ी श्रद्धासे पूजन करते हैं और फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशीको एकाग्रचित्त हो पुष्प, फल, बिल्वपत्र, उत्तम और साधारण भक्ष्यपदार्थ दूध, दही, घी, मधु और जलसे उस उत्तम शिवलिङ्गका अर्चन तथा डमरूके डिंडिम घोष, नमस्कार, नृत्य, गीत, अनेक प्रकारके सुवाद्य, स्तोत्र एवं मन्त्रोंद्वारा शुभस्वरूप भगवान् शिवको तृप्त करते हैं और मोहिनी ! एक रात उपवास करके परम भक्तिभावसे पूजन करके श्रीमहादेवजीको संतुष्ट करते हैं, वे परम पदको प्राप्त कर लेते हैं।

जो चैत्र मासकी चतुर्दशीको परमेश्वर शिवकी पूजा करता है, वह धनके स्वामी कुबेरके समीप जाकर उन्हींकी भाँति क्रीड़ा करता है। जो वैशाखकी चतुर्दशीको पवित्रचित्तसे भगवान् शिवकी अर्चना करता है, वह स्वामिकार्तिकेयके लोकमें जाकर उन्हींका अनुचर होता है। जो ज्येष्ठ मासकी चतुर्दशीको श्रद्धापूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है और प्रलयकाल आनेतक वहाँ निवास करता है। भद्रे ! जो आषाढ मासकी चतुर्दशीको पवित्रभावसे कृत्तिवासेश्वर शिवकी पूजा करता है, वह सूर्यलोकमें जाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है। जो श्रावणकी चतुर्दशीको वहाँ प्रकट हुए कामेश्वर शिवकी पूजा करता है, उसे भगवान् शिव वरुणलोक देते हैं। जो भाद्रपद मासकी चतुर्दशीको भाँति-भाँतिके पुष्पों और फलोंद्वारा भगवान् शङ्करकी पूजा करता है, उसे इन्द्रका सालोक्य प्राप्त होता है। जो आश्विन कृष्णा चतुर्दशीको भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह पितरोंके लोकमें जाता है। जो कार्तिक मासकी चतुर्दशीको देवेश्वर महादेवजीकी पूजा करता है, वह चन्द्रलोकमें जाकर जबतक इच्छा हो, तबतक वहाँ क्रीड़ा करता है। जो मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशीको पिनाकधारी भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है और वहाँ अनन्त कालतक क्रीड़ा-सुखमें निमग्न रहता है। जो पौष मासमें प्रसन्नचित्त होकर भगवान् शिवकी अर्चना करता है, वह नैर्ऋत्यलोकमें जाता है और निर्ऋतिके साथ ही आनन्दका अनुभव करता है। जो माघ मासमें सुन्दर पुष्प एवं मूल-फल आदिके द्वारा भगवान् शङ्करकी आराधना करता है वह संसार-सागरका त्याग करके भगवान् शिवके लोकमें जाता है। अतः यदि शिवधाममें जानेकी इच्छा हो तो यत्नपूर्वक कृत्तिवासेश्वरका पूजन तथा अविमुक्त क्षेत्रमें निवास करना चाहिये। काशीमें व्यासेश्वरके पश्चिम घण्टाकर्ण (या कर्णघण्टा) नामक सरोवर है। देवि ! उस सरोवरमें स्नान करके व्यासेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्यकी जहाँ-कहीं भी मृत्यु हो, उसे काशीमें मरनेका ही फल प्राप्त होता है। मोहिनी ! यदि मनुष्य दण्डखात-तीर्थमें स्नान करके अपने पितरोंका तर्पण करे तो उसके नरक-निवासी पितर वहाँसे निकलकर पितृलोकमें चले जाते हैं। देवि ! जो पापकर्मी मनुष्य पिशाचयोनिको प्राप्त हो गये हैं, उनके लिये यदि वहाँ पिण्डदान किया जाय तो उनका उस पिशाच-शरीरसे उद्धार हो जाता है। उस खातके दर्शनसे मानव कृतकृत्य हो जाता है। वहीं लोकको कल्याण प्रदान करनेवाली ललिता देवी विद्यमान हैं। यह मनुष्य-जन्म

काशीके तीर्थ एवं शिवलिङ्गोंके दर्शन-पूजन आदिकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—सुन्दरि ! संगमेश्वर पीठके पश्चिम भागमें राजा सगरके द्वारा स्थापित किया हुआ चतुर्मुख शिवलिङ्ग है। उसमें वायव्य कोणमें भद्रदेह नामक तालाब है, जो गौओंके दूधसे भरा गया है। वह सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाला है । मोहिनी ! सहस्रों कपिला गौओंके विधिपूर्वक दान करनेका जो फल है, उसे मनुष्य वहाँ स्नान करनेमात्रसे पा लेता है । जब पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा हो, उस समय वहाँके लिये अतिशय पुण्यकाल माना गया है, जो अश्वमेध यज्ञका फल देनेवाला है । वहीं श्मशानभूमिमें विख्यात देवी भीष्मचण्डिकाका दर्शन होता है। उनकी पूजा करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता । अन्तकेश्वरसे पूर्व, सर्वेश्वरके दक्षिणभागमें और मातलीश्वरसे उत्तर दिशामें कृत्तिवासेश्वर नामक शिवलिङ्ग है । देवि ! कृत्तिवासेश्वरका दर्शन और पूजन करके मनुष्य एक ही जन्ममें शिवके समीप परम गति प्राप्त कर लेता है । सत्ययुगमें पहले उसका नाम त्र्यम्बकेश्वर था, त्रेतामें वही कृत्तिवासेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ । द्वापरमें उन्हीं भगवान् शिवका नाम महेश्वर कहा जाता है तथा कलियुगमें सिद्ध पुरुष उन्हें हस्तिपालेश्वर कहते हैं। यदि सनातन मोक्षप्रद तारकज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो बारंबार भगवान् कृत्तिवासेश्वरका दर्शन करना चाहिये। उन देवाधिदेवका दर्शन करनेसे ब्रह्महत्यारा भी पापमुक्त हो जाता है । उनका स्पर्श और पूजन करनेपर सम्पूर्ण यज्ञोंका फल मिलता है। जो उन सनातन महादेवजीका बड़ी श्रद्धासे पूजन करते हैं और फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशीको एकाग्रचित्त हो पुष्प, फल, बिल्वपत्र, उत्तम और साधारण भक्ष्यपदार्थ दूध, दही, घी, मधु और जलसे उस उत्तम शिवलिङ्गका अर्चन तथा डमरूके डिंडिम घोष, नमस्कार, नृत्य, गीत, अनेक प्रकारके सुरवाद्य, स्तोत्र एवं मन्त्रोंद्वारा शुभस्वरूप भगवान् शिवको तुष्ट करते हैं और मोहिनी ! एक रात उपवास करके परम भक्तिभावसे पूजन करके श्रीमहादेवजीको संतुष्ट करते हैं, वे परम पदको प्राप्त कर लेते हैं।

जो चैत्र मासकी चतुर्दशीको परमेश्वर शिवकी पूजा करता है, वह धनके स्वामी कुबेरके समीप जाकर उन्हींकी भाँति क्रीड़ा करता है । जो वैशाखकी चतुर्दशीको पवित्रचित्तसे भगवान् शिवकी अर्चना करता है, वह स्वामिकार्तिकेयके लोकमें जाकर उन्हींका अनुचर होता है । जो ज्येष्ठ मासकी चतुर्दशीको श्रद्धापूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है और प्रलयकाल आनेतक वहाँ निवास करता है । भद्रे ! जो आषाढ मासकी चतुर्दशीको पवित्रभावसे कृत्तिवासेश्वर शिवकी पूजा करता है, वह सूर्यलोकमें जाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है । जो श्रावणकी चतुर्दशीको वहाँ प्रकट हुए कामेश्वर शिवकी पूजा करता है, उसे भगवान् शिव वरुणलोक देते हैं । जो भाद्रपद मासकी चतुर्दशीको भाँति-भाँतिके पुष्पों और फलोंद्वारा भगवान् शङ्करकी पूजा करता है, उसे इन्द्रका सालोक्य प्राप्त होता है । जो आश्विन कृष्णा चतुर्दशीको भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह पितरोंके लोकमें जाता है । जो कार्तिक मासकी चतुर्दशीको देवेश्वर महादेवजीकी पूजा करता है, वह चन्द्रलोकमें जाकर जबतक इच्छा हो, तबतक वहाँ क्रीड़ा करता है। जो मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशीको पिनाकधारी भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है और वहाँ अनन्त कालतक क्रीड़ा-सुखमें निमग्न रहता है। जो पौष मासमें प्रसन्नचित्त होकर भगवान् शिवकी अर्चना करता है, वह नैर्ऋत्यलोकमें जाता है और निर्ऋतिके साथ ही आनन्दका अनुभव करता है । जो माघ मासमें सुन्दर पुष्प एवं मूल-फल आदिके द्वारा भगवान् शङ्करकी आराधना करता है वह संसार-सागरका त्याग करके भगवान् शिवके लोकमें जाता है । अतः यदि शिवधाममें जानेकी इच्छा हो तो यत्नपूर्वक कृत्तिवासेश्वरका पूजन तथा अविमुक्त क्षेत्रमें निवास करना चाहिये । काशीमें व्यासेश्वरके पश्चिम घण्टाकर्ण (या कर्णघण्टा) नामक सरोवर है। देवि ! उस सरोवरमें स्नान करके व्यासेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्यकी जहाँ-कहीं भी मृत्यु हो, उसे काशीमें मरनेका ही फल प्राप्त होता है । मोहिनी ! यदि मनुष्य दण्डखात-तीर्थमें स्नान करके अपने पितरोंका तर्पण करे तो उसके नरक-निवासी पितर वहाँसे निकलकर पितृलोकमें चले जाते हैं। देवि ! जो पापकर्मी मनुष्य पिशाचयोनिको प्राप्त हो गये हैं, उनके लिये यदि वहाँ पिण्डदान किया जाय तो उनका उस पिशाच-शरीरसे उद्धार हो जाता है । उस खातके दर्शनसे मानव कृतकृत्य हो जाता है । वहीं लोकको कल्याण प्रदान करनेवाली ललिता देवी विद्यमान हैं। यह मनुष्य-जन्म

कुण्डपर रहकर स्नान-पूजन किया करते थे । मोहिनी ! चित्रगुप्तोंने भाद्रपद मासमें यह यात्रा की थी । वे लक्ष्मीकुण्डपर रहकर स्नान-पूजन करते थे । वरानने ! यक्षोंने आश्विन मासमें यह यात्रा सम्पन्न की है । वे मार्कण्डेय-कुण्डपर रहकर स्नान-पूजनमें संलग्न थे । मोहिनी ! नागोंने मार्गशीर्ष मासमें यह यात्रा की है । वे कोटितीर्थमें रहकर स्नान-पूजन आदि करते थे । शुभलोचने ! गुह्यकोंने कपालमोचनतीर्थमें रहकर स्नान-ध्यान एवं पूजन आदि करते हुए पौष मासमें यहाँकी यात्रा सम्पन्न की है । शोभने ! पिशाचोंने फाल्गुन मासमें काशीकी यात्रा की थी । वे कालेश्वर-कुण्डपर रहकर स्नान-पूजन आदिमें तत्पर रहते थे । देवि ! शुभ फाल्गुन मासमें शुक्ल पक्षकी जो चतुर्दशी है, उसीमें पिशाचोंने यात्रा की थी । इसीलिये उसे पिशाच-चतुर्दशी कहते हैं ।

शुभानने ! अब मैं यात्राका आवश्यक कृत्य बतलाऊँगा, जिसके करनेसे मनुष्य यात्राका फल पाता है । यात्राके समय जलसे भरे हुए सुन्दर घड़ोंको वस्त्रसे ढककर फल, फूल और मिष्टान्नके साथ उनका दान करना चाहिये । चैत्रके शुक्लपक्षमें महान् फल देनेवाली जो तृतीया है, उसमें मनुष्योंको भक्तिभावसे गौरी देवीका दर्शन करना चाहिये । वरानने ! स्नान करके गोप्रेक्षतीर्थमें जाना चाहिये और स्वर्गद्वारमें जो पालिका देवी हैं, उनकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ।

इनके सिवा गङ्गा और ललिता भी श्रेष्ठ एवं कल्याणमयी देवी कही गयी हैं, उनका भी भक्तिभावसे दर्शन करना चाहिये । वे सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाली हैं । तदनन्तर पवित्र व्रतका पालन करनेवाले शिवभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराना और वस्त्र तथा भरपूर दक्षिणाद्वारा उनका यथायोग्य सत्कार करना चाहिये ।

अब मैं उन विनायकोंका परिचय देता हूँ, जो काशी-क्षेत्रके निवासमें विघ्न डालनेवाले हैं । देवि ! उनका पूजन करके मनुष्य काशीवासका निर्विघ्न फल प्राप्त करता है । पहले ढुंढिविनायक, फिर किलविनायक, देवीविनायक, गोप्रेक्षविनायक, हस्तिहस्तीविनायक तथा सिन्दूर्यविनायकका दर्शन करना चाहिये । देवि ! चतुर्थीको इन सभी विनायकोंका दर्शन करे और इनकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको मिठाई खिलावे । इस कार्यसे मनुष्यको सिद्धि प्राप्त होती है ।

अब मैं काशीक्षेत्रकी रक्षा करनेवाली चण्डिकाओंका वर्णन करता हूँ । दक्षिण दिशामें दुर्गा रक्षा करती हैं । नैर्ऋत्य कोणमें अन्तरेश्वरी, पश्चिममें अङ्गारेश्वरी, वायव्य कोणमें भद्रकाली, उत्तर दिशामें भीमचण्डा, ईशानकोणमें महामत्ता, पूर्व दिशामें ऊर्ध्वकेशीसहित शाङ्करी देवी, अग्निकोणमें अधःकेशी तथा मध्यभागमें चित्रघण्टा देवी रक्षा करती हैं । जो मानव इन चण्डिका देवियोंका दर्शन करता है, उसपर प्रसन्न होकर वे सब-की-सब तत्परतापूर्वक उसके लिये क्षेत्रकी रक्षा करती हैं । देवि ! ये पापियोंके लिये सदा विघ्न उपस्थित करती हैं, अतः रक्षाके लिये विनायकोंसहित उक्त देवियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये ।

भीष्मजी काशीपुरीमें आकर उत्तम पञ्चायतनरूपसे देवेश्वर शिवकी आराधना करते हुए कुछ कालतक यहाँ रहे । सुभगे ! उस स्थानपर भगवान् शिव स्वयं प्रकट हुए थे, जो गोप्रेक्षकके नामसे विख्यात हुए । सम्पूर्ण देवता उनकी स्तुति करते हैं । गोप्रेक्षेश्वरके पास आकर उनका दर्शन और पूजन करके मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । एक समय वनकी गौएँ दावानलसे दग्ध हो इधर-उधर भटकती हुई इस कुण्डके समीप आयीं और यहाँका जल पीकर शान्त हुईं । तबसे यह कपिलाह्रद कहलाता है । यहाँ प्रकट होकर साक्षात् भगवान् शिव वृषध्वज नामसे विख्यात हुए । भगवान् शिवने न केवल वहाँ निवास किया, वे वहाँ सबको प्रत्यक्ष दर्शन देते हुए शिवलिङ्गरूपमें विराजमान हैं । जो एकाग्रचित्त हो इस कपिलाह्रद-तीर्थमें स्नान करके वृषध्वज शिवका दर्शन करता

कुण्डपर रहकर स्नान-पूजन किया करते थे । मोहिनी ! विद्याधरोंने भादों मासमें यह यात्रा की थी । वे लक्ष्मीकुण्डपर रहकर स्नान-पूजन करते थे । वरानने ! यक्षोंने आश्विन मासमें यह यात्रा सम्पन्न की है । वे मार्कण्डेय-कुण्डपर रहकर स्नान-पूजनमें संलग्न थे । मोहिनी ! नागोंने मार्गशीर्ष मासमें यह यात्रा की है । वे कोटितीर्थमें रहकर स्नान-पूजन आदि करते थे । शुभलोचने ! गुह्यकोंने कपालमोचनतीर्थमें रहकर स्नान-ध्यान एवं पूजन आदि करते हुए पौष मासमें यहाँकी यात्रा सम्पन्न की है । शोभने ! पिशाचोंने फाल्गुन मासमें काशीकी यात्रा की थी । वे कालेश्वर-कुण्डपर रहकर स्नान-पूजन आदिमें तत्पर रहते थे । देवि ! शुभ फाल्गुन मासमें शुक्ल पक्षकी जो चतुर्दशी है, उसीमें पिशाचोंने यात्रा की थी । इसीलिये उसे पिशाच-चतुर्दशी कहते हैं ।

शुभानने ! अब मैं यात्राका आवश्यक कृत्य बतलाऊँगा, जिसके करनेसे मनुष्य यात्राका फल पाता है । यात्राके समय जलसे भरे हुए सुन्दर घड़ोंको वस्त्रसे ढककर फल, फूल और मिष्टान्नके साथ उनका दान करना चाहिये । चैत्रके शुक्लपक्षमें महान् फल देनेवाली जो तृतीया है, उसमें मनुष्योंको भक्तिभावसे गौरी देवीका दर्शन करना चाहिये । वरानने ! स्नान करके गोप्रेक्षतीर्थमें जाना चाहिये और स्वर्गद्वारमें जो कालिका देवी हैं, उनकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ।

इनके सिवा मंगला और कालिका भी श्रेष्ठ एवं कल्याणमयी देवी कही गयी हैं, उनका भी भक्तिभावसे दर्शन करना चाहिये । वे सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाली हैं । तदनन्तर पवित्र व्रतका पालन करनेवाले शिवभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराना और वस्त्र तथा भरपूर दक्षिणाद्वारा उनका यथायोग्य सत्कार करना चाहिये ।

अब मैं उन विनायकोंका परिचय देता हूँ, जो काशी-क्षेत्रके निवासमें विघ्न डालनेवाले हैं । देवि ! उनका पूजन करके मनुष्य काशीवासका निर्विघ्न फल प्राप्त करता है । पहले ढुंढिविनायक, फिर किलविनायक, देवीविनायक, गोप्रेक्षविनायक, हस्तिहस्तीविनायक तथा सिन्दूर्यविनायकका दर्शन करना चाहिये । देवि ! चतुर्थीको इन सभी विनायकों-का दर्शन करे और इनकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको मिठाई खिलावे । इस कार्यसे मनुष्यको सिद्धि प्राप्त होती है ।

अब मैं काशीक्षेत्रकी रक्षा करनेवाली चण्डिकाओंका वर्णन करता हूँ । दक्षिण दिशामें दुर्गा रक्षा करती हैं । नैर्ऋत्य कोणमें अन्तरेश्वरी, पश्चिममें अङ्गारेश्वरी, वायव्य कोणमें भद्रकाली, उत्तर दिशामें भीमचण्डा, ईशानकोणमें महामत्ता, पूर्व दिशामें ऊर्ध्वकेशीसहित शाङ्करी देवी, अग्निकोणमें अधःकेशी तथा मध्यभागमें चित्रघण्टा देवी रक्षा करती हैं । जो मानव इन चण्डिका देवियोंका दर्शन करता है, उसपर प्रसन्न होकर वे सब-की-सब तत्परतापूर्वक उसके लिये क्षेत्रकी रक्षा करती हैं । देवि ! ये पापियोंके लिये सदा विघ्न उपस्थित करती हैं, अतः रक्षाके लिये विनायकोंसहित उक्त देवियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये ।

भीष्मजी काशीपुरीमें आकर उत्तम पञ्चायतनरूपसे देवेश्वर शिवकी आराधना करते हुए कुछ कालतक वहाँ रहे । सुभगे ! उस स्थानपर भगवान् शिव स्वयं प्रकट हुए थे, जो गोप्रेक्षकके नामसे विख्यात हुए । सम्पूर्ण देवता उनकी स्तुति करते हैं । गोप्रेक्षेश्वरके पास आकर उनका दर्शन और पूजन करके मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । एक समय वनकी गौएँ दावानलसे दग्ध हो इधर-उधर भटकती हुई इस कुण्डके समीप आयीं और यहाँका जल पीकर शान्त हुईं । तबसे यह कपिलाह्रद कहलाता है । यहाँ प्रकट होकर साक्षात् भगवान् शिव वृषध्वज नामसे विख्यात हुए । भगवान् शिवने न केवल वहाँ निवास किया, वे वहाँ सबको प्रत्यक्ष दर्शन देते हुए शिवलिङ्गरूपमें विराजमान हैं । जो एकाग्रचित्त हो इस कपिलाह्रद-तीर्थमें स्नान करके वृषध्वज शिवका दर्शन करता

और स्नान मात्रमें स्नान करके मनुष्य महापाप आदि पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। सुन्दरी! वहाँ धर्मनद नामसे विख्यात एक कुण्ड है। उसमें धर्म स्वरूपतः प्रकट होकर बड़े-बड़े पातकोंका नाश करता है। वहीं धूली एवं धूतपापा भी है जो सर्वसौख्यकरी एवं शुभकारक है। जैसे नदीका वेग तटवर्ती वृक्षोंको गिरा देता है, उसी प्रकार वह धूतपापा समस्त पापराशिको दूर कर देती है।

काशीमें किरणा, धूतपापा, पुण्य-सलिला सरस्वती, गङ्गा और यमुना—ये पाँच नदियाँ एकत्र बतायी गयी हैं। इनसे त्रिभुवनविख्यात पञ्चनद (पञ्चगङ्गा) तीर्थ प्रकट हुआ है। उसमें डुबकी लगानेवाला मानव फिर पाञ्चभौतिक शरीर नहीं धारण करता। यह पाँच नदियोंका संगम समस्त पापराशियोंका नाश करनेवाला है। उसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य ब्रह्माण्डमण्डपका भेदन करके परम पदको प्राप्त होता है। प्रयागमें माघमासमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह काशीके पञ्चगङ्गातीर्थमें एक ही दिनके स्नानसे मिल जाता है। पञ्चगङ्गामें स्नान और पितरोंका तर्पण करके माधव नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जिन्होंने पञ्चगङ्गामें श्रद्धापूर्वक श्राद्ध किया है, उनके पितर अनेक योनियोंमें पड़े होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। पञ्चनदतीर्थमें श्राद्धकर्मकी महिमाका प्रत्यक्ष दर्शन करके यमलोकमें पितर-लोग यह गाथा गाया करते हैं कि 'क्या हमारे वंशमें भी कोई ऐसा होगा, जो काशीके पञ्चनदतीर्थमें आकर श्राद्ध करेगा! जिससे हमलोग मुक्त हो जायँगे।' पञ्चनदतीर्थमें जो कुछ धन दान किया जाता है, कल्पके अन्ततक उसके पुण्यका क्षय नहीं होता। वन्ध्या स्त्री भी एक वर्षतक पञ्चगङ्गा-तीर्थमें स्नान करके यदि मङ्गलागौरीका पूजन करे तो वह अवश्य ही पुत्रको जन्म देती है। वस्त्रसे छाने हुए पञ्चगङ्गाके पवित्र जलसे यहाँ दिक्श्रुता देवीको स्नान कराकर मनुष्य महान् फलका भागी होता है। पञ्चामृतके एक सौ आठ कलशोंके साथ तुलना करनेपर पञ्चगङ्गाका एक बूँद जल भी उनसे श्रेष्ठ सिद्ध होता है। इस लोकमें पञ्चकूर्च (पञ्चगव्य) पीनेसे जो शुद्धि कही गयी है, वही शुद्धि श्रद्धापूर्वक पञ्चगङ्गाके जलकी एक बूँद पीनेसे प्राप्त होती है और उसके कुण्डमें स्नान करनेसे राजसूय तथा अश्वमेधयज्ञका जो फल कहा गया है, उससे सौगुना उत्तम फल उपलब्ध होता है। राजसूय और अश्वमेधयज्ञ केवल स्वर्गके साधक हैं, किंतु पञ्चगङ्गाके जलसे ब्रह्मलोकतकके सम्पूर्ण द्वन्द्वोंसे मुक्ति मिल जाती है। सत्ययुगमें वह 'धर्मनद' के नामसे प्रसिद्ध हुआ, त्रेतामें उसीका नाम 'धूतपापा' हुआ। द्वापरमें उसे 'बिन्दु-तीर्थ' कहा जाने लगा और कलियुगमें 'पञ्चनद' के नामसे उसकी ख्याति होती है। पञ्चनद-तीर्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका शुभ आश्रय है, उसकी अनन्त महिमाका कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। भद्रे! इस प्रकार मैंने तुम्हें काशीका उत्तम माहात्म्य बताया है। वह मनुष्योंके लिये सुखद, मोक्षप्रद तथा बड़े बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। महापातकी एवं उपपातकी मानव भी अविमुक्त-क्षेत्रके इस माहात्म्यको सुनकर शुद्ध हो जाता है। ब्राह्मण इसको सुनने और पढ़नेसे वेदोंका विद्वान् होता है। क्षत्रिय युद्धमें विजय पाता है, वैश्य धन-सम्पत्तिसे भरपूर होता है और शूद्रको वैष्णव भक्तोंका सङ्ग प्राप्त होता है। सम्पूर्ण यज्ञोंमें जो फल मिलता है, समस्त तीर्थोंमें जो फल प्राप्त होता है, वह सब इसके पाठसे और श्रवणसे भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। विद्यार्थी इससे विद्या पाता है, धनार्थी धन पाता है, पत्नी चाहनेवाला पत्नी और पुत्रकी इच्छावाला पुरुष पुत्र पाता है।

उत्कलदेशके पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी महिमा, राजा इन्द्रद्युम्नका वहाँ जाकर मोक्ष प्राप्त करना

मोहिनी बोली—विप्रवर! मैंने आपके मुखारविन्दसे काशीका उत्तम माहात्म्य सुना। पुराणोंमें मुनियों और आचार्योंका यह वर्णन सुना जाता है कि पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु भी मोक्ष देनेवाले हैं। महाभाग! अब उस पुरुषोत्तम क्षेत्रका माहात्म्य कहिये।

पुरोहित वसुने कहा—देवि! सुनो, मैं तुम्हें ब्रह्माजीके द्वारा कहा हुआ पुरुषोत्तम-क्षेत्रका उत्तम माहात्म्य बतलाता हूँ। भारतवर्षमें दक्षिण समुद्रके तटतक फैला हुआ एक उत्कल नामका प्रदेश है, जो स्वर्ग और मोक्ष देनेवाला है। समुद्रसे उत्तर विरज-मण्डलतकका जो प्रदेश है, वह पुण्यात्माओंका देश है। वह भूभाग सम्पूर्ण गुणोंसे अलंकृत है। विशालाक्षि! समुद्रके उत्तर तटवर्ती उस सर्वोत्तम उत्कल प्रदेशमें सभी पुण्य तीर्थ और पवित्र मन्दिर आदि हैं, जिनका परिचय जाननेयोग्य है। मुक्ति देनेवाला परम उत्तम एवं

और माघ मासमें स्नान करके मनुष्य महापाप आदि पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। सुन्दरी! वहाँ धर्मनद नामसे विख्यात एक कुण्ड है। उसमें धर्म स्वरूपतः प्रकट होकर बड़े-बड़े पातकोंका नाश करता है। वहीं धूली एवं धूतपापा भी है जो सर्वतीर्थमयी एवं शुभकारक है। जैसे नदीका वेग तटवर्ती वृक्षोंको गिरा देता है, उसी प्रकार वह धूतपापा समस्त पापराशियोंको दूर कर देती है।

काशीमें किरणा, धूतपापा, पुण्य-सलिला सरस्वती, गङ्गा और यमुना—ये पाँच नदियाँ एकत्र बतायी गयी हैं। इनसे त्रिभुवनविख्यात पञ्चनद (पञ्चगङ्गा) तीर्थ प्रकट हुआ है। उसमें डुबकी लगानेवाला मानव फिर पाञ्चभौतिक शरीर नहीं धारण करता। यह पाँच नदियोंका सङ्गम समस्त पापराशियोंका नाश करनेवाला है। उसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य ब्रह्माण्डमण्डपका भेदन करके परम पदको प्राप्त होता है। प्रयागमें माघमासमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह काशीके पञ्चगङ्गातीर्थमें एक ही दिनके स्नानसे मिल जाता है। पञ्चगङ्गामें स्नान और पितरोंका तर्पण करके माधव नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जिन्होंने पञ्चगङ्गामें श्रद्धापूर्वक श्राद्ध किया है, उनके पितर अनेक योनियोंमें पड़े होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। पञ्चनदतीर्थमें श्राद्धकर्मकी महिमाका प्रत्यक्ष दर्शन करके यमलोकमें पितर-लोग यह गाथा गाया करते हैं कि 'क्या हमारे वंशमें भी कोई ऐसा होगा, जो काशीके पञ्चनदतीर्थमें आकर श्राद्ध करेगा! जिससे हमलोग मुक्त हो जायँगे।' पञ्चनदतीर्थमें जो कुछ धन दान किया जाता है, कल्पके अन्ततक उसके पुण्यका क्षय नहीं होता। वन्ध्या स्त्री भी एक वर्षतक पञ्चगङ्गा-तीर्थमें स्नान करके यदि मङ्गलागौरीका पूजन करे तो वह अवश्य ही पुत्रको जन्म देती है। वस्त्रसे छाने हुए पञ्चगङ्गाके पवित्र जलसे यहाँ दिक्श्रुता देवीको स्नान कराकर मनुष्य महान् फलका भागी होता है। पञ्चामृतके एक सौ आठ कलशोंके साथ तुलना करनेपर पञ्चगङ्गाका एक बूँद जल भी उनसे श्रेष्ठ सिद्ध होता है। इस लोकमें पञ्चकूर्च (पञ्चगव्य) पीनेसे जो शुद्धि कही गयी है, वही शुद्धि श्रद्धापूर्वक पञ्चगङ्गाके जलकी एक बूँद पीनेसे प्राप्त होती है और उसके कुण्डमें स्नान करनेसे राजसूय तथा अश्वमेधयज्ञका जो फल कहा गया है, उससे सौगुना उत्तम फल उपलब्ध होता है। राजसूय और अश्वमेधयज्ञ केवल स्वर्गके साधक हैं, किंतु पञ्चगङ्गाके जलसे ब्रह्मलोकतकके सम्पूर्ण द्वन्द्वोंसे मुक्ति मिल जाती है। सत्ययुगमें वह 'धर्मनद' के नामसे प्रसिद्ध हुआ, त्रेतामें उसीका नाम 'धूतपापा' हुआ। द्वापरमें उसे 'बिन्दु-तीर्थ' कहा जाने लगा और कलियुगमें 'पञ्चनद' के नामसे उसकी ख्याति होती है। पञ्चनद-तीर्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका शुभ आश्रय है, उसकी अनन्त महिमाका कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। भद्रे! इस प्रकार मैंने तुम्हें काशीका उत्तम माहात्म्य बताया है। यह मनुष्योंके लिये सुखद, मोक्षप्रद तथा बड़े बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। महापातकी एवं उपपातकी मानव भी अविमुक्त-क्षेत्रके इस माहात्म्यको सुनकर शुद्ध हो जाता है। ब्राह्मण इसको सुनने और पढ़नेसे वेदोंका विद्वान् होता है। क्षत्रिय युद्धमें विजय पाता है, वैश्य धन-सम्पत्तिसे भरपूर होता है और शूद्रको वैष्णव भक्तोंका सङ्ग प्राप्त होता है। सम्पूर्ण यज्ञोंमें जो फल मिलता है, समस्त तीर्थोंमें जो फल प्राप्त होता है, वह सब इसके पाठसे और श्रवणसे भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। विद्यार्थी इससे विद्या पाता है, धनार्थी धन पाता है, पत्नी चाहनेवाला पत्नी और पुत्रकी इच्छावाला पुरुष पुत्र पाता है।

उत्कलदेशके पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी महिमा, राजा इन्द्रद्युम्नका वहाँ जाकर मोक्ष प्राप्त करना

मोहिनी बोली—विप्रवर! मैंने आपके मुखारविन्दसे काशीका उत्तम माहात्म्य सुना। पुराणोंमें मुनियों और महात्माओंका यह वचन सुना जाता है कि पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। महाभाग! अब उस पुरुषोत्तम क्षेत्रका माहात्म्य कहिये।

पुरोहित वसुने कहा—देवि! सुनो, मैं तुम्हें ब्रह्माजीके द्वारा कहा हुआ पुरुषोत्तम-क्षेत्रका उत्तम माहात्म्य बतलाता हूँ। भारतवर्षमें दक्षिण समुद्रके तटतक फैला हुआ एक उत्कल नामका प्रदेश है, जो स्वर्ग और मोक्ष देनेवाला है। समुद्रसे उत्तर विरज-मण्डलतकका जो प्रदेश है, वह पुण्यात्माओंका देश है। वह भूभाग सम्पूर्ण गुणोंसे अलंकृत है। विद्याधरि! समुद्रके उत्तर तटवर्ती उस सर्वोत्तम उत्कल प्रदेशमें सभी पुण्य तीर्थ और पवित्र मन्दिर आदि हैं, जिनका परिचय जाननेयोग्य है। मुक्ति देनेवाला परम उत्तम एवं

प्रतिष्ठा हो जाती है, जिनमें भगवान्के सभी लक्षणोंका अङ्कन ठीक-ठीक हो गया है। इन तीनोंमेंसे किसकी प्रतिमा भगवान्को प्रिय तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित होगी, जिसकी स्थापना करनेसे भगवान् प्रसन्न हो जायँगे।' इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े-पड़े उन्होंने पाञ्चरात्रकी विधिसे भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन किया और अन्तमें ध्यानमग्न हो राजाने इस प्रकार स्तुति प्रारम्भ की।

इन्द्रद्युम्न बोले—वासुदेव! आपको नमस्कार है। आप मोक्षके कारण हैं, आपको मेरा नमस्कार है। सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी परमेश्वर! आप इस जन्म-मृत्युरूपी संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये। पुरुषोत्तम! आपका स्वरूप निर्मल आकाशके समान है। आपको नमस्कार है। सबको अपनी ओर खींचनेवाले संकर्षण! आपको प्रणाम है। धरणीधर! आप मेरी रक्षा कीजिये। भगवन्! आपका श्रीअङ्ग मेघके समान श्याम है। भक्तवत्सल! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण देवताओंके निवासस्थान! आपको नमस्कार है। देवप्रिय! आपको प्रणाम है। नारायण! आपको नमस्कार है। आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। नील मेघके समान आभावाले घनश्याम! आपको नमस्कार है। देवपूजित परमेश्वर! आपको प्रणाम है। विष्णो! जगन्नाथ! मैं भवसागरमें डूबा हुआ हूँ। मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें महावराहरूप धारण करके आपने जिस प्रकार जलमें डूबी हुई पृथ्वीका रसातलसे उद्धार किया था, उसी प्रकार मेरा भी दुःखके समुद्रसे उद्धार कीजिये। कृष्ण! आपकी वरदायक मूर्तियोंका मैंने सेवन किया है। ये बलदेव आदि जो पृथक्‌रूपसे स्थित हैं, इन सबके रूपमें आप ही विराजमान हैं। देवेश! प्रभो! अच्युत! गरुड़ आदि पार्षद आयुधोंसहित इन्द्र आदि दिक्पाल आपके ही अङ्ग हैं। देवेश! आप मुझे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाला वर प्रदान करें। हरे! आप परमानन्दस्वरूप, चेतनस्वरूप तथा निरञ्जन हैं। आपका जो परम स्वरूप है, वह भाव और अभावसे रहित, निर्लेप, निर्मल, सूक्ष्म, दुर्लक्ष्य, अचल, ध्रुव, समस्त उपाधियोंसे विमुक्त और सत्तामात्ररूपसे स्थित है। प्रभो! उसे देवता भी नहीं जानते, फिर मैं कैसे वर्णन करता हूँ। उससे भिन्न जो आपका दूसरा स्वरूप है, वह पीताम्बरधारी और चार भुजाओंसे युक्त है। उसके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित हैं। वह मुकुट और अङ्गद धारण करता है। उसका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे युक्त है तथा वह वनमालासे विभूषित रहता है। देवता तथा आपके अन्यान्य शरणागत भक्त उसीकी पूजा करते हैं। देव! आप सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ एवं भक्तोंको अभय देनेवाले हैं। मनोहर कमलके समान नेत्रोंवाले प्रभो! मैं विषयोंके समुद्रमें डूबा हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। लोकेश! मैं आपके सिवा और किसीको नहीं देखता, जिसकी शरणमें जाऊँ। कमलाकान्त! मधुसूदन! आप मुझपर प्रसन्न होइये। मैं बुढ़ापे और सैकड़ों व्याधियोंसे युक्त हो नाना प्रकारके दुःखोंसे पीड़ित हूँ तथा अपने कर्मपाशसे बँधकर हर्ष-शोकमें मग्न हो विवेकशून्य हो गया हूँ। अत्यन्त भयंकर घोर संसार-समुद्रमें गिरा हूँ। यह भवसागर विषयरूपी जलराशिके कारण दुस्तर है। इसमें राग-द्वेषरूपी मत्स्य भरे पड़े हैं। इन्द्रियरूपी भँवरोंसे यह बहुत गहरा प्रतीत होता है। इसमें तृष्णा और शोकरूपी लहरें व्याप्त हैं। यहाँ न कोई आश्रय है, न अवलम्ब। यह सारहीन एवं अत्यन्त चञ्चल है। प्रभो! मैं मायासे मोहित होकर इसके भीतर चिरकालसे भटक रहा हूँ। हजारों भिन्न-भिन्न योनियोंमें बारबार जन्म लेता हूँ। प्रभो! देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य तथा अन्य चराचर भूतोंमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मेरा जाना न हुआ हो। सुरश्रेष्ठ! जैसे रहटमें रस्सीसे बँधी हुई घटी कभी ऊपर जाती, कभी नीचे आती और कभी बीचमें ठहरी रहती है, उसी प्रकार मैं कर्मरूपी रज्जुमें बँधकर दैवयोगसे ऊपर, नीचे तथा मध्यवर्ती लोकमें भटकता रहता हूँ। इस प्रकार यह संसार-चक्र बड़ा ही भयानक एवं रोमाञ्चकारी है। मैं इसमें दीर्घकालसे घूम रहा हूँ, किंतु कभी मुझे इसका अन्त नहीं दिखायी देता। समझमें नहीं आता, अब मैं क्या करूँ? हरे! मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं। मैं शोक और तृष्णासे आक्रान्त होकर अब कहाँ जाऊँ? मेरी चेतना लुप्त हो रही है। देव! इस समय व्याकुल होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। श्रीकृष्ण! मैं संसार-समुद्रमें डूबकर दुःख भोग रहा हूँ, मुझे बचाइये। जगन्नाथ! यदि आप मुझे अपना भक्त मानते हैं तो मुझपर कृपा कीजिये। आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा बन्धु नहीं है जो मेरी तरफ खयाल करेगा। देव! प्रभो! आप-जैसे स्वामीकी शरणमें आकर अब मुझे जीवन-मरण अथवा योगक्षेमके लिये कहीं भी भय नहीं होता। हरे! अपने कर्मोंसे बँधे रहनेके कारण मेरा जहाँ-कहीं भी जन्म हो, वहाँ सर्वदा आपमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे। देव! आपकी आराधना करके देवता, दैत्य, मनुष्य तथा अन्य संयमी पुरुषोंने परम सिद्धि प्राप्त की है, फिर कौन आपकी पूजा नहीं करेगा? भगवन्! ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी

प्रतिष्ठित हो जाती है, जिसमें भगवान्‌के सभी लक्षणोंका अङ्कन ठीक-ठीक हो गया है। इन तीनोंमेंसे जिसकी प्रतिमा भगवान्‌को प्रिय तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित होगी, जिसकी स्थापना करनेसे भगवान् प्रसन्न हो जायँगे।' इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े-पड़े उन्होंने पाञ्चरात्रकी विधिसे भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन किया और अन्तमें ध्यानमग्न हो राजाने इस प्रकार स्तुति प्रारम्भ की।

इन्द्रद्युम्न बोले—वासुदेव! आपको नमस्कार है। आप मोक्षके कारण हैं, आपको मेरा नमस्कार है। सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी परमेश्वर! आप इस जन्म-मृत्युरूपी संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये। पुरुषोत्तम! आपका स्वरूप निर्मल आकाशके समान है। आपको नमस्कार है। सबको अपनी ओर खींचनेवाले संकर्षण! आपको प्रणाम है। धरणीधर! आप मेरी रक्षा कीजिये। भगवन्! आपका श्रीअङ्ग मेघके समान श्याम है। भक्तवत्सल! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण देवताओंके निवासस्थान! आपको नमस्कार है। देवप्रिय! आपको प्रणाम है। नारायण! आपको नमस्कार है। आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। नील मेघके समान आभावाले घनश्याम! आपको नमस्कार है। देवपूजित परमेश्वर! आपको प्रणाम है। विष्णो! जगन्नाथ! मैं भवसागरमें डूबा हुआ हूँ। मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें महावराहरूप धारण करके आपने जिस प्रकार जलमें डूबी हुई पृथ्वीका रसातलसे उद्धार किया था, उसी प्रकार मेरा भी दुःखके समुद्रसे उद्धार कीजिये। कृष्ण! आपकी वरदायक मूर्तियोंका मैंने स्तवन किया है। ये बलदेव आदि जो पृथक्‌रूपसे स्थित हैं, इन सबके रूपमें आप ही विराजमान हैं। देवेश! प्रभो! अच्युत! गरुड़ आदि पार्षद आयुधोंसहित इन्द्र आदि दिक्पाल आपके ही अङ्ग हैं। देवेश! आप मुझे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाला वर प्रदान करें। हरे! आप प्रकाशस्वरूप, चेतनस्वरूप तथा निरञ्जन हैं। आपका जो परम स्वरूप है, वह भाव और अभावसे रहित, निर्लेप, निर्मल, सूक्ष्म, दुर्लभ, अचल, ध्रुव, समस्त उपाधियोंसे विमुक्त और शुद्धस्वरूपसे स्थित है। प्रभो! उसे देवता भी नहीं जानते, फिर मैं कैसे जान सकता हूँ। उससे भिन्न जो आपका दूसरा स्वरूप है, वह पीताम्बरधारी और चार भुजाओंसे युक्त है। उसके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित हैं। वह मुकुट और अङ्गद धारण करता है। उसका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे युक्त है तथा वह वनमालासे विभूषित रहता है। देवता तथा आपके अन्यान्य शरणागत भक्त उसीकी पूजा करते हैं। देव! आप सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ एवं भक्तोंको अभय देनेवाले हैं। मनोहर कमलके समान नेत्रोंवाले प्रभो! मैं विषयोंके समुद्रमें डूबा हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। लोकेश! मैं आपके सिवा और किसीको नहीं देखता, जिसकी शरणमें जाऊँ। कमलाकान्त! मधुसूदन! आप मुझपर प्रसन्न होइये। मैं बुढ़ापे और सैकड़ों व्याधियोंसे युक्त हो नाना प्रकारके दुःखोंसे पीड़ित हूँ तथा अपने कर्मपाशमें बँधकर हर्ष-शोकमें मग्न हो विवेकशून्य हो गया हूँ। अत्यन्त भयंकर घोर संसार-समुद्रमें गिरा हूँ। यह भवसागर विषयरूपी जलराशिके कारण दुस्तर है। इसमें राग-द्वेषरूपी मत्स्य भरे पड़े हैं। इन्द्रियरूपी भँवरोंसे यह बहुत गहरा प्रतीत होता है। इसमें तृष्णा और शोकरूपी लहरें व्याप्त हैं। यहाँ न कोई आश्रय है, न अवलम्ब। यह सारहीन एवं अत्यन्त चञ्चल है। प्रभो! मैं मायासे मोहित होकर इसके भीतर चिरकालसे भटक रहा हूँ। हजारों भिन्न-भिन्न योनियोंमें बारंबार जन्म लेता हूँ। प्रभो! देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य तथा अन्य चराचर भूतोंमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मेरा जाना न हुआ हो। सुरश्रेष्ठ! जैसे रहटमें रस्सीसे बँधी हुई घटी कभी ऊपर जाती, कभी नीचे आती और कभी बीचमें ठहरी रहती है, उसी प्रकार मैं कर्मरूपी रज्जुमें बँधकर दैवयोगसे ऊपर, नीचे तथा मध्यवर्ती लोकमें भटकता रहता हूँ। इस प्रकार यह संसार-चक्र बड़ा ही भयानक एवं रोमाञ्चकारी है। मैं इसमें दीर्घकालसे घूम रहा हूँ, किंतु कभी मुझे इसका अन्त नहीं दिखायी देता। समझमें नहीं आता, अब मैं क्या करूँ? हरे! मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं। मैं शोक और तृष्णासे आक्रान्त होकर अब कहाँ जाऊँ? मेरी चेतना लुप्त हो रही है। देव! इस समय व्याकुल होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। श्रीकृष्ण! मैं संसार-समुद्रमें डूबकर दुःख भोग रहा हूँ, मुझे बचाइये। जगन्नाथ! यदि आप मुझे अपना भक्त मानते हैं तो मुझपर कृपा कीजिये। आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा बन्धु नहीं है जो मेरी तरफ खयाल करेगा। देव! प्रभो! आप-जैसे स्वामीकी शरणमें आकर अब मुझे जीवन-मरण अथवा योगक्षेमके लिये कहीं भी भय नहीं होता। हरे! अपने कर्मोंसे बँधे रहनेके कारण मेरा जहाँ-कहीं भी जन्म हो, वहाँ सर्वदा आपमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे। देव! आपकी आराधना करके देवता, दैत्य, मनुष्य तथा अन्य संयमी पुरुषोंने परम सिद्धि प्राप्त की है, फिर कौन आपकी पूजा नहीं करेगा? भगवन्! ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी

दिखायी देती है, वहाँ तटपर ही एक बहुत बडा वृक्ष खड़ा है, जिसका कुछ भाग तो जलमें है और कुछ स्थलमें। वह समुद्रकी लहरोंकी थपेड़ें खाकर भी कम्पित नहीं होता। तुम हाथमें कुल्हाड़ी लेकर लहरोंके बीचसे होते हुए अकेले ही वहाँ चले जाना। तुम्हें वह वृक्ष दिखायी देगा। मेरे बताये अनुसार उसे पहचानकर निःशङ्कभावसे उस वृक्षको काट डालना। उस ऊँचे वृक्षको काटते समय तुम्हें वहाँ कोई अद्भुत वस्तु दिखायी देगी। उसी वृक्षसे भलीभाँति सोच-विचारकर तुम दिव्य प्रतिमाका निर्माण करो। मोहमें डालनेवाली इस चिन्ताको छोड दो।'

ऐसा कहकर महाभाग श्रीहरि अदृश्य हो गये। यह स्वप्न देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उस रात्रिके बीतनेकी प्रतीक्षा करते हुए वे भगवान्‌में मन लगाकर उठ बैठे और वैष्णव-मन्त्र एवं विष्णुसूक्तका जप करने लगे। प्रभात होनेपर वे उठे और भगवान्‌का स्मरण करते हुए विधिपूर्वक उन्होंने समुद्रमें स्नान किया, फिर पूर्वाह्णकृत्य पूरा करके वे नृपश्रेष्ठ समुद्रके तटपर गये। महाराज इन्द्रद्युम्नने अकेले ही समुद्रकी महावेलामें प्रवेश किया और उस तेजस्वी महावृक्षको देखा, जिसकी अन्तिम ऊपरी सीमा बहुत बड़ी थी। वह बहुत ऊँचेतक फैला हुआ था। वह पुण्यमय वृक्ष फलसे रहित था। स्निग्ध मजीठके समान उसका लाल रंग था। उसका न तो कुछ नाम था और न यही पता था कि वह किस जातिका वृक्ष है। उस वृक्षको देखकर राजा इन्द्रद्युम्न बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने दृढ़ एवं तीक्ष्ण फरसेसे उस वृक्षको काट गिराया। उस समय इन्द्रद्युम्नने जब काष्ठका भलीभाँति निरीक्षण किया, तब उन्हें वहाँ एक अद्भुत बात दिखायी दी। विश्वकर्मा और भगवान् विष्णु दोनों ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ आये। दोनों ही उत्तम तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। राजा इन्द्रद्युम्नसे उन्होने पूछा—'महाराज! आप यहाँ कौन कार्य करेंगे? इस परम दुर्गम, गहन एवं निर्जन वनमें इस महासागरके तटपर यह अकेला ही महान् वृक्ष था। इसको आपने क्यों काट दिया?'

मोहिनी! उन दोनोंकी बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन दोनों जगदीश्वरोंको देखकर राजाने पहले तो उन्हें नमस्कार किया और फिर विनीतभावसे नीचे मुँह किये खड़े होकर कहा—'विप्रवरो! मेरा विचार है कि मैं अनादि, अनन्त, अमेय तथा देवाधिदेव जगदीश्वरकी आराधना करनेके लिये प्रतिमा बनाऊँ। इसके लिये परमपुरुष देवदेव परमात्माने स्वप्नमें मुझे प्रेरित किया है।' राजा इन्द्रद्युम्नका यह वचन सुनकर भगवान् जगन्नाथने प्रसन्नतापूर्वक हँसकर उनसे कहा—'महीपाल! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा; आपका यह विचार बहुत उत्तम है। यह भयंकर संसार-सागर केलेके पत्तेकी भाँति सारहीन है। इसमें दुःखकी ही अधिकता है। यह काम और क्रोधसे भरा हुआ है। इन्द्रियरूपी भँवर और कीचड़के कारण इसके पार जाना कठिन है। इसे देखकर रोमाञ्च हो आता है। नाना प्रकारके सैकड़ों रोग यहाँ भँवरके समान हैं तथा यह संसार पानीके बुलबुलेके समान क्षणभंगुर है। नृपश्रेष्ठ! इसमें रहते हुए जो आपके मनमें विष्णुकी आराधनाका विचार उत्पन्न हुआ, उसके कारण आप धन्य हैं। सम्पूर्ण गुणोंसे अलंकृत हैं। प्रजा, पर्वत, वन, नगर, पुर तथा ग्रामोंसहित एवं चारों वर्णोंसे सुशोभित यह धरती धन्य है, जहाँके शक्तिशाली प्रजापालक आप हैं। महाभाग! आइये, आइये। इस वृक्षकी सुखद एवं शीतल छायामें हम दोनोंके साथ बैठिये और धार्मिक कथा-वार्ताद्वारा धर्मका सेवन कीजिये। ये मेरे साथी शिल्पियोंमें श्रेष्ठ हैं और प्रतिमाके निर्माणकार्यमें आपकी सहायता करनेके लिये यहाँ आये हैं। ये मेरे बताये अनुसार प्रतिमा अभी तैयार कर देते हैं।'

उन ब्राह्मणदेवकी ऐसी बात सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न समुद्रका तट छोडकर उनके पास चले गये और वृक्षकी छायामें बैठे।

ब्रह्मपुत्री मोहिनी! तदनन्तर ब्राह्मणरूपधारी विश्वात्मा भगवान्‌ने शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्माको आज्ञा दी, 'तुम प्रतिमा बनाओ। उसमें श्रीकृष्णका रूप परम शान्त हो। उनके नेत्र कमलदलके समान विशाल होने चाहिये। वे वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभमणि और हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण किये हुए हों। दूसरी प्रतिमाका विग्रह गो-दुग्धके समान गौरवर्ण हो। उसमें स्वस्तिकका चिह्न होना चाहिये। वह अपने हाथमें हल धारण किये हुए हों। वही महाबली भगवान् अनन्तका स्वरूप है। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर तथा नागोंने भी उनका अन्त नहीं जाना है, इसलिये वे अनन्त कहलाते हैं। तीसरी प्रतिमा बलरामजीकी बहिन सुभद्रादेवीकी होगी। उनके शरीरका रंग सुवर्णके समान गौर एवं शोभासे सम्पन्न होना चाहिये। उनमें समस्त शुभ लक्षणोंका समावेश होना आवश्यक है।'

भगवान्‌का यह कथन सुनकर उत्तम कर्म करनेवाले

दिखायी देती है, वहाँ तटपर ही एक बहुत बडा वृक्ष खड़ा है, जिसका कुछ भाग तो जलमें है और कुछ स्थलमें। वह समुद्रकी लहरोंकी थपेड़ें खाकर भी कम्पित नहीं होता। तुम हाथमें कुल्हाड़ी लेकर लहरोंके बीचसे होते हुए अकेले ही वहाँ चले जाना। तुम्हें वह वृक्ष दिखायी देगा। मेरे बताये अनुसार उसे पहचानकर निःशङ्कभावसे उस वृक्षको काट डालना। उस ऊँचे वृक्षको काटते समय तुम्हें वहाँ कोई अद्भुत वस्तु दिखायी देगी। उसी वृक्षसे भलीभाँति सोच-विचारकर तुम दिव्य प्रतिमाका निर्माण करो। मोहमें डालनेवाली इस चिन्ताको छोड दो।'

ऐसा कहकर महाभाग श्रीहरि अदृश्य हो गये। यह स्वप्न देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उस रात्रिके बीतनेकी प्रतीक्षा करते हुए वे भगवान्में मन लगाकर उठ बैठे और वैष्णव-मन्त्र एवं विष्णुसूक्तका जप करने लगे। प्रभात होनेपर वे उठे और भगवान्का स्मरण करते हुए विधिपूर्वक उन्होंने समुद्रमें स्नान किया, फिर पूर्वाह्णकृत्य पूरा करके वे नृपश्रेष्ठ समुद्रके तटपर गये। महाराज इन्द्रद्युम्नने अकेले ही समुद्रकी महावेलामें प्रवेश किया और उस तेजस्वी महावृक्षको देखा, जिसकी अन्तिम ऊपरी सीमा बहुत बड़ी थी। वह बहुत ऊँचेतक फैला हुआ था। वह पुण्यमय वृक्ष फलसे रहित था। स्निग्ध मजीठके समान उसका लाल रंग था। उसका न तो कुछ नाम था और न यही पता था कि वह किस जातिका वृक्ष है। उस वृक्षको देखकर राजा इन्द्रद्युम्न बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने दृढ़ एवं तीक्ष्ण फरसेसे उस वृक्षको काट गिराया। उस समय इन्द्रद्युम्नने जब काष्ठका भलीभाँति निरीक्षण किया, तब उन्हें वहाँ एक अद्भुत बात दिखायी दी। विश्वकर्मा और भगवान् विष्णु दोनों ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ आये। दोनों ही उत्तम तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। राजा इन्द्रद्युम्नसे उन्होंने पूछा—'महाराज! आप यहाँ कौन कार्य करेंगे? इस परम दुर्गम, गहन एवं निर्जन वनमें इस महासागरके तटपर यह अकेला ही महान् वृक्ष था। इसको आपने क्यों काट दिया?'

मोहिनी! उन दोनोंकी बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन दोनों जगदीश्वरोंको देखकर राजाने पहले तो उन्हें नमस्कार किया और फिर विनीतभावसे नीचे मुँह किये खड़े होकर कहा—'विप्रवरो! मेरा विचार है कि मैं अनादि, अनन्त, अमेय तथा देवाधिदेव जगदीश्वरकी आराधना करनेके लिये प्रतिमा बनाऊँ। इसके लिये परमपुरुष देवदेव परमात्माने स्वप्नमें मुझे प्रेरित किया है।' राजा इन्द्रद्युम्नका यह वचन सुनकर भगवान् जगन्नाथने प्रसन्नतापूर्वक हँसकर उनसे कहा—'महीपाल! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा; आपका यह विचार बहुत उत्तम है। यह भयंकर संसार-सागर केलेके पत्तेकी भाँति सारहीन है। इसमें दुःखकी ही अधिकता है। यह काम और क्रोधसे भरा हुआ है। इन्द्रियरूपी भँवर और कीचड़के कारण इसके पार जाना कठिन है। इसे देखकर रोमाञ्च हो आता है। नाना प्रकारके सैकड़ों रोग यहाँ भँवरके समान हैं तथा यह संसार पानीके बुलबुलेके समान क्षणभंगुर है। नृपश्रेष्ठ! इसमें रहते हुए जो आपके मनमें विष्णुकी आराधनाका विचार उत्पन्न हुआ, उसके कारण आप धन्य हैं। सम्पूर्ण गुणोंसे अलंकृत हैं। प्रजा, पर्वत, वन, नगर, पुर तथा ग्रामोंसहित एवं चारों वर्णोंसे सुशोभित यह धरती धन्य है, जहाँके शक्तिशाली प्रजापालक आप हैं। महाभाग! आइये, आइये। इस वृक्षकी सुखद एवं शीतल छायामें हम दोनोंके साथ बैठिये और धार्मिक कथा-वार्ताद्वारा धर्मका सेवन कीजिये। ये मेरे साथी शिल्पियोंमें श्रेष्ठ हैं और प्रतिमाके निर्माणकार्यमें आपकी सहायता करनेके लिये यहाँ आये हैं। ये मेरे बताये अनुसार प्रतिमा अभी तैयार कर देते हैं।'

उन ब्राह्मणदेवकी ऐसी बात सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न समुद्रका तट छोडकर उनके पास चले गये और वृक्षकी छायामें बैठे।

ब्रह्मपुत्री मोहिनी! तदनन्तर ब्राह्मणरूपधारी विश्वात्मा भगवान्ने शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्माको आज्ञा दी, 'तुम प्रतिमा बनाओ। उसमें श्रीकृष्णका रूप परम शान्त हो। उनके नेत्र कमलदलके समान विशाल होने चाहिये। वे वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभमणि और हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण किये हुए हों। दूसरी प्रतिमाका विग्रह गो-दुग्धके समान गौरवर्ण हो। उसमें स्वस्तिकका चिह्न होना चाहिये। वह अपने हाथमें हल धारण किये हुए हों। वही महाबली भगवान् अनन्तका स्वरूप है। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर तथा नागोंने भी उनका अन्त नहीं जाना है, इसलिये वे अनन्त कहलाते हैं। तीसरी प्रतिमा बलरामजीकी बहिन सुभद्रादेवीकी होगी। उनके शरीरका रंग सुवर्णके समान गौर एवं शोभासे सम्पन्न होना चाहिये। उनमें समस्त शुभ लक्षणोंका समावेश होना आवश्यक है।'

भगवान्का यह कथन सुनकर उत्तम कर्म करनेवाले

तुम्हारी कही हुई सब बातें सफल हों। मेरे प्रसादसे तुम्हें अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति होगी। नृपश्रेष्ठ! तुम दस हजार नौ सौ वर्षोंतक अपने अखण्ड एवं विशाल साम्राज्यका उपभोग करो, इसके बाद उस दिव्य पदको प्राप्त होओगे, जो देवता और असुरोंके लिये भी दुर्लभ है और जिसे पाकर सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। जो शान्त, गूढ, अव्यक्त, अव्यय, परसे भी पर, सूक्ष्म, निर्लेप, निर्गुण, ध्रुव, चिन्ता और शोकसे मुक्त तथा कार्य और कारणसे वर्जित, जाननेयोग्य परम पद है, उसका तुम्हें साक्षात्कार कराऊँगा। उस परमानन्दमय पदको पाकर तुम परम गति—मोक्षको प्राप्त हो जाओगे। राजेन्द्र! जबतक पृथ्वी और आकाश है, जबतक चन्द्रमा, सूर्य और तारे प्रकाशित होते हैं, जबतक सात समुद्र तथा मेरु आदि पर्वत मौजूद हैं तथा जबतक स्वर्गलोकमें अविनाशी देवगण सब ओर विद्यमान हैं, तबतक इस भूतलपर सर्वत्र तुम्हारी अक्षय कीर्ति छायी रहेगी। तुम्हारे यज्ञके घृतसे प्रकट हुआ तालाब इन्द्रद्युम्न-सरोवरके नामसे विख्यात होगा और उसमें एक बार भी स्नान कर लेनेपर मनुष्य इन्द्रलोकको प्राप्त होगा। सरोवरके दक्षिण भागमें नैर्ऋत्य कोणकी ओर जो बरगदका वृक्ष है, उसके समीप केवड़ेके वनसे आच्छादित एक मण्डप है, जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे घिरा हुआ है। आषाढ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको मघा नक्षत्रमें भक्तजन हमारी इन प्रतिमाओंकी सवारी निकालेंगे और इन्हें ले जाकर उक्त मण्डपमें सात दिनोंतक रक्खेंगे। ब्रह्मचारी, संन्यासी, स्नातक, श्रेष्ठ ब्राह्मण, वानप्रस्थ, गृहस्थ, सिद्ध तथा अन्य द्विज नाना प्रकारके अक्षर और पदवाले स्तोत्रोंसे तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदकी ध्वनियोंसे श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णकी बारंबार स्तुति करेंगे।

भद्रे! इस प्रकार राजाको वरदान दे और उनके लिये इस लोकमें रहनेका समय निर्धारित करके भगवान् विष्णु विश्वकर्माके साथ अन्तर्धान हो गये। उस समय राजा बड़े प्रसन्न थे। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। भगवान्‌के दर्शनसे उन्होंने अपनेको कृतकृत्य माना। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, बलराम तथा वरदायिनी सुभद्राको मणिकाञ्चनजटित विमानाकार रथोंमें बिठाकर वे बुद्धिमान् नरेश अमात्य और पुरोहितके साथ मङ्गलपाठ, जय-जयकार, अनेक प्रकारके वैदिक मन्त्रोंके उच्चारण और भाँति-भाँतिके गाजे-बाजेके सहित ले आये और उन्हें परम मनोहर पवित्र स्थानमें पधराया। फिर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र, शुभ समय और शुभ मुहूर्तमें ब्राह्मणोंके द्वारा उनकी प्रतिष्ठा करायी। उत्तम प्रासाद (मन्दिर) में वेदोक्त विधिसे आचार्यकी आज्ञाके अनुसार प्रतिष्ठा करके विश्वकर्माके द्वारा बनाये हुए उन सब विग्रहोंको विधिवत् स्थापित किया। प्रतिष्ठासम्बन्धी सब कार्य पूरा करके राजाने आचार्य तथा दूसरे ऋत्विजोंको विधिपूर्वक दक्षिणा दे अन्य लोगोंको भी धनदान किया। तत्पश्चात् भाँति-भाँतिके सुगन्धित पुष्पोंसे तथा सुवर्ण, मणि, मुक्ता और नाना प्रकारके सुन्दर वस्त्रोंसे भगवद्विग्रहोंकी विधिपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणोंको ग्राम, नगर तथा राज्य आदि दान किया। फिर कृतकृत्य होकर समस्त परिग्रहोंका त्याग कर दिया और वे भगवान् विष्णुके परम धाम—परम पदको प्राप्त हो गये।

पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी यात्राका समय, मार्कण्डेयेश्वर शिव, वटवृक्ष, श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा सुभद्राके और भगवान् नृसिंहके दर्शन-पूजन आदिका माहात्म्य

मोहिनीने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! पुरुषोत्तमक्षेत्रकी यात्रा किस समय करनी चाहिये? और मानद! पाँचों तीर्थोंका सेवन भी किस विधिसे करना उचित है? एक-एक तीर्थके भीतर स्नान, दान और देव-दर्शन करनेका जो-जो फल है, वह सब पृथक्-पृथक् बताइये।

पुरोहित वसु बोले—श्रेष्ठ मनुष्यको उचित है कि ज्येष्ठ मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको विधिपूर्वक पञ्चतीर्थोंका सेवन करके श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करे। जो ज्येष्ठकी द्वादशीको अविनाशी देवता भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करते हैं, वे विष्णुलोकमें पहुँचकर वहाँसे कभी लौटकर वापस नहीं आते। मोहिनी! अतः ज्येष्ठमें प्रयत्नपूर्वक पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी यात्रा करनी चाहिये और वहाँ पञ्चतीर्थसेवनपूर्वक श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। जो अत्यन्त दूर होनेपर भी प्रतिदिन प्रसन्नचित्त हो भगवान् पुरुषोत्तमका चिन्तन करता है, अथवा जो श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त हो पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनार्थ यात्रा करता है,

तुम्हारी कही हुई सब बातें सफल हों। मेरे प्रसादसे तुम्हें अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति होगी। नृपश्रेष्ठ! तुम दस हजार नौ सौ वर्षोंतक अपने अखण्ड एवं विशाल साम्राज्यका उपभोग करो, इसके बाद उस दिव्य पदको प्राप्त होओगे, जो देवता और असुरोंके लिये भी दुर्लभ है और जिसे पाकर सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। जो शान्त, गूढ, अव्यक्त, अव्यय, परसे भी पर, सूक्ष्म, निर्लेप, निर्गुण, ध्रुव, चिन्ता और शोकसे मुक्त तथा कार्य और कारणसे वर्जित, जाननेयोग्य परम पद है, उसका तुम्हें साक्षात्कार कराऊँगा। उस परमानन्दमय पदको पाकर तुम परम गति—मोक्षको प्राप्त हो जाओगे। राजेन्द्र! जबतक पृथ्वी और आकाश है, जबतक चन्द्रमा, सूर्य और तारे प्रकाशित होते हैं, जबतक सात समुद्र तथा मेरु आदि पर्वत मौजूद हैं तथा जबतक स्वर्गलोकमें अविनाशी देवगण सब ओर विद्यमान हैं, तबतक इस भूतलपर सर्वत्र तुम्हारी अक्षय कीर्ति छायी रहेगी। तुम्हारे यज्ञके घृतसे प्रकट हुआ तालाब इन्द्रद्युम्न-सरोवरके नामसे विख्यात होगा और उसमें एक बार भी स्नान कर लेनेपर मनुष्य इन्द्रलोकको प्राप्त होगा। सरोवरके दक्षिण भागमें नैर्ऋत्य कोणकी ओर जो बरगदका वृक्ष है, उसके समीप केवड़ेके वनसे आच्छादित एक मण्डप है, जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे घिरा हुआ है। आषाढ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको मघा नक्षत्रमें भक्तजन हमारी इन प्रतिमाओंकी सवारी निकालेंगे और इन्हें ले जाकर उक्त मण्डपमें सात दिनोंतक रक्खेंगे। ब्रह्मचारी, संन्यासी, स्नातक, श्रेष्ठ ब्राह्मण, वानप्रस्थ, गृहस्थ, सिद्ध तथा अन्य द्विज नाना प्रकारके अक्षर और पदवाले स्तोत्रोंसे तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदकी ध्वनियोंसे श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णकी बारंबार स्तुति करेंगे।

भद्रे! इस प्रकार राजाको वरदान दे और उनके लिये इस लोकमें रहनेका समय निर्धारित करके भगवान् विष्णु विश्वकर्माके साथ अन्तर्धान हो गये। उस समय राजा बड़े प्रसन्न थे। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। भगवान्‌के दर्शनसे उन्होंने अपनेको कृतकृत्य माना। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, बलराम तथा वरदायिनी सुभद्राको मणिकाञ्चनजटित विमानाकार रथोंमें बिठाकर वे बुद्धिमान् नरेश अमात्य और पुरोहितके साथ मङ्गलपाठ, जय-जयकार, अनेक प्रकारके वैदिक मन्त्रोंके उच्चारण और भाँति-भाँतिके गाजे-बाजेके सहित ले आये और उन्हें परम मनोहर पवित्र स्थानमें पधराया। फिर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र, शुभ समय और शुभ मुहूर्तमें ब्राह्मणोंके द्वारा उनकी प्रतिष्ठा करायी। उत्तम प्रासाद (मन्दिर) में वेदोक्त विधिसे आचार्यकी आज्ञाके अनुसार प्रतिष्ठा करके विश्वकर्माके द्वारा बनाये हुए उन सब विग्रहोंको विधिवत् स्थापित किया। प्रतिष्ठासम्बन्धी सब कार्य पूरा करके राजाने आचार्य तथा दूसरे ऋत्विजोंको विधिपूर्वक दक्षिणा दे अन्य लोगोंको भी धनदान किया। तत्पश्चात् भाँति-भाँतिके सुगन्धित पुष्पोंसे तथा सुवर्ण, मणि, मुक्ता और नाना प्रकारके सुन्दर वस्त्रोंसे भगवद्विग्रहोंकी विधिपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणोंको ग्राम, नगर तथा राज्य आदि दान किया। फिर कृतकृत्य होकर समस्त परिग्रहोंका त्याग कर दिया और वे भगवान् विष्णुके परम धाम—परम पदको प्राप्त हो गये।

पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी यात्राका समय, मार्कण्डेयेश्वर शिव, वटवृक्ष, श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा सुभद्राके और भगवान् नृसिंहके दर्शन-पूजन आदिका माहात्म्य

मोहिनीने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! पुरुषोत्तमक्षेत्रकी यात्रा किस समय करनी चाहिये? और मानद! पाँचों तीर्थोंका सेवन भी किस विधिसे करना उचित है? एक-एक तीर्थके भीतर स्नान, दान और देव-दर्शन करनेका जो-जो फल है, वह सब पृथक्-पृथक् बताइये।

पुरोहित वसु बोले—श्रेष्ठ मनुष्यको उचित है कि ज्येष्ठ मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको विधिपूर्वक पञ्चतीर्थोंका सेवन करके श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करे। जो ज्येष्ठकी द्वादशीको अविनाशी देवता भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करते हैं, वे विष्णुलोकमें पहुँचकर वहाँसे कभी लौटकर वापस नहीं आते। मोहिनी! अतः ज्येष्ठमें प्रयत्नपूर्वक पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी यात्रा करनी चाहिये और वहाँ पञ्चतीर्थसेवनपूर्वक श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। जो अत्यन्त दूर होनेपर भी प्रतिदिन प्रसन्नचित्त हो भगवान् पुरुषोत्तमका चिन्तन करता है, अथवा जो श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त हो पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनार्थ यात्रा करता है,

पर धारण करनेवाले शेषजी ! आपको नमस्कार है। प्रलम्ब-शत्रो ! आपको नमस्कार है। श्रीकृष्णके अग्रज ! मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार कैलासशिखरके समान गौर शरीर तथा चन्द्रमासे भी कमनीय श्रेष्ठ मुखवाले, नीलवस्त्रधारी, देवपूजित, अनन्त, अजेय, एक कुण्डलसे विभूषित और फणोंके द्वारा विकट मस्तकवाले रोहिणीनन्दन महाबली हलधरको भक्ति-पूर्वक प्रसन्न करे। ऐसा करनेवाला पुरुष मनोवाञ्छित फल पाता है और समस्त पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धाममे जाता है। बलरामजीकी पूजाके पश्चात् विद्वान् पुरुष एकाग्रचित्त हो द्वादशाक्षर-मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) से भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे। जो धीर पुरुष द्वादशाक्षर-मन्त्रसे भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी सदा पूजा करते हैं, वे मोक्षको प्राप्त होते हैं। मोहिनी ! देवता, योगी तथा सोम-पान करनेवाले याज्ञिक भी उस गतिको नहीं पाते, जिसे द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करनेवाले पुरुष प्राप्त करते हैं। अतः उसी मन्त्रसे भक्तिपूर्वक गन्ध-पुष्प आदि सामग्रियोंद्वारा जगद्गुरु श्रीकृष्णकी पूजा करके उन्हें प्रणाम करे। तत्पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन।
जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिषूदन॥
जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर।
जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद॥
जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन।
जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद॥
संसारसागरे घोरे निःसारे दुःखफेनिले
क्रोधग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसम्प्लवे॥
नानारोगोर्मिकलिले मोहावर्तसुदुस्तरे।
निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम॥

(ना० उत्तर० ५५। ४४—४८)

'जगन्नाथ श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो। सब पापोंका नाश करनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो। चाणूर और केशीके नाशक ! आपकी जय हो। कंसनाशन ! आपकी जय हो। कमललोचन ! आपकी जय हो। चक्रगदाधर ! आपकी जय हो। नील मेघके समान श्यामवर्ण ! आपकी जय हो। सबको सुख देनेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो। जगत्पूज्य देव ! आपकी जय हो। संसारसंहारक ! आपकी जय हो। लोकपते ! नाथ ! आपकी जय हो। मनोवाञ्छित फल देनेवाले देवता ! आपकी जय हो। यह भयंकर संसार-सागर सर्वथा निःसार है। इसमें दुःखमय फेन भरा हुआ है। यह क्रोधरूपी ग्राहसे पूर्ण है। इसमें विषयरूपी जलराशि भरी हुई है। भाँति-भाँतिके रोग ही इसमे उठती हुई लहरें हैं। मोहरूपी भँवरोंके कारण यह अत्यन्त दुस्तर जान पड़ता है। सुरश्रेष्ठ ! मैं इस संसाररूपी घोर समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। पुरुषोत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये।'

मोहिनी ! इस प्रकार प्रार्थना करके जो देवेश्वर, वरदायक, भक्तवत्सल, सर्वपापहारी, द्युतिमान्, सम्पूर्ण कमनीय फलोंके दाता, मोटे कंधे और दो भुजाओंवाले, श्यामवर्ण, कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले, चौड़ी छाती, विशाल भुजा, पीत वस्त्र और सुन्दर मुखवाले, शङ्ख-चक्र-गदाधर, मुकुटाङ्गद-भूपित, समस्त शुभलक्षणोंसे युक्त और वनमाला-विभूषित भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करके हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करता है, वह हजारों अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। सब तीर्थोंमें स्नान और दान करनेका अथवा सम्पूर्ण वेदोंके स्वाध्याय तथा समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानका जो फल है, उसी-को मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन और प्रणाम करके पा लेता है। सब प्रकारके दान, व्रत और नियमोंका पालन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, अथवा ब्रह्मचर्य-व्रतका

पर धारण करनेवाले शेषजी ! आपको नमस्कार है । प्रलम्ब-शत्रो ! आपको नमस्कार है । श्रीकृष्णके अग्रज ! मेरी रक्षा कीजिये ।'

इस प्रकार कैलासशिखरके समान गौर शरीर तथा चन्द्रमासे भी कमनीय श्रेष्ठ मुखवाले, नीलवस्त्रधारी, देवपूजित, अनन्त, अजेय, एक कुण्डलसे विभूपित और फणोंके द्वारा विकट मस्तकवाले रोहिणीनन्दन महाबली हलधरको भक्ति-पूर्वक प्रसन्न करे । ऐसा करनेवाला पुरुष मनोवाञ्छित फल पाता है और समस्त पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है । बलरामजीकी पूजाके पश्चात् विद्वान् पुरुष एकाग्रचित्त हो द्वादशाक्षर-मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) से भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे । जो धीर पुरुष द्वादशाक्षर-मन्त्रसे भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी सदा पूजा करते हैं, वे मोक्षको प्राप्त होते हैं । मोहिनी ! देवता, योगी तथा सोम-पान करनेवाले याज्ञिक भी उस गतिको नहीं पाते, जिसे द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करनेवाले पुरुष प्राप्त करते हैं । अतः उसी मन्त्रसे भक्तिपूर्वक गन्ध-पुष्प आदि सामग्रियोंद्वारा जगद्गुरु श्रीकृष्णकी पूजा करके उन्हें प्रणाम करे । तत्पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन ।
जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिषूदन ॥
जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर ।
जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद ॥
जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन ।
जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद ॥
संसारसागरे घोरे निःसारे दुःखफेनिले
क्रोधग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसम्प्लवे ॥
नानारोगोर्मिकलिले मोहावर्तसुदुस्तरे ।
निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥

(ना०\उत्तर० ५५ । ४४—४८)

'जगन्नाथ श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो । सब पापोंका नाश करनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो । चाणूर और केशीके नाशक ! आपकी जय हो । कंसनाशन ! आपकी जय हो । कमललोचन ! आपकी जय हो । चक्रगदाधर ! आपकी जय हो । नील मेघके समान श्यामवर्ण ! आपकी जय हो । सबको सुख देनेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो । जगत्पूज्य देव ! आपकी जय हो । संसारसंहारक ! आपकी जय हो । लोकपते ! नाथ ! आपकी जय हो । मनोवाञ्छित फल देनेवाले देवता ! आपकी जय हो । यह भयंकर संसार-सागर सर्वथा निःसार है । इसमें दुःखमय फेन भरा हुआ है । यह क्रोधरूपी ग्राहसे पूर्ण है । इसमें विषयरूपी जलराशि भरी हुई है । भाँति-भाँतिके रोग ही इसमें उठती हुई लहरें हैं । मोहरूपी भँवरोंके कारण यह अत्यन्त दुस्तर जान पड़ता है । सुरश्रेष्ठ ! मैं इस संसाररूपी घोर समुद्रमें डूबा हुआ हूँ । पुरुषोत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये ।'

मोहिनी ! इस प्रकार प्रार्थना करके जो देवेश्वर, वरदायक, भक्तवत्सल, सर्वपापहारी, द्युतिमान्, सम्पूर्ण कमनीय फलोंके दाता, मोटे कंधे और दो भुजाओंवाले, श्यामवर्ण, कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले, चौड़ी छाती, विशाल भुजा, पीत वस्त्र और सुन्दर मुखवाले, शङ्ख-चक्र-गदाधर, मुकुटाङ्गद-भूषित, समस्त शुभलक्षणोंसे युक्त और वनमाला-विभूषित भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करके हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करता है, वह हजारों अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है । सब तीर्थोंमें स्नान और दान करनेका अथवा सम्पूर्ण वेदोंके स्वाध्याय तथा समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानका जो फल है, उसी-को मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन और प्रणाम करके पा लेता है । सब प्रकारके दान, व्रत और नियमोंका पालन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, अथवा ब्रह्मचर्य-व्रतका

किया हुआ कवच भूत, पिशाच, राक्षस, अन्यान्य लुटेरे तथा देवताओं और असुरोंके लिये भी अभेद्य होता है। ब्रह्मपुत्री मोहिनी! सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंके दाता महापराक्रमी नृसिंहजीकी सदा भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। शुभे! भगवान् नृसिंहका दर्शन, स्तवन, नमस्कार और पूजन करके मनुष्य राज्य, स्वर्ग तथा दुर्लभ मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं। भगवान् नृसिंहका दर्शन करके मनुष्यको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है तथा वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो भक्तिपूर्वक नृसिंहरूपधारी भगवान्‌का एक बार भी दर्शन कर लेता है, वह मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है। दुर्गम संकटमें, चोर और व्याघ्र आदिकी पीड़ा उपस्थित होनेपर, दुर्गम प्रदेशमें, प्राणसंकटके समय, विष, अग्नि और जलसे भय होनेपर, राजा आदिसे भय प्राप्त होनेपर, घोर संग्राममें और ग्रह तथा रोग आदिकी पीड़ा प्राप्त होनेपर जो पुरुष भगवान् नृसिंहका स्मरण करता है, वह संकटोंसे छूट जाता है। जैसे सूर्योदय होनेपर भारी अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् नृसिंहका दर्शन होनेपर सब प्रकारके उपद्रव मिट जाते हैं। भगवान् नृसिंहके प्रसन्न होनेपर गुटिका, अञ्जन, पातालप्रवेश, पैरोंमें लगाने योग्य दिव्यलेप, दिव्य रसायन तथा अन्य मनोवाञ्छित पदार्थ भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। मानव जिन-जिन कामनाओंका चिन्तन करते हुए भगवान् नृसिंहका भजन करता है, उन-उनको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

श्वेतमाधव, मत्स्यमाधव, कल्पवृक्ष और अष्टाक्षर-मन्त्र, स्नान, तर्पण आदिकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—महाभागे! उस पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें तीर्थोंका समुदायरूप एक दूसरा तीर्थ है, जो परम पुण्यमय तथा दर्शनमात्रसे पापोंका नाश करनेवाला है, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। उस तीर्थके आराध्य हैं—अनन्त नामक वासुदेव। उनका भक्तिपूर्वक दर्शन और प्रणाम करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो परम पदको प्राप्त होता है। जो मनुष्य श्वेतगङ्गामें स्नान करके श्वेतमाधव तथा मत्स्यमाधवका दर्शन करता है, वह श्वेतद्वीपमें जाता है। जो हिमके समान श्वेतवर्ण और शुद्ध हैं, जिन्होंने शङ्ख, चक्र और गदा धारण कर रक्खे हैं, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे संयुक्त तथा विकसित कमलके समान विशाल नेत्रवाले हैं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो अत्यन्त प्रसन्न एवं चार भुजाधारी हैं, जिनका वक्षःस्थल वनमालासे अलंकृत है, जो माथेपर मुकुट और भुजाओंमें अङ्गद धारण करते हैं, जिनके कंधे हृष्ट-पुष्ट हैं और जो पीताम्बरधारी तथा कुण्डलोंसे अलंकृत हैं, उन भगवान् (श्वेतमाधव)का जो लोग कुशके अग्रभागसे भी स्पर्श कर लेते हैं, वे एकाग्रचित्त विष्णुभक्त मानव दिव्यलोकमें जाते हैं। जो शङ्ख, गोदुग्ध और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्तिवाली सर्वपापहारिणी माधव नामक प्रतिमाका दर्शन करता है तथा विकसित कमलके सदृश नेत्रवाली उस भगवन्मूर्तिको एक बार भक्तिभावसे प्रणाम कर लेता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

श्वेतमाधवका दर्शन करके उनके समीप ही मत्स्यमाधवका दर्शन करे। वे ही पूर्वकालमें एकार्णवके जलमें मत्स्यरूप धारण करके प्रकट हुए और वेदोंका उद्धार करनेके लिये रसातलमें स्थित थे। पहले पृथ्वीका चिन्तन करके प्रतिष्ठित हुए भगवान् मत्स्यावतारका चिन्तन करना चाहिये। भगवान् लक्ष्मीपति तरुणावस्थासे युक्त मत्स्यमाधवका रूप धारण करके विराज रहे हैं। जो पवित्रचित्त होकर उन्हें प्रणाम करता है, वह सब प्रकारके क्लेशोंसे छूट जाता है और उस परमधामको जाता है, जहाँ साक्षात् श्रीहरि विराजमान हैं।

शुभे! अब मैं मार्कण्डेय-सरोवर एवं समुद्रमें मार्जन आदिकी विधि बतलाता हूँ। तुम भक्तिभावसे तन्मय होकर पुण्य एवं मुक्ति देनेवाले इस पुराण-प्रसङ्गको सुनो। मार्कण्डेय-सरोवरमें सब समय स्नान उत्तम माना गया है, किंतु चतुर्दशीको उसका विशेष माहात्म्य है, उस दिनका स्नान सब पापोंका नाश करनेवाला है। उसी प्रकार समुद्रका स्नान हर समय उत्तम बताया गया है, किंतु पूर्णिमाको उस स्नानका विशेष महत्त्व है। उस दिन समुद्र-स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जब ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्र हो उस समय परम कल्याणमय तीर्थराज समुद्रमें स्नान करनेके लिये विशेषरूपसे जाना चाहिये। समुद्र-स्नानके लिये जाते समय मन, वाणी, शरीरसे शुद्ध रहना चाहिये। भीतरका भाव भी शुद्ध हो, मन भगवत्-चिन्तनके सिवा अन्यत्र न जाय। सब प्रकारके

किया हुआ कवच भूत, पिशाच, राक्षस, अन्यान्य लुटेरे तथा देवताओं और असुरोंके लिये भी अभेद्य होता है। ब्रह्मपुत्री मोहिनी! सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंके दाता महापराक्रमी नृसिंहजीकी सदा भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। शुभे! भगवान् नृसिंहका दर्शन, स्तवन, नमस्कार और पूजन करके मनुष्य राज्य, स्वर्ग तथा दुर्लभ मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं। भगवान् नृसिंहका दर्शन करके मनुष्यको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है तथा वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो भक्तिपूर्वक नृसिंहरूपधारी भगवान्का एक बार भी दर्शन कर लेता है, वह मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है। दुर्गम संकटमें, चोर और व्याघ्र आदिकी पीडा उपस्थित होनेपर, दुर्गम प्रदेशमें, प्राणसंकटके समय, विष, अग्नि और जलसे भय होनेपर, राजा आदिसे भय प्राप्त होनेपर, घोर संग्राममें और ग्रह तथा रोग आदिकी पीड़ा प्राप्त होनेपर जो पुरुष भगवान् नृसिंहका स्मरण करता है, वह संकटोंसे छूट जाता है। जैसे सूर्योदय होनेपर भारी अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् नृसिंहका दर्शन होनेपर सब प्रकारके उपद्रव मिट जाते हैं। भगवान् नृसिंहके प्रसन्न होनेपर गुटिका, अञ्जन, पातालप्रवेश, पैरोंमें लगाने योग्य दिव्यलेप, दिव्य रसायन तथा अन्य मनोवाञ्छित पदार्थ भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। मानव जिन-जिन कामनाओंका चिन्तन करते हुए भगवान् नृसिंहका भजन करता है, उन-उनको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

श्वेतमाधव, मत्स्यमाधव, कल्पवृक्ष और अष्टाक्षर-मन्त्र, स्नान, तर्पण आदिकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—महाभागे! उस पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें तीर्थोंका समुदायरूप एक दूसरा तीर्थ है, जो परम पुण्यमय तथा दर्शनमात्रसे पापोंका नाश करनेवाला है, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। उस तीर्थके आराध्य हैं—अनन्त नामक वासुदेव। उनका भक्तिपूर्वक दर्शन और प्रणाम करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो परम पदको प्राप्त होता है। जो मनुष्य श्वेतगङ्गामें स्नान करके श्वेतमाधव तथा मत्स्यमाधवका दर्शन करता है, वह श्वेतद्वीपमें जाता है। जो हिमके समान श्वेतवर्ण और शुद्ध हैं, जिन्होंने शङ्ख, चक्र और गदा धारण कर रक्खे हैं, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे संयुक्त तथा विकसित कमलके समान विशाल नेत्रवाले हैं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो अत्यन्त प्रसन्न एवं चार भुजाधारी हैं, जिनका वक्षःस्थल वनमालासे अलंकृत है, जो माथेपर मुकुट और भुजाओंमें अङ्गद धारण करते हैं, जिनके कंधे हृष्ट-पुष्ट हैं और जो पीताम्बरधारी तथा कुण्डलोंसे अलंकृत हैं, उन भगवान् (श्वेतमाधव)का जो लोग कुशके अग्रभागसे भी स्पर्श कर लेते हैं, वे एकाग्रचित्त विष्णुभक्त मानव दिव्यलोकमें जाते हैं। जो शङ्ख, गोदुग्ध और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्तिवाली सर्वपापहारिणी माधव नामक प्रतिमाका दर्शन करता है तथा विकसित कमलके सदृश नेत्रवाली उस भगवन्मूर्तिको एक बार भक्तिभावसे प्रणाम कर लेता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

श्वेतमाधवका दर्शन करके उनके समीप ही मत्स्यमाधवका दर्शन करे। वे ही पूर्वकालमें एकार्णवके जलमें मत्स्यरूप धारण करके प्रकट हुए और वेदोंका उद्धार करनेके लिये रसातलमें स्थित थे। पहले पृथ्वीका चिन्तन करके प्रतिष्ठित हुए भगवान् मत्स्यावतारका चिन्तन करना चाहिये। भगवान् लक्ष्मीपति तरुणावस्थासे युक्त मत्स्यमाधवका रूप धारण करके विराज रहे हैं। जो पवित्रचित्त होकर उन्हें प्रणाम करता है, वह सब प्रकारके क्लेशोंसे छूट जाता है और उस परमधामको जाता है, जहाँ साक्षात् श्रीहरि विराजमान हैं।

शुभे! अब मैं मार्कण्डेय-सरोवर एव समुद्रमें मार्जन आदिकी विधि बतलाता हूँ। तुम भक्तिभावसे तन्मय होकर पुण्य एवं मुक्ति देनेवाले इस पुराण-प्रसङ्गको सुनो। मार्कण्डेय-सरोवरमें सब समय स्नान उत्तम माना गया है, किंतु चतुर्दशीको उसका विशेष माहात्म्य है, उस दिनका स्नान सब पापोंका नाश करनेवाला है। उसी प्रकार समुद्रका स्नान हर समय उत्तम बताया गया है, किंतु पूर्णिमाको उस स्नानका विशेष महत्त्व है। उस दिन समुद्र-स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जब ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्र हो उस समय परम कल्याणमय तीर्थराज समुद्रमें स्नान करनेके लिये विशेषरूपसे जाना चाहिये। समुद्र-स्नानके लिये जाते समय मन, वाणी, शरीरसे शुद्ध रहना चाहिये। भीतरका भाव भी शुद्ध हो, मन भगवत्-चिन्तनके सिवा अन्यत्र न जाय। सब प्रकारके

एकाग्रचित्तसे खड़ा होकर जप करे। फिर सूर्यकी प्रदक्षिणा और उन्हें नमस्कार करके पूर्वाभिमुख बैठकर स्वाध्याय करे। उसके बाद देवता और ऋषियोंका तर्पण करके दिव्य मनुष्यों और पितरोंका भी तर्पण करे। मन्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि चित्तको एकाग्र करके तिलमिश्रित जलके द्वारा नाम-गोत्रोच्चारणपूर्वक पितरोंकी विधिवत् तृप्ति करे। श्राद्धमें और हवनकालमें एक हाथसे सब वस्तुएँ अर्पित करे, परंतु तर्पणमें दोनों हाथोंका उपयोग करना चाहिये। यही सनातन विधि है। बायें और दायें हाथकी सम्मिलित अञ्जलिसे नाम और गोत्रके उच्चारणपूर्वक 'तृप्यताम्' कहे और मौनभावसे जल दे*। यदि दाता जलमें स्थित होकर पृथ्वीपर जल दे अथवा पृथ्वीपर खड़ा होकर जलमें तर्पणका जल डाले तो वह जल पितरोंतक नहीं पहुँचता। जो जल पृथ्वीपर नहीं दिया जाता, वह पितरोंको नहीं प्राप्त होता। ब्रह्माजीने पितरोंके लिये अक्षय स्थानके रूपमें पृथ्वी ही दी है। अतः पितरोंकी प्रीति चाहनेवाले मनुष्योंको पृथ्वीपर ही जल देना चाहिये। पितर भूमिपर ही उत्पन्न हुए, भूमिपर ही रहे और भूमिमें ही उनके शरीरका लय हुआ; अतः भूमिपर ही उनके लिये जल देना चाहिये। अग्रभाग-सहित कुशोंको बिछाकर उसपर मन्त्रोंद्वारा देवताओं और पितरोंका आवाहन करना चाहिये। पूर्वाग्र कुशोंपर देवताओंका और दक्षिणाग्र कुशोंपर पितरोंका आवाहन करना उचित है।

भगवान् नारायणके पूजनकी विधि

पुरोहित वसु कहते हैं—ब्रह्मपुत्री मोहिनी! देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा अन्य प्राणियोंका तर्पण करनेके पश्चात् मौनभावसे आचमन करके समुद्रके तटपर एक चौकोर मण्डप बनाये। उसमें चार दरवाजे रक्खे। उसकी लंबाई-चौड़ाई एक हाथकी होनी चाहिये। मण्डप बहुत सुन्दर बनाया जाय। इस प्रकार मण्डप बनाकर उसके भीतर कर्णिकासहित अष्टदल कमल अङ्कित करे। उसमें अष्टाक्षर-मन्त्रकी विधिसे अजन्मा भगवान् नारायणका पूजन करे। हृदयमें उत्तम ज्योतिःस्वरूप ॐकारका चिन्तन करके कमलकी कर्णिकामें विराजमान ज्योतिःस्वरूप सनातन विष्णुका ध्यान करे; फिर अष्टदल कमलके प्रत्येक दलमें क्रमशः मन्त्रके एक-एक अक्षरका न्यास करे। मन्त्रके एक-एक अक्षरद्वारा अथवा सम्पूर्ण मन्त्र-द्वारा भी पूजन करना उत्तम माना गया है। सनातन परमात्मा विष्णुका द्वादशाक्षर-मन्त्रसे पूजन करे। तदनन्तर हृदयके भीतर भगवान्‌का ध्यान करके बाहर कमलकी कर्णिकामें भी उनकी भावना करे। भगवान्‌की चार भुजाएँ हैं। वे महान् सत्त्वमय हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा कोटि-कोटि सूर्योंके समान है। वे महायोगस्वरूप हैं। इस प्रकार उनका चिन्तन करके क्रमशः आवाहन आदि उपचारद्वारा पूजन करे।

आवाहन-मन्त्र

मीनरूपो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ॥
आयातु देवो वरदो मम नारायणोऽग्रतः ।
ॐ नमो नारायणाय नमः
(ना० उत्तर० ५७ । २६-२७)

'मीन, वराह, नृसिंह एवं वामनअवतारधारी वरदायक देवता भगवान् नारायण मेरे सम्मुख पधारें। सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

आसन-मन्त्र

कर्णिकायां सुपीठेऽत्र पद्मकल्पितमासनम् ॥
सर्वसत्त्वहितार्थाय तिष्ठ त्वं मधुसूदन ।
ॐ नमो नारायणाय नमः
(ना० उत्तर० ५७ । २७-२८)

'यहाँ कमलकी कर्णिकामें सुन्दर पीठपर कमलका आसन बिछा हुआ है। मधुसूदन! सब प्राणियोंका हित करनेके लिये आप इसपर विराजमान हों। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

---

* श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत्। तर्पणे तूभय कुर्यादेष एव विधिः सदा ॥
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः ॥
(ना० उत्तर० ५६ । ६२—६४)

एकाग्रचित्तसे खड़ा होकर जप करे। फिर सूर्यकी प्रदक्षिणा और उन्हें नमस्कार करके पूर्वाभिमुख बैठकर स्वाध्याय करे। उसके बाद देवता और ऋषियोंका तर्पण करके दिव्य मनुष्यों और पितरोंका भी तर्पण करे। मन्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि चित्तको एकाग्र करके तिलमिश्रित जलके द्वारा नाम-गोत्रोच्चारणपूर्वक पितरोंकी विधिवत् तृप्ति करे। श्राद्धमें और हवनकालमें एक हाथसे सब वस्तुएँ अर्पित करे, परंतु तर्पणमें दोनों हाथोंका उपयोग करना चाहिये। यही सनातन विधि है। बायें और दायें हाथकी सम्मिलित अञ्जलिसे नाम और गोत्रके उच्चारणपूर्वक 'तृप्यताम्' कहे और मौनभावसे जल दे*। यदि दाता जलमें स्थित होकर पृथ्वीपर जल दे अथवा पृथ्वीपर खड़ा होकर जलमें तर्पणका जल डाले तो वह जल पितरोंतक नहीं पहुँचता। जो जल पृथ्वीपर नहीं दिया जाता, वह पितरोंको नहीं प्राप्त होता। ब्रह्माजीने पितरोंके लिये अक्षय स्थानके रूपमें पृथ्वी ही दी है। अतः पितरोंकी प्रीति चाहनेवाले मनुष्योंको पृथ्वीपर ही जल देना चाहिये। पितर भूमिपर ही उत्पन्न हुए, भूमिपर ही रहे और भूमिमें ही उनके शरीरका लय हुआ; अतः भूमिपर ही उनके लिये जल देना चाहिये। अग्रभाग-सहित कुशोंको बिछाकर उसपर मन्त्रोंद्वारा देवताओं और पितरोंका आवाहन करना चाहिये। पूर्वाग्र कुशोंपर देवताओंका और दक्षिणाग्र कुशोंपर पितरोंका आवाहन करना उचित है।

भगवान् नारायणके पूजनकी विधि

पुरोहित वसु कहते हैं—ब्रह्मपुत्री मोहिनी! देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा अन्य प्राणियोंका तर्पण करनेके पश्चात् मौनभावसे आचमन करके समुद्रके तटपर एक चौकोर मण्डप बनाये। उसमें चार दरवाजे रक्खे। उसकी लंबाई-चौड़ाई एक हाथकी होनी चाहिये। मण्डप बहुत सुन्दर बनाया जाय। इस प्रकार मण्डप बनाकर उसके भीतर कर्णिकासहित अष्टदल कमल अङ्कित करे। उसमें अष्टाक्षर-मन्त्रकी विधिसे अजन्मा भगवान् नारायणका पूजन करे। हृदयमें उत्तम ज्योतिःस्वरूप ॐकारका चिन्तन करके कमलकी कर्णिकामें विराजमान ज्योतिःस्वरूप सनातन विष्णुका ध्यान करे; फिर अष्टदल कमलके प्रत्येक दलमें क्रमशः मन्त्रके एक-एक अक्षरका न्यास करे। मन्त्रके एक-एक अक्षरद्वारा अथवा सम्पूर्ण मन्त्र-द्वारा भी पूजन करना उत्तम माना गया है। सनातन परमात्मा विष्णुका द्वादशाक्षर-मन्त्रसे पूजन करे। तदनन्तर हृदयके भीतर भगवान्‌का ध्यान करके बाहर कमलकी कर्णिकामें भी उनकी भावना करे। भगवान्‌की चार भुजाएँ हैं। वे महान् सत्त्वमय हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा कोटि-कोटि सूर्योंके समान है। वे महायोगस्वरूप हैं। इस प्रकार उनका चिन्तन करके क्रमशः आवाहन आदि उपचारद्वारा पूजन करे।

आवाहन-मन्त्र

मीनरूपो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ॥
आयातु देवो वरदो मम नारायणोऽग्रतः ।
ॐ नमो नारायणाय नमः
(ना० उत्तर० ५७ । २६-२७)

'मीन, वराह, नृसिंह एवं वामनअवतारधारी वरदायक देवता भगवान् नारायण मेरे सम्मुख पधारें। सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

आसन-मन्त्र

कर्णिकायां सुपीठेऽत्र पद्मकल्पितमासनम् ॥
सर्वसत्त्वहितार्थाय तिष्ठ त्वं मधुसूदन ।
ॐ नमो नारायणाय नमः
(ना० उत्तर० ५७ । २७-२८)

'यहाँ कमलकी कर्णिकामें सुन्दर पीठपर कमलका आसन बिछा हुआ है। मधुसूदन! सब प्राणियोंका हित करनेके लिये आप इसपर विराजमान हों। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

* श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत्। तर्पणे तूभय कुर्यादेष एव विधिः सदा ॥
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः ॥
(ना० उत्तर० ५६ । ६२—६४)

पूर्वोक्त अष्टदलकमलके पूर्व दलमें भगवान् वासुदेवका और दक्षिण दलमें श्रीसंकर्षणका न्यास करे। पश्चिम दलमें प्रद्युम्नका तथा उत्तर दलमें अनिरुद्धका न्यास करे। अग्निकोण-वाले दलमें भगवान् वराहका तथा नैर्ऋत्य दलमें नृसिंहका न्यास करे। वायव्य दलमें माधवका तथा ईशान दलमें भगवान् त्रिविक्रमका न्यास करे। अष्टाक्षर देवस्वरूप भगवान् विष्णुके सम्मुख गरुड़जीकी स्थापना करनी चाहिये। भगवान्-के वामभागमें चक्र और दक्षिणभागमें शङ्खकी स्थापना करे। इसी प्रकार उनके दक्षिणभागमें महागदा कौमोदकी और वामभागमें शार्ङ्गनामक धनुषको स्थापित करे। दक्षिणभागमें दो दिव्य तरकस और वामभागमें खड्गका न्यास करे। फिर दक्षिणभागमें श्रीदेवी और वामभागमें पुष्टिदेवीकी स्थापना करे। भगवान्‌के सम्मुख वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ रक्खे; फिर पूर्व आदि चारों दिशाओंमें हृदय आदिका न्यास करे। कोणमे देवदेव विष्णुके अस्त्रका न्यास करे। पूर्व आदि आठ दिशाओंमें तथा नीचे और ऊपर क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, अनन्त तथा ब्रह्माजीका उनके नाममन्त्रोंद्वारा पूजन करे। इसी विधिसे पूजित मण्डलस्थ भगवान् जनार्दनका जो दर्शन करता है, वह भी अविनाशी विष्णुमें प्रवेश करता है। जिसने उपर्युक्त विधिसे एक बार भी श्रीकेशवका पूजन किया है, वह जन्म, मृत्यु और जरावस्थाको लाँघकर भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त होता है। जो आलस्य छोड़कर निरन्तर भक्तिभावसे भगवान् नारायणका स्मरण करता है, उसके नित्य निवासके लिये श्वेतद्वीप बताया गया है। नमः सहित ॐकार जिसके आदिमें है और जो अन्तमें भी नमः पदसे सुशोभित है, ऐसा नारायणका 'नारायण' नाम सम्पूर्ण तत्त्वोंका प्रकाशक मन्त्र कहलाता है। (उसका स्वरूप है—ॐ नमो नारायणाय नमः) इसी विधिसे प्रत्येकको गन्ध-पुष्प आदि वस्तुएँ क्रमशः निवेदन करनी चाहिये। इसी क्रमसे आठ मुद्राएँ बाँधकर दिखावे। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता पुरुष 'ॐ नमो नारायणाय' इस मूलमन्त्रका एक सौ आठ बार या अट्ठाईस बार अथवा आठ बार जप करे। किसी कामनाके लिये जप करना हो तो उसके लिये शास्त्रोंमें जितना बताया गया हो, उतनी संख्यामें जप करे अथवा निष्कामभावसे जितना हो सके उतना एकाग्र चित्तसे जप करे। पद्म, शङ्ख, श्रीवत्स, गदा, गरुड़, चक्र, खड्ग और शार्ङ्गधनुष—ये आठ मुद्राएँ बतायी गयी हैं।

शुभे! जो लोग शास्त्रोक्त मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिकी पूजाका विधान न जानते हों वे 'ॐ नमो नारायणाय' इस मूल-मन्त्रसे ही सदा भगवान् अच्युतका पूजन करें।

समुद्र-स्नानकी महिमा और श्रीकृष्ण-बलराम आदिके दर्शन आदिकी महिमा तथा श्रीकृष्णसे जगत्-सृष्टिका कथन एवं श्रीराधाकृष्णके उत्कृष्ट स्वरूपका प्रतिपादन

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! इस प्रकार भक्ति-पूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी विधिवत् पूजा करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाये। फिर समुद्रसे प्रार्थना करे—

प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरितां पते।
तीर्थराज नमस्तेऽस्तु त्राहि मामच्युतप्रिय॥

(ना० उत्तर० ५८। २)

'सरिताओंके स्वामी तीर्थराज! आप सम्पूर्ण भूतोंके प्राण और योनि हैं। आपको नमस्कार है। अच्युतप्रिय! मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार उस उत्तम क्षेत्र समुद्रमें भलीभाँति स्नान करके तटपर अविनाशी भगवान् नारायणकी विधिपूर्वक पूजा करे। तदनन्तर समुद्रको प्रणाम करके बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्राके चरणोंमें मस्तक झुकाना चाहिये। ऐसा करने-वाला मानव सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है और सब पापोंसे मुक्त हो सब प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है। अन्तमें सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर बैठकर श्रीविष्णुलोकमें जाता है। ग्रहण, संक्रान्ति, अयनारम्भ, विषुवयोग, युगादि तिथि, मन्वादि तिथि, व्यतीपातयोग, तिथिक्षय, आषाढ़, कार्तिक और माघकी पूर्णिमा तथा अन्य शुभ तिथियोंमें जो उत्तम बुद्धिवाले पुरुष वहाँ ब्राह्मणोंको दान देते हैं, वे अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा हजार गुना फल पाते हैं। जो लोग वहाँ विधिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान देते हैं, उनके पितर अक्षय तृप्ति लाभ करते हैं।

देवि! इस प्रकार मैंने समुद्रमें स्नान, दान एवं पिण्डदान करनेका फल बतलाया। यह धर्म, अर्थ एवं मोक्षरूप फल देनेवाला, आयु, कीर्ति तथा यशको बढ़ानेवाला, मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाला तथा उनके बुरे स्वप्नोंका नाश करनेवाला धन्य साधन है। यह सब पापोंको दूर करनेवाला, पवित्र तथा इच्छानुसार सब फलोंको देनेवाला है। इस पृथ्वीपर जितने तीर्थ, नदियाँ और सरोवर हैं, वे सब समुद्रमें

पूर्वोक्त अष्टदलकमलके पूर्व दलमें भगवान् वासुदेवका और दक्षिण दलमें श्रीसंकर्षणका न्यास करे। पश्चिम दलमें प्रद्युम्नका तथा उत्तर दलमें अनिरुद्धका न्यास करे। अग्निकोण-वाले दलमें भगवान् वराहका तथा नैर्ऋत्य दलमें नृसिंहका न्यास करे। वायव्य दलमें माधवका तथा ईशान दलमें भगवान् त्रिविक्रमका न्यास करे। अष्टाक्षर देवस्वरूप भगवान् विष्णुके सम्मुख गरुड़जीकी स्थापना करनी चाहिये। भगवान्-के वामभागमें चक्र और दक्षिणभागमें शङ्खकी स्थापना करे। इसी प्रकार उनके दक्षिणभागमें महागदा कौमोदकी और वामभागमें शार्ङ्गनामक धनुषको स्थापित करे। दक्षिणभागमें दो दिव्य तरकस और वामभागमें खड्गका न्यास करे। फिर दक्षिणभागमें श्रीदेवी और वामभागमें पुष्टिदेवीकी स्थापना करे। भगवान्‌के सम्मुख वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ रक्खे; फिर पूर्व आदि चारों दिशाओंमें हृदय आदिका न्यास करे। कोणमे देवदेव विष्णुके अस्त्रका न्यास करे। पूर्व आदि आठ दिशाओंमें तथा नीचे और ऊपर क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, अनन्त तथा ब्रह्माजीका उनके नाममन्त्रोंद्वारा पूजन करे। इसी विधिसे पूजित मण्डलस्थ भगवान् जनार्दनका जो दर्शन करता है, वह भी अविनाशी विष्णुमें प्रवेश करता है। जिसने उपर्युक्त विधिसे एक बार भी श्रीकेशवका पूजन किया है, वह जन्म, मृत्यु और जरावस्थाको लाँघकर भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त होता है। जो आलस्य छोड़कर निरन्तर भक्तिभावसे भगवान् नारायणका स्मरण करता है, उसके नित्य निवासके लिये श्वेतद्वीप बताया गया है। नमः सहित ॐकार जिसके आदिमें है और जो अन्तमें भी नमः पदसे सुशोभित है, ऐसा नारायणका 'नारायण' नाम सम्पूर्ण तत्त्वोंका प्रकाशक मन्त्र कहलाता है। (उसका स्वरूप है—ॐ नमो नारायणाय नमः) इसी विधिसे प्रत्येकको गन्ध-पुष्प आदि वस्तुएँ क्रमशः निवेदन करनी चाहिये। इसी क्रमसे आठ मुद्राएँ बाँधकर दिखावे। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता पुरुष 'ॐ नमो नारायणाय' इस मूलमन्त्रका एक सौ आठ बार या अट्ठाईस बार अथवा आठ बार जप करे। किसी कामनाके लिये जप करना हो तो उसके लिये शास्त्रोंमें जितना बताया गया हो, उतनी संख्यामें जप करे अथवा निष्कामभावसे जितना हो सके उतना एकाग्र चित्तसे जप करे। पद्म, शङ्ख, श्रीवत्स, गदा, गरुड़, चक्र, खड्ग और शार्ङ्गधनुष—ये आठ मुद्राएँ बतायी गयी हैं।

शुभे! जो लोग शास्त्रोक्त मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिकी पूजाका विधान न जानते हों वे 'ॐ नमो नारायणाय' इस मूल-मन्त्रसे ही सदा भगवान् अच्युतका पूजन करें।

समुद्र-स्नानकी महिमा और श्रीकृष्ण-बलराम आदिके दर्शन आदिकी महिमा तथा श्रीकृष्णसे जगत्-सृष्टिका कथन एवं श्रीराधाकृष्णके उत्कृष्ट स्वरूपका प्रतिपादन

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! इस प्रकार भक्ति-पूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी विधिवत् पूजा करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाये। फिर समुद्रसे प्रार्थना करे—

प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरितां पते।
तीर्थराज नमस्तेऽस्तु त्राहि मामच्युतप्रिय॥

(ना० उत्तर० ५८। २)

'सरिताओंके स्वामी तीर्थराज! आप सम्पूर्ण भूतोंके प्राण और योनि हैं। आपको नमस्कार है। अच्युतप्रिय! मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार उस उत्तम क्षेत्र समुद्रमें भलीभाँति स्नान करके तटपर अविनाशी भगवान् नारायणकी विधिपूर्वक पूजा करे। तदनन्तर समुद्रको प्रणाम करके बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्राके चरणोंमें मस्तक झुकाना चाहिये। ऐसा करने-वाला मानव सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है और सब पापोंसे मुक्त हो सब प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है। अन्तमें सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर बैठकर श्रीविष्णुलोकमें जाता है। ग्रहण, संक्रान्ति, अयनारम्भ, विषुवयोग, युगादि तिथि, मन्वादि तिथि, व्यतीपातयोग, तिथिक्षय, आषाढ़, कार्तिक और माघकी पूर्णिमा तथा अन्य शुभ तिथियोंमें जो उत्तम बुद्धिवाले पुरुष वहाँ ब्राह्मणोंको दान देते हैं, वे अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा हजार गुना फल पाते हैं। जो लोग वहाँ विधिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान देते हैं, उनके पितर अक्षय तृप्ति लाभ करते हैं।

देवि! इस प्रकार मैंने समुद्रमें स्नान, दान एवं पिण्डदान करनेका फल बतलाया। यह धर्म, अर्थ एवं मोक्षरूप फल देनेवाला, आयु, कीर्ति तथा यशको बढ़ानेवाला, मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाला तथा उनके बुरे स्वप्नोंका नाश करनेवाला धन्य साधन है। यह सब पापोंको दूर करनेवाला, पवित्र तथा इच्छानुसार सब फलोंको देनेवाला है। इस पृथ्वीपर जितने तीर्थ, नदियाँ और सरोवर हैं, वे सब समुद्रमें

इन चौदह भुवनोंसे युक्त ब्रह्माण्ड बताया गया है। ब्रह्माजीने इस चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्डमें समस्त चराचर भूतोंकी सृष्टि की है। ब्रह्माजीके मनसे चार सनकादि महात्मा उत्पन्न हुए हैं। देवि! ब्रह्माजीके शरीरसे भृगु आदि पुत्र उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने इस जगत्को बढ़ाया है।

पुरोहित वसु कहते हैं—महाभागे! वे जो निरञ्जन, सच्चिदानन्दस्वरूप, ज्योतिर्मय, जनार्दन भगवान् श्रीकृष्ण हैं, उनका लक्षण सुनो। वे सर्वव्यापी हैं और ज्योतिर्मय गोलोकके भीतर नित्य निवास करते हैं। एकमात्र श्रीकृष्ण ही दृश्य तथा अदृश्यरूपधारी परब्रह्म हैं। मोहिनी! गोलोकमें गौएँ, गोप और गोपियाँ हैं। वहाँ वृन्दावन, सैकड़ों शिखरोंवाला गोवर्धन पर्वत, विरजा नदी, नाना वृक्ष, भाँति-भाँतिके पक्षी आदि वस्तुएँ विद्यमान हैं। विधिनन्दिनी! जबतक प्रकृति जागती है, तबतक गोलोकमें सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्यक्षरूपसे ही विराजमान होते हैं। प्रलयकालमें गौएँ आदि सो जाती हैं, अतः वे परमात्माको नहीं जान पातीं। वे परमात्मा तेजःपुञ्जके भीतर कमनीय शरीर धारण करके किशोररूपसे विराजमान होते हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति मेघके समान श्याम है। उन्होंने रेशमी पीताम्बर धारण कर रक्खा है। उनके दो हाथ हैं। हाथमें मुरली सुशोभित है। वे भगवान् किरीट-कुण्डल आदिसे विभूषित हैं। श्रीराधा उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हैं। श्रीराधिकाजी उनकी आराधिका हैं। उनका वर्ण सुवर्णके समान उद्भासित होता है। देवी श्रीराधा प्रकृतिसे परे स्थित सच्चिदानन्दमयी हैं। वे दोनों भिन्न-भिन्न देह धारण करके स्थित हैं, तो भी उनमें कोई भेद नहीं है। उनका स्वरूप नित्य है। जैसे दूध और उसकी धवलता, पृथ्वी और उसकी गन्ध एक और अभिन्न हैं, उसी प्रकार वे दोनों प्रिया-प्रियतम एक हैं। जो कारणका भी कारण है, उसका निर्देश नहीं किया जा सकता। जो वेदके लिये भी अनिर्वचनीय है, उसका वर्णन कदापि सम्भव नहीं है।

इन्द्रद्युम्न-सरोवरमें स्नानकी विधि, ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राके अभिषेकका उत्सव

पुरोहित वसु कहते हैं—ब्रह्मपुत्री मोहिनी! वहाँसे उस तीर्थमें जाय जो अश्वमेध यज्ञके अङ्गसे उत्पन्न हुआ है। उसका नाम है इन्द्रद्युम्न-सरोवर। वह पवित्र एवं शुभ तीर्थ है। बुद्धिमान् पुरुष वहाँ जाकर पवित्रभावसे आचमन करे और मन-ही-मन भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके जलमें उतरे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

अश्वमेधाङ्गसम्भूत तीर्थ सर्वाघनाशन।
स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते॥
(ना० उत्तर० ६० । ३)

'अश्वमेधयज्ञके अङ्गसे प्रकट हुए तथा सम्पूर्ण पापोंके विनाशक तीर्थ! आज मैं तुम्हारे जलमें स्नान करता हूँ। मेरे पाप हर लो। तुमको नमस्कार है।'

इस प्रकार मन्त्रका उच्चारण करके विधिपूर्वक स्नान करे और देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा अन्यान्य लोगोंका तिल और जलसे तर्पण करके मौनभावसे आचमन करे। फिर पितरोंको पिण्डदान दे भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन करे। ऐसा करनेवाला मानव दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल पाता है। इस प्रकार पञ्चतीर्थका सेवन करके एकादशीको उपवास करे। जो मनुष्य ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमाको भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करता है, वह पूर्वोक्त फलका भागी होकर दिव्यलोकमें क्रीडा करके उस परम पदको प्राप्त होता है, जहाँसे पुनः लौटकर नहीं आता। पृथ्वीपर जितने तीर्थ, नदी, सरोवर, पुष्करिणी, तालाब, बावड़ी, कुआँ, ह्रद और समुद्र हैं, वे सब ज्येष्ठके शुक्लपक्षकी दशमीसे लेकर पूर्णिमातक एक सप्ताह प्रत्यक्षरूपसे पुरुषोत्तम-तीर्थमें जाकर रहते हैं। यह उनका सदाका नियम है। सती मोहिनी! इसीलिये वहाँ स्नान, दान, देव-दर्शन आदि जो कुछ पुण्यकार्य उस समय किया जाता है, वह अक्षय होता है। मोहिनी! ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथि दस प्रकारके पापोंको हर लेती है। इसलिये उसे 'दशहरा' कहा गया है। जो उस दिन उत्तम व्रतका पालन करते हुए बलराम, श्रीकृष्ण एवं सुभद्रादेवीका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। जो मनुष्य फाल्गुनकी पूर्णिमाके दिन एकचित्त हो पुरुषोत्तम श्रीगोविन्दको झूलेपर विराजमान देखता है, वह उनके धाममें जाता है। सुलोचने!

इन चौदह भुवनोंसे युक्त ब्रह्माण्ड बताया गया है। ब्रह्माजीने इस चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्डमें समस्त चराचर भूतोंकी सृष्टि की है। ब्रह्माजीके मनसे चार सनकादि महात्मा उत्पन्न हुए हैं। देवि! ब्रह्माजीके शरीरसे भृगु आदि पुत्र उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने इस जगत्को बढ़ाया है।

पुरोहित वसु कहते हैं—महाभागे! वे जो निरञ्जन, सच्चिदानन्दस्वरूप, ज्योतिर्मय, जनार्दन भगवान् श्रीकृष्ण हैं, उनका लक्षण सुनो। वे सर्वव्यापी हैं और ज्योतिर्मय गोलोक-के भीतर नित्य निवास करते हैं। एकमात्र श्रीकृष्ण ही दृश्य तथा अदृश्यरूपधारी परब्रह्म हैं। मोहिनी! गोलोकमें गौएँ, गोप और गोपियाँ हैं। वहाँ वृन्दावन, सैकड़ों शिखरोंवाला गोवर्धन पर्वत, विरजा नदी, नाना वृक्ष, भाँति-भाँतिके पक्षी आदि वस्तुएँ विद्यमान हैं। विधिनन्दिनी! जबतक प्रकृति जागती है, तबतक गोलोकमें सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्यक्षरूपसे ही विराजमान होते हैं। प्रलयकालमें गौएँ आदि सो जाती हैं, अतः वे परमात्माको नहीं जान पातीं। वे परमात्मा तेजःपुञ्जके भीतर कमनीय शरीर धारण करके किशोररूपसे विराजमान होते हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति मेघके समान श्याम है। उन्होंने रेशमी पीताम्बर धारण कर रक्खा है। उनके दो हाथ हैं। हाथमें मुरली सुशोभित है। वे भगवान् किरीट-कुण्डल आदिसे विभूषित हैं। श्रीराधा उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हैं। श्रीराधिकाजी उनकी आराधिका हैं। उनका वर्ण सुवर्णके समान उद्भासित होता है। देवी श्रीराधा प्रकृतिसे परे स्थित सच्चिदानन्दमयी हैं। वे दोनों भिन्न-भिन्न देह धारण करके स्थित हैं, तो भी उनमें कोई भेद नहीं है। उनका स्वरूप नित्य है। जैसे दूध और उसकी धवलता, पृथ्वी और उसकी गन्ध एक और अभिन्न हैं, उसी प्रकार वे दोनो प्रिया-प्रियतम एक हैं। जो कारणका भी कारण है, उसका निर्देश नहीं किया जा सकता। जो वेदके लिये भी अनिर्वचनीय है, उसका वर्णन कदापि सम्भव नहीं है।

इन्द्रद्युम्न-सरोवरमें स्नानकी विधि, ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राके अभिषेकका उत्सव

पुरोहित वसु कहते हैं—ब्रह्मपुत्री मोहिनी! वहाँसे उस तीर्थमें जाय जो अश्वमेध यज्ञके अङ्गसे उत्पन्न हुआ है। उसका नाम है इन्द्रद्युम्न-सरोवर। वह पवित्र एव शुभ तीर्थ है। बुद्धिमान् पुरुष वहाँ जाकर पवित्रभावसे आचमन करे और मन-ही-मन भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके जलमें उतरे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

अश्वमेधाङ्गसम्भूत तीर्थ सर्वाघनाशन।
स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते॥
(ना० उत्तर० ६० । ३)

'अश्वमेधयज्ञके अङ्गसे प्रकट हुए तथा सम्पूर्ण पापोंके विनाशक तीर्थ! आज मैं तुम्हारे जलमें स्नान करता हूँ। मेरे पाप हर लो। तुमको नमस्कार है।'

इस प्रकार मन्त्रका उच्चारण करके विधिपूर्वक स्नान करे और देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा अन्यान्य लोगोंका तिल और जलसे तर्पण करके मौनभावसे आचमन करे। फिर पितरोंको पिण्डदान दे भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन करे। ऐसा करनेवाला मानव दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल पाता है। इस प्रकार पञ्चतीर्थका सेवन करके एकादशीको उपवास करे। जो मनुष्य ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमाको भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करता है, वह पूर्वोक्त फलका भागी होकर दिव्यलोकमें क्रीडा करके उस परम पदको प्राप्त होता है, जहाँसे पुनः लौटकर नहीं आता। पृथ्वीपर जितने तीर्थ, नदी, सरोवर, पुष्करिणी, तालाब, बावड़ी, कुआँ, ह्रद और समुद्र हैं, वे सब ज्येष्ठके शुक्लपक्षकी दशमीसे लेकर पूर्णिमातक एक सप्ताह प्रत्यक्षरूपसे पुरुषोत्तम-तीर्थमें जाकर रहते हैं। यह उनका सदाका नियम है। सती मोहिनी! इसीलिये वहाँ स्नान, दान, देव-दर्शन आदि जो कुछ पुण्यकार्य उस समय किया जाता है, वह अक्षय होता है। मोहिनी! ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथि दस प्रकारके पापोंको हर लेती है। इसलिये उसे 'दशहरा' कहा गया है। जो उस दिन उत्तम व्रतका पालन करते हुए बलराम, श्रीकृष्ण एवं सुभद्रादेवीका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। जो मनुष्य फाल्गुनकी पूर्णिमाके दिन एकचित्त हो पुरुषोत्तम श्रीगोविन्दको झूलेपर विराजमान देखता है, वह उनके धाममें जाता है। सुलोचने!

महाबली बलराम और सुभद्रादेवीकी स्तुति करते हैं। देवताओंके बाजे बजते और शीतल वायु चलती है। उस समय आकाशमें उमड़े हुए मेघ पुष्पमिश्रित जलकी वर्षा करते हैं। मुनि, सिद्ध और चारण जय-जयकार करते हैं। तत्पश्चात् इन्द्र आदि समस्त देवता, ऋषि, पितर, प्रजापति, नाग तथा अन्य स्वर्गवासी मङ्गल सामग्रियोंके साथ विधि और मन्त्रयुक्त अभिषेकोपयोगी द्रव्य लेकर भगवान्‌का अभिषेक करते हैं।

अभिषेककालमें देवताओंद्वारा जगन्नाथजीकी स्तुति, गुण्डिचा-यात्राका माहात्म्य तथा द्वादश यात्राकी प्रतिष्ठाविधि

पुरोहित वसु कहते हैं—ब्रह्मपुत्री मोहिनी! उस समय इस प्रकार श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राका अभिषेक करके प्रसन्नतासे भरे हुए महाभाग देवगण उनकी स्तुति करते हैं।

देवता कहते हैं—सम्पूर्ण लोकोंका पालन करनेवाले जगन्नाथ! आपकी जय हो, जय हो। पद्मनाभ! धरणीधर! आदिदेव! आपकी जय हो। वासुदेव! दिव्य मत्स्य रूप धारण करनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। देवश्रेष्ठ! समुद्रमें शयन करनेवाले माधव! योगेश्वर! आपकी जय हो। विश्वमूर्ते! चक्रधर! श्रीनिवास! आपकी जय हो। कच्छपावतार! आपकी जय हो। शेषशायिन्! धर्मवास! गुणनिधान! आपकी जय हो। शान्तिकर! ज्ञानमूर्ते! भाववेद्य! मुक्तिकर! आपकी जय हो, जय हो। विमलदेह! सत्त्वगुणके निवासस्थान! गुणसमूह! आपकी जय हो, जय हो। निर्गुणरूप! मोक्षसाधक! आपकी जय हो। लोक-शरण! लक्ष्मीपते! कमलनयन! सृष्टिकर! आपकी जय हो, जय हो। आपका श्रीविग्रह तीसीके फूलकी भाँति श्याम एवं सुन्दर है; आपकी जय हो। आपका श्रीअङ्ग शेषनागके शरीरपर शयन करता है; आपकी जय हो। भक्तिभावन! आपकी जय हो, जय हो। परमशान्त! आपकी जय हो। नीलाम्बरधारी बलराम! आपकी जय हो। सांख्यवन्दित! आपकी जय हो। पापहारी हरे! आपकी जय हो। जगन्नाथ श्रीकृष्ण! आपकी जय हो। बलरामजीके अनुज! आपकी जय हो। मनोवाञ्छित फल देनेवाले देव! आपकी जय हो। वनमालासे आवृत वक्षवाले नारायण! आपकी जय हो। विष्णो! आपकी जय हो। आपको नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करके इन्द्र आदि देवता, सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा अन्य स्वर्गवासी मन-ही-मन बड़े प्रसन्न होते हैं। वे तन्मय चित्तसे श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्रा देवीका दर्शन, स्तवन एवं नमस्कार करके अपने-अपने निवासस्थानको चले जाते हैं। पुष्करतीर्थमें सौ बार कपिला गौका दान करनेसे अथवा सौ कन्याओंका दान करनेसे जो फल कहा गया है, उसीको मनुष्य मञ्चपर विराजमान श्रीकृष्णका दर्शन करनेसे पा लेता है। सबका आतिथ्य-सत्कार करनेसे, विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग करनेसे, ग्रीष्मऋतुमें जलदान देनेसे, चान्द्रायण करनेसे, एक मासतक निराहार रहनेसे तथा सब तीर्थोंमें जाकर व्रत और दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सब मञ्चपर विराजमान सुभद्रासहित श्रीकृष्ण और बलरामका दर्शन करनेसे मिल जाता है। अतः स्त्री हो या पुरुष सबको उस समय पुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। मोहिनी! भगवान् श्रीकृष्णके स्नान किये हुए शेष जलसे यदि विधिपूर्वक अभिषेक किया जाय तो वन्ध्या, मृतवत्सा, दुर्भगा, ग्रहपीड़िता, राक्षसगृहीता तथा रोगिणी स्त्रियाँ तत्काल शुद्ध हो जाती हैं। और सुप्रभे! जिन-जिन मनोरथोंको वे चाहती हैं, उन सबको शीघ्र प्राप्त कर लेती हैं। अतः जलशायी भगवान् श्रीकृष्णके स्नानावशेष जलसे, अपने सम्पूर्ण अङ्गोंको सींचना चाहिये। जो लोग स्नानके पश्चात् दक्षिणाभिमुख जाते हुए भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। पृथ्वीके सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्रा करनेका जो फल कहा गया है तथा गङ्गाद्वार, कुब्जाम्र तथा कुरुक्षेत्रमें एवं पुष्कर आदि अन्य तीर्थोंमें सूर्यग्रहणके समय स्नान करनेसे जो फल बताया गया है एवं वेद, शास्त्र, पुराण, महाभारत तथा संहिता आदि ग्रन्थोंमें पुण्यकर्मका जो फल बताया गया है, उसे मनुष्य दक्षिणाभिमुख जाते हुए श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राका दर्शनमात्र करके पा लेता है।

महाबली बलराम और सुभद्रादेवीकी स्तुति करते हैं। देवताओंके बाजे बजते और शीतल वायु चलती है। उस समय आकाशमें उमड़े हुए मेघ पुष्पमिश्रित जलकी वर्षा करते हैं। मुनि, सिद्ध और चारण जय-जयकार करते हैं। तत्पश्चात् इन्द्र आदि समस्त देवता, ऋषि, पितर, प्रजापति, नाग तथा अन्य स्वर्गवासी मङ्गल सामग्रियोंके साथ विधि और मन्त्रयुक्त अभिषेकोपयोगी द्रव्य लेकर भगवान्‌का अभिषेक करते हैं।

अभिषेककालमें देवताओंद्वारा जगन्नाथजीकी स्तुति, गुण्डिचा-यात्राका माहात्म्य तथा द्वादश यात्राकी प्रतिष्ठाविधि

पुरोहित वसु कहते हैं—ब्रह्मपुत्री मोहिनी! उस समय इस प्रकार श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राका अभिषेक करके प्रसन्नतासे भरे हुए महाभाग देवगण उनकी स्तुति करते हैं।

देवता कहते हैं—सम्पूर्ण लोकोंका पालन करनेवाले जगन्नाथ! आपकी जय हो, जय हो। पद्मनाभ! धरणीधर! आदिदेव! आपकी जय हो। वासुदेव! दिव्य मत्स्य रूप धारण करनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। देवश्रेष्ठ! समुद्रमें शयन करनेवाले माधव! योगेश्वर! आपकी जय हो। विश्वमूर्ते! चक्रधर! श्रीनिवास! आपकी जय हो। कच्छपावतार! आपकी जय हो। शेषशायिन्! धर्मवास! गुणनिधान! आपकी जय हो। शान्तिकर! ज्ञानमूर्ते! भाववेद्य! मुक्तिकर! आपकी जय हो, जय हो। विमलदेह! सत्त्वगुणके निवासस्थान! गुणसमूह! आपकी जय हो, जय हो। निर्गुणरूप! मोक्षसाधक! आपकी जय हो। लोक-शरण! लक्ष्मीपते! कमलनयन! सृष्टिकर! आपकी जय हो, जय हो। आपका श्रीविग्रह तीसीके फूलकी भाँति श्याम एवं सुन्दर है; आपकी जय हो। आपका श्रीअङ्ग शेषनागके शरीरपर शयन करता है; आपकी जय हो। भक्तिभावन! आपकी जय हो, जय हो। परमशान्त! आपकी जय हो। नीलाम्बरधारी बलराम! आपकी जय हो। सांख्यवन्दित! आपकी जय हो। पापहारी हरे! आपकी जय हो। जगन्नाथ श्रीकृष्ण! आपकी जय हो। बलरामजीके अनुज! आपकी जय हो। मनोवाञ्छित फल देनेवाले देव! आपकी जय हो। वनमालासे आवृत वक्षवाले नारायण! आपकी जय हो। विष्णो! आपकी जय हो। आपको नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करके इन्द्र आदि देवता, सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा अन्य स्वर्गवासी मन-ही-मन बड़े प्रसन्न होते हैं। वे तन्मय चित्तसे श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्रा देवीका दर्शन, स्तवन एवं नमस्कार करके अपने-अपने निवासस्थानको चले जाते हैं। पुष्करतीर्थमें सौ बार कपिला गौका दान करनेसे अथवा सौ कन्याओंका दान करनेसे जो फल कहा गया है, उसीको मनुष्य मञ्चपर विराजमान श्रीकृष्णका दर्शन करनेसे पा लेता है। सबका आतिथ्य-सत्कार करनेसे, विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग करनेसे, ग्रीष्मऋतुमें जलदान देनेसे, चान्द्रायण करनेसे, एक मासतक निराहार रहनेसे तथा सब तीर्थोंमें जाकर व्रत और दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सब मञ्चपर विराजमान सुभद्रासहित श्रीकृष्ण और बलरामका दर्शन करनेसे मिल जाता है। अतः स्त्री हो या पुरुष सबको उस समय पुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। मोहिनी! भगवान् श्रीकृष्णके स्नान किये हुए शेष जलसे यदि विधिपूर्वक अभिषेक किया जाय तो वन्ध्या, मृतवत्सा, दुर्भगा, ग्रहपीड़िता, राक्षसगृहीता तथा रोगिणी स्त्रियाँ तत्काल शुद्ध हो जाती हैं। और सुभ्रमे! जिन-जिन मनोरथोंको वे चाहती हैं, उन सबको शीघ्र प्राप्त कर लेती हैं। अतः जलशायी भगवान् श्रीकृष्णके स्नानावशेष जलसे, अपने सम्पूर्ण अङ्गोंको सींचना चाहिये। जो लोग स्नानके पश्चात् दक्षिणाभिमुख जाते हुए भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। पृथ्वीके सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्रा करनेका जो फल कहा गया है तथा गङ्गाद्वार, कुब्जाम्र तथा कुरुक्षेत्रमें एवं पुष्कर आदि अन्य तीर्थोंमें सूर्यग्रहणके समय स्नान करनेसे जो फल बताया गया है एवं वेद, शास्त्र, पुराण, महाभारत तथा संहिता आदि ग्रन्थोंमें पुण्यकर्मका जो फल बताया गया है, उसे मनुष्य दक्षिणाभिमुख जाते हुए श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राका दर्शनमात्र करके पा लेता है।

कार पुष्पमण्डप बनावे और भगवच्चिन्तन करते हुए रातमें जागरण करे । भगवान् वासुदेवकी कथा और गीतका भी आयोजन करे । इस प्रकार विद्वान् पुरुष भगवान्‌का ध्यान, पाठ और स्तवन करते हुए रात बितावे । तदनन्तर निर्मल प्रभात-काल आनेपर द्वादशीको बारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे । वे ब्राह्मण स्नातक, वेदोंके पारगामी, इतिहास-पुराणके ज्ञाता, श्रोत्रिय और जितेन्द्रिय होने चाहिये । इसके बाद स्वयं भी विधिपूर्वक स्नान करके धुला हुआ वस्त्र पहने और इन्द्रियसंयमपूर्वक भक्तिभावसे पहलेकी भाँति वहाँ विराजमान पुरुषोत्तमको स्नान करावे; फिर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार आदि नाना प्रकारके उपचारोंसे तथा प्रणाम, परिक्रमा, जप, स्तुति, नमस्कार और मनोहर गीत-वाद्योंद्वारा भगवान् जगन्नाथकी पूजा करे । भगवत्पूजनके पश्चात् ब्राह्मणों-की भी पूजा करे । उनके लिये बारह गौएँ दान करके भक्ति-पूर्वक सुवर्ण, छतरी, जूते और काँसपात्र आदि समर्पित करे । तदनन्तर ब्राह्मणोंको खीरसहित पक्वान्न भोजन करावे । उन भोज्यपदार्थोंमें गुड़ और शक्करका मेल होना चाहिये । जब ब्राह्मणलोग भोजन करके भलीभाँति तृप्त एवं प्रसन्नचित्त हो जायँ, तब उनके लिये जलसे भरे हुए बारह घट दान करे । उन घड़ोंके साथ लड्डू और यथाशक्ति दक्षिणा भी होनी चाहिये । ब्रह्मपुत्री ! तत्पश्चात् विष्णुतुल्य ज्ञानदाता गुरुकी पूर्ण भक्तिके साथ पूजा करनी चाहिये । विद्वान् पुरुष उन्हें सुवर्ण, वस्त्र, गौ, धान्य, द्रव्य तथा अन्य मनोवाञ्छित वस्तुएँ देकर उनकी पूजा सम्पन्न करे; फिर नमस्कार करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

सर्वव्यापी जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः ।
अनादिनिधनो देवः प्रीयतां पुरुषोत्तमः ॥
(ना० उत्तर० ६१ । ७४)

'शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले, सर्वव्यापी, अनादि और अनन्त देवता जगदीश्वर भगवान् पुरुषोत्तम मुझपर प्रसन्न हों ।'

यों कहकर गुरु एवं ब्राह्मणोंकी आदरपूर्वक तीन बार परिक्रमा करे; फिर चरणोंमें भक्तिपूर्वक सिर नवाकर आचार्यसहित ब्राह्मणोंको विदा करे । तत्पश्चात् गाँवकी सीमातक भक्तिपूर्वक उन ब्राह्मणोंके साथ-साथ जाय और उन्हें नमस्कार करके लौटे । फिर स्वजनों और बान्धवोंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे । ऐसा करके स्त्री हो या पुरुष वह एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका फल पाता है एवं सूर्यतुल्य विमानके द्वारा विष्णुलोकको जाता है । इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रकी यात्राका फल बताया है, जो मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाला है ।

प्रयाग-माहात्म्यके प्रसङ्गमें तीर्थयात्राकी सामान्य विधिका वर्णन

वसिष्ठजी कहते हैं—भूपाल ! भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले इस पुरुषोत्तम-माहात्म्यको सुनकर ब्रह्मपुत्री मोहिनीने अपने पुरोहित विप्रवर वसुसे पुनः प्रश्न किया ।

मोहिनी बोली—विप्रवर ! मैंने पुरुषोत्तमतीर्थका अद्भुत माहात्म्य सुना । सुव्रत ! अब प्रयागका भी माहात्म्य कहिये ।

पुरोहित वसुने कहा—भद्रे ! सुनो, मैं तीर्थयात्राकी विधि बतलाता हूँ, जिसका आश्रय लेनेपर मनुष्य यात्राका शास्त्रोक्त फल पा सकता है । तीर्थयात्रा पुण्यकर्म है । इसका महत्त्व यज्ञोंसे भी बढ़कर है । बहुत दक्षिणावाले अग्निष्टोमादि यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी मनुष्य उस फलको नहीं पाता, जो तीर्थयात्रासे सुलभ होता है । जो अनजानमें भी कभी यहाँ तीर्थयात्रा कर लेता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है । उसे सदा धन-धान्यसे भरा हुआ स्थान प्राप्त होता है । वह भोगसम्पन्न और सदा ऐश्वर्य-ज्ञानसे परिपूर्ण होता है । उसने नरकसे अपने पितरों और पितामहोंका उद्धार कर दिया । जिसके हाथ, पैर और मन अपने वशमें हैं तथा जो विद्या, तपस्या और कीर्तिसे सम्पन्न है, वही तीर्थके पूर्ण फलका भागी होता है । जो प्रतिग्रहसे दूर रहता है और जो कुछ मिल जाय उसीसे संतुष्ट होता है तथा जिसमें अहंकारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थके फलका भागी होता है । जो संकल्परहित, प्रवृत्तिशून्य, स्वल्पाहारी, जितेन्द्रिय तथा सब प्रकारकी आसक्तियोंसे युक्त है, वह तीर्थके फलका भागी होता है । धीर पुरुष श्रद्धा और एकाग्रतापूर्वक यदि तीर्थोंमें भ्रमण करता है तो वह पापी

धार पुष्पमण्डप बनावे और भगवच्चिन्तन करते हुए रातमें जागरण करे। भगवान् वासुदेवकी कथा और गीतका भी आयोजन करे। इस प्रकार विद्वान् पुरुष भगवान्‌का ध्यान, पाठ और स्तवन करते हुए रात बितावे। तदनन्तर निर्मल प्रभात-काल आनेपर द्वादशीको बारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। वे ब्राह्मण स्नातक, वेदोंके पारगामी, इतिहास-पुराणके ज्ञाता, श्रोत्रिय और जितेन्द्रिय होने चाहिये। इसके बाद स्वयं भी विधिपूर्वक स्नान करके धुला हुआ वस्त्र पहने और इन्द्रियसंयमपूर्वक भक्तिभावसे पहलेकी भाँति वहाँ विराजमान पुरुषोत्तमको स्नान करावे; फिर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार आदि नाना प्रकारके उपचारोंसे तथा प्रणाम, परिक्रमा, जप, स्तुति, नमस्कार और मनोहर गीत-वाद्योंद्वारा भगवान् जगन्नाथकी पूजा करे। भगवत्पूजनके पश्चात् ब्राह्मणों-की भी पूजा करे। उनके लिये बारह गौएँ दान करके भक्ति-पूर्वक सुवर्ण, छतरी, जूते और काँसपात्र आदि समर्पित करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको खीरसहित पक्वान्न भोजन करावे। उन भोज्यपदार्थोंमें गुड़ और शक्करका मेल होना चाहिये। जब ब्राह्मणलोग भोजन करके भलीभाँति तृप्त एवं प्रसन्नचित्त हो जायँ, तब उनके लिये जलसे भरे हुए बारह घट दान करे। उन घड़ोंके साथ लड्डू और यथाशक्ति दक्षिणा भी होनी चाहिये। ब्रह्मपुत्री! तत्पश्चात् विष्णुतुल्य ज्ञानदाता गुरुकी पूर्ण भक्तिके साथ पूजा करनी चाहिये। विद्वान् पुरुष उन्हें सुवर्ण, वस्त्र, गौ, धान्य, द्रव्य तथा अन्य मनोवाञ्छित वस्तुएँ देकर उनकी पूजा सम्पन्न करे; फिर नमस्कार करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

सर्वव्यापी जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः।
अनादिनिधनो देवः प्रीयतां पुरुषोत्तमः॥
(ना० उत्तर० ६१। ७४)

'शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले, सर्वव्यापी, अनादि और अनन्त देवता जगदीश्वर भगवान् पुरुषोत्तम मुझपर प्रसन्न हों।'

यों कहकर गुरु एवं ब्राह्मणोंकी आदरपूर्वक तीन बार परिक्रमा करे; फिर चरणोंमें भक्तिपूर्वक सिर नवाकर आचार्यसहित ब्राह्मणोंको विदा करे। तत्पश्चात् गाँवकी सीमातक भक्तिपूर्वक उन ब्राह्मणोंके साथ-साथ जाय और उन्हें नमस्कार करके लौटे। फिर स्वजनों और बान्धवोंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। ऐसा करके स्त्री हो या पुरुष वह एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका फल पाता है एवं सूर्यतुल्य विमानके द्वारा विष्णुलोकको जाता है। इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रकी यात्राका फल बताया है, जो मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाला है।

प्रयाग-माहात्म्यके प्रसङ्गमें तीर्थयात्राकी सामान्य विधिका वर्णन

वसिष्ठजी कहते हैं—भूपाल! भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले इस पुरुषोत्तम-माहात्म्यको सुनकर ब्रह्मपुत्री मोहिनीने अपने पुरोहित विप्रवर वसुसे पुनः प्रश्न किया।

मोहिनी बोली—विप्रवर! मैंने पुरुषोत्तमतीर्थका अद्भुत माहात्म्य सुना। सुव्रत! अब प्रयागका भी माहात्म्य कहिये।

पुरोहित वसुने कहा—भद्रे! सुनो, मैं तीर्थयात्राकी विधि बतलाता हूँ, जिसका आश्रय लेनेपर मनुष्य यात्राका शास्त्रोक्त फल पा सकता है। तीर्थयात्रा पुण्यकर्म है। इसका महत्त्व यज्ञोंसे भी बढ़कर है। बहुत दक्षिणावाले अग्निष्टोमादि यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी मनुष्य उस फलको नहीं पाता, जो तीर्थयात्रासे सुलभ होता है। जो अनजानमें भी कभी यहाँ तीर्थयात्रा कर लेता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। उसे सदा धन-धान्यसे भरा हुआ स्थान प्राप्त होता है। वह भोगसम्पन्न और सदा ऐश्वर्य-ज्ञानसे परिपूर्ण होता है। उसने नरकसे अपने पितरों और पितामहोंका उद्धार कर दिया। जिसके हाथ, पैर और मन अपने वशमें हैं तथा जो विद्या, तपस्या और कीर्तिसे सम्पन्न है, वही तीर्थके पूर्ण फलका भागी होता है। जो प्रतिग्रहसे दूर रहता है और जो कुछ मिल जाय उसीसे संतुष्ट होता है तथा जिसमें अहंकारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थके फलका भागी होता है। जो संकल्परहित, प्रवृत्तिशून्य, स्वल्पाहारी, जितेन्द्रिय तथा सब प्रकारकी आसक्तियोंसे युक्त है, वह तीर्थके फलका भागी होता है। धीर पुरुष श्रद्धा और एकाग्रतापूर्वक यदि तीर्थोंमें भ्रमण करता है तो वह पापी

प्रयागमें माघ-मकरके स्नानकी महिमा तथा वहाँके भिन्न-भिन्न तीर्थोंका माहात्म्य

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! सुनो, अब मैं प्रयागके वेदसम्मत माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, जहाँ स्नान करके मानव सर्वथा शुद्ध हो जाता है। गङ्गामें जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय, वह कुरुक्षेत्रके समान पुण्यदायिनी है। उससे दसगुना पुण्य देनेवाली गङ्गा वह बतायी गयी है, जहाँ वह विन्ध्यपर्वतसे संयुक्त होती है। काशीकी उत्तरवाहिनी गङ्गा विन्ध्यपर्वतके निकटवर्तिनी गङ्गासे सौगुनी पुण्यदायिनी कही गयी है। काशीसे भी सौ गुना पुण्य वहाँ बताया गया है, जहाँ गङ्गा यमुनासे मिलती है। वह भी जहाँतक पश्चिमवाहिनी हैं, वहाँ उसमें सहस्रगुना पुण्य प्राप्त होता है। देवि! पश्चिमवाहिनी गङ्गा दर्शनमात्रसे ही ब्रह्महत्या आदि पापोंका निवारण करनेवाली है। देवि! पश्चिमाभिमुखी गङ्गा यमुनाके साथ मिली हैं। वे सौ कल्पोंका पाप हर लेती हैं। माघ मासमें तो वे और भी दुर्लभ हैं। भद्रे! पृथ्वीपर वे अमृतरूप कही जाती हैं। गङ्गा और यमुनाके सङ्गमका जल वेणीके नामसे प्रसिद्ध है, जिसमें माघ मासमें दो घड़ीका स्नान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। सती! पृथ्वीपर जितने तीर्थ तथा जितनी पुण्यपुरियाँ हैं, वे मकर राशिपर सूर्यके रहते हुए माघ मासमें वेणीमें स्नान करनेके लिये आती हैं। शुभे! ब्रह्मपुत्री मोहिनी! ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, गन्धर्व, लोकपाल, यक्ष, किन्नर, गुह्यक, अणिमादि गुणोंसे युक्त अन्यान्य तत्त्वदर्शी पुरुष, ब्रह्माणी, पार्वती, लक्ष्मी, शची, मेधा, अदिति, रति, समस्त देवपत्नियाँ, नागपत्नियाँ तथा समस्त पितृगण—ये सब-के-सब माघ मासमें त्रिवेणी-स्नानके लिये आते हैं। सत्ययुगमें तो उक्त सभी तीर्थ प्रत्यक्षरूप धारण करके आते थे, किंतु कलियुगमें वे छिपे रूपसे आते हैं। पापियोंके सङ्गदोषसे काले पड़े हुए सम्पूर्ण तीर्थ प्रयागमें माघ मासमें स्नान करनेसे श्वेत वर्णके हो जाते हैं।

मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव॥
स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव।
(ना० उत्तर० ६३। १३-१४)

'गोविन्द! अच्युत! माधव! देव! मकर राशिपर सूर्यके रहते हुए माघ मासमें त्रिवेणीके जलमें किये हुए मेरे इस स्नानसे संतुष्ट हो आप शास्त्रोक्त फल देनेवाले हों।'

—इस मन्त्रका उच्चारण करके मौनभावसे स्नान करे। 'वासुदेव, हरि, कृष्ण और माधव' आदि नामोंका बार-बार स्मरण करे। मनुष्य अपने घरपर गरम जलसे साठ वर्षोंतक जो स्नान करता है, उसके समान फलकी प्राप्ति सूर्यके मकर राशिपर रहते समय एक बारके स्नानसे हो जाती है। बाहर बावडी आदिमें किया हुआ स्नान बारह वर्षोंके स्नानका फल देनेवाला है। पोखरेमें स्नान करनेपर उससे दूना और नदी आदिमें स्नान करनेपर चौगुना फल प्राप्त होता है। देवकुण्डमें वही फल दसगुना और महानदीमें सौगुना होता है। दो महानदियोंके संगममें स्नान करनेपर चार सौ गुने फलकी प्राप्ति होती है; किंतु सूर्यके मकर राशिपर रहते समय प्रयागकी गङ्गामें स्नान करनेमात्रसे वह सारा फल सहस्रगुना होकर मिलता है—ऐसा बताया गया है। इस प्रयाग तीर्थको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने प्रकट किया था। जिसके गर्भमें सरस्वती छिपी हैं, वह श्वेत और श्याम जलकी धारा ब्रह्मलोकमें जानेका मार्ग है। हिमालयकी घाटियोंमें जो तीर्थ हैं, उनमें माघ मासका स्नान सब पापोंका नाश करनेवाला है। सब मासोंमें उत्तम माघ मास यदि बदरीवनमें प्राप्त हो तो वह मोक्ष देनेवाला है। नर्मदाके जलमें माघका स्नान पापनाशक, दुःखहारी, सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंका दाता तथा रुद्रलोककी प्राप्ति करानेवाला कहा गया है। सरस्वतीके जलमें वह सब पापराशियोंका नाशक तथा सम्पूर्ण लोकोंके सुखोंकी प्राप्ति करानेवाला बताया गया है। गङ्गाका जल यदि माघ मासमें सुलभ हो तो वह पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये दावानल, गर्भवासके कष्टका नाश करनेवाला तथा विष्णुलोक एवं मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला बताया गया है।

सरयू, गण्डकी, सिन्धु, चन्द्रभागा, कौशिकी, तापी, गोदावरी, भीमा, पयोष्णी, कृष्णवेणी, कावेरी, तुङ्गभद्रा तथा अन्य जो समुद्रगामिनी नदियाँ हैं, उनमें स्नान करनेवाला मनुष्य पापरहित हो स्वर्गलोकमें जाता है। नैमिषारण्यमें माघ-स्नान करनेसे भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त होता है। पुष्करमें नहानेसे ब्रह्माका सामीप्य मिलता है। विधिनन्दिनी! गोमतीमें माघ नहानेसे फिर जन्म नहीं होता। हेमकूट, महाकाल, ॐकार, नीलकण्ठ तथा अर्बुद तीर्थमें माघ मासका स्नान रुद्रलोककी प्राप्ति करानेवाला माना गया है। देवि! सूर्यके मकर राशिपर रहते समय सम्पूर्ण सरिताओंके संगममें माघ-स्नान करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति होती है। स्वर्गवासी देवता सदा यह गाया करते हैं कि 'क्या प्रयागमें कभी माघ मास हमें मिलेगा, जहाँ स्नान करनेवाले मानव फिर कभी गर्भकी वेदनाका अनुभव नहीं करते और भगवान् विष्णुके समीप स्थित होते हैं।' जल और वायु पीकर रहने,

प्रयागमें माघ-मकरके स्नानकी महिमा तथा वहाँके भिन्न-भिन्न तीर्थोंका माहात्म्य

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! सुनो, अब मैं प्रयागके वेदसम्मत माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, जहाँ स्नान करके मानव सर्वथा शुद्ध हो जाता है। गङ्गामें जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय, वह कुरुक्षेत्रके समान पुण्यदायिनी है। उससे दसगुना पुण्य देनेवाली गङ्गा वह बतायी गयी है, जहाँ वह विन्ध्यपर्वतसे संयुक्त होती है। काशीकी उत्तरवाहिनी गङ्गा विन्ध्यपर्वतके निकटवर्तिनी गङ्गासे सौगुनी पुण्यदायिनी कही गयी है। काशीसे भी सौ गुना पुण्य वहाँ बताया गया है, जहाँ गङ्गा यमुनासे मिलती है। वह भी जहाँतक पश्चिमवाहिनी हैं, वहाँ उसमें सहस्रगुना पुण्य प्राप्त होता है। देवि! पश्चिमवाहिनी गङ्गा दर्शनमात्रसे ही ब्रह्महत्या आदि पापोंका निवारण करनेवाली है। देवि! पश्चिमाभिमुखी गङ्गा यमुनाके साथ मिली हैं। वे सौ कल्पोंका पाप हर लेती हैं। माघ मासमें तो वे और भी दुर्लभ हैं। भद्रे! पृथ्वीपर वे अमृतरूप कही जाती हैं। गङ्गा और यमुनाके सङ्गमका जल वेणीके नामसे प्रसिद्ध है, जिसमें माघ मासमें दो घड़ीका स्नान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। सती! पृथ्वीपर जितने तीर्थ तथा जितनी पुण्यपुरियाँ हैं, वे मकर राशिपर सूर्यके रहते हुए माघ मासमें वेणीमें स्नान करनेके लिये आती हैं। शुभे! ब्रह्मपुत्री मोहिनी! ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, गन्धर्व, लोकपाल, यक्ष, किंनर, गुह्यक, अणिमादि गुणोंसे युक्त अन्यान्य तत्त्वदर्शी पुरुष, ब्रह्माणी, पार्वती, लक्ष्मी, शची, मेधा, अदिति, रति, समस्त देवपत्नियाँ, नागपत्नियाँ तथा समस्त पितृगण—ये सब-के-सब माघ मासमें त्रिवेणी-स्नानके लिये आते हैं। सत्ययुगमें तो उक्त सभी तीर्थ प्रत्यक्षरूप धारण करके आते थे, किंतु कलियुगमें वे छिपे रूपसे आते हैं। पापियोंके सङ्गदोषसे काले पड़े हुए सम्पूर्ण तीर्थ प्रयागमें माघ मासमें स्नान करनेसे श्वेत वर्णके हो जाते हैं।

> मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव॥
> स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव।
> (ना० उत्तर० ६३। १३-१४)

'गोविन्द! अच्युत! माधव! देव! मकर राशिपर सूर्यके रहते हुए माघ मासमें त्रिवेणीके जलमें किये हुए मेरे इस स्नानसे संतुष्ट हो आप शास्त्रोक्त फल देनेवाले हों।'

—इस मन्त्रका उच्चारण करके मौनभावसे स्नान करे। 'वासुदेव, हरि, कृष्ण और माधव' आदि नामोंका बार-बार स्मरण करे। मनुष्य अपने घरपर गरम जलसे साठ वर्षोंतक जो स्नान करता है, उसके समान फलकी प्राप्ति सूर्यके मकर राशिपर रहते समय एक बारके स्नानसे हो जाती है। बाहर बावडी आदिमें किया हुआ स्नान बारह वर्षोंके स्नानका फल देनेवाला है। पोखरेमें स्नान करनेपर उससे दूना और नदी आदिमें स्नान करनेपर चौगुना फल प्राप्त होता है। देवकुण्डमें वही फल दसगुना और महानदीमें सौगुना होता है। दो महानदियोंके संगममें स्नान करनेपर चार सौ गुने फलकी प्राप्ति होती है; किंतु सूर्यके मकर राशिपर रहते समय प्रयागकी गङ्गामें स्नान करनेमात्रसे वह सारा फल सहस्रगुना होकर मिलता है—ऐसा बताया गया है। इस प्रयाग तीर्थको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने प्रकट किया था। जिसके गर्भमें सरस्वती छिपी हैं, वह श्वेत और श्याम जलकी धारा ब्रह्मलोकमें जानेका मार्ग है। हिमालयकी घाटियोंमें जो तीर्थ हैं, उनमें माघ मासका स्नान सब पापोंका नाश करनेवाला है। सब मासोंमें उत्तम माघ मास यदि बदरीवनमें प्राप्त हो तो वह मोक्ष देनेवाला है। नर्मदाके जलमें माघका स्नान पापनाशक, दुःखहारी, सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंका दाता तथा रुद्रलोककी प्राप्ति करानेवाला कहा गया है। सरस्वतीके जलमें वह सब पापराशियोंका नाशक तथा सम्पूर्ण लोकोंके सुखोंकी प्राप्ति करानेवाला बताया गया है। गङ्गाका जल यदि माघ मासमें सुलभ हो तो वह पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये दावानल, गर्भवासके कष्टका नाश करनेवाला तथा विष्णुलोक एवं मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला बताया गया है।

सरयू, गण्डकी, सिन्धु, चन्द्रभागा, कौशिकी, तापी, गोदावरी, भीमा, पयोष्णी, कृष्णवेणी, कावेरी, तुङ्गभद्रा तथा अन्य जो समुद्रगामिनी नदियाँ हैं, उनमें स्नान करनेवाला मनुष्य पापरहित हो स्वर्गलोकमें जाता है। नैमिषारण्यमें माघ-स्नान करनेसे भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त होता है। पुष्करमें नहानेसे ब्रह्माका सामीप्य मिलता है। विधिनन्दिनि! गोमतीमें माघ नहानेसे फिर जन्म नहीं होता। हेमकूट, महाकाल, ॐकार, नीलकण्ठ तथा अर्बुद तीर्थमें माघ मासका स्नान रुद्रलोककी प्राप्ति करानेवाला माना गया है। देवि! सूर्यके मकर राशिपर रहते समय सम्पूर्ण सरिताओंके संगममें माघ-स्नान करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति होती है। स्वर्गवासी देवता सदा यह गाया करते हैं कि 'क्या प्रयागमें कभी माघ मास हमें मिलेगा, जहाँ स्नान करनेवाले मानव फिर कभी गर्भकी वेदनाका अनुभव नहीं करते और भगवान् विष्णुके समीप स्थित होते हैं।' जल और वायु पीकर रहने,

पौष और माघके महीनेमें श्रवण नक्षत्र, व्यतीपातयोग तथा रविवारसे युक्त अमावास्या तिथि हो तो उसे अर्धोदय पर्व समझना चाहिये। इसका महत्त्व सौ सूर्यग्रहणोंसे भी अधिक है। विधिनन्दिनी! इसमें कुछ कमी हो तो महोदय पर्व माना गया है। यदि प्रयागतीर्थमें अरुणोदयके समय माघ शुक्ला सप्तमी प्राप्त हो तो वह एक हजार सूर्यग्रहणोंके समान है। यदि अयनारम्भके दिन प्रयागका स्नान मिले तो कोटिगुना पुण्य होता है और विषुवयोगमें लाखगुने फलकी प्राप्ति होती है। षडशीति तथा विष्णुपदीमें सहस्रगुना पुण्य प्राप्त होता है। अपने वैभव-विस्तारके अनुसार सबको प्रयागमें दान करना चाहिये। विधिनन्दिनी! इससे तीर्थका फल बढ़ता है। भद्रे! जो गङ्गा और यमुनाके बीचमें सुवर्ण, मणि, मोती या दूसरा कोई प्रतिग्रह देता है एवं जो वहाँ लाल या कपिल वर्णकी ऐसी गौ देता है, जिसकी सींगमें सोना, खुरोंमें चाँदी, गलेमें वस्त्र हो, जो दूध देती हो और बछड़ा उसके साथ हो; शुक्ल वस्त्र धारण करनेवाले, शान्त, धर्मज्ञ, वेदज्ञ एवं श्रोत्रिय ब्राह्मणको विधिपूर्वक जो पूर्वोक्त गौ देकर स्वीकार कराता है तथा उसके साथ बहुमूल्य वस्त्र और नाना प्रकारके रत्न भी देता है; उस गौ तथा बछड़ेके शरीरमें जितने रोमकूप होते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक वह दाता स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। उस दानकर्मसे दातालोग कभी नरकका दर्शन नहीं करते। सामान्य लाखों गौओंकी अपेक्षा एक ही दूध देनेवाली गौ दान करे। वह एक ही गौ स्त्री-पुत्र तथा भृत्यवर्गका उद्धार कर देती है। इसलिये सब दानोंमें गोदानका महत्त्व अधिक है। दुर्गम स्थानमें, विषम परिस्थितिमें तथा घोर संकटके समय अथवा महापातकोंके सङ्क्रमणकालमें गौ ही मनुष्यकी रक्षा करती है। अतः श्रेष्ठ ब्राह्मणको गौ देनी चाहिये।

तीर्थमें तथा पुण्यमय देवमन्दिरोंमें दान नहीं लेना चाहिये। ब्राह्मणको चाहिये कि वह सभी निमित्तोंमें सावधान रहे। अपने कामके लिये, पितरोंके श्राद्धके लिये अथवा देवताके पूजनके लिये भी किसीसे कुछ दान न ले। जबतक वह दूसरेके धनका उपभोग या ग्रहण करता है, तबतक उसका तीर्थसेवन व्यर्थ होता है। जो गङ्गा और यमुनाके सङ्गमपर कन्यादान करता है, वह उस पुण्यकर्मके प्रभावसे कभी भयंकर नरकका दर्शन नहीं करता। प्रयाग-प्रतिष्ठानसे लेकर वासुकि नागके तालाबसे आगेतक कम्बल और अश्वतर नामक जो दोनों नाग हैं वहाँसे बहुमूलक नागतकका जो भूभाग है, यही प्रजापतिक्षेत्र है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। इस क्षेत्रमें जो स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और मर जाते हैं, उनका फिर जन्म नहीं होता। सन्मार्गमें स्थित बुद्धिमान् योगीको जो गति प्राप्त होती है, वही गङ्गा-यमुनाके सङ्गममें प्राणत्याग करनेवालेको भी मिलती है।

प्रयागके दक्षिण यमुना-तटपर विख्यात अग्नितीर्थ है। पश्चिममें धर्मराजतीर्थ है। वहाँ जो स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और जो मरते हैं, उनका फिर संसारमें जन्म नहीं होता। मोहिनी! यमुनाके उत्तर तटपर बहुत-से पापनाशक तीर्थ हैं, जो बड़े-बड़े मुनीश्वरोंसे सेवित हैं, उनमें स्नान करनेवाले स्वर्गलोकको जाते हैं और जो मर जाते हैं उनका मोक्ष हो जाता है। गङ्गा और यमुना दोनोंका पुण्यफल एक समान है। केवल जेठी होनेसे गङ्गा सर्वत्र पूजी जाती हैं।

कुरुक्षेत्र-माहात्म्य

मोहिनी बोली—पुरोहितजी! आप बड़े कृपालु और धर्मज्ञ हैं। आपको बहुत-से विषयोंका ज्ञान है। आपने मुझे तीर्थराज प्रयागका माहात्म्य बताया है। समस्त मुख्य तीर्थोंमें जो शुभकारक कुरुक्षेत्र है, वह सम्पूर्ण लोकोंमें परम पवित्र है; अतः आप उसीका मुझसे वर्णन कीजिये।

पुरोहित वसुने कहा—मोहिनी! सुनो; मैं उत्तम पुण्य देनेवाले कुरुक्षेत्रका वर्णन करता हूँ, जहाँ जाकर स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। कुरुक्षेत्रमें मुनीश्वरोंद्वारा सेवित अनेक तीर्थ हैं। उन सबका मैं तुम्हें परिचय देता हूँ। वे श्रोताओंको भी मोक्ष देनेवाले हैं। ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गायको संकटसे बचाते समय मृत्युको प्राप्त होना और कुरुक्षेत्रमें निवास करना—इन चारों साधनोंसे मोक्ष प्राप्त होता है। सरस्वती और दृषद्वती—इन दोनों देवनदियोंके बीचका जो देश है, उसे देवसेवित ब्रह्मावर्त (कुरुक्षेत्र) कहते हैं। जो दूर रहकर भी 'मैं कुरुक्षेत्रमें जाऊँगा और वहीं निवास करूँगा' इस प्रकार सदा कहा करता है, वह भी पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो धीर पुरुष वहाँ सरस्वतीके तटपर निवास करेगा, उसे निस्सन्देह ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा। देवि! देवता, महर्षि और सिद्धगण कुरुक्षेत्रका सेवन करते हैं; उसके सेवनसे मनुष्य अपने-आपमें ही ब्रह्मका साक्षात्कार करता है।

पौष और माघके महीनेमें श्रवण नक्षत्र, व्यतीपातयोग तथा रविवारसे युक्त अमावास्या तिथि हो तो उसे अर्धोदय पर्व समझना चाहिये। इसका महत्त्व सौ सूर्यग्रहणोंसे भी अधिक है। विधिनन्दिनी! इसमें कुछ कमी हो तो महोदय पर्व माना गया है। यदि प्रयागतीर्थमें अरुणोदयके समय माघ शुक्ला सप्तमी प्राप्त हो तो वह एक हजार सूर्यग्रहणोंके समान है। यदि अयनारम्भके दिन प्रयागका स्नान मिले तो कोटिगुना पुण्य होता है और विषुवयोगमें लाखगुने फलकी प्राप्ति होती है। षडशीति तथा विष्णुपदीमें सहस्रगुना पुण्य प्राप्त होता है। अपने वैभव-विस्तारके अनुसार सबको प्रयागमें दान करना चाहिये। विधिनन्दिनी! इससे तीर्थका फल बढ़ता है। भद्रे! जो गङ्गा और यमुनाके बीचमें सुवर्ण, मणि, मोती या दूसरा कोई प्रतिग्रह देता है एवं जो वहाँ लाल या कपिल वर्णकी ऐसी गौ देता है, जिसकी सींगमें सोना, खुरोंमें चाँदी, गलेमें वस्त्र हो, जो दूध देती हो और बछड़ा उसके साथ हो; शुक्ल वस्त्र धारण करनेवाले, शान्त, धर्मज्ञ, वेदज्ञ एवं श्रोत्रिय ब्राह्मणको विधिपूर्वक जो पूर्वोक्त गौ देकर स्वीकार कराता है तथा उसके साथ बहुमूल्य वस्त्र और नाना प्रकारके रत्न भी देता है; उस गौ तथा बछड़ेके शरीरमें जितने रोमकूप होते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक वह दाता स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। उस दानकर्मसे दातालोग कभी नरकका दर्शन नहीं करते। सामान्य लाखों गौओंकी अपेक्षा एक ही दूध देनेवाली गौ दान करे। वह एक ही गौ स्त्री-पुत्र तथा भृत्यवर्गका उद्धार कर देती है। इसलिये सब दानोंमें गोदानका महत्त्व अधिक है। दुर्गम स्थानमें, विषम परिस्थितिमें तथा घोर संकटके समय अथवा महापातकोंके सक्रमणकालमें गौ ही मनुष्यकी रक्षा करती है। अतः श्रेष्ठ ब्राह्मणको गौ देनी चाहिये।

तीर्थमें तथा पुण्यमय देवमन्दिरोंमें दान नहीं लेना चाहिये। ब्राह्मणको चाहिये कि वह सभी निमित्तोंमें सावधान रहे। अपने कामके लिये, पितरोंके श्राद्धके लिये अथवा देवताके पूजनके लिये भी किसीसे कुछ दान न ले। जबतक वह दूसरेके धनका उपभोग या ग्रहण करता है, तबतक उसका तीर्थसेवन व्यर्थ होता है। जो गङ्गा और यमुनाके सङ्गमपर कन्यादान करता है, वह उस पुण्यकर्मके प्रभावसे कभी भयंकर नरकका दर्शन नहीं करता। प्रयाग-प्रतिष्ठानसे लेकर वासुकि नागके तालाबसे आगेतक कम्बल और अश्वतर नामक जो दोनों नाग हैं वहाँसे बहुमूलक नागतकका जो भूभाग है, यही प्रजापतिक्षेत्र है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। इस क्षेत्रमें जो स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और मर जाते हैं, उनका फिर जन्म नहीं होता। सन्मार्गमें स्थित बुद्धिमान् योगीको जो गति प्राप्त होती है, वही गङ्गा-यमुनाके सङ्गममें प्राणत्याग करनेवालेको भी मिलती है।

प्रयागके दक्षिण यमुना-तटपर विख्यात अग्नितीर्थ है। पश्चिममें धर्मराजतीर्थ है। वहाँ जो स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और जो मरते हैं, उनका फिर संसारमें जन्म नहीं होता। मोहिनी! यमुनाके उत्तर तटपर बहुत-से पापनाशक तीर्थ हैं, जो बड़े-बड़े मुनीश्वरोंसे सेवित हैं, उनमें स्नान करनेवाले स्वर्गलोकको जाते हैं और जो मर जाते हैं उनका मोक्ष हो जाता है। गङ्गा और यमुना दोनोंका पुण्यफल एक समान है। केवल जेठी होनेसे गङ्गा सर्वत्र पूजी जाती हैं।

कुरुक्षेत्र-माहात्म्य

मोहिनी बोली—पुरोहितजी! आप बड़े कृपालु और धर्मज्ञ हैं। आपको बहुत-से विषयोंका ज्ञान है। आपने मुझे तीर्थराज प्रयागका माहात्म्य बताया है। समस्त मुख्य तीर्थोंमें जो शुभकारक कुरुक्षेत्र है, वह सम्पूर्ण लोकोंमें परम पवित्र है; अतः आप उसीका मुझसे वर्णन कीजिये।

पुरोहित वसुने कहा—मोहिनी! सुनो; मैं उत्तम पुण्य देनेवाले कुरुक्षेत्रका वर्णन करता हूँ, जहाँ जाकर स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। कुरुक्षेत्रमें मुनीश्वरोंद्वारा सेवित अनेक तीर्थ हैं। उन सबका मैं तुम्हें परिचय देता हूँ। वे श्रोताओंको भी मोक्ष देनेवाले हैं। ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गायको संकटसे बचाते समय मृत्युको प्राप्त होना और कुरुक्षेत्रमें निवास करना—इन चारों साधनोंसे मोक्ष प्राप्त होता है। सरस्वती और दृषद्वती—इन दोनों देवनदियोंके बीचका जो देश है, उसे देवसेवित ब्रह्मावर्त (कुरुक्षेत्र) कहते हैं। जो दूर रहकर भी 'मैं कुरुक्षेत्रमें जाऊँगा और वहीं निवास करूँगा' इस प्रकार सदा कहा करता है, वह भी पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो धीर पुरुष वहाँ सरस्वतीके तटपर निवास करेगा, उसे निस्सन्देह ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा। देवि! देवता, महर्षि और सिद्धगण कुरुक्षेत्रका सेवन करते हैं; उसके सेवनसे मनुष्य अपने-आपमें ही ब्रह्मका साक्षात्कार करता है।

वहीं सम्पूर्ण देवताओंने भगवान् वामनकी भी स्थापना की है। अतः उनका पूजन करके मानव अग्निष्टोम यज्ञका फल पा लेता है। वहाँसे अश्वितीर्थमें जाकर श्रद्धालु एवं जितेन्द्रिय पुरुष वहाँ स्नान करे। इससे वह यशस्वी तथा रूपवान् होता है। वहाँसे भगवान् विष्णुद्वारा निर्मित वाराहतीर्थमें जाकर श्रद्धापूर्वक डुबकी लगानेवाला मनुष्य उत्तम गतिको पाता है। वरानने! वहाँसे सोमतीर्थमें जाय, जहाँ सोम तपस्या करके नीरोग हुए थे। वहाँ स्नान करना चाहिये। उस तीर्थमें एक गोदान करके मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है। वहीं भूतेश्वर, ज्वालामालेश्वर तथा ताण्डेश्वर शिवलिङ्ग हैं। उनकी पूजा करके मनुष्य फिर संसारमें जन्म नहीं लेता। एकहंस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है और कृतशौचतीर्थमें स्नान करनेपर उसे पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त होता है। तदनन्तर भगवान् शिवके मुञ्जवट नामक तीर्थमें जाकर वहाँ एक रात निवास करे। फिर दूसरे दिन भगवान् शिवकी पूजा करके वह उनके गणोंका अधिपति होता है। तदनन्तर उस तीर्थमें परिक्रमा करके पुष्करतीर्थमें जाय। वहाँ स्नान और पितरोंका पूजन करके मनुष्य कृत-कृत्य हो जाता है। तदनन्तर रामहृदको जाय और वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं, ऋषियों तथा पितरों-का पूजन (तर्पण) आदि करे। इससे वह भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है। जो उत्तम श्रद्धापूर्वक परशु-रामजीकी पूजा करके वहाँ सुवर्ण-दान करता है, वह धनी होता है। वंशमूलतीर्थमें जाकर स्नान करनेसे तीर्थयात्री अपने वंशका उद्धार करता है और कायशोधनतीर्थमें स्नान करके शुद्धशरीर हो श्रीहरिमें प्रवेश करता है।

तत्पश्चात् लोकोद्धारतीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करके भगवान् जनार्दनका पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष उस शाश्वत लोकको प्राप्त होता है, जहाँ सनातन भगवान् विष्णु विराजमान हैं। वहाँसे श्रीतीर्थ एवं परम उत्तम शालग्राम-तीर्थमें जाकर, जो वहाँ स्नान करके श्रीहरिका पूजन करता है, वह प्रतिदिन भगवान्‌को अपने समीप विद्यमान देखता है। कपिलाहृदतीर्थमें जाकर वहाँ स्नान और देवता, पितरों-का पूजन करके मनुष्य सहस्र कपिलादानका पुण्य पाता है। भद्रे! वहाँ जगदीश्वर कपिलका विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य देवताओंके द्वारा सत्कृत हो साक्षात् भगवान् शिवका पद प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर सूर्यतीर्थमें जाकर उपवासपूर्वक भगवान् सूर्यका पूजन करे। इससे यात्री अग्निष्टोम यज्ञका फल पाकर स्वर्गलोकमें जाता है। पृथ्वीके विवरद्वारपर साक्षात् गणेशजी विराजमान हैं। उनका दर्शन और पूजन करके मनुष्य यज्ञानुष्ठानका फल पाता है। देवी-तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है और ब्रह्मावर्तमें स्नान करके वह ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है। सुतीर्थमें स्नान करके देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा मनुष्योंका पूजन करनेपर मानव अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। कामेश्वरतीर्थमें श्रद्धापूर्वक स्नान करके सब व्याधियोंसे मुक्त पुरुष शाश्वत ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। देवि! मातृतीर्थमें श्रद्धापूर्वक स्नान और पूजन करनेवाले पुरुषके घर सात पीढ़ियोंतक उत्तम लक्ष्मी बढ़ती रहती है। शुभे! तदनन्तर सीतावन नामक महान् तीर्थमें जाय। वहाँ अपना केश मुँड़ाकर मनुष्य पापसे शुद्ध हो जाता है। वहीं तीनों लोकोंमें विख्यात दशाश्वमेध नामक तीर्थ है, जिसके दर्शन-मात्रसे मानव पापमुक्त हो जाता है। विधिनन्दिनी! यदि पुनः मनुष्य-जन्म पानेकी इच्छा हो तो मानुषतीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये। मानुषतीर्थसे एक कोसकी दूरीपर आपगा नामसे विख्यात एक महानदी है। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सावाँके चावलकी खीर भोजन करावे। ऐसा करनेवाले पुरुषके पापोंका नाश हो जाता है और वहाँ श्राद्ध करनेसे पितरोंकी सद्गति होती है। भाद्रपद[1] मासके कृष्णपक्षमें, जिसे पितृपक्ष एवं महालय भी कहते हैं, चतुर्दशीको मध्याह्नमें आपगाके तटपर पिण्डदान करनेवाला मनुष्य मोक्ष पाता है।

वहाँसे ब्रह्माजीके स्थान ब्राह्मोदुम्बरकतीर्थमें जाय। वहाँ ब्रह्मर्षियोंके कुण्डोंमें स्नान करके मनुष्य सोमयागका फल पाता है। वृद्धकेदारकतीर्थमें दण्डीसहित स्थाणुकी पूजा करके कलशीतीर्थमें जाय, जहाँ साक्षात् अम्बिकादेवी विराजमान हैं। वहाँ स्नान करके अम्बिकाजीकी पूजा करनेसे मानव भवसागरके पार हो जाता है। सरकतीर्थमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको भगवान् महेश्वरका दर्शन करके श्रद्धालु मनुष्य शिवधाममें जाता है। भामिनि! सरकमें तीन करोड़ तीर्थ हैं। सरोवरके मध्यमें जो कूप है, उसमें कोटि रुद्रोंका निवास है। जो मानव उस सरोवरमें स्नान करके उन कोटिरुद्रोंका स्मरण करता है, उसके द्वारा वे करोड़ों रुद्र पूजित होते हैं। वहीं इंहास्पद नामक तीर्थ है, जो सब

१. पूर्णिमान्त मासकी मान्यताके अनुसार पितृपक्ष आश्विनमें पड़ता है। अत: यहाँ भाद्रपदका अर्थ आश्विन समझना चाहिये।

वहीं सम्पूर्ण देवताओंने भगवान् वामनकी भी स्थापना की है। अतः उनका पूजन करके मानव अग्निष्टोम यज्ञका फल पा लेता है। वहाँसे अश्वितीर्थमें जाकर श्रद्धालु एवं जितेन्द्रिय पुरुष वहाँ स्नान करे। इससे वह यशस्वी तथा रूपवान् होता है। वहाँसे भगवान् विष्णुद्वारा निर्मित वाराहतीर्थमें जाकर श्रद्धापूर्वक डुबकी लगानेवाला मनुष्य उत्तम गतिको पाता है। वरानने! वहाँसे सोमतीर्थमें जाय, जहाँ सोम तपस्या करके नीरोग हुए थे। वहाँ स्नान करना चाहिये। उस तीर्थमें एक गोदान करके मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है। वहीं भूतेश्वर, ज्वालामालेश्वर तथा ताण्डेश्वर शिवलिङ्ग हैं। उनकी पूजा करके मनुष्य फिर संसारमें जन्म नहीं लेता। एकहंस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है और कृतशौचतीर्थमें स्नान करनेपर उसे पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त होता है। तदनन्तर भगवान् शिवके मुञ्जवट नामक तीर्थमें जाकर वहाँ एक रात निवास करे। फिर दूसरे दिन भगवान् शिवकी पूजा करके वह उनके गणोंका अधिपति होता है। तदनन्तर उस तीर्थमें परिक्रमा करके पुष्करतीर्थमें जाय। वहाँ स्नान और पितरोंका पूजन करके मनुष्य कृत-कृत्य हो जाता है। तदनन्तर रामह्रदको जाय और वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं, ऋषियों तथा पितरों-का पूजन (तर्पण) आदि करे। इससे वह भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है। जो उत्तम श्रद्धापूर्वक परशु-रामजीकी पूजा करके वहाँ सुवर्ण-दान करता है, वह धनी होता है। वंशमूलतीर्थमें जाकर स्नान करनेसे तीर्थयात्री अपने वंशका उद्धार करता है और कायशोधनतीर्थमें स्नान करके शुद्धशरीर हो श्रीहरिमें प्रवेश करता है।

तत्पश्चात् लोकोद्धारतीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करके भगवान् जनार्दनका पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष उस शाश्वत लोकको प्राप्त होता है, जहाँ सनातन भगवान् विष्णु विराजमान हैं। वहाँसे श्रीतीर्थ एवं परम उत्तम शालग्राम-तीर्थमें जाकर, जो वहाँ स्नान करके श्रीहरिका पूजन करता है, वह प्रतिदिन भगवान्को अपने समीप विद्यमान देखता है। कपिलाह्रदतीर्थमें जाकर वहाँ स्नान और देवता, पितरों-का पूजन करके मनुष्य सहस्र कपिलादानका पुण्य पाता है। भद्रे! वहाँ जगदीश्वर कपिलका विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य देवताओंके द्वारा सत्कृत हो साक्षात् भगवान् शिवका पद प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर सूर्यतीर्थमें जाकर उत्तमतापूर्वक भगवान् सूर्यका पूजन करे। इससे यात्री अग्निष्टोम यज्ञका फल पाकर स्वर्गलोकमें जाता है। पृथ्वीके विवरद्वारपर साक्षात् गणेशजी विराजमान हैं। उनका दर्शन और पूजन करके मनुष्य यज्ञानुष्ठानका फल पाता है। देवी-तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है और ब्रह्मावर्तमें स्नान करके वह ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है। सुतीर्थमें स्नान करके देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा मनुष्योंका पूजन करनेपर मानव अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। कामेश्वरतीर्थमें श्रद्धापूर्वक स्नान करके सब व्याधियोंसे मुक्त पुरुष शाश्वत ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। देवि! मातृतीर्थमें श्रद्धापूर्वक स्नान और पूजन करनेवाले पुरुषके घर सात पीढ़ियोंतक उत्तम लक्ष्मी बढ़ती रहती है। शुभे! तदनन्तर सीतावन नामक महान् तीर्थमें जाय। वहाँ अपना केश मुँडाकर मनुष्य पापसे शुद्ध हो जाता है। वहीं तीनों लोकोंमें विख्यात दशाश्वमेध नामक तीर्थ है, जिसके दर्शन-मात्रसे मानव पापमुक्त हो जाता है। विधिनन्दिनी! यदि पुनः मनुष्य-जन्म पानेकी इच्छा हो तो मानुषतीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये। मानुषतीर्थसे एक कोसकी दूरीपर आपगा नामसे विख्यात एक महानदी है। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सावाँके चावलकी खीर भोजन करावे। ऐसा करनेवाले पुरुषके पापोंका नाश हो जाता है और वहाँ श्राद्ध करनेसे पितरोंकी सद्गति होती है। भाद्रपद[1] मासके कृष्णपक्षमें, जिसे पितृपक्ष एवं महालय भी कहते हैं, चतुर्दशीको मध्याह्नमें आपगाके तटपर पिण्डदान करनेवाला मनुष्य मोक्ष पाता है।

वहाँसे ब्रह्माजीके स्थान ब्राह्मोदुम्बरकतीर्थमें जाय। वहाँ ब्रह्मर्षियोंके कुण्डोंमें स्नान करके मनुष्य सोमयागका फल पाता है। वृद्धकेदारकतीर्थमें दण्डीसहित स्थाणुकी पूजा करके कलशीतीर्थमें जाय, जहाँ साक्षात् अम्बिकादेवी विराजमान हैं। वहाँ स्नान करके अम्बिकाजीकी पूजा करनेसे मानव भवसागरके पार हो जाता है। सरकतीर्थमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको भगवान् महेश्वरका दर्शन करके श्रद्धालु मनुष्य शिवधाममें जाता है। भामिनि! सरकमें तीन करोड़ तीर्थ हैं। सरोवरके मध्यमें जो कूप है, उसमें कोटि रुद्रोंका निवास है। जो मानव उस सरोवरमें स्नान करके उन कोटिरुद्रोंका स्मरण करता है, उसके द्वारा वे करोड़ों रुद्र पूजित होते हैं। वहीं इंहास्पद नामक तीर्थ है, जो सब

1. पूर्णिमान्त मासकी मान्यताके अनुसार पितृपक्ष आश्विनमें पड़ता है। अत. यहाँ भाद्रपदका अर्थ आश्विन समझना चाहिये।

सुनन्दा, सुवेणु तथा सातवीं विमलोदका । उसी प्रकार औशनसतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। कपालमोचनमें स्नान करके ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है। विश्वामित्रतीर्थमें स्नान करनेवाला मानव ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर पृथूदकतीर्थमें स्नान करके तीर्थसेवी पुरुष भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है और अवकीर्णमें स्नान करनेसे उसे ब्रह्मचर्यका फल मिलता है। जो मधुस्रावमें जाकर स्नान करता है, वह पातकोंसे मुक्त हो जाता है। वसिष्ठतीर्थमें स्नान करनेसे वसिष्ठलोककी प्राप्ति होती है। अरुणासङ्गममें स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य पुनः स्नान करके मोक्षका भागी होता है।

मोहिनी! वहाँ दूसरा सोमतीर्थ है। उसमें स्नान करके चैत्र शुक्ला षष्ठीको श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। पञ्चवटमें स्नान करके योग-मूर्तिधारी भगवान् शिवकी विधिपूर्वक पूजा करनेसे मानव देवताओंके साथ आनन्दका भागी होता है। कुरुतीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंको पा लेता है। स्वर्गद्वारमें गोता लगानेवाला मानव स्वर्गलोकमें पूजित होता है। अनरकतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है। देवि! तदनन्तर उत्तम काम्यकवनमें जाना चाहिये। जिसमें प्रवेश करते ही सब पापराशियोंसे छुटकारा मिल जाता है। फिर आदित्यवनमें जाकर आदित्यके दर्शनसे ही मानव मोक्षका भागी होता है। रविवारको वहाँ स्नान करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल पा लेता है और यज्ञोपवीतिकतीर्थमें स्नान करके वह स्वधर्मफलका भागी होता है। तत्पश्चात् श्रेष्ठ मानव चतुःप्रवाह नामक तीर्थमें स्नान करे। इससे वह सम्पूर्ण तीर्थोंका फल पाकर स्वर्गलोकमें देवताकी भाँति आनन्दित होता है। विहारतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष सब प्रकारके सुख पाता है। दुर्गातीर्थमें स्नान करके मानव कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। तदनन्तर पितृतीर्थ नामक सरस्वती कूपमें स्नान करके देवता आदिका तर्पण करनेवाला पुरुष उत्तम गतिको पाता है। प्राची सरस्वतीमें स्नान और विधिपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य दुर्लभ कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और शरीरका अन्त होनेपर वह स्वर्गलोकमें जाता है। शुक्रतीर्थमें स्नान करके श्राद्धदान करनेवाला पुरुष अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। विशेषतः चैत्र मासके कृष्णपक्षमें अष्टमी या चतुर्दशी तिथिको वहाँ श्राद्ध करना चाहिये। ब्रह्मतीर्थमें उपवास करनेवाला पुरुष निःसन्देह मोक्षका भागी होता है। तदनन्तर स्थाणुतीर्थमें स्नान करके स्थाणुवटका दर्शन करनेसे कुरुक्षेत्रकी यात्रा पूरी हो जाती है।

देवि! मैंने तुम्हें कुरुक्षेत्रका माहात्म्य ठीक-ठीक बताया है। कुरुक्षेत्रके समान दूसरा कोई तीर्थ न हुआ है न होगा। वहाँ किया हुआ इष्टापूर्त कर्म, तप, विधिपूर्वक होम और दान आदि सब कुछ अक्षय होता है। मन्वादि तिथि, युगादि तिथि, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, महापात (व्यतीपात), संक्रान्ति तथा अन्य पुण्यपर्वोंके दिन कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेवाला पुरुष अक्षय फलका भागी होता है। महात्मा पुरुषोंके कलियुगजनित पापोंका शोधन करनेके लिये ब्रह्माजीने सुखदायक कुरुक्षेत्रतीर्थका निर्माण किया है। जो मनुष्य इस पापनाशक पुण्यकथाका भक्तिभावसे कीर्तन अथवा श्रवण करता है, वह भी सब पापोंसे छूट जाता है। जो मनुष्य सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें जो-जो वस्तुएँ देता है, उसी-उसीको वह सदा प्रत्येक जन्ममें पाता है। ब्रह्मपुत्री मोहिनी! बहुत कहनेसे क्या लाभ! मेरा निश्चित विचार सुनो, यदि कोई संसारबन्धनसे मुक्त होना चाहे तो उसे कुरुक्षेत्रका सेवन करना ही चाहिये।

सुनन्दा, सुवेणु तथा सातवीं विमलोदका । उसी प्रकार औशनसतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। कपालमोचनमें स्नान करके ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है। विश्वामित्रतीर्थमें स्नान करनेवाला मानव ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर पृथूदकतीर्थमें स्नान करके तीर्थसेवी पुरुष भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है और अवकीर्णमें स्नान करनेसे उसे ब्रह्मचर्यका फल मिलता है। जो मधुस्रावमें जाकर स्नान करता है, वह पातकोंसे मुक्त हो जाता है। वसिष्ठतीर्थमें स्नान करनेसे वसिष्ठलोककी प्राप्ति होती है। अरुणासङ्गममें स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य पुनः स्नान करके मोक्षका भागी होता है।

मोहिनी! वहाँ दूसरा सोमतीर्थ है। उसमें स्नान करके चैत्र शुक्ला षष्ठीको श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। पञ्चवटमें स्नान करके योग-मूर्तिधारी भगवान् शिवकी विधिपूर्वक पूजा करनेसे मानव देवताओंके साथ आनन्दका भागी होता है। कुरुतीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंको पा लेता है। स्वर्गद्वारमें गोता लगानेवाला मानव स्वर्ग-लोकमें पूजित होता है। अनरकतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है। देवि! तदनन्तर उत्तम काम्यकवनमें जाना चाहिये। जिसमें प्रवेश करते ही सब पाप-राशियोंसे छुटकारा मिल जाता है। फिर आदित्यवनमें जाकर आदित्यके दर्शनसे ही मानव मोक्षका भागी होता है। रविवारको वहाँ स्नान करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल पा लेता है और यजोपवीतिकतीर्थमें स्नान करके वह स्वधर्मफलका भागी होता है। तत्पश्चात् श्रेष्ठ मानव चतुःप्रवाह नामक तीर्थमें स्नान करे। इससे वह सम्पूर्ण तीर्थोंका फल पाकर स्वर्गलोकमें देवताकी भाँति आनन्दित होता है। विहारतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष सब प्रकारके सुख पाता है। दुर्गातीर्थमें स्नान करके मानव कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। तदनन्तर पितृतीर्थ नामक सरस्वती कूपमें स्नान करके देवता आदिका तर्पण करनेवाला पुरुष उत्तम गतिको पाता है। प्राची सरस्वतीमें स्नान और विधिपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य दुर्लभ कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और शरीरका अन्त होनेपर वह स्वर्गलोकमें जाता है। शुक्रतीर्थमें स्नान करके श्राद्धदान करनेवाला पुरुष अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। विशेषतः चैत्र मासके कृष्णपक्षमें अष्टमी या चतुर्दशी तिथिको वहाँ श्राद्ध करना चाहिये। ब्रह्मतीर्थमें उपवास करनेवाला पुरुष निःसन्देह मोक्ष-का भागी होता है। तदनन्तर स्थाणुतीर्थमें स्नान करके स्थाणुवटका दर्शन करनेसे कुरुक्षेत्रकी यात्रा पूरी हो जाती है।

देवि! मैंने तुम्हें कुरुक्षेत्रका माहात्म्य ठीक-ठीक बताया है। कुरुक्षेत्रके समान दूसरा कोई तीर्थ न हुआ है न होगा। वहाँ किया हुआ इष्टापूर्त कर्म, तप, विधिपूर्वक होम और दान आदि सब कुछ अक्षय होता है। मन्वादि तिथि, युगादि तिथि, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, महापात (व्यतीपात), संक्रान्ति तथा अन्य पुण्यपर्वोंके दिन कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेवाला पुरुष अक्षय फलका भागी होता है। महात्मा पुरुषोंके कलियुगजनित पापों-का शोधन करनेके लिये ब्रह्माजीने सुखदायक कुरुक्षेत्रतीर्थका निर्माण किया है। जो मनुष्य इस पापनाशक पुण्यकथाका भक्तिभावसे कीर्तन अथवा श्रवण करता है, वह भी सब पापोंसे छूट जाता है। जो मनुष्य सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें जो-जो वस्तुएँ देता है, उसी-उसीको वह सदा प्रत्येक जन्ममें पाता है। ब्रह्मपुत्री मोहिनी! बहुत कहनेसे क्या लाभ! मेरा निश्चित विचार सुनो, यदि कोई संसारबन्धनसे मुक्त होना चाहे तो उसे कुरुक्षेत्रका सेवन करना ही चाहिये।

वहाँ वृक्ष पैदा हो गया। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता और उस ओषधिको खाता है, वह गङ्गादेवीके प्रसादसे कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। वहाँसे भीमस्थल (भीमगोड़ा) में जाकर जो पुण्यात्मा पुरुष स्नान करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर शरीरका अन्त होनेपर स्वर्गलोकमें जाता है। यह संक्षेपमें तुम्हें थोड़े-से तीर्थोंका परिचय दिया गया है। जो इस क्षेत्रमें बृहस्पतिके कुम्भ राशिपर और सूर्यके मेषराशिपर रहते समय स्नान करता है, वह साक्षात् बृहस्पति और दूसरे सूर्यके समान तेजस्वी होता है *। प्रयाग आदि पुण्यतीर्थमें एवं पृथोदकतीर्थमें जानेपर जो वारुण, महावारुण तथा महामहावारुण योगमें वहाँ विधिपूर्वक स्नान करता है और भक्तिभावसे ब्राह्मणोंका पूजन करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। संक्रान्ति, अमावास्या, व्यतीपात, युगादि तिथि तथा और किसी पुण्य दिनको जो वहाँ थोड़ा भी दान करता है, वह कोटिगुना हो जाता है। यह मैंने तुमसे सच्ची बात बतायी है। जो मानव दूर रहकर भी गङ्गाद्वारका स्मरण करता है, वह उसी प्रकार सद्गति पाता है, जैसे अन्तकालमें श्रीहरिको स्मरण करनेवाला पुरुष। मनुष्य शुद्धचित्त होकर हरिद्वारमें जिस-जिस देवताका पूजन करता है, वह-वह परम प्रसन्न होकर उसके मनोरथोंको पूर्ण करता है। जहाँ गङ्गा भूतलपर आयी हैं, वही तपस्याका स्थान है। यही जपका स्थल है और यही होमका स्थान है। जो मनुष्य नियमपूर्वक रहकर तीनों समय स्नान करके वहाँ गङ्गासहस्रनामका पाठ करता है, वह अक्षय संतति पाता है। महाभागे! जो नियमपूर्वक भक्तिभावसे गङ्गाद्वारमें पुराण सुनता है, वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है। जो श्रेष्ठ मानव हरिद्वारका माहात्म्य सुनता है अथवा भक्तिभावसे उसका पाठ करता है, वह भी स्नानका फल पाता है।

बदरिकाश्रमके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा

मोहिनी बोली—विप्रवर! आपने गङ्गाद्वारका माहात्म्य बताया, अब बदरीतीर्थके पापनाशक माहात्म्यका वर्णन कीजिये।

पुरोहित वसुने कहा—भद्रे! सुनो; मैं बदरीतीर्थका माहात्म्य बतलाता हूँ; जिसे सुनकर जीव जन्म-मृत्युरूप संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। भगवान् विष्णुका बदरी नामक क्षेत्र सब पातकोंका नाश करनेवाला है और संसार-भयसे डरे हुए मनुष्योंके कलिसम्बन्धी दोषोंका अपहरण करके उन्हें मुक्ति देनेवाला है; जहाँ भगवान् नारायण तथा नर ऋषि, जिन्होंने धर्मसे उनकी पत्नी मूर्तिके गर्भसे अवतार ग्रहण किया है, गन्धमादन पर्वतपर तपस्याके लिये गये थे और जहाँ बहुत सुगन्धित फलसे युक्त बेरका वृक्ष है। महाभागे! वे दोनों महात्मा उस स्थानपर कल्पभरके लिये तपस्यामें स्थित हैं। कलापग्रामवासी नारद आदि मुनिवर तथा सिद्धोंके समुदाय उन्हें घेरे रहते हैं और वे दोनों लोकरक्षाके लिये तपस्यामें संलग्न हैं। वहाँ सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला सुविख्यात अग्नितीर्थ है। उसमें स्नान करके महापातकी भी पातकसे शुद्ध हो जाते हैं। सहस्रों चान्द्रायण और करोड़ों कृच्छ्रव्रतसे मनुष्य जो फल पाता है, उसे अग्नितीर्थमें स्नान करनेमात्रसे पा लेता है। उस तीर्थमें पाँच शिलाएँ हैं। जहाँ भगवान् नारदने अत्यन्त भयकर तपस्या की, वह शिला नारदी नामसे विख्यात है, जो दर्शनमात्रसे मुक्ति देनेवाली है। सुलोचने! वहाँ भगवान् विष्णुका नित्य निवास है। उस तीर्थमें नारदकुण्ड है, जहाँ स्नान करके पवित्र हुआ मनुष्य भोग, मोक्ष, भगवान्‌की भक्ति आदि जो-जो चाहता है, वही-वही प्राप्त कर लेता है। जो मानव भक्तिपूर्वक इस नारदी शिलाके समीप स्नान, दान, देवपूजन, होम, जप तथा अन्य शुभकर्म करता है, वह सब अक्षय होता है। इस क्षेत्रमें दूसरी शुभकारक शिला वैनतेय शिलाके नामसे विख्यात है, जहाँ महात्मा गरुड़ने भगवान् विष्णुके दर्शनकी इच्छासे तीस

* योऽस्मिन्क्षेत्रे नरः स्नायात्कुम्भेऽज्येऽजगे रवौ ॥ स तु साक्षाद्‌गुरुपतिः साक्षात्प्रभाकर इवापरः ।

(ना० उत्तर० ६६ । ४४-४५)

वहाँ वृक्ष पैदा हो गया। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता और उस ओषधिको खाता है, वह गङ्गादेवीके प्रसादसे कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। वहाँसे भीमस्थल (भीमगोड़ा) में जाकर जो पुण्यात्मा पुरुष स्नान करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर शरीरका अन्त होनेपर स्वर्गलोकमें जाता है। यह संक्षेपमें तुम्हें थोड़े-से तीर्थोंका परिचय दिया गया है। जो इस क्षेत्रमें बृहस्पतिके कुम्भ राशिपर और सूर्यके मेषराशिपर रहते समय स्नान करता है, वह साक्षात् बृहस्पति और दूसरे सूर्यके समान तेजस्वी होता है *। प्रयाग आदि पुण्यतीर्थमें एवं पृथोदकतीर्थमें जानेपर जो वारुण, महावारुण तथा महामहावारुण योगमें वहाँ विधिपूर्वक स्नान करता है और भक्तिभावसे ब्राह्मणोंका पूजन करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। संक्रान्ति, अमावास्या, व्यतीपात, युगादि तिथि तथा और किसी पुण्य दिनको जो वहाँ थोड़ा भी दान करता है, वह कोटिगुना हो जाता है। यह मैंने तुमसे सच्ची बात बतायी है। जो मानव दूर रहकर भी गङ्गाद्वारका स्मरण करता है, वह उसी प्रकार सद्गति पाता है, जैसे अन्तकालमें श्रीहरिको स्मरण करनेवाला पुरुष। मनुष्य शुद्धचित्त होकर हरिद्वारमें जिस-जिस देवताका पूजन करता है, वह-वह परम प्रसन्न होकर उसके मनोरथोंको पूर्ण करता है। जहाँ गङ्गा भूतलपर आयी हैं, वही तपस्याका स्थान है। यही जपका स्थल है और यही होमका स्थान है। जो मनुष्य नियमपूर्वक रहकर तीनों समय स्नान करके वहाँ गङ्गासहस्रनामका पाठ करता है, वह अक्षय संतति पाता है। महाभागे! जो नियमपूर्वक भक्तिभावसे गङ्गाद्वारमें पुराण सुनता है, वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है। जो श्रेष्ठ मानव हरिद्वारका माहात्म्य सुनता है अथवा भक्तिभावसे उसका पाठ करता है, वह भी स्नानका फल पाता है।

बदरिकाश्रमके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा

मोहिनी बोली—विप्रवर! आपने गङ्गाद्वारका माहात्म्य बताया, अब बदरीतीर्थके पापनाशक माहात्म्यका वर्णन कीजिये।

पुरोहित वसुने कहा—भद्रे! सुनो; मैं बदरीतीर्थका माहात्म्य बतलाता हूँ; जिसे सुनकर जीव जन्म-मृत्युरूप संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। भगवान् विष्णुका बदरी नामक क्षेत्र सब पातकोंका नाश करनेवाला है और संसार-भयसे डरे हुए मनुष्योंके कलिसम्बन्धी दोषोंका अपहरण करके उन्हें मुक्ति देनेवाला है; जहाँ भगवान् नारायण तथा नर ऋषि, जिन्होंने धर्मसे उनकी पत्नी मूर्तिके गर्भसे अवतार ग्रहण किया है, गन्धमादन पर्वतपर तपस्याके लिये गये थे और जहाँ बहुत सुगन्धित फलसे युक्त बेरका वृक्ष है। महाभागे! वे दोनों महात्मा उस स्थानपर कल्पभरके लिये तपस्यामें स्थित हैं। कलापग्रामवासी नारद आदि मुनिवर तथा सिद्धोंके समुदाय उन्हें घेरे रहते हैं और वे दोनों लोकरक्षाके लिये तपस्यामें संलग्न हैं। वहाँ सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला सुविख्यात अग्नितीर्थ है। उसमें स्नान करके महापातकी भी पातकसे शुद्ध हो जाते हैं। सहस्रों चान्द्रायण और करोड़ों कृच्छ्रव्रतसे मनुष्य जो फल पाता है, उसे अग्नितीर्थमें स्नान करनेमात्रसे पा लेता है। उस तीर्थमें पाँच शिलाएँ हैं। जहाँ भगवान् नारदने अत्यन्त भयकर तपस्या की, वह शिला नारदी नामसे विख्यात है, जो दर्शनमात्रसे मुक्ति देनेवाली है। सुलोचने! वहाँ भगवान् विष्णुका नित्य निवास है। उस तीर्थमें नारदकुण्ड है, जहाँ स्नान करके पवित्र हुआ मनुष्य भोग, मोक्ष, भगवान्‌की भक्ति आदि जो-जो चाहता है, वही-वही प्राप्त कर लेता है। जो मानव भक्तिपूर्वक इस नारदी शिलाके समीप स्नान, दान, देवपूजन, होम, जप तथा अन्य शुभकर्म करता है, वह सब अक्षय होता है। इस क्षेत्रमें दूसरी शुभकारक शिला वैनतेय शिलाके नामसे विख्यात है, जहाँ महात्मा गरुड़ने भगवान् विष्णुके दर्शनकी इच्छासे तीस

* योऽस्मिन्क्षेत्रे नरः स्नायात्कुम्भेऽज्येऽजगे रवौ ॥ स तु स्याद्वाक्पतिः साक्षात्प्रभाकर इवापरः ।
(ना० उत्तर० ६६ । ४४-४५)

का नाश करनेवाला है । तदनन्तर किसी समय अविनाशी भगवान् विष्णुने पुनः वेदोंका अपहरण करनेवाले दो मतवाले असुर मधु और कैटभको हयग्रीवरूपसे मारकर फिर ब्रह्माजीको वेद लौटाये । अतः ब्रह्मकुमारी ! वह तीर्थ स्नानमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला है । भद्रे ! मत्स्य और हयग्रीव-तीर्थमें स्वरूपधारी वेद सदा विद्यमान रहते हैं । अतः वहाँका जल सब पापोंका नाश करनेवाला है । वहीं एक दूसरा मनोरम तीर्थ है, जो मानसोद्भेदक नामसे विख्यात है । वह हृदयकी गाँठें खोल देता है, मनके समस्त संशयोंका नाश करता है और सारे पापोंको भी हर लेता है । इसीलिये वह मानसोद्भेदक कहलाता है । वरानने ! वहीं कामाकाम नामक दूसरा तीर्थ है, जो सकाम पुरुषोंकी कामना पूर्ण करनेवाला और निष्कामभाववाले पुरुषोंको मोक्ष देनेवाला है । भद्रे ! वहाँसे पश्चिम वसुधारातीर्थ है । वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाता है । इस वसुधारातीर्थमें पुण्यात्मा पुरुषोंको जलके भीतरसे ज्योति निकलती दिखायी देती है, जिसे देखकर मनुष्य फिर गर्भवासमें नहीं आता ।

वहाँसे नैर्ऋत्य कोणमें पाँच धाराएँ नीचे गिरती हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—प्रभास, पुष्कर, गया, नैमिषारण्य और कुरुक्षेत्र । उनमें पृथक्-पृथक् स्नान करके मनुष्य उन-उन तीर्थोंका फल पाता है । उसके बाद एक दूसरा विमलतीर्थ है, जो सोमकुण्डके नामसे भी विख्यात है, जहाँ तीव्र तपस्या करके सोम ग्रह आदिके अधीश्वर हुए हैं । भद्रे ! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य दोषरहित हो जाता है । वहाँ एक दूसरा द्वादशादित्य नामक तीर्थ है, जो सब पापोंको हर लेनेवाला और उत्तम है । वहाँ स्नान करके मनुष्य सूर्यके समान तेजस्वी होता है । वहीं चतुःस्रोत नामका एक दूसरा तीर्थ है, जिसमें डुबकी लगानेवाला मानव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारोंमेंसे जिसको चाहता है, उसीको पा लेता है । सती मोहिनी ! तदनन्तर वहीं सत्यपद नामक मनोहर तीर्थ है, जिसके दर्शनमात्रसे बड़े-बड़े पातक भी अवश्य नष्ट हो जाते हैं । फिर उसमें स्नान करनेकी तो बात ही क्या ! उस कुण्डके तीनों कोणोंपर ब्रह्मा, विष्णु और महेश स्थित रहते हैं । वहाँ मृत्यु होनेसे मनुष्य सत्यपद-स्वरूप भगवान् विष्णुको प्राप्त करता है । शुभे ! वहाँसे दक्षिणभागमें परम उत्तम अस्त्र-तीर्थ है, जहाँ भगवान् नर और नारायण अपने अस्त्र शस्त्र रखकर तपस्यामें संलग्न हुए थे । महाभागे ! वहाँ पुण्यात्मा पुरुषोंको शङ्ख, चक्र आदि दिव्य आयुध मूर्तिमान् दिखायी देते हैं । वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यको शत्रुका भय नहीं प्राप्त होता । शुभे ! वहीं मेरुतीर्थ है, जहाँ स्नान और धनुर्धर श्रीहरिका दर्शन करके मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है । जहाँ भागीरथी और अलकनन्दा मिली हैं, वह पुण्यमय (देवप्रयाग) बदरिकाश्रममें सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है । वहाँ स्नान, देवताओं और पितरोंका तर्पण तथा भक्तिभावसे भगवत्पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंद्वारा वन्दित हो विष्णुधामको प्राप्त कर लेता है । शुभानने ! संगमसे दक्षिण-भागमें धर्मक्षेत्र है । मैं उसे सब तीर्थोंमें परम उत्तम और पावन क्षेत्र मानता हूँ । भद्रे ! वहीं कर्मोद्धार नामक दूसरा तीर्थ है, जो भगवान्‌की भक्तिका एकमात्र साधन है । ब्रह्मावर्त नामक तीर्थ ब्रह्मलोककी प्राप्तिका प्रमुख साधन है । मोहिनी ! ये गङ्गाके आश्रित तीर्थ तुम्हें बताये गये हैं । बदरिकाश्रमके तीर्थोंका पूरा पूरा वर्णन करनेमें ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं । जो मनुष्य भक्ति-भावसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतका पालन करते हुए एक मासतक यहाँ निवास करता है, वह नर-नारायण श्रीहरिका साक्षात् दर्शन पाता है ।

सिद्धनाथ-चरित्रसहित कामाक्षा-माहात्म्य

मोहिनी बोली—विप्रवर ! मैं कामाक्षा देवीका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ ।

पुरोहित वसुने कहा—मोहिनी ! कामाक्षा बड़ी उत्कट देवी हैं । वे पूर्व दिशामें रहती हैं । वे कलियुगमें मनुष्योंको सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं । भद्रे ! जो वहाँ रहकर नियमित भोजन करते हुए कामाक्षा देवीका पूजन करता है और दृढ़ आसनसे बैठकर वहाँ एक रात व्यतीत करता है, वह साधक देवीका दर्शन कर लेता है । वह देवी भयंकर रूपसे मनुष्योंके सामने प्रकट होती हैं । उस समय उसे देखकर जो विचलित नहीं होता, वह मनोवाञ्छित सिद्धिको पा लेता है । वरानने ! वहाँ पार्वतीजीके पुत्र सिद्धनाथ रहते हैं, जो उग्र तपस्यामें स्थित हैं । लोगोंको वे कभी दर्शन नहीं देते हैं । सत्ययुग, त्रेता, द्वापर—इन तीन युगोंमें तो सब लोग उन्हें प्रत्यक्ष देखते हैं, किंतु कलियुगमें जबतक उसका एक चरण स्थित रहता है, वे अन्तर्धान हो

का नाश करनेवाला है। तदनन्तर किसी समय अविनाशी भगवान् विष्णुने पुनः वेदोंका अपहरण करनेवाले दो मतवाले असुर मधु और कैटभको हयग्रीवरूपसे मारकर फिर ब्रह्माजीको वेद लौटाये। अतः ब्रह्मकुमारी! वह तीर्थ स्नानमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला है। भद्रे! मत्स्य और हयग्रीव-तीर्थमें ब्रह्मरूपधारी वेद सदा विद्यमान रहते हैं। अतः वहाँका जल सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहीं एक दूसरा मनोरम तीर्थ है, जो मानसोद्भेदक नामसे विख्यात है। वह हृदयकी गाँठें खोल देता है, मनके समस्त संशयोंका नाश करता है और सारे पापोंको भी हर लेता है। इसीलिये वह मानसोद्भेदक कहलाता है। वरानने! वहीं कामाकाम नामक दूसरा तीर्थ है, जो सकाम पुरुषोंकी कामना पूर्ण करनेवाला और निष्कामभाववाले पुरुषोंको मोक्ष देनेवाला है। भद्रे! वहाँसे पश्चिम वसुधारातीर्थ है। वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाता है। इस वसुधारातीर्थमें पुण्यात्मा पुरुषोंको जलके भीतरसे ज्योति निकलती दिखायी देती है, जिसे देखकर मनुष्य फिर गर्भवासमें नहीं आता।

वहाँसे नैर्ऋत्य कोणमें पाँच धाराएँ नीचे गिरती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—प्रभास, पुष्कर, गया, नैमिषारण्य और कुरुक्षेत्र। उनमें पृथक्-पृथक् स्नान करके मनुष्य उन-उन तीर्थोंका फल पाता है। उसके बाद एक दूसरा विमलतीर्थ है, जो सोमकुण्डके नामसे भी विख्यात है, जहाँ तीव्र तपस्या करके सोम ग्रह आदिके अधीश्वर हुए हैं। भद्रे! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य दोषरहित हो जाता है। वहाँ एक दूसरा द्वादशादित्य नामक तीर्थ है, जो सब पापोंको हर लेनेवाला और उत्तम है। वहाँ स्नान करके मनुष्य सूर्यके समान तेजस्वी होता है। वहीं चतुःस्रोत नामका एक दूसरा तीर्थ है, जिसमें डुबकी लगानेवाला मानव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारोंमेंसे जिसको चाहता है, उसीको पा लेता है। सती मोहिनी! तदनन्तर वहीं सत्पपद नामक मनोहर तीर्थ है, जिसके दर्शनमात्रसे बड़े-बड़े पातक भी अवश्य नष्ट हो जाते हैं। फिर उसमें स्नान करनेकी तो बात ही क्या! उस कुण्डके तीनों कोणोंपर ब्रह्मा, विष्णु और महेश स्थित रहते हैं। वहाँ मृत्यु होनेसे मनुष्य सत्यपद-स्वरूप भगवान् विष्णुको प्राप्त करता है। शुभे! वहाँसे दक्षिणभागमें परम उत्तम अस्त्र-तीर्थ है, जहाँ भगवान् नर और नारायण अपने अस्त्र शस्त्र रखकर तपस्यामें संलग्न हुए थे। महाभागे! वहाँ पुण्यात्मा पुरुषोंको शङ्ख, चक्र आदि दिव्य आयुध मूर्तिमान् दिखायी देते हैं। वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यको शत्रुका भय नहीं प्राप्त होता। शुभे! वहीं मेरुतीर्थ है, जहाँ स्नान और धनुर्धर श्रीहरिका दर्शन करके मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। जहाँ भागीरथी और अलकनन्दा मिली हैं, वह पुण्यमय (देवप्रयाग) बदरिकाश्रममें सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है। वहाँ स्नान, देवताओं और पितरोंका तर्पण तथा भक्तिभावसे भगवत्पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंद्वारा वन्दित हो विष्णुधामको प्राप्त कर लेता है। शुभानने! संगमसे दक्षिण-भागमें धर्मक्षेत्र है। मैं उसे सब तीर्थोंमें परम उत्तम और पावन क्षेत्र मानता हूँ। भद्रे! वहीं कर्मोद्धार नामक दूसरा तीर्थ है, जो भगवान्‌की भक्तिका एकमात्र साधन है। ब्रह्मावर्त नामक तीर्थ ब्रह्मलोककी प्राप्तिका प्रमुख साधन है। मोहिनी! ये गङ्गाके आश्रित तीर्थ तुम्हें बताये गये हैं। बदरिकाश्रमके तीर्थोंका पूरा पूरा वर्णन करनेमें ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं। जो मनुष्य भक्ति-भावसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतका पालन करते हुए एक मासतक यहाँ निवास करता है, वह नर-नारायण श्रीहरिका साक्षात् दर्शन पाता है।

सिद्धनाथ-चरित्रसहित कामाक्षा-माहात्म्य

मोहिनी बोली—विप्रवर! मैं कामाक्षा देवीका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ।

पुरोहित वसुने कहा—मोहिनी! कामाक्षा बड़ी अद्भुत देवी हैं। वे पूर्व दिशामें रहती हैं। वे कलियुगमें मनुष्योंको सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। भद्रे! जो वहाँ जाकर निरन्तर भोजन करते हुए कामाक्षा देवीका पूजन करता है और दृढ़ आसनसे बैठकर वहाँ एक रात व्यतीत करता है, वह साधक देवीका दर्शन कर लेता है। वह देवी भयंकर रूपसे मनुष्योंके सामने प्रकट होती हैं। उस समय उसे देखकर जो विचलित नहीं होता, वह मनोवाञ्छित सिद्धिको पा लेता है। वरानने! वहाँ पार्वतीजीके पुत्र सिद्धनाथ रहते हैं, जो उग्र तपस्यामें स्थित हैं। लोगोंको वे कभी दर्शन नहीं देते हैं। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर—इन तीन युगोंमें तो सब लोग उन्हें प्रत्यक्ष देखते हैं, किंतु कलियुगमें जबतक उसका एक चरण स्थित रहता है, वे अन्तर्धान हो

मध्यम पुष्करमें स्नान करके ब्राह्मणको भूदान करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। कनिष्ठ पुष्करमें स्नान और ब्राह्मणको सुवर्ण दान करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको पाता और अन्तमें भगवान् रुद्रके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर विष्णुपदमें स्नान और ब्राह्मणको कुछ दान करके मनुष्य भगवान् विष्णुके प्रसादसे समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् नागतीर्थमें स्नान और नागोंका पूजन करके ब्राह्मणोंको दान देनेसे मनुष्य एक युगतक स्वर्गमें आनन्द भोगता है। आकाशमें पुष्करका चिन्तन करके 'आपो हिष्ठा' इत्यादि मन्त्रोंद्वारा जो पुष्करवनमें स्नान करता है, वह शाश्वत ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है।

जब कभी कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्र हो तो वह महातिथि समझी जाती है। उस समय आकाश पुष्करमें स्नान करना चाहिये। भरणी नक्षत्रसे युक्त कार्तिककी पूर्णिमाको मध्यम पुष्करमें स्नान करनेवाला मानव आकाश पुष्करमें स्नान करनेका पुण्यफल पाता है। रोहिणीनक्षत्रसे युक्त कार्तिककी पूर्णिमाको कनिष्ठ पुष्करमें स्नान करनेवाला पुरुष आकाश पुष्करजनित पुण्यफलका भागी होता है। जब सूर्य भरणीनक्षत्रपर, बृहस्पति कृत्तिकापर तथा चन्द्रमा रोहिणीनक्षत्रपर हों और नन्दा तिथिका योग हो तो उस समय पुष्करमें स्नान करनेपर आकाश पुष्करका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। जब विशाखानक्षत्रपर सूर्य और कृत्तिका नक्षत्रपर चन्द्रमा हों तब आकाश पुष्कर नामक योग होता है। उसमें स्नान करनेवाला पुरुष स्वर्गलोकमें जाता है। आकाशसे उतरे हुए इस कल्याणमय पितामहतीर्थमें जो मनुष्य स्नान करते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयकारी लोक प्राप्त होते हैं। सती मोहिनी! पुष्करवनमें पञ्चस्रोता सरस्वती नदीमें सिद्ध महर्षियोंने बहुत-से तीर्थ और देवस्थान स्थापित किये हैं। जो मनुष्य वहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मणको धान्य और तिल दान करता है, वह इहलोक और परलोकमें परम गतिको प्राप्त होता है। जो गङ्गा-सरस्वतीके सङ्गममें स्नान करके ब्राह्मणोंका पूजन करता है, वह इहलोकमें मनोवाञ्छित भोग भोगनेके पश्चात् श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है। सती मोहिनी! जो मानव अवियोगा बावड़ीमें स्नान करके विधिपूर्वक पिण्डदान देता है, वह अपने पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है। जो अजगन्ध शिवके समीप जाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह इहलोक और परलोकमें भी मनोवाञ्छित भोग पाता है। पुष्करतीर्थमें सरोवरसे दक्षिण भागमें एक पर्वतशिखरपर सावित्री देवी विराजमान हैं। जो उनकी पूजा करता है, वह वेदोंके तत्त्वका ज्ञाता होता है। मोहिनी! वहाँ भगवान् वाराह, नृसिंह, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, कार्तिकेय, पार्वती तथा अग्निके पृथक्-पृथक् तीर्थ हैं। महाभागे! जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर उनमें स्नान करके ब्राह्मणोंको दान देता है, वह उत्तम गति पाता है। पुष्करमें स्नान दुर्लभ है, पुष्करमें तपस्याका अवसर भी दुर्लभ है, पुष्करमें दान दुर्लभ है और पुष्करमें रहनेका सुयोग भी दुर्लभ है। सौ योजन दूर रहकर भी जो मनुष्य स्नानके समय भक्तिभावसे पुष्करका चिन्तन करता है, वह उसमें स्नानका फल पाता है।

गौतमाश्रम-माहात्म्यमें गोदावरीके प्राकट्यका तथा पञ्चवटीके माहात्म्यका वर्णन

मोहिनी बोली—वसुजी! मैंने पुष्करका पापनाशक माहात्म्य सुन लिया। प्रभो! अब गौतम-आश्रमका माहात्म्य कहिये।

पुरोहित वसुने कहा—देवि! महर्षि गौतमका आश्रम परम पवित्र तथा देवर्षियोंद्वारा सेवित है। वह सब पापोंका नाशक तथा सब प्रकारके उपद्रवोंकी शान्ति करनेवाला है। जो मनुष्य भक्तिभावसे युक्त हो बारह वर्षोंतक गौतम आश्रमका सेवन करता है, वह भगवान् शिवके धाममें जाता है, जहाँ जाकर मनुष्य शोकका अनुभव नहीं करता। ब्रह्मपुत्री मोहिनी! महर्षि गौतमके तपस्या करते समय एक बार बारह वर्षोंतक घोर अनावृष्टि हुई, जो समस्त जीवोंका संहार करनेवाली थी। शुभे! उस भयानक दुर्भिक्षके आरम्भ होते ही सब मुनि अनेक देशोंसे गौतमके आश्रमपर आये। उन्होंने तपस्वी गौतमको इस बातकी जानकारी करायी कि 'आप हमें भोजन दें, जिससे हमारे प्राण शरीरमें रह सकें।' उन मुनियोंके इस प्रकार सूचना देनेपर महर्षि गौतमको बड़ी दया आयी। वे अपने ऊपर विश्वास करनेवाले उन ऋषियोंसे अपनी तपस्याके बलपर बोले।

गौतमने कहा—मुनियो! आप सब लोग मेरे आश्रमके समीप ठहरें। जबतक यह दुर्भिक्ष रहेगा, तबतक मैं आदरपूर्वक आपको भोजन दूँगा।

ऐसा कहकर गौतमने तपोबलसे गङ्गादेवीका ध्यान किया। उनके स्मरण करते ही गङ्गादेवी पृथ्वीतलसे प्रकट हुईं। महर्षिने गङ्गाजीको प्रकट हुई देख प्रातःकाल

मध्यम पुष्करमें स्नान करके ब्राह्मणको भूदान करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। कनिष्ठ पुष्करमें स्नान और ब्राह्मणको सुवर्ण दान करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको पाता और अन्तमें भगवान् रुद्रके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर विष्णुपदमें स्नान और ब्राह्मणको कुछ दान करके मनुष्य भगवान् विष्णुके प्रसादसे समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् नागतीर्थमें स्नान और नागोंका पूजन करके ब्राह्मणोंको दान देनेसे मनुष्य एक युगतक स्वर्गमें आनन्द भोगता है। आकाशमें पुष्करका चिन्तन करके 'आपो हिष्ठा' इत्यादि मन्त्रोंद्वारा जो पुष्करवनमें स्नान करता है, वह शाश्वत ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है।

जब कभी कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्र हो तो वह महातिथि समझी जाती है। उस समय आकाश पुष्कर-में स्नान करना चाहिये। भरणी नक्षत्रसे युक्त कार्तिककी पूर्णिमाको मध्यम पुष्करमें स्नान करनेवाला मानव आकाश पुष्करमें स्नान करनेका पुण्यफल पाता है। रोहिणीनक्षत्रसे युक्त कार्तिककी पूर्णिमाको कनिष्ठ पुष्करमें स्नान करनेवाला पुरुष आकाश पुष्करजनित पुण्यफलका भागी होता है। जब सूर्य भरणीनक्षत्रपर, बृहस्पति कृत्तिकापर तथा चन्द्रमा रोहिणीनक्षत्रपर हों और नन्दा तिथिका योग हो तो उस समय पुष्करमें स्नान करनेपर आकाश पुष्करका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। जब विशाखानक्षत्रपर सूर्य और कृत्तिका नक्षत्रपर चन्द्रमा हो तब आकाश पुष्कर नामक योग होता है। उसमें स्नान करनेवाला पुरुष स्वर्गलोकमें जाता है। आकाशसे उतरे हुए इस कल्याणमय पितामहतीर्थमें जो मनुष्य स्नान करते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयकारी लोक प्राप्त होते हैं। सती मोहिनी! पुष्करवनमें पञ्चस्रोता सरस्वती नदीमें सिद्ध महर्षियोंने बहुत-से तीर्थ और देवस्थान स्थापित किये हैं। जो मनुष्य यहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मणको धान्य और तिल दान करता है, वह इहलोक और परलोकमें परम गतिको प्राप्त होता है। जो गङ्गा-सरस्वतीके सङ्गममें स्नान करके ब्राह्मणोंका पूजन करता है, वह इहलोकमें मनोवाञ्छित भोग भोगनेके पश्चात् श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है। सती मोहिनी! जो मानव अवियोगा बावड़ीमें स्नान करके विधिपूर्वक पिण्डदान देता है, वह अपने पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है। जो अजगन्ध शिवके समीप जाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह इहलोक और परलोकमें भी मनोवाञ्छित भोग पाता है। पुष्करतीर्थमें सरोवरमें दक्षिण भागमें एक पर्वतशिखरपर सावित्री देवी विराजमान हैं। जो उनकी पूजा करता है, वह वेदके तत्त्वका ज्ञाता होता है। मोहिनी! वहाँ भगवान् वाराह, नृसिंह, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, कार्तिकेय, पार्वती तथा अग्निके पृथक्-पृथक् तीर्थ हैं। महाभागे! जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर उनमें स्नान करके ब्राह्मणोंको दान देता है, वह उत्तम गति पाता है। पुष्करमें स्नान दुर्लभ है, पुष्करमें तपस्याका अवसर भी दुर्लभ है, पुष्करमें दान दुर्लभ है और पुष्करमें रहनेका सुयोग भी दुर्लभ है। सौ योजन दूर रहकर भी जो मनुष्य स्नानके समय भक्तिभावसे पुष्करका चिन्तन करता है, वह उसमें स्नानका फल पाता है।

गौतमाश्रम-माहात्म्यमें गोदावरीके प्राकट्यका तथा पञ्चवटीके माहात्म्यका वर्णन

मोहिनी बोली—वसुजी! मैंने पुष्करका पापनाशक माहात्म्य सुन लिया। प्रभो! अब गौतम-आश्रमका माहात्म्य कहिये।

पुरोहित वसुने कहा—देवि! महर्षि गौतमका आश्रम परम पवित्र तथा देवर्षियोंद्वारा सेवित है। वह सब पापोंका नाशक तथा सब प्रकारके उपद्रवोंकी शान्ति करने-वाला है। जो मनुष्य भक्तिभावसे युक्त हो बारह वर्षोंतक गौतम आश्रमका सेवन करता है, वह भगवान् शिवके धाममें जाता है, जहाँ जाकर मनुष्य शोकका अनुभव नहीं करता। ब्रह्मपुत्री मोहिनी! महर्षि गौतमके तपस्या करते समय एक बार बारह वर्षोंतक घोर अनावृष्टि हुई, जो समस्त जीवोंका संहार करनेवाली थी। शुभे! उस भयानक दुर्भिक्षके आरम्भ होते ही सब मुनि अनेक देशोंसे गौतमके आश्रमपर आये। उन्होंने तपस्वी गौतमको इस बातकी जानकारी करायी कि 'आप हमें भोजन दें, जिससे हमारे प्राण शरीरमें रह सकें।' उन मुनियोंके इस प्रकार सूचना देनेपर महर्षि गौतमको बड़ी दया आयी। वे अपने ऊपर विश्वास करने वाले उन ऋषियोंसे अपनी तपस्याके बलपर बोले।

गौतमने कहा—मुनियो! आप सब लोग मेरे आश्रम-के समीप ठहरें। जबतक यह दुर्भिक्ष रहेगा, तबतक मैं आदर-पूर्वक आपको भोजन दूँगा।

ऐसा कहकर गौतमने तपोबलसे गङ्गादेवीका ध्यान किया। उनके स्मरण करते ही गङ्गादेवी पृथ्वीतलसे प्रकट हुईं। महर्षिने गङ्गाजीको प्रकट हुई देख प्रातःकाल

पुण्डरीकपुरमे गये, जो साक्षात् देवराज इन्द्रकी अमरावती-पुरीके समान सुशोभित था। उस नगरकी शोभा देखकर महर्षि जैमिनि बड़े प्रसन्न हुए। वहाँ सरोवरमें मुनिने स्नान करनेके पश्चात् संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म तथा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण किया। फिर पार्थिव लिङ्गका निर्माण करके पाद्य, अर्घ्य आदि विविध उपचारोंसे विधि-पूर्वक उसका पूजन किया। पूजनके समय उनका चित्त पूर्णतः शान्त था; मनमें कोई व्यग्रता नहीं थी। गन्ध, सुगन्धित पुष्प, धूप, दीप तथा भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे भली-भाँति पूजन करके ज्यों ही महर्षि जैमिनि स्थिर होकर बैठे, त्यों ही प्रसन्न होकर भगवान् शिव उनके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हो गये।

तदनन्तर जैमिनि साक्षात् भगवान् उमापतिको प्रकट हुआ देख उनके आगे दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गये। फिर सहसा उठकर हाथ जोड़ शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले तथा आधे अङ्गमें हरि और आधेमें हररूपसे प्रकट हुए भगवान् शिवसे बोले।

जैमिनिने कहा—देवदेव जगत्पते! मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ; क्योंकि आप ब्रह्मा आदिके भी ध्यान करने-योग्य साक्षात् महेश्वर मेरी दृष्टिके सम्मुख प्रकट हैं।

तब प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उनके मस्तकपर अपना हाथ रक्खा और कहा—'बेटा! बोलो, तुम क्या चाहते हो?' भगवान् शिवका यह वचन सुनकर जैमिनिने उत्तर दिया—'भगवन्! मैं माता पार्वती, विघ्नराज गणेश तथा कुमार कार्तिकेयजीके साथ आपका दर्शन करना चाहता हूँ।' तब पार्वती देवी तथा अपने दोनों पुत्रोंके साथ भगवान् शङ्करने उन्हें दर्शन दिया। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त हो भगवान् शिवने फिर पूछा—'बेटा! कहो, अब क्या चाहते हो?' जैमिनिने जगद्गुरु शङ्करकी यह दयालुता देखकर मुसकराते हुए कहा—'मैं आपके ताण्डव नृत्यकी झाँकी देखना चाहता हूँ।' तब उनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् अम्बिका-पतिने भाँति-भाँतिकी क्रीडामें कुशल समस्त प्रमथगणोंका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वे नन्दी-भृङ्गी आदि सब लोग कौतूहलमें भरकर वहाँ आये और गणेश, कार्तिकेय तथा पार्वतीसहित भगवान् शिवको नमस्कार करके देवदेव महादेवजीके आदेशकी प्रतीक्षा करते हुए चुपचाप हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

तदनन्तर भगवान् रुद्र अद्भुत रूप बनाकर ताण्डव नृत्य करनेको उद्यत हुए। उस समय वे विचित्र वेष-भूषासे विभूषित हो अद्भुत शोभा पा रहे थे। उन्होंने चञ्चल नागरूपी बेल्टसे अपनी कमर कस ली थी। मुखपर कुछ-कुछ मुसकराहट खेल रही थी। ललाटमें आधे चन्द्रमाकी रेखा सुशोभित थी। सिरके बाल ऊपरकी ओर खड़े थे। उन्होंने अपने सुन्दर नेत्रकी तथा शरीरमें रमायी हुई विभूतिकी उज्ज्वल प्रभासे चन्द्रमा और उसकी चाँदनीको मात कर दिया था। नृत्यके समय उनके जटा-जूटसे झरती हुई गङ्गाके जलसे भगवान्का सारा अङ्ग भीग रहा था। ताण्डवकालमें बार-बार अपने चरणारविन्दोंके आघातसे वे समूची पृथ्वीको कम्पित किये देते थे। उत्तम वाद्य बज रहे

पुण्डरीकपुरमें गये, जो साक्षात् देवराज इन्द्रकी अमरावती-पुरीके समान सुशोभित था। उस नगरकी शोभा देखकर महर्षि जैमिनि बड़े प्रसन्न हुए। वहाँ सरोवरमें मुनिने स्नान करनेके पश्चात् संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म तथा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण किया। फिर पार्थिव लिङ्गका निर्माण करके पाद्य, अर्घ्य आदि विविध उपचारोंसे विधि-पूर्वक उसका पूजन किया। पूजनके समय उनका चित्त पूर्णतः शान्त था; मनमें कोई व्यग्रता नहीं थी। गन्ध, सुगन्धित पुष्प, धूप, दीप तथा भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे भली-भाँति पूजन करके ज्यों ही महर्षि जैमिनि स्थिर होकर बैठे, त्यों ही प्रसन्न होकर भगवान् शिव उनके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हो गये।

तदनन्तर जैमिनि साक्षात् भगवान् उमापतिको प्रकट हुआ देख उनके आगे दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गये। फिर सहसा उठकर हाथ जोड़ शरणागतोंकी पीड़ा दूर करने-वाले तथा आधे अङ्गमें हरि और आधेमें ईश्वररूपसे प्रकट हुए भगवान् शिवसे बोले।

जैमिनिने कहा—देवदेव जगत्पते! मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ; क्योंकि आप ब्रह्मा आदिके भी ध्यान करने-योग्य साक्षात् महेश्वर मेरी दृष्टिके सम्मुख प्रकट हैं।

तब प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उनके मस्तकपर अपना हाथ रक्खा और कहा—'बेटा! बोलो, तुम क्या चाहते हो?' भगवान् शिवका यह वचन सुनकर जैमिनिने उत्तर दिया—'भगवन्! मैं माता पार्वती, विघ्नराज गणेश तथा कुमार कार्तिकेयजीके साथ आपका दर्शन करना चाहता हूँ।' तब पार्वती देवी तथा अपने दोनों पुत्रोंके साथ भगवान् शङ्करने उन्हें दर्शन दिया। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त हो भगवान् शिवने फिर पूछा—'बेटा! कहो, अब क्या चाहते हो?' जैमिनिने जगद्गुरु शङ्करकी यह दयालुता देखकर मुसकराते हुए कहा—'मैं आपके ताण्डव नृत्यकी झाँकी देखना चाहता हूँ।' तब उनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् अम्बिका-पतिने भाँति-भाँतिकी क्रीडामें कुशल समस्त प्रमथगणोंका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वे नन्दी-भृङ्गी आदि सब लोग कौतूहलमें भरकर वहाँ आये और गणेश, कार्तिकेय तथा पार्वतीसहित भगवान् शिवको नमस्कार करके देवदेव महादेवजीके आदेशकी प्रतीक्षा करते हुए चुपचाप हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

तदनन्तर भगवान् रुद्र अद्भुत रूप बनाकर ताण्डव नृत्य करनेको उद्यत हुए। उस समय वे विचित्र वेष-भूषासे विभूषित हो अद्भुत शोभा पा रहे थे। उन्होंने चञ्चल नागरूपी बेलसे अपनी कमर कस ली थी। मुखपर कुछ-कुछ मुसकराहट खेल रही थी। ललाटमें आधे चन्द्रमाकी रेखा सुशोभित थी। सिरके बाल ऊपरकी ओर खड़े थे। उन्होंने अपने सुन्दर नेत्रकी तथा शरीरमें रमायी हुई विभूतिकी उज्ज्वल प्रभासे चन्द्रमा और उसकी चाँदनीको मात कर दिया था। नृत्यके समय उनके जटा-जूटसे झरती हुई गङ्गाके जलसे भगवान्‌का सारा अङ्ग भीग रहा था। ताण्डवकालमें बार-बार अपने चरणारविन्दोंके आघातसे वे समूची पृथ्वीको कम्पित किये देते थे। उत्तम वाद्य बज रहे

सुना जो मनुष्योंके पाप दूर करनेवाला है। अब मैं मथुराका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ।

पुरोहित वसुने कहा—मोहिनी ! सुनो, मैं मथुराके कल्याणकारी वैभवका वर्णन करता हूँ, जहाँ ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर साक्षात् भगवान् अवतीर्ण हुए हैं। वहाँ प्रकट होकर भगवान् नन्दके गोकुलमें गये और वहीं रहकर उन्होंने गोपोंके साथ सब लीलाएँ कीं। वनोंमें तथा मथुरामें जो तीर्थ हैं, उनका तुमसे इस समय वर्णन करता हूँ, सुनो। पहला मधुवन है, जहाँ स्नान करनेवाला श्रेष्ठ मानव देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। दूसरा उत्तम तालवन है, जहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेवाला मानव कृतकृत्य होता है। तीसरा कुमुदवन है, जहाँ स्नान करके मनुष्य मनोवाञ्छित भोगोंको पाता है और इहलोक तथा परलोकमें आनन्दित होता है। चौथेका नाम काम्यवन है; उसमे बहुत-से तीर्थ हैं; वहाँकी यात्रा करनेवाला पुरुष विष्णुलोकका भागी होता है। भद्रे ! वहाँ जो विमलकुण्ड है, वह सब तीर्थोंमें उत्तम-से-उत्तम है; वहाँ दान करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठधाम पाता है। पाँचवाँ बहुलावन है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है; वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। छठा भद्रवननामक वन है, जहाँ स्नान करनेवाला मानव भगवान् श्रीकृष्णके प्रसादसे सब कल्याण-ही-कल्याण देखता है। वहाँ सातवाँ खदिरवन है, जिसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है। आठवाँ महावन है, जो भगवान् श्रीहरिको सदैव प्रिय है; उसका भक्तिपूर्वक दर्शन करके मनुष्य इन्द्रलोकमें आदर पाता है। नवाँ लोहजङ्घवन है, जहाँ स्नान करके मनुष्य भगवान् महाविष्णुके प्रसादसे भोग और मोक्ष पाता है। दसवाँ बिल्ववन है, जहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार शिवलोक अथवा विष्णुलोकमें जाता है। ग्यारहवाँ भाण्डीरवन है, जो योगियोंको अत्यन्त प्रिय है; वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। बारहवाँ वृन्दावन है, जो समस्त पापोका उच्छेद करनेवाला है। सती मोहिनी ! इस पृथ्वीपर उसके समान दूसरा कोई वन नहीं है। वहाँ स्नान करनेवाला

ऋणोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

मथुरा-मण्डलका विस्तार बीस योजन है; उसमें जहाँ-कहीं भी स्नान करनेवाला पुरुष भगवान् विष्णुकी भक्ति पाता है। उसके मध्यभागमें मथुरा नामकी पुरी है, जो सर्वोत्तम पुरियोंसे भी उत्तम है; जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य भगवान् माधवकी भक्ति प्राप्त कर लेता है। नरेश्वरी ! वहाँ विश्रान्ति (विश्रामघाट) नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थरत्न है, जिसमें भक्तिपूर्वक स्नान

करनेवाला मानव विष्णुधाममें जाता है। विश्रामघाटसे दक्षिण उसके पास ही विमुक्त नामका उत्तम तीर्थ है, जहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेपर मनुष्य निश्चय ही मोक्ष पाता है। वहाँसे दक्षिण भागमें रामतीर्थ है, जहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य अज्ञानबन्धन-

सुना जो मनुष्योंके पाप दूर करनेवाला है। अब मैं मथुराका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ।

पुरोहित वसुने कहा—मोहिनी! सुनो, मैं मथुराके कल्याणकारी वैभवका वर्णन करता हूँ, जहाँ ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर साक्षात् भगवान् अवतीर्ण हुए हैं। वहाँ प्रकट होकर भगवान् नन्दके गोकुलमें गये और वहीं रहकर उन्होंने गोपों-के साथ सब लीलाएँ कीं। वनोंमें तथा मथुरामें जो तीर्थ हैं, उनका तुमसे इस समय वर्णन करता हूँ, सुनो। पहला मधुवन है, जहाँ स्नान करनेवाला श्रेष्ठ मानव देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। दूसरा उत्तम तालवन है, जहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेवाला मानव कृतकृत्य होता है। तीसरा कुमुदवन है, जहाँ स्नान करके मनुष्य मनोवाञ्छित भोगोंको पाता है और इहलोक तथा परलोकमें आनन्दित होता है। चौथेका नाम काम्यवन है; उसमे बहुत-से तीर्थ हैं; वहाँकी यात्रा करनेवाला पुरुष विष्णुलोकका भागी होता है। भद्रे! वहाँ जो विमल-कुण्ड है, वह सब तीर्थोंमें उत्तम-से-उत्तम है; वहाँ दान करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठधाम पाता है। पाँचवाँ बहुलावन है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है; वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। छठा भद्रवन-नामक वन है, जहाँ स्नान करनेवाला मानव भगवान् श्रीकृष्णके प्रसादसे सब कल्याण-ही-कल्याण देखता है। वहाँ सातवाँ खदिरवन है, जिसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है। आठवाँ महावन है, जो भगवान् श्रीहरिको सदैव प्रिय है; उसका भक्तिपूर्वक दर्शन करके मनुष्य इन्द्रलोकमें आदर पाता है। नवाँ लोहजङ्घवन है, जहाँ स्नान करके मनुष्य भगवान् महाविष्णुके प्रसादसे भोग और मोक्ष पाता है। दसवाँ बिल्ववन है, जहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार शिवलोक अथवा विष्णुलोकमें जाता है। ग्यारहवाँ भाण्डीरवन है, जो योगियों-को अत्यन्त प्रिय है; वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। बारहवाँ वृन्दावन है, जो समस्त पापोका उच्छेद करनेवाला है। सती मोहिनी! इस पृथ्वीपर उसके समान दूसरा कोई वन नहीं है। वहाँ स्नान करनेवाला ऋणोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

मथुरा-मण्डलका विस्तार बीस योजन है; उसमें जहाँ-कहीं भी स्नान करनेवाला पुरुष भगवान् विष्णुकी भक्ति पाता है। उसके मध्यभागमें मथुरा नामकी पुरी है, जो सर्वोत्तम पुरियोंसे भी उत्तम है; जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य भगवान् माधवकी भक्ति प्राप्त कर लेता है। नरेश्वरी! वहाँ विश्रान्ति (विश्रामघाट) नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थरत्न है, जिसमें भक्तिपूर्वक स्नान

करनेवाला मानव विष्णुधाममें जाता है। विश्रामघाटसे दक्षिण उसके पास ही विमुक्त नामका उत्तम तीर्थ है, जहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेपर मनुष्य निश्चय ही मोक्ष पाता है। वहाँसे दक्षिण भागमें रामतीर्थ है, जहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य अज्ञानबन्धन-

भी वैसा ही माहात्म्य है। जहाँ नन्द आदि गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णका वैभव देखा था, वह यमुनाजीके जलमें तत्त्व-प्रकाश-नामक तीर्थ कहा गया है। जहाँ गोपोंने कालियमर्दनकी लीला देखी थी, वह भी पुण्यतीर्थ बताया गया है, जो मनुष्योंके पापका नाश करनेवाला है। जहाँ स्त्री, बालक, गोधन और बछड़ोंसहित गोपोंको श्रीकृष्णने दावानलसे मुक्त किया, वह पुण्यतीर्थ स्नानमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला है। जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ेका रूप धारण करनेवाले केशी नामक दैत्यको खेल-ही-खेलमें मार डाला था, वहाँ स्नान करनेवाला मानव विष्णुधामको पाता है। जहाँ भगवान्‌ने दुष्ट वृषभासुरको मारा था, वह पुण्यतीर्थ अरिष्टकुण्डके नामसे विख्यात है, जो स्नान करनेमात्रसे मुक्ति देनेवाला है। जहाँ भगवान्‌ने शयन, भोजन, विचरण, श्रवण, दर्शन तथा विलक्षण कर्म किया, वह पुण्य क्षेत्र है, जो स्नानमात्रसे दिव्य गति प्रदान करनेवाला है। जहाँ पुण्यात्मा पुरुषोंने भगवान्‌का श्रवण, चिन्तन, दर्शन, नमस्कार, आलिङ्गन, स्तवन और प्रार्थना की है, वह भी उत्तम गति देनेवाला तीर्थ है। जहाँ श्रीराधाने अत्यन्त कठोर तपस्या की थी, वह श्रीराधाकुण्ड स्नान, दान और जपके लिये परम पुण्यमय तीर्थ है। वत्स-तीर्थ, चन्द्रसरोवर, अप्सरातीर्थ, रुद्रकुण्ड तथा कामकुण्ड—ये भगवान् श्रीहरिके उत्तम निवासस्थान हैं। विशाला, अलकनन्दा, मनोहर कदम्बखण्ड, विमलतीर्थ, धर्मकुण्ड, भोजनस्थल, बलस्थान, बृहत्सानु (बरसाना), सकेतस्थान, नन्दिग्राम (नन्दगाँव), किशोरीकुण्ड, कोकिलवन, शेषशायी-तीर्थ, क्षीरसागर, क्रीडादेश, अक्षयवट, रामकुण्ड, चीरहरण, भद्रवन, भाण्डीरवन, बिल्ववन, मानसरोवर, पुष्पपुलिन, भक्तभोजन, अक्रूरघाट, गरुडगोविन्द तथा बहुलावन—यह सब वृन्दावन नामक क्षेत्र है, जो सब ओरसे पाँच योजन विस्तृत है। वह परम पुण्यमय तीर्थ पुण्यात्मा पुरुषोंसे सेवित है और दर्शनमात्रसे ही मोक्ष देनेवाला है। वह अत्यन्त दुर्लभ है। देवतालोग भी उसका दर्शन चाहते हैं। वहाँकी आन्तरिक लीलाका दर्शन करनेमें देवतालोग तपस्यासे भी समर्थ नहीं हो पाते। जो सब ओरकी आसक्तियोंका त्याग करके वृन्दावनकी शरण लेते हैं, उनके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जो वृन्दावनके नामका भी उच्चारण करता है, उसकी भी श्रीकृष्णकी भक्तिसे भावित नहीं है और जिनका चित्त कामरूपी मलसे मलिन हो रहा है, ऐसे पुरुषोंको स्वप्नमें भी वृन्दावनका दर्शन दुर्लभ है। जिन पुण्यात्मा पुरुषोंने श्रीवृन्दावनका दर्शन किया है, उन्होंने अपना जन्म सफल कर लिया। वे श्रीहरिके कृपापात्र हैं। विधिनन्दिनि! बहुत कहने-सुननेसे क्या लाभ, मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको भव्य एवं पुण्य वृन्दावनका सेवन करना चाहिये। सदा वृन्दावनका दर्शन करना चाहिये, सदा वहाँकी यात्रा करनी चाहिये तथा सदैव उसका सेवन और ध्यान करना चाहिये। इस पृथ्वीपर वृन्दावनके समान कीर्ति-वर्धक स्थान दूसरा कोई नहीं है।

प्राचीन कल्पकी बात है। वृन्दावनमें गोवर्धन नामके एक द्विजने बड़ी भारी तपस्या की। वह समस्त संसारसे विरक्त हो गया था। देवताओंके स्वामी अविनाशी भगवान् विष्णु अपनी लीलाभूमिमें उस ब्राह्मणको वर देनेके लिये गये। ब्राह्मणने देखा देवदेवेश्वर श्रीहरिने अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रक्खे हैं। उनका वक्षःस्थल सुन्दर कौस्तुभमणिसे सुशोभित है। कानोंमें मकराकृति कुण्डल झलमला रहे हैं। माथेपर सुन्दर किरीट चमक रहा है। हाथोंमें कड़े शोभा पाते हैं। पैरोंमें मधुर रुनझुन करनेवाले नूपुर शोभा दे रहे हैं। उनका आगेका पूरा अङ्ग वनमालासे घिर गया है। वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है। नूतन मेघके समान श्यामवर्ण शरीरपर विद्युत्‌की-सी कान्तिवाला रेशमी पीताम्बर प्रकाशित हो रहा है। नाभि और ग्रीवा सुन्दर हैं। कपोल और नासिका सुघर हैं। दाँतोंकी पङ्क्ति स्वच्छ है। मुखपर मनोहर मुसकानकी छटा छा रही है। जानु, ऊरु, भुजाएँ तथा शरीरका मध्यभाग सुन्दर हैं। कृपाके तो वे महासागर ही हैं। सदा आनन्दमें डूबे रहते हैं। इनके मुखारविन्दसे सदा प्रसन्नता बरसती रहती है। इस प्रकार भगवान्‌की झाँकी देखकर ब्राह्मण सहसा उठ खड़े हुए और पृथ्वीपर दण्डकी भाँति लेटकर उन्होंने भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर भगवान्‌के द्वारा वर माँगनेकी आज्ञा मिलनेपर गोवर्धन ब्राह्मण श्रीहरिसे बोले—'प्रभो! आप मुझे दोनों चरणोंसे दबाकर मेरी पीठपर खड़े रहें, यही मेरे लिये वर है।' गोवर्धनका यह वचन सुनकर भक्तवत्सल भगवान्‌ने बार-बार इसपर विचार किया; फिर वे उसकी पीठपर चढ़कर खड़े हो गये। तब ब्राह्मणने फिर कहा—

वहाँ स्नान करके भी मनुष्य गोविन्दको पा लेता है । जहाँ एक होकर भी अनेक रूप धारण करके कुञ्जविहारी श्यामसुन्दरने गोपाङ्गनाओंके साथ रासलीला की थी, उसका भी वैसा ही माहात्म्य है। जहाँ नन्द आदि गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णका वैभव देखा था, वह यमुनाजीके जलमें तत्त्व-प्रकाश-नामक तीर्थ कहा गया है। जहाँ गोपोंने कालियमर्दनकी लीला देखी थी, वह भी पुण्यतीर्थ बताया गया है, जो मनुष्योंके पापका नाश करनेवाला है । जहाँ स्त्री, बालक, गोधन और बछड़ोंसहित गोपोंको श्रीकृष्णने दावानलसे मुक्त किया, वह पुण्यतीर्थ स्नानमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला है। जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ेका रूप धारण करनेवाले केशी नामक दैत्यको खेल-ही-खेलमें मार डाला था, वहाँ स्नान करनेवाला मानव विष्णुधामको पाता है । जहाँ भगवान्‌ने दुष्ट वृषभासुरको मारा था, वह पुण्यतीर्थ अरिष्टकुण्डके नामसे विख्यात है, जो स्नान करनेमात्रसे मुक्ति देनेवाला है । जहाँ भगवान्‌ने शयन, भोजन, विचरण, श्रवण, दर्शन तथा विलक्षण कर्म किया, वह पुण्य क्षेत्र है, जो स्नानमात्रसे दिव्य गति प्रदान करनेवाला है । जहाँ पुण्यात्मा पुरुषोंने भगवान्‌का श्रवण, चिन्तन, दर्शन, नमस्कार, आलिङ्गन, स्तवन और प्रार्थना की है, वह भी उत्तम गति देनेवाला तीर्थ है । जहाँ श्रीराधाने अत्यन्त कठोर तपस्या की थी, वह श्रीराधाकुण्ड स्नान, दान और जपके लिये परम पुण्यमय तीर्थ है । वत्स-तीर्थ, चन्द्रसरोवर, अप्सरातीर्थ, रुद्रकुण्ड तथा कामकुण्ड—ये भगवान् श्रीहरिके उत्तम निवासस्थान हैं । विशाला, अलकनन्दा, मनोहर कदम्बखण्ड, विमलतीर्थ, धर्मकुण्ड, भोजनस्थल, बलस्थान, वृहत्सानु (बरसाना), सकेतस्थान, नन्दिग्राम (नन्दगाँव), किशोरीकुण्ड, कोकिलवन, शेषशायी-तीर्थ, क्षीरसागर, क्रीडादेश, अक्षयवट, रामकुण्ड, चीरहरण, भद्रवन, भाण्डीरवन, विल्ववन, मानसरोवर, पुष्पपुलिन, भक्तभोजन, अक्रूरघाट, गरुडगोविन्द तथा बहुलावन—यह सब वृन्दावन नामक क्षेत्र है, जो सब ओरसे पाँच योजन विस्तृत है। वह परम पुण्यमय तीर्थ पुण्यात्मा पुरुषोंसे सेवित है और दर्शनमात्रसे ही मोक्ष देनेवाला है । वह अत्यन्त दुर्लभ है । देवतालोग भी उसका दर्शन चाहते हैं। वहाँकी आन्तरिक लीलाका दर्शन करनेमें देवतालोग तपस्यासे भी समर्थ नहीं हो पाते । जो सब ओरकी आसक्तियोंका त्याग करके वृन्दावनकी शरण लेते हैं, उनके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है । जो वृन्दावनके नामका भी उच्चारण करता है, उसकी भी नन्दनन्दन श्रीकृष्णके प्रति सदा भक्ति बनी रहती है । पवित्र वृन्दावनके नर, नारी, वानर, कृमि, कीट-पतङ्ग, खग, मृग, वृक्ष और पर्वत भी निरन्तर श्रीराधाकृष्णका उच्चारण करते रहते हैं। जो श्रीकृष्णकी मायासे मोहित हैं और जिनका चित्त कामरूपी मलसे मलिन हो रहा है, ऐसे पुरुषोंको स्वप्नमें भी वृन्दावनका दर्शन दुर्लभ है । जिन पुण्यात्मा पुरुषोंने श्रीवृन्दावनका दर्शन किया है, उन्होंने अपना जन्म सफल कर लिया । वे श्रीहरिके कृपापात्र हैं । विधिनन्दिनि ! बहुत कहने-सुननेसे क्या लाभ, मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको भव्य एवं पुण्य वृन्दावनका सेवन करना चाहिये । सदा वृन्दावनका दर्शन करना चाहिये, सदा वहाँकी यात्रा करनी चाहिये तथा सदैव उसका सेवन और ध्यान करना चाहिये । इस पृथ्वीपर वृन्दावनके समान कीर्ति-वर्धक स्थान दूसरा कोई नहीं है ।

प्राचीन कल्पकी बात है। वृन्दावनमें गोवर्धन नामके एक द्विजने बड़ी भारी तपस्या की। वह समस्त ससारसे विरक्त हो गया था । देवताओंके स्वामी अविनाशी भगवान् विष्णु अपनी लीलाभूमिमें उस ब्राह्मणको वर देनेके लिये गये। ब्राह्मणने देखा देवदेवेश्वर श्रीहरिने अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रक्खे हैं । उनका वक्षःस्थल सुन्दर कौस्तुभमणिसे सुशोभित है । कानोंमें मकराकृति कुण्डल झलमला रहे हैं। माथेपर सुन्दर किरीट चमक रहा है । हाथोंमें कड़े शोभा पाते हैं। पैरोंमें मधुर रुनझुन करनेवाले नूपुर शोभा दे रहे हैं। उनका आगेका पूरा अङ्ग वनमालासे घिर गया है । वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है । नूतन मेघके समान श्यामवर्ण शरीरपर विद्युत्की-सी कान्तिवाला रेशमी पीताम्बर प्रकाशित हो रहा है । नाभि और ग्रीवा सुन्दर हैं। कपोल और नासिका सुघर हैं। दाँतोंकी पङ्क्ति स्वच्छ है । मुखपर मनोहर मुसकानकी छटा छा रही है । जानु, ऊरु, भुजाएँ तथा शरीरका मध्यभाग सुन्दर हैं। कृपाके तो वे महासागर ही हैं। सदा आनन्दमें डूबे रहते हैं। इनके मुखारविन्दसे सदा प्रसन्नता बरसती रहती है । इस प्रकार भगवान्‌की झाँकी देखकर ब्राह्मण सहसा उठ खड़े हुए और पृथ्वीपर दण्डकी भाँति लेटकर उन्होंने भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया । फिर भगवान्‌के द्वारा वर माँगनेकी आज्ञा मिलनेपर गोवर्धन ब्राह्मण श्रीहरिसे बोले—'प्रभो ! आप मुझे दोनों चरणोंसे दबाकर मेरी पीठपर खड़े रहें, यही मेरे लिये वर है।' गोवर्धनका यह वचन सुनकर भक्तवत्सल भगवान्‌ने बार-बार इसपर विचार किया; फिर वे उसकी पीठपर चढ़कर खड़े हो गये। तब ब्राह्मणने फिर कहा—

पुरोहित वसुका भगवत्कृपासे वृन्दावन-वास, देवर्षि नारदके द्वारा शिव-सुरभि-संवादके रूपमें भावी श्रीकृष्णचरितका वर्णन

पुरोहित वसु कहते हैं—देवि! महाभागे! यह जो तीर्थोंका उत्तम माहात्म्य बताया है, उसे तुम सब तीर्थोंमें घूमकर प्राप्त करो।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! मोहिनीसे ऐसा कहकर उसके पुरोहित वसु उसके द्वारा बारबार किये हुए सत्कार और पूजाको स्वीकार करके ब्रह्मलोकको चले गये। वहाँ जगत्स्रष्टा विधाता ब्रह्माजीके समीप जाकर उन्होंने प्रणाम किया और मोहिनीका सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। ब्राह्मण वसुका वचन सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये और बोले—'वत्स! तुमने बड़े पुण्यका कार्य किया है। तुमने मुझे मोहिनीका उत्तम वृत्तान्त बताया है, उससे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें कोई वर दूँगा। तुम इच्छानुसार कोई वर माँगो।' जगद्विधाता ब्रह्माजीके द्वारा ऐसा कहनेपर विप्रवर वसुने उन्हें प्रणाम करके वृन्दावनवासका वर माँगा।

मुनीश्वरो! यह सुनकर जगत्की सृष्टि करनेवाले शरणागतक्लेशहारी ब्रह्माजी चारों मुखोंसे मुसकराते हुए बोले—'तथास्तु—ऐसा ही हो।' वसुका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने विधाताको प्रणाम करके वृन्दावनको प्रस्थान किया और वहाँ एकाग्रचित्त हो वे तपस्या करने लगे। तपस्या करते-करते ब्राह्मण वसुके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो गये। इससे संतुष्ट होकर साक्षात् भगवान् श्यामसुन्दर अपने दो-तीन प्रिय सखाओंके साथ आकर उन श्रेष्ठ द्विजसे

बोले—'विप्रवर! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ। बोलो, क्या चाहते हो?' तब वसुने उठकर भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे बोले—'देव! मैं सदा वृन्दावनमें निवास करना चाहता हूँ।' द्विजवरो! तदनन्तर श्रीकृष्णने उन्हें मनोवाञ्छित वर दिया। फिर वसुने उन्हें प्रणाम किया और भगवान् पुनः अन्तर्धान हो गये। तभीसे ब्राह्मण वसु इच्छानुसार रूप धारण करके भगवान् श्रीकृष्णकी वृन्दावनीय लीलाओंका चिन्तन करते हुए वहाँ सदा निवास करते हैं।

एक दिनकी बात है, विप्रवर वसु भगवान्‌का चिन्तन करते हुए यमुनाजीके किनारे बैठे हुए थे। इतनेमें ही उन्होंने देखा—ब्रह्माजीके पुत्र नारदजी वृन्दावनमें आये हुए हैं। अपने परमगुरु नारदजीको देखकर उन्होंने नमस्कार किया और भगवद्भक्ति बढ़ानेवाले नाना प्रकारके धर्म पूछे। उनके इस प्रकार पूछनेपर अध्यात्मदर्शी नारदजीने उनसे भगवान् विष्णुके भावी चरित्रके विषयमें सब बातें इस प्रकार कहीं—'ब्रह्मन्! एक दिन मैं कैलासवासी भगवान् शङ्करका दर्शन करने और वृन्दावनके भावी रहस्यके विषयमें पूछनेके लिये उनके समीप गया था। जिन्होंने अपनी महिमासे समस्त ब्रह्माण्डमण्डलको व्याप्त कर रक्खा है; सिद्धसमुदायसे घिरे हुए उन देवेश महेश्वरको प्रणाम करके मैंने अपना कल्याणमय अभीष्ट प्रश्न उनके सामने रक्खा। तब महादेवजी मुसकराते हुए मुझसे बोले—'ब्रह्मकुमार! तुमने भगवान् श्रीहरिके भविष्य चरित्रके विषयमें जो बात पूछी है, उसे मैं बता रहा हूँ। एक समय मैंने गोलोकमें रहनेवाली सुरभिका दर्शन किया और गोमाता सुरभिसे भविष्यके विषयमें प्रश्न किया। मेरे प्रश्नके उत्तरमें सुरभिने श्रीहरिके भविष्य चरित्रके विषयमें इस प्रकार कहा—'महेश्वर! इस समय राधाके साथ भगवान् श्रीकृष्ण इस गोलोकधाममें सुखपूर्वक रहते हैं और गोपों तथा गोपियोंको सुख देते हैं। शिव! वे किसी समय भूलोकके भीतर मथुरामण्डलमें प्रकट हो वृन्दावनमें अद्भुत लीला करेंगे। तत्पश्चात् ब्रह्माजीके द्वारा भूभारहरणके लिये प्रार्थना करनेपर श्रीहरि भी पृथ्वीपर वासुदेवरूपसे प्रकट होंगे। वसुदेवके घरमें जन्म लेकर, यादवनन्दन श्रीकृष्ण पीछे कंसासुरके भयसे नन्दके व्रजमें चले जायँगे। वहाँ

पुरोहित वसुका भगवत्कृपासे वृन्दावन-वास, देवर्षि नारदके द्वारा शिव-सुरभि-संवादके रूपमें भावी श्रीकृष्णचरितका वर्णन

पुरोहित वसु कहते हैं—देवि! महाभागे! यह जो तीर्थोंका उत्तम माहात्म्य बताया है, उसे तुम सब तीर्थोंमें घूमकर प्राप्त करो।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! मोहिनीसे ऐसा कहकर उसके पुरोहित वसु उसके द्वारा बार बार किये हुए सत्कार और पूजाको स्वीकार करके ब्रह्मलोकको चले गये। वहाँ जगत्स्रष्टा विधाता ब्रह्माजीके समीप जाकर उन्होंने प्रणाम किया और मोहिनीका सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। ब्राह्मण वसुका वचन सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये और बोले—'वत्स! तुमने बड़े पुण्यका कार्य किया है। तुमने मुझे मोहिनीका उत्तम वृत्तान्त बताया है, उससे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें कोई वर दूँगा। तुम इच्छानुसार कोई वर माँगो।' जगद्विधाता ब्रह्माजीके द्वारा ऐसा कहनेपर विप्रवर वसुने उन्हें प्रणाम करके वृन्दावनवासका वर माँगा।

मुनीश्वरो! यह सुनकर जगत्‌की सृष्टि करनेवाले शरणागतक्लेशहारी ब्रह्माजी चारों मुखोंसे मुसकराते हुए बोले—'तथास्तु—ऐसा ही हो।' वसुका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने विधाताको प्रणाम करके वृन्दावनको प्रस्थान किया और वहाँ एकाग्रचित्त हो वे तपस्या करने लगे। तपस्या करते-करते ब्राह्मण वसुके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो गये। इससे संतुष्ट होकर साक्षात् भगवान् श्यामसुन्दर अपने दो-तीन प्रिय सखाओंके साथ आकर उन श्रेष्ठ द्विजसे

बोले—'विप्रवर! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ। बोलो, क्या चाहते हो?' तब वसुने उठकर भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे बोले—'देव! मैं सदा वृन्दावनमें निवास करना चाहता हूँ।' द्विजवरो! तदनन्तर श्रीकृष्णने उन्हें मनोवाञ्छित वर दिया। फिर वसुने उन्हें प्रणाम किया और भगवान् पुनः अन्तर्धान हो गये। तभीसे ब्राह्मण वसु इच्छानुसार रूप धारण करके भगवान् श्रीकृष्णकी वृन्दावनीय लीलाओंका चिन्तन करते हुए वहाँ सदा निवास करते हैं।

एक दिनकी बात है, विप्रवर वसु भगवान्‌का चिन्तन करते हुए यमुनाजीके किनारे बैठे हुए थे। इतनेमें ही उन्होंने देखा—ब्रह्माजीके पुत्र नारदजी वृन्दावनमें आये हुए हैं। अपने परमगुरु नारदजीको देखकर उन्होंने नमस्कार किया और भगवद्भक्ति बढ़ानेवाले नाना प्रकारके धर्म पूछे। उनके इस प्रकार पूछनेपर अध्यात्मदर्शी नारदजीने उनसे भगवान् विष्णुके भावी चरित्रके विषयमें सब बातें इस प्रकार कहीं—'ब्रह्मन्! एक दिन मैं कैलासवासी भगवान् शङ्करका दर्शन करने और वृन्दावनके भावी रहस्यके विषयमें पूछनेके लिये उनके समीप गया था। जिन्होंने अपनी महिमासे समस्त ब्रह्माण्डमण्डलको व्याप्त कर रक्खा है; सिद्धसमुदायसे घिरे हुए उन देवेश महेश्वरको प्रणाम करके मैंने अपना कल्याणमय अभीष्ट प्रश्न उनके सामने रक्खा। तब महादेवजी मुसकराते हुए मुझसे बोले—'ब्रह्मकुमार! तुमने भगवान् श्रीहरिके भविष्य चरित्रके विषयमें जो बात पूछी है, उसे मैं बता रहा हूँ। एक समय मैंने गोलोकमें रहनेवाली सुरभिका दर्शन किया और गोमाता सुरभिसे भविष्यके विषयमें प्रश्न किया। मेरे प्रश्नके उत्तरमें सुरभिने श्रीहरिके भविष्य चरित्रके विषयमें इस प्रकार कहा—'महेश्वर! इस समय राधाके साथ भगवान् श्रीकृष्ण इस गोलोकधाममें सुखपूर्वक रहते हैं और गोपों तथा गोपियोंको सुख देते हैं। शिव! वे किसी समय भूलोकके भीतर मथुरामण्डलमें प्रकट हो वृन्दावनमें अद्भुत लीला करेंगे। तत्पश्चात् ब्रह्माजीके द्वारा भूभारहरणके लिये प्रार्थना करनेपर श्रीहरि भी पृथ्वीपर वासुदेवरूपसे प्रकट होंगे। वसुदेवके घरमें जन्म लेकर, यादवनन्दन श्रीकृष्ण पीछे कंसासुरके भयसे नन्दके व्रजमें चले जायँगे। वहाँ

और उस तीर्थमें शास्त्रोक्त विधिके अनुसार स्नान, दान आदि कार्य किये। तदनन्तर कामोदाका दर्शन और नमस्कार करके वह बड़ी प्रसन्नताके साथ बदरिकाश्रम-तीर्थको गयी। वहाँ नर-नारायण ऋषिकी पूजा करके उसने बड़ी उतावलीके साथ कामाक्षी देवीका दर्शन करनेके लिये वहाँकी यात्रा की। उस तीर्थमें सिद्धनाथको प्रणाम करके (आदियात्रा पूर्ण करनेके पश्चात्) वहाँसे अयोध्या आयी। वहाँ सरयूमें स्नान करके उसने विधिपूर्वक सीतापति श्रीरामचन्द्रजीकी पूजा की और वहाँसे मध्ययात्रा प्रारम्भ करके वह अमरकण्टक पर्वतपर गयी। वहाँ नर्मदाके स्रोतके समीप ॐकारेश्वर महादेवकी पूजा, सेवा और दर्शन करके मोहिनीने माहिष्मतीपुरीकी यात्रा की। वहाँसे त्र्यम्बकेश्वरका पूजन करके वह त्रिपुष्करतीर्थमें आयी। तीनों पुष्करोंमें विधिपूर्वक अनेक प्रकारके दान दे, वह सब तीर्थोंमें उत्तम मथुरापुरीको गयी। वहाँ बीस योजनकी आभ्यन्तरिक यात्रा सम्पन्न करके मथुरापुरीकी परिक्रमाके पश्चात् उसने चार व्यूहोंका दर्शन किया। तदनन्तर बीस तीर्थोंमें स्नान करके पुनः प्रदक्षिणा की। वहाँ मथुराके ब्राह्मणों-को समस्त अलंकारोंसे अलंकृत दस हजार गौएँ दान दीं और उन्हें उत्तम अन्न भोजन कराकर भक्तिविह्वल चित्तसे नमस्कार करनेके पश्चात् विदा किया। फिर यमुनाके तटपर जा बैठी। तदनन्तर मोहिनी पापनाशिनी यमुनादेवीके जलमें समा गयी

और फिर आजतक नहीं निकली। उसने दशमी तिथिके अन्तिम भागमें अपना आसन जमा लिया। यदि सूर्योदयकाल-में एकादशीका दशमीसे वेध हो तो स्मृतिके अनुसार चलने-वाले गृहस्थोंके पास पहुँचकर मोहिनी उनके व्रतको दूषित कर देती है। इसी प्रकार अरुणोदयकालमें दशमीवेध होनेपर वह वैदिकोंके और निशीथकालमें दशमीसे वेध होनेपर वैष्णवोंके निकट पहुँचकर वह उनके व्रतको दूषित करती है। अतः ब्राह्मणो! जो मनुष्य मोहिनीके वेधसे रहित एकादशीको उपवास करके द्वादशीको भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह निश्चय ही वैकुण्ठधाममें जाता है। विप्रवरो! इस प्रकार मैंने मोहिनीका चरित्र सुनाया है।

नारदमहापुराणका यह उत्तरभाग भोग तथा मोक्ष देनेवाला है। यह मैंने तुम्हें सुना दिया। इसमें पद-पदपर मनुष्योंके लिये भगवान् श्रीहरिकी भक्तिका साधन होता है। जो मनुष्य भक्तिभावसे इसका श्रवण करता है, वह वैकुण्ठ-धामको जाता है। सभी पुराणोंका यह सनातन बीज है। द्विजवरो! इस पुराणमें परम बुद्धिमान् पराशरनन्दन व्यासजीने प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्मका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। नारदीय पुराण अलौकिक चरित्रसे भरा हुआ है। व्यासजीने मुझसे कहा था कि जिस-किसी व्यक्तिको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। पूर्वकालमें महाभाग सनकादि मुनियोंने विद्वान् नारदजीके समक्ष यह पुराणसंहिता प्रकाशित की थी। हंसस्वरूपी भगवान् श्रीहरिने जब शाश्वत ब्रह्मका उपदेश किया था, उसी समय उन्होंने इन सनकादि-को इस विस्तृत विज्ञानसे युक्त नारदपुराणका भी उपदेश कर दिया था। वही यह नारद महापुराण है, जिसे अध्यात्मदर्शी साक्षात् भगवान् नारदने मुनिवर वेदव्यासको रहस्यसहित सुनाया था। अब मैंने इस रहस्यमय पुराणको आपलोगोंके समक्ष प्रकाशित किया है। पृथ्वीपर यह परम दुर्लभ है। जो मनुष्य सदा इसका श्रवण एवं पाठ करते हैं, उनके लिये यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ देनेवाला है। इसके पाठ अथवा श्रवणसे ब्राह्मण वेदोंका भण्डार होता है, क्षत्रिय इस भूतलपर विजय पाता है, वैश्य धन-धान्यसे सम्पन्न होता है तथा शूद्र सब प्रकारके दुःखोंसे छूट जाता है। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने इस संहिताका सम्पादन किया है। इसके सुननेपर सब प्रकारके संदेहोंका निवारण हो जाता है। यह सकाम भक्त पुरुषों तथा निष्काम पुरुषोंको भी मोक्ष देनेवाला है। ब्राह्मणो! नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, मथुरा, द्वारका, नर-नारायणाश्रम, कुरुक्षेत्र,

और उस तीर्थमें शास्त्रोक्त विधिके अनुसार स्नान, दान आदि कार्य किये। तदनन्तर कामोदाका दर्शन और नमस्कार करके वह बड़ी प्रसन्नताके साथ बदरिकाश्रम-तीर्थको गयी। वहाँ नर-नारायण ऋषिकी पूजा करके उसने बड़ी उतावलीके साथ कामाक्षी देवीका दर्शन करनेके लिये वहाँकी यात्रा की। उस तीर्थमें सिद्धनाथको प्रणाम करके (आदियात्रा पूर्ण करनेके पश्चात्) वहाँसे अयोध्या आयी। वहाँ सरयूमें स्नान करके उसने विधिपूर्वक सीतापति श्रीरामचन्द्रजीकी पूजा की और वहाँसे मध्ययात्रा प्रारम्भ करके वह अमरकण्टक पर्वतपर गयी। वहाँ नर्मदाके स्रोतके समीप ॐकारेश्वर महादेवकी पूजा, सेवा और दर्शन करके मोहिनीने माहिष्मतीपुरीकी यात्रा की। वहाँसे त्र्यम्बकेश्वरका पूजन करके वह त्रिपुष्करतीर्थमें आयी। तीनों पुष्करोंमें विधिपूर्वक अनेक प्रकारके दान दे, वह सब तीर्थोंमें उत्तम मथुरापुरीको गयी। वहाँ बीस योजनकी आभ्यन्तरिक यात्रा सम्पन्न करके मथुरापुरीकी परिक्रमाके पश्चात् उसने चार व्यूहोंका दर्शन किया। तदनन्तर बीस तीर्थोंमें स्नान करके पुनः प्रदक्षिणा की। वहाँ मथुराके ब्राह्मणों-को समस्त अलंकारोंसे अलंकृत दस हजार गौएँ दान दीं और उन्हें उत्तम अन्न भोजन कराकर भक्तिविह्वल चित्तसे नमस्कार करनेके पश्चात् विदा किया। फिर यमुनाके तटपर जा बैठी। तदनन्तर मोहिनी पापनाशिनी यमुनादेवीके जलमें समा गयी

और फिर आजतक नहीं निकली। उसने दशमी तिथिके अन्तिम भागमें अपना आसन जमा लिया। यदि सूर्योदयकाल-में एकादशीका दशमीसे वेध हो तो स्मृतिके अनुसार चलने-वाले गृहस्थोंके पास पहुँचकर मोहिनी उनके व्रतको दूषित कर देती है। इसी प्रकार अरुणोदयकालमें दशमीवेध होनेपर वह वैदिकोंके और निशीथकालमें दशमीसे वेध होनेपर वैष्णवोंके निकट पहुँचकर वह उनके व्रतको दूषित करती है। अतः ब्राह्मणो! जो मनुष्य मोहिनीके वेधसे रहित एकादशीको उपवास करके द्वादशीको भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह निश्चय ही वैकुण्ठधाममें जाता है। विप्रवरो! इस प्रकार मैंने मोहिनीका चरित्र सुनाया है।

नारदमहापुराणका यह उत्तरभाग भोग तथा मोक्ष देनेवाला है। यह मैंने तुम्हें सुना दिया। इसमें पद-पदपर मनुष्योंके लिये भगवान् श्रीहरिकी भक्तिका साधन होता है। जो मनुष्य भक्तिभावसे इसका श्रवण करता है, वह वैकुण्ठ-धामको जाता है। सभी पुराणोंका यह सनातन बीज है। द्विजवरो! इस पुराणमें परम बुद्धिमान् पराशरनन्दन व्यासजीने प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्मका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। नारदीय पुराण अलौकिक चरित्रसे भरा हुआ है। व्यासजीने मुझसे कहा था कि जिस-किसी व्यक्तिको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। पूर्वकालमें महाभाग सनकादि मुनियोंने विद्वान् नारदजीके समक्ष यह पुराणसंहिता प्रकाशित की थी। हंसस्वरूपी भगवान् श्रीहरिने जब शाश्वत ब्रह्मका उपदेश किया था, उसी समय उन्होंने इन सनकादि-को इस विस्तृत विज्ञानसे युक्त नारदपुराणका भी उपदेश कर दिया था। वही यह नारद महापुराण है, जिसे अध्यात्मदर्शी साक्षात् भगवान् नारदने मुनिवर वेदव्यासको रहस्यसहित सुनाया था। अब मैंने इस रहस्यमय पुराणको आपलोगोंके समक्ष प्रकाशित किया है। पृथ्वीपर यह परम दुर्लभ है। जो मनुष्य सदा इसका श्रवण एवं पाठ करते हैं, उनके लिये यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ देनेवाला है। इसके पाठ अथवा श्रवणसे ब्राह्मण वेदोंका भण्डार होता है, क्षत्रिय इस भूतलपर विजय पाता है, वैश्य धन-धान्यसे सम्पन्न होता है तथा शूद्र सब प्रकारके दुःखोंसे छूट जाता है। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने इस संहिताका सम्पादन किया है। इसके सुननेपर सब प्रकारके संदेहोंका निवारण हो जाता है। यह सकाम भक्त पुरुषों तथा निष्काम पुरुषोंको भी मोक्ष देनेवाला है। ब्राह्मणो! नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, मथुरा, द्वारका, नर-नारायणाश्रम, कुरुक्षेत्र,

वंशीवट कालिन्दी तट नट नागर नित्य निहारूँ ॥

वंशीवट कालिन्दी तट नट नागर नित्य निहारूँ ॥

भगवान् श्रीविष्णु

भगवान् श्रीविष्णु

भक्त प्रह्लादद्वारा स्तुति

देव प्रपन्नार्त्तिहर प्रसादं कुरु केशव।
अवलोकनदानेन भूयो मां पावयाच्युत॥
नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥

× × ×

मयि द्वेषानुबन्धोऽभूत् संस्तुतावुद्यते तव।
मत्पितुस्तत्कृतं पापं देव तस्य प्रणश्यतु॥
शस्त्राणि पातितान्यङ्गे क्षिप्तो यच्चाग्निसंहतौ।
दंशितश्चोरगैर्दत्तं यद्विषं मम भोजने॥
बद्ध्वा समुद्रे यत्क्षिप्तो यच्चितोऽस्मि शिलोच्चयैः।
अन्यानि चाप्यसाधूनि यानि पित्रा कृतानि मे॥
त्वयि भक्तिमतो द्वेषादघं तत्सम्भवं च यत्।
त्वत्प्रसादात् प्रभो! सद्यस्तेन मुच्येत मे पिता॥

× × ×

कृतकृत्योऽस्मि भगवन् वरेणानेन यत्त्वयि।
भवित्री त्वत्प्रसादेन भक्तिरव्यभिचारिणी॥
धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा त्वयि॥

केशव! आप शरणागतोंके दुःख हरण करनेवाले हैं, मुझपर कृपा कीजिये। अच्युत! मुझे पुनः (पुनः) अपने पुण्यदर्शन देकर पवित्र कीजिये। नाथ! सहस्रों योनियोंमेसे मैं जिस-जिसमें भी जाऊँ, उसी-उसीमे हे अच्युत! आपमें सदा मेरी अटल भक्ति बनी रहे। अविवेकी विषयी लोगोंकी जैसी अनपायिनी (सहज) प्रीति विषयोंमें रहती है, वैसी ही प्रीति आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदयमें (सदा बनी रहे) कभी दूर न हो।

देव! आपकी स्तुतिमें लगे रहनेके कारण मेरे पिताके चित्तमे जो मेरे प्रति द्वेष हो गया और इस कारण उन्हें जो पाप लगा, वह नष्ट हो जाय। (मेरे प्रति इसी द्वेषके कारण पिताजीकी आज्ञासे) मेरे शरीरपर जो शस्त्रोंसे चोट पहुँचायी गयी, मुझे अग्नियोंमें डाला गया, साँपोंसे डँसवाया गया, भोजनमें जहर दिया गया, बाँधकर समुद्रमें डाला गया, शिलाओंसे दबाया गया तथा और भी पिताजीने मेरे साथ जो-जो बुरे व्यवहार किये, उनके कारण उनको बड़ा पाप लगा है, क्योंकि यह सब उन्होंने आपमें भक्ति रखनेवाले (मुझ) से द्वेष रखकर किये हैं। प्रभो! आपकी कृपासे मेरे पिताजी (इन सब पापोंसे) शीघ्र छूट जायँ।

भगवन्! मै तो आपके इस वरसे कृतकृत्य हो गया कि आपकी कृपासे मेरी अव्यभिचारिणी (अनन्य) भक्ति आपमें निरन्तर रहेगी। प्रभो! आप समस्त जगत्के मूल हैं, जिसकी आपमे स्थिर भक्ति है, मुक्ति भी उसके करतलगत रहती है, फिर धर्म, अर्थ, कामसे तो उसे प्रयोजन ही क्या है?

भक्त प्रह्लादद्वारा स्तुति

देव प्रपन्नार्त्तिहर प्रसादं कुरु केशव।
अवलोकनदानेन भूयो मां पावयाच्युत॥
नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥

× × ×

मयि द्वेषानुबन्धोऽभूत् संस्तुतावुद्यते तव।
मत्पितुस्तत्कृतं पापं देव तस्य प्रणश्यतु॥
शस्त्राणि पातितान्यङ्गे क्षिप्तो यच्चाग्निसंहतौ।
दंशितश्चोरगैर्दत्तं यद्विषं मम भोजने॥
बद्ध्वा समुद्रे यत्क्षिप्तो यच्चितोऽस्मि शिलोच्चयैः।
अन्यानि चाप्यसाधूनि यानि पित्रा कृतानि मे॥
त्वयि भक्तिमतो द्वेषादघं तत्सम्भवं च यत्।
त्वत्प्रसादात् प्रभो ! सद्यस्तेन मुच्येत मे पिता॥

× × ×

कृतकृत्योऽस्मि भगवन् वरेणानेन यत्त्वयि।
भवित्री त्वत्प्रसादेन भक्तिरव्यभिचारिणी॥
धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा त्वयि॥

केशव ! आप शरणागतोंके दुःख हरण करनेवाले हैं, मुझपर कृपा कीजिये। अच्युत ! मुझे पुनः(पुनः) अपने पुण्यदर्शन देकर पवित्र कीजिये। नाथ ! सहस्रों योनियोंमेसे मैं जिस-जिसमें भी जाऊँ, उसी-उसीमे हे अच्युत ! आपमें सदा मेरी अटल भक्ति बनी रहे। अविवेकी विषयी लोगोंकी जैसी अनपायिनी (सहज) प्रीति विषयोंमें रहती है, वैसी ही प्रीति आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदयमें (सदा बनी रहे) कभी दूर न हो।

देव ! आपकी स्तुतिमें लगे रहनेके कारण मेरे पिताके चित्तमे जो मेरे प्रति द्वेष हो गया और इस कारण उन्हें जो पाप लगा, वह नष्ट हो जाय। (मेरे प्रति इसी द्वेषके कारण पिताजीकी आज्ञासे) मेरे शरीरपर जो शस्त्रोंसे चोट पहुँचायी गयी, मुझे अग्नियोंमें डाला गया, साँपोंसे डँसवाया गया, भोजनमें जहर दिया गया, बाँधकर समुद्रमें डाला गया, शिलाओंसे दबाया गया तथा और भी पिताजीने मेरे साथ जो-जो बुरे व्यवहार किये, उनके कारण उनको बड़ा पाप लगा है, क्योंकि यह सब उन्होंने आपमें भक्ति रखनेवाले (मुझ) से द्वेष रखकर किये हैं। प्रभो ! आपकी कृपासे मेरे पिताजी (इन सब पापोंसे) शीघ्र छूट जायँ।

भगवन् ! मै तो आपके इस वरसे कृतकृत्य हो गया कि आपकी कृपासे मेरी अव्यभिचारिणी (अनन्य) भक्ति आपमें निरन्तर रहेगी। प्रभो ! आप समस्त जगत्के मूल हैं, जिसकी आपमे स्थिर भक्ति है, मुक्ति भी उसके करतलगत रहती है, फिर धर्म, अर्थ, कामसे तो उसे प्रयोजन ही क्या है ?

मैत्रेय ! जब मैंने सुना कि पिताजीको विश्वामित्रकी प्रेरणासे राक्षसने खा लिया है तो मुझको असीम क्रोध हुआ। तब राक्षसोंका ध्वंस करनेके लिये मैंने यज्ञ करना आरम्भ किया। उस यज्ञमें सैकड़ों राक्षस जलकर भस्म हो गये। इस प्रकार उन राक्षसोंको सर्वथा नष्ट होते देख मेरे महाभाग पितामह वसिष्ठजी मुझसे बोले—'वत्स ! क्रोध करना ठीक नहीं, अब तुम इस कोपको त्याग दो। राक्षसोंका कुछ अपराध नहीं है, तुम्हारे पिताके लिये तो ऐसा ही होना था। भैया ! भला कौन किसको मारता है? पुरुष अपने कियेका ही फल भोगता है। वत्स ! यह क्रोध तो मनुष्यके अत्यन्त कष्टसे संचित यश और तपका भी प्रबल नाशक है। तात ! स्वर्ग और मोक्ष दोनोंको बिगाड़नेवाले इस क्रोधका महर्षिगण सर्वदा त्याग करते हैं; इसलिये तुम इसके वशीभूत मत होओ *। अब इन बेचारे निरपराध राक्षसोंको दग्ध करनेसे कोई लाभ नहीं; तुम्हारा यह यज्ञ बंद हो जाना चाहिये; क्योंकि साधुओंका बल केवल क्षमा है।'

महात्मा दादाजीके इस प्रकार समझानेपर उनकी बातोंके गौरवका विचार करके मैंने वह यज्ञ समाप्त कर दिया। इससे मुनिश्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठजी बहुत प्रसन्न हुए। उसी समय ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यजी वहाँ आये। मैत्रेय ! पितामह वसिष्ठजीने उन्हें अर्घ्य दिया, तब वे महाभाग पुलस्त्यजी आसन ग्रहण करके मुझसे बोले।

पुलस्त्यजीने कहा—तुमने चित्तमें महान् वैरभावके रहते हुए भी अपने गुरुजन वसिष्ठजीके कहनेसे क्षमाका आश्रय लिया है, इसलिये तुम सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता होओगे। महाभाग ! अत्यन्त क्रुद्ध होनेपर भी तुमने मेरी संतानका सर्वथा मूलोच्छेद नहीं किया; अतः मैं तुम्हें एक और उत्तम वर देता हूँ। वत्स ! तुम पुराणसंहिताके रचयिता होओगे और परमात्माके वास्तविक स्वरूपको यथावत् जानोगे तथा मेरे प्रसादसे तुम्हारी निर्मल बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति-सम्बन्धी कर्मोंमें संदेहरहित हो जायगी। पुलस्त्यजीके इस तरह कहनेके अनन्तर मेरे पितामह भगवान् वसिष्ठजी बोले—'वत्स ! पुलस्त्यजीने तुम्हारे लिये जो कुछ कहा है, वह सब सत्य होगा।'

मैत्रेय ! इस प्रकार पूर्वकालमें बुद्धिमान् वसिष्ठजी और पुलस्त्यजीने जो कुछ कहा था, वह सब तुम्हारे प्रश्नसे मुझे स्मरण हो आया है। अतः तुम्हारे पूछनेपर मैं उस सम्पूर्ण पुराण-संहिताको तुम्हें सुनाता हूँ; तुम उसे भलीभाँति ध्यान देकर सुनो। यह जगत् विष्णुसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और लयके कर्ता हैं तथा यह जगत् भी वे ही हैं†।

चौबीस तत्त्वोंके विचारके साथ जगत्के उत्पत्ति-क्रमका वर्णन और विष्णुकी महिमा

श्रीपराशरजी कहते हैं—जो ब्रह्मा, विष्णु और शंकररूपसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं तथा अपने भक्तोंको संसार-सागरसे तारनेवाले हैं, उन विकाररहित, शुद्ध, अविनाशी, सर्वदा एकरूप, परमात्मा सर्वविजयी भगवान् वासुदेवसंज्ञक विष्णुको नमस्कार है। जो एक होकर भी नाना रूपवाले हैं, स्थूल (कार्य) और सूक्ष्म (कारण) स्वरूप हैं, अव्यक्त (निराकार) एवं व्यक्त (साकार) रूप हैं तथा मुक्तिके एकमात्र हेतु हैं, उन श्रीविष्णुभगवान्को नमस्कार है। जो विश्वरूप प्रभु विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके मूलकारण हैं, उन परमात्मा विष्णुभगवान्को नमस्कार है। जो विश्वके आधार हैं, अति सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, सर्वप्राणियोंमें स्थित, पुरुषोत्तम और अविनाशी हैं; जो वास्तवमें अति निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं तथा जो जगत्की उत्पत्ति और स्थितिमें समर्थ एवं उसका संहार करनेवाले हैं; उन जगदीश्वर, अजन्मा, अक्षय और अव्यय भगवान् विष्णुको प्रणाम करके तुम्हें वह सारा प्रसङ्ग क्रमशः सुनाता हूँ; जो दक्ष आदि मुनिश्रेष्ठोंके पूछनेपर पितामह भगवान् ब्रह्माजीने उनसे कहा था।

वह प्रसङ्ग दक्ष आदि मुनियोंने नर्मदा-तटपर राजा पुरुकुत्सको सुनाया था तथा पुरुकुत्सने सारस्वतसे और सारस्वतने मुझसे कहा था। जो श्रेष्ठोंसे भी अत्यन्त श्रेष्ठ, आत्मा-

* हन्यते तात क केन यत स्वकृतभुक् पुमान् ॥
संचितस्यापि महता वत्स क्लेशेन मानवैः। यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः परः ॥
स्वर्गापवर्गव्यासेधकारणं परमर्षयः। वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव ॥
(वि० पु० १ । १ । १७—१९)

† विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम्। स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः ॥
(वि० पु० १ । १ । ३१)

मैत्रेय ! जब मैंने सुना कि पिताजीको विश्वामित्रकी प्रेरणासे राक्षसने खा लिया है तो मुझको असीम क्रोध हुआ। तब राक्षसोंका ध्वंस करनेके लिये मैंने यज्ञ करना आरम्भ किया। उस यज्ञमें सैकड़ों राक्षस जलकर भस्म हो गये। इस प्रकार उन राक्षसोंको सर्वथा नष्ट होते देख मेरे महाभाग पितामह वसिष्ठजी मुझसे बोले—'वत्स ! क्रोध करना ठीक नहीं, अब तुम इस कोपको त्याग दो। राक्षसोंका कुछ अपराध नहीं है, तुम्हारे पिताके लिये तो ऐसा ही होना था। भैया ! भला कौन किसको मारता है ? पुरुष अपने कियेका ही फल भोगता है। वत्स ! यह क्रोध तो मनुष्यके अत्यन्त कष्टसे संचित यश और तपका भी प्रबल नाशक है। तात ! स्वर्ग और मोक्ष दोनोंको बिगाड़नेवाले इस क्रोधका महर्षिगण सर्वदा त्याग करते हैं; इसलिये तुम इसके वशीभूत मत होओ *। अब इन बेचारे निरपराध राक्षसोंको दग्ध करनेसे कोई लाभ नहीं; तुम्हारा यह यज्ञ बंद हो जाना चाहिये; क्योंकि साधुओंका बल केवल क्षमा है।'

महात्मा दादाजीके इस प्रकार समझानेपर उनकी बातोंके गौरवका विचार करके मैंने वह यज्ञ समाप्त कर दिया। इससे मुनिश्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठजी बहुत प्रसन्न हुए। उसी समय ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यजी वहाँ आये। मैत्रेय ! पितामह वसिष्ठजीने उन्हें अर्घ्य दिया, तब वे महाभाग पुलस्त्यजी आसन ग्रहण करके मुझसे बोले।

पुलस्त्यजीने कहा—तुमने चित्तमें महान् वैरभावके रहते हुए भी अपने गुरुजन वसिष्ठजीके कहनेसे क्षमाका आश्रय लिया है, इसलिये तुम सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता होओगे। महाभाग ! अत्यन्त क्रुद्ध होनेपर भी तुमने मेरी संतानका सर्वथा मूलोच्छेद नहीं किया; अतः मैं तुम्हें एक और उत्तम वर देता हूँ। वत्स ! तुम पुराणसंहिताके रचयिता होओगे और परमात्माके वास्तविक स्वरूपको यथावत् जानोगे तथा मेरे प्रसादसे तुम्हारी निर्मल बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति-सम्बन्धी कर्मोंमें संदेहरहित हो जायगी। पुलस्त्यजीके इस तरह कहनेके अनन्तर मेरे पितामह भगवान् वसिष्ठजी बोले—'वत्स ! पुलस्त्यजीने तुम्हारे लिये जो कुछ कहा है, वह सब सत्य होगा।'

मैत्रेय ! इस प्रकार पूर्वकालमें बुद्धिमान् वसिष्ठजी और पुलस्त्यजीने जो कुछ कहा था, वह सब तुम्हारे प्रश्नसे मुझे स्मरण हो आया है। अतः तुम्हारे पूछनेपर मैं उस सम्पूर्ण पुराण-संहिताको तुम्हें सुनाता हूँ; तुम उसे भलीभाँति ध्यान देकर सुनो। यह जगत् विष्णुसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और लयके कर्ता हैं तथा यह जगत् भी वे ही हैं†।

चौबीस तत्त्वोंके विचारके साथ जगत्के उत्पत्ति-क्रमका वर्णन और विष्णुकी महिमा

श्रीपराशरजी कहते हैं—जो ब्रह्मा, विष्णु और शंकररूपसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं तथा अपने भक्तोंको संसार-सागरसे तारनेवाले हैं, उन विकाररहित, शुद्ध, अविनाशी, सर्वदा एकरूप, परमात्मा सर्वविजयी भगवान् वासुदेवसंज्ञक विष्णुको नमस्कार है। जो एक होकर भी नाना रूपवाले हैं, स्थूल (कार्य) और सूक्ष्म (कारण) स्वरूप हैं, अव्यक्त (निराकार) एवं व्यक्त (साकार) रूप हैं तथा मुक्तिके एकमात्र हेतु हैं, उन श्रीविष्णुभगवान्को नमस्कार है। जो विश्वरूप प्रभु विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके मूलकारण हैं, उन परमात्मा विष्णुभगवान्को नमस्कार है। जो विश्वके आधार हैं, अति सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, सर्वप्राणियोंमें स्थित, पुरुषोत्तम और अविनाशी हैं; जो वास्तवमें अति निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं तथा जो जगत्की उत्पत्ति और स्थितिमें समर्थ एवं उसका संहार करनेवाले हैं; उन जगदीश्वर, अजन्मा, अक्षय और अव्यय भगवान् विष्णुको प्रणाम करके तुम्हें वह सारा प्रसङ्ग क्रमशः सुनाता हूँ; जो दक्ष आदि मुनिश्रेष्ठोंके पूछनेपर पितामह भगवान् ब्रह्माजीने उनसे कहा था।

वह प्रसङ्ग दक्ष आदि मुनियोंने नर्मदा-तटपर राजा पुरुकुत्सको सुनाया था तथा पुरुकुत्सने सारस्वतसे और सारस्वतने मुझसे कहा था। जो श्रेष्ठोंसे भी अत्यन्त श्रेष्ठ, आत्मा-

---

* हन्यते तात क केन यत स्वकृतभुक् पुमान् ॥
संचितस्यापि महता वत्स क्लेशेन मानवैः। यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः परः ॥
स्वर्गापवर्गव्यासेधकारणं परमर्षयः। वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव ॥
(वि० पु० १।१।१७–१९)

† विष्णोः सकाशादुद्भूत जगत्तत्रैव च स्थितम्। स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः ॥
(वि० पु० १।१।३१)

(स्पर्श-तन्मात्रा) से बलवान् वायु हुआ, उसका गुण स्पर्श माना गया है। शब्द-तन्मात्रायुक्त आकाशने स्पर्श-तन्मात्रा-वाले वायुको आवृत किया। फिर स्पर्श-तन्मात्रायुक्त वायुने विकृत होकर रूप-तन्मात्राकी सृष्टि की। (रूप-तन्मात्रायुक्त) वायुसे तेज उत्पन्न हुआ है, उसका गुण रूप कहा जाता है। स्पर्श-तन्मात्रायुक्त वायुने रूप-तन्मात्रावाले तेजको आवृत किया। फिर रूप-तन्मात्रामय तेजने भी विकृत होकर रस-तन्मात्राकी रचना की। उस (रस-तन्मात्रा) से रस-गुणवाला जल हुआ। रस-तन्मात्रावाले जलको रूप-तन्मात्रामय तेजने आवृत किया। रस-तन्मात्रायुक्त जलने विकारको प्राप्त होकर गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि की। उससे पृथिवी उत्पन्न हुई है जिसका गुण गन्ध माना जाता है। उन-उन आकाशादि भूतोंमें शब्द आदिकी मात्रा है, इसलिये वे तन्मात्रा ही कहे गये हैं। तन्मात्राओंमें विशेष भाव नहीं है इसलिये उनकी 'अविशेष' संज्ञा है। इस प्रकार तामस अहंकारसे यह भूत-तन्मात्रा-रूप सर्ग हुआ है।

इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकारसे और उनके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकारसे उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। इस प्रकार इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन वैकारिक (सात्त्विक) हैं। द्विज! त्वक्, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र—ये पाँचों बुद्धिकी सहायतासे शब्दादि विषयोंको ग्रहण करनेके लिये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मैत्रेय! पायु (गुदा), उपस्थ (लिङ्ग), हस्त, पाद और वाक्—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके कर्म क्रमशः मल-त्याग, मूत्र-त्याग, शिल्प, गति और वचन बतलाये जाते हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी—ये पाँचों भूत उत्तरोत्तर (क्रमशः) शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि पाँच गुणोंसे युक्त हैं। ये पाँचों भूत शान्त, घोर और मूढ हैं; अतः ये 'विशेष' कहलाते हैं।

इन भूतोंमें पृथक्-पृथक् नाना शक्तियाँ हैं। अतः वे परस्पर पूर्णतया मिले बिना संसारकी रचना नहीं कर सके। इसलिये एक दूसरेके आश्रय रहनेवाले और एक ही संघातकी उत्पत्तिके लक्ष्यवाले महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त—प्रकृतिके इन सभी विकारोंने पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण परस्पर मिलकर सर्वथा एक होकर प्रधान (प्रकृति) के अनुग्रहसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति की। महाबुद्धे! जलके बुलबुलेके समान क्रमशः भूतोंसे बढ़ा हुआ वह गोलाकार और महान् अण्ड ब्रह्म-रूप विष्णुका अति उत्तम प्राकृत वासस्थान हुआ। उसमें वे अव्यक्तस्वरूप जगत्पति विष्णु ही व्यक्तरूपसे स्वयं ही विराजमान हुए। विप्र! उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीपादिके सहित समुद्र, ग्रहगणके सहित सम्पूर्ण लोक तथा देव, असुर और मनुष्य आदि विविध प्राणिवर्ग प्रकट हुए। वह अण्ड पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा दस-दस गुना अधिक जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि भूतोंसे और अहंकारसे आवृत है तथा वे सब भूत और अहंकार महत्तत्त्वसे घिरे हुए हैं और इन सबके सहित वह महत्तत्त्व भी अव्यक्त प्रधानसे आवृत है। इस प्रकार यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणोंसे घिरा हुआ है।

उसमें स्थित हुए स्वयं विश्वेश्वर भगवान् श्रीहरि ब्रह्मा-रूपसे रजोगुणका आश्रय लेकर इस संसारकी रचनामें प्रवृत्त होते हैं तथा रचना हो जानेपर वे श्रीहरि ही सत्त्वगुण-विशिष्ट अतुल पराक्रमी भगवान् विष्णुरूपसे उसका कल्पान्त-पर्यन्त युग-युगमें पालन करते हैं। मैत्रेय! फिर कल्पका अन्त होनेपर वे श्रीहरि ही अति दारुण तमःप्रधान जनार्दन रुद्ररूप धारण कर समस्त भूतोंका भक्षण कर लेते हैं*। इस प्रकार समस्त भूतोंका भक्षण करके उसके बाद वे परमेश्वर संसारको जलमय करके शेष-शय्यापर शयन करते हैं। जगनेपर ब्रह्मा-रूप होकर वे फिर जगत्की रचना करते हैं। वह एक ही भगवान् श्रीहरि जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन संज्ञाओंको धारण करते हैं। वे प्रभु हरि ही स्रष्टा (ब्रह्मा) होकर अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक विष्णु होकर पाल्यरूप अपना ही पालन करते हैं और अन्तमें स्वयं ही संहारक (रुद्र) तथा स्वयं ही उपसहृत (लीन) होते हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा समस्त इन्द्रियाँ और अन्तःकरण आदि जितना जगत् है सब पुरुषरूप है, क्योंकि वह विश्वरूप अव्यय हरि ही सब भूतोंके आत्मा हैं। वे सर्वस्वरूप, श्रेष्ठ, वरदायक और

---

* जुषन् रजोगुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः।
ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसृष्टौ सम्प्रवर्तते॥
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना।
सत्त्वभृद्भगवान् विष्णुरप्रमेयपराक्रमः॥
तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः।
मैत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिदारुणः॥
(वि० पु० १।२।६१—६३)

(स्पर्श-तन्मात्रा) से बलवान् वायु हुआ, उसका गुण स्पर्श माना गया है। शब्द-तन्मात्रायुक्त आकाशने स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुको आवृत किया। फिर स्पर्श-तन्मात्रायुक्त वायुने विकृत होकर रूप-तन्मात्राकी सृष्टि की। (रूप-तन्मात्रायुक्त) वायुसे तेज उत्पन्न हुआ है, उसका गुण रूप कहा जाता है। स्पर्श-तन्मात्रायुक्त वायुने रूप-तन्मात्रावाले तेजको आवृत किया। फिर रूप-तन्मात्रामय तेजने भी विकृत होकर रस-तन्मात्राकी रचना की। उस (रस-तन्मात्रा) से रस-गुणवाला जल हुआ। रस-तन्मात्रावाले जलको रूप-तन्मात्रामय तेजने आवृत किया। रस-तन्मात्रायुक्त जलने विकारको प्राप्त होकर गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि की। उससे पृथिवी उत्पन्न हुई है जिसका गुण गन्ध माना जाता है। उन-उन आकाशादि भूतोंमें शब्द आदिकी मात्रा है, इसलिये वे तन्मात्रा ही कहे गये हैं। तन्मात्राओंमें विशेष भाव नहीं है इसलिये उनकी 'अविशेष' संज्ञा है। इस प्रकार तामस अहंकारसे यह भूत-तन्मात्रा-रूप सर्ग हुआ है।

इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकारसे और उनके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकारसे उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। इस प्रकार इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन वैकारिक (सात्त्विक) हैं। द्विज! त्वक्, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र—ये पाँचों बुद्धिकी सहायतासे शब्दादि विषयोंको ग्रहण करनेके लिये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मैत्रेय! पायु (गुदा), उपस्थ (लिङ्ग), हस्त, पाद और वाक्—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके कर्म क्रमशः मल-त्याग, मूत्र-त्याग, शिल्प, गति और वचन बतलाये जाते हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी—ये पाँचों भूत उत्तरोत्तर (क्रमशः) शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि पाँच गुणोंसे युक्त हैं। ये पाँचों भूत शान्त, घोर और मूढ हैं; अतः ये 'विशेष' कहलाते हैं।

इन भूतोंमें पृथक्-पृथक् नाना शक्तियाँ हैं। अतः वे परस्पर पूर्णतया मिले बिना संसारकी रचना नहीं कर सके। इसलिये एक दूसरेके आश्रय रहनेवाले और एक ही संघातकी उत्पत्तिके लक्ष्यवाले महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त—प्रकृतिके इन सभी विकारोंने पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण परस्पर मिलकर सर्वथा एक होकर प्रधान (प्रकृति) के अनुग्रहसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति की। महाबुद्धे! जलके बुलबुलेके समान क्रमशः भूतोंसे बढ़ा हुआ वह गोलाकार और महान् अण्ड ब्रह्म-रूप विष्णुका अति उत्तम प्राकृत वासस्थान हुआ। उसमें वे अव्यक्तस्वरूप जगत्पति विष्णु ही व्यक्तरूपसे स्वयं ही विराजमान हुए। विप्र! उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीपादिके सहित समुद्र, ग्रहगणके सहित सम्पूर्ण लोक तथा देव, असुर और मनुष्य आदि विविध प्राणिवर्ग प्रकट हुए। वह अण्ड पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा दस-दस गुना अधिक जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि भूतोंसे और अहंकारसे आवृत है तथा वे सब भूत और अहंकार महत्तत्त्वसे घिरे हुए हैं और इन सबके सहित वह महत्तत्त्व भी अव्यक्त प्रधानसे आवृत है। इस प्रकार यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणोंसे घिरा हुआ है।

उसमें स्थित हुए स्वयं विश्वेश्वर भगवान् श्रीहरि ब्रह्मा-रूपसे रजोगुणका आश्रय लेकर इस संसारकी रचनामें प्रवृत्त होते हैं तथा रचना हो जानेपर वे श्रीहरि ही सत्त्वगुण-विशिष्ट अतुल पराक्रमी भगवान् विष्णुरूपसे उसका कल्पान्त-पर्यन्त युग-युगमें पालन करते हैं। मैत्रेय! फिर कल्पका अन्त होनेपर वे श्रीहरि ही अति दारुण तमःप्रधान जनार्दन रुद्ररूप धारण कर समस्त भूतोंका भक्षण कर लेते हैं *। इस प्रकार समस्त भूतोंका भक्षण करके उसके बाद वे परमेश्वर संसारको जलमय करके शेष-शय्यापर शयन करते हैं। जगनेपर ब्रह्मा-रूप होकर वे फिर जगत्की रचना करते हैं। वह एक ही भगवान् श्रीहरि जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन संज्ञाओंको धारण करते हैं। वे प्रभु हरि ही स्रष्टा (ब्रह्मा) होकर अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक विष्णु होकर पाल्यरूप अपना ही पालन करते हैं और अन्तमें स्वयं ही संहारक (रुद्र) तथा स्वयं ही उपसंहृत (लीन) होते हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा समस्त इन्द्रियाँ और अन्तःकरण आदि जितना जगत् है सब पुरुषरूप है, क्योंकि वह विश्वरूप अव्यय हरि ही सब भूतोंके आत्मा हैं। वे सर्वस्वरूप, श्रेष्ठ, वरदायक और

* जुषन् रजोगुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः।
ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसृष्टौ सम्प्रवर्तते॥
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना।
सत्त्वभृद्भगवान् विष्णुरप्रमेयपराक्रमः॥
तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः।
मैत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिदारुणः॥
(वि० पु० १। २। ६१—६३)

(ब्रह्मा) की परमायु है। अनघ ! उन ब्रह्माजीका एक परार्द्ध बीत चुका है। उसके अन्तमें 'पाद्म' नामसे विख्यात महाकल्प हुआ था। द्विज ! इस समय वर्तमान उनके दूसरे परार्द्धका यह 'वाराह' नामक पहला कल्प कहा गया है।

[अब, इस कल्पके वाराह नाम पड़नेका हेतु बतलाते हैं।] वे भगवान् नारायण पर हैं, अचिन्त्य हैं, ब्रह्मा, शिव आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं, अनादि हैं और सबकी उत्पत्तिके स्थान हैं* ।

जब सम्पूर्ण जगत् जलमय हो रहा था, उस समय भगवान् नारायणने पृथिवीको जलके भीतर जान उसे बाहर निकालनेका विचार किया। तब उन्होंने पूर्व-कल्पोंके आदिमें जैसे मत्स्य, कूर्म आदि रूप धारण किये थे वैसे ही इस वाराह-कल्पके आरम्भमें वेदयज्ञमय वाराह-शरीर ग्रहण किया और सम्पूर्ण जगत्की स्थितिमें तत्पर हो सबके आत्मस्वरूप और अविचल-रूप वे परमात्मा प्रजापालक हरि जलमें प्रविष्ट हुए। तब उन साक्षात् भगवान् हरिको पाताललोकमें आये देख देवी वसुन्धरा भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगी।

पृथिवी बोली—शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले कमलनयन भगवन् ! आपको नमस्कार है। आज आप इस पातालतलसे मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें आपसे ही मै उत्पन्न हुई थी। जनार्दन ! पहले भी आपने ही मेरा उद्धार किया था और प्रभो ! मेरे तथा आकाशादि अन्य सब भूतोंके भी आप ही उपादान-कारण हैं। परमात्मस्वरूप ! आपको नमस्कार है। पुरुषात्मन् ! आपको नमस्कार है। प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) रूप ! आपको नमस्कार है। कालस्वरूप ! आपको बारंबार नमस्कार है। प्रभो ! जगत्की सृष्टि आदिके लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका रूप धारण करनेवाले आप ही सम्पूर्ण भूतोंके उत्पादक, पालक और संहारक हैं*। गोविन्द ! जगत्के एकार्णवमग्न हो जानेपर, सबको उदरस्थ करके अन्तमें आप ही उस जलमें शयन करते हैं। मनीषीजन आपके उस स्वरूपका सदा चिन्तन करते रहते हैं। प्रभो ! आपका जो परम तत्त्व है, उसे कोई नहीं जानता; अतः आपका जो रूप मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंमें प्रकट होता है, उसीकी ब्रह्मादि देवगण पूजा करते हैं। आप परब्रह्मकी ही आराधना करके मुमुक्षुजन मुक्त होते हैं। भला वासुदेवकी आराधना किये बिना कौन मोक्ष प्राप्त कर सकता है†! मनसे जो कुछ ग्रहण (संकल्प) किया जाता है, चक्षु आदि इन्द्रियोंसे जो कुछ ग्रहण करनेयोग्य है तथा बुद्धिद्वारा जो कुछ निर्णय करनेयोग्य है, वह सब आपका ही रूप है। माधव ! मैं आपहीका रूप हूँ, आपके ही आश्रित हूँ और आपके ही द्वारा रची गयी हूँ तथा आपकी ही शरणमें हूँ। इसीलिये यह जगत् मुझे 'माधवी' कहता है। सम्पूर्ण ज्ञानमय ! आपकी जय हो। स्थूलमय ! अव्यक्त ! आपकी जय हो। अनन्त ! आपकी जय हो। अव्यय ! आपकी जय हो और व्यक्तस्वरूप प्रभो ! आपकी जय हो। परापर-स्वरूप ! विश्वात्मन् ! यज्ञपते ! अनघ ! आपकी जय हो। प्रभो ! आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषट्कार हैं, आप ही ओंकार हैं और आप ही आहवनीयादि अग्नि है। हरे ! आप ही

---

* नारायणः परोऽचिन्त्यः परेषामपि स प्रभुः।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्वसम्भवः॥
(वि० पु० १।४।४)

* त्वं कर्ता सर्वभूताना त्वं पाता त्व विनाशकृत्।
सर्गादिषु प्रभो ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मरूपधृक्॥
(वि० पु० १।४।१५)

† त्वामाराध्य परं ब्रह्म याता मुक्तिं मुमुक्षवः।
वासुदेवमनाराध्य को मोक्ष समवाप्स्यति॥
(वि० पु० १।४।१८)

(ब्रह्मा) की परमायु है। अनघ! उन ब्रह्माजीका एक परार्द्ध बीत चुका है। उसके अन्तमें 'पाद्म' नामसे विख्यात महाकल्प हुआ था। द्विज! इस समय वर्तमान उनके दूसरे परार्द्धका यह 'वाराह' नामक पहला कल्प कहा गया है।

[अब, इस कल्पके वाराह नाम पड़नेका हेतु बतलाते हैं।] वे भगवान् नारायण पर हैं, अचिन्त्य हैं, ब्रह्मा, शिव आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं, अनादि हैं और सबकी उत्पत्तिके स्थान हैं*।

जब सम्पूर्ण जगत् जलमय हो रहा था, उस समय भगवान् नारायणने पृथिवीको जलके भीतर जान उसे बाहर निकालनेका विचार किया। तब उन्होंने पूर्व-कल्पोंके आदिमें जैसे मत्स्य, कूर्म आदि रूप धारण किये थे वैसे ही इस वाराह-कल्पके आरम्भमें वेदयज्ञमय वाराह-शरीर ग्रहण किया और सम्पूर्ण जगत्की स्थितिमें तत्पर हो सबके आत्मस्वरूप और अविचल-रूप वे परमात्मा प्रजापालक हरि जलमें प्रविष्ट हुए। तब उन साक्षात् भगवान् हरिको पाताललोकमें आये देख देवी वसुन्धरा भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगी।

पृथिवी बोली—शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले कमलनयन भगवन्! आपको नमस्कार है। आज आप इस पातालतलसे मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें आपसे ही मैं उत्पन्न हुई थी। जनार्दन! पहले भी आपने ही मेरा उद्धार किया था और प्रभो! मेरे तथा आकाशादि अन्य सब भूतोंके भी आप ही उपादान-कारण हैं। परमात्मस्वरूप! आपको नमस्कार है। पुरुषात्मन्! आपको नमस्कार है। प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) रूप! आपको नमस्कार है। कालस्वरूप! आपको बारंबार नमस्कार है। प्रभो! जगत्की सृष्टि आदिके लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका रूप धारण करनेवाले आप ही सम्पूर्ण भूतोंके उत्पादक, पालक और संहारक हैं*। गोविन्द! जगत्के एकार्णवमग्न हो जानेपर, सबको उदरस्थ करके अन्तमें आप ही उस जलमें शयन करते हैं। मनीषीजन आपके उस स्वरूपका सदा चिन्तन करते रहते हैं। प्रभो! आपका जो परम तत्त्व है, उसे कोई नहीं जानता; अतः आपका जो रूप मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंमें प्रकट होता है, उसीकी ब्रह्मादि देवगण पूजा करते हैं। आप परब्रह्मकी ही आराधना करके मुमुक्षुजन मुक्त होते हैं। भला वासुदेवकी आराधना किये बिना कौन मोक्ष प्राप्त कर सकता है†! मनसे जो कुछ ग्रहण (संकल्प) किया जाता है, चक्षु आदि इन्द्रियोंसे जो कुछ ग्रहण करनेयोग्य है तथा बुद्धिद्वारा जो कुछ निर्णय करनेयोग्य है, वह सब आपका ही रूप है। माधव! मैं आपहीका रूप हूँ, आपके ही आश्रित हूँ और आपके ही द्वारा रची गयी हूँ तथा आपकी ही शरणमें हूँ। इसीलिये यह जगत् मुझे 'माधवी' कहता है। सम्पूर्ण ज्ञानमय! आपकी जय हो। स्थूलमय! अव्यक्त! आपकी जय हो। अनन्त! आपकी जय हो। अव्यय! आपकी जय हो और व्यक्तस्वरूप प्रभो! आपकी जय हो। परापर-स्वरूप! विश्वात्मन्! यज्ञपते! अनघ! आपकी जय हो। प्रभो! आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषट्कार हैं, आप ही ओंकार हैं और आप ही आहवनीयादि अग्नि हैं। हरे! आप ही

* नारायणः परोऽचिन्त्यः परेषामपि स प्रभुः।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्वसम्भवः॥
(वि० पु० १।४।४)

* त्वं कर्ता सर्वभूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत्।
सर्गादिषु प्रभो ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मरूपधृक्॥
(वि० पु० १।४।१५)

† त्वामाराध्य परं ब्रह्म याता मुक्तिं मुमुक्षवः।
वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं समवाप्स्यति॥
(वि० पु० १।४।१८)

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति किये जानेपर पृथिवीको धारण करनेवाले परमात्मा वराहजीने उसे शीघ्र ही उठाकर अपार जलके ऊपर स्थापित कर दिया। उस जलसमूहके ऊपर वह एक बहुत बड़ी नौकाके समान स्थित है और बहुत विस्तृत आकार होनेके कारण उसमें डूबती नहीं है। फिर उन अनादि परमेश्वर वराह भगवान्‌ने ही पृथिवीको समतल कर उसपर जहाँ-तहाँ पर्वतोंको विभाग करके स्थापित कर दिया। सत्यसंकल्प भगवान्‌ने अपने अमोघ प्रभावसे पूर्वकल्पके अन्तमें दग्ध हुए समस्त पर्वतोंको पृथिवी-तलपर यथास्थान रच दिया। तदनन्तर उन्होंने सप्तद्वीपादि-क्रमसे पृथिवीका यथायोग्य विभाग करके भूर्लोकादि लोकोंकी पूर्ववत् कल्पना कर दी।

विविध सर्गोंका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—द्विजराज! सर्गके आदिमें भगवान् ब्रह्माजीने पृथिवी, आकाश और जल आदिमें रहनेवाले देव, ऋषि, पितृगण, दानव, मनुष्य, तिर्यक् और वृक्षादिको जिस प्रकार रचा तथा जैसे गुण, स्वभाव और रूपवाले जगत्‌की रचना की, वह सब आप मुझसे कहिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! सर्वव्यापी भगवान् ब्रह्माने जिस प्रकार इस सर्गकी रचना की, वह मैं तुमसे कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। सर्गके आदिमें ब्रह्माजीके पूर्ववत् सृष्टिका चिन्तन करनेपर पहले तमोगुणी सृष्टिका आविर्भाव हुआ। उस महात्मासे प्रथम तम (अज्ञान), मोह (अस्मिता), महामोह (भोगासक्ति), तामिस्र (द्वेष) और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश अर्थात् मरण-भय) नामक पञ्चपर्वा (पाँच प्रकारकी) अविद्या उत्पन्न हुई। फिर चिन्तन करनेपर ज्ञानशून्य, बाहर-भीतरसे तमोमय और जड नगादि (वृक्ष-गुल्म-लता-तृण और पर्वत) रूप पाँच प्रकारका सर्ग हुआ। नगादिको मुख्य कहा गया है, इसलिये यह सर्ग भी 'मुख्य सर्ग' कहलाता है।

उस मुख्य सर्गको पुरुषार्थ (मुक्ति) के साधनमें असमर्थ देखकर उन्होंने फिर अन्य सर्गके लिये ध्यान किया तो तिर्यक्-स्रोता सृष्टि उत्पन्न हुई। यह सर्ग वायुके समान तिरछा चलनेवाला है इसलिये 'तिर्यक्-स्रोता' कहलाता है। ये पशु, पक्षी आदि नामसे प्रसिद्ध हैं—और प्रायः तमोमय (अज्ञानी), विवेकरहित होते हैं। ये सब अहंकारी, अभिमानी, आन्तरिक ज्ञानयुक्त और परस्पर एक दूसरेके कुल, शील और सम्बन्धको न जाननेवाले होते हैं।

उस सर्गको भी पुरुषार्थ (मुक्ति) के साधनमें असमर्थ समझ पुनः चिन्तन करनेपर एक और सर्ग हुआ। वह 'ऊर्ध्व-स्रोत' नामक तीसरा सात्त्विक सर्ग ऊपरके लोकोंमें रहने लगा। वे ऊर्ध्व-स्रोता सृष्टिमें उत्पन्न हुए प्राणी विषय-सुखके प्रेमी, बाह्य और आन्तरिक दृष्टिसम्पन्न तथा बाह्य और आन्तरिक ज्ञानयुक्त थे। यह तीसरा 'देवसर्ग' कहलाता है। इस सर्गके प्रादुर्भूत होनेसे संतुष्ट-चित्त ब्रह्माजीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

फिर, इन तीनों प्रकारकी सृष्टियोंमें उत्पन्न हुए प्राणियोंको पुरुषार्थ (मुक्ति) के साधनमें असमर्थ जान उन्होंने एक और उत्तम मोक्ष साधक सर्गके लिये चिन्तन किया। उन सत्यसंकल्प ब्रह्माजीके इस प्रकार चिन्तन करनेपर अव्यक्तसे पुरुषार्थका साधक 'अर्वाक्-स्रोता' नामक सर्ग प्रकट हुआ। इस सर्गके प्राणी नीचे (पृथिवीपर) रहने लगे, इसलिये वे 'अर्वाक्-स्रोता' कहलाये। उनमें सत्त्व, रज और तम तीनोंकी ही अधिकता होती है। इसलिये वे दुःखबहुल, अत्यन्त क्रियाशील एवं बाह्य-आभ्यन्तर ज्ञानसे युक्त और साधक हैं। इस सर्गके प्राणी मनुष्य हैं।

मुनिश्रेष्ठ! महत्तत्त्वको ब्रह्माका पहला सर्ग जानना चाहिये। दूसरा सर्ग तन्मात्राओंका है, जिसे भूत सर्ग भी कहते हैं और तीसरा वैकारिक सर्ग है जो ऐन्द्रियक (इन्द्रिय-सम्बन्धी) सर्ग कहलाता है। इस प्रकार बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ यह प्राकृत (प्रकृतिसे उत्पन्न) सर्ग हुआ। (जिसका वर्णन दूसरे अध्यायमें किया जा चुका है।) चौथा मुख्य सर्ग है। पर्वत-वृक्षादि स्थावर ही मुख्य सर्गके अन्तर्गत हैं। पाँचवाँ जो तिर्यक्स्रोता सर्ग बतलाया उसे तिर्यक् (कीट-पतंगादि) योनि भी कहते हैं। फिर छठा सर्ग ऊर्ध्व-स्रोताओंका है जो 'देवसर्ग' कहलाता है। उसके पश्चात् सातवाँ सर्ग अर्वाक्-स्रोताओंका है, वह मनुष्य-सर्ग है।

श्रीमैत्रेयजी बोले—मुने! आपने इन देवादिके सर्गोंका संक्षेपसे वर्णन किया। अब, मुनिश्रेष्ठ! मैं इन्हें आपके मुखारविन्दसे विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति किये जानेपर पृथिवीको धारण करनेवाले परमात्मा वराहजीने उसे शीघ्र ही उठाकर अपार जलके ऊपर स्थापित कर दिया। उस जलसमूहके ऊपर वह एक बहुत बड़ी नौकाके समान स्थित है और बहुत विस्तृत आकार होनेके कारण उसमें डूबती नहीं है। फिर उन अनादि परमेश्वर वराह भगवान्‌ने ही पृथिवीको समतल कर उसपर जहाँ-तहाँ पर्वतोंको विभाग करके स्थापित कर दिया। सत्यसंकल्प भगवान्‌ने अपने अमोघ प्रभावसे पूर्वकल्पके अन्तमें दग्ध हुए समस्त पर्वतोंको पृथिवी-तलपर यथास्थान रच दिया। तदनन्तर उन्होंने सप्तद्वीपादि-क्रमसे पृथिवीका यथायोग्य विभाग करके भूर्लोकादि लोकोंकी पूर्ववत् कल्पना कर दी।

विविध सर्गोंका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—द्विजराज! सर्गके आदिमें भगवान् ब्रह्माजीने पृथिवी, आकाश और जल आदिमें रहनेवाले देव, ऋषि, पितृगण, दानव, मनुष्य, तिर्यक् और वृक्षादिको जिस प्रकार रचा तथा जैसे गुण, स्वभाव और रूपवाले जगत्‌की रचना की, वह सब आप मुझसे कहिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! सर्वव्यापी भगवान् ब्रह्माने जिस प्रकार इस सर्गकी रचना की, वह मैं तुमसे कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। सर्गके आदिमें ब्रह्माजीके पूर्ववत् सृष्टिका चिन्तन करनेपर पहले तमोगुणी सृष्टिका आविर्भाव हुआ। उस महात्मासे प्रथम तम (अज्ञान), मोह (अस्मिता), महामोह (भोगासक्ति), तामिस्र (द्वेष) और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश अर्थात् मरण-भय) नामक पञ्चपर्वा (पाँच प्रकारकी) अविद्या उत्पन्न हुई। फिर चिन्तन करनेपर ज्ञानशून्य, बाहर-भीतरसे तमोमय और जड नगादि (वृक्ष-गुल्म-लता-तृण और पर्वत) रूप पाँच प्रकारका सर्ग हुआ। नगादिको मुख्य कहा गया है, इसलिये यह सर्ग भी 'मुख्य सर्ग' कहलाता है।

उस मुख्य सर्गको पुरुषार्थ (मुक्ति) के साधनमें असमर्थ देखकर उन्होंने फिर अन्य सर्गके लिये ध्यान किया तो तिर्यक्-स्रोता सृष्टि उत्पन्न हुई। यह सर्ग वायुके समान तिरछा चलनेवाला है इसलिये 'तिर्यक्-स्रोता' कहलाता है। ये पशु, पक्षी आदि नामसे प्रसिद्ध हैं—और प्रायः तमोमय (अज्ञानी), विवेकरहित होते हैं। ये सब अहंकारी, अभिमानी, आन्तरिक ज्ञानयुक्त और परस्पर एक दूसरेके कुल, शील और सम्बन्धको न जाननेवाले होते हैं।

उस सर्गको भी पुरुषार्थ (मुक्ति) के साधनमें असमर्थ समझ पुनः चिन्तन करनेपर एक और सर्ग हुआ। वह 'ऊर्ध्व-स्रोत' नामक तीसरा सात्त्विक सर्ग ऊपरके लोकोंमें रहने लगा। वे ऊर्ध्व-स्रोता सृष्टिमें उत्पन्न हुए प्राणी विषय-सुखके प्रेमी, बाह्य और आन्तरिक दृष्टिसम्पन्न तथा बाह्य और आन्तरिक ज्ञानयुक्त थे। यह तीसरा 'देवसर्ग' कहलाता है। इस सर्गके प्रादुर्भूत होनेसे संतुष्ट-चित्त ब्रह्माजीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

फिर, इन तीनों प्रकारकी सृष्टियोंमें उत्पन्न हुए प्राणियोंको पुरुषार्थ (मुक्ति) के साधनमें असमर्थ जान उन्होंने एक और उत्तम मोक्ष साधक सर्गके लिये चिन्तन किया। उन सत्यसंकल्प ब्रह्माजीके इस प्रकार चिन्तन करनेपर अव्यक्तसे पुरुषार्थका साधक 'अर्वाक्-स्रोता' नामक सर्ग प्रकट हुआ। इस सर्गके प्राणी नीचे (पृथिवीपर) रहने लगे, इसलिये वे 'अर्वाक्-स्रोता' कहलाये। उनमें सत्त्व, रज और तम तीनोंकी ही अधिकता होती है। इसलिये वे दुःखबहुल, अत्यन्त क्रियाशील एवं बाह्य-आभ्यन्तर ज्ञानसे युक्त और साधक हैं। इस सर्गके प्राणी मनुष्य हैं।

मुनिश्रेष्ठ! महत्तत्त्वको ब्रह्माका पहला सर्ग जानना चाहिये। दूसरा सर्ग तन्मात्राओंका है, जिसे भूत सर्ग भी कहते हैं और तीसरा वैकारिक सर्ग है जो ऐन्द्रियक (इन्द्रिय-सम्बन्धी) सर्ग कहलाता है। इस प्रकार बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ यह प्राकृत (प्रकृतिसे उत्पन्न) सर्ग हुआ। (जिसका वर्णन दूसरे अध्यायमें किया जा चुका है।) चौथा मुख्य सर्ग है। पर्वत-वृक्षादि स्थावर ही मुख्य सर्गके अन्तर्गत हैं। पाँचवाँ जो तिर्यक्स्रोता सर्ग बतलाया उसे तिर्यक् (कीट-पतंगादि) योनि भी कहते हैं। फिर छठा सर्ग ऊर्ध्व-स्रोताओंका है जो 'देवसर्ग' कहलाता है। उसके पश्चात् सातवाँ सर्ग अर्वाक्-स्रोताओंका है, वह मनुष्य-सर्ग है।

श्रीमैत्रेयजी बोले—मुने! आपने इन देवादिके सर्गोंका संक्षेपसे वर्णन किया। अब, मुनिश्रेष्ठ! मैं इन्हें आपके मुखारविन्दसे विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

और भी जिस स्थानकी उन्हें इच्छा हो उसीको जा सकते हैं*।

मुनिसत्तम ! ब्रह्माजीद्वारा रची हुई वह चार वर्णोंमें विभक्त प्रजा (कल्पके आदिमें) अति श्रद्धायुक्त आचरणवाली, स्वेच्छानुसार रहनेवाली, सम्पूर्ण बाधाओंसे रहित, शुद्ध अन्तःकरणवाली, सत्कुलोत्पन्न और पुण्य-कर्मोंके अनुष्ठानसे परम पवित्र थी। उसका चित्त शुद्ध होनेके कारण उसमें निरन्तर शुद्धस्वरूप श्रीहरिके विराजमान रहनेसे उन्हें शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता था, जिससे वे भगवान्‌के उस 'विष्णु' नामक परम पदको प्राप्त होते थे। मैत्रेय ! फिर उस प्रजामें पुरुषार्थके विघातक तथा अज्ञान और लोभको उत्पन्न करनेवाले रागादिरूप अधर्म-बीजके उत्पन्न होने और पापके बढ़ जानेसे सम्पूर्ण प्रजा द्वन्द्व, ह्रास और दुःखसे आतुर हो गयी। तब उसने मरुभूमि, पर्वत और जल आदिके स्वाभाविक तथा कृत्रिम दुर्ग बनाये और पुर तथा खर्वट† आदि स्थापित किये। महामते ! उन पुर आदिमें शीत और घाम आदि बाधाओंसे बचनेके लिये उसने यथायोग्य घर बनाये।

इस प्रकार शीतोष्णादिसे बचनेका उपाय करके उस प्रजाने जीविकाके साधनरूप कृषि तथा कला-कौशल आदिकी रचना की। मुने ! धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, काँगनी, ज्वार, कोदो, छोटी मटर, उड़द, मूँग, मसूर, बड़ी मटर, कुलथी, अरहर, चना और सन—ये सत्रह ग्राम्य अन्न आदि ओषधियोंकी जातियाँ हैं। ग्राम्य और वन्य दोनों प्रकारकी मिलाकर कुल चौदह ओषधियाँ याज्ञिक हैं। उनके नाम ये हैं—धान, जौ, उड़द, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, काँगनी और कुलथी—ये आठ तथा श्यामाक (साँवा), नीवार, वनतिल, गवेधु, वेणुयव और मर्कट (मक्का)। ये चौदह ग्राम्य और वन्य अन्न आदि ओषधियाँ यज्ञानुष्ठानकी सामग्री हैं और यज्ञ इनकी उत्पत्तिका प्रधान हेतु है। यज्ञोंके सहित ये ओषधियाँ प्रजाकी वृद्धिका परम कारण हैं, इसलिये इहलोक-परलोकके ज्ञाता पुरुष यज्ञोंका अनुष्ठान किया करते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! नित्यप्रति किया जानेवाला यज्ञानुष्ठान मनुष्योंका परम उपकारक और उनके किये हुए पापोंको शान्त करनेवाला है।

धर्मवानोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय ! कृषि आदि जीविकाके साधनोंके निश्चित हो जानेपर प्रजापति ब्रह्माजीने प्रजाकी रचना कर उनके स्थान और गुणोंके अनुसार मर्यादा, वर्ण और आश्रमोंके धर्म तथा अपने धर्मका अच्छी तरह पालन करनेवाले समस्त वर्णोंके लोक आदिकी स्थापना की। कर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंका स्थान ब्रह्मलोक है, युद्ध-क्षेत्रसे कभी न हटनेवाले क्षत्रियोंका इन्द्रलोक है, अपने धर्मका पालन करनेवाले वैश्योंका वायुलोक और सेवाधर्मपरायण शूद्रोंका गन्धर्वलोक है। अठासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनि हैं; उनका जो स्थान बताया गया है, वही गुरुकुलवासी ब्रह्मचारियोंका स्थान है। इसी प्रकार वनवासी वानप्रस्थोंका स्थान सप्तर्षिलोक, गृहस्थोंका प्राजापत्यलोक और संन्यासियोंका ब्रह्मलोक है तथा आत्मानुभवसे तृप्त योगियोंका स्थान अमरपद (मोक्ष) है। जो निरन्तर एकान्तसेवी और ब्रह्मचिन्तनमें मग्न रहनेवाले योगिजन हैं, उनका जो परम स्थान है उसे ज्ञानीजन ही देख पाते हैं। चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रह भी अपने गन्तव्य स्थानोंमें जा-जाकर फिर लौट आते हैं, किंतु द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का चिन्तन करनेवाले कभी मोक्षपदसे नहीं लौटते। तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, घोर, कालसूत्र और अवीचि आदि जो नरक हैं, उनमें वेदोंकी निन्दा और यज्ञोंका उच्छेद करनेवाले तथा स्वधर्मविमुख पुरुष जाते हैं।

मरीचि आदि प्रजापतिगण, स्वायम्भुव मनु और शतरूपा तथा उनकी संतानका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—उन प्रजापतिके ध्यान करनेपर उनके देहस्वरूप भूतोंसे उत्पन्न हुए शरीर और इन्द्रियोंके सहित मानस प्रजा उत्पन्न हुई। जब महाबुद्धिमान् प्रजापतिकी वह प्रजा पुत्र-पौत्रादि क्रमसे अधिक न बढ़ी तब उन्होंने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ—इन अपने ही सदृश अन्य मानस-पुत्रोंकी सृष्टि की।

ब्रह्माजीने पहले जिन सनन्दनादिको उत्पन्न किया था,

* स्वर्गापवर्गौ मानुष्यात्प्राप्नुवन्ति नरा मुने। यच्चाभिरुचितं स्थानं तद्यान्ति मनुजा द्विज ॥

(वि० पु० १।६।१०)

† पहाड़ या नदीके तटपर बसे हुए छोटे-छोटे टोलोंको 'खर्वट' कहते हैं।

और भी जिस स्थानकी उन्हें इच्छा हो उसीको जा सकते हैं*।

मुनिसत्तम ! ब्रह्माजीद्वारा रची हुई वह चार वर्णोंमें विभक्त प्रजा (कल्पके आदिमें) अति श्रद्धायुक्त आचरणवाली, स्वेच्छानुसार रहनेवाली, सम्पूर्ण बाधाओंसे रहित, शुद्ध अन्तःकरणवाली, सत्कुलोत्पन्न और पुण्य-कर्मोंके अनुष्ठानसे परम पवित्र थी। उसका चित्त शुद्ध होनेके कारण उसमें निरन्तर शुद्धस्वरूप श्रीहरिके विराजमान रहनेसे उन्हें शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता था, जिससे वे भगवान्‌के उस 'विष्णु' नामक परम पदको प्राप्त होते थे। मैत्रेय ! फिर उस प्रजामें पुरुषार्थके विघातक तथा अज्ञान और लोभको उत्पन्न करनेवाले रागादिरूप अधर्म-बीजके उत्पन्न होने और पापके बढ़ जानेसे सम्पूर्ण प्रजा द्वन्द्व, ह्रास और दुःखसे आतुर हो गयी। तब उसने मरुभूमि, पर्वत और जल आदिके स्वाभाविक तथा कृत्रिम दुर्ग बनाये और पुर तथा खर्वट† आदि स्थापित किये। महामते ! उन पुर आदिमें शीत और घाम आदि बाधाओंसे बचनेके लिये उसने यथायोग्य घर बनाये।

इस प्रकार शीतोष्णादिसे बचनेका उपाय करके उस प्रजाने जीविकाके साधनरूप कृषि तथा कला-कौशल आदिकी रचना की। मुने ! धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, काँगनी, ज्वार, कोदो, छोटी मटर, उड़द, मूँग, मसूर, बड़ी मटर, कुलथी, अरहर, चना और सन—ये सत्रह ग्राम्य अन्न आदि ओषधियोंकी जातियाँ हैं। ग्राम्य और वन्य दोनों प्रकारकी मिलाकर कुल चौदह ओषधियाँ याज्ञिक हैं। उनके नाम ये हैं—धान, जौ, उड़द, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, काँगनी और कुलथी—ये आठ तथा श्यामाक (साँवा), नीवार, वनतिल, गवेधु, वेणुयव और मर्कट (मक्का)। ये चौदह ग्राम्य और वन्य अन्न आदि ओषधियाँ यज्ञानुष्ठानकी सामग्री हैं और यज्ञ इनकी उत्पत्तिका प्रधान हेतु है। यज्ञोंके सहित ये ओषधियाँ प्रजाकी वृद्धिका परम कारण हैं, इसलिये इहलोक-परलोकके ज्ञाता पुरुष यज्ञोंका अनुष्ठान किया करते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! नित्यप्रति किया जानेवाला यज्ञानुष्ठान मनुष्योंका परम उपकारक और उनके किये हुए पापोंको शान्त करनेवाला है।

धर्मवानोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय ! कृषि आदि जीविकाके साधनोंके निश्चित हो जानेपर प्रजापति ब्रह्माजीने प्रजाकी रचना कर उनके स्थान और गुणोंके अनुसार मर्यादा, वर्ण और आश्रमोंके धर्म तथा अपने धर्मका अच्छी तरह पालन करनेवाले समस्त वर्णोंके लोक आदिकी स्थापना की। कर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंका स्थान ब्रह्मलोक है, युद्ध-क्षेत्रसे कभी न हटनेवाले क्षत्रियोंका इन्द्रलोक है, अपने धर्मका पालन करनेवाले वैश्योंका वायुलोक और सेवाधर्मपरायण शूद्रोंका गन्धर्वलोक है। अठासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनि हैं; उनका जो स्थान बताया गया है, वही गुरुकुलवासी ब्रह्मचारियोंका स्थान है। इसी प्रकार वनवासी वानप्रस्थोंका स्थान सप्तर्षिलोक, गृहस्थोंका प्राजापत्यलोक और संन्यासियोंका ब्रह्मलोक है तथा आत्मानुभवसे तृप्त योगियोंका स्थान अमरपद (मोक्ष) है। जो निरन्तर एकान्तसेवी और ब्रह्मचिन्तनमें मग्न रहनेवाले योगिजन हैं, उनका जो परम स्थान है उसे ज्ञानीजन ही देख पाते हैं। चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रह भी अपने गन्तव्य स्थानोंमें जा-जाकर फिर लौट आते हैं, किंतु द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का चिन्तन करनेवाले कभी मोक्षपदसे नहीं लौटते। तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, घोर, कालसूत्र और अवीचि आदि जो नरक हैं, उनमें वेदोंकी निन्दा और यज्ञोंका उच्छेद करनेवाले तथा स्वधर्मविमुख पुरुष जाते हैं।

मरीचि आदि प्रजापतिगण, स्वायम्भुव मनु और शतरूपा तथा उनकी संतानका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—उन प्रजापतिके ध्यान करनेपर उनके देहस्वरूप भूतोंसे उत्पन्न हुए शरीर और इन्द्रियोंके सहित मानस प्रजा उत्पन्न हुई। जब महाबुद्धिमान् प्रजापतिकी वह प्रजा पुत्र-पौत्रादि क्रमसे अधिक न बढ़ी तब उन्होंने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ—इन अपने ही सदृश अन्य मानस-पुत्रोंकी सृष्टि की।

ब्रह्माजीने पहले जिन सनन्दनादिको उत्पन्न किया था,

* स्वर्गापवर्गौ मानुष्यात्प्राप्नुवन्ति नरा मुने। यच्चाभिरुचितं स्थानं तद्यान्ति मनुजा द्विज॥
(वि० पु० १। ६। १०)

† पहाड़ या नदीके तटपर बसे हुए छोटे-छोटे टोलोंको 'खर्वट' कहते हैं।

श्रीपराशरजीने कहा—जिनकी गति कहीं नहीं रुकती, वे अचिन्त्यात्मा सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि निरन्तर इन मनु आदि रूपोंसे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश करते रहते हैं। द्विज! समस्त भूतोंका प्रलय चार प्रकारका है—नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्य। उनमेंसे 'नैमित्तिक प्रलय' ही ब्राह्म-प्रलय है, जिसमें जगत्पति ब्रह्माजी कल्पान्तमें शयन करते हैं तथा 'प्राकृतिक प्रलय'में (ब्रह्माजी-सहित) ब्रह्माण्ड प्रकृतिमें लीन हो जाता है। ज्ञानके द्वारा योगीका परमात्मामे लीन हो जाना 'आत्यन्तिक प्रलय' है और रात-दिन जो भूतोंका क्षय होता है वही 'नित्य प्रलय' है। प्रकृतिसे महत्तत्त्वादि-क्रमसे जो सृष्टि होती है, वह 'प्राकृतिक सृष्टि' कहलाती है और अवान्तर-प्रलयके अनन्तर जो ब्रह्माके द्वारा चराचर जगत्की उत्पत्ति होती है वह 'दैनन्दिनी (नैमित्तिक) सृष्टि' कही जाती है और मुनिश्रेष्ठ! जिसमें प्रतिदिन प्राणियोंकी उत्पत्ति होती रहती है उसे 'नित्य सृष्टि' कहा गया है।

इस प्रकार समस्त शरीरोंमें स्थित भूतभावन भगवान् श्रीहरि जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं। मैत्रेय! सृष्टि, स्थिति और विनाशसम्बन्धी इन श्रीहरिकी शक्तियोंका समस्त शरीरोंमें समान भावसे अहर्निश संचार होता रहता है। ब्रह्मन्! ये तीनों महती शक्तियाँ त्रिगुणमयी हैं; अतः जो उन तीनों गुणोंका अतिक्रमण कर जाता है वह परम पदको ही प्राप्त कर लेता है, फिर जन्म-मरणादिके चक्रमें नहीं पड़ता।

रौद्र-सृष्टि और भगवान् तथा लक्ष्मीजीकी सर्वव्यापकताका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने! मैंने तुमसे ब्रह्माजीके तामस सर्गका वर्णन किया; अब मैं रुद्र-सर्गका वर्णन करता हूँ, सो सुनो। कल्पके आदिमें अपने समान पुत्र उत्पन्न होनेके लिये चिन्तन करते हुए ब्रह्माजीकी गोदमें नीललोहित वर्णके एक कुमारका प्रादुर्भाव हुआ। द्विजोत्तम! जन्मके अनन्तर ही वह जोर-जोरसे रोने और इधर-उधर दौड़ने लगा। उसे रोता देख ब्रह्माजीने उससे पूछा—'तू क्यों रोता है?' उसने कहा—'मेरा नाम रक्खो।' तब ब्रह्माजी बोले—'देव! तेरा नाम 'रुद्र' है; अब तू मत रो, धैर्य धारण कर।' ऐसा कहनेपर भी वह सात बार और रोया तब भगवान् ब्रह्माजीने उसके सात नाम और रक्खे तथा उन आठोंके स्थान, स्त्री और पुत्र भी निश्चित किये। द्विज! प्रजापतिने उसे भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव कहकर सम्बोधन किया; यही उसके नाम रक्खे और इनके स्थान भी निश्चित किये। सूर्य, जल, पृथिवी, वायु, अग्नि, आकाश, यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मण और चन्द्रमा—ये क्रमशः उनकी मूर्तियाँ हैं। द्विजश्रेष्ठ! रुद्र आदि नामोंके साथ उन सूर्य आदि मूर्तियोंकी क्रमशः सुवर्चला, ऊषा, विकेशी, अपरा, शिवा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा और रोहिणी नामकी पत्नियाँ हैं। महाभाग! अब उनके पुत्रोंके नाम सुनो। उन्हींके पुत्र-पौत्रादिसे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है। शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, संतान और बुध—ये क्रमशः उनके पुत्र हैं। ऐसे भगवान् रुद्रने प्रजापति दक्षकी अनिन्दिता पुत्री सतीको अपनी भार्यारूपसे ग्रहण किया। उस सतीने दक्षपर कुपित होनेके कारण अपना शरीर त्याग दिया था। द्विजसत्तम! फिर वह मेनाके गर्भसे हिमाचलकी पुत्री (उमा) हुई। भगवान् शङ्करने उस अनन्यपरायणा उमासे विवाह किया। भृगुके

श्रीपराशरजीने कहा—जिनकी गति कहीं नहीं रुकती, वे अचिन्त्यात्मा सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि निरन्तर इन मनु आदि रूपोंसे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश करते रहते हैं। द्विज ! समस्त भूतोंका प्रलय चार प्रकारका है—नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्य । उनमेंसे 'नैमित्तिक प्रलय' ही ब्राह्म-प्रलय है, जिसमें जगत्पति ब्रह्माजी कल्पान्तमें शयन करते हैं तथा 'प्राकृतिक प्रलय'में (ब्रह्माजी-सहित) ब्रह्माण्ड प्रकृतिमें लीन हो जाता है । ज्ञानके द्वारा योगीका परमात्मामे लीन हो जाना 'आत्यन्तिक प्रलय' है और रात-दिन जो भूतोंका क्षय होता है वही 'नित्य प्रलय' है । प्रकृतिसे महत्तत्त्वादि-क्रमसे जो सृष्टि होती है, वह 'प्राकृतिक सृष्टि' कहलाती है और अवान्तर-प्रलयके अनन्तर जो ब्रह्माके द्वारा चराचर जगत्की उत्पत्ति होती है वह 'दैनन्दिनी (नैमित्तिक) सृष्टि' कही जाती है और मुनिश्रेष्ठ ! जिसमें प्रतिदिन प्राणियोंकी उत्पत्ति होती रहती है उसे 'नित्य सृष्टि' कहा गया है ।

इस प्रकार समस्त शरीरोंमें स्थित भूतभावन भगवान् श्रीहरि जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं। मैत्रेय ! सृष्टि, स्थिति और विनाशसम्बन्धी इन श्रीहरिकी शक्तियोंका समस्त शरीरोंमें समान भावसे अहर्निश संचार होता रहता है । ब्रह्मन् ! ये तीनों महती शक्तियाँ त्रिगुणमयी हैं; अतः जो उन तीनों गुणोंका अतिक्रमण कर जाता है वह परम पदको ही प्राप्त कर लेता है, फिर जन्म-मरणादिके चक्रमें नहीं पड़ता ।

रौद्र-सृष्टि और भगवान् तथा लक्ष्मीजीकी सर्वव्यापकताका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने ! मैंने तुमसे ब्रह्माजीके तामस सर्गका वर्णन किया; अब मैं रुद्र-सर्गका वर्णन करता हूँ, सो सुनो । कल्पके आदिमें अपने समान पुत्र उत्पन्न होनेके लिये चिन्तन करते हुए ब्रह्माजीकी गोदमें नीललोहित वर्णके एक कुमारका प्रादुर्भाव हुआ । द्विजोत्तम ! जन्मके अनन्तर ही वह जोर-जोरसे रोने और इधर-उधर दौड़ने लगा । उसे रोता देख ब्रह्माजीने उससे पूछा—'तू क्यों रोता है ?' उसने कहा—'मेरा नाम रक्खो ।' तब ब्रह्माजी बोले—'देव ! तेरा नाम 'रुद्र' है; अब तू मत रो, धैर्य धारण कर ।' ऐसा कहनेपर भी वह सात बार और रोया तब भगवान् ब्रह्माजीने उसके सात नाम और रक्खे तथा उन आठोंके स्थान, स्त्री और पुत्र भी निश्चित किये । द्विज ! प्रजापतिने उसे भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव कहकर सम्बोधन किया; यही उसके नाम रक्खे और इनके स्थान भी निश्चित किये । सूर्य, जल, पृथिवी, वायु, अग्नि, आकाश, यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मण और चन्द्रमा—ये क्रमशः उनकी मूर्तियाँ हैं । द्विजश्रेष्ठ ! रुद्र आदि नामोंके साथ उन सूर्य आदि मूर्तियोंकी क्रमशः सुवर्चला, ऊषा, विकेशी, अपरा, शिवा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा और रोहिणी नामकी पत्नियाँ हैं । महाभाग ! अब उनके पुत्रोंके नाम सुनो । उन्हींके पुत्र-पौत्रादिसे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है । शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, संतान और बुध—ये क्रमशः उनके पुत्र हैं। ऐसे भगवान् रुद्रने प्रजापति दक्षकी अनिन्दिता पुत्री सतीको अपनी भार्यारूपसे ग्रहण किया । उस सतीने दक्षपर कुपित होनेके कारण अपना शरीर त्याग दिया था । द्विजसत्तम ! फिर वह मेनाके गर्भसे हिमाचलकी पुत्री (उमा) हुई । भगवान् शङ्करने उस अनन्यपरायणा उमासे विवाह किया । भृगुके

दुर्वासाजीने कहा—अरे ऐश्वर्यके मदसे दूषितचित्त इन्द्र ! तू बड़ा ढीठ है, तूने मेरी दी हुई मालाको पृथिवीपर फेंका है। इसलिये तेरा यह त्रिभुवन भी शीघ्र ही श्रीहीन हो जायगा।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब तो इन्द्र तुरंत ही ऐरावत हाथीसे उतरकर सरल हृदय मुनिवर दुर्वासाजीको अनुनय-विनय करके मनाने लगे। इस प्रकार प्रणामादिपूर्वक उनके मनानेपर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजीने यों कहा।

दुर्वासाजी बोले—अरे ! आज त्रिलोकीमें ऐसा कौन है जो मेरे प्रज्वलित जटाकलाप और टेढ़ी भृकुटिको देखकर भयभीत न हो जाय ? रे शतक्रतो ! तू बारंबार अनुनय-विनय करनेका ढोंग क्यों करता है ? तेरे इस कहने-सुननेसे क्या होगा ? मैं क्षमा नहीं कर सकता।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! इस प्रकार कहकर वे विप्रवर वहाँसे चल दिये और इन्द्र भी ऐरावतपर चढ़कर अमरावतीको चले गये। मैत्रेय ! तभीसे इन्द्रके सहित तीनों लोक वृक्ष-लता आदिके क्षीण हो जानेसे श्रीहीन और नष्ट-भ्रष्ट होने लगे। तबसे यज्ञोंका होना बंद हो गया और सम्पूर्ण लोक लोभादिके वशीभूत हो जानेसे सत्त्वशून्य (सामर्थ्यहीन) हो गये। श्रीहीनोंमें भला सत्त्व कहाँ ? और बिना सत्त्वके गुण कैसे ठहर सकते हैं ? बिना गुणोंके पुरुषमें बल, शौर्य आदि सभीका अभाव हो जाता है और निर्बल तथा अशक्त पुरुष सभीसे अपमानित होता है। अपमानित होनेपर प्रतिष्ठित पुरुषकी बुद्धि बिगड़ जाती है।

इस प्रकार त्रिलोकीके श्रीहीन और सत्त्वरहित हो जानेपर दैत्य और दानवोंने देवताओंपर चढ़ाई कर दी। दैत्योंने लोभवश निःसत्त्व और श्रीहीन देवताओंसे घोर युद्ध ठाना। अन्तमें दैत्योंद्वारा देवतालोग परास्त हुए। तब इन्द्रादि समस्त देवगण अग्निदेवको आगे कर महाभाग पितामह श्रीब्रह्माजीकी शरण गये। देवताओसे सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर श्रीब्रह्माजीने उनसे कहा, 'देवताओ ! तुम दैत्य-दलन परावरेश्वर भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ, जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं, जो चराचरके ईश्वर, प्रजापतियोंके स्वामी, सर्वव्यापक, अनन्त और अजेय हैं तथा जो अजन्मा एवं शरणागतवत्सल हैं। शरणमें जानेपर वे अवश्य तुम्हारा मङ्गल करेंगे।'

मैत्रेय ! सम्पूर्ण देवगणोंसे इस प्रकार कह लोकपितामह श्रीब्रह्माजी भी उनके साथ क्षीरसागरके उत्तरी तटपर गये। वहाँ पहुँचकर पितामह ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ परावरनाथ श्रीविष्णुभगवान्की अति मङ्गलमय वाक्योंसे स्तुति की।

ब्रह्माजी बोले—जो समस्त अणुओंसे भी अणु और समस्त गुरुओंसे भी गुरु (भारी) हैं, उन निखिललोक-विश्राम, पृथिवीके आधारस्वरूप, सर्वेश्वर, अनन्त, अज और अव्यय नारायणको मैं नमस्कार करता हूँ। मेरे सहित सम्पूर्ण जगत् जिसमें स्थित है, जिससे उत्पन्न हुआ है, मुक्ति-लाभके लिये मोक्षकामी मुनिजन जिसका ध्यान करते हैं तथा जिस ईश्वरमें सत्त्वादि प्राकृतिक गुणोंका सर्वथा अभाव है, जो समस्त शुद्ध पदार्थोंसे भी परम शुद्ध परमात्मस्वरूप आदिपुरुष और समस्त देहधारियोंके आत्मा हैं, वे श्रीविष्णुभगवान् हमपर प्रसन्न हों। जो विशुद्ध बोधस्वरूप, नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय, अव्यक्त और अविकारी है वही विष्णुका परम पद (परस्वरूप) है। जो न स्थूल है न सूक्ष्म और न किसी अन्य विशेषणका विषय है, वही भगवान् विष्णुका नित्यनिर्मल परम पद है; हम उसको प्रणाम करते हैं। नित्ययुक्त योगिगण अपने पुण्य-पापादिका क्षय हो जानेपर ॐकारद्वारा चिन्तनीय जिस अविनाशी पदका साक्षात्कार करते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जिसको देवगण, मुनिगण, शंकर और मैं—कोई भी नहीं जान सकते, वही परमेश्वर श्रीविष्णुका परम पद है। जिस अभूतपूर्व देवकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप शक्तियाँ हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। सर्वेश्वर !

दुर्वासाजीने कहा—अरे ऐश्वर्यके मदसे दूषितचित्त इन्द्र ! तू बड़ा ढीठ है, तूने मेरी दी हुई मालाको पृथिवीपर फेंका है। इसलिये तेरा यह त्रिभुवन भी शीघ्र ही श्रीहीन हो जायगा।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब तो इन्द्र तुरंत ही ऐरावत हाथीसे उतरकर सरल हृदय मुनिवर दुर्वासाजीको अनुनय-विनय करके मनाने लगे। इस प्रकार प्रणामादिपूर्वक उनके मनानेपर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजीने यों कहा।

दुर्वासाजी बोले—अरे ! आज त्रिलोकीमें ऐसा कौन है जो मेरे प्रज्वलित जटाकलाप और टेढी भृकुटिको देखकर भयभीत न हो जाय ? रे शतक्रतो ! तू बारंबार अनुनय-विनय करनेका ढोंग क्यों करता है ? तेरे इस कहने-सुननेसे क्या होगा ? मैं क्षमा नहीं कर सकता।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! इस प्रकार कहकर वे विप्रवर वहाँसे चल दिये और इन्द्र भी ऐरावतपर चढ़कर अमरावतीको चले गये। मैत्रेय ! तभीसे इन्द्रके सहित तीनों लोक वृक्ष-लता आदिके क्षीण हो जानेसे श्रीहीन और नष्ट-भ्रष्ट होने लगे। तबसे यज्ञोंका होना बंद हो गया और सम्पूर्ण लोक लोभादिके वशीभूत हो जानेसे सत्त्वशून्य (सामर्थ्यहीन) हो गये। श्रीहीनोंमें भला सत्त्व कहाँ ? और विना सत्त्वके गुण कैसे ठहर सकते हैं ? विना गुणोंके पुरुषमें बल, शौर्य आदि सभीका अभाव हो जाता है और निर्बल तथा अशक्त पुरुष सभीसे अपमानित होता है। अपमानित होनेपर प्रतिष्ठित पुरुषकी बुद्धि बिगड़ जाती है।

इस प्रकार त्रिलोकीके श्रीहीन और सत्त्वरहित हो जानेपर दैत्य और दानवोंने देवताओंपर चढ़ाई कर दी। दैत्योंने लोभवश निःसत्त्व और श्रीहीन देवताओंसे घोर युद्ध ठाना। अन्तमें दैत्योंद्वारा देवतालोग परास्त हुए। तब इन्द्रादि समस्त देवगण अग्निदेवको आगे कर महाभाग पितामह श्रीब्रह्माजीकी शरण गये। देवताओंसे सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर श्रीब्रह्माजीने उनसे कहा, 'देवताओ ! तुम दैत्य-दलन परावरेश्वर भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ, जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं, जो चराचरके ईश्वर, प्रजापतियोंके स्वामी, सर्वव्यापक, अनन्त और अजेय हैं तथा जो अजन्मा एवं शरणागतवत्सल हैं। शरणमें जानेपर वे अवश्य तुम्हारा मङ्गल करेंगे।'

मैत्रेय ! सम्पूर्ण देवगणोंसे इस प्रकार कह लोकपितामह श्रीब्रह्माजी भी उनके साथ क्षीरसागरके उत्तरी तटपर गये। वहाँ पहुँचकर पितामह ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ परावरनाथ श्रीविष्णुभगवान्‌की अति मङ्गलमय वाक्योंसे स्तुति की।

ब्रह्माजी बोले—जो समस्त अणुओंसे भी अणु और समस्त गुरुओंसे भी गुरु (भारी) हैं, उन निखिललोक-विश्राम, पृथिवीके आधारस्वरूप, सर्वेश्वर, अनन्त, अज और अव्यय नारायणको मैं नमस्कार करता हूँ। मेरे सहित सम्पूर्ण जगत् जिसमें स्थित है, जिससे उत्पन्न हुआ है, मुक्ति-लाभके लिये मोक्षकामी मुनिजन जिसका ध्यान करते हैं तथा जिस ईश्वरमें सत्त्वादि प्राकृतिक गुणोंका सर्वथा अभाव है, जो समस्त शुद्ध पदार्थोंसे भी परम शुद्ध परमात्मस्वरूप आदिपुरुष और समस्त देहधारियोंके आत्मा हैं, वे श्रीविष्णुभगवान् हमपर प्रसन्न हों। जो विशुद्ध बोधस्वरूप, नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय, अव्यक्त और अविकारी है वही विष्णुका परम पद (परस्वरूप) है। जो न स्थूल है न सूक्ष्म और न किसी अन्य विशेषणका विषय है, वही भगवान् विष्णुका नित्यनिर्मल परम पद है; हम उसको प्रणाम करते हैं। नित्ययुक्त योगिगण अपने पुण्य-पापादिका क्षय हो जानेपर ॐकारद्वारा चिन्तनीय जिस अविनाशी पदका साक्षात्कार करते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जिसको देवगण, मुनिगण, शंकर और मैं—कोई भी नहीं जान सकते, वही परमेश्वर श्रीविष्णुका परम पद है। जिस अभूतपूर्व देवकी ब्रह्मा, विष्णु और शिव-रूप शक्तियाँ हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। सर्वेश्वर !

आदि गन्धर्वगण उनके सम्मुख गाने लगे। उन्हें अपने जलसे स्नान करानेके लिये गङ्गा आदि नदियाँ स्वय उपस्थित हुईं और दिग्गजोंने सोनेके कलशोंमें निर्मल जल लेकर उसके

द्वारा सर्वलोकमहेश्वरी श्रीलक्ष्मीदेवीको स्नान कराया। क्षीर-सागरने मूर्तिमान् होकर उन्हें कमल-पुष्पोंकी एक ऐसी माला दी जिसके कमल कभी कुम्हलाते न थे। विश्वकर्माने उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें विविध आभूषण पहनाये। इस प्रकार दिव्य माला और वस्त्र धारण कर, दिव्य जलसे स्नान कर, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो श्रीलक्ष्मीजी सम्पूर्ण देवताओंके देखते-देखते श्रीविष्णुभगवान्के वक्षःस्थलमें विराजमान हुईं।

मैत्रेय! श्रीहरिके वक्षःस्थलमें विराजमान श्रीलक्ष्मीजीके दृष्टिपात करनेसे देवताओंको अकस्मात् अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई और भगवान् विष्णुसे विमुख रहनेवाले दैत्यगण अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। तब उन महाबलवान् दैत्योंने श्रीधन्वन्तरिजीके हाथमें स्थित वह कमण्डलु छीन लिया, जिसमें अति उत्तम अमृत भरा हुआ था। तदनन्तर स्त्री (मोहिनी) रूपधारी भगवान् विष्णुने अपनी मायासे दानवोंको मोहित करके उनसे वह कमण्डलु लेकर देवताओंको दे दिया।

तब इन्द्र आदि देवगण उस अमृतको पी गये; इससे दैत्यलोग अति तीक्ष्ण खड्ग आदि शस्त्रोंसे सुसज्जित हो उनके ऊपर टूट पड़े; किंतु अमृत-पानके कारण बलवान् हुए देवताओंद्वारा मारी-काटी जाकर दैत्योंकी सम्पूर्ण सेना दिशा-विदिशाओंमें भाग गयी और पाताललोकमें चली गयी। फिर देवगण प्रसन्नतापूर्वक शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान्को प्रणाम कर पहलेके ही समान स्वर्गका शासन करने लगे।

मुनिश्रेष्ठ! उसी समयसे समस्त प्राणियोंकी धर्ममें प्रवृत्ति हो गयी तथा त्रिलोकी श्रीसम्पन्न हो गयी। तदनन्तर इन्द्रने स्वर्गलोकमें जाकर फिरसे देवराज्यपर अधिकार पाया और राजसिंहासनपर आरूढ़ हो पद्महस्ता श्रीलक्ष्मीजीकी इस प्रकार स्तुति की।

इन्द्र बोले—सम्पूर्ण लोकोंकी जननी, विकसित कमलके सदृश नेत्रोंवाली, भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान कमलोद्भवा श्री-लक्ष्मीदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। कमल ही जिनका निवासस्थान है, कमल ही जिनके कर-कमलोंमें सुशोभित है तथा कमल-दलके समान ही जिनके नेत्र हैं, उन कमलमुखी कमलनाभ-प्रिया श्रीकमलादेवीकी मैं वन्दना करता हूँ। देवि! तुम सिद्धि हो, स्वधा हो, स्वाहा हो, सुधा हो और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली हो तथा तुम ही संध्या, रात्रि, प्रभा, विभूति, मेधा, श्रद्धा और सरस्वती हो। शोभने! यज्ञविद्या (कर्मकाण्ड), महाविद्या (उपासना) और गुह्यविद्या (इन्द्रजाल) तुम्हीं हो तथा देवि! तुम्हीं मुक्ति-फल-दायिनी आत्मविद्या हो। देवि! आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या), वेदत्रयी, वार्ता (शिल्प-वाणिज्यादि) और दण्डनीति (राजनीति) भी तुम्हीं हो। तुम्हींने अपने शान्त और उग्र रूपोंसे यह समस्त संसार व्याप्त कर रक्खा है। देवि! तुम्हारे सिवा दूसरी कौन स्त्री है जो देवदेव भगवान् गदाधरके योगिध्येय सर्वयज्ञमय शरीरका आश्रय पा सके। देवि! तुम्हारे छोड़ देनेपर सम्पूर्ण त्रिलोकी नष्टप्राय हो गयी थी; अब तुम्हींने उसे पुनः अभ्युदय एवं जीवन-दान दिया है। महाभागे! स्त्री, पुत्र, गृह, धन, धान्य तथा सुहृद्—ये सब सदा तुम्हारे ही दृष्टिपातसे मनुष्योंको मिलते हैं। देवि! तुम्हारी कृपा-दृष्टिके पात्र पुरुषोंके लिये शारीरिक आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रु-पक्षका नाश और सुख आदि कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं। तुम सम्पूर्ण लोकोंकी माता हो और देवदेव भगवान् हरि पिता हैं। मातः! तुमसे और श्रीविष्णुभगवान्से यह सकल चराचर जगत् व्याप्त है। सबको पवित्र करनेवाली देवि! हमारे कोश (खजाना), गोष्ठ (पशु-शाला), गृह, भोगसामग्री, शरीर

आदि गन्धर्वगण उनके सम्मुख गाने लगे। उन्हें अपने जलसे स्नान करानेके लिये गङ्गा आदि नदियाँ स्वय उपस्थित हुईं और दिग्गजोंने सोनेके कलशोंमें निर्मल जल लेकर उसके

द्वारा सर्वलोकमहेश्वरी श्रीलक्ष्मीदेवीको स्नान कराया। क्षीर-सागरने मूर्तिमान् होकर उन्हें कमल-पुष्पोंकी एक ऐसी माला दी जिसके कमल कभी कुम्हलाते न थे। विश्वकर्माने उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें विविध आभूषण पहनाये। इस प्रकार दिव्य माला और वस्त्र धारण कर, दिव्य जलसे स्नान कर, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो श्रीलक्ष्मीजी सम्पूर्ण देवताओंके देखते-देखते श्रीविष्णुभगवान्‌के वक्षःस्थलमें विराजमान हुईं।

मैत्रेय! श्रीहरिके वक्षःस्थलमें विराजमान श्रीलक्ष्मीजीके दृष्टिपात करनेसे देवताओंको अकस्मात् अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई और भगवान् विष्णुसे विमुख रहनेवाले दैत्यगण अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। तब उन महाबलवान् दैत्योंने श्रीधन्वन्तरिजीके हाथमें स्थित वह कमण्डलु छीन लिया, जिसमें अति उत्तम अमृत भरा हुआ था। तदनन्तर स्त्री (मोहिनी) रूपधारी भगवान् विष्णुने अपनी मायासे दानवोंको मोहित करके उनसे वह कमण्डलु लेकर देवताओंको दे दिया।

तब इन्द्र आदि देवगण उस अमृतको पी गये; इससे दैत्यलोग अति तीक्ष्ण खड्ग आदि शस्त्रोंसे सुसज्जित हो उनके ऊपर टूट पड़े; किंतु अमृत-पानके कारण बलवान् हुए देवताओंद्वारा मारी-काटी जाकर दैत्योंकी सम्पूर्ण सेना दिशा-विदिशाओंमें भाग गयी और पाताललोकमें चली गयी। फिर देवगण प्रसन्नतापूर्वक शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान्‌को प्रणाम कर पहलेके ही समान स्वर्गका शासन करने लगे।

मुनिश्रेष्ठ! उसी समयसे समस्त प्राणियोंकी धर्ममें प्रवृत्ति हो गयी तथा त्रिलोकी श्रीसम्पन्न हो गयी। तदनन्तर इन्द्रने स्वर्गलोकमें जाकर फिरसे देवराज्यपर अधिकार पाया और राजसिंहासनपर आरूढ़ हो पद्महस्ता श्रीलक्ष्मीजीकी इस प्रकार स्तुति की।

इन्द्र बोले—सम्पूर्ण लोकोंकी जननी, विकसित कमलके सदृश नेत्रोंवाली, भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान कमलोद्भवा श्रीलक्ष्मीदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। कमल ही जिनका निवासस्थान है, कमल ही जिनके कर-कमलोंमें सुशोभित है तथा कमल-दलके समान ही जिनके नेत्र हैं, उन कमलमुखी कमलनाभ-प्रिया श्रीकमलादेवीकी मैं वन्दना करता हूँ। देवि! तुम सिद्धि हो, स्वधा हो, स्वाहा हो, सुधा हो और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली हो तथा तुम ही संध्या, रात्रि, प्रभा, विभूति, मेधा, श्रद्धा और सरस्वती हो। शोभने! यज्ञविद्या (कर्मकाण्ड), महाविद्या (उपासना) और गुह्यविद्या (इन्द्रजाल) तुम्हीं हो तथा देवि! तुम्हीं मुक्ति-फल-दायिनी आत्मविद्या हो। देवि! आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या), वेदत्रयी, वार्ता (शिल्प-वाणिज्यादि) और दण्डनीति (राजनीति) भी तुम्हीं हो। तुम्हींने अपने शान्त और उग्र रूपोंसे यह समस्त संसार व्याप्त कर रक्खा है। देवि! तुम्हारे सिवा दूसरी कौन स्त्री है जो देवदेव भगवान् गदाधरके योगिध्येय सर्वयज्ञमय शरीरका आश्रय पा सके। देवि! तुम्हारे छोड़ देनेपर सम्पूर्ण त्रिलोकी नष्टप्राय हो गयी थी; अब तुम्हींने उसे पुनः अभ्युदय एवं जीवन-दान दिया है। महाभागे! स्त्री, पुत्र, गृह, धन, धान्य तथा सुहृद्—ये सब सदा तुम्हारे ही दृष्टिपातसे मनुष्योंको मिलते हैं। देवि! तुम्हारी कृपा-दृष्टिके पात्र पुरुषोंके लिये शारीरिक आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रु-पक्षका नाश और सुख आदि कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं। तुम सम्पूर्ण लोकोंकी माता हो और देवदेव भगवान् हरि पिता हैं। मातः! तुमसे और श्रीविष्णुभगवान्‌से यह सकल चराचर जगत् व्याप्त है। सबको पवित्र करनेवाली देवि! हमारे कोश (खजाना), गोष्ठ (पशु-शाला), गृह, भोगसामग्री, शरीर

अथवा पढ़ेगा उसके घरमें तीनों कुलोंके रहते हुए कभी लक्ष्मीका नाश न होगा। मुने! जिन घरोंमें लक्ष्मीजीके इस स्तोत्रका पाठ होता है, उनमें कलहकी आधारभूता दरिद्रता कभी नहीं ठहर सकती।

श्रीपराशरजी कहते हैं—भृगुजीके द्वारा ख्यातिसे विष्णुपत्नी लक्ष्मीजी और धाता, विधाता नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। महात्मा मेरुकी आयति और नियति नाम्नी कन्याएँ धाता और विधाताकी स्त्रियाँ थीं; उनसे उनके प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र हुए। मृकण्डुसे मार्कण्डेय और उनसे वेदशिराका जन्म हुआ। प्राणका पुत्र द्युतिमान् और उसका पुत्र राजवान् हुआ। महाभाग! उस राजवान्से फिर भृगुवंशका बड़ा विस्तार हुआ। मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको उत्पन्न किया। उस महात्माके विरजा और पर्वत दो पुत्र थे। अङ्गिराकी पत्नी स्मृति थी। उसके सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामकी कन्याएँ हुईं। अत्रिकी भार्या अनसूयाने चन्द्रमा, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय—इन निष्पाप पुत्रोंको जन्म दिया। पुलस्त्यकी स्त्री प्रीतिसे दत्तोलिका जन्म हुआ, जो अपने पूर्व जन्ममें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अगस्त्य कहा जाता था। प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमासे कर्दम, उर्वरीयान् और सहिष्णु—ये तीन पुत्र हुए। क्रतुकी संतति नामक भार्याने वालखिल्यादि साठ हजार ऊर्ध्वरेता मुनियोंको जन्म दिया। वसिष्ठकी ऊर्जा नाम स्त्रीसे रज, गोत्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र—ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। ये निर्मल स्वभाववाले समस्त मुनिगण [तीसरे मन्वन्तरमें] सप्तर्षि हुए।

द्विज! अग्निदेव, जो ब्रह्माजीका ज्येष्ठ पुत्र है, उसके द्वारा स्वाहा नामक पत्नीसे अति तेजस्वी पावक, पवमान और शुचि—ये तीन पुत्र हुए। इन तीनोंके [प्रत्येकके पन्द्रह-पंद्रह पुत्रके क्रमसे] पैंतालीस संतान हुईं। पिता अग्नि और उसके तीन पुत्रोंको मिलाकर ये सब अग्नि ही कहलाते हैं इस प्रकार कुल उनचास (४९) अग्नि कहे गये हैं। द्विज! ब्रह्माजीद्वारा रचे गये अनग्निक, अग्निष्वात्त और साग्निक बर्हिषद् पितरोंके द्वारा स्वधाने मेना और धारिणी नामकी दो कन्याएँ उत्पन्न कीं। वे दोनों ही उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न और सभी गुणोंसे युक्त ब्रह्मवादिनी तथा योगिनी थीं।

इस प्रकार यह दक्षकन्याओंकी वंशपरम्पराका वर्णन किया गया। जो कोई श्रद्धापूर्वक इसका स्मरण करता है, वह संतानहीन नहीं होता।

ध्रुवका वनगमन और मरीचि आदि ऋषियोंसे भेंट

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! मैंने तुम्हें स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो महाबलवान् और धर्मज्ञ पुत्र बतलाये थे। ब्रह्मन्! उनमेंसे उत्तानपादकी प्रेयसी पत्नी सुरुचिसे पिताका अत्यन्त लाडला उत्तम नामक पुत्र हुआ। द्विज! उस राजाकी जो सुनीति नामकी राजमहिषी थी, उसमें उसका विशेष प्रेम न था। उसका पुत्र ध्रुव हुआ।

एक दिन राजसिंहासनपर बैठे हुए पिताकी गोदमें अपने भाई उत्तमको बैठे देख ध्रुवकी इच्छा भी गोदमें बैठनेकी हुई; किंतु राजाने अपनी प्रेयसी सुरुचिके सामने, गोदमें चढ़नेके लिये उत्कण्ठित होकर प्रेमवश आये हुए उस पुत्रका आदर नहीं किया। अपनी सौतके पुत्रको गोदमें चढ़नेके लिये उत्सुक और अपने पुत्रको गोदमें बैठे देख सुरुचि इस प्रकार कहने लगी—'अरे लल्ला! बिना मेरे पेटसे उत्पन्न हुए किसी अन्य स्त्रीका पुत्र होकर भी तू व्यर्थ क्यों ऐसा

अथवा पढ़ेगा उसके घरमें तीनों कुलोंके रहते हुए कभी लक्ष्मीका नाश न होगा। मुने! जिन घरोंमें लक्ष्मीजीके इस स्तोत्रका पाठ होता है, उनमें कलहकी आधारभूता दरिद्रता कभी नहीं ठहर सकती।

श्रीपराशरजी कहते हैं—भृगुजीके द्वारा ख्यातिसे विष्णुपत्नी लक्ष्मीजी और धाता, विधाता नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। महात्मा मेरुकी आयति और नियति नाम्नी कन्याएँ धाता और विधाताकी स्त्रियाँ थीं; उनसे उनके प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र हुए। मृकण्डुसे मार्कण्डेय और उनसे वेदशिराका जन्म हुआ। प्राणका पुत्र द्युतिमान् और उसका पुत्र राजवान् हुआ। महाभाग! उस राजवान्से फिर भृगुवंशका बड़ा विस्तार हुआ। मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको उत्पन्न किया। उस महात्माके विरजा और पर्वत दो पुत्र थे। अङ्गिराकी पत्नी स्मृति थी। उसके सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामकी कन्याएँ हुईं। अत्रिकी भार्या अनसूयाने चन्द्रमा, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय—इन निष्पाप पुत्रोंको जन्म दिया। पुलस्त्यकी स्त्री प्रीतिसे दत्तोलिका जन्म हुआ, जो अपने पूर्व जन्ममें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अगस्त्य कहा जाता था। प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमासे कर्दम, उर्वरीयान् और सहिष्णु—ये तीन पुत्र हुए। क्रतुकी संतति नामक भार्याने वालखिल्यादि साठ हजार ऊर्ध्वरेता मुनियोंको जन्म दिया। वसिष्ठकी ऊर्जा नाम स्त्रीसे रज, गोत्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र—ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। ये निर्मल स्वभाववाले समस्त मुनिगण [तीसरे मन्वन्तरमें] सप्तर्षि हुए।

द्विज! अग्निदेव, जो ब्रह्माजीका ज्येष्ठ पुत्र है, उसके द्वारा स्वाहा नामक पत्नीसे अति तेजस्वी पावक, पवमान और शुचि—ये तीन पुत्र हुए। इन तीनोंके [प्रत्येकके पन्द्रह-पंद्रह पुत्रके क्रमसे] पैंतालीस संतान हुईं। पिता अग्नि और उसके तीन पुत्रोंको मिलाकर ये सब अग्नि ही कहलाते हैं इस प्रकार कुल उनचास (४९) अग्नि कहे गये हैं। द्विज! ब्रह्माजीद्वारा रचे गये अनग्निक, अग्निष्वात्त और साग्निक बर्हिषद् पितरोंके द्वारा स्वधाने मेना और धारिणी नामकी दो कन्याएँ उत्पन्न कीं। वे दोनों ही उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न और सभी गुणोंसे युक्त ब्रह्मवादिनी तथा योगिनी थीं।

इस प्रकार यह दक्षकन्याओंकी वंशपरम्पराका वर्णन किया गया। जो कोई श्रद्धापूर्वक इसका स्मरण करता है, वह संतानहीन नहीं होता।

ध्रुवका वनगमन और मरीचि आदि ऋषियोंसे भेंट

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! मैंने तुम्हें स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो महाबलवान् और धर्मज्ञ पुत्र बतलाये थे। ब्रह्मन्! उनमेंसे उत्तानपादकी प्रेयसी पत्नी सुरुचिसे पिताका अत्यन्त लाडला उत्तम नामक पुत्र हुआ। द्विज! उस राजाकी जो सुनीति नामकी राजमहिषी थी, उसमें उसका विशेष प्रेम न था। उसका पुत्र ध्रुव हुआ।

एक दिन राजसिंहासनपर बैठे हुए पिताकी गोदमें अपने भाई उत्तमको बैठे देख ध्रुवकी इच्छा भी गोदमें बैठनेकी हुई; किंतु राजाने अपनी प्रेयसी सुरुचिके सामने, गोदमें चढ़नेके लिये उत्कण्ठित होकर प्रेमवश आये हुए उस पुत्रका आदर नहीं किया। अपनी सौतके पुत्रको गोदमें चढ़नेके लिये उत्सुक और अपने पुत्रको गोदमें बैठे देख सुरुचि इस प्रकार कहने लगी—'अरे लल्ला! बिना मेरे पेटसे उत्पन्न हुए किसी अन्य स्त्रीका पुत्र होकर भी तू व्यर्थ क्यों ऐसा

यह भी कह कि हम तेरी क्या सहायता करें; क्योंकि हमें ऐसा प्रतीत होता है कि तू कुछ कहना चाहता है ।'

ध्रुवने कहा—द्विजवरो ! मुझे न तो धनकी इच्छा है और न राज्यकी; मैं तो केवल एक उसी स्थानको चाहता हूँ जिसको अबसे पहले कभी किसीने प्राप्त न किया हो । मुनिश्रेष्ठ ! आपकी यही सहायता होगी कि आप मुझे भली प्रकार यह बता दें कि क्या करनेसे वह सबसे अग्रगण्य स्थान प्राप्त हो सकता है ।

मरीचि बोले—राजपुत्र ! भगवान् श्रीगोविन्दकी आराधना किये बिना मनुष्यको वह श्रेष्ठ स्थान नहीं मिल सकता। अतः तू श्रीअच्युतकी आराधना कर ।

अत्रि बोले—जो परा प्रकृति आदिसे भी परे हैं, वे परम पुरुष जनार्दन जिससे संतुष्ट होते हैं, उसीको वह अक्षय पद मिलता है, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ* ।

अंगिरा बोले—यदि तू अग्र्यस्थानका इच्छुक है तो जिन अव्ययात्मा अच्युतमें यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है, उन गोविन्दकी ही आराधना कर ।

पुलस्त्य बोले—जो परब्रह्म, परम धाम और परस्वरूप हैं, उन हरिकी आराधना करनेसे मनुष्य अति दुर्लभ मोक्षपद-को भी प्राप्त कर लेता है ।

पुलह बोले—सुव्रत ! जिन जगत्पतिकी आराधनासे इन्द्रने अत्युत्तम इन्द्रपद प्राप्त किया है, तू उन यज्ञपति भगवान् विष्णुकी ही आराधना कर ।

क्रतु बोले—जो परम पुरुष यज्ञपुरुष, यज्ञ और योगेश्वर हैं, उन जनार्दनके संतुष्ट होनेपर ऐसी कौन वस्तु है जो प्राप्त न हो सकती हो ?

वसिष्ठ बोले—वत्स ! विष्णुभगवान्की आराधना करनेपर तू अपने मनसे जो कुछ चाहेगा वही प्राप्त कर लेगा; फिर त्रिलोकीके उत्तमोत्तम स्थानकी तो बात ही क्या है !

ध्रुवने कहा—महर्षिगण ! मुझ विनीतको आपने आराध्यदेव तो बता दिया । अब उसको प्रसन्न करनेके लिये मुझे किस मन्त्रको जपना चाहिये—सो बताइये । उस महापुरुष-की किस प्रकार आराधना करनी चाहिये, वह आपलोग मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहिये ।

ऋषिगण बोले—राजकुमार ! विष्णुभगवान्की आराधनामें तत्पर पुरुषोंको जिस प्रकार उनकी उपासना करनी चाहिये, वह तू हमसे यथावत् श्रवण कर । मनुष्यको चाहिये कि चित्तको सम्पूर्ण बाह्य विषयोंसे हटाकर उसे एकमात्र उन जगदाधारमें ही स्थिर कर दे । राजकुमार ! इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर तन्मयभावसे जो कुछ जपना चाहिये, वह हमसे सुन— 'ॐ पुरुष, प्रधान हिरण्यगर्भ, अव्यक्तरूप, शुद्धज्ञानस्वरूप वासुदेवको नमस्कार है ।' इस (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रको पूर्वकालमें तेरे पितामह भगवान् स्वायम्भुव मनुने जपा था । तब उनसे संतुष्ट होकर श्रीजनार्दनने उन्हें त्रिलोकीमें दुर्लभ मनोवाञ्छित सिद्धि दी थी । उसी प्रकार तू भी इस (मन्त्र)का निरन्तर जप करता हुआ श्रीगोविन्दको प्रसन्न कर ।

ध्रुवकी तपस्यासे प्रसन्न हुए भगवान्का आविर्भाव और उसे ध्रुवपद-दान

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! यह सब सुनकर ध्रुव उन ऋषियोंको प्रणामकर उस वनसे चल दिया और अपनेको कृतकृत्य-सा मानकर वह यमुनातटवर्ती अति पवित्र मधु नामक वनमें आया, जहाँ (पीछे) मधुके पुत्र लवण नामक महाबली राक्षसको मारकर शत्रुघ्नने मधुरा (मथुरा) नामकी पुरी बसायी । जिस (मधुवन)में निरन्तर देवदेव श्रीहरिकी सन्निधि रहती है, उसी सर्वपापापहारी तीर्थमें ध्रुवने तपस्या की। मरीचि आदि मुनीश्वरोंने उसे जिस प्रकार उपदेश किया था, उसने उसी प्रकार अपने हृदयमें विराजमान निखिलदेवेश्वर श्रीविष्णुभगवान्का ध्यान करना आरम्भ किया । इस प्रकार अनन्यचित्त होकर ध्यान करते रहनेसे उसके हृदयमें सर्व-भूतान्तर्यामी भगवान् हरि सर्वतोभावसे प्रकट हुए ।

मैत्रेय ! योगी ध्रुवके चित्तमें भगवान् विष्णुके स्थित हो जानेपर सर्वभूतोंको धारण करनेवाली पृथिवी उसका भार न सँभाल सकी । उसके बायें चरणसे खड़े होनेपर पृथिवीका बायाँ आधा भाग झुक गया और फिर दायें चरणसे खड़े

* परः पराणां पुरुषो यस्य तुष्टो जनार्दनः । स प्राप्नोत्यक्षयं स्थानमेतत्सत्यं मयोदितम् ॥ (वि० पु० १ । ११ । ४४)

यह भी कह कि हम तेरी क्या सहायता करें; क्योंकि हमें ऐसा प्रतीत होता है कि तू कुछ कहना चाहता है ।'

ध्रुवने कहा—द्विजवरो ! मुझे न तो धनकी इच्छा है और न राज्यकी; मैं तो केवल एक उसी स्थानको चाहता हूँ जिसको अबसे पहले कभी किसीने प्राप्त न किया हो । मुनिश्रेष्ठ ! आपकी यही सहायता होगी कि आप मुझे भली प्रकार यह बता दें कि क्या करनेसे वह सबसे अग्रगण्य स्थान प्राप्त हो सकता है ।

मरीचि बोले—राजपुत्र ! भगवान् श्रीगोविन्दकी आराधना किये बिना मनुष्यको वह श्रेष्ठ स्थान नहीं मिल सकता। अतः तू श्रीअच्युतकी आराधना कर ।

अत्रि बोले—जो परा प्रकृति आदिसे भी परे हैं, वे परम पुरुष जनार्दन जिससे संतुष्ट होते हैं, उसीको वह अक्षय पद मिलता है, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ* ।

अंगिरा बोले—यदि तू अग्रयस्थानका इच्छुक है तो जिन अव्ययात्मा अच्युतमें यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है, उन गोविन्दकी ही आराधना कर ।

पुलस्त्य बोले—जो परब्रह्म, परम धाम और परस्वरूप हैं, उन हरिकी आराधना करनेसे मनुष्य अति दुर्लभ मोक्षपदको भी प्राप्त कर लेता है ।

पुलह बोले—सुव्रत ! जिन जगत्पतिकी आराधनासे इन्द्रने अत्युत्तम इन्द्रपद प्राप्त किया है, तू उन यज्ञपति भगवान् विष्णुकी ही आराधना कर ।

क्रतु बोले—जो परम पुरुष यज्ञपुरुष, यज्ञ और योगेश्वर हैं, उन जनार्दनके संतुष्ट होनेपर ऐसी कौन वस्तु है जो प्राप्त न हो सकती हो ?

वसिष्ठ बोले—वत्स ! विष्णुभगवान्‌की आराधना करनेपर तू अपने मनसे जो कुछ चाहेगा वही प्राप्त कर लेगा; फिर त्रिलोकीके उत्तमोत्तम स्थानकी तो बात ही क्या है !

ध्रुवने कहा—महर्षिगण ! मुझ विनीतको आपने आराध्यदेव तो बता दिया । अब उसको प्रसन्न करनेके लिये मुझे किस मन्त्रको जपना चाहिये—सो बताइये । उस महापुरुषकी किस प्रकार आराधना करनी चाहिये, वह आपलोग मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहिये ।

ऋषिगण बोले—राजकुमार ! विष्णुभगवान्‌की आराधनामें तत्पर पुरुषोंको जिस प्रकार उनकी उपासना करनी चाहिये, वह तू हमसे यथावत् श्रवण कर । मनुष्यको चाहिये कि चित्तको सम्पूर्ण बाह्य विषयोंसे हटाकर उसे एकमात्र उन जगदाधारमें ही स्थिर कर दे । राजकुमार ! इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर तन्मयभावसे जो कुछ जपना चाहिये, वह हमसे सुन— 'ॐ पुरुष, प्रधान हिरण्यगर्भ, अव्यक्तरूप, शुद्धज्ञानस्वरूप वासुदेवको नमस्कार है ।' इस (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रको पूर्वकालमें तेरे पितामह भगवान् स्वायम्भुव मनुने जपा था । तब उनसे संतुष्ट होकर श्रीजनार्दनने उन्हें त्रिलोकीमें दुर्लभ मनोवाञ्छित सिद्धि दी थी । उसी प्रकार तू भी इस (मन्त्र)का निरन्तर जप करता हुआ श्रीगोविन्दको प्रसन्न कर ।

ध्रुवकी तपस्यासे प्रसन्न हुए भगवान्‌का आविर्भाव और उसे ध्रुवपद-दान

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! यह सब सुनकर ध्रुव उन ऋषियोंको प्रणामकर उस वनसे चल दिया और अपनेको कृतकृत्य-सा मानकर वह यमुनातटवर्ती अति पवित्र मधु नामक वनमें आया, जहाँ (पीछे) मधुके पुत्र लवण नामक महाबली राक्षसको मारकर शत्रुघ्नने मधुरा (मथुरा) नामकी पुरी बसायी । जिस (मधुवन)में निरन्तर देवदेव श्रीहरिकी सन्निधि रहती है, उसी सर्वपापापहारी तीर्थमें ध्रुवने तपस्या की। मरीचि आदि मुनीश्वरोंने उसे जिस प्रकार उपदेश किया था, उसने उसी प्रकार अपने हृदयमें विराजमान निखिलदेवेश्वर श्रीविष्णुभगवान्‌का ध्यान करना आरम्भ किया । इस प्रकार अनन्यचित्त होकर ध्यान करते रहनेसे उसके हृदयमें सर्वभूतान्तर्यामी भगवान् हरि सर्वतोभावसे प्रकट हुए ।

मैत्रेय ! योगी ध्रुवके चित्तमें भगवान् विष्णुके स्थित हो जानेपर सर्वभूतोंको धारण करनेवाली पृथिवी उसका भार न सँभाल सकी । उसके बायें चरणसे खड़े होनेपर पृथिवीका बायाँ आधा भाग झुक गया और फिर दायें चरणसे खड़े

* परः पराणां पुरुषो यस्य तुष्टो जनार्दनः । स प्राप्नोत्यक्षयं स्थानमेतत्सत्यं मयोदितम् ॥
(वि० पु० १ । ११ । ४४)

देवता बोले—देवाधिदेव, जगन्नाथ, परमेश्वर, पुरुषोत्तम ! जनार्दन ! उस उत्तानपादके पुत्रकी तपस्यासे भयभीत होकर हम आपकी शरणमें आये हैं, आप उसे तपसे निवृत्त कीजिये। हम नहीं जानते, वह इन्द्रत्व चाहता है या सूर्यत्व अथवा उसे कुबेर, वरुण या चन्द्रमाके पदकी अभिलाषा है। अतः ईश ! आप हमपर प्रसन्न होइये और उस उत्तानपादके पुत्रको तपसे निवृत्त कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—देवताओ ! उसे इन्द्र, सूर्य, वरुण अथवा कुबेर आदि किसीके पदकी अभिलाषा नहीं है, उसकी जो कुछ इच्छा है वह सब मैं पूर्ण करूँगा। देवगण ! तुम निश्चिन्त होकर इच्छानुसार अपने-अपने स्थानोंको जाओ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि समस्त देवगण उन्हें प्रणामकर अपने-अपने स्थानोको चले गये। सर्वात्मा भगवान् हरिने भी ध्रुवकी तन्मयतासे प्रसन्न हो उसके निकट चतुर्भुजरूपसे जाकर इस प्रकार कहा।

श्रीभगवान् बोले—उत्तानपादके पुत्र ध्रुव ! तेरा कल्याण हो। मैं तेरी तपस्यासे प्रसन्न होकर तुझे वर देनेके लिये प्रकट हुआ हूँ। तेरा चित्त बाह्य विषयोंसे उपरत होकर मुझमें ही लगा हुआ है। अतः मैं तुझसे बहुत संतुष्ट हूँ। अब तू अपनी इच्छानुसार श्रेष्ठ वर माँग।

श्रीपराशरजी कहते हैं—देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसे वचन सुनकर बालक ध्रुवने आँखें खोलीं और अपनी ध्यानावस्थामें देखे हुए भगवान् हरिको साक्षात् अपने सम्मुख खड़े देखा। श्रीअच्युतको किरीट तथा शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और खड्ग धारण किये देख उसने पृथिवीपर सिर रखकर प्रणाम किया और सहसा रोमाञ्चित होकर उसने देवदेवकी स्तुति करनेकी इच्छा की।

ध्रुवने कहा—भगवन् ! आप यदि मेरी तपस्यासे संतुष्ट हैं तो मैं आपकी स्तुति करना चाहता हूँ। आप मुझे यही वर दीजिये [जिससे मैं स्तुति कर सकूँ]। देव ! जिनकी गति ब्रह्मा आदि वेदज्ञजन भी नहीं जानते, उन्हीं आपका मैं बालक कैसे स्तवन कर सकता हूँ। प्रभो ! आपकी भक्तिसे द्रवीभूत मेरा चित्त आपके चरणोंकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हो रहा है। अतः आप उसके लिये बुद्धि प्रदान कीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विजवर्य ! तब जगत्पति श्रीगोविन्दने अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए उस उत्तानपादके पुत्रको अपने शङ्खके अग्रभागसे छू दिया। तब तो एक क्षणमे ही वह राजकुमार प्रसन्न-मुखसे अति विनीत हो सर्वभूताधिष्ठान श्रीअच्युतकी स्तुति करने लगा।

देवता बोले—देवाधिदेव, जगन्नाथ, परमेश्वर, पुरुषोत्तम ! जनार्दन ! उस उत्तानपादके पुत्रकी तपस्यासे भयभीत होकर हम आपकी शरणमें आये हैं, आप उसे तपसे निवृत्त कीजिये। हम नहीं जानते, वह इन्द्रत्व चाहता है या सूर्यत्व अथवा उसे कुबेर, वरुण या चन्द्रमाके पदकी अभिलाषा है। अतः ईश ! आप हमपर प्रसन्न होइये और उस उत्तानपादके पुत्रको तपसे निवृत्त कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—देवताओ ! उसे इन्द्र, सूर्य, वरुण अथवा कुबेर आदि किसीके पदकी अभिलाषा नहीं है, उसकी जो कुछ इच्छा है वह सब मैं पूर्ण करूँगा। देवगण ! तुम निश्चिन्त होकर इच्छानुसार अपने-अपने स्थानोंको जाओ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि समस्त देवगण उन्हें प्रणामकर अपने-अपने स्थानोको चले गये। सर्वात्मा भगवान् हरिने भी ध्रुवकी तन्मयतासे प्रसन्न हो उसके निकट चतुर्भुजरूपसे जाकर इस प्रकार कहा।

श्रीभगवान् बोले—उत्तानपादके पुत्र ध्रुव ! तेरा कल्याण हो। मैं तेरी तपस्यासे प्रसन्न होकर तुझे वर देनेके लिये प्रकट हुआ हूँ। तेरा चित्त बाह्य विषयोंसे उपरत होकर मुझमें ही लगा हुआ है। अतः मैं तुझसे बहुत संतुष्ट हूँ। अब तू अपनी इच्छानुसार श्रेष्ठ वर माँग।

श्रीपराशरजी कहते हैं—देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसे वचन सुनकर बालक ध्रुवने आँखें खोलीं और अपनी ध्यानावस्थामें देखे हुए भगवान् हरिको साक्षात् अपने सम्मुख खड़े देखा। श्रीअच्युतको किरीट तथा शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और खड्ग धारण किये देख उसने पृथिवीपर सिर रखकर प्रणाम किया और सहसा रोमाञ्चित होकर उसने देवदेवकी स्तुति करनेकी इच्छा की।

ध्रुवने कहा—भगवन् ! आप यदि मेरी तपस्यासे संतुष्ट हैं तो मैं आपकी स्तुति करना चाहता हूँ। आप मुझे यही वर दीजिये [जिससे मैं स्तुति कर सकूँ]। देव ! जिनकी गति ब्रह्मा आदि वेदज्ञजन भी नहीं जानते, उन्हीं आपका मैं बालक कैसे स्तवन कर सकता हूँ। प्रभो ! आपकी भक्तिसे द्रवीभूत मेरा चित्त आपके चरणोंकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हो रहा है। अतः आप उसके लिये बुद्धि प्रदान कीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विजवर्य ! तब जगत्पति श्रीगोविन्दने अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए उस उत्तानपादके पुत्रको अपने शङ्खके अग्रभागसे छू दिया। तब तो एक क्षणमें ही वह राजकुमार प्रसन्न-मुखसे अति विनीत हो सर्वभूताधिष्ठान श्रीअच्युतकी स्तुति करने लगा।

और जिन स्वायम्भुव मनुके कुलमें और किसीको स्थान मिलना अत्यन्त कठिन है, उन्हींके घरमें तूने उत्तानपादके यहाँ जन्म लिया। बालक ! जिसने मुझे संतुष्ट किया है, उसके लिये तो यह अत्यन्त तुच्छ है। मेरी आराधना करनेसे तो मोक्षपद भी तत्काल प्राप्त हो सकता है। ध्रुव! मेरी कृपासे तू निःसन्देह उस स्थानमें, जो त्रिलोकीमें सबसे उत्कृष्ट है, सम्पूर्ण ग्रह और तारामण्डलका आश्रय बनेगा। ध्रुव! मैं तुझे वह ध्रुव (निश्चल) स्थान देता हूँ जो सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि ग्रहों, सभी नक्षत्रों, समस्त सप्तर्षियों और सम्पूर्ण विमानचारी देवगणोंसे ऊपर है। देवताओंमेंसे कोई तो केवल चार युगतक और कोई एक मन्वन्तरतक ही रहते हैं; किंतु तुझे एक कल्पतककी स्थिति देता हूँ। तेरी माता सुनीति भी अति स्वच्छ तारारूपसे उतने ही समयतक तेरे पास एक विमानपर निवास करेगी और जो लोग समाहित-चित्तसे सायंकाल और प्रातःकाल तेरा गुण-कीर्तन करेंगे, उनको महान् पुण्य होगा।

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामते! इस प्रकार पूर्वकालमें जगत्पति देवाधिदेव भगवान् जनार्दनसे वर पाकर ध्रुव उस अत्युत्तम स्थानमें स्थित हुए। मुने! अपने माता पिताकी धर्मपूर्वक सेवा करनेसे तथा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर-मन्त्रके माहात्म्य और तपके प्रभावसे उनके मान, वैभव एवं प्रभावकी वृद्धि देखकर देव और असुरोंके आचार्य शुक्रदेवने ये श्लोक कहे हैं।

'अहो! इस ध्रुवके तपका कैसा प्रभाव है ! अहो ! इसकी तपस्याका कैसा अद्भुत फल है, जो इस ध्रुवको ही आगे रखकर सप्तर्षिगण स्थित हो रहे हैं। इसकी यह सुनीति नामवाली माता भी अवश्य ही सत्य और हितकर वचन बोलनेवाली है*, जिसने अपनी कोखमें उस ध्रुवको धारण करके त्रिलोकीका आश्रयभूत अति उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया, जो भविष्यमें भी स्थिर रहनेवाला है, उस सुनीति माताकी महिमाका वर्णन कर सके, संसारमें ऐसा कौन है !'

राजा वेन और पृथुका चरित्र

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! ध्रुवसे उसकी पत्नीने शिष्टि और भव्यको उत्पन्न किया और भव्यसे शम्भुका जन्म हुआ तथा शिष्टिके द्वारा उसकी पत्नी सुच्छायाने रिपु, रिपुंजय, विप्र, वृकल और वृकतेजा नामक पाँच निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये। उनमेंसे रिपुके द्वारा बृहतीके गर्भसे महातेजस्वी चाक्षुषका जन्म हुआ। चाक्षुषने अपनी भार्या पुष्करिणीसे, जो वरुण-कुलमें उत्पन्न और महात्मा वीरण प्रजापतिकी पुत्री थी, मनुको उत्पन्न किया, जो छठे मन्वन्तरके अधिपति हुए। तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मनुसे वैराज प्रजापतिकी पुत्री नड्वलाके गर्भमें दस महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। नड्वलासे कुरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, शुचि, अग्निष्टोम, अतिरात्र तथा नवाँ सुद्युम्न और दसवाँ अभिमन्यु—इन महातेजस्वी पुत्रोंका जन्म हुआ। कुरुके द्वारा उसकी पत्नी आग्नेयीने अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और शिबि—इन छः परम तेजस्वी पुत्रोंको उत्पन्न किया। अङ्गसे सुनीथाके वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऋषियोंने उस (वेन) के दाहिने हाथका संतानके लिये मन्थन किया था। महामुने! वेनके हाथका मन्थन करनेपर उससे वैन्य नामक महीपाल उत्पन्न हुए, जो पृथु नामसे विख्यात हैं और जिन्होंने प्रजाके हितके लिये पूर्वकालमें पृथिवीको दुहा था।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! परमर्षियोंने वेनके हाथको क्यों मथा ? जिससे महापराक्रमी पृथुका जन्म हुआ।

श्रीपराशरजीने कहा—मुने ! मृत्युकी सुनीथा नामवाली जो प्रथम पुत्री थी, वह अङ्गको पत्नीरूपसे दी गयी थी। उसीसे वेनका जन्म हुआ। मैत्रेय! वह मृत्युकी कन्याका पुत्र अपने मातामह (नाना) के दोषसे स्वभावसे ही दुष्ट हुआ। उस वेनका जिस समय महर्षियोंद्वारा राजपदपर अभिषेक हुआ, उसी समय उसने संसारभरमें यह घोषणा कर दी कि 'यज्ञपुरुष भगवान् मैं ही हूँ, मुझसे अतिरिक्त यज्ञका भोक्ता और स्वामी दूसरा हो ही कौन सकता है ? इसलिये कभी कोई यज्ञ, दान और हवन आदि न करे।' मैत्रेय ! तब ऋषियोंने उस राजा वेनके पास उपस्थित हो पहले उसकी खूब प्रशंसा कर सान्त्वनायुक्त मधुर वाणीसे कहा।

ऋषिगण बोले—राजन् ! पृथिवीपते ! तुम्हारे राज्य

* सुनीतिने ध्रुवको पुण्योपार्जन करनेका उपदेश दिया था, जिसके आचरणसे उन्हें उत्तम लोक प्राप्त हुआ। अतएव 'सुनीति' सत्यवक्ता कही गयी है।

और जिन स्वायम्भुव मनुके कुलमें और किसीको स्थान मिलना अत्यन्त कठिन है, उन्हींके घरमें तूने उत्तानपादके यहाँ जन्म लिया। बालक! जिसने मुझे संतुष्ट किया है, उसके लिये तो यह अत्यन्त तुच्छ है। मेरी आराधना करनेसे तो मोक्षपद भी तत्काल प्राप्त हो सकता है। ध्रुव! मेरी कृपासे तू निःसन्देह उस स्थानमें, जो त्रिलोकीमें सबसे उत्कृष्ट है, सम्पूर्ण ग्रह और तारामण्डलका आश्रय बनेगा। ध्रुव! मैं तुझे वह ध्रुव (निश्चल) स्थान देता हूँ जो सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि ग्रहों, सभी नक्षत्रों, समस्त सप्तर्षियों और सम्पूर्ण विमानचारी देवगणोंसे ऊपर है। देवताओंमेंसे कोई तो केवल चार युगतक और कोई एक मन्वन्तरतक ही रहते हैं; किंतु तुझे एक कल्पतककी स्थिति देता हूँ। तेरी माता सुनीति भी अति स्वच्छ तारारूपसे उतने ही समयतक तेरे पास एक विमानपर निवास करेगी और जो लोग समाहित-चित्तसे सायंकाल और प्रातःकाल तेरा गुण-कीर्तन करेंगे, उनको महान् पुण्य होगा।

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामते! इस प्रकार पूर्वकालमें जगत्पति देवाधिदेव भगवान् जनार्दनसे वर पाकर ध्रुव उस अत्युत्तम स्थानमें स्थित हुए। मुने! अपने माता पिताकी धर्मपूर्वक सेवा करनेसे तथा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर-मन्त्रके माहात्म्य और तपके प्रभावसे उनके मान, वैभव एवं प्रभावकी वृद्धि देखकर देव और असुरोंके आचार्य शुक्रदेवने ये श्लोक कहे हैं।

'अहो! इस ध्रुवके तपका कैसा प्रभाव है! अहो! इसकी तपस्याका कैसा अद्भुत फल है, जो इस ध्रुवको ही आगे रखकर सप्तर्षिगण स्थित हो रहे हैं। इसकी यह सुनीति नामवाली माता भी अवश्य ही सत्य और हितकर वचन बोलनेवाली है*, जिसने अपनी कोखमें उस ध्रुवको धारण करके त्रिलोकीका आश्रयभूत अति उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया, जो भविष्यमें भी स्थिर रहनेवाला है, उस सुनीति माताकी महिमाका वर्णन कर सके, संसारमें ऐसा कौन है!'

राजा वेन और पृथुका चरित्र

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! ध्रुवसे उसकी पत्नीने शिष्टि और भव्यको उत्पन्न किया और भव्यसे शम्भुका जन्म हुआ तथा शिष्टिके द्वारा उसकी पत्नी सुच्छायाने रिपु, रिपुंजय, विप्र, वृकल और वृकतेजा नामक पाँच निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये। उनमेंसे रिपुके द्वारा बृहतीके गर्भसे महातेजस्वी चाक्षुषका जन्म हुआ। चाक्षुषने अपनी भार्या पुष्करिणीसे, जो वरुण-कुलमें उत्पन्न और महात्मा वीरण प्रजापतिकी पुत्री थी, मनुको उत्पन्न किया, जो छठे मन्वन्तरके अधिपति हुए। तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मनुसे वैराज प्रजापतिकी पुत्री नड्वलाके गर्भमें दस महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। नड्वलासे कुरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, शुचि, अग्निष्टोम, अतिरात्र तथा नवाँ सुद्युम्न और दसवाँ अभिमन्यु—इन महातेजस्वी पुत्रोंका जन्म हुआ। कुरुके द्वारा उसकी पत्नी आग्नेयीने अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और शिबि—इन छः परम तेजस्वी पुत्रोंको उत्पन्न किया। अङ्गसे सुनीथाके वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऋषियोंने उस (वेन) के दाहिने हाथका संतानके लिये मन्थन किया था। महामुने! वेनके हाथका मन्थन करनेपर उससे वैन्य नामक महीपाल उत्पन्न हुए, जो पृथु नामसे विख्यात हैं और जिन्होंने प्रजाके हितके लिये पूर्वकालमें पृथिवीको दुहा था।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! परमर्षियोंने वेनके हाथको क्यों मथा? जिससे महापराक्रमी पृथुका जन्म हुआ।

श्रीपराशरजीने कहा—मुने! मृत्युकी सुनीथा नामवाली जो प्रथम पुत्री थी, वह अङ्गको पत्नीरूपसे दी गयी थी। उसीसे वेनका जन्म हुआ। मैत्रेय! वह मृत्युकी कन्याका पुत्र अपने मातामह (नाना) के दोषसे स्वभावसे ही दुष्ट हुआ। उस वेनका जिस समय महर्षियोंद्वारा राजपदपर अभिषेक हुआ, उसी समय उसने संसारभरमें यह घोषणा कर दी कि 'यज्ञपुरुष भगवान् मैं ही हूँ, मुझसे अतिरिक्त यज्ञका भोक्ता और स्वामी दूसरा हो ही कौन सकता है? इसलिये कभी कोई यज्ञ, दान और हवन आदि न करे।' मैत्रेय! तब ऋषियोंने उस राजा वेनके पास उपस्थित हो पहले उसकी खूब प्रशंसा कर सान्त्वनायुक्त मधुर वाणीसे कहा।

ऋषिगण बोले—राजन्! पृथिवीपते! तुम्हारे राज्य

* सुनीतिने ध्रुवको पुण्योपार्जन करनेका उपदेश दिया था, जिसके आचरणसे उन्हें उत्तम लोक प्राप्त हुआ। अतएव 'सुनीति' सत्ना कही गयी है।

का राज्याभिषेक किया। उनके दाहिने हाथमें चक्रका चिह्न देखकर उन्हें विष्णुका अंश जान पितामह ब्रह्माजीको परम

आनन्द हुआ। यह श्रीविष्णुभगवान्‌के चक्रका चिह्न सभी चक्रवर्ती राजाओंके हाथमें हुआ करता है, इसका प्रभाव देवताओंसे भी कुण्ठित नहीं होता।

इस प्रकार महातेजस्वी और परम प्रतापी वेनपुत्र, धर्मकुशल महानुभावोंद्वारा विधिपूर्वक अति महान् राजराजेश्वरपदपर अभिषिक्त हुए। जब वे समुद्रमें चलते थे तो जल स्थिर हो जाता था, पर्वत उन्हें मार्ग देते थे और उनकी ध्वजा कभी भंग नहीं हुई। पृथिवी बिना जोते-बोये धान्य पकानेवाली थी; केवल चिन्तनमात्रसे ही अन्न सिद्ध हो जाता था, गौएँ कामधेनुरूप थीं और पुट-पुटमें मधु भरा रहता था।

राजा पृथुने उत्पन्न होते ही पैतामह-यज्ञ किया; उससे सोमाभिषवके दिन सूति (सोमाभिषवभूमि) से महामति सूतकी उत्पत्ति हुई। उसी महायज्ञमें बुद्धिमान् मागधका जन्म हुआ। तब मुनिवरोंने उन दोनों सूत और मागधोंसे कहा—'तुम इन प्रतापवान् वेनपुत्र महाराज पृथुकी स्तुति करो। तुम्हारे योग्य यही कार्य है तथा राजा भी स्तुतिके ही योग्य हैं।' तब उन्होंने हाथ जोड़कर सब ब्राह्मणोंसे कहा—'ये महाराज तो आज ही उत्पन्न हुए हैं, हम इनके कोई कर्म तो जानते ही नहीं हैं। अभी इनके न तो कोई गुण प्रकट हुए हैं और न यश ही विख्यात हुआ है; फिर कहिये, हम किस आधारपर इनकी स्तुति करें?'

ऋषिगण बोले—ये महाबली चक्रवर्ती महाराज भविष्यमें जो-जो कर्म करेंगे और इनके जो-जो भावी गुण होंगे, उन्हींसे तुम इनका स्तवन करो।

श्रीपराशरजी कहते हैं—यह सुनकर राजाको भी परम संतोष हुआ; उन्होंने सोचा—'मनुष्य सद्गुणोंके कारण ही प्रशंसाका पात्र होता है; अतः मुझको भी गुण उपार्जन करने चाहिये। इसलिये अब स्तुतिके द्वारा ये जिन गुणोंका वर्णन करेंगे, मैं भी सावधानतापूर्वक वैसा ही करूँगा। यदि यहाँपर ये कुछ त्याज्य अवगुण बतायेंगे तो मैं उनका त्याग करूँगा।' इस प्रकार राजाने अपने चित्तमें निश्चय किया। तदनन्तर उन (सूत और मागध) दोनोंने परम बुद्धिमान् वेननन्दन महाराज पृथुका उनके भावी कर्मोंके आश्रयसे स्वरसहित भलीभाँति स्तवन किया। उन्होंने कहा—'ये महाराज सत्यवादी, दानशील, सत्यमर्यादावाले, लज्जाशील, सुहृद्, क्षमाशील, पराक्रमी और दुष्टोंका दमन करनेवाले हैं। ये धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयावान्, प्रियभाषी, माननीयोंको मान देनेवाले, यज्ञपरायण, ब्रह्मण्य, साधुसमाजमें सम्मानित तथा व्यवहार पड़नेपर शत्रु और मित्रके प्रति समान रहनेवाले हैं।' इस प्रकार सूत और मागधके कहे हुए गुणोंको उन्होंने अपने चित्तमें धारण किया और उसी प्रकारके कार्य किये। तदनन्तर उन पृथिवीपतिने पृथिवीका पालन करते हुए बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले अनेक महान् यज्ञ किये। अराजकताके समय ओषधियोंके नष्ट हो जानेसे भूखसे व्याकुल हुई प्रजा पृथिवीनाथ पृथुके पास आयी और उनके पूछनेपर प्रणाम करके उनसे अपने आनेका कारण निवेदन किया।

प्रजाने कहा—प्रजापते नृपश्रेष्ठ! अराजकताके समय पृथिवीने समस्त ओषधियाँ अपनेमें लीन कर ली हैं, अतः आपकी सम्पूर्ण प्रजा क्षीण हो रही है। विधाताने आपको हमारा जीवनदायक प्रजापति बनाया है; अतः क्षुधारूप महारोगसे पीड़ित हम प्रजाजनोंको आप जीवनरूप ओषधि दीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—यह सुनकर महाराज पृथु अपना आजगव नामक दिव्य धनुष और दिव्य बाण लेकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक पृथिवीके पीछे दौड़े, तब भयसे अत्यन्त व्याकुल हुई पृथिवी गौका रूप धारणकर भागी और ब्रह्मलोक आदि सभी लोकोंमें गयी। समस्त भूतोंको धारण करनेवाली

का राज्याभिषेक किया। उनके दाहिने हाथमें चक्रका चिह्न देखकर उन्हें विष्णुका अंश जान पितामह ब्रह्माजीको परम

आनन्द हुआ। यह श्रीविष्णुभगवान्‌के चक्रका चिह्न सभी चक्रवर्ती राजाओंके हाथमें हुआ करता है, इसका प्रभाव देवताओंसे भी कुण्ठित नहीं होता।

इस प्रकार महातेजस्वी और परम प्रतापी वेनपुत्र, धर्मकुशल महानुभावोंद्वारा विधिपूर्वक अति महान् राजराजेश्वरपदपर अभिषिक्त हुए। जब वे समुद्रमें चलते थे तो जल स्थिर हो जाता था, पर्वत उन्हें मार्ग देते थे और उनकी ध्वजा कभी भंग नहीं हुई। पृथिवी बिना जोते-बोये धान्य पकानेवाली थी; केवल चिन्तनमात्रसे ही अन्न सिद्ध हो जाता था, गौएँ कामधेनुरूप थीं और पुट-पुटमें मधु भरा रहता था।

राजा पृथुने उत्पन्न होते ही पैतामह-यज्ञ किया; उससे सोमाभिषवके दिन सूति (सोमाभिषवभूमि) से महामति सूतकी उत्पत्ति हुई। उसी महायज्ञमें बुद्धिमान् मागधका जन्म हुआ। तब मुनिवरोंने उन दोनों सूत और मागधोंसे कहा—'तुम इन प्रतापवान् वेनपुत्र महाराज पृथुकी स्तुति करो। तुम्हारे योग्य यही कार्य है तथा राजा भी स्तुतिके ही योग्य हैं।' तब उन्होंने हाथ जोड़कर सब ब्राह्मणोंसे कहा—'ये महाराज तो आज ही उत्पन्न हुए हैं, हम इनके कोई कर्म तो जानते ही नहीं हैं। अभी इनके न तो कोई गुण प्रकट हुए हैं और न यश ही विख्यात हुआ है; फिर कहिये, हम किस आधारपर इनकी स्तुति करें?'

ऋषिगण बोले—ये महाबली चक्रवर्ती महाराज भविष्यमें जो-जो कर्म करेंगे और इनके जो-जो भावी गुण होंगे, उन्हींसे तुम इनका स्तवन करो।

श्रीपराशरजी कहते हैं—यह सुनकर राजाको भी परम संतोष हुआ; उन्होंने सोचा—'मनुष्य सद्‌गुणोंके कारण ही प्रशंसाका पात्र होता है; अतः मुझको भी गुण उपार्जन करने चाहिये। इसलिये अब स्तुतिके द्वारा ये जिन गुणोंका वर्णन करेंगे, मैं भी सावधानतापूर्वक वैसा ही करूँगा। यदि यहाँपर ये कुछ त्याज्य अवगुण बतायेंगे तो मैं उनका त्याग करूँगा।' इस प्रकार राजाने अपने चित्तमें निश्चय किया। तदनन्तर उन (सूत और मागध) दोनोंने परम बुद्धिमान् वेननन्दन महाराज पृथुका उनके भावी कर्मोंके आश्रयसे स्वरसहित भलीभाँति स्तवन किया। उन्होंने कहा—'ये महाराज सत्यवादी, दानशील, सत्यमर्यादावाले, लज्जाशील, सुहृद्, क्षमाशील, पराक्रमी और दुष्टोंका दमन करनेवाले हैं। ये धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयावान्, प्रियभाषी, माननीयोंको मान देनेवाले, यज्ञपरायण, ब्रह्मण्य, साधुसमाजमें सम्मानित तथा व्यवहार पड़नेपर शत्रु और मित्रके प्रति समान रहनेवाले हैं।' इस प्रकार सूत और मागधके कहे हुए गुणोंको उन्होंने अपने चित्तमें धारण किया और उसी प्रकारके कार्य किये। तदनन्तर उन पृथिवीपतिने पृथिवीका पालन करते हुए बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले अनेक महान् यज्ञ किये। अराजकताके समय ओषधियोंके नष्ट हो जानेसे भूखसे व्याकुल हुई प्रजा पृथिवीनाथ पृथुके पास आयी और उनके पूछनेपर प्रणाम करके उनसे अपने आनेका कारण निवेदन किया।

प्रजाने कहा—प्रजापते नृपश्रेष्ठ! अराजकताके समय पृथिवीने समस्त ओषधियाँ अपनेमें लीन कर ली हैं, अतः आपकी सम्पूर्ण प्रजा क्षीण हो रही है। विधाताने आपको हमारा जीवनदायक प्रजापति बनाया है; अतः क्षुधारूप महारोगसे पीड़ित हम प्रजाजनोंको आप जीवनरूप ओषधि दीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—यह सुनकर महाराज पृथु अपना आजगव नामक दिव्य धनुष और दिव्य बाण लेकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक पृथिवीके पीछे दौड़े, तब भयसे अत्यन्त व्याकुल हुई पृथिवी गौका रूप धारणकर भागी और ब्रह्मलोक आदि सभी लोकोंमें गयी। समस्त भूतोंको धारण करनेवाली

दक्षकी साठ कन्याओंके वंशका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्मन् ! आप मुझसे देव, दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षसोंकी उत्पत्ति विस्तारपूर्वक कहिये ।

श्रीपराशरजीने कहा—महामुने ! स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजीकी ऐसी आज्ञा होनेपर कि 'तुम प्रजा उत्पन्न करो' दक्षने पूर्वकालमें जिस प्रकार प्राणियोंकी रचना की थी, वह सुनो । उस समय पहले तो दक्षने ऋषि, गन्धर्व, असुर और सर्प आदि मानसिक प्राणियोंको ही उत्पन्न किया । परतु यों करनेपर जब उनकी वह प्रजा और न बढी तो उन प्रजापतिने सृष्टिकी वृद्धिके लिये मनमें विचारकर मैथुनधर्मसे नाना प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे वीरण प्रजापतिकी अति तपस्विनी और लोकधारिणी पुत्री असिक्नीसे विवाह किया ।

तदनन्तर वीर्यवान् प्रजापति दक्षने सर्गकी वृद्धिके लिये वीरणसुता असिक्नीसे पॉच सहस्र पुत्र उत्पन्न किये । उन्हें प्रजावृद्धिके इच्छुक देख प्रियवादी देवर्षि नारदने उनके निकट जाकर इस प्रकार कहा—'महापराक्रमी हर्यश्वगण ! तुमलोगोंकी ऐसी चेष्टा प्रतीत होती है कि तुम प्रजा उत्पन्न करोगे, सो मेरा यह कथन सुनो । खेदकी बात है, तुमलोग अभी निरे अनभिज्ञ हो; क्योंकि तुम इस पृथिवीका मध्य, ऊर्ध्व (ऊपरी भाग) और अधः (नीचेका भाग) कुछ भी नहीं जानते, फिर प्रजाकी रचना किस प्रकार करोगे ? जब तुम्हारी गति इस ब्रह्माण्डमें ऊपर-नीचे और इधर-उधर सब ओर बे-रोक-टोक है तो अज्ञानियो ! तुम सब मिलकर इस पृथिवीका अन्त क्यों नहीं देखते ?' नारदजीके ये वचन सुनकर वे सब भिन्न-भिन्न दिशाओंको चले गये ।

हर्यश्वोंके इस प्रकार चले जानेपर दक्षने वीरणपुत्री असिक्नीसे एक सहस्र पुत्र और उत्पन्न किये । वे शबलाश्वगण भी प्रजा बढ़ानेके इच्छुक हुए, किंतु ब्रह्मन् ! जब नारदजीने उनसे भी पूर्वोक्त बातें कहीं तो वे सब भी आपसमें एक दूसरेसे कहने लगे–'महामुनि नारदजी ठीक कहते हैं; हमको भी अपने भाइयोंके मार्गका ही अवलम्बन करना चाहिये । हम भी पृथिवीका परिमाण जानकर ही सृष्टि करेंगे ।' इस प्रकार वे भी उसी मार्गसे समस्त दिशाओंको चले गये ।

महाभाग दक्ष प्रजापतिने उन पुत्रोंको भी गये जान नारदजीपर बड़ा क्रोध किया और उन्हें शाप दे दिया । मैत्रेय ! हमने सुना है कि फिर उस विद्वान् प्रजापतिने सर्गवृद्धिकी इच्छासे वीरणकुमारी असिक्नीमें साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं । उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस सोम (चन्द्रमा) को और चार अरिष्टनेमिको ब्याह दीं तथा दो बहुपुत्र, दो अङ्गिरा और दो विद्वान् कृशाश्वको विवाहीं । अब उनके नाम सुनो । अरुन्धती, वसु, यामि, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ थीं; अब तुम इनके पुत्रोंका विवरण सुनो । विश्वाके पुत्र विश्वेदेव थे, साध्यासे साध्यगण हुए । मरुत्वतीसे मरुत्वान् और वसुसे वसुगण हुए तथा भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्ताभिमानी देवता हुए । लम्बासे घोष, यामिसे नागवीथी और अरुन्धतीसे समस्त पृथिवी-विषयक प्राणी हुए तथा सकल्पासे सर्वात्मक संकल्पकी उत्पत्ति हुई ।

नाना प्रकारका वसु (तेज अथवा धन) ही जिनका प्राण है, ऐसे ज्योति आदि जो आठ वसुगण विख्यात हैं, अब मैं उनके वंशका विस्तार बताता हूँ । उनके नाम आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल (वायु), अनल (अग्नि), प्रत्यूष और प्रभास कहे जाते हैं । आपके पुत्र वैतण्ड, श्रम, शान्त और ध्वनि हुए तथा ध्रुवके पुत्र लोक-संहारक भगवान् काल हुए । भगवान् वर्चा सोमके पुत्र थे, जिनसे पुरुष वर्चस्वी (तेजस्वी) हो जाता है और धर्मके उनकी भार्या मनोहरासे द्रविण, हुत, हव्यवह, शिशिर, प्राण और वरुण नामक पुत्र हुए । अनिलकी पत्नी शिवा थी; उससे अनिलके मनोजव और अविज्ञातगति–ये दो पुत्र हुए । अग्निके पुत्र कुमार हुए, जिनका जन्म शरस्तम्ब (सरकंडे) में हुआ था । शाख, विशाख और नैगमेय–ये उनके छोटे भाई थे । कुमार कृत्तिकाओंके पुत्र होनेसे कार्तिकेय कहलाये । देवल नामक ऋषिको प्रत्यूषका पुत्र कहा जाता है । इन देवलके भी दो क्षमाशील और मनीषी पुत्र हुए ।

बृहस्पतिजीकी बहिन वरस्त्री, जो ब्रह्मचारिणी और सिद्ध योगिनी थी तथा अनासक्तभावसे समस्त भूमण्डलमें विचरती थी, आठवें वसु प्रभासकी भार्या हुई । उससे महाभाग प्रजापति विश्वकर्माका जन्म हुआ, जो सहस्रों शिल्पों (कारीगरियों) के कर्ता, देवताओंके शिल्पी, समस्त शिल्पकारोंमें श्रेष्ठ और सब प्रकारके आभूषण बनानेवाले हुए । जिन्होंने देवताओंके सम्पूर्ण विमानोंकी रचना की और जिन महात्माकी (आविष्कृत)

दक्षकी साठ कन्याओंके वंशका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्मन् ! आप मुझसे देव, दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षसोंकी उत्पत्ति विस्तारपूर्वक कहिये ।

श्रीपराशरजीने कहा—महामुने ! स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजीकी ऐसी आज्ञा होनेपर कि 'तुम प्रजा उत्पन्न करो' दक्षने पूर्वकालमें जिस प्रकार प्राणियोंकी रचना की थी, वह सुनो । उस समय पहले तो दक्षने ऋषि, गन्धर्व, असुर और सर्प आदि मानसिक प्राणियोंको ही उत्पन्न किया । परतु यों करनेपर जब उनकी वह प्रजा और न बढी तो उन प्रजापतिने सृष्टिकी वृद्धिके लिये मनमें विचारकर मैथुनधर्मसे नाना प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे वीरण प्रजापतिकी अति तपस्विनी और लोकधारिणी पुत्री असिक्नीसे विवाह किया ।

तदनन्तर वीर्यवान् प्रजापति दक्षने सर्गकी वृद्धिके लिये वीरणसुता असिक्नीसे पॉच सहस्र पुत्र उत्पन्न किये । उन्हें प्रजावृद्धिके इच्छुक देख प्रियवादी देवर्षि नारदने उनके निकट जाकर इस प्रकार कहा—'महापराक्रमी हर्यश्वगण ! तुमलोगोंकी ऐसी चेष्टा प्रतीत होती है कि तुम प्रजा उत्पन्न करोगे, सो मेरा यह कथन सुनो । खेदकी बात है, तुमलोग अभी निरे अनभिज्ञ हो; क्योंकि तुम इस पृथिवीका मध्य, ऊर्ध्व (ऊपरी भाग) और अधः (नीचेका भाग) कुछ भी नहीं जानते, फिर प्रजाकी रचना किस प्रकार करोगे ? जब तुम्हारी गति इस ब्रह्माण्डमें ऊपर-नीचे और इधर-उधर सब ओर बे-रोक-टोक है तो अज्ञानियो ! तुम सब मिलकर इस पृथिवीका अन्त क्यों नहीं देखते ?' नारदजीके ये वचन सुनकर वे सब भिन्न-भिन्न दिशाओंको चले गये ।

हर्यश्वोंके इस प्रकार चले जानेपर दक्षने वीरणपुत्री असिक्नीसे एक सहस्र पुत्र और उत्पन्न किये । वे शबलाश्वगण भी प्रजा बढ़ानेके इच्छुक हुए, किंतु ब्रह्मन् ! जब नारदजीने उनसे भी पूर्वोक्त बातें कहीं तो वे सब भी आपसमें एक दूसरेसे कहने लगे—'महामुनि नारदजी ठीक कहते हैं; हमको भी अपने भाइयोंके मार्गका ही अवलम्बन करना चाहिये । हम भी पृथिवीका परिमाण जानकर ही सृष्टि करेंगे ।' इस प्रकार वे भी उसी मार्गसे समस्त दिशाओंको चले गये ।

महाभाग दक्ष प्रजापतिने उन पुत्रोंको भी गये जान नारदजीपर बड़ा क्रोध किया और उन्हें शाप दे दिया । मैत्रेय ! हमने सुना है कि फिर उस विद्वान् प्रजापतिने सर्ग-वृद्धिकी इच्छासे वीरणकुमारी असिक्नीमें साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं । उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस सोम (चन्द्रमा) को और चार अरिष्टनेमिको ब्याह दीं तथा दो बहुपुत्र, दो अङ्गिरा और दो विद्वान् कृशाश्वको विवाहीं । अब उनके नाम सुनो । अरुन्धती, वसु, यामि, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ थीं; अब तुम इनके पुत्रोंका विवरण सुनो । विश्वाके पुत्र विश्वेदेव थे, साध्यासे साध्यगण हुए । मरुत्वतीसे मरुत्वान् और वसुसे वसुगण हुए तथा भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्ताभिमानी देवता हुए । लम्बासे घोष, यामिसे नागवीथी और अरुन्धतीसे समस्त पृथिवी-विषयक प्राणी हुए तथा सकल्पासे सर्वात्मक संकल्पकी उत्पत्ति हुई ।

नाना प्रकारका वसु (तेज अथवा धन) ही जिनका प्राण है, ऐसे ज्योति आदि जो आठ वसुगण विख्यात हैं, अब मैं उनके वंशका विस्तार बताता हूँ । उनके नाम आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल (वायु), अनल (अग्नि), प्रत्यूष और प्रभास कहे जाते हैं । आपके पुत्र वैतण्ड, श्रम, शान्त और ध्वनि हुए तथा ध्रुवके पुत्र लोक-संहारक भगवान् काल हुए । भगवान् वर्चा सोमके पुत्र थे, जिनसे पुरुष वर्चस्वी (तेजस्वी) हो जाता है और धर्मके उनकी भार्या मनोहरासे द्रविण, हुत, हव्यवह, शिशिर, प्राण और वरुण नामक पुत्र हुए । अनिलकी पत्नी शिवा थी; उससे अनिलके मनोजव और अविज्ञातगति—ये दो पुत्र हुए । अग्निके पुत्र कुमार हुए, जिनका जन्म शरस्तम्ब (सरकंडे) में हुआ था । शाख, विशाख और नैगमेय—ये उनके छोटे भाई थे । कुमार कृत्तिकाओंके पुत्र होनेसे कार्तिकेय कहलाये । देवल नामक ऋषिको प्रत्यूषका पुत्र कहा जाता है । इन देवलके भी दो क्षमाशील और मनीषी पुत्र हुए ।

बृहस्पतिजीकी बहिन वरस्त्री, जो ब्रह्मचारिणी और सिद्ध योगिनी थी तथा अनासक्तभावसे समस्त भूमण्डलमें विचरती थी, आठवें वसु प्रभासकी भार्या हुई । उससे महाभाग प्रजापति विश्वकर्माका जन्म हुआ, जो सहस्रों शिल्पों (कारीगरियों) के कर्ता, देवताओंके शिल्पी, समस्त शिल्पकारोंमें श्रेष्ठ और सब प्रकारके आभूषण बनानेवाले हुए । जिन्होंने देवताओंके सम्पूर्ण विमानोंकी रचना की और जिन महात्माकी (आविष्कृत)

महाबुद्धिमान्‌के पाशबद्ध होकर समुद्रके जलमें पडे-पड़े इधर-उधर हिलने-डुलनेसे सारी पृथ्वी हिलने लगी थी। जिनका पर्वतके समान कठोर शरीर, सर्वत्र भगवच्चित्त रहनेके कारण दैत्यराजके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रोंसे भी छिन्न-भिन्न नहीं हुआ। दैत्यराजद्वारा प्रेरित विषाग्निसे प्रज्वलित मुखवाले सर्प भी जिन महातेजस्वीका अन्त नहीं कर सके। जिन्होंने भगवत्-स्मरणरूपी कवच धारण किये रहनेके कारण पुरुषोत्तम भगवान्‌का स्मरण करते हुए पत्थरोंकी मार पडनेपर भी अपने प्राणोंको नहीं छोड़ा। स्वर्गनिवासी दैत्यपतिद्वारा ऊपरसे गिराये जानेपर जिन महामतिको पृथिवीने पास जाकर बीचमें ही अपनी गोदमें धारण कर लिया। चित्तमें श्रीमधुसूदन भगवान्‌के स्थित रहनेसे दैत्यराजका नियुक्त किया हुआ सबका शोषण करनेवाला वायु जिनके शरीरमें लगनेसे शान्त हो गया। दैत्येन्द्रद्वारा आक्रमणके लिये नियुक्त उन्मत्त दिग्गजोंके दाँत जिनके वक्षःस्थलमें लगनेसे टूट गये और उनका सारा मद चूर्ण हो गया। पूर्वकालमें दैत्यराजके पुरोहितोंकी उत्पन्न की हुई कृत्या भी जिन गोविन्दासक्तचित्त भक्तराजके अन्तका कारण नहीं हो सकी। जिनके ऊपर प्रयुक्त की हुई अति मायावी शम्बरासुरकी हजारों मायाएँ श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रसे व्यर्थ हो गयीं। जिन मतिमान् और निर्मत्सरने दैत्यराजके रसोइयोंके लाये हुए हलाहल विषको निर्विकार-भावसे पचा लिया। जो इस संसारमें समस्त प्राणियोंके प्रति समानचित्त और अपने समान ही दूसरोंके लिये भी परमप्रेमयुक्त थे और जो परम धर्मात्मा महापुरुष सत्य एवं शौर्य आदि गुणोंकी खान तथा समस्त साधु-पुरुषोंके लिये उपमास्वरूप हुए थे।

प्रह्लादके प्रभावके विषयमें प्रश्न

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—भगवन्! आपने जो कहा कि दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लादजीको न तो अग्निने ही भस्म किया और न उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंसे आघात किये जानेपर ही अपने प्राणोंको छोड़ा तथा पाशबद्ध होकर समुद्रके जलमें पड़े रहनेपर उनके हिलते-डुलते हुए अङ्गोंसे आहत होकर पृथिवी डगमगाने लगी और शरीरपर पत्थरोंकी बौछार पड़नेपर भी वे नहीं मरे। इस प्रकार जिन महाबुद्धिमान्‌का आपने बहुत ही माहात्म्य वर्णन किया है, मुने! जिन अति तेजस्वी महात्माके ऐसे चरित्र हैं, मैं उन परम-विष्णुभक्तका अतुलित प्रभाव सुनना चाहता हूँ। मुनिवर! वे तो बड़े ही धर्मपरायण थे; फिर दैत्योंने उन्हें क्यों अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित किया और क्यों समुद्रके जलमे डाला? उन्होंने किसलिये उन्हें पर्वतोंसे दबाया? किस कारण सर्पोंसे डँसाया? क्यों पर्वत-शिखरसे गिराया और क्यों अग्निमें डलवाया? उन महादैत्योंने उन्हें दिग्गजोंके दाँतोंसे क्यो रुँधवाया और क्यों सर्वशोषक वायुको उनके लिये नियुक्त किया? मुने! उनपर दैत्यगुरुओंने किसलिये कृत्याका प्रयोग किया और शम्बरासुरने क्यों अपनी सहस्रों मायाओंका वार किया? उन महात्माको मारनेके लिये दैत्यराजके रसोइयोंने, जिसे वे महाबुद्धिमान् पचा गये थे ऐसा, हलाहल विष क्यों दिया?

महाभाग! महात्मा प्रह्लादका यह सम्पूर्ण चरित्र, जो उनके महान् माहात्म्यका सूचक है, मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ। यदि दैत्यगण उन्हें नहीं मार सके तो इसका मुझे कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जिसका मन अनन्यभावसे भगवान् विष्णुमें लगा हुआ है, उसको भला कौन मार सकता है? आश्चर्य तो इसीका है कि जो नित्यधर्मपरायण और भगवदाराधनमें तत्पर रहते थे, उनसे उनके ही कुलमें उत्पन्न हुए दैत्योंने ऐसा अति दुष्कर द्वेष किया! उन धर्मात्मा, महाभाग, मत्सरहीन विष्णु-भक्तको दैत्योने किस कारणसे इतना कष्ट दिया, सो आप मुझसे कहिये।

हिरण्यकशिपुकी दिग्विजय और प्रह्लाद-चरित

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! उन सर्वदा उदार-चरित परमबुद्धिमान् महात्मा प्रह्लादजीका चरित्र तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो। पूर्वकालमें दितिके पुत्र महाबली हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीके वरसे गर्वयुक्त होकर सम्पूर्ण त्रिलोकीको अपने वशीभूत कर लिया था। वह दैत्य इन्द्रपदका भोग करता था। वह महान् असुर स्वयं ही सूर्य, वायु, अग्नि, वरुण और चन्द्रमा बना हुआ था। वह स्वयं ही कुबेर और यमराज भी था और वह असुर स्वयं ही सम्पूर्ण यज्ञ-भागोंको भोगता था। मुनिसत्तम! उसके भयसे देवता स्वर्गको छोड़कर मनुष्य-शरीर धारणकर भूमण्डलमें विचरते रहते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण त्रिलोकीको जीतकर त्रिभुवनके वैभवसे गर्वित हुआ और गन्धर्वोंसे अपनी स्तुति सुनता हुआ वह अपने अभीष्ट भोगोंको भोगता था।

उस समय उस मद्यपानासक्त महाकाय हिरण्यकशिपु-

महाबुद्धिमान्‌के पाशबद्ध होकर समुद्रके जलमें पडे-पड़े इधर-उधर हिलने-डुलनेसे सारी पृथ्वी हिलने लगी थी। जिनका पर्वतके समान कठोर शरीर, सर्वत्र भगवच्चित्त रहनेके कारण दैत्यराजके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रोंसे भी छिन्न-भिन्न नहीं हुआ। दैत्यराजद्वारा प्रेरित विषाग्निसे प्रज्वलित मुखवाले सर्प भी जिन महातेजस्वीका अन्त नहीं कर सके। जिन्होंने भगवत्-स्मरणरूपी कवच धारण किये रहनेके कारण पुरुषोत्तम भगवान्‌का स्मरण करते हुए पत्थरोंकी मार पड़नेपर भी अपने प्राणोंको नहीं छोड़ा। स्वर्गनिवासी दैत्यपतिद्वारा ऊपरसे गिराये जानेपर जिन महामतिको पृथिवीने पास जाकर बीचमें ही अपनी गोदमें धारण कर लिया। चित्तमें श्रीमधुसूदन भगवान्‌के स्थित रहनेसे दैत्यराजका नियुक्त किया हुआ सबका शोषण करनेवाला वायु जिनके शरीरमें लगनेसे शान्त हो गया। दैत्येन्द्रद्वारा आक्रमणके लिये नियुक्त उन्मत्त दिग्गजोंके दाँत जिनके वक्षःस्थलमें लगनेसे टूट गये और उनका सारा मद चूर्ण हो गया। पूर्वकालमें दैत्यराजके पुरोहितोंकी उत्पन्न की हुई कृत्या भी जिन गोविन्दासक्तचित्त भक्तराजके अन्तका कारण नहीं हो सकी। जिनके ऊपर प्रयुक्त की हुई अति मायावी शम्बरासुरकी हजारों मायाएँ श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रसे व्यर्थ हो गयीं। जिन मतिमान् और निर्मत्सरने दैत्यराजके रसोइयोंके लाये हुए हलाहल विषको निर्विकार-भावसे पचा लिया। जो इस संसारमें समस्त प्राणियोंके प्रति समानचित्त और अपने समान ही दूसरोंके लिये भी परमप्रेमयुक्त थे और जो परम धर्मात्मा महापुरुष सत्य एवं शौर्य आदि गुणोंकी खान तथा समस्त साधु-पुरुषोंके लिये उपमास्वरूप हुए थे।

प्रह्लादके प्रभावके विषयमें प्रश्न

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—भगवन्! आपने जो कहा कि दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लादजीको न तो अग्निने ही भस्म किया और न उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंसे आघात किये जानेपर ही अपने प्राणोंको छोड़ा तथा पाशबद्ध होकर समुद्रके जलमें पड़े रहनेपर उनके हिलते-डुलते हुए अङ्गोंसे आहत होकर पृथिवी डगमगाने लगी और शरीरपर पत्थरोंकी बौछार पड़नेपर भी वे नहीं मरे। इस प्रकार जिन महाबुद्धिमान्‌का आपने बहुत ही माहात्म्य वर्णन किया है, मुने! जिन अति तेजस्वी महात्माके ऐसे चरित्र हैं, मैं उन परम-विष्णुभक्तका अतुलित प्रभाव सुनना चाहता हूँ। मुनिवर! वे तो बड़े ही धर्मपरायण थे; फिर दैत्योंने उन्हें क्यों अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित किया और क्यों समुद्रके जलमे डाला? उन्होंने किसलिये उन्हें पर्वतोंसे दबाया? किस कारण सर्पोंसे डँसाया? क्यों पर्वत-शिखरसे गिराया और क्यों अग्निमें डलवाया? उन महादैत्योंने उन्हें दिग्गजोंके दाँतोंसे क्यो रुँधवाया और क्यों सर्वशोषक वायुको उनके लिये नियुक्त किया? मुने! उनपर दैत्यगुरुओंने किसलिये कृत्याका प्रयोग किया और शम्बरासुरने क्यों अपनी सहस्रों मायाओंका वार किया? उन महात्माको मारनेके लिये दैत्यराजके रसोइयोंने, जिसे वे महाबुद्धिमान् पचा गये थे ऐसा, हलाहल विष क्यों दिया?

महाभाग! महात्मा प्रह्लादका यह सम्पूर्ण चरित्र, जो उनके महान् माहात्म्यका सूचक है, मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ। यदि दैत्यगण उन्हें नहीं मार सके तो इसका मुझे कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जिसका मन अनन्यभावसे भगवान् विष्णुमें लगा हुआ है, उसको भला कौन मार सकता है? आश्चर्य तो इसीका है कि जो नित्यधर्मपरायण और भगवदाराधनमें तत्पर रहते थे, उनसे उनके ही कुलमें उत्पन्न हुए दैत्योंने ऐसा अति दुष्कर द्वेष किया! उन धर्मात्मा, महाभाग, मत्सरहीन विष्णु-भक्तको दैत्योंने किस कारणसे इतना कष्ट दिया, सो आप मुझसे कहिये।

हिरण्यकशिपुकी दिग्विजय और प्रह्लाद-चरित

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! उन सर्वदा उदार-चरित परमबुद्धिमान् महात्मा प्रह्लादजीका चरित्र तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो। पूर्वकालमें दितिके पुत्र महाबली हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीके वरसे गर्वयुक्त होकर सम्पूर्ण त्रिलोकीको अपने वशीभूत कर लिया था। वह दैत्य इन्द्रपदका भोग करता था। वह महान् असुर स्वयं ही सूर्य, वायु, अग्नि, वरुण और चन्द्रमा बना हुआ था। वह स्वयं ही कुबेर और यमराज भी था और वह असुर स्वयं ही सम्पूर्ण यज्ञ-भागोंको भोगता था। मुनिसत्तम! उसके भयसे देवता स्वर्गको छोड़कर मनुष्य-शरीर धारणकर भूमण्डलमें विचरते रहते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण त्रिलोकीको जीतकर त्रिभुवनके वैभवसे गर्वित हुआ और गन्धर्वोंसे अपनी स्तुति सुनता हुआ वह अपने अभीष्ट भोगोंको भोगता था।

उस समय उस मद्यपानासक्त महाकाय हिरण्यकशिपु-

मुझ जगदीश्वरके सामने धृष्टतापूर्वक निःशङ्क होकर वारंवार वर्णन करता है, वह कौन है ?

प्रह्लादजी बोले—योगियोंके ध्यान करनेयोग्य जिसका परम पद वाणीका विषय नहीं हो सकता तथा जिससे विश्व प्रकट हुआ है और जो स्वयं विश्वरूप है, वह परमेश्वर ही विष्णु है* ।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे मूढ़ ! मेरे रहते हुए दूसरा कौन परमेश्वर कहा जा सकता है ? फिर भी तू मौतके मुखमें जानेकी इच्छासे बारंबार ऐसा बक रहा है ।

प्रह्लादजी बोले—पिताजी ! वह ब्रह्मभूत विष्णु तो केवल मेरा ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण प्रजा और आपका भी धारण-पोषण करनेवाला विधाता और परमेश्वर है । आप प्रसन्न होइये, व्यर्थ क्रोध क्यों करते हैं ?

हिरण्यकशिपु बोला—अरे ! इस दुर्बुद्धि बालकके हृदयमें कौन पापी घुसा बैठा है, जिससे आविष्ट-चित्त होकर यह ऐसे अमङ्गलमय वचन बोलता है ?

प्रह्लादजी बोले—पिताजी ! वे विष्णुभगवान् तो मेरे ही हृदयमें नहीं, बल्कि सम्पूर्ण लोकोंमें स्थित हैं । वे सर्वव्यापी प्रभु ही मुझको, आप सबको और समस्त प्राणियोंको अपनी-अपनी चेष्टाओंमें प्रवृत्त करते हैं† ।

हिरण्यकशिपु बोला—इस पापीको यहाँसे निकालो और गुरुके यहाँ ले जाकर इसका अच्छी तरह शासन करो । इस दुर्बुद्धिको न जाने किसने मेरे विपक्षीकी प्रशंसामें लगा दिया है ?

श्रीपराशरजी कहते हैं—उसके ऐसा कहनेपर दैत्यगण उस बालकको फिर गुरुजीके यहाँ ले गये । प्रह्लाद वहाँ गुरुजीकी रात-दिन भलीप्रकार सेवा-शुश्रूषा करते हुए विद्याध्ययन करने लगे । बहुत काल व्यतीत हो जानेपर दैत्यराजने प्रह्लादजीको फिर बुलाया और कहा—'बेटा ! आज कोई बात सुनाओ ।'

प्रह्लादजी बोले—जिनसे प्रधान, पुरुष और यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है, वे सकल प्रपञ्चके कारण श्रीविष्णुभगवान् हमपर प्रसन्न हों* ।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे ! यह बड़ा दुरात्मा है ! इसको मार डालो; अब इसके जीनेसे कोई लाभ नहीं है, क्योंकि स्वपक्षकी हानि करनेवाला होनेसे यह तो अपने कुलके लिये अङ्गाररूप हो गया है ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उसकी ऐसी आज्ञा होनेपर सैकड़ों-हजारों दैत्यगण बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र लेकर उन्हें मारनेके लिये तैयार हो गये ।

प्रह्लादजी बोले—अरे दैत्यो ! भगवान् विष्णु तो शस्त्रोंमें, तुमलोगोंमें और मुझमें—सर्वत्र ही स्थित हैं । इस सत्यके प्रभावसे ये अस्त्र-शस्त्र मुझे चोट न पहुँचावें ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब तो उन सैकड़ों दैत्योंके शस्त्रसमूहका आघात होनेपर भी प्रह्लादको तनिक-सी भी वेदना नहीं हुई, वे फिर भी ज्यों-के-त्यों नवीन बलसम्पन्न ही रहे ।

---

* न शब्दगोचरं यस्य योगिध्येयं परं पदम् ।
यतो यश्च स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः ॥
(वि० पु० १ । १७ । २२)

† न केवलं मद्धृदयं स विष्णु-
राक्रम्य लोकानखिलानवस्थितः ।
स मां त्वदादींश्च पितः समस्तान्
समस्तचेष्टासु युनक्ति सर्वगः ॥
(वि० पु० १ । १७ । २६)

* यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम् ।
कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ॥
(वि० पु० १ । १७ । ३०)

मुझ जगदीश्वरके सामने धृष्टतापूर्वक निःशङ्क होकर बारंबार वर्णन करता है, वह कौन है ?

प्रह्लादजी बोले—योगियोंके ध्यान करनेयोग्य जिसका परम पद वाणीका विषय नहीं हो सकता तथा जिससे विश्व प्रकट हुआ है और जो स्वयं विश्वरूप है, वह परमेश्वर ही विष्णु है* ।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे मूढ़ ! मेरे रहते हुए दूसरा कौन परमेश्वर कहा जा सकता है ? फिर भी तू मौतके मुखमें जानेकी इच्छासे बारंबार ऐसा बक रहा है ।

प्रह्लादजी बोले—पिताजी ! वह ब्रह्मभूत विष्णु तो केवल मेरा ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण प्रजा और आपका भी धारण-पोषण करनेवाला विधाता और परमेश्वर है। आप प्रसन्न होइये, व्यर्थ क्रोध क्यों करते हैं ?

हिरण्यकशिपु बोला—अरे ! इस दुर्बुद्धि बालकके हृदयमें कौन पापी घुसा बैठा है, जिससे आविष्ट-चित्त होकर यह ऐसे अमङ्गलमय वचन बोलता है ?

प्रह्लादजी बोले—पिताजी ! वे विष्णुभगवान् तो मेरे ही हृदयमें नहीं, बल्कि सम्पूर्ण लोकोंमें स्थित हैं। वे सर्वव्यापी प्रभु ही मुझको, आप सबको और समस्त प्राणियोंको अपनी-अपनी चेष्टाओंमें प्रवृत्त करते हैं† ।

हिरण्यकशिपु बोला—इस पापीको यहाँसे निकालो और गुरुके यहाँ ले जाकर इसका अच्छी तरह शासन करो। इस दुर्बुद्धिको न जाने किसने मेरे विपक्षीकी प्रशंसामें लगा दिया है ?

श्रीपराशरजी कहते हैं—उसके ऐसा कहनेपर दैत्यगण उस बालकको फिर गुरुजीके यहाँ ले गये । प्रह्लाद वहाँ गुरुजीकी रात-दिन भलीप्रकार सेवा-शुश्रूषा करते हुए विद्याध्ययन करने लगे । बहुत काल व्यतीत हो जानेपर दैत्यराजने प्रह्लादजीको फिर बुलाया और कहा—'बेटा ! आज कोई बात सुनाओ ।'

प्रह्लादजी बोले—जिनसे प्रधान, पुरुष और यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है, वे सकल प्रपञ्चके कारण श्रीविष्णुभगवान् हमपर प्रसन्न हों‡ ।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे ! यह बड़ा दुरात्मा है ! इसको मार डालो; अब इसके जीनेसे कोई लाभ नहीं है, क्योंकि स्वपक्षकी हानि करनेवाला होनेसे यह तो अपने कुलके लिये अङ्गाररूप हो गया है ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उसकी ऐसी आज्ञा होनेपर सैकड़ों-हजारों दैत्यगण बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र लेकर उन्हें मारनेके लिये तैयार हो गये ।

प्रह्लादजी बोले—अरे दैत्यो ! भगवान् विष्णु तो शस्त्रोंमें, तुमलोगोंमें और मुझमें—सर्वत्र ही स्थित हैं । इस सत्यके प्रभावसे ये अस्त्र-शस्त्र मुझे चोट न पहुँचावें ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब तो उन सैकड़ों दैत्योंके शस्त्रसमूहका आघात होनेपर भी प्रह्लादको तनिक-सी भी वेदना नहीं हुई, वे फिर भी ज्यों-के-त्यों नवीन बलसम्पन्न ही रहे ।

---

* न शब्दगोचरं यस्य योगिध्येयं परं पदम् ।
यतो यश्च स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः ॥
(वि० पु० १ । १७ । २२)

† न केवलं मद्धृदयं स विष्णु-
राक्रम्य लोकानखिलानवस्थितः ।
स मां त्वदादींश्च पितः समस्तान्
समस्तचेष्टासु युनक्ति सर्वगः ॥
(वि० पु० १ । १७ । २६)

‡ यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम् ।
कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ॥
(वि० पु० १ । १७ । ३०)

हिरण्यकशिपु बोला—अरे दिग्गजो ! तुम हट जाओ। दैत्यो ! तुम अग्नि जलाओ और वायु ! तुम अग्निको प्रज्वलित करो; जिससे इस पापीको जला डाला जाय।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब दानवगण अपने स्वामीकी आज्ञासे काष्ठके एक बड़े ढेरमें उस असुरराजकुमारको बैठा दिया और वे अग्नि प्रज्वलित करके जलाने लगे।

प्रह्लादजी बोले—तात ! पवनसे प्रेरित हुआ भी यह अग्नि मुझे नहीं जलाता। मुझको तो सभी दिशाएँ ऐसी शीतल प्रतीत होती हैं, मानो मेरे चारों ओर कमल बिछे हुए हों*।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तदनन्तर, शुक्रजीके पुत्र बड़े वाग्मी महात्मा षण्डा-मर्क आदि पुरोहितगण सामनीतिसे दैत्यराजकी बड़ाई करते हुए बोले।

पुरोहित बोले—राजन् ! अपने इस बालक पुत्रके प्रति अपना क्रोध शान्त कीजिये; आपको तो देवताओंपर ही क्रोध करना चाहिये, क्योंकि उसकी सफलता तो वहीं है। राजन् ! हम आपके इस बालकको ऐसी शिक्षा देंगे, जिससे यह विपक्षके नाशका कारण होकर आपके प्रति विनीत हो जायगा। दैत्यराज ! बाल्यावस्था तो सब प्रकारके दोषोंका आश्रय होती ही है, इसलिये आपको इस बालकपर अत्यन्त क्रोधका प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि हमारे कहनेसे भी यह विष्णुका पक्ष नहीं छोड़ेगा तो हम इसको नष्ट करनेके लिये किसी प्रकार न टलनेवाली कृत्या उत्पन्न करेंगे।

श्रीपराशरजी कहते हैं—पुरोहितोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर दैत्यराजने दैत्योंद्वारा प्रह्लादको अग्निसमूहसे बाहर निकलवाया। फिर प्रह्लादजी गुरुजीके यहाँ रहते हुए उनके पढ़ा चुकनेपर अन्य दानवकुमारोंको बार-बार उपदेश देने लगे।

प्रह्लादजी बोले—दैत्यकुलोत्पन्न असुर-बालको ! सुनो, मैं तुम्हें परमार्थका उपदेश करता हूँ, तुम इसे अन्यथा न समझना, क्योंकि मेरे ऐसा कहनेमें किसी प्रकारका लोभादि कारण नहीं है। सभी जीव जन्म, बाल्यावस्था और फिर यौवन प्राप्त करते हैं, तत्पश्चात् दिन-दिन वृद्धावस्थाकी प्राप्ति भी अनिवार्य ही है। और दैत्यराजकुमारो ! फिर यह जीव मृत्युके मुखमें चला जाता है; यह हम और तुम सभी प्रत्यक्ष देखते हैं। मरनेपर पुनर्जन्म होता है, यह नियम भी कभी नहीं टलता। इस विषयमें श्रुति-स्मृतिरूप आगम भी प्रमाण

---

* तातैष वह्निः पवनेरितोऽपि
न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम्।
पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि
शीतानि सर्वाणि दिशां मुखानि॥
(वि० पु० १। १७। ४७)

हिरण्यकशिपु बोला—अरे दिग्गजो ! तुम हट जाओ । दैत्यो ! तुम अग्नि जलाओ और वायु ! तुम अग्निको प्रज्वलित करो; जिससे इस पापीको जला डाला जाय ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब दानवगण अपने स्वामीकी आज्ञासे काठके एक बड़े ढेरमें उस असुरराजकुमारको बैठा दिया और वे अग्नि प्रज्वलित करके जलाने लगे ।

प्रह्लादजी बोले—तात ! पवनसे प्रेरित हुआ भी यह अग्नि मुझे नहीं जलाता । मुझको तो सभी दिशाएँ ऐसी शीतल प्रतीत होती हैं, मानो मेरे चारों ओर कमल बिछे हुए हों* ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तदनन्तर, शुक्रजीके पुत्र बड़े वाग्मी महात्मा षण्डा-मर्क आदि पुरोहितगण सामनीतिसे दैत्यराजकी बड़ाई करते हुए बोले ।

पुरोहित बोले—राजन् ! अपने इस बालक पुत्रके प्रति अपना क्रोध शान्त कीजिये; आपको तो देवताओंपर ही क्रोध करना चाहिये, क्योंकि उसकी सफलता तो वहीं है । राजन् ! हम आपके इस बालकको ऐसी शिक्षा देंगे, जिससे यह विपक्षके नाशका कारण होकर आपके प्रति विनीत हो जायगा । दैत्यराज ! बाल्यावस्था तो सब प्रकारके दोषोंका आश्रय होती ही है, इसलिये आपको इस बालकपर अत्यन्त क्रोधका प्रयोग नहीं करना चाहिये । यदि हमारे कहनेसे भी यह विष्णुका पक्ष नहीं छोड़ेगा तो हम इसको नष्ट करनेके लिये किसी प्रकार न टलनेवाली कृत्या उत्पन्न करेंगे ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—पुरोहितोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर दैत्यराजने दैत्योंद्वारा प्रह्लादको अग्निसमूहसे बाहर निकलवाया । फिर प्रह्लादजी गुरुजीके यहाँ रहते हुए उनके पढ़ा चुकनेपर अन्य दानवकुमारोंको बार-बार उपदेश देने लगे ।

प्रह्लादजी बोले—दैत्यकुलोत्पन्न असुर-बालको ! सुनो, मैं तुम्हें परमार्थका उपदेश करता हूँ, तुम इसे अन्यथा न समझना, क्योंकि मेरे ऐसा कहनेमें किसी प्रकारका लोभादि कारण नहीं है । सभी जीव जन्म, बाल्यावस्था और फिर यौवन प्राप्त करते हैं, तत्पश्चात् दिन-दिन वृद्धावस्थाकी प्राप्ति भी अनिवार्य ही है । और दैत्यराजकुमारो ! फिर यह जीव मृत्युके मुखमें चला जाता है; यह हम और तुम सभी प्रत्यक्ष देखते हैं । मरनेपर पुनर्जन्म होता है, यह नियम भी कभी नहीं टलता । इस विषयमें श्रुति-स्मृतिरूप आगम भी प्रमाण

---

* तानैष वह्निः पवनेरितोऽपि
न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम् ।
पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि
शीतानि सर्वाणि दिशां मुखानि ॥
(वि० पु० १ । १७ । ४७)

अहर्निश लगी रहे और उनमें निरन्तर तुम्हारा प्रेम बढ़े; इस प्रकार तुम्हारे समस्त क्लेश दूर हो जायँगे* ।

जब कि यह सभी संसार तापत्रयसे दग्ध हो रहा है तो इन बेचारे शोचनीय जीवोंसे कौन बुद्धिमान् द्वेष करेगा ? यदि ऐसा दिखायी दे कि 'और जीव तो आनन्दमें हैं, मैं ही परम शक्तिहीन हूँ' तब भी प्रसन्न ही होना चाहिये, क्योंकि द्वेषका फल तो दुःखरूप ही है । यदि कोई प्राणी वैरभावसे द्वेष भी करें तो विचारवानोंके लिये तो वे 'अहो ! ये महामोहसे व्याप्त हैं !' इस प्रकार अत्यन्त शोचनीय ही हैं ।

दैत्य भाइयो ! ये मैंने भिन्न-भिन्न दृष्टिवालोंके विकल्प (भिन्न-भिन्न उपाय) कहे । अब उनका समन्वयपूर्वक संक्षिप्त विचार सुनो । यह सम्पूर्ण जगत् सर्वभूतमय भगवान् विष्णुका विस्तार है, अतः विचक्षण पुरुषोंको इसे अभेदरूपसे आत्मवत् देखना चाहिये । इसलिये दैत्यभावको छोड़कर हम और तुम ऐसा यत्न करें, जिससे शान्ति-लाभ कर सकें† ।

दैत्यो ! मैं आग्रहपूर्वक कहता हूँ, तुम इस असार संसारके विषयोंमें कभी संतुष्ट मत होना । तुम सर्वत्र समदृष्टि करो, क्योंकि समता ही श्रीअच्युतकी वास्तविक आराधना है । उन अच्युतके प्रसन्न होनेपर फिर संसारमें दुर्लभ ही क्या है ! तुम धर्म, अर्थ और कामकी इच्छा कभी न करना । वे तो अत्यन्त तुच्छ हैं । उस ब्रह्मरूप महावृक्षका आश्रय लेनेपर तो तुम निःसंदेह मोक्षरूप महाफल प्राप्त कर लोगे ।‡

प्रह्लादको मारनेके लिये विष, शस्त्र और अग्नि आदिका प्रयोग एवं प्रह्लादकृत भगवत्-स्तुति

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनकी ऐसी चेष्टा देख दैत्योंने डरकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया और हिरण्यकशिपुने भी तुरंत अपने रसोइयोंको बुलाकर कहा ।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे रसोइयालोगो ! मेरा यह दुष्ट और दुर्मति पुत्र औरोंको भी कुमार्गका उपदेश देता है, अतः तुम शीघ्र ही इसे मार डालो । तुम उसे उसके बिना जाने समस्त खाद्यपदार्थोंमें हलाहल विष मिलाकर दो और किसी प्रकारका सोच-विचार न कर उस पापीको मार डालो ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब उन रसोइयोंने महात्मा प्रह्लादको, उनके पिताके आज्ञानुसार विष दे दिया । मैत्रेय ! प्रह्लादजी उस घोर हलाहल विषमिश्रित अन्नको भगवन्नामके उच्चारणसे अभिमन्त्रित कर खा गये । भगवन्नामके प्रभावसे विष निस्तेज हो गया था, अतः उस विषको खाकर उसे बिना किसी विकारके पचाकर वे स्वस्थचित्तसे स्थित रहे । उस महान् विषको पचा हुआ देख रसोइयोंने भयसे व्याकुल हो हिरण्यकशिपुके पास जा उसे प्रणाम करके कहा ।

सूदगण बोले—दैत्यराज ! हमने आपकी आज्ञासे

---

* बाल्ये क्रीडनकासक्ता यौवने विषयोन्मुखाः । अज्ञा नयन्त्यशक्त्या च वार्द्धकं समुपस्थितम् ॥
तस्माद्बाल्ये विवेकात्मा यतेत श्रेयसे सदा । बाल्ययौवनवृद्धाद्यैर्देहभावैरसंयुतः ॥
तदेतद्वो मयाख्यातं यदि जानीत नानृतम् । तदस्मत्प्रीतये विष्णुः स्मर्यतां बन्धमुक्तिदः ॥
प्रयासः स्मरणे कोऽस्य स्मृतो यच्छति शोभनम् । पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम् ॥
सर्वभूतस्थिते तस्मिन्मतिर्मैत्री दिवानिशम् । भवतां जायतामेवं सर्वक्लेशान् प्रहास्यथ ॥
(वि० पु० १ । १७ । ७५–७९)

† विस्तारः सर्वभूतस्य विष्णोः सर्वमिदं जगत् । द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मादभेदेन विचक्षणैः ॥
समुत्सृज्यासुरं भावं तस्माद्यूयं तथा वयम् । तथा यत्नं करिष्यामो यथा प्राप्स्याम निर्वृतिम् ॥
(वि० पु० १ । १७ । ८४-८५)

‡ असारसंसारविवर्तनेषु मा यात तोषं प्रसभं ब्रवीमि । सर्वत्र दैत्याः समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥
तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते । समाश्रिताद्ब्रह्मतरोरनन्तान्निःसंशयं प्राप्स्यथ वै महत्फलम् ॥
(वि० पु० १ । १७ । ९०-९१)

अहर्निश लगी रहे और उनमें निरन्तर तुम्हारा प्रेम बढ़े; इस प्रकार तुम्हारे समस्त क्लेश दूर हो जायँगे* ।

जब कि यह सभी संसार तापत्रयसे दग्ध हो रहा है तो इन बेचारे शोचनीय जीवोंसे कौन बुद्धिमान् द्वेष करेगा ? यदि ऐसा दिखायी दे कि 'और जीव तो आनन्दमें हैं, मैं ही परम शक्तिहीन हूँ' तब भी प्रसन्न ही होना चाहिये, क्योंकि द्वेषका फल तो दुःखरूप ही है । यदि कोई प्राणी वैरभावसे द्वेष भी करें तो विचारवानोंके लिये तो वे 'अहो ! ये महामोहसे व्याप्त हैं !' इस प्रकार अत्यन्त शोचनीय ही हैं ।

दैत्य भाइयो ! ये मैंने भिन्न-भिन्न दृष्टिवालोंके विकल्प (भिन्न-भिन्न उपाय) कहे । अब उनका समन्वयपूर्वक संक्षिप्त विचार सुनो । यह सम्पूर्ण जगत् सर्वभूतमय भगवान् विष्णुका विस्तार है, अतः विचक्षण पुरुषोंको इसे अभेदरूपसे आत्मवत् देखना चाहिये । इसलिये दैत्यभावको छोड़कर हम और तुम ऐसा यत्न करें, जिससे शान्ति-लाभ कर सकें† ।

दैत्यो ! मैं आग्रहपूर्वक कहता हूँ, तुम इस असार संसारके विषयोंमें कभी संतुष्ट मत होना । तुम सर्वत्र समदृष्टि करो, क्योंकि समता ही श्रीअच्युतकी वास्तविक आराधना है । उन अच्युतके प्रसन्न होनेपर फिर संसारमें दुर्लभ ही क्या है ! तुम धर्म, अर्थ और कामकी इच्छा कभी न करना । वे तो अत्यन्त तुच्छ हैं । उस ब्रह्मरूप महावृक्षका आश्रय लेनेपर तो तुम निःसंदेह मोक्षरूप महाफल प्राप्त कर लोगे ।‡

प्रह्लादको मारनेके लिये विष, शस्त्र और अग्नि आदिका प्रयोग एवं प्रह्लादकृत भगवत्-स्तुति

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनकी ऐसी चेष्टा देख दैत्योंने डरकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया और हिरण्यकशिपुने भी तुरंत अपने रसोइयोंको बुलाकर कहा ।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे रसोइयालोगो ! मेरा यह दुष्ट और दुर्मति पुत्र औरोंको भी कुमार्गका उपदेश देता है, अतः तुम शीघ्र ही इसे मार डालो । तुम उसे उसके बिना जाने समस्त खाद्यपदार्थोंमें हलाहल विष मिलाकर दो और किसी प्रकारका सोच-विचार न कर उस पापीको मार डालो ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब उन रसोइयोंने महात्मा प्रह्लादको, उनके पिताके आज्ञानुसार विष दे दिया । मैत्रेय ! प्रह्लादजी उस घोर हलाहल विषमिश्रित अन्नको भगवन्नामके उच्चारणसे अभिमन्त्रित कर खा गये । भगवन्नामके प्रभावसे विष निस्तेज हो गया था, अतः उस विषको खाकर उसे बिना किसी विकारके पचाकर वे स्वस्थचित्तसे स्थित रहे । उस महान् विषको पचा हुआ देख रसोइयोंने भयसे व्याकुल हो हिरण्यकशिपुके पास जा उसे प्रणाम करके कहा ।

सूदगण बोले—दैत्यराज ! हमने आपकी आज्ञासे

---

* बाल्ये क्रीडनकासक्ता यौवने विषयोन्मुखाः । अज्ञा नयन्त्यशक्त्या च वार्द्धकं समुपस्थितम् ॥
तस्माद्बाल्ये विवेकात्मा यतेत श्रेयसे सदा । बाल्ययौवनवृद्धाद्यैर्देहभावैरसंयुतः ॥
तदेतद्वो मयाख्यातं यदि जानीत नानृतम् । तदस्मत्प्रीतये विष्णुः स्मर्यतां बन्धमुक्तिदः ॥
प्रयासः स्मरणे कोऽस्य स्मृतो यच्छति शोभनम् । पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम् ॥
सर्वभूतस्थिते तस्मिन्मतिर्मैत्री दिवानिशम् । भवतां जायतामेवं सर्वक्लेशान् प्रहास्यथ ॥
(वि० पु० १ । १७ । ७५—७९)

† विस्तारः सर्वभूतस्य विष्णोः सर्वमिदं जगत् । द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मादभेदेन विचक्षणैः ॥
समुत्सृज्यासुरं भावं तस्माद्यूयं तथा वयम् । तथा यत्नं करिष्यामो यथा प्राप्स्याम निर्वृतिम् ॥
(वि० पु० १ । १७ । ८४-८५)

‡ असारसंसारविवर्तनेषु मा यात तोषं प्रसभं ब्रवीमि । सर्वत्र दैत्याः समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥
तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते । समाश्रिताद्ब्रह्मतरोरनन्तान्निःसंशयं प्राप्स्यथ वै महत्फलम् ॥
(वि० पु० १ । १७ । ९०-९१)

ऐसा कहकर वे उनका गौरव रखनेके लिये चुप हो गये और फिर हँसकर कहने लगे—मुझे अनन्तसे क्या प्रयोजन है ? इस विचारको धन्यवाद है ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं। ये चारों ही जिनसे सिद्ध होते हैं, उनसे क्या प्रयोजन ? आपके इस कथनको क्या कहा जाय ! अतः सम्पत्ति, ऐश्वर्य, माहात्म्य, ज्ञान, संतति और कर्म तथा मोक्ष इन सबकी एकमात्र मूलभूता श्रीहरिकी आराधना ही उपार्जनीय है* । द्विजगण ! इस प्रकार जिनसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये चारों ही फल प्राप्त होते हैं, उनके लिये भी आप ऐसा क्यों कहते हैं कि 'अनन्तसे तुझे क्या प्रयोजन है ?' इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय ? मेरे विचारसे तो वे ही संसारके स्वामी हैं तथा सबके अन्तःकरणोंमें स्थित एकमात्र वे ही उसके रचयिता, पालक और संहारक हैं। वे ही भोक्ता और भोज्य हैं तथा वे ही एकमात्र जगदीश्वर हैं। गुरुगण ! मैंने बाल्यभावसे यदि कुछ अनुचित कहा हो तो आप क्षमा करें।

पुरोहितगण बोले—अरे बालक ! हमने तो यह समझकर कि तू फिर ऐसी बात न कहेगा तुझे अग्निमें जलनेसे बचाया था। हम यह नहीं जानते थे कि तू ऐसा बुद्धिहीन है ? अरे दुर्मते ! यदि तू हमारे कहनेसे अपने इस मोहमय आग्रहको नहीं छोड़ेगा तो हम तुझे नष्ट करनेके लिये कृत्या उत्पन्न करेंगे।

प्रह्लादजी बोले—कौन जीव किससे मारा जाता है और कौन किससे रक्षित होता है ? शुभ और अशुभ आचरणोंके द्वारा आत्मा स्वयं ही अपनी रक्षा और नाश करता है। कर्मोंके कारण ही सब उत्पन्न होते हैं और कर्म ही उनकी शुभाशुभ गतियोंके साधन हैं, इसलिये प्रयत्नपूर्वक शुभकर्मोंका ही आचरण करना चाहिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके ऐसा कहनेपर उन दैत्यराजके पुरोहितोंने क्रुद्ध होकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित शरीरवाली कृत्या उत्पन्न कर दी। उस अति भयंकरी कृत्याने अपने पादाघातसे पृथिवीको कम्पित करते हुए वहाँ प्रकट होकर बड़े क्रोधसे प्रह्लादजीकी छातीमें त्रिशूलसे प्रहार किया, किंतु उस बालकके वक्षःस्थलमें लगते ही वह तेजोमय त्रिशूल टूटकर पृथिवीपर गिर पड़ा और वहाँ गिरनेसे भी उसके सैकड़ों टुकड़े हो गये। जिस हृदयमें निरन्तर अक्षुण्णभावसे श्रीहरिभगवान् विराजते हैं, उसमें लगनेसे तो वज्रके भी टूक-टूक हो जाते हैं, त्रिशूलकी तो बात ही क्या है* ?

उन पापी पुरोहितोंने उस निष्पाप बालकपर कृत्याका प्रयोग किया था; इसलिये तुरंत ही उस कृत्याने उनपर वार किया और स्वयं भी नष्ट हो गयी। अपने गुरुओंको कृत्याके द्वारा जलाये जाते देख महामति प्रह्लाद 'हे कृष्ण ! रक्षा करो। हे अनन्त ! बचाओ !' ऐसा कहते हुए उनकी ओर दौड़े।

प्रह्लादजी कहने लगे—सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्वस्रष्टा जनार्दन ! इन ब्राह्मणोंकी इस मन्त्राग्निरूप दुःसह दुःखसे रक्षा करो। 'सर्वव्यापी जगद्गुरु भगवान् विष्णु सभी प्राणियोंमें व्याप्त हैं'—इस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ। यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय श्रीविष्णुभगवान्‌को अपने विपक्षियोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ। जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे विष दिया, जिन्होंने आगमें जलाया, जिन्होंने दिग्गजोंसे पीडित

* सम्पदैश्वर्यमाहात्म्यज्ञानसंततिकर्मणाम् ।
विमुक्तेश्चैकतो लभ्यं मूलमाराधनं हरेः ॥
(वि० पु० १ । १८ । २४)

* यत्रानपायी भगवान् हृद्यास्ते हरिरीश्वरः ।
भङ्गो भवति वज्रस्य तत्र शूलस्य का कथा ॥
(वि० पु० १ । १८ । ३६)

ऐसा कहकर वे उनका गौरव रखनेके लिये चुप हो गये और फिर हँसकर कहने लगे—तुझे अनन्तसे क्या प्रयोजन है? इस विचारको धन्यवाद है! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं। ये चारों ही जिनसे सिद्ध होते हैं, उनसे क्या प्रयोजन? आपके इस कथनको क्या कहा जाय! अतः सम्पत्ति, ऐश्वर्य, माहात्म्य, ज्ञान, संतति और कर्म तथा मोक्ष इन सबकी एकमात्र मूलभूता श्रीहरिकी आराधना ही उपार्जनीय है*। द्विजगण! इस प्रकार जिनसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये चारों ही फल प्राप्त होते हैं, उनके लिये भी आप ऐसा क्यों कहते हैं कि 'अनन्तसे तुझे क्या प्रयोजन है?' इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय? मेरे विचारसे तो वे ही संसारके स्वामी हैं तथा सबके अन्तःकरणोंमें स्थित एकमात्र वे ही उसके रचयिता, पालक और संहारक हैं। वे ही भोक्ता और भोज्य हैं तथा वे ही एकमात्र जगदीश्वर हैं। गुरुगण! मैंने बाल्यभावसे यदि कुछ अनुचित कहा हो तो आप क्षमा करें।

पुरोहितगण बोले—अरे बालक! हमने तो यह समझकर कि तू फिर ऐसी बात न कहेगा तुझे अग्निमें जलनेसे बचाया था। हम यह नहीं जानते थे कि तू ऐसा बुद्धिहीन है? अरे दुर्मते! यदि तू हमारे कहनेसे अपने इस मोहमय आग्रहको नहीं छोड़ेगा तो हम तुझे नष्ट करनेके लिये कृत्या उत्पन्न करेंगे।

प्रह्लादजी बोले—कौन जीव किससे मारा जाता है और कौन किससे रक्षित होता है? शुभ और अशुभ आचरणोंके द्वारा आत्मा स्वयं ही अपनी रक्षा और नाश करता है। कर्मोंके कारण ही सब उत्पन्न होते हैं और कर्म ही उनकी शुभाशुभ गतियोंके साधन हैं, इसलिये प्रयत्नपूर्वक शुभकर्मोंका ही आचरण करना चाहिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके ऐसा कहनेपर उन दैत्यराजके पुरोहितोंने क्रुद्ध होकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित शरीरवाली कृत्या उत्पन्न कर दी। उस अति भयंकरी कृत्याने अपने पादाघातसे पृथिवीको कम्पित करते हुए वहाँ प्रकट होकर बड़े क्रोधसे प्रह्लादजीकी छातीमें त्रिशूलसे प्रहार किया, किंतु उस बालकके वक्षःस्थलमें लगते ही वह तेजोमय त्रिशूल टूटकर पृथिवीपर गिर पड़ा और वहाँ गिरनेसे भी उसके सैकड़ों टुकड़े हो गये। जिस हृदयमें निरन्तर अक्षुण्णभावसे श्रीहरिभगवान् विराजते हैं, उसमें लगनेसे तो वज्रके भी टूक-टूक हो जाते हैं, त्रिशूलकी तो बात ही क्या है*!

उन पापी पुरोहितोंने उस निष्पाप बालकपर कृत्याका प्रयोग किया था; इसलिये तुरंत ही उस कृत्याने उनपर वार किया और स्वयं भी नष्ट हो गयी। अपने गुरुओंको कृत्याके द्वारा जलाये जाते देख महामति प्रह्लाद 'हे कृष्ण! रक्षा करो। हे अनन्त! बचाओ!' ऐसा कहते हुए उनकी ओर दौड़े।

प्रह्लादजी कहने लगे—सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्वस्रष्टा जनार्दन! इन ब्राह्मणोंकी इस मन्त्राग्निरूप दुःसह दुःखसे रक्षा करो। 'सर्वव्यापी जगद्गुरु भगवान् विष्णु सभी प्राणियोंमें व्याप्त हैं'—इस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ। यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय श्रीविष्णुभगवान्‌को अपने विपक्षियोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ। जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे विष दिया, जिन्होंने आगमें जलाया, जिन्होंने दिग्गजोंसे पीडित

* सम्पदैश्वर्यमाहात्म्यज्ञानसंततिकर्मणाम्।
विमुक्तेश्चैकतो लभ्यं मूलमाराधनं हरेः॥
(वि० पु० १।१८।२४)

* यत्रानपायी भगवान् हृद्यास्ते हरिरीश्वरः।
भङ्गो भवति वज्रस्य तत्र शूलस्य का कथा॥
(वि० पु० १।१८।३६)

तब उन समस्त दैत्य और दानवोंने उन्हें महलसे गिरा दिया और वे भी उनके ढकेलनेसे हृदयमें श्रीहरिका स्मरण करते करते नीचे गिर गये। जगत्कर्ता भगवान् केशवके परम भक्त प्रह्लादजीके गिरते समय उन्हें जगद्धात्री पृथिवीने निकट जाकर अपनी गोदमें ले लिया। तब बिना किसी हड्डी-पसलीके टूटे उन्हें स्वस्थ देख दैत्यराज हिरण्यकशिपुने परम मायावी शम्बरासुरसे कहा।

हिरण्यकशिपु बोला—यह दुर्बुद्धि बालक हमसे नहीं मारा जा सकता; आप माया जानते हैं, अतः इसे मायासे ही मार डालिये।

शम्बरासुर बोला—दैत्येन्द्र! इस बालकको मैं अभी मारे डालता हूँ, तुम मेरी मायाका बल देखो। देखो, मैं तुम्हें [illegible] हजारों-करोड़ों मायाएँ दिखलाता हूँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब उस दुर्बुद्धि शम्बरासुरने सर्वत्र समदर्शी प्रह्लादके लिये, उनके नाशकी इच्छासे बहुत-सी मायाएँ रचीं। किंतु मैत्रेय! शम्बरासुरके प्रति भी सर्वथा द्वेषहीन रहकर प्रह्लादजी सावधान चित्तसे श्रीमधुसूदनभगवान्‌का स्मरण करते रहे। उस समय भगवान्‌की आज्ञासे उनकी रक्षाके लिये वहाँ ज्वालामालाओंसे युक्त सुदर्शनचक्र आ गया। उस शीघ्रगामी सुदर्शनचक्रने उस बालककी रक्षा करते हुए शम्बरासुरकी सहस्रों मायाओंको एक-एक करके नष्ट कर दिया।

तब दैत्यराजने सबको सुखा डालनेवाले वायुसे कहा कि मेरी आज्ञासे तुम शीघ्र ही इस दुरात्माको नष्ट कर दो। अतः उस अति तीव्र शीतल और रूक्ष वायुने, जो अति असहनीय था—'जो आज्ञा' कह उनके शरीरको सुखानेके लिये उसमें प्रवेश किया। अपने शरीरमें वायुका आवेश हुआ जान दैत्यकुमार प्रह्लादने भगवान् धरणीधरको हृदयमें धारण किया। उनके हृदयमें स्थित हुए श्रीजनार्दनने क्रुद्ध होकर उस भीषण वायुको पी लिया, इससे वह क्षीण हो गया।

इस प्रकार पवन और सम्पूर्ण मायाओंके क्षीण हो जानेपर महामति प्रह्लादजी अपने गुरुके घर चले गये। तदनन्तर गुरुजी उन्हें नित्यप्रति शुक्राचार्यजीकी बनायी हुई राज्यफल-प्रदायिनी राजनीतिका अध्ययन कराने लगे। जब गुरुजीने उन्हें नीतिशास्त्रमें निपुण और विनयसम्पन्न देखा तो आकर उनके पितासे कहा—'अब यह सुशिक्षित हो गया है।'

आचार्य बोले—दैत्यराज! अब हमने तुम्हारे पुत्रको नीतिशास्त्रमें पूर्णतया निपुण कर दिया है, भृगुनन्दन शुक्राचार्यजीने जो कुछ कहा है, उसे प्रह्लाद तत्त्वतः जानता है।

तब उन समस्त दैत्य और दानवोंने उन्हें महलसे गिरा दिया और वे भी उनके ढकेलनेसे हृदयमें श्रीहरिका स्मरण करते करते नीचे गिर गये। जगत्कर्ता भगवान् केशवके परम भक्त प्रह्लादजीके गिरते समय उन्हें जगद्धात्री पृथिवीने निकट जाकर अपनी गोदमें ले लिया। तब बिना किसी हड्डी-पसलीके टूटे उन्हें स्वस्थ देख दैत्यराज हिरण्यकशिपुने परम मायावी शम्बरासुरसे कहा।

हिरण्यकशिपु बोला—यह दुर्बुद्धि बालक हमसे नहीं मारा जा सकता; आप माया जानते हैं, अतः इसे मायासे ही मार डालिये।

शम्बरासुर बोला—दैत्येन्द्र! इस बालकको मैं अभी मारे डालता हूँ, तुम मेरी मायाका बल देखो। देखो, मैं तुम्हें सैकड़ों हजारों-करोड़ों मायाएँ दिखलाता हूँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब उस दुर्बुद्धि शम्बरासुरने सर्वत्र समदर्शी प्रह्लादके लिये, उनके नाशकी इच्छासे बहुत-सी मायाएँ रचीं। किंतु मैत्रेय! शम्बरासुरके प्रति भी सर्वथा द्वेषहीन रहकर प्रह्लादजी सावधान चित्तसे श्रीमधुसूदनभगवान्‌का स्मरण करते रहे। उस समय भगवान्‌की आज्ञासे उनकी रक्षाके लिये वहाँ ज्वालामालाओंसे युक्त सुदर्शनचक्र आ गया। उस शीघ्रगामी सुदर्शनचक्रने उस बालककी रक्षा करते हुए शम्बरासुरकी सहस्रों मायाओंको एक-एक करके नष्ट कर दिया।

तब दैत्यराजने सबको सुखा डालनेवाले वायुसे कहा कि मेरी आज्ञासे तुम शीघ्र ही इस दुरात्माको नष्ट कर दो। अतः उस अति तीव्र शीतल और रूक्ष वायुने, जो अति असहनीय था—'जो आज्ञा' कह उनके शरीरको सुखानेके लिये उसमें प्रवेश किया। अपने शरीरमें वायुका आवेश हुआ जान दैत्यकुमार प्रह्लादने भगवान् धरणीधरको हृदयमें धारण किया। उनके हृदयमें स्थित हुए श्रीजनार्दनने क्रुद्ध होकर उस भीषण वायुको पी लिया, इससे वह क्षीण हो गया।

इस प्रकार पवन और सम्पूर्ण मायाओंके क्षीण हो जानेपर महामति प्रह्लादजी अपने गुरुके घर चले गये। तदनन्तर गुरुजी उन्हें नित्यप्रति शुक्राचार्यजीकी बनायी हुई राज्यफलप्रदायिनी राजनीतिका अध्ययन कराने लगे। जब गुरुजीने उन्हें नीतिशास्त्रमें निपुण और विनयसम्पन्न देखा तो आकर उनके पितासे कहा—'अब यह सुशिक्षित हो गया है।'

आचार्य बोले—दैत्यराज! अब हमने तुम्हारे पुत्रको नीतिशास्त्रमें पूर्णतया निपुण कर दिया है, भृगुनन्दन शुक्राचार्यजीने जो कुछ कहा है, उसे प्रह्लाद तत्त्वतः जानता है।

हिरण्यकशिपुने कहा—विप्रचित्ते ! राहो ! बल ! तुमलोग इसे भलीभाँति नागपाशसे बाँधकर महासागरमें डाल दो, देरी मत करो। नहीं तो सम्पूर्ण लोक और दैत्य-दानव आदि भी इस मूढ दुरात्माके मतका ही अनुगमन करेंगे अर्थात् इसकी तरह वे भी विष्णुभक्त हो जायँगे। हमने इसे बहुतेरा रोका, तथापि यह दुष्ट शत्रुकी ही स्तुति किये जाता है। ठीक है, दुष्टोंको तो मार देना ही लाभदायक होता है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब उन दैत्योंने अपने स्वामीकी आज्ञाको शिरोधार्य कर तुरंत ही उन्हें नागपाशसे बाँधकर समुद्रमें डाल दिया। उस समय प्रह्लादजीके हिलने-

डुलनेसे सम्पूर्ण महासागरमें हलचल मच गयी और अत्यन्त क्षोभके कारण उसमें सब ओर ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। महामते! उस महान् जल-पूरसे सम्पूर्ण पृथिवीको डूबती देख हिरण्यकशिपुने दैत्योंसे इस प्रकार कहा।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे दैत्यो! तुम इस दुर्मतिको इस समुद्रके भीतर ही किसी ओरसे खुला न रखकर सब ओरसे सम्पूर्ण पर्वतोंसे दबा दो। देखो, इसे न तो अग्निने जलाया, न यह शस्त्रोंसे कटा, न सर्पोंसे नष्ट हुआ और न वायु, विष और कृत्यासे ही क्षीण हुआ तथा न यह मायाओंसे, ऊपरसे गिरानेसे अथवा दिग्गजोंसे ही मारा गया। यह बालक अत्यन्त दुष्टचित्त है, अब इसके जीवनका कोई प्रयोजन नहीं है। अतः अब यह पर्वतोंसे लदा हुआ हजारों वर्षतक जलमें ही पड़ा रहे, इससे यह दुर्मति स्वयं ही प्राण छोड़ देगा।

तब दैत्य और दानवोंने उसे समुद्रमें ही पर्वतोंसे ढककर उसके ऊपर हजारों योजनका ढेर कर दिया। उन महामतिने

समुद्रमें पर्वतोंसे लाद दिये जानेपर अपने नित्यकर्मोंके समय एकाग्रचित्तसे श्रीअच्युत भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति की।

प्रह्लादजी बोले—कमलनयन! आपको नमस्कार है। पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। सर्वलोकात्मन्! आपको नमस्कार है। तीक्ष्ण-चक्रधारी प्रभो! आपको बारंबार नमस्कार है। गो-ब्राह्मण-हितकारी ब्रह्मण्यदेव! श्रीभगवान् कृष्णको नमस्कार है। जगत्-हितकारी श्रीगोविन्दको बारंबार नमस्कार है।

आप ब्रह्मारूपसे विश्वकी रचना करते हैं, फिर उसके स्थित हो जानेपर विष्णुरूपसे पालन करते हैं और अन्तमें रुद्ररूपसे संहार करते हैं—ऐसे त्रिमूर्तिधारी आपको नमस्कार है। अच्युत! देव, यक्ष, असुर, सिद्ध, नाग, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर, पिपीलिका (चींटी), सरीसृप, पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, शब्द, स्पर्श,

हिरण्यकशिपुने कहा—विप्रचित्ते ! राहो ! बल ! तुमलोग इसे भलीभाँति नागपाशसे बाँधकर महासागरमें डाल दो, देरी मत करो। नहीं तो सम्पूर्ण लोक और दैत्य-दानव आदि भी इस मूढ दुरात्माके मतका ही अनुगमन करेंगे अर्थात् इसकी तरह वे भी विष्णुभक्त हो जायँगे। हमने इसे बहुतेरा रोका, तथापि यह दुष्ट शत्रुकी ही स्तुति किये जाता है। ठीक है, दुष्टोंको तो मार देना ही लाभदायक होता है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब उन दैत्योंने अपने स्वामीकी आज्ञाको शिरोधार्य कर तुरंत ही उन्हें नागपाशसे बाँधकर समुद्रमें डाल दिया। उस समय प्रह्लादजीके हिलने-

डुलनेसे सम्पूर्ण महासागरमें हलचल मच गयी और अत्यन्त क्षोभके कारण उसमें सब ओर ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। महामते ! उस महान् जल-पूरसे सम्पूर्ण पृथिवीको डूबती देख हिरण्यकशिपुने दैत्योंसे इस प्रकार कहा।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे दैत्यो ! तुम इस दुर्मतिको इस समुद्रके भीतर ही किसी ओरसे खुला न रखकर सब ओरसे सम्पूर्ण पर्वतोंसे दबा दो। देखो, इसे न तो अग्निने जलाया, न यह शस्त्रोंसे कटा, न सर्पोंसे नष्ट हुआ और न वायु, विष और कृत्यासे ही क्षीण हुआ तथा न यह मायाओंसे, ऊपरसे गिरानेसे अथवा दिग्गजोंसे ही मारा गया। यह बालक अनन्त दुर्मति है, अब इसके जीवनका कोई प्रयोजन नहीं है। अतः अब यह पर्वतोंसे लदा हुआ हजारों वर्षतक जलमें ही पड़ा रहे, इससे यह दुर्मति स्वयं ही प्राण छोड़ देगा।

तब दैत्य और दानवोंने उसे समुद्रमें ही पर्वतोंसे ढककर उसके ऊपर हजारों योजनका ढेर कर दिया। उन महामतिने

समुद्रमें पर्वतोंसे लाद दिये जानेपर अपने नित्यकर्मोंके समय एकाग्रचित्तसे श्रीअच्युत भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति की।

प्रह्लादजी बोले—कमलनयन ! आपको नमस्कार है। पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है। सर्वलोकात्मन् ! आपको नमस्कार है। तीक्ष्ण-चक्रधारी प्रभो ! आपको बारंबार नमस्कार है। गो-ब्राह्मण-हितकारी ब्रह्मण्यदेव ! श्रीभगवान् कृष्णको नमस्कार है। जगत्-हितकारी श्रीगोविन्दको बारंबार नमस्कार है।

आप ब्रह्मारूपसे विश्वकी रचना करते हैं, फिर उसके स्थित हो जानेपर विष्णुरूपसे पालन करते हैं और अन्तमें रुद्ररूपसे संहार करते हैं—ऐसे त्रिमूर्तिधारी आपको नमस्कार है। अच्युत ! देव, यक्ष, असुर, सिद्ध, नाग, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर, पिपीलिका (चींटी), सरीसृप, पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, शब्द, स्पर्श,

प्रह्लादकृत भगवत्-स्तुति और भगवान्‌का आविर्भाव

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विज ! इस प्रकार भगवान् विष्णुको अपनेसे अभिन्न चिन्तन करते-करते पूर्ण तन्मयता प्राप्त हो जानेसे उन्होंने अपनेको अच्युतरूप ही अनुभव किया । वे अपने-आपको भूल गये; उस समय उन्हें श्रीविष्णुभगवान्‌के अतिरिक्त और कुछ भी प्रतीत न होता था । बस, केवल यही भावना चित्तमें थी कि मैं ही अव्यय और अनन्त परमात्मा हूँ । उस भावनाके योगसे वे क्षीणपाप हो गये और उनके शुद्ध अन्तःकरणमें ज्ञानस्वरूप अच्युत श्रीविष्णुभगवान् विराजमान हुए ।

मैत्रेय ! इस प्रकार योगबलसे असुर प्रह्लादजीके विष्णुमय हो जानेपर उनके विचलित होनेसे वे नागपाश एक क्षणभरमें ही टूट गये । भ्रमणशील ग्राहगण और तरल-तरंगोंसे पूर्ण सम्पूर्ण महासागर क्षुब्ध हो गया तथा पर्वत और वनोपवनोंसे पूर्ण समस्त पृथिवी हिलने लगी । महामति प्रह्लादजी अपने ऊपर दैत्योंद्वारा लादे गये उस सम्पूर्ण पर्वत-समूहको दूर फेंककर जलसे बाहर निकल आये । तब आकाशादिरूप जगत्‌को फिर देखकर उन्हें चित्तमें यह पुनः भान हुआ कि मैं प्रह्लाद हूँ और उन महाबुद्धिमान्‌ने मन, वाणी और शरीरके संयमपूर्वक धैर्य धारणकर एकाग्रचित्तसे पुनः भगवान् अनादि पुरुषोत्तमकी स्तुति की ।

प्रह्लादजी कहने लगे—ॐ परमार्थ ! अर्थ (दृश्यरूप) ! स्थूल-सूक्ष्म (जाग्रत्-स्वप्न दृश्यस्वरूप) ! क्षराक्षर (कार्य-कारणरूप) ! व्यक्ताव्यक्त (दृश्यादृश्यस्वरूप) ! कलातीत ! सकलेश्वर ! निरञ्जनदेव ! आपको नमस्कार है । गुणोंको अनुरञ्जित करनेवाले ! गुणाधार ! निर्गुणात्मन् ! गुणस्थित ! मूर्त और अमूर्तरूप महामूर्तिमन् ! सूक्ष्ममूर्ते ! प्रकाशाप्रकाशस्वरूप ! आपको नमस्कार है* । विकराल और सुन्दररूप ! विद्या और अविद्यामय अच्युत ! सदसत् (कार्य-कारण) रूप जगत्‌के उद्भवस्थान और सदसज्जगत्‌के पालक ! आपको नमस्कार है । नित्यानित्य प्रपञ्चात्मन् ! प्रपञ्चसे पृथक् रहनेवाले ! ज्ञानियोंके आश्रयरूप ! एकानेकरूप आदिकारण वासुदेव ! आपको नमस्कार है । जो स्थूल-सूक्ष्मरूप और स्फुट प्रकाशमय हैं, जो अधिष्ठानरूपसे सर्वभूतस्वरूप तथापि वस्तुतः सम्पूर्ण भूतादिसे परे हैं, विश्वके कारण न होनेपर भी जिनसे यह समस्त विश्व उत्पन्न हुआ है, उन पुरुषोत्तम भगवान्‌को नमस्कार है† ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके इस प्रकार तन्मयतापूर्वक स्तुति करनेपर पीताम्बरधारी देवाधिदेव भगवान् श्रीहरि प्रकट हुए । द्विज ! उन्हें सहसा प्रकट हुए देख वे खड़े हो गये और गद्गद वाणीसे 'विष्णुभगवान्‌को नमस्कार है ! विष्णु भगवान्‌को नमस्कार है !' ऐसा बारंबार कहने लगे ।

नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै महात्मने । नाम रूपं न यस्यैको योऽस्तित्वेनोपलभ्यते ॥
यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः । अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने ॥
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम् । तं सर्वसाक्षिणं विश्वं नमस्ये परमेश्वरम् ॥
नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै यस्याभिन्नमिदं जगत् । ध्येयः स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मेऽव्ययः ॥
यत्रोतमेतत्प्रोतं च विश्वमक्षरमव्ययम् । आधारभूतः सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः ॥
ॐ नमो विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुनः । यत्र सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वसंश्रयः ॥
सर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थितः । मत्तः सर्वमहं सर्वं मयि सर्वं सनातने ॥
अहमेवाक्षयो नित्यः परमात्मात्मसंश्रयः । ब्रह्मसंज्ञोऽहमेवाग्रे तथान्ते च परः पुमान् ॥

(वि० पु० १ । १९ । ६४—८६)

* ॐ नमः परमार्थार्थ स्थूलसूक्ष्म क्षराक्षर । व्यक्ताव्यक्त कलातीत सकलेश निरञ्जन ॥
गुणाञ्जन गुणाधार निर्गुणात्मन् गुणस्थित । मूर्तामूर्तमहामूर्ते सूक्ष्ममूर्ते स्फुटास्फुट ॥

(वि० पु० १ । २० । ९-१०)

† करालसौम्यरूपात्मन् विद्याविद्यामयाच्युत । सदसद्रूपसद्भाव सदसद्भावभावन ॥
नित्यानित्यप्रपञ्चात्मन्निष्प्रपञ्चामलाश्रित । एकानेक नमस्तुभ्यं वासुदेवादिकारण ॥
यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो यः सर्वभूतो न च सर्वभूतः ।
विश्वं यतश्चैतदविश्वहेतोर्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥

(वि० पु० १ । २० । ११—१३)

प्रह्लादकृत भगवत्-स्तुति और भगवान्‌का आविर्भाव

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विज ! इस प्रकार भगवान् विष्णुको अपनेसे अभिन्न चिन्तन करते-करते पूर्ण तन्मयता प्राप्त हो जानेसे उन्होंने अपनेको अच्युतरूप ही अनुभव किया । वे अपने-आपको भूल गये; उस समय उन्हें श्रीविष्णुभगवान्‌के अतिरिक्त और कुछ भी प्रतीत न होता था । बस, केवल यही भावना चित्तमें थी कि मैं ही अव्यय और अनन्त परमात्मा हूँ । उस भावनाके योगसे वे क्षीणपाप हो गये और उनके शुद्ध अन्तःकरणमें ज्ञानस्वरूप अच्युत श्रीविष्णुभगवान् विराजमान हुए ।

मैत्रेय ! इस प्रकार योगबलसे असुर प्रह्लादजीके विष्णुमय हो जानेपर उनके विचलित होनेसे वे नागपाश एक क्षणभरमें ही टूट गये । भ्रमणशील ग्राहगण और तरल-तरंगोंसे पूर्ण सम्पूर्ण महासागर क्षुब्ध हो गया तथा पर्वत और वनोपवनोंसे पूर्ण समस्त पृथिवी हिलने लगी । महामति प्रह्लादजी अपने ऊपर दैत्योंद्वारा लादे गये उस सम्पूर्ण पर्वत-समूहको दूर फेंककर जलसे बाहर निकल आये । तब आकाशादिरूप जगत्‌को फिर देखकर उन्हें चित्तमें यह पुनः भान हुआ कि मैं प्रह्लाद हूँ और उन महाबुद्धिमान्‌ने मन, वाणी और शरीरके संयमपूर्वक धैर्य धारणकर एकाग्रचित्तसे पुनः भगवान् अनादि पुरुषोत्तमकी स्तुति की ।

प्रह्लादजी कहने लगे—ॐ परमार्थ ! अर्थ (दृश्यरूप) ! स्थूल-सूक्ष्म (जाग्रत्-स्वप्न दृश्यस्वरूप) ! क्षराक्षर (कार्य-कारणरूप) ! व्यक्ताव्यक्त (दृश्यादृश्यस्वरूप) ! कलातीत ! सकलेश्वर ! निरञ्जनदेव ! आपको नमस्कार है । गुणोंको अनुरञ्जित करनेवाले ! गुणाधार ! निर्गुणात्मन् ! गुणस्थित ! मूर्त और अमूर्तरूप महामूर्तिमन् ! सूक्ष्ममूर्ते ! प्रकाशाप्रकाश-स्वरूप ! आपको नमस्कार है* । विकराल और सुन्दररूप ! विद्या और अविद्यामय अच्युत ! सदसत् (कार्य-कारण) रूप जगत्‌के उद्भवस्थान और सदसज्जगत्‌के पालक ! आपको नमस्कार है । नित्यानित्य प्रपञ्चात्मन् ! प्रपञ्चसे पृथक् रहनेवाले ! ज्ञानियोंके आश्रयरूप ! एकानेकरूप आदिकारण वासुदेव ! आपको नमस्कार है । जो स्थूल-सूक्ष्मरूप और स्फुट प्रकाशमय हैं, जो अधिष्ठानरूपसे सर्वभूतस्वरूप तथापि वस्तुतः सम्पूर्ण भूतादिसे परे हैं, विश्वके कारण न होनेपर भी जिनसे यह समस्त विश्व उत्पन्न हुआ है, उन पुरुषोत्तम भगवान्‌को नमस्कार है† ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके इस प्रकार तन्मयतापूर्वक स्तुति करनेपर पीताम्बरधारी देवाधिदेव भगवान् श्रीहरि प्रकट हुए । द्विज ! उन्हें सहसा प्रकट हुए देख वे खड़े हो गये और गद्गद वाणीसे 'विष्णुभगवान्‌को नमस्कार है ! विष्णुभगवान्‌को नमस्कार है !' ऐसा बारंबार कहने लगे ।

नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै महात्मने । नाम रूपं न यस्यैको योऽस्तित्वेनोपलभ्यते ॥
यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः । अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने ॥
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम् । तं सर्वसाक्षिणं विश्वं नमस्ये परमेश्वरम् ॥
नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै यस्याभिन्नमिदं जगत् । ध्येयः स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मेऽव्ययः ॥
यत्रोतमेतत्प्रोतं च विश्वमक्षरमव्ययम् । आधारभूतः सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः ॥
ॐ नमो विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुनः । यत्र सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वसंश्रयः ॥
सर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थितः । मत्तः सर्वमहं सर्वं मयि सर्वं सनातने ॥
अहमेवाक्षयो नित्यः परमात्मात्मसंश्रयः । ब्रह्मसंज्ञोऽहमेवाग्रे तथान्ते च परः पुमान् ॥
(वि० पु० १ । १९ । ६४—८६)

* ॐ नम परमार्थार्थ स्थूलसूक्ष्म क्षराक्षर । व्यक्ताव्यक्त कलातीत सकलेश निरञ्जन ॥
गुणाञ्जन गुणाधार निर्गुणात्मन् गुणस्थित । मूर्तामूर्तमहामूर्ते सूक्ष्ममूर्ते स्फुटास्फुट ॥
(वि० पु० १ । २० । ९-१०)

† करालसौम्यरूपात्मन् विद्याविद्यामयाच्युत । सदसद्रूपसद्भाव सदसद्भावभावन ॥
नित्यानित्यप्रपञ्चात्मन्निष्प्रपञ्चामलाश्रित । एकानेक नमस्तुभ्यं वासुदेवादिकारण ॥
यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो यः सर्वभूतो न च सर्वभूतः ।
विश्वं यतश्चैतदविश्वहेतोर्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥
(वि० पु० १ । २० । ११—१३)

दैत्योंके नाश हुए। द्विज ! फिर राज्यलक्ष्मी, बहुत-से पुत्र-पौत्रादि तथा परम ऐश्वर्य पाकर, पुण्य-पापसे रहित हो भगवान्‌का ध्यान करते हुए उन्होंने परम निर्वाणपद प्राप्त किया।

उन महात्मा प्रह्लादजीके इस चरित्रको जो पुरुष सुनता है, उसके पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार भगवान्‌ने प्रह्लादजीकी सम्पूर्ण आपत्तियोंसे रक्षा की थी, उसी प्रकार वे सर्वदा उसकी भी रक्षा करते हैं, जो उनका चरित्र सुनता है।

कश्यपजीकी अन्य स्त्रियोंके वंश एवं मरुद्गणकी उत्पत्तिका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—प्रह्लादके पुत्र विरोचन थे और विरोचनसे बलिका जन्म हुआ। महामुने ! बलिके सौ पुत्र थे जिनमें बाणासुर सबसे बड़ा था।

कश्यपजीकी एक दूसरी स्त्री दनुके पुत्र द्विमूर्द्धा, शम्बर, अयोमुख, शङ्कुशिरा, कपिल, शङ्कर, महाबाहु, एकचक्र, महाबली तारक, स्वर्भानु, वृषपर्वा, महाबली पुलोम और परम पराक्रमी विप्रचित्ति थे। ये सब दनुके पुत्र कहे गये हैं। स्वर्भानुकी कन्या प्रभा थी तथा शर्मिष्ठा, उपदानी और हयशिरा—ये वृषपर्वाकी सुन्दरी कन्याएँ कही गयी हैं। वैश्वानरकी पुलोमा और कालका दो पुत्रियाँ थीं। महाभाग ! वे दोनों कन्याएँ मरीचिनन्दन कश्यपजीकी भार्या हुईं। उनके पुत्र साठ हजार दानव-श्रेष्ठ हुए। मरीचिनन्दन कश्यपजीके वे सभी पुत्र पौलोम और कालकेय कहलाये। इनके सिवा, विप्रचित्तिके सिंहिकाके गर्भसे और भी बहुत-से महाबलवान्, भयंकर और अतिक्रूर पुत्र उत्पन्न हुए। वे व्यंश, बलवान् शल्य, महाबली नभ, वातापी, नमुचि, इल्वल, खसृम, अन्धक, नरक, कालनाभ, महावीर स्वर्भानु और महादैत्य वक्त्रयोधी थे। ये सब दानवश्रेष्ठ दनुके वंशको बढ़ानेवाले थे। इनके और भी सैकड़ों-हजारों पुत्र-पौत्रादि हुए। महान् तपस्याद्वारा आत्मज्ञानसम्पन्न दैत्यवर प्रह्लादजीके कुलमें निवातकवच नामक दैत्य उत्पन्न हुए।

कश्यपजीकी स्त्री ताम्राकी शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृद्‌ध्रिका—ये छः अति प्रभावशालिनी कन्याएँ कही जाती हैं। शुकीने शुक, उलूक एवं उलूकोंके प्रतिपक्षी काक आदिको जन्म दिया तथा श्येनीने श्येन (बाज), भासीने भास और गृद्धिकाने गृध्रोंको उत्पन्न किया। शुचिने जलके पक्षियों और सुग्रीवीने अश्व, उष्ट्र तथा गर्दभोंको जन्म दिया। इस प्रकार यह ताम्राका वंश कहा गया है। विनताके गरुड और अरुण ये दो पुत्र विख्यात हैं। इनमें पक्षियोंमें श्रेष्ठ सुपर्ण (गरुडजी) अति भयंकर और सर्पोंको खानेवाले हैं। ब्रह्मन् ! सुरसासे सहस्रों सर्प उत्पन्न हुए, जो बड़े ही प्रभावशाली, आकाशमें विचरनेवाले, अनेक सिरोंवाले और बड़े विशालकाय थे और कद्रूके पुत्र भी महाबली और अमित तेजस्वी अनेक सिरवाले सहस्रों सर्प ही हुए, जो गरुडजीके वशवर्ती थे। उनमेंसे शेष, वासुकि, तक्षक, शङ्ख, श्वेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापुत्र नाग, कर्कोटक, धनञ्जय तथा और भी अनेकों उग्र विषधर एवं काटनेवाले सर्प प्रधान हैं। क्रोधवशाके पुत्र क्रोधवशगण हैं, वे सभी बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले, भयंकर और कच्चा मांस खानेवाले जलचर, स्थलचर एवं पक्षिगण हैं। महाबली पिशाचोंको भी क्रोधाने ही जन्म दिया है।

सुरभिने गौओं और महिषोंको उत्पन्न किया तथा इराने वृक्ष, लता, बेल और सब प्रकारकी तृण-जातियोंको प्रकट किया है। खसाने यक्षों तथा राक्षसोंको, मुनिने अप्सराओंको और अरिष्टाने महाबली गन्धर्वोंको जन्म दिया। ये सब स्थावर-जङ्गम प्राणी कश्यपजीकी संतान कहे गये हैं। इनके भी पुत्र-पौत्रादि सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें उत्पन्न हुए। ब्रह्मन् ! यह स्वारोचिष-मन्वन्तरकी सृष्टिका वर्णन किया गया है।

वैवस्वतमन्वन्तरके आरम्भमें महान् वारुण यज्ञ हुआ, उसमें ब्रह्माजी होता थे, अब मैं उनकी प्रजाका वर्णन करता हूँ। साधुश्रेष्ठ ! पूर्व-मन्वन्तरमें जो सप्तर्षिगण स्वयं ब्रह्माजीके मानस-पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे, उन्हींको ब्रह्माजीने इस कल्पमें गन्धर्व, नाग, देव और दानवादिके पितृरूपसे निश्चित किया। पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर दितिने कश्यपजीको प्रसन्न किया। उसकी सम्यक् आराधनासे संतुष्ट हो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ कश्यपजीने उसे वर देकर प्रसन्न किया। उस समय उसने इन्द्रके वधके लिये एक अत्यन्त तेजस्वी एवं शक्तिशाली पुत्रका वर माँगा। मुनिश्रेष्ठ कश्यपजीने अपनी भार्या दितिको वह वर दिया और उस अति उग्र वरको देते हुए वे उससे बोले—"यदि तुम भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर रहकर अपना गर्भ शौच* और

* शौच आदि नियम मत्स्यपुराणमें इस प्रकार बतलाये गये हैं—

संध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि।
न स्नातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा॥
वर्जयेत् कलहं लोके गात्रभङ्गं तथैव च
नोन्मुक्तकेशी तिष्ठेच्च नाशुचि स्यात् कदाचन

दैत्येन्द्र्रोंका राजा हुआ। द्विज ! फिर राज्यलक्ष्मी, बहुत-से पुत्र-पौत्रादि तथा परम ऐश्वर्य पाकर, पुण्य-पापसे रहित हो भगवान्‌का ध्यान करते हुए उन्होंने परम निर्वाणपद प्राप्त किया।

उन महात्मा प्रह्लादजीके इस चरित्रको जो पुरुष सुनता है, उसके पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार भगवान्‌ने प्रह्लादजीकी सम्पूर्ण आपत्तियोंसे रक्षा की थी, उसी प्रकार वे सर्वदा उसकी भी रक्षा करते हैं, जो उनका चरित्र सुनता है।

कश्यपजीकी अन्य स्त्रियोंके वंश एवं मरुद्गणकी उत्पत्तिका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—प्रह्लादके पुत्र विरोचन थे और विरोचनसे बलिका जन्म हुआ। महामुने ! बलिके सौ पुत्र थे जिनमें बाणासुर सबसे बडा था।

कश्यपजीकी एक दूसरी स्त्री दनुके पुत्र द्विमूर्द्धा, शम्बर, अयोमुख, शङ्कुशिरा, कपिल, शङ्कर, महाबाहु, एकचक्र, महाबली तारक, स्वर्भानु, वृषपर्वा, महाबली पुलोम और परम पराक्रमी विप्रचित्ति थे। ये सब दनुके पुत्र कहे गये हैं। स्वर्भानुकी कन्या प्रभा थी तथा शर्मिष्ठा, उपदानी और हयशिरा—ये वृषपर्वाकी सुन्दरी कन्याएँ कही गयी हैं। वैश्वानरकी पुलोमा और कालका दो पुत्रियाँ थीं। महाभाग ! वे दोनों कन्याएँ मरीचिनन्दन कश्यपजीकी भार्या हुईं। उनके पुत्र साठ हजार दानव-श्रेष्ठ हुए। मरीचिनन्दन कश्यपजीके वे सभी पुत्र पौलोम और कालकेय कहलाये। इनके सिवा, विप्रचित्तिके सिंहिकाके गर्भसे और भी बहुत-से महाबलवान्, भयंकर और अतिक्रूर पुत्र उत्पन्न हुए। वे व्यंश, बलवान् शल्य, महाबली नभ, वातापी, नमुचि, इल्वल, खसृम, अन्धक, नरक, कालनाभ, महावीर स्वर्भानु और महादैत्य वक्त्रयोधी थे। ये सब दानवश्रेष्ठ दनुके वंशको बढ़ानेवाले थे। इनके और भी सैकडो-हजारों पुत्र-पौत्रादि हुए। महान् तपस्याद्वारा आत्मज्ञानसम्पन्न दैत्यवर प्रह्लादजीके कुलमें निवातकवच नामक दैत्य उत्पन्न हुए।

कश्यपजीकी स्त्री ताम्राकी शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृद्धिका—ये छः अति प्रभावशालिनी कन्याएँ कही जाती हैं। शुकीने शुक, उलूक एवं उलूकोंके प्रतिपक्षी काक आदिको जन्म दिया तथा श्येनीने श्येन (बाज), भासीने भास और गृद्धिकाने गृध्रोंको उत्पन्न किया। शुचिने जलके पक्षियों और सुग्रीवीने अश्व, उष्ट्र तथा गर्दभोंको जन्म दिया। इस प्रकार यह ताम्राका वंश कहा जाता है। विनताके गरुड और अरुण ये दो पुत्र विख्यात हैं। इनमें पक्षियोंमें श्रेष्ठ सुपर्ण (गरुडजी) अति भयंकर और सर्पोंको खानेवाले हैं। ब्रह्मन् ! सुरसासे सहस्रों सर्प उत्पन्न हुए, जो बड़े ही प्रभावशाली, आकाशमें विचरनेवाले, अनेक सिरोंवाले और बड़े विशालकाय थे और कद्रूके पुत्र भी महाबली और अमित तेजस्वी अनेक सिरवाले सहस्रों सर्प ही हुए, जो गरुडजीके वशवर्ती थे। उनमेंसे शेष, वासुकि, तक्षक, शङ्ख, श्वेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापुत्र नाग, कर्कोटक, धनञ्जय तथा और भी अनेकों उग्र विषधर एवं काटनेवाले सर्प प्रधान हैं। क्रोधवशाके पुत्र क्रोधवशगण हैं, वे सभी बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले, भयंकर और कच्चा मांस खानेवाले जलचर, स्थलचर एवं पक्षिगण हैं। महाबली पिशाचोंको भी क्रोधाने ही जन्म दिया है।

सुरभिने गौओं और महिषोंको उत्पन्न किया तथा इराने वृक्ष, लता, बेल और सब प्रकारकी तृण-जातियोंको प्रकट किया है। खसाने यक्षों तथा राक्षसोंको, मुनिने अप्सराओंको और अरिष्टाने महाबली गन्धर्वोंको जन्म दिया। ये सब स्थावर-जङ्गम प्राणी कश्यपजीकी संतान कहे गये हैं। इनके भी पुत्र-पौत्रादि सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें उत्पन्न हुए। ब्रह्मन् ! यह स्वारोचिष-मन्वन्तरकी सृष्टिका वर्णन किया गया है।

वैवस्वतमन्वन्तरके आरम्भमें महान् वारुण यज्ञ हुआ, उसमें ब्रह्माजी होता थे, अब मैं उनकी प्रजाका वर्णन करता हूँ। साधुश्रेष्ठ ! पूर्व-मन्वन्तरमे जो सप्तर्षिगण स्वयं ब्रह्माजीके मानस-पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे, उन्हींको ब्रह्माजीने इस कल्पमें गन्धर्व, नाग, देव और दानवादिके पितृरूपसे निश्चित किया। पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर दितिने कश्यपजीको प्रसन्न किया। उसकी सम्यक् आराधनासे संतुष्ट हो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ कश्यपजीने उसे वर देकर प्रसन्न किया। उस समय उसने इन्द्रके वधके लिये एक अत्यन्त तेजस्वी एवं शक्तिशाली पुत्रका वर माँगा। मुनिश्रेष्ठ कश्यपजीने अपनी भार्या दितिको वह वर दिया और उस अति उग्र वरको देते हुए वे उससे बोले—"यदि तुम भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर रहकर अपना गर्भ शौच* और

* शौच आदि नियम मत्स्यपुराणमें इस प्रकार बतलाये गये हैं—

संध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि।
न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा॥
वर्जयेत् कलहं लोके गात्रभङ्गं तथैव च
नोन्मुक्तकेशी तिष्ठेच्च नाशुचिः स्यात् कदाचन

सृष्टिके पालन-कार्यमें प्रवृत्त सर्वेश्वर श्रीहरिको छोडकर और किसीमें भी पालन करनेकी शक्ति नहीं है। रजः और सत्त्वादि गुणोंके आश्रयसे वे सनातन प्रभु ही जगत्‌की रचनाके समय रचना करते हैं, स्थितिके समय पालन करते हैं और अन्तसमयमें कालरूपसे संहार करते हैं।

वे जनार्दन चार विभागसे सृष्टिके और चार विभागसे ही स्थितिके समय रहते हैं तथा चार रूप धारण करके ही अन्तमें प्रलय करते हैं। वे अव्यक्तस्वरूप भगवान् अपने एक अंशसे ब्रह्मा होते हैं, दूसरे अंशसे मरीचि आदि प्रजापति होते हैं, उनका तीसरा अंश काल है और चौथा सम्पूर्ण प्राणी। इस प्रकार वे रजोगुणविशिष्ट होकर चार प्रकारसे सृष्टिके समय स्थित होते हैं। फिर वे पुरुषोत्तम सत्त्वगुणका आश्रय लेकर जगत्‌की स्थिति करते हैं। उस समय वे एक अंशसे विष्णु होकर पालन करते हैं, दूसरे अंशसे मनु आदि होते हैं तथा तीसरे अंशसे काल और चौथेसे सर्वभूतोंमें स्थित होते हैं। और अन्तकालमें वे अजन्मा भगवान् तमोगुणकी वृत्तिका आश्रय ले एक अंशसे रुद्ररूप, दूसरे भागसे अग्नि और अन्तकादिरूप, तीसरेसे कालरूप और चौथेसे सम्पूर्ण भूतस्वरूप हो जाते हैं। ब्रह्मन्! विनाश करनेके लिये उन महात्माकी यह चार प्रकारकी सार्वकालिक विभाग-कल्पना कही जाती है।

द्विज! जगत्‌के आदि और मध्यसे लेकर प्रलयकालतक ब्रह्मा, मरीचि आदिसे एवं भिन्न-भिन्न जीवोंसे सृष्टि हुआ करती है। सृष्टिके आरम्भमें पहले ब्रह्माजी रचना करते हैं, फिर मरीचि आदि प्रजापतिगण और तदनन्तर समस्त जीव क्षण-क्षणमें संतान उत्पन्न करते रहते हैं। द्विज! कालके विना ब्रह्मा, प्रजापति एवं अन्य समस्त प्राणी भी सृष्टि-रचना नहीं कर सकते। जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और अन्तके समय जब तीनों गुणोंमें क्षोभ होता है, तब वे श्रीहरि इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र—इन तीनो रूपोंमें स्थित हो सृष्टि आदि कार्य करते है तथापि उनका परम पद महान् निर्गुण है। परमात्माका वह स्वरूप ज्ञानमय, व्यापक, स्वसंवेद्य और अनुपम है तथा वह भी चार प्रकारका ही है।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—मुने! आपने जो भगवान्‌का परम पद कहा, वह चार प्रकारका कैसे है? यह आप मुझसे विधिपूर्वक कहिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! सब वस्तुओंका जो कारण होता है, वही उनका साधन कहा गया है और अपनेको जिसकी सिद्धि अभीष्ट हो, वही अपनी साध्य वस्तु कहलाती है। मुक्तिकी इच्छावाले योगिजनोंके लिये प्राणायाम आदि साधन हैं और परब्रह्म ही साध्य है, जहाँसे फिर लौटना नहीं पड़ता। मुने! जो योगीकी मुक्तिका कारण है, वह 'साधनालम्बन (साधनविषयक) ज्ञान' ही उस ब्रह्मभूत परम पदका प्रथम भेद है*। महामुने! क्लेश-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये योगाभ्यास करनेवाले योगीका साध्यरूप जो ब्रह्म है, उसका ज्ञान ही 'साध्यालम्बन-विज्ञान' है, वही उक्त ब्रह्मभूत पदका दूसरा भेद है। इन दोनों साध्य-साधनोंका अभेदपूर्वक जो 'अद्वैतमय ज्ञान' है, उसीको मैंने तीसरा भेद कहा है। महामुने! उक्त तीनों प्रकारके ज्ञानकी जो विशेषता (अन्तर) है, उसका निराकरण करनेपर अनुभव हुए आत्मस्वरूपके समान ज्ञानस्वरूप भगवान् विष्णुका जो निर्व्यापार, अनिर्वचनीय, व्याप्तिमात्र, अनुपम, आत्मबोधस्वरूप, सत्तामात्र, अलक्षण, शान्त, अभय, शुद्ध, अचिन्त्य और आश्रयहीन रूप है, वह 'ब्रह्म' नामक ज्ञान [उसका चौथा भेद] है। द्विज! योगिजन अन्य ज्ञानोंका निरोध कर इसीमें लीन हो जाते हैं। इस प्रकार वह निर्मल, नित्य, व्यापक, अक्षय और समस्त हेय-गुणोंसे रहित विष्णु नामक परम पद है। पुण्य-पापका क्षय और क्लेशोंकी निवृत्ति होनेपर जो अत्यन्त निर्मल हो जाता है, वही योगी उस परब्रह्मका आश्रय लेता है, जहाँसे वह फिर नहीं लौटता।

उस ब्रह्मके मूर्त और अमूर्त दो रूप हैं, जो क्षर और अक्षररूपसे समस्त प्राणियोंमें स्थित हैं। अक्षर ही वह परब्रह्म है और क्षर सम्पूर्ण जगत् है। जिस प्रकार एकदेशीय अग्निका प्रकाश सर्वत्र फैला रहता है, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् परब्रह्मकी ही शक्ति है। मैत्रेय! अग्निकी निकटता और दूरताके भेदसे जिस प्रकार उसके प्रकाशमें भी अधिकता और न्यूनताका भेद रहता है, उसी प्रकार ब्रह्मकी शक्तिमें भी तारतम्य है। ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु और शिव ब्रह्मकी प्रधान शक्तियाँ हैं, उनसे न्यून दक्ष आदि प्रजापतिगण है तथा उनके अनन्तर देवगण हैं। उनसे भी न्यून मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग और सरीसृपादि हैं तथा उनसे भी अत्यन्त न्यून वृक्ष, गुल्म और लता आदि हैं। अतः मुनिवर! आविर्भाव (उत्पन्न होना), तिरोभाव (छिप जाना), जन्म और नाश आदि विकल्पोंसे युक्त होनेपर भी यह सम्पूर्ण जगत् वास्तवमें (प्रवाहरूपसे) नित्य और अक्षय ही है।

---

* प्राणायामादि साधनविषयक ज्ञानको 'साधनालम्बन-ज्ञान' कहते हैं।

सृष्टिके पालन-कार्यमें प्रवृत्त सर्वेश्वर श्रीहरिको छोडकर और किसीमें भी पालन करनेकी शक्ति नहीं है। रजः और सत्त्वादि गुणोंके आश्रयसे वे सनातन प्रभु ही जगत्‌की रचनाके समय रचना करते हैं, स्थितिके समय पालन करते हैं और अन्तसमयमें कालरूपसे संहार करते हैं।

वे जनार्दन चार विभागसे सृष्टिके और चार विभागसे ही स्थितिके समय रहते हैं तथा चार रूप धारण करके ही अन्तमें प्रलय करते हैं। वे अव्यक्तस्वरूप भगवान् अपने एक अंशसे ब्रह्मा होते हैं, दूसरे अंशसे मरीचि आदि प्रजापति होते हैं, उनका तीसरा अंश काल है और चौथा सम्पूर्ण प्राणी। इस प्रकार वे रजोगुणविशिष्ट होकर चार प्रकारसे सृष्टिके समय स्थित होते हैं। फिर वे पुरुषोत्तम सत्त्वगुणका आश्रय लेकर जगत्‌की स्थिति करते हैं। उस समय वे एक अंशसे विष्णु होकर पालन करते हैं, दूसरे अंशसे मनु आदि होते हैं तथा तीसरे अंशसे काल और चौथेसे सर्वभूतोंमें स्थित होते हैं। और अन्तकालमें वे अजन्मा भगवान् तमोगुणकी वृत्तिका आश्रय ले एक अंशसे रुद्ररूप, दूसरे भागसे अग्नि और अन्तकादिरूप, तीसरेसे कालरूप और चौथेसे सम्पूर्ण भूतस्वरूप हो जाते हैं। ब्रह्मन्! विनाश करनेके लिये उन महात्माकी यह चार प्रकारकी सार्वकालिक विभाग-कल्पना कही जाती है।

द्विज! जगत्‌के आदि और मध्यसे लेकर प्रलयकालतक ब्रह्मा, मरीचि आदिसे एवं भिन्न-भिन्न जीवोंसे सृष्टि हुआ करती है। सृष्टिके आरम्भमें पहले ब्रह्माजी रचना करते हैं, फिर मरीचि आदि प्रजापतिगण और तदनन्तर समस्त जीव क्षण-क्षणमें संतान उत्पन्न करते रहते हैं। द्विज! कालके विना ब्रह्मा, प्रजापति एवं अन्य समस्त प्राणी भी सृष्टि-रचना नहीं कर सकते। जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और अन्तके समय जब तीनों गुणोंमें क्षोभ होता है, तब वे श्रीहरि इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र—इन तीनो रूपोंमें स्थित हो सृष्टि आदि कार्य करते हैं तथापि उनका परम पद महान् निर्गुण है। परमात्माका वह स्वरूप ज्ञानमय, व्यापक, स्वसंवेद्य और अनुपम है तथा वह भी चार प्रकारका ही है।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—मुने! आपने जो भगवान्‌का परम पद कहा, वह चार प्रकारका कैसे है? यह आप मुझसे विधिपूर्वक कहिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! सब वस्तुओंका जो कारण होता है, वही उनका साधन कहा गया है और अपनेको जिसकी सिद्धि अभीष्ट हो, वही अपनी साध्य वस्तु कहलाती है। मुक्तिकी इच्छावाले योगिजनोंके लिये प्राणायाम आदि साधन हैं और परब्रह्म ही साध्य है, जहाँसे फिर लौटना नहीं पड़ता। मुने! जो योगीकी मुक्तिका कारण है, वह 'साधनालम्बन (साधनविषयक) ज्ञान' ही उस ब्रह्मभूत परम पदका प्रथम भेद है*। महामुने! क्लेश-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये योगाभ्यास करनेवाले योगीका साध्यरूप जो ब्रह्म है, उसका ज्ञान ही 'साध्यालम्बन-विज्ञान' है, वही उक्त ब्रह्मभूत पदका दूसरा भेद है। इन दोनों साध्य-साधनोंका अभेदपूर्वक जो 'अद्वैतमय ज्ञान' है, उसीको मैंने तीसरा भेद कहा है। महामुने! उक्त तीनों प्रकारके ज्ञानकी जो विशेषता (अन्तर) है, उसका निराकरण करनेपर अनुभव हुए आत्मस्वरूपके समान ज्ञानस्वरूप भगवान् विष्णुका जो निर्व्यापार, अनिर्वचनीय, व्याप्तिमात्र, अनुपम, आत्मबोधस्वरूप, सत्तामात्र, अलक्षण, शान्त, अभय, शुद्ध, अचिन्त्य और आश्रयहीन रूप है, वह 'ब्रह्म' नामक ज्ञान [उसका चौथा भेद] है। द्विज! योगिजन अन्य ज्ञानोंका निरोध कर इसीमें लीन हो जाते हैं। इस प्रकार वह निर्मल, नित्य, व्यापक, अक्षय और समस्त हेय-गुणोंसे रहित विष्णु नामक परम पद है। पुण्य-पापका क्षय और क्लेशोंकी निवृत्ति होनेपर जो अत्यन्त निर्मल हो जाता है, वही योगी उस परब्रह्मका आश्रय लेता है, जहाँसे वह फिर नहीं लौटता।

उस ब्रह्मके मूर्त और अमूर्त दो रूप हैं, जो क्षर और अक्षररूपसे समस्त प्राणियोंमें स्थित हैं। अक्षर ही वह परब्रह्म है और क्षर सम्पूर्ण जगत् है। जिस प्रकार एकदेशीय अग्निका प्रकाश सर्वत्र फैला रहता है, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् परब्रह्मकी ही शक्ति है। मैत्रेय! अग्निकी निकटता और दूरताके भेदसे जिस प्रकार उसके प्रकाशमे भी अधिकता और न्यूनताका भेद रहता है, उसी प्रकार ब्रह्मकी शक्तिमें भी तारतम्य है। ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु और शिव ब्रह्मकी प्रधान शक्तियाँ हैं, उनसे न्यून दक्ष आदि प्रजापतिगण है तथा उनके अनन्तर देवगण हैं। उनसे भी न्यून मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग और सरीसृपादि हैं तथा उनसे भी अत्यन्त न्यून वृक्ष, गुल्म और लता आदि है। अतः मुनिवर! आविर्भाव (उत्पन्न होना), तिरोभाव (छिप जाना), जन्म और नाश आदि विकल्पोंसे युक्त होनेपर भी यह सम्पूर्ण जगत् वास्तवमे (प्रवाहरूपसे) नित्य और अक्षय ही है।

---

* प्राणायामादि साधनविषयक ज्ञानको 'साधनालम्बन-ज्ञान' कहते हैं।

द्वितीय अंश

प्रियव्रतके वंशका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! गुरो! स्वायम्भुव मनुके जो प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र थे, उनमेंसे उत्तानपादके पुत्र ध्रुवके विषयमें तो आपने कहा; किंतु द्विज! आपने प्रियव्रतकी संतानके विषयमें कुछ भी नहीं कहा, अतः मैं उसका वर्णन सुनना चाहता हूँ, आप प्रसन्नतापूर्वक कहिये।

श्रीपराशरजीने कहा—प्रियव्रतने कर्दमजीकी पुत्रीसे विवाह किया था। उससे उनके सम्राट् और कुक्षि नामकी दो कन्याएँ तथा दस पुत्र हुए। प्रियव्रतके पुत्र बड़े बुद्धिमान्, बलवान्, विनयसम्पन्न और अपने माता-पिताके अत्यन्त प्रिय कहे जाते हैं; उनके नाम थे—आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन और पुत्र। दसवाँ यथार्थनामा ज्योतिष्मान् था। वे प्रियव्रतके पुत्र अपने बल-पराक्रमके कारण विख्यात थे। उनमें महाभाग मेधा, अग्निबाहु और पुत्र—ये तीन योगपरायण तथा अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त जाननेवाले थे। उन्होंने राज्य आदि भोगोंमें अपना चित्त नहीं लगाया। मुने! वे निर्मल-चित्त और कर्म-फलकी इच्छासे रहित थे तथा समस्त विषयोंमें सदा न्यायानुकूल ही प्रवृत्त होते थे।

मुनिश्रेष्ठ! राजा प्रियव्रतने अपने शेष सात पुत्रोंको सात द्वीप बाँट दिये। महाभाग! पिता प्रियव्रतने आग्नीध्रको जम्बूद्वीप और मेधातिथिको प्लक्ष नामक दूसरा द्वीप दिया। उन्होंने शाल्मलद्वीपमें वपुष्मान्को अभिषिक्त किया; ज्योतिष्मान्को कुशद्वीपमें राजा बनाया। द्युतिमान्को क्रौञ्च-द्वीपके शासनपर नियुक्त किया, भव्यको प्रियव्रतने शाकद्वीपका स्वामी बनाया और सवनको पुष्करद्वीपका अधिपति निश्चित किया।

मुनिसत्तम! उनमें जो जम्बूद्वीपके अधीश्वर राजा आग्नीध्र थे, उनके प्रजापतिके समान नौ पुत्र हुए। वे नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व और सत्कर्मशील राजा केतुमाल थे। विप्र! अब उनके जम्बूद्वीपके विभाग सुनो। पिता आग्नीध्रने दक्षिणकी ओरका हिमवर्ष, जिसे अब 'भारतवर्ष' कहते हैं, नाभिको दिया। इसी प्रकार किम्पुरुषको हेमकूटवर्ष तथा हरिवर्षको तीसरा नैषधवर्ष दिया। जिसके मध्यमें मेरुपर्वत है, वह इलावृतवर्ष उन्होंने इलावृतको दिया तथा नीलाचलसे लगा हुआ वर्ष रम्यको दिया। पिता आग्नीध्रने उसका उत्तरवर्ती श्वेतवर्ष हिरण्वान्को तथा जो वर्ष शृङ्गवान् पर्वतके उत्तरमें स्थित है, वह कुरुको दिया और जो मेरुके पूर्वमें स्थित है, वह भद्राश्वको दिया तथा केतुमालको गन्धमादनवर्ष दिया। इस प्रकार राजा आग्नीध्रने अपने पुत्रोंको ये वर्ष दिये। मैत्रेय! अपने पुत्रोंको इन वर्षोंमें अभिषिक्त कर वे तपस्याके लिये शालग्राम नामक महापवित्र क्षेत्रको चले गये।

महामुने! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें सुखकी बहुलता है और बिना यत्नके स्वभावसे ही समस्त भोग-सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। उनमें किसी प्रकारके असुख या अकाल-मृत्यु आदि तथा जरा-मृत्यु आदिका कोई भय नहीं है। और न धर्म, अधर्म अथवा उत्तम, अधम और मध्यम आदिका ही भेद है। उन आठ वर्षोंमें कभी कोई युग-परिवर्तन भी नहीं होता।

महात्मा नाभिका हिम नामक वर्ष था; उनके मेरुदेवीसे अतिशय कान्तिमान् ऋषभ नामक पुत्र हुआ। ऋषभजीके भरतका जन्म हुआ, जो उनके सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े थे। महाभाग पृथ्वीपति ऋषभदेवजी धर्मपूर्वक राज्य-शासन तथा विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करनेके अनन्तर अपने वीर पुत्र भरतको राज्याधिकार सौंपकर तपस्याके लिये पुलहाश्रमको चले गये। महाराज ऋषभने वहाँ भी वानप्रस्थ-आश्रमकी विधिसे रहते हुए निश्चयपूर्वक तपस्या की तथा नियमानुकूल यजानुष्ठान किये। वे तपस्याके कारण सूखकर अत्यन्त कृश हो गये और उनके शरीरकी शिराएँ (रक्तवाहिनी नाड़ियाँ) दिखायी देने लगीं। अन्तमें अपने मुखमें एक पत्थरका गोला रखकर उन्होंने नग्नावस्थामें महाप्रस्थान किया।

पिता ऋषभदेवजीने वन जाते समय अपना राज्य भरत-जीको दिया था; अतः तबसे यह (हिमवर्ष) इस लोकमें भारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ। भरतजीके सुमति नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ। पिता (भरत) ने यज्ञानुष्ठानपूर्वक न्यायतः राज्यका पालन करके अन्तमें उसे सुमतिको सौंप दिया।

द्वितीय अंश

प्रियव्रतके वंशका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! गुरो ! स्वायम्भुव मनुके जो प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र थे, उनमेंसे उत्तानपादके पुत्र ध्रुवके विषयमें तो आपने कहा; किंतु द्विज ! आपने प्रियव्रतकी संतानके विषयमें कुछ भी नहीं कहा, अतः मैं उसका वर्णन सुनना चाहता हूँ, आप प्रसन्नतापूर्वक कहिये।

श्रीपराशरजीने कहा—प्रियव्रतने कर्दमजीकी पुत्रीसे विवाह किया था। उससे उनके सम्राट् और कुक्षि नामकी दो कन्याएँ तथा दस पुत्र हुए। प्रियव्रतके पुत्र बड़े बुद्धिमान्, बलवान्, विनयसम्पन्न और अपने माता-पिताके अत्यन्त प्रिय कहे जाते हैं; उनके नाम थे—आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन और पुत्र। दसवाँ यथार्थनामा ज्योतिष्मान् था। वे प्रियव्रतके पुत्र अपने बल-पराक्रमके कारण विख्यात थे। उनमें महाभाग मेधा, अग्निबाहु और पुत्र—ये तीन योगपरायण तथा अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त जाननेवाले थे। उन्होंने राज्य आदि भोगोंमें अपना चित्त नहीं लगाया। मुने ! वे निर्मलचित्त और कर्म-फलकी इच्छासे रहित थे तथा समस्त विषयोंमें सदा न्यायानुकूल ही प्रवृत्त होते थे।

मुनिश्रेष्ठ ! राजा प्रियव्रतने अपने शेष सात पुत्रोंको सात द्वीप बाँट दिये। महाभाग ! पिता प्रियव्रतने आग्नीध्रको जम्बूद्वीप और मेधातिथिको प्लक्ष नामक दूसरा द्वीप दिया। उन्होंने शाल्मलद्वीपमें वपुष्मान्‌को अभिषिक्त किया; ज्योतिष्मान्‌को कुशद्वीपमें राजा बनाया। द्युतिमान्‌को क्रौञ्चद्वीपके शासनपर नियुक्त किया, भव्यको प्रियव्रतने शाकद्वीपका स्वामी बनाया और सवनको पुष्करद्वीपका अधिपति निश्चित किया।

मुनिसत्तम ! उनमें जो जम्बूद्वीपके अधीश्वर राजा आग्नीध्र थे, उनके प्रजापतिके समान नौ पुत्र हुए। वे नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व और सत्कर्मशील राजा केतुमाल थे। विप्र ! अब उनके जम्बूद्वीपके विभाग सुनो। पिता आग्नीध्रने दक्षिणकी ओरका हिमवर्ष, जिसे अब 'भारतवर्ष' कहते हैं, नाभिको दिया। इसी प्रकार किम्पुरुषको हेमकूटवर्ष तथा हरिवर्षको तीसरा नैषधवर्ष दिया। जिसके मध्यमें मेरुपर्वत है, वह इलावृतवर्ष उन्होंने इलावृतको दिया तथा नीलाचलसे लगा हुआ वर्ष रम्यको दिया। पिता आग्नीध्रने उसका उत्तरवर्ती श्वेतवर्ष हिरण्वान्‌को तथा जो वर्ष शृङ्गवान् पर्वतके उत्तरमें स्थित है, वह कुरुको दिया और जो मेरुके पूर्वमें स्थित है, वह भद्राश्वको दिया तथा केतुमालको गन्धमादनवर्ष दिया। इस प्रकार राजा आग्नीध्रने अपने पुत्रोंको ये वर्ष दिये। मैत्रेय ! अपने पुत्रोंको इन वर्षोंमें अभिषिक्त कर वे तपस्याके लिये शालग्राम नामक महापवित्र क्षेत्रको चले गये।

महामुने ! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें सुखकी बहुलता है और बिना यत्नके स्वभावसे ही समस्त भोग-सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। उनमें किसी प्रकारके असुख या अकाल-मृत्यु आदि तथा जरा-मृत्यु आदिका कोई भय नहीं है। और न धर्म, अधर्म अथवा उत्तम, अधम और मध्यम आदिका ही भेद है। उन आठ वर्षोंमें कभी कोई युग-परिवर्तन भी नहीं होता।

महात्मा नाभिका हिम नामक वर्ष था; उनके मेरुदेवीसे अतिशय कान्तिमान् ऋषभ नामक पुत्र हुआ। ऋषभजीके भरतका जन्म हुआ, जो उनके सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े थे। महाभाग पृथ्वीपति ऋषभदेवजी धर्मपूर्वक राज्य-शासन तथा विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करनेके अनन्तर अपने वीर पुत्र भरतको राज्याधिकार सौंपकर तपस्याके लिये पुलहाश्रमको चले गये। महाराज ऋषभने वहाँ भी वानप्रस्थ-आश्रमकी विधिसे रहते हुए निश्चयपूर्वक तपस्या की तथा नियमानुकूल यज्ञानुष्ठान किये। वे तपस्याके कारण सूखकर अत्यन्त कृश हो गये और उनके शरीरकी शिराएँ (रक्तवाहिनी नाड़ियाँ) दिखायी देने लगीं। अन्तमें अपने मुखमें एक पत्थरका गोला रखकर उन्होंने नग्नावस्थामें महाप्रस्थान किया।

पिता ऋषभदेवजीने वन जाते समय अपना राज्य भरतजीको दिया था; अतः तबसे यह (हिमवर्ष) इस लोकमें भारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ। भरतजीके सुमति नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ। पिता (भरत) ने यज्ञानुष्ठानपूर्वक न्यायतः राज्यका पालन करके अन्तमें उसे सुमतिको सौंप दिया।

नहीं बहती है, जिसका जल वहाँके रहनेवाले पीते हैं। उसका पान करनेसे वहाँके सुगन्धित लोगोंको पसीना, दुर्गन्ध, बुढ़ापा अथवा इन्द्रियक्षय नहीं होता। उसके किनारेकी मृत्तिका उस रसमें मिलकर मन्द-मन्द वायुसे सूखनेपर जाम्बूनद नामक सुवर्ण हो जाती है। मेरुके पूर्वमें भद्राश्ववर्ष और पश्चिममें केतुमालवर्ष है तथा मुनिश्रेष्ठ! इन दोनोंके बीचमें इलावृतवर्ष है। इसी प्रकार उसके पूर्वकी ओर चैत्ररथ, दक्षिणकी ओर गन्धमादन, पश्चिमकी ओर वैभ्राज और उत्तरकी ओर नन्दन नामक वन है। तथा सर्वदा देवताओंसे सेवनीय अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस—ये चार सरोवर हैं।

मैत्रेय! शीताम्भ, कुमुन्द, कुररी, माल्यवान् तथा वैकङ्क आदि पर्वत भूपद्मकी कर्णिकारूप मेरुके पूर्व-दिशाके केसराचल हैं। त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक और निषध आदि केसराचल उसके दक्षिण ओर हैं। शिखिवासा, वैडूर्य, कपिल, गन्धमादन और जारुधि आदि उसके पश्चिमीय केसरपर्वत हैं तथा मेरुके अति समीपस्थ इलावृतवर्षमें और जठरादि देशोंमें स्थित शङ्खकूट, ऋषभ, हंस, नाग तथा कालञ्ज आदि पर्वत उत्तरदिशाके केसराचल हैं।

मैत्रेय! मेरुके ऊपर अन्तरिक्षमें चौदह सहस्र योजनके विस्तारवाली ब्रह्माजीकी महापुरी (ब्रह्मपुरी) है। उसके सब ओर दिशा एवं विदिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालोंके आठ अति रमणीक और विख्यात नगर हैं। विष्णुपादोद्भवा श्रीगङ्गाजी चन्द्रमण्डलको चारों ओरसे आप्लावित कर स्वर्गलोकसे ब्रह्मपुरीमें गिरती हैं। वहाँ गिरनेपर वे चारों दिशाओंमें क्रमसे सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामसे चार भागोंमें विभक्त हो जाती हैं। उनमेंसे सीता पूर्वकी ओर आकाशमार्गसे एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर जाती हुई अन्तमें पूर्वस्थित भद्राश्ववर्षको पारकर समुद्रमें मिल जाती है। इसी प्रकार महामुने! अलकनन्दा दक्षिण-दिशाकी ओर भारतवर्षमें आती है और सात भागोंमें विभक्त होकर समुद्रमें मिल जाती है। चक्षु पश्चिमदिशाके समस्त पर्वतोंको पारकर केतुमाल नामक वर्षमें बहती हुई अन्तमें सागरमें जा गिरती है। तथा महामुने! भद्रा उत्तरके पर्वतों और उत्तरकुरुवर्षको पार करती हुई उत्तरीय समुद्रमें मिल जाती है। माल्यवान् और गन्धमादनपर्वत उत्तर तथा दक्षिणकी ओर नीलाचल और निषधपर्वततक फैले हुए हैं। उन दोनोंके बीचमें कर्णिकाकार मेरुपर्वत स्थित है।

मैत्रेय! मर्यादापर्वतोंके बहिर्भागमें स्थित भारत, केतुमाल, भद्राश्व और कुरुवर्ष इस लोकपद्मके पत्तोंके समान हैं। जठर और देवकूट—ये दोनों मर्यादापर्वत हैं, जो उत्तर और दक्षिणकी ओर नील तथा निषधपर्वततक फैले हुए हैं। पूर्व और पश्चिमकी ओर फैले हुए गन्धमादन और कैलास—ये दो पर्वत, जिनका विस्तार अस्सी योजन है, समुद्रके भीतर स्थित हैं। पूर्वके समान मेरुसे पश्चिम ओर भी निषध और पारियात्र नामक दो मर्यादापर्वत स्थित हैं। उत्तरकी ओर त्रिशृङ्ग और जारुधि नामक वर्षपर्वत हैं। ये दोनों पूर्व और पश्चिमकी ओर समुद्रके गर्भमें स्थित हैं। इस प्रकार मुनिवर! तुमसे जठर आदि मर्यादापर्वतोंका वर्णन किया, जिनमेंसे दो-दो मेरुकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं।

मुने! मेरुके चारों ओर स्थित जिन शीतान्त आदि केसरपर्वतोंके विषयमें तुमसे कहा था, उनके बीचमें सिद्ध-चारणादिसे सेवित अति सुन्दर कन्दराएँ हैं। मुनिसत्तम! उनमें सुरम्य नगर तथा उपवन हैं और लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि एवं सूर्य आदि देवताओंके अत्यन्त सुन्दर मन्दिर हैं, जो सदा किन्नरश्रेष्ठोंसे सेवित रहते हैं। उन सुन्दर पर्वत-द्रोणियोंमें गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानवादि अहर्निश क्रीडा करते हैं। मुने! ये सम्पूर्ण स्थान भौम (पृथिवीके) स्वर्ग कहलाते हैं; ये धार्मिक पुरुषोंके निवासस्थान हैं। पापकर्मा पुरुष इनमें सौ जन्ममें भी नहीं जा सकते।

द्विज! श्रीविष्णुभगवान् भद्राश्ववर्षमें हयग्रीवरूपसे, केतुमालवर्षमें वराहरूपसे और भारतवर्षमें कूर्मरूपसे रहते हैं। वे भक्तप्रतिपालक श्रीगोविन्द कुरुवर्षमें मत्स्यरूपसे रहते हैं। इस प्रकार वे सर्वमय सर्वगामी हरि विश्वरूपसे सर्वत्र ही रहते हैं। मैत्रेय! वे सबके आधारभूत और सर्वात्मक हैं। महामुने! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें शोक, श्रम, उद्वेग और क्षुधाका भय आदि कुछ भी नहीं है। वहाँकी प्रजा स्वस्थ, आतङ्कहीन और समस्त दुःखोंसे रहित है तथा वहाँके लोग दस-बारह हजार वर्षकी स्थिर आयुवाले होते हैं। उनमें वर्षा कभी नहीं होती, केवल पार्थिव जल ही है। द्विजोत्तम! इन सभी वर्षोंमें सात-सात कुलपर्वत हैं और उनसे निकली हुई सैकड़ों नदियाँ हैं।

वहाँ बहती है, जिसका जल वहाँके रहनेवाले पीते हैं। उसका पान करनेसे वहाँके सुरचित्त लोगोंको पसीना, दुर्गन्ध, बुढ़ापा अथवा इन्द्रियक्षय नहीं होता। उसके किनारेकी मृत्तिका उस रसमें मिलकर मन्द-मन्द वायुसे सूखनेपर जाम्बूनद नामक सुवर्ण हो जाती है। मेरुके पूर्वमें भद्राश्ववर्ष और पश्चिममें केतुमालवर्ष है तथा मुनिश्रेष्ठ ! इन दोनोंके बीचमें इलावृतवर्ष है। इसी प्रकार उसके पूर्वकी ओर चैत्ररथ, दक्षिणकी ओर गन्धमादन, पश्चिमकी ओर वैभ्राज और उत्तरकी ओर नन्दन नामक वन है। तथा सर्वदा देवताओंसे सेवनीय अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस—ये चार सरोवर हैं।

मैत्रेय ! शीताम्भ, कुमुन्द, कुररी, माल्यवान् तथा वैकङ्क आदि पर्वत भूपद्मकी कर्णिकारूप मेरुके पूर्व-दिशाके केसराचल हैं। त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक और निषध आदि केसराचल उसके दक्षिण ओर हैं। शिखिवासा, वैडूर्य, कपिल, गन्धमादन और जारुधि आदि उसके पश्चिमीय केसरपर्वत हैं तथा मेरुके अति समीपस्थ इलावृतवर्षमें और जठरादि देशोंमें स्थित शङ्खकूट, ऋषभ, हंस, नाग तथा कालञ्ज आदि पर्वत उत्तरदिशाके केसराचल हैं।

मैत्रेय ! मेरुके ऊपर अन्तरिक्षमें चौदह सहस्र योजनके विस्तारवाली ब्रह्माजीकी महापुरी (ब्रह्मपुरी) है। उसके सब ओर दिशा एव विदिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालोंके आठ अति रमणीक और विख्यात नगर हैं। विष्णुपादोद्भवा श्रीगङ्गाजी चन्द्रमण्डलको चारों ओरसे आप्लावित कर स्वर्ग-लोकसे ब्रह्मपुरीमें गिरती हैं। वहाँ गिरनेपर वे चारों दिशाओंमें क्रमसे सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामसे चार भागोंमें विभक्त हो जाती हैं। उनमेंसे सीता पूर्वकी ओर आकाशमार्गसे एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर जाती हुई अन्तमें पूर्वस्थित भद्राश्ववर्षको पारकर समुद्रमें मिल जाती है। इसी प्रकार महामुने ! अलकनन्दा दक्षिण-दिशाकी ओर भारतवर्षमें आती है और सात भागोंमें विभक्त होकर समुद्रमें मिल जाती है। चक्षु पश्चिमदिशाके समस्त पर्वतोंको पारकर केतुमाल नामक वर्षमें बहती हुई अन्तमें सागरमें जा गिरती है। तथा महामुने ! भद्रा उत्तरके पर्वतों और उत्तर-कुरुवर्षको पार करती हुई उत्तरीय समुद्रमें मिल जाती है। माल्यवान् और गन्धमादनपर्वत उत्तर तथा दक्षिणकी ओर नीलाचल और निषधपर्वततक फैले हुए हैं। उन दोनोंके बीचमें कर्णिकाकार मेरुपर्वत स्थित है।

मैत्रेय ! मर्यादापर्वतोंके बहिर्भागमें स्थित भारत, केतुमाल, भद्राश्व और कुरुवर्ष इस लोकपद्मके पत्तोंके समान हैं। जठर और देवकूट—ये दोनों मर्यादापर्वत हैं, जो उत्तर और दक्षिण-की ओर नील तथा निषधपर्वततक फैले हुए हैं। पूर्व और पश्चिमकी ओर फैले हुए गन्धमादन और कैलास—ये दो पर्वत, जिनका विस्तार अस्सी योजन है, समुद्रके भीतर स्थित हैं। पूर्वके समान मेरुसे पश्चिम ओर भी निषध और पारियात्र नामक दो मर्यादापर्वत स्थित हैं। उत्तरकी ओर त्रिशृङ्ग और जारुधि नामक वर्षपर्वत हैं। ये दोनों पूर्व और पश्चिमकी ओर समुद्रके गर्भमें स्थित हैं। इस प्रकार मुनिवर ! तुमसे जठर आदि मर्यादापर्वतोंका वर्णन किया, जिनमेंसे दो-दो मेरुकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं।

मुने ! मेरुके चारों ओर स्थित जिन शीतान्त आदि केसरपर्वतोंके विषयमें तुमसे कहा था, उनके बीचमें सिद्ध-चारणादिसे सेवित अति सुन्दर कन्दराएँ हैं। मुनिसत्तम ! उनमें सुरम्य नगर तथा उपवन हैं और लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि एवं सूर्य आदि देवताओंके अत्यन्त सुन्दर मन्दिर हैं, जो सदा किन्नरश्रेष्ठोंसे सेवित रहते हैं। उन सुन्दर पर्वत-द्रोणियोंमें गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानवादि अहर्निश क्रीडा करते हैं। मुने ! ये सम्पूर्ण स्थान भौम (पृथिवीके) स्वर्ग कहलाते हैं; ये धार्मिक पुरुषोंके निवासस्थान हैं। पापकर्मा पुरुष इनमें सौ जन्ममें भी नहीं जा सकते।

द्विज ! श्रीविष्णुभगवान् भद्राश्ववर्षमें हयग्रीवरूपसे, केतुमाल-वर्षमें वराहरूपसे और भारतवर्षमें कूर्मरूपसे रहते हैं। वे भक्तप्रतिपालक श्रीगोविन्द कुरुवर्षमें मत्स्यरूपसे रहते हैं। इस प्रकार वे सर्वमय सर्वगामी हरि विश्वरूपसे सर्वत्र ही रहते हैं। मैत्रेय ! वे सबके आधारभूत और सर्वात्मक हैं। महामुने ! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें शोक, श्रम, उद्वेग और क्षुधाका भय आदि कुछ भी नहीं है। वहाँकी प्रजा स्वस्थ, आतङ्कहीन और समस्त दुःखोंसे रहित है तथा वहाँके लोग दस-बारह हजार वर्षकी स्थिर आयुवाले होते हैं। उनमें वर्षा कभी नहीं होती, केवल पार्थिव जल ही है। द्विजोत्तम ! इन सभी वर्षोंमें सात-सात कुलपर्वत हैं और उनसे निकली हुई सैकड़ों नदियाँ हैं।

प्लक्ष तथा शाल्मल आदि द्वीपोंका विशेष वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लक्ष योजन है; और ब्रह्मन्! प्लक्षद्वीपका उससे दूना कहा जाता है। प्लक्षद्वीपके स्वामी मेधातिथिके सात पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़ा शान्तहय था और उससे छोटा शिशिर। उनके अनन्तर क्रमशः सुखोदय, आनन्द, शिव और क्षेमक हुए। सातवाँ पुत्र ध्रुव था। ये सब प्लक्षद्वीपके अधीश्वर हुए। उनके अपने-अपने अधिकृत वर्षोंमें प्रथम शान्तहयवर्ष है तथा अन्य शिशिरवर्ष, सुखोदयवर्ष, आनन्दवर्ष, शिववर्ष, क्षेमकवर्ष और ध्रुववर्ष हैं तथा उनकी मर्यादा निश्चित करनेवाले अन्य सात पर्वत हैं। मुनिश्रेष्ठ! उनके नाम हैं—गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना और सातवाँ वैभ्राज।

इन अति सुरम्य वर्ष-पर्वतों और वर्षोंमें देवता और गन्धर्वोंके सहित सदा निष्पाप प्रजा निवास करती है। वहाँके निवासीगण पुण्यवान् होते और वे चिरकालतक जीवित रहकर मरते हैं; उनको किसी प्रकारकी आधि-व्याधि नहीं होती, निरन्तर सुख ही रहता है। उन वर्षोंकी सात ही समुद्र-गामिनी नदियाँ हैं। उनके नाम मैं तुम्हें बतलाता हूँ, जिनके श्रवणमात्रसे वे पापोंको दूर कर देती हैं। वहाँ अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, अक्लमा, अमृता और सुकृता—ये ही सात नदियाँ हैं। यह मैंने तुमसे प्रधान-प्रधान पर्वत और नदियोंका वर्णन किया है; वहाँ छोटे-छोटे पर्वत और नदियाँ तो और भी सहस्रों हैं। उस देशके हृष्ट-पुष्ट लोग सदा उन नदियोंका जल पान करते हैं। द्विज! उन लोगोंमें ह्रास अथवा वृद्धि नहीं होती। महामते! ब्रह्मन्! प्लक्षद्वीपसे लेकर शाकद्वीपपर्यन्त छहों द्वीपोंमें सदा त्रेतायुगके समान समय रहता है। इन द्वीपोंके मनुष्य सदा नीरोग रहकर पाँच हजार वर्षतक जीते हैं और इनमें वर्णाश्रम-विभागानुसार पाँचों धर्म (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) वर्तमान रहते हैं।

वहाँ जो चार वर्ण हैं वह मैं तुमको सुनाता हूँ। मुनिसत्तम! उस द्वीपमें जो आर्यक, कुरर, विदिश्य और भावी नामक जातियाँ हैं, वे ही क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। द्विजोत्तम! उसीमें जम्बूवृक्षके ही परिमाणवाला एक प्लक्ष (पाकर) का वृक्ष है, जिसके नामसे उसकी संज्ञा प्लक्षद्वीप हुई है। वहाँ आर्यकादि वर्णोंद्वारा जगत्स्रष्टा, सर्वरूप, सर्वेश्वर भगवान् हरिका सोमरूपसे यजन किया जाता है। प्लक्षद्वीप अपने ही बराबर परिमाणवाले वृत्ताकार इक्षुरसके समुद्रसे घिरा हुआ है। मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेपमें प्लक्षद्वीपका वर्णन किया, अब तुम शाल्मलद्वीपका विवरण सुनो।

शाल्मलद्वीपके स्वामी वीरवर वपुष्मान् थे। उनके पुत्रोंके नाम सुनो। महामुने! वे श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ थे। उनके सात वर्ष उन्हींके नामानुसार संज्ञावाले हैं। यह (प्लक्षद्वीपको घेरनेवाला) इक्षुरसका समुद्र अपनेसे दूने विस्तारवाले इस शाल्मलद्वीपसे चारों ओरसे घिरा हुआ है। वहाँ भी रत्नोंके उद्भवस्थानरूप सात पर्वत हैं, जो उसके सातों वर्षोंके सूचक हैं तथा सात ही नदियाँ हैं। पर्वतोंमें पहला कुमुद, दूसरा उन्नत, तीसरा बलाहक तथा चौथा द्रोणाचल है, जिसमें नाना प्रकारकी महौषधियाँ हैं। पाँचवाँ कङ्क, छठा महिष और सातवाँ गिरिवर ककुद्मान् है। अब नदियोंके नाम सुनो। वे योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, मुक्ता, विमोचनी और निवृत्ति हैं तथा स्मरणमात्रसे ही सारे पापोंको शान्त कर देनेवाली हैं। श्वेत, हरित, वैद्युत, मानस, जीमूत, रोहित और अति शोभायमान सुप्रभ—ये उसके चारो वर्णोंसे युक्त सात वर्ष हैं। महामुने! शाल्मलद्वीपमें कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण—ये चार वर्ण पृथक्-पृथक् निवास करते हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। ये यजनशील लोग सबके आत्मा, अव्यय और यज्ञके आश्रय वायुरूप विष्णु-भगवान्‌का श्रेष्ठ यज्ञोंद्वारा यजन करते हुए पूजन करते हैं। इस अत्यन्त मनोहर द्वीपमें देवगण सदा विराजमान रहते हैं। इसमें शाल्मल (सेमल) का एक महान् वृक्ष है जो अपने नामसे ही अत्यन्त शान्तिदायक है। यह द्वीप अपने समान ही विस्तारवाले एक मदिराके समुद्रसे सब ओरसे पूर्णतया घिरा हुआ है और यह सुरासमुद्र शाल्मलद्वीपसे दूने विस्तारवाले कुशद्वीपद्वारा सब ओरसे परिवेष्टित है।

कुशद्वीपमें वहाँके अधिपति ज्योतिष्मान्‌के सात पुत्र थे, उनके नाम सुनो। वे उद्भिद, वेणुमान्, वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर और कपिल थे। उनके नामानुसार ही वहाँके वर्षोंके नाम पड़े। उसमें दैत्य और दानवोंके सहित मनुष्य तथा देव, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर आदि निवास करते हैं। महामुने! वहाँ भी अपने-अपने कर्मोंमें तत्पर दमी, शुष्मी

प्लक्ष तथा शाल्मल आदि द्वीपोंका विशेष वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लक्ष योजन है; और ब्रह्मन्! प्लक्षद्वीपका उससे दूना कहा जाता है। प्लक्षद्वीपके स्वामी मेधातिथिके सात पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़ा शान्तहय था और उससे छोटा शिशिर। उनके अनन्तर क्रमशः सुखोदय, आनन्द, शिव और क्षेमक हुए। सातवाँ पुत्र ध्रुव था। ये सब प्लक्षद्वीपके अधीश्वर हुए। उनके अपने-अपने अधिकृत वर्षोंमें प्रथम शान्तहयवर्ष है तथा अन्य शिशिरवर्ष, सुखोदयवर्ष, आनन्दवर्ष, शिववर्ष, क्षेमकवर्ष और ध्रुववर्ष हैं तथा उनकी मर्यादा निश्चित करनेवाले अन्य सात पर्वत हैं। मुनिश्रेष्ठ! उनके नाम हैं—गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना और सातवाँ वैभ्राज।

इन अति सुरम्य वर्ष-पर्वतों और वर्षोंमें देवता और गन्धर्वोंके सहित सदा निष्पाप प्रजा निवास करती है। वहाँके निवासीगण पुण्यवान् होते और वे चिरकालतक जीवित रहकर मरते हैं; उनको किसी प्रकारकी आधि-व्याधि नहीं होती, निरन्तर सुख ही रहता है। उन वर्षोंकी सात ही समुद्र-गामिनी नदियाँ हैं। उनके नाम मैं तुम्हें बतलाता हूँ, जिनके श्रवणमात्रसे वे पापोंको दूर कर देती हैं। वहाँ अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, अक्लमा, अमृता और सुकृता—ये ही सात नदियाँ हैं। यह मैंने तुमसे प्रधान-प्रधान पर्वत और नदियोंका वर्णन किया है; वहाँ छोटे-छोटे पर्वत और नदियाँ तो और भी सहस्रों हैं। उस देशके हृष्ट-पुष्ट लोग सदा उन नदियोंका जल पान करते हैं। द्विज! उन लोगोंमें ह्रास अथवा वृद्धि नहीं होती। महामते! ब्रह्मन्! प्लक्षद्वीपसे लेकर शाकद्वीपपर्यन्त छहों द्वीपोंमें सदा त्रेतायुगके समान समय रहता है। इन द्वीपोंके मनुष्य सदा नीरोग रहकर पाँच हजार वर्षतक जीते हैं और इनमें वर्णाश्रम-विभागानुसार पाँचों धर्म (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) वर्तमान रहते हैं।

वहाँ जो चार वर्ण हैं वह मैं तुमको सुनाता हूँ। मुनिसत्तम! उस द्वीपमें जो आर्यक, कुरर, विदिश्य और भावी नामक जातियाँ हैं, वे ही क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। द्विजोत्तम! उसीमें जम्बूवृक्षके ही परिमाणवाला एक प्लक्ष (पाकर) का वृक्ष है, जिसके नामसे उसकी संज्ञा प्लक्षद्वीप हुई है। वहाँ आर्यकादि वर्णोंद्वारा जगत्स्रष्टा, सर्वरूप, सर्वेश्वर भगवान् हरिका सोमरूपसे यजन किया जाता है। प्लक्षद्वीप अपने ही बराबर परिमाणवाले वृत्ताकार इक्षुरसके समुद्रसे घिरा हुआ है। मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेपमें प्लक्षद्वीपका वर्णन किया, अब तुम शाल्मलद्वीपका विवरण सुनो।

शाल्मलद्वीपके स्वामी वीरवर वपुष्मान् थे। उनके पुत्रोंके नाम सुनो। महामुने! वे श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ थे। उनके सात वर्ष उन्हींके नामानुसार संज्ञावाले हैं। यह (प्लक्षद्वीपको घेरनेवाला) इक्षुरसका समुद्र अपनेसे दूने विस्तारवाले इस शाल्मलद्वीपसे चारों ओरसे घिरा हुआ है। वहाँ भी रत्नोंके उद्भवस्थानरूप सात पर्वत हैं, जो उसके सातों वर्षोंके सूचक हैं तथा सात ही नदियाँ हैं। पर्वतोंमें पहला कुमुद, दूसरा उन्नत, तीसरा बलाहक तथा चौथा द्रोणाचल है, जिसमें नाना प्रकारकी महौषधियाँ हैं। पाँचवाँ कङ्क, छठा महिष और सातवाँ गिरिवर ककुद्मान् है। अब नदियोंके नाम सुनो। वे योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, मुक्ता, विमोचनी और निवृत्ति हैं तथा स्मरणमात्रसे ही सारे पापोंको शान्त कर देनेवाली हैं। श्वेत, हरित, वैद्युत, मानस, जीमूत, रोहित और अति शोभायमान सुप्रभ—ये उसके चारो वर्णोंसे युक्त सात वर्ष हैं। महामुने! शाल्मलद्वीपमें कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण—ये चार वर्ण पृथक्-पृथक् निवास करते हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। ये यजनशील लोग सबके आत्मा, अव्यय और यज्ञके आश्रय वायुरूप विष्णु-भगवान्‌का श्रेष्ठ यज्ञोंद्वारा यजन करते हुए पूजन करते हैं। इस अत्यन्त मनोहर द्वीपमें देवगण सदा विराजमान रहते हैं। इसमें शाल्मल (सेमल) का एक महान् वृक्ष है जो अपने नामसे ही अत्यन्त शान्तिदायक है। यह द्वीप अपने समान ही विस्तारवाले एक मदिराके समुद्रसे सब ओरसे पूर्णतया घिरा हुआ है और यह सुरासमुद्र शाल्मलद्वीपसे दूने विस्तारवाले कुशद्वीपद्वारा सब ओरसे परिवेष्टित है।

कुशद्वीपमें वहाँके अधिपति ज्योतिष्मान्‌के सात पुत्र थे, उनके नाम सुनो। वे उद्भिद, वेणुमान्, वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर और कपिल थे। उनके नामानुसार ही वहाँके वर्षोंके नाम पड़े। उसमें दैत्य और दानवोंके सहित मनुष्य तथा देव, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर आदि निवास करते हैं। महामुने! वहाँ भी अपने-अपने कर्मोंमें तत्पर दमी, शुष्मी

ईर्ष्या, असूया, भय, द्वेष और लोभादि दोष ही हैं। महावीरवर्ष मानसोत्तर पर्वतके बाहरकी ओर है और धातकीखण्ड भीतरकी ओर। इनमें देव और दैत्य आदि निवास करते हैं। दोनों वर्षोंसे युक्त उस पुष्करद्वीपमें सत्य और मिथ्याका व्यवहार नहीं है और न उसमें पर्वत तथा नदियाँ ही हैं। वहाँके मनुष्य और देवगण समान वेष और समान रूपवाले होते हैं। मैत्रेय! वर्णाश्रमाचारसे हीन, काम्य कर्मोंसे रहित तथा वेदत्रयी, कृषि, दण्डनीति और शुश्रूषा आदिसे शून्य वे दोनों वर्ष तो मानो अत्युत्तम भौम (पृथिवीके) स्वर्ग हैं। मुने! उन महावीर और धातकीखण्ड नामक वर्षोंमें काल (समय) समस्त ऋतुओंमें सुखदायक और जरा तथा रोगादिसे रहित रहता है। पुष्करद्वीपमें ब्रह्माजीका उत्तम निवासस्थान एक न्यग्रोध (वट) का वृक्ष है, जहाँ देवता और दानवादिसे पूजित श्रीब्रह्माजी विराजते हैं। पुष्करद्वीप चारों ओरसे अपने ही समान विस्तारवाले मीठे पानीके समुद्रसे मण्डलके समान घिरा हुआ है।

इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं और वे द्वीप तथा उन्हें घेरनेवाले समुद्र परस्पर समान हैं और उत्तरोत्तर दूने होते गये हैं। सभी समुद्रोंमें सदा समान जल रहता है, उसमें कभी न्यूनता अथवा अधिकता नहीं होती। मुनिश्रेष्ठ! पात्रका जल जिस प्रकार अग्निका संयोग होनेसे उबलने लगता है उसी प्रकार चन्द्रमाकी कलाओंके बढ़नेसे समुद्रका जल भी बढ़ने लगता है। शुक्ल और कृष्ण पक्षोंमें चन्द्रमाके उदय और अस्तसे न्यूनाधिक न होते हुए ही जल घटता और बढ़ता है। महामुने! समुद्रके जलकी वृद्धि और क्षय पाँच सौ दस (५१०) अंगुलतक देखी जाती है। विप्र! पुष्करद्वीपमें सम्पूर्ण प्रजावर्ग सर्वदा बिना प्रयत्नके अपने-आप ही प्राप्त हुए षड्रस भोजनका आहार करते हैं।

स्वादूदक (मीठे पानीके) समुद्रके चारों ओर लोक निवाससे शून्य और समस्त जीवोंसे रहित उससे दूनी सुवर्णमयी भूमि दिखायी देती है। वहाँ दस सहस्र योजन विस्तारवाला लोकालोक-पर्वत है। वह पर्वत ऊँचाईमें भी उतने ही सहस्र योजन है। उसके आगे उस पर्वतको सब ओरसे आवृतकर घोर अन्धकार छाया हुआ है तथा वह अन्धकार चारों ओरसे ब्रह्माण्ड-कटाहसे आवृत है। महामुने! अण्डकटाहके सहित द्वीप, समुद्र और पर्वतादियुक्त यह समस्त भूमण्डल पचास करोड़ योजन विस्तारवाला है। मैत्रेय! आकाशादि समस्त भूतोंसे अधिक गुणवाली यह पृथिवी सम्पूर्ण जगत्की आधारभूता और उसका पालन तथा उद्भव करनेवाली है।

सात पाताललोकोंका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विज! मैंने तुमसे यह पृथ्वीका विस्तार कहा; इसकी ऊँचाई भी सत्तर सहस्र योजन कही जाती है। मुनिसत्तम! अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान, महातल, सुतल और पाताल—इन सातोंमेंसे प्रत्येक पाताल दस-दस सहस्र योजनकी दूरीपर है। मैत्रेय! सुन्दर महलोंसे सुशोभित वहाँकी भूमियाँ शुक्ल, कृष्ण, अरुण और पीत वर्णकी तथा शर्करामयी (कँकरीली), शैली (पत्थरकी) और सुवर्णमयी हैं। महामुने! उनमें दानव, दैत्य, यक्ष और बड़े-बड़े नाग आदिकी सैकड़ों जातियाँ निवास करती हैं। एक बार नारदजीने पातालोंसे स्वर्गमें जाकर वहाँके निवासियोंसे कहा था कि 'पाताल तो स्वर्गसे भी अधिक सुन्दर है। जहाँ नागोंके आभूषणोंमें सुन्दर प्रभायुक्त आह्लादकारिणी शुभ्र मणियाँ जड़ी हुई हैं, उस पातालको किसके समान कहें? जहाँ-तहाँ दैत्य और दानवोंकी कन्याओंसे सुशोभित पाताललोकमें किस मुक्त पुरुषकी भी प्रीति न होगी। जहाँ दिनमें सूर्यकी किरणें केवल प्रकाश ही करती हैं, घाम नहीं करतीं, तथा रातमें चन्द्रमाकी किरणोंसे शीत नहीं होता, केवल चाँदनी ही फैलती है। जहाँ भक्ष्य, भोज्य और महापानादिके भोगोंसे आनन्दित सर्पों तथा दानवादिको समय जाता हुआ भी प्रतीत नहीं होता। जहाँ सुन्दर वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर और कमलोंके वन हैं, जहाँ नरकोकिलोंकी सुमधुर कूक गूँजती है, एवं आकाश मनोहारी है। और द्विज! जहाँ पातालनिवासी दैत्य, दानव एवं नागोंद्वारा अति स्वच्छ आभूषण, सुगन्धमय अनुलेपन, वीणा, वेणु और मृदंगादिके स्वर तथा तूर्य—ये सब एवं भाग्यशालियोंके भोगनेयोग्य और भी अनेक भोग भोगे जाते हैं।

ईर्ष्या, असूया, भय, द्वेष और लोभादि दोष ही हैं। महावीरवर्ष मानसोत्तर पर्वतके बाहरकी ओर है और धातकीखण्ड भीतरकी ओर। इनमें देव और दैत्य आदि निवास करते हैं। दो खण्डोंसे युक्त उस पुष्करद्वीपमें सत्य और मिथ्याका व्यवहार नहीं है और न उसमें पर्वत तथा नदियाँ ही हैं। वहाँके मनुष्य और देवगण समान वेष और समान रूपवाले होते हैं। मैत्रेय! वर्णाश्रमाचारसे हीन, काम्य कर्मोंसे रहित तथा वेदत्रयी, कृषि, दण्डनीति और शुश्रूषा आदिसे शून्य वे दोनों वर्ष तो मानो अत्युत्तम भौम (पृथिवीके) स्वर्ग हैं। मुने! उन महावीर और धातकीखण्ड नामक वर्षोंमें काल (समय) समस्त ऋतुओंमें सुखदायक और जरा तथा रोगादिसे रहित रहता है। पुष्करद्वीपमें ब्रह्माजीका उत्तम निवासस्थान एक न्यग्रोध (वट) का वृक्ष है, जहाँ देवता और दानवादिसे पूजित श्रीब्रह्माजी विराजते हैं। पुष्करद्वीप चारों ओरसे अपने ही समान विस्तारवाले मीठे पानीके समुद्रसे मण्डलके समान घिरा हुआ है।

इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं और वे द्वीप तथा उन्हें घेरनेवाले समुद्र परस्पर समान हैं और उत्तरोत्तर दूने होते गये हैं। सभी समुद्रोंमें सदा समान जल रहता है, उसमें कभी न्यूनता अथवा अधिकता नहीं होती। मुनिश्रेष्ठ! पात्रका जल जिस प्रकार अग्निका संयोग होनेसे उबलने लगता है उसी प्रकार चन्द्रमाकी कलाओंके बढ़नेसे समुद्रका जल भी बढ़ने लगता है। शुक्ल और कृष्ण पक्षोंमें चन्द्रमाके उदय और अस्तसे न्यूनाधिक न होते हुए ही जल घटता और बढ़ता है। महामुने! समुद्रके जलकी वृद्धि और क्षय पाँच सौ दस (५१०) अंगुलतक देखी जाती है। विप्र! पुष्करद्वीपमें सम्पूर्ण प्रजावर्ग सर्वदा बिना प्रयत्नके अपने-आप ही प्राप्त हुए षड्रस भोजनका आहार करते हैं।

स्वादूदक (मीठे पानीके) समुद्रके चारों ओर लोक निवाससे शून्य और समस्त जीवोंसे रहित उससे दूनी सुवर्णमयी भूमि दिखायी देती है। वहाँ दस सहस्र योजन विस्तारवाला लोकालोक-पर्वत है। वह पर्वत ऊँचाईमें भी उतने ही सहस्र योजन है। उसके आगे उस पर्वतको सब ओरसे आवृतकर घोर अन्धकार छाया हुआ है तथा वह अन्धकार चारों ओरसे ब्रह्माण्ड-कटाहसे आवृत है। महामुने! अण्डकटाहके सहित द्वीप, समुद्र और पर्वतादियुक्त यह समस्त भूमण्डल पचास करोड योजन विस्तारवाला है। मैत्रेय! आकाशादि समस्त भूतोंसे अधिक गुणवाली यह पृथिवी सम्पूर्ण जगत्‌की आधारभूता और उसका पालन तथा उद्भव करनेवाली है।

सात पाताललोकोंका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विज! मैंने तुमसे यह पृथ्वीका विस्तार कहा; इसकी ऊँचाई भी सत्तर सहस्र योजन कही जाती है। मुनिसत्तम! अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान, महातल, सुतल और पाताल—इन सातोंमेंसे प्रत्येक पाताल दस-दस सहस्र योजनकी दूरीपर है। मैत्रेय! सुन्दर महलोंसे सुशोभित वहाँकी भूमियाँ शुक्ल, कृष्ण, अरुण और पीत वर्णकी तथा शर्करामयी (कँकरीली), शैली (पत्थरकी) और सुवर्णमयी हैं। महामुने! उनमें दानव, दैत्य, यक्ष और बड़े-बड़े नाग आदिकी सैकड़ों जातियाँ निवास करती हैं। एक बार नारदजीने पातालोंसे स्वर्गमें जाकर वहाँके निवासियोंसे कहा था कि 'पाताल तो स्वर्गसे भी अधिक सुन्दर है। जहाँ नागोंके आभूषणोंमें सुन्दर प्रभायुक्त आह्लादकारिणी शुभ्र मणियाँ जड़ी हुई हैं, उस पातालको किसके समान कहें? जहाँ-तहाँ दैत्य और दानवोंकी कन्याओंसे सुशोभित पाताललोकमें किस मुक्त पुरुषकी भी प्रीति न होगी। जहाँ दिनमें सूर्यकी किरणें केवल प्रकाश ही करती हैं, घाम नहीं करतीं, तथा रातमें चन्द्रमाकी किरणोंसे शीत नहीं होता, केवल चाँदनी ही फैलती है। जहाँ भक्ष्य, भोज्य और महापानादिके भोगोंसे आनन्दित सर्पों तथा दानवादिको समय जाता हुआ भी प्रतीत नहीं होता। जहाँ सुन्दर वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर और कमलोंके वन हैं, जहाँ नरकोकिलोंकी सुमधुर कूक गूँजती है, एवं आकाश मनोहारी है। और द्विज! जहाँ पातालनिवासी दैत्य, दानव एवं नागोंद्वारा अति स्वच्छ आभूषण, सुगन्धमय अनुलेपन, वीणा, वेणु और मृदंगादिके स्वर तथा तूर्य—ये सब एवं भाग्यशालियोंके भोगनेयोग्य और भी अनेक भोग भोगे जाते हैं।

साध्वी स्त्रीको बेचनेवाला, कारागृहरक्षक, अश्वविक्रेता और भक्त पुरुषका त्याग करनेवाला—ये सब लोग तप्तलोह नरकमें गिरते हैं। पुत्रवधू और पुत्रीके साथ विषय करनेसे मनुष्य महाज्वाल नरकमें गिराया जाता है तथा जो नराधम गुरुजनोंका अपमान करनेवाला और उनसे दुर्वचन बोलनेवाला होता है तथा जो वेदकी निन्दा करनेवाला, वेद बेचनेवाला या अगम्या स्त्रीसे सम्भोग करता है, हे द्विज! वे सब लवण नरकमें जाते हैं। चोर तथा मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाला पुरुष विमोहित नरकमें गिरता है। जो पुरुष देव, द्विज और पितृगणसे द्वेष करनेवाला तथा रत्नको दूषित करनेवाला होता है, वह कृमिभक्ष नरकमें और अनिष्ट यज्ञ करनेवाला कृमीश नरकमें जाता है।

जो नराधम पितृगण, देवगण और अतिथियोंको छोड़कर उनसे पहले भोजन कर लेता है, वह अति उग्र लालाभक्ष नरकमें पड़ता है; और बाण बनानेवाला वेध नरकमें जाता है। जो मनुष्य कर्णी नामक बाण बनाते हैं और जो खड्गादि शस्त्र बनानेवाले हैं, वे अति दारुण विशसन नरकमें गिरते हैं। असत्-प्रतिग्रह लेनेवाला, अयाज्य-याजक और नक्षत्रोपजीवी पुरुष अधोमुख नरकमें पड़ता है। साहस (निष्ठुर कर्म) करनेवाला पुरुष पूयवह नरकमें जाता है तथा अकेले ही स्वादु भोजन करनेवाला मनुष्य और लाख, मांस, रस, तिल तथा लवण आदि बेचनेवाला ब्राह्मण उसी (पूयवह) नरकमें गिरता है। द्विजश्रेष्ठ! बिलाव, कुक्कुट, छाग, कुत्ता, शूकर तथा पक्षियोंको पालनेसे भी पुरुष उसी नरकमें जाता है। नीलगर, धीवरका कर्म करनेवाला, कुण्ड (उपपतिसे उत्पन्न संतान) का अन्न खानेवाला, विष देनेवाला, चुगलखोर, माहिषक (स्त्रीकी असद्वृत्तिके आश्रयसे रहनेवाला), धन आदिके लोभसे बिना पर्वके अमावास्या आदि पर्वदिनोंका कार्य करानेवाला द्विज, घरमें आग लगानेवाला, मित्रकी हत्या करनेवाला, शकुन आदि बतानेवाला, ग्रामका पुरोहित तथा सोम (मदिरा) बेचनेवाला—ये सब रुधिरान्ध नरकमें गिरते हैं। यज्ञ अथवा ग्रामको नष्ट करनेवाला पुरुष वैतरणी नरकमें जाता है तथा जो लोग हस्त-मैथुनादिमें वीर्यपात करनेवाले, शास्त्रमर्यादाको तोड़नेवाले, नास्तिक और छलवृत्तिके आश्रय रहनेवाले होते हैं, वे कृष्ण नरकमें गिरते हैं। जो वृथा ही वनोंको काटता है, वह असिपत्रवन नरकमें जाता है।

मेषोपजीवी (गड़रिये) और व्याधगण वह्नि ज्वाल नरकमें गिरते हैं तथा द्विज! जो कच्चे घड़े पकानेवाले अथवा ईंट और चूना आदिका भट्ठा लगानेवाले हैं, वे भी उस (वह्निज्वाल नरक) में ही जाते हैं। व्रतोंको लोप करनेवाले तथा अपने आश्रमसे पतित दोनों ही प्रकारके पुरुष संदंश नामक नरकमें गिरते हैं। जिन ब्रह्मचारियोंका दिनमें तथा सोते समय बुरी भावनासे वीर्यपात हो जाता है अथवा जो अपने ही पुत्रोंसे पढ़ते हैं, वे लोग श्वभोजन नरकमें गिरते हैं।

इस प्रकार, ये तथा अन्य सैकड़ों हजारों नरक हैं, जिनमें दुष्कर्मीलोग नाना प्रकारकी यातनाएँ भोगा करते हैं। इन उपर्युक्त पापोंके समान और भी सहस्रों पाप-कर्म हैं, उनके फल मनुष्य भिन्न-भिन्न नरकोंमें भोगा करते हैं। जो लोग अपने वर्णाश्रम-धर्मके विरुद्ध मन, वचन अथवा कर्मसे कोई पापाचरण करते हैं, वे नरकमें गिरते हैं। पापीलोग नरक-भोगके अनन्तर क्रमसे स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धार्मिक पुरुष, देवता तथा मुमुक्षु आदिका जन्म ग्रहण करते हैं। महाभाग! मुमुक्षुपर्यन्त इन सबमें पहलेकी अपेक्षा उत्तरोत्तर प्राणी सहस्रगुण श्रेष्ठ हैं। जो पापी पुरुष अपने पापका प्रायश्चित्त नहीं करते, वे ही नरकमें जाते हैं।

भिन्न-भिन्न पापोंके अनुरूप जो-जो प्रायश्चित्त हैं, उन्हीं-उन्हींको महर्षियोंने वेदार्थका स्मरण करके बताया है। मैत्रेय! स्वायम्भुव मनु आदि स्मृतिकारोंने महान् पापोंके लिये महान् और अल्पोंके लिये अल्प प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था की है, किंतु जितने भी तपस्यात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित्त हैं उन सबमें श्रीकृष्णस्मरण सर्वश्रेष्ठ है। जिस पुरुषके चित्तमें पाप-कर्मके अनन्तर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये तो एकमात्र हरिस्मरण परम प्रायश्चित्त है। प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रिमें और मध्याह्नादिके समय भगवान्‌का स्मरण करनेसे पाप क्षीण हो जानेपर मनुष्य श्रीनारायणको प्राप्त कर लेता है। श्रीविष्णु-भगवान्‌के स्मरणसे समस्त पापराशिके भस्म हो जानेसे पुरुष मोक्षपद प्राप्त कर लेता है, स्वर्ग-लाभ तो उसके लिये विघ्नरूप माना जाता है। मैत्रेय! जिसका चित्त जप, होम और अर्चनादि करते हुए निरन्तर भगवान् वासुदेवमें लगा रहता है, उसके लिये इन्द्रपद आदि फल तो अन्तराय (विघ्न) हैं। कहाँ तो पुनर्जन्मके चक्रमें डालनेवाली स्वर्ग-प्राप्ति और कहाँ मोक्षका सर्वोत्तम बीज 'वासुदेव' नामका जप! इसलिये मुने! श्रीविष्णुभगवान्‌का अहर्निश स्मरण करनेसे सम्पूर्ण पाप क्षीण

स्त्री [illegible] बेचनेवाला, [illegible], अश्वविक्रेता और भक्त पुरुषका त्याग करनेवाला—ये सब लोग तप्तलोह नरकमें गिरते हैं। पुत्रवधू और पुत्रीके साथ विषय करनेसे मनुष्य महाज्वाल नरकमें गिराया जाता है तथा जो नराधम गुरुजनोंका अपमान करनेवाला और उनसे दुर्वचन बोलनेवाला होता है तथा जो वेदकी निन्दा करनेवाला, वेद बेचनेवाला या अगम्या स्त्रीसे सम्भोग करता है, हे द्विज! वे सब शबल नरकमें जाते हैं। चोर तथा मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाला पुरुष विमोहित नरकमें गिरता है। जो पुरुष देव, द्विज और पितृगणसे द्वेष करनेवाला तथा रत्नको दूषित करनेवाला होता है, वह कृमिभक्ष नरकमें और अनिष्ट यज्ञ करनेवाला कृमीश नरकमें जाता है।

जो नराधम पितृगण, देवगण और अतिथियोंको छोड़कर उनसे पहले भोजन कर लेता है, वह अति उग्र लालाभक्ष नरकमें पड़ता है; और बाण बनानेवाला वेध नरकमें जाता है। जो मनुष्य कर्णी नामक बाण बनाते हैं और जो खड्गादि शस्त्र बनानेवाले हैं, वे अति दारुण विशसन नरकमें गिरते हैं। असत्-प्रतिग्रह लेनेवाला, अयाज्य-याजक और नक्षत्रोपजीवी पुरुष अधोमुख नरकमें पड़ता है। साहस (निष्ठुर कर्म) करनेवाला पुरुष पूयवह नरकमें जाता है तथा अकेले ही स्वादु भोजन करनेवाला मनुष्य और लाख, मांस, रस, तिल तथा लवण आदि बेचनेवाला ब्राह्मण उसी (पूयवह) नरकमें गिरता है। द्विजश्रेष्ठ! बिलाव, कुक्कुट, छाग, कुत्ता, शूकर तथा पक्षियोंको पालनेसे भी पुरुष उसी नरकमें जाता है। नीलगर, धीवरका कर्म करनेवाला, कुण्ड (उपपतिसे उत्पन्न संतान) का अन्न खानेवाला, विष देनेवाला, चुगलखोर, माहिषक (स्त्रीकी असद्वृत्तिके आश्रयसे रहनेवाला), धन आदिके लोभसे बिना पर्वके अमावास्या आदि पर्वदिनोंका कार्य करानेवाला द्विज, घरमें आग लगानेवाला, मित्रकी हत्या करनेवाला, शकुन आदि बतानेवाला, ग्रामका पुरोहित तथा सोम (मदिरा) बेचनेवाला—ये सब रुधिरान्ध नरकमें गिरते हैं। यज्ञ अथवा ग्रामको नष्ट करनेवाला पुरुष वैतरणी नरकमें जाता है तथा जो लोग हस्त-मैथुनादिसे वीर्यपात करनेवाले, शास्त्रमर्यादाको तोड़नेवाले, अपवित्र और छलवृत्तिके आश्रय रहनेवाले होते हैं, वे कृष्ण नरकमें गिरते हैं। जो वृथा ही वनोंको काटता है, वह असिपत्रवन नरकमें जाता है।

[illegible] (गड़रिये) और व्याधगण वह्नि-ज्वाल नरकमें गिरते हैं तथा द्विज! जो कच्चे घड़े पकानेवाले अथवा ईंट और चूना आदिका भट्ठा लगानेवाले हैं, वे भी उस (वह्नि-ज्वाल नरक) में ही जाते हैं। व्रतोंको लोप करनेवाले तथा अपने आश्रमसे पतित दोनों ही प्रकारके पुरुष संदंश नामक नरकमें गिरते हैं। जिन ब्रह्मचारियोंका दिनमें तथा सोते समय बुरी भावनासे वीर्यपात हो जाता है अथवा जो अपने ही पुत्रोंसे पढ़ते हैं, वे लोग श्वभोजन नरकमें गिरते हैं।

इस प्रकार, ये तथा अन्य सैकड़ों हजारों नरक हैं, जिनमें दुष्कर्मीलोग नाना प्रकारकी यातनाएँ भोगा करते हैं। इन उपर्युक्त पापोंके समान और भी सहस्रों पाप-कर्म हैं, उनके फल मनुष्य भिन्न-भिन्न नरकोंमें भोगा करते हैं। जो लोग अपने वर्णाश्रम-धर्मके विरुद्ध मन, वचन अथवा कर्मसे कोई पापाचरण करते हैं, वे नरकमें गिरते हैं। पापीलोग नरक-भोगके अनन्तर क्रमसे स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धार्मिक पुरुष, देवता तथा मुमुक्षु आदिका जन्म ग्रहण करते हैं। महाभाग! मुमुक्षुपर्यन्त इन सबमें पहलेकी अपेक्षा उत्तरोत्तर प्राणी सहस्रगुण श्रेष्ठ हैं। जो पापी पुरुष अपने पापका प्रायश्चित्त नहीं करते, वे ही नरकमें जाते हैं।

भिन्न-भिन्न पापोंके अनुरूप जो-जो प्रायश्चित्त हैं, उन्हीं-उन्हींको महर्षियोंने वेदार्थका स्मरण करके बताया है। मैत्रेय! स्वायम्भुव मनु आदि स्मृतिकारोंने महान् पापोंके लिये महान् और अल्पोंके लिये अल्प प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था की है, किंतु जितने भी तपस्यात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित्त हैं उन सबमें श्रीकृष्णस्मरण सर्वश्रेष्ठ है। जिस पुरुषके चित्तमें पाप-कर्मके अनन्तर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये तो एकमात्र हरिस्मरण परम प्रायश्चित्त है। प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रिमें और मध्याह्नादिके समय भगवान्‌का स्मरण करनेसे पाप क्षीण हो जानेपर मनुष्य श्रीनारायणको प्राप्त कर लेता है। श्रीविष्णु-भगवान्‌के स्मरणसे समस्त पापराशिके भस्म हो जानेसे पुरुष मोक्षपद प्राप्त कर लेता है, स्वर्ग-लाभ तो उसके लिये विघ्नरूप माना जाता है। मैत्रेय! जिसका चित्त जप, होम और अर्चनादि करते हुए निरन्तर भगवान् वासुदेवमें लगा रहता है, उसके लिये इन्द्रपद आदि फल तो अन्तराय (विघ्न) हैं। कहाँ तो पुनर्जन्मके चक्रमें डालनेवाली स्वर्ग-प्राप्ति और कहाँ मोक्षका सर्वोत्तम बीज 'वासुदेव' नामका जप! इसलिये मुने! श्रीविष्णुभगवान्‌का अहर्निश स्मरण करनेसे सम्पूर्ण पाप क्षीण

त्रिलोकीके ऊपर महर्लोक कहा जाता है, जो कल्पान्तमें केवल जनशून्य हो जाता है, अत्यन्त नष्ट नहीं होता, इसलिये यह 'कृतकाकृतक' कहलाता है।

मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे ये सात लोक और सात ही पाताल कहे। इस ब्रह्माण्डका बस इतना ही विस्तार है। यह ब्रह्माण्ड कपित्थ (कैथे) के बीजके समान ऊपर नीचे सब ओर अण्डकटाहसे घिरा हुआ है। मैत्रेय! यह अण्ड अपनेसे दसगुने जलसे आवृत है और वह जलका सम्पूर्ण आवरण अग्निसे घिरा हुआ है। अग्नि वायुसे और वायु आकाशसे परिवेष्टित है तथा आकाश भूतोंके कारण अहंकारसे और अहंकार महत्तत्त्वसे घिरा हुआ है। मैत्रेय! ये सातों उत्तरोत्तर एक-दूसरेसे दसगुने हैं। महत्तत्त्वको भी प्रधानने आवृत कर रक्खा है। वह अनन्त है, उसका कभी अन्त (नाश) नहीं होता है; क्योंकि मुने! वह अनन्त, अपरिमेय और सम्पूर्ण जगत्का कारण है और वही अपरा प्रकृति है। उसमें ऐसे-ऐसे हजारों, लाखों तथा सैकड़ों करोड़ ब्रह्माण्ड हैं। जिस प्रकार काष्ठमें अग्नि और तिलमें तैल रहता है, उसी प्रकार प्रधानमें स्वप्रकाश चेतनात्मा व्यापक है। महाबुद्धे! ये प्रधान और पुरुष भी समस्त भूतोंकी स्वरूपभूता विष्णु-शक्तिसे आवृत हैं। महामते! वह विष्णु-शक्ति ही प्रलयके समय उनके पार्थक्य और स्थितिके समय उनके सम्मिलनकी हेतु है तथा सर्गारम्भके समय वही उनके क्षोभकी कारण है।

मुने! जिस प्रकार आदि बीजसे ही मूल, स्कन्ध और शाखा आदिके सहित वृक्ष उत्पन्न होता है और तदनन्तर उससे और भी बीज उत्पन्न होते हैं तथा उन बीजोंसे अन्यान्य वृक्ष उत्पन्न होते हैं और वे भी उन्हीं लक्षण, द्रव्य और कारणोंसे युक्त होते हैं; उसी प्रकार पहले अव्याकृत (प्रधान) से महत्तत्त्वसे लेकर पञ्चभूतपर्यन्त सम्पूर्ण विकार उत्पन्न होते हैं तथा उनसे देव, असुर आदिका जन्म होता है और फिर उनके पुत्र तथा उन पुत्रोंके अन्य पुत्र होते हैं। अपने बीजसे अन्य वृक्षके उत्पन्न होनेसे जिस प्रकार पूर्ववृक्षकी कोई क्षति नहीं होती, उसी प्रकार अन्य प्राणियोंके उत्पन्न होनेसे उनके जन्मदाता प्राणियोंका ह्रास नहीं होता।

जिस प्रकार आकाश और काल आदि संनिधिमात्रसे ही वृक्षके कारण होते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीहरि भी बिना परिणामके ही विश्वके कारण हैं। मुनिसत्तम! जिस प्रकार धानके बीजमें मूल, नाल, पत्ते, अङ्कुर, तना, कोष, पुष्प, क्षीर, तण्डुल, तुष और कण सभी रहते हैं तथा अङ्कुरोत्पत्तिकी हेतुभूत भूमि एवं जल आदि सामग्रीके प्राप्त होनेपर वे प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार अपने अनेक पूर्वकर्मोंमें स्थित देवता आदि विष्णु-शक्तिका आश्रय पानेपर आविर्भूत हो जाते हैं। जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जो स्वयं जगत्रूपसे स्थित है। जिसमें यह स्थित है तथा जिसमें यह लीन हो जायगा, वह परब्रह्म ही विष्णुभगवान् हैं। वह ब्रह्म है, वही [श्रीविष्णुका] परम धाम (परस्वरूप) है, वह पद सत् और असत् दोनोंसे विलक्षण है तथा उससे अभिन्न हुआ ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उससे उत्पन्न हुआ है। वही अव्यक्त मूलप्रकृति है, वही व्यक्तस्वरूप संसार है, उसीमें यह सम्पूर्ण जगत् लीन होता है तथा उसीके आश्रय स्थित है। यज्ञादि क्रियाओंका कर्ता वही है, यज्ञरूपसे उसीका यजन किया जाता है और उन यज्ञादिका फलस्वरूप भी वही है तथा यज्ञके साधनरूप जो स्रुवा आदि हैं, वे सब भी हरिसे अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

सूर्यद्वारा होनेवाले कालचक्र और गङ्गाविर्भावका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—सुव्रत! मैंने तुमसे यह ब्रह्माण्डकी स्थिति कही, अब सूर्य आदि ग्रहोंकी स्थिति और उनके परिमाण सुनो।

भगवान् सूर्यदेव दिन और रात्रिकी व्यवस्थाके कारण हैं। मैत्रेय! सभी द्वीपोंमें सर्वदा मध्याह्न तथा मध्य रात्रिके समय सूर्यदेव मध्य आकाशमें सामनेकी ओर रहते हैं*। इसी प्रकार उदय और अस्त भी सदा एक दूसरेके सम्मुख ही होते हैं। ब्रह्मन्! समस्त दिशा और विदिशाओंमें जहाँके लोग रात्रिका अन्त होनेपर सूर्यको जिस स्थानपर देखते हैं, उनके लिये वहाँ उसका उदय होता है और जहाँ दिनके अन्तमें सूर्यका तिरोभाव होता है, वहीं उसका अस्त कहा जाता है। सर्वदा एक

* अर्थात् जिस द्वीप या वर्षमें सूर्यदेव मध्याह्नके समय सम्मुख पड़ते हैं, उसकी समान रेखापर दूसरी ओर स्थित द्वीपान्तरमें वे उसी प्रकार मध्यरात्रिके समय रहते हैं।

त्रिलोकीके मध्यमें मर्त्यलोक कहा जाता है, जो कल्पान्तमें केवल जनशून्य हो जाता है, अत्यन्त नष्ट नहीं होता, इसलिये यह 'कृतकाकृतक' कहलाता है।

मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे ये सात लोक और सात ही पाताल कहे। इस ब्रह्माण्डका बस इतना ही विस्तार है। यह ब्रह्माण्ड कपित्थ (कैथे) के बीजके समान ऊपर नीचे सब ओर अण्डकटाहसे घिरा हुआ है। मैत्रेय! यह अण्ड अपनेसे दसगुने जलसे आवृत है और वह जलका सम्पूर्ण आवरण अग्निसे घिरा हुआ है। अग्नि वायुसे और वायु आकाशसे परिवेष्टित है तथा आकाश भूतोंके कारण अहंकारसे और अहंकार महत्तत्त्वसे घिरा हुआ है। मैत्रेय! ये सातों उत्तरोत्तर एक-दूसरेसे दसगुने हैं। महत्तत्त्वको भी प्रधानने आवृत कर रखा है। वह अनन्त है, उसका कभी अन्त (नाश) नहीं होता है; क्योंकि मुने! वह अनन्त, अपरिमेय और सम्पूर्ण जगत्का कारण है और वही अपरा प्रकृति है। उसमें ऐसे-ऐसे हजारों, लाखों तथा सैकड़ों करोड़ ब्रह्माण्ड हैं। जिस प्रकार काष्ठमें अग्नि और तिलमें तैल रहता है, उसी प्रकार प्रधानमें स्वप्रकाश चेतनात्मा व्यापक है। महाबुद्धे! ये प्रधान और पुरुष भी समस्त भूतोंकी स्वरूपभूता विष्णु-शक्तिसे आवृत हैं। महामते! वह विष्णु-शक्ति ही प्रलयके समय उनके पार्थक्य और स्थितिके समय उनके सम्मिलनकी हेतु है तथा सर्गारम्भके समय वही उनके क्षोभकी कारण है।

मुने! जिस प्रकार आदि बीजसे ही मूल, स्कन्ध और शाखा आदिके सहित वृक्ष उत्पन्न होता है और तदनन्तर उससे और भी बीज उत्पन्न होते हैं तथा उन बीजोंसे अन्यान्य वृक्ष उत्पन्न होते हैं और वे भी उन्हीं लक्षण, द्रव्य और कारणोंसे युक्त होते हैं; उसी प्रकार पहले अव्याकृत (प्रधान) से महत्तत्त्वसे लेकर पञ्चभूतपर्यन्त सम्पूर्ण विकार उत्पन्न होते हैं तथा उनसे देव, असुर आदिका जन्म होता है और फिर उनके पुत्र तथा उन पुत्रोंके अन्य पुत्र होते हैं। अपने बीजसे अन्य वृक्षके उत्पन्न होनेसे जिस प्रकार पूर्ववृक्षकी कोई क्षति नहीं होती, उसी प्रकार अन्य प्राणियोंके उत्पन्न होनेसे उनके जन्मदाता प्राणियोंका ह्रास नहीं होता।

जिस प्रकार आकाश और काल आदि संनिधिमात्रसे ही वृक्षके कारण होते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीहरि भी बिना परिणामके ही विश्वके कारण हैं। मुनिसत्तम! जिस प्रकार धानके बीजमें मूल, नाल, पत्ते, अङ्कुर, तना, कोष, पुष्प, क्षीर, तण्डुल, तुष और कण सभी रहते हैं तथा अङ्कुरोत्पत्ति-की हेतुभूत भूमि एवं जल आदि सामग्रीके प्राप्त होनेपर वे प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार अपने अनेक पूर्वकर्मोंमें स्थित देवता आदि विष्णु-शक्तिका आश्रय पानेपर आविर्भूत हो जाते हैं। जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जो स्वयं जगत्रूपसे स्थित है। जिसमें यह स्थित है तथा जिसमें यह लीन हो जायगा, वह परब्रह्म ही विष्णुभगवान् हैं। वह ब्रह्म है, वही [श्रीविष्णुका] परम धाम (परस्वरूप) है, वह पद सत् और असत् दोनोंसे विलक्षण है तथा उससे अभिन्न हुआ ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उससे उत्पन्न हुआ है। वही अव्यक्त मूलप्रकृति है, वही व्यक्तस्वरूप संसार है, उसीमें यह सम्पूर्ण जगत् लीन होता है तथा उसीके आश्रय स्थित है। यज्ञादि क्रियाओंका कर्ता वही है, यज्ञरूपसे उसीका यजन किया जाता है और उन यज्ञादिका फलस्वरूप भी वही है तथा यज्ञके साधनरूप जो स्रुवा आदि हैं, वे सब भी हरिसे अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

सूर्यद्वारा होनेवाले कालचक्र और गङ्गाविर्भावका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—सुव्रत! मैंने तुमसे यह ब्रह्माण्डकी स्थिति कही, अब सूर्य आदि ग्रहोंकी स्थिति और उनके परिमाण सुनो।

भगवान् सूर्यदेव दिन और रात्रिकी व्यवस्थाके कारण हैं। मैत्रेय! सभी द्वीपोंमें सर्वदा मध्याह्न तथा मध्य रात्रिके समय सूर्यदेव मध्य आकाशमें सामनेकी ओर रहते हैं*। इसी प्रकार उदय और अस्त भी सदा एक दूसरेके सम्मुख ही होते हैं। ब्रह्मन्! समस्त दिशा और विदिशाओंमें जहाँके लोग रात्रिका अन्त होनेपर सूर्यको जिस स्थानपर देखते हैं, उनके लिये वहाँ उसका उदय होता है और जहाँ दिनके अन्तमें सूर्यका तिरोभाव होता है, वहीं उसका अस्त कहा जाता है। सर्वदा एक

* अर्थात् जिस द्वीप या खण्डमें सूर्यदेव मध्याह्नके समय सम्मुख पड़ते हैं, उसकी समान रेखापर दूसरी ओर स्थित द्वीपान्तरमें वे उसी प्रकार मध्यरात्रिके समय रहते हैं।

चरण अर्थात् मेषराशिके अन्तमें तथा चन्द्रमा निश्चय ही विशाखा-के चतुर्थांश अर्थात् वृश्चिकके आरम्भमें हो; अथवा जिस समय सूर्य विशाखाके तृतीय भाग अर्थात् तुलाके अन्तिमांश-का भोग करते हों और चन्द्रमा कृत्तिकाके प्रथम भाग अर्थात् मेषान्तमें स्थित जान पड़ें तभी यह 'विषुव'नामक अति पवित्र काल कहा जाता है। इस समय देवता, ब्राह्मण और पितृगण-के उद्देश्यसे संयतचित्त होकर दानादि देने चाहिये। यह समय दानग्रहणके लिये मानो देवताओंके खुले हुए मुख-के समान है, अतः 'विषुव' कालमें दान करनेवाला मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। यागादिके काल-निर्णयके लिये दिन, रात्रि, पक्ष, कला, काष्ठा और क्षण आदिका विषय भलीभाँति जानना चाहिये। राका और अनुमति दो प्रकारकी पूर्णमासी* तथा सिनीवाली और कुहू दो प्रकारकी अमावास्या† होती हैं। माघ-फाल्गुन, चैत्र-वैशाख तथा ज्येष्ठ-आषाढ़—ये छः मास उत्तरायण होते हैं और श्रावण-भाद्र, आश्विन-कार्तिक तथा अगहन-पौष—ये छः दक्षिणायन कहलाते हैं।

मैंने पहले तुमसे जिस लोकालोकपर्वतका वर्णन किया है, उसीपर चार व्रतशील लोकपाल निवास करते हैं। द्विज! सुधामा, कर्दमके पुत्र शङ्खपाद और हिरण्यरोमा तथा केतुमान्—ये चारों निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निरालस्य और निष्परिग्रह लोकपालगण लोकालोकपर्वतकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं।

मैत्रेय! जितने प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथिवीसे लेकर उस प्रदेशपर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है। सप्तर्षियोंसे उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित है, वह अति तेजोमय स्थान ही आकाशमें विष्णु-भगवान्का तीसरा दिव्यधाम है। विप्र! पुण्य-पापके क्षीण हो जानेपर दोष-पङ्कशून्य संयतात्मा मुनिजनोंका यही परम स्थान है। पाप-पुण्यके निवृत्त हो जाने तथा देह-प्राप्तिके सम्पूर्ण कारणोंके नष्ट हो जानेपर प्राणिगण जिस स्थानपर जाकर फिर शोक नहीं करते, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जहाँ भगवान्के समान ऐश्वर्यसे प्राप्त हुए योगद्वारा सतेज होकर धर्म और ध्रुव आदि लोकसाक्षिगण निवास करते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। मैत्रेय! जिसमें यह भूत, भविष्यत् और वर्तमान चराचर जगत् ओतप्रोत हो रहा है, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जो तल्लीन योगिजनोंको आकाशमण्डलमें देदीप्यमान सूर्यके समान सबके प्रकाशकरूपसे प्रतीत होता है तथा जिसका विवेक-ज्ञानसे ही प्रत्यक्ष होता है, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। द्विज! उस विष्णुपदमें ही सबके आधारभूत परम तेजस्वी ध्रुव स्थित हैं तथा ध्रुवजीमें समस्त नक्षत्र, नक्षत्रोंमें मेघ और मेघोंमें वृष्टि आश्रित है। महामुने! उस वृष्टिसे ही समस्त सृष्टिका पोषण और सम्पूर्ण देव-मनुष्यादि प्राणियोंकी पुष्टि होती है। तदनन्तर गौ आदि प्राणियोंसे उत्पन्न दुग्ध और घृत आदिकी आहुतियोंसे परिपुष्ट अग्निदेव ही प्राणियोंकी स्थितिके लिये पुनः वृष्टिके कारण होते हैं। इस प्रकार विष्णुभगवान्का यह निर्मल तृतीय लोक (ध्रुव) ही त्रिलोकीका आधारभूत और वृष्टिका आदि कारण है।

ब्रह्मन्! विष्णुभगवान्के वाम चरण-कमलके अँगूठेके नखरूप स्रोतसे निकली हुई श्रीगङ्गाजीको ध्रुव दिन-रात अपने मस्तकपर धारण करता है। तदनन्तर जिनके जलमें खड़े होकर प्राणायामपरायण सप्तर्षिगण उनकी तरङ्गभङ्गीसे जटा-कलापके कम्पायमान होते हुए, अघमर्षण मन्त्रका जप करते हैं तथा जिनके विस्तृत जलसमूहसे आप्लावित होकर चन्द्र-मण्डल क्षयके अनन्तर पुनः पहलेसे भी अधिक कान्ति धारण करता है, वे श्रीगङ्गाजी चन्द्रमण्डलसे निकलकर मेरुपर्वतके ऊपर गिरती हैं और संसारको पवित्र करनेके लिये चारों दिशाओंमें जाती हैं। चारों दिशाओंमें जानेसे वे एक ही सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा—इन चार भेदोंवाली हो जाती हैं। जिसके अलकनन्दा नामक दक्षिणीय भेदको भगवान् शङ्करने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सौ वर्षसे भी अधिक अपने मस्तकपर धारण किया था। जिसने श्रीशङ्करके जटाकलापसे निकलकर पापी सगरपुत्रोंके अस्थिचूर्णको आप्लावित कर उन्हें स्वर्गमें पहुँचा दिया। मैत्रेय! जिसके जलमें स्नान करनेसे शीघ्र ही पापका नाश हो जाता है और अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है, जिसके प्रवाहमें पुत्रोंद्वारा पितरोंके लिये श्रद्धापूर्वक किया हुआ एक दिनका भी तर्पण उन्हें सौ वर्षतक दुर्लभ तृप्ति देता है। जिसके जलमें स्नान करनेसे निष्पाप हुए यतिजनोंने भगवान् केशवमें चित्त लगाकर अत्युत्तम निर्वाणपद प्राप्त किया है। जो अपना श्रवण, इच्छा, दर्शन, स्पर्श

* जिस पूर्णिमामें पूर्ण चन्द्र विराजमान होता है वह 'राका' कहलाती है तथा जिसमें एक कला हीन होती है, वह 'अनुमति' कहलाती है।

† जिसमें चन्द्रमाकी एक कलाका दर्शन हो, उस चतुर्दशीयुक्त अमावास्याका नाम 'सिनीवाली' है और जिसमें सर्वथा चन्द्रदर्शन न हो, उस अमावास्याका नाम 'कुहू' है।

भाग अर्थात् मेषराशिके अन्तमें तथा चन्द्रमा निश्चय ही विशाखाके चतुर्थांश अर्थात् वृश्चिकके आरम्भमें हो; अथवा जिस समय सूर्य विशाखाके तृतीय भाग अर्थात् तुलाके अन्तिमांशका भोग करते हों और चन्द्रमा कृत्तिकाके प्रथम भाग अर्थात् मेषान्तमें स्थित जान पड़ें तभी यह 'विषुव'नामक अति पवित्र काल कहा जाता है। इस समय देवता, ब्राह्मण और पितृगणके उद्देश्यसे संयतचित्त होकर दानादि देने चाहिये। यह समय दानग्रहणके लिये मानो देवताओंके खुले हुए मुखके समान है, अतः 'विषुव' कालमें दान करनेवाला मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। यागादिके काल-निर्णयके लिये दिन, रात्रि, पक्ष, कला, काष्ठा और क्षण आदिका विषय भलीभाँति जानना चाहिये। राका और अनुमति दो प्रकारकी पूर्णमासी* तथा सिनीवाली और कुहू दो प्रकारकी अमावास्या† होती हैं। माघ-फाल्गुन, चैत्र-वैशाख तथा ज्येष्ठ-आषाढ़—ये छः मास उत्तरायण होते हैं और श्रावण-भाद्र, आश्विन-कार्तिक तथा अगहन-पौष—ये छः दक्षिणायन कहलाते हैं।

मैंने पहले तुमसे जिस लोकालोकपर्वतका वर्णन किया है, उसीपर चार व्रतशील लोकपाल निवास करते हैं। द्विज! सुधामा, कर्दमके पुत्र शङ्खपाद और हिरण्यरोमा तथा केतुमान्—ये चारों निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निरालस्य और निष्परिग्रह लोकपालगण लोकालोकपर्वतकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं।

मैत्रेय! जितने प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथिवीसे लेकर उस प्रदेशपर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है। सप्तर्षियोंसे उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित है, वह अति तेजोमय स्थान ही आकाशमें विष्णुभगवान्‌का तीसरा दिव्यधाम है। विप्र! पुण्य-पापके क्षीण हो जानेपर दोष-पङ्कशून्य संयतात्मा मुनिजनोंका यही परम स्थान है। पाप-पुण्यके निवृत्त हो जाने तथा देह-प्राप्तिके सम्पूर्ण कारणोंके नष्ट हो जानेपर प्राणिगण जिस स्थानपर जाकर फिर शोक नहीं करते, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जहाँ भगवान्‌के समान ऐश्वर्यसे प्राप्त हुए योगद्वारा सतेज होकर धर्म और ध्रुव आदि लोकसाक्षिगण निवास करते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। मैत्रेय! जिसमें यह भूत, भविष्यत् और वर्तमान चराचर जगत् ओतप्रोत हो रहा है, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जो तल्लीन योगिजनोंको आकाशमण्डलमें देदीप्यमान सूर्यके समान सबके प्रकाशकरूपसे प्रतीत होता है तथा जिसका विवेक-ज्ञानसे ही प्रत्यक्ष होता है, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। द्विज! उस विष्णुपदमें ही सबके आधारभूत परम तेजस्वी ध्रुव स्थित हैं तथा ध्रुवजीमें समस्त नक्षत्र, नक्षत्रोंमें मेघ और मेघोंमें वृष्टि आश्रित है। महामुने! उस वृष्टिसे ही समस्त सृष्टिका पोषण और सम्पूर्ण देव-मनुष्यादि प्राणियोंकी पुष्टि होती है। तदनन्तर गौ आदि प्राणियोंसे उत्पन्न दुग्ध और घृत आदिकी आहुतियोंसे परिपुष्ट अग्निदेव ही प्राणियोंकी स्थितिके लिये पुनः वृष्टिके कारण होते हैं। इस प्रकार विष्णुभगवान्‌का यह निर्मल तृतीय लोक (ध्रुव) ही त्रिलोकीका आधारभूत और वृष्टिका आदि कारण है।

ब्रह्मन्! विष्णुभगवान्‌के वाम चरण-कमलके अँगूठेके नखरूप स्रोतसे निकली हुई श्रीगङ्गाजीको ध्रुव दिन-रात अपने मस्तकपर धारण करता है। तदनन्तर जिनके जलमें खड़े होकर प्राणायामपरायण सप्तर्षिगण उनकी तरङ्गभङ्गीसे जटाकलापके कम्पायमान होते हुए, अघमर्षण मन्त्रका जप करते हैं तथा जिनके विस्तृत जलसमूहसे आप्लावित होकर चन्द्रमण्डल क्षयके अनन्तर पुनः पहलेसे भी अधिक कान्ति धारण करता है, वे श्रीगङ्गाजी चन्द्रमण्डलसे निकलकर मेरुपर्वतके ऊपर गिरती हैं और संसारको पवित्र करनेके लिये चारों दिशाओंमें जाती हैं। चारों दिशाओंमें जानेसे वे एक ही सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा—इन चार भेदोंवाली हो जाती हैं। जिसके अलकनन्दा नामक दक्षिणीय भेदको भगवान् शङ्करने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सौ वर्षसे भी अधिक अपने मस्तकपर धारण किया था। जिसने श्रीशङ्करके जटाकलापसे निकलकर पापी सगरपुत्रोंके अस्थिचूर्णको आप्लावित कर उन्हें स्वर्गमें पहुँचा दिया। मैत्रेय! जिसके जलमें स्नान करनेसे शीघ्र ही पापका नाश हो जाता है और अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है, जिसके प्रवाहमें पुत्रोंद्वारा पितरोंके लिये श्रद्धापूर्वक किया हुआ एक दिनका भी तर्पण उन्हें सौ वर्षतक दुर्लभ तृप्ति देता है। जिसके जलमें स्नान करनेसे निष्पाप हुए यतिजनोंने भगवान् केशवमें चित्त लगाकर अत्युत्तम निर्वाणपद प्राप्त किया है। जो अपना श्रवण, इच्छा, दर्शन, स्पर्श

* जिस पूर्णिमामें पूर्ण चन्द्र विराजमान होता है वह 'राका' कहलाती है तथा जिसमें एक कला हीन होती है, वह 'अनुमति' कहलाती है।

† जिसमें चन्द्रमाकी एक कलाका दर्शन हो, उस चतुर्दशीयुक्त अमावास्याका नाम 'सिनीवाली' है और जिसमें सर्वथा चन्द्रदर्शन न हो, उस अमावास्याका नाम 'कुहू' है।

हृदयमें श्रीनारायण स्थित हैं, जो समस्त प्राणियोंके पालनकर्ता तथा आदिभूत सनातन पुरुष हैं।

द्विज ! दिन और रात्रिके कारणस्वरूप भगवान् सूर्य पितृगण, देवगण और मनुष्यादिको सदा तृप्त करते घूमते रहते हैं। सूर्यकी जो सुषुम्ना नामकी किरण है, उससे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका पोषण होता है और फिर कृष्णपक्षमें उस अमृतमय चन्द्रमाकी एक-एक कलाका देवगण निरन्तर पान करते हैं। द्विज ! कृष्णपक्षके क्षय होनेपर चतुर्दशीके अनन्तर दो कलायुक्त चन्द्रमाका पितृगण पान करते हैं। इस प्रकार सूर्यद्वारा पितृगणका तर्पण होता है।

सूर्य अपनी किरणोंद्वारा पृथिवीसे जितना जल खींचते हैं, उस सबको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिके लिये बरसा देते हैं। उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार वे देव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं। मैत्रेय ! इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाक्षिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्यप्रति तृप्ति करते रहते हैं।

सुरगणके पान करते रहनेसे क्षीण हुए कलामात्र चन्द्रमाका प्रकाशमय सूर्यदेव अपनी किरणसे पुनः पोषण करते हैं। जिस क्रमसे देवगण चन्द्रमाका पान करते हैं, उसी क्रमसे सूर्यदेव उन्हें शुक्ला प्रतिपदासे प्रतिदिन पुष्ट करते हैं। मैत्रेय ! इस प्रकार आधे महीनेमें एकत्रित हुए चन्द्रमाके अमृतको देवगण फिर पीने लगते हैं; क्योंकि देवताओंका आहार तो अमृत ही है। तैंतीस हजार, तैंतीस सौ, तैंतीस (३६३३३) देवगण चन्द्रस्थ अमृतका पान करते हैं। जिस समय दो कलामात्र रहा हुआ चन्द्रमा सूर्यमण्डलमें प्रवेश करता है अर्थात् सूर्यसे आच्छादित हो जाता है, उस समय वह उसकी अमा नामक किरणमें रहता है, वह तिथि अमावास्या कहलाती है। उस दिन रात्रिमें वह पहले तो जलमें प्रवेश करता है, फिर वृक्ष-लता आदिमें निवास करता है और तदनन्तर सूर्यमें चला जाता है अर्थात् सूर्यमण्डलमें आच्छादित हो जाता है। वृक्ष और लता आदिमें चन्द्रमाकी स्थितिके समय अमावास्याको जो उन्हें काटता है अथवा उनका एक पत्ता भी तोड़ता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। केवल पंद्रहवीं कलारूप यत्किञ्चित् भागके बच रहनेपर उस क्षीण हुए चन्द्रमाकी बची हुई कलाका मध्याह्नोत्तर कालमें पितृगण पान करते हैं। अमावास्याके दिन चन्द्ररश्मिसे निकले हुए उस सुधामृतका पान करके अत्यन्त तृप्त हुए सौम्य, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त तीन प्रकारके पितृगण एक मासपर्यन्त संतुष्ट रहते हैं। इस प्रकार चन्द्रदेव शुक्लपक्षमें देवताओंकी और कृष्णपक्षमें पितरोंकी पुष्टि करते हैं तथा अमृतमय शीतल जलकणोंसे लता-वृक्षादिका और लता-ओषधि आदि उत्पन्न करके तथा अपनी चन्द्रिका-द्वारा आह्लादित करके वे मनुष्य, पशु एवं कीट-पतंगादि सभी प्राणियोंका पोषण करते हैं।

मैत्रेय ! समस्त ग्रह, नक्षत्र और तारामण्डल वायुमयी रज्जुसे ध्रुवके साथ बँधे हुए यथोचित प्रकारसे घूमते रहते हैं। जितने तारागण हैं, उतनी ही वायुमयी डोरियाँ हैं। उनसे बँधकर वे सब स्वयं घूमते तथा ध्रुवको घुमाते रहते हैं। जिस प्रकार तेलीलोग स्वयं घूमते हुए कोल्हूको भी घुमाते रहते हैं, उसी प्रकार समस्त ग्रहगण वायुसे बँधकर घूमते रहते हैं।

जिस शिशुमारचक्रका पहले वर्णन कर चुके हैं तथा जहाँ ध्रुव स्थित है, मुनिश्रेष्ठ ! अब तुम उसकी स्थितिका वर्णन सुनो। रात्रिके समय उनका दर्शन करनेसे मनुष्य दिनमें जो कुछ पापकर्म करता है, उनसे मुक्त हो जाता है। उत्तानपाद उसकी ऊपरकी हनु (ठोड़ी) है और यज्ञ नीचेकी तथा धर्मने उसके मस्तकपर अधिकार कर रक्खा है, उसके हृदय-देशमें नारायण हैं, पूर्वके दोनों चरणोंमें अश्विनीकुमार हैं तथा जङ्घाओंमें वरुण और अर्यमा हैं। संवत्सर उसका शिश्न है, मित्रने उसके अपान-देशको आश्रित कर रक्खा है तथा अग्नि, महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव पुच्छभागमें स्थित हैं। शिशुमारके पुच्छभागमें स्थित ये अग्नि आदि चार तारे कभी अस्त नहीं होते। इस प्रकार मैंने तुमसे पृथिवी, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियोंका तथा जो-जो उनमें बसते हैं, उन सभीके स्वरूपका वर्णन कर दिया। अब इसे संक्षेपसे फिर सुनो।

विप्र ! भगवान् विष्णुका जो मूर्तरूप जल है, उससे पर्वत और समुद्रादिके सहित कमलके समान आकारवाली पृथिवी उत्पन्न हुई। विप्रवर्य ! तारागण, त्रिभुवन, वन, पर्वत, दिशाएँ, नदियाँ और समुद्र सभी भगवान् विष्णु ही हैं तथा और भी जो कुछ है, अथवा नहीं है, वह सब भी एकमात्र वे ही हैं*। क्योंकि भगवान् विष्णु ज्ञानस्वरूप हैं; इसलिये

* ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य ॥
(वि० पु० २ । १२ । ३८)

हृदयमें श्रीनारायण स्थित हैं, जो समस्त प्राणियोंके पालनकर्ता तथा आदिभूत सनातन पुरुष हैं।

द्विज ! दिन और रात्रिके कारणस्वरूप भगवान् सूर्य पितृगण, देवगण और मनुष्यादिको सदा तृप्त करते घूमते रहते हैं। सूर्यकी जो सुषुम्णा नामकी किरण है, उससे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका पोषण होता है और फिर कृष्णपक्षमें उस अमृतमय चन्द्रमाकी एक-एक कलाका देवगण निरन्तर पान करते हैं। द्विज ! कृष्णपक्षके क्षय होनेपर चतुर्दशीके अनन्तर दो कलायुक्त चन्द्रमाका पितृगण पान करते हैं। इस प्रकार सूर्यद्वारा पितृगणका तर्पण होता है।

सूर्य अपनी किरणोंद्वारा पृथिवीसे जितना जल खींचते हैं, उस सबको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिके लिये बरसा देते हैं। उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार वे देव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं। मैत्रेय ! इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाक्षिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्यप्रति तृप्ति करते रहते हैं।

सुरगणके पान करते रहनेसे क्षीण हुए कलामात्र चन्द्रमाका प्रकाशमय सूर्यदेव अपनी किरणसे पुनः पोषण करते हैं। जिस क्रमसे देवगण चन्द्रमाका पान करते हैं, उसी क्रमसे सूर्यदेव उन्हें शुक्ला प्रतिपदासे प्रतिदिन पुष्ट करते हैं। मैत्रेय ! इस प्रकार आधे महीनेमें एकत्रित हुए चन्द्रमाके अमृतको देवगण फिर पीने लगते हैं; क्योंकि देवताओंका आहार तो अमृत ही है। तैंतीस हजार, तैंतीस सौ, तैंतीस (३६३३३) देवगण चन्द्रस्थ अमृतका पान करते हैं। जिस समय दो कलामात्र रहा हुआ चन्द्रमा सूर्यमण्डलमें प्रवेश करता है अर्थात् सूर्यसे आच्छादित हो जाता है, उस समय वह उसकी अमा नामक किरणमें रहता है, वह तिथि अमावास्या कहलाती है। उस दिन रात्रिमें वह पहले तो जलमें प्रवेश करता है, फिर वृक्ष-लता आदिमें निवास करता है और तदनन्तर सूर्यमें चला जाता है अर्थात् सूर्यमण्डलसे आच्छादित हो जाता है। वृक्ष और लता आदिमें चन्द्रमाकी स्थितिके समय अमावास्याको जो उन्हें काटता है अथवा उनका एक पत्ता भी तोड़ता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। केवल पंद्रहवीं कलारूप यत्किञ्चित् भागके बच रहनेपर उस क्षीण हुए चन्द्रमाकी बची हुई कलाका सम्पूर्ण अपराह्णकालमें पितृगण पान करते हैं। अमावास्याके दिन चन्द्ररश्मिसे निकले हुए उस सुधामृतका पान करके अत्यन्त तृप्त हुए सौम्य, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त तीन प्रकारके पितृगण एक मासपर्यन्त संतुष्ट रहते हैं। इस प्रकार चन्द्रदेव शुक्लपक्षमें देवताओंकी और कृष्णपक्षमें पितरोंकी पुष्टि करते हैं तथा अमृतमय शीतल जलकणोंसे लता-वृक्षादिका और लता-ओषधि आदि उत्पन्न करके तथा अपनी चन्द्रिकाद्वारा आह्लादित करके वे मनुष्य, पशु एवं कीट-पतंगादि सभी प्राणियोंका पोषण करते हैं।

मैत्रेय ! समस्त ग्रह, नक्षत्र और तारामण्डल वायुमयी रज्जुसे ध्रुवके साथ बँधे हुए यथोचित प्रकारसे घूमते रहते हैं। जितने तारागण हैं, उतनी ही वायुमयी डोरियाँ हैं। उनसे बँधकर वे सब स्वयं घूमते तथा ध्रुवको घुमाते रहते हैं। जिस प्रकार तेलीलोग स्वयं घूमते हुए कोल्हूको भी घुमाते रहते हैं, उसी प्रकार समस्त ग्रहगण वायुसे बँधकर घूमते रहते हैं।

जिस शिशुमारचक्रका पहले वर्णन कर चुके हैं तथा जहाँ ध्रुव स्थित है, मुनिश्रेष्ठ ! अब तुम उसकी स्थितिका वर्णन सुनो। रात्रिके समय उनका दर्शन करनेसे मनुष्य दिनमें जो कुछ पापकर्म करता है, उनसे मुक्त हो जाता है। उत्तानपाद उसकी ऊपरकी हनु (ठोडी) है और यज्ञ नीचेकी तथा धर्मने उसके मस्तकपर अधिकार कर रक्खा है, उसके हृदय-देशमें नारायण हैं, पूर्वके दोनों चरणोंमें अश्विनीकुमार है तथा जङ्घाओंमें वरुण और अर्यमा हैं। संवत्सर उसका शिश्न है, मित्रने उसके अपान-देशको आश्रित कर रक्खा है तथा अग्नि, महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव पुच्छभागमें स्थित हैं। शिशुमारके पुच्छभागमें स्थित ये अग्नि आदि चार तारे कभी अस्त नहीं होते। इस प्रकार मैंने तुमसे पृथिवी, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियोंका तथा जो-जो उनमें बसते हैं, उन सभीके स्वरूपका वर्णन कर दिया। अब इसे संक्षेपसे फिर सुनो।

विप्र ! भगवान् विष्णुका जो मूर्तरूप जल है, उससे पर्वत और समुद्रादिके सहित कमलके समान आकारवाली पृथिवी उत्पन्न हुई। विप्रवर्य ! तारागण, त्रिभुवन, वन, पर्वत, दिशाएँ, नदियाँ और समुद्र सभी भगवान् विष्णु ही हैं तथा और भी जो कुछ है, अथवा नहीं है, वह सब भी एकमात्र वे ही हैं*। क्योंकि भगवान् विष्णु ज्ञानस्वरूप हैं; इसलिये

---

* ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य ॥
(वि० पु० २ । १२ । ३८)

पोषण करने लगे और वह भी उनसे पोषित होकर दिनोंदिन बढ़ने लगा । वह बच्चा कभी तो उस आश्रमके आसपास ही घास चरता रहता और कभी वनमें दूरतक जाकर फिर सिंहके भयसे लौट आता । प्रातःकाल वह बहुत दूर भी चला जाता तो भी सायंकालको फिर आश्रममें ही लौट आता और भरतजी-के आश्रमकी पर्णशालाके आँगनमें पड़ रहता ।

द्विज ! इस प्रकार कभी पास और कभी दूर रहनेवाले उस मृगमें ही राजाका चित्त सर्वदा आसक्त रहने लगा, जिन्होंने सम्पूर्ण राज-पाट और अपने पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़ दिया था, वे ही भरतजी उस हरिणके बच्चेपर अत्यन्त ममता करने लगे । उसे बाहर जानेके अनन्तर यदि लौटनेमें देर हो जाती तो वे मन-ही-मन सोचने लगते—'अहो ! उस बच्चेको आज भेड़िये और व्याघ्रोंने तो नहीं खा लिया ? किसी सिंहने तो उसे नहीं मार गिराया ?' देरके गये हुए उस बच्चेके निमित्त भरत मुनि इसी प्रकार चिन्ता करने लगते थे और जब वह उनके निकट आ जाता तो उसके प्रेमसे उनका मुख खिल जाता था । इस प्रकार उसीमें आसक्तचित्त रहनेसे राज्य, भोग, समृद्धि और स्वजनोंको त्याग देनेवाले भी राजा भरतकी समाधि भङ्ग हो गयी ।

कालान्तरमें उस मृगबालकने अपने प्राणोंका त्याग किया । मैत्रेय ! राजा भी प्राण छोड़ते समय स्नेहवश मरे हुए उस मृगको ही देखते रहे तथा उसीमें तन्मय रहनेसे उन्होंने और कुछ भी चिन्तन नहीं किया । तदनन्तर उस समयकी सुदृढ़ भावनाके कारण वे जम्बूमार्ग (कालञ्जरपर्वत) के घोर वनमें अपने पूर्वजन्मकी स्मृतिसे युक्त एक मृग हुए । द्विजोत्तम ! अपने पूर्वजन्मका स्मरण रहनेके कारण वह मृग संसारसे उपरत हो गया और अपनी माताको छोड़कर फिर शालग्रामक्षेत्रमें आकर ही रहने लगा । वहाँ सूखे घास-फूस और पत्तोंसे ही अपना शरीर-पोषण करता रहा ।

तदनन्तर, उस शरीरको छोड़कर उसने सदाचारसम्पन्न योगियोंके पवित्र कुलमें ब्राह्मण-जन्म ग्रहण किया । उस देहमें भी उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा । मैत्रेय ! वह सर्वविज्ञानसम्पन्न और समस्त शास्त्रोंके मर्मको जाननेवाला था तथा अपने आत्माको निरन्तर प्रकृतिसे परे देखता था । महामुने ! आत्मज्ञानसम्पन्न होनेके कारण वह देवता आदि सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्नरूपसे देखता था । उपनयन-संस्कार हो जानेपर वह गुरुके पढ़ानेपर भी वेदपाठ नहीं करता था तथा न किसी कर्मकी ओर ध्यान देता और न कोई अन्य शास्त्र ही पढ़ता था । जब कोई उससे बहुत पूछ-ताछ करता तो जडके समान कुछ असंस्कृत, असार एवं ग्रामीण वाक्योंसे मिले हुए वचन बोल देता । निरन्तर मैला-कुचैला शरीर, मलिन वस्त्र और मैले दाँतवाला रहनेके कारण वह ब्राह्मण सदा अपने नगरनिवासियोंसे अपमानित होता रहता था ।

मैत्रेय ! योगप्राप्तिके लिये सबसे अधिक हानिकारक सम्मान ही है, जो योगी अन्य मनुष्योंसे अपमानित होता है वह शीघ्र ही सिद्धिलाभ कर लेता है* । अतः योगीको सन्मार्ग-को दूषित न करते हुए ऐसा आचरण करना चाहिये, जिससे लोग अपमान करें और संगतिसे दूर रहें । हिरण्यगर्भके इस सारयुक्त वचनको स्मरण रखते हुए वे महामति विप्रवर अपने-आपको लोगोंमें जड और उन्मत्त-सा ही प्रकट करते थे । कुल्माष (जौ आदि), धान, साग, जंगली फल अथवा कण आदि जो कुछ भी खानेको मिल जाता, उस थोड़े-सेको भी बहुत मानकर वे उसीको खा लेते और अपना कालक्षेप करते रहते ।

फिर पिताके शान्त हो जानेपर उनके भाई, भतीजे और बन्धुजन उनका सड़े-गले अन्नसे पोषण करते हुए उनसे खेती-बारीका कार्य कराने लगे । वे भी बैलके समान पुष्ट शरीरवाले और कर्ममें जडवत् निश्चेष्ट होनेके कारण केवल आहारमात्रसे ही सब लोगोंके यन्त्र बन जाते थे । अर्थात् लोग उन्हें खाने-भरको देकर अपना-अपना मनचाहा काम करा लिया करते थे ।

तदनन्तर एक दिन सौवीरराज कहीं जा रहे थे । उस समय उनके बेगारियोंने इनको देखकर समझा कि यह भी बेगारके ही योग्य है । राजाके सेवकोंने भी भस्ममें छिपे हुए अग्निके समान उन महात्माको न पहचानकर उनका बाहरका रंग-ढंग देखकर उन्हें बेगारके योग्य समझा । द्विज ! उन सौवीरराजने मोक्षधर्म-के ज्ञाता महामुनि कपिलसे यह पूछनेके लिये कि 'इस दुःखमय संसारमें मनुष्योंका श्रेय किसमें है' शिबिकापर चढ़कर इक्षु-मती नदीके किनारे उन महर्षिके आश्रमपर जानेका विचार किया था ।

तब राजसेवकके कहनेसे भरतमुनि भी उसकी पालकीको दूसरे बेगार करनेवालोंके साथ लगकर ढोने लगे । इस प्रकार बेगारमें पकड़े जाकर सम्पूर्ण विज्ञानके एकमात्र पात्र वे

---

* सम्मानना परा हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः ।
जनेनावमतो योगी योगसिद्धिं च विन्दति ॥
(वि० पु० २ । १३ । ४२)

पोषण करने लगे और वह भी उनसे पोषित होकर दिनोंदिन बढ़ने लगा। वह बच्चा कभी तो उस आश्रमके आसपास ही घास चरता रहता और कभी वनमें दूरतक जाकर फिर सिंहके भयसे लौट आता। प्रातःकाल वह बहुत दूर भी चला जाता तो भी सायंकालको फिर आश्रममें ही लौट आता और भरतजीके आश्रमकी पर्णशालाके आँगनमें पड़ रहता।

द्विज ! इस प्रकार कभी पास और कभी दूर रहनेवाले उस मृगमें ही राजाका चित्त सर्वदा आसक्त रहने लगा, जिन्होंने सम्पूर्ण राज-पाट और अपने पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़ दिया था, वे ही भरतजी उस हरिणके बच्चेपर अत्यन्त ममता करने लगे। उसे बाहर जानेके अनन्तर यदि लौटनेमें देर हो जाती तो वे मन-ही-मन सोचने लगते—'अहो ! उस बच्चेको आज भेड़िये और व्याघ्रोंने तो नहीं खा लिया ? किसी सिंहने तो उसे नहीं मार गिराया ?' देरके गये हुए उस बच्चेके निमित्त भरत मुनि इसी प्रकार चिन्ता करने लगते थे और जब वह उनके निकट आ जाता तो उसके प्रेमसे उनका मुख खिल जाता था। इस प्रकार उसीमें आसक्तचित्त रहनेसे राज्य, भोग, समृद्धि और स्वजनोंको त्याग देनेवाले भी राजा भरतकी समाधि भङ्ग हो गयी।

कालान्तरमें उस मृगबालकने अपने प्राणोंका त्याग किया। मैत्रेय ! राजा भी प्राण छोड़ते समय स्नेहवश मरे हुए उस मृगको ही देखते रहे तथा उसीमें तन्मय रहनेसे उन्होंने और कुछ भी चिन्तन नहीं किया। तदनन्तर उस समयकी सुदृढ़ भावनाके कारण वे जम्बूमार्ग (कालञ्जरपर्वत) के घोर वनमें अपने पूर्वजन्मकी स्मृतिसे युक्त एक मृग हुए। द्विजोत्तम ! अपने पूर्वजन्मका स्मरण रहनेके कारण वह मृग संसारसे उपरत हो गया और अपनी माताको छोड़कर फिर शालग्रामक्षेत्रमें आकर ही रहने लगा। वहाँ सूखे घास-फूस और पत्तोंसे ही अपना शरीर-पोषण करता रहा।

तदनन्तर, उस शरीरको छोड़कर उसने सदाचारसम्पन्न योगियोंके पवित्र कुलमें ब्राह्मण-जन्म ग्रहण किया। उस देहमें भी उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा। मैत्रेय ! वह सर्वविज्ञानसम्पन्न और समस्त शास्त्रोंके मर्मको जाननेवाला था तथा अपने आत्माको निरन्तर प्रकृतिसे परे देखता था। महामुने ! आत्मज्ञानसम्पन्न होनेके कारण वह देवता आदि सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्नरूपसे देखता था। उपनयन-संस्कार हो जानेपर वह गुरुके पढ़ानेपर भी वेदपाठ नहीं करता था तथा न किसी कर्मकी ओर ध्यान देता और न कोई अन्य शास्त्र ही पढ़ता था। जब कोई उससे बहुत पूछ-ताछ करता तो जडके समान कुछ असंस्कृत, असार एवं ग्रामीण वाक्योंसे मिले हुए वचन बोल देता। निरन्तर मैला-कुचैला शरीर, मलिन वस्त्र और मैले दाँतवाला रहनेके कारण वह ब्राह्मण सदा अपने नगरनिवासियोंसे अपमानित होता रहता था।

मैत्रेय ! योगप्राप्तिके लिये सबसे अधिक हानिकारक सम्मान ही है, जो योगी अन्य मनुष्योंसे अपमानित होता है वह शीघ्र ही सिद्धिलाभ कर लेता है*। अतः योगीको सन्मार्गको दूषित न करते हुए ऐसा आचरण करना चाहिये, जिससे लोग अपमान करें और संगतिसे दूर रहें। हिरण्यगर्भके इस सारयुक्त वचनको स्मरण रखते हुए वे महामति विप्रवर अपने-आपको लोगोंमें जड और उन्मत्त-सा ही प्रकट करते थे। कुल्माष (जौ आदि), धान, साग, जंगली फल अथवा कण आदि जो कुछ भी खानेको मिल जाता, उस थोड़े-सेको भी बहुत मानकर वे उसीको खा लेते और अपना कालक्षेप करते रहते।

फिर पिताके शान्त हो जानेपर उनके भाई, भतीजे और बन्धुजन उनका सड़े-गले अन्नसे पोषण करते हुए उनसे खेती-बारीका कार्य कराने लगे। वे भी बैलके समान पुष्ट शरीरवाले और कर्ममें जडवत् निश्चेष्ट होनेके कारण केवल आहारमात्रसे ही सब लोगोंके यन्त्र बन जाते थे। अर्थात् लोग उन्हें खाने-भरको देकर अपना-अपना मनचाहा काम करा लिया करते थे।

तदनन्तर एक दिन सौवीरराज कहीं जा रहे थे। उस समय उनके बेगारियोंने इनको देखकर समझा कि यह भी बेगारके ही योग्य है। राजाके सेवकोंने भी भस्ममें छिपे हुए अग्निके समान उन महात्माको न पहचानकर उनका बाहरका रंग-ढंग देखकर उन्हे बेगारके योग्य समझा। द्विज ! उन सौवीरराजने मोक्षधर्मके ज्ञाता महामुनि कपिलसे यह पूछनेके लिये कि 'इस दुःखमय संसारमे मनुष्योंका श्रेय किसमें है' शिबिकापर चढ़कर इक्षुमती नदीके किनारे उन महर्षिके आश्रमपर जानेका विचार किया था।

तब राजसेवकके कहनेसे भरतमुनि भी उसकी पालकीको दूसरे बेगार करनेवालोंके साथ लगकर ढोने लगे। इस प्रकार बेगारमें पकड़े जाकर सम्पूर्ण विज्ञानके एकमात्र पात्र वे

* सम्मानना परा हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः।
जनेनावमतो योगी योगसिद्धिं च विन्दति ॥
(वि० पु० २ । १३ । ४२)

अनात्मामें ही आत्मत्वका ज्ञान करानेवाला भ्रान्तिमूलक 'अहं' शब्द ही दोषका कारण है। नृप! 'अहं' शब्दका उच्चारण जिह्वा, दन्त, ओष्ठ और तालुसे ही होता है, किंतु ये सब 'अहं' नहीं हैं; क्योंकि ये तो उस शब्दके उच्चारणके हेतु या करणमात्र हैं। तो क्या जिह्वादि हेतुओंके द्वारा यह वाणी ही स्वयं अपनेको 'अहं' कहती है? नहीं। सिर तथा कर-चरणादिरूप यह शरीर भी आत्मासे पृथक् ही है। अतः राजन्! इस 'अहं' शब्दका मैं कहाँ प्रयोग करूँ? तथा नृपश्रेष्ठ! यदि मुझसे भिन्न कोई और भी सजातीय आत्मा हो तो भी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है'—ऐसा कहा जा सकता था। किंतु जब समस्त शरीरोंमें एक ही आत्मा विराजमान है, तब 'आप कौन हैं? मैं वह हूँ' ये सब वाक्य निष्फल ही हैं।

'तुम राजा हो, यह शिविका है, ये सामने शिविकावाहक हैं तथा ये सब तुम्हारी प्रजा हैं'—नृप! इनमेंसे कोई भी बात परमार्थतः सत्य नहीं है। राजन्! वृक्षसे लकड़ी हुई और उससे तुम्हारी यह शिविका बनी; तो बताओ इसे लकड़ी कहा जाय या वृक्ष? किंतु 'महाराज वृक्षपर बैठे हैं' ऐसा कोई नहीं कहता और न कोई तुम्हें लकड़ीपर बैठा हुआ ही बताता है! सब लोग शिविकामें बैठा हुआ ही कहते हैं। नृपश्रेष्ठ! रचनाविशेषमें स्थित लकड़ियोंका समूह ही तो शिविका है। यदि वह उससे कोई भिन्न वस्तु है तो काष्ठको अलग करके उसे ढूँढो। यही न्याय तुझमें और मुझमें लागू होता है अर्थात् मेरे और तुम्हारे शरीर भी पञ्चभूतसे अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं हैं। राजन्! पुरुष तो न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष है। ये सब तो कर्मजन्य शरीरोंकी आकृतियोंके ही भेद हैं।

लोकमें राजा, राजाके सैनिक तथा और भी जो-जो वस्तुएँ हैं, राजन्! वे परमार्थतः नहीं हैं, केवल कल्पनामय ही हैं। जिस वस्तुकी परिणामादिके कारण कालान्तरमें भी दूसरी संज्ञा नहीं होती, वही परमार्थ-वस्तु है। तुम अपनेको ही देखो—समस्त प्रजाके लिये तुम राजा हो, पिताके लिये पुत्र हो, शत्रुके लिये शत्रु हो, पत्नीके पति हो और पुत्रके पिता हो, राजन्! बतलाओ, मैं तुमको क्या कहूँ? महीपते! तुम क्या यह सिर हो अथवा ग्रीवा हो या पेट अथवा पादादिमेंसे कोई हो? तथा ये सिर आदि भी क्या 'तुम्हारे' हैं? पृथ्वीनाथ! तुम इन समस्त अवयवोंसे पृथक् हो, अतः सावधान होकर विचारो कि 'मैं कौन हूँ'। महाराज! आत्मतत्त्व इस प्रकार व्यवस्थित है। उसे सबसे पृथक् करके ही बताया जा सकता है। तो फिर, मैं उसे 'अहं' शब्दसे कैसे बतला सकता हूँ?

जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके ये परमार्थमय वचन सुनकर राजाने विनयावनत होकर उन विप्रवरसे कहा—

परमार्थज्ञ! यह बात मेरे कानोंमें पड़ते ही मेरा मन परमार्थका जिज्ञासु होकर बड़ा विह्वल हो रहा है। द्विज! मैं तो पहले ही महाभाग कपिलमुनिसे यह पूछनेके लिये कि बताइये 'संसारमें मनुष्योंका श्रेय किसमें है' उनके पास जानेको तत्पर हुआ हूँ, किंतु बीचमें ही आपने जो वाक्य कहे हैं, उन्हें सुनकर मेरा चित्त परमार्थ-श्रवण करनेके लिये आपकी ओर झुक गया है। द्विज! ये कपिलमुनि सर्वमय भगवान् विष्णुके ही अंश हैं। इन्होंने संसारका मोह दूर करनेके लिये ही पृथिवीपर अवतार लिया है, किंतु आप जो इस प्रकार भाषण कर रहे हैं, उससे मुझे निश्चय होता है कि वे ही भगवान् कपिलदेव मेरे हितकी कामनासे यहाँ आपके रूपमें प्रकट हो गये हैं। अतः द्विज! हमारा जो परम श्रेय हो, वह आप मुझ विनीतसे कहिये। प्रभो! आप सम्पूर्ण विज्ञान-तरङ्गोंके मानो समुद्र ही हैं।

ब्राह्मण बोले—राजन्! तुम श्रेय पूछना चाहते हो या परमार्थ? क्योंकि भूपते! श्रेय तो सब अपारमार्थिक ही हैं। नृप! जो पुरुष देवताओंकी आराधना करके धन, सम्पत्ति, पुत्र और राज्यादिकी इच्छा करता, उसके लिये तो वे ही श्रेय हैं। जिसका फल स्वर्गलोककी प्राप्ति है, वह यज्ञात्मक कर्म भी श्रेय है; किंतु प्रधान श्रेय तो उसके फलकी इच्छा न करनेमें ही है। अतः राजन्! योगयुक्त पुरुषोंको प्रकृति आदिसे अतीत उस आत्माका ही ध्यान करना चाहिये, क्योंकि उस परमात्माका संयोगरूप श्रेय ही वास्तविक श्रेय है।

इस प्रकार श्रेय तो सैकड़ों-हजारों प्रकारके अनेकों हैं, किंतु ये सब परमार्थ नहीं हैं। अब जो परमार्थ है सो सुनो—यदि धन ही परमार्थ है तो धर्मके लिये उसका त्याग क्यों किया जाता है? तथा इच्छित भोगोंकी प्राप्तिके लिये उसका व्यय क्यों किया जाता है? अतः वह परमार्थ नहीं है। नरेश्वर! यदि पुत्रको परमार्थ कहा जाय तो वह तो

अनात्मामें ही आत्मत्वका ज्ञान करानेवाला भ्रान्तिमूलक 'अहं' शब्द ही दोषका कारण है। नृप! 'अहं' शब्दका उच्चारण जिह्वा, दन्त, ओठ और तालुसे ही होता है, किंतु ये सब 'अहं' नहीं हैं; क्योंकि ये तो उस शब्दके उच्चारणके हेतु या करणमात्र हैं। तो क्या जिह्वादि हेतुओंके द्वारा यह वाणी ही स्वयं अपनेको 'अहं' कहती है? नहीं। सिर तथा कर-चरणादिरूप यह शरीर भी आत्मासे पृथक् ही है। अतः राजन्! इस 'अहं' शब्दका मैं कहाँ प्रयोग करूँ? तथा नृपश्रेष्ठ! यदि मुझसे भिन्न कोई और भी सजातीय आत्मा हो तो भी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है'—ऐसा कहा जा सकता था। किंतु जब समस्त शरीरोंमें एक ही आत्मा विराजमान है, तब 'आप कौन हैं? मैं वह हूँ' ये सब वाक्य निष्फल ही हैं।

'तुम राजा हो, यह शिबिका है, ये सामने शिबिकावाहक हैं तथा ये सब तुम्हारी प्रजा हैं'—नृप! इनमेंसे कोई भी बात परमार्थतः सत्य नहीं है। राजन्! वृक्षसे लकड़ी हुई और उससे तुम्हारी यह शिबिका बनी; तो बताओ इसे लकड़ी कहा जाय या वृक्ष? किंतु 'महाराज वृक्षपर बैठे हैं' ऐसा कोई नहीं कहता और न कोई तुम्हें लकड़ीपर बैठा हुआ ही बताता है! सब लोग शिबिकामें बैठा हुआ ही कहते हैं। नृपश्रेष्ठ! रचनाविशेषमें स्थित लकड़ियोंका समूह ही तो शिबिका है। यदि वह उससे कोई भिन्न वस्तु है तो काष्ठको अलग करके उसे ढूँढो। यही न्याय तुझमें और मुझमें लागू होता है अर्थात् मेरे और तुम्हारे शरीर भी पञ्चभूतसे अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं हैं। राजन्! पुरुष तो न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष है। ये सब तो कर्मजन्य शरीरोंकी आकृतियोंके ही भेद हैं।

लोकमें राजा, राजाके सैनिक तथा और भी जो-जो वस्तुएँ हैं, राजन्! वे परमार्थतः नहीं हैं, केवल कल्पनामय ही हैं। जिस वस्तुकी परिणामादिके कारण कालान्तरमें भी दूसरी संज्ञा नहीं होती, वही परमार्थ-वस्तु है। तुम अपनेको ही देखो—समस्त प्रजाके लिये तुम राजा हो, पिताके लिये पुत्र हो, शत्रुके लिये शत्रु हो, पत्नीके पति हो और पुत्रके पिता हो, राजन्! बतलाओ, मैं तुमको क्या कहूँ? महीपते! तुम क्या यह सिर हो अथवा ग्रीवा हो या पेट अथवा पादादिमेंसे कोई हो? तथा ये सिर आदि भी क्या 'तुम्हारे' हैं? पृथ्वीनाथ! तुम इन समस्त अवयवोंसे पृथक् हो, अतः सावधान होकर विचारो कि 'मैं कौन हूँ'। महाराज! आत्मतत्त्व इस प्रकार व्यवस्थित है। उसे सबसे पृथक् करके ही बताया जा सकता है। तो फिर, मैं उसे 'अहं' शब्दसे कैसे बतला सकता हूँ?

जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके ये परमार्थमय वचन सुनकर राजाने विनयावनत होकर उन विप्रवरसे कहा—

परमार्थज्ञ! यह बात मेरे कानोंमें पड़ते ही मेरा मन परमार्थका जिज्ञासु होकर बड़ा विह्वल हो रहा है। द्विज! मैं तो पहले ही महाभाग कपिलमुनिसे यह पूछनेके लिये कि बताइये 'संसारमें मनुष्योंका श्रेय किसमें है' उनके पास जानेको तत्पर हुआ हूँ, किंतु बीचमें ही आपने जो वाक्य कहे हैं, उन्हें सुनकर मेरा चित्त परमार्थ-श्रवण करनेके लिये आपकी ओर झुक गया है। द्विज! ये कपिलमुनि सर्वमय भगवान् विष्णुके ही अंश हैं। इन्होंने संसारका मोह दूर करनेके लिये ही पृथिवीपर अवतार लिया है, किंतु आप जो इस प्रकार भाषण कर रहे हैं, उससे मुझे निश्चय होता है कि वे ही भगवान् कपिलदेव मेरे हितकी कामनासे यहाँ आपके रूपमें प्रकट हो गये हैं। अतः द्विज! हमारा जो परम श्रेय हो, वह आप मुझ विनीतसे कहिये। प्रभो! आप सम्पूर्ण विज्ञान-तरंगोंके मानो समुद्र ही हैं।

ब्राह्मण बोले—राजन्! तुम श्रेय पूछना चाहते हो या परमार्थ? क्योंकि भूपते! श्रेय तो सब अपारमार्थिक ही हैं। नृप! जो पुरुष देवताओंकी आराधना करके धन, सम्पत्ति, पुत्र और राज्यादिकी इच्छा करता, उसके लिये तो वे ही श्रेय हैं। जिसका फल स्वर्गलोककी प्राप्ति है, वह यज्ञात्मक कर्म भी श्रेय है; किंतु प्रधान श्रेय तो उसके फलकी इच्छा न करनेमें ही है। अतः राजन्! योगयुक्त पुरुषोंको प्रकृति आदिसे अतीत उस आत्माका ही ध्यान करना चाहिये, क्योंकि उस परमात्माका संयोगरूप श्रेय ही वास्तविक श्रेय है।

इस प्रकार श्रेय तो सैकड़ों-हजारों प्रकारके अनेकों हैं, किंतु ये सब परमार्थ नहीं हैं। अब जो परमार्थ है सो सुनो—यदि धन ही परमार्थ है तो धर्मके लिये उसका त्याग क्यों किया जाता है? तथा इच्छित भोगोंकी प्राप्तिके लिये उसका व्यय क्यों किया जाता है? अतः वह परमार्थ नहीं है। नरेश्वर! यदि पुत्रको परमार्थ कहा जाय तो वह तो

ऋभु बोले—द्विज ! ये तो सभी कुत्सित अन्न हैं, मुझे तो तुम हलवा, खीर तथा मट्ठा और खाँड़के पदार्थ आदि स्वादिष्ट भोजन कराओ ।

तब निदाघने अपनी स्त्रीसे कहा—गृहदेवि ! हमारे घरमें जो अच्छी-से-अच्छी वस्तु हो, उसीसे इनके लिये इनकी इच्छाके अनुकूल अति स्वादिष्ट भोजन बनाओ ।

ब्राह्मण (जडभरत) ने कहा—उसके ऐसा कहनेपर उसकी पत्नीने अपने पतिकी आज्ञाका आदर करते हुए उन विप्रवरके लिये अति स्वादिष्ट अन्न तैयार किया ।

राजन् ! ऋभुके यथेच्छ भोजन कर चुकनेपर निदाघने अति विनीत होकर उन महामुनिसे कहा ।

निदाघ बोले—द्विज ! कहिये भोजन करके आपका चित्त स्वस्थ हुआ न ? आप पूर्णतया तृप्त और संतुष्ट हो गये न ? विप्रवर ! कहिये आप कहाँ रहनेवाले हैं ? कहाँ जानेकी तैयारीमें हैं ? और कहाँसे पधारे हैं ?

ऋभु बोले—ब्राह्मण ! जिसको क्षुधा लगती है, उसीको अन्न भोजन करनेपर तृप्ति हुआ करती है । मुझको तो कभी क्षुधा ही नहीं लगी, फिर तृप्तिके विषयमें मुझसे तुम क्यों पूछते हो ? जठराग्निके द्वारा पार्थिव (ठोस) धातुओंके क्षीण हो जानेसे देहमें क्षुधाकी उत्पत्ति होती है और जलके क्षीण होनेसे प्यास लगती है । द्विज ! ये क्षुधा और तृषा तो देहके ही धर्म हैं, मेरे नहीं; अतः कभी क्षुधित न होनेके कारण मैं तो सर्वदा तृप्त ही हूँ । स्वस्थता और तुष्टि भी मनमें ही होते हैं, अतः ये मनके ही धर्म हैं, पुरुष (आत्मा) से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है । इसलिये द्विज ! ये जिसके धर्म हैं उसीसे इनके विषयमें पूछो और तुमने जो पूछा कि 'आप कहाँ रहनेवाले हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? तथा कहाँसे आये हैं' सो इन तीनोंके विषयमें मेरा मत सुनो । आत्मा सर्वगत है, क्योंकि यह आकाशके समान व्यापक है; अतः 'कहाँसे आये हो, कहाँ रहते हो और कहाँ जाओगे ?' यह कथन भी कैसे बन सकता है ? मैं तो न कहीं जाता हूँ, न आता हूँ और न किसी एक देशमें रहता हूँ । तू, मैं और अन्य पुरुष भी देहादिके कारण जैसे पृथक् पृथक् दिखायी देते हैं, वास्तवमें वैसे नहीं हैं; वस्तुतः तू तू नहीं है, अन्य अन्य नहीं है और मैं मैं नहीं हूँ ।

वास्तवमें मधुर मधुर है भी नहीं; देखो, मैंने तुमसे जो मधुर अन्नकी याचना की थी, उससे भी मैं यही देखना चाहता था कि 'तुम क्या कहते हो ?' द्विजश्रेष्ठ ! भोजन करनेवालेके लिये स्वादु और अस्वादु भी क्या है ? क्योंकि स्वादिष्ट पदार्थ ही जब समयान्तरसे अस्वादु हो जाता है तो वही उद्वेगजनक होने लगता है । इसी प्रकार कभी अरुचिकर पदार्थ रुचिकर हो जाते हैं और रुचिकर पदार्थोंसे मनुष्यको उद्वेग हो जाता है । ऐसा अन्न भला कौन-सा है जो आदि, मध्य और अन्त तीनों कालमें रुचिकर ही हो ? जिस प्रकार मिट्टीका घर मिट्टीसे लीपने-पोतनेसे स्थिर रहता है, उसी प्रकार यह पार्थिव देह पार्थिव परमाणुओंसे पुष्ट होती है । जौ, गेहूँ, मूँग, घृत, तैल, दूध, दही, गुड़ और फल आदि सभी पदार्थ पार्थिव परमाणु ही तो हैं । अतः ऐसा जानकर तुम्हें इस स्वादु-अस्वादुका विचार करनेवाले चित्तको समदर्शी बनाना चाहिये, क्योंकि मोक्षका एकमात्र उपाय समता ही है ।

ब्राह्मण बोले—राजन् ! उनके ऐसे परमार्थमय वचन सुनकर महाभाग निदाघने उन्हें प्रणाम करके कहा—'प्रभो ! आप प्रसन्न होइये । कृपया बतलाइये, मेरे कल्याणकी कामनासे आये हुए आप कौन हैं ? द्विज ! आपके इन वचनोंको सुनकर मेरा सम्पूर्ण मोह नष्ट हो गया है ।'

ऋभु बोले—द्विज ! मैं तेरा गुरु ऋभु हूँ; तुझको सदसद्विवेकिनी बुद्धि प्रदान करनेके लिये मैं यहाँ आया था । अब मैं जाता हूँ; जो कुछ परमार्थ है, वह मैंने तुझसे कह ही दिया है । इस परमार्थतत्त्वका विचार करते हुए तू इस सम्पूर्ण जगत्‌को एक वासुदेव परमात्माका ही स्वरूप जान, इसमें भेद-भाव बिल्कुल नहीं है * ।

ब्राह्मण बोले—तदनन्तर निदाघने 'बहुत अच्छा' कह उन्हें प्रणाम किया और फिर उससे परम भक्तिपूर्वक पूजित हो ऋभु स्वेच्छानुसार चले गये ।

ब्राह्मण बोले—नरेश्वर ! तदनन्तर सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर महर्षि ऋभु निदाघको ज्ञानोपदेश करनेके लिये फिर उसी नगरको गये । वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने देखा कि वहाँका राजा बहुत-सी सेना आदिके साथ बड़ी धूम-धामसे नगरमें प्रवेश कर रहा है और वनसे कुशा तथा समिधा लेकर आया हुआ महाभाग निदाघ जनसमूहसे हटकर भूखा-प्यासा दूर खड़ा है ।

---

* एवमेकमिदं विद्धि न भेदि सकलं जगत् ।
वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ॥
(वि० पु० २ । १५ । ३५)

ऋभु बोले—द्विज ! ये तो सभी कुत्सित अन्न हैं, मुझे तो तुम हलवा, खीर तथा मट्ठा और खाँड़के पदार्थ आदि स्वादिष्ट भोजन कराओ ।

तब निदाघने अपनी स्त्रीसे कहा—गृहदेवि ! हमारे घरमें जो अच्छी-से-अच्छी वस्तु हो, उसीसे इनके लिये इनकी इच्छाके अनुकूल अति स्वादिष्ट भोजन बनाओ ।

ब्राह्मण (जडभरत) ने कहा—उसके ऐसा कहनेपर उसकी पत्नीने अपने पतिकी आज्ञाका आदर करते हुए उन विप्रवरके लिये अति स्वादिष्ट अन्न तैयार किया ।

राजन् ! ऋभुके यथेच्छ भोजन कर चुकनेपर निदाघने अति विनीत होकर उन महामुनिसे कहा ।

निदाघ बोले—द्विज ! कहिये भोजन करके आपका चित्त स्वस्थ हुआ न ? आप पूर्णतया तृप्त और संतुष्ट हो गये न ? विप्रवर ! कहिये आप कहाँ रहनेवाले हैं ? कहाँ जानेकी तैयारीमें हैं ? और कहाँसे पधारे हैं ?

ऋभु बोले—ब्राह्मण ! जिसको क्षुधा लगती है, उसीको अन्न भोजन करनेपर तृप्ति हुआ करती है । मुझको तो कभी क्षुधा ही नहीं लगी, फिर तृप्तिके विषयमें मुझसे तुम क्यों पूछते हो ? जठराग्निके द्वारा पार्थिव (ठोस) धातुओंके क्षीण हो जानेसे देहमें क्षुधाकी उत्पत्ति होती है और जलके क्षीण होनेसे प्यास लगती है । द्विज ! ये क्षुधा और तृषा तो देहके ही धर्म हैं, मेरे नहीं; अतः कभी क्षुधित न होनेके कारण मैं तो सर्वदा तृप्त ही हूँ । स्वस्थता और तुष्टि भी मनमें ही होते हैं, अतः ये मनके ही धर्म हैं, पुरुष (आत्मा) से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है । इसलिये द्विज ! ये जिसके धर्म हैं उसीसे इनके विषयमें पूछो और तुमने जो पूछा कि 'आप कहाँ रहनेवाले हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? तथा कहाँसे आये हैं' सो इन तीनोंके विषयमें मेरा मत सुनो । आत्मा सर्वगत है, क्योंकि यह आकाशके समान व्यापक है; अतः 'कहाँसे आये हो, कहाँ रहते हो और कहाँ जाओगे ?' यह कथन भी कैसे बन सकता है ? मैं तो न कहीं जाता हूँ, न आता हूँ और न किसी एक देशमें रहता हूँ । तू, मैं और अन्य पुरुष भी देहादिके कारण जैसे पृथक्-पृथक् दिखायी देते हैं, वास्तवमें वैसे नहीं हैं; वस्तुतः तू तू नहीं है, अन्य अन्य नहीं है और मैं मैं नहीं हूँ ।

वास्तवमें मधुर मधुर है भी नहीं; देखो, मैंने तुमसे जो मधुर अन्नकी याचना की थी, उससे भी मैं यही देखना चाहता था कि 'तुम क्या कहते हो ?' द्विजश्रेष्ठ ! भोजन करनेवालेके लिये स्वादु और अस्वादु भी क्या है ? क्योंकि स्वादिष्ठ पदार्थ ही जब समयान्तरसे अस्वादु हो जाता है तो वही उद्वेगजनक होने लगता है । इसी प्रकार कभी अरुचिकर पदार्थ रुचिकर हो जाते हैं और रुचिकर पदार्थोंसे मनुष्यको उद्वेग हो जाता है । ऐसा अन्न भला कौन-सा है जो आदि, मध्य और अन्त तीनों कालमें रुचिकर ही हो ? जिस प्रकार मिट्टीका घर मिट्टीसे लीपने-पोतनेसे स्थिर रहता है, उसी प्रकार यह पार्थिव देह पार्थिव परमाणुओंसे पुष्ट होती है । जौ, गेहूँ, मूँग, घृत, तैल, दूध, दही, गुड और फल आदि सभी पदार्थ पार्थिव परमाणु ही तो हैं । अतः ऐसा जानकर तुम्हें इस स्वादु-अस्वादुका विचार करनेवाले चित्तको समदर्शी बनाना चाहिये, क्योंकि मोक्षका एकमात्र उपाय समता ही है ।

ब्राह्मण बोले—राजन् ! उनके ऐसे परमार्थमय वचन सुनकर महाभाग निदाघने उन्हें प्रणाम करके कहा—'प्रभो ! आप प्रसन्न होइये । कृपया बतलाइये, मेरे कल्याणकी कामनासे आये हुए आप कौन हैं ? द्विज ! आपके इन वचनोंको सुनकर मेरा सम्पूर्ण मोह नष्ट हो गया है ।'

ऋभु बोले—द्विज ! मैं तेरा गुरु ऋभु हूँ; तुझको सदसद्विवेकिनी बुद्धि प्रदान करनेके लिये मैं यहाँ आया था । अब मैं जाता हूँ; जो कुछ परमार्थ है, वह मैंने तुझसे कह ही दिया है । इस परमार्थतत्त्वका विचार करते हुए तू इस सम्पूर्ण जगत्‌को एक वासुदेव परमात्माका ही स्वरूप जान, इसमें भेद-भाव बिल्कुल नहीं है * ।

ब्राह्मण बोले—तदनन्तर निदाघने 'बहुत अच्छा' कह उन्हें प्रणाम किया और फिर उससे परम भक्तिपूर्वक पूजित हो ऋभु स्वेच्छानुसार चले गये ।

ब्राह्मण बोले—नरेश्वर ! तदनन्तर सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर महर्षि ऋभु निदाघको ज्ञानोपदेश करनेके लिये फिर उसी नगरको गये । वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने देखा कि वहाँका राजा बहुत-सी सेना आदिके साथ बड़ी धूम-धामसे नगरमें प्रवेश कर रहा है और वनसे कुशा तथा समिधा लेकर आया हुआ महाभाग निदाघ जनसमूहसे हटकर भूखा-प्यासा दूर खड़ा है ।

---

* एवमेकमिदं विद्धि न भेदि सकलं जगत् ।
वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ॥
(वि० पु० २ । १५ । ३५)

तृतीय अंश

पहले सात मन्वन्तरोंके मनु, इन्द्र, देवता, सप्तर्षि और मनुपुत्रोंका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—गुरुदेव! आपने पृथ्वी और समुद्र आदिकी स्थिति तथा सूर्य आदि ग्रहगणके संस्थानका मुझसे भली प्रकार विस्तारपूर्वक वर्णन किया। देवता आदि और ऋषिगणोंकी सृष्टि तथा चातुर्वर्ण्य एवं तिर्यग्योनिगत जीवोंकी उत्पत्तिका भी वर्णन किया, साथ ही ध्रुव और प्रह्लादके चरित्रोंको भी विस्तारपूर्वक सुना दिया। गुरो! अब मैं आपके मुखारविन्दसे सम्पूर्ण मन्वन्तर तथा इन्द्र और देवताओंके सहित मन्वन्तरोंके अधिपति समस्त मनुओंका वर्णन सुनना चाहता हूँ, आप वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—भूतकालमें जितने मन्वन्तर हुए हैं तथा आगे भी जो-जो होंगे, उन सबका मैं तुमसे क्रमशः वर्णन करता हूँ। प्रथम मनु स्वायम्भुव थे। उनके अनन्तर क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष मनु हुए, ये छः मनु पूर्वकालमें हो चुके हैं। इस समय सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु हैं, जिनका यह सातवाँ मन्वन्तर वर्तमान है।

कल्पके आदिमें जिस स्वायम्भुवमन्वन्तरके विषयमें मैंने कहा है, उसके देवता और सप्तर्षियोंका तो मैं पहले ही यथावत् वर्णन कर चुका हूँ। अब आगे स्वारोचिषमनुके मन्वन्तराधिकारी देवता, ऋषि और मनुपुत्रोंका स्पष्टतया वर्णन करूँगा। मैत्रेय! स्वारोचिषमन्वन्तरमें पारावत और तुषितगण देवता थे, महाबली विपश्चित् देवराज इन्द्र थे, ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, पृषभ, निरय और परीवान्—ये उस समय सप्तर्षि थे तथा चैत्र और किम्पुरुष आदि स्वारोचिषमनुके पुत्र थे। इस प्रकार तुमसे द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन कर दिया।

ब्रह्मन्! तीसरे मन्वन्तरमें उत्तम नामक मनु और सुशान्ति नामक देवाधिपति इन्द्र थे। उस समय सुधाम, सत्य, जप, प्रतर्दन और वशवर्ती—ये पाँच बारह-बारह देवताओंके गण थे तथा वसिष्ठजीके सात पुत्र सप्तर्षिगण और अज, परशु एवं दीप्त आदि उत्तममनुके पुत्र थे।

तामसमन्वन्तरमें सुपार, हरि, सत्य और सुधी—ये चार देवताओंके वर्ग थे और इनमेंसे प्रत्येक वर्गमें सत्ताईस-सत्ताईस देवता थे। सौ अश्वमेध यज्ञवाला राजा शिबि इन्द्र था तथा उस समय जो सप्तर्षि थे, उनके नाम मुझसे सुनो—ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर—ये उस मन्वन्तरके सप्तर्षि थे तथा नर, ख्याति, केतुरूप और जानुजङ्घ आदि तामसमनुके महाबली पुत्र ही उस समय राज्याधिकारी थे।

मैत्रेय! पाँचवें मन्वन्तरमें रैवत नामक मनु और विभु नामक इन्द्र हुए तथा उस समय जो देवगण थे, उनके नाम सुनो—उस मन्वन्तरमें चौदह-चौदह देवताओंके अमिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ और सुमेधा नामक गण थे। विप्र! इस रैवतमन्वन्तरमें हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि—ये सात सप्तर्षि थे। मुनिसत्तम! उस समय रैवतमनुके महावीर्यशाली पुत्र बलबन्धु, सम्भाव्य और सत्यक आदि राजा थे।

मैत्रेय! स्वारोचिष, उत्तम, तामस तथा रैवत—ये चार मनु राजा प्रियव्रतके वंशधर कहे जाते हैं। राजर्षि प्रियव्रतने तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना करके अपने वंशमें उत्पन्न हुए इन चार मन्वन्तराधिपोंको प्राप्त किया था।

छठे मन्वन्तरमे चाक्षुष नामक मनु और मनोजव नामक इन्द्र थे। उस समय जो देवगण थे, उनके नाम सुनो। उस समय आप्य, प्रसूत, भव्य, पृथुक और लेख—ये पाँच प्रकारके महानुभाव देवगण वर्तमान थे और इनमेंसे प्रत्येक गणमें आठ-आठ देवता थे। उस मन्वन्तरमें सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु—ये सात सप्तर्षि थे तथा चाक्षुषके अति बलवान् पुत्र ऊरु, पूरु और शतद्युम्न आदि राज्याधिकारी थे।

विप्र! इस समय इस सातवें मन्वन्तरमें सूर्यके पुत्र महातेजस्वी और बुद्धिमान् श्राद्धदेवजी मनु हैं। महामुने! इस मन्वन्तरमें आदित्य, वसु और रुद्र आदि देवगण हैं तथा पुरन्दर नामक इन्द्र है। इस समय वसिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज—ये सात सप्तर्षि हैं तथा वैवस्वतमनुके इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, करूष और पृषध्र—ये अत्यन्त लोकप्रसिद्ध और धर्मात्मा नौ पुत्र हैं।

समस्त मन्वन्तरोंमें देवरूपसे स्थित भगवान् विष्णुकी

तृतीय अंश

पहले सात मन्वन्तरोंके मनु, इन्द्र, देवता, सप्तर्षि और मनुपुत्रोंका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—गुरुदेव! आपने पृथ्वी और समुद्र आदिकी स्थिति तथा सूर्य आदि ग्रहगणके संस्थानका मुझसे भली प्रकार विस्तारपूर्वक वर्णन किया। देवता आदि और ऋषिगणोंकी सृष्टि तथा चातुर्वर्ण्य एवं तिर्यग्योनिगत जीवोंकी उत्पत्तिका भी वर्णन किया, साथ ही ध्रुव और प्रह्लादके चरित्रोंको भी विस्तारपूर्वक सुना दिया। गुरो! अब मैं आपके मुखारविन्दसे सम्पूर्ण मन्वन्तर तथा इन्द्र और देवताओंके सहित मन्वन्तरोंके अधिपति समस्त मनुओंका वर्णन सुनना चाहता हूँ, आप वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—भूतकालमें जितने मन्वन्तर हुए हैं तथा आगे भी जो-जो होंगे, उन सबका मैं तुमसे क्रमशः वर्णन करता हूँ। प्रथम मनु स्वायम्भुव थे। उनके अनन्तर क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष मनु हुए, ये छः मनु पूर्वकालमें हो चुके हैं। इस समय सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु हैं, जिनका यह सातवाँ मन्वन्तर वर्तमान है।

कल्पके आदिमें जिस स्वायम्भुवमन्वन्तरके विषयमें मैंने कहा है, उसके देवता और सप्तर्षियोंका तो मैं पहले ही यथावत् वर्णन कर चुका हूँ। अब आगे स्वारोचिषमनुके मन्वन्तराधिकारी देवता, ऋषि और मनुपुत्रोंका स्पष्टतया वर्णन करूँगा। मैत्रेय! स्वारोचिषमन्वन्तरमें पारावत और तुषितगण देवता थे, महाबली विपश्चित् देवराज इन्द्र थे, ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, ऋषभ, निरय और परीवान्—ये उस समय सप्तर्षि थे तथा चैत्र और किम्पुरुष आदि स्वारोचिषमनुके पुत्र थे। इस प्रकार तुमसे द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन कर दिया।

ब्रह्मन्! तीसरे मन्वन्तरमें उत्तम नामक मनु और सुशान्ति नामक देवाधिपति इन्द्र थे। उस समय सुधाम, सत्य, जप, प्रतर्दन और वशवर्ती—ये पाँच बारह-बारह देवताओंके गण थे तथा वसिष्ठजीके सात पुत्र सप्तर्षिगण और अज, परशु एवं दीन आदि उत्तममनुके पुत्र थे।

तामस मन्वन्तरमें सुपार, हरि, सत्य और सुधी—ये चार देवताओंके वर्ग थे और इनमेंसे प्रत्येक वर्गमें सत्ताईस-सत्ताईस देवगण थे। सौ अश्वमेध यज्ञवाला राजा शिबि इन्द्र था तथा उस समय जो सप्तर्षि थे, उनके नाम मुझसे सुनो—ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर—ये उस मन्वन्तरके सप्तर्षि थे तथा नर, ख्याति, केतुरूप और जानुजङ्घ आदि तामसमनुके महाबली पुत्र ही उस समय राज्याधिकारी थे।

मैत्रेय! पाँचवें मन्वन्तरमें रैवत नामक मनु और विभु नामक इन्द्र हुए तथा उस समय जो देवगण थे, उनके नाम सुनो—उस मन्वन्तरमें चौदह-चौदह देवताओंके अमिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ और सुमेधा नामक गण थे। विप्र! इस रैवतमन्वन्तरमें हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि—ये सात सप्तर्षि थे। मुनिसत्तम! उस समय रैवतमनुके महावीर्यशाली पुत्र बलबन्धु, सम्भाव्य और सत्यक आदि राजा थे।

मैत्रेय! स्वारोचिष, उत्तम, तामस तथा रैवत—ये चार मनु राजा प्रियव्रतके वंशधर कहे जाते हैं। राजर्षि प्रियव्रतने तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना करके अपने वंशमें उत्पन्न हुए इन चार मन्वन्तराधिपोंको प्राप्त किया था।

छठे मन्वन्तरमे चाक्षुष नामक मनु और मनोजव नामक इन्द्र थे। उस समय जो देवगण थे, उनके नाम सुनो। उस समय आप्य, प्रसूत, भव्य, पृथुक और लेख—ये पाँच प्रकारके महानुभाव देवगण वर्तमान थे और इनमेंसे प्रत्येक गणमें आठ-आठ देवता थे। उस मन्वन्तरमें सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु—ये सात सप्तर्षि थे तथा चाक्षुषके अति बलवान् पुत्र ऊरु, पूरु और शतद्युम्न आदि राज्याधिकारी थे।

विप्र! इस समय इस सातवें मन्वन्तरमें सूर्यके पुत्र महातेजस्वी और बुद्धिमान् श्राद्धदेवजी मनु हैं। महामुने! इस मन्वन्तरमें आदित्य, वसु और रुद्र आदि देवगण हैं तथा पुरन्दर नामक इन्द्र है। इस समय वसिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज—ये सात सप्तर्षि हैं तथा वैवस्वतमनुके इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, करूष और पृषध्र—ये अत्यन्त लोकप्रसिद्ध और धर्मात्मा नौ पुत्र हैं।

समस्त मन्वन्तरोंमें देवरूपसे स्थित भगवान् विष्णुकी

प्रत्येकमें तैंतीस-तैंतीस देवता होंगे तथा महाबलवान् दिवस्पति उनका इन्द्र होगा। निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निष्प्रकम्प, निरुत्सुक, धृतिमान्, अव्यय और सुतपा—ये तत्कालीन सप्तर्षि होंगे। अब मनुपुत्रोंके नाम भी सुनो—उस मन्वन्तरमें चित्रसेन और विचित्र आदि मनुपुत्र राजा होंगे।

मैत्रेय! चौदहवाँ मनु भौत्य होगा। उस समय शुचि नामक इन्द्र और पाँच देवगण होंगे; उनके नाम सुनो—वे चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिक और वाचावृद्ध नामक देवता हैं। अब तत्कालीन सप्तर्षियोंके नाम भी सुनो। उस समय अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, मागध, अग्निध्र, युक्त और जित—ये सप्तर्षि होंगे। अब मनुपुत्रोंके विषयमें सुनो। मुनिशार्दूल! कहते हैं, उस मनुके ऊरु और गम्भीरबुद्धि आदि पुत्र होंगे, जो राज्याधिकारी होकर पृथ्वीका पालन करेंगे।

प्रत्येक चतुर्युगके अन्तमें वेदोंका लोप हो जाता है, उस समय सप्तर्षिगण ही स्वर्गलोकसे पृथ्वीमें अवतीर्ण होकर उनका प्रचार करते हैं। प्रत्येक सत्ययुगके आदिमें मनुष्योंकी धर्म-मर्यादा स्थापित करनेके लिये स्मृति-शास्त्रके रचयिता मनुका प्रादुर्भाव होता है और उस मन्वन्तरके अन्तपर्यन्त तत्कालीन देवगण यज्ञ-भागोंको भोगते हैं तथा जो मनुके पुत्र होते हैं, वे और उनके वंशधर मन्वन्तरके अन्ततक पृथ्वीका पालन करते रहते हैं। इस प्रकार मनु, सप्तर्षि, देवता, इन्द्र तथा मनुपुत्र राजागण—ये प्रत्येक मन्वन्तरके अधिकारी होते हैं।

द्विज! इन चौदह मन्वन्तरोंके बीत जानेपर एक सहस्र युगतक रहनेवाला कल्प समाप्त हुआ कहा जाता है। साधुश्रेष्ठ! फिर इतने ही समयकी रात्रि होती है। उस समय ब्रह्मरूपधारी श्रीविष्णुभगवान् प्रलयकालीन जलके भीतर शेषशय्यापर शयन करते हैं। विप्र! तब आदिकर्ता सर्वव्यापक सर्वभूत भगवान् जनार्दन सम्पूर्ण त्रिलोकीका ग्रास कर अपनी मायामें स्थित रहते हैं। फिर प्रलय-रात्रिका अन्त होनेपर प्रत्येक कल्पके आदिमें अव्ययात्मा भगवान् जाग्रत् होकर रजोगुणका आश्रय ले सृष्टिकी रचना करते हैं। द्विजश्रेष्ठ! मनु, मनुपुत्र राजागण, इन्द्र, देवता तथा सप्तर्षि—ये सब जगत्का पालन करनेवाले भगवान्के सात्त्विक अंश हैं।

मैत्रेय! स्थितिकारक भगवान् विष्णु चारो युगोंमें जिस प्रकार व्यवस्था करते हैं, सो सुनो—समस्त प्राणियोंके कल्याणमें तत्पर वे सर्वभूतात्मा सत्ययुगमें कपिल आदि रूप धारणकर परम ज्ञानका उपदेश करते हैं। त्रेतायुगमें वे सर्वसमर्थ प्रभु चक्रवर्ती भूपाल होकर दुष्टोंका दमन करके त्रिलोकीकी रक्षा करते हैं। तदनन्तर द्वापर-युगमें वे वेदव्यासरूप धारणकर एक वेदके चार विभाग करते हैं और फिर सैकड़ों शाखाओंमें बाँटकर उसका बहुत विस्तार कर देते हैं। इस प्रकार द्वापरमें वेदोंका विस्तारकर कलियुगके अन्तमें भगवान् कल्किरूप धारणकर दुराचारी लोगोंको सन्मार्गमें प्रवृत्त करते हैं। इसी प्रकार अनन्तात्मा प्रभु निरन्तर इस सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति, पालन और नाश करते रहते हैं। इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो उनसे भिन्न हो। विप्र! इहलोक और परलोकमें भूत, भविष्यत् और वर्तमान जितने भी पदार्थ हैं वे सब महात्मा भगवान् विष्णुसे ही उत्पन्न हुए हैं—यह सब मैं तुमसे कह चुका हूँ। मैंने तुमसे सम्पूर्ण मन्वन्तरों और मन्वन्तराधिकारियोंका भी वर्णन कर दिया। कहो, अब और क्या सुनाऊँ?

चतुर्युगानुसार भिन्न-भिन्न व्यासोंके नाम तथा ब्रह्मज्ञानके माहात्म्यका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! आपके कथनसे मैं यह जान गया कि किस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है, विष्णुमें ही स्थित है, विष्णुसे ही उत्पन्न हुआ है तथा विष्णुसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि भगवान्‌ने वेदव्यासरूपसे किस प्रकार वेदोंका विभाग किया?

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! वेदरूप वृक्षके सहस्रों शाखा-भेद हैं, उनका विस्तारसे वर्णन करनेमें तो कोई भी समर्थ नहीं है, अतः संक्षेपसे सुनो—महामुने! प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् विष्णु व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं और संसारके कल्याणके लिये एक वेदके अनेक भेद कर देते हैं। मनुष्योंके बल, वीर्य और तेजको अल्प जानकर वे समस्त प्राणियोंके हितके लिये वेदोंका विभाग करते हैं। जिस शरीरके द्वारा वे प्रभु एक वेदके अनेक विभाग करते हैं, भगवान् मधुसूदनकी उस मूर्तिका नाम वेद-व्यास है।

ॐ यह अविनाशी एकाक्षर ही ब्रह्म है। यह बृहत् और व्यापक है, इसलिये 'ब्रह्म' कहलाता है। भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—ये तीनों प्रणवरूप ब्रह्ममें ही स्थित हैं तथा प्रणव ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्वरूप है; अतः उस ओंकाररूप ब्रह्मको नमस्कार है। जो संसारकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण कहलाता है तथा महत्तत्त्वसे भी परम गुह्य

[illegible] देवता होंगे तथा महाबलवान् दिवस्पति उनका इन्द्र होगा। निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निष्प्रकम्प, निरुत्सुक, धृतिमान्, अव्यय और सुतपा—ये तत्कालीन सप्तर्षि होंगे। अब मनुपुत्रोंके नाम भी सुनो—उस मन्वन्तरमें चित्रसेन और विचित्र आदि मनुपुत्र राजा होंगे।

मैत्रेय! चौदहवाँ मनु भौत्य होगा। उस समय शुचि नामक इन्द्र और पाँच देवगण होंगे; उनके नाम सुनो—वे चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिक और वाचावृद्ध नामक देवता हैं। अब तत्कालीन सप्तर्षियोंके नाम भी सुनो। उस समय अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, मागध, अग्निध्र, युक्त और जित—ये सप्तर्षि होंगे। अब मनुपुत्रोंके विषयमें सुनो। मुनिशार्दूल! कहते हैं, उस मनुके ऊरु और गम्भीरबुद्धि आदि पुत्र होंगे, जो राज्याधिकारी होकर पृथ्वीका पालन करेंगे।

प्रत्येक चतुर्युगके अन्तमें वेदोंका लोप हो जाता है, उस समय सप्तर्षिगण ही स्वर्गलोकसे पृथ्वीमें अवतीर्ण होकर उनका प्रचार करते हैं। प्रत्येक सत्ययुगके आदिमें मनुष्योंकी धर्म-मर्यादा स्थापित करनेके लिये स्मृति-शास्त्रके रचयिता मनुका प्रादुर्भाव होता है और उस मन्वन्तरके अन्तपर्यन्त तत्कालीन देवगण यज्ञ-भागोंको भोगते हैं तथा जो मनुके पुत्र होते हैं, वे और उनके वंशधर मन्वन्तरके अन्ततक पृथ्वीका पालन करते रहते हैं। इस प्रकार मनु, सप्तर्षि, देवता, इन्द्र तथा मनुपुत्र राजागण—ये प्रत्येक मन्वन्तरके अधिकारी होते हैं।

द्विज! इन चौदह मन्वन्तरोंके बीत जानेपर एक सहस्र युगतक रहनेवाला कल्प समाप्त हुआ कहा जाता है। साधुश्रेष्ठ! फिर इतने ही समयकी रात्रि होती है। उस समय ब्रह्मरूपधारी श्रीविष्णुभगवान् प्रलयकालीन जलके भीतर शेषशय्यापर शयन करते हैं। विप्र! तब आदिकर्ता सर्वव्यापक सर्वभूत भगवान् जनार्दन सम्पूर्ण त्रिलोकीका ग्रास कर अपनी मायामें स्थित रहते हैं। फिर प्रलय-रात्रिका अन्त होनेपर प्रत्येक कल्पके आदिमें अव्ययात्मा भगवान् जाग्रत् होकर रजोगुणका आश्रय ले सृष्टिकी रचना करते हैं। द्विजश्रेष्ठ! मनु, मनुपुत्र राजागण, इन्द्र, देवता तथा सप्तर्षि—ये सब जगत्‌का पालन करनेवाले भगवान्‌के सात्त्विक अंश हैं।

मैत्रेय! स्थितिकारक भगवान् विष्णु चारों युगोंमें जिस प्रकार व्यवस्था करते हैं, सो सुनो—समस्त प्राणियोंके कल्याणमें तत्पर वे सर्वभूतात्मा सत्ययुगमें कपिल आदि रूप धारणकर परम ज्ञानका उपदेश करते हैं। त्रेतायुगमें वे सर्वसमर्थ प्रभु चक्रवर्ती भूपाल होकर दुष्टोंका दमन करके त्रिलोकीकी रक्षा करते हैं। तदनन्तर द्वापर-युगमें वे वेदव्यासरूप धारणकर एक वेदके चार विभाग करते हैं और फिर सैकड़ों शाखाओंमें बाँटकर उसका बहुत विस्तार कर देते हैं। इस प्रकार द्वापरमें वेदोंका विस्तारकर कलियुगके अन्तमें भगवान् कल्किरूप धारणकर दुराचारी लोगोंको सन्मार्गमें प्रवृत्त करते हैं। इसी प्रकार अनन्तात्मा प्रभु निरन्तर इस सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और नाश करते रहते हैं। इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो उनसे भिन्न हो। विप्र! इहलोक और परलोकमें भूत, भविष्यत् और वर्तमान जितने भी पदार्थ हैं वे सब महात्मा भगवान् विष्णुसे ही उत्पन्न हुए हैं—यह सब मैं तुमसे कह चुका हूँ। मैंने तुमसे सम्पूर्ण मन्वन्तरों और मन्वन्तराधिकारियोंका भी वर्णन कर दिया। कहो, अब और क्या सुनाऊँ?

चतुर्युगानुसार भिन्न-भिन्न व्यासोंके नाम तथा ब्रह्मज्ञानके माहात्म्यका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! आपके कथनसे मैं यह जान गया कि जिस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है, विष्णुमें ही स्थित है, विष्णुसे ही उत्पन्न हुआ है तथा विष्णुसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि भगवान्‌ने वेदव्यासरूपसे किस प्रकार वेदोंका विभाग किया?

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! वेदरूप वृक्षके सहस्रों शाखा-भेद हैं, उनका विस्तारसे वर्णन करनेमें तो कोई भी समर्थ नहीं है, अतः संक्षेपसे सुनो—महामुने! प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् विष्णु व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं और संसारके कल्याणके लिये एक वेदके अनेक भेद कर देते हैं। मनुष्योंके बल, वीर्य और तेजको अल्प जानकर वे समस्त प्राणियोंके हितके लिये वेदोंका विभाग करते हैं। जिस शरीरके द्वारा वे प्रभु एक वेदके अनेक विभाग करते हैं, भगवान् मधुसूदनकी उस मूर्तिका नाम वेद-व्यास है।

ॐ यह अविनाशी एकाक्षर ही ब्रह्म है। यह बृहत् और व्यापक है, इसलिये 'ब्रह्म' कहलाता है। भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—ये तीनों प्रणवरूप ब्रह्ममें ही स्थित हैं तथा प्रणव ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्वरूप है; अतः उस ओंकाररूप ब्रह्मको नमस्कार है। जो संसारकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण कहलाता है तथा महत्तत्त्वसे भी परम गुह्य

शुक्लयजुर्वेद तथा उसकी शाखाओंका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने ! व्यासजीके शिष्य वैशम्पायनने यजुर्वेदरूपी वृक्षकी सत्ताईस शाखाओंकी रचना की और उन्हें अपने शिष्योंको पढ़ाया तथा शिष्योंने भी उन्हें क्रमशः ग्रहण किया। द्विज ! उनका एक परम धार्मिक और सदैव गुरुसेवामें तत्पर रहनेवाला शिष्य ब्रह्मरातका पुत्र याज्ञवल्क्य था। एक समय समस्त ऋषिगणने मिलकर यह नियम किया कि जो कोई महामेरुपर स्थित हमारे इस समाजमें सम्मिलित न होगा, उसको सात रात्रियोंके भीतर ही ब्रह्महत्या लगेगी। द्विज ! इस प्रकार मुनियोंने पहले जिस समयको नियत किया था, उसका केवल एक वैशम्पायनने ही अतिक्रमण किया। इसके पश्चात् उनका चरणस्पर्श हो जानेसे ही उसके भानजेकी हत्या हो गयी। तब उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा—'शिष्यगण ! तुम सब लोग किसी प्रकारका विचार न करके मेरे लिये ब्रह्महत्याको दूर करनेवाला व्रत करो।'

तब याज्ञवल्क्य बोले—'भगवन् ! ये सब ब्राह्मण अत्यन्त तेजवाले हैं, इन्हें कष्ट देनेकी क्या आवश्यकता है ? मैं अकेला ही इस व्रतका अनुष्ठान करूँगा।' इससे गुरु वैशम्पायनजीने महामुनि याज्ञवल्क्यसे कहा—'अरे ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाले ! तूने मुझसे जो कुछ पढ़ा है, वह सब त्याग दे। तू इन समस्त द्विजश्रेष्ठोंको निस्तेज बताता है, मुझे तुझ जैसे शिष्यसे कोई प्रयोजन नहीं है।' याज्ञवल्क्यने कहा' 'द्विज ! मैंने तो भक्तिवश आपसे ऐसा कहा था, मैंने आपसे जो कुछ पढ़ा है, वह लीजिये।' ऐसा कह महामुनि याज्ञवल्क्यजी स्वेच्छानुसार चले गये। मुनिसत्तम ! फिर जिन विप्रगणने गुरुकी प्रेरणासे ब्रह्महत्या-विनाशक व्रतका अनुष्ठान किया था, वे सब व्रताचरणके कारण यजुःशाखाध्यायी चरकाध्वर्यु हुए। तदनन्तर, याज्ञवल्क्यने भी यजुर्वेदकी प्राप्तिकी इच्छासे प्राणोंका संयम कर संयतचित्तसे सूर्यभगवान्‌की स्तुति की।

याज्ञवल्क्यजी बोले—अतुलित तेजस्वी, मुक्तिके द्वारस्वरूप तथा वेदत्रयरूप तेजसे सम्पन्न एवं ऋक्, यजुः तथा सामस्वरूप सवितादेवको नमस्कार है। जो अग्नि और चन्द्रमारूप, जगत्‌के कारण और सुषुम्न नामक परम तेजको धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् भास्करको नमस्कार है। कला, काष्ठा, निमेष आदि कालका ज्ञान करानेवाला आत्मा जिनका स्वरूप है, उन ध्यान करनेयोग्य परब्रह्मस्वरूप, विष्णुमय श्रीसूर्यदेवको नमस्कार है। जो अपनी किरणोंसे चन्द्रमाको पोषित करते हुए देवताओंको तथा स्वधारूप अमृतसे पितृगणको तृप्त करते हैं, उन तृप्तिरूप सूर्यदेवको नमस्कार है। जो हिम, जल और उष्णताके कर्ता अर्थात् शीत, वर्षा और ग्रीष्म आदि ऋतुओंके कारण हैं और जगत्‌का पोषण करनेवाले हैं, उन त्रिकालमूर्ति विधाता भगवान् सूर्यको नमस्कार है। जो जगत्पति इस सम्पूर्ण जगत्‌के अन्धकारको दूर करते हैं, उन सत्त्वमय तेजोरूपधारी विवस्वान्‌को नमस्कार है। जिनके उदित हुए विना मनुष्य सत्कर्ममें प्रवृत्त नहीं हो सकते और जल शुद्धिका कारण नहीं हो सकता, उन भास्वान् देवको नमस्कार है। जिनके किरण-समूहका स्पर्श होनेपर लोक कर्मानुष्ठानके योग्य होता है, उन पवित्रताके कारण, शुद्धस्वरूप सूर्यदेवको नमस्कार है। भगवान् सविता, सूर्य, भास्कर और विवस्वान्‌को नमस्कार है। देवता आदि समस्त भूतोंके आदिभूत आदित्यदेवको बारंबार नमस्कार है। जिनका तेजोमय रथ है, प्रज्ञारूप ध्वजाएँ हैं, जिन्हें छन्दोमय अमर अश्वगण वहन करते हैं तथा जो त्रिभुवनको प्रकाशित करनेवाले नेत्ररूप हैं, उन सूर्यदेवको मैं नमस्कार करता हूँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्य अश्वरूपसे प्रकट होकर बोले—'तुम अपना अभीष्ट वर माँगो।' तब याज्ञवल्क्यजीने उन्हें प्रणाम करके कहा—'आप मुझे उन यजुःश्रुतियोंका उपदेश कीजिये जिन्हें मेरे गुरुजी भी न जानते हों।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान् सूर्यने उन्हें अयातयाम नामक यजुःश्रुतियोंका उपदेश दिया, जिन्हें उनके गुरु वैशम्पायनजी भी नहीं जानते थे। द्विजोत्तम ! उन श्रुतियोंको जिन ब्राह्मणोंने पढ़ा था, वे वाजी नामसे विख्यात हुए; क्योंकि उनका उपदेश करते समय सूर्य अश्वरूप थे। महाभाग ! उन वाजि-श्रुतियोंकी काण्व आदि पंद्रह शाखाएँ हैं; वे सब शाखाएँ महर्षि याज्ञवल्क्यद्वारा प्रवृत्त की हुई कही जाती हैं।

शुक्लयजुर्वेद तथा उसकी शाखाओंका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने ! व्यासजीके शिष्य वैशम्पायनने यजुर्वेदरूपी वृक्षकी सत्ताईस शाखाओंकी रचना की और उन्हें अपने शिष्योंको पढ़ाया तथा शिष्योंने भी उन्हें क्रमशः ग्रहण किया। द्विज ! उनका एक परम धार्मिक और सदैव गुरुसेवामें तत्पर रहनेवाला शिष्य ब्रह्मरातका पुत्र याज्ञवल्क्य था। एक समय समस्त ऋषिगणने मिलकर यह नियम किया कि जो कोई महामेरुपर स्थित हमारे इस समाजमें सम्मिलित न होगा, उसको सात रात्रियोंके भीतर ही ब्रह्महत्या लगेगी। द्विज ! इस प्रकार मुनियोंने पहले जिस समयको नियत किया था, उसका केवल एक वैशम्पायनने ही अतिक्रमण किया। इसके पश्चात् उनका चरणस्पर्श हो जानेसे ही उसके भानजेकी हत्या हो गयी। तब उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा—'शिष्यगण ! तुम सब लोग किसी प्रकारका विचार न करके मेरे लिये ब्रह्महत्याको दूर करनेवाला व्रत करो।'

तब याज्ञवल्क्य बोले—'भगवन् ! ये सब ब्राह्मण अल्प-तेजवाले हैं, इन्हें कष्ट देनेकी क्या आवश्यकता है ? मैं अकेला ही इस व्रतका अनुष्ठान करूँगा।' इससे गुरु वैशम्पायनजीने महामुनि याज्ञवल्क्यसे कहा—'अरे ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाले ! तूने मुझसे जो कुछ पढ़ा है, वह सब त्याग दे। तू इन समस्त द्विजश्रेष्ठोंको निस्तेज बताता है, मुझे तुझ जैसे शिष्यसे कोई प्रयोजन नहीं है।' याज्ञवल्क्यने कहा-'द्विज ! मैंने तो भक्तिवश आपसे ऐसा कहा था, मैंने आपसे जो कुछ पढ़ा है, वह लीजिये।' ऐसा कह महामुनि याज्ञवल्क्यजी स्वेच्छानुसार चले गये। मुनिसत्तम ! फिर जिन विप्रगणने गुरुकी प्रेरणासे ब्रह्महत्या-विनाशक व्रतका अनुष्ठान किया था, वे सब व्रताचरणके कारण यजुःशाखाध्यायी चरकाध्वर्यु हुए। तदनन्तर, याज्ञवल्क्यने भी यजुर्वेदकी प्राप्तिकी इच्छासे प्राणोंका संयम कर संयतचित्तसे सूर्यभगवान्‌की स्तुति की।

याज्ञवल्क्यजी बोले—अतुलित तेजस्वी, मुक्तिके द्वार-स्वरूप तथा वेदत्रयरूप तेजसे सम्पन्न एवं ऋक्, यजुः तथा सामस्वरूप सवितादेवको नमस्कार है। जो अग्नि और चन्द्रमारूप, जगत्‌के कारण और सुषुम्न नामक परम तेजको धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् भास्करको नमस्कार है। कला, काष्ठा, निमेष आदि कालका ज्ञान करानेवाला आत्मा जिनका स्वरूप है, उन ध्यान करनेयोग्य परब्रह्मस्वरूप, विष्णुमय श्रीसूर्यदेवको नमस्कार है। जो अपनी किरणोंसे चन्द्रमाको पोषित करते हुए देवताओंको तथा स्वधारूप अमृतसे पितृगणको तृप्त करते हैं, उन तृप्तिरूप सूर्यदेवको नमस्कार है। जो हिम, जल और उष्णताके कर्ता अर्थात् शीत, वर्षा और ग्रीष्म आदि ऋतुओंके कारण हैं और जगत्‌का पोषण करनेवाले हैं, उन त्रिकालमूर्ति विधाता भगवान् सूर्यको नमस्कार है। जो जगत्पति इस सम्पूर्ण जगत्‌के अन्धकारको दूर करते हैं, उन सत्त्वमय तेजोरूपधारी विवस्वान्‌को नमस्कार है। जिनके उदित हुए बिना मनुष्य सत्कर्ममें प्रवृत्त नहीं हो सकते और जल शुद्धिका कारण नहीं हो सकता, उन भास्वान् देवको नमस्कार है। जिनके किरण-समूहका स्पर्श होनेपर लोक कर्मानुष्ठानके योग्य होता है, उन पवित्रताके कारण, शुद्धस्वरूप सूर्यदेवको नमस्कार है। भगवान् सविता, सूर्य, भास्कर और विवस्वान्‌को नमस्कार है। देवता आदि समस्त भूतोंके आदिभूत आदित्यदेवको बारंबार नमस्कार है। जिनका तेजोमय रथ है, प्रज्ञारूप ध्वजाएँ हैं, जिन्हें छन्दोमय अमर अश्वगण वहन करते हैं तथा जो त्रिभुवनको प्रकाशित करनेवाले नेत्ररूप हैं, उन सूर्यदेवको मैं नमस्कार करता हूँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्य अश्वरूपसे प्रकट होकर बोले—'तुम अपना अभीष्ट वर माँगो।' तब याज्ञवल्क्यजीने उन्हें प्रणाम करके कहा—'आप मुझे उन यजुःश्रुतियोंका उपदेश कीजिये जिन्हें मेरे गुरुजी भी न जानते हों।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान् सूर्यने उन्हें अयातयाम नामक यजुःश्रुतियोंका उपदेश दिया, जिन्हें उनके गुरु वैशम्पायनजी भी नहीं जानते थे। द्विजोत्तम ! उन श्रुतियोंको जिन ब्राह्मणोंने पढ़ा था, वे वाजी नामसे विख्यात हुए; क्योंकि उनका उपदेश करते समय सूर्य अश्वरूप थे। महाभाग ! उन वाजि-श्रुतियोंकी काण्व आदि पंद्रह शाखाएँ हैं; वे सब शाखाएँ महर्षि याज्ञवल्क्यद्वारा प्रवृत्त की हुई कही जाती हैं।

हैं—प्रथम ब्रह्मर्षि, द्वितीय देवर्षि और फिर राजर्षि। इस प्रकार मैंने तुमसे वेदोंकी शाखा, शाखाओंके भेद, उनके रचयिता तथा शाखाभेदके कारणोंका भी वर्णन कर दिया। इसी प्रकार समस्त मन्वन्तरोंमे एक-से शाखाभेद रहते हैं; द्विज! प्रजापति ब्रह्माजीसे प्रकट होनेवाली श्रुति तो नित्य है, ये तो उसके विकल्पमात्र हैं।

यम-गीता

श्रीमैत्रेयजी बोले—महामुने! सातों द्वीप, सातों पाताल और सातों लोक—ये सभी स्थान जो इस ब्रह्माण्डके अन्तर्गत हैं, स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा स्थूल और स्थूलतर जीवोंसे भरे हुए हैं। मुनिसत्तम! एक अङ्गुलका आठवाँ भाग भी कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ कर्म-बन्धनसे बँधे हुए जीव न रहते हों, किंतु भगवन्! आयुके समाप्त होनेपर ये सभी यमराजके वशीभूत हो जाते हैं, अतः आप मुझे वह कर्म बताइये, जिसे करनेसे मनुष्य यमराजके वशीभूत नहीं होता; मैं आपसे यही सुनना चाहता हूँ।

श्रीपराशरजीने कहा—मुने! यही प्रश्न महात्मा नकुलने पितामह भीष्मसे पूछा था। उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा था, वह सुनो।

भीष्मजीने कहा—वत्स! पूर्वकालमें मेरे पास एक कलिङ्गदेशीय ब्राह्मण-मित्र आया और मुझसे बोला—'मेरे पूछनेपर एक जातिस्मर मुनिने बतलाया था कि ये सब बातें अमुक-अमुक प्रकार ही होंगी।' वत्स! उस बुद्धिमान्ने जो-जो बातें जिस जिस प्रकार होनेको कही थीं, वे सब ज्यों-की-त्यों हुईं। इस प्रकार उसमें श्रद्धा हो जानेसे मैंने उससे फिर कुछ और भी प्रश्न किये और उनके उत्तरमें उस द्विजश्रेष्ठने जो-जो बातें बतलायीं, उनके विपरीत मैंने कभी कुछ नहीं देखा। एक दिन, जो बात तुम मुझसे पूछते हो वही मैंने उस कलिङ्ग ब्राह्मणसे पूछी। उस समय उसने उस मुनिके वचनोंको याद करके कहा कि उस जातिस्मर ब्राह्मणने, यम और उनके दूतोंके बीचमें जो संवाद हुआ था, वह अति गूढ़ रहस्य मुझे सुनाया था, वही मैं तुमसे कहता हूँ।

कलिङ्ग बोला—अपने अनुचरको हाथमें पाश लिये हुए देखकर यमराजने उसके कानमें कहा—'भगवान् मधुसूदनके

शरणागत व्यक्तियोंको छोड़ देना, क्योंकि मैं, जो विष्णुभक्त नहीं हैं, ऐसे अन्य पुरुषोंका ही स्वामी हूँ। देव-पूज्य विधाताने मुझे 'यम' नामसे लोकोंके पाप-पुण्यका विचार करनेके लिये नियुक्त किया है। मैं अपने गुरु श्रीहरिके वशीभूत हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। भगवान् विष्णु मेरा भी नियन्त्रण करनेमें समर्थ हैं। जो भगवान्के चरणकमलोंकी परमार्थ-बुद्धिसे वन्दना करता है, घृताहुतिसे प्रज्वलित अग्निके समान समस्त पाप-बन्धनसे मुक्त हुए उस पुरुषको तुम दूरहीसे छोड़कर निकल जाना'*।

* हरिममरवरार्चिताङ्घ्रिपद्मं
प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्यः।
तमपगतसमस्तपापबन्धं
व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम्॥
(वि० पु० ३।७।१८)

हैं—प्रथम ब्रह्मर्षि, द्वितीय देवर्षि और फिर राजर्षि। इस प्रकार मैंने तुम्हें वेदोंकी शाखा, शाखाओंके भेद, उनके रचयिता तथा शाखाभेदके कारणोंका भी वर्णन कर दिया। इसी प्रकार समस्त मन्वन्तरोंमें एक-से शाखाभेद रहते हैं; द्विज! प्रजापति ब्रह्माजीसे प्रकट होनेवाली श्रुति तो नित्य है, ये तो उसके विकल्पमात्र हैं।

यम-गीता

श्रीमैत्रेयजी बोले—महामुने! सातों द्वीप, सातों पाताल और सातों लोक—ये सभी स्थान जो इस ब्रह्माण्डके अन्तर्गत हैं, स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा स्थूल और स्थूलतर जीवोंसे भरे हुए हैं। मुनिसत्तम! एक अङ्गुलका आठवाँ भाग भी कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ कर्म-बन्धनसे बँधे हुए जीव न रहते हों, किंतु भगवन्! आयुके समाप्त होनेपर ये सभी यमराजके वशीभूत हो जाते हैं, अतः आप मुझे वह कर्म बताइये, जिसे करनेसे मनुष्य यमराजके वशीभूत नहीं होता; मैं आपसे यही सुनना चाहता हूँ।

श्रीपराशरजीने कहा—मुने! यही प्रश्न महात्मा नकुलने पितामह भीष्मसे पूछा था। उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा था, वह सुनो।

भीष्मजीने कहा—वत्स! पूर्वकालमें मेरे पास एक कलिङ्गदेशीय ब्राह्मण-मित्र आया और मुझसे बोला—'मेरे पूछनेपर एक जातिस्मर मुनिने बतलाया था कि ये सब बातें अमुक-अमुक प्रकार ही होंगी।' वत्स! उस बुद्धिमान्‌ने जो-जो बातें जिस जिस प्रकार होनेको कही थीं, वे सब ज्यों-की-त्यों हुईं। इस प्रकार उसमें श्रद्धा हो जानेसे मैंने उससे फिर कुछ और भी प्रश्न किये और उनके उत्तरमें उस द्विजश्रेष्ठने जो-जो बातें बतलायीं, उनके विपरीत मैंने कभी कुछ नहीं देखा। एक दिन, जो बात तुम मुझसे पूछते हो वही मैंने उस कलिङ्ग ब्राह्मणसे पूछी। उस समय उसने उस मुनिके वचनोंको याद करके कहा कि उस जातिस्मर ब्राह्मणने, यम और उनके दूतोंके बीचमें जो संवाद हुआ था, वह अति गूढ रहस्य मुझे सुनाया था, वही मैं तुमसे कहता हूँ।

कलिङ्ग बोला—अपने अनुचरको हाथमें पाश लिये देखकर यमराजने उसके कानमें कहा—'भगवान् मधुसूदनके

शरणागत व्यक्तियोंको छोड़ देना, क्योंकि मैं, जो विष्णुभक्त नहीं हैं, ऐसे अन्य पुरुषोंका ही स्वामी हूँ। देव-पूज्य विधाताने मुझे 'यम' नामसे लोकोंके पाप-पुण्यका विचार करनेके लिये नियुक्त किया है। मैं अपने गुरु श्रीहरिके वशीभूत हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। भगवान् विष्णु मेरा भी नियन्त्रण करनेमें समर्थ हैं। जो भगवान्‌के चरणकमलोंकी परमार्थ-बुद्धिसे वन्दना करता है, घृताहुतिसे प्रज्वलित अग्निके समान समस्त पाप-बन्धनसे मुक्त हुए उस पुरुषको तुम दूरहीसे छोड़कर निकल जाना'*।

* हरिममरवरार्चिताङ्घ्रिपद्मं
प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्यः।
तमपगतसमस्तपापबन्धं
व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम्॥
(वि० पु० ३।७।१८)

भी स्वर्ग । वह (भगवद्भक्त) तो वैकुण्ठादि लोकोंका पात्र है।

श्रीभीष्मजी बोले—नकुल ! पूर्वकालमें कलिङ्गदेशसे आये हुए उन महात्मा ब्राह्मणने प्रसन्न होकर मुझे यह सब विषय सुनाया था । वत्स ! यही सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने ज्यों-का-त्यों तुम्हें सुना दिया । इस संसार-सागरमे एक विष्णु-भगवान्को छोड़कर जीवका और कोई भी रक्षक नहीं है । जिसका हृदय निरन्तर भगवत्परायण रहता है, उसका यम, यमदूत, यमपाश, यमदण्ड अथवा यम-यातना कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते ।

विष्णुभगवान्की आराधना और चातुर्वर्ण्य-धर्मका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! जो लोग संसारको जीतना चाहते हैं, वे जिस प्रकार जगत्पति भगवान् विष्णुकी उपासना करते हैं, वह वर्णन कीजिये । और महामुने ! उन गोविन्दकी आराधना करनेपर आराधनपरायण पुरुषोंको जो फल मिलता है, वह भी मैं सुनना चाहता हूँ ।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय ! तुम जो कुछ पूछते हो, यही बात महात्मा सगरने और्वसे पूछी थी । उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा, वह मैं तुमको सुनाता हूँ, श्रवण करो ।

और्व बोले—भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे मनुष्य भूमण्डल-सम्बन्धी समस्त मनोरथ, स्वर्ग, स्वर्गलोक-निवासियोंके लिये भी वन्दनीय ब्रह्मपद और परम निर्वाण-पद भी प्राप्त कर लेता है । राजेन्द्र ! वह जिस-जिस फलकी जितनी-जितनी इच्छा करता है, अल्प हो या अधिक, श्रीअच्युतकी आराधनासे निश्चय ही सब प्राप्त कर लेता है† । जो पुरुष वर्णाश्रम धर्मका पालन करनेवाला है, वही परमपुरुष विष्णुकी आराधना कर सकता है । नृप ! भगवान् हरि सर्वभूतमय हैं । इसलिये सबोंका यजन करनेवाला पुरुष उन (विष्णु) का ही यजन करता है, जप करनेवाला उन्हींका जप करता है और दूसरोंकी हिंसा करनेवाला उन्हींकी हिंसा करता है; अतः सदाचारयुक्त पुरुष अपने वर्णके लिये विहित धर्मका आचरण करते हुए श्रीजनार्दनहीकी उपासना करता है । पृथ्वीपते ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने धर्मका पालन करते हुए ही विष्णुकी आराधना करते हैं ।

जो पुरुष दूसरोंकी निन्दा, चुगली अथवा मिथ्याभाषण नहीं करता तथा ऐसा वचन भी नहीं बोलता, जिससे दूसरोको खेद हो, उससे निश्चय ही भगवान् केशव प्रसन्न रहते हैं । राजन् ! जो पुरुष दूसरोंकी स्त्री, धन और हिंसामें रुचि नहीं करता, उससे सर्वदा ही भगवान् केशव संतुष्ट रहते हैं । नरेन्द्र ! जो मनुष्य किसी प्राणी अथवा वृक्षादि अन्य देहधारियोंको पीड़ित अथवा नष्ट नहीं करता, उससे श्रीकेशव संतुष्ट रहते हैं । जो पुरुष देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहता है, नरेश्वर ! उसपर गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं । जो व्यक्ति स्वयं अपने और अपने पुत्रोंके समान ही समस्त प्राणियोंका भी हितचिन्तक होता है, वह सुगमतासे ही श्रीहरिको प्रसन्न कर लेता है । नृप ! जिसका चित्त राग-द्वेषादि दोषोंसे दूषित नहीं है, उस विशुद्ध-चित्त पुरुषसे

* अशुभमतिरसत्प्रवृत्तिसक्तः सततमनार्यकुशीलसङ्गमत्तः ।
अनुदिनकृतपापबन्धयुक्तः पुरुषपशुर्न हि वासुदेवभक्तः ॥
सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान् परमेश्वरः स एकः ।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात् ॥
कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।
भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ॥
वसति मनसि यस्य सोऽव्ययात्मा पुरुषवरस्य न तस्य दृष्टिपाते ।
तव गतिरथवा ममास्ति चक्रप्रतिहतवीर्यबलस्य सोऽन्यलोक्यः ॥
(वि० पु० ३ । ७ । ३१–३४)

† यद्यदिच्छति यावच्च फलमाराधितेऽच्युते । तत्तदाप्नोति राजेन्द्र भूरि स्वल्पमथापि वा ॥
(वि० पु० ३ । ८ । ७)

[illegible] । वह ([illegible]) तो वैकुण्ठादि लोकोंका [illegible] है ।

श्रीभीष्मजी बोले—नकुल ! पूर्वकालमें कलिङ्गदेशसे आये हुए उन महात्मा ब्राह्मणने प्रसन्न होकर मुझे यह सब कह सुनाया था । वत्स ! यही सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने ज्यों-का-त्यों तुम्हें सुना दिया । इस संसार-सागरमें एक विष्णु-भगवान्‌को छोड़कर जीवका और कोई भी रक्षक नहीं है । जिसका हृदय निरन्तर भगवत्परायण रहता है, उसका यम, यमदूत, यमपाश, यमदण्ड अथवा यम-यातना कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते ।

विष्णुभगवान्‌की आराधना और चातुर्वर्ण्य-धर्मका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! जो लोग संसारको जीतना चाहते हैं, वे जिस प्रकार जगत्पति भगवान् विष्णुकी उपासना करते हैं, वह वर्णन कीजिये । और महामुने ! उन गोविन्दकी आराधना करनेपर आराधनपरायण पुरुषोंको जो फल मिलता है, वह भी मैं सुनना चाहता हूँ ।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय ! तुम जो कुछ पूछते हो, यही बात महात्मा सगरने और्वसे पूछी थी । उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा, वह मैं तुमको सुनाता हूँ, श्रवण करो ।

और्व बोले—भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे मनुष्य भूमण्डल-सम्बन्धी समस्त मनोरथ, स्वर्ग, स्वर्गलोक-निवासियोंके लिये भी वन्दनीय ब्रह्मपद और परम निर्वाण-पद भी प्राप्त कर लेता है । राजेन्द्र ! वह जिस-जिस फलकी जितनी-जितनी इच्छा करता है, अल्प हो या अधिक, श्रीअच्युतकी आराधनासे निश्चय ही सब प्राप्त कर लेता है† । जो पुरुष वर्णाश्रम धर्मका पालन करनेवाला है, वही परमपुरुष विष्णुकी आराधना कर सकता है । नृप ! भगवान् हरि सर्वभूतमय हैं । इसलिये यज्ञोंका यजन करनेवाला पुरुष उन (विष्णु) का ही यजन करता है, जप करनेवाला उन्हींका जप करता है और दूसरोंकी हिंसा करनेवाला उन्हींकी हिंसा करता है; अतः सदाचारयुक्त पुरुष अपने वर्णके लिये विहित धर्मका आचरण करते हुए श्रीजनार्दनहीकी उपासना करता है । पृथ्वीपते ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने धर्मका पालन करते हुए ही विष्णुकी आराधना करते हैं ।

जो पुरुष दूसरोंकी निन्दा, चुगली अथवा मिथ्याभाषण नहीं करता तथा ऐसा वचन भी नहीं बोलता, जिससे दूसरोंको खेद हो, उससे निश्चय ही भगवान् केशव प्रसन्न रहते हैं । राजन् ! जो पुरुष दूसरोंकी स्त्री, धन और हिंसामें रुचि नहीं करता, उससे सर्वदा ही भगवान् केशव संतुष्ट रहते हैं । नरेन्द्र ! जो मनुष्य किसी प्राणी अथवा वृक्षादि अन्य देहधारियोंको पीड़ित अथवा नष्ट नहीं करता, उससे श्रीकेशव संतुष्ट रहते हैं । जो पुरुष देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहता है, नरेश्वर ! उसपर गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं । जो व्यक्ति स्वयं अपने और अपने पुत्रोंके समान ही समस्त प्राणियोंका भी हितचिन्तक होता है, वह सुगमतासे ही श्रीहरिको प्रसन्न कर लेता है । नृप ! जिसका चित्त राग-द्वेषादि दोषोंसे दूषित नहीं है, उस विशुद्ध-चित्त पुरुषसे

---

* अशुभमतिरसत्प्रवृत्तिसक्त. सततमनार्यकुशीलसङ्गमत्तः ।
अनुदिनकृतपापबन्धयुक्त पुरुषपशुर्न हि वासुदेवभक्तः ॥
सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान् परमेश्वरः स एकः ।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात् ॥
कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।
भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ॥
वसति मनसि यस्य सोऽव्ययात्मा पुरुषवरस्य न तस्य दृष्टिपाते ।
तव गतिरथवा ममास्ति चक्रप्रतिहतवीर्यबलस्य सोऽन्यलोक्यः ॥
(वि० पु० ३ । ७ । ३१–३४)

† यद्यदिच्छति यावच्च फलमाराधितेऽच्युते । तत्तदाप्नोति राजेन्द्र भूरि स्वल्पमथापि वा ॥
(वि० पु० ३ । ८ । ७)

ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंका वर्णन

और्व बोले—भूपते ! बालकको चाहिये कि उपनयन-संस्कारके अनन्तर वेदाध्ययनमें तत्पर होकर ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर सावधानतापूर्वक गुरुगृहमें निवास करे । वहाँ रहकर उसे शौच और आचार-व्रतका पालन करते हुए गुरुकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये तथा व्रतादिका आचरण करते हुए स्थिर बुद्धिसे वेदाध्ययन करना चाहिये । राजन् ! प्रातःकाल और सायंकाल दोनों संध्याओंमें एकाग्रचित्त होकर सूर्य और अग्निकी उपासना करे तथा गुरुका अभिवादन करे । गुरुके खड़े होनेपर खड़ा हो जाय, चलनेपर पीछे-पीछे चलने लगे तथा बैठ जानेपर नीचे बैठ जाय । नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार कभी गुरुके विरुद्ध कोई आचरण न करे । गुरुजीके कहनेपर ही उनके सामने बैठकर एकाग्रचित्तसे वेदाध्ययन करे और उनकी आज्ञा होनेपर ही भिक्षान्न भोजन करे । जलमें प्रथम आचार्यके स्नान कर चुकनेपर फिर स्वयं स्नान करे तथा प्रतिदिन प्रातःकाल गुरुजीके लिये समिधा, जल, कुश और पुष्पादि लाकर जुटा दे ।

इस प्रकार अपना अभिमत वेदपाठ समाप्त कर चुकनेपर बुद्धिमान् शिष्य गुरुजीकी आज्ञासे उन्हें गुरुदक्षिणा देकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे । राजन् ! फिर विधिपूर्वक पाणिग्रहण कर अपनी वर्णानुकूल वृत्तिसे द्रव्योपार्जन करता हुआ सामर्थ्यानुसार समस्त गृहकार्य करता रहे । पिण्ड-दानादिसे पितृगणकी, यज्ञादिसे देवताओंकी, अन्नदानसे अतिथियोंकी, स्वाध्यायसे ऋषियोंकी, पुत्रोत्पत्तिसे प्रजापतिकी, बलिवैश्वदेवसे भूतगणोंकी तथा वात्सल्यभावसे सम्पूर्ण जगत्की पूजा करते हुए पुरुष अपने कर्मोंद्वारा मिले हुए उत्तमोत्तम लोकोंको प्राप्त कर लेता है । जो केवल भिक्षावृत्तिसे ही रहनेवाले परिव्राजक और ब्रह्मचारी आदि हैं, उनका आश्रय भी गृहस्थाश्रम ही है, अतः यह सर्वश्रेष्ठ है । राजन् ! विप्रगण वेदाध्ययन, तीर्थस्नान और देश-दर्शनके लिये पृथ्वी-पर्यटन किया करते हैं । उनमेंसे जिनका कोई निश्चित गृह अथवा भोजन-प्रबन्ध नहीं होता और जो जहाँ सायंकाल हो जाता है, वहीं ठहर जाते हैं, उन सबका आधार और मूल गृहस्थाश्रम ही है । राजन् ! ऐसे लोग जब घर आवें तो उनका कुशल-प्रश्न और मधुर वचनोंसे स्वागत करे तथा शय्या, आसन और भोजनके द्वारा यथाशक्ति उनका सत्कार करे । जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे अपने समस्त दुष्कर्म देकर वह (अतिथि) उसके पुण्य कर्मोंको स्वयं ले जाता है* । गृहस्थके लिये अतिथिके प्रति अपमान, अहंकार

प्राणिन रक्षे च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद् द्विजः । ऋतावभिगमः पत्न्यां शस्यते चास्य पार्थिव ॥
दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपि वा । यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च पार्थिव ॥
शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका । तत्रापि प्रथमः कल्पः पृथिवीपरिपालनम् ॥
धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपाः । भवन्ति नृपतेरंशा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥
दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् । प्राप्नोत्यभिमताँल्लोकान् वर्णसंस्था करोति यः ॥
पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं च मनुजेश्वर । वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोकपितामहः ॥
तस्याप्यध्ययनं यज्ञो दानं धर्मश्च शस्यते । नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानं च कर्मणाम् ॥
द्विजातिसंश्रितं कर्म तादर्थ्यं तेन पोषणम् । क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारुद्भवेन वा ॥
शूद्रस्य सन्ततिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया । अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्सङ्गो विप्ररक्षणम् ॥
दानं च दद्याच्छूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च । पित्र्यादिकं च तत्सर्वं शूद्रः कुर्वीत तेन वै ॥
भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रहः । ऋतुकालेऽभिगमनं स्वदारेषु महीपते ॥
दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नातिमानिता । सत्यं शौचमनायासो मङ्गलं प्रियवादिता ॥
मैत्र्यस्पृहा तथा तद्वदकार्पण्यं नरेश्वर । अनसूया च सामान्यवर्णानां कथिता गुणाः ॥
आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः । गुणांस्तथापद्धर्मांश्च विप्रादीनामिमाञ्छृणु ॥
क्षात्रं कर्म द्विजस्योक्तं वैश्यं कर्म तथापदि । राजन्यस्य च वैश्योक्तं शूद्रकर्म न चैतयोः ॥
सामर्थ्ये सति तत्त्याज्यमुभाभ्यामपि पार्थिव । तदेवापदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसंकरम् ॥

(वि० पु० ३ । ८ । २१—४०)

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥

(वि० पु० ३ । ९ । १५)

ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंका वर्णन

और्व बोले—भूपते ! बालकको चाहिये कि उपनयन-संस्कारके अनन्तर वेदाध्ययनमें तत्पर होकर ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर सावधानतापूर्वक गुरुगृहमें निवास करे । वहाँ रहकर उसे शौच और आचार-व्रतका पालन करते हुए गुरुकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये तथा व्रतादिका आचरण करते हुए स्थिर बुद्धिसे वेदाध्ययन करना चाहिये । राजन् ! प्रातःकाल और सायंकाल दोनों संध्याओंमें एकाग्रचित्त होकर सूर्य और अग्निकी उपासना करे तथा गुरुका अभिवादन करे । गुरुके खड़े होनेपर खड़ा हो जाय, चलनेपर पीछे-पीछे चलने लगे तथा बैठ जानेपर नीचे बैठ जाय । नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार कभी गुरुके विरुद्ध कोई आचरण न करे । गुरुजीके कहनेपर ही उनके सामने बैठकर एकाग्रचित्तसे वेदाध्ययन करे और उनकी आज्ञा होनेपर ही भिक्षान्न भोजन करे । जलमें प्रथम आचार्यके स्नान कर चुकनेपर फिर स्वयं स्नान करे तथा प्रतिदिन प्रातःकाल गुरुजीके लिये समिधा, जल, कुश और पुष्पादि लाकर जुटा दे ।

इस प्रकार अपना अभिमत वेदपाठ समाप्त कर चुकनेपर बुद्धिमान् शिष्य गुरुजीकी आज्ञासे उन्हें गुरुदक्षिणा देकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे । राजन् ! फिर विधिपूर्वक पाणिग्रहण कर अपनी वर्णानुकूल वृत्तिसे द्रव्योपार्जन करता हुआ सामर्थ्यानुसार समस्त गृहकार्य करता रहे । पिण्ड-दानादिसे पितृगणकी, यज्ञादिसे देवताओंकी, अन्नदानसे अतिथियोंकी, स्वाध्यायसे ऋषियोंकी, पुत्रोत्पत्तिसे प्रजापतिकी, बलिवैश्वदेवसे भूतगणोंकी तथा वात्सल्यभावसे सम्पूर्ण जगत्‌की पूजा करते हुए पुरुष अपने कर्मोंद्वारा मिले हुए उत्तमोत्तम लोकोंको प्राप्त कर लेता है । जो केवल भिक्षावृत्तिसे ही रहनेवाले परिव्राजक और ब्रह्मचारी आदि हैं, उनका आश्रय भी गृहस्थाश्रम ही है, अतः यह सर्वश्रेष्ठ है । राजन् ! विप्रगण वेदाध्ययन, तीर्थस्नान और देश-दर्शनके लिये पृथ्वी-पर्यटन किया करते हैं । उनमेंसे जिनका कोई निश्चित गृह अथवा भोजन-प्रबन्ध नहीं होता और जो जहाँ सायंकाल हो जाता है, वहीं ठहर जाते हैं, उन सबका आधार और मूल गृहस्थाश्रम ही है । राजन् ! ऐसे लोग जब घर आवें तो उनका कुशल-प्रश्न और मधुर वचनोंसे स्वागत करे तथा शय्या, आसन और भोजनके द्वारा यथाशक्ति उनका सत्कार करे । जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे अपने समस्त दुष्कर्म देकर वह (अतिथि) उसके पुण्य कर्मोंको स्वयं ले जाता है* । गृहस्थके लिये अतिथिके प्रति अपमान, अहंकार

प्राणि रक्षे च पारक्ये समुद्धिर्भवेद् द्विजः । ऋतावभिगम पत्न्यां शस्यते चास्य पार्थिव ॥
दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्य. क्षत्रियोऽपि वा । यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च पार्थिव ॥
शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका । तत्रापि प्रथमः कल्प. पृथिवीपरिपालनम् ॥
धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपा. । भवन्ति नृपतेरंशा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥
दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् । प्राप्नोत्यभिमताँल्लोकान् वर्णसंस्था करोति यः ॥
पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं च मनुजेश्वर । वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोकपितामहः ॥
तस्याप्यध्ययनं यज्ञो दानं धर्मश्च शस्यते । नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानं च कर्मणाम् ॥
द्विजातिसंश्रितं कर्म तादर्थ्यं तेन पोषणम् । क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारूद्भवेन वा ॥
शूद्रस्य सन्नतिश्शौचं सेवा स्वामिन्यमायया । अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्सङ्गो विप्ररक्षणम् ॥
दानं च दद्याच्छूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च । पित्र्यादिकं च तत्सर्वं शूद्रः कुर्वीत तेन वै ॥
भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रह. । ऋतुकालेऽभिगमनं स्वदारेषु महीपते ॥
दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नातिमानिता । सत्यं शौचमनायासो मङ्गलं प्रियवादिता ॥
मैत्र्यस्पृहा तथा तद्वदकार्पण्यं नरेश्वर । अनसूया च सामान्यवर्णानां कथिता गुणाः ॥
आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः । गुणांस्तथापद्धर्मांश्च विप्रादीनामिमाञ्छृणु ॥
क्षात्रं कर्म द्विजस्योक्तं वैश्यं कर्म तथापदि । राजन्यस्य च वैश्योक्तं शूद्रकर्म न चैतयोः ॥
सामर्थ्ये सति तत्त्याज्यमुभाभ्यामपि पार्थिव । तदेवापदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसंकरम् ॥

(वि० पु० ३ । ८ । २१—४०)

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥

(वि० पु० ३ । ९ । १५)

और जिनके पीछेके वर्ण लघु हों; ऐसे नामका व्यवहार करे।

तदनन्तर उपनयन-संस्कार हो जानेपर गुरुगृहमें रहकर विधिपूर्वक विद्याध्ययन करे। भूपाल ! फिर विद्याध्ययन कर चुकनेपर गुरुको दक्षिणा देकर यदि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी इच्छा हो तो विवाह कर ले। या दृढ़ संकल्पपूर्वक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ग्रहणकर गुरुकी सेवा-शुश्रूषा करता रहे। अथवा अपने इच्छानुसार वानप्रस्थ या संन्यास ग्रहण कर ले।

गृहस्थसम्बन्धी सदाचारका वर्णन

सगर बोले—मुने ! मैं गृहस्थके सदाचारोंको सुनना चाहता हूँ, जिनका आचरण करनेसे वह इहलोक और परलोक दोनों जगह पतित नहीं होता।

और्व बोले—पृथ्वीपाल ! तुम सदाचारके लक्षण सुनो। सदाचारी पुरुष इहलोक और परलोक दोनोंको ही जीत लेता है। 'सत्' शब्दका अर्थ साधु है और साधु वही है जो दोषरहित हो। उस साधु (श्रेष्ठ) पुरुषका जो आचरण होता है, उसीको सदाचार कहते हैं। राजन् ! इस सदाचारके वक्ता और कर्ता सप्तर्षिगण, मनु एवं प्रजापति हैं।

नृप ! बुद्धिमान् पुरुष स्वस्थ चित्तसे ब्राह्ममुहूर्तमें जगकर अपने धर्म और धर्माविरोधी अर्थका चिन्तन करे तथा जिसमें धर्म और अर्थकी क्षति न हो, ऐसे कामका भी चिन्तन करे। नृप ! धर्मविरुद्ध अर्थ और काम दोनोंका त्याग कर दे।

नरेश्वर ! तदनन्तर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर ग्रामसे नैर्ऋत्य-कोणमें अपने निवासस्थानसे दूर जाकर मल-मूत्र त्याग करना चाहिये। पैर धोया हुआ और जूठा जल अपने घरके आँगनमें न डाले। अपनी या वृक्षकी छायाके ऊपर तथा गौ, सूर्य, अग्नि, तेज, हवा, गुरु और द्विजातीय पुरुषके सामने बुद्धिमान् पुरुष कभी मल-मूत्र त्याग न करे। इसी प्रकार पुरुषर्षभ ! जोते हुए खेतमें, सस्यसम्पन्न भूमिमें, गौओंके गोष्ठमें, जन-समाजमें, मार्गके बीचमें, नदी आदि तीर्थ-स्थानोंमें, जल अथवा जलाशयके तटपर और श्मशानमें भी कभी मल-मूत्रका त्याग न करे *। राजन् ! कोई विशेष आपत्ति न हो तो प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि दिनके समय उत्तर-मुख और रात्रिके समय दक्षिण-मुख होकर मल-मूत्र-त्याग करे। मल-त्यागके समय पृथ्वीको तिनकोंसे और सिरको वस्त्रसे ढँक ले तथा उस स्थानपर अधिक समयतक न रहे और न कुछ बोले ही।

राजन् ! बाँबीकी, चूहोंद्वारा बिलसे निकाली हुई, जलके भीतरकी, शौचकर्मसे बची हुई, घरके लीपनकी, चींटी आदि छोटे-छोटे जीवोंद्वारा निकाली हुई और हलसे उखाड़ी हुई—इन सब प्रकारकी मृत्तिकाओंका शौच-कर्ममें उपयोग न करे। नृप ! लिंगमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मृत्तिका लगानेसे शौच सम्पन्न होता है। उससे चरणशुद्धि करनेके अनन्तर फिर पैर धोकर कुल्ला करे, तत्पश्चात् नित्यकर्मोंके सम्पादनके लिये नदी, नद, तडाग, देवालयोंकी बावड़ी और पर्वतीय झरनोंमें स्नान करना चाहिये। अथवा कुएँसे जल खींचकर उसके पासकी भूमिपर स्नान करे और यदि वहाँ भूमिपर स्नान करना सम्भव न हो तो कुएँसे खींचकर लाये हुए जलसे घरमें ही नहा ले।

स्नान करनेके अनन्तर पवित्र अधोवस्त्र और उत्तरीय वस्त्र धारण कर देवता, ऋषिगण और पितृगणका उन्हींके तीर्थोंसे तर्पण करे। पृथ्वीपते ! पितृगण और पितामहोंकी प्रसन्नताके लिये तीन-तीन बार जल छोड़े तथा इसी प्रकार प्रपितामहोंको भी संतुष्ट करे एवं मातामह (नाना) और उनके पिता तथा उनके पिताको भी सावधानतापूर्वक पितृ-तीर्थसे जल-दान करे।

'यह जल माताके लिये हो, यह प्रमाताके लिये हो, यह वृद्धा प्रमाताके लिये हो, यह गुरुपत्नीको, यह गुरुको, यह मामाको, यह प्रिय मित्रको तथा यह राजाको प्राप्त हो'—राजन् ! यह जपता हुआ समस्त भूतोंके हितके लिये देवादितर्पण करके अपने इच्छानुसार प्रिय सम्बन्धियोंके लिये जलदान करे। देवादि-तर्पणके समय इस प्रकार कहे—'देव, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर और वायु-भक्षक आदि सभी प्रकारके जीव मेरे दिये हुए इस जलसे तृप्त हों। जो प्राणी सम्पूर्ण नरकोंमें नाना प्रकारकी यातनाएँ भोग रहे

---

* न कृष्टे सस्यमध्ये वा गोव्रजे जनसंसदि।
न वर्त्मनि न नद्यादितीर्थेषु पुरुषर्षभ॥
नाप्सु नैवाम्भसस्तीरे श्मशाने न समाचरेत्।
उत्सर्गं वै पुरीषस्य मूत्रस्य च विसर्जनम्॥
(वि० पु० ३।११।११-१२)

और जिनके पीछेके वर्ण लघु हों; ऐसे नामका व्यवहार करे।

तदनन्तर उपनयन-संस्कार हो जानेपर गुरुगृहमें रहकर विधिपूर्वक विद्याध्ययन करे। भूपाल ! फिर विद्याध्ययन कर चुकनेपर गुरुको दक्षिणा देकर यदि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी इच्छा हो तो विवाह कर ले। या दृढ़ संकल्पपूर्वक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ग्रहणकर गुरुकी सेवा-शुश्रूषा करता रहे। अथवा अपने इच्छानुसार वानप्रस्थ या संन्यास ग्रहण कर ले।

गृहस्थसम्बन्धी सदाचारका वर्णन

सगर बोले—मुने ! मैं गृहस्थके सदाचारोंको सुनना चाहता हूँ, जिनका आचरण करनेसे वह इहलोक और परलोक दोनों जगह पतित नहीं होता।

और्व बोले—पृथ्वीपाल ! तुम सदाचारके लक्षण सुनो। सदाचारी पुरुष इहलोक और परलोक दोनोंको ही जीत लेता है। 'सत्' शब्दका अर्थ साधु है और साधु वही है जो दोषरहित हो। उस साधु (श्रेष्ठ) पुरुषका जो आचरण होता है, उसीको सदाचार कहते हैं। राजन् ! इस सदाचारके वक्ता और कर्ता सप्तर्षिगण, मनु एवं प्रजापति हैं।

नृप ! बुद्धिमान् पुरुष स्वस्थ चित्तसे ब्राह्ममुहूर्तमें जगकर अपने धर्म और धर्माविरोधी अर्थका चिन्तन करे तथा जिसमें धर्म और अर्थकी क्षति न हो, ऐसे कामका भी चिन्तन करे। नृप ! धर्मविरुद्ध अर्थ और काम दोनोंका त्याग कर दे।

नरेश्वर ! तदनन्तर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर ग्रामसे नैर्ऋत्य-कोणमें अपने निवासस्थानसे दूर जाकर मल-मूत्र त्याग करना चाहिये। पैर धोया हुआ और जूठा जल अपने घरके आँगनमें न डाले। अपनी या वृक्षकी छायाके ऊपर तथा गौ, सूर्य, अग्नि, तेज, हवा, गुरु और द्विजातीय पुरुषके सामने बुद्धिमान् पुरुष कभी मल-मूत्र त्याग न करे। इसी प्रकार पुरुषर्षभ ! जोते हुए खेतमें, सस्यसम्पन्न भूमिमें, गौओंके गोष्ठमें, जन-समाजमें, मार्गके बीचमें, नदी आदि तीर्थ-स्थानोंमें, जल अथवा जलाशयके तटपर और श्मशानमें भी कभी मल-मूत्रका त्याग न करे *। राजन् ! कोई विशेष आपत्ति न हो तो प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि दिनके समय उत्तर-मुख और रात्रिके समय दक्षिण-मुख होकर मल-मूत्र-त्याग करे। मल-त्यागके समय पृथ्वीको तिनकोंसे और सिरको वस्त्रसे ढँक ले तथा उस स्थानपर अधिक समयतक न रहे और न कुछ बोले ही।

राजन् ! बाँबीकी, चूहोंद्वारा बिलसे निकाली हुई, जलके भीतरकी, शौचकर्मसे बची हुई, घरके लीपनकी, चींटी आदि छोटे-छोटे जीवोंद्वारा निकाली हुई और हलसे उखाड़ी हुई—इन सब प्रकारकी मृत्तिकाओंका शौच-कर्ममें उपयोग न करे। नृप ! लिंगमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मृत्तिका लगानेसे शौच सम्पन्न होता है। उससे चरणशुद्धि करनेके अनन्तर फिर पैर धोकर कुल्ला करे, तत्पश्चात् नित्यकर्मोंके सम्पादनके लिये नदी, नद, तडाग, देवालयोंकी बावड़ी और पर्वतीय झरनोंमें स्नान करना चाहिये। अथवा कुएँसे जल खींचकर उसके पासकी भूमिपर स्नान करे और यदि वहाँ भूमिपर स्नान करना सम्भव न हो तो कुएँसे खींचकर लाये हुए जलसे घरमें ही नहा ले।

स्नान करनेके अनन्तर पवित्र अधोवस्त्र और उत्तरीय वस्त्र धारण कर देवता, ऋषिगण और पितृगणका उन्हींके तीर्थोंसे तर्पण करे। पृथ्वीपते ! पितृगण और पितामहोंकी प्रसन्नताके लिये तीन-तीन बार जल छोड़े तथा इसी प्रकार प्रपितामहोंको भी संतुष्ट करे एवं मातामह (नाना) और उनके पिता तथा उनके पिताको भी सावधानतापूर्वक पितृ-तीर्थसे जल-दान करे।

'यह जल माताके लिये हो, यह प्रमाताके लिये हो, यह वृद्धा प्रमाताके लिये हो, यह गुरुपत्नीको, यह गुरुको, यह मामाको, यह प्रिय मित्रको तथा यह राजाको प्राप्त हो'—राजन् ! यह जपता हुआ समस्त भूतोंके हितके लिये देवादितर्पण करके अपने इच्छानुसार प्रिय सम्बन्धियोंके लिये जलदान करे। देवादि-तर्पणके समय इस प्रकार कहे—'देव, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर और वायु-भक्षक आदि सभी प्रकारके जीव मेरे दिये हुए इस जलसे तृप्त हों। जो प्राणी सम्पूर्ण नरकोंमें नाना प्रकारकी यातनाएँ भोग रहे

---

* न कृष्टे सस्यमध्ये वा गोव्रजे जनसंसदि।
न वर्त्मनि न नद्यादितीर्थेषु पुरुषर्षभ ॥
नाप्सु नैवाम्भसस्तीरे श्मशाने न समाचरेत्।
उत्सर्गं वै पुरीषस्य मूत्रस्य च विसर्जनम् ॥
(वि० पु० ३ । ११ । ११-१२)

उन सबकी तृप्तिके लिये मैंने यह अन्न प्रस्तुत किया है; वे इससे प्रसन्न हों।' इस प्रकार उच्चारण करके गृहस्थ पुरुष श्रद्धापूर्वक समस्त जीवोंके उपकारके लिये पृथ्वीपर अन्नदान करे, क्योंकि गृहस्थ ही सबका आश्रय है। नरेश्वर! तदनन्तर कुत्ता, चाण्डाल, पक्षिगण तथा और भी जो कोई पतित एवं पुत्रहीन पुरुष हों, उनकी तृप्तिके लिये पृथ्वीपर बलिभाग रखे।

फिर गो-दोहनकालपर्यन्त अथवा इच्छानुसार इससे भी कुछ अधिक देरतक अतिथि ग्रहण करनेके लिये घरके आँगनमें प्रतीक्षा करे। यदि अतिथि आ जाय तो उसका स्वागतादिसे तथा आसन देकर और चरण धोकर सत्कार करे। फिर श्रद्धापूर्वक भोजन कराकर मधुर वाणीसे प्रश्नोत्तर करके तथा उसके जानेके समय पीछे-पीछे जाकर उसको प्रसन्न करे। जिसके कुल और नामका कोई पता न हो तथा अन्य देशसे आया हो, उसी अतिथिका सत्कार करे, अपने ही गाँवमें रहनेवाले पुरुषकी अतिथिरूपसे पूजा नहीं करनी चाहिये। जिसके पास कोई सामग्री न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके कुल-शीलका कोई पता न हो और जो भोजन करना चाहता हो, उस अतिथिका सत्कार किये बिना भोजन करनेसे मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होता है। गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि आये हुए अतिथिके अध्ययन, गोत्र, आचरण और कुल आदिके विषयमें कुछ भी न पूछकर हिरण्यगर्भ-बुद्धिसे उसकी पूजा करे। नृप! मिल सके तो अतिथि-सत्कारके अनन्तर अपने ही देशके एक और श्रोत्रिय ब्राह्मणको जिसके आचार और कुल आदिका ज्ञान हो, पितृगणके लिये भोजन करावे। भूपाल! मनुष्ययज्ञकी विधिसे 'मनुष्येभ्यो हन्त' इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक पहले ही निकालकर अलग रक्खे हुए हन्तकार नामक अन्नसे उस श्रोत्रिय ब्राह्मणको भोजन करावे।

इस प्रकार देवता, अतिथि और ब्राह्मणको अन्न देकर, यदि सामर्थ्य हो तो परिव्राजक और ब्रह्मचारियोंको भी अपने इच्छानुसार भिक्षा दे। तीन पहले तथा भिक्षुगण—ये चारों अतिथि कहलाते हैं। राजन्! इन चारोंका भोजन आदिसे पूजन करके मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे वह अपने पाप देकर उसके शुभ कर्मोंको ले जाता है। नरेश्वर! धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण और अर्यमा—ये समस्त देवगण अतिथिमें प्रविष्ट होकर अन्न भोजन करते हैं। अतः मनुष्यको अतिथि-पूजाके लिये निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये। जो पुरुष अतिथिको दिये बिना भोजन करता है, वह तो केवल पाप ही भोग करता है। तदनन्तर गृहस्थ पुरुष पितृगृहमें रहनेवाली विवाहिता कन्या, दुखिया (विधवा) और गर्भिणी स्त्री तथा वृद्ध और बालकोंको संस्कृत अन्नसे भोजन कराकर अन्तमें स्वयं भोजन करे। जो मनुष्य इन सबको भोजन कराये बिना स्वयं भोजन कर लेता है, वह पापमय भोजन करता है और अन्तमें मरकर नरकमें कफ भक्षण करनेवाला कीड़ा होता है। जो व्यक्ति स्नान किये बिना भोजन करता है, वह मल भक्षण करता है, जप किये बिना भोजन करनेवाला रक्त पान करता है, संस्कारहीन अन्न खानेवाला मूत्र पान करता है तथा जो बालक-वृद्ध आदिसे पहले आहार करता है, वह विष्ठाहारी है। इसी प्रकार बिना होम किये भोजन करनेवाला मानो कीड़े खाता है और बिना दान किये खानेवाला विषभोजी है*।

अतः राजेन्द्र! गृहस्थको जिस प्रकार भोजन करना चाहिये—जिस प्रकार भोजन करनेसे पुरुषको पाप-बन्धन नहीं होता तथा इहलोकमें अत्यन्त आरोग्य, बल-बुद्धिकी प्राप्ति और अरिष्टोंकी शान्ति होती है—वह भोजन-विधि सुनो। गृहस्थको चाहिये कि स्नान करनेके अनन्तर यथाविधि देव, ऋषि और पितृगणका तर्पण करके हाथमें उत्तम रत्न (मुद्रिका) धारण किये पवित्रतापूर्वक भोजन करे। नृप! संध्यापूर्वक गायत्रीजप तथा अग्निहोत्रके अनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण कर हाथ-पाँव और मुँह धोकर प्रीतिपूर्वक भोजन करे। राजन्! भोजनके समय इधर-उधर न देखे। मनुष्यको चाहिये कि पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके, अन्यमना न होकर उत्तम और पथ्य अन्नको प्रोक्षणके लिये रखे हुए मन्त्रपूत जलसे छिड़ककर भोजन करे। जो अन्न दुराचारी व्यक्तिका लाया हुआ हो, घृणाजनक हो, अथवा बलिवैश्वदेव आदि संस्कारशून्य हो उसको ग्रहण न करे। नरेश्वर! किसी बेत आदिके आसन (कुर्सी आदि) पर रक्खे हुए पात्रमें, अयोग्य स्थानमें, असमय (संध्या आदि काल) में अथवा अत्यन्त संकुचित स्थानमें भोजन न करे। मनुष्यको चाहिये कि परोसे हुए भोजनका अग्रभाग अग्निको देकर भोजन करे। नृप! जो अन्न मन्त्रसे पवित्र किया हुआ और श्रेष्ठ हो तथा जो बासी न हो, उसीको भोजन करे। परंतु फल, मूल तथा बिना पकाये हुए लेह्य (चटनी) आदि और गुड़के लिये ऐसा नियम नहीं है। नरेश्वर! सारहीन पदार्थों-

---

* अस्नाताशी मलं भुङ्क्ते ह्यजपी पूयशोणितम्।
असंस्कृतान्नभुङ्मूत्रं बालादिप्रथमं शकृत्॥
अहोमी च कृमीन् भुङ्क्ते अदत्त्वा विषमश्नुते।

(वि० पु० ३ । ११ । ७१-७२)

उन सबकी तृप्तिके लिये मैंने यह अन्न प्रस्तुत किया है; वे इससे प्रसन्न हों।' इस प्रकार उच्चारण करके गृहस्थ पुरुष श्रद्धापूर्वक समस्त जीवोंके उपकारके लिये पृथ्वीपर अन्नदान करे, क्योंकि गृहस्थ ही सबका आश्रय है। नरेश्वर! तदनन्तर कुत्ता, चाण्डाल, पक्षिगण तथा और भी जो कोई पतित एवं पुत्रहीन पुरुष हों, उनकी तृप्तिके लिये पृथ्वीपर बलिभाग रखे।

फिर गो-दोहनकालपर्यन्त अथवा इच्छानुसार इससे भी कुछ अधिक देरतक अतिथि ग्रहण करनेके लिये घरके आँगनमें प्रतीक्षा करे। यदि अतिथि आ जाय तो उसका स्वागतादिसे तथा आसन देकर और चरण धोकर सत्कार करे। फिर श्रद्धापूर्वक भोजन कराकर मधुर वाणीसे प्रश्नोत्तर करके तथा उसके जानेके समय पीछे-पीछे जाकर उसको प्रसन्न करे। जिसके कुल और नामका कोई पता न हो तथा अन्य देशसे आया हो, उसी अतिथिका सत्कार करे, अपने ही गाँवमें रहनेवाले पुरुषकी अतिथिरूपसे पूजा नहीं करनी चाहिये। जिसके पास कोई सामग्री न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके कुल-शीलका कोई पता न हो और जो भोजन करना चाहता हो, उस अतिथिका सत्कार किये बिना भोजन करनेसे मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होता है। गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि आये हुए अतिथिके अध्ययन, गोत्र, आचरण और कुल आदिके विषयमें कुछ भी न पूछकर हिरण्यगर्भ-बुद्धिसे उसकी पूजा करे। नृप! मिल सके तो अतिथि-सत्कारके अनन्तर अपने ही देशके एक और श्रोत्रिय ब्राह्मणको जिसके आचार और कुल आदिका ज्ञान हो, पितृगणके लिये भोजन करावे। भूपाल! मनुष्ययज्ञकी विधिसे 'मनुष्येभ्यो हन्त' इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक पहले ही निकालकर अलग रक्खे हुए हन्तकार नामक अन्नसे उस श्रोत्रिय ब्राह्मणको भोजन करावे।

इस प्रकार देवता, अतिथि और ब्राह्मणको अन्न देकर, यदि सामर्थ्य हो तो परिव्राजक और ब्रह्मचारियोंको भी अपने इच्छानुसार भिक्षा दे। तीन पहले तथा भिक्षुगण—ये चारों अतिथि कहलाते हैं। राजन्! इन चारोंका भोजन आदिसे पूजन करके मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे वह अपने पाप देकर उसके शुभ कर्मोंको ले जाता है। नरेश्वर! धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण और अर्यमा—ये समस्त देवगण अतिथिमें प्रविष्ट होकर अन्न भोजन करते हैं। अतः मनुष्यको अतिथि-पूजाके लिये निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये। जो पुरुष अतिथिको दिये बिना भोजन करता है, वह तो केवल पाप ही भोग करता है। तदनन्तर गृहस्थ पुरुष पितृगृहमें रहनेवाली विवाहिता कन्या, दुखिया (विधवा) और गर्भिणी स्त्री तथा वृद्ध और बालकोंको संस्कृत अन्नसे भोजन कराकर अन्तमें स्वयं भोजन करे। जो मनुष्य इन सबको भोजन कराये बिना स्वयं भोजन कर लेता है, वह पापमय भोजन करता है और अन्तमें मरकर नरकमें कफ भक्षण करनेवाला कीड़ा होता है। जो व्यक्ति स्नान किये बिना भोजन करता है, वह मल भक्षण करता है, जप किये बिना भोजन करनेवाला रक्त पान करता है, संस्कारहीन अन्न खानेवाला मूत्र पान करता है तथा जो बालक-वृद्ध आदिसे पहले आहार करता है, वह विष्ठाहारी है। इसी प्रकार बिना होम किये भोजन करनेवाला मानो कीड़े खाता है और बिना दान किये खानेवाला विषभोजी है*।

अतः राजेन्द्र! गृहस्थको जिस प्रकार भोजन करना चाहिये—जिस प्रकार भोजन करनेसे पुरुषको पाप-बन्धन नहीं होता तथा इहलोकमें अत्यन्त आरोग्य, बल-बुद्धिकी प्राप्ति और अरिष्टोंकी शान्ति होती है—वह भोजन-विधि सुनो। गृहस्थको चाहिये कि स्नान करनेके अनन्तर यथाविधि देव, ऋषि और पितृगणका तर्पण करके हाथमें उत्तम रत्न (मुद्रिका) धारण किये पवित्रतापूर्वक भोजन करे। नृप! संध्यापूर्वक गायत्रीजप तथा अग्निहोत्रके अनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण कर हाथ-पाँव और मुँह धोकर प्रीतिपूर्वक भोजन करे। राजन्! भोजनके समय इधर-उधर न देखे। मनुष्यको चाहिये कि पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके, अन्यमना न होकर उत्तम और पथ्य अन्नको प्रोक्षणके लिये रखे हुए मन्त्रपूत जलसे छिड़ककर भोजन करे। जो अन्न दुराचारी व्यक्तिका लाया हुआ हो, घृणाजनक हो, अथवा बलिवैश्वदेव आदि संस्कारशून्य हो उसको ग्रहण न करे। नरेश्वर! किसी बेत आदिके आसन (कुर्सी आदि) पर रक्खे हुए पात्रमें, अयोग्य स्थानमें, असमय (संध्या आदि काल) में अथवा अत्यन्त संकुचित स्थानमें भोजन न करे। मनुष्यको चाहिये कि परोसे हुए भोजनका अग्रभाग अग्निको देकर भोजन करे। नृप! जो अन्न मन्त्रसे पवित्र किया हुआ और श्रेष्ठ हो तथा जो बासी न हो, उसीको भोजन करे। परंतु फल, मूल तथा बिना पकाये हुए लेह्य (चटनी) आदि और गुड़के लिये ऐसा नियम नहीं है। नरेश्वर! सारहीन पदार्थों-

* अस्नानाशी मलं भुङ्क्ते ह्यजपी पूयशोणितम्।
असंस्कृतान्नभुङ्मूत्रं बालादिप्रथमं शकृत्॥
अहोमी च कृमीन् भुङ्क्ते अदत्त्वा विषमश्नुते।
(वि० पु० ३। ११। ७१-७२)

नृप ! दिनमें स्त्रीगमन करनेसे पाप होता है, पृथ्वीपर करनेसे रोग होते हैं और जलाशयमें स्त्रीप्रसङ्ग करनेसे अमङ्गल होता है। परस्त्रीसे तो वाणीसे क्या, मनसे भी प्रसङ्ग न करे; क्योंकि उनसे मैथुन करनेवालोंको सर्प और कीटादि होना पड़ता है। परस्त्रीकी आसक्ति पुरुषको इहलोक और परलोक दोनों जगह भय देनेवाली है; इहलोकमें उसकी आयु क्षीण हो जाती है और मरनेपर वह नरकमें जाता है। ऐसा जानकर बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त दोषोंसे रहित अपनी स्त्रीसे ही ऋतुकालमें प्रसङ्ग करे तथा उसकी विशेष अभिलाषा हो तो बिना ऋतुकालके भी गमन करे।

गृहस्थसम्बन्धी सदाचारका वर्णन

और्व बोले—गृहस्थ पुरुषको नित्यप्रति देवता, गौ, ब्राह्मण, सिद्धगण, वयोवृद्ध तथा आचार्यकी पूजा करनी चाहिये और दोनों समय संध्यावन्दन तथा अग्निहोत्रादि कर्म करने चाहिये*। गृहस्थ पुरुष सदा ही संयमपूर्वक रहकर बिना कहींसे कटे हुए दो वस्त्र धारण करे। किसीका किञ्चित्-मात्र भी धन हरण न करे और थोड़ा-सा भी अप्रिय भाषण न करे। जो मिथ्या हो ऐसा प्रिय वचन भी कभी न बोले और न कभी दूसरोंके दोषोंको ही कहे। पुरुषश्रेष्ठ ! दूसरोंकी स्त्री अथवा दूसरोंके साथ वैर करनेमें कभी रुचि न करे, निन्दित सवारीमें कभी न चढ़े और नदी तीरकी छायाका कभी आश्रय न ले। बुद्धिमान् पुरुष लोकविद्विष्ट, पतित, उन्मत्त और जिसके बहुत-से शत्रु हों, ऐसे पर-पीडक पुरुषोंके साथ तथा कुलटा, कुलटाके स्वामी, क्षुद्र, मिथ्यावादी, अति-व्ययशील, निन्दापरायण और दुष्ट पुरुषोंके साथ कभी मित्रता न करे और न कभी मार्गमें अकेला चले। नरेश्वर ! जलप्रवाहके वेगमें सामने पड़कर स्नान न करे, जलते हुए घरमें प्रवेश न करे और वृक्षकी चोटीपर न चढ़े। दाँतोंको परस्पर न घिसे, नाकको न कुरेदे तथा मुखको बंद किये हुए जमुहाई न ले और न बंद मुखसे खाँसे। बुद्धिमान् पुरुष जोरसे न हँसे और शब्द करते हुए अधोवायु न छोड़े; तथा नखोंको न चबावे, तिनका न तोड़े और पृथ्वीपर रेखा न करे।

राजन् ! विचक्षण पुरुष मूँछ-दाढ़ीके बालोंको न चबावे, दो ढेलोंको परस्पर न रगड़े और अपवित्र एव निन्दित नक्षत्रोंको न देखे। नग्न परस्त्रीको और उदय अथवा अस्त होते हुए सूर्यको न देखे। चौराहा, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन और दुष्टा स्त्रीकी समीपता—इन सबका रात्रिके समय सर्वदा त्याग करे। बुद्धिमान् पुरुष अपने पूजनीय देवता, ब्राह्मण और तेजोमय पदार्थोंकी छायाको कभी न लाँघे तथा शून्य वनखण्डी और शून्य घरमें कभी अकेला न रहे। केश, अस्थि, कण्टक, अपवित्र वस्तु, बलि, भस्म, तुष तथा स्नानके जलसे भीगी हुई पृथ्वीका दूरहीसे त्याग करे। प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि अनार्य व्यक्तिका सङ्ग न करे, कुटिल पुरुषमें आसक्त न हो, सर्पके पास न जाय और नींद खुलनेपर अधिक देरतक लेटा न रहे। नरेश्वर ! बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि न तो बिल्कुल जागे ही और न बिल्कुल सोता ही रहे। स्नान करने, बैठने, शय्यासेवन करने और व्यायाम करनेमें अधिक समय न लगावे। राजेन्द्र ! प्राज्ञ पुरुष दाँत और सींगवाले पशुओंको, ओसको तथा सामनेकी वायु और धूपको सर्वदा परित्याग करे। नग्न होकर स्नान, शयन और आचमन न करे तथा केश खोलकर आचमन और देव-पूजन न करे। होम तथा देवार्चन आदि क्रियाओंमें, आचमनमें, पुण्याहवाचन-में और जपमें एक वस्त्र धारण करके प्रवृत्त न हो। संशय-शील व्यक्तियोंके साथ कभी न रहे। सदाचारी पुरुषोंका तो आधे क्षणका सङ्ग भी अति प्रशंसनीय होता है। बुद्धिमान् पुरुष उत्तम अथवा अधम व्यक्तियोंसे विरोध न करे। राजन् ! विवाह और विवाद सदा समान व्यक्तियोंसे ही होना चाहिये। प्राज्ञ पुरुष कलह न बढ़ावे तथा वैरका भी त्याग करे। थोड़ी-सी हानि सह ले, किंतु वैरसे कुछ लाभ होता हो तो उसे भी छोड़ दे। स्नान करनेके अनन्तर स्नानसे भीगी हुई धोती अथवा हाथोंसे शरीरको न पोंछे तथा खड़े-खड़े केशोंको न झाड़े और खड़े होकर आचमन भी न करे। पैरके ऊपर पैर न रक्खे, गुरुजनोंके सामने पैर न फैलावे और धृष्टतापूर्वक उनके सामने कभी उच्चासनपर न बैठे।

देवालय, चौराहा, माङ्गलिक द्रव्य और पूज्य व्यक्ति—इन सबको बायीं ओर रखकर न निकले। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, वायु और पूज्य व्यक्तियोंके सम्मुख बुद्धिमान् पुरुष मल-मूत्र-त्याग न करे और न थूके ही। खड़े-खड़े अथवा मार्गमें मूत्र-त्याग न करे तथा श्लेष्मा (थूक), विष्ठा, मूत्र और रक्तको कभी न लाँघे। भोजन, देव-पूजा, माङ्गलिक कार्य और जप-होमादिके समय तथा महापुरुषोंके सामने थूकना

* देवगोब्राह्मणान् सिद्धान् वृद्धाचार्यांस्तथार्चयेत्।
द्विकालं च नमेत् संध्यामग्नीनुपचरेत्तथा॥
(वि० पु० ३ । १२ । १)

नृप! दिनमें स्त्रीगमन करनेसे पाप होता है, पृथ्वीपर करनेसे रोग होते हैं और जलाशयमें स्त्रीप्रसङ्ग करनेसे अमङ्गल होता है। परस्त्रीसे तो वाणीसे क्या, मनसे भी प्रसङ्ग न करे; क्योंकि उनसे मैथुन करनेवालोंको सर्प और कीटादि होना पड़ता है। परस्त्रीकी आसक्ति पुरुषको इहलोक और परलोक दोनों जगह भय देनेवाली है; इहलोकमें उसकी आयु क्षीण हो जाती है और मरनेपर वह नरकमें जाता है। ऐसा जानकर बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त दोषोंसे रहित अपनी स्त्रीसे ही ऋतुकालमें प्रसङ्ग करे तथा उसकी विशेष अभिलाषा हो तो बिना ऋतुकालके भी गमन करे।

गृहस्थसम्बन्धी सदाचारका वर्णन

और्व बोले—गृहस्थ पुरुषको नित्यप्रति देवता, गौ, ब्राह्मण, सिद्धगण, वयोवृद्ध तथा आचार्यकी पूजा करनी चाहिये और दोनों समय संध्यावन्दन तथा अग्निहोत्रादि कर्म करने चाहिये*। गृहस्थ पुरुष सदा ही संयमपूर्वक रहकर बिना कहींसे कटे हुए दो वस्त्र धारण करे। किसीका किञ्चित्-मात्र भी धन हरण न करे और थोड़ा-सा भी अप्रिय भाषण न करे। जो मिथ्या हो ऐसा प्रिय वचन भी कभी न बोले और न कभी दूसरोंके दोषोंको ही कहे। पुरुषश्रेष्ठ! दूसरोंकी स्त्री अथवा दूसरोंके साथ वैर करनेमें कभी रुचि न करे, निन्दित सवारीमें कभी न चढ़े और नदी तीरकी छायाका कभी आश्रय न ले। बुद्धिमान् पुरुष लोकविद्विष्ट, पतित, उन्मत्त और जिसके बहुत-से शत्रु हों, ऐसे पर-पीडक पुरुषोंके साथ तथा कुलटा, कुलटाके स्वामी, क्षुद्र, मिथ्यावादी, अति-व्ययशील, निन्दापरायण और दुष्ट पुरुषोंके साथ कभी मित्रता न करे और न कभी मार्गमें अकेला चले। नरेश्वर! जलप्रवाहके वेगमें सामने पड़कर स्नान न करे, जलते हुए घरमें प्रवेश न करे और वृक्षकी चोटीपर न चढ़े। दाँतोंको परस्पर न घिसे, नाकको न कुरेदे तथा मुखको बंद किये हुए जमुहाई न ले और न बंद मुखसे खाँसे। बुद्धिमान् पुरुष जोरसे न हँसे और शब्द करते हुए अधोवायु न छोड़े; तथा नखोंको न चबावे, तिनका न तोड़े और पृथ्वीपर रेखा न करे।

राजन्! विचक्षण पुरुष मूँछ-दाढ़ीके बालोंको न चबावे, दो ढेलोंको परस्पर न रगड़े और अपवित्र एव निन्दित नक्षत्रोंको न देखे। नग्न परस्त्रीको और उदय अथवा अस्त होते हुए सूर्यको न देखे। चौराहा, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन और दुष्टा स्त्रीकी समीपता—इन सबका रात्रिके समय सर्वदा त्याग करे। बुद्धिमान् पुरुष अपने पूजनीय देवता, ब्राह्मण और तेजोमय पदार्थोंकी छायाको कभी न लाँघे तथा शून्य वनखण्डी और शून्य घरमें कभी अकेला न रहे। केश, अस्थि, कण्टक, अपवित्र वस्तु, बलि, भस्म, तुष तथा स्नानके जलसे भीगी हुई पृथ्वीका दूरहीसे त्याग करे। प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि अनार्य व्यक्तिका सङ्ग न करे, कुटिल पुरुषमें आसक्त न हो, सर्पके पास न जाय और नींद खुलनेपर अधिक देरतक लेटा न रहे। नरेश्वर! बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि न तो बिल्कुल जागे ही और न बिल्कुल सोता ही रहे। स्नान करने, बैठने, शय्यासेवन करने और व्यायाम करनेमें अधिक समय न लगावे। राजेन्द्र! प्राज्ञ पुरुष दाँत और सींगवाले पशुओंको, ओसको तथा सामनेकी वायु और धूपको सर्वदा परित्याग करे। नग्न होकर स्नान, शयन और आचमन न करे तथा केश खोलकर आचमन और देव-पूजन न करे। होम तथा देवार्चन आदि क्रियाओंमें, आचमनमें, पुण्याहवाचन-में और जपमें एक वस्त्र धारण करके प्रवृत्त न हो। संशय-शील व्यक्तियोंके साथ कभी न रहे। सदाचारी पुरुषोंका तो आधे क्षणका सङ्ग भी अति प्रशंसनीय होता है। बुद्धिमान् पुरुष उत्तम अथवा अधम व्यक्तियोंसे विरोध न करे। राजन्! विवाह और विवाद सदा समान व्यक्तियोंसे ही होना चाहिये। प्राज्ञ पुरुष कलह न बढ़ावे तथा वैरका भी त्याग करे। थोड़ी-सी हानि सह ले, किंतु वैरसे कुछ लाभ होता हो तो उसे भी छोड़ दे। स्नान करनेके अनन्तर स्नानसे भीगी हुई धोती अथवा हाथोंसे शरीरको न पोंछे तथा खड़े-खड़े केशोंको न झाड़े और खड़े होकर आचमन भी न करे। पैरके ऊपर पैर न रक्खे, गुरुजनोंके सामने पैर न फैलावे और धृष्टतापूर्वक उनके सामने कभी उच्चासनपर न बैठे।

देवालय, चौराहा, माङ्गलिक द्रव्य और पूज्य व्यक्ति—इन सबको बायीं ओर रखकर न निकले। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, वायु और पूज्य व्यक्तियोंके सम्मुख बुद्धिमान् पुरुष मल-मूत्र-त्याग न करे और न थूके ही। खड़े-खड़े अथवा मार्गमें मूत्र-त्याग न करे तथा श्लेष्मा (थूक), विष्ठा, मूत्र और रक्तको कभी न लाँघे। भोजन, देव-पूजा, माङ्गलिक कार्य और जप-होमादिके समय तथा महापुरुषोंके सामने थूकना

---

* देवगोब्राह्मणान् सिद्धान् वृद्धाचार्यांस्तथार्चयेत्।
द्विकालं च नमेत् संध्यामग्नीनुपचरेत्तथा॥
(वि० पु० ३।१२।१)

[illegible] घरमें प्रवेश करें और कटकर्म करके पृथ्वीपर कम्बल आदि बिछाकर शयन करें। मृत पुरुषके लिये नित्यप्रति पृथ्वीपर पिण्डदान करना चाहिये और केवल दिनके समय पवित्र अन्न खाना चाहिये। अशौच-कालमें यदि ब्राह्मणोंकी इच्छा हो तो उन्हें भोजन कराना चाहिये, क्योंकि उस समय ब्राह्मण और बन्धुवर्गके भोजन करनेसे मृत जीवकी तृप्ति होती है; अशौचके पहले, तीसरे, सातवें अथवा नवें दिन वस्त्र त्यागकर और बहिर्देशमें स्नान करके तिलोदक दे।

नृप ! अशौचके चौथे दिन अस्थिचयन करना चाहिये; उसके अनन्तर अपने सपिण्ड बन्धुजनोंका अङ्ग स्पर्श किया जा सकता है। राजन् ! उस समयसे समानोदक* पुरुष चन्दन और पुष्प-धारण आदि क्रियाओंके सिवा, पञ्चयज्ञादि अन्य सब कर्म कर सकते हैं। भस्म और अस्थिचयनके अनन्तर सपिण्ड पुरुषोंद्वारा शय्या और आसनका उपयोग तो किया जा सकता है, किंतु स्त्री-संसर्ग नहीं किया जा सकता। बालक, देशान्तरस्थित व्यक्ति, पतित और तपस्वीके मरनेपर तथा जल, अग्नि और उद्बन्धन (फाँसी लगाने) आदिद्वारा आत्मघात करनेपर शीघ्र ही अशौचकी निवृत्ति हो जाती है†। मृतकके कुटुम्बका अन्न दस दिनतक न खाना चाहिये तथा अशौच कालमें दान, परिग्रह, होम और स्वाध्याय आदि कर्म भी नहीं करने चाहिये। यह दस दिनका अशौच ब्राह्मणका है; क्षत्रियका अशौच बारह दिन और वैश्यका पंद्रह दिन रहता है तथा शूद्रकी अशौचशुद्धि एक मासमें होती है। अशौचके अन्तमें इच्छानुसार अयुग्म (तीन, पाँच, सात, नौ आदि) ब्राह्मणोंको भोजन करावे तथा उनकी उच्छिष्ट (जूठन) के निकट प्रेतकी तृप्तिके लिये कुशापर पिण्डदान करे। अशौच शुद्धि हो जानेपर ब्रह्मभोजके अनन्तर ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको क्रमशः जल, शस्त्र, कोड़ा और लाठीका स्पर्श करना चाहिये।

तदनन्तर ब्राह्मण आदि वर्णोंके जो-जो जातीय धर्म बतलाये गये हैं, उनका आचरण करे और स्वधर्मानुसार न्याययुक्त उपार्जित जीविकासे निर्वाह करे। फिर प्रतिमास मृत्युतिथिपर एकोद्दिष्ट-श्राद्ध करे,[1] जो आवाहनादि क्रिया और विश्वेदेव-सम्बन्धी ब्राह्मणके आमन्त्रण आदिसे रहित होने चाहिये। उस समय एक अर्घ्य और एक पवित्रक देना चाहिये तथा बहुत-से ब्राह्मणोंके भोजन करनेपर भी मृतकके लिये एक ही पिण्ड-दान करना चाहिये। तदनन्तर यजमानके 'अभिरम्यताम्' ऐसा कहनेपर ब्राह्मणगण 'अभिरताः स्मः' ऐसा कहे और फिर पिण्डदान समाप्त होनेपर 'अमुकस्य अक्षय्यमिदमुपतिष्ठताम्' इस वाक्यका उच्चारण करें। इस प्रकार एक वर्षतक प्रतिमास एकोद्दिष्ट कर्म करनेका विधान है। राजेन्द्र ! वर्षके समाप्त होनेपर सपिण्डीकरण करे; उसकी विधि सुनो।

पृथ्वीपते ! इस सपिण्डीकरण कर्मको भी एक वर्ष, छः मास अथवा बारह दिनके अनन्तर एकोद्दिष्टश्राद्धकी विधिसे ही करना चाहिये। इसमें तिल, गन्ध और जलसे युक्त चार पात्र रक्खे। इनमेंसे एक पात्र मृत पुरुषका होता है तथा तीन पितृगणके होते हैं। फिर मृत पुरुषके पात्रमें स्थित जलादिसे पितृगणके पात्रोंका सेचन करे। इस प्रकार मृत पुरुषको पितृत्व प्राप्त हो जानेपर सम्पूर्ण श्राद्धधर्मोंके द्वारा उस मृत पुरुषसे ही आरम्भ कर पितृगणका पूजन करे। राजन् ! पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भाई, भतीजा अथवा अपनी सपिण्ड संततिमें उत्पन्न हुआ पुरुष ही श्राद्धादि क्रिया करनेका अधिकारी होता है। यदि इन सबका अभाव हो तो समानोदककी संतति या मातृपक्षके सपिण्ड अथवा समानोदकको इसका अधिकार है। राजन् ! मातृकुल और पितृकुल दोनोंके नष्ट हो जानेपर स्त्री ही इस क्रियाको करे। अथवा यदि स्त्री भी न हो तो साथियोंमेंसे ही कोई करे या बान्धवहीन मृतकके धनसे राजा ही उसके सम्पूर्ण प्रेत-कर्म करे।

सम्पूर्ण प्रेत-कर्म तीन प्रकारके हैं—पूर्वकर्म, मध्यमकर्म तथा उत्तरकर्म। इनके पृथक्-पृथक् लक्षण सुनो। दाहसे लेकर जल और शस्त्र आदिके स्पर्शपर्यन्त जितने कर्म हैं, उनको पूर्वकर्म कहते हैं; तथा प्रत्येक मासमें जो एकोद्दिष्टश्राद्ध किया जाता है, वह मध्यमकर्म कहलाता है। नृप ! सपिण्डीकरणके पश्चात् मृतक व्यक्तिके पितृत्वको प्राप्त हो जानेपर जो पितृकर्म किये जाते हैं, वे उत्तरकर्म कहलाते हैं। माता, पिता, सपिण्ड, समानोदक, समूहके लोग अथवा उसके धनका

---

१. मृत्यु-तिथिपर किये जानेवाले प्रेतसम्बन्धी कृत्यको एकोद्दिष्ट कहते हैं।

* समानोदक ([illegible] समान [illegible]धिकारी अर्थात् सगोत्र) और सपिण्ड (पिण्डाधिकारी)।

† [illegible] विषयमें यह नियम नहीं है, जैसा कि कहा है—

[illegible] [illegible] पुत्रक।

[illegible] [illegible] दशाहं सूतकी भवेत्॥

[illegible] तीसरे [illegible] ग्राममें प्रवेश करें और कटकर्म [illegible] पृथ्वीपर [illegible] आदि बिछाकर शयन करें। मृत पुरुषके लिये नित्यप्रति पृथ्वीपर पिण्डदान करना [illegible] और केवल दिनके समय पवित्र अन्न खाना चाहिये। अशौच-कालमें यदि ब्राह्मणोंकी इच्छा हो तो उन्हें भोजन कराना चाहिये, क्योंकि उस समय ब्राह्मण और बन्धुवर्गके भोजन करनेसे मृत जीवकी तृप्ति होती है; अशौचके पहले, [illegible] अथवा नवें दिन वस्त्र त्यागकर और बहिर्देशमें स्नान करके तिलोदक दे।

नृप! अशौचके चौथे दिन अस्थिचयन करना चाहिये; उसके अनन्तर अपने सपिण्ड बन्धुजनोंका अङ्ग स्पर्श किया जा सकता है। राजन्! उस समयसे समानोदक* पुरुष चन्दन और पुष्प-धारण आदि क्रियाओंके सिवा, पञ्चयज्ञादि अन्य सब कर्म कर सकते हैं। भस्म और अस्थिचयनके अनन्तर सपिण्ड पुरुषोंद्वारा शय्या और आसनका उपयोग तो किया जा सकता है, किंतु स्त्री-संसर्ग नहीं किया जा सकता। बालक, देशान्तरस्थित व्यक्ति, पतित और तपस्वीके मरनेपर तथा जल, अग्नि और उद्बन्धन (फाँसी लगाने) आदिद्वारा आत्मघात करनेपर शीघ्र ही अशौचकी निवृत्ति हो जाती है†। मृतकके कुटुम्बका अन्न दस दिनतक न खाना चाहिये तथा अशौच कालमें दान, परिग्रह, होम और स्वाध्याय आदि कर्म भी नहीं करने चाहिये। यह दस दिनका अशौच ब्राह्मणका है; क्षत्रियका अशौच बारह दिन और वैश्यका पंद्रह दिन रहता है तथा शूद्रकी अशौचशुद्धि एक मासमें होती है। अशौचके अन्तमें इच्छानुसार अयुग्म (तीन, पाँच, सात, नौ आदि) ब्राह्मणोंको भोजन करावे तथा उनकी उच्छिष्ट (जूठन) के निकट प्रेतकी तृप्तिके लिये कुशापर पिण्डदान करे। अशौच शुद्धि हो जानेपर ब्रह्मभोजके अनन्तर ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको क्रमशः जल, शस्त्र, कोड़ा और लाठीका स्पर्श करना चाहिये।

तदनन्तर ब्राह्मण आदि वर्णोंके जो-जो जातीय धर्म बतलाये गये हैं, उनका आचरण करे और स्वधर्मानुसार न्याययुक्त उपार्जित जीविकासे निर्वाह करे। फिर प्रतिमास मृत्युतिथिपर एकोद्दिष्ट-श्राद्ध करे, जो आवाहनादि क्रिया और विश्वेदेव-सम्बन्धी ब्राह्मणके आमन्त्रण आदिसे रहित होने चाहिये। उस समय एक अर्घ्य और एक पवित्रक देना चाहिये तथा बहुत-से ब्राह्मणोंके भोजन करनेपर भी मृतकके लिये एक ही पिण्ड-दान करना चाहिये। तदनन्तर यजमानके 'अभिरम्यताम्' ऐसा कहनेपर ब्राह्मणगण 'अभिरताः स्मः' ऐसा कहे और फिर पिण्डदान समाप्त होनेपर 'अमुकस्य अक्षय्यमिदमुपतिष्ठताम्' इस वाक्यका उच्चारण करें। इस प्रकार एक वर्षतक प्रतिमास एकोद्दिष्ट कर्म करनेका विधान है। राजेन्द्र! वर्षके समाप्त होनेपर सपिण्डीकरण करे; उसकी विधि सुनो।

पृथ्वीपते! इस सपिण्डीकरण कर्मको भी एक वर्ष, छः मास अथवा बारह दिनके अनन्तर एकोद्दिष्टश्राद्धकी विधिसे ही करना चाहिये। इसमें तिल, गन्ध और जलसे युक्त चार पात्र रक्खे। इनमेंसे एक पात्र मृत पुरुषका होता है तथा तीन पितृगणके होते हैं। फिर मृत पुरुषके पात्रमे स्थित जलादिसे पितृगणके पात्रोंका सेचन करे। इस प्रकार मृत पुरुषको पितृत्व प्राप्त हो जानेपर सम्पूर्ण श्राद्धधर्मोंके द्वारा उस मृत पुरुषसे ही आरम्भ कर पितृगणका पूजन करे। राजन्! पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भाई, भतीजा अथवा अपनी सपिण्ड संततिमें उत्पन्न हुआ पुरुष ही श्राद्धादि क्रिया करनेका अधिकारी होता है। यदि इन सबका अभाव हो तो समानोदककी संतति या मातृपक्षके सपिण्ड अथवा समानोदकको इसका अधिकार है। राजन्! मातृकुल और पितृकुल दोनोंके नष्ट हो जानेपर स्त्री ही इस क्रियाको करे। अथवा यदि स्त्री भी न हो तो साथियोंमेंसे ही कोई करे या बान्धवहीन मृतकके धनसे राजा ही उसके सम्पूर्ण प्रेत-कर्म करे।

सम्पूर्ण प्रेत-कर्म तीन प्रकारके हैं—पूर्वकर्म, मध्यमकर्म तथा उत्तरकर्म। इनके पृथक्-पृथक् लक्षण सुनो। दाहसे लेकर जल और शस्त्र आदिके स्पर्शपर्यन्त जितने कर्म हैं, उनको पूर्वकर्म कहते हैं; तथा प्रत्येक मासमें जो एकोद्दिष्टश्राद्ध किया जाता है, वह मध्यमकर्म कहलाता है। नृप! सपिण्डीकरणके पश्चात् मृतक व्यक्तिके पितृत्वको प्राप्त हो जानेपर जो पितृकर्म किये जाते हैं, वे उत्तरकर्म कहलाते हैं। माता, पिता, सपिण्ड, समानोदक, समूहके लोग अथवा उसके धनका

---

१. [illegible] किये जानेवाले प्रेतसम्बन्धी कृत्यको [illegible] हैं।

* [illegible] ([illegible] समान जलाधिकारी अर्थात् सगोत्र) और [illegible] ([illegible])।

† [illegible] विषयमें यह नियम नहीं है, जैसा कि कहा है—

[illegible]

[illegible]॥

होनेपर वे ब्राह्मणश्रेष्ठोंको यथा धान्य और थोड़ी-सी दक्षिणा ही देगा। और यदि इसमें भी असमर्थ होगा तो किन्हीं द्विजश्रेष्ठको प्रणाम कर एक मुट्ठी तिल ही देगा। अथवा हमारे उद्देश्यसे पृथ्वीपर भक्तिविनम्र चित्तसे सात-आठ तिलोंसे युक्त जलाञ्जलि ही देगा। और यदि इसका भी अभाव होगा तो कहीं-न-कहींसे एक दिनका चारा लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक हमारे उद्देश्यसे गौको खिलायेगा। तथा इन सभी वस्तुओंका अभाव होनेपर जो वनमें जाकर अपने कक्षमूल (बगल) को दिखाता हुआ सूर्य आदि दिक्पालोंसे उच्चस्वरसे यह कहेगा—'मेरे पास श्राद्धकर्मके योग्य न वित्त है, न धन है और न कोई अन्य सामग्री है, अतः मैं अपने पितृगणको नमस्कार करता हूँ, वे मेरी भक्तिसे ही तृप्तिलाभ करें। मैंने अपनी दोनों भुजाएँ आकाशमें उठा रक्खी हैं।''

और्व बोले—राजन्! धनके होने अथवा न होनेपर पितृगणने जिस प्रकार बतलाया है, वैसा ही, जो पुरुष आचरण करता है, वह उस आचारसे विधिपूर्वक श्राद्ध ही कर देता है।

श्राद्ध-विधि

और्व बोले—राजन्! श्राद्धकालमें जैसे गुणवाले ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये वह बतलाता हूँ, सुनो। त्रिणाचिकेत[1], त्रिमधु[2], त्रिसुपर्ण[3], छहों वेदाङ्गोंके जाननेवाले, वेदवेत्ता, श्रोत्रिय, योगी और ज्येष्ठसामग; तथा ऋत्विक्, भानजे, दौहित्र, जामाता, श्वशुर, मामा, तपस्वी, पञ्चाग्नि तपनेवाले, शिष्य, सम्बन्धी और माता-पिताके प्रेमी—इन ब्राह्मणोंको श्राद्धकर्ममें नियुक्त करे। इनमेंसे त्रिणाचिकेत आदि पहले कहे हुओंको पूर्वकालमें नियुक्त करे और ऋत्विक् आदि पीछे बतलाये हुओंको पितरोंकी तृप्तिके लिये उत्तरकर्ममें भोजन करावे। मित्रघाती, स्वभावसे ही विकृत नखोंवाला, नपुंसक, काले दाँतोंवाला, कन्यागामी, अग्नि और वेदका त्याग करनेवाला, सोमरस बेचनेवाला, लोकनिन्दित, चोर, चुगलखोर, ग्रामपुरोहित, वेतन लेकर पढानेवाला अथवा पढनेवाला, पुनर्विवाहिताका पति, माता-पिताका त्याग करनेवाला, शूद्रकी संतानका पालन करनेवाला, शूद्राका पति तथा देवोपजीवी ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रण देने योग्य नहीं है।

श्राद्धसे पहले दिन बुद्धिमान् पुरुष श्रोत्रिय आदि विहित ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और उनसे यह कह दे कि 'आपको पितृ-श्राद्धमें और आपको विश्वेदेव-श्राद्धमें नियुक्त होना है' उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंके सहित श्राद्ध करनेवाला पुरुष उस दिन क्रोधादि तथा स्त्रीगमन और परिश्रम आदि न करे, क्योंकि श्राद्ध करनेमें यह महान् दोष माना गया है। श्राद्धमें निमन्त्रित होकर या भोजन करके अथवा निमन्त्रण करके या भोजन कराकर जो पुरुष स्त्रीप्रसङ्ग करता है, वह अपने पितृगणको मानो वीर्यके कुण्डमें डुबोता है। अतः श्राद्धके प्रथम दिन पहले तो उपर्युक्त गुणविशिष्ट द्विजश्रेष्ठोंको निमन्त्रित करे और यदि उस दिन कोई अनिमन्त्रित तपस्वी ब्राह्मण घर आ जायँ तो उन्हें भी भोजन करावे।

घर आये हुए ब्राह्मणोंका पहले पाद-शुद्धि आदिसे सत्कार करे। फिर हाथ धोकर उन्हें आचमन करानेके अनन्तर आसनपर बिठावे। अपनी सामर्थ्यानुसार पितृगणके लिये अयुग्म और देवगणके लिये युग्म ब्राह्मण नियुक्त करे अथवा दोनों पक्षोंके लिये एक-एक ब्राह्मणकी ही नियुक्ति करे। और इसी प्रकार वैश्वदेवके सहित मातामह-श्राद्ध करे अथवा पितृपक्ष और मातामह-पक्ष दोनोंके लिये भक्तिपूर्वक एक ही वैश्वदेव-श्राद्ध करे। देव-पक्षके ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख बिठाकर और पितृ-पक्ष तथा मातामह-पक्षके ब्राह्मणोंको उत्तर-मुख बिठाकर भोजन करावे। नृप! कोई तो पितृ-पक्ष और मातामह-पक्षके श्राद्धोंको अलग-अलग करनेके लिये कहते हैं और कोई महर्षि दोनोंका एक साथ एक पाकमें ही अनुष्ठान करनेके पक्षमें हैं। विज्ञ व्यक्ति प्रथम निमन्त्रित ब्राह्मणोंके बैठनेके लिये कुशा बिछाकर फिर अर्घ्यदान आदिसे विधि-

१. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाकोंको 'त्रिणाचिकेत' कहते हैं, उसको पढ़नेवाला या उसका अनुष्ठान करनेवाला।

२. 'मधुवाता' इत्यादि ऋचाका अध्ययन और मधुव्रतका आचरण करनेवाला।

३. 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला।

होनेपर भी ब्राह्मणश्रेष्ठोंको [illegible] धान्य और थोड़ी-सी दक्षिणा ही देगा। और यदि इसमें भी असमर्थ होगा तो किन्हीं द्विजश्रेष्ठको प्रणाम कर एक मुट्ठी तिल ही देगा। अथवा हमारे उद्देश्यसे पृथ्वीपर भक्तिविनम्र चित्तसे सात-आठ तिलोंसे युक्त जलाञ्जलि ही देगा। और यदि इसका भी अभाव होगा तो कहीं-न-कहींसे एक दिनका चारा लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक हमारे उद्देश्यसे गौको खिलायेगा। तथा इन सभी वस्तुओंका अभाव होनेपर जो वनमें जाकर अपने कक्षमूल (बगल) को दिखाता हुआ सूर्य आदि दिक्पालोंसे उच्चस्वरसे यह कहेगा—'मेरे पास श्राद्धकर्मके योग्य न वित्त है, न धन है और न कोई अन्य सामग्री है, अतः मैं अपने पितृगणको नमस्कार करता हूँ, वे मेरी भक्तिसे ही तृप्तिलाभ करें। मैंने अपनी दोनों भुजाएँ आकाशमें उठा रक्खी हैं।'"

और्व बोले—राजन्! धनके होने अथवा न होनेपर पितृगणने जिस प्रकार बतलाया है, वैसा ही, जो पुरुष आचरण करता है, वह उस आचारसे विधिपूर्वक श्राद्ध ही कर देता है।

श्राद्ध-विधि

और्व बोले—राजन्! श्राद्धकालमें जैसे गुणवाले ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये वह बतलाता हूँ, सुनो। त्रिणाचिकेत[1], त्रिमधु[2], त्रिसुपर्ण[3], छहों वेदाङ्गोंके जाननेवाले, वेदवेत्ता, श्रोत्रिय, योगी और ज्येष्ठसामग; तथा ऋत्विक्, भानजे, दौहित्र, जामाता, श्वशुर, मामा, तपस्वी, पञ्चाग्नि तपनेवाले, शिष्य, सम्बन्धी और माता-पिताके प्रेमी—इन ब्राह्मणोंको श्राद्धकर्ममें नियुक्त करे। इनमेंसे त्रिणाचिकेत आदि पहले कहे हुओंको पूर्वकालमें नियुक्त करे और ऋत्विक् आदि पीछे बतलाये हुओंको पितरोंकी तृप्तिके लिये उत्तरकर्ममें भोजन करावे। मित्रघाती, स्वभावसे ही विकृत नखोंवाला, नपुंसक, काले दाँतोंवाला, कन्यागामी, अग्नि और वेदका त्याग करनेवाला, सोमरस बेचनेवाला, लोकनिन्दित, चोर, चुगलखोर, ग्रामपुरोहित, वेतन लेकर पढ़ानेवाला अथवा पढ़नेवाला, पुनर्विवाहिताका पति, माता-पिताका त्याग करनेवाला, शूद्रकी संतानका पालन करनेवाला, शूद्राका पति तथा देवोपजीवी ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रण देने योग्य नहीं है।

श्राद्धके पहले दिन बुद्धिमान् पुरुष श्रोत्रिय आदि विहित ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और उनसे यह कह दे कि 'आपको पितृ-श्राद्धमें और आपको विश्वेदेव-श्राद्धमें नियुक्त होना है' उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंके सहित श्राद्ध करनेवाला पुरुष उस दिन क्रोधादि तथा स्त्रीगमन और परिश्रम आदि न करे, क्योंकि श्राद्ध करनेमें यह महान् दोष माना गया है। श्राद्धमें निमन्त्रित होकर या भोजन करके अथवा निमन्त्रण करके या भोजन कराकर जो पुरुष स्त्रीप्रसङ्ग करता है, वह अपने पितृगणको मानो वीर्यके कुण्डमें डुबोता है। अतः श्राद्धके प्रथम दिन पहले तो उपर्युक्त गुणविशिष्ट द्विजश्रेष्ठोंको निमन्त्रित करे और यदि उस दिन कोई अनिमन्त्रित तपस्वी ब्राह्मण घर आ जायँ तो उन्हें भी भोजन करावे।

घर आये हुए ब्राह्मणोंका पहले पाद-शुद्धि आदिसे सत्कार करे। फिर हाथ धोकर उन्हें आचमन करानेके अनन्तर आसनपर बिठावे। अपनी सामर्थ्यानुसार पितृगणके लिये अयुग्म और देवगणके लिये युग्म ब्राह्मण नियुक्त करे अथवा दोनों पक्षोंके लिये एक-एक ब्राह्मणकी ही नियुक्ति करे। और इसी प्रकार वैश्वदेवके सहित मातामह-श्राद्ध करे अथवा पितृपक्ष और मातामह-पक्ष दोनोंके लिये भक्तिपूर्वक एक ही वैश्वदेव-श्राद्ध करे। देव-पक्षके ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख बिठाकर और पितृ-पक्ष तथा मातामह-पक्षके ब्राह्मणोंको उत्तरमुख बिठाकर भोजन करावे। नृप! कोई तो पितृ-पक्ष और मातामह-पक्षके श्राद्धोंको अलग-अलग करनेके लिये कहते हैं और कोई महर्षि दोनोंका एक साथ एक पाकमें ही अनुष्ठान करनेके पक्षमें हैं। विज्ञ व्यक्ति प्रथम निमन्त्रित ब्राह्मणोंके बैठनेके लिये कुशा बिछाकर फिर अर्घ्यदान आदिसे विधि-

1. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाकोंको 'त्रिणाचिकेत' कहते हैं, उसको पढ़नेवाला या उसका अनुष्ठान करनेवाला।

2. 'मधुवाता०' इत्यादि ऋचाका अध्ययन और मधुव्रतका आचरण करनेवाला।

3. 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला।

कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं। दौहित्र (लड़कीका लड़का), कुतप (दिनका आठवाँ मुहूर्त) और तिल—ये तीन तथा चाँदीका दान और उसकी चर्चा तथा उसका कीर्तन-दर्शन आदि (अथवा भगवत्कथा-कीर्तन आदि) करना—ये सब श्राद्धकर्ममें पवित्र माने गये हैं। राजेन्द्र ! श्राद्धकर्ताके लिये क्रोध, मार्गगमन और उतावलापन—ये तीन बातें वर्जित हैं; तथा श्राद्धमें भोजन करनेवालोंको भी इन तीनोंका करना उचित नहीं है। राजन्! श्राद्ध करनेवाले पुरुषसे विश्वेदेवगण, पितृगण, मातामह तथा कुटुम्बीजन—सभी संतुष्ट रहते हैं। भूपाल! पितृगणका आधार चन्द्रमा है और चन्द्रमाका आधार योग है, इसलिये श्राद्धमें योगिजनको नियुक्त करना अति उत्तम है। राजन्! यदि श्राद्धभोजी एक सहस्र ब्राह्मणोंके सम्मुख एक योगी भी हो तो वह यजमानके सहित उन सबका उद्धार कर देता है।

श्राद्ध-कर्ममें विहित और अविहित वस्तुओंका विचार

और्व बोले—हवि तथा गव्य (गौके दूध-घी आदि) से पितृगण क्रमशः एक-एक मास अधिक तृप्ति लाभ करते हैं। नरेश्वर ! श्राद्धकर्ममें मधु अत्यन्त प्रशस्त और तृप्तिदायक है। पृथ्वीपते ! जो पुरुष गयामें जाकर श्राद्ध करता है, उसका पितृगणको तृप्ति देनेवाला वह जन्म सफल हो जाता है। पुरुषश्रेष्ठ ! देवधान्य, नीवार और श्याम तथा श्वेत वर्णके श्यामाक (सवाँ) एवं प्रधान-प्रधान वनौषधियाँ श्राद्धके उपयुक्त द्रव्य हैं। जौ, काँगनी, मूँग, गेहूँ, धान, तिल, मटर, कचनार और सरसों—इन सबका श्राद्धमें होना अच्छा है।

नरेश्वर ! जिस अन्नसे नवान्न यज्ञ न किया गया हो तथा बड़े उड़द, छोटे उड़द, मसूर, कद्दू, गाजर, प्याज, शलजम, गान्धारक (शालिविशेष), बिना तुषके गिरे हुए धान्यका आटा, ऊसर भूमिमें उत्पन्न हुआ लवण, हींग आदि कुछ-कुछ लाल रंगकी वस्तुएँ, शाकादिमें मिले हुएसे [illegible] और कुछ अन्य वस्तुएँ जिनका शास्त्रमें विधान नहीं है, श्राद्धकर्ममें त्याज्य हैं।

राजन्! जो रात्रिके समय लाया गया हो, अप्रतिष्ठित जलाशयका हो, जिसमें गौ तृप्त न हो सकती हो, ऐसे गढ्ढेका अथवा दुर्गन्ध या फेनयुक्त जल श्राद्धके योग्य नहीं होता। एक खुरवालोंका, ऊँटनीका, भेड़का, मृगीका तथा भैंसका दूध श्राद्धकर्ममें काममें न ले।

पुरुषर्षभ! नपुंसक, अपविद्ध (सत्पुरुषोंद्वारा बहिष्कृत), चाण्डाल, पापी, पाखण्डी, रोगी, कुक्कुट, श्वान, नग्न (वैदिक कर्मको त्याग देनेवाला पुरुष), वानर, ग्राम्यशूकर, रजस्वला स्त्री, जन्म अथवा मरणके अशौचसे युक्त व्यक्ति और शव ले जानेवाले पुरुष—इनमेंसे किसीकी भी दृष्टि पड़ जानेसे देवता अथवा पितृगण कोई भी श्राद्धमें अपना भाग नहीं लेते। अतः किसी घिरे हुए स्थानमें श्रद्धापूर्वक श्राद्धकर्म करे तथा पृथ्वीमें तिल छिड़ककर राक्षसोंको निवृत्त कर दे।

राजन् ! श्राद्धमें ऐसा अन्न न दे, जिसमें नख, केश या कीड़े आदि हों, या जो निचोड़कर निकाले हुए रससे युक्त हो या बासी हो। श्रद्धायुक्त व्यक्तियोंद्वारा नाम और गोत्रके उच्चारणपूर्वक दिया हुआ अन्न पितृगणको, वे जैसे आहारके योग्य होते हैं वैसा ही होकर, उन्हे मिलता है। राजन् ! इस सम्बन्धमें एक गाथा सुनी जाती है जो पूर्वकालमें मनुपुत्र महाराज इक्ष्वाकुके प्रति पितृगणने कलाप-उपवनमें कही थी।

'क्या हमारे कुलमें ऐसे सन्मार्गशील व्यक्ति होंगे जो गयामें जाकर हमारे लिये आदरपूर्वक पिण्डदान करेंगे ? क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष होगा जो वर्षाकालकी मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशीको हमारे उद्देश्यसे मधु और घृतयुक्त पायस (खीर) देगा अथवा गौरी[1] कन्याका दान करेगा, नीला साँड़ छोड़ेगा या दक्षिणासहित विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ करेगा ?'

[1] दस वर्षकी [illegible] कुमारी कन्याको 'गौरी' कहते हैं।

कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं। दौहित्र (लड़कीका लड़का), कुतप (दिनका आठवाँ मुहूर्त) और तिल—ये तीन तथा चाँदीका दान और उसकी चर्चा तथा उसका कीर्तन-दर्शन आदि (अथवा भगवत्कथा-कीर्तन आदि) करना—ये सब श्राद्धकर्ममें पवित्र माने गये हैं। राजेन्द्र ! श्राद्धकर्ताके लिये क्रोध, मार्गगमन और उतावलापन—ये तीन बातें वर्जित हैं; तथा श्राद्धमें भोजन करनेवालोंको भी इन तीनोंका करना उचित नहीं है। राजन्! श्राद्ध करनेवाले पुरुषसे विश्वेदेवगण, पितृगण, मातामह तथा कुटुम्बीजन—सभी संतुष्ट रहते हैं। भूपाल! पितृगणका आधार चन्द्रमा है और चन्द्रमाका आधार योग है, इसलिये श्राद्धमें योगिजनको नियुक्त करना अति उत्तम है। राजन्! यदि श्राद्धभोजी एक सहस्र ब्राह्मणोंके सम्मुख एक योगी भी हो तो वह यजमानके सहित उन सबका उद्धार कर देता है।

श्राद्ध-कर्ममें विहित और अविहित वस्तुओंका विचार

और्व बोले—हवि तथा गव्य (गौके दूध-घी आदि) से पितृगण क्रमशः एक-एक मास अधिक तृप्ति लाभ करते हैं। नरेश्वर ! श्राद्धकर्ममें मधु अत्यन्त प्रशस्त और तृप्तिदायक है। पृथ्वीपते ! जो पुरुष गयामें जाकर श्राद्ध करता है, उसका पितृगणको तृप्ति देनेवाला वह जन्म सफल हो जाता है। पुरुषश्रेष्ठ ! देवधान्य, नीवार और श्याम तथा श्वेत वर्णके श्यामाक (समा) एवं प्रधान-प्रधान वनौषधियाँ श्राद्धके उपयुक्त द्रव्य हैं। जौ, काँगनी, मूँग, गेहूँ, धान, तिल, मटर, कचनार और सरसों—इन सबका श्राद्धमें होना अच्छा है।

नरेश्वर ! जिस अन्नसे नवान्न यज्ञ न किया गया हो तथा बड़े उड़द, छोटे उड़द, मसूर, कद्दू, गाजर, प्याज, शलजम, गान्धारक (शालिविशेष), बिना तुषके गिरे हुए धान्यका आटा, ऊसर भूमिमें उत्पन्न हुआ लवण, हींग आदि कुछ-कुछ लाल रंगकी वस्तुएँ, शाकादिमें मिले हुएसे भिन्न प्रकार लवण और कुछ अन्य वस्तुएँ जिनका शास्त्रमें विधान नहीं है, श्राद्धकर्ममें त्याज्य हैं।

राजन्! जो रात्रिके समय लाया गया हो, अप्रतिष्ठित जलाशयका हो, जिसमें गौ तृप्त न हो सकती हो, ऐसे गढ़ेका अथवा दुर्गन्ध या फेनयुक्त जल श्राद्धके योग्य नहीं होता। एक खुरवालोंका, ऊँटनीका, भेड़का, मृगीका तथा भैंसका दूध श्राद्धकर्ममें काममें न ले।

पुरुषर्षभ ! नपुंसक, अपविद्ध (सत्पुरुषोंद्वारा बहिष्कृत), चाण्डाल, पापी, पाखण्डी, रोगी, कुक्कुट, श्वान, नग्न (वैदिक कर्मको त्याग देनेवाला पुरुष), वानर, ग्राम्यशूकर, रजस्वला स्त्री, जन्म अथवा मरणके अशौचसे युक्त व्यक्ति और शव ले जानेवाले पुरुष—इनमेंसे किसीकी भी दृष्टि पड़ जानेसे देवता अथवा पितृगण कोई भी श्राद्धमें अपना भाग नहीं लेते। अतः किसी घिरे हुए स्थानमें श्रद्धापूर्वक श्राद्धकर्म करे तथा पृथ्वीमें तिल छिड़ककर राक्षसोंको निवृत्त कर दे।

राजन् ! श्राद्धमें ऐसा अन्न न दे, जिसमें नख, केश या कीड़े आदि हों, या जो निचोड़कर निकाले हुए रससे युक्त हो या बासी हो। श्रद्धायुक्त व्यक्तियोंद्वारा नाम और गोत्रके उच्चारणपूर्वक दिया हुआ अन्न पितृगणको, वे जैसे आहारके योग्य होते हैं वैसा ही होकर, उन्हें मिलता है। राजन् ! इस सम्बन्धमें एक गाथा सुनी जाती है जो पूर्वकालमें मनुपुत्र महाराज इक्ष्वाकुके प्रति पितृगणने कलाप-उपवनमें कही थी।

'क्या हमारे कुलमें ऐसे सन्मार्गशील व्यक्ति होंगे जो गयामें जाकर हमारे लिये आदरपूर्वक पिण्डदान करेंगे ? क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष होगा जो वर्षाकालकी मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशीको हमारे उद्देश्यसे मधु और घृतयुक्त पायस (खीर) देगा अथवा गौरी[1] कन्याका दान करेगा, नीला साँड़ छोड़ेगा या दक्षिणासहित विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ करेगा ?'

---

१. दस वर्षकी अवस्थाकी कुमारी कन्याको 'गौरी' कहते हैं।

चतुर्थ अंश

वैवस्वत मनुके वंशका विवरण

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! अब मुझे राजवंशोंका विवरण सुननेकी इच्छा है, अतः उनका वर्णन कीजिये ।

श्रीपराशरजीने कहा— मैत्रेय ! अब तुम अनेकों यज्वाओं, शूरवीर और धैर्यशाली भूपालोंसे सुशोभित इस मनुवंशका वर्णन सुनो, जिसके आदिपुरुष श्रीब्रह्माजी हैं ।

सकल संसारके आदिकारण भगवान् विष्णु हैं। वे अनादि तथा ऋक्-साम-यजुःस्वरूप हैं। उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुके मूर्तरूप ब्रह्माण्डमय हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्माजी सबसे पहले प्रकट हुए । ब्रह्माजीके दायें अँगूठेसे दक्षप्रजापति हुए, दक्षसे अदिति हुई तथा अदितिसे विवस्वान् और विवस्वान्से मनुका जन्म हुआ। मनुके इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, दिष्ट, करूष और पृषध्र नामक दस पुत्र हुए ।

मनुने पुत्रकी इच्छासे मित्रावरुण नामक दो देवताओंके यज्ञका अनुष्ठान किया, किंतु होताके विपरीत संकल्पसे यज्ञमें विपर्यय हो जानेसे उनके 'इला' नामकी कन्या हुई । मैत्रेय ! मित्रावरुणकी कृपासे वह इला ही मनुका 'सुद्युम्न' नामक पुत्र हुई । फिर महादेवजीके कोप (कोपप्रयुक्त शाप) से वह पुनः स्त्री होकर चन्द्रमाके पुत्र बुधके आश्रमके निकट घूमने लगी । बुधने उस स्त्रीसे पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न किया । पुरूरवाके जन्मके अनन्तर भी परमर्षिगणने सुद्युम्नको पुरुषत्वलाभकी आकांक्षासे क्रतुमय, ऋग्यजुःसामाथर्वमय, सर्ववेदमय, मनोमय, ज्ञानमय, अन्नमय और परमार्थतः अकिंचिन्मय भगवान् यज्ञपुरुषका यथावत् यजन किया । तब उनकी कृपासे इला फिर भी सुद्युम्न हो गयी । उस (सुद्युम्न) के भी उत्कल, गय और विनत नामक तीन पुत्र हुए । पहले स्त्री होनेके कारण सुद्युम्नको राज्याधिकार प्राप्त नहीं हुआ । वसिष्ठजीके कहनेसे उनके पिताने उन्हें प्रतिष्ठान नामक नगर दे दिया था, वही उन्होंने पुरूरवाको दिया ।

मनुका पृषध्र नामक पुत्र गुरुकी गौका वध करनेके कारण शूद्र हो गया । मनुका पुत्र करूष था । करूषसे कारूष नामक महाबली और पराक्रमी क्षत्रियगण उत्पन्न हुए । दिष्टका पुत्र नाभाग वैश्य हो गया था; उससे बलन्धन नामक पुत्र हुआ । बलन्धनसे महान् कीर्तिमान् वत्सप्रीति, वत्सप्रीतिसे प्रांशु और प्रांशुसे प्रजापति नामक पुत्र हुआ । प्रजापतिसे खनित्र, खनित्रसे चाक्षुष तथा चाक्षुषसे अतिबल-पराक्रम-सम्पन्न विंश हुआ । विंशसे विविंशक, विविंशकसे खनिनेत्र, खनिनेत्रसे अतिविभूति और अतिविभूतिसे करन्धम नामक पुत्र हुआ । करन्धमसे अविक्षित् हुआ और अविक्षित्के मरुत्त नामक अतिबल पराक्रमयुक्त पुत्र हुआ, जिसके विषयमें आजकल भी ये दो श्लोक गाये जाते हैं—

'मरुत्तका जैसा यज्ञ हुआ था वैसा इस पृथिवीपर और किसका हुआ है, जिसकी सभी याज्ञिक वस्तुएँ सुवर्णमय और अति सुन्दर थीं । उस यज्ञमें इन्द्र सोमरससे और ब्राह्मणगण दक्षिणासे परितृप्त हो गये थे तथा उसमें मरुद्गण परोसनेवाले और देवगण सदस्य थे ।'

उस चक्रवर्ती मरुत्तके नरिष्यन्त नामक पुत्र हुआ तथा नरिष्यन्तके दम और दमके राजवर्द्धन हुआ । राजवर्द्धनसे सुवृद्धि, सुवृद्धिसे केवल और केवलसे सुधृतिका जन्म हुआ । सुधृतिसे नर, नरसे चन्द्र और चन्द्रसे केवल हुआ । केवलसे बन्धुमान्, बन्धुमान्से वेगवान्, वेगवान्से बुध, बुधसे तृणबिन्दु तथा तृणबिन्दुसे इलविला नामकी एक कन्या तथा विशाल नामक पुत्र हुआ, जिसने विशाला नामकी पुरी बसायी ।

विशालका पुत्र हेमचन्द्र हुआ, हेमचन्द्रका चन्द्र, चन्द्रका धूम्राक्ष, धूम्राक्षका सृञ्जय, सृञ्जयका सहदेव और सहदेवका पुत्र कृशाश्व हुआ । कृशाश्वके सोमदत्त नामक पुत्र हुआ, जिसने सौ अश्वमेध-यज्ञ किये थे । उससे जनमेजय हुआ और जनमेजयसे सुमतिका जन्म हुआ । ये सब विशालवंशीय राजा हुए । इनके विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है— 'तृणबिन्दुके प्रसादसे विशालवंशीय समस्त राजालोग दीर्घायु, महात्मा, वीर्यवान् और अति धर्मपरायण हुए ।'

मनुपुत्र शर्यातिके एक तो सुकन्या नामवाली कन्या हुई, जिसका विवाह च्यवन ऋषिके साथ हुआ तथा एक आनर्त्त नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ । आनर्त्तके रेवत नामका पुत्र हुआ, जिसने कुशस्थली नामकी पुरीमें रहकर आनर्त्तदेशका राज्यभोग किया ।

चतुर्थ अंश

वैवस्वत मनुके वंशका विवरण

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! अब मुझे राजवंशोंका विवरण सुननेकी इच्छा है, अतः उनका वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! अब तुम अनेकों यज्ञकर्ता, शूरवीर और धैर्यशाली भूपालोंसे सुशोभित इस मनुवंशका वर्णन सुनो, जिसके आदिपुरुष श्रीब्रह्माजी हैं।

सकल जगत्के आदिकारण भगवान् विष्णु हैं। वे अनादि तथा ऋक्-साम-यजुःस्वरूप हैं। उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुके मूर्तरूप ब्रह्माण्डमय हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्माजी सबसे पहले प्रकट हुए। ब्रह्माजीके दायें अँगूठेसे दक्षप्रजापति हुए, दक्षसे अदिति हुई तथा अदितिसे विवस्वान् और विवस्वान्से मनुका जन्म हुआ। मनुके इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, दिष्ट, करूष और पृषध्र नामक दस पुत्र हुए।

मनुने पुत्रकी इच्छासे मित्रावरुण नामक दो देवताओंके यज्ञका अनुष्ठान किया, किंतु होताके विपरीत संकल्पसे यज्ञमें विपर्यय हो जानेसे उनके 'इला' नामकी कन्या हुई। मैत्रेय! मित्रावरुणकी कृपासे वह इला ही मनुका 'सुद्युम्न' नामक पुत्र हुई। फिर महादेवजीके कोप (कोपप्रयुक्त शाप) से वह पुनः स्त्री होकर चन्द्रमाके पुत्र बुधके आश्रमके निकट घूमने लगी। बुधने उस स्त्रीसे पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न किया। पुरूरवाके जन्मके अनन्तर भी परमर्षिगणने सुद्युम्नको पुरुषत्वलाभकी आकांक्षासे क्रतुमय, ऋग्यजुःसामाथर्वमय, सर्ववेदमय, मनोमय, ज्ञानमय, अन्नमय और परमार्थतः अकिंचिन्मय भगवान् यज्ञपुरुषका यथावत् यजन किया। तब उनकी कृपासे इला फिर भी सुद्युम्न हो गयी। उस (सुद्युम्न) के भी उत्कल, गय और विनत नामक तीन पुत्र हुए। पहले स्त्री होनेके कारण सुद्युम्नको राज्याधिकार प्राप्त नहीं हुआ। वसिष्ठजीके कहनेसे उनके पिताने उन्हें प्रतिष्ठान नामक नगर दे दिया था, वही उन्होंने पुरूरवाको दिया।

मनुका पृषध्र नामक पुत्र गुरुकी गौका वध करनेके कारण शूद्र हो गया। मनुका पुत्र करूष था। करूषसे कारूष नामक महाबली और पराक्रमी क्षत्रियगण उत्पन्न हुए। दिष्टका पुत्र नाभाग वैश्य हो गया था; उससे बलन्धन नामक पुत्र हुआ। बलन्धनसे महान् कीर्तिमान् वत्सप्रीति, वत्सप्रीतिसे प्रांशु और प्रांशुसे प्रजापति नामक पुत्र हुआ। प्रजापतिसे खनित्र, खनित्रसे चाक्षुष तथा चाक्षुषसे अतिबल-पराक्रम-सम्पन्न विंश हुआ। विंशसे विविंशक, विविंशकसे खनिनेत्र, खनिनेत्रसे अतिविभूति और अतिविभूतिसे करन्धम नामक पुत्र हुआ। करन्धमसे अविक्षित् हुआ और अविक्षित्के मरुत्त नामक अतिबल पराक्रमयुक्त पुत्र हुआ, जिसके विषयमें आजकल भी ये दो श्लोक गाये जाते हैं—

'मरुत्तका जैसा यज्ञ हुआ था वैसा इस पृथिवीपर और किसका हुआ है, जिसकी सभी याज्ञिक वस्तुएँ सुवर्णमय और अति सुन्दर थीं। उस यज्ञमें इन्द्र सोमरससे और ब्राह्मणगण दक्षिणासे परितृप्त हो गये थे तथा उसमें मरुद्गण परोसनेवाले और देवगण सदस्य थे।'

उस चक्रवर्ती मरुत्तके नरिष्यन्त नामक पुत्र हुआ तथा नरिष्यन्तके दम और दमके राजवर्द्धन हुआ। राजवर्द्धनसे सुवृद्धि, सुवृद्धिसे केवल और केवलसे सुधृतिका जन्म हुआ। सुधृतिसे नर, नरसे चन्द्र और चन्द्रसे केवल हुआ। केवलसे बन्धुमान्, बन्धुमान्से वेगवान्, वेगवान्से बुध, बुधसे तृणबिन्दु तथा तृणबिन्दुसे इलविला नामकी एक कन्या तथा विशाल नामक पुत्र हुआ, जिसने विशाला नामकी पुरी बसायी।

विशालका पुत्र हेमचन्द्र हुआ, हेमचन्द्रका चन्द्र, चन्द्रका धूम्राक्ष, धूम्राक्षका सृञ्जय, सृञ्जयका सहदेव और सहदेवका पुत्र कृशाश्व हुआ। कृशाश्वके सोमदत्त नामक पुत्र हुआ, जिसने सौ अश्वमेध-यज्ञ किये थे। उससे जनमेजय हुआ और जनमेजयसे सुमतिका जन्म हुआ। ये सब विशालवंशीय राजा हुए। इनके विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—'तृणबिन्दुके प्रसादसे विशालवंशीय समस्त राजालोग दीर्घायु, महात्मा, वीर्यवान् और अति धर्मपरायण हुए।'

मनुपुत्र शर्यातिके एक तो सुकन्या नामवाली कन्या हुई, जिसका विवाह च्यवन ऋषिके साथ हुआ तथा एक आनर्त्त नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ। आनर्त्तके रेवत नामका पुत्र हुआ, जिसने कुशस्थली नामकी पुरीमें रहकर आनर्तदेशका राज्यभोग किया।

कंधेपर चढ़कर युद्ध कर सकूँ तो आपलोगोंका सहायक हो सकता हूँ।'

यह सुनकर समस्त देवगण और इन्द्रने 'बहुत अच्छा'—ऐसा कहकर उनका कथन स्वीकार कर लिया। फिर वृषभरूपधारी इन्द्रकी पीठपर चढ़कर चराचरगुरु भगवान् अच्युतके तेजसे परिपूर्ण होकर राजा पुरञ्जयने सभी दैत्योंको मार डाला। उस राजाने बैलके ककुद् (कंधे) पर बैठकर दैत्यसेनाका वध किया था, अतः उसका नाम ककुत्स्थ पड़ा। ककुत्स्थके अनेना नामक पुत्र हुआ। अनेनाके पृथु, पृथुके विष्टराश्व, उनके चान्द्र युवनाश्व तथा उस चान्द्र युवनाश्वके शावस्त नामक पुत्र हुआ, जिसने शावस्ती पुरी बसायी थी। शावस्तके बृहदश्व तथा बृहदश्वके कुवलयाश्वका जन्म हुआ, जिसने वैष्णव-तेजसे पूर्णता लाभ कर अपने इक्कीस सहस्र पुत्रोंके साथ मिलकर महर्षि उदकके अपकारी धुन्धु नामक दैत्यको मारा था; अतः उनका नाम धुन्धुमार हुआ। उनके सभी पुत्र धुन्धुके मुखसे निकले हुए निःश्वासाग्निसे जलकर मर गये थे। उनमेंसे केवल दृढाश्व, चन्द्राश्व और कपिलाश्व—ये तीन ही बचे थे।

दृढाश्वसे हर्यश्व, हर्यश्वसे निकुम्भ, निकुम्भसे अमिताश्व, अमिताश्वसे कृशाश्व, कृशाश्वसे प्रसेनजित् और प्रसेनजित्से युवनाश्वका जन्म हुआ। युवनाश्व निःसंतान होनेके कारण खिन्न चित्तसे मुनीश्वरोंके आश्रमोंमें रहा करता था; उसके दुःखसे द्रवीभूत होकर दयालु मुनिजनोंने उसके पुत्र उत्पन्न होनेके लिये यज्ञानुष्ठान किया। आधी रातके समय उस यज्ञके समाप्त होनेपर मुनिजन मन्त्रपूत जलका कलश वेदीपर रखकर सो गये। उनके सो जानेपर अत्यन्त पिपासाकुल होकर राजाने उस स्थानमें प्रवेश किया और सोये होनेके कारण उन ऋषियोंको उन्होंने नहीं जगाया तथा उस अपरिमित माहात्म्य-शाली कलशके मन्त्रपूत जलको पी लिया। जागनेपर ऋषियोंने पूछा—'इस मन्त्रपूत जलको किसने पिया है? इसका पान करनेपर ही युवनाश्वकी पत्नी महाबलविक्रमशील पुत्र उत्पन्न करेगी।' यह सुनकर राजाने कहा—'मैंने ही बिना जाने यह जल पी लिया है।' अतः युवनाश्वके उदरमें गर्भ स्थापित हो गया और क्रमशः बढ़ने लगा। यथासमय बालक राजाकी दायीं कोख फाड़कर निकल आया, किंतु इससे राजाकी मृत्यु नहीं हुई।

तब उसे देखकर मुनियोंने कहा—'यह बालक किसको पान करेगा?' उसी समय देवराज इन्द्रने आकर कहा—'मामयं धास्यति' 'यह मुझे (मेरी अङ्गुलिको) पान करेगा'। इन्द्रके 'मां धाता' या 'मां धास्यति' कहनेसे उसका नाम 'मान्धाता' हुआ। देवेन्द्रने उसके मुखमें अपनी तर्जनी (अंगूठेके पासकी) अँगुली दे दी और वह उसे पीने लगा। उस अमृतमयी अँगुलीका आस्वादन करनेसे वह एक ही दिनमें बढ़ गया। तभीसे चक्रवर्ती मान्धाता सप्तद्वीपा पृथ्वीका राज्य भोगने लगा। इसके विषयमें यह कहा जाता है—

'जहाँसे सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है, वह सभी क्षेत्र युवनाश्वके पुत्र मान्धाताका है।'

मान्धाताने शतबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमतीसे विवाह किया और उससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये तथा उसी (बिन्दुमती) से उनके पचास कन्याएँ हुईं।

उसी समय बह्वृच सौभरि नामक महर्षिने बारह वर्षतक जलमें निवास किया। उस जलमें सम्मद नामक एक बहुत सी संतानोंवाला और अति दीर्घकाय मत्स्यराज था। वह अपनी संतानके सुकोमल स्पर्शसे अत्यन्त हर्षयुक्त होकर अपने पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ अहर्निश क्रीडा करता रहता था। इस प्रकार जलमें स्थित सौभरि ऋषिने एकाग्रतारूप समाधिको छोड़कर रात-दिन उस मत्स्यराजकी अपने पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ अति रमणीय क्रीडाओंको देखकर विचार किया—'अहो! यह धन्य है, जो ऐसी अनिष्ट योनिमें उत्पन्न होकर भी अपने इन पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ निरन्तर क्रीडा करता रहता है। हम भी इसी प्रकार अपने पुत्रादिके साथ अति ललित क्रीडाएँ करेंगे।'

ऐसी अभिलाषा करते हुए वे उस जलके भीतरसे निकल आये और संतानार्थ गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी कामनासे कन्या ग्रहण करनेके लिये राजा मान्धाताके पास आये।

मुनिवरका आगमन सुन राजाने उठकर अर्घ्य-दानादिसे उनका भली प्रकार पूजन किया; तदनन्तर सौभरि मुनिने आसन ग्रहण करके राजासे कहा।

सौभरिजी बोले—राजन्! मैं कन्या-परिग्रहका अभिलाषी हूँ, अतः तुम मुझे एक कन्या दो; ककुत्स्थवंशमें कार्यवश आया हुआ कोई भी प्रार्थी पुरुष कभी खाली हाथ नहीं लौटता। राजन्! तुम्हारे पचास कन्याएँ हैं, उनमेंसे तुम मुझे केवल एक ही दे दो।

[illegible] युद्ध कर सकूँ तो आपलोगोंका सहायक हो सकता हूँ ।'

यह सुनकर समस्त देवगण और इन्द्रने 'बहुत अच्छा'—ऐसा कहकर उनका कथन स्वीकार कर लिया । फिर वृषभरूपधारी इन्द्रकी पीठपर चढ़कर चराचरगुरु भगवान् अच्युतके तेजसे परिपूर्ण होकर राजा पुरञ्जयने सभी दैत्योंको मार डाला । उस राजाने बैलके ककुद् (कंधे) पर बैठकर दैत्यसेनाका वध किया था, अतः उसका नाम ककुत्स्थ पड़ा । ककुत्स्थके अनेना नामक पुत्र हुआ । अनेनाके पृथु, पृथुके विष्टराश्व, उनके चान्द्र युवनाश्व तथा उस चान्द्र युवनाश्वके शावस्त नामक पुत्र हुआ, जिसने शावस्ती पुरी बसायी थी । शावस्तके बृहदश्व तथा बृहदश्वके कुवलयाश्वका जन्म हुआ, जिसने वैष्णव-तेजसे पूर्णता लाभ कर अपने इक्कीस सहस्र पुत्रोंके साथ मिलकर महर्षि उदङ्कके अपकारी धुन्धु नामक दैत्यको मारा था; अतः उनका नाम धुन्धुमार हुआ । उनके सभी पुत्र धुन्धुके मुखसे निकले हुए निःश्वासाग्निसे जलकर मर गये थे । उनमेंसे केवल दृढाश्व, चन्द्राश्व और कपिलाश्व—ये तीन ही बचे थे ।

दृढाश्वसे हर्यश्व, हर्यश्वसे निकुम्भ, निकुम्भसे अमिताश्व, अमिताश्वसे कृशाश्व, कृशाश्वसे प्रसेनजित् और प्रसेनजित्से युवनाश्वका जन्म हुआ । युवनाश्व निःसंतान होनेके कारण खिन्न चित्तसे मुनीश्वरोंके आश्रमोंमें रहा करता था; उसके दुःखसे द्रवीभूत होकर दयालु मुनिजनोंने उसके पुत्र उत्पन्न होनेके लिये यज्ञानुष्ठान किया । आधी रातके समय उस यज्ञके समाप्त होनेपर मुनिजन मन्त्रपूत जलका कलश वेदीपर रखकर सो गये । उनके सो जानेपर अत्यन्त पिपासाकुल होकर राजाने उस स्थानमें प्रवेश किया और सोये होनेके कारण उन ऋषियोंको उन्होंने नहीं जगाया तथा उस अपरिमित माहात्म्यशाली कलशका मन्त्रपूत जलको पी लिया । जागनेपर ऋषियोंने पूछा—'इस मन्त्रपूत जलको किसने पिया है ? इसका पान करनेपर ही युवनाश्वकी पत्नी महाबलविक्रमशील पुत्र उत्पन्न करेगी ।' यह सुनकर राजाने कहा—'मैंने ही बिना जाने यह जल पी लिया है ।' अतः युवनाश्वके उदरमें गर्भ स्थापित हो गया और क्रमशः बढ़ने लगा । यथासमय बालक राजाकी दायीं कोख फाड़कर निकल आया, किंतु इससे राजाकी मृत्यु नहीं हुई ।

उसके पश्चात् मुनियोंने कहा—'यह बालक किसको पान करेगा ?' उसी समय देवराज इन्द्रने आकर कहा—'मामयं धास्यति' 'यह मुझे (मेरी अङ्गुलिको) पान करेगा' । इन्द्रके 'मा धाता' या 'मा धास्यति' कहनेसे उसका नाम 'मान्धाता' हुआ । देवेन्द्रने उसके मुखमें अपनी तर्जनी (अंगूठेके पासकी) अँगुली दे दी और वह उसे पीने लगा । उस अमृतमयी अँगुलीका आस्वादन करनेसे वह एक ही दिनमें बढ़ गया । तभीसे चक्रवर्ती मान्धाता सप्तद्वीपा पृथ्वीका राज्य भोगने लगा । इसके विषयमें यह कहा जाता है—

'जहाँसे सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है, वह सभी क्षेत्र युवनाश्वके पुत्र मान्धाताका है ।'

मान्धाताने शतबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमतीसे विवाह किया और उससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये तथा उसी (बिन्दुमती) से उनके पचास कन्याएँ हुईं ।

उसी समय बह्वृच सौभरि नामक महर्षिने बारह वर्षतक जलमें निवास किया । उस जलमें सम्मद नामक एक बहुत सी संतानोंवाला और अति दीर्घकाय मत्स्यराज था । वह अपनी संतानके सुकोमल स्पर्शसे अत्यन्त हर्षयुक्त होकर अपने पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ अहर्निश क्रीडा करता रहता था । इस प्रकार जलमें स्थित सौभरि ऋषिने एकाग्रतारूप समाधिको छोड़कर रात-दिन उस मत्स्यराजकी अपने पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ अति रमणीय क्रीडाओंको देखकर विचार किया—'अहो ! यह धन्य है, जो ऐसी अनिष्ट योनिमें उत्पन्न होकर भी अपने इन पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ निरन्तर क्रीडा करता रहता है । हम भी इसी प्रकार अपने पुत्रादिके साथ अति ललित क्रीडाएँ करेंगे ।'

ऐसी अभिलाषा करते हुए वे उस जलके भीतरसे निकल आये और संतानार्थ गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी कामनासे कन्या ग्रहण करनेके लिये राजा मान्धाताके पास आये ।

मुनिवरका आगमन सुन राजाने उठकर अर्घ्य-दानादिसे उनका भली प्रकार पूजन किया; तदनन्तर सौभरि मुनिने आसन ग्रहण करके राजासे कहा ।

सौभरिजी बोले—राजन् ! मैं कन्या-परिग्रहका अभिलाषी हूँ, अतः तुम मुझे एक कन्या दो; ककुत्स्थवंशमें कार्यवश आया हुआ कोई भी प्रार्थी पुरुष कभी खाली हाथ नहीं लौटता । राजन् ! तुम्हारे पचास कन्याएँ हैं, उनमेंसे तुम मुझे केवल एक ही दे दो ।

[illegible] मिले और उनसे भी इसी प्रकार [illegible] । [illegible] इसी प्रकार [illegible] आदि [illegible] उपभोगोंके [illegible] और कहा कि [illegible] प्रीतिके कारण [illegible] ही पास रहते हैं, और [illegible] पास [illegible] ।' इस प्रकार [illegible] राजा एक एक करके [illegible] गये और [illegible] इसी प्रकार पूछा [illegible] भी वैसा ही उत्तर दिया । अन्तमें आनन्द और [illegible] निवृत्तचित्त होकर उन्होंने एकान्तमें [illegible] पूजा करनेके अनन्तर उनसे कहा— [illegible] ! आपकी ही योगसिद्धिका यह महान् प्रभाव देखा है । इस प्रकारके महान् वैभवके साथ और किसीको भी विलास करते हुए हमने नहीं देखा, यह सब आपकी तपस्याका ही फल है ।' इस प्रकार उनका अभिवादन कर वे कुछ कालतक वहाँ रहे और अन्तमें अपने नगरको चले आये ।

[illegible] उन राजकन्याओंके द्वारा सौभरि मुनिके डेढ़ सौ पुत्र हुए । इस प्रकार दिन दिन स्नेहका प्रसार होनेसे उनका हृदय अतिशय ममतामय हो गया । वे सोचने लगे—

'[illegible] ! मेरे मोहका [illegible] विस्तार है ? मनोरथोंकी तो [illegible] सहस्र वर्षोंमें भी समाप्ति नहीं हो सकती । उनमेंसे यदि [illegible] हो जाते हैं तो उनके स्थानपर अन्य नये मनोरथोंकी उत्पत्ति हो जाती है* । मेरे पुत्र पैरोंसे चलने लगे, फिर वे युवा हुए, उनका विवाह हुआ तथा उनके संतानें हुईं—यह सब तो मैं देख चुका; किंतु अब मेरा चित्त उन पौत्रोंके पुत्र-जन्मको भी देखना चाहता है ! यदि उनका जन्म भी मैंने देख लिया तो फिर मेरे चित्तमें दूसरा मनोरथ उठेगा और यदि वह भी पूरा हो गया तो अन्य मनोरथकी उत्पत्तिको ही कौन रोक सकता है ? मैंने अब भली प्रकार समझ लिया है कि मृत्युपर्यन्त मनोरथोंका अन्त तो होना नहीं है; और जिस चित्तमें मनोरथोंकी आसक्ति होती है, वह कभी परमार्थमें लग नहीं सकता† । अहो ! मेरी वह समाधि जलवासके साथी मत्स्यके सङ्गसे अकस्मात् नष्ट हो गयी और उस सङ्गके कारण ही मैंने स्त्री और धन आदिका परिग्रह किया तथा परिग्रहके कारण ही अब मेरी तृष्णा बढ़ गयी है । एक शरीरका ग्रहण करना ही महान् दुःख है और मैंने तो इन राजकन्याओंका परिग्रह करके पचास रूप धारण कर लिया । अब आगे भी पुत्रोंके पुत्र तथा उनके पुत्रोंसे और उनका पुनः-पुनः विवाहसम्बन्ध करनेसे वह परिग्रह और भी बढ़ेगा । यह ममतारूप विवाह-सम्बन्ध अवश्य बड़े ही दुःखका कारण है । जलाशयमें रहकर मैंने जो तपस्या की थी, उसकी फलस्वरूपा यह सम्पत्ति तपस्याकी बाधक है । मत्स्यके सङ्गसे मेरे चित्तमें जो पुत्र आदिका राग उत्पन्न हुआ था, उसीने मुझे ठग लिया । निःसङ्गता ही यतियोंको मुक्ति देनेवाली है । सम्पूर्ण दोष सङ्गसे ही उत्पन्न होते हैं । सङ्गके कारण तो योगमें आरूढ योगी भी गिर जाते हैं, फिर जिन्हें थोड़ी ही सिद्धि प्राप्त हुई है, उनकी तो बात ही क्या है ? परिग्रहरूपी ग्राहने मेरी बुद्धिको पकड़ रक्खा है । इस समय मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे दोषोंसे मुक्त होकर फिर अपने कुटुम्बियोंके दुःखसे दुखी न होऊँ । अब मैं सबके विधाता, अचिन्त्यरूप, अणुसे भी अणु, प्रमाणसे अतीत, शुक्ल

---

* मनोरथानां न समाप्तिरस्ति
वर्षायुतेनापि तथाब्दलक्षैः ।
पूर्णेषु पूर्णेषु मनोरथाना-
मुत्पत्तयः सन्ति पुनर्नवानाम् ॥
(वि० पु० ४ । २ । ११८)

† आमृत्युतो नैव मनोरथाना-
मन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाद्य ।
मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं
न जायते वै परमार्थसङ्गि ॥
(वि० पु० ४ । २ । ११९)

कन्याके महलमें गये और उनसे भी इसी प्रकार पूछा । उसने भी इसी प्रकार महल आदि सम्पूर्ण उपभोगोंके सुखका वर्णन किया और कहा कि 'अतिशय प्रीतिके कारण महर्षि मेरे ही पास रहते हैं, और किसी बहिनके पास नहीं जाते ।' इस प्रकार पृथिवीपति मान्धाता राजा एक-एक करके प्रत्येक कन्याके महलमें गये और प्रत्येक कन्यासे इसी प्रकार पूछा और उन सबने भी वैसा ही उत्तर दिया । अन्तमें आनन्द और विस्मयके भारसे विवशचित्त होकर उन्होंने एकान्तमें स्थित भगवान् सौभरिकी पूजा करनेके अनन्तर उनसे कहा—'भगवन् ! आपकी ही योगसिद्धिका यह महान् प्रभाव देखा है । इस प्रकारके महान् वैभवके साथ और किसीको भी विलास करते हुए हमने नहीं देखा, यह सब आपकी तपस्याका ही फल है ।' इस प्रकार उनका अभिवादन कर वे कुछ कालतक वहीं रहे और अन्तमें अपने नगरको चले आये ।

कालक्रमसे उन राजकन्याओंके द्वारा सौभरि मुनिके डेढ़ सौ पुत्र हुए । इस प्रकार दिन-दिन स्नेहका प्रसार होनेसे उनका हृदय अतिशय ममतामय हो गया । वे सोचने लगे—

'अहो ! मेरा यह कैसा मोहका विस्तार है ? मनोरथोंकी तो दस हजार वर्षोंमें भी समाप्ति नहीं हो सकती । उनमेंसे यदि कुछ पूर्ण भी हो जाते हैं तो उनके स्थानपर अन्य नये मनोरथोंकी उत्पत्ति हो जाती है* । मेरे पुत्र पैरोंसे चलने लगे, फिर वे युवा हुए, उनका विवाह हुआ तथा उनके संतानें हुई—यह सब तो मैं देख चुका; किंतु अब मेरा चित्त उन पौत्रोंके पुत्र-जन्मको भी देखना चाहता है ! यदि उनका जन्म भी मैंने देख लिया तो फिर मेरे चित्तमें दूसरा मनोरथ उठेगा और यदि वह भी पूरा हो गया तो अन्य मनोरथकी उत्पत्तिको ही कौन रोक सकता है ? मैंने अब भली प्रकार समझ लिया है कि मृत्युपर्यन्त मनोरथोंका अन्त तो होना नहीं है; और जिस चित्तमें मनोरथोंकी आसक्ति होती है, वह कभी परमार्थमें लग नहीं सकता† । अहो ! मेरी वह समाधि जलवासके साथी मत्स्यके सङ्गसे अकस्मात् नष्ट हो गयी और उस सङ्गके कारण ही मैंने स्त्री और धन आदिका परिग्रह किया तथा परिग्रहके कारण ही अब मेरी तृष्णा बढ़ गयी है । एक शरीरका ग्रहण करना ही महान् दुःख है और मैंने तो इन राजकन्याओंका परिग्रह करके पचास रूप धारण कर लिया । अब आगे भी पुत्रोंके पुत्र तथा उनके पुत्रोंसे और उनका पुनः-पुनः विवाहसम्बन्ध करनेसे वह परिग्रह और भी बढ़ेगा । यह ममतारूप विवाह-सम्बन्ध अवश्य बड़े ही दुःखका कारण है । जलाशयमें रहकर मैंने जो तपस्या की थी, उसकी फलस्वरूपा यह सम्पत्ति तपस्याकी बाधक है । मत्स्यके सङ्गसे मेरे चित्तमें जो पुत्र आदिका राग उत्पन्न हुआ था, उसीने मुझे ठग लिया । निःसङ्गता ही यतियोंको मुक्ति देनेवाली है । सम्पूर्ण दोष सङ्गसे ही उत्पन्न होते हैं । सङ्गके कारण तो योगमें आरूढ योगी भी गिर जाते हैं, फिर जिन्हें थोड़ी ही सिद्धि प्राप्त हुई है, उनकी तो बात ही क्या है ? परिग्रहरूपी ग्राहने मेरी बुद्धिको पकड़ रक्खा है । इस समय मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे दोषोंसे मुक्त होकर फिर अपने कुटुम्बियोंके दुःखसे दुखी न होऊँ । अब मैं सबके विधाता, अचिन्त्यरूप, अणुसे भी अणु, प्रमाणसे अतीत, शुक्ल

* मनोरथानां न समाप्तिरस्ति
वर्षायुतेनापि तथाब्दलक्षैः ।
पूर्णेषु पूर्णेषु मनोरथाना-
मुत्पत्तयः सन्ति पुनर्नवानाम् ॥
(वि० पु० ४ । २ । ११८)

† आमृत्युतो नैव मनोरथाना-
मन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाद्य ।
मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं
न जायते वै परमार्थसङ्गि ॥
(वि० पु० ४ । २ । ११९)

[illegible] [illegible] त्रसद्दस्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया । [illegible] अनरण्य हुआ, जिसे दिग्विजयके समय रावणने [illegible] । [illegible] पृषदश्व, पृषदश्वके हर्यश्व, हर्यश्वके हस्त, हस्तके सुमना, सुमनाके त्रिधन्वा, त्रिधन्वाके त्रय्यारुणि और [illegible] सत्यव्रत नामक पुत्र हुआ, जो पीछे त्रिशङ्कु कहलाया ।

त्रिशङ्कु हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्रसे रोहिताश्व, रोहिताश्वसे हरित, हरितसे चञ्चु, चञ्चुसे विजय और वसुदेव, विजयसे रुरुक और रुरुकसे वृकका जन्म हुआ । वृकके बाहु नामक पुत्र हुआ, जो हैहय और तालजङ्घ आदि क्षत्रियोंसे पराजित होकर अपनी गर्भवती पटरानीके सहित वनमें चला गया था । पटरानीकी सौतने उसका गर्भ रोकनेकी इच्छासे उसे विष खिला दिया । उसके प्रभावसे उसका गर्भ सात वर्षतक गर्भाशयहीमें रहा । अन्तमें बाहु वृद्धावस्थाके कारण और्व मुनिके आश्रमके समीप मर गया । तब उसकी उस पटरानीने चिता बनाकर उसपर पतिका शव स्थापित कर उसके साथ सती होनेका निश्चय किया । उसी समय तीनों कालके जाननेवाले और्वमुनिने अपने आश्रमसे निकलकर उससे कहा—'अयि साध्वि ! तेरे उदरमें सम्पूर्ण भूमण्डलका स्वामी, अत्यन्त बल-पराक्रमशील, अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला और शत्रुओंका नाश करनेवाला चक्रवर्ती राजा है । तू ऐसे दुस्साहसका उद्योग न कर ।' ऐसा कहे जानेपर वह सती होनेके आग्रहसे विरत हो गयी और भगवान् और्व उसे अपने आश्रमपर ले आये ।

वहाँ कुछ ही दिनोंमें उसके गर्भसे उस गर (विष) के साथ ही एक अति तेजस्वी बालकने जन्म लिया । भगवान् और्वने उसके जातकर्म आदि संस्कार कर उसका नाम 'सगर' रखा तथा उसका उपनयन-संस्कार होनेपर और्वने ही उसे वेद, शास्त्र एवं भार्गव नामक आग्नेय शस्त्रोंकी शिक्षा दी ।

बुद्धिका विकास होनेपर उस बालकने अपनी मातासे कहा—'माँ ! यह तो बता, इस तपोवनमें हम क्यों रहते हैं और हमारे पिता कहाँ हैं ?' इसी प्रकारके और भी प्रश्न पूछनेपर माताने उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह दिया, तब तो पिताके राज्यापहरणको सहन न कर सकनेके कारण उसने हैहय और तालजङ्घ आदि क्षत्रियोंको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की और प्रायः सभी हैहय एवं तालजङ्घवंशीय राजाओंको नष्ट कर दिया । तदनन्तर महाराज सगर अपनी राजधानीमें आकर अप्रतिहत सैन्यसे युक्त हो इस सम्पूर्ण सप्तद्वीपवती पृथ्वीका शासन करने लगे ।

सगर, खट्वाङ्ग और भगवान् रामके चरित्रका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—काश्यपसुता सुमति और विदर्भराज कन्या केशिनी ये राजा सगरकी दो स्त्रियाँ थीं । उनसे सन्तानोत्पत्तिके लिये परम समाधिद्वारा आराधना किये जानेपर और्वने यह वर दिया । 'एकसे वंशकी वृद्धि करनेवाला एक पुत्र तथा दूसरीसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे, इनमेंसे जिसको जो अभीष्ट हो, वह इच्छापूर्वक उसीको ग्रहण कर सकती है ।' उनके ऐसा कहनेपर केशिनीने एक तथा सुमतिने साठ हजार पुत्रोंका वर माँगा ।

महर्षिके 'तथास्तु' कहनेपर कुछ ही दिनोंमें केशिनीने [illegible] [illegible] असमञ्जस नामक एक पुत्रको जन्म दिया और [illegible] सुमतिसे साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए । [illegible] [illegible] अंशुमान् नामक पुत्र हुआ । यह [illegible] [illegible] ही बड़ा दुराचारी था । पिताने सोचा कि [illegible] [illegible] आनेपर यह समझदार होगा, किंतु [illegible] [illegible] भी जब उसका आचरण न सुधरा तो [illegible] [illegible] त्याग दिया । उनके साठ हजार पुत्रोंने भी [illegible] [illegible] ही अनुकरण किया ।

तब असमञ्जसके चरित्रका अनुकरण करनेवाले उन सगरपुत्रोंद्वारा संसारमें सन्मार्ग उच्छेद हो जानेपर भगवान् पुरुषोत्तमके अंशभूत श्रीकपिलदेवसे देवताओंने प्रणाम करनेके अनन्तर उनके विषयमें कहा—'भगवन् ! राजा सगरके ये सभी पुत्र असमञ्जसके चरित्रका ही अनुसरण कर रहे हैं । इन सबके असन्मार्गमें प्रवृत्त रहनेसे संसारकी क्या दशा होगी ? प्रभो ! संसारमें दीनजनोंकी रक्षाके लिये ही आपने अवतार लिया है, अतः इस घोर आपत्तिसे संसारकी रक्षा कीजिये ।' यह सुनकर भगवान् कपिलने कहा—'ये सब थोड़े ही दिनोंमें नष्ट हो जायँगे ।'

इसी समय सगरने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया । उसमें उनके पुत्रोंद्वारा सुरक्षित घोड़ेको कोई व्यक्ति चुराकर पृथिवीमें घुस गया, तब उस घोड़ेके खुरोंके चिह्नोंका अनुसरण करते हुए उनके पुत्रोंमेंसे प्रत्येकने एक-एक योजन पृथिवी खोद डाली तथा पातालमें पहुँचकर उन राजकुमारोंने अपने घोड़ेको फिरता हुआ देखा । पासहीमें सूर्यके समान अपने

पुरुकुत्सने नर्मदासे त्रसद्दस्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया। त्रसद्दस्युसे अनरण्य हुआ, जिसे दिग्विजयके समय रावणने मारा था। अनरण्यके पृषदश्व, पृषदश्वके हर्यश्व, हर्यश्वके हस्त, हस्तके सुमना, सुमनाके त्रिधन्वा, त्रिधन्वाके त्रय्यारुणि और त्रय्यारुणिके सत्यव्रत नामक पुत्र हुआ, जो पीछे त्रिशङ्कु कहलाया।

त्रिशङ्कुसे हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्रसे रोहिताश्व, रोहिताश्वसे हरित, हरितसे चञ्चु, चञ्चुसे विजय और वसुदेव, विजयसे रुरुक और रुरुकसे वृकका जन्म हुआ। वृकके बाहु नामक पुत्र हुआ, जो हैहय और तालजङ्घ आदि क्षत्रियोंसे पराजित होकर अपनी गर्भवती पटरानीके सहित वनमें चला गया था। पटरानीकी सौतने उसका गर्भ रोकनेकी इच्छासे उसे विष खिला दिया। उसके प्रभावसे उसका गर्भ सात वर्षतक गर्भाशयहीमें रहा। अन्तमें बाहु वृद्धावस्थाके कारण और्व मुनिके आश्रमके समीप मर गया। तब उसकी उस पटरानीने चिता बनाकर उसपर पतिका शव स्थापित कर उसके साथ सती होनेका निश्चय किया। उसी समय तीनों कालके जाननेवाले और्वमुनिने अपने आश्रमसे निकलकर उससे कहा—'अयि साध्वि ! तेरे उदरमें सम्पूर्ण भूमण्डलका स्वामी, अत्यन्त बल-पराक्रमशील, अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला और शत्रुओंका नाश करनेवाला चक्रवर्ती राजा है। तू ऐसे दुस्साहसका उद्योग न कर।' ऐसा कहे जानेपर वह सती होनेके आग्रहसे विरत हो गयी और भगवान् और्व उसे अपने आश्रमपर ले आये।

वहाँ कुछ ही दिनोंमें उसके गर्भसे उस गर (विष) के साथ ही एक अति तेजस्वी बालकने जन्म लिया। भगवान् और्वने उसके जातकर्म आदि संस्कार कर उसका नाम 'सगर' रखा तथा उसका उपनयन-संस्कार होनेपर और्वने ही उसे वेद, शास्त्र एवं भार्गव नामक आग्नेय शस्त्रोंकी शिक्षा दी।

बुद्धिका विकास होनेपर उस बालकने अपनी मातासे कहा—'माँ! यह तो बता, इस तपोवनमें हम क्यों रहते हैं और हमारे पिता कहाँ हैं ?' इसी प्रकारके और भी प्रश्न पूछनेपर माताने उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह दिया, तब तो पिताके राज्यापहरणको सहन न कर सकनेके कारण उसने हैहय और तालजङ्घ आदि क्षत्रियोंको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की और प्रायः सभी हैहय एवं तालजङ्घवंशीय राजाओंको नष्ट कर दिया। तदनन्तर महाराज सगर अपनी राजधानीमें आकर अप्रतिहत सैन्यसे युक्त हो इस सम्पूर्ण सप्तद्वीपवती पृथ्वीका शासन करने लगे।

सगर, खट्वाङ्ग और भगवान् रामके चरित्रका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—काश्यपसुता सुमति और विदर्भराज-कन्या केशिनी ये राजा सगरकी दो स्त्रियाँ थीं। उनसे सन्तानोत्पत्तिके लिये परम समाधिद्वारा आराधना किये जानेपर और्वने यह वर दिया। 'एकसे वंशकी वृद्धि करनेवाला एक पुत्र तथा दूसरीसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे, इनमेंसे जिसको जो अभीष्ट हो, वह इच्छापूर्वक उसीको ग्रहण कर सकती है।' उनके ऐसा कहनेपर केशिनीने एक तथा सुमतिने साठ हजार पुत्रोंका वर माँगा।

महर्षिके 'तथास्तु' कहनेपर कुछ ही दिनोंमें केशिनीने वंशके बढ़ानेवाले असमञ्जस नामक एक पुत्रको जन्म दिया और काश्यपकुमारी सुमतिसे साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए। राजकुमार असमञ्जसके अंशुमान् नामक पुत्र हुआ। यह असमञ्जस बाल्यावस्थासे ही बड़ा दुराचारी था। पिताने सोचा कि बाल्यावस्थाके बीत जानेपर यह समझदार होगा, किंतु युवावस्थाके बीत जानेपर भी जब उसका आचरण न सुधरा तो पिताने उसे त्याग दिया। उनके साठ हजार पुत्रोंने भी असमञ्जसके चरित्रका ही अनुकरण किया।

तब असमञ्जसके चरित्रका अनुकरण करनेवाले उन सगरपुत्रोंद्वारा संसारमें सन्मार्ग उच्छेद हो जानेपर भगवान् पुरुषोत्तमके अंशभूत श्रीकपिलदेवसे देवताओंने प्रणाम करनेके अनन्तर उनके विषयमें कहा—'भगवन् ! राजा सगरके ये सभी पुत्र असमञ्जसके चरित्रका ही अनुसरण कर रहे हैं। इन सबके असन्मार्गमें प्रवृत्त रहनेसे संसारकी क्या दशा होगी ! प्रभो ! संसारमें दीनजनोंकी रक्षाके लिये ही आपने अवतार लिया है, अतः इस घोर आपत्तिसे संसारकी रक्षा कीजिये।' यह सुनकर भगवान् कपिलने कहा—'ये सब थोड़े ही दिनोंमें नष्ट हो जायँगे।'

इसी समय सगरने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया। उसमें उनके पुत्रोंद्वारा सुरक्षित घोड़ेको कोई व्यक्ति चुराकर पृथिवीमें घुस गया, तब उस घोड़ेके खुरोंके चिह्नोंका अनुसरण करते हुए उनके पुत्रोंमेंसे प्रत्येकने एक-एक योजन पृथिवी खोद डाली तथा पातालमें पहुँचकर उन राजकुमारोंने अपने घोड़ेको फिरता हुआ देखा। पासहीमें सूर्यके समान अपने

डाला । उन्होंने अपने दर्शनमात्रसे अहल्याको निष्पाप किया, जनकजीके राजभवनमें विना श्रम ही महादेवजीका धनुष तोड़ा और पुरुषार्थसे ही प्राप्त होनेवाली अयोनिजा जनकराज-नन्दिनी श्रीसीताजीको पत्नीरूपसे प्राप्त किया । तदनन्तर सम्पूर्ण क्षत्रियोंको नष्ट करनेवाले परशुरामजीके बल-वीर्यका गर्व नष्ट किया ।

फिर पिताके वचनसे राज्यलक्ष्मीको कुछ भी न गिनकर भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताके सहित वे वनमें चले गये । वहाँ श्रीरामने विराध, खर, दूषण तथा कबन्ध आदि राक्षस और वालीका वध किया तथा समुद्रका पुल बाँधकर सम्पूर्ण राक्षस-कुलका विध्वंस किया । फिर रावणद्वारा हरी हुई और कलङ्क-रहित होनेपर भी अग्नि-प्रवेशसे शुद्ध हुई समस्त देवगणोंसे प्रशंसित स्वभाववाली अपनी भार्या जनकराजकन्या सीताको वे अयोध्यामें ले आये। मैत्रेय ! उस समय उनके राज्याभिषेकका जैसा मङ्गल हुआ, उसका तो सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता; तथापि संक्षेपसे सुनो ।

दशरथ-नन्दन श्रीरामचन्द्रजी, प्रसन्नवदन लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव, अङ्गद, जाम्बवान् और हनुमान् आदिसे छत्र-चामरादिद्वारा सेवित हो, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और महादेवजी आदि सम्पूर्ण देवगण, वसिष्ठ, वामदेव, वाल्मीकि, मार्कण्डेय, विश्वामित्र, भरद्वाज और अगस्त्य आदि मुनिजन तथा ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेदोंसे स्तुति किये जाते हुए तथा नृत्य, गीत, वाद्य आदि सम्पूर्ण मङ्गल-सामग्रियोंसहित वीणा, वेणु, मृदङ्ग, भेरी, पटह, शङ्ख, काहल और गोमुख आदि बाजोंके घोषके साथ समस्त राजाओंके मध्यमें सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये विधि-पूर्वक अभिषिक्त हुए । इस प्रकार दशरथकुमार कोसलाधि-पति, रघुकुलतिलक, जानकीवल्लभ, तीनों भ्राताओंके प्रिय श्रीरामचन्द्रजीने सिंहासनारूढ होकर ग्यारह हजार वर्ष राज्य-शासन किया ।

भरतजीने भी गन्धर्वलोकको जीतनेके लिये जाकर युद्धमें तीन करोड़ गन्धर्वोंका वध किया और शत्रुघ्नजीने भी अतुलित बलशाली महापराक्रमी मधुपुत्र लवण राक्षसका संहार किया तथा मथुरा नामक नगरकी स्थापना की । इस प्रकार अपने अतिशय बल-पराक्रमसे महान् दुष्टोंको नष्ट करनेवाले भगवान् राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सम्पूर्ण जगत्‌की यथोचित व्यवस्था करनेके अनन्तर फिर परमधामको पधारे । उनके साथ ही जो अयोध्यानिवासी उन भगवदंशस्वरूपोंके अतिशय अनुरागी थे, उन्होंने भी तन्मय होनेके कारण सालोक्य-मुक्ति प्राप्त की ।

दुष्ट-दलन भगवान् रामके कुश और लव नामक दो पुत्र हुए। इसी प्रकार लक्ष्मणजीके अङ्गद और चन्द्रकेतु, भरतजीके तक्ष और पुष्कल तथा शत्रुघ्नजीके सुबाहु और शूरसेन नामक पुत्र हुए । कुशके अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके अनल, अनलके नभ, नभके पुण्डरीक, पुण्डरीकके क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक, देवानीकके अहीनक, अहीनकके रुरु, रुरुके पारियात्रक, पारियात्रकके देवल, देवलके वच्चल, वच्चलके उत्क, उत्कके वज्रनाभ, वज्रनाभके

डाला। उन्होंने अपने दर्शनमात्रसे अहल्याको निष्पाप किया, जनकजीके राजभवनमें बिना श्रम ही महादेवजीका धनुष तोड़ा और पुरुषार्थसे ही प्राप्त होनेवाली अयोनिजा जनकराज-नन्दिनी श्रीसीताजीको पत्नीरूपसे प्राप्त किया। तदनन्तर सम्पूर्ण क्षत्रियोंको नष्ट करनेवाले परशुरामजीके बल-वीर्यका गर्व नष्ट किया।

फिर पिताके वचनसे राज्यलक्ष्मीको कुछ भी न गिनकर भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताके सहित वे वनमें चले गये। वहाँ श्रीरामने विराध, खर, दूषण तथा कबन्ध आदि राक्षस और वालीका वध किया तथा समुद्रका पुल बाँधकर सम्पूर्ण राक्षस-कुलका विध्वंस किया। फिर रावणद्वारा हरी हुई और कलङ्क-रहित होनेपर भी अग्नि-प्रवेशसे शुद्ध हुई समस्त देवगणोंसे प्रशंसित स्वभाववाली अपनी भार्या जनकराजकन्या सीताको वे अयोध्यामें ले आये। मैत्रेय! उस समय उनके राज्याभिषेकका जैसा मङ्गल हुआ, उसका तो सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता; तथापि संक्षेपसे सुनो।

दशरथ-नन्दन श्रीरामचन्द्रजी, प्रसन्नवदन लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव, अङ्गद, जाम्बवान् और हनुमान् आदिसे छत्र-चामरादिद्वारा सेवित हो, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और महादेवजी आदि सम्पूर्ण देवगण, वसिष्ठ, वामदेव, वाल्मीकि, मार्कण्डेय, विश्वामित्र, भरद्वाज और अगस्त्य आदि मुनिजन तथा ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेदोंसे स्तुति किये जाते हुए तथा नृत्य, गीत, वाद्य आदि सम्पूर्ण मङ्गल-सामग्रियोंसहित वीणा, वेणु, मृदङ्ग, भेरी, पटह, शङ्ख, काहल और गोमुख आदि बाजोंके घोषके साथ समस्त राजाओंके मध्यमें सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये विधि-पूर्वक अभिषिक्त हुए। इस प्रकार दशरथकुमार कोसलाधि-पति, रघुकुलतिलक, जानकीवल्लभ, तीनों भ्राताओंके प्रिय श्रीरामचन्द्रजीने सिंहासनारूढ होकर ग्यारह हजार वर्ष राज्य-शासन किया।

भरतजीने भी गन्धर्वलोकको जीतनेके लिये जाकर युद्धमें तीन करोड़ गन्धर्वोंका वध किया और शत्रुघ्नजीने भी अतुलित बलशाली महापराक्रमी मधुपुत्र लवण राक्षसका संहार किया तथा मथुरा नामक नगरकी स्थापना की। इस प्रकार अपने अतिशय बल-पराक्रमसे महान् दुष्टोंको नष्ट करनेवाले भगवान् राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सम्पूर्ण जगत्की यथोचित व्यवस्था करनेके अनन्तर फिर परमधामको पधारे। उनके साथ ही जो अयोध्यानिवासी उन भगवदंशस्वरूपोंके अतिशय अनुरागी थे, उन्होंने भी तन्मय होनेके कारण सालोक्य-मुक्ति प्राप्त की।

दुष्ट-दलन भगवान् रामके कुश और लव नामक दो पुत्र हुए। इसी प्रकार लक्ष्मणजीके अङ्गद और चन्द्रकेतु, भरतजीके तक्ष और पुष्कल तथा शत्रुघ्नजीके सुबाहु और शूरसेन नामक पुत्र हुए। कुशके अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके अनल, अनलके नभ, नभके पुण्डरीक, पुण्डरीकके क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक, देवानीकके अहीनक, अहीनकके रुरु, रुरुके पारियात्रक, पारियात्रकके देवल, देवलके वच्चल, वच्चलके उत्क, उत्कके वज्रनाभ, वज्रनाभके

अमावसुके भीम, भीमके काञ्चन, काञ्चनके सुहोत्र और सुहोत्रके जह्नु नामक पुत्र हुआ, जिसने अपनी सम्पूर्ण यज्ञशालाको गङ्गाजलसे आप्लावित देख क्रोधसे रक्तनयन हो भगवान् यज्ञपुरुषको परम समाधिके द्वारा अपनेमें स्थापित कर सम्पूर्ण गङ्गाजीको पी लिया था, तब देवर्षियोंने इन्हें प्रसन्न किया। अतः गङ्गाजी इनके पुत्रीरूपसे प्रकट हुईं।

फिर राजर्षि जह्नुके सुमन्तु नामक पुत्र हुआ। सुमन्तुके अजक, अजकके बलाकाश्व, बलाकाश्वके कुश और कुशके कुशाम्ब, कुशनाभ, अधूर्त्तरजा और वसु नामक चार पुत्र हुए। उनमेंसे कुशाम्बने इस इच्छासे कि मेरे इन्द्रके समान पुत्र हो; तपस्या की। उसके उग्र तपको देखकर 'बलमें कोई अन्य मेरे समान न हो जाय' इस भयसे इन्द्र स्वयं ही इनका पुत्र हो गया। वह गाधि नामक पुत्र कौशिक कहलाया।

गाधिने सत्यवती नामकी कन्याको जन्म दिया। उसे भृगुपुत्र ऋचीकने वरण किया। गाधिने अति क्रोधी और अति वृद्ध ब्राह्मणको कन्या न देनेकी इच्छासे ऋचीकसे कन्याके मूल्यमें जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् और पवनके तुल्य वेगवान् हों, ऐसे एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े माँगे, किंतु महर्षि ऋचीकने अश्वतीर्थसे उत्पन्न हुए एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े उन्हें वरुणसे लेकर दे दिये।

तब ऋचीकने उस कन्यासे विवाह किया। तत्पश्चात् एक समय उन्होंने संतानकी कामनासे सत्यवतीके लिये चरु (यज्ञीय खीर) तैयार किया। तथा सत्यवतीके द्वारा प्रसन्न किये जानेपर एक क्षत्रियश्रेष्ठ पुत्रकी उत्पत्तिके लिये एक और चरु उसकी माताके लिये भी बनाया। फिर 'यह चरु तुम्हारे लिये है तथा यह तुम्हारी माताके लिये—इनका तुम यथोचित उपयोग करना'—ऐसा कहकर वे वनको चले गये।

उनका उपयोग करते समय सत्यवतीकी माताने उससे कहा—'बेटी! सभी लोग अपने ही लिये सबसे अधिक गुणवान् पुत्र चाहते हैं, अपनी पत्नीके भाईके गुणोंमें किसीकी भी विशेष रुचि नहीं होती। अतः तू अपना चरु तो मुझे दे दे और मेरा तू ले ले; क्योंकि मेरे पुत्रको तो सम्पूर्ण भूमण्डलका पालन करना होगा और ब्राह्मणकुमारको तो बल, वीर्य तथा सम्पत्ति आदिसे लेना ही क्या है।' ऐसा कहनेपर सत्यवतीने अपना चरु अपनी माताको दे दिया और माताका चरु स्वयं ले लिया।

वनसे लौटनेपर ऋषिने सत्यवतीको देखकर कहा—'अरी पापिनि! तूने ऐसा क्या अकार्य किया है, जिससे तेरा शरीर ऐसा भयानक प्रतीत होता है। अवश्य ही तूने अपनी माताके लिये तैयार किये चरुका उपयोग किया है, सो ठीक नहीं है। मैंने उसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य, पराक्रम, शूरता और बलकी सम्पत्तिका आरोपण किया था तथा तेरेमें शान्ति, ज्ञान, तितिक्षा आदि सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित गुणोंका समावेश किया था। उनका विपरीत उपयोग करनेसे तेरे अति भयानक अस्त्र-शस्त्रधारी पालन-कर्ममें तत्पर क्षत्रियके समान आचरणवाला पुत्र होगा और उसके शान्तिप्रिय ब्राह्मणाचारयुक्त पुत्र होगा।' यह सुनते ही सत्यवतीने उनके चरण पकड़ लिये और प्रणाम करके कहा—'भगवन्! अज्ञानसे ही मैंने ऐसा किया है, अतः प्रसन्न होइये और ऐसा कीजिये जिससे मेरा पुत्र ऐसा न हो, भले ही पौत्र ऐसा हो जाय।' इसपर मुनिने कहा—'ऐसा ही हो।'

तदनन्तर उसने जमदग्निको जन्म दिया और उसकी माताने विश्वामित्रको उत्पन्न किया तथा सत्यवती कौशिकी नामकी नदी हो गयी।

जमदग्निने इक्ष्वाकुकुलोद्भव रेणुकी कन्या रेणुकासे विवाह किया। उससे जमदग्निके सम्पूर्ण क्षत्रियोंका ध्वंस करनेवाले भगवान् परशुरामजी उत्पन्न हुए, जो सकल लोक-गुरु भगवान् नारायणके अंश थे तथा विश्वामित्रजीके मधुच्छन्द, धनञ्जय, कृतदेव, अष्टक कच्छप एवं हारीतक नामक पुत्र हुए।

क्षत्रवृद्ध और रजिके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—आयु नामक जो पुरूरवाका ज्येष्ठ पुत्र था, उसने राहुकी कन्यासे विवाह किया। उससे उसके पाँच पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः नहुष, क्षत्रवृद्ध, रम्भ, रजि और अनेना थे। क्षत्रवृद्धके सुहोत्र नामक पुत्र हुआ और सुहोत्रके काश्य, काश तथा गृत्समद नामक तीन पुत्र हुए। गृत्समदका पुत्र शौनक चातुर्वर्ण्यका विस्तार करनेवाला हुआ। काश्यका पुत्र काशिराज काशेय हुआ। उसके राष्ट्र, राष्ट्रके दीर्घतपा और दीर्घतपाके धन्वन्तरि नामक पुत्र हुआ। इस धन्वन्तरिके शरीर और इन्द्रियाँ जरा आदि विकारोंसे रहित थे तथा सभी जन्मोंमें यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला था। पूर्वजन्ममें भगवान् नारायणने उसे यह वर दिया था कि 'काशिराजके वंशमें उत्पन्न होकर तुम सम्पूर्ण आयुर्वेदको

अमावसुके भीम, भीमके काञ्चन, काञ्चनके सुहोत्र और सुहोत्रके जह्नु नामक पुत्र हुआ, जिसने अपनी सम्पूर्ण यज्ञशालाको गङ्गाजलसे आप्लावित देख क्रोधसे रक्तनयन हो भगवान् यज्ञपुरुषको परम समाधिके द्वारा अपनेमें स्थापित कर सम्पूर्ण गङ्गाजीको पी लिया था, तब देवर्षियोंने इन्हें प्रसन्न किया। अतः गङ्गाजी इनके पुत्रीरूपसे प्रकट हुईं।

फिर राजर्षि जह्नुके सुमन्तु नामक पुत्र हुआ। सुमन्तुके अजक, अजकके बलाकाश्व, बलाकाश्वके कुश और कुशके कुशाम्ब, कुशनाभ, अधूर्त्तरजा और वसु नामक चार पुत्र हुए। उनमेंसे कुशाम्बने इस इच्छासे कि मेरे इन्द्रके समान पुत्र हो; तपस्या की। उसके उग्र तपको देखकर 'बलमें कोई अन्य मेरे समान न हो जाय' इस भयसे इन्द्र स्वयं ही इनका पुत्र हो गया। वह गाधि नामक पुत्र कौशिक कहलाया।

गाधिने सत्यवती नामकी कन्याको जन्म दिया। उसे भृगुपुत्र ऋचीकने वरण किया। गाधिने अति क्रोधी और अति वृद्ध ब्राह्मणको कन्या न देनेकी इच्छासे ऋचीकसे कन्याके मूल्यमें जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् और पवनके तुल्य वेगवान् हों, ऐसे एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े माँगे, किंतु महर्षि ऋचीकने अश्वतीर्थसे उत्पन्न हुए एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े उन्हें वरुणसे लेकर दे दिये।

तब ऋचीकने उस कन्यासे विवाह किया। तत्पश्चात् एक समय उन्होंने संतानकी कामनासे सत्यवतीके लिये चरु (यज्ञीय खीर) तैयार किया। तथा सत्यवतीके द्वारा प्रसन्न किये जानेपर एक क्षत्रियश्रेष्ठ पुत्रकी उत्पत्तिके लिये एक और चरु उसकी माताके लिये भी बनाया। फिर 'यह चरु तुम्हारे लिये है तथा यह तुम्हारी माताके लिये—इनका तुम यथोचित उपयोग करना'—ऐसा कहकर वे वनको चले गये।

उनका उपयोग करते समय सत्यवतीकी माताने उससे कहा—'बेटी! सभी लोग अपने ही लिये सबसे अधिक गुणवान् पुत्र चाहते हैं, अपनी पत्नीके भाईके गुणोंमें किसीकी भी विशेष रुचि नहीं होती। अतः तू अपना चरु तो मुझे दे दे और मेरा तू ले ले; क्योंकि मेरे पुत्रको तो सम्पूर्ण भूमण्डलका पालन करना होगा और ब्राह्मणकुमारको तो बल, वीर्य तथा सम्पत्ति आदिसे लेना ही क्या है।' ऐसा कहनेपर सत्यवतीने अपना चरु अपनी माताको दे दिया और माताका चरु स्वयं ले लिया।

वनसे लौटनेपर ऋषिने सत्यवतीको देखकर कहा—'अरी पापिनि! तूने ऐसा क्या अकार्य किया है, जिससे तेरा शरीर ऐसा भयानक प्रतीत होता है। अवश्य ही तूने अपनी माताके लिये तैयार किये चरुका उपयोग किया है, सो ठीक नहीं है। मैंने उसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य, पराक्रम, शूरता और बलकी सम्पत्तिका आरोपण किया था तथा तेरेमें शान्ति, ज्ञान, तितिक्षा आदि सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित गुणोंका समावेश किया था। उनका विपरीत उपयोग करनेसे तेरे अति भयानक अस्त्र-शस्त्रधारी पालन-कर्ममें तत्पर क्षत्रियके समान आचरणवाला पुत्र होगा और उसके शान्तिप्रिय ब्राह्मणाचारयुक्त पुत्र होगा।' यह सुनते ही सत्यवतीने उनके चरण पकड़ लिये और प्रणाम करके कहा—'भगवन्! अज्ञानसे ही मैंने ऐसा किया है, अतः प्रसन्न होइये और ऐसा कीजिये जिससे मेरा पुत्र ऐसा न हो, भले ही पौत्र ऐसा हो जाय।' इसपर मुनिने कहा—'ऐसा ही हो।'

तदनन्तर उसने जमदग्निको जन्म दिया और उसकी माताने विश्वामित्रको उत्पन्न किया तथा सत्यवती कौशिकी नामकी नदी हो गयी।

जमदग्निने इक्ष्वाकुकुलोद्भव रेणुकी कन्या रेणुकासे विवाह किया। उससे जमदग्निके सम्पूर्ण क्षत्रियोंका ध्वंस करनेवाले भगवान् परशुरामजी उत्पन्न हुए, जो सकल लोक-गुरु भगवान् नारायणके अंग थे तथा विश्वामित्रजीके मधुच्छन्द, धनञ्जय, कृतदेव, अष्टक कच्छप एवं हारीतक नामक पुत्र हुए।

क्षत्रवृद्ध और रजिके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—आयु नामक जो पुरूरवाका ज्येष्ठ पुत्र था, उसने राहुकी कन्यासे विवाह किया। उससे उसके पाँच पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः नहुष, क्षत्रवृद्ध, रम्भ, रजि और अनेना थे। क्षत्रवृद्धके सुहोत्र नामक पुत्र हुआ और सुहोत्रके काश्य, काश तथा गृत्समद नामक तीन पुत्र हुए। गृत्समदका पुत्र शौनक चातुर्वर्ण्यका विस्तार करनेवाला हुआ।

काश्यका पुत्र काशिराज काशेय हुआ। उसके राष्ट्र, राष्ट्रके दीर्घतपा और दीर्घतपाके धन्वन्तरि नामक पुत्र हुआ। इस धन्वन्तरिके शरीर और इन्द्रियाँ जरा आदि विकारोंसे रहित थे तथा सभी जन्मोंमें यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला था। पूर्वजन्ममें भगवान् नारायणने उसे यह वर दिया था कि 'काशिराजके वंशमें उत्पन्न होकर तुम सम्पूर्ण आयुर्वेदको

कंसकी मल्लशालामें श्रीबलराम

[पृष्ठ ७६१]

कंसकी मल्लशालामें श्रीकृष्ण

कंसकी मल्लशालामें श्रीबलराम [पृष्ठ ७६१] कंसकी मल्लशालामें श्रीकृष्ण

दिया। अन्तमें सबसे छोटे शर्मिष्ठाके पुत्र पूरुसे भी वही बात कही

तो उसने अति नम्रता और आदरके साथ पिताको प्रणाम करके उदारतापूर्वक कहा—'यह तो हमारे ऊपर आपका महान् अनुग्रह है।' ऐसा कहकर पूरुने अपने पिताकी वृद्धावस्था ग्रहण कर उन्हें अपनी युवावस्था दे दी।

राजा ययातिने पूरुकी युवावस्था लेकर समयानुसार प्राप्त हुए यथेच्छ विषयोंको अपने उत्साहके अनुसार धर्मपूर्वक भोगा और अपनी प्रजाका भली प्रकार पालन किया। फिर शर्मिष्ठा और देवयानीके साथ विविध भोगोंको भोगते हुए 'मैं कामनाओंका अन्त कर दूँगा'—ऐसा सोचते-सोचते वे क्षुब्धचित्त हो गये तथा उन्होंने इस प्रकार अपना उद्गार प्रकट किया—

'भोगोंकी तृष्णा उनके भोगनेसे कभी शान्त नहीं होती, बल्कि घृताहुतिसे अग्निके समान वह बढ़ती ही जाती है। सम्पूर्ण पृथ्वीमें जितने भी धान्य, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं, इसलिये तृष्णाको सर्वथा त्याग देना चाहिये। जिस समय कोई पुरुष किसी भी प्राणीके लिये पापमयी भावना नहीं करता, उस समय उस समदर्शीके लिये सभी दिशाएँ सुखमयी हो जाती हैं। दुर्मतियोंके लिये जो अत्यन्त दुस्त्यज है तथा वृद्धावस्थामें भी जो शिथिल नहीं होती, बुद्धिमान् पुरुष उस तृष्णाको त्यागकर सुखसे परिपूर्ण हो जाता है। अवस्थाके जीर्ण होनेपर केश और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं; किंतु जीवन और धनकी आशाएँ उसके जीर्ण होनेपर भी जीर्ण नहीं होतीं*। विषयोंमें आसक्त रहते हुए मुझे एक सहस्र वर्ष बीत गये, फिर भी नित्य ही उनमें मेरी कामना होती है। अतः अब मैं इसे छोड़कर अपने चित्तको भगवान्में ही स्थिर कर निर्द्वन्द्व और निर्मम होकर वनमें विचरूँगा।

तदनन्तर राजा ययातिने पूरुसे अपनी वृद्धावस्था वापस लेकर उसकी युवावस्था लौटा दी। फिर उन्होंने दक्षिण-पूर्व दिशामें तुर्वसुको, पश्चिममें द्रुह्युको, दक्षिणमें यदुको और उत्तरमें अनुको (पूरुके अधीनस्थ) माण्डलिकपदपर नियुक्त किया तथा पूरुको सम्पूर्ण भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त कर स्वयं वनको चले गये।

यदुवंशका वर्णन और सहस्रार्जुनका चरित्र

श्रीपराशरजी कहते हैं—अब मैं ययातिके प्रथम पुत्र यदुके वंशका वर्णन करता हूँ, जिस वंशमें कि मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, किंपुरुष, अप्सरा, सर्प, पक्षी, दैत्य, दानव, आदित्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, देवर्षि, मुमुक्षु तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके अभिलाषी पुरुषोंद्वारा सर्वदा स्तुति किये जानेवाले, अखिललोक-विश्राम आद्यन्तहीन भगवान् विष्णुने अपने अपरिमित महत्त्वशाली अंशसे अवतार लिया था। इस विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—

* न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत्॥
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्। समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः। तां तृष्णां संत्यजेत्प्राज्ञः सुखेनैवाभिपूर्यते॥
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः। धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यतः॥

(वि० पु० ४। १०। २३—२७)

दिया। अन्तमें सबसे छोटे शर्मिष्ठाके पुत्र पूरुसे भी वही बात कही

तो उसने अति नम्रता और आदरके साथ पिताको प्रणाम करके उदारतापूर्वक कहा—'यह तो हमारे ऊपर आपका महान् अनुग्रह है।' ऐसा कहकर पूरुने अपने पिताकी वृद्धावस्था ग्रहण कर उन्हें अपनी युवावस्था दे दी।

राजा ययातिने पूरुकी युवावस्था लेकर समयानुसार प्राप्त हुए यथेच्छ विषयोंको अपने उत्साहके अनुसार धर्मपूर्वक भोगा और अपनी प्रजाका भली प्रकार पालन किया। फिर शर्मिष्ठा और देवयानीके साथ विविध भोगोंको भोगते हुए 'मैं कामनाओंका अन्त कर दूँगा'—ऐसा सोचते-सोचते वे क्षुब्धचित्त हो गये तथा उन्होंने इस प्रकार अपना उद्गार प्रकट किया—

'भोगोंकी तृष्णा उनके भोगनेसे कभी शान्त नहीं होती, बल्कि घृताहुतिसे अग्निके समान वह बढ़ती ही जाती है। सम्पूर्ण पृथ्वीमें जितने भी धान्य, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं, इसलिये तृष्णाको सर्वथा त्याग देना चाहिये। जिस समय कोई पुरुष किसी भी प्राणीके लिये पापमयी भावना नहीं करता, उस समय उस समदर्शीके लिये सभी दिशाएँ सुखमयी हो जाती हैं। दुर्मतियोंके लिये जो अत्यन्त दुस्त्यज है तथा वृद्धावस्थामें भी जो शिथिल नहीं होती, बुद्धिमान् पुरुष उस तृष्णाको त्यागकर सुखसे परिपूर्ण हो जाता है। अवस्थाके जीर्ण होनेपर केश और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं; किंतु जीवन और धनकी आशाएँ उसके जीर्ण होनेपर भी जीर्ण नहीं होतीं*। विषयोंमें आसक्त रहते हुए मुझे एक सहस्र वर्ष बीत गये, फिर भी नित्य ही उनमें मेरी कामना होती है। अतः अब मैं इसे छोड़कर अपने चित्तको भगवान्‌में ही स्थिर कर निर्द्वन्द्व और निर्मम होकर वनमें विचरूँगा।

तदनन्तर राजा ययातिने पूरुसे अपनी वृद्धावस्था वापस लेकर उसकी युवावस्था लौटा दी। फिर उन्होंने दक्षिण-पूर्व दिशामें तुर्वसुको, पश्चिममें द्रुह्युको, दक्षिणमें यदुको और उत्तरमें अनुको (पूरुके अधीनस्थ) माण्डलिकपदपर नियुक्त किया तथा पूरुको सम्पूर्ण भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त कर स्वयं वनको चले गये।

यदुवंशका वर्णन और सहस्रार्जुनका चरित्र

श्रीपराशरजी कहते हैं—अब मैं ययातिके प्रथम पुत्र यदुके वंशका वर्णन करता हूँ, जिस वंशमें कि मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, किंपुरुष, अप्सरा, सर्प, पक्षी, दैत्य, दानव, आदित्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, देवर्षि, मुमुक्षु तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके अभिलाषी पुरुषोंद्वारा सर्वदा स्तुति किये जानेवाले, अखिललोक-विश्राम आद्यन्तहीन भगवान् विष्णुने अपने अपरिमित महत्त्वशाली अंशसे अवतार लिया था। इस विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—

* न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत्॥
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्। समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः। तां तृष्णां संत्यजेत्प्राज्ञः सुखेनैवाभिपूर्यते॥
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः। धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यतः॥

(वि० पु० ४। १०। २३—२७)

व्योमाके जीमूत, जीमूतके विकृति, विकृतिके भीमरथ, भीमरथके नवरथ, नवरथके दशरथ, दशरथके शकुनि, शकुनिके करम्भि, करम्भिके देवरात, देवरातके देवक्षत्र, देवक्षत्रके मधु, मधुके कुमारवंश, कुमारवंशके अनु, अनुके राजा पुरुमित्र, पुरुमित्रके अंशु और अंशुके सत्वत नामक पुत्र हुआ तथा सत्वतसे सात्वतवंशका प्रादुर्भाव हुआ ।

सत्वतकी संततिका वर्णन और स्यमन्तकमणिकी कथा

श्रीपराशरजी कहते हैं—सत्वतके भजन, भजमान, दिव्य, अन्धक, देवावृध, महाभोज हुए और एक पुत्रका नाम वृष्णि भी था । भजमानके निमि और कृकण हुए तथा कृकणके भी एक पुत्रका नाम वृष्णि था । तथा इनके तीन सौतेले भाई शतजित्, सहस्रजित् और अयुतजित्—ये छः पुत्र हुए । देवावृधके बभ्रु नामक पुत्र हुआ । इन दोनों (पिता-पुत्रों) के विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—

'जैसा हमने दूरसे सुना था वैसा ही पास जाकर भी देखा, वास्तवमें बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ है और देवावृध तो देवताओंके समान है । बभ्रु और देवावृधके उपदेशसे चौदह हजार छाछठ (१४०६६)* मनुष्योंने परमपद प्राप्त किया था ।'

महाभोज बड़ा धर्मात्मा था, उसकी संतानमें भोजवंशी तथा मृत्तिकावरपुरनिवासी मार्त्तिकावर नृपतिगण हुए । वृष्णिके दो पुत्र सुमित्र और युधाजित् हुए, उनमेंसे सुमित्रके अनमित्र, अनमित्रके निघ्न तथा निघ्नसे प्रसेन और सत्राजित्का जन्म हुआ ।

उस सत्राजित्के मित्र भगवान् आदित्य हुए । एक दिन समुद्र-तटपर बैठे हुए सत्राजित्ने सूर्यभगवान्‌की स्तुति की । उसके तन्मय होकर स्तुति करनेसे भगवान् भास्कर उसके सम्मुख प्रकट हुए । उस समय उनको अस्पष्ट मूर्ति धारण किये हुए देखकर सत्राजित्ने सूर्यसे कहा—'आकाशमें अग्निपिण्डके समान आपको जैसा मैंने देखा है, वैसा ही सम्मुख आनेपर भी देख रहा हूँ । यहाँ आपकी कुछ विशेषता मुझे नहीं दीखती ।' सत्राजित्के ऐसा कहनेपर भगवान् सूर्यने अपने गलेसे स्यमन्तक नामकी उत्तम महामणि उतारकर अलग रख दी ।

तब सत्राजित्ने भगवान् सूर्यको देखा—उनका शरीर किंचित् ताम्रवर्ण, अति उज्ज्वल और लघु था तथा उनके नेत्र कुछ पिंगलवर्ण थे । तदनन्तर सत्राजित्के प्रणाम तथा स्तुति आदि कर चुकनेपर सहस्रांशु भगवान् आदित्यने उससे कहा—'तुम अपना अभीष्ट वर माँगो ।' सत्राजित्ने उस स्यमन्तकमणिको ही माँगा । तब भगवान् सूर्य उसे वह मणि देकर अपने स्थानको चले गये ।

फिर सत्राजित्ने उस निर्मल मणिरत्नसे अपना कण्ठ सुशोभित होनेके कारण तेजसे सूर्यके समान समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए द्वारकामें प्रवेश किया । द्वारकावासी लोगोंने उसे आते देख, पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अंशरूपसे अवतीर्ण हुए मनुष्यरूपधारी आदिपुरुष भगवान् पुरुषोत्तमसे प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! आपके दर्शनोंके लिये निश्चय ही ये भगवान् सूर्यदेव आ रहे हैं ।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने उनसे कहा—'ये भगवान् सूर्य नहीं हैं; सत्राजित् है । यह सूर्यभगवान्‌से प्राप्त हुई स्यमन्तक-नामकी महामणिको धारणकर यहाँ आ रहा है । तुमलोग अब विश्वस्त होकर इसे देखो ।' भगवान्‌के ऐसा कहनेपर द्वारकावासी उसे उसी प्रकार देखने लगे ।

सत्राजित्ने वह स्यमन्तकमणि अपने घरमें रख दी । वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी । उसके प्रभावसे सम्पूर्ण राष्ट्रमें रोग, अनावृष्टि तथा सर्प, अग्नि, चोर या दुर्भिक्ष आदिका भय नहीं रहता था । भगवान् अच्युतको भी ऐसी इच्छा हुई कि यह दिव्य रत्न तो राजा उग्रसेनके योग्य है ।

सत्राजित्को जब यह मालूम हुआ कि भगवान् मुझसे यह रत्न माँगनेवाले हैं तो उसने लोभवश उसे अपने भाई

* इस संख्यामें बड़ा मतभेद है । मूलमें 'पुरुषा षट् च षष्टिश्च षट् सहस्राणि चाष्ट च ।' पाठ है । इसका अर्थ कुछ लोग यों करते हैं—६+६०+६०००+८=६०७४ । दूसरे लोग ६+६०+६०००+८०००=१४०६६ संख्या मानते हैं । तीसरे विद्वान् पहली तीन संख्याओंको सहस्र मानते हैं और अन्तिमको इकाईके स्थानमें रखते हैं, उस दशामें ७२००८ संख्या होती है । अन्य कितने ही लोग 'अङ्कानां वामतो गतिः'के अनुसार इस संख्याका उल्लेख इस प्रकार करते हैं—८६०००६०६ । कुछ लोग '६०००' के स्थानमें केवल ६ लिखते हैं, क्योंकि वह स्वतः ही सहस्रके स्थानमें है, वैसी दशामें यह संख्या आती है—८६६०६ । अन्य विद्वान् पाठक भी अपनी रुचिके अनुसार संख्या नियत कर सकते हैं ।

व्योमाके जीमूत, जीमूतके विकृति, विकृतिके भीमरथ, भीमरथके नवरथ, नवरथके दशरथ, दशरथके शकुनि, शकुनिके करम्भि, करम्भिके देवरात, देवरातके देवक्षत्र, देवक्षत्रके मधु, मधुके कुमारवंश, कुमारवंशके अनु, अनुके राजा पुरुमित्र, पुरुमित्रके अंशु और अंशुके सत्वत नामक पुत्र हुआ तथा सत्वतसे सात्वतवंशका प्रादुर्भाव हुआ ।

सत्वतकी संततिका वर्णन और स्यमन्तकमणिकी कथा

श्रीपराशरजी कहते हैं—सत्वतके भजन, भजमान, दिव्य, अन्धक, देवावृध, महाभोज हुए और एक पुत्रका नाम वृष्णि भी था । भजमानके निमि और कृकण हुए तथा कृकणके भी एक पुत्रका नाम वृष्णि था । तथा इनके तीन सौतेले भाई शतजित्, सहस्रजित् और अयुतजित्—ये छः पुत्र हुए । देवावृधके बभ्रु नामक पुत्र हुआ । इन दोनों (पिता-पुत्रों) के विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—

'जैसा हमने दूरसे सुना था वैसा ही पास जाकर भी देखा, वास्तवमें बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ है और देवावृध तो देवताओंके समान है । बभ्रु और देवावृधके उपदेशसे चौदह हजार छाछठ (१४०६६)* मनुष्योंने परमपद प्राप्त किया था ।'

महाभोज बड़ा धर्मात्मा था, उसकी संतानमें भोजवशी तथा मृत्तिकावरपुरनिवासी मार्त्तिकावर नृपतिगण हुए । वृष्णिके दो पुत्र सुमित्र और युधाजित् हुए, उनमेंसे सुमित्रके अनमित्र, अनमित्रके निघ्न तथा निघ्नसे प्रसेन और सत्राजित्का जन्म हुआ ।

उस सत्राजित्के मित्र भगवान् आदित्य हुए । एक दिन समुद्र-तटपर बैठे हुए सत्राजित्ने सूर्यभगवान्की स्तुति की । उसके तन्मय होकर स्तुति करनेसे भगवान् भास्कर उसके सम्मुख प्रकट हुए । उस समय उनको अस्पष्ट मूर्ति धारण किये हुए देखकर सत्राजित्ने सूर्यसे कहा—'आकाशमें अग्निपिण्डके समान आपको जैसा मैंने देखा है, वैसा ही सम्मुख आनेपर भी देख रहा हूँ । यहाँ आपकी कुछ विशेषता मुझे नहीं दीखती ।' सत्राजित्के ऐसा कहनेपर भगवान् सूर्यने अपने गलेसे स्यमन्तक नामकी उत्तम महामणि उतारकर अलग रख दी ।

तब सत्राजित्ने भगवान् सूर्यको देखा—उनका शरीर किंचित् ताम्रवर्ण, अति उज्ज्वल और लघु था तथा उनके नेत्र कुछ पिंगलवर्ण थे । तदनन्तर सत्राजित्के प्रणाम तथा स्तुति आदि कर चुकनेपर सहस्रांशु भगवान् आदित्यने उससे कहा—'तुम अपना अभीष्ट वर माँगो ।' सत्राजित्ने उस स्यमन्तकमणिको ही माँगा । तब भगवान् सूर्य उसे वह मणि देकर अपने स्थानको चले गये ।

फिर सत्राजित्ने उस निर्मल मणिरत्नसे अपना कण्ठ सुशोभित होनेके कारण तेजसे सूर्यके समान समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए द्वारकामें प्रवेश किया । द्वारकावासी लोगोंने उसे आते देख, पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अंशरूपसे अवतीर्ण हुए मनुष्यरूपधारी आदिपुरुष भगवान् पुरुषोत्तमसे प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! आपके दर्शनोंके लिये निश्चय ही ये भगवान् सूर्यदेव आ रहे हैं ।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान्ने उनसे कहा—'ये भगवान् सूर्य नहीं हैं; सत्राजित् है । यह सूर्यभगवान्से प्राप्त हुई स्यमन्तक-नामकी महामणिको धारणकर यहाँ आ रहा है । तुमलोग अब विश्वस्त होकर इसे देखो ।' भगवान्के ऐसा कहनेपर द्वारकावासी उसे उसी प्रकार देखने लगे ।

सत्राजित्ने वह स्यमन्तकमणि अपने घरमें रख दी । वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी । उसके प्रभावसे सम्पूर्ण राष्ट्रमें रोग, अनावृष्टि तथा सर्प, अग्नि, चोर या दुर्भिक्ष आदिका भय नहीं रहता था । भगवान् अच्युतको भी ऐसी इच्छा हुई कि यह दिव्य रत्न तो राजा उग्रसेनके योग्य है ।

सत्राजित्को जब यह मालूम हुआ कि भगवान् मुझसे यह रत्न माँगनेवाले हैं तो उसने लोभवश उसे अपने भाई

* इस संख्यामें बड़ा मतभेद है । मूलमें 'पुरुषा षट् च षष्टिश्च षट् सहस्राणि चाष्ट च ।' पाठ है । इसका अर्थ कुछ लोग यों करते हैं—६+६०+६०००+८=६०७४ । दूसरे लोग ६+६०+६०००+८०००=१४०६६ संख्या मानते हैं । तीसरे विद्वान् पहली तीन संख्याओंको सहस्र मानते हैं और अन्तिमको इकाईके स्थानमें रखते हैं, उस दशामें ७२००८ सख्या होती है । अन्य कितने ही लोग 'अङ्कानां वामतो गतिः'के अनुसार इस संख्याका उल्लेख इस प्रकार करते हैं—८६०००६०६ । कुछ लोग '६०००' के स्थानमें केवल ६ लिखते हैं, क्योंकि वह स्वतः ही सहस्रके स्थानमें है, वैसी दशामें यह संख्या आती है—८६६०६ । अन्य विद्वान् पाठक भी अपनी रुचिके अनुसार संख्या नियत कर सकते हैं ।

अनमित्र और अन्धक तथा वसुदेवजीकी संततिका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं--अनमित्रके शिनि नामक पुत्र हुआ, शिनिके सत्यक और सत्यकसे सात्यकिका जन्म हुआ, जिसका दूसरा नाम युयुधान था। तदनन्तर सात्यकिके सञ्जय, सञ्जयके कुणि और कुणिसे युगन्धरका जन्म हुआ। ये सब शैनेय नामसे विख्यात हुए।

अनमित्रके वंशमें ही पृश्निका जन्म हुआ और पृश्निसे श्वफल्ककी उत्पत्ति हुई। श्वफल्कका चित्रक नामक एक छोटा भाई और था। श्वफल्कके गान्दिनीसे अक्रूरका जन्म हुआ तथा उपमद्गु, मृदामृद, विश्वारि, मेजय, गिरिक्षत्र, उपक्षत्र, शतघ्न, अरिमर्दन, धर्मदृक्, दृष्टधर्म, गन्धमोज, वाह और प्रतिवाह नामक पुत्र तथा सुतारा नाम्नी कन्याका जन्म हुआ। देववान् और उपदेव ये दो अक्रूरके पुत्र थे। तथा चित्रकके पृथु, विपृथु आदि अनेक पुत्र थे।

कुकुर, भजमान, शुचिकम्बल और बर्हिष ये चार अन्धकके पुत्र हुए। इनमेंसे कुकुरसे धृष्ट, धृष्टसे कपोतरोमा, कपोतरोमासे विलोमा तथा विलोमासे तुम्बुरुके मित्र अनुका जन्म हुआ। अनुसे आनकदुन्दुभि, उससे अभिजित्, अभिजित्से पुनर्वसु और पुनर्वसुसे आहुक नामक पुत्र और आहुकी नाम्नी कन्याका जन्म हुआ। आहुकके देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र हुए। उनमेंसे देवकके देववान्, उपदेव, सहदेव और देवरक्षित नामक चार पुत्र हुए। इन चारोंकी वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी ये सात भगिनियाँ थीं। ये सब वसुदेवजीको विवाही गयी थीं। उग्रसेनके भी कंस, न्यग्रोध, सुनाम, आनकाह्व, शङ्कु, सुभूमि, राष्ट्रपाल, युद्धतुष्टि और सुतुष्टिमान् नामक पुत्र तथा कंसा, कंसवती, सुतनु और राष्ट्रपालिका नामकी कन्याएँ हुईं।

भजमानका पुत्र विदूरथ हुआ; विदूरथके शूर, शूरके शमी, शमीके प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रके स्वयमोज, स्वयभोजके हृदिक तथा हृदिकके कृतवर्मा, शतधन्वा, देवार्ह और देवगर्भ आदि पुत्र हुए। देवगर्भके पुत्र शूरसेन थे। शूरसेनकी मारिषा नामकी पत्नी थी। उससे उन्होंने वसुदेव आदि दस पुत्र उत्पन्न किये। वसुदेवके जन्म लेते ही देवताओंने अपनी अव्याहत दृष्टिसे यह देखकर कि इनके घरमें भगवान् अंशावतार लेंगे, आनक और दुन्दुभि आदि बाजे बजाये थे; इसीलिये इनका नाम आनक-दुन्दुभि भी हुआ। इनके देवभाग, देवश्रवा, अष्टक, ककुचक्र, वत्सधारक, सृञ्जय, श्याम, शमिक और गण्डूप नामक नौ भाई थे तथा इन वसुदेव आदि दस भाइयोंकी पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी ये पाँच बहिनें थीं।

शूरसेनके कुन्ति नामक एक मित्र थे। वे निःसंतान थे, अतः शूरसेनने दत्तक-विधिसे उन्हें अपनी पृथा नामकी कन्या दे दी थी। उसका राजा पाण्डुके साथ विवाह हुआ। उसके धर्म, वायु और इन्द्रके द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र हुए। इनके पहले इसके अविवाहितावस्थामें ही भगवान् सूर्यके द्वारा कर्ण नामक एक कानीन* पुत्र और हुआ था। इसकी माद्री नामकी एक सपत्नी थी। उसके अश्विनीकुमारोंद्वारा नकुल और सहदेव नामक पाण्डुके दो पुत्र हुए।

शूरसेनकी दूसरी कन्या श्रुतदेवाका कारूष-नरेश वृद्धधर्मासे विवाह हुआ था। उससे दन्तवक्र नामक महादैत्य उत्पन्न हुआ। श्रुतकीर्तिको केकयराजने विवाहा था। उससे केकय-नरेशके संतर्दन आदि पाँच पुत्र हुए। राजाधिदेवीसे अवन्ति-देशीय विन्द और अनुविन्दका जन्म हुआ। श्रुतश्रवाका भी चेदिराज दमघोषने पाणिग्रहण किया। उससे शिशुपालका जन्म हुआ। पूर्वजन्ममें यह अतिशय पराक्रमी हिरण्यकशिपु नामक दैत्योंका मूलपुरुष हुआ था, जिसे सकल लोकगुरु भगवान् नृसिंहने मारा था। तदनन्तर यह अक्षय वीर्य, शौर्य, सम्पत्ति और पराक्रम आदि गुणोंसे सम्पन्न तथा समस्त त्रिभुवनके स्वामी इन्द्रके भी प्रभावको दबानेवाला दशानन हुआ। स्वयं भगवान्के हाथसे ही मारे जानेके पुण्यसे प्राप्त हुए नाना भोगोंको वह बहुत समयतक भोगते हुए अन्तमें राघवरूपधारी भगवान्के ही द्वारा मारा गया।

फिर सम्पूर्ण भूमण्डलमें प्रशंसित चेदिराजके कुलमें शिशु-पालरूपसे जन्म लेकर भी अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त किया। उस जन्ममें वह भगवान्के प्रत्येक नामोंमें तुच्छताकी भावना करने लगा। उसका हृदय अनेक जन्मके द्वेषानुबन्धसे युक्त था, अतः वह उनकी निन्दा और तिरस्कार आदि करते हुए भगवान्के सम्पूर्ण समयानुसार लीलाकृत नामोंका द्वेषभावसे निरन्तर उच्चारण करता था। खिले हुए कमलदलके समान

* अविवाहिता कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रको 'कानीन' कहते हैं।

अनमित्र और अन्धक तथा वसुदेवजीकी संततिका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—अनमित्रके शिनि नामक पुत्र हुआ, शिनिके सत्यक और सत्यकसे सात्यकिका जन्म हुआ, जिसका दूसरा नाम युयुधान था। तदनन्तर सात्यकिके सञ्जय, सञ्जयके कुणि और कुणिसे युगन्धरका जन्म हुआ। ये सब शैनेय नामसे विख्यात हुए।

अनमित्रके वंशमें ही पृश्निका जन्म हुआ और पृश्निसे श्वफल्ककी उत्पत्ति हुई। श्वफल्कका चित्रक नामक एक छोटा भाई और था। श्वफल्कके गान्दिनीसे अक्रूरका जन्म हुआ तथा उपमद्गु, मृदामृद, विश्वारि, मेजय, गिरिक्षत्र, उपक्षत्र, शतघ्न, अरिमर्दन, धर्मदृक्, दृष्टधर्म, गन्धमोज, वाह और प्रतिवाह नामक पुत्र तथा सुतारा नाम्नी कन्याका जन्म हुआ। देववान् और उपदेव ये दो अक्रूरके पुत्र थे। तथा चित्रकके पृथु, विपृथु आदि अनेक पुत्र थे।

कुकुर, भजमान, शुचिकम्बल और बर्हिष ये चार अन्धकके पुत्र हुए। इनमेंसे कुकुरसे धृष्ट, धृष्टसे कपोतरोमा, कपोतरोमासे विलोमा तथा विलोमासे तुम्बुरुके मित्र अनुका जन्म हुआ। अनुसे आनकदुन्दुभि, उससे अभिजित्, अभिजित्से पुनर्वसु और पुनर्वसुसे आहुक नामक पुत्र और आहुकी नाम्नी कन्याका जन्म हुआ। आहुकके देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र हुए। उनमेंसे देवकके देववान्, उपदेव, सहदेव और देवरक्षित नामक चार पुत्र हुए। इन चारोंकी वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी ये सात भगिनियाँ थीं। ये सब वसुदेवजीको विवाही गयी थीं। उग्रसेनके भी कंस, न्यग्रोध, सुनाम, आनकाह्व, शङ्कु, सुभूमि, राष्ट्रपाल, युद्धतुष्टि और सुतुष्टिमान् नामक पुत्र तथा कंसा, कंसवती, सुतनु और राष्ट्रपालिका नामकी कन्याएँ हुईं।

भजमानका पुत्र विदूरथ हुआ; विदूरथके शूर, शूरके शमी, शमीके प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रके स्वयभोज, स्वयभोजके हृदिक तथा हृदिकके कृतवर्मा, शतधन्वा, देवार्ह और देवगर्भ आदि पुत्र हुए। देवगर्भके पुत्र शूरसेन थे। शूरसेनकी मारिषा नामकी पत्नी थी। उससे उन्होंने वसुदेव आदि दस पुत्र उत्पन्न किये। वसुदेवके जन्म लेते ही देवताओंने अपनी अव्याहत दृष्टिसे यह देखकर कि इनके घरमें भगवान् अंशावतार लेंगे, आनक और दुन्दुभि आदि बाजे बजाये थे; इसीलिये इनका नाम आनक-दुन्दुभि भी हुआ। इनके देवभाग, देवश्रवा, अष्टक, ककुच्चक्र, वत्सधारक, सृञ्जय, श्याम, शमिक और गण्डूप नामक नौ भाई थे तथा इन वसुदेव आदि दस भाइयोंकी पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी ये पाँच बहिनें थीं।

शूरसेनके कुन्ति नामक एक मित्र थे। वे निःसंतान थे, अतः शूरसेनने दत्तक-विधिसे उन्हें अपनी पृथा नामकी कन्या दे दी थी। उसका राजा पाण्डुके साथ विवाह हुआ। उसके धर्म, वायु और इन्द्रके द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र हुए। इनके पहले इसके अविवाहितावस्थामें ही भगवान् सूर्यके द्वारा कर्ण नामक एक कानीन* पुत्र और हुआ था। इसकी माद्री नामकी एक सपत्नी थी। उसके अश्विनीकुमारोंद्वारा नकुल और सहदेव नामक पाण्डुके दो पुत्र हुए।

शूरसेनकी दूसरी कन्या श्रुतदेवाका कारूष-नरेश वृद्धधर्मासे विवाह हुआ था। उससे दन्तवक्र नामक महादैत्य उत्पन्न हुआ। श्रुतकीर्तिको केकयराजने विवाहा था। उससे केकय-नरेशके संतर्दन आदि पाँच पुत्र हुए। राजाधिदेवीसे अवन्ति-देशीय विन्द और अनुविन्दका जन्म हुआ। श्रुतश्रवाका भी चेदिराज दमघोषने पाणिग्रहण किया। उससे शिशुपालका जन्म हुआ। पूर्वजन्ममें यह अतिशय पराक्रमी हिरण्यकशिपु नामक दैत्योंका मूलपुरुष हुआ था, जिसे सकल लोकगुरु भगवान् नृसिंहने मारा था। तदनन्तर यह अक्षय वीर्य, शौर्य, सम्पत्ति और पराक्रम आदि गुणोंसे सम्पन्न तथा समस्त त्रिभुवनके स्वामी इन्द्रके भी प्रभावको दबानेवाला दशानन हुआ। स्वयं भगवान्के हाथसे ही मारे जानेके पुण्यसे प्राप्त हुए नाना भोगोंको वह बहुत समयतक भोगते हुए अन्तमें राघवरूपधारी भगवान्के ही द्वारा मारा गया।

फिर सम्पूर्ण भूमण्डलमें प्रशंसित चेदिराजके कुलमें शिशुपालरूपसे जन्म लेकर भी अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त किया। उस जन्ममें वह भगवान्के प्रत्येक नामोंमें तुच्छताकी भावना करने लगा। उसका हृदय अनेक जन्मके द्वेषानुबन्धसे युक्त था, अतः वह उनकी निन्दा और तिरस्कार आदि करते हुए भगवान्के सम्पूर्ण समयानुसार लीलाकृत नामोंका द्वेषभावसे निरन्तर उच्चारण करता था। खिले हुए कमलदलके समान

* अविवाहिता कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रको 'कानीन' कहते हैं।

आदि आठ मुख्य थीं। अनादि भगवान् अखिलमूर्तिने उनसे एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न किये। उनमेंसे प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और साम्ब आदि तेरह पुत्र प्रधान थे। प्रद्युम्नने भी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीसे विवाह किया था। उससे अनिरुद्धका जन्म हुआ। अनिरुद्धने भी रुक्मीकी पौत्री सुभद्रासे विवाह किया था। उससे वज्र उत्पन्न हुआ। वज्रका पुत्र प्रतिबाहु तथा प्रतिबाहुका सुचारु था। इस प्रकार सैकड़ों हजार पुरुषोंकी संख्यावाले यदुकुलकी संतानोंकी गणना नहीं की जा सकती; क्योंकि इस विषयमें ये दो श्लोक चरितार्थ हैं—

'जो गृहाचार्य यादवकुमारोंको धनुर्विद्याकी शिक्षा देनेमें तत्पर रहते थे, उनकी संख्या तीन करोड़ अट्ठासी लाख थी, फिर उन महात्मा यादवोंकी गणना तो कर ही कौन सकता है ? जहाँ लाखों-करोड़ोंके साथ सर्वदा यदुराज उग्रसेन रहते थे।'

देवासुर-संग्राममें जो महाबली दैत्यगण मारे गये थे, वे मनुष्यलोकमें उपद्रव करनेवाले राजालोग होकर उत्पन्न हुए। उनका नाश करनेके लिये देवताओंने यदुवंशमें जन्म लिया, जिसमें कि एक सौ एक कुल थे। उनके नियन्त्रण और स्वामित्वपर भगवान् विष्णु ही अधिष्ठित हुए और वे समस्त यादवगण उन्हींके आज्ञानुसार वृद्धिको प्राप्त हुए। इस प्रकार जो पुरुष इस वृष्णिवंशकी उत्पत्तिके विवरणको सुनता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है।

तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेपसे यदुके वंशका वर्णन किया। अब तुर्वसुके वंशका वर्णन सुनो। तुर्वसुका पुत्र वह्नि था, वह्निका भार्ग, भार्गका भानु, भानुका त्रयीसानु, त्रयीसानुका करन्दम और करन्दमका पुत्र मरुत्त था। मरुत्त निस्संतान था, इसलिये उसने पुरुवंशीय दुष्यन्तको पुत्ररूपसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार ययातिके शापसे तुर्वसुके वंशने पुरुवंशका ही आश्रय लिया।

(अब द्रुह्युके वंशका वर्णन सुनो—) द्रुह्युका पुत्र बभ्रु था, बभ्रुका सेतु, सेतुका आरब्ध, आरब्धका गान्धार, गान्धारका धर्म, धर्मका घृत, घृतका दुर्दम, दुर्दमका प्रचेता तथा प्रचेताका पुत्र शतधर्म था। इसने उत्तरवर्ती बहुत-से म्लेच्छोंका आधिपत्य किया।

ययातिके चौथे पुत्र अनुके सभानल, चक्षु और परमेषु नामक तीन पुत्र थे। सभानलका पुत्र कालानल हुआ तथा कालानलके सृञ्जय, सृञ्जयके पुरञ्जय, पुरञ्जयके जनमेजय, जनमेजयके महाशाल, महाशालके महामना और महामनाके उशीनर तथा तितिक्षु नामक दो पुत्र हुए।

उशीनरके शिबि, नृग, नर, कृमि और वर्म नामक पाँच पुत्र हुए। उनमेंसे शिबिके पृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक—ये चार पुत्र थे। तितिक्षुका पुत्र रुशद्रथ हुआ। उसके हेम, हेमके सुतपा तथा सुतपाके बलि नामक पुत्र हुआ। इस बलिके क्षेत्र (रानी) में दीर्घतमा नामक मुनिने अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म और पौण्ड्र नामक पाँच बालेय क्षत्रिय उत्पन्न किये। इन बलि-पुत्रोंकी संततिके नामानुसार पाँच देशोंके भी ये ही नाम पड़े। इनमेंसे अङ्गसे अनपान, अनपानसे दिविरथ, दिविरथसे धर्मरथ और धर्मरथसे चित्ररथका जन्म हुआ, जिसका दूसरा नाम रोमपाद था। इस रोमपादके मित्र दशरथजी थे, अजके पुत्र दशरथजीने रोमपादको संतानहीन देखकर उन्हें पुत्रीरूपसे अपनी शान्ता नामकी कन्या गोद दे दी थी।

रोमपादका पुत्र चतुरङ्ग था। चतुरङ्गके पृथुलाक्ष तथा पृथुलाक्षके चम्प नामक पुत्र हुआ, जिसने चम्पा नामकी पुरी बसायी थी। चम्पके हर्यङ्ग नामक पुत्र हुआ, भद्ररथसे बृहद्रथ, बृहद्रथसे बृहत्कर्मा, बृहत्कर्मासे बृहद्भानु, बृहद्भानुसे बृहन्मना, बृहन्मनासे जयद्रथका जन्म हुआ। जयद्रथकी ब्राह्मण और क्षत्रियके संसर्गसे उत्पन्न हुई पत्नीके गर्भसे विजय नामक पुत्रका जन्म हुआ। विजयके धृति नामक पुत्र हुआ, धृतिके धृतव्रत, धृतव्रतके सत्यकर्मा और सत्यकर्माके अतिरथ (अधिरथ) का जन्म हुआ, जिसने कि स्नानके लिये गङ्गाजीमें जानेपर पिटारीमें रखकर पृथाद्वारा बहाये हुए कर्णको पुत्ररूपसे पाया था। इस कर्णका पुत्र वृषसेन था। बस, अङ्गवंश इतना ही है। इसके आगे पुरुवंशका वर्णन सुनो।

आदि आठ मुख्य थीं। अनादि भगवान् अखिलमूर्तिने उनसे एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न किये। उनमेंसे प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और साम्ब आदि तेरह पुत्र प्रधान थे। प्रद्युम्नने भी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीसे विवाह किया था। उससे अनिरुद्धका जन्म हुआ। अनिरुद्धने भी रुक्मीकी पौत्री सुभद्रासे विवाह किया था। उससे वज्र उत्पन्न हुआ। वज्रका पुत्र प्रतिबाहु तथा प्रतिबाहुका सुचारु था। इस प्रकार सैकड़ों हजार पुरुषोंकी संख्यावाले यदुकुलकी संतानोंकी गणना नहीं की जा सकती; क्योंकि इस विषयमें ये दो श्लोक चरितार्थ हैं—

'जो गृहाचार्य यादवकुमारोंको धनुर्विद्याकी शिक्षा देनेमें तत्पर रहते थे, उनकी संख्या तीन करोड़ अट्ठासी लाख थी, फिर उन महात्मा यादवोंकी गणना तो कर ही कौन सकता है ? जहाँ लाखों-करोड़ोंके साथ सर्वदा यदुराज उग्रसेन रहते थे।'

देवासुर-संग्राममें जो महाबली दैत्यगण मारे गये थे, वे मनुष्यलोकमें उपद्रव करनेवाले राजालोग होकर उत्पन्न हुए। उनका नाश करनेके लिये देवताओंने यदुवंशमें जन्म लिया, जिसमें कि एक सौ एक कुल थे। उनके नियन्त्रण और स्वामित्वपर भगवान् विष्णु ही अधिष्ठित हुए और वे समस्त यादवगण उन्हींके आज्ञानुसार वृद्धिको प्राप्त हुए। इस प्रकार जो पुरुष इस वृष्णिवंशकी उत्पत्तिके विवरणको सुनता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है।

तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेपसे यदुके वंशका वर्णन किया। अब तुर्वसुके वंशका वर्णन सुनो। तुर्वसुका पुत्र वह्नि था, वह्निका भार्ग, भार्गका भानु, भानुका त्रयीसानु, त्रयीसानुका करन्दम और करन्दमका पुत्र मरुत्त था। मरुत्त निस्संतान था, इसलिये उसने पुरुवंशीय दुष्यन्तको पुत्ररूपसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार ययातिके शापसे तुर्वसुके वंशने पुरुवंशका ही आश्रय लिया।

(अब द्रुह्युके वंशका वर्णन सुनो—) द्रुह्युका पुत्र बभ्रु था, बभ्रुका सेतु, सेतुका आरब्ध, आरब्धका गान्धार, गान्धारका धर्म, धर्मका घृत, घृतका दुर्दम, दुर्दमका प्रचेता तथा प्रचेताका पुत्र शतधर्म था। इसने उत्तरवर्ती बहुत-से म्लेच्छोंका आधिपत्य किया।

ययातिके चौथे पुत्र अनुके सभानल, चक्षु और परमेषु नामक तीन पुत्र थे। सभानलका पुत्र कालानल हुआ तथा कालानलके सृञ्जय, सृञ्जयके पुरञ्जय, पुरञ्जयके जनमेजय, जनमेजयके महाशाल, महाशालके महामना और महामनाके उशीनर तथा तितिक्षु नामक दो पुत्र हुए।

उशीनरके शिबि, नृग, नर, कृमि और वर्म नामक पाँच पुत्र हुए। उनमेंसे शिबिके पृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक—ये चार पुत्र थे। तितिक्षुका पुत्र रुशद्रथ हुआ। उसके हेम, हेमके सुतपा तथा सुतपाके बलि नामक पुत्र हुआ। इस बलिके क्षेत्र (रानी) में दीर्घतमा नामक मुनिने अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म और पौण्ड्र नामक पाँच बालेय क्षत्रिय उत्पन्न किये। इन बलि-पुत्रोंकी संततिके नामानुसार पाँच देशोंके भी ये ही नाम पड़े। इनमेंसे अङ्गसे अनपान, अनपानसे दिविरथ, दिविरथसे धर्मरथ और धर्मरथसे चित्ररथका जन्म हुआ, जिसका दूसरा नाम रोमपाद था। इस रोमपादके मित्र दशरथजी थे, अजके पुत्र दशरथजीने रोमपादको संतानहीन देखकर उन्हें पुत्रीरूपसे अपनी शान्ता नामकी कन्या गोद दे दी थी।

रोमपादका पुत्र चतुरङ्ग था। चतुरङ्गके पृथुलाक्ष तथा पृथुलाक्षके चम्प नामक पुत्र हुआ, जिसने चम्पा नामकी पुरी बसायी थी। चम्पके हर्यङ्ग नामक पुत्र हुआ, भद्ररथसे बृहद्रथ, बृहद्रथसे बृहत्कर्मा, बृहत्कर्मासे बृहद्भानु, बृहद्भानुसे बृहन्मना, बृहन्मनासे जयद्रथका जन्म हुआ। जयद्रथकी ब्राह्मण और क्षत्रियके संसर्गसे उत्पन्न हुई पत्नीके गर्भसे विजय नामक पुत्रका जन्म हुआ। विजयके धृति नामक पुत्र हुआ, धृतिके धृतव्रत, धृतव्रतके सत्यकर्मा और सत्यकर्माके अतिरथ (अधिरथ) का जन्म हुआ, जिसने कि स्नानके लिये गङ्गाजीमें जानेपर पिटारीमें रखकर पृथाद्वारा बहाये हुए कर्णको पुत्ररूपसे पाया था। इस कर्णका पुत्र वृषसेन था। बस, अङ्गवंश इतना ही है। इसके आगे पुरुवंशका वर्णन सुनो।

आदि सात पुत्र थे। इनमेंसे वृहद्रथके कुशाग्र, कुशाग्रके वृषभ, वृषभके पुष्पवान्, पुष्पवान्के सत्यहित, सत्यहितके सुधन्वा और सुधन्वाके जतुका जन्म हुआ। वृहद्रथके दो खण्डोंमें विभक्त एक पुत्र और हुआ था, जो कि जराके द्वारा जोड़ दिये जानेपर जरासन्ध कहलाया। उससे सहदेवका जन्म हुआ तथा सहदेवसे सोमप और सोमपसे श्रुतिश्रवाकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार मैंने तुमसे यह मागध-भूपालोंका वर्णन किया है।

कुरुके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—कुरुपुत्र परीक्षित्के जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन नामक चार पुत्र हुए तथा जह्नुके सुरथ नामक एक पुत्र हुआ। सुरथके विदूरथका जन्म हुआ। विदूरथके सार्वभौम, सार्वभौमके जयत्सेन, जयत्सेनके आराधित, आराधितके अयुतायु, अयुतायुके अक्रोधन, अक्रोधनके देवातिथि तथा देवातिथिके अजमीढ-पुत्र ऋक्षसे भिन्न दूसरे ऋक्षका जन्म हुआ। ऋक्षसे भीमसेन, भीमसेनसे दिलीप और दिलीपसे प्रतीप नामक पुत्र हुआ।

प्रतीपके देवापि, शान्तनु और बाह्लीक नामक तीन पुत्र हुए। इनमेंसे देवापि बाल्यावस्थामें ही वनमें चला गया था, अतः शान्तनु ही राजा हुआ। उसके विषयमें पृथिवीतलपर यह श्लोक कहा जाता है—

'राजा शान्तनु जिसको-जिसको अपने हाथसे स्पर्श कर देते थे, वे वृद्ध पुरुष भी युवावस्था प्राप्त कर लेते थे तथा उनके स्पर्शसे सम्पूर्ण जीव अत्युत्तम शान्ति-लाभ करते थे, इसीलिये वे शान्तनु कहलाते थे।'

बाह्लीकके सोमदत्त नामक पुत्र हुआ तथा सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा और शल्य नामक तीन पुत्र हुए। शान्तनुके गङ्गाजीसे अतिशय कीर्तिमान् तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंका जानने-वाला भीष्म नामक पुत्र हुआ। शान्तनुने सत्यवतीसे चित्रा-ङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र और भी उत्पन्न किये। उनमेंसे चित्राङ्गदको तो बाल्यावस्थामें ही चित्राङ्गद-नामक गन्धर्वने युद्धमें मार डाला। विचित्रवीर्यने काशिराजकी पुत्री अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया। उनके उपभोगमें अत्यन्त व्यग्र रहनेके कारण वह राजरोग यक्ष्मासे अकालहीमें मर गया। तदनन्तर मेरे पुत्र कृष्णद्वैपायनने सत्यवतीके नियुक्त करनेसे माताका वचन टालना उचित न जान विचित्रवीर्यकी पत्नियोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये और उनकी भेजी हुई दासीसे विदुर नामक एक पुत्र उत्पन्न किया।

धृतराष्ट्रने भी गान्धारीसे दुर्योधन और दुःशासन आदि सौ पुत्रोंको जन्म दिया। पाण्डु वनमें आखेट करते समय ऋषिके शापसे संतानोत्पादनमें असमर्थ हो गये थे; अतः उनकी स्त्री कुन्तीसे धर्म, वायु और इन्द्रने क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्र तथा माद्रीसे दोनों अश्विनीकुमारोंने नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार उनके पाँच पुत्र हुए। उन पाँचोंके द्रौपदीसे पाँच ही पुत्र हुए। उनमेंसे युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसेनसे श्रुतसेन, अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे श्रुतानीक तथा सहदेवसे श्रुतकर्माका जन्म हुआ था।

इनके अतिरिक्त पाण्डवोंके और भी कई पुत्र हुए। जैसे—युधिष्ठिरसे यौधेयीके देवक नामक पुत्र हुआ, भीमसेनसे हिडिम्बाके घटोत्कच और काशीसे सर्वग नामक पुत्र हुआ, सहदेवसे विजयाके सुहोत्रका जन्म हुआ, नकुलने रेणुमतीसे

आदि सात पुत्र थे । इनमेंसे बृहद्रथके कुशाग्र, कुशाग्रके वृषभ, वृषभके पुष्पवान्, पुष्पवान्के सत्यहित, सत्यहितके सुधन्वा और सुधन्वाके जतुका जन्म हुआ। बृहद्रथके दो खण्डोंमें विभक्त एक पुत्र और हुआ था, जो कि जराके द्वारा जोड़ दिये जानेपर जरासन्ध कहलाया। उससे सहदेवका जन्म हुआ तथा सहदेवसे सोमप और सोमपसे श्रुतिश्रवाकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार मैंने तुमसे यह मागध-भूपालोंका वर्णन किया है।

कुरुके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—कुरुपुत्र परीक्षित्के जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन नामक चार पुत्र हुए तथा जह्नुके सुरथ नामक एक पुत्र हुआ। सुरथके विदूरथका जन्म हुआ। विदूरथके सार्वभौम, सार्वभौमके जयत्सेन, जयत्सेनके आराधित, आराधितके अयुतायु, अयुतायुके अक्रोधन, अक्रोधनके देवातिथि तथा देवातिथिके अजमीढ-पुत्र ऋक्षसे भिन्न दूसरे ऋक्षका जन्म हुआ। ऋक्षसे भीमसेन, भीमसेनसे दिलीप और दिलीपसे प्रतीप नामक पुत्र हुआ।

प्रतीपके देवापि, शान्तनु और बाह्लीक नामक तीन पुत्र हुए। इनमेंसे देवापि बाल्यावस्थामें ही वनमें चला गया था, अतः शान्तनु ही राजा हुआ। उसके विषयमें पृथिवीतलपर यह श्लोक कहा जाता है—

'राजा शान्तनु जिसको-जिसको अपने हाथसे स्पर्श कर देते थे, वे वृद्ध पुरुष भी युवावस्था प्राप्त कर लेते थे तथा उनके स्पर्शसे सम्पूर्ण जीव अत्युत्तम शान्ति-लाभ करते थे, इसीलिये वे शान्तनु कहलाते थे।'

बाह्लीकके सोमदत्त नामक पुत्र हुआ तथा सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा और शल्य नामक तीन पुत्र हुए। शान्तनुके गङ्गाजीसे अतिशय कीर्तिमान् तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला भीष्म नामक पुत्र हुआ। शान्तनुने सत्यवतीसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र और भी उत्पन्न किये। उनमेंसे चित्राङ्गदको तो बाल्यावस्थामें ही चित्राङ्गद-नामक गन्धर्वने युद्धमें मार डाला। विचित्रवीर्यने काशिराजकी पुत्री अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया। उनके उपभोगमें अत्यन्त व्यग्र रहनेके कारण वह राजरोग यक्ष्मासे अकालहीमें मर गया। तदनन्तर मेरे पुत्र कृष्णद्वैपायनने सत्यवतीके नियुक्त करनेसे माताका वचन टालना उचित न जान विचित्रवीर्यकी पत्नियोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये और उनकी भेजी हुई दासीसे विदुर नामक एक पुत्र उत्पन्न किया।

धृतराष्ट्रने भी गान्धारीसे दुर्योधन और दुःशासन आदि सौ पुत्रोंको जन्म दिया। पाण्डु वनमें आखेट करते समय ऋषिके शापसे संतानोत्पादनमें असमर्थ हो गये थे; अतः उनकी स्त्री कुन्तीसे धर्म, वायु और इन्द्रने क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्र तथा माद्रीसे दोनों अश्विनीकुमारोंने नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार उनके पाँच पुत्र हुए। उन पाँचोके द्रौपदीसे पाँच ही पुत्र हुए। उनमेंसे युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसेनसे श्रुतसेन, अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे श्रुतानीक तथा सहदेवसे श्रुतकर्माका जन्म हुआ था।

इनके अतिरिक्त पाण्डवोंके और भी कई पुत्र हुए। जैसे—युधिष्ठिरसे यौधेयीके देवक नामक पुत्र हुआ, भीमसेनसे हिडिम्बाके घटोत्कच और काशीसे सर्वग नामक पुत्र हुआ, सहदेवसे विजयाके सुहोत्रका जन्म हुआ, नकुलने रेणुमतीसे

कलियुगी राजाओं और कलिधर्मोंका वर्णन तथा राजवंश-वर्णनका उपसंहार

श्रीपराशरजी कहते हैं—बृहद्रथवंशका रिपुञ्जय नामक जो अन्तिम राजा होगा, उसका सुनिक नामक एक मन्त्री होगा। वह अपने स्वामी रिपुञ्जयको मारकर अपने पुत्र प्रद्योतका राज्याभिषेक करेगा। उसका पुत्र बलाक होगा, बलाकका विशाखयूप, विशाखयूपका जनक, जनकका नन्दिवर्द्धन तथा नन्दिवर्द्धनका पुत्र नन्दी होगा। ये पाँच प्रद्योतवंशीय नृपतिगण एक सौ अड़तीस वर्ष पृथ्वीका पालन करेंगे।

नन्दीका पुत्र शिशुनाभ होगा, शिशुनाभका काकवर्ण, काकवर्णका क्षेमधर्मा, क्षेमधर्माका क्षतौजा, क्षतौजाका विधिसार, विधिसारका अजातशत्रु, अजातशत्रुका अर्भक, अर्भकका उदयन, उदयनका नन्दिवर्द्धन और नन्दिवर्द्धनका पुत्र महानन्दी होगा। ये शिशुनाभवंशीय नृपतिगण तीन सौ बासठ वर्ष पृथ्वीका शासन करेंगे।

महानन्दीके शूद्राके गर्भसे उत्पन्न महापद्म नामक नन्द होगा। तबसे शूद्रजातीय राजा राज्य करेंगे। राजा महापद्म सम्पूर्ण पृथ्वीका एकच्छत्र और अनुल्लङ्घित राज्य-शासन करेगा। उसके सुमाली आदि आठ पुत्र होंगे, जो महापद्मके पीछे पृथ्वीका राज्य भोगेंगे। महापद्म और उसके पुत्र सौ वर्षतक पृथ्वीका शासन करेंगे। तदनन्तर इन नवों नन्दोंको कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण नष्ट करेगा, उनका अन्त होनेपर मौर्य नृपतिगण पृथ्वीको भोगेंगे। कौटिल्य ही मुरानामकी दासीसे नन्दद्वारा उत्पन्न हुए चन्द्रगुप्तको राज्याभिषिक्त करेगा।

चन्द्रगुप्तका पुत्र बिन्दुसार, बिन्दुसारका अशोकवर्द्धन, अशोकवर्द्धनका सुयशा, सुयशाका दशरथ, दशरथका संयुत, सयुतका शालिशूक, शालिशूकका सोमशर्मा, सोमशर्माका शतधन्वा तथा शतधन्वाका पुत्र बृहद्रथ होगा। इस प्रकार एक सौ सैंतीस वर्षतक ये दस मौर्यवंशी राजा राज्य करेंगे। इनके अनन्तर पृथ्वीमें दस शुङ्गवंशीय राजागण होंगे। उनमें पहला पुष्यमित्र नामक सेनापति अपने स्वामीको मारकर स्वयं राज्य करेगा, उसका पुत्र अग्निमित्र होगा। अग्निमित्रका पुत्र सुज्येष्ठ, सुज्येष्ठका वसुमित्र, वसुमित्रका उदङ्क, उदङ्कका पुलिन्दक, पुलिन्दकका घोषवसु, घोषवसुका वज्रमित्र, वज्रमित्रका भागवत और भागवतका पुत्र देवभूति होगा। ये शुङ्गनरेश एक सौ बारह वर्ष पृथ्वीका भोग करेंगे।

इसके अनन्तर यह पृथ्वी कण्व-भूपालोंके अधिकारमें चली जायगी। शुङ्गवंशीय अति व्यसनशील राजा देवभूतिको कण्ववंशीय वसुदेव नामक उसका मन्त्री मारकर स्वयं राज्य भोगेगा। उसका पुत्र भूमित्र, भूमित्रका नारायण तथा नारायणका पुत्र सुशर्मा होगा। ये चार काण्व भूपतिगण पैंतालीस वर्ष पृथ्वीके अधिपति रहेंगे।

कण्ववंशीय सुशर्माको उसका बलिपुच्छक नामवाला आन्ध्रजातीय सेवक मारकर स्वय पृथ्वीका भोग करेगा। उसके पीछे उसका भाई कृष्ण पृथ्वीका स्वामी होगा। उसका पुत्र शान्तकर्णि होगा। शान्तकर्णिका पुत्र पूर्णोत्संग, पूर्णोत्सगका शातकर्णि, शातकर्णिका लम्बोदर, लम्बोदरका पिलक, पिलकका मेघस्वाति, मेघस्वातिका पटुमान्, पटुमान्का अरिष्टकर्मा, अरिष्टकर्माका हालाहल, हालाहलका पललक, पललकका पुलिन्दसेन, पुलिन्दसेनका सुन्दर, सुन्दरका शातकर्णि [दूसरा], शातकर्णिका शिवस्वाति, शिवस्वातिका गोमतिपुत्र, गोमतिपुत्रका अलिमान्, अलिमान्का शान्तकर्णि [दूसरा], शान्तकर्णिका शिवश्रित, शिवश्रितका शिवस्कन्ध, शिवस्कन्धका यज्ञश्री, यज्ञश्रीका द्वियज्ञ, द्वियज्ञका चन्द्रश्री तथा चन्द्रश्रीका पुत्र पुलोमाचि होगा। इस प्रकार ये तीस आन्ध्रभृत्य राजागण चार सौ छप्पन वर्ष पृथ्वीको भोगेंगे। इनके पीछे सात आभीर और दस गर्दभिल राजा होंगे। फिर सोलह शक राजा होंगे। उनके पीछे आठ यवन, चौदह तुर्क, तेरह मुण्ड (गुरुण्ड) और ग्यारह मौनजातीय राजालोग एक हजार नब्बे वर्ष पृथ्वीका शासन करेंगे। इनमेंसे भी ग्यारह मौन राजा पृथ्वीको तीन सौ वर्षतक भोगेंगे।

इनके बाद कैंकिल नामक अभिषेकरहित राजा होंगे। उनका वंशधर विन्ध्यशक्ति होगा। विन्ध्यशक्तिका पुत्र पुरञ्जय होगा। पुरञ्जयका रामचन्द्र, रामचन्द्रका धर्मवर्मा, धर्मवर्माका वङ्ग, वङ्गका नन्दन तथा नन्दनका पुत्र सुनन्दी होगा। सुनन्दीके नन्दियशा, शुक्र और प्रवीर—ये तीन भाई होंगे। ये सब एक सौ छः वर्षतक राज्य करेंगे। इसके पीछे तेरह इनके वंशके और तीन बाह्लिक राजा होंगे। उनके बाद तेरह पुष्पमित्र और पटुमित्र आदि तथा सात आन्ध्र माण्डलिक भूपतिगण होंगे तथा नौ राजा क्रमशः कोशलदेशमें राज्य करेंगे। निषधदेशके स्वामी भी ये ही होंगे।

कलियुगी राजाओं और कलिधर्मोंका वर्णन तथा राजवंश-वर्णनका उपसंहार

श्रीपराशरजी कहते हैं—बृहद्रथवंशका रिपुञ्जय नामक जो अन्तिम राजा होगा, उसका सुनिक नामक एक मन्त्री होगा। वह अपने स्वामी रिपुञ्जयको मारकर अपने पुत्र प्रद्योतका राज्याभिषेक करेगा। उसका पुत्र बलाक होगा, बलाकका विशाखयूप, विशाखयूपका जनक, जनकका नन्दिवर्द्धन तथा नन्दिवर्द्धनका पुत्र नन्दी होगा। ये पाँच प्रद्योतवंशीय नृपतिगण एक सौ अड़तीस वर्ष पृथ्वीका पालन करेंगे।

नन्दीका पुत्र शिशुनाभ होगा, शिशुनाभका काकवर्ण, काकवर्णका क्षेमधर्मा, क्षेमधर्माका क्षतौजा, क्षतौजाका विधिसार, विधिसारका अजातशत्रु, अजातशत्रुका अर्भक, अर्भकका उदयन, उदयनका नन्दिवर्द्धन और नन्दिवर्द्धनका पुत्र महानन्दी होगा। ये शिशुनाभवंशीय नृपतिगण तीन सौ बासठ वर्ष पृथ्वीका शासन करेंगे।

महानन्दीके शूद्राके गर्भसे उत्पन्न महापद्म नामक नन्द होगा। तबसे शूद्रजातीय राजा राज्य करेंगे। राजा महापद्म सम्पूर्ण पृथ्वीका एकच्छत्र और अनुल्लङ्घित राज्य-शासन करेगा। उसके सुमाली आदि आठ पुत्र होंगे, जो महापद्मके पीछे पृथ्वीका राज्य भोगेंगे। महापद्म और उसके पुत्र सौ वर्षतक पृथ्वीका शासन करेंगे। तदनन्तर इन नवों नन्दोंको कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण नष्ट करेगा, उनका अन्त होनेपर मौर्य नृपतिगण पृथ्वीको भोगेंगे। कौटिल्य ही मुरानामकी दासीसे नन्दद्वारा उत्पन्न हुए चन्द्रगुप्तको राज्याभिषिक्त करेगा।

चन्द्रगुप्तका पुत्र बिन्दुसार, बिन्दुसारका अशोकवर्द्धन, अशोकवर्द्धनका सुयशा, सुयशाका दशरथ, दशरथका संयुत, सयुतका शालिशूक, शालिशूकका सोमशर्मा, सोमशर्माका शतधन्वा तथा शतधन्वाका पुत्र बृहद्रथ होगा। इस प्रकार एक सौ सैंतीस वर्षतक ये दस मौर्यवंशी राजा राज्य करेंगे। इनके अनन्तर पृथ्वीमें दस शुङ्गवंशीय राजागण होंगे। उनमें पहला पुष्यमित्र नामक सेनापति अपने स्वामीको मारकर स्वयं राज्य करेगा, उसका पुत्र अग्निमित्र होगा। अग्निमित्रका पुत्र सुज्येष्ठ, सुज्येष्ठका वसुमित्र, वसुमित्रका उदङ्क, उदङ्कका पुलिन्दक, पुलिन्दकका घोषवसु, घोषवसुका वज्रमित्र, वज्रमित्रका भागवत और भागवतका पुत्र देवभूति होगा। ये शुङ्गनरेश एक सौ बारह वर्ष पृथ्वीका भोग करेंगे।

इसके अनन्तर यह पृथ्वी कण्व-भूपालोंके अधिकारमें चली जायगी। शुङ्गवंशीय अति व्यसनशील राजा देवभूतिको कण्ववंशीय वसुदेव नामक उसका मन्त्री मारकर स्वयं राज्य भोगेगा। उसका पुत्र भूमित्र, भूमित्रका नारायण तथा नारायणका पुत्र सुशर्मा होगा। ये चार काण्व भूपतिगण पैंतालीस वर्ष पृथ्वीके अधिपति रहेंगे।

कण्ववंशीय सुशर्माको उसका बलिपुच्छक नामवाला आन्ध्रजातीय सेवक मारकर स्वय पृथ्वीका भोग करेगा। उसके पीछे उसका भाई कृष्ण पृथ्वीका स्वामी होगा। उसका पुत्र शान्तकर्णि होगा। शान्तकर्णिका पुत्र पूर्णोत्संग, पूर्णोत्सगका शातकर्णि, शातकर्णिका लम्बोदर, लम्बोदरका पिलक, पिलकका मेघस्वाति, मेघस्वातिका पटुमान्, पटुमान्‌का अरिष्टकर्मा, अरिष्टकर्माका हालाहल, हालाहलका पललक, पललकका पुलिन्दसेन, पुलिन्दसेनका सुन्दर, सुन्दरका शातकर्णि [दूसरा], शातकर्णिका शिवस्वाति, शिवस्वातिका गोमतिपुत्र, गोमतिपुत्रका अलिमान्, अलिमान्‌का शान्तकर्णि [दूसरा], शान्तकर्णिका शिवश्रित, शिवश्रितका शिवस्कन्ध, शिवस्कन्धका यज्ञश्री, यज्ञश्रीका द्वियज्ञ, द्वियज्ञका चन्द्रश्री तथा चन्द्रश्रीका पुत्र पुलोमाचि होगा। इस प्रकार ये तीस आन्ध्रभृत्य राजागण चार सौ छप्पन वर्ष पृथ्वीको भोगेंगे। इनके पीछे सात आभीर और दस गर्दभिल राजा होंगे। फिर सोलह शक राजा होंगे। उनके पीछे आठ यवन, चौदह तुर्क, तेरह मुण्ड (गुरुण्ड) और ग्यारह मौनजातीय राजालोग एक हजार नब्बे वर्ष पृथ्वीका शासन करेंगे। इनमेंसे भी ग्यारह मौन राजा पृथ्वीको तीन सौ वर्षतक भोगेंगे।

इनके बाद कैंकिल नामक अभिषेकरहित राजा होंगे। उनका वंशधर विन्ध्यशक्ति होगा। विन्ध्यशक्तिका पुत्र पुरञ्जय होगा। पुरञ्जयका रामचन्द्र, रामचन्द्रका धर्मवर्मा, धर्मवर्माका वङ्ग, वङ्गका नन्दन तथा नन्दनका पुत्र सुनन्दी होगा। सुनन्दीके नन्दियशा, शुक्र और प्रवीर—ये तीन भाई होंगे। ये सब एक सौ छः वर्षतक राज्य करेंगे। इसके पीछे तेरह इनके वंशके और तीन बाह्लिक राजा होंगे। उनके बाद तेरह पुष्पमित्र और पटुमित्र आदि तथा सात आन्ध्र माण्डलिक भूपतिगण होंगे तथा नौ राजा क्रमशः कोशलदेशमें राज्य करेंगे। निषधदेशके स्वामी भी ये ही होंगे।

परीक्षित्‌के जन्मसे नन्दके अभिषेकतक एक हजार पाँच सौ (पंद्रह सौ) वर्षका समय जानना चाहिये । सप्तर्षियोंमेंसे जो पुलस्त्य और क्रतु दो नक्षत्र आकाशमें पहले दिखायी देते हैं, उनके बीचमें रात्रिके समय जो दक्षिणोत्तर-रेखापर समदेशमें स्थित अश्विनी आदि नक्षत्र हैं, उनमेंसे प्रत्येक नक्षत्रपर सप्तर्षिगण एक-एक सौ वर्ष रहते हैं । द्विजोत्तम! परीक्षित्‌के समयमें वे सप्तर्षिगण मघानक्षत्रपर थे । उसी समय बारह सौ दिव्य वर्ष प्रमाणवाला कलियुग आरम्भ हुआ था । द्विज! जिस समय श्रीविष्णुके अंशावतार एवं वसुदेवजीके वंशधर भगवान् श्रीकृष्ण निजधामको पधारे थे, उसी समय पृथिवीपर कलियुगका आगमन हुआ था ।

जबतक भगवान् अपने चरणकमलोंसे इस पृथिवीका स्पर्श करते रहे, तबतक पृथिवीसे संसर्ग करनेकी कलियुगकी हिम्मत न पड़ी ।

सनातन पुरुष भगवान् विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णचन्द्रके पधारनेपर भाइयोंके सहित धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरने अपने राज्यको छोड दिया । श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तर्धान हो जानेपर विपरीत लक्षणोंको देखकर पाण्डवोंने परीक्षित्‌को राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया । जिस समय ये सप्तर्षिगण पूर्वाषाढा-नक्षत्रपर जायँगे, उसी समय राजा नन्दके समयसे कलियुगका प्रभाव बढ़ेगा । जिस दिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परमधामको गये थे, उसी दिन कलियुग उपस्थित हो गया था । अब तुम कलियुगकी वर्ष-संख्या सुनो ।

द्विज ! मानवी वर्षगणनाके अनुसार कलियुग तीन लाख साठ हजार वर्ष रहेगा * । बारह सौ दिव्य वर्ष बीतनेपर कृतयुग आरम्भ होगा। द्विजश्रेष्ठ! प्रत्येक युगमें हजारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र महात्मागण हो गये हैं । उनके बहुत अधिक संख्यामें होनेसे तथा जाति और नामकी समानता होनेके कारण कुलोंमें पुनरुक्ति हो जानेके भयसे मैंने उन सबके नाम नहीं बतलाये हैं ।

पुरुवंशीय राजा देवापि तथा इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न राजा मरु—ये दोनों अत्यन्त योगबलसम्पन्न हैं और कलापग्राममें रहते हैं । सत्ययुगका आरम्भ होनेपर ये पुनः मर्त्यलोकमें आकर क्षत्रिय-कुलके प्रवर्तक होंगे । वे आगामी मनुवंशके बीजरूप हैं । सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इन तीनों युगोंमें इसी क्रमसे मनुपुत्र पृथिवीका भोग करते हैं । फिर कलियुगमें उन्हींमेंसे कोई-कोई आगामी मनुसंतानके बीजरूपसे स्थित रहते हैं, जिस प्रकार कि आजकल देवापि और मरु हैं ।

इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण राजवंशोंका यह संक्षिप्त वर्णन कर दिया है । इस हेय शरीरके मोहसे अन्धे हुए ये तथा और भी ऐसे अनेक भूपतिगण हो गये हैं, जिन्होंने इस पृथिवीमण्डलमें ममता की थी । 'यह पृथिवी किस प्रकार अचलभावसे मेरी, मेरे पुत्रकी अथवा मेरे वंशकी होगी ?' इसी चिन्तामें व्याकुल हुए इन सभी राजाओंका अन्त हो गया । इसी चिन्तामें डूबे रहकर इन सम्पूर्ण राजाओंके पूर्व-पूर्वतरवर्ती राजा चले गये और इसीमें मग्न रहकर आगामी भूपतिगण भी मृत्यु-मुखमें चले जायँगे । इस प्रकार अपनेको जीतनेके लिये राजाओंको अथक उद्योग करते देखकर वसुन्धरा शरत्कालीन पुष्पोंके रूपमें मानो हँस रही है ।

मैत्रेय ! अब तुम पृथिवीके कहे हुए कुछ श्लोकोंको सुनो । पूर्वकालमें इन्हें असित मुनिने राजा जनकको सुनाया था ।

पृथिवी कहती है—अहो ! बुद्धिमान् होते हुए भी इन राजाओंको यह कैसा मोह हो रहा है, जिसके कारण ये बुलबुलेके समान क्षणस्थायी होते हुए भी अपनी स्थिरतामें इतना विश्वास रखते हैं । ये लोग प्रथम अपनेको जीतते हैं और फिर अपने मन्त्रियोंको तथा इसके अनन्तर ये क्रमशः अपने भृत्य, पुरवासी एवं शत्रुओंको जीतना चाहते हैं । 'इसी क्रमसे हम समुद्रपर्यन्त इस सम्पूर्ण पृथिवीको जीत लेंगे' ऐसी बुद्धिसे मोहित हुए ये लोग अपनी निकटवर्तिनी मृत्युको नहीं देखते । यदि समुद्रसे घिरा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल अपने वशमें हो ही जाय तो भी मनोजयके सामने इसका मूल्य भी क्या है; क्योंकि मोक्ष तो मनोजयसे ही प्राप्त होता है । जिसे छोडकर इनके पूर्वज चले गये तथा जिसे अपने साथ लेकर इनके पिता भी नहीं गये, उसी मुझको अत्यन्त मूर्खताके कारण ये राजा लोग जीतना चाहते हैं। जिनका चित्त ममतामय है, उन पिता-पुत्र और भाइयोंमें अत्यन्त मोहके कारण मेरे ही लिये परस्पर कलह होता है । जो-जो राजालोग यहाँ हो चुके हैं, उन सभी-की ऐसी कुबुद्धि रही है कि यह पृथिवी मेरी है—यह सारी-की-सारी मेरी ही है और मेरे पीछे भी यह सदा मेरी संतानकी ही रहेगी । इस प्रकार मुझमें ममता करनेवाले एक राजाको, मुझे छोड़कर मृत्युके मुखमें जाते हुए देखकर भी न जाने कैसे उसका उत्तराधिकारी अपने हृदयमें मेरे लिये ममताको स्थान देता है ? जो राजालोग दूतोंके द्वारा अपने शत्रुओंसे इस प्रकार कहलाते हैं कि 'यह पृथिवी मेरी है, तुमलोग इसे तुरंत छोड़-कर चले जाओ' उनपर मुझे बड़ी हँसी आती है और फिर उन मूढ़ोंपर मुझे दया भी आ जाती है ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! पृथिवीके कहे हुए इन श्लोकोंको जो पुरुष सुनेगा, उसकी ममता इसी प्रकार लीन

* संध्या और सध्यांशोंके बहत्तर हजार वर्ष और जोडनेपर चार लाख बत्तीस हजार वर्ष होंगे । चार लाख बत्तीस हजार मानव वर्ष देवताओंके बारह सौ दिव्य वर्ष होते हैं ।

परीक्षित्‌के जन्मसे नन्दके अभिषेकतक एक हजार पाँच सौ (पंद्रह सौ) वर्षका समय जानना चाहिये। सप्तर्षियोंमेंसे जो पुलस्त्य और क्रतु दो नक्षत्र आकाशमें पहले दिखायी देते हैं, उनके बीचमें रात्रिके समय जो दक्षिणोत्तर-रेखापर समदेशमें स्थित अश्विनी आदि नक्षत्र हैं, उनमेंसे प्रत्येक नक्षत्रपर सप्तर्षिगण एक-एक सौ वर्ष रहते हैं। द्विजोत्तम! परीक्षित्‌के समयमें वे सप्तर्षिगण मघानक्षत्रपर थे। उसी समय बारह सौ दिव्य वर्ष प्रमाणवाला कलियुग आरम्भ हुआ था। द्विज! जिस समय श्रीविष्णुके अंशावतार एवं वसुदेवजीके वंशधर भगवान् श्रीकृष्ण निजधामको पधारे थे, उसी समय पृथिवीपर कलियुगका आगमन हुआ था।

जबतक भगवान् अपने चरणकमलोंसे इस पृथिवीका स्पर्श करते रहे, तबतक पृथिवीसे संसर्ग करनेकी कलियुगकी हिम्मत न पड़ी।

सनातन पुरुष भगवान् विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णचन्द्रके पधारनेपर भाइयोंके सहित धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरने अपने राज्यको छोड दिया। श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तर्धान हो जानेपर विपरीत लक्षणोंको देखकर पाण्डवोंने परीक्षित्‌को राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया। जिस समय ये सप्तर्षिगण पूर्वाषाढा-नक्षत्रपर जायँगे, उसी समय राजा नन्दके समयसे कलियुगका प्रभाव बढ़ेगा। जिस दिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परमधामको गये थे, उसी दिन कलियुग उपस्थित हो गया था। अब तुम कलियुगकी वर्ष-संख्या सुनो।

द्विज! मानवी वर्षगणनाके अनुसार कलियुग तीन लाख साठ हजार वर्ष रहेगा *। बारह सौ दिव्य वर्ष बीतनेपर कृतयुग आरम्भ होगा। द्विजश्रेष्ठ! प्रत्येक युगमें हजारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र महात्मागण हो गये हैं। उनके बहुत अधिक संख्यामें होनेसे तथा जाति और नामकी समानता होनेके कारण कुलोंमें पुनरुक्ति हो जानेके भयसे मैंने उन सबके नाम नहीं बतलाये हैं।

पुरुवंशीय राजा देवापि तथा इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न राजा मरु—ये दोनों अत्यन्त योगबलसम्पन्न हैं और कलापग्राममें रहते हैं। सत्ययुगका आरम्भ होनेपर ये पुनः मर्त्यलोकमें आकर क्षत्रिय-कुलके प्रवर्तक होंगे। वे आगामी मनुवंशके बीजरूप हैं। सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इन तीनों युगोंमें इसी क्रमसे मनुपुत्र पृथिवीका भोग करते हैं। फिर कलियुगमें उन्हींमेंसे कोई-कोई आगामी मनुसंतानके बीजरूपसे स्थित रहते हैं, जिस प्रकार कि आजकल देवापि और मरु हैं।

इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण राजवंशोंका यह संक्षिप्त वर्णन कर दिया है। इस हेय शरीरके मोहसे अन्धे हुए ये तथा और भी ऐसे अनेक भूपतिगण हो गये हैं, जिन्होंने इस पृथिवीमण्डलमें ममता की थी। 'यह पृथिवी किस प्रकार अचलभावसे मेरी, मेरे पुत्रकी अथवा मेरे वंशकी होगी?' इसी चिन्तामें व्याकुल हुए इन सभी राजाओंका अन्त हो गया। इसी चिन्तामें डूबे रहकर इन सम्पूर्ण राजाओंके पूर्व-पूर्वतरवर्ती राजा चले गये और इसीमें मग्न रहकर आगामी भूपतिगण भी मृत्यु-मुखमें चले जायँगे। इस प्रकार अपनेको जीतनेके लिये राजाओंको अथक उद्योग करते देखकर वसुन्धरा शरत्कालीन पुष्पोंके रूपमें मानो हँस रही है।

मैत्रेय! अब तुम पृथिवीके कहे हुए कुछ श्लोकोंको सुनो। पूर्वकालमें इन्हें असित मुनिने राजा जनकको सुनाया था।

पृथिवी कहती है—अहो! बुद्धिमान् होते हुए भी इन राजाओंको यह कैसा मोह हो रहा है, जिसके कारण ये बुलबुलेके समान क्षणस्थायी होते हुए भी अपनी स्थिरतामें इतना विश्वास रखते हैं। ये लोग प्रथम अपनेको जीतते हैं और फिर अपने मन्त्रियोंको तथा इसके अनन्तर ये क्रमशः अपने भृत्य, पुरवासी एवं शत्रुओंको जीतना चाहते हैं। 'इसी क्रमसे हम समुद्रपर्यन्त इस सम्पूर्ण पृथिवीको जीत लेंगे' ऐसी बुद्धिसे मोहित हुए ये लोग अपनी निकटवर्तिनी मृत्युको नहीं देखते। यदि समुद्रसे घिरा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल अपने वशमें हो ही जाय तो भी मनोजयके सामने इसका मूल्य भी क्या है; क्योंकि मोक्ष तो मनोजयसे ही प्राप्त होता है। जिसे छोड़कर इनके पूर्वज चले गये तथा जिसे अपने साथ लेकर इनके पिता भी नहीं गये, उसी मुझको अत्यन्त मूर्खताके कारण ये राजा लोग जीतना चाहते हैं। जिनका चित्त ममतामय है, उन पिता-पुत्र और भाइयोंमें अत्यन्त मोहके कारण मेरे ही लिये परस्पर कलह होता है। जो-जो राजालोग यहाँ हो चुके हैं, उन सभी-की ऐसी कुबुद्धि रही है कि यह पृथिवी मेरी है—यह सारी-की-सारी मेरी ही है और मेरे पीछे भी यह सदा मेरी संतानकी ही रहेगी। इस प्रकार मुझमें ममता करनेवाले एक राजाको, मुझे छोड़कर मृत्युके मुखमें जाते हुए देखकर भी न जाने कैसे उसका उत्तराधिकारी अपने हृदयमें मेरे लिये ममताको स्थान देता है? जो राजालोग दूतोंके द्वारा अपने शत्रुओंसे इस प्रकार कहलाते हैं कि 'यह पृथिवी मेरी है, तुमलोग इसे तुरंत छोड़-कर चले जाओ' उनपर मुझे बड़ी हँसी आती है और फिर उन मूढ़ोंपर मुझे दया भी आ जाती है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! पृथिवीके कहे हुए इन श्लोकोंको जो पुरुष सुनेगा, उसकी ममता इसी प्रकार लीन

* संध्या और सध्यांशोंके बहत्तर हजार वर्ष और जोडनेपर चार लाख बत्तीस हजार वर्ष होंगे। चार लाख बत्तीस हजार मानव वर्ष देवताओंके बारह सौ दिव्य वर्ष होते हैं।

पञ्चम अंश

वसुदेव-देवकीका विवाह, भारपीडिता पृथिवीका देवताओंके सहित क्षीरसमुद्रपर जाना और भगवान्‌का प्रकट होकर उसे धैर्य बँधाना

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! आपने राजाओंके सम्पूर्ण वंशोंका विस्तार तथा उनके चरित्रोंका क्रमशः यथावत् वर्णन किया, अब ब्रह्मर्षे! यदुकुलमें जो भगवान् विष्णुका अंशावतार हुआ था, उसे मैं विस्तारपूर्वक यथावत् सुनना चाहता हूँ। मुने! भगवान् पुरुषोत्तमने पृथिवीपर अवतीर्ण होकर जो-जो कर्म किये थे, उन सबका आप मुझसे वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! तुमने मुझसे जो पूछा है, वह संसारमें परम मङ्गलकारी भगवान् विष्णुके अंशावतारका चरित्र सुनो। महामुने! पूर्वकालमें देवककी महाभाग्यशालिनी पुत्री देवीस्वरूपा देवकीके साथ वसुदेवजी-ने विवाह किया। वसुदेव और देवकीके वैवाहिक सम्बन्ध होनेके अनन्तर विदा होते समय भोजनन्दन कंस सारथि बन-कर उन दोनोंका माङ्गलिक रथ हाँकने लगा। उसी समय मेघके समान गम्भीर घोष करती हुई आकाशवाणी कंसको ऊँचे स्वरसे सम्बोधन करके यों बोली—'अरे मूढ! पतिके साथ रथपर बैठी हुई जिस देवकीको तू लिये जा रहा है, इसका आठवाँ गर्भ तेरे प्राण हर लेगा।'

यह सुनते ही महाबली कंस खड्ग निकालकर देवकीको मारनेके लिये उद्यत हुआ। तब वसुदेवजीने यों कहा—'महाभाग! आप देवकीका वध न करें; मैं इसके गर्भसे उत्पन्न हुए सभी बालक आपको सौंप दूँगा।'

द्विजोत्तम! तब सत्यके गौरवसे कंसने वसुदेवजीसे 'बहुत अच्छा' कह देवकीका वध नहीं किया। इसी समय अत्यन्त भारसे पीडित होकर पृथिवी गौका रूप धारणकर सुमेरुपर्वतपर देवताओंकी सभामें गयी। वहाँ उसने ब्रह्माजीके सहित समस्त देवताओंको प्रणामकर खेदपूर्वक करुणस्वरसे बोलते हुए अपना सारा वृत्तान्त कहा।

पृथिवी बोली—समस्त लोकोंके गुरु श्रीनारायण मेरे गुरु हैं। देवश्रेष्ठगण! आदित्य, मरुद्गण, साध्यगण, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, अग्नि, पितृगण और लोकोंकी सृष्टि करनेवाले अत्रि आदि प्रजापतिगण—ये सब अप्रमेय महात्मा विष्णुके ही रूप हैं। ग्रह, नक्षत्र तथा तारागणोंसे चित्रित आकाश, अग्नि, जल, वायु, मैं और इन्द्रियोंके सम्पूर्ण विषय—यह सारा जगत् विष्णुमय ही है।

इस समय कालनेमि आदि दैत्यगण मर्त्यलोकपर अधिकार जमाकर अहर्निश जनताको क्लेश पहुँचा रहे हैं। इन दिनों वह कालनेमि ही उग्रसेनके पुत्र महान् असुर कंसके रूपमें उत्पन्न हुआ है। अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द, बलिका पुत्र अति भयंकर बाणासुर आदि दैत्य उत्पन्न हो गये हैं तथा अन्य महाबलवान् दुरात्मा राक्षस राजाओंके घरमें उत्पन्न हो गये हैं, उनकी मैं गणना नहीं कर सकती। दिव्यमूर्तिधारी देवगण! इस समय मेरे ऊपर महाबलवान् और गर्वीले दैत्यराजोंकी अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ हैं। अमरेश्वरो! मैं आपलोगोंको यह बतलाये देती हूँ कि अब उनके अत्यन्त भारसे पीडित होनेके कारण मुझमें अपनेको धारण करनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी है। अतः महाभागगण! आपलोग मेरा भार उतारिये; जिससे मैं अत्यन्त व्याकुल होकर रसातलको न चली जाऊँ।

पृथिवीके इन वाक्योंको सुनकर उसके भार उतारनेके विषयमें समस्त देवताओंकी प्रेरणासे भगवान् ब्रह्माजीने कहना आरम्भ किया।

ब्रह्माजी बोले—देवगण! पृथिवीने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य ही है, वास्तवमें मैं, शङ्कर और आप सब लोग नारायणस्वरूप ही हैं। इसलिये आओ, अब हमलोग क्षीरसागरके पवित्र तटपर चलें और वहाँ श्रीहरिकी आराधना करके यह सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे निवेदन कर दें। वे विश्वरूप सर्वात्मा सर्वथा संसारके हितके लिये ही अवतीर्ण होकर पृथिवीपर धर्मकी स्थापना करते हैं।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ऐसा कहकर देवताओंके सहित पितामह ब्रह्माजी वहाँ गये और एकाग्रचित्तसे श्रीगरुड-ध्वज भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे।

पञ्चम अंश

वसुदेव-देवकीका विवाह, भारपीडिता पृथिवीका देवताओंके सहित क्षीरसमुद्रपर जाना और भगवान्‌का प्रकट होकर उसे धैर्य बँधाना

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! आपने राजाओंके सम्पूर्ण वंशोंका विस्तार तथा उनके चरित्रोंका क्रमशः यथावत् वर्णन किया, अब ब्रह्मर्षे! यदुकुलमें जो भगवान् विष्णुका अंशावतार हुआ था, उसे मैं विस्तारपूर्वक यथावत् सुनना चाहता हूँ। मुने! भगवान् पुरुषोत्तमने पृथिवीपर अवतीर्ण होकर जो-जो कर्म किये थे, उन सबका आप मुझसे वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! तुमने मुझसे जो पूछा है, वह संसारमें परम मङ्गलकारी भगवान् विष्णुके अंशावतारका चरित्र सुनो। महामुने! पूर्वकालमें देवककी महाभाग्यशालिनी पुत्री देवीस्वरूपा देवकीके साथ वसुदेवजीने विवाह किया। वसुदेव और देवकीके वैवाहिक सम्बन्ध होनेके अनन्तर विदा होते समय भोजनन्दन कंस सारथि बनकर उन दोनोंका माङ्गलिक रथ हाँकने लगा। उसी समय मेघके समान गम्भीर घोष करती हुई आकाशवाणी कंसको ऊँचे स्वरसे सम्बोधन करके यों बोली—'अरे मूढ! पतिके साथ रथपर बैठी हुई जिस देवकीको तू लिये जा रहा है, इसका आठवाँ गर्भ तेरे प्राण हर लेगा।'

यह सुनते ही महाबली कंस खड्ग निकालकर देवकीको मारनेके लिये उद्यत हुआ। तब वसुदेवजीने यों कहा—'महाभाग! आप देवकीका वध न करें; मैं इसके गर्भसे उत्पन्न हुए सभी बालक आपको सौंप दूँगा।'

द्विजोत्तम! तब सत्यके गौरवसे कंसने वसुदेवजीसे 'बहुत अच्छा' कह देवकीका वध नहीं किया। इसी समय अत्यन्त भारसे पीडित होकर पृथिवी गौका रूप धारणकर सुमेरुपर्वतपर देवताओंकी सभामें गयी। वहाँ उसने ब्रह्माजीके सहित समस्त देवताओंको प्रणामकर खेदपूर्वक करुणस्वरसे बोलते हुए अपना सारा वृत्तान्त कहा।

पृथिवी बोली—समस्त लोकोंके गुरु श्रीनारायण मेरे गुरु हैं। देवश्रेष्ठगण! आदित्य, मरुद्गण, साध्यगण, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, अग्नि, पितृगण और लोकोंकी सृष्टि करनेवाले अत्रि आदि प्रजापतिगण—ये सब अप्रमेय महात्मा विष्णुके ही रूप हैं। ग्रह, नक्षत्र तथा तारागणोंसे चित्रित आकाश, अग्नि, जल, वायु, मैं और इन्द्रियोंके सम्पूर्ण विषय—यह सारा जगत् विष्णुमय ही है।

इस समय कालनेमि आदि दैत्यगण मर्त्यलोकपर अधिकार जमाकर अहर्निश जनताको क्लेश पहुँचा रहे हैं। इन दिनों वह कालनेमि ही उग्रसेनके पुत्र महान् असुर कंसके रूपमें उत्पन्न हुआ है। अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द, बलिका पुत्र अति भयंकर बाणासुर आदि दैत्य उत्पन्न हो गये हैं तथा अन्य महाबलवान् दुरात्मा राक्षस राजाओंके घरमें उत्पन्न हो गये हैं, उनकी मैं गणना नहीं कर सकती। दिव्यमूर्तिधारी देवगण! इस समय मेरे ऊपर महाबलवान् और गर्वीले दैत्यराजोंकी अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ हैं। अमरेश्वरो! मैं आपलोगोंको यह बतलाये देती हूँ कि अब उनके अत्यन्त भारसे पीडित होनेके कारण मुझमें अपनेको धारण करनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी है। अतः महाभागगण! आपलोग मेरा भार उतारिये; जिससे मैं अत्यन्त व्याकुल होकर रसातलको न चली जाऊँ।

पृथिवीके इन वाक्योंको सुनकर उसके भार उतारनेके विषयमें समस्त देवताओंकी प्रेरणासे भगवान् ब्रह्माजीने कहना आरम्भ किया।

ब्रह्माजी बोले—देवगण! पृथिवीने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य ही है, वास्तवमें मैं, शङ्कर और आप सब लोग नारायणस्वरूप ही हैं। इसलिये आओ, अब हमलोग क्षीरसागरके पवित्र तटपर चलें और वहाँ श्रीहरिकी आराधना करके यह सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे निवेदन कर दें। वे विश्वरूप सर्वात्मा सर्वथा संसारके हितके लिये ही अवतीर्ण होकर पृथिवीपर धर्मकी स्थापना करते हैं।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ऐसा कहकर देवताओंके सहित पितामह ब्रह्माजी वहाँ गये और एकाग्रचित्तसे श्रीगरुडध्वज भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे।

मूलबन्ध इसपर उत्पन्न हुए महान् असुरोंके उत्पातसे शिथिल हो गये हैं। अतः अपरिमितवीर्य! यह अपना भार उतरवानेके लिये आपकी शरणमें आयी है। देवेश्वर! हम और यह इन्द्र, अश्विनीकुमार तथा वरुण, ये रुद्रगण, वसुगण, सूर्य, वायु और अग्नि आदि अन्य समस्त देवगण यहाँ उपस्थित हैं; इन्हें अथवा मुझे जो कुछ करना उचित हो, उन सब बातोंके लिये आज्ञा कीजिये। ईश! आपहीकी आज्ञाका पालन करते हुए हम सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो सकेंगे।

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने! इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् परमेश्वर देवताओंसे बोले—'मेरे ये दोनों केश पृथिवीपर अवतार लेकर पृथिवीके भाररूप कष्टको दूर करेंगे। सब देवगण अपने-अपने अंशोंसे पृथिवीपर अवतार लेकर अपनेसे पूर्व उत्पन्न हुए उन्मत्त दैत्योंके साथ युद्ध करें। तब मेरे दृष्टिपातसे दलित होकर पृथिवीतलपर सम्पूर्ण दैत्यगण निःसदेह क्षीण हो जायँगे। वसुदेवजीकी जो देवीके समान देवकी नामकी भार्या है, उसके आठवें गर्भसे मैं अवतार लूँगा और इस प्रकार वहाँ अवतार लेकर उस कंसका, जिसके रूपमें कालनेमि दैत्य ही उत्पन्न हुआ है, वध करूँगा।' ऐसा कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। महामुने! भगवान्‌के अदृश्य हो जानेपर उन्हें प्रणाम करके देवगण सुमेरुपर्वतपर चले गये और फिर पृथिवीपर अवतीर्ण हुए।

इसी समय भगवान् नारदजीने कंससे आकर कहा कि 'देवकीके आठवें गर्भमें भगवान् जन्म लेंगे।' नारदजीसे यह समाचार पाकर कंसने कुपित हो वसुदेव और देवकीको कारागृहमें बंद कर दिया। द्विज! वसुदेवजी भी, जैसा कि उन्होंने पहले कह दिया था, अपना प्रत्येक पुत्र कंसको सौंपते रहे। जिस अविद्या-रूपिणीसे सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है, वह योगनिद्रा भगवान् विष्णुकी महामाया है। उससे भगवान् श्रीहरिने कहा—

श्रीभगवान् बोले—निद्रे! जा, मेरी आज्ञासे तू पातालमें स्थित छः गर्भोंको एक-एक करके देवकीकी कुक्षिमें स्थापित कर दे। कंसद्वारा उन सबके मारे जानेपर शेषनामक मेरा अंश अपने अंशांशसे देवकीके सातवें गर्भमें स्थित होगा। देवि! गोकुलमें वसुदेवजीकी जो रोहिणी नामकी दूसरी भार्या रहती है, उसके उदरमें उस सातवें गर्भको ले जाकर तू इस प्रकार स्थापित कर देना, जिससे वह उसीके जठरसे उत्पन्न हुएके समान जान पड़े। उसके विषयमें संसार यही कहेगा कि 'कारागारमें बंद होनेके कारण भोजराज कंसके भयसे देवकीका सातवाँ गर्भ गिर गया।' वह शैलशिखरके समान वीर पुरुष गर्भसे आकर्षण किये जानेके कारण संसारमें 'संकर्षण' नामसे प्रसिद्ध होगा।

तदनन्तर शुभे! देवकीके आठवें गर्भमें मैं स्थित होऊँगा। उस समय तू भी तुरंत ही यशोदाके गर्भमें चली जाना। वर्षाऋतुमें भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको रात्रिके समय मैं जन्म लूँगा और तू नवमीको उत्पन्न होगी। अनिन्दिते! उस समय मेरी शक्तिसे अपनी मति फिर जानेके कारण वसुदेवजी मुझे तो यशोदाके और तुझे देवकीके शयनगृहमें ले जायँगे। तब देवि! कंस तुझे पकड़कर पर्वत-शिलापर पटक देगा; उसके पटकते ही तू आकाशमें स्थित हो जायगी।

उस समय मेरे गौरवसे सहस्रनयन इन्द्र सिर झुकाकर प्रणाम करनेके अनन्तर तुझे भगिनीरूपसे स्वीकार करेगा। फिर तू भी शुम्भ, निशुम्भ आदि सहस्र दैत्योंको मारकर अपने अनेक स्थानोंसे समस्त पृथ्वीको सुशोभित करेगी। तू ही भूति, सन्नति, क्षान्ति और कान्ति है; तू ही आकाश, पृथ्वी, धृति, लज्जा, पुष्टि और उषा है; इनके अतिरिक्त संसारमें और भी जो कोई शक्ति है, वह सब तू ही है।

जो लोग प्रातःकाल और सायंकालमें अत्यन्त नम्रतापूर्वक तुझे आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेमदा और भाग्यदा आदि कहकर तेरी स्तुति करेंगे, उनकी समस्त कामनाएँ मेरी कृपासे पूर्ण हो जायँगी। देवि! अब तू मेरे बतलाये हुए स्थानको जा।

भगवान्‌का आविर्भाव तथा योगमायाद्वारा कंसका तिरस्कार

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! देवदेव श्रीविष्णु भगवान्‌ने जैसा कहा था, उसके अनुसार जगद्धात्री योगमायाने छः गर्भोंको देवकीके उदरमें स्थित किया और सातवेंको उसमेंसे निकाल लिया। इस प्रकार सातवें गर्भके रोहिणीके उदरमें पहुँच जानेपर श्रीहरिने तीनों लोकोंका उद्धार करनेकी इच्छासे देवकीके गर्भमें प्रवेश किया। जैसा कि

मूलबन्ध इसपर उत्पन्न हुए महान् असुरोंके उत्पातसे शिथिल हो गये हैं। अतः अपरिमितवीर्य! यह अपना भार उतरवानेके लिये आपकी शरणमें आयी है। देवेश्वर! हम और यह इन्द्र, अश्विनीकुमार तथा वरुण, ये रुद्रगण, वसुगण, सूर्य, वायु और अग्नि आदि अन्य समस्त देवगण यहाँ उपस्थित हैं; इन्हें अथवा मुझे जो कुछ करना उचित हो, उन सब बातोंके लिये आज्ञा कीजिये। ईश! आपहीकी आज्ञाका पालन करते हुए हम सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो सकेंगे।

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने! इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् परमेश्वर देवताओंसे बोले—'मेरे ये दोनों केश पृथिवीपर अवतार लेकर पृथिवीके भाररूप कष्टको दूर करेंगे। सब देवगण अपने-अपने अंशोंसे पृथिवीपर अवतार लेकर अपनेसे पूर्व उत्पन्न हुए उन्मत्त दैत्योंके साथ युद्ध करें। तब मेरे दृष्टिपातसे दलित होकर पृथिवीतलपर सम्पूर्ण दैत्यगण निःसंदेह क्षीण हो जायँगे। वसुदेवजीकी जो देवीके समान देवकी नामकी भार्या है, उसके आठवें गर्भसे मैं अवतार लूँगा और इस प्रकार वहाँ अवतार लेकर उस कंसका, जिसके रूपमें कालनेमि दैत्य ही उत्पन्न हुआ है, वध करूँगा।' ऐसा कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। महामुने! भगवान्‌के अदृश्य हो जानेपर उन्हें प्रणाम करके देवगण सुमेरुपर्वतपर चले गये और फिर पृथिवीपर अवतीर्ण हुए।

इसी समय भगवान् नारदजीने कंससे आकर कहा कि 'देवकीके आठवें गर्भमें भगवान् जन्म लेंगे।' नारदजीसे यह समाचार पाकर कंसने कुपित हो वसुदेव और देवकीको कारागृहमें बंद कर दिया। द्विज! वसुदेवजी भी, जैसा कि उन्होंने पहले कह दिया था, अपना प्रत्येक पुत्र कंसको सौंपते रहे। जिस अविद्या-रूपिणीसे सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है, वह योगनिद्रा भगवान् विष्णुकी महामाया है। उससे भगवान् श्रीहरिने कहा—

श्रीभगवान् बोले—निद्रे! जा, मेरी आज्ञासे तू पातालमें स्थित छः गर्भोंको एक-एक करके देवकीकी कुक्षिमें स्थापित कर दे। कंसद्वारा उन सबके मारे जानेपर शेषनामक मेरा अंश अपने अंशांशसे देवकीके सातवें गर्भमें स्थित होगा। देवि! गोकुलमें वसुदेवजीकी जो रोहिणी नामकी दूसरी भार्या रहती है, उसके उदरमें उस सातवें गर्भको ले जाकर तू इस प्रकार स्थापित कर देना, जिससे वह उसीके जठरसे उत्पन्न हुएके समान जान पड़े। उसके विषयमें संसार यही कहेगा कि 'कारागारमें बंद होनेके कारण भोजराज कंसके भयसे देवकीका सातवाँ गर्भ गिर गया।' वह शैलशिखरके समान वीर पुरुष गर्भसे आकर्षण किये जानेके कारण संसारमें 'संकर्षण' नामसे प्रसिद्ध होगा।

तदनन्तर शुभे! देवकीके आठवें गर्भमें मैं स्थित होऊँगा। उस समय तू भी तुरंत ही यशोदाके गर्भमें चली जाना। वर्षाऋतुमें भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको रात्रिके समय मैं जन्म लूँगा और तू नवमीको उत्पन्न होगी। अनिन्दिते! उस समय मेरी शक्तिसे अपनी मति फिर जानेके कारण वसुदेवजी मुझे तो यशोदाके और तुझे देवकीके शयनगृहमें ले जायँगे। तब देवि! कंस तुझे पकड़कर पर्वत-शिलापर पटक देगा; उसके पटकते ही तू आकाशमें स्थित हो जायगी।

उस समय मेरे गौरवसे सहस्रनयन इन्द्र सिर झुकाकर प्रणाम करनेके अनन्तर तुझे भगिनीरूपसे स्वीकार करेगा। फिर तू भी शुम्भ, निशुम्भ आदि सहस्र दैत्योंको मारकर अपने अनेक स्थानोंसे समस्त पृथ्वीको सुशोभित करेगी। तू ही भूति, सन्नति, क्षान्ति और कान्ति है; तू ही आकाश, पृथ्वी, धृति, लज्जा, पुष्टि और उषा है; इनके अतिरिक्त संसारमें और भी जो कोई शक्ति है, वह सब तू ही है।

जो लोग प्रातःकाल और सायंकालमें अत्यन्त नम्रता-पूर्वक तुझे आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेमदा और भाग्यदा आदि कहकर तेरी स्तुति करेंगे, उनकी समस्त कामनाएँ मेरी कृपासे पूर्ण हो जायँगी। देवि! अब तू मेरे बतलाये हुए स्थानको जा।

भगवान्‌का आविर्भाव तथा योगमायाद्वारा कंसका तिरस्कार

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! देवदेव श्रीविष्णु भगवान्‌ने जैसा कहा था, उसके अनुसार जगद्धात्री योगमायाने छः गर्भोंको देवकीके उदरमें स्थित किया और सातवेंको उसमेंसे निकाल लिया। इस प्रकार सातवें गर्भके रोहिणीके उदरमें पहुँच जानेपर श्रीहरिने तीनों लोकोंका उद्धार करनेकी इच्छासे देवकीके गर्भमें प्रवेश किया। जैसा कि

द्विज ! तदनन्तर बालकके रोनेका शब्द सुनकर कारागृह-रक्षक सहसा उठ खड़े हुए और देवकीके संतान उत्पन्न होनेका वृत्तान्त कंसको सुना दिया । यह सुनते ही कंसने तुरंत जाकर देवकीके रुँधे हुए कण्ठसे 'छोड़, छोड़'—ऐसा कहकर रोकनेपर भी उस बालिकाको पकड़ लिया और उसे एक शिलापर पटक दिया । उसके पटकते ही वह आकाशमें स्थित हो गयी और उसने शस्त्रयुक्त एक महान् अष्टभुजरूप धारण कर लिया ।

तब उसने ऊँचे स्वरसे अट्टहास किया और कंससे रोषपूर्वक कहा—'अरे कंस ! मुझे पटकनेसे तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ ? जो तेरा वध करेगा, उसने तो पहले ही जन्म ले लिया है । देवताओंके सर्वस्वरूप वे हरि ही पूर्वजन्ममें भी तेरे काल थे । अतः ऐसा जानकर तू शीघ्र ही अपने हितका उपाय कर ।' ऐसा कह, वह दिव्य माला और चन्दनादिसे विभूषिता तथा सिद्धगणद्वारा स्तुति की जाती हुई देवी भोजराज कंसके देखते-देखते आकाशमार्गसे चली गयी ।

कंसका असुरोंको आदेश तथा वसुदेव-देवकीका कारागारसे मोक्ष

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब कंसने खिन्न-चित्तसे प्रलम्ब और केशी आदि समस्त मुख्य-मुख्य असुरोंको बुलाकर कहा ।

कंस बोला—प्रलम्ब ! महाबाहो केशिन् ! धेनुक ! पूतने ! तथा अरिष्ट आदि अन्य असुरगण ! मेरा वचन सुनो—यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि दुरात्मा देवताओंने मेरे मारनेके लिये कोई यत्न किया है; किंतु मैं वीर पुरुष इन लोगोंको कुछ भी नहीं गिनता हूँ । अल्पवीर्य इन्द्र, अकेले घूमनेवाले महादेव अथवा छिद्र (असावधानीका समय) ढूँढ़कर दैत्योंका वध करनेवाले विष्णुसे उनका क्या कार्य सिद्ध हो सकता है ? मेरे बाहुबलसे दलित आदित्यों, अल्पवीर्य वसुगणों, अग्नियों अथवा अन्य समस्त देवताओंसे भी मेरा क्या अनिष्ट हो सकता है ?

आपलोगोंने क्या देखा नहीं था कि मेरे साथ युद्धभूमिमें आकर देवराज इन्द्र, अपनी पीठपर बाणोंकी बौछार सहता हुआ भाग गया था । जिस समय इन्द्रने मेरे राज्यमें वर्षाका होना बंद कर दिया था, उस समय क्या मेघोंने मेरे बाणोंसे बिंधकर ही यथेष्ट जल नहीं बरसाया ? हमारे श्वशुर जरासन्धको छोड़कर क्या पृथ्वीके और सभी नृपतिगण मेरे बाहुबलसे भयभीत होकर मेरे सामने सिर नहीं झुकाते ?

दैत्यश्रेष्ठगण ! देवताओंके प्रति मेरे चित्तमें अवज्ञा होती है और वीरगण ! उन्हें अपने (मेरे) वधका यत्न करते देखकर तो मुझे हँसी आती है । तथापि दैत्येन्द्रो ! उन दुष्ट और दुरात्माओंके अपकारके लिये मुझे और भी अधिक प्रयत्न करना चाहिये । अतः पृथ्वीमें जो कोई यशस्वी और यज्ञकर्ता हों, उनका देवताओंके अपकारके लिये सर्वथा वध कर देना चाहिये ।

देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुई बालिकाने यह भी कहा है कि 'वह तुझे मारनेवाला निश्चय ही उत्पन्न हो चुका है । अतः जिस बालकमें विशेष बलका उद्रेक हो, उसे यत्नपूर्वक मार डालना चाहिये । असुरोंको ऐसी आज्ञा दे कसने कारागृहमें जाकर तुरंत ही वसुदेव और देवकीको बन्धनसे मुक्त कर दिया ।

कंस बोला—मैंने अबतक आप दोनोंके बालकोंकी तो वृथा ही हत्या की, मेरा नाश करनेके लिये तो कोई और ही बालक उत्पन्न हो गया है । परंतु आपलोग इसका कुछ दुःख न मानें; क्योंकि उन बालकोंकी होनहार ऐसी ही थी ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ ! उन्हें इस प्रकार ढाँढस बँधा और बन्धनसे मुक्त कर कंसने शङ्कित चित्तसे अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया ।

पूतना-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—बन्दीगृहसे छूटते ही वसुदेवजी मथुरामें आये हुए नन्दजीके छकड़ेके पास गये तो उन्हें इस समाचारसे अत्यन्त प्रसन्न देखा कि 'मेरे पुत्रका जन्म हुआ है' । तब वसुदेवजीने भी उनसे आदरपूर्वक कहा—'अब वृद्धावस्थामें भी आपने पुत्रका मुख देख लिया यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है । आपलोग जिस लिये यहाँ

द्विज ! तदनन्तर बालकके रोनेका शब्द सुनकर कारागृह-रक्षक सहसा उठ खड़े हुए और देवकीके संतान उत्पन्न होनेका वृत्तान्त कंसको सुना दिया। यह सुनते ही कंसने तुरंत जाकर देवकीके रुँधे हुए कण्ठसे 'छोड़, छोड़'—ऐसा कहकर रोकनेपर भी उस बालिकाको पकड़ लिया और उसे एक शिलापर पटक दिया। उसके पटकते ही वह आकाशमें स्थित हो गयी और उसने शस्त्रयुक्त एक महान् अष्टभुजरूप धारण कर लिया।

तब उसने ऊँचे स्वरसे अट्टहास किया और कंससे रोषपूर्वक कहा—'अरे कंस ! मुझे पटकनेसे तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ ? जो तेरा वध करेगा, उसने तो पहले ही जन्म ले लिया है। देवताओंके सर्वस्वरूप वे हरि ही पूर्वजन्ममें भी तेरे काल थे। अतः ऐसा जानकर तू शीघ्र ही अपने हितका उपाय कर।' ऐसा कह, वह दिव्य माला और चन्दनादिसे विभूषिता तथा सिद्धगणद्वारा स्तुति की जाती हुई देवी भोजराज कंसके देखते-देखते आकाशमार्गसे चली गयी।

कंसका असुरोंको आदेश तथा वसुदेव-देवकीका कारागारसे मोक्ष

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब कंसने खिन्न-चित्तसे प्रलम्ब और केशी आदि समस्त मुख्य-मुख्य असुरोंको बुलाकर कहा।

कंस बोला—प्रलम्ब ! महाबाहो केशिन् ! धेनुक ! पूतने ! तथा अरिष्ट आदि अन्य असुरगण ! मेरा वचन सुनो—यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि दुरात्मा देवताओंने मेरे मारनेके लिये कोई यत्न किया है; किंतु मैं वीर पुरुष इन लोगोंको कुछ भी नहीं गिनता हूँ। अल्पवीर्य इन्द्र, अकेले घूमनेवाले महादेव अथवा छिद्र (असावधानीका समय) ढूँढ़कर दैत्योंका वध करनेवाले विष्णुसे उनका क्या कार्य सिद्ध हो सकता है ? मेरे बाहुबलसे दलित आदित्यों, अल्पवीर्य वसुगणों, अग्नियों अथवा अन्य समस्त देवताओंसे भी मेरा क्या अनिष्ट हो सकता है ?

आपलोगोंने क्या देखा नहीं था कि मेरे साथ युद्धभूमिमें आकर देवराज इन्द्र, अपनी पीठपर बाणोंकी बौछार सहता हुआ भाग गया था। जिस समय इन्द्रने मेरे राज्यमें वर्षाका होना बंद कर दिया था, उस समय क्या मेघोंने मेरे बाणोंसे बिंधकर ही यथेष्ट जल नहीं बरसाया ? हमारे श्वशुर जरासन्धको छोड़कर क्या पृथ्वीके और सभी नृपतिगण मेरे बाहुबलसे भयभीत होकर मेरे सामने सिर नहीं झुकाते ?

दैत्यश्रेष्ठगण ! देवताओंके प्रति मेरे चित्तमें अवज्ञा होती है और वीरगण ! उन्हें अपने (मेरे) वधका यत्न करते देखकर तो मुझे हँसी आती है। तथापि दैत्येन्द्रो ! उन दुष्ट और दुरात्माओंके अपकारके लिये मुझे और भी अधिक प्रयत्न करना चाहिये। अतः पृथ्वीमें जो कोई यशस्वी और यज्ञकर्ता हों, उनका देवताओंके अपकारके लिये सर्वथा वध कर देना चाहिये।

देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुई बालिकाने यह भी कहा है कि 'वह तुझे मारनेवाला निश्चय ही उत्पन्न हो चुका है।' अतः जिस बालकमें विशेष बलका उद्रेक हो, उसे यत्नपूर्वक मार डालना चाहिये। असुरोंको ऐसी आज्ञा दे कंसने कारागृहमें जाकर तुरंत ही वसुदेव और देवकीको बन्धनसे मुक्त कर दिया।

कंस बोला—मैंने अबतक आप दोनोंके बालकोंकी तो वृथा ही हत्या की, मेरा नाश करनेके लिये तो कोई और ही बालक उत्पन्न हो गया है। परंतु आपलोग इसका कुछ दुःख न मानें; क्योंकि उन बालकोंकी होनहार ऐसी ही थी।

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ ! उन्हें इस प्रकार ढाँढस बँधा और बन्धनसे मुक्त कर कंसने शङ्कित चित्तसे अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया।

पूतना-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—बन्दीगृहसे छूटते ही वसुदेवजी मथुरामें आये हुए नन्दजीके छकड़ेके पास गये तो उन्हें इस समाचारसे अत्यन्त प्रसन्न देखा कि 'मेरे पुत्रका जन्म हुआ है'। तब वसुदेवजीने भी उनसे आदरपूर्वक कहा—'अब वृद्धावस्थामें भी आपने पुत्रका मुख देख लिया यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। आपलोग जिस लिये यहाँ

सकी तो उसने श्रीकृष्णको रस्सीसे कटिभागमें कसकर ऊखलमें

बाँध दिया और रोषपूर्वक इस प्रकार कहने लगी—'अरे चञ्चल! अब तुझमें सामर्थ्य हो तो चला जा।' ऐसा कहकर यशोदा अपने घरके धंधेमें लग गयी।

उसके गृहकार्यमें व्यग्र हो जानेपर कमलनयन श्रीकृष्ण ऊखलको खींचते-खींचते यमलार्जुनके बीचमें गये और उन दोनों वृक्षोंके बीचमें तिरछी पडी हुई ऊखलको खींचते हुए उन्होंने ऊँची शाखाओंवाले यमलार्जुन नामक दो वृक्षोंको उखाड़ डाला। तब उनके उखड़नेका कट-कट शब्द सुनकर वहाँ व्रजवासी लोग दौड़ आये और उन दोनों महावृक्षोंको तथा उनके बीचमें कमरमें रस्सीसे कसकर बँधे हुए बालकको नन्हे-नन्हे अल्प दाँतोंकी श्वेत किरणोंसे शुभ्र हास करते देखा। तभीसे उदरमें दाम (रस्सी) द्वारा बँधनेके कारण उनका नाम 'दामोदर' पड़ा।

तब नन्दगोप आदि समस्त वृद्ध गोपोंने महान् उत्पातोंके कारण अत्यन्त भयभीत होकर आपसमें यह सलाह की—'अब इस स्थानपर रहनेका हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, हमें किसी और महावनको चलना चाहिये; क्योंकि यहाँ पूतना-वध, छकड़ेका लोट जाना तथा आँधी आदि किसी दोषके बिना ही वृक्षोंका गिर पड़ना इत्यादि बहुतसे उत्पात दिखायी देने लगे हैं।'

तब वे व्रजवासी वत्सपाल दल बाँधकर एक क्षणमें ही छकडों और गौओंके साथ उन्हें हाँकते हुए चल दिये।

तब लीलाविहारी भगवान् श्रीकृष्णने गौओंकी अभिवृद्धिकी इच्छासे वृन्दावनका चिन्तन किया। इससे, द्विजोत्तम! अत्यन्त रूक्ष ग्रीष्मकालमें भी वहाँ वर्षाऋतुके समान सब ओर नवीन दूब उत्पन्न हो गयी। तब वह व्रज चारों ओर अर्द्धचन्द्राकार छकड़ोंकी बाड़ लगाकर स्थित हुए व्रजवासियोंसे बस गया।

तदनन्तर राम और श्रीकृष्ण भी बछड़ोंके रक्षक हो गये और एक स्थानपर रहकर गोष्ठमें बाललीला करते हुए विचरने लगे। वे दोनों बालक सिरपर मयूर-पिच्छका मुकुट धारणकर तथा वन्यपुष्पोंके कर्णभूषण पहन ग्वालोचित वंशी आदिसे सब प्रकारके बाजोंकी ध्वनि करते तथा पत्तोंके बाजेसे ही नाना प्रकारकी ध्वनि निकालते तथा हँसते और खेलते हुए उस महावनमें विचरने लगे। कभी एक-दूसरेको अपनी पीठपर ले जाते हुए खेलते तथा कभी अन्य ग्वालबालोंके साथ खेलते हुए वे बछड़ोंको चराते साथ-साथ घूमते रहते। इस प्रकार उस महाव्रजमें रहते-रहते कुछ समय बीतनेपर वे निखिललोकपालक वत्सपाल सात वर्षके हो गये।

तब मेघसमूहसे आकाशको आच्छादित करता हुआ तथा अतिशय वारिधाराओंसे दिशाओंको एकरूप करता हुआ वर्षाकाल आया। उस समय नवीन दूर्वाके बढ़ जाने और वीरबहूटियोंसे* व्याप्त हो जानेके कारण पृथ्वी पद्मरागविभूषिता मरकतमयी-सी जान पड़ने लगी।

उस समय उन्मत्त मयूर और चातकगणसे सुशोभित महावनमें श्रीकृष्ण और बलराम प्रसन्नतापूर्वक गोपकुमारोंके साथ विचरने लगे। वे दोनों कभी गौओंके साथ मनोहर गान और तान छेड़ते तथा कभी अत्यन्त शीतल वृक्षतलका आश्रय लेते हुए विचरते रहते। वे कभी तो कदम्ब-पुष्पोंके हारसे विचित्र वेष बना लेते, कभी मयूर-पिच्छकी मालासे सुशोभित होते और कभी नाना प्रकारकी पर्वतीय धातुओंसे अपने शरीरको लिप्त कर लेते। कभी दूसरे गोपोंके गानेपर आप दोनों उसकी प्रशंसा करते और कभी ग्वालोंकी-सी बाँसुरी बजाते।

इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त प्रीतिके साथ नाना प्रकारके भावोंसे परस्पर खेलते हुए प्रसन्नचित्तसे उस वनमें विचरने लगे। सायंकालके समय वे महाबली बालक वनमें यथायोग्य विहार करनेके अनन्तर गौ और ग्वालबालोंके साथ व्रजमें लौट आते थे।

—०—

* एक प्रकारके लाल कीड़े, जो वर्षाकालमें उत्पन्न होते हैं, उन्हें इन्द्रगोप या वीरबहूटी कहते हैं।

सकी तो उसने श्रीकृष्णको रस्सीसे कटिभागमें कसकर ऊखलमें

बाँध दिया और रोषपूर्वक इस प्रकार कहने लगी—'अरे चञ्चल ! अब तुझमें सामर्थ्य हो तो चला जा।' ऐसा कहकर यशोदा अपने घरके धंधेमें लग गयी।

उसके गृहकार्यमें व्यग्र हो जानेपर कमलनयन श्रीकृष्ण ऊखलको खींचते-खींचते यमलार्जुनके बीचमें गये और उन दोनों वृक्षोंके बीचमें तिरछी पड़ी हुई ऊखलको खींचते हुए उन्होंने ऊँची शाखाओंवाले यमलार्जुन नामक दो वृक्षोंको उखाड़ डाला। तब उनके उखड़नेका कट-कट शब्द सुनकर वहाँ व्रजवासी लोग दौड़ आये और उन दोनों महावृक्षोंको तथा उनके बीचमें कमरमें रस्सीसे कसकर बँधे हुए बालकको नन्हे-नन्हे अल्प दाँतोंकी श्वेत किरणोंसे शुभ्र हास करते देखा। तभीसे उदरमें दाम (रस्सी) द्वारा बँधनेके कारण उनका नाम 'दामोदर' पड़ा।

तब नन्दगोप आदि समस्त वृद्ध गोपोंने महान् उत्पातोंके कारण अत्यन्त भयभीत होकर आपसमें यह सलाह की—'अब इस स्थानपर रहनेका हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, हमें किसी और महावनको चलना चाहिये; क्योंकि यहाँ पूतना-वध, छकड़ेका लोट जाना तथा आँधी आदि किसी दोषके बिना ही वृक्षोंका गिर पड़ना इत्यादि बहुतसे उत्पात दिखायी देने लगे हैं।'

तब वे व्रजवासी वत्सपाल दल बाँधकर एक क्षणमें ही छकड़ों और गौओंके साथ उन्हें हाँकते हुए चल दिये।

तब लीलाविहारी भगवान् श्रीकृष्णने गौओंकी अभिवृद्धिकी इच्छासे वृन्दावनका चिन्तन किया। इससे, द्विजोत्तम! अत्यन्त रूक्ष ग्रीष्मकालमें भी वहाँ वर्षाऋतुके समान सब ओर नवीन दूब उत्पन्न हो गयी। तब वह व्रज चारों ओर अर्द्धचन्द्राकार छकड़ोंकी बाड़ लगाकर स्थित हुए व्रजवासियोंसे बस गया।

तदनन्तर राम और श्रीकृष्ण भी बछड़ोंके रक्षक हो गये और एक स्थानपर रहकर गोष्ठमें बाललीला करते हुए विचरने लगे। वे दोनों बालक सिरपर मयूर-पिच्छका मुकुट धारणकर तथा वन्यपुष्पोंके कर्णभूषण पहन ग्वालोचित वंशी आदिसे सब प्रकारके बाजोंकी ध्वनि करते तथा पत्तोंके बाजेसे ही नाना प्रकारकी ध्वनि निकालते तथा हँसते और खेलते हुए उस महावनमें विचरने लगे। कभी एक-दूसरेको अपनी पीठपर ले जाते हुए खेलते तथा कभी अन्य ग्वालबालोंके साथ खेलते हुए वे बछड़ोंको चराते साथ-साथ घूमते रहते। इस प्रकार उस महाव्रजमें रहते-रहते कुछ समय बीतनेपर वे निखिललोकपालक वत्सपाल सात वर्षके हो गये।

तब मेघसमूहसे आकाशको आच्छादित करता हुआ तथा अतिशय वारिधाराओंसे दिशाओंको एकरूप करता हुआ वर्षाकाल आया। उस समय नवीन दूर्वाके बढ़ जाने और वीरबहूटियोंसे* व्याप्त हो जानेके कारण पृथ्वी पद्मरागविभूषिता मरकतमयी-सी जान पड़ने लगी।

उस समय उन्मत्त मयूर और चातकगणसे सुशोभित महावनमें श्रीकृष्ण और बलराम प्रसन्नतापूर्वक गोपकुमारोंके साथ विचरने लगे। वे दोनों कभी गौओंके साथ मनोहर गान और तान छेड़ते तथा कभी अत्यन्त शीतल वृक्षतलका आश्रय लेते हुए विचरते रहते। वे कभी तो कदम्ब-पुष्पोंके हारसे विचित्र वेष बना लेते, कभी मयूर-पिच्छकी मालासे सुशोभित होते और कभी नाना प्रकारकी पर्वतीय धातुओंसे अपने शरीरको लिप्त कर लेते। कभी दूसरे गोपोंके गानेपर आप दोनों उसकी प्रशंसा करते और कभी ग्वालोंकी-सी बाँसुरी बजाते।

इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त प्रीतिके साथ नाना प्रकारके भावोंसे परस्पर खेलते हुए प्रसन्नचित्तसे उस वनमें विचरने लगे। सायंकालके समय वे महाबली बालक वनमें यथायोग्य विहार करनेके अनन्तर गौ और ग्वालबालोंके साथ व्रजमें लौट आते थे।

---

* एक प्रकारके लाल कीड़े, जो वर्षाकालमें उत्पन्न होते हैं, उन्हें इन्द्रगोप या वीरबहूटी कहते हैं।

करते हैं। जगन्नाथ ! संसारके हितके लिये पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छासे ही आपने मर्त्यलोकमें अवतार लिया है; आपका अग्रज मैं भी आपहीका अंश हूँ। श्रीकृष्ण ! यहाँ अवतीर्ण होनेपर हम दोनोंके तो ये गोप और गोपियाँ ही बान्धव हैं; फिर अपने इन दुखी बान्धवोंकी आप क्यों उपेक्षा करते हैं। श्रीकृष्ण ! यह मनुष्यभाव और बालचापल्य तो आप बहुत दिखा चुके, अब तो शीघ्र ही इस दुष्टात्माका, जिसके शस्त्र दाँत ही हैं, दमन कीजिये।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर, मधुर मुसकानसे अपने ओष्ठसम्पुटको खोलते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने उछलकर अपने शरीरको सर्पके बन्धनसे छुड़ा लिया और फिर अपने दोनों हाथोंसे उसका बीचका फण झुकाकर उस नतमस्तक सर्पके ऊपर चढ़कर बड़े वेगसे नाचने लगे।

श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी धमकसे उसके प्राण मुखमें आ गये, वह अपने जिस मस्तकको उठाता उसीपर कूदकर भगवान् उसे झुका देते। श्रीकृष्णचन्द्रजीकी भ्रान्ति (भ्रम), रेचक तथा दण्डपात नामकी नृत्यसम्बन्धिनी गतियोंके द्वारा ताडनसे वह महासर्प मूर्छित हो गया और उसने बहुत-सा रुधिर वमन किया। इस प्रकार उसके सिर और ग्रीवाओंको झुके हुए तथा मुखोंसे रुधिर बहता देख उसकी पत्नियाँ करुणासे भरकर श्रीकृष्णचन्द्रके पास आयीं।

नागपत्नियाँ बोलीं—देवदेवेश्वर ! हमने आपको पहचान लिया; आप सर्वज्ञ और सर्वश्रेष्ठ हैं; जो अचिन्त्य और परम ज्योति है, आप उसीके अंश परमेश्वर हैं। जिन स्वयम्भू और व्यापक प्रभुकी स्तुति करनेमें देवगण भी समर्थ नहीं हैं, उन्हीं आपके स्वरूपका हम स्त्रियाँ किस प्रकार वर्णन कर सकती हैं ? पृथिवी, आकाश, जल, अग्नि और वायुस्वरूप यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनका छोटे-से-छोटा अंश है, उनकी स्तुति हम किस प्रकार कर सकेंगी। योगिजन जिनके नित्य-स्वरूपको यत्न करनेपर भी नहीं जान पाते तथा जो परमार्थ-रूप अणुसे भी अणु और स्थूलसे भी स्थूल है, उसे हम नमस्कार करती हैं *। जिनके जन्ममें विधाता और अन्तमें काल हेतु नहीं हैं तथा जिनका स्थितिकर्ता भी कोई अन्य नहीं है, उन्हे सर्वदा नमस्कार है। इस कालियनागके दमनमें आपको थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं है, केवल लोकरक्षा ही इसका हेतु है; अतः हमारा निवेदन सुनिये। क्षमाशीलोंमें श्रेष्ठ ! साधु पुरुषोंको स्त्रियों तथा मूढ और दीन जन्तुओंपर सदा ही कृपा करनी चाहिये; अतः आप इस दीनका अपराध क्षमा कीजिये। प्रभो ! आप सम्पूर्ण संसारके अधिष्ठान हैं और यह सर्प तो आपकी अपेक्षा अत्यन्त बलहीन है। आपके चरणोंसे पीड़ित होकर तो यह आधे मुहूर्तमें ही अपने प्राण छोड़ देगा।

अव्यय ! प्रीति समानसे और द्वेष उत्कृष्टसे देखे जाते हैं; फिर कहाँ तो यह अल्पवीर्य सर्प और कहाँ अखिलभुवनाश्रय आप ? अतः जगत्स्वामिन् ! इस दीनपर दया कीजिये। भुवनेश्वर ! जगन्नाथ ! महापुरुष ! पूर्वज ! यह नाग अब अपने प्राण छोड़ना ही चाहता है; कृपया आप हमें पतिकी भिक्षा दीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—नागपत्नियोंके ऐसा कहने-पर थका-माँदा होनेपर भी नागराज कुछ धीरज धरकर धीरे-धीरे कहने लगा—'देवदेव ! प्रसन्न होइये।'

कालियनाग बोला—नाथ ! आपका स्वाभाविक अष्ट-गुणविशिष्ट परम ऐश्वर्य निरतिशय है अर्थात् आपसे बढकर किसीका भी ऐश्वर्य नहीं है, अतः मैं किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकूँगा ? आप पर हैं, पर (मूलप्रकृति) के भी आदिकारण हैं, परात्मक ! परकी प्रवृत्ति भी आपहीसे हुई है।

---

* यतन्तो न विदुर्नित्यं यत्स्वरूपं हि योगिनः।
परमार्थमणोरल्पं स्थूलात् स्थूलं नताः स्म तम्॥
(वि० पु० ५। ७। ५१)

करते हैं। जगन्नाथ ! संसारके हितके लिये पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छासे ही आपने मर्त्यलोकमें अवतार लिया है; आपका अग्रज मैं भी आपहीका अंश हूँ। श्रीकृष्ण ! यहाँ अवतीर्ण होनेपर हम दोनोंके तो ये गोप और गोपियाँ ही बान्धव हैं; फिर अपने इन दुखी बान्धवोंकी आप क्यों उपेक्षा करते हैं। श्रीकृष्ण ! यह मनुष्यभाव और बालचापल्य तो आप बहुत दिखा चुके, अब तो शीघ्र ही इस दुष्टात्माका, जिसके शस्त्र दाँत ही हैं, दमन कीजिये।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर, मधुर मुसकानसे अपने ओष्ठसम्पुटको खोलते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने उछलकर अपने शरीरको सर्पके बन्धनसे छुड़ा लिया और फिर अपने दोनों हाथोंसे उसका बीचका फण झुकाकर उस नतमस्तक सर्पके ऊपर चढ़कर बड़े वेगसे नाचने लगे।

श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी धमकसे उसके प्राण मुखमें आ गये, वह अपने जिस मस्तकको उठाता उसीपर कूदकर भगवान् उसे झुका देते। श्रीकृष्णचन्द्रजीकी भ्रान्ति (भ्रम), रेचक तथा दण्डपात नामकी नृत्यसम्बन्धिनी गतियोंके द्वारा ताडनसे वह महासर्प मूर्छित हो गया और उसने बहुत-सा रुधिर वमन किया। इस प्रकार उसके सिर और ग्रीवाओंको झुके हुए तथा मुखोंसे रुधिर बहता देख उसकी पत्नियाँ करुणासे भरकर श्रीकृष्णचन्द्रके पास आयीं।

नागपत्नियाँ बोलीं—देवदेवेश्वर ! हमने आपको पहचान लिया; आप सर्वज्ञ और सर्वश्रेष्ठ हैं; जो अचिन्त्य और परम ज्योति है, आप उसीके अंश परमेश्वर हैं। जिन स्वयम्भू और व्यापक प्रभुकी स्तुति करनेमें देवगण भी समर्थ नहीं हैं, उन्हीं आपके स्वरूपका हम स्त्रियाँ किस प्रकार वर्णन कर सकती हैं ? पृथिवी, आकाश, जल, अग्नि और वायुस्वरूप यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनका छोटे-से-छोटा अंश है, उनकी स्तुति हम किस प्रकार कर सकेंगी। योगिजन जिनके नित्य-स्वरूपको यत्न करनेपर भी नहीं जान पाते तथा जो परमार्थ-रूप अणुसे भी अणु और स्थूलसे भी स्थूल है, उसे हम नमस्कार करती हैं *। जिनके जन्ममें विधाता और अन्तमें काल हेतु नहीं हैं तथा जिनका स्थितिकर्ता भी कोई अन्य नहीं है, उन्हें सर्वदा नमस्कार है। इस कालियनागके दमनमें आपको थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं है, केवल लोकरक्षा ही इसका हेतु है; अतः हमारा निवेदन सुनिये। क्षमाशीलोंमें श्रेष्ठ ! साधु पुरुषोंको स्त्रियों तथा मूढ और दीन जन्तुओंपर सदा ही कृपा करनी चाहिये; अतः आप इस दीनका अपराध क्षमा कीजिये। प्रभो ! आप सम्पूर्ण संसारके अधिष्ठान हैं और यह सर्प तो आपकी अपेक्षा अत्यन्त बलहीन है। आपके चरणोंसे पीड़ित होकर तो यह आधे मुहूर्तमें ही अपने प्राण छोड़ देगा।

अव्यय ! प्रीति समानसे और द्वेष उत्कृष्टसे देखे जाते हैं; फिर कहाँ तो यह अल्पवीर्य सर्प और कहाँ अखिलभुवनाश्रय आप ? अतः जगत्स्वामिन् ! इस दीनपर दया कीजिये। भुवनेश्वर ! जगन्नाथ ! महापुरुष ! पूर्वज ! यह नाग अब अपने प्राण छोड़ना ही चाहता है; कृपया आप हमें पतिकी भिक्षा दीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—नागपत्नियोंके ऐसा कहनेपर थका-माँदा होनेपर भी नागराज कुछ धीरज धरकर धीरे-धीरे कहने लगा—'देवदेव ! प्रसन्न होइये।'

कालियनाग बोला—नाथ ! आपका स्वाभाविक अष्ट-गुणविशिष्ट परम ऐश्वर्य निरतिशय है अर्थात् आपसे बढकर किसीका भी ऐश्वर्य नहीं है, अतः मैं किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकूँगा ? आप पर हैं, पर (मूलप्रकृति) के भी आदिकारण हैं, परात्मक ! परकी प्रवृत्ति भी आपहीसे हुई है।

* यतन्तो न विदुर्नित्यं यत्स्वरूपं हि योगिनः ।
परमार्थमणोरल्पं स्थूलात् स्थूलं नता. स तम् ॥
(वि० पु० ५ । ७ । ५१)

गया तो उसे अत्यन्त वेगसे उस तालवृक्षपर ही दे मारा। उसके सजातीय अन्य गर्दभासुरोंके आनेपर भी श्रीकृष्ण और बलरामने उन्हें अनायास ही तालवृक्षोंपर पटक दिया। द्विज! तबसे उस तालवनमें गौएँ निर्विघ्न होकर सुखपूर्वक नवीन तृण चरने लगीं।

तदनन्तर धेनुकासुरको मारकर वे दोनों वसुदेवपुत्र प्रसन्न-मनसे भाण्डीर नामक वटवृक्षके तले आये। वे समस्त लोकपालोंके प्रभु पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर नाना प्रकारकी लौकिक लीलाओंसे परस्पर खेल रहे थे। इसी समय उन दोनों खेलते हुए बालकोंको उठा ले जानेकी इच्छासे प्रलम्ब नामक दैत्य गोपवेषमें अपनेको छिपाकर वहाँ आया। दानवश्रेष्ठ प्रलम्ब मनुष्य न होनेपर भी मनुष्यरूप धारणकर निश्शङ्कभावसे उन बालकोंके बीच घुस गया।

तदनन्तर वे समस्त ग्वालबाल हरिणाक्रीडन* नामक खेल खेलते हुए आपसमें एक साथ दो-दो बालक उठे। तब श्रीदामाके साथ श्रीकृष्णचन्द्र, प्रलम्बके साथ बलराम और इसी प्रकार अन्यान्य गोपोंके साथ और-और ग्वालबाल होड़ बदकर उछलते हुए चलने लगे। अन्तमें श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीदामाको, बलरामजीने प्रलम्बको तथा अन्यान्य कृष्णपक्षीय गोपोंने अपने प्रतिपक्षियोंको हरा दिया।

उस खेलमें जो-जो बालक हारे थे वे सब जीतनेवालोंको अपने-अपने कंधोंपर चढाकर भाण्डीरवटतक ले जाकर वहाँसे फिर लौट आये, किंतु प्रलम्बासुर अपने कंधेपर बलरामजीको चढाकर अत्यन्त वेगसे आकाशमण्डलको चल दिया। वह दानवश्रेष्ठ श्रीबलभद्रजीके भारको सहन न कर सकनेके कारण वर्षाकालीन मेघके समान बढ़कर अत्यन्त स्थूल शरीरवाला हो गया। तब गाड़ीके पहियोंके समान भयानक नेत्रोंवाले, अपने पादप्रहारसे पृथ्वीको कम्पायमान करते हुए तथा दग्धपर्वतके समान आकारवाले उस दैत्यको देखकर उस निर्भय राक्षसके द्वारा ले जाये जाते हुए बलभद्रजीने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—'भैया कृष्ण! देखो, छद्मपूर्वक गोपवेष धारण करनेवाला कोई पर्वतके समान महाकाय दैत्य मुझे हरे लिये जाता है। मधुसूदन! अब मुझे क्या करना चाहिये।'

श्रीकृष्णचन्द्र बोले—सर्वात्मन्! आप अपने उस स्वरूपका स्मरण कीजिये जो समस्त संसारका कारण तथा कारणका भी पूर्ववर्ती है और प्रलयकालमें भी स्थित रहनेवाला है। क्या आपको मालूम नहीं है कि आप और मैं दोनों ही इस संसारके एकमात्र कारण हैं और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही मर्त्यलोकमें आये हैं। संसारके हितके लिये ही हमने अपने भिन्न-भिन्न रूप धारण किये हैं। अतः अमेयात्मन्! आप अपने स्वरूपको स्मरण कीजिये और इस दैत्यको मारकर बन्धुजनोंका हित-साधन कीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—विप्र! महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर महाबलवान् बलरामजी हँसते हुए प्रलम्बासुरको पीडित करने लगे। उन्होंने क्रोधसे

नेत्र लाल करके उसके मस्तकपर एक घूँसा मारा, जिसकी चोटसे उस दैत्यके दोनों नेत्र बाहर निकल आये। तदनन्तर वह दैत्यश्रेष्ठ मस्तक फट जानेपर मुखसे रक्त वमन करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा और मर गया। अद्भुतकर्मा बलरामजीद्वारा प्रलम्बासुरको मरा हुआ देखकर गोपगण प्रसन्न होकर 'साधु, साधु' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे।

* एक निश्चित लक्ष्यके पास दो-दो बालक एक-एक साथ हिरनकी भाँति उछलते हुए जाते हैं। जो दोनोंमें पहले पहुँच जाता है, वह विजयी होता है, हारा हुआ बालक जीते हुएको अपनी पीठपर चढ़ाकर मुख्य स्थानतक ले आता है। यही हरिणाक्रीडन है।

गया तो उसे अत्यन्त वेगसे उस तालवृक्षपर ही दे मारा। उसके सजातीय अन्य गर्दभासुरोंके आनेपर भी श्रीकृष्ण और बलरामने उन्हें अनायास ही तालवृक्षोंपर पटक दिया। द्विज! तबसे उस तालवनमें गौएँ निर्विघ्न होकर सुखपूर्वक नवीन तृण चरने लगीं।

तदनन्तर धेनुकासुरको मारकर वे दोनों वसुदेवपुत्र प्रसन्न-मनसे भाण्डीर नामक वटवृक्षके तले आये। वे समस्त लोकपालोंके प्रभु पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर नाना प्रकारकी लौकिक लीलाओंसे परस्पर खेल रहे थे। इसी समय उन दोनों खेलते हुए बालकोंको उठा ले जानेकी इच्छासे प्रलम्ब नामक दैत्य गोपवेषमें अपनेको छिपाकर वहाँ आया। दानवश्रेष्ठ प्रलम्ब मनुष्य न होनेपर भी मनुष्यरूप धारणकर निश्शङ्कभावसे उन बालकोंके बीच घुस गया।

तदनन्तर वे समस्त ग्वालबाल हरिणाक्रीडन* नामक खेल खेलते हुए आपसमें एक साथ दो-दो बालक उठे। तब श्रीदामाके साथ श्रीकृष्णचन्द्र, प्रलम्बके साथ बलराम और इसी प्रकार अन्यान्य गोपोंके साथ और-और ग्वालबाल होड़ बदकर उछलते हुए चलने लगे। अन्तमें श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीदामाको, बलरामजीने प्रलम्बको तथा अन्यान्य कृष्णपक्षीय गोपोंने अपने प्रतिपक्षियोंको हरा दिया।

उस खेलमें जो-जो बालक हारे थे वे सब जीतनेवालोंको अपने-अपने कंधोंपर चढाकर भाण्डीरवटतक ले जाकर वहाँसे फिर लौट आये; किंतु प्रलम्बासुर अपने कंधेपर बलरामजीको चढाकर अत्यन्त वेगसे आकाशमण्डलको चल दिया। वह दानवश्रेष्ठ श्रीबलभद्रजीके भारको सहन न कर सकनेके कारण वर्षाकालीन मेघके समान बढ़कर अत्यन्त स्थूल शरीरवाला हो गया। तब गाड़ीके पहियोंके समान भयानक नेत्रोंवाले, अपने पादप्रहारसे पृथ्वीको कम्पायमान करते हुए तथा दग्धपर्वतके समान आकारवाले उस दैत्यको देखकर उस निर्भय राक्षसके द्वारा ले जाये जाते हुए बलभद्रजीने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—'भैया कृष्ण! देखो, छद्मपूर्वक गोपवेष धारण करनेवाला कोई पर्वतके समान महाकाय दैत्य मुझे हरे लिये जाता है। मधुसूदन! अब मुझे क्या करना चाहिये।'

श्रीकृष्णचन्द्र बोले—सर्वात्मन्! आप अपने उस स्वरूपका स्मरण कीजिये जो समस्त संसारका कारण तथा कारणका भी पूर्ववर्ती है और प्रलयकालमें भी स्थित रहनेवाला है। क्या आपको मालूम नहीं है कि आप और मैं दोनों ही इस संसारके एकमात्र कारण हैं और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही मर्त्यलोकमें आये हैं। संसारके हितके लिये ही हमने अपने भिन्न-भिन्न रूप धारण किये हैं। अतः अमेयात्मन्! आप अपने स्वरूपको स्मरण कीजिये और इस दैत्यको मारकर बन्धुजनोंका हित-साधन कीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—विप्र! महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर महाबलवान् बलरामजी हँसते हुए प्रलम्बासुरको पीडित करने लगे। उन्होंने क्रोधसे

नेत्र लाल करके उसके मस्तकपर एक घूँसा मारा, जिसकी चोटसे उस दैत्यके दोनों नेत्र बाहर निकल आये। तदनन्तर वह दैत्यश्रेष्ठ मस्तक फट जानेपर मुखसे रक्त वमन करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा और मर गया। अद्भुतकर्मा बलरामजीद्वारा प्रलम्बासुरको मरा हुआ देखकर गोपगण प्रसन्न होकर 'साधु, साधु' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे।

* एक निश्चित लक्ष्यके पास दो-दो बालक एक-एक साथ हिरनकी भाँति उछलते हुए जाते हैं। जो दोनोंमें पहले पहुँच जाता है, वह विजयी होता है, हारा हुआ बालक जीते हुएको अपनी पीठपर चढ़ाकर मुख्य स्थानतक ले आता है। यही हरिणाक्रीडन है।

यह दिखलाते हुए कि मैं मूर्तिमान् गिरिराज हूँ, उन गोपश्रेष्ठोंके चढ़ाये हुए विविध व्यञ्जनोंका भोजन किया। श्रीकृष्णचन्द्रने अपने निजरूपसे गोपोंके साथ पर्वतराजके शिखर-पर चढ़कर अपने ही दूसरे स्वरूपका पूजन किया। तदनन्तर उनके अन्तर्धान होनेपर गोपगण अपने अभीष्ट वर पाकर गिरियज्ञ समाप्त करके फिर अपने-अपने गोष्ठोंमें चले आये।

इन्द्रका कोप और श्रीकृष्णका गोवर्धन-धारण तथा इन्द्रका आगमन और इन्द्रकृत श्रीकृष्णाभिषेक

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! अपने यज्ञके रुक जानेसे इन्द्रने अत्यन्त रोषपूर्वक संवर्तक नामक मेघोंके दलसे इस प्रकार कहा—'अरे मेघो! देखो, अन्य गोपोंके सहित दुर्बुद्धि नन्दगोपने श्रीकृष्णकी सहायताके बलसे अंधे होकर मेरा यह यज्ञ भङ्ग कर दिया है। अतः जो उनकी परम जीविका और उनके गोपत्वका कारण है, उन गौओंको तुम मेरी आज्ञासे वर्षा और वायुके द्वारा पीड़ित कर दो।

द्विज! इन्द्रकी ऐसी आज्ञा होनेपर गौओंको नष्ट करनेके लिये मेघोंने अति प्रचण्ड वायु और वर्षा छोड़ दी। मेघगण महान् शब्दसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए मूसलाधार पानी बरसाने लगे। इस प्रकार मेघोंके अहर्निश बरसनेसे संसारके अन्धकारपूर्ण हो जानेपर ऊपर-नीचे और सब ओरसे समस्त लोक जलमय-सा हो गया।

वर्षा और वायुके वेगपूर्वक चलते रहनेसे गौओंके कटि, जङ्घा और ग्रीवा आदि सुन्न हो गये और काँपते-काँपते वे अपने प्राण छोड़ने लगीं। महामुने! कोई गौएँ तो अपने बछड़ोंको अपने नीचे छिपाये खड़ी रहीं और कोई जलके वेगसे वत्सहीना हो गयीं। वायुसे काँपते हुए दीनवदन बछड़े मानो व्याकुल होकर मन्द-स्वरसे श्रीकृष्णचन्द्रसे 'रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा कहने लगे।

मैत्रेय! उस समय गौ, गोपी और गोपगणके सहित सम्पूर्ण गोकुलको अत्यन्त व्याकुल देखकर श्रीहरिने विचारा—यज्ञ-भङ्गके कारण विरोध मानकर यह सब करतूत इन्द्र ही कर रहा है; अतः अब मुझे सम्पूर्ण व्रजकी रक्षा करनी चाहिये।

श्रीकृष्णचन्द्रने ऐसा विचारकर गोवर्धनपर्वतको उखाड़ लिया और उसे लीलासे ही अपने एक हाथपर उठा लिया तथा गोपोंसे कहा—'आओ, शीघ्र ही इस पर्वतके नीचे आ जाओ, मैंने वर्षासे बचनेका प्रबन्ध कर दिया है। यहाँ वायुहीन स्थानोंमें आकर सुखपूर्वक बैठ जाओ; निर्भय होकर प्रवेश करो, पर्वतके गिरने आदिका भय मत करो।'

श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर जलकी धाराओंसे पीडित गोप और गोपी अपने बर्तन-भाँड़ोंको छकड़ोंमें रखकर गौओंके साथ पर्वतके नीचे चले गये। उस समय व्रजवासियों-द्वारा हर्ष और आश्चर्यपूर्वक टकटकी लगाकर देखे जाते हुए और अपने चरितोंका स्तवन होते हुए श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतको धारण किये खड़े रहे।

विप्र! गोपोंके नाशकर्ता इन्द्रकी प्रेरणासे नन्दजीके गोकुल-में सात रात्रितक महाभयंकर मेघ बरसते रहे, किंतु जब श्री-कृष्णचन्द्रने पर्वत धारणकर गोकुलकी रक्षा की तो अपनी प्रतिज्ञा व्यर्थ हो जानेसे इन्द्रने मेघोंको रोक दिया। तब समस्त गोकुलवासी वहाँसे निकलकर प्रसन्नतापूर्वक फिर अपने-अपने स्थानोंपर आ गये और श्रीकृष्णचन्द्रने भी उन व्रजवासियोंके विस्मयपूर्वक देखते-देखते गिरिराज गोवर्धनको अपने स्थानपर रख दिया।

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार गोवर्धनपर्वतका धारण और गोकुलकी रक्षा हो जानेपर देवराज इन्द्रको श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेकी इच्छा हुई। अतः देवराज ऐरावतपर चढ़कर गोवर्धन-पर्वतपर आये और वहाँ सम्पूर्ण जगत्के रक्षक गोपवेषधारी महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते देखा। द्विज! उन्होंने यह भी देखा कि पक्षिश्रेष्ठ गरुड अदृश्यभावसे उनके ऊपर रहकर अपने पंखोंसे उनकी छाया कर रहे हैं। तब वे ऐरावतसे उतर पड़े और एकान्तमें श्रीमधुसूदनसे प्रीतिपूर्वक बोले—'श्रीकृष्णचन्द्र! महाबाहो! अखिलाधार परमेश्वर! आपने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही पृथ्वीपर अवतार लिया है। यज्ञभङ्गसे विरोध मानकर ही मैंने गोकुलको नष्ट करनेके लिये महामेघोंको आज्ञा दी थी, उन्होंने यह संहार मचाया था; किंतु आपने पर्वतको उखाड़कर गौओंको बचा लिया। वीर! आपके इस अद्भुत कर्मसे मैं अति प्रसन्न हूँ। श्रीकृष्ण! आपने जो अपने एक हाथपर गोवर्धन धारण किया

यह दिखलाते हुए कि मैं मूर्तिमान् गिरिराज हूँ, उन गोपश्रेष्ठोंके चढ़ाये हुए विविध व्यञ्जनोंका भोजन किया। श्रीकृष्णचन्द्रने अपने निजरूपसे गोपोंके साथ पर्वतराजके शिखर-पर चढ़कर अपने ही दूसरे स्वरूपका पूजन किया। तदनन्तर उनके अन्तर्धान होनेपर गोपगण अपने अभीष्ट वर पाकर गिरियज्ञ समाप्त करके फिर अपने-अपने गोष्ठोंमें चले आये।

इन्द्रका कोप और श्रीकृष्णका गोवर्धन-धारण तथा इन्द्रका आगमन और इन्द्रकृत श्रीकृष्णाभिषेक

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! अपने यज्ञके रुक जानेसे इन्द्रने अत्यन्त रोषपूर्वक संवर्तक नामक मेघोंके दलसे इस प्रकार कहा—'अरे मेघो! देखो, अन्य गोपोंके सहित दुर्बुद्धि नन्दगोपने श्रीकृष्णकी सहायताके बलसे अंधे होकर मेरा यह यज्ञ भङ्ग कर दिया है। अतः जो उनकी परम जीविका और उनके गोपत्वका कारण है, उन गौओंको तुम मेरी आज्ञासे वर्षा और वायुके द्वारा पीड़ित कर दो।

द्विज! इन्द्रकी ऐसी आज्ञा होनेपर गौओंको नष्ट करनेके लिये मेघोंने अति प्रचण्ड वायु और वर्षा छोड़ दी। मेघगण महान् शब्दसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए मूसलाधार पानी बरसाने लगे। इस प्रकार मेघोंके अहर्निश बरसनेसे संसारके अन्धकारपूर्ण हो जानेपर ऊपर-नीचे और सब ओरसे समस्त लोक जलमय-सा हो गया।

वर्षा और वायुके वेगपूर्वक चलते रहनेसे गौओंके कटि, जङ्घा और ग्रीवा आदि सुन्न हो गये और काँपते-काँपते वे अपने प्राण छोड़ने लगीं। महामुने! कोई गौएँ तो अपने बछड़ोंको अपने नीचे छिपाये खड़ी रहीं और कोई जलके वेगसे वत्सहीना हो गयीं। वायुसे काँपते हुए दीनवदन बछड़े मानो व्याकुल होकर मन्द-स्वरसे श्रीकृष्णचन्द्रसे 'रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा कहने लगे।

मैत्रेय! उस समय गौ, गोपी और गोपगणके सहित सम्पूर्ण गोकुलको अत्यन्त व्याकुल देखकर श्रीहरिने विचारा—यज्ञ-भङ्गके कारण विरोध मानकर यह सब करतूत इन्द्र ही कर रहा है; अतः अब मुझे सम्पूर्ण व्रजकी रक्षा करनी चाहिये।

श्रीकृष्णचन्द्रने ऐसा विचारकर गोवर्धनपर्वतको उखाड़ लिया और उसे लीलासे ही अपने एक हाथपर उठा लिया तथा गोपोंसे कहा—'आओ, शीघ्र ही इस पर्वतके नीचे आ जाओ, मैंने वर्षासे बचनेका प्रबन्ध कर दिया है। यहाँ वायुहीन स्थानोंमें आकर सुखपूर्वक बैठ जाओ; निर्भय होकर प्रवेश करो, पर्वतके गिरने आदिका भय मत करो।'

श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर जलकी धाराओंसे पीडित गोप और गोपी अपने बर्तन-भाँड़ोंको छकड़ोंमें रखकर गौओंके साथ पर्वतके नीचे चले गये। उस समय व्रजवासियों-द्वारा हर्ष और आश्चर्यपूर्वक टकटकी लगाकर देखे जाते हुए और अपने चरितोंका स्तवन होते हुए श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतको धारण किये खड़े रहे।

विप्र! गोपोंके नाशकर्ता इन्द्रकी प्रेरणासे नन्दजीके गोकुल-में सात रात्रितक महाभयंकर मेघ बरसते रहे, किंतु जब श्री-कृष्णचन्द्रने पर्वत धारणकर गोकुलकी रक्षा की तो अपनी प्रतिज्ञा व्यर्थ हो जानेसे इन्द्रने मेघोंको रोक दिया। तब समस्त गोकुलवासी वहाँसे निकलकर प्रसन्नतापूर्वक फिर अपने-अपने स्थानोंपर आ गये और श्रीकृष्णचन्द्रने भी उन व्रजवासियोंके विस्मयपूर्वक देखते-देखते गिरिराज गोवर्धनको अपने स्थानपर रख दिया।

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार गोवर्धनपर्वतका धारण और गोकुलकी रक्षा हो जानेपर देवराज इन्द्रको श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेकी इच्छा हुई। अतः देवराज ऐरावतपर चढ़कर गोवर्धन-पर्वतपर आये और वहाँ सम्पूर्ण जगत्के रक्षक गोपवेषधारी महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते देखा। द्विज! उन्होंने यह भी देखा कि पक्षिश्रेष्ठ गरुड अदृश्यभावसे उनके ऊपर रहकर अपने पंखोंसे उनकी छाया कर रहे हैं। तब वे ऐरावतसे उतर पड़े और एकान्तमें श्रीमधुसूदनसे प्रीतिपूर्वक बोले—'श्रीकृष्णचन्द्र! महाबाहो! अखिलाधार परमेश्वर! आपने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही पृथ्वीपर अवतार लिया है। यज्ञभङ्गसे विरोध मानकर ही मैंने गोकुलको नष्ट करनेके लिये महामेघोंको आज्ञा दी थी, उन्होंने यह संहार मचाया था; किंतु आपने पर्वतको उखाडकर गौओंको बचा लिया। वीर! आपके इस अद्भुत कर्मसे मैं अति प्रसन्न हूँ। श्रीकृष्ण! आपने जो अपने एक हाथपर गोवर्धन धारण किया

ऐसा कहती हुई लज्जावश संकुचित हो गयी और कोई प्रेमोन्मादिनी होकर तुरंत उनके पास जा खड़ी हुई। कोई गोपी बाहर गुरुजनोंको देखकर अपने घरमें ही रहकर आँख मूँदकर तन्मयभावसे श्रीगोविन्दका ध्यान करने लगी। तथा कोई गोपकुमारी जगत्के कारण परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रका चिन्तन करते-करते मुक्त हो गयी। तदनन्तर गोपियोंसे घिरे हुए श्रीगोविन्दने उस शरच्चन्द्रसुशोभिता रात्रिमें रास-लीला की।

फिर भगवान् श्रीकृष्णके अन्यत्र चले जानेपर श्रीकृष्णचेष्टाके अधीन हुई गोपियाँ यूथ बनाकर वृन्दावनके भीतर विचरने लगीं। श्रीकृष्णमें निबद्धचित्त हुई वे व्रजाङ्गनाएँ परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगीं—उनमेंसे एक गोपी भगवान्‌का अनुकरण करती हुई बोली—'मैं ही श्रीकृष्ण हूँ; देखो, कैसी सुन्दर चालसे चलता हूँ; तनिक मेरी गति तो देखो।' दूसरी कहने लगी—'कृष्ण तो मैं हूँ, अहा! मेरा गाना तो सुनो।' ऐसा कहकर वे श्रीकृष्णके सारे चरित्रोंका लीलापूर्वक अनुकरण करने लगीं। कोई दूसरी गोपी श्रीकृष्णलीलाओंका अनुकरण करती हुई कहने लगी—'मैंने धेनुकासुरको मार दिया है, अब यहाँ गौएँ स्वच्छन्द होकर विचरें।'

इस प्रकार समस्त गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रकी नाना प्रकारकी चेष्टाओंमें संलग्न होकर अति सुरम्य वृन्दावनमें विचरने लगीं। खिले हुए कमल-जैसे नेत्रोंवाली एक सुन्दरी गोपाङ्गना सर्वाङ्गमें पुलकित हो पृथिवीकी ओर देखकर कहने लगी—'अरी आली! ये लीलाललितगामी श्रीकृष्णचन्द्रके ध्वजा, वज्र, अंकुश और कमल आदिकी रेखाओंसे सुशोभित पदचिह्न तो देखो। और देखो, उनके साथ कोई पुण्यवती युवती भी गयी है, उसके ये घने छोटे-छोटे और पतले चरण-चिह्न दिखायी दे रहे हैं। यहाँ निश्चय ही दामोदरने ऊँचे होकर पुष्पचयन किया है; इसीसे यहाँ उन महात्माके चरणोंके केवल अग्रभाग ही अङ्कित हुए हैं। यहाँ वह सखी उनके हाथमें अपना पाणि-पल्लव देकर चली है, इसीसे उसके चरण-चिह्न पराधीन-से दिखलायी देते हैं। यहाँसे श्रीकृष्णचन्द्र गहन वनमें चले गये हैं; इसीसे उनके चरण-चिह्न दिखलायी नहीं देते; अब लौट चलो; इस स्थानपर चन्द्रमाकी किरणें नहीं पहुँच सकतीं।

तदनन्तर वे गोपियाँ श्रीकृष्ण-दर्शनसे निराश होकर लौट आयीं और यमुनातटपर आकर उनके चरित्रोंको गाने लगीं। तब गोपियोंने प्रसन्नमुखारविन्द त्रिभुवनरक्षक श्रीकृष्णचन्द्रको वहाँ आते देखा। उस समय कोई गोपी तो श्रीगोविन्दको आते देखकर अति हर्षित हो केवल 'कृष्ण! कृष्ण!! कृष्ण!!!' इतना ही कहती रह गयी और कुछ न बोल सकी। कोई अपनी भ्रूभङ्गीसे ललाट सिकोडकर श्रीहरिको देखते हुए अपने नेत्ररूप भ्रमरोंद्वारा उनके मुखकमलका मकरन्द पान करने लगी। कोई गोपी गोविन्दको देख नेत्र मूँदकर उन्हींके रूपका ध्यान करती हुई योगारूढ-सी भासित होने लगी।

तब श्रीमाधव किसीसे प्रिय भाषण करके, किसीकी ओर भ्रूभङ्गीसे देखकर और किसीका हाथ पकड़कर उन्हें मनाने लगे। फिर उदारचित्त श्रीहरिने उन प्रसन्नचित्त गोपियोंके साथ रासमण्डल बनाकर आदरपूर्वक रास किया, किंतु उस समय कोई भी गोपी श्रीकृष्णचन्द्रसे अलग नहीं रहना चाहती थी; इसलिये श्रीहरिने उन गोपियोंमेंसे प्रत्येकका हाथ पकड़कर रासमण्डलकी रचना की। उस समय उनके करस्पर्शसे प्रत्येक गोपीकी आँखें आनन्दसे मुँद जाती थीं।

तदनन्तर रासक्रीडा आरम्भ हुई। उसमें गोपियोंके चञ्चल कङ्कणोंकी झनकार होने लगी और फिर क्रमशः शरद्वर्णन-सम्बन्धी गीत गाये जाने लगे। उस समय गोपियोंने बारबार केवल श्रीकृष्णनामका ही गान किया। श्रीकृष्णचन्द्र जितने उच्चस्वरसे रासोचित गान गाते थे, उससे दूने शब्दसे गोपियाँ 'धन्य कृष्ण! धन्य कृष्ण!!' की ही ध्वनि लगा रही थीं। भगवान्‌के आगे जानेपर गोपियाँ उनके पीछे जातीं और लौटनेपर सामने चलतीं। इस प्रकार (नृत्य और गानमें) वे अनुलोम और प्रतिलोम-गतिसे श्रीहरिका साथ देती थीं। श्रीमधुसूदन भी गोपियोंके साथ इस प्रकार रासक्रीडा कर रहे थे कि उनके बिना एक क्षण भी गोपियोंको करोड़ों वर्षोंके समान बीतता था।

वृषभासुर-वध और कंसका श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरको भेजना तथा केशि-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—एक दिन सायंकालके समय जब श्रीकृष्णचन्द्र रासक्रीडामें संलग्न थे, अरिष्ट नामक एक मदोन्मत्त असुर वृषभरूप धारणकर सबको भयभीत करता व्रजमें आया। अपने खुरोंकी चोटसे वह मानो पृथिवीको फाड़े डालता था। वह दाँत पीसता हुआ पुनः-पुनः अपनी जिह्वासे ओठोंको चाट रहा था, उसने क्रोधवश

ऐसा कहती हुई लज्जावश संकुचित हो गयी और कोई प्रेमोन्मादिनी होकर तुरंत उनके पास जा खड़ी हुई। कोई गोपी बाहर गुरुजनोंको देखकर अपने घरमें ही रहकर आँख मूँदकर तन्मयभावसे श्रीगोविन्दका ध्यान करने लगी। तथा कोई गोपकुमारी जगत्के कारण परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण-चन्द्रका चिन्तन करते-करते मुक्त हो गयी। तदनन्तर गोपियोंसे घिरे हुए श्रीगोविन्दने उस शरच्चन्द्रसुशोभिता रात्रिमें रास-लीला की।

फिर भगवान् श्रीकृष्णके अन्यत्र चले जानेपर श्रीकृष्णचेष्टाके अधीन हुई गोपियाँ यूथ बनाकर वृन्दावनके भीतर विचरने लगीं। श्रीकृष्णमें निबद्धचित्त हुई वे व्रजाङ्गनाएँ परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगीं—उनमेंसे एक गोपी भगवान्का अनुकरण करती हुई बोली—'मैं ही श्रीकृष्ण हूँ; देखो, कैसी सुन्दर चालसे चलता हूँ; तनिक मेरी गति तो देखो।' दूसरी कहने लगी—'कृष्ण तो मैं हूँ, अहा! मेरा गाना तो सुनो।' ऐसा कहकर वे श्रीकृष्णके सारे चरित्रोंका लीलापूर्वक अनुकरण करने लगीं। कोई दूसरी गोपी श्रीकृष्णलीलाओंका अनुकरण करती हुई कहने लगी—'मैंने धेनुकासुरको मार दिया है, अब यहाँ गौएँ स्वच्छन्द होकर विचरें।'

इस प्रकार समस्त गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रकी नाना प्रकार-की चेष्टाओंमें संलग्न होकर अति सुरम्य वृन्दावनमें विचरने लगीं। खिले हुए कमल-जैसे नेत्रोंवाली एक सुन्दरी गोपाङ्गना सर्वाङ्गमें पुलकित हो पृथिवीकी ओर देखकर कहने लगी—'अरी आली! ये लीलाललितगामी श्रीकृष्णचन्द्रके ध्वजा, वज्र, अंकुश और कमल आदिकी रेखाओंसे सुशोभित पदचिह्न तो देखो। और देखो, उनके साथ कोई पुण्यवती युवती भी गयी है, उसके ये घने छोटे-छोटे और पतले चरण-चिह्न दिखायी दे रहे हैं। यहाँ निश्चय ही दामोदरने ऊँचे होकर पुष्पचयन किया है; इसीसे यहाँ उन महात्माके चरणोंके केवल अग्रभाग ही अङ्कित हुए हैं। यहाँ वह सखी उनके हाथमें अपना पाणि-पल्लव देकर चली है, इसीसे उसके चरण-चिह्न पराधीन-से दिखलायी देते हैं। यहाँसे श्रीकृष्णचन्द्र गहन वनमें चले गये हैं; इसीसे उनके चरण-चिह्न दिखलायी नहीं देते; अब लौट चलो; इस स्थानपर चन्द्रमाकी किरणें नहीं पहुँच सकतीं।

तदनन्तर वे गोपियाँ श्रीकृष्ण-दर्शनसे निराश होकर लौट आयीं और यमुनातटपर आकर उनके चरितोंको गाने लगीं। तब गोपियोंने प्रसन्नमुखारविन्द त्रिभुवनरक्षक श्रीकृष्णचन्द्र-को वहाँ आते देखा। उस समय कोई गोपी तो श्रीगोविन्दको आते देखकर अति हर्षित हो केवल 'कृष्ण! कृष्ण!! कृष्ण!!!' इतना ही कहती रह गयी और कुछ न बोल सकी। कोई अपनी भ्रूभङ्गीसे ललाट सिकोडकर श्रीहरिको देखते हुए अपने नेत्ररूप भ्रमरोंद्वारा उनके मुखकमलका मकरन्द पान करने लगी। कोई गोपी गोविन्दको देख नेत्र मूँदकर उन्हींके रूपका ध्यान करती हुई योगारूढ-सी भासित होने लगी।

तब श्रीमाधव किसीसे प्रिय भाषण करके, किसीकी ओर भ्रूभङ्गीसे देखकर और किसीका हाथ पकड़कर उन्हें मनाने लगे। फिर उदारचित्त श्रीहरिने उन प्रसन्नचित्त गोपियोंके साथ रासमण्डल बनाकर आदरपूर्वक रास किया, किंतु उस समय कोई भी गोपी श्रीकृष्णचन्द्रसे अलग नहीं रहना चाहती थी; इसलिये श्रीहरिने उन गोपियोंमेंसे प्रत्येकका हाथ पकड़कर रासमण्डलकी रचना की। उस समय उनके करस्पर्शसे प्रत्येक गोपीकी आँखें आनन्दसे मुँद जाती थीं।

तदनन्तर रासक्रीडा आरम्भ हुई। उसमें गोपियोंके चञ्चल कङ्कणोंकी झनकार होने लगी और फिर क्रमशः शरद्वर्णन-सम्बन्धी गीत गाये जाने लगे। उस समय गोपियोंने बारबार केवल श्रीकृष्णनामका ही गान किया। श्रीकृष्णचन्द्र जितने उच्चस्वरसे रासोचित गान गाते थे, उससे दूने शब्दसे गोपियाँ 'धन्य कृष्ण! धन्य कृष्ण!!' की ही ध्वनि लगा रही थीं। भगवान्के आगे जानेपर गोपियाँ उनके पीछे जातीं और लौटनेपर सामने चलतीं। इस प्रकार (नृत्य और गानमें) वे अनुलोम और प्रतिलोम-गतिसे श्रीहरिका साथ देती थीं। श्रीमधुसूदन भी गोपियोंके साथ इस प्रकार रासक्रीडा कर रहे थे कि उनके बिना एक क्षण भी गोपियोंको करोड़ों वर्षोंके समान बीतता था।

वृषभासुर-वध और कंसका श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरको भेजना तथा केशि-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—एक दिन सायंकालके समय जब श्रीकृष्णचन्द्र रासक्रीडामें सलग्न थे, अरिष्ट नामक एक मदोन्मत्त असुर वृषभरूप धारणकर सबको भयभीत करता व्रजमें आया। अपने खुरोंकी चोटसे वह मानो पृथिवीको फाड़े डालता था। वह दाँत पीसता हुआ पुनः-पुनः अपनी जिह्वासे ओठोंको चाट रहा था, उसने क्रोधवश

दौड़ा। उस अश्वरूप दैत्यके हिनहिनानेके शब्दसे भयभीत होकर समस्त गोप और गोपियाँ श्रीगोविन्दकी शरणमें आये। तब उनके 'त्राहि-त्राहि' शब्दको सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गम्भीर वाणीसे बोले—'गोपालगण! आपलोग केशीसे न डरें।'

इस प्रकार गोपोंको धैर्य बँधाकर वे केशीसे कहने लगे—'अरे दुष्ट! इधर आ' ऐसा कहकर श्रीगोविन्द उछलकर केशीके सामने आये और वह अश्वरूपधारी दैत्य भी मुँह खोलकर उनकी ओर दौड़ा। तब जनार्दनने अपनी बाँह फैलाकर उस अश्वरूपधारी दुष्ट दैत्यके मुखमें डाल दी। केशीके मुखमें घुसी हुई भगवान् श्रीकृष्णकी बाहुसे टकराकर उसके समस्त दाँत शुभ्र मेघखण्डोंके समान टूटकर बाहर गिर पड़े।

द्विज! केशीके देहमें प्रविष्ट हुई श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजा बढ़ने लगी। अन्तमें ओठोंके फट जानेसे वह फेनसहित रुधिर वमन करने लगा और मल-मूत्र छोड़ता हुआ पृथिवीपर पैर पटकने लगा तथा निश्चेष्ट हो गया एवं दो खण्ड होकर पृथिवीपर गिर पड़ा।

तब केशीके मारे जानेसे विस्मित हुए गोप और गोपियोंने अनुरागवश अत्यन्त मनोहर प्रतीत होनेवाले कमलनयन श्रीश्यामसुन्दरकी स्तुति की।

विप्र! उसे मरा देख मेघपटलमें छिपे हुए श्रीनारदजी हर्षितचित्तसे कहने लगे—'जगन्नाथ! अच्युत!! आप धन्य हैं, धन्य हैं। अहा! आपने देवताओंको दुःख देनेवाले इस केशीको लीलासे ही मार डाला। मधुसूदन! आपने अपने इस अवतारमें जो-जो कर्म किये हैं, उनसे मेरा चित्त अत्यन्त विस्मित और संतुष्ट हो रहा है। केशिनिषूदन! आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। परसों कंसके साथ आपका युद्ध होनेके समय मैं फिर आऊँगा।'

तदनन्तर नारदजीके चले जानेपर गोपगणसे सम्मानित गोपियोंके नेत्रोंके एकमात्र पेय श्रीकृष्णचन्द्रने ग्वालबालोंके साथ गोकुलमें प्रवेश किया।

अक्रूरजीकी गोकुलयात्रा

श्रीपराशरजी कहते हैं—अक्रूरजी भी तुरंत ही मथुरापुरीसे निकलकर श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे एक शीघ्रगामी रथद्वारा नन्दजीके गोकुलको चले। अक्रूरजी सोचने लगे—'आज मुझ-जैसा बड़भागी और कोई नहीं है, क्योंकि अपने अंशसे अवतीर्ण चक्रधारी श्रीविष्णुभगवान्‌का मुख मैं अपने नेत्रोंसे देखूँगा। आज मेरा जन्म सफल हो गया; आजकी रात्रि अवश्य सुन्दर प्रभातवाली थी, जिससे कि मैं आज खिले हुए कमलके समान नेत्रवाले श्रीविष्णुभगवान्‌के मुखका दर्शन करूँगा। जो स्मरणमात्रसे पुरुषोंके पापोंको दूर कर देता है, आज मैं विष्णुभगवान्‌के उसी कमलनयन मुखको देखूँगा। जिससे सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गोंकी उत्पत्ति हुई है, आज मैं सम्पूर्ण तेजस्वियोंके परम आश्रयरूप उसी भगवद्-मुखारविन्दका दर्शन करूँगा। जिनके स्वरूपको ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसुगण, आदित्य और मरुद्गण आदि कोई भी नहीं जानते, आज वे ही हरि मेरे नेत्रोंके विषय होंगे। जो सर्वात्मा, सर्वज्ञ, सर्वस्वरूप और सब भूतोंमें अवस्थित हैं तथा जो अचिन्त्य, अव्यय और सर्वव्यापक हैं, अहो! आज स्वयं वे ही मेरे साथ बातें करेंगे। जिन अजन्माने मत्स्य, कूर्म, वराह, हयग्रीव और नृसिंह आदि रूप धारणकर जगत्‌की रक्षा की है, आज वे ही मुझसे वार्तालाप करेंगे। जो अनन्त (शेषजी) अपने मस्तकपर रखी हुई पृथ्वीको धारण करते हैं, संसारके हितके लिये अवतीर्ण हुए हैं, वे ही आज मुझसे 'अक्रूर' कहकर बोलेंगे। जिनमें हृदयको लगा देनेसे पुरुष इस योग-मायारूप विस्तृत अविद्याको पार कर जाता है, उन विद्यास्वरूप श्रीहरिको नमस्कार है। जिन्हें याज्ञिक लोग 'यज्ञपुरुष', सात्वत (यादव अथवा भगवद्भक्त) गण 'वासुदेव' और वेदान्तवेत्ता 'विष्णु' कहते हैं, उन्हें बारंबार नमस्कार है। जिनके स्मरणमात्रसे पुरुष सर्वथा कल्याणपात्र हो जाता है, मैं सर्वदा उन अजन्मा श्रीहरिकी शरणमें जाता हूँ*।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! भक्तिविनम्रचित्त अक्रूरजी इस प्रकार श्रीविष्णुभगवान्‌का चिन्तन करते कुछ-कुछ सूर्य रहते ही गोकुलमें पहुँच गये। वहाँ पहुँचनेपर पहले उन्होंने खिले हुए नीलकमलकी-सी कान्तिवाले

---

* स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते।
पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥
(वि० पु० ५।१७।१७)

दौड़ा। उस अश्वरूप दैत्यके हिनहिनानेके शब्दसे भयभीत होकर समस्त गोप और गोपियाँ श्रीगोविन्दकी शरणमें आये। तब उनके 'त्राहि-त्राहि' शब्दको सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गम्भीर वाणीसे बोले—'गोपालगण! आपलोग केशीसे न डरें।'

इस प्रकार गोपोंको धैर्य बँधाकर वे केशीसे कहने लगे—'अरे दुष्ट! इधर आ' ऐसा कहकर श्रीगोविन्द उछलकर केशीके सामने आये और वह अश्वरूपधारी दैत्य भी मुँह खोलकर उनकी ओर दौड़ा। तब जनार्दनने अपनी बाँह फैलाकर उस अश्वरूपधारी दुष्ट दैत्यके मुखमें डाल दी। केशीके मुखमें घुसी हुई भगवान् श्रीकृष्णकी बाहुसे टकराकर उसके समस्त दाँत शुभ्र मेघखण्डोंके समान टूटकर बाहर गिर पड़े।

द्विज! केशीके देहमें प्रविष्ट हुई श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजा बढने लगी। अन्तमें ओठोंके फट जानेसे वह फेनसहित रुधिर वमन करने लगा और मल-मूत्र छोड़ता हुआ पृथिवीपर पैर पटकने लगा तथा निश्चेष्ट हो गया एवं दो खण्ड होकर पृथिवीपर गिर पडा।

तब केशीके मारे जानेसे विस्मित हुए गोप और गोपियोंने अनुरागवश अत्यन्त मनोहर प्रतीत होनेवाले कमलनयन श्रीश्यामसुन्दरकी स्तुति की।

विप्र! उसे मरा देख मेघपटलमें छिपे हुए श्रीनारदजी हर्षितचित्तसे कहने लगे—'जगन्नाथ! अच्युत!! आप धन्य हैं, धन्य हैं। अहा! आपने देवताओंको दुःख देनेवाले इस केशीको लीलासे ही मार डाला। मधुसूदन! आपने अपने इस अवतारमें जो-जो कर्म किये हैं, उनसे मेरा चित्त अत्यन्त विस्मित और संतुष्ट हो रहा है। केशिनिषूदन! आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। परसों कंसके साथ आपका युद्ध होनेके समय मैं फिर आऊँगा।'

तदनन्तर नारदजीके चले जानेपर गोपगणसे सम्मानित गोपियोंके नेत्रोंके एकमात्र पेय श्रीकृष्णचन्द्रने ग्वालबालोंके साथ गोकुलमें प्रवेश किया।

अक्रूरजीकी गोकुलयात्रा

श्रीपराशरजी कहते हैं—अक्रूरजी भी तुरंत ही मथुरापुरीसे निकलकर श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे एक शीघ्रगामी रथद्वारा नन्दजीके गोकुलको चले। अक्रूरजी सोचने लगे—'आज मुझ-जैसा बड़भागी और कोई नहीं है, क्योंकि अपने अंशसे अवतीर्ण चक्रधारी श्रीविष्णुभगवान्का मुख मैं अपने नेत्रोंसे देखूँगा। आज मेरा जन्म सफल हो गया; आजकी रात्रि अवश्य सुन्दर प्रभातवाली थी, जिससे कि मैं आज खिले हुए कमलके समान नेत्रवाले श्रीविष्णुभगवान्के मुखका दर्शन करूँगा। जो स्मरणमात्रसे पुरुषोंके पापोंको दूर कर देता है, आज मैं विष्णुभगवान्के उसी कमलनयन मुखको देखूँगा। जिससे सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गोंकी उत्पत्ति हुई है, आज मैं सम्पूर्ण तेजस्वियोंके परम आश्रयरूप उसी भगवद्-मुखारविन्दका दर्शन करूँगा। जिनके स्वरूपको ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसुगण, आदित्य और मरुद्गण आदि कोई भी नहीं जानते, आज वे ही हरि मेरे नेत्रोंके विषय होंगे। जो सर्वात्मा, सर्वज्ञ, सर्वस्वरूप और सब भूतोंमें अवस्थित हैं तथा जो अचिन्त्य, अव्यय और सर्वव्यापक हैं, अहो! आज स्वयं वे ही मेरे साथ बातें करेंगे। जिन अजन्माने मत्स्य, कूर्म, वराह, हयग्रीव और नृसिंह आदि रूप धारणकर जगत्की रक्षा की है, आज वे ही मुझसे वार्तालाप करेंगे। जो अनन्त (शेषजी) अपने मस्तकपर रखी हुई पृथ्वीको धारण करते हैं, संसारके हितके लिये अवतीर्ण हुए हैं, वे ही आज मुझसे 'अक्रूर' कहकर बोलेंगे। जिनमें हृदयको लगा देनेसे पुरुष इस योग-मायारूप विस्तृत अविद्याको पार कर जाता है, उन विद्यास्वरूप श्रीहरिको नमस्कार है। जिन्हें याज्ञिक लोग 'यज्ञपुरुष', सात्वत (यादव अथवा भगवद्भक्त) गण 'वासुदेव' और वेदान्तवेत्ता 'विष्णु' कहते हैं, उन्हें बारंबार नमस्कार है। जिनके स्मरणमात्रसे पुरुष सर्वथा कल्याणपात्र हो जाता है, मैं सर्वदा उन अजन्मा श्रीहरिकी शरणमें जाता हूँ*।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! भक्तिविनम्रचित्त अक्रूरजी इस प्रकार श्रीविष्णुभगवान्का चिन्तन करते कुछ-कुछ सूर्य रहते ही गोकुलमें पहुँच गये। वहाँ पहुँचनेपर पहले उन्होंने खिले हुए नीलकमलकी-सी कान्तिवाले

---

* स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते।
पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥
(वि० पु० ५।१७।१७)

ऐसा नहीं कर सकतीं !' भला अब विरहाग्निसे भस्मीभूत हुई हमलोगोंका गुरुजन क्या करेंगे ? देखो, यह नन्दगोप आदि गोपगण भी उन्हींके साथ जानेकी तैयारी कर रहे हैं। इनमेंसे भी कोई गोविन्दको लौटानेका प्रयत्न नहीं करता। आजकी रात्रि मथुरावासिनी स्त्रियोंके लिये सुन्दर प्रभातवाली हुई है, क्योंकि आज उनके नयन-भृङ्ग श्रीअच्युतके मुखारविन्दका मकरन्द पान करेंगे।

'जो लोग इधरसे बिना रोक-टोक श्रीकृष्णचन्द्रका अनुगमन कर रहे हैं; वे धन्य हैं; क्योंकि वे उनका दर्शन करते हुए अपने रोमाञ्चयुक्त शरीरका वहन करेंगे। आज श्रीगोविन्दके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको देखकर मथुरावासियोंके नेत्रोंको अत्यन्त महोत्सव होगा। आज न जाने उन भाग्यशालिनियोंने ऐसा कौन शुभ स्वप्न देखा है जो वे कान्तिमय विशाल नयनोंवाली मथुरापुरीकी स्त्रियाँ स्वच्छन्दतापूर्वक श्रीअधोक्षजको निहारेंगी ! अहो ! निष्ठुर विधाताने गोपियोंको महानिधि दिखलाकर आज उनके नेत्र निकाल लिये। देखो ! हमारे प्रति श्रीहरिके अनुरागमें शिथिलता आ जानेसे हमारे हाथोंके कंकण भी तुरंत ही ढीले पड़ गये हैं। भला हम-जैसी दुःखिनी अबलाओंपर किसे दया न आयेगी ? परंतु देखो, यह क्रूर-हृदय अक्रूर तो बड़ी शीघ्रतासे घोड़ोंको हाँक रहा है ! देखो, यह श्रीकृष्णचन्द्रके रथकी धूलि दिखलायी दे रही है; किंतु हा ! अब तो श्रीहरि इतनी दूर चले गये कि वह धूलि भी नहीं दीखती।'

इस प्रकार गोपियोंके अति अनुरागसहित देखते-देखते बलराम, श्रीकृष्ण और अक्रूर शीघ्रगामी घोड़ोंवाले रथसे चलते हुए मध्याह्नके समय यमुनातटपर आ गये। वहाँ पहुँचनेपर अक्रूरने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—'जबतक मैं यमुना-जलमें मध्याह्नकालीन उपासनासे निवृत्त होऊँ, तबतक आप दोनों यहाँ विराजें।'

विप्र ! तब भगवान्के 'बहुत अच्छा' कहनेपर महामति अक्रूरजी यमुनाजलमें घुसकर स्नान और आचमन आदिके अनन्तर परब्रह्मका ध्यान करने लगे। उस समय उन्होंने देखा कि बलभद्रजी सहस्रफणावलिसे सुशोभित हैं, उनका शरीर कुन्दमालाओंके समान शुभ्रवर्ण है तथा नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल हैं। वे अत्यन्त सुगन्धित वनमालाओंसे विभूषित हैं। दो श्याम वस्त्र धारण किये, कमलोंके बने हुए सुन्दर आभूषण पहने तथा मनोहर कुण्डली (गेंडुली) मारे जलके भीतर विराजमान हैं।

उनकी गोदमें उन्होंने आनन्दमय कमलभूषण श्रीकृष्णचन्द्रको देखा, जो मेघके समान श्यामवर्ण, कुछ लाल-लाल विशाल नयनोंवाले, चतुर्भुज मनोहर अङ्गोपाङ्गोंवाले तथा शङ्ख-चक्रादि आयुधोंसे सुशोभित हैं; जो पीताम्बर पहने हुए हैं और विचित्र वनमालासे विभूषित हैं तथा जिनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न और कानोंमें देदीप्यमान मकराकृत कुण्डल विराजमान हैं। अक्रूरजीने यह भी देखा कि सनकादि मुनिजन और निष्पाप सिद्ध तथा योगिजन उस जलमें ही स्थित होकर नासिकाग्र-दृष्टिसे उन श्रीकृष्णचन्द्रका ही चिन्तन कर रहे हैं।

इस प्रकार वहाँ राम और श्रीकृष्णको पहचानकर अक्रूरजी बड़े ही विस्मित हुए और सोचने लगे कि ये यहाँ इतनी शीघ्रतापूर्वक रथसे कैसे आ गये ? जब उन्होंने कुछ कहना चाहा तो भगवान्ने उनकी वाणी रोक दी। तब वे जलसे निकलकर रथके पास आये और देखा कि वहाँ भी बलराम और श्रीकृष्ण दोनों ही मनुष्य-शरीरसे पूर्ववत् रथपर बैठे हुए हैं। तदनन्तर उन्होंने जलमें घुसकर उन्हें फिर गन्धर्व, सिद्ध, मुनि और नागादिकोंसे स्तुति किये जाते देखा। तब तो दानपति अक्रूरजी वास्तविक रहस्य जानकर उन सर्वविज्ञानमय अच्युत भगवान्की स्तुति करने लगे।

अक्रूरजी बोले—जो सत्तामात्रस्वरूप, अचिन्त्य महिमावाले, सर्वव्यापक तथा कार्यरूपसे अनेक और कारणरूपसे एकरूप हैं, उन परमात्माको नमस्कार है, नमस्कार है। अचिन्तनीय प्रभो ! आप बुद्धिसे अतीत और प्रकृतिसे परे हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। सर्व ! सर्वात्मन् ! क्षराक्षरमय ईश्वर ! आप प्रसन्न होइये। एक आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि रूपोंसे वर्णन किये जाते हैं। परमेश्वर ! आपके स्वरूप, प्रयोजन और नाम आदि सभी अनिर्वचनीय हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

नाथ ! जहाँ नाम और जाति आदि कल्पनाओंका सर्वथा अभाव है, आप वही नित्य अविकारी और अजन्मा परब्रह्म हैं। प्रभो ! इन सम्पूर्ण पदार्थोंमें आपसे भिन्न और कुछ भी नहीं है। आप ही ब्रह्मा, महादेव, अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम हैं। इस प्रकार एक आप ही भिन्न-भिन्न कार्यवाले अपनी शक्तियोंके भेदसे इस सम्पूर्ण जगत्की रक्षा कर रहे हैं। 'सत्' पद 'ॐ तत् सत्' इस रूपसे जिसका वाचक है, वह 'ॐ' अक्षर आपका परम स्वरूप है, आपके उस ज्ञानात्मा सदसत्स्वरूपको नमस्कार है।

ऐसा नहीं कर सकतीं !' भला अब विरहाग्निसे भस्मीभूत हुई हमलोगोंका गुरुजन क्या करेंगे ? देखो, यह नन्दगोप आदि गोपगण भी उन्हींके साथ जानेकी तैयारी कर रहे हैं। इनमेंसे भी कोई गोविन्दको लौटानेका प्रयत्न नहीं करता। आजकी रात्रि मथुरावासिनी स्त्रियोंके लिये सुन्दर प्रभातवाली हुई है, क्योंकि आज उनके नयन-भृङ्ग श्रीअच्युतके मुखारविन्दका मकरन्द पान करेंगे।

'जो लोग इधरसे बिना रोक-टोक श्रीकृष्णचन्द्रका अनुगमन कर रहे हैं; वे धन्य हैं; क्योंकि वे उनका दर्शन करते हुए अपने रोमाञ्चयुक्त शरीरका वहन करेंगे। आज श्रीगोविन्दके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको देखकर मथुरावासियोंके नेत्रोंको अत्यन्त महोत्सव होगा। आज न जाने उन भाग्य-शालिनियोंने ऐसा कौन शुभ स्वप्न देखा है जो वे कान्तिमय विशाल नयनोंवाली मथुरापुरीकी स्त्रियाँ स्वच्छन्दतापूर्वक श्रीअधोक्षजको निहारेंगी ? अहो ! निष्ठुर विधाताने गोपियों-को महानिधि दिखलाकर आज उनके नेत्र निकाल लिये। देखो ! हमारे प्रति श्रीहरिके अनुरागमें शिथिलता आ जानेसे हमारे हाथोंके कंकण भी तुरंत ही ढीले पड़ गये हैं। भला हम-जैसी दुःखिनी अबलाओंपर किसे दया न आयेगी ? परतु देखो, यह क्रूर-हृदय अक्रूर तो बड़ी शीघ्रतासे घोड़ोंको हाँक रहा है ! देखो, यह श्रीकृष्णचन्द्रके रथकी धूलि दिखलायी दे रही है; किंतु हा ! अब तो श्रीहरि इतनी दूर चले गये कि वह धूलि भी नहीं दीखती।'

इस प्रकार गोपियोंके अति अनुरागसहित देखते-देखते बलराम, श्रीकृष्ण और अक्रूर शीघ्रगामी घोड़ोंवाले रथसे चलते हुए मध्याह्नके समय यमुनातटपर आ गये। वहाँ पहुँचने-पर अक्रूरने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—'जबतक मैं यमुना-जलमें मध्याह्नकालीन उपासनासे निवृत्त होऊँ, तबतक आप दोनों यहाँ विराजें।'

विप्र ! तब भगवान्‌के 'बहुत अच्छा' कहनेपर महामति अक्रूरजी यमुनाजलमें घुसकर स्नान और आचमन आदिके अनन्तर परब्रह्मका ध्यान करने लगे। उस समय उन्होंने देखा कि बलभद्रजी सहस्रफणावलिसे सुशोभित हैं, उनका शरीर कुन्दमालाओंके समान शुभ्रवर्ण है तथा नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल हैं। वे अत्यन्त सुगन्धित वनमालाओंसे विभूषित हैं। दो श्याम वस्त्र धारण किये, कमलोंके बने हुए सुन्दर आभूषण पहने तथा मनोहर कुण्डली (गेंडुली) मारे जलके भीतर विराजमान हैं।

उनकी गोदमें उन्होंने आनन्दमय कमलभूषण श्रीकृष्ण-चन्द्रको देखा, जो मेघके समान श्यामवर्ण, कुछ लाल-लाल विशाल नयनोंवाले, चतुर्भुज मनोहर अङ्गोपाङ्गोंवाले तथा शङ्ख-चक्रादि आयुधोंसे सुशोभित हैं; जो पीताम्बर पहने हुए हैं और विचित्र वनमालासे विभूषित हैं तथा जिनके वक्षः-स्थलमें श्रीवत्सचिह्न और कानोंमें देदीप्यमान मकराकृत कुण्डल विराजमान हैं। अक्रूरजीने यह भी देखा कि सनकादि मुनिजने और निष्पाप सिद्ध तथा योगिजन उस जलमें ही स्थित होकर नासिकाग्र-दृष्टिसे उन श्रीकृष्णचन्द्रका ही चिन्तन कर रहे हैं।

इस प्रकार वहाँ राम और श्रीकृष्णको पहचानकर अक्रूरजी बड़े ही विस्मित हुए और सोचने लगे कि ये यहाँ इतनी शीघ्रतापूर्वक रथसे कैसे आ गये ? जब उन्होंने कुछ कहना चाहा तो भगवान्‌ने उनकी वाणी रोक दी। तब वे जलसे निकलकर रथके पास आये और देखा कि वहाँ भी बलराम और श्रीकृष्ण दोनों ही मनुष्य-शरीरसे पूर्ववत् रथपर बैठे हुए हैं। तदनन्तर उन्होंने जलमें घुसकर उन्हें फिर गन्धर्व, सिद्ध, मुनि और नागादिकोंसे स्तुति किये जाते देखा। तब तो दानपति अक्रूर-जी वास्तविक रहस्य जानकर उन सर्वविज्ञानमय अच्युत भगवान्‌की स्तुति करने लगे।

अक्रूरजी बोले—जो सत्तामात्रस्वरूप, अचिन्त्य महिमा-वाले, सर्वव्यापक तथा कार्यरूपसे अनेक और कारणरूपसे एकरूप हैं, उन परमात्माको नमस्कार है, नमस्कार है। अचिन्तनीय प्रभो ! आप बुद्धिसे अतीत और प्रकृतिसे परे हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। सर्व ! सर्वात्मन् ! क्षराक्षरमय ईश्वर ! आप प्रसन्न होइये। एक आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि रूपोंसे वर्णन किये जाते हैं। परमेश्वर ! आपके स्वरूप, प्रयोजन और नाम आदि सभी अनिर्वचनीय हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

नाथ ! जहाँ नाम और जाति आदि कल्पनाओंका सर्वथा अभाव है, आप वही नित्य अविकारी और अजन्मा परब्रह्म हैं। प्रभो ! इन सम्पूर्ण पदार्थोंमें आपसे भिन्न और कुछ भी नहीं है। आप ही ब्रह्मा, महादेव, अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम हैं। इस प्रकार एक आप ही भिन्न-भिन्न कार्यवाले अपनी शक्तियोंके भेदसे इस सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा कर रहे हैं। 'सत्' पद 'ॐ तत् सत्' इस रूपसे जिसका वाचक है, वह 'ॐ' अक्षर आपका परम स्वरूप है, आपके उस ज्ञानात्मा सदसत्स्वरूपको नमस्कार है।

धनुर्भङ्ग, कुवलयापीड हाथी और चाणूरादि मल्लोंका नाश तथा कंस-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—तदनन्तर बलराम और श्रीकृष्ण क्रमशः नीलाम्बर और पीताम्बर धारण किये हुए यज्ञशालापर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने यज्ञरक्षकोंसे उस यज्ञके उद्देश्यस्वरूप धनुषके विषयमें पूछा और उनके बतलानेपर श्रीकृष्णचन्द्र उसे सहसा उठाकर उसपर प्रत्यञ्चा (डोरी) चढाने लगे। उसपर बलपूर्वक प्रत्यञ्चा चढाते समय वह धनुष टूट गया, उस समय उसने ऐसा घोर शब्द किया कि उससे सम्पूर्ण मथुरापुरी गूँज उठी। तब धनुप टूट जानेपर उसके रक्षकोंने उनपर आक्रमण किया, उस रक्षकसेनाका संहारकर वे दोनों बालक धनुश्शालासे बाहर आये।

तदनन्तर अक्रूरके आनेका समाचार पाकर तथा उस महान् धनुषको भग्न हुआ सुनकर कंसने चाणूर और मुष्टिकसे कहा।

कंस बोला—यहाँ दोनों गोपालबालक आ गये हैं। वे मेरा प्राण-हरण करनेवाले हैं, अतः तुम दोनों मल्लयुद्धसे उन्हें मेरे सामने मार डालो। यदि तुमलोग मल्लयुद्धमें उन दोनोंका विनाश करके मुझे संतुष्ट कर दोगे तो मै तुम्हारी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा; तुम न्यायसे अथवा अन्यायसे मेरे इन महाबलवान् अपकारियोंको अवश्य मार डालो।

मल्लोको इस प्रकार आज्ञा दे कंसने अपने महावतको बुलाया और उसे आज्ञा दी कि 'तू कुवलयापीड हाथीको मल्लोंकी रङ्गभूमिके द्वारपर खड़ा रख और जब वे गोपकुमार युद्धके लिये यहाँ आवें तो उन्हे इससे नष्ट करा दे।' इस प्रकार उसे आज्ञा देकर कस सूर्योदयकी प्रतीक्षा करने लगा।

प्रातःकाल होनेपर समस्त मञ्चोंपर नागरिक लोग और राजमञ्चोंपर अपने अनुचरोंके सहित राजालोग बैठे। तदनन्तर रङ्गभूमिके मध्य भागके समीप कंसने युद्धपरीक्षकोंको बैठाया और फिर स्वयं आप भी एक ऊँचे सिंहासनपर बैठा। वहाँ अन्तःपुरकी स्त्रियोंके लिये पृथक् मचान बनाये गये थे तथा नगरकी महिलाओके लिये भी अलग-अलग मञ्च थे। कुछ अन्य मञ्चोंपर नन्दगोप आदि गोपगण बिठाये गये थे और उन मञ्चोंके पास ही अक्रूर और वसुदेवजी बैठे थे। नगरकी नारियोंके बीचमें पुत्रके लिये मङ्गलकामना करती हुई देवकीजी बैठी थीं।

तदनन्तर तूर्य आदिके बजनेपर जब चाणूर अत्यन्त उछल रहा था और मुष्टिक ताल ठोंक रहा था, गोपवेषधारी वीर बालक बलभद्र और श्रीकृष्ण कुछ हँसते हुए रङ्गभूमिके द्वारपर आये। वहाँ आते ही महावतकी प्रेरणासे कुवलयापीड नामक हाथी उन दोनों गोपकुमारोंको मारनेके लिये बड़े वेगसे दौड़ा। द्विजश्रेष्ठ! उस समय रङ्गभूमिमें महान् हाहाकार मच गया तथा बलदेवजीने अपने अनुज श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा—'महाभाग! इस हाथीको शत्रुने ही प्रेरित किया है; अतः इसे मार डालना चाहिये।'

ज्येष्ठ भ्राता बलरामजीके ऐसा कहनेपर शत्रुसूदन श्रीश्यामसुन्दरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। फिर केशीका वध करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने बलमें ऐरावतके समान उस महाबली हाथीकी सूँड अपने हाथसे पकड़कर उसे घुमाया। भगवान् श्रीकृष्ण यद्यपि सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, तथापि उन्होंने बहुत देरतक उस हाथीके दाँत और चरणोंके बीचमें खेलते-खेलते अपने दायें हाथसे उसका बायाँ दाँत उखाडकर उससे महावतपर प्रहार किया। इससे उसके शिरके सैकड़ो टुकडे हो गये। उसी समय बलभद्रजीने भी क्रोधपूर्वक उसका दायाँ दाँत उखाड़कर उससे आस-पास खड़े हुए महावतोंको मार डाला। तदनन्तर महाबली रोहिणी-नन्दनने रोषपूर्वक अति वेगसे उछलकर उस हाथीके मस्तकपर अपनी बायीं लात मारी। इस प्रकार वह हाथी बलभद्रजीद्वारा लीलापूर्वक मारा जाकर गिर पडा।

तब महावतसे प्रेरित कुवलयापीडको मारकर उसके मद और रक्तसे लथ-पथ बलराम और श्रीकृष्ण उसके दाँतोंको लिये हुए गर्वयुक्त लीलामयी चितवनसे निहारते उस महान् रङ्गभूमिमें इस प्रकार आये, जैसे मृग-समूहके बीचमे सिंह चला जाता है। उस समय महान् रङ्गभूमिमें बडा कोलाहल होने लगा और सब लोगोंमें 'ये श्रीकृष्ण हैं, ये बलभद्र हैं' ऐसा विस्मय छा गया।

वे कहने लगे—'जिसने बालघातिनी घोर राक्षसी पूतनाको मारा था, शकटको उलट दिया था और यमलार्जुनको उखाड़ डाला था, वह यही है। जिस बालकने कालियनागके ऊपर चढकर उसका मान-मर्दन किया था और सात रात्रितक महापर्वत गोवर्धनको अपने हाथपर धारण किया था, वह यही है। जिस महात्माने अरिष्टासुर, धेनुकासुर और केशी आदि दुष्टोंको लीलासे ही मार डाला था, वह यही हैं। इसके आगे ये बड़े भाई महाबाहु बलभद्रजी हैं, जो बड़े लीलापूर्वक

धनुर्भङ्ग, कुवलयापीड हाथी और चाणूरादि मल्लोंका नाश तथा कंस-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—तदनन्तर बलराम और श्रीकृष्ण क्रमशः नीलाम्बर और पीताम्बर धारण किये हुए यज्ञशालापर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने यज्ञरक्षकोंसे उस यज्ञके उद्देश्यस्वरूप धनुषके विषयमें पूछा और उनके बतलानेपर श्रीकृष्णचन्द्र उसे सहसा उठाकर उसपर प्रत्यञ्चा (डोरी) चढाने लगे। उसपर बलपूर्वक प्रत्यञ्चा चढाते समय वह धनुष टूट गया, उस समय उसने ऐसा घोर शब्द किया कि उससे सम्पूर्ण मथुरापुरी गूँज उठी। तब धनुष टूट जानेपर उसके रक्षकोंने उनपर आक्रमण किया, उस रक्षकसेनाका संहारकर वे दोनों बालक धनुश्शालासे बाहर आये।

तदनन्तर अक्रूरके आनेका समाचार पाकर तथा उस महान् धनुषको भग्न हुआ सुनकर कंसने चाणूर और मुष्टिकसे कहा।

कंस बोला—यहाँ दोनों गोपालबालक आ गये हैं। वे मेरा प्राण-हरण करनेवाले हैं, अतः तुम दोनों मल्लयुद्धसे उन्हें मेरे सामने मार डालो। यदि तुमलोग मल्लयुद्धमें उन दोनोंका विनाश करके मुझे संतुष्ट कर दोगे तो मै तुम्हारी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा; तुम न्यायसे अथवा अन्यायसे मेरे इन महाबलवान् अपकारियोंको अवश्य मार डालो।

मल्लोको इस प्रकार आज्ञा दे कंसने अपने महावतको बुलाया और उसे आज्ञा दी कि 'तू कुवलयापीड हाथीको मल्लोंकी रङ्गभूमिके द्वारपर खड़ा रख और जब वे गोपकुमार युद्धके लिये यहाँ आवें तो उन्हें इससे नष्ट करा दे।' इस प्रकार उसे आज्ञा देकर कस सूर्योदयकी प्रतीक्षा करने लगा।

प्रातःकाल होनेपर समस्त मञ्चोंपर नागरिक लोग और राजमञ्चोंपर अपने अनुचरोंके सहित राजालोग बैठे। तदनन्तर रङ्गभूमिके मध्य भागके समीप कंसने युद्धपरीक्षकोंको बैठाया और फिर स्वयं आप भी एक ऊँचे सिंहासनपर बैठा। वहाँ अन्तःपुरकी स्त्रियोंके लिये पृथक् मचान बनाये गये थे तथा नगरकी महिलाओके लिये भी अलग-अलग मञ्च थे। कुछ अन्य मञ्चोंपर नन्दगोप आदि गोपगण बिठाये गये थे और उन मञ्चोंके पास ही अक्रूर और वसुदेवजी बैठे थे। नगरकी नारियोंके बीचमें पुत्रके लिये मङ्गलकामना करती हुई देवकीजी बैठी थीं।

तदनन्तर तूर्य आदिके बजनेपर जब चाणूर अत्यन्त उछल रहा था और मुष्टिक ताल ठोंक रहा था, गोपवेषधारी वीर बालक बलभद्र और श्रीकृष्ण कुछ हँसते हुए रङ्गभूमिके द्वारपर आये। वहाँ आते ही महावतकी प्रेरणासे कुवलयापीड नामक हाथी उन दोनों गोपकुमारोंको मारनेके लिये बड़े वेगसे दौड़ा। द्विजश्रेष्ठ! उस समय रङ्गभूमिमें महान् हाहाकार मच गया तथा बलदेवजीने अपने अनुज श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा—'महाभाग! इस हाथीको शत्रुने ही प्रेरित किया है; अतः इसे मार डालना चाहिये।'

ज्येष्ठ भ्राता बलरामजीके ऐसा कहनेपर शत्रुसूदन श्रीश्यामसुन्दरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। फिर केशीका वध करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने बलमें ऐरावतके समान उस महाबली हाथीकी सूँड अपने हाथसे पकड़कर उसे घुमाया। भगवान् श्रीकृष्ण यद्यपि सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, तथापि उन्होंने बहुत देरतक उस हाथीके दाँत और चरणोके बीचमें खेलते-खेलते अपने दायें हाथसे उसका बायाँ दाँत उखाडकर उससे महावतपर प्रहार किया। इससे उसके शिरके सैकड़ो टुकडे हो गये। उसी समय बलभद्रजीने भी क्रोधपूर्वक उसका दायाँ दाँत उखाड़कर उससे आस-पास खड़े हुए महावतोंको मार डाला। तदनन्तर महाबली रोहिणी-नन्दनने रोषपूर्वक अति वेगसे उछलकर उस हाथीके मस्तकपर अपनी बायीं लात मारी। इस प्रकार वह हाथी बलभद्रजीद्वारा लीलापूर्वक मारा जाकर गिर पडा।

तब महावतसे प्रेरित कुवलयापीडको मारकर उसके मद और रक्तसे लथ-पथ बलराम और श्रीकृष्ण उसके दाँतोंको लिये हुए गर्वयुक्त लीलामयी चितवनसे निहारते उस महान् रङ्गभूमिमें इस प्रकार आये, जैसे मृग-समूहके बीचमे सिंह चला जाता है। उस समय महान् रङ्गभूमिमें बडा कोलाहल होने लगा और सब लोगोंमें 'ये श्रीकृष्ण हैं, ये बलभद्र हैं' ऐसा विस्मय छा गया।

वे कहने लगे—'जिसने बालघातिनी घोर राक्षसी पूतनाको मारा था, शकटको उलट दिया था और यमलार्जुनको उखाड़ डाला था, वह यही है। जिस बालकने कालियनागके ऊपर चढकर उसका मान-मर्दन किया था और सात रात्रितक महापर्वत गोवर्धनको अपने हाथपर धारण किया था, वह यही है। जिस महात्माने अरिष्टासुर, धेनुकासुर और केशी आदि दुष्टोंको लीलासे ही मार डाला था, वह यही हैं। इसके आगे ये बड़े भाई महाबाहु बलभद्रजी हैं, जो बड़े लीलापूर्वक

श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा कंसके पकड लिये जानेपर उसके भाई सुमालीने क्रोधपूर्वक आक्रमण किया । उसे बलरामजीने लीलासे ही मार डाला । उसी समय महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्रने बलदेवजीसहित वसुदेव और देवकीके चरण पकड लिये । तब, जन्मके समय कहे हुए भगवद्वाक्योंका स्मरण हो आनेसे वसुदेव और देवकीने श्रीजनार्दनको पृथिवीपरसे उठा लिया तथा उनके सामने वे प्रणत-भावसे खड़े हो गये ।

श्रीवसुदेवजी बोले—प्रभो ! अब आप हमपर प्रसन्न होइये । केशव ! आपने आर्त्त देवगणोंको जो वर दिया था, वह हम दोनोंपर अनुग्रह करके पूर्ण कर दिया । भगवन् ! आपने जो मेरी आराधनासे दुष्टजनोंके नाशके लिये मेरे घरमें जन्म लिया, उससे हमारे कुलको पवित्र कर दिया है । आप सर्वभूतमय हैं और समस्त भूतोंके भीतर स्थित हैं । समस्तात्मन् ! भूत और भविष्यत् आपसे ही प्रवृत्त होते हैं । अचिन्त्य ! सर्वदेवमय ! अच्युत ! समस्त यज्ञोंसे आपका ही यजन किया जाता है ।

परमेश्वर ! वही आप हमपर प्रसन्न होइये और अपने अंशावतारसे विश्वकी रक्षा कीजिये । ईश ! ब्रह्मासे लेकर वृक्षादिपर्यन्त यह सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है, निर्भय ! 'आप मेरे पुत्र हैं' इस मायासे मोहित होकर मैंने कंससे अत्यन्त भय माना था और उस शत्रुके भयसे ही मैं आपको गोकुल ले गया था । अबतक मैंने आपके ऐसे अनेक कर्म देखे हैं, जो रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और इन्द्रके लिये भी साध्य नहीं हैं । अब मेरा मोह दूर हो गया है, ईश ! मैंने निश्चयपूर्वक जान लिया है कि आप साक्षात् श्रीविष्णुभगवान् ही जगत्‌के उपकारके लिये प्रकट हुए हैं ।

उग्रसेनका राज्याभिषेक तथा भगवान्‌का विद्याध्ययन

श्रीपराशरजी कहते हैं—अपने ईश्वरीय कर्मोंको देखनेसे वसुदेव और देवकीको विज्ञान उत्पन्न हुआ देख भगवान्‌ने यदुवंशियोंको मोहित करनेके लिये अपनी वैष्णवी मायाका विस्तार किया और बोले—'माँ ! पिताजी ! मैं

और बलरामजी बहुत दिनोंसे आपके दर्शनोंके लिये उत्कण्ठित थे, सो आज आपके दर्शन हुए हैं । जो समय माता-पिताकी सेवा किये बिना बीतता है, वह असाधु पुरुषोंकी आयुका भाग व्यर्थ ही जाता है । तात ! गुरु, देवता, ब्राह्मण और माता-पिताका पूजन करते रहनेसे देहधारियोंका जीवन सफल हो जाता है* । अतः तात ! कंसके बल और प्रतापसे परवश होनेके कारण हमसे जो कुछ अपराध हुआ हो, वह क्षमा करें ।'

बलराम और श्रीकृष्णने इस प्रकार कह माता-पिताको प्रणाम किया और फिर क्रमशः समस्त यदुवृद्धोंका यथायोग्य अभिवादनकर पुरवासियोंका सम्मान किया । उस समय कंसकी पत्नियाँ और माताएँ पृथिवीपर पड़े हुए मृतक कंसको घेरकर दुःख-शोकसे पूर्ण हो विलाप करने लगीं । तब श्रीकृष्णचन्द्रने भी आँखोंमें आँसू भरकर उन्हें अनेकों प्रकारसे ढाढ़स बँधाया ।

तदनन्तर श्रीमधुसूदनने जिनका पुत्र मारा गया है, उन राजा उग्रसेनको बन्धनसे मुक्त किया और उन्हें अपने राज्यपर अभिषिक्त कर दिया । तब यदुश्रेष्ठ उग्रसेनने अपने पुत्र तथा और भी जो लोग वहाँ मारे गये थे, उन सबके और्ध्वदैहिक कर्म किये । फिर उग्रसेनसे श्रीहरि बोले—'विभो ! हमारे योग्य जो सेवा हो, उसके लिये हमें निश्शङ्क होकर आज्ञा दीजिये । ययातिका शाप होनेसे यद्यपि हमारा वश

* कुर्वता याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ।
तत्खण्डमायुषो व्यर्थमसाधूनां हि जायते ॥
गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्च पूजनम् ।
कुर्वतां सफलः कालो देहिनां तात जायते ॥
(वि० पु० ५ । २१ । ३-४)

श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा कंसके पकड लिये जानेपर उसके भाई सुमालीने क्रोधपूर्वक आक्रमण किया । उसे बलरामजीने लीलासे ही मार डाला । उसी समय महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्रने बलदेवजीसहित वसुदेव और देवकीके चरण पकड लिये । तब, जन्मके समय कहे हुए भगवद्वाक्योंका स्मरण हो आनेसे वसुदेव और देवकीने श्रीजनार्दनको पृथिवीपरसे उठा लिया तथा उनके सामने वे प्रणत-भावसे खड़े हो गये ।

श्रीवसुदेवजी बोले—प्रभो ! अब आप हमपर प्रसन्न होइये । केशव ! आपने आर्त्त देवगणोंको जो वर दिया था, वह हम दोनोंपर अनुग्रह करके पूर्ण कर दिया । भगवन् ! आपने जो मेरी आराधनासे दुष्टजनोंके नाशके लिये मेरे घरमें जन्म लिया, उससे हमारे कुलको पवित्र कर दिया है । आप सर्वभूतमय हैं और समस्त भूतोंके भीतर स्थित हैं । समस्तात्मन् ! भूत और भविष्यत् आपसे ही प्रवृत्त होते हैं । अचिन्त्य ! सर्वदेवमय ! अच्युत ! समस्त यज्ञोंसे आपका ही यजन किया जाता है ।

परमेश्वर ! वही आप हमपर प्रसन्न होइये और अपने अंशावतारसे विश्वकी रक्षा कीजिये । ईश ! ब्रह्मासे लेकर वृक्षादिपर्यन्त यह सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है, निर्भय ! 'आप मेरे पुत्र हैं' इस मायासे मोहित होकर मैंने कंससे अत्यन्त भय माना था और उस शत्रुके भयसे ही मैं आपको गोकुल ले गया था । अबतक मैंने आपके ऐसे अनेक कर्म देखे हैं, जो रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और इन्द्रके लिये भी साध्य नहीं हैं । अब मेरा मोह दूर हो गया है, ईश ! मैने निश्चयपूर्वक जान लिया है कि आप साक्षात् श्रीविष्णुभगवान् ही जगत्के उपकारके लिये प्रकट हुए हैं ।

उग्रसेनका राज्याभिषेक तथा भगवान्का विद्याध्ययन

श्रीपराशरजी कहते हैं—अपने ईश्वरीय कर्मोंको देखनेसे वसुदेव और देवकीको विज्ञान उत्पन्न हुआ देख भगवान्ने यदुवंशियोंको मोहित करनेके लिये अपनी वैष्णवी मायाका विस्तार किया और बोले—'माँ ! पिताजी ! मैं

और बलरामजी बहुत दिनोंसे आपके दर्शनोंके लिये उत्कण्ठित थे, सो आज आपके दर्शन हुए हैं । जो समय माता-पिताकी सेवा किये बिना बीतता है, वह असाधु पुरुषोंकी आयुका भाग व्यर्थ ही जाता है । तात ! गुरु, देवता, ब्राह्मण और माता-पिताका पूजन करते रहनेसे देहधारियोंका जीवन सफल हो जाता है* । अतः तात ! कंसके बल और प्रतापसे परवश होनेके कारण हमसे जो कुछ अपराध हुआ हो, वह क्षमा करें ।'

बलराम और श्रीकृष्णने इस प्रकार कह माता-पिताको प्रणाम किया और फिर क्रमशः समस्त यदुवृद्धोंका यथायोग्य अभिवादनकर पुरवासियोंका सम्मान किया । उस समय कंसकी पत्नियाँ और माताएँ पृथिवीपर पड़े हुए मृतक कंसको घेरकर दुःख-शोकसे पूर्ण हो विलाप करने लगीं । तब श्रीकृष्णचन्द्रने भी आँखोंमें आँसू भरकर उन्हें अनेकों प्रकारसे ढाढ़स बँधाया ।

तदनन्तर श्रीमधुसूदनने जिनका पुत्र मारा गया है, उन राजा उग्रसेनको बन्धनसे मुक्त किया और उन्हें अपने राज्यपर अभिषिक्त कर दिया । तब यदुश्रेष्ठ उग्रसेनने अपने पुत्र तथा और भी जो लोग वहाँ मारे गये थे, उन सबके और्ध्वदैहिक कर्म किये । फिर उग्रसेनसे श्रीहरि बोले—'विभो ! हमारे योग्य जो सेवा हो, उसके लिये हमें निश्शङ्क होकर आज्ञा दीजिये । ययातिका शाप होनेसे यद्यपि हमारा वंश

* कुर्वता याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ।
तत्खण्डमायुषो व्यर्थमसाधूनां हि जायते ॥
गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्च पूजनम् ।
कुर्वतां सफलः कालो देहिनां तात जायते ॥
(वि० पु० ५ । २१ । ३-४)

आदि यादवोंसे अठारह बार युद्ध किया। इन सभी युद्धोंमें अधिक सैन्यशाली जरासन्ध थोड़ी-सी सेनावाले यदुवंशियोंसे हारकर भाग गया। यादवोंकी थोड़ी-सी सेना भी जो उसकी अनेक बड़ी सेनाओंसे पराजित न हुई, यह सब भगवान् विष्णुके अवतार श्रीकृष्णचन्द्रकी संनिधिका ही माहात्म्य था। उन मानवधर्मशील जगत्पतिकी यह लीला ही है कि वे अपने शत्रुओंपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र छोड़ते हैं। जो केवल संकल्पमात्रसे ही संसारकी उत्पत्ति और संहार कर देते हैं, उन्हें अपने शत्रुपक्षका नाश करनेके लिये विशेष उद्योग करनेकी क्या आवश्यकता है? तथापि वे बलवानोंसे संधि और बलहीनोंसे युद्ध करके मानव-धर्मोंका अनुवर्तन कर रहे हैं। वे कहीं साम, कहीं दान और कहीं भेदनीतिका व्यवहार करते हैं तथा कहीं दण्ड देते और कहींसे स्वयं भाग भी जाते हैं। इस प्रकार मानवदेहधारियोंकी चेष्टाओंका अनुवर्तन करते हुए जगत्पति श्रीकृष्णकी अपनी इच्छानुसार लीलाएँ होती रहती थीं।

एक समयकी बात है, वीर्यमदोन्मत्त यवनराज कालयवनने नारदजीसे पूछा कि 'पृथ्वीपर बलवान् राजा कौन-कौन-से हैं?' इसपर नारदजीने उसे यादवोंको ही बतला दिया। यह सुनकर कालयवनने हजारों हाथी, घोड़े और रथोंके सहित करोड़ों म्लेच्छ-सेनाको साथ ले बड़ी भारी तैयारी की और यादवोंके प्रति क्रुद्ध होकर वह प्रतिदिन हाथी, घोड़े आदिके थक जानेपर उन वाहनोंका त्याग करता हुआ अन्य वाहनोंपर चढ़कर अविच्छिन्न-गतिसे मथुरापुरीपर चढ़ आया।

यह देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने सोचा—'यवनोंके साथ युद्ध करनेसे क्षीण हुई यादव-सेना अवश्य ही मगधनरेशसे पराजित हो जायगी और यदि प्रथम मगधनरेशसे लड़ते हैं तो उससे क्षीण हुई यादवसेनाको बलवान् कालयवन नष्ट कर देगा। अहो! इस प्रकार यादवोंपर एक ही साथ यह दो तरहकी आपत्ति आ पड़ी। अतः मैं यादवोंके लिये एक ऐसा दुर्जय दुर्ग तैयार करता हूँ, जिसमें बैठकर वृष्णिश्रेष्ठ यादवोंकी तो बात ही क्या है, स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकें।'

ऐसा विचारकर श्रीगोविन्दने समुद्रसे बारह योजन भूमि माँगी और उसमें द्वारकापुरी निर्माण की। जो इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान महान् उद्यान, गहरी खाईं, सैकड़ों सरोवर तथा अनेकों महलोंसे सुशोभित थी। कालयवनके समीप आ जानेपर श्रीजनार्दन सम्पूर्ण मथुरानिवासियोंको द्वारकामें ले आये और फिर स्वयं मथुरा लौट गये। जब कालयवनकी सेनाने मथुराको घेर लिया तो श्रीकृष्णचन्द्र बिना शस्त्र लिये मथुरासे बाहर निकल आये। तब यवनराज कालयवन उन्हें देखकर उनके पीछे दौड़ा।

कालयवनसे पीछा किये जाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र उस महा-गुहामें घुस गये, जिसमें महावीर्यशाली राजा मुचुकुन्द सो रहे थे। उस दुर्मति यवनने भी उस गुफामें जाकर सोये हुए राजाको श्रीकृष्ण समझकर लात मारी। उसके लात मारनेसे उठकर राजा मुचुकुन्दने उस यवनराजको देखा। मैत्रेय! उनके देखते ही वह यवन उनकी क्रोधाग्निसे जलकर तत्काल भस्मीभूत हो गया।

पूर्वकालमें राजा मुचुकुन्द देवताओंकी ओरसे देवासुर-संग्राममें गये थे; असुरोंको मार चुकनेपर अत्यन्त निद्रालु होनेके कारण उन्होंने देवताओंसे बहुत समयतक सोनेका वर माँगा था। उस समय देवताओंने कहा था कि 'तुम्हारे शयन करनेपर तुम्हें जो कोई जगावेगा, वह तुरंत ही अपने शरीरसे उत्पन्न हुई अग्निसे जलकर भस्म हो जायगा।'

इस प्रकार पापी कालयवनको दग्ध कर चुकनेपर राजा मुचुकुन्दने श्रीमधुसूदनको देखकर पूछा—'आप कौन हैं?' तब भगवान्‌ने कहा—'मैं चन्द्रवंशके अन्तर्गत यदुकुलमें वसुदेवजीके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ हूँ।' तब मुचुकुन्दको वृद्ध गार्ग्य मुनिके वचनोंका स्मरण हुआ। उनका स्मरण होते ही उन्होंने सर्वरूप सर्वेश्वर श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—'परमेश्वर! मैंने आपको जान लिया है; आप साक्षात् भगवान् विष्णुके अंश हैं। पूर्वकालमें गार्ग्य मुनिने कहा था कि 'अट्ठाईसवें युगमें द्वापरके अन्तमें यदुकुलमें श्रीहरिका जन्म होगा। निस्संदेह आप भगवान् विष्णुके अंश हैं और मनुष्योंके उपकारके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं, तथापि मैं आपके महान् तेजको सहन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। भगवन्! आपका शब्द सजल मेघकी घोर गर्जनाके समान अति गम्भीर है तथा आपके चरणोंसे पीडिता होकर पृथ्वी झुकी हुई है। संसारमें पतित जीवोंके एकमात्र आप ही परम आश्रय हैं। शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले! आप प्रसन्न होइये और मेरे अमङ्गलोंको नष्ट कीजिये।

'आप ही समुद्र हैं, आप ही पर्वत हैं, आप ही नदियाँ हैं और आप ही वन हैं तथा आप ही पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि और मन हैं। आप ही बुद्धि, अव्याकृत, प्राण और प्राणोंके अधिष्ठाता पुरुष हैं तथा-पुरुषसे भी परे जो

आदि यादवोंसे अठारह बार युद्ध किया। इन सभी युद्धोंमें अधिक सैन्यशाली जरासन्ध थोड़ी-सी सेनावाले यदुवंशियोंसे हारकर भाग गया। यादवोंकी थोडी-सी सेना भी जो उसकी अनेक बडी सेनाओंसे पराजित न हुई, यह सब भगवान् विष्णुके अवतार श्रीकृष्णचन्द्रकी संनिधिका ही माहात्म्य था। उन मानवधर्मशील जगत्पतिकी यह लीला ही है कि वे अपने शत्रुओंपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र छोडते हैं। जो केवल संकल्पमात्रसे ही संसारकी उत्पत्ति और संहार कर देते हैं, उन्हें अपने शत्रुपक्षका नाश करनेके लिये विशेष उद्योग करनेकी क्या आवश्यकता है? तथापि वे बलवानोंसे संधि और बलहीनोंसे युद्ध करके मानव-धर्मोंका अनुवर्तन कर रहे हैं। वे कहीं साम, कहीं दान और कहीं भेदनीतिका व्यवहार करते हैं तथा कहीं दण्ड देते और कहींसे स्वयं भाग भी जाते हैं। इस प्रकार मानवदेहधारियोंकी चेष्टाओंका अनुवर्तन करते हुए जगत्पति श्रीकृष्णकी अपनी इच्छानुसार लीलाएँ होती रहती थीं।

एक समयकी बात है, वीर्यमदोन्मत्त यवनराज कालयवनने नारदजीसे पूछा कि 'पृथ्वीपर बलवान् राजा कौन-कौन-से हैं?' इसपर नारदजीने उसे यादवोंको ही बतला दिया। यह सुनकर कालयवनने हजारों हाथी, घोड़े और रथोंके सहित करोड़ों म्लेच्छ-सेनाको साथ ले बड़ी भारी तैयारी की और यादवोंके प्रति क्रुद्ध होकर वह प्रतिदिन हाथी, घोड़े आदिके थक जानेपर उन वाहनोंका त्याग करता हुआ अन्य वाहनोंपर चढ़कर अविच्छिन्न-गतिसे मथुरापुरीपर चढ़ आया।

यह देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने सोचा—'यवनोंके साथ युद्ध करनेसे क्षीण हुई यादव-सेना अवश्य ही मगधनरेशसे पराजित हो जायगी और यदि प्रथम मगधनरेशसे लड़ते हैं तो उससे क्षीण हुई यादवसेनाको बलवान् कालयवन नष्ट कर देगा। अहो! इस प्रकार यादवोंपर एक ही साथ यह दो तरहकी आपत्ति आ पड़ी। अतः मैं यादवोंके लिये एक ऐसा दुर्जय दुर्ग तैयार करता हूँ, जिसमें बैठकर वृष्णिश्रेष्ठ यादवोंकी तो बात ही क्या है, स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकें।'

ऐसा विचारकर श्रीगोविन्दने समुद्रसे बारह योजन भूमि माँगी और उसमें द्वारकापुरी निर्माण की। जो इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान महान् उद्यान, गहरी खाईं, सैकड़ों सरोवर तथा अनेकों महलोंसे सुशोभित थी। कालयवनके समीप आ जानेपर श्रीजनार्दन सम्पूर्ण मथुरानिवासियोंको द्वारकामें ले आये और फिर स्वयं मथुरा लौट गये। जब कालयवनकी सेनाने मथुराको घेर लिया तो श्रीकृष्णचन्द्र बिना शस्त्र लिये मथुरासे बाहर निकल आये। तब यवनराज कालयवन उन्हें देखकर उनके पीछे दौड़ा।

कालयवनसे पीछा किये जाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र उस महा-गुहामें घुस गये, जिसमें महावीर्यशाली राजा मुचुकुन्द सो रहे थे। उस दुर्मति यवनने भी उस गुफामें जाकर सोये हुए राजाको श्रीकृष्ण समझकर लात मारी। उसके लात मारनेसे उठकर राजा मुचुकुन्दने उस यवनराजको देखा। मैत्रेय! उनके देखते ही वह यवन उनकी क्रोधाग्निसे जलकर तत्काल भस्मीभूत हो गया।

पूर्वकालमें राजा मुचुकुन्द देवताओंकी ओरसे देवासुर-संग्राममें गये थे; असुरोंको मार चुकनेपर अत्यन्त निद्रालु होनेके कारण उन्होंने देवताओंसे बहुत समयतक सोनेका वर माँगा था। उस समय देवताओंने कहा था कि 'तुम्हारे शयन करनेपर तुम्हें जो कोई जगावेगा, वह तुरंत ही अपने शरीरसे उत्पन्न हुई अग्निसे जलकर भस्म हो जायगा।'

इस प्रकार पापी कालयवनको दग्ध कर चुकनेपर राजा मुचुकुन्दने श्रीमधुसूदनको देखकर पूछा—'आप कौन हैं?' तब भगवान्‌ने कहा—'मैं चन्द्रवंशके अन्तर्गत यदुकुलमें वसुदेवजीके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ हूँ।' तब मुचुकुन्दको वृद्ध गार्ग्य मुनिके वचनोंका स्मरण हुआ। उनका स्मरण होते ही उन्होंने सर्वरूप सर्वेश्वर श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—'परमेश्वर! मैंने आपको जान लिया है; आप साक्षात् भगवान् विष्णुके अंश हैं। पूर्वकालमें गार्ग्य मुनिने कहा था कि 'अट्ठाईसवें युगमें द्वापरके अन्तमें यदुकुलमें श्रीहरिका जन्म होगा। निस्संदेह आप भगवान् विष्णुके अंश हैं और मनुष्योंके उपकारके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं, तथापि मैं आपके महान् तेजको सहन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। भगवन्! आपका शब्द सजल मेघकी घोर गर्जनाके समान अति गम्भीर है तथा आपके चरणोंसे पीडिता होकर पृथ्वी झुकी हुई है। संसारमें पतित जीवोंके एकमात्र आप ही परम आश्रय हैं। शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले! आप प्रसन्न होइये और मेरे अमङ्गलोंको नष्ट कीजिये।

'आप ही समुद्र हैं, आप ही पर्वत हैं, आप ही नदियाँ हैं और आप ही वन हैं तथा आप ही पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि और मन हैं। आप ही बुद्धि, अव्याकृत, प्राण और प्राणोंके अधिष्ठाता पुरुष हैं तथा पुरुषसे भी परे जो

रुक्मिणीका विवाह तथा प्रद्युम्न-हरण और शम्बर-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—विदर्भदेशान्तर्गत कुण्डिनपुर नामक नगरमें भीष्मक नामक एक राजा थे। उनके रुक्मी नामक पुत्र और रुक्मिणी नामकी एक सुमुखी कन्या थी। श्रीकृष्णने रुक्मिणीकी और चारुहासिनी रुक्मिणीने श्रीकृष्णचन्द्रकी अभिलाषा की, किंतु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके माँगनेपर भी उनसे द्वेष करनेके कारण रुक्मीने उन्हें रुक्मिणी न दी। महापराक्रमी भीष्मकने जरासन्धकी प्रेरणासे रुक्मीसे सहमत होकर शिशुपालको रुक्मिणी देनेका निश्चय किया। तब शिशुपालके हितैषी जरासन्ध आदि सम्पूर्ण राजागण विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये भीष्मकके नगरमें गये। इधर श्रीकृष्णचन्द्र भी कुण्डिनपुर गये और विवाहके एक दिन पूर्व ही उन्होंने उस कन्याका हरण कर लिया। तब श्रीमान् पौण्ड्रक, दन्तवक्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासन्ध और शाल्व आदि राजाओंने कुपित होकर श्रीकृष्णको मारनेका महान् उद्योग किया, किंतु वे सब बलराम आदि यदुश्रेष्ठोंसे मुठभेड़ होनेपर पराजित हो गये। तब रुक्मीने यह प्रतिज्ञा कर कि 'मैं युद्धमें कृष्णको मारे बिना कुण्डिनपुरमें प्रवेश न करूँगा' श्रीकृष्णको मारनेके लिये उनका पीछा किया; किंतु श्रीकृष्णने लीलासे ही हाथी, घोड़े, रथ और पदातियोंसे युक्त उसकी सेनाको नष्ट करके उसे जीत लिया और पृथिवीमें गिरा दिया।

इस प्रकार रुक्मीको युद्धमें परास्तकर श्रीमधुसूदनने रुक्मिणीका सम्यक् (वेदोक्त) रीतिसे पाणिग्रहण किया। उससे उनके वीर्यवान् प्रद्युम्नजीका जन्म हुआ, जिन्हें शम्बरासुर हर ले गया था और फिर काल-क्रमसे जिन्होंने शम्बरासुरका वध किया था।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—मुने! वीरवर प्रद्युम्नको शम्बरासुरने कैसे हरण किया था? और फिर उस महाबली शम्बरको प्रद्युम्नने कैसे मारा?

श्रीपराशरजीने कहा—मुने! कालके समान विकराल शम्बरासुरने प्रद्युम्नको, जन्म लेनेके छठे ही दिन 'यह मेरा मारनेवाला है' ऐसा जानकर सूतिकागृहसे हर लिया। उसको हरण करके शम्बरासुरने लवणसमुद्रमें डाल दिया, वहाँ फेंके हुए उस बालकको एक मत्स्यने निगल लिया, किंतु वह उसकी जठराग्निसे जलकर भी न मरा।

कालान्तरमें कुछ मछेरोंने उसे अन्य मछलियोंके साथ अपने जालमें फँसाया और असुरश्रेष्ठ शम्बरको निवेदन किया। उसकी नाममात्रकी पत्नी मायावती सम्पूर्ण अन्तःपुरकी स्वामिनी थी। उस मछलीका पेट चीरते ही उसमें एक अति सुन्दर बालक दिखायी दिया। 'तब यह कौन है और किस प्रकार इस मछलीके पेटमें डाला गया' इस प्रकार अत्यन्त आश्चर्यचकित हुई उस सुन्दरीसे देवर्षि नारदने आकर कहा—'सुन्दर भृकुटिवाली! यह भगवान् श्रीकृष्णका पुत्र है; इसे शम्बरासुरने सूतिकागृहसे चुराकर समुद्रमें फेंक दिया था। वहाँ इसे यह मत्स्य निगल गया और अब इसीके द्वारा यह तेरे घर आ गया है। तू इस नररत्नका पालन कर।'

नारदजीके ऐसा कहनेपर मायावतीने उस बालककी अतिशय सुन्दरतासे मोहित हो बाल्यावस्थासे ही उसका अति अनुरागपूर्वक पालन किया। महामते! जिस समय वह नवयौवनके समागमसे सुशोभित हुआ, तब वह गजगामिनी उसके प्रति कामनायुक्त अनुराग प्रकट करने लगी। महामुने! जो अपना हृदय और नेत्र प्रद्युम्नमें अर्पित कर चुकी थी, उस मायावतीने अनुरागसे मोहित होकर उसे सब प्रकारकी माया सिखा दी और कहा—'तुम भगवान् श्रीकृष्णके तनय हो। तुम्हें कालशम्बरने हरकर समुद्रमें फेंक दिया था; तुम मुझे एक मत्स्यके उदरमें मिले हो। तुम्हारे वियोगमें तुम्हारी पुत्रवत्सला जननी आज भी रोती होगी।'

मायावतीके इस प्रकार कहनेपर महाबलवान् प्रद्युम्नजीने क्रोधसे विह्वल हो शम्बरासुरको युद्धके लिये ललकारा और उससे युद्ध करने लगे। यादवश्रेष्ठ प्रद्युम्नजीने उस दैत्यकी सम्पूर्ण सेना मार डाली और उसकी सात मायाओंको जीतकर स्वयं आठवीं मायाका प्रयोग किया। उस मायासे उन्होंने दैत्यराज कालशम्बरको मार डाला और मायावतीके साथ उड़कर आकाशमार्गसे अपने पिताके नगरमें आ गये।

मायावतीके सहित अन्तःपुरमें उतरनेपर रुक्मिणीके नेत्रोंमें प्रेमवश आँसू भर आये और वे कहने लगीं—'बेटा! जैसा मुझे तेरे प्रति स्नेह हो रहा है और जैसा तेरा स्वरूप है, उससे मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तू भगवान् श्रीकृष्णका ही पुत्र है।'

इसी समय श्रीकृष्णचन्द्रके साथ वहाँ नारदजी आ गये। उन्होंने अन्तःपुरनिवासिनी देवी रुक्मिणीको आनन्दित करते हुए कहा—'सुभ्रु! यह तेरा ही पुत्र है।

रुक्मिणीका विवाह तथा प्रद्युम्न-हरण और शम्बर-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—विदर्भदेशान्तर्गत कुण्डिनपुर नामक नगरमें भीष्मक नामक एक राजा थे। उनके रुक्मी नामक पुत्र और रुक्मिणी नामकी एक सुमुखी कन्या थी। श्रीकृष्णने रुक्मिणीकी और चारुहासिनी रुक्मिणीने श्रीकृष्णचन्द्रकी अभिलाषा की, किंतु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके माँगनेपर भी उनसे द्वेष करनेके कारण रुक्मीने उन्हें रुक्मिणी न दी। महापराक्रमी भीष्मकने जरासन्धकी प्रेरणासे रुक्मीसे सहमत होकर शिशुपालको रुक्मिणी देनेका निश्चय किया। तब शिशुपालके हितैषी जरासन्ध आदि सम्पूर्ण राजागण विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये भीष्मकके नगरमें गये। इधर श्रीकृष्णचन्द्र भी कुण्डिनपुर गये और विवाहके एक दिन पूर्व ही उन्होंने उस कन्याका हरण कर लिया। तब श्रीमान् पौण्ड्रक, दन्तवक्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासन्ध और शाल्व आदि राजाओंने कुपित होकर श्रीकृष्णको मारनेका महान् उद्योग किया, किंतु वे सब बलराम आदि यदुश्रेष्ठोंसे मुठभेड़ होनेपर पराजित हो गये। तब रुक्मीने यह प्रतिज्ञा कर कि 'मैं युद्धमें कृष्णको मारे बिना कुण्डिनपुरमें प्रवेश न करूँगा' श्रीकृष्णको मारनेके लिये उनका पीछा किया, किंतु श्रीकृष्णने लीलासे ही हाथी, घोड़े, रथ और पदातियोंसे युक्त उसकी सेनाको नष्ट करके उसे जीत लिया और पृथिवीमें गिरा दिया।

इस प्रकार रुक्मीको युद्धमें परास्तकर श्रीमधुसूदनने रुक्मिणीका सम्यक् (वेदोक्त) रीतिसे पाणिग्रहण किया। उससे उनके वीर्यवान् प्रद्युम्नजीका जन्म हुआ, जिन्हें शम्बरासुर हर ले गया था और फिर काल-क्रमसे जिन्होंने शम्बरासुरका वध किया था।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—मुने ! वीरवर प्रद्युम्नको शम्बरासुरने कैसे हरण किया था ? और फिर उस महाबली शम्बरको प्रद्युम्नने कैसे मारा ?

श्रीपराशरजीने कहा—मुने ! कालके समान विकराल शम्बरासुरने प्रद्युम्नको, जन्म लेनेके छठे ही दिन 'यह मेरा मारनेवाला है' ऐसा जानकर सूतिकागृहसे हर लिया। उसको हरण करके शम्बरासुरने लवणसमुद्रमें डाल दिया, वहाँ फेंके हुए उस बालकको एक मत्स्यने निगल लिया, किंतु वह उसकी जठराग्निसे जलकर भी न मरा।

कालान्तरमें कुछ मछेरोंने उसे अन्य मछलियोंके साथ अपने जालमें फँसाया और असुरश्रेष्ठ शम्बरको निवेदन किया। उसकी नाममात्रकी पत्नी मायावती सम्पूर्ण अन्तःपुरकी स्वामिनी थी। उस मछलीका पेट चीरते ही उसमें एक अति सुन्दर बालक दिखायी दिया। 'तब यह कौन है और किस प्रकार इस मछलीके पेटमें डाला गया' इस प्रकार अत्यन्त आश्चर्यचकित हुई उस सुन्दरीसे देवर्षि नारदने आकर कहा—'सुन्दर भृकुटिवाली ! यह भगवान् श्रीकृष्णका पुत्र है; इसे शम्बरासुरने सूतिकागृहसे चुराकर समुद्रमें फेंक दिया था। वहाँ इसे यह मत्स्य निगल गया और अब इसीके द्वारा यह तेरे घर आ गया है। तू इस नररत्नका पालन कर।'

नारदजीके ऐसा कहनेपर मायावतीने उस बालककी अतिशय सुन्दरतासे मोहित हो बाल्यावस्थासे ही उसका अति अनुरागपूर्वक पालन किया। महामते ! जिस समय वह नवयौवनके समागमसे सुशोभित हुआ, तब वह गजगामिनी उसके प्रति कामनायुक्त अनुराग प्रकट करने लगी। महामुने ! जो अपना हृदय और नेत्र प्रद्युम्नमें अर्पित कर चुकी थी, उस मायावतीने अनुरागसे मोहित होकर उसे सब प्रकारकी माया सिखा दी और कहा—'तुम भगवान् श्रीकृष्णके तनय हो। तुम्हें कालशम्बरने हरकर समुद्रमें फेंक दिया था; तुम मुझे एक मत्स्यके उदरमें मिले हो। तुम्हारे वियोगमें तुम्हारी पुत्रवत्सला जननी आज भी रोती होगी।'

मायावतीके इस प्रकार कहनेपर महाबलवान् प्रद्युम्नजीने क्रोधसे विह्वल हो शम्बरासुरको युद्धके लिये ललकारा और उससे युद्ध करने लगे। यादवश्रेष्ठ प्रद्युम्नजीने उस दैत्यकी सम्पूर्ण सेना मार डाली और उसकी सात मायाओंको जीतकर स्वयं आठवीं मायाका प्रयोग किया। उस मायासे उन्होंने दैत्यराज कालशम्बरको मार डाला और मायावतीके साथ उड़कर आकाशमार्गसे अपने पिताके नगरमें आ गये।

मायावतीके सहित अन्तःपुरमें उतरनेपर रुक्मिणीके नेत्रोंमें प्रेमवश आँसू भर आये और वे कहने लगीं—'बेटा ! जैसा मुझे तेरे प्रति स्नेह हो रहा है और जैसा तेरा स्वरूप है, उससे मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तू भगवान् श्रीकृष्णका ही पुत्र है।'

इसी समय श्रीकृष्णचन्द्रके साथ वहाँ नारदजी आ गये। उन्होंने अन्तःपुरनिवासिनी देवी रुक्मिणीको आनन्दित करते हुए कहा—'सुभ्रु ! यह तेरा ही पुत्र है।

आपने मेरा उद्धार किया था, उसी समय आपके स्पर्शसे मेरे यह पुत्र उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार आपने ही मुझे यह पुत्र दिया था और अब आपहीने इसको नष्ट किया है; आप ये कुण्डल लीजिये और अब इसकी संतानकी रक्षा कीजिये। प्रभो! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर ही आप मेरा भार उतारनेके लिये इस लोकमें अवतीर्ण हुए हैं। अच्युत! इस जगत्‌के आप ही कर्ता, आप ही विकर्ता (पोषक) और आप ही हर्ता (संहारक) हैं; आप ही इसकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं तथा आप ही जगद्रूप हैं। फिर हम आपकी किस बातकी स्तुति करें ? सर्वभूतात्मन्! आप प्रसन्न होइये और इस नरकासुरके सम्पूर्ण अपराध क्षमा कीजिये। आपने निर्दोष करनेके लिये ही इसे स्वयं मारा है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर भगवान्‌ने पृथिवीसे कहा—'तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।' फिर भगवान्‌ने अन्तःपुरमें जाकर सोलह हजार एक सौ कन्याएँ देखीं तथा चार दाँतवाले छः हजार गजश्रेष्ठ और इक्कीस लाख काम्बोजदेशीय अश्व देखे। उन कन्याओं, हाथियों और घोड़ोंको श्रीकृष्णचन्द्रने नरकासुरके सेवकोंद्वारा तुरंत ही द्वारकापुरी पहुँचवा दिया। तत्पश्चात् भगवान्‌ने वरुणका छत्र और मणिपर्वत देखा, उन्हें उठाकर उन्होंने पक्षिराज गरुडपर रख लिया और सत्यभामाके सहित स्वयं भी उसीपर चढ़कर अदितिके कुण्डल देनेके लिये स्वर्गलोकको गये।

पारिजात-हरण तथा भगवान्‌का सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे विवाह करना

श्रीपराशरजी कहते हैं—पक्षिराज गरुड उस वारुण-छत्र, मणिपर्वत और सत्यभामाके सहित श्रीकृष्णचन्द्रको लीलासे ही लेकर चलने लगे। स्वर्गके द्वारपर पहुँचते ही श्रीहरिने अपना शङ्ख बजाया। उसका शब्द सुनते ही देवगण अर्घ्य लेकर भगवान्‌के सामने उपस्थित हुए। देवताओंसे पूजित होकर श्रीकृष्णचन्द्रजीने देवमाता अदितिके श्वेत मेघ-शिखरके समान गृहमें जाकर उनका दर्शन किया। तब श्री-जनार्दनने इन्द्रके साथ देवमाताको प्रणामकर उनके अत्युत्तम कुण्डल दिये और उन्हें नरकासुरके वधका वृत्तान्त सुनाया। तदनन्तर जगन्माता अदितिने प्रसन्नतापूर्वक तन्मय होकर जगद्धाता श्रीहरिकी स्तुति की।

अदिति बोली—कमलनयन! भक्तोंको अभय करने-वाले! सनातनस्वरूप! सर्वात्मन्! भूतस्वरूप! भूतभावन! आपको नमस्कार है। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके रचयिता! गुणस्वरूप! त्रिगुणातीत! निर्द्वन्द्व! शुद्धसत्त्व! अन्त-र्यामिन्! आपको नमस्कार है। ईश्वर! आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक अपनी मूर्तियोंद्वारा जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और नाश करनेवाले हैं तथा आप कर्ताओंके भी स्वामी हैं। प्रभो! आपकी माया ही परमार्थतत्त्वके न जाननेवाले पुरुषोंको मोहित करनेवाली है, जिससे मूढ पुरुष अनात्मामें आत्मबुद्धि करके बन्धनमें पड़े हुए हैं। नाथ! प्रायः पुरुष-को जो अनात्मामें आत्मबुद्धि और 'मैं-मेरा' आदि भाव होते हैं, वह सब आपकी जगज्जननी मायाका ही प्रभाव है। नाथ! जो स्वधर्मपरायण पुरुष आपकी आराधना करते हैं, वे अपने मोक्षके लिये इस सम्पूर्ण मायाको पार कर जाते हैं। भगवन्! जन्म और मरणके चक्रमें पड़े हुए ये पुरुष जीवके भव-बन्धनको नष्ट करनेवाले आपकी आराधना करके भी जो नाना प्रकारकी कामनाएँ ही माँगते हैं, यह आपकी माया ही है। अखिल जगन्माया-मोहकारी अव्यय प्रभो! आप प्रसन्न होइये और भूतेश्वर! मेरे ज्ञानाभिमानजनित अज्ञानको नष्ट कीजिये। चक्रपाणे! शार्ङ्गधर! गदाधर! शङ्खपाणे! विष्णो! आपको बारंबार नमस्कार है। मैं स्थूल चिह्नोंसे प्रतीत होनेवाले आपके इस रूपको देखती हूँ; आपके वास्तविक परस्वरूपको मैं नहीं जानती; परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—अदितिद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् विष्णु देवमातासे हँसकर बोले—'देवि! तुम तो हमारी माता हो।'

तदनन्तर शक्रपत्नी शचीके सहित श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामाने अदितिको पुनः-पुनः प्रणाम करके कहा—'माता! आप प्रसन्न होइये।'

अदिति बोली—सुन्दर भ्रूकुटिवाली! मेरी कृपासे तुझे कभी वृद्धावस्था या विरूपता व्याप्त न होगी। अनिन्दिताङ्गि! तेरा नवयौवन सदा स्थिर रहेगा।

तत्पश्चात् अदितिकी आज्ञासे देवराजने अत्यन्त आदर-सत्कारके साथ श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन किया, किंतु कल्प-वृक्षके पुष्पोंसे अलंकृता इन्द्राणीने सत्यभामाको मानुषी समझकर वे पुष्प न दिये। साधुश्रेष्ठ! फिर सत्यभामाके

आपने मेरा उद्धार किया था, उसी समय आपके स्पर्शसे मेरे यह पुत्र उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार आपने ही मुझे यह पुत्र दिया था और अब आपहीने इसको नष्ट किया है; आप ये कुण्डल लीजिये और अब इसकी संतानकी रक्षा कीजिये। प्रभो! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर ही आप मेरा भार उतारनेके लिये इस लोकमें अवतीर्ण हुए हैं। अच्युत! इस जगत्के आप ही कर्ता, आप ही विकर्ता (पोषक) और आप ही हर्ता (संहारक) हैं; आप ही इसकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं तथा आप ही जगद्रूप हैं। फिर हम आपकी किस बातकी स्तुति करें ? सर्वभूतात्मन्! आप प्रसन्न होइये और इस नरकासुरके सम्पूर्ण अपराध क्षमा कीजिये। आपने निर्दोष करनेके लिये ही इसे स्वयं मारा है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर भगवान्‌ने पृथिवीसे कहा—'तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।' फिर भगवान्‌ने अन्तःपुरमें जाकर सोलह हजार एक सौ कन्याएँ देखीं तथा चार दाँतवाले छः हजार गजश्रेष्ठ और इक्कीस लाख काम्बोजदेशीय अश्व देखे। उन कन्याओं, हाथियों और घोड़ोंको श्रीकृष्णचन्द्रने नरकासुरके सेवकोंद्वारा तुरंत ही द्वारकापुरी पहुँचवा दिया। तत्पश्चात् भगवान्‌ने वरुणका छत्र और मणिपर्वत देखा, उन्हें उठाकर उन्होंने पक्षिराज गरुडपर रख लिया और सत्यभामाके सहित स्वयं भी उसीपर चढ़कर अदितिके कुण्डल देनेके लिये स्वर्गलोकको गये।

पारिजात-हरण तथा भगवान्‌का सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे विवाह करना

श्रीपराशरजी कहते हैं—पक्षिराज गरुड उस वारुण-छत्र, मणिपर्वत और सत्यभामाके सहित श्रीकृष्णचन्द्रको लीलासे ही लेकर चलने लगे। स्वर्गके द्वारपर पहुँचते ही श्रीहरिने अपना शङ्ख बजाया। उसका शब्द सुनते ही देवगण अर्घ्य लेकर भगवान्‌के सामने उपस्थित हुए। देवताओंसे पूजित होकर श्रीकृष्णचन्द्रजीने देवमाता अदितिके श्वेत मेघ-शिखरके समान गृहमें जाकर उनका दर्शन किया। तब श्री-जनार्दनने इन्द्रके साथ देवमाताको प्रणामकर उनके अत्युत्तम कुण्डल दिये और उन्हें नरकासुरके वधका वृत्तान्त सुनाया। तदनन्तर जगन्माता अदितिने प्रसन्नतापूर्वक तन्मय होकर जगद्धाता श्रीहरिकी स्तुति की।

अदिति बोली—कमलनयन! भक्तोंको अभय करने-वाले! सनातनस्वरूप! सर्वात्मन्! भूतस्वरूप! भूतभावन! आपको नमस्कार है। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके रचयिता! गुणस्वरूप! त्रिगुणातीत! निर्द्वन्द्व! शुद्धसत्त्व! अन्त-र्यामिन्! आपको नमस्कार है। ईश्वर! आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक अपनी मूर्तियोंद्वारा जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और नाश करनेवाले हैं तथा आप कर्ताओंके भी स्वामी हैं। प्रभो! आपकी माया ही परमार्थतत्त्वके न जाननेवाले पुरुषोंको मोहित करनेवाली है, जिससे मूढ पुरुष अनात्मामें आत्मबुद्धि करके बन्धनमें पड़े हुए हैं। नाथ! प्रायः पुरुष-को जो अनात्मामें आत्मबुद्धि और 'मैं-मेरा' आदि भाव होते हैं, वह सब आपकी जगज्जननी मायाका ही प्रभाव है। नाथ! जो स्वधर्मपरायण पुरुष आपकी आराधना करते हैं, वे अपने मोक्षके लिये इस सम्पूर्ण मायाको पार कर जाते हैं। भगवन्! जन्म और मरणके चक्रमें पड़े हुए ये पुरुष जीवके भव-बन्धनको नष्ट करनेवाले आपकी आराधना करके भी जो नाना प्रकारकी कामनाएँ ही माँगते हैं, यह आपकी माया ही है। अखिल जगन्माया-मोहकारी अव्यय प्रभो! आप प्रसन्न होइये और भूतेश्वर! मेरे ज्ञानाभिमानजनित अज्ञानको नष्ट कीजिये। चक्रपाणे! शार्ङ्गधर! गदाधर! शङ्खपाणे! विष्णो! आपको बारंबार नमस्कार है। मैं स्थूल चिह्नोंसे प्रतीत होनेवाले आपके इस रूपको देखती हूँ; आपके वास्तविक परस्वरूपको मैं नहीं जानती; परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—अदितिद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् विष्णु देवमातासे हँसकर बोले—'देवि! तुम तो हमारी माता हो।'

तदनन्तर शक्रपत्नी शचीके सहित श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामाने अदितिको पुनः-पुनः प्रणाम करके कहा—'माता! आप प्रसन्न होइये।'

अदिति बोली—सुन्दर भृकुटिवाली! मेरी कृपासे तुझे कभी वृद्धावस्था या विरूपता व्याप्त न होगी। अनिन्दिताङ्गि! तेरा नवयौवन सदा स्थिर रहेगा।

तत्पश्चात् अदितिकी आज्ञासे देवराजने अत्यन्त आदर-सत्कारके साथ श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन किया, किंतु कल्प-वृक्षके पुष्पोंसे अलंकृता इन्द्राणीने सत्यभामाको मानुषी समझकर वे पुष्प न दिये। साधुश्रेष्ठ! फिर सत्यभामाके

किया है, उसे आप क्षमा करें। इस पारिजात-वृक्षको इसके योग्य स्थान (नन्दनवन) को ले जाइये। शक्र! मैंने तो इसे सत्यभामाकी बात रखनेके लिये ही ले लिया था और आपने जो वज्र फेंका था, उसे भी ले लीजिये; क्योंकि शक्र! यह शत्रुओंको नष्ट करनेवाला शस्त्र आपका ही है।

इन्द्र बोले—ईश! 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा कहकर मुझे क्यों मोहित करते हैं? भगवन्! मैं तो आपके इस सगुण स्वरूपको ही जानता हूँ, हम आपके सूक्ष्म स्वरूपको जाननेवाले नहीं हैं। नाथ! आप जो हैं वही हैं, हम तो इतना ही जानते हैं कि दैत्यदलन! आप लोकरक्षामें तत्पर हैं और इस संसारके काँटोंको निकाल रहे हैं। श्रीकृष्ण! इस पारिजात-वृक्षको आप द्वारकापुरी ले जाइये, जिस समय आप मर्त्यलोक छोड़ देंगे, उस समय यह पृथ्वीपर नहीं रहेगा अर्थात् मेरे पास आ जायगा। देवदेव! जगन्नाथ! श्रीकृष्ण! विष्णो! महाबाहो! शङ्खचक्रगदापाणे! मेरी इस धृष्टताको क्षमा कीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीहरि देवराजसे 'तुम्हारी जैसी इच्छा है, वैसा ही सही' ऐसा कहकर सिद्ध, गन्धर्व और देवर्षिगणसे स्तुत हो पृथ्वी-लोकमें चले आये। द्विज! द्वारकापुरीके ऊपर पहुँचकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने आनेकी सूचना देते हुए शङ्ख बजाकर द्वारकावासियोंको आनन्दित किया। तत्पश्चात् सत्यभामाके सहित गरुडसे उतरकर उस पारिजात-महावृक्षको सत्यभामाके गृहोद्यानमें लगा दिया। जिसके पास आकर सब मनुष्योंको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आता है और जिसके पुष्पोंसे निकली हुई गन्धसे तीन योजनतक पृथ्वी सुगन्धित रहती है, यादवोंने उस वृक्षके पास जाकर अपना मुख देखा तो उन्हें अपना शरीर अमानुष (दिव्य) दिखलायी दिया।

इसके बाद महामति श्रीकृष्णचन्द्रने नरकासुरके सेवकोंद्वारा लाये हुए हाथी-घोड़े आदि धनको अपने बन्धु-बान्धवोंमें बाँट दिया और नरकासुरकी हरण करके लायी हुई कन्याओंको स्वयं ले लिया। शुभ समय प्राप्त होनेपर श्रीगोविन्दने एक ही समय पृथक्-पृथक् भवनोंमें उन सबके साथ विधिवत् धर्मपूर्वक पाणिग्रहण किया। वे सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थीं। उन सबके साथ पाणिग्रहण करते समय श्रीमधुसूदनने इतने ही रूप बना लिये। मैत्रेय! परंतु उस समय प्रत्येक कन्या 'भगवान्‌ने मेरा ही पाणिग्रहण किया है' इस प्रकार उन्हें एक ही समझ रही थी। विप्र! जगत्स्रष्टा श्रीहरि पृथक्-पृथक् रूप धारण करके रात्रिके समय उन सभीके घरोंमें रहते थे।

उषा-चरित्र तथा श्रीकृष्ण और बाणासुरका युद्ध

श्रीपराशरजी कहते हैं—रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए भगवान्‌के प्रद्युम्न आदि पुत्रोंका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं; सत्यभामाने भानु और भौमेरिक आदिको जन्म दिया। श्रीहरिके रोहिणीके[1] गर्भसे दीप्तिमान् और ताम्रपक्ष आदि तथा जाम्बवतीसे बलशाली साम्ब आदि पुत्र हुए। नाग्नजिती (सत्या) से महाबली भद्रविन्द आदि और शैब्या (मित्रविन्दा) से संग्रामजित् आदि उत्पन्न हुए। माद्रीसे वृक आदि, लक्ष्मणासे गात्रवान् आदि तथा कालिन्दीसे श्रुत आदि पुत्रोंका जन्म हुआ। इसी प्रकार भगवान्‌की अन्य स्त्रियोंके भी आठ अयुत आठ हजार आठ सौ (अट्ठासी हजार आठ सौ) पुत्र हुए।

इन सब पुत्रोंमें श्रीरुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न सबसे बड़े थे; प्रद्युम्नसे अनिरुद्धका जन्म हुआ और अनिरुद्धसे वज्र उत्पन्न हुआ। द्विजोत्तम! महाबली अनिरुद्ध युद्धमें किसीसे रोके नहीं जा सकते थे। उन्होंने बलिकी पौत्री एवं बाणासुरकी पुत्री उषासे विवाह किया था।

विप्र! एक बार बाणासुरकी पुत्री उषाके द्वारा पति-प्राप्तिके विषयमें पूछनेपर पार्वतीजीने उससे कहा—'राजपुत्रि! वैशाख-शुक्ला द्वादशीकी रात्रिको जो पुरुष स्वप्नमें तुझसे मिलेगा, वही तेरा पति होगा।'

तदनन्तर पार्वतीजीकी बतायी हुई उसी तिथिको उषाकी स्वप्नावस्थामें किसी पुरुषके साथ उसका मिलन हुआ और उसमें अनुराग हो गया। मैत्रेय! तब स्वप्नसे जगनेपर जब उसने उस पुरुषको न देखा तो वह उसे देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर अपनी सखी चित्रलेखाकी, जो बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डकी पुत्री थी, ओर लक्ष्य करके निर्लज्जतापूर्वक कहने लगी—'नाथ! आप कहाँ चले गये?' चित्रलेखाने पूछा—'यह तुम किसके विषयमें कह रही हो?' तब उषाने जो कुछ श्रीपार्वतीजीने कहा था, वह उसे सुना दिया और कहा कि 'अब जिस प्रकार उसका पुनः समागम हो, वही उपाय करो।'

१. पहले पृष्ठ ७६७ में पटरानियोंकी गणनामें जो 'रोहिणी' नाम आया है, वह जाम्बवतीका ही है। यहाँ जाम्बवतीसे भिन्न 'रोहिणी' नाम पटरानियोंसे भिन्न रोहिणीका वाचक है।

किया है, उसे आप क्षमा करें । इस पारिजात-वृक्षको इसके योग्य स्थान (नन्दनवन) को ले जाइये । शक्र ! मैंने तो इसे सत्यभामाकी बात रखनेके लिये ही ले लिया था और आपने जो वज्र फेंका था, उसे भी ले लीजिये; क्योंकि शक्र ! यह शत्रुओंको नष्ट करनेवाला शस्त्र आपका ही है ।

इन्द्र बोले—ईश ! 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा कहकर मुझे क्यों मोहित करते हैं ? भगवन् ! मैं तो आपके इस सगुण स्वरूपको ही जानता हूँ, हम आपके सूक्ष्म स्वरूपको जाननेवाले नहीं हैं । नाथ ! आप जो हैं वही हैं, हम तो इतना ही जानते हैं कि दैत्यदलन ! आप लोकरक्षामें तत्पर हैं और इस संसारके काँटोंको निकाल रहे हैं । श्रीकृष्ण ! इस पारिजात-वृक्षको आप द्वारकापुरी ले जाइये, जिस समय आप मर्त्यलोक छोड़ देंगे, उस समय यह पृथ्वीपर नहीं रहेगा अर्थात् मेरे पास आ जायगा । देवदेव ! जगन्नाथ ! श्रीकृष्ण ! विष्णो ! महाबाहो ! शङ्खचक्रगदापाणे ! मेरी इस धृष्टताको क्षमा कीजिये ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीहरि देवराजसे 'तुम्हारी जैसी इच्छा है, वैसा ही सही' ऐसा कहकर सिद्ध, गन्धर्व और देवर्षिगणसे स्तुत हो पृथ्वी-लोकमें चले आये । द्विज ! द्वारकापुरीके ऊपर पहुँचकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने आनेकी सूचना देते हुए शङ्ख बजाकर द्वारकावासियोंको आनन्दित किया । तत्पश्चात् सत्यभामाके सहित गरुडसे उतरकर उस पारिजात-महावृक्षको सत्यभामाके गृहोद्यानमें लगा दिया । जिसके पास आकर सब मनुष्योंको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आता है और जिसके पुष्पोंसे निकली हुई गन्धसे तीन योजनतक पृथ्वी सुगन्धित रहती है, यादवोंने उस वृक्षके पास जाकर अपना मुख देखा तो उन्हें अपना शरीर अमानुष (दिव्य) दिखलायी दिया ।

इसके बाद महामति श्रीकृष्णचन्द्रने नरकासुरके सेवकोंद्वारा लाये हुए हाथी-घोड़े आदि धनको अपने बन्धु-बान्धवोंमें बाँट दिया और नरकासुरकी हरण करके लायी हुई कन्याओंको स्वयं ले लिया । शुभ समय प्राप्त होनेपर श्रीगोविन्दने एक ही समय पृथक्-पृथक् भवनोंमें उन सबके साथ विधिवत् धर्मपूर्वक पाणिग्रहण किया । वे सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थीं । उन सबके साथ पाणिग्रहण करते समय श्रीमधुसूदनने इतने ही रूप बना लिये । मैत्रेय ! परंतु उस समय प्रत्येक कन्या 'भगवान्‌ने मेरा ही पाणिग्रहण किया है' इस प्रकार उन्हें एक ही समझ रही थी । विप्र ! जगत्स्रष्टा श्रीहरि पृथक्-पृथक् रूप धारण करके रात्रिके समय उन सभीके घरोंमें रहते थे ।

उषा-चरित्र तथा श्रीकृष्ण और बाणासुरका युद्ध

श्रीपराशरजी कहते हैं—रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए भगवान्‌के प्रद्युम्न आदि पुत्रोंका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं; सत्यभामाने भानु और भौमेरिक आदिको जन्म दिया । श्रीहरिके रोहिणीके[1] गर्भसे दीप्तिमान् और ताम्रपक्ष आदि तथा जाम्बवतीसे बलशाली साम्ब आदि पुत्र हुए । नाग्नजिती (सत्या) से महाबली भद्रविन्द आदि और शैब्या (मित्रविन्दा) से संग्रामजित् आदि उत्पन्न हुए । माद्रीसे वृक आदि, लक्ष्मणासे गात्रवान् आदि तथा कालिन्दीसे श्रुत आदि पुत्रोंका जन्म हुआ । इसी प्रकार भगवान्‌की अन्य स्त्रियोंके भी आठ अयुत आठ हजार आठ सौ (अट्ठासी हजार आठ सौ) पुत्र हुए ।

इन सब पुत्रोंमें श्रीरुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न सबसे बड़े थे; प्रद्युम्नसे अनिरुद्धका जन्म हुआ और अनिरुद्धसे वज्र उत्पन्न हुआ । द्विजोत्तम ! महाबली अनिरुद्ध युद्धमें किसीसे रोके नहीं जा सकते थे । उन्होंने बलिकी पौत्री एवं बाणासुरकी पुत्री उषासे विवाह किया था ।

विप्र ! एक बार बाणासुरकी पुत्री उषाके द्वारा पति-प्राप्तिके विषयमें पूछनेपर पार्वतीजीने उससे कहा—'राजपुत्रि ! वैशाख-शुक्ला द्वादशीकी रात्रिको जो पुरुष स्वप्नमें तुझसे मिलेगा, वही तेरा पति होगा ।'

तदनन्तर पार्वतीजीकी बतायी हुई उसी तिथिको उषाकी स्वप्नावस्थामें किसी पुरुषके साथ उसका मिलन हुआ और उसमें अनुराग हो गया । मैत्रेय ! तब स्वप्नसे जगनेपर जब उसने उस पुरुषको न देखा तो वह उसे देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर अपनी सखी चित्रलेखाकी, जो बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डकी पुत्री थी, ओर लक्ष्य करके निर्लज्जतापूर्वक कहने लगी—'नाथ ! आप कहाँ चले गये ?' चित्रलेखाने पूछा—'यह तुम किसके विषयमें कह रही हो ?' तब उषाने जो कुछ श्रीपार्वतीजीने कहा था, वह उसे सुना दिया और कहा कि 'अब जिस प्रकार उसका पुनः समागम हो, वही उपाय करो ।'

१. पहले पृष्ठ ७६७ में पटरानियोंकी गणनामें जो 'रोहिणी' नाम आया है, वह जाम्बवतीका ही है । यहाँ जाम्बवतीसे भिन्न 'रोहिणी' नाम पटरानियोंसे भिन्न रोहिणीका वाचक है ।

चन्द्र उसे बाणोंसे बींधे डालते हैं, तब बाणासुरका श्रीकृष्णचन्द्रके साथ घोर युद्ध छिड गया। उस समय परस्पर चोट करनेवाले बाणासुर और श्रीकृष्ण दोनों ही विजयकी इच्छासे निरन्तर शीघ्रतापूर्वक अस्त्र-शस्त्र छोड़ने लगे।

अन्तमें, समस्त बाणोंके छिन्न और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके निष्फल हो जानेपर श्रीहरिने बाणासुरको मार डालनेका विचार किया। तब भगवान् श्रीकृष्णने सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान अपने सुदर्शनचक्रको हाथमें ले लिया और बाणासुरको लक्ष्य करके छोडा। भगवान् अच्युतके द्वारा प्रेरित उस चक्रने दैत्योंके छोड़े हुए अस्त्रसमूहको काटकर क्रमशः बाणासुरकी भुजाओंको काट डाला, केवल दो भुजाएँ छोड़ दीं। तब त्रिपुरशत्रु भगवान् शङ्कर जान गये कि श्रीमधुसूदन बाणासुरके बाहुवनको काटकर अपने हाथमें आये हुए चक्रको उसका

वध करनेके लिये फिर छोड़ना चाहते हैं। अतः श्रीउमापतिने गोविन्दके पास आकर शान्तिपूर्वक कहा।

श्रीशङ्करजी बोले—श्रीकृष्ण! श्रीकृष्ण! जगन्नाथ! मैं यह जानता हूँ कि आप पुरुषोत्तम परमेश्वर परमात्मा और आदि-अन्तसे रहित श्रीहरि हैं। आप सर्वभूतमय हैं। आप जो देव, तिर्यक् और मनुष्यादि योनियोंमें शरीर धारण करते हैं, यह आपकी लीला ही है। प्रभो! आप प्रसन्न होइये। मैंने इस बाणासुरको अभयदान दिया है। नाथ! मैंने जो वचन दिया है, उसे आप मिथ्या न करें। इस दैत्यको मैंने ही वर दिया था, इसलिये मैं ही इसे आपसे क्षमा कराता हूँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—त्रिशूलपाणि भगवान् उमापतिके इस प्रकार कहनेपर श्रीगोविन्दने बाणासुरके प्रति क्रोधभाव त्याग दिया और प्रसन्नवदन होकर उनसे कहा।

श्रीभगवान् बोले—शङ्कर! यदि आपने इसे वर दिया है तो यह बाणासुर जीवित रहे। आपके वचनका मान रखनेके लिये मैं इस चक्रको रोके लेता हूँ। आपने जो अभय दिया है, वह सब मैंने भी दे दिया। शङ्कर! आप अपनेको मुझसे सर्वथा अभिन्न देखें। आप यह भली प्रकार समझ लें कि जो मैं हूँ सो आप हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत्, देव, असुर और मनुष्य आदि कोई भी मुझसे भिन्न नहीं हैं। हर! जिन लोगोंका चित्त अविद्यासे मोहित है, वे भिन्नदर्शी पुरुष ही हम दोनोंमें भेद देखते और बतलाते हैं*। वृषभध्वज! मैं प्रसन्न हूँ, आप पधारिये, मैं भी अब जाऊँगा।

इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध थे, वहाँ गये। उनके पहुँचते ही अनिरुद्धके बन्धनरूप समस्त नागगण गरुडके वेगसे उत्पन्न हुए वायुके प्रहारसे नष्ट हो गये। तदनन्तर सपत्नीक अनिरुद्धको गरुडपर चढाकर बलराम, प्रद्युम्न और श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकापुरीमें लौट आये।

पौण्ड्रक तथा काशिराजका वध

श्रीमैत्रेयजी बोले—गुरो! श्रीविष्णुभगवान्ने मनुष्य-शरीर धारणकर इनके सिवा और भी जो कर्म किये थे, वे सब मुझे सुनाइये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ब्रह्मर्षे! पौण्ड्रकवंशीय वासुदेव नामक एक राजाको कुछ अज्ञानमोहित पुरुष 'आप वासुदेवरूपसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं' ऐसा कहकर स्तुति

* अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः। वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर॥ (वि० पु० ५। ३३। ४९)

चन्द्र उसे बाणोंसे बींधे डालते हैं, तब बाणासुरका श्रीकृष्ण-चन्द्रके साथ घोर युद्ध छिड गया। उस समय परस्पर चोट करनेवाले बाणासुर और श्रीकृष्ण दोनों ही विजयकी इच्छासे निरन्तर शीघ्रतापूर्वक अस्त्र-शस्त्र छोड़ने लगे।

अन्तमें, समस्त बाणोंके छिन्न और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके निष्फल हो जानेपर श्रीहरिने बाणासुरको मार डालनेका विचार किया। तब भगवान् श्रीकृष्णने सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान अपने सुदर्शनचक्रको हाथमें ले लिया और बाणासुरको लक्ष्य करके छोडा। भगवान् अच्युतके द्वारा प्रेरित उस चक्रने दैत्योंके छोड़े हुए अस्त्रसमूहको काटकर क्रमशः बाणासुरकी भुजाओंको काट डाला, केवल दो भुजाएँ छोड़ दीं। तब त्रिपुरशत्रु भगवान् शङ्कर जान गये कि श्रीमधुसूदन बाणासुरके बाहुवनको काटकर अपने हाथमें आये हुए चक्रको उसका

वध करनेके लिये फिर छोड़ना चाहते हैं। अतः श्रीउमापतिने गोविन्दके पास आकर शान्तिपूर्वक कहा।

श्रीशङ्करजी बोले—श्रीकृष्ण! श्रीकृष्ण! जगन्नाथ! मैं यह जानता हूँ कि आप पुरुषोत्तम परमेश्वर परमात्मा और आदि-अन्तसे रहित श्रीहरि हैं। आप सर्वभूतमय हैं। आप जो देव, तिर्यक् और मनुष्यादि योनियोंमें शरीर धारण करते हैं, यह आपकी लीला ही है। प्रभो! आप प्रसन्न होइये। मैंने इस बाणासुरको अभयदान दिया है। नाथ! मैंने जो वचन दिया है, उसे आप मिथ्या न करें। इस दैत्यको मैंने ही वर दिया था, इसलिये मैं ही इसे आपसे क्षमा कराता हूँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—त्रिशूलपाणि भगवान् उमापतिके इस प्रकार कहनेपर श्रीगोविन्दने बाणासुरके प्रति क्रोधभाव त्याग दिया और प्रसन्नवदन होकर उनसे कहा।

श्रीभगवान् बोले—शङ्कर! यदि आपने इसे वर दिया है तो यह बाणासुर जीवित रहे। आपके वचनका मान रखनेके लिये मैं इस चक्रको रोके लेता हूँ। आपने जो अभय दिया है, वह सब मैंने भी दे दिया। शङ्कर! आप अपनेको मुझसे सर्वथा अभिन्न देखें। आप यह भली प्रकार समझ लें कि जो मैं हूँ सो आप हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत्, देव, असुर और मनुष्य आदि कोई भी मुझसे भिन्न नहीं हैं। हर! जिन लोगोंका चित्त अविद्यासे मोहित है, वे भिन्नदर्शी पुरुष ही हम दोनोंमें भेद देखते और बतलाते हैं*। वृषभध्वज! मैं प्रसन्न हूँ, आप पधारिये, मैं भी अब जाऊँगा।

इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध थे, वहाँ गये। उनके पहुँचते ही अनिरुद्धके बन्धनरूप समस्त नागगण गरुडके वेगसे उत्पन्न हुए वायुके प्रहारसे नष्ट हो गये। तदनन्तर सपत्नीक अनिरुद्धको गरुडपर चढाकर बलराम, प्रद्युम्न और श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकापुरीमें लौट आये।

पौण्ड्रक तथा काशिराजका वध

श्रीमैत्रेयजी बोले—गुरो! श्रीविष्णुभगवान्ने मनुष्य-शरीर धारणकर इनके सिवा और भी जो कर्म किये थे, वे सब मुझे सुनाइये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ब्रह्मर्षे! पौण्ड्रकवंशीय वासुदेव नामक एक राजाको कुछ अज्ञानमोहित पुरुष 'आप वासुदेवरूपसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं' ऐसा कहकर स्तुति

* अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः। वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर॥

(वि० पु० ५। ३३। ४९)

श्रीबलरामजीकी लातसे धरती फट गयी

पौंड्रकपर श्रीकृष्णका प्रहार
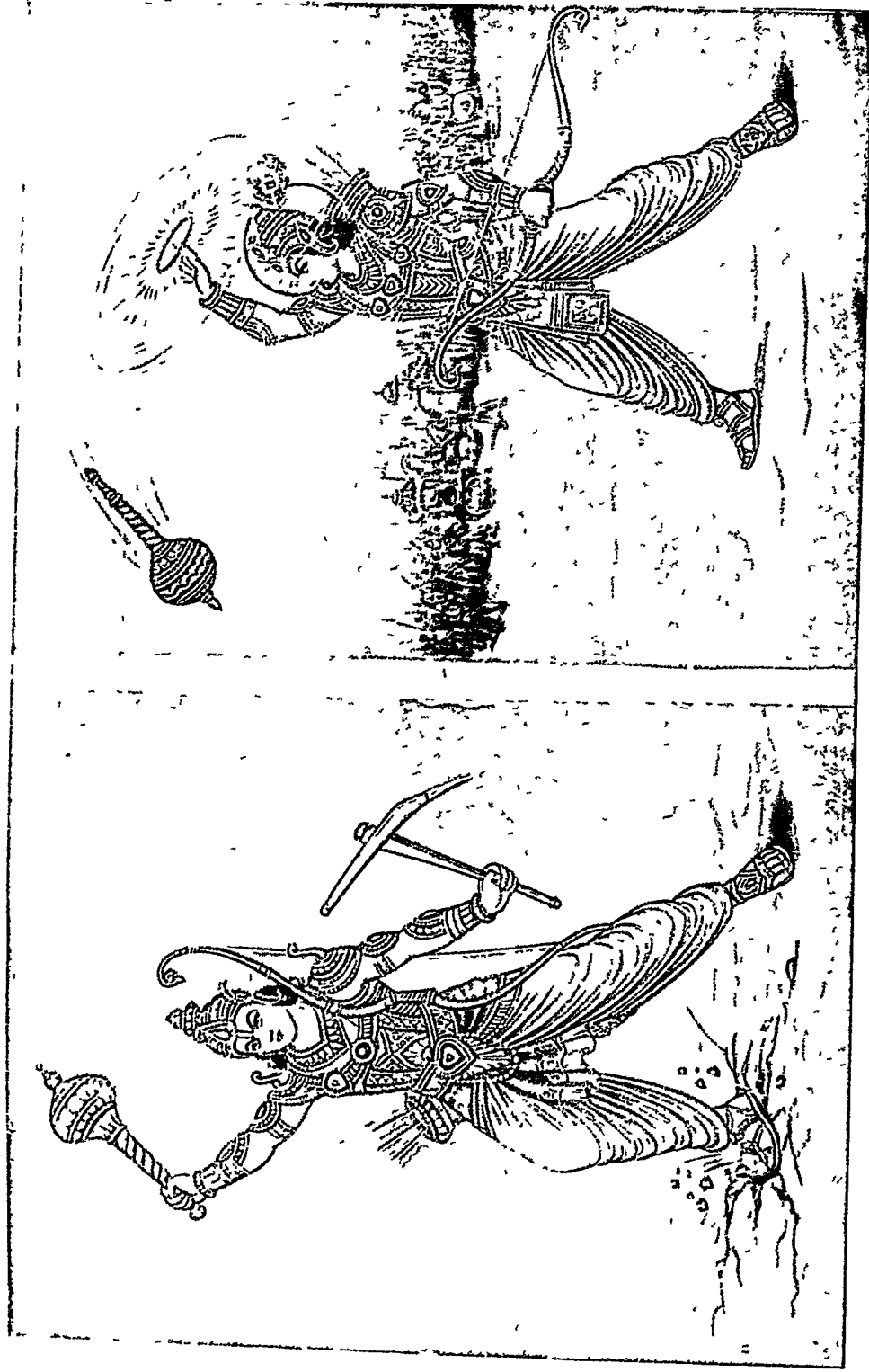
श्रीबलरामजीकी लातसे धरती फट गयी

पौंड्रकपर श्रीकृष्णका प्रहार

किया । उस समय काशीनरेशकी सम्पूर्ण सेना और प्रमथगण अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर चक्रके सम्मुख आये ।

तब वह चक्र अपने तेजसे शस्त्रास्त्र-प्रयोगमें कुशल उस सम्पूर्ण सेनाको दग्धकर कृत्याके सहित सम्पूर्ण वाराणसीको जलाने लगा तथा काशीपुरीको भगवान् विष्णुके उस चक्रने उसके गृह, कोट और चबूतरों आदिमें अग्निकी ज्वालाएँ प्रकटकर जला डाला । अन्तमें वह चक्र फिर लौटकर भगवान् विष्णुके हाथमें आ गया ।

साम्बका विवाह और द्विविद-वध

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्मन् ! अब मैं फिर मतिमान् बलभद्रजीके पराक्रमकी वार्ता सुनना चाहता हूँ, अतः उन्होंने जो-जो विक्रम दिखलाये हैं, उनका वर्णन कीजिये ।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय ! शेषावतार श्रीबलरामजीने जो कर्म किये थे, वह सुनो—एक बार जाम्बवतीनन्दन वीरवर साम्बने स्वयंवरके अवसरपर दुर्योधनकी पुत्रीको बलात्कारसे हरण किया । तब महावीर कर्ण, दुर्योधन, भीष्म और द्रोण आदिने क्रुद्ध होकर उसे युद्धमें हराकर बाँधकर कैद कर लिया । यह समाचार पाकर श्रीकृष्णचन्द्र आदि समस्त यादवोंने दुर्योधनादिपर क्रुद्ध होकर उन्हें मारनेके लिये बड़ी तैयारी की । उनको रोककर श्रीबलरामजीने कहा—'कौरवगण मेरे कहनेसे साम्बको छोड़ देंगे, अतः मैं अकेला ही उनके पास जाता हूँ ।'

तदनन्तर श्रीबलदेवजी हस्तिनापुरके समीप पहुँचकर उसके बाहर एक उद्यानमें ठहर गये । बलरामजीको आया जान दुर्योधन आदि राजाओंने उन्हें गौ, अर्घ्य और पाद्यादि निवेदन किये । उन सबको विधिवत् ग्रहण कर बलभद्रजीने कौरवोंसे कहा—'राजा उग्रसेनकी आज्ञा है, आपलोग साम्बको तुरंत छोड़ दें ।'

द्विजसत्तम ! बलरामजीके इन वचनोंको सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि राजाओंको बड़ा क्षोभ हुआ, और यदुवंशको राज्यपदके अयोग्य समझ बाह्लिक आदि सभी कौरवगण कुपित होकर बलभद्रजीसे कहने लगे—'बलभद्र ! तुम यह क्या कह रहे हो; ऐसा कौन यदुवंशी है जो कुरुकुलोत्पन्न वीरोंको आज्ञा दे ? यदि उग्रसेन भी कौरवोंको आज्ञा दे सकते हैं तो राजाओंके योग्य कौरवोंके इस श्वेत छत्रका क्या प्रयोजन है ? अतः बलराम ! हमलोग तुम्हारी या उग्रसेनकी आज्ञासे अन्यायकर्मा साम्बको नहीं छोड़ सकते । पूर्वकालमें कुकुर और अन्धकवंशीय यादवगण हम माननीयोंको प्रणाम किया करते थे, सो अब वे ऐसा नहीं करते तो न सही; किंतु स्वामीको यह सेवककी ओरसे आज्ञा देना कैसा ? बलराम ! हमने जो तुम्हें यह अर्घ्य आदि निवेदन किया है, यह सब प्रेमवश ही है, वास्तवमें हमारे कुलकी ओरसे तुम्हारे कुलको अर्घ्यादि देना न्यायसंगत नहीं है ।

ऐसा कहकर कौरवगण तुरंत हस्तिनापुरमें चले गये ।' तत्पश्चात् हलायुध श्रीबलरामजीने उनके तिरस्कारसे उत्पन्न हुए क्रोधसे मत्त होकर पृथिवीमें लात मारी । महात्मा बलरामजीके पाद-प्रहारसे पृथिवी फट गयी और वे अपने शब्दसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाकर कम्पायमान करने लगे तथा लाल-लाल नेत्र और टेढ़ी भृकुटि करके बोले—'अहो ! इन सारहीन दुरात्मा कौरवोंको यह कैसा राजमदका अभिमान है । कौरवोंका महीपालत्व तो स्वतःसिद्ध है और हमारा सामयिक—ऐसा समझकर ही आज ये महाराज उग्रसेनकी आज्ञा नहीं मानते; बल्कि उसका उल्लङ्घन कर रहे हैं । बे उग्रसेन ही सम्पूर्ण राजाओंके महाराज बनकर रहें । आज मैं अकेला ही पृथिवीको कौरवहीन करके उनकी द्वारकापुरीको जाऊँगा । आज कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, बाह्लिक, दुश्शासनादि समस्त कौरवोंको उनके हाथी-घोड़े और रथके सहित मारकर तथा नववधूके साथ वीरवर साम्बको लेकर ही मैं द्वारकापुरीमें जाकर उग्रसेन आदि अपने बन्धु-बान्धवोंको देखूँगा । अथवा समस्त कौरवोंके सहित उनके निवासस्थान इस हस्तिनापुर नगरको ही अभी गङ्गाजीमें फेंके देता हूँ ।'

ऐसा कहकर अरुणनयन श्रीबलभद्रजीने हलकी नोंकको हस्तिनापुरके खाईं और दुर्गसे युक्त प्राकारके मूलमें लगाकर खींचा । उस समय सम्पूर्ण हस्तिनापुर सहसा डगमगाता देख समस्त कौरवगण भयभीत हो गये और बलरामजीसे कहने लगे—'राम ! राम ! महाबाहो ! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये ! अपना कोप शान्त करके प्रसन्न होइये । बलराम ! हम आपको पत्नीके सहित इस साम्बको सौंपते हैं । हम आपका प्रभाव

किया। उस समय काशीनरेशकी सम्पूर्ण सेना और प्रमथगण अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर चक्रके सम्मुख आये।

तब वह चक्र अपने तेजसे शस्त्रास्त्र-प्रयोगमें कुशल उस सम्पूर्ण सेनाको दग्धकर कृत्याके सहित सम्पूर्ण वाराणसीको जलाने लगा तथा काशीपुरीको भगवान् विष्णुके उस चक्रने उसके गृह, कोट और चबूतरों आदिमें अग्निकी ज्वालाएँ प्रकटकर जला डाला। अन्तमें वह चक्र फिर लौटकर भगवान् विष्णुके हाथमें आ गया।

साम्बका विवाह और द्विविद-वध

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्मन्! अब मैं फिर मतिमान् बलभद्रजीके पराक्रमकी वार्ता सुनना चाहता हूँ, अतः उन्होंने जो-जो विक्रम दिखलाये हैं, उनका वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! शेषावतार श्रीबलरामजीने जो कर्म किये थे, वह सुनो—एक बार जाम्बवती-नन्दन वीरवर साम्बने स्वयंवरके अवसरपर दुर्योधनकी पुत्रीको बलात्कारसे हरण किया। तब महावीर कर्ण, दुर्योधन, भीष्म और द्रोण आदिने क्रुद्ध होकर उसे युद्धमें हराकर बाँधकर कैद कर लिया। यह समाचार पाकर श्रीकृष्णचन्द्र आदि समस्त यादवोंने दुर्योधनादिपर क्रुद्ध होकर उन्हें मारनेके लिये बड़ी तैयारी की। उनको रोककर श्रीबलरामजीने कहा—'कौरवगण मेरे कहनेसे साम्बको छोड़ देंगे, अतः मैं अकेला ही उनके पास जाता हूँ।'

तदनन्तर श्रीबलदेवजी हस्तिनापुरके समीप पहुँचकर उसके बाहर एक उद्यानमें ठहर गये। बलरामजीको आया जान दुर्योधन आदि राजाओंने उन्हें गौ, अर्घ्य और पाद्यादि निवेदन किये। उन सबको विधिवत् ग्रहण कर बलभद्रजीने कौरवोंसे कहा—'राजा उग्रसेनकी आज्ञा है, आपलोग साम्बको तुरंत छोड़ दें।'

द्विजसत्तम! बलरामजीके इन वचनोंको सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि राजाओंको बड़ा क्षोभ हुआ, और यदुवंशको राज्यपदके अयोग्य समझ बाह्लिक आदि सभी कौरवगण कुपित होकर बलभद्रजीसे कहने लगे—'बलभद्र! तुम यह क्या कह रहे हो; ऐसा कौन यदुवंशी है जो कुरु-कुलोत्पन्न वीरोंको आज्ञा दे? यदि उग्रसेन भी कौरवोंको आज्ञा दे सकते हैं तो राजाओंके योग्य कौरवोंके इस श्वेत छत्रका क्या प्रयोजन है? अतः बलराम! हमलोग तुम्हारी या उग्रसेनकी आज्ञासे अन्यायकर्मा साम्बको नहीं छोड़ सकते। पूर्वकालमें कुकुर और अन्धकवंशीय यादवगण हम माननीयोंको प्रणाम किया करते थे, सो अब वे ऐसा नहीं करते तो न सही; किंतु स्वामीको यह सेवककी ओरसे आज्ञा देना कैसा? बलराम! हमने जो तुम्हें यह अर्घ्य आदि निवेदन किया है, यह सब प्रेमवश ही है, वास्तवमें हमारे कुलकी ओरसे तुम्हारे कुलको अर्घ्यादि देना न्यायसंगत नहीं है।

ऐसा कहकर कौरवगण तुरंत हस्तिनापुरमें चले गये।' तत्पश्चात् हलायुध श्रीबलरामजीने उनके तिरस्कारसे उत्पन्न हुए क्रोधसे मत्त होकर पृथिवीमें लात मारी। महात्मा बलरामजीके पाद-प्रहारसे पृथिवी फट गयी और वे अपने शब्दसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाकर कम्पायमान करने लगे तथा लाल-लाल नेत्र और टेढ़ी भृकुटि करके बोले—'अहो! इन सारहीन दुरात्मा कौरवोंको यह कैसा राजमदका अभिमान है। कौरवोंका महीपालत्व तो स्वतःसिद्ध है और हमारा सामयिक—ऐसा समझकर ही आज ये महाराज उग्रसेनकी आज्ञा नहीं मानते; बल्कि उसका उल्लङ्घन कर रहे हैं। वे उग्रसेन ही सम्पूर्ण राजाओंके महाराज बनकर रहें। आज मैं अकेला ही पृथिवीको कौरवहीन करके उनकी द्वारकापुरीको जाऊँगा। आज कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, बाह्लिक, दुश्शासनादि समस्त कौरवोंको उनके हाथी-घोड़े और रथके सहित मारकर तथा नववधूके साथ वीरवर साम्बको लेकर ही मैं द्वारकापुरीमें जाकर उग्रसेन आदि अपने बन्धु-बान्धवोंको देखूँगा। अथवा समस्त कौरवोंके सहित उनके निवासस्थान इस हस्तिनापुर नगरको ही अभी गङ्गाजीमें फेंके देता हूँ।'

ऐसा कहकर अरुणनयन श्रीबलभद्रजीने हलकी नोंकको हस्तिनापुरके खाईं और दुर्गसे युक्त प्राकारके मूलमें लगाकर खींचा। उस समय सम्पूर्ण हस्तिनापुर सहसा डगमगाता देख समस्त कौरवगण भयभीत हो गये और बलरामजीसे कहने लगे—'राम! राम! महाबाहो! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये! अपना कोप शान्त करके प्रसन्न होइये। बलराम! हम आपको पत्नीके सहित इस साम्बको सौंपते हैं। हम आपका प्रभाव

दिया, उससे वहाँ बहुत-से एरक (सरकंडे) उत्पन्न हो गये । यादवोंद्वारा चूर्ण किये गये इस मूसलका एक खण्ड चूर्ण करनेसे बचा, उसे भी समुद्रहीमें फेंकवा दिया । उसे एक मछली निगल गयी । उस मछलीको मछेरोंने पकड़ लिया । उसके चीरनेपर उस मूसलखण्डको जरा नामक व्याधने ले लिया ।

उस समय भगवान्‌ने देखा कि द्वारकापुरीमें रात-दिन नाशके सूचक महान् उत्पात हो रहे हैं । उन उत्पातोंको देखकर भगवान्‌ने यादवोंसे कहा—'देखो ये कैसे घोर उपद्रव हो रहे हैं, चलो, शीघ्र ही इनकी शान्तिके लिये प्रभासक्षेत्रको चलें ।'

श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर महाभागवत यादवश्रेष्ठ उद्धवने श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब आप इस कुलका नाश करेंगे, क्योंकि अच्युत ! इस समय सब ओर इसके नाशके सूचक कारण दिखायी दे रहे हैं; अतः मुझे आज्ञा कीजिये कि मैं क्या करूँ ?'

श्रीभगवान् बोले—उद्धव ! अब तुम मेरी कृपासे प्राप्त हुई दिव्य गतिसे नर-नारायणके निवासस्थान हिमालयके गन्धमादनपर्वतपर जो पवित्र बदरिकाश्रम क्षेत्र है, वहाँ जाओ । पृथिवीतलपर वही सबसे पावन स्थान है । वहाँपर मुझमें चित्त लगाकर तुम मेरी कृपासे परम सिद्धि प्राप्त करोगे ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—भगवान्‌के ऐसा कहनेपर उद्धवजी उन्हें प्रणामकर तुरंत ही उनके बतलाये हुए तपोवन श्रीनर-नारायणके स्थानको चले गये । द्विज ! तदनन्तर श्रीकृष्ण और बलराम आदिके सहित सम्पूर्ण यादव शीघ्रगामी रथोंपर चढ़कर प्रभासक्षेत्रमें आये । वहाँ पहुँचकर कुकुर, अन्धक और वृष्णि आदि वंशवाले समस्त यादवोंके भोजन करते समय परस्पर कुछ विवाद हो जानेपर वहाँ कुवाक्यरूप ईंधनसे युक्त प्रलयकारिणी कलहाग्नि धधक उठी ।

श्रीमैत्रेयजी बोले—द्विज ! अपना-अपना भोजन करते हुए उन यादवोंमें किस कारणसे कलह अथवा संघर्ष हुआ ? सो आप कहिये ।

श्रीपराशरजी बोले—'मेरा भोजन शुद्ध है, तेरा अच्छा नहीं है' इस प्रकार भोजनके अच्छे-बुरेकी चर्चा करते-करते उनमें परस्पर संघर्ष और कलह हो गया । तब वे दैवी प्रेरणासे विवश होकर आपसमें क्रोधसे रक्तनेत्र हुए एक दूसरेपर शस्त्रप्रहार करने लगे और जब शस्त्र समाप्त हो गये तो पासहीमें उगे हुए एरक (सरकंडे) ले लिये । उन वज्रतुल्य सरकंडोंसे ही वे उस दारुण युद्धमें एक दूसरेपर प्रहार करने लगे ।

द्विज ! प्रद्युम्न और साम्ब आदि कृष्णपुत्रगण, कृतवर्मा, सात्यकि और अनिरुद्ध आदि तथा पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, चारुक और अक्रूर आदि यादवगण एक दूसरेपर एरकारूपी वज्रोंसे प्रहार करने लगे । जब श्रीहरिने उन्हें आपसमें लड़नेसे रोका तो उन्होंने उन्हें अपने प्रतिपक्षीका सहायक होकर आये हुए समझा और उनकी बातकी अवहेलनाकर एक दूसरेको मारने लगे । श्रीकृष्णचन्द्रने भी कुपित होकर उनका वध करनेके लिये एक मुट्ठी सरकडे उठा लिये । वे मुट्ठीभर सरकंडे लोहेके मूसलरूप हो गये । उन मूसलरूप सरकंडोंसे श्रीकृष्णचन्द्र सम्पूर्ण आततायी यादवोंको मारने लगे तथा अन्य समस्त यादव भी वहाँ आ-आकर एक दूसरेको मारने लगे । द्विज ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका जैत्र नामक रथ घोड़ोंसे आकृष्ट हो दारुकके देखते-देखते समुद्रके मध्यपथसे चला गया । इसके पश्चात् भगवान्‌के शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष, तरकस और खड्ग आदि आयुध श्रीहरिकी प्रदक्षिणा कर सूर्यमार्गसे चले गये ।

महामुने ! यहाँ महात्मा श्रीकृष्णचन्द्र और उनके सारथि दारुकको छोड़कर और कोई यदुवंशी जीवित न बचा । उन दोनोंने वहाँ घूमते हुए देखा कि श्रीबलरामजीके मुखसे एक बहुत बड़ा सर्प निकल रहा है । वह विशाल फणधारी सर्प उनके मुखसे निकलकर सिद्ध और नागोंसे पूजित हुआ समुद्रकी ओर गया । उसी समय समुद्र अर्घ्य लेकर उस (महासर्प) के सम्मुख उपस्थित हुआ और वह नागश्रेष्ठोंसे पूजित हो समुद्रमें घुस गया ।

इस प्रकार श्रीबलरामजीका प्रयाण देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने दारुकसे कहा—'तुम यह सब वृत्तान्त उग्रसेन और वसुदेवजीसे जाकर कहो । बलभद्रजीका निर्याण, यादवोंका क्षय और मैं भी योगस्थ होकर शरीर छोड़ूँगा—यह सब समाचार उन्हें जाकर सुनाओ । सम्पूर्ण द्वारकावासी और आहुक (उग्रसेन) से कहना कि अब इस सम्पूर्ण नगरीको समुद्र डुबो देगा । इसलिये आप सब केवल अर्जुनके आगमनकी प्रतीक्षा और करें तथा अर्जुनके यहाँसे लौटते ही फिर कोई भी व्यक्ति द्वारकामें न रहे; जहाँ वे कुरुनन्दन जायँ वहीं सब लोग चले जायँ । कुन्तीपुत्र अर्जुनसे तुम मेरी ओरसे कहना कि 'अपनी सामर्थ्यानुसार तुम मेरे परिवारके लोगोंकी रक्षा करना' और दारुक तुम द्वारकावासी सभी लोगोंको लेकर अर्जुनके

दिया, उससे वहाँ बहुत-से एरक (सरकंडे) उत्पन्न हो गये । यादवोंद्वारा चूर्ण किये गये इस मूसलका एक खण्ड चूर्ण करनेसे बचा, उसे भी समुद्रहीमें फेंकवा दिया । उसे एक मछली निगल गयी । उस मछलीको मछेरोंने पकड़ लिया । उसके चीरनेपर उस मूसलखण्डको जरा नामक व्याधने ले लिया ।

उस समय भगवान्‌ने देखा कि द्वारकापुरीमें रात-दिन नाशके सूचक महान् उत्पात हो रहे हैं । उन उत्पातोंको देखकर भगवान्‌ने यादवोंसे कहा—'देखो, ये कैसे घोर उपद्रव हो रहे हैं; चलो, शीघ्र ही इनकी शान्तिके लिये प्रभासक्षेत्रको चलें ।'

श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर महाभागवत यादवश्रेष्ठ उद्धवने श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब आप इस कुलका नाश करेंगे, क्योंकि अच्युत ! इस समय सब ओर इसके नाशके सूचक कारण दिखायी दे रहे हैं; अतः मुझे आज्ञा कीजिये कि मैं क्या करूँ ?'

श्रीभगवान् बोले—उद्धव ! अब तुम मेरी कृपासे प्राप्त हुई दिव्य गतिसे नर-नारायणके निवासस्थान हिमालयके गन्धमादनपर्वतपर जो पवित्र बदरिकाश्रम क्षेत्र है, वहाँ जाओ । पृथिवीतलपर वही सबसे पावन स्थान है । वहाँपर मुझमें चित्त लगाकर तुम मेरी कृपासे परम सिद्धि प्राप्त करोगे ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—भगवान्‌के ऐसा कहनेपर उद्धवजी उन्हें प्रणामकर तुरंत ही उनके बतलाये हुए तपोवन श्रीनर-नारायणके स्थानको चले गये । द्विज ! तदनन्तर श्रीकृष्ण और बलराम आदिके सहित सम्पूर्ण यादव शीघ्रगामी रथोंपर चढ़कर प्रभासक्षेत्रमें आये । वहाँ पहुँचकर कुकुर, अन्धक और वृष्णि आदि वंशवाले समस्त यादवोंके भोजन करते समय परस्पर कुछ विवाद हो जानेपर वहाँ कुवाक्यरूप ईंधनसे युक्त प्रलयकारिणी कलहाग्नि धधक उठी ।

श्रीमैत्रेयजी बोले—द्विज ! अपना-अपना भोजन करते हुए उन यादवोंमें किस कारणसे कलह अथवा संघर्ष हुआ ? सो आप कहिये ।

श्रीपराशरजी बोले—'मेरा भोजन शुद्ध है, तेरा अच्छा नहीं है' इस प्रकार भोजनके अच्छे-बुरेकी चर्चा करते-करते उनमें परस्पर संघर्ष और कलह हो गया । तब वे दैवी प्रेरणासे विवश होकर आपसमें क्रोधसे रक्तनेत्र हुए एक दूसरेपर शस्त्रप्रहार करने लगे और जब शस्त्र समाप्त हो गये तो पासहीमें उगे हुए एरक (सरकंडे) ले लिये । उन वज्रतुल्य सरकंडोंसे ही वे उस दारुण युद्धमें एक दूसरेपर प्रहार करने लगे ।

द्विज ! प्रद्युम्न और साम्ब आदि कृष्णपुत्रगण, कृतवर्मा, सात्यकि और अनिरुद्ध आदि तथा पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, चारुक और अक्रूर आदि यादवगण एक दूसरेपर एरकारूपी वज्रोंसे प्रहार करने लगे । जब श्रीहरिने उन्हें आपसमें लड़नेसे रोका तो उन्होंने उन्हें अपने प्रतिपक्षीका सहायक होकर आये हुए समझा और उनकी बातकी अवहेलनाकर एक दूसरेको मारने लगे । श्रीकृष्णचन्द्रने भी कुपित होकर उनका वध करनेके लिये एक मुट्ठी सरकंडे उठा लिये । वे मुट्ठीभर सरकंडे लोहेके मूसलरूप हो गये । उन मूसलरूप सरकंडोंसे श्रीकृष्णचन्द्र सम्पूर्ण आततायी यादवोंको मारने लगे तथा अन्य समस्त यादव भी वहाँ आ-आकर एक दूसरेको मारने लगे । द्विज ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका जैत्र नामक रथ घोड़ोंसे आकृष्ट हो दारुकके देखते-देखते समुद्रके मध्यपथसे चला गया । इसके पश्चात् भगवान्‌के शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष, तरकस और खड्ग आदि आयुध श्रीहरिकी प्रदक्षिणा कर सूर्यमार्गसे चले गये ।

महामुने ! यहाँ महात्मा श्रीकृष्णचन्द्र और उनके सारथि दारुकको छोड़कर और कोई यदुवंशी जीवित न बचा । उन दोनोंने वहाँ घूमते हुए देखा कि श्रीबलरामजीके मुखसे एक बहुत बड़ा सर्प निकल रहा है । वह विशाल फणधारी सर्प उनके मुखसे निकलकर सिद्ध और नागोंसे पूजित हुआ समुद्रकी ओर गया । उसी समय समुद्र अर्घ्य लेकर उस (महासर्प) के सम्मुख उपस्थित हुआ और वह नागश्रेष्ठोंसे पूजित हो समुद्रमें घुस गया ।

इस प्रकार श्रीबलरामजीका प्रयाण देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने दारुकसे कहा—'तुम यह सब वृत्तान्त उग्रसेन और वसुदेवजीसे जाकर कहो । बलभद्रजीका निर्याण, यादवोंका क्षय और मैं भी योगस्थ होकर शरीर छोड़ूँगा—यह सब समाचार उन्हें जाकर सुनाओ । सम्पूर्ण द्वारकावासी और आहुक (उग्रसेन) से कहना कि अब इस सम्पूर्ण नगरीको समुद्र डुबो देगा । इसलिये आप सब केवल अर्जुनके आगमनकी प्रतीक्षा और करें तथा अर्जुनके यहाँसे लौटते ही फिर कोई भी व्यक्ति द्वारकामें न रहे; जहाँ वे कुरुनन्दन जायँ वहीं सब लोग चले जायँ । कुन्तीपुत्र अर्जुनसे तुम मेरी ओरसे कहना कि 'अपनी सामर्थ्यानुसार तुम मेरे परिवारके लोगोंकी रक्षा करना' और दारुक तुम द्वारकावासी सभी लोगोंको लेकर अर्जुनके

त्वचाको ही बींधा। अर्जुनका उद्भव क्षीण हो जानेके कारण अग्निके दिये हुए उनके अक्षय बाण भी उन अहीरोंके साथ लड़ते समय नष्ट हो गये।

तब अर्जुनने सोचा कि मैंने जो अपने शरसमूहसे अनेकों राजाओंको जीता था, वह सब श्रीकृष्णचन्द्रका ही प्रभाव था। अर्जुनके देखते-देखते वे अहीर उन स्त्रीरत्नोंको खींच-खींचकर ले जाने लगे तथा दूसरी बहुत-सी स्त्रियाँ अपने इच्छानुसार इधर-उधर भाग गयीं।

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अर्जुनके देखते-देखते वे म्लेच्छगण वृष्णि और अन्धकवंशकी उन स्त्रियोंको लेकर चले गये। तब सर्वदा जयशील अर्जुन अत्यन्त दुखी होकर बोले—'अहो! मुझे उन भगवान्‌ने ठग लिया। देखो, वही धनुष है, वे ही शस्त्र हैं, वही रथ है और वे ही अश्व हैं; किंतु आज सभी एक साथ नष्ट हो गये। अहो! दैव बड़ा प्रबल है, जिसने आज उन महात्मा श्रीकृष्णके न रहनेपर असमर्थ और नीच अहीरोंको जय दे दी। देखो! मेरी वे ही भुजाएँ हैं, वही मेरी मुष्टि (मुट्ठी) है, वही (कुरुक्षेत्र) स्थान है और मैं भी वही अर्जुन हूँ, तथापि पुण्यदर्शन श्रीकृष्णके बिना आज सब सारहीन हो गये। अवश्य ही मेरा अर्जुनत्व और भीमका भीमत्व भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे ही था। देखो, उनके बिना आज महारथियोंमें श्रेष्ठ मुझको तुच्छ आभीरोंने जीत लिया।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—अर्जुन इस प्रकार कहते हुए अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थमें आये और वहाँ यादवनन्दन वज्रका राज्याभिषेक किया। तदनन्तर वे विपिनवासी व्यासमुनिसे मिले और उन महाभाग मुनिवरके निकट जाकर उन्हे विनयपूर्वक प्रणाम किया। अर्जुनको बहुत देरतक अपने चरणोंकी वन्दना करते देख मुनिवरने कहा—'आज तुम ऐसे कान्तिहीन क्यों हो रहे हो? क्या तुमने ब्रह्महत्या की है या तुम्हारी कोई सुदृढ आशा भङ्ग हो गयी है? जिसके दुःखसे तुम इस समय इतने श्रीहीन हो रहे हो। अर्जुन! तुम ब्राह्मणोंको बिना दिये अकेले ही तो मिष्टान्न नहीं खा लेते, अथवा तुमने किसी कृपणका धन तो नहीं हर लिया है? अर्जुन! क्या तुम्हें किसीने मारा है? अथवा तुम्हें किसी हीनबल पुरुषने युद्धमें पराजित तो नहीं किया? फिर तुम इस तरह हतप्रभ कैसे हो रहे हो?'

तब अर्जुनने दीर्घ निःश्वास छोडते हुए अपनी पराजयका सम्पूर्ण वृत्तान्त व्यासजीको ज्यों-का-त्यों सुना दिया।

अर्जुन बोले—जो श्रीहरि मेरे एकमात्र बल, तेज, वीर्य, पराक्रम, श्री और कान्ति थे, वे हमें छोड़कर चले गये। जो सब प्रकार समर्थ होकर भी हमसे मित्रवत् हँस-हँसकर बातें किया करते थे। मुने! उन श्रीहरिके बिना हम आज तृणमय पुतलेके समान निःसत्त्व हो गये हैं। जो मेरे दिव्यास्त्रों, दिव्यबाणों और गाण्डीव धनुषके मूर्तिमान् सार थे, वे पुरुषोत्तम भगवान् हमें छोड़कर चले गये हैं। जिनकी कृपा-दृष्टिसे श्री, जय, सम्पत्ति और उन्नतिने कभी हमारा साथ नहीं छोडा, वे ही भगवान् गोविन्द हमें छोड़कर चले गये हैं। तात! उन चक्रपाणि श्रीकृष्णचन्द्रके विरहमें एक मैं ही क्या, सम्पूर्ण पृथिवी ही यौवन, श्री और कान्तिसे हीन प्रतीत होती है। जिनके प्रभावसे अग्निरूप मुझमें भीष्म आदि महारथीगण पतंगवत् भस्म हो गये थे, आज उन्हीं श्रीकृष्णके बिना मुझे गोपोंने हरा दिया। जिनके प्रभावसे यह गाण्डीव धनुष तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ था, उन्हींके बिना आज यह अहीरोंकी लाठियोंसे तिरस्कृत हो गया। महामुने! यदुवंशकी जो सहस्रों स्त्रियाँ मेरी देख-रेखमें आ रही थीं, उन्हें मेरे सब प्रकार यत्न करते रहनेपर भी दस्युगण अपनी लाठियोंके बलसे ले गये। ऐसी अवस्थामें मेरा श्रीहीन होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; पितामह! आश्चर्य तो यह है कि नीच पुरुषोंद्वारा अपमान-पङ्कमें सनकर भी मैं निर्लज्ज अभी जीवित ही हूँ।

श्रीव्यासजी बोले—पार्थ! तुम्हारी लज्जा व्यर्थ है, तुम्हे शोक करना उचित नहीं है। तुम सम्पूर्ण भूतोंमें कालकी ऐसी ही गति जानो। नदियाँ, समुद्र, गिरिगण, सम्पूर्ण पृथिवी, देव, मनुष्य, पशु, वृक्ष और सरीसृप आदि सम्पूर्ण पदार्थ कालके ही रचे हुए हैं और फिर कालसे ही ये क्षीण हो जाते हैं, अतः इस सारे प्रपञ्चको कालात्मक जानकर शान्त होओ।

धनञ्जय! तुमने श्रीकृष्णचन्द्रका जैसा माहात्म्य बतलाया है, वह सब सत्य ही है; क्योंकि कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् कालस्वरूप ही हैं। उन्होंने पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही मर्त्यलोकमे अवतार लिया था। एक समय पूर्वकालमे पृथिवी भाराक्रान्त होकर देवताओंकी सभामें गयी थी। श्रीजनार्दनने उसीके लिये अवतार लिया था। अब सम्पूर्ण दुष्ट राजा मारे जा चुके, अतः वह कार्य सम्पन्न हो गया। पार्थ! वृष्णि और अन्धक आदि सम्पूर्ण यदुकुलका भी उपसंहार हो गया; इसलिये उन प्रभुके लिये अब पृथिवीतलपर और कुछ भी कर्तव्य नहीं रहा। अतः अपना कार्य समाप्त हो चुकनेपर भगवान् स्वेच्छानुसार चले गये, ये देवदेव प्रभु सर्गके आरम्भमें सृष्टि-रचना करते हैं, स्थितिके समय पालन करते हैं और अन्तमें ये ही उसका नाश करनेमें समर्थ हैं, जैसे इस समय वे राक्षस आदिका संहार करके चले गये हैं।

त्वचाको ही बींधा । अर्जुनका उद्भव क्षीण हो जानेके कारण अग्निके दिये हुए उनके अक्षय बाण भी उन अहीरोंके साथ लड़ते समय नष्ट हो गये ।

तब अर्जुनने सोचा कि मैंने जो अपने शरसमूहसे अनेकों राजाओंको जीता था, वह सब श्रीकृष्णचन्द्रका ही प्रभाव था । अर्जुनके देखते-देखते वे अहीर उन स्त्रीरत्नोंको खींच-खींचकर ले जाने लगे तथा दूसरी बहुत-सी स्त्रियाँ अपने इच्छानुसार इधर-उधर भाग गयीं ।

मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार अर्जुनके देखते-देखते वे म्लेच्छगण वृष्णि और अन्धकवंशकी उन स्त्रियोंको लेकर चले गये । तब सर्वदा जयशील अर्जुन अत्यन्त दुखी होकर बोले—'अहो ! मुझे उन भगवान्‌ने ठग लिया । देखो, वही धनुष है, वे ही शस्त्र हैं, वही रथ है और वे ही अश्व हैं; किंतु आज सभी एक साथ नष्ट हो गये । अहो ! दैव बड़ा प्रबल है, जिसने आज उन महात्मा श्रीकृष्णके न रहनेपर असमर्थ और नीच अहीरोंको जय दे दी । देखो ! मेरी वे ही भुजाएँ हैं, वही मेरी मुष्टि (मुट्ठी) है, वही (कुरुक्षेत्र) स्थान है और मैं भी वही अर्जुन हूँ, तथापि पुण्यदर्शन श्रीकृष्णके बिना आज सब सारहीन हो गये । अवश्य ही मेरा अर्जुनत्व और भीमका भीमत्व भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे ही था । देखो, उनके बिना आज महारथियोंमें श्रेष्ठ मुझको तुच्छ आभीरोंने जीत लिया ।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—अर्जुन इस प्रकार कहते हुए अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थमें आये और वहाँ यादवनन्दन वज्रका राज्याभिषेक किया । तदनन्तर वे विपिनवासी व्यासमुनिसे मिले और उन महाभाग मुनिवरके निकट जाकर उन्हे विनयपूर्वक प्रणाम किया । अर्जुनको बहुत देरतक अपने चरणोंकी वन्दना करते देख मुनिवरने कहा—'आज तुम ऐसे कान्तिहीन क्यों हो रहे हो ? क्या तुमने ब्रह्महत्या की है या तुम्हारी कोई सुदृढ आशा भङ्ग हो गयी है ? जिसके दुःखसे तुम इस समय इतने श्रीहीन हो रहे हो । अर्जुन ! तुम ब्राह्मणोंको बिना दिये अकेले ही तो मिष्टान्न नहीं खा लेते, अथवा तुमने किसी कृपणका धन तो नहीं हर लिया है ? अर्जुन ! क्या तुम्हें किसीने मारा है ? अथवा तुम्हें किसी हीनबल पुरुषने युद्धमें पराजित तो नहीं किया ? फिर तुम इस तरह हतप्रभ कैसे हो रहे हो ?'

तब अर्जुनने दीर्घ निःश्वास छोडते हुए अपनी पराजयका सम्पूर्ण वृत्तान्त व्यासजीको ज्यों-का-त्यों सुना दिया ।

अर्जुन बोले—जो श्रीहरि मेरे एकमात्र बल, तेज, वीर्य, पराक्रम, श्री और कान्ति थे, वे हमें छोड़कर चले गये । जो सब प्रकार समर्थ होकर भी हमसे मित्रवत् हँस-हँसकर बातें किया करते थे । मुने ! उन श्रीहरिके बिना हम आज तृणमय पुतलेके समान निःसत्त्व हो गये हैं । जो मेरे दिव्यास्त्रों, दिव्यबाणों और गाण्डीव धनुषके मूर्तिमान् सार थे, वे पुरुषोत्तम भगवान् हमें छोड़कर चले गये हैं । जिनकी कृपा-दृष्टिसे श्री, जय, सम्पत्ति और उन्नतिने कभी हमारा साथ नहीं छोडा, वे ही भगवान् गोविन्द हमें छोड़कर चले गये हैं । तात ! उन चक्रपाणि श्रीकृष्णचन्द्रके विरहमें एक मैं ही क्या, सम्पूर्ण पृथिवी ही यौवन, श्री और कान्तिसे हीन प्रतीत होती है । जिनके प्रभावसे अग्निरूप मुझमें भीष्म आदि महारथीगण पतंगवत् भस्म हो गये थे, आज उन्हीं श्रीकृष्णके बिना मुझे गोपोंने हरा दिया । जिनके प्रभावसे यह गाण्डीव धनुष तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ था, उन्हींके बिना आज यह अहीरोंकी लाठियोंसे तिरस्कृत हो गया ! महामुने ! यदुवंशकी जो सहस्रों स्त्रियाँ मेरी देख-रेखमें आ रही थीं, उन्हें मेरे सब प्रकार यत्न करते रहनेपर भी दस्युगण अपनी लाठियोंके बलसे ले गये । ऐसी अवस्थामें मेरा श्रीहीन होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; पितामह ! आश्चर्य तो यह है कि नीच पुरुषोंद्वारा अपमान-पङ्कमें सनकर भी मैं निर्लज्ज अभी जीवित ही हूँ ।

श्रीव्यासजी बोले—पार्थ ! तुम्हारी लज्जा व्यर्थ है, तुम्हे शोक करना उचित नहीं है । तुम सम्पूर्ण भूतोंमें कालकी ऐसी ही गति जानो । नदियाँ, समुद्र, गिरिगण, सम्पूर्ण पृथिवी, देव, मनुष्य, पशु, वृक्ष और सरीसृप आदि सम्पूर्ण पदार्थ कालके ही रचे हुए हैं और फिर कालसे ही ये क्षीण हो जाते हैं, अतः इस सारे प्रपञ्चको कालात्मक जानकर शान्त होओ ।

धनञ्जय ! तुमने श्रीकृष्णचन्द्रका जैसा माहात्म्य बतलाया है, वह सब सत्य ही है; क्योंकि कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् कालस्वरूप ही हैं । उन्होंने पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही मर्त्यलोकमे अवतार लिया था । एक समय पूर्वकालमे पृथिवी भाराक्रान्त होकर देवताओंकी सभामें गयी थी । श्रीजनार्दनने उसीके लिये अवतार लिया था । अब सम्पूर्ण दुष्ट राजा मारे जा चुके, अतः वह कार्य सम्पन्न हो गया । पार्थ ! वृष्णि और अन्धक आदि सम्पूर्ण यदुकुलका भी उपसंहार हो गया; इसलिये उन प्रभुके लिये अब पृथिवीतलपर और कुछ भी कर्तव्य नहीं रहा । अतः अपना कार्य समाप्त हो चुकनेपर भगवान् स्वेच्छानुसार चले गये, ये देवदेव प्रभु सर्गके आरम्भमें सृष्टि-रचना करते हैं, स्थितिके समय पालन करते हैं और अन्तमें ये ही उसका नाश करनेमें समर्थ हैं, जैसे इस समय वे राक्षस आदिका संहार करके चले गये हैं ।

षष्ठ अंश

कलिधर्मनिरूपण

श्रीमैत्रेयजी बोले—महामुने ! आपने सृष्टि-रचना, वंश-परम्परा और मन्वन्तरोंकी स्थितिका तथा वंशोंके चरित्रों आदिका विस्तारसे वर्णन किया । अब मैं आपसे कल्पान्तमें होनेवाले महाप्रलय नामक संसारके उपसंहारका यथावत् वर्णन सुनना चाहता हूँ ।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय ! कल्पान्तके समय प्राकृत प्रलयमें जिस प्रकार जीवोंका उपसंहार होता है, वह सुनो । द्विजोत्तम ! मनुष्योंका एक मास पितृगणका, एक वर्ष देवगणका और दो सहस्र चतुर्युग ब्रह्माका एक दिन-रात होता है । सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं, इन सबका काल मिलाकर बारह हजार दिव्य वर्ष कहा जाता है । मैत्रेय ! ब्रह्माके दिनके आदि कृतयुग और अन्तिम कलियुग-को छोड़कर शेष सब चतुर्युग स्वरूपसे एक समान हैं । जिस प्रकार आद्य (प्रथम) सत्ययुगमें ब्रह्माजी जगत्की रचना करते हैं, उसी प्रकार अन्तिम कलियुगमें वे उसका उपसंहार करते हैं ।

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! कलिके स्वरूपका विस्तार-से वर्णन कीजिये, जिसमें चार चरणोंवाले धर्मका प्रायः लोप हो जाता है ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने ! तुम कलियुगका स्वरूप सुनना चाहते हो; अतः उस समय जो कुछ होता है, वह संक्षेपसे सुनो । कलियुगमें मनुष्योंकी प्रवृत्ति वर्णाश्रम-धर्मानुकूल नहीं रहती और न वह ऋक्-साम-यजुरूप त्रयी-धर्मका सम्पादन करनेवाली ही होती है । उस समय धर्म-विवाह, गुरु-शिष्य-सम्बन्धकी स्थिति, दाम्पत्यक्रम और अग्नि-में देवयज्ञक्रियाका क्रम (अनुष्ठान) भी नहीं रहता ।

कलियुगमें जो बलवान् होगा वही सबका स्वामी होगा, चाहे किसी भी कुलमें क्यों न उत्पन्न हुआ हो । उस समय उपवास, तीर्थाटनादि कायक्लेश, धन-दान तथा तप आदि अपनी रुचिके अनुसार अनुष्ठान किये हुए ही धर्म समझे जायँगे ।

कलियुगमें अल्प धनसे ही लोगोंको धनाढ्यताका गर्व हो जायगा और केशोंसे ही स्त्रियोंको सुन्दरताका अभिमान होगा । उस समय सुवर्ण, मणि, रत्न आदि और वस्त्रोंके क्षीण हो जानेसे स्त्रियाँ केशोंसे ही अपनेको विभूषित करेंगी । जो पति धनहीन होगा, उसे स्त्रियाँ छोड़ देंगी । कलियुगमें धनवान् पुरुषको ही स्त्रियाँ पति मानेंगी । जो मनुष्य अधिक धन देगा, वही लोगोंका स्वामी होगा; उस समय स्वामित्वका कारण सम्बन्ध नहीं होगा और न कुलीनता ही उसका कारण होगी ।

कलिमें सारा द्रव्य-संग्रह घर बनानेमें ही समाप्त हो जायगा, बुद्धि धन-संचयमें ही लगी रहेगी तथा सारी सम्पत्ति अपने उपभोगमें ही नष्ट होगी ।

कलिकालमें स्त्रियाँ सुन्दर पुरुषकी कामनासे स्वेच्छा-चारिणी होंगी तथा पुरुष अन्यायोपार्जित धनके इच्छुक होंगे । द्विज ! कलियुगमें अपने सुहृदोंके प्रार्थना करनेपर भी लोग एक-एक दमड़ीके लिये भी स्वार्थ-हानि नहीं करेंगे । कलिमें ब्राह्मणोंके साथ शूद्र आदि समानताका दावा करेंगे और दूध देनेके कारण ही गौओंका सम्मान होगा ।

उस समय सम्पूर्ण प्रजा क्षुधाकी व्यथासे व्याकुल हो प्रायः अनावृष्टिके भयसे सदा आकाशकी ओर दृष्टि लगाये रहेगी तथा अनावृष्टिके कारण दुखी होकर लोग आत्मघात करेंगे । कलियुगके असमर्थ लोग सुख और आनन्दके नष्ट हो जानेसे प्रायः सर्वदा दुर्भिक्ष तथा क्लेश ही भोगेंगे । कलिके आनेपर लोग बिना स्नान किये ही भोजन करेंगे, अग्नि, देवता और अतिथिका पूजन न करेंगे और न पिण्डोदकक्रिया ही करेंगे ।

उस समयकी स्त्रियाँ विषयलोलुप, छोटे शरीरवाली, अति भोजन करनेवाली, बहुत संतान पैदा करनेवाली और मन्दभागिनी होंगी । वे दोनों हाथोंसे सिर खुजाती हुई अपने बड़ोंके और पतियोंके आदेशका अनादरपूर्वक खण्डन करेंगी । कलियुगकी स्त्रियाँ अपना ही पेट पालनेमें तत्पर, क्षुद्र चित्त-वाली, शारीरिक पवित्रतासे हीन तथा कटु और मिथ्या भाषण

षष्ठ अंश

कलिधर्मनिरूपण

श्रीमैत्रेयजी बोले—महामुने ! आपने सृष्टि-रचना, वंश-परम्परा और मन्वन्तरोंकी स्थितिका तथा वंशोंके चरित्रों आदिका विस्तारसे वर्णन किया। अब मैं आपसे कल्पान्तमें होनेवाले महाप्रलय नामक संसारके उपसंहारका यथावत् वर्णन सुनना चाहता हूँ।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय ! कल्पान्तके समय प्राकृत प्रलयमें जिस प्रकार जीवोंका उपसंहार होता है, वह सुनो। द्विजोत्तम ! मनुष्योंका एक मास पितृगणका, एक वर्ष देवगणका और दो सहस्र चतुर्युग ब्रह्माका एक दिन-रात होता है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं, इन सबका काल मिलाकर बारह हजार दिव्य वर्ष कहा जाता है। मैत्रेय ! ब्रह्माके दिनके आदि कृतयुग और अन्तिम कलियुगको छोड़कर शेष सब चतुर्युग स्वरूपसे एक समान हैं। जिस प्रकार आद्य (प्रथम) सत्ययुगमें ब्रह्माजी जगत्की रचना करते हैं, उसी प्रकार अन्तिम कलियुगमें वे उसका उपसंहार करते हैं।

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! कलिके स्वरूपका विस्तारसे वर्णन कीजिये, जिसमें चार चरणोंवाले धर्मका प्रायः लोप हो जाता है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने ! तुम कलियुगका स्वरूप सुनना चाहते हो; अतः उस समय जो कुछ होता है, वह संक्षेपसे सुनो। कलियुगमें मनुष्योंकी प्रवृत्ति वर्णाश्रम-धर्मानुकूल नहीं रहती और न वह ऋक्-साम-यजुरूप त्रयी-धर्मका सम्पादन करनेवाली ही होती है। उस समय धर्म-विवाह, गुरु-शिष्य-सम्बन्धकी स्थिति, दाम्पत्यक्रम और अग्निमें देवयज्ञक्रियाका क्रम (अनुष्ठान) भी नहीं रहता।

कलियुगमें जो बलवान् होगा वही सबका स्वामी होगा, चाहे किसी भी कुलमें क्यों न उत्पन्न हुआ हो। उस समय उपवास, तीर्थाटनादि कायक्लेश, धन-दान तथा तप आदि अपनी रुचिके अनुसार अनुष्ठान किये हुए ही धर्म समझे जायँगे।

कलियुगमे अल्प धनसे ही लोगोंको धनाढ्यताका गर्व हो जायगा और केशोंसे ही स्त्रियोंको सुन्दरताका अभिमान होगा। उस समय सुवर्ण, मणि, रत्न आदि और वस्त्रोंके क्षीण हो जानेसे स्त्रियाँ केशोंसे ही अपनेको विभूषित करेंगी। जो पति धनहीन होगा, उसे स्त्रियाँ छोड़ देंगी। कलियुगमें धनवान् पुरुषको ही स्त्रियाँ पति मानेंगी। जो मनुष्य अधिक धन देगा, वही लोगोंका स्वामी होगा; उस समय स्वामित्वका कारण सम्बन्ध नहीं होगा और न कुलीनता ही उसका कारण होगी।

कलिमें सारा द्रव्य-संग्रह घर बनानेमें ही समाप्त हो जायगा, बुद्धि धन-संचयमें ही लगी रहेगी तथा सारी सम्पत्ति अपने उपभोगमें ही नष्ट होगी।

कलिकालमें स्त्रियाँ सुन्दर पुरुषकी कामनासे स्वेच्छाचारिणी होंगी तथा पुरुष अन्यायोपार्जित धनके इच्छुक होंगे। द्विज ! कलियुगमें अपने सुहृदोंके प्रार्थना करनेपर भी लोग एक-एक दमड़ीके लिये भी स्वार्थ-हानि नहीं करेंगे। कलिमें ब्राह्मणोंके साथ शूद्र आदि समानताका दावा करेंगे और दूध देनेके कारण ही गौओंका सम्मान होगा।

उस समय सम्पूर्ण प्रजा क्षुधाकी व्यथासे व्याकुल हो प्रायः अनावृष्टिके भयसे सदा आकाशकी ओर दृष्टि लगाये रहेगी तथा अनावृष्टिके कारण दुखी होकर लोग आत्मघात करेंगे। कलियुगके असमर्थ लोग सुख और आनन्दके नष्ट हो जानेसे प्रायः सर्वदा दुर्भिक्ष तथा क्लेश ही भोगेंगे। कलिके आनेपर लोग बिना स्नान किये ही भोजन करेंगे, अग्नि, देवता और अतिथिका पूजन न करेंगे और न पिण्डोदकक्रिया ही करेंगे।

उस समयकी स्त्रियाँ विषयलोलुप, छोटे शरीरवाली, अति भोजन करनेवाली, बहुत संतान पैदा करनेवाली और मन्दभागिनी होंगी। वे दोनों हाथोंसे सिर खुजाती हुई अपने बड़ोंके और पतियोंके आदेशका अनादरपूर्वक खण्डन करेंगी। कलियुगकी स्त्रियाँ अपना ही पेट पालनेमें तत्पर, क्षुद्र चित्तवाली, शारीरिक पवित्रतासे हीन तथा कटु और मिथ्या भाषण

श्रीव्यासजीद्वारा कलियुग, शूद्र और स्त्रियोंका महत्त्व-वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—महाभाग ! इसी विषयमे महामति व्यासदेवने जो कुछ कहा है, वह मै यथावत् वर्णन करता हूँ, सुनो । एक वार मुनियोंमें परस्पर पुण्यके विषयमें यह वार्तालाप हुआ कि 'किस समयमें थोड़ा-सा पुण्य भी महान् फल देता है और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं ?' मैत्रेय ! वे समस्त मुनिश्रेष्ठ इस संदेहका निर्णय करनेके लिये महामुनि व्यासजीके पास यह प्रश्न पूछने गये ।

उस समय गङ्गाजीमें डुबकी लगाये मेरे पुत्र व्यासने जलसे उठकर उन मुनिजनोंके सुनते हुए 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है' यह वचन कहा । यह कहकर वे महामुनि फिर जलमें मग्न हो गये और फिर खड़े होकर बोले—'स्त्रियाँ ही साधु हैं, वे ही धन्य हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन है ?' तदनन्तर जब व्यासजी स्नान करनेके अनन्तर नियमानुसार नित्यकर्मसे निवृत्त होकर आये तो वे मुनिजन उनके पास पहुँचे । वहाँ आकर जब वे यथायोग्य अभिवादनादिके अनन्तर आसनोंपर बैठ गये तो सत्यवती-नन्दन व्यासजीने उनसे पूछा—'आपलोग कैसे आये हैं ?'

तब मुनियोंने उनसे कहा—'पहले एक बात हमें बतलाइये । भगवन् ! आपने जो स्नान करते समय कई बार कहा था कि 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है, स्त्रियाँ ही साधु और धन्य हैं', सो क्या बात है ? महामुने ! यदि गोपनीय न हो तो कहिये ।'

मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर व्यासजीने हँसते हुए कहा ।

श्रीव्यासजी बोले—द्विजगण ! जो फल सत्ययुगमें दस वर्ष तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदि करनेसे मिलता है, उसे मनुष्य त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास और कलियुगमें केवल एक दिन-रातमें प्राप्त कर लेता है, इस कारण ही मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा है । जो फल सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें देवार्चन करनेसे प्राप्त होता है, वही कलियुगमे केशवका नाम-कीर्तन करनेसे मिल जाता है । धर्मज्ञगण ! कलियुगमें थोड़े-से परिश्रमसे ही पुरुषको महान् धर्मकी प्राप्ति हो जाती है, इसीलिये मैं कलियुगसे अति संतुष्ट हूँ* ।

द्विजातियोंको पहले ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है और फिर स्वधर्माचरणसे उपार्जित धनके द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं । इस प्रकार वे अत्यन्त क्लेशसे पुण्यलोकोंको प्राप्त करते हैं, किंतु जिसे केवल मन्त्रहीन पाक-यज्ञका ही अधिकार है, वह शूद्र द्विजोंकी सेवा करनेसे ही सद्गति प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह अन्य जातियोंकी अपेक्षा धन्यतर है† ।

द्विजोत्तमगण ! पुरुषोंको अपने धर्मानुकूल प्राप्त किये हुए धनसे ही सर्वदा सुपात्रको दान और विधिपूर्वक यज्ञ

---

* यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत् ।
द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत् कलौ ॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजा. ।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिः साध्विति भाषितम् ॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्य केशवम् ॥
धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुष. कलौ ।
अल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कले ॥
(वि० पु० ६ । २ । १५—१८)

† द्विजशुश्रूषयैवैष पाकयज्ञाधिकारवान् ।
निजाञ्जयति वै लोकाञ्छूद्रो धन्यतरस्तत ॥
(वि० पु० ६ । २ । २३)

श्रीव्यासजीद्वारा कलियुग, शूद्र और स्त्रियोंका महत्त्व-वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—महाभाग ! इसी विषयमे महामति व्यासदेवने जो कुछ कहा है, वह मै यथावत् वर्णन करता हूँ, सुनो । एक बार मुनियोंमें परस्पर पुण्यके विषयमें यह वार्तालाप हुआ कि 'किस समयमें थोड़ा-सा पुण्य भी महान् फल देता है और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं ?' मैत्रेय ! वे समस्त मुनिश्रेष्ठ इस संदेहका निर्णय करनेके लिये महामुनि व्यासजीके पास यह प्रश्न पूछने गये ।

उस समय गङ्गाजीमें डुबकी लगाये मेरे पुत्र व्यासने जलसे उठकर उन मुनिजनोंके सुनते हुए 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है' यह वचन कहा । यह कहकर वे महामुनि फिर जलमें मग्न हो गये और फिर खड़े होकर बोले— 'स्त्रियाँ ही साधु हैं, वे ही धन्य हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन है ?' तदनन्तर जब व्यासजी स्नान करनेके अनन्तर नियमानुसार नित्यकर्मसे निवृत्त होकर आये तो वे मुनिजन उनके पास पहुँचे । वहाँ आकर जब वे यथायोग्य अभिवादनादिके अनन्तर आसनोंपर बैठ गये तो सत्यवती-नन्दन व्यासजीने उनसे पूछा—'आपलोग कैसे आये हैं ?'

तब मुनियोंने उनसे कहा —'पहले एक बात हमें बतलाइये । भगवन् ! आपने जो स्नान करते समय कई बार कहा था कि 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है, स्त्रियाँ ही साधु और धन्य हैं', सो क्या बात है ? महामुने ! यदि गोपनीय न हो तो कहिये ।'

मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर व्यासजीने हँसते हुए कहा ।

श्रीव्यासजी बोले—द्विजगण ! जो फल सत्ययुगमें दस वर्ष तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदि करनेसे मिलता है, उसे मनुष्य त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास और कलि-युगमें केवल एक दिन-रातमें प्राप्त कर लेता है, इस कारण ही मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा है । जो फल सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें देवार्चन करनेसे प्राप्त होता है, वही कलि-युगमे केशवका नाम-कीर्तन करनेसे मिल जाता है । धर्मज्ञगण ! कलियुगमें थोड़े-से परिश्रमसे ही पुरुषको महान् धर्मकी प्राप्ति हो जाती है, इसीलिये मैं कलियुगसे अति संतुष्ट हूँ* ।

द्विजातियोंको पहले ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए वेदा-ध्ययन करना पड़ता है और फिर स्वधर्माचरणसे उपार्जित धनके द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं । इस प्रकार वे अत्यन्त क्लेशसे पुण्यलोकोंको प्राप्त करते हैं, किंतु जिसे केवल मन्त्रहीन पाक-यज्ञका ही अधिकार है, वह शूद्र द्विजोंकी सेवा करनेसे ही सद्गति प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह अन्य जातियोंकी अपेक्षा धन्यतर है† ।

द्विजोत्तमगण ! पुरुषोंको अपने धर्मानुकूल प्राप्त किये हुए धनसे ही सर्वदा सुपात्रको दान और विधिपूर्वक यज्ञ

---

* यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत् ।
द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत् कलौ ॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजा. ।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिः साध्विति भाषितम् ॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्य केशवम् ॥
धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुष. कलौ ।
अल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कले ॥
(वि० पु० ६ । २ । १५—१८)

† द्विजशुश्रूषयैवैष पाकयज्ञाधिकारवान् ।
निजाञ्जयति वै लोकाञ्छूद्रो धन्यतरस्तत ॥
(वि० पु० ६ । २ । २३)

पंद्रह कला एक नाडिका (घडी) का प्रमाण है। वह नाडिका साढ़े बारह पल ताँबेके बने हुए जलके पात्रसे जानी जा सकती है। मगधदेशीय मापसे वह पात्र जलप्रस्थ कहलाता है; उसमें चार अंगुल लंबी चार मासेकी सुवर्ण-शलाकासे छिद्र किया रहता है, उसके छिद्रको ऊपर करके जलमें डुबो देनेसे जितनी देरमें वह पात्र भर जाय उतने ही समयको एक घडी समझना चाहिये। द्विजसत्तम! ऐसी दो घड़ियोंका एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्तका एक दिन-रात होता है तथा इतने (तीस) ही दिन-रातका एक मास होता है। बारह मासका एक वर्ष होता है, देवलोकमें यही एक दिन-रात होता है। ऐसे तीन सौ साठ वर्षोंका देवताओंका एक वर्ष होता है। ऐसे बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग होता है और एक हजार चतुर्युगका ब्रह्माका एक दिन होता है।

महामुने! यही एक कल्प है। इसमें चौदह मनु बीत जाते हैं। इस दिनके अन्तमें ब्रह्माका नैमित्तिक प्रलय होता है। मैत्रेय! सुनो, मैं उस नैमित्तिक प्रलयका अत्यन्त भयानक रूप वर्णन करता हूँ। इसके पीछे मैं तुमसे प्राकृत प्रलयका भी वर्णन करूँगा। एक सहस्र चतुर्युग बीतनेपर जब पृथिवी क्षीणप्राय हो जाती है तो सौ वर्षतक अति घोर अनावृष्टि होती है। मुनिश्रेष्ठ! उस समय जो पार्थिव जीव अल्प शक्तिवाले होते हैं, वे सब अनावृष्टिसे पीड़ित होकर सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर, रुद्ररूपधारी अव्ययात्मा भगवान् विष्णु संसारका क्षय करनेके लिये सम्पूर्ण प्रजाको अपनेमें लीन कर लेनेका प्रयत्न करते हैं। उस समय भगवान् विष्णु सूर्यकी सातों किरणोंमें स्थित होकर सम्पूर्ण जलको सोख लेते हैं और समस्त भूमण्डलको शुष्क कर भस्म कर डालते हैं।

तब, सबको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुए श्रीहरि कालाग्निरुद्ररूपसे शेषनागके मुखसे प्रकट होकर नीचेसे पातालोंको जलाना आरम्भ करते हैं। वह महान् अग्नि समस्त पातालोंको जलाकर पृथिवीपर पहुँचता है और सम्पूर्ण भूतलको भस्म कर डालता है। वह दारुण अग्नि भुवर्लोक तथा स्वर्गलोकको जला डालता है। तब समस्त त्रिलोकी एक तप्त कटाहके समान प्रतीत होने लगती है। तदनन्तर भुवर्लोक और स्वर्गलोकमें रहनेवाले अधिकारिगण अग्निज्वालासे संतप्त होकर महर्लोकमें और फिर जनलोकमें चले जाते हैं।

मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर रुद्ररूपी भगवान् विष्णु सम्पूर्ण संसारको दग्ध करके अपने मुख-निःश्वाससे मेघोंको उत्पन्न करते हैं। तब विद्युत्से युक्त भयंकर गर्जना करनेवाले गजसमूहके समान बृहदाकार संवर्तक नामक घोर मेघ आकाशमें उठते हैं। वे घनघोर शब्द करनेवाले महाकाय मेघगण आकाशको आच्छादित कर लेते हैं और मूसलाधार जल बरसाकर त्रिलोकव्यापी भयंकर अग्निको शान्त कर देते हैं। द्विज! अपनी अति स्थूल धाराओंसे भूर्लोकको जलमें डुबोकर वे भुवर्लोक तथा उसके भी ऊपरके लोकोंको जलमग्न कर देते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण संसारके अन्धकारमय हो जानेपर तथा सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जीवोंके नष्ट हो जानेपर भी वे महामेघ सौ वर्ष अधिक कालतक बरसते रहते हैं।

महामुने! जब जल सप्तर्षियोंके स्थानको भी पार कर जाता है, तो यह सम्पूर्ण त्रिलोकी एक महासमुद्रके समान हो जाती है। मैत्रेय! तदनन्तर, भगवान् विष्णुके मुख-निःश्वाससे प्रकट हुआ वायु उन मेघोंको नष्ट करके पुनः सौ वर्षतक चलता रहता है। इस प्रलयके होनेमें ब्रह्माका शयन करना ही निमित्त है; इसलिये यह नैमित्तिक प्रलय कहलाता है। जिस प्रकार ब्रह्माजीका दिन एक हजार चतुर्युगका होता है, उसी प्रकार संसारके एकार्णवरूप हो जानेपर उनकी रात्रि भी उतनी ही बड़ी होती है। उस रात्रिका अन्त होनेपर ब्रह्मा जागते हैं और जैसा तुमसे पहले कहा था, उसी क्रमसे फिर सृष्टि रचते हैं।

द्विज! इस प्रकार तुमसे कल्पान्तमें होनेवाले नैमित्तिक प्रलयका वर्णन किया। अब दूसरे प्राकृत प्रलयका वर्णन सुनो। मुने! अनावृष्टि आदिके संयोगसे सम्पूर्ण लोक और निखिल पातालोंके नष्ट हो जानेपर तथा भगवदिच्छासे उस प्रलयकालके उपस्थित होनेपर जब महत्तत्त्वसे लेकर पृथिवी आदि पञ्च विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण विकार क्षीण हो जाते हैं तो प्रथम जल पृथिवीके गुण गन्धको अपनेमें लीन कर लेता है। इस प्रकार गन्ध छिन जानेसे पृथिवीका प्रलय हो जाता है। गन्ध-तन्मात्राके नष्ट हो जानेपर पृथिवी जलमय हो जाती है, तदनन्तर जलके गुण रसको तेज अपनेमें लीन कर लेता है। फिर रस-तन्मात्राका क्षय हो जानेसे जल भी नष्ट हो जाता है। तब रसहीन हो जानेसे जल अग्निरूप हो जाता है तथा अग्निके सब ओर व्याप्त हो जानेसे जलके अग्निमें स्थित हो जानेपर वह अग्नि सब ओर फैलकर सम्पूर्ण जलको सोख लेता है और धीरे-धीरे यह सम्पूर्ण जगत् ज्वालासे पूर्ण हो जाता है। उस समय अग्निके प्रकाशक स्वरूपको वायु अपनेमें लीन कर लेता है। तब रूप-तन्मात्राके नष्ट हो जानेसे अग्नि रूपहीन हो जाता है। उस समय संसारके प्रकाशहीन और तेजके वायुमें लीन हो जानेसे अग्नि शान्त हो जाता है

पंद्रह कला एक नाडिका (घडी) का प्रमाण है। वह नाडिका साढ़े बारह पल ताँबेके बने हुए जलके पात्रसे जानी जा सकती है। मगधदेशीय मापसे वह पात्र जलप्रस्थ कहलाता है; उसमें चार अंगुल लंबी चार मासेकी सुवर्ण-शलाकासे छिद्र किया रहता है, उसके छिद्रको ऊपर करके जलमें डुबो देनेसे जितनी देरमें वह पात्र भर जाय उतने ही समयको एक घडी समझना चाहिये। द्विजसत्तम ! ऐसी दो घड़ियोंका एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्तका एक दिन-रात होता है तथा इतने (तीस) ही दिन-रातका एक मास होता है। बारह मासका एक वर्ष होता है, देवलोकमें यही एक दिन-रात होता है। ऐसे तीन सौ साठ वर्षोंका देवताओंका एक वर्ष होता है। ऐसे बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग होता है और एक हजार चतुर्युगका ब्रह्माका एक दिन होता है।

महामुने ! यही एक कल्प है। इसमें चौदह मनु बीत जाते हैं। इस दिनके अन्तमें ब्रह्माका नैमित्तिक प्रलय होता है। मैत्रेय ! सुनो, मैं उस नैमित्तिक प्रलयका अत्यन्त भयानक रूप वर्णन करता हूँ। इसके पीछे मैं तुमसे प्राकृत प्रलयका भी वर्णन करूँगा। एक सहस्र चतुर्युग बीतनेपर जब पृथिवी क्षीणप्राय हो जाती है तो सौ वर्षतक अति घोर अनावृष्टि होती है। मुनिश्रेष्ठ ! उस समय जो पार्थिव जीव अल्प शक्तिवाले होते हैं, वे सब अनावृष्टिसे पीड़ित होकर सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर, रुद्ररूपधारी अव्ययात्मा भगवान् विष्णु संसारका क्षय करनेके लिये सम्पूर्ण प्रजाको अपनेमें लीन कर लेनेका प्रयत्न करते हैं। उस समय भगवान् विष्णु सूर्यकी सातों किरणोंमें स्थित होकर सम्पूर्ण जलको सोख लेते हैं और समस्त भूमण्डलको शुष्क कर भस्म कर डालते हैं।

तब, सबको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुए श्रीहरि कालाग्निरुद्ररूपसे शेषनागके मुखसे प्रकट होकर नीचेसे पातालोंको जलाना आरम्भ करते हैं। वह महान् अग्नि समस्त पातालोंको जलाकर पृथिवीपर पहुँचता है और सम्पूर्ण भूतलको भस्म कर डालता है। वह दारुण अग्नि भुवर्लोक तथा स्वर्गलोकको जला डालता है। तब समस्त त्रिलोकी एक तप्त कटाहके समान प्रतीत होने लगती है। तदनन्तर भुवर्लोक और स्वर्गलोकमें रहनेवाले अधिकारिगण अग्निज्वालासे संतप्त होकर महर्लोकमें और फिर जनलोकमें चले जाते हैं।

मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर रुद्ररूपी भगवान् विष्णु सम्पूर्ण संसारको दग्ध करके अपने मुख-निःश्वाससे मेघोंको उत्पन्न करते हैं। तब विद्युत्से युक्त भयंकर गर्जना करनेवाले गजसमूहके समान बृहदाकार संवर्तक नामक घोर मेघ आकाशमें उठते हैं। वे घनघोर शब्द करनेवाले महाकाय मेघगण आकाशको आच्छादित कर लेते हैं और मूसलाधार जल बरसाकर त्रिलोकव्यापी भयंकर अग्निको शान्त कर देते हैं। द्विज ! अपनी अति स्थूल धाराओंसे भूर्लोकको जलमें डुबोकर वे भुवर्लोक तथा उसके भी ऊपरके लोकोंको जलमग्न कर देते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण संसारके अन्धकारमय हो जानेपर तथा सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जीवोंके नष्ट हो जानेपर भी वे महामेघ सौ वर्ष अधिक कालतक बरसते रहते हैं।

महामुने ! जब जल सप्तर्षियोंके स्थानको भी पार कर जाता है, तो यह सम्पूर्ण त्रिलोकी एक महासमुद्रके समान हो जाती है। मैत्रेय ! तदनन्तर, भगवान् विष्णुके मुख-निःश्वाससे प्रकट हुआ वायु उन मेघोंको नष्ट करके पुनः सौ वर्षतक चलता रहता है। इस प्रलयके होनेमें ब्रह्माका शयन करना ही निमित्त है; इसलिये यह नैमित्तिक प्रलय कहलाता है। जिस प्रकार ब्रह्माजीका दिन एक हजार चतुर्युगका होता है, उसी प्रकार संसारके एकार्णवरूप हो जानेपर उनकी रात्रि भी उतनी ही बड़ी होती है। उस रात्रिका अन्त होनेपर ब्रह्मा जागते हैं और जैसा तुमसे पहले कहा था, उसी क्रमसे फिर सृष्टि रचते हैं।

द्विज ! इस प्रकार तुमसे कल्पान्तमें होनेवाले नैमित्तिक प्रलयका वर्णन किया। अब दूसरे प्राकृत प्रलयका वर्णन सुनो। मुने ! अनावृष्टि आदिके संयोगसे सम्पूर्ण लोक और निखिल पातालोंके नष्ट हो जानेपर तथा भगवदिच्छासे उस प्रलयकालके उपस्थित होनेपर जब महत्तत्त्वसे लेकर पृथिवी आदि पञ्च विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण विकार क्षीण हो जाते हैं तो प्रथम जल पृथिवीके गुण गन्धको अपनेमें लीन कर लेता है। इस प्रकार गन्ध छिन जानेसे पृथिवीका प्रलय हो जाता है। गन्ध-तन्मात्राके नष्ट हो जानेपर पृथिवी जलमय हो जाती है, तदनन्तर जलके गुण रसको तेज अपनेमें लीन कर लेता है। फिर रस-तन्मात्राका क्षय हो जानेसे जल भी नष्ट हो जाता है। तब रसहीन हो जानेसे जल अग्निरूप हो जाता है तथा अग्निके सब ओर व्याप्त हो जानेसे जलके अग्निमें स्थित हो जानेपर वह अग्नि सब ओर फैलकर सम्पूर्ण जलको सोख लेता है और धीरे-धीरे यह सम्पूर्ण जगत् ज्वालासे पूर्ण हो जाता है। उस समय अग्निके प्रकाशक स्वरूपको वायु अपनेमें लीन कर लेता है। तब रूप-तन्मात्राके नष्ट हो जानेसे अग्नि रूपहीन हो जाता है। उस समय संसारके प्रकाशहीन और तेजके वायुमें लीन हो जानेसे अग्नि शान्त हो जाता है

आदि शारीरिक कष्ट-भेदसे दैहिक तापके कितने ही भेद हैं। अब मानसिक तापोंको सुनो—द्विजश्रेष्ठ ! काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, मोह, विषाद, शोक, असूया (गुणोंमें दोषारोपण), अपमान, ईर्ष्या और मात्सर्य आदि भेदोंसे मानसिक तापके अनेक भेद हैं। ऐसे ही नाना प्रकारके भेदोंसे युक्त तापको आध्यात्मिक कहते हैं। मनुष्योंको जो दुःख मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच, सर्प, बिच्छू, राक्षस आदिसे प्राप्त होता है, उसे आधिभौतिक कहते हैं तथा द्विजवर ! शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, जल और विद्युत् आदिसे प्राप्त हुए दुःखको श्रेष्ठ पुरुष आधिदैविक कहते हैं।

मुनिश्रेष्ठ ! इनके अतिरिक्त गर्भ, जन्म, जरा, अज्ञान, मृत्यु और नरकसे उत्पन्न हुए दुःखके भी सहस्रों प्रकारके भेद हैं। अत्यन्त मलपूर्ण गर्भाशयमें उल्व (गर्भकी झिल्ली) से लिपटा हुआ यह सुकुमार-शरीर जीव, जिसकी पीठ और ग्रीवाकी अस्थियाँ कुण्डलाकार मुड़ी रहती हैं, माताके खाये हुए अत्यन्त तापप्रद खट्टे, कड़वे, चरपरे, गरम और खारे पदार्थोंसे जिसकी वेदना बहुत बढ़ जाती है, जो मल-मूत्ररूप महापङ्कमें पड़ा-पड़ा सम्पूर्ण अङ्गोंमें अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी अपने अङ्गोंको फैलाने या सिकोड़नेमें समर्थ नहीं होता और चेतनायुक्त होनेपर भी श्वास नहीं ले सकता, अपने सैकड़ों पूर्वजन्मोंका स्मरण कर कर्मोंसे बँधा हुआ अत्यन्त दुःखपूर्वक गर्भमें पड़ा रहता है। उत्पन्न होनेके समय उसका मुख मल, मूत्र, रक्त और वीर्य आदिमें लिपटा रहता है और उसके सम्पूर्ण अस्थिबन्धन प्राजापत्य (गर्भको संकुचित करनेवाली) वायुसे अत्यन्त पीड़ित होते हैं। प्रबल प्रसूतिवायु उसका मुख नीचेको कर देती है और वह आतुर होकर बड़े क्लेशके साथ माताके गर्भाशयसे बाहर निकल पाता है।

मुनिसत्तम ! उत्पन्न होनेके अनन्तर बाह्य वायुका स्पर्श होनेसे अत्यन्त मूर्च्छित होकर वह बेसुध हो जाता है। उस समय वह जीव दुर्गन्धयुक्त फोड़ेमेंसे गिरे हुए किसी कण्टक-विद्ध अथवा आरेसे चीरे हुए कीड़ेके समान पृथिवीपर गिरता है। उसे स्वयं खुजलाने अथवा करवट लेनेकी भी शक्ति नहीं रहती। वह स्नान तथा दुग्धपानादि आहार भी दूसरेकी ही इच्छापर निर्भर करता है। अपवित्र (मल-मूत्रादिमें सने हुए) बिस्तरपर पड़ा रहता है, उस समय कीड़े और मच्छर आदि उसे काटते हैं, तथापि वह उन्हें दूर करनेमें भी असमर्थ रहता है।

इस प्रकार जन्मके समय और उसके अनन्तर बाल्यावस्थामें जीव आधिभौतिक, आध्यात्मिक आदि अनेकों दुःख भोगता है। अज्ञानरूप अन्धकारसे आवृत होकर मूढहृदय पुरुष यह नहीं जानता कि 'मैं कहाँसे आया हूँ ? कौन हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? मेरा स्वरूप क्या है ? मैं किस बन्धनसे बँधा हुआ हूँ ? इस बन्धनका क्या कारण है अथवा यह अकारण ही प्राप्त हुआ है ? मुझे क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये ? क्या कहना चाहिये और क्या न कहना चाहिये ? धर्म क्या है ? अधर्म क्या है ? किस अवस्थामें मुझे किस प्रकार रहना चाहिये ? मेरा क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है ? अथवा क्या गुणमय और क्या दोषमय है ?' इस प्रकार पशुके समान विवेकशून्य शिश्नोदरपरायण पुरुष अज्ञानजनित महान् दुःख भोगते हैं *।

द्विज ! अज्ञान तामसिक भावरूप विकार है; अतः अज्ञानी पुरुषोंकी तामसिक कर्मोंके आरम्भमे प्रवृत्ति होती है; इससे वैदिक कर्मोंका लोप हो जाता है। मनीषिजनोंने कर्म-लोपका फल नरक बतलाया है; इसलिये अज्ञानी पुरुषोंको इहलोक और परलोक दोनों जगह अत्यन्त ही दुःख भोगना पड़ता है। शरीरके जरा-जर्जरित हो जानेपर पुरुषके अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो जाते हैं, उसके दाँत पुराने होकर उखड़ जाते हैं और शरीर झुर्रियों तथा नस-नाडियोंसे आवृत हो जाता है। उसकी दृष्टि दूरस्थ विषयके ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाती है, नेत्रोंके तारे गोलकोंमें घुस जाते हैं, नासिकाके रन्ध्रोंमेंसे बहुत-से रोम बाहर निकल आते हैं और शरीर काँपने लगता है। उसकी समस्त हड्डियाँ दिखलायी देने लगती हैं, मेरुदण्ड झुक जाता है तथा जठराग्निके मन्द पड़ जानेसे उसके आहार और पुरुषार्थ कम हो जाते हैं। उस समय उसकी चलना-फिरना, उठना-बैठना और सोना आदि सभी चेष्टाएँ बड़ी कठिनतासे होती हैं। उसके श्रोत्र और नेत्रोंकी शक्ति मन्द पड़ जाती है तथा लार बहते रहनेसे उसका मुख मलिन हो जाता

---

* अज्ञानतमसाच्छन्नो मूढान्त.करणो नर. ।
न जानाति कुतः कोऽहं काहं गन्ता किमात्मकः ॥
केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम् ।
किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं च नोच्यते ॥
को धर्म. कश्च वाधर्म. कस्मिन् वर्तेऽथ वा कथम् ।
किं कर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत् ॥
एवं पशुसमैर्मूढैरज्ञानप्रभव महत् ।
अवाप्यते नरैर्दु.खं शिश्नोदरपरायणैः ॥
(वि० पु० ६ । ५ । २१—२४

आदि शारीरिक कष्ट-भेदसे दैहिक तापके कितने ही भेद हैं। अब मानसिक तापोंको सुनो—द्विजश्रेष्ठ! काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, मोह, विषाद, शोक, असूया (गुणोंमें दोषारोपण), अपमान, ईर्ष्या और मात्सर्य आदि भेदोंसे मानसिक तापके अनेक भेद हैं। ऐसे ही नाना प्रकारके भेदोंसे युक्त तापको आध्यात्मिक कहते हैं। मनुष्योंको जो दुःख मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच, सर्प, बिच्छू, राक्षस आदिसे प्राप्त होता है, उसे आधिभौतिक कहते हैं तथा द्विजवर! शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, जल और विद्युत् आदिसे प्राप्त हुए दुःखको श्रेष्ठ पुरुष आधिदैविक कहते हैं।

मुनिश्रेष्ठ! इनके अतिरिक्त गर्भ, जन्म, जरा, अज्ञान, मृत्यु और नरकसे उत्पन्न हुए दुःखके भी सहस्रों प्रकारके भेद हैं। अत्यन्त मलपूर्ण गर्भाशयमें उल्व (गर्भकी झिल्ली) से लिपटा हुआ यह सुकुमार-शरीर जीव, जिसकी पीठ और ग्रीवाकी अस्थियाँ कुण्डलाकार मुड़ी रहती हैं, माताके खाये हुए अत्यन्त तापप्रद खट्टे, कड़वे, चरपरे, गरम और खारे पदार्थोंसे जिसकी वेदना बहुत बढ़ जाती है, जो मल-मूत्ररूप महापङ्कमें पड़ा-पड़ा सम्पूर्ण अङ्गोंमें अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी अपने अङ्गोंको फैलाने या सिकोड़नेमें समर्थ नहीं होता और चेतनायुक्त होनेपर भी श्वास नहीं ले सकता, अपने सैकड़ों पूर्वजन्मोंका स्मरण कर कर्मोंसे बँधा हुआ अत्यन्त दुःखपूर्वक गर्भमें पड़ा रहता है। उत्पन्न होनेके समय उसका मुख मल, मूत्र, रक्त और वीर्य आदिमें लिपटा रहता है और उसके सम्पूर्ण अस्थिबन्धन प्राजापत्य (गर्भको संकुचित करनेवाली) वायुसे अत्यन्त पीड़ित होते हैं। प्रबल प्रसूतिवायु उसका मुख नीचेको कर देती है और वह आतुर होकर बड़े क्लेशके साथ माताके गर्भाशयसे बाहर निकल पाता है।

मुनिसत्तम! उत्पन्न होनेके अनन्तर बाह्य वायुका स्पर्श होनेसे अत्यन्त मूर्च्छित होकर वह बेसुध हो जाता है। उस समय वह जीव दुर्गन्धयुक्त फोड़ेमेंसे गिरे हुए किसी कण्टक-विद्ध अथवा आरेसे चीरे हुए कीड़ेके समान पृथिवीपर गिरता है। उसे स्वयं खुजलाने अथवा करवट लेनेकी भी शक्ति नहीं रहती। वह स्नान तथा दुग्धपानादि आहार भी दूसरेकी ही इच्छापर निर्भर करता है। अपवित्र (मल-मूत्रादिमें सने हुए) विस्तरपर पड़ा रहता है, उस समय कीड़े और मच्छर आदि उसे काटते हैं, तथापि वह उन्हें दूर करनेमें भी असमर्थ रहता है।

इस प्रकार जन्मके समय और उसके अनन्तर बाल्यावस्थामें जीव आधिभौतिक, आध्यात्मिक आदि अनेकों दुःख भोगता है। अज्ञानरूप अन्धकारसे आवृत होकर मूढहृदय पुरुष यह नहीं जानता कि 'मैं कहाँसे आया हूँ? कौन हूँ? कहाँ जाऊँगा? मेरा स्वरूप क्या है? मैं किस बन्धनसे बँधा हुआ हूँ? इस बन्धनका क्या कारण है अथवा यह अकारण ही प्राप्त हुआ है? मुझे क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये? क्या कहना चाहिये और क्या न कहना चाहिये? धर्म क्या है? अधर्म क्या है? किस अवस्थामें मुझे किस प्रकार रहना चाहिये? मेरा क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है? अथवा क्या गुणमय और क्या दोषमय है?' इस प्रकार पशुके समान विवेकशून्य शिश्नोदरपरायण पुरुष अज्ञानजनित महान् दुःख भोगते हैं*।

द्विज! अज्ञान तामसिक भावरूप विकार है; अतः अज्ञानी पुरुषोंकी तामसिक कर्मोंके आरम्भमें प्रवृत्ति होती है; इससे वैदिक कर्मोंका लोप हो जाता है। मनीषिजनोंने कर्म-लोपका फल नरक बतलाया है; इसलिये अज्ञानी पुरुषोंको इहलोक और परलोक दोनों जगह अत्यन्त ही दुःख भोगना पड़ता है। शरीरके जरा-जर्जरित हो जानेपर पुरुषके अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो जाते हैं, उसके दाँत पुराने होकर उखड़ जाते हैं और शरीर झुर्रियों तथा नस-नाड़ियोंसे आवृत हो जाता है। उसकी दृष्टि दूरस्थ विषयके ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाती है, नेत्रोंके तारे गोलकोंमें घुस जाते हैं, नासिकाके रन्ध्रोंमेंसे बहुत-से रोम बाहर निकल आते हैं और शरीर काँपने लगता है। उसकी समस्त हड्डियाँ दिखलायी देने लगती हैं, मेरुदण्ड झुक जाता है तथा जठराग्निके मन्द पड़ जानेसे उसके आहार और पुरुषार्थ कम हो जाते हैं। उस समय उसकी चलना-फिरना, उठना-बैठना और सोना आदि सभी चेष्टाएँ बड़ी कठिनतासे होती हैं। उसके श्रोत्र और नेत्रोंकी शक्ति मन्द पड़ जाती है तथा लार बहते रहनेसे उसका मुख मलिन हो जाता

* अज्ञानतमसाच्छन्नो मूढान्तःकरणो नरः।
न जानाति कुतः कोऽहं काहं गन्ता किमात्मकः॥
केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम्।
किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं च नोच्यते॥
को धर्मः कश्च वाधर्मः कस्मिन् वर्तेऽथ वा कथम्।
किं कर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत्॥
एवं पशुसमैर्मूढैरज्ञानप्रभवं महत्।
अवाप्यते नरैर्दुःखं शिश्नोदरपरायणैः॥
(वि० पु० ६। ५। २१—२४)

ज्ञान दो प्रकारका है—शास्त्रजन्य तथा विवेकजन्य। शब्दब्रह्मका ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्मका बोध विवेकजन्य। विप्रर्षे! अज्ञान घोर अन्धकारके समान है। उसको नष्ट करनेके लिये इन्द्रियोद्भव* ज्ञान दीपकवत् और विवेकज ज्ञान सूर्यके समान है। मुनिश्रेष्ठ! इस विषयमें वेदार्थका स्मरण कर मनुजीने जो कुछ कहा है, वह बतलाता हूँ, श्रवण करो। ब्रह्म दो प्रकारका है—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। शब्दब्रह्म (शास्त्रजन्य ज्ञान) में निपुण हो जानेपर जिज्ञासु विवेकजन्य ज्ञानके द्वारा परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है †।

अथर्ववेदकी श्रुति है कि विद्या दो प्रकारकी है—परा और अपरा। परासे अक्षर (सच्चिदानन्द) ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और अपरा ऋगादि वेदत्रयीरूपा है। जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, पाणि-पादादिशून्य, व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतोंका आदिकारण, स्वय कारणहीन तथा जिससे सम्पूर्ण व्याप्य और व्यापक प्रकट हुआ है और जिसे पण्डितजन ज्ञाननेत्रोंसे देखते हैं, वह परम धाम ही अक्षर ब्रह्म है, मुमुक्षुओंको उसीका ध्यान करना चाहिये और वही भगवान् विष्णुका वेदवचनोंसे प्रतिपादित अति सूक्ष्म परम पद है। परमात्माका वह स्वरूप ही 'भगवत्' शब्दका वाच्य है और 'भगवत्' शब्द ही उस आद्य एवं अक्षय स्वरूपका वाचक है *।

जिसका ऐसा स्वरूप बतलाया गया है, उस परमात्माके तत्त्वका जिसके द्वारा वास्तविक ज्ञान होता है, वही परम ज्ञान (परा विद्या) है। त्रयीमय ज्ञान (कर्मकाण्ड) इससे पृथक् (अपरा विद्या) है। द्विज! वह ब्रह्म यद्यपि शब्दका विषय नहीं है, तथापि उपासनाके लिये उसका 'भगवत्' शब्दसे उपचारतः कथन किया जाता है। मैत्रेय! समस्त कारणोंके कारण, महाविभूतिसंज्ञक परब्रह्मके लिये ही 'भगवत्' शब्दका प्रयोग हुआ है। इस ('भगवत्' शब्द) में भकारके दो अर्थ हैं—पोषण करनेवाला और धारण करनेवाला तथा गकारके अर्थ कर्म-फल प्राप्त करानेवाला, लय करनेवाला और रचयिता हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छःका नाम 'भग' है। उस अखिल-भूतात्मामें समस्त भूतगण निवास करते हैं और वह स्वयं भी समस्त भूतोंमें विराजमान है, इसलिये वह अव्यय (परमात्मा) ही वकारका अर्थ है †। मैत्रेय! इस प्रकार यह महान् 'भगवान्' शब्द परब्रह्मस्वरूप श्रीवासुदेवका ही वाचक है, किसी औरका नहीं। पूज्य पदार्थोंको सूचित करनेके लक्षणसे युक्त इस

कलत्रपुत्रमित्रार्थगृहक्षेत्रधनादिकैः ।
क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथासुखम् ॥
इति ससारदुःखार्कतापतापितचेतसाम् ।
विमुक्तिपादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम् ॥
तदस्य त्रिविधस्यापि दु खजातस्य वै मम ।
गर्भजन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यतः ॥
निरस्तातिशयाह्लादसुखभावैकलक्षणा ।
भेषज भगवत्प्राप्तिरेकान्तात्यन्तिकी मता ॥
तस्मात्तत्प्राप्तये यत्न कर्तव्य पण्डितैर्नरैः ।
तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञान च कर्म चोक्त महामुने ॥
(वि० पु० ६ । ५ । ५५—६०)

* श्रवण-इन्द्रियद्वारा शास्त्रका ग्रहण होता है; इसलिये शास्त्रजन्य ज्ञान ही 'इन्द्रियोद्भव' शब्दसे कहा गया है।

† द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म पर च यत् ।
शब्दब्रह्मणि निष्णात. परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
(वि० पु० ६ । ५ । ६४)

* यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम् ।
अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसयुतम् ॥
विभुं सर्वगतं नित्यं भूतयोनिरकारणम् ।
व्याप्यव्याप्तं यतः सर्वं यद् वै पश्यन्ति सूरयः ॥
तद् ब्रह्म तत् पर धाम तद् ध्येयं मोक्षकाङ्क्षिभिः ।
श्रुतिवाक्योदित सूक्ष्मं तद् विष्णोः परम पदम् ॥
तदेव भगवद्वाच्यं स्वरूपं परमात्मनः ।
वाचको भगवच्छब्दस्तस्याद्यस्याक्षयात्मनः ॥
(वि ० पु० ६ । ५ । ६६—६९)

† शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि शब्द्यते ।
मैत्रेय भगवच्छब्दः सर्वकारणकारणे ॥
सम्भर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः ।
नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने ॥
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥
वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि ।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः ॥
(वि० पु० ६ । ५ । ७२—७५)

ज्ञान दो प्रकारका है—शास्त्रजन्य तथा विवेकजन्य। शब्दब्रह्मका ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्मका बोध विवेक-जन्य। विप्रर्षे! अज्ञान घोर अन्धकारके समान है। उसको नष्ट करनेके लिये इन्द्रियोद्भव* ज्ञान दीपकवत् और विवेकज ज्ञान सूर्यके समान है। मुनिश्रेष्ठ! इस विषयमें वेदार्थका स्मरण कर मनुजीने जो कुछ कहा है, वह बतलाता हूँ, श्रवण करो। ब्रह्म दो प्रकारका है—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। शब्दब्रह्म (शास्त्रजन्य ज्ञान) में निपुण हो जानेपर जिज्ञासु विवेकजन्य ज्ञानके द्वारा परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है †।

अथर्ववेदकी श्रुति है कि विद्या दो प्रकारकी है—परा और अपरा। परासे अक्षर (सच्चिदानन्द) ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और अपरा ऋगादि वेदत्रयीरूपा है। जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, पाणि-पादादिशून्य, व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतोंका आदिकारण, स्वयं कारणहीन तथा जिससे सम्पूर्ण व्याप्य और व्यापक प्रकट हुआ है और जिसे पण्डितजन ज्ञाननेत्रोंसे देखते हैं, वह परम धाम ही अक्षर ब्रह्म है; मुमुक्षुओंको उसीका ध्यान करना चाहिये और वही भगवान् विष्णुका वेदवचनोंसे प्रतिपादित अति सूक्ष्म परम पद है। परमात्माका वह स्वरूप ही 'भगवत्' शब्दका वाच्य है और 'भगवत्' शब्द ही उस आद्य एवं अक्षय स्वरूपका वाचक है *।

जिसका ऐसा स्वरूप बतलाया गया है, उस परमात्माके तत्त्वका जिसके द्वारा वास्तविक ज्ञान होता है, वही परम ज्ञान (परा विद्या) है। त्रयीमय ज्ञान (कर्मकाण्ड) इससे पृथक् (अपरा विद्या) है। द्विज! वह ब्रह्म यद्यपि शब्दका विषय नहीं है, तथापि उपासनाके लिये उसका 'भगवत्' शब्दसे उपचारतः कथन किया जाता है। मैत्रेय! समस्त कारणोंके कारण, महाविभूतिसंज्ञक परब्रह्मके लिये ही 'भगवत्' शब्दका प्रयोग हुआ है। इस ('भगवत्' शब्द) में भकारके दो अर्थ हैं—पोषण करनेवाला और धारण करनेवाला तथा गकारके अर्थ कर्म-फल प्राप्त करानेवाला, लय करनेवाला और रचयिता हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छःका नाम 'भग' है। उस अखिल-भूतात्मामें समस्त भूतगण निवास करते हैं और वह स्वयं भी समस्त भूतोंमें विराजमान है, इसलिये वह अव्यय (परमात्मा) ही वकारका अर्थ है †। मैत्रेय! इस प्रकार यह महान् 'भगवान्' शब्द परब्रह्मस्वरूप श्रीवासुदेवका ही वाचक है, किसी औरका नहीं। पूज्य पदार्थोंको सूचित करनेके लक्षणसे युक्त इस

कलत्रपुत्रमित्रार्थगृहक्षेत्रधनादिकैः।
क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथासुखम्॥
इति संसारदुःखार्कतापतापितचेतसाम्।
विमुक्तिपादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम्॥
तदस्य त्रिविधस्यापि दुःखजातस्य वै मम।
गर्भजन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यतः॥
निरस्तातिशयाह्लादसुखभावैकलक्षणा।
भेषजं भगवत्प्राप्तिरेकान्तात्यन्तिकी मता॥
तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैर्नरैः।
तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं महामुने॥
(वि० पु० ६। ५। ५५—६०)

* श्रवण-इन्द्रियद्वारा शास्त्रका ग्रहण होता है; इसलिये शास्त्रजन्य ज्ञान ही 'इन्द्रियोद्भव' शब्दसे कहा गया है।

† द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति॥
(वि० पु० ६। ५। ६४)

* यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम्।
अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंयुतम्॥
विभुं सर्वगतं नित्यं भूतयोनिरकारणम्।
व्याप्यव्याप्तं यतः सर्वं यद् वै पश्यन्ति सूरयः॥
तद् ब्रह्म तत् परं धाम तद् ध्येयं मोक्षकाङ्क्षिभिः।
श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद् विष्णोः परमं पदम्॥
तदेव भगवद्वाच्यं स्वरूपं परमात्मनः।
वाचको भगवच्छब्दस्तस्याद्यस्याक्षयात्मनः॥
(वि० पु० ६। ५। ६६—६९)

† शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि शब्द्यते।
मैत्रेय भगवच्छब्दः सर्वकारणकारणे॥
सम्भर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः।
नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने॥
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥
वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः॥
(वि० पु० ६। ५। ७२—७५)

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! जिसे जान लेनेपर मैं अखिलाधार परमेश्वरको देख सकूँगा, उस योगको जानना चाहता हूँ; उसका वर्णन कीजिये ।

श्रीपराशरजीने कहा—पूर्वकालमें जिस प्रकार इस योगका केशिध्वजने महात्मा खाण्डिक्य जनकसे वर्णन किया था, मैं तुम्हें वही बतलाता हूँ ।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—ब्रह्मन् ! ये खाण्डिक्य और विद्वान् केशिध्वज कौन थे और उनका योगसम्बन्धी संवाद किस प्रकार हुआ था ?

श्रीपराशरजीने कहा—पूर्वकालमें धर्मध्वज जनक नामक एक राजा थे । उनके अमितध्वज और कृतध्वज नामक दो पुत्र हुए । इनमें कृतध्वज सर्वदा अध्यात्मशास्त्रमें रत रहता था । कृतध्वजका पुत्र केशिध्वज नामसे विख्यात हुआ और अमितध्वजका पुत्र खाण्डिक्य जनक हुआ । पृथिवीमण्डलमें खाण्डिक्य कर्म-मार्गमें अत्यन्त निपुण था और केशिध्वज अध्यात्मविद्याका विशेषज्ञ था । वे दोनों परस्पर एक-दूसरेको पराजित करनेकी चेष्टामें लगे रहते थे । अन्तमें, कालक्रमसे केशिध्वजने खाण्डिक्यको राज्यच्युत कर दिया । राज्यभ्रष्ट होनेपर खाण्डिक्य पुरोहित और मन्त्रियोंके सहित थोड़ी-सी सामग्री लेकर दुर्गम वनोंमें चला गया । केशिध्वज ज्ञानयोगका आश्रय लेनेवाला था तो भी कर्मद्वारा मृत्युको पार करनेके लिये ज्ञान-दृष्टि रखते हुए अर्थात् निष्कामभावसे उसने अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया ।

योगिश्रेष्ठ ! एक दिन जब राजा केशिध्वज यज्ञानुष्ठानमें स्थित थे, उनकी धर्मधेनु (हविके लिये दूध देनेवाली गौ) को निर्जन वनमें एक भयंकर सिंहने मार डाला । व्याघ्रद्वारा गौको मारी गयी सुन राजाने ऋत्विजोंसे पूछा कि 'इसमें क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये ?' ऋत्विजोंने कहा—'हम इस विषयमें नहीं जानते; आप कशेरुसे पूछिये ।' जब राजाने कशेरुसे यह बात पूछी तो उन्होंने भी उसी प्रकार कहा कि 'राजेन्द्र ! मैं इस विषयमें नहीं जानता । आप भृगुपुत्र शुनकसे पूछिये ।' मुने ! जब राजाने शुनकसे जाकर पूछा तो उन्होंने भी कहा—'इस समय भूमण्डलमें इस बातको केवल वह तुम्हारा शत्रु खाण्डिक्य ही जानता है ।' यह सुनकर केशिध्वजने कहा—'मुनिश्रेष्ठ ! मैं अपने शत्रु खाण्डिक्यसे ही यह बात पूछने जाता हूँ ।'

ऐसा कह राजा केशिध्वज, कृष्ण मृगचर्म धारणकर रथपर आरूढ हो वनमें, जहाँ महामति खाण्डिक्य रहते थे, आये । खाण्डिक्यने अपने शत्रुको आते देखकर धनुष चढा लिया और क्रोधसे नेत्र लाल करके कहा ।

खाण्डिक्य बोले—अरे ! क्या तू कृष्णाजिनरूप कवच बाँधकर हमलोगोंको मारेगा ? क्या तू यह समझता है कि कृष्ण मृगचर्म धारण किये हुए मुझपर यह प्रहार नहीं करेगा ? किंतु तू मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकता; क्योंकि तू मेरा राज्य छीननेवाला शत्रु है ।

केशिध्वजने कहा—खाण्डिक्य ! मैं आपसे एक संदेह पूछनेके लिये आया हूँ, आपको मारनेके लिये नहीं आया ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—यह सुनकर महामति खाण्डिक्यने अपने सम्पूर्ण पुरोहित और मन्त्रियोंसे एकान्तमें सलाह की । मन्त्रियोंने कहा कि 'इस समय शत्रु आपके वशमें है, इसे मार डालना चाहिये । इसको मार देनेपर यह सम्पूर्ण पृथिवी आपके अधीन हो जायगी ।' खाण्डिक्यने कहा—'इसके मारे जानेपर अवश्य सम्पूर्ण पृथिवी मेरे अधीन हो जायगी; किंतु इसे पारलौकिक जय प्राप्त होगी और मुझे सम्पूर्ण पृथिवी । परंतु यदि इसे नहीं मारूँगा तो मुझे पारलौकिक जय प्राप्त होगी और इसे सारी पृथिवी । मैं पारलौकिक जयसे पृथिवीको अधिक नहीं मानता; क्योंकि परलोक-जय अनन्तकालके लिये होती है और पृथिवी तो थोड़े ही दिन रहती है । । इसलिये मैं इसे मारूँगा नहीं, यह जो कुछ पूछेगा, बतला दूँगा ।'

तब खाण्डिक्य जनकने अपने शत्रु केशिध्वजके पास आकर कहा—'तुम्हें जो कुछ पूछना हो, पूछ लो; मैं उसका उत्तर दूँगा ।'

द्विज ! तब केशिध्वजने जिस प्रकार धर्मधेनु मारी गयी थी, वह सब वृत्तान्त खाण्डिक्यसे कहा और उसके लिये प्रायश्चित्त पूछा । खाण्डिक्यने भी वह सम्पूर्ण प्रायश्चित्त, जिसका कि उसके लिये विधान था, केशिध्वजको विधिपूर्वक बतला दिया । तदनन्तर महात्मा खाण्डिक्यकी आज्ञा लेकर वे यज्ञभूमिमें आये और क्रमशः उन्होंने सम्पूर्ण कर्म समाप्त किया ।

फिर कालक्रमसे यज्ञ समाप्त होनेपर अवभृथ (यज्ञान्त) स्नानके अनन्तर कृतकृत्य होकर राजा केशिध्वजने सोचा । 'मैंने सम्पूर्ण ऋत्विज् ब्राह्मणोंका पूजन किया, समस्त सदस्योंका मान किया, याचकोंको उनकी इच्छित वस्तुएँ दीं, लोकाचारके अनुसार जो कुछ कर्तव्य था, वह सभी मैंने किया तथापि न जाने, क्यों मेरे चित्तमें किसी क्रियाका अभाव खटक रहा है ?' इस प्रकार सोचते-सोचते राजाको स्मरण हुआ कि 'मैंने अभीतक खाण्डिक्यको गुरु-दक्षिणा नहीं दी ।' मैत्रेय ! तब वे रथपर

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! जिसे जान लेनेपर मैं अखिलाधार परमेश्वरको देख सकूँगा, उस योगको जानना चाहता हूँ; उसका वर्णन कीजिये ।

श्रीपराशरजीने कहा—पूर्वकालमें जिस प्रकार इस योगका केशिध्वजने महात्मा खाण्डिक्य जनकसे वर्णन किया था, मैं तुम्हें वही बतलाता हूँ ।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—ब्रह्मन् ! ये खाण्डिक्य और विद्वान् केशिध्वज कौन थे और उनका योगसम्बन्धी संवाद किस प्रकार हुआ था ?

श्रीपराशरजीने कहा—पूर्वकालमें धर्मध्वज जनक नामक एक राजा थे । उनके अमितध्वज और कृतध्वज नामक दो पुत्र हुए । इनमें कृतध्वज सर्वदा अध्यात्मशास्त्रमें रत रहता था । कृतध्वजका पुत्र केशिध्वज नामसे विख्यात हुआ और अमितध्वजका पुत्र खाण्डिक्य जनक हुआ । पृथिवीमण्डलमें खाण्डिक्य कर्म-मार्गमें अत्यन्त निपुण था और केशिध्वज अध्यात्मविद्याका विशेषज्ञ था । वे दोनों परस्पर एक-दूसरेको पराजित करनेकी चेष्टामें लगे रहते थे । अन्तमें, कालक्रमसे केशिध्वजने खाण्डिक्यको राज्यच्युत कर दिया । राज्यभ्रष्ट होनेपर खाण्डिक्य पुरोहित और मन्त्रियोंके सहित थोड़ी-सी सामग्री लेकर दुर्गम वनोंमें चला गया । केशिध्वज ज्ञानयोगका आश्रय लेनेवाला था तो भी कर्मद्वारा मृत्युको पार करनेके लिये ज्ञान-दृष्टि रखते हुए अर्थात् निष्कामभावसे उसने अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया ।

योगिश्रेष्ठ ! एक दिन जब राजा केशिध्वज यज्ञानुष्ठानमें स्थित थे, उनकी धर्मधेनु (हविके लिये दूध देनेवाली गौ) को निर्जन वनमें एक भयंकर सिंहने मार डाला । व्याघ्रद्वारा गौको मारी गयी सुन राजाने ऋत्विजोंसे पूछा कि 'इसमें क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये ?' ऋत्विजोंने कहा—'हम इस विषयमें नहीं जानते; आप कशेरुसे पूछिये ।' जब राजाने कशेरुसे यह बात पूछी तो उन्होंने भी उसी प्रकार कहा कि 'राजेन्द्र ! मैं इस विषयमें नहीं जानता । आप भृगुपुत्र शुनकसे पूछिये ।' मुने ! जब राजाने शुनकसे जाकर पूछा तो उन्होंने भी कहा—'इस समय भूमण्डलमें इस बातको केवल वह तुम्हारा शत्रु खाण्डिक्य ही जानता है ।' यह सुनकर केशिध्वजने कहा—'मुनिश्रेष्ठ ! मैं अपने शत्रु खाण्डिक्यसे ही यह बात पूछने जाता हूँ ।'

ऐसा कह राजा केशिध्वज, कृष्ण मृगचर्म धारणकर रथपर आरूढ हो वनमें, जहाँ महामति खाण्डिक्य रहते थे, आये । खाण्डिक्यने अपने शत्रुको आते देखकर धनुष चढा लिया और क्रोधसे नेत्र लाल करके कहा ।

खाण्डिक्य बोले—अरे ! क्या तू कृष्णाजिनरूप कवच बाँधकर हमलोगोंको मारेगा ? क्या तू यह समझता है कि कृष्ण मृगचर्म धारण किये हुए मुझपर यह प्रहार नहीं करेगा ? किंतु तू मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकता; क्योंकि तू मेरा राज्य छीननेवाला शत्रु है ।

केशिध्वजने कहा—खाण्डिक्य ! मैं आपसे एक संदेह पूछनेके लिये आया हूँ, आपको मारनेके लिये नहीं आया ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—यह सुनकर महामति खाण्डिक्यने अपने सम्पूर्ण पुरोहित और मन्त्रियोंसे एकान्तमें सलाह की । मन्त्रियोंने कहा कि 'इस समय शत्रु आपके वशमें है, इसे मार डालना चाहिये । इसको मार देनेपर यह सम्पूर्ण पृथिवी आपके अधीन हो जायगी ।' खाण्डिक्यने कहा—'इसके मारे जानेपर अवश्य सम्पूर्ण पृथिवी मेरे अधीन हो जायगी; किंतु इसे पारलौकिक जय प्राप्त होगी और मुझे सम्पूर्ण पृथिवी । परंतु यदि इसे नहीं मारूँगा तो मुझे पारलौकिक जय प्राप्त होगी और इसे सारी पृथिवी । मैं पारलौकिक जयसे पृथिवीको अधिक नहीं मानता; क्योंकि परलोक-जय अनन्तकालके लिये होती है और पृथिवी तो थोड़े ही दिन रहती है । । इसलिये मैं इसे मारूँगा नहीं, यह जो कुछ पूछेगा, बतला दूँगा ।'

तब खाण्डिक्य जनकने अपने शत्रु केशिध्वजके पास आकर कहा—'तुम्हें जो कुछ पूछना हो, पूछ लो; मैं उसका उत्तर दूँगा ।'

द्विज ! तब केशिध्वजने जिस प्रकार धर्मधेनु मारी गयी थी, वह सब वृत्तान्त खाण्डिक्यसे कहा और उसके लिये प्रायश्चित्त पूछा । खाण्डिक्यने भी वह सम्पूर्ण प्रायश्चित्त, जिसका कि उसके लिये विधान था, केशिध्वजको विधिपूर्वक बतला दिया । तदनन्तर महात्मा खाण्डिक्यकी आज्ञा लेकर वे यज्ञभूमिमें आये और क्रमशः उन्होंने सम्पूर्ण कर्म समाप्त किया ।

फिर कालक्रमसे यज्ञ समाप्त होनेपर अवभृथ (यज्ञान्त) स्नानके अनन्तर कृतकृत्य होकर राजा केशिध्वजने सोचा । 'मैंने सम्पूर्ण ऋत्विज् ब्राह्मणोंका पूजन किया, समस्त सदस्योंका मान किया, याचकोंको उनकी इच्छित वस्तुएँ दीं, लोकाचारके अनुसार जो कुछ कर्तव्य था, वह सभी मैंने किया तथापि न जाने, क्यों मेरे चित्तमें किसी क्रियाका अभाव खटक रहा है ?' इस प्रकार सोचते-सोचते राजाको स्मरण हुआ कि 'मैंने अभीतक खाण्डिक्यको गुरु-दक्षिणा नहीं दी ।' मैत्रेय ! तब वे रथपर

है । इस प्रकार मैंने तुम्हें यह अविद्याका बीज बतलाया; इस अविद्यासे प्राप्त हुए क्लेशोंको नष्ट करनेवाला योगसे अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ।

खाण्डिक्य बोले--योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग केशिध्वज ! तुम निमिवंशमें योगशास्त्रके मर्मज्ञ हो, अतः उस योगका वर्णन करो ।

केशिध्वजने कहा--खाण्डिक्य ! जिसमें स्थित होकर ब्रह्ममें लीन हुए मुनिजन फिर स्वरूपसे च्युत नहीं होते, मैं उस योगका वर्णन करता हूँ; श्रवण करो ।

मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण केवल मन ही है । विषयका सङ्ग करनेसे वह बन्धनकारी और विषयशून्य होनेसे मोक्षकारक होता है; अतः विवेकज्ञानसम्पन्न मुनि अपने चित्तको विषयोंसे हटाकर मोक्षप्राप्तिके लिये ब्रह्मस्वरूप परमात्माका चिन्तन करे* । जिस प्रकार अयस्कान्तमणि (लोहचुम्बक) अपनी शक्तिसे लोहेको खींचकर अपनेमें संयुक्त कर लेता है, उसी प्रकार ब्रह्मचिन्तन करनेवाले मुनिको परमात्मा स्वभावसे ही अपने स्वरूपमें लीन कर देता है । अपने प्रयत्नकी अपेक्षा रखनेवाली जो मनकी विशिष्ट गति है, उसका ब्रह्मके साथ संयोग होना ही 'योग' कहलाता है, जिसका योग इस प्रकारके विशिष्ट धर्मसे युक्त होता है, वह मुमुक्षु योगी कहा जाता है । जब मुमुक्षु पहले-पहल योगाभ्यास आरम्भ करता है तो उसे 'योगयुक्त योगी' कहते हैं और जब उसे परब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है तो वह 'विनिष्पन्नसमाधि' कहलाता है । यदि किसी विघ्नवश उस योगयुक्त योगीका चित्त दूषित हो जाता है, तो जन्मान्तरमें भी उसी पूर्वके अभ्यासको करते रहनेसे वह मुक्त हो जाता है । विनिष्पन्नसमाधि योगी तो योगाग्निसे कर्मसमूहके भस्म हो जानेके कारण उसी जन्ममें तत्काल मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

योगीको चाहिये कि अपने चित्तको ब्रह्म-चिन्तनके योग्य बनाता हुआ ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रहका निष्कामभावसे सेवन करे । संयत-चित्त हुआ स्वाध्याय, शौच, संतोष और तपका आचरण करे तथा मनको निरन्तर परब्रह्ममें लगाता रहे । ये पाँच-पाँच यम और नियम बतलाये गये हैं । इनका सकाम आचरण करनेपर पृथक्-पृथक् फल मिलते हैं और निष्कामभावसे सेवन करनेपर मोक्ष प्राप्त होता है *।

यतिको चाहिये कि भद्रासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन, सिद्धासन आदि आसनोंमेंसे किसी एकका अवलम्बन कर यम-नियमादि गुणोंसे युक्त हो योगाभ्यास करे । अभ्यासके द्वारा जो प्राणवायुको वशमें किया जाता है, उसे 'प्राणायाम' समझना चाहिये । वह सबीज (सगुण-साकारके आलम्बनपूर्वक) और निर्बीज (निर्गुण-निराकारके आलम्बनपूर्वक) भेदसे दो प्रकारका है । सत्-शास्त्र और सत्पुरुषोंद्वारा बतलायी हुई विधिके अनुसार जब योगी प्राण और अपान वायुका एक दूसरेके द्वारा निरोध करता है तब क्रमशः रेचक और पूरक नामक दो प्राणायाम होते हैं और इन दोनोंका एक ही समय संयम करनेसे कुम्भक नामक तीसरा प्राणायाम होता है । द्विजोत्तम ! जब योगी सबीज प्राणायामका अभ्यास आरम्भ करता है तो उसका आलम्बन भगवान् अनन्त आदि सगुण-साकार रूप होता है । तदनन्तर वह प्रत्याहारका अभ्यास करते हुए शब्दादि विषयोंमें अनुरक्त हुई अपनी इन्द्रियोंको रोककर अपने चित्तकी अनुगामिनी बनाता है । ऐसा करनेसे अत्यन्त चञ्चल इन्द्रियाँ उसके वशीभूत हो जाती हैं । इन्द्रियोंको वशमें किये बिना कोई योगी योग-साधन नहीं कर सकता । इस प्रकार प्राणायामसे वायु और प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको वशीभूत करके चित्तको शुभ आश्रयमें स्थित करे ।

खाण्डिक्य बोले--महाभाग ! यह बतलाइये कि जिसका आश्रय करनेसे चित्तके सम्पूर्ण दोष नष्ट हो जाते हैं, वह चित्तका शुभाश्रय क्या है ?

केशिध्वजने कहा--राजन् ! चित्तका आश्रय ब्रह्म है, जो कि साकार और निराकार तथा सगुण और निर्गुण रूपसे स्वभावसे ही दो प्रकारका है ।

---

* मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो ।
बन्धाय विषयासङ्गि मुक्त्यै निर्विषयं मन ॥
विषयेभ्यः समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुनि. ।
चिन्तयेन्मुक्तये तेन ब्रह्मभूतं परेश्वरम् ॥
(वि० पु० ६ । ७ । २८-२९)

* ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यास्तेयापरिग्रहान् ।
सेवेत योगी निष्कामो योग्यतां स्वमनो नयन् ॥
स्वाध्यायशौचसंतोषतपांसि नियतात्मवान् ।
कुर्वीत ब्रह्मणि तथा परस्मिन् प्रवणं मनः ॥
एते यमाः सनियमाः पञ्च पञ्च च कीर्तिता. ।
विशिष्टफलदा. काम्या निष्कामाणां विमुक्तिदाः ॥
(वि० पु० ६ । ७ ।३६-३८)

है। इस प्रकार मैंने तुम्हें यह अविद्याका बीज बतलाया; इस अविद्यासे प्राप्त हुए क्लेशोंको नष्ट करनेवाला योगसे अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

खाण्डिक्य बोले--योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग केशिध्वज! तुम निमिवंशमें योगशास्त्रके मर्मज्ञ हो, अतः उस योगका वर्णन करो।

केशिध्वजने कहा--खाण्डिक्य! जिसमें स्थित होकर ब्रह्ममें लीन हुए मुनिजन फिर स्वरूपसे च्युत नहीं होते, मैं उस योगका वर्णन करता हूँ; श्रवण करो।

मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण केवल मन ही है। विषयका सङ्ग करनेसे वह बन्धनकारी और विषयशून्य होनेसे मोक्षकारक होता है; अतः विवेकज्ञानसम्पन्न मुनि अपने चित्तको विषयोंसे हटाकर मोक्षप्राप्तिके लिये ब्रह्मस्वरूप परमात्माका चिन्तन करे*। जिस प्रकार अयस्कान्तमणि (लोहचुम्बक) अपनी शक्तिसे लोहेको खींचकर अपनेमें संयुक्त कर लेता है, उसी प्रकार ब्रह्मचिन्तन करनेवाले मुनिको परमात्मा स्वभावसे ही अपने स्वरूपमें लीन कर देता है। अपने प्रयत्नकी अपेक्षा रखनेवाली जो मनकी विशिष्ट गति है, उसका ब्रह्मके साथ संयोग होना ही 'योग' कहलाता है, जिसका योग इस प्रकारके विशिष्ट धर्मसे युक्त होता है, वह मुमुक्षु योगी कहा जाता है। जब मुमुक्षु पहले-पहल योगाभ्यास आरम्भ करता है तो उसे 'योगयुक्त योगी' कहते हैं और जब उसे परब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है तो वह 'विनिष्पन्नसमाधि' कहलाता है। यदि किसी विघ्नवश उस योगयुक्त योगीका चित्त दूषित हो जाता है, तो जन्मान्तरमें भी उसी पूर्वके अभ्यासको करते रहनेसे वह मुक्त हो जाता है। विनिष्पन्नसमाधि योगी तो योगाग्निसे कर्मसमूहके भस्म हो जानेके कारण उसी जन्ममें तत्काल मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

योगीको चाहिये कि अपने चित्तको ब्रह्म-चिन्तनके योग्य बनाता हुआ ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रहका निष्कामभावसे सेवन करे। संयत-चित्त हुआ स्वाध्याय, शौच, संतोष और तपका आचरण करे तथा मनको निरन्तर परब्रह्ममें लगाता रहे। ये पाँच-पाँच यम और नियम बतलाये गये हैं। इनका सकाम आचरण करनेपर पृथक्-पृथक् फल मिलते हैं और निष्कामभावसे सेवन करनेपर मोक्ष प्राप्त होता है*।

यतिको चाहिये कि भद्रासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन, सिद्धासन आदि आसनोंमेंसे किसी एकका अवलम्बन कर यम-नियमादि गुणोंसे युक्त हो योगाभ्यास करे। अभ्यासके द्वारा जो प्राणवायुको वशमें किया जाता है, उसे 'प्राणायाम' समझना चाहिये। वह सबीज (सगुण-साकारके आलम्बनपूर्वक) और निर्बीज (निर्गुण-निराकारके आलम्बनपूर्वक) भेदसे दो प्रकारका है। सत्-शास्त्र और सत्पुरुषोंद्वारा बतलायी हुई विधिके अनुसार जब योगी प्राण और अपान वायुका एक दूसरेके द्वारा निरोध करता है तब क्रमशः रेचक और पूरक नामक दो प्राणायाम होते हैं और इन दोनोंका एक ही समय संयम करनेसे कुम्भक नामक तीसरा प्राणायाम होता है। द्विजोत्तम! जब योगी सबीज प्राणायामका अभ्यास आरम्भ करता है तो उसका आलम्बन भगवान् अनन्त आदि सगुण-साकार रूप होता है। तदनन्तर वह प्रत्याहारका अभ्यास करते हुए शब्दादि विषयोंमें अनुरक्त हुई अपनी इन्द्रियोंको रोककर अपने चित्तकी अनुगामिनी बनाता है। ऐसा करनेसे अत्यन्त चञ्चल इन्द्रियाँ उसके वशीभूत हो जाती हैं। इन्द्रियोंको वशमें किये बिना कोई योगी योग-साधन नहीं कर सकता। इस प्रकार प्राणायामसे वायु और प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको वशीभूत करके चित्तको शुभ आश्रयमें स्थित करे।

खाण्डिक्य बोले--महाभाग! यह बतलाइये कि जिसका आश्रय करनेसे चित्तके सम्पूर्ण दोष नष्ट हो जाते हैं, वह चित्तका शुभाश्रय क्या है?

केशिध्वजने कहा--राजन्! चित्तका आश्रय ब्रह्म है, जो कि साकार और निराकार तथा सगुण और निर्गुण रूपसे स्वभावसे ही दो प्रकारका है।

---

* मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासङ्गि मुक्त्यै निर्विषयं मनः॥
विषयेभ्यः समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुनिः।
चिन्तयेन्मुक्तये तेन ब्रह्मभूतं परेश्वरम्॥
(वि० पु० ६। ७। २८-२९)

* ब्रह्मचर्यमहिंसां च सत्यास्तेयापरिग्रहान्।
सेवेत योगी निष्कामो योग्यतां स्वमनो नयन्॥
स्वाध्यायशौचसंतोषतपांसि नियतात्मवान्।
कुर्वीत ब्रह्मणि तथा परस्मिन् प्रवणं मनः॥
एते यमाः सनियमाः पञ्च पञ्च च कीर्तिताः।
विशिष्टफलदाः काम्या निष्कामाणां विमुक्तिदाः॥
(वि० पु० ६। ७। ३६-३८)

खड्ग, चक्र तथा अक्षमालासे युक्त वरद और अभययुक्त हाथों-वाले* तथा अँगुलियोंमें धारण की हुई रत्नमयी मुद्रिकासे शोभायमान भगवान्‌के दिव्य रूपका योगीको अपना चित्त एकाग्र करके तन्मयभावसे तबतक चिन्तन करना चाहिये, जबतक यह धारणा दृढ़ न हो जाय। जब चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा स्वेच्छानुकूल कोई और कर्म करते हुए भी ध्येय-मूर्ति अपने चित्तसे दूर न हो तो इसे सिद्ध हुई माननी चाहिये †।

इसके दृढ़ होनेपर बुद्धिमान् व्यक्ति शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग आदिसे रहित भगवान्‌के स्फटिकाक्षमाला और यज्ञोपवीतधारी शान्त स्वरूपका चिन्तन करे। जब यह धारणा भी पूर्ववत् स्थिर हो जाय तो भगवान्‌के किरीट, केयूरादि आभूपणोंसे रहित रूपका स्मरण करे। तदनन्तर विज्ञ पुरुष अपने चित्तमें एक (प्रधान) अवयवविशिष्ट भगवान्‌का हृदयसे चिन्तन करे और फिर सम्पूर्ण अवयवोंको छोड़कर केवल अवयवीका ध्यान करे।

राजन्! जिसमें परमेश्वरके रूपकी ही प्रतीति होती है, ऐसी जो विपयान्तरकी स्पृहासे रहित एक अनवरत धारा है, उसे ही ध्यान कहते हैं; यह अपनेसे पूर्व यम-नियमादि छः अङ्गोंसे निष्पन्न होता है। उस ध्येय पदार्थका ही जो मनके द्वारा ध्यानसे सिद्ध होनेयोग्य कल्पनाहीन (शब्द, अर्थ और ज्ञानके संकल्पसे रहित) स्वरूप ग्रहण किया जाता है, उसे ही समाधि कहते हैं। राजन्! उस निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न हुआ विज्ञान प्राप्तव्य परब्रह्मतक पहुँचानेवाला है तथा सम्पूर्ण भावनाओंसे रहित एकमात्र परमात्मा ही प्रापणीय है। मुक्ति-लाभमें क्षेत्रज्ञ कर्ता है और ज्ञान करण है; ज्ञानरूपी करणके द्वारा क्षेत्रज्ञके मुक्तिरूपी कार्यको सिद्ध करके वह विज्ञान कृत-कृत्य होकर निवृत्त हो जाता है। उस समय वह क्षेत्रज्ञ ब्रह्म-भावसे भावित होकर परमात्मासे अभिन्न हो जाता है। भेद-ज्ञान वास्तवमें अज्ञान-जनित ही है, इसलिये भेद उत्पन्न करनेवाले अज्ञानके सर्वथा नष्ट हो जानेपर ब्रह्म और आत्मामें मिथ्या भेद कौन कर सकता है ? खाण्डिक्य! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैंने संक्षेप और विस्तारसे भी योगका वर्णन किया है।

खाण्डिक्य बोले—राजन्! आपके उपदेशसे मेरे चित्तका सम्पूर्ण मल नष्ट हो गया है। मैंने जो 'मेरा' कहा, यह भी असत्य ही है, अन्यथा ज्ञेय वस्तुको जाननेवाले तो यह भी नहीं कह सकते। 'मैं' और 'मेरा' ऐसी बुद्धि और इनका व्यवहार भी अविद्या ही है, वास्तवमें परमार्थ तो कहने-सुननेकी बात नहीं है; क्योंकि वह वाणीका अविषय है। केशिध्वज! आपने इस मुक्तिप्रद योगका वर्णन करके मेरे कल्याणके लिये सब कुछ कर दिया, अब आप सुखपूर्वक पधारिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ब्रह्मन्! तदनन्तर खाण्डिक्य-द्वारा यथोचित रूपसे पूजित हो राजा केशिध्वज अपने नगरमें चले आये तथा खाण्डिक्य भी श्रीगोविन्दमें चित्त लगाकर योग सिद्ध करनेके लिये घोर वनको चले गये। वहाँ यमादि गुणोंसे युक्त होकर एकाग्रचित्तसे ध्यान करते हुए राजा खाण्डिक्य विष्णुरूप निर्मल ब्रह्ममें लीन हो गये, किंतु केशिध्वजने फलकी इच्छा न करके अनेकों शुभ कर्म किये। तथा उससे पाप और मलका क्षय हो जानेपर तापत्रयको दूर करनेवाली आत्यन्तिक सिद्धि प्राप्त कर ली।

---

* चतुर्भुज मूर्तिके ध्यानमें चारों हाथमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी भावना करे तथा अष्टभुजरूपका ध्यान करते समय छः हाथोंमें तो शार्ङ्ग आदि छः आयुधोंकी भावना करे तथा शेष दो हाथोंमें वरद और अभय-मुद्राका चिन्तन करे।

† प्रसन्नवदनं चारुपद्मपत्रोपमेक्षणम्। सुकपोलं सुविस्तीर्णललाटफलकोज्ज्वलम्॥
समकर्णान्तविन्यस्तचारुकुण्डलभूषणम्। कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णश्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥
वलित्रिभङ्गिना मग्ननाभिना ह्युदरेण च। प्रलम्बाष्टभुजं विष्णुमथवापि चतुर्भुजम्॥
समस्थितोरुजङ्घं च सुस्थिताङ्घ्रिवराम्बुजम्। चिन्तयेद्ब्रह्मभूतं तं पीतनिर्मलवाससम्॥
किरीटहारकेयूरकटकादिविभूषितम्॥
शार्ङ्गशङ्खगदाखड्गचक्राक्षवलयान्वितम्। वरदाभयहस्तं च मुद्रिकारत्नभूषितम्॥
चिन्तयेत्तन्मयो योगी समाधायात्ममानसम्। तावद्यावद् दृढीभूता तत्रैव नृप धारणा॥
व्रजतस्तिष्ठतोऽन्यद् वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः। नापयाति यदा चित्तात् सिद्धां मन्येत तां तदा॥
(वि० पु० ६। ७। ८०-८७)

खड्ग, चक्र तथा अक्षमालासे युक्त वरद और अभययुक्त हाथोंवाले* तथा अँगुलियोंमें धारण की हुई रत्नमयी मुद्रिकासे शोभायमान भगवान्‌के दिव्य रूपका योगीको अपना चित्त एकाग्र करके तन्मयभावसे तबतक चिन्तन करना चाहिये, जबतक यह धारणा दृढ़ न हो जाय। जब चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा स्वेच्छानुकूल कोई और कर्म करते हुए भी ध्येय-मूर्ति अपने चित्तसे दूर न हो तो इसे सिद्ध हुई माननी चाहिये †।

इसके दृढ़ होनेपर बुद्धिमान् व्यक्ति शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग आदिसे रहित भगवान्‌के स्फटिकाक्षमाला और यज्ञोपवीतधारी शान्त स्वरूपका चिन्तन करे। जब यह धारणा भी पूर्ववत् स्थिर हो जाय तो भगवान्‌के किरीट, केयूरादि आभूषणोंसे रहित रूपका स्मरण करे। तदनन्तर विज्ञ पुरुष अपने चित्तमें एक (प्रधान) अवयवविशिष्ट भगवान्‌का हृदयसे चिन्तन करे और फिर सम्पूर्ण अवयवोंको छोड़कर केवल अवयवीका ध्यान करे।

राजन्! जिसमें परमेश्वरके रूपकी ही प्रतीति होती है, ऐसी जो विषयान्तरकी स्पृहासे रहित एक अनवरत धारा है, उसे ही ध्यान कहते हैं; यह अपनेसे पूर्व यम-नियमादि छः अङ्गोंसे निष्पन्न होता है। उस ध्येय पदार्थका ही जो मनके द्वारा ध्यानसे सिद्ध होनेयोग्य कल्पनाहीन (शब्द, अर्थ और ज्ञानके संकल्पसे रहित) स्वरूप ग्रहण किया जाता है, उसे ही समाधि कहते हैं। राजन्! उस निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न हुआ विज्ञान प्राप्तव्य परब्रह्मतक पहुँचानेवाला है तथा सम्पूर्ण भावनाओंसे रहित एकमात्र परमात्मा ही प्रापणीय है। मुक्ति-लाभमें क्षेत्रज्ञ कर्ता है और ज्ञान करण है; ज्ञानरूपी करणके द्वारा क्षेत्रज्ञके मुक्तिरूपी कार्यको सिद्ध करके वह विज्ञान कृत-कृत्य होकर निवृत्त हो जाता है। उस समय वह क्षेत्रज्ञ ब्रह्म-भावसे भावित होकर परमात्मासे अभिन्न हो जाता है। भेद-ज्ञान वास्तवमें अज्ञान-जनित ही है, इसलिये भेद उत्पन्न करनेवाले अज्ञानके सर्वथा नष्ट हो जानेपर ब्रह्म और आत्मामें मिथ्या भेद कौन कर सकता है? खाण्डिक्य! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैंने संक्षेप और विस्तारसे भी योगका वर्णन किया है।

खाण्डिक्य बोले—राजन्! आपके उपदेशसे मेरे चित्तका सम्पूर्ण मल नष्ट हो गया है। मैंने जो 'मेरा' कहा, यह भी असत्य ही है, अन्यथा ज्ञेय वस्तुको जाननेवाले तो यह भी नहीं कह सकते। 'मैं' और 'मेरा' ऐसी बुद्धि और इनका व्यवहार भी अविद्या ही है, वास्तवमें परमार्थ तो कहने-सुननेकी बात नहीं है; क्योंकि वह वाणीका अविषय है। केशिध्वज! आपने इस मुक्तिप्रद योगका वर्णन करके मेरे कल्याणके लिये सब कुछ कर दिया, अब आप सुखपूर्वक पधारिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ब्रह्मन्! तदनन्तर खाण्डिक्य-द्वारा यथोचित रूपसे पूजित हो राजा केशिध्वज अपने नगरमें चले आये तथा खाण्डिक्य भी श्रीगोविन्दमें चित्त लगाकर योग सिद्ध करनेके लिये घोर वनको चले गये। वहाँ यमादि गुणोंसे युक्त होकर एकाग्रचित्तसे ध्यान करते हुए राजा खाण्डिक्य विष्णुरूप निर्मल ब्रह्ममें लीन हो गये, किंतु केशिध्वजने फलकी इच्छा न करके अनेकों शुभ कर्म किये। तथा उससे पाप और मलका क्षय हो जानेपर तापत्रयको दूर करनेवाली आत्यन्तिक सिद्धि प्राप्त कर ली।

---

* चतुर्भुज मूर्तिके ध्यानमें चारों हाथमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी भावना करे तथा अष्टभुजरूपका ध्यान करते समय छ: हाथोंमें तो शार्ङ्ग आदि छः आयुधोंकी भावना करे तथा शेष दो हाथोंमें वरद और अभय-मुद्राका चिन्तन करे।

† प्रसन्नवदनं चारुपद्मपत्रोपमेक्षणम्। सुकपोलं सुविस्तीर्णललाटफलकोज्ज्वलम्॥
समकर्णान्तविन्यस्तचारुकुण्डलभूषणम्। कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णश्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥
वलित्रिभङ्गिना मग्ननाभिना ह्युदरेण च। प्रलम्बाष्टभुजं विष्णुमथवापि चतुर्भुजम्॥
समस्थितोरुजङ्घं च सुस्थिताङ्घ्रिवराम्बुजम्। चिन्तयेद्ब्रह्मभूतं त पीतनिर्मलवाससम्॥
किरीटहारकेयूरकटकादिविभूषितम्॥
शार्ङ्गशङ्खगदाखड्गचक्राक्षवलयान्वितम्। वरदाभयहस्तं च मुद्रिकारत्नभूषितम्॥
चिन्तयेत्तन्मयो योगी समाधायात्ममानसम्। तावद्यावद् दृढीभूता तत्रैव नृप धारणा॥
व्रजतस्तिष्ठतोऽन्यद् वा स्वेच्छया कर्म कुर्वत.। नापयाति यदा चित्तात् सिद्धां मन्येत तां तदा॥
(वि० पु० ६। ७। ८०—८७)

भागुरिसे कहा। फिर इसे भागुरिने स्तम्भमित्रको, स्तम्भमित्रने दधीचको, दधीचने सारस्वतको और सारस्वतने भृगुको सुनाया तथा भृगुने पुरुकुत्ससे, पुरुकुत्सने नर्मदासे और नर्मदाने धृतराष्ट्र एवं पूरणनागसे कहा। द्विज! इन दोनोंने यह पुराण नागराज वासुकिको सुनाया। वासुकिने वत्सको, वत्सने अश्वतरको, अश्वतरने कम्बलको और कम्बलने एलापुत्रको सुनाया। इसी समय मुनिवर वेदशिरा पाताललोकमें पहुँचे, उन्होंने यह समस्त पुराण प्राप्त किया और फिर प्रमतिको सुनाया और प्रमतिने उसे परम बुद्धिमान् जातुकर्णको दिया तथा जातुकर्णने अन्यान्य पुण्यशील महात्माओंको सुनाया।

पूर्वजन्ममें सारस्वतके मुखसे सुना हुआ यह पुराण पुलस्त्यजीके वरदानसे मुझे भी स्मरण हो आया। सो मैंने ज्यों-का-त्यों तुम्हें सुना दिया। अब तुम भी कलियुगके अन्तमें इसे शिनीकको सुनाओगे।

जो पुरुष इस अति गुह्य और कलिकल्मषनाशक पुराणको भक्तिपूर्वक सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य इसका प्रतिदिन श्रवण करता है, उसने सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया और सभी देवताओंकी स्तुति कर ली। जो पुरुष सम्पूर्ण जगत्के आधार, जीवात्माके लिये एकमात्र शरण लेने योग्य सर्वस्वरूप सर्वमय, ज्ञान और ज्ञेयरूप आदि-अन्तरहित तथा समस्त देवताओंके हितकारक अच्युत भगवान्का चित्तमें ध्यानकर इस सम्पूर्ण पुराणको सुनता है, उसे निःसदेह अश्वमेध-यज्ञका समग्र फल प्राप्त होता है। जिमके आदि, मध्य और अन्तमें अखिल जगत्की सृष्टि, स्थिति तथा सहारमें समर्थ ब्रह्मज्ञानमय चराचर रूप जगत्के गुरु भगवान् अच्युतका ही कीर्तन हुआ है, उस निर्मल और परम शुद्ध पुराणको सुनने, पढ़ने और धारण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सम्पूर्ण त्रिलोकीमें और कहीं प्राप्त नहीं हो सकता; क्योंकि एकान्त मुक्तिरूप सिद्धिको देनेवाले भगवान् विष्णु ही इसके प्राप्तव्य फल हैं। जिनमें चित्त लगानेवाला कभी नरकमें नहीं जा सकता, जिनके स्मरणमें स्वर्ग भी विघ्नरूप है, जिनमें चित्त लग जानेपर ब्रह्मलोक भी अति तुच्छ प्रतीत होता है तथा जो अव्यय प्रभु विशुद्धचित्त पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते हैं, उन्हीं अच्युतका कीर्तन करनेसे यदि पाप विलीन हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यज्ञवेत्ता कर्मनिष्ठलोग यज्ञोंद्वारा जिनका यज्ञेश्वररूपसे यजन करते हैं, ज्ञानीजन जिनका परावरमय ब्रह्मस्वरूपसे ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण करनेसे पुरुष न जन्मता है, न मरता है, न बढ़ता है और न क्षीण ही होता है तथा जो न सत् हैं और न असत् ही हैं अर्थात् सत्-असत् दोनोंसे परे हैं, उन श्रीहरिके कीर्तनके अतिरिक्त और क्या सुना जाय? जो अनादिनिधन भगवान् विभु पितृरूप धारणकर स्वधासंज्ञक कव्यको और देवता होकर अग्निमें विधिपूर्वक हवन किये हुए स्वाहा नामक हव्यको ग्रहण करते हैं तथा जिन समस्त शक्तियोंके आश्रयभूत भगवान्के विषयमें बड़े-बड़े प्रमाणकुशल पुरुषोंके प्रमाण भी इयत्ता करनेमें समर्थ नहीं होते, वे श्रीहरि श्रवण-पथमें जाते ही समस्त पापोंको नष्ट कर देते हैं अर्थात् उनके नाम, रूप, गुण आदिके कीर्तनका श्रवण सब पापोका नाश कर देता है।

जिन परिणामहीन प्रभुका न आदि है, न अन्त है, न वृद्धि है और न क्षय ही होता है, जो नित्य निर्विकार पदार्थ हैं, उन स्तवनीय प्रभु पुरुषोत्तमको मै नमस्कार करता हूँ *। जिन नित्य सनातन परमात्माके अनेक रूप हैं, वे भगवान् हरि समस्त पुरुषोंको जन्म और जरा आदिसे रहित (मुक्तिरूप) सिद्धि प्रदान करें।

॥ षष्ठ अंश समाप्त ॥

॥ श्रीविष्णुमहापुराण सम्पूर्ण ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

* नान्तोऽस्ति यस्य न च यस्य समुद्भवोऽस्ति वृद्धिर्न यस्य परिणामविवर्जितस्य।
नापक्षय च समुपैत्यविकारि वस्तु यस्त नतोऽसि पुरुषोत्तममीशमीड्यम्॥
(वि० पु० ६।८।९५)

भागुरिसे कहा। फिर इसे भागुरिने स्तम्भमित्रको, स्तम्भमित्रने दधीचको, दधीचने सारस्वतको और सारस्वतने भृगुको सुनाया तथा भृगुने पुरुकुत्ससे, पुरुकुत्सने नर्मदासे और नर्मदाने धृतराष्ट्र एवं पूरणनागसे कहा। द्विज! इन दोनोंने यह पुराण नागराज वासुकिको सुनाया। वासुकिने वत्सको, वत्सने अश्वतरको, अश्वतरने कम्बलको और कम्बलने एलापुत्रको सुनाया। इसी समय मुनिवर वेदशिरा पाताललोकमें पहुँचे, उन्होंने यह समस्त पुराण प्राप्त किया और फिर प्रमतिको सुनाया और प्रमतिने उसे परम बुद्धिमान् जातुकर्णको दिया तथा जातुकर्णने अन्यान्य पुण्यशील महात्माओंको सुनाया।

पूर्वजन्ममें सारस्वतके मुखसे सुना हुआ यह पुराण पुलस्त्यजीके वरदानसे मुझे भी स्मरण हो आया। सो मैंने ज्यों-का-त्यों तुम्हें सुना दिया। अब तुम भी कलियुगके अन्तमें इसे शिनीकको सुनाओगे।

जो पुरुष इस अति गुह्य और कलिकल्मषनाशक पुराणको भक्तिपूर्वक सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य इसका प्रतिदिन श्रवण करता है, उसने सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया और सभी देवताओंकी स्तुति कर ली। जो पुरुष सम्पूर्ण जगत्‌के आधार, जीवात्माके लिये एकमात्र शरण लेने योग्य सर्वस्वरूप सर्वमय, ज्ञान और ज्ञेयरूप आदि-अन्तरहित तथा समस्त देवताओंके हितकारक अच्युत भगवान्‌का चित्तमें ध्यानकर इस सम्पूर्ण पुराणको सुनता है, उसे निःसदेह अश्वमेध-यज्ञका समग्र फल प्राप्त होता है। जिमके आदि, मध्य और अन्तमें अखिल जगत्‌की सृष्टि, स्थिति तथा सहारमें समर्थ ब्रह्मज्ञानमय चराचर रूप जगत्‌के गुरु भगवान् अच्युतका ही कीर्तन हुआ है, उस निर्मल और परम शुद्ध पुराणको सुनने, पढ़ने और धारण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सम्पूर्ण त्रिलोकीमें और कहीं प्राप्त नहीं हो सकता; क्योंकि एकान्त मुक्तिरूप सिद्धिको देनेवाले भगवान् विष्णु ही इसके प्राप्तव्य फल हैं। जिनमें चित्त लगानेवाला कभी नरकमें नहीं जा सकता, जिनके स्मरणमें स्वर्ग भी विघ्नरूप है, जिनमें चित्त लग जानेपर ब्रह्मलोक भी अति तुच्छ प्रतीत होता है तथा जो अव्यय प्रभु विशुद्धचित्त पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते हैं, उन्हीं अच्युत-का कीर्तन करनेसे यदि पाप विलीन हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यज्ञवेत्ता कर्मनिष्ठलोग यज्ञोंद्वारा जिनका यज्ञेश्वररूपसे यजन करते हैं, ज्ञानीजन जिनका परावरमय ब्रह्मस्वरूपसे ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण करनेसे पुरुष न जन्मता है, न मरता है, न बढ़ता है और न क्षीण ही होता है तथा जो न सत् हैं और न असत् ही हैं अर्थात् सत्-असत् दोनोंसे परे हैं, उन श्रीहरिके कीर्तनके अतिरिक्त और क्या सुना जाय? जो अनादिनिधन भगवान् विभु पितृरूप धारणकर स्वधासंज्ञक कव्यको और देवता होकर अग्निमें विधिपूर्वक हवन किये हुए स्वाहा नामक हव्यको ग्रहण करते हैं तथा जिन समस्त शक्तियोंके आश्रयभूत भगवान्‌के विषयमें बड़े-बड़े प्रमाणकुशल पुरुषोंके प्रमाण भी इयत्ता करनेमें समर्थ नहीं होते, वे श्रीहरि श्रवण-पथमें जाते ही समस्त पापोंको नष्ट कर देते हैं अर्थात् उनके नाम, रूप, गुण आदिके कीर्तनका श्रवण सब पापोका नाश कर देता है।

जिन परिणामहीन प्रभुका न आदि है, न अन्त है, न वृद्धि है और न क्षय ही होता है, जो नित्य निर्विकार पदार्थ हैं, उन स्तवनीय प्रभु पुरुषोत्तमको मै नमस्कार करता हूँ *। जिन नित्य सनातन परमात्माके अनेक रूप हैं, वे भगवान् हरि समस्त पुरुषोंको जन्म और जरा आदिसे रहित (मुक्तिरूप) सिद्धि प्रदान करें।

॥ षष्ठ अंश समाप्त ॥

॥ श्रीविष्णुमहापुराण सम्पूर्ण ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

* नान्तोऽस्ति यस्य न च यस्य समुद्भवोऽस्ति वृद्धिर्न यस्य परिणामविवर्जितस्य।
नापक्षय च समुपैत्यविकारि वस्तु यस्त नतोऽस्मि पुरुषोत्तममीशमीड्यम्॥
(वि० पु० ६।८।९५)

क्षमा-प्रार्थना

भारतीय संस्कृतसाहित्य-सागर अनन्त रत्नराशिसे पूर्ण है। उन रत्नोंमें पुराणका स्थान अत्यन्त महत्त्वका है। पुराण अध्यात्मशास्त्र है, पुराण दर्शनशास्त्र है, पुराण धर्मशास्त्र है, पुराण नीतिशास्त्र है, पुराण तन्त्रमन्त्र-शास्त्र है, पुराण कलाशास्त्र है, पुराण इतिहास है, पुराण जीवनी-कोष है, पुराण सनातन आर्यसंस्कृतिका स्वरूप है और पुराण वेदकी सरस और सरलतम व्याख्या है। पुराणमें तीर्थरहस्य और तीर्थमाहात्म्य है, पुराणमें तीर्थोंका इतिहास और उनकी विस्तृत सूची है, पुराणमें परलोक-विज्ञान, प्रेत-विज्ञान, जन्मान्तर और लोकान्तर-रहस्य, कर्म-रहस्य तथा कर्मफलनिरूपण, नक्षत्रविज्ञान, रत्नविज्ञान, प्राणिविज्ञान, आयुर्वेद और शकुनशास्त्र आदि इतने महत्त्वपूर्ण और उपादेय विषय हैं कि जिनकी पूरी जानकारीके साथ व्याख्या करना तो बहुत दूरकी बात है, बिना पढ़े पूरी सूची बना पाना भी प्रायः असम्भव है। इतने महत्त्वपूर्ण विषयोंपर इतनी गम्भीर गवेषणा तथा सफल अनुसंधान करके उनका रहस्य सरल भाषामें खोल देना पुराणोंका ही काम है। पुराणोंको आधुनिक मानने और बतलानेवाले विद्वान् केवल बाहरी प्रमाणोंपर ही ध्यान देते हैं। पुराणोंके अंदर प्रवेश करके उन्होंने उनको नहीं देख पाया है और न पुराणोंकी ज्ञान-परम्परापर ही उनका दृष्टिपात हुआ है। यह सत्य है कि पुराणोंमें कहीं-कहीं कुछ न्यूनाधिकता हुई है एवं विदेशी तथा विधर्मियोंके आक्रमण-अत्याचारसे बहुत-से अंश आज उपलब्ध भी नहीं हैं, परंतु इससे पुराणोंकी मूल-महत्ता तथा प्राचीनतामें कोई बाधा नहीं आती।

इन पुराणोंमें नारदमहापुराण और विष्णुपुराण बड़े महत्त्वके सात्त्विक पुराण माने जाते हैं। नारदपुराणमें इतने महत्त्वके विषय हैं कि उनको पढ़-सुनकर चमत्कृत होना पड़ता है। यद्यपि इसकी श्लोकसंख्या भी कुछ न्यून ही मिलती है। इसीसे विद्वानोंने इसे 'सम्भाव्य पूर्णपुराण' कहा है। विष्णुपुराण भी पूर्ण तेईस हजार श्लोकोंका बताया गया है। वर्तमान उपलब्ध विष्णुपुराण मूलमहापुराणका पूर्वभाग है, जो वर्णनके अनुसार ही प्राप्त है। 'विष्णुधर्मोत्तर-पुराण' को विष्णुपुराणका उत्तरभाग बताया गया है और हमारे विश्वासके अनुसार है भी यही बात। परतु इन दोनोंकी श्लोकसंख्या मिलाकर भी सोलह हजार ही होती है, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'विष्णुधर्मोत्तर'का भी बहुत-सा अंश उपलब्ध नहीं है अथवा श्लोक-गणनाकी शैली कोई दूसरी होगी। किन्हीं महानुभावके पास नारदपुराण, विष्णुपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तर-पुराणकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति हों तो उन्हें भेजकर इस काममें उन्हें हमारी सहायता करनी चाहिये—यह विनीत प्रार्थना है। ऐसी प्रतियाँ मिलनेपर गीताप्रेससे इसके पूर्ण संस्करण प्रकाशित करनेकी चेष्टा हो सकती है।

'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें इन दो महापुराणोंका संक्षिप्त अनुवाद प्रकाशित करनेका कारण एक तो ग्राहकोंकी पुराण-प्रकाशनकी अत्यधिक माँग है और दूसरे इन पुराणोंका महत्त्वपूर्ण कथा-प्रसङ्ग है। नारदपुराणमें पुराणोचित महत्त्वके प्रसङ्ग तो हैं ही, उसमें वेदके छः अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष (गणित, जातक और संहिता) और छन्दका भी बडा विशद, महत्त्वपूर्ण और मौलिक वर्णन है। ज्यौतिषके प्रसङ्गका सम्पादन करनेवाले विद्वानोंमें काशीके ज्यौतिषशास्त्रके प्रसिद्ध परमादरणीय वयोवृद्ध विद्वान्, जिन्होंने पचासों ग्रन्थोंका स्वयं निर्माण तथा सम्पादन, अनुवाद किया है और जिनके कई ग्रन्थ उच्च श्रेणीकी पाठ्य-पुस्तकोंके रूपमें स्वीकृत हैं, मुग्ध होकर लिखते हैं—

"ज्यौतिषशास्त्रके तीन स्कन्ध हैं—(१) जातक—जिसमें अपने-अपने उत्पत्तिकालके आधारपर जीवनके शुभाशुभ फलोंका आदेश है। (२) संहिता—जिसमें ग्रह-नक्षत्रोंके परस्पर योग, उदय, अस्त आदिवश सर्वसाधारणके शुभाशुभ फलोंका निर्देश है तथा (३) सिद्धान्त—जिसमें ग्रहोंके योग-उदय-अस्त आदिका गणितद्वारा ज्ञान होता है। इन तीनों स्कन्धोंके प्रचलित (पठन-पाठनमें निर्धारित) अधिक ग्रन्थ आधुनिक ही हैं। वे सब आर्षग्रन्थोंके आधारपर ही बनाये माने जाते हैं। आधुनिक ग्रन्थोंकी टीकामें वसिष्ठ, कश्यप, नारद, गर्ग, पराशर आदिके वचन-प्रमाणरूपमें मिलते हैं; परंतु पूर्ण प्रायः ग्रन्थ नहीं मिलते और वे वचन भी केवल जातक और संहिताके ग्रन्थोंमें ही हैं। जो कुछ ग्रन्थ उपलब्ध भी हैं, वे लेखकादिके दोषसे शुद्ध नहीं मिलते हैं। सिद्धान्त-ग्रन्थोंमें प्राचीन या आर्ष 'सूर्यसिद्धान्त' माना जाता है, जिसके आधारपर आधुनिक समस्त सिद्धान्त-ग्रन्थोंका निर्माण हुआ है, जिनमें सम्प्रति भास्कराचार्यका

क्षमा-प्रार्थना

भारतीय संस्कृतसाहित्य-सागर अनन्त रत्नराशिसे पूर्ण है। उन रत्नोंमें पुराणका स्थान अत्यन्त महत्त्वका है। पुराण अध्यात्मशास्त्र है, पुराण दर्शनशास्त्र है, पुराण धर्मशास्त्र है, पुराण नीतिशास्त्र है, पुराण तन्त्रमन्त्र-शास्त्र है, पुराण कलाशास्त्र है, पुराण इतिहास है, पुराण जीवनी-कोष है, पुराण सनातन आर्यसंस्कृतिका स्वरूप है और पुराण वेदकी सरस और सरलतम व्याख्या है। पुराणमें तीर्थरहस्य और तीर्थमाहात्म्य है, पुराणमें तीर्थोंका इतिहास और उनकी विस्तृत सूची है, पुराणमें परलोक-विज्ञान, प्रेत-विज्ञान, जन्मान्तर और लोकान्तर-रहस्य, कर्म-रहस्य तथा कर्मफलनिरूपण, नक्षत्रविज्ञान, रत्नविज्ञान, प्राणिविज्ञान, आयुर्वेद और शकुनशास्त्र आदि इतने महत्त्वपूर्ण और उपादेय विषय हैं कि जिनकी पूरी जानकारीके साथ व्याख्या करना तो बहुत दूरकी बात है, बिना पढ़े पूरी सूची बना पाना भी प्रायः असम्भव है। इतने महत्त्वपूर्ण विषयोंपर इतनी गम्भीर गवेषणा तथा सफल अनुसंधान करके उनका रहस्य सरल भाषामें खोल देना पुराणोंका ही काम है। पुराणोंको आधुनिक मानने और बतलानेवाले विद्वान् केवल बाहरी प्रमाणोंपर ही ध्यान देते हैं। पुराणोंके अंदर प्रवेश करके उन्होंने उनको नहीं देख पाया है और न पुराणोंकी ज्ञान-परम्परापर ही उनका दृष्टिपात हुआ है। यह सत्य है कि पुराणोंमें कहीं-कहीं कुछ न्यूनाधिकता हुई है एवं विदेशी तथा विधर्मियोंके आक्रमण-अत्याचारसे बहुत-से अंश आज उपलब्ध भी नहीं हैं, परंतु इससे पुराणोंकी मूल-महत्ता तथा प्राचीनतामें कोई बाधा नहीं आती।

इन पुराणोंमें नारदमहापुराण और विष्णुपुराण बड़े महत्त्वके सात्त्विक पुराण माने जाते हैं। नारदपुराणमें इतने महत्त्वके विषय हैं कि उनको पढ़-सुनकर चमत्कृत होना पड़ता है। यद्यपि इसकी श्लोकसंख्या भी कुछ न्यून ही मिलती है। इसीसे विद्वानोंने इसे 'सम्भाव्य पूर्णपुराण' कहा है। विष्णुपुराण भी पूर्ण तेईस हजार श्लोकोंका बताया गया है। वर्तमान उपलब्ध विष्णुपुराण मूलमहापुराणका पूर्वभाग है, जो वर्णनके अनुसार ही प्राप्त है। 'विष्णुधर्मोत्तर-पुराण' को विष्णुपुराणका उत्तरभाग बताया गया है और हमारे विश्वासके अनुसार है भी यही बात। परतु इन दोनोंकी श्लोकसंख्या मिलाकर भी सोलह हजार ही होती है, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'विष्णुधर्मोत्तर'का भी बहुत-सा अंश उपलब्ध नहीं है अथवा श्लोक-गणनाकी शैली कोई दूसरी होगी। किन्हीं महानुभावके पास नारदपुराण, विष्णुपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तर-पुराणकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति हों तो उन्हें भेजकर इस काममें उन्हें हमारी सहायता करनी चाहिये—यह विनीत प्रार्थना है। ऐसी प्रतियाँ मिलनेपर गीताप्रेससे इसके पूर्ण संस्करण प्रकाशित करनेकी चेष्टा हो सकती है।

'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें इन दो महापुराणोंका संक्षिप्त अनुवाद प्रकाशित करनेका कारण एक तो ग्राहकोंकी पुराण-प्रकाशनकी अत्यधिक माँग है और दूसरे इन पुराणोंका महत्त्वपूर्ण कथा-प्रसङ्ग है। नारदपुराणमें पुराणोचित महत्त्वके प्रसङ्ग तो हैं ही, उसमें वेदके छः अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष (गणित, जातक और संहिता) और छन्दका भी बडा विशद, महत्त्वपूर्ण और मौलिक वर्णन है। ज्यौतिषके प्रसङ्गका सम्पादन करनेवाले विद्वानोंमें काशीके ज्यौतिषशास्त्रके प्रसिद्ध परमादरणीय वयोवृद्ध विद्वान्, जिन्होंने पचासों ग्रन्थोंका स्वयं निर्माण तथा सम्पादन, अनुवाद किया है और जिनके कई ग्रन्थ उच्च श्रेणीकी पाठ्य-पुस्तकोंके रूपमें स्वीकृत हैं, मुग्ध होकर लिखते हैं—

"ज्यौतिषशास्त्रके तीन स्कन्ध हैं—(१) जातक—जिसमें अपने-अपने उत्पत्तिकालके आधारपर जीवनके शुभाशुभ फलोंका आदेश है। (२) संहिता—जिसमें ग्रह-नक्षत्रोंके परस्पर योग, उदय, अस्त आदिवश सर्वसाधारणके शुभाशुभ फलोंका निर्देश है तथा (३) सिद्धान्त—जिसमें ग्रहोंके योग-उदय-अस्त आदिका गणितद्वारा ज्ञान होता है। इन तीनों स्कन्धोंके प्रचलित (पठन-पाठनमें निर्धारित) अधिक ग्रन्थ आधुनिक ही हैं। वे सब आर्षग्रन्थोंके आधारपर ही बनाये माने जाते हैं। आधुनिक ग्रन्थोंकी टीकामें वसिष्ठ, कश्यप, नारद, गर्ग, पराशर आदिके वचन प्रमाणरूपमें मिलते हैं; परंतु पूर्ण प्रायः ग्रन्थ नहीं मिलते और वे वचन भी केवल जातक और संहिताके ग्रन्थोंमें ही हैं। जो कुछ ग्रन्थ उपलब्ध भी हैं, वे लेखकादिके दोषसे शुद्ध नहीं मिलते हैं। सिद्धान्त-ग्रन्थोंमें प्राचीन या आर्ष 'सूर्यसिद्धान्त' माना जाता है, जिसके आधारपर आधुनिक समस्त सिद्धान्त-ग्रन्थोका निर्माण हुआ है, जिनमें सम्प्रति भास्कराचार्यका

३–पुराणोंमें कई जगह एक ही विषयकी पुनरावृत्ति है, उसे देना उचित नहीं है।

४–पुराणोंमें सत्य इतिहास होनेके कारण कई प्रसङ्ग ऐसे भी आते हैं, जिनसे जनताका लाभ न होकर हानिकी सम्भावना है।

५–पुराणोंमें सकाम उपासना आदिमें तामसी उपासनाका भी प्रसङ्ग आता है, जिसका सर्वसाधारणमें प्रचार हानिकर है।

६–पुराणोंके साररूपमें उनमें वर्णित सुन्दर उपदेशप्रद तथा जीवनको उच्च स्तरपर ले जानेवाली कथाओंको पढ़नेसे लोगोंमें पुराणोंकी पठन-पाठनकी रुचि बढ़ेगी और वे पुराणोंसे प्रेम करके उनसे लाभ उठावेंगे। दोष-दृष्टिको बहुत कम अवकाश रहेगा।

७–जब 'संक्षिप्त' शब्द प्रत्येक तीसरे पृष्ठपर आ जाता है, तब यह संदेह तो रह ही नहीं जाता कि पुराणोंका इतना ही पाठ है।

८–संक्षेप अनुवाद छापकर उसका अङ्गच्छेद नहीं किया जाता, वरं साररूप प्रकाशित करके उसकी सेवा तथा प्रसार किया जाता है। प्राचीन कालमें भी ऐसा होता था। चतुःश्लोकी भागवत, सप्तश्लोकी गीता, सप्तश्लोकी चण्डी आदि इसके प्रमाण है।

ऐसे ही अन्यान्य कारण भी है, इन्ही सब कारणोंसे हमलोग पुराणोंका संक्षिप्त अनुवाद निकालते है, पूरे सालभरतक एक ही पुराणको चलाना नहीं चाहते तथा प्रतिवर्ष ही पुराण-साहित्य नहीं निकालते। इसमें हमारा अभिप्राय पुराणोंकी अवज्ञा नहीं, परंतु रुचिकर-रीतिसे पुराणोंका सुन्दर प्रचार ही है। कृपालु पाठकगण हमारे दृष्टिकोणको समझकर हमें क्षमा करेंगे।

इस नारदपुराण और विष्णुपुराणका देनेयोग्य पाठ चुननेका कार्य सदाकी भाँति हमारे श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने किया है और वेदके छः अङ्गोंके पूरे अनुवादके संशोधन करने तथा उदाहरण आदि देनेमें भी उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर बड़ी भारी सहायता की है। नारदपुराणका सारा अनुवाद हमारे प्रेसके आदरणीय विद्वान् पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री महोदयने किया है। विष्णुपुराणके श्रीमुनिलालजी (पूर्वाश्रमका नाम—वर्तमानका नाम स्वामी सनातनदेवजी) द्वारा किये हुए अनुवादका भी यत्र-तत्र संशोधन श्रीशास्त्रीजीने ही किया है। नारदपुराणकी मुद्रित प्रतिमें बहुत अधिक अशुद्धियाँ थीं तथा बहुत-से अध्यायोंके पाठमें केवल साकेतिक अक्षर या शब्दमात्र थे, उनका संशोधन और आविष्कार करनेमें शास्त्रीजीने जो परिश्रम किया, वह उनकी विद्वत्ता तथा बुद्धिमत्ताका द्योतक, सर्वथा सराहनीय और अभिनन्दनीय है। ज्यौतिष-सम्बन्धी तीनों स्कन्धोंके अनुवाद, संशोधन, पाठनिर्णय, व्याख्या, टिप्पणी आदिके कार्यमें हमें काशीनिवासी विद्वान् श्रद्धेय पं० सीतारामजी झा ज्यौतिषाचार्यसे जो अनुपम सहायता प्राप्त हुई है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। इनके सिवा, इसमें पं० श्रीरामनिहोरजी द्विवेदी ज्यौतिषाचार्य (काशी) और प० श्रीसुवंशजी झा ज्यौतिषाचार्य (गोरखपुर) से भी बड़ी सहायता मिली है। इन्हें भी धन्यवाद है। प्रेस-कापी बनानेमें भाई वासुदेव काबराने बडा सहयोग दिया और प्रूफ-संशोधन तथा अन्यान्य सभी कार्योंमें हमारे सभी साथियोंने भी सदाकी भाँति बड़ी सहायता की है। इस सारी सहायताके लिये हम सबके हृदयसे कृतज्ञ हैं।

इतनेपर भी अनुवाद, छपाई, संशोधन आदिमें बहुत-सी भूलें रही हैं, इन भूलोंके लिये हमारा अपना अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है। अतएव उनके लिये हम अपने पाठक-पाठिकाओंसे करबद्ध क्षमा चाहते हैं।

पाठक-पाठिकागण इन पुण्य पुराणोंके सारको पढ़कर लाभ उठावें और लोक-परलोकमें सुख-शान्ति और मानव-जीवनके परम और चरम लक्ष्य भगवान्‌को प्राप्त करें। यही प्रार्थना है। हमारा धर्म है—'अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि' और ये दोनो ही सिद्धियाँ इन पुराणोंमें वर्णित आचारोंके श्रद्धापूर्वक सेवनसे प्राप्त हो सकती हैं। पुनः क्षमा-प्रार्थना।

विशेषाङ्कमें प्रकाशित करनेके लिये कई महानुभावोंने लेख-कविता आदि भेजनेकी कृपा की है। स्थानाभावसे उनको विशेषाङ्कमें नहीं दिया जा सका। उनमेंसे जो लेखादि स्वीकृत होंगे, वे अगले अङ्कोंमें प्रकाशित होंगे। लेखक महानुभाव कृपया क्षमा करें।

विनीत, क्षमाप्रार्थी

पोद्दार
गोस्वामी } सम्पादक

*

३–पुराणोंमें कई जगह एक ही विषयकी पुनरावृत्ति है, उसे देना उचित नहीं है।

४–पुराणोंमें सत्य इतिहास होनेके कारण कई प्रसङ्ग ऐसे भी आते हैं, जिनसे जनताका लाभ न होकर हानिकी सम्भावना है।

५–पुराणोंमें सकाम उपासना आदिमें तामसी उपासनाका भी प्रसङ्ग आता है, जिसका सर्वसाधारणमें प्रचार हानिकर है।

६–पुराणोंके साररूपमें उनमें वर्णित सुन्दर उपदेशप्रद तथा जीवनको उच्च स्तरपर ले जानेवाली कथाओंको पढ़नेसे लोगोंमें पुराणोंकी पठन-पाठनकी रुचि बढ़ेगी और वे पुराणोंसे प्रेम करके उनसे लाभ उठावेंगे। दोष-दृष्टिको बहुत कम अवकाश रहेगा।

७–जब 'संक्षिप्त' शब्द प्रत्येक तीसरे पृष्ठपर आ जाता है, तब यह संदेह तो रह ही नहीं जाता कि पुराणोंका इतना ही पाठ है।

८–संक्षेप अनुवाद छापकर उसका अङ्गच्छेद नहीं किया जाता, वरं साररूप प्रकाशित करके उसकी सेवा तथा प्रसार किया जाता है। प्राचीन कालमें भी ऐसा होता था। चतुःश्लोकी भागवत, सप्तश्लोकी गीता, सप्तश्लोकी चण्डी आदि इसके प्रमाण है।

ऐसे ही अन्यान्य कारण भी है, इन्ही सब कारणोंसे हमलोग पुराणोंका संक्षिप्त अनुवाद निकालते है, पूरे सालभरतक एक ही पुराणको चलाना नहीं चाहते तथा प्रतिवर्ष ही पुराण-साहित्य नहीं निकालते। इसमें हमारा अभिप्राय पुराणोंकी अवज्ञा नहीं, परंतु रुचिकर-रीतिसे पुराणोंका सुन्दर प्रचार ही है। कृपालु पाठकगण हमारे दृष्टिकोणको समझकर हमें क्षमा करेंगे।

इस नारदपुराण और विष्णुपुराणका देनेयोग्य पाठ चुननेका कार्य सदाकी भाँति हमारे श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने किया है और वेदके छः अङ्गोंके पूरे अनुवादके संशोधन करने तथा उदाहरण आदि देनेमें भी उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर बड़ी भारी सहायता की है। नारदपुराणका सारा अनुवाद हमारे प्रेसके आदरणीय विद्वान् पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री महोदयने किया है। विष्णुपुराणके श्रीमुनिलालजी (पूर्वाश्रमका नाम—वर्तमानका नाम स्वामी सनातनदेवजी) द्वारा किये हुए अनुवादका भी यत्र-तत्र संशोधन श्रीशास्त्रीजीने ही किया है। नारदपुराणकी मुद्रित प्रतिमें बहुत अधिक अशुद्धियाँ थीं तथा बहुत-से अध्यायोंके पाठमें केवल साकेतिक अक्षर या शब्दमात्र थे, उनका संशोधन और आविष्कार करनेमें शास्त्रीजीने जो परिश्रम किया, वह उनकी विद्वत्ता तथा बुद्धिमत्ताका द्योतक, सर्वथा सराहनीय और अभिनन्दनीय है। ज्यौतिष-सम्बन्धी तीनों स्कन्धोंके अनुवाद, संशोधन, पाठनिर्णय, व्याख्या, टिप्पणी आदिके कार्यमें हमें काशीनिवासी विद्वान् श्रद्धेय पं० सीतारामजी झा ज्यौतिषाचार्यसे जो अनुपम सहायता प्राप्त हुई है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। इनके सिवा, इसमें पं० श्रीरामनिहोरजी द्विवेदी ज्यौतिषाचार्य (काशी) और पं० श्रीसुवंशजी झा ज्यौतिषाचार्य (गोरखपुर) से भी बड़ी सहायता मिली है। इन्हें भी धन्यवाद है। प्रेस-कापी बनानेमें भाई वासुदेव काबराने बड़ा सहयोग दिया और प्रूफ-संशोधन तथा अन्यान्य सभी कार्योंमें हमारे सभी साथियोंने भी सदाकी भाँति बड़ी सहायता की है। इस सारी सहायताके लिये हम सबके हृदयसे कृतज्ञ हैं।

इतनेपर भी अनुवाद, छपाई, संशोधन आदिमें बहुत-सी भूलें रही हैं, इन भूलोंके लिये हमारा अपना अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है। अतएव उनके लिये हम अपने पाठक-पाठिकाओंसे करबद्ध क्षमा चाहते हैं।

पाठक-पाठिकागण इन पुण्य पुराणोंके सारको पढ़कर लाभ उठावें और लोक-परलोकमें सुख-शान्ति और मानव-जीवनके परम और चरम लक्ष्य भगवान्‌को प्राप्त करें। यही प्रार्थना है। हमारा धर्म है—'अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि' और ये दोनो ही सिद्धियाँ इन पुराणोंमें वर्णित आचारोंके श्रद्धापूर्वक सेवनसे प्राप्त हो सकती हैं। पुनः क्षमा-प्रार्थना।

विशेषाङ्कमें प्रकाशित करनेके लिये कई महानुभावोंने लेख-कविता आदि भेजनेकी कृपा की है। स्थानाभावसे उनको विशेषाङ्कमें नहीं दिया जा सका। उनमेंसे जो लेखादि स्वीकृत होंगे, वे अगले अङ्कोंमें प्रकाशित होंगे। लेखक महानुभाव कृपया क्षमा करें।

विनीत, क्षमाप्रार्थी

पोद्दार
गोस्वामी } सम्पादक

त्रिगुणातीत परम पद शोभा । मुनि जन मनमें अतिशय लोभा ॥२१॥
अमितौजा पर नित्य विराजैं । माँ भी सँगमें वहीं विराजैं ॥२२॥
वाम अंगमें वे छवि छाजैं । अपनी द्युतिसे हरिको साजैं ॥२३॥
भक्त-अनुग्रह-विग्रह देवी । रमा-विष्णुके हैं हम सेवी ॥२४॥
रमा इन्दिरा लक्ष्मी माता । नाम उन्हींके वेद बताता ॥२५॥
जो लक्ष्मी नारायण सोई । उनमें भेद कहीं नहिं कोई ॥२६॥
जो माधव सो राधा प्यारी । वृन्दावनमें कुंज-विहारी ॥२७॥
जो सीता सो राघव भी हैं । इनमें भेद कदापि नहीं है ॥२८॥
लैं अवतार जभी प्रभु भू पै । धरैं रमा भी रूप अनूपै ॥२९॥
जहाँ सूर्य है कान्ति वहीं है । जहाँ चन्द्र है शान्ति वहीं है ॥३०॥
विष्णु जहाँ हैं वहीं रमा हैं । सदा माधवी विष्णु-समा हैं ॥३१॥
विश्व-नियन्ता अन्तर्यामी । लोकविनत त्रिभुवनके स्वामी ॥३२॥
भव्य रूप मंगलमय शीला । सदा करैं रुचिकर शुभ लीला ॥३३॥
जो नर हरि-गुण-गणको गावै । सो निज हृदय मनोरथ पावै ॥३४॥
धार्मिक धर्म करै मन लाई । धन-रुचि द्रव्य अनेक कमाई ॥३५॥
और अनेक कामना-कारी । पावै प्रभुसे सम्पति सारी ॥३६॥
जो चाहै सब बंधन नाशा । पूर्ण करैं प्रभु वह भी आशा ॥३७॥
जो हरि-पदमें ही रति लावै । कृपा करैं प्रभु, वह भी पावै ॥३८॥
जय जय नारायण श्रीवासा । कीजै नित मम उर-पुर वासा ॥३९॥
हरिये प्रभु मम संकट भारी । हे गजराज-विपत्ति-विदारी ॥४०॥

त्रिगुण-रहित निज गुण-सहित दिव्य-रूप श्री-वास ।
रमा-सहित मम हृदयमें करिये नित्य निवास ॥

रजि० सं० ए० १७५

त्रिगुणातीत परम पद शोभा । मुनि जन मनमें अतिशय लोभा ॥२१॥
अमितौजा पर नित्य विराजैं । माँ भी सँगमें वहीं विराजैं ॥२२॥
वाम अंगमें वे छबि छाजैं । अपनी द्युतिसे हरिको साजैं ॥२३॥
भक्त-अनुग्रह-विग्रह देवी । रमा-विष्णुके हैं हम सेवी ॥२४॥
रमा इन्दिरा लक्ष्मी माता । नाम उन्हींके वेद बताता ॥२५॥
जो लक्ष्मी नारायण सोई । उनमें भेद कहीं नहिं कोई ॥२६॥
जो माधव सो राधा प्यारी । वृन्दावनमें कुंज-विहारी ॥२७॥
जो सीता सो राघव भी हैं । इनमें भेद कदापि नहीं है ॥२८॥
लें अवतार जभी प्रभु भू पै । धरैं रमा भी रूप अनूपै ॥२९॥
जहाँ सूर्य है कान्ति वहीं है । जहाँ चन्द्र है शान्ति वहीं है ॥३०॥
विष्णु जहाँ हैं वहीं रमा हैं । सदा माधवी विष्णु-समा हैं ॥३१॥
विश्व-नियन्ता अन्तर्यामी । लोकविनत त्रिभुवनके स्वामी ॥३२॥
भव्य रूप मंगलमय शीला । सदा करैं रुचिकर शुभ लीला ॥३३॥
जो नर हरि-गुण-गणको गावै । सो निज हृदय मनोरथ पावै ॥३४॥
धार्मिक धर्म करै मन लाई । धन-रुचि द्रव्य अनेक कमाई ॥३५॥
और अनेक कामना-कारी । पावै प्रभुसे सम्पति सारी ॥३६॥
जो चाहै सब बंधन नाशा । पूर्ण करैं प्रभु वह भी आशा ॥३७॥
जो हरि-पदमें ही रति लावै । कृपा करैं प्रभु, वह भी पावै ॥३८॥
जय जय नारायण श्रीवासा । कीजे नित मम उर-पुर वासा ॥३९॥
हरिये प्रभु मम संकट भारी । हे गजराज-विपत्ति-विदारी ॥४०॥

त्रिगुण-रहित निज गुण-सहित दिव्य-रूप श्री-वास ।
रमा-सहित मम हृदयमें करिये नित्य निवास ॥